शिवमहापुराण

हिन्दी टीका सहित

भाग : २

गौरि गिरा गणपति सुमरि, सकल सुमंगलखान । शतरुद्रियशिवसंहिता, भाषा कहूं बखान ॥ १ ॥

बडे आनन्दके देनेवाले अनन्तलीलायुक्त सर्वव्यापी महेश्वर महान् पार्वतीके पति स्वामिकार्तिक और गणेशजीके उत्पन्न करनेवाले आदिदेव शंकरको नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ शौनकजी बोले, हे व्यासशिष्य हे महाभाग हे ज्ञान और दयाके सागर सूतजी ! आप शिवजीके अवतारोंको कहिये, जिन अवतारोंके द्वारा सत्पुरुषोंका कल्याण हुआ है ॥ १ ॥ सूतजी बोले, हे मुने ! हे शौनकजी आप जितेन्द्रिय होकर भक्तिपूर्वक चित्त देकर सुनो, आप मुनिसे मैं शिवजीके अवतारोंको कहता हूं ॥ २ ॥ यही बात पहले सनत्कुमारने साक्षात् शिवमूर्ति

श्रीगणेशाय नमः॥अथ तृतीया शतरुद्रसंहिता प्रारभ्यते॥"वन्दे महानन्दमनन्तलीलम्महेश्वरं सर्व्वविभुम्महान्तम्॥गौरीप्रियं कार्तिकविघ्नराजसमुद्भवं शंकरमादिदेवम्॥१॥" शौनक उवाच॥ व्यासशिष्य महाभाग सूत ज्ञानदयानिधे ॥ वद शंभ्ववतारांश्च यैरकार्षीत्सतां शिवम् ॥१॥ सूत उवाच ॥ मुने शौनक सद्भक्त्या दत्तचित्तो जितेन्द्रियः ॥ अवतारान्छिवस्याहं वच्मि ते मुनये शृणु ॥२॥ एतत्पृष्टः पुरा नन्दी शिवमूर्तिस्सतां गतिः ॥सनत्कुमारेण मुने तमुवाच शिवं स्मरन्॥३॥नन्दीश्वर उवाच ॥ असंख्याता हि कल्पेषु विभोः सर्व्वेश्वरस्य वै ॥ अवतारास्तथापीह वच्म्यहं तान्यथामति ॥४॥ एकोनविंशकः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः॥सद्योजातावतारस्तु प्रथमः परि कीर्तितः॥५॥तस्मिंस्तत्परमं ब्रह्म ध्यायतो ब्रह्मणस्तथा॥उत्पन्नस्तु शिखायुक्तः कुमारः श्वेतलोहितः ॥ ६ ॥ तं दृष्ट्वा पुरुषं ब्रह्मा ब्रह्मरूपिणमीश्वरम् ॥ ज्ञात्वा ध्यात्वा स हृदये ववन्दे प्रयताञ्जलिः ॥ ७ ॥

सत्पुरुषोंके गति नन्दीश्वरसे पूछी थी, हे मुने ! तब शिवजीको स्मरणकर नन्दीश्वर कहने लगे ॥ ३ ॥ नन्दीश्वर बोले, सर्वव्यापक शंकरके प्रत्येक कल्पोंमें अवतार हैं, वे अनन्त हैं, पर मैं बुद्धिके अनुसार वर्णन करता हूं ॥ ४ ॥ श्वेतलोहितनाम जो उन्नीसवां कल्प है उसमें पहला सद्योजात अवतार कहा है ॥ ५ ॥ उस कल्पमें उस परब्रह्मको ध्यान करते हुए ब्रह्माजीके शिखायुक्त श्वेतलोहितकुमार उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ ब्रह्माजी उस पुरुषको देख ब्रह्मरूपी ईश्वर जान हृदयमें ध्यान करके अंजलि बाँध नमस्कार करने लगे ॥ ७ ॥

सद्योजात शिवको जानकर ब्रह्माजी प्रसन्न हुए, और बारंबार सद्बुद्धिसे उस परमपुरुषको चिन्तन करने लगे ॥ ८ ॥ तब इनके ध्यान करनेसे श्वेतवर्ण यशस्वी परम विज्ञानी परब्रह्मस्वरूपी बहुतसे कुमार उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥ सुनंद, नन्दन, विश्वनन्दन; उपनन्दन, यह उनके नाम थे यह सब महात्माके शिष्य हुए, कि जिन्होंने उस परब्रह्मको जाना ॥ १० ॥ सद्योजातशम्भुने ब्रह्माको ज्ञान दिया, और उसही परमेश्वरने प्रसन्न होकर उनको सृष्टि उत्पन्न करनेकी शक्तिभी दी ॥ ११ ॥ (इति सद्योजातावतारः १) उसके पीछे बीसवां कल्प रक्तनामक हुआ जिसमें महातेजस्वी ब्रह्माजीने रक्त (लाल) वर्ण धारण किया ॥ १२ ॥ जब ब्रह्माजीने ध्यान किया तब पुत्रकी कामना

सद्योजातं शिवं बुद्ध्वा जहर्ष भुवनेश्वरः ॥ मुहुर्मुहुश्च सद्बुद्ध्या परं तं समचिन्तयत्॥८॥ततोऽस्य ध्यायतः श्वेताः प्रादुर्भूता यशस्विनः ॥ कुमाराः परविज्ञानपरब्रह्मस्वरूपिणः ॥९॥ सुनन्दो नन्दनश्चैव विश्वनन्दोपनन्दनौ॥ शिष्यास्तस्य महात्मानो यैस्तद्ब्रह्म समावृतम् ॥१०॥ सद्योजातश्च वै शम्भुर्ददौ ज्ञानं च वेधसे ॥ सर्गशक्तिमपि प्रीत्या प्रसन्नः परमेश्वरः ॥११॥ (इति सद्योजातावतारः १) ततो विंशतिमः कल्पो रक्तो नाम प्रकीर्तितः ॥ ब्रह्मा यत्र महातेजा रक्तवर्णमधारयत्॥१२॥ध्यायतः पुत्र कामस्य प्रादुर्भूतो विधेस्सुतः ॥ रक्तमाल्याम्बरधरो रक्ताक्षो रक्तभूषणः॥१३॥ स तं दृष्ट्वा महात्मानं कुमारं ध्यानमाश्रितः॥ वामदेवं शिवं ज्ञात्वा प्रणनाम कृतांजलिः ॥ १४ ॥ ततस्तस्य सुता ह्यासंश्चत्वारो रक्तवाससः ॥ विरजाश्च विवाहश्च विशोको विश्वभावनः॥ १५ ॥ वाम देवः स वै शम्भुर्ददौ ज्ञानं च वेधसे ॥ सर्गशक्तिमपि प्रीत्या प्रसन्नः परमेश्वरः ॥१६॥ (इति वाम देवावतारः २) एकविंशतिमः कल्पः पीतवासा इति स्मृतः ॥ ब्रह्मा यत्र महाभागः पीतवासा बभूव ह ॥१७॥

करनेवाले ब्रह्माजीके रक्तमाला तथा रक्तवस्त्र धारे लालनेत्रवाला रक्तभूषण पहरे एकपुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ वह ब्रह्माजी उस महात्मा कुमारको देखकर, ध्यान करने लगे, और उसको वामदेव शिव जानकर अंजलि बाध प्रणाम करने लगे ॥ १४ ॥ तब लालवस्त्र धारण करनेवाले उनके चारपुत्र उत्पन्न हुये विरज, विवाह, त्रिशोक, विश्वभावन ॥ १५ ॥ उन बामदेव शम्भुने ब्रह्माजीको ज्ञान दिया और प्रसन्न होकर उन परमेश्वरने सृष्टि करनेकी भी सामर्थ्य दी ॥ १६ ॥ (इति वामदेवावतारः २) इक्कीसवां पीतवासा नामक कल्प प्रसिद्ध

हुआ, उसमें महाभाग्यवान् ब्रह्माजी पीले वस्त्रधारी हुये ॥ १७ ॥ जब ब्रह्माजी पुत्रकी कामनासे ध्यान करने लगे, तब उनके पीताम्बरधारी, प्रौढ अवस्थाका महातेजस्वी, दीर्घभुजावाला कुमार उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ उसको देख ध्यान करके उस पुरुषको शिवका अवतार जाना और प्रणाम कर ब्रह्माजी बुद्धिसे शिव गायत्रीको जपने लगे ॥ १९ ॥ उस सर्व लोकोंसे नमस्कार की हुई महादेवीगायत्रीको ध्यानपूर्वक चित्तसे जपनेसे महादेव प्रसन्न हुए ॥ २० ॥ तब इनके समीपसे बहुतसे दिव्य कुमार प्रगट हुए, जो सम्पूर्ण पीतवस्त्रधारी और योग मार्गके प्रवर्तक थे ॥ २१ ॥ (इति तत्पुरुषावतारः ३) उसके पीछे स्वयम्भूके पीतवर्ण कल्पके बीतनेपर फिर दूसरा शिव नामवाला कल्प प्राप्त हुआ

ध्यायतः पुत्रकामस्य विधेर्जातः कुमारकः॥ पीतवस्त्रादिकप्रौढो महातेजा महाभुजः॥१८॥तं दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्तं ज्ञात्वा तत्पुरुषं शिवम्॥प्रणनाम ततो बुद्ध्या गायत्रीं शांकरीं विधिः ॥१९॥ जपित्वा तु महादेवीं सर्वलोकनमस्कृताम् ॥ प्रसन्नस्तु महादेवो ध्यानयुक्तेन चेतसा ॥२०॥ ततोऽस्य पार्श्वतो दिव्याः प्रादुर्भूताः कुमारकाः ॥ पीतवस्त्रा हि सकला योगमार्गप्रवर्तकाः ॥२१॥ (इति तत्पुरुषावतारः ३) ततस्तस्मिन्गते कल्पे पीतवर्णे स्वयंभुवः ॥ पुनरन्यः प्रवृत्तस्तु कल्पो नाम्ना शिवस्तु स ॥ २२ ॥ एकार्णवे संव्यतीते दिव्यवर्षसहस्रके ॥ स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः ॥ २३ ॥ ततोऽपश्यन्महातेजा प्रादुर्भूतं कुमारकम् ॥ कृष्णवर्णं महावीर्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥२४॥ धृतकृष्णाम्बरोष्णीषं कृष्णयज्ञोपवीतिनम् ॥ कृष्णेन मौलिना युक्तं कृष्णस्नानानुलेपनम्॥२५॥स तं दृष्ट्वा महात्मानमघोरं घोरविक्रमम् ॥ ववन्दे देवदेवेशमद्भुतं कृष्णपिंगलम् ॥ २६ ॥ अघोरं तु ततो ब्रह्मा ब्रह्मरूपंव्यचिंतयत् ॥ तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्भक्तवत्सलमव्ययम् ॥ २७ ॥

॥ २२ ॥ समस्त स्थानपर जलहीजल था तब दिव्य सहस्र वर्षके बीतनेपर प्रजाके रचनेकी इच्छावाले ब्रह्माजी दुःखी हो विचारने लगे ॥ २३ ॥ महातेजस्वी ब्रह्माजीने कृष्णवर्ण बडे पराक्रमी अपने तेजसे प्रकाशित एक कुमारको प्रगट हुए देखा ॥ २४ ॥ काले वस्त्र और पगियाको धारे तथा काले यज्ञोपवीतको पहने और कृष्ण मुकुटको धारण किये तथा काले गंध अनुलेपन किये ॥ २५ ॥ वह ब्रह्माजी अघोर और घोर पराक्रमी कृष्ण पिंगलवर्ण अद्भुत देवदेवेशको देखकर प्रणाम करने लगे ॥ २६ ॥ तब ब्रह्मा जो उन अघोर ब्रह्मरूपका

चिन्तन करने लगे, और भक्तवत्सल अविनाशी उस शिवावतारकी प्रियवाणीसे स्तुति करने लगे, ॥ २७ ॥ तब इसके समीप कृष्ण गंधानु लेपन किये कृष्णवर्ण चार महात्मा कुमार प्रगट हुए ॥ २८ ॥ कृष्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य कृष्ण कण्ठधारी, इस प्रकार अव्यक्त नामवाले तेजस्वी शिवस्वरूप हुए ॥ २९ ॥ इस प्रकारके वे महात्मा ब्रह्माकी सृष्टि बढानेके कारण बडे अद्भुत घोर नामक योगको करने लगे ॥ ३० ॥ (इति अघोरावतारः ४) हे मुनीश्वरो ! तब दूसरा ब्रह्माका कल्प हुआ वह परम अद्भुत विश्वरूप नाम करके विख्यात हुआ ॥ ३१ ॥ जब पुत्रकी इच्छा करते हुए ब्रह्माजी मनसे शिवका ध्यान करने लगे, तब बडे नाद (शब्द) करनेवाली विश्वरूपा सरस्वती

अथास्य पार्श्वतः कृष्णाः कृष्णस्नानानुलेपनाः॥चत्वारस्तु महात्मानः संबभूवुः कुमारकाः॥२८॥कृष्ण कृष्णशिखश्चैव कृष्णास्यः कृष्णकण्ठधृक् ॥ इति तेऽव्यक्तनामानः शिवरूपाः सुतेजसः॥२९॥ एवंभूता महात्मानो ब्रह्मणः सृष्टिहेतवे॥योगं प्रवर्त्तयामासुर्घोराख्यं महदद्भुतम् ॥३०॥ (इत्यघोरावतारश्चतुर्थः ४) अथान्यो ब्रह्मणः कल्पः प्रावर्त्तत मुनीश्वराः ॥ विश्वरूप इति ख्यातो नामतः परमाद्भुतः॥३१॥ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतो मनसा शिवम्॥प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती ॥३२॥ तथाविधः स भगवानीशानः परमेश्वरः ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशः सर्वाभरणभूषितः ॥३३॥ तं दृष्ट्वा प्रणनामासौ ब्रह्मेशानमजं विभुम् ॥ सर्वगं सर्वदं सर्वं सुरूपं रूपवर्जितम्॥३४॥ईशानोऽपि तथादिश्य सन्मार्गं ब्रह्मणे विभुः॥ सशक्तिः कल्पयांचक्रे स बालांश्चतुरः शुभान् ॥३५॥ जटी मुण्डी शिखण्डी च अर्द्धमुण्डश्च जज्ञिरे॥ योगेनादिश्य सद्धर्मं कृत्वा योगगतिं गताः ॥३६॥

प्रगट हुई ॥ ३२ ॥ उसी प्रकारके वेषधारे वह परमेश्वर भगवान् ईशान शुद्ध स्फटिक मणिके सम्पूर्ण आभूषणोंसे अलंकृत प्रगट हुए ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजी उन अज विभु शिवको देखकर प्रणाम करने लगे जो सर्वान्तर्यामी सब कुछ देनेवाले सब स्वरूप और रूप वर्जित हैं ॥ ३४ ॥ उन विभु ईश्वरने भी ब्रह्माजीको सन्मार्गकी आज्ञा देकर अपनी शक्तिसे चार शुभ बालक उत्पन्न किये ॥ ३५ ॥ जटी (जटाधारी) मुंडी (मुंडित केशवाला) शिखण्डी (शिखाधारी) तथा अर्धमुण्डी, इस प्रकार चार बालक प्रगट हुए, योगके द्वारा सद्धर्मका अनुष्ठान करके वे योगकी गतिको

प्राप्त हुए ॥ ३६ ॥ (इति ईशानावतारः ५) हे सर्वज्ञ सनत्कुमार ! इस प्रकार सद्यआदि शिवके अवतारोंको संक्षेपसे लोकोंके हितकामनाके अर्थ वर्णन किया ॥ ३७ ॥ हे महापंडित ! उन्हींका यथा योग्य त्रिलोकीका हितकारी व्यवहार सम्पूर्ण ब्रह्मांडमें फैल गया ॥ ३८ ॥ ईशान पुरुष अघोर तथा वामसंज्ञक और ब्रह्मनामवाली इस प्रकार शिवकी पांचमूर्ति संसारमें विख्यात हैं ॥ ३९ ॥ ईशान शिवका रूप महान् और पहला कहा है वह साक्षात् प्रकृतिके भोगने वाले क्षेत्रज्ञको अधिकार करके स्थित हो रहा है ॥ ४० ॥ और दूसरा शिवजीका तत्पुरुषनामक स्वरूप है जो गुणोंके आश्रयवाले भोगोंको भोगनेवाला सर्वज्ञ होकर स्थित होरहा है ॥ ४१ ॥ और जो तीसरा अघोर नाम स्वरूप कहाता

(इतीशानावतारः पञ्चमः ५) एवं संक्षेपतः प्रोक्तः सद्यादीनां समुद्भवः ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ लोकानां हितकाम्यया॥३७॥अथ तेषां महाप्राज्ञ व्यवहारं यथायथम् ॥ त्रिलोकहितकारं हि सर्वं ब्रह्माण्डसंस्थितम् ॥३८॥ ईशानः पुरुषो घोरो वामसंज्ञस्तथैव च ॥ ब्रह्मसंज्ञो महेशस्य मूर्तयः पंच विश्रुताः ॥३९॥ ईशानः शिवरूपश्च गरीयान्प्रथमः स्मृतः ॥ भोक्तारं प्रकृतेः साक्षात्क्षेत्रज्ञमधिति ष्ठति ॥४०॥ शैवस्तत्पुरुषाख्यश्च स्वरूपो हि द्वितीयकः ॥ गुणाश्रयात्मकं भोग्यं सर्वज्ञमधितिष्ठति॥४१॥धर्माय स्वांगसंयुक्तं बुद्धितत्त्वं पिनाकिनः ॥ अघोराख्यस्वरूपो यस्तिष्ठत्यंतस्तृतीयकः ॥ ४२ ॥ वामदेवाह्वयो रूपश्चतुर्थः शङ्करस्य हि ॥ अहंकृतेरधिष्ठानो बहुकार्यकरः सदा ॥ ४३ ॥ ईशानाह्वस्वरूपो हि शंकरस्येश्वरः सदा ॥ श्रोत्रस्य वचसश्चापि विभो व्योम्नस्तथैव च ॥ ४४ ॥ त्वक्पाणिस्पर्शवायूनामीश्वरं रूपमैश्वरम् ॥ पुरुषाख्यं विचारज्ञा मतिमन्तः प्रचक्षते ॥ ४५ ॥ वपुषश्च रसस्यापि रूपस्याग्नेस्तथैव च ॥ अघोराख्यमधिष्ठानं रूपमाहुर्मनीषिणः ॥ ४६ ॥

है वह शिवजीके निज अंगसे संयुक्त धर्मके निमित्त बुद्धिका तत्त्व है ॥ ४२ ॥ और जो चौथा वामदेव नामक शिवका रूप है, वह अहंकारका अधिष्ठान होकर सदा बहुत कार्य करने वाला है ॥ ४३ ॥ ईशान नामक जो पांचवां शिवका स्वरूप है वह श्रोत्र इन्द्रियका तथा वाक् इंद्रियका विभु और आकाशका अधिष्ठान है ॥ ४४ ॥ त्वचा, हाथ, स्पर्श, वायुका अधिष्ठातृ देवता जो ईशान शिवका रूप है उसे विचारके जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुष नामक शिवका अवतार कहते हैं ॥ ४५ ॥ शरीरका, रसका, रूपका, अग्निका अधिष्ठातृ देवता, अघोर

नामक शंकरका रूप है, बुद्धिमान् ऐसा कहते हैं ॥ ४६ ॥ जिह्वा, गुदा, रस तथा जलोंका अधिष्ठाता वामदेवनामक शिवका स्वरूप कहा है ॥ ४७ ॥ नासिका, उपस्थेन्द्रिय, गन्ध और भूमिका सद्योजात नामक ईश्वर शंकरका रूप कहा है ॥ ४८ ॥ यह शंभुके रूप यत्नपूर्वक वंदना करने योग्य हैं यही एक कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंको नित्य कल्याणके देनेवाले हैं ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य सद्यआदिकी उत्पत्तिको पढता अथवा सुनता है वह संपूर्ण भोगोंको भोगकर परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृतीयशतरुद्रसंहितायां पंचावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ नंदीश्वर बोले, हे प्रभो ! हे तात ! हे मुने ! शिवजीके बडे अवतारोंको सुनो, जो लोकमें संपूर्ण

रशनायाश्च पायोश्च रसस्यापां तथैव च ॥ ईश्वरं वामदेवाख्यं स्वरूपं शांकरं स्मृतम् ॥ ४७ ॥ घ्राणस्यचैवोपस्थस्य गंधस्य च भुवस्तथा ॥ सद्योजाताह्वयं रूपमीश्वरं शांकरं विदुः ॥ ४८ ॥ इमे स्वरूपाः शंभोर्हि वन्दनीयाः प्रयत्नतः ॥ श्रेयोर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः ॥४९॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि सद्यादीनां समुद्भवम् ॥ स भुक्त्वा सकलान्कामान्प्रयाति परमां गतिम् ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवस्य पञ्चब्रह्मावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ शृणु तात महेशस्यावतारान्परमान्प्रभो ॥ सर्वकार्यकरांल्लोके सर्वस्य सुखदान्मुने ॥ १ ॥ तस्य शंभोः परेशस्य मूर्त्यष्टकमयं जगत् ॥ तस्मिन्व्याप्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव ॥ २ ॥ शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशो पतिः ॥ ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्ट विश्रुताः ॥ ३ ॥ भूम्यंभोग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः ॥ अधिष्ठिताश्च शर्वाद्यैरष्टरूपैः शिवस्य हि ॥ ४ ॥ धत्ते चराचरं विश्वं रूपं विश्वंभरात्मकम् ॥ शंकरस्य महेशस्य शास्त्रस्यैवेति निश्चयः ॥ ५ ॥

कार्योंको करनेवाले और सबको सुख देनेवाले हैं॥१॥उन ईश्वर शिवकी आठ मूर्तिवाला यह समस्त संसार है जैसे कि सूत्रमें मणियोंका समुदाय गुथा होता है तैसेही उसमें व्याप्त होकर संपूर्ण विश्व स्थित है ॥ २ ॥ शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव, यह आठ मूर्ति विख्यात हैं ॥ ३ ॥ भूमि, जल, अग्नि, पवन, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमा यह शिवके शर्व आदि आठों रूपोंसे अधितिष्ठ है ॥ ४ ॥ शंकर महेशका विश्वंभरात्मक रूप चर अचर संसारको धारण करता है, ऐसा शास्त्रका निश्चय है ॥ ५ ॥

और संसारका जिवानेवाला जलात्मक उन परमात्मा शिवका भवरूप ऐसा कहा है ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! जो स्वयं बाहर और भीतर स्थित हो संसारका पालन करता है और चलाता है वह उग्रनामक शिवका रूप है ऐसा सत्पुरुष कहते हैं ॥ ७ ॥ सबको अवकाश देनेवाला, सर्वव्यापक, आकाशात्मक, भीमरूप, शिवका भीमनामक रूप है, जो राजाओंके समुदायका भेदन करनेवाला है ॥८॥ जो सब आत्माओंका अधिष्ठातृ देव है, और समस्त क्षेत्रोंका निवासस्थान है वह शिवका पशुपति नामक रूप है, जो पशुजीवोंके पाशोंका काटनेवाला है ॥ ९ ॥ जो सूर्यात्मक होकर सब संसारको प्रकाश करनेवाला है, वह शिवजीका ईशाननामकरूप आकाशमें फैल रहा है ॥१०॥ जो अमृतरूप किरणोंवाला (चन्द्रमा)

संजीवनं समस्तस्य जगतः सलिलात्मकम् ॥ भव इत्युच्यते रूपं भवस्य परमात्मनः ॥६॥ बहिरंतर्जगद्विश्वं बिभर्ति स्पन्दतेस्वयम् ॥ उग्र इत्युच्यते सद्भी रूपमुग्रस्य सत्प्रभो ॥७॥ सर्वावकाशदं सर्वव्यापकं गगनात्मकम्॥रूपं भीमस्य भीमाख्यं भूपवृन्दस्व भेदकम् ॥ ८ ॥ सर्वात्मनामधिष्ठानं सर्वक्षेत्रनिवासकम् ॥ रूपं पशुपतेर्ज्ञेयं पशुपाशनिकृन्तनम् ॥९॥ सन्दीपयज्जगत्सर्वं दिवाकरसमाह्वयम् ॥ ईशानाख्यं महेशस्य रूपं दिवि विसर्पति ॥१०॥ आप्याययति यो विश्वममृतांशुर्निशाकरः ॥ महादेवस्य चाह्वयम् ॥ ११ ॥ आत्मा तस्याष्टमं रूपं शिवस्य परमात्मनः ॥ व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम् वस्य तद्रूपं ॥ १२ ॥ शाखाः पुष्प्यन्ति वृक्षस्य वृक्षमूलस्य सेचनात् ॥ तद्वदस्य वपुर्विश्वं पुष्प्यते च शिवार्चनात ॥१३॥ यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत्पिता ॥ तथा विश्वस्य सम्प्रीत्या प्रीतो भवति शंकरः ॥ १४ ॥

संसारको तृप्त करता है, वह शिवजीका महादेव नामक रूप कहा है ॥ ११ ॥ और उन परमात्मा शिवका, आत्मा नामक रूप अठवाँ है और मूर्त अमूर्त सबमें व्यापक होनेसे यह सब संसार शिवरूप है ॥ १२ ॥ जैसे वृक्षकी जडको सेचन करनेसे सब शाखाएँ पुष्ट होती हैं, उसी प्रकार सब संसार उन शिवका शरीर है, और शिवजीके अर्चन करनेसे सब विश्व पुष्ट होता है ॥ १३ ॥ जिस प्रकार संसारमें सब पुत्र पौत्र आदिकी प्रसन्नतासे पिता स्वयं प्रसन्न होता है उसी प्रकार सब संसारके साथ प्रीति करनेसे वह शिवजी प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥

यदि किसी देहधारी प्राणीका निग्रह (बंधन) किया तो मानों शिवकी, अष्टमूर्तिका अनिष्ट किया इसमें संशय नहीं ॥ १५ ॥ शिवजी अष्ट मूर्तिरूप आत्मासे संसारभरमें अधिष्ठित हो स्थित होरहे हैं इस कारण उन परमकारण, रुद्ररूप शिवका सब भावसे भजन करना चाहिये ॥१६॥ हे सनत्कुमारजी! जो विख्यात आठरूप सबके उपकार करनेमें तत्पर हैं सो आपसे कहे कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको इनकी सेवा करनी चाहिये ॥ १७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० शिवाष्टमूर्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ नन्दीश्वर बोले, हे महाप्राज्ञ ! हे तात ! विधाताकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, अर्धनारीनर नामवाला शिवका श्रेष्ठ रूप वर्णन करता हूं सुनो ॥१॥ जब ब्रह्माजीकी रची

क्रियते यस्य कस्यापि देहिनो यदि निग्रहः॥अष्टमूर्त्तेरनिष्टं तत्कृतमेव न संशयः॥१५॥अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठायास्थितं शिवम्॥भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम् ॥१६॥ इति प्रोक्ताः स्वरूपास्ते विधिपुत्राष्टविश्रुताः॥ सर्वोपकारनिरताः सेव्याः श्रेयोर्थिभिर्नरैः ॥ १७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवाष्टमूर्त्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नन्दीश्वर उवाच शृणु तात महाप्राज्ञ विधिकामप्रपूरकम् ॥ अर्द्धनारीनराख्यं हि शिवरूपमनुत्तमम् ॥ १ ॥ यदा सृष्टाः प्रजासर्वाः न व्यवर्द्धत वेधसा ॥ तदा चिंताकुलोऽभूत्स तेन दुःखेन दुखितः ॥ २ ॥ नभोवाणी तदाभूद्वै सृष्टिं मिथुनजां कुरु ॥ तच्छ्रुत्वा मैथुनीं सृष्टिं ब्रह्मा कर्तुममन्यत ॥३॥ नारीणां कुलमीशान्निर्गतं न पुरा यतः॥ततो मैथुनजां सृष्टिं कर्तुं शेके न पद्मभूः ॥ ४ ॥ प्रभावेण विना शंभोर्न जायेरन्निमाः प्रजाः ॥ एवं संचिन्तयन्ब्रह्मा तपः कर्त्तुं प्रचक्रमे ॥ ५ ॥

हुई सम्पूर्ण प्रजा नहीं बढी, तब वे दुःखसे व्याकुल हो चिन्ता करने लगे ॥ २ ॥ उस समय आकाशवाणी हुई कि मैथुनी सृष्टिको उत्पन्न करो यह सुनकर ब्रह्माजीने मैथुनी सृष्टिके निर्माण करनेका निश्चय किया ॥ ३ ॥ कारण कि पहले स्त्रियोंका कुल शिवजीसे प्रगट नहीं हुआ था, इस कारण ब्रह्माजी मैथुनवाली सृष्टि करनेको समर्थ न हुए ॥ ४ ॥ विना शिवजीके प्रभावसे प्रजा नहीं उत्पन्न होगी, इस प्रकार विचारते हुए ब्रह्माजी तप करनेको उद्यत हुए ॥ ५ ॥

पार्वती रूप परम शक्तिसे युक्त परमेश्वरका हृदयमें प्रीतिसे ध्यान करके परम तप करने लगे ॥ ६ ॥ तीव्र (कठिन) तपमें संयुक्त हुए ब्रह्माजीके थोडे समयमें ही शिवजी शीघ्र संतुष्ट होगये ॥ ७ ॥ और पूर्ण चिद्रूप ईश्वरने अपनी कामकी देनेवाली मूर्तिमें प्रवेश करके आधी नारी और आधे पुरुष रूप होकर ब्रह्माके समीप गमन किया ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी उन शंकरको परम शक्तिसे युक्त हुआ देख दंडवत् प्रणाम करके हाथ जोडकर स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ तब देवोंमें उत्तम शिवजी विश्वके करनेवाले महेश्वर प्रसन्न हो मेघके समान गंभीर वाणीसे ब्रह्मासे बोले ॥ १० ॥ ईश्वर बोले, हे वत्स ! मेरे पुत्र ब्रह्माजी ! हे महाभाग ! मैंने तत्त्वसे तुम्हारे मनोरथ जान लिया ॥ ११ ॥

शिवया परया शक्त्या संयुक्तं परमेश्वरम्॥संचिंत्य हृदये प्रीत्या तेपे सपरमं तपः॥६॥तीव्रेण तपसा तस्य संयुक्तस्य स्वयंभुवः॥ अचिरेणैव कालेन तुतोष स शिवो द्रुतम्॥७॥ततः पूर्णचिदीशस्य मूर्तिमाविश्य कामदाम्॥अर्द्धनारीनरो भूत्वा ततो ब्रह्मान्तिकं हरः ॥८॥ तं दृष्ट्वा शंकरं देवं शक्त्या प्रमयान्वितम्॥प्रणम्य दण्डवद्ब्रह्मा स तुष्टाव कृताञ्जलिः ॥९॥ अथ देवो महादेवो वाचा मेघगभीरया ॥ संभवाय सुसंप्रीतो विश्वकर्त्ता महेश्वरः॥१०॥ईश्वर उवाच॥ वत्सवत्स महाभाग मम पुत्र पितामह॥ ज्ञातवानस्मि सर्वं तत्तत्त्वतस्ते मनोरथम् ॥११॥प्रजानामेव वृद्ध्यर्थं तपस्तप्तं त्वयाधुना॥तपसा तेन तुष्टोऽस्मि ददामि च तवेप्सितम्॥१२॥ इत्युक्त्वा परमोदारं स्वभावमधुरं वचः॥पृथक्चकार वपुषो भागाद्देवीं शिवां शिवः॥१३तां दृष्ट्वा परमां शक्तिं पृथग्भूतां शिवागताम्॥ प्रणिपत्य विनीतात्मा प्रार्थयामास तां विधिः ॥१४॥ ब्रह्मोवाच॥ देवदेवेन सृष्टोहमादौ त्वत्पतिना शिवे॥प्रजाः सर्वा नियुक्ताश्च शंभुना परमात्मना ॥ १५॥ मनसा निर्मिताः सर्वे शिवे देवादयो मया॥ न वृद्धिमुपगच्छंति सृज्यमानाः पुनःपुनः ॥ १६ ॥

कि प्रजाके बढनेके लिये तुमने अब तप किया है उस तपसे सन्तुष्ट होकर तुमको ईप्सित वर देता हूं ॥ १२ ॥ इस प्रकार परम उदार स्वभावसे मधुर वचन कहके शिवजीने अपने शरीरके भागसे शिवा देवीको पृथक् किया ॥ १३ ॥ उस परम शक्तिको शिवसे पृथक् हुआ देखकर विनीतात्मा ब्रह्माजी प्रणाम करके उससे प्रार्थना करने लगे ॥ १४ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे शिवे ! देवोंके देव तुम्हारे पतिने मेरी रचनाकी है और सारी प्रजा भी परमात्मा शिवने ही सृजी है ॥ १५ ॥ हे शिवे ! मैंने संपूर्ण देवता मनसे बनाये हैं बारम्बार सृजे हुये भी

वृद्धिको नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ इसके आगे मैथुनसे उत्पन्न होनेवाली सृष्टिको उत्पन्न करके बढानेकी इच्छा है यह सारी मेरी प्रजा है ॥ १७ ॥ पहले तुमसे नारियोंका अविनाशी कुल नहीं प्रगट हुआ इस कारण नारी कुल अति श्रेष्ठ है इसमें मेरी शक्ति नहीं है ॥ १८ ॥ सब शक्तियोंकी तुम्हारी शक्तिसे ही उत्पत्ति है इस कारण सबकी ईश्वरी तुम परमाशक्तिकी प्रार्थना करता हूं ॥ १९ ॥ हे शिवे ! मुझे नारी कुल रचनेकी शक्ति दीजिये आपको नमस्कार है हे मातः ! हे शिव प्रिये ! चर अचर संसारके कारण शिवजीको जानो ॥ २० ॥ हे वरदेश्वरि ! और भी एक वर तुमसे मांगता हूं सो उसको मुझे कृपा करके दीजिये हे जगत्की माता ! तुमको नमस्कार है ॥ २१ ॥ हे सर्वगे !

मिथुनप्रभवामेव कृत्वा सृष्टिमतः परम् ॥ संवर्द्धयितुमिच्छामि सर्वा एव मम प्रजाः ॥१७॥ न निर्गतं पुरा त्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम् ॥ तेन नारीकुलं श्रेष्ठं मम शक्तिर्न विद्यते ॥१८॥ सर्वासामव शक्तीनां त्वत्तः खलु समुद्भवः॥ तस्मात्त्वं परमां शक्तिं प्रार्थयाम्यखिलेश्वरीम् ॥ १९ ॥ शिवे नारीकुलं स्रष्टुं शक्तिं देहि नमोऽस्तु ते ॥ चराचरं जगद्विद्धि हेतोर्मातः शिवं प्रिये ॥ २० ॥ अन्यं त्वत्तः प्रार्थयामि वरं च वरदेश्वरि ॥ देहि मे तं कृपां कृत्वा जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥ २१ ॥ चराचरविवृद्ध्यर्थमीशेनैकेन सर्वगे ॥दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवाम्बिके ॥२२॥ एवं संयाचिता देवी ब्रह्मणा परमेश्वरी ॥ तथास्त्विति वचः प्रोच्य तच्छक्तिं विधये ददौ ॥ २३ ॥ तस्माद्धि सा शिवा देवी शिवशक्तिर्जगन्मयी ॥ शक्तिमेकां भ्रुवोर्मध्यात्ससर्जात्मसमप्रभाम् ॥ २४ ॥ तामाह प्रहसन्प्रेक्ष्य शक्तिं देववरो हरः ॥ कृपासिन्धुर्महेशानो लीलाकारी भवाम्बिकाम् ॥२५॥ शिव उवाच ॥ तपसाराधिता देवि ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ प्रसन्ना भव सुप्रीत्या कुरु तस्याखिलेप्सितम् ॥ २६ ॥

हे संसारकी माता ! हे शिवे ! एक ही सामर्थ्यसे चर अचर संसारकी वृद्धिके निमित्त तुम मेरे पुत्र पक्षकी पुत्री होओ ॥ २२ ॥ इस प्रकार ब्रह्मासे याचना की हुई परमेश्वरी देवीने ऐसा ही हो इस प्रकार वचन कहके उस शक्तिको ब्रह्माके निमित्त दिया ॥ २३ ॥ जगन्मयी शिवा देवीने उस शक्तिसे भ्रूके मध्य भागसे अपने समान कान्तिवाली, दूसरी शक्ति निर्माण की ॥ २४ ॥ उस शक्तिको देख देवताओंमें श्रेष्ठ, कृपा सिन्धु लीला करनेवाले शिवजीने हँसकर जगत्की मातासे कहा ॥ २५ ॥ शिवजी बोले, हे देवि ! परमेष्ठी ब्रह्मासे तपके द्वारा आराधना

की हुई प्रसन्नहो, और उनके सब मनोरथोंको सिद्ध करो ॥ २६ ॥ उस देवीने, शिवजीकी आज्ञाको मस्तकपर धारण करके, ब्रह्माके वचनसे दक्षकी पुत्री होना स्वीकार किया ॥ २७ ॥ हे मुने ! वह शिवा, ब्रह्माको अतुल शक्ति देकर शिवके शरीरमें प्रविष्ट हुई और महासमर्थ शिवजी भी अन्तर्धान हुए ॥ २८ ॥ उस दिनसे इस संसारमें स्त्रीका भाग देना कल्पित हुआ, तब ब्रह्माजी बडे आनंदको प्राप्त हुए और मैथुनी सृष्टिका आरंभ हुआ ॥ २९ ॥ हे तात यह अतिश्रेष्ठ शिवका रूप तुमसे कहा, यह अर्धनारी, नरार्धरूप सत्पुरुषोंको बडे मंगलका देनेवाला है ॥ ३० ॥ जो पुरुष इस पुण्यके देनेवाली कथाको पढता है या सुनता है वह संपूर्ण भोगोंको भोगकर परम गति (मोक्ष) को

तामाज्ञां परमेशस्य शिरसा प्रतिगृह्य सा ॥ ब्रह्मणो वचनाद्देवी दक्षस्य दुहिताभवत् ॥ २७॥ दत्त्वैवमतुलां शक्तिं ब्रह्मणो सा शिवा मुने ॥ विवेश देहं शंभोर्हि शंभुश्चान्तर्दधे प्रभुः ॥ २८ ॥ तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन्स्त्रिया भागः प्रकल्पितः ॥ आनन्दं प्राप स विधिःसृष्टिर्जाता च मैथुनी ॥ २९ ॥एतत्ते कथितं तात शिवरूपं महोत्तमम् ॥ अर्द्धनारीनरार्द्धं हि महामंगलदं सताम् ॥३०॥ एतदाख्यानमनघं यः पठेच्छ्रुणुयादपि ॥ स भुक्त्वा सकलान्भोगान्प्रयाति परमां गतिम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां रुद्रसंहितायां शिवस्यार्द्धनारीनरावतारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नन्दीश्वर उवाच॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ चरितं शांकरं मुदा ॥ रुद्रेण कथितं प्रीत्या ब्रह्मणेसुखदं सदा ॥ १ ॥ शिव उवाच ॥ सप्तमे चैव वाराहे कल्पे मन्वन्तराभिधे ॥ कल्पेश्वरोऽथ भगवान्सर्व लोकप्रकाशनः ॥ २ ॥ मनोर्वैवस्वतस्यैव ते प्रपुत्रो भविष्यति ॥ तदा चतुर्युगाश्चैव तस्मिन्मन्वन्तरे विधे ॥ ३ ॥ अनुग्रहार्थं लोकानां ब्राह्मणानां हिताय च ॥ उत्पश्यामि विधे ब्रह्मन्द्वापराख्ययुगान्तिके ॥ ४ ॥

प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० शिवस्यार्ध नारीनरावतारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नंदीश्वर बोले, हे सर्वज्ञ ! सनत्कुमार ! रुद्रसे कहा हुआ शंकरका चरित्र निरंतर ब्रह्माको सुख देनेवाला है ॥ १ ॥ शिवजी बोले, कि सातवें मन्वंतरके बाराहकल्पमें कल्पेश्वर भगवान्; सब लोकोंके प्रकाश करने वाले ॥ २ ॥ तुझ मनु वैवस्वतके परपोते होंगे तब हे ब्रह्मा ! उस मन्वंतरमें चारों युग होंगे ॥ ३ ॥ लोकोंके अनुग्रहके निमित्त और ब्राह्मणोंके हितके निमित्त द्वापर युगके अन्तमें हे विधे ! हे ब्रह्मन् ! मैं

उत्पन्न हूंगा ॥४॥ हे ब्रह्माजी ! तब युगकी प्रवृत्तिसे उस प्रथम युगमें जब पहला द्वापर होगा और व्यासजी स्वयं प्रभु होंगे ॥ ५ ॥ तब मैं ब्राह्मणोंके हितार्थ उस कलियुगके अन्तमें शिवायुक्त श्वेतनामक महामुनि हूंगा ॥६॥ ब्रह्माजी हिमालयके मनोहर शिखरपर पर्वतोत्तम छागलमें उस समय मेरे शिखायुक्त शिष्य होंगे ॥७॥ श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व श्वेतलोहित यह चारों ध्यान योगसे मेरे पुत्रको प्राप्त होंगे ॥ ८॥ तब तुझ अव्ययको तत्त्वसे जानकर और भी बहुत मेरे भक्त होंगे और जन्म मरण वृद्धावस्थासे रहित हुए परब्रह्ममें समाधि लगाने वाले होंगे ॥९॥ हे पितामह ! मनुष्योंको

युगप्रवृत्त्या च तदा तस्मिंश्च प्रथमे युगे ॥ द्वापरे प्रथमे ब्रह्मन्यदा व्यासः स्वयंप्रभुः ॥५॥ तदाहं ब्राह्मणार्थाय कलौ तस्मिन्युगान्तिके ॥ भविष्यामि शिवायुक्तः श्वेतो नाम महामुनिः ॥ ६ ॥ हिमवच्छिखरे रम्येछागले पर्वतोत्तमे ॥ तदा शिष्याः शिखायुक्ता भविष्यन्ति विधे मम ॥७॥ श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेताश्वः श्वेतलोहितः ॥ चत्वारो ध्यानयोगात्ते गमिष्यन्ति पुरं मम ॥८॥ ततो भक्ता भविष्यन्ति ज्ञात्वा मां तत्त्वतोऽव्ययम् ॥ जन्ममृत्युजराहीनाः परब्रह्मसमाधयः ॥९॥ द्रष्टुं शक्यो नरैर्नाहमृतेध्यानात्पितामह ॥ दानधर्मादिभिर्वत्स साधनैः कर्महेतुभिः ॥१०॥ द्वितीये द्वापरे व्यासः सत्यो नाम प्रजापतिः ॥ यदा तदा भविष्यामिसुतारो नामतः कलौ ॥ ११ ॥ तत्रापि मे भविष्यन्ति शिष्या वेदविदो द्विजाः॥ दुन्दुभिः शतरूपश्च हृषीकः केतुमांस्तथा ॥१२॥ चत्वारो ध्यानयोगात्ते गमिष्यन्ति पुरं मम॥ततो मुक्ता भविष्यन्ति ज्ञात्वा मां तत्त्वतोऽव्ययम् ॥ १३ ॥ तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः ॥ तदाप्यहं भविष्यामि दमनस्तु पुरान्तिके ॥ १४ ॥

विना ध्यानके मैं नहीं दीख सकता, केवल दान, धर्म आदि कर्मके हेतु साधनोंसे प्राणी मुझे देख सकते हैं ॥ १० ॥ दूसरे द्वापरमें सत्यनामक प्रजापति व्यास होंगे तब मैं कलियुगमें सुतारनामसे विख्यात हूंगा ॥११॥ उस युगमें भी मेरे शिष्य वेदके जाननेवाले ब्राह्मण होंये ये दुंदुभि, शतरूप, हृषीक केतुमान नामवाले होंगे ॥ १२ ॥ वे चारों ध्यानयोगसे मेरे पुरको प्राप्त होंगे, और मुझ अव्ययको तत्त्वसे जानकर मुक्त होंगे ॥ १३ ॥ तीसरे द्वापरमें जब भार्गव व्यासजी होंगे तब मैं पुरके समीप दमननामसे विख्यात हूंगा ॥ १४ ॥

वहां मेरे चार पुत्र होंगे । विशोक, विशेष, विपाप और पापनाशन ॥ १५ ॥ हे चतुरानन ! व्यासजीके शिष्योंकी सहायता करूंगा और कलि युगमें निवृत्ति (मोक्ष) मार्गको बताऊंगा ॥१६॥ चतुर्थ द्वापरमें जब अंगिरा व्यासजी होंगे उस समय मैं सुहोत्र नामसे प्रगट होऊंगा॥१७॥ उस युगमें भी मेरे यह चारों पुत्र योगसाधक महात्मा होंगे, हे विधे ! उनके नाम कहता हूं ॥ १८ ॥ सुमुख, दुर्मुख, दुदर्भ दुरतिक्रम, हे विधे ! उस समय भी मैं व्यासके शिष्योंकी सहायता करूंगा ॥ १९ ॥ पंचम द्वापरमें सविता व्यास होंगे तब कंकनामक योगी महातपस्वी हूंगा ॥२०॥

तत्रापि च भविष्यन्ति चत्वारो मम पुत्रकाः ॥ विशोकश्च विशेषश्च विपापः पापनाशनः ॥ १५ ॥ शिष्यैः साहाय्यं व्यास स्य करिष्ये चतुरानन ॥ निवृत्तिमार्गं सुदृढं वर्त्तयिष्ये कलाविह ॥ १६ ॥ चतुर्थे द्वापरे चैव यदा व्यासोंऽगिराः स्मृतः ॥ तदा प्यहं भविष्यामि सुहोत्रो नाम नामतः ॥ १७ ॥ तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारो योगसाधकाः ॥ भविष्यंति महात्मानस्तन्नामानि ब्रुवे विधे ॥ १८ ॥ सुमुखोदुर्मुखश्चैव दुदर्भो दुरतिक्रमः ॥ शिष्यैः साहाय्यं व्यासस्य करिष्येऽहं तदा विधे ॥ १९ ॥ पञ्चमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता स्मृतः ॥ तदा योगी भविष्यामि कंको नाम महातपाः ॥ २० ॥ तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारो योगसाधकाः ॥ भविष्यन्ति महात्मानस्तन्नामानि शृणुष्व मे ॥ २१ ॥ सनकः सनातनश्चैव प्रभुर्यश्च सनन्दनः ॥ विभुः सनत्कु मारश्च निर्मलो निरहंकृतिः ॥ २२ ॥ तत्रापि कंकनामाहं साहाय्यं सवितुर्विधे ॥ व्यासस्य हि करिष्यामि निवृत्तिपथवर्द्धकः ॥ २३ ॥ परिवर्ते पुनः षष्ठे द्वापरे लोक कारकः ॥ कर्ता वेदविभागस्य मृत्युर्व्यासो भविष्यति ॥ २४ ॥ तदाऽप्यहं भवि ष्यामि लोकाक्षिर्नाम नामतः ॥ व्यासस्य सुसाहा य्यार्थं निवृत्तिपथवर्द्धनः ॥ २५ ॥

उस युगमें भी चारों पुत्र योगके साधक महात्मा होंगे उनके नाम सुनो ॥ २१ ॥ सनक, सनातन, और समर्थ सनंदन और विभु निर्मल चित्त अहंकार रहित सनत्कुमार यह चार पुत्र होंगे ॥२२॥ हे ब्रह्मा ! वहां मैं कंकनामसे होकर सविता व्यासजीकी सहायता करूंगा और निवृत्ति मार्गका बढानेवाला होऊँगा ॥२३॥ फिर जब छठा द्वापर युग आवेगा तब लोकके करनेवाले वे वेदविभागके कर्त्ता मृत्यु नामवाले व्यासजी होंगे ॥ २४ ॥ उस समय मैं लोकाक्षि नामवाला हूंगा और व्यासजीकी सहायताके अर्थ निवृत्तिमार्गको बढाऊंगा ॥ २५ ॥

वहां भी मेरे चार शिष्य दृढव्रतवाले होंगे, सुधामा, विरजा, संजय तथा विजय उनके नाम होंगे ॥२६॥ सातवें द्वापरके प्रवृत्त होनेमें जब इन्द्र व्यासजी होंगे हे विधाता ! तब मैं सर्वज्ञ जैगीषव्य हूंगा ॥ २७ ॥ महायोगमें निपुण होकर मैं योगको दृढ करूंगा, काशीजीमें गुफाके भीतर दिव्य स्थानमें कुशाओंके ऊपर स्थित हुआ ॥२८॥ शतक्रतु व्यासजीकी सहायता करूंगा; हे विधाता ! भक्तोंका संसारके भयसे उद्धार करूंगा ॥ २९ ॥ उस युगमें भी चार पुत्र होंगे, सारस्वत, योगीश, मेघवाह और सुवाहन ॥ ३० ॥ आठवें द्वापरमें मुनि वशिष्ठ ऋषि वेदव्यास होंगे यही मुनिश्रेष्ठ उस

तत्रापि शिष्याश्चत्वारो भविष्यन्ति दृढव्रताः ॥ सुधामा विरजाश्चैव संजयो विजयस्तथा ॥ २६ ॥ सप्तमे परिवर्त्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः ॥ तदाप्यहं भविष्यामि जैगीषव्यो विभुर्विधे ॥ २७ ॥ योगं संद्रढयिष्यामि महायोगविचक्षणः ॥ काश्यां गुहान्तरे संस्थो दिव्यदेशे कुशास्तरिः ॥ २८ ॥ साहाय्यं च करिष्यामि व्यासस्य हि शत क्रतोः ॥ उद्धरिष्यामि भक्तांश्च संसारभयतो विधे ॥२९॥ तत्रापि मम चत्वारो भविष्यन्ति सुता युगे ॥ सारस्वतश्च योगीशो मेघवाहः सुवाहनः ॥ ३० ॥ अष्टमे परिवर्त्ते हि वसिष्ठोमुनिसत्तमः ॥ कर्त्ता वेदविभागस्य वेदव्यासो भविष्यति ॥ ३१ ॥ तत्राप्यहं भविष्यामि नामतो दधिवाहनः ॥ व्यासस्य हि करिष्यामि साहाय्यं योगवित्तम ॥ ३२ ॥ कपिलश्चासुरिः पञ्चशिखः शाल्वल पूर्वकः ॥ चत्वारो योगिनः पुत्रा भविष्यन्ति समा मम ॥ ३३ ॥ नवमे परिवर्त्ते तु तस्मिन्नेव युगे विधे ॥ भविष्यति मुनिश्रेष्ठो व्यासः सारस्वताह्वयः ॥ ३४ ॥ व्यासस्य ध्यायतस्तस्य निवृत्तिपथवृद्धये ॥ तदाप्यहं भविष्यामि ऋषभो नामतः स्मृतः ॥ ३५ ॥

समय वेदविभागके कर्त्ता होंगे ॥ ३१ ॥ उस युगमें मेरा दधिवाहन नाम होगा, हे योग जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! उस समय व्यासजीकी सहायता करूंगा ॥ ३२ ॥ कपिल, आसुरि, पंचशिख, शाल्वल, यह चार योगीपुत्र मेरे समान होंगे ॥ ३३ ॥ हे विधाता ! जब नवम द्वापर आवेगा तब मुनिश्रेष्ठ सारस्वत नामवाले व्यास होंगे ॥ ३४ ॥ और उन व्यासजीके ध्यान करते हुए निवृत्तिमार्गके बढानेके निमित्त उस समय

मैं ऋषभनामसे प्रगट हूंगा ॥ ३५ ॥ पराशर, गर्ग, भार्गव, तथा गिरिश यह चार श्रेष्ठयोगी मेरे शिष्य होंगे ॥३६॥ हे प्रजापते ! उनके साथ मैं योगमार्गको दृढ करूंगा; हे श्रेष्ठमुनि ! और मैं वेदव्यासजीकी सहायता करूंगा ॥ ३७ ॥ हे विधाताजी ! मैं उस रूपसे बहुत दुःखी हुए भक्तोंका और तुम्हारा उद्धार करूंगा ॥ ३८ ॥ वह अवतार मेरा ऋषभ नामक सुयोग करनेवाला होगा, और सारस्वत व्यासमुनिकी सहायता करनेवाला तथा अनेक कल्याण करनेवाला होगा ॥ ३९ ॥ कि जिस मेरे अवतारने भद्रायुनामक राजाका बालक जो क्ष्वेड (छींक) के दोषसे मर गया और जिसे उसके पिताने त्याग दिया था जिलाया ॥ ४० ॥ फिर जब वह राजपुत्र सोलह वर्षका हुआ तब उसके घर मेरी

पराशरश्च गर्गश्च भार्गवो गिरिशस्तथा ॥ चत्वारस्तत्र शिष्या मे भविष्यन्ति सुयोगिनः ॥३६॥ तैः साकं द्रढयिष्यामि योग मार्गं प्रजापते ॥ करिष्यामि साहाय्यं वै वेदव्यासस्य सन्मुने ॥३७ ॥ तेन रूपेण भक्तानां बहूनां दुःखिनां विधे ॥ उद्धारं भव तोऽहं वै करिष्यामि दयाकरः ॥ ३८ ॥ सोऽवतारो विधे मे हि ऋषभाख्यस्सुयोगकृत् ॥ सारस्वतव्यासमनःकर्त्ता नानोति कारकः ॥ ३९ ॥ अवतारेण मे येन भद्रायुर्नृपबालकः ॥ जीवितो हि मृतः क्ष्वेडदोषतो जनकोज्झितः ॥ ४० ॥ प्राप्तेऽथ षोड शे वर्षे तस्य राजशिशोः पुनः ॥ ययौ तद्वेश्म सहसा ऋषभः स मदात्मकः ॥ ४१ ॥ पूजितस्तेन स मुनिः सद्रूपश्च कृपा निधिः॥ उपादिदेश तद्धर्मान्राज्य योगान्प्रजापते ॥ ४२ ॥ ततः स कवचं दिव्यं शंखं खड्गं च भास्वरम् ॥ ददौ तस्मै प्रस न्नात्मा सर्वशत्रुविनाशनम् ॥ ४३ ॥ तदङ्ग भस्मनामृश्य कृपया दीनवत्सलः ॥ स द्वादशसहस्रस्य गजानां च बलं ददौ ॥ ४४ ॥ इति भद्रायुषं सम्यगनुश्वास्य समातृकम्॥ ययौ स्वैरगतस्तस्यां पूजितस्त्वृषभः प्रभुः ॥ ४५ ॥

आत्मारूप ऋषभजी गये ॥ ४१ ॥ उस राजाने कृपानिधि शोभायमान रूपवाले उन मुनिका सत्कार किया, हे प्रजापते ! उन्होंने राजयोगवाले धर्मोंका उस राजाको उपदेश दिया ॥ ४२ ॥ तब उस राजाको प्रसन्न होकर ऋषभजी ने दिव्य कवच, शंख, प्रकाशमान खड्ग सब शत्रुओंका नाश करनेवाला दिया ॥ ४३ ॥ दीनोंके ऊपर दया करनेवाले उन महात्माने उस राजाके अंगमें भस्म लगाई और उसे बारह सहस्र हाथियोंका बल दिया ॥ ४४ ॥ इस प्रकार माता सहित उस भद्रायुको भली प्रकार समझाया, धीरज दे उन माता. पुत्रोंसे पूजित हो वह

ऋषभ मुनि अपने इच्छित स्थानको गये ॥ ४५ ॥ हे ब्रह्माजी ! वह राजर्षि भद्रायु भी शत्रुओंको जीतकर कीर्तिमालिनी नामवाली कन्यासे विवाहकर धर्म पूर्वक राज्य करने लगा ॥ ४६ ॥ इस प्रकार मेरे ऋषभ अवतारका प्रभाव है यह सत्पुरुषोंको गति देनेवाला, दीनोंका बन्धु, नौवां अवतार तुमसे कहा ॥ ४७ ॥यह ऋषभ चरित्र, परम पवित्र करनेवाला है, स्वर्गका देनेवाला तथा यश और आयुका बढानेवाला है इसे यत्नपूर्वक सुनना चाहिये ॥ ४८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा० तृ० श० रु० ऋषभचरित्रवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ शिवजी बोले, दशवें द्वापरमें त्रिधामानाम मुनि व्यास होंगे, हिमालय पर्वतके मनोहर भृगुतुंग नामक ऊंचे शिखरपर ॥ १ ॥ वहां भी मेरे भृगुआदि

भद्रायुरपि राजर्षिर्जित्वा रिपुगणान्विधे ॥ राज्यं चकार धर्मेण विवाह्य कीर्त्तिमालिनीम् ॥ ४६ ॥ इत्थंप्रभाव ऋषभोऽव तारः शङ्करस्य मे ॥ सतां गतिर्दीनबन्धुर्नवमः कथितस्तव ॥ ४७ ॥ ऋषभस्य चरित्रं हि परमं पावनं महत् ॥ स्वर्ग्यं यश स्यमायुष्यं श्रोतव्यं च प्रयत्नतः ॥ ४८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायामृषभचरित्रवर्णनं नाम चतु र्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ दशमे द्वापरे व्यासस्त्रिधामा नामतो मुनि ॥ हिमवच्छिखरे रम्ये भृगुतुंगे नगोत्तमे ॥ १ ॥ तत्रापि मम पुत्राश्चभृग्वाद्याः श्रुतिसंमिताः ॥ बलबन्धुर्नरामित्रः केतुशृंगस्तपोधनः ॥२॥ एकादशे द्वापरे तु व्यासश्च त्रिवृतो यदा ॥ गंगाद्वारे कलौ नाम्ना तपोऽहं भविता तदा ॥३॥ लम्बोदरश्च लम्बाक्षः केशलम्बः प्रलम्बकः ॥ तत्रापि पुत्राश्च त्वारो भविष्यन्ति दृढव्रताः ॥ ४ ॥ द्वादशे परिवर्त्ते तु शततेजाश्च वेदकृत् ॥ तत्राप्यहं भविष्यामि द्वापरान्ते कलाविह ॥ ५ ॥ हेमकंचुकमासाद्य नाम्ना ह्यत्रिः परिप्लुतः ॥ व्यासस्यैव साहाय्यार्थं निवृत्तिपथरोपणः ॥ ६ ॥

पुत्र वेदानुगामी बलबन्धु, नरामित्र, केतुशृंग, तपोधन नामवाले होंगे ॥ २ ॥ ग्यारहवें द्वापरमें जब जब त्रिवृत मुनि व्यास होंगे तब मैं कलिमें गंगाके द्वारमें तप नामवाला हूंगा ॥ ३ ॥ वहां भी लम्बोदर, लम्बाक्ष, केशलम्ब, प्रलम्बक यह चार पुत्र दृढव्रतधारी होंगे ॥ ४ ॥ और बारहवें द्वापरमें वेद विभागकर्ता शततेजा मुनि व्यास होंगे तब भी मैं द्वापरके अन्तमें कलियुगमें प्रगट हूंगा ॥ ५ ॥ अत्रिनामवाला, सुव र्णका बख्तर पहरे हुए व्यासजीकी सहायताके निमित्त निवृत्तिमार्गका प्रचार करूंगा ॥ ६ ॥

सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य और शर्व ये सुयोगी चार पुत्र होंगे ॥ ७ ॥ तेरहवें युगमें धर्मनारायण व्यास होंगे तब मैं बलि नाम वाला महामुनि हूंगा ॥ ८ ॥ बालखिल्यके आश्रममें उत्तम गंधमादन पर्वतपर सुधामा, काश्यप, वशिष्ठ, विरज नामवाले यह श्रेष्ठ पुत्र होंगे ॥ ९ ॥ जब चौदहवें कल्पमें रक्ष नामवाले व्यास होंगे तब मैं आंगिरस वंशमें गौतम नामसे प्रगट हूंगा ॥ १० ॥ उस समय कलियुगमें मेरे पुत्र अत्रि, दवशद, श्रवण, श्रविष्कट होंगे ॥११॥ जब पन्द्रहवें द्वापरमें त्रय्यारुणि व्यास होंगे तब मैं वेदशिरा वेदशिर नामक मुनि हूंगा ॥ १२॥ वेदशिर

सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यःशर्वःसुयोगिनः॥तत्रेति पुत्राश्चत्वारो भविष्यन्ति महामुने॥७॥त्रयोदशे युगे तस्मिन्धर्मो नारायणः सदा ॥ व्यासस्तदाहं भविता बलिर्नाम महामुनिः ॥८॥बालखिल्याश्रमे गंधमादने पर्वतोत्तमे ॥सुधामा काश्यपश्चैव वसिष्ठो विरजाः शुभाः ॥९॥ यदा व्यासस्तु रक्षाख्यः पर्याये तु चतुर्दशे ॥वंश आङ्गिरसे तत्र भविताहं च गौतमः॥१०॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति कलौ तदा॥अत्रिर्दवशदश्चैव श्रवणोथ श्राविष्कटः॥११॥व्यासः पञ्चदशे त्रय्यारुणिर्वै द्वापरे यदा॥ तदाहं भविता वेदशिरा वेदशिरस्तथा॥१२॥महावीर्यं तदस्त्रं च वेदशीर्षश्च पर्वतः॥हिमवत्पृष्ठमासाद्य सरस्वत्यास्तथोत्तरे ॥१३॥ तत्रापि मम चत्वारो भविष्यन्ति सुता दृढाः॥कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः ॥१४॥व्यासो युगे षोडशे तु यदा देवो भविष्यति ॥ तदा योगप्रदानाय गोकर्णो भविता ह्यहम् ॥१५॥तत्रैव च सुपुण्यं च गोकर्ण नाम तद्वनम् ॥ तत्रापि योगिनः पुत्रा भविष्यंतित्यम्बुसंमिताः॥१६॥ काश्यपोप्युशनाश्चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः॥तेपि तेनैव मार्गेण गमिष्यन्ति शिवालयम्॥१७॥

नामक उनका अस्त्र महातेजस्वी होगा और हिमालय पर्वतके पृष्ठपर वेदशीर्ष पर्वत खंडमें जो सरस्वतीके उत्तर तटपर है उनका निवास होगा ॥ १३ ॥ वहां भी मेरे चार दृढ ज्ञानी पुत्र होंगे, कुणि, कुणिबाहु, कुशशीर, कुनेत्रक, यह नाम होंगे ॥ १४ ॥ सोलहवें द्वारपरमें दव नामक मुनि व्यास होंगे तब योगके प्रदान करनेको मैं गोकर्ण नामसे प्रगट हूँगा ॥ १५ ॥ वहीं परम पवित्र गोकर्ण नामक वन है वहां भी मेरे परम योगी चार पुत्र, जलके समान निर्मल मन होंगे ॥ १६ ॥ काश्यप, उशना, च्यवन और बृहस्पति, यह नाम होंगे यह पुत्र भी उस

मार्गसे शिवके स्थान को प्राप्त होंगे ॥ १७ ॥ सतरहवें द्वापरके अन्तमें, देवकृतंजय व्यास होंगे तब मैं हिमालयके रमणीक शिखरपर गुहा वासी नामसे प्रगट हूंगा ॥ १८ ॥ बडे ऊंचे, महाआलयवाले, तथा शिवक्षेत्र हिमालय पर्वतपर तथ्य, वामदेव, महायोग, महाबल यह चार पुत्र होंगे ॥ १९ ॥ जब अठारहवें द्वापरमें ऋतंजय नामक व्यास होंगे तब मैं शिखंडी नामसे उस हिमालयकी मनोहर शिखरपर प्रगट हूंगा ॥ ॥ २० ॥ बड़े पवित्र सिद्ध क्षेत्रमें शिखण्डी नामवाला पर्वत में और उसी स्थानमें शिखंडी वन में जहां सिद्ध लोग निवास करते हैं ॥ २१ ॥ उस समय वाचःश्रवा, रुचीक, स्यावास्य, यतीश्वर नामक यह पुत्र महातपस्वी होंगे ॥ २२ ॥ उन्नीसवें द्वापरमें भरद्वाजमुनि व्यास होंगे तब

परिवेत्तें सप्तदशे व्यासो देवकृतंजयः ॥ गुहावासीति नाम्नाहं हिमवच्छिखरे शुभे ॥ १८ ॥ महालये महोत्तुंगे शिवक्षेत्रं हिमालयम् ॥ उतथ्यो वामदेवश्च महायोगो महाबलः ॥ १९ ॥ परिवर्त्तेऽष्टादशे तु यदा व्यास ऋतंजयः ॥ शिखण्डीनामतोहं तद्धिमवच्छिखरे शुभे ॥ २० ॥ सिद्धक्षेत्रे महापुण्ये शिखण्डी नाम पर्वतः ॥ शिखण्डिनो वनं वापि यत्र सिद्धनिषेवितम् ॥ २१ ॥ वाचःश्रवा रुचीकश्च स्यावास्यश्च यतीश्वरः ॥ एते पुत्रा भविष्यन्ति तत्रापि च तपोधनाः ॥ २२ ॥ एकोनविंशे व्यासस्तु भरद्वाजो महामुनिः ॥ तदाप्यहं भविष्यामि जटी माली चनामतः ॥ २३ ॥ हिमवच्छिखरे तत्र पुत्रा मेऽम्बुधिसंहिताः ॥ हिरण्य नामा कौशल्यो लोकाक्षी प्रधिमिस्तथा ॥ २४ ॥ परिवर्त्ते विंशतिमे भविता व्यास गौतमः ॥ तत्राट्टहासनामाहमट्टहासप्रिया नराः ॥ २५ ॥ तत्रैव हिमवत्पृष्ठे अट्टहासो महागिरिः ॥ देवमानुषयक्षेन्द्रसिद्धचारणसेवितः ॥ २६ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भवि ष्यन्ति सुयोगिनः ॥ सुमन्तुर्बबरिर्विद्वान् कबंधः कुशिकन्धरः ॥ २७ ॥

मैं जटीमाली नामसे प्रगट हूंगा ॥ २३ ॥ वहां हिमालयके शिखरपर समुद्रके सम्मत मेरे चार पुत्र, हिरण्य नामा, कौशल्य, लोकाक्षि, प्रधिमि, होंगे ॥ २४ ॥ बीसवें द्वापरमें गौतम व्यास होंगे तब मैं अट्टहास नामसे हूंगा और मनुष्य अट्टहासप्रिय होंगे ॥ २५ ॥ उसी स्थलमें हिमालय पर्वतके पृष्ठपर अट्टहास नामक बडा पर्वत है जो देवता, मनुष्य, यक्ष, इन्द्र, सिद्ध, चारणोंसे सेवित है ॥ २६ ॥ वहां मेरे चार पुत्र बड़े योगी विद्वान्, सुमन्तु, बर्बरि, कबंध, कुशिकन्धर होंगे ॥ २७ ॥

इक्कीसवें द्वापरान्तमें वाचःश्रवा व्यास होंगे तब मैं दारुकनामसे प्रगट हूंगा मेरा प्रगटस्थान सुन्दर दारुवन होगा ॥ २८ ॥ वहांपर मेरे सुयोगी चार पुत्र प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान, गौतम, नामवाले होंगे ॥ २९ ॥ बाईसवें द्वापरमें जब शुष्मायण व्यास होंगे तब मैं वाराणसीमें महामुनि हूंगा ॥३०॥वहां मेरा नाम लांगलोभीम होगा इन्द्र आदि देवता कलियुगमें मुझे हलायुध भगवान्के रूपमें दर्शन करेंगे ॥३१॥ वहां भी मेरे धार्मिक भल्लवी, मधु, पिंग, श्वेतकेतु यह चार पुत्र होंगे ॥ ३२ ॥ तेईसवें द्वापरयुगमें जब तृणबिन्दु मुनि व्यास होंगे, तब मैं कालंजर पर्वतपर श्वेतनामवाला

एकविंशे युगे तस्मिन् व्यासो वाचःश्रवा यदा ॥ तदाहं दारुको नाम तस्माद्दारुवनं शुभम् ॥ २८ ॥ तत्रापि मम ते पुत्राभविष्यन्ति सुयोगिनः ॥ प्लक्षो दार्भायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा ॥ २९ ॥ द्वाविंशे परिवर्त्ते तु व्यासः शुष्मायणो यदा ॥ तदाप्यहं भविष्यामि वाराणस्यां महामुनिः ॥ ३० ॥ नाम्ना वै लांगली भीमो यत्र देवाः सवासवाः ॥द्रक्ष्यंति मां कलौ तस्मिन्भवं चैव हलायुधम् ॥ ३१ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति सुधार्मिकाः ॥ भल्लवी मधुपिंगश्च श्वेतकेतुस्तथैव च ॥ ३२ ॥ परिवर्त्ते त्रयोविंशे तृणबिन्दुर्यदा मुनिः ॥ श्वेतो नाम तदाहं वै गिरौ कालंजरे शुभे ॥ ३३ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपस्विनः ॥ उशिको बृहदश्वश्च देवलः कविरेव च ॥ ३४ ॥ परिवर्त्ते चतुर्विंशे व्यासो यक्षो यदा विभुः ॥ शूली नाम महायोगी तद्युगे नैमिषे तदा ॥३५॥ तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः ॥ शालिहोत्रोऽग्निवेशश्च युवनाश्वः शरद्वसुः ॥३६ ॥ पंचविंशे यदा व्यासः शक्तिर्नाम्ना भविष्यति ॥ तदाप्यहं महायोगी दण्डी मुण्डीश्वरः प्रभुः ॥ ३७ ॥ तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः ॥ छगलः कुण्डकर्णश्च कुम्भाण्डश्च प्रवाहकः ॥ ३८ ॥

प्रगट हूंगा ॥ ३३ ॥ वहां भी मेरे परमतपस्वी उशिक, बृहदश्व, देवल, कवि, नामवाले चार पुत्र होंगे ॥३४॥ चौबीसवें द्वापरयुगमें जब यक्षनाम व्यासजी होंगे तब उस युगमें नैमिषारण्यमें शूलीनामक योगी हूंगा ॥ ३५ ॥ तहां भी वे मेरे परमतपस्वी शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व, शरद्वसु, नामवाले चार शिष्य होंगे ॥ ३६ ॥ जब पचीसवें द्वापरमें शक्तिनामक व्यास होंगे तब मैं महायोगी, दंडी मुंडीश्वर नामवाला हूंगा ॥ ३७ ॥ वहां भी मेरे परमतपस्वी छगल, कुंडकर्ण, कुम्भाण्ड, प्रवाहक, नामवाले चार पुत्र होंगे ॥ ३८ ॥

जब छब्बीसवें द्वापरमें योगी पराशर व्यास होंगे तब मैं भद्रवटपुरमें सहिष्णु नामवाला हूँगा ॥ ३९ ॥ तहांपरभी मेरे परमतपस्वी उलूक, विद्युत, शम्बूक, आश्वलायन नामवाले चार शिष्य होंगे ॥ ४० ॥ सत्ताईसवें द्वापरयुगमें जब जातूकर्ण्य व्यास होंगे तब मैं प्रभासतीर्थमें सोमशर्मा हूंगा ॥ ४१ ॥ वहां पर भी मेरे परमतपस्वी अक्षपाद, कुमार, उलूक, वत्स, नामवाले चार पुत्र होंगे ॥ ४२ ॥ अट्ठाईसवें द्वापरमें जब परासरके पुत्र द्वैपायन व्यासजी होंगे ॥ ४३ ॥ तब छठे अंशसे पुरुषश्रेष्ठ कृष्णजी वासुदेवके पुत्र वसुदेव होंगे ॥ ४४ ॥ तब भी मैं योगमायासे

व्यासः पराशरो यर्हि षड्विंशे भविताप्यहम्॥पुरं भद्रवटं प्राप्य सहिष्णुर्नाम नामतः॥३९॥तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः॥उलूको विद्युतश्चैव शम्बूको ह्याश्वलायनः॥४०॥सप्तविंशे यदा व्यासो जातूकर्ण्यो भविष्यति॥ प्रभासतीर्थमाश्रित्य सोमशर्मा तदाप्यहम् ॥ ४१ ॥ तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यंति तपस्विनः॥ अक्षपादः कुमारश्चोलूको वत्सस्तथैव च ॥४२॥ अष्टाविंशे द्वापरे तु पराशरसुतो हरिः॥यदा व्यासो भविष्यामि नाम्ना द्वैपायनः प्रभुः॥४३तदा षष्ठेन चांशेन कृष्णः पुरुषसत्तमः॥ वसुदेवसुतः श्रेष्ठो वासुदेवो भविष्यति॥४४तदाप्यहं भविष्यामि योगात्मा योगमायया॥ लोकविस्मापनार्थाय ब्रह्मचारिशरीरकः ॥४५॥श्मशाने मृतमुत्सृज्य दृष्ट्वा कायमनामयम्॥ब्राह्मणानां हितार्थाय प्रविष्टो योगमायया॥४६॥दिव्यां मेरुगुहां पुण्यां त्वया सार्द्धं च विष्णुना॥ भविष्यामि तदा ब्रह्मल्लँकुली नाम नामतः॥४७॥कायावतार इत्येवं सिद्धक्षेत्रं परं तदा॥भविष्यति सुविख्यातं यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥४८॥ तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः ॥ कुशिकश्चैव गर्गश्च मित्रः कौरुष्य एव च ॥४९॥

योगात्मानामक, संसारको विस्मय करनेके निमित्त ब्रह्मचारी शरीरसे प्रगट हूंगा ॥ ४५ ॥ फिर ब्राह्मणोंके हितके निमित्त इस अपने निरोगी शरीरको, स्मशानमें त्यागकर योगमायासे प्रविष्ट हूंगा ॥ ४६ ॥ हे ब्रह्मन् ! उस समय मैं तुम्हारे सहित पवित्र और दिव्य मेरुकी गुफामें स्थित हूंगा उस समय मेरा नाम लंकुली होगा ॥ ४७ ॥ यह मेरा कायावतार सिद्धक्षेत्रमें होगा और जबतक भूमि रहेगी तबतक विख्यात होगा ॥ ४८ ॥ वहां भी वही मेरे चार शिष्य कुशिक, गर्ग, मित्र, कौरुष्य नामवाले महातपस्वी होंगे ॥ ४९ ॥

वे योगी वेदके पारगामी ब्राह्मण, ब्रह्मचारी माहेश्वर योगको प्राप्त होकर शिवलोकको जायँगे ॥५०॥ हे सुव्रत ! वैवस्वत मन्वन्तरमें प्रत्येक द्वापरके आनेमें सम्यक् प्रकार परमात्मा शिवने योगेश्वरके अवतार कहे ॥ ५१ ॥ हे विभो ! यह अट्ठाईस व्यासके अवतार प्रत्येक द्वापर युगमें कहे और प्रति कलिके आरंभमें योगेश्वरका अवतार होता है ॥ ५२ ॥ प्रत्येक योगेश्वरके अवतारोंमें चार शिष्य योगमार्गके बढानेवाले महाशैव, अविनाशी होते हैं ॥ ५३ ॥ यह शिवजीके शिष्य पाशुपतव्रत करनेवाले, शरीरमें भस्म लगाये रुद्राक्षमालाधारे माथेपर त्रिपुंड्र लगानेवाले होते

योगिनो ब्राह्मणा वेदपारगा ऊर्ध्वरेतसः ॥ प्राप्य माहेश्वरं योगं गमिष्यंति शिवं पुरम् ॥ ५० ॥ वैवस्वतेऽन्तरे सम्यक् प्रोक्ता हि परमात्मना ॥ योगेश्वरावताराश्च सर्वावर्तेषु सुव्रताः ॥ ५१ ॥ व्यासाश्चैवाष्टविंशत्का द्वापरेद्वापरे विभो ॥ योगेश्वरावतारश्च प्रारंभे चकलौ कलौ ॥ ५२ ॥ योगेश्वरावताराणां योगमार्गप्रवर्द्धकाः ॥ महाशैवाश्च चत्वारः शिष्याः प्रत्येकमव्यया ॥ ५३ ॥ एते पाशुपताः शिष्या भस्मोद्धूलितविग्रहाः ॥ रुद्राक्षमालाभरणास्त्रिपुण्ड्रांकितमस्तकाः ॥ ५४ ॥ शिष्या धर्मरताः सर्वे वेदवेदांगपारगाः ॥ लिंगार्चनरतानित्यं बाह्याभ्यन्तरतः स्थिताः ॥ ५५ ॥ भक्त्या मयि च योगेन ध्याननिष्ठा जितेन्द्रियाः ॥ संख्यया द्वादशाधिक्यशतंच गणिता बुधैः ॥ ५६ ॥ इत्येतद्वै मया प्रोक्तमवतारेषु लक्षणम् ॥ मन्वादिकृष्णपर्यन्त मष्टाविंशद्युगक्रमात् ॥५७॥ तत्र श्रुति समूहानां विधानं ब्रह्मलक्षणम् ॥ भविष्यति तदा कल्पे कृष्णद्वैपायनो यदा ॥ ५८ ॥

हैं ॥ ५४ ॥ संम्पूर्ण शिष्य, धर्ममें तत्पर और वेदवेदांगके पारगामी नित्य बाहर भीतरसे प्रीतिसहित लिंगार्चन करनेमें तत्पर होते हैं ॥ ५५ ॥ और मुझमें भक्ति करनेवाले योगके द्वारा ध्यानमें स्थित जितेन्द्रिय होते हैं, अट्ठाईस द्वापरेमें इनकी संख्या एकसौ बारह होती है ॥ ५६ ॥ यह मैंने मनुसे आदिलेकर कृष्णपर्यन्त अट्ठाईस युगोंके क्रमसे अवतारोंका लक्षण कहा ॥ ५७ ॥ इस कल्पमें जब कृष्णद्वैपायन व्यास होंगे उस समय श्रुतियोंसे युक्त ब्रह्मलक्षणवाला वेदान्त शास्त्र कहेंगे ॥ ५८ ॥

महेश्वर देवेश्वर ब्रह्माजीसे ऐसा कह और कृपादृष्टिसे उनको देख वहीं अन्तर्धान होगये ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेभाषाटीकायां तृ०श०रु० शिवावतारोपाख्याने एकोनविंशतिशिवावतारवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥) अब नन्दीश्वर अवतार कहते हैं) सनत्कुमारजी बोले, कि हे नन्दीश्वर ! आप महादेवके अंशसे कैसे उत्पन्न हुए हो आपने शिवत्व किस प्रकार प्राप्त किया है हे प्रभो ! यह सब मैं सुनना चाहताहूं आप कहिये ॥ १ ॥ नन्दीश्वर बोले हे सर्वज्ञ ! सनत्कुमार आप सावधान होकर सुनिये कि जिस प्रकार शिवके अंशसे उत्पन्न होकर मैं शिवत्वको

इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमनुगृह्य महेश्वरः ॥ पुनः संप्रेक्ष्य देवेशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवावतारोपाख्यान एकोनविंशतिशिवावतारवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५॥ इति द्विचत्वारिंशावताराः ॥४२॥ अथ नन्दीश्वरावतारमाह ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ भवान्कथमनुप्राप्तो महादेवांशजः शिवम् ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥ १ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ सावधानतया शृणु ॥ यथाहं च शिवं प्राप्तो महादेवांश जो मुने ॥ २ ॥ प्रजाकामः शिलादोऽभूदुक्तः पितृभिरादरात् ॥ तदुद्धर्तुमना भक्त्या समुद्धारमभीप्सुभिः ॥ ३ ॥ अधोदृष्टिः सुधर्मात्मा शिलादो नाम वीर्यवान् ॥ तस्यासीन्मुनिकैर्वृत्तिः शिवलोके च सोगमत् ॥ ४ ॥ शक्रमुद्दिश्य स मुनिस्तपस्तेपे सुदुः सहम् ॥ निश्चलात्मा शिलादाख्यो बहुकालं दृढव्रतः ॥ ५ ॥ तपतस्तस्य तपसा संतुष्टोऽभूच्छतक्रतुः ॥ जगाम च वरं दातुं सर्वदेवप्रभुस्तदा ॥६॥शिलादमाह सुप्रीत्या शक्रस्तुष्टोऽस्मि तेऽनघ ॥ तेन त्वं मुनिशार्दूल वरयस्व वरानिति॥७ ॥

प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ एक समय शिलाद ऋषिको जब सन्तानकी इच्छा हुई, तब आदरसे उसके पितरोंने उद्धारकी इच्छासे उसकी भक्ति देख कहा कि तुम पुत्रके निमित्त उद्योग करो तो हमारा उद्धार हो ॥३॥ धर्मात्मा, शिलाद महावीर्यवान् नीचेको दृष्टि किये मुनिवृत्ति धारण किये मनसे शिवलोकको गया ॥ ४ ॥ और इन्द्रके उद्देशसे वह निश्चल आत्मावाला शिलाद बहुत समयतक कठिन तप करता रहा ॥ ५ ॥ उसके तप करनेसे इन्द्र सन्तुष्ट हुए, और उस समय सब देवताओंके स्वामी इन्द्र उसे वर देनेको गये ॥ ६ ॥ इन्द्र प्रीतिपूर्वक उस शिलादसे

बोले हे अनघ ! मैं तुझसे प्रसन्न हुआ इस कारण हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम वर मांगो ॥ ७ ॥ तब इन्द्रको प्रणाम करके और आदरपूर्वक स्तोत्रोंसे स्तुति करके वह मुनिशार्दूल शिलाद हाथ जोड उनसे बोला ॥ ८ ॥ शिलाद बोला, हे देवेश ! इन्द्र ! हे प्रभो ! यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हुए तो मैं विना योनिसे उत्पन्न हुए मृत्युहीन पुत्रकी इच्छा करता हूं ॥ ९ ॥ इन्द्र बोले, हे पुत्रकी इच्छा करनेवाले ! मैं मृत्युसंयुक्त, योनिसे उत्पन्न होनेवाले पुत्रको दे सकता हूं अन्यथा नहीं दे सकता क्योंकि मृत्युहीन कोई नहीं है ॥ १० ॥ हे महामुने ! मृत्युहीन अयोनिज पुत्रको तुझे नहीं दे सकता क्योंकि विष्णु भगवान् ब्रह्मातक सब मृत्युवाले हैं और की तो क्या कथा है ॥ ११ ॥ यह दोनों

ततः प्रणम्य देवेशं स्तुत्वा स्तुतिभिरादरात् ॥ शिलादो मुनिशार्दूलस्तमाह सुकृताञ्जलिः॥८॥शिलाद उवाच॥ शतक्रतो सुरेशान सन्तुष्टो यदि मे प्रभो॥अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रमिच्छामि सुव्रतम्॥९॥शक्रउवाच॥पुत्रं दास्यामि पुत्रार्थिन्योनिजं मृत्युसंयुतम् ॥ अन्यथा ते न दास्यामि मृत्युहीना न सन्ति वै॥१०॥न दास्यामि सुतं तेऽहं मृत्युहीनमयोनिजम् ॥हरिर्विधिश्च भगवान्किमुतान्यो महामुने ॥११॥ तावपि त्रिपुरार्यंगसम्भावौ मरणान्वितौ॥तयोरप्यायुषां मानं कथितं निगमे पृथक्॥१२॥ तस्मादयोनिजे पुत्रेमृत्युहीने प्रयत्नतः॥परित्यजाशां विप्रेन्द्र गृहाणात्मक्षमं सुतम्॥१३॥ किन्तु देवेश्वरो रुद्रः प्रसीदति महेश्वरः॥ सुदुर्लभो मृत्युहीनस्तव पुत्रो ह्ययोनिजः ॥ १४ ॥ अहं च विष्णुर्भगवान्द्रुहिणश्च महामुने ॥ अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रं दातुं न शक्नुमः ॥ १५ ॥ आराधय महादेवं तत्पुत्रविनिकाम्यया ॥ सर्वेश्वरो महाशक्तः स ते पुत्रं प्रदास्यति ॥ १६ ॥

शिवके अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं, और मृत्युसहित हैं और उनकी आयुका प्रमाण भी शास्त्रोंमें कहा है ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! इस कारण मृत्युहीन अयोनिज पुत्र के प्राप्त होनेका प्रयत्न और आशाको त्याग करो हे विप्रेन्द्र ! अपने समर्थ पुत्रको ग्रहण करो ॥ १३ ॥ हां यदि देवेश्वर रुद्र प्रसन्न हो जायं तो तुमको ऐसा दुर्लभ मृत्युहीन अयोनिज पुत्र दे सकते हैं ॥ १४ ॥ हे महामुने ! मैं तथा भगवान् विष्णु और ब्रह्मा भी अयोनिज मृत्युहीन पुत्र नहीं दे सकते ॥ १५ ॥ इस कारण ऐसे पुत्र की इच्छासे उन शिव महादेवका आराधन

करो, वह सर्वेश्वर महासमर्थ शिवजी तुमको पुत्र देंगे ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर बोले हे मुने ! इस प्रकार वह इन्द्र उस ब्राह्मणसे कह कर और उसके ऊपर दया करके वह देवताओं सहित इन्द्र अपने लोकको गये ॥ १७ ॥ इन्द्रके चले जानेपर वह शिलाद महादेवकी आराधना करता हुआ शिवजीको तपसे सन्तुष्ट करने लगा ॥ १८ ॥ तब इस प्रकार रात दिन तप करनेमें लगे हुए उस ब्राह्मणको दिव्य सहस्र वर्ष एक क्षणके समान बीत गये ॥ १९ ॥ बांबीसे उसका शरीर ढप गया और वज्रसूची मुखवाले (दीमक) रुधिरभोजी लाखों कीडोंसे उसका शरीर व्याप्त होगया ॥ २० ॥ मांस और रुधिर हीन त्वचामात्र शेष रहे शरीर रूप बिलमें स्थित हुये शिलादके शरीरमें अस्थि मात्र शेष

नन्दीश्वर उवाच ॥ एवं व्याहृत्य विप्रेन्द्रमनुगृह्य च तं घृणी॥देवैर्वृतः सुरेशानस्स्वलोकं समगान्मुने ॥ १७ ॥ गते तस्मिंश्च वरदे सहस्राक्षे शिलाशनः ॥ आराधयन्महादेवं तपसातोषयद्भवम् ॥१८॥ अथ तस्यैवमनिशन्तत्परस्य द्विजस्त वै ॥ दिव्य म्वर्षसहस्रन्तु गत क्षणमिवाद्भुतम् ॥ १९ ॥ वल्मीकेनवृतांगश्च लक्षकोटगणैर्मुनिः ॥ वज्रसूचीमुखैश्चान्यै रक्तभुग्भिश्च सर्वतः ॥ २० ॥ निर्मांसरुधिरत्वग्वै बिले तस्मिन्न वस्थितः ॥ अस्थिशेषोभवत्पश्चाच्छिलादो मुनिसत्तमः ॥ २१ ॥ तुष्टः प्रभुस्त दा तस्मै दर्शयामास स्वां तनुम् ॥ दिव्यां दिव्यगुणैर्युक्तामलभ्यां वामबुद्धिभिः ॥२२॥ दिव्यवर्षसहस्रेण तप्यमानाय शूलधृ क् ॥ सर्वदेवाधिपस्तस्मै वरदोस्मीत्यभाषत ॥ २३ ॥ महासमाधिसंलीनस्स शिलादो महामुनिः ॥ नाशृणोत्तद्गिरं शम्भो र्भक्त्यधीनतरस्य वै ॥ २४ ॥ यदा स्पृष्टो मुनिस्तेन करेण त्रिपुरारिणा ॥ तदैव मुनिशार्दूल उत्ससज तपःक्रमम् ॥ २५ ॥ अथोन्मील्य मुनिर्नेत्रे सोमं शंभुं विलोकयन् ॥ द्रुतं प्रणम्य स मुदा पादयोर्न्यपतन्मुने ॥ २६ ॥

रहे ॥ २१ ॥ तब प्रसन्न हुए शिवजीने उसको दिव्य गुणोंसे युक्त परम दिव्य, कुटिल बुद्धिवालोंको अप्राप्त अपना शरीर दिखाया ॥ २२ ॥ दिव्य सहस्र वर्षतक तप करते हुए उस शिलादसे सब देवताओंके स्वामी शिवजीने, मैं वर देने आया हूं इस प्रकार कहा ॥ २३ ॥ उस समय बडी समाधिमें लीन हुए शिलाद मुनिने भक्तिसे अधीन हुए शिवकी वाणीको नहीं सुना ॥ २४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! तब शिवने उस मुनिको हाथसे स्पर्श किया तो उस मुनिकी उसी समय तपकी समाधि छुट गई ॥२५॥ हे मुने! तब मुनि नेत्रोंको खोलकर उमासहित शंभुको

देख शीघ्र आनन्दपूर्वक प्रणामकर उनके चरणोंमें गिरपड़े ॥ २६ ॥ हर्षसे गद्गदवाणी और कन्धे झुकाय हाथ जोड़े प्रसन्नात्मा वह शिलाद शिवकी स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥ तब देवदेवेश त्रिलोचन भगवान् शिवजीने उस मुनिश्रेष्ठ शिलादसे कहा कि--मैं वर देने आया हूं ॥ २८ ॥ हे महामते ! इस तपसे तुम्हारा क्या कार्य है तुमको सर्वज्ञ तथा सब शास्त्रोंमें पारगामी पुत्र देता हूं ॥ २९ ॥ वचन सुनते ही शिलाद चन्द्रमौलेश्वर उन शिवजीको प्रणामकर हर्षसे गद्गद हुई वाणीसे बोला ॥ ३० ॥ शिलाद बोला, हे महेश्वर ! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं और वर देनेवाले हैं तो आपके समान मृत्युहीन अयोनिज पुत्र चाहता हूं ॥ ३१ ॥ नन्दीश्वर बोले त्र्यम्बकदेव शिव उस मुनिके वचन

हर्षगद्गदया वाचा नतस्कंधः कृताञ्जलिः॥प्रसन्नात्मा शिलादस्स तुष्टाव परमेश्वरम्॥२७॥ततः प्रसन्नो भगवान्देवदेवस्त्रिलोचनः॥ वरदोऽस्मीति तम्प्राह शिलादं मुनिपुंगवम्॥२८॥तपसानेन किं कार्यं भवते हि महा मते॥ददामि पुत्रं सर्वज्ञं सर्वशास्त्रार्थपारगम् ॥२९॥ततः प्रणम्य देवेशं तच्छ्रुत्वा च शिलाशनः॥हर्षगद्गदया वाचोवाच सोमविभूषणम् ॥३०॥ शिलाद उवाच ॥ महेश यदि तुष्टोऽसि यदि वा वरदश्च मे ॥ इच्छामि त्वत्समं पुत्रं मृत्युहीनमयोनिजम् ॥३१॥ नंदीश्वर वाच ॥ एवमुक्तस्ततो देवस्त्र्यम्बक स्तेनशङ्करः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा शिलादं मुनिसत्तमम्॥३२॥ शिव उवाच॥ पूर्वमाराधितो विप्र ब्रह्मणाहं तपोधन॥तपसा चावतारार्थं मुनिभिश्च सुरोत्तमैः॥३३॥तव पुत्रो भविष्यामि नन्दी नाम्ना त्वयोनिजः ॥ पिता भविष्यसि मम पितुर्वै जगतां मुने ॥ ३४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमुक्त्वा मुनिं प्रेक्ष्य प्रणिपत्यास्थितं घृणी ॥ सोमस्तूर्णतमादिश्य तत्रैवान्तर्दधेहरः॥३५॥ गते तस्मिन्महादेवे स शिलादो महामुनिः॥ स्वमाश्रयमुपागम्य ऋषिभ्योऽकथयत्ततः ॥३६॥

सुन प्रसन्न हो मुनिश्रेष्ठ शिलादसे बोले ॥ ३२ ॥ शिवजी बोले, हे विप्र ! हे तपोधन ! पहले मेरी ब्रह्माने आराधना की थी, और देवताओंने तथा मुनियोंने भी अवतारके निमित्त आराधना की थी ॥ ३३ ॥ मैं तुम्हारे यहां नन्दी नामक अयोजित पुत्ररूपसे प्रगट हूंगा हे मुने ! तुम मुझ लोकत्रयीके पिताके भी पिता होओगे ॥ ३४ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार कह प्रणाम करते हुए मुनिको देख दयालु शिव ऐसाही होगा इस प्रकार पार्वती सहित उसको आज्ञा दे वहां ही अन्तर्धान हुए ॥ ३५ ॥ उन महादेवजीके चले जानेसे शिलाद मुनिने अपने

आश्रममें जाकर ऋषियोंसे यह वृत्तान्त कहा ॥ ३६ ॥ कुछ समय बीतनेपर पिता शिलादजी यज्ञ करनेके निमित्त यज्ञके आंगनको खोदने लगे ॥ ३७ ॥ उसी समय उनकी आज्ञासे मैं उसका पुत्ररूप होकर प्रलयाग्निके समान देदीप्यमान प्रगट हुआ ॥ ३८ ॥ उस समय देवताओंने फूल वर्षाये और आकाशमें स्थित किन्नर, गन्धर्व, सिद्ध, साध्य, गण गान करने लगे, मेरे शिलादके पुत्रत्व होनेपर ऋषिगण भी चारों ओरसे पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३९ ॥ उस समय संपूर्ण ब्रह्मादि देवता तथा देवताओंकी स्त्रियां और प्रीतिसे विष्णु शिव अम्बिका आदि उन स्थानपर आये ॥ ४० ॥ और बडा उत्सव हुआ अप्सरायें नाचने लगीं वे सब प्रसन्न हो मेरी तथा लिंगमूर्तिकी पूजा करते हुए प्रसन्न

कियता चैव कालेन तदासौ जनकःस मे॥यज्ञांगणं चकर्षाशु यज्ञार्थं यज्ञवित्तमः॥३७॥ततःक्षणादहं शंभोस्तनुजस्तस्य चाज्ञया॥ स जातः पूर्व्वमेवाहं युगान्ताग्निसमप्रभः ॥ ३८ ॥ अवर्षंस्तदा पुष्करावर्तकाद्या जगुः खेचराः किन्नराःसिद्धसाध्या ॥ शिलादात्मजत्वं गते मय्यृषीन्द्रास्समन्ताच्च वृष्टिं व्यधुःकौसुमीं ते॥३९॥अथ ब्रह्मादयो देवा देवपत्न्यश्च सर्वशः॥तत्राजग्मुश्च सुप्रीत्या हरिश्चैव शिवोऽम्बिका॥४०॥तदोत्सवो महानासीन्नृतुश्चाप्सरोगणाः॥आदृत्य मां तथा लिंगं तुष्टुवुर्हर्षिताश्च ते॥४१॥सुप्रशस्य शिलादं तं स्तुत्वा च सुस्तवैःशिवौ॥सर्वे जग्मुश्च धामानि शिवावप्यखिलेश्वरौ॥४२॥शिलादोऽपि च मां दृष्ट्वा कालसूर्य्यानलप्रभम्॥ त्र्यक्षं चतुर्भुजं बालं जटामुकुटधारिणम्॥४३॥त्रिशूलाद्यायुधं दीप्तं सर्वथा रुद्ररूपिणम्॥महानन्दभरःप्रीत्या प्रणम्यं प्रणनाम च ॥४४॥ शिलाद उवाच ॥ त्वयाहं नन्दितो यस्मान्नन्दी नाम्ना सुरेश्वर ॥ तस्मात्त्वां देवमानन्दं नमामि जगदीश्वरम्॥ ४५ ॥

हुए ॥ ४१ ॥ वे सब देवता शिलाद मुनिकी प्रशंसा करके तथा शिव पार्वतीकी स्तुति करके अपने अपने स्थानोंको गये और शिव पार्वती भी पधारे ॥ ४२ ॥ शिलादने भी मुझको प्रलयकालके सूर्य और अग्निके समान प्रकाशित तीन नेत्रवाला, चतुर्भुज, जटामुकुटधारी बालक देखकर ॥ ४३ ॥ त्रिशूल आदि शस्त्रधारे दीप्तिमान सब प्रकारसे रुद्ररूपी प्रणाम करने योग्य मुझे देखकर आनन्दसे प्रणाम किया ॥ ४४ ॥ शिलाद बोला, हे सुरेश्वर ! जोकि--तुमने मुझे महा आनन्द दिया है इस कारण तुम्हारा नाम नन्दी हुआ तुम देवताओंको

आनंद देनेवाले जगदीश्वरको नमस्कार करता हूं ॥ ४५ ॥ नन्दीश्वर बोले, मुझ सहित पिता प्रसन्नचित्त हो महेश्वरको प्रणामकर शीघ्र अपनी पर्णकुटीमें गये, और ऐसे प्रसन्न हुए कि जिस प्रकार कोई निधन पुरुष धनको पाकर प्रसन्न होता है॥४६॥ हे महामुने ! जब मैं शिलादमुनिकी कुटीमें गया तब मैंने उस प्रकारका रूप त्यागकर मनुष्यशरीर धारण किया ॥ ४७ ॥ उस समय मनुष्यशरीर देखकर मेरा लोकपूजित पिता अपने कुटुम्बियों सहित अतिदुःखी होकर विलाप करने लगा ॥ ४८ ॥ पुत्रपर प्रेम करनेवाले शालंकायनके पुत्र शिलादने मेरे सम्पूर्ण जातकर्म आदि संस्कार किये ॥ ४९ ॥ उस मेरे पिताने पांचवर्षकी अवस्थामें ही मुझे संपूर्ण सांगोपांग वेदोंको तथा और और शास्त्रोंको भी पढाया

नन्दीश्वर उवाच ॥ मया सह पिता हृष्टः सुप्रणम्य महेश्वरम्॥उटजं स्वं जगामाशु निधिं लब्ध्वेव निर्धनः ॥४६॥ यदा गतोहमुटजं शिलादस्य महामुने॥तदाहं तादृशं रूपं त्यक्त्वा मानुष्यमास्थितः॥४७॥मानुष्यमास्थितं दृष्ट्वा पिता मे लोकपूजितः॥ विललापातिदुःखार्त्तःस्वजनैश्च समावृतः॥४८॥जातकर्मादिकान्येव सर्वाण्यपि चकार मे ॥ शालंकायनपुत्रो वै शिलादः पुत्रवत्सलः ॥४९॥ वेदानध्यापयामास सांगोपांगानशेषतः॥शास्त्राण्यन्यान्यपि तथा पञ्चवर्षं पिता च माम् ॥५०॥ सम्पूर्णे सप्तमे वर्षे मित्रावरुणसंज्ञकौ ॥ मुनी तस्याश्रमं प्राप्तौ द्रष्टुं मां चाज्ञया विभोः॥५१॥सत्कृतौ मुनिना तेन सूपविष्टौ महामुनी॥ऊचतुश्च महात्मानौ मां निरीक्ष्य मुहुर्मुहुः॥५२॥मित्रावरुणावूचतुः॥तात नंदीस्तवाल्पायुः सर्वशास्त्रार्थपारगः॥न दृष्टमेव चापश्यं ह्यायुर्वर्षादतः परम् ॥ ५३ ॥ विप्रयोरित्युक्तवतोः शिलादः पुत्रवत्सलः ॥ तमालिङ्ग्य च दुःखार्त्तो रुरोदातीव विस्वरम् ॥ ५४ ॥

॥ ५० ॥ सातवें वर्षके समाप्त होनेपर मित्रावरुण संज्ञक दो मुनि शिवजीकी आज्ञासे मुझे देखनेको आये ॥ ५१ ॥ तब मेरे पितासे सत्कारको प्राप्त होकर वे मुनि अच्छी प्रकार बैठे और मुझे बारम्बार देखकर वे महात्मा बोले ॥५२॥ मित्रावरण बोले, कि हे तात ! यह नंदी तुम्हारा पुत्र थोडी अवस्थावाला है सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पारगामी ऐसा कोई नहीं देखा, इसकी एकवर्षकी आयु होगी ॥ ५३ ॥ उन ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर वह पुत्रवत्सल शिलाद अपने पुत्रको आलिंगन करके दुःखी हो ऊंचे स्वरसे रोने लगा ॥ ५४ ॥

मृतकके सामान गिरे हुए पिताको देख प्रसन्नात्मा वह बालक शिवके चरणकमलोंको स्मरण कर अपने पितासे बोला ॥५५॥हे तात! आप किस दुःखसे कांपते हुए रोते हैं तुमको कहांसे दुःख प्राप्त हुआ यह तत्त्वपूर्वक जानना चाहता हूं ॥५६॥ पिता बोला, हे पुत्र! तुम्हारी अल्पमृत्युके दुःखसे दुःखी हूं इस मेरे दुःखको कौन दूर करेगा मैं किसकी शरणमें जाऊं ॥५७॥ पुत्र बोला देवता, दानव, यमराज, काल, तथा और मनुष्यभी यदि मुझे मारें ॥५८॥ तबभी मेरी अल्पमृत्यु नहीं होगी इस कारण तुम दुःखी मत होवो, हे पिता! मैं सत्य कहता हूं तुम्हारी शपथ (सौगंध) खाता हूं ॥५९॥ पिता बोला, हे पुत्र! कौनतप,

मृतवत्पतितं दृष्ट्वा पितरं च पितामहम् ॥ प्रत्यवोचत्प्रसन्नात्मा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ५५ ॥ केन त्वं तात दुःखेन वेपमानश्च रोदिषि ॥ दुःखं ते कुत उत्पन्नं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ५६ ॥ ॥ पितोवाच ॥ तवाल्पमृत्युदुःखेन दुःखितोऽतीव पुत्रक ॥ को मे दुःखं हरतु वै शरणं प्रयामि हि ॥ ५७ ॥ ॥ पुत्र उवाच ॥ देवो वा दानवो वापि यमः कालोथ वापि हि ॥ ऋध्येयुर्यद्यपि ह्येते मामन्येपि जनास्तथा ॥ ५८ ॥ अथापि चाल्पमृत्युर्मे न भविष्यति मां तुदः ॥ सत्यं ब्रवीमि जनकं शपथन्ते करोम्यहम् ॥ ५९ ॥ ॥ पितोवाच ॥ किं तपः किं परिज्ञानं को योगश्च प्रभुश्च ते ॥ येन त्वं दारुणं दुःखं वञ्चयिष्यसि पुत्र मे ॥६०॥ ॥ पुत्र उवाच ॥ न तात तपसा मृत्युं वंचयिष्ये न विद्यया ॥ महादेवस्य भजनान्मृत्युं जेष्यामि नान्यथा ॥ ६१ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वाहं पितुः पादौ प्रणम्य शिरसा मुने ॥ प्रदक्षिणीकृत्य च तमगच्छं वनमुत्तमम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दिकेशावतारवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ नन्दिकेश्वर उवाच ॥ तत्र गत्वा मुनेऽहं वै स्थित्वैकान्तस्थले सुधीः ॥ अतपं तप उग्रं सन्मुनीनामपि दुष्करम् ॥ १ ॥

कौन ज्ञान, और वह कौनसा योग है, तुम्हारा कौन प्रभु है जिससे तुम मेरे कठिन दुःखको दूर करोगे ॥६०॥ पुत्र बोला, हे तात! मैं तपसे, वा विद्यासे, मृत्युको दूर न करूंगा केवल महादेवके भजन करनेसे मृत्युको जीतूंगा इसमें संदेह नहीं है ॥६१॥ नन्दीश्वर बोले. हे मुने! इस प्रकार कहकर पिताके चरणोंको शिरसे प्रणाम; और उनकी प्रदक्षिणा करके; मैं श्रेष्ठ बनको चला गया ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० नंदिकेश्वरावतारवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ नन्दिकेश्वर बोले, हे मुने! वहां जाकर मैं धीरतापूर्वक एकान्त स्थलमें स्थित हो कर अतिकठिन

श्रेष्ठ मुनियोंको भी दुर्लभ तप करने लगा ॥ १ ॥ अपने हृदयमें कमलमें त्र्यम्बकदेव, तीन नेत्र, दशभुजा, शान्त, पंचमुख सदाशिवका ध्यान करके ॥ २ ॥ परम ध्यानमें मग्न हो रुद्रके मन्त्रको पवित्र नदीके उत्तर भागमें एकाग्र चित्तसे सावधान हो जपने लगा ॥ ३ ॥ उस जपमें स्थित हुए मुझसे चन्द्रशेखर, परमेश्वर, सदाशिव पार्वती सहित सन्तुष्ट हुए और बोले ॥ ४ ॥ शिवजी बोले, हे शिलादके पुत्र ! इस तुम्हारे तपसे सन्तुष्ट होकर मैं तुमको वर देता हूं हे धीमन् ! तुमने बहुत श्रेष्ठ तप किया, जो तुम्हारे मनमें हो सो कहो ॥ ५ ॥ इस प्रकार

हृत्पुण्डरीकसुषिरे ध्यात्वा देवं त्रियम्बकम् ॥ त्र्यक्षं दशभुजं शान्तं पञ्चवक्त्रं सदा शिवम् ॥ २ ॥ रुद्रजाप्यमकार्षंवै परमध्या नमास्थितः ॥ सरितश्चोत्तरे पुण्ये ह्येकचित्तः समाहितः ॥३॥ तस्मिञ्जाप्येऽथ संप्रीतः स्थितं मां परमेश्वरः ॥ तुष्टोऽब्रवीन्म हादेवःसोमः सोमार्द्धभूषणः ॥४॥ शिव उवाच॥शंलादे वरदोहै ते तपसानेन तोषितः ॥ साधु तप्तं त्वया धीमन् ब्रूहि यत्ते मनो गतम् ॥५॥ स एवमुक्तो देवेन शिरसा पादयोर्नतः॥ अस्तवं परमेशानं जराशोकविनाशनम् ॥ ६ ॥ अथ मां नन्दिनं शम्भुर्भ क्त्या परामया युतम् ॥ अश्रुपूर्णेक्षणं सम्यक् पादयोः शिरसा नतम् ॥ ७ ॥ उत्थाप्य परमेशानः पस्पर्श परमार्तिहा ॥ करा भ्यां संमुखाभ्यान्तु संगृह्य वृषभध्वजः ॥ ८ ॥ निरीक्ष्य गणपांश्चैव देवीं हिमवतः सुताम् ॥ उवाच मां कृपादृष्ट्या समीक्ष्य जगताम्पतिः ॥ ९ ॥ वत्स नन्दिन्महाप्राज्ञ मृत्योर्भीतिः कुतस्तव ॥ मयैव प्रेषितौ विप्रौ मत्समस्त्वं न संशयः ॥ १० ॥

शिवके कहनेपर अपने सिरको उनके चरणोंमें झुकाये हुए, जरा शोकसे नाश करनेवाले शिवजीकी मैं स्तुति करने लगा ॥ ६ ॥ तब परम भक्तिसे युक्त तथा आंसुओंसे पूर्ण नेत्रोंवाले, मस्तक झुकाये मुझ नन्दीको ॥ ७ ॥ उठाकर दुःखहर्ता परमेशान वृषभध्वजने दोनों हाथोंसे मुझे पकड स्पर्श किया ॥ ८ ॥ गणपतियोंको और देवी पार्वतीको तथा मुझे कृपा कटाक्षसे देखकर जगतपति बोले ॥ ९ ॥ हे वत्स नन्दिन् ! महाप्राज्ञ ! तुम्हें मृत्युसे भय कहां ? उन दोनों ब्राह्मणोंको मैंने ही भेजा था, तुम मेरे समान हो इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ १० ॥

तुम पिता और सुहज्जनोंके सहित अजर, अमर, दुःखरहित, अविनाशी, अक्षय और मेरे प्रिय होगे ॥ ११ ॥ मेरे बलवाले तथा मेरे समीप प्राप्त हुए, रात दिन मेरे प्रिय होगे, मेरी प्रसन्नतासे जरा मृत्यु तुमको प्राप्त न होगी ॥ १२ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार कह कर अपनी कुशेशमयी, शिरोंकी, माला, कृपानिधि शिवने खोलकर शीघ्र मेरे कंठमें बांध दी ॥ १३ ॥ हे विप्र ! उस सुन्दर मालाको कंठमें पहरते ही तीन नेत्र, दश भुजाओं वाला मानों दूसरा शिव ही होगया ॥ १४ ॥ तब परमेश्वरने मुझे हाथसे ग्रहण कर कहा, कहो अब तुमको क्या श्रेष्ठ वर दूं ? ॥ १५ ॥ तब वृषभध्वजने अपनी जटाओंसे, हारके समान निर्मल जल ग्रहण कर, नन्दी हो ऐसा कहकर

अमरो जरया त्यक्तोऽदुःखी गणपतिः सदा ॥ अव्ययश्चाक्षयश्चेष्टः स पिता स सुहृज्जनः ॥११॥ मद्बलः पार्श्वगो नित्यं ममेष्टो भवितानिशम् ॥ न जरा जन्म मृत्युर्वैमत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ १२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमुक्त्वा शिरोमालां कुशेशयमयीं निजाम्॥समुन्मुच्य बबन्धाशु मम कण्ठे कृपानिधिः॥१३॥तयाहं मालय ाविप्र शुभया कण्ठसक्तया॥त्र्यक्षो दशभुजश्चासं द्वितीय इव शङ्करः॥१४॥तत एव समादाय हस्तेन परमेश्वरः॥उवाच ब्रूहि किं तेऽद्य ददामि वरमुत्तमम्॥१५॥ततो जटाश्रितं वारि गृहीत्वा हारनिर्मलम् ॥ उक्त्वा नन्दी भवेतीह विससर्ज वृषध्वजः ॥१६॥ ततः पञ्चमिता नद्यः प्रावर्तत शुभावहाः ॥ सुतोयाश्च महावेगा दिव्य रूपा चसुन्दरी ॥१७॥ जटोदका त्रिस्रोताश्च वृषध्वनिरितीव हि ॥ स्वर्णोदका जम्बुनदी पञ्चनद्यः प्रकीर्तिताः ॥१८॥ एतत्पञ्चनदं नाम शिवपृष्ठतमं शुभम्॥जपेश्वरसमीपे तु पवित्रं परमं मुने ॥१९॥ यः पञ्चनदमासाद्य स्नात्वा जप्त्वेश्वरेश्वरम् ॥ पूजयेच्छिवसायुज्यं प्रयात्येव न संशयः ॥२०॥ अथ शम्भुरुवाचोमामभिषिञ्चामि नन्दिनम् ॥ गणेन्द्रं व्याहरिष्यामि किं वा त्वं मन्यसेऽव्यये ॥ २१ ॥

उसको मेरे ऊपर छिडका ॥ १६ ॥ उस जलसे पांच शुभ नदियोंसे निर्मल और बडे बेगवाला दिव्यरूप जल, वहने लगा ॥ १७ ॥ जटोदका, त्रिस्रोता, वृषभध्वनि, स्वर्णोदका, जम्बुनदी, यह पांच नदियां कहीं॥ १८ ॥ हे मुने ! यह पंचनद नामक परम पवित्र शिवका पृष्ठदेश, जपेश्वरके समीप वर्तमान है ॥ १९ ॥ जो पुरुष पंचनदपर प्राप्त हो, स्नानकर, वहां जपेश्वरेश्वर, शिवका पूजन करता है वह शिवकी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है, इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २० ॥ शिवजी पार्वतीसे बोले, कि नन्दीको गणेश्वर पदमें

अभिषेक करता हूं मैं इसको गणेन्द्र करूंगा, तुम्हारी इसमें क्या सम्मति है ? ॥ २१ ॥ पार्वती बोली, हे देवेश ! परमेश्वर ! नन्दीको मुझे दो हे नाथ ! वह शिलादपुत्र आजसे मेरा महाप्रिय पुत्र हुआ ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर बोला, इसके उपरान्त, परमस्वतंत्र परम ईश, भक्तवत्सल शंकरने अपने श्रेष्ठ गणोंको स्मरण किया ॥ २३ ॥ शिवके स्मरण करते ही वे शंकरकी आकृतिवाले असंख्यात गणेश्वर बडे आनन्दसे आये ॥ २४ ॥ उन गणेशोंने उन शिव तथा आदि देवी पार्वतीको प्रणाम करके हाथ बांध शिर झुकाय शुभ वचन कहे ॥ २५ ॥ गणाध्यक्ष बोले, हे प्रभो ! हमको किस निमित्त स्मरण किया आज्ञा दीजिये, हे त्रिपुरार्दन ! हे कामद ! हम सब आपके सेवक आगये

उमोवाच ॥ दातुमर्हसि देवेश नन्दिने परमेश्वर ॥ महाप्रियतमो नाथ शैलादिस्तनयो मम ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ ततस्स शङ्करः स्वीयान्सस्मार गणपान्वरान् ॥ स्वतन्त्रः परमेशानस्सर्वदो भक्तवत्सलः ॥२३॥ स्मरणादेव रुद्रस्य सम्प्राप्ताश्च गणेश्वराः ॥ असङ्ख्याता महामोदाश्शङ्कराकृतयोऽखिलाः ॥२४॥ ते गणेशाश्शिवं देवीं प्रणम्याहुः शुभं वचः ॥ ते प्रणम्य करौ बद्ध्वा नत स्कन्धा महाबलाः ॥२५॥ गणेशा ऊचुः ॥ किमर्थं च स्मृतादेव ह्याज्ञापय महाप्रभो ॥ किङ्करान्नः समायातांस्त्रिपुरार्दन कामद ॥२६॥ किं सागराञ्शोषयामो यमंवा सह किंकरैः ॥ हन्मो मृत्युं महामृत्युं विशेषं वृद्धपद्मजम् ॥२७॥ बद्धेन्द्रं सह देवैश्च विष्णुं वा पार्षदैः सह ॥ आनयामः सुसंक्रुद्धान्दैत्यान्वा दानवैः सह ॥ २८ ॥ कस्याद्य व्यसनं घोरं करिष्यामस्तवाज्ञया ॥ कस्य वाद्योत्सवो देव सर्वकामसमृद्धये ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां गणानां वीरवादिनाम् ॥ उवाच तान्स प्रशंस्य गणेशान्परमेश्वरः॥३०॥शिव उवाच॥नन्दीश्वरोयं पुत्रो मे सर्वेषामीश्वरेश्वरः॥प्रियो गणाग्रणीस्सर्वैः क्रियतां वचनं मम॥३१॥

॥ २६ ॥ कहो तो समुद्रोंको सुखा डालें, अथवा सेवकों सहित यमराजको मारडालें, मृत्यु, महामृत्यु, वा वृद्ध ब्रह्माका संहार करदें ॥ २७ ॥ अथवा देवताओं सहित इन्द्रको वा पार्षदों सहित विष्णुको बांधकर ले आवें, या, दानवों सहित क्रोधित दैत्योंको पकड़ लावें ॥ २८ ॥ आज आपकी आज्ञासे किसको घोर दण्ड दें अथवा किसी कामनाकी सिद्धिके अर्थ आज किसीका उत्सव करें ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उन वीरवादी गणोंका वचन सुनकर शिवजी, उन गणपतियोंकी प्रशंसा करके उनसे बोले ॥ ३० ॥ शिवजी बोले

यह नन्दीश्वर मेरा पुत्र सब गणोंका अधिपति तथा प्रिय गणोंमें मुख्य हुआ, ऐसा सबोंको मेरा वचन पालन करना चाहिये ॥ ३१ ॥ तुम सब प्रीतिपूर्वक मेरे गणाध्यक्ष, इस नन्दीको स्नान कराओ, और आजसे यह नन्दी तुम सबोंका स्वामी हुआ ॥ ३२ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार शिवजीसे कहे हुए वे सम्पूर्ण गणपति, बहुत अच्छा ऐसा कहकर सब सामग्री लाये ॥ ३३ ॥ तब इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता तथा नारायण और सम्पूर्ण मुनि प्रसन्न हो सब लोकोंसे आये ॥ ३४ ॥ शिवके नियोगसे भगवान् ब्रह्माजीने सावधान हो नन्दीका अभिषेक किया ॥ ३५ ॥ तब विष्णुने, फिर इन्द्रने इसके पीछे लोकपालोंने स्नान कराया और ऋषिगण तथा ब्रह्मादि देवता बडे प्रसन्न

सर्व्वे प्रीत्याभिषिञ्चध्वं मद्गणानां गतिम्पतिम् ॥ अद्यप्रभृति युष्माकमयं नन्दीश्वरः प्रभुः ॥ ३२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एव मुक्ताः शङ्करेण गणपास्सर्व्व एव ते ॥ एवमस्त्विति सम्प्रोच्य सम्भारानाहरँस्ततः ॥ ३३ ॥ ततो देवाश्च सेन्द्राश्च नारायणमुखा स्तथा ॥ मुनयः सर्व्वतो लोका आजग्मुर्मुदितानना: ॥ ३४ ॥ पितामहोपि भगवन्नियोगाच्छङ्करस्य वै ॥ चकार नंदिनस्स र्व्वमभिषेकं समाहितः ॥ ३५ ॥ ततो विष्णुस्ततश्शक्रो लोकपालास्तथैव च ॥ ऋषयस्तुष्टुवुश्चैव पितामहपुरोगमाः ॥ ३६ ॥ स्तुतिमत्सु तत स्तेषु विष्णुः सर्वजगत्पतिः ॥ शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टाव च समाहितः ॥ ३७ ॥ प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा जयशब्दं चकार च ॥ ततो गणाधिपास्सर्व्वे ततो देवास्ततोऽसुराः ॥ ३८ ॥ एवं स्तुतश्चाभिषिक्तो देवैस्सब्रह्मकैस्तदा ॥ नन्दी श्वरोहं विप्रेन्द्र नियोगात्परमेशितुः ॥ ३९ ॥ उद्वाहश्च कृतस्तत्र नियोगात्परमेष्ठिनः ॥ महोत्सवयुतः प्रीत्या विष्णुब्रह्मा दिभिर्मम ॥ ४० ॥ मरुतां च सुता देवी सुयशास्तु मनोहरा ॥ पत्नी सा मेऽभवद्दिव्या मनोनयननन्दिनी ॥ ४१ ॥

होकर स्तुति करने लगे ॥ ३६ ॥ तब उन सबके स्तुति करनेपर सब जगत्के पति विष्णुजी हाथ जोड चिर झुकाय स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ और हाथ जोड शिर झुकाय जय शब्द किया तब सम्पूर्ण गणाधिप, देवता तथा असुर ॥ ३८ ॥ और ब्रह्मासे आदि लेकर देवता स्तुति करने लगे, इस प्रकार अभिषेकको प्राप्त हो मुझ नन्दीश्वरने ब्रह्माजीकी आज्ञासे ॥ ३९ ॥ अपना विवाह किया विष्णु और ब्रह्म आदिकोंने प्रीतिसे बडा उत्सव किया ॥ ४० ॥ सुयसा नामवाली परम मनोहर देवी मरुतकी कन्या, मन और नेत्रोंको आनंद देनेवाली,

परम दिव्य रूपवती मेरी पत्नी हुई ॥ ४१ ॥ परम शोभायमान चन्द्रमाके समान कांतिमान छत्र लिया और दूसरी स्त्रियोंने चामरोंको ग्रहण किया ॥ ४२ ॥ इस प्रकार परम मनोहर सिंहासन पर उसके साथ मैं बैठा और महालक्ष्मीने मुकुट आदि सुन्दर भूषणोंसे मुझे सजाया॥४३॥ देवीने अपने कण्ठका दिव्य हार मुझे दिया, श्वेत वृषभ, हाथी तथा सिंहकी ध्वजा ॥४४॥ हे मुने ! रथ चन्द्रमाके प्रतिबिम्बके समान स्वच्छ सुवर्णका हार तथा और वस्तु भी मुझे मिलीं ॥४५॥ हे महामुने ! इस प्रकार उस पत्नीसे मेरा विवाह होनेपर मैंने पार्वतीके, ब्रह्माके तथा विष्णुके चरणोंको नमस्कार किया ॥ ४६ ॥ उस प्रकार सपत्नीक मुझसे भक्तवत्सल त्रिलोकेश शिवजी परम प्रीतिसे बोले ॥ ४७ ॥ शिवजी बोले, हे

लब्धं शशिप्रभं छत्रं तया तत्र विभूषितम् ॥ चामरै श्चामरासक्तहस्ताग्रैः स्त्रीगणैर्युतम् ॥ ४२ ॥ सिंहासनं च परमं तया चाधिष्ठितं मया॥ अलंकृतो महालक्ष्म्यामुकुटाद्यैस्सुभूषणैः ॥ ४३ ॥ लब्धो हारश्च परमो देव्याः कण्ठगतस्तथा ॥ वृषेन्द्रश्च शितो नागस्सिंहस्सिंहध्वजस्तथा ॥ ४४ ॥ रथश्च हेमहारश्च चन्द्रबिंबसमः शुभः ॥ अन्यान्यपि च वस्तूनि लब्धानि हि मया मुने ॥ ४५ ॥ एवं कृतविवाहोऽहं तया पत्न्या महामुने ॥ पादौ ववन्दे शम्भोश्च शिवाया ब्रह्मणो हरेः ॥ ४६ ॥ तथाविधंत्रिलोकेश स्सपत्नीकं च माम्प्रभुः ॥ प्रोवाच परया प्रीत्या स शिवो भक्तवत्सलः ॥ ४७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु सत्पुत्र तातस्त्वं सुयशे यन्तव प्रिया ॥ ददामिते वरम्प्रीत्या यत्ते मनसि वाञ्छितम् ॥ ४८ ॥ सदाहन्तव नन्दीश सन्तुष्टोऽस्मि गणेश्वर ॥ देव्या च सहितो वत्स शृणु मे परमं वचः ॥ ४९ ॥ सदेष्टश्च विशिष्टश्च परमैश्वर्य्यसंयुतः ॥ महायोगी महेष्वासः स पिता स पितामहः ॥ ५० ॥ अजेयस्सर्वजेता च सदा पूज्यो महाबलः ॥ अहं यत्र भवांस्तत्र यत्र त्वंतत्र चाप्यहम् ॥ ५१ ॥

सत्पुत्र ! तुम पति, और यह तुम्हारी सुयशा स्त्री है और मैं तुमको प्रसन्न होकर वही दूंगा जो तुम्हारे मनमें हो ॥ ४८ ॥ हे गणेश्वर ! हे नन्दीश्वर ! मैं तुझसे निरन्तर सन्तुष्ट हूं तुम मेरे सदा प्रिय होगे, हे वत्स ! देवीसहित इस मेरे वचनको सुनो ॥ ४९ ॥ अच्छे मनोरथ तथा परम ऐश्वर्य सहित महायोगी, महाधनुषधारी तुम्हारा पितामह समेत ॥ ५० ॥ अजेय, तथा सबको जीतनेवाला महाबली होकर सदा पूजनीय होगा जहां मैं हूंगा वहां तुम होगे जहां तुम होगे वहां मैं हूंगा ॥ ५१ ॥

हे पुत्र ! यह बडे ऐश्वर्य सहित तुम्हारा पिता महाबली मेरा भक्त, गणोंका अध्यक्ष होगा ॥ ५२ ॥ हे वत्स ! तुम्हारा पितामह भी वैसाही होगा ऐसा नियम रहेगा मुझसे वरदान प्राप्त हुए वे सब मेरे समीप जायँगे ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर बोले तब महाभागा देवी, नन्दीको वरदान देनेकी इच्छासे बोली हे पुत्र ! मुझसे इच्छित वर मांगो ॥ ५४ ॥ तब पार्वतीके वचन सुनकर मैं हाथ जोड उस समय बोला हे देवि ! तुम्हारे चरणोंमें मेरी नित्यभक्ति हो यह वरदान करो ॥ ५५ ॥ मेरे वचनको सुनकर देवीने कहा कि ऐसेही हो तब पार्वती, सुयशा नाम नन्दीकी स्त्री दयासे अच्छी प्रीतिपूर्वक बोली ॥ ५६ ॥ पार्वती बोली, हे वत्से ! यथेष्ट वरको ग्रहण करो त्रिनेत्रा, जन्म वर्जिता तुम्हारी

अयं च ते पिता पुत्र परमैश्वर्य्यसंयुतः॥भविष्यति गणाध्यक्षो मम भक्तो महाबलः ॥५२॥ पितामहोऽपि ते वत्स तथास्तु नियमा इमे ॥ मत्समीपं गमिष्यन्ति मया दत्तवरास्तथा॥५३॥नन्दीश्वर उवाच॥ ततो देवी महाभागा नन्दिनं वरदाब्रवीत्॥ वरं ब्रूहीतिमा म्पुत्र सर्व्वान्कामान्यथेप्सितान् ॥५४॥ तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः प्रावोचत्साञ्जलिस्तदा॥ भक्तिर्भवतु मे देवि पादयोस्ते सदा वरा ॥५५॥ श्रुत्वा मम वचो देवी ह्येवमस्त्विति साब्रवीत्॥ सुयशां ताञ्च सुप्रीत्या नन्दिप्रियतमां शिवाम् ॥५६॥ देव्युवाच॥ वत्से वरं यथेष्टं हि त्रिनेत्रा जन्मवर्जिता॥ पुत्रपौत्रैस्तु भक्तिर्मे तथा च भर्तुरेव हि ॥ ५७ ॥ नन्द्युवाच ॥ तदा ब्रह्मा च विष्णुश्च सर्व्वे देवगणाश्च वै ॥ ताभ्यां वरान्ददुः प्रीत्या सुप्रसन्नाशिवाज्ञया॥५८॥ सान्वयं मां गृहीत्वेशस्ततस्सम्बन्धिबान्धवैः॥ आरुह्य वृष मीशानो गतो देव्या निजं गृहम् ॥५९॥ विष्णवादयः सुरास्सर्व्वे प्रशंसन्तो ह्यमी तदा ॥ स्वधामानि ययुः प्रीत्या संस्तुव न्तः शिवं शिवम् ॥ ६० ॥ इति ते कथितो वत्स स्वावतारो महामुने ॥ सदानन्दकरः पुंसां शिवभक्तिप्रवर्द्धनः ॥ ६१ ॥

पुत्र पौत्रादि सहित मुझमें तथा पतिमें भक्ति हो ॥ ५७ ॥ नन्दीश्वर बोले, उस समय ब्रह्मा, विष्णु, तथा सम्पूर्ण देवताओंने प्रसन्न होकर शिवकी आज्ञासे उन दोनोंको वर दिये ॥ ५८ ॥ तब सम्बन्धी बान्धवों सहित मुझे कुटुम्ब सहित लेकर, शिवजी बैलपर चढ़के देवीके सहित अपने गृहको पधारे ॥ ५९ ॥ विष्णु आदि सम्पूर्ण देवता भी उसकी प्रशंसा करते और प्रीति सहित शिवजीको स्तुति करते हुए अपने अपने स्थानोंको गये ॥६०॥हे वत्स ! हे महामुने ! इस प्रकार अपना अवतार तुमसे कहा जो पुरुषोंको सदा आनन्द देनेवाला

और शिवजीकी भक्ति बढानेवाला है ॥ ६१ ॥ जो पुरुष इस नन्दीके जन्म तथा मेरे वरदानको और अभिषेक तथा विवाहको सुनता और सुनाता है ॥ ६२ ॥ तथा श्रद्धा भक्ति समेत जो पढता है अथवा पढाता है वह इस संसारमें सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर परलोकमें सुन्दर गतिको प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण--भाषाटीकायां तृ० श० रु० नन्दिकेश्वरावताराभिषेकविवाहवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ (अब भैरव अवतार कहते हैं) नन्दीश्वर बोले हे सर्वज्ञ सनत्कुमार ! अब तुम भैरवी कथाको सुनो कि, जिसके श्रवण मात्रसे शिवकी दृढ भक्ति होती है ॥ १ ॥ भैरवजी परमात्मा शंकरका पूर्ण रूप हैं शिवकी मायासे मोहित हुए मूर्खजन उनको नहीं जानते

यइदन्नन्दिनो जन्म वरदानन्तथा मम॥ अभिषेकं विवाहं च शृणुयाच्छ्रावयेत्तथा॥६२॥पठेद्वा पाठयेद्वापि श्रद्धावान्भक्तिसंयुतः ॥ इह सर्व्वसुखम्भुक्त्वा परत्र लभते गतिम् ॥६३॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दिकेश्वरावताराभिषेकविवाह वर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥इति त्रिचत्वारिंशोवतारः ॥४३॥ अथभैरवावतारमाह॥ नन्दीश्वर उवाच॥ सनत्कुमार सर्व्वज्ञ शृणु त्वं भैरवीं कथाम् ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण शैवी भक्तिर्दृढा भवेत् ॥ १ ॥ भैरवः पूर्णरूपो हि शंकरस्य परात्मनः ॥ मूढास्तं वै न जानन्ति मोहिताश्शिवमायया ॥२॥ सनत्कुमार नो वेत्ति महिमानं महेशितुः॥ चतुर्भुजोऽपि विष्णुर्वै चतुर्व्वक्त्रोऽपि वै विधिः ॥ ॥३॥ चित्रमत्र न किञ्चिद्वै दुर्ज्ञेया खलु शाम्भवी ॥ तया संमोहितास्सर्वे नार्चयन्त्यपि तम्परम् ॥ ४ ॥ वेद चेद्यदि वात्मानं स एव परमेश्वरः ॥ तदा विदन्ति ते सर्व्वे स्वेच्छया न हि केऽपि तम्॥५॥सर्व्वगोऽपि महेशानो नेक्ष्यते मूढबुद्धिभिः॥ देववद् बुध्यते लोके योऽतीतो मनसां गिराम् ॥६॥ अत्रेतिहासं वक्ष्येऽहं परमर्षे पुरातनम् ॥ शृणु तं श्रद्धया तात परमं ज्ञानकारणम् ॥ ७ ॥

हैं ॥ २ ॥ हे सनत्कुमार महेश्वरकी महिमाको, चतुर्भुज विष्णु तथा चतुर्मुख ब्रह्मा भी नहीं जानते हैं ॥ ३ ॥ इसमें कुछ आश्चर्य नहीं क्योंकि शंभुकी महिमा कठिनतासे जानी जाती है उससे मोहित हुए बहुत लोग परमेश्वरको नहीं पूजते हैं ॥ ४ ॥ यदि वह ही परमेश्वर अपना आत्मा जनाता है तब वे जानते हैं और अपनी इच्छासे कोई उसे नहीं जान सकते ॥ ५ ॥ सब जगह स्थित हुए भी महेश्वर मूर्ख बुद्धियोंसे नहीं जाने जाते, जो मन और वाणीसे परे हैं सो देववत् संसारमें जाने जाते हैं ॥ ६ ॥ हे परमर्षे ! इस विषयमें पुराने

इतिहासको कहते हैं हे तात ! परम ज्ञानके कारण उस इतिहासको श्रद्धासे सुनो ॥ ७ ॥ सुमेरु पर्वतके मनोहर शिखरपर बैठे हुये परमेश्वर, ब्रह्माजीके समीप देवता तथा ऋषिगण श्रेष्ठ तत्त्व जाननेकी इच्छासे गये ॥ ८ ॥ वे सब मुनीश्वर वहां जाके ब्रह्माजीको नमस्कार करके बडे आदरसे अञ्जलि बांधे, कन्धे झुकाये उनसे पूछने लगे ॥ ९ ॥ देवर्षि बोले, हे देवदेव ! हे प्रजानाथ ! हे सृष्टिकर्ता ! हे लोकनायक ! आप हमसे सत्य कहिये कि एक अविनाशी तत्त्व क्या है ॥ १० ॥ नन्दीश्वर बोले, कि महेश्वरकी मायासे मोहित हुए ब्रह्माजी परम भावको न जानकर उस भावको कहने लगे ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे ऋषियो ! ! ! हे देवताओ ! ! ! मन लगाय अच्छी बुद्धिसे

मेरुशृङ्गेऽद्भुते रम्ये स्थितम्ब्रह्माणमीश्वरम् ॥ जग्मुर्देवर्षयः सर्व्वे सुतत्त्वं ज्ञातुमिच्छया ॥८॥ तत्रागत्य विधिन्नत्वा पप्रच्छुस्ते महादरात् ॥ कृताञ्जलिपुटास्सर्वे नतस्कन्धा मुनीश्वराः ॥९॥ देवर्षय ऊचुः ॥ देवदेव प्रजानाथ सृष्टिकृल्लोकनायक ॥ तत्त्वतो वद चास्मभ्यं किमेकं तत्त्वमव्ययम् ॥१०॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ स मायया महेशस्य मोहितः पद्मसम्भवः ॥ अविज्ञाय परम्भावं संभावं प्रत्युवाच ह ॥११॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे सुरा ऋषयः सर्व्वे सुमत्या शृणुतादरात् ॥ वच्म्यहं परमं तत्त्वमव्ययं वै यथार्थतः ॥ १२ ॥ जगद्योनिरहं धाता स्वयम्भूरज ईश्वरः ॥ अनादिभागहं ब्रह्म ह्येक आत्मा निरञ्जनः ॥१३॥ प्रवर्तको हि जगतामहमेव निवर्त्तकः ॥ संवर्तको मदधिको नान्यः कश्चित्सुरोत्तमाः ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ तस्यैवं वदतो धातुर्विष्णुस्तत्र स्थितो मुने ॥ प्रोवाच प्रहसन्वाक्यं संक्रुद्धो मोहितोऽजया ॥१५॥ न चैतदुचिता ब्रह्मन्योगयुक्तस्य मूर्खता ॥ अविज्ञाय परं तत्त्वं वृथैतत्ते निगद्यते ॥१६॥

सुनो मैं परम अविनाशी तत्त्वको यथार्थ रूपसे कहता हूं ॥ १२ ॥ मैं ही एक संसारका उत्पन्न करनेवाला तथा धारण करनेवाला, स्वयं प्रगट होनेवाला, अज, एकमात्र ईश्वर, अनादि, भोक्ता हूं ब्रह्म तथा एक निरंजन आत्मा हूं ॥ १३ ॥ संसारको प्रवृत्त करनेवाला मैं ही हूं हे देवताओ ! कोई भी देवता मुझसे अधिक प्रवर्तक नहीं है ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! ब्रह्माजी ऐसा कह रहे थे और विष्णुजी वहां स्थित थे, और मायासे मोहित हो हँसते हुए क्रुद्ध वाणीसे बोले ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप योगमें युक्त हो आपको

ऐसी मूर्खता उचित नहीं है आप परम तत्त्वको न जानकर ऐसा वृथा ही कहते हैं ॥ १६ ॥ सम्पूर्ण लोकोंके कर्त्ता, परमपुरुष, परमात्मा, यज्ञ, नारायणदेव, मायाधीश, परमगति हैं ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरी आज्ञासेही तुम इस सृष्टिको करते हो संसारमें मेरा अनादर करके जीवन नहीं हो सकता ॥ १८ ॥ इस प्रकार प्रकृतिसे मोहित होकर, परस्पर विजयकी इच्छा करते हुए ब्रह्मा और विष्णुजी अपने प्रमाणमें वेदोंको शास्त्रोंको कहने लगे ॥ १९ ॥ कि विशेषकर इन चारों वेदोंसे पूछना चाहिये, वे चारों वेद मूर्ति धारण किये हुए स्थित हैं वेही इस बातका प्रमाण जानते हैं ॥ २० ॥ ब्रह्मा और विष्णुजी बोले, हे वेदो ! ! ! सर्वत्र आपका प्रमाण हे आपकी प्रतिष्ठा बडी है आप विश्वास

कर्तावै सर्वलोकानां परमात्मा परः पुमान्॥यज्ञो नारायणो देवो मायाधीशः परा गतिः॥१७॥ममाज्ञया त्वया ब्रह्मन्सृष्टिरेषा विधीयते ॥ जगतां जीवनं नैव मामनादृत्य चेश्वरम्॥१८॥ एवं त्रिप्रकृतौ मोहात्परस्परजयैषिणौ ॥ प्रोचतुर्निगमांश्चात्र प्रमाणे सर्वथा तनौ॥१९॥प्रष्टव्या स्ते विशेषेण स्थिता मूर्तिधराश्च ते ॥ पप्रच्छतुः प्रमाणज्ञानित्युक्त्वा चतुरोऽपि तान्॥२०॥विधिविष्णू ऊचतुः॥ वेदाः प्रमाणं सर्व्वत्र प्रतिष्ठा परमामिताः॥यूयं वदत विश्रब्धं किमेकं तत्त्वमव्ययम्॥२१॥नन्दीश्वर उवाच॥इत्याकर्ण्य तयोर्वाचं पुनस्ते हि ऋगादयः॥ अवदंस्तत्त्वतः सर्व्वे संस्मरतो परं प्रभुम्॥२२॥यदि मान्या वयन्देवौ सृष्टिस्थितिकरौ विभू॥तदा प्रमाणं वक्ष्यामो भवत्सन्देहभेदकम् ॥२३॥ नन्दीश्वर उवाच॥श्रुत्युक्तविधिमाकर्ण्य प्रोचतुस्तौ सुरौ श्रुतीः॥युष्मदुक्तं प्रमाणं नौकिन्तत्त्वं सम्यगुच्यताम्॥२४॥ऋग्वेद उवाच॥ यदन्तस्थानि भूतानि यतस्सर्व्वम्प्रवर्त्तते॥ यदाहुः परमन्तत्त्वं स रुद्रस्त्वेक एव हि॥२५॥

योग्य कहिये कि अविनाशी एक तत्त्व क्या है ? ॥ २१ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उन ब्रह्मा विष्णुके वचन सुनकर वे, ऋक्, यजु आदि चारों वेद, परेश, प्रभुशिवको स्मरण करते हुए तत्त्वसे बोले ॥ २२ ॥ हे विभो ! सृष्टिकी स्थिति करनेवाले ! देवताओ ! यदि हम मान नीय हैं तो आपके सन्देहको दूर करनेवाले प्रमाणको कहते हैं ॥ २३ ॥ नन्दीश्वर बोले, वेदोंसे कही विधिको सुनकर वे दोनों ब्रह्मा, विष्णु वेदोंसे बोले, कि जो कुछ तुम कहोगे, हम दोनों प्रमाण करेंगे, आप सम्यक् प्रकार कहिये ॥ २४ ॥ ऋग्वेदने कहा जिसके भीतर सम्पूर्ण

भूत हैं तथा जिससे सब कुछ प्रवृत्त होता है, और जिसको परमतत्त्व कहते हैं वह एक रुद्रही हैं ॥ २५ ॥ यजुर्वेदने कहा, जो ईश्वर संपूर्ण यज्ञोंसे तथा योगसे यजन किया जाता है जिसके द्वारा हमारा प्रमाण होता है वह सबका देनेवाला शिव है ॥ २६ ॥ सामवेद बोला, जिसके द्वारा सब जीव संसारमें भ्रमते हैं, जिसे योगीजन ढूंढते हैं जिसकी कान्तिसे सम्पूर्ण संसार प्रकाशित होरहा है वही एक त्र्यम्बक शिव हैं ॥ २७ ॥ अथर्ववेद बोला, जिस देवेश्वरको भक्तजन भक्तिके द्वारा साक्षात्कार करते हैं, वही एक कैवल्य, दुःखोंसे परे, शंकर हैं ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार वेदोंके वचन सुनकर बडी मायासे मोहित हुए, ब्रह्मा, विष्णु विस्मित विचेतन हुए उन वेदोंसे बोले

यजुर्वेद उवाच ॥ यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेन च समिज्यते ॥ येनप्रमाणं खलु नस्स एकः सर्व्वदृक् छिवः ॥२६॥ सामवेद उवाच ॥ येनेदम्भ्रम्यते विश्वं योगिभिर्यो विचिन्त्यते ॥ यद्भासा भासते विश्वं स एकरुयम्बकः परः ॥ २७॥ अथर्ववेद उवाच ॥ यं प्रपश्यन्ति देवेशम्भक्त्यनुग्रहिणो जनाः ॥ तमाहुरेकं कैवल्यं शंकरं दुःखतः परम् ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ श्रुत्युक्तमिदमाकर्ण्यातीवमायाविमोहितौ ॥ स्मित्वाहतुर्विधिहरी निगमांस्तान्विचेतनौ ॥ २९ ॥ विधिहरी ऊचतुः ॥ हे वेदाः किमिदं यूयम्भाषन्ते गतचेतनाः ॥ किञ्जातं वोऽद्य सर्व्वं हि नष्टं सुवयुनं परम् ॥ ३० ॥ कथम्प्रमथनाथोऽसौ रममाणो निरन्तरम् ॥ दिगम्बरः पीतवर्णो शिवयाधूलिधूसरः ॥ ३१ ॥ विरूपवेषो जटिलो वृषगो व्यालभूषणः ॥ परं ब्रह्मत्वमापन्नः क्व च तत्संगवर्जितम् ॥ ३२ ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्यप्रणवः सर्वगस्तयोः ॥ अमूर्तोमूर्तिमान्प्रीत्या जृम्भमाण उवाच तौ ॥ ३३ ॥

॥ २९ ॥ ब्रह्मा विष्णु बोले, हे वेदो ! तुम ज्ञानरहित होकर यह क्या कहते हो ? आज तुमको क्या हुआ ? क्या सब विचार नष्ट होगया ? ॥ ३० ॥ यह प्रमथनाथ शिव, निरन्तर शिवासे रमण करते हुए नग्न, पीतवर्ण, धूलिसे लिप्त हुए, कैसे परमतत्त्व हो सकते हैं ॥ ३१ ॥ कुरूपवेषधारी, जटा बढाए, बैलपर चढनेवाले, सर्पोंके भूषणधारी, निस्संग, शिवजी परब्रह्म कैसे हो सकते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार उन दोनोंके वचन सुनकर सब स्थानोंमें स्थित, अमूर्त और मूर्तिमान् ओंकार प्रीतिपूर्वक उन दोनोंसे बोला ॥ ३३ ॥

ओंकार बोला, लीलारूपधारी भगवान् रुद्र शिव अपनी शक्तिके विना रमण नहीं कर सकते हैं ॥ ३४ ॥ यह परमेश्वर शिवजी स्वयम् सना तन ज्योति स्वरूप हैं और उनकी आनंदरूपा शक्ति आगन्तुकी नहीं किन्तु नित्य है ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर बोले, उस समय ओंकारके इस प्रकार कहने पर भी शिवजीकी मायासे मोहित होनेके कारण ब्रह्मा, विष्णुका अज्ञान नाशको प्राप्त न हुआ ॥ ३६ ॥ तब उन दोनोंके बीचमें बडी ज्योति प्रगट हुई जो अपने प्रकाशसे भूमि आकाशको पूर्णकर रही थी ॥ ३७ ॥ उस ज्योतिसमूहके मध्यमें स्थित अद्भुत शरीरधारी एक पुरुषको ब्रह्मा और विष्णुजीने देखा ॥ ३८ ॥ तब क्रोधसे ब्रह्माका पांचवां शिर जलने लगा कि हम दोनोंके मध्यमें यह पुरुषकारको कौन

प्रणव उवाच ॥ न हीशो भगवाञ्छक्त्या ह्यात्मनो व्यतिरिक्तया ॥ कदाचिद्रमते रुद्रो लीलारूपधरो हरः ॥३४॥ असौ हि परमेशानस्स्वयंज्योतिस्सनातनः ॥ आनन्दरूपा तस्यैषा शक्तिर्नागन्तुकी शिवा ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्येवमुक्तोऽपि तदा विधेर्विष्णोश्च वै तदा ॥ नाज्ञानमगमन्नाशं श्रीकण्ठस्यैव मायया ॥ ३६ ॥ प्रादुरासीत्ततो ज्योतिरुभयोरन्तरे महत् ॥ पूरयन्निजया भासाद्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ॥ ३७ ॥ ज्योतिर्मण्डलमध्यस्थो ददृशे पुरुषाकृतिः ॥ विधिक्रतुभ्यां तत्रैव महाद्भु ततनुर्मुने ॥ ३८ ॥ प्रजज्वालाथ कोपेन ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः ॥ आवयोरन्तरे कोऽसौ बिभृयात्पुरुषाकृतिम् ॥ ३९ ॥ विधिः संभावयेद्यावत्तावत्स त्रिविलोचनः ॥ दृष्टःक्षणेन च महापुरुषो नीललोहितः ॥४०॥ त्रिशूलपाणिर्भालाक्षो नागोडुपविभूषणः ॥ हिरण्यगर्भस्तं दृष्ट्वा विहसन्प्राह मोहितः ॥४१॥ ब्रह्मोवाच ॥ नीललोहित जाने त्वां मा भैषीश्चन्द्रशेखर ॥ भालस्थलान्मम पुरा रुद्रः प्रादुरभूद्भवान् ॥ ४२ ॥ रोदनाद्रुद्रनामापि योजितोऽसि मया पुरा ॥ मामेव शरणं याहि पुत्र रक्षाङ्करोमि ते ॥ ४३ ॥

धारण किये हैं ॥ ३९ ॥ जबतक ब्रह्माजी विचार करें कि तबतक वह त्रिलोचन महापुरुष नीललोहित शिव क्षणमात्रमें दिखाई दिये ॥४०॥ त्रिशूल हाथमें लिये भाललोचन सर्प और चन्द्रमाके भूषण धारे शंकरको देख मोहित हुए ब्रह्माजी बोले ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे नील लोहित ! हे चन्द्रशेखर ! हे रुद्र ! भय मत करो मैं तुमको जानता हूं मेरे माथेसे आप पहले प्रगट हुए थे ॥ ४२ ॥ और रोनेके कारण मैंने ही तुम्हारा रुद्र नाम रक्खा था, हे पुत्र ! मेरी शरणमें आओ मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा ॥ ४३ ॥

नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! तब शिवजीने इस प्रकार अहंकार भरी ब्रह्माकी वाणी सुनकर बडा क्रोध किया मानों प्रलयही कर देंगे ॥ ४४ ॥ तब परमेश्वरने क्रोधसे एक भैरव पुरुषको उत्पन्न किया और क्रोधसे प्रज्वलित हुए उस पुरुषसे महेश्वर कहने लगे ॥ ४५ ॥ ईश्वर बोले, हे काल भैरव ! पहले तुम इन कमल भव ब्रह्माको शासन करो, तुम साक्षात् कालके समान शोभित हो, इससे कालराज नामसे विख्यात होगे ॥ ४६ ॥ संसारके पालन करनेमें तुम समर्थ हो भीषण होनेसे भैरव हो आपसे कालभी डरता है इस कारण आप काल भैरव हो ॥ ४७ ॥ तुम रुष्ट होकर दुष्टात्माओंको नष्ट कर सकोगे, इस कारण तुम आमर्दक नामसे सर्वत्र प्रसिद्धिको प्राप्त होगे ॥ ४८ ॥ जिस

॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अथेश्वरः पद्मयोनेः श्रुत्वा गर्ववतीं गिरम् ॥ चुकोपातीव च तदा कुर्वन्निव लयम्मुने ॥४४॥ सकोपतस्समुत्पाद्य पुरुषं भैरवं क्वचित् ॥ प्रज्वलन्तं सुमहसा प्रीत्या च परमेश्वरः ॥४५॥ ईश्वर उवाच ॥ प्राक्च पंकजजन्मासौ शास्यस्ते कालभैरव ॥ कालवद्राजसे साक्षात्कालराजस्ततो भवान् ॥४६॥ विश्वं भर्तुं समर्थोसि भीषणाद्भैरवः स्मृतः ॥ त्वत्तो भेष्यति कालोऽपि ततस्त्वं कालभैरवः ॥४७॥ आमर्दयिष्यति भवान्रुष्टो दुष्टात्मनो यतः ॥ आमर्दक इति ख्यातिं ततस्सर्वत्र यास्यसि ॥४८॥ यतः पापानि भक्तानां भक्षयिष्यसि तत्क्षणात् ॥ पापभक्षण इत्येव तव नाम भविष्यति ॥४९॥ या मे मुक्तिपुरी काशी सर्व्वाभ्योऽहि गरीयसी ॥ आधिपत्यं च तस्यास्ते कालराज सदैव हि ॥५०॥ तत्र ये पातकिनरास्तेषां शास्ता त्वमेव हि ॥ शुभाशुभं च तत्कर्म चित्रगुप्तो लिखिष्यति ॥५१॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एतान्वरान्प्रगृह्याथ तत्क्षणात्कालभैरवः ॥ वामांगुलिनखाग्रेण चकर्त च विधेश्शिरः ॥ ५२॥ यदंगमपराध्नोति कार्यं तस्यैव शासनम् ॥ अतो येन कृता निन्दा तच्छिन्नम्पञ्चमं शिरः ॥५३॥

कारण कि आप भक्तोंके पाप तत्काल नाश करोगे इस कारण तुम्हारा पाप भक्षण नाम होगा ॥ ४९ ॥ हे कालराज ! मेरी मुक्तिपुरी काशी सब पुरियोंसे बडी है तुमको सदा उसका आधिपत्य प्राप्त रहेगा ॥ ५० ॥ उस पुरीमें जो पापी पुरुष हैं उनको तुमही दंड देनेवाले होगे, वहांके शुभ और अशुभ कर्मको चित्रगुप्त लिखेंगे ॥ ५१ ॥ नन्दीश्वर बोले, इन वीरोंको ग्रहणकर कालभैरवने तत्क्षण बाईं अंगुलियोंके नखाग्र भागसे ब्रह्माका शिर काट लिया ॥ ५२ ॥ जो अंग अपराध करता है उसको ही दंड देना चाहिये इस कारण जिसने निन्दाकी

उसी पांचवें शिरको काट दिया ॥ ५३ ॥ तब ब्रह्माके शिरको कटा हुआ देखकर विष्णु भयभीत हुए शतरुद्रियके मंत्रोंके पाठसे भक्ति पूर्वक शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥ ५४ ॥ भयभीत हुए ब्रह्माजी भी शतरुद्रिय मंत्र जपने लगे हे मुने ! उस समय वे दोनों अहंकार शून्य हुए ॥ ५५ ॥ परब्रह्म शिव ही साक्षात् सच्चिदानंद स्वरूप हैं परमात्मा हैं गुणोंसे परे हैं ऐसा ज्ञान उन दोनोंको प्राप्त हुआ ॥ ५६ ॥ हे सनत्कुमार ! हे सर्वज्ञ ! मेरे परम शुभ वचनको सुनो जबतक अहंकार रहता है तब तक ज्ञान छिपा रहता है ॥ ५७ ॥ पुरुष अभिमानको त्यागन करके परमेश्वरको जानता है, वह विश्वपति गर्व करनेवालेको नष्ट करते हैं क्योंकि अहंकारके विनाशक हैं ॥ ५८ ॥ तब परमेश्वर

अथ च्छिन्नं विधिशिरो दृष्ट्वा भीततरो हरिः ॥ शातरुद्रियमन्त्रैश्च भक्त्या तुष्टाव शङ्करम् ॥ ५४ ॥ भीतो हिरण्यगर्भोऽपि जजाप शतरुद्रियम् ॥ इत्थं तौ गतगर्वौ हि संजातौ तत्क्षणान्मुने ॥ ५५ ॥ परब्रह्म शिवः साक्षात्सच्चिदानन्दलक्षणः ॥ परमात्मा गुणातीत इति ज्ञानमवापतुः ॥ ५६ ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ शृणु मे परमं शुभम् ॥ यावद्गर्वो भवेत्तावज्ज्ञानगुप्तिर्विशेषतः ॥ ५७ ॥ त्यक्ताभिमानं पुरुषो जानाति परमेश्वरम् ॥ गर्विणं हन्ति विश्वेशो जातो गर्वापहारकः ॥ ५८ ॥ अथ विष्णुविधी ज्ञात्वा विगर्वौ परमेश्वरः ॥ प्रसन्नोऽभून्महादेवोऽकरोत्तावभयौ प्रभुः ॥ ५९ ॥ आश्वास्य तौ महादेवः प्रीतः प्रणतवत्सलः ॥ प्राह स्वां मूर्तिमपरां भैरवन्तं कपर्दिनम् ॥ ६० ॥ महादेव उवाच ॥ त्वया मान्यो विष्णुरसौ तथा शतधृतिः स्वयम् ॥ कपालम्वैधसम्वापि नीललोहित धारय ॥ ॥ ६१ ॥ ब्रह्महत्यापनोदाय व्रतं लोकाय दर्शय ॥ चर त्वं सततं भिक्षां कपालव्रतमाश्रितः ॥६२॥ इत्युक्त्वा पश्यतस्तस्य तेजोरूपः शिवोऽब्रवीत् ॥ उत्पाद्य चैकां कन्यान्तु ब्रह्महत्याभिविश्रुताम् ॥ ६३ ॥

ब्रह्मा, और विष्णुको अहंकार रहित जानकर प्रसन्न हुए, और महादेवने उन दोनोंको अभयदान दिया ॥ ५९ ॥ भक्तवत्सल महादेव प्रसन्न होकर उन दोनोंको ढाढस बंधाते हुए अपनी कपर्दिनी भैरव मूर्तिसे बोले ॥ ६० ॥ महादेवजी बोले, तुम इन विष्णु तथा ब्रह्माजीका मान करते हो हे नीललोहित ! तुम इस ब्रह्माके कपालको धारण करो ॥ ६१ ॥ संसारमें ब्रह्महत्याके दूर करनेके अर्थ तुम व्रत धारण करो, और कपाल व्रतको आश्रय करके भिक्षावृत्ति करो ॥ ६२ ॥ यह कहकर उनके देखते ही एक ब्रह्महत्या नामक कन्याको उत्पन्न कर

तेजोरूप शिवजी बोले ॥ ६३ ॥ जबतक यह कन्या दिव्य वाराणसीपुरीमें पहुँचे तबतक भयंकर रूप धारण करके तुम उसके आगे ही चले जाओ ॥ ६४ ॥ उससे कहना कि केवल वाराणसी पुरीको छोडकर और सब जगह तेरा प्रवेश रहेगा, जभी वाराणसीमें जायगी उसी समय तू मुक्त हो जायगी ॥ ६५ ॥ नन्दीश्वर बोले, महाअद्भुत, परम प्रभु, शिवजी उस समय उस ब्रह्महत्याको इस प्रकार प्रवृत्त कराके अन्तर्द्धान होगये ॥ ६६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० भैरवावतारवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे सर्वज्ञ सनत्कुमार ! भैवरको दूसरी कथाको प्रीति पूर्वक सुनो जो महा दोषोंको हरनेवाली और भक्तिकी बढानेवाली है ॥ १ ॥ शंकरकी समीप

यावद्वाराणसीन्दिव्याम्पुरीमेषांगमिष्यति ॥ तावत्त्वं भीषणे काल मनुगच्छोग्ररूपिणम् ॥ ६४ ॥ सर्वत्र ते प्रवेशोऽस्ति त्यक्त्वा वाराणसीं पुरीम् ॥ वाराणसीं यदा गच्छेत्तन्मुक्तां भव तत्क्षणात् ॥ ६५ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ नियोज्य तामिति तदा ब्रह्म हत्यां च ताम्प्रभुः ॥ महाद्भुतश्च स शिवोऽप्यन्तर्धानमगात्ततः ॥६६॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां भैरवावतारवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ भैरवीमपरां कथाम् ॥ शृणु प्रीत्या महादोषसंहर्त्रीम्भक्तिवर्द्धिनीम् ॥१॥ तत्सान्निध्यं भैरवोऽपि कालोऽभूत्कालकालनः ॥ स देवदेववाक्येन बिभ्रत्कापालिकं व्रतम् ॥२॥ कपाल पाणिर्विश्वात्मा चचार भुवनत्रयम् ॥ नात्याक्षीच्चापि तं देवं ब्रह्महत्यापि दारुणा ॥ ३ ॥ प्रतितीर्थं भ्रमन्वापि विमुक्तो ब्रह्महत्यया ॥ अतः कामारिमहिमा सर्वोपि ह्यवगम्यताम् ॥ ४ ॥ प्रमथैः सेव्यमानोऽपि ह्येकदा विहरन्हरः ॥ कापालिको ययौ स्वैरी नारायणनिकेतनम् ॥ ५ ॥ अथा यान्तं महाकालं त्रिनेत्रं सर्पकुण्डलम् ॥ महादेवांशसम्भूतं पूर्णाकारं च भैरवम् ॥ ६ ॥

तासे भैरवजी कालके भी काल हुए और उन्होंने महादेवकी आज्ञासे कापालिक व्रत धारण किया ॥ २ ॥ वह विश्वात्मा कपाल हाथमें लेकर तीनों लोकोंमें विचरने लगे और उस कठिन ब्रह्महत्याने कहीं भी उनका पीछा न छोडा ॥ ३ ॥ वे प्रत्येक तीर्थमें भी भ्रमण करते हुए तथापि ब्रह्महत्यासे न छुटे, इस कारण शिवजीकी महिमा अद्भुत जाननी चाहिये ॥ ४ ॥ एक समय प्रमथोंसे सेवित हुए शिवजी विहार करते २ कापालिक वेष धारे स्वतंत्र हो नारायणके स्थानको गये ॥ ५ ॥ उस समय महाकाल, तीन नेत्र, सर्पोंके कुंडलधारे, महादेवके

अंशसे उत्पन्न, पूर्णाकारवाले, भैरवको आता हुआ देखा ॥ ६ ॥ विष्णु भगवानने उनको दंडवत की, देवता मुनि और देवस्त्रियें चारों ओरसे उनके समीप आईं ॥ ७ ॥ तब लक्ष्मीके स्वामी विष्णुजीने इनको प्रणाम कर मस्तकपर अंजलियुक्त हाथ करके अनेक स्तुतियोंसे सन्तुष्ट किया ॥ ८ ॥ उस समय आनंदसहित प्रसन्नात्मा विष्णुजीने क्षीर सागरके मथनेसे उत्पन्न हुई कमलालया लक्ष्मीसे कहा ॥ ९ ॥ विष्णु बोले, हे प्रिये ! हे कमलनयने ! हे अनघे ! हे सुभगे ! तुम धन्यहो हे देवि ! हे सुन्दरश्रोणिवाली ! मैं धन्य हूं जो हम दोनोंने जगत्पति शिवका दर्शन किया ॥ १० ॥ यह लोकोंके धारण करने वाले, विधाता, प्रभु, ईश्वर, हैं अनादि, शरण, शान्त, छब्बीस तत्त्वोंसे

पपात दण्डवद्भूमौ तं दृष्ट्वा गरुडध्वजः ॥ देवाश्च मुनयश्चैव देवनार्य्यः समन्ततः ॥७॥ अथ विष्णुः प्रणम्यैनं प्रयातः कमला पतिः ॥ शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टाव विविधैः स्तवैः ॥ ८ ॥ सानन्दोऽथ हरिः प्राह प्रसन्नात्मा महामुने ॥ क्षीरोदमथनोद्भूतां पद्मां पद्मालयां मुदा ॥ ९ ॥ विष्णुरुवाच ॥ प्रिये पश्याब्जनयने धन्यासि सुभगेऽनघे ॥ धन्योऽहं देवि सुश्रोणि यत्पश्यावो जगत्पतिम् ॥१०॥ अयन्धाता विधाता च लोकानां प्रभुरीश्वरः ॥ अनादिःशरणःशान्तः पुरःषड्विंशसंमितः ॥ ११ ॥ सर्वज्ञः सर्वयोगीशस्सर्वभूतैकनायकः ॥ सर्वभूतान्तरात्मायं सर्वेषां सर्वदः सदा॥१२॥ ये विनिद्रा विनिश्वासाः शान्ता ध्यानपरायणाः ॥ धिया पश्यंति हृदये सोयं पद्मे समीक्षताम्॥ १३ ॥ यं विदुर्व्वेदतत्त्वज्ञा योगिनो यतमानसाः ॥ अरूपो रूपवान्भूत्वा सोऽयमायाति सर्वगः ॥ १४ ॥ अहो विचित्रं देवस्य चेष्टितम्परमेष्ठिनः ॥ यस्याख्यां ब्रुवतो नित्यं न देहः सोऽपि देहभृत् ॥ १५ ॥

सम्मिलित हैं ॥ ११ ॥ यही सर्वज्ञ, सब योगियोंमें ईश्वर, सब भूतोंके एक स्वामी, सब प्राणियोंके अन्तर्यामी, सबोंको सदा सब कुछ देनेवाले हैं ॥ १२ ॥ हे देवि ! जिनको निद्रा त्यागकर, श्वास रोककर, शान्त समाधिवाले, ध्यानमें तत्पर, योगीजन बुद्धिके द्वारा अपने हृदयमें देखते हैं यह वही हैं इनको देखो ॥ १३ ॥ जिनको वेदतत्त्वके जाननेवाले योगी, स्थिरमनसे जानते हैं वही सर्वव्यापक, रूपरहित, सगुण रूप धारण करके यहां प्राप्त हुए हैं ॥ १४ ॥ अहो उन देवकी विचित्र चेष्टा है कि जिनके चरित्र वर्णन करनेवाले मनुष्यको

फिर देह धारण करना नहीं पडता ॥ १५ ॥ उनके दर्शन करके मनुष्य फिर पृथिवीमें जन्म नहीं लेता, वही यह चन्द्रशेखर, त्र्यम्बक, शिव भगवान् आज पधारे हैं ॥ १६ ॥ आज मेरे कमलके समान दीर्घ नेत्र सफल हुए हे लक्ष्मि ! जिन नेत्रोंसे साक्षात् महादेवका दर्शन किया ॥ १७ ॥ उन देवताओंके पदको धिक्कार है कि जिन्होंने शंकरको नहीं देखा, जिनसे निर्वाण (शान्ति) प्राप्त होती है, और जो समस्त दुःखोंको नाश करनेवाले हैं ॥ १८ ॥ जो देवेश शिवको देखकर मुक्ति प्राप्त न की तो देवलोकमें इससे अशुभ और क्या होगा ? ॥ १९ ॥ इस प्रकार कहकर प्रसन्न पुलकायमान शरीरवाले भगवान् विष्णुजी उन शिवजीसे बोले ॥ २० ॥ विष्णु बोले; हे विभो ! देवोंकेदेव

तं दृष्ट्वा न पुनर्जन्म लभ्यते मानवैर्भुवि ॥ सोयमायाति भगवांस्त्र्यम्बकश्शशिभूषणः ॥ १६ ॥ पुण्डरीकदलायामे धन्ये मेऽद्य विलोचने ॥ यद्दृश्यते महादेवो ह्याभ्यां लक्ष्मि महेश्वरः ॥ १७ ॥ धिग्धिक्पदन्तु देवानां परं दृष्ट्वा न शंकरम् ॥ लभ्यते यत्र निर्वाणं सर्व दुःखान्तकृत्तु यत् ॥ १८ ॥ देवत्वादशुभं किञ्चिद्देवलोके न विद्यते ॥ दृष्ट्वापि सर्वं देवेशं यन्मुक्तिन्न लभामहे ॥ १९ ॥ एव मुक्त्वा हृषीकेशस्संप्रहृष्टतनूरुहः ॥ प्रणिपत्य महादेवमिदमाह वृषध्वजम् ॥ २० ॥ विष्णुरुवाच ॥ किमिदन्देवदेवेन सर्वज्ञेन त्वया विभो ॥ क्रियते जगतां धात्रा सर्वपापहराव्यय ॥ २१ ॥ क्रीडेयन्तव देवेश त्रिलोचन महामते ॥ किङ्कारणं विरूपाक्ष चेष्टि तन्ते स्मरार्दन ॥ २२ ॥ किमर्थं भगवञ्छम्भो भिक्षाञ्चरसि शक्तिप ॥ संशयो मे जगन्नाथ एष त्रैलोक्यराज्यद ॥ २३ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमुक्तस्ततः शम्भुर्विष्णुना भैरवो हरः ॥ प्रत्युवाचाद्भुतोतिस्स विष्णुं हि विहसन्प्रभुः ॥ २४ ॥ ॥ भैरव उवाच ॥ ब्रह्मणस्तु शिरश्छिन्न मंगुल्याग्रनखेन ह ॥ तदघम्प्रतिहन्तुं हि चराम्येतद्व्रतं शुभम् ॥ २५ ॥

सर्वज्ञ ! सब पापके हरनेवाले ! अविनाशी ! आप यह भ्रमण क्यों करते हो ॥ २१ ॥ हे त्रिलोचन ! हे महामते ! यह तुम्हारी क्रीडा किस कारण हुई है हे कामारी ! हे विरूपाक्ष ! यह क्या आपकी चेष्टा है ? ॥२२॥ हे भगवन् ! हे शंभो ! हे शक्तिपते ! आप किस कारण भिक्षा मांगते फिरतेहो ? हे त्रिलोकीके राज्य देनेवाले ! हे जगन्नाथ ! यह मुझे अति सन्देह है ? ॥ २३ ॥ नन्दीश्वर बोले जब इस प्रकारसे विष्णुजीने कहा तब भगवान् भैरवजी हँसकर इस अद्भुत कथाको फिर विष्णुसे कहने लगे ॥ २४ ॥ भैरव बोले, अंगुलीके नखाग्रसे

ब्रह्माका शिर काटा था, उस पापके दूर करनेको इस शुभ व्रतका अनुष्ठान करता हूं ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार लक्ष्मी पति विष्णुसे भैरव महेश्वरने कहा तब फिर कुछ स्मरण करके शिर झुकाय विष्णुजी बोले ॥ २६ ॥ विष्णुजी बोले, हे सब विघ्नोंके दूर करने वाले भैरवजी ! आपकी जैसी इच्छा हो वैसी क्रीडा करो हे महादेव ! पर मुझे अपनी मायासे मोहित मत कीजिये ॥ २७ ॥ हे विभो ! प्रत्येक कल्पमें आपके नाभि कमलसे सत्य योग द्वारा करोडों ब्रह्माण्ड प्रगट हुए हैं ॥ २८ ॥ हे देव ! इस अपनी मायाको त्याग करो यह अकृतात्माओंको बडी कठिन है आपकी मायासे ब्रह्मादि सब देवता मोहित हो रहे हैं ॥ २९ ॥ हे सबके ईश्वर ! हे सत्पुरुषोंकी गति ! हे

नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमुक्तो महेशेन भैरवेण रमापतिः ॥ स्मृत्वा किंचिन्नतशिराः पुनरेवमजिज्ञपत् ॥ २६ ॥॥ विष्णुरुवाच ॥ यथेच्छसि तथा क्रीड सर्वविघ्नोपनोदक ॥ मायया मां महादेव नाच्छादयितुमर्हसि ॥२७॥ नाभीकमलकोशात्तु कोटिशः कमलासनाः ॥ कल्पे कल्पे पुरा ह्यासन्सत्यं योगबलाद्विभो ॥२८॥ त्यज मायामिमान्देव दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ ब्रह्मादयो महादेव मायया तव मोहिताः ॥२९॥ यथावदनुगच्छामि चेष्टितन्ते शिवापते ॥ तवैवानुग्रहाच्छम्भो सर्वेश्वर सतांगते ॥३०॥ संहारकाले संप्राप्ते सदेवान्निखिलान्मुनीन् ॥ लोकान्वर्णाश्रमवतो हरिष्यसि यदा हर ॥ ३१ ॥ तदा कृते महादेव पापं ब्रह्मवधादिकम् ॥ पारतन्त्र्यं न ते शम्भो स्वैरं क्रीडत्यतो भवान्॥ ३२ ॥ अर्घीव ब्रह्मणो ह्यस्थ्नां स्रक्कण्ठे तव भासते॥ तथाप्यनुगता शम्भो ब्रह्महत्या तवानघ॥ ३३ ॥ कृत्वापि सुमहत्पापं यस्त्वां स्मरति मानवः ॥ आधारं जगतामीश तस्य पापं विलीयते ॥ ३४ ॥

पार्वतीपति ! मैं आपके ही अनुग्रहसे आपकी चेष्टाको यथावत् जानता हूं ॥ ३० ॥ संहार कालके प्राप्त होनेपर सब देवता और मुनियोंको लोक और वर्णाश्रमियोंको जब आप हरण करेंगे ॥ ३१ ॥ हे महादेव ! उस समय क्या ब्रह्मवध आदि पाप आपको लगेगा ? हे शिव ! आप पराधीन नहीं हैं आप स्वतंत्रतासे क्रीडा करते हैं ॥ ३२ ॥ अर्घीके समान ब्रह्माकी अस्थिकी माला आपके कंठमें विराजित है हे पाप रहित शिव ! तो भी आपके पीछे ब्रह्महत्या लगी है ॥ ३३ ॥ पापको करके भी जो मनुष्य तुमको स्मरण करता है हे संसारके

आधार ! उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार सूर्यके समीप अंधकार नहीं रहता उसी प्रकार जो तुम्हारा भक्त होता है उसका पाप नाशको प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ जो पुण्यात्मा आपके चरणाम्बुजोंका स्मरण करता है उसके किये भये ब्रह्म हत्यादि पाप भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ हे जगत्पते ! जिस मनुष्यकी वाणी तुम्हारे नाममें अनुरागवाली होती है उसे पहाडके कूटके समान पाप भी नहीं बाधा दे सकता ॥३७॥ हे परमात्मन् हे परम धाम ! अपनी इच्छासे शरीर धारण करनेवाले ! हे ईश्वर ! हे दयामय ! यह आपका कुतूहल मात्र है ॥ ३८ ॥ हे देवेश ! आज मैं धन्य हूं जिसको योगीजन भी नहीं देख सकते, उस जगन्मूर्तिरूप अविनाशी परमेश्वरको मैं देखता हूं

यथा तमो न तिष्ठेत सन्निधावंशुमालिनः ॥ तथैव तव यो भक्तः पापन्तस्य व्रजेत्क्षयम् ॥ ३५ ॥ यश्चिन्तयति पुण्यात्मा तवपादाम्बुजद्वयम् ॥ ब्रह्महत्याकृतमपि पापन्तस्य व्रजेत्क्षयम् ॥ ३६ ॥ तव नामानुरक्ता वाग्यस्य पुंसो जगत्पते ॥ अप्यद्रिकूटतुलितं नैनस्तमनुबाधते ॥ ३७ ॥ परमात्मन्परन्धाम वेस्च्छाभिधृतविग्रह ॥ कुतूहलं तवेशेदं कृपणाधीनतेश्वर ॥ ३८ ॥ अद्य धन्योऽस्मि देवेश यन्न पश्यंति योगिनः ॥ पश्यामि तं जगन्मूर्त्तिं परमेश्वरमव्ययम् ॥ ३९ ॥ अद्य मे परमो लाभस्त्वद्य मे मंगलं परम् ॥ तं दृष्ट्वामृत तृप्तस्य तृणं स्वर्गापवर्गकम् ॥ ४० ॥ इत्थं वदति गोविंदे विमला पद्मया तया ॥ मनोरथवती नाम भिक्षा पात्रे समर्पिता ॥ ४१ ॥ भिक्षाटनाय देवोऽपि निरगात्परया मुदा ॥ अन्यत्रापि महादेवो भैरवश्चात्तविग्रहः ॥ ४२ ॥ दृष्ट्वानुयायिनीं तान्तु समाहूय जनार्दनः ॥ संप्रार्थयद्ब्रह्महत्यां विमुंच त्वं त्रिशूलिनम् ॥ ४३ ॥ ॥ ब्रह्महत्योवाच ॥ अनेनापि मिषेणाहं संसेव्यामुं वृषध्वजम् ॥ आत्मानम्पावयिष्यामि त्वपुनर्भवदर्शनम् ॥ ४४ ॥

॥ ३९ ॥ आज मुझे परमलाभ और आज मेरा परम मंगल है जो आपके अमृत रूपी दर्शन करके स्वर्ग और अपवर्ग तृणके समान विदित होते हैं ॥ ४० ॥ इस प्रकार गोविन्द विष्णुके कहने पर उस निर्मल लक्ष्मीने मनोरथवती नाम भिक्षा उनके पात्रमें समर्पणकी ॥४१॥ वह भैरव रूपधारी महादेव भी परम प्रसन्न हो भिक्षाटन करनेके निमित्त अन्यत्र चले गये ॥ ४२ ॥ विष्णुने उनके पीछे जाने वाली ब्रह्म हत्याको देखकर उसे बुलाकर प्रार्थनापूर्वक कहा कि हे ब्रह्महत्ये ! तू शिवजीको छोड ॥ ४३ ॥ ब्रह्महत्या बोली कि इसही बहानेसे मैं

शिवकी सेवा करती हूं और शिवरूप भैरवका दर्शन करके मोक्षके निमित्त अपने आपको पवित्र करूंगी ॥ ४४ ॥ नन्दीश्वर बोले, जब विष्णु भगवान्के कहनेपर भी उस ब्रह्महत्याने भैरवका पीछा नहीं छोडा तब हास्यमुखसे शंकररूप भैरवजी विष्णुजीसे बोले ॥ ४५ ॥ भैरव बोले, हे लक्ष्मीपते ! हे मान देनेवाले ! मैं तुम्हारे अमृतरूपी वचनोंसे सन्तुष्ट हुआ हूं आप कहते हैं यह सज्जनोंका स्वभाव ही है ॥ ४६ ॥ हे गोविन्द ! हे पापरहित ! तुम वर मांगो मैं वरदान देनेवाला हूं हे हरे ! तुम मेरे भक्तोंमें अग्रणी हुए और विकार रहित हुए ॥ ४७ ॥ भिक्षुक लोग अति संस्कार की हुई भिक्षासे वैसे प्रसन्न नहीं होते कि जिस प्रकार वे भिक्षाटन रूपी पीडावाले मानरूपी अमृतके

नन्दीश्वर उवाच ॥ सा तत्याज न तत्पार्श्वं व्याहृतापि मुरारिणा ॥ तमूचेऽथ हरिं शंभुः स्मेरास्यो भैरवो वचः ॥४५ ॥ भैरव उवाच ॥ त्वद्वाक्पीयूषपानेन तृप्तोऽस्मि बहुमानद ॥ स्वभावोऽयं हि साधूनां यत्त्वं वदसि मापते ॥४६॥ वरं वृणीष्व गोविंद वरदोऽस्मि तवानघ ॥ अग्रणीर्मम भक्तानां त्वं हरे निर्विकारवान्॥४७॥नो माद्यन्ति तथा भैक्ष्यैर्भिक्षवोऽप्यतिसंस्कृतैः॥ यथा मानसुधापानैर्ननु भिक्षाटनज्वराः ॥ ४८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचः शंभोर्भैरवस्य परात्मनः ॥सुप्रसन्नतरो भूत्वा समवोचन्महेश्वरम् ॥ ४९ ॥ विष्णुरुवाच ॥एष एव वरः श्लाघ्यो यदहं देवताधिपम्॥पश्यामि त्वान्देवदेव मनोवाणी पथातिगम् ॥ ५० ॥ अदभ्रेयं सुधादृष्टिरनया मे महोत्सवः ॥ अयत्ननिधिलाभोयं वीक्षणं हर ते सताम् ॥ ५१ ॥ अवियो गोऽस्तु मे देव त्वदंघ्रियुगलेन वै ॥ एष एव वरः शंभो नान्यंकञ्चिद् वृणे वरम् ॥ ५२ ॥

पान करनेसे प्रसन्न और तृप्त होते हैं ॥ ४८ ॥ नन्दीश्वर बोले, विष्णुजी इस प्रकार परमात्मा भैरवके वचन सुनकर बडे प्रसन्न हो महेश्व रसे बोले ॥ ४९ ॥ विष्णुजी बोले, मेरा यही वर प्रशंसाके योग्य है कि सब देवताओंके स्वामी मन वाणीसे परे आपका दर्शन करता हूं ॥ ५० ॥ यह मेरी अमृतमयी निर्मल दृष्टि हुई कि जिससे मुझे बडा उत्सव हुआ, हे शिव ! आपका दर्शन सत्पुरुषोंके निमित्त विनायत्न ही निधिका लाभ है ॥ ५१ ॥ हे देव ! आपके चरण युगलसे मेरा कभी वियोग न हो मुझे यही वर दीजिये, हे शंभो ! इसके सिवाय मुझे

और कुछ वर नहीं चाहिये ॥ ५२ ॥ भैरवजी बोले, हे तात ! जो तुमने कहा है वैसा ही होगा तुम सब देवताओंको वर देनेवाले होगे ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार ब्रह्मा इन्द्र आदि लोकोंमें विचरनेवाले भैरवजी विष्णुके ऊपर कृपा करके अविमुक्त क्षेत्र वाराणसीको चले गये ॥ ५४ ॥ महाभयंकर आकारवाले भैरवजीके काशीमें पहुँचते ही ब्रह्महत्या हाहाकार करके उसी समय पातालमें प्रवेश कर गई ॥ ५५ ॥ तत्काल ब्रह्माजीका शिर भैरवजीके हाथसे छुटकर पृथिवीपर गिर पडा और वहां कपालमोचन तीर्थ विख्यात हुआ ॥ ५६ ॥ रुद्रने ब्रह्माके शिरको सबके सामने हाथसे गिरा देख बडे आनंदसे नृत्य किया ॥ ५७ ॥ जो ब्रह्माका शिर भ्रमण करते नहीं गिरा कारण

श्रीभैरवी उवाच ॥ एवम्भवतु ते तात यत्त्वयोक्तं महामते ॥ सर्वेषामपि देवानां वरदस्त्वं भविष्यसि ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अनुगृह्येति दैत्यारिं केंद्राद्रिभुवनेचरम् ॥ भेजे विमुक्तनगरीं नाम्ना वाराणसीं पुरीम् ॥ ५४ ॥ क्षेत्रे प्रविष्टमात्रेऽथ भैरवे भीषणाकृतौ ॥ हाहेत्युक्ता ब्रह्महत्या पातालं चाविशत्तदा ॥५५॥ कपालं ब्राह्मणः सद्यो भैरवस्य करांबुजात् ॥ पपात भुवि तत्तीर्थमभूत्कापालमोचनम् ॥५६॥ कपालं ब्रह्मणो रुद्रस्सर्वेषामेव पश्यताम् ॥हस्तात्पतन्तमालोक्य ननर्त परया मुदा ॥५७॥ विधेः कपालं नामुंचत्करमत्यन्तदुस्सहम् ॥परस्य भ्रमतः क्वापि तत्काश्यां क्षणतोऽपतत् ॥५८॥ शूलिनो ब्रह्मणो हत्या नापैति स्म च या क्वचित् ॥ सा काश्यां क्षणतो नष्टा तस्मात्सेव्या हि काशिका ॥ ५९ ॥ कपालमोचनं काश्यां यः स्मरेत्तीर्थमुत्तमम् ॥ इहान्यत्रापि यत्पापं क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति ॥६०॥आगत्य तीर्थप्रवरे स्नानं कृत्वा विधानतः ॥ तर्पयित्वा पितॄन्देवान्मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥६१॥ कपालमोचनं तीर्थं पुरस्कृत्वा तु भैरवः॥तत्रैव तस्थौ भक्तानां भक्षयन्नघसन्ततिम्॥६२॥

कि वह हाथमें दृढतासे चिपट रहा था परन्तु काशीमें प्रवेश करते ही क्षण मात्रमें गिर पडा ॥ ५८ ॥ जो भैरवकी ब्रह्महत्या कहीं नष्ट न हुई वह काशीमें क्षण मात्रमें नष्ट होगई इस कारण काशी सदा सेवन करने योग्य है ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य काशीमें कपालमोचन तीर्थका स्मरण करते हैं उनके इस जन्म और पर जन्म के पाप शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥ ६० ॥ इस तीर्थमें आय विधि पूर्वक स्नान कर पितृ और देवताओंका तर्पण करके मनुष्य ब्रह्महत्यासे छूट जाता है ॥ ६१ ॥ भैरवजीने कपाल मोचन तीर्थको निर्माण करके भक्तोंके पाप समूहोंको नष्ट करते

हुए वहीं निवास किया ॥ ६२ ॥ मार्गशीर्ष मासकी कृष्णाष्टमीको सत्पुरुषोंके प्रिय भैरवात्मा परमेश्वर प्रगट हुए ॥ ६३ ॥ जो मनुष्य अग हन कृष्णाष्टमीको कालभैरवजीके समीप स्थित होकर व्रतसहित जागरण करता है वह महापापोंसे छूट जाता है ॥ ६४ ॥ तथा अन्य स्था नमें स्थित होकर भी जो मनुष्य भक्तिसे उनके व्रतको जागरण सहित करेगा वह पापोंसे छूटकर श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होगा ॥ ६५ ॥ प्राणि योंने जो अनेक जन्मोंमें सहस्रों पाप किये हैं कालभैरवके दर्शनमात्रसे वह सब नाश हो जाते हैं ॥ ६६ ॥ जो पुरुष कालभैरवके भक्तोंका

कृष्णाष्टम्यान्तु मार्गस्य मासस्य परमेश्वरः ॥ आविर्बभूव सल्लीलो भैरवात्मा सताम्प्रियः॥६३॥मार्गशीर्षासिताष्टम्यां कालभै रवसन्निधौ ॥ उपोष्य जागरं कुर्वन्महापापैः प्रमुच्यते॥६४॥अन्यत्रापि नरो भक्त्या तद्व्रतं यः करिष्यति ॥ स जागरंमहापापै र्मुक्तो यास्यति सद्गतिम् ॥६५॥ अनेकजन्मनियुतैर्यत्कृतं जन्तुभिस्त्वघम् ॥ तत्सर्वं विलयं याति कालभैरवदर्शनात्॥६६॥ कालभैरवभक्तानां पातकानि करोति यः॥स मूढो दुःखितो भूत्वा पुनर्दुर्गतिमाप्नुयात्॥६७॥विश्वेश्वरेऽपि ये भक्ता नो भक्ताः कालभैरवे ॥ ते लभन्ते महादुःखं काश्यां चैव विशेषतः ॥६८॥ वाराणस्यामुषित्वा यो भैरवं न भजेन्नरः ॥ तस्य पापानि वर्द्धन्ते शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ ६९ ॥ कालराजं न यः काश्यां प्रतिभूताष्टमीकुजम् ॥ भजेत्तस्य क्षयं पुण्यं कृष्णपक्षे यथा शशी ॥ ७० ॥ श्रुत्वाख्यानमिदम्पुण्यम्ब्रह्महत्यापनोदकम् ॥ भैरवोत्पत्तिसंज्ञं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७१ ॥

पाप करते हैं वह मूर्ख दुःखी होकर कुगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ६७ ॥ जो शिवकी भक्ति करे कालभैरवकी भक्ति न करें काशीमें वे बडे दुःखको प्राप्त होते हैं ॥ ६८ ॥ काशीमें निवास करके जो मनुष्य भैरवको नहीं भजता उसके पाप शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान बढ़ते हैं ॥ ६९ ॥ जो मनुष्य काशीमें रहकर कृष्णाष्टमी या मंगलके दिन कालराजको नहीं सेवन करता उसके पुण्य कृष्णपक्षके चन्द्रमाके समान क्षीण हो जाते हैं ॥ ॥ ७० ॥ इस ब्रह्महत्याके दूर करनेवाले भैरवोत्पत्ति नामक पवित्र इतिहासको सुनकर मनुष्य

सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ७१ ॥ कारागारमें स्थित हुआ अथवा इससे भी अधिक विपत्तिमें पडा हुआ मनुष्य भैरवोत्पत्ति नामक कथाको सुनकर सब कष्टोंसे छूट जाता है ॥ ७२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० भैरवावतारलीलावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे प्रभो ! दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाला वीरभद्रनामक परमात्मा शिवका ही अवतार जानना चाहिये ॥ १ ॥ सो उनका चरित्र सती चरित्रमें सम्पूर्ण कहा है और तुमने बहुत प्रकार सुना इससे वह यहां बहुत विस्तारसे नहीं कहा ॥ २ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इसके आगे शार्दूल नामक शिवका अवतार सुनो, मैं तुम्हारे स्नेहसे कहता हूं ॥ ३ ॥ सदाशिवने देवताओंके हितके निमित्त जलते हुए अग्निके

बन्धनागारसंस्थोऽपिप्राप्तोऽपि विपदम्पराम्॥प्रादुर्भावं भैरवस्यश्रुत्वा मुच्येत सङ्कटात्॥७२॥इति श्रीशिवमहापुराणेतृतीयायांशत रुद्रसंहितायां भैरवावतारलीलावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥नंदीश्वर उवाच॥विध्वंसीदक्षयज्ञस्य वीरभद्राह्वयः प्रभो॥अवतारश्च विज्ञेयःशिवस्य परमात्मनः॥१॥सतीचरित्रे कथितं चरितं तस्य कृत्स्नशः॥ श्रुतं त्वयापि बहुधा नातःप्रोक्तं सुविस्तरात्॥२॥अतः परं मुनिश्रेष्ठ भवत्स्नेहाद्ब्रवीमि तत्॥शार्दूलाख्यावतारं च शङ्करस्य प्रभोःशृणु॥३॥सदाशिवेन देवानां हितार्थं रूपमद्भुतम्॥शारभं च धृतन्दिव्यं ज्वलज्ज्वालासमप्रभम्॥४॥शिवावतारा अमिताः सद्भक्तहितकारकाः॥सङ्ख्या न शक्यते कर्तुं तेषां च मुनिसत्तमाः ॥५॥ आकाशस्य च ताराणां रेणुकानां क्षितेस्तथा॥आसाराणां च वृद्धेन बहुकल्पैः कदापि हि॥६॥सङ्ख्या विशक्यते कर्तुं सुप्राज्ञैर्बहुजन्मभिः॥शिवावताराणां नैव सत्यं जानीहि मद्वचः॥७॥तथापि च यथाबुद्ध्या कथयामि कथाश्रुतम्॥चरित्रं शारभं दिव्यं परमैश्वर्य्यसूचकम् ॥८॥ जयश्च विजयश्चैव भवद्भिः शापितौ यदा॥ तदा दितिसुतौ द्वौ तावभूतां कश्यपान्मुने ॥९॥

समान कांतिवाला अद्भुत शरभरूप धारण किया ॥ ४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! भक्तोंके हित करने वाले शिवके अवतार अनेकों हुए हैं उनकी संख्या करनेको कोई भी समर्थ नहीं है ॥ ५ ॥ आकाशके तारागणोंकी तथा पृथ्वीकी रेणुकाकी और मेघोंके धाराकी कदाचित् बहुत कल्पोंमें ॥ ६ ॥ कोई बुद्धिमान् पुरुष बहुत जन्मोंमें संख्या कर ले, परन्तु शिवके अवतारोंकी संख्या नहीं है यह मेरा वचन सत्य जानो ॥ ७ ॥ तथापि मैं अपनी बुद्धिके अनुसार जैसा सुना है परम ऐश्वर्यसूचक दिव्य शारभ चरित्र कहता हूं ॥ ८ ॥ जिस समय आपने जय

विजय नामक द्वारपालोंको शाप दिया हे मुने ! तब वे दोंनों दितिके पुत्र कश्यपसे हुए ॥ ९ ॥ पहला पुत्र हिरण्यकशिपु दूसरा पुत्र बली हिरण्याक्ष दितिसे उत्पन्न हुआ यह देवर्षि पार्षद शापसे दैत्य उत्पन्न हुए ॥ १० ॥ पहले ब्रह्माजीने पृथ्वीके उद्धारके अर्थ विष्णुसे प्रार्थना की जब विष्णुने वाराहरूप धरके हिरण्याक्षको मारा ॥ ११ ॥ उस वीर तथा प्राणोंके समान भाई हिरण्याक्षको मरा हुआ सुन हिरण्यकशिपुने विष्णु भगवान्के ऊपर अतिक्रोध किया ॥ १२ ॥ और उसने दश सहस्र वर्षतक तप करके ब्रह्मासे वरदान प्राप्त किया कि आपकी सृष्टिमें मुझे कोई भी न मारे ॥ १३ ॥ शोणित नाम नगरमें जाकर चारों ओरसे देवताओंको बुलाकर त्रिलोकीको अपने वशमें

हिरण्यकशिपुश्चाद्यो हिरण्याक्षोऽनुजो बली ॥ देवर्षिपार्षदौ जातौ तौ द्वावपि दितेस्सुतौ॥१०॥ पृथ्व्युद्धारे विधात्रा वै प्रार्थितो हि पुरा प्रभुः ॥ हिरण्याक्षं जघानासौ विष्णुर्वाराहरूपधृक् ॥११॥ तं श्रुत्वा भ्रातरं वीरं निहतं प्राणसन्निभम् ॥ चुकोप हरयेऽतीव हिरण्यकशिपुर्मुने ॥ १२ ॥ वर्षाणामयुतं तप्त्वा ब्रह्मणो वरमाप सः ॥ न कश्चिन्मारयेन्मां वै त्वत्सृष्टाविति तुष्टतः ॥ १३ ॥ शोणिताख्यपुरं गत्वा देवानाहूय सर्व्वतः ॥ त्रिलोकीं स्ववशे कृत्वा चक्रे राज्यमकण्टकम् ॥ १४ ॥ देवर्षिकदनं चक्रे सर्वधर्म विलोपकः ॥ द्विजपीडाकरः पापी हिरण्यकशिपुर्मुने ॥ १५ ॥ प्रह्लादेन स्वपुत्रेण हरिभक्तेन दैत्यराट् ॥ यदा विद्वेषमकरोद्धरिर्वैरे विशेषतः ॥ १६ ॥ सभास्तम्भात्तदा विष्णुरभूदाविर्द्रुतम्मुने ॥ सन्ध्यायां क्रोधमापन्नो नृसिंहवपुषा ततः ॥ १७ ॥ सर्वथा मुनिशार्दूल करालं नृहरेर्व्वपुः ॥ प्रजज्वालातिभयदं त्रासयन्दैत्यसत्तमान् ॥ १८ ॥

करके अकंटक (निर्द्वन्द्व) राज्य करने लगा ॥ १४ ॥ हे मुने ! वह हिरण्यकशिपु देवता ऋषियोंको दुःखी करता तथा सब धर्मोंका लोप करनेवाला, द्विजोंको पीडा देनेवाला, बडा पापी था ॥ १५ ॥ विष्णुके भक्त प्रह्लाद नामक अपने पुत्रसे उस दैत्यराजने द्वेष किया, कारण कि वह बड़ा हरिका वैरी था ॥ १६ ॥ हे मुने ! उस समय विष्णुजी सभास्तंभसे संध्याके समय क्रोधमें भरकर नृसिंह शरीर धारण कर प्रगट हुए ॥ १७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उन नृसिंहजीका शरीर सब प्रकार विकराल अति भय देनेवाला दैत्योंको त्रास देता हुआ अति

प्रज्वलित हुआ ॥ १८ ॥ तब नृसिंहजीने सम्पूर्ण दैत्योंको उसी क्षणमें मार डाला तब हिरण्यकशिपुने कठिन युद्ध आरम्भ किया ॥ १९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! थोडी देरतक उन दोनोंका घोर विकराल भय देनेवाला सबोंका लोमहर्षण युद्ध हुआ ॥ २० ॥ सायंकालके समय परमेश्वर नृसिंह भगवान्ने आकाशसे देवताओंके देखते २ उस दैत्य हिरण्यकशिपुको देहलीपर खैंच लिया ॥ २१ ॥ और उसको गोदमें डालकर उसका पेट अपने नाखूँनोंसे शीघ्र फाडकर देवताओंके देखते २ मार डाला ॥ २२ ॥ नृसिंह भगवान्के द्वारा हिरण्यकशिपुके मरनेपर संसार स्वास्थ्यको प्राप्त हुआ, परन्तु देवता स्वस्थ न हुए ॥ २३ ॥ देवताओंकी दुन्दुभी बजने लगी, प्रह्लाद विस्मयको प्राप्त हुआ, विष्णुका

नृसिंहेन तदा दैत्या निहताश्चैव तत्क्षणम्॥हिरण्यकशिपुश्चाथ युद्धञ्चक्रे सुदारुणम्॥ १९॥महायुद्धं तयोरासीन्मुहूर्त्तम्मुनिसत्तमाः॥ विकरालं च भयदं सर्वेषां रोमहर्षणम्॥२०॥सायं चकर्ष देवेशो देहल्यां दैत्यपुङ्गवम्॥ व्योम्नि देवेषु पश्यत्सु नृसिंहश्च रमेश्वरः ॥२१॥अथोत्संगे चतं कृत्वा नखैस्तदुदरन्द्रुतम्॥ विदार्य मारयामास पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ॥२२॥हते हिरण्यकशिपौ नृसिंहे नैव विष्णुना॥जगत्स्वास्थ्यन्तदा लेभे न वै देवा विशेषतः॥२३॥देवदुन्दुभयो नेदुः प्रह्लादो विस्मयं गतः॥लक्ष्मीश्च विस्मयं प्राप्ता रूपं दृष्ट्वाऽद्भुतं हरेः ॥२४॥ हतो यद्यपि दैत्येन्द्रस्तथापि न पुरं सुखम्॥ययुर्देवा नृसिंहस्य ज्वाला सा न निवर्तिता ॥२५॥ तया च व्याकुलं जातं सर्वं चैव जगत्पुनः॥ देवाश्च दुःखमापन्नाः किम्भविष्यति वा पुनः॥२६॥इत्येवं च वदन्तस्ते भयाद दूरमुपस्थिताः ॥ नृसिंहक्रोधजज्वालाव्याकुलाः पद्मभूमुखाः ॥२७॥ प्रह्लादं प्रेषयामासुस्तच्छान्त्यै निकटं हरेः॥ सर्वान्मिलित्वा प्रह्लादः प्रार्थितो गतवांस्तदा ॥२८॥ उरसाऽऽलिंगयामास तं नृसिंहः कृपानिधिः॥हृदयं शीतलं जातं रुड्ज्वाला न निवर्त्तिता ॥२९॥

अद्भुत रूप देखकर लक्ष्मीजी भी विस्मयको प्राप्त हुई ॥ २४ ॥ यद्यपि दैत्येन्द्र मारा गया तथापि परम सुख न हुआ, देवता चले गये! परन्तु नृसिंहजीकी वह ज्वाला शांत न हुई ॥२५॥ फिर उस कोपाग्निसे सम्पूर्ण जगत् व्याकुल हुआ, देवता दुःखको प्राप्त हुए कि, अब क्या होगा ॥२६॥ इस प्रकार कहते हुए वह भयसे दूर जाकर स्थित हुए नृसिंहकी ज्वालासे व्याकुल हुए ब्रह्मा आदिकोंने ॥२७॥ उनकी शांतिके अर्थ नृसिंहके निकट प्रह्लादजीको भेजा तब सबोंसे मिलकर प्रह्लादजी गये और प्रार्थना की ॥ २८ ॥ कृपानिधि नृसिंहने उस प्रह्लादको

हृदयसे लगाया, हृदय तो ठंढा हुआ परन्तु क्रोधाग्नि दूर न हुई ॥ २९ ॥ ॥ जब उन भगवान्‌की कोपाग्नि शांत न हुई तो दुःखी हुए देवता शंकरकी शरणमें गये ॥ ३० ॥ ब्रह्माआदि देवता व मुनि सब वहां जाकर संसारके सुखके अर्थ शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥ ३१ ॥ देवता बोले, हे देवदेव ! हे महादेव ! हे शरणागतवत्सल ! हम शरणमें आये हुए सब देवताओंकी तथा संसारकी रक्षा करो ॥ ३२ ॥ हे सदाशिव ! आपके अर्थ नमस्कार हो, नमस्कार हो, पहले जब हम दुःखी हुए थे तो आपने हमारी रक्षा की थी ॥ ३३ ॥ समुद्र मथा रत्नोंका विभाग देवताओंने किया तो हे शंभो ! आपने विष ग्रहण किया ॥ ३४ ॥ हे नाथ ! उस समय हमारी रक्षा की तबसे आपकी नीलकंठ ऐसी प्रसिद्धि

तथापि न निवृता रुद्ज्वाला नरहरेर्यदा ॥ दुःखं प्राप्तास्ततो देवाश्शंकरं शरणं ययुः ॥३०॥ तत्र गत्वा सुरास्सर्वे ब्रह्माद्यामुनय स्तथा ॥ शंकरं स्तवयामासुर्लोकानां सुखहेतवे ॥३१॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ॥ पाहि नः शरणापन्ना न्सर्वान्देवाञ्जगन्ति च ॥३२॥ नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सदाशिव॥ पूर्वं दुःखं यदा जातं तदा ते रक्षिता वयम् ॥३३॥ समुद्रो मथितश्चैव रत्नानां च विभागशः ॥ कृते देवैस्तदा शंभो गृहीतं गरलन्त्वया ॥३४॥ रक्षिताः स्म तदा नाथ नीलकण्ठ इति श्रुतः ॥ विषं पास्यसि नो चेत्त्वं भस्मीभूतास्तदाखिलाः ॥३५॥ प्रसिद्धं च यदा यस्य दुःखं च जायते प्रभो ॥ तदा त्व न्नाममात्रेण सर्वदुःखं विलीयते ॥३६॥इदानीं नृहरिज्वालापीडितान्नस्सदाशिव ॥ तां त्वं शमयितुं देव शक्तोऽसीति सुनिश्चितम् ॥ ३७ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति स्तुतस्तदा देवैश्शंकरो भक्तवत्सलः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्माऽभयन्दत्त्वा परप्रभुः ॥३८॥ शंकर उवाच ॥ स्वस्थानं गच्छत सुरास्सर्वे ब्रह्मादयोऽभयाः ॥ शमयिष्यामि यद्दुःखं सर्वथा हि व्रतम्मम ॥ ३९ ॥

हुई, यदि आप विषका पान नहीं करते तो सब भस्म हो जाते ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! यह प्रसिद्ध है कि जब जिसको दुःख उत्पन्न होता है तब तुम्हारे नामसे सारा दुःख नष्ट होजाता है ॥ ३६ ॥ हे सदाशिव ! अब सब नृसिंहकी ज्वालासे पीडित है, उसको हे देव ! आप शांत करनेको समर्थ हैं ॥ ३७ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार स्तुति करने पर भक्तवत्सल शंकरदेव परम अभय देकर प्रसन्न हो यह बोले ॥३८॥ शिवजी बोले, तुम ब्रह्माआदि सब देवता निर्भयहो अपने स्थानोंको जाओ, जो दुःख है उसे मैं शान्त करूंगा मेरा यह व्रत है ॥ ३९ ॥

जो मेरे शरणमें आया, उनका दुःख नाश हो गया, मेरी शरणमें आया हुआ मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है, इसमें संशय नहीं ॥ ४० ॥ नन्दीश्वर बोले, यह वचन सुनकर सब देवता परम आनन्दको प्राप्त हुए जहांसे आये थे वहांपर आनन्दपूर्वक शिवको स्मरण करते हुए चले गये ॥ ४१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां तृ० श० रु० नृसिंहचरितवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार देवताओंसे प्रार्थना किये हुए महातेजस्वी कृपालु परमेश्वर नृसिंहके हरण करनेकी बुद्धि करने लगे ॥ १ ॥ तब ऊपरसे रुद्रने महाबली वीरभद्रका स्मरण किया, और अपना प्रियकारक भैरवरूपसे बोले ॥ २ ॥ तब शीघ्र गणोंमें अग्रणी भैरवजी हँसते हुए अट्टहास करते

गतो मच्छरणं यस्तु तस्य दुःखं क्षयं गतम्॥मत्प्रियः शरणापन्नः प्राणेभ्योऽपि न संशयः ॥४०॥ नन्दीश्वर उवाच॥ इति श्रुत्वा तदा देवा ह्यानन्दम्परमं गताः ॥ यथागतं तथा जग्मुस्स्मरन्तश्शंकरं मुदा ॥ ४१ ॥इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्र संहितायां शार्दूलावतारे नृसिंहचरितवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ नंदीश्वर उवाच ॥ एवमभ्यर्थितो देवैर्मतिं चक्रे कृपा लयः ॥ महातेजो नृसिंहाख्यं संहर्तुं परमेश्वरः ॥ १ ॥ तदूर्ध्वं स्मृतवान्रुद्रो वीरभद्रम्महाबलम् ॥ आत्मनो भैरवं रूपं प्राह प्रलय कारकम् ॥ २ ॥ आजगाम ततस्सद्यो गणानामग्रणीर्हसन् ॥ साट्टहासैर्गणवरैरुत्पतद्भिरितस्ततः ॥३॥ नृसिंहरूपैरत्युग्रैः कोटिभिःपरिवारितः ॥ माद्यद्भिरभितो वीरैर्नृत्यद्भिश्च मुदान्वितैः ॥४॥ क्रीडद्भिश्च महावीरैर्ब्रह्माद्यैः कन्दुकैरिव ॥ अदृष्टपूर्वैरन्यैश्च वेष्टितो वीरवन्दितः ॥५॥ कल्पान्तज्वलनज्वालो विलसल्लोचनत्रयः ॥ अशस्त्रो हि जटाजूटी ज्वलद्बालेन्दुमण्डितः ॥ ६ ॥ बालेन्दुवलया कारतीक्ष्णदंष्ट्रांकुरद्वयः ॥ आखण्डलधनुःखण्डसंनिभभ्रूलतान्वितः ॥ ७ ॥

इधर उधरसे घेरे हुए गणोंके सहित आये ॥ ३ ॥ नृसिंहरूपधारी, अति उग्र, कोटि गणोंसे वेष्टित, चारोंओरसे उन्मत्त वीरोंसे घिरे, तथा आनन्दमें नाचते हुए ॥ ४ ॥ गेंदके समान, ब्रह्माआदि महावीरोंसे क्रीडा करते हुए, जिनको पहले कभी नहीं देखा ऐसे वीरोंसे वंदित, वह भैरवजी ॥ ५ ॥ प्रलयकालकी अग्निकी समान प्रज्वलित, शोभायमान तीननेत्रोंवाले, विनाशस्त्रधारी, जटाओंसे घिरे, बाल चन्द्रमाके समान प्रकाशित ॥ ६ ॥ बाल चन्द्रमाके वलयके आकारवाली तेज दाढके दोनों अंकुर, इन्द्रके धनुषके समान देदीप्यमान टूटे धनुषरूप

भ्रूलतासे संयुक्त हुए ॥ ७ ॥ बडी प्रचंड हुंकारसे दिशाओंके मुखको बहिरा करते हुए, नीले मेघ अञ्जन पर्वतके समान काले, भयंकर दाढी मूछोंवाले ॥ ८ ॥ अखंड भुजाओंसे वाद्य खंडको घुमाते हुए तीन शिखाओंको धारे वीर शक्तिसे संयुक्त भगवान् वीरभद्र ॥ ९ ॥ स्वयं शिवजीके समीप जाकर बोले, हे देव ! मुझे किस कारण स्मरण किया हे स्वामिन् ! आज्ञा दीजिये मुझपर प्रसन्नता कीजिये ॥ १० ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार खलोंको दंड देनेवाले शिवजी वीरभद्रके वचनको आदरसे सुन देखकर प्रीतिसे वचन बोले ॥ ११ ॥ शंकर बोले; हे भैरव ! विना समय देवताओंको भय उत्पन्न हुआ है, वह नृसिंहाग्नि प्रज्वलित हुई है, उस कठिन कोपाग्निको शांत करो ॥ १२ ॥

महाप्रचण्डहुङ्कारबधिरीकृतदिङ्मुखः॥नीलमेघाञ्जन श्यामो भीषणः श्मश्रुलोद्धुतः॥८॥वाद्यखण्डमखण्डाभ्यां भ्रामयंस्त्रिशिखं मुहुः ॥ वीरभद्रोऽपि भगवान्वरशक्तिविजृम्भितः ॥९॥ स्वयं विज्ञापयामास किमत्र स्मृतिकारणम्॥ आज्ञापय जगत्स्वामिन् प्रसादः क्रियताम्मयि ॥१०॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्याकर्ण्य महेशानो वीरभद्रोक्तमादरात् ॥ विलोक्य वचनम्प्रीत्या प्रोवाच खल दण्डधृक् ॥११॥ ॥ शंकर उवाच ॥अकाले भयमुत्पन्नं देवानामपि भैरवम् ॥ ज्वलितस्स नृसिंहाग्निश्शमयैनं दुरासदम् ॥१२॥सान्त्वयन् बोधयादौ तं तेन किन्नो पशाम्यति ॥ ततो मत्परमं भावं भैरवं सम्प्रदर्शय ॥१३॥ सूक्ष्मं संहृत्य सूक्ष्मेण स्थूलं स्थूलेन तेजसा॥वक्रमानाय कृत्तिं च वीरभद्र ममाज्ञया ॥१४॥ नन्दीश्वर उवाच॥इत्यादिष्टो गणाध्यक्षो प्रशान्तं वपुरास्थितः॥जगाम रंहसा तत्र यत्रास्ते नरकेसरी ॥१५॥ततस्तम्बोधयामास वीरभद्रो हरो हरिम्॥ उवाच वाक्यमीशानः पितापुत्रमिवौरसम् ॥१६॥ वीरभद्र उवाच॥जगत्सुखाय भगवन्नवतीर्णोसि माधव ॥स्थित्यर्थं त्वं प्रयुक्तोऽसि परेशः परमेष्ठिना ॥१७॥

पहले तो शांति पूर्वक कहो कि आप क्यों शांत नहीं होते जब न मानें तो फिर मेरे परम भाव भैरव रूपको दिखाओ ॥ १३ ॥ सूक्ष्मको सूक्ष्म तेजके द्वारा तथा स्थूल तेजको स्थूल तेजके द्वारा हरण कर, हे वीरभद्र ! मेरी आज्ञासे श्रेष्ठ आकृतिको प्राप्त कराओ ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर बोले इस प्रकार सुनकर वह गणाध्यक्ष शान्त शरीरको धार बेगसे वहां पहुंचे, जहां नृसिंह थे ॥ १५ ॥ तब वीरभद्र शिव ईश्वर उन नृसिंहको समझाते हुए इस प्रकार वाक्य बोले, जैसे पिता औरस पुत्रसे बोलता है ॥ १६ ॥ वीरभद्र बोले, हे माधव ! आपने

संसारके सुखके लिये अवतार लिया है, स्थितिके लिये आप ब्रह्माकी प्रेरणासे प्रगट हुए हो ॥ १७ ॥ पहले आपने मत्स्य रूपसे अपनी पूँछमें नौका बांधकर प्रलयके समुद्रमें मनुजी को घुमाया था ॥ १८ ॥ कर्म रूपसे सबका पालन करनेको वाराह रूपसे पृथिवीका उद्धार किया, और इस नृसिंह रूपसे हिरण्यकशिपुको मारा ॥ १९ ॥ और वामन अवतार लेकर पराक्रम करते हुए आपने राजा बलीको बांधा, आप ही सब प्राणियोंके उत्पन्न करनेवाले तथा स्वामी और अविनाशी हैं ॥ २० ॥ जब २ संसारको कुछ दुःख प्राप्त होता है तब २ आप अवतार लेकर दुःख दूर करते हैं ॥ २१ ॥ हे हरे आपसे अधिक और आपके समान कोई नहीं है, हे शिवे ध्यानमें तत्पर आपने वेद तथा धर्म

जन्तुचक्रं भगवता प्रच्छिन्नं मत्स्यरू पिणा ॥ पुच्छेनैव समाबध्य भ्रमन्नेकार्णवे पुरा ॥ १८॥ बिभर्षि कर्मरूपेण वाराहेणोद्धृता मही ॥ अनेन हरिरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ १९ ॥ वामनेन बलिर्बद्धस्त्वया विक्रमतापुनः ॥ त्वमेव सर्व्वभूतानां प्रभवः प्रभु रव्ययः ॥ २० ॥ यदायदा हि लोकस्य दुःखं किञ्चित्प्रजा यते ॥ तदातदावतीर्णस्त्वं करिष्यसि निरामयम् ॥ २१ ॥ नाधिकस्त्व त्समोऽप्यस्ति हरे शिवपरायणः ॥ त्वया वेदाश्च धर्माश्च शुभमार्गे प्रतिष्ठिताः ॥२२॥ यदर्थमवतारोऽयं निहतस्स हि दानवः ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव प्रह्लादोऽपि सुरक्षितः ॥ २३ ॥ अतीव घोरं भगवन्नर सिंहवपुस्तव ॥ उपसंहर विश्वात्मंस्त्वमेव मम सन्नि धौ ॥२४॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तोवीरभद्रेण नृसिंहः शान्तया गिरा ॥ ततोऽधिकं महाघोरं कोपञ्चक्रे महामदः ॥ २५ ॥ उवाच च महाघोरं कठिनं वचनन्तदा ॥ वीरभद्रम्महावीरं दंष्ट्राभिर्भीषयन्मुने ॥ २६ ॥ नृसिंह उवाच ॥ आगतोसि यत स्तत्र गच्छ त्वम्मा हितं वद ॥ इदानीं संहरिष्यामि जगदेतच्चराचरम् ॥ २७ ॥

सब शुभ मार्ग स्थापित किये हैं ॥ २२ ॥ जिस निमित्त यह नृसिंह अवतार लिया है, सो दानव हिरण्यकशिपु मार डाला, और प्रह्लादकी रक्षा की ॥ २३ ॥ हे नरसिंह ! हे भगवन् ! हे विश्वात्मा ! यह आपका बडा ही घोर शरीर है, उसे आप मेरे समीप ही संहार कीजिये ॥ २४ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकारसे वीरभद्रने नृसिंहजीसे शांत और नम्र वाणीसे कहा, तब उससे भी अधिक उन नृसिंहजीने क्रोध किया ॥ २५ ॥ हे मुने ! और बडे पराक्रमी वीरभद्रसे दांत मिस मिसाते हुए महाघोर कठिन वचन बोले ॥ २६ ॥ नृसिंह बोले,

हे वीरभद्र ! जहांसे आये हो वहां जाओ, मुझसे हितके वचन मत कहो, मैं अभी चर अचर संसारको हरण करूंगा ॥ २७ ॥ मुझ संहार करनेवालेका स्वयं अथवा दूसरेसे संहार नहीं हो सकता, सर्वत्र मैंनेही शासन किया है, और कोई शासन करनेवाला नहीं है ॥ २८ ॥ मेरे प्रभावसे यह चर अचर सब संसार अभय होता है, मैंही सब शक्तियोंका प्रवृत्त करनेवाला तथा दूर करनेवाला हूं ॥२९॥ हे गणाध्यक्ष ! जो जो विभूतिवाला सत्त्व वा शोभायमान तेज है, सो सो सब मेरे तेजसे प्रेरणा किया हुआ है ॥३०॥ देवतागण मुझेही परमार्थके जाननेवाले कहते हैं, और मेरे अंश तथा शक्तिके सम्पन्न ब्रह्मा इन्द्र आदि सब देवता हैं ॥ ३१ ॥ पहले मेरेही नाभिकमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए जगत्को

संहर्तुर्न हि संहारः स्वतो वा परतोऽपि वा ॥शासितम्मम सर्व्वत्र शास्ता कोऽपि न विद्यते॥२८॥मत्प्रसादेन सकलमभयं हि प्रवर्त्तते ॥ अहं हि सर्व्वशक्तीनां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः ॥२९॥ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ॥ तत्तद्विद्धि गणाध्यक्ष मम तेजोविजृम्भितम् ॥३०॥ देवतापरमार्थज्ञं मामेव परमम्विदुः ॥ मदंशाश्शक्तिसम्पन्ना ब्रह्मशक्रादयस्सुराः॥३१॥मन्नाभिकमलाज्जातः पुरा ब्रह्मा जगत्करः॥सर्वाधिकस्स्वतन्त्रश्च कर्ता हर्ताखिलेश्वरः॥३२॥ इदन्तु मत्परं तेजः किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥ अतो मां शरणम्प्राप्य गच्छ त्वं विगतज्वरः ॥३३॥ अवेहि परमं भावमिदम्भूतं गणेश्वर॥मामकं सकलं विश्वं सदेवासुरमानुषम् ॥३४॥कालोऽस्म्यहं लोकविनाशहेतुर्लोकान्समाहर्तुमहम्प्रवृत्तः॥मृत्योर्मृत्युं विद्धि मां वीरभद्र जीवन्त्येते मत्प्रसादेन देवाः ॥३५॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ ॥ साहङ्कारं वचः श्रुत्वा हरेरमितविक्रमः ॥विहस्योवाच सावज्ञन्ततो विस्फुरिताधरः ॥ ३६ ॥

करते हैं, सबसे अधिक स्वतंत्र हरण करनेवाले; तथा उत्पन्न करनेवाले सबके स्वामी हम हैं ॥ ३२ ॥ यह मेरा परम तेज है, क्या और कुछ सुनना चाहते हो; अब तुम मेरी शरणमें आकर निर्द्वन्द्व हो जाओ ॥ ३३ ॥ हे गणेश्वर ! मुझे परम भाव जानो, मेराही देवता असुर मनुष्यसहित सम्पूर्ण संसार है ॥ ३४ ॥ मैंही काल हूं, तथा संसारके विनाशका कारण हूं, मैं लोकोंके संहार करनेको प्रवृत्त हुआ हूं, और मुझे मृत्युका मृत्युरूप जानो । हे वीरभद्र ! मेरेही प्रसादसे यह देवता जीते हैं ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर बोले, वीरभद्रजीने इस प्रकार अहंकार

सहित विष्णुके वचन सुन होंठ कंपाते हुए तिरस्कार सहित हँसकर यह वचन कहे ॥ ३६ ॥ वीरभद्र बोले, क्या आप संसारके ईश्वर संहार करनेवाले पिनाकी शिवको नहीं जानते, केवल आपमें असत्य वादविवाद विनाशके निमित्त है ॥ ३७ ॥ तुम्हारे परस्परके अवतार अब कौन शेष हैं, किस किस आवतारने क्या क्या किया, उनकी कथा शेष हो जायगी ॥३८॥ उसदोषको कहिये कि जिससे तुम इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो संसारमें निपुण हुए तुमको शिवसे दक्षिणा प्राप्त होगी ॥ ३९ ॥ तुम प्रकृति हो रुद्र पुरुष हैं. तुममें वीर्य सींचा है, तुम्हारी नाभि कमलसे पंचमुखवाले ब्रह्माजी हुए हैं ॥ ४० ॥ उन ब्रह्माजीने तीन लोक सृजनेके निमित्त नील लोहित शंकरको ललाटमें ध्यान किया

वीरभद्र उवाच ॥ किन्न जानासि विश्वेशं संहर्तारम्पिनाकिनम् ॥असद्वादोविवादश्च विनाशस्त्वयि केवलः ॥ ३७ ॥ तवान्योन्यावताराणि कानि शेषाणि साम्प्रतम् ॥ कृतानि येन केनैव कथाशेषो भविष्यति॥३८॥ दोषं तं वद येन त्वमवस्थामीदृशीं गतः ॥ तेन संहारदक्षेण दक्षिणाशेषमेष्यसि॥३९॥प्रकृतिस्त्वं पुमान्रुद्रस्त्वयि वीर्य्यं समाहितम् ॥ त्वन्नाभिपङ्कजाज्जातः पञ्च वक्त्रः पितामहः ॥ ४० ॥ जगत्त्रयीसर्जनार्थं शंकरं नीललोहितम् ॥ ललाटेऽचिन्तयत्सोयन्तपस्युग्रे च संस्थितः ॥ ४१ ॥ तल्ललाटादभूच्छम्भुः सृष्ट्यर्थं तेन भूषणम् ॥ अतोऽहं देवदेवस्य तस्य भैरवरूपिणः ॥४२॥ त्वत्संहारे नियुक्तोऽस्मि विनयेन बलेन च ॥ देवदेवेन रुद्रेण सकलप्रभुणा हरे ॥ ४३ ॥ एकं रक्षो विदार्यैव तच्छक्तिकलया युतः ॥ अहंकारावलेपेन गर्जसि त्वमतन्द्रितः ॥ ४४ ॥ उपकारो हि साधूनां सुखाय किल संमतः ॥ उपकारो ह्यसाधूनामपकाराय केवलम् ॥४५॥यन्नृसिंह महेशानं पुनर्भूतं तु मन्यसे ॥ तर्ह्यज्ञानी महागर्वी विकारी सर्वथा भवान् ॥ ४६ ॥

और उग्र तपमें स्थित हुए ॥ ४१ ॥ उनके ललाटसे शिवजी प्रगट हुए और सृष्टिके अर्थ भूषणरूप हुए इस कारण भैरवरूप देवदेवके द्वारा ॥ ४२ ॥ मैं तुम्हारे संहार करनेमें विनय और बलसे नियुक्त हुआ हूं, उन देवदेव सबके स्वामी रुद्रकी प्रेरणासे मैं आया हूं ॥ ४३ ॥ तुमने उनकी शक्ति कलासे युक्त होकरही एक राक्षसको विदीर्णकर मारा है, और तत्त्व न जानकर अहंकारके लेपसे गर्जते हो ॥ ४४ ॥ साधुओंका उपकार निश्चय सुखके लिये माना गया है, और दुष्टोंका उपकार केवल हानिकेही लिये होता है ॥ ४५ ॥ हे नृसिंह ! यदि आप

शिवको फिर जन्म धरनेवाला मानते हो तो आप सब प्रकारसे अज्ञानी महाअभिमानी और विकारी हो ॥ ४६ ॥ हे नृसिंहजी न तुम सृजनवाले न संहार करनेवाले न पोषण करनेवाले हो तुम केवल मूढात्मा पराधीन हो स्वतंत्र कहींभी नहीं हो ॥ ४७ ॥ तुम कुम्हारके चाकके समान महादेवकी शक्तिसे प्रेरणा किये गये हो, हे हरे ! उनके अधीन हुए अनेक अवतारोंको धारण करतेहो ॥ ४८ ॥ अबतक भी कूर्मरूप धारी आपका कपाल शंकरकी अस्थिमालामें दग्ध हुआभी विद्यमान है और कोई भी उसे धारण नहीं कर सका ॥ ४९ ॥ क्या आप भूलगये जो उन तारक असुरके शत्रुके अंशसे वाराहरूपधारी आपकी डाढको पीडा दीगई और उनकी कृपासे आपके विघ्न दूर हुए ॥ ५० ॥

न त्वं स्रष्टा न संहर्ता भर्तापि न नृसिंहक ॥ परतन्त्रो विमूढात्मा न स्वतन्त्रो हि कुत्रचित् ॥ ४७ ॥ कुलालचक्रवच्छक्त्या प्रेरितोसि पिनाकिना ॥ नानावतारकर्ता त्वं तदधीनस्सदा हरे ॥ ४८ ॥ अद्यापि तव निक्षिप्तं कपालं कूर्मरूपिणः ॥ हर हारलतामध्ये दग्धः कश्चिन्न बध्यते ॥ ४९ ॥विस्मृतिः किं तदंशेन दंष्ट्रोत्पातनपीडितम् ॥ वाराहविघ्नहस्तेऽद्य याक्रोशन्तार कारिणा ॥५०॥ दग्धोसि पश्य शूलाग्नेर्विष्वक्सेनच्छलाद्भवान् ॥ दक्षयज्ञे शिरश्छिन्नं मया तेजःस्वरूपिणा ॥५१॥ अद्यापि तव पुत्रस्य ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः ॥छिन्नं न सज्जितं भूयो हरे तद्विस्मृतन्त्वया॥५२॥ निर्जितस्त्वं दधीचेन संग्रामे समरुद्गणः॥ कण्डूयमाने शिरसि कथं तद्विस्मृतन्त्वया ॥ ५३ ॥ चक्रं विक्रमतो यस्य चक्रपाणे तव प्रियम् ॥ कुतः प्राप्तं कृतं केन त्वया तदपि विस्मृतम् ॥५४॥ ये मया सकला लोका गृहीतास्त्वं पयोनिधौ ॥निद्रापरवशश्शेषे स कथं सात्त्विको भवान् ॥५५॥

विष्वक्सेनके छलसे आप महादेवकी त्रिशूलाग्निसे दग्ध हुएथे और मुझ तेजरूपधारीने दक्षके यज्ञमें यज्ञरूप आपका शिर काटा ॥ ५१ ॥ अब भी आपके पुत्र ब्रह्माका पाँचवां शिर काटागया सो फिर नहीं जमा क्या यह आपभूल गये ? ॥५२॥ और शिर खुजाते २ तुमको मरुद्गण सहित दधीचने संग्राममें जीता सो क्या आप भूलगये ? ॥ ५३ ॥ हे चक्रपाणे ! सुदर्शन चक्र घुमाते हुए तुम्हारा प्रिय किसने किया ? यह प्रियचक्र तुमको किसने दिया ? क्या वहभी भूलगये ? ॥ ५४ ॥ मेरे सब लोकोंके ग्रहण करनेपर आप समुद्रके बीचमें निद्रामें परवश हुए

सोतेहों तो आप किस प्रकार सब गुणी हैं ॥ ५५ ॥ तुमको आदि लेकर स्तम्बपर्यंत शिवजीकी शक्ति फैली है उसीसे आप शक्तिमान् होकर भी चारोंओर तेजसे मोहित हो रहे हैं ॥ ५६ ॥ उन शिवके तेजरूप माहात्म्यको कोई भी पुरुष देखनेको समर्थ नहीं है, जो सूक्ष्म बुद्धिवाले हैं वेही उस व्यापकके परमपदको देखते हैं ॥ ५७ ॥ आकाश, भूमि, इन्द्र, अग्नि, यम और वरुणको उत्पन्न करके अन्धकार और चन्द्रमामें भी वह परमेश्वर व्यापक हैं ॥ ५८ ॥ तुम काल हो तो परमेश्वर सदाशिव महाकाल और कालके भी काल हैं इस कारण तुम उनकी बडी कलासे मृत्युकी मृत्यु हो ॥ ५९ ॥ वह स्थिर अक्षर वीर विश्वके रक्षक प्रभु दुःखको नाश करनेवाले भीम मृग पक्षी हिरण्यमय ॥ ६० ॥ तथा

त्वदादिस्तम्बपर्यन्तं रुद्रशक्तिविजृम्भितम् ॥ शक्तिमानभितस्त्वं च ह्यनलात्त्वं विमोहितः॥५६॥तत्तेजसो हि माहात्म्यं पुमान्द्रष्टुन्न हि क्षमः ॥अस्थूला ये प्रपश्यन्ति तद्विष्णोः परमम्पदम्॥५७॥द्यावापृथिव्या इन्द्राग्नेर्यमस्य वरुणस्य च ॥ ध्वान्तोदरे शशांके च जनित्वा परमेश्वरः ॥ ५८ ॥ कालोसि त्वं महाकालः कालकालो महेश्वर ॥ अतस्त्वमुग्रकलया मृत्योर्मृत्युर्भविष्यसि ॥ ५९ ॥ स्थिरोह्य त्वक्षरो वीरो वीरो विश्वावकः प्रभुः ॥उपहन्ता ज्वरं भीमो मृगः पक्षी हिरण्मयः ॥६०॥ शास्ता शेषस्य जगतस्तत्त्वं नैव चतुर्मुखः॥ नान्ये च केवलं शम्भुस्सर्वशास्ता न संशयः॥६१॥इत्थं सर्वं समालोक्य संहारात्मानमात्मना ॥ न विनष्टन्त्वमात्मान कुरु हे नृहरेऽबुध॥६२॥नो चेदिदानीं क्रोधस्य महाभैरवरूपिणः ॥वज्राशनिरिव स्थाणो त्वयि मृत्युः पतिष्यति ॥६३॥ नन्दीश्वर उवाच॥इत्युक्ता वीरभद्रोपि विररामाकुतोभयः॥ दृष्ट्वा नृसिंहाभिप्रायं क्रोधमूर्त्तिश्शिवस्य सः ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शरभावतारवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

शेष हैं और जगत्के शासन करनेवाले हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥६१॥ इस प्रकार सब विचार कर अपनी आत्माको हरण करो; हे नृसिंह ! हे अबुध ! यदि आप अपनी आत्माको न छिपालेंगे ॥६२॥ तो इसी समय महा भैरवीरूपी क्रोधवाले स्थाणु शंकरका बडा वज्र मृत्युके समान तुम पर पडेगा ॥ ६३ ॥ नन्दीश्वर बोले; ऐसा कहकर अभय शिवकी क्रोधमूर्ति वीरभद्रजी नृसिंहजीका अभिप्राय जाननेके निमित्त मौन हुए ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेभाषाटीकायां तृ० श० रु० शरभावतारवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

सनत्कुमार बोले, हे महाप्राज्ञ ! हे नन्दीश्वर ! इसके उपरान्त क्या हुआ ? उन दोनोंका वृत्तान्त जो हो उसे मेरे ऊपर कृपा करके प्रीतिपूर्वक आप कहें ॥ १ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार वीरभद्रसे कहे हुए नृसिंहजी क्रोधसे व्याकुल हो बडे वेगसे शब्द करते हुए उनको ग्रहण करनेको उद्यत हुए ॥ २ ॥ इसी अवसरमें बडा घोर प्रत्यक्षमें भय करनेवाला आकाशमें व्याप्त कठिन शिवजीका तेज प्रगट हुआ ॥ ३ ॥ उस समय वीरभद्रका रूप क्षणमात्रको हो गया वह अदृश्य रूप हिरण्यमय चन्द्रमाके समान वा सूर्य अग्निसे प्रगट नहीं था ॥ ४ ॥ न बिजली न चन्द्रमाके समान केवल उपमारहित अद्भुत था उस समय उन शिवमें समस्त तेज लयको प्राप्त होगये ॥ ५ ॥ वह महातेज आकाशमें भी न समाया वह

सनत्कुमार उवाच॥नन्दीश्वर महाप्राज्ञ विज्ञातन्तदनन्तरम्॥ममोपरि कृपां कृत्वाप्रीत्या त्वन्तद्वदाधुना॥१॥नन्दीश्वर उवाच॥
इत्युक्तो वीरभद्रेण नृसिंहः क्रोधविह्वलः॥निनदन्ननु वेगेन तं ग्रहीतुम्प्रचक्रमे॥२॥अत्रान्तरे महाघोरं प्रत्यक्षभयकारणम्॥ गगन
व्यापि दुर्धर्षं शैवतेजस्समुद्भवम्॥३॥वीरभद्रस्य तद्रूपमदृश्यन्तु ततः क्षणात्॥तद्वै हिरण्मयं सौम्यं न सौरन्नाग्निसम्भवम्॥४॥
न तडिच्चन्द्रसदृशमनौपम्यम्महेश्वरम्॥तदा तेजांसि सर्वाणि तस्मिँल्लीनानि शंकरे॥५॥नतद्व्योम महत्तेजो व्यक्तान्तश्चाभवत्ततः॥
रुद्रसाधारणं चैव चिह्नितं विकृताकृति॥६॥ततस्संहाररूपेण सुव्यक्तं परमेश्वरः॥पश्यतां सर्वदेवानां जयशब्दादिमंगलैः ॥७॥
सहस्रबाहुर्जटिलश्चन्द्रार्द्धकृतशेखरः ॥समृद्धोग्रशरीरेण पक्षाभ्याञ्चञ्चुनाद्विजः॥८॥अतितीक्ष्णो महादंष्ट्रो वज्रतुल्यनखायुधः ॥
कण्ठेकालो महाबाहुश्चतुष्पाद्वह्निसन्निभः॥९युगान्तोद्यतजीमूतभीमगम्भीरनिस्वनः॥महाकुपितकृत्याग्निव्यावृत्तनयनत्रयः १०॥

केवल विकृताकार रुद्रका साधारण चिह्न था ॥ ६ ॥ जय जय आदि मंगलाचरण करते हुए सब देवताओंके देखते २ वह परमेश्वर संहाररूपसे प्रगट हुए ॥ ७ ॥ सहस्रों भुजाधारी, जटा रक्खे, अर्ध चन्द्रमाको मस्तकपर धारण किये, भयंकर शरीरसे युक्त, पंखोंसे तथा चोंचसे शोभायमान ॥ ८ ॥ अति तीक्ष्ण डाढोंवाला, वज्रके समान नखरूप शस्त्र धारे, कण्ठमें नील, दीर्घ भुजावाले, चार चरण सहित, अग्निके समान ॥ ९ ॥ प्रलय करनेमें मानों तत्पर, भयंकर तथा गम्भीर शब्द करते हुए, महाकोपाग्निसे भरे तीन नेत्रवाले ॥ १० ॥

स्पष्ट डाढ अधर ओंठवाले हुंकार करते हुए इस प्रकारके विकटरूपसे शंकर नृसिंहजीके आगे प्रगट हुए ॥ ११ ॥ उसके दर्शन मात्रसेही नृसिंहजीका पराक्रम बल नष्ट हो गया, जैसे सूर्यके तेजसे पटवीजनेका तेज नष्ट हो जाता है ॥ १२ ॥ तब अपने पक्षोंसे घुमाकर नाभि और चरणोंको विदीर्ण करते हुए, तथा पूँछसे पैरोंको और दोनों भुजाओंसे नृसिंहकी भुजाओंको बांध ॥ १३ ॥ भुजाओंसे हृदयको भेदन करते हुए शिवने उन नृसिंहरूपधारी विष्णुको ग्रहण किया, और देवता महर्षियोंके देखते २ आकाशको चले गये ॥ १४ ॥ तब भैरवजीने सहसा अभय हो विष्णुको ऐसे पकड लिया जैसे वाज सर्पको पकड पकडकर गिरावे इस प्रकार पकडकर गिरा गिरा कर ॥ १५ ॥ उड उडकर

स्पष्टदंष्ट्राधरोष्ठश्च हुंकारसंयुतो हरः ॥ईदृग्विधस्वरूपश्च हयुग्र आविर्बभूव ह॥११॥अरिस्तद्दर्शनादेव विनष्टबलविक्रमः ॥ बिभ्रद्धाम सहस्रांशोरधः खद्योतविभ्रमम् ॥ १२ ॥ अथ विभ्रम्य पक्षाभ्यां नाभिपादान्विदारयन् ॥ पादान्बबंध पुच्छेन बाहुभ्याम्बाहु मण्डलम् ॥ १३ ॥ भिन्दन्नुरसि बाहुभ्यान्निजग्राह हरो हरिम् ॥ ततो जगाम गगनन्देवैस्सह महर्षिभिः ॥१४॥ सह सैवाभयाद्विष्णुंस हि श्येन इवोरगम् ॥ उत्क्षिप्योत्क्षिप्य संगृह्य निपात्य च निपात्य च ॥ १५ ॥ उड्डीयोड्डीय भगवान्पक्ष घातविमोहितम् ॥ हरीं हरस्तं वृषभ विवेशानन्त ईश्वरः ॥ १६ ॥ अनु यान्तं सुरास्सर्वे नमोवाक्येन तुष्टुवुः ॥ प्रणेमुस्सादरं प्रीत्या ब्रह्माद्याश्च मुनी श्वराः ॥ १७ ॥ नीयमानः परवशो दीनवक्त्रः कृताञ्जलिः ॥ तुष्टाव परमेशानं हरिस्तं ललिताक्षरैः ॥ १८ ॥ नाम्नामष्टशतेनैव स्तुत्वा ताम्मृडमेव च ॥ पुनश्च प्रार्थयामास नृसिंहः शरभेश्वरम् ॥ १९ ॥

भगवान् शिवने पक्षोंसे विष्णुको व्याकुल कर दिया, तब विष्णुजी वृषके नीचे प्रविष्ट होगये॥ १६ ॥ उनके पीछे जाते शिवको देख सब देवतागण नमस्कारकी वाणीसे उन्हें संतुष्ट करने लगे, ब्रह्माआदि मुनीश्वर सब आदरसहित प्रेमसे प्रणाम करने लगे ॥ १७ ॥ शिवसे गृहीत हुए परवश विष्णुजी दीनमुख हो हाथ जोड़ उन शिवजीको मनोहर दीन वचनोंसे स्तुति करने लगे ॥ १८ ॥ और आठसौ रुद्रमंत्रोंसे उन शिवकी स्तुति करके फिर नृसिंहने शरभेश्वर शिवकी प्रार्थना की ॥ १९ ॥

हे परमेश्वर ! जब २ मेरी मति अहंकारसे दूषित होवे, तब २ आपको ही वह मति दूर करनी चाहिये ॥ २० ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार शिवजीसे प्रीतिपूर्वक प्रार्थना करके नृसिंहजी महेश्वरसे पराजित हो नमस्कार करके दीन हुए ॥ २१ ॥ उसी समय वीरभद्रने उनके मुख तथा सब देहको और शक्तिके सहित अपने शरीरके मध्यमें प्रवेश कर लिया ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर बोले तब ब्रह्मा आदि देवता शारभ रूपधारी, सब लोकोंके कल्याण करनेवाले शंकरको देख स्तुति करने लगे ॥ २३ ॥ देवता बोले, हे महेश्वर ! ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्रमा आदि देवता तथा सब महर्षि और दितिके पुत्र आदि सब आपसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २४ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेन्द्रोंको और सूर्य आदि देवता

यदायदा ममाज्ञेयं मतिस्स्याद्गर्वदूषिता ॥तदातदाऽप नेतव्या त्वयैव परमेश्वर॥२०॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच॥ एवं विज्ञापयन्प्रीत्या शङ्करं नरकेसरी॥ नत्वाऽशक्तोऽभवद्विष्णुजीवितान्त पराजितः ॥२१॥ तद्वक्रं शेषगात्रान्तं कृत्वा सर्वस्वविग्रहम्॥शक्तियुक्तं तदीयांगं वीरभद्रः क्षणात्ततः ॥२२॥ नन्दीश्वर उवाच॥ अथ ब्रह्मादयो देवाश्शारभं रूपमास्थितम्॥ तुष्टुवुः शंकरं देवं सर्वलोकैकशंकरम् ॥२३॥ ॥ देवा ऊचुः॥ ब्रह्मविष्ण्विन्द्रचन्द्रादिसुराःसर्वे महर्षयः॥ दितिजाद्याः सम्प्रसूतास्त्वत्तस्सर्वे महेश्वर ॥२४॥ ब्रह्म विष्णुमहेन्द्रांश्चसूर्याद्यानसुरान्सुराम् ॥ त्वं वै सृजसि पास्यत्सि त्वमेव सकलेश्वरः॥२५॥ यतो हरसि संसारं हर इत्युच्यते बुधैः॥ निगृहीतो हरिर्यस्माद्धर इत्युच्यते बुधैः॥२६॥यतो बिभर्षि सकलं विभज्य तनुमष्टधा॥अतोऽस्मान्पाहि भगवन् सुरादानैरभीप्सितैः॥२७॥ त्वं महापुरुषः शम्भुः सर्वेशस्सुरनायकः ॥ निःस्वात्मानि र्विकारात्मा परब्रह्म सतां गतिः ॥ २८ ॥ दीनबन्धुर्दया सिन्धुरद्भुतोतिःपरात्मदृक् ॥ प्राज्ञो विराट् विभुस्सत्यःसच्चिदानन्दलक्षणः ॥ २९ ॥

तथा असुरोंको आपही उत्पन्न करते हो और हे सकलेश्वर ! तुमही रक्षा करते हो ॥ २५ ॥ कारण कि--आप संसारको हरण करते हो इस कारण विद्वान् आपको हर कहते हैं, जो कि आपने हरिको विग्रह किया इससे आप हर कहलाते हैं ॥ २६ ॥ जिससे कि आप आठ प्रकारके शरीरका विभाग करके सकल संसारको पालन करते हो हे भगवन् ! इसी कारण देवताओंके मनोरथों सहित हमारी रक्षा करो ॥ २७ ॥ तुम महापुरुष शम्भु सर्वेश्वर सुरनायक निःस्वात्मा निर्विकारात्मा परब्रह्म सत्पुरुषोंकी गति हो ॥ २८ ॥ दीनबन्धु तथा दयाके

सागर अद्भुत आत्मासे परे देखनेवाले, प्राज्ञ, विराट् विभु, सत्य, सत् चित्, आनन्द लक्षण हो ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर बोले परमेश्वरने इस प्रकार देवताओंके वचनोंको सुनकर उन पुरातन देवता और महर्षियोंसे कहा ॥ ३० ॥ जिस प्रकार जलमें जल दूधमें दूध घीमें घी मिलता है उसी प्रकार यह विष्णुजी शिवमें लीन हुए हैं इसमें संशय नहीं ॥ ३१ ॥ एक विष्णुजी नृसिंहात्मा महाबली अहंकारी उक्तरूप धारण करके संसारके संहार करनेमें प्रवृत्त हुए हैं ॥ ३२ ॥ वे मेरे भक्तोंसे नमस्कार करने योग्य हैं, और प्रार्थना करने योग्य हैं मेरे भक्तोंको वर देनेवाले हैं ॥ ३३ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार महाबली भगवान् पक्षिराज नृसिंहजीसे कहकर सब देवताओंके देखते २ अन्तर्धान

॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचः शम्भुर्देवानां परमेश्वरः ॥ उवाच तान् सुरान्देवमहर्षींश्च पुरातनान् ॥३०॥ यथा जलं जले क्षिप्तं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम् ॥ एक एव तदा विष्णुः शिवे लीनो न चान्यथा ॥ ३१ ॥ एको विष्णुर्नृसिंहात्मा सदर्पश्च महा बलः ॥ जगत्संहारकरणे प्रवृत्तो नरकेसरी ॥ ३२ ॥ प्रार्थनीयो नमस्तस्मै मद्भक्तैस्सिद्धिकारिभिः ॥ मद्भक्तप्रवरश्चैव मद्भक्तवर दायकः ॥ ३३ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एतावदुक्त्वा भगवान् पक्षिराजो महाबलः ॥ पश्यतां सर्वदेवानान्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३४ ॥ वीरभद्रोऽपि भगवान्गणाध्यक्षो महाबलः ॥ नृसिंहकृत्तिं निष्कृष्य समादाय ययौ गिरिम् ॥३५॥ नृसिंहकृत्तिवसन स्तदाप्रभृति शंकरः ॥ तद्वक्रं मुण्डमालायां नायकत्वेन कल्पितम् ॥ ३६ ॥ ततो देवा निरातङ्का कीर्त्तयन्तः कथामिमाम् ॥ विस्मयोत्फुल्लनयना जग्मुः सर्वे यथागतम् ॥ ३७ ॥ य इदम्परमाख्यानं पुण्यं वेदरसान्वितम् ॥ पठति शृणुयाच्चैव सर्व्वा न्कामानवाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्यम्पुष्टिवर्द्धनम् ॥ सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ ३९ ॥

हुए ॥ ३४ ॥ गणाध्यक्ष महाबली भगवान् नृसिंह शरीरको आकर्षण कर उसे ले पर्वतपर चले गये ॥ ३५ ॥ उस दिनसे शिवजी नृसिंहकृत्ति पहनते हैं उनके मुखको मुण्डमालामें मुख्यरूपसे रखते हैं ॥ ३६ ॥ तब देवता निर्भय होकर इस कथाको कहते हुए विस्मय हर्षसे खिले नेत्रोंवाले होकर जहां,से आये थे वहांको चले गये ॥३७॥ जो पुरुष इस वेदरससे भरे हुए पवित्र परम इतिहासको पढता है तथा सुनता है, वह मनोरथोंको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ यह धन्य, यश देनेवाला, आयु देनेवाला, आरोग्य और पुष्टिको बढानेवाला है सब विघ्नोंको

शांत करनेवाला सब व्याधियोंका दूर करनेवाला ॥३९॥ दुखोंका नष्ट करनेवाला, वांछा सिद्धिको देनेवाला, मंगलका स्थान, अकाल मृत्युका हरण करनेवाला, बुद्धिका देनेवाला, शत्रुका विनाश करनेवाला ॥ ४० ॥ ऐसा यह पिनाकी शिवका शरभाकार परमरूप शिवके चर और भक्तोंमें प्रकाश करना चाहिये ॥ ४१ ॥ और उनहीं शिवात्माओंको पढना चाहिये, और सुनना चाहिये, नौ प्रकारकी भक्तिका देनेवाला, और अन्तःकरण बुद्धिका देनेवाला यह माहात्म्य है ॥ ४२ ॥ सम्पूर्ण शिवके उत्सवोंमें तथा चौदश अष्टमीको प्रतिष्ठाके समय जो इसे पढता है वह शिवजीके समीप पहुंचता है ॥ ४३ ॥ चोर भय व्याघ्र तथा मनुष्य नृसिंह आत्मकृत राजाके भयमें तथा भूकम्प डांकू आदि अतिवृष्टि

दुःखप्रशमनं वाञ्छासिद्धिदं मंगलालयम् ॥अपमृत्युहरं बुद्धिप्रदं शत्रुविनाशनम्॥४०॥इदन्तु शरभाकारंपरं रूपम्पिनाकिनः ॥ प्रकाशनीयं भक्तेषु शंकरस्य चरेषु वै ॥ ४१ ॥ तैरेव पठितव्यं च श्रोतव्यं च शिवात्मभिः॥नवधा भक्तिदं दिव्यमन्तःकरणबुद्धि दम् ॥४२॥ शिवोत्सवेषु सर्वेषु चतुर्दश्यष्टमीषु च॥पठेत्प्रतिष्ठाकाले तु शिवसन्निधिकारणम् ॥४३॥ चौरव्याघ्रनृसिंहात्मकृत राजभयेषु च ॥ अन्येषूत्पातभूकम्पदस्व्यादिपांसुवृष्टियु ॥४४॥उल्कापाते महावाते विनावृष्ट्यतिवृष्टिषु ॥ पठेद्यः प्रयतो विद्वा ञ्छिवभक्तो दृढव्रतः ॥ ४५ ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि निष्कामो व्रतमैश्वरम्॥रुद्रलोकं समासाद्य रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥ ४६ ॥ रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रेण सह मोदते ॥ ततस्सायुज्यमाप्नोति शिवस्य कृपया मुने ॥४७॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शरभावतारवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ (अथ गृहपत्यवतारकथा ॥) नन्दीश्वर उवाच ॥ शृणु ब्रह्मसुत प्रीत्या चरितं शशिमौलिनः ॥ सोऽवतीर्णो यथा प्रीत्या विश्वानरगृहे शिवः ॥ १ ॥

अवृष्टि आदि और उत्पातोंमें ॥ ४४ ॥ उल्कापात होनेपर बडी आंधीमें वृष्टिके न होनेपर जो शिवभक्त विद्वान् दृढ व्रतमें तत्पर हो इसको पढता है ॥ ४५ ॥ अथवा कामना रहित हो ईश्वरके व्रतको सुनता है, वह रुद्र लोकको प्राप्त होके शिवका सेवक होता है ॥ ४६ ॥ और रुद्र लोकको प्राप्त होके व रुद्रके साथही आनन्द करता है हे मुने ! शिवकी कृपासे उनके ही पदको पाता है ॥ ४७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां तृ० श० रु० शरभावतारवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ नन्दीश्वर बोले; हे ब्रह्मपुत्र ! शिवके चरित्रको

प्रीतिसे सुनो कि जिस प्रकार उन्होंने विश्वानरके घर अवतार लिया ॥ १ ॥ हे मुने ! अग्नि लोकका पति गृहपति नामक अग्निके समान तेजस्वी सर्वात्माओंमें श्रेष्ठ था ॥ २ ॥ नर्मदा नदीके किनारेपर नर्मपुर नामक नगरमें शिवका भक्त पुण्यात्मा विश्वानर मुनि रहता था ॥ ३ ॥ वह ब्रह्मचर्याश्रममें स्थित, निरंतर ब्रह्मयज्ञ (वेदाध्ययन) में तत्पर शांडिल्य गोत्र वाला, पवित्र, ब्रह्म तेजस्वी, जितेन्द्रिय ॥ ४ ॥ सब शास्त्रोंके अर्थका जाननेवाला सदाचारी, शैवोंके आचारमें निपुण, लौकिक आचारमें चतुर था ॥ ५ ॥ वह विश्वानर अपने चित्तमें शुभ स्त्रीके गुणोंको विचार अपने उचित कालमें एक कन्याको विधि विधानसहित विवाहता हुआ ॥ ६ ॥ अग्निहोत्र करनेमें तत्पर तथा पञ्च

नाम्ना गृहपतिः सोऽभूदग्निलोकपतिर्मुने ॥ अग्निरूपस्तैजसश्च सर्व्वात्मा परमः प्रभुः ॥ २ ॥ नर्मदायास्तटे रम्ये पुरेनर्मपुरे पुरा ॥ पुरारिभक्तः पुण्यात्माभवद्विश्वानरो मुनिः ॥३॥ ब्रह्मचर्य्याश्रमे निष्ठो ब्रह्मयज्ञरतस्सदा ॥ शाण्डिल्यगोत्रः शुचिमान्ब्रह्मतेजो निधिर्व्वशी ॥ ४ ॥ विज्ञाताखिलशास्त्रार्थस्सदाचाररतस्सदा ॥ शैवाचारप्रवीणोऽति लौकिकाचारविद्वरः ॥ ५ ॥ चित्ते विचार्य्य गृहिणीगुणान्विश्वानरः शुभान् ॥ उदुवाह विधानेन स्वोचितां कालकन्यकाम् ॥ ६ ॥ अग्निशुश्रूषणरतः पञ्च यज्ञप रायणः ॥ षट्कर्मनिरतो नित्यं देवपित्रतिथिप्रियः ॥ ७ ॥ एवम्बहुतिथे काले गते तस्याग्रजन्मनः ॥ भार्य्या शुचिष्मती नामभर्तारम्प्राह सुव्रता ॥ ८ ॥ नाथ भोगा मया सर्वे भुक्ता वै त्वत्प्रसादतः ॥ स्त्रीणां समुचिता ये स्युस्त्वां समेत्य मुदावहाः ॥ ९ ॥ एवम्मे प्रार्थितन्नाथ चिराय हृदि संस्थितम् ॥ गृहस्थानां समुचितं त्वमेतद्दातुमर्हसि ॥ १० ॥ विश्वानर उवाच ॥ किमदेयं हि सुश्रोणि तव प्रियहितैषिणी ॥ तत्प्रार्थय महाभागे प्रयच्छाम्यविलम्बितम् ॥ ११ ॥

यज्ञोंमें परायण छह कर्मोंमें तत्पर हुआ नित्य देवता, पितृ, अतिथियोंमें प्रिय ॥ ७ ॥ उस ब्राह्मणके इस प्रकार बहुत समय बीतनेपर उसकी शुचिष्मती नामक पतिव्रता स्त्री अपने पतिसे बोली ॥ ८ ॥ हे नाथ ! आपके प्रसादसे स्त्रियोंके भोगने योग्य सम्पूर्ण भोग आनन्द मैंने आपको पाकर भोगे ॥ ९ ॥ हे नाथ ! इस प्रकारकी प्रार्थना बहुत कालसे मेरे हृदयमें है जो गृहस्थोंके योग्य भी है सो आप देनेके योग्य हैं ॥ १० ॥ विश्वानर बोला, हे सुश्रोणि ! हे प्रिय हितैषिणी ! हे महाभागे ! तुमको कुछ भी अदेय नहीं है, तुम कहो मैं तुमको

शीघ्र ही दूंगा ॥ ११ ॥ शिवजीकी प्रसन्नतासे मुझे कुछ भी दुर्लभ नहीं है, हे कल्याणि ! सबके कल्याण करनेवाले मुझे इस लोकमें तथा परलोकमें कुछ दुष्प्राप्य वस्तु नहीं ॥ १२ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार वह पतिव्रता स्त्री अपने पतिका वचन सुन प्रसन्न मुखसे हाथ बाँधे नम्र हुई बोली ॥ १३ ॥ शुचिष्मती बोली, हे नाथ ! यदि मैं वर देनेके योग्य हूं तो यह वर मुझे देना चाहिये कि शिवके समान पुत्र दो और वर नहीं चाहती ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर बोले इस प्रकार उसके वचन सुन वह पवित्र व्रती ब्राह्मण, क्षणभर समाधिमें स्थित होकर हृदयमें विचारने लगा ॥ १५ ॥ अहो ! मेरी स्त्रीने क्या अति दुर्लभ प्रार्थना की जो मनोरथके मार्गसे दूर है अथवा वही सब कुछ

महेशितुः प्रसादेन मम किञ्चिन्न दुर्लभम् ॥इहामुत्र च कल्याणि सर्वकल्याणकारिणः ॥१२॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचः पत्युस्तस्य सा पतिदेवता ॥ उवाच हृष्यद्वदना करौ बद्ध्वा विनीतिका ॥ १३ ॥ शुचिष्मत्युवाच ॥ वरयोग्यास्मि चेन्नाथ यदि देयो वरो मम ॥ महेशसदृशम्पुत्रन्देहि नान्यं वरं वृणे ॥१४॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा ब्राह्मणस्स शुचिव्रतः ॥ क्षणं समाधिमाधाय हृद्येतत्समचिन्तयत् ॥१५॥ अहो किं मे तया तन्व्या प्रार्थितं ह्यतिदुर्लभम् ॥ मनोरथपथाद्दूरमस्तु वा स हि सर्व्वकृत् ॥१६॥ तेनैवास्या मुखे स्थित्वा वाक्स्वरूपेण शम्भुना ॥ व्याहृतं कोऽन्यथा कर्त्तुमु त्सहेत भवेदिदम् ॥ १७ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥इति सञ्चिन्त्य स मुनिर्विश्वानर उदारधीः॥ ततः प्रोवाच ताम्पत्नीमेकपत्नीव्रते स्थितः ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्थमाश्वास्य ताम्पत्नीञ्जगाम तपसे मुनिः ॥ यत्र विश्वेश्वरः साक्षात्काशीनाथोऽधि तिष्ठति ॥ १९ ॥ प्राप्य वाराणसीं तूर्णं दृष्ट्वा ताम्मणिकर्णिकाम् ॥ तत्याज तापत्रितयमपि जन्मशतार्जितम् ॥ २० ॥

करनेवाले हैं ॥ १६ ॥ उन्होंने ही इसके मुखमें वाणी रूपसे स्थित होकर कहा है उनकी इच्छाको कौन अन्यथा करनेका उत्साह कर सकता है ॥ १७ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार एक पत्नी व्रतमें स्थित उस उदार बुद्धिवाले विश्वानरने विचारकर थोडी देरमें उस अपनी पत्नीसे कहा ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार अपनी स्त्रीको ढाढस बंधाके वह मुनि तप करनेको चले गये, जहाँ पर विश्वके ईश्वर साक्षात् काशीनाथ स्थित थे ॥ १९ ॥ शीघ्र ही वाराणसीमें प्राप्त हो, वहां मणिकर्णिकाका दर्शन कर सैंकडों जन्मके इकट्ठे किये तीनों प्रकारके

तापोंको त्याग किया ॥ २० ॥ और वहां विश्वेश्वर आदि सम्पूर्ण लिंगोंका दर्शनकर कुंड बावड़ी कूप सरोवर सबमें स्नान करके ॥ २१ ॥ सब विनायक गौरी शिवको नमस्कार और पूजन कर पाप भक्षणकारी कालराज भैरवजीको भी पूजनकर ॥ २२ ॥ दंड नायक मुख्य गणोंकी स्तुति करके आदि केशव मुख्योंको तथा केशवको संतुष्ट करके ॥ २३ ॥ और लोलार्कमुख सूर्य आदिको बारम्बार प्रणाम करके तथा सब तीर्थोंमें आलस्यरहित हो पिंडदान करके ॥ २४ ॥ सहस्रों प्रकारके भोजन आदिसे मुनियोंको तथा ब्राह्मणोंको तृप्त करके भक्ति पूर्वक महा पूजा योग्य उपचारोंसे सब लिंगोंको पूजकर॥२५॥बारम्बार यह विचारा कि क्या यह लिंग शीघ्र सिद्धिका देनेवाला है जिसमें पुत्रकी कामनासे

दृष्ट्वा सर्वाणि लिंगानि विश्वेशप्रमुखानि च ॥ स्नात्वा सर्वेषु कुण्डेषु वापीकूपसरस्सु च ॥ २१ ॥ नत्वा विनायकान्सर्वान्गौरीं शर्वांप्रणम्य च ॥ सम्पूज्य कालराजञ्च भैरवम्पापभक्षणम् ॥२२॥दण्डनायकमुख्यांश्च गणान्स्तुत्वा प्रयत्नतः॥ आदिकेशवमुख्यांश्च केशवम्परितोष्य च ॥२३॥ लोकार्कमुखसूर्यांश्च प्रणम्य स पुनःपुनः ॥ कृत्वा च पिण्डदानानि सर्वतीर्थेष्वतन्द्रितः ॥ २४ ॥ सहस्रभोजनाद्यैश्च मुनीन्विप्रान्प्रतर्प्य च ॥ महापूजोपचारैश्च लिंगान्यभ्यर्च्य भक्तितः ॥२५॥ असकृच्चिन्तयामास किं लिंगं क्षिप्रसिद्धिदम् ॥ यत्र निश्चलतामेति तपस्तनयकाम्यया ॥२६॥ क्षणं विचार्य्य स मुनिरिति विश्वानरस्सुधीः ॥ क्षिप्रम्पुत्रप्रदं लिंगं वीरे शम्प्रशशंस ह ॥ ॥२७॥ असंख्यातास्सहस्राणि सिद्धाः सिद्धिं गतास्ततः ॥ सिद्धलिंगमिति ख्यातन्तस्माद्वीरेश्वरम्परम् ॥ २८ ॥ वीरेश्वरम्महालिंगमब्दमभ्यर्च्य भक्तितः ॥ आयुर्मनोरथं सर्वं पुत्रादिकमनेकशः ॥ २९ ॥ अहमप्यत्र वीरेशं समाराध्य त्रिकालतः ॥ आशु पुत्रमवाप्स्यामि यथाभिलषितं स्त्रिया ॥ ३० ॥

तप निश्चलतासे प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ इस प्रकार बुद्धिमान् मुनि विश्वानरने क्षणमात्र विचारकर पुत्रके देनेवाले वीरेश लिंगकी प्रशंसा की ॥ २७ ॥ असंख्यात सहस्रों सिद्ध इसके पूजन करनेसे सिद्धिको प्राप्त हुए हैं इस कारण यह वीरेश्वर लिंग प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है ॥ २८ ॥ वीरेश्वर लिंगको एकवर्ष भक्ति पूर्वक पूजकर आयु तथा मनोरथ और पुत्रादिकको प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ मैं भी यहाँ वीरेशकी तीनों समय आराधना करके शीघ्र वैसे पुत्रको प्राप्त हूंगा जैसी कि अभिलाषा की है ॥ ३० ॥

नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार धीर कृती विश्वानर ब्राह्मणने मति करके चन्द्रकूपके जलमें स्नानकर व्रत और नियम धारण किया ॥ ३१ ॥ महीनेमें एकबार भोजन किया, तथा एकमासतक रात्रिमें एकबार भोजन किया, और एकमास तक विना मांगे जो मिला सो भोजन किया, तथा एकमहीने तक निराहार रहा ॥ ३२ ॥ और एकमास पयोव्रत किया, एकमास शाकभोजन किया, एकमास एकमुट्ठी तिल खाकर रहा और एकमास पानी भोजन किया ॥ ३३ ॥ एकमास पंचगव्य भोजन करके एकमास चान्द्रायण व्रतधारी एकमास कुशाके अग्रभागका जल पीकर एकमास वायु भक्षण करके रहा ॥ ३४ ॥ इस प्रकार उसने एकवर्ष तक अद्भुत तप किया, और उत्तम वीरेश लिंगको

नन्दीश्वर उवाच॥इति कृत्वा मतिन्धीरो विप्रो विश्वानरःकृती॥चन्द्रकूपजले स्नात्वा जग्राह नियमं व्रती ॥३१॥ एकाहारोऽभवन्मासं मासं नक्ताशनोऽभवत् ॥अयाचिताशनो मासम्मासन्त्यक्ताशनःपुनः ॥३२॥ पयोव्रतोऽभवन्मासम्मासम्मासं शाकफलाशनः ॥ मासम्मुष्टितिलाहारो मासं पानीयभोजनः ॥३३॥ पञ्चगव्याशनो मासम्मासञ्चान्द्रायणव्रती॥मासं कुशाग्रजलभुग्मासं श्वसनभक्षणः ॥३४॥ एवमब्दमितं कालन्ततापस तपोऽद्भुतम् ॥त्रिकालमर्चयद्भक्त्या वीरेशं लिङ्गमुत्तमम् ॥ ३५ ॥ अथ त्रयोदशे मासि स्नात्वा त्रिपथगाम्भसि ॥ प्रत्यूष एव वीरेशं यावदायाति स द्विजः ॥३६॥ तावद्विलोकयाञ्चक्रे मध्ये लिंगन्तपोधनः ॥ विभूतिभूषणम्बालमष्टवर्षाकृतिं शिशुम् ॥३७॥आकर्णायतनेत्रञ्च सुरक्तदशनच्छदम् ॥ चारुपिंगजटामौलिन्नग्नम्प्रहसिताननम् ॥ ३८ ॥ शैशवोचितनेपथ्यधारिणञ्चितिधारिणम् ॥ पठन्तं श्रुतिसूक्तानि हसन्तं च स्वलीलया ॥३९॥ तमालोक्य मुदम्प्राप्य रोमकञ्चुकितो मुनिः ॥ प्रोच्चचार हृदालापान्नमोस्त्विति पुनः पुनः ॥ ४० ॥

तीनोंकालोंमें भक्तिपूर्वक पूजा ॥ ३५ ॥ तब तेरहवें महीनेमें त्रिपथगा गंगाके जलमें नहाकर प्रातःकाल वह ब्राह्मण वीरेशलिंगके पूजनको आया कि ॥ ३६ ॥ उस तपोधनने उस लिंगके मध्यमें विभूतिसे शोभित आठ वर्षकी अवस्थावाले एक बालकको देखा ॥ ३७ ॥ कानोंतक विशालनेत्रोंवाले, सुन्दर लालहोठोंवाले, तथा मनोहर पीली जटा, मौली (मुकुट) लगाये, नग्न, हँसते हुए, मुखसहित ॥ ३८ ॥ बालकोंके योग्य भेष धारे चितिधारी तथा श्रुतिसूक्तोंको पढते हुए अपनी लीलासे हंसते हुए ॥ ३९ ॥ उस बालकको देख आनन्दको प्राप्त

हो रोमाञ्चित शरीरवाले मुनि अपने हृदयसे नमोस्तु इस प्रकार आलाप करते हुये बोले ॥ ४० ॥ वह कृती विश्वानर अभिलाषाके देनेवाले आठों पद्योंसे उन बालरूपी परमानन्द शम्भुको संतुष्ट करते हुये ॥ ४१ ॥ विश्वानर बोले, एक ब्रह्मही अद्वितीय है वही सत्य है, संपूर्ण मैं उसके सिवाय और कुछ यहां नहीं है इस कारण तुम एक महेश्वरकी मैं शरणमें प्राप्त हुआ हूं ॥ ४२ ॥ हे शम्भो ! आप सब संसारके करनेवाले तथा हरण करनेवाले हो अनेकरूपोंमें एकरूपभी होकर विनारूपवाले हो, जिस प्रकार सनातनधर्म एक होता हुआ भी अनेक है, उसी प्रकार तुम महेश्वरके विना मैं दूसरेकी शरण नहीं प्राप्त करता हूं ॥ ४३ ॥ जिस प्रकार रस्सीमें सांप तथा सीपमें चांदी तथा मृगतृष्णामें

अभिलाषप्रदैः पद्यरष्टभिर्बाल रूपिणम् ॥ तुष्टाव परमानन्दं शंभुं विश्वानरः कृती ॥४१॥ ॥ विश्वानर उवाच॥एकम्ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं सत्यंसत्यं नेह नानास्ति किञ्चित्॥एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकन्त्वाम्प्रपद्ये महेशम्॥४२कर्ताहर्त्ता त्वं हि सर्वस्यशम्भो नानारूपेष्वेकरूपोऽप्यरूपः॥ यद्वत्प्रत्यग्धर्म एकोऽप्यनेकस्तस्मान्नान्यन्त्वां विनेशम्प्रपद्ये॥४३रज्जो सर्पश्शुक्ति कायां च रौप्यं नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ॥ यद्यत्सद्वद्विष्वगेव प्रपञ्चो यस्मिञ्ज्ञाते तम्प्रपद्ये महेशम्॥४४॥तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः॥पुष्पे गन्धो दुग्धमध्येऽपि सर्पिर्यत्तच्छंभो त्वं ततस्त्वाम्प्रपद्ये॥४५॥शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्रस्यघ्राणस्त्वं व्यंघ्रिरायासि दूरात्॥व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः कस्त्वां सम्यग्वेत्त्यतस्त्वाम्प्रपद्ये॥४६॥नो वेद त्वामीश साक्षाद्धि वेदो नोवा विष्णुर्नो विधाताखिलस्य॥नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवा भक्तो वेदस्त्वामतस्त्वाम्प्रपद्ये॥४७॥

जल भासता है, इसी प्रकार चारों ओर मायाका प्रपंच फैला है, सो जिसके जलनेपर सब जाना जाता है मैं उसकी शरणमें प्राप्त हुआ हूं ॥ ४४ ॥ हे शम्भो ! जलमें ठंढक, तथा अग्निमें जलानेकी शक्ति, सूर्यमें संताप, चन्द्रमामें आह्लादकता और पुष्पमें सुगंध, तथा दूधके मध्यमें घी है वैसेही सबमेंही आपही हैं ऐसे तुमको मैं प्राप्त होता हूं ॥ ४५ ॥ आप कानोंके विना शब्दको ग्रहण करते हो, नासिकाके विना सूंघते हो, विना चरणके दूरसे आते हो, विनानेत्रके देखते हो, जिह्वाके स्वाद जाननेवाले हो ऐसे आपको अच्छी प्रकार कौन जान सकता है उन आपकी मैं शरण होता हूं ॥ ४६ ॥ हे ईश्वर ! आपको साक्षात् वेद भी नहीं जानता और न विष्णु,

न ब्रह्मा, और न योगी और न इन्द्रआदि देवता जान सकते हैं, केवल आपको भक्तही जानते हैं, ऐसे आपकी मैं शरणमें प्राप्त होता हूं ॥४७॥ न आपके गोत्र है, न शरीर है न आप जन्म लेते, न आपका नाश होता है, न रूप है, न शील है, न आपका देश है, इस प्रकार होते हुए भी आप त्रिलोकीके मनोरथको पूर्ण करते हो, अतः तुमको सेवन करता हूं ॥४८॥ हे स्मरारे ! आपसे सब हैं और आप सबमें हैं, आप पार्वतीके पति हैं आप नग्न हैं तथा अतिशांत हैं आपही वृद्ध हैं और आपही युवा, आपही बालक हैं, संसारमें ऐसा पदार्थ क्या है जो आपसे भिन्न हो ऐसे आपको नमस्कार करता हूं ॥ ४९ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार हाथ बाँधकर ब्राह्मण स्तुतिकर जभी भूमिपर दंडवत्प्रणाम

नो ते गोत्रं नो सजन्मापि नाशो नो वा रूपं नैव शीलन्न देशः ॥ इत्थम्भूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्यास्सर्वान्कामान्पूरयेस्त्वं भजे त्वाम् ॥ ४८ ॥ त्वत्तस्सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः॥त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बालस्तत्त्वं यत्किं नान्यतस्त्वां नतोऽहम्॥४९॥ नन्दीश्वर उवाच॥ स्तुत्वेति विप्रो निपपात भूमौ संबद्धपाणिर्भवतीह यावत्॥तावत्स बालोऽखिलवृद्धवृद्धः प्रोवाच भूदेवमतीव हृष्टः ॥ ५० ॥ बाल उवाच ॥विश्वानर मुनिश्रेष्ठ भूदेवाहं त्वयाद्य वै॥ तोषितस्सुप्रसन्नात्मा वृणीष्व वरमुत्तमम्॥ ५१ ॥ तत उत्थाय हृष्टात्मा मुनिर्विश्वानरः कृती॥प्रत्यब्रवीन्मुनिश्रेष्ठः शंकरम्बालरूपिणम् ॥५२॥ विश्वानर उवाच ॥ महेश्वर किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तव प्रभो ॥ सर्वान्तरात्मा भगवाञ्छर्वस्सर्व्वप्रदो भवान् ॥ ५३ ॥ याच्ञाम्प्रति नियुक्तम्मां किं ब्रूषे दैन्य कारिणीम् ॥ इति ज्ञात्वा महेशान यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ५४ ॥

करता हुआ तभी वह सब वृद्धोंमें वृद्ध बालक अति प्रसन्न हो उस मुनि ब्राह्मणसे बोला ॥ ५० ॥ बालक बोला, हे मुनिश्रेष्ठ ! हे विश्वानर हे ब्राह्मण ! तुमसे संतुष्ट किया हुआ मैं प्रसन्न हुआ हूं, जैसी इच्छा हो वैसे श्रेष्ठ वर मांगो ॥ ५१ ॥ तब वह मुनि विश्वानर उठकर प्रसन्नहो उन बालरूपधारी शिवजीसे इस प्रकार बोला ॥ ५२ ॥ विश्वानर बोला, हे महेश्वर ! हे प्रभो ! आप सर्वज्ञको क्या अज्ञात (न जाना हुआ) है हे भगवन् ! आप सबके अन्तर्यामी सब कुछ देनेवाले सर्व (हरण पोषण कर्तास्वरूप) हैं ॥ ५३ ॥ मांगनेमें लगे हुए मुझे क्या दीन वचनवाली याचनाको कहते हो; हे महेशान ! इस प्रकार जानकर जैसी इच्छा हो वैसा करो ॥ ५४ ॥

नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उन पवित्र व्रतधारी विश्वानरका वचन सुन, वह बालकरूप पवित्र देवता कुछेक हँसकर बोले ॥ ५५ ॥ हे पवित्र विश्वानर ! तुमने शुचिष्मतीमें पुत्र होनेकी जो अभिलाषा की है वह बहुत शीघ्रही निःसन्देह पूर्ण होगी ॥ ५६ ॥ हे महामते ! शुचिष्मती स्त्रीमें तुम्हारा पुत्र मैं हूंगा, गृहपति नाम करके प्रसिद्ध तथा पवित्र और देवताओंका प्रिय हूंगा ॥ ५७ ॥ यह आपसे कहा हुआ अभिलाषाष्टक नामक पवित्र स्तोत्र एक वर्ष तीनोंकाल पढनेसे शिवके समीपसे सब मनोरथ प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥ इस स्तोत्रका पाठ करना पुत्र पौत्र तथा धनका देनेवाला है, सब शांतिका करनेवाला और सम्पूर्ण आपत्तियोंका नाश कर

नन्दीश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवो विश्वानरस्य हि ॥ शुचिश्शुचिव्रतस्याथ शुचि स्मित्वाब्रवीच्छिशुः ॥ ५५ ॥ त्वया शुचे शुचिष्मत्यां योऽभिलाषः कृतो हृदि ॥ अचिरेणैव कालेन स भविष्यत्यसंशयम् ॥५६॥ तव पुत्रत्वमेष्यामि शुचिष्मत्यां महामते ॥ ख्यातो गृहपतिर्नाम्ना शुचिस्सर्व्वा मरप्रियः ॥५७॥अभिलाषाष्टकं पुण्यं स्तोत्रमेतत्त्वयेरितम् ॥अब्दत्रिकालपठनात्कामदं शिवसन्निधौ ॥५८॥ एतत्स्तोत्रप्रपठनं पुत्रपौत्रधनप्रदम् ॥ सर्व्वशान्तिकरश्चापि सर्व्वापत्तिविनाशनम् ॥५९॥ स्वर्गापवर्गसम्पत्तिकारकन्नात्र संशयः ॥ सर्व्वस्तोत्रसमं ह्येतत्सर्व्वकामप्रदं सदा ॥ ६० ॥प्रातरुत्थाय सुस्नातो लिंगमभ्यर्च्य शाम्भवम् ॥ वर्ष जपन्निदं स्तोत्रमपुत्रः पुत्रवान्भवेत् ॥६१॥ अभिलाषाष्टकमिदन्न देयं यस्यकस्यचित् ॥ गोपनीयं प्रयत्नेन महावन्ध्याप्रसूतिकृत् ॥ ६२ ॥ स्त्रिया वा पुरुषेणापि नियमाल्लिंगसन्निधौ ॥ अब्दं जप्तमिदं स्तोत्रम्पुत्रदन्नात्र संशयः ॥ ६३ ॥

नेवाला है ॥ ५९ ॥ स्वर्ग मोक्ष और सम्पत्तिका करनेवाला है, सब स्तोत्रोंके समान सम्पूर्ण कामनाओंका देनेवाला है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ६० ॥ प्रातःकाल उठ कर अच्छी प्रकार स्नान करके शिव लिंगकी पूजा करके वर्ष भर इस स्तोत्रको जपे तो इस लोकमें पुत्रवान् होगा ॥ ६१ ॥ इस अभिलाषाष्टक स्तोत्रको जिस किसीके लिये नहीं देना चाहिये, यत्नपूर्वक छिपाना चाहिये, यह महावन्ध्यास्त्रीके भी सन्तान करनेवाला है ॥ ६२ ॥ स्त्री अथवा पुरुष नियमपूर्वक शिवलिंगके समीप एकवर्षतक यह स्तोत्र जपे पुत्रादिकी सब इच्छा

पूर्ण होती है इसमें सन्देह नहीं ॥ ६३ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार कहकर वह बालक रूपधारी सत्पुरुषोंको गति देनेवाले शिवजी अन्तर्धान हुए और वह विश्वानर ब्राह्मण भी प्रसन्न हो अपने घरको गया ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवपुराणभाषा० तृ० श० रु० गृहपत्यवतारवर्णनं नाम त्रयोदशोध्यायः ॥ १३ ॥ नन्दीश्वर बोले, कि वह ब्राह्मण अपने घरमें आकर बडे हर्षपूर्वक उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको अपनी स्त्रीसे कहता हुआ ॥ १ ॥ यह सुन वह शुचिष्मतीनामक ब्राह्मणकी स्त्री आनन्दको प्राप्त हुई और अत्यन्त प्रेम सहित अपने प्रारब्धकी प्रशंसा करने लगी ॥ २ ॥ तब समय पाकर वह स्त्री गर्भवती हुई उस ब्राह्मणने गर्भाधानसंस्कार विधिपूर्वक किया ॥ ३ ॥ तथा गृह्यसूत्रकी विधिके अनुसार

नन्दीश्वर उवाच॥इत्युक्त्वान्तर्दधे शम्भुर्बालरूपः सतांगतिः॥सोऽपि विश्वानरो विप्रो हृष्टात्मा स्वगृहं ययौ॥६४॥इति श्रीशिव महापुराणे तृतीयायां रुद्रसंहितायां गृहपत्यवतावरर्णनंनामत्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥नन्दीश्वर उवाच॥स विप्रो गृहमागत्य महा हर्षसमन्वितः॥प्रियायै कथयामास तद्वृत्तान्तमशेषतः॥१॥तच्छ्रुत्वा विप्रपत्नी सा मुदम्प्राप शुचिष्मती॥अतीव प्रेमसं युक्ता प्रशशंस विधिन्निजम्॥२॥अथ कालेन तद्योषिदन्तर्वत्नी बभूवह ॥ विधिवद्विहिते तेन गर्भाधानाख्यकर्म्मणि ॥ ३ ॥ ततः पुंसवनन्तेन स्यन्दनात्प्राग्विपश्चिता ॥ गृह्योक्तविधिना सम्यक्कृतम्पुंस्त्वविवृद्धये ॥४॥ सीमन्तोऽथाष्टमे मासे गर्भरूपसमृद्धि कृत् ॥ सुखप्रसवसिद्धौ च तेनाकरि कृपाविदा ॥ ५ ॥ अथातश्शुभतारासु ताराधिपवराननः ॥ केन्द्रे गुरौ शुभे लग्ने सुग्रहेषु युगेषु च ॥६॥ अरिष्टदीपनिर्वाणस्सर्वारिष्टविनाशकृत् ॥ तनयो नामतस्यान्तु शुचिष्मत्याम्बभूव ह॥७॥शर्वस्समस्तसुखदो भूर्भुवः स्वर्न्निवासिनाम् ॥ गन्धवाहनवाहाश्च दिग्वधूर्मुखवाससः ॥ ८ ॥

तेजकी वृद्धिके निमित्त पुंसवन संस्कार किया ॥ ४ ॥ और आठवें महीनेमें गर्भरूपकी वृद्धि करनेवाला सीमन्तोन्नयन संस्कार उस दयाके जानने वाले ब्राह्मणने सुखसे सन्तान होनेके निमित्त किया ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त शुभ नक्षत्रमें बृहस्पतिके केन्द्रस्थानमें होनेपर शुभ लग्नमें अच्छे ग्रह तथा सुन्दर योगमें ॥ ६ ॥ चन्द्रमाके समान मुखवाले तथा सूतिकागृहमें दीपकके तेजको भी शान्त करनेवाला सब दुखोंके नाश करनेवाला पुत्र उस शुचिष्मतीके उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ जो कल्याणस्वरूप सब भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, निवासियोंको सम्पूर्ण सुखोंका

देनेवाला था, उस समय वायु द्वारा चलाये हुये मेघ दिशारूपी वधुओंके मुखकी गन्ध लेकर ॥ ८ ॥ देवतागण इच्छित सुगन्धित फूलों की वर्षा करने लगे, देवताओंकी दुन्दुभी बजने लगीं, चारों ओरसे दिशायें निर्मल होगईं ॥ ९ ॥ चारोंओरसे नदियां प्राणियोंके मनोंके सहित स्वच्छ होगईं, अन्धकार दूर होगया, धूलिभी मानो धूलरहित हुई ॥ १० ॥ सत्त्वगुणसहित सब मंगलमयी अमृतकी वर्षा होने लगी और सब मनुष्योंकी वाणी प्यारी और कल्याण करनेवाली हुई ॥ ११ ॥ रंभाआदि अप्सरायें मंगलमय द्रव्योंको हाथमें लिये विद्याधरी किन्नरी तथा सहस्रों किन्नरी ॥ १२ ॥ गंधर्व उरग (नाग) यक्षोंकी सुन्दर स्वरवाली स्त्रियां मंगल गीतको गाती वहां आई ॥ १३ ॥

इष्टगन्धप्रसूनौघैर्ववृषुस्ते घनाघनाः ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः प्रसेदुस्सर्व्वतो दिशः॥९॥परितस्सरितस्स्वच्छा भूतानां मानसैस्सह॥ तमोऽताम्यत्तु नितरां रजोऽपि विरजोऽभवत् ॥१०॥ सत्त्वास्सत्त्वसमायुक्ताःसुधावृष्टिर्बभूव वै ॥ कल्याणी सर्वथा वाणी प्राणिनः प्रियवत्यभूत् ॥११॥ रंभामुख्या अप्सरसो मङ्गलद्रव्यपाणयः ॥ विद्याधर्य्यश्च किन्नर्य्यस्तथामर्य्यस्सहस्रशः॥१२॥गन्धर्वो रगयक्षाणां सुमानियः शुभस्वराः॥गायन्त्यो मंगलं गीतन्तत्राजग्मुरनेकशः॥१३॥मारीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः॥ वसिष्ठः कश्यपोऽगस्त्यो विभाण्डो माण्डवीसुतः॥१४॥लोमशो रोमचरणो भरद्वाजोऽथ गौतमः॥भृगुस्तु गालवो गर्गो जातूकर्ण्यःपराशरः ॥१५॥ आपस्तम्बो याज्ञवल्क्यो दक्षवाल्मीकिमुद्गलाः ॥ शातातपश्च लिखितश्शिलादः शंख उञ्छभुक् ॥१६॥ जमदग्निश्च संवर्तो मतंगो भरतोंशुभान् ॥ व्यासः कात्यायनः कुत्सः शौनकस्सुश्रुतश्शुकः ॥१७॥ ऋष्यशृङ्गोऽथ दुर्व्वासाश्शुचिर्नारद तुम्बुरू ॥ उत्तंको वामदेवश्च पवनोऽसितदेवलौ ॥ १८ ॥

मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु; अंगिरा, वसिष्ठ कश्यप, अगस्त्य, विभाण्ड, माण्डवीका पुत्र ॥१४॥ लोमश, लोमचरण, भरद्वाज, गौतम, भृगु, गालव, गर्ग, जातूकर्ण्य, पराशर, ॥ १५ ॥ आपस्तम्ब, याज्ञवल्क्य, दक्ष, वाल्मीकि, मुद्गल, शातातप, लिखित, शिलाद, शंख, उच्छभुक् ॥ १६ ॥ जमदग्नि, संवर्त, मतंग, भरत, अंशुमान, व्यास; कात्यायन, कुत्स, शौनक, सुश्रुत, शुक, ॥ १७ ॥ ऋष्यशृंग, दुर्वासा, शुचि, नारद, तुम्बुरु, उत्तंक, वामदेव, पवन, असित, देवल ॥ १८ ॥

सालंकायन, हारीत, विश्वामित्र, भार्गव, मृकंड, अपने पुत्र सहित पर्वत, दारुक ॥ १९ ॥ धौम्य, उपमन्यु, वत्स आदि मुनि और मुनिकन्या उस पुत्रकी शान्तिके अर्थ प्रशंसा योग्य विश्वानरके आश्रम पर आये ॥ २० ॥ बृहस्पति सहित ब्रह्मा तथा विष्णु नन्दी और भृंगीगण सहित तथा पार्वती समेत शिवजी ॥ २१ ॥ महेन्द्र आदि देवता तथा पातालवासी नाग अनेक प्रकारके रत्न आदि लिये नदियों सहित समुद्र ॥२२॥ और अनेक स्थावर पर्वतादि, जंगमरूप धरके आये, उस महोत्सवमें विना समयके भी चांदनी सी होगई ॥ २३ ॥ और उस बालकका जात

सालंकायनहारीतौ विश्वामित्रोऽथ भार्गवः ॥ मृकण्डस्सह पुत्रेणपर्व्वतो दारुकस्तथा॥१९॥धौम्योपमन्युवत्साद्या मुनयो मुनिकन्यकाः॥तच्छान्त्यर्थं समाजग्मुर्धन्यं विश्वानराश्रमम्॥२०॥ब्रह्मावृहस्पतियुतो देवो गरुडवाहनः ॥ नन्दिभृङ्गि समायुक्तो गौर्य्यासह वृषध्वजः ॥ २१ ॥ महेन्द्रमुख्या गीर्वाणा नागाः पातालवासिनः ॥ रत्नान्यादाय बहुशस्ससरित्का महाब्धयः ॥२२॥ स्थावरा जंगमं रूपं धृत्वायातास्सहस्रशः ॥ महामहोत्सवे तस्मिन्बभूवाकालकौमुदी ॥ २३ ॥ जातकर्म स्वयं तस्य कृतवान्विधिरानतः ॥ श्रुतिं विचार्य्य तद्रूपन्नाम्ना गृहपतिस्त्वयम् ॥२४॥ इतिनाम ददौ तस्मै देयमेकादशेऽहनि ॥ नामकर्मविधानेन तदर्थश्रुतिमुच्चरन् ॥ २५ ॥ चतुर्निगममन्त्रोक्तैराशीर्भिरभिनन्द्य च ॥ समयाद्धंसमारुह्य सर्वेषाञ्च पितामहः ॥२६॥ कृत्वा बालोचितां रक्षां लौकिकीं गतिमाश्रितः ॥ आरुह्य यानं स्वन्धाम हरोऽपिहरिणा ययौ॥२७॥अहो रूप महो तेजस्त्वहो सर्वांगलक्षणम् ॥ अहो शुचिष्मती भाग्यमाविरासीत्स्वयं हरः ॥ २८ ॥

कर्म संस्कार स्वयं ब्रह्माजीने किया श्रुतिको विचारकर उसके रूपके अनुसार उसका नाम गृहपति ॥ २४ ॥ ग्यारहवें दिन रक्खा, और नाम कर्म संस्कारके विधानसे श्रुतियोंका उच्चारण करके ॥ २५ ॥ चार वेदोंके मतसे आशीर्वाद देकर हंसपर चढकर सबके पितामह ब्रह्माजी ॥ २६ ॥ लौकिक गति (लोकाचार) का आश्रय करके बालककी उचित रक्षाको कर, शिवजी भी विष्णुके सहित अपने २ बाहनोंपर चढ अपने २ धामको गये ॥ २७ ॥ अहो ! कैसा रूप कैसा तेज कैसा सब अंगका लक्षण, कैसी भाग्यवती शुचिष्मती है, जिसके साक्षात् शिवजी

प्रगट हुये ॥ २८ ॥ अथवा शिवभक्त पुरुषोंमें क्या ? यह आश्चर्यकी बात है कि उन भक्तोंसे अर्चित रुद्र स्वयं प्रगट होगये ॥ २९ ॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए वे परस्पर प्रसन्न चित्त हुए सब विश्वानरसे पूँछकर जहांसे आये वहां चले गये ॥ ३० ॥ इस कारण सब गृहस्थाश्रमवासी पुत्रको चाहते हैं, पुत्रसे लोकोंको जीतता है यह सनातनी श्रुति है ॥ ३१ ॥ विना पुत्रवालेका घर सूना है, तथा विना पुत्र वालेका अर्चन करना वृथा है, अपुत्रका तप खंडित है अपुत्रसे घर नहीं पवित्र होता है ॥ ३२ ॥ पुत्रसे बढकर कोई लाभ नहीं, न पुत्रसे अधिक सुख और न पुत्रसे अधिक मित्र इस लोकमें न पर लोकमें है ॥ ३३ ॥ चौथे महीनेमें पिताने निष्क्रमण संस्कार किया और छठे महीनेमें

अथवा किमिदं चित्रं शर्वभक्तजनेष्वहो॥स्वयमाविरभूद्रुद्रोययो रुद्रस्तदर्चितः॥२९॥इति स्तुवन्तस्तेन्योन्यं सम्प्रहृष्टतनूरुहः॥ विश्वानरं समापृच्छ्य जग्मुःसर्वे यथागतम्॥३०॥अतः पुत्रं समीहन्ते गृहस्थाश्रमवासिनः॥पुत्रेण लोकाञ्जयति श्रुतिरेषा सनातनी॥३१॥अपुत्रस्य गृहं शून्यमपुत्रस्यार्जनं वृथा॥अपुत्रस्य तपश्छिन्नं नो पवित्रत्यपुत्रतः॥३२॥न पुत्रात्परमो लाभो न पुत्रात्परमं सुखम्॥ न पुत्रात्परमं मित्रम्परत्रेह च कुत्रचित्॥३३॥निष्क्रमोऽथ चतुर्थेऽस्य मासि पित्रा कृतो गृहात्॥ अन्नप्राशनमब्दार्द्धे चूडार्द्धे चार्थवत्कृता॥३४॥कर्णवेधन्ततःकृत्वा श्रवणर्क्षे स कर्मवित्॥ब्रह्मतेजोभिवृद्ध्यर्थं पञ्चमेऽब्दे व्रतन्ददौ॥३५॥उपाकर्म ततः कृत्वा वेदानध्यापयत्सुधीः॥ अब्दं वेदान्स विधिनाऽध्यैष्ट सांगपदक्रमान्॥ ३६ ॥ विद्याजातं समस्तं च साक्षिमात्रं गुरोर्मुखात्॥ विनयादिगुणानाविष्कुर्वञ्जग्राह शक्तिमान्॥३७॥ ततोऽथ नवमे वर्षे पित्रोश्शुश्रूषणे रतम्॥ वैश्वानरं गृहपतिं द्रष्टुमायाच्च नारदः॥ ३८ ॥ विश्वानरोटजम्प्राप्य देवर्षिस्तं तु कौतुकी॥ अपृच्छत्कुशलन्तत्र गृहीतार्घासनः क्रमात्॥ ३९ ॥

अन्न प्राशन व चूडाकर्म संस्कार कर दिया ॥ ३४ ॥ पश्चात् उस कर्मकांडी पिताने श्रवण नक्षत्रमें कर्णवेध संस्कार किया, ब्रह्म तेजकी वृद्धिके अर्थ पांचवें वर्षमें यज्ञोपवीतव्रत दिया ॥ ३५ ॥ और उपाकर्म करके वेदोंको पढाया, एक वर्षमें विधिपूर्वक सांग पदक्रमपूर्वक वेदोंको ॥ ३६ ॥ तथा सम्पूर्ण विद्याओंको साक्षीमात्रहो गुरुके मुखसे; विनय भक्ति आदि गुणोंको प्रकाशित करते हुये, ग्रहण किया ॥ ३७ ॥ तब नवें वर्षमें माता पिताकी सेवामें तत्पर हुए विश्वानरके पुत्र गृहपतिको देखनेके निमित्त नारदजी आये ॥ ३८ ॥ कौतुकी देवर्षि

नारदजीने उस वैश्वानरकी पर्णशालामें प्राप्त होकर क्रमसे आधा आसन ग्रहणकर कुशल पूंछी ॥ ३९ ॥ और उसके सन्मुख उसके भाग्यको और पुत्रके धर्मको शिवके चरण कमलोंका स्मरण करके विश्वानरसे वर्णन किया ॥ ४० ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार नारदजीके कहने पर वह बालक माता पिताकी आज्ञाको पाकर नारदजीको प्रणाम करके भक्तिपूर्वक बैठ गया ॥ ४१ ॥ नारदजीने कहा, हे वैश्वानर ! आओ मेरी गोदमें बैठो मैं तुम्हारे लक्षणोंकी परीक्षा करता हूं दाहिने हाथको दिखाओ ॥ ४२ ॥ तब नारदजीने तालु जिह्वा आदि सब अङ्ग देख कर शिवकी प्रेरणासे विश्वानरसे कहा ॥ ४३ ॥ नारदजी बोले, हे मुने ! विश्वानर सुनो पुत्रके लक्षण आदरसे कहता हूं सब अंगोंमें शुभ लक्ष

ततः सर्वं च तद्भाग्यं पुत्रधर्मं च सम्मुखे ॥ वैश्वानरं समवदत्स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥४०॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तो मुनिना बालः पित्रोराज्ञामवाप्य सः ॥ प्रणम्य नारदं श्रीमान् भक्त्या प्रह्व उपाविशत् ॥४१॥ वैश्वानर समभ्येहि ममोत्संगे निषीद भोः ॥ लक्षणानि परीक्षेऽहं पाणिन्दर्शय दक्षिणम् ॥४२॥ ततो दृष्ट्वा तु सर्वं हि तालुजिह्वादि नारदः ॥ विश्वानरं समवदच्छिवप्रेरणया सुधीः ॥४३॥ नारद उवाच ॥ विश्वानर मुने वच्मि शृणु पुत्रांकमादरात् ॥ सर्वांगस्वंकवान्पुत्रो महालक्षणवानयम् ॥४४॥ किन्तु सर्वगुणोपेतं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ सम्पूर्णनिर्मलकलं पालयेद्विधुवद्विधिः ॥४५॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयस्त्वसौ शिशुः ॥ गुणोऽपि दोषतां याति वक्रीभूते विधातरि ॥४६॥ शंकेऽस्य द्वादशे मासि प्रत्यूहो विद्युदग्नितः ॥ इत्युक्त्वा नारदोऽगच्छद्देवलोकं यथागतम् ॥४७॥ इतिश्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां गृहपत्यवतारोपाख्यानेगृहपत्यवतारवर्णनंनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

णवाला यह पुत्र है ॥ ४४ ॥ सब गुणोंसे पूर्ण, सब लक्षणोंसे युक्त, सम्पूर्ण निर्मल कला सहित इसको ब्रह्माजी चन्द्रमाके समान पालन करेंगे ॥ ४५ ॥ अतः सब यत्नोंसहित इस बालककी रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि विधाताके टेढे होनेपर गुण भी दोषपनेको प्राप्त होते हैं ॥ ४६ ॥ बारहवें महीनेमें इसको बिजली और अग्निसे भय है, यह कहकर नारदजी जैसे आये थे वैसे देवलोकको चले गये ॥ ४७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां तृ० श० रु० गृहपत्यवतारोपाख्याने गृहपत्यवतारवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

नन्दीश्वर बोले, विश्वानरने अपनी स्त्री सहित नारदजीका वचन सुन ऐसा दुःख माना कि मानो अति कठिन वज्र पात होगया हो ॥ १ ॥ हा शोकसे मैं मारा गया ऐसे वचन कहकर हृदयको ताडन किया, पुत्रके शोकसे व्याकुल हो बड़ी मूर्च्छाको प्राप्त हुआ ॥ २॥ शुचिष्मती भी दुःखसे व्याकुल हो महारुदन करती हुई बडे शब्दसे हाहाकार कर व्याकुल हुई ॥ ३ ॥ विश्वानर भी इस प्रकार दुःखके शब्दको सुन मोहको त्याग उठकर बोला, यह क्या हुआ क्या हुआ इस प्रकार ऊंचे स्वरसे कहने लगा कि वह बाहर स्थित प्राणोंका प्राण सम्पूर्ण इंद्रियोंका स्वामी मेरा पुत्र गृहपति कहां है ॥ ४ ॥ तब अपने पिताको महाशोकमें व्याकुल देख शंकरके अंशसे उत्पन्न

नन्दीश्वर उवाच॥विश्वानरस्सपत्नीकस्तच्छ्रुत्वा नारदेरितम् ॥ तदेवम्मन्यमानोभूद्वज्रपातं सुदारुणम् ॥ १॥ हा हतोस्मीति वचसा हृदयं समताडयत् ॥ मूर्च्छामवाप महतीं पुत्रशोकसमाकुलः ॥ २ ॥ शुचिष्मत्यपि दुःखार्त्ता रुरोदातीव दुस्सहम् ॥ अतिस्वरेणहारावैरत्यन्तं व्याकुलेन्द्रिया ॥ ३ ॥ श्रुत्वार्त्तनादमिति विश्वनरोपि मोहं हित्वोत्थितः किमिति किंत्विति किं किमेतत् ॥ उच्चैर्वदन् गृहपतिः क्व स मे बहिस्थः प्राणोन्तरात्मनिलयस्सकलेंद्रियेशः ॥ ४ ॥ ततो दृष्ट्वा स पितरौ बहुशोकसमावृतौ ॥ स्मित्वोवाच गृहपतिस्सबालश्शंकरांशजः ॥५॥ गृहपति रुवाच ॥ हे मातस्तात किं जातं कारणन्तद्वदाधुना ॥ किमर्थं रुदितोऽत्यर्थं त्रासस्ताद्दक्कुतोहि वाम् ॥ ६ ॥ न मां कृतवपुस्त्राणम्भवच्चरणरेणुभिः ॥ कालः कलयितुं शक्तो वराकीं चिञ्चलाल्पिका ॥ ७ ॥ प्रतिज्ञां शृणुतान्तातौ यदि वान्तनयो ह्यहम् ॥ करिष्येहं तथा येन मृत्युस्त्रस्तो भविष्यति ॥ ८॥ मृत्युंजयं समाराध्य सर्व्वज्ञं सर्वदं सताम् ॥ जपिष्यामि महाकालं सत्यं तातौ वदाम्यहम् ॥ ९ ॥

हुआ वह गृहपति हँसकर बोला ॥ ५ ॥ गृहपति बोला हे माता ! पिता ! क्या हुआ सो कारण बताओ आप किस लिये रोते हो ऐसा भय तुम दोनोंको कहांसे प्राप्त हुआ है ॥ ६ ॥ आपकी चरणकी धूलिसे मुझको शरीर धारण किये काल भी मारनेको समर्थ नहीं है और विघ्न क्या दुःख दे सकता है ॥ ७ ॥ हे माता पिता ! मेरी प्रतिज्ञाको सुनों यदि मैं तुम्हारा पुत्र हूं तो ऐसा करूंगा कि जिससे मृत्युसे रक्षा होगी ॥ ८ ॥ मैं मृत्युके जीतनेवाले मंत्रको सर्वज्ञ सत्पुरुषोंको सब कुछ देनेवाले महाकालरूप

शिवकी आराधना करके जपूंगा ॥ ९ ॥ नन्दीश्वर बोले इस प्रकार उसका वचन सुन संतप्त हुये वे दोनों स्त्री पुरुष विना समय अमृतकी वर्षासे दुःख रहित हो बोले ॥ १० ॥ द्विज स्त्री पुरुष बोले, हे पुत्र ! फिर कहो, फिर तो कहो कैसे हैं, काल भी मारनेको समर्थ नहीं फिर वह तुच्छ बिजली तो क्या है ॥ ११ ॥ हम दोनोंके दुःख दूर करनेके लिये तुमने बडा उपाय कहा, मृत्युंजय नामक शिवकी आराधनारूप लक्षणवाला उपाय है ॥ १२ ॥ उनके समान कोई नहीं और न उन शंभुसे परे कोई है, वे मनोरथके मार्गको प्रगट करनेवाले तथा पाप हरण करनेवाले हैं ॥ १३ ॥ हे तात ! क्या यह पहले तुमने नहीं सुना कि पहले श्वेतकेतु कालपाशसे बाँधा गया और शिवजीने रक्षा की

नन्दीश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य जारितौ द्विजदम्पती ॥ अकालमृतवर्षौघैर्गततापौ तदोचतुः ॥ १० ॥ द्विजदम्पती ऊचतुः ॥ पुनर्ब्रूहि पुनर्ब्रूहि कीदृक्कीदृक् पुनर्वद॥कालः कलयितुन्नालं वराकी चञ्चलास्ति का॥११॥ आवयोस्तापनाशाय महोपायस्त्वये रितः ॥ मृत्युंजयाख्यदेवस्य समाराधनलक्षणः॥१२॥तद्वच्च शरणं शम्भोर्नातः परतरं हि तत्॥मनोरथपथातीत कारिणः पापहारिणः ॥१३॥ किन्न श्रुतन्त्वया तात श्वेतकेतुं यथा पुरा ॥ पाशितं कालपाशेन ररक्ष त्रिपुरान्तकः ॥१४॥ शिलादतनयं मृत्युग्रस्तमष्टाब्द मात्रकम् ॥ शिवो निजजनञ्चक्रे नन्दिनं विश्वनंदिनम् ॥ १५ ॥ क्षीरोदमथनोद्भूतं प्रलयानलसन्निभम् ॥ पीत्वा हलाहलं घोरमरक्षद्भुवनत्रयम् ॥ १६ ॥ जलंधरं महादर्प हृतत्रैलोक्यसम्पदम् ॥ रुचिरांगुष्ठरेखोत्थ चक्रेण निजघान यः ॥ १७ ॥ य एकेषु निपातोत्थज्वलनैस्त्रिपुरम्पुरा ॥ त्रैलोक्यैश्वर्यसम्मूढं शोषयामास भानुना ॥ १८ ॥

॥ १४ ॥ विश्वको आनन्द देनेवाले नन्दी नामक शिलादके पुत्रको मृत्यु ग्रसित देख शिवने अपना जन किया ॥ १५ ॥ क्षीर सागरके मथनेसे उत्पन्न हुई प्रलय कालकी अग्निके समान घोर हलाहल विषको पान करके तीनों लोकोंकी रक्षा की ॥ १६ ॥ और जिन शिवने बडे अहंकारी त्रिलोकीकी संपदा हरण करनेवाले जलन्धर दैत्यको रुचिर अंगूठेकी रेखासे प्रेरणा किये हुए चक्रसे मारा ॥ १७ ॥ जिन्होंने एक छूटे बाणसे उत्पन्न अग्निसे त्रिलोकीके ऐश्वर्यको छीननेवाले त्रिपुरासुरको भस्म किया ॥ १८ ॥

त्रिलोकीके विजय करनेवाले कामदेवको जिन्होंने दृष्टिनिक्षेप मात्रसे अज आदिके देखनेपर भी अनंग पदवी प्राप्त कराई ॥ १९ ॥ हे पुत्र ! उन ब्रह्मा आदिके एक मात्र कर्ता मेघ वाहनवाले अविनाशी विश्वकी रक्षारूप मणि शिवकी शरणमें जाओ ॥ २० ॥ नन्दीश्वर बोले, तब वह गृहपति अपने माता पिताकी आज्ञा पाकर उनके चरणोंको वन्दना करके प्रदक्षिणा करके बहुत धीरज देकर चला गया ॥ २१ ॥ ब्रह्मा तथा नारायण आदिको भी दुष्प्राप्य तीनों प्रकारके संताप हरण करनेवाली विश्वेश (शिव) से पालन की हुई काशीजीमें आया ॥ २२ ॥ जो काशी नगरी गंगाजीसे कंठरूप भूमिमें हारयष्टिके समान शोभायमान तथा अद्भुत गुणवती पार्वतीजीसे विराजमान है ॥ २३ ॥ वह गृहपति

कामं दृष्टिनिपातेन त्रैलोक्यविजयोर्जितम् ॥ निनायानंगपदवीं वीक्ष्यमाणेष्वजादिषु ॥१९॥तम्ब्रह्माद्यैककर्तारम्मेघवाहनमच्युतम् ॥ प्रयाहि पुत्र शरणं विश्वरक्षामणिं शिवम् ॥२०॥नन्दीश्वर उवाच ॥पित्रोरनुज्ञाम्प्राप्येति प्रणम्य चरणौ तयोः ॥ प्रादक्षिण्यमुपावृत्य बह्वाश्वास्य विनिर्ययौ ॥२१॥सम्प्राप्य काशीं दुष्प्रापाम्ब्रह्मनारायणादिभिः ॥ महासंवर्त्तसन्तापहन्त्रीं विश्वेशपालिताम् ॥ २२ ॥स्वर्धुन्या हारयष्ट्येव राजितां कण्ठभूमिषु ॥ विचित्रगुणशालिन्या हरपत्न्या विराजिताम् ॥२३॥ तत्र प्राप्य स विप्रेशःप्राग्ययौ मणिकर्णिकाम् ॥ तत्र स्नात्वा विधानेन दृष्ट्वा विश्वेश्वरम्प्रभुम्॥२४॥साञ्जलिर्नतशीर्षोऽसौ महानन्दान्वितस्सुधीः ॥ त्रैलोक्यप्राणसन्त्राणकारिणम्प्रणनाम ह ॥२५॥आलोक्यालोक्य तल्लिंगं तुतोष हृदये मुहुः ॥ परमानंदकंदाढ्यं स्फुटमेतन्न संशयः ॥२६॥ अहो न मत्तो धन्योस्ति त्रैलोक्ये सचराचरे ॥यदद्राक्षिषमद्याहं श्रीमद्विश्वेश्वरं विभुम् ॥ २७ ॥

उस काशीजीमें आय पहले मणिकर्णिकाको गया, वहां विधिपूर्वक स्नान करके ॥ २४ ॥ अंजलि बांध सिर झुकाये बडा आनन्दित हुआ, उसने वह तीनों लोकोंके प्राणोंकी रक्षा करनेवाले शिवको नमस्कार किया ॥ २५ ॥ उस लिंगको बारंबार देख २ कर हृदयमें बडा संतुष्ट हुआ जो कि परम आनन्द कन्दरूप साक्षात् प्रकाशित है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २६ ॥ अहो ! चर अचररूप त्रिलोकीमें मुझसे अधिक कोई धन्य नहीं है जो आज विश्वेश्वर प्रभुका मैंने दर्शन किया ॥ २७ ॥

मेरे भाग्यके उदय होनेके लिये नारद महर्षिने पहले जो कहा सो मैं कृतकृत्य हूं ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर बोले, कि आनन्दरूपी अमृतरससे पारणाकर शुभ दिनमें सबके हित करनेवाले लिंगकी स्थापना करके ॥ २९ ॥ उन घोर नियमोंको ग्रहण किया जो अकृतात्माओंको अति कठिन हैं, एकसौ आठ गंगाजलके घडोंसे ॥ ३० ॥ वस्त्रसे छने पवित्र जलवाले घटोंसे पवित्र हो प्रतिदिन शिवको स्नान कराके नित्य नीले कमलोंकी मालाको समर्पण करता था ॥ ३१ ॥ एकसहस्र आठ फूलोंसे बनाई मालाको चढाय पक्षमें अथवा महीनेमें कन्द मूल फल खाकर ॥ ३२ ॥ और छह महीनेमें सूखे पत्ते खाकर वह धीरव्रत करता हुआ, और छह महीने पवनका भक्षण करके तथा छह महीने जलकी बूंद

मम भाग्योदयायैव नारदेन महर्षिणा ॥ पुरागत्य तथोक्तं यत्कृतकृत्योस्म्यहन्ततः ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर उवाच॥ इत्यानन्दामृतरसैर्विधाय स हि पारणम्॥ ततश्शुभेह्नि संस्थाप्य लिंगं सर्व्वहितप्रदम् ॥२९॥जग्राह नियमान्घोरान् दुष्करानकृतात्मभिः ॥ अष्टोत्तरशतैः कुम्भैः पूर्णैर्गंगाम्भसा शुभैः ॥ ३० ॥ संस्नाप्य वाससा पूतैः पूतात्मा प्रत्यहं शिवम्॥ नीलोत्पलमयीम्मालां समर्पयतिसोऽन्वहम् ॥३१॥ अष्टाधिकसहस्रैस्तु सुमनोभिर्विनिर्मिताम् ॥ स पक्षे वाथ वा मासे कन्दमूलफलाशनः ॥३२ ॥ शीर्णपर्णाशनैर्धीरः षण्मासं सम्बभूव सः ॥ षण्मासं वायुभक्षोऽभूत्षण्मासं जल बिन्दुभुक् ॥३३॥ एवं वर्षवयस्तस्य व्यतिक्रान्तं महात्मनः ॥ शिवैकमनसो विप्रास्तप्यमानस्य नारद ॥३४॥ जन्मतो द्वादशे वर्षे तद्वचो नारदेरितम् ॥ सत्यं करिष्यन्निव तमभ्यगात्कुलिशायुधः ॥३५॥ उवाच च वरं ब्रूहि दद्मि त्वन्मनसि स्थितम् ॥अहं शतक्रतुर्विप्र प्रसन्नोस्मि शुभव्रतैः ॥ ॥ ३६ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्याकर्ण्य महेन्द्रस्य वाक्यम्मुनिकुमारकः ॥उवाच मधुरन्धीरः कीर्तयन्मधुराक्षरम् ॥ ३७ ॥

पानकर तप करने लगा ॥ ३३ ॥ इस प्रकार उस महात्माका एक वर्ष बीता, केवल शिवजीकोही चित्तमें धारणकर तप करने लगा ॥ ३४ ॥ जन्मसे बारहवें वर्षमें नारदके वचनको सत्य करनेको वज्रधारी इन्द्र उसके समीप गये ॥ ३५ ॥ और बोले वर मांग जो तुम्हारे मनमें स्थित है, हे विप्र ! मैं इन्द्र शुभ व्रतोंसे प्रसन्न हूं ॥ ३६ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार तह मुनिका पुत्र इन्द्रके वचन सुन मधुर अक्षरोंसे कीर्तन करता हुआ मधुर धीर स्वरसे बोला ॥ ३७ ॥

गृहपति बोला, हे वृत्रासुरके शत्रु ! हे इन्द्रके कुलिशपाणि ! मैं आपको जानता हूं, आपसे वरको नहीं चाहता मुझे शिवजी वर देनेवाले हैं ॥ ३८ ॥ इन्द्र बोला, हे शिशो ! मुझसे अधिक शंकर नहीं हैं, मैं देवताओंका स्वामी हूं तुम लडकपनको छोडकर मुझसे वर मांगो ॥३९॥ गृहपति बोला, हे अहल्यापते ! हे साधो ! हे इन्द्र ! आप जाइये मैं शिवजीसे अतिरिक्त किसी देवतासे नहीं प्रार्थना करता हूं ॥ ४० ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार वचन सुन क्रोधसे लाल नेत्रवाला इन्द्र घोर वज्रको निकालकर बालकको डराने लगा ॥ ४१ ॥ वह बालक वज्र

गृहपतिरुवाच ॥ मघवन् वृत्रशत्रो त्वां जाने कुलिशपाणिनम् ॥ नाहं वृणे वरन्त्वत्तश्शंकरो वरदोऽस्ति मे ॥ ३८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ न मत्तश्शङ्करस्त्वन्यो देवदेवोऽस्म्यहं शिशो ॥ विहाय बालिशत्वं त्वं वरं याचस्व मा चिरम् ॥ ३९ ॥ गृहपतिरुवाच ॥ गच्छाहल्यापतेऽसाधो गोत्रारे पाकशासन ॥ न प्रार्थये पशुपतेरन्यं देवान्तरं स्फुटम् ॥ ४० ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा क्रोध संरक्तलोचनः ॥ उद्यम्य कुलिशं घोरम्भीषयामास बालकम् ॥ ४१ ॥ स दृष्ट्वा बालको वज्रं विद्युज्ज्वाला समाकुलम् ॥ स्मरन्नारद वाक्यं च मुमूर्च्छ भयविह्वलः ॥ ४२ ॥ अथ गौरीपतिश्शम्भु राविरासीत्तपोनुदः ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रन्ते स्पर्शैस्संजीवयन्निव ॥ ४३ ॥ उन्मील्य नेत्रकमले सुप्ते इव दिनक्षये ॥ अपश्यदग्रे चोत्थाय शम्भुमर्कशताधिकम् ॥ ४४ ॥ भालेलोचनमालोक्य कण्ठेकालंवृषध्वजम् ॥ वामाङ्गसन्निविष्टाद्रितनयं चन्द्रशेखरम् ॥ ४५ ॥

को देखकर जो बिजलीकी अग्निसे व्याप्त था. और नारदजीके वाक्यको स्मरण करता हुआ भयसे व्याकुल हो मूर्च्छित हो गया ॥ ४२ ॥ तब अन्धकारको दूर करनेवाले पार्वतीके पति साक्षात् शिवजी प्रगट हुए और अपने हाथसे स्पर्श करके संजीवन करते हुए बोले हे पुत्र ! उठो उठो ॥ ४३ ॥ तब गृहपतिने दिनके बीतजाने पर मानों सोनेसे उठ कर नेत्रोंको खोलकर देखा कि सैंकडों सूर्योंके समान प्रकाशमान शंकर स्थित हैं ॥ ४४ ॥ माथेपर शोभायमान नेत्र, कण्ठमें काल, बैलपर चढे, बाईं ओर स्थित पार्वती, माथेपर शोभायमान चन्द्र ॥४५॥

जटाजूटसे शोभायमान, त्रिशूल पिनाक धनुष धारी, चमकते हुए कपूरके समान गौर शरीरवाले हाथीके चर्मको धारे ॥ ४६ ॥ गुरुवाक्य तथा आगम प्रमाणसे ऐसे रूपवालेको महादेव जानकर हर्षके आंसुओंसे रुके कण्ठवाले (गद्गदवाणीसे) रोमांचित शरीर हो ॥ ४७ ॥ क्षणमात्रमें पर्वत चित्रकूट और त्रिपुत्रके समान अचल होकर स्थिर होगया ॥ ४८ ॥ जब वह न स्तुति करनेको और न नमस्कार करनेको तथा न कुछ जतानेको समर्थ हुआ तो शिवजी उससे हँसकर बोले, ॥ ४९ ॥ शिवजी बोले, हे शिशो ! गृहपते ! मैंने तुमको वज्रहाथमें लिये हुए इन्द्रसे डरा जाना, सो अब भय मत करो यह मैंने तुम्हारी परीक्षा की थी ॥ ५० ॥ मेरे भक्तको न इन्द्र न काल न वज्र

कपर्दिनं विराजन्तं त्रिशूलाजगवायुधम् ॥ स्फुरत्कर्पूरगौरांगं परिणद्धगजाजिनम् ॥४६॥ परिज्ञाय महादेवं गुरुवाक्यत आगमात्॥ हर्षबाष्पाकुलासन्नकण्ठरोमाञ्चकञ्चुकः ॥४७॥ क्षणं च गिरिवत्तस्थौ चित्रकूटत्रिपुत्रकः ॥ यथा तथा सुसम्पन्नो विस्मृत्यात्मान मेव च ॥ ४८ ॥ न स्तोतुं न नमस्कर्तुं किञ्चिद्विज्ञप्तिमेव च ॥ यदा स न शशाकालं तदा स्मित्वाह शङ्करः ॥ ४९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शिशो गृहपते शक्राद्वज्रोद्यतकरादहो ॥ ज्ञात भीतोऽसि माभैषीर्जिज्ञासा ते मया कृता ॥ ५० ॥ मम भक्तस्य नो शक्रो न वज्रं चान्तकोऽपि च ॥ प्रभवेदिन्द्ररूपेण मयैव त्वम्बिभीषितः ॥ ५१ ॥ वरन्ददामि ते भद्र त्वमग्निपदभाग्भव ॥ सर्वेषामेव देवानां वरदस्त्वं भविष्यसि ॥ ५२ ॥ सर्वेषामेव भूतानां त्वमग्नेऽन्तश्चरो भव॥ धर्मराजेन्द्रयोर्मध्ये दिगीशो राज्यमा प्नुहि ॥ ५३ ॥ त्वयेदं स्थापितंलिंगंतव नाम्ना भविष्यति ॥ अग्नीश्वर इति ख्यातं सर्वतेजोविबृंहणम् ॥ ५४ ॥ अग्नीश्वरस्य भक्ता नां न भयं विद्युदग्निभिः ॥ अग्निमांद्यभयं नैव नाकालमरणं क्वचित् ॥ ५५ ॥

मारनेको समर्थ हैं मैंनेही इन्द्ररूप धारण करके तुमको भय दिखाया था ॥ ५१ ॥ हे भद्र ! मैं तुमको वरदान देता हूं कि तू अग्निपदका भागी और सम्पूर्ण देवताओंको वर देनेवाला होगा ॥५२॥ हे अग्नि ! तू सब प्राणियोंका अन्तर्यामी हो, और धर्मराज तथा इन्द्रके मध्यमें दिशाओंका ईश्वर होकर राज्यको प्राप्त हो ॥ ५३ ॥ तूने यह लिंगस्थापन किया है, इस कारण तेरे नामसे यह अग्नीश्वर प्रसिद्ध होगा, और सब तेजोंका तिरस्कार करनेवाला होगा ॥ ५४ ॥ अग्नीश्वर महादेवके भक्तोंको बिजली तथा अग्निसे भय नहीं होता है, और न कहीं अकाल मृत्यु तथा

अजीर्णताका भय होता है ॥ ५५ ॥ मनुष्य काशीमें सब सम्पत्तियोंके देनेवाले अग्नीश्वर महादेवकी पूजा करके यदि काशीमें न भी मरे तो भी अग्नि लोकमें प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कह कर उसके भाई बन्धुओंको तथा माता पिताको बुला कर, उनके देखतेही अग्नीश्वरको दिशाओंके पतिके राज्यमें स्थापित करके उसही लिंगमें शिवजी प्रवेश कर गये॥५७॥इस प्रकार मैंने आपसे यह परमात्मा शंकरका गृहपति अग्निका अवतार वर्णन किया॥५८॥रमणीक सुख देनेवाली श्रेष्ठ प्रकाशवती चित्रहोत्रपुरी नामक नगरी है, वहां अग्नीश्वरके भक्त निवास करते हैं ॥५९॥ जो जितेन्द्रिय तथा दृढसत्त्ववाले पुरुष तथा सत्यसम्पन्न स्त्रियां अग्नीश्वरके स्थानमें प्रवेश करती हैं, वे सब अग्निके समान तेजस्वी होते हैं॥६०॥

अग्नीश्वरं समभ्यर्च्य काश्यां सर्वसमृद्धिदम् ॥ अन्यत्रापि मृतो दैवाद्वह्निलोके महीयते ॥५६॥नन्दीश्वर उवाच॥इत्युक्तानीय तद्बन्धून्पित्रोश्च परिपश्यतोः॥दिक्पतित्वेऽभिषिच्याग्निं तत्र लिंगे शिवोऽविशत्॥५७॥ इत्थमग्न्यवतारस्ते वर्णितो मे जनार्दनः ॥ नाम्नागृहपतिस्तात शंकरस्य परात्मनः ॥५८॥चित्रहोत्रपुरी रम्या सुखदार्चिष्मती वरा॥जातवेदसि ये भक्ता ते तत्र निवसन्ति वै ॥५९॥ अग्निप्रवेशं ये कुर्युर्दृढसत्त्वा जितेन्द्रियाः ॥ स्त्रियो वा सत्त्वसम्पन्नास्ते सर्वेप्यग्नितेजसः॥६०॥ अग्निहोत्ररता विप्राःस्था पिता ब्रह्मचारिणः ॥पञ्चाग्निवर्त्तिनोऽप्येवमग्निलोकेग्निवर्चसः॥६१॥शीते शीतापनुत्त्यै यस्त्वेधोभारान्प्रयच्छति ॥ कुर्य्यादग्नीष्टिकां वाथ स वसेदग्निसन्निधौ ॥ ६२ ॥ अनाथस्याग्निसंस्कारं यः कुर्य्याच्छ्रद्धयान्वितः ॥ अशक्तः प्रेरयेदन्यं सोग्निलोके महीयते ॥ ६३ ॥ अग्निरेको द्विजातीनां निश्श्रेयसकरः परः ॥ गुरुर्देवो व्रतं तीर्थं सर्वमग्निर्विनिश्चितम् ॥६४॥

अग्निहोत्रमें तत्पर ब्राह्मण तथा ब्रह्मचारी और इसी प्रकार पंचाग्नि तपनेवाले यह सब अग्निलोकमें अग्निके समान तेजस्वी होकर स्थित होते हैं ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य जाडोंमें शीतके दूर होनेके लिये ईंधनके बोझोंको दान करता है, अथवा ईंटोंसे अग्निकुंडको बनवाता है, वह अग्निलोकमें निवास करता है ॥ ६२ ॥ जो अनाथ प्रेतका अग्निसंस्कार श्रद्धासे करता है अथवा अशक्त होनेपर दूसरेसे करादेता है वह अग्निके लोकमें पूज्य होता है ॥ ६३ ॥ तीनों द्विजातियोंका एक अग्निही परम कल्याण करनेवाला है, तथा अग्निही, गुरु देवता व्रत तीर्थ है

जो कुछ है सब अग्निही है ऐसा निश्चय है ॥ ६४ ॥ सम्पूर्ण अपवित्र वस्तु भी अग्निके संगसे क्षणभरमें पवित्र हो जाती है, इस कारण वह पावक कही गई है ॥ ६५ ॥ यह अग्नि साक्षात् अन्तर्यामी रूपसे प्रगट है, और निश्चय शीघ्रही सुखानेवाली है, और कुक्षिमें मांस ग्रासोंको पकाती है, और स्त्रियोंकी पेशीको पकानेवाली नहीं है ॥ ६६ ॥ स्त्रियोंके शरीरमें तेजवाली दहनात्मिका शिवकी मूर्त्ति प्रत्यक्ष है, वही उत्पन्न करनेवाली विनाश करने वाली और पालन करनेवाली है, इसके विना क्या कुछ दीखता है ? ॥६७॥ यह साक्षात् शिवका तीसरा नेत्र है; और विचित्र अग्नि है अन्धकारसे व्याप्त हुए इस संसारमें इस अग्निके विना कौन प्रकाश करनेवाला है ? ॥६८॥ सर्व देवता आकाशमें स्थित हुए धूप,

अपावनानि सर्वाणि वह्निसंसर्गतः क्षणात्॥पावनानि भवन्त्येव तस्माद्यः पावकः स्मृतः॥६५॥ अन्तरात्मा ह्ययं साक्षान्निश्चयो ह्याशुशुक्षणिः॥ मांसग्रासान्पचेत्कुक्षौ स्त्रीणां नो मांसपेशिकाम् ॥६६॥ तैजसी शाम्भवी मूर्त्तिः प्रत्यक्षा दहनात्मिका ॥ कर्त्रीं हर्त्रीं पालयित्री विनैतां किं विलोक्यते॥६७॥चित्रभानुरयं साक्षान्नेत्रन्त्रिभुवनेशितुः॥ अन्धे तमोमये लोके विनैनं कः प्रकाशनः ॥६८॥ धूपप्रदीपनैवेद्यपयोदधिघृतैक्षवम् ॥ एतद्धुक्तं निषेवन्ते सर्वे दिवि दिवौकसः ॥६९॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां गृहपत्यवतारवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥ नन्दीश्वर उवाच॥ यक्षेश्वरावतारं च शृणु शंभोर्मुनीश्वर ॥ गर्विणं गर्वहन्तारं सताम्भक्तिविवर्द्धनम् ॥ १ ॥ पुरा देवाश्च दैत्याश्च पीयूषार्थम्महाबलाः ॥ क्षीरोदधिं ममन्थुस्ते सुकृत स्वार्थं सन्धयः ॥ २ ॥ मथ्यमानेऽमृते पूर्वं क्षीराब्धेस्सुरदानवैः ॥ अग्नेः समुत्थितं तस्माद्विषं कालानलप्रभम् ॥ ३ ॥

दीप, नैवेद्य, दूध, दही, घी, मिष्टान्न, यह सब अग्निमें हवन करनेपरही सेवन करते हैं ॥ ६९ ॥ इति श्रीशिवम० भाषाटीकायां तृ० ०श० रु० गृहपत्यवतारवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! अहंकारी तथा अभिमानी जनोंके अहंकार नष्ट करनेवाले तथा सत्पुरुषोंकी भक्ति बढानेवाले शिवजीके यक्षेश्वरावतारको सुनो ॥ १ ॥ पहले बडे बली देवता और दैत्य अपनी २ भलाई और स्वार्थमें तत्पर हो संधिकर अमृत निकालनेके अर्थ क्षीरसागरको मथने लगे ॥ २ ॥ देवता तथा दैत्योंसे अमृतके अर्थ क्षीरसागरके मथे जानेपर सबसे पहले उसमेंसे कालाग्निके समान अग्निसे प्रादुर्भूत विष निकला ॥ ३ ॥

हे तात ! उस विषको देख समस्त देवता तथा दैत्य भयभीत हुए और दौड़कर शीघ्र वे शिवजीकी शरणमें गये ॥ ४ ॥ विष्णुसहित मस्तकको झुकाये हुये सब देवता उन सब देवताओंके सिरमौर शिवको देखकर प्रणाम करके भक्तिसे स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥ तब भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले भगवान् शिवजीने वह महाघोर देवता दैत्यगणोंको पीडादेनेवाला विष पान किया ॥ ६ ॥ पान किये हुए उस कठिन विषको कंठमें धारण किया, इससे वह विभु शोभायमान तथा नीलकंठ नाम वाले हुये ॥ ७ ॥ तब देवता तथा दैत्योंने फिर उस समुद्रको मथा, वे सम्पूर्ण देवता शिवजीके अनुग्रहसे विषके दाहसे मुक्त हो गये ॥ ८ ॥ हे मुने ! फिर उसमेंसे अनेक रत्न निकले तो अमृत पदार्थ उन

तं दृष्ट्वा निखिला देवा दैत्याश्च भयविह्वलाः ॥ विद्रुत्य तरसा तात शंभोस्ते शरणं ययुः॥४॥ दृष्ट्वा तं शंकरं सर्वे सर्वदेवशिखामणिम् ॥ प्रणम्य तुष्टुवुर्भक्त्या साच्युता नतमस्तकाः ॥ ५ ॥ ततः प्रसन्नो भगवाञ्छङ्करो भक्तवत्सलः ॥ पपौ विषं महाघोरं सुरासुरगणार्दनम् ॥६॥ पीतं तं विषमं कण्ठे निदधे विषमुल्बणम् ॥ रेजे तेनाति स विभुर्नीलकण्ठोबभूव ह ॥ ७ ॥ ततः सुरासुरगणा ममन्थुः पुनरेव तम् ॥ विषदाहविनिर्मुक्ताः शिवानुग्रहतोऽखिलाः ॥८॥ तातो बहूनि रत्नानि निस्सृतानि ततो मुने ॥ अमृतं च पदार्थं हि सुरदानवयोर्मुने ॥९॥ तत्पपुः केवलन्देवा नासुराः कृपया हरेः ॥ ततो बभूव सुमहद्द्वन्द्वं तेषां मिथोऽकदम् ॥ १० ॥ द्वन्द्वयुद्धम्बभूवाथ देवदानवयोर्मुने ॥ तत्र राहुभयाच्चन्द्रो विद्रुद्राव तदार्दितः ॥११॥ जगाम सदनं शंभोः शरणम्भय विह्वलः ॥ सुप्रणम्य च तुष्टाव पाहिपाहीति संवदन् ॥ १२ ॥ ततस्सतामभयदः शंकरो भक्तवत्सलः ॥ दध्रे शिरसि चन्द्रं स विभुश्शरणमागतम् ॥१३॥ अथागतस्तदा राहुस्तुष्टाव सुप्रणम्य तम् ॥ शंकरं सकलाधीशं वाग्भिरिष्टाभिरादरात् ॥ १४ ॥

दोनोंमेंसे ॥ ९ ॥ केवल देवताओंनेही विष्णुकी कृपासे पिया, तब निकले हुए बडे २ रत्नोंके परस्पर बांट करनेके निमित्त ॥ १० ॥ हे मुने ! उन देवता और दैत्योंका बडा द्वंद्वयुद्ध हुआ, वहां राहुके भयसे चन्द्रमा पीडित होकर भागे ॥ ११ ॥ भयसे व्याकुल हो शिवके स्थानमें गये, और प्रणाम करके मेरी रक्षा करो रक्षा करो यह कहकर शिवकी स्तुति की ॥ १२ ॥ तब सत्पुरुषोंको अभय देनेवाले भक्तवत्सल विभु शिवने उस शरणमें आये चन्द्रमाको मस्तक पर धारण किया ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त राहु आया और उन सबके स्वामी

शिवको आदरपूर्वक प्रियवाणीसे प्रणाम करके उनकी स्तुति की ॥ १४ ॥ शिवने उसके मतको जानकर पहले विष्णुसे काटे हुये केतुसंज्ञक सिरोंको रुंडमालाके साथ गलेमें धारण किया ॥ १५ ॥ तब युद्धमें सब दैत्य देवताओंसे पराजित हुये महाबली सब देवता अमृत पीकर विजयको प्राप्त हुये ॥ १६ ॥ विष्णुसे आदि लेकर सब देवता अति अभिमानी हुये और शिवकी मायासे मोहित हो अपने २ बलकी सराहना करने लगे ॥ १७ ॥ हे मुने ! तब वह सर्वाधीश गर्वके नाश करनेवाले शिवजी यक्ष होकर शीघ्र वहां आये जहां सब देवता स्थित थे ॥ १८ ॥ तब यक्षपति शिवने विष्णु आदि देवताओंको देखकर अहंकार विनाश करनेको बडे अहंकारयुक्त मनसे कहा ॥ १९ ॥

शंभुस्तन्मतमाज्ञाय तच्छिरांस्यच्युतेन ह॥पुरा छिन्नानि वै केतुसंज्ञानि निदधे गले॥१५॥ततो युद्धेऽसुराः सर्वे देवैश्चैव पराजिताः॥ पीत्वाऽमृतं सुरास्सर्व्वे जयम्प्रापुर्महाबलाः॥१६॥विष्णुप्रभृतयःसर्व्वे बभूवुश्चातिगर्विताः॥बलानि चांकुरंतोन्तश्शिवमायाविमोहिताः॥१७॥ ततस्स शंकरो देवः सर्वाधीशोथ गर्वहा॥यक्षो भूत्वा जगामाशु यत्र देवाः स्थिता मुने॥१८॥ सर्वान्दृष्ट्वाच्युतमुखान्देवान्यक्षपतिस्स वै ॥ महागर्वाढ्यमनसा महेशाः प्राह गर्वहा॥१९॥ यक्षेश्वर उवाच॥किमर्थं संस्थिता यूयमत्र सर्वे सुरा मिथः॥ किमु काष्ठाखिलम्ब्रूत कारणं मेनुपृच्छते॥२०॥देवा ऊचुः ॥ अभूदत्र महान्देव रणः परमदारुणः॥असुरा नाशितास्सर्वेऽवशिष्टा विद्रुता गताः ॥२१॥ वयं सर्वे महावीरा दैत्यघ्ना बलवत्तराः ॥ अग्रेस्माकं कियन्तस्ते दैत्य क्षुद्रबलास्सदा ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषां सुराणां गर्वगर्भितम् ॥ गर्वहासौ महादेवो यक्षरूपो वचोऽब्रवीत् ॥ २३ ॥ यक्षेश्वर उवाच ॥ हे सुरा निखिला यूयं मद्वचश्शृणुतादरात् ॥ यथार्थं वच्मि नासत्यं सर्वगर्वापहारकम् ॥ २४ ॥

यक्षेश्वर बोले, तुम सब देवता आपसमें मिलकर किस कारण यहां स्थित हुये हो, सो सब ठीक २ कहो उसका कारण मैं पूँछता हूं ॥ २० ॥ देवता बोले, हे देव ! यहांपर बडा भयंकर युद्ध हुआ था सब दैत्य नष्ट हुये, शेष बचे हुये भागकर चले गये ॥ २१ ॥ हम सब बडे पराक्रमी तथा दैत्योंके मारनेवाले बडे बली हैं हमारे आगे वे तुच्छ बलवाले दैत्य क्षुद्र होनेसे क्या वस्तु हैं ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उन देवताओंका अहंकारसे भरा वचन सुनकर गर्वनाश करनेवाले यक्ष रूपधारी महादेव यह वचन बोले ॥ २३ ॥ यक्षेश्वर बोले,

कि हे सकल देवताओ ! तुम सब मेरे वचनोंको आदरसे सुनो, सबके गर्वको नाश करनेवाला यथार्थ वचन कहता हूं, असत्य नहीं कहता ॥ २४ ॥ इस विषयमें अभिमान मत करो, निर्माण करनेवाला तथा हरण करनेवाला स्वामी दूसरा है, उस महादेवको तुम भूल गये वृथा अपने बलको कहते हो ॥ २५ ॥ हे देवताओ ! यदि तुम्हारा वह घमंड है तो अपने बलकी परीक्षा करो कि मुझसे स्थापन किये इस (तृण) तिनकेको अपने उन अस्त्रोंसे काटो ॥ २६ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह कहकर सत्पुरुषोंको गति देनेवाले यक्षरूप महादेवने उन देवताओंके आगे एक तिनका फेंक दिया, और सब मद दूर किया ॥ २७ ॥ तब वीर अभिमानी विष्णुआदि सब देवताओंने पुरुषार्थ

गर्व्वमेनं न कुरुत कर्त्ता हर्त्ताऽपरः प्रभुः॥विस्मृताश्च महेशानं कथयध्वम्वृथाबलाः॥२५॥युष्माकञ्चेत्स हि मदो जानतां स्वबलम्महत्॥मत्स्थापितं तृणमिदं छिन्त स्वास्त्रैश्च तैस्सुराः ॥२६॥नन्दीश्वर उवाच॥इत्युक्त्वैकतृणन्तेषां निचिक्षेप पुरस्ततः॥ जह्रे सर्वमदं यक्षरूप ईशस्सतांगतिः ॥२७॥अथ सर्वे सुरा विष्णुप्रमुखा वीरमानिनः॥कृत्वा स्वपौरुषन्तत्र स्वायुधानि विचिक्षिपुः॥२८॥ तत्रासन् विफलान्याशु तान्यस्त्राणि दिवौकसाम्॥ शिवप्रभावतस्तेषां मूढगर्वापहारिणः ॥२९॥ अथासीत्तु नभोवाणी देवविस्मयहारिणी॥यक्षोऽयं शंकरो देवाः सर्वगर्वापहारकः॥३०॥ कर्ता हर्त्ता तथा भर्त्ताऽयमेव परमेश्वरः ॥एतद्बलेन बलिनो जीवाः सर्वेऽन्यथा न हि ॥३१॥ अस्य मायाप्रभावाद्वै मोहिताः स्वप्रभुं शिवम् ॥ मदतो बुबुधुर्नैवाद्यापि बोधतनुम्प्रभुम् ॥ ३२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा नभोवाणीं बुबुधुस्ते गतस्मयाः ॥ यक्षेश्वरम्प्रणेमुश्च तुष्टुवुश्च तमीश्वरम् ॥ ३३ ॥

करके उसके ऊपर अपने २ अस्त्र चलाये ॥ २८ ॥ देवताओंके प्रहार किये वे अस्त्र निष्फल होगये, उनमें गर्वके हरण करनेवाले शिवका प्रभाव पडा अर्थात् तृणको न काट सके॥२९॥ इसके उपरान्त देवताओंके विस्मयको दूर करनेवाली आकाश वाणी हुई कि यह यक्ष सब गर्वोंका विनाशक शंकर देव हैं ॥ ३० ॥ यह परमेश्वरही कर्ता विनाशकर्ता तथा पालनकर्ता हैं, इनके बलसे ही सम्पूर्ण जीव बली होते हैं और प्रकारसे नहीं ॥ ३१ ॥ इनकी मायाके प्रभावसे मोहित हुये तुमने अपने प्रभु शिवके शरीरको अबतकभी मदके कारण नहीं जाना ॥ ३२ ॥ नन्दीश्वर

बोले, इस प्रकार आकाश वाणीको सुनकर विस्मय रहित हुए उन देवताओंने उन ईश्वरको जाना, और यक्षेश्वरको प्रणामकर संतुष्ट किया ॥ ३३ ॥ देवता बोले, हे देवदेव ! हे महादेव ! सबके अभिमानको नाश करनेवाले ! हे यक्षेश्वर ! हे महालीलावाले ! हे प्रभो ! आपकी माया बडी अद्भुत है ॥ ३४ ॥ आप यक्षरूपधारी शिवकी मायासे अबतक मोहित हुए गर्वसहित वचन कहते हुए हम आपके आगे पृथक् हैं ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! अब तुम्हारीही कृपासे ज्ञान हुआ हे शंकर ! इस जगत्के कर्ता हर्ता तथा पालनकर्ता आपही हैं, दूसरा नहीं ॥ ३६ ॥ आप सब शक्तियोंके तथा सब जीवोंके प्रेरणा करनेवाले हो, तथा निवृत्ति करनेवाले सबके ईश परमात्मा अव्यय अद्वैत हो ॥ ३७ ॥ आपने यक्षेश्वरका

देवा ऊचुः ॥ देवदेव महादेव सर्वगर्वापहारक ॥ यक्षेश्वर महालील माया तेत्यद्भुता प्रभो ॥ ३४ ॥ मोहिता मायया द्यापि तव यक्षस्वरू पिणः ॥ सगर्वमभिभाषन्तस्त्वत्पुरो हि पृथङ्मयाः ॥ ३५ ॥ इदानीं ज्ञानमायातन्तवैव कृपया प्रभो ॥ कर्ता हर्ताच भर्ता च त्वमेवान्यो न शंकर ॥ ३६ ॥ त्वमेव सर्वशक्तीनां सर्वेषां हि प्रवर्तकः ॥ निवर्तकश्च सर्वेशः परमात्माव्ययोऽद्वयः ॥ ३७ ॥ यक्षेश्वरस्वरूपेण सर्वेषां नो मदो हृतः ॥ कृतो मन्यामहे तत्तेनुग्रहो हि कृपालुना ॥ ३८ ॥ अथो स यक्षनाथोऽ नुगृह्य वै सकलान् सुरान् ॥ विबोध्य विविधैर्वाक्यैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३९ ॥ इत्थं स वर्णितः शम्भोरवतारः सुखावहः ॥ यक्षेश्वराख्यस्सुखदस्सतान्तुष्टोऽभयंकरः ॥ ४० ॥ इदमाख्यानममलं सर्वगर्वापहारकम् ॥ सतां सुशान्तिदन्नित्यं भुक्ति मुक्तिप्रदं नृणाम् ॥ ४१ ॥

स्वरूप धारण करके हमारा अभिमान दूर किया, सो कृपालु आपका हम उपकार तथा अनुग्रह करना मानते हैं ॥ ३८ ॥ तब वह यक्षनाथ सब देवताओंको कृपापूर्वक अनेक वचनोंसे समझाकर वहांही अन्तर्धान हुए ॥ ३९ ॥ इस प्रकार सुख देनेवाला, यक्षेश्वर नामक, सत्पुरुषोंको सुखी करनेवाला, तथा संतुष्ट और अभय करनेवाला शिवका अवतार वर्णन किया ॥ ४० ॥ यह निर्मल इतिहास सबके अभिमानको नाश करनेवाला तथा सज्जनोंको शान्ति देनेवाला और नित्य मनुष्योंको भुक्ति और मुक्तिका देनेवाला है ॥ ४१ ॥

जो बुद्धिमान् पुरुष इसको भक्तिसे सुनता है, अथवा सुनाता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त होकर अन्तसमय परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां तृ० श० रु० यक्षेश्वरावतारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ हे मुने ! अब भक्तिसे उपासना कांडको सेवन करनेवाले महाकाल आदि दश संख्यक शिवके अवतारोंको सुनो ॥ १ ॥ उनमें पहला अवतार महाकाल नामक सत्पुरुषोंको भोग्य तथा मुक्तिका देनेवाला हुआ, और उसकी महाकाली शक्ति भक्तोंके इच्छित फलकी देनेवाली हुई ॥ २ ॥ और दूसरा तारक नामक अवतार तथा तारा नामकी शक्ति हुई, वे दोनों अपने सेवकोंको सुख देनेवाले और भुक्ति मुक्तिके दाता हैं ॥ ३ ॥ बाल नामक भुवनेशका तीसरा

य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा सुधीः पुमान् ॥ सर्वकामानवाप्नोति ततश्च लभते गतिम् ॥४२॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां यक्षेश्वरावतारवर्णनं नाम षोडशोध्यायः ॥१६॥ शृण्वथो गिरिशस्याद्यावतारान् दशसंख्यकान् ॥ महाकलमुखान् भक्त्योपास नाकाण्डसेवितान् ॥ १ ॥ तत्राद्यो हि महाकालो भुक्तिमुक्तिप्रदस्सताम् ॥शक्तिस्तत्रमहाकाली भक्तेप्सितफलप्रदा॥२॥तारनामा द्वितीयश्च तारा शक्तिस्तथैव सा ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदौ चोभौ स्वसेवकसुखप्रदौ ॥३॥ भुवनेशो हि बाला ह्वस्तृतीयः परिकी र्तितः ॥ भुवनेशी शिवा तत्र बालाह्वा सुखदा सताम् ॥४॥ श्रीविद्येशः षोडशाह्वः श्रीर्विद्या षोडशी शिवा ॥ चतुर्थो भक्त सुखदो भुक्तिमुक्ति फलप्रदः ॥ ५ ॥ पञ्चमो भैरवः ख्यातः सर्वदा भक्तकामदः ॥ भैरवी गिरिजा तत्र सदुपासककामदा ॥ ६ ॥ छिन्नमस्तकनामासौ शिवः षष्ठः प्रकीर्तितः ॥ भक्तकामप्रदा चैव गिरिजा छिन्नमतस्तका ॥ ७ ॥

अवतार है, उसकी बाला भुवनेशी नामक शक्ति सत्पुरुषोंको सुख देनेवाली है ॥ ४ ॥ चौथा षोडश नामक श्री विद्येश और उसकी श्रीविद्या षोडशी शक्ति है वह भक्तोंको सुख और मुक्तिके देनेवाले हैं ॥ ५ ॥ पांचवां भैरव नामक अवतार सर्वदा भक्तोंकी कामनाओंका पूर्ण करनेवाला है, उसकी भैरवी गिरजा नाम्नी शक्ति श्रेष्ठ उपासकोंकी कामना पूर्ण करनेवाली है ॥ ६ ॥ छठा छिन्नमस्तक अवतार हुआ है, और उसकी छिन्नमस्तका गिरिजा भक्तोंके मनोरथ सिद्ध करनेवाली है ॥ ७ ॥

धूमवान् नामक शम्भुका अवतार सब कामनाओंका देनेवाला हुआ, उसकी धूमावती नामकी शक्ति सज्जन उपासकोंको फल देनेवाली है ॥ ८ ॥ आठवाँ बगलामुख नामक सुखका देनेवाला शिवका अवतार हुआ, उसकी महाआनन्द देनेवाली बगलामुखी शक्ति हुई ॥ ९ ॥ नवाँ मातंग नामक शिवका अवतार कहा है उसकी मातंगी नामकी शर्वाणी सब कामना और फलकी देनेवाली कही है ॥ १० ॥ कमल नामक भुक्ति तथा मुक्तिका देनेवाला दशवाँ शिव अवतार हुआ, उसकी कमला गिरिजा नामकी भक्तोंको पालन करनेवाली शक्ति हुई ॥ ११ ॥ यह शिवजीके दश अवतार सर्वदा सज्जन भक्तोंको सुख देनेवाले तथा भुक्ति और मुक्तिके देनेवाले हैं ॥ १२ ॥ यह महात्मा शंकरके दशों अव

धूमवान् सप्तमः शम्भुस्सर्वकामफलप्रदः॥धूमवती शिवा तत्र सदुपासककामदा॥८॥शिवावतारः सुखदो ह्यष्टमो बगलामुखः॥ शक्तिस्तत्र महानन्दा विख्याता बगलामुखी॥९॥ शिवावतारो मातङ्गो नवमः परिकीर्तितः॥ मातंगी तत्र शर्वाणी सर्वकामफल प्रदा ॥ १०॥ दशमः कमलः शम्भुर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥ कमला गिरिजा तत्र स्वभक्तपरिपालिनी॥११॥ एते दशमिताः शैवा अवतारास्सुखप्रदाः॥भुक्तिमुक्तिप्रदाश्चैव भक्तानां सर्वदास्सताम् ॥१२॥ एते दशावतारा हि शंकरस्य महात्मनः॥ नानासुखप्रदा नित्यं सेवतां निर्विकारतः॥१३॥एतद्दशावताराणां माहात्म्यं वर्णितं मुने ॥ सर्वकामप्रदं ज्ञेयं तंत्रशास्त्रादिगर्भितम्॥१४॥एतासा मादिशक्तीनामद्भुतो महिमा मुने॥सर्वकामप्रदो ज्ञेयस्तंत्रशास्त्रादिगर्भितः ॥१५॥ शत्रुमारणकार्य्यादौ तत्तच्छक्तिः परा मता॥खल दण्डकरी नित्यम्ब्रह्मतेजोविवर्द्धिनी१६॥इत्युक्तास्ते मया ब्रह्मन्नवतारा महेशितुः॥सशक्तिका दशमिता महाकालमुखाश्शुभाः १७॥

तार नित्य अनेक प्रकारके सुख देनेवाले हैं, इनकी निर्विकारतासे सेवा करनी चाहिये ॥ १३ ॥ हे मुने ! यह दश अवतारोंका माहात्म्य वर्णन किया, सो सब कामनाओंका देनेवाला तंत्र शास्त्रोंसे संयुक्त जानना चहिये ॥ १४ ॥ हे मुने ! इन शक्तियोंकी भी अद्भुत महिमा है, यह भी सब इच्छा पूर्ण करनेवाली और तंत्र शास्त्रोंसे गर्भित हैं ॥ १५ ॥ शक्ति शत्रुके मारण आदि कार्य में अधिक मानी गई हैं, दुष्टोंको नित्य दंड देनेवाली तथा ब्रह्म तेजकी बढानेवाली हैं ॥ १६ ॥ हे ब्रह्मन् ! शिवजीके इस प्रकार शुभ महाकाल आदि दशों शक्ति सहित दश

अवतार मैंने कहे ॥ १७ ॥ जो मनुष्य शिवके पर्वोंमें इन निर्मल इतिहासको भक्ति पूर्वक पढता है वह शिवका अत्यन्त प्रिय होता है ॥ १८ ॥ यदि ब्राह्मण पढता है तो ब्रह्मतेजस्वी होता है और क्षत्रिय हो तो विजयी होता है, वैश्य धनका अधिपति होता है, और शूद्र हो तो सुखको पाता है ॥ १९ ॥ यदि शिवके भक्त अपने धर्ममें स्थित होकर इस चरित्रको सुनते हैं तो सुखी और विशेष कर शिवजीकी भक्तिवाले होते हैं ॥ २० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० शिवदशावतारवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ नन्दीश्वर बोले, शिवजीके ग्यारह श्रेष्ठ अवतारोंको सुनो, जिसके सुननेसे असत्य आदि दोषोंसे उत्पन्न हुई बाधा नहीं सताती है ॥ १ ॥ पहले

शैवपर्वसु सर्वेषु योऽधीते भक्तितत्परः ॥ एतदाख्यानममलं सोतिशम्भुप्रियो भवेत्॥ १८॥ब्रह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत्॥धनाधिपो हि वैश्यःस्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात्॥ १९॥शांकरा निजधर्मस्थाः शृण्वन्तश्चरितन्त्विदम्॥ सुखिनः स्युर्विशेषेण शिवभक्ताभवन्तु च॥२०॥इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायांशिवदशावतारवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

नन्दीश्वर उवाच॥एकादशवतारान्वै शृण्वथो शांकरान्वरान् ॥ याञ्छ्रुत्वा न हि बाध्येत बाधासत्यादिसम्भवा॥१॥ पुरा सर्वे सुराश्शक्रमुखा दैत्यपराजिताः ॥ त्यक्त्वामरावतीम्भीत्याऽपलायन्त निजाम्पुरीम् ॥२॥ दैत्यप्रपीडिता देवा जग्मुस्ते कश्यपान्तिकम् ॥बद्ध्वा करान्नतस्कन्धाः प्रणेमुस्तं सुविह्वलम् ॥३॥ सुनुत्वा तं सुरास्सर्व्वे कृत्वा विज्ञप्तिमादरात् ॥ सर्वं निवेदयामासुस्स्वदुःखन्तत्पराजयम् ॥४॥ ततस्स कश्यपस्तात तत्पिता शिवसक्तधीः ॥तदाकर्ण्यामराकं वै दुखितोभून्न चाधिकम् ॥५॥

दैत्योंसे पराजित हुए इन्द्र आदि सब देवता भयसे अपनी अमरावती पुरीको छोडकर भाग गये ॥ २ ॥ दैत्योंसे पीडित हुए सब देवता कश्यपके निकट गये, और हाथोंको बांधे कन्धोंको झुकाये भयसे व्याकुल हुये उनको प्रणाम किया ॥ ३ ॥ सब देवताओंने प्रणाम कर आदरसे प्रार्थना कर अपने अत्यन्त पराजयरूप दुःखको निवेदन किया ॥ ४ ॥ हे तात ! तब उनके पिता शिवमें आसक्त बुद्धिवाले कश्यपजी उस देवता सम्बन्धी वचनको सुन अधिक दुःखी नहीं हुए ॥ ५ ॥

हे मुने ! उन शान्तबुद्धि कश्यप मुनिने उनको अश्वासना दे धैर्य धारण कराय प्रसन्नतापूर्वक काशीमें विश्वेश्वरपुरीको गमन किया ॥ ६ ॥ और गंगाजीमें स्नानकर आदरसे नैमित्तिक विधिको समाप्त कर पार्वतीसहित सबके ईश्वर प्रभु विश्वेश्वर महादेवजीका पूजन किया ॥ ७ ॥ शिवके लिंगकी स्थापना करके देवताओंके हितकी इच्छासे प्रीतिपूर्वक शिवके उद्देश्यसे अत्यन्त तप किया ॥ ८ ॥ हे मुने ! शिवके चरणकमलोंमें धैर्यपूर्वक मन लगा तप करते २ उनको बहुत समय बीत गया ॥ ९ ॥ तब उस अपने चरणोंमें मन लगाये हुए ऋषिको वर देनेके निमित्त दीनबन्धु सत्पुरुषोंको गति देनेवाले शिवजी प्रगट हुए ॥ १० ॥ और प्रसन्न हुए भक्तवत्सल महेश्वरने 'वरको ग्रहण करो'

तानाश्वास्य मुनिस्सोऽथ धैर्यमाधाय शान्तधीः ॥ काशीं जगाम सुप्रीत्या विश्वेश्वरपुरीम्मुने ॥ ६ ॥ गंगाम्भसि ततः स्नत्वा कृत्वा तं विधिमादरात् ॥ विश्वेश्वरं समानर्च साम्बं सर्वेश्वरम्प्रभुम् ॥ ७ ॥ शिवलिंगं सुसंस्थाप्य चकार विपुलन्तपः ॥ शम्भुमुद्दिश्य सुप्रीत्या देवानां हितकाम्यया ॥ ८ ॥ महान्कालो व्यतीयाय तपतस्तस्य वै मुनेः ॥ शिवपादाम्बुजासक्तमनसो धैर्य्यशालिनः ॥ ९ ॥ अथ प्रादुरभूच्छम्भुर्वरन्दातुन्तदर्षये ॥ स्वपदासक्तमनसे दीनबन्धुस्सतांगतिः ॥ १० ॥ वरम्ब्रूहीति चोवाच सुप्रसन्नो महेश्वरः ॥ कश्यपं मुनिशार्दूलं स्वभक्तं भक्तवत्सलः ॥ ११ ॥ दृष्ट्वाथ तं महेशानं स प्रणम्य कृताञ्जलिः ॥ तुष्टाव कश्यपो दृष्टो देवतातः प्रस न्नधीः ॥ १२ ॥ कश्यप उवाच ॥ देवदेव महेशान शरणागतवत्सल ॥ सर्वेश्वरः परात्मा त्वं ध्यानगम्यो द्वयोऽव्ययः ॥ १३ ॥ बलनिग्रह कर्ता त्वं महेश्वर सतांगतिः ॥ दीनबन्धुर्दयासिन्धुर्भक्तरक्षणदक्षधीः ॥ १४ ॥ एते सुरास्त्व दीयाहि त्वद्भक्ताश्च विशेषतः ॥ दैत्यैः पराजिताश्चाद्य पाहि तान्दुःखितान् प्रभो ॥ १५ ॥

वह मुनिश्रेष्ठ अपने भक्त कश्यपजीसे कहा ॥ ११ ॥ तो उन शिवको देखकर प्रसन्न हो अंजलि बांध श्रेष्ठ बुद्धिवाले कश्यपजी उनको प्रणाम कर स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ कश्यपजी बोले; हे देवदेव महादेव ! हे शरणागतवत्सल ! आप सर्वेश्वर हैं, परमात्मा हैं, दीनबन्धु, योग्य हैं, आप अद्वैत और अविनाशी हैं ॥ १३ ॥ हे महेश्वर ! आप बलके रोकनेवाले तथा सज्जनोंको गति देनेवाले, दीनबंधु, दयाके समुद्र और भक्तोंकी रक्षा करनेमें निपुण हैं ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! यह देवता आपके हैं तथा विशेष कर आपके भक्त हैं दैत्योंसे

पराजय किये गये हैं अतः इनकी रक्षा कीजिये ॥ १५ ॥ असमर्थ हुए विष्णुजी भी आपको दुःखही देते हैं, इस कारण बारम्बार देवता भी दुःखी हो मेरी शरणमें आकर अपना दुःख कहते हैं ॥ १६ ॥ हे देव देवेश ! हे देवताओंके दुःख नाश करनेवाले ! यह मनोरथ पूर्ण करनेको आपकी प्रसन्नताके निमित्त मैंने तपका अनुष्ठान किया है ॥ १७ ॥ हे महेश्वर ! हे स्वामिन् ! मैं सब प्रकार आपकी शरणमें आयाहूं, मेरी कामनाको पूर्ण करो और देवताओंके दुःखको नाश करो ॥ १८ ॥ हे देवेश ! हे ईश ! मैं विशेषकर पुत्रोंके दुःखसे दुःखी हूं. मुझे सुखी करो आप देवताओंके सहायक हैं ॥ १९ ॥ हे नाथ ! हे शम्भो ! मेरे पुत्र हो इन महाबली दैत्योंसे पराजित

असमर्थो रमेशोपि दुःखदस्ते मुहुर्मुहुः ॥ अतः सुरा मच्छरणा वेदयन्तोऽसुखं च तत् ॥ १६॥ तदर्थं देवदेवेश देवदुःखविनाशकः ॥ तत्पूरितुं तपोनिष्ठां प्रसन्नार्थं तवासदम् ॥ १७ ॥ शरणंते प्रपन्नोऽस्मि सर्वथाहं महेश्वर ॥ कामं मे पूरय स्वामिन्देव दुःखं विनाशय ॥ १८ ॥ पुत्रदुःखैश्च देवेश दुःखितोऽहं विशेषतः ॥सुखिनं कुरु मामीश सहाय स्त्वन्दिवौकसाम् ॥१९॥ भूत्वा मम सुतो नाथ देवा यक्षाः पराजिताः ॥ दैत्यैर्महाबलैश्शम्भो सुरानन्दप्रदो भव ॥२०॥ सदैवास्तु महेशान सर्वलेखसहायकः॥ यथा दैत्यकृता बाधा न बाधेत सुरान्प्रभो ॥२१॥ नंदीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तस्स तु सर्वेशस्तथेति प्रोच्य शंकरः ॥ पश्यतस्तस्य भगवांस्तत्रैवांतर्दधे हरः ॥ २२ ॥ कश्यपोऽपि महाहृष्टः स्वस्थानमगमद्द्रुतम् ॥ देवेशः कथयामास सर्ववृत्तान्तमादरात् ॥ २३ ॥ ततस्स शंकरश्शर्वस्सत्यं कर्तुं स्वकं वचः ॥ सुरभ्यां कश्यपाज्जज्ञे एकादशस्वरूपवान् ॥ २४ ॥

हुए देवता यक्षोंको आप आनन्द देनेवाले हो ॥ २० ॥ हे महेशान ! हे प्रभो ! आप सब देवताओंके सहायक हो, जिस प्रकार देवताओंको दैत्योंसे की हुई बाधा न पीडा दे ऐसा कीजिये ॥ २१ ॥ नन्दीश्वर बोले, कश्यपके ऐसा कहनेपर 'ऐसाही होगा' यह कह कर, उनके देखते देखते भगवान् शिवजी वहांही अन्तर्द्धान होगये ॥ २२ ॥ कश्यपजी भी बडे प्रसन्नहो शीघ्र अपने स्थानको आये और उन्होंने आदरपूर्वक देवताओंसे सब वृत्तान्त कहा ॥ २३ ॥ तब वह शंकर शर्व अपना वचन सत्य करनेको ग्यारह

रूप धारणकर कश्यपसे सुरभिमें प्रगट हुए ॥ २४ ॥ उस समय बडा उत्सव हुआ, सब मानों शिवरूप होगया सब देवता कश्यपजीसे बडे प्रसन्न हुए ॥ २५ ॥ कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित,शास्ता,अजपाद्, अहिर्बुध्न्य शंभु, चंड, तथा भव नामवाले ॥२६॥ यह ग्यारह रुद्र सुरभीके पुत्र कहे हैं, यह देवताओंके कार्य करनेके निमित्त प्रगट हुए हैं यह शिवरूप साक्षात् सुखके स्थान हैं ॥ ३७ ॥ इन महाबली और पराक्रमी वीर कश्यपके पुत्र देवताओंकी सहायता करने वाले ग्यारह रुद्रोंने संग्राममें दैत्योंको मारा ॥ २८ ॥ तब उन रुद्रोंकी कृपासे देवताओंने निर्भय हो दैत्योंको विजय कर इन्द्र आदिके सहित स्वस्थ चित्तहो राज्य किया ॥ २९ ॥ आजतक भी शिवके स्वरूप वे सब महारुद्र

महोत्सवस्तदासीद्वै सर्वं शिवमयं त्वभूत् ॥ आसन्हृष्टाः सुराश्चाथ मुनिना कश्यपेन च ॥२५॥कपाली १ पिंगलो २ भीमो ३ विरूपाक्षो ४ विलोहितः ५ ॥ शास्ताऽ ६ जपाद ७ हिर्बुध्न्य ८ श्शंभु ९ श्चण्डो १० भवस्तथा ११ ॥ २६ ॥ एकादशैते रुद्रास्तु सुरभीतनयाःस्मृताः ॥ देवकार्य्यार्थमुत्पन्नाश्शिवरूपास्सुखास्पदम् ॥२७॥ते रुद्राः काश्यपा वीरा महाबलपराक्रमाः ॥ दैत्याञ्जघ्नुश्च संग्रामे देवसाहाय्यकारिणः ॥२८॥ तद्रुद्रकृपया देवा दैत्याञ्जित्वा च निर्भयाः ॥चक्रुः स्वराज्यं सर्वे ते शक्राद्यास्स्वस्थमानसाः ॥२९॥ अद्यापि ते महारुद्रास्सर्वे शिवस्वरूपकाः ॥ देवानां रक्षणार्थाय विराजन्ते सदा दिवि ॥ ३० ॥ ऐशान्याम्पुरि ते वासं चक्रिरे भक्तवत्सलाः ॥ विरमन्ते सदा तत्र नानालीलाविशारदाः ॥३१॥ तेषामनुचरा रुद्राः कोटिशः परिकीर्तिताः ॥ सर्वत्र संस्थितास्तत्र त्रिलोकेष्वभिभागज्ञाः ॥३२॥ इति ते वर्णितास्तातावताराश्शंकरस्य वै ॥ एकादशमिता रुद्रास्सर्वलोकसुखावहाः ॥३३॥ इदमाख्यानममलं सर्वपापप्रणाशकम् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामप्रदायकम् ॥ ३४ ॥

देवताओंकी रक्षा करनेके निमित्त निरन्तर द्युलोकमें विराजते हैं ॥ ३० ॥ वे भक्तवत्सल तथा नानाप्रकारकी लीलाओंमें चतुर ईशान दिशामें निवास करते हुए वहां सदा रमण करते हैं ॥ ३१ ॥ उनके अनुचर करोडों रुद्र हैं जो तीनों लोकमें सर्वज्ञ चारों ओर स्थित हैं ॥ ३२ ॥ हे तात ! यह शिवजीके ग्यारह रुद्र अवतार तुमने वर्णन किये, जो सबको सुख देनेवाले हैं ॥ ३३ ॥ यह निर्मल इतिहास सब पापोंका दूर करनेवाला धन और यशका बढानेवाला आयुवृद्धिकारक तथा सब मनोरथोंका पूर्ण करनेवाला है ॥ ३४ ॥

हे तात ! जो पुरुष सावधान होकर इसको सुनता अथवा सुनाता है वह इस लोकमें सब सुखोंको भोगकर अन्तसमय मुक्तिको प्राप्त होता है ॥३५॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० एकादशावतारवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे महामुने ! अब और शिवजीका चरित्र प्रीतिसे सुनो जिस प्रकार धर्मके कारण शिवजीने दुर्वासा रूप धारण किया ॥ १ ॥ तप करनेवाले अति ब्रह्मवेत्ता अनसूयाके पति बुद्धिमान् तथा ब्रह्माकी आज्ञाका पालन करनेवाले ब्रह्माके पुत्र अत्रि हुए ॥ २ ॥ वह ब्रह्माजीके कहनेसे पुत्रकी इच्छाके कारण स्त्रीसहित

य इदं शृणुयात्तात श्रावयेद्वै समाहितः ॥ इह सर्वसुखम्भुक्त्वा ततो मुक्तिं लभेत सः ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां एकादशावतारवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अथान्यच्चरितं शम्भोश्शृणु प्रीत्या महामुने ॥ यथा बभूव दुर्वासाश्शंकरो धर्महेतवे ॥ १ ॥ ब्रह्मपुत्रो बभूवातितपस्वी ब्रह्मवित्प्रभुः ॥ अनसूया पतिर्धीमान्ब्रह्माज्ञाप्रतिपालकः ॥ २ ॥ सुनिर्देशाद्ब्रह्मणो हि सस्त्रीकः पुत्रकाम्यया ॥ स त्र्यक्षकुलनामानं ययौ च तपसे गिरिम् ॥ ३ ॥ प्राणानायम्य विधिवन्निर्विन्ध्यातटिनीतटे ॥ तपश्चचार सुमहदद्वन्द्वोऽब्दशतम्मुनिः ॥ ४ ॥ य एक ईश्वरः कश्चिद विकारो महाप्रभुः ॥ स मे पुत्रवरं दद्यादिति निश्चितमानसः ॥ ५ ॥ बहुकालो व्यतीयाय तस्मिंस्तपति सत्तपः ॥ आविर्बभूव तत्कात्तु शुचिर्ज्वाला महीयसी ॥ ६ ॥ तयासन्निखिला लोकादग्धप्राया मुनीश्वराः॥ तथा सुरर्षयः सर्वे पीडिता वासवादयः ॥ ७ ॥ अथ सर्वे वासवाद्या सुराश्च मुनयो मुने ॥ ब्रह्मस्थानं ययुश्शीघ्रंतज्ज्वालातिप्रपीडिताः ॥ ८ ॥

तप करनेके निमित्त व्यक्षनामक पर्वतपर गये ॥ ३ ॥ और उन मुनिने विंध्याचलपर्वतके समीप नदीके किनारे विधिपूर्वक प्राणोंको रोक कर निर्द्वन्द्व हो सौ वर्षतक बडा कठिन तप किया॥४॥ जो एकमात्र ईश्वर तथा अविकारी कोई महा प्रभु हैं, वह मुझे श्रेष्ठ पुत्र देंगे ऐसा मनमें ठान लिया ॥५॥ कठिन तप करते २ उनको बहुत समय बीत गया, तो उनके शिरसे पवित्र बडी तीक्ष्ण अग्निकी ज्वाला प्रगट हुई ॥ ६ ॥ उस ज्वालासे सम्पूर्ण लोक तथा मुनीश्वर ऋषि इन्द्र आदि देवता सब भस्म होने लगे, और पीडा पाने लगे ॥ ७ ॥ हे मुने ! तब इन्द्र आदि देवता

मुनि आदि, सब उस अग्निसे अति पीडित होकर शीघ्रही ब्रह्माजीके स्थानको गये ॥ ८ ॥ हे तात ! देवताओंने नमस्कार और स्तुति कर ब्रह्माजीसे अपना दुःख निवेदन किया, तो ब्रह्माजी सब देवताओंसहित विष्णुलोकको गये ॥ ९ ॥ हे मुने ! वहां जाकर ब्रह्माजीने देवताओंके साथ लक्ष्मीसहित विष्णुको बारंबार नमस्कार करके उनके निकट अपने उस दुःखको कहा ॥ १० ॥ और विष्णुजी उन ब्रह्माजी तथा उन देवताओंके सहित शीघ्र शिवके स्थानको गये वहां परमेश्वर शिवको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ बहुत स्तुति कर उन व्यापक शिवजीसे अत्रिके परम तपसे अग्निके उत्पन्न होनेवाले अपने दुःखको निवेदन किया ॥ १२ ॥ हे मुने ! तब उस स्थानमे ब्रह्मा

नत्वा नुत्वा विधिन्देवास्तत्स्वदुःखन्न्यवेदयन्॥ब्रह्मा सह सुरैस्तात विष्णुलोकं ययावरम्॥९॥तत्र गत्वा रमानाथं नत्वा नुत्वा विधिस्सुरैः ॥ स्वदुःखन्तत्समाचख्यौ विष्णवेऽनन्तकं मुने॥१०॥विष्णुश्च विधिना देवै रुद्रस्थानं ययौ द्रुतम् ॥हरं प्रणम्य तत्रेत्य तुष्टाव परमेश्वरम्॥११॥स्तुत्वा बहुतया विष्णुं स्वदुःखं च न्यवेदयत् ॥शर्वं ज्वालासमुद्भूतमत्रेश्च तपसः परम् ॥१२॥ अथ तत्र समेस्तास्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ मुने संमन्त्रयाञ्चक्रुरन्योन्यं जगतां हितम् ॥१३॥ तदा ब्रह्मादयो देवास्त्रयस्ते वरदर्षभाः ॥ जग्मुस्तदाश्रमं शीघ्रं वरन्दातुन्तदर्षये ॥१४॥ स्वचिह्नचिह्नितांस्तान्स दृष्ट्वात्रिर्मुनिसत्तमः ॥ प्रणनाम च तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिरादरात् ॥ १५ ॥ ततस्स विस्मितो विप्रस्तानुवाच कृताञ्जलिः ॥ ब्रह्मपुत्रो विनीतात्मा ब्रह्मविष्णुहराभिधान् ॥ १६ ॥

विष्णु तथा महेश्वर तीनों मिलकर आपसमें संसारके हित करनेके निमित्त सम्मति करने लगे ॥१३॥ हे देव ! उस समय ब्रह्मा आदि तीनों देवता उन अत्रि ऋषिके वर देनेको उनके आश्रममें शीघ्रतासे गये ॥ १४ ॥ उस अत्रि मुनिने उन सबको अपने २ चिह्नोंसे अंकित देखकर आदरसे प्रियवाणीके द्वारा प्रणाम किया और स्तुति की ॥ १५ ॥ तब वह विनीत आत्मा ब्रह्माके पुत्र अत्रि ब्राह्मण विस्मित हो उन ब्रह्मा, विष्णु, शिवसे हाथ जोडकर बोले ॥ १६ ॥ अत्रि बोले, हे ब्रह्मन् ! हे विष्णो ! हे शिव ! आप संसारभरके पूजनीय माने गये हैं, तथा प्रभु ईश्वर

सृजन रक्षा और विनाश करनेवाल हैं ॥१७॥ केवल एक शिवजीकाही पुत्रके कारण मैंने स्त्रीसहित ध्यान किया था, जो संसारमें ईश्वर प्रसिद्ध हैं ॥ १८ ॥ हे वरदेनेवालोंमें श्रेष्ठ ! आप तीनों देवता किस हेतुसे आये हैं इस मेरे संशयका छेदन करके इच्छितवरको दीजिये ॥ १९ ॥ हे मुनि ! ऐसा उनका वचन सुन वे तीनों देवता बोले हे मुनिराज ! जैसा तुमने संकल्प किया है वैसाही होगा ॥ २० ॥ हम तीनों ब्रह्मा ईशान तथा विष्णु समान वर देनेवाले हैं, इस कारण हमारे अंशसे उत्पन्न होनेवाले तीन पुत्र तुम्हारे होंगे ॥ २१ ॥ जो संसार विदित होकर माता पिताकी कीर्ति बढानेवाने होंगे ऐसा कहकर वे तीनों देवता प्रसन्न हो अपने २ स्थानोंको चले गये ॥ २२ ॥ हे मुने !

अत्रिरुवाच ॥ हे ब्रह्मन् हे हरे रुद्र पूज्यास्त्रिजगताम्मताः ॥ प्रभवश्चेश्वराः सृष्टिरक्षासंहारकारकाः॥१७॥ एक एव मया ध्यात हेतवे ॥ यः कश्चिदीश्वरः ख्यातो जगतां स्वस्त्रिया सह ॥ १८ ॥ यूयं त्रयस्सुराः कस्मादागता वर ईश्वरः पुत्र दर्षभाः ॥ एतन्मे संशयं छित्त्वा ततो दत्तेप्सितं वरम् ॥१९॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रत्यूचुस्ते सुरास्त्रयः ॥ याद्दक्कृतस्ते संकल्प स्तथैवा भून्मुनीश्वर ॥ २० ॥ वयं त्रयो भवेशानास्समाना वरदर्षभाः ॥ अस्मदंशभवास्तस्माद्भविष्यन्ति सुतास्त्रयः ॥ २१ ॥ विदिता भुवने सर्वे पित्रोः कीर्तिविवर्द्धनाः ॥ इत्युक्तास्ते त्रयो देवास्स्वधामानि ययुर्मुदा ॥२२॥ वरं लब्ध्वा मुनिस्सोऽथ जगाम स्वाश्रमं मुदा ॥ युतोऽनुसूयया प्रीतो ब्रह्मानंदप्रदो मुने ॥ २३ ॥ अथ ब्रह्मा हरिश्शम्भुरवतेरुः स्त्रियां ततः ॥ पुत्ररूपैः प्रसन्नात्मनाना लीला प्रकाशकाः ॥ २४ ॥ विधेरंशाद्विधुर्जज्ञेऽनसूयायां मुनीश्वरात् ॥ आविर्बभूवोदधितः शिवो देवस्स एव हि ॥ २५ ॥ विष्णोरंशात्स्त्रियान्तस्यामत्रेर्दत्तो व्यजायत ॥ संन्यासपद्धतिर्येन वर्द्धिता परमा मुने ॥ २६ ॥

वह अत्रि मुनि भी वर पाकर आनन्दके साथ अपने स्थानको गये, और अनसूया सहित प्रसन्न तथा ब्रह्मानंदके देनेवाले हुए ॥२३॥तब उस अनसूया स्त्रीसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, पुत्र रूपसे प्रसन्न तथा अनेकलीलाओंके प्रकाश करनेवाले उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥ अनसूयामें अत्रिके द्वारा ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, जो देवताओंके निक्षेप करनेपर समुद्रमें प्रगट हुआ ॥ २५ ॥ और विष्णुके अंशसे अनसूयामें अत्रिऋषिके द्वारा दत्त भगवान् उत्पन्न हुए जिनने संन्यासकी बडी पद्धति बढाई ॥ २६ ॥

हे मुनिसत्तम ! शिवजीके अंशसे धर्मका प्रवर्तक दुर्वासा मुनि श्रेष्ठ उस स्त्रीमें उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ उन शिवजीने ब्रह्मतेजके बढानेवाले दुर्वासा रूपसे प्रगट होकर दयालु हो बहुतोंकी धर्मपरीक्षाकी ॥ २८ ॥ हे मुनीश्वर ! सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए अम्बरीष नामक राजाकी परीक्षा भी इन दुर्वासाजीने की उसको तुम सुनो ॥ २९ ॥ वह अम्बरीष राजा सातद्वीपकी भूमिका स्वामी था, उसने एकादशीके व्रतमें दृढ नियम किया ॥ ३० ॥ कि मैं एकादशीका व्रत करके द्वादशीको पारण करूंगा ऐसा उस राजाने दृढ संकल्प किया ॥ ३१ ॥ मुनि श्रेष्ठ शंकरके अंशसे उत्पन्न हुए उन दुर्वासाने उसके नियमको जानकर अपने अनेक शिष्योंसहित उसके समीप गमन किया ॥ ३२ ॥

दुर्वासा मुनिशार्दूलः शिवांशान्मुनिसत्तमः॥जज्ञे तस्यां स्त्रियामत्रेर्वरधर्मप्रवर्तकः॥२७॥भूत्वा रुद्रश्च दुर्वासा ब्रह्मतेजोविवर्द्धनः॥ चक्रे धर्मपरीक्षाश्चबहूनां स दयापरः॥२८॥सूर्य्यवंशे समुत्पन्नो योऽम्बरीषो नृपोऽभवत्॥ तत्परीक्षामकार्षीत्स तां शृणु त्वं मुनीश्वर॥२९॥ सो ऽम्बरीषो नृपवरः सप्तद्वीपरसापतिः॥नियमं हि चकारासावेकादश्या व्रते दृढम् ॥३०॥एकादश्या व्रतं कृत्वा द्वादश्यां चैव पारणाम् ॥करिष्यामीति सुदृढसंकल्पस्तु नराधिपः॥३१॥ज्ञात्वा तन्नियमन्तस्य दुर्वासा मुनिसत्तमः॥तदन्तिकं गतश्शिष्यैर्बहुभिश्शंकरांशजः॥३२॥पारणे द्वादशीं स्वल्पां ज्ञात्वा यावत्स भोजनम्॥कर्त्तुं व्यवसितस्तावदागतं स न्यमन्त्रयत ॥३३॥ ततः स्नानार्थमगमद्दुर्वासाः शिष्यसंयुतः ॥विलम्बं कृतवांस्तत्र परीक्षार्थं मुनिर्बहु ॥३४॥ धर्मविघ्नं तदा ज्ञात्वा स नृपः शास्त्रशासनात् ॥जलम्प्राश्यास्थितस्तत्र तदागमनकांक्षया॥३५॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्वासा मुनिरागतः ॥कृताशनं नृपं ज्ञात्वा परीक्षार्थं धृताकृतिः ॥३६॥ चुक्रोधाति नृपे तस्मिन्परीक्षार्थं वृपस्य सः ॥ प्रोवाच वचनन्तूग्रं स मुनिश्शंकरांशजः ॥३७॥

उस राजाने पारणाके समय थोडी द्वादशीको जान तबतक भोजन करनेकी तय्यारी की, उसी समय दुर्वासा आ गये और राजाने उनको निमन्त्रण दिया ॥ ३३ ॥ तब दुर्वासा अपने शिष्योंसहित स्नान करनेको चले गये, और मुनिने वहां उसकी परीक्षाके निमित्त बहुत विलम्ब किया ॥ ३४ ॥ तब उस राजाने धर्ममें विघ्न जानकर शास्त्रकी आज्ञासे जलको पानकर उन दुर्वासाके आनेकी इच्छासे स्थित की ॥३५॥ इसी अवसरमें वहां दुर्वासा ऋषि आये, और राजाको भोजन किया जान परीक्षाके निमित्त रुष्ट हो ॥ ३६ ॥ धर्मकी परीक्षाके कारण उस

राजाके ऊपर अति क्रोध किया, वे शिवके अंशसे उत्पन्न हुए दुर्वासा मुनि उससे कठोर वचन बोले ॥ ३७ ॥ दुर्वासा बोले हे अधम ! राजन् ! मुझे निमन्त्रण देकर विना भोजन कराये जल पीलिया, उसका फल दिखाता हूं क्योंकि मैं दुष्टोंको दंड देनेवाला हूं ॥ ३८ ॥ ऐसा कहकर क्रोधसे लाल नेत्र कर ऋषि उस राजाके भस्म करनेको उद्यत हुए, तब शीघ्र उसकी रक्षाके निमित्त उस राजामें स्थित हुआ ईश्वरका सुदर्शन चक्र प्रगट हुआ ॥ ३९ ॥ शिवकी मायासे मोहित हो उनको शिवरूप न जानकर मुनिके जलानेको वह सुदर्शनचक्र प्रज्वलित हुआ ॥ ४० ॥ इस ही अन्तरमें उस ब्रह्मभक्त तथा वैष्णव, महात्मा अम्बरीषसे विना शरीरवाली आकाशवाणी बोली ॥ ४१ ॥

दुर्वासा उवाच॥मां निमन्त्र्य नृपाभोज्य जलं पीतन्त्वयाधम ॥ दर्शयामि फलं तस्य दुष्टदण्डधरो ह्यहम् ॥३८॥इत्युक्त्वा क्रोध ताम्राक्षो नृप दग्धुं समुद्यतः॥समुत्तस्थौ द्रुतं चक्रं तत्स्थं रक्षार्थमैश्वरम्॥३९॥प्रजज्वालाति तं चक्रं मुनिं दग्धुं सुदर्शनम्॥ शिवरूपं तमज्ञात्वा शिवमायाविमोहितम् ॥४० एतस्मिन्नन्तरे व्योमवाण्युवाचाशरीरिणी॥अम्बरीषम्महात्मानं ब्रह्मभक्तं च वैष्णवम्॥४१॥ व्योमवाण्युवाच॥सुदर्शनमिदं चक्रं हरयेशम्भुनार्पितम्॥शांतं कुरुप्रज्वलितमद्य दुर्वाससे नृप॥४२॥दुर्वासायं शिवः साक्षात्स चक्रं हरयेऽर्पितम्॥एवं साधारणमुनिं न जानीहि नृपोत्तम॥४३॥तव धर्मपरीक्षार्थमागतोऽयं मुनीश्वरः ॥ शरणं याहि तस्याशु भविष्यत्यन्यथा लयः ॥४४॥ नन्दीश्वर उवाच॥इत्युक्त्वा च नभोवाणी विरराम मुनीश्वर॥अस्तावीत्स हरांशं तमम्बरीषोऽपि चादरात् ॥४५॥ अम्बरीष उवाच॥ यद्यस्ति दत्तमिष्टं च स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ॥ कुलं नो विप्रदैवं चेद्धरेरस्त्रं प्रशाम्यतु ॥४६॥

व्योमवाणी बोली, हे नृप ! अब दुर्वासाके निमित्त प्रज्वलित हुए, विष्णुके लिये शिवजीसे दिये हुए, सुदर्शनचक्रको शान्त करो ॥४२॥ हे नृपोत्तम ! वह दुर्वासा साक्षात् शिव हैं, उन्होंने यह सुदर्शनचक्र विष्णुको अर्पण किया है, इन दुर्वासाको साधारण मुनि न जानो ॥ ४३ ॥ यह मुनीश्वर तुम्हारी परीक्षाके निमित्त आये हैं उनकी शरण जाओ नहीं तो प्रलय होगी ॥४४ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे नृपोत्तम ! यह कहकर आकाशवाणी विश्रामको प्राप्त हुई, और उस अम्बरीष राजाने उन शिवके अंशरूप दुर्वासा ऋषिकी स्तुति की ॥ ४५ ॥ अम्बरीष बोले, यदि

मुझे वर दिया है, अथवा मैंने अपना धर्म अनुष्ठान किया है यदि हमारा कुल ब्राह्मण तथा देवताका भक्त है, विष्णु भगवान्‌का अस्त्र शांत होजाना चाहिये ॥ ४६ ॥ यदि मुझ भक्तपर भक्तवत्सल मेरे भगवान् प्रसन्न हैं तो विशेषकर यह सुदर्शनचक्र शांत होजाय ॥ ४७ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे बुद्धिमान् ! इस प्रकार उन शिवके आगे स्तुति करनेपर शिवका दिया सुदर्शनचक्र सब प्रकार उनको शिवका अंश जानकर शांत होगया ॥ ४८ ॥ इसके उपरान्त उस अम्बरीष राजाने अपनी परीक्षाके निमित्त आये हुए उन दुर्वासा मुनिको शिवका अवतार जान प्रणाम किया ॥ ४९ ॥ तब वह शिवके अंशसे उत्पन्न हुये मुनि दुर्वासा बडे प्रसन्न हुये और उसके घर भोजन कर अपने इच्छित स्थानको

यदि नो भगवान्प्रीतो मद्भक्तो भक्तवत्सलः॥सुदर्शनमिदं चास्त्रं प्रशाम्यतु विशेषतः ॥४७॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति स्तुवति रुद्राग्रे शैवं चक्रं सुदर्शनम्॥अशाम्यत्सर्वथा ज्ञात्वा तं शिवांशं सुलब्धधीः॥४८॥अथाम्बरीषस्स नृपः प्रणनाम च तं मुनिम्॥ शिवावतारं संज्ञाय स्वपरीक्षार्थमागतम्॥४९॥सुप्रसन्नो बभूवाथ स मुनिः शंकरांशजः॥भुक्त्वातस्मै वरं दत्त्वा स्वाभीष्टं स्वालयं ययौ ॥५० ॥ अम्बरीषपरीक्षायां दुर्वासश्चरितम्मुने ॥ प्रोक्तामन्यच्चरित्रन्त्वं शृणु तस्य मुनीश्वर ॥ ५१ ॥ पुनर्दाशरथेश्चक्रे परीक्षां नियमेन वै ॥ मुनिरूपेण कालेन यः कृतो नियमो मुने ॥ ५२ ॥ तदैव मुनिना तेन सौमित्रिः प्रेषितो हठात् ॥ तन्तत्याज द्रुतं रामो बन्धुं पणवशान्मुने ॥५३॥ सा कथा विहिता लोके मुनिभिर्बहुधोदिता ॥नातो मेविस्तरात्प्रोक्ता ज्ञाता यत्सर्वधा बुधैः ॥ ५४ ॥ नियमं सुदृढं दृष्ट्वा सुप्रसन्नोऽभवन्मुनिः ॥ दुर्वासास्सुप्रसन्नात्मा वरन्तस्मै प्रदत्तवान् ॥ ५५ ॥

गये ॥ ५० ॥ हे मुनीश्वर ! हमने अम्बरीषकी परीक्षाके विषयमें दुर्वासाका चरित्र तो कहा, अब और भी उन दुर्वासा मुनिका चरित्र सुनो ॥ ५१ ॥ हे मुने ! फिर उन मुनिरूपधारी दुर्वासाने नियमसे रामचन्द्रकी परीक्षा की, हे मुने ! कालरूप मुनिसे, रामचन्द्रने जो नियम किया था कि हमारे तुम्हारे सम्वाद करनेमें कोई न आने पावे ॥ ५२ ॥ तबही उन मुनिने हठसे लक्ष्मणको भेजा, और रामचन्द्रने अपने प्रणके वश हो शीघ्र उन लक्ष्मण भाईको त्याग दिया ॥ ५३ ॥ संसारमें मुनियोंसे बहुधा कही हुई वह कथा प्रसिद्ध है, इस कारण मैंने विस्तारसे नहीं कही क्योंकि वह सब प्रकार विद्वानोंको जानी हुई है ॥ ५४ ॥ उन रामचन्द्रजीके बडे दृढ नियमको देखकर दुर्वासामुनि

अति प्रसन्न हुये और उन रामचन्द्रजीको वरदान दिया ॥ ५५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उन्होंने श्रीकृष्णजीके नियमकी परीक्षा की, उस कथाको कहता हूं तुम उसे श्रवण करो ॥ ५६ ॥ ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे विष्णुभगवान् भूमिके भार उतारनेके अर्थ साधुओंकी रक्षाके निमित्त, वसुदेवजीके पुत्र हुये ॥ ५७ ॥ और उन श्रीकृष्णजीने महापापी दुष्टोंको तथा ब्रह्मद्रोही खलोंको मारकर सम्पूर्ण साधु तथा ब्राह्मणोंकी रक्षा की ॥ ५८ ॥ और वे वसुदेवजीके पुत्र श्रीकृष्णजी अत्यन्त ब्राह्मणोंकी भक्ति करते थे, और अनेकों ब्राह्मणोंको नित्य सुन्दर रसवाले भोजन जिमाते थे ॥ ५९ ॥ हे मुने ! श्रीकृष्णजी विशेषही ब्रह्मभक्त हैं, ऐसी प्रसिद्धिको देखकर उनकी परीक्षा करनेको दुर्वासा

श्रीकृष्णनियमस्यापि परीक्षां स चकार ह ॥ तां शृणु त्वं मुनिश्रेष्ठ कथयामि कथां च ताम् ॥५६॥ ब्रह्मप्रार्थनया विष्णुर्वसु देवसुतोऽभवत् ॥ धराभारावतारार्थं साधूनां रक्षणाय च॥५७॥ हत्वा दुष्टान्महापापान् ब्रह्मद्रोहकरान्खलान् ॥ ररक्ष निखिला न्साधून्ब्राह्मणान्कृष्णनामभाक् ॥ ५८ ॥ ब्रह्मभक्तिं चकारासौ स कृष्णो वसुदेवजः ॥ नित्यं हि भोजयामास सुरसान्ब्राह्म णान्बहून् ॥ ५९ ॥ ब्रह्मभक्तो विशेषेण कृष्णश्चेति प्रथामगात् ॥ संद्रष्टुकामस्स मुनिः कृष्णान्तिकमगान्मुने ॥६०॥ रुक्म णीसहितं कृष्णं सभ्रं कृत्वा रथे स्वयम् ॥ संयोज्य संस्थितो वाहं सुप्रसन्न उवाह तम् ॥ ६१ ॥ मुनी रथात्समुत्तीर्य दृष्ट्वा तां दृढताम्पराम् ॥ तस्मै भूत्वा सुप्रसन्नो वज्राङ्गत्ववरन्ददौ ॥ ६२ ॥ द्युनद्यामेकदा स्नानं कुर्वन्नग्नो बभूव ह ॥ लज्जितोभून्मुनि श्रेष्ठो दुर्वासाः कौतुकी मुने ॥ ६३ ॥ तज्ज्ञात्वा द्रौपदी स्नानं कुर्वती तत्र चादरात् ॥ तल्लज्जां छादयामास भिन्नस्वाञ्चलदानतः ॥ ६४ ॥ तदादाय प्रवाहेनागतं स्वनिकटं मुनिः ॥ तेनाच्छाद्य स्वगुह्यं च तस्यै तुष्टो बभूव सः ॥ ६५ ॥

मुनि श्रीकृष्णजीके समीप गये ॥ ६० ॥ और रुक्मिणीसहित श्रीकृष्णजीको अपने रथमें जोड उसमें बैठ प्रसन्न हो उनसे बोले ॥ ६१ ॥ मुनिने रथसे उतर कर उस परम दृढताको देख उन कृष्णजीसे प्रसन्न होकर उनको वज्रके समान अंग हो जानेका वरदान दिया ॥ ६२ ॥ हे मुने ! एक समय कौतुकी मुनिश्रेष्ठ, दुर्वासा नग्न होकर गंगाजीमें स्नान करनेसे परम लज्जित हुये ॥ ६३ ॥ वहांपर स्नान करती हुई द्रौपदीने उनको लज्जित जान आदरपूर्वक अपने वस्त्रको फाडकर उनको देकर लज्जाको दूर किया ॥ ६४ ॥ तब मुनि

दुर्वासाने जलके प्रवाहसे बहकर अपने निकटको आते हुये उस वस्त्रको लेकर उसने अपने गुह्यस्थानको ढककर द्रौपदीसे प्रसन्न हो उसको ॥ ६५ ॥ वस्त्रके बढनेका वर दिया, उस वरदानसे द्रौपदीने पांडवोंको सुखी किया ॥ ६६ ॥ कोई हंसडिम्भ नामक दुष्ट राजा, अपना अभिमान करनेवाले थे, उनको इन प्रभु दुर्वासाने विष्णुका संदेश देकर नष्ट कर दिया ॥ ६७ ॥ और विशेषकर इन्होंने ब्रह्मतेजको पृथ्वीपर विस्तार किया, तथा शास्त्रोंकी विधिके अनुसार संसारकी पद्धतीका भी विस्तार किया ॥ ६८ ॥ और अपने शुभ उपदेशोंसे बोधन करके बहुतोंको उद्धार किया, विशेषकर बहुतोंको ज्ञान देकर मुक्त कर दिया ॥ ६९ ॥ इस प्रकार इन दुर्वासाने बहुत अद्भुत चरित्र किये वह

द्रौपद्यै च वरम्प्रादात्तदञ्चलविवर्द्धनम् ॥ पाण्डवान्सुखि नश्चक्रे द्रौपदी तद्वरात्पुनः ॥६६॥ हंसडिम्भौ नृपौ कौचित्स्वावमानक रौखलौ ॥ दत्त्वा निदेशं च हरेर्नाशयामास स प्रभुः ॥ ६७ ॥ ब्रह्मतेजोविशेषेण स्थापयामास भूतले ॥ संन्यासपद्धतिञ्चैव यथा शास्त्र विधिक्रमम् ॥ ६८ ॥ बहूनुद्धारयामास सूपदेशं विबोध्य च ॥ ज्ञानं दत्त्वा विशेषेण बहून्मुक्तांश्चकार सः ॥ ६९ ॥ इत्थं चक्रे स दुर्वासा विचित्रं चरितम्बहु ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं शृण्वतस्सर्वकामदम् ॥ ७० ॥ य इदं शृणुयाद्भक्त्या दुर्वासश्चरित म्मुदा ॥ श्रावयेद्वा परांयश्च स सुखीह परत्र च ॥ ७१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां दुर्वासश्चरित्रवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अतः परं शृणु प्रीत्या हनुमच्चरितम्मुने ॥ यथा चकाराशु हरो लीलास्तद्रूपतो वराः ॥ १ ॥ चकार सुहितं प्रीत्या रामस्य परमेश्वराः ॥ तत्सर्वं चरितं विप्र शृणु सर्वसुखावहम् ॥ २ ॥

सुननेवालोंके धनके बढानेवाले, यशके बढानेवाले, आयुके बढानेवाले तथा सम्पूर्ण कामनाओंके देनेवाले हैं ॥ ७० ॥ जो पुरुष इस दुर्वासाके चरित्रको भक्तिपूर्वक आनन्दके साथ सुनता है, अथवा औरोंको सुनाता है, वह इस लोकमें तथा परलोकमें भी सुखी होता है ॥ ७१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भा० तृ० श० रु० दुर्वासश्चरित्रवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! इसके आगे हनुमानजीका चरित्र सुनो, जिस प्रकार हनुमानजीके रूपसे शिवजीने सुन्दर लीला की है ॥ १ ॥ हे प्रिय ! परमेश्वर शिवने प्रीति करके रामचन्द्रजीका

परमहित किया है, उस सब सुखोंको देनेवाले चरित्रको सुनो ॥ २ ॥ एक समय गुण युक्त लीला करनेवाले, प्रभु शिवने विष्णुका मोहिनी रूप देखा ॥ ३ ॥ तो कामदेवके बाणसे ताडित हुए शिवजीने अपने आपको कामसे व्याकुल किया और रामचन्द्रजीके कार्यके अर्थ अपना वीर्य गिराया ॥ ४ ॥ तब आदरसे रामचन्द्रके कार्यके अर्थ मनसे शिवजीके द्वारा प्रेरणा किये हुए उन सप्त ऋषियोंने उस वीर्यको पत्तेपर स्थापित किया ॥ ५ ॥ उन महर्षियोंने वह शिवजीका वीर्य गौतमकी पुत्रीमें कर्णके द्वारा तथा अंजनीमें रामचन्द्रजीके कार्यार्थ प्रवेश किया ॥ ६ ॥ उस समय उस वीर्यसे महाबली तथा, पराक्रम युक्त वानरके शरीरवाले हनुमान नामक शिवजी उत्पन्न हुये ॥ ७ ॥

एकस्मिन्समये शम्भुरद्भुतोतिकरः प्रभुः ॥ ददर्श मोहिनीरूपं विष्णोस्स हि वसद्गुणः ॥३॥चक्रे स्वं क्षुभितं शम्भुः कामबाणहतो यथा ॥ स्वम्वीर्यम्पातयामास रामकार्यार्थमीश्वरः॥४॥तद्वीर्यं स्थापयामासुः पत्रे सप्तर्षयश्च ते॥प्रेरिता मनसा तेन रामकार्यार्थमादरात् ॥५॥ तैर्गौतमसुतायां तद्वीर्यं शम्भोर्महर्षिभिः॥कर्णद्वारा तथांजन्यां रामकार्यार्थमाहितम्॥६॥ततश्च समये तस्माद्धनूमानिति नामभाक् ॥शम्भुर्जज्ञे कपितनुर्महाबलपराक्रमः॥७॥ हनूमान्स कपीशानः शिशुरेव महाबलः ॥रविबिम्बं बभक्षाशु ज्ञात्वा लघुफलम्प्रगे ॥८॥ देवप्रार्थनया तं सोऽत्यजज्ज्ञात्वा महाबलम्॥शिवावतारं च प्राप वरान्दत्तान्सुरर्षिभिः ॥९॥ स्वजनन्यन्ति कम्प्रागादथ सोतिप्रहर्षितः॥ हनूमान्सर्वमाचख्यौ तस्यै तद्वृत्तमादरात्॥१०॥ तदाज्ञया ततो धीरस्सर्वविद्यामयत्नतः॥सूर्यात्पपाठ स कपिर्गत्वा नित्यं तदान्तिकम्॥११॥सूर्याज्ञया तदंशस्य सुग्रीवस्यान्तिकं ययौ॥ मातुराज्ञामनु प्राप्य रुद्रांशः कपिसत्तमः॥१२॥

वह महाबली वानर हनुमान बालकपनमें ही सूर्यको लघुफल जान सूर्य मंडलके खानेको उद्यत हुए ॥ ८ ॥ और देवताओंकी प्रार्थनासे सूर्यको त्यागा, तब देवता तथा ऋषियोंने महाबली शिवका अवतार जान उनको वरदान दिये ॥ ९ ॥ तब वह हनुमानजी अति प्रसन्न हो अपनी माताके निकट गये और उससे आदर पूर्वक वह सब वृत्तान्त (वर पानेका) कहा ॥ १० ॥ अपनी माताकी आज्ञासे धीर कपिने विना यज्ञके सम्पूर्ण विद्या सूर्यके द्वारा उनके निकट जाकर पढीं ॥ ११ ॥ वह शिवके अंशसे उत्पन्न वानर श्रेष्ठ माताकी आज्ञा पाकर

सूर्यकी आज्ञासे सूर्यके अंशसे उत्पन्न हुये सुग्रीवके समीप गये ॥ १२ ॥ छोटे भ्राता सुग्रीवकी स्त्री भोगनेवाले बलीनामक बडे भाईसे निरादरको प्राप्त हो सुग्रीवजी ऋष्यमूक पर्वतपर उन हनुमानजीके सहित रहने लगे ॥ १३ ॥ तब वह बुद्धिमान् शिवांशसे उत्पन्न हुए हनुमान सुग्रीवके मंत्री हुए, और सुग्रीवजीका सब प्रकारसे हित करते थे ॥ १४ ॥ भार्या जानकीके हरण होनेसे दुःखी हो, भाई लक्ष्मण समेत रामचन्द्रके वहां आनेपर उनके साथ सुखपूर्वक उनकी मित्रता हुई ॥ १५ ॥ रामचन्द्रजीने भाईकी स्त्री भोगनेवाले पापी, वीर, अभिमानी, वालीनामक वानरराजको मार डाला ॥ १६ ॥ हे तात ! तब वह बुद्धिमान् वानरेश्वर, हनुमानजी रामचन्द्रजीकी आज्ञासे बहुत वानरोंके

ज्येष्ठभ्रात्रा वालिना हि स्वस्त्रीभोक्त्रा तिरस्कृतः ॥ ऋष्यमूकगिरौ तेन न्यूवसत्स हनूमता ॥१३॥ ततोऽभूत्स सुकण्ठस्य मन्त्री कपिवरस्सुधीः ॥ सर्वथा सुहितं चक्रे सुग्रीवस्य हरांशजः ॥१४॥ तत्रागतेन सभ्रात्रा हृतभार्येण दुःखिना ॥ कारयामास रामेण तस्य सख्यं सुखावहम् ॥१५॥ घातयामास रामश्च वालिनं कपिकुञ्जरम्॥ भ्रातृपत्न्याश्च भोक्तारं पापिनम्वीरमानिनम् ॥१६॥ ततो रामाऽऽज्ञया तात हनूमान्वानरेश्वरः ॥ स सीतान्वेषणञ्चक्रे बहुभिर्वानरैस्सुधीः ॥१७॥ज्ञात्वा लङ्कागतां सीतां गतस्तत्र कपीश्वरः ॥ द्रुतमुल्लंघ्य सिंधुन्तमनिस्तीर्य्य परैस्स वै ॥१८॥ चक्रेऽद्भुतचरित्रं स तत्र विक्रमसंयुतम् ॥ अभिज्ञानन्ददौ प्रीत्या सीतायै स्वप्रभोर्वरम् ॥१९॥ सीताशोकं जहाराशु स वीरः कपिनायकः ॥ श्रावयित्वा रामवृत्तं तत्प्राणावनकारकम् ॥ २० ॥ तदभिज्ञानमादाय निवृत्तो रामसन्निधिम्॥ रावणाऽऽराममाहत्य जघान बहुराक्षसान् ॥ २१ ॥

सहित सीताकी खोजमें गये ॥ १७ ॥ उन हनुमानने जानकीको लंकामें गया हुआ जान औरोंसे तरनेके अयोग्य भी समुद्रको शीघ्र लांघकर वहां लंकापुरीको गमन किया ॥ १८ ॥ वहां उन्होंने पराक्रम सहित बडा अद्भुत चरित्र किया, और जानकीको उनके स्वामी रामचन्द्रजीका समाचार दिया ॥ १९ ॥ उन, कापियोंके स्वामी वीर हनुमानजीने जानकीके प्राणोंकी रक्षा करनेवाले, रामचन्द्रके वृत्तान्तको सुनाकर सीताजीका शोक शीघ्रही दूर किया ॥ २० ॥ सीताजीका समाचार ले रावणकी वाटिकाको उजाड बहुतसे राक्षसोंको मार

रामचन्द्रजीके समीप जानेकी इच्छा की ॥ २१ ॥ उस समय वहां बहुतसे राक्षसों सहित रावणके पुत्रको निर्भयहो बलके साथ अत्यन्त उपद्रव किये ॥२२॥ हे मुने ! जब बडे बली रावणने तेलसे सने हुये वस्त्रोंको पूँछमें लपेटकर दृढतासे जलाया ॥ २३ ॥ तब महादेवके अंशसे उत्पन्न हुये, उन हनुमानने कूद २ कर कौतुकसे सम्पूर्ण लंकाको भस्म किया ॥ २४ ॥ तब वह वानरश्रेष्ठ बिभीषणके घरको छोड सब लंका जलाय समुद्रमें कूदपडे ॥ २५ ॥ वहां अपनी पूंछको बुझाकर समुद्रके दूसरे पारपर पहुँचे और शिवके अंशसे उत्पन्न वह हनुमानजी निर्द्वन्द्व हो रामचन्द्रजीके निकट आये ॥ २६ ॥ कपिश्रेष्ठ हनुमानजीने बडे वेगसे शीघ्र रामचंद्रके पास आकर सीताजीके शिरकी मणि रामचंद्रको दी

तदैव रावणसुतं हत्वा सबहुराक्षसम् ॥ स महोपद्रवं चक्रेमहोतिस्तत्र निर्भयः ॥२२॥ यदा दग्धो रावणेनावगुंठ्य वसनानि च ॥ तैलाभ्यक्तानि सुदृढं महाबलवता मुने ॥ २३ ॥ उत्प्लुत्योत्प्लुत्य च तदा महादेवांशजः कपिः ॥ ददाह लंकां निखिलां कृत्वा व्याजन्तमेव हि ॥ २४ ॥ दग्ध्वा लंकां वंचयित्वा बिभीषणगृहं ततः ॥ अपतद्वारिधौ वीरस्ततस्स कपिकुञ्जरः ॥ २५ ॥ स्व पुच्छ तत्र निर्वाप्य प्राप तस्य परन्तटम् ॥ अखिन्नस्स ययौ रामसन्निधिं गिरिशांशजः ॥२६॥ अविलंबेन सुजवो हनूमान् कपि सत्तमः ॥ रामोपकण्ठमागत्य ददौ सीताशिरोमणिम् ॥ २७ ॥ ततस्तदाज्ञया वीरस्सिन्धौ सेतुमबन्धयत् ॥ वानरैस्स समानी य बहून्गिरिवरान्बली ॥२८॥ गत्वा तत्र ततो रामस्तर्तुकामो यथा ततः ॥ शिवलिंगं समानर्च प्रतिष्ठाप्य जयेप्सया ॥ २९ ॥ तद्वरात्सजयं प्राप्य वरं तीत्वोदधिं ततः ॥ लंकामावृत्य कपिभी रणं चक्रे स राक्षसैः ॥ ३० ॥ जघानाथासुरान्वीरो रामसैन्यं ररक्ष सः ॥ शक्ति क्षतं लक्ष्मणं च संजीविन्या ह्यजीवयत् ॥ ३१ ॥

॥ २७ ॥ फिर रामचंद्रकी आज्ञासे वीरबली हनुमानने और वानरों सहित बहुत पर्वतोंको लाकर समुद्रमें पुल बांधा ॥ २८ ॥ तब वहां पारजानेकी इच्छावाले रामचंद्रजीने जाकर विजयकी इच्छासे शिवलिंगकी प्रतिष्ठा करके पूजन किया ॥ २९ ॥ और शिवजीके वरसे विजयके वरदानको पाकर समुद्रको तरके वानरों सहित लंकाको घेर रामचद्रजीने राक्षसोंके साथ युद्ध किया ॥ ३० ॥ तब वहां वीर हनुमानजीने दैत्योंको मारा, रामचंद्रजीकी सेनाकी रक्षा की और शक्तिसे घायल हुये लक्ष्मणको संजीवनी बूँटीसे जिवाया ॥ ३१ ॥

महादेवके अंशवाले प्रभु हनुमानजीने सब प्रकार लक्ष्मणसहित रामचन्द्रजीको सुखी किया और सब सेनाकी रक्षा की ॥ ३२ ॥ महाबल ग्रहण करनेवाले हनुमानजीने कुटुम्ब सहित रावणको नष्ट किया, और परिश्रम रहित हो देवताओंको सुखी किया ॥ ३३ ॥ और महीरावण नामक राक्षसको मारकर उस स्थानकी रक्षा कर उसके स्थानसे लक्ष्मणसहित रामचन्द्रको ले आये ॥ ३४ ॥ वह कपिश्रेष्ठ, सब प्रकार रामचन्द्रका कार्य शीघ्रतासे करते हुए दैत्योंको मारते अनेक प्रकारकी लीला करने लगे ॥ ३५ ॥ सीताजी तथा रामचन्द्रके सुख देनेवाले वानरने स्वयं भक्त होकर भूलोकमें रामचन्द्रजीकी भक्तिको स्थापित किया ॥ ३६ ॥ भगवान् शिवका अवतार, भक्तोंके उद्धारका करने वाला,

सर्वथा सुखिनं चक्रे सरामं लक्ष्मणं हि सः॥सर्वसैन्यं ररक्षासौ महादेवात्मजः प्रभुः॥३२॥रावणं परिवाराढ्यं नाशयामास विश्रमः॥ सुखीचकार देवान्स महाबलग्रहः कपि॥३३॥महीरावणसंज्ञं स हत्वा रामं सलक्ष्मणम्॥ तत्स्थानादानयामास स्वस्थानम्परिपाल्य च ॥ ३४ ॥ रामकार्यं चकाराशु सर्वथा कपिपुंगवः ॥असुरान्नमयामास नानालीलां चकार च ॥३५॥ स्थापयामास भूलोके रामभक्तिं कपीश्वरः ॥स्वयं भक्तवरो भूत्वा सीतारामसुखप्रदः॥३६॥लक्ष्मणप्राणदाता च सर्वदेवमदापहः॥रुद्रावतारो भगवान्भक्तोद्धारकरस्स वै॥३७॥ हनुमान्स महावीरो रामकार्यकरस्सदा॥ रामदूताभिधो लोके दैत्यघ्नो भक्तवत्सलः॥३८॥इति तेकथितं तात हनुमच्चरितम्वरम्॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम्३९य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः॥सभुक्त्वेहाखिलान्कामान्ते मोक्षं लभेत्परम्॥४०॥इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां हनुमदवतारचरित्रवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥२०॥

तथा लक्ष्मणके प्राणदान करनेवाला तथा सब देवताओंके मदका नाश करनेवाला है ॥ ३७ ॥ दैत्योंको नष्ट करनेवाले, भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले यह रामदूत नामक महावीर हनुमान सदा रामकार्य करनेवाले हैं ॥ ३८ ॥ हे तात ! यह धनका देनेवाला, यशका बढाने वाला, आयुको बढानेवाला, सब कामनाओंके फलको देनेवाला हनुमानका चरित्र तुमसे कहा ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य सावधान होकर इसको भक्तिसे सुनता है, वह इस लोकमें सब मनोरथोंको भोगकर अन्तमें मोक्षको पाता है ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भा० टी० तृ० श० रु० हनुमदवतारचरित्रवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

नन्दीश्वर बोले कि हे मुने ! हे ब्रह्मपुत्र ! अब और शिवजीके परम अवतारको प्रीतिसे सुनो, जो सुननेवालोंको सब कामनाओंका देनेवाला है ॥ १ ॥ हे मुनिशार्दूल ! एक समय पार्वती और शिवजी अपनी इच्छासे विहार करनेकी इच्छा करने लगे ॥ २ ॥ भैरवको द्वारपाल नियत करके भीतर आये तब सुशील उन दोनोंकी अनेक सखियां प्रीतिपूर्वक सेवा करने लगीं ॥ ३ ॥ हे मुने ! वहांपर स्वतंत्र हुए वे दोनों शिव पार्वती अनेक लीला करके प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ तब उन्मत्त आकारवाली, तथा लीलासे स्वतंत्र हुई, पार्वती देवी द्वार पर प्रभु शिवकी आज्ञासे आई ॥ ५ ॥ तब वह भैरव द्वारपाल उस देवी पार्वतीको स्त्रीकी दृष्टिसे देख उसके रूपसे मोहित हो बाहर

नन्दीश्वर उवाच॥अथ प्रीत्या शृणु मुनेऽवतारं परमं प्रभोः ॥ शंकरस्यात्मभूपुत्र शृण्वतां सर्वकामदम्॥१॥एकदा मुनिशार्दूल गिरिजाशंकरावुभौ ॥विहर्तुकामौ संजातौ स्वेच्छया परमेश्वरौ॥२॥भैरवं द्वारपालं च कृत्वाभ्यन्तरमागतौ ॥ नानासखिगणैः प्रीत्या सेवितौ नरशीलितौ ॥३॥चिरं विहृत्य तत्र द्वौ स्वतन्त्रौ परमेश्वरौ॥बभूवतुः प्रसन्नौ तौ नानालीलाकरौ मुने ॥४॥ अथो न्मत्ताकृतिर्देवी स्वतन्त्रा लीलया शिवा॥आगता द्वारि तद्रूपा प्रभोराज्ञामवाप सा ॥५॥ तां देवीं भैरवस्सोथ नारीदृष्ट्या विलोक्य च ॥ निषिषेध बहिर्गन्तुं तद्रूपेण विमोहितः ॥६॥नारीदृष्ट्या सुदृष्टा सा भैरवेण यदा मुने ॥ कुद्धाऽभवच्छिवा देवी तं शशाप तदांबिका ॥७॥ ॥ शिवोवाच ॥ नारीदृष्ट्या पश्यसि त्वं यतो मां पुरुषाधम ॥ अतो भव धरायां हि मानुषस्त्वं च भैरव ॥ ८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्थं यदाऽभवच्छप्तो भैरवश्शिवया मुने ॥ हाहाकारो महानासीद्दुःखमाप स लीलया ॥ ९ ॥ ततश्च शंकरः शीघ्रं तमागत्य मुनीश्वर ॥ अश्वासयद्भैरवं हि नानाऽनुनयकोविदः ॥ १० ॥

जानेसे उनको निषेध करने लगे ॥ ६ ॥ हे मुने ! जब भैरवने उस देवीको नारीकी दृष्टिसे देखा, तभी क्रोधित हुई उस माता पार्वतीने उस भैरवको शाप दिया ॥ ७ ॥ शिवा बोली, हे पुरुषाधम ! हे भैरव ! जो तू मुझको स्त्रीकी दृष्टिसे देखता है, इस कारण भूमिमें तू मनुष्यपनको प्राप्त होगा ॥ ८ ॥ नन्दीश्वर बोले हे मुने ! इस प्रकार जब भैरव पार्वतीसे शाप दिये गये, तो बडा भारी हाहाकार मचा, और लीलासे उन भैरवने बडा दुःख पाया ॥ ९ ॥ हे मुनीश्वर ! तब अनेक आश्वासन वाक्योंमें प्रवीण हुए शिवजी वहां आकर उस भैरवको आश्वासन

(ढाढस) करने लगे ॥ १० ॥ हे मुने ! उस देवीके शापसे शिवकी इच्छासे भैरव पृथ्वीपर मनुष्ययोनिमें वैताल संज्ञक उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥ उनके स्नेहसे पार्वती समेत शिव भी लौकिक गतिको आश्रयकर शोभन लीला करने लगे विभु शिवजीने भी भूमिपर अवतार लिया ॥ १२ ॥ हे मुने शिवजी तो महेश नामक हुये, और पार्वती शारदा हुई इस प्रकार अनेक लीलाओंमें निपुण वे दोनों प्रीतिसे सुन्दर लीला करते हुये ॥ १३ ॥ हे तात ! यह श्रेष्ठ शिवजीका चरित्र तुमसे कहा, यह धनका देनेवाला, यशका देनेवाला तथा सब कामनाओंके फलका देनेवाला है ॥ १४ ॥ जो मनुष्य सावधान चित्तसे भक्तिपूर्वक इस चरित्रको सुनता है अथवा सुनाता है वह सब भोगोंको

तच्छापाद्भैरवस्सोथ क्षितावववतरन्मुने ॥ मनुष्ययोन्यां वैतालसंज्ञकश्शंकरेच्छया ॥११॥ तत्स्नेहतः शिवः सोपि क्षितावववतर द्विभुः ॥ शिवया सहसल्लीलो लौकिकीङ्गतिमाश्रितः ॥ १२ ॥ महेशाह्वः शिवश्चासीच्छारदा गिरिजा मुने ॥ सुलीलां चक्रतुः प्रीत्या नाना लीलाविशारदौ ॥ १३ ॥ इति ते कथितं तात महेशचरितं वरम् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ १४ ॥ य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः ॥ स भुक्त्वेहाखिलान्भोगानन्तेमोक्षमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥ इति श्रीशिव महापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां महेशावतारवर्णनं नामैकविंशोध्यायः ॥ ॥ २१ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ शृणु ब्रह्मसुत प्राज्ञ वृषेशाख्यं मुनीश्वर ॥ शिवावतारं सल्लीलं हरिगर्वहरं वरम् ॥ १ ॥ पुरा देवासुराः सर्वे जरामृत्युभयार्दिताः ॥ परस्परं च संधाय रत्नान्यादित्सवोऽभवन् ॥ २ ॥ ततः सुराऽसुराः सर्वे क्षीरोदं सागरोत्तमम् ॥ उद्यता मथितुं तं च बभूवुर्मुनि नन्दन ॥ ३ ॥ आसञ्शुचिस्मितास्सर्वे केनेदं मन्थनं भवेत् ॥ स्वकार्य्यसिद्धये तस्य ब्रह्मन्निति सुरासुराः ॥ ४ ॥

भोगकर अन्तमें मोक्षको पाता है ॥ १५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भा० तृ० श० रु० महेशावतारवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे ब्रह्मसुत ! हे मुनीश्वर ! हे प्राज्ञ ! श्रेष्ठ लीला युक्त तथा विष्णुके अभिमानका नाश करनेवाला, वृषेश नामक शिवका अवतार सुनो ॥ १ ॥ पहले सब देवता तथा दैत्य, जरा मृत्युके भयसे व्याकुल हो आपसमें मिलकर रत्नोंके लेनेकी इच्छा करने लगे ॥ २ ॥ हे मुनिनन्दन ! तब वे सब देवता तथा दैत्य, क्षीरसागरके मथनेको उद्यत हुये ॥३॥ हे ब्रह्मन् ! यह समुद्र किसके द्वारा मथा जाय इस प्रकार

वे सब अपने कार्य सिद्धि होनेके लिये शोक चिन्तासे व्याकुल मनवाले हुये ॥ ४ ॥ तब शिवकी आज्ञासे देवता तथा दैत्योंको आश्वासना देनेवाली, मेघके समान गम्भीर शब्द करनेवाली आकाशवाणी हुई ॥ ५ ॥ आकाशवाणी बोली, हे देवताओ ! हे दैत्यो ! ! तुम दोनों क्षीर सागरको मथो, तुम्हारी बुद्धिसे यह कार्य हो जायगा, इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ६ ॥ मन्दराचल पर्वतकी मथानी (रई) बनाओ, और वासुकिकी रस्सी बनाओ, और आदर सहित परस्पर मिलकर दोनों देव दानव मथो ॥ ७ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुनिसत्तम ! तब आकाशवाणीको सुनकर सब देवता तथा दैत्य सब सामग्री इकट्ठी करनेको उद्योग करते हुये ॥ ८ ॥ वे दोनों मिलकर, सुवर्णके समान

तदा नभोगता वाणी मेघगम्भीरनिस्वना ॥ उवाच देवान्दैत्यांश्च श्वासयन्तीश्वराज्ञया ॥ ५ ॥ नभोवाण्युवाच ॥ हे देवा असुराश्चैव मन्थध्वं क्षीरसागरम् ॥ भवताम्बलबुद्धिर्हि भविष्यति न संशयः ॥ ६ ॥ मन्दरं चैव मन्थानं रज्जुं कुरुत वासुकिम् ॥ मिथस्सर्वे मिलित्वा तु मंथनं कुरुतादरात् ॥ ७ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ नभोगतां तदा वाणीं निशम्याथ सुरासुरः ॥ उद्योगं चक्रिरे सर्वे तत्कर्तुं मुनिसत्तम ॥८॥ सुसन्धायाखिलास्ते वै मन्दरम्पर्वतोत्तमम् ॥ कनकाभं च सरलं नानाशोभार्चितं ययुः ॥ ९ ॥ सुप्रसाद्य गिरीशं तं तदाज्ञप्ताः सुरासुराः ॥ बलादुत्पाटयामासुर्नेतुकामाः पयोऽर्णवम् ॥ १० ॥ भुजैरुत्पाट्य ते सर्व्वे जग्मुः क्षीरार्णवं मुने ॥ अशक्ता अभवंस्तत्र तमानेतुं हतौजसः ॥११॥तद्भुजैस्स परिभ्रष्टः पतितो मंदरो गिरिः ॥ सहसा तिगुरुस्सद्यो देवदैत्यो परिध्रुवम् ॥१२॥ एवम्भग्नोद्यमा भग्नाः सम्बभूवुस्सुरासुरा॥ चेतनाः प्राप्य च ततस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥१३॥

कान्तिवाले सरल अनेक प्रकारकी शोभा युक्त उस मन्दराचल पर्वतके समीप गये ॥ ९ ॥ उस पर्वतको अच्छी भांति प्रसन्न करके उसकी आज्ञा पाय समुद्रके मथनेकी इच्छासे वे दोनों देव दानव बलसे उस पर्वतको समुद्रमें लेजानेको उखाडने लगे ॥ १० ॥ हे मुने वे सब उस पर्वतको अपनी भुजाओंसे उखाड क्षीर सागरमें ले गये, वहांपर वे उस पर्वतके लानेमें असमर्थ हुये और बल शून्य हुये ॥ ११ ॥ उनकी भुजाओंसे छूटा हुआ वह बडा भारी मन्दराचल पर्वत अकस्मात् देवता और दैत्योंके ऊपर गिरा ॥ १२ ॥ इस प्रकार साहसहीन

उद्यमशून्य हुए वे देवता और दैत्य क्षणमें चेतना पाकर जगदीश्वर शिवकी स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥ उन शिवकी इच्छासे उद्यत हुए सब देवता व दैत्योंने फिर उस पर्वतको उठाकर क्षीरसागरके जलमें लेजाकर समुद्रके उत्तर तटमें डाला ॥ १४ ॥ तब देवता तथा राक्षसोंने वासुकिको रस्सी बनाकर रत्नोंके लेनेकी इच्छासे उस क्षीरसागरको मथा ॥ १५ ॥ क्षीरसागरके मथनेपर उस समुद्रसे देवलोककी महेश्वरी भृगुकी पुत्री लक्ष्मी निकली ॥ १६ ॥ धन्वन्तरि वैद्य, चन्द्रमा, पारिजात कल्पवृक्ष, उच्चैःश्रवा घोडा, तथा ऐरावत हाथी ॥ १७ ॥ मदिरा, हरिकाधनुष (शार्ङ्ग), शंख, कामधेनु, कौस्तुभमणि, तथा अमृत यह सब निकले ॥ १८ ॥ फिर मथनेपर प्रलयकालकी अग्निके समान

तदिच्छयोद्यतास्सर्वे पुनरुत्थाप्य तं गिरिम् ॥ निचिक्षिपुर्जले नीत्वा क्षीरोदस्योत्तरे तटे ॥१४॥ततस्सुरासुरगणा रज्जुं कृत्वा च वासुकिम् ॥ रत्नान्यादातुकामास्ते ममंथुः क्षीरसागरम् ॥ १५ ॥ क्षीरोदे मथ्यमाने तु श्रीस्स्वर्लोकमहेश्वरी ॥ समुद्भूता समुद्राच्च भृगुपुत्री हरिप्रिया ॥ १६ ॥ धन्वन्तरिः शशांकश्च पारिजातो महाद्रुमः ॥ उच्चैश्श्रवाश्च तुरगो गज ऐरावतस्तथा ॥ १७ ॥ सुरा हरिधनुश्शङ्खो गावः कामदुघास्ततः ॥ कौस्तुभाख्यो मणिश्चैव तथा पीयूषमेव च ॥१८॥ पुनश्च मथ्यमाने तु कालकूटं महाविषम् ॥ युगान्तानलभ जातं सुरासुरभयावहम् ॥१९॥ पीयूषजन्मकाले तु बिन्दवो ये बहिर्गताः ॥ तेभ्यः कान्ता समुद्भूता बह्वचो ह्यद्भुतदर्शनाः ॥ २० ॥ शरत्पूर्णेन्दुवदनास्तडित्सूर्य्यानलप्रभाः ॥ हारकेयूरकटकैर्दिव्यरत्नैरलङ्कृताः ॥ २१ ॥ लावण्यामृततोयेन तास्सिंचन्त्योदिशो दश ॥ जगदुन्मादयन्त्येव भ्रूभङ्गायतवीक्षणाः ॥ २२ ॥

प्रज्वलित, देवता और राक्षसोंको भय देनेवाला कालकूट महाविष, निकला ॥ १९ ॥ अमृत निकलते समय जो उसकी बूंदें बाहर निकलीं उनसे बहुत सुन्दर स्वरूपवाली स्त्रियां उत्पन्न हुईं ॥ २० ॥ जो शरदऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली बिजली और सूर्य तथा अग्निके समान कांतिवाले हार बाजूबंद कंकण तथा सुन्दर रत्नोंसे शोभायमान थीं ॥ २१ ॥ वे सब स्त्रियां लावण्य (सुन्दरता) रूप अमृत जलसे दशों दिशाओंको सींचती हुई तथा भौंके चढानेमें चौडे नेत्रवाली संसारको उन्मत्त कराती हुईं ॥ २२ ॥

करोडों स्त्रियां उस अमृतसे निकलीं, फिर जरामृत्युका निवारण करने वाला अमृत उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ लक्ष्मी, शंख, कौस्तुभ, तथा खड्ग को विष्णुने ग्रहण किया, और उच्चैःश्रवानामक सुन्दर घोडेको आदरसे सूर्यने लिया ॥२४॥ देवताओंके स्वामी इन्द्रने बडे आदरपूर्वक पारिजात कल्पवृक्ष, तथा ऐरावत हाथी लिया ॥ २५ ॥ भक्तवत्सल शिवजीने कालकूट विष, अपने कंठमें, तथा चन्द्रमाको देवताओंकी रक्षा करनेके निमित्त अपनी इच्छासे अपने मस्तकमें धारण किया ॥ २६ ॥ हे व्यासजी ! शिवकी मायासे मोहित हुए दैत्योंने रमण करने वाली मदिरा को लिया और सब मनुष्योंने धन्वन्तरि वैद्यको ग्रहण किया ॥ २७ ॥ सब मुनीश्वरोंने कामधेनुको ग्रहण किया और वे सामान्य स्त्रियां

कोटिशस्तास्समुत्पन्नास्त्वमृतात्कामनिस्सृताः ॥ ततोऽमृतं समुत्पन्नं जरामृत्युनिवारणम् ॥ २३ ॥ लक्ष्मीं शंखं कौस्तुभं च खड्गं जग्राह केशवः ॥ जग्राहार्को हयं दिव्यमुच्चैःश्रवसमादरात् ॥ २४ ॥ पारिजातं तरुवरमैरावतमिभेश्वरम् ॥ शचीपतिश्च जग्राह निर्जरेशो महादरात् ॥ २५ ॥ कालकूटं शशांकं च देवत्राणाय शंकरः ॥ स्वकण्ठे धृतवाञ्छम्भुस्स्वेच्छया भक्तवत्सलः ॥ २६ ॥ दैत्यास्सुराख्यां रमणीमीश्वराजाविमोहिताः ॥ जगृहुः सकला व्यास सर्वे धन्वन्तरिं जनाः ॥ २७ ॥ जगृहुर्मुनयस्सर्वे कामधेनुम्मुनीश्वराः ॥ सामान्यतस्त्रियस्ताश्च स्थिता आसन्विमोहिताः ॥२८॥ अमृतार्थं महायुद्धं संबभूव जयैषिणाम् ॥ सुराणामसुराणां च मिथः संक्षुब्धचेतसाम् ॥ २९ ॥ हृतं सोमं च दैतेयर्बलाद्देवान्विजित्य च ॥ बलिप्रभृतिभिर्व्यास युगान्ताग्न्यर्कसुप्रभैः ॥ ३० ॥ देवाश्शंकरमापन्ना विह्वलाश्शिवमायया ॥ सर्वे शक्रादयस्तात दैतेयैरर्दिता बलात् ॥ ३१ ॥ ततस्तदमृतं यत्नात्स्त्रीस्वरूपेण मायया ॥ शिवाज्ञया रमेशेन दैत्येभ्यश्च हृतम्मुने ॥ ३२ ॥

मोहिनीरूप हो स्थित रहीं ॥ २८ ॥ तब अमृतके निमित्त मलीन चित्त हुए तथा विजय चाहनेवाले देवता और राक्षसोंमें परस्पर बडा युद्ध हुआ ॥ २९ ॥ हे व्यासजी ! प्रलयकी अग्नि तथा सूर्यके समान तेजस्वी बलि आदि दैत्योंने बलपूर्वक देवताओंको जीतकर अमृत हरण कर लिया ॥ ३० ॥ हे तात ! बलात्कारसे दैत्योंसे पीडित हुए, वे इन्द्र आदि सब देवता, शिवकी मायासे मोहित हो शिवके समीप आये ॥ ३१ ॥ हे मुने ! शिवकी आज्ञासे विष्णुने वह अमृत, यत्नपूर्वक मायासे स्त्रीरूप धरकर दैत्योंसे छीन लिया ॥ ३२ ॥

मायावियोंमें श्रेष्ठ विष्णुने मोहिनी स्त्रीका रूप धार सब दैत्योंको मोहितकर, वह अमृत देवताओंको पिलाया ॥ ३३ ॥ सब दैत्य उस मोहिनीके निकट जाकर बोले हमको भी इस अमृतको पिलाओ पंक्तिमें भेद न होवे ॥ ३४ ॥ यह कहकर शिवकी मायासे मोहित हुये उन सब दैत्य और दानवोंने अमृत बांटनेके निमित्त कपटरूपधारी विष्णुको दिया ॥ ३५ ॥ इसी अवसरमें उन दैत्योंने अमृतसे उत्पन्न हुई उन स्त्रियोंको देखकर सुखपूर्वक अपने अपने स्थानोंपर स्थिति की ॥ ३६ ॥ उन स्त्रियोंके नगर स्वर्गसेभी सौगुने सुन्दर घोर यन्त्रोंसे अच्छीप्रकार गुप्त शिवजीकी मायासे बने हुए थे ॥ ३७ ॥ उन सबोंको सुरक्षित करके युद्ध करनेको गये, और जिन्होंने उनका वक्षःस्थल भी न छुआ था ऐसे

अपाययत्सुरांस्तांश्च मोहिनीस्त्रीस्वरूपधृक् ॥ मोहयित्वा सुरान्सर्वान्हरिर्मायाविनां वरः ॥ ३३ ॥ गत्वा निकटमेतस्या ऊचिरे दैत्य पुंगवाः ॥ पाययस्व सुधामेतां मा भूद्भेदोऽत्र पंक्तिषु ॥ ३४ ॥एतदुक्त्वा ददुस्तस्मै विष्णवे छलरूपिणे ॥ ते दैत्या दानवाः सर्वे शिव मायाविमोहिताः ॥ ३५ ॥ एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा स्त्रियो दानवपुंगवाः ॥ अनयन्नमृतोद्भूता यथास्थानं यथासुखम् ॥ ३६ ॥ तासाम्पुराणि दिव्यानि स्वर्गाच्छतगुणान्यपि ॥ घोरैर्यन्त्रैस्सुगुप्तानि मयमायाकृतानि च ॥ ३७ ॥ सुरक्षितानि सर्वाणि कृत्वा युद्धाय निर्ययुः ॥ अस्पृष्टवक्षसो दैत्याः कृत्वा समयमेव हि ॥ ३८ ॥ न स्पृशामः स्त्रियश्चेमा यदि देवैर्विनिर्जिताः ॥ इत्युक्त्वा ते महावीरा दैत्यास्सर्वे युयुत्सवः ॥ ३९ ॥ सिंहनादन्ततश्चक्रुश्शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥ पूरयन्त इवाकाशं तर्पयन्तो बलाहकान् ॥ ४० ॥ युद्धं बभूव देवानामसुरैस्सह भीकरम् ॥ देवासुराख्यमतुलं प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ ४१ ॥ जयं प्रापुस्सुरास्सर्वे विष्णुना परिरक्षिताः ॥ दैत्याःपलायितास्तत्र हताःसामरविष्णुना ॥ ४२ ॥

दैत्योंने उनकी रक्षा की ॥ ३८ ॥ यदि हमको देवता जीतलेंगे तो हम इन स्त्रियोंको नहीं स्पर्श करेंगे ऐसा कहकर महावीर युद्धकी इच्छा करनेवाले वे सब दैत्य मिलकर ॥ ३९ ॥ सिंहनाद करते हुये पृथक् २ शंखोंको बजानेसे मानो आकाशको गुंजारने और मेघोंको तृप्त करने लगे ॥ ४० ॥ तब देवताओंका दैत्योंके साथ भयंकर युद्ध अतुल देवासुर संग्राम तीनों लोकमें प्रसिद्ध हुआ ॥४१॥ तब विष्णुजीसे रक्षा किये सब देवताओंने विजय पाई और वहां बहुतसे दैत्य देवता तथा विष्णुजीके हाथसे मारे गये, शेष भाग गये ॥ ४२ ॥

देवताओंने तथा महात्मा विष्णुने सब दैत्योंको मोहित किया, और जो मारनेसे बचे वह पातालके विवरोंमें प्रवेश करगये ॥ ४३ ॥ महाबली चक्र हाथमें लिये विष्णुजी डरेहुए पातालमें स्थित हुये उन दैत्योंके पीछे गये ॥ ४४ ॥ इसी अवसरमें विष्णुने अमृतसे उत्पन्न हुई पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली दिव्य सौन्दर्य्यसे गर्वित स्त्रियोंको देखा ॥ ४५ ॥ कामके बाणोंसे मोहित हुए विष्णुने सुन्दर स्त्रियोंके साथ क्रीडा विहार कर निवृत्ति (शांति) प्राप्त की ॥ ४६ ॥ विष्णुने उन स्त्रियोंसे श्रेष्ठ पराक्रमवाले, अनेकप्रकारके युद्धमें चतुर पुत्रोंको उत्पन्न किया, वे सारी पृथ्वीको कंपानेमें समर्थ थे ॥ ४७ ॥ तब महाबल और पराक्रमवाले वे विष्णुके पुत्र स्वर्गलोकमें तथाभूलोकमें बडा दुखदाई

दैत्याः संमोहिता देवैर्विष्णुना च महात्मना ॥ हतावशिष्टाः पातालं विविशुर्विवराणि च ॥ ४३ ॥ अनुवव्राज तान्विष्णुश्चक्र पाणिर्महाबलः ॥ पातालं परमं गत्वा संस्थितान्भीतभीतवत् ॥ ४४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे विष्णुददर्शामृतसम्भवाः ॥ कान्ताःपूर्णेन्दुवदना दिव्यलावण्यगर्विताः ॥ ४५ ॥ संमोहितःकामबाणैर्लेभे तत्रैव निर्वृतिम् ॥ ताभिश्च वरनारीभिः क्रीडमानो बभूव ह ॥ ४६ ॥ ताभ्यः पुत्रानजनयद्विष्णुर्वरपराक्रमान् ॥ महीं सर्वां कंपयतो नानायुद्धविशारदान्॥ ४७ ॥ ततो वै हरिपुत्रास्ते महा बलपराक्रमाः ॥ महोपद्रवमाचेरुस्स्वर्गे भुवि च दुःखदम् ॥ ४८ ॥ लोकोपद्रवमालक्ष्य निर्जरा मुनयोऽथ वै ॥ चक्रुर्निवेदनन्तेषां ब्रह्मणे प्रणिपत्य च ॥ ४९ ॥ तच्छ्रुत्वादाय तान्ब्रह्मा ययौ कैलासपर्वतम् ॥ तत्र दृष्ट्वा शिवं देवैः प्रणनाम पुनः पुनः ॥ ५० ॥ तुष्टाव विविधैस्तोत्रैर्नत स्कन्धः कृताञ्जलिः ॥ जय देव महादेव सर्वस्वामिन्निति ब्रुवन् ॥ ५१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेव महादेव लोकान्रक्षाखिलान्प्रभो ॥ उपद्रुतान्विष्णुपुत्रैः पातालस्थैर्विकारिभिः ॥ ५२ ॥

उपद्रव मचाने लगे ॥ ४८ ॥ मुनियोंने तथा देवताओंने उन पुत्रोंका संसारभरमें उपद्रव देखकर ब्रह्मासे प्रणामकर निवेदन किया ॥ ४९ ॥ यह सुनकर ब्रह्मा उनको लेकर कैलास पर्वतको गये; वहां देवदेव शिवको देखकर वारंवार प्रणाम करने लगे ॥ ५० ॥ नानाप्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करते हुए कंधे झुकाये तथा हाथ बांधे ब्रह्माजी बोले; हे सर्वस्वामिन् ! हे देव ! हे महादेव ! हे प्रभो ! सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करो, पातालमें स्थित हुए विकारी, विष्णुके पुत्रोंसे किये उपद्रव को शांत करो ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

हे विभो ! अमृतसे उत्पन्न हुई स्त्रियोंमें मन लगाये विकारवाले विष्णुजी अब पातालमें स्थित हैं, और वहां रमण करते हैं ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर बोले. ऋषि तथा देवताओंके सहित ब्रह्माजीसे इस प्रकार स्तुतिको प्राप्तहो शिवजी लोककी रक्षा करनेके निमित्त तथा पातालसे विष्णुकेलानेको प्रसन्न हुए ॥ ५४ ॥ और उन कृपासिंधु भगवान् महेश्वरने उस उपद्रवको जानकर बैलका रूप धारण किया ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटी० तृ० श० रु० विष्णूपद्रव वृषावतारवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ नन्दीश्वर बोले, तब बैलरूपसे गर्जते हुए शिवजीने भयंकर शब्द करके उस पातालके विवरमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ उनके उस घोर शब्दसे पुर तथा नगर सब गिरने लगे और नगरवासियोंमें हलचल मच

नारीष्वमृतभूतासु संसक्तात्मा हरिर्विभो ॥ पाताले तिष्ठतीदानीं रमते हि विका रवान् ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्थं बहु स्तुतः शम्भुर्ब्रह्मणा सर्षिनिर्जरैः ॥ लोकसंरक्षणार्थाय विष्णोरानयनाय च ॥ ५४ ॥ ततस्स भगवाञ्छम्भुः कृपासिंधुर्महेश्वरः ॥ तदुपद्रवमाज्ञाय वृषरूपो बभूव ह ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहि तायां विष्णूपद्रववृषावतारवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ ततो वृषभरूपेण गर्जमानः पिनाकधृक् ॥ प्रविष्टो विवरं तत्र निनदन्भैरवान्र वान् ॥ १ ॥ निपेस्तुतस्य निनदैः पुराणि नगराणि च ॥ प्रकम्पो हि बभूवाथ सर्वेषां पुरवासि नाम् ॥ २ ॥ ततो वृषो हरेः पुत्रान्संग्रामोद्यतकार्मुकान् ॥ शिवमायाविमूढात्ममहाबलपराक्रमान् ॥ ३ ॥ हरिपुत्रास्ततस्तेऽथ प्राकुप्यन्मुनिसत्तम ॥ प्रदुद्रुवु प्रगर्ज्योच्चैर्वीराश्शंकरसन्मुखम् ॥ ४ ॥ आयातांस्तान्हरेः पुत्रान्रुदो वृषभरूपधृक् ॥ प्राकुप्यद्विष्णु पुत्रांश्च खुरैश्शृंगैर्व्यदार यत् ॥ ५ ॥ विदारितांगा रुद्रेण सर्वे हरि सुताश्च ते ॥ नष्टा द्रुतं सम्बभूवुर्गतप्राणा विचेतसः ॥ ६ ॥

गई ॥ २ ॥ तब वह वृषरूपधारी शिवजी, महेश्वरकी मायासे मोहित हो बलपराक्रमवाले, संग्राममें धनुष पकडे हुये, विष्णुके पुत्रोंके सन्मुख गये ॥ ३ ॥ हे मुनिसत्तम ! तब वे वीर विष्णुके पुत्र क्रोध करते हुए, गर्जकर शिवके सन्मुख धावमान हुए ॥ ४ ॥ और वृषरूपी महादेव भी आये हुए उन विष्णुके पुत्रोंको, खुर और सींगोंसे मारने लगे तथा उनके ऊपर क्रोध करने लगे ॥ ५ ॥ शिवजीसे घायल अंग किये हुए, विष्णुके पुत्र प्राणोंसे रहित तथा मूर्च्छित हो शीघ्रही नष्ट होगये ॥ ६ ॥

उन पुत्रोंके मरजानेपर बलवानोंमें श्रेष्ठ विष्णु उस पातालविवरसे निकलकर शिवके निकट शीघ्र आये ॥ ७ ॥ और विष्णुके पुत्रोंको मारने वाले वृषरूपी शिवको जाता हुआ देख, विष्णुजी उनको दिव्य अस्त्रोंसे ताडन करने लगे ॥ ८ ॥ तब महाबली वृषरूपधारी महादेवने कुपित होकर पर्वतके ऊपर विष्णुके सम्पूर्ण अस्त्र काट डाले ॥९॥हे मुने! तब वह वृषावतारी महादेव महादेव महाक्रोध करके तीनों लोकोंको कंपाते हुये महाघोर शब्द करने लगे ॥ १० ॥ क्रोधी मूढ विष्णुको हरि हैं ऐसा न जानकर, वेगसे कूद कूद कर खुर और सींगोंसे विदीर्ण किया ॥ ११ ॥ तब वह मायासे मोहित, शिथिल शरीरवाले विष्णु उसके प्रहारको न सहकर शीघ्रही घायल होगये ॥ १२॥ अभिमानरहित मूर्च्छित,

हतेषु तेषु पुत्रेषु विष्णुर्बलवतां वरः ॥ निष्क्रम्याथ प्रणम्योच्चैर्ययौ शीघ्रं हरान्तिकम् ॥७॥ दृष्ट्वा रुद्रं प्रव्रजंतं हतविष्णुसुतं वृषम् ॥ शरैस्सन्ताडयामास दिव्यैरस्त्रैश्च केशवः ॥८॥ ततः क्रुद्धो महादेवो वृषरूपी मदाबलः ॥ अस्त्राणि तानि विष्णोश्च जग्रास गिरिगोचरः॥९॥अथ कृत्वा महाकोपं वृषात्मा स महेश्वरः॥विननाद महाघोरं कम्पयंस्त्रिजगन्मुने ॥१०॥ तत विष्णोश्च तरसा खुरैश्शृंगैर्व्यदारयत्॥विष्णुं क्रोधाकुलं मूढमजानन्तं निजं हरिम्॥११॥ततस्स शिथिलात्मा हि व्यथितांगो बभूव ह॥तत्प्रहारमसह्याशुहरिर्मायाविमोहितः॥१२॥गतगर्वो हरिश्चैव विचेता गतचेतनः॥ज्ञातवान्परमेशानं विहरन्तं वृषात्मना॥१३॥अथ विज्ञाय गौरीशमागतं वृषरूपतः॥प्राह गम्भीरया वाचा नतस्कन्धः कृताञ्जलिः॥१४॥ हरिरुवाच ॥ देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ॥ मायया ते महेशान मोहितोहं विमूढधीः॥१५॥कृतं युद्धं त्वयेशेन स्वनाथेन मया प्रभो ॥कृपां कृत्वा मयि स्वामिन्सोऽपराधो हि सह्यताम् ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हरेर्दीनतया मुने॥भगवाञ्छंकरः प्राह रमेशं भक्तवत्सलः ॥१७॥

तथा चेतना रहित हुए विष्णुने बैलरूपसे विहार करते हुए शिवजीको जाना ॥ १३ ॥ तब वृषरूप धारणकर आये हुए शिवको जान कंधे झुकाय हाथजोड गम्भीर वाणीसे विष्णुजी बोले ॥ १४ ॥ भगवान् बोले, कि--हे देवदेव ! हे महादेव ! हे करुणासागर ! हे प्रभो ! हे महेशान ! आपकी मायासे मैं मूर्खबुद्धि मोहित हो रहा हूं ॥ १५ ॥ हे प्रभो ! हे स्वामिन् ! मेरे स्वामी आप ईश्वरने जो मेरे साथ युद्ध किया है सो मेरे ऊपर कृपा करके उस अपराधको सहन करो, क्षमा करो, ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! उन विष्णुजीके दीन वचन सुन भक्तोंके ऊपर

दया करनेवाले भगवान् शंकर विष्णुसे बोले ॥ १७ ॥ हे विष्णो ! हे महाबुद्धे ! तुमने मुझे क्यों नहीं जाना और मेरे साथ युद्ध किया कैसे तुम्हारा सब ज्ञान जाता रहा ॥ १८ ॥ क्या तुम मुझसे अधीन पराक्रम युक्त अपनेको नहीं जानते हो, और तुम इन स्त्रियोंमें रमण मत करो इस खोटे कर्मसे निवृत्त हो ॥ १९ ॥ हे देवेश ! तुम स्त्रियोंके साथ आसक्त हो विहार करते हो, यह तुमको उचित नहीं है, कामके अधीन होकर, संसारके तारण करनेका ज्ञान किस प्रकार रहता है ॥ २० ॥ तब आदरसे कहे हुए ज्ञानके देनेवाले, शिवके वचन सुनकर विष्णु अपने मनसे अपनेको लज्जित करते हुए शिवजीसे वह वचन बोले ॥ २१ ॥ विष्णुजी बोले, मैं अपने सुदर्शन चक्रको

हे विष्णो हे महाबुद्धे कथं मां ज्ञातवान्न हि॥युद्धं कृतं कृतस्तेऽद्य ज्ञानं सर्व्वं च विस्मृतम्॥१८॥आत्मानं किन्न जानासि मदधीनपराक्रमम् ॥ त्वया नात्र रतिः कार्या निवर्तस्व कुचारतः ॥१९॥ कामाधीनं कथं ज्ञानं स्त्रीषु सक्तो विहारकृत् ॥ नोचितन्तव देवेश स्मरणं विश्वतारणम्॥२०॥तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं विज्ञानप्रदमादरात्॥व्रीडयन्स्वमनसा विष्णुः प्राह वाचं महेश्वरम्॥२१॥ विष्णुरुवाच॥ ममात्र विद्यते चक्रं तद् गृहीत्वेतदादरात् ॥गमिष्यामि स्वलोकन्तन्त्वदाज्ञापरिपालकः॥२२॥नन्दीश्वर उवाच॥ तदाकर्ण्य महेशानो वचनं वैष्णवं हरः॥प्रत्युवाच वृषात्मा हि वृषरक्षः पुनर्हरिम्॥२३॥न विलम्बःप्रकर्त्तव्यो गन्तव्यमित आशु ते॥मच्छासनाद्धरे लोकेच क्रमत्रैव तिष्ठताम्॥२४॥ सन्तानादित्यसंस्थानाच्छिवत्ववचनादपि॥अहं घोरतरं तस्माच्चक्रमन्यद्ददामि ते॥ २५ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एतदुक्त्वा हरोऽलेखीद्दिव्यं कालानलप्रभम् ॥ परं चक्रं प्रदीप्तं हि सर्वदुष्टविनाशनम् ॥ २६ ॥

लेकर तुम्हारी आज्ञाका पालन कर अपने लोकको जाता हूं ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार शिवजी विष्णुके वचन सुन फिर वृषात्मा तथा वृषभोंकी रक्षा करनेवाले महादेवजी विष्णु भगवान्से बोले ॥ २३ ॥ हे हरे ! तुमको विलम्ब नहीं करना चाहिये, शीघ्र मेरी आज्ञासे यहांसे जाओ चक्रको यहां ही रहने दो ॥ २४ ॥ सन्तान तथा सूर्यके संस्थान तथा कल्याणी वचनके कहनेसे मैं अति भयंकर हूँ इस कारण मैं तुमको और चक्र देता हूं॥२५॥नन्दीश्वर बोले, यह कहकर शिवजीने कालाग्निके समान देदीप्यमान प्रदीप्त सब दुष्टोंके नाश

करनेवाला दूसरा दिव्य चक्र निकाला ॥ २६ ॥ भयंकर सूर्यके समान कांतिवाले चक्रको सब देवता तथा मुनियोंकी रक्षा करनेके निमित्त महात्मा विष्णुको दिया ॥ २७ ॥ परम दीप्तिवाले दूसरे सुदर्शन चक्रको लेकर बुद्धि मानोंमें श्रेष्ठ विष्णुजी वहां देवताओंसे बोले ॥ २८ ॥ हे सब देवताओ ! तुम सब आदर सहित मेरे वचन सुनो, और उसी प्रकार शीघ्रतासे उनको करो तब तुम्हारा कल्याण होगा ॥ २९ ॥ पाताललोकमें यौवनसे उन्मत्त दिव्य स्त्रियां हैं उनके साथ जिसकी इच्छा हो वह २ महाक्रीडा करे ॥ ३० ॥ यह विष्णुके वचन सुनकर विष्णुके सहित वे शूर देवता पातालमें प्रवेश करनेकी इच्छा करने लगे ॥ ३१ ॥ तब भगवान् शिवजीने उन देवताओंके विचारको

विष्णवे प्रददौ चक्रं घोरार्कायुतसुप्रभम् ॥सर्वामरमुनीन्द्राणां रक्षकाय महात्मने॥२७॥ लब्ध्वा सुदर्शनं चान्यच्चक्रं परमदीप्ति मित् ॥ उवाच विबुधांस्तत्र विष्णुर्बुद्धिमतां वरः ॥ २८ ॥ सर्वदेववरा यूयं मद्वाक्यं शृणुतादरात् ॥ कर्तव्यन्तत्तथा शीघ्रं त तश्शं वो भविष्यति॥२९॥दिव्या वरांगनास्सन्ति पाताले यौवनान्विताः॥ ताभिःसार्द्धं महाक्रीडां यः करोतुकरोतु सः॥३०॥ तच्छ्रुत्वा केशवाद्वाक्यं शूरास्त्रिदशयोनयः ॥ प्रवेष्टुकामाः पातालम्बभूवुर्विष्णुना सह ॥३१॥ विचारमथ विज्ञाय तन्तदा भगवान्हर ॥ क्रोधाच्छापन्ददौ घोरं देवयोन्यष्टकस्य च ॥ ३२ ॥ हर उवाच ॥ वर्जयित्वा मुनिं शान्तं दानवान्वा मदंश जम् ॥ इदं यः प्रवि शेत्स्थानं तस्य स्यान्निधनं क्षणात् ॥ ३३ ॥ श्रुत्वा वाक्यमिदं घोरं मनुष्यहितवर्धनम् ॥ प्रत्याख्या तास्तु रुद्रेण देवास्स्वगृहमाययुः ॥ ३४ ॥ एवं स्त्रीलः परो विष्णुश्शिवेन प्रतिशासितः ॥ स्वर्लोकमगमद्व्यास स्वास्थ्यं प्राप जगच्च तत् ॥ ३५ ॥ वृषेश्वरोऽपि भगवाञ्छंकरो भक्तवत्सलः ॥ इत्थं कृत्वा देवकार्यं जगाम स्वगिरीश्वरम् ॥ ३६ ॥

जानकर आगे देव योनियोंको क्रोधसे घोर शाप दिया ॥ ३२ ॥ शिवजी बोले, मेरे अंशसे उत्पन्न हुए मुनियोंको तथा दत्योंको छोडकर जो कोई भी पातालके स्थानमें प्रवेश करेगा उसी समय उसकी मृत्यु हो जायगी ॥ ३३ ॥ मनुष्योंके हितका बढानेवाला यह घोर शाप सुनकर शिवसे तिरस्कार किये हुये देवता अपने अपने स्थानोंको गये ॥ ३४ ॥ हे व्यास ! इस प्रकार स्त्रियोंमें आसक्त हुये विष्णुको शिवने शासन किया, तो वह देवलोकको गये और संसार स्वस्थताको प्राप्त हुआ ॥ ३५ ॥ भक्तवत्सल, वृषेश्वर, भगवान् शिवजी

इस प्रकार देवताओंका कार्य करके अपने कैलासपर्वतको गये ॥ ३६ ॥ शिवजीका वृषेश्वरावतार तो वर्णन किया जो विष्णुके अज्ञानका हरनेवाला कल्याणरूप त्रिलोकीके सुखका कारण है ॥ ३७ ॥ यह पवित्र कथा, शत्रुओंकी परम बाधा हरनेवाली, स्वर्ग देनेवाली तथा सत्पुरुषोंको यश आयु, भोग्य मुक्तिकी देनेवाली है ॥ ३८ ॥ जो इसको भक्तिके साथ सावधान हो सुनता है अथवा सुनाता है, वह समस्त कामनाओंको भोगकर अन्तसमय मोक्षको प्राप्त होता है, तथा जो इसे स्वयं वढता है अथवा पढाता है वह भी पूर्वोक्त फल पाता है ॥ ३९ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० वृषेश्वरशिवावतारवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे महाप्राज्ञ !

वृषेश्वरावतारस्तु वर्णितश्शंकरस्य च ॥ विष्णुमोहहरश्शर्वस्त्रैलोक्यसुखकारकः॥३७॥पवित्रमिदमाख्यानं शत्रुबाधाहरम्परम् ॥ स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम्॥३८॥यइदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वै समाहितः॥स भुक्त्वा सकलान्कामानन्ते मोक्ष मवाप्नुयात् ॥तथा पठिति यो हीदं पाठयेत्सुधियो नरान्॥३९॥इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां वृषेश्वरसं ज्ञकशिवावतारवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥नन्दीश्वर उवाच॥ पिप्पलादाख्यपरममवतारं महेशितुः ॥ शृणु प्राज्ञ महा प्रीत्या भक्तिवर्धनमुत्तमम्॥१॥यः पुरा गदितो विप्रो दधीचिर्मुनिसत्तमः॥महाशैवस्सुप्रतापी च्यावनिर्भृगुवंशजः॥२॥क्षुवेण सह संग्रामे येन विष्णुः पराजितः॥सनिर्जरोऽथ संशप्तोमहेश्वरसहायिना॥३॥तस्य पत्नी महाभागा सुवर्चा नाम नामतः॥महापतिव्रता साध्वी यया शप्ता दिवौकसः ॥४॥ तस्मात्तस्यां महादेवो नानालीलाविशारदः ॥प्रादुर्बभूव तेजस्वी पिप्पलादेति नामतः ॥५॥

भक्तिका बढानेवाला, पिप्पलादनामक शिवका परम अवतार कहता हूं आप प्रीतिसे सुनो ॥ १ ॥ जो पहले महाशैव, बडे प्रतापी, च्यवननामक भृगु वंशमें उत्पन्न दधीचिमुनि होगये हैं ॥ २ ॥ क्षुव ऋषिके सहित जिसने विष्णुको पराजित किया और शिवकी सहायतासे जिसने देवताओं सहित विष्णुको शाप दिया ॥ ३ ॥ उनकी सुवर्चानामवाली स्त्री बडी भाग्यवती, महापतिव्रता साध्वी थी, जिसने देवताओंको शाप दिया ॥ ४ ॥ उससे नाना लीलाओंमें निपुण तेजस्वी महादेव पिप्पलाद नामक उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥

सूतजी बोले, इस प्रकार नन्दीश्वरका अद्भुत वचन सुन मुनिश्रेष्ठ सनत्कुमार शिर झुकाय अंजलि बांधकर उनसे बोले ॥ ६ ॥ सनत्कुमार बोले, हे महाप्राज्ञ ! हे नन्दीश्वर ! हे तात ! आप साक्षात् शिवके रूपधारी हो, धन्य हो सत्पुरुषोंमें बडे हो आपने यह अद्भुत कथा सुनाई ॥ ७ ॥ हे शिलादके पुत्र ! हे तात ! क्षुवके साथ संग्राममें युद्ध करते हुए, विष्णुका पराजय मैंने सुना, उसको आप ब्रह्माने मुझसे पहले कहा था ॥ ८ ॥ अब मेरी सुवर्चासे दिये, देवताओंके शापके सुनने इच्छा है, और पीछेसे मंगलका देनेवाला पिप्पलादका चरित्र सुनूंगा ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार शैलादिने ब्रह्माके पुत्रका शुभ वचन सुनकर प्रसन्न हो शिवके चरणकमलोंका ध्यान करके यह वचन कहे ॥ १० ॥

सूत उवाच॥इत्याकर्ण्य मुनिश्रेष्ठो नन्दीश्वरवचोऽद्भुतम्॥सनत्कुमारः प्रोवाच नतस्कन्धः कृताञ्जलिः॥६॥सनत्कुमार उवाच ॥ नन्दीश्वर महाप्राज्ञ साक्षाद्रुद्रस्वरूपधृक् ॥ धन्यस्त्वं सद्गुरुस्तात श्रावितेयं कथाद्भुता॥७॥क्षुवेण सह संग्रामे श्रुतो विष्णुपुरा जयः॥ब्रह्मणा मे पुरा तात तच्छापश्च शिलादज॥८॥अधुना श्रोतुमिच्छामि दवशापं सुवर्चया॥ दत्तं पश्चात्पिप्पलादचरितं मङ्गलायनम् ॥९॥ सूत उवाच॥इति श्रुत्वाथ शैलादिर्विधिपुत्रवचश्शुभम्॥प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्॥१०॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एकदा निर्जरास्सर्वे वासवाद्या मुनीश्वर॥ वृत्रासुरसुहायैश्च दैत्यैरासन्पराजिताः॥११॥स्वानिस्वानि वरास्त्रा णि दधीचस्याश्रमेऽखिलाः ॥ निक्षिप्य सहसा सद्योऽभवन्देवाः पराजिताः॥१२॥ तदा सर्वे सुरास्सेन्द्रा वध्यमाना स्तथर्षयः॥ ब्रह्मलोकगताश्शीघ्रं प्रोचुः स्वं व्यसनं च तत् ॥१३॥ तच्छ्रुत्वा देववचनं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥सर्वं शशंस तत्त्वेन त्वष्टुश्चैव चिकीर्षितम् ॥ १४ ॥ भवद्वधार्थं जनितस्त्वष्ट्रायं तपसा सुराः ॥ वृत्रो नाम महातेजाः सर्वदैत्याधिपो महान् ॥ १५ ॥

नन्दीश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! एक समय इन्द्र आदि सब देवता वृत्रासुरके साहाय्य करनेवाले दैत्योंसे पराजित हुए ॥ ११ ॥ दधीचि मुनिके आश्रममें अपने २ सब अस्त्रोंको फेंक कर सहसा सम्पूर्ण देवता पराजित हुये ॥ १२ ॥ तब वे इन्द्रसहित देवता तथा ऋषिगण ताडित हो शीघ्र ब्रह्मलोकको गये, और उस अपने दुःखको ब्रह्माजीसे कहा ॥ १३ ॥ तब संसारके पितामह ब्रह्माजी देवताओंका वचन सुन, त्वष्टाके करनेकी इच्छाको तत्त्वसे कहने लगे ॥ १४ ॥ महातेजस्वी वृत्रासुर सब दैत्योंका स्वामी है, यह दैत्य त्वष्टाने तप करके

तुम्हारे मारनेको उत्पन्न किया है ॥ १५ ॥ हे प्राज्ञ ! अब जिस प्रकार इसका वध हो उस उपायको सुनो मैं तुमसे धर्मके निमित्त कहता हूं ॥ १६ ॥ पहले उन, तपस्वी महामुनि जितेन्द्रिय, दधीच ऋषिने शिवका आराधन करके, वज्रकी हड्डियोंका वर पाया है ॥ १७ ॥ उनसे अस्थियोंको मांगो, वह अवश्य देंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, उनके द्वारा दंड वज्रको बनाय वृत्रासुरको निःसन्देह मारो ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर बोले, देवता तथा गुरु सहित इन्द्रने ब्रह्माका वचन सुन देवताओं सहित दधीचि मुनिके श्रेष्ठ आश्रमको गमन किया ॥ १९ ॥ वहां इन्द्रने मुनिको सुवर्चा अपनी स्त्री सहित देखकर गुरु सहित तथा देवताओं सहित नम्र हो हाथ जोड आदरपूर्वक उनको प्रणाम किया

अथ प्रयत्नः क्रियतां भवेदस्य वधो यथा॥तत्रोपायं शृणु प्राज्ञ धर्महेतोर्वदामि ते॥१६॥ महामुनिर्दधीच्यिर्यस्स तपस्वी जितेन्द्रियः ॥ लेभे शिवं समाराध्य वज्रास्थित्ववरम्पुरा॥१७॥तस्यास्थीन्येव याचध्वं स दास्यति न संशय॥निर्माय तैर्दण्डवज्रं वृत्रं जहि न संशयः॥१८॥नन्दीश्वर उवाच॥तच्छ्रुत्वा ब्रह्मवचनं शक्रोगुरुसमन्वितः॥ आगच्छत्सामरः सद्यो दधीच्याश्रममुत्तमम् ॥१९॥ दृष्ट्वा तत्र मुनिं शक्रः सुवर्चान्वितमादरात् ॥ ननाम साञ्जलिर्नम्रः सगुरुः सामरश्च तम्॥२०॥तदभिप्रायमाज्ञाय स मुनिर्बुधसत्तमः ॥ स्वपत्नीं प्रेषयामास सुवर्चां स्वाश्रमान्तरम्॥२१॥ततस्स देवराजश्च सामरः स्वार्थसाधकः॥ अर्थशास्त्रपरो भूत्वा मुनीशं वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥ शक्र उवाच ॥ त्वष्ट्रा विप्रकृताः सर्वे वयन्देवास्तथर्षयः॥शरण्यं त्वां महाशैवं दातारं शरणं गताः ॥ २३ ॥ स्वास्थीनि देहि नो विप्र महावज्रमयानि हि॥अस्थ्ना ते स्वपविं कृत्वा हनिष्यामि सुरद्रुहम् ॥ २४ ॥

॥ २० ॥ उन विद्वानोंमें श्रेष्ठ मुनि दधीचिने उनके अभिप्रायको जान सुवर्चानामक अपनी स्त्रीको आश्रमके भीतर भेजा ॥ २१ ॥ तब वह देवताओंसहित स्वार्थका सिद्ध करनेवाला इन्द्र अर्थशास्त्रमें तत्परहो उन मुनिसे यह वचन बोला ॥ २२ ॥ इन्द्र बोला, हम सब त्वष्टा (विष्णु) से दुःखी हुये देवता तथा ऋषिगण दानी महाशैव, शरणागतवत्सल, आपकी शरणमें आये हैं ॥ २३ ॥ हे विप्र ! अपनी वज्रकी बनी हुई अस्थियां दो उन अस्थियोंसे अपना दंड वज्र बनाकर देवता का शत्रु उस वृत्रासुरको मारूंगा ॥ २४ ॥

ऐसा कहनेपर उस दधीचि मुनिने परोपकार करनेमें तत्पर हो अपने स्वामी शिवका ध्यान करके अपने शरीरको त्याग दिया ॥ २५ ॥ वह मुनि बंधन रहित हो शीघ्रही ब्रह्मलोकको गये,तथा फूलोंकी वर्षा हुई और सब विस्मयको प्राप्त हुये ॥ २६ ॥ तब इन्द्रने कामधेनुको बुलाकर शीघ्र अस्थि निकलवाई, और अस्थियोंसे अस्त्र बनानेके निमित्त त्वष्टाको आज्ञा दी ॥ २७ ॥ उससे आज्ञा दिये हुये विश्वकर्माने शिवके तेजसे, बडी पुष्ट वज्रमय, उन अस्थियोंके द्वारा सम्पूर्ण अस्त्र बनाये ॥ २८ ॥ उसके वंशसे उत्पन्न हुआ वज्र तथा ब्रह्माके सिरका बाण हुआ, और हड्डियोंसे बहुतसे पराये अस्त्र बनाये ॥ २९ ॥ हे मुने ! इन्द्र उस वज्रको उठाकर शिवके तेजसे सम्पन्न हो क्रोधसे वृत्रासुरके

इत्युक्तस्तेन स मुनिः परोपकरणे रतः ॥ ध्यात्वा शिवंस्वनाथं हि विससर्ज कलेवरम् ॥२५॥ ब्रह्मलोकं गतस्सद्यस्स मुनिर्ध्वस्त बन्धनः ॥ पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र सर्वे विस्मयमागताः ॥२६॥ अथ गांसुरभिं शक्र आहूयाशु ह्यलेहयत् ॥ अस्त्रनिर्मितये त्वाष्ट्रं निदि देश तदस्थिभिः ॥२७॥ विश्वकर्मा तदाज्ञप्तश्चकल्पेऽस्त्राणि कृत्स्नशः ॥ तदस्थिभिर्वज्रमयैस्सुदृढैश्शिववर्चसा ॥२८॥ तस्य वंशोद्भवं वज्रं शरो ब्रह्मशिरस्तथा ॥ अन्यास्थिभिर्बहूनि स्वपराण्यस्त्राणि निर्ममे ॥२९॥ तमिन्द्रो वज्रमुद्यम्य वर्द्धितः शिववर्चसा ॥ वृत्रमभ्यद्रवत्कुद्धो मुने रुद्र इवान्तकम् ॥३०॥ ततः शक्रस्सुसन्नद्धस्तेन वज्रेण स द्रुतम् ॥ उच्चकर्त शिरो वाज्रं गिरिशृंगमिवौजसा ॥३१॥ तदा समुत्सवस्तात बभूव त्रिदिवौकसाम् ॥ तुष्टुवुर्निर्जराश्शक्रम्पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥३२॥ इति ते कथितन्तात प्रसंगाच्चरि तन्त्विदम् ॥ पिप्पलादावतारम्भे शृणु शम्भोर्महादरात् ॥३३॥ सुवर्चा सा मुनेः पत्नी दधीचस्य महात्मनः ॥ ययौ स्वमाश्रमाभ्यन्त स्तदाज्ञप्ता पतिव्रता ॥३४॥ आगत्य तत्र सा दृष्ट्वा न पतिं स्वन्तपस्विनी ॥ गृहकार्यं च सा कृत्वाखिलम्पतिनिदेशतः ॥ ३५ ॥

समीप शिवजीके समान दौडा ॥ ३० ॥ तब उद्यत हो उस वज्रको लेकर अपने बलसे शीघ्र वृत्रासुरको पर्वतके शिखरके समान काटडाला ॥ ३१ ॥ हे तात ! उस समय देवताओंमें बडा उत्सव हुआ सब देवता संतुष्ट हुये इन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षा हुई ॥ ३२ ॥ हे तात ! यह वृत्रासुरका चरित्र प्रसंगसे तुमको सुनाया अब तुम आदरसे मुझसे शिवके पिप्पलादनामक अवतारको सुनो ॥ ३३ ॥ वह सुवर्चानामक महात्मा दधीचिकी पतिव्रता स्त्री, आज्ञाको प्राप्तकी हुई अपने आश्रमके भीतर गई ॥ ३४ ॥ और उस तपस्विनीने पतिको

आज्ञासे सब काम करके फिर लौट करके अपने पतिको वहां न देखा ॥ ३५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! फिर वहां आई; और देवताओंको न देख बहुत कुशकुनको देख वह सुवर्चा बडी विस्मित हुई ॥ ३६ ॥ वह साध्वी यह सब देवताओंके कृत्यको अर्थात् पतिके अस्थिलेनेरूप समाचारको जान अतिक्रोधित हुई और रुष्ट होकर सुवर्चा नाम ऋषि दधीचिकी स्त्री उन देवताओंको शाप देती हुई ॥ ३७ ॥ सुवर्चा बोली, हे देवताओ ! तुम बडे दुष्ट हो, तथा सब अपने कार्यमें चतुर हो अज्ञानी हो, लुब्धक हो, इस कारण इन्द्र सहित तुम सब देवता पशु होगे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार उस तपस्विनी मुनिकी स्त्री सुवर्चाने उन सब इन्द्र सहित देवताओंको शाप दिया ॥ ३९ ॥ तब वह पतिव्रता पतिके

आजगाम पुनस्तत्र पश्यन्ती बह्वशोभनम् ॥ देवांश्च तान्मुनिश्रेष्ठसुवर्चा विस्मिताभवत् ॥ ३६ ॥ ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं सुराणां कृत्यं तदानीञ्च चुकोप साध्वी ॥ ददौ तदा शापमतीव रुष्टा तेषां सुवर्चा ऋषिवर्यभार्या ॥३७॥ सुवर्चोवाच ॥ अहो सुरा दुष्टतराश्च सर्वे स्वकार्यदक्षा ह्यबुधाश्च लुब्धाः ॥ तस्माच्च सर्वे पशवो भवन्तु सेन्द्राश्चमेऽद्यप्रभृतीत्युवाच ॥३८॥ एवं शापन्ददौ तेषां सुराणां सः तपस्विनी ॥ सशक्राणां च सर्वेषां सुवर्चा मुनिकामिनी ॥३९॥ अनुगन्तुम्पतेर्लोकमथेच्छत्सा पतिव्रता ॥ चितां चक्र समेधोभिः सुपवित्रैर्मनस्विनी ॥ ४० ॥ ततो नभोगिरा प्राह सुवर्चान्ताम्मुनिप्रियाम् ॥ आश्वासयन्ती गिरिशप्रेरिता सुखदायिनी ॥ ४१ ॥ आकाशवाण्युवाच ॥ साहसं न कुरु प्राज्ञे शृणु मे परमं वचः ॥ मुनितेजस्त्वदुदरे तदुत्पादय यत्नतः ॥ ४२ ॥ ततः स्वाभीष्टचरणन्देवि कर्तुन्त्वमर्हसि ॥ सगर्भां न दहेद्गात्रमिति ब्रह्मनिदेशनम् ॥ ४३ ॥

लोकको जानेकी इच्छा करने लगी, और उस बुद्धिमतीने अतिपवित्र काष्ठोंसे चिता बनाई ॥ ४० ॥ तब शिवजीसे प्रेरणा की हुई सुखको देनेवाली, तथा ढाढस बंधाती हुई आकाशवाणी उस सुवर्चानामक मुनिकी स्त्री से बोली ॥ ४१ ॥ आकाशवाणी बोली, हे प्राज्ञे ! ऐसा साहस मतकर मेरे परमवचनको सुन तेरे पेटमें गर्भरूप मुनिका तेज स्थित है उसको यत्नसे उत्पन्न कर ॥ ४२ ॥ हे देवि ! बालक उत्पन्न करनेके अपने इच्छानुसार (सती) कार्य करना गर्भसहित तू अपने शरीरको मत जला, ब्रह्माकी आज्ञा है ॥ ४३ ॥

नन्दीश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! ऐसा कहकर वह आकाशवाणी मौन हुई, उसको सुन वह मुनिकी स्त्री उस समय विस्मित हुई ॥ ४४ ॥ और उस महासाध्वी, पतिव्रता, पतिलोककी इच्छावालीने बैठकर पत्थरसे अपने पेटको फोडा ॥ ४५ ॥ तब उसके पेटमेंसे महासुन्दर शरीर दीप्तिमान, दशों दिशाओंको प्रकाश करता हुआ, उन दधीच मुनिका गर्भरूप बालक निकला ॥ ४६ ॥ हे तात ! यह साक्षात् शिव दधीचिऋषिके उत्तमतेजसे लीला करनेके लिये आपही प्रगट हुये ॥ ४७ ॥ मुनिके प्राप्तिकी कामना करनेवाली सुवर्चाने शिवके अवताररूप उस अपने पुत्रको देख मनसे जानकर ॥ ४८ ॥ हे मुनीश्वर ! वह महासाध्वी बडी प्रसन्न हुई और शीघ्र प्रणाम करके स्वरूपको अपने

नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा सा नभोवाणी विरराम मुनीश्वर ॥ तां श्रुत्वा सा मुनेः पत्नी विस्मिताभूत्क्षणं च सा ॥ ४४ ॥ सुवर्चा सा महासाध्वी पतिलोकमभीप्सती ॥ उपविश्याश्मना भूयः सोदरं विददार ह ॥४५॥ निर्गतो जठरात्तस्या गर्भो मुनिवर स्य सः ॥ महादिव्यतनुर्दीप्तो भासयंश्च दिशो दश ॥४६॥ साक्षाद्रुद्रावतारोऽसौ दधीच वरतेजसः ॥ प्रादुर्भूतस्स्वयन्तात स्वलीलाक रणे क्षमः ॥४७॥ तन्दृष्ट्वा स्वसुतन्दिव्यंस्वरूपम्मुनिकामिनी ॥ सुवर्चाज्ञाय मनसा साक्षाद्रुद्रा वतारकम् ॥४८॥ ग्रहृष्टाभून्महासाध्वी प्रणम्याशु नुनाव सा ॥ स्वहृदि स्थापयामास तत्स्वरूपम्मुनीश्वर ॥४९॥ सुवर्चा तनयं तं च प्रहस्य विमलेक्षणा ॥ जननी प्राह सुप्रीत्या पतिलोकमभीप्सती ॥ ५० ॥ सुवर्चोवाच ॥ हे तात परमेशान चिरन्तिष्ठास्य सन्निधौ ॥ अश्वस्थस्य महाभाग सर्वेषां सुखदो भवेः ॥५१॥ मामाज्ञापय सुप्रीत्या पतिलोकाय चाधुना ॥ तत्रस्थाहं च पतिना त्वां ध्याये रुद्र रूपिणम् ॥५२॥ नन्दी श्वर उवाच ॥ इत्येवं सा बभाषेऽथ सुवर्चा तनयम्प्रति ॥ पतिमन्वगमत्साध्वी परमेण समाधिना ॥ ५३ ॥

हृदयमें रखकर ॥ ४९ ॥ विमल दृष्टिवाली पतिलोकमें जानेको इच्छा करती हुई वह सुवर्चा माता हँसकर उस पुत्रसे बोली ॥ ५० ॥ सुवर्चा बोली, हे तात ! हे परमेशान ! हे महाभाग ! बहुत समयतक इस वटके वृक्षके समीप निवास कर और सबोंको सुख देनेवाले हो ॥ ५१ ॥ और अब मुझे प्रीति सहित पतिलोकमें जानेकी आज्ञा दो, वहां स्थित हुई मैं पतिके शिवरूपधारी तुम्हारा ध्यान करूंगी ॥ ५२ ॥ नन्दीश्वर बोले, कि इस प्रकार उस सुवर्चाने अपने पुत्रसे कहा और उस साध्वीने परमसमाधि लगाकर (सती होकर)

पतिके पीछे गमन किया ॥ ५३ ॥ हे मुने ! इस प्रकार वह दधीचकी स्त्री पतिके संग सती होगई और शिवलोकको प्राप्तहोकर आनन्दपूर्वक शिवजीको सेवन करती हुई ॥ ५४ ॥ हे तात ! इसी अवसरपर मुनियोंसहित सब देवता बुलाये हुएके समान शीघ्र प्रसन्न होकर आये ॥५५॥ भूमिपर दधीचिके सुवर्चामें उत्पन्न हुए शिवको देख अतिप्रीतिसे विष्णु तथा ब्रह्मा अपने २ गणोंसहित वहां गये ॥ ५६ ॥ वहां, मुनिपुत्ररूपमें अवतार लेके आयेहुए शिवको देखकर सब देवता हाथजोड प्रणाम करते हुए ॥ ५७ ॥ हे मुनिसत्तम ! उस समय देवताओंका बडा उत्सव हुआ और सब स्तुति करने लगे, दुन्दुभि, बाजे और नाचनेवाली आनन्दसे नाचने लगीं ॥ ५८ ॥ गन्धर्वके पुत्र गाने लगे, बाजोंको बजानेवाले

एवन्दधीचपत्नी सा पतिना संगता मुने ॥ शिवलोकं समासाद्य सिषेवे शङ्करम्मुदा ॥ ५४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवास्सेन्द्राश्च मुनिभिस्सह ॥ तत्राजग्मुस्त्वरा तात आहूता इव हर्षिताः ॥ ५५ ॥ हरिर्ब्रह्मा च सुप्रीत्यावतीर्णं शंकरं भुवि ॥ सुवर्चायां दधीचाद्वा ययतुस्स्वगणैस्सह ॥ ५६ ॥ तत्र दृष्ट्वावतीर्णन्तं मुनिपुत्रत्वमागतम् ॥ रुद्रं सर्वे प्रणेमुश्च तुष्टुवुर्बद्धपाणयः ॥ ५७ ॥ तदोत्सवो महानासीद्देवानां मुनिसत्तम ॥ नेदुर्दुन्दुभयस्तत्र नर्तक्यो ननृतुर्मुदा ॥५८ ॥ जगुर्गन्धर्वपुत्राश्च किन्नरा वाद्यवादकाः ॥ वादयामासुरमराः पुष्प वृष्टिं च चक्रिरे ॥५९॥ पिप्पलस्य शर्वपितुर्विलसन्तं सुतं च तम् ॥ संस्कृत्य विधिवत्सर्वे विष्ण्वाद्यास्तुष्टुवुः पुनः ॥ ६० ॥ पिप्पलादेति तन्नाम चक्रे ब्रह्मा प्रसन्नधीः ॥ प्रसन्नो भव देवेश इत्यूचे हरिणा सुरैः ॥ ६१ ॥ इत्युक्ता तमनुज्ञाय ब्रह्मा विष्णुस्सु रास्तथा ॥ स्वंस्वं धाम ययुस्सर्वे विधाय च महोत्सवम् ॥ ६२ ॥ अथ रुद्रः पिप्पलादोऽश्वत्थमूले महाप्रभुः ॥ ततप सुचिरं कालं लोकानां हितकाम्यया ॥ ६३ ॥

किन्नर बाजे बजाने लगे, और देवताओंने फूलोंकी वर्षा की ॥ ५९ ॥ पिप्पलनामक शिवके पिताके उस पुत्रका विधिपूर्वक संस्कार करके विष्णु आदिक सब देवता सन्तुष्ट हुए ॥ ६० ॥ प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उसका नाम पिप्पलाद रक्खा, हे देवेश ! प्रसन्न हो ऐसा विष्णुने देवताओं सहित ॥ ६१ ॥ कहकर उसकी आज्ञा पाय ब्रह्मा, विष्णु, तथा देवता, बडे उत्सवको करके अपने २ स्थानको गये ॥ ६२ ॥ तब महाप्रभु, पिप्पलाद नामक शिव, पीपलके वृक्षके नीचे संसारके हितकी इच्छासे बहुत समयतक तप करते रहे ॥ ६३॥

इस प्रकार लोकचर्याके अनुसरण करनेवाले उस सुन्दर तप करनेवाले पिप्पलाद ऋषिके सन्मुख बडा समय बीत गया ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिव महापुराणभा० तृ० श० रु० पिप्पलादावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे सन्मुने ! उन शिवजीने संसारमें निवास करके धर्मके स्थापनकी इच्छासे जो बडी लीला की हैं उन चरित्रोंको सुनो ॥१॥ एक समय वह पिप्पलाद मुनीश्वर पुष्पभद्रानदीसे स्नान करनेको गये, वहां उन्होंने मनोहर शिवके अंशसे उत्पन्न हुई पद्मायुवतीको देखा ॥ २ ॥ उसके लेनेकी इच्छासे, लोकके तत्त्वोंमें प्रवीण, भुवनोंमें फिरनेवाले वह मुनि उस कन्याके पिता अनरण्य राजाके स्थानको गये ॥ ३ ॥ मनुष्योंके राजाने इनको देख भयभीत हो प्रणाम कर मधु

इत्थं सुतपतस्तस्य पिप्पलादस्य सम्मुखे॥ महाकालो व्यतीयाय लोकचर्यानुसारिणः॥६४॥इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां पिप्पलादावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अथ लोके व्यवस्थाय धर्मस्य स्थापनेच्छया ॥ महालीलां चकारेशस्तामहो सन्मुने शृणु ॥ १ ॥ एकदा पुष्पभद्रायां स्नातुं गच्छन्मुनीश्वरः ॥ ददर्श पद्मां युवतीं शिवांशां सुमनोहराम् ॥२॥ तल्लिप्सुस्तत्पितुः स्थानमनरण्यस्य भूपतेः ॥ जगाम भुवनाचारी लोकतत्त्वविचक्षणः ॥३॥ राजा नराणां तं दृष्ट्वा प्रणम्य च भयाकुलः ॥ मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः ॥४॥ स्नेहात्सर्वं गृहीत्वा स ययाचे कन्यकां मुनिः ॥ मौनी बभूव नृपतिः किंचिन्निर्वक्तुमक्षमः ॥ ५ ॥ मुनिः प्रोवाच नृपतिं कन्यां मे देहि भक्तितः ॥ अन्यथा भस्मसात्सर्वं करिष्येहं त्वया सह ॥६॥ अथो बभूवुराच्छन्नाः सर्वे राजजनास्तदा ॥ तेजसा पिप्पलादस्य दाधीचस्य महा मुने ॥ ७ ॥ अथ राजा महाभीतो विलप्य च मुहुर्मुहुः ॥ कन्यामलंकृताम्पद्मां वृद्धाय मुनये ददौ ॥ ८ ॥

पर्क आदि देकर भक्तिपूर्वक पूजन किया ॥ ४ ॥ मुनिने स्नेहपूर्वक सब वस्तु ग्रहण करके उस कन्याको मांगा, यह सुनकर वह राजा चुप हो गया,कुछ कहनेको समर्थ न हुआ ॥ ५ ॥ मुनिने राजासे कहा कि मुझे भक्तिपूर्वक अपनी कन्याको दो, नहीं तो तेरे सहित सब राज्यको भस्म कर दूंगा ॥ ६ ॥ हे महामुने ! तब उस समय दधीचके पुत्र पिप्पलादनामक मुनिके तेजसे सब राजाके पुरुष व्याकुल होगये ॥ ७ ॥ तब राजाने भयसे व्याकुल हो, वारंवार विलाप करके, वह अलंकृत हुई पद्मा कन्या उन वृद्ध मुनिको दी ॥ ८ ॥

तब वह मुनि पिप्पलाद, शिवाके अंशसे उत्पन्न हुई पद्म नामक राजाकी कन्याको विवाहकर उसे ले प्रसन्नता पूर्वक अपने घरको गये ॥ ९ ॥ वहां जाकर वह अवस्थासे अति वृद्ध तपस्वी अति सौम्य मुनिश्रेष्ठ अपनी स्त्रीके सहित वास करते भये ॥ १० ॥ तब अरण्यकी कन्या, भक्तिपूर्वक उन मुनिकी कर्म, मन, वाणीसे सेवा करने लगी, जैसे लक्ष्मी नारायणकी सेवा करती हो ॥ ११ ॥ इस प्रकार शिवांश, मुनिश्रेष्ठ, पिप्पलाद अपनी लीलासे युवा होकर उस युवतीके साथ रमण करने लगे ॥१२॥ उन तपस्वी पिप्पलाद मुनिके समान पद्माको सुख देनेवाले, महात्मा दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ यह महाप्रभु शिवका, पिप्पलाद रूपमें लीलावतार हुआ, जो अनेक प्रकारकी लीलाका करनेवाला था

पद्मां विवाह्य स मुनिश्शिवांशाम्भूपतेः सुताम् ॥पिप्पलादो गृहीत्वा तां मुदितः स्वाश्रमं ययौ ॥९॥ तत्र गत्वा मुनिवरो वयसा जर्जरोधिकः ॥ उवाच नार्या स तया तपस्वीनातिलम्पटः ॥१०॥अथोऽनरण्यकन्या सा सिषेवे भक्तितो मुनिम्॥कर्मणा मनसा वाचा लक्ष्मीर्नारायणं यथा ॥ ११ ॥ इत्थं स पिप्पलादो हि शिवांशो मुनिसत्तमः ॥ रेमे तया युवत्या च युवा भूय स्वलीलया ॥ १२ ॥ दश पुत्रा महात्मानो बभूवुस्सुतपस्विनः ॥ मुनेः पितुस्समाः सर्वे पद्मायाः सुखवर्द्धनाः॥१३॥एवं लीलावतारो हि शंकरस्य महाप्रभोः ॥ पिप्पलादो मुनिवरो नानालीलाकरः प्रभुः ॥१४॥ येन दत्तो वरः प्रीत्या लोकेभ्यो हि दयालुना ॥ दृष्ट्वा लोके शनेः पीडां सर्वेषामनिवारिणीम् ॥१५॥ षोडशाब्दावधि नृणां जन्मतो न भवेच्च सा ॥ तथा च शिवभक्तानां सत्यमेतद्धि मे वचः ॥ १६ ॥ अथानादृत्य मद्वाक्यं कुर्यात्पीडां शनिः क्वचित् ॥ तेषां नृणां तदा स स्याद्भस्मसान्न हि संशयः ॥ १७ ॥ इति तद्भयतस्तात विकृतोपि शनैश्चरः ॥ तेषां न कुरुते पीडां कदाचिद्ग्रहसत्तमः ॥ १८ ॥

॥ १४ ॥ जिस दयालु पिप्पलादने, संसारमें सबोंसे निवारण न होनेवाली शनैश्चरकी पीडाको देख, प्रीतिपूर्वक मनुष्योंको वरदान किया ॥ १५ ॥ कि—जन्मसे लेकर सोलह वर्ष पर्यन्त शिवके भक्तोंको शनैश्चरकी पीडा नहीं होगी यह मेरा वचन सत्य है ॥ १६ ॥ यदि मेरे वचनका अनादर करके शनि कहीं पर मनुष्योंको पीडा करेगा तो भस्म हो जायगा,इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ १७ ॥ हे तात ! इस प्रकार उसके भयसे विकृत होकर शनैश्चर ग्रह उनको कभी भी अपनी पीडा नहीं करता ॥ १८ ॥

हे सन्मुने ! यह पिप्पलादकी मनुष्य लीला तथा सुन्दर चरित्र तुमसे कहा सो सब कामनाके फलके देनेवाला है ॥ १९ ॥ गाधि, कौशिक, तथा पिप्पलाद, यह तीन महामुनि, शनैश्चरसे की हुई पीडाको नष्ट करते हैं ॥ २० ॥ जो मनुष्य पद्माके चरित्र सहित पिप्पलादके चरित्रको भक्तिपूर्वक पृथ्वीपर पढता है अथवा सुनता है ॥ २१ ॥ तथा शनिकी पीडा दूर करनेके अर्थ इस उत्तम चरित्रको जो पढता है अथवा सुनता है वह सब मनोरथोंको पाता है ॥२२॥ वह ज्ञानी महाशैव सत्पुरुषोंका प्रिय मुनिवर दधीच धन्य है कि जिसका पुत्र पिप्पलाद

इति लीलामनुष्यस्य पिप्पलादस्य सन्मुने ॥ कथितं सुचरित्रन्ते सर्वकामफलप्रदम् ॥१९॥ गाधिश्च कौशिकश्चैव पिप्पलादो महामुनिः ॥ शनैश्चरकृतां पीडां नाशयन्ति स्मृतास्त्रयः ॥२०॥ पिप्पलादस्य चरितं पद्माचरितसंयुतम् ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि सुभक्त्या भुवि मानवः ॥ २१ ॥ शनिपीडाविनाशार्थमेतच्चरितमुत्तमम् ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२२॥ धन्यो मुनिवरो ज्ञानी महाशैवः सताम्प्रियः ॥ अस्य पुत्रो महेशानः पिप्पलादाख्य आत्मवान् ॥ २३ ॥ इदमाख्यानमनघं स्वर्ग्यं कुग्रहपोषहृत् ॥ सर्वकामप्रदन्तात शिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥ २४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां पिप्पलादावतारचरितवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ शृणु तात प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः ॥ अवतारं परमानन्दं वैश्यनाथाह्वयं मुने ॥ १ ॥ नन्दिग्रामे पुरा काचिन्महानन्देति विश्रुता ॥ बभूव वारवनिता शिवभक्त सुसुन्दरी ॥ २ ॥ महाविभवसम्पन्ना सुधनाढ्या महोज्ज्वला ॥ नानारत्नपरिच्छिन्न शृङ्गाररसनिर्भरा ॥ ३ ॥

नामक साक्षात् शिव हुआ ॥ २३ ॥ हे तात ! यह इतिहास पुण्य तथा स्वर्गका देनेवाला कुत्सित ग्रहोंके दोषका हटानेवाला सब इच्छाका पूर्ण करनेवाला और शिवकी भक्तिका बढानेवाला है ॥ २४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां तृ० श० रु० पिप्पलादावतार चरित्रवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे तात ! हे मुने ! परमात्मा शिवको वैश्यनाथ नामक, परम आनन्द देनेवाले अवतारको वर्णन करता हूं ॥ १॥ पहले कोई नन्दीग्राममें शिवभक्ता, अति सुन्दर, महानन्दा नामवाली प्रसिद्ध वेश्या स्त्री रहती थी ॥ २ ॥ वह बडे ऐश्वर्यसे

पूर्ण, बडी धनाढ्य, उज्ज्वलवर्णवाली, अनेक प्रकारके रत्नजटित शृँगाररससे भरी हुई ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण गानविद्याओंमें निपुण, अति मनोहर थी, उस वेश्याके गानेसे सब राजा और रानी प्रसन्न होती थीं ॥ ४ ॥ वह शिवनाम जपनेमें तत्पर, तथा भस्म और रुद्राक्ष धारण करने वाली, वेश्या सदैव पार्वती समेत शिवका पूजन करती थी ॥ ५ ॥ वह शिवका पूजन करके नित्य जगदीश्वरको सेवन करती शिवके सुन्दर यशको गाती हुई परमभक्तिसे नृत्य करती थी ॥ ६ ॥ वह वेश्या एक बन्दर और एक मुर्गेको रुद्राक्षसे शोभित करके हाथके ताल (खड ताल बाजे) से गीतोंके साथ नचाती थी ॥ ७ ॥ तब शिवभक्तिमें लगी हुई वह वेश्या सब सखियोंसे युक्त हो उस बंदर और मुर्गेको

सर्वसंगीतविद्यासु निपुणातिमनोहरा ॥ तस्या गेयेन हृष्यन्ति राज्ञयो राजान एव च ॥ ४ ॥ समानर्च सदा साम्बं सा वेश्या शंकरं मुदा ॥ शिवनामजपासक्ता भस्मरुद्राक्षभूषणा ॥५॥शिवं सम्पूज्य सा नित्यं सेवन्ती जगदीश्वरम्॥ननर्त परया भक्त्या गायन्ती शिवसद्यशः ॥ ६ ॥ रुद्राक्षैर्भूषयित्वैकं मर्कटं चैव कुक्कुटम् ॥ करतालैश्च गीतैश्च सदा नर्तयति स्म सा ॥ ७ ॥ नृत्यमानौ च तौ दृष्ट्वा शिवभक्तिरता च सा ॥ वेश्या स्म विहसत्युच्चैः प्रेम्णा सर्वसखीयुता ॥ ८ ॥ रुद्राक्षैः कृतकेयूरकर्णाभरणमण्डनः ॥ मर्कटः शिक्षया तस्याः पुरो नृत्यति बालवत् ॥ ९ ॥ शिखासंबद्धरुद्राक्षः कुक्कुटः कपिना सह ॥ नित्यं ननर्त नृत्यज्ञः पश्यतां हितमावहन् ॥ १० ॥ एवं सा कुर्वती वेश्या कौतुकम्परमादरात् ॥ शिवभक्तिरता नित्यं महानन्दभराऽभवत् ॥ ॥ ११ ॥ शिवभक्तिं प्रकुर्वन्त्या वेश्याया मुनिसत्तम ॥ बहुकालो व्यतीयाय तस्याः परमसौख्यतः ॥ १२ ॥

नचाता हुआ देखकर अतिप्रेमसे उच्चस्वर पूर्वक हँसती थी ॥ ८ ॥ रुद्राक्षोंसे बनाये बाजूबन्द कानके गहनों (करनफूलों) से शोभित हुआ वानर सिखानेसे उसके आगे बालकके समान नाचता था ॥ ९ ॥ जिसकी शिखा (चोटी) में रुद्राक्ष बँधा था ऐसा मुर्गा भी बंदरके साथ नाचनेमें चतुर होकर नाचता था, और देखनेवालोंको प्रसन्न करता था ॥ १० ॥ यह शिवभक्तिमें तत्पर हुई महाआनंदमें पूर्ण वेश्या आदरसे इस कौतुकको करती थी ॥ ११ ॥ हे मुनिसत्तम ! शिवकी भक्ति करने वाली उस वेश्याका बडे सुखसे बहुत समय

बीत गया ॥ १२ ॥ एक समय उस वेश्याके घर शिवजी स्वयं वैश्य बनकर शुभव्रत धारे उसके भावकी परीक्षा करनेको आये ॥ १३ ॥ त्रिपुंड्रसे शोभायमान माथेवाले, रुद्राक्षके आभरण धारे, शिवनाम जपनेमें आसक्त, जटावाले, तथा शिवके वेशको धारण किये हुए ॥ १४ ॥ वह वैश्य अंगमें भस्म लगाये, हाथमें सुन्दर कंकण पहने, बडे रत्नोंसे शोभायमान, दूसरोंको कौतुक दिखाने वाला हो शोभित हुआ ॥ १५ ॥ उसको आया हुआ देख उस सुन्दरी वेश्याने बडे आनन्दके साथ सत्कार करके उसको आदर सहित अपने स्थानमें बैठाया ॥ १६ ॥ उसके हाथमें अति मनोहर सुन्दर कंकनको देखकर उसमें शोभित हुई विस्मित वह वेश्या उस वैश्यसे बोली ॥ १७ ॥ महानन्दा बोली, यह रत्नज

एकदा च गृहे तस्या वैश्यो भूत्वा शिवस्स्वयम् ॥ परीक्षितुं च तद्भावमाजगाम शुभो व्रती ॥ १३ ॥ त्रिपुण्ड्रविलसद्भालो रुद्राक्षाभरणः कृती ॥ शिवनामजपासक्तो जटिलः शैववेषभृत् ॥१४॥ स बिभ्रद्भस्मनिचयं प्रकोष्ठे वरकंकणम् ॥ महारत्नपरिस्तीर्णं राजते परकौतुकी ॥ १५ ॥ तमागतं सुसंपूज्य सा वेश्या परया मुदा ॥स्वस्थाने सादरं वैश्यं सुन्दरी हि न्यवेशयत् ॥ ॥ १६ ॥ तत्प्रकोष्ठे वरं वीक्ष्य कंकणं सुमनोहरम् ॥तस्मिञ्जातस्पृहा सा च तं प्रोवाच सुविस्मिता ॥१७॥ महानन्दोवाच ॥ महारत्नमयश्चायं कंकणस्त्वत्करे स्थितः ॥ मनो हरति मे सद्यो दिव्यस्त्रीभूषणोचितः ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति तां नवरत्नाढ्ये सस्पृहां करभूषणे ॥ वीक्ष्योदारमतिर्वैश्यः सस्मितं समभाषत ॥ १९ ॥ वैश्यनाथ उवाच ॥ अस्मिन् रत्नवरे दिव्ये सस्पृहं यदि ते मनः ॥ त्वमेवाधत्स्व सुप्रीत्या मौल्यमस्य ददासि किम् ॥ २० ॥ वेश्योवाच ॥ वयं हि स्वैरचारिण्यो वेश्यास्तु न पतिव्रताः ॥ अस्मत्कुलोचितो धर्मोव्यभिचारो न संशयः ॥ २१ ॥

टित, आपके हाथसे स्थित हुआ, दिव्य स्त्रियोंके आभूषणमें उचित कंकण शीघ्रही मेरे मनको लुभाता है ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार नवीन रत्नोंसे युक्त उस, हाथके भूषणमें उसकी इच्छा देख, गम्भीरबुद्धि वह वैश्य हँसकर बोला ॥ १९ ॥ वैश्य नाथ बोला, यदि इस दिव्यश्रेष्ठ रत्नमें तुम्हारा मन लुभा गया है तो तुमही प्रीतिसे इसको धारण करो, और इसका मूल्य क्या दोगी ॥ २० ॥ वेश्या बोली, हम व्यभिचारिणी वेश्या हैं, पतिव्रता नहीं हैं, हमारे कुलका व्यभिचार करना ही धर्म है, इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २१ ॥

यदि यह हाथका भूषण आप मुझे दोगे तो मैं तीन दिनरात, तुम्हारी स्त्री रहूंगी ॥ २२ ॥ वैश्य बोला, हे वीरवल्लभे ! बहुत अच्छा यदि तेरा वचन सत्य है तो अपना रत्नोंका कंकण तुझे देता हूं, तुम तीन रात मेरी स्त्री हो ॥ २३ ॥ हे प्रिये ! इस व्यवहारमें चन्द्रमा तथा सूर्य प्रमाण हैं तीन वचनसे सत्य वचन कहकर मेरे हृदयको स्पर्शकर ॥ २४ ॥ वेश्या बोली हे प्रभो ! तीन दिन तथा तीनरात तुम्हारी भार्या होकर तुम्हारे साथ विषय करूंगी इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह महानन्दा तीनबार कहकर, सूर्य और चन्द्रमाको साक्षीकर प्रसन्नता पूर्वक उस वैश्यके हृदयको स्पर्श करती हुई ॥ २६ ॥ तब वह वैश्य उस वेश्याको रत्नजडित कंकण देकर उसके

यद्येतदखिलं चित्तं गृह्णाति करभूषणम्॥दिनत्रयमहोरात्रं पत्नी तव भवाम्यहम्॥२२॥वैश्य उवाच॥तथास्तु यदि ते सत्यं वचनं वीरवल्लभे॥ददामि रत्नवलयं त्रिरात्रं भव मे वधूः॥२३॥एतस्मिन्व्यवहारे तु प्रमाणं शशिभास्करौ॥त्रिवारं सत्यमित्युक्त्वा हृदयं मे स्पृश प्रिये ॥२४॥ वेश्योवाच ॥ दिनत्रयमहोरात्रं पत्नी भूत्वा तव प्रभो ॥ सहधर्मं चरामीति सत्यंसत्यं न संशयः॥२५॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा हि महानन्दा त्रिवारं शशिभास्करौ॥प्रमाणीकृत्य सुप्रीत्या सा तद्धृदयमस्पृशत् ॥२६॥ अथ तस्यै स वैश्यस्तु प्रदत्त्वा रत्नकंकणम् ॥ लिंगं रत्नमयं तस्य हस्ते दत्त्वेदमब्रवीत्॥२७॥वैश्यनाथ उवाच॥इदं रत्नमयं लिंगं शैवं मत्प्राणवल्लभम् ॥ रक्षणीयं त्वया कान्ते गोपनीयं प्रयत्नतः॥२८॥नन्दीश्वर उवाच॥ एवमस्त्विति सा प्रोच्य लिंगमादाय रत्नजम्॥नाट्यमण्डपिकामध्ये निधाय प्राविशद्गृहम् ॥२९॥ सा तेन संगता रात्रौ वैश्येन विटधर्मिणा ॥ सुखं सुष्वाप पर्यंके मृदुतल्पोपशोभिते ॥ ३० ॥ ततो निशीथसमये मुने वैश्यपतीच्छया ॥ अकस्मादुत्थिता वाणीनृत्यमण्डपिकान्तरे ॥ ३१ ॥

हाथमें रत्नमय शिवलिंगको देकर कहने लगा ॥ २७ ॥ वैश्यनाथ बोला, हे कान्ते ! यह रत्नजडित शिवका लिंग मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्यारा है तू इसकी रक्षा करना, और यत्नसे छिपाना ॥ २८॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसाही होगा, इस प्रकार कहकर वह रत्नजटित लिंग लेकर नाट्यशाला (नाचनेके घर) के मध्यमें रखकर उसने घरमें प्रवेश किया ॥ २९ ॥ तब वह वेश्या उस विटधर्मी वैश्यके साथ रात्रिमें मिलकर कोमल तकिये गद्दोंसे शोभायमान, फेनसे पलंगपर सुखपूर्वक सोई ॥ ३० ॥ हे मुने ! तब रात्रिके समय

उस वैश्यकी इच्छासे, नृत्यमंडपमेंसे अकस्मात् वाणी हुई ॥ ३१ ॥ हे तात ! तेज पवनकी सहायतावाला अग्नि अत्यन्त प्रज्वलित होकर इस नाचभवनको एकसाथ ले उडा है अर्थात् नाट्यशाला चारोंओरसे जलने लगी है ॥ ३२ ॥ मंडपके जलनेपर उस वेश्याने एकसाथ उठकर बन्धनसे बन्दरको खोला ॥ ३३ ॥ वह बंदर बंधनसे खुला हुआ उस मुर्गेके साथ बहुतसे आगकी चिनगारियोंको दूर करके भयसे दूर भाग गया ॥ ३४ ॥ खंभोंके सहित वह लिंग जलकर खंड २ होगया, यह दुश्चरित्र देखकर वह वेश्या तथा वैश्य दोनों महादुःखी हुये ॥ ॥ ३५ ॥ उस समय वैश्यपतिने अपने समान शिवलिंगको जला हुआ देख उस वेश्याके चित्तके भाव जाननेके निमित्त मरणकी इच्छा

महाप्रज्वलितो वह्निः सुसमीरसहायवान् ॥ नाट्यमण्डपिकां तात तामेव सहसावृणोत्॥३२॥ मण्डपे दह्यमाने तु सहसोत्थाय संभ्रमात्॥मर्कटं मोचयामास सा वेश्या तत्र बन्धनात्॥३३॥स मर्कटो मुक्तबन्धः कुक्कुटेन सहासुना॥ भिया दूरं हि दुद्राव विधूयाग्निकणान्बहून् ॥३४॥ स्तम्भेन सह निर्दग्धं तल्लिंगं शकलीकृतम् ॥ दृष्ट्वा वेश्या स वैश्यश्च दुरंतं दुःखमापतुः॥३५॥ दृष्ट्वा ह्यात्मसमं लिंगं दग्धं वैश्यपतिस्तदा॥ ज्ञातुन्तद्भावमन्तःस्थम्मरणाय मतिन्दधे॥३६॥ निविश्येतितरां खेदाद्वैश्यस्तामाह दुःखिताम् ॥ नानालीलो महेशानः कौतुकान्नरदेहवान् ॥३७॥ वैश्यपतिरुवाच ॥ शिवलिंगे तु निर्भिन्ने दग्धे महत्प्राणवल्लभे ॥ सत्यं वच्मि न सन्देहो नाहं जीवितुमुत्सहे ॥३८॥ चितां कारय मे भद्रे स्वभृत्यैस्त्वं वरैर्लघु॥ शिवे मनस्समावेश्य प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ॥ ३९ ॥ यदि ब्रह्मेन्द्रविष्ण्वाद्या वारयेयुः समेत्य माम् ॥ तथाप्यस्मिन् क्षणे भद्रे प्रविशामि त्यजाम्यसून् ॥ ४० ॥

की ॥ ३६ ॥ नानालीला करनेवाले महेश्वर, कौतुक करनेको मनुष्य शरीरधारे, वह वैश्यपति महादुःखी होकर उस दुःखित हुई वेश्यासे बोले ॥ ३७ ॥ वैश्यपति बोला, मेरे प्राणोंसे भी प्रिय, शिवलिंगके जलजानेपर मैं जीनेका उत्साह नहीं करता यह सत्य २ कहता हूं इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ३८ ॥ हे भद्रे ! अपने श्रेष्ठ नौकरोंसे बहुत शीघ्र चिताको बनवाओ, मैं शिवमें मन लगाकर चितामें प्रवेश करूंगा ॥ ३९ ॥ हे भद्रे ! यदि मुझे यहां आकर ब्रह्मा, विष्णु, आदिक देवताभी निषेध करें तोभी इस समय अग्निमें प्रवेश करूंगा;

और प्राणोंको त्याग दूंगा ॥४०॥ नन्दीश्वर बोले, उसका ऐसा दृढसंकल्प जानकर दुःखित हुई उस वेश्याने अपने नौकरोंसे अपने स्थानसे बाहर चिता बनवाई ॥४१॥ तब उस सुन्दर कौतुक करनेवाले तथा संगतिके प्रेमकी परीक्षा करनेवाले, वैश्यरूपधारी धीर एकमात्र शिवने जलती हुई अग्निकी परिक्रमा करके मनुष्योंको देखते २ अग्निमें प्रवेश किया ॥४२॥ हे मुनिसत्तम ! वह युवती, महानंदानामक वेश्या उस गति (चरित्र) को देख विस्मित हो अतिखेदको प्राप्त हुई ॥ ४३ ॥ और उस दुःखी हुई वेश्याने सुन्दर निर्मलधर्मका स्मरण करके सब कुटुंबी पुरुषोंको देख करुणासे दीनताके वचन कहे ॥४४॥ महानंदा बोली, मैंने इस वैश्यसे रत्नकंकण लेकर सत्य वचन कहा और तीनदिन इस वैश्यकी पत्नी हुई॥४५॥

नन्दीश्वर उवाच ॥ तमेवं दृढनिर्बन्धं सा विज्ञाय सुदुःखिता ॥ स्वभृत्यैः कारयामास चितां स्वभवनाद्बहिः ॥ ४१ ॥ ततस्स वैश्यश्शिव एक एव प्रदक्षिणीकृत्य समिद्धमग्निम् ॥ विवेश पश्यत्सु नरेषु धीरः सुकौतुकी संगतिभावमिच्छुः ॥ ४२ ॥ दृष्ट्वा सा तद्गतिं वेश्या महानन्दातिविस्मिता ॥ अनुतापं च युवती प्रपेदे मुनिसत्तम ॥४३॥ अथ सा दुःखिता वेश्या स्मृत्वा धर्मं सुनिर्मलम् ॥ सर्वान्बंधुजनान्वीक्ष्य बभाषे करुणं वचः ॥४४॥ महानन्दोवाच ॥ रत्नकंकणमादाय मया सत्यमुदाहृतम् ॥ दिनत्रयमहं पत्नी वैश्य स्यामुष्य संमता ॥४५॥कर्मणा मत्कृतेनायं मृतो वैश्यः शिवव्रती॥तस्मादहं प्रवेक्ष्यामि सहानेन हुताशनम् ॥ ४६ ॥ स्वधर्म चारिणीत्यक्तमाचार्य्यैं सत्यवादिभिः ॥ एवं कृते मम प्रीत्या सत्यं मयि न नश्यतु ॥४७॥ सत्याश्रयः परो धर्म सत्येन परमागतिः ॥ सत्येन स्वर्ग मोक्षौ च सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ४८ ॥ नन्दीश्वरउवाच ॥ इति सा दृढनिर्बन्धा वार्यमाणापि बन्धुभिः ॥ सत्यलोकपरा नारी प्राणांस्त्यक्तुं मनो दधे ॥ ४९ ॥

मेरे इस कर्मसे यह शिवव्रतधारी वैश्य मरा है, इस कारण मैं भी इस वैश्यके साथ अग्निमें प्रवेश करूंगी॥४६॥सत्य बोलनेवाले गुरुओंने स्वधर्म आचरण करनेवाली यह होगी ऐसा हमको कहा है इससे प्रसन्न होकर ऐसा करनेसे सत्य हमारे बीचमें नष्ट न हो ॥४७॥ सत्यका आश्रय ही परमधर्म है, सत्यसे परमगति होती है, सत्यसे ही स्वर्ग और मोक्ष मिलते हैं, सत्यमें ही सब प्रतिष्ठित है ॥ ४८ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार कह सत्य लोकमें तत्पर हुई, तथा दृढ संकल्पको बांधे हुए वह वेश्या नारी अपने भाई बंधुओंसे निषेध की हुई भी प्राणोंको त्यागनेकी इच्छा

करने लगी ॥ ४९ ॥ और अपना सर्वस्व धनादि पदार्थ मुख्य ब्राह्मणोंको दानकर, सदा शिवका ध्यानकर उस अग्निकी तीन बार परिक्रमा करके उसमें प्रवेश करने लगी ॥ ५० ॥ जलती अग्निमें गिरती हुई तथा अपने चरणोंमें मन अर्पण करती हुई उस वेश्याको देख, विश्वात्मा साक्षात् शिवने प्रगट होकर उसको निवारण किया ॥ ५१ ॥ वह वेश्या उन सब देवताओंके अधिपति, तीन नेत्रोंवाले, चन्द्रमाकी कलासे शोभित, कोटि चन्द्रमा तथा सूर्य अग्निके समान प्रकाशवाले, उन शिवको देखकर निश्चल हुई भीतके समान स्थित हुई ॥ ५२ ॥ तब व्याकुल हुई, बडी त्रासवाली कांपती हुई, जडी भूत, आंसूभरे नेत्रोंवाली उस वेश्याके हाथोंको पकड कर शिवजी यह वचन बोले ॥ ५३ ॥

सर्वस्वं द्विजमुख्येभ्यो दत्त्वा ध्यात्वा सदाशिवम्॥तमग्निं त्रिः परिक्रम्य प्रवेशाभिमुखी ह्यभूत्॥५०॥तां पतन्तीं समिद्धेऽग्नौस्वपदार्पितमानसाम्॥वारयामास विश्वात्मा प्रादुर्भूतः स वै शिवः॥५१॥सा तं विलोक्याखिलदेवदेवन्त्रिलोचनं चन्द्रकलावतंसम्॥शशांकसूर्यानलकोटिभासं स्तब्धेव भीतेव तथैव तस्थौ॥५२॥तां विह्वलां सुविस्रस्वां वेपमानां जडीकृताम्॥ समाश्वास्य गलद्बाष्पां करौधृत्वा ऽब्रवीद्वचः॥५३॥शिव उवाच॥सत्यं धर्मं च धैर्यं च भक्तिं च मयि निश्चलाम्॥परीक्षितुं त्वत्सकाशं वैश्यो भूत्वाहमागतः॥५४॥मायायाग्निं समुद्दीप्य दग्धन्ते नाट्यमण्डपम्॥दग्धं कृत्वा रत्नलिंगं प्रविष्टोहं हुताशनम्॥५५॥सा त्वं सत्यमनुस्मृत्य प्रविष्टाग्निं मया सहा॥अतस्ते संप्रदास्यामि भोगांस्त्रिदशदुर्लभान्॥५६॥यद्यदिच्छसि सुश्रोणि तदेव हिददामि ते॥त्वद्भक्त्याहं प्रसन्नोस्मि तवादेयं न विद्यते॥५७॥नन्दीश्वर उवाच॥ इति ब्रुवति गौरीशे शंकरे भक्तवत्सले ॥ महानन्दा च सा वेश्या शंकरम्प्रत्यभाषत ॥५८॥

शिवजी बोले, तेरे सत्य धर्म तथा मुझमें निश्चल हुई भक्तिकी परीक्षा करनेके निमित्त मैं तेरे समीप वैश्य बनकर आया था ॥ ५४ ॥ मैंने अपनी मायासे अग्निको प्रदीप्त कर, तेरा नाट्य मंडप जला दिया, और रत्नलिंगको दग्ध करके मैं अग्निमें प्रविष्ट हुआ ॥ ५५ ॥ जो कि तू सत्यका अनुसरण करके मेरे साथ अग्निमें प्रविष्ट हुई, इस कारण तुझे देवताओंको भी दुर्लभ भोगोंको देता हूं ॥ ५६ ॥ हे सुश्रोणि ! तू जो जो इच्छा करे वह वह तुझे देता हूं, तेरी भक्तिसे मैं प्रसन्न हूं तुझे अदेय कोई वस्तु नहीं है ॥ ५७ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार कल्याण करनेवाले भक्तवत्सल शिवके कहनेपर वह महानन्दा वेश्या शंकरसे बोली ॥ ५८ ॥

वेश्या बोली, मेरी भूमि स्वर्ग तथा पातालके भोगोंमें इच्छा नहीं है, तुम्हारे चरण कमलोंके स्पर्शसे विना और कुछ नहीं चाहती ॥ ५९ ॥ जो मेरे भृत्य और दासी तथा और जो मेरे बांधव हैं वे सब आपके दर्शनोंमें तत्पर हुये, और आपमें ही चित्तकी वृत्तियां लगाये हुये हैं ॥ ६० ॥ मेरे सहित इन सबोंको अपने परम पदको प्राप्त कराके, पुनर्जन्मरूप घोर भयसे छुडाओ, आपको नमस्कार है ॥ ६१ ॥ नन्दीश्वर बोले, इसके उपरान्त शिवजीने उस वेश्याके वचनको प्रमाण कर उसके सहित उन सबोंको अपने परम पदको भेज दिया ॥ ६२ ॥ वैश्य नाथका परम अवतार तुमसे वर्णन किया, जो महानन्दा वेश्याको सुख देनेवाला तथा भक्तोंको आनन्द देनेवाला है ॥ ६३ ॥ यह परम

वेश्योवाच ॥ न मे वाञ्छास्ति भोगेषुभूमौस्वर्गे रसातले ॥ तव पादाम्बुजस्पर्शादन्यत्किंचिन्न कामये ॥५९॥ ये मे भृत्याश्च दास्यश्च ये चान्ये मम बान्धवाः ॥सर्वे त्वद्दर्शनपरास्त्वयि सन्न्यस्तवृत्तयः॥६०॥सर्वानेतान्मया सार्द्धं निनीयात्मपरम्पदम् ॥ पुनर्जन्मभयं घोरं विमोचय नमोऽस्तु ते ॥६१॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ ततस्स तस्या वचनम्प्रतिनन्द्य महेश्वरः ॥ ताः सर्वाश्च तया सार्धं निनाय स्वम्परम्पदम् ॥६२॥वैश्यनाथावतारस्ते वर्णितः परमो मया॥महानन्दासुखकरो भक्तानन्दप्रदस्सदा॥६३॥ इदं चरित्रं परमं पवित्रं सतां च सर्वप्रदमाशु दिव्यम्॥ शिवावतारस्य विशाम्पतेर्महानन्दामहासौख्यकरं विचित्रम् ॥६४॥ इदं यः शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः ॥ च्यवते न स्वधर्मात्स परत्र लभते गतिम्॥६५॥इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां वैश्य नाथाह्वयशिवावतारवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ (७६) अथ द्विजेश्वरावतारमाह ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ शृणु तात प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः ॥ द्विजेश्वरावतारं च सशिवं सुखदं सताम् ॥ १ ॥

पवित्र तथा शीघ्र सत्पुरुषोंको सब कुछ देनेवाला महानन्दा वेश्याको परम सुख देनेवाला सुन्दर शिवका अवतार रूप वैश्यनाथका दिव्य चरित्र वर्णन किया ॥ ६४ ॥ जो पुरुष इस चरित्रको भक्ति सहित सावधान हो सुनता है अथवा सुनाता है वह अपने धर्मसे पतित नहीं होता परलोकमें उत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां तृ० श० रु० वैश्यनाथाह्वयशिवावतार वर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ (अब द्विजेश्वर अवतार कहते हैं ॥) नन्दीश्वर बोले, हे तात ! कल्याण करनेवाला सत्पुरुषोंको सुख देनेवाला,

परमात्मा शिवका द्विजेश्वरावतार तुमसे कहता हूं सो सुनो ॥ १ ॥ हे तात ! जो पहले भद्रायु नामक राजाका वर्णन किया जिसपर ऋषभरूप धारकर शिवने कृपा की ॥ २ ॥ उस भद्रायुके धर्मकी परीक्षा करनेको फिर भी द्विजेश्वर रूपसे शिवजी प्रगट हुए, उस चरित्रको मैं कहता, हूं ॥ ३ ॥ हे तात ! ऋषभके प्रभावसे संग्राममें प्रभुने शत्रुओंको जीतकर राज्य सिंहासन प्राप्त कर भद्रायुको उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! चन्द्रांगद राजाकी सीमन्तिनी स्त्रीसे उत्पन्न हुई, शुभ अंगोंवाली बडी सौम्य कीर्ति मालिनी नाम कन्या उस राजाकी स्त्री हुई ॥ ५ ॥ हे मुने ! एक समय वह भद्रायु अपनी प्रियाके साथ वसन्त समयमें विहार करनेको घने वनमें गया

यः पूर्वं वर्णितस्तात भद्रायुर्नृपसत्तमः ॥यस्मिन्नृषभरूपेणानुग्रहं कृतवाञ्छिवः॥२॥तद्धर्मस्य परीक्षार्थं पुनराविर्बभूव सः॥द्विजेश्वरस्वरूपेण तदेव कथयाम्यहम् ॥३॥ ऋषभस्य प्रभावेण शत्रूञ्जित्वा रणे प्रभुः॥ प्राप्तसिंहासनस्तात भद्रायुः संबभूव ह ॥४॥ चन्द्रांगदस्य तनया सीमन्तिन्याः शुभांगजा॥पत्नी तस्याभवद्ब्रह्मन् सुसाध्वी कीर्तिमालिनी॥५॥स भद्रायुः कदाचित्स्वप्रियया गहनं वनम् ॥ प्राविशत्संविहारार्थं वसन्तसमये मुने॥६॥ अथ तस्मिन्वने रम्ये विजहार स भूपतिः ॥शरणागतपालिन्या तमा स्वप्रियया सह ॥७॥ अथ तद्धर्मदृढतां प्रतीक्षन्परमेश्वरः ॥लीलां चकार तत्रैव शिवया सह शङ्करः॥८॥शिवा शिवश्च भूत्वोभौ तद्वने द्विजदम्पती॥व्याघ्रं मायामयं कृत्वाविर्भूतौ निजलीलया॥९॥अथाविदूरे तस्यैव द्रवन्तौ भयविह्वलौ॥अन्वीयमानौ व्याघ्रेण रुदन्तौ तौ बभूवतुः॥१०॥अथ विद्धौ च तौ तात भद्रायुः स महीपतिः ॥ ददर्श क्रन्दमानौ हि शरण्यः क्षत्रियर्षभः ॥११॥

॥ ६ ॥ तब उस रमणीक वनमें वह राजा, शरणमें आये हुओंका पालन करनेवाली उस अपनी स्त्रीके साथ विहार करने लगा ॥ ७ ॥ तब उस राजाके धर्मकी दृढताकी परीक्षा करते हुये शिवजी पार्वतीके सहित वहां लीला करने लगे ॥ ८ ॥ वह दोनों पार्वती और शिव ब्राह्मण स्त्री पुरुषके रूपसे अपनी लीलासे मायाके व्याघ्रको बनाकर प्रगट हुये ॥ ९ ॥ और वे दोनों स्त्री पुरुष, व्याघ्रके पीछे पीछे धावमान होनेसे भयसे व्याकुल, रोते चिल्लाते राजाके समीपमें हुए ॥ १० ॥ हे तात ! शरणागतवत्सल, क्षत्रियोंमें उत्तम उस

भद्रायुराजने उन दोनोंको बिंधा हुआ देखा ॥ ११ ॥ मुनिशार्दूल ! तब वह मायारूप द्विज स्त्रीपुरुष भयसे व्याकुल होते हुये भद्रायुराजासे बोले ॥ १२ ॥ ब्राह्मण स्त्रीपुरुष बोले, हे महाराज ! हे महाप्रभो ! हे धर्मवित्तम ! हम दोनोंकी रक्षा करो २ यह सिंह हम दोनोंके खानेको आता है ॥ १३ ॥ हे धर्मवित्तम ! यह सब प्राणियोंमें भयंकर कालरूप हिंसक सिंह जबतक हम दोनोंको प्राप्त होकर नहीं खाता है तबतक तुम रक्षा करो ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर बोले, महावीर राजाने इस प्रकार उन दोनोंका रोना सुनकर जबतक धनुष लिया कि ॥ १५ ॥ तबतक मायाके सिंहने शीघ्रताके साथ बीचमेंसे उस ब्राह्मणकी स्त्रीको ग्रहण कर लिया ॥ १६ ॥ हे नाथ ! हे कान्त ! हा शम्भो ! हा जगद्गुरो !

अथ तौ मुनिशार्दूलः स्वमायाद्विजदम्पती ॥ भद्रायुषं महाराजमूचतुर्भयविह्वलौ ॥ १२ ॥ द्विजदम्पती ऊचतुः ॥ पाहि पाहि महाराज नावुभौ धर्मवित्तम॥ एष आयाति शार्दूलो जग्धुमावां महाप्रभो॥१३॥ एष हिंस्रः कालसमः सर्वप्राणिभयङ्करः ॥ यावन्न खादति प्राप्य तावन्नौ रक्ष धर्मवित् ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्थमाक्रन्दितं श्रुत्वा तयोश्च नृपतीश्वरः॥अति शीघ्रं महावीरः स यावद्धनुराददे ॥१५॥तावदभ्येत्य शार्दूलस्त्वरमाणोतिमायिकः॥स तस्य द्विजवर्य्यस्य मध्ये जग्राह तां वधूम् ॥१६॥ हे नाथ नाथ हे कान्त हा शम्भो हा जगद्गुरो॥ इति रोरूयमाणां तां व्याघ्रो जग्रास भीषणः॥१७॥तावत्स राजा निशितैर्भल्लैर्व्याघ्रमताडयत् ॥ न स तैर्विव्यथे किंचिद्गिरीन्द्र इव वृष्टिभिः॥१८॥स शार्दूलो महासत्त्वो राज्ञः स्वैरकृतव्यथः॥ बलादाकृष्य तां नारीमपाक्रमतसत्वरः ॥ १९॥व्याघ्रेणापहृतांनारीं वीक्ष्य विप्रोतिविस्मितः॥लौकिकींगतिमाश्रित्य रुरोदाति मुहुर्मुहुः ॥२०॥

यह कहकर रोती हुई उस स्त्रीको भयंकर सिंहने खालिया ॥ १७ ॥ तबतक वह राजा तीक्ष्ण बाणोंसे व्याघ्रको ताडन करता हुआ; परन्तु वह उन भालोंसे वर्षासे ताडित पर्वतके समान कुछ भी व्यथाको प्राप्त न हुआ ॥ १८ ॥ राजासे स्वतंत्रतापूर्वक व्यथाको प्राप्त न होनेवाले बडे पराक्रमी उस सिंहने शीघ्रही बलात्कारसे उस स्त्रीको खैंचकर पलायन किया ॥ १९ ॥ व्याघ्रसे हरण कीहुई स्त्रीको देखकर अतिविस्मित हुआ ब्राह्मण लौकिकी गतिको आश्रय करके बारंबार अधिक रोने लगा ॥ २० ॥ वह मायेश्वर ब्राह्मण बहुत कालतक रोता हुआ भद्रायु राजासे

अभिमान नष्ट करनेवाले यह वचन बोला ॥ २१ ॥ द्विजेश्वर बोला, हे राजन् ! तुम्हारे बडे २ अस्त्र कहां हैं, और महाधनुषकी रक्षा कहां गई, और बारह हजार हाथियोंका बल कहां गया ॥ २२ ॥ तुम्हारे खड्गसे क्या फल है, और शंखसे तथा मंत्र और अस्त्र विद्यासे क्या फल हुआ और बडे अस्त्रोंके सत्त्व (पराक्रम) से तथा अधिक प्रभावसे क्या फल हुआ ॥ २३ ॥ और जो कुछ गुण तुममें स्थित हैं सो सब निष्फल हुये तुम वनमें रहनेवाले हिंसक जीवोंके घातके निवारण करनेकोभी समर्थ नहीं हो ॥ २४ ॥ दुःखसे रक्षा करना क्षत्रियका परम

रुदित्वा चिरकालं च स विप्रो मायये श्वरः ॥ भद्रायुषं महीपालं प्रोवाच मदहारकः॥२१॥ द्विजेश्वर उवाच ॥ राजन्क्व ते महास्त्राणि क्व ते त्राणं महद्धनुः ॥ क्व ते द्वादशसाहस्रमहानागायुतम्बलम् ॥ २२ ॥ किन्ते खड्गेन शङ्खेन किं ते मंत्रास्त्रविद्यया ॥ किं सत्त्वेन महास्त्राणां किं प्रभावेण भूयसा ॥२३॥तत्सर्वं विफलं जातं यच्चान्यत्त्वयि तिष्ठति॥यस्त्वं वनौकसां घातं न निवारयितुं क्षमः ॥२४॥ क्षत्रस्यायं परो धर्मो क्षताच्च परिरक्षणम्॥तस्मिन्कुलोचिते धर्मे नष्टे त्वज्जीवितेन किम्॥२५॥ आर्तानां शरणागतानां त्राणं कुर्वन्ति पार्थिवाः ॥ प्राणैरर्थैश्च धर्मज्ञास्तद्विना च मृतोपमा ॥२६॥आर्तत्राणविहीनानां जीवितान्मरणं वरम् ॥ धनिनान्पानहीनानांगार्हस्थ्याद्भिक्षुता वरम्॥२७॥वरं विषाशनं प्राज्ञैर्वरमग्निप्रवेशनम्॥कृपणानामनाथानां दीनानामपरक्षणात्॥ ॥२८॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्थं विलपितं तस्य स्ववीर्य्यस्य च गर्हणम् ॥ निशम्य नृपतिः शोकादात्मन्येवमचिन्तयत् ॥२९॥

धर्म है, उस कुलके धर्म नष्ट होनेपर तुम्हारे जीनेसे क्या फल है ? ॥ २५ ॥ धर्मके जाननेवाले राजा लोग, शरणमें आये हुये दुःखी पुरुषोंको दुःखसे अपने प्राण और धनके द्वारा रक्षा करते हैं, इसके विना मरे हुयेके समान हैं ॥ २६ ॥ दुःखियोंकी रक्षासे शून्य हुये मनुष्योंके जीनेसे मरना श्रेष्ठ है, दानहीन धनियोंके गृहस्थाश्रमकी अपेक्षा भिखारी होना श्रेष्ठ है ॥ २७ ॥ अनाथोंकी दीनोंकी न रक्षा करनेसे कृपण मनुष्योंको विषका खाना तथा अग्निमें प्रवेश करना बुद्धिमानोंने श्रेष्ठ कहा है ॥२८॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार अपने वीर्यकी निन्दारूप उस

ब्राह्मणका विलाप सुन राजा शोकसे आत्मामें यह विचार करने लगा ॥ २९ ॥ अहो शोक ! आज प्रारब्धके उलटे होनेसे मेरा पुरुषार्थ नष्ट हुआ, आज मेरी कीर्ति भी नष्ट हुई भयंकर पातक हमको लगा ॥ ३० ॥ दुर्मती मंदभागी जो मैं हूं मेरा कुलोचित धर्म भी नष्ट हुआ इससे निश्चय मेरी सम्पत्ति, राज्य, आयु, सब नाशको प्राप्त होगा ॥ ३१ ॥ आज मैं इस मृत स्त्रीवाले शोकसे व्याकुल ब्राह्मणको अपने अतिप्रिय प्राणोंको देखकर शोकरहित करूंगा ॥ ३२ ॥ उस भद्रायु राजाने मनसे यह निश्चयकर उसके चरणोंमें पडकर शान्त करते हुए यह कहा ॥ ३३ ॥ भद्रायु बोला, हे ब्रह्मन् ! बलसे गिरे हुये मुझ क्षत्रबन्धुमें कृपा करके अपने शोकको त्यागन करो मैं तुमको वांछित वस्तु दूंगा

अहो मे पौरुषं नष्टमद्य देवविपर्ययात् ॥ अद्य कीर्तिश्च मे नष्टा पातकम्प्राप्तमुत्कटम् ॥ ३० ॥ धर्मः कुलोचितो नष्टो मन्दभाग्यस्य दुर्मतेः ॥ नूनं मे सम्पदो राज्यमायुष्यं क्षयमेष्यति ॥ ३१ ॥ अद्य चैनं द्विजन्मानं हतदारं शुचार्दितम् ॥ हतशोकं करिस्यामि दत्त्वा प्राणानतिप्रियान् ॥ ३२ ॥ इति निश्चित्य मनसा स भद्रायुर्नृपोत्तमः ॥ पतित्वा पादयोस्तस्य बभाषे परिसान्त्वयन्॥ ३३ ॥ भद्रायुरुवाच ॥ कृपां कृत्वा मयि ब्रह्मन् क्षत्रबन्धौ हतौजसि ॥ शोकन्त्यज महाप्राज्ञ दास्याम्यद्य तु वाञ्छितम् ॥३४॥ इदं राज्य मियं राज्ञी ममेदञ्च कलेवरम् ॥ त्वदधीनमिदं सर्वं किन्तेऽभिलषितं वरम् ॥३५॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किमादर्शेन चान्धस्य किं गृहेर्भैक्ष्यजीविनः ॥ किम्पुस्तकेन मूढस्य निस्त्रीकस्य धनेन किम् ॥ ३६ ॥ अतोऽहं हतपत्नीको भुक्तभोगो न कर्हिचित्॥ इमान्तवाग्रमहिषीं कामये दीयतामिति ॥३७॥ भ० उ० ॥ दाता रसान्तवित्तस्य राज्यस्य गजवाजिनाम्॥ आत्मदेहस्य यस्यापिकलत्रस्य कर्हिचित् ॥ ३८ ॥

॥ ३४ ॥ यह राज्य रानी तथा यह मेरा शरीर सब तुम्हारे आधीन हैं, आपकी क्या अभिलाषा है सो कहो ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण बोला, अंधेको दर्पणसे क्या फल, तथा भिक्षुकको घरसे क्या काम, मूर्खको पुस्तकसे क्या फल और स्त्रीरहित मनुष्यको धनसे क्या लाभ है ॥ ३६ ॥ इस कारण मृत स्त्रीवाला मैं और कोई भोग नहीं भोगना चाहता, केवल इस तुम्हारी मुख्य स्त्रीकी इच्छा करता हूं उसे दे दो ॥ ३७ ॥ भद्रायु बोला, दान करनेवाला पुरुष, गुण, घी, आदि रस पर्यंत धनका, तथा अपने राज्य, हाथी, घोडोंका, और अपने शरीरका

दान कर सकता है, स्त्रीका दान कोई नहीं कर सकता ॥ ३८ ॥ दूसरेकी स्त्रीके साथ भोग करनेसे जो पाप एकत्रित होता है वह सैकडों प्रायश्चित्त करनेसे भी नहीं जाता ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण बोला ब्रह्महत्या तथा मदिराका सेवन रूप घोर पाप भी अपने तपके द्वारा मैं भस्म कर दूंगा फिर पर स्त्री भोग विषयक पाप क्या वस्तु है ॥ ४० ॥ इस कारण मुझे इस अपनी स्त्रीको दो और दूसरी इच्छा नहीं है, भयभीत हुओंकी रक्षा न करनेसे निश्चय तुम नरकको जाओगे ॥ ४१ ॥ नंदीश्वर बोले, ऐसी ब्राह्मणकी वाणीसे डरा हुआ राजा विचारने लगा कि रक्षा न करनेसे महापाप होगा, उससे पत्नीका देना श्रेष्ठ है ॥ ४२ ॥ अतः अपनी स्त्रीको इस ब्राह्मणके अर्थ देकर निष्पाप हो शीघ्र

परदारोपभोगेन यत्पापं समुपार्जितम् ॥ न तत्क्षालयितुं शक्यं प्रायश्चित्तशतैरपि ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ आस्तां ब्रह्मवधं घोरमपि मद्यनिषेवणम् ॥ तपसा विधमिष्यामि किं पुनः पारदारिकम् ॥ ४० ॥ तस्मात्प्रयच्छ भार्यां स्वामियां कामो न मेऽपरः ॥ अरक्षणाद्भयार्तानां गन्तासि निरयन्ध्रुवम् ॥४१॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति विप्रगिरा भीतश्चिन्तयामास पार्थिवः ॥ अरक्षणान्महापापं पत्नीदानन्ततो वरम् ॥ ४२ ॥ अतः पत्नीं द्विजाग्र्याय दत्त्वा निर्मुक्तकिल्विषः ॥ सद्यो वह्निंप्रवेक्ष्यामि कीर्तिश्च विदिता भवेत् ॥४३॥ इति निश्चित्य मनसा समुज्ज्वाल्य हुताशनम् ॥ तमाहूय द्विजं चक्रे पत्नीदानं सहोदकम् ॥४४॥ स्वयं स्नातःशुचिर्भूत्वा प्रणम्य विबुधेश्वरान् ॥ तमग्निं त्रिः परिक्रम्य शिवं दध्यौ समाहितः ॥४५॥ तमथाग्निं पतिष्यन्तं स्वपदासक्तचेतसम् ॥ प्रत्यषेधत विश्वेशः प्रादुर्भूतो द्विजेश्वरः ॥ ४६ ॥ तमीश्वरं पञ्चमुखं त्रिनेत्रं पिनाकिनं चन्द्रकलावतंसम् ॥ प्रलम्बपिंगासुजटाकलापं मध्याह्नसद्भास्करकोटितेजसम् ॥ ४७ ॥

अग्निमें प्रवेश करूंगा तो मेरी कीर्ति विस्तृत होगी ॥ ४३ ॥ ऐसा मनसे निश्चय करके अग्निको प्रज्वलित कर उस ब्राह्मणको बुलाय जल सहित स्त्रीका दान किया ॥ ४४ ॥ स्वयं स्नान करके पवित्र हो सब विद्वानोंको प्रणाम कर उस अग्निकी तीन चार परिक्रमा करके सावधान हो शिवका ध्यानकर ॥ ४५ ॥ उस अग्निमें गिरते हुए तथा अपने चरणोंमें मग्न चित्त उस राजाको द्विजेश्वर रूपधारी शिवजीने प्रगट हो निषेध किया ॥ ४६ ॥ उन पांच मुख, तीन नेत्रवाले, पिनाकधारी, चन्द्रमाकी कलाओंसे शोभायमान तथा लम्बायमान पीली

जटाओंको धारे, मध्याह्नकालके करोडों सूर्यके समान तेजस्वी, उन ईश्वरको ॥ ४७ ॥ तथा कमल डण्डीके समान गौरवर्ण हाथीका चर्म ओढे, गंगाजीकी तरंगोंसे धुलते हुए मौलि स्थानवाले, सर्प राजोंके हारसमूह भूषणसे शोभायमान कण्ठवाले तथा मुकुट, कांची, बाजूबन्द, कंकणसे देदीप्यमान ॥ ४८ ॥ त्रिशूल, खड्ग, खट्वाङ्ग कुठार, चर्म मृग अभयरूप आठ अङ्गोंसे युक्त पिनाक हाथमें लिये तथा बैलके (नादियाके) ऊपर चढे हुए विषके कण्ठ भूषण धारे आगे प्रगट होते हुए शिवको उस राजाने देखा ॥ ४९ ॥ तब आकाशसे शीघ्र फूलोंकी दिव्य वर्षा हुई, देवताओंके बाजे, तथा देवस्त्रियां नाचने और गाने लगीं ॥ ५० ॥ तथा स्तुति करते हुए विष्णु ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवता

मृणालगौरं गजचर्मवाससं गंगातरङ्गोक्षितमौलिदेशकम् ॥ नागेन्द्रहारावलिकण्ठभूषणं किरीटकांच्यंगदकंकणोज्ज्वलम् ॥४८॥
शूलासिखट्वांगकुठारचर्ममृगाभयाष्टांगपिनाकहस्तम् ॥ वृषोपरिस्थं शितिकण्ठभूषणं प्रोद्भूतमग्रे स नृपो ददर्श ॥ ४९ ॥ ततो
म्बरादद्भुतं पेतुर्दिव्याः कुसुमवृष्टयः ॥ प्रणेदुर्दैवतूर्य्याणि देव्यश्च ननृतुर्जगुः ॥ ५० ॥ तत्राजग्मुः स्तूयमाना हरिर्ब्रह्मा तथा
सुराः ॥ इन्द्रादयो नारदाद्या मुनयश्चापरेऽपि च ॥ ५१ ॥ तदोत्सवो महानासीत्तत्र भक्तिप्रवर्धनः ॥ सति पश्यति भूपाले भक्ति
नम्रीकृताञ्जलौ ॥ ५२ ॥ तद्दर्शनानन्दविजृम्भिताशयः प्रवृद्धबाष्पाम्बुविलिप्तगात्रः ॥ प्रहृष्टरोमा स हि गद्गदाक्षरस्तुष्टाव गीर्भि
र्मुकुलीकृतांजलिः ॥ ५३ ॥ ततस्स भगवान्राज्ञा संस्तुतः परमेश्वरः ॥ प्रसन्नः सह पार्वत्या तमुवाच दयानिधिः ॥ ५४ ॥
राजंस्ते परितुष्टोहं भक्त्या त्वद्धर्मतोऽधिकम् ॥ वरं ब्रूहि सपत्नीकम्प्रयच्छामि न संशयः ॥ ५५ ॥

तथा नारद आदि मुनि यह सब वहां आये ॥ ५१ ॥ उस समय वहां भक्तिसे नम्र तथा अंजलि बांधे हुये राजाके सन्मुख भक्तिका बढा नेवाला बडा उत्सव हुआ ॥ ५२ ॥ उन शिवके दर्शनके आनन्दसे प्रगट आशयवाला, बडे आँसूरूप जलसे गीले हुए शरीरवाला हर्षसे रोमाञ्चित शरीर गद्गदवाणीसे अंजलि बांध राजा स्तुति करने लगा ॥ ५३ ॥ तब परमेश्वर दयासागर भगवान् शिव राजासे स्तुतिको प्राप्त हो पार्वतीसहित प्रसन्न हो राजासे बोले ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! तुम्हारी भक्तिसे तथा तुम्हारे धर्मसे मैं अतिसंतुष्ट हुआ, स्त्रीसहित वर

मांगो मैं निःसंदेह दूँगा ॥ ५५ ॥ मैं तेरे भाव (प्रेम) की परीक्षा करनेको ब्राह्मण बनकर आया हूं, और व्याघ्रने जो पकडी थी वह साक्षात् मेरी स्त्री पार्वती थी ॥ ५६ ॥ जो तेरे बाणोंसे घायल नहीं हुआ वह व्याघ्र मायाका था, मैंने तेरी धीरताके देखनेकी इच्छासे तेरी स्त्रीको मांगा ॥ ५७ ॥ नन्दीश्वर बोले, वह भद्रायु राजा, इस प्रकार प्रभु शिवका वचन सुन फिर प्रणाम और स्तुति करके हाथ नीचे किये हुये स्वामीसे बोला ॥ ५८ ॥ भद्रायु बोला, हे नाथ ! मेरा एक यहही वर है कि--आप परमेश्वर, संसारके दुःखोंसे पीडित हुये मेरे दर्शनपथको प्राप्त हुये ॥ ५९ ॥ हे नाथ ! यदि फिर अपनी कृपासे मुझे वर देते हो तो वरदानियोंमें श्रेष्ठ आपसे और वर छोड यह

तव भावपरीक्षार्थं द्विजो भूत्वाहमागतः॥व्याघ्रेण या परिग्रस्ता साक्षादेवी शिवा हि सा॥५६॥व्याघ्रो मायामयो यस्ते शरैरक्षत विग्रहः ॥ धीरतान्द्रष्टुकामस्ते पत्नीं याचितवानहम् ॥५७॥ नन्दीश्वर उवाच॥ इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाक्यं स भद्रायुर्महीपतिः ॥ पुन प्रणम्य संस्तूय स्वामिनं नतकोऽब्रवीत्॥५८॥भद्रायुरुवाच॥एक एव वरो नाथ यद्भवान्परमेश्वरः॥भवतापप्रतप्तस्य मम प्रत्यक्षतां गतः ॥ ५९ ॥ यद्दासि पुनर्नाथ वरं स्वकृपया प्रभो॥ वृणेहं परमं त्यक्तो वरं हि वरदर्षभात् ॥६०॥ वज्रबाहुः पिता मेहि सप त्नीको महेश्वर॥सपत्नीकस्त्वहं नाथ सदा त्वत्पादसेवकः ॥६१॥वैश्यः पद्माकरो नाम तत्पुत्रस्सनयाभिधः॥सर्वानेतान्महेशान सदा त्वं पार्श्वगान्कुरु ॥ ६२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अथ राज्ञी च तत्पत्नी प्रमत्ता कीर्तिमालिनी ॥ भक्त्या प्रसाद्य गिरिशं ययाचे वरमुत्तमम् ॥६३॥ राज्युवाच ॥ चन्द्रांगदो मम पिता माता सीमन्तिनी च मे ॥ तयोर्याचे महादेव त्वत्पार्श्वे सन्निधिं मुदा ॥६४॥ नन्दीश्वर उवाच॥ एवमस्त्विति गौरीशः प्रसन्नो भक्तवत्सलः॥ तयोः कामवरन्दत्त्वा क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥६५॥

वर मांगता हूं ॥ ६० ॥ हे महेश्वर ! हे नाथ ! मेरा वज्रबाहुवाला पिता स्त्रीसहित तथा मैं भी अपनी स्त्रीसहित तुम्हारे चरणोंका सेवक हूं ॥ ६१ ॥ हे महेशान ! पद्माकर नामक वैश्य उसका पुत्र सनय इन सबोंको आप अपने निकटवासी करो ॥ ६२ ॥ नन्दीश्वर बोले, तब उसकी कीर्तिमालिनी नामक स्त्री प्रमत्त हुई भक्तिसे शिवको प्रसन्न करके उत्तम वरको मांगने लगी । ६३ ॥ रानी बोली, हे महादेव ! मेरा पिता चन्द्रांगद तथा माता सीमन्तिनी इन दोनोंका आपके निकट वास होना प्रसन्न हो मांगती हूं ॥ ६४ ॥ नन्दीश्वर बोले, भक्तवत्सल

पार्वतीके पति शिवजी ऐसाही होगा यह कहकर उन दोनों स्त्री पुरुषोंको इच्छित वरदान देकर क्षणमात्रमें अन्तर्धान होगये ॥ ६५ ॥ भद्रायु राजाने भी प्रीतिपूर्वक शिवकी प्रसन्नता पाय कीर्तिमालिनी स्त्रीके सहित अनेक विषयोंको भोगा ॥ ६६ ॥ और विना नष्ट हुए पराक्रम सहित दस सहस्र वर्ष राज्य करके फिर अपने पुत्रको राज्य समर्पणकर शिवकी समीपताको प्राप्त हुआ ॥ ६७ ॥ और वह राजर्षि चन्द्रांगद तथा वह रानी सीमन्तिनी यह दोनों भक्तिसे शिवका पूजनकर शंभुके पदको प्राप्त हुये ॥ ६८ ॥ हे प्रभो ! मैंने तुमसे द्विजेश्वरनामक शिवका परम अवतार वर्णन किया, जो भद्रायुनामक राजाको परम आनन्द देनेवाला है ॥ ६९ ॥ जो मनुष्य पवित्र कीर्तिवाले शिवके

भद्रायुरपि सुप्रीत्या प्रसादम्प्राप्य शूलिनः॥सहितःकीर्तिमालिन्या बुभुजे विषयान्बहून्॥६६॥ कृत्वा वर्षायुतं राज्यमव्याहतपराक्रमः॥राज्यं विक्षिप्य तनये जगाम शिवसन्निधिम्॥६७॥चन्द्रांगदोपि राजेन्द्रो राज्ञी सीमन्तिनी च सा॥भक्त्या संपूज्य गिरिशं जग्मतुः शाम्भवं पदम् ॥ ६८ ॥ द्विजेश्वरावतारस्ते वर्णितः परमो मया॥महेश्वरस्य भद्रायुपरमानन्ददः प्रभो ॥६९॥ इदं चरित्रं परमं पवित्रं शिवावतारस्य पवित्रकीर्त्तेः ॥ द्विजेशसंज्ञस्य महाद्भुतं हि शृण्वन्पठञ्शम्भुपदम्प्रयाति॥ ७० ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः॥न श्रोतति स्वधर्मात्स परत्र लभते गतिम्॥७१॥इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां द्विजेशनामशिवावतारवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥ (७७) नन्दीश्वर उवाच ॥ शृणु प्राज्ञ प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः ॥ अवतारं पुरानन्दं यातिनाथाह्वयं मुने॥१॥अर्बुदाचलसेज्ञं तु पर्वते भिल्लवंशजः॥आहुकश्च तदभ्याशे वसतिस्म मुनीश्वर ॥ २ ॥

परम अवतार द्विजेश्वरका परमपवित्र बडा अद्भुत चरित्र सुनता है अथवा पढ़ता है वह शिवके पदको प्राप्त होता है ॥ ७० ॥ इस कथानकको जो ब्राह्मणके मुखसे ध्यानपूर्वक सुने वा लोगोंको सुनावे वह अपने धर्मसे कभी रहित नहीं होता और परलोकमें सद्गति पाता है ॥ ७१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा० तृ० श० रु० द्विजेशशिवावतारवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे प्राज्ञ ! हे मुने ! सुनो, पहले जो आनन्ददायक यतिनाथ नामक, परमात्मा शिवका अवतार हुआ है उसे कहता हूं ॥ १ ॥ हे मुनीश्वर !

अर्बुदाचलनामक पर्वतके निकट भीलके वंशमें उत्पन्न हुआ आहुकनाम एक भील रहता था ॥ २ ॥ उसकी स्त्री आहुकानामक बडी पतिव्रता थी, वह दोनों महाशैव, शिवके पूजन करनेवाले थे ॥ ३ ॥ हे मुने ! किसी समय वह शिवकी भक्तिमें तत्पर हुआ भील, अपनी स्त्रीके भोजन लेनेको दूर गया ॥ ४ ॥ इसी अवसरमें उस भीलके घर शिवजी संन्यासीका रूप धार सायंकालको उसकी परीक्षाके अर्थ आये ॥ ५ ॥ उसी समय वह गृहस्ती आहुक अपने घरपर आगया, और उस बुद्धिमानने प्रेमसे संन्यासीका सत्कार किया ॥ ६ ॥ उसके प्रेमकी परीक्षा करनेको महालीलाकारी संन्यासीका रूप धारे हुए शिवजी प्रीतिसे डरते हुए दीन वचन बोले ॥ ७ ॥ यतिनाथ बोले, हे

तत्पत्नी ह्याहुका नाम बभूव किल सुव्रता॥उभावपि महाशैवावास्तान्तौ शिवपूजकौ॥३॥कस्मिँश्चित्समये भिल्लः शिवभक्तिरतः सदा ॥आहारार्थं स्वपत्न्याश्च सुदूरं स गतो मुने॥४॥एतस्मिन्नन्तरे तत्र गेहे भिल्लस्य शङ्करः॥भूत्वा यतिवपुःसायं परीक्षार्थं समा ययौ ॥५॥तस्मिन्नवसरे तत्राजगाम स गृहाधिपः॥पूजनं च यतीशस्य चकार प्रेमतः सुधीः॥६॥ तद्भावस्य परीक्षार्थं यतिरूपस्स शंकरः॥महालीलातरः प्रीत्या भीतं प्रोवाच दीनगीः॥७॥यति नाथ उवाच॥अद्य स्थलं निवासार्थं देहि मे प्रातरेव हि ॥ यास्या मि सर्वथा भिल्लस्वस्ति स्यात्तव सर्वदा॥८॥भिल्ल उवाच ॥ सत्यम्प्रोक्तं त्वया स्वामिञ्शृणु मद्वचनं च ते॥अति स्वल्पं स्थलं मे हि स्यान्निवासःकथन्तव॥९॥ नन्दीश्वर उवाच॥इत्युक्तस्स यतिस्तेन गमनाय मतिन्दधे॥तावद्भिल्लचा वचः प्रोक्तं स्वामिनं संवि चार्य्य वै ॥१०॥ भिल्ल्युवाच॥ स्वामिन्देहि यतेःस्थानं विमुखं कुरु मातिथिम्॥गृहधर्मं विचार्य्य त्वमन्यथा धर्मसंक्षयः ॥११॥

भिल्ल ! आज मुझे निवासके लिये अपना स्थान दे, प्रातःकाल मैं चला जाऊंगा, तेरा निरन्तर कल्याण हो ॥ ८ ॥ भील बोला ! हे स्वामिन् ! तुमने सत्य कहा, मेरा वचन सुनो मेरे बहुत थोडा स्थान है वह तुम्हारा निवास कैसे हो सकेगा ॥ ९ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उस भीलके कहनेपर वह संन्यासी जानेकी इच्छा करने लगा, तभी भीलनीसे विचारकर अपने स्वामीसे मीठे वचनोंसे कहा ॥१०॥ भिलनी बोली, हे स्वामिन् ! इस संन्यासीको स्थान दो, अतिथिको विमुख (निराश) मत करो, गृहस्थधर्मको विचारो अन्यथा धर्मका

क्षय होगा ॥ ११ ॥ तुम सुखपूर्वक संन्यासीके साथ घरके भीतर रहना, मैं बडे बाणोंसहित बाहर स्थिति करूंगी ॥ १२ ॥ नन्दीश्वर बोले, उस भीलनी स्त्रीका यह धर्मयुक्त कल्याणकारी वचन सुन उस भीलने अपने मनमें विचारा ॥ १३ ॥ स्त्रीको बाहर निकाल कर मैं घरमें किस प्रकार रहूंगा, और संन्यासीका और जगह जाना भी मेरे अधर्मका करनेवाला होगा ॥ १४ ॥ सब प्रकार गृहस्थियोंको यह दोनों बातें भी उचित नहीं हैं जो होनहार है सो होगी, मैं घरसे बाहर रहूंगा ॥ १५ ॥ इस प्रकार आग्रह कर उन दोनोंको घरके भीतर आनन्दके साथ रखकर तथा अपने अस्त्रोंको भी भीतर रखके वह भील बाहर स्थित हुआ ॥ १६ ॥ रात्रिमें उस भीलको हत्यारे क्रूर

स्थीयतान्तेगृहाभ्यंतः सुखेन यतिना सह॥अहं बहिः स्थितिं कुर्य्यामायुधानि बृहन्त्यपि॥१२॥नन्दीश्वर उवाच॥तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भिल्लचा धर्मान्वितं शिवम्॥ स्वपत्न्या मनसा तेन भिल्लेन चविचारितम्॥१३॥स्त्रियं बहिश्च निष्कास्य कथं स्थेयं मया गृहे ॥ यतेरन्यत्र गमनमधर्म्मकरमात्मनः॥१४॥ द्वयमप्युचितं नैव सर्वथा गृहमेधिनः ॥ यद्भावि तद्भवेदेव मया स्थेयं गृहाद्बहिः ॥१५॥ इत्याग्रहन्तदा कृत्वा गृहान्तः स्थाप्य तौ मुदा॥स्वायुधानि च संस्थाप्य भिल्लोऽतिष्ठद्गृहाद्बहिः ॥१६॥ रात्रौ तम्पशवः क्रूरा हिंसकाः समपीडयन्॥तेनापि च यथाशक्ति कृतो यत्नो महांस्तदा॥१७॥ एवं यत्नं प्रकुर्वाण स भिल्लो बलवानपि ॥ प्रारब्धात्प्रेरितैर्हिंस्रैर्बलादासीच्च भक्षितः॥१८॥प्रातरुत्थाय स यतिर्दृष्ट्वा हिंस्रैश्च भक्षितम्॥भिल्लं वने चरंतं वै दुःखितोऽभूदतीव हि ॥१९॥ दुखितं तं यतिन्दृष्ट्वा भिल्ली सा दुःखितापि हि ॥ धैर्यात्स्वदुःखं संहृत्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥२०॥ भिल्लचुवाच ॥ किमर्थं क्रियते दुःखं भद्रं जातं यतेऽधुना ॥ धन्योयं कृतकृत्यश्च यज्जातो मृत्युरीदृशः ॥ २१ ॥

पशुओंने पीडा दी, तब उसने भी अपनी शक्तिके अनुसार बडा यत्न किया ॥ १७ ॥ इस प्रकार यत्नको करता हुआ वह बलवान् भील प्रारब्धसे प्रेरणा किये हुये हत्यारे जीवोंसे बलात्कारसे भक्षित होगया ॥ १८ ॥ प्रातःकाल उठकर उस संन्यासीने सिंहादिसे भक्षण किये उस वनचारी भीलको देखकर अत्यन्त दुःख माना ॥ १९ ॥ उस संन्यासीको दुःखी देख वह भिलनी भी दुःखी हुई, धैर्यसे दुःखको धारण करके यह वचन बोली ॥ २० ॥ भीलनी बोली हे संन्यासिन् ! आप किस निमित्त दुःख करते हैं, अब बहुत कल्याण

हुआ यह धन्य है और कृतकृत्य है जो ऐसी मृत्यु हुई ॥ २१ ॥ हे यते ! मैं भी अग्निमें भस्म होकर इसके साथ सती हूंगी, प्रीतिके साथ चिताको बनाऊंगी क्योंकि,—यह स्त्रियोंका सनातन धर्म है ॥ २२ ॥ ऐसा उसका वचन सुन उसका हितमान स्वयं संन्यासीने चिता रचवाई और वह उसमें प्रवेश कर गई ॥ २३ ॥ इसी अवसरमें आगेसे साक्षात् शिवजी प्रगट हुए हे धन्ये ! हे धन्ये ! इस प्रकार प्रीतिसे प्रशंसा करते हुये उससे शिवजी बोले ॥ २४ ॥ शिवजी बोले, हे अनघे ! मैं तेरे आचरणसे प्रसन्न हूं वर मांग तुझे कुछ वस्तु भी अदेय नहीं है मैं विशेषकर तेरी भक्तिसे वशीभूत हूं ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह शिवजीका वचन सुनकर जो परम आनन्दका

अहं चैनं गमिष्यामि भस्म भूत्वानले यते ॥ चितां कारय सुप्रीत्या स्त्रीणां धर्मः सनातनः॥२२॥इति तद्वचनं श्रुत्वा हितं म त्वा स्वयं यतिः॥चितां व्यरचयत्सा हि प्रविवेश स्वधर्मतः ॥२३॥एतस्मिन्नन्तरे साक्षात्पुरः प्रादुरभूच्छिवः॥धन्ये धन्ये इति प्रीत्या प्रशंसंस्तांहरोऽब्रवीत् ॥ २४ ॥ हर उवाच॥ वरं ब्रूहि प्रसन्नोस्मि त्वदाचरणतोऽनघे ॥ तवादेयंन वै किंचिद्भद्रयोऽहं ते विशेषतः॥२५॥नन्दीश्वर उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं परमानन्ददायकम्॥ सुखं प्राप्तं विशेषेण न किंचित्स्मरणं ययौ॥२६॥ तस्यास्तद्गतिमालक्ष्य सुप्रसन्नो हरोऽभवत् ॥उवाच च पुनः शम्भुर्वरं ब्रूहीति ताम्प्रभुः॥२७॥शिव उवाच ॥ अयं यतिश्च मद्रूपो हंसरूपो भविष्यति॥परजन्मनि वां प्रीत्यासंयोग कारयिष्यति ॥२८॥ भिल्लश्च वीरसेनस्य नैषधे नगरे वरे ॥ महान्पुत्रो नलो नाम भविष्यति न संशयः ॥२९॥ त्वं सुता॥ भीमराजस्य वैदर्भे नगरेऽनघे॥ दमयन्ती च विख्याता भविष्यसि गुणान्विता ॥ ३० ॥ युवां चोभौ मिलित्वा च राजभोगं सुविस्तरम् ॥ भुक्त्वा मुक्तिं च योगीन्द्रैर्लप्स्येथे दुर्लभां ध्रुवम् ॥ ३१ ॥

देनेवाला था उसने विशेष सुख पाया, और कुछ स्मरण नहीं रहा ॥ २६ ॥ उसकी ऐसी गति देख, प्रभु शिव बडे प्रसन्न हुए और उससे इस प्रकार बोले कि—वर मांग ॥ २७ ॥ शिवजी बोले, यह मेरे रूपवाला संन्यासी हंस रूपमें होगा और दूसरे जन्ममें तुम दोनों स्त्री पुरुषोंको प्रीतिसे संयोग करावेगा ॥ २८ ॥ और यह भील वीरसेन राजाके नैषध नामक नगरमें नलनामक पुत्र होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥ हे अनघे ! तु विदर्भ नगरमें भीमराजके गणोंसे पूर्ण दमयन्ती नामक कन्या होगी ॥ ३० ॥ तुम दोनों मिलकर बडे विस्तारवाले

राज्यके भोगोंको भोगकर, योगियोंको भी दुर्लभ मुक्तिको निश्चय पाओगे ॥ ३१ ॥ नन्दीश्वर बोले, शिवजी स्वयं ऐसा कहकर लिंगरूप होगये वे धर्मसे चलायमान न हुये इस कारण आप वह अचलेश नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ ३२ ॥ हे तात ! वह आहुक नामक भील, नैषध नगरमें वीरसेनका पुत्र नल नामवाला राजा हुआ ॥ ३३ ॥ और वह आहुका नामक भीलनी, वैदर्भ नगरमें राजा भीमकी पुत्री दमयन्ती नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ३४ ॥ और वह यतिनाथ नामक शिव हंस रूप हुए, और उस हंसने दमयन्तीका नलके साथ विवाह कराया ॥ ३५ ॥ प्रभु शंकर पहले सत्काररूपी महापुण्यके कारण हंसके रूपको धारण करके उन दोनों नल दमयन्तीको सुख देते हुए ॥ ३६ ॥ शिवजी अनेक

नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा च स्वयं शम्भुर्लिङ्गरूपोऽभवत्तदा ॥ तस्मान्न चलितो धर्मादचलेश इति स्मृतः ॥ ३२ ॥ स भिल्ल आहुकश्चापि वीरसेनसुतोऽभवत्॥ नैषधे नगरे तात नलनामा महानृपः॥३३॥आहुका सा महाभिल्ली भीमस्य तनयाऽभवत् ॥ वैदर्भे नगरे राज्ञो दमयन्तीति विश्रुता ॥ ३४ ॥ यतिनाथाह्वयस्सोपि हंसरूपोऽभवच्छिवः ॥ विवाहं कारयामास दमयन्त्या नलेन वै ॥ ३५ ॥ पूर्वसत्काररूपेण महापुण्येन शंकरः ॥ हंसरूपं विधायैव ताभ्यां सुखमदात्प्रभुः ॥ ३६ ॥ शिवो हंसावतारो हि नानावार्ताविचक्षणः ॥ दमयन्त्या नलस्यापि परमानन्ददायकः ॥ ३७ ॥ इदं चरितं परमं पवित्रं शिवावतारस्य पवित्रकीर्तेः ॥ यतीशसंज्ञस्य महाद्भुतं हि हंसाह्वयस्यापि विमुक्तिदं हि ॥३८॥ यतीशब्रह्महंसाख्यावतारचरितं शुभम् ॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्यो हि स लभेत परां गतिम्॥३९॥ इदमाख्यान मनघं सर्वकामफलप्रदम्॥स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं भक्तिवर्धनमुत्तमम्॥४०॥

वार्ता करनेमें निपुण, हंसका अवतार ले दमयंती तथा राजानलके परम आनन्दके देनेवाले हुए ॥ ३७ ॥ यह हंस नामक पवित्र कीर्तिवाले शिवके अवतारका तथा यतीश नामक अवतारका परम पवित्र, मुक्ति देनेवाला बड़ा अद्भुत चरित्र है ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य, शुभ यतीश तथा ब्रह्म हंस अवतारका चरित्र सुनाता है, अथवा सुनता है वह परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ यह निष्पाप सब कामनाके फलका देनेवाला, यश और आयुका देनेवाला तथा भक्तिका बढानेवाला चरित्र है ॥ ४० ॥ संन्यासी और हंस रूपधारी शिवजीका चरित्र सुनकर

इस लोकमें सब सुखोंको भोगकर अन्त समयमें शिवके पुरको जाता है ॥ ४१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० यतिनाथ ब्रह्महंसाह्वय शिवावतारचरित्रवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे सनत्कुमार ! नभगके ज्ञानका देनेवाला कृष्णदर्शन नामक, शिवका परम अवतार सुनो ॥ १ ॥ जो इक्ष्वाकु आदि, श्राद्ध देवके पुत्र हुए हैं, उस वंशमें नौवीं पीढीमें नभग हुआ, तथा उसका पुत्र नाभाग हुआ ॥ २ ॥ उसका पुत्र अम्बरीष नामक विष्णुका भक्त हुआ जिसके ऊपर ब्रह्म भक्तिसे दुर्वासा ऋषि प्रसन्न हुए

श्रुत्वैतच्चरितं शम्भोर्यतिहंसस्वरूपयोः ॥ इह सर्वसुखम्भुक्त्वा सोऽन्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥ ४१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृ० शतरुद्रसंहि० यतिनाथब्रह्महंसाह्वयशिवावतारचरितवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥ नन्दीश्वर उवाच ॥सनत्कुमार शम्भो स्त्ववतारं परमं शृणु ॥ नभगज्ञानदं कृष्णदर्शनाह्वयमुत्तमम् ॥१॥ इक्ष्वाकुप्रमुखा आसञ्श्राद्धदेवसुताश्च ये॥ नभगस्तत्र नवमो नाभगस्तत्सुतः स्मृतः ॥ २ ॥ अम्बरीषस्सुतस्तस्य विष्णुभक्तो बभूव सः ॥ यस्योपरि प्रसन्नोभूद्दुर्वासा ब्रह्मभक्तितः ॥ ३ ॥ पितामहोऽम्बरीषस्य नभगो यः प्रकीर्तितः॥तच्चरितं शृणु मुने यस्मै ज्ञानमदाच्छिवः ॥४॥नभगो मनुपुत्रस्तु पठनार्थं सुबुद्धिमान् ॥ चक्रे गुरुकुले वासं बहुकालं जितेन्द्रियः ॥ ५॥ एतस्मिन्समये ते वा इक्ष्वाकुप्रमुखास्सुताः ॥ तस्मै भागमकल्प्यैव भेजुर्भागान्निजान्क्रमात् ॥६॥ स्वंस्वं भागं गृहीत्वा ते बुभुजू राज्यमुत्तमम्॥ अविषादं महाभागा पित्रादेशात्सुबुद्धयः ॥ ७ ॥ स पश्चादागतस्तत्र ब्रह्मचारी गुरुस्थलात् ॥ नभगोऽधीत्य सर्वांश्च सांगोपांगाः श्रुतीः क्रमात् ॥ ८ ॥

थे ॥ ३ ॥ हे मुने ! अम्बरीषका पिता यह जो नाभाग नामक कहा है, उसका चरित्र सुनो कि, जिसको शिवजीने ज्ञान दिया था ॥ ४ ॥ मनुका पुत्र बुद्धिमान् नभग नामक पढनेके लिये जितेन्द्रिय होकर बहुत समय तक गुरुकुल में निवास करता हुआ ॥ ५ ॥ इसी समयमें उन इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंने उस नभगके भागको विना कल्पना किये ही क्रमशः अपने भागोंको विभाग कर लिया ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! वह बुद्धिमान् पिताकी आज्ञासे अपने २ भागको ग्रहण करके निर्द्वंद्व हो उत्तम राज्य भोगने लगे ॥ ७ ॥ पीछेसे वह ब्रह्मचारी

नभग, क्रमशः सम्पूर्ण सांगोपांग श्रुतियों (वेदों) को पढकर गुरु कुलसे लौटा ॥ ८ ॥ हे मुने ! वह नभग अपने सब भाइयोंको विभाग किये हुए देख अपने भागकी इच्छासे उन इक्ष्वाकु आदि भाइयोंसे स्नेह पूर्वक बोला ॥ ९ ॥ नभग बोला, हे भाइयो ! तुम सबोंने विभाग कर लिया है सो अपने दायके लेनेको आये हुए मुझे प्रीति सहित यथोचित दायको विभाग करके दो ॥ १० ॥ वह बोले कि--विभाग करते समय हम सब भूल गये, अब पिताहीको हमने तुम्हारा विभाग नियत किया है उसको तुम लेना इसमें संदेह नहीं ॥ ११ ॥ यह भाइयोंका वचन सुन नभग अपने पिताके समीप प्राप्त होकर उनमें बोला ॥ १२ ॥ नभग बोला, हे पिता ! उन सब भाइयोंने मुझे छोड

भ्रातॄन्विलोक्य नभगो विभक्तान्सकलान्निजान् ॥ दायार्थी प्राह तान्स्नेहादिक्ष्वाकुप्रमुखान्मुने ॥९॥ नभग उवाच ॥ भ्रातरोभक्तंकं मह्यं दायं कृत्वा यथा तथम् ॥ सर्वे विभक्तास्सुप्रीत्या स्वदायार्थागताय च ॥१०॥ तदा विस्मृतमस्माभिरिदानीं पितरं तव ॥ विभजामो वयं भागं तं गृहाण न संशयः ॥११॥ तच्छ्रुत्वा भ्रातृवचनं नभगः परविस्मृतः ॥ तदोपकण्ठमागत्य पितरं समभाषत ॥ १२ ॥ नभग उवाच हे तात भ्रातरः सर्वे त्यक्त्वा मां व्यभजंश्च ते ॥ पठनार्थं गतश्चाहं ब्रह्मचारी गुरोःकुले॥ १३ ॥ तत आगत्यमे पृष्टादायदानार्थमादरात् ॥ ते त्वामूचुर्विभागंमे तदर्थमहमागतः ॥१४॥ नन्दीश्वरउवाच ॥ तदाकर्ण्य वचस्तस्य पिता तं प्राह विस्मितः ॥ आश्वास्य श्राद्धदेवस्स सत्यधर्मरतं मुने ॥ १५ ॥ मनुरुवाच ॥ तदुक्तं माद्दथास्तात प्रतारणकरं हि तत् ॥ न ह्यहं परमं दायं सर्वथा भोगसाधनम् ॥ १६ ॥

कर राज्यका विभाग कर लिया, मैं ब्रह्मचारी गुरु कुलमें पढनेको चला गया था ॥ १३ ॥ फिर आकर अपने दायके देनेके अर्थ उनसे मैंने आदर पूर्वक पूछा तो उन्होंने तुमको विभाग करनेके अर्थ बताया, इसके लिये मैं आया हूं ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! यह उसका वचन सुन उसका पिता श्राद्ध देव विस्मित होकर सत्य तथा धर्ममें तत्पर हुए उस नभगको धीरज देकर यह वचन बोला ॥ १५ ॥ मनु बोला, हे तात ! उनके वचनको मत आदर करो क्योंकि बहाना करनेवाला उनका वचन है, मैं सर्वथा भोगके साधन रूप परम दायको प्राप्त

नहीं मानता हूं ॥ १६ ॥ तो भी उन प्रपंचियोंने तुझको मुझे दायभावसे दिया है, तो मैं तेरे जीवनके उपायको बताता हूं तत्त्वसे श्रवणकर ॥ १७ ॥ आज बुद्धिमान् आंगिरस ब्राह्मण यज्ञ करते हैं, उस यज्ञ कर्ममें प्रति छठवें २ दिन मोहको प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ हे नभग ! हे महाकवे ! वहां तुम जाओ और उनको अच्छी प्रकार शिक्षा दो, और दो वैश्य देव सूक्त पढनेसे उस यज्ञकी शुद्धि होगी ॥ १९ ॥ उस कर्म (यागकर्म) के समाप्त होनेपर वे ब्राह्मण स्वर्गको जायंगे और वे संतुष्ट होकर अपने यज्ञका शेष धन तुझे दे जायंगे ॥ २० ॥ नन्दीश्वर बोले, यह पिताका वचन सुन वह सत्य सारवाला नभग वहां प्रीति सहित गया, जहांपर उत्तम यज्ञ हो रहा था ॥ २१ ॥ हे मुने !

तथापि दायभावेन दत्तोऽहं तैः प्रतारिभिः ॥ तव वै जीवनोपाय वदामि शृणु तत्त्वतः॥१७॥सत्रमांगिरसा विप्राःकुर्वंत्यद्य मुमेधसः ॥ तत्र कर्मणि मुह्यन्तिं षष्ठं षष्ठमहः प्रति॥१८॥तत्र त्वं गच्छ नभग तान् सुशंस महाकवे॥सूक्ते द्वे वैश्वदेवे हि सत्रं शुद्ध हि तद्भवेत् ॥१९॥ तत्कर्मणि समाप्ते हि स्वयान्तो ब्राह्मणाश्च ते॥धनं दास्यन्ति ते तुष्टास्स्वसत्रपरिशेषितम्॥२०॥नन्दीश्वर उवाच ॥ तदाकर्ण्य पितुर्वाक्यं नभगः सत्यसारवान् ॥ जगाम तत्र सुप्रीत्या यत्र तत्सत्रमुत्तमम् ॥२१॥ तदाहः कर्मणि मुने सत्रे तस्मिन्समानवः॥सूक्ते द्वे वैश्वदेवे हि प्रोवाच स्पष्टतस्सुधीः ॥२२॥ समाप्ते कर्मणि ततो विप्रा आंगिरसाश्च ते ॥ तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं स्वंस्वं सत्रावशेषितम् ॥२३॥ तत्तदा स्वीकरिष्यंतं सुसत्रपरिशेषितम् ॥ विज्ञाय गिरिशः सद्य आविर्भूत संदूतिकृत् ॥ २४ ॥ सर्वांगसुन्दरः श्रीमान्पुरुषः कृष्णदर्शनः ॥ भावं समीक्षितुं भागं दातुं ज्ञानं परं च तत् ॥२५॥ अथो स शंकरः शम्भुः परीक्षाकर ईश्वरः ॥ उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य नभगं तं हि मानवम् ॥ २६ ॥

उस बुद्धिमान् मनु पुत्रने उस यज्ञ कर्ममें दो वैश्यदेव सूक्त स्पष्ट उच्चारणके साथ बोले ॥ २२ ॥ उस यक्ष कर्मके समाप्त होनेपर वे आंगिरस ब्राह्मण, अपने २ यज्ञसे शेष बचे हुए धनको उस नभगको देकर स्वर्गको प्राप्त हुये ॥ २३ ॥ उस समय शुभ यज्ञसे बचे हुए धनको स्वीकार करते हुए जानकर सुन्दर रक्षा करनेवाले शिवजी शीघ्र प्रगट हुये ॥ २४ ॥ जो सर्वांगसे सुन्दर शोभा युक्त कृष्ण दर्शन नामक पुरुष थे, उसके परम भावको जाननेको तथा परम ज्ञानरूप भागको देनेके अर्थ प्रगट हुए ॥ २५ ॥ इसके पीछे वह परीक्षा करनेवाले, कल्याणकारी

शम्भु उस नभग मनुपुत्रके आगे प्राप्त होकर उससे बोले ॥ २६ ॥ ईश्वर बोले, कि हे पुरुष ! तू कौन है मेरा यह वास्तु सम्बन्धी धन तू कैसे ग्रहण करता है, तुझे किसने भेजा है यह सब मेरे आगे तू सत्य २ कह ॥ २७ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे तात ! वह कवि, नभग उनका वह वचन सुन विनीत हो उन कृष्णदर्शन पुरुषसे बोला ॥ २८ ॥ नभग बोला, हे कृष्णदर्शन ! ऋषियोंसे दिया हुआ यज्ञमें प्राप्त हुआ यह मेरा धन है इसे ग्रहण करते हुए मुझे तुम क्यों निषेध करते हो ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह नभगका कहा सत्य वचन सुन वह प्रसन्नात्मा कृष्ण दर्शननामक पुरुष कहने लगे ॥ ३० ॥ कृष्ण दर्शन बोले, हे तात ! हम दोनोंके इस विवादमें तुम्हारा पिता ही

ईश्वर उवाच ॥ कस्त्वं गृह्णासि पुरुष ममेदं वास्तुकं वसु ॥ प्रेषितः केन तत्सर्वं सत्यं वद ममाग्रतः ॥२७॥ नन्दीश्वर उवाच तच्छ्रुत्वा तद्वचस्तात मानवो नभगः कविः ॥ प्रत्युवाच विनीतात्मा पुरुषं कृष्णदर्शनम् ॥२८॥ नभग उवाच ॥ ममेदमृषिभिर्दत्तं वसु यज्ञगतं खलु ॥ कथं वारयसे मां त्वं गृह्णतं कृष्णदर्शनम् ॥२९॥ नन्दीश्वर उवाच॥ आकर्ण्य नाभगंवाक्यमिदं सत्यमुदीरितम् ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पुरुषः कृष्णदर्शनः ॥ ३० ॥ कृष्णदर्शन उवाच ॥ विवादेऽस्मिन्हि नौ तात प्रमाणं जनकस्तव ॥ याहि तम्पृच्छ स ब्रूयात्तत्प्रमाणन्तु सत्यतः ॥ ३१ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ तदाकर्ण्य वचस्तस्य नभगो मानवः कविः ॥ आगच्छत्पितरं प्रीत्या तदुक्तं पृष्टवान्मुने ॥३२॥ पुत्रोदितं समाकर्ण्य श्राद्धदेवस्स वै मनुः ॥ स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं प्राप्तस्मृतिरुवाच तम् ॥ ३३ ॥ मनुरुवाच ॥ हे तात शृणु मद्वाक्यं स देवः पुरुषः शिवः ॥ तस्यैव सकलं वस्तु यज्ञप्राप्तं विशेषतः ॥ ३४ ॥ अध्वरोर्वरितं वस्तु रुद्रभागः प्रकीर्तितः ॥ इत्यपि प्राज्ञवादो हि क्वचिज्ज्ञातस्तदिच्छया ॥ ३५ ॥

प्रमाण है जाओ उससे पूछो वह इसके प्रमाणको सत्य २ कहेगा ॥ ३१ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! यह उनका वचन सुन वह कवि, नभग पुरुष पिताके पास आकर प्रीतिसे पूछने लगा ॥ ३२ ॥ वह श्राद्धदेव मनु, पुत्रके कथनको सुनकर शिवजीके चरणकमलोंका ध्यान करके, स्मृति प्राप्त कर उस पुत्रसे बोला ॥३३॥ मनु बोला हे तात ! मेरे वाक्यको सुनो वह पुरुष शिव देवता हैं, यह सम्पूर्ण और विशेषकर यज्ञमें शेष रही वस्तु उनकीही है ॥३४॥ यज्ञके समाप्तिमें शेषवस्तु रुद्रका भाग है यह भी बुद्धिमानोंका कथन कहीं पर उसकी

इच्छासे होता है ॥ ३५ ॥ हे विभो ! वह ईश्वर देवयज्ञमें शेष बची सब वस्तु लेनेके योग्य हैं, इसमें कुछ संशय नहीं उनकी इच्छासे दूसरे पुरुष क्या वस्तु हैं ॥ ३६ ॥ हे नभग ! तेरे ऊपर अनुग्रह करनेको वह शिव प्रभु, उस रूपसे प्रगट हुये हैं, वहां तू जा और सत्य कहकर उनको प्रसन्न कर ॥ ३७ ॥ और अपने अपराधको क्षमा करा और प्रणाम करके स्तुतिकर वह सबके प्रभु अखिलेश्वर शिवजी यज्ञके अधिपति हैं ॥ ३८ ॥ हे तात ! विष्णु तथा ब्रह्मा आदि देवता सिद्ध और सब ऋषि उनके अनुग्रहसे सब कर्मोंमें समर्थ होते हैं ॥ ३९ ॥ हे श्रेष्ठआत्मज ! बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन है, तुम वहां जाओ, देर न करो, सब प्रकारसे सबके ईश्वर महादेवको प्रसन्न करो ॥ ४० ॥

स देव ईश्वरः सर्वं वस्त्वर्हति न संशयः ॥ यज्ञावशिष्टं किमुत परे तस्येच्छया विभोः ॥३६॥ अनुग्रहार्थमायातस्तव तद्रूपतः प्रभुः ॥ तत्र त्वं गच्छ नभग प्रसन्नं कुरु सत्यतः ॥ ३७ ॥ क्षमापय स्वापराधं सुप्रणम्य स्तुतिं कुरु ॥ सर्वप्रभुस्स एवेशो यज्ञाधीशोऽखिलेश्वरः ॥ ३८ ॥ विष्णुब्रह्मादयो देवाः सिद्धास्सर्वर्षयोऽपि हि ॥ तदनुग्रहतस्तात समर्थः सर्वकर्मणि ॥३९॥ किम्बहूक्त्यात्मजश्रेष्ठ गच्छ तत्राशु माचिरम् ॥ प्रसादय महादेवं सर्वथा सकलेश्वरम् ॥४०॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा स मनुः श्राद्धदेवश्च तनयं द्रुतम् ॥ प्रेषयामास निकटं शम्भोस्सोऽपि समेत्य तम् ॥४१॥ नभगश्च प्रणम्याशु साञ्जलिर्नतमस्तकः ॥ प्रोवाच सुप्रसन्नात्मा विनयेन महामतिः ॥४२॥ नभग उवाच ॥ इदं तवेश सर्वं हि वस्तु त्रिभुवने हि यत् ॥ इत्याह मे पिता नूनं किमुताध्वरशेषितम् ॥ ४३ ॥ अजानता मया नाथ यदुक्तन्तद्वचो भ्रमात् ॥ अपराधन्त्वं क्षमस्व शिरसा त्वां प्रसादये ॥ ४४ ॥ इत्युक्त्वा नभगस्सोतिदीनधीस्तु कृताञ्जलिः ॥ तुष्टाव तं महेशानं कृष्णदर्शनमानतः ॥ ४५ ॥

नन्दीश्वर बोले, यह कहकर वह श्राद्धदेव मनु शीघ्र अपने पुत्रको शिवजीके समीप भेजता हुआ, और वह नभग उनको प्राप्त होकर ॥ ४१ ॥ प्रणाम कर अंजलि बांध माथा झुकाय प्रसन्न चित्त हो बडी बुद्धिमानीपूर्वक विनयसे बोला ॥ ४२ ॥ नभग बोला, हे ईश ! जो कुछ तीनों लोकोंमें है सो तुम्हारी ही वस्तु है, फिर यज्ञमें शेष हुई की तो क्या ? इस प्रकार मेरे पिताने निश्चय कहा है ॥ ४३ ॥ हे नाथ ! मैंने विनाजाने जो वचन तुमको भ्रमसे कहे हैं, उस अपराधको आप क्षमा करें मैं शिरसे आपको प्रसन्न करता हूं ॥ ४४ ॥ यह कहकर दीनबुद्धि,

नम्र हाथ जोडे वह नभग उन कृष्णदर्शन शिवकी स्तुति करने लगा ॥ ४५ ॥ और उसका पिता बुद्धिमान्, शुद्धात्मा नम्र हुआ श्राद्धदेवभी उन प्रभुको संतुष्ट करने लगा और नमस्कार करके अपने अपराधको क्षमा कराने लगा ॥ ४६ ॥ इसी अवसरमें वहां बुद्धिमान् विष्णु, ब्रह्मा तथा इन्द्र आदि सब सिद्ध और मुनि आये ॥ ४७ ॥ सब हाथ बाँधे हुये महा उत्सव करने लगे और नृत्य करने वाले पृथक् २ भक्तिसे प्रणाम करके नृत्य सहित स्तुति करने लगे ॥ ४८ ॥ तब वह शिवरूप कृष्णदर्शन, प्रसन्न हो उन सबोंको कृपादृष्टिसे देखकर प्रीतिसहित हँसते हुये नभगसे बोले ॥ ४९ ॥कृष्णदर्शन बोले, तेरे पिताने धर्मयुक्त जो वाक्य कहा है, सो तो उसी प्रकार है और तूने भी सत्य कहा तू

श्राद्धदेवोऽपि शुद्धात्मा नतकस्साञ्जलिस्सुधीः ॥ तुष्टाव तं प्रभुं नत्वा स्वापराधं क्षमापयत् ॥४६॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र विष्णु ब्रह्माखिलः सुधीः ॥ वासवाद्याः समाजग्मुः सिद्धाश्च मुनयोऽपि हि ॥४७॥ महोत्सवं प्रकुर्वन्तः सुकृतालयोऽखिलाः ॥ तुष्टु वुर्नतकाभक्त्या सुप्रणम्य पृथक्पृथक्॥४८॥अथ रुद्रः प्रसन्नात्मा कृपादृष्ट्या विलोक्य तान्॥उवाचनभगं प्रीत्या सस्मितं कृष्णद र्शनः ॥ ४९ ॥ कृष्णदर्शन उवाच ॥यत्ते पितावदद्धर्म्यं वाक्यन्तत्तुतथैव हि॥त्वयापिसत्यमुक्तं तत्साधुस्त्वन्नात्र संशयः ॥५०॥ अतोऽहं सुप्रसन्नोऽस्मि सर्वथा सुव्रतेन ते ॥ ददामि कृपया ते हि ज्ञानम्ब्रह्म सनातनम् ॥५१॥ महाज्ञानी भव त्वं हि सविप्रो नभगं द्रुतम् ॥ गृहाणवस्त्विदं सर्वं मद्दत्तं कृपयाधुना ॥५२॥ इह सर्वसुखं भुङ्क्ष्व निर्विकारं महामते ॥सुगतिं प्राप्स्यसि त्वं हि सविप्रः कृपया मम ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर उवाच॥इत्युक्त्वा तात भगवान्स रुद्रः सत्यवत्सलः ॥सर्वेषाम्पश्यतान्तेषान्तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ ५४ ॥ विष्णुर्ब्रह्मापि देवाद्यास्सर्वे ते मुनिसत्तम ॥ स्वंस्वं धाम ययुः प्रीत्या तस्यै नत्वा दिशे मुदा ॥ ५५ ॥

साधु है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ५० ॥ इस कारण मैं तेरे दृढव्रतसे सब प्रकार प्रसन्न हूं, और कृपा करके तुझे सनातन ब्रह्मज्ञान देता हूं ॥ ५१ ॥ हे नभग ! तू शीघ्र महाज्ञानी हो कृपापूर्वक मुझसे दीहुई, सब वस्तु अब ग्रहण कर ॥ ५२ ॥ हे महामते ! इस संसारमें सब सुखोंको निर्विकार भोग और मेरी कृपासे तू सुन्दर गतिको प्राप्त होगा ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे तात ! यह कहकर सत्यवादियोंपर दया करनेवाले वह भगवान् शिव उन देखनेवालोंके आगेही वहांपर अन्तर्धान हो गये ॥ ५४ ॥ हे मुनिसत्तम ! विष्णु, ब्रह्मा, तथा इन्द्र

आदि सम्पूर्ण देवता प्रीति सहित आनन्दसे उसको नमस्कार करके अपने २ धामोंको चले गये ॥५५॥ अपने पुत्र नभगसहित वह, श्राद्धदेवभी प्रसन्नतासे अपने स्थानको गया, और अनेकभोगोंको भोगकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त हुआ ॥ ५६ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार कृष्णदर्शननामक शिवका अवतार तुमसे कहा जो नभगको आनन्दका देनेवाला है ॥ ५७ यह पापोंको नष्ट करनेवाला, तथा सत्पुरुषोंको भोग, मोक्ष और पढने तथा सुननेवालोंको सब कामनाओंके फलका देनेवाला चरित्र है ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य इस चरित्रको प्रातःकाल तथा सायंकाल स्मरण करता है, वह बुद्धिमान् कवि तथा मंत्रोंको जाननेवाला होता है और अन्तमें परमगतिको पाता है ॥ ५९ ॥

सपुत्रः श्राद्धदेवोऽपि स्वस्थानमगमन्मुदा ॥ भुक्त्वा भोगान्सुविपुलान्सोऽन्ते शिवपुरं ययौ॥५६॥ इत्थन्तेकीर्तितो ब्रह्मन्नवतारः शिवस्य हि॥कृष्णदर्शननामा वै नभगानन्ददायकः ॥५७॥ इदमाख्यानमनघं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम्॥पठतां शृण्वतां वापि सर्व कामफलप्रदम् ॥ ५८ ॥य एतच्चरितम्प्रातस्सायं च स्मरते सुधीः ॥ कविर्भवति मन्त्रज्ञो गतिमन्ते लभेत्पराम् ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दीश्वरशनत्कुमारसंवादे कृष्णदर्शनशिवावतारवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ शृणु त्वं ब्रह्मपुत्राद्यावतारं परमेशितुः ॥ अवधूतेश्वराह्वं वै शक्रगर्वापहारकम् ॥१॥ शक्रः पुरा हि सगुरुः सर्व देवसमन्वितः ॥ दर्शनं कर्तुमीशस्य कैलासमगमन्मुने ॥२॥ अथ गुर्विन्द्रयोर्ज्ञात्वागमनं शंकरस्तयोः ॥परीक्षितुं च तद्भावं स्वदर्शनरतात्मनोः ॥३॥ अवधूतस्वरूपोऽभून्नानालीलाकरः प्रभुः ॥ दिगंबरो महाभीमो ज्वलदग्निसमप्रभः ॥४॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० कृष्णदर्शनशिवावतारवर्णनं नामैकोन त्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर बोले, कि हे ब्रह्माके पुत्र ! इन्द्रके गर्वका नाश करनेवाला, अवधूतेश्वर नाम शिवजीका अवतार सुनो ॥ १ ॥ हे मुने पहले बृहस्पतिसहित सब देवता और इन्द्र शिवजीके दर्शन करनेको कैलासपर्वत पर गये ॥ २ ॥ तब शिवजी, अपने दर्शनमें प्रीति करते हुये उन दोनों बृहस्पति तथा इन्द्रको आया जान उनके प्रेमकी परीक्षा करनेको ॥ ३ ॥ नाना प्रकारकी लीला करनेवाले, प्रभु, बडे भयंकर, जलती हुई अग्निके समान

कान्तिवाले शिवजी अवधूत स्वरूपसे प्रगट हुए ॥ ४ ॥ वह सद्गति अवधूतरूप हो उनके मार्गको रोककर, लम्बायमान वस्त्रयुक्त शोभन आकार धारण कर स्थित हुये ॥ ५ ॥ तब शिवजीके समीप जाते हुए, बृहस्पति तथा इन्द्रने मार्गके मध्यमें, अद्भुत आकारवाले भयंकर पुरुषको देखा ॥ ६ ॥ हे मुने ! तब अपने अधिकारसे अभिमानी इन्द्रने मार्गके मध्यमें, स्थित हुये उस पुरुषसे, शिव न जानकर पूंछा ॥ ७ ॥ इन्द्र बोले, तू कौन है, दिगम्बर तथा अवधूत आकारवाला तू कहांसे आया है, तेरा क्या नाम है, शीघ्र मुझसे सत्य सत्य कह ॥ ८ ॥ शिवजी अपने स्थानपर स्थित हैं, अथवा इस समय और कहीं गये हैं, मैं बृहस्पति सहित उनके दर्शनको जाता हूं ॥ ९ ॥ नन्दीश्वर बोले, इन्द्रसे ऐसा

सोऽवधूतस्वरूपो हि मार्गमारुद्ध्य सद्गतिः॥ लंबमानपटः शंभुरतिष्ठच्छोभिताकृतिः॥५॥अथ तौ गुरुशक्रौ च गच्छन्तौ शिव सन्निधिम् ॥ अद्राष्टांपुरुषं भीमं मार्गमध्येऽद्भुताकृतिम्॥६॥अथ शक्रो मुनेऽपृच्छत्स्वाधिकारेण दुर्मदः॥पुरुषं तं स्वमार्गान्तः स्थितमज्ञाय शंकरम् ॥७॥ शक्र उवाच॥कस्त्वं दिगंबराकारावधूतः कुत आगतः॥किन्नाम तव विख्यातं तत्त्वतो वद मेऽचिरम् ॥८॥ स्वस्थाने संस्थितः शंभुः किम्वान्यत्र गतोऽधुना॥ दर्शनार्थं हि तस्याहं गच्छामि सगुरुस्सुरैः ॥९॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ शक्रेणेत्थं स पृष्टश्च किंचिन्नोवाच पूरुषः ॥ लीलागृहीतदेहस्स शङ्करो मदहा प्रभुः ॥ १० ॥ शक्रः पुनरपृच्छत्तं नोवाच स दिगंबरः ॥अविज्ञातगतिश्शम्भुर्महाकौतुककारकः ॥ ११ ॥ पुनः पुरन्दरोऽपृच्छत्त्रैलोक्याधिपतिस्स्वराट्॥तूष्णीमास महायोगी महालीलाकरस्स वै ॥१२॥ इत्थं पुनः पुनः पृष्टः शक्रेण स दिगम्बरः ॥ नोवाच किंचिद्भगवाञ्शक्रदर्प्पजिघांसया ॥ १३ ॥

पूंछने पर लीलासे शरीर धारण किये, मदके नाश करनेवाले, प्रभु, शंकररूपधारी वह पुरुष कुछ न बोले ॥ १० ॥ इन्द्रने उससे फिर पूँछा तो भी वह दिगम्बर उससे नहीं बोला जो महाकौतुककारी शिवजी अविज्ञातगतिमें स्थित थे सो मौन हो रहे ॥ ११ ॥ फिर त्रिलोकीके स्वामी इन्द्रने उससे पूँछा तब भी प्रकाशमान महालीलाके करनेवाले महायोगी वह अवधूत चुप हो रहे ॥ १२ ॥ इस प्रकार बारंबार पूंछने पर भी भगवान् दिगंबर इन्द्रके अभिमानके नाश करनेकी इच्छासे कुछ नहीं बोले ॥ १३ ॥

तब त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे गर्वित वह इन्द्र क्रोध करता हुआ और क्रोधसे उस जटाधारीको ललकारके यह वचन बोला ॥ १४ ॥ इन्द्र बोला, हे मूढ ! हे दुर्मते ! पूंछने पर भी तूने उत्तर नहीं दिया, इस कारण तुझको वज्रसे मारता हूं देखूं कौन तेरी रक्षा करता है ॥ १५ ॥ ऐसा कहकर इन्द्रने क्रोधसे उसको देखा और उस दिगंबरको मारनेके निमित्त वज्र उठाया ॥ १६ ॥ वज्र हाथमें लिये उस इन्द्रको देखकर शिवजीने उसके वज्रपातको स्तंभित कर दिया अर्थात् इन्द्रका वज्र उनके ऊपर न चल सका ॥ १७ ॥ तब वह पुरुष क्रुद्ध हो, लाल नेत्र कर, भयंकर तेजसे हुयेके समान शीघ्र प्रज्वलित हुआ ॥ १८ ॥ इन्द्र अपनी भुजाके रुकनेसे उत्पन्न हुये

अथ चुक्रोध देवेशस्त्रैलोक्यैश्वर्य्यगर्वितः ॥ उवाच वचनं क्रोधात्तं निर्भर्त्स्य जटाधरम् ॥ १४ ॥ इन्द्र उवाच ॥ पृच्छमानोऽपिरे मूढ नोत्तरं दत्तवानसि ॥ अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्रातास्ति दुर्मते ॥ १५ ॥ इत्युदीर्य्य ततो वज्री संनिरीक्ष्य रुषा हितम् ॥ हन्तुन्दिगम्बरं वज्रमुद्यतं स चकार ह ॥ १६ ॥ वज्रहस्तं च तं दृष्ट्वा शक्रं शीघ्रं सदाशिवः ॥ चकार स्तम्भनं तस्य वज्र पातस्य शंकरः ॥ १७ ॥ ततः स पुरुषः क्रुद्धः करालाक्षो भयंकरः ॥ द्रुतमेव प्रजज्वाल तेजसा प्रदहन्निव ॥ १८ ॥ बाहुप्रतिष्टम्भभुवा मन्युनान्तश्शचीपतिः ॥ समदह्यत भोगीव मंत्ररुद्धपराक्रमः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा बृहस्पतिस्त्वेनम्प्रज्वलन्तं स्वतेजसा ॥ पुरुषं तं धियामास प्रणनाम हरं द्रुतम् ॥ २० ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ततो गुरुरुदारधीः ॥ दण्डवत्कौ पुनर्नत्वा प्रभुतुष्टाव भक्तितः ॥ २१ ॥ गुरुरुवाच ॥ देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ॥ प्रसन्नो भव गौरीश सर्वेश्वर नमोऽस्तुते ॥२२॥ मायया मोहितास्सर्वे ब्रह्मविष्ण्वादयोपि ते ॥ त्वां न जानन्तितत्त्वेन जानन्ति त्वदनुग्रहात् ॥ २३ ॥

क्रोधसे मन्त्रोंसे रुके पराक्रमवाले सर्पके समान भीतरही भीतर जलने लगा ॥ १९ ॥ बृहस्पतिने उस पुरुषको अपने तेजसे प्रज्वलित होते हुये देखकर बुद्धिसे उसको शिव जान शीघ्रही प्रणाम किया ॥ २० ॥ तब उदार बुद्धि बृहस्पति हाथ बांधे हुए दण्डवत् प्रणाम करके भक्तिसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ बृहस्पति बोले, हे देवदेव ! हे महादेव ! हे शरणागतवत्सल ! हे गौरीष ! हे सर्वेश्वर ! आप प्रसन्न हों आपको नमस्कार है ॥ २२ ॥ सब ब्रह्मा, विष्णु, आदिक देवता आपकी मायासे मोहित हो रहे हैं, तुमको नहीं जानते

हैं, आपके अनुग्रहसे आपको तत्त्व द्वारा जानते हैं ॥ २३ ॥ नन्दीश्वर बोले, उन बृहस्पतिने इस प्रकार प्रभु शंकरकी स्तुति करके इन्द्रको उन शिवजीके चरणोंमें गिराया ॥ २४ ॥ हे तात ! तब उदार बुद्धि देवताओंके आचार्य बृहस्पति प्रेमसे नम्र हो यह वचन बोले ॥ २५ ॥ बृहस्पति बोले, हे दीनोंके नाथ ! हे महादेव ! मैं तुम्हारे चरणोंमें पडा हूं, मुझे उद्धार करो और क्रोधको शान्त करो ॥ २६ ॥ हे महादेव ! आप प्रसन्न होवो आपके माथेके नेत्रसे उत्पन्न हुई यह अग्नि आती है, इससे शरणमें प्राप्त हुए इन्द्रकी रक्षा करो ॥ २७ ॥ नन्दीश्वर बोले. ऐसा बृहस्पतिका वचन सुनकर अवधूत आकारवाले करुणा सागर श्रेष्ठ रक्षा करने वाले प्रभु शिवजी बोले ॥ २८ ॥ अव

नन्दीश्वर उवाच ॥ बृहस्पतिरिति स्तुत्वा स तदा शंकरम्प्रभुम् ॥ पादयोः पातयामास तस्येशस्य पुरन्दरम् ॥ २४ ॥ ततस्तात सुराचार्य्यः कृताञ्जलिरुदारधीः ॥ बृहस्पतिरुवाचेदं प्रश्रयावनतः सुधीः ॥ २५ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ दीननाथ महादेव प्रणतन्तव पादयोः ॥ समुद्धर च मां तत्त्वं क्रोधं न प्रणयं कुरु ॥ २६ ॥ तुष्टो भव महादेव पाहीन्द्रं शरणागतम् ॥ वह्निरेष समायाति भा लनेत्रसमुद्भवः ॥ २७ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्याकर्ण्य गुरोर्वा क्यमवधूताकृतिः प्रभुः ॥ उवाच करुणासिंधुर्विहसन् स सदू तिकृत् ॥ २८ ॥ अवधूत उवाच ॥ क्रोधाच्च निस्सृतन्तेजो धारयामि स्वनेत्रतः ॥ कथं हि कंचुकीं सर्पस्संधत्ते चोज्झितां पुनः ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य शंकरस्य बृहस्पतिः ॥ उवाच साञ्जलिर्भूयो भयव्याकुलमानसः ॥ ३० ॥ ॥ बृहस्पति रुवाच ॥ हे देव भगवन्भक्ता अनुकम्प्याः सदैव हि ॥ भक्तवत्स लनामेति स्वं सत्यं कुरु शंकर ॥ ३१ ॥ क्षेप्तुम न्यत्र देवेश स्वतेजोऽत्युग्रमर्हसि ॥ उद्धर्ता सर्वभक्तानां समुद्धर पुरन्दरम् ॥ ३२ ॥

धूत बोले, क्रोधसे अपने द्वारा निकले तेजको किस प्रकार फिर धारण कर सकता हूं क्या सर्प अपने कंचुकीको त्याग कर फिर धारण कर सकता है ? ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा शिवजीका वचन सुनकर बृहस्पति हाथ जोडे हुये, भयसे व्याकुल चित्त हुए बोले ॥ ३० ॥ बृहस्पति बोले, हे देव ! हे भगवन् ! हे शंकर ! निरन्तर, भक्तजन अनुकंपा (दया) के योग्य होते हैं, आप अपने भक्तवत्सल नामको सत्य करो ॥ ३१ ॥ हे देवेश ! अपने तीक्ष्ण तेजको और जगह स्थापित करनेके योग्य हो, आप सब भक्तोंके उद्धार करनेवाले हैं

इससे इन्द्रका उद्धार करो ॥ ३२ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार बृहस्पतिजीसे कहे हुये, भक्तवत्सल नामके भजनेवाले प्रसन्नात्मा नम्र हुओंके दुःख नाश करनेवाले शिवजी बृहस्पतिसे बोले ॥ ३३ ॥ शिवजी बोले, हे सुराचार्य ! तुमसे प्रसन्न हुआ मैं तुमको श्रेष्ठवर देता हूं तुम इन्द्रके जीवदान करनेसे जीवनामसे विख्यात होगे ॥ ३४ ॥ यह जो माथेके नेत्रसे उत्पन्न हुई देवताओंकी असह्य अग्नि है, इसको मैं दूर फेकता हूं, जिससे यह इन्द्रको पीडा न देवे ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह कहकर शिवजीने माथेसे उत्पन्न हुई तेजरूपसे अद्भुत अग्निको लवण समुद्रमें फेंक दिया ॥ ३६ ॥ तब माथेके नेत्रसे उत्पन्न समुद्रमें फेंकी हुई अग्नि तत्काल बालकरूप होगई ॥ ३७ ॥ वही जलंधरनामक दैत्य, सिंधुका

नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तो गुरुणा रुद्रो भक्तवत्सलनामभाक्॥प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा सुरेज्यम्प्रणतार्तिहा ॥३३॥ रुद्र उवाच ॥ प्रीतस्तेहं सुराचार्य्य ददामि वरमुत्तमम् ॥ इन्द्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथाम्व्रज॥३४॥ समुद्भूतोऽनलो योयं भालनेत्रात्सुरासहः ॥ एनन्त्यक्ष्याम्यहं दूरे यथेन्द्रं नैव पीडयेत् ॥३५॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच॥ इत्युक्त्वा स करं धृत्वा स्वतेजोऽनलमद्भुतम् ॥ भालनेत्रसमुद्भूतं प्राक्षिपल्लवणाम्भसि ॥ ३६ ॥ अथो शिवस्यतत्तेजो भालनेत्रसमुद्भवम् ॥क्षिप्तं च लवणाम्भोधौ सद्यो बालो बभूव ह ॥३७॥ स जलन्धरनामाभूत्सिन्धुपुत्रोऽसुरेश्वरः ॥ तं जघान महेशानो देवप्रार्थनया प्रभुः ॥३८॥ इत्थं कृत्वा सुचरितं शंकरो लोकशंकरः ॥ अवधूतस्वरूपेण ततश्चान्तर्हितोऽभवत् ॥ ३९ ॥ बभूवुः सकला देवाः सुखिनश्चातिनिर्भयाः ॥ गुरुशक्रौ भयान्मुक्तौ जग्मतुः सुखमुत्तमम् ॥ ४० ॥ यदर्थं गमनोद्युक्तौ दर्शनं प्राप्य तस्य तौ ॥ कृतार्थौ गुरुशक्रौ हिस्वस्थानं जग्मतुर्मुदा ॥ ४१ ॥ अवधूतेश्वराह्वोऽवतारस्ते कथितो मया ॥ परमेशस्य परमानन्ददः खलदण्डदः ॥ ४२ ॥

पुत्र हुआ, उसको देवताओंकी प्रार्थनासे शिवजीने मारा ॥ ३८ ॥ लोकोंके कल्याण करनेवाले शिवजी अवधूत रूप धारकर इस प्रकार सुन्दर चरित्र करके फिर अन्तर्धान होगये ॥ ३९ ॥ सब देवता सुखी तथा निर्भय हुये, बृहस्पति और इन्द्र भयसे मुक्त हुए और उत्तम सुखको प्राप्त हुये ॥ ४० ॥ जिस कारण वे दोनों गये थे उन शिवके दर्शनको प्राप्त होकर बृहस्पति तथा इन्द्र आनन्दपूर्वक अपने स्थानको चले गये ॥ ४१ ॥ यह मैंने तुमसे अवधूतेश्वरनामक परमेश्वरका परम आनन्द देनेवाला अवतार कहा ॥ ४२ ॥

यह पवित्र इतिहास यश तथा स्वर्गका देनेवाला और भोग तथा मुक्तिका देनेवाला दिव्य सब मनोरथोंका पूर्ण करनेवाला है ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य इसको नित्य सुनाता है. वह इस लोकमें सबसुखोंको भोगकर अन्तमें शिवकी पदवीको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहा पुराण भा० तृ० श० रु० अवधूतेश्वरशिवावतारवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! हे विप्र ! शिवजीके अव तारको सुनो कि अपने भक्तके ऊपर दया करके स्त्रीके सन्देहको दूर किया ॥ १ ॥ विदर्भनगरमें धर्मात्मा, सत्यवादीनां शैवोका प्रिय, सत्यरथ नाम एक राजा था ॥ २ ॥ हे मुने ! उस राजाको सुन्दर धर्मसे भूमिका पालन करते तथा शिवधर्म सेवन करते हुये सुख पूर्वक बहुत समय

इदमाख्यानमनघं यशस्यं स्वर्ग्यमेव च ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ४३ ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः ॥ इह सर्वसुखं भुक्त्वा सोन्ते शिवगतिं लभेत् ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दी श्वरसनत्कुमारसंवादे अवधूतेश्वरशिवावतारचरित्रवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अथ वक्ष्ये मुनिश्रेष्ठ शम्भोः शृण्ववतारकम् ॥ स्वभक्तदयया विप्र नारीसन्देहभंजकम् ॥१॥ आसीत्सत्यरथो नाम्ना विदर्भविषये नृपः ॥धर्म्मात्मा सत्यशीलश्च महाशैवजनप्रियः ॥२॥ तस्य राज्ञस्सुधर्मेण महीं पालयतो मुने ॥ महान्कालो व्यतीयाय सुखेन शिवधर्म्मतः ॥ ३ ॥ कदाचित्तस्य राज्ञस्तु शाल्वैश्च पुररोधिभिः ॥ महान्रणो बभूवाथ बहुसैन्यैर्बलोद्धतैः ॥४॥ स विदर्भनृपः कृत्वा सार्धं तैर्दारुणं रणम् ॥ प्रनष्टोरुबलः शाल्वैर्निहतो दैवयोगतः ॥ ५ ॥ तस्मिन्नृपे हते युद्धे शाल्वैस्तु भयविह्वलाः ॥ सैनिका हतशे षाश्च मन्त्रिभिस्सह दुद्रुवुः ॥६॥अथ तस्य महाराज्ञी रात्रौ स्वपुरतो मुने ॥ संरुद्धा रिपुभिर्यत्नादन्तर्वत्नी बहिर्ययौ ॥ ७ ॥

बीत गया ॥ ३ ॥ एक समय उसके नगर रोकनेवाले, बहुत सेना सहित, बलसे प्रौढ शत्रुओंके साथ उस सत्यरथ राजाका बडा भारी युद्ध हुआ ॥ ४ ॥ वह विदर्भ राजा उनके साथ घोर संग्राम करके दैव योगसे जंघाके बलसे शून्य हो उन शत्रुओंसे मारा गया ॥ ५ ॥ शाल्वोंके साथ उस संग्राममें सत्यरथ राजाके मरनेपर शेष बची हुई सेना भयसे व्याकुल हो मंत्रियोंके सहित भाग गई ॥ ६ ॥ हे मुने ! तब उस राजाकी गर्भवती पटरानी, शत्रुओंसे घिरी हुई रातके समय अपने नगरसे बाहर चली गई ॥ ७ ॥

निकलकर शोकसे दुःखी वह राजाकी स्त्री शिवजीके चरण कमलोंको स्मरण करती हुई, धीरे २ पूर्व दिशाको गई ॥ ८ ॥ तब प्रातःकाल उस रानीने मार्गमें दूर पहुँचकर शिवजीकी दयासे एक निर्मल सरोवर देखा ॥९॥ तब राजाकी गर्भवती दुःखी स्त्रीने अपने निवासके अर्थ वहां एक छाया वाले वृक्षका आश्रय किया ॥ १० ॥ रानीने दैववश वहां सुन्दर ग्रहोंसे युक्त शुभ मुहूर्तमें सब लक्षणोंसे युक्त दिव्य पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ११ ॥ इसके पीछे प्रारब्धवश उसकी माता, वह रानी प्याससे व्याकुल हो जल पीनेको सरोवरमें गई उसे वहां नाकेने भक्षण कर लिया ॥ १२ ॥ तत्कालका उत्पन्न हुआ वह पुत्र भूँख प्याससे अत्यन्त पीडित हुआ तथा माता पितासे हीन होकर वह पुत्र बहुत रोने लगा

निर्गता शोकसंतप्ता सा राजमहिषी शनैः॥प्राचीं दिशं ययौ दूरं स्मरन्तीशपदाम्बुजम्॥८॥ अथ प्रभाते सा राज्ञी ददर्श विमलं सरः॥ अतीता दूरमध्वानं दयया शङ्करस्य हि ॥९॥तत्रागत्य प्रियाराज्ञस्संतप्ता सुकुमारिणी॥निवासार्थं सरस्तीरे छायावृक्षमुपाश्रयत्॥ ॥१०॥ तत्र दैववशाद्राज्ञी मुहूर्त्ते सद्गुणान्विते ॥असूत तनयं दिव्यं सर्वलक्षणलक्षितम्॥११॥अथ तज्जननी दैवात्तृषितातिनृपाङ्गना ॥ सरोवतीर्णा पानार्थं ग्रस्ता ग्राहेण पाथसि॥१२॥स सुतो जातमात्रस्तु क्षुत्पिपासार्दितो भृशम्॥ रुरोद च सरस्तीरे विनष्टपितृमातृकः ॥१३॥तस्मिन्वने क्रन्दमाने जातमात्रे सुते मुने॥कृपान्वितो महेशोऽभूदन्तर्यामी स रक्षकः ॥१४॥ प्रेरिता मनसा काचिदीशेन त्रासहारिणा॥अकस्मादागता तत्र भ्रमन्तीभैक्ष्यजीविनी॥१५॥सा त्वेकहायनं बालं वहन्ती विधवा निजम्॥अनाथमेकं क्रंदन्तं शिशुन्तत्र ददर्श ह॥१६॥सा दृष्ट्वा तत्र तम्बालं वने निर्मनुजे मुने॥विस्मितातिद्विजस्त्री सा चिचिन्त हृदये बहु ॥१७॥

॥ १३ ॥ हे मुने ! उस वनमें क्षणमात्रमें उत्पन्न हुये पुत्रके रोनेपर वह रक्षा करनेवाले अन्तर्यामी शिवजी दयासे आर्द्र होगये ॥ १४ ॥ तब दुःखके दूर करनेवाले ईश्वरसे प्रेरित हुई एक भिखारिन अपने मनसे भ्रमण करती हुई एका एकी वहां आई ॥ १५ ॥ वह विधवा अपने एक वर्षके बालकको लिये हुए वहां आई और उसने अनाथ रोते हुए अकेले बालकको वहां देखा ॥ १६ ॥ हे मुने ! वह ब्राह्मणकी स्त्री उस निर्जन वनमें उस बालकको देखकर हृदयमें चिन्ता कर बडी विस्मित हुई ॥ १७ ॥

अहो ! मैं सर्वथा मन वाणीसे न कहने योग्य तथा असंभव यह बडा आश्चर्य देखती हूं ॥ १८ ॥ इस बालकका अभीतक नालभी नहीं कटा है और अकेला रोता हुआ तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ यह पुत्र मातासे हीन हुआ सोरहा है ॥ १९ ॥ इसके माता, पिता आदिक कोई सहायक यहां नहीं हैं, क्या कारण है अहो ! दैवबल बडा प्रबल है ॥ २० ॥ न जाने यह किसका पुत्र है, इसका जाननेवाला यहां कोई नहीं कि जिससे इसके जन्मको पूँछू, इसके ऊपर मुझे बडी दया उत्पन्न होती है ॥ २१ ॥ इस बालकको औरस (हृदयसे उत्पन्न) पुत्रके समान पालन करनेकी इच्छा करती हूँ, परन्तु इसके कुल जन्म आदिको विना जाने छूनेकी इच्छा नहीं होती ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर बोले,

अहो सुमहदाश्चर्य्यमिदं दृष्टम्मयाधुना ॥असंभाव्यमकथ्यं च सर्वथा मनसा गिरा ॥१८॥ अच्छिन्ननाभिनालोयं रसायां केवलं शिशुः ॥ शेते मातृविहीनश्च क्रन्दंस्तेजस्विनां वरः॥१९॥अस्यपित्रादयः केऽपिनसन्तीह सहायिनः॥कारणं किं बभूवाथ ह्यहो दैवबलं महत् ॥ २० ॥ न जानेकस्य पुत्रोऽयमस्य ज्ञातात्र कोपि न॥यतः पृच्छाम्यस्य जन्य जाता च करुणा मयि ॥ २१ ॥ इच्छाम्येनं पोषितुं हि बालमौरसपुत्रवत् ॥ संप्रष्टुं नोत्सहेऽज्ञात्वा कुलजन्मादि चास्य वै ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति संचिन्त्यमानायांतस्यांविप्रवरस्त्रियाम्॥कृपां चकारमहतीं शंकरो भक्तवत्सलः॥२३॥दध्रे भिक्षुस्वरूपं हि महालीलो महेश्वरः॥ सर्वथा भक्तसुखदो निरुपाधिः स्वयं सदा॥२४॥तत्राजगाम सहसा स भिक्षुः परमेश्वरः ॥ यत्रास्ति संदेहवती द्विजस्त्री ज्ञातु मिच्छती ॥ २५ ॥ भिक्षुवर्य्यस्वरूपोऽसावविज्ञातगतिः प्रभुः ॥ तामाह विप्रवनितां विहस्य करुणानिधिः ॥ २६ ॥ भिक्षुवर्य्य उवाच ॥ सन्देहं कुरु नो चित्ते विप्रभामिनि मा खिद ॥ रक्षैनम्बालकंप्रीत्या सुपवित्रं स्वपुत्रकम् ॥ २७ ॥

इस प्रकार चिन्ता करती हुई उस ब्राह्मणकी स्त्रीपर भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले शिवजीने बडी दया की ॥ २३ ॥ महालीलाकारी, सब प्रकार भक्तोंको सुख देने वाले, उपाधिरहित महेश्वर शिवजीने स्वयं भिक्षुकका रूप धारण किया ॥ २४ ॥ वह भिक्षुक परमेश्वर सहसा वहां आये जहां जाननेकी इच्छा करनेवाली वह ब्राह्मणकी स्त्री विद्यमान थी ॥ २५ ॥ वह प्रभु अविज्ञातगति दयासागर भिक्षुकका रूप धर हँसकर उस ब्राह्मणकी स्त्रीसे बोले ॥ २६ ॥ भिक्षुक बोले, हे विप्रभामिनी ! अपने चित्तमें संदेह और खेद मत करो, पवित्र

इस बालककी अपने पुत्रके समान रक्षा कर ॥ २७ ॥ इस बालकके द्वारा अति शीघ्र तू परमकल्याणको प्राप्त होगी, इस महातेजस्वी बालकको सब प्रकार पोषणकर ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहते हुये उन भिक्षुकरूपधारी दयासागर, शिवसे ब्राह्मणकी स्त्री प्रीति पूर्वक आदरके साथ पूँछने लगी ॥ २९ ॥ ब्राह्मणकी स्त्री बोली, तुम्हारी आज्ञासे मैं इस बालककी रक्षा करूंगी, तथा अपने पुत्रके समान पालन करूंगी इसमें सन्देह नहीं मेरे भाग्यसे तुम यहाँ आये हो ॥ ३० ॥ तथापि विशेषकर सत्य २ जानना चाहती हूं कि—यह बालक कौन है किसका पुत्र है, और आप कौन हैं कहांसे आये हैं ॥ ३१ ॥ हे भिक्षुक वर ! हे प्रभो ! बारंबार मुझे ज्ञान प्राप्त होता है कि आप

अनेन शिशुना श्रेयः प्राप्स्यसे न चिरात्परम्॥ पुष्णीहि सर्वथा ह्येनं महातेजस्विनं शिशुम्॥२८॥नन्दीश्वर उवाच॥ इत्युक्तवन्तं तं भिक्षुस्वरूपं करुणानिधिम् ॥सा विप्रवनिता शम्भुं प्रीत्या पप्रच्छ सादरम् ॥२९॥ विप्रवनितोवाच ॥ त्वदाज्ञयैनं बालं हि रक्षिष्यामि स्वपुत्रवत्॥पोक्ष्यामि नात्र सन्देहो मद्भाग्यात्त्वमिहागतः॥३०॥तथापि ज्ञातुमिच्छामि विशेषेण तु तत्त्वतः॥ कोयं कस्य सुतश्चायं कस्त्वमत्र समागतः ॥ ॥ ३१ ॥ मुहुर्मम समायाति ज्ञानं भिक्षुवर प्रभो ॥ त्वं शिवः करुणासिन्धुस्त्वद्भक्तोयं शिशुः पुरा ॥ ३२ ॥ केनचित्कर्मदोषेण सम्प्राप्तोयं दशामिमाम् ॥ तद्भुक्त्वा परमं श्रेयः प्राप्स्यते त्वदनुग्रहात्॥ ३३ ॥ त्वन्मायायैव साहं वै मार्गभ्रष्टा विमोहिता ॥ आगता प्रेषिता त्वत्तो ह्यस्य रक्षणहेतुतः ॥ ३४ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति तद्दर्शनप्राप्तविज्ञानां विप्रकामिनीम् ॥ ज्ञातुकामां विशेषेण प्रोचे भिक्षुतनुश्शिवः ॥ ३५ ॥ ॥ भिक्षुवर्य्य उवाच ॥ शृणु प्रीत्या विप्रपत्निबालस्यास्य पुरेहितम् ॥ सर्वमन्यस्य सुप्रीत्या वक्ष्यते तत्त्वतोऽनघे ॥ ३६ ॥

दयासागर साक्षात् शिव हैं और यह तुम्हारा पहला भक्त है ॥ ३२ ॥ किसी कर्मके दोषसे यह इस दशाको प्राप्त हुआ है, सो तुम्हारे अनुग्रहसे सुख भोगकर परम कल्याणको प्राप्त होगा ॥ ३३ ॥ आपकी मायासे मोहित हुई मैं मार्गसे भ्रष्ट हुई इसकी रक्षा करनेको आपसे भेजी हुई इधर आई हूं ॥ ३४ ॥ नन्दीश्वर बोले, भिक्षुकरूपधारी शिव, विशेषकर जाननेकी इच्छा करती हुई शिवके दर्शनसे विज्ञान प्राप्त करनेवाली ब्राह्मणकी स्त्रीसे बोले ॥ ३५ ॥ भिक्षुकवर्य बोले, हे ब्राह्मणकी स्त्री ! हे अनघे ! प्रीतिसे सुनो इस बालकके विषयमें

सब वृत्तान्त प्रीतिसे कहता हूं ॥ ३६ ॥ यह शिवके भक्त, बुद्धिमान्, अपने धर्ममें तत्पर, विदर्भनगरके राजा सत्यरथका पुत्र है ॥ ३७ ॥ सुनो सत्यरथ राजा युद्धमें शाल्व शत्रुओंसे मारा गया, उसकी स्त्री भयसे व्याकुल हुई रातमें शीघ्रतासे अपने घरसे निकल गई ॥ ३८ ॥ और इस वनमें आकर इस पुत्रको उत्पन्न किया. प्यासके मारे सरोवरमें उतरी तो दैववश उसे नाकेने निगल लिया ॥ ३९ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उसकी उत्पत्ति तथा उसके पिताका संग्राममें मरण और उसकी माताका नाकेद्वारा मर जाना यह सब वृत्तान्त उससे वर्णन किया ॥ ४० ॥ हे मुनीश्वर ! तब वह ब्राह्मणी अति विस्मित हो, उन ज्ञानी; सिद्धरूप भिक्षुकसे फिर पूँछने लगी ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणी

सुतो विदर्भराजस्य शिवभक्तस्य धीमतः॥अयं सत्यरथस्यैव स्वधर्मनिरतस्य हि॥३७॥शृणु सत्यरथो राजा हतः शाल्वै रणे परैः ॥ तत्पत्नी निशि सुव्यग्रा निर्ययौ स्वगृहाद्द्रुतम् ॥३८॥असूत तनयं चैनं समायाता प्रगेऽत्र हि ॥सरोवतीर्णा तृषया ग्रस्ता ग्राहेण दैवतः ॥३९॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति तस्य समुत्पत्तिं तत्पितुः संगरे मृतिम् ॥ तन्मातृमरणं ग्राहात्सर्वं तस्यै न्यवेदयत् ॥४०॥ अथ सा ब्रह्माणी सा हि विस्मिताति मुनीश्वर॥पुनः पप्रच्छ तं भिक्षुं ज्ञानिनं सिद्धरूपकम् ॥४१॥ब्राह्मण्युवाच ॥ स राजोऽस्य पिता भिक्षो वरभोगान्तरेव हि ॥ कस्माच्छाल्वैस्स्वरिपुभिस्स्वल्पेहैश्च विघातितः॥४२॥ कस्मादस्य शिशोर्माता ग्राहेणाशु सुभक्षिता ॥ यस्मादनाथोयं जातो विबन्धुश्चैव जन्मतः॥४३॥ कस्मात्सुतो ममापीह सुदरिद्रो हि भिक्षुकः॥ भवेत्कथं सुखं भिक्षो पुत्रयोरनयोर्वद ॥४४॥नन्दीश्वर उवाच॥इति तस्यावचःश्रुत्वा स भिक्षुःपरमेश्वरः॥ विप्रपत्न्याः प्रसन्नात्मा प्रोवाच विहसंश्च ताम्॥४५॥ भिक्षुवर्य्य उवाच॥विप्रपत्नि विशेषेण सर्वप्रश्नान्वदामि ते॥शृणु त्वं सावधानेन चरित्रमिदमुत्तमम् ॥४६॥

बोली, हे भिक्षो ! इस राजपुत्रका पिता श्रेष्ठ भोगोंको भोगता हुआ हुआ किस कारण अपने शत्रु अल्प इच्छावाले शाल्वोंसे मारा गया ॥ ४२ ॥ किस हेतुसे इस पुत्रकी माता नाकेसे उसी समय भक्षण कीगई, तथा क्यों यह पुत्र जन्मसे बन्धुरहित, अनाथ हुआ ॥ ४३ ॥ हे भिक्षो ! क्यों यह भिक्षुक, निर्धन यहां मेरा पुत्र हुआ, और कैसे इन दोनों पुत्रोंको सुख होगा सो सब कहो ॥ ४४ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा उस ब्राह्मणकी स्त्रीका वचन सुन वह भिक्षुक परमेश्वर प्रसन्नचित्त हँसकर उससे बोले ॥ ४५ ॥ भिक्षुक बोले, हे ब्राह्मणकी पत्नि !

तेरे सब प्रश्नोंको विशेषकर कहता हूं तू सावधान होकर इस उत्तम चरित्रको सुन ॥ ४६ ॥ इस बालकका पिता वह विदर्भका राजा पहले जन्ममें पाण्डु राजा हुआ ॥ ४७ ॥ वह शैव तथा धर्मात्मा सब उपद्रवोंको दूर करनेवाला राजा सम्पूर्ण भूमिको पालन करता हुआ अपनी प्रजाको प्रसन्न करता था ॥ ४८ ॥ कभी इस राजाने त्रयोदशीमें निराहार हो, तथा दिनरात व्रत करते हुए, सबके ईश्वर शिवका सन्ध्या के समय पूजन किया ॥ ४९ ॥ प्रदोषकालमें उस राजाके शिवपूजन करनेपर नगरमें बडा विकट भयानक शब्द हुआ ॥ ५० ॥ उस शब्दको सुनकर वह राजा शिवका पूजन छोड शत्रुओंके आनेकी शंकासे अपने मंदिरके बाहर गया ॥ ५१ ॥ इसी अवसर

अमुष्य बालस्य पिता स विदर्भमहीपतिः॥पूर्वजन्मनि पाण्डयोऽसौ बभूव नृपसत्तमः॥४७॥स शैवनृपतिर्धर्मात्पालयन्निखिला महीम्॥ स्वप्रजां रंजयामास सर्वोपद्रवनाशनः॥४८॥कदाचित्स हि सर्वेशं प्रदोषे पर्यपूजयत्॥त्रयोदश्यां निराहारो दिवानक्तव्रती शिवम् ॥४९॥ तस्य पूजयतःशम्भुं प्रदोषे गिरिशं रते॥महाञ्च्छब्दो बभूवाथ विकटस्सर्वथा पुरे॥५०॥तमाकर्ण्य रवं सोऽथ गजा त्यक्तशिवार्चनः॥ रिप्वागमनशंकातो निर्ययौ भवनाद्बहिः॥५१॥ एतस्मिन्नेव काले तुतस्यामात्यो महाबली॥गृहीतशस्त्रसामन्तो राजान्तिकमुपाययौ ॥५२॥ तन्दृष्ट्वा शत्रुसामन्तं महाक्रोधेन विह्वलः॥अविचार्य वृषन्तस्य शिरश्छेदमकारयत् ॥५३॥ असमाप्ये शपूजान्तामशुचिर्नष्टधीर्नृपः॥ रात्रौ चकार सुप्रीत्या भोजनन्नष्टमंगलः॥५४ विदर्भे सोभवद्राजा जन्मनीह शिवव्रती॥शिवार्चनान्तरा येण परैर्भोगान्तरे हतः॥५५॥ तत्पुत्रो यः पूर्वभवे सोऽस्मिञ्जन्मनि तत्सुतः ॥ अहमेव हतैश्चर्य्यः शिवपूजाव्यतिक्रमात् ॥५६॥

पर वह महाबली शस्त्र धारण किये हुए मन्त्री सामन्तोंको साथ ले राजाके निकट आया ॥ ५२ ॥ उसको देख शत्रुको मनुष्य जान, महा क्रोधसे व्याकुल हो विना विचारे ही राजाने उसका शिर कटवाया ॥ ५३ ॥ अपवित्र नष्ट बुद्धि मंगलसे हीन राजाने शिवकी पूजाको विना समाप्त किये ही रात्रिमें भोजन किया ॥५४॥ इस जन्ममें वह शिवव्रती राजा विदर्भमें जन्मा और शिवपूजाके समाप्त न करनेसे सुखोंके मध्यमें शत्रुओंसे मारा गया ॥ ५५ ॥ जो पहले जन्ममें इसका पिता सत्यरथ था वह ही इस जन्ममें शिवकी पूजाके व्यतिक्रमसे

ऐश्वर्य्य रहित पुत्ररूपमें हुआ है ॥ ५६ ॥ इसकी माताने अपने पहले जन्ममें सौतको छलसे हरण किया (मार दिया) था उस पापसे इस जन्ममें उसे नाकेने खा लिया ॥ ५७ ॥ इन सबोंके चरित्र मैंने तुमसे कहे मनुष्य; शिवकी भक्तिके विना वा विना भक्तिके शिवका पूजन करनेसे दरिद्रताको प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥ यह तेरा पुत्र पहले जन्ममें ब्राह्मण था नित्य प्रतिग्रह कर इसने अपनी अवस्था बिताई परन्तु यज्ञादिक शोभन कर्मोंसे नहीं ॥ ५९ ॥ हे द्विजभामिनी ! इस कारण तेरा पुत्र दरिद्रताको प्राप्त हुआ, उस दोषके दूर होनेके निमित्त शिवजीकी शरणमें जा ॥ ६० ॥ इन दोनों बालकोंके सहित शिवजीकी पूजाकर, यज्ञोपवीतके पश्चात् शिवजी कल्याण करेंगे ॥ ६१ ॥ नन्दी

अस्य माता पूर्वभवे सपत्नीं छद्मनाहरत् ॥ भक्षिता तेन पापेन ग्राहेणाऽस्मिन् भवे हि सा ॥५७॥ एषा प्रवृत्तिरेतेषां भवत्यै परि कीर्तिता ॥ अनर्चिता शिवा भक्त्या प्राप्नुवन्ति दरिद्रताम्॥५८॥एष ते तनयः पूर्वजन्मनि ब्राह्मणोत्तमः ॥ प्रतिग्रहैर्वयो निन्ये न यज्ञाद्यैस्सुकर्मभिः ॥५९॥ अतो दारिद्र्यमापन्नः पुत्रस्ते द्विजभामिनि ॥ तद्दोषपरिहारार्थं शरणं शंकरं व्रज ॥६०॥ एताभ्यां खलु बालाभ्यां शिवपूजाविधीयताम् ॥ उपवीतानन्तरं हि शिवः श्रेयः करिष्यति ॥६१॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति तामुपदिश्याथ भिक्षुवर्य्यतनुः शिवः ॥ स्वरूपं दर्शयामास परमं भक्तवत्सलः ॥६२॥ अथ सा विप्रवनिता ज्ञात्वा तं शंकरम्प्रभुम् ॥ सुप्रणम्य हि तुष्टाव प्रेम्णा गद्गदया गिरा ॥ ६३ ॥ ततस्स भगवाञ्च्छम्भुर्धृतभिक्षुतनुर्द्रुतम् ॥ पश्यन्त्या विप्रपत्न्यास्तु तत्रैवान्तर धीयत ॥ ६४ ॥ अथ तस्मिन् गते भिक्षौ विश्रब्धा ब्राह्मणी च सा ॥ तमर्भकं समादाय सस्वपुत्रा गृहं ययौ ॥ ६५ ॥ एकचक्राह्वये रम्ये ग्राम्ये कृत निकेतना ॥ स्वपुत्रं राजपुत्रं च वरान्नैश्च व्यवर्द्धयत् ॥ ६६ ॥

श्वर बोले, ऐसा उसे उपदेश देकर भिक्षुकरूपधारी भक्तवत्सल शिवजीने अपने प्रकट रूपको दिखाया ॥ ६२ ॥ वह ब्राह्मणकी स्त्री उन प्रभु शंकरको जानकर प्रणाम कर गद्गद वाणीसे प्रेमपूर्वक स्तुति करने लगी ॥ ६३ ॥ तब वह भगवान् भिक्षुक रूपधारी शंभु शीघ्र ब्राह्मणको स्त्रीके देखतेही देखते वहां अन्तर्धान होगये ॥ ६४ ॥ तब उन भिक्षुकके चले जानेपर वह विश्वास युक्त हुई ब्राह्मणी उस पुत्र को ले अपने पुत्रके सहित निज स्थानको गई ॥ ६५ ॥ और एक चक्र नामक सुन्दर नगरमें निवास कर अपने पुत्र तथा राजाके पुत्रको सुन्दर

अन्नोंसे पालने लगी ॥ ६६ ॥ ब्राह्मणोंसे संस्कारित तथा उपनयन किये हुए वे दोनों पुत्र शिवजीके पूजनमें तत्पर हुये अपने घरमें पढने लगे ॥ ६७ ॥ हे तात ! वे दोनों शांडिल्यमुनिकी आज्ञासे नियममें स्थित होकर प्रदोषमें शुभव्रत करके शिवका पूजन करते थे ॥ ६८ ॥ किसी समय ब्राह्मणके पुत्रके विना वह राजपुत्र नदीमें नहानेको गया वहां एक सुन्दर धनका भरा हुआ कलश पाया ॥ ६९ ॥ इस प्रकार शिवको पूजते हुये दोनों राजा तथा ब्राह्मणके पुत्रके चार महीने सुखसे बीत गये ॥ ७० ॥ और इसी रीतिसे फिर भी शिवका पूजन करते हुए उन दोनोंको उसी गृहमें परम आनन्दके साथ एक वर्ष बीत गया ॥ ७१ ॥ हे मुने ! हे विभो ! वर्ष बीतनेपर वह राजाका

ब्राह्मणै कृतसंस्कारौ कृतोपनयनौ च तौ ॥ ववृधाते स्वगेहे च शिवपूजनतत्परौ ॥ ६७ ॥ तौ शाण्डिल्यमुनेस्तात निदेशान्नियम स्थितौ ॥ प्रदोषे चक्रतुः शम्भोः पूजां कृत्वा व्रतं शुभम् ॥ ६८ ॥ कदाचिद्द्विजपुत्रेण विनाऽसौ राजनन्दनः ॥ नद्यां स्नातुं गतः प्रापनिधानकलशं वरम् ॥६९॥ एवं पूजयतोः शम्भुं राजद्विजकुमारयोः ॥ सुखेनैव व्यतीयाय तयोर्मासचतुष्टयम् ॥ ७० ॥ एवमर्चयतोः शम्भुं भूयोपि परया मुदा ॥ सम्वत्सरो व्यतीयाय तस्मिन्नेव तयोर्गृहे ॥ ७१ ॥ सम्वत्सरे व्यतिक्रान्ते स राजतनयो मुने ॥ गत्वा वनान्ते विप्रेण शिवस्यानुग्रहाद्विभोः ॥ ७२ ॥ अकस्मादागतां तत्र दत्तां तज्जनकेन ह ॥ विवाह्य गन्धर्वसुतां चक्रे राज्यमकण्टकम् ॥ ७३ ॥ या विप्रवनिता पूर्वं तमपुष्णात्स्वपुत्रवत् ॥ सैव माताभवत्तस्य स भ्राता द्विज नन्दनः ॥ ७४ ॥ इत्थमाराध्य देवेशं धर्मगुप्ताह्वयस्स वै ॥ विदर्भ विषये राज्ञ्या तया भोगं चकार ह ॥ ७५ ॥ भिक्षुवर्य्यावतारस्ते वर्णितश्च मयाधुना ॥ शिवस्य धर्मगुप्ताह्वनृपबालसुखप्रदः ॥ ७६ ॥

पुत्र शिवकी दयासे ब्राह्मणके पुत्रके साथ वनके मध्यमें जाकर॥७२॥शिवकी कृपासे अकस्मात् आई हुई उसके पितासे दी हुई गंधर्वकी कन्याको विवाह कर अकंटक (निर्द्वन्द्व) हो राज्य करने लगा ॥७३॥ जिस ब्राह्मणकी स्त्रीने अपने पुत्रके समान इसको पालन लालन किया था वहही इसकी माता और ब्राह्मणका पुत्र भाई हुआ ॥ ७४ ॥ इस प्रकार शिवका आराधन कर वह धर्मगुप्त विदर्भ देशमें उस रानीके सहित भोग करने लगा ॥ ७५ ॥ यह मैंने तुमसे भिक्षुकरूप शिवजीका अवतार जो धर्मगुप्त नामक राजपुत्रके सुख देनेके निमित्त हुआ था सो वर्णन

किया ॥ ७६ ॥ यह निष्पाप चरित्र अतिपवित्र है औरोंको पवित्र करनेवाला धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके साधन तथा सब मनोरथोंके पूर्ण करने वाला है ॥ ७७ ॥ जो इसको नित्य सुनता है अथवा सावधान होकर सुनाता है वह यहां सब इच्छितभोगोंको भोगकर अन्तमें शिवपुरको जाता है ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां भिक्षुवर्यशिवावतारचरित्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥ हे तात ! परमात्मा शिवका, सुरेश्वरनामक धौम्यके बडे भाईको सुख देनेवाला अवतार वर्णन करता हूं सुनो ॥ १ ॥ व्याघ्रपादका पुत्र बुद्धिमान् सत्पुरुषोंका प्रिय उपमन्यु नामक जन्मान्तरोंसे सिद्ध हो मुनिके कुमारपनको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ वह बालक अपनी मातासहित मामाके घर रहता था

एतदाख्यानमनघं पवित्रं पावनं महत् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं सर्वकामदम् ॥ ७७ ॥ य एतच्छृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः ॥ स भुक्त्वेहाखिलान्कामान् सोन्ते शिवपुरम्व्रजेत् ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृती० शतरुद्रसंहितायां भिक्षुवर्य्यावतारचरित्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥ शृणु तात प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः ॥ सुरेश्वरावतारस्ते धौम्याग्रज हितावहम् ॥ १ ॥ व्याघ्रपादसुतो धीमानुपमन्युस्सताम्प्रियः ॥ जन्मान्तरेण संसिद्धः प्राप्तो मुनिकुमारताम् ॥ २ ॥ उवास मातुलगृहे स मात्रा शिशुरे वहि ॥ उपमन्युर्व्याघ्रपादिस्स्याद्दरिद्रश्च दैवतः ॥ ३ ॥ कदाचित्क्षीरमत्यल्पम्पीतवान्मातुलाश्रमे ॥ यया चे मातरम्प्रीत्या बहुशो दुग्ध लालसः ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा पुत्रवचनं तन्माता च तपस्विनी ॥ सांतः प्रविश्याथ तदा शुभोपायमरी रचत् ॥ ५ ॥ उञ्छवृत्त्यर्जितान्बीजान्पिष्ट्वालोड्य जलेन तान् ॥ उपलाल्य सुतन्तस्मै सा ददौ कृत्रिमम्पयः ॥६॥ पीत्वा च कृत्रिमं दुग्धं मात्रा दत्तं स बालकः ॥ नैतत्क्षीरमिति प्राह मातरं चारुदत्पुनः ॥ ७ ॥

वह व्याघ्रपाद पुत्र उपमन्यु दैववशसे अतिदरिद्र था ॥ ३ ॥ उसने कभी अपने मामाके आश्रममें बहुत थोडा दूध पिया था अतः दुग्धकी इच्छा करनेवाला वह बारंबार प्रीतिपूर्वक मातासे दूध मांगता ॥ ४ ॥ यह पुत्रका वचन सुन उसकी तपस्विनी माताने घरके भीतर प्रवेश करके एक उपायको विचारा ॥ ५ ॥ उञ्छवृत्ति (कणोंके बीनने) से इकट्ठे किये बीजोंको पीस उनको जलमें मिलाकर कृत्रिम दूध बालकको पिलाया, इस प्रकार अपने पुत्रको लालन पालन करने लगी ॥६॥ वह बालक मातासे दिये उस कृत्रिम दूधको पीकर मातासे बोला कि यह दूध नहीं

है, यह कहता हुआ रोने लगा ॥७॥ अपने पुत्रका रोना सुन दुःखी हो पुत्रके नेत्रोंको अपने हाथसे पोंछती हुई कमलके समान आकारवाली वह माता अपने पुत्रसे बोली ॥८॥ माता बोली, सदा हमारे वनमें रहते हुये यहाँ दूध कहां है शिवकी प्रसन्नताके विना दूधकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! पूर्वजन्ममें शिवका उद्देश कर जैसा कर्म किया वैसा ही प्राप्त होता है इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥१०॥ ऐसा माताका वचन सुन वह माताकी दया करनेवाला शोकाकुल व्याघ्रपादका पुत्र बालक अपनी मातासे बोला ॥ ११ ॥ हे मातः ! हे महा भागे ! शोक मतकर यदि शंकर कल्याण करनेवाले हैं तो शोकको त्याग अवश्य कल्याण होगा ॥१२ हे मातः ! आज मेरा वचन सुनो,

श्रुत्वा सुतस्य रुदितं प्राह सा दुःखिता सुतम् ॥ संमार्ज्य नेत्रे पुत्रस्य कराभ्यां कमलाकृतिः ॥८॥ मातोवाच ॥ क्षीरमत्र कुतोऽस्माकं वने निवसतां सदा ॥ प्रसादेन विना शम्भोः पयःप्राप्तिर्भवेन्न हि ॥९॥ पूर्वजन्मनि यत्कृत्यं शिवमु द्दिश्य हे सुत ॥ तदेव लभ्यते नूनन्ना त्र कार्या विचारणा ॥ १०॥ इति मातृवचश्श्रुत्वा व्याघ्रपादिस्स बालकः ॥ प्रत्युवाच विशोकात्मा मातरं मातृवत्सलः ॥११॥ शोकेनालमिमं मातः शभुर्यद्यस्ति शङ्करः ॥ त्यज शोकं महाभागे सर्वं भद्रम्भविष्यति ॥१२॥ शृणु मातर्वचो मेऽद्य महादेवोऽस्ति चेत्क्वचित् ॥ चिराद्वाह्यचिराद्वापि क्षीरोदं साधयाम्यहम् ॥१३॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा स शिशुः प्रीत्या शिवं मेऽस्त्वित्युदीर्य्य च ॥ विसृज्य तां सुप्रणम्य तपः कर्त्तुं प्रचक्रमे ॥ १४ ॥ हिमवत्पर्वतगतः वायुभक्षस्समाहितः ॥ अष्टेष्टकाभिः प्रासादं कृत्वा लिंगं च मृन्मयम् ॥१५॥ तत्रावाह्य शिवं साम्बं भक्त्या पञ्चाक्षरेण ह ॥ पत्रपुष्पादिभिर्वन्यैस्समानर्च शिशुः स वै ॥ १६ ॥

यदि कहीं महादेव हैं तो शीघ्र या देरमें उन दूधके देनेवालोंको साध लूंगा ॥१३॥ नन्दीश्वर बोले, यह कह वह बालक शिवजी मेरा कल्याण करेंगे ऐसा कहकर माताको प्रणाम करके बिदा हो तप करनेको चला ॥ १४ ॥ हिमालय पर्वतपर जाकर सावधान चित्त हो वायुका भक्षण करता हुआ आठ ईंटोंसे भवन तथा मृत्तिकाका लिंग बनाकर ॥ १५ ॥ उस बालकने पार्वती सहित शिवका आवाहन करके, 'नमः शिवाय' इस पंचाक्षर मंत्रसे वनके पत्र तथा पुष्पोंसे पूजन किया ॥ १६ ॥

पार्वती समेत शिवका ध्यान करके पंचाक्षर मन्त्रको जपता हुआ, बहुत समय तक पूजन करके परम तपको करने लगा ॥ १७ ॥ हे मुने ! उस महात्मा उपमन्यु बालकके तपसे सब चर अचर लोक प्रज्वलित हो गये ॥ १८ ॥ इसी अन्तरमें विष्णु आदि देवताओंसे प्रार्थना किये, प्रभु, शिवजी, उस बालककी भक्तिकी परीक्षा करनेको इन्द्रका रूप धारण करते हुए ॥ १९ ॥ और पार्वती शची (इन्द्राणी) हुई और उनके सब गण देवतारूपमें हुये, तथा नादियाने ऐवरात हाथीका रूप धरा, यह सब चले ॥ २० ॥ तब पार्वती तथा गणोंके सहित शिवजी इन्द्रका रूप धार उपमन्युके ऊपर दया करनेको उसके आश्रममें गये ॥ २१ ॥ हे मुनीश्वर ! वह इन्द्र रूपधारी शिवजी उसकी

ध्यात्वा शिवं च तं साम्बं जपन्पञ्चाक्षरम्मनुम् ॥ समभ्यर्च्यचिरं कालं चचार परमन्तपः ॥ १७ ॥ तपसा तस्य बालस्य ह्युपमन्योर्महात्मनः ॥ चराचरं च भुवनं प्रदीपितमभून्मुने ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शंभुर्विष्ण्वाद्यैः प्रार्थितः प्रभुः ॥ परीक्षितुं च तद्भक्तिं शक्र रूपोऽभवत्तदा ॥ १९ ॥ शिवा शचीस्वरूपाभूद्गणाः सर्वेऽभवन्सुराः ॥ ऐरावतगजो नन्दी सर्वमेव च तन्मयम् ॥ २० ॥ ततः साम्बः शिवः शक्रस्वरूपस्सगणो द्रुतम् ॥ जगामानुग्रहं कर्तुमुपमन्योस्तदाश्रमम् ॥ २१ ॥ परीक्षितुं च तद्भक्तिं शक्ररूपधरो हरः ॥ प्राह गंभीरया वाचा बालकन्तं मुनीश्वर ॥ २२ ॥ सुरेश्वर उवाच ॥ तुष्टोऽस्मि ते वरं ब्रूहि तपसानेन सुव्रत ॥ ददामि चेच्छितान्कामान्सर्वान्नात्रास्ति संशयः ॥ २३ ॥ एवमुक्तः सवै तेन शक्ररूपेण शम्भुना ॥ वरयामि शिवे भक्तिमित्युवाच कृताञ्जलि ॥ २४ ॥ तन्निशम्य हरिः प्राह मां न जानासि लेखपम् ॥ त्रैलोक्याधिपतिंशक्रं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ २५ ॥ मद्भक्तो भव विप्रर्षे मामेवार्चय सर्वदा ॥ ददामि सर्वं भद्रन्ते त्यज रुद्रं च निर्गुणम् ॥ २६ ॥

भक्तिकी परीक्षा करनेको उस बालकसे गम्भीर वाणीसे बोले ॥ २२ ॥ इन्द्र बोले हे सुव्रत ! मैं इस तेरे तपसे संतुष्ट हुआ हूं वर मांग तेरे सब इच्छित वरोंको देता हूं, इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २३ ॥ उस इंद्ररूप शिवके इस प्रकार कहनेसे हाथ जोड वह बालक बोला कि मैं शिवजीमें भक्ति होनेका वरदान चाहता हूं ॥ २४ ॥ यह सुनकर इन्द्र बोला, मुझ त्रिलोकीके स्वामी, देवताओंके पति, तथा सब देवताओंसे नमस्कृत, इन्द्रको तुम नहीं जानते हो ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तू मेरा भक्त हो निरंतर मुझेही पूज, मैंही तुझे सब कल्याण दूंगा निर्गुण

शिवको त्यागन कर ॥ २६ ॥ निर्गुण शिवकी भक्तिसे पृथक् हो उससे तेरा क्या कार्य होगा, वह तो देवजातिसे निकाले जाकर पिशाच पनको प्राप्त हुए हैं ॥ २७ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह सुनकर मुनिपुत्र धर्ममें विघ्नको जान पंचाक्षर मन्त्रको जपता हुआ उस आये हुए इन्द्रसे बोला ॥ २८ ॥ उपमन्यु बोला, इस प्रकार शिवजीकी निन्दामें तत्पर हुए तुमने प्रसंगसे देवोंके देव शिवका निर्गुणपन वर्णन किया ॥ २९ ॥ देवदेवेश्वर ब्रह्मा, विष्णु, महेश इनके उत्पन्न करनेवाले तथा प्रकृतिसे परे उन रुद्रको तुम नहीं जानते हो ॥ ३० ॥ ब्रह्मवादी लोग जिनको सत्, असत् तथा व्यक्त, अव्यक्त, नित्य, एक अनेक कहते हैं उनसे मैं वर माँगूँगा ॥ ३१ ॥ तत्त्वके जाननेवाले

रुद्रेण निर्गुणेनालं किन्ते कार्यं भविष्यति ॥ देवजातिबहिर्भूतो यः पिशाचत्वमागतः ॥२७॥ नन्दीश्वर उवाच॥ तच्छ्रुत्वा स मुनेः पुत्रो जपन्पञ्चाक्षरम्मनुम् ॥ मन्यमानो धर्मविघ्नम्प्राह तं कर्तुमागतम् ॥२८॥ उपमन्युरुवाच ॥ त्वयैवं कथितं सर्वं भवनिन्दा रतेन वै ॥ प्रसंगाद्देवदेवस्य निर्गुणत्वं पिशाचता ॥ २९ ॥ त्वं न जानासि वै रुद्रं सर्वदेवेश्वरेश्वरम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां जनकम्प्रकृतेः परम् ॥ ३० ॥ सदसद्व्यक्तमव्यक्तं यमाहुर्ब्रह्मवादिनः ॥ नित्यमेकमनेकं च वरं तस्माद्वृणोम्यहम् ॥३१॥ हेतुवाद विनिर्मुक्तं सांख्ययोगार्थदम्परम् ॥ यमुशन्ति हि तत्त्वज्ञा वरन्तस्माद्वृणोम्यहम् ॥ ३२ ॥ नास्ति शम्भोः परन्तत्त्वं सर्वकारण कारणात् ॥ ब्रह्मविष्ण्वादि देवानां श्रेष्ठाद्गुणपराद्विभोः ॥ ३३ ॥ नाहं वृणे वरं त्वत्तो न विष्णो ब्रह्मणोऽपि वा ॥ नान्यस्मादमराद्वापि शङ्करो वरदोऽस्तुमे॥३४॥बहुनात्र किमुक्तेन वच्मि तत्त्वं मतं स्वकम् ॥ न प्रार्थये पशुपतेरन्यं देवादिकं स्फुटम् ॥३५॥ मद्भावं शृणुगोत्रारे मयाद्यानुमितन्त्विदम् ॥ भवान्तरे कृतं पापं श्रुता निन्दा भवस्य चेत् ॥ ३६ ॥

जिनको हेतु वादसे रहित, तथा सांख्ययोगके अर्थ देनेवाले कहते हैं, मैं उन्हींसे वरदान वरण करूंगा ॥ ३२ ॥ विभु शम्भुसे परे कोई तत्त्व नहीं है, वे सब कारणोंके कारण तथा ब्रह्मा, विष्णु, आदि देवताओंमें श्रेष्ठ और गुणोंसे परे हैं ॥ ३३ ॥ मैं न तुमसे वर मांगता हूं न विष्णुसे न ब्रह्मासे और न किसी देवतासे, केवल मुझे शंकरही वर देनेवाले हों ॥ ३४ ॥ अब बहुत कहनेसे क्या है ? मैं अपने मतको सत्य २ कहता हूं कि शिवसे दूसरे देवता आदिकी इच्छा नहीं करता ॥ ३५ ॥ हे इन्द्र ! मेरे भावको सुनो, मैंने आज यह अनुमान

किया है कि यदि शिवजीकी निन्दा सुनी तो जन्मान्तरमें पाप किया है ॥ ३६ ॥ शिवजीकी निन्दाको सुनकर उसी समय अपने शरीरको त्याग दे तो अपने देहको नष्ट करके शीघ्र ही शिवलोककी प्राप्ति होती है ॥ ३७ ॥ हे सुराधम ! चाहे मेरी दूध पीनेकी इच्छा रहजाय पर तुझको शिवके अस्त्रसे मारकर अपने शरीरको त्यागन करूंगा ॥ ३८ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहकर उपमन्युने स्वयम् मरनेकी इच्छाकर और दूधकी इच्छाको त्याग इन्द्रके मारनेको तैयार हुआ ॥ ३९ ॥ उस मुनिने उस आधारसे भस्मको लेकर और उसे अघोर अस्त्रसे अभि मंत्रित कर इन्द्रके ऊपर उसे त्यागकर बडा शब्द किया ॥ ४० ॥ और उपमन्युने इष्ट देवके चरण युगलको स्मरण कर, अपने शरीरके दग्ध

श्रुत्वा निन्दाम्भवस्याथ तत्क्षणादेव संत्यजेत् ॥ स्वदेहं ॥ तन्निहत्याशु शिवलोकं स गच्छति ॥३७॥आस्तां तावन्ममेच्छेयं क्षीरम्प्रति सुराधम ॥ निहत्य त्वां शिवास्त्रेण त्यजाम्येतत्कलेवरम् ॥३८॥ नन्दीश्वर उवाच॥एवमुक्तोपमन्युस्तं मर्तुं व्यवसितः स्वयम्॥क्षीरे वाञ्छामपि त्यक्त्वा निहन्तुं शक्रमुद्यतः॥३९॥ भस्मादाय तदाधारादघोस्त्राभिमन्त्रितम् ॥ विसृज्य शक्रमुद्दिश्य ननाद स मुनिस्तदा ॥४०॥ स्मृत्वा स्वेष्टपदद्वन्द्वं स्वदेहं दग्धुमुद्यतः ॥आग्नेयीं धारणां बिभ्रदुपमन्युरवस्थितः ॥ ४१ ॥ एवं व्यवसिते विप्रे भगवाञ्छक्ररूपवान् ॥ वारयामास सौम्येन धारणान्तस्य योगिनः ॥४२॥ तद्विसृष्टमघोरास्त्रं नन्दीश्वरनियोगतः ॥ जगृहे मन्यतः क्षिप्तं नन्दी शंकरवल्लभम् ॥४३॥ स्वरूपमेव भगवानास्थाय परमेश्वरः ॥ दर्शयामास विप्राय बालेन्दुकृतशेखरम् ॥ ४४ ॥ क्षीरार्णवसहस्रं च दध्यादेवरर्णवन्तथा ॥ भक्ष्यभोज्यार्णवन्तस्मै दर्शयामास स प्रभुः ॥ ४५ ॥

करनेकी इच्छासे अग्निकी धारणा करके स्थिति की ॥ ४१ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणके स्थित होनेपर इन्द्ररूपधारी भगवान् शिव सौम्य रूपसे उस योगी की धारणाको निवारण करते हुये ॥ ४२ ॥ उस नन्दीश्वरके नियोगसे शंकरके प्रिय उस अघोर अस्त्रको छोडनेपर नन्दीश्वरने उसको मध्यमें ही ग्रहण किया ॥ ४३ ॥ तब भगवान् शिवजीने अपने रूपको धारण कर बाल चन्द्रमाको शिरपर धारे ब्राह्मणको दर्शन दिया ॥ ४४ ॥ उस प्रभुने सहस्रों दूधके समुद्र, दहीके समुद्र, तथा भक्ष्य और भोज्य पदार्थोंके समूहोंको उसे दिखाया ॥ ४५ ॥

इस प्रकार उन शिवजीने पार्वतीके सहित बैलपर चढे गणोंसहित त्रिशूल आदि सुन्दर २ अस्त्रोंसे शोभायमान अपना रूप दिखाया ॥ ४६ ॥ स्वर्ग लोकमें दुन्दुभि बजी और पुष्पोंकी वर्षा हुई, विष्णु, ब्रह्मा, आदि देवताओंसे दशों दिशा पूर्ण हुई ॥ ४७ ॥ तब आनन्द सागरकी लहरोंसे पूर्ण हुआ उपमन्यु भक्तिसे नम्र हुए चित्तसे दंडवत् कर भूमिमें लेट गया ॥ ४८ ॥इसी समय वहां मुस्कराते हुए, भगवान् शिव आओ, आओ, इस प्रकार बुलाकर, मस्तकको सूंघकर वरदान देते हुये ॥ ४९ ॥ शिवजी बोले, हे वत्स ! हे उपमन्यो ! हे विप्रर्षे ! मैं तुम्हारे सुन्दर आचरणसे संतुष्ट हूं, तू दृढ भक्त है मैंने तेरी परीक्षा की ॥ ५० ॥ निरंतर भाई बन्धुओं सहित अपनी इच्छानुसार भक्ष्य

एवं स ददृशे शम्भुर्देव्या सार्द्धं वृषोपरि ॥ गणेश्वरैस्त्रिशूलाद्यैर्दिव्यास्त्रैरपि संवृतः॥४६॥दिवि दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात ह ॥ विष्णुब्रह्मेन्द्रप्रमुखैर्देवैश्छन्ना दिशो दश ॥ ४७ ॥ अथोपमन्युरानन्दसमुद्रोर्मिभिरावृतः ॥ पपात दण्डवद्भूमौ भक्तिनम्रेण चेतसा ॥४८॥ एतस्मिन्समये तत्र सस्मितो भगवान्भवः॥एह्येहीति समाहूय मूर्ध्न्याघ्राय ददौ वरान् ॥४९॥ शिव उवाच ॥ वत्सोपमन्यो तुष्टोऽस्मि त्वदाचरणतो वरात्॥दृढभक्तोऽसि विप्रर्षे मया जिज्ञासितोऽधुना ॥ ५० ॥ भक्ष्यभोगान्यथाकामं बान्धवैर्भुंक्ष्व सर्वदा ॥ सुखी भव सदा दुःखनिर्मुक्तो भक्तिमान्मम ॥५१॥ उपमन्यो महाभाग तवाम्बैषा हि पार्वती ॥ मया पुत्रीकृतो ह्यद्य कुमारत्वं सनातनम् ॥ ५२ ॥ दुग्धदध्याज्यमधुनामर्णवाश्च सहस्रशः ॥ भक्ष्यभोज्यादिवस्तूनामर्णवाश्चाखिलास्तथा ॥ ५३ ॥ तुभ्यं दत्ता मया प्रीत्या त्वं गृह्णीष्व महामुने ॥ अमरत्वन्तथा दक्ष गाणपत्यं च शाश्वतम् ॥ ५४ ॥ पिताहन्ते महादेवो माता ते जगदम्बिका॥ वरान्वरय सुप्रीत्या मनोभिलषितान्परान् ॥ ५५ ॥

भोज्योंको भोग और सदा निर्द्वन्द्व होकर सुखी हो, तथा मेरी भक्ति करनेमें तत्पर हो ॥ ५१ ॥ हे उपमन्यो ! हे महाभाग ! यह पार्वती तुम्हारी माता है, आज मैंने तुझे अपना पुत्र किया और तुम निरंतर कुमारपनको प्राप्त होगे ॥ ५२ ॥ दूध, दही, घी, शहद, (मिष्टान्न) इनके सहस्रों समुद्र तथा भक्ष्य, भोज्य आदि वस्तुओंके सम्पूर्ण समुद्र हैं ॥ ५३ ॥ हे महामुने ! हे दक्ष ! यह मैंने तुझे दिये तू प्रसन्नता सहित ग्रहण कर देवतापनको तथा गणकी पदवीको प्राप्त हो ॥ ५४ ॥ तेरा पिता मैं साक्षात् महादेव हूं, और

माता पार्वती है प्रसन्नता सहित, मनसे अभिलषित हुये वरोंको ग्रहण कर ॥५५॥ तू अजर, अमर, दुःखसे रहित तथा यशस्वी, सुन्दर तेजस्वी, दिव्य ज्ञानी, महाप्रभु हो ॥ ५६ ॥ इस प्रकार शिवजीने प्रसन्नहो उसके परमतपको स्मरण कर उपमन्यु मुनिको दिव्य दश वर दिये ॥५७॥पशुपतिसम्बन्धी व्रत, तथा ज्ञान और व्रतयोग कथनशक्तित्व तथा पटुता और अपना स्थान यह इसको दिया ॥५८॥ इस प्रकार महादेवने उसे वरदान देकर हाथोंसे उसे ग्रहण कर मस्तकको सूंघ, पार्वतीसे कहा कि--यह तेरा पुत्र है ॥ ५९ ॥ प्रीतिसे सुनकर पार्वतीने मस्तकपर अपना हस्तक मल रख उसे अक्षय कुमारपद दान किया ॥ ६० ॥ साकार क्षीरसागर तथा क्षीरके समान स्वादयुक्त समुद्र पिण्डरूपसे निकटमें स्थित होकर

अजरश्चामरश्चैव भवत्वं दुःखवर्जितः ॥ यशस्वी वरतेजस्वी दिव्यज्ञानी महाप्रभुः ॥५६॥ अथ शम्भुः प्रसन्नात्मा स्मृत्वा तस्य तपो महत् ॥ पुनर्दश वरान्दिव्यान्मुनये हयूपमन्यवे॥५७॥व्रतं पाशुपतं ज्ञानं व्रतयोगं च तत्त्वतः ॥ ददौ तस्मै प्रवक्तृत्वं पाटवं च निजं पदम् ॥५८॥ एवन्दत्त्वा महादेवः कराभ्यामुपगृह्य तम् ॥ मूर्ध्न्यघ्राय सुतस्तेऽयमिति देव्यै न्यवेदयत् ॥५९॥ देवी च शृण्वती प्रीत्या मूर्ध्निदेशे कराम्बुजम् ॥ विन्यस्य प्रददौ तस्मै कुमारपदमक्षयम् ॥ ६० ॥ क्षीराब्धिमपि साकारं क्षीरस्वादुकरोदधिः ॥ उपास्थाय ददौ तस्मै पिण्डीभूतमनश्वरम् ॥६१॥ योगैश्वर्य्यं सदा तुष्टम्ब्रह्मविद्यामनश्वराम् ॥ समृद्धिं परमान्तस्मै ददौ सन्तुष्टमानसः ॥ ६२ ॥ सोऽपि लब्ध्वा वरान्दिव्यान्कुमारत्वं च सर्वदा ॥ तस्माच्छिवाच्च तस्याश्च शिवाया मुदितोऽभवत् ॥ ६३ ॥ ततः प्रसन्नचेतस्कः सुप्रणम्य कृताञ्जलिः ॥ ययाचे स वरंप्रीत्या देवदेवान्महेश्वरात् ॥ ६४ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ प्रसीद देवदेवेश प्रसीद परमेश्वर ॥ स्वभक्तिन्देहि परमां दिव्यामव्यभिचारिणीम् ॥ ६५ ॥

उस मुनिके लिये दिया ॥ ६१ ॥ अविनाशी, योगैश्वर्य, तथा सनातनी ब्रह्मविद्या, तथा परमसमृद्धिको संतुष्टचित्त हो उसके लिये प्रदान किया ॥ ६२ ॥ वह मुनि उन शिव पार्वतीसे, दिव्य वर तथा कुमारपदको पाकर प्रसन्न हुआ ॥ ६३ ॥ तब प्रसन्नचित्त हो मुनि हाथ जोड प्रणाम कर देवोंके देव महादेवसे यह वरदान मांगने लगा ॥ ६४ ॥ उपमन्यु बोला, हे देवदेवेश ! हे परमेश्वर ! प्रसन्न होओ प्रसन्न होओ, अपनी परम नष्ट न होनेवाली दिव्य भक्ति मुझे दीजिये ॥ ६५ ॥

हे महादेव ! अपने सम्बन्धियोंमें मेरी श्रद्धा और सदा अपना दास पद और परम स्नेह तथा अपनी निकटता दीजिये ॥ ६६ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहकर वह ब्राह्मण, उपमन्यु प्रसन्न होकर हर्षसे गद्गदवाणीद्वारा उन महादेवकी स्तुति करने लगा ॥६७॥इस प्रकार सबके सुनते हुये प्रभु प्रसन्न आत्मा, सबके ईश्वर, शिवजी उपमन्युसे कहने लगे ॥ ६८ ॥ शिवजी बोले, हे वत्स ! हे उपमन्यो ! हे अनघ ! तू धन्य है और शिवका अतिभक्त है जो तैंने मांगा है सो सब मैंने दिया ॥ ६९ ॥ तू अजर, अमर होकर तथा दुःखोंसे छूटकर सबोंसे पूजनीय, निर्विकारी, भक्तोंमें श्रेष्ठ होगा ॥ ७० ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! तेरे बान्धव, कुल और गोत्र, अक्षय होगा, और मुझमें सदैव भक्ति रहेगी ॥ ७१ ॥ हे मुने ! हे

श्रद्धान्देहि महादेव स्वसंबन्धिषु मे सदा॥स्वदास्यं परमं स्नेहं स्वसान्निध्यं च सर्वदा ॥६६॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमुक्त्वा प्रसन्नात्मा हर्षगद्गदया गिरा ॥ तुष्टाव स महादेवमुपमन्युर्द्विजोत्तमः॥६७॥एवमुक्तश्शिवस्तेन सर्वेषां शृण्वताम्प्रभुः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मोपमन्युं सकलेश्वरः ॥६८॥ शिव उवाच ॥ वत्सोपमन्यो धन्यस्त्वं मम भक्तो विशेषतः ॥सर्वन्दत्तम्मया ते हि यद्दत्तम्भवतानघ॥६९॥अजरश्चामरश्च त्वं सर्वदा दुःखवर्जितः॥सर्वपूज्यो निर्विकारी भक्तानाम्प्रवरो भव॥७०॥अक्षया बान्धवाश्चैव कुलं गोत्रं च ते सदा ॥भविष्यति द्विजश्रेष्ठ मयि भक्तिश्च शाश्वती॥७१॥सान्निध्यं चाश्रमे नित्यं करिष्यामि मुने तव ॥ तिष्ठ वत्स यथा कामं नोत्कण्ठां च करिष्यसि ॥७२॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमुक्त्वा स भगवांस्तस्मै दत्त्वा वरान्वरान् ॥ सांबश्च सगणस्सद्यस्तत्रैवान्तर्दधे प्रभुः ॥ ७३ ॥ उपमन्युः प्रसन्नात्मा प्राप्य शम्भोर्वरान्वरान् ॥ जगाम जननीस्थानं मात्रे सर्वम वर्णयत् ॥ ॥ ७४ ॥ तच्छ्रुत्वा तस्य जननी महाहर्षमवाप सा ॥ सर्वपूज्योऽभवत्सोऽपि सुखं प्रापाधिकं सदा ॥ ७५ ॥

वत्स ! मैं तेरे आश्रमके नित्य समीप रहूंगा और तू अपनी इच्छानुसार चाहे जहां स्थित हो उत्कंठा नहीं होगी ॥ ७२ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहकर भगवान् शिव उसे सुन्दर वर दे पार्वती सहित तथा अपने गणोंसहित उसी समय अन्तर्धान होगये ॥ ७३ ॥ और प्रसन्न हुये उपमन्युने शिवजीके श्रेष्ठ वरदानको प्राप्त करके अपनी माताके स्थानमें जाय मातासे वृत्तान्त वर्णन किया ॥ ७४ ॥ यह सब समाचार सुन उसकी माता बडे हर्षको प्राप्त हुई और सबसे सत्कृत हो अधिक सुखको प्राप्त हुई ॥ ७५ ॥

हे तात ! इस प्रकार परमात्मा शिवका सर्वदा सज्जनोंको सुख देनेवाला सुरेश्वर नामक अवतार तुमसे वर्णन किया ॥ ७६ ॥ यह इतिहास निष्पाप तथा सब मनोरथोंका देनेवाला और सत्पुरुषोंको स्वर्ग, यश, आयु, भोग्य और मुक्तिका देनेवाला है ॥ ७७ ॥ जो पुरुष सावधान चित्त होकर इसको भक्तिसे सुनता है अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर अन्त समयमें शिवलोकको प्राप्त होता है ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां तृ० श० रु० सुरेश्वराख्यशिवावतारचरित्रवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥ नन्दीश्वर बोले, कि हे सनत्कुमार ! सर्वव्यापक परमात्मा शिवका जटिल नामक, बडा पवित्र अवतार प्रीतिके साथ सुनो ॥ १ ॥ पहले सती, दक्षकी कन्या

इत्थन्ते वर्णितस्तात शिवस्य परमात्मनः ॥सुरेश्वरावतारो हि सर्वदा सुखदः सताम्॥७६॥इदमाख्यानमनघं सर्वकामफलप्रदम् ॥ स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ॥७७॥य एतच्छृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः ॥इह सर्वसुखं भुक्त्वा सोऽन्ते शिव गतिं लभेत् ॥७८॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां सुरेश्वराख्यशिवावतारचरितवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥ (८३) नन्दीश्वर उवाच॥सनत्कुमार सुप्रीत्या शिवस्य परमात्मनः॥ अवतारं शृणु विभोर्जटिलाह्वं सुपावनम्॥ ॥१॥पुरा सती दक्षकन्या त्यक्त्वा देहं पितुर्मखे॥स्वपित्राऽनादृता जज्ञे मेनायां हिमभूधरात्॥२॥सा गत्वा गहनेऽरण्ये तेपे सुविमलं तपः ॥ शंकरम्पतिमिच्छन्ती सखीभ्यां संयुता शिवा ॥३॥ तत्तपःसुपरीक्षार्थं सप्तर्षीन्प्रैषयच्छिवः॥तपःस्थानं तु पार्वत्या नानालीलाविशारदः ॥४॥ ते गत्वा तत्र मुनयः परीक्षां चक्रुरादरात् ॥ तस्याः सुयत्नतो नैव समर्था ह्यभवंश्च ते ॥ ५ ॥

पार्वती, अपने पितासे अनादर की हुई पिताके यज्ञमें अपने शरीरको त्यागकर हिमालय पर्वतसे मेनामें उत्पन्न हुई ॥ २ ॥ वह पार्वती अपने पति शिवकी इच्छा करती हुई सखियोंके सहित सघन वनमें जाकर बडी निर्मल तपस्या करने लगी ॥ ३ ॥ तब अनेक प्रकारकी लीलामें निपुण शिवजीने उस पार्वतीके तपकी परीक्षा करनेके निमित्त तपके स्थानमें सप्त ऋषियोंको भेजा ॥ ४ ॥ वे मुनि वहां जा यत्नपूर्वक आदरसे उसकी परीक्षा करते हुये, परन्तु यथार्थ परीक्षा करनेमें समर्थ न हुए ॥ ५ ॥

फिर लौटकर शिवको नमस्कार करके सब वृत्तान्तको निवेदन कर शिवजीकी आज्ञा पाकर स्वर्ग लोकको चले गये ॥ ६ ॥ उत्पत्ति करनेवाले प्रभु शंकरने उन मुनियोंके अपने स्थानमें चले जानेपर स्वयं पार्वतीके भावकी परीक्षा करनेकी इच्छा की ॥ ७ ॥ तब प्रसन्न हुए तपस्वी प्रभु शिवजीने अपनी इच्छारूप शांतिके कारण अद्भुत ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण किया ॥ ८ ॥ बडे बूढे तथा ब्राह्मणके शरीरको धारण किये, अपने तेजसे प्रज्वलित मनसे प्रसन्न दण्ड और छत्र धारे बडे उज्ज्वल भेष ॥ ९ ॥ जटिल रूपको धरकर अति प्रीति सहित; भक्तवत्सल, कल्याणकारी शम्भु, पार्वतीके वनको गये ॥ १० ॥ वहांपर सखियोंसे घिरी हुई, वेदीके ऊपर स्थित, शुद्ध,

तत्रागत्य शिवं नत्वा वृत्तान्तं च निवेद्य तत् ॥ तदाज्ञां समनुप्राप्य स्वर्लोकं जग्मुरादरात् ॥ ६ ॥ गतेषु तेषु मुनिषु स्वस्थानं शंकरःस्वयम् ॥ परीक्षितुं शिवावृत्तमैच्छत्सूतिकरः प्रभुः ॥७॥ सुप्रसन्नस्तपस्वीच्छाशमनादयमीश्वरः ॥ ब्रह्मचर्य्यस्वरूपोऽभूत्त दाद्भुततरः प्रभुः॥८॥ अतीव स्थविरो विप्रदेहधारी स्वतेजसा ॥ प्रज्वलन्मनसा हृष्टो दण्डी छत्री महोज्ज्वलः ॥९॥ धृत्वैवं जा टिलं रूपं जगाम गिरिजावनम् ॥ अतिप्रीतियुतःशम्भुश्शङ्करो भक्तवत्सलः ॥ १० ॥ तत्रापश्यत्स्थितान्देवीं सखीभिः परिवा रिताम् ॥ वेदिकोपरि शुद्धान्तांशिवामिव विधोः कलाम् ॥ ११ ॥ शंभुर्निरीक्ष्य तान्देवीं ब्रह्मचारिस्वरूपवान् ॥ उपकण्ठं ययौ प्रीत्या चोत्सुकी भक्तवत्सलः ॥१२॥ आगतं सा तदा दृष्ट्वा ब्राह्मणं तेजसाद्भुतम् ॥ अंगेषु लोमशं शान्तं दण्डचर्मसमन्वि तम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मचर्य्यधरं वृद्धं जटिलं सकमण्डलुम् ॥ अपूजयत्परप्रीत्या सर्वपूजोपहारकैः ॥ १४ ॥ ततस्सा पार्वती देवी पूजितं परया मुदा ॥ कुशलं पर्यपृच्छत्तं ब्रह्मचारिणमादरात् ॥ १५ ॥

चन्द्रमाकी कलाके समान स्थित हुई उस पार्वतीको देखा ॥ ११ ॥ ब्रह्मचारीका स्वरूप धारे भक्तवत्सल शिवजी उत्कंठित होकर उस पार्वतीको देख उसके समीप गये ॥ १२ ॥ उसने तेजसे अद्भुत, अंगोंमें रोमवाले शांत स्वरूप, दण्ड तथा चर्मसे युक्त हुये उस ब्राह्मणको आता हुआ देखा ॥ १३ ॥ जो कि ब्रह्मचर्य धारण किये वृद्ध जटिल कमण्डलु लिये थे, देखकर परम प्रीतिसे सब पूजाकी सामग्री द्वारा उनका सत्कार किया ॥ १४ ॥ और उस देवी पार्वतीने पूजामें तत्पर हो आनन्द पूर्वक आदर सहित उन ब्रह्मचारीसे

कुशल पूँछी ॥ १५ ॥ हे वेदजाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! तुम ब्रह्मचारीके रूपसे कौन हो और कहांसे आये हो जो इस वनको प्रकाशित करते हो ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार पार्वतीके पूँछनेपर वह ब्रह्मचारी ब्राह्मण पार्वतीकी परीक्षाके कारण शीघ्रही प्रीतिसहित बोला ॥ १७ ॥ ब्रह्मचारी बोला, मैं अपनी इच्छानुसार फिरनेवाला, ब्रह्मचारी, ब्राह्मण, तपस्वी सुख देनेवाला और दूसरोंका उपकार करनेवाला हूं ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार वह ब्रह्मचारी भक्तवत्सल शंकर अपने रूपको छिपाते हुये पार्वतीके निकट स्थित हुए ॥ १९ ॥ ब्रह्मचारी बोले, हे महादेवि ! क्या कहूं ? कहने योग्य नहीं है, बडा अनर्थकारी महाविकृत वृत्तान्त दीखता है ॥ २० ॥ सुन्दर भोगोंके साधनरूप, सुखके कारण

ब्रह्मचारिस्वरूपेण कस्त्वं हि कुत आगतः॥इदं वनं भासयसि वद वेदविदां वर ॥१६॥नन्दीश्वर उवाच॥ इति पृष्टस्तु पार्वत्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः ॥ प्रत्युवाच द्रुतम्प्रीत्या शिवाभावपरीक्षया ॥ १७॥ब्रह्मचार्य्युवाच॥ अहमिच्छाभिगामी च ब्रह्मचारी द्विजोस्मि वै ॥ तपस्वी सुखदोऽन्येषामुपकारी न संशयः॥१८॥नन्दीश्वर उवाच ॥इत्युक्त्वा ब्रह्मचारी स शंकरो भक्तवत्सलः ॥ तस्थिवानुपकण्ठं स गोपायन्रूपमात्मनः ॥१९॥ ब्रह्मचार्य्युवाच॥ किम्ब्रवीमि महादेवि कथनीयन्न विद्यते ॥ महानर्थकरं वृत्तं दृश्यते विकृतं महत् ॥२०॥नवे वयसि सद्भोगसाधने सुखकारणे॥महोपचारसद्भोगैर्वृथैव त्वं तपस्यसि॥२१॥ का त्वं कस्यासि तनया किमर्थं विजने वने ॥ तपश्चरसि दुर्धर्षं मुनिभिः प्रयतात्मभिः ॥२२॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी ॥उवाच वचनं प्रीत्या ब्रह्मचारिणमुत्तमम्॥२३॥पार्वत्युवाच॥शृणु विप्र ब्रह्मचारिन्मद्वृत्तमखिलं मुने॥जन्म मे भारते वर्षे साम्प्रतं हिमवद्गृहे ॥ २४ ॥ पूर्वं दक्षगृहे जन्म सती शङ्करकामिनी ॥ योगेन त्यक्तदेहाहं तातेन पतिनिन्दिना ॥ २५ ॥

वाकी नवीन अवस्था तथा महाउपचारवाले सुन्दर भोगोंसे छूटी हुई तुम वृथाही तप करती हो ॥२१॥ तुम कौन हो ? किस लिये निर्जनवनमें जितेन्द्रियनियोंके समान कठिन तप कर रही हो ?॥ २२ ॥ नंदीश्वर बोले, ऐसा उनका वचन सुन हँसती हुई पार्वती ब्रह्मचारीसे प्रेमपूर्वक यह श्रेष्ठ वचन बोली ॥ २३ ॥ पार्वती बोली, हे विप्र ! हे ब्रह्मचारिन् ! हे मुने ! मेरे सब समाचार सुनो, अब मेरा जन्म हिमालयके घरमें हुआ है ॥ २४ ॥ पहले दक्षके घर उत्पन्न हुई सती शंकरकी स्त्री थी, मेरे पति शिवजीकी निंदा करनेवाले पिताके यहां मैंने योग द्वारा

शरीर त्याग दिया था ॥ २५ ॥ हे द्विज ! इस जन्में बडे पुण्यसे प्राप्त होकर शिवजी मुझे त्याग, कामदेवको भस्म कर चले गये ॥ २६ ॥ शिवजीके चले जानेपर दुःखके कारण लज्जित हुई मैं पिताके घरसे गुरुके वचन नियम करके इस वनमें तप करनेको आई हूं ॥ २७ ॥ मन वचन कर्मसे, साक्षात् शिवरूप पतिके प्रेमके कारण मेरा तप है, मैं सत्य कहती हूं; असत्य इसमें कुछ नहीं, इसमें शिवजी साक्षी हैं ॥ २८ ॥ मैं जानती हूं कि दुर्लभ वस्तु मुझे किस प्रकार प्राप्त हो सकती है, तो भी मनकी उत्कंठासे अब मैं तप करती हूं ॥ २९ ॥ मैं इन्द्र आदि देवताओं तथा विष्णु और ब्रह्माको छोडकर केवल पिनाकधारी शिवको पति पानेकी इच्छा करती हूं ॥ ३० ॥ नंदीश्वर बोले,

अत्र जन्मनि संप्राप्य सुपुण्येन शिवो द्विज॥मां त्यक्त्वा भस्मसात्कृत्वा मन्मथं स जगाम ह॥२६॥ प्रयाते शङ्करे तापाद्रीडिताहं पितुर्गृहात् ॥ आगच्छमत्र तपसे गुरुवाक्येन संयता॥२७॥मनसा वचसा साक्षात्कर्मणा पतिभावतः॥ सत्यम्ब्रवीमि नोऽसत्यं संवृतः शङ्करो मया ॥२८॥ जानामि दुर्लभं वस्तु कथम्प्राप्यं मया भवेत् ॥तथापि मनसौत्सुक्यात्तप्यते मे तपोऽधुना॥२९॥ हित्वेन्द्रप्रमुखान्देवान्विष्णुम्ब्रह्माणमप्यहम्॥पतिम्पिनाकपाणिं वै प्राप्तुमिच्छामि सत्यतः॥३०॥नन्दीश्वर उवाच॥इत्येवं वचनं श्रुत्वा पार्वत्या हि सुनिश्चितम्॥मुने स जटिलो रुद्रो विहसन्वाक्यमब्रवीत्॥३१॥जटिल उवाच॥ हिमाचलसुते देवि का बुद्धिः स्वीकृता त्वया॥ रुद्रार्थं विबुधान्हित्वा करोषि विपुलन्तपः॥३२॥जानाम्यहं च तं रुद्रं शृणु त्वम्प्रवदामि ते॥ वृषध्वजस्स रुद्रो हि विकृतात्मा जटाधरः॥३३॥एकाकी च सदा नित्यं विरागी च विशेषतः ॥तस्मात्त्वं तेन रुद्रेण मनो योक्तुं न चार्हसि॥३४॥

हे मुने ! ऐसा पार्वतीका निश्चित वचन सुन जटिल रुद्र हँसकर यह वचन बोले ॥ ३१ ॥ जटिल बोले, हे हिमाचलकी पुत्रि ! हे देवि ! तूने कैसी बुद्धि स्वीकारकी देवताओंको छोडकर शिवजीके निमित्त कठिन तप करती है ॥ ३२ ॥ मैं उस रुद्रको जानता हूं सुन तुझसे कहता हूं, वह रुद्र बैलपर चढनेवाले विकारी आत्मा और जटाधारी हैं ॥ ३३ ॥ सदा एकाकी रहते, विशेषकर वैरागी हैं, इस कारण तुझको उन शिवमें मन लगाना उचित नहीं है ॥ ३४ ॥

हे देवि ! तुम्हारे शिवका रूप आदि सब विरुद्ध हैं सो मुझे अच्छा नहीं लगता, आगे जैसी तेरी इच्छा हो वैसा कर ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहकर फिर भी ब्रह्मचारी रूपधारी शिवने उसकी परीक्षा करनेकी इच्छासे उसके आगे अनेक प्रकारसे अपनी निन्दा की ॥३६॥ यह न सहने योग्य ब्राह्मणका वचन सुन देवी पार्वती क्रोधित हो उस शिवकी निन्दामें तत्पर हुये ब्राह्मणसे बोली ॥ ३७ ॥ इतना मैंने जाना कि तू कोई मारनेके योग्य है, परन्तु सब प्रकार जान लिया कि इस समय तू अवध्य है ॥ ३८ ॥ हे मूढ ! तू ब्रह्मचारीका स्वरूप धारे कोई धूर्त आया है, तूने शिवजीकी निन्दा की इससे मुझे बडा क्रोध उत्पन्न हुआ है ॥ ३९ ॥ तू शिवजीको नहीं जानता है और

सर्वं विरुद्धं रूपादि तव देवि हरस्य च॥मह्यं न रोचते ह्येतद्यदीच्छसि तथा कुरु॥३५॥ नन्दीश्वर उवाच॥इत्युक्त्वा च पुना रुद्रो ब्रह्मचारिस्वरूपवान्॥निनिन्द बहुधात्मानं तदग्रे तां परीक्षितुम्॥३६॥तच्छ्रुत्वा पार्वती देवी विप्रवाक्यं दुरासदम्॥प्रत्युवाच महाक्रुद्धा शिवनिन्दापरं च तम्॥३७॥एतावद्धि मया ज्ञातं कश्चिद्धन्यो भविष्यति॥परन्तु सकलं ज्ञातमवध्यो दृश्यतेऽधुना॥३८॥ब्रह्मचारिस्वरूपेण कश्चित्त्वं धूर्त आगतः॥शिवनिन्दा कृता मूढत्वया मन्युरभून्मम॥३९॥शिवं त्वंच न जानासि शिवात्त्वंहि बहिर्मुखः॥ त्वत्पूजा च कृता यन्मे तस्मात्तापयुताऽभवम्॥४०॥शिवनिन्दां करोतीह तत्त्वमज्ञाय यः पुमान्॥ आजन्मसंचितं पुण्यं तस्य भस्मी भवत्युत॥४१॥शिवविद्वेषिणं स्पृष्ट्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥४२॥रेरे दुष्ट त्वया प्रोक्तमहं जानामि शंकरम्॥ निश्चयेन न विज्ञातः शिव एव परः प्रभुः॥४३॥ यथा तथा भवेद्रुद्रो मायया बहुरूपवान्॥ ममाभीष्टप्रदोऽत्यन्तं निर्विकारः सताम्प्रियः॥४४॥

शिवजीसे बहिर्मुख है, मैंने जो तेरी पूजा की इस कारण मुझे संताप है ॥ ४० ॥ जो मनुष्य तत्त्वको न जानकर शिवजीकी निन्दा करता है उसका जन्मभरका इकट्ठा हुआ पुण्य भस्म होता है ॥ ४१ ॥ शिवके द्वेष करनेवालेको छूकर प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ४२ ॥ हे दुष्ट ! हे दुष्ट ! तूने कहा कि मैं शिवको जानता हूं सो निश्चय ही तू शिवको नहीं जानता, शिव ही बडे स्वामी हैं ॥ ४३ ॥ जैसे तैसे हो रुद्र मायासे बहुत रूपवाले हैं, तथा मेरे मनोरथोंको देनेवाले निर्विकार सत्पुरुषोंके प्रिय हैं ॥ ४४ ॥

नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं शिवा देवी शिवतत्त्वं जगाद सा ॥ यत्र ब्रह्मतया रुद्रः कथ्यते निर्गुणोऽव्ययः ॥ ४५ ॥ तदाकर्ण्य वचो देव्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः ॥ पुनर्वचनमादातुं यावदेव प्रचक्रमे ॥४६॥ प्रोवाच गिरिजा तावत्स्वसखीं विजयान्द्रुतम् ॥ शिवा सक्तमनोवृत्तिः शिवनिन्दापराङ्मुखी ॥४७॥ ॥ गिरिजोवाच ॥ वारणीयः प्रयत्नेन सख्ययं हि द्विजाधमः ॥ पुनर्वक्तुमनाश्चा यं शिवनिन्दां करिष्यति ॥४८॥ न केवलं भवेत्पापं निन्दाकर्तुः शिवस्य हि ॥ यो वै शृणोति तन्निन्दां पापभाक्स भवेदिह ॥ ४९ ॥ शिवनिन्दाकरो वध्यस्सर्वथा शिवकिंकरैः ॥ ब्राह्मणश्चेत्स वै त्याज्यो गन्तव्यं तत्स्थलाद्द्रुतम् ॥ ५० ॥ अयन्दुष्टः पुनर्निंदां करिष्यति शिवस्य हि ॥ ब्राह्मणत्वादवध्यश्च त्याज्योऽदृश्यश्च सर्वथा ॥ ५१ ॥ स्थलमेतद्द्रुतं हित्वा यास्यामोऽन्यत्र मा चिरम् ॥ यथा संभाषणं न स्यादनेनाविदुषा पुनः ॥ ५२ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा चोमया यावत्पदमुत्क्षिप्यते मुने ॥ असौ तावच्छिवः साक्षादाललम्बे पटं स्वयम् ॥ ५३ ॥

नन्दीश्वर बोले, यह कहकर देवी पार्वतीने उस शिव तत्त्वको वर्णन किया; जिसमें ब्रह्मरूपसे रुद्र निर्गुण, अविनाशी, कहे जाते हैं ॥४५॥ वह ब्रह्मचारी ब्राह्मण, पार्वतीके वचनको सुन जब हीं फिर कुछ कहनेको उद्यत हुआ ॥ ४६ ॥ तभी शिवमें आशक्त चित्तवाली, शिव निन्दासे रहित पार्वती अपनी सखी विजयासे शीघ्रतासे बोली ॥ ४७ ॥ पार्वती बोली, हे सखि ! यह नीच ब्राह्मण निवारण करने योग्य है जो कि फिर कहनेको उद्यत हुआ यह अब शिवकी निन्दा न करने पावे ॥ ४८ ॥ शिवकी निन्दा करनेवाले मनुष्यको केवल पाप नहीं होता है, किन्तु जो उनकी निन्दाको सुनता है वह भी पापका भागी होता है ॥ ४९ ॥ सब प्रकार शिवकी निन्दा करनेवाला पुरुष, शिवके

दासोंसे मारने योग्य है, यदि वह ब्राह्मण हो तो छोड देनेलायक है, जहां निन्दा होती है उस स्थलसे शीघ्र चला जाना चाहिये ॥ ५० ॥ यह दुष्ट फिर शिवकी निन्दा करेगा, ब्राह्मण होनेसे अवध्य है और त्यागने योग्य है तथा सब प्रकार न देखने लायक है ॥ ५१ ॥ मैं इस स्थलको त्यागकर शीघ्र ही और स्थानपर जाती हूं जिससे शीघ्र इस मूर्खके साथ फिर संभाषण न होवे ॥ ५२ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! ऐसा कहकर पार्वती जभी स्थान त्यागने लगीं तभी शिवजीने स्वयं उसके वस्त्रको धारण किया ॥ ५३ ॥

जैसा कि-पार्वती ध्यान करती थी वैसाही दिव्यस्वरूप धारणकर शिवजीने उसको दर्शन दिया, और नीचेको मुख करे स्थित हुई पार्वतीसे बोले ॥ ५४ ॥ शिवजी बोले हे शिवे ! हे अनघे ! तू मुझे त्यागकर वहां जाती है, तू मुझसे नहीं त्यागने योग्यहै, मैंने तेरी परीक्षा की तू दृढ भक्ति वाली है ॥ ५५ ॥ मैंने ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण कर तेरे भाव जाननेके निमित्त तेरे समीप आकर अनेक वचन कहे ॥ ५६ ॥ हे पार्वती ! मैं विशेषकर तेरी दृढभक्तिसे प्रसन्न हूं अपने चित्तसे चाहे हुये वरको मांग तुझे अदेय कोई वस्तु नहीं है ॥५७॥ हे प्रेमनिर्भरे ! आजसे लेकर मैं तेरे तपसे तेरा दास हुआहूं, तेरी सुन्दरता निहारे विना एक क्षणभरभी युगके समान बीतता है ॥ ५८ ॥ हे प्रिये ! अब तुझको लज्जा

कृत्वा स्वरूपं दिव्यं च शिवाध्यानं यथा तथा॥ दर्शयित्वा शिवायै तामुवाचावाङ्मुखीं शिवः ॥ ५४ ॥ शिव उवाच ॥ कुत्र त्वं यासि मां हित्वा न त्वन्त्याज्या मया शिवे॥ मया परीक्षितासि त्वं दृढभक्तासि मेऽनघे ॥ ५५ ॥ ब्रह्मचारिस्वरूपेण भावमिच्छु स्त्वदीयकम्॥ तवोपकण्ठमागत्य प्रावोचं विविधं वचः ॥ ५६ ॥ प्रसन्नोस्मि दृढं भक्त्या शिवे तव विशेषतः ॥ चित्तेप्सितं वरं ब्रूहि नादेयं विद्यते तव॥५७॥अद्यप्रभृति ते दासस्तपोभिः प्रेमनिर्भरे॥कृतोऽस्मितव सौन्दर्य्यात्क्षण एको युगायते ॥ ५८॥ त्यज्यतां च त्वया लज्जा मम पत्नी सनातनी॥ एहि प्रिये त्वया साकं द्रुतं यामि स्वकं गिरिम् ॥५९॥ इत्युक्तवति देवेशे शिवाति मुदमाप सा॥ तपोदुःखन्तु यत्सर्वं तज्जहौ द्रुतमेव हि॥६०॥ततः प्रहृष्टा सा दृष्ट्वा दिव्यरूपं शिवस्य तत्॥ प्रत्युवाच प्रभुं प्रीत्या लज्जयाधो मुखी शिवा ॥६१॥ शिवोवाच ॥ यदि प्रसन्नो देवेश करोषि च कृपां मयि ॥ पतिर्मे भव देवेश इत्युक्तश्शिवया शिवः ॥६२॥

त्याग करनी चाहिये, तू मेरी सदैवकी पत्नी है, यहां आ तेरे साथ शीघ्रही अपने कैलासपर्वतको जाऊंगा ॥ ५९ ॥ ऐसा देवेश शिवजीके कहनेपर वह पार्वती अतिआनन्दको प्राप्त हुई और तपका दुःख शीघ्रही त्यागन करती हुई ॥ ६० ॥ तब प्रसन्न हुई पार्वतीजी शिवजीके उस दिव्यरूपको देखकर लज्जासे नीचे मुख कियेहुये प्रीतिसे उन शिवजीसे बोलीं ॥ ६१ ॥ पार्वती बोली, हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं और मेरे ऊपर कृपाको करते हैं तो मेरे आप पति हों ऐसा पार्वतीने शिवजीसे कहा ॥ ६२ ॥

तब वह शिवजी उन पार्वतीके सहित विधिपूर्वक पाणिग्रहण (संस्कार) करके कैलासपर्वतको गये और पार्वतीने उन पतिको पाकर देवताओंका कार्य किया ॥ ६३ ॥ हे तात ! यह ब्रह्मचारीस्वरूपवाला तथा पार्वतीके भावकी परीक्षा करनेवाला शिवजीका अवतार मैंने तुमसे कहा ॥ ६४ ॥ मेरी कही हुई इस पापरहित उत्तम कथाको जो कोई प्रीतिसे सुनेगा वह सुखी होकर अच्छीगतिको प्राप्त होगा ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० ब्रह्मचारिशिवावतारवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमार ! परमात्मा शिवका नर्तकनट, नामक अवतार कहता हूं श्रवण करो ॥ १ ॥ जब वह हिमाचलकी पुत्री कालिका

गृहीत्वा विधिवत्पाणिं कैलासं स तया ययौ ॥ पतिं तं गिरिजा प्राप्य देवकार्य्यं चकार सा ॥६३॥ इति प्रोक्तस्तु ते तात ब्रह्मचारि स्वरूपकः ॥ शिवावतारो हि मया शिवाभावपरीक्षकः ॥ ६४ ॥ इदमाख्यानमनघं परमं व्याहृतं मया ॥ य एतच्छृणुया त्प्रीत्या ससुखी गतिमाप्नुयात् ॥६५॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां ब्रह्मचारिशिवावतारवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥ इति चतुरशीतिरवताराः (८४) नन्दीश्वर उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः ॥ अवतारं शृणु विभोस्सुनर्तकनटाह्वयम् ॥ १ ॥ यदा हि कालिका देवी पार्वती हिमवत्सुता ॥ तेपे तपस्सुविमलं वनं गत्वा शिवाप्तये ॥ २ ॥ तदा शिवः प्रसन्नो भूत्तस्यास्सुतपसो मुने ॥ तद्वृत्तसुपरीक्षार्थं वरं दातुम्मुदा ययौ ॥ ३ ॥ स्वरूपन्दर्शयामास तस्यै सुप्रीतमानसः ॥ वरम्ब्रूहीति चोवाच तां शिवां शंकरो मुने ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं दृष्ट्वा तद्रूपमुत्तमम् ॥ सुजहर्ष शिवातीव प्राह तं सुप्रणम्य सा ॥५॥ पार्वत्युवाच ॥ यदि प्रसन्नो देवेश मह्यं देयो वरो यदि ॥ पतिर्भव ममेशान कृपां कुरु ममोपरि ॥६॥

देवी पार्वती वनमें जाकर शिवकी प्राप्तिके निमित्त निर्मलतप करने लगी ॥ २ ॥ हे मुने ! तब उसके कठिनतपसे शिवजी प्रसन्न हुये, और देसके भावकी परीक्षाके लिये आनन्दसे वर देनेको वनमें गये ॥ ३ ॥ हे मुने ! और प्रसन्नचित्त हो पार्वतीको अपना स्वरूप दिखाय और 'वर मांगो' ऐसे उस पार्वतीसे शिवजीने कहा ॥ ४ ॥ यह शिवजीके वचन सुनकर उनके उत्तमरूपको देख पार्वती बडी प्रसन्न हुई और उनसे प्रणाम कर बोली ॥ ५ ॥ पार्वती बोली, हे देवेश ! ईशान ! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं, और यदि मेरे लिये वर

देने योग्य हैं तो मेरे पति होकर मेरे ऊपर कृपा करो ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! हे नाथ ! मैं तुम्हारी आज्ञासे अच्छी प्रकार पिताके घर जाती हूं और आपको मेरे पिताके समीप जाना चाहिये ॥ ७ ॥ और भिक्षुक होकर शुभ यशको विस्तारपूर्वक करते हुए आप पितासे मुझे मांगो, और मेरे पिताका सब गृहाश्रम, सफल करो ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! हे महेशान ! फिर शास्त्रोक्त विधिके अनुसार आप देवताओंके कार्य सिद्ध होनेके लिये मेरे साथ विवाह करनेके योग्य हैं ॥ ९ ॥ हे विभो ! आप मेरे मनोरथको पूर्ण करो, आप सदा निर्विकार हैं, आपका भक्तवत्सल नाम है मैं आपकी भक्ता हूं ॥ १० ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार पार्वतीसे कहे हुये भक्तवत्सल वह महेश्वर शिवजी बहुत

पितुर्गृहे भया सम्यग्गम्यते त्वदनुज्ञया ॥ गन्तव्यम्भवता नाथ मत्पितुः पार्श्वतः प्रभो॥७॥ याचस्व मान्ततो भिक्षुः ख्यापयंश्च यशः शुभम्॥ पितुर्मे सफलं सर्वं कुरु प्रीत्या गृहाश्रमम्॥८॥ततो यथोक्तविधिना कर्तुमर्हसि भो प्रभो॥ विवाहं त्वं महेशान देवानां कार्य्यसिद्धये ॥९॥ कामं मे पूरय विभो निर्विकारो भवान्सदा॥ भक्तवत्सलनामा हि तव भक्तास्म्यहं सदा ॥१०॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तस्स तया शंभुर्महेशो भक्तवत्सलः॥तथास्त्विति वचः प्रोच्यान्तर्हितस्स्वगिरिं ययौ॥११॥पार्वत्यपि ततः प्रीत्या स्वसखीभ्यां वयोन्विता॥ जगाम स्वपितुर्गेहं रूपं कृत्वा तु सार्थकम्॥१२॥पार्वत्यागमनं श्रुत्वा मेनया स हिमाचलः ॥ परिवार युतो द्रष्टुं स्वसुतां तां ययौ मुदा॥१३॥ दृष्ट्वा तां सुप्रसन्नास्या मानयामासतुर्गृहम्॥कारयामासतुः प्रीत्या महानन्दौ महोत्सवम् ॥ १४ ॥ धनन्ददौ द्विजादिभ्यो मेनागिरिवरस्तथा ॥ मंगलं कारयामास सवेदध्वनिमादरात् ॥ १५ ॥

अच्छा ऐसा ही होगा यह कहकर अन्तर्धान हो अपने कैलास पर्वतको चले गये ॥ ११ ॥ और फिर पार्वती भी प्रीति सहित सखियोंके साथ सार्थकरूप करके अपने पिताके घर गई ॥ १२ ॥ मेना स्त्री सहित हिमाचल पार्वतीका आना सुन, परिवार सहित आनन्दके साथ अपनी पुत्री पार्वतीको देखनेको गये ॥ १३ ॥ उस प्रसन्न मुखवाली पुत्रीको देखकर वे दोनों बडे आनन्दको प्राप्त हुए उसे अपने घर लाये और प्रीतिसे महा उत्सव कराया ॥ १४ ॥ मेना तथा हिमाचल ब्राह्मण याचक आदिको धन देते हुए और आदरसे

वेदध्वनिपूर्वक मंगलाचार कराये ॥ १५ ॥ तब अपनी पार्वती कन्या सहित उन दोनोंने अपने स्थानमें निवास किया, एक दिन वह मेना और हिमाचल दोनों गंगाजीमें स्नान करनेको गये ॥ १६ ॥ इसी अवसरमें भक्तवत्सल, सुन्दरलीलाकारी शम्भु, नर्तकनट (नाचनेवाले) का रूप धारण करके मेनकाके समीप गये॥१७॥बायें हाथमें शृंग(सींग)दाहिने हाथमें डमरूको धारण किये, पीठपर गुदडीडाले, लाल कपडे पहने नाचने गानेमें निपुण हो ॥१८॥ नटका रूप धार शिवजी बडे आनंदके साथ मेनकाके आंगनमें अनेक प्रकारके नृत्य तथा अतिमनोहर गान करने लगे

ततः स्वकन्यया सार्द्धमुवास प्रांगणे मुदा ॥ मेना च हिमवाञ्छैलः स्नातुं गंगां जगाम सः ॥१६॥ एतस्मिन्नन्तरे शम्भुःसुलीलो भक्तवत्सलः ॥ सुनर्तकनटो भूत्वा मेनकासन्निधिं ययौ ॥ १७ ॥ शृंगं वामे करे धृत्वा दक्षिणे डमरुन्तथा ॥ पृष्ठे कन्थां रक्तवासा नृत्य गानविशारदः ॥ १८ ॥ ततस्तु नटरूपोऽसौ मेनकाप्रांगणे मुदा ॥ चक्रे स नृत्यं विविधं गानञ्चाति मनोहरम् ॥ १९ ॥ शृंगञ्च डमरुन्तत्र वादयामास सुध्वनिम् ॥ महोतिं विविधाम्प्रीत्या स चकार मनोहराम् ॥२०॥ तन्द्रष्टुं नागरास्सर्वे पुरुषा श्च स्त्रियस्तथा ॥ आजग्मुस्सहसा तत्र बाला वृद्धा अपि ध्रुवम् ॥२१॥श्रुत्वा सुगीतं तन्दृष्ट्वासुनृत्यं च मनोहरम् ॥ सहसा मुमुहुः सर्वे मेनापि च तदा मुने ॥ २२ ॥ ततो मेनाशु रत्नानि स्वर्णपात्रस्थितानि च ॥ तस्मै दातुं ययौ प्रीत्या तद्दूतिप्रीतमानसा ॥ २३ ॥ तानि न स्वीचकारासौ भिक्षां चेते शिवां च ताम् ॥ पुनस्सुनृत्यं गानं च कौतुकात्कर्तुमुद्यतः ॥ २४ ॥

॥१९॥ सींग तथा डमरूकी बडी ध्वनिके साथ बजाने लगे और अनेक प्रकार मनोहर लीलाको प्रीतिपूर्वक करने लगे ॥२०॥ उस कौतुकको देखनेको नगरके पुरुष तथा स्त्रियें बालक वृद्ध सबही एक साथ आगये ॥ २१ ॥ हे मुने ! सुन्दर गीत सुन तथा सुन्दर मनोहर नाच देख, सहसा मोहित होगये और उस समय मेना प्रसन्न हुई ॥ २२ ॥ तब मेना उस कौतुकसे प्रसन्नमन हो शीघ्रही स्वर्णके पात्रमें रत्नोंको रख कर उसके लिये प्रीतिपूर्वक देने लगी ॥ २३ ॥ उनको उस नटने ग्रहण न करके उस पार्वतीकी भिक्षाको मांगा और फिर भी सुन्दर

नृत्यगानरूप कौतुक करनेको उद्यत हुआ ॥ २४ ॥ मेनाने उसका वचन सुन अतिविस्मित हो उसपर क्रोध किया और उसने उस भिक्षुकको ललकारा और बाहर करनेकी इच्छा की ॥ २५ ॥ इसी अवसरमें वहांपर गंगाजीसे स्नानकर हिमाचल आये और आगे आंगनमें स्थित हुए मनुष्य आकारवाले भिक्षुकको देखा ॥ २६ ॥ और उसने मेनाके मुखसे उस सब वृत्तान्तको सुनकर क्रोध किया और उस भिक्षुकके बाहर करनेकी सेवकोंको आज्ञा दी ॥ २७ ॥ हे मुनिसत्तम ! बडी अग्निके समान जलते हुए स्पर्श करनेके अयोग्य प्रज्वलित होते हुए उस नटको कोई भी निकालनेको समर्थ न हुआ ॥ ॥ २८ ॥ हे तात ! तब अनेक लीला करनेमें निपुण उस भिक्षुकने उस हिमालयको अपना

मेना तद्वचनं श्रुत्वा चुकोपाति सुविस्मिता ॥ भिक्षुकम्भर्त्सयामास बहिष्कर्तुमियेष सा ॥ २५ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र गंगातो गिरि राडचयौ ॥ ददर्श पुरतो भिक्षुं प्रांगणस्थं नराकृतिम् ॥२६॥ श्रुत्वा मेनामुखाद्वृत्तन्तत्सर्वं सुचुकोप सः॥आज्ञां चकारा नुचरान्बहिः कर्तुं च भिक्षुकम् ॥ २७ ॥ महाग्निमिव दुःस्पर्शं प्रज्वलन्तं सुतेजसम् ॥ न शशाक बहिः कर्तुं कोऽपि तं मुनि सत्तम ॥ २८ ॥ ततः स भिक्षुकस्तात नानालीलाविशारदः ॥ दर्शयामास शैलाय स्वप्रभावमनन्तकम् ॥ २९ ॥ शैलो ददर्श तन्तत्र विष्णुरूपधरन्द्रुतम् ॥ ततो ब्रह्मस्वरूपं च सूर्य्यरूपं ततः क्षणात् ॥ ३० ॥ ततो ददर्श तं तात रुद्ररूपं महाद्भुतम् ॥ पार्वती सहितं रम्यं विहसन्तं सुतेजसम् ॥ ३१ ॥ एवं सुबहुरूपाणि तस्य तत्र ददर्श सः ॥ सुविस्मितो बभूवाशु परमानन्द संप्लुतः ॥ ३२ ॥ अथासौ भिक्षुवर्य्यो हि तस्मात्तस्याश्च सूतिकृत् ॥ भिक्षां ययाचे दुर्गान्ता न्नान्यज्जग्राह किञ्चन ॥३३॥ ततश्चान्तर्दधे भिक्षुस्वरूपः परमेश्वरः ॥ स्वालयं स जगामाशु दुर्गावाक्यप्रणोदितः ॥ ३४ ॥

अनन्त महाप्रभाव दिखाया ॥ २९ ॥ शैलने उसको शीघ्रही विष्णुरूप धारे हुए वहां देखा फिर ब्रह्म स्वरूप, थोड़ी देरमें सूर्यरूपसे देखा ॥ ३० ॥ हे तात ! थोडी देर पीछे उसको महाअद्भुत रुद्ररूप धारे पार्वतीके सहित मनोहर हँसते हुए सुन्दर तेजसे युक्त देखा ॥ ३१ ॥ इस प्रकार उसने बहुत रूप उसके देखे, तब शीघ्रही परम आनन्द और पूर्ण विस्मय युक्त होगया ॥ ३२ ॥ तब उत्पत्ति करनेवाले भिक्षुकने उस हिमाचल तथा मेनासे पार्वतीकोही भिक्षामें मांगा और कुछ नहीं मांगा ॥ ३३ ॥ तब भिक्षुक रूपधारी शिवजी पार्वतीके वाक्यसे

प्रेरणा किये हुये शीघ्रही अपने स्थानको गये ॥ ३४ ॥ उस समय मेना और शैल हिमाचलको ज्ञान उत्पन्न होगया कि विभु शिव हम दोनोंको ठगकर अपने स्थानको चले गये ॥३५॥ उनको यह तपस्विनी कन्या देनी चाहिये, ऐसा विचार कर दोनोंकी शिवमें बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई ॥ ३६ ॥ तब बड़ी लीला करनेवाले रुद्रने अपने भक्तोंका उद्धार करके विधानसहित प्रीतिके साथ पर्वतीसे विवाह किया ॥ ३७ ॥ हे तात ! यह मैंने सुनर्तकनट नामक तथा पार्वतीके वाक्यका पूर्ण करनेवाला शिवका अवतार कहा ॥३८॥ यह बडे पापोंका नाशक बडा चरित्र मैंने तुमसे कहा, जो मनुष्य प्रीतिसे इस चरित्रको सुनता है वह सुखी हो सुन्दर गतिको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिव

तदा बभूव सुज्ञानं मेनाशैलेशयोरपि॥ आवां शिवो वञ्चयित्वा गतवान्स्वालयं विभुः॥३५॥अस्मै देया स्वकन्येयं पार्वती सुतप स्विनी ॥ एवं विचार्य्य च तयोः शिवे भक्तिरभूत्परा ॥३६॥ अतो रुद्रो महोतीश्च कृत्वा भक्तमुदावहम् ॥विवाहं कृतवान्प्रीत्या पार्वत्या स विधानतः॥३७॥ इति प्रोक्तस्तु ते तात सुनर्तकनटाह्वयः ॥ शिवावतारो हि मया शिवावाक्यप्रपूरकः ॥३८॥ इदमा ख्यानमनघं परमं व्याहृतम्मया॥य एतच्छृणुयात्प्रीत्या स सुखी गतिमाप्नुयात्॥३९॥इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसं हितायां सुनर्तकनटाह्वशिवावतारवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोध्यायः ॥३४॥ नन्दीश्वर उवाच॥सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः॥ अवतारं शृणु विभोस्साधुवेषद्विजाह्वयम् ॥१॥ मेनाहिमालयोर्भक्तिं शिवे ज्ञात्वा महोत्तमाम्॥चिन्तामापुस्सुरास्सर्वे मन्त्रयामासु रादरात् ॥ २ ॥ एकान्तभक्त्या शैलश्चेत्कन्यां दास्यति शम्भवे ॥ ध्रुवं निर्वाणतां सद्यः सम्प्राप्स्यति शिवस्य वै ॥ ३ ॥

महापुराण भा० तृ० श० रु० सुनर्तक नटाह्वशिवावतारवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमार ! विभु परमात्मा शिवका साधुवेष द्विजनामक अवतार कहता हूं सुनो ॥ १ ॥ शिवजीमें मेना और हिमालयकी बडी भक्ति जानकर सब देवताओंने बडी चिन्ता की और आदरसे सम्मति की ॥ २ ॥ यदि एकान्त भक्तिसे हिमालयपर्वत शिवजीको अपनी कन्या देंगे तो निश्चयही शीघ्र शिवजीकी निर्वाणता (परमपद) को प्राप्त होंगे ॥ ३ ॥

यदि अनन्त रत्नोंका आधाररूप यह पर्वत मोक्षको प्राप्त हो जायगा तो रत्नगर्भा भूमि मिथ्याही होगी ॥ ४ ॥ अपने स्थावररूपको त्यागकर दिव्यरूप धारण कर वह अपनी कन्या पार्वतीको शिवजीके निमित्त देकर शिवलोकको जायगा ॥ ५ ॥ शम्भुके अनुग्रहसे महादेवके सादृश्यको प्राप्तकर वहां सब भोगोंको भोग अन्तमें मोक्षको प्राप्त होगा ॥ ६ ॥ हे मुने ! ऐसा विचारकर सब देवता बृहस्पति गुरुके स्थानको गये वे स्वार्थके सिद्ध करनेवाले देवता वहां जाकर बृहस्पतिसे निवेदन करने लगे ॥ ७ ॥ देवता बोले, हे गुरु ! हमारे कार्य सिद्ध करनेके निमित्त हिमालयके घर जाओ और शिवजीकी निन्दा कर उसके चित्तसे शिवकी भक्ति दूर करो ॥ ८ ॥ हे गुरो ! वह अपनी श्रद्धासे कन्या शिवको

अनन्तरत्नाधारोऽसौ चेत्प्रयास्यति मोक्षताम् ॥ रत्नगर्भाभिधा भूमिर्मिथ्यैव भविताध्रुवम् ॥४॥ अस्थिरत्वम्परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय सः ॥ कन्यां शूलभृते दत्त्वा शिवालोकं गमिष्यति ॥ ५ ॥ महादेवस्य सारूप्यं प्राप्य शम्भोरनुग्रहात् ॥ तत्र भुक्त्वा महाभोगां स्ततो मोक्षमवाप्स्यति ॥ ६ ॥ इत्यालोच्य सुरास्सर्वे जग्मुर्गुरुगृहं मुने ॥ चक्रुर्निवेदनं गत्वा गुरवे स्वार्थसाधकाः ॥७॥ देवा ऊचुः ॥ गुरो हिमालयगृहं गच्छास्मत्कार्यसिद्धये ॥ कृत्वा निंदां महेशस्य गिरिभक्तिं निवारय ॥८॥ स्वश्रद्धया सुतां दत्त्वा शिवाय स गिरिर्गुरो ॥ लभेत मुक्तिमत्रैव धरण्यां स हि तिष्ठतु ॥ ९ ॥ इति देववचः श्रुत्वा प्रोवाच च विचार्य्य तान् ॥ १० ॥ गुरुरुवाच ॥ कश्चि मध्ये च युष्माकं गच्छेच्छैलान्तिक सुराः ॥ सम्पादयेत्स्वाभिमतमहं तत्कर्तुमक्षमः ॥ ११ ॥ अथवा गच्छत सुरा ब्रह्मलोकं सवासवाः ॥ तस्मै वृत्तं कथय स्वं स वः कार्यं करिष्यति ॥ १२ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा ते समालोच्य जग्मुर्विधिसभां सुराः ॥ सर्वं निवेदयामासुस्तद्वृत्तं पुरतो विधेः ॥ १३ ॥

देकर यहाँही मुक्तिको प्राप्त होजाय और पृथ्वी पर ही स्थित रहे ॥ ९ ॥ ऐसा देवताओंका वचन सुनकर अपने चित्तमें विचारकर बृहस्पति उनसे बोले ॥ १० ॥ बृहस्पति बोले, हे देवताओं ! तुम्हारे मध्यमेंसे कोई एक शैलके समीप जाय और अपने मनोरथको साधे, मैं यह करनेको असमर्थ हूं ॥ ११ ॥ अथवा इन्द्रसे आदि लेकर सब देवता ब्रह्मलोकको जाओ और ब्रह्माजीसे अपना समाचार कहो वह तुम्हारा कार्य करेंगे ॥ १२ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह सुनकर वे सब देवता विचार कर ब्रह्माजीकी सभामें गये और वहां सब वृत्तान्त ब्रह्माके आगे निवेदन

किया ॥ १३ ॥ यह देवताओंके वचन सुकर ब्रह्माजी विचारकर उनसे बोले कि मैं दुःख देनेवाली, सदा कलहकारिणी, उनकी निंदाको नहीं करूंगा ॥ १४ ॥ हे देवताओ ! तुम कैलासको जाओ और शंकर महादेवको संतुष्ट करो तथा उनको हिमालयके घर भेजो ॥ १५ ॥ वह शिवजी जाकर हिमाचलसे अपनी निंदा करें क्योंकि दूसरेकी निन्दा विनाशके लिये होती है और अपनी निन्दा यशके लिये मानी गई है ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर बोले, तब वे सम्पूर्ण देवता शीघ्र कैलास पर्वतको गए और शिवजीको प्रणाम करके भक्तिसे उनकी स्तुति करने लगे और उस वृत्तान्तको कहा ॥ १७ ॥ तब शिवजीने यह देवताओंका वचन सुनकर यह बात स्वीकारकी और हँसकर धीरज दिया, तब वे

अवोचत्तान्विधिः श्रुत्वा तद्वचः सुविचिंत्य वै ॥ नाहं करिष्ये तन्निंदां दुःखदां कहरां सदा ॥१४॥ सुरा गच्छत कैलासं संतोषयत शङ्करम् ॥ प्रस्थापयत तं देवं हिमालयगृहं प्रति ॥१५॥ स गच्छेदथ शैलेशमात्मनिन्दां करोतु वै ॥ परनिन्दा विनाशाय स्वनिन्दा यशसे मता ॥१६॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ ततस्ते प्रययुः शीघ्रं कैलासं निखिलास्सुराः ॥ सुप्रणम्य शिवं भक्त्या तद्वृत्तं निखिला जगुः ॥१७॥ तच्छ्रुत्वा देववचनं स्वीचकार महेश्वरः ॥ देवान्सुयापयामास तानाश्वास्य विहस्य सः ॥१८॥ ततः स भगवान्छम्भुर्महेशो भक्तवत्सलः ॥ गन्तुमैच्छच्छैलमूलं मायेशो न विकारवान् ॥१९॥ दण्डी छत्री दिव्यवासा विभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् ॥ करे स्फटिकमालां च शालग्रामं गले दधत् ॥२०॥ जपन्नाम हरेर्भक्त्या साधुवेषधरो द्विजः ॥ हिमाचलं जगामाशु बन्धुवर्गैस्समन्वितम् ॥ २१ ॥ तं च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ सगणोऽपि हिमालयः ॥ ननाम दण्डवद्भूमौ साष्टाङ्गं विधिपूर्वकम् ॥ २२ ॥

अपने २ स्थानको गए ॥ १८ ॥ तब वह महेश, भक्तवत्सल, अविकारी, मायाके ईश्वर, भगवान्, शिवजी हिमाचलके समीप जानेकी इच्छा करने लगे ॥ १९ ॥ दंड तथा छत्र धारण किये, सुन्दर वस्त्र पहने, उज्ज्वल तिलक लगाए, हाथमें स्फटिककी माला गलेमें शालग्रामको धारण किये ॥ २० ॥ भक्तिसे विष्णुभगवान्के नामको जपते हुए साधुका भेष धारे ब्राह्मणके रूपमें भाई, बन्धु वर्गसे, संयुक्त हुए हिमालयके समीप शीघ्र गए ॥ २१ ॥ उनको देखतेही अपने समुदाय सहित हिमालय उठे और भूमिमें साष्टांग दंडवत करके विधिपूर्वक प्रणाम किया ॥ २२ ॥

तब वह शैलेश उस ब्राह्मणसे बोले कि आप कौन हैं तब उस विप्रेन्द्र योगीने शीघ्र ही उस पर्वतसे अति आदरके साथ कहा ॥ २३ ॥ साधु ब्राह्मण बोला, हे शैल ! मैं साधु द्विज नामक, परमार्थको देखनेवाला, परोपकारी, सर्वज्ञ, गुरुके बलसे सर्वज्ञ जानेवाला वैष्णव हूं ॥ २४ ॥ हे शैल सत्तम ! मैंने अपने स्थानपर ही विज्ञानसे जान लिया, पाखंडको त्यागकर तुमसे प्रीति पूर्वक जो कहता हूं सो सुनो ॥ २५ ॥ तुम अपनेसे उत्पन्न हुई लक्ष्मीरूप मनोहर अपनी कन्याको कुलशील विना जाने शिवजीके अर्थ देना चाहते हो ॥ २६ ॥ हे शैलेन्द्र ! हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ! नारायणके कुलमें उत्पन्न ! यह तुम्हारी बुद्धि मंगलकी देनेवाली ठीक नहीं है ॥ २७ ॥ हे शैलाधिप ! तुम देखो कि उन

ततः पप्रच्छ शैलेशस्तं द्विजं को भवानि त॥ उवाच शीघ्रं विप्रेन्द्रस्स योग्यद्रिम्महादरात् ॥२३॥ साधुद्विज उवाच ॥ साधु द्विजाह्वः शैलाहं वैष्णवः परमार्थदृक्॥ परोपकारी सर्वज्ञः सर्वगामीगुरोर्बलात्॥२४॥ मया ज्ञातं स्वविज्ञानात्स्वस्थाने शैलसत्तम॥ तच्छृणु प्रीतितो वच्मि हित्वा दम्भन्तवांतिकम्॥२५॥ शङ्कराय सुतान्दातुन्त्वमिच्छसि निजोद्भवाम्॥ इमाम्पद्मासमां रम्यामज्ञातकुलशीलिने॥२६॥ इयं मतिस्ते शैलेन्द्र न युक्ता मङ्गलप्रदा॥ निबोधज्ञानिनां श्रेष्ठ नारायणकुलोद्भव॥२७॥ पश्य शैलाधिपत्वं च न तस्यैकोऽस्ति बान्धवः॥ बान्धवान्स्वान्प्रयत्नेन पृच्छ येनां च स्वप्रियाम्॥२८॥ सर्वान्संपृच्छ यत्नेन मेनादींपार्वती विना॥ रोगिणे नौषधं शैल कुपथ्यं रोचते सदा॥२९॥ न ते पात्रानुरूपश्च पार्वतीदानकर्म्मणि॥ महाजनः स्मेरमुखः श्रुतिमात्राद्भविष्यति॥३०॥ निराश्रयस्सदासङ्गो विरूपो निर्गुणोऽव्ययः॥ स्मशानवासी विकटो व्यालग्राही दिगम्बरः॥ ३१॥

शिवके कोई भाई, बन्धु, नहीं हैं, तुम अपने परिवारसे तथा अपनी स्त्री मेनासे पूछो ॥ २८ ॥ हे शैल ! पार्वतीके विना मेना आदि सब बन्धुओंसे पूछो, रोगीको औषधी अच्छी नहीं लगती, सदा कुपथ्य ही अच्छा लगता है ॥ २९ ॥ पार्वतीके दान कर्ममें तुम्हें योग्यपात्र नहीं मिला, पार्वतीके सुनने मात्रसे कोई सुन्दर मुखवाला महापुरुष वर होजायगा ॥ ३० ॥ वह शिव आश्रय (स्थान) रहित, सदा असंग (अकेला), कुरूप, निर्गुण, अव्यय, मर्घट निवासी, भयंकर आकारवाले, साँपोंको पकडने वाले, नग्न ॥ ३१ ॥

भस्मसे शोभित, सर्पोंसे मस्तक लपेटे हुए, सब आश्रमोंसे रहित, तथा सदा अविज्ञात गति हैं ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी बोले, अनेक लीला करनेमे तत्पर शिवजी इस प्रकार अपनी निन्दामें प्रवृत्त हो सत्य २ वचन कहकर शीघ्र अपने स्थानको गए ॥ ३३ ॥ यह ब्राह्मणका वचन सुनकर उन दोनोंके शरीर विपरीत अनर्थ करनेमें तत्पर होगये और सोचने लगे कि हम क्या करें ॥ ३४ ॥ तब रुद्रने भक्तोंके उद्धार करनेवाली लीलाको करके पार्वतीको विवाह कर देवताओंके कार्य किए ॥ ३५ ॥ हे तात ! हे प्रभो ! मैंने साधु वेषधारी द्विज नामक देवताओंके कार्य करनेवाला शिवका अवतार तुमसे कहा ॥ ३६ ॥ यह इतिहास पापोंको नाश करनेवाला स्वर्ग और आयुका देनेवाला

विभूतिभूषणो व्यालवरावेष्टितमस्तकः ॥ सर्वाश्रमपरिभ्रष्टस्त्वविज्ञातगतिस्सदा ॥ ३२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याद्युक्त्वा वचस्तथ्यं शिवनिन्दापरं स हि ॥ जगाम स्वालयं शीघ्रन्नानालीलाकरः शिवः ॥३३॥ तच्छ्रुत्वा विप्रवचनमभूताश्च तनू तयोः ॥ विपरीतानर्थपरे किं करिष्यावहे ध्रुवम् ॥ ३४ ॥ ततो रुद्रो महोतिं च कृत्वा भक्तमुदावहाम् ॥ विवाहयित्वा गिरिजां देवकार्यं चकार सः ॥३५॥ इति प्रोक्तस्तु ते तात साधुवेषो द्विजाह्वयः ॥ शिवावतारो हि मया देवकार्य्यकरः प्रभो ॥ ३६ ॥ इदमाख्यानमनघं स्वर्यमायुष्यमुत्तमम् ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि स सुखी गतिमाप्नुयात् ॥३७॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां साधुद्विजशिवावतारवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ षडशीत्यवतारा: (८६) नन्दीश्वर उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः ॥ अवतारं शृणु विभोरश्वत्थामाह्वयं परम् ॥१॥ बृहस्पतेर्महाबुद्धेर्देवर्षेरंशतो मुने ॥ भरद्वाजात्समुत्पन्नो द्रोणोऽयोनिज आत्मवान् ॥२॥ धनुर्भृतां वरः शूरो विप्रर्षिस्सर्वशास्त्रवित् ॥ बृहत्कीर्तिर्महातेजा यः सर्वास्त्रविदुत्तमः ॥ ३ ॥

है जो इसको पढ़ता है तथा सुनता है, वह सुखी होकर सुन्दर गतिको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० शतरुद्रसंहितायां साधु द्विजशिवावतारवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोध्यायः ॥ ३५ ॥ (८६ अवतार समाप्त हुए) नन्दीश्वर बोले, हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमार ! सर्वव्यापक परमात्मा शिवका अश्वत्थामा नामक परम अवतार सुनो ॥ १ ॥ हे मुने ! महाबुद्धिमान् देवर्षि बृहस्पतिके अंशसे भरद्वाज के द्वारा अयोनिज द्रोण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ जो धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ, शूर, विप्रर्षि, सब शास्त्रोंका जाननेवाला, बड़ी

कीर्तिवाला, महातेजस्वी, सब अस्त्रोंका जाननेवाला था ॥ ३ ॥ बुद्धिमान् बाणविद्याका पारगामी वेदोंमें निपुण वरिष्ठ विचित्र कर्म करनेवाला अपने कुलका बढानेवाला द्रोण नामसे प्रसिद्ध था ॥ ४ ॥ हे द्विज ! वह बलवान द्रोण कौरवोंके आचार्य तथा और छहों महा रथियोंमें विख्यात थे ॥ ५ ॥ उस ब्राह्मणोत्तम द्रोणाचार्यने कौरवोंकी सहायताके लिये पुत्रके निमित्त शिवके उद्देशसे बडा तप किया ॥ ६ ॥ हे मुनिसत्तम ! तब भगवान् भक्तवत्सल शंकर प्रसन्न हो द्रोणाचार्यके आगे प्रगट हुए ॥ ७ ॥ उनको देखकर उस द्रोणाचार्य ब्राह्मणने हृदयमें महाप्रसन्न हो नम्रतासे हाथ बाँध शीघ्रही उनको प्रणाम किया ॥ ८ ॥ उसकी स्तुतिसे तथा तपस्यासे भक्तवत्सल प्रभु शंकर प्रसन्न होकर उस

धनुर्वेदे च वेदे च निष्णातं यं विदुर्बुधाः ॥ वरिष्ठं चित्रकर्माणं द्रोणं स्वकुलवर्धनम् ॥ ४ ॥ कौरवाणां स आचार्य्य आसीत्स्वबलतो द्विज ॥ महारथिषु विख्यातः षट्सु कौरवमध्यतः ॥५॥ साहाय्यार्थं कौरवाणां स तेपे विपुलन्तपः ॥ शिवमुद्दिश्य पुत्रार्थं द्रोणाचार्य्यो द्विजोत्तमः ॥ ६ ॥ ततः प्रसन्नो भगवाञ्छंकरो भक्तवत्सलः ॥ आविर्बभूव पुरतो द्रोणस्य मुनिसत्तम ॥ ७ ॥ तन्दृष्ट्वा स द्विजो द्रोणस्तुष्टावाशु प्रणम्य तम् ॥ महाप्रसन्नहृदयो नतकस्सुकृताञ्जलिः ॥ ८ ॥ तस्य स्तुत्या च तपसा सन्तुष्टः शंकर प्रभुः ॥ वरम्ब्रूहीति चोवाच द्रोणन्तं भक्तवत्सलः ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं द्रोणः प्राहाथ सन्नतः ॥ स्वांशजन्तनयन्देहि सर्वाजेयम्महाबलम् ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वा द्रोणवचनं शम्भुः प्रोचे तथास्त्विति ॥ अभूदन्तर्हितस्तात कौतुकी सुखकृन्मुने ॥ ११ ॥ द्रोणोऽपगच्छत्स्वन्धाम महाहृष्टो गतभ्रमः ॥ स्वपत्न्यै कथयामास तद्वृत्तं सकलं मुदा ॥ १२ ॥ अथावसरमासाद्य रुद्रः सर्वान्तकः प्रभुः ॥ स्वांशेन तनयो जज्ञे द्रोणस्य स महाबलः ॥ १३ ॥

द्रोणाचार्य बोले, कि वर मांगों ॥ ९ ॥ यह शिवजीका वचन सुन, नम्र हो द्रोणाचार्यसे बोले, कि महाबली सबसे अजेय अपने अंशसे उत्पन्न एक पुत्रको दीजिये ॥ १० ॥ हे मुने ! हे तात ! यह द्रोणाचार्यका वचन सुन शिवजी बोले, ऐसा ही होगा, यह कह कौतुक करनेवाले सुखकारी शिव अन्तर्धान होगये ॥ ११ ॥ तब संशयरहित द्रोणाचार्य बडे प्रसन्न हो, अपने धामको गए और वह सब वरदानका समाचार अपने स्त्रीसे प्रीतिपूर्वक कहा ॥ १२ ॥ तब अवसरको पाकर प्रभु सबके संहार करने वाले शिवजी अपने अंशसे द्रोणके बडे

बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ हे मुने ! वह वीर कमलपत्रके समान नेत्रवाले, तथा शत्रु पक्षके नाश करनेवाले शंकर अश्वत्थामा नामसे विख्यात हुए ॥ १४ ॥ जिन महाबली विख्यात अश्वत्थामाने महाभारत संग्राममें अपने पिताकी आज्ञा पाकर कौरवोंकी सहायता की थी ॥ १५ ॥ जिस महावीर अश्वत्थामाको आश्रय कर बडे पराक्रमी कौरव भीष्मपितामह आदिक देवताओंसे भी अजेय होगये ॥ १६ ॥ जिसके भयसे बडे शूर, विद्वान्, पांडव, कौरवोंको जीतनेमें असमर्थ हुए और नष्टप्राय होगये ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णजीके उपदेशसे शिवकी अतिकठिन तपस्या करके अर्जुनने शिवजीसे अस्त्र पाकर उन कौरवोंको जीता ॥ १८ ॥ हे मुने ! अश्वत्थामाने शिवके अंशसे

अश्वत्थामेति विख्यातस्स बभूव क्षितौ मुने ॥ प्रवीरः कंजपत्राक्षश्शत्रुपक्षक्षयङ्करः ॥ १४ ॥ यो भारते रणे ख्यातः पितुराज्ञामवाप्य च ॥ सहायकृद्भूवाथ कौरवाणां महाबलः ॥ १५ ॥ यमाश्रित्य महावीरं कौरवास्सुमहाबलाः ॥ भीष्मादयो बभूवुस्तेऽजेया अपि दिवौकसाम् ॥ १६ ॥ यद्भयात्पाण्डवास्सर्वेकौरवाञ्जेतुमक्षमाः ॥ आसन्नष्टा महावीरा अपि सर्वे च कोविदाः ॥ १७ ॥ कृष्णोपदेशतश्शम्भोस्तपः कृत्वातिदारुणम् ॥ प्राप्य चास्त्रं शम्भुवराज्जिग्ये तानर्जुनस्ततः ॥ १८ ॥ अश्वत्थामा महावीरो महादेवांशजो मुने ॥ तदापि तद्भक्तिवशः स्वप्रतापमदर्शयत् ॥ १९ ॥ विनाश्य पाण्डवसुताञ्छिक्षितानपि यत्नतः ॥ कृष्णादिभिर्महावीरैरनिवार्य्यबलः परैः ॥२०॥ पुत्रशोकेन विकलमापतन्तं तमर्जुनम् ॥ रथेनाच्युतवंतं हि दृष्ट्वा स च पराद्रवत् ॥ २१ ॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम तदुपर्य्यसृजत्स हि ॥ ततः प्रादुरभूत्तेजः प्रचण्डं सर्वतो दिशम् ॥ २२ ॥

उत्पन्न होकर महावीर कौरवोंकी भक्तिके वशीभूत हो अपने प्रतापको दिखाया ॥ १९ ॥ यत्नपूर्वक शिक्षित भी पांडवोंके पुत्रोंको मारकर महावीर कृष्ण आदि शत्रुओंसे भी उसके बलका निवारण न हुआ ॥ २० ॥ पुत्रशोकसे व्याकुल हो रथपर चढकर धावमान होते कृष्णके सहित अर्जुनको देखकर वह अश्वत्थामा भागा ॥ २१ ॥ और अश्वत्थामाने अर्जुनके ऊपर ब्रह्मशिर नामक अस्त्रका प्रहार किया जिससे सब दिशाओंमें प्रचंड तेज प्रगट हुआ ॥ २२ ॥

तब प्राणोंपर आपत्ति देखकर अर्जुनने क्लेश पाय भयभीत व्याकुल हो श्रीकृष्णजीसे कहा ॥ २३ ॥ अर्जुन बोला, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! यह क्या है और कहांसे यह दुस्सह तेज चारों ओरसे चला आता है, सो मैं नहीं जानता ॥ २४ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार अर्जुनका वचन सुनकर वह शैव, श्रीकृष्ण पार्वती सहित शिवका ध्यान करते हुए आदरसे अर्जुनसे बोले ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण बोले, तुम जानते हो यह द्रोणाचार्यके पुत्रका तीव्र ब्रह्मास्त्र है, इसके समान कोई दूसरा घातक अस्त्र नहीं है ॥ २६ ॥ तुम शीघ्र अपने प्रभु तथा भक्तोंके रक्षा करनेवाले शिवजीको स्मरण करो कि जिन्होंने सब कार्य करनेवाला अपना बडा अस्त्र तुम्हें दिया है ॥ २७ ॥ और उस शैव अस्त्रके

प्राणापदमभिप्रेक्ष्य सोर्जुनः क्लेशसंयुतः॥उवाच कृष्णं विक्लान्तो नष्टतेजा महाभयः॥२३॥अर्जुन उवाच॥किमिदं स्वित्कुतो वेति कृष्ण कृष्ण न वेद्म्यहम्॥सर्वतोमुखमायाति तेजश्चेदं सुदुस्सहम् ॥ २४॥ नन्दीश्वर उवाच॥ श्रुत्वार्जुनवचश्चेदं स कृष्णश्शैवस त्तमः॥ दध्यौ शिवं सदारं च प्रत्याहार्जुनमादरात्॥२५॥ कृष्ण उवाच ॥ वेत्थेदन्द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं महोल्बणम् ॥न ह्यस्यान्य तमं किञ्चिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम्॥२६॥शिवं स्मर द्रुतं शम्भुं स्वप्रभुम्भक्तरक्षकम्॥येन दत्तं हि ते स्वास्त्रं सर्वकार्य्यकरम्परम् ॥२७॥ जह्यस्त्रतेज उन्नद्धन्त्वन्तच्छैवास्त्रतेजसा॥ इत्युक्त्वा च स्वयं कृष्णश्शिवन्दध्यौ तदर्थकः॥२८॥तच्छ्रुत्वा कृष्णवचनं पार्थस्स्मृत्वा शिवंहृदि ॥ स्पृष्ट्वापस्तं प्रणम्याशु चिक्षेपास्त्रन्ततो मुने ॥२९॥यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघश्चाप्रतिक्रियम्॥शैवास्त्रतेजसा सद्यस्स मशाम्यन्महामुने॥३०॥मंस्था मा ह्येतदाश्चर्य्यं सर्वचित्रमये शिवे ॥यस्स्वशक्त्याखिलं विश्वं सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ ३१ ॥

तेजके द्वारा तुम अस्त्रके तेजको दूर करो ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी स्वयं उसके निमित्त शिवजीका ध्यान करने लगे ॥ २८ ॥ हे मुने ! इस प्रकार श्रीकृष्णजीके वचन सुनकर अर्जुनने अपने हृदयमें शिवका स्मरण कर, उनको प्रणाम कर, जलका स्पर्श कर, उस शैवास्त्रको छोडा ॥ २९ ॥ हे महामुने ! यद्यपि ब्रह्मशिर अस्त्र निष्फल क्रियावान् नहीं था तथापि शैव अस्त्रके तेजसे उसी समय वह शांत होगया ॥ ३० ॥ यह सब विचित्र लीला करनेवाले शिवजीके विषयमें आश्चर्य मत मानो, जो अजित अपनी शक्तिसे संपूर्ण संसारको उत्पन्न करते

तथा नष्ट करते हैं ॥ ३१ ॥ हे मुने ! तब शिवके अंशसे उत्पन्न शिवकी इच्छासे संतुष्ट हुए उस अश्वत्थामाने वृत्तान्तको जानकर, शैव अस्त्रको किञ्चिन्मात्र भी छेदन न किया ॥ ३२ ॥ तब द्रोणाचार्यके पुत्रने इस सम्पूर्ण संसारको पांडवरहित करनेकी इच्छासे उत्तराके गर्भगत बालकके नाश करनेकी मनमें इच्छा की ॥ ३३ ॥ तब अश्वत्थामाने बडे कांतिवाले और अस्त्रोंसे निवारणके अयोग्य ब्रह्मास्त्रको उत्तराके गर्भपर प्रहार किया ॥ ३४ ॥ तब वह व्याकुल मनवाली जयशील अर्जुन पुत्रकी भार्या उत्तरा उस अस्त्रसे जलती हुई लक्ष्मीके पति श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगी ॥ ३५ ॥ तब श्रीकृष्णने हृदयसे शिवका ध्यान कर, स्तुति तथा प्रणाम

अश्वत्थामा ततो ज्ञात्वा वृत्तमेतच्छिवांशजः॥ शैवन्न विव्यथे किञ्चिच्छिवेच्छातुष्टधीर्मुने ॥३२॥ अथ द्रौणिरिदं विश्वं कृत्स्नं कर्तुमपाण्डवम्॥उत्तरागर्भगं बालं नाशितुम्मन आदधे॥३३॥ब्रह्मास्त्रमनिवार्य्यं तदन्यैरस्त्रैर्महाप्रभम् ॥उत्तरागर्भमुद्दिश्य चिक्षेप स महाप्रभुः ॥३४॥ ततश्च सोत्तरा जिष्णुवधूर्विकलमानसा ॥ कृष्णन्तुष्टाव लक्ष्मीशन्दह्यमाना तदस्त्रतः ॥ ३५ ॥ ततःकृष्णः शिवं ध्यात्वा हृदा नुत्वा प्रणम्य च ॥ अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥३६॥ स्वरक्षार्थेन्द्रदत्तेन तदस्त्रेण सुवर्चसा ॥ सुदर्शनेन तस्याश्च व्यधाद्रक्षां शिवाज्ञया ॥३७॥ स्वरूपं शंकरादेशात्कृतं शैववरेण ह ॥ कृष्णेन चरितं ज्ञात्वा विमनस्कः शनैरभूत् ॥ ३८ ॥ ततस्स कृष्णः प्रीतात्मा पाण्डवान्सकलानपि ॥ अपातयत्तदंघ्र्योस्तु तुष्टये तस्य शैवराट् ॥ ३९ ॥ अथ द्रौणिः प्रसन्नात्मा पाण्डवान्कृष्णमेव च ॥ नानावरान्ददौ प्रीत्या सोऽश्वत्थामानुगृह्य च ॥ ४० ॥

करके यह जाना कि पांडवोंके विनाश करनेको यह अश्वत्थामाका अस्त्र है ॥ ३६ ॥ अपनी रक्षाके निमित्त इन्द्रके दिये बडे तेजवाले सुदर्शन चक्रसे श्रीकृष्णने शिवकी आज्ञा पाकर उस उत्तराकी रक्षा की ॥ ३७ ॥ यह चरित्र जानकर शिवकी आज्ञासे शैववर श्रीकृष्णजीने गर्भको अपना रूप करलिया तो वह अस्त्र धीरे २ शान्त हो गया ॥ ३८ ॥ तब उस महाशैव श्रीकृष्णने प्रसन्न हो सम्पूर्ण पांडवोंको उस अश्वत्थामाकी प्रसन्नताके निमित्त उसके चरण कमलोंमें गिरवाया ॥ ३९ ॥ तब वह द्रोणाचार्यका पुत्र अश्वत्थामा प्रसन्न हुआ

और प्रीतिसहित पांडवोंपर तथा श्रीकृष्णजीपर अनुग्रह करके अनेक वर दिये ॥ ४० ॥ हे तात ! हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार प्रभु शिवजीने पृथ्वीपर अश्वत्थामा रूपसे अनेक लीला की ॥ ४१ ॥ महाबल और पराक्रमवाले अश्वत्थामा नामक शिवजीका अवतार तीनों लोकोंको सुख देनेवाला अब तक भी गंगाजीके किनारे पर स्थित है ॥ ४२ ॥ तुमसे अश्वत्थामा नामक शिवका अवतार वर्णन किया, वह सब सिद्धियोंका करनेवाला और भक्तोंके मनोरथोंका सिद्ध करनेवाला है ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य इस चरित्रको सावधान चित्तसे सुनता है, वा भक्तिसे कीर्तन करता है वह मनोरथोंकी सिद्धिको पाता है और अन्त समयमें शिवलोकको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां तृ०

इत्थं महेश्वरस्तात चक्रे लीलाम्पराम्प्रभुः॥अवतीर्य्य क्षितौ द्रौणिरूपेण मुनिसत्तम॥४१॥ शिवावतारोऽश्वत्थामा महाबलपरा क्रमः ॥ त्रैलोक्यसुखदोऽद्यापि वर्तते जाह्नवीतटे ॥४२॥अश्वत्थामावतारस्ते वर्णितश्शंकरप्रभोः ॥ सर्वसिद्धिकरश्चापि भक्ताभी ष्टफलप्रदः ॥४३॥ य इदं शृणुयाद्भक्त्या कीर्तयेद्वा समाहितः ॥ स सिद्धिम्प्राप्नुयादिष्टामन्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥४४॥ इति श्रीशि वमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायामश्वत्थामशिवावतारवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥नन्दीश्वर उवाच॥शृणु प्राज्ञ किरताख्यमवतारम्पिनाकिनः ॥ मूकं च हतवान्प्रीतो योऽर्जुनाय वरन्ददौ॥१॥ सुयोधनजितास्ते वै पाण्डवाः प्रवराश्च ते ॥ द्रौप द्याच तया साध्व्या द्वैताख्यं वनमाययुः ॥ २ ॥ तत्रैव सूर्य्यदत्तां वै स्थालीं चाश्रित्य ते तदा ॥ कालं च वाहयामासुस्सुखेन किल पाण्डवाः ॥ ३ ॥ छलार्थं प्रेरितस्तेन दुर्वासा मुनिपुङ्गवः ॥ सुयोधनेन विप्रेन्द्र पाण्डवान्तिकमादरात् ॥ ४ ॥

श० रु० अश्वत्थामाख्यशिवावतारवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे प्राज्ञ ! शिवजीके किरातनामक अवतारको सुनो, जिन्होंने प्रसन्न हो मूकको मारा, और अर्जुनको वरदान दिया ॥१॥ सुयोधनसे जीते हुए वे श्रेष्ठ पांडव जब द्रौपदीके साथ द्वैतवनमें गये ॥२॥ वहां वे पांडव उस समय सूर्यसे प्राप्त की हुई स्थालीका आश्रय करके सुखपूर्वक अपना समय बिताते थे ॥३॥ हे विप्रेन्द्र ! उस दुर्योधन द्वारा कपटसे भेजे हुए मुनि दुर्वासा पांडवोंके निकट आदरसे आये ॥ ४ ॥

और दशसहस्र विद्यार्थियों सहित आकर उन छात्रोंके लिये पांडवोंसे इच्छाके अनुसार भोजन मांगा ॥५॥ तो उस समय उन पांडवोंने स्वीकार करके तपस्वी मुनि दुर्वासा आदिकोंको स्नान करनेके निमित्त भेजा ॥६॥ हे मुनीश्वर ! तब वे सब पांडव अन्नके अभावसे दुःखी हुए और प्राणोंके त्यागन करनेकी इच्छा की ॥७॥ तब द्रौपदीसे स्मरण करतेही श्रीकृष्णजी उसी समय आए आकर स्वयं शाकका पत्ता भक्षण करके उन सबकी तृप्ति करा दी ॥ ८ ॥ तब दुर्वासा मुनि उन शिष्योंको तृप्त हुए जान चले गये, उस समय श्रीकृष्णजीकी कृपासे पांडव कष्टसे छूटे ॥ ९ ॥ तब वे पांडव श्रीकृष्णजीसे पूंछने लगे कि हे प्रभो ! अब क्या होगा, बलवान् शत्रु उत्पन्न होगया अब क्या करना चाहिये सो कहो ?

छात्रैः स्वैर्वायुतैस्सार्द्धं ययाचे तत्र तान्मुदा॥भोज्यं चित्तेप्सितं वै स तेभ्यश्चैव समागतः॥५॥स्वीकृत्य पाण्डवैस्तैस्तैः स्नानार्थं प्रेषितास्तदा ॥ दुर्वासःप्रमुखाश्चैव मुनयश्च तपस्विनः॥६॥अथ ते पाण्डवाः सर्वे अन्नाभावान्मुनीश्वर॥ दुःखिताश्च तदा प्राणां स्त्यक्तुं चित्ते समादधुः॥७॥द्रौपद्या च स्मृतः कृष्ण आगतस्तत्क्षणादपि॥ शाकं च भक्षयित्वा तु तेषां तृप्तिं समादधत् ॥८॥ दुर्वासाश्च तदा शिष्यांस्तृप्ताञ्ज्ञात्वा ययौ पुनः ॥पाण्डवाः कृच्छ्रनिर्मुक्ताः कृष्णस्य कृपया तदा॥९॥अथ ते पाण्डवाः कृष्णं पप्रच्छुः किम्भविष्यति ॥ बलवाञ्छत्रुरुत्पन्नः किं कार्य्यन्तद्वद प्रभो॥१०॥ नन्दीश्वर उवाच॥इति पृष्टस्तदा तैस्तु श्रीकृष्णः पाण्डवैर्मुने ॥ स्मृत्वा शिवपदाम्भोजौ पाण्डवानिदमब्रवीत् ॥११॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ श्रूयतां पाण्डवाः श्रेष्ठाः श्रुत्वा कर्तव्यमेव हि ॥ मद्वृत्तान्तं विशेषेण शिवसेवासमन्वितम्॥१२॥द्वारकां च मया गत्वा शत्रूणां विजिगीषया॥विचार्य्य चोपदेशांश्च उपमन्योर्महात्मनः ॥ १३ ॥ मया ह्याराधितः शम्भुः प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ बटुके पर्वतश्रेष्ठे सप्तमासं सुसेवितः ॥ १४ ॥

॥ १० ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! उन पांडवोंके ऐसा पूछने पर श्रीकृष्णजी शिवके चरण कमलोंको स्मरण करके पांडवोंसे बोले ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णजी बोले, हेश्रेष्ठ पांडवो ! ! ! सुनो, मेरे वृत्तान्तको सुनकर, विशेषकर शिवजीकी सेवा करनी चाहिये ॥ १२ ॥ मैंने अपने शत्रुओंके जीतनेकी इच्छासे द्वारकामें जाकर महात्मा उपमन्युके उपदेशोंको विचार कर ॥ १३ ॥ सात महीने बटुकपर्वतपर परमेश्वर, प्रसन्नात्मा शिव शिवजीकी आराधना तथा सेवा की ॥ १४ ॥

साक्षात् संसारके स्वामी शिवजीने स्वयं प्रगट हो मुझे इच्छित मनोरथोंको दिया उनके प्रभावसे मैंने सम्पूर्ण उत्तम सामर्थ्य पाये ॥ १५ ॥ अब भी भोग और मुक्तिके फल देनेवाले शिवकी सेवा करता हूं, तुम भी सब सुखोंके देनेवाले शिवका सेवन करो ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह कह और पांडवोंको धैर्य देकर श्रीकृष्णजी अन्तर्धान होगये और शीघ्रही शिवजीके चरणकमलोंको स्मरण करते हुए द्वारकाको चले गये ॥ १७ ॥ तब पांडवोंने उस दुर्योधनके गुणोंकी तथा बलकी परीक्षा करनेके निमित्त भीलको भेजा ॥ १८ ॥ वह भीलभी वहां जाकर दुर्योधनके श्रेष्ठ गुणोंके उदयको जानकर फिर उन पांडवोंके समीप आया ॥ १९ ॥ हे मुनीश्वर ! उसका कथन सुनकर पांडव दुःखी हुए, और वे दुःखित

इष्टान्कामानदान्मह्यं विश्वेशश्च स्वयं स्थितः ॥ तत्प्रभावान्मया सर्वसामर्थ्यं लब्धमुत्तमम् ॥ १५ ॥ इदानीं सेव्यते देवो भुक्तिमुक्ति फलप्रदः ॥ यूयं सेवत तं शम्भुमपि सर्वसुखावहम् ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे कृष्ण आश्वास्याथ च पाण्डवान् ॥ द्वारकामगमच्छीघ्रं स्मरञ्छिवपदाम्बुजम् ॥ १७ ॥ पाण्डवा अथ भिल्लं च प्रेषयामासुरोजसा ॥ गुणानां च परीक्षार्थं तस्य दुर्योधनस्य च ॥ १८ ॥ सोपि सर्वं च तत्रत्यन्दुर्योधनगुणोदयम् ॥ समीचीनं च तज्ज्ञात्वा पुनः प्राप प्रभून्प्रति ॥ १९ ॥ तदुक्तन्ते निशम्यैवं दुःखम्प्रापुर्मुनीश्वर ॥ परस्परं समूचुस्ते पाण्डवा अतिदुःखिताः ॥ २० ॥ किङ्कर्तव्यं क्व गन्तव्यमस्माभिर धुना युधि ॥ समर्था अपि वै सर्वे सत्यपाशेन यन्त्रिताः ॥ २१ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एतस्मिन्समये व्यासो भस्मभूषितमस्तकः ॥ रुद्राक्षाभरणश्चायाज्जटाजूटविभूषितः ॥ २२ ॥ पञ्चाक्षरं जन्ममंत्रं शिवप्रेमसमाकुलः ॥ तेजसां च स्वयंराशिस्साक्षाद्धर्म इवापरः ॥ २३ ॥ तन्दृष्ट्वा ते तदा प्रीता उत्थाय पुरतः स्थिताः ॥ दत्त्वासनं तदा तस्मै कुशाजिनसुशोभितम् ॥ २४ ॥

पांडव परस्पर कहने लगे ॥ २० ॥ हम सबोंको युद्धमें क्या करना चाहिये, हम सब सामर्थ्यवान् होकर सत्यपाशसे बँधे हैं ॥ २१ ॥ नन्दीश्वर बोले, इसी समयमें भस्मसे भूषित मस्तकवाले, रुद्राक्षको धारण किए, जटाओंसे शोभायमान, व्यासजी आये ॥ २२ ॥ वह 'नमः शिवाय' इस पंचाक्षर मंत्रको जपते हुए शिवजीके प्रेममें मग्न स्वयं तेजस्वी साक्षात् दूसरे धर्मके समान थे ॥ २३ ॥ उनको देखकर पांडव प्रसन्न हो उठकर आगे स्थित हुए और व्यासजीको कुशा तथा मृगछालाका शोभायमान आसन देकर ॥ २४ ॥ हर्षित हो अनेकप्रकारकी स्तुति करके,

अपने भाग्यको सराहते हुए उन व्यासजीका पूजन किया ॥ २५ ॥ हे प्रभो ! हमारा सुन्दर तप; अनेकदान, यह सब सफल हुआ, आपके दर्शनसे हम तृप्त हुए ॥ २६ ॥ हे पितामह ! आपके दर्शनसे हमारा दुःख दूर हुआ, क्रूरकर्म करनेवाले दुष्टोंने बडा दुःख दिया है ॥ २७ ॥ आपके दर्शन होनेपर वह दुःख जाता रहा अन्यथा वह हमारा दुःख भी नहीं जाता, यह निश्चय है ॥२८॥ सब कर्मोंमें समर्थ हुए बडे पुरुषोंके घरपर आनेसे यदि दुःख दूर न हो तो इसमें प्रारब्धही कारण है ॥ २९ ॥ बडे पुरुषोंके आनेसे दुःखका कारण दारिद्र्य निश्चय

तत्रोपविष्टं तं व्यासं पूजयन्ति स्म हर्षिताः॥ स्तुतिं च विविधां कृत्वा धन्याः स्म इतिवादिनः ॥ २५ ॥ तपश्चैव सुसन्तप्तं दानानिविविधानि च ॥ तत्सर्वं सफलं जातं तृप्तास्ते दर्शनात्प्रभो ॥ २६ ॥ दुःखं च दूरतो जातन्दर्शनात्ते पितामह ॥ दुष्टैश्चैव महादुःखं दत्तं नः क्रूरकर्मभिः ॥२७॥ श्रीमतान्दर्शने जाते दुःखं चैव गमिष्यति ॥ कदाचिन्न गतं तत्र निश्चयोयं विचारितः ॥२८॥ महतामाश्रमे प्राप्ते समर्थे सर्वकर्मणि ॥ यदि दुःखं न गच्छेतु दैवमेवात्र कारणम् ॥ २९ ॥ निश्चयेनैव गच्छेतु दारिद्र्यं दुःखकारणम् ॥ महतां च स्वभावोयं कल्पवृक्षसमो मतः ॥ ३० ॥ तद्गुणानेव गणयेन्महतो वस्तुमात्रतः ॥ आश्रयस्य वशादेव पुंसो वै जायते प्रभो ॥३१॥ लघुत्वं च महत्त्वं च नात्र कार्य्या विचारणा ॥ उत्तमानां स्वभावोयं यद्दीनप्रतिपालनम् ॥ ३२ ॥ रंकस्य लक्षणं लोके ह्यतिश्रेयस्करं मतम् ॥ पुरोऽस्य परयत्नो वै सुजनानां च सेवनम् ॥ ३३ ॥ अतः परं च भाग्यं वै दोषश्चैव न दीयताम् ॥ एतस्मात्कारणात्स्वामिंस्त्वयि दृष्टो शुभन्तदा ॥ ३४ ॥

ही दूर होता है, यह बडे पुरुषोंको स्वभावही कल्पवृक्षके समान माना गया है ॥ ३० ॥ हे प्रभो ! उनके गुणोंको ही बडी वस्तु समझे कि जिनके आश्रयसे ही मनुष्यको वे गुण प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥ इसमें छोटे बडे पनका विचार नहीं करना चाहिये, क्यों कि--उत्तम पुरुषोंका यह स्वभाव ही है कि वे दोनोंका पालन करते हैं ॥ ३२ ॥ संसार निर्धनताका लक्षण अत्यन्त कल्याण माना गया है, क्योंकि इस एकको दूसरोंका यत्नपूर्वक रक्षण और श्रेष्ठपुरुषोंका सेवन यहही रहता है ॥ ३३ ॥ हे स्वामिन् ! इसके आगे भाग्य है, उसको दोष नहीं देना चाहिये,

इस कारणसे आपके दर्शनसे मैं अपना मंगल मानता हूं ॥ ३४ ॥ आपके आगमन मात्रसे हमारे मन संतुष्ट हुए आप हमको कुछ उपदेश दें कि जिससे शीघ्र हमारा दुःख नष्ट हो ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह पांडवोंके वचन सुनकर महामुनि व्यासजी प्रसन्न चित्त हो यह वचन बोले ॥ ३६ ॥ हे पांडवों ! ! ! तुम कष्ट करनेके योग्य नहीं हो, तुम धन्य हो और कृतकृत्य हो कि तुमने सत्यका लोप नहीं किया ॥ ३७ ॥ सत्पुरुषोंका यह श्रेष्ठ स्वभावही है कि प्राणोंके चले जानेपर भी सुन्दर फलके देनेवाले सच्चे धर्मको नहीं त्यागते ॥ ३८ ॥ हमको तो तुम और वे कौरव दोनोंही समान हो तो भी बुद्धिमानोंका धर्मात्माओंमें पक्षपात होता ही है ॥ ३९ ॥ पहलेसे ही दुष्ट,

त्वदागमनमात्रेण सन्तुष्टानि मनांसि नः ॥ दिशोपदेशं येनाशु दुःखं नष्टम्भवेच्च नः ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा पाण्डवानां महामुनिः ॥ प्रसन्नमानसो भूत्वा व्यासश्चैवाब्रवीदिदम् ॥ ३६ ॥ हे पाण्डवाश्च यूयं वै न कष्टं कर्तुमर्हथ ॥ धन्याः स्थ कृतकृत्याः स्थ सत्यं नैव विलोपितम् ॥ ३७ ॥ सुजनानां स्वभावोयं प्राणान्तेऽपि सुशोभनः ॥ धर्मं त्यजन्ति नै वात्र सत्यं सफलभाजनम् ॥ ३८ ॥ अस्माकं चैव यूयं च ते चापि समताङ्गताः ॥ तथापि पक्षपातो वै धर्मिष्ठानां मतो बुधैः ॥ ३९ ॥ धृतराष्ट्रेन दुष्टेन प्रथमं च ह्यचक्षुषा ॥ धर्मस्त्यक्तः स्वयं लोभाद्युष्माकं राज्यमाहृतम् ॥४०॥तस्य यूयं च ते चापि पुत्रा एव न संशयः ॥पितर्य्युपरते बाला अनुकंप्या महात्मनः ॥४१॥ पश्चात्पुत्रश्च तेनैव वारितो न कदाचन ॥ अनर्थो नैव जायेत यच्चैवं च कृतन्तदा ॥४२॥ अतः परं च यज्जात तज्जातं नान्यथा भवेत् ॥ अयन्दुष्टो भवन्तश्च धर्मिष्ठाः सत्यवादिनः ॥ ४३ ॥ तस्मादन्ते च तस्यैवाशुभं हि भविता ध्रुवम् ॥ यच्चैव वापितं बीजं तत्प्ररोहो भवेदिह ॥ ४४ ॥

नेत्रहीन, धृतराष्ट्रने स्वयं लोभसे अपना धर्म त्यागा कि जो तुम्हारा राज्य छीन लिया ॥ ४० ॥ उस धृतराष्ट्रके तुम पांडव, तथा वे कौरव, पुत्र हीहैं इसमें संशय नहीं, पिताके मरने पर महात्माओंको बालकोंके ऊपर दयाही करनी चाहिये ॥ ४१ ॥ और पीछे उसने अपने पुत्र दुर्योधनको भी अनर्थसे निवारण नहीं किया, यदि ऐसा करता तो यह अनर्थ कभी न होता ॥ ४२ ॥ इसके आगे जो कुछ हुआ सो तो हुआ ही वह अन्यथा होही नहीं सकता, यह धृतराष्ट्र दुष्ट है, आप सब धर्मात्मा सत्यवादी हैं ॥ ४३ ॥ इस कारण अन्तमें

उसका ही निश्चय नाश होगा, जो बीज उसने बुवाया है वह यहां अवश्य उपजेगा ॥ ४४ ॥ इस कारण आपको किसी प्रकार दुःख नहीं करना चाहिये, आपका शुभ होगा इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ४५ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार व्यासजीने कहकर उन युधिष्ठिर आदि सब पांडवोंको प्रसन्न किया और वे फिर यह वचन बोले, ॥ ४६ ॥ पांडव बोले हे नाथ ! तुमने सत्य कहा, दुष्ट लोग हमको निरंतर वनमें भी बारंबार दुःख देते हैं ॥ ४७ ॥ हे विभो ! मेरे अशुभको नष्ट करो और मुझे कुछ शुभ दान करो पहले श्रीकृष्णजीने कहा था कि सदैव शिवजीकी आराधना करनी चाहिये ॥ ४८ ॥ सो हमने असावधानीसे उनका वचन शिथिल किया, उस देवमार्गका अब फिर

तस्माद्दुःखं न कर्तव्यं भवद्भिः सर्वथा ध्रुवम् ॥ भविष्यति शुभं वो हि नात्र कार्य्या विचारणा ॥४५॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्ता पाण्डवाः सर्वे तेन व्यासेन प्रीणिताः ॥ युधिष्ठिरमुखास्ते च पुनरेवाब्रुवन्वचः ॥४६॥ पाण्डवा ऊचुः ॥ सत्यमुक्तन्त्वया नाथ दुष्टैर्दुःखं निरंतरम् ॥ दुष्टात्मभिर्वने चापि दीयते हि मुहुर्मुहुः ॥ ४७ ॥ तन्नाशयाशुभम्मेद्य किंचिद्देयं शुभं विभो ॥ कृष्णेन कथितं पूर्वमाराध्यश्शङ्करस्सदा ॥ ४८ ॥ प्रमादश्च कृतोऽस्माभिस्तद्वचश्शिथिलीकृतम् ॥ स देवमार्गस्तु पुनरिदानीमुपदिश्यताम् ॥४९॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा व्यासो हर्षसमन्वितः ॥ उवाच पाण्डवान्प्रीत्या स्मृत्वा शिवपदांबुजम् ॥ ५० ॥ व्यासउवाच ॥ श्रूयतां वचनं मेद्य पांडवा धर्म्मबुद्धयः ॥ सत्यमुक्तं तु कृष्णेन मया संसेव्यते शिवः ॥ ५१ ॥ भवद्भिः सेव्यतां प्रीत्या सुखं स्यादतुलं सदा ॥ सर्वदुःखं भवत्येव शिवाऽसेवात एव हि ॥ ५२ ॥ ॥ नंदीश्वर उवाच ॥ अथ पंचसु तेष्वेव विचार्य्य शिवपूजने ॥ अर्जुनं योग्यमुच्चार्य व्यासो मुनिवरस्तथा ॥ ५३ ॥

उपदेश कीजिये ॥ ४९ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह वचन सुनकर व्यासजी बडे प्रसन्न हुए और प्रीतिसहित शिवके चरणकमलोंको स्मरण करके पांडवोंसे बोले ॥ ५० ॥ व्यासजी बोले, हे धर्मबुद्धिवाले ! पांडवो ! ! मेरा वचन सुनो श्रीकृष्णने सत्य कहा है मैं भी शिवजीको सेवन करता हूं ॥ ५१ ॥ और आपको भी प्रेमसहित सेवन करना चाहिये, तुमको अधिक सुख होगा, शिवकी सेवा नकरनेसे सब दुःख होता है ॥ ५२ ॥ नन्दीश्वर बोले, तब मुनि व्यासजीने उन पांचों पांडवोंमें शिवके पूजनमें अर्जुनको योग्य विचारा और कहा ॥ ५३ ॥

इस प्रकार वह मुनि व्यासजी तपके स्थानको विचार सत्यधर्ममें स्थित हुए पांडवोंसे यह वचन बोले ॥ ५४ ॥ व्यासजी बोले, हे पांडवो !!! सुनो, तुम्हारा हित कहता हूं, सत्पुरुषोंकी गति, परब्रह्म, सबसे परे शिवको देखकर ॥ ५५ ॥ तथा ब्रह्मासे लेकर त्रिपरार्ध संख्यातक जो कुछ संसार दीखता है सो सबही शिवरूप है और वह सदा पूजनेयोग्य तथा ध्यान करने योग्य है ॥ ५६ ॥ इन दुःखोंके दूर करनेवाले शिवजीकी सबको सेवा करनी चाहिये, शिवजी भक्तिसे थोडेही समयमें प्रसन्न होते हैं ॥ ५७ ॥ अति प्रसन्न हुए महेश्वर अपने भक्तोंको सब कुछ देनेवाले हैं, भोग तथा मुक्तिको इसलोक और परलोकमें निश्चयही देते हैं ॥ ५८ ॥ इस कारण भोग और मुक्तिके चाहनेवालोंको सदाही शिवजीकी

तपस्थानं विचार्य्यैवं ततस्स मुनिसत्तमः ॥ पाण्डवान्धर्मसन्निष्ठान्पुनरेवाब्रवीदिदम् ॥५४॥ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रूयताम्पाण्ड वास्सर्वं कथयामि हितं सदा ॥ शिवं सर्वं परं दृष्ट्वा परं ब्रह्म सताङ्गतिम्॥५५॥ब्रह्मादित्रिपरार्द्धान्तं यत्किंचिद्दृश्यते जगत् ॥ तत्सर्वं शिवरूपं च पूज्यन्ध्येयं च तत्पुनः ॥५६॥ सर्वेषां चैव सेव्योसौ शङ्करस्सर्वदुःखहा ॥ शिवः स्वल्पेन कालेन संप्रसीदति भक्तितः ॥५७॥ सुप्रसन्नो महेशो हि भक्तेभ्यः सकलप्रदः ॥ भुक्तिं मुक्तिमिहामुत्र यच्छतीति सुनिश्चितम्॥५८॥तस्मात्सेव्यस्सदा शम्भुर्भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः॥पुरुषश्शङ्करः साक्षादुष्टहन्ता सतांगतिः ॥५९॥परन्तु प्रथमं शक्रविद्यां दृढमना जपेत् ॥ क्षत्रियस्य पराख्यस्य चेदमेव समाहितम्॥६०॥अतोर्जुनश्च प्रथमं शक्रविद्यां जपेद्दृढः ॥ करिष्यति परीक्षाम्प्राक् संतुष्टस्तद्भविष्यति ॥ ६१ ॥ सुप्रसन्नश्च विघ्नानि संहरिष्यति सर्वदा ॥ पुनश्चैवं शिवस्यैव वरं मन्त्रं प्रदास्यति ॥ ६२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वार्जुनमाहूयोपेन्द्रविद्यामुपादिशत् ॥ स्नात्वा च प्राङ्मुखो भूत्वा जग्राहार्जुन उग्रधीः ॥ ६३ ॥

सेवा करनी चाहिये, शंकर साक्षात् पुरुष हैं, और दुष्टोंके नाश करनेवाले सत्पुरुषोंकी गति हैं ॥५९॥ परन्तु पहले दृढमन होके इन्द्र विद्याको जपना चाहिये, परमप्रसिद्ध क्षत्रियको यहही धारण करनी चाहिये ॥६०॥ इस कारण अर्जुनको दृढ होकर पहले इन्द्रकी विद्या जपनी चाहिये, प्रथम वह इन्द्र परीक्षा करेगा तब संतुष्ट होगा ॥ ६१ ॥ अतिप्रसन्न होकर निरंतर सब विघ्नोंको दूर करेगा, फिर इसी प्रकार शिवजीके श्रेष्ठ मंत्रको देगा ॥ ६२ ॥ नन्दीश्वर बोले, व्यासजीने यह कह अर्जुनको बुलाय इन्द्रसम्बन्धिनी विद्याका उपदेश दिया और तीव्रबुद्धिवाले अर्जुनने

पूर्वकी ओर मुख करके तथा स्नानकर उसे ग्रहण किया॥६३॥व्यासजीने अर्जुनको पार्थिवका विधान बताया, तब उदारबुद्धि व्यासजी उस अर्जुनसे फिर बोले ॥६४॥ व्यासजी बोले, हे अर्जुन ! अब इस सुन्दर शोभावाले इन्द्रकीलपर्वतपर गंगाजीके किनारे स्थित होकर अच्छीप्रकार तप करो ॥६५॥ यह विद्या अदृश्य सदा तेरे हितकरनेवाली होगी, इसप्रकार मुनि व्यासजीने अर्जुनको आशीर्वाद दिया, तब उन पांडवोंसे कहा ॥६६॥ हे नृपसत्तम ! तुम सब धर्मके ऊपर स्थित होकर रहो तुमको सब प्रकार श्रेष्ठ सिद्धि होगी, इसमें संशय नहीं है ॥६७॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार

पार्थिवस्य विधानं च तस्मै मुनिवरो ददौ ॥ प्रत्युवाच च तं व्यासो धनंजयमुदारधीः ॥६४॥व्यास उवाच ॥ इतो गच्छाधुना पार्थ इन्द्रकीले सुशोभने ॥ जाह्नव्याश्च समीपे वै स्थित्वा सम्यक् तपः कुरु ॥ ६५ ॥ अदृश्या चैव विद्या स्यात्सदा ते हितकारिणी ॥ इत्याशिषन्ददौ तस्मै ततः प्रोवाच तान्मुनिः ॥ ६६ ॥ धर्म्ममास्थाय सर्वे वै तिष्ठन्तु नृपसत्तमाः ॥ सिद्धिः स्यात्सर्वथा श्रेष्ठा नात्र कार्या विचारणा ॥६७॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति दत्त्वाशिषन्तेभ्यः पाण्डवेभ्यो मुनीश्वरः ॥ स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं व्यासश्चान्तर्दधे क्षणात् ॥६८॥इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णनप्रसंगेऽर्जुनाय व्यासोपदेशवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥नन्दीश्वर उवाच॥ अर्जुनोपि तदा तत्र दीप्यमानो व्यदृश्यत ॥ मन्त्रेण शिवरूपेण तेजश्चातुलमावहन् ॥ १ ॥ ते सर्वे चार्जुनन्दृष्ट्वा पाण्डवा निश्चयं गताः ॥ जयोऽस्माकं ध्रुवञ्जातन्तेजश्च विपुलं यतः ॥ २ ॥ इदङ्कार्य्यन्त्वया साध्यन्नान्येन च कदाचन ॥ व्यासस्य वचनाद्धाति सफलं कुरु जीवितम् ॥ ३ ॥

मुनीश्वर व्यासजी उन पांडवोंको आशीर्वाद देकर शिवजीके चरणकमलोंको स्मरण कर उसी समय अन्तर्धान हुए॥६८॥इति श्रीशिवमहापुराणभाषा टीकायां तृ० श० रु० किरातावतारवर्णनप्रसंगेऽर्जुनाय व्यासोपदेशवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ नन्दीश्वर बोले, उस समय अर्जुनका शिवरूपमंत्रसे अधिक तेज बढने लगा और प्रकाशित हुआ दीख पडा ॥१॥ उन सब पांडवोंने अर्जुनको देखकर निश्चय किया कि निःसन्देह अब हमारी विजय हुई, क्योंकि बडा तेज प्राप्त हुआ॥२॥हे अर्जुन ! व्यासजीके वचनसे यह कार्य तुमको साधना चाहिये, आप शोभित होते हैं

और हमारे जीवनको सफल करो ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर वियोगके दुःखसे व्याकुल हुए भेजनेकी इच्छा होनेपरभी पांडवोंने अर्जुनको उस पर्वतपर आदरसहित भेजा ॥ ४ ॥ उस समय पतिव्रता, द्रौपदी, दुःखी हुई, नेत्रके आंसुओंको रोककर बिदाके समय यह शुभ वचन बोली ॥ ५ ॥ द्रौपदी बोली, हे राजन् ! व्यासजीने तुमको जो उपदेश दिया है उसे प्रयत्नसे पूर्ण करना चाहिये, तुम्हारा मार्ग शुभका देनेवाला हो और शिवजी तुम्हारा कल्याण करनेवाले हों ॥६॥ वे सब पांचों पांडव आदर सहित अर्जुनको बिदा कर अति दुःखी हुए और सब मिलकर वहां रहने लगे ॥ ७ ॥ हे ऋषिसत्तम ! सुनो वे वहां स्थित हुए परस्परमें कहते थे कि दुःखके समयमें प्रियका संग हो तो दुःखके लिये

इति प्रोच्यार्जुनन्ते वै विरहौत्सुक्यकातराः॥अनिच्छन्तोपि तत्रैव प्रेषयामासुरादरात् ॥४॥ द्रौपदी दुःखसंयुक्ता नेत्राश्रूणि निरुध्य च ॥ प्रेषयन्ती शुभं वाक्यन्तदोवाच पतिव्रता॥५॥ द्रौपद्युवाच॥व्यासोपदिष्टं यद्राजंस्त्वया कार्यं प्रयत्नतः ॥शुभप्रदोऽस्तु ते पन्थाश्शंकरश्शंकरोस्तु वै॥६॥ ते सर्वे चावसंस्तत्र विसृज्यार्जुनमादरात् ॥अत्यन्तदुःखमापन्ना मिलित्वा पञ्च एव च॥७॥स्थितास्तत्र वदन्ति स्म श्रूयतामृषिसत्तम॥दुःखेपिप्रियसंगो वै न दुःखायप्रजायते॥८॥वियोगे द्विगुणन्तस्य दुःखम्भवति नित्यशः॥ तत्र धैर्य्यधरस्यापि कथन्धैर्य्यम्भवेदिह ॥९॥ नन्दीश्वर उवाच ॥कुर्वत्स्वेव तदा दुःखम्पाण्डवेषु मुनीश्वरः ॥ कृपासिंधुश्च स व्यास ऋषिवर्य्यस्समागतः॥१०॥तन्तदा पाण्डवास्ते वै नत्वा सम्पूज्य चादरात्॥दत्त्वासनं हि दुःखाढ्याः करौ बद्धा वचोऽब्रुवन् ॥११॥ पाण्डवा ऊचुः ॥ श्रूयतामृषभ श्रेष्ठ दुःखदग्धा वयम्प्रभो॥ दर्शनन्तेऽद्य सम्प्राप्य ह्यानन्दं प्राप्नुमो मुने॥१२॥

नहीं होता है ॥८॥ उसके वियोगमें नित्य दूना दुःख होता है, उस समय धैर्य रखनेवालेका भी धैर्य किस प्रकार रह सकता है अर्थात् प्रियके वियोगमें धैर्यधारीका भी धीरज टूट जाता है ॥९॥ नन्दीश्वर बोले, उस समय पांडवोंके दुःख करनेपर मुनीश्वर, कृपासिन्धु, ऋषिवर्य, व्यासजी आये ॥ १० ॥ तब उनको आदर सहित सत्कार करके तथा प्रणाम करके आसन देकर दुःखी हुए पांडवहाथ बांध यह वचन बोले ॥ ११ ॥ पांडव बोले, हे ऋषभश्रेष्ठ ! हे प्रभो हे मुने ! आज आपके दर्शन पाकर हम लोग दुःखसे रहित हो आनन्दको प्राप्त होते हैं ॥ १२॥

हे प्रभो ! हमारे दुःख नाश होनेके लिये कुछ समय यहां निवास करो, आप ब्रह्मर्षिके दर्शन करनेसे सब दुःख नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा उनके कहनेपर ऋषिश्रेष्ठ व्यासजीने सुखके निमित्त निवास किया और उस समय अनेक प्रकारकी कथाओंसे उन पांडवोंका दुःख दूर किया ॥ १४ ॥ हे सन्मुने !उन व्यासजीके साथ वार्ता करनेपर विनीतात्मा, धर्मराज प्रणाम कर बोले ॥ १५ ॥ युधिष्ठिर बोले हे ऋषिश्रेष्ठ ! हे प्रभो ! हे महाप्राज्ञ ! मेरा दुःख शान्त होता है मैं आपसे जो पूछता हूं सो कहिये ॥ १६ ॥ सो पहले ऐसे दुःखको कभी और भी कोई हुआ है या मैं ही इस बडे दुःखमें पडा हूं क्या और कोई ऐसे दुःखको नहीं प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ व्यासजी बोले, पहले निषध

कियत्कालं वसात्रैव दुःखनाशाय नः प्रभो॥ दर्शनात्तव विप्रर्षेस्सर्वं दुःखं विलीयते॥१३॥नन्दीश्वर उवाच॥इत्युक्तस्स ऋषिश्रेष्ठो न्यवसत्तत्सुखाय वै ॥ कथाभिर्विविधाभिश्च तद्दुःखं नोदयंस्तदा॥१४॥ वार्तायां क्रियमाणायान्तेन व्यासेन सन्मुने ॥ सुप्रणम्य विनीतात्मा धर्मराजोऽब्रवीदिदम्॥१५॥धर्मराज उवाच ॥शृणु त्वं हि ऋषिश्रेष्ठ दुःखशान्तिर्मता मम ॥ पृच्छामि त्वां महाप्राज्ञ कथनीयन्त्वया प्रभो॥१६॥ईदृशं चैव दुःखं च पुरा प्राप्तश्च कश्चन॥वयमेव परं दुःखं प्राप्ता वै नैव कश्चन॥१७॥व्यास उवाच॥ राज्ञस्तु नलनाम्नो वै निषधाधिपतेः पुरा ॥भवद्दुःखाधिकं दुःखं जातन्तस्य महात्मनः॥१८॥ हरिश्चन्द्रस्य नृपतेर्जातं दुःखम्महत्तरम् ॥ अकथ्यन्तद्विशेषेण परशोकावहन्तथा ॥१९॥ दुःखम्तथैव विज्ञेयं रामस्याप्यथ पाण्डव ॥यच्छ्रुत्वा स्त्रीनराणां च भवेन्मोहो महत्तरः ॥ २० ॥ तस्माद्वर्णयितुन्नैव शक्यते हि मया पुनः ॥ शरीरं दुःखराशिं च मत्वा त्याज्यन्त्वयाधुना ॥ २१ ॥

देशके स्वामी महात्मा राजा नलको आपसे अधिक दुःख हुआ है ॥ १८ ॥ और राजा हरिश्चन्द्रने बडा दुःख भोगा है, वह परम शोक देनेवाला दुःख विशेषकर अनिर्वचनीय है ॥ १९ ॥ हे पांडव ! उसी प्रकार रामचन्द्रको बडा दुःख हुआ है, जिसको सुनकर स्त्री पुरुषोंको बडा भारी मोह होता है ॥ २० ॥ इस कारण उस चरित्रके वर्णन करनेको मैं समर्थ नहीं हूं, यह शरीर दुःखोंका समूह है यह जानकर तुमको दुःख त्यागना चाहिये ॥ २१ ॥

जिसने यह जगत धारण किया है वह ही व्याप्त हो रहा है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, पहले तो माताके गर्भमें जन्मही दुःखका कारण है ॥ २२ ॥ फिर कौमार अवस्थामें बालकोंको लीला सम्बन्धी महादुःख है, इसके पीछे युवा अवस्थामें दुःखरूपी कामनाओंके भोगते हुए दुःख होता है ॥ २३ ॥ अनेक प्रकारके कार्यमें आसक्त हुए दिनोंके बीतनेपर नित्य आयु नष्ट होती जाती है और मनुष्य उसको नहीं जानता है ॥ २४ ॥ इसके पीछे अन्तमें मरणरूप महादुःख होता है, पीछे मूर्ख मनुष्योंको अनेक प्रकारके नरककी पीडा भोगनी पडतीं हैं ॥ २५ ॥ इस कारण यह सब संसार अनित्य है, तुम सत्यका आचरण करो, जिस प्रकार शिवजी सन्तुष्ट हों मनुष्यको वही

येनेदञ्च धृतन्तेन व्याप्तमेव न संशयः ॥ प्रथमम्मातृगर्भे वै जन्म दुःखस्य कारणम् ॥२२॥ कौमारेऽपि महादुःखं बाललीलानुसारि यत् ॥ ततोपि यौवने कामान्भुञ्जानो दुःखरूपिणः ॥२३॥ गतागतैर्दिनानां हि कार्यभारैरनेकशः ॥ आयुश्च क्षीयते नित्यं न जानाति ह तत्पुनः ॥२४॥ अन्ते च मरणं चैव महादुःखमतः परम् ॥ नानानरकपीडाश्च भुज्यंतेज्ञैर्नरैस्सदा ॥२५॥ तस्मादिदमसत्यं च त्वन्तु सत्यं समाचर ॥ येनैव तुष्यते शम्भुस्तथा कार्यं नरेण च ॥२६॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवं विविधवार्ताभिः कालनिर्यापणन्तदा ॥ चक्रुस्ते भ्रातरः सर्वे मनोरथपथैः पुनः ॥२७॥ अर्जुनोपि स्वयं गच्छन्दुर्गाद्रिषु दृढव्रतः ॥ यक्षं लब्ध्वा च तेनैव दस्यून्निघ्नन्नेकशः ॥२८॥ मनसा हर्षसंयुक्तो जगामाचलमुत्तमम् ॥ तत्र गत्वा च गंगायाः समीपं सुन्दरं स्थलम् ॥ २९ ॥ अशोककाननं यत्र तिष्ठति स्वर्ग उत्तमः ॥ तत्र तस्थौ स्वयं स्नात्वा नत्वा च गुरुमुत्तमम् ॥ ३० ॥ यथोपदिष्टं वेषादि तथा चैवाकरोत्स्वयम् ॥ इन्द्रियाण्यपकृष्यादौ मनसा संस्थितोऽभवत् ॥ ३१ ॥

करना चाहिये ॥ २६ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उन सब भाइयोंने, मनोरथके मार्गवाले अनेक प्रकारके सम्भाषणोंसे समयको बिताया ॥ २७ ॥ दृढव्रत अर्जुनने भी स्वयं इन्द्रकील पर्वतपर जाय, किसी यक्षको पाकर उसके द्वारा अनेक डांकू राक्षसोंको नष्ट किया ॥ २८ ॥ मनमें प्रसन्न हो उत्तम पर्वतको गमन किया, वहां जाकर गंगाजीके समीप सुन्दर स्थल पाया ॥ २९ ॥ जहां अशोकवन उत्तम स्वर्गके समान है, वहां गंगाजीमें स्नानकर श्रेष्ठ गुरुको नमस्कार करके स्थित हुआ ॥ ३० ॥ जैसा उपदेश दिया था उसी प्रकार

वेष आदि स्वयं किया, इन्द्रियोंको वशमें करके मन लगाकर स्थित हुआ ॥ ३१ ॥ फिर समान सूत्रवाले, सुन्दर पार्थिव लिंगको बनाकर उस अर्जुनने उसके आगे श्रेष्ठ तेजके समूह शिवका ध्यान किया ॥ ३२ ॥ तीनों कालमें स्नानकर बारंबार शिवजीका अनेक प्रकार पूजन कर उपासना की ॥ ३३ ॥ तब उस अर्जुनके शिरसे तेज निकलने लगा, उसको देख चर भय मानने लगे कि यह तेज कब प्रवेश होगा ॥ ३४ ॥ फिर उन्होंने यह बिचारा कि इन्द्रसे कहना चाहिये यह कह कर वेगसे वे इन्द्रके निकट गये ॥ ३५ ॥ चर बोले, हे देवेश ! कोई देवता अथवा ऋषि या सूर्य तथा अग्नि वनमें तप करता है, हम उसको नहीं जानते हैं ॥ ३६ ॥ उसीके तेजसे तापित हो हम

पुनश्च पार्थिवं कृत्वा सुन्दरं समसूत्रकम् ॥ तदग्रे प्रणिदध्यौ स तेजोराशि मनुत्तमम् ॥ ३२ ॥ त्रिकालं चैव सुस्नातः पूजनं विविधं तदा ॥ चकारोपासनन्तत्र हरस्य च पुनः पुनः ॥३३॥ तस्यैव शिरसस्तेजो निस्सृतन्तच्चरास्तदा ॥ दृष्ट्वा भयं समापन्नाः प्रविष्टश्च कदा ह्ययम् ॥३४॥ पुनस्ते च विचार्यैवं कथनीयं बिडौजसे ॥ इत्युक्त्वा तु गतास्ते वै शक्रस्यान्तिकमञ्जसा ॥ ३५ ॥ चरा ऊचुः ॥ देवो वाऽथ ऋषिश्चैव सूर्यो वाथ विभावसुः ॥ तपश्चरति देवेश न जानीमो वने च तम् ॥ ३६ ॥ तस्यैव तेजसा दग्धा आगतास्तव सन्निधौ ॥ निवेदितञ्चरित्रं तत्क्रियतामुचितन्तु यत् ॥३७॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तस्तैश्चरैस्सर्वं ज्ञात्वा पुत्रचिकीर्षितम् ॥ सगोत्रपान्विसृज्यैव तत्र गन्तुं मनो दधे ॥ ३८ ॥ स वृद्धब्राह्मणो भूत्वा ब्रह्मचारी शचीपतिः ॥ जगाम तत्र विपेन्द्र परीक्षार्थं हि तस्य वै ॥ ३९ ॥ तमागतन्तदा दृष्ट्वाकार्षीत्पूजाञ्च पाण्डवः ॥ स्थितोग्रे च स्तुतिं कृत्वा कायातोसि वदाधुना ॥ ४० ॥ इत्युक्तस्तेन देवेशो धैर्य्यार्थन्तस्य प्रीतितः ॥ परीक्षागर्वितं वाक्यं पाण्डवन्तं ततोऽब्रवीत् ॥ ४१ ॥

आपके निकट आये हैं सो सब समाचार हमने निवेदन किया, जो उचित हो सो कीजिये ॥ ३७ ॥ नन्दीश्वर बोले, दूतोंके ऐसा कहने पर इन्द्रने अपने पुत्रकी इच्छाको जान कर अपने परिवारको छोड वहां जानेकी इच्छा की ॥ ३८ ॥ हे विप्रेन्द्र ! वह इन्द्र ब्रह्मचारी वृद्ध ब्राह्मणका रूपधर अर्जुनकी परीक्षा करनेको गए ॥ ३९ ॥ उनको आया हुआ देखकर अर्जुनने पूजाकी और स्तुति करके उनके आगे खडे होकर कहा कि, इस समय आप कहांसे आये हो सो कहिये ॥ ४० ॥ ऐसा अर्जुनके कहनेपर इन्द्रने उसके धैर्यदेनेके निमित्त प्रीतिपूर्वक परीक्षासे

गर्वित वचन कहे ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण बोले, हे तात ! इस समय तू नई अवस्थामें क्यों तप करता है यह तप मुक्तिके अर्थ है अथवा विजयके निमित्त है ॥ ४२ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा पूछनेपर उस अर्जुनने सब वृत्तांत कहा, यह सुनकर वह ब्राह्मण फिर बोले ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण बोले, हे वीर सुख पानेको क्षत्रियधर्मसे तप करते हो सो ठीक नहीं है, मुक्तिके अर्थ तप करो ॥४४॥ हे श्रेष्ठ ! इन्द्र सुखका देनेवाला है मुक्तिका दाता नहीं है, इस कारण तुमको सब प्रकार श्रेष्ठ तप करना चाहिये ॥ ४५ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा उस ब्राह्मणका वचन सुनकर दृढवत नम्र स्वभाववाले अर्जुनने क्रोध करके उसका निरादर कर कहा ॥ ४६ ॥ अर्जुन बोला, तुम क्यों ? ऐसा कहते हो हम न राज्यके लिये न मुक्तिके

ब्राह्मण उवाच ॥नवे वयसि वै तात किन्तपस्यसि साम्प्रतम्॥मुक्त्यर्थं वा जयार्थं किं सर्वथैतत्तपस्तव ॥४२॥ नन्दीश्वर उवाच॥ इति पृष्टस्तदा तेन सर्वं संवेदितम्पुनः ॥तच्छ्रुत्वा स पुनर्वाक्यमुवाच ब्राह्मणस्तदा ॥४३॥ब्राह्मण उवाच॥युक्तं न क्रियते वीर सुखं प्राप्तुं च यत्तपः ॥ क्षात्रधर्मेण क्रियते मुक्त्यर्थं कुरुसत्तम॥४४॥ इन्द्रस्तु सुखदाता वै मुक्तिदाता भवेन्न हि॥तस्मात्त्वं सर्वथाश्रेष्ठ कर्तुमर्हसि सत्तपः॥४५॥नन्दीश्वर उवाच॥इदन्तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधं चक्रेऽर्जुनस्तदा॥प्रत्युवाच विनीतात्मा तदनादृत्य सुव्रतः ॥४६॥ अर्जुनउवाच ॥ राज्यार्थं न च मुक्त्यर्थं किमर्थं भाषसे त्विदम्॥व्यासस्य वचनेनैव क्रियते तप ईदृशम्॥४७॥ इतो गच्छ ब्रह्म चारिन्मा पातयितुमिच्छसि॥प्रयोजनं किमत्रास्ति तव वै ब्रह्मचारिणः॥४८॥नन्दीश्वर उवाच॥इत्युक्तः स प्रसन्नोभूत्सुन्दरंरूप मद्भुतम्॥स्वोपस्करणसंयुक्तं दर्शयामास वै निजम्॥४९॥शक्ररूपन्तदा दृष्ट्वा लज्जितश्चार्जुनस्तदा॥स इन्द्रस्तं समाश्वास्य पुनरेव वचोब्रवीत् ॥ ५० ॥ इंद्र उवाच ॥ वरं वृणीष्व हे तात धनंजय महामते ॥ यदिच्छसि मनोभीष्टन्नादेयं विद्युते तव ॥ ५१ ॥

लिये किंतु व्यासजीके वचनसे ही ऐसा तप करते हैं ॥ ४७ ॥ हे ब्रह्मचारिन् ! इधरको जाइये, तुम मुझे गिरानेकी इच्छा मत करो, तुम ब्रह्मचारीको इससे क्या प्रयोजन है ॥४८॥ नन्दीश्वर बोला, इस प्रकार कहनेपर इन्द्र प्रसन्न हुए और सबके उपकार करने योग्य सुन्दर रूपको दिखाया ॥ ४९ ॥ तब इंद्रके रूपको देखकर अर्जुन लज्जित होगया, उसको इन्द्रने ढाढस देकर फिर कहा ॥५०॥ इन्द्र बोला, हे तात ! हे धनंजय ! हे महामते ! यदि तुम मनकी इच्छित अभिलाषाको चाहते हो तो वर मांगो, तुमको कुछ भी अदेय नहीं है ॥ ५१ ॥

उस समय इंद्रका वचन सुनकर अर्जुन बोला, हे तात ! शत्रुओंसे दुःखी हुए मुझे सब प्रकार विजय प्रदान करो ॥ ५२ ॥ इंद्र बोले, तुम्हारे शत्रु दुर्योधन आदि बडे बली हैं, द्रोण तथा भीष्म, कर्ण, निश्चय ही यह सब जीतनेको अशक्य हैं ॥५३॥ अश्वत्थामा नामक द्रोणाचार्यका पुत्र शिवका अंश है, वही बडा दुर्जय है, वे मुझसे भी असाध्य हैं, पर तुम सबप्रकार अपने हितको सुनो ॥ ५४ ॥ हे वीर ! इसके जय करनेको कोई भी समर्थ नहीं है, कारण कि, वह शिव है, इस कारण शिवका जप करनेसे कार्य होगा ॥ ५५ ॥ शिवजी सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी हैं, तथा चर अचरके पति स्वयं प्रकाशवान हैं, वे सब कहनेको समर्थ हैं, तथा भोग और मुक्ति फलके देनेवाले हैं ॥ ५६ ॥ मैं और

तच्छ्रुत्वा शक्रवचनम्प्रत्युवाचार्जुनस्तदा ॥विजयन्देहि मे तातशत्रुक्लिष्टस्य सर्वथा ॥५२॥ शक्र उवाच ॥ बलिष्ठाश्शत्रवस्ते च दुर्योधनपुरः सराः ॥ द्रोणो भीमश्च कर्णश्च सर्वे ते दुर्जया ध्रुवम् ॥५३॥अश्वत्थामा द्रोणपुत्रो रौद्रोंशो दुर्जयोऽति सः ॥ मया साध्या भवेयुस्ते सर्वथा स्वहितं शृणु॥५४॥एतद्वीर जपं कर्तुं न शक्तः कश्चनाधुना॥ वर्तते हि शिवो वर्यस्तस्माच्छम्भोर्जयोऽधुना ॥५५॥ शंकरः सर्वलोकेशश्चराचरपतिः स्वराट्॥ सर्वं कर्तुं समर्थोस्ति भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥५६॥ अहं मन्ये च ब्रह्माद्या विष्णुः सर्ववरप्रदः॥अन्ये जिगीषवो ये च ते सर्वे शिवपूजकाः॥५७॥अद्यप्रभृति तन्मन्त्रं हित्वा भक्त्या शिवं भज ॥ पार्थिवेन विधानेन ध्यानेनैव शिवस्य च॥५८॥उपचारैरनेकैश्च सर्वभावेन भारत ॥ सिद्धिः स्यादचला तेद्य नात्र कार्या विचारणा॥५९॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा च चरान्सर्वान्समाहूयाब्रवीदिदम् ॥ सावधानेन वै स्थेयमेतत्संरक्षणे सदा ॥ ६० ॥

ब्रह्माआदि सब वरके देनेवाले विष्णु, तथा और जो विजयके चाहनेवाले हैं सब वे शिवजीको पूजते हैं ॥ ५७ ॥ आजसे लेकर इस इन्द्रके मंत्रको त्यागकर, भक्तिसे शिवको भजो, पार्थिवके विधान तथा ध्यानसे शिवका पूजन करो ॥५८॥ हे भारत ! अनेक उपचारोंसहित प्रेमसे तुम्हारी अटल सिद्धि होगी, इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ ५९ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहकर इन्द्रने सब चरोंको बुलाकर यह कहा कि तुमको इस अर्जुनके रक्षा करनेमें सावधान पूर्वक रहना चाहिये ॥ ६० ॥

इस प्रकार इन्द्र अपने चरोंको अर्जुनके रक्षण आदिमें समझाकर, दयासे पूर्ण हृदय हो फिर अर्जुनसे बोला ॥ ६१ ॥ इन्द्र बोला, हे परन्तप! हे भद्र ! तुम राज्यको प्रमादसे कभी न करना यह विद्या तुम्हारे कल्याणके लिये होगी ॥६२॥ तुम साधकको सब प्रकार धैर्य धारण करना चाहिये, शिवजी रक्षा करनेवाले हैं, सम्पत्तियोंके तुल्य फलको देंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥६३॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उस अर्जुनको वरदान देकर इन्द्र शिवजीके चरणकमलोंको स्मरण करतेहुए अपने धामको गये ॥ ६४ ॥ बडे पराक्रमी अर्जुनभी शिवको प्रणाम करके संयम

प्रबोध्य स्वचरानिन्द्रोऽर्जुनसंरक्षणादिकम् ॥वात्सल्यपूर्णहृदयः पुनरूचे कपिध्वजम्॥६१॥इन्द्र उवाच॥राज्यं त्वया प्रमादाद्वै न कर्तव्यं कदाचन॥श्रेयसे भद्र विद्येयं भवेत्तव परन्तप॥६२॥धैर्यं धार्यं साधकेन सर्वथा रक्षकः शिवः॥ संपत्तीश्च फलन्तुल्यं दास्यते नात्र संशयः ॥ ६३ ॥ नन्दीश्वर उवाच॥इति दत्त्वा वरन्तस्य भारतस्य सुरेश्वरः ॥स्मरञ्छिवपदाम्भोजञ्जगाम भवनं स्वकम् ॥ ६४ ॥ अर्जुनोपि महावीरस्सुप्रणम्य सुरेश्वरम्॥तपस्तेपे संयतात्मा शिवमुद्दिश्य तद्विधम् ॥६५॥ इति श्रीशिवमहा पुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णनप्रसंगेऽर्जुनतपोवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥३८॥नन्दीश्वर उवाच॥स्नानं स विधिवत्कृत्वा न्यासादि विधिवत्तथा॥ध्यानं शिवस्य सद्भक्त्या व्यासोक्तं यत्तथाऽकरोत्॥१॥एकपादतलेनैव तिष्ठन्मुनिवरो यथा ॥ सूर्य्ये दृष्टिं निबध्यैकां मंत्रमावर्तयन्स्थितः ॥२॥तपस्तेपेति संप्रीत्या संस्मरन्मनसा शिवम्॥पंचाक्षरं मनुं शंभोर्जपन्सर्वो त्तमोत्तमम् ॥ ३ ॥ तपसस्तेज एवासीद्यथा देवा विसिस्मियुः ॥ पुनश्चैव शिवं याताः प्रत्यूचुस्ते समाहिताः ॥ ४ ॥

चित्तसे उसी प्रकार शिवके उद्देशसे तप करने लगे॥६५॥इति श्रीशिमहापुराणभाषाटीकयांतृ० श० रु० किरातावतारवर्णनप्रसंगेऽर्जुनतपोवर्णनं नामाष्ट त्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥ नन्दीश्वर बोले, तब अर्जुनने विधिपूर्वक स्नान तथा यथाविधि न्यास आदि करके श्रेष्ठ भक्तिके सहित व्यासजीके कहनेके अनु सार शिवजीका ध्यान किया॥१॥एकपादके तलुवेसे मुनिके समान स्थित होकर सूर्यमें एकमात्र दृष्टि लगाये मंत्रको जपताहुआ स्थित रहा॥२॥ मनसे शिवजीको स्मरण करता, मनसेही सर्वोत्तम शिवजीका पंचाक्षर मंत्र जपताहुआ प्रीतिसे तप करने लगा ॥ ३ ॥ उसके तपका तेज इस

प्रकार फैला कि देवताभी विस्मित हुए और वे देवता शिवजीके समीप जाकर सावधान हो बोले ॥ ४ ॥ देवता बोले हे प्रभो ! सर्वेश ! एक मनुष्यने तुम्हारे अर्थ तप किया है वह मनुष्य जो इच्छा करता है सो आप क्यों नहीं देते ॥ ५ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहकर वे देवता अनेकप्रकारकी स्तुति करने लगे, और स्थित समाधि लगाये हुए शिवके चरणोंमें नेत्र लगाए वहां स्थित हुए ॥ ६ ॥ महाप्रभु, उदारबुद्धि प्रसन्नात्मा, शिवजी; उन देवताओंके वचन सुनकर हंसतेहुए उनसे बोले ॥ ७ ॥ शिवजी बोले, तुम देवता अपने २ स्थानको जाओ सब प्रकार मैं तुम्हारा कार्य करूंगा इसमें सशय नहीं ॥ ८ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह शम्भुका वचन सुनकर परम निश्चयको प्राप्त हुए, वे सब

देवा ऊचुः ॥ नरेणैकेन सर्वेश त्वदर्थं तप आहितम् ॥यदिच्छति नरस्सोयं किन्न यच्छति तत्प्रभो॥५॥नन्दीश्वर उवाच॥ इत्युक्ता तु स्तुतिं चक्रुर्विविधान्ते तदा सुराः॥तत्पादयोर्दृशः कृत्वा तत्र तस्थुः स्थिराधयः॥६॥शिवस्तु तद्वचः श्रुत्वा महाप्रभुरुदारधीः ॥ सुविहस्य प्रसन्नात्मा सुरान्वचनमब्रवीत्॥७॥ शिव उवाच॥स्वस्थानं गच्छत सुराः सर्वे सत्यन्न संशयः ॥ सर्वथाहं करिष्यामि कार्यं वो नात्र संशय ॥८॥ नंदीश्वर उवाच॥तच्छ्रुत्वा शंभुवचनन्निश्चयं परमं गताः ॥परावृत्य गताः सर्वे स्वस्वथानं ते हि निर्जराः ॥ ९ ॥ एतस्मिन्नंतरे दैत्यो मूकनामागतस्तदा ॥ सौकरं रूपमास्थाय प्रेषितश्च दुरात्मना ॥१०॥ दुर्योधनेन विप्रेंद्र मायिना चार्जुनं तदा ॥ यत्रार्जुनस्थितश्चासीत्तेन मार्गेण वै तदा॥११॥ शृङ्गाणि पर्वतस्यैव च्छिन्दन्वृक्षाननेकशः॥शब्दं च विविधं कुर्वन्नतिवेगेन संयुतः ॥ १२ ॥ अर्जुनोपि च तं दृष्ट्वा मूकनामासुरं तदा ॥ स्मृत्वा शिवपदांभोजं विचारे तत्परोऽभवत् ॥ १३ ॥

देवता अपने स्थानोंको गए ॥ ९ ॥ इसी अवरमें दुष्टात्मा, दुर्योधनसे भेजा हुआ मूकनामक दैत्य सूकर (सूअर) का रूप धारणकर आया ॥ १० ॥ हे विप्रेंद्र ! कपट करनेवाले दुर्योधनने उसे अर्जुनके समीप भेजा, जहां अर्जुन स्थित था वह उसी मार्गसे निकला ॥ ११ ॥ वह अपने वेगसे पर्वतोंके शिखरोंको तोडता अनेक वृक्षोंको उखाडता तथा अनेक प्रकारके शब्द करता हुआ अतिवेगसे चला ॥ १२ ॥ उस समय अर्जुन मूक नामक उस दैत्यको देखकर शिवजीके चरणकमलोंको स्मरणकर विचारने लगा ॥ १३ ॥

अर्जुन बोला, यह कौन है कहांसे आता है, यह क्रूर कर्म करनेवाला दीखता है, निःसन्देह यह मेरा अनिष्ट करने आता है ॥ १४ ॥ मेरे मनमें यह ही आता है कि शत्रुही है, इसमें संदेह नहीं, मैंने पहले अनेक दैत्य मारे हैं ॥ १५ ॥ उनका सम्बन्धी कोई वैर साधनेको आया है, अथवा कोई दुर्योधनका हित करनेवाला मित्र आया है ॥ १६ ॥ जिसके देखनेपर अपना मन प्रसन्न हो वह निश्चयही हितकारी है, जिसके देखनेपर मन व्याकुल हो वह शत्रु ही है ॥ १७ ॥ आचरणही कुलको कहता है और शरीर भोजनको कहता है वचन शास्त्रको कहता है और नेत्र स्नेहको कहते हैं ॥ १८ ॥ बाहरी आकृति, गति और चेष्टा तथा संभाषणोंसे, नेत्र और मुखके विकारसे

अर्जुन उवाच ॥ कोयं वा कुत आयाति क्रूरकर्मा च दृश्यते ॥ ममानिष्टं ध्रुवं कर्तुं समागच्छत्यसंशयम् ॥ १४ ॥ ममैवं मन आयाति शत्रुरेव न संशयः ॥ मया विनिहताः पूर्वमनेके दैत्यदानवाः ॥ १५ ॥ तदीयः कश्चिदायाति वैरं साधयितुम्पुनः ॥ अथवा च सखा कश्चिद्दुर्योधनहितावहः ॥१६॥ यस्मिन्दृष्टे प्रसीदेत्स्वं मनः स हितकृद्ध्रुवम् ॥ यस्मिन्दृष्टे तदेव स्यादाकुलं शत्रुरेव सः ॥१७॥ आचारः कुलमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ॥ वचनं श्रुतमाख्याति स्नेहमाख्याति लोचनम् ॥ १८ ॥ आकारेण तथा गत्या चेष्टया भाषितैरपि ॥ नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां ज्ञायतेऽन्तर्हितं मनः ॥ १९ ॥ उज्ज्वलं सरसञ्चैव वक्रमारक्त कन्तथा ॥ नेत्रं चतुर्विधं प्रोक्तं तस्य भावं पृथग्बुधाः ॥ २० ॥ उज्ज्वलं मित्रसंयोगे सरसम्पुत्रदर्शने ॥ वक्रं च कामिनीयोगे आरक्ते शत्रुदर्शनं ॥२१॥ अस्मिन्मम तु सर्वाणि कलुषानीन्द्रियाणि च ॥ अयं शत्रुर्भवेदेव मारणीयो न संशयः ॥ २२ ॥ गुरोश्च वचनं मेद्य वर्तते दुःखदस्त्वया ॥ हन्तव्यः सर्वथा राजन्नात्र कार्या विचारणा ॥ २३ ॥

भीतरी मनकी बात जानी जाती है ॥ १९ ॥ उज्ज्वल, सरस, टेढे, और चारों ओरसे लाल, यह चार प्रकारके नेत्र हैं, पंडितोंने इनके पृथक् २ भाव कहे हैं ॥ २० ॥ मित्रके मिलनेपर नेत्र उज्ज्वल होते हैं, और पुत्रके दर्शनमें सरस तथा स्त्रीके योगमें बाँके और शत्रुके देखनेपर सब ओर लाल हो जाते हैं ॥ २१ ॥ इसके देखनेपर मेरी सब इन्द्रियां व्याकुल होती हैं, इससे यह शत्रुही है और निःसंदेह मारने योग्य है ॥ २२ ॥ और यह मेरे गुरुका वचन भी है कि हे राजन् ! तुम सब प्रकार दुःख देनेवालेको मार डालना, उसमें कुछ

विचार न करना ॥ २३ ॥ इसी कारण मेरे पास यह शस्त्र है, इसमें संदेह नहीं ऐसा विचार बाणको निकाल अर्जुन स्थित हुआ ॥ २४ ॥ इसी अवसर वहां अर्जुन की रक्षाके निमित्त तथा उसकी भक्तिकी परीक्षा करनेको भक्तवत्सल शिवजी ॥ २५ ॥ गणोंके समेत उस दैत्यके नाश करनेके निमित्त चतुर भीलके बडे अद्भुत रूपको तत्काल धारण कर आये ॥ २६ ॥ कच्छ बाँधे वस्त्रोंसे बंधी हुई शिवकी ध्वजावाले शरीरमें श्वेत रेखा, स्वयं धनुषबाण धारण किये हुए ॥ २७ ॥ पीठपर बाणोंके तर्कसको धारण किये गणोंसहित शिवजी भीलोंके राजा बने ॥ २८ ॥ तब वह भील अनेक शब्दोंको करते हुए चला और उस सूकरका शब्द भी दशों दिशाओंमें फैल गया ॥

एतदर्थं त्वायुधानि मम चैव न संशयः॥विचार्य्येति च तत्रैव बाणं संस्थाय संस्थितः॥२४॥एतस्मिन्नन्तरे तत्र रक्षार्थं ह्यर्जुनस्य वै ॥तद्भक्तेश्च परीक्षार्थं शंकरो भक्तवत्सलः॥२५॥विदग्धभिल्लरूपं हि गणैः सार्धं महाद्भुतम्॥तस्य दैत्यस्य नाशार्थं द्रुतं कृत्वा समागतः ॥२६॥ बद्धकच्छश्च वस्त्रीभिर्बद्धेशानध्वजस्तदा ॥ शरीरे श्वेतरेखाश्च धनुर्बाणयुतः स्वयम् ॥२७॥ बाणानान्तूणकं पृष्ठे धृत्वा वै स जगाम ह॥ गणश्चैव तथा जातो भिल्लराजोऽभवच्छिवः॥२८॥शब्दांश्च विविधान्कृत्वा निर्ययौ वाहिनीपतिः ॥ सूकरस्य ससाराथ शब्दश्च प्रदिशो दश॥२९॥वनेचरेण शब्देन व्याकुलश्चार्जुनस्तदा॥पर्वताद्याश्च तैश्शब्दैस्ते सर्वे व्याकुलास्तदा ॥३०॥अहो किन्नु भवेदेष शिवः शुभकरस्त्विह॥मया चैव श्रुतम्पूर्वं कृष्णेन कथितम्पुनः॥३१॥व्यासेन कथितं चैवं स्मृत्वा देवैस्तथा पुनः ॥ शिवः शुभकरः प्रोक्तः शिवः सुखकरस्तथा॥३२॥मुक्तिदश्च स्वयं प्रोक्तो मुक्तिदानान्न संशयः॥तन्नामस्मरणात्पुंसां कल्याणं जायते ध्रुवम् ॥३३॥ भजतां सर्वभावेन दुःखं स्वप्नेऽपि नो भवेत्॥ यदा कदाचिज्जायेत तदा कर्मसमुद्भवम् ॥ ३४ ॥

॥ २९ ॥ उस भीलके शब्दसे अर्जुन व्याकुल होगया और उन शब्दोंसे पर्वतआदिक सब व्याकुल हुए ॥ ३० ॥ अहो ! यह क्या हुआ ? शंकर मंगल करेंगे, मैंने पहले श्रीकृष्णजीके मुखसे सुना था ॥ ३१ ॥ तथा व्यासजीने भी कहा था और देवताओंने भी स्मरण करके कहा था, कि--शिवजी मंगलकारी हैं, शुभ करनेवाले तथा सुख देनेवाले हैं ॥ ३२ ॥ मुक्ति दान करनेसे वे स्वयं मुक्तिद नामवाले कहे हैं उनके नाम स्मरण करनेसे निश्चयही मनुष्योंका कल्याण होता है ॥ ३३ ॥ उनकेभजन करनेवालोंको स्वप्नमें भी दुःख नहीं होता है, जब कभी

होता भी है तो वह कर्मसे उत्पन्न हुआ जानना चाहिये ॥ ३४ ॥ होनहारही बहुत और थोड़ी होजाती है इसमें कुछ संशय नहीं है, अथवा विशेषकर प्रारब्धका दोष जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ अथवा शिवजीही अधिक वा न्यून भोगको दूर करके अपनी इच्छासे उसका दुःख दूर करते हैं ॥ ३६ ॥ समर्थ शिवजी विषको अमृत कर सकते हैं, तथा अमृतको विष कर सकते हैं जो जो इच्छा करते हैं, उन्हें कौन निषेध कर सकता है ॥ ३७ ॥ ऐसा विचार करके पुरातन तथा भावी भक्तोंने शिवजीमें मन स्थिर किया है ॥ ३८ ॥ लक्ष्मी चली जाय, अथवा रहे मृत्यु निकट हो अथवा युगान्तरमें हो चाहे मनुष्य निन्दा, अथवा, दुःख संक्षय रूप स्तुति करे ॥ ३९ ॥ पुण्य तथा पापोंके कारणही

तदेतद्बह्वपि ज्ञेयं नूनमल्पं न संशयः ॥ प्रारब्धस्याथ वा दोषो नूनं ज्ञेयो विशेषतः ॥ ३५ ॥ अथ वा बहु चाल्पं हि भोग्यं नि
स्तीर्य शंकरः ॥ कदाचिदिच्छया तस्य दूरीकुर्य्यान्न संशयः ॥ ॥३६॥ विषं चैवामृतं कुर्यादमृतं विषमेव वा ॥ यदिच्छति करो
त्येव समर्थः किन्निषिध्यते ॥३७॥ इत्थं विचार्य्यमाणेऽपि भक्तैरन्यैः पुरातनैः ॥ भाविभिश्च सदा भक्तैरिहानीय मनः स्थिरम्
॥३८॥ लक्ष्मी र्गच्छेच्चावतिष्ठेन्मरणं निकटे पुरः ॥ निन्दां वाथ प्रकुर्वन्तु स्तुतिं वा दुःखसंक्षयम् ॥ ३९ ॥ जयते पुण्यपापा
भ्यां शंकरस्सुखदः सदा ॥ कदाचिच्च परीक्षार्थं दुःखं यच्छति वै शिवः ॥४०॥ अंते च सुखदः प्रोक्तो दयालुत्वान्न संशयः ॥
यथा चैव सुवर्णं च शोधि तं शुद्धतां व्रजेत् ॥४१॥ एवं चैवं मया पूर्वं श्रुतं मुनिमुखात्तथा ॥ अतस्तद्भजनेनैव लप्स्येऽहं सुख
मुत्तमम् ॥ ४२ ॥ इत्येवन्तु विचारं स करोति यावदेव हि ॥ तावच्च सूकरः प्राप्तो बाणसंमोचनावधिः ॥ ४३ ॥

शिवजी निरन्तर सुख दुःख देनेवाले होते हैं, अथवा कभी २ परीक्षा करनेके लिये दुःख देते हैं ॥ ४० ॥ अन्तमें दयालुता भाव होनेसे सुख देते हैं, इसमें कुछ संशय नहीं जैसे शुद्ध किया सुवर्ण शुद्धिको प्राप्त होता है ऐसे वे परीक्षासे भक्तको शुद्ध करते हैं ॥ ४१ ॥ मैंने पहले इस प्रकार मुनिके मुखसे सुना था, इस कारण उनके भजनसे ही मैं उत्तम सुखको पाऊँगा ॥४२॥ वह अर्जुन जब ऐसा विचार कर रहा था, उसी समय वह सूकर वहां आया और उसी समय अर्जुनने बाण चढाया ॥ ४३ ॥

इधर शिवजीभी उस शूकरके पीछे लगे आये, तब उन दोनोंके बीचमें वह शूकर अद्भुत पर्वतके शिखरके समान दिखाई दिया ॥ ४४ ॥ अर्जुनने शिवजीका माहात्म्य कहा तो भक्तवत्सल कल्याणकारी शिवजी अर्जुनकी रक्षाके लिये शीघ्र वहां प्राप्त हुए ॥ ४५ ॥ इसी अवसरमें उन दोनों अर्जुन और शिवने एक साथ बाण छोडे तो शिवजीका बाण पूंछमें तथा अर्जुनका बाण मुखमें लगा ॥ ४६ ॥ शिवजीका बाण पूंछमें प्रवेशकर शीघ्रही मुखमें निकलकर भूमिमें प्रवेश कर गया और अर्जुनका बाण मुखमें प्रवेशकर, निकल पृथ्वीमें लय हुआ ॥ ४७ ॥ अर्जुनका बाण निकटमें गिरा और वह शूकर दैत्य उसी समय मर गया और भूमिपर गिर पडा ॥ ४८ ॥ देवता परम हर्षको प्राप्त हुए,

शिवोपि पृष्ठतो लग्नो ह्यायातः शूकरस्य हि ॥ तयोर्मध्ये तदा सोयं दृश्यते शृंगमद्भुतम् ॥४४॥ तस्य प्रोक्तं च माहात्म्यं शिवः शीघ्रतरं गतः ॥ अर्जुनस्य च रक्षार्थं शंकरो भक्तवत्सलः ॥४५॥ एतस्मिन्समये ताभ्यां कृतं बाणविमोचनम् ॥ शिववाणस्तु पुच्छे वै ह्यर्जुनस्य मुखे तथा ॥४६॥ शिवस्य पुच्छतो गत्वा मुखान्निस्सृत्य शीघ्रतः ॥ भूमौ विलीनः संयातस्तस्य वै पुच्छतो गतः ॥ ४७॥पपात पार्श्वतश्चैव बाणश्चैवार्जुनस्य च ॥ सूकरस्तत्क्षणं दैत्यो मृतो भूमौ पपात ह ॥४८॥ देवा हर्षपरम्प्रापुः पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे ॥ जयपूर्वं स्तुतिकराः प्रणम्य च पुनःपुनः ॥४९॥ शिवस्तुष्टमना आसीदर्जुनः सुखमागतः ॥ दैत्यस्य च तदा दृष्ट्वा क्रूरं रूपं च तौ तदा ॥५०॥ अर्जुनस्तु विशेषेण सुखिना प्राह चेतसा ॥ अहो दैत्यवरश्चायं रूपं तु परमाद्भुतम् ॥ ५१ ॥ कृत्वागतो मद्वधार्थं शिवेनाहं सुरक्षितः॥ईश्वरेण ममाद्यैव बुद्धिर्दत्ता न संशयः ॥ ५२ ॥

और उन्होंने वारंवार प्रणामकर जय शब्दपूर्वक स्तुति करके फूलोंकी वर्षा की ॥ ४९ ॥ शिवजी सन्तुष्ट हुए और अर्जुन सुखको प्राप्त हुआ, उस समय उन दोनोंने दैत्यका भयंकर रूप देखा ॥ ५० ॥ अर्जुनने अति प्रसन्न चित्तसे कहा कि क्या आश्चर्य है ? कि यह दैत्य है, इसका रूप परम अद्भुत है ॥ ५१ ॥ यह शूकररूपने मेरे मारनेको आया था, शिवजीने मेरी रक्षा कि, ईश्वरने आज मुझे बुद्धि दी, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ५२ ॥

ऐसा विचारकर अर्जुनने वहां शिव ! शिव ! जप किया और शिवको प्रणाम कर वारंवार स्तुति की ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषा टीकायां तृ० श० रु० किरातावतारवर्णने मूकदैत्यवधो नामैकोनचत्वारिंशोध्यायः ॥ ३९ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमार ! परमात्मा शिवकी भक्तवत्सलतासे युक्त उनमें दृढभक्ति करनेवाली लीला सुनो ॥ १ ॥ उन शिवजीने भी शीघ्र अपने सेवकको भेजा और उसी समय वहां अर्जुनभी बाण लेनेको आया ॥ २ ॥ एकही समयमें बाण लेनेको शिवजीका गण, तथा अर्जुन दोनोंही प्राप्त हुए, तब अर्जुनने

विचार्य्यैत्यर्जुनस्तत्र जगौ शिवशिवेति च ॥ प्रणनाम शिवं भूयस्तुष्टाव च पुनः पुनः ॥५३॥इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णने मूकदैत्यवधो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥नन्दीश्वर उवाच॥सनत्कुमार सर्वज्ञ शृणु लीलाम्परात्मनः॥भक्तवात्सल्यसंयुक्तां तद्दृढत्वविदर्भिताम्॥१॥शिवोप्यथ स्वभृत्यं वै प्रेषयामास स द्रुतम् ॥ बाणार्थं च तदा तत्रार्जुनोपि समगात्ततः॥२॥एकस्मिन् समये प्राप्तौ बाणार्थं तद्गणार्जुनौ॥ अर्जुनस्तं पराभर्त्स्य स्वबाणं चाग्रहीत्तदा॥३॥गणः प्रोवाच तं तत्र किमर्थं गृह्यते शरः ॥ बाणश्चैवास्मदीयो वै मुच्यतां ऋषिसत्तम॥४॥ इत्युक्तस्तेन भिल्लस्य गणेन मुनिसत्तमः॥ सोर्जुनः शंकरं स्मृत्वा वचनं च तमब्रवीत् ॥५॥ अर्जुन उवाच॥अज्ञात्वा किं च वदसि मूर्खोसि त्वं वनेचर ॥ बाणश्च मोचितो मेऽद्य त्वदीयश्च कथं पुनः॥६॥ रेखारूपं च पिच्छानि मन्नामांकित एव च॥त्वदीयश्च कथं जातः स्वभावो दुस्त्यजस्तव ॥७॥

॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्येवन्तद्वचः श्रुत्वा विहस्य स गणेश्वरः ॥ अर्जुनं ऋषिरूपं तं भिल्लो वाक्यमुपाददे ॥ ८ ॥

उस गणको ललकार अपना बाण ले लिया ॥ ३ ॥ गण बोला, कि तुम किस कारण लेते हो ? हे ऋषिसत्तम ! यह दोनों बाण हमारे हैं, इनको छोड़ दो ॥ ४ ॥ उस प्रकार वह मुनिश्रेष्ठ अर्जुन भीलके गणके वचन सुन शिवजीको स्मरण कर उससे यह वचन बोला ॥ ५ ॥ अर्जुन बोला, हे वनेचर ! तू विना जाने क्या कहता है, मूर्ख ! बाण तो मैंने छोडा है, तेरा किस प्रकार हो सकता है ॥ ६ ॥ यह रेखा रूप पिच्छ, मेरे नामसे अंकित है तेरा कैसे होसकता है तेरा स्वभाव ही लुटेरोंका है ॥ ७ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा अर्जुनका

वचन सुन वह गणेश्वर भील हँसकर ऋषिरूप उस अर्जुनसे बोला ॥ ८ ॥ हे तापस ! तू कुछ तप नहीं करता, तू छलसे तपस्वी वेष धारे है यथार्थमें तपस्वी नहीं है ॥ ९ ॥ तू तपस्वी मनुष्य हो कर क्यों मिथ्या भाषण करता है, तू मुझ भीलको अकेला मत जान ॥ १० ॥ बहुतसे वनके भीलों समेत हमारा स्वामी वह खडा है, सो सब प्रकार विग्रह तथा अनुग्रह करनेमें समर्थ है ॥ ११ ॥ उनकाही यह बाण है, जो अब तूने लिया है, यह बाण तेरे पास कभीभी नहीं रह सकेगा ॥१२॥ हे तापस ! तू तपका फल क्यों त्यागना जाहता है ? चोरीसे, छल करनेसे, पीडा देनेसे, विस्मयसे, तथा सत्यके त्यागन करनेसे ॥ १३ ॥ मनुष्य अपने तपसे नष्ट होता है, यह मैंने सुना है, इस कारण तेरे तपका फल

तापस श्रूयतां रे त्वं न तपः क्रियते त्वया ॥ वेषतश्च तपस्वी त्वं न यथार्थं छलायते ॥९॥ तपस्वी च कथं मिथ्या भाषते कुरु ते नरः ॥ नैकाकिनं च मां त्वं च जानीहि वाहिनीपतिम् ॥१०॥ बहुभिर्वनभिल्लैश्च युक्तः स्वामी स आसते ॥ समर्थस्सर्वथा कर्तुं विग्रहानुग्रहौ पुनः ॥ ११ ॥ वर्तते तस्य बाणोयं यो नीतश्च त्वयाऽधुना ॥ अयं बाणश्च ते पार्श्वे न स्थास्यति कदाचन ॥ १२ ॥ तपःफलं कथं त्वं च हातुमिच्छसि तापस ॥ चौर्य्याच्छलाद्यमानाच्च विस्मयात्सत्य भञ्जनात् ॥१३॥ तपसा क्षीयते सत्यमेतदेव मया श्रुतम् ॥ तस्माच्च तपसस्तेद्य भविष्यति फलं कुतः ॥१४॥ तस्माच्च मुच्यते बाणात्कृतघ्नस्त्वं भविष्यसि ॥ ममैव स्वामिनो बाणस्तवार्थे मोचितो ध्रुवम् ॥ १५ ॥ शत्रुश्च मारितस्तेन पुनर्बाणश्च रक्षितः ॥ अत्यन्तं च कृतघ्नोसि तपो शुभकरस्तथा ॥ १६ ॥ सत्यं न भाषसे त्वं च किमतः सिद्धिमिच्छसि ॥ प्रयोजनं चेद्बाणेन स्वामी च याच्यतां मम ॥१७॥ ईदृशांश्च बहून्बाणांस्तदा दातुं क्षमः स्वयम् ॥ राजा च वर्तते मेऽद्य किं त्वेवं याच्यते त्वया ॥ १८ ॥

कहांसे होगा ॥१४॥ इस कारण तू बाणको न छोडनेसे कृतघ्नी होगा, मेरे ही स्वामीने निश्चय यह बाण तेरे बचानेको छोडा है ॥१५॥ उस बाणसे तेरा शत्रु मारा गया और तूने बाण भी रख लिया तू अत्यन्त कृतघ्नी है और तेरे तपके विषयमें अशुभ होनेवाला है ॥१६॥ तू सत्य नहीं बोलता, क्या इससे सिद्धिकी इच्छा करता है, यदि तेरा बाणसे प्रयोजन है तो मेरे स्वामीसे मांग ॥ १७ ॥ वे स्वयं ऐसे बहुतसे बाण देनेको समर्थ हैं, वह हमारे राजा हैं, उनसे तू क्यों नहीं मांगता ॥ १८ ॥

उपकारको छोडकर अपकारकी इच्छा करता है, तुझे अब यह करना योग्य नहीं है चपलताको त्यागन कर ॥ १९ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा उस गणका वचन सुन अर्जुन उस समय क्रोध करके शिवका स्मरण कर परिमित वचन कहने लगा ॥ २० ॥ अर्जुन बोले, हे भील ! हे वनेचर ! सुन जो मैं कहता हूं तेरा कहना सत्य नहीं है जैसी तेरी जाति है वैसाही तुझे जानताहूं ॥ २१ ॥ मैं राजा हूं तुम चोरहो, युद्ध किस प्रकार ठीक है, मुझे बलवानोंके साथ युद्ध करना चाहिये, अधर्मियोंके साथ कभी न करना चाहिये ॥ २२ ॥ इस कारण तेरा स्वामीभी

उपकारं परित्यज्य ह्यपकारं समीहसे ॥ नैतद्युक्तं त्वयाद्यैव क्रियते त्यज चापलम् ॥ १९ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्येवं वचन न्तस्य श्रुत्वा पार्थोर्जुनस्तदा ॥ क्रोधं कृत्वा शिवं स्मृत्वा मितं वाक्यमथाब्रवीत्॥ २० ॥ ॥ अर्जुन उवाच ॥ शृणु भिल्ल प्रव क्ष्यामि न सत्यं तव भाषणम् ॥ यथा जातिस्तथा त्वां च जानामि हि वनेचर ॥ २१ ॥ अहं राजा भवांश्चौरः कथं युद्ध प्रयुक्तता ॥ युद्धं मे सबलैः कार्यं नाधर्मैर्हि कदाचन ॥ २२ ॥ तस्मात्ते च तथा स्वामी भविष्यति भवादृशः ॥ दातारश्च वयं प्रोक्ताश्चौरा यूयं वनेचराः ॥ २३ ॥ कथं याच्यो मया भिल्लराज एवं च साम्प्रतम् ॥ त्वमेव याचसे नैव बाणं मां किं वनेचरः ॥ २४ ॥ ददामि ते तथा बाणान्सन्ति मे बहवो ध्रुवम् ॥ राजा च ग्रहणं चैव न दास्यति तथा भवेत् ॥ २५ ॥ किम्पुनश्च तथा बाणान्प्रयच्छामि वनेचर ॥ यदि मे या चिकीर्षा स्यात्कथं नागम्यतेऽधुना ॥ २६ ॥ यथागच्छतु ते भर्ता किमर्थं भाष तेऽधुना ॥ आगत्यच मया सार्द्धं जित्वा युद्धे च माम्पुनः ॥ २७ ॥

तुझसा ही होगा, हम लोग दाता कहे गये हैं, तुम भील चोर हो॥२३॥हे वनेचर! मैं भीलोंके राजासे कैसे याचना कर सकता हूं, तूही मुझसे बाण क्यों नहीं मांगता ॥ २४ ॥ मैं ऐसे अनेकों बाणोंको तुझे दे सकता हूं, तेरा राजा ग्रहण करे, वह ऐसे बाण नहीं देसकता है ॥ २५ ॥ हे वनेचर ! बहुत क्या है मैं ऐसे अनेकबाण देसकता हूं यदि तेरे स्वामीकी इच्छा हो तो मांगनेको तेरा स्वामी क्यों नहीं आता है ॥ २६ ॥ तेरा स्वामीही मेरे पास क्यों न आवे, अथवा यह क्यों कहूं वह आकर मेरे साथ युद्धकर मुझे जीते ॥ २७ ॥

तब तेरा स्वामी भीलोंका राजा, इस बाणको ले अपने स्थानको सुखसे चलाजाय देर क्यों करता है ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर बोले, शिवजीकी कृपासे सुन्दर बल प्राप्त करनेवाले अर्जुनका यह वचन सुनकर वह भील बोला ॥ २९ ॥ भिल्ल बोला, तू मूर्ख है, ऋषि नहीं है, क्यों मरनेकी इच्छा करता है; बाणको दे और सुखसे रह नहीं तो क्लेशका भागी होगा ॥ ३० ॥ नन्दीश्वर बोले, शिवजीकी शक्तिसे शोभायमान उस भीलसे इस प्रकार कहा हुआ पांडव अर्जुन, शिवजीका स्मरण करके उस गणसे बोला ॥ ३१ ॥ अर्जुन बोला, हे वनेचर ! हे भिल्ल ! तत्त्वपूर्वक मेरे वचनको सुन, जब तेरा स्वामी आवेगा तब इसका फल दिखाऊंगा ॥ ३२ ॥ तेरे साथ युद्ध नहीं

नीत्वा बाणमिमं भिल्ल स्वामी ते वाहिनीपतिः ॥ निजालयं सुखं यातु विलंबःक्रियते कथम्॥२८॥नन्दीश्वर उवाच ॥ महेश्वरकृपाप्राप्तसद्बलस्यार्जुनस्य हि॥इत्येतद्वचनं श्रुत्वा भिल्लो वाक्यमथाब्रवीत्॥२९॥भिल्ल उवाच॥अज्ञोसि त्वं ऋषिर्नासि मरणं त्वीहसे कथम् ॥ देहि बाणं सुखन्तिष्ठ त्वन्यथा क्लेशभाग्भवेः॥३०॥नन्दीश्वर उवाच॥ इत्युक्तस्तेन भिल्लेन शिवसच्छक्तिशोभिना ॥ गणेन पाण्डवस्तं च प्राह स्मृत्वा च शङ्करम् ॥३१॥अर्जुन उवाच ॥ मद्वाक्यन्तत्त्वतो भिल्ल शृणु त्वं च वनेचर ॥ आगमिष्यति ते स्वामी दर्शयिष्ये फलन्तदा॥३२॥न शोभते त्वया युद्धं करिष्ये स्वामिना तव॥उपहासकरं ज्ञेयं युद्धं सिंहशृगालयोः ॥३३॥ श्रुतं च मद्वचस्तेऽद्य द्रक्ष्यसि त्वं महाबलम् ॥ गच्छस्व स्वामिनं भिल्ल यथेच्छसि तथा कुरु ॥३४॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तस्तु गतस्तत्र भिल्लः पार्थेन वै मुने॥ शिवावतारो यत्रास्ते किरातो वाहिनीपतिः॥३५॥अथार्जुनस्य वचनं भिल्लनाथाय विस्तरात्॥ सर्वं निवेदयामास तस्मै भिल्लपरात्मने ॥३६॥ स किरातेश्वरः श्रुत्वा तद्वचो हर्षमागतः॥ आजगाम स्वसैन्येन शंकरो भिल्लरूपधृक्॥३७॥

करूंगा तेरे स्वामीके साथ युद्ध करूंगा, सिंह और गीदडका युद्ध हँसी करानेवाला होता है ॥ ३३ ॥ हे भिल्ल ! तूने मेरा वचन सुना, अब महाबलको भी देखेगा, तू अपने स्वामीके समीप जा और जैसी इच्छा हो वैसा कर ॥ ३४ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! अर्जुनसे इस प्रकार कहा हुआ भील वहां गया जहांपर शिवजीका अवताररूप भिल्लराज था ॥ ३५ ॥ वह अर्जुनका वचन भीलकी आत्मावाले भीलोंके राजासे सब विस्तारपूर्वक निवेदन किया ॥ ३६ ॥ वह वचन सुनकर किरातेश्वर शिवजी हर्षको प्राप्त हो भीलका रूप धारण किये

अपनी सेनाके सहित वहां आये ॥ ३७ ॥ पांडव अर्जुन भी किरातकी सेनाको देखकर, बाणसहित धनुषको ले उनके सन्मुख हुआ ॥ ३८ ॥ तब किरातने भी अपने दूतको भेजा और दूत मुखसे महात्मा अर्जुनसे यह वचन कहा ॥ ३९ ॥ किरात बोला, हे तपस्विन् ! सेनाको देखो और अब भी बाणको दे दे दो, इस समय थोडे कार्यके निमित्त क्यों मृत्युकी इच्छा करते हो ॥ ४० ॥ तेरे भाई दुःखसे व्याकुल हैं और स्त्री भी अति दुःखी है और पृथ्वीभी तेरे हाथसे चली जायगी, यह मैं जानता हूं ॥ ४१ ॥ नन्दीश्वर बोले, सब प्रकार अर्जुनकी रक्षाके अर्थ रूपधारण किये हुये, सबके स्वामी, शिवजीने अर्जुनकी दृढ परीक्षाके कारण ऐसा कहा ॥ ४२ ॥ ऐसा कह गणोंसहित शम्भुसे वहां आकर

अर्जुनश्च तदा सेनां किरातस्य च पाण्डवः॥दृष्ट्वा गृहीत्वा सशरन्धनुः सम्मुख आययौ॥३८॥अथो किरातश्च पुनः प्रेषयामास तं चरम्॥तन्मुखेन जगौ वाक्यम्भारताय महात्मने ॥ ३९ ॥ किरात उवाच ॥ पश्य सैन्यं तपस्विंस्त्वं मुञ्च बाणं व्रजाधुना ॥ मरणं स्वल्पकार्यार्थं कथमिच्छसि साम्प्रतम् ॥४०॥भ्रातरस्तव दुःखार्त्ताः कलत्रं च ततः परम्॥पृथिवी हस्ततस्तेद्य यास्यतीति मतिर्म म ॥४१॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तं परमेशेन पार्थदार्ढ्यपरीक्षया ॥ सर्वथार्जुनरक्षार्थं धृतरूपेण शंभुना ॥ ४२ ॥ इत्युक्तस्तु तदागत्य सगणश्शंकरश्च तत् ॥ विस्तराद्वृत्तमखिलमर्जुनाय न्यवेदयत् ॥४३॥ तच्छ्रुत्वा तु पुनः प्राह प्रार्थस्तं दूतमागतम् ॥ वाहिनीपतये वाच्यम्विपरीतम्भविष्यति ॥४४॥ यद्यहं चैव ते बाणं यच्छामि च मदीयकम् ॥ कुलस्य दूषणं चाहं भविष्यामि न संशयः ॥ ४५ ॥ भ्रातरश्चैव दुखार्ताः भवन्तु च तथा ध्रुवम् ॥ विद्याश्च निष्फलाः स्युस्तास्त स्मादा गच्छ वै ध्रुवम् ॥ ४६ ॥ सिंहश्चैव शृगालाद्वा भीतो नैव मया श्रुतः ॥ तथा वनेचराद्राजा न बिभेति कदाचन ॥ ४७ ॥

विस्तारपूर्वक सब वृत्तान्त अर्जुनसे निवेदन किया ॥४३ ॥ यह सुन उस आये हुए दूतसे फिर अर्जुनने कहा कि, भिल्लराजसे कहना कि, सब उलटाही होगा ॥४४॥ यदि मैं तुझे अपना बाण दूंगा तो मेरे कुलको दोष (पराजयरूप) होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥४५॥ निश्चयही हमारे भाई दुःखसे व्याकुल हों, और विद्या भी निष्फल हो, पर वह भील अवश्यही युद्धको आवे ॥४६॥ मैंने सिंहको गीदडसे डरा हुआ कभी नहीं सुना, इसी प्रकार वनेचर (भील) से राजा कभी नहीं डरता है ॥ ४७ ॥

नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार पांडव अर्जुनसे कहा हुआ भील अपने स्वामीके पास जाकर उस अर्जुनके कहे सब वृत्तान्तको विशेष कर वर्णन करने लगा ॥ ४८ ॥ तब किरात नामक महादेव यह वचन सुन सेनासहित अर्जुनके समीप आये ॥४९॥ इति श्रीशिवमहापुराण भा० तृ० श० रु० किरातावतारवर्णने भिल्लार्जुनसंवादो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥ अर्जुनने उनको आया देख शिवजीका ध्यान करके उनके सन्मुख जाय उनके साथ अति कठिन युद्ध किया ॥ १ ॥ तब भिल्लराजने अनेक गणोंसहित तीव्र शस्त्रोंसे अर्जुनको पीडा दी, उससे पीडाको प्राप्त हुआ अर्जुन अपने स्वामी शिवका स्मरण करने लगा ॥२॥ और अर्जुनने उसके बाण समुदायको काट डाला, और जब युद्धमें बाण छोडे तो शिवजीने सहन

नन्दीश्वर उवाच॥इत्युक्तस्तं पुनर्गत्वा स्वामिन पाण्डवेन सः ॥ सर्वं निवेदयामास तदुक्तं हि विशेषतः॥४८॥ अथ सोपिकिरातात्वो महादेवस्ससैन्यकः ॥ तच्छ्रुत्वा सैन्यसंयुक्तो ह्यर्जुनं चागमत्तदा॥४९॥इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णने भिल्लार्जुनसंवादो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥तमागतन्ततो दृष्ट्वा ध्यानं कृत्वा शिवस्य सः॥गत्वा तत्रार्जुनस्तेन युद्धं चक्रे सुदारुणम् ॥१॥गणैश्च विविधैस्तीक्ष्णैरायुधैस्तं न्यपीडयत्॥ तैस्तदा पीडितः पार्थः सस्मार स्वामिनं शिवम् ॥२॥ अर्जुनश्च तदा तेषां बाणावलिमथाच्छिनत् ॥ यदायुद्धं च तैः क्षिप्तं ततः शर्वं परामृशत् ॥३॥ पीडितास्ते गणास्तेन ययुश्चैव दिशो दश ॥ गणेशा वारितास्ते च नाजग्मुस्स्वामिनम्प्रति ॥ ४ ॥ शिवश्चैवार्जुनश्चैव युयुधाते परस्परम् ॥ नानाविधैश्चायुधैर्हि महाबलपराक्रमौ ॥५॥ शिवोऽपि मनसा नूनं दयां कृत्वार्जुनं ह्यगात् ॥ अर्जुनश्च दृढं तत्र प्रहारं कृतवांस्तदा ॥६॥ आयुधानि शिवस्सो वैह्यर्जुनस्याच्छिनत्तदा ॥ कवचानि च सर्वाणि शरीरं केवलं स्थितम् ॥ ७ ॥

कर लिये ॥ ३ ॥ अर्जुनसे पीडा दिये हुए वे गण दशों दिशाओंमें भागने लगे और निवारण करनेपर भी वे गणाध्यक्ष अपने स्वामीके समीप नहीं गये ॥ ४ ॥ महाबल तथा पराक्रमवाले शिवजी और अर्जुन अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ शिवजी मनसे दया करके अर्जुनके समीप गये उस समय वहां अर्जुनने उनपर बडा दृढ प्रहार किया ॥ ६ ॥ तब शिवजीने अर्जुनके सब अस्त्रोंको काट डाला, तथा कवच काट दिया, केवल अर्जुनका शरीर मात्र स्थित रह गया ॥ ७ ॥

तब अर्जुनने शिवजीका स्मरण कर मल्ल युद्ध किया और वह उस भिल्लराजसे भय मान कर क्लेशित हुआ भी वह अर्जुन धैर्यवान् रहा ॥ ८ ॥ उस संग्राममें समुद्र सहित सब पृथ्वी कांपने लगी, देवता दुःखको प्राप्त हुए कि, अब क्या होगा ॥ ९ ॥ इसी अवसरमें शिवजी आकाशमें स्थित हो युद्ध करने लगे तब उसी प्रकार अर्जुन भी वहीं स्थित हो युद्ध करने लगा ॥ १० ॥ वे दोनों शिव और अर्जुन उड २ कर युद्ध करते थे, उस समय अद्भुत संग्राम देखकर देवता विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ तब अर्जुन उसको अधिक जानकर शिवजीके चरणकमलोंको स्मरण कर, उनके ध्यानसे श्रेष्ठ बल प्राप्त कर उसके चरणोंको पकड लिया ॥ १२ ॥ शंकरके चरणोंको पकड

तदार्जुनः शिवं स्मृत्वा मल्लयुद्धं चकार सः ॥ वाहिनीपतिना तेन भयात्क्लिष्टोपि धैर्यवान् ॥८॥ तद्युद्धेन मही सर्वा चकंपे स समुद्रका ॥ देवा दुःखं समापन्नः किं भविष्यति वा पुनः ॥९॥ एतस्मिन्नंतरे देवः शिवो गगनमास्थितः ॥युद्धं चकार तत्रस्थ स्सोर्जुनश्च तथाऽकरोत् ॥१०॥ उड्डीयोड्डीय तौ युद्धं चक्रतुर्देवपार्थिवौ ॥ देवाश्च विस्मयं प्रापू रणं दृष्ट्वा तदाद्भुतम् ॥११ ॥ अथार्जुनोत्तरे ज्ञात्वा स्मृत्वा शिवपदांबुजम् ॥ दधार पादयोस्तं वै तद्धचानादाप्तसद्बलः ॥१२॥ धृत्वा पादौ तदा तस्य भ्रामया मास सोर्जुनः ॥ विजहास महादेवो भक्तवत्सल ऊतिकृत् ॥१३॥ दातुं स्वदासतांतस्मै भक्तवश्यतया मुने ॥ शिवेनैव कृतं ह्येतच्च रितन्नान्यथा भवेत् ॥१४॥ पश्चाद्विहस्य तत्रैव शंकरो रूपमद्भुतम् ॥ दर्शयामाससहसा भक्तवश्यतया शुभम् ॥ १५ ॥ यथोक्तं वेदशास्त्रेषु पुराणे पुरुषोत्तमम् ॥ व्यासोपदिष्टं ध्यानाय तस्य यत्सर्वसिद्धिदम् ॥ १६ ॥ तद्दृष्ट्वा सुंदरं रूपं ध्यानप्राप्तं शिवस्य तु ॥ बभूवविस्मितोतीव ह्यर्जुनो लज्जितः स्वयम् ॥ १७ ॥

कर उसने घुमाया तब भक्तवत्सल लीला करनेवाले महादेवजी हँसे ॥१३॥ हे मुने ! भक्तके वशमें हुए शिवजीने अर्जुनको अपना दासत्वदान करनेके अर्थ यह चरित्र किया; अन्यथा ऐसा कभी नहीं होता ॥१४॥ इसके पश्चात् शंकरने अपने भक्तके वशीभूत हो सहसा हँसकर अपना अद्भुत सुन्दर रूप दिखाया ॥ १५ ॥ जैसा वेद और शास्त्रोंमें कहा है और पुराणोंमें पुरुषोत्तमरूप कहा है, तथा जैसा अर्जुनके ध्यानके लिये व्यासजीने उपदेश किया था वह रूप दिखाया जो सब सिद्धिका देनेवाला है ॥१६॥ ध्यानसे प्राप्त हुए शिवजीके उस सुन्दर रूपको देखकर अर्जुन अति

विस्मित हो स्वयं लज्जित हुआ ॥ १७ ॥ अहो शोक ! यह तो कल्याणकारी शिव हैं, जो मेरी प्रभुतासे पूर्ण हैं जो स्वयं साक्षात् त्रिलोकीके ईश्वर हैं इस समय मैंने क्या किया ॥ १८ ॥ उन प्रभुकी माया बडी बलवान् है, माया करनेवालोंको भी मोहनेवाली है, क्या किया जो प्रभुने अपना रूप छिपाकर मुझे छला ॥ १९ ॥ अपनी बुद्धिसे ऐसा विचार कर, हाथ बाँध, माथा झुकाया, उन प्रभु शिवको प्रणाम किया, और उस समय दुःखी मनसे कहा ॥ २० ॥ अर्जुन बोला, हे देवदेव ! हे महादेव ! हे करुणाकर ! हे शंकर ! हे सर्वेश ! आपको मेरा अपराध क्षमा करना चाहिये ॥ २१ ॥ हे प्रभो ! यह आपने क्या किया जो अपने रूपको छिपाकर मुझे छला, आप

अहो शिवश्शिवस्सोयं यो मे प्रभुतया वृतः ॥त्रिलोकेशः स्वयं साक्षाद्धा कृतं किं मयाऽधुना॥१८॥प्रभोर्बलवती माया मायिना मपि मोहिनी ॥ किं कृतं रूपमाच्छाद्य प्रभुणा छलितो ह्यहम् ॥१९॥धियेति संविचार्य्यैवं साञ्जलिर्नतमस्तकः॥ प्रणनाम प्रभुं प्रीत्या तदोवाच स खिन्नधीः॥२०॥अर्जुन उवाच॥ देवदेव महादेव करुणाकर शंकर॥ममापराधः सर्वेश क्षन्तव्यश्च त्वया पुनः ॥२१॥किं कृतं रूपमाच्छाद्य च्छलितोऽस्मि त्वयाऽधुना॥धिङ्मां समरकर्तारं स्वामिना भवता प्रभो॥२२॥नन्दीश्वर उवाच॥ इत्येवं पाण्डवस्सोथ पश्चात्तापमवाप सः ॥पादयोर्निपपाताशु शंकरस्य महाप्रभोः॥२३॥अथेश्वरः प्रसन्नात्मा प्रत्युवाचार्जुनं च तम् ॥ समाश्वास्येति बहुशो महेशो भक्तवत्सलः ॥२४॥ शंकर उवाच॥न खिद्य पार्थ भक्तोसि मम त्वं हि विशेषतः॥परीक्षार्थं मया तेऽद्य कृतमेवं शुचञ्जहि ॥ २५ ॥ नंदीश्वर उवाच ॥इत्युक्त्वा तं स्वहस्ताभ्यामुत्थाप्य प्रभुरर्जुनम् ॥ विलज्जं कारयामास गणैश्च स्वामिनो गणैः॥२६॥ पुनश्शिवोऽर्जुनम्प्राह पाण्डवं वीरसम्मतम् ॥हर्षयन् सर्वथा प्रीत्या शंकरो भक्तवत्सलः ॥ २७॥

स्वामीके साथ युद्ध करनेवाले मुझे धिक्कार है ॥२२॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार वह पांडव अर्जुन पश्चात्ताप करने लगा और महाप्रभु शिवजी के चरणोंमें गिर पडा ॥२३॥ तब भक्तवत्सल महेश्वर प्रसन्नहो, उसको अनेक प्रकार आश्वासनकर अर्जुनसे बोले ॥२४॥शिवजी बोले, हे पार्थ ! तू खेद मत कर तू मेरा भक्त है, आज मैंने तेरी परीक्षा की तू शोकको त्याग दे ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहके प्रभु शिवजीने अर्जुनको अपने हाथोंसे उठाकर अपने गणोंसे उसे लज्जारहित कराया ॥ २६ ॥ फिर भक्तवत्सल कल्याणकरनेवाले शिवजी वीरोंके माननीय

पांडव अर्जुनको प्रसन्न करते हुए उससे बोले ॥ २७ ॥ शिवजी बोले, हे पार्थ ! हे पांडवश्रेष्ठ ! मैं प्रसन्न हूं वर मांग, आज मैंने तेरे प्रहारोंसे तथा ताडनसे पूजन (सत्कार) माना है ॥ २८ ॥ इस समय अपनी इच्छासे तूने मेरा अपराध नहीं किया, तेरे लिये कुछ अदेय नहीं है जो इच्छा हो सो मांग ॥ २९ ॥ शत्रुओंमें तेरा यश, राज्य, स्थापन करनेके लिये यह कल्याण किया, इसका दुःख नहीं करना चाहिये, तू सम्पूर्ण खेदको त्याग दे ॥ ३० ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उन प्रभु शंकरने अर्जुनसे कहा तब वह सावधानीसे भक्तिपूर्वक शिवजीसे बोला ॥३१॥ अर्जुन बोला, हे सुप्रभो हे सदाशिव ! हे देव ! आप भक्तोंके प्रियहो आप शंभुकी चेष्टा मुझसे क्या वर्णन हो सकती है आप कृपालु हैं

शिव उवाच॥ हे पार्थ पाण्डवश्रेष्ठ प्रसन्नोस्मि वरं वृणु ॥ प्रहारैस्ताडनैस्तेऽद्य पूजनम्मानितम्मया॥२८॥इच्छया च कृतं मेऽद्य नापराधस्तवाधुना॥नादेयं विद्यते तुभ्यं यदिच्छसि वृणीष्व तत्॥२९॥ ते शत्रुषु यशोराज्यस्थापनाय शुभं कृतम्॥एतद्दुःखं न कर्तव्यं वैक्लव्यं च त्यजाखिलम् ॥३०॥नन्दीश्वर उवाच॥इत्युक्तस्त्वर्जुनस्तेन प्रभुणा शंकरेण सः॥ उवाच शंकरं भक्त्या सावधानतया स्थितः ॥३१॥अर्जुन उवाच॥भक्तप्रियस्य शम्भोस्ते सुप्रभो किं समीहितम्॥वर्णनीयं मया देव कृपालुस्त्वं सदाशिव ॥३२॥ इत्युक्त्वा संस्तुतिं तस्य शंकरस्य महाप्रभोः ॥चकार पाण्डवस्सोथ सद्भक्तिं वेदसंमताम् ॥३३॥ अर्जुन उवाच॥नमस्ते देवदेवाय नमः कैलासवासिने ॥ सदाशिव नमस्तुभ्यं पञ्चवक्त्राय ते नमः॥३४॥कपर्दिने नमस्तुभ्यन्त्रिनेत्राय नमोऽस्तुते॥मनः प्रसन्नरूपाय सहस्रवदनाय च ॥३५॥ नीलकंठ नमस्तेस्तु सद्योजाताय वै नमः॥वृषध्वज नमस्तेस्तु वामांगगिरिजाय च॥३६॥

॥ ३२ ॥ ऐसा कहकर अर्जुन, उन महाप्रभु शंकरकी स्तुतिको करने लगा तथा वेदसम्मत सद्भक्ति करने लगा ॥ ३३ ॥ अर्जुन बोला, आप देवोंके देवको नमस्कार है, कैलासवासी आपको नमस्कार है, सदाशिव ! आपको नमस्कार है, तथा पांचमुखवाले आपको नमस्कार है,॥३४॥ आप कपर्दीको नमस्कार है, तथा तीननेत्रवाले आपको नमस्कार है, प्रसन्न रूप आपको नमस्कार है, तथा सहस्रवदनवाले आपको नमस्कार है, ॥ ३५ ॥ हे नीलकंठ ! हे वृषभध्वज ! आपको नमस्कार है, सद्योजातरूप आपको नमस्कार है वाम अंगमें जिनके पार्वती स्थितहैं ऐसे आपको

नमस्कार है ॥ ३६ ॥ हे दशभुजाओंवाले आपको नमस्कार है, आप परमात्माको नमस्कार है, डमरू तथा कपाल हाथमें लिये आपको नमस्कार है, मुंडमालाधारी आपको नमस्कार है ॥ ३७ ॥ हे शुद्धस्फटिकमणिके समान प्रकाशित कपूरके समान शरीरवाले ! आपको नमस्कार है, पिनाकपाणी आपको, तथा त्रिशूलधारी आपको नमस्कार है ॥३८॥ बाघंबर ओढे हुए आपको नमस्कार है, हस्तीके चर्म धारी आपको नमस्कार है, अंगोंमें सर्प धारण करनेवाले आपको नमस्कार है, हे गंगाजीको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है॥३९॥ हे सुपाद आपके अर्थ नमस्कार है, तथा लाल चरणोंवाले आपको नमस्कार है, नन्दीगण आदिके सेव्य आपको नमस्कार है, गणेशरूप आपको नमस्कार है ॥४०॥ गणेशरूप आपको

दशदोष नमस्तुभ्यन्नमस्ते परमात्मने ॥ डमरुकपालहस्ताय नमस्ते मुण्डमालिने ॥३७॥शुद्धस्फटिकसंकाशशुद्धकर्पूरवर्ष्मणे ॥ पिनाकपाणये तुभ्यन्त्रिशूलवरधारिणे॥३८॥ व्याघ्रचर्मोत्तरीयाय गजाम्बरविधारिणे॥नागांगाय नमस्तुभ्यं गंगाधर नमोस्तुते ॥ ३९ ॥ सुपादाय नमस्तेऽस्तु आरक्तचरणाय च ॥ नन्द्यादिगणसेव्याय गणेशाय च ते नमः ॥ ४० ॥ नमो गणेशरूपाय कार्तिकेयानुगाय च ॥ भक्तिदाय च भक्तानां मुक्तिदाय नमोनमः ॥ ४१ ॥ अगुणाय नमस्तेस्तु सगुणाय नमोनमः ॥ अरूपाय सरूपाय सकलायाकलाय च ॥ ४२ ॥ नमः किरातरूपाय मदनुग्रहकारिणे ॥ युद्धप्रियाय वीराणां नानालीलानुकारिणे ॥ ४३ ॥ यत्किंचिद्दृश्यते रूपन्तत्तेजस्तावकं स्मृतम् ॥ चिद्रूपस्त्वं त्रिलोकेषु रमसेन्वयभेदतः ॥ ४४ ॥

नमस्कार है, तथा कार्तिकेयके अनुगामी आपको नमस्कार है, भक्तोंको भक्तिदेनेवाले आपको नमस्कार है; मुक्तिदेनेवाले आपको बारंबार नमस्कार है ॥४१॥ अगुणरूप आपको तथा सगुणरूप आपको नमस्कार है, अरूप आपको तथा सरूप आपको नमस्कार है, कलासहित आपको तथा बिना कलावाले आपको नमस्कार है ॥ ४२ ॥ किरातरूप आपको तथा मेरे अनुग्रह करनेवाले आपको तथा युद्धप्रिय आपको, वीरोंको अनेक लीला दिखानेवाले आपको नमस्कार है ॥ ४३ ॥ जो कुछ रूप दीखता हैं वह तुम्हारा ही तेज कहा है, आप तीनों लोकोंमें चिद् (ज्ञान) स्वरूप

होकर अन्वयके भेदसे रमण करते हो ॥ ४४ ॥ आपके गुणोंकी संख्या नहीं है, जैसे भूमिके कण, आकाशके तारे, वर्षाके जल कणोंकी गणना नहीं है ॥ ४५ ॥ हे नाथ ! ऐसेही आपके गुणोंकी गणना करनेको वेदभी समर्थ नहीं है तो फिर मैं मूढबुद्धि किस प्रकार वर्णन कर सकता हूं ॥ ४६ ॥ हे महेशान ! हे महेश्वर ! आप जो हैं, सोही हैं आप को नमस्कार है, आप मेरे ऊपर कृपा करनेके योग्य हैं, मैं आपका दास हूं, आप मेरे स्वामी हैं ॥ ४७ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा उस अर्जुनका वचन सुनकर, प्रभु शिवजी प्रसन्न होकर हँसते हुए अर्जुनसे फिर बोले ॥ ४८ ॥ शिवजी बोले, हे पुत्र ! बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन है, मेरा वचन सुनो; शीघ्रही वर मांगो, मैं तुझे सब कुछ देता हूं

गुणानान्ते न संख्यास्ति यथा भूरजसामिह ॥आकाशे तारकाणां हि कणानां वृष्टचपामपि॥४५॥ न ते गुणास्तु संख्यातुं वेदावै सम्भवन्ति हि ॥ मन्दबुद्धिरहं नाथ वर्णयामि कथम्पुनः॥४६॥सोसि योसि नमस्तेऽस्तु कृपां कर्तुमिहार्हसि ॥ दासोहं ते महेशान स्वामी त्वं मे महेश्वर॥४७॥नन्दीश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य पुनः प्रोवाच शंकर॥सुप्रसन्नतरो भूत्वा विहसन्प्रभुरर्जुनम् ॥४८॥ शंकर उवाच॥ वचसा किम्बहूक्तेन शृणुष्व वचनम्मम॥ शीघ्रं वृणु वरम्पुत्र सर्वन्तञ्च ददामि ते॥४९॥नन्दीश्वर उवाच॥ इत्युक्तश्चार्जुनस्तेन प्रणिपत्य सदाशिवम् ॥ साञ्जलिर्नतकः प्रेम्णा प्रोवाच गद्गदाक्षरम्॥५०॥ अर्जुन उवाच ॥ किं ब्रूयां त्वं च सर्वेषामन्तर्यामितया स्थितः॥तथापि वर्णितं मेऽद्य श्रूयतां च त्वया विभो ॥५१॥शत्रूणां संकटं यच्च तद्गतन्दर्शनात्तव ॥ऐहिकीं च परां सिद्धिम्प्राप्नुयां वैतथा कुरु ॥५२॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्ता तं नमस्कृत्य शंकरम्भक्तवत्सलम्॥नतस्कन्धोऽर्जुनस्तत्र बद्धाञ्जलिरुपस्थितः ॥५३॥ शिवोपि च तथाभूतञ्ज्ञात्वा पाण्डवमर्जुनम् ॥ निजभक्तवरं स्वामी महातुष्टो बभूव ह ॥५४॥

॥ ४९ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार शिवजीके वचन सुन अर्जुनने सदा शिवको प्रणाम करके अंजलि बांध नम्र हो प्रेमसे गद्गद् होकर कहा ॥ ५० ॥ अर्जुन बोला, हे विभो ! मैं क्या कहूं ? आप सबोंके अन्तर्यामी हैं तो भी आप आज मेरी प्रार्थना सुनिये ॥ ५१ ॥ जो कुछ शत्रुओंका संकट था सो अब आपके दर्शनसे दूर हुआ, जिसप्रकार मैं इस लोककी सिद्धिको पाऊं सो करो ॥५२॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कह कन्धे झुकाये हाथ बांधे वह अर्जुन उन भक्तवत्सल शिवजीको नमस्कार कर बैठ गया ॥ ५३ ॥ स्वामी शिवजी भी

पांडव अर्जुनको अपना परमभक्त जानकर बडे संतुष्ट हुए ॥ ५४ ॥ अपना पाशुपत अस्त्र जो सबसे दुर्जय था वह अर्जुनको दिया और शिवजी यह वचन बोले ॥ ५५ ॥ शिवजी बोले, मैंने अपना अस्त्र (पाशुपतास्त्र) तुझको दिया इससे तू दुर्जय होगा, इस अस्त्रसे सब शत्रुओंके विजयको प्राप्त हो ॥ ५६ ॥ और मैं श्रीकृष्णजीसे कहूंगा वह तुम्हारी सहायता करेंगे, वह मेरे भक्त तथा आत्मा हैं और कार्यके करने वाले हैं ॥ ५७ ॥ हे भारत ! मेरे प्रभावसे तू निष्कंटक (विना उपद्रव) राज्य कर और निरन्तर अपने भाइयोंसे अनेक प्रकारके धर्म करो ॥ ५८ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहकर शंकर (शिवजी) उस अर्जुनके शिरपर हाथ धर अर्जुनसे सत्कार किये हुए

अस्त्रम्पाशुपतं स्वीयन्दुर्जयं सर्वदाखिलैः ॥ ददौ तस्मै महेशानो वचनञ्चेदमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ शिव उवाच॥ स्वं महास्त्रम्मया दत्तन्दुर्जयस्त्वम्भविष्यति ॥ अनेन सर्वशत्रूणां जयकृत्यमवाप्नुहि॥५६॥ कृष्णं च कथयिष्यामि साहाय्यन्ते करिष्यति ॥ स वै ममात्मभूतश्च मद्भक्तः कार्य्यकारकः ॥५७॥मत्प्रभावान्भारत त्वं राज्यन्निष्कण्टकं कुरु ॥ धर्म्मान्नानाविधान्भ्रात्रा कारय त्वं च सर्वदा ॥५८॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा निजहस्तं च धृत्वा शिरसि तस्य सः ॥ पूजितो ह्यर्जुनेनाशु शंकरोन्तरधीयत ॥५९॥ अथार्जुनः प्रसन्नात्मा प्राप्यास्त्रं च वरं प्रभोः॥ जगाम स्वाश्रमे मुख्यं स्मरन्भक्त्या गुरुं शिवम् ॥ ६० ॥ सर्व्वे ते भ्रातरः प्रीतास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥ मिलित्वा तं सुखं प्रापुर्द्रौपदी चाति सुव्रता ॥६१॥ शिवं परं च सन्तुष्टम्पाण्डवाः सर्व एव हि ॥ नातृप्यन्सर्ववृत्तान्तं श्रुत्वा हर्षमुपागताः ॥६२॥आश्रमे पुष्पवृष्टिश्च चन्दनेन समन्विता ॥ पपात सुकरार्थं च तेषाञ्चैव महात्मनाम् ॥६३॥धन्यं च शंकरं चैव नमस्कृत्य शिवम्मुदा॥ अवधिं चागतं ज्ञात्वा जयश्चैव भविष्यति ॥ ६४ ॥

अन्तर्धान हो गये ॥ ५९ ॥ और अर्जुन प्रसन्न हो शिवजीके सुन्दर अस्त्रको पाकर भक्तिसे मुख्य शिव गुरुको स्मरण करता हुआ अपने आश्रमको आया ॥६०॥ उससे मिलकर वे सब भाई बडे प्रसन्न हुए, जैसे गये हुए प्राण आगये और पतिव्रता द्रौपदीने बडा सुख पाया ॥ ६१ ॥ वे सब युधिष्ठिर आदि पांडव शिवजीको परम संतुष्ट हुआ जान तथा सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर बडे हर्षको प्राप्त हुए और उस हर्षसे तृप्त न हुए ॥६२॥ उन महात्मा पांडवोंके आश्रममें चन्दनसे युक्त हुई फूलोंकी वर्षा मंगलके निमित्त हुई ॥ ६३ ॥ शिवजीको धन्य है,

यह कह आनन्दके साथ नमस्कार किया और अवधिको आया जानकर उन्होंने विजयकी इच्छा की ॥ ६४ ॥ इसी अवसरमें श्रीकृष्णजी अर्जुनको आया हुआ सुन उनसे मिलनेको आये और बडे सुखको प्राप्त हुए ॥ ६५ ॥ और बोले, इसी कारण मैंने कहा था कि शंकर सब दुःखोंको नष्ट करने वाले हैं, वह मुझसे सेवन किये जाते हैं, आप भी उनका नित्य सेवन करिये ॥ ६६ ॥ इस प्रकार किरात नामक शिवका अवतार तुमसे कहा, उसको सुनकर तथा सुनाकर मनुष्य सब मनोरथोंको प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषा टीकायां तृ० श० रु० किरातेश्वरावतारवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ (८८ अवतार समाप्त हुए) नन्दीश्वर बोले, हे

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णश्श्रुत्वार्जुनमथागतम्॥मेलनाय समायातश्श्रुत्वा सुखमुपागतः॥६५॥अतश्चैव मयाख्यातः शंकरः सर्वदुःख हा॥ स सेव्यते मया नित्यं भवद्भिरपि सेव्यताम्॥६६॥इत्युक्तस्ते किराताह्वोवतारश्शंकस्य वै ॥ तं श्रुत्वा श्रावयन्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥६७॥इत्यष्टाशीत्यवतारा:(८८)इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातेश्वरावतारवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥नन्दीश्वर उवाच ॥ अवतारान्छृणु विभोर्द्वादशप्रमितान्परान्॥ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपान्वै नानोति कारकान्मुने ॥१॥ सौराष्ट्रे सोमनाथश्च श्रीशैले मल्लिकार्जुनः ॥ उज्जयिन्यां महाकाल ओंकारे चामरेश्वरः ॥२॥ केदारो हिमवत्पृष्ठे डाकिन्याम्भीमशंकरः ॥ वाराणस्यां च विश्वेशस्त्र्यम्बको गौतमीतटे॥३॥वैद्यनाथश्चिताभूमौ नागेशो दारुकावने ॥ सेतुबन्धे च रामेशो घुश्मेशश्च शिवालये॥४॥अवतारद्वादशकमेतच्छम्भोः परात्मनः ॥सर्वानन्दकरं पुंसान्दर्शनात्स्पर्शनान्मुने॥५॥

मुने ! सर्वव्यापक शिवजीके अनेक लीला करनेवाले, ज्योतिर्लिंगस्वरूप बारह संख्यावाले, परम अवतारोंको सुनो ॥ १ ॥ सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलमें मल्लिकार्जुन अवतार, तथा उज्जयिनीमें महाकाल, ओंकारमें अमरेश्वर ॥ २ ॥ हिमालय पर्वतपर केदार, तथा डाकिनीमें भीमशंकर, काशीमें विश्वनाथ तथा गौतमीके तटपर त्र्यम्बक ॥ ३ ॥ चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुक वनमें नागेश, सेतुबंधमें रामेश, तथा शिवालयमें घुश्मेश अवतार है ॥ ४ ॥ हे मुने ! यह परमात्मा शिवके बारह अवतार हैं, मनुष्योंको दर्शन करने तथा स्पर्श करनेसे

परम आनन्द देनेवाले हैं ॥ ५ ॥ हे मुने ! उनमेंसे पहला सोमनाथ चन्द्रमाके दुःखका नाश करनेवाला है, उसके पूजन करनेसे क्षय तथा कुष्ठ आदि रोगोंका नाश होता है॥६॥ सोमेश (सोमनाथ) नामक शिवका अवतार सुन्दर सौराष्ट देशमें लिंगरूपसे स्थित है उसको पहले चन्द्रमाने पूजा था ॥ ७ ॥ वहां चन्द्रकुंड है जो सब पापोंका नाश करने वाला है, बुद्धिमान् पुरुष वहां स्नान करके सब रोगोंसे छूट जाता है ॥ ८ ॥ शिवजीके आत्मास्वरूप सोमनाथ महालिंगका दर्शन करके मनुष्य पापोंसे छूटता हैं और भुक्ति तथा मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ हे तात !

तत्राद्यस्सोमनाथो हि चन्द्रदुःखक्षयंकरः ॥ क्षयकुष्ठादिरोगाणां नाशकःपूजनान्मुने ॥ ६ ॥ शिवावतारस्सोमेशो लिंगरूपेण संस्थितः ॥ सौराष्ट्रे शुभदेशे च शशिना पूजितः पुरा ॥७ ॥ चंद्रकुण्डं च तत्रैव सर्वपापविनाशकम् ॥ तत्र स्नात्वा नरो धीमान्सर्वरोगैःप्रमुच्यते ॥ ८ ॥ सोमेश्वरं महालिंगं शिवस्य परमात्मकम् ॥ दृष्ट्वा प्रमुच्यते पापाद्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥ ९ ॥ मल्लिकार्जुनसंज्ञश्चावतारश्शं करस्य वै ॥द्वितीयः श्रीगिर तात भक्ताभीष्टफलप्रदः॥१०॥ संस्तुतो लिंगरूपेण सुतदर्शनहेतुतः ॥ गतस्तत्र महाप्रीत्या स शिवः स्वगिरेर्मुने ॥११॥ ज्योतिर्लिंगं द्वितीयन्तद्दर्शनात्पूजनान्मुने ॥ महासुखकरं चान्ते मुक्तिदन्नात्र संशयः ॥१२ ॥ महाकाला भिधस्तातावतारश्शंकरस्य वै ॥ उज्जयिन्यां नगर्य्यां च बभूव स्वजनावनः ॥ १३ ॥ दूषणाख्या सुरं यस्तु वेदधर्मप्रमर्दकम् ॥ उज्जयिन्यां गतं विप्रद्वेषिणं सर्वनाशनम् ॥ १४ ॥

शिवजीका दूसरा श्रीगिरि पर्वतपर मल्लिकाअर्जुन नामक अवतार हैं जो भक्तोंको मनोवांछित फलका देनेवाला हैं ॥ १० ॥ हे मुने ! पुत्रके दर्शनके हेत, लिंगके रूपसे स्तुति किये गये थे, वहांसे शिवजी, बडी प्रसन्नतापूर्वक अपने कैलासपर्वतको गये थे ॥११॥ हे मुने ! यह दूसरा ज्योतिर्लिंग है उसके दर्शन करनेसे बडा सुख प्राप्त होता है और अन्तसमय निःसन्देह मुक्तिका देनेवाला है ॥ १२ ॥ हे तात ! उज्जयिनी नगरीमें अपने परिवारकी रक्षाके अर्थ शिवजीका महाकाल नामक अवतार हुआ है ॥ १३॥ जिसने उज्जयिनीमें प्राप्त हुए ब्राह्मणोंके द्वेषी महानाशक वेदधर्मके

नष्ट करनेवाले दूषण नामक दैत्यको ॥ १४ ॥ जो वेदविप्रके पुत्रको मारने आया था, जो वेदविप्रका पुत्र शिवजीका ध्यान करता रत्नमाल देशमें रहता था, वहां उस राक्षसको हुंकार मात्रसे शिवजीने उसी समय नष्ट कर दिया ॥ १५ ॥ तब महाकाल नामक ज्योतिर्लिङ्गके स्वरूपसे उस दैत्यको मारकर अपने भक्तोंको पालन करनेवाले देवताओंसे प्रार्थना किये हुए शिवजी वहां स्थित हुए ॥ १६ ॥ इन महाकाल नामक लिंगका दर्शन कर तथा यत्नपूर्वक पूजनकर सब कामोंको प्राप्त हो अन्तमें श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ ओंकार नामक शिवजीका चौथा अवतार है, वह भक्तोंके इच्छित फलका देनेवाला है ॥ १८ ॥ हे मुने ! अपने पार्थिव लिंगके अनुसार भक्तिसहित विधि

वेदविप्रसुतध्यातो हुङ्कारेणैव स द्रुतम् ॥ भस्मसात्कृतवांस्तं च रत्नमाल निवासिनम् ॥ १५ ॥ तं हत्वा स महाकालो ज्योतिर्लिंगस्वरूपतः ॥ देवैस्स प्रार्थितोऽतिष्ठत्स्वभक्तपरिपालकः ॥ १६ ॥ महाकालाह्वयं लिंगं दृष्ट्वाभ्यर्च्य प्रयत्नतः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति लभते परतो गतिम् ॥ १७ ॥ ओङ्कारः परमेशानो धृतः शम्भोः परात्मनः ॥ अवतारश्चतुर्थो हि भक्ताभीष्टफलप्रदः ॥१८॥ विधिना स्थापितो भक्त्या स्वलिंगात्पार्थिवान्मुने ॥ प्रादुर्भूतो महादेवो विन्ध्यकामप्रपूरकः ॥१९॥ देवैस्संप्रार्थितस्तत्र द्विधारूपेण संस्थितः ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदो लिंगरूपो वै भक्तवत्सल ॥ २० ॥ प्रणवे चैव चोंकारनामासील्लिंगमुत्तमम् ॥ परमेश्वरनामासीत्पार्थिवश्चमुनीश्वर ॥२१॥ भक्ताभीष्टप्रदो ज्ञेयो योपिदृष्टोर्चितो मुने ॥ ज्योतिर्लिंगे महादिव्ये वर्णिते ते महामुने ॥२२॥ केदारेशोवतारस्तु पंचमः परमश्शिवः ॥ ज्योतिर्लिंगस्वरूपेणकेदारे संस्थितस्स च ॥ २३ ॥ नर नारायणाख्यौ यावावतारौ हरेर्मुने ॥ तत्प्रार्थितश्शिवस्तत्स्थैः केदारे हिमभूधरे ॥ २४ ॥

पूर्वक स्थापित महादेव प्रगट हुए और विन्ध्यके मनोरथ सिद्धि किये ॥ १९ ॥ वहां देवताओंसे प्रार्थना किये हुए दो रूप धारण करके स्थित हुए, भक्तवत्सल लिंगरूप शिवजी भोग और मुक्तिके देनेवाले हैं ॥ २० ॥ हे मुनीश्वर ! प्रणवमें ओंकार नामक उत्तम लिंग है, वहां परमेश्वर नामक पार्थिवरूप हुए ॥ २१ ॥ हे मुने ! जिनके दर्शन तथा पूजन करनेसे भक्तोंको अभीष्ट फल मिलते हैं, हे महामुने ! यह महादिव्य ज्योतिर्लिंग तुमसे वर्णन किया ॥ २२ ॥ पांचवां केदारेश नामक अवतार ज्योतिर्लिंग स्वरूपसे केदारमें स्थित है ॥ २३ ॥ हे मुने !

जो नरनारायण नामक विष्णु भगवानके अवतार हैं, केदार हिमालय पर्वतपर उनसे प्रार्थना किये हुए शिवजी ॥ २४ ॥ उन दोनोंसे पूजन किये गये केदारेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए हैं और दर्शन तथा पूजन करनेसे भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाले हैं ॥ २५ ॥ हे तात ! वह शिवका अवतार सबका ईश्वर तथा सब कामनाओंका देनेवाला और इस खण्डका स्वामी है ॥ २६ ॥ महाप्रभु शिवजीका भीम शंकर नामक छठा अवतार बडी लीला करनेवाला भीम असुरको नाश करनेवाला हुआ ॥ २७ ॥ जिसने भक्तोंको दुःख देनेवाले उस अद्भुत दैत्यको मारकर सुदक्षिण नामक कामरूप देशके राजाकी रक्षा की ॥२८ ॥ वह भीम शंकर नामसे प्रसिद्ध हो, डाकिनीमें स्वयं लिंग स्वरूपसे

ताभ्यां च पूजितो नित्यं केदारेश्वरसंज्ञकः॥भक्ताभीष्टप्रदः शम्भुर्दर्शनादर्चनादपि॥२५॥अस्य खण्डस्य स स्वामी सर्वेशोपि विशेषतः॥सर्वकामप्रदस्तात सोवतारश्शिवस्य वै॥२६॥भीमशंकरसंज्ञस्तु षष्ठः शम्भोर्महाप्रभोः ॥ अवतारो महालीलो भीमासुरविनाशनः॥२७॥सुदक्षिणाभिधम्भक्तङ्कामरूपेश्वरन्नृपम्॥यो ररक्षाद्भुतं हत्वासुरन्तं भक्तदुःखदम्॥२८॥भीमशङ्करनामा स डाकिन्यां संस्थितस्स्वयम् ॥ ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण प्रार्थितस्तेन शंकरः॥२९॥विश्वेश्वरावतारस्तु काश्यां जातो हि सप्तमः ॥ सर्वब्रह्माण्डरूपश्च भुक्तिमुक्तिप्रदो मुने ॥ ३० ॥ पूजितस्सर्वदेवैश्च भक्त्या विष्ण्वादिभिस्सदा ॥ कैलासपतिना चापि भैरवेणापि नित्यशः ॥ ३१ ॥ ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण संस्थितस्तत्र मुक्तिदः ॥ स्वयं सिद्धस्वरूपो हि तथा स्वपुरि स प्रभुः ॥ ३२ ॥ काशीविश्वेशयोर्भक्त्या तन्नामजपकारकाः ॥ निर्लिप्ताः कर्मभिर्नित्यं कैवल्यपदभागिनः ॥ ३३ ॥

स्थित हुए और सुदक्षिण भक्तने उनकी बडी स्तुति की ॥ २९ ॥ हे मुने; विश्वेश्वर नामक सातवां अवतार काशीमें हुआ, जो सब ब्रह्मांड, का स्वरूप और भुक्ति तथा मुक्तिका देनेवाला है ॥ ३० ॥ उनकी पूजा विष्णु आदि सम्पूर्ण देवताओंने की, वह कैलासपति और भैरव रूपसे ॥ ३१ ॥ तथा ज्योतिर्लिंग स्वरूपसे वहांपर स्थित हैं, और मुक्तिके देनेवाले स्वयं सिद्धस्वरूप तथा अपनी पुरीमें स्वामी हैं ॥ ३२ ॥ काशी और विश्वनाथको भक्तिसे पूजनेवाले तथा उनके नामको जपनेवाले अपने कर्मोंसे रहित हो कैवल्य (मोक्ष) पदके भागी

होते हैं ॥ ३३ ॥ त्र्यम्बक नामक आठवां अवतार गौतमीके किनारे हुआ है, जो गौतमकी प्रार्थनासे प्रगट हुए हैं ॥ ३४ ॥ शशिमौलि गौतमकी प्रार्थनासे ज्योतिर्लिंग सहित वहां अचल हो उन मुनिकी प्रीति और कामनासे वहां स्थित हुए हैं ॥ ३५ ॥ उन शिवजीके दर्शन तथा स्पर्श करनेसे सब इच्छाएँ पूरी होती हैं, पश्चात् मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ३६ ॥ वहां शिवजीके अनुग्रहसे गौतमकी प्रीतिके निमित्त गौतमी गंगाके नामसे प्रसिद्ध पवित्रकरनेवाली नदी स्थित है ॥ ३७ ॥ वहांपर नौवां वैद्यनाथ नामक अवतार कहा है जहांपर अनेक लीला करने वाले प्रभु शिवजी रावणके निमित्त प्रगट हुए थे ॥ ३८ ॥ उस समय शिवजीको रावण लिये जाता था वहां बहाना कर ज्योतिर्लिंग स्वरूपसे

त्र्यंबकाख्योऽवतारो यः सोष्टमो गौतमीतटे॥प्रार्थितो गौतमेनाविर्बभूव शशिमौलिनः ॥३४॥ गौतमस्य प्रार्थनया ज्योतिर्लिंग स्वरूपतः॥स्थितस्तत्राचलः प्रीत्या तन्मुनेः प्रीतिकाम्यया॥३५॥तस्य सन्दर्शनात्स्पर्शादर्शनाच्च महेशितुः ॥ सर्वे कामाः प्रसिध्यन्ति ततो मुक्तिर्भवेदहो॥३६॥शिवानुग्रहतस्तत्र गंगा नाम्ना तु गौतमी॥ संस्थिता गौतमप्रीत्या पावनी शंकरप्रिया ॥ ३७॥ वैद्यनाथावतारो हि नवमस्तत्र कीर्तितः॥आविर्भूतो रावणार्थं बहुलीलाकरः प्रभुः ॥३८॥ तदानयनरूपं हि व्याजं कृत्वा महेश्वरः॥ ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण चिताभूमौ प्रतिष्ठितः॥३९॥वैद्यनाथेश्वरो नाम्ना प्रसिद्धोभूज्जगत्त्रये॥दर्शनात्पूजनाद्भक्त्या भुक्तिमुक्तिप्रदः स हि ॥४०॥ वैद्यनाथेश्वरशिवमाहात्म्यमनुशासनम्॥पठतां शृण्वतां चापि भुक्तिमुक्तिप्रदं मुने ॥४१॥ नागेश्वरावतारस्तु दशमः परिकीर्तितः ॥ आविर्भूतः स्वभक्तार्थं दुष्टानांदण्डदस्सदा॥४२॥ हत्वा दारुकनामानं राक्षसन्धर्मघातकम्॥स्वभक्तं वैश्यनाथं च प्रारक्षत्सुप्रियाभिधम् ॥४३॥ लोकानामुपकारार्थं ज्योतिर्लिंगस्वरूपधृक् ॥ सन्तस्थौ सांबिकश्शम्भुर्बहुलीलाकरः परः ॥४४॥

चिताभूमिमें स्थित हुए ॥ ३९ ॥ और तीनों लोकोंमें वैद्यनाथेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए वह दर्शन तथा भक्तिपूर्वक पूजनसे भक्ति तथा मुक्तिके देनेवाले हैं ॥ ४० ॥ हे मुने ! वैद्यनाथेश्वर शिव इस माहात्म्य तथा अनुशासनको पढने तथा सुनने वालोंको भुक्ति और मुक्ति देनेवाले हैं ॥ ४१ ॥ दसवां नागेश्वर नामक अवतार कहा है जो अपने भक्तोंको दुष्टोंको अर्थ दंड देनेको प्रगट हुए हैं ॥४२॥ जिन्होंने धर्मके नाशक दारुक नामक राक्षसको मारकर सुप्रिय नामक अपने भक्त वैश्यकी रक्षाकी ॥ ४३ ॥ अनेक लीला करनेवाले शम्भु पार्वती समेत

संसारके उपकारके अर्थ ज्योतिर्लिंग रूप धारण कर वहां स्थित हुए ॥ ४४ ॥ हे मुने ! उस नागेश्वर नामक शिवजीके लिंगका दर्शन तथा पूजन करके महापातकोंके समूह शीघ्रही नष्ट होते हैं ॥ ४५ ॥ हे मुने ! शिवजीका ग्यारहवां रामेश्वर नामक अवतार हुआ है जो रामचन्द्रका प्रिय करनेवाला तथा रामचन्द्रसे स्थापित हुआ है ॥ ४६ ॥ ज्योतिर्लिंग स्वरूप भक्तवत्सल भगवान् शिवजीने रामचन्द्रसे सन्तुष्ट होकर उन्हें जयका वरदान दिया ॥ ४७ ॥ हे मुने ! रामचन्द्रसे प्रार्थना किये हुए तथा रामचन्द्रसे अति सेवा किये हुए ज्योतिर्लिंग स्वरूपसे सेतु बन्धमें स्थित हुए हैं ॥ ४८ ॥ पृथ्वीपर रामेश्वरकी महिमा बडी अद्भुत है, वे भोग तथा मुक्तिके देनेवाले और भक्तोंकी कामना देनेवाले

तद्दृष्ट्वा शिवलिंगन्तु मुने नागेश्वराभिधम् ॥ विनश्यन्ति द्रुतं चार्च्य महापातकराशयः ॥ ४५ ॥ रामेश्वरावतारस्तु शिवस्यैकादशः स्मृतः ॥ रामचन्द्रप्रियकरो रामसंस्थापितो मुने ॥४६॥ददौ जयवरंप्रीत्या यो रामाय सुतोषितः ॥ आविर्भूतस्स लिंगस्तु शंकरो भक्तवत्सलः ॥४७॥रामेण प्रार्थितोऽत्यर्थं ज्योतिर्लिंगस्वरूपतः ॥ सन्तस्थौ सेतुबन्धे च रामसंसेवितो मुने ॥४८॥ रामेश्वरस्य महिमाद्भुतोऽभूद्भुवि चातुलः ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव सर्वदा भक्तकामदः ॥ ४९ ॥ तं च गंगाजलेनैव स्नापयिष्यति यो नरः ॥ रामेश्वरं च सद्भक्त्या स जीवन्मुक्त एव हि ॥ ५० ॥ इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्देवतादुर्ल्लभानपि ॥ अतः प्राप्य परं ज्ञानं कैवल्यं मोक्षमाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ घुश्मेश्वरावतारस्तु द्वादशश्शंकरस्य हि ॥ नानालीलाकरो घुश्मानन्ददो भक्तवत्सलः ॥ ५२ ॥ दक्षिणस्यान्दिशि मुने देवशैलसमीपतः ॥ आविर्बभूव सरसि घुश्माप्रियकरः प्रभुः ॥५३॥ सुदेह्यमारितं घुश्मापुत्रं साकल्यतो मुने ॥ तुष्टस्तद्भक्तितश्शम्भुर्योरक्षद्भक्तवत्सलः ॥ ५४ ॥

हैं ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य उन रामेश्वर महादेवको श्रेष्ठ भक्ति पूर्वक गंगाजलसे स्नान कराता है वह जीवन्मुक होता है ॥ ५० ॥ इस संसारमें देवताओंसे भी दुर्लभ सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर पीछे परम ज्ञानको प्राप्त हो कैवल्य मोक्षको पाता है ॥ ५१ ॥ शिवजीका घुश्मेश्वर नामक बारहवां अवतार है जो भक्तोंके ऊपर दया करनेवाला और घुश्माको आनन्द देनेवाला है ॥ ५२ ॥ हे मुने ! दक्षिण दिशामें देवशैलके समीप सरोवरमें घुश्माके प्रिय करनेवाले प्रभु महादेवजी प्रगट हुए ॥ ५३ ॥ हे मुने ! जिन भक्तवत्सल शम्भुने सुदेह्य दैत्यसे मारे हुए

घुश्माके पुत्रको उसकी भक्तिसे संतुष्ट होकर रक्षा की ॥ ५४ ॥ उससे प्रार्थना किये हुए कामना देनेवाले प्रभु घुश्मेश्वर नामक शिवजी वहां सरोवरमें ज्योतिर्लिंग स्वरूपसे स्थित हुए ॥ ५५ ॥ उस शिवलिंगका दर्शन तथा भक्तिसे पूजन करके मनुष्य इस लोकमें सब सुखोंको भोग कर पश्चात् मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥ यह भुक्ति मुक्तिकी देनेवाली दिव्य बारह संख्यावाली ज्योतिर्लिंगावलि मैंने तुमसे कही ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य इस ज्योतिर्लिंग कथाको पढता अथवा सुनता है; वह सब पापोंसे छूटता है और भोग तथा मुक्तिको प्राप्त होता है

तत्प्रार्थितस्स वै शम्भुस्तडागे तत्र कामदः॥ ज्योतिर्लिंग स्वरूपेण तस्थौ घुश्मेश्वराभिधः॥५५॥ तन्दृष्ट्वा शिवलिंगन्तु समभ्यर्च्य च भक्तितः॥ इह सर्वसुखम्भुक्त्वा ततो मुक्तिं च विन्दति॥५६॥ इति ते हि समाख्याता ज्योतिर्लिंगावली मया॥ द्वादशप्रमिता दिव्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥५७॥ एतां ज्योतिर्लिंगकथां यः पठेच्छृणुयादपि॥मुच्यते सर्वपापेभ्यो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥५८॥ शतरुद्राभिदा चेयम्वर्णिता संहिता मया ॥ शतावतारसत्कीर्तिस्सर्वकामफलप्रदा ॥५९॥ इमां यः पठते नित्यं शृणुयाद्वा समाहितः॥सर्वान्कामानवाप्नोति ततो मुक्तिं लभेद्ध्रुवम्॥६०॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां सनत्कुमारनन्दीश्वरसंवादे द्वादशज्योतिर्लिंगावतारवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४२ ॥ समाप्तेयं तृतीया शतरुद्रसंहिता ॥ ॥ छ ॥

॥ ५८ ॥ मैंने यह शतरुद्र नामक संहिता वर्णन की जो सौ अवतारोंकी सुन्दर कीर्तिरूप है और सम्पूर्ण कामनाओंके फलकी देनेवाली है ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य सावधान होकर शतरुद्रसंहिताको पढता अथवा सुनता है, वह सब कामनाओंको प्राप्त होता है, तत्पश्चात् निश्चयही मुक्तिको प्राप्त होता है ॥६०॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषायां सनत्कुमारनन्दीश्वरसंवादे द्वादशज्योतिर्लिंगावतारवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ समाप्तेयं तृतीया शतरुद्रसंहिता ॥ ॥ छ ॥

दोहा—शिवा भवानीके सहित, शंकर देव मनाय । शतरुद्रिय शुभ संहिता, टीका लिखी बनाय ॥ १ ॥
बसत रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद । भजन करत शिवको तहां, द्विज ज्वालापरसाद ॥ २ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृतीया
शतरुद्रसंहिता समाप्ता

अथ श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकासमेते चतुर्थीं कोटिरुद्रसंहिता प्रारभ्यते।

सोमेश्वरज्योतिर्लिंग.
मल्लिकार्जुन ज्यो०
महाकाल ज्यो०
ॐकारेश्वर ज्यो.
केदारेश्वर ज्यो०
भीमेश्वर ज्यो०
विश्वेश्वर ज्योति०
त्र्यम्बकेश्वर ज्यो०
वैद्यनाथेश्वर ज्यो
नागेश्वर ज्योति०
हनुमान
ल०
रामेश्वर ज्योतिर्लिंग
राम.
घुश्मेश्वर ज्यो०
ज्योतिर्लिंग.
ज्योतिर्लिंग
ज्यो०
ज्यो०
ज्यो०
ज्यो०
ज्यो०
ज्यो०
ज्यो०

दोहा—पूर्ण सच्चिदानंद घन, शंकरदेव महेश । तिनके पद वंदन करहुं, काटैं कठिन कलेश ॥

जो सम्पूर्ण विकारोंसे रहित अपनी मायासे सम्पूर्ण भुवनोंको धारण किये हुए हैं जिनके करुणा कटाक्षसे स्वर्ग और अपवर्गके ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं पूर्ण बोध सुख जिनको योगीजन सदा हृदयमें देखते हैं ऐसे पार्वतीको अर्द्धांगमें धारण करनेवाले तेजस्वरूप शंकरको सदा प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥ कृपाकी मनोहर दृष्टिवाले, कुछ हास्यसे मनोहर मुखकमलवाले, चन्द्रमाकी कलाके समान उज्ज्वल, आधिभौतिक, आधिदैविक आध्यात्मिक, घोर तीनों तापोंके शान्त करनेवाले, स्फुरायमाण परमसुखदायक सच्चिदानंदरूप शरीरवाले, पार्वतीकी भुजाओंसे आलिंगित शंक

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ चतुर्थी कोटिरुद्रसंहिता प्रारभ्यते ॥ यो धत्ते निजमायया भुवनाकारं विकारोज्झितो यस्याहुः करुणाकटाक्षविभवौस्वर्गापवर्गाभिधौ॥ प्रत्यग्बोधसुखाद्वयं हृदि सदा पश्यन्ति यं योगिनस्तस्मै शैलसुताञ्चितार्द्धवपुषे शश्व न्नमस्तेजसे ॥१॥ कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञवक्राम्बुजं शशांककलयोज्ज्वलं शमितघोरतापत्रयम् ॥ करोतु किमपि स्फुर त्परमसौख्यसच्चिद्वपुर्धराधरसुताभुजोद्वलयितं महो मंगलम्॥२॥ऋषय ऊचुः ॥ सम्यगुक्तं त्वया सूत लोकानां हितकाम्यया ॥ शिवावतारमाहात्म्यं नानाख्यानसमन्वितम् ॥ ३ ॥ पुनश्च कथ्यतां तात शिवमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ लिंगसम्बन्धि सुप्रीत्या धन्यस्त्वं शैवसत्तमः ॥ ४ ॥ शृण्वन्तस्त्वन्मुखाम्भोजान्न तृप्तास्स्मो वयं प्रभो ॥ शैवं यशोऽमृतं रम्यं तदेव पुनरुच्यताम् ॥ ५ ॥ पृथिव्यां यानि यानि लिंगानि तीर्थेतीर्थे शुभानि हि ॥ अन्यत्र वा स्थले यानि प्रसिद्धानि स्थितानि वै ॥ ६ ॥

रका शरीर हमारा मंगल करे ॥ २ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! आपने लोकोंके हितकी कामनासे बहुत अच्छी बात कही, अब अनेक आख्यानों सहित शिवजीके अवतारोंके माहात्म्यको ॥ ३ ॥ फिर हमसे कहिये हे तात ! लिंग सम्बन्धी शिवजीका उत्तम माहात्म्य प्रेमसे कहिये, शिवके भक्तोंमें आप धन्य और उत्तम हैं ॥ ४ ॥ प्रभो ! आपके मुखकमलसे निकले हुए अमृतरूपी मनोहर यशको सुनते हुए हम तृप्त नहीं होते इस कारण उसे फिर कहिये ॥ ५ ॥ पृथिवीके प्रत्येक तीर्थोंमें जितने शुभ लिंग हैं वा दूसरे स्थलोंमें जितने प्रसिद्ध लिंग हैं ॥ ६ ॥

वह वह परमेश्वरके दिव्य लिंग आप जानते हैं हे व्यासजीके शिष्य ! लोकोंके हितकी कामनासे आप वर्णन करें ॥ ७ ॥ सूतजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! लोकोंके हितकी कामनासे आपने अच्छी बात पूछी हे ब्राह्मणो ! आपके स्नेहसे मैं संक्षेपमें कहता हूं ॥ ८ ॥ हे मुने ! शिवजीके सम्पूर्ण लिंगोंकी तो कोई संख्या नहीं कर सकता यह भूमि और यह सब जगत् लिंगमय है ॥ ९ ॥ लिंगमय सब तीर्थ हैं सब कुछ लिंगमें ही प्रतिष्ठित है उनकी संख्या नहीं हो सकती तो भी मैं उन दिव्य ज्योतिर्लिंगोंको आपसे कहता हूं ॥ १० ॥ जो कुछ देखने योग्य वस्तु दीखती है वर्णन की जाती है तथा जिसको वर्णन करते हैं और स्मरण करते वह सब शिवजीका स्वरूप है और कुछ नहीं है ॥ ११ ॥ हे

तानि तानि च दिव्यानि लिंगानि परमेशितुः ॥ व्यासशिष्य समाचक्ष्व लोकानां हितकाम्यया॥७॥सूत उवाच॥ साधुपृष्टमृषिश्रेष्ठ लोकानां हितकाम्यया ॥ कथयामि भवत्स्नेहात्तानि संक्षेपतो द्विजाः॥८॥ सर्वेषां शिवलिंगानां मुने संख्या न विद्यते ॥ सर्वं लिंगमयी भूमिः सर्वलिंगमयं जगत् ॥९॥लिंगमयानि तीर्थानि सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम् ॥ संख्या न विद्यते तेषां तानि किंचिद्ब्रवीम्यहम् ॥१०॥ यत्किंचिद्दृश्यते दृश्यं वर्ण्यते स्मर्यते च यत्॥ तत्सर्वं शिवरूपं हि नान्यदस्तीति किंचन ॥११॥ तथापि श्रूयताम्प्रीत्या कथयामि यथाश्रुतम्॥ लिंगानि च ऋषिश्रेष्ठाः पृथिव्यां यानि तानि ह ॥१२॥ पाताले चापि वर्तन्ते स्वर्गे चापि तथा भुवि ॥ सर्वत्र पूज्यते शम्भुः सदेवासुरमानुषैः ॥१३॥ त्रिजगच्छम्भुना व्याप्तं सदेवासुरमानुषम्॥ अनुग्रहाय लोकानां लिंगरूपेण सत्तमाः ॥ १४ ॥ अनुग्रहाय लोकानां लिंगानि च महेश्वरः ॥ दधाति विविधान्यत्र तीर्थे चान्यस्थले तथा ॥ १५ ॥

श्रेष्ठ ऋषियो ! ! ! तथापि पृथिवीपर जितने दिव्य लिंग हैं जैसा मैंने सुना है उनको कहता हूं आप प्रीतिसे सुनें ॥ १२ ॥ पातालमें तथा स्वर्गमें और पृथिवीपर शिवजीके ज्योतिर्लिंग हैं, देवता, असुर तथा मनुष्योंसे सब जगह शिवजीकी पूजा होती है ॥ १३ ॥ हे ऋषि श्रेष्ठ ! देवता, मनुष्य तथा दैत्यसहित तीनों लोक महादेवसे व्याप्त हैं और वह शिवजी संसारके अनुग्रहके अर्थ लिंग रूपसे स्थित हैं ॥ १४ ॥ शिवजी लोकोंके अनुग्रहके हेतु सब तीर्थोंमें तथा और स्थलोंमें अनेक प्रकारके लिंग धारण करते हैं ॥ १५ ॥

जहां जहां पर जब जब शिवके भक्तोंने भक्तिसहित शिवजीको स्मरण किया है, उसी समय वहां वहांपर अवतार लेकर उनके कार्य करके स्थित हुए हैं ॥ १६ ॥ और लोकोंके उपकारके अर्थ लिंगको प्रगट किया है उस लिंगप्रतिमाको पूजकर मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ हे द्विजो ! पृथ्वीपर जितने लिंग हैं उनकी गणना नहीं है तो भी मैं मुख्य ज्योतिर्लिंगोंको कहता हूं ॥ १८ ॥ प्रधान स्थानों में जो मुख्य मुख्य लिंग प्रतिमा हैं उनको कहता हूं कि--जिनको सुनकर मनुष्य उसी समय पापोंसे छूटजाता है ॥ १९ ॥ हे सत्तम ! जितने२ मुख्य २ शिवके ज्योतिर्लिंग हैं मैं उन्हें अब वर्णन करता हूं उनको सुनकर प्राणी पापसे छूटजाते हैं ॥ २० ॥ सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैल

यत्रयत्र यदा शंभुर्भक्त्या भक्तैश्च संस्मृतः ॥ तत्रतत्रावतीर्याथ कार्यं कृत्वा स्थितस्तदा ॥ १६ ॥ लोकानामुपकारार्थं स्वलिंगं चाप्य कल्पयत् ॥ तल्लिंगं पूजयित्वा तु सिद्धिं समधिगच्छति ॥ १७ ॥ पृथिव्यां यानि लिंगानि तेषां संख्या न विद्यते ॥ तथापि च प्रधानानि कथ्यंते च मया द्विजाः ॥ १८ ॥ प्रधानेषु च यानीह मुख्यानि प्रवदाम्यहम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्योमुच्यते मानवःक्षणात् ॥ १९ ॥ ज्योतिर्लिंगानि यानीह मुख्यमुख्यानि सत्तम ॥ तान्यहं कथयाम्यद्य श्रुत्वा पापं व्यपोहति ॥ २० ॥ सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ॥ उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम् ॥ २१ ॥ केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम् ॥ वाराणस्यां चविश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ॥ २२ ॥ वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने ॥ सेतुबंधे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये ॥२३॥ द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत् ॥ २४ ॥ यंयं काममपेक्ष्यैव पठिष्यन्ति नरोत्तमाः ॥ प्राप्स्यंति कामं तंतं हि परत्रेव मुनीश्वराः ॥ २५ ॥

में मल्लिकार्जुन, और उज्जयिनीमें महाकाल, तथा ओंकारमें परमेश्वर हैं ॥ २१ ॥ हिमालयपर्वतपर केदारनामक, डाकिनीमें भीमशंकर महादेव हैं, और वाराणसीमें विश्वेश्वरनाथ, गोमती नदीके किनारे त्र्यम्बक हैं ॥ २२ ॥ चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकावनमें नागेश, और सेतुबंधमें रामेश, तथा शिवालयमें घुश्मेश नामवाले महादेव हैं ॥ २३ ॥ जो पुरुष प्रातःकाल उठकर इन पूर्वोक्त बारह नामोंका पाठ करता है वह सब पापोंसे छूटकर संपूर्ण सिद्धिको पाता है ॥ २४ ॥ हे मुनीश्वरो ! मनुष्यश्रेष्ठ जिस जिस मनोरथको उद्देश करके इसका पाठ करेंगे वे उसी

उस मनोरथको इस लोकमें तथा परलोकमें प्राप्त होगे ॥ २५ ॥ और जो शुभ आशयवाले मनुष्य विना इच्छासे उनको पढेंगे उनका माताके गर्भमें निवास नहीं होगा ॥२६॥ इन ज्योतिर्लिंगोंके पूजन करनेसे ही सब वर्णोंके दुःखका नाश होता है, इस लोकमें तथा परलोकमें निश्चय ही मुक्ति होती है ॥ २७ ॥ इन ज्योतिर्लिंगोंपर चढी हुई नैवेद्य (मिष्टान्न) ग्रहण करना चाहिये और यत्नपूर्वक भोजन करना योग्य है, ऐसा करनेवालोंके सम्पूर्ण पाप उसी समय भस्म होते हैं ॥ २८ ॥ हे ब्राह्मणो ! इन ज्योतिर्लिंगोंके विशेष फलके कहनेको ब्रह्माआदि देवता भी समर्थ नहीं हैं दूसरोंकी तो क्या कथा है ॥ २९ ॥ जो पुरुष निरन्तर छैमासपर्यंत एक ज्योतिर्लिंगका पूजन करता है, उसको माताके

ये निष्कामतया तानि पठिष्यन्ति शुभाशयाः ॥ तेषां च जननीगर्भे वासो नैव भविष्यति॥२६॥एतेषां पूजनेनैव वर्णानां दुःखनाशनम् ॥ इह लोके परत्रापि मुक्तिर्भवति निश्चितम्॥२७॥ग्राह्यमेषां च नैवेद्यं भोजनीयं प्रयत्नतः ॥तत्कर्तुः सर्व्वपापानि भस्मसाद्यान्ति वै क्षणात् ॥ २८ ॥ ज्योतिषां चैव लिंगानां ब्रह्मादिभिरलं द्विजाः॥विशेषतःफलं वक्तुं शक्यते न परैस्तथा ॥ २९ ॥ एकं च पूजितं येन षण्मासं तन्निरन्तरम् ॥ तस्य दुःखं न जायेत मातृकुक्षिसमुद्भवम्॥३०॥हीनयोनौ यदा जातो ज्योतिर्लिंगं च पश्यति ॥ तस्य जन्म भवेत्तत्र विमले सत्कुले पुनः॥३१॥सत्कुले जन्म संप्राप्य धनाढ्यो वेदपारगः॥शुभकर्म तदा कृत्वा मुक्तिं यात्यनपायिनीम् ॥३२॥म्लेच्छो वाप्यन्त्यजो वापि षण्ढो वापि मुनीश्वराः॥द्विजो भूत्वा भवेन्मुक्तस्तस्मात्तद्दर्शनं चरेत् ॥ ३३ ॥ ज्योतिषां चैव लिंगानां किंचित्प्रोक्तं फलं मया ॥ ज्योतिषां चोपलिंगानि श्रूयन्तामृषिसत्तमाः ॥ ३४ ॥

कोखमें आनेका दुःख नहीं होता है ॥ ३० ॥ निकृष्टयोनिमें यदि उत्पन्न होनेवाला भी शिव लिंगका दर्शन करे तो उसका दूसरा जन्म शुद्ध तथा श्रेष्ठकुलमें होता है ॥ ३१ ॥ वह सुन्दर कुलमें जन्मको प्राप्त हो धनाढ्य और वेदमें पारंगत होकर श्रेष्ठ कर्म करनेसे अविनाशिनी मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ हे मुनीश्वरो ! म्लेच्छ तथा अन्त्यज अथवा नपुंसक कोई क्यों न हो, शिवजीके पूजनेसे दूसरे जन्ममें द्विज होकर मुक्त होता है इस कारण महादेवका दर्शन करना योग्य है ॥ ३३ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठो ! मैंने ज्योतिर्लिंगोंका फल कहा अब इनके उपलिंगोंके फलको कहता हूं आप सुनें ॥ ३४ ॥

पृथिवीके और सागरके संयोगमें सोमेश्वरका उपलिंग अन्तकेश नामवाला कहा है॥ ३५॥ भृगु कक्षमें मल्लिकार्जुनसे प्रगट हुआ, सुखदायक, रुद्रेश्वर नामक उप लिंग कहा है ॥ ३६॥ नर्मदा नदीके किनारे महाकाल ज्योतिर्लिंगसे उत्पन्न हुआ दुग्धेश नामक उपलिंग प्रसिद्ध है और वह सब पापोंका हरण करनेवाला कहा है ॥ ३७॥ ओंकारसे उत्पन्न हुआ कर्दमेश नामक उपलिंग बिन्दुसरोवरमें प्रसिद्ध है, और सब कामनाओं और फलोंको देनेवाला है॥ ३८॥ यमुनाके तटपर केदारेश्वर लिंगसे उत्पन्न हुआ भूतेश नामवाला उपलिंग है उसके दर्शन तथा पूजन करनेवालोंके महापाप दूर होते हैं ॥ ३९ ॥ भीमशंकर प्रगट हुआ भीमेश्वर नामक उपलिंग सह्यपर्वतपर प्रसिद्ध है वह बडे बलको बढानेवाला है ॥ ४० ॥ मल्लिका सरस्वतीके किनारे नागेश्वर महादेवसे प्रगट हुआ

सोमेश्वरस्य यल्लिंगमन्तकेशमुदाहृतम्॥ मह्यास्सागरसंयोगे तल्लिंगमुपलिङ्गकम् ॥३५॥ मल्लिकार्जुनसंभूतमुपलिंगमुदाहृतम् ॥ रुद्रेश्वरमिति ख्यातं भृगुकक्षे सुखावहम्॥३६॥महाकालभवं लिंगं दुग्धेशमिति विश्रुतम्॥नर्मदायां प्रसिद्धं तत्सर्वपापहरं स्मृतम् ॥ ॥३७॥ ॐकारजं च यल्लिंगं कर्दमेशमिति श्रुतम्॥ प्रसिद्धं बिन्दुसरसि सर्वकामफलप्रदम्॥३८॥केदारेश्वरसंजातं भूतेशं यमुना तटे॥महापापहरं प्रोक्तं पश्यतामर्चतान्तथा॥३९॥भीमशंकरसंभूतं भीमेश्वरमिति स्मृतम् ॥ सह्याचले प्रसिद्धं तन्महाबलविवर्द्धनम् ॥४०॥नागेश्वरसमुद्भूतं भूतेश्वरमुदाहृतम्॥मल्लिकासरस्वतीतीरेदर्शनात्पापहारकम्॥४१॥रामेश्वराच्च यज्जातं गुप्तेश्वरमिति स्मृतम्॥घुश्मेशाच्चैव यज्जातं व्याघ्रेश्वरमिति स्मृतम्॥४२॥ज्योतिर्लिंगोपलिंगानि प्रोक्तानीह मया द्विजाः॥दर्शनात्पापहारीणि सर्वकामप्रदानि च ॥ ४३ ॥ एतानि सुप्रधानानि मुख्यतां हि गतानि च ॥ अन्यानि चापि मुख्यानि श्रूयंतामृषिसत्तमाः ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां ज्योतिर्लिंगतदुपलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

भूतेश्वर नामक शिवलिंग है जिसके दर्शनसे पाप दूर होते हैं ॥ ४१ ॥ रामेश्वरसे प्रादुर्भूत हुए गुप्तेश्वर तथा घुश्मेश शिवसे उत्पन्न हुए व्याघ्रेश्वर शिव कहे हैं॥४२॥ हे द्विजातियो ! मैंने यह यह ज्योतिर्लिंगोंके समीपके लिंगोंका वर्णन किया जिनके दर्शन करनेसे सब पाप दूर होते हैं और सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ॥४३॥ हे ऋषिश्रेष्ठो ! यह वर्णन किये हुए उपलिंग बडे प्रसिद्ध हैं तथा मुख्यताको प्राप्त हुए हैं और और अब और भी प्रसिद्ध हुए लिंगोंको वर्णन करता हूं सुनो ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० ज्योतिर्लिंगतदुपलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सूतजी बोले, गंगाजीके तटपर बडी प्रसिद्ध हुई और मुक्तिकी देनेवाली काशीनगरी है वह लिंगमयी और शिवजीके निवासकी भूमी कही है ॥ १ ॥ वहां मुक्तिकी देनेवाली शिवजीकी मुख्य प्रतिमा है कृत्तिवास नाम शिव भी वहां हैं वहां निवास करनेवाला वृद्ध तथा बालक साक्षात् शिवके तुल्य हो जाता है ॥ २ ॥ वहां तिलभाण्डेश्वर तथा दशाश्वमेध नामक शिव हैं और गंगासागरके संगममें संखमेश नामवाले महादेव हैं ॥ ३ ॥ भूतेश्वर नामक तथा नारीश्वरनामसे प्रसिद्ध जो निरंतर भक्तोंको सब वस्तुओंको देनेवाले शिव हैं यह कौशिकी नदीके समीप विराजमान हैं ॥ ४ ॥ गण्डकी नदीके तटपर बटुकेश्वर महादेव हैं और फल्गु नदीके समीप सुखदायी पूरेश्वर नामक हैं

सूत उवाच ॥ गंगातीरे सुप्रसिद्धा काशी खलु विमुक्तिदा ॥सा हि लिंगमयी ज्ञेया शिववासस्थली स्मृता ॥ १ ॥ लिंगं तत्रैव मुख्यं च सम्प्रोक्तमविमुक्तकम्॥कृत्तिवासेश्वरः साक्षात्तत्तुल्यो वृद्धबालकः॥२॥तिलभाण्डेश्वरश्चैव दशाश्वमेध एव च ॥ गंगा सागरसंयोगे संगमेश इति स्मृतः॥३॥ भूतेश्वरो यः संप्रोक्तो भक्तसर्वार्थदः सदा॥नारीश्वर इति ख्यातः कौशिक्याः स समीपगः ॥ ४ ॥ वर्तते गण्डकीतीरे बटुकेश्वर एव सः॥पूरेश्वर इति ख्यातः फल्गुतीरे सुखप्रदः॥५॥सिद्धनाथेश्वरश्चैव दर्शनात्सिद्धिदो नृणाम् ॥ दूरेश्वर इति ख्यातः पत्तने चोत्तरे तथा॥६॥शृंगेश्वरश्च नाम्ना वै वैद्यनाथस्तथैव च ॥जप्येश्वरस्तथा ख्यातो यो दधीचिरणस्थले ॥७॥ गोपेश्वरः समाख्यातः रंगेश्वर इति स्मृतः॥ वामेश्वरश्च नागेशः कामेशो विमलेश्वरः ॥ ८ ॥ व्यासेश्वरश्च विख्यातः सुकेशश्च तथैव हि॥भाण्डेश्वराश्च विख्यातो हुंकारेशस्तथैव च॥९॥सुरोचनश्च विख्यातो भूतेश्वर इति स्वयम्॥संगमेशस्तथा प्रोक्तो महापातकनाशनः॥१०॥ततश्च तप्तकातीरे कुमारेश्वर एव च॥सिद्धेश्वरश्च विख्यातः सेनेशश्च तथा स्मृतः॥११॥

॥ ५ ॥ तथा उत्तर नगरमें सिद्धनाथेश्वर हैं जो दर्शनमात्रसे मनुष्योंको सिद्धि देनेवाले हैं और वहांपरही दूरेश्वर नामक शिव हैं ॥ ६ ॥ दधीचिको संग्राम भूमिमें प्रसिद्ध हुए शृंगेश्वर तथा वैद्यनाथ नामक और जप्येश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ७ ॥ गोपेश्वर तथा रंगेश्वर, वामेश्वर और नागेश कामेश विमलेश्वर नामवाले हैं ॥ ८ ॥ व्यासेश्वर, सुकेश तथा भांडेश्वर, हुंकारेश नामक शिवकी प्रतिमायें हैं ॥ ९ ॥ सुरोचन, भूतेश्वर तथा संगमेश नामसे प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग, है, और यह बडे पापोंको नाश करनेवाले हैं ॥ १० ॥ तप्तका नदीके तटपर कुमारे

श्वर, सिद्धेश्वर तथा सेनेश नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ११ ॥ रामेश्वर, कुंभेश तथा नन्दीश्वर, पुंजेश, पूर्णामें पूर्णक हैं ॥ १२ ॥ और पहले प्रयागमें ब्रह्माजीसे स्थापित किये ब्रह्मेश्वर दशाश्वमेधतीर्थपर धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके फलको देनेवाले हैं ॥ १३ ॥ और वहांपर सोमेश्वर सम्पूर्ण आपत्तियोंको दूर करनेवाले हैं और भरद्वाजेश्वरजी ब्रह्मतेजके देनेवाले हैं ॥ १४ ॥ शूलटंकेश्वर महादेव साक्षात् कामनाके देनेवाले हैं और वहां माधवेश्वर शिव भक्तोंकी रक्षाके करनेवाले हैं ॥ १५ ॥ हे द्विजो ! साकेत (अयोध्या) में नागेश नामसे प्रसिद्ध हैं यह सूर्य वंशमें उत्पन्न हुये मनुष्योंको विशेष सुख देनेवाले हैं ॥ १६ ॥ पुरुषोत्तम पुरीमें भुवनेशजी प्रसिद्ध हैं, लोकेशनाम महालिंग सम्पूर्ण आनन्द

रामेश्वर इति प्रोक्तः कुंभेशश्च परो मतः॥ नन्दीश्वरश्च पुंजेशः पूर्णायां पूर्णकस्तथा ॥१२॥ब्रह्मेश्वरः प्रयोगे च ब्रह्मणा स्थापितः पुरा॥ दशाश्वमेधतीर्थं हि चतुर्वर्गफलप्रदः ॥१३॥तथा सोमेश्वरस्तत्र सर्व्वापद्विनिवारकः ॥भारद्वाजेश्वरश्चैव ब्रह्मवर्चःप्रवर्द्धकः ॥१४॥ शूलटंकेश्वरः साक्षात्कामनाप्रद ईरितः॥माधवेशश्च तत्रैव भक्तरक्षाविधायकः ॥१५॥ नागेशाख्यः प्रसिद्धो हि साकेतनगरे द्विजाः ॥ सूर्य्यवंशोद्भवानां च विशेषेण सुखप्रदः॥१६॥पुरुषोत्तमपुर्यां तु भुवनेशस्सुसिद्धिदः॥लोकेशश्च महालिंगः सर्वानन्दप्रदायकः ॥१७॥ कामेश्वरः शंभुलिंगो गंगेशः परशुद्धिकृत् ॥ शक्रेश्वरः शुक्रसिद्धो लोकानां हितकाम्यया ॥१८॥ तथा वटेश्वरः ख्यातः सर्वकामफलप्रदः॥सिन्धुतीरे कपालेशो वक्रेशः सर्वपापहा॥१९॥ धौतपापेश्वरः साक्षादंशेन परमेश्वरः॥भीमेश्वर इति प्रोक्तः सूर्येश्वर इति स्मृतः॥२०॥नन्देश्वरश्च विज्ञेयो ज्ञानदो लोकपूजितः॥नाकेश्वरो महापुण्यस्तथा रामेश्वरः स्मृतः॥२१॥

देनेवाला है ॥१७॥ कामेश्वर नामक शिवका ज्योतिर्लिङ्ग है तथा गंगेशजी परमशुद्धि करनेवाले हैं और शक्रेश्वर तथा शुक्र सिद्धजी लोकोंके हितकी इच्छासे स्थापित हुये हैं ॥ १८ ॥ वटेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए शिवजी सब कामनाओंके फल देनेवाले हैं, और सिन्धुनदीके तीरपर कपालेश्वर, वक्रेशजी सब पापोंको हरनेवाले हैं ॥१९॥ साक्षात् शिवस्वरूप धौतपापेश्वरजी भीमेश्वरजी तथा सूर्येश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं ॥२०॥ नन्देश्वरजी, संसारसे पूजित हुए ज्ञानको देनेवाले हैं, नाकेश्वरजी महापुण्यके देनेवाले हैं, और रामेश्वर भी महापुण्य फलदायक हैं ॥ २१ ॥

विमलेश्वर नामक तथा कंटकेश्वर, और धर्तुकेशजी पूर्णसागरके संयोगके निकट हैं ॥ २२ ॥ चन्द्रेश्वरजी चन्द्रमाकी कान्तिके फलको देनेवाले कहे हैं, सिद्धेश्वर सब मनोरथ सिद्ध करनेवाले हैं ॥ २३ ॥ बिल्वेश्वर तथा अन्धकेशजी विख्यात हैं, जहां पहले शिवजीने अन्धक दैत्यको मारा था ॥२४॥ शिवजीने अपने अंशसे यही स्वरूप धारण करके यहां स्थिति की है और शरणेश्वर नामसे प्रसिद्ध हो संसारको नित्य सुख दायक हुये हैं ॥२५॥ कर्दमेशजी तथा कोटीश नामवाले और अर्बुदपर्वतपर अचलेशजी विख्यात हैं और सदा लोकोंको सुखदायक हैं ॥२६॥ कौशिकी नदीके समीप नागेश्वरजी नित्य विराजमान हैं, तथा अनंतेश्वरजी कल्याणके शुभपात्र हैं ॥२७॥ योगेश्वरजी तथा वैद्यनाथजी और

विमलेश्वरनामा वै कंटकेश्वर एव च॥पूर्णसागरसंयोगे धर्तुकेशस्तथैव च॥२२॥चन्द्रेश्वरश्च विज्ञेयश्चन्द्रकान्तिफलप्रदः॥सर्वकाम प्रदश्चैव सिद्धेश्वर इति स्मृतः ॥ २३ ॥ बिल्वेश्वरश्च विख्यातश्चान्धकेशस्तथैव च॥यत्र वा ह्यन्धको दैत्यः शंकरेण हतः पुरा ॥२४॥अयं स्वरूपमंशेन धृत्वा शंभुः पुनः स्थितः॥ शरणेश्वरविख्यातो लोकानां सुखदःसदा॥२५॥कर्दमेशः परः प्रोक्त कोटी शश्चार्बुदाचले॥अचलेशश्च विख्यातो लोकानां सुखदः सदा॥२६॥नागेश्वरस्तु कौशिक्यास्तीरे तिष्ठति नित्यशः॥अनन्तेश्वरसं ज्ञश्च कल्याणशुभभाजनः ॥२७॥ योगेश्वरश्च विख्यातो वैद्यनाथेश्वरस्तथा ॥ कोटीश्वरश्च विज्ञेयः सप्तेश्वर इति स्मृतः॥२८॥ भद्रेश्वरश्च विख्यातो भद्रनामा हरः स्वयम्॥चण्डीश्वरस्तथा प्रोक्तःसंगमेश्वर एव च॥२९॥पूर्वस्यां दिशि जातानि शिवलिंगानिया निच॥सामान्यान्यपि चान्यानि तानीह कथितानि ते॥३०॥दक्षिणस्यां दिशि तथा शिवलिंगानि यानि च॥संजातानि मुनिश्रेष्ठतानि ते कथयाम्यहम्॥३१॥इति श्री शिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां शिवलिंगमाहात्म्यवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

कोटीश्वरजी, सप्तेश्वरजी विख्यात हैं ॥ २८ ॥ और भद्रनामक साक्षात् शिवजी भद्रेश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं और चण्डीश्वर तथा संगमेश्वर नामसे विख्यात हैं ॥ २९ ॥ पूर्वदिशामें विराजमान हुए जो शिवजीके ज्योतिर्लिंग हैं तथा और भी जो सामान्य मूर्ति हैं उन सबको आपसे वर्णन किया ॥ ३० ॥ अब दक्षिण दिशाकी ओर जितने ज्योतिर्लिङ्ग हैं हे मुनिश्रेष्ठ ! उन सबका वर्णन तुमसे करता हूं ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भा० च० कोटिरुद्रसंहितायां शिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सूतजी बोले, कि ब्रह्मपुरीमें चित्रकूट पर्वतपर ब्रह्माजीसे स्थापन किया, सब कामनाका पूर्ण करनेवाला मत्तगजेन्द्रक नाम ज्योतिर्लिङ्ग है ॥ १ ॥ और उसके पूर्व दिशामें कोटीशलिंग सब वरोंको देनेवाला है और गोदावरी नदीसे पश्चिमकी ओर पशुपति नामक लिंग है ॥ २ ॥ और दक्षिण दिशामें अत्रीश्वर महादेव संसारके उपकार करनेके निमित्त तथा अनसूयाके सुख देनेके अर्थ स्वयं प्रगट हुए ॥ ३ ॥ और साक्षात शिवजीने अपने अंशसे रूप धारण कर वर्षाके अभावमें सब मनुष्योंको जिलाया ॥ ४ ॥ ऋषि बोले, हे बडे भाग्यवान् सूतजी ! सुन्दरव्रतधारिन् ! यहां किस प्रकार परम दिव्यस्वरूप अत्रीश्वरनाम शिव प्रगट हुए ठीकरकहो ॥ ५ ॥ सूतजी बोले, हे श्रेष्ठ ऋषियो ! आपने बहुत

सूत उवाच ॥ ब्रह्मपुर्यां चित्रकूटं लिंगं मत्तगजेन्द्रकम् ॥ ब्रह्मणा स्थापितं पूर्वं सर्वकामसमृद्धिदम् ॥१॥ तत्पूर्वदिशि कोटीशं लिंगं सर्ववरप्रदम् ॥ गोदावर्य्याः पश्चिमे तल्लिंगं पशुपतिनामकम्॥२॥ दक्षिणस्यां दिशि कश्चिदत्रीश्वर इति स्वयम् ॥ लोकानामुपकारार्थमनसूयासुखाय च ॥३॥ प्रादुर्भूतः स्वयं देवो ह्यनावृष्ट्यामजीवयत् ॥ स एव शंकरः साक्षादंशेन स्वयमेव हि ॥ ४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूतसूत महाभाग कथमत्रीश्वरो हरः ॥ उत्पन्नः परमो दिव्यस्तत्त्वं कथय सुव्रत ॥५॥ सूत उवाच ॥ साधु पृष्टमृषिश्रेष्ठाः कथयामि कथां शुभाम्॥यां कथां सततं श्रुत्वा पातकैर्मुच्यते ध्रुवम्॥६॥ दक्षिणस्यां दिशि महत् कामदं नाम यद्वनम् ॥ चित्रकूटसमीपेऽस्ति तपसां हितदं सताम् ॥७॥ तत्र च ब्रह्मणः पुत्रो ह्यत्रिनामा ऋषिः स्वयम्॥तपस्तेपेऽति कठिनमनसूयासमन्वितः ॥ ८ ॥ पूर्वं कदाचित्तत्रैव ह्यनावृष्टिरभून्मुने ॥ दुःखदा प्राणिनां दैवाद्विकटा शतवार्षिकी ॥ ९ ॥ वृक्षाश्शुष्कास्तदा सर्वे पल्लवानि फलानि च ॥ नित्यार्थं न जलं क्वापि दृष्टमासीन्मुनीश्वराः ॥ १० ॥

श्रेष्ठ प्रश्न किया मैं सुन्दर कथा कहता हूं जिस कथाको सुनकर मनुष्य निश्चय पापोंसे छूट जाता है ॥ ६ ॥ दक्षिण दिशाकी ओर चित्रकूट पर्वतके समीप कामद नामक बडा वन है, वह श्रेष्ठ तपस्वियोंको सुख देनेवाला है ॥ ७ ॥ वहां ब्रह्माके पुत्र अत्रिऋषि स्वयं अनसूयाके सहित अति कठिन तप करते थे ॥ ८ ॥ हे मुने ! वहां एक समय दैवयोगसे जीवोंको दुःखदायक भयानक सौवर्षकी अनावृष्टि हुई ॥ ९ ॥ हे ऋषियों !सम्पूर्ण वृक्ष सब पत्ते और फल सूख गये, कहीं नाममात्र जल नहीं दीखता था ॥ १० ॥

ठंडी हवा कहीं नहीं चली दसौं दिशाओंमें गरम पवन चलने लगी सम्पूर्ण पृथिवीपर अति दुःखदायक बड़ा हाहाकार मच गया ॥ ११ ॥ प्राणियोंके उस सब हाहाकारको देखकर पतिव्रता अत्रि ऋषिकी स्त्री अपने स्वामी (अत्रिऋषि)से बोली कि मुने ! अब अनावृष्टिका दुःख नहीं सहाजाता ॥ १२ ॥ यह सुन उस समय मुनिश्रेष्ठ अत्रिजी तीन बार प्रणायाम करके स्वयं आसन बांध समाधिमें स्थित हुए ॥ १३ ॥ और ज्ञानी मुनिश्रेष्ठ अत्रिने अपनी आत्मामें स्थित परमज्योति स्वरूप निर्विकार शिवजीका आत्मासे ध्यान किया ॥ १४ ॥ स्वामी अत्रिजीके ध्यान करने पर अन्नके विना दुःखी हो उनके शिष्य अपने गुरु अत्रि मुनिको छोड अन्यत्र चले गये ॥ १५ ॥ तब

आर्द्रीभावो न लभ्येत खरा वाता दिशो दश॥ हाहाकारो महानासीत्पृथिव्यां दुःखदोऽति हि॥११॥संवर्ते चैव भूतानां दृष्ट्वात्रि गृहिणी प्रिया॥ साध्वी चैवाब्रवीदत्रिं मया दुःखं न सह्यते॥१२॥समाधौ च विलीनोभूदासने संस्थितः स्वयम् ॥ प्राणायामं त्रिरावृत्त्या कृत्वा मुनिवरस्तदा ॥१३॥ध्यायति स्म परं ज्योतिरात्मस्थमात्मना च सः॥अत्रिर्मुनिवरो ज्ञानी शंकरं निर्विकारकम् ॥ १४ ॥ स्वामिनि ध्यानलीने च शिष्यास्ते दूरतो गताः ॥अन्नं विना तदा ते तु मुक्ता तं स्वगुरुं मुनिम्॥१५॥एकाकिनी तदा जाता सानसूया पतिव्रता ॥१६॥ सिषेवे सा च सततं तं मुदा मुनिसत्तमम् ॥पार्थिवं सुन्दरं कृत्वा मंत्रेण विधिपूर्व्वकम्॥ १७ ॥ मानसैरुपचारैश्च पूजयामास शंकरम् ॥ तुष्टाव शंकरं भक्त्या संसेवित्वा मुहुर्मुहुः ॥१८॥ बद्धाञ्जलिपुटा भूत्वा प्रक्रम्य स्वामिनं शिवम् ॥ दण्डवत्प्रणिपातेन प्रतिप्रक्रमणं तदा॥१९॥चकार सुचरित्रा सानसूया मुनिकामिनी॥दैत्याश्च दानवाः सर्वे दृष्ट्वा तु सुन्दरीं तदा॥२०॥विह्वलाश्चाभवंस्तत्र तेजसा दूरतः स्थिताः॥अग्निं दृष्ट्वा यथा दूरे वर्तन्ते तद्वदेव हि॥२१॥

वह पतिव्रता अनसूया अकेली रह गई ॥ १६ ॥ और नित्यही उन मुनिश्रेष्ठ की आनन्दके साथ सेवा करती थी और सुन्दर पार्थिव लिंगको बनाकर मन्त्रोंसे विधिपूर्वक ॥ १७ ॥ मानस उपचारोंसे शिवजीको पूजती और उनकी बारम्बार सेवा करके भक्तिसे स्तुति करती थी॥१८॥ हाथ बांधे हुए स्वामी शिवकी प्रदक्षिणा करके दंडवत् प्रणाम करती थी ॥ १९ ॥ वह श्रेष्ठ आचरणवाली मुनि अत्रिजीकी स्त्री शिवकी ऐसी भक्ति करती थी उस समय सम्पूर्ण दानव दैत्य उस सुन्दरी अनसूयाको देख ॥ २० ॥ जैसे अग्निको देख दूर स्थित रहते हैं उसी प्रकार उसके

तेजसे व्याकुलहो दूर चले गये॥२१॥ इसको देख कोई दैत्यभी धोरे न आया, अत्रिजी तप तथा अनसूया शिवजीका सेवन करने लगी॥ २२ ॥ हे विप्रेन्द्रो ! उससमय तक वह देवी मन, वाणी तथा कायाके सहित शिवजीकी विशेष सेवा करती थी ॥२३॥ जबतक कि, वह मुनि प्राणायाममें तत्पर रहते थे,इस प्रकार उससमय वे दोनों वहां अपने २ कार्यसे चित्त लगाये हुए ॥२४॥ स्थित रहे, हे मुनिश्रेष्ठ ! उस समय और कोई वहां स्थित न रहा इसी प्रकार कुछ समय बीतनेपर अत्रि ऋषि ॥२५॥ परम ध्यानमें ऐसे मग्न हुए कि, मानो कुछभी चेतना नहीं और वह साध्वी अनसूयाभी स्वामी शिवजीको सेवन करती हुई॥ २६॥ वह पतिव्रता ऐसी सेवा करती थी कि, मानो और कुछभी नहीं जानती है उन अत्रिके

तथैनां च तदा दृष्ट्वा नायान्तीह समीपगाः ॥ अत्रेश्च तपसश्चैवानसूयाशिवसेवनम् ॥२२॥ विशिष्यते स्म विप्रेन्द्रा मनोवाक्का यसंस्कृतम् ॥ तावत्कालं तु सा देवी परिचर्यां चकार ह ॥ २३ ॥ यावत्कालं मुनिवरः प्राणायामपरायणः ॥ तौ दम्पती तदा तत्र स्वस्व कार्यपरायणौ ॥ २४ ॥ संस्थितौ मुनिशार्दूल नान्यः कश्चित्परः स्थितः ॥ एवं जाते तदा काले ह्यत्रिश्च ऋषिसत्तमः ॥२५॥ ध्याने च परमे लीनो न व्यबुध्यत किंचन ॥ अनसूयापि सा साध्वी स्वामिनं वै शिवं तथा ॥ २६ ॥ भेजे नान्यत्परं किंचिज्जानीते स्म च सा सती ॥ तस्यैव तपसा सर्वं तस्याश्च भजनेन च ॥ २७ ॥ देवाश्च ऋषयश्चैव गंगाद्यास्सरितस्तथा ॥ दर्शनार्थं तयोःसर्वाःपरे प्रीत्या समाययुः ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा च तत्तपस्सेवां विस्मयं परमं ययुः ॥ तयोस्तदद्भुतं दृष्ट्वा समूचुर्भजनं वरम् ॥ २९ ॥ उभयोःकिं विशिष्टं च तपसो भजनस्य च ॥ अत्रेश्चैव तपःप्रोक्तमनसूयानुसेवनम् ॥ ३० ॥ तत्सर्वमुभयोर्दृष्ट्वा समूचुर्भजनं वरम् ॥ पूर्वैश्च ऋषिभिश्चैव दुष्करं तु तपः कृतम् ॥ ३१ ॥

तपसे तथा उस अनसूयाके शिवार्चनसे ॥ २७ ॥ संपूर्ण देवता तथा ऋषि, गंगा आदि नदियें यह सब परम प्रीतिसे उन दोनोंके दर्शनकरनेको आये ॥ २८ ॥ उनके तप तथा शिवजीकी सेवाको देख बडे आश्चर्यको प्राप्त हुए और अत्रि तथा अनसूयाके श्रेष्ठ अद्भुत भजनको देखकर परस्पर कहने लगे ॥ २९ ॥ कि, अत्रिजीके तप तथा अनसूयाजीका भजन इन दोनोंमें किसका तप वा भजन विशेष है ॥ ३० ॥ तब उन सबने सम्मतिकर भजनकोही विशेष कहा यद्यपि पूर्व ऋषियोंने भी कठिन तपस्या की है ॥ ३१ ॥ परन्तु इस प्रकारका तप किसीने नहीं किया ऐसा

सबने कहा यह अत्रि ऋषि और अनसूया दोनोंही धन्य हैं ॥३२॥ यह दोनों स्त्री पुरुष परम प्रेमसे कठिन तपस्या कर रहे हैं यह इनका तप बडा श्रेष्ठ और दुष्कर है ॥ ३३ ॥ त्रिलोकीमें ऐसा तप आजतक किसने किया यह बात नहीं जानी जाती, उन दोनोंकी इस प्रकार प्रशंसा करके वे सब यथायोग्य ॥ ३४ ॥ अपने स्थानोंको गये परन्तु गंगाजी न गईं, वह गंगाजी उस साध्वीसे शिवभजन करनेके कारण प्रसिद्ध हुई और मोहित हो वहां रहगई ॥ ३५ ॥ हे मुनीश्वरो ! गंगाजीने कहा कि, मैं अनसूयाका उपकार करके जाऊंगी और इधर शिवजी अत्रि मुनिके ध्यानसे वहां स्थित रह गये ॥ ३६ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठो ! इस प्रकार वहां पूर्ण अंशसे स्थित हो आप कैलास पर्वतको गये, इसप्रकार वहां

एतादृशं तु केनापि क्व कृतं नैतदब्रुवन् ॥ धन्योऽयं च मुनिर्धन्या तथेयमनसूयिका॥३२॥ यदैताभ्यां परप्रीत्या क्रियतेसुतपः पुनः ॥ एतादृशं शुभं चैतत्तपो दुष्करमुत्तमम्॥३३॥त्रिलोक्यां क्रियते केन साम्प्रतं ज्ञायते न हि॥तयोरेव प्रशंसां च कृत्वा ते तु यथागतम् ॥३४॥गतास्ते च तदा तत्र गंगा न गिरिशं विना.॥गंगा मद्भजनप्रीता साध्वी धर्मविमोहिता ॥३५॥कृत्वोपकारमे तस्यागमिष्यामीत्युवाच सा॥ शिवोऽपि ध्यानसम्बद्धो मुनेरत्रेर्मुनीश्वराः॥३६॥पूर्णांशेन स्थितस्तत्र कैलासं तं जगाम ह ॥ पंचाशच्च तथा चात्र चत्वारि ऋषिसत्तमाः ॥३७॥ वर्षाणि च गतान्यासन् वृष्टिर्नैवाभवत्तदा॥ यावच्चाप्यत्रिणा ह्येवं तपसा ध्यानमाश्रितम् ॥ ३८ ॥ अनसूया तदा नैव गृह्णामीतीषणा कृता ॥ एवं च क्रियमाणे हि मुनिना तपसि स्थिते ॥ अनसूयासुभजने यज्जातं श्रूयतामिति ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायामनसूयात्रितपोवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ कदाचित्स ऋषिश्रेष्ठो ह्यत्रिर्ब्रह्मविदां वरः ॥ जागृतश्च जलं देहि प्रत्युवाच प्रियामिति ॥ १ ॥

पर चौअन ॥ ३७ ॥ वर्ष बीतगये और वर्षा न हुई और तबतक अत्रि मुनि उसी प्रकार ध्यानमें समाधि लगाये रहे ॥ ३८ ॥ अनसूयानेभी विचार किया कि, जबतक स्वामी समाधिमें ध्यान लगाये रहेंगे तबतक मैंभी जल ग्रहण नहीं करूंगी इस प्रकार ऋषिके तपमें स्थित होने और अनसूयाके भजन करनेपर जो हुआ सो सुनो ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषा टी० च० को० रु० अनसूयातपोवर्णनं नाम तृतीयोध्यायः ॥ ३ ॥ सूतजी बोले, किसी समय जब वह वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ऋषि अत्रिजी समाधिसे जागे तब अपनी

प्रियासे बोले कि जल लाओ ॥ १ ॥ तत्काल साध्वी अनसूया कमंडलुको ग्रहणकर बनको चली और विचारने लगी जल कहांसे लाऊं ? ॥ २ ॥ मैं क्या करूं कहां जाऊं किधरसे जल लाऊं ? इस प्रकार विस्मयको प्राप्त हुई अनसूयाको गंगाजीने दर्शन दिया ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे अनसूयाके पीछे २ जाती हुई सुन्दर शरीर धारण किये नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजीने अनसूयासे कहा ॥ ४ ॥ गंगाजी बोली, हे देवि ! मैं तुझसे प्रसन्न हूं अब तुम कहां जाती हो यह बतावो हे सुभगे ! तुम धन्य हो, सत्य ही मैं तुम्हारी आज्ञा पालन करूंगी ॥ ५ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! उस समय उसका वचन सुनकर तपस्विनी अत्रि ऋषिकी स्त्री चकित हुई प्रीतिसे यह बोली ॥ ६ ॥ अनसूया बोली

सापि साध्वी त्ववश्यं च गृहीत्वाथ कमण्डलुम् ॥जगाम विपिने तत्र जलं मे नीयते कुतः॥२॥किं करोमि क्व गच्छामि कुतो नीयेत वै जलम् ॥ इति विस्मयमापन्ना तां गंगां हि ददर्श सा॥३॥तामनुव्रजती यावत् साब्रवीच्च सदा हि ताम् ॥ गंगा सरिद्वरा देवी बिभ्रती सुन्दरां तनुम्॥४॥गंगोवाच॥प्रसन्नास्मि च ते देवि कुत्र यासि वदाधुना ॥ धन्या त्वं सुभगे सत्यं तवाज्ञां च करोम्यहम् ॥५॥ सूत उवाच॥तद्वचश्च तदा श्रुत्वा ऋषिपत्नी तपस्विनी॥ प्रत्युवाच वचः प्रीत्या स्वयं सुचकिता द्विजाः॥६॥अनसूयो वाच॥का त्वं कमलपत्राक्षि कुतो वा त्वं समागता॥तथ्यं ब्रूहि कृपां कृत्वा साध्वी सुप्रवदा सती॥७॥सूत उवाच॥इत्युक्ते च तया तत्र मुनिपत्न्या मुनीश्वराः॥सरिद्वरा दिव्यरूपा गंगा वाक्यमथाब्रवीत्॥८॥गंगोवाच॥ स्वामिनः सेवनं दृष्ट्वा शिवस्य च परात्मनः॥ साध्वि धर्मं च ते दृष्ट्वा स्थितास्मि तव सन्निधौ॥९॥अहं गंगा समायाता भजनात्ते शुचिस्मिते॥ वशीभूता ह्यहं जाता यदिच्छसि वृणीष्व तत् ॥१०॥ सूत उवाच॥ इत्युक्ते गंगया साध्वी नमस्कृत्य पुरः स्थिता॥उवाचेति जलं देहि चेत्प्रसन्ना ममाऽधुना॥११॥

हे कमलपत्रके समान नेत्रवाली ! तुम कौन हो और कहांसे आई हो, सो अब कृपाकर कहो, इस प्रकार उस साध्वी पतिव्रताने कहा ॥ ७ ॥ सूतजी बोले, हे मुनीश्वरो ! यह उस ऋषिपत्नीके कहनेपर दिव्य रूपवाली नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजी फिर बोली ॥ ८ ॥ गंगाजी बोली, हे साध्वी ! तुम्हारे पतिकी सेवा तथा परमात्मा शिवकी भक्ति और तुम्हारे धर्मको देखके तुम्हारे समीप स्थित हुई हूं ॥ ९ ॥ हे पवित्र हास्यवाली ! मैं गंगा नदी तुम्हारे भजनसे वशीभूत हुई यहां प्राप्त हुई हूं जो इच्छा हो सो वर मांगो ॥ १० ॥ सूतजी बोले, ऐसा

गंगाजीके कहनेपर वह साध्वी प्रणाम करके हाथ जोडे आगे खड़ी हो बोली, यदि तुम प्रसन्न हो तो जल दो ॥ ११ ॥ ऐसा उसका वचन सुनकर गंगाने कहा कि, एक गढा खोदो यह सुन शीघ्र ही उसने गढ़ा खोदा और क्षणमात्रमें उसमें गंगाजी प्रवेश हुई ॥ १२ ॥ और वह प्रवेश करते ही उसी समय जलरूप होगई तब अनसूया बडे आश्चर्यमें प्राप्त हो उसमेंसे जल लेने लगी ॥ १३ ॥ अत्रिमुनिकी स्त्री अनसूया संसारके सुखके कारण उन दिव्य रूपवाली गंगाजीसे यह वचन बोली ॥ १४ ॥ अनसूया बोली, हे गंगे ! यदि तुम मुझसे प्रसन्न हो और मुझपर कृपा है तो तुम तबतक ऐसे स्थित रहो जबतक मेरे स्वामी न आवें ॥ १५ ॥ सूतजी बोले, सत्पुरुषोंको सुख देनेवाले अनसूयाके

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा गर्तं कुर्ष्विति साऽब्रवीत्॥शीघ्रं चायाच्च तत्कृत्वा स्थिता तत्क्षणमात्रतः॥१२॥तत्र सा च प्रविष्टा च जलरूप मभूत्तदा ॥ आश्चर्य्यं परमं गत्वा गृहीतं च जलं तया ॥१३॥उवाच वचनं चैतल्लोकानां सुखहेतवे ॥ अनसूया मुनेः पत्नी दिव्य रूपां सरिद्वराम् ॥१४॥ अनसूयोवाच ॥ यदि त्वं सुप्रसन्ना मे वर्तसे च कृपामयि ॥ स्थातव्यं च त्वया तावन्मत्स्वामी यावदा व्रजेत् ॥१५॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वानसूयाया वचनं सुखदं सताम् ॥ गंगोवाच प्रसन्नाति ह्यत्रेर्दास्यसि मेऽनघे॥१६॥इत्युक्ते च तया तत्र ह्यनपायि कृतन्तथा ॥ स्वामिने तज्जलं दिव्यं दत्त्वा तत्पुरतः स्थिता॥१७॥ स ऋषिश्चापि सुप्रीत्या स्वाचम्य विधिपूर्वकम् ॥ पपौ दिव्यं जलं तच्च पीत्वा सुखमवाप ह ॥१८॥ अहो नित्यं जलं यच्च पीयते तज्जलं न हि ॥ विचार्येति च तेनाशुपरितश्चावलोकितम्॥१९॥शुष्कान्वृक्षान्समालोक्य दिशो रूक्षतरास्तथा॥ उवाच तामृषिश्रेष्ठो न जातं वर्षणं पुनः॥२०॥

वचनको सुन अति प्रसन्न हुई गंगाजी बोली हे निष्पापे ! तू मुझे अत्रिको देना ॥ १६ ॥ ऐसा कहकर गंगाजीने अपना जल नाश रहित किया, अनसूया उस दिव्य जलको अपने स्वामीको देकर आगे स्थित हुई ॥ १७ ॥ और उन ऋषिने प्रीतिसे विधि पूर्वक आचमन करके दिव्य गंगा जलको पान किया और सुख पाया ॥ १८ ॥ आश्चर्य है कि, नित्य जो जल पीते थे यह वैसा नहीं है और ही प्रकारका है ऐसा उन ऋषिने विचार चारों ओर देखा ॥ १९ ॥ सूखे वृक्षोंको तथा सब दिशाओंको अति रूखा (जलरहित) देखकर ऋषिश्रेष्ठ,

अनसूयासे बोले कि, वर्षा अब भी नहीं हुई ॥ २० ॥ उसका वचन सुनकर, प्रियाने कहा कि, वर्षा नहीं हुई, फिर ऋषिने अपनी स्त्रीसे कहा कि, तुमने जल कहां प्राप्त किया ॥ २१ ॥ हे मुनीश्वरो ! ऐसा ऋषिके कहनेपर उस समय बडे विस्मयको प्राप्त हुई अनसूया अपने मनमें चिन्ता करने लगी ॥ २२ ॥ कि यदि मैं निवेदन कर दूंगी तो मेरी अधिकता होगी और यदि नहीं बताती हूं तो मेरा पातिव्रत्य भंग होगा ॥ २३ ॥ और यह दोनों बातें हो नहीं सकतीं, अब मेरा निवेदन करना योग्य है ऐसा वह विचारही कररही थी कि, फिर ऋषिने बारम्बार पूँछा ॥ २४ ॥ तब शिवजीके अनुग्रहसे बुद्धि पाकर वह पतिव्रता यह बोली कि, हे स्वामिन् ! सुनिये जिस प्रकार हुआ

तदुक्तं तत् समाकर्ण्य नेतिनेति प्रियान्तदा ॥ तामुवाच पुनः सोऽपि जलं नीतं कुतस्त्वया ॥२१॥ इत्युक्ते तु तदा तेन विस्मयं परमं गता ॥ अनसूया स्वमनसि सचिन्ता तु मुनीश्वराः ॥२२॥ निवेद्यते मया चेद्वै तदोत्कर्षो भवेन्मम ॥ निवेद्यते यदा नैव व्रतभङ्गो भवेन्मम ॥२३॥ नोभयं च तथास्याद्वै निवेद्यं तत्तथा मम ॥ इति यावद्विचार्यैत तावत्पृष्टा पुनःपुनः॥२४॥ अथानुग्रहतः शंभोः प्राप्तबुद्धिः पतिव्रता ॥ उवाच श्रूयतां स्वामिन्यज्जातं कथयामिते॥२५॥अनसूयोवाच॥ शंकरस्य प्रतापाच्च तवैव सुकृतैस्तथा ॥ गंगा समागतात्रैव तदीयं सलिलन्त्विदम् ॥२६॥सूत उवाच ॥ एवं वचस्तदाश्रुत्वा मुनिर्विस्मयमानसः ॥ प्रियामुवाच सुप्रीत्या शंकरं मनसा स्मरन् ॥२७॥अत्रिरुवाच ॥ प्रिये सुन्दरि त्वं सत्यमथ वाचं व्यलीककाम् ॥ब्रवीषि च यथार्थं त्वं न मन्ये दुर्लभन्त्विदम् ॥२८॥ असाध्यं योगिभिर्यच्च देवैरपि सदा शुभे ॥ तच्चैवाद्य कथं जातं विस्मयः परमो मम ॥ २९ ॥

सो सब वृत्तान्त आपसे कहती हूं ॥ २५ ॥ अनसूया बोली कि, महादेवके प्रतापसे तथा पुण्योंसे यहांपर गंगाजी प्राप्त होगई उनहीका यह जल है ॥ २६ ॥ सूतजी बोले, उस समय यह वचन सुन ऋषि विस्मयचित्त हो शिवको मनसे स्मरणकर प्रीतिसे अपनी स्त्रीके प्रति बोले ॥ २७ ॥ अत्रि बोले, हे प्रिये ! हे सुन्दरी ! क्या तुम निस्सन्देह सत्य वचन कहती हो ? मैं ठीक नहीं मानता हूं कारण कि, यह बात अति दुर्लभ है ॥ २८ ॥ हे शुभे ! यह बात योगियोंको तथा देवताओंको भी निरन्तर दुर्लभ है सो आज यह किस प्रकार हुआ मुझे बडा

आश्चर्य है ॥ २९ ॥ मैं इस प्रकार यदि देखलूंगा तोही मानूंगा और किसी प्रकार नहीं मानूंगा ऐसा उनका वचन सुन वह अनसूया अपने पतिसे बोली ॥ ३० ॥ अनसूया बोली, हे महामुने ! हे नाथ ! यदि नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजीके देखनेकी इच्छा हो तो आप मेरे साथ चले ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहकर वह पतिव्रता पतिको साथ ले शीघ्रही शिवजीका स्मरण करती हुई वहां पहुंची जहां निर्मल गंगाजी बह रहीं थीं ॥ ३२ ॥ तब उस पतिव्रताने वहां पतिको गढेमें बहती हुई साक्षात् दिव्यस्वरूपधारिणी गंगाजीके दर्शन कराये ॥ ३३ ॥ मुनि श्रेष्ठ अत्रिजी वहां जाकर ऊपरतक जलसे पूर्ण सुन्दर गढेको देखकर धन्य है ऐसा बोले ॥ ३४ ॥ क्या यह मेरा तप है अथवा और किसीका

यद्येवं दृश्यते चेद्वै तन्मयेहं न चान्यथा ॥इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच पतिं प्रिया ॥३०॥ अनसूयोवाच ॥ आगम्यतां मया सार्द्धं त्वया नाथ महामुने ॥ सरिद्वराया गंगाया द्रष्टुमिच्छाभवेद्यदि ॥३१॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तु समादाय पतिं तं सा पतिव्रता ॥ गता द्रुतं शिवं स्मृत्वा यत्र गंगा सरिद्वरा॥३२॥दर्शयामास तां तत्र गंगा पत्ये पतिव्रता॥गर्तं च संस्थितां तत्र स्वयं दिव्यस्वरूपिणीम् ॥३३॥ तत्र गत्वा ऋषिश्रेष्ठो गर्तं च जलपूरितम् ॥ आकण्ठं सुन्दरं दृष्ट्वा धन्येयमिति चाब्रवीत्॥३४॥किं मदीयं तपश्चैव किमन्येषां पुनस्तदा॥इत्युक्तो मुनिशार्दूलो भक्त्या तुष्टाव तां तदा॥३५॥ततो हि स मुनिस्तत्र सुस्नातः सुभगे जले ॥ आचम्य पुनरेवात्र स्तुतिं चक्रे पुनः पुनः ॥३६॥ अनसूयापि संस्नाता सुन्दरे तज्जले तदा॥नित्यं चक्रे मुनिः कर्म सानसूयापि सुव्रता ॥३७॥ ततस्सोवाच तां गंगा गम्यते स्वस्थलं मया॥इत्युक्ते च पुनः साध्वी तामुवाच सरिद्वराम्॥३८॥ अनसूयोवाच ॥ यदि प्रसन्ना देवेशि यद्यस्ति च कृपा मयि ॥ त्वया स्थेयं निश्चलत्वादस्मिन्देवि तपोवने ॥ ३९ ॥

ऐसा कहकर उस समय भक्तिसे गंगाजीकी स्तुति की ॥ ३५ ॥ और वहां मुनिने उस निर्मल जलमें अच्छी प्रकार स्नान किया और फिर आचमन करके बारम्बार स्तुति की ॥ ३६ ॥ अनसूयाने भी निर्मल जलमें उस समय स्नान किया इस प्रकार वह मुनि तथा अनसूयाजी दोनोंही नित्यकर्म गंगाजीमें करने लगे ॥ ३७ ॥ तब गंगाजी अनसूयासे बोलीं कि, मैं अपने स्थानको जाती हूं यह सुन उस पतिव्रताने फिर गंगाजीसे कहा ॥ ३८ ॥ अनसूया बोली, हे देवेशि ! यदि तुम मुझसे प्रसन्न हो और मुझपर तुम्हारी

कृपा है तो हे देवि ! इस तपोवनमें तुम निश्चल होकर निवास करो ॥ ३९ ॥ बडोंका यह स्वभाव होताहै कि किसीको अंगीकार करके कभी नहीं छोडते, ऐसा कहके हाथ जोड वारम्वार उनकी स्तुति करने लगी ॥ ४० ॥ ऋषिनेभी उसी प्रकार प्रार्थना की कि, हे सरिद्वरे ! तुम यहां निवास करो हे देवि ! हमको सानुकूल होकर सनाथ करो ॥ ४१ ॥ उन मुनि तथा अनसूयाका ऐसा मनोहर वचन सुनकर प्रसन्न हुई नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजी अनसूयासे कहने लगी ॥ ४२ ॥ गंगाजी बोली कि, तुम अपने स्वामीके शिवार्चनरूप एक वर्षके फलको मुझे दो तो मैं देवताओंके उपकारके अर्थ स्थित रहूंगी ॥ ४३ ॥ इस प्रकार मेरी सन्तुष्टि न दानसे न तीर्थमें स्नान करनेसे और न यज्ञोंसे न

महतां च स्वभावश्च नांगीकृत्य परित्यजेत्॥इत्युक्त्वा च करौ बद्ध्वा तां तुष्टाव पुनःपुनः॥४०॥ऋषिश्चापि तथोवाच त्वया स्थेयं सरिद्वरे ॥ सानुकूला भव त्वं हि सनाथान्देवि नः कुरु ॥ ४१ ॥ तदीयं तद्वचः श्रुत्वा रम्यं गंगा सरिद्वरा ॥ प्रसन्नमानसा गंगाऽनसूयां वाक्यमब्रवीत् ॥४२॥ गंगोवाच ॥ शंकरार्चनसंभूतफलं वर्षस्य यच्छसि॥ स्वामिनश्च तदा स्थास्ये देवानामुपकारणात ॥४३॥ तथा दानैर्न मे तुष्टिस्तीर्थस्नानैस्तथा च वै॥यज्ञैस्तथाथवा योगैर्यथा पातिव्रतेन च॥ ४४ ॥ पतिव्रतां यथा दृष्ट्वा मनसः प्रीणनं भवेत्॥तथा नान्यैरुपायैश्च सत्यं मे व्याहृतं सति॥४५॥पतिव्रतां स्त्रियं दृष्ट्वा पापनाशो भवेन्मम ॥ शुद्धा जाता विशेषेण गौरीतुल्या पतिव्रता ॥ ४६ ॥ तस्माच्च यदि लोकस्य हिताय तत्प्रयच्छसि ॥ तर्ह्यहं स्थिरतां यास्ये यदि कल्याणमिच्छसि ॥ ४७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वाऽनसूया सा पतिव्रता ॥ गंगायै प्रददौ पुण्यं सर्वं तद्वर्षसंभवम् ॥ ४८ ॥

योगसे होती है जिस प्रकार मैं पतिव्रतधर्मसे सन्तुष्ट होतीहूं ॥ ४४ ॥ हे सति ! पतिव्रताको देखकर जैसा मेरा मन प्रसन्न होता है वैसा और उपायोंसे नहीं होता, यह सत्य कहतीहूं ॥ ४५ ॥ पतिव्रता स्त्रीको देखकर मेरा पाप नाश होता है पतिव्रता स्त्री पार्वतीके समान पवित्र है ॥ ४६ ॥ इस कारण यदि तुम कल्याणकी इच्छा करती हो तो अपने पतिव्रत पुण्यके वर्षभरके फलको संसारके हितकेलिये दान करो तो मैं यहां स्थिर रहूंगी ॥ ४७ ॥ सूतजी बोले, ऐसा वचन सुनकर उस पतिव्रता अनसूयाने अपने वर्षभरके सब पुण्य गंगाजीको दिये ॥ ४८ ॥

बडे पुरुषोंका यह स्वभावही है कि, वे दूसरोंका हित करते हैं यहांपर सुवर्ण चंदन गन्नेका रसका दृष्टान्त है ॥ ४९ ॥ अनसूयाका यह बडा पतिव्रत कर्म देखकर प्रसन्न हुए और पार्थिवलिंगमें प्रगट हुये ॥ ५० ॥ शिवजी बोले, हे साध्वी ! हे पतिव्रते ! मैं तेरा कर्म देखकर प्रसन्न हुआ हे प्रिये ! तू वर मांग कारण कि--तू मुझे अधिक प्यारी है ॥ ५१ ॥ तब वह दोनों स्त्री पुरुष, सुन्दर आकारवाले, तथा पांच मुखसहित, शिवजीको देखकर बडा आश्चर्य करने लगे ॥ ५२ ॥ और महाभक्तिमें तत्पर हो उन्हें नमस्कार करके तथा हाथ जोड स्तुति करके संसारके कल्याण करनेवाले महादेवजीकी पूजा कर कहने लगे ॥ ५३ ॥ वे स्त्री पुरुष बोले, हे देवोंके ईश्वर ! यदि आप हैं तो

महतां च स्वभावोहि परेषां हितमावहेत् ॥ सुवर्णं चन्दनं चेक्षुरसस्तत्र निदर्शनम्॥४९॥ एतद्दृष्ट्वानसूयं तत्कर्म पातिव्रतं महत् ॥ प्रसन्नोभून्महादेवः पार्थिवादाविराशु वै॥५०॥ शंभुरुवाच ॥ दृष्ट्वा ते कर्म साध्व्येतत् प्रसन्नोऽस्मि पतिव्रते ॥ वरं ब्रूहि प्रिये मत्तो यतः प्रियतरासि मे ॥५१॥ अथ तौ दम्पती शंभुमभूतां सुन्दराकृतिम् ॥ पञ्चवक्त्रादिसंयुक्तं हरं प्रेक्ष्य सुविस्मितौ ॥५२॥ नत्वा स्तुत्वा करौ वद्ध्वा महाभक्तिसमन्वितौ॥अवोचेतां समभ्यर्च्य शंकरं लोकशंकरम् ॥ ५३ ॥ दम्पती ऊचतुः॥यदि प्रसन्नो देवेश प्रसन्ना जगदम्बिका ॥ अस्मिंस्तपोवने तिष्ठ लोकानां सुखदो भव ॥५४॥ प्रसन्ना च तदा गंगा प्रसन्नश्च शिवस्तदा ॥ उभौ तौ च स्थितौ तत्र यत्रासीदृषिसत्तमः ॥५५॥ अत्रीश्वरश्च नाम्नासीदीश्वरः परदुःखहा ॥गंगा सापि स्थिता तत्र तदा गर्तेथ मायया ॥ ५६ ॥ तद्दिनं हि समारभ्य तत्राक्षय्यजलं सदा ॥ हस्तमात्रे हि तद्गर्ते गंगा मन्दाकिनी ह्यभूत् ॥ ५७ ॥

प्रसन्न हुई जगत्की माता पार्वतीसमेत इस तपोवनमें निवास करो और संसारको सुखदो ॥ ५४ ॥ उस समय प्रसन्न हुई गंगाजी तथा प्रसन्न हुये शिवजी इन दोनों देवताओंने वहां स्थिति की जहां वह ऋषि रहते थे ॥ ५५ ॥ दूसरोंके दुःख नाश करनेवाले शिवजी वहां अत्रीश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए और वहां गंगाजीभी अपनी मायासे उस गढेमें स्थित हुई ॥ ५६ ॥ उस दिनसे लेकर वह अविनाशीरूपसे स्थित हुआ जल हाथ भरके गढेमें मन्दाकिनी नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ५७ ॥

हे द्विजो ! वहांपर वे दिव्य ऋषि अपनी स्त्रियोंसहित प्रत्येक तीर्थोंसे आये, जो कि--पहले चले गये थे वे सब भी प्राप्त हुए ॥ ५८ ॥ यज्ञ यागोंमें तत्पर ऋषिजनोंने यव और व्रीहि लेकर वहां होम किया ॥ ५९ ॥ हे मुनीश्वरो ! उस समय उन कर्मोंसे संतुष्ट हुए मेघोंने वर्षा की और संसारमें परम आनन्द होने लगा ॥ ६० ॥ यह अत्रीश्वर नामक शिवजीका माहात्म्य तुमसे कहा जो सुख देनेवाला तथा भुक्ति और मुक्तिका देनेवाला सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला और भक्तिका बढानेवाला है ॥ ६१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषा० च० को० रुद्रसंहितायां छत्रीश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूतजी बोले, कालिंजर नामक सुन्दर पर्वतपर नीलकण्ठ महेश्वर लिंग

तत्रैव ऋषयो दिव्याः समाजग्मुस्सहांगनाः ॥ तीर्थात्तीर्थाच्च ते सर्वे ते पुरा निर्गता द्विजाः ॥ ५८ ॥ यवाश्च व्रीहयश्चैव यज्ञयागपरायणाः ॥ युक्ता ऋषिवरैस्तैश्च होमं चक्रुश्च ते जनाः ॥ ५९ ॥ कर्मभिस्तैश्च संतुष्टा वृष्टिं चक्रुर्घनास्तदा ॥ आनन्दः परमो लोके बभूवातिमुनीश्वराः॥६०॥ अत्रीश्वरस्य माहात्म्यमित्युक्तं वः सुखावहम् ॥भुक्तिमुक्तिप्रदं सर्वकामदं भक्ति वर्द्धनम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायामत्रीश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ कालंजरे निरौ दिव्ये नीलकण्ठो महेश्वरः ॥ लिंगरूपस्सदा चैव भक्तानन्दप्रदः सदा ॥ १ ॥ महिमा तस्य दिव्योस्ति श्रुतिस्मृतिप्रकीर्तितः ॥ तीर्थं तदाख्यया तत्र स्नानात्पातकनाशकृत् ॥ २ ॥ रेवातीरे यानि सन्ति शिवलिंगानि सुव्रताः ॥सर्वसौख्यकराणीह तेषां संख्या न विद्यते॥३॥सा च रुद्रस्वरूपा हि दर्शनात्पापहारिका ॥ तस्यां स्थिताश्च ये केचित्पाषाणाः शिवरूपिणः ॥४॥ तथापि च प्रवक्ष्यामि यथान्यानि मुनीश्वराः ॥ प्रधानशिवलिंगानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि च ॥५॥

रूपसे सदा स्थित रहते हैं और भक्तोंको आनन्द देनेवाले हैं ॥ १ ॥ उनकी महिमा परम दिव्य वेद और शास्त्रोंमें कही है, वहांपर नील कण्ठ नामसे प्रसिद्ध तीर्थ है जहां स्नान करनेसे सब पाप नाश होते हैं ॥ २ ॥ हे सुन्दर व्रतवाले ! रेवानदीके तटपर जितने शिवके ज्योति लिंग हैं उनकी संख्या नहीं है वे सब सुखके देनेवाले हैं ॥ ३ ॥ वह शिवजीके समान रेवानदी दर्शनसे पापोंको हरण करनेवाली है उसमें शिव स्वरूपसे जो पाषाणमूर्ति हैं ॥४॥ हे मुनीश्वरो ! उनको भी कहता हूं तथा और भी भुक्ति मुक्तिके देनेवाले प्रधान शिवजीके लिंग हैं उनका भी

वर्णन करता हूं ॥ ५ ॥ अर्तेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग, पापको हरण करनेवाला है तथा परमेश्वर सिंहेश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ६ ॥ और वहां शर्मेश, कुमारेश्वर, पुण्डरीकेश्वर, मण्डपेश्वर नामक लिंग हैं ॥ ७ ॥ नर्मदा नदीके किनारे तीक्ष्णेश नामक शिव दर्शनमात्रसे पापनाश करने वाले हैं तथा धुन्धेश्वर नामवाले पापनाशक शिव हैं ॥ ८ ॥ शूलेश्वर नामक, कुम्भेश्वर, कुबेरेश्वर तथा सोमेश्वर नामसे भी प्रसिद्ध हैं ॥ ९ ॥ नीलकण्ठ, मंगलेश नामक शिव बडे मंगलके स्थान हैं, कपीश्वरदेवका स्थापन हनुमानजीने किया था ॥ १० ॥ नन्दिक देवजी करोडों हत्याओंको नाश करनेवाले हैं सब कामनाओंके सिद्ध करनेवाले तथा मोक्षके देनेवाले कहे हैं ॥ ११ ॥ जो पुरुष नन्दिकेश शिवको

आर्तेश्वरसुनामा हि वर्तते पापहारकः॥ परमेश्वर इति ख्यातः सिंहेश्वर इति स्मृतः॥६॥शर्मेशश्च तथा चात्र कुमारेश्वर एव च ॥ पुण्डरीकेश्वरः ख्यातो मण्डपेश्वर एव च॥७॥तीक्ष्णेशनामा तत्रासीद्दर्शनात्पापहारकः ॥धुधुरेश्वरनामासीत्पापहा नर्मदातटे॥८॥ शूलेश्वर इति ख्यातस्तथा कुंभेश्वरः स्मृतः ॥ कुबेरेश्वरनामापि तथा सोमेश्वरः स्मृतः॥ ९ ॥ नीलकण्ठो मंगलेशो मंगलायतनो महान्॥महाकपीश्वरो देवः स्थापितो हि हनूमता॥१०॥ततश्च नंदिको देवो हत्याकोटिनिवारकः॥ सर्वकामार्थदश्चैव मोक्षदो हि प्रकीर्तितः॥११॥नन्दीकेशं च यश्चैव पूजयेत्परया मुदा॥नित्यं तस्याखिला सिद्धिर्भविष्यति न संशयः॥१२॥तत्र तीरे च यः स्नाति रेवायां मुनिसत्तमाः॥तस्य कामाश्च सिध्यन्ति सर्वं पापं विनश्यति॥१३॥ऋषय ऊचुः॥एवं तस्य च माहात्म्यं कथं तत्र महामते ॥ नन्दिकेशस्य कृपया कथ्यतां च त्वयाधुना॥१४॥सूत उवाच॥सम्यक् पृष्टं भवद्भिश्च कथयामि यथाश्रुतम्॥ शौनकाद्याश्च मुनयः सर्वं हि शृणुतादरात्॥१५॥ पुरा युधिष्ठिरेणैवं पृष्टश्च ऋषिसत्तमः॥यथोवाच तथा वच्मि भवत्स्नेहानुसारतः॥१६॥

बडी प्रीतिसे पूजता है नित्य उसकी संपूर्ण सिद्धि होती है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ १२ ॥ हे श्रेष्ठ मुनियो ! उनके समीप रेवानदीमें जो स्नान करता है उसकी सब इच्छायें पूरी होती हैं और सम्पूर्ण पाप दूर होते हैं ॥ १३ ॥ ऋषि बोले, हे बडी बुद्धिवाले ! इस प्रकार अब आप कृपा करके नन्दिकेश शिवके माहात्म्यको कहिये कि किस प्रकार उनकी वहां स्थिति हुई ॥ १४ ॥ सूतजी बोले, आपने बहुत श्रेष्ठ प्रश्न किया हे शौनक आदि मुनियो ! जैसा मैंने सुना है आपसे कहता हूं आदरसे श्रवण करो ॥ १५ ॥ पहले युधिष्ठिरने मुनिश्रेष्ठ व्यासजीसे

यही पूंछा था जैसा उन्होंने कहा था सो आपके स्नेहसे मैं कहता हूं ॥ १६ ॥ रेवानदीसे पश्चिमकी ओर शोभायमान तथा चारों वर्णोंसे सेवित, कर्णिकी नामवाली नगरी वर्तमान है ॥ १७ ॥ वहां किसी उत्तके वंशमें उत्पन्न हुए ब्राह्मण श्रेष्ठ अपनी स्त्रीको दोनों पुत्रोंको सौंप कर काशीको गमन किया ॥ १८ ॥ और काशीमें ही वह ब्राह्मण मर गया फिर दोनों पुत्रोंने यह वृत्तान्त सुना और उसके श्राद्ध आदि सब कृत्य कर दिये ॥ १९ ॥ अपने पुत्रोंके हित करनेवाली उसकी स्त्रीने दोनों बालकोंका पालन लालन किया और कुछ धनको छोडकर उसने पुत्रोंको धन बाँट दिया ॥ २० ॥ कुछ अपना धन मरनेके हेतु बचाये रखा, थोडी दिनोंके पीछे वह ब्राह्मणकी स्त्री भी मरने लगी

रेवायाः पश्चिमे तीरे कार्णिकी नाम वै पुरी ॥ विराजते सुशोभाढ्या चतुर्वर्णसमाकुला॥१७॥ तत्र द्विजवरः कश्चिदुत्तस्य कुलसम्भवः॥काश्यां गतश्च पुत्राभ्यामर्पयित्वा स्वपत्निकाम्॥१८॥तत्रैव स मृतो विप्रः पुत्राभ्यां च श्रुतन्तदा ॥ तदीयं चैव तत्कृत्यं चक्राते पुत्रकावुभौ ॥ १९ ॥ पत्नी च पालयामास पुत्रौ पुत्रहितैषिणी॥पुत्रौ च वर्जयित्वा च विभक्तं वै धनं तया ॥ २० ॥ स्वीयं च रक्षितं किंचिद्धनं मरणहेतवे ॥ततश्च द्विजपत्नी हि कियत्कालं मृता च सा ॥२१॥ कदाचित्क्रियमाणा सा विविधं पुण्यमाचरत् ॥ न मृता दैवयोगेन द्विजपत्नी च सा द्विजाः ॥२२॥ यदा प्राणान्न मुमुचे माता दैवात्तयोश्च सा ॥ तद्दृष्ट्वा जननी कष्टं पुत्रका वूचतुस्तदा ॥२३॥ पुत्रावूचतुः ॥ किं न्यूनं विद्यते मातः कष्टं यद्विद्यते महत् ॥ब्रियतां तद्दतं प्रीत्या तदावां कर वावहे ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वोक्तं तया तत्र न्यूनं तु विद्यते बहु ॥ तदेव क्रियते चेद्वै सुखेन मरणं भवेत्॥ २५ ॥ ज्येष्ठ पुत्रश्च यस्तस्यास्ते नोक्तं कथ्यतान्त्वया ॥ करिष्यामि तदेतद्धि तया च कथितन्तदा ॥ २६ ॥

॥ २१ ॥ हे ब्राह्मणो ! अनेक प्रकारके पुण्य करनेपर भी उस ब्राह्मणीके दैव योगसे प्राण न निकल सके ॥ २२ ॥ जब उनकी माताने प्रारब्धवश प्राण न छोडे तब माताके कष्टको देख वे दोनों पुत्र बोले ॥ २३ ॥ पुत्र बोले, हे मातः ! क्या और कुछ शेष रहा है जो तुमको इस समय बडा कष्ट हो रहा है ? उस व्रतको हमें बताओ हम प्रीतिसे करेंगे ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, यह पुत्रोंका वचन सुन उसने कहा कि--थोडा बहुत व्रत शेष रहा है यदि वह करोगे तो सुखसे मरण होगा ॥ २५ ॥ उसका जो बडा पुत्र था उसने मातासे

कहा हे मातः ! जो तुम बताओगी वह मैं अवश्य करूंगा माताने कहा ॥ २६ ॥ ब्राह्मणकी स्त्री बोली, हे पुत्र ! प्रीतिसे मेरा वचन सुन, पहले काशीजीमें जानेकी इच्छा थी, परन्तु विना गये ही अब मरती हूं ॥ २७ ॥ हे पुत्र ! तू निरालसी हो मेरी अस्थियोंको गंगा जलमें सिराना, तब तेरा कल्याण होगा इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ २८ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार माताके कहनेपर वह माताकी भक्ति करनेवाला पुत्र शुभ व्रत कवनेवाली मरनेमें तत्पर हुई अपनी मातासे बोला ॥ २९ ॥ पुत्र बोला, हे मातः ! निस्सन्देह तुम सुखसे प्राणोंको छोडो मैं पहले तुम्हारा काम करूंगा, फिर अपना काम करूंगा ॥ ३० ॥ ऐसा कह हाथसे जल छोडकर जभी वह घरमें गया तभी उसकी

द्विजपत्न्युवाच॥शृणु पुत्र वचः प्रीत्या पुरासीन्मे मनः स्पृहा ॥ काश्यां गंतुं तथा नासीदिदानीं म्रियते पुनः॥२७॥ममास्थीनि त्वया पुत्र क्षेपणीयान्यतन्द्रितम् ॥ गंगाजले शुभं तेद्य भविष्यति न संशयः ॥२८॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ते च तया मात्रा स ज्येष्ठतनयोब्रवीत् ॥ मातरं मातृभक्तिस्तु सुव्रतां मरणोन्मुखीम् ॥२९॥ ॥ पुत्र उवाच ॥मातस्त्वया सुखेनैव प्राणास्त्याज्या न संशयः ॥ तव कार्यं पुरा कृत्वा पश्चात्कार्यं मदीयकम्॥३०॥इति हस्ते जलं दत्त्वा यावत्पुत्रो गृहं गतः॥ तावत्सा च मृता तत्र हरस्मरणतत्परा ॥३१॥ तस्याश्चैव तु यत्कृत्यं तत्सर्वं संविधाय सः॥मासिकं कर्म कृत्वा तु गमनाय प्रचक्रमे ॥ ३२ ॥ द्वयोः श्रेष्ठतमो यो वै सुवादो नाम विश्रुतः॥तदस्थीनि समादाय निस्सृतस्तीर्थकाम्यया॥३३॥संगृह्य सेवकं कंचित्तेनैव सहितस्तदा ॥ आश्वास्य भार्य्यापुत्राँश्च मातुः प्रियचिकीर्षया॥३४॥ श्राद्धदानादिकं भोज्यं कृत्वा विधिमनुत्तमम् ॥ मंगलस्मरणं कृत्वा निर्जगाम गृहाद्द्विजः॥३५॥ तद्दिने योजनं गत्वा विंशति ग्रामके शुभे ॥ उवासास्तं गते भानौ गृहे विप्रस्य कस्यचित् ॥३६॥

माता शिवका स्मरण करती हुई मर गई ॥ ३१ ॥ उसका जो कुछ कृत्य है सो सब करके तथा महीने भरका सब कृत्य समाप्त करके वह काशीमें जानेको उद्यत हुआ ॥ ३२ ॥ दोनोंमें श्रेष्ठ जो सुवाद नामसे प्रसिद्ध बडा पुत्र था, वह उसकी अस्थि लेकर तीर्थकी कामनासे ॥ ३३ ॥ सेवकको लेके अपनी स्त्री तथा पुत्रोंको धैर्य देकर, माताके हित करनेकी इच्छासे बाहर चला ॥ ३४ ॥ श्राद्ध, दान आदिक ब्राह्मण भोजन और उत्तम मंगलाचरणोंको विधि पूर्वक करके वह ब्राह्मण अपने घरसे चला ॥ ३५ ॥ उस दिन बीस योजन

चलकर,सूर्यअस्त होजानेपर शुभग्राममें किसी ब्राह्मणके घर निवास किया ॥ ३६ ॥ फिर उस ब्राह्मणने विधिपूर्वक संध्या आदि नित्यकर्म किया और वहां अद्भुत कर्मवाले शिवकी स्तुति की ॥ ३७ ॥ इस समय सेवकके सहित उस ब्राह्मणको दोपहर रात वहां रहते हुए बीत गई ॥ ३८ ॥ हे मुने ! इसी अवसरमें वहां एक आश्चर्य हुआ सो आप आदरसे सुनो मैं आपसे कहता हूं ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां च० को० रु० नन्दिकेश्वरमाहात्म्ये ब्राह्मणीमरणवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सूतजी बोले, उस आंगनमें वहां एक सुन्दर गाय बन्धी थी उस समय वह ब्राह्मण रातमें बाहर आया ॥ १ ॥ और गायको आंगनमें खडी हुई देख अपनी स्त्रीसे बोला हे मुनी

चक्रे सन्ध्यादि सत्कर्म स द्विजो विधिपूर्वकम् ॥ स्तवादि कृतवांस्तत्र शंभोरद्भुतकर्मणः ॥३७॥ सेवकेन तदा युक्तो ब्राह्मणःसंस्थि तस्तदा ॥ यामिनी च गता तत्र मुहूर्तद्वयसंमिता ॥ ३८ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्रैकमाश्चर्य्यमभूत्तदा ॥ शृणुतादरतस्तच्च मुनयो वो वदा म्यहम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नन्दिकेश्वरमाहात्म्ये ब्राह्मणीमरणवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ गौश्चैकाप्यभवत्तत्र ह्यंगणे बंधिता शुभा ॥ तदैव ब्राह्मणो रात्रावाजगाम बहिर्गतः ॥ १ ॥ स उवाच प्रियां स्वीयां दृष्ट्वा गामंगणे स्थिताम् ॥ अदुग्धां खेदनिर्विण्णो दोग्धुकामो मुनीश्वराः ॥ २ ॥ गौः प्रिये नैव दुग्धा ते सेत्युक्ता वत्समान यत् ॥ दोहनार्थं समाहूय स्त्रियं शीघ्रतरं तदा ॥३॥ वत्सं कीले स्वयं बद्धुं यत्नं चैवाकरोत्तदा ॥ ब्राह्मण स्स गृहस्वामी मुनयो दुग्ध लालसः ॥४॥ वत्सोपिकर्षमाणश्च पादे वै पादपीडनम् ॥ चकार ब्राह्मणश्चैव कष्टं प्राप्तश्च सुव्रताः ॥ ५ ॥ तेन पादप्रहारेण स द्विजः क्रोधमूर्छितः ॥ वत्सं च ताडयामास कूपैर्दृढतरं तदा ॥ ६ ॥

श्वरो ! उस समय वह गायके न दुहनेसे खेदयुक्त हुआ उसे दुहना चाहता था ॥ २ ॥ हे प्रिये ! तेरी गाय नहीं दुही ऐसा कहनेपर वह स्त्री बछडेको लाई तब उस ब्राह्मणने गाय दुहनेको शीघ्र अपनी स्त्रीको बुलाया ॥ ३ ॥ हे मुनीश्वरो ! वह घरका मालिक ब्राह्मण दूधकी लालसासे उस बछडेको खूँटेमें बांधनेका यत्न करने लगा ॥ ४ ॥ हे शुभ व्रतवाले ! उस कूदते हुए बछडेने लात मारके उसके पैरको पीडित किया तब वह ब्राह्मण कष्टको प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥ उसके चरणके प्रहारसे वह क्रोधसे व्याकुल हो रस्सीसे बडे वेगसे उस बछडेको ताडन करने

लगा ॥ ६ ॥ उस ब्राह्मणसे पीडित हुआ वह बछडा भी कुछ कालमें शान्त हुआ, गाय दुहली परन्तु क्रोधसे उसने बछडेको न छोडा ॥ ७ ॥ उस समय वह गाय दूध पिलानेको प्रीतिसे बडा रुदन करने लगी अपनी माताका डकराना सुन बछडा यह वचन कहने लगा ॥ ८ ॥ बछडा बोला, हे मातः ! तू क्यों रोरही है तुझे क्या दुःख उपस्थित हुआ है सो प्रीतिपूर्वक मुझसे कह, यह सुन गाय बोली ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! सुन मैं कुछ नहीं कह सकती उस दुष्टने तुझे ताडन किया इस कारण मुझे भी दुःख हुआ है ॥ १० ॥ सूतजी बोले, अपनी माताका वचन सुन उस बछडेने उसे समझाया और प्रारब्धके ऊपर सन्तोष करके अपनी मातासे बोला ॥ ११ ॥ क्या करें कहां

वत्सोपि पीडितस्तेन श्रांतश्चैवाभवत्तदा ॥ दुग्धा गौर्नोचितो वत्सो न क्रोधेन द्विजन्मना ॥ ७ ॥ गौर्दोग्धुं महत्प्रीत्या रोदनं चाकरोत्तदा ॥ दृष्ट्वा च रोदनं तस्या वत्सो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ८ ॥ वत्स उवाच ॥ कथं च रुद्यते मातः किन्ते दुःखमुपस्थितम् ॥ तन्निवेदय मे प्रीत्या तच्छ्रुत्वा गौरवोचत॥९॥श्रूयतां पुत्र मे दुःखं वक्तुं शक्नोम्यहं न हि॥ दुष्टेन ताडितस्त्वं च तेन दुःखं ममाप्यभूत् ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ स्वमातुर्वचनं श्रुत्वा स वत्सः प्रत्यबोधयत् ॥ प्रत्युवाच स्वजननीं प्रारब्धपरिनिष्ठितः॥११॥ किं कर्त्तव्यं क्व गंतव्यं कर्म बद्धा वयं यतः॥कृतं चैव यथा पूर्वं भुज्यते च तथाधुना॥१२॥ हसता क्रियते कर्म रुदता परिभुज्यते॥दुःखदाता न कोप्यस्ति सुखदाता न कश्चन ॥ १३ ॥ सुखदुःखे परो दत्त इत्येष कुमतिर्मता ॥ अहं चापि करोम्यत्र मिथ्याज्ञानं तदोच्यते ॥१४॥ स्वकर्मणा भवेद्दुखं सुखं तेनैवकर्मणा ॥तस्माच्च पूज्यते कर्म सर्वं कर्मणि संस्थितम् ॥१५॥ त्वं चैवाहं च जननी इमे जीवादयश्च ये ॥ ते सर्वे कर्मणा बद्धा न शोच्याः कर्हिचित्त्वया ॥ १६ ॥

जाय?कारण कि--हम कर्मोंसे बँधे हुए हैं जैसा पहले कर चुके हैं वैसा अब भोगते हैं ॥ १२ ॥ हँसकर कर्म किया जाता है और रोकर भोगा जाता है कोई किसीको दुःखका देनेवाला नहीं और न कोई सुखका देनेवाला है ॥ १३ ॥ सुख और दुःख अपने कर्मके अनुकूल दूसराही देता है ऐसी मेरी कुबुद्धि है और मैं भी यह मिथ्याज्ञान करता हूं जो सब कहा जाता है ॥ १४ ॥ अपने कर्मसे दुःख होता है तथा उसी कर्मसे सुख होता है इस कारण कर्महीं पूजा जाता है सब कुछ कर्मसेही स्थित है ॥१५॥ तू मेरी माता मैं तेरा पुत्र, ये जो जीवादि हैं

वे सब कर्मसे बंधे हैं इससे तुझे सोच नहीं करना चाहिये ॥ १६ ॥ सूतजी बोले, वह गाय इस प्रकार अपने पुत्रका ज्ञानसे युक्त वचन सुन पुत्र शोकसे व्याकुल दीनहुई यह वचन बोली ॥ १७ ॥ गौ बोली, हे वत्स ! मैं सब जानती हूं कि--सब प्रजा कर्मके अधीन हैं तोभी मायासे फँसी हुई मैं दुःखको प्राप्त होती हूं ॥ १८ ॥ और अत्यन्त रोदन करनेपरभी मेरे दुःखकी शान्ति नहीं हुई ऐसा माताका वचन सुन फिर बछडा उससे बोला ॥ १९ ॥ बछडा बोला, यदि तू ऐसा जानती है फिर क्यों रोती है कर्मकरके विना भोगे कुछ साधन नहीं, अतः अब दुःखको त्यागकर ॥२०॥ सूतजी बोले, ऐसा पुत्रका वचन सुन उसकी माता गाय अतिदुःखी हो गहरी साँस ले बछडेसे यह बोली ॥ २१ ॥ गौ बोली

सूत उवाच ॥ एवं श्रुत्वा स्वपुत्रस्य वचनं ज्ञानगर्भितम् ॥ पुत्रशोकान्विता दीना सा च गौरब्रवीदिदम् ॥ १७॥ गौरुवाच ॥ वत्स सर्वं विजानामि कर्माधीनाः प्रजा इति ॥ तथापि मायया ग्रस्ता दुःखं प्राप्नोम्यहं पुनः ॥ १८ ॥ रोदनं च कृतं भूरि दुःखशान्तिर्भवेन्न हि ॥ इत्येत द्वचनं श्रुत्वा प्रसूं वत्सोऽब्रवीदिदम् ॥१९॥ ॥ वत्स उवाच ॥ यद्येवं च विजानामि पुनश्च रुदनं कुतः ॥ कृत्वा च साध्यते किञ्चित्तस्माद्दुःखं त्यजाधुना ॥२०॥ ॥ सूत उवाच ॥ एवं पुत्रवचः श्रुत्वा तन्माता दुःखसंयुता ॥ निःश्वस्याति तदा धेनुर्वत्सं वचनमब्रवीत् ॥२१॥ गौरुवाच ॥ मम दुःखं तदा गच्छेद्यथा दुखं तथा विधम् ॥ भवेद्धि ब्राह्मणस्यापि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २२ ॥ प्रातश्चैव मया पुत्र शृंगाभ्यां हि हनिष्यते ॥ हतस्य जीवितं सद्यो यास्यत्यस्य न सशयः ॥२३॥ वत्स उवाच ॥ प्रथमं यत्कृतं कर्म तत्फलं भुज्यतेऽधुना ॥ अस्याश्च ब्रह्महत्याया मातः किं फलमाप्स्यसे ॥ २४ ॥ समाभ्यां पुण्यपापाभ्यां भवेज्जन्म च भारते ॥ तयोः क्षये च भोगेन मातर्मुक्तिरवाप्यते ॥ २५ ॥

मेरा दुःख तो उस समय जायगा जब वैसाही दुःख उस ब्राह्मणको होगा, यह मैं सत्य सत्य कहतीहूं ॥ २२ ॥ हे पुत्र ! प्रातःकाल मैं उसको सीगोंसे मारूंगी जिससे शीघ्रही विदीर्ण किया हुआ वह तत्काल प्राणोंसे छूट जायगा, इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २३ ॥ बछडा बोला, पहले जो कुछ कर्म किया है सो अब भोग रहेहैं हे मातः ! इस ब्रह्महत्याका फल क्या पाओगी ! ॥ २४ ॥ पुण्य तथा पापोंके समान होनेपर इस संसारमें जन्म होता है हे मातः ! और पाप पुण्य दोनोंके भोग नाश होनेपर मुक्ति प्राप्त होती है ॥ २५ ॥

किसी समय कर्मोंका नाश तथा कभी भोग होता है इस कारण तू ऐसा कर्म करनेमें उद्यत न हो ॥ २६ ॥ मैं तेरा पुत्र कहां ? और तू मेरी माता कहां ! मातापन तथा पुत्रत्वमें वृथा अभिमान है; अर्थात् न कोई किसीकी माता न कोई किसीका पुत्र है ऐसा विचार ॥ २७ ॥ कौन माता है ? कौन पिता कौन स्वामी है ? कौन स्त्री है ? कोई भी किसीका नहीं है यह सब अपने अपने किये कर्मोंको भोगते हैं ॥ २८ ॥ हे माता ! ऐसा जान तुझको दुःख यत्नसे त्यागना चाहिये और परलोकके सुखकी इच्छासे अच्छे आचरण करना चाहिये ॥ २९ ॥ गौ बोली हे पुत्र ! मैं यह जानती हूं परन्तु मुझे माया नहीं छोडती तेरे दुःख देनेके बदले उसे घोर दुःख दूंगी ॥ ३० ॥ तत्पश्चात् जहां ब्रह्महत्याका

कदापि कर्मणो नाशः कदा भोगः प्रजायते॥तस्माच्च पुनरेवं त्वं कर्म माकर्तुमुद्यता ॥ २६ ॥ अहं कुतस्ते पुत्रोद्य त्वं माता कुत एव च ॥ वृथाभिमानः पुत्रत्वे मातृत्वे च विचार्य्यताम्॥२७॥ क्व माता क्व पिताविद्धि क्व स्वामी क्व कलत्रकम् ॥ न कोऽपि कस्य चास्तीह सर्वेपि स्वकृतं भुजः॥२८॥एवं ज्ञात्वा त्वया मातर्दुःखं त्याज्यं सुयत्नतः ॥सुभगाचरणं कार्यं परलोकसुखेप्सया॥२९॥ गौरुवाच॥एवं जानाम्यहं पुत्र माया मां न जहात्यसौ॥त्वद्दुःखेन सुदुःखं मे तस्मै दास्ये तदेव हि॥३०॥पुनश्च ब्रह्महत्याया नाशो यत्र भवेदिह॥तत्स्थलं च मया दृष्टं हत्या मे हि गमिष्यति ॥३१॥सूत उवाच॥इत्येतद्वचनं श्रुत्वा स्वमातुर्गोद्विजोत्तमाः॥ मौनत्वं स्वीकृतं तत्र वत्सेनोक्तं न किञ्चन॥३२॥तयोस्तदद्भुतं वृत्तं श्रुत्वा पान्थो द्विजस्तदा ॥ हृदा विचार यामास विस्मितो हि मुनीश्वराः ॥३३॥ इदमत्यद्भुतं वृत्तं दृष्ट्वा प्रातर्मया खलु ॥ गंतव्यं पुनरेवातो गंतव्यं तत्स्थलं पुनः ॥ ३४ ॥

नाश होता है वहां जाऊंगी वह स्थान मैंने देखा है इससे मेरी ब्रह्महत्या नष्ट होगी ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! उस समय ऐसा अपनी माताका वचन सुन उस बछडेने मौन धारण किया और कुछ भी न कहा ॥ ३२ ॥ हे मुनीश्वरो ! उन दोनों माता पुत्रोंका वचन सुन कर वह यात्री ब्राह्मण विस्मित हो अपने हृदयमें सोचने लगा ॥ ३३ ॥ कि--मैं प्रातःकाल इस अद्भुत समाचारको देखकर जाऊंगा तथा ब्रह्म हत्या विनाशक स्थानको भी अवश्य जाऊंगा ॥ ३४ ॥

सूतजी बोले, हे द्विजो ! वह माताका भक्त ब्राह्मण ऐसा अपने हृदयमें विचार, सेवक सहित अतिविस्मित हो सोरहा ॥ ३५ ॥ प्रातःकाल होनेपर वह गृहका स्वामी उठा और उस पथिकको जगाने लगा और यह बोला ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण बोला, हे पथिक ! तुम क्यों सोरहे हो ? पूर्ण प्रातःकाल होगया अपनी यात्रा करो जहां तुम्हारी जानेकी इच्छा हो उस देशको जाओ ॥ ३७ ॥ उस पथिकने कहा हे ब्रह्मन् ! सुनो मेरे शरीरमें तथा मेरे सेवकके शरीरमें कुछ व्यथा (पीडा) है इससे कुछ काल यहां ठहरके थोडी देरमें जाऊंगा ॥ ३८ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार बहाना करके उस विस्मयदायक अद्भुत चरित्रके जाननेकी इच्छासे उस समय वह पुरुष सोरहा ॥ ३९ ॥

॥ सूत उवाच ॥ विचार्येति हृदा विप्रः स द्विजाः सेवकेन च ॥ सुष्वाप तत्र जननीभक्तः परमविस्मितः ॥३५॥ प्रातःकाले तदा जाते गृहस्वामी समुत्थितः॥ बोधयामास तं पान्थं वचनं चेदमब्रवीत् ॥३६॥ द्विज उवाच॥ स्वपिषि त्वं किमर्थं हि प्रातःकालो भवत्यलम्॥ स्वयात्रां कुरु तंदेशं गमनेच्छा च यत्र ह॥३७॥ तेनोक्तं श्रूयताम्ब्रह्मञ्च्छरीरे सेवकस्य मे ॥ वर्तते हि व्यथा स्थित्वा मुहूर्तं गम्यते ततः ॥३८॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं च मिषं कृत्वा सुष्वाप पुरुषस्तदा ॥ तद्वृत्तमखिलं ज्ञातुमद्भुतं विस्मयावहम् ॥३९॥ दोहनस्य तदा काले ब्राह्मणः स्वसुतं प्रति॥ उवाच गंतुकामश्चकार्यार्थं कुत्रचिच्च सः॥४०॥ पितोवाच॥ मया तु गम्यते पुत्र कार्यार्थं कुत्रचित्पुनः ॥ धेनुर्दोह्या त्वया वत्स सावधानादियं निजा॥४१॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा ब्राह्मणवरस्स जगाम च कुत्रचित् ॥ पुत्रः समुत्थितस्तत्र वत्सं च मुक्तवांस्तदा॥४२॥ माता च तस्य दोहार्थमाजगाम स्वयन्तदा॥ द्विजपुत्रस्तदा वत्सं खिन्नं कीलेन ताडितम् ॥४३॥ बंधनार्थं हि गोः पार्श्वमनयद्दुग्धलालसः ॥ पुनर्गौश्च तदा क्रुद्धा शृंगेनाताडयच्च तम्॥४४॥

तब गाय दुहनेके समय उस ब्राह्मणने कहीं कार्यके निमित्त जानेकी इच्छासे अपने पुत्रसे कहा ॥ ४० ॥ पिता बोला, हे पुत्र ! मैं तो कार्यवश अन्यत्र जाता हूं हे वत्स ! तू यह अपनी गाय सावधानीसे दुह लेना ॥ ४१ ॥ सूतजी बोले ऐसा कहके वह ब्राह्मणश्रेष्ठ कहींको चला गया और उस समय उसके पुत्रने उठकर गाय दुहनेको बछडा खोला ॥ ४२ ॥ उसकी माताभी स्वयं गाय दुहनेको आई तब उस ब्राह्मणके पुत्रने कीलसे खिन्न हुए उस बछडेको ताडन किया ॥ ४३ ॥ दूध दुहनेकी इच्छासे गायके समीप बांधनेको लाया तब क्रोधित हुई

गायने उस बालकको सींगोंसे ताडन किया ॥ ४४ ॥ वहभी मर्मस्थानमें वेधित हुआ मूर्छाको प्राप्त होकर गिरपडा त्योंही सब लोग आगये और कहने लगे कि गायने बालकको मार दिया ॥ ४५ ॥ हाय हाय ! करते हुए वे वहां गये जहां उसके पिता आदि स्थित थे जब तक कुछ यत्न करते तब तक वह बालक मर गया ॥ ४६ ॥ उस बालकके मरनेपर वहां बडा हाहाकार मचा उसकी माता दुःखी होकर बारम्बार रुदन करने लगी ॥ ४७ ॥ मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? कौन मेरे दुःखको दूर करेगा ? ऐसा कहकर उसने रोके उस गायको ताडन करके खोल दिया ॥ ४८ ॥ उस समय वह श्वेतवर्णवाली गाय शीघ्रही श्यामवर्णवाली होगई क्या आश्चर्य है

पपात मूर्च्छां संप्राप्य सोपि मर्मणि ताडितः॥लोकाश्च मिलितास्तत्र गवा बालो विहिंसितः॥४५॥जलंजलं वदन्तस्ते पित्राद्या यत्र संस्थिताः॥यत्नश्च क्रियते यावत्तावद्बालो मृतस्तदा ॥४६॥ मृते च बालके तत्र हाहाकारो महानभूत् ॥ तन्माता दुःखिता ह्यासीद्रुरोद च पुनः पुनः ॥४७॥ किं करोमि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहति॥रुदित्वेति तदा गां च ताडयित्वा व्यमोच यत् ॥४८॥श्वेतवर्णा तदा सा गौर्द्रुतं श्यामा व्यदृश्यत॥ अहो च दृश्यतां लोकाश्चुक्रुशुश्च परस्परम् ॥४९॥ ब्राह्मणश्च तदा पान्थो दृष्ट्वाश्चर्य्यं विनिर्गतः ॥ यत्र गौश्च गतस्तत्र तामनु ब्राह्मणो गतः॥५०॥ऊर्ध्वपुच्छं तदा कृत्वा शीघ्रं गौर्नर्मदां प्रति ॥ आगत्य नन्दिकस्यास्य समीपे नर्मदाजले ॥५१॥ संनिमज्य त्रिवारं तु श्वेतत्वं च गता हि सा ॥ यथागतं गता सा च ब्राह्मणो विस्मयं गतः ॥ ५२ ॥ अहो धन्यतमं तीर्थं ब्रह्महत्यानिवारणम् ॥ स्वयं ममज्ज तत्रासौ ब्राह्मणस्सेवकस्तथा ॥ ५३ ॥

ऐसा सब देखनेवाले मनुष्य परस्पर कहते थे ॥ ४९ ॥ उस समय वह पथिक ब्राह्मण यह दृश्य देखकर आश्चर्यको प्राप्त हुआ, जहां वह गाय जाने लगी तहांही उसके पीछे पीछे वह ब्राह्मण चलागया ॥ ५० ॥ उस समय वह गाय ऊपरको पूँछकरके शीघ्र नर्मदानदीके समीप गई नन्दिकेश्वर महादेवके निकट उस नर्मदाके जलमें ॥ ५१ ॥ तीनवार गोता मारा और स्नान करतेही श्यामवर्णसे श्वेतवर्णको प्राप्त हुई और जिस स्थानसे आई थी फिर वहांही चलीगई यह लीला देख ब्राह्मण आश्चर्यको प्राप्त हुआ ॥ ५२ ॥ अहो ! यह ब्रह्महत्याका

निवारण करनेवाला तीर्थ धन्य है, वह ब्राह्मण उसमें सेवककेसहित स्नान करनेलगा ॥ ५३ ॥ उस नर्मदा नदीमें स्नान करके वे दोनों मार्गमें उस नदीकी प्रशंसा करतेहुए चलेगये तब मार्गमें उन्हें कोई, भूषणधारे स्त्री मिली ॥५४॥ उसने इस ब्राह्मणसे कहा हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! हे पथिक ! विस्मयसे युक्तहुए तुम कहां जाते हो सो सब कपटको त्यागकर मेरे आगे सत्य कहो ॥ ५५ ॥ सूतजी बोले, उस समय ऐसा वचन सुन ब्राह्मण ने सब ठीक ठीक कह सुनाया, फिर उस ब्राह्मणसे वह स्त्री बोली कि--तुम यहां स्थित हो ॥ ५६ ॥ तब उसका वचन सुनकर वह स्थित रहा और नम्रस्वभाववाले ब्राह्मणने स्त्रीसे कुछ कथन करनेको कहा ॥५७॥ तब वह स्त्री कहने लगी कि, जो जल स्थल तुमने देखा है वहीं माताकी

निमज्ज्य हि गतौ तौ च प्रशंसन्तौ नदीं च ताम्॥मार्गे च मिलिता काचित्सुन्दरी भूषणान्विता ॥५४॥ तयोक्तं तं च भोः पांथ कुतो यासि सुविस्मितः ॥ सत्यं ब्रूहि च्छलं त्यक्त्वा विप्रवर्य ममाग्रतः॥५५॥सूत उवाच॥एवं वचस्तदा श्रुत्वा द्विजेनोक्तं यथातथम् ॥ पुनश्चायं द्विजस्तत्र स्त्रियोक्तः स्थीयतां त्वया ॥५६॥ तयोक्तं च समाकर्ण्य स्थितस्स ब्राह्मणस्ततः॥ प्रत्युवाच विनीतात्मा कथ्यते किं वदेति च ॥५७॥ सा चाह पुनरेवात्र त्वया दृष्टं स्थलं च यत्॥तत्राधुनाक्षिपास्थीनि मातुः किं गम्यतेऽन्यतः ॥५८॥ तव माता पान्थवर्य्य साक्षाद्दिव्यमयं वरम् ॥ देहं धृत्वा द्रुतं साक्षाच्छंभोर्यास्यति सद्गतिम् ॥५९॥ वैशाखे चैव संप्राप्ते सप्तम्याञ्च दिने शुभे॥सिते पक्षे सदा गंगा ह्यायाति द्विजसत्तम॥६०॥अद्यैव सप्तमी या सा गंगारूपास्ति तत्र वै॥इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी सा गंगा मुनिसत्तमाः ॥६१॥निवृत्तश्च द्विजः सोपि मात्रस्थ्यर्द्धं स्ववस्त्रतः॥ क्षिपेद्यावत्तत्र तीर्थे तावच्चित्रमभूत्तदा ॥६२॥

अस्थियें सिराओ और कहां जाते हो ॥ ५८ ॥ हे श्रेष्ठपथिक ! ऐसा करनेसे तेरी माता साक्षात् दिव्यमय शरीर धारण करके शीघ्रही शिव लोकमें मुक्तिको प्राप्त होगी ॥ ५९ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! वैशाखमासमें शुक्लपक्षकी सप्तमीके दिन वहां निरन्तर गंगाजी आती हैं ॥ ६० ॥ सो आज सप्तमी है वहां गंगा विद्यमान है हे मुनीश्वर ! इस प्रकार कह वह गंगारूपवाली देवी स्त्री अन्तर्धान होगई ॥ ६१ ॥ और उस ब्राह्मणने लौट कर माताकी अस्थियें जभी वस्त्र खोलकर वहां सिराई तभी यह विचित्र दृश्य हुआ कि ॥ ६२ ॥

उसकी माता दिव्यशरीरधारे यह कहती हुई दीखी कि हे पुत्र तू धन्य है कृतकृत्य है तूने अपने कुलको पवित्र किया ॥ ६३ ॥ तेरा धनधान्य तथा आयु वृद्धिको प्राप्तहो, ऐसी वारम्बार अपने पुत्रको अशीश देकर उसकी माता स्वर्गको प्राप्त हुई ॥ ६४ ॥ वहां अधिक समयतक बडे सुखको भोगकर शिवजीके प्रसादसे श्रेष्ठगतिको प्राप्त हुई ॥ ६५ ॥ उसका पुत्र ब्राह्मण माताकी अस्थियें सिराकर प्रसन्नचित्त तथा शुद्ध आत्मा होकर अपने घरको चला गया ॥ ६६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० कोटि रु० नन्दिकेश्वरलिंगमाहात्म्यवर्णने ब्राह्मणी

दिव्यदेहत्वमापन्ना स्वमाता च व्यदृश्यत ॥ धन्योसि कृतकृत्योसि पवित्रं च कुलं त्वया ॥ ६३ ॥ धनं धान्यं तथा चायु र्वंशो वै वर्द्धतां तव ॥ इत्याशिषं मुहुर्दत्त्वा स्वपुत्राय दिवं गता ॥ ६४ ॥ तत्र भुक्त्वा सुखं भूरि चिरकालं महोत्तमम् ॥ शंकर स्य प्रसादेन गता सा ह्युत्तमां गतिम् ॥६५॥ ब्राह्मणश्च सुतस्तस्याः क्षित्वास्थीनि पुनस्ततः ॥ प्रसन्नमानसोऽभूत्स शुद्धात्मा स्वगृहं गतः ॥ ६६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नंदिकेश्वरलिंगमाहात्म्यवर्णने ब्राह्मणीस्वर्गति वर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथं गंगा समायाता वैशाखे सप्तमीदिने ॥ नर्मदायां विशेषेण सूतैतद्वर्णय प्रभो ॥ १ ॥ ईश्वरश्च कथं जातो नन्दिकेशो हि नामतः ॥ वृत्तं तदपि सुप्रीत्या कथय त्वं महामते ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ साधु पृष्टमृषिश्रेष्ठा नन्दिकेशाश्रितं वचः ॥ तदहं कथयाम्यद्य श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥ ३ ॥ ब्राह्मणी ऋषिका नाम्ना कस्यचिच्च द्विजन्मनः ॥ सुताविवाहिता कस्मैचिद्विजाय विधानतः ॥ ४ ॥

स्वर्गतिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ऋषि बोले, हे प्रभो ! हे सूतजी ! वैशाखशुक्ल सप्तमीको नर्मदा नदीपर गंगाजी किसप्रकार आती हैं सो वर्णन करो ॥ १ ॥ हे बडीबुद्धिवाले ! ईश्वर, नन्दिकेश नामसे किस प्रकार प्रसिद्ध हुए यह समाचारभी प्रीतिसे कहें ॥ २ ॥ सूतजी बोले, हे श्रेष्ठ ऋषियो ! आपने नन्दिकेशसम्बन्धी अच्छा प्रश्न किया सो मैं अब उसे वर्णन करता हूं जो सुननेमात्रसे पुण्यको बढानेवाला है ॥ ३ ॥ ऋषिका नामवाली ब्राह्मणी किस ब्राह्मणकी कन्या, शास्त्रके विधानसहित एक ब्राह्मणको विवाही

गई ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ पूर्व कर्मके प्रभावसे वह पतिव्रता भी ब्राह्मणकी स्त्री, बाल्य अवस्थामें विधवा होगई ॥ ५ ॥ तब वह विप्रकी पत्नी, ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर, पार्थिव पूजनके सहित बडा कठिन तप करने लगी ॥ ६ ॥ उसी अवसरमें बडा मायावी मूढ़ नामक, एक बली दुष्ट दैत्य, कामके बाणसे पीडित हुआ उस स्थानमें गया ॥ ७ ॥ और तप करती हुई अत्यन्त कामिनी तथा सुन्दर रूपवाली उस स्त्रीको देखकर उसने अनेक प्रकारके लोभ दिखाय उसके साथ भोग करनेकी प्रार्थना की ॥ ८ ॥ हे मुनीश्वरो ! तब शुभ व्रत करनेवाली, शिवजीके ध्यानमें तत्पर हुई उसने कामकी दृष्टिसे उसकी ओर नहीं देखा ॥ ९ ॥ तप करनेमें लगी हुई उस ब्राह्मणीने उस दैत्यका कुछ

पूर्वकर्मप्रभावेन पत्नी सा हि द्विजन्मनः ॥ सुव्रतापि च विप्रेन्द्रा बालवैधव्यमा गता ॥ ५ ॥ अथ सा द्विजपत्नी हि ब्रह्म चर्य्यव्रतान्विता ॥ पार्थिवार्चनपूर्वं हि तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ६ ॥ तस्मिन्नवसरे दुष्टो मूढनामाऽसुरो बली ॥ ययौ तत्र महामा यी कामबाणेन ताडितः ॥ ७ ॥ तपन्तीं तां समालोक्य सुन्दरीमतिकामिनीम् ॥ तया भोगं ययाचेस नानालोभं प्रदर्शयन् ॥ ८ ॥ अथ सा सुव्रता नारी शिवध्यानपरायणा ॥ तस्मिन्दृष्टिं दधौ नैव कामदृष्ट्या मुनीश्वराः ॥ ९ ॥ न मानितवती तं च ब्राह्मणी सा तपोरता ॥ अतीव हि तपोनिष्ठासीच्छिवध्यानमाश्रिता ॥ १० ॥ अथ मूढः स दैत्येन्द्रः तया तन्व्या तिरस्कृतः ॥ चुक्रोध विकटं तस्यै पश्चाद्रूपमदर्शयत् ॥ ११ ॥ अथ प्रोवाच दुष्टात्मा दुर्वचो भयकारकम् ॥ त्रासयामास बहुशस्तां च पत्नीं द्विजन्मनः ॥ १२ ॥ तदा सा भयसंत्रस्ता बहुवारं शिवेति च ॥ बभाषे स्नेहतस्तन्वी द्विजपत्नी शिवाश्रया ॥ १३ ॥ विह्वलातीव सा नारी शिवनामप्रभाषिणी ॥ जगाम शरण शम्भोः स्वधर्मावनहेतवे ॥ १४ ॥

मान नहीं किया और शिवके ध्यानमें मग्न हो अत्यन्त तप करने लगी ॥ १० ॥ तब उस स्त्रीसे तिरस्कार किया हुआ, मूर्ख वह दैत्यपति उसके ऊपर बडा क्रोध करने लगा और पीछे अपना रूप दिखाया ॥ ११ ॥ और वह दुष्ट आत्मा राक्षस उस ब्राह्मणकी पत्नीको भय (त्राह) दिखाता हुआ, भयंकर दुर्वचन कहने लगा ॥ १२ ॥ उस समय उस कृशांगी ब्राह्मणकी स्त्रीने भयभीत हो, प्रीतिसे अनेकबार शिवके आश्रय हो, शिव शिव उच्चारण किया ॥१३॥ और अत्यन्त भयसे व्याकुल हो शिवनाम जपते हुए, अपने धर्मकी रक्षा करनेके कारण शिवजीकी

शरणमें गमन किया ॥ १४ ॥ शरणागतकी रक्षाके अर्थ श्रेष्ठ व्रत धारण करनेवाले शंकर उस स्त्रीके सुखके निमित्त उसी समय प्रगट हुए ॥ १५ ॥ और भक्तवत्सल शिवजीने कामसे व्याकुल हुए उस मूढ नामक दैत्य पतिको उसी समय भस्म कर दिया ॥ १६ ॥ उस समय भक्तोंके रक्षा करनेमें चतुर बुद्धिवाले शिवजीने उसको कृपा दृष्टिसे देखकर, "वर मांग" ऐसा कहा ॥ १७ ॥ वह पतिव्रता ब्राह्मणकी स्त्री महादेवके वचन सुन आनन्दके उत्पादक, शिवके सुन्दर रूपको देखने लगी ॥ १८ ॥ कन्धे झुकाये हुए, शुभ आशयवाली उस स्त्रीने सुख दायक परमेश्वर शिवको प्रणाम कर हाथ जोड उनकी स्तुति की ॥ १९ ॥ ऋषिका बोली, हे देवदेव ! हे शरणागत वत्सल ! आप दीनोंके

शरणागतरक्षार्थं कर्तुं सद्वृत्तमाहितम् ॥ आनन्दार्थं हि तस्यास्तु शिव आविर्बभूव ह ॥१५॥ अथ तं मूढनामानं दैत्येन्द्रं काम विह्वलम् ॥ चकार भस्मसात्सद्यः शंकरो भक्तवत्सलः॥१६॥ततश्च परमेशानो कृपादृष्ट्या विलोक्य ताम् ॥वरं ब्रूहीति चोवाच भक्तरक्षणदक्षधीः ॥ १७ ॥ श्रुत्वा महेशवचनं सा साध्वी द्विजकामिनी॥ ददर्श शांकरं रूपमानन्दजनकं शुभम् ॥१८॥ ततः प्रणम्य तं शंभुं परमेशं सुखावहम् ॥ तुष्टाव साञ्जलिः साध्वी नतस्कन्धा शुभाशया॥१९॥ऋषिकोवाच ॥ देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ॥ दीनबन्धुस्त्वमीशानो भक्तरक्षाकरः सदा॥२०॥ त्वया मे रक्षितो धर्मो मूढनाम्नोऽसुरादिह॥यदयं निहतो दुष्टो जगद्रक्षा कृता त्वया ॥२१॥ स्वपादयोःपरां भक्तिं देहि मे ह्यनपायिनीम् ॥ अयमेव वरो नाथ किमन्यदधिकं ह्यतः ॥ २२ ॥ अन्यदाकर्णय विभो प्रार्थनां मे महेश्वर ॥ लोकानामुपकारार्थमिह त्वं संस्थितो भव ॥ २३ ॥ सूत उवाच ॥ इति स्तुत्वा महादेव मृषिका सा शुभव्रता ॥ तूष्णीमासाथ गिरिशः प्रोवाच करुणाकरः ॥ २४ ॥

बन्धु तथा नित्य भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हैं ॥ २० ॥ आपने मूढ नामक दैत्यसे मेरा धर्म बचाया तथा संसारकी रक्षा करनेवाले आपने इस दुष्टको मारा ॥ २१ ॥ हे नाथ ! अपने चरणोंमें मेरी अविनाशिनी भक्ति प्रदान करो यही वरदान चाहती हूं इससे अधिक और क्या कहूं ? ॥ २२ ॥ हे विभो ! हे महेश्वर ! मेरी इस प्रार्थनाको भी सुनो कि आप लोकोंके उपकारके अर्थ यहां विराजमान हूजिये ॥ २३ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार महादेवकी स्तुति करके वह शुभ व्रतवाली ऋषिका चुप हो रही तब दयालु शिवजी

कहने लगे ॥ २४ ॥ शिवजी बोले, हे ऋषिके ! सुन्दर चरित्रवाली तू विशेषकर मेरी भक्ता है, जो जो वरदान तूने मांगे सो सो मैंने सब तुझे दिये ॥ २५ ॥ इसी अवसरमें शिवजीको प्रगट हुआ जानकर विष्णु ब्रह्मा आदि सब देवता प्रसन्नतापूर्वक वहां आये ॥२६॥ उन सबोंने प्रीतिसे शिवको प्रणाम करके पूजन किया तथा नम्र हुए सुन्दर चित्तवाले देवताओंने हाथ जोडकर स्तुति की ॥ २७ ॥ उसी समयपर मधुरस्वरवाली साध्वी गंगाजी उसकी प्रशंसा करती हुई प्रसन्न मनसे उसके समीप आय उस ऋषिकासे बोली ॥ २८ ॥ गंगाजी बोली, वैशाखके महीनेमें एक दिन तुम मेरे समीप स्थिति करनेका वचन दो, अर्थात् वैशाखमें तुमको एक दिन मेरे समीप स्थिति करनी चाहिये ॥ २९ ॥ सूतजी बोले,

गिरिश उवाच ॥ ऋषिके सुचरित्रा त्वं मम भक्ता विशेषतः ॥ दत्ता वराश्च ते सर्वे तुभ्यं येये हि याचिताः ॥२५॥एतस्मिन्नंतरे तत्र हरिब्रह्मादयः सुराः॥शिवाविर्भावमाज्ञाय ययुर्हर्षसमन्विताः॥ २६॥शिवं प्रणम्य सुप्रीत्या समानर्चुश्च तेऽखिलाः॥तुष्टुवुर्नतका विप्राः करौ बद्ध्वा सुचेतसः॥२७॥एतस्मिन्समये गंगा साध्वी तां स्वर्धुनी जगौ॥ऋषिकां सुप्रसन्नात्मा प्रशंसन्तो च तीद्विधिम् ॥२८॥ गंगोवाच॥ममार्थे चैव वैशाखे मासि देयं त्वया वचः ॥ स्थित्यर्थं दिनमेकं मे सामीप्यं कार्य्यमेव हि ॥२९॥ सूत उवाच॥गंगावचनमाकर्ण्य सा साध्वी प्राह सुव्रता॥तथास्त्विति वचःप्रीत्या लोकानां हितहेतवे ॥३०॥ आनन्दार्थं शिवस्तस्याः सुप्रसन्नश्च पार्थिवे॥तस्मिँल्लिंगे लयं यातः पूर्णांशेन तया हरः॥३१॥देवः सर्वे सुप्रसन्नाः प्रशंसंति शिवं च ताम्॥स्वंस्वं धाम ययुर्विष्णुब्रह्माद्या अपि स्वर्णदी ॥३२॥तद्दिनात्पावनं तीर्थमासीदीदृशमुत्तमम्॥नन्दिकेशः शिवः ख्यातः सर्वपापविनाशनः॥३३॥

गंगाजीका वचन सुनकर वह श्रेष्ठव्रत करनेवाली साध्वी लोकोंके हितके कारण बहुत अच्छा ऐसाही होगा, यह वचन बोली ॥ ३० ॥ उसके आनन्दके अर्थ अति प्रसन्न हुए शिवजी उस पार्थिवलिंगमें पूर्ण अंशसे लय होगये ॥ ३१ ॥ अति प्रसन्न हुए उन शिवजीको तथा उस साध्वीकी प्रशंसा करते हुए ब्रह्माआदि सब देवता और गंगाजी अपने २ स्थानको चले गए ॥३२॥ उस दिनसे लेकर इस प्रकार वह उत्तम पवित्र तीर्थ हो गया और सम्पूर्ण पापोंके नाश करनेवाले नन्दिकेश नामक शिवजी प्रसिद्ध हुए ॥ ३३ ॥

हे द्विजो ! गंगाजीभी जो मनुष्योंके पाप निवारण करती हैं उन अपने पापोंको धोनेके निमित्त प्रतिवर्ष अपने शुभकी इच्छासे यह वैशाख सप्तमीको आती है ॥३४॥ मनुष्य यहां स्नानकर और भलीप्रकार नन्दिकेश शिवको पूजकर ब्रह्महत्याआदि समस्त पापोंसे छूटजाता है ॥३५॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० कोटि रु० नन्दिकेश्वरशिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! पश्चिमदिशाकी भूमिमें जो जो लिंग प्रसिद्ध हैं उन सम्पूर्ण शिवके पार्थिवलिंगोंको श्रेष्ठ भक्तिसे सुनो ॥ १ ॥ कपिला नामवाली नगरीमें काल रामेश्वर नामक परम दिव्य शिवलिंग है जिसका दर्शन करनेसे पाप दूर होता है ॥२॥ पश्चिमसागरकी ओर महासिद्धेश्वर पार्थिवलिंग प्रसिद्ध

गंगापि प्रतिवर्षं तद्दिने याति शुभेच्छया ॥ क्षालनार्थंस्वपापस्य यद्गृहीतं नृणां द्विजाः ॥ ३४ ॥ तत्र स्नातो नरः सम्यङ् नंदि केशं समर्च्य च ॥ ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते ह्यखिलैरपि ॥३५॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नन्दिके श्वरशिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥सूत उवाच ॥द्विजाः शृणुत सद्भक्त्या शिवलिंगानि तानि च ॥ पश्चिमायां दिशायां वै यानि ख्यातानि भूतले ॥ १ ॥ कपिलायां नगर्यां तु कालरामे श्वराभिधे ॥ शिवलिंगे महादिव्ये दर्शनात्पापहारके ॥ २ ॥ पश्चिमे सागरे चैव महासिद्धेश्वरः स्मृतः ॥ धर्मार्थकामदश्चैव तथा मोक्षप्रदोऽपि हि ॥ ३ ॥ पश्चिमाम्बुधितीरस्थं गो कर्ण क्षेत्रमुत्तमम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापघ्नं सर्व्वकामफलप्रदम् ॥ ४ ॥ गोकर्णे शिवलिंगानिविद्यन्ते कोटिकोटिशः ॥ असंख्यातानि तीर्थानि तिष्ठन्ति च पदेपदे ॥ ५ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन गोकर्णस्थानि सर्वशः ॥ शिवप्रत्यक्ष लिंगानि तीर्थान्यम्भांसि सर्वशः ॥ ६ ॥ गोकर्णे शिवलिंगानांतीर्थानामपि सर्वशः ॥ वर्ण्यते महिमा तात पुराणेषुमहर्षिभिः ॥ ७ ॥

है यह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षका देनेवाला है ॥ ३ ॥ पश्चिमके समुद्रके तीर गोकर्ण नामक उत्तम क्षेत्र है जो ब्रह्महत्या आदि पापोंका नाश करनेवाला है तथा सब कामनाओंका सिद्ध करनेवाला है ॥४॥ गोकर्णमें कोटियों पार्थिवलिंग हैं तथा पदपदमें असंख्य तीर्थ हैं ॥ ५ ॥ बहुत कहनेसे क्या है ? शिवके प्रत्यक्ष हुए सब ज्योतिर्लिंग तथा तीर्थरूप जल सब गोकर्णनाथमें स्थित हैं ॥ ६ ॥ हे तात ! गोकर्णमें सब तीर्थोंकी तथा पार्थिवलिंगोंकी महिमा महर्षियोंने पुराणोंमें वर्णन की है ॥ ७ ॥

वह साक्षात् लिंग सत्ययुगमें श्वेतवर्ण, त्रेतामें अतिरक्तवर्ण, द्वापरमें पीतवर्ण, तथा कलियुगमें श्यामवर्ण होगा ॥ ८ ॥ सात रसातल गुहाओंमें आक्रमण करनेवाले बडे बली गोकर्णजी घोर कलियुगके होनेपर कोमलताको प्राप्त होंगे ॥ ९ ॥ गोकर्णनाथमें उन महापराक्रमी लिंगरूप शिवको पूजकर बडे २ पापकरनेवालेभी साक्षात् शिवके पदको प्राप्त होंगे ॥ १० ॥ हे मुनियो ! गोकर्णमें जाकर पवित्र नक्षत्र तथा दिनमें जो मनुष्य भक्तिपूर्वक शिवकी पूजा करतेहैं वे शिवरूपही होतेहैं इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ११ ॥ अथवा जबकभी जो मनुष्य गोकर्णमें जाकर शिव लिंगको पूजता है, वह ब्रह्मके पदको प्राप्त होता है ॥१२॥ वहांपर शिवजी ब्रह्मा विष्णुआदि देवताओंके हित करनेकी इच्छासे महाबल नामसे

कृते युगे स हि श्वेतस्त्रेतायां सोतिलोहितः ॥ द्वापरे पीतवर्णश्च कलौ श्यामो भविष्यति ॥ ८ ॥ आक्रान्तसप्तपातालकुहरोपि महाबलः ॥ प्राप्ते कलियुगे घोरे मृदुतामुपयास्यति ॥ ९ ॥ महापातकिनश्चात्र समभ्यर्च्य महाबलम् ॥ शिवलिंगं च गोकर्णे प्रयाताश्शांकरम्पदम् ॥१०॥ गोकर्णे तत्र मुनयो गत्वा पुण्यर्क्षवासरे ॥ येऽर्चयन्ति च तं भक्त्या ते रुद्राः स्युर्न संशय ॥११॥ यदा कदाचिद्गोकर्णे यो वा को वापि मानवः ॥पूजयेच्छिवलिंगं तत्स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम्॥१२॥ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानां शंकरो हित काम्यया ॥ महाबलाभिधानेन देवः संनिहितस्सदा॥१३॥घोरेण तपसा लब्धं रावणाख्येन रक्षसा॥तल्लिंगं स्थापयामास गोकर्ण गणनायकः॥१४॥विष्णुर्ब्रह्मा महेन्द्रश्च विश्वेदेवो मरुद्गणाः॥आदित्या वसवो दस्रौ शशांकश्च सतारकः॥१५॥एते विमानगतयो देवाश्च सह पार्षदैः॥पूर्वद्वारं निषेवन्ते तस्य वै प्रीतिकारणात्॥१६॥यमो मृत्युः स्वयं साक्षाच्चित्रगुप्तश्च पावकः॥पितृभिः सह रुद्रैश्च दक्षिणद्वारमाश्रितः ॥१७॥ वरुणः सरितां नाथो गंगादिसरितां गणैः॥महाबलं च सेवन्ते पश्चिमद्वारमाश्रिताः॥१८॥

प्रसिद्ध हुए सदा निवास करते हैं॥१३॥ रावण राक्षसने घोरतपसे प्राप्तकर गोकर्णमें उनका लिङ्ग गणनायकरूपसे स्थापित किया है ॥ १४ ॥ विष्णु, ब्रह्मा, महेन्द्र, विश्वेदेव तथा मरुद्गण, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार तथा तारागणसहित चन्द्रमा ॥१५॥ यह विमानसे आये हुए पार्षदों सहित देवता उनकी प्रीतिके कारण पूर्वद्वारको सेवन करते हैं ॥ १६ ॥ यम, मृत्यु, चित्रगुप्त, तथा अग्नि यह देवता साक्षात् पितरों और रुद्रों सहित दक्षिणके द्वारपर निवास करते हैं ॥१७॥ नदियोंके स्वामी वरुणदेवता गंगाआदि नदियोंके सहित पश्चिमके द्वारको आश्रयकर महाबल

शिवका सेवन करते हैं ॥ १८ ॥ कुबेर, तथा वायु, देवेशी भद्रकालिकाजी, चण्डिका आदि माताओंके सहित उत्तर द्वारको आश्रय करके उन शिवका सेवन करते हैं ॥ १९ ॥ सम्पूर्ण देवता, गंधर्व, पितर, सिद्ध चारणों सहित और विद्याधर, किंपुरुष, किन्नर, गुह्यक खग आदि ॥ २० ॥ अनेक पिशाच तथा वेताल महाबली दितिकेपुत्र (दैत्य) तथा नाग शेष आदि संपूर्ण सिद्ध तथा समस्त मुनिगण ॥ २१ ॥ उन महा बल नामवाले शिवको सदा प्रणाम करतेहैं और अभिलषित मनोरथोंको पाते हैं तथा सुखपूर्वक रमण करते हैं॥ २२ ॥ अनेक पुरुषोंने सुन्दर तप कियाहै तथा उन सर्वव्यापी शिवको पूजकर इसलोकमें तथा परलोकमें सुखदेनेवाली परम सिद्धिको प्राप्त किया है ॥ २३ ॥ हे द्विजो !

तथा वायुः कुबेरश्च देवेशी भद्रकालिका ॥ मातृभिश्चण्डिकाद्याभिरुत्तरद्वारमाश्रिताः ॥१९॥ सर्वे देवास्सगन्धर्वाः पितरः सिद्धचारणाः ॥ विद्याधराः किंपुरुषाः किन्नरा गुह्यकाः खगाः ॥२०॥ नानापिशाचा वेताला दैतेयाश्च महाबलाः ॥ नागाश्शेषादयस्सर्वे सिद्धाश्च मुनयोऽखिलाः ॥ २१ ॥ प्रणुवन्ति च तं देवं प्रणमन्ति महाबलम् ॥ लभन्त ईप्सितान्कामान्रमन्ते च यथासुखम् ॥२२॥बहुभिस्तत्र सुतपस्तप्तं सम्पूज्य तं विभुम् ॥ लब्धा हि परमा सिद्धिरिहामुत्रापि सौख्यदा ॥२३॥ गोकर्णे शिवलिंगं तु मोक्षद्वार उदाहृतः ॥ महाबलाभिधानोऽसौ पूजितः संस्तुतो द्विजाः ॥२४॥ माघासितचतुर्दश्यां महाबलसमर्चनम् ॥ विमुक्तिदं विशेषेण सर्वेषां पापिनामपि ॥२५॥ अस्यां शिवतिथौ सर्वे महोत्सवदिदृक्षवः ॥ आयांति सर्वदेशेभ्यश्चातुर्वर्ण्यमहाजनाः ॥ २६ ॥ स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च चतुराश्रमवासिनः ॥ दृष्ट्वा तत्रेत्य देवेशं लेभिरे कृतकृत्यताम् ॥ २७ ॥

गोकर्णनाथमें शिवलिंगको मोक्षका द्वार कहा है, उन महाबल नामक शिवकी पूजा तथा स्तुति होती है ॥ २४ ॥ माघमासकी कृष्णा चतुर्दशीको महाबलीकी पूजा करनेसे समस्त पापियोंकोभी विशेषकर मुक्ति प्राप्त होती है ॥ २५ ॥ इस शिवतिथि (चतुर्दशी) को महोत्सवके देखनेकी इच्छासे अनेक देशोंसे चारों वर्णोंके मनुष्य यहां आते हैं ॥ २६ ॥ चारों आश्रमवाले, स्त्रियां, बालक, वृद्ध यहां आकर देवेश महाबल नामक शिवका दर्शनकर सफलताको प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥

उन शिवजीके पार्थिव लिंगको पूज एक चांडाली महाबलके प्रतापसे उसी समय शिव लोकको प्राप्त हुई थी ॥ २८ ॥ इति श्रीशिवमहा पुराण भाषाटीकायां च० कोटि रु० महाबलमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! हे महाभाग ! हे विभो ! आप धन्य हैं वह चांडाली कौन थी आप उसकी कथाको कहो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, हे द्विजो ! उस परम अद्भुत शिवकी महिमावाली सुनने वालोंको भक्ति बढानेवाली कथाको सद्भक्तिसे श्रवण करो ॥ २ ॥ वह चांडाली पहले जन्ममें सब लक्ष्णोंसे शोभित चन्द्रमाके समान मुख वाली सौमिनी नामवाली ब्राह्मणकी कन्या थी ॥ ३ ॥ हे द्विजो तब युवा होनेपर उस सौमिनी कन्याका उसके पिताने किसी ब्राह्मणके पुत्र

महाबलप्रभावात्तु तच्च लिंगं शिवस्य तु ॥ सम्पूज्यैकाथ चाण्डाली शिवलोकं गता द्रुतम् ॥२८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तुच थ्यौ कोटिरुद्रसंहितायां महाबलमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूतसूत महाभाग धन्यस्त्वं शैवस त्तमः ॥ चाण्डाली का समाख्याता तत्कथां कथय प्रभो ॥१॥ सूत उवाच ॥ द्विजाः शृणुत सद्भक्त्या तां कथा परमाद्भुताम् ॥ शिवप्रभावसमिश्रां शृण्वतां भक्तिवर्द्धिनीम् ॥ २ ॥ चांडाली सा पूर्वभरेऽभवद्ब्राह्मणकन्यका ॥ सौमिनी नाम चन्द्रास्या सर्वलक्ष णसंयुता ॥३॥अथ सा समये कन्या युवतिः सौमिनी द्विजाः ॥ पित्रा दत्ता च कस्मैचिद्विधिना द्विजसूनवे ॥ ४ ॥ सा भर्तारम नुप्राप्य किंचित्कालं शुभ व्रता ॥ रेमे तेन द्विजश्रेष्ठा नवयौवनशालिनी ॥ ५ ॥ अथ तस्याः पतिर्विप्रस्तरुणस्सुरुजार्दितः ॥ सौमिन्याः कालयोगात्तु पञ्चत्व मगमद्विजाः ॥ ६ ॥ मृते भर्तरि सा नारी दुखितातिविषण्णधीः ॥ किंचित्कालं शुभाचारा सु शी लोवास सद्मनि ॥ ७ ॥ ततस्सा मन्मथा विष्टहृदया विधवापि च॥युवावस्थाविशेषेण बभूव व्यभिचारिणी ॥ ८ ॥

के साथ विधिपूर्वक विवाह कर दिया ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठो ! तब पतिव्रता नवीन यौवनवाली सौमिनी अपने पतिको प्राप्त हो कुछ समयतक उसके साथ रमण करने लगी ॥ ५ ॥ हे द्विजो ! तब उसका पति वह युवक ब्राह्मण रोगसे पीड़ित हुआ कालके योगसे मृत्युको प्राप्त होगया ॥ ६ ॥ अपने पतिके मरजानेपर वह स्त्री अति दुःखी हुई और व्याकुल चित्त श्रेष्ठ स्वभाववाली अच्छे आचरणसहित उस सौमि नीने कुछ समयतक अपने घरमें निवास किया ॥ ७ ॥ फिर वह विधवा कामदेवके बाणोंसे पीडित हो युवावस्थाकी विशेषतासे व्यभिचारिणी

होगई ॥ ८ ॥ उसके कुलके दूषित करनेवाले कुत्सित कर्मको जान उसके कुटुम्बी परस्परमें सम्मति कर बाल पकडके दूर ले जाकर उसे छोड आये ॥ ९ ॥ अपनी इच्छासे (स्वतन्त्र) वनमें फिरती हुई उस स्त्रीको देखकर किसी शूद्रने उसे अपनी स्त्री बनाया और घर ले आया ॥ १० ॥ तब वह नित्य मांस खाती मदिरा पीती थी, और मैथुनमें तत्पर हुई उसने उस शूद्रसे कन्याको उत्पन्न किया ॥ ११ ॥ कभी उस व्यभिचारिणी सौमिनीने अपने पतिके कहीं चले जानेपर मदिरा पानकर मांस खानेकी इच्छा की ॥ १२ ॥ उस समय बाहर गोठमें गायोंके साथ मेष (मेंढे) बन्ध रहे थे वहां रात्रिके गाढ अन्धकारमें वह तलवारको लेकर चली गई ॥ १३ ॥ तब मांस चाहती हुई

तज्ज्ञात्वा गोत्रिणस्तस्या दुष्कर्म कुलदूषणम् ॥ समेतास्तत्यजुदूरं नीत्वा तां सकचग्रहाम् ॥ ९ ॥ कश्चिच्छूद्रवरस्तां वै विचरन्तींनिजेच्छया ॥दृष्ट्वा वने स्त्रियं चक्रे निनाय स्वगृहं ततः ॥ १० ॥अथ सा पिशिताहारा नित्यमापीतवारुणी ॥ अजीजनत्सुतान्तेन शूद्रेण सुरतप्रिया ॥ ११ ॥ कदाचिद्भर्तरि क्वापि याते पीतसुराथ सा ॥ इयेष पिशिताहारं सौमिनी व्यभिचारिणी ॥ १२ ॥ ततो मेषेषु बद्धेषु गोभिस्सह बहिर्व्रजे ॥ निशामुखे तमोऽन्धे हि खड्गमादाय सा ययौ ॥ १३ ॥ अविमृश्य मदावेशान्मेषबुद्ध्याऽऽमिष प्रिया ॥ एकं जघान गोवत्सं क्रोशंतमतिदुर्भगा ॥ १४ ॥ हतं तं गृहमानीय ज्ञात्वा गोवत्समंगना ॥ भीता शिवशिवेत्याह केनचित्पुण्यकर्मणा ॥१५॥ सा मुहूर्तं शिवं ध्यात्वामिषभोजनलालसा ॥छित्त्वा तमेव गोवत्सं चकाराहार मीप्सितम् ॥ १६ ॥ एवं बहुतिथे काले गते सा सौमिनी द्विजाः ॥ कालस्य वशमापन्ना जगाम यमसंक्षयम् ॥ १७ ॥ यमोऽपि धर्ममालोक्य तस्याः कर्म च पौर्विकम् ॥ निवर्त्य निरयावासाच्चक्रे चाण्डालजातिकाम् ॥ १८ ॥

उस अति दुर्भगाने मद्य (नशे) के चढावसे विना जाने मेष बुद्धिसे एक चिल्लाते हुए गायके बछडेको मारा ॥ १४ ॥ वह स्त्री उस मरे हुए पशुको घरमें लाय उसको गायका बछडा जान किसी पुण्य कर्मसे भयभीत हुई शिव शिव ऐसा कहने लगी ॥ १५ ॥ उस मांसकी अभिलाषा करनेवालीने क्षणमात्र शिवजीका ध्यान करके उसी गायके बछडेको काटकर अभिलषित भोजन किया ॥ १६ ॥ हे द्विजो ! इस प्रकार बहुत दिन बीतनेपर वह सौमिनी कालके वशीभूत हो मृत्युको प्राप्त हुई ॥ १७ ॥ यमराजने भी उसके पूर्वजन्मके कर्म तथा धर्मको

देख नरकवाससे निवृत्त कर उसे चाण्डालजातिमें बनाया ॥ १८ ॥ वह यमपुरसे लौटकर चांडालीके गर्भमें प्राप्त हुई और नेत्रोंकी ज्योति न मिलनेसे जन्मसे अन्धी उत्पन्न हुई ॥ १९ ॥ जन्मसे अन्धी तथा बालकपनमें माता पिताके नष्ट होजानेसे उसे किसीने कहीं पाली न विवाही और बडे कुष्ठरोगसे पीडित हुई ॥ २० ॥ तब भूखसे व्याकुल, तथा दीन, नेत्रहीन, लकडी हाथमें ले चलनेवाली वह चांडालोंके जूंठे भोजनसे अपनी भूंखको शान्त करती थी ॥ २१ ॥ ऐसे बडे कष्टसे अपनी बडी अवस्थाको काटकर बुढापेमें अति दुःखको प्राप्त हुई ॥ २२ ॥ किसी समय उस चांडालीने शिवजीके उत्सवके दिन महाजन यात्रियोंको गोकर्णमें आता जाता हुआ जाना ॥ २३ ॥ तब वह

साथ भ्रष्टा यमपुराच्चाण्डालीगर्भमाश्रिता ॥ ततो बभूव जन्मान्धा प्रशांतांगारमेचका ॥ १९ ॥ जन्मान्धा साथ बाल्येऽपि विध्वस्त पितृमातृका ॥ ऊढा न केनचिद्दुष्टा महाकुष्ठरुजार्दिता ॥ २० ॥ ततः क्षुधार्दिता दीना यष्टिपाणिर्गतेक्षणा ॥ चाण्डालोच्छिष्टपिंडेन जठराग्निमतर्पयत् ॥ २१ ॥ एवं कृच्छ्रेण महता नीत्वा स्वविपुलं वयः ॥ जरया ग्रस्तसर्वाङ्गी दुःखमाप दुरत्ययम् ॥ २२ ॥ कदाचित्साथ चांडाली गोकर्णं तं महाजनान् ॥ आयास्यंत्यां शिवतिथौ गच्छतो बुबुधेऽन्वगान् ॥२३॥ अथासावपि चांडाली वसना सनतृष्णया ॥ महाजनान् याचयितुं संचचार शनैःशनैः ॥२४॥ गत्वा तत्राथ चांडाली प्रार्थयन्ती महाजनान् ॥ यत्र तत्र चचारासौ दीनवाक्प्रसृताञ्जलिः ॥२५॥ एवमभ्यर्थयंत्यास्तु चांडाल्याः प्रसृताञ्जलौ ॥ एकः पुण्यतमः पान्थः प्राक्षिपद्बिल्वमंजरीम् ॥ २६ ॥ तामंजलौ निपतितां सा विमृश्य पुनः पुनः ॥ अभक्ष्यमिति मत्वाथ दूरे प्राक्षिपदातुरा ॥ २७ ॥ तस्याः कराद्विनिर्मुक्ता रात्रौ सा बिल्वमंजरी ॥ पपात कस्यचिद्दिष्ट्या शिवलिंगस्य मस्तके ॥ २८ ॥

चांडाली वस्त्र भोजनकी तृष्णासे उन यात्री महाजनोंसे मांगनेके निमित्त शनैः शनैः (धीरे धीरे) फिरने लगी ॥ २४ ॥ और वहां जाकर वह चांडाली हाथ जोड दीन वचन बोलती हुई वैश्योंसे मांगती इधर उधर घूमने लगी ॥ २५ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करती हुई चांडालीके फैले हुए हाथोंमें किसी पुण्यात्मा पथिकने बेलकी मंजरीको फेंक दिया ॥ २६ ॥ उसने बेलकी मंजरीको अंजलिमें गिरी हुई देख बारम्बार विचार कर व्याकुल हो उसे अभक्ष्य मानकर दूर फेंकदिया ॥ २७ ॥ उसके हाथसे छूटीहुई वह बेलकी मंजरी रात्रिमें किसी

शिवलिंगके मस्तकपर गिरी ॥ २८ ॥ उस चांडालीने चतुर्दशीकी रात्रिमें पथिकोंसे बारम्बार मांगनेपरभी दैवयोगसे कुछ भोजनभी नहीं पाया ॥ २९ ॥ इस प्रकार चतुर्दशीको अज्ञानसे निराहार पवित्र व्रत होगया और परम आनंद देनेवाला जागरण हुआ ॥ ३० ॥ तब प्रातःकाल वह स्त्री बडे शोकसे व्याकुल और दुःखी हुई धीरे २ केवल अपने घरको लौटी ॥ ३१ ॥ बहुत दिनोंके उपवाससे थकित हुई पदपदमें गिरतीहुई उतनी वह भूमिको लांघकर मूर्छित हो गिरकर मरगई ॥ ३२ ॥ तब शिवजीकी कृपासे शीघ्रही शिवगणोंने सुन्दर विमानपर चढाकर उसको महादेवके परमपदको प्राप्त कराया ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मणो ! पहले इस व्यभिचारिणी चांडाली स्त्रीने जो अज्ञानसे

सैवं शिवचतुर्दश्यां रात्रौ पान्थजनान्मुहुः ॥ याचमानापि यत्किंचिन्नलेभे दैवयोगतः ॥२९॥ एवं शिवचतुर्दश्या व्रतं जातं च निर्मलम् ॥ अज्ञानतो जागरणं परमानन्ददायकम् ॥३०॥ ततः प्रभाते सा नारी शोकेन महता वृता ॥ शनैर्निववृते दीना स्वदेशायैव केवलम् ॥ ३१ ॥ श्रांता चिरोपवासेन निपतंती पदेपदे ॥ अतीत्य तावतीं भूमिं निपपात विचेतना ॥ ३२ ॥ अथसा शंभुकृपया जगाम परमं पदम् ॥ आरुह्य सुविमानं च नीतं शिवगणैर्द्रुतम् ॥३३॥ आदौ यदेषा शिवनाम नारी प्रमादतो वाप्य सती जगाद ॥ तेनेह भूयः सुकृतेन विप्रा महाबलस्थानमवाप दिव्यम् ॥ ३४ ॥ श्रीगोकर्णे शिवतिथावुपोष्य शिवमस्तके ॥ कृत्वा जागरणं सा हि चक्रे बिल्वार्चनं निशि ॥ ३५ ॥ अकामतः कृतस्यास्य पुण्यस्यैव च तत्फलम् ॥ भुनक्त्यद्यापि सा चैव महाबलप्रसादतः ॥ ३६ ॥ एवंविधं महालिंगं शंकरस्य महाबलम् ॥ सर्वपापहरं सद्यः परमानन्ददायकम् ॥ ३७ ॥ एवं वः कथितं विप्रा माहात्म्यं परमं मया ॥ महाबलाभिधानस्य शिवलिंगवरस्य हि ॥ ३८ ॥

शिवजीके नामका उच्चारण किया था उसही पुण्यसे फिर दूसरे जन्ममें वह महाबल शिवके दिव्य स्थानको प्राप्त हुई ॥ ३४ ॥ गोकर्णमें शिवतिथि (चतुर्दशी) को उपासना करके शिवजीके समीप जागरण करके रातमें बिल्वपत्रसे पूजन किया ॥ ३५ ॥ विना इच्छा (अज्ञान) से किये हुये पुण्यका यह फल है कि अब तकभी वह स्त्री महाबलके प्रसादसे भोगोंको भोगती है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार शिवजीका महाबल नामक महालिंग तत्काल सब पापोंका हरण करनेवाला तथा परम आनंदका देनेवाला है ॥३७॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने तुमसे

महाबल नामक शिव लिंगका बडा माहात्म्य कहा ॥ ३८ ॥ अब और भी उनका अद्भुत माहात्म्य कहता हूं कि जिसके सुनने मात्रसे शीघ्र ही शिवजीमें भक्ति उत्पन्न होती है ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० चांडालीसद्गतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, शोभायमान इक्ष्वाकुवंशमें बडे धर्मात्मा तथा सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ मित्रसह नाम एक राजा था ॥ १ ॥ उस राजाकी धर्मवती पतिव्रता स्त्री राजा नलकी सती दमयन्तीके समान मदयन्ती नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ २ ॥ एक समय वह मित्रसह राजा शिकार खेलनेकी इच्छाकर बडी सेनाके सहित आखेटको सघन वनमें गया ॥ ३ ॥ वहां विहार करते हुये उस राजाने महादुष्ट साधुओंको

अथान्यदपि वक्ष्यामि माहात्म्यं तस्य चाद्भुतम् ॥श्रुतमात्रेण येनाशु शिवे भक्तिः प्रजायते॥३९॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यांकोटिरुद्रसंहितायां चाण्डालीसद्गतिवर्णनं नामनवमोऽध्यायः॥९॥सूत उवाच॥श्रीमतीक्ष्वाकुवंशे हि राजा परमधार्मिकः ॥ आसीन्मित्रसहो नाम श्रेष्ठस्सर्वधनुष्मताम् ॥१॥ तस्य राज्ञः सुधर्मिष्ठा मदयन्ती प्रिया शुभा॥दमयन्ती नलस्येव बभूव विदिता सती ॥ २ ॥ स एकदा हि मृगयास्नेही मित्रसहो नृपः॥ महद्बलेन संयुक्तो जगाम गहनं वनम् ॥३॥ विहरंस्तत्र स नृपः कमठाह्वं निशाचरम् ॥ निजघान महादुष्टं साधुपीडाकरं खलम्॥४॥अथ तस्यानुजः पापी जयेयं छद्मनैव तम् ॥मत्वा जगाम नृपतेरन्तिक च्छद्मकारकः॥५॥तं विनम्राकृतिं दृष्ट्वा भृत्यतां कर्तुमागतम्॥चक्रे महानसाध्यक्षमज्ञानात्स महीपतिः॥६॥अथ तस्मिन्वने राजा कियत्कालं विहृत्य सः॥निवृत्तो मृगयां हित्वा स्वपुरीमाययौ मुदा ॥७॥ पितुः क्षयाहे सम्प्राप्ते निमंत्र्य स्वगुरुं नृपः ॥ वसिष्ठं गृहमानिन्ये भोजयामास भक्तितः ॥८॥रक्षसा सूदरूपेण संमिश्रितनरामिषम् ॥शाकामिषं पुरः क्षिप्तं दृष्ट्वा गुरुरथाब्रवीत् ॥९॥

पीडा देनेवाले क्रूर कमठ नामक राक्षसको मारा ॥ ४ ॥ तब उसका भाई पापी इसको कपटसे जीतनेके अर्थ छलसे राजाके समीप आया ॥ ५ ॥ उस नम्र आकारवाले राक्षसको नौकरी करनेको आया हुआ देख उसे राजाने अज्ञानसे रसोईका अध्यक्ष बना दिया ॥ ६ ॥ और उस वनमें कुछ समयतक भ्रमण करके शिकार खेल वनसे लौट आनंदसे अपने नगरको आया ॥ ७ ॥ राजाने पिताके क्षयाह (मृत्युका दिन) प्राप्त होनेपर अपने गुरु वसिष्ठजीको निमन्त्रण दे अपने घर बुलाय भक्ति पूर्वक भोजन कराया ॥ ८ ॥ उस समय कपटरूप

उस राक्षसने वसिष्ठजीके सामने मनुष्योंके मांससे मिले हुए शाकको परोसा, तब गुरुने यह देखकर कहा ॥ ९ ॥ गुरुजी बोले, हे राजन् तुझे धिक्कार है कपट करनेवाले दुष्ट तूने मेरे आगे मनुष्यका मांस परोसवाया इससे तू राक्षस होगा ॥ १० ॥ तब उन गुरु वसिष्ठजीने यह सब कौतुक राक्षससे किया हुआ जान फिर विचारके उस शापको बारह वर्षतकका किया ॥ ११ ॥ वह राजा अनुचित शापको जान क्रोधसे व्याकुल हो जलकी अंजलि भरकर गुरुजीके शाप देनेको उद्यत हुआ ॥ १२ ॥ उस समय उसकी धर्मवाली पतिव्रता मदयन्ती स्त्रीने उस राजाके चरणोंमें पडकर उस शापको निवारण कराया ॥ १३ ॥ तब अपनी स्त्रीके वचनोंसे शाप हटाय राजाने अपने चरणोंमें जल

गुरुरुवाच ॥ धिक् त्वां नरामिषं राजंस्त्वयैतच्छद्मकारिणा ॥ खलेनोपहृतं मह्यं ततो रक्षो भविष्यसि ॥ १० ॥ रक्षःकृतं च वि
ज्ञायतदैवं स गुरुस्तदा ॥ पुनर्विमृश्य तं शापं चकार द्वादशाब्दिकम् ॥ ११ ॥ स राजानुचितं शापं विज्ञाय क्रोधमूर्छितः ॥
जलांजलिं समादाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥ १२ ॥ तदा च तत्प्रिया साध्वी मदयन्ती सुधर्मिणी ॥ पतित्वा पादयोस्तस्य शा
पं तं हि न्यवारयत् ॥ १३ ॥ ततो निवृत्तशापस्तु तस्या वचनगौरवात् ॥ तत्याज पादयोरंभः पादौ कल्मषतां गतौ ॥१४॥
ततःप्रभृति राजा भूत्स लोकेस्मिन्मुनीश्वराः ॥ कल्मषांघ्रिरिति ख्यातः प्रभावात्तज्जलस्य हि ॥ १५ ॥ राजा मित्रसहः शापा
द्गुरोरृषिवरस्य हि ॥ बभूव राक्षसो घोरो हिंसको वनगोचरः ॥१६॥ स विभ्रद्राक्षसं रूपं कालान्तकयमोपमम् ॥ चखाद वि
विधाञ्जंतून् मानुषादीन्वने चरः ॥ १७ ॥ स कदाचिद्वने क्वापि रममाणौ किशोरकौ ॥ अपश्यदन्तकाकारो नवोढौ मुनिदम्प
ती ॥ १८ ॥ राक्षसः स नराहारः किशोरं मुनिनन्दनम् ॥ जग्धुं जग्राह शापार्त्तो व्याघ्रो मृगशिशुं यथा ॥ १९ ॥

छोडा तो वे चरण काले होगये ॥ १४ ॥ हे मुनीश्वरो ! उस दिनसे लेकर इस लोकमें वह राजा उस गिराये हुए जलके प्रतापसे कल्मषपाद नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ १५ ॥ इस प्रकार मित्रसह अपने गुरु वसिष्ठ ऋषिके शापसे वनके बीचमें हत्यारा घोर राक्षस हुआ ॥ १६ ॥ वह राक्षसके रूपको धारे कालके समान वनमें फिरता हुआ मनुष्य आदि अनेक जीवोंको खाने लगा ॥ १७ ॥ उस कालके समान भयंकर राक्षसने कभी वनमें भ्रमण करते हुए किशोर अवस्थावाले नवोढ मुनि स्त्रीपुरुषोंको देखा ॥ १८ ॥ वह मनुष्योंको भोजन करने

वाला राक्षस शापसे दुःखी हुआ बाल्यअवस्थावाले मुनिके पुत्रको खानेको इस प्रकार दौडा जैसे व्याघ्र मृगके बच्चेको पकडता है ॥ १९ ॥ उन मुनिकी स्त्रीने अपने स्वामीको कोखमें दैत्यसे पकडा हुआ देख भयभीत हो उस राक्षससे गिडगिडाके मधुर वचन कह प्रार्थना की ॥ २० ॥ अनेकवार प्रार्थना करनेपरभी नराहारी निर्दयी वह दुष्ट राक्षस उस ब्राह्मणके पुत्रका सिर फाडकर खागया ॥ २१ ॥ तब उस दीन साध्वी स्त्रीने अति दुःखी हो विलापकर अपने पतिकी अस्थियां इकट्ठी करके श्रेष्ठ चिता बनाई ॥ २२ ॥ अपने पतिके पीछे जानेवाली उस ब्राह्मणीने अग्निमें प्रवेश करके राक्षस आकारवाले राजाको यह शाप दिया ॥ २३ ॥ कि आजसे लेकर तू जब स्त्रियोंमें संगम करेगा तभी तेरी

कुक्षौ गृहीतं भर्तारं दृष्ट्वा भीता च तत्प्रिया॥सा चक्रे प्रार्थनं तस्मै वदंती करुणं वचः ॥२०॥ प्रार्थ्यमानोऽपि बहुशः पुरुषादः स निर्घृणः ॥ चखाद शिर उत्कृत्य विप्रसूनोर्दुराशयः ॥२१॥ अथ साध्वी च सा दीना विलप्य भृशदुःखिता ॥आहृत्य भर्तुरस्थीनि चितां चक्रे किलोल्बणाम्॥२२॥भर्तारमनुगच्छन्ती संविशंती हुताशनम्॥ राजानं राक्षसाकारं सा शशाप द्विजाङ्गना ॥२३॥ अद्यप्रभृति नारीषु यदा त्वं संगतो भवेः ॥ तदा मृतिस्तवेत्युक्त्वा विवेश ज्वलनं सती ॥२४॥ सोपि राजा गुरोश्शाप मनुभूय कृतावधिम्॥पुनः स्वरूपमास्थाय स्वगृहं मुदितो ययौ ॥ २५ ॥ ज्ञात्वा विप्रसतीशापं मदयन्ती रतिप्रियम् ॥ पतिं निवारयामास वैधव्यादतिबिभ्यती ॥ २६ ॥ अनपत्यो विनिर्विण्णो राज्यभोगेषु पार्थिवः ॥ विसृज्य सकलां लक्ष्मीं वन मेवजगाम ह ॥ २७ ॥ स्वपृष्ठतः समायान्तीं ब्रह्महत्यां सुदुःखदाम् ॥ ददर्श विकटाकारां तर्जयन्तीं मुहुर्मुहुः ॥ २८ ॥

मृत्यु होगी ऐसा कहकर वह सती अग्निमें प्रवेश करगई ॥ २४ ॥ वह राजा भी बारहवर्षकी अवधिपर्यन्त गुरु वसिष्ठजीके शापको भोगकर फिर अपने उसी रूपको प्राप्त कर प्रसन्न हो अपने घरको गया ॥ २५ ॥ उस समय मदयन्तीने ब्राह्मणीके शापको जान विधवा होजानेके भयसे संगम करनेमें प्रवृत्त हुए पतिको निवारण किया ॥ २६ ॥ सन्तानरहित राजा राज्यभोगोंमें शान्त (प्रसन्न) न हुआ और सब राजपाटको त्याग वनकोही चला गया ॥ २७ ॥ वहां उसने अपने पीछे आती हुई भयंकर आकारवाली बारंबार डाटती हुई अति

दुःख देनेवाली ब्रह्महत्याको देखा ॥ २८ ॥ उस ब्रह्महत्यासे छूटनेकी इच्छासे व्याकुल चित्तवाले राजाने जप, व्रत, यज्ञ आदि अनेक उपाय किये ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मणो ! जब अनेक उपायोंसे तथा तीर्थोंमें स्नान करनेसे उस राजाकी ब्रह्महत्या नष्ट न हुई, तब वह राजा मिथिलापुरीको गया ॥ ३० ॥ उस ब्रह्महत्याकी परम चिन्तामें व्याकुल हुए तथा बाहर वनमें गये हुए उस राजाने गौतम ऋषिको आता हुआ देखा ॥ ३१ ॥ उस राजाने निर्मल आकारवाले गौतममुनिके समीप जाय उनके दर्शनसे कुछ शान्तिको प्राप्त हो उन्हें बारम्बार प्रणाम किया ॥ ३२ ॥ तब उन ऋषिसे कुशल पूंछा हुआ राजा उनकी कृपादृष्टिसे सुख पाय गहरी तथा गरम श्वास लेकर उनसे बोला ॥ ३३ ॥ राजा

तस्या निर्भद्रमन्विच्छन् राजा निर्विण्णमानसः ॥ चकार नानोपायान्स जपव्रतमखादिकान् ॥२९॥ नानोपायैर्यदा राज्ञस्तीर्थस्नानादिभिर्द्विजाः॥न निवृत्ता ब्रह्महत्या मिथिलां स ययौ तदा॥३०॥बाह्योद्यानगतस्तस्याश्चिंतया परयार्दितः॥ददर्श मुनिमायान्तं गौतमं पार्थिवश्च सः॥३१॥अभिसृत्य स राजेन्द्रोगौतमं विमलाशयम्॥तद्दर्शनात्तकिंचित्कः प्रणनाम मुहुर्मुहुः॥३२॥ अथ तत्पृष्टकुशलो दीर्घमुष्णं च निश्वसन् ॥ तत्कृपादृष्टिसंप्राप्तसुख प्रोवाच तं नृपः ॥ ३३ ॥ राजोवाच॥ मुने मां बाधते ह्येषा ब्रह्महत्या दुरत्यया ॥ अलक्षिता परैस्तात तर्जयंती पदेपदे ॥३४॥यन्मया शापदग्धेन विप्रपुत्रश्च भक्षितः ॥ तत्पापस्य न शान्तिर्हि प्रायश्चित्तसहस्रकैः ॥ ३५ ॥नानोपायाः कृता मे हि तच्छान्त्यै भ्रमता मुने॥न निवृत्ता ब्रह्महत्या मम पापात्मनः किमु ॥ ३६ ॥ अद्य मे जन्मसाफल्यं संप्राप्तमिव लक्षये ॥ यतस्त्वद्दर्शनादेव ममानन्दभरोऽभवत् ॥ ३७ ॥

बोला, हे मुने ! यह कठिन ब्रह्महत्या दूसरोंको न दीखती हुई पदपदमें ताडन करती हुई मुझे बाधा देती है ॥ ३४ ॥ कारण कि शापसे वशीभूत हुए मैंने ब्राह्मणके पुत्रको भक्षण किया इससे सहस्रों पायश्चित्त करनेसे भी उस पापकी शान्ति नहीं होती है ॥ ३५ ॥ हे मुने ! उस पापके दूर होनेके कारण मैंने भ्रमण करकर अनेक उपाय किये, तो भी मुझ पापीकी ब्रह्महत्या नहीं नष्ट हुई ॥ ३६ ॥ आज मेरा जन्म सफल हुआ, इस प्रकार मैं जानता हूं कि आपके दर्शनमात्रसे मुझे परम आनन्द प्राप्त हुआ है ॥ ३७ ॥

हे महाभाग ! आज अपने चरणकमलोंकी शरणमें आये हुए मुझे इस महापापसे दूर करो जिससे मैं सुख पाऊं ॥ ३८ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार राजासे प्रार्थना कियेहुए, दयालु गौतममुनिने घोर पापोंके दूर करनेवाले श्रेष्ठ उपायको बताया ॥ ३९ ॥ गौतमजी बोले, हे साधो ! हे राजेन्द्र ! तू धन्य है महापापोंसे भयको त्याग, कारण कि शिवजीके शासन करते हुए शरणके अभिलाषी भक्तोंको भय कहाँ ॥ ४० ॥ हे महाभाग ! हे राजन् ! सुनो महापातकोंका नाश करनेवाला गोकर्ण नामक शिवका स्थानरूप क्षेत्र है ॥ ४१ ॥ वहाँ बडेसे बडे पापोंकी भी स्थिति नहीं रह सकती तहाँ महाबल नामसे प्रसिद्ध हुये शिवजी स्वयं स्थित हैं॥४२॥वे महाबल, सम्पूर्ण शिवलिंगोंके सम्राट् (अध्यक्ष) हैं तथा

अद्य मे तव पादाब्ज शरणस्य कृतैनसः॥शांतिं कुरु महाभाग येनाहं सुखमाप्नुयाम् ॥३८॥सूत उवाच॥इति राज्ञा समादिष्टो गौतमः करुणार्द्रधीः ॥समादिदेश घोराणामघानां साधु निष्कृतिम्॥३९॥गौतम उवाच ॥ साधु राजेन्द्र धन्योसि महाघेभ्यो भयन्त्यज॥शिवे शास्तरि भक्तानां क्व भयं शरणैषिणाम्॥४०॥शृणु राजन्महाभाग क्षेत्रमन्यत्प्रतिष्ठितम्॥महापातकसंहारि गोकर्णाख्यं शिवालयम् ॥ ४१ ॥ तत्र स्थितिर्न पापानां महद्भ्यो महतामपि ॥ महाबलाभिधानेन शिवः संनिहितः स्वयम्॥४२॥ सर्वेषां शिवलिंगानां सार्वभौमो महाबलः ॥ चतुर्युगे चतुर्वर्णस्सर्वपापापहारकः ॥४३॥ पश्चिमाम्बुधितीरस्थं गोकर्णं तीर्थमुत्तमम् ॥ तत्रास्थि शिवलिंगं तन्महापातकनाशकम् ॥४४॥ तत्र गत्वा महापापाः स्नात्वा तीर्थेषु भूरिशः॥ महाबलं च संपूज्य प्रयाताश्शां करम्पदम् ॥ ४५ ॥ तथा त्वमपि राजेन्द्र गोकर्णं गिरिशालयम् ॥ गत्वा सम्पूज्य तल्लिंगं कृतकृत्यत्वमाप्नुयाः ॥ ४६ ॥ तत्र सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वाभ्यर्च्य महाबलम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकन्त्वमाप्नुयाः ॥ ४७ ॥

चारों युगोंमें चारों वर्णोंके सब पापोंको हरण करनेवाले हैं ॥४३॥ पश्चिम समुद्रके समीप गोकर्णनामवाला उत्तम तीर्थ स्थित है तहां महापापोंको दूर करनेवाला शिवजीका ज्योतिर्लिंग है ॥ ४४ ॥ महापापीभी वहां जाकर तीर्थोंमें सम्यक्प्रकार स्नान करके महाबलको पूजकर शिवजीके पदको प्राप्त होताहै ॥ ४५ ॥ हे राजेन्द्र ! उसी प्रकार तूभी गोकर्ण नामवाले शिवके स्थानमें जाकर महाबल लिंगको पूजकर सफलताको प्राप्त हो ॥ ४६ ॥ वहां तूभी सब तीर्थोंमें स्नान करके महाबल शिवजीका पूजन करके सम्पूर्ण पापोंसे छूट शिवलोकको प्राप्त हो ॥ ४७ ॥

सूतजी बोले, इस प्रकार महात्मा गौतममुनिसे आज्ञा दिया हुआ वह राजा प्रसन्न मन हो गोकर्णको गया ॥ ४८ ॥ वहां तीर्थोंमें स्नान करके महाबलको पूज सम्पूर्ण पापोंसे छूट शिवजीके परमपदको प्राप्त हुआ ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य इस प्रिय महाबलकी कथाको सुनता है वह इक्कीस पीढी सहित शिवलोकको प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ इस प्रकार मैंने महाबल नामवाले शिव लिंगका समस्तपाप हरण करनेवाला परम अद्भुत माहात्म्य तुमसे कहा ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० महाबलाह्वशिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ऋषि बोले, हे महाभाग ! हे सूतजी ! शिवजीमें तत्पर बुद्धिवाले आप धन्य हैं, आपने महबल लिंगकी सुन्दर कथा सुनाई ॥ १ ॥ हे पाप

सूत उवाच॥इत्यादिष्टः स मुनिना गौतमेन महात्मना॥महाहृष्टमना राजा गोकर्णं प्रत्यपद्यत॥४८॥तत्र तीर्थेषु सु स्नात्वा सम भ्यर्च्य महाबलम् ॥ निर्धूताशेषपापौघोऽलभच्छंभोः परम्पदम्॥४९॥य इमां शृणुयान्नित्यं महाबलकथां प्रियाम् ॥ त्रिसप्तकुलजै स्सार्द्धं शिवलोके व्रजत्यसौ ॥५०॥ इति वश्च समाख्यातं माहात्म्यं परमाद्भुतम् ॥ महाबलस्य गिरिशलिंगस्य निखिलाघहृत् ॥५१॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां महाबाह्वशिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूतसूत महाभाग धन्यस्त्वं शिवसक्तधीः ॥ महाबलस्य लिंगस्य श्रावितेयं कथाद्भुता ॥१॥ उत्तरस्यां दिशायांच शिवलिंगानि यानि च ॥ तेषां माहात्म्यमनघ वद त्वं पापनाशकम्॥२॥सूत उवाच॥ शृणुतादरतो विप्रा औत्तराणां विशेषतः॥ माहात्म्यं शिवलिंगानां प्रवदामि समासतः॥३॥ गोकर्णं क्षेत्रमपरं महापातकनाशनम् ॥ महावनं च तत्रास्ति पवित्रमतिविस्त रम् ॥ ४ ॥ तत्रास्ति चन्द्रभालाख्यं शिवलिंगमनुत्तमम् ॥ रावणेन समानीतं सद्भक्त्या सर्वसिद्धिदम् ॥ ५ ॥

रहित ! उत्तर दिशाकी ओर जो जो शिवके ज्योतिर्लिंग हैं उनके पापनाशक माहात्म्यको आप वर्णन करो ॥ २ ॥ सूतजी बोले,हे ब्राह्मणो ! आप आदरसे सुनो मैं उत्तर दिशाके शिवलिंगोंके माहात्म्यको संक्षेपसे कहता हूं ॥ ३ ॥ महापातक नाश करनेवाला दूसरा गोकर्ण नामक क्षेत्र है तहां अतिविस्तारवाला पवित्र बडा वन है ॥ ४ ॥ वहां चन्द्रभाल नामक श्रेष्ठ शिवका ज्योतिर्लिंग है वह सुन्दर भक्तिसे रावणने स्था पित किया है और सम्पूर्ण सिद्धियोंका देनेवाला है ॥ ५ ॥

हे मुनीश्वरो ! सब संसारके हितके निमित्त दयाके समुद्र उन चन्द्रभाल शिवकी वहां वैद्यनाथजीके समान स्थिति है ॥ ६ ॥ गोकर्णमें स्नान करके चन्द्रभाल शिवका पूजन करके शिवलोकको प्राप्त होते हैं यह सत्य है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ भक्तोंके ऊपर स्नेह करनेवाले चन्द्रभाल शिवकी महिमा बड़ी अद्भुत है व्यासजीसे भी वर्णन नहीं की जासकती है ॥ ८ ॥ चन्द्रभाल महादेवके ज्योतिर्लिङ्गकी महिमा तो बडी है, तथापि तथा किंचित् सामर्थ्यके अनुसार वर्णन करता हूं सुनो ॥ ९ ॥ मिश्र ऋषिवर (मिश्रर्षि) तीर्थपर, दाधीच नामक शिवलिंग है उसे दाधीच मुनीशने परम प्रीतिसे स्थापन किया है ॥ १० ॥ वहां जाकर विधिपूर्वक अच्छी प्रकार स्नान

तस्य तत्र स्थितिर्वैद्यनाथस्येव मुनीश्वराः ॥ सर्वलोकहितार्थाय करुणासागरस्य च ॥६॥ स्नानं कृत्वा तु गोकर्णे चन्द्रभालं समर्च्य च ॥ शिवलोकमवाप्नोति सत्यंसत्यं न संशयः ॥ ७ ॥ चन्द्रभालस्य लिंगस्य महिमा परमाद्भुतः ॥ न शक्यो वर्णितुं व्यासाद्भक्तस्नेहितरस्य हि ॥८॥ चन्द्रभालमहादेवलिंगस्य महिमा महान् ॥ यथाकथंचित्संप्रोक्तः परलिंगस्य वै शृणु ॥ ९ ॥ दाधीचं शिवलिंगं तु मिश्रर्षिवरतीर्थके ॥ दधीचिना मुनीशेन सुप्रीत्या च प्रतिष्ठितम् ॥ १० ॥ तत्र गत्वा चतत्तीर्थे स्नात्वा सम्यग्विधानतः ॥ शिवलिंगं समर्चेद्वै दाधीचेश्वरमादरात् ॥ ११ ॥ दाधीचमूर्तिंस्तत्रैव समर्च्या विधिपूर्वकम् ॥ शिवप्रीत्यर्थमे वाशु तीर्थयात्रा फलार्थिभिः ॥ १२ ॥ एवं कृते मुनिश्रेष्ठाःकृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ इह सर्वसुखं भुक्त्वा परत्र गतिमाप्नुयात् ॥ १३ ॥ नैमिषारण्यतीर्थे तु निखिलर्षिप्रतिष्ठितम् ॥ ऋषीश्वरमिति ख्यातं शिवलिंगं सुखप्रदम् ॥ १४ ॥ तद्दर्शनात्पूजनाच्चजनानां पापिनामपि ॥ भुक्तिमुक्तिश्च तेषां तु परत्रेह मुनीश्वराः ॥ १५ ॥

करके दाधीचेश्वर नामवाले शिवलिंगको आदरसे पूजना चाहिये ॥ ११ ॥ वहांपर शीघ्र तीर्थ यात्राके फल चाहनेवालोंको विधिपूर्वक शिवजीके प्रसन्नताके निमित्त दाधीच ऋषिकी मूर्तिको पूजना चाहिये ॥ १२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! ऐसा कहनेपर मनुष्य कृतकृत्य होता है, इस लोकमें पूर्ण सुखको भोगकर परलोकमें सद्गतिको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ नैमिषारण्यमें तो सब ऋषियोंसे स्थापन किया हुआ, ऋषीश्वर नामक सुखदायक ज्योतिर्लिंग प्रसिद्ध है ॥ १४ ॥ हे मुनीश्वरो ! उनके दर्शन करनेसे पापी मनुष्योंकोभी इसलोक तथा परलोकमें

भुक्ति मुक्ति प्राप्त होती हैं ॥ १५ ॥ हत्याहरण तीर्थपर पापनाशक पूजनीय विशेषकर कोटिहत्याओंको नाश करनेवाला शिवलिंग है ॥ १६ ॥ देव प्रयाग तीर्थमें ललितेश्वर नामक सब पापोंको दूर करनेवाले शिवलिंगकी पूजा सब पुरुषोंको करनी चाहिये ॥ १७ ॥ नयपाल नामक प्रसिद्ध पुरीमें पशुपतीश नामक प्रसिद्ध तथा सब कामनाओंको सिद्ध करनेवाला ज्योतिर्लिंग है ॥ १८ ॥ वह शिवलिंग, शिरके भाग स्वरूपसे स्थित है उसकी कथाको केदारेश्वरके इतिहासमें वर्णन करूंगा ॥ १९ ॥ उसके समीप मुक्तिनाथ नामक शिवलिंग बडा अद्भुत है उनके दर्शन तथा पूजन करनेसे भुक्ति मुक्ति प्राप्त होती है ॥ २० ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! यह चारों दिशाओंमें उत्तम लिंगोंका वर्णन

हत्याहरणतीर्थं तु शिवलिंगमघापहम् ॥ पूजनीयं विशेषेणहत्याकोटिविनाशनम् ॥१६॥ देवप्रयागतीर्थं तु ललितेश्वरनामकम्॥ शिवलिंगं सदा पूज्यं नरैस्सर्वाघनाशनम् ॥ १७ ॥ नयपालाख्यपुर्य्यां तु प्रसिद्धायां महीतले ॥ लिंगं पशुपतीशाख्यं सर्वकाम फलप्रदम् ॥ १८ ॥ शीरोभागस्वरूपेण शिवलिंगं तदस्ति हि ॥ तत्कथां वर्णयिष्यामि केदारेश्वरवर्णने ॥१९॥ तदारान्मुक्ति नाथाख्यं शिवलिंगं महाद्भुतम् ॥ दर्शनादर्चनात्तस्य भुक्तिर्मुक्तिश्च लभ्यते ॥२०॥ इति वश्च समाख्यातं लिंगवर्णनमुत्तमम् ॥ चतुर्दिक्षु मुनिश्रेष्ठाः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥२१॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां चन्द्रभालपशुपतिनाथ लिंगमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ऋषयऊचुः ॥ सूत जानासि सकलं वस्तु व्यासप्रसादतः ॥ तवाज्ञातं न विद्येत तस्मात्पृच्छामहे वयम् ॥१॥ लिंगं च पूज्यते लोके तत्त्वया कथितं च यत् ॥ तत्तथैव न चान्यद्वा कारणं विद्यते त्विह ॥ २ ॥ बाणरूपाश्रुता लोके पार्वती शिववल्लभा ॥ एतत्किं कारणं सूत कथय त्वं यथाश्रुतम् ॥ ३ ॥

आपसे कहा अब और क्या सुनना चाहते हैं ॥ २१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० चन्द्रभालपशुपतिनाथलिंगमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! आप व्यासजीके प्रसादसे सब वस्तुको जानते हैं आपको कुछ अज्ञात नहीं है इस कारण हम आपसे पूछते हैं ॥ १ ॥ संसारमें उन लिंगोंकी पूजा होती है जो आपने पहले बताये सो उसका कारण वही है क्या और इसका कोई कारण है ? ॥ २ ॥ हे सूतजी ! लोकमें शिवकी प्रिया पार्वती जो बाण रूपा कही है सो इसका क्या कारण है ? आपने

जैसा सुना है वैसा कहो ॥३॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! हे श्रेष्ठ ऋषियो ! मैंने व्यासजीसे जो कल्पभेदकी कथा सुनी है, उसीको आज तुमसे कहताहूं सो सुनो ॥४॥ पहले दारुवनमें ब्राह्मणोंका जो वृत्तान्त हुआ सो अब अच्छी प्रकार सुनो जैसा मैंने सुना है वैसा कहता हूं ॥५॥ हे ऋषिसत्तम ! जहां दारु नामक श्रेष्ठ वन है तहां नित्य शिवके ध्यानमें तत्पर हुए शिवभक्त ऋषिगण रहते थे ॥ ६ ॥ वे मुनीश्वर तीनोंकालोंमें निरन्तर शिवजीका पूजन करते, तथा अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करते थे ॥ ७ ॥ वे शिवजीके ध्यानमें परायण, शैव द्विजर्षिगण समिधाओंको लेनेके निमित्त कभी दारुवनमें आये ॥ ८ ॥ इसी अन्तरमें साक्षात् नीललोहित शंकर विकटरूप धारणकर उनकी परीक्षाके

सूत उवाच ॥ कल्पभेदकथा चैव श्रुता व्यासान्मया द्विजाः ॥ तामेव कथयाम्यद्य शृणुतामृषिसत्तमाः ॥ ४ ॥ पुरा दारुवने जातं यद्वृत्तं तु द्विजन्मनाम् ॥ तदेव शृणुतां सम्यक् कथयामि कथाश्रुतम् ॥ ५ ॥ दारुनामवनं श्रेष्ठं तत्रासन्नृषिसत्तमाः ॥ शिव भक्तास्सदा नित्यं शिवध्यानपरायणाः ॥ ६ ॥ त्रिकालं शिवपूजां च कुर्वंति स्म निरन्तरम् ॥ नानाविधैः स्तवैर्दिव्यैस्तुष्टुवुस्ते मुनीश्वराः ॥ ७ ॥ ते कदाचिद्वने यातास्समिधाहरणाय च ॥ सर्वे द्विजर्षभाश्शैवाश्शिवध्यानपरायणाः ॥ ८ ॥ एतस्मिन्नंतरे साक्षाच्छंकरो नीललोहितः ॥ विरूपं च समास्थाय परीक्षार्थं समागतः ॥ ९ ॥ दिगम्बरोऽतितेजस्वी भूतिभूषणभूषितः ॥ स चेष्टामकरोद्दुष्टां हस्ते लिंगं विधारयन् ॥ १० ॥ मनसा च प्रियं तेषां कर्तुं वै वनवासिनाम् ॥ जगाम तद्वनं प्रीत्या भक्तप्रीतो हरः स्वयम् ॥ ११ ॥ तं दृष्ट्वा ऋषिपत्न्यस्ताः परं त्रासमुपागताः ॥ विह्वला विस्मिताश्चान्यास्समाजग्मुस्तथा पुनः ॥१२॥ अलिंगिंगुस्तथा चान्याः करं धृत्या तथापराः ॥ परस्परं तु संघर्षात्संमग्नास्ताः स्त्रियस्तदा ॥ १३ ॥

निमित्त प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ साक्षात् दिगम्बर अति तेजस्वी विभूतिभूषणसे शोभायमान कामियोंके समान चेष्टाको किये हाथमें ज्योतिर्लिंगको धारण किये ॥ १० ॥ स्वयं भक्तोंसे प्रसन्न हुए शिवजी मनसे उन वनवासी मुनियोंकी भलाई करनेको प्रसन्नतासे उस वनमें प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ उनको देखकर ऋषिपत्नी परम त्रासको प्राप्त हो व्याकुल हुई तथा कोई विस्मित हो वहां आई ॥ १२ ॥ तथा कोई हाथ पकडके परस्पर आलिंगन करने लगी इस प्रकार वे स्त्रियां परस्पर आलिंगन करनेसे अति प्रसन्न हुईं ॥ १३ ॥

इसी अवसरमें वे श्रेष्ठ ऋषिभी आगये उनके विरुद्ध रूपको देखकर वे दुःखी तथा क्रोधसे व्याकुल हुए ॥ १४ ॥ उस समय दुःखित हुए, शिवजीकी मायासे मोहित हो वे ऋषि आपसमें बोले कि यह कौन है यह कौन है ? इस प्रकार कहने लगे ॥ १५ ॥ जिस समय वह अवधूत दिगंबर कुछ न बोले तो वे परम ऋषि उन भयंकर पुरुषसे कहने लगे ॥ १६ ॥ तुम वेदमार्गको लोप करनेवाले, विरुद्ध कार्यको करते हो इस कारण तुम्हारा यह लिंग भूमिपर गिर पडे ॥ १७ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उन ऋषियोंके कहनेपर उन अवधूत

एतस्मिन्नेव समये ऋषिवर्याः समागमन्॥ विरुद्धं तं च ते दृष्ट्वा दुःखिताः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ १४ ॥ तदा दुःखमनुप्राप्ताः कोयं कोयं तथाऽब्रुवन् ॥ समस्ता ऋषयस्ते वै शिवमायाविमोहिताः ॥ १५ ॥ यदा च नोक्तवान् किंचित्सोवधूतो दिगम्बरः ॥ ऊचुस्तं पुरुषं भीमं तदा ते परमर्षयः ॥ १६ ॥ त्वया विरुद्धं क्रियते वेदमार्ग विलोपि यत् ॥ ततस्त्वदीयं तल्लिंगं पततां पृथिवीतले ॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ते तु तदा तैश्च लिंगं च पतितं क्षणात् ॥ अवधूतस्य तस्याशु शिवस्याद्भुतरूपिणः ॥ १८ ॥ तल्लिंगं चाग्निव त्सर्वं यद्दाह पुरा स्थितम् ॥ यत्रयत्र च तद्याति तत्रतत्र दहेत्पुनः ॥ १९ ॥ पाताले च गतं तश्च स्वर्गे चापि तथैव च ॥ भूमौ सर्वत्र तद्यातं न कुत्रापि स्थिरं हि तत् ॥२०॥ लोकाश्च व्याकुला जाता ऋषयस्तेतिदुःखिताः ॥ न शर्म लेभिरे केचिद्देवाश्च ऋषयस्तथा ॥ २१ ॥ न ज्ञातस्तु शिवो यैस्तु ते सर्वे च सुरर्षयः ॥ दुःखिता मिलिताश्शीघ्रं ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ २२ ॥ तत्र गत्वा च ते सर्वे नत्वा स्तुत्वा विधिं द्विजाः ॥ तत्सर्वमवदन्वृत्तं ब्रह्मणे सृष्टिकारिणे ॥ २३ ॥

अद्भुतरूपधारी शिवका वह लिंग उसी क्षण गिर पडा ॥ १८ ॥ और वह लिंग आगे स्थित हुआ अग्निके समान जलने लगा और जहां जहां वह जाता तहां तहां जलता था ॥ १९ ॥ वह लिंग पातालमें स्वर्गलोकमें भी उसी प्रकार प्रज्वलित हो भ्रमण करने लगा कहीं पर भी स्थिर न हुआ ॥ २० ॥ सम्पूर्ण लोक व्याकुल हुए तथा वे ऋषि दुःखित हुए कोई देवता तथा ऋषि कल्याणको नहीं प्राप्त हुए ॥ ॥ २१ ॥ जिन्होंने शिवजीको नहीं जाना वे संपूर्ण देवर्षि दुःखित हुए परस्पर मिलकर तत्काल ब्रह्माके शरणमें गये ॥ २२ ॥ वहां जाकर

वे सब ऋषि आदि ब्रह्माको नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति करके सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीसे वह वृत्तान्त कहने लगे ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी उनके वचनको सुनके शिवकी मायासे मोहित हुए ऋषि श्रेष्ठोंको जानकर शिवजीको प्रणाम कर उनसे बोले ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे ब्राह्मणों ! जाननेवाले भी आप लोग ऐसे निन्दित कामको करते हैं यदि विना जाननेवाले ऐसा करें तो कोई कहनेकी बात नहीं है ॥ २५ ॥ इस प्रकार शिव देवसे विरोध करके कौन पुरुष अपनी कुशलता चाहता है, जो मनुष्य मध्याह्न समयमें प्राप्त हुये अभ्यागतका सत्कार नहीं करता है ॥ २६ ॥ तो वह अतिथि उसके पुण्यको लेकर तथा उसे अपने पापोंको देकर लौट जाता है, यदि साक्षात् शिवजी आवें तो फिर क्या

ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा शिवमायाविमोहितान् ॥ ज्ञात्वा ताञ्च्छंकरं नत्वा प्रोवाच ऋषिसत्तमान् ॥ २४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ज्ञातारश्च भवन्तो वै कुर्वते गर्हितं द्विजाः ॥ अज्ञातारो यदा कुर्य्युः किं पुनः कथ्यते पुनः ॥ २५ ॥ विरुद्धचैवं शिवं देवं कुशलं कस्समीहते ॥ मध्याह्नसमये यो वै नातिथिं च परामृशेत् ॥ २६ ॥ तस्यैव सुकृतं नीत्वा स्वीयं च दुष्कृतं पुनः ॥ संस्थाप्य चातिथिर्याति किं पुनः शिवमेव वा ॥ २७ ॥ यावल्लिंगं स्थिरं नैव जगतां त्रितये शुभम् ॥ जायते न तदा क्वापि सत्यमेतद्वदाम्यहम् ॥ २८ ॥ भवद्भिश्च तथा कार्यं यथा स्वास्थ्यं भवेदिह ॥ शिवलिंगस्य ऋषयो मनसा संविचार्य्यताम् ॥ २९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तास्ते प्रणम्योचुर्ब्रह्माणमृषयश्च वै ॥ किमस्माभिर्विधे कार्यं तत्कार्यं त्वं समादिश ॥ ३० ॥ इत्युक्तश्च मुनीस्तैस्सर्वलोकपितामहः ॥ मुनीशांस्तां स्तदा ब्रह्मा स्वयं प्रोवाच वै तदा ॥ ३१ ॥

है ? ॥ २७ ॥ मैं तुमसे यह सत्य कहता हूं कि—जबतक तीनों लोकोंमें यह शुभ लिंग कहीं स्थिर नहीं होता है ॥ २८ ॥ तबतक आप ऐसे उपाय करें कि—जिससे इस लोकमें स्वास्थ्य हो, हे ऋषियो ! ! ! शिवके ज्योतिर्लिङ्गको मनसेध्यान करो ॥ २९ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार कहे हुए वे ऋषि ब्रह्माजीसे बोले हे ब्रह्मन् ! अब हमको क्या करना उचित है ! सो आप आज्ञा करो ॥ ३० ॥ उन मुनीश्वरोंके ऐसा कहने पर वह सब लोकोंके पितामह ब्रह्माजी उस समय उन ऋषियोंसे स्वयं बोले ॥ ३१ ॥

ब्रह्माजी बोले, हे देवताओ ! देवी पार्वतीकी आराधना करके पश्चात् शिवजीकी प्रार्थना करो, यदि पार्वती साक्षात् योनिरूपा होजायँ तो ज्योतिर्लिंग स्थिरताको प्राप्त हो ॥ ३२ ॥ हे ऋषिसत्तम ! मैं उस विधिको इस समय कहता हूं आप सब सुनें और इसी विधिको करो तब वह पार्वतीजी प्रसन्न होंगी ॥ ३३ ॥ एक घटको स्थापन करके उत्तम आठ दल करके दूर्वा, जौके अंकुरोंसहित उसमें तीर्थोंके जलको भरो ॥ ३४ ॥ तत्पश्चात् वेद मन्त्रोंसे उस कलशको सेचनकर शास्त्रोक्त विधिसे शिवका स्मरण करके उसकी पूजा करो ॥ ३५ ॥ हे ऋषियो ! शतरुद्रिय मन्त्रोंसे उस कलशके जलसे उस लिंगको स्नान कराय उक्त मन्त्रोंसे मार्जन करके शान्तिको प्राप्त हो ॥ ३६ ॥ फिर योनि

ब्रह्मोवाच ॥ आराध्य गिरिजां देवीं प्रार्थयन्तु सुराश्शिवम् ॥ योनिरूपा भवेच्चेद्वै तदा तत्स्थिरतां व्रजेत् ॥ ३२ ॥ तद्विधिम्प्रवदाम्यद्य सर्वे शृणुत सत्तमाः ॥ तामेव कुरुत प्रेम्णा प्रसन्ना सा भविष्यति ॥ ३३ ॥ कुम्भमेकं च संस्थाप्य कृत्वाष्टदलमुत्तमम् ॥ दूर्वायवांकुरैस्तीर्थोदकमापूरयेत्ततः ॥ ३४ ॥ वेदमंत्रैस्ततस्तं वै कुंभं चैवाभिमंत्रयेत् ॥ श्रुत्युक्तविधिना तस्य पूजां कृत्वा शिवंस्मरन् ॥ ३५ ॥ तल्लिंगं तज्जलेनाभिषेचयेत्परमर्षयः ॥ शतरुद्रियमंत्रैस्तु प्रोक्षितं शांतिमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥ गिरिजां योनिरूपां च बाणं स्थाप्य शुभं पुनः ॥ तत्र लिंगं च तत्स्थाप्यं पुनश्चैवाभिमंत्रयेत् ॥ ३७ ॥ सुगन्धैश्चन्दनैश्चैव पुष्पधूपादिभिस्तथा ॥ नैवेद्यादिकपूजाभिस्तोषयेत्परमेश्वरम् ॥ ३८ ॥ प्रणिपातैः स्तवैः पुण्यैर्वाद्यैर्गानैस्तथा पुनः ॥ ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा जयेतिव्याहरेत्तथा ॥ ३९ ॥ प्रसन्नो भव देवेश जगदाह्लादकारक ॥ कर्ता पालयिता त्वञ्च संहर्ता त्वं निरक्षरः ॥ ४० ॥ जगदादिर्जगद्योनिर्जगदन्तर्गतोपि च ॥ शान्तो भव महेशान सर्वांल्लोकांश्च पालय ॥ ४१ ॥

रूपवाली गिरिजा तथा बाणको स्थापन कर वहां उसी लिंगका स्थापन और मार्जन करो ॥ ३७ ॥ और सुगन्ध तथा चन्दनोंसे, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि पूजासे परमेश्वर शिवको सन्तुष्ट करो ॥ ३८ ॥ प्रणाम तथा पुण्य स्तुतियोंसे बाजे गानोंसे धूमकर मंगलाचरण करो तत्पश्चात् जयका उच्चारण कर ॥ ३९ ॥ यह प्रार्थना करो कि--हे देवेश ! हे संसारको प्रसन्न करनेवाले ! आप प्रसन्न हों आप संसारके कर्ता हैं तथा पालन करनेवाले हैं आपही अविनाशी, संहार करनेवाले हैं ॥ ४० ॥ हे महेश्वर ! आप

संसारके आदि हैं तथा जगत्के उत्पन्न करनेवाले, संसारके अन्तर्यामी हैं, आप शान्त हो तथा संपूर्ण लोकोंको पालन करो ॥ ४१ ॥ इस विधिके करनेपर निस्सन्देह स्वास्थ्य होगा, तीनों लोकोंमें विकार (उत्पात) न होगा किन्तु सुख होगा ॥ ४२ ॥ सूतजी बोले, ऐसा सुनकर वे देवता तथा ऋषि ब्रह्माजीको प्रणाम करके, सब लोकोंके सुखकी इच्छासे उन शिवजीकी शरणको प्राप्त हुये ॥ ४३ ॥ उस समय परम भक्तिसे पूजित और सत्कार किये हुए शिवजी अति प्रसन्न होकर उन ऋषियोंसे बोले ॥ ४४ ॥ महादेवजी बोले, हे संपूर्ण देवताओ ! हे ऋषियो ! आप सब मेरे वचनको आदरसे सुनो यदि मेरा ज्योतिर्लिंग, योनिरूपसे धारण किया जाय तो सुख होगा ॥ ४५ ॥ विना

एवं कृते विधौ स्वास्थ्यं भविष्यति न संशय ॥ विकारो न त्रिलोकेस्मिन्भविष्यति सुखं सदा ॥४२॥ सूत उवाच॥इत्युक्तास्ते द्विजा देवाः प्रणिपत्य पितामहम् ॥ शिवं तं शरणं प्राप्तस्सर्वलोकसुखेप्सया॥४३॥ पूजितः परया भक्त्या प्रार्थितः शंकरस्तदा॥ सुप्रसन्नस्ततो भूत्वा तानुवाच महेश्वरः॥४४॥महेश्वर उवाच॥हे देवा ऋषयः सर्वे मद्वचः शृणुतादरात् ॥ योनिरूपेण मल्लिंगं धृतं चेत्स्यात्तदा सुखम् ॥४५॥ पार्वतीं च विना नान्या लिंगं धारयितुं क्षमा॥ तया धृतं च मल्लिंगं द्रुतं शान्तिं गमिष्यति ॥ ४६ ॥ सूत उवाच॥ तच्छ्रुत्वा ऋषिभिर्देवैस्सुप्रसन्नैर्मुनीश्वराः॥ गृहीत्वा चैव ब्रह्माणं गिरिजा प्रार्थिता तदा॥४७॥प्रसन्नां गिरिजांकृत्वा वृषभध्वजमेव च ॥पूर्वोक्तं च विधिं कृत्वा स्थापितं लिंगमुत्तमम् ॥४८॥ मंत्रोक्तेन विधानेन देवाश्च ऋषयस्तथा ॥चक्रुः प्रसन्नां गिरिजां शिवं च धर्महेतवे ॥४९॥ समानर्चुर्विशेषेण सर्वे देवर्षयः शिवम् ॥ब्रह्मा विष्णुः परे चैव त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥५०॥

पार्वतीके और कोई मेरे ज्योतिर्लिंगको धारण करनेको समर्थ नहीं है उन देवि पार्वतीजीसे धारण किया हुआ मेरा लिंग शीघ्र ही शान्तिको प्राप्त होगा ॥ ४६ ॥ सूतजी बोले, हे मुनीश्वरो ! यह सुनकर देवता तथा ऋषियोंने ब्रह्माजीको ग्रहण कर उस समय, पार्वतीजीकी प्रार्थना की ॥ ४७ ॥ पार्वतीजी तथा शिवजीको प्रसन्न करके पूर्वोक्त विधिके अनुसार श्रेष्ठ ज्योतिर्लिंगकी स्थापना की ॥ ४८ ॥ मंत्रोंमें कही हुई विधिके अनुसार देवता तथा ऋषियोंने अपने धर्मके हेतु पार्वती तथा शिवजीको प्रसन्न किया ॥ ४९ ॥ ब्रह्मा विष्णु

तथा सब देवर्षि; त्रिलोकीके चर अचर सहित सबोंने शिवजीकी विशेष पूजा की ॥ ५० ॥ उस समय शिवजी प्रसन्न हुए और जगत्की माता पार्वतीजी सन्तुष्ट हुई और उन्होंने उस रूपसे उस लिंगको धारण किया ॥ ५१ ॥ उस योनिरूप पार्वतीमें लिंगके स्थापित होनेपर उस समय बड़ा आनंद होने लगा और हे द्विजो ! वह ज्योतिर्लिंग तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगया ॥ ५२ ॥ वे पार्वती तथा शिवकी प्रतिमा हाटकेश नामसे प्रसिद्ध हुई उनके पूजन करनेसे सब प्रकार लोकोंको सुख होता है ॥ ५३ ॥ इस लोकमें संपूर्ण समृद्धि अति सुखदाई होती है और परलोकमें परम मुक्ति प्राप्त होती है इसमें कुछ सन्देह नहीं है वहां शिव पुरुष और पार्वती प्रकृति हैं ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहा

सुप्रसन्नः शिवो जातः शिवा च जगदम्बिका॥ धृतं तया च तल्लिंगं तेन रूपेण वै तदा॥५१॥ लोकानां स्थापिते लिंगे कल्याणं चाभवत्तदा॥प्रसिद्धं चैव तल्लिंगं त्रिलोक्यामभवद्द्विजाः॥५२॥हाटकेशमिति ख्यातं तच्छिवाशिवमित्यपि॥पूजनात्तस्य लोकानां सुखं भवति सर्वथा ॥५३॥ इह सर्वसमृद्धिः स्यान्नानासुखवहाधिका ॥ परत्र परमा मुक्तिर्नात्र कार्या विचारणा ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां लिंगस्वरूपकारणवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥सूत उवाच॥यथाभवल्लिंगरूपः संपूज्यस्त्रिभवे शिवः॥तथोक्तं वा द्विजाःप्रीत्या किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ॥ १॥ऋषय ऊचुः॥ अन्धकेश्वरलिंगस्य महिमानं वद प्रभो॥ तथान्यच्छिवलिंगानां प्रीत्या वक्तुमिहार्हसि ॥२॥ सूत उवाच ॥ पुराब्धिगर्तमाश्रित्य वसन् दैत्योऽन्धकासुरः॥ स्ववशं कारया मास त्रैलोक्यं सुरसूदनः ॥ ३ ॥ तस्माद्गर्ताच्च निस्सृत्य पीडयित्वा पुनः प्रजाः॥प्राविशच्च तदा दैत्यस्तं गर्तं सुपराक्रमः ॥४॥

पुराणभाषा० च० को० रु० लिंगरूपकारणवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! जिस प्रकार तीनों लोकोंमें ज्योतिर्लिंगरूप शिवजी पूजनीय हुए सो तुमसे प्रीति पूर्वक कहा अब क्या तुम्हारी और सुननेकी इच्छा है ? ॥ १ ॥ ऋषि बोले, हे प्रभो ! अन्धकेश्वर नामक शिवजीकी तथा और शिवके ज्योतिर्लिंगोंकी महिमाको प्रीतिसे आप कहें ॥ २ ॥ सूतजी बोले, समुद्रके गर्तका आश्रय करके अन्धकासुर नाम दैत्यने निवास करके देवताओंको पीडा दे तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लिया ॥३॥ बड़े पराक्रमवाले

उस दैत्यने उस गढेसे निकल सब प्रजाको पीडा दे फिर उसही गर्तमें प्रवेश किया ॥ ४ ॥ उस समय हे मुनीश्वरो ! संपूर्ण देवताओंने दुःखी हो बारम्बार शिवजीकी प्रार्थना करके शिवजीसे अपने सब दुःखोंको निवेदन किया ॥ ५ ॥ सूतजी बोले, तब उन देवताओंके वचन सुन कर, दुष्टोंके नाशकरनेवाले सत्पुरुषोंको गति देनेवाले; परमेश्वर सन्तुष्ट हो यह बोले ॥ ६ ॥ शिवजी बोले, हे देवताओ ! मैं देवताओंको पीडा देनेवाले उस अन्धक दैत्यको मारूंगा तुम सेनाको लेकर चलो मैं अभी अपने गणोंके सहित आता हूं ॥ ७ ॥ उस गढेसे देवता तथा ऋषियोंके द्वेषी, भयंकर दैत्यके, निकलनेपर वे देवता उस गर्तमें प्रवेश करते हुये ॥ ८ ॥ दैत्योंने और देवताओंने परस्पर बडा भयंकर युद्ध

देवाश्च दुःखिताः सर्वे शिवं प्रार्थ्य पुनःपुनः॥सर्वं निवेदयामासुस्स्वदुःखं च मुनीश्वराः ॥५॥ सूत उवाच॥ तदाकर्ण्य वचस्तेषां देवानां परमेश्वरः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा दुष्टहंता सतां गतिः ॥६॥ शिव उवाच ॥ घातयिष्यामि तं दैत्यमन्धकं सुरसूदनम् ॥ सैन्यं च नीयतान्देवा ह्यायामि च गणैस्सह ॥७॥ तस्माद्गर्तादंधके हि देवर्षिद्रुहि भीकरे ॥ निस्सृते च तदा तस्मिन्देवा गर्तमुपाश्रिताः ॥८॥ दैत्याश्च देवताश्चैव युद्धं चक्रुः सुदारुणम् ॥ शिवानुग्रहतो देवाः प्रबलाश्चाभवँस्तदा ॥९॥ देवैश्च पीडितः सोपियावद्गर्तमुपागतः ॥तावच्छूलेन संप्रोतः शिवेन परमात्मना॥१०॥तत्रत्यश्च तदा शंभुं ध्यात्वा संप्रार्थयत्तदा ॥ अन्तकाले च त्वां दृष्ट्वा तादृशो भवति क्षणात् ॥ ११ ॥ इत्येवं संस्तुतस्सोपि प्रसन्नः शंकरस्तदा ॥ उवाच वचनं तत्र वरं ब्रूहि ददामि ते ॥ १२ ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा स दैत्यः पुनरब्रवीत् ॥ सुप्रणम्य शिवं स्तुत्वा सत्त्वभावमुपाश्रितः ॥ १३ ॥

किया, उस समय शिवजीके अनुग्रहसे देवता प्रबल हो गये ॥ ९ ॥ देवताओंसे पीडित हुआ वह अन्धक दैत्य जभी उस गढेमें प्राप्त हुआ तभी परमात्मा शिवने अपने त्रिशूलसे उसे छेदन कर लिया ॥ १० ॥ तब उस दैत्यने शिवजीका ध्यान करके उनकी प्रार्थना की हे शिवजी ! अन्तकालमें आपका दर्शन करके तत्काल मनुष्य आपके सदृश होजाता है ॥ ११ ॥ उस समय इस प्रकार स्तुति किये हुए शिवजी प्रसन्नहो यह वचन बोले, तू वर मांग मैं देताहूं ॥ १२ ॥ ऐसा वचन सुनकर वह दैत्य बल तथा भक्तिमें प्राप्तहो शिवजीको प्रणाम तथा उनकी स्तुति

करके फिर बोला ॥ १३ ॥ अन्धक बोला, हे देवोंके स्वामी ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे अपनी शुभभक्ति दो और विशेष कृपाकरके यहां स्थित होओ ॥ १४ ॥ सूतजी बोले, उस दैत्यके ऐसा कहनेपर शिवजीने उसे उस गर्तमें डाल दिया और स्वयं संसारके अर्थ वहां लिंग रूपसे स्थित होगये ॥ १५ ॥ उस अन्धकेश नामवाले ज्योतिर्लिंगको जो मनुष्य नित्य पूजता है छैमासमेंही उसकी इच्छासिद्धि होती है इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ जो द्विज संसारके हित करनेवाले ज्योतिर्लिंगको अपनी वृत्तिके निमित्त छैमास पूजन करता है वह देवलक (पुजारी) कहाता है ॥ १७ ॥ जिस प्रकार देवलक है उसी प्रकार वह वहां होता है, देवलक जो कहा है उसमें द्विजका अधिकार नहीं है

अन्धक उवाच ॥ यदि प्रसन्नो देवेश स्वभक्तिं देहि मे शुभाम् ॥ कृपां कृत्वा विशेषेण संस्थितो भव चेह वै॥१४॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तेन दैत्यं तं तद्गर्ते चाक्षिपद्धरः ॥ स्वयं तत्र स्थितो लिंगरूपोऽसौ लोककाम्यया ॥१५॥ अन्धकेशं च तल्लिंगं नित्यं यः पूजयेन्नरः ॥ षण्मासाज्जायते तस्य वांछासिद्धिर्न संशयः ॥ १६ ॥ वृत्त्यर्थं पूजयेल्लिंगं लोकस्य हितकारकम् ॥ षण्मासं यो द्विजश्चैव स वै देवलकः स्मृतः ॥ १७ ॥ यथा देवलकश्चैव स भवेदिह वै तदा ॥ देवलकश्च यः प्रोक्तो नाधिकारो द्विजस्य हि ॥ १८ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ देवलकश्च कः प्रोक्तः किं कार्यं तस्य विद्यते ॥ तत्त्वं वद महाप्राज्ञ लोकानां हितहेतवे ॥ १९ ॥ सूत उवाच ॥ दधीचिर्नाम विप्रो यो धर्मिष्ठो वेदपारगः ॥ शिवभक्तिरतो नित्यं शिवशास्त्रपरायणः ॥ २० ॥ तस्य पुत्रस्तथा ह्यासीत्स्मृतो नाम्ना सुदर्शनः ॥ तस्य भार्या दुकूला च नाम्ना दुष्टकुलोद्भवा ॥२१॥ तद्वशे स च भतासीत्तस्य पुत्र चतुष्टयम् ॥ सोऽपि नित्यं शिवस्यैव पूजां च स्म करोत्यसौ ॥ २२ ॥

॥ १८ ॥ ऋषि बोले, हे बडे बुद्धिमान् ! देवलक किसको कहते हैं और उसका क्या कार्य है, सो आप संसारके उपकारके निमित्त कहें ॥ १९ ॥ सूतजी बोले, दधीचिनामवाला एक ब्राह्मण था धर्मात्मा वेदोंमें पारंगत, नित्य शिवजीकी भक्तिमें तत्पर तथा शिवके शास्त्रोंमें परायण था ॥ २० ॥ उसका पुत्र भी अपने पिताके समान गुणी सुदर्शननामसे प्रसिद्ध था, उसकी स्त्री दुष्टकुलमें उत्पन्न हुई दुकूला नामसे प्रसिद्ध थी ॥ २१ ॥ उसका पति उसके वशीभूत था और उसके चार पुत्र हुए

वह नित्य शिवका पूजन करता था ॥ २२ ॥ एक समय जातिवालोंके उत्सवके कारण दधीचिको दूसरे गांवमें निवास करना पडा और उसे कुटुम्बियोंने आग्रहसे नहीं आने दिया ॥ २३ ॥ तब वह शैवोंमें श्रेष्ठ दधीचि अपने पुत्रसे कहकर कि तुम प्रतिदिन शिवकी भक्तिमें तत्पर हो पूजन करना, प्रमाद न करना ऐसा समझाकर चले गये ॥ २४ ॥ उसके पुत्र सुदर्शनने भी शिवजीका पूजन किया, हे मुनीश्वरो ! इस प्रकार बहुत समय बीत गया ॥ २५ ॥ होते होते कभी शिवरात्रि आई उस दिन सबोंने व्रत किया ॥ २६ ॥ उस समय दैववशात् वह सुदर्शन पूजाको करके घरको जाय शिवरात्रिको स्त्री प्रसंग करके फिर पूजा गृहमें आया ॥ २७ ॥ उस रात्रिमें उसने विना

दधीचेस्तु तदा ह्यासीद्ग्रामान्तरनिवेशनम् ॥ ज्ञातिसंयोगतश्चैव ज्ञातिभिर्न स मोचितः ॥ २३ ॥ कथयित्वा च पुत्रं स शिवभक्तिरतोभव ॥ इत्युक्त्वा स गतो मुक्तो दाधीचिश्शैवसत्तमः ॥ २४ ॥ सुदर्शनस्तत्पुत्रोऽपि शिवपूजां चकार ह ॥ एवं चिरतरः कालो व्यतीयाय मुनीश्वराः ॥ २५ ॥ एवं च शिवरात्रिश्च समायाता कदाचन ॥ तस्यां चोपोषितास्सर्वे स्वयं संयोगतस्तदा ॥ २६ ॥ पूजां कृत्वा गतस्सोऽपि सुदर्शन इति स्मृतः ॥ स्त्रीसंगं शिवरात्रौ तु कृत्वा पुनरिहागतः ॥ २७ ॥ न स्नानं तेन च कृतं तद्रात्र्यां शिवपूजनम् ॥ तेन तत्कर्मपाकेन क्रुद्धः प्रोवाच शङ्करः ॥ २८ ॥ महेश्वर उवाच ॥ शिवरात्र्यां त्वया दुष्ट सेवनं च स्त्रियाः कृतम् ॥ अस्नातेन मदीया च कृता पूजाविवेकिना ॥ २९ ॥ ज्ञात्वा चैवं कृतं यस्मात्तस्मात्त्वं जडतां व्रज॥ममास्पृश्यो भव त्वं च दूरतो दर्शनं कुरु ॥३०॥ सूत उवाच ॥ इति शप्तो महेशेन दाधीचिस्स सुदर्शनः ॥ जडत्वं प्राप्तवान्सद्यश्शिवमाया विमोहितः ॥ ३१ ॥ एतस्मिन्समये विप्रा दधीचिः शैवसत्तमः ॥ ग्रामान्तरात्समायातो वृत्तान्तं श्रुतवाँश्च सः ॥ ३२ ॥

स्नान किये शिवका पूजन किया उस कर्मके करनेसे शंकर क्रोधित होकर बोले ॥ २८ ॥ शिवजी बोले, हे दुष्ट ! शिवरात्रिको तूने स्त्रीके साथ प्रसंग किया और फिर विवेक रहित तूने विना स्नान किये मेरा पूजन किया ॥ २९ ॥ कारण कि जानकर तूने ऐसा पाप किया इससे तू जडताको प्राप्त हो मुझे स्पर्श अयोग्य हुआ तू दूरसे दर्शन कर ॥ ३० ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार शिवजीसे शाप दिया हुआ वह दधीचिका पुत्र सुदर्शन शीघ्रही शिवकी मायासे मोहित हो जडताको प्राप्त होगया ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसी अवसरमें वह शैवोंमें श्रेष्ठ दधीचि

ग्रामान्तरसे आये और उस वृत्तान्तको सुना ॥ ३२ ॥ वह भी शिवके धिक्कारनेसे अति दुःखित हुए रोने लगे और बोले हाय पुत्र कर्म रूप दुःखसे मैं नष्ट हुआ ॥ ३३ ॥ वह सत्पुरुषोंमें माननाय दधीचि इस प्रकार बारम्बार कहते थे कि इस कुपुत्रने मेरा उत्तम कुल नष्ट कर दिया ॥ ३४ ॥ उस दुराचारी पुत्रने अपनी स्त्रीको भी शीघ्र व्यभिचारिणी कर दिया तब उसके पिताने पश्चाताप करके उसे धिक्कारा ॥ ३५ ॥ और उसके पिताने वहां अपने पुत्रके सुधार के निमित्त भली प्रकार अति भक्तिसे सुन्दर विधियोंसे पार्वतीकी पूजा की ॥ ३६ ॥ तथा सुदर्शनने भी स्वयं चंडीके पूजनके विधान सहित महाभक्तिसे शुभस्तोत्रों सहित गिरिजाको पूजा ॥ ३७ ॥ इस प्रकार उन दोनों

शिवेन भर्त्सितः सोऽपि दुःखितोऽभूदतीव हि ॥ रुरोद हा हतोऽस्मीति दुःखेन सुतकर्मणा ॥ ३३ ॥ पुनःपुनरुवाचेति स दधीचिस्सतां मतः ॥ अनेनेदं कुपुत्रेण हतं मे कुलमुत्तमम् ॥ ३४ ॥ स पुत्रोऽपि हतो भार्यां पुंश्चलीं कृतवान्द्रुतम् ॥ पश्चात्ताप मनुप्राप्य स्वपित्रा परिभर्त्सितः ॥ ३५ ॥ तत्पित्रा गिरिजा तत्र पूजिता विधिभिर्वरैः ॥ सुयत्नतो महाभक्त्या स्वपुत्रसुखहेतवे ॥ ३६ ॥ सुदर्शनोऽपि गिरिजां पूजयामास च स्वयम् ॥ चण्डीपूजनमार्गेण महाभक्त्या शुभैः स्तवैः ॥ ३७ ॥ एवं तौ पितृपुत्रौ हि नानोपायैः सुभक्तितः ॥ प्रसन्नां चक्रतुर्देवीं गिरिजां भक्तवत्सलाम् ॥३८॥ तयोः सेवाप्रभावेण प्रसन्ना चण्डिका तदा ॥ सुदर्शनं च पुत्रत्वे चकार गिरिजा मुने ॥ ३९ ॥ शिवं प्रसादयामास पुत्रार्थं चण्डिका स्वयम् ॥ क्रुद्धाऽक्रुद्धा पुनश्चण्डी तत्पुत्रस्य प्रसन्नधीः ॥ ४० ॥ अथाज्ञाय प्रसन्नं तं महेशं वृषभध्वजम् ॥ नमस्कृत्य स्वयं तस्य हृत्सङ्गे तं न्यवेशयत् ॥ ४१ ॥ घृतस्नानं ततः कृत्वा पुत्रस्य गिरिजा स्वयम् ॥ त्रिरावृत्तोपवीतं च ग्रन्थिनैकेन संयुतम् ॥ ४२ ॥

पितापुत्रोंने, भक्तवत्सला, देवी पार्वतीको अनेक उपायोंसे तथा सुन्दर भक्तिसे प्रसन्न किया ॥ ३८ ॥ हे मुने ! उस समय उन दोनों की सेवाके प्रभावसे देवी चण्डिका प्रसन्न होगई और सुदर्शनको अपना पुत्र बनाया ॥ ३९ ॥ देवी चण्डिकाने स्वयं उस सुदर्शन पुत्रके निमित्त शिवजीको प्रसन्न किया और उस पुत्रसे क्रोधित हुई भी चंडीजी अक्रोधित हो प्रसन्न हुई ॥ ४० ॥ और उन वृषभध्वज महेशको प्रसन्न हुआ जान उन्हें नमस्कार करके स्वयं शिवजीके आगे गोदमें उसको समर्पण किया ॥ ४१ ॥ और पार्वतीने उस पुत्रको स्वयं घृतसे स्नान

कराय एक ग्रंथीसे युक्त हुए तीनतारके यज्ञोपवीतको धारण कराया ॥ ४२ ॥ उस समय अम्बिकाने प्रीतिसे उस सुदर्शन पुत्रको यज्ञोपवीत दिया तथा सोलह अक्षरोंसे युक्त शिवगायत्रीका उपदेश दिया ॥ ४३ ॥ उस समय बालकने श्रीशब्दपूर्वक " ॐनमः शिवाय " इस मंत्रसे सोलहबार संकल्प तथा पूजा की ॥ ४४ ॥ स्नानसे आदि लेकर प्रणाम पर्यन्त मन्त्रोंका तथा बाजों सहित ऋषियोंके निकट शिवजीका पूजन किया ॥ ४५ ॥ प्रसन्न हुई चंडिकाने उस समय अनेक मन्त्रोंका पाठ कराया तब प्रसन्नात्मा शिवजी बोले ॥ ४६ ॥ हे पुत्र मेरे अर्पण किया हुआ जो कुछ धन धान्यादिक है वह सम्पूर्ण तुमको ग्रहण करना चाहिये इससे कुछ दोष नहीं होगा ॥ ४७ ॥ मेरे कार्यमें और विशेषकर

सुदर्शनाय पुत्राय ददौ प्रीत्या तदाम्बिका ॥ उद्दिश्य शिवगायत्रीं षोडशाक्षरसंयुताम् ॥ ४३ ॥ तदोंनमः शिवायेति श्रीशब्द पूर्वकाय च ॥ वारान्षोडश संकल्पपूजां कूर्यादयं बटुः ॥ ४४ ॥ आस्नानादिप्रणामान्तं पूजयन्वृषभध्वजम् ॥ मंत्रवादित्रपूजा भिस्सर्षीणां सन्निधौ तथा ॥ ४५ ॥ नाममंत्राननेकांश्च पाठयामास वै तदा ॥ उवाच सुप्रसन्नात्मा चण्डिका च शिवस्तथा ॥ ४६ ॥ मदर्पितं च यत्किञ्चिद्धनधान्यादिकन्तथा ॥ तत्सर्वं च त्वया ग्राह्यं न दोषाय भविष्यति ॥४७॥ मम कृत्ये भवान्मुख्यो देवीकृत्ये विशेषतः ॥ घृततैलादिकं सर्वं त्वया ग्राह्यं मदर्पितम् ॥४८॥ प्राजापत्यं भवेद्यर्हि तर्ह्येको हि भवान्भवेत् ॥ तदा पूजा च सम्पूर्णान्यथा सर्वा च निष्फला ॥४९॥ तिलकं वर्तुलं कार्यं स्नानं कार्यं सदा त्वया ॥ शिवसन्ध्या च कर्तव्या गायत्री च तदीयिका ॥५०॥ मत्सेवां प्रथमं कृत्वा कार्यमन्यत्कुलोचितम् ॥ एवं कृतेऽखिले भद्रं दोषाः क्षान्ता मया तव ॥५१॥

देवीके कृत्यमें तुम मुख्य रहना अर्थात् पूजनमें आलस्य न करना, मेरे अर्पण किये हुए घृत तेल आदिक सम्पूर्ण वस्तु ग्रहण करो ॥ ४८ ॥ यदि प्राजापत्य व्रत होवे तो तू मुख्य होगा और उस समय पूजा सम्पूर्ण होगी, नहीं तो सब पूजन निष्फल होगा और ॥४९॥ तुम सदा वर्तुलाकार (गोल) तिलक लगाना तथा नित्य स्नान करना तुमको शिवजीकी सन्ध्या तथा शिवजीकी गायत्री जपनी योग्य है ॥५०॥ पहले मेरी सेवा करना फिर अपने कुलोचित कार्य करना योग्य है, ऐसा करनेसे तेरा कल्याण होगा, मैंने तुम्हारे सब दोष निवारण

किये ॥ ५१ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहके परमात्मा शिवने उस समय उसके चारों पुत्रोंको चारों दिशाओंमें अभिषिक्त किया, अर्थात् राज्य तिलक किया ॥ ५२ ॥ चण्डीने सुदर्शन पुत्रको अपने निकट स्थापनकर उसके और पुत्रोंको अनेक वरदान दे यह प्रेरणा की ॥ ५३ ॥ देवी बोली, तुम दोनोंके मध्यमें यह जो मेरा बटुक (भक्तबालक) है उसकी नित्य विजय होगी इसमें कुछ विचार न करना ॥ ५४ ॥ हे पुत्र ! जिसने तुझको पूजा मानो उसने मुझे पूजा, तुझको निरन्तर अपना कर्म करना योग्य है ॥ ५५ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार शिव पार्वतीने उस महात्मा सुदर्शनको पुत्रोंसहित अनेक वरदान किये ॥ ५६ ॥ कारण कि शिव पार्वतीने उन्हें स्थापित किया है इससे

॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तस्य पुत्राश्च चत्वारो बटुकास्तदा ॥ अभिषिक्ताश्चतुर्दिक्षु शिवेन परमात्मना ॥५२॥चण्डी चैवात्म निकटे पुत्रं स्थाप्य सुदर्शनम् ॥ तत्पुत्रान्प्रेरयामास वरान्दत्त्वा ह्यनेकशः ॥५३॥ देव्युवाच ॥ उभयोर्युवयोर्मध्ये बटुको यो भवेन्मम ॥ तस्य स्याद्विजयो नित्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ ५४ ॥ भवांश्च पूजितो येन तेनैवाहं प्रपूजिता ॥ कर्तव्यं हि भवद्भिश्च स्वीयं कर्म सदा सुत ॥५५॥ सूत उवाच ॥ एवं तस्मै वरान्दत्तास्सपुत्राय महात्मने॥ सुदर्शनाय कृपया शिवाभ्यां जगतां कृते॥५६॥शिवाभ्यां स्थापिता यस्मात्तस्मात्तं बटुकाः स्मृताः॥तपोभ्रष्टाश्च ये जाताः स्मृतास्तस्मात्तपोधमाः ॥५७॥ शिवयोः कृपया सर्वे विस्तारं बहुधा गताः॥तेषां च प्रथमा पूजा महापूजा महात्मनः॥५८॥तेन यावत्कृता नैव पूजा वै शंकरस्य च ॥ तावत्पूजा न कर्त्तव्या कृता चेन्न शुभापि सा ॥ ५९ ॥ शुभं वाप्यशुभं वापि बटुकं न परित्यजेत् ॥ प्राजापत्ये च भोज्ये वै बटुरेको विशिष्यते ॥६०॥ शिवयोश्च तथा कार्ये विशेषोऽत्र प्रदृश्यते ॥ तदेव शृणु सुप्राज्ञ यथाहं वच्मि तेऽनघ ॥ ६१ ॥

वे बटुक कहे गये तपोभ्रष्ट होनेसे वे तपोऽधम कहाये ॥ ५७ ॥ वे सब शिव पार्वतीकी कृपासे बहुत विस्ताको प्राप्त हुए उन सबोंमें भी उस महात्माकी परम पूजा हुई ॥ ५८ ॥ इस कारण उन्होंने जबतक शिवजीकी पूजा न की हो तबतक औरकी पूजा नहीं करनी चाहिये, यदि और पूजा की जाय तो शुभदायक न होगी ॥ ५९ ॥ शुभकार्य हो अथवा अशुभ हो बटुकको त्यागन न करे कारण कि, प्राजापत्य भोज्यमें केवल बटुककोही विशेष कहा है ॥ ६० ॥ तथा शिव पार्वतीके कार्यमें एक बटुकही विशेष दीखता है सो हे बुद्धिमान् !

हे निष्पाप ! जैसे मैं तुमसे कहताहूं सो सुनो ॥६१॥ उस श्रेष्ठ राजाके नगरमें अन्धकेशके समीप प्राजापत्यके नित्य भोजनवाले नियममें॥६२॥ शिवजीके अनुग्रहके कारण जो अद्भुत वृत्तान्त हुआ सो अब प्रीतिसे सुनो जैसा मैंने सुना है वैसा कहताहूँ ॥ ६३ ॥ सन्तुष्ट हुए शिवजीने उस राजाको एक ध्वजा प्रदान की और उन देवोंके स्वामी शिवजीने कृपाकरके राजासे कहा ॥ ६४ ॥ हे राजन् ! मेरे प्राजापत्य यज्ञके संपूर्ण होनेपर रात्रिको ध्वजा गिरेगी और प्रातःकालको बढेगी ॥ ६५ ॥ अन्यथा मेरी यह ध्वजा रात्रिमें भी स्थिर होगी ऐसा राजासे कहके प्रसन्न हुए कृपासागर शिवजी अन्तर्द्धान होगये ॥६६॥ हे महामुने ! उस राजाका उसी प्रकार नियम हुआ तथा शिवकी पूजाके विधानसे प्राजापत्य

तस्यैव नगरे राज्ञो भद्रस्य नित्यभोजने ॥ प्राजापत्यस्य नियमे ह्यन्धकेशसमीपतः ॥ ६२ ॥ यज्जातमद्भुतं वृत्तं शिवानुग्रहकारणात् ॥ श्रूयतां तच्च सुप्रीत्या कथयामि यथाश्रुतम् ॥ ६३ ॥ध्वज एकश्च तद्राज्ञे दत्तस्तुष्टेन शंभुना ॥ प्रोक्तश्च कृपया राजा देवदेवेन तेन सः ॥ ६४ ॥ प्रातश्च वर्ध्यतां राजन्ध्वजो रात्रौ पतिष्यति ॥ मम त्वेवं च सम्पूर्णे प्राजापत्ये तथा पुनः ॥ ६५ ॥ अन्यथायं ध्वजो मे हि रात्रावपि स्थिरो भवेत्॥इत्युक्त्वान्तर्हितश्शंभू राज्ञेतुष्टः कृपानिधिः ॥ ६६ ॥ तथेति नियमश्चासीत्तस्य राज्ञोमहामुने ॥ प्राजापत्यंकृतंनित्यंशिवपूजाविधानतः ॥ ६७ ॥ स्वयं प्रातर्विवर्द्धेत ध्वजः सायं पतेदिति ॥ यदि कार्यं च सम्पूर्णं जातं चैव भवेदिह ॥ ६८ ॥ एकस्मिन्समये चात्र बटोः कार्यं पुरा ह्यभूत् ॥ ध्वजः स पतितो वै हि ब्रह्मभोजं विनापि हि ॥ ६९ ॥ दृष्ट्वा तच्च तदा तत्र पृष्टा राज्ञा च पण्डिताः ॥ भुञ्जते ब्राह्मणा ह्यत्र नोत्थितो वै ध्वजस्त्विति ॥ ७० ॥ कथं च पतितः सोऽत्र ब्राह्मणा ब्रूत सत्यतः ॥ ते पृष्टाश्च तदा प्रोचुर्ब्राह्मणाः पण्डितोत्तमाः ॥ ७१ ॥

(ब्रह्मभोज) किया ॥ ६७ ॥ और जब सम्पूर्ण कार्य समाप्त होगया तब प्रातःकाल वह ध्वजा स्वयं बढी तथा सायंकालमें वह गिरपडी ॥ ६८ ॥ एक समय वहां बटुकका कार्य पहले होगया तो ब्रह्मभोजनके विना ही वह ध्वजा गिरी ॥ ६९ ॥ उस समय यह चरित्र देखके राजाने पंडितोंसे पूछा कि, अब यहां ब्राह्मण भोजन करते हैं परन्तु ध्वजा तो नहीं उठी ॥ ७० ॥ हे ब्राह्मणो ! वह ध्वजा क्यों इस प्रकार गिर गई सो सब सत्य सत्य कहो, इस प्रकार पूंछनेपर वे श्रेष्ठ पंडित ब्राह्मण उस समय बोले ॥ ७१ ॥

हे महाराज ! इस ब्रह्मभोजनमें पहले चण्डीके बटुकको भोजन कराया, अतः शिवजी सन्तुष्ट हुए इस कारण पहलेही ध्वजा गिरी ॥ ७२ ॥ यह सुनकर वह राजा तथा और भी सम्पूर्ण मनुष्य विस्मित हुये और वहां उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ७३ ॥ इस प्रकार शिवजीने उनकी महिमाको बढाया, इसी कारण पहले विद्वानोंने बटुकोंको श्रेष्ठ कहा है ॥ ७४ ॥ उन बटुकोंसे ही पहले शिवकी पूजा करनी चाहिये, अन्यथा सफल नहीं होती शिवजीके वचनसे इसमें और किसीका अधिकार नहीं है ॥ ७५ ॥ उत्तारण करना योग्य है जिससे कि—पूजा पूर्ण होवे, उनका इतनाही कार्य है और कुछ कार्य नहीं ॥ ७६ ॥ हे मुनीश्वरो ! जो आपने मुझसे पूंछा सो सब मैंने तुझसे कह दिया, जिसको

ब्रह्मभोजे महाराज वटुको भोजितः पुरा॥चण्डीपुत्रश्शिवस्तुष्टस्तस्माच्च पतितो ध्वजः॥७२॥तच्छ्रुत्वा नृपतिस्सोऽथ जनाश्चान्ये ऽपि सर्वशः ॥ अभवन्विस्मितास्तत्र प्रशंसां चक्रिरे ततः ॥७३॥ एवं च महिमा तेषां वर्द्धितः शङ्करेण हि ॥ तस्माच्च वटुकाः श्रेष्ठाः पुरा विद्भिः प्रकीर्तिताः ॥७४॥ शिवपूजा तु तैः पूर्वमुत्ताार्य्या नान्यथा पुनः॥ अन्येषां नाधिकारोऽस्ति शिवस्य वचना दिह ॥ ७५ ॥ उत्तारणं च कार्य्यं वै पूजा पूर्णा भवत्विति ॥ एतावदेव तेषां तु कार्यं नान्यत्तथैव च ॥७६॥ एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टं च मुनीश्वराः॥यच्छ्रुत्वा शिवपूजायाः फलं प्राप्नोति वै नरः ॥७७॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां वटुकोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ ऋषय ऊचुः ॥ ज्योतिषां चैव लिंगानां माहात्म्यं कथयाधुना ॥ उत्पत्तिं च तथा तेषां ब्रूहि सर्वं यथाश्रुतम् ॥१॥ सूत उवाच॥शृण्वन्तु विप्रा वक्ष्यामि तन्माहात्म्यं जनिं तथा ॥ संक्षेपतो यथाबुद्धि सद्गुरोश्च मया श्रुतम् ॥२॥ एतेषां चैव माहात्म्यं वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ शक्यते न मुनिश्रेष्ठास्तथापि कथयामि वः ॥ ३ ॥

सुनकर मनुष्य पूजाके फलको प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० बटुकोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ऋषि बोले, अब ज्योतिर्लिंगोंके माहात्म्यको तथा उनकी उत्पत्तिको, जैसा आपने सुना है उसी प्रकार वर्णन करो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, हे ! ब्राह्मणो ! सुनो, ज्योतिर्लिंगोंके माहात्म्यको तथा उत्पत्तिको संक्षेपसे अपनी बुद्धिके अनुसार कहता हूं जैसा कि मैंने अपने सद्गुरुसे सुना है ॥ २ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! इन शिवलिंगोंके माहात्म्यको सौ वर्षोंमें भी कहनेकी सामर्थ्य नहीं

होती तथापि मैं आपसे कहता हूं ॥ ३ ॥ हे मुने ! उन ज्योतिर्लिंगोंमेंसे सोमनाथ प्रथम कहे हैं सो आप पहले उनहींके माहात्म्यको सावधानीसे सुनो ॥ ४ ॥ हे मुनीश्वरो ! महात्मा दक्षने चन्द्रमाको अश्विनी आदि सत्ताईस कन्याओंका दान किया ॥ ५ ॥ यह कन्या, स्वामी चन्द्रमाको प्राप्त होकर अधिक शोभित हुई और चन्द्रमा भी उन कन्याओंको पाकर निरन्तर शोभित हुआ ॥ ६ ॥ जैसे सुवर्णसे मणिकी शोभा होती है, तथा मणिसे सुवर्ण शोभित होता है, इसी प्रकार वे परस्पर शोभित हुए, उनका जो वृत्तान्त हुआ सो सुनो ॥ ७ ॥ चन्द्रमाको उन सम्पूर्ण स्त्रियोंमें रोहिणी नामवाली पत्नी जैसी प्रिया थी वैसी और कोई प्रिया न थी ॥ ८ ॥ और शेष वे कन्या दुःखी हुई अपने पिताके शरणमें

सोमनाथश्च तेषां वै प्रथमः परिकीर्तितः॥तन्माहात्म्यं शृणु मुने प्रथमं सावधानतः ॥ ४ ॥सप्तविंशन्मिताः कन्या दक्षेण च महात्मना ॥तेन चन्द्रमसे दत्ता अश्विन्याद्या मुनीश्वराः॥५॥चन्द्रं च स्वामिनं प्राप्य शोभमाना विशेषतः॥चन्द्रोऽपि चैव ताः प्राप्य शोभते स्म निरन्तरम् ॥६॥ हेम्ना चैव मणिर्भाति मणिना हेम चैव हि ॥ एवं च समये तस्य यज्जातं श्रूयतामिति ॥७॥ सर्वास्वपि च पत्नीषु रोहिणी नाम या स्मृता ॥ यथैका सा प्रिया चासीत्तथान्या न कदाचन ॥८॥अन्याश्च दुःखमापन्नाः पितरं शरणं ययुः ॥ गत्वा तस्मै च यद्दुःखं तथा ताभिर्निवेदितम् ॥९॥ दक्षस्स च तथा श्रुत्वा दुःखं च प्राप्तवांस्तदा॥ समागत्य द्विजाश्चन्द्रं शान्त्यावोचद्वचस्तदा ॥ १० ॥ दक्ष उवाच ॥ विमले च कुले त्वं हि समुत्पन्नः कलानिधे ॥ आश्रितेषु च सर्वेषु न्यूनाधिक्यं कथं तव ॥११॥ कृतं चेत्तकृतं तच्च न कर्तव्यं त्वया पुनः ॥ वर्तनं विषमत्वेन नरकप्रदमीरितम् ॥ १२ ॥

गई, जाके उनसे अपने दुःखको निवेदन किया ॥ ९ ॥ उस समय उनके दुःखको सुनकर दक्षजी दुःखी हुए, हे ब्राह्मणो ! तब दक्षजी चन्द्रमाके समीप आकर उससे शांतिसे यह वचन बोले ॥ १० ॥ दक्षजी बोले, हे चन्द्रमा ! आप पवित्र कुलमें उत्पन्न हुए हैं, अपने सब आश्रितोंमें आपकी न्यूनता और अधिकता कैसी ? ॥ ११ ॥ यदि आपने ऐसा कृत्य किया है तो अब फिर ऐसा कार्य न करना । न्यूनता, अधिकताके साथ व्यवहार करना नरकका देनेवाला कहा है १२ ॥

सूतजी बोले, दक्षजी इस प्रकार स्वयं अपने जामाता चन्द्रमासे प्रार्थना करके, अति निश्चयको प्राप्त हो अपने घरको चले गये ॥ १३ ॥ चन्द्रमाने भी उस शिवमायाके प्रभावसे मोहित हो दक्षके वचनोंपर ध्यान नहीं दिया, कारण कि, जिस मायासे सम्पूर्ण संसार मोहित हो रहा है ॥ १४ ॥ जिस समय जिसका शुभ होनेवाला होता है उसका शुभ अवश्य होता है तथा जिसका अशुभ होनहार होता है, उसका शुभ किस प्रकार हो सकता है ॥ १५ ॥ चन्द्रमाने भी बलवान् भावी वशीभूत होकर उनका वचन नहीं माना और रोहिणीमें आसक्त हो और किसी स्त्रीका आदर न किया ॥ १६ ॥ यह सुन कर फिर भी वह विद्वान् दक्षजी दुःखित ही आकर चन्द्रमासे बडी नीतिके

सूत उवाच॥दक्षश्चैवं च संप्रार्थ्य चन्द्रं जामातरं स्वयम्॥जगाम मन्दिरं स्वं वै निश्चयं परमं गतः॥१३॥चंद्रोऽपि वचनं तस्य न चकार विमोहितः ॥ शिवमायाप्रभावेण यया संमोहितं जगत् ॥१४॥ शुभं भावि यदा यस्य शुभं भवति तस्य वै ॥ अशुभं च यदा भावि कथं तस्य शुभं भवेत्॥ १५॥चन्द्रोऽपि बलवद्भाविवशान्मेने न तद्वचः॥रोहिण्यां च समासक्तो नान्यां मेने कदाचन ॥१६॥ तच्छ्रुत्वा पुनरागत्य स्वयं दुःखसमन्वितः ॥ प्रार्थयामास चन्द्रं स दक्षो दक्षस्सुनीतितः ॥ १७ ॥ दक्ष उवाच ॥ श्रूयतां चन्द्र यत्पूर्वं प्रार्थितो बहुधा मया॥न मानितं त्वया यस्मात्तस्मात्त्वं च क्षयी भव॥१८॥सूत उवाच ॥ इत्युक्ते तेन चन्द्रो वै क्षयी जातः क्षणादिह ॥ हाहाकारो महानासीत्तदेन्दौ क्षीणतां गते ॥१९॥ देवर्षयस्तदा सर्वे किं कार्य्यं हा कथं भवेत् ॥ इति दुःखं समापन्ना विह्वला ह्यभवन्मुने ॥२०॥ विज्ञापिताश्च चन्द्रेण सर्वे शक्रादयस्सुराः ॥ऋषयश्च वसिष्ठाद्या ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥२१॥

साथ प्रार्थना करने लगे ॥ १७ ॥ दक्षजी बोले, हे चन्द्रमा ! सुनो मैंने जो तुमसे अनेक प्रकार प्रार्थना की तो भी आपने नहीं मानी इस कारण तुमको क्षयी हो ॥ १८ ॥ सूतजी बोले, उन दक्षके ऐसा कहतेही वह चन्द्रमा क्षणमात्रमें नाश हो गये और चन्द्रमाके नाशको प्राप्त होनेपर बडा हाहाकार होने लगा ॥ १९ ॥ हे मुने ! उस समय सब देवता तथा ऋषि कहते थे कि, हाय अब कैसे कार्य होगा ? इस प्रकार दुःखित अति व्याकुल हुए ॥ २० ॥ तब चन्द्रमासे प्रेरणा किये हुए संपूर्ण इन्द्र आदि देवता, तथा वशिष्ठ आदि ऋषि

ब्रह्माकी शरणमें गये ॥ २१ ॥ हे मुने ! उस समय वहां जाकर अति व्याकुल हुए देवता और ऋषियोंने ब्रह्माजीसे वह संपूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी उनका वचन सुनके बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुए तथा शिवमायाकी अति प्रशंसा कर उनको सुनाते हुए यह बोले ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी बोले, अहो ! यह सब संसारको दुःखदायक बड़ा कष्ट उपस्थित हो गया, दक्षजीके शापसे नितान्त ही चन्द्रमा दूषित (क्षयी) हुआ ॥ २४ ॥ हे देवताओ ! हे ऋषियो ! उस दूषित चन्द्रमाने ऐसे अनेक कर्म किये हैं सो तुम चन्द्रमाके पहले कर्मोंको सुनो ॥ २५ ॥ उस दुष्टने बृहस्पतिके घर जाकर उनकी स्त्री ताराको हरण किया, फिर वह दैत्योंके समीप उपस्थित हुआ ॥ २६ ॥

गत्वापि तु तदा प्रोचुस्तद्वृत्तं निखिलं मुने ॥ ब्रह्मणे ऋषयो देवा नत्वा नुत्वातिविह्वलाः ॥२२॥ ब्रह्मापि तद्वचः श्रुत्वा विस्मयं परमं ययौ ॥ शिवमायां सुप्रशस्य श्रावयंस्तानुवाच ह ॥२३॥ ब्रह्मोवाच ॥ अहो कष्टं महज्जातं सर्वलोकस्य दुःखदम्॥ चन्द्रस्तु सर्वदा दुष्टो दक्षश्च शप्तवानमुम् ॥२४॥ सर्वं दुष्टेन चन्द्रेण कृतं कर्माप्यनेकशः ॥ श्रूयतामृषयो देवाश्चन्द्रकृत्यं पुरातनम् ॥२५॥ बृहस्पतेर्गृहं गत्वा तारा दुष्टेन वै हृता ॥ तस्य भार्या पुनश्चैव स दैत्यान्समुपस्थितः॥२६॥समाश्रितस्तदा दैत्यान्युद्धं देवैश्चकार ह ॥ मयाऽत्रिणा निषिद्धश्च तस्मै तारां ददौ शशी॥२७॥ तां च गर्भवतीं दृष्ट्वा न गृह्णामीति सोऽब्रवीत् ॥ अस्माभिर्वारितो जीवः कृच्छ्राज्जग्राह तां तदा ॥२८॥ यदि गर्भं जहातीह गृह्णामीत्यब्रवीत्पुनः॥गर्भे मया पुनस्तत्र त्याजिते मुनिसत्तमाः ॥ २९ ॥ कस्यायं च पुनर्गर्भस्सोमस्येति च साऽब्रवीत् ॥ पश्चात्तेन गृहीता सा मया च वारितेन वै ॥ ३० ॥

दैत्योंके समीपमें जाके उनका देवताओंसे युद्ध कराया, मेरे तथा अत्रिके आग्रह करनेपर उसने बृहस्पतिको तारा दी ॥ २७ ॥ ताराको गर्भवती देखकर बृहस्पतिने कहा कि, मैं इसे नहीं ग्रहण करता हूं तब हमारे निवारण करनेसे बृहस्पतिने बड़ी कठिनतासे ताराको स्वीकार किया ॥ २८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यदि यह अपने गर्भको त्यागेगी तो मैं इसे ग्रहण करूंगा, यह बृहस्पतिने कहा, फिर मैंने उसका गर्भ त्यागन कराया ॥ २९ ॥ फिर उससे पूंछा कि, यह किसका गर्भ है तब वह बोली कि, चन्द्रमाका गर्भ है, पीछे उन्होंने मेरे कहनेसे उसे

ग्रहण किया ॥ ३० ॥ इस प्रकार, चन्द्रमाके अनेक, दुष्ट चरित्र वर्णन किये, फिर भी वह उन चरित्रोंको अब भी करता है ॥ ३१ ॥ जो हो गया सो तो हो ही गया अन्यथा नहीं हो सकता, अब मैं इसके आगे तुमसे उपाय कहता हूं तुम आदरसे सुनो ॥३२॥ प्रभास नाम शुभ क्षेत्रमें चन्द्रमाको देवताओं सहित जाना योग्य है, वहां जाकर मृत्युंजयके विधानसे शिवकी आराधना करनी चाहिये ॥ ३३ ॥ वहां शिवजीकी प्रतिमाको स्थापन कर उनके आगे नित्य तप करे, पश्चात् शिवजी प्रसन्न हो उसको अक्षय करेंगे ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार वे देवर्षि उन ब्रह्माजीका वचन सुनकर वहांसे लौटकर वहां आये जहां दक्ष और चन्द्रमा स्थित थे ॥ ३५ ॥ तब वे देवता, चन्द्रमाको

एवंविधानि चन्द्रस्य दुश्चरित्राण्यनेकशः॥ वर्ण्यंते किं पुनस्तानि सोऽद्यापि कुरुते कथम्॥३१॥ यज्जातं तत्सुसंजातं नान्यथा भवति ध्रुवम् ॥ अतः परमुपायं वो वक्ष्यामि शृणुतादरात् ॥ ३२ ॥ प्रभासके शुभे क्षेत्रे व्रजेश्चन्द्रस्सदैवतैः ॥ शिवमाराधये त्तत्र मृत्युञ्जयविधानतः ॥ ३३ ॥ निधायेशं पुरस्तत्र चन्द्रस्तपतु नित्यशः ॥ प्रसन्नश्च शिवः पश्चादक्षयं तं करिष्यति ॥ ३४ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणस्ते सुरर्षयः ॥ संनिवृत्यायय्युस्सर्वे यत्र दक्षविधू ततः ॥ ३५ ॥ गृहीत्वा ते ततश्चन्द्रं दक्षं चाश्वास्य निर्जराः ॥ प्रभासे ऋषयश्चक्रुस्तत्र गत्वाखिलाश्च वै ॥ ३६ ॥ आवाह्य तीर्थवर्याणि सरस्वत्यादिकानि च॥पार्थिवेन तदा पूजां मृत्युञ्जयविधानतः ॥३७॥ ते देवाश्च तदा सर्वे ऋषयो निर्मलाशयाः ॥ स्थाप्य चन्द्रं प्रभासे च स्वंस्वं धाम ययुर्मुदा ॥ ३८ ॥ चन्द्रेण च तपस्तप्तं षण्मासं च निरंतरम् ॥ मृत्युंजयेन मंत्रेण पूजितो वृषभध्वजः ॥ ३९ ॥ दशकोटिमितं मन्त्रं समावृत्य शशी च तम् ॥ ध्यात्वा मृत्युञ्जयं मन्त्रं तस्थौ निश्चलमानसः ॥ ४० ॥

ग्रहण कर, दक्षको आश्वासन दे, संपूर्ण ऋषि प्रभास तीर्थमें जाके वहां शिवार्चन करने लगे ॥ ३६ ॥ और सरस्वती आदि तीर्थवरोंका आवाहन करके उस समय पार्थिव तथा मृत्युंजय विधिके अनुसार पूजन किया ॥ ३७ ॥ वे सब देवता तथा ऋषि शुद्ध चित्त हो चन्द्रमाको प्रभास क्षेत्रमें स्थापित करके प्रसन्नतासे अपने अपने धामको पधारे ॥ ३८ ॥ चन्द्रमाने छह मास पर्यंत निरन्तर तप किया और मृत्युंजय मन्त्रसे शिवजीका पूजन किया ॥ ३९ ॥ चन्द्रमाने, दश करोड संख्याके मन्त्रोंका पाठ करके निश्चल मनसे मृत्युञ्जयमन्त्रपूर्वक शिवका

ध्यान कर वहां स्थिति की ॥ ४० ॥ तब, उनको देख स्वामी, देवदेव शिवजी प्रसन्न हुए और भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले महादेव, प्रगट होकर अपने भक्त चन्द्रमासे यह बोले ॥ ४१ ॥ शिवजी बोले, हे चन्द्रमा ! आपका कल्याण हो तुमने जो मनसे चाहा है वह वर मांगो, मैं प्रसन्न हूं तुमको सम्पूर्ण, उत्तम वरदान दूंगा ॥ ४२ ॥ चन्द्रमा बोले, हे देवताओंके स्वामी ! हे शंकर ! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मुझे क्या अप्राप्य (दुर्लभ) है, तथापि मेरे शरीरके क्षयको निवारण करो ॥ ४३ ॥ आप मेरे अपराधको क्षमा करें निरंतर मेरा कल्याण करें, चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर शिवजी यह वचन बोले ॥ ४४ ॥ शिवजी बोले हे चन्द्रमा ! एक पक्षमें तुम्हारी कला

तंदृष्ट्वा शंकरोदेवः प्रसन्नोऽभूत्ततः प्रभुः॥आविर्भूय विधुं प्राह स्वभक्तं भक्तवत्सलः॥४१॥शंकरउवाच॥वरं वृणीष्व भद्रं ते मनसा यत्समीप्सितम्॥प्रसन्नोऽहं शशिन्सर्वं दास्ये वरमनुत्तमम्॥४२॥चंद्र उवाच ॥ यदि प्रसन्नो देवेश किमसाध्यं भवेन्मम॥तथापि मे शरीरस्य क्षयं वारय शंकर॥४३॥क्षंतव्यो मेऽपराधश्च कल्याणं कुरु सर्वदा॥ इत्युक्ते च तदा तेन शिवो वचनमब्रवीत् ॥४४॥ शिव उवाच॥पक्षे च क्षीयतां चन्द्र कला ते च दिनेदिने॥ पुनश्च वर्द्धतां पक्षे सा कला च निरंतरम् ॥४५॥ सूत उवाच ॥एवं सति तदा देवा हर्षनिर्भरमानसाः॥ऋषयश्च तथा सर्वे समाजग्मुर्द्रुतं द्विजाः॥४६॥आगत्य च तदा सर्वे चन्द्रायाशिषमब्रुवन् ॥ शिवं नत्वा करौ बद्ध्वा प्रार्थयामासुरादरात्॥४७॥देवाः ऊचुः॥ देवदेव महादेव परमेश नमोऽस्तु ते॥उमया सहितश्शंभो स्वामिन्नत्र स्थिरो भव॥४८॥सूत उवाच॥ ततश्चन्द्रेण सद्भक्त्या संस्तुतश्शंकरः पुरा ॥ निराकारश्च साकारः पुनश्चैवाभवत्प्रभुः ॥४९॥

नित्यप्रति नष्ट होगी फिर एक पक्षतक वही कला दिनदिन बढेगी ॥ ४५ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! ऐसा कहनेपर उस समय हर्षसे प्रफुल्लित मनवाले सम्पूर्ण देवता और ऋषि, शीघ्रतासे आये ॥ ४६ ॥ तब वे आकर, चन्द्रमाको आशीर्वाद करने लगे तथा हाथ जोडकर शिवको नमस्कार करके उनसे आदरके साथ प्रार्थना करने लगे ॥ ४७ ॥ देवता बोले, हे देवोंके देव ! हे महादेव ! हे परमेश ! हे शंभो ! हे स्वामिन् ! आपको नमस्कार है, आप पार्वतीके समेत यहां स्थिर हों ॥ ४८ ॥ सूतजी बोले, उस समय प्रथम चन्द्रमाने

श्रेष्ठभक्तिसे शंकरकी स्तुति की तो वह निराकार प्रभु शिवजी, साकार रूपधारी हुये ॥ ४९ ॥ और देवताओंसे प्रसन्न हो, क्षेत्रके माहात्म्यके कारण, चन्द्रमाकी कीर्ति प्रसिद्ध करनेके निमित्त, शिवजी वहां चन्द्रमाके नामसे विख्यात हुए ॥ ५० ॥ तीनों लोकोंमें सोमेश्वर नामसे विख्यात हुये, हे द्विजो ! उनके पूजन करनेसे क्षय कुष्ठ आदि रोगोंका नाश होता है ॥ ५१ ॥ चन्द्रमा धन्य हैं तथा कृतकृत्य हैं कि जिनके नामसे साक्षात् शंकर स्वयं विख्यात हो संसारको पवित्र करते हुये स्थित हैं ॥ ५२ ॥ वहांपर उनके कुण्डकीभी उन सब देवताओंने प्रतिष्ठा की और शिव ब्रह्माने उस कुण्डका विभाग नहीं किया ॥ ५३ ॥ पृथिवीपर पापोंके नाश करनेवाला, चन्द्रकुंड भी प्रसिद्ध है

प्रसन्नश्च स देवानां क्षेत्रमाहात्म्यहेतवे ॥ चन्द्रस्य यशसे तत्र नाम्ना चन्द्रस्य शंकरः ॥ ५० ॥ सोमेश्वरश्च नाम्नासीद्विख्यातो भुवन त्रये ॥ क्षयकुष्ठादिरोगाणां नाशकः पूजनाद्द्विजाः ॥५१॥ धन्योऽयं कृतकृत्योयं यन्नाम्ना शंकरस्स्वयम् ॥ स्थितश्च जगतां नाथः पावयञ्जगतीतलम् ॥५२॥ तत्कुंडं तैश्च तत्रैव सर्वैर्देवैः प्रतिष्ठितम् ॥ शिवेन ब्रह्मणा तत्र ह्यविभक्तं तु तत्पुनः॥ ५३ ॥ चन्द्र कुंण्ड प्रसिद्धं च पृथिव्यां पापनाशनम् ॥ तत्र स्नाति नरो यस्स सर्वैः पापैः प्रमुच्यते॥ ५४ ॥ रोगास्सर्वे क्षयाद्याश्च ह्यसाध्या ये भवंतिवै ॥ ते सर्वे च क्षयं यान्ति षण्मासं स्नानमात्रतः ॥ ५५ ॥ प्रभासं च परिक्रम्य पृथिवीक्रमसंभवम् ॥ फलं प्राप्नोति शुद्धात्मा मृतः स्वर्गे महीयते ॥ ५६ ॥ सोमलिंगं नरो दृष्ट्वा सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ लब्ध्वा फलं मनोभीष्टं मृतस्स्वर्गं समीहते ॥ ५७ ॥ यद्यत्फलं समुद्दिश्य कुरुते तीर्थमुत्तमम्॥तत्तत्फलमवाप्नोति सर्वथा नात्र संशयः॥ ५८ ॥

जो मनुष्य वहां स्नान करता है वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटता है ॥ ५४ ॥ संपूर्ण क्षय आदि जो असाध्य रोग हैं, वे सब वहां छह मास स्नान करनेसे नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ५५ ॥ जो पवित्र आत्मा, प्रभासतीर्थकी परिक्रमा करता है वह समस्त भूमिकी परिक्रमाके फलको प्राप्त होता है और मृत्युको प्राप्त होकर स्वर्गमें जाता है ॥ ५६ ॥ मनुष्य सोमनाथ लिंगका दर्शन करके सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है और मनोवांछित फल पाकर मरनेके पश्चात् स्वर्गलोकको प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ मनुष्य जिनजिन फलोंकी कामनासे इस उत्तम

तीर्थको करता है, उन उन सम्पूर्ण फलोंको प्राप्त होता है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ५८ ॥ इस प्रकारके फलको देख, वे सब देवता तथा ऋषि, आनन्दके साथ शिवको नमस्कार कर, क्षयरहित चन्द्रमाको लेकर गये ॥ ५९ ॥ और उस तीर्थकी परिक्रमा करके सोमनाथकी प्रसंशा करते हुए अपने अपने धामको पधारे, और चन्द्रमा भी अपने पुरातन कार्यको करने लगे ॥ ६० ॥ हे मुनीश्वरो ! मैंने यह सब सोमनाथकी उत्पत्ति कही कि, जिस प्रकार सोमनाथ नामक ज्योतिर्लिङ्ग उत्पन्न हुए ॥६१॥ जो मनुष्य इनकी उत्पत्तिको सुनता है अथवा औरोंको सुनाता है वह सब कामनाओंको प्राप्त होता तथा सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण-भाषाटीकायां च०

इति ते ऋषयो देवाः फलं दृष्ट्वा तथाविधम् ॥ मुदा शिवं नमस्कृत्य गृहीत्वा चन्द्रमक्षयम् ॥ ५९ ॥ परिक्रम्य च तत्तीर्थं प्रशंसन्तश्च ते ययुः ॥ चंद्रश्चापि स्वकीयं च कार्य्यं चक्रे पुरातनम्॥६०॥ इति सर्वः समाख्यातः सोमेशस्य समुद्भवः ॥ एवं सोमेश्वरं लिंगं समुत्पन्नं मुनीश्वराः ॥६१॥ यः शृणोति तदुत्पत्तिं श्रावयेद्वा परान्नरः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां सोमनाथज्योतिर्लिंगोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

॥ सूत उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि मल्लिकार्जुनसंभवम् ॥ यः श्रुत्वा भक्तिमान्धीमान्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥ पूर्वं च कथितं यच्च तत्पुनः कथयाम्यहम् ॥ कुमारचरितं दिव्यं सर्वपापविनाशनम्॥२॥यदा पृथ्वीं समाक्रम्य कैलासं पुनरागतः॥कुमारस्स शिवापुत्रस्तारकारिर्महाबलः ॥३॥ तदासुरर्षिरागत्य सर्वं वृत्तं जगाद ह॥ गणेश्वरविवाहादि भ्रामयंस्तं स्वबुद्धितः ॥ ४ ॥

को० रु० सोमनाथज्योतिर्लिंगोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ सूतजी बोले, अब इसके आगे मल्लिकार्जुनकी उत्पत्ति कहता हूं कि, जिसको सुनकर भक्तिमान् बुद्धिमान् पुरुष, सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है ॥ १ ॥ जिसको पूर्व कह दिया है, ऐसे समस्त पापोंके नाश करनेवाले सुन्दर, कुमार (स्वामिकार्तिक) के चरित्रको फिर वर्णन करता हूँ ॥ २ ॥ जिस समय पार्वतीके पुत्र, तथा तारकके शत्रु महाबली असुरकुमार पृथ्वीकी परिक्रमा करके फिर कैलास पर्वतको प्राप्त हुए ॥ ३ ॥ उस समय देवर्षियोंने उनके समीप आय उनको अपनी

बुद्धिसे भ्रम कराय उनसे गणेश्वरके विवाह आदिका सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा ॥ ४ ॥ यह वृत्तान्त सुनकर वह स्वामि कार्त्तिक, अपने माता पिताके निवारण करनेपर भी उन दोनों माता पिताको प्रणाम करके क्रौंच पर्वतको चले गये ॥ ५ ॥ जिस समय उनकी माता पार्वती कुमारके वियोगसे दुःखी हुई उस समय शुभ ज्ञान देनेवाले शिवजी उनसे बोले ॥ ६ ॥ हे प्रिये ! हे पार्वती ! हे सुभ्रू ! तुम क्यों दुःखी होती हो, दुःख मत करो, तुम्हारा पुत्र अवश्य आवेगा, तुम कठिन दुःखको त्यागन करो ॥ ७ ॥ जब वह पार्वती उनके कहनेसे न मानी और अत्यन्त दुःखी हुई तब शिवजीने देवर्षियोंको कुमारके समीप भेजा ॥ ८ ॥ गणोंके सहित बुद्धिमान् वे देवता तथा ऋषि, प्रसन्न हो

तच्छ्रुत्वा स कुमारो हि प्रणम्य पितरौ च तौ ॥ जगाम पर्वतं क्रौंचं पितृभ्यां वारितोऽपि हि ॥५॥ कुमारस्य वियोगेन तन्माता गिरिजा यदा ॥ दुःखितासीत्तदा शंभुस्तामुवाच सुबोधकृत् ॥ ६ ॥ कथं प्रिये दुःखितासि न दुःखं कुरु पार्वति ॥ आयास्यति सुतः सुभ्रूस्त्यज्यतां दुःखमुत्कटम् ॥ ७ ॥ सा यदा च न तन्मेने पार्वती दुःखिता भृशम् ॥ तदा च प्रेषितास्तत्र शंकरेण सुरर्षयः ॥ ८ ॥ देवाश्च ऋषयस्सर्वे सगणा हि मुदान्विताः ॥ कुमारानयनार्थं वै तत्र जग्मुः सुबुद्धयः ॥ ९ ॥ तत्र गत्वा च ते सर्वे कुमारं सुप्रणम्य च ॥ विज्ञाप्य बहुधाप्येनं प्रार्थनां चक्रुरादरात् ॥ १० ॥ देवादिप्रार्थनां तां च शिवाज्ञासं कुलां गुरुः ॥ न मेने स कुमारो हि महाहंकारविह्वलः ॥ ११ ॥ ततश्च पुनरावृत्य सर्वे ते हि शिवांतिकम् ॥ स्वंस्वं स्थानं गता नत्वा प्राप्य शंकरशासनम्॥१२॥तदा च गिरिजा देवी विरहं पुत्रसंभवम् ॥ शंभुश्च परमं दुःखं प्राप तस्मिन्ननागते ॥१३॥

कुमारके लानेके अर्थ क्रौंच पर्वतपर गये ॥ ९ ॥ वहां वे सब जाकर कुमारको प्रणाम करके अनेक प्रकार उनको विज्ञापना दे आदरसे उनसे प्रार्थना करने लगे ॥ १० ॥ उस समय बडे अभिमानसे युक्त हुए कुमारने शिवजीकी आज्ञासे व्याप्त हुई उस देवता, ऋषियोंकी प्रार्थनाको न माना ॥ ११ ॥ इसके पीछे वे सब वहांसे लौटकर शिवके समीप गये, फिर शिवजीकी आज्ञाको पाय उनको नमस्कार करके अपने अपने लोकको गये ॥ १२ ॥ उस समय, कुमारके न आने पर देवी पार्वती पुत्रके विरहको प्राप्त हुई और शिवजी भी बडे दुःखको

प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ तब, बडे दुःखी हुए दीन तथा लोकचार करनेवाले वे दोनों शिव पार्वती बडे स्नेहसे वहां गये जहां कुमार पुत्र स्थित थे ॥ १४ ॥ वह स्वामिकार्तिक पुत्र, अपने मातापिताके आगमनको सुनकर अप्रसन्न हो, क्रौंच पर्वतसे तीन योजन दूरको चले गये ॥१५॥ उन स्वामिकार्तिक पुत्रके क्रौंच पर्वतसे दूर चले जानेपर वे दोनों शिव पार्वती ज्योतिरूपको आश्रयकरके वहां स्थित हुए ॥ १६ ॥ पुत्रके स्नेह से व्याकुल हुए वे दोनों शिव पार्वती, अपने पुत्र, कुमारके देखनेके निमित्त प्रत्येक पर्वमें जाते हैं ॥ १७ ॥ अमावास्याके दिन वहां साक्षात् शिवजी स्वयं जाते हैं पौर्णमासीके दिन निश्चय वहां पर पार्वतीजी जाती हैं ॥ १८ ॥ उस दिनसे लेकर, मल्लिकार्जुनसे उत्पन्न हुआ शिव

अथो सुदुःखितौ दीनौ लोकाचारकरौ तदा ॥ जग्मतुस्तत्र सुस्नेहात्स्वपुत्रो यत्र संस्थितः॥१४॥स पुत्रश्च कुमाराख्यः पित्रोराग मनं गिरेः ॥ ज्ञात्वा दूरं गतोऽस्नेहाद्योजनत्रयमेव च ॥१५॥ क्रौंचे च पर्वते दूरं गते तस्मिन्स्वपुत्रके ॥तौ च तत्र समासीनौ ज्यो तीरूपं समाश्रितौ ॥ १६ ॥ पुत्रस्नेहातुरौ तौ वै शिवौ पर्वणिपर्वणि ॥ दर्शनार्थं कुमारस्य स्वपुत्रस्य हि गच्छतः ॥ १७ ॥ अमावास्यादिने शंभुस्स्वयं गच्छति तत्र ह ॥ पौर्णमासीदिने तत्र पार्वती गच्छति ध्रुवम्॥ १८ ॥ तद्दिनं हि समारभ्यमल्लि कार्जुनसंभवम् ॥ लिंगं चैव शिवस्यैकं प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥१९॥ तल्लिंगं यः समीक्षेत स सर्वैः किल्बिषैरपि ॥ मुच्यते नात्र सन्देहः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २० ॥ दुःखं च दूरतो याति सुखमात्यंतिकं लभेत् ॥ जननीगर्भसंभूतं कष्टं नाप्नोति वै पुनः ॥ २१ ॥ धनधान्यसमृद्धिश्च प्रतिष्ठारोग्यमेव च ॥ अभीष्टफलसिद्धिश्च जायते नात्र संशयः ॥ २२ ॥

जीका ज्योतिर्लिंग तीनों लोकमें प्रसिद्ध हुआ ॥ १९ ॥ जो मनुष्य उस ज्योतिर्लिंगका दर्शन करता है वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होता है और सब मनोरथोंको प्राप्त होता है इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ २० ॥ उसका दुःख दूर हो जाता है और अति सुख प्राप्त होताहै और माताके गर्भका दुःख उसे फिर नहीं प्राप्त होता ॥ २१ ॥ और उसके धन धान्यकी वृद्धि तथा प्रतिष्ठा, आरोग्य, मनोरथोंकी सिद्धि भी प्राप्त होती है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २२ ॥

दूसरा मल्लिकाअर्जुन नामक, ज्योतिर्लिंग है जो दर्शनसे संपूर्ण सुखोंको देनेवाला है यह सब लोकोंके हितके कारण तुमसे कहा ॥ २३ ॥
इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० मल्लिकार्जुनद्वितीयलिंगवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी आप
व्यासजीके प्रसादसे सब कुछ जानते हैं, ज्योतिर्लिंगोंकी कथाको सुनकर हमारी तृप्ति नहीं होती है ॥ १ ॥ हे स्वामिन् ! इस कारण आप
अति अनुपम कृपा करके इस समय हमारे तीसरे ज्योतिर्लिंगकी कथा कहो ॥ २ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! श्रीमान् आप ऋषियोंकी
संगतिको प्राप्त हुआ मैं धन्य तथा कृतकृत्य हूं, कारण कि, सज्जनोंकी संगति बड़ाईके योग्य होती है ॥ ३ ॥ इससे मैं अपने सौभाग्यको

ज्योतिर्लिंगं द्वितीयं च प्रोक्तं मल्लिकसंज्ञितम् ॥ दर्शनात्सर्वसुखदं कथितं लोकहेतवे॥२३॥इति श्रीशिवपुराणे चतुर्थ्यां कोटि
रुद्रसंहितायां मल्लिकार्जुनद्वितीयज्योतिर्लिंगवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः॥१५॥ऋषय ऊचुः ॥ सूत सर्वं विजानासि वस्तु व्यास
प्रसादतः॥ज्योतिषां च कथां श्रुत्वा तृप्तिर्नैव प्रजायते॥१॥तस्मात्त्वं हि विशेषेण कृपां कृत्वातुलां प्रभो ॥ ज्योतिर्लिंगं तृतीयं च
कथय त्वं हि नोऽधुना ॥२॥ सूत उवाच ॥ ॥ धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं श्रीमतां भवतां यदि ॥गतश्च संगमं विप्रा धन्या वै साधुसं
गतिः ॥३॥ अतो मत्वा स्वभाग्यं हि कथयिष्यामि पावनीम्॥पापप्रणाशिनीं दिव्यां कथां च शृणुतादरात् ॥४॥ अवंती नगरी
रम्या मुक्तिदा सर्वदेहिनाम् ॥ शिवप्रिया महापुण्या वर्तते लोकपावनी ॥५॥ तत्रासीद्ब्राह्मणश्रेष्ठश्शुभकर्मपरायणः ॥ वेदाध्यय
नकर्त्ता च वेदकर्मरतस्सदा ॥ ६ ॥ अग्न्याधानसमायुक्तश्शिवपूजारतस्सदा ॥ पार्थिवीं प्रत्यहं मूर्तिं पूजयामास वै द्विजः ॥७॥

मानकर पवित्र करनेवाली तथा पापोंको विनाश करनेवाली दिव्य कथाको कहता हूं आप आदरसे श्रवण करें ॥ ४ ॥ एक अवन्ती नाम
वाली शिवकी प्रिय, बडी पवित्र संसारको पवित्र करनेवाली तथा सब मनुष्योंको मुक्ति देनेवाली, रमणीक नगरी है ॥ ५ ॥ तहां शुभ कर्मोंको
करनेवाला, वेदाध्ययनमें तत्पर नित्य वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाला श्रेष्ठ ब्राह्मण रहता था ॥ ६ ॥ वह अग्निहोत्रमें तत्पर, सदा
शिवके पूजनमें लगा हुआ ब्राह्मण प्रतिदिन, पार्थिव मूर्तिका पूजन करता था ॥ ७ ॥

सदा वेदोंके पढनेमें संयुक्त, तथा भलीभांति ज्ञानमें परायण वह ब्राह्मण, संपूर्ण कर्मोंके फलको प्राप्त हो सत्पुरुषोंकी गतिको प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उसके चार पुत्रभी उसी प्रकार नित्य शिवकी पूजामें तत्पर, सदा मातापिताकी आज्ञा माननेवाले थे ॥९॥ उन चारोंमें बड़ा पुत्र देवप्रिय, तथा उससे छोटा मेधाप्रिय था, तीसरा सुकृत, चौथा धर्मात्मा सुव्रत ॥ १० ॥ उनके पुण्यप्रतापसे, भूमिपर नित्य इस प्रकार सुख बढ़ता था जैसे शुक्लपक्षमें नित्य चन्द्रमा वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ उसी प्रकार उन चारोंके सुखदायक गुण वहां दिनदिन बढते थे उससमय वह नगरी, ब्रह्मतेजवाली हो गई ॥१२॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! इसी अवसरमें वहां, जो उत्तम चरित्र हुआ सो सुनो, जैसा मैंने सुना है वैसा

सर्वकर्मफलं प्राप्य द्विजोवेदप्रियस्सदा॥सतां गतिंसमालेभे सम्यग्ज्ञानपरायणः॥८॥तत्पुत्रास्तादृशाश्चासंश्चत्वारो मुनिसत्तमाः॥ शिवपूजारता नित्यं पित्रोरनवमास्सदा ॥९॥ देवप्रियश्च तज्ज्येष्ठःप्रियमेधास्ततः परम्॥तृतीयस्सुकृतो नाम धर्मवाही च सुव्रतः ॥१०॥ तेषां पुण्यप्रतापाच्च पृथिव्यां सुखमैधत॥शुक्लपक्षे यथा चन्द्रो वर्द्धते च निरंतरम् ॥११॥ तथा तेषां गुणास्तत्र वर्द्धन्ते स्म सुखावहाः॥ब्रह्मतेजोमयी सा वै नगरी चाभवत्तदा ॥१२॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र यज्जातं वृत्तमुत्तमम्॥श्रूयतां तद्द्विजश्रेष्ठाः कथयामि यथाश्रुतम् ॥१३॥ पर्वते रत्नमाले च दूषणाख्यो महासुरः ॥ बलवान्दैत्यराजश्च धर्मद्वेषी निरन्तरम्॥१४॥ ब्रह्मणो वरदानाच्च जगत्तुच्छीचकार ह॥देवाः पराजितास्तेन स्थानान्निस्सारितास्तथा॥१५॥पृथिव्यां वेदधर्माश्च स्मृतिधर्माश्च सर्वशः॥स्फोटितास्तेन दुष्टेन सिंहेनेव शशाः खलु ॥१६॥ यावंतो वेदधर्माश्च तावंतो दूरतः कृताः ॥ तीर्थंतीर्थं तथा क्षेत्रे धर्मो नीतश्च दूरतः ॥१७॥

कहता हूं ॥ १३ ॥ रत्नमाला नामवाले पर्वतपर, निरंतर धर्मका नाश करनेवाला, बलवान्, दूषण नामक दैत्योंका राजा रहता था ॥ १४ ॥ उसने ब्रह्माजीके वरदासे संसार भरको तुच्छ समझा, और देवताओंको पराजित करके उस स्थानसे निकाल दिया ॥ १५ ॥ उस दुष्टने पृथिवी पर वेदोंका धर्म तथा सम्पूर्ण स्मृतियोंका धर्म जैसे दुष्ट सिंहसे खरगोश नष्ट होते हैं उसी प्रकार नष्ट किया ॥ १६ ॥ जितने वैदिक धर्म थे वे सब दूर कर दिये, प्रत्येक तीर्थोंमें तथा क्षेत्रोंमें भी धर्मको दूर किया ॥ १७ ॥

वहां एक अवंती नामक रमणीक नगरी बची थी ऐसा विचार उस दैत्यने जो किया उसे सुनो ॥ १८ ॥ वह दूषण नामवाला दैत्यराज, बडी सेनाके सहित, वहां स्थित हुए सब ब्राह्मणोंके ऊपर चढ़ गया ॥ १९ ॥ वहां आकर वह, ब्राह्मणोंका द्रोही महादुष्ट दैत्येन्द्र; चार दैत्यपतियोंको बुलाय यह वचन बोला ॥ २० ॥ दैत्य बोला, यह सब दुष्ट ब्राह्मण मेरे वचनको क्यों नहीं पालन करते, वेदधर्ममें तत्परहुए इन सबोंको मेरे मतमें दंड देना चाहिये ॥२१॥ हे श्रेष्ठ दैत्यो ! मैंने संसारमें सब देवताओं तथा राजाओंको पराजय किया है, क्या ? यह ब्राह्मण वशमें नहीं हो

अवंती नगरी रम्या तत्रैका दृश्यते पुनः ॥ इत्थं विचार्य तेनैव यत्कृतं श्रूयतां हि तत् ॥१८॥ बहुसैन्यसमायुक्तो दूषणस्स महासुरः ॥ तत्रस्थान्ब्रह्मणान्सर्वानुद्दिश्य समुपाययौ ॥ १९ ॥ तत्रागत्य सदैत्येन्द्रश्चतुरो दैत्यसत्तमान् ॥ प्रोवाचाहूय वचनं विप्रद्रोही महाखलः ॥ २० ॥ दैत्य उवाच ॥ किमेते ब्राह्मणा दुष्टा न कुर्वंति वचो मम ॥ वेदधर्मरता एते सर्वे दंडचा मते मम ॥२१॥ सर्वे देवा मयालोके राजानश्च पराजिताः ॥ वशे किं ब्राह्मणाश्शक्या न कर्तुंदैत्यसत्तमाः ॥२२॥ यदि जीवितुमिच्छास्यात्तदा धर्मं शिवस्य च ॥ वेदानां परमं धर्मं त्यक्त्वा सुखसुभागिनः ॥ २३ ॥ अन्यथा जीवने तेषां संशयश्च भविष्यति ॥ इति सत्यं मया प्रोक्तं तत्कुरुध्वं विशंकिताः॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ इति निश्चित्य ते दैत्याश्चत्वारः पावका इव ॥ चतुर्दिक्षु तदा जाताः प्रलये च यथा पुरा ॥ २५ ॥ ते ब्राह्मणास्तथा श्रुत्वा दैत्यानामुद्यमं तदा ॥ न दुःखं लेभिरे तत्र शिवध्यानपरायणाः ॥ २६ ॥ धैर्य्यं समाश्रितास्ते च रेखामात्रं तदा द्विजाः ॥ न चेलुः परमध्यानाद्धराकाः के शिवाग्रतः ॥ २७ ॥

सकते? ॥२२॥ यदि, इनकी जीनेकी इच्छा हो तो यह शिव सम्बन्धी धर्मको तथा वैदिक परम धर्मको त्यागदेवें तब सुखके भागी होंगे ॥२३॥ नहीं तो इनके जीवनमें संशय होगा, यह सब मैंने सत्य कह दिया, तुम सब निर्भय होकर इस वचनका पालन करो ॥२४॥ सूतजी बोले, ऐसा निश्चय करके वे चारों दैत्य, चारों दिशाओंमें प्रचंड प्रलयकी अग्निके समान प्रदीप्त हुए ॥ २५ ॥ शिवके ध्यानमें परायण हुए वे ब्राह्मण उन दैत्योंके वैसे उद्यमको सुनकर कुछ भी दुःखको न प्राप्त हुए ॥ २६ ॥ उससमय धैर्यको प्राप्त हुए वे ब्राह्मण, शिवके परमध्यानसे रेखामात्र

भी न टले, कारण कि, शिवके आगे वे नीच दैत्य क्या वस्तु थे ? ॥ २७ ॥ इसी अवसरमें उन दैत्योंसे वह शुभ नगरी व्याप्त होगई और उनसे पीडित हुए मनुष्य उन ब्राह्मणोंके समीपमें आये ॥ २८ ॥ लोक बोले, हे स्वामिन् ! ! ! अब क्या करना उचित है ? यह दुष्ट आगये, इनसे पीडित हुए हम बहुत लोग आपके समीपमें प्राप्त हुए हैं ॥ २९ ॥ सूतजी बोले, उन पुरुषोंका वचन सुन वे वेदप्रियके, सदाशिवमें विश्वास करनेवाले चारों पुत्र उनसे बोले ॥ ३० ॥ ब्राह्मण बोले, हे लोको ! सुनो हमारे पास दुष्टोंको भय देनेवाले बल नहीं तथा वैसे शस्त्र नहीं हैं जिससे उनको निराश करें ॥ ३१ ॥ सामान्यके भी आश्रितका अपमान (निरादर) नहीं होता है फिर सर्व समर्थ शिवके आश्रि

एतस्मिन्नन्तरे तैस्तु व्याप्तासीन्नगरी शुभा ॥ लोकाश्च पीडितास्तैस्तु ब्राह्मणान्समुपाययुः ॥ २८ ॥ लोका ऊचुः ॥ स्वामिनः किं च कर्त्तव्यं दुष्टाश्च समुपागताः ॥ हिंसिता बहवो लोका आगताश्च समीपतः ॥ २९ ॥ सूत उवाच ॥ तेषामिति वच श्श्रुत्वा वेदप्रियसुताश्च ते ॥ समूचुर्ब्राह्मणास्तान्वै विश्वस्ताश्शंकरे सदा ॥ ३० ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ श्रूयतां विद्यते नैव वलं दुष्टभयावहम् ॥ न शस्त्राणि तथा संति यच्च ते विमुखाः पुनः ॥ ३१ ॥ सामान्यस्यापमानो नो ह्याश्रयस्य भवेदिह ॥ पुनश्च किं समर्थस्य शिवस्येह भविष्यति ॥ ३२ ॥ शिवो रक्षां करोत्वद्यासुराणां भयतः प्रभुः ॥ नान्यथा शरणं लोके भक्तवत्सलत श्शिवात् ॥३३॥ सूत उवाच ॥ इति धैर्यं समास्थाय समर्चां पार्थिवस्य च ॥ कृत्वा ते च द्विजाः सम्यक्स्थिता ध्यानपरा यणाः ॥ दृष्टा दैत्येन तावच्च ते विप्रास्स बलेन हि ॥ ३४ ॥ दूषणेन वचः प्रोक्तं हन्यतां वध्यतामिति ॥ तच्छ्रुतं तैस्तदा नैव दैत्यप्रोक्तं वचो द्विजैः ॥ वेदप्रियसुतैश्शंभोर्ध्यानमार्गपरायणैः ॥ ३५ ॥

तोंकी तो क्या है ! अर्थात् शिवके आश्रयसे कदापि हमको दुःख न होगा ॥ ३२ ॥ स्वामी शिवजी इस समय दैत्योंके भयसे रक्षा करेंगे कारण कि, संसारमें भक्तवत्सल शिवजीके विना कोई शरण नहीं है ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार वे ब्राह्मण, धैर्यको धारण कराय, पार्थिव पूजन कर भलीभांति शिवध्यानमें तत्पर हुए, उस समय बलवान् दैत्यने जभी उनको देखा ॥ ३४ ॥ तब दूषण दैत्यने यह वचन कहा कि, इनको मारो मारो, ! तब शिवके ध्यानमें परायण हुए वेदप्रियके पुत्र उन ब्राह्मणोंने दैत्यके वचनोंको न सुना ॥ ३५ ॥

तत्पश्चात् जब ही उस दुष्टात्माने उन ब्राह्मणोंको मारनेकी इच्छा की तब ही पार्थिव स्थानसे शब्दके सहित गढ़ा हुआ ॥ ३६ ॥ उस गढ़ेसे विराट् रूपधारी महाकाल नामसे प्रसिद्ध दुष्टोंके मारनेवाले तथा सत्पुरुषोंके रक्षक शिवजी प्रगट हुए ॥ ३७ ॥ हे दुष्ट दैत्य ! मैं तुम दुष्टोंके मारनेके अर्थ महाकाल नामसे प्रगट हुआ हूं, तू इन ब्राह्मणोंके समीपसे दूर भाग ॥ ३८ ॥ यह कहके उस समय महाकाल रूपधारी शिवने सेना सहित उस दूषण दैत्यको अपनी हुंकारसे शीघ्र भस्म कर दिया ॥ ३९ ॥ उन परमात्मा शिवने कुछेक सेना मारी तथा कुछ स्वयं भाग गई तथा दुष्ट दूषणको मारा ॥ ४० ॥ जिस प्रकार सूर्यको देखकर चारों ओरसे अन्धकार नाशको प्राप्त होता है, उसी प्रकार शिवजीको

अथ यावत्स दुष्टात्माहन्तुमैच्छद्द्विजांश्च तान्॥तावच्च प्रार्थिवस्थाने गर्त्त आसीत्सशब्दकः ॥ ३६ ॥ गर्तात्ततस्समुत्पन्नः शिवो विकटरूपधृक् ॥ महाकाल इति ख्यातो दुष्टहंता सतां गतिः ॥ ३७ ॥ महाकालस्समुत्पन्नो दुष्टानां त्वादृशामहम् ॥ खल त्वं ब्राह्मणानां हिसमीपाद्दूरतो व्रज ॥३८॥ इत्युक्ता हुंकृतेनैव भस्मसात्कृतवांस्तदा ॥ दूषणं च महाकालः शंकरस्सबलं द्रुतम् ॥ ३९ ॥ कियत्सैन्यं हतं तेन किंचित्संन्यं पलायितम्॥दूषणश्च हतस्तेन शिवेनेह परात्मना ॥ ४० ॥ सूर्यं दृष्ट्वा यथा याति संक्षयं सर्वशस्तमः ॥ तथैव च शिवं दृष्ट्वा तत्सैन्यं विननाश ह ॥४१॥ देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात ह॥देवास्समाय युस्सर्वे हरिब्रह्मादयस्तथा ॥ ४२ ॥ भक्त्या प्रणम्य तं देवं शंकरं लोकशंकरम् ॥ तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः कृतांजलिपुटा द्विजाः ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणांश्च समाश्वास्य सुप्रसन्नश्शिवस्स्वयम् ॥ वरं ब्रूतेति चोवाच महाकालो महेश्वरः ॥ ४४ ॥ तच्छ्रुत्वा ते द्विजास्सर्वे कृताञ्जलिपुटास्तदा ॥ सुप्रणम्य शिवंभक्त्या प्रोचुस्संनतमस्तकाः ॥ ४५ ॥

देखकर वह सेना नष्ट हुई ॥ ४१ ॥ उस समय देवताओंकी दुन्दुभि बजी तथा पुष्पोंकी वर्षा हुई, सम्पूर्ण ब्रह्मा विष्णु, आदि देवता वहां प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥ उस समय ब्राह्मणोंने अंजलि बांधके भक्तिसे उस संसारके कल्याण करनेवाले शंकर देवको प्रणाम करके अनेक स्तोत्रोंसे स्तुतियां कीं ॥ ४३ ॥ तब महाकाल महेश्वर साक्षात् शिवजी स्वयं प्रसन्न हो उन ब्राह्मणोंको धैर्य देकर वर मांगो ऐसा बोले ॥ ४४ ॥ यह सुनके वे सब ब्राह्मण हाथ जोड़े हुए मस्तक झुकाय शिवको प्रणाम करके भक्तिसे बोले ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण बोले, हे महाकाल ! हे महादेव ! दुष्टोंको दंड देनेवाले ! हे प्रभो ! हे शिवजी ! आप हमको संसाररूपी मुक्तिप्रदान करो ॥ ४६ ॥ हे शिवजी ! हे शंभो ! हे प्रभो ! आप संसारकी रक्षाके अर्थ यहां ही स्थिति करें तथा नित्य अपने दर्शन करनेवाले भक्त मनुष्योंको तारो ॥ ४७ ॥ सूतजी बोले, उन ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर उन शिवजीने उन सबोंको सुन्दरगति देकर भक्तोंकी रक्षाके अर्थ वहां उस शोभायमान गढेमें निवास किया ॥ ४८ ॥ मुक्तिको प्राप्त हुए वे ब्राह्मण शिवलोकको गये और चारोंदिशाओंमें कोस भरतक ज्योतिर्लिंगोंके रूपमें स्थित

॥ द्विजा ऊचुः ॥ महाकाल महादेव दुष्टदण्डकर प्रभो ॥ मुक्तिं प्रयच्छ नश्शंभो संसारांबुधितश्शिव ॥ ४६ ॥ अत्रैव लोक रक्षार्थं स्थातव्यं हि त्वया शिव ॥ स्वदर्शकान्नराञ्छम्भो तारय त्वं सदा प्रभो ॥ ४७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तैश्शिवस्तत्र तस्थौगर्ते सुशोभने ॥ भक्तानां चैव रक्षार्थं दत्त्वा तेभ्यश्च सद्गतिम् ॥ ४८ ॥ द्विजास्ते मुक्तिमापन्नाश्चतुर्दिक्षु शिवास्पदम् ॥ क्रोशमात्रं तदा जातं लिंगरूपिण एव च ॥ ४९ ॥ महाकालेश्वरो नाम शिवः ख्यातश्च भूतले॥ तं दृष्ट्वा न भवेत्स्वप्ने किंचि दुःखमपि द्विजाः ॥ ५० ॥ यंयं काममपेक्ष्यैव तल्लिंगं भजते तु यः ॥ तंतं काममवाप्नोति लभेन्मोक्षं परत्र च ॥ ५१ ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं महाकालस्यसुव्रताः ॥ समुद्भवश्च माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां महाकालज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

हुए ॥ ४९ ॥ हे ब्राह्मणो ! महा कालेश्वर नामक शिवजी पृथ्वीपर प्रसिद्ध हुए उनके दर्शन करके स्वप्नमें भी कोई दुःखको प्राप्त नहीं होता ॥ ५० ॥ जो मनुष्य जिस जिस कामना करके उस ज्योतिर्लिंगका सेवन करता है वह उस मनोरथको प्राप्त होता है अन्तसमय मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ५१ ॥ हे शोभन व्रतवाले ! मैंने यह सब महाकाल शिवकी उत्पत्ति तथा माहात्म्य वर्णन किया अब क्या सुननेकी इच्छा है ? ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० को० रु० महाकालज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

ऋषि बोले, हे अधिकबुद्धिवाले ! भक्तोंके रक्षा करनेवाले, महाकाल नामक ज्योतिर्लिंगकी महिमाको फिर वर्णन करो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! भक्तोंकी रक्षा करनेवाले, महाकाल नामक शिवलिंगकी भक्ति बढानेवाले माहात्म्यको आदरसे सुनो ॥ २ ॥ उज्जयिनीनगरीमें सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थ तथा तत्त्वोंको जाननेवाला शिवका भक्त बड़ा जितेन्द्रिय चन्द्रसेन नामक राजा रहता था ॥ ३ ॥ हे द्विजो ! उस राजाका मणिभद्र नामक सब लोकोंमें नमस्कृत महेश्वरका मुख्य गण, मित्र हुआ ॥ ४ ॥ एक समय, उस उदार बुद्धि गणाध्यक्ष, मणिभद्रने प्रसन्न हो उस राजाको बड़ी सुन्दर चिन्तामणि प्रदान की ॥ ५ ॥ कौस्तुभमणिके समान वह मणि सूर्यके समान प्रकाशित हुई उसके

ऋषय ऊचुः ॥ महाकालसमाह्वस्थज्योतिर्लिंगस्य रक्षिणः ॥ भक्तानां महिमानं च पुनर्ब्रूहि महामते ॥१॥ सूत उवाच॥शृणुता दरतो विप्रो भक्तरक्षाविधायिनः ॥ महाकालस्य लिंगस्य माहात्म्यं भक्तिवर्द्धनम् ॥ २ ॥ उज्जयिन्यामभूद्राजा चन्द्रसेनाह्वयो महान् ॥सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञश्शिवभक्तो जितेन्द्रियः॥ ३ ॥ तस्याभवत्सखा राज्ञो मणिभद्रो गणो द्विजाः ॥ गिरीशगणमुख्यश्च सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ४ ॥ एकदा स गणेन्द्रो हि प्रसन्नास्यो महामणिम् ॥ मणिभद्रो ददौ तस्मै चिंतामणिमुदारधीः ॥५॥ स वै मणिः कौस्तुभवद्द्योतमानोर्कसन्निभः ॥ ध्यातो दृष्टः श्रुतो वापि मंगलं यच्छति ध्रुवम् ॥ ६ ॥ तस्य कांतितलस्पृष्टं कांस्यं ताम्र मयं त्रपु ॥ पाषाणादिकमन्यद्वा द्रुंत भवति हाटकम् ॥ ७ ॥ स तु चिन्तामणिं कंठे बिभ्रद्राजा शिवाश्रयः ॥ चन्द्रसेनो रराजाति देवमध्ये व भानुमान् ॥ ८ ॥ श्रुत्वा चिन्तामणिग्रीवं चन्द्रसेनं नृपोत्तमम् ॥ निखिलाः क्षितिराजानस्तृष्णाक्षुब्ध हृदोऽभवन् ॥ ९ ॥ नृपा मत्सरिणस्सर्वे तं मणिं चन्द्रसेनतः ॥ नानोपायैरयाचंत देवलब्धमबुद्धयः ॥ १० ॥

ध्यान करने, दर्शन करने तथा सुननेसे निश्चय कल्याण होता था ॥ ६ ॥ उस मणिकी कान्तिको स्पर्शकर कांसी ताँबे रांग पाषाणादिकी वस्तु सुवर्ण होजाती थी ॥ ७ ॥ वह शिवका भक्त राजा चन्द्रसेन, चिन्तामणिको अपने कण्ठमें धारणकर देवताओंके बीचमें सूर्यके समान अत्यन्त शोभित हुआ ॥ ८ ॥ उन राजाओंमें श्रेष्ठ, चिन्तामणिग्रीवावाले राजा चन्द्रसेनको सुनकर संपूर्ण राजा, तृष्णासे लोभित हृदयवाले हुए ॥ ९ ॥ वे सब, ईर्षा करनेवाले मूर्ख राजा, देवतासे प्राप्त हुई उस मणिको चन्द्रसेनसे अनेक उपायों करके मांगने

लगे ॥ १० ॥ हे ब्राह्मणो ! महाकालके दृढ भक्त उस राजा चन्द्रसेनने उन सम्पूर्ण राजाओंकी प्रार्थनाको निष्फल किया ॥ ११ ॥ तब राजा चन्द्रसेनने तिरस्कार किये हुए सम्पूर्ण देशोंके राजा क्रोधित हुए ॥१२॥ और वे राजा चतुरंगबल (सेना) के सहित राजा चन्द्रसेनको संग्राममें जीतनेको उद्यत हुए ॥ १३ ॥ सेना सहित किये हुए संकेतोंको जाननेवाले उन सब एकत्रित हुए राजाओंने उज्जयिनीके चारों द्वारोंको घेर लिया ॥ १४ ॥ उस समय राजा चन्द्रसेन सम्पूर्ण राजाओंसे घिरी हुई अपनी नगरीको देखकर उन्हीं महाकालेश्वर शिवकी शरणमें गया ॥ १५ ॥ विकल्प शून्य, निराहारी, दृढ निश्चयवाले तथा और किसी देवताकी उपासना करनेवाले उस राजा चन्द्रसेनने रात दिन महाकालका

सर्वेषां भूभृतां याच्ञा चन्द्रसेनेन तेन वै ॥ व्यर्थीकृता महाकालदृढभक्तेन भूसुराः ॥ ११ ॥ ते कदर्थीकृतास्सर्वे चन्द्रसेनेन भूभृता ॥ राजा नस्सर्वदेशानां संरम्भं चक्रिरे तदा ॥१२॥ अथ ते सर्वराजानश्चतुरंगबलान्विताः ॥ चन्द्रसेनं रणे जेतुं संबभूवुः किलोद्यताः ॥ १३ ॥ ते तु सर्वे समेता वै कृतसंकेतसंविदः ॥ उज्जयिन्याश्चतुर्द्वारं रुरुधुर्बहुसैनिकाः ॥ १४ ॥ संरुध्यमानां स्वपुरीं दृष्ट्वा निखिल राजभिः ॥ तमेव शरणं राजा महाकालेश्वरं ययौ ॥१५॥ निर्विकल्पो निराहारस्स नृपो दृढनिश्चयः ॥ समानर्च महाकालं दिवा नक्तमनन्यधीः ॥ १६ ॥ ततस्स भगवाञ्छंभुर्महाकालः प्रसन्नधीः ॥ तं रक्षितुमुपायं वै चक्रे तं शृणु तादरात् ॥ १७ ॥ तदैव समये गोपी काचित्तत्र पुरोत्तमे ॥ चरंती सशिशुर्विप्रा महाकालांतिकं ययौ ॥ १८ ॥ पञ्चाब्दवयसं बालं वहन्ती गतभर्तृका ॥ राज्ञा कृतां महाकालपूजां सापश्यदादरात् ॥ १९ ॥ सा दृष्ट्वा सुमहाश्चर्यां शिवपूजां च तत्कृताम् ॥ प्रणिपत्य स्वशिबिरं पुनरेवाभ्यपद्यत ॥ २० ॥

पूजन किया ॥ १६ ॥ तब प्रसन्न हुये महाकाल नामक भगवान् शिवने जो उस राजाकी रक्षा करनेको उपाय किया उसे आदरसे श्रवण करो ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस समय कोई बालकसहित उस नगरमें भ्रमण करती हुई गोपी महाकाल शिवके निकटमें प्राप्त हुई ॥ १८ ॥ वह विधवा गोपी पांचवर्षके बालकको लिये राजासे की हुई महाकाल शिवजीकी पूजाको आदरसे देखने लगी ॥ १९ ॥ वह गोपी राजासे किये हुए, बडे आश्चर्यवाले शिवके पूजनको देख शिवको प्रणाम करके फिर अपने स्थानमें चली गई ॥ २० ॥

यह सम्पूर्ण चरित्र देखकर उस गोपीके पुत्रने उत्कण्ठासे शिवके पूजन करनेकी इच्छा की ॥ २१ ॥ उसने सूने शिविरके मध्यमें रमणीक पाषाणको लाय अपने दलके समीपमें शिव लिंगकी भक्तिसे पूजा की ॥ २२ ॥ गन्ध आभूषण वस्त्रोंसे तथा धूप, दीप अक्षत आदिसे कृत्रिम पदार्थोंसे शिवजीका पूजन करके नैवेद्य चढाया ॥ २३ ॥ मनोहर बिल्वपत्र तथा पुष्पोंसे बारम्बार पूजन करके अनेक नृत्य वाद्य करके बारम्बार प्रणाम किया ॥ २४ ॥ उसी समय गोपीने शिवकी भक्तिमें आसक्त चित्तवाले उस पुत्रको नम्रतासे भोजन करनेके लिये बुलाया ॥ २५ ॥ जब शिवपूजनमें लगे हुए उस बालकने बहुत बुलानेपर भी भोजनकी इच्छा न की तब उसकी माता स्वयं वहां गई ॥२६॥

एतत्सर्वमशेषेण स दृष्ट्वा बल्लवीसुतः ॥ कुतूहलेन तां कर्त्तुं शिवपूजां मनो दधे॥२१॥आनीय हृद्यं पाषाणं शून्ये तु शिविरांतरे॥ अविदूरे स्वशिबिराच्छिवलिंगं स भक्तितः॥२२॥गन्धालंकारवासोभिर्धूपदीपाक्षतादिभिः॥विधाय कृत्रिमैर्द्रव्यैर्नैवेद्यं चाप्यकल्प यत् ॥ २३ ॥ भूयोभूयस्समभ्यर्च्य पत्रैः पुष्पैर्मनोरमैः॥ नृत्यं च विविधं कृत्वा प्रणनाम पुनःपुनः ॥२४॥ एतस्मिन्समये पुत्रं शिवासक्तसुचेतसम् ॥ प्रणयाद्गोपिका सा तं भोजनाय समाह्वयत्॥२५॥यदाहूतोऽपि बहुशश्शिवपूजाक्तमानसः॥बालश्च भोजनं नैच्छत्तदा तत्र ययौ प्रसूः ॥२६॥तं विलोक्य शिवस्याग्रे निषण्णं मीलितेक्षणम्॥चकर्ष पाणिं संगृह्य कोपेन समताडयत् ॥२७॥ आकृष्टस्ताडितश्चापि नागच्छत्स्वसुतो यदा ॥ तां पूजां नाशयामास क्षिप्त्वा लिंगं च दूरतः॥२८॥हाहेति दूयमानं तं निर्भर्त्स्य स्वसुतं च सा ॥ पुनर्विवेश स्वगृहं गोपी क्रोधसमन्विता॥२९॥मात्रा विनाशितां पूजां दृष्ट्वा देवस्य शूलिनः ॥ देवदेवेति चुक्रोश निपपात स बालकः ॥ ३० ॥ प्रनष्टसंज्ञः सहसा स बभूव शुचाकुलः ॥ लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन चक्षुषी उदमीलयत् ॥ ३१ ॥

उस पुत्रको शिवजीके आगे नेत्र मूंदे बैठा हुआ देख उसे हाथ पकडके खींचा तथा क्रोधसे ताडन किया ॥२७॥ जब खींचा हुआ तथा ताडन किया हुआ उसका पुत्र भोजनको न गया तो उसने शिवलिंगको दूर फेंककर उस पूजाको नष्ट किया ॥ २८ ॥ और क्रोधित हुई उस गोपीने हाहाकार करते हुये दुःखी हुये अपने पुत्रको ललकारके फिर अपने घरमें प्रवेश किया ॥ २९ ॥ वह बालक शिवदेवकी पूजाको मातासे नष्ट किया हुआ देख हे देव ! हे देव ऐसा कहता हुआ भूमिपर गिरा ॥ ३० ॥ वह एकसाथ मूर्च्छित हो शोकमें व्याकुल हुआ, तब

क्षणमात्रमें चैतन्य हो उसने नेत्रोंको खोला ॥ ३१ ॥ जो उसी समय महाकाल नामक शिवजीका सुन्दर शिबिर बन गया, वहां उस बालकने शीघ्रही शिवके अनुग्रहसे उसे देखा ॥ ३२ ॥ जिसके स्वर्णमय बडे बडे द्वार तथा सुन्दर कपाट और बन्दनवाल थे बडी सुन्दर स्वच्छ इंद्रनीलमणिकी वेदियोंसे शोभायमान था ॥ ३३ ॥ अनेक अद्भुत तप्त सुवर्णके कलशोंके सहित तथा प्रकाशमान मणियोंके स्तम्भोंके समेत स्फटिक मणियोंसे जटित भूमितलोंसे शोभित था ॥ ३४ ॥ तब गोपीके पुत्रने अपने किये हुए पूजन समेत कृपाके सागर शिवके रत्नजटित ज्योतिर्लिङ्गको उस मंदिरके बीचमें देखा ॥ ३५ ॥ वह बालक यह चरित्र देखकर एक साथ उठ विस्मितचित्त हो क्षणमात्रको परमआनन्द

तदैव जातं शिबिरं महाकालस्य सुन्दरम् ॥ ददर्श स शिशुस्तत्र शिवानुग्रहतोऽचिरात् ॥ ३२ ॥ हिरण्मयबृहद्द्वारं कपाटवरतोरणम् ॥ महार्हनीलविमलवज्रवेदीविराजितम् ॥ ३३ ॥ संतप्तहेमकलशैर्विचित्रै र्बहुभिर्युतम् ॥ प्रोद्भासितमणिस्तंभैर्बद्धस्फटिकभूतलैः ॥ ३४ ॥ तन्मध्ये रत्नलिंगं हि शंकरस्य कृपानिधेः ॥ स्वकृतार्चनसंयुक्तमपश्यद्गोपिकासुतः ॥ ३५ ॥ स दृष्ट्वा सहसोत्थाय शिशुर्विस्मितमानसः ॥ संनिमग्न इवासीद्वै परमानंदसागरे ॥ ३६ ॥ ततः स्तुत्वा स गिरिशं भूयोभूयः प्रणम्य च ॥ सूर्ये चास्तं गते बालो निर्जगाम शिवालयात् ॥३७॥ अथापश्यत्स्वशिबिरं पुरंदर पुरोपमम् ॥ सद्यो हिरण्मयीभूतं विचित्रं परमोज्ज्वलम् ॥ ३८ ॥ सोन्तर्विवेश भवनं सर्वशोभासमन्वितम् ॥ मणिहेमगणाकीर्णं मोदमानो निशामुखे ॥ ३९ ॥ तत्राप श्यत्स्वजननीं स्वपंतीं दिव्यलक्षणाम् ॥ रत्नालंकारदीप्तांगीं साक्षात्सुरवधूमिव ॥ ४० ॥

रूपी समुद्रमें डूब गया ॥ ३६ ॥ उस समय वह बालक शिवजीकी स्तुति करके तथा बारम्बार प्रणाम करके सूर्य अस्त होनेपर उस शिवालयसे अपने घरको गया ॥ ३७ ॥ तत्पश्चात् वहां जाके अपने स्थानको इन्द्रके नगरके समान तथा तत्क्षण सुवर्णसे बना हुआ अद्भुत बड़ा शोभायमान देखा ॥ ३८ ॥ वह सायंकालके समान संपूर्ण शोभावाले मणियोंके समुदाय तथा सुवर्णसे आच्छादित भवन (घर) के भीतर प्रवेशित हुआ ॥ ३९ ॥ वहां उसने दिव्य लक्षणोंवाली रत्नोंके आभूषणोंसे दीप्यमान अंगोंवाली तथा साक्षात् देववधूके समान स्थित सोती हुई अपनी माताको देखा ॥ ४० ॥

हे ब्राह्मणो ! ! ! उस समय उस बालकने सुखसे पूर्णमन हो शिवकी दयाके पात्रवाली अपनी माताको वेगसे उठाया ॥ ४१ ॥ वह उठकर सब अद्भुत अपूर्व चरित्रको देखकर बड़े आनन्दमें मग्न हुई तथा उसने अपने पुत्रको आलिंगन किया ॥ ४२ ॥ पुत्रके मुखसे गिरिजापति शिवकी प्रसन्नताको सुन स्वामी शिवकी प्रार्थना करने लगी जो रात दिन शिवको भजता है वह ऐसाही सुखी होता है ॥ ४३ ॥ उस राजाने भी नियम समाप्त कर रात्रिमें वहां आकर गोपीके पुत्रके शिवको प्रसन्न करनेवाले प्रभावको देखा ॥ ४४ ॥ मन्त्री तथा पुरोहितोंके समेत स्थित हुये उस राजाने यह सम्पूर्ण चरित्र देखा और वह धैर्यरहित तथा परम आनन्दसागरमें मग्न हुआ ॥ ४५ ॥ वह चन्द्रसेन राजा प्रेमसे

अथो स तनयो विप्राश्शिवानुग्रहभाजनम् ॥ जवेनोत्थापयामास मातरं सुखविह्वलः ॥४१॥ सोत्थिताद्भुतमालक्ष्यापूर्वं सर्वमिवाभवत् ॥ महानंदसुमग्ना हि सस्वजे स्वसुतं च तम् ॥४२॥ श्रुत्वा पुत्रमुखात्सर्वं प्रसादं गिरिजापतेः ॥ प्रभुं विज्ञापयामास यो भजत्यनिशं शिवम् ॥ ४३ ॥ स राजा सहसागत्य समाप्तनियमो निशि ॥ ददर्श गोपिकासूनोः प्रभावं शिवतोषणम् ॥ ४४ ॥ दृष्ट्वा महीपतिस्सर्वं तत्सामात्यपुरोहितः ॥ आसीन्निमग्नो विधृतिः परमानंदसागरे ॥ ४५ ॥ प्रेम्णा बाष्पजलं मुञ्चञ्चन्द्रसेनो नृपो हि सः ॥ शिवनामोच्चरन्प्रीत्या परिरेभे तमर्भकम् ॥ ४६ ॥ महामहोत्सवस्तत्र प्रबभूवाद्भुतो द्विजाः ॥ महेशकीर्तनं चक्रुस्सर्वे च सुखविह्वलाः ॥ ४७ ॥ एवमत्यद्भुताचाराच्छिवमाहात्म्यदर्शनात् ॥ पौराणां सम्भ्रमाच्चैवं सा रात्रिः क्षणतामगात् ॥ ४८ ॥ अथप्रभाते युद्धायपुरं संरुध्य संस्थिताः ॥ राजानश्चारवक्त्रेभ्यश्शुश्रुवुश्चरितं च तत् ॥ ४९ ॥

आंसुओंको बहाता हुआ शिवजीके नामका उच्चारण करता हुआ प्रीतिसे उस बालकको आलिंगन करने लगा ॥ ४६ ॥ हे द्विजो ! उस समय वहां बड़ा सुन्दर उत्सव हुआ सम्पूर्ण मनुष्योंने हर्षसे पूर्ण हो शिवका कीर्तन किया ॥ ४७ ॥ इस प्रकार उस अद्भुत चरित्रसे तथा शिवमाहात्म्यके देखनेसे नगरवासियोंकी वह रात्रि आश्चर्यसे क्षणमात्रमें बीत गई ॥ ४८ ॥ जब प्रातःकाल युद्ध करनेके निमित्त सब राजा उस नगरको घेरके स्थित हुए वहां उन्होंने दूतोंके मुखसे यह चरित्र सुना ॥ ४९ ॥

जो जो वहां आये थे, उन सम्पूर्ण राजाओंने मिलकर वह वृत्तान्त सुना अति आश्चर्य करके यह कहा ॥ ५० ॥ राजा बोले, यह अव्याकुल राजा चन्द्रसेन शिवका भक्त है महाकालकी नगरी उज्जयिनीका स्वामी होनेसे जीतनेके अयोग्य है ॥५१॥ जिसके नगरमें ऐसे बालक शिवके व्रत करनेवाले हैं तो फिर वह राजा चन्द्रसेन तो महेश्वरका सेवक है ॥ ५२ ॥ निश्चयही इस राजाके साथ विरोध करनेसे शिवजी क्रोध करेंगे और उनके क्रोध करनेसे हम सब निराश होंगे ॥ ५३ ॥ इस कारण इस राजाके साथ अवश्य मिलाप करना योग्य है ऐसा कहनेसे शिवजी हमारे ऊपर परम कृपा करेंगे ॥ ५४ ॥ सूतजी बोले, ऐसा निश्चय करके उन सब राजाओंने वैरको त्यागा और सुमति ठानी, सब प्रसन्न

ते समेताश्च राजानः सर्वे येये समागताः ॥ परस्परमिति प्रोचुस्तच्छ्रुत्वा चकिता अति ॥ ५० ॥ राजान ऊचुः ॥ अयं राजा चन्द्रसेनश्शिवभक्तोति दुर्जयः ॥ उज्जयिन्या महाकालपुर्याः पतिरनाकुलः ॥ ५१ ॥ ईदृशाश्शिशवो यस्य पुर्य्यांसंति शिवव्रताः ॥ स राजा चन्द्रसेनस्तु महाशंकरसेवकः ॥ ५२ ॥ नूनमस्य विरोधेन शिवः क्रोधं करिष्यति ॥ तत्क्रोधाद्धि वयं सर्वे भविष्यामो विनष्टकाः ॥ ५३ ॥ तस्मादनेन राज्ञा वै मिलापः कार्य एव हि ॥ एवं सति महेशानः करिष्यति कृपां पराम् ॥ ५४ ॥ सूत उवाच ॥ इति निश्चित्य ते भूपास्त्यक्तवैरास्सदाशयाः ॥ सर्वे बभूवुस्सुप्रीतान्यस्त शस्त्रास्त्रपाणयः ॥ ५५ ॥ विविशुस्ते पुरीं रम्यां महाकालस्य भूभृतः ॥ महाकालंसमानर्चुश्चंद्रसेनानुमोदिताः ॥५६॥ ततस्ते गोपवनितागेहं जग्मुर्महीभृतः ॥ प्रसंशंतश्च तद्भाग्यं सर्वे दिव्यमहोदयम् ॥ ५७ ॥ ते तत्र चन्द्रसेनेन प्रत्युद्गम्याभिपूजिताः ॥ महार्हविष्टरगताः प्रत्यनंदन्सुविस्मिताः ॥५८॥ गोपसूनोः प्रसादात्तत्प्रादुर्भूतं शिवालयम् ॥ संवीक्ष्य शिवलिंगं च शिवे चक्रुः परां मतिम्॥५९॥

हुये और हाथोंमें अस्त्र शस्त्र त्यागन किये ॥ ५५ ॥ और उन्होंने महाकाल राजाकी रमणीय नगरीमें प्रवेश किया तथा चन्द्रसेन राजासे प्रसन्न हो महाकाल शिवकी पूजा की ॥ ५६ ॥ तत्पश्चात् वे राजा उसके भाग्यकी प्रशंसा करते हुए दिव्य, तथा बडे उदयवाले गोपीके गृहको गये ॥ ५७ ॥ तब राजा चन्द्रसेनने अभ्युत्थान करके उनकी पूजा की और वे बडे सुन्दर आसनपर बैठे हुए अति विस्मित हो अधिक प्रसन्न हुए ॥ ५८ ॥ गोपीके पुत्रके प्रसाद से प्रगट हुए शिवालयको शिवलिंगको देखकर शिवजीमें परमबुद्धि लगाई ॥ ५९ ॥

तब उन प्रसन्नहुए तथा शिवजीकी कृपाकी अभिलाषा करनेवाले सम्पूर्ण राजाओंने उस गोपके पुत्रको अधिक वस्तुयें प्रदान कीं ॥६०॥ सम्पूर्ण राजाओंने सम्पूर्ण देशोंमें जो जो अधिक गोप स्थित थे उनमें उसीको राजा बनाया ॥६१॥ तब इसी अवसरमें सब देवताओंसे पूजित हुए वानराधिपति तेजस्वी हनुमानजी प्रगट हुए ॥६२॥ उन हनुमानजीके प्रगट होनेसे आश्चर्यमें प्राप्त हुए वे राजा भक्तिसे नम्रीभूत आकर उठकर प्रणाम करने लगे ॥ ६३ ॥ उन सबोंके मध्यमें बैठे हुए पूजित वानरोंके स्वामी हनुमान्‌जी उस गोपके पुत्रको आलिंगन करके राजाको देख यह बोले

ततस्ते गोपशिशवे प्रीता निखिलभूभुजः ॥ ददुर्बहूनि वस्तूनि तस्मै शिवकृपार्थिनः ॥ ६० ॥ येये सर्वेषु देशेषु गोपास्तिष्ठंतिभूरिशः ॥ तेषां तमेव राजानं चक्रिरे सर्वपार्थिवाः ॥ ६१ ॥ अथास्मिन्नन्तरे सर्वैस्त्रिदशैरभिपूजितः ॥ प्रादुर्बभूव तेजस्वी हनूमान्वानरेश्वरः ॥ ६२ ॥ ते तस्याभिगमादेव राजानो जातसंभ्रमाः ॥ प्रत्युत्थाय नमश्चक्रुर्भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ॥ ॥ ६३ ॥ तेषां मध्ये समासीनः पूजितः प्लवगेश्वरः ॥ गोपात्मजं तमालिंग्य राज्ञो वीक्ष्येदमब्रवीत् ॥ ६४ ॥ हनूमानुवाच ॥ सर्वे शृण्वन्तु भद्रं वो राजानो ये च देहिनः ॥ ऋते शिवं नान्यतमो गतिरस्ति शरीरिणाम् ॥ ६५ ॥ एवं गोपसुतो दिष्ट्या शिवपूजां विलोक्य च ॥ अमंत्रेणापि संपूज्य शिवं शिवमवाप्तवान् ॥ ६६ ॥ एष भक्तवरश्शंभोर्गोपानां कीर्तिवर्द्धनः ॥ इह भुक्ताखिलान्भोगानंते मोक्षमवाप्स्यति ॥ ६७ ॥ अस्य वंशेऽष्टमो भावी नन्दो नाम महायशाः ॥ प्राप्स्यते तस्य पुत्रत्वं कृष्णो नारायणस्स्वयम् ॥ ६८ ॥ अद्यप्रभृति लोकेस्मिन्नेष गोप कुमारकः ॥ नाम्ना श्रीकर इत्युच्चैर्लोकख्यातिं गमिष्यति ॥ ६९ ॥

॥ ६४ ॥ हनुमान्‌जी बोले, हे सम्पूर्णराजाओ ! हे मनुष्यो ! तुम सब मेरे कल्याणकारी वचनको सुनो, शिवजीके विना और कोई मनुष्योंकी गति नहीं है ॥६५॥ इस प्रकार गोपका पुत्र स्वभावसे शिवके पूजनको देख विना मंत्रोंसे ही कल्याणकारी शिवको पूजकर उन्हें प्राप्त हुआ ॥६६॥ यह गोपोंकी कीर्त्तिको बढ़ानेवाला शिवका श्रेष्ठ भक्त यहां सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अंतसमयमें मोक्षको प्राप्त होगा ॥ ६७ ॥ इसके वंशमें आठवीं पीढीमें महायशस्वी नन्द नामक पुरुष उत्पन्न होंगे उनके पुत्ररूपमें स्वयं नारायण कृष्ण उत्पन्न होंगे ॥ ६८ ॥ आजसे लेकर यह

गोपीका पुत्र इस संसारमें श्रीकर नामसे लोकमें अधिक प्रसिद्धिको प्राप्त होगा ॥ ६९ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहके अञ्जनीके पुत्र शिवके अवतार हनुमान्‌जीने सब राजाओंको तथा राजा चन्द्रसेनको कृपादृष्टिसे देखा ॥ ७० ॥ और उस बुद्धिमान् गोपके पुत्र श्रीकरको बड़ी प्रीतिसे शिवप्रिय : शिव सम्बन्धी आचारका उपदेस दिया ॥ ७१ ॥ हे ब्राह्मणो ! तब अति प्रसन्न हुए वे हनुमान्‌जी राजा चन्द्रसेनके तथा गोप पुत्र श्रीकर आदि सब मनुष्योंके देखते देखते अन्तर्धान हुये ॥७२॥ पूजित और प्रसन्न हुए राजा चन्द्रसेनका सत्कार करके अपने अपने स्थानको चले गये ॥७३॥ हनुमान्‌जीसे उपदेश किये हुए श्रीकरने महातेजवाले भी धर्मात्मा ब्राह्मणोंके सहित शिवजीका पूजन किया ॥७४॥ महाराजा चन्द्रसेन

सूत उवाच॥एवमुक्काञ्जनीसूनुः शिवरूपो हरीश्वरः॥सर्वान्राज्ञश्चन्द्रसेनं कृपादृष्ट्या ददर्श ह॥७०॥अथ तस्मै श्रीकराय गोपपुत्राय धीमते॥उपादिदेश सुप्रीत्या शिवाचारं शिवप्रियम्॥७१॥हनूमानथ सुप्रीतः सर्वेषापश्यतां द्विजाः॥चन्द्रसेनं श्रीकरं च तत्रैवान्तरधीयत॥७२॥तं सर्वे च महीपालास्संहृष्टाः प्रतिपूजिताः॥चन्द्रसेनं समामंत्र्य प्रतिजग्मुर्यथागतम्॥७३॥श्रीकरोपि महातेजा उपदिष्टो हनूमता॥ब्राह्मणैस्सह धर्मज्ञैश्चक्रे शम्भोस्समर्हणम्॥७४॥चंन्द्रसेनो महाराजः श्रीकरो गोपबालकः॥उभावपि परप्रीत्या महाकालं च भेजतुः ॥७५॥ कालेन श्रीकरस्सोपि चन्द्रसेनश्च भूपतिः ॥ समाराध्य महाकालं भेजतुः परमं पदम्॥७६॥एवंविधो महाकालश्शिवलिंगस्सतां गतिः ॥ सर्वथा दुष्टहंता च शंकरो भक्तवत्सलः॥७७॥ इदं पवित्रं परमं रहस्यं सर्वसौख्यदम् ॥ आख्यानं कथितं स्वर्ग्यं शिवभक्तिविवर्द्धनम्॥७८॥इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां महाकालज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत महाभाग श्राविता ह्यद्भुता कथा ॥ महाकालाख्यलिंगस्य निजभक्तसुरक्षिणः ॥ १ ॥

तथा श्रीकर दोनोंने बड़ी प्रीतिसे महाकालको सेवन किया ॥७५॥ वह श्रीकर तथा चन्द्रसेन राजा समय समयपर महाकालका आराधन करके मोक्षको प्राप्त हुये ॥७६॥ इस प्रकार महाकाल शिवका ज्योतिर्लिंग सत्पुरुषोंको सुन्दरगति देनेवाला सब प्रकार दुष्टोंको मारनेवाला तथा भक्तोंके ऊपर दया करनेवाला है ॥७७॥ यह बड़ा पवित्र गोपनीय तथा सब सुखोंका देनेवाला, स्वर्गका तथा शिव भक्तिका बढ़ानेवाला इतिहास आपसे वर्णन किया ॥७८॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० महाकाल ज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥ ऋषि बोले, हे महाभाग !

ज्योतिर्लिंगं चतुर्थं च कृपया वद वित्तम॥ ॐकारं परमेशस्य सर्वपातकहारिणः ॥२॥ सूत उवाच॥ॐकारे परमेशाख्यं लिंगमासीद्यथा द्विजाः॥तथा वक्ष्यामि वः प्रीत्या श्रूयतां परमर्षयः ॥३॥ कस्मिंश्चित्समये चात्र नारदो भगवान्मुनिः ॥ गोकर्णाख्यं शिवं गत्वा सिषेवे परभक्तिमान् ॥ ४ ॥ ततस्स आगतो विन्ध्यं नगेशं मुनिसत्तमः॥तत्रैव पूजितस्तेन बहुमानपुरस्सरम् ॥ ५ ॥ मयि सर्वं विद्यते च न न्यूनंहि कदाचन॥इति भावं समास्थाय संस्थितो नारदाग्रतः ॥६॥ तन्मानं तत्तदा श्रुत्वा नारदो मानहा ततः ॥ निश्श्वस्य संस्थितस्तत्र श्रुत्वा विन्ध्योऽब्रवीदिदम् ॥७॥ विन्ध्य उवाच॥ किं न्यूनं च त्वया दृष्टं मयि निश्श्वासकारणम् ॥ तच्छ्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत्स महामुनिः ॥ ८ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ विद्यते त्वयि सर्वं हि मेरुरुच्चतरः पुनः ॥ देवेष्वपि विभागोऽस्य न तवास्ति कदाचन ॥ ९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा नारदस्तस्माज्जगाम च यथागतम् ॥ विन्ध्यश्च परितप्तो वै धिग्वै मे जीवितादिकम् ॥ १० ॥

सूतजी ! अपने निजभक्तोंके रक्षा करनेवाले ओंकार शिवके चौथे ज्योतिर्लिंगकी कथा सुनाई ॥ १ ॥ हे जाननेवाले ! अब कृपा करके संपूर्ण पापोंके दूर करनेवाले ओंकार शिवके चौथे ज्योतिर्लिंगका वर्णन करो ॥२॥ सूतजी बोले, हे द्विजो ! हे परम ऋषियो ! ओंकारमें परमेश नाम वाला ज्योतिर्लिंग जिस प्रकार कहा है उस प्रकार आपसे प्रीतिसे कहता हूं आप सुनें ॥ ३ ॥ किसी समय यहां पर परम भक्तिवाले मुनि भगवान् नारदजीने गोकर्ण नामक शिवके समीप जाकर उनकी सेवा की ॥४॥ फिर वह मुनिश्रेष्ठ नारदजी विन्ध्याचल पर्वतपर गये वहां उन्होंने बहुत मानपूर्वक शिवकी पूजा की ॥ ५ ॥ मुझमें सब कुछ है किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं है, ऐसा अहंकार करके वह विन्ध्यापर्वत नारद

जीके आगे स्थित हुआ ॥ ६ ॥ उस समय अहंकारके नाश करनेवाले नारदजीने ऐसा वचन सुन उसका निरादर करके वहां स्थिति की तो विन्ध्याचल इस प्रकार बोला ॥७॥ विन्ध्यने कहा, आपने मुझमें क्या न्यूनता देखी जो निश्वास लिया यह सुन महामुनि नारदजी यह वचन बोले ॥ ८ ॥ नारदजीने कहा, हां तुममें तो सब ही गुण हैं, परन्तु सुमेरुपर्वत सबसे ऊंचा है तथा उसका देवताओंमें विभाग है, उनमें तुम्हारी गणना नहीं है ॥९॥ सूतजीने बोले, ऐसा कहके नारदजी वहां अपने स्थानको चले गये, विन्ध्याचल अपने मनमें इस प्रकार दुःखी हुआ कि, मेरा जीवन आदि

धिक्कारयोग्य है ॥ १० ॥ विश्वेश्वर शिवका आराधन करके मैं तप करूंगा, ऐसा अपने मनमें निश्चय करके शंकरके शरणमें प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ और बडी प्रीतिसे वहां गमन किया जहां ओंकार नामक शिव स्थित थे, वहांपर उसने पार्थिव शिवकी मूर्त्ति बनाई ॥ १२ ॥ उस समय छह मास पर्यन्त नित्य शिवका आराधन करके शिवजीके ध्यानमें लीन हो उस तपके स्थानसे चलायमान न हुआ ॥ १३ ॥ इस प्रकार विन्ध्यके तपको देखकर शिवजी प्रसन्न हुए तथा योगियोंको भी दुर्लभ अपने शरीरको दिखाया ॥ १४ ॥ और अति प्रसन्न हुए शिवजी बोले, तू मनोवांछित वरको मांग मैं तेरे तपसे प्रसन्न हूं कारण कि, मैं भक्तोंकी कामना सिद्ध करनेवाला हूं ॥ १५ ॥ विन्ध्याचल

विश्वेश्वरं तथा शंभुमाराध्य च तपाम्यहम्॥इति निश्चित्य मनसा शंकरं शरणं गतः ॥११॥ जगाम तत्र सुप्रीत्या ह्योंकारो यत्र वै स्वयम् ॥ चकार च पुनस्तत्र शिवमूर्तिं च पार्थिवीम्॥१२॥आराध्य च तदा शंभुं षण्मासं स निरन्तरम् ॥न चचाल तपःस्थाना च्छिवध्यानपरायणः॥१३॥एवं विंध्यतपो दृष्ट्वा प्रसन्नः पार्वतीपतिः ॥ स्वरूपं दर्शयामास दुर्लभं योगिनामपि ॥१४॥ प्रसन्नस्स तदोवाच ब्रूहि त्वं मनसेप्सितम्॥तपसा ते प्रसन्नोस्मि भक्तानामीप्सितप्रदः॥१५॥ विन्ध्य उवाच॥यदिप्रसन्नो देवेश बुद्धिं देहि यथेप्सिताम् ॥स्वकार्यसाधिनीं शंभो त्वं सदा भक्तवत्सलः ॥१६॥सूत उवाच॥तच्छ्रुत्वा भगवाञ्छंभुश्चिचेत हृदये चिरम्॥ परोपतापदं विन्ध्यो वरमिच्छति मूढधीः ॥१७॥किं करोमि यदेतस्मै वरदानं भवेच्छुभम्॥मद्दत्तं परदुःखाय वरदानं यथा नहि ॥ १८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ तथापि दत्तवाञ् शंभुस्तस्मै तद्वरमुत्तमम् ॥ विंध्यपर्वतराज त्वं यथेच्छसि तथा कुरु ॥ १९ ॥

बोला, हे देवताओंके ईश्वर ! हे शंभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे मनोवांछित अपने कार्यको सिद्ध करनेवाली बुद्धिको प्रदान करो आप सदा भक्तवत्सल हैं ॥ १६ ॥ सूतजी बोले, यह सुन भगवान् शिवने बहुत देरतक अपने हृदयमें विचारा कि, यह मूर्ख विन्ध्याचल दूसरोंको दुःखदेनेवाले वरकी इच्छा करता है ॥ १७ ॥ अब क्या करूं ? कि, जिससे इसका शुभ वरदान होजाय कारण कि, मेरा दिया हुआ वरदान दूसरेके दुःखदेनेके अर्थ नहीं होता है ॥ १८ ॥ सूतजी बोले, यह सोचते हुए भी शंभुने उसे वरदान दिया कि, हे पर्वतोंके राजा

विन्ध्याचल ! जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो ॥ १९ ॥ इसी प्रकार वहां श्रेष्ठ बुद्धिवाले सम्पूर्ण देवता तथा ऋषियोंने शिवको पूजकर आप यहां स्थित होवें, इस प्रकार कहा ॥ २० ॥ ऐसा देवताओंका वचन सुनके प्रसन्न हुये शिवजीने संसारके सुखके हेतु वहां उसी प्रकार स्थिति की ॥ २१ ॥ वहांपर ओंकारलिंग था वह दो रूपमें किया और वह सदाशिव प्रणवमें ओंकार नामवाले हुये ॥ २२ ॥ हे ब्राह्मणो ! पार्थिवमें जो प्रगट हुए परमेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए, यह दोनों ज्योतिर्लिंग भक्तोंके अभीष्ट देनेवाले तथा भुक्ति मुक्ति देनेवाले हुये ॥ २३ ॥ और देवता तथा ऋषियोंने उसकी पूजा की और शिवको पूजकर स्तुतिकर अनेक वरदान पाये ॥ २४ ॥ हे द्विजो ! वे सब देवता अपने अपने

एवं च समये देवा ऋषयश्चामलाशयाः॥संपूज्य शंकरं तत्र स्थातव्यमिति चाब्रुवन्॥२०॥तच्छ्रुत्वा देववचनं प्रसन्नःपरमेश्वरः॥ तथैव कृतवान्प्रीत्या लोकानां सुखहेतवे॥२१॥ ॐ कारं चैव यल्लिंगमेकं तच्च द्विधागतम् ॥ प्रणवे चैव ॐकारनामासीत्स सदा शिवः ॥ २२ ॥ पार्थिवे चैव यज्जातं तदासीत्परमेश्वरः ॥भक्ताभीष्टप्रदौ चोभौ भुक्तिमुक्तिप्रदौ द्विजाः ॥ २३ ॥ तत्पूजां च तदा चक्रुर्देवाश्च ऋषयस्तथाः॥प्रापुर्वराननेकांश्च संतोष्य वृषभध्वजम्॥२४॥ स्वस्वस्थानं ययुर्देवा विन्ध्योपि मुदितोऽधिकम् कार्य्यं साधितवान्स्वीयं परितापं जहौ द्विजाः॥२५॥य एवं पूजयेच्छंभुं मातृगर्भे वसेन्न हि॥यदभीष्टं फलं तच्च प्राप्नुयान्नात्र संशय ॥ २६ ॥ सूत उवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातमोंकारप्रभवे फलम् ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि केदारं लिंगमुत्तमम् ॥ २७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायामोंकारेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

स्थानको चले गये विन्ध्यपर्वतने भी अधिक प्रसन्न हो अपने कार्यको साधा तथा दुःखको त्यागन किया ॥ २५ ॥ जो यहां पर शिवका पूजन करता है वह माताके गर्भमें फिर निवास नहीं करता तथा जो अभिष्टफल हैं उन्हें प्राप्त होता है इसमें कुछ संशय नहीं है ॥२६॥ सूतजी बोले, यह सब ओंकारके माहात्म्यको तुमसे कहा अब इसके आगे केदार नामक श्रेष्ठ लिंगका वर्णन करता हूं ॥ २७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा० च० को० रु० ओंकारेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सूतजी बोले, हे द्विजो ! नरनारायण नामवाले जो विष्णुके अवतार हुये उन्होंने भरत खण्डमें बदरिकाश्रममें तप किया ॥ १ ॥ पूजन करनेके निमित्त उन दोनोंसे प्रार्थना किये हुए शिवजी भक्तोंकी अधीनतासे नित्य पार्थिव लिंगमें विराजमान होते थे ॥ २ ॥ इस प्रकार शिवका पूजन करते हुए शिवके भक्त, धर्मपुत्र, विष्णुके अवतार नरनरायणको बहुत समय बीत गया ॥ ३ ॥ एक समय वहां प्रसन्न हुए शिवजी यह बोले कि, मैं तुमसे प्रसन्न हूं मुझसे वर मांगो ॥ ४ ॥ उस समय शिवके ऐसा कहनेपर स्वयं नरनारायणको संसारके हितकी कामनासे वहां यह वचन कहा ॥ ५ ॥ नरनारायण बोले, हे देवेश ! हे शंकर ! यदि आप हमसे प्रसन्न हैं और हमको वर देना चाहते हैं तो

सूत उवाच ॥ नरनारायणाख्यौ यावतारौ हरेर्द्विजाः ॥ तेपाते भारते खण्डे बदर्याश्रम एव हि॥ १ ॥ ताभ्यां संप्रार्थितश्शंभुः पार्थिवे पूजनाय वै ॥ आयाति नित्यं तल्लिंगे भक्ताधीनतया शिव ॥ २ ॥ एवं पूजयतोश्शंभुं तयोर्विष्ण्ववतारयोः ॥ चिरकालो व्यतीयाय शैवयोर्धर्मपुत्रयोः ॥ ३ ॥ एकस्मिन्समये तत्र प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नोस्मि वरो मे ब्रियतामिति ॥ ४ ॥ इत्युक्ते च तदा तेन नरो नारायणस्स्वयम् ॥ ऊचतुर्वचनं तत्र लोकानां हितकाम्यया ॥ ५ ॥ ॥ नरनारायणावूचतुः ॥ यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरस्त्वया ॥ स्थीयतां स्वेन रूपेण पूजार्थं शंकरस्स्वयम् ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तु तदा ताभ्यां केदारे हिमसंश्रये ॥ स्वयं च शंकरस्तस्थौ ज्योतीरूपो महेश्वरः ॥ ७ ॥ ताभ्यां च पूजितश्चैव सर्वदुःखभयापहः ॥ लोकानामुपकारार्थं भक्तानां दर्शनाय वै ॥ ८ ॥ स्वयं स्थितस्तदा शंभुः केदारेश्वरसंज्ञकः ॥ भक्ताभीष्टप्रदो नित्यं दर्शनादर्चनादपि ॥९॥ देवाश्च पूजयंतीह ऋषयश्च पुरातनाः ॥ मनोभीष्ट फलं तेते सुप्रसन्नान्महेश्वरात् ॥ १० ॥

आप स्वयं अपने रूपसे पूजाके निमित्त यहां स्थित होवें ॥ ६ ॥ सूतजी बोले, उन दोनोंके ऐसा कहनेपर हिमसे आश्रित केदारमें साक्षात महेश्वर, ज्योतिः स्वरूप हो स्वयं स्थित हुए ॥ ७ ॥ उन दोनोंसे पूजित हुये सम्पूर्ण संकट और भयसे दूर करनेवाले शिवजी लोकोंके उपकारके निमित्त तथा भक्तोंके दर्शन करनेके अर्थ वहां पधारे ॥ ८ ॥ केदारेश्वर नामसे प्रसिद्ध स्वयं स्थित हुए शिवजी दर्शन करनेसे तथा पूजन करनेसे अपने भक्तोंके मनोरथ सिद्ध करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ जो जो देवता तथा पुरातन ऋषि उनकी पूजा करते वे सब

प्रसन्न हुए शिवजीसे मनोवांछित फल प्राप्त करते हैं ॥ १० ॥ शिवके नित्य अर्चन करनेसे बदर्याश्रममें रहनेवाले सब स्ववांछित फल पाते थे कारण कि, महेश्वर सदा भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाले हैं ॥ ११ ॥ उस दिनसे लेकर जो भक्तिसे केदारेश्वरका दर्शन करते हैं उनको स्वप्नमें भी दुःख नहीं होता ॥ १२ ॥ पांडवोंको देखकर यहां देवदेवने महिषका रूप धारण किया था और मायाको करके उनके सामनेसे पलायमान हुए ॥ १३ ॥ तब पांडवोंने उस महिष रूपकी पूंछ पकड़ली तब यह नीचेको मुखकर स्थित हुए तब इनकी बारम्बार प्रार्थना की ॥ १४ ॥ तब यह भक्तवत्सल भगवान् उसी रूपसे वहां स्थित हुए और उस रूपका शिरोभाग नयपालमें प्रगट हुआ ॥ १५ ॥

भवस्य पूजनान्नित्यं बदर्याश्रमवासिनः ॥ प्राप्नुवतिन्यतः सोऽसौ भक्ताभी ष्टप्रदः सदा ॥ ११ ॥ तद्दिनं हि समारभ्य केदारेश्वर एव च ॥ पूजितो येन भक्त्या वै दुःखं स्वप्नेऽति दुर्लभम् ॥१२॥ यो वै हि पाण्डवान्दृष्ट्वा माहिषं रूपमास्थितः ॥ मायामास्थाय तत्रैव पलायनपरोऽभवत् ॥ १३ ॥ धृतश्च पाण्डवैस्तत्र ह्यवाङ्मुखतया स्थितः ॥ पुच्छं चैव धृतं तैस्तु प्रार्थितश्च पुनःपुनः ॥ १४ ॥ तद्रूपेण स्थितस्तत्र भक्तवत्सलनामभाक् ॥ नयपाले शिरोभागोगतस्तद्रूपतः स्थितः ॥ १५ ॥ स वै व पूजनान्नित्यमाज्ञां चैवाप्यदात्तथा ॥ पूजितश्च स्वयं शंभुस्तत्र तस्थौ वरानदात् ॥ १६ ॥ पूजयित्वा गतास्ते तु पाण्डवा मुदितास्तदा ॥ लब्ध्वा चित्तेप्सितं सर्वं विमुक्तास्सर्वदुःखतः ॥ १७ ॥ तत्र नित्यं हरस्साक्षा त्क्षेत्रे केदारसंज्ञके ॥ भारतीभिः प्रजाभिश्च तथेव परिपूज्यते ॥ १८ ॥ तत्रत्यं वलयं यो वै ददाति हरवल्लभः ॥ हररूपांतिकं तच्च हररूपसमन्वितम् ॥ १९ ॥ तथैव रूपं दृष्ट्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ जीवन्मुक्तो भवेत्सोपि यो गतो बदरीवने ॥ २० ॥

तब वहां नित्य उनका पूजन करनेसे उनकी आज्ञा पाकर पाण्डवोंने बडी प्रसन्नता प्रगट की और शिवजी उनसे पूजित हो उन्हें वर देकर वहां स्थित हुए ॥ १६ ॥ शंकरका पूजन कर वे पाण्डव प्रसन्न होकर वहांसे गये और सब दुःखोंसे रहित उन्होंने अपना मन इच्छित फल पाया ॥ १७ ॥ उस केदार क्षेत्रमें शंकर नित्य स्थित हैं और भारतवासी सदा उनका पूजन करते हैं ॥ १८ ॥ जो शिवकी प्रीतिके निमित्त वहां कंकन देते हैं वह शिवके समीप जाकर शिवरूप होते हैं ॥१९॥ वहां शंकरका रूप देखकर प्राणी सब पापोंसे छूट जाता

है बदरी वन जानेवाले जीवन्मुक्त होजाते हैं ॥२०॥ यहां नरनारायणका दर्शन कर और केदारेश्वर शंकरका दर्शन अवश्यही मनुष्य मुक्तिका भागी होता है ॥ २१ ॥ जो भक्त केदारेश्वरके मार्गमें मृत्युको प्राप्त होजायँ वेभी मुक्त हो जातेहैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २२ ॥ जो वहां जाकर प्रेमसे केदारेश्वरका पूजन करतेहैं तथा जलपान करते हैं उनका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ २३ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस भरतखण्डमें नरनारायण तथा केदारेश्वरका परमभक्तिसे पूजकर तथा भक्ति करके सब जीव मुक्त होते हैं ॥ २४ ॥ वह सर्वेश विशेषकर इस भूखण्डके स्वामी हैं केदारेश्वर शंकर सब कामनाओंके देनेवालेहैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वरो ! जो कुछ आपने पूँछा तौ तुमसे सब कह दिया इसके सुननेसे सब

दृष्ट्वा रूपं नरस्यैव तथा नारायणस्य हि ॥ केदारेश्वरशंभोश्च मुक्तभागी न संशयः ॥ २१ ॥ केदारेशस्य भक्ता ये मार्गस्थास्तस्य वै मृताः ॥तेऽपि मुक्ता भवंत्येव नात्र कार्य्या विचारणा ॥ २२ ॥ गत्वा तत्र प्रीतियुक्तः केदारेशं प्रपूज्य च ॥ तत्रत्यमुदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विन्दति ॥२३॥ खण्डेस्मिन्भारते विप्रा नरनारायणेश्वरः ॥ केदारेशः प्रपूज्यश्च सर्वैर्जीवैस्सुभक्तितः ॥२४॥ अस्य खण्डस्य स स्वामी सर्वेशोपि विशेषतः ॥ सर्वकामप्रदश्शंभुः केदाराख्यो न संशय ॥ २५ ॥ एतद्वचस्समाख्यातं यत्पृष्टमृषि सत्तमाः ॥ श्रुत्वा पापं हरेत्सर्वं नात्र कार्या विचारणा ॥२६॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां केदारेश्वर ज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भैमशंकरम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण सर्वाभीष्टं लभेन्नरः ॥ १ ॥ कामरूपाभिधे देशे शंकरो लोककाम्यया ॥ अवतीर्णः स्वयं साक्षात्कल्याण सुखभाजनम् ॥ २ ॥ यदर्थमवतीर्णोसौ शंकरो लोकशंकरः ॥ शृणुतादरतस्तच्च कथयामि मुनीश्वराः ॥ ३ ॥

पाप दूर होजातेहैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० केदारेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ सूतजी बोले, अब इससे आगे भीमशंकर महादेव माहात्म्यको कहता हूं जिसके सुननेमात्रसे मनुष्य संपूर्ण अभीष्टको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ कामरूप देशमें लोकोंकी कामनाके अर्थ साक्षात् कल्याण और सुखके देनेवाले शिवजी स्वयं प्रगट हुये ॥ २ ॥ हे मुनीश्वरो! संसारके कल्याण करनेवाले शंकरने जिस कारण यहां अवतार लिया है सो आदरसे सुनो मैं कहता हूं॥३॥ हे ब्राह्मणो ! पहले सब प्राणियोंको दुःख

देनेवाला सदा धर्मका नाश करनेवाला भीमनामक बडा वीर राक्षस था॥४॥वह महाबली राक्षस कुंभकर्णसे कर्कटीराक्षसीमें उत्पन्न हुआ था और उसने अपनी माताके सहित सह्यपर्वतपर निवास किया ॥ ५ ॥ संसारमें भय करनेवाले कुम्भकर्णको रामचन्द्रजीने जब मारा तब उस राक्षसीने अपने पुत्र सहित स्वयं सह्यपर्वतपर निवास किया ॥ ६ ॥ हे द्विजो ! एक समय बालकपनमें उस दुष्ट लोकोंको दुःख देनेवाले भयंकर पराक्रम वाले भीमने अपनी कर्कटी मातासे पूँछा ॥ ७ ॥ भीम बोला मेरा पिता कौन है तथा कहां है और तू क्यों अकेली स्थित हुई है यह

भीमो नाम महावीर्यो राक्षसोऽभूत्पुरा द्विजाः ॥ दुःखदस्सर्वभूतानां धर्मध्वंसकरस्सदा ॥४॥ कुंभकर्णात्समुत्पन्नः कर्कट्यां सुमहा बलः॥सह्ये च पर्वते सोऽपि मात्रा वासं चकार ह ॥५॥ कुंभकर्णे च रामेण हते लोकभयंकरे॥राक्षसी पुत्रसंयुक्ता सह्येऽतिष्ठत्स्वयं तदा ॥ ६ ॥ स बाल एकदा भीमः कर्कटीं मातरं द्विजाः ॥ पप्रच्छ च खलो लोकदुःखदो भीमविक्रमः ॥ ७ ॥ भीम उवाच ॥ मातर्मेकः पिताकुत्र कथं वैकाकिनी स्थिता ॥ ज्ञातुमिच्छामि तत्सर्वं यथार्थं त्वं वदाधुना ॥ ८ ॥ सूत उवाच ॥ एवं पृष्टा तदा तेन पुत्रेण राक्षसी च सा॥उवाच पुत्रं सा दुष्टाश्रूयतां कथयाम्यहम् ॥ ९ ॥ कर्कटयुवाच ॥ पिता ते कुम्भकर्णश्च रावणानुज एवच ॥ रामेण मारितस्सोयं भ्रात्रा सह महाबलः ॥ १० ॥ अत्रागतः कदाचिद्वै कुम्भकर्णस्स राक्षसः ॥ मद्भोगं कृतवांस्तात प्रसह्य बलवान्पुरा ॥ ११ ॥ लंकां स गतवान् मां च त्यक्त्वात्रैव महाबलः ॥ मया न दृष्टा सा लंका ह्यत्रैव निवसाम्यहम् ॥ १२ ॥ पिता मे कर्कटो नाम माता मे पुष्कसी मता ॥ भर्ता मम विराधो हि रामेण निहतः पुरा ॥ १३ ॥

सब ठीक ठीक जाननेकी इच्छा है सो तू कह ॥ ८ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उस पुत्रके पूँछनेपर वह दुष्ट राक्षसी अपने पुत्रसे बोली कि मैं सब वर्णन करती हूं ॥ ९ ॥ कर्कटी बोली, तेरा पिता रावणका भाई कुम्भकर्ण था उस महाबलीको भाईसहित रामचन्द्रजीने मारडाला ॥१०॥ हे पुत्र ! एक समय वह राक्षस कुंभकर्ण यहां आया था और उस बलावान्ने बलात्कार मेरे साथ रमण किया॥ ११ ॥ और वह महाबली कुंभकर्ण मुझे यहां ही त्यागकर लंकापुरीको चला गया मैंने वह लंका नहीं देखी मैं यहींपर निवास करती हूं ॥ १२ ॥ मेरा पिता कर्कट नामवाला

है और माता पुष्कसी है, मेरा पति विराध नामक रामचन्द्रने पहलेही युद्धमें मार दिया था ॥ १३ ॥ अपने प्रिय स्वामीके मरजानेपर मैं अपने माता पिताके समीप रहने लगी फिर मेरे माता पिताको ऋषिने भस्मकर मार दिया ॥ १४ ॥ तपस्वी अगस्त्यके शिष्यको भक्षण करनेको मेरे माता पिता गये तब क्रोधित हुए तीव्र प्रतापवाले उन महात्मा ऋषिने अपने तपोबलसे उनको भस्म कर दिया ॥ १५ ॥ तबसे मैं अकेली दुःखी हुई आश्रम तथा सहायता रहित पहलेसे इस पर्वतपर रहती थी ॥ १६ ॥ उसी समयमें यहां आकर रावणके भाई कुंभकर्णने मेरे साथ भोग किया और वह मुझे छोडके चला गया ॥ १७ ॥ उसके पीछे तू महाबली पराक्रमी उत्पन्न हुआ तबसे तुझे

पित्रोः पार्श्वे स्थिता चाहं निहते स्वामिनि प्रिये ॥ पितरौ मे मृतौ चात्र ऋषिणा भस्मसात्कृतौ ॥ १४ ॥ भक्षणार्थं गतौ तत्र क्रुद्धेनसुमहात्मना ॥ सुतीक्ष्णेन सुतपसाऽगस्त्यशिष्येण वै तदा ॥ १५ ॥ साऽहमेकाकिनी जाता दुःखितापर्वते पुरा ॥ निवसामि स्म दुःखार्ता निरालंबा निराश्रया ॥ १६ ॥ एतस्मिन्समये ह्यत्र राक्षसो रावणानुजः ॥ आगत्य कृतवान् संगं मां विहाय गतो हि सः ॥ १७ ॥ ततस्त्वं च समुत्पन्नो महाबलपराक्रमः ॥ अवलंब्य पुनस्त्वां च कालक्षेपं करोम्यहम् ॥ १८ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्या भीमो भीमपराक्रमः ॥ क्रुद्धश्च चिंतयामास किं करोमि हरिं प्रति ॥ १९ ॥ पितानेन हतो मे हि तथा माता महोह्यपि ॥ विराधश्च हतोऽनेन दुःखं बहुतरं कृतम् ॥ २० ॥ तत्पुत्रोहं भवेयं चेद्धरिं तं पीडयाम्यहम् ॥ इति कृत्वा मतिं भीमस्तपस्तप्तुं महद्ययौ ॥ २१ ॥ ब्रह्माणं च समुद्दिश्य वर्षाणां च सहस्रकम् ॥ मनसा ध्यानमाश्रित्य तपश्चक्रे महत्तदा ॥२२॥ ऊर्ध्वबाहुश्चैकपादस्सूर्य्यं दृष्टिदधत्पुरा ॥ संस्थितस्सबभूवाथ भीमो राक्षसपुत्रकः ॥ २३ ॥

अवलंबन करके मैं समय बिताती हूं ॥ १८ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उनका वचन सुनकर प्रबल पराक्रमी भीम भगवान्के ऊपर बडा क्रोधित हुआ और चिंता करने लगा कि, मैं अब क्या करूं ॥ १९ ॥ रामचन्द्रने मेरे पिताको नानाको और विराधको भी इस प्रकार हमको बडा दुःख दिया ॥ २० ॥ यदि मैं कुम्भकर्णका पुत्र हूं तो हरिको अवश्य पीडा दूंगा, ऐसी मति कर वह भीम दैत्य परम तप करनेको चला गया ॥ २१ ॥ तब उसने ब्रह्माके उद्देशसे मनसे ध्यानमें मग्न हो सहस्रवर्ष पर्यंत बडा तप किया ॥ २२ ॥ वह भीम राक्षसका

पुत्र ऊपरको भुजा उठाय एक पैरसे खडा हुआ सूर्यमें दृष्टि लगाये हुए स्थित हुआ ॥ २३ ॥ उसके मस्तकपर परम भयानक तेज उत्पन्न हुआ तब उस तेजसे भस्म हुये सब देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ २४ ॥ उन इंद्र आदि देवताओंने ब्रह्माको प्रणाम करके अनेक स्तोत्रोंसे ब्रह्माजीकी स्तुतिकी और उनसे अपना दुःख निवेदन किया ॥ २५ ॥ देवता बोले, हे ब्रह्माजी ! राक्षसका तेज संसारको पीडा देनेके निमित्त उद्यत हुआ है, सो हे विधे ! जो वह दुष्ट राक्षस प्रार्थना करता है आप उस वरको दीजिये ॥ २६ ॥ नहीं तो अब उसके प्रचंड तेजसे भस्म हुए हम सब नाशको प्राप्त होंगे इस कारण उसकी प्रार्थनाको स्वीकार करो ॥ २७ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उन देव

शिरसस्तस्य संजातं तेजः परमदारुणम् ॥ तेन दग्धास्तदा देवा ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥२४॥ प्रणम्य वेधसं भक्त्या तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः ॥ दुःखं निवेदयांचक्रुर्ब्रह्मणे ते सवासवाः ॥२५॥ देवा ऊचुः ॥ ब्रह्मन्वै रक्षसस्तेजो लोकान्पीडितुमुद्यतम् ॥ यत्प्रार्थ्यते च दुष्टेन तत्त्वं देहि वरं विधे॥२६॥ नोचेदद्य वयं दग्धास्तीव्रतत्तेजसा पुनः ॥ यास्यामस्संक्षयं सर्वे तस्मात्तं देहि प्रार्थितम् ॥ २७ ॥ सूत उवाच ॥ इति तेषां वचश्श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ जगाम च वरं दातुं वचनं चेदमब्रवीत् ॥२८॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि यत्ते मनसि वर्तते ॥ इति श्रुत्वा विधेर्वाक्यमब्रवीद्राक्षसो हि सः ॥२९॥ भीम उवाच ॥ यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वर स्त्वया ॥ अतुलं च बलं मेऽद्य देहि त्वं कमलासन ॥३०॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तु नमश्चक्रे ब्रह्मणे स हि राक्षसः ॥ ब्रह्मा चापि तदा तस्मै वरं दत्त्वा गृहं ययौ॥३१॥राक्षसो गृहमागत्य ब्रह्मात्तातिबलस्तदा ॥ मातरं प्रणिपत्याशु स भीमः प्राह गर्ववान् ॥३२॥

ताओंका वचन सुनके लोकपितामह ब्रह्माजी उसे वर देनेको चले और यह वचन बोले ॥ २८ ॥ ब्रह्माजी बोले, मैं प्रसन्न हूं वर मांग जो तेरे मनमें अभिलाषा हो कह तब ऐसा ब्रह्माजीका वचन सुन वह राक्षस कहने लगा ॥ २९ ॥ भीम बोला, हे देवताओंके स्वामी ! हे ब्रह्माजी ! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तथा मुझे वर देना चाहते हैं तो मुझे बडे बलको दो ॥ ३० ॥ सूतजी बोले, यह कहके उस राक्षसने ब्रह्माजीको नमस्कार किया उस समय ब्रह्माजीभी उसे वरदान देकर अपने स्थानको गये ॥ ३१ ॥ तब वह राक्षस

ब्रह्माजीसे अतिबल प्राप्तकर अपने घर जाय अपनी माताको प्रणामकर अभिमानसे यह बोला ॥ ३२ ॥ भीम बोला, हे माता ! अब मेरे बलको देखना, इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंकी विष्णुजी तथा उनके सहायकोंकी महाप्रलय करता हूं ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहके बडे पराक्रमी उस भीम राक्षसने पहले इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंको जीता और उन्हें अपने अपने स्थानसे निकाल दिया ॥ ३४ ॥ फिर उस देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त होनेवाले विष्णु भगवान्‌को युद्धमें जीता फिर आनंदसे रसातलके जीतनेका प्रारंभ किया ॥ ३५ ॥ पहले दक्षिण दिशामें कामरूपके स्वामीको जीतने गया उस राजाके साथ भयंकर युद्ध हुआ ॥ ३६ ॥ तब भीम राक्षसने ब्रह्माजीके प्रताप तथा वरके प्रभा

भीम उवाच ॥ पश्य मातर्बलं मेऽद्य करोमि प्रलयं महत् ॥ देवानां शक्रमुख्यानां हरेर्वै तत्सहायिनः ॥ ३३ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा प्रथमं भीमो जिग्ये देवान्सवासवान् ॥ स्थानान्निस्सारयामास स्वात्स्वात्तान्भीमविक्रमः ॥३४॥ ततो जिग्ये हरिं युद्धे प्रार्थितं निर्जरैरपि ॥ ततो जेतुं रसां दैत्यः प्रारंभं कृतवान्मुदा ॥ ३५ ॥ पुरा सुदक्षिणां तत्र कामरूपेश्वरं प्रभुम् ॥ जेतुं गतस्त तस्तेन युद्धमासीद्भयंकरम् ॥३६॥ भीमोऽथ तं महाराजं प्रभावाद्ब्रह्मणोऽसुरः ॥ जिग्ये वरप्रभावेण महावीरं शिवाश्रयम्॥३७॥ स हि जित्वा ततस्तं च कामरूपेश्वरं प्रभुम् ॥ बबंध ताडयामास भीमो भीमपराक्रमः ॥ ३८ ॥ गृहीतं तस्य सर्वस्वं राज्यं सोपस्करं द्विजाः ॥ तेन भीमेन दुष्टेन शिवदासस्य भूपतेः ॥ ३९ ॥ राजा चापि सुधर्मिष्ठः प्रियधर्मो हरप्रियः ॥ गृहीतो निगडैस्तेन ह्येकांते स्थापितश्च सः ॥ ४० ॥ तत्र तेन तदा कृत्वा पार्थिवीं मूर्तिमुत्तमाम् ॥ भजनं च शिवस्यैव प्रारब्धी प्रियकाम्यया ॥ ४१ ॥ गंगायास्तवनं तेन बहुधा च तदा कृतम् ॥ मानसं स्नानकर्मादि कृत्वा शंकरपूजनम् ॥ ४२ ॥

वसे बडे वीर शिवके आश्रयवाले उस महाराजाको युद्धमें जीता ॥ ३७ ॥ भयंकर पराक्रमी भीमने उस कामरूपेश्वर प्रभुको जीतकर बांध लिया और उसे ताडन किया ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस दुष्ट भीम राक्षसने शिवके दास कामरूप देशके राजाका कोश सहित सर्वस्व छीन लिया ॥ ३९ ॥ धर्मात्मा शिवके भक्त धर्मप्रिय उस राजाको भी बंधन (बेडी) से बांधकर एकान्तमें रक्खा ॥ ४० ॥ वहां कारागारमें उस राजाने उत्तम पार्थिव मूर्तिको बना कर अपने कल्याणकी इच्छासे शिवका भजन प्रारंभ किया ॥ ४१ ॥ उस समय उस राजाने

गंगाजीकी बहुत स्तुति की, मानसिक स्नान कर्म आदि करके शिवका पूजन किया ॥ ४२ ॥ उस राजर्षिने पार्थिव पूजनके विधानसे शंकरकी आराधना की और जैसा शास्त्रोंमें वर्णन है उस प्रकार विधिपूर्वक ध्यान किया ॥ ४३ ॥ मुद्रा आसन सहित उपचार तथा स्तोत्रोंसे सब प्रकार आनंदसे शिवजीकी सेवा की ॥ ४४ ॥ ओंकारके सहित पंचाक्षरवाले (ॐ नमः शिवाय) मंत्रको जपने लगा, उस समय उसने और किसी कार्यके करनेका अवसर नहीं पाया ॥ ४५ ॥ उसी समय उस राजाकी प्रिय पतिव्रता दक्षिणा नामक स्त्रीने प्रीतिसे पार्थिव विधानको किया ॥ ४६ ॥ उन दोनों स्त्री पुरुषोंने वहां नित्य शिवके आराधनमें तत्पर होके भक्तोंके कल्याण करनेवाले शंकरकी एक

पार्थिवेन विधानेन चकार नृपसत्तमः ॥ तद्धचानं च यथा स्याद्वै कृत्वा च विधिपूर्वकम् ॥ ४३ ॥ प्रणिपातैस्तथा स्तोत्रैर्मुद्रासन पुरस्सरम् ॥ कृत्वा हि सकलं तच्च स भेजे शंकरं मुदा ॥ ४४ ॥ पंचाक्षरमयीं विद्यां जजाप प्रणवान्विताम् ॥ नान्यत्कार्य स वै कर्तुं लब्धवानन्तरं तदा ॥ ४५ ॥ तत्पत्नी च तदा साध्वी दक्षिणा नाम विश्रुता ॥ निधानं पार्थिवं प्रीत्या चकार नृपव ल्लभा ॥ ४६ ॥ दंपती त्वेकभावेन शंकरं भक्तशंकरम् ॥ भेजाते तत्र तौ नित्यं शिवाराधनतत्परौ ॥ ४७ ॥ राक्षसो यज्ञक र्मादि वरदर्प विमोहितः ॥ लोपयामास तत्सर्वं मह्यं वै दीयतामिति ॥ ४८ ॥ बहुसैन्यसमायुक्तो राक्षसानां दुरात्मनाम् ॥ चकार वसुधां सर्वां स्ववशे चर्षिसत्तमाः ॥ ४९ ॥ वेदधर्मं शास्त्रधर्मं स्मृतिधर्मं पुराणजम् ॥ लोपयित्वा च तत्सर्वं बुभुजे स्वयमूर्जितः॥ ५० ॥ देवाश्च पीडितास्तेन सशक्रा ऋषयस्तथा ॥ अत्यन्तं दुःखमापन्ना लोकान्निस्सारिता द्विजाः ॥ ५१ ॥

भावसे सेवा की ॥ ४७ ॥ उस राक्षसने वरदानके अभिमानसे मोहित हो सम्पूर्ण यज्ञ कर्म धर्मोंका लोप करके 'सब मुझे ही दो' ऐसा प्रचार किया ॥ ४८ ॥ हे श्रेष्ठ ऋषियो ! दुष्टात्मा राक्षसोंकी सेनाके सहित उस राक्षसने सम्पूर्ण पृथ्वी अपने वशमें कर ली ॥ ४९ ॥ वेदके धर्म, शास्त्रोंके धर्म, स्मृतियोंके धर्म और पुराणोंके धर्मोंको सर्वथा लोप करके स्वयं स्वतंत्र हो भोग भोगने लगा ॥ ५० ॥ हे ब्राह्मणो ! उसने आदि देवता तथा ऋषियों और ब्राह्मणोंको पीडा दी और अति दुःखको प्राप्त हुए उन्हें अपने अपने

लोकोंसे निकालदिया ॥ ५१ ॥ तब व्याकुलहुये सब इन्द्रआदि देवता तथा ऋषि ब्रह्मा विष्णुको लेकर शिवकी शरणमें गये ॥ ५२ ॥ और अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति करके उन्होंने महाकोशी नदीके समीप लोकोंके कल्याण करनेवाले शंकरको प्रसन्न किया ॥ ५३ ॥ पार्थिव मूर्त्तिको बनाकर विधान सहित पूजके अनेक स्तोत्रोंसे तथा क्रमसे नमस्कार आदि उपचारोंसे पूजन किया ॥ ५४ ॥ इस प्रकार देवताओंकी स्तुतिआदिसे सन्तुष्ट हुए शिवजी उन देवताओंसे यह बोले ॥ ५५ ॥ शिवजी बोले, हे विष्णो ! हे देवताओ ! हे सब ऋषियो ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं तुम सब वर मांगो मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं ॥ ५६ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार शिवजीके कहनेपर देवता

ते ततो विकलास्सर्वे सवासवसुरर्षयः ॥ ब्रह्मविष्णू पुरोधाय शंकरं शरणं ययुः ॥ ५२ ॥ स्तुत्वा स्तोत्रैरनेकैश्च शंकरं लोक शंकरम् ॥ प्रसन्नं कृतवंतस्ते महाकोश्यास्तटे शुभे ॥ ५३ ॥ कृत्वा च पार्थिवीं मूर्तिं पूजयित्वा विधानतः ॥ तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैर्नमस्कारादिभिः क्रमात् ॥ ५४ ॥ एवं स्तुतस्तदा शंभुर्देवानां स्तवनादिभिः ॥ सुप्रसन्नतरो भूत्वा तान्सुरानिदमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ शिव उवाच ॥ हे हरे हे विधे देवा ऋषयश्चाखिला अहम् ॥ प्रसन्नोस्मि वरं ब्रूत किं कार्यं करवाणि वः ॥ ५६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ते च तदा तेन शिवेन वचने द्विजाः ॥ सुप्रणम्य करौ बद्धा देवः ऊचुश्शिवं तदा ॥ ५७ ॥ देवा ऊचुः ॥ सर्वं जानासि देवेश सर्वेषां मनसि स्थितम् ॥ अन्तर्यामी च सर्वस्य नाज्ञातं विद्यते तव ॥ ५८ ॥ तथापि श्रूयतां नाथ स्वदुःखं ब्रूमहे वयम् ॥ त्वदाज्ञया महादेव कृपादृष्ट्या विलोकय ॥ ५९ ॥ राक्षसः कर्कटीपुत्रः कुंभकर्णोद्भवो बली ॥ पीडयत्यनिशं देवान्ब्रह्मदत्तवरोर्जितः ॥ ६० ॥ तमिमं जहि भीमाह्वं राक्षसं दुःखदायकम् ॥ कृपां कुरु महेशान विलंबं न कुरु प्रभो ॥ ६१ ॥

हाथ जोड प्रणाम करके शिवजीसे बोले ॥ ५७ ॥ देवता बोले, हे देवेश ! आप सबके मनकी बात जानते हैं आप सबके अन्तर्यामी हैं आपको कुछ अज्ञात नहीं है ॥ ५८ ॥ हे नाथ ! तो भी सुनिये हम अपने दुःखको कहते हैं हे महादेव ! निवेदन आपकी आज्ञासे हम करते हैं आप कृपादृष्टिसे देखो ॥५९॥ कुम्भकर्णसे उत्पन्न हुआ कर्कटीका पुत्र बली राक्षस ब्रह्माके दिये वरदानसे रातदिन देवताओंको पीडा देता है ॥ ६० ॥ हे प्रभो ! हे महेश्वर ! आप उस दुःख देनेवाले भीम राक्षसको मारो और हमपर कृपा करो विलंब करना योग्य नहीं॥६१॥

सूतजी बोले इस प्रकार सम्पूर्ण देवताओंके कहनेपर भक्तवत्सल शिवजी बोले, मैं उस दैत्यका वध करूंगा यह कहके फिर देवताओंसे बोले ॥ ६२ ॥ शिवजी बोले, हे देवताओ ! तुम कामरूपेश्वरनामक राजासे जो मेरा बड़ा भक्त है कहो कि तुम्हारा काम शीघ्र होगा ॥ ६३ ॥ हे सुदक्षिण ! हे महाराज ! हे कामरूपेश्वर ! हे प्रभो ! तू मेरा विशेषभक्त है प्रीतिसे मेरे भजनको कर ॥ ६४ ॥ ब्रह्माके वरदान पानेवाले तुम्हारे तिरस्कार करनेवाले उस दुष्ट भीम नामक राक्षसको अवश्य मारूंगा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ६५ ॥ सूतजी बोले, तब वे सब देवता प्रसन्न हो वहां जाकर उस कामरूपेश्वर महाराजासे जो कुछ शंभुने कहा था सो सब कह दिया ॥ ६६ ॥ उससे सब वृत्तान्त कहकर देवता

सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तु सुरैस्सर्वैश्शंभुर्वै भक्तवत्सलः ॥ वधं तस्य करिष्यामीत्युक्त्वा देवांस्ततोऽब्रवीत् ॥ ६२ ॥ शंभुरुवाच ॥ कामरूपेश्वरो राजा मदीयो भक्त उत्तमः ॥ तस्मै ब्रूतेति वै देवाः कार्य्यं शीघ्रं भविष्यति ॥ ६३ ॥ सुदक्षिण महाराज कामरूपेश्वर प्रभो ॥ मद्भक्तस्त्वं विशेषेण कुरु मद्भजनं रतेः ॥ ६४ ॥ दैत्यं भीमाह्वयं दुष्टं ब्रह्मप्राप्तवरोर्जितम् ॥ हनिष्यामि न संदेहस्त्वत्तिरस्कारकारिणम् ॥ ६५ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ अथ ते निर्जरास्सर्वे तत्र गत्वा मुदान्विताः ॥ तस्मै महानृपायो चुर्यदुक्तं शंभुना च तत् ॥ ६६ ॥ तमित्युक्त्वा च वै देवा आनंदं परमं गताः ॥ महर्षयश्च ते सर्वे ययुश्शीघ्रं निजाश्रमान् ॥ ६७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां भीमेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्ये भीमासुरकृतोपद्रववर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ सूत उवाच ॥ शिवोऽपि च गणैस्सार्द्धं जगाम हितकाम्यया ॥ स्वभक्तनिकटं गुप्तस्तस्थौ रक्षार्थमादरात् ॥ १ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र कामरूपेश्वरेण च ॥ अत्यंतं ध्यानमारब्धं पार्थिवस्य पुरस्तदा ॥ २ ॥

हर्षको प्राप्त हुए तथा सम्पूर्ण महर्षियोंके सहित शीघ्र अपने अपने आश्रमको पधारे ॥ ६७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० भीमेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यं भीमासुरकृतोपद्रववर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ सूतजी बोले, हितकी कामनासे शिवजी अपने गणोंके साथ वहां गये और उसकी रक्षाके अर्थ अपने भक्तके निकट गुप्त रहे ॥१ ॥ इसी अवसरमें वहां उस समय कामरूपेश्वरने पार्थिवलिंगके आगे अत्यन्त ध्यान करना प्रारंभ किया ॥ २ ॥

तब किसीने वहां जाकर राक्षससे निवेदन किया कि राजा इस प्रकार तुम्हारे लिये धारण क्रियाका प्रयोग करता है ॥ ३ ॥ सूतजी बोले, यह सुनकर वह राक्षस अति क्रोधित हो उस राजाके मारनेकी इच्छासे तलवार ग्रहण करके राजाके समीप गया ॥ ४ ॥ वहां राक्षस पार्थिव लिंग आदिको स्थित हुआ देखकर तथा यह राजा कुछ कर रहा है ऐसा उसका स्वरूप देख विचारने लगा ॥ ५ ॥ यह प्रयोग तो करता है आज कुटुम्बसहित इस राजाको बलात्कारसे मारूंगा ऐसा मनमें ठान वह महाक्रोध करता हुआ राक्षस उस राजासे बोला ॥ ६ ॥ भीम बोला, हे दुष्टात्मा ! हे राजन् ? तू इस समय क्या कर रहा है ? तू सत्य सत्य कह तुझे मैं नहीं मारूंगा, अन्यथा मैं निश्चयही

केनचित्तत्र गत्वा च राक्षसाय निवेदितम्॥राजा किंचित्करोत्येवं त्वदर्थं ह्याभिचारिकम्॥३॥सूत उवाच॥ राक्षसस्स च तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्तद्धननेच्छया ॥ गृहीत्वा करवालं च जगाम नृपतिं प्रति ॥४॥ तद्दृष्ट्वा राक्षसस्तत्र पार्थिवादिस्थितं च यत् ॥ तदर्थं तत्स्वरूपं च दृष्ट्वा किंचित्करोत्यसौ ॥५॥ अत एनं बलादद्य हन्मि सोपस्करं नृपम् ॥ विचार्येति महाक्रुद्धो राक्षसःप्राह तं नृपम् ॥६॥ भीम उवाच ॥ रेरे पार्थिव दुष्टात्मन् क्रियते किं त्वयाधुना ॥सत्यं वद न हन्यां त्वामन्यथा हन्मि निश्चितम्॥७॥सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य कामरूपेश्वरश्च सः॥मनसीति चिचिन्ताशु शिवविश्वासपूरितः ॥८॥ भविष्यं यद्भवत्येव नास्ति तस्य निवर्तकः ॥ प्रारब्धाधीनमेवात्र प्रारब्धस्स शिवः स्मृतः॥९॥ कृपालुश्शंकरश्चात्र पार्थिवे वर्तते ध्रुवम् ॥ मदर्थं न करोतीह कुतः कोयं च राक्षसः ॥ १० ॥ स्वानुरूपां प्रतिज्ञां स सत्यं चैव करिष्यति ॥सत्यप्रतिज्ञो भगवाञ्छिवश्चेति श्रुतौ श्रुतः ॥११॥

तुझे मारूंगा ॥ ७ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उस राक्षसका वचन सुन शिवके विश्वासमें पूर्ण हुए उस कामरूपेश्वर राजाने अपने मनमें तत्काल विचारा ॥ ८ ॥ जो होनहार है वह अवश्य होगा उस होनीका निवारण करनेवाला कोई नहीं है, यहां सब कुछ प्रारब्धहीके आधीन है और शिवहीको प्रारब्ध कहते हैं ॥ ९ ॥ वह दया करनेवाले शिवजी इस पार्थिव लिंगमें निश्चयही उपस्थित हैं क्या वे मेरे लिये कुछ न करेंगे, फिर यह राक्षस क्या है ॥१०॥ वह शिवजी अपने अनुकुन प्रतिज्ञाको सत्य करेंगे कारण कि भगवान् शिवजी सत्य प्रतिज्ञावाले हैं, ऐसा

शास्त्रोंमें सुना है ॥ ११ ॥ जब अति कठिन कोई मेरे भक्तको पीडा देता है तब मैं उसकी रक्षाके लिये उस दुष्टको मारता हूं यह प्रतिज्ञा है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ १२ ॥ इस प्रकार धैर्यको धारण करके शंकर देवको ध्यान करके बडी भक्तिसे उस राजाने मनसे प्रार्थना की ॥ १३ ॥ हे महाराज शिवजी ! मैं तुम्हारा ही हूं जैसे आपकी इच्छा हो वैसा करो मैं सत्य वचन कहता हूं आप मेरा हित करें ॥ १४ ॥ इस प्रकार सत्यके पाशमें बँधा हुआ वह राजा मनमें ध्यान करके उस राक्षसको तिरस्कार करता हुआ यह वचन बोला ॥ १५ ॥ राजा बोला, अपने भक्तोंके पालन करनेवाले सम्पूर्ण चर और अचर जगत्के स्वामी निर्विकार शिव देवको भजता हूं ॥ १६ ॥ सूतजी बोले

मम भक्तं यदा कश्चित्पीडयत्यतिदारुणः ॥ तदाहं तस्य रक्षार्थं दुष्टं हन्मि न संशयः॥१२॥ एवं धैर्य्यं समालंब्य ध्यात्वा देवं च शंकरम् ॥ प्रार्थयामास सद्भक्त्या मनसैव रसेश्वरः ॥१३॥ त्वदीयोऽस्मि महाराज यथेच्छसि तथा कुरु ॥ सत्यं च वचनं ह्यत्र ब्रवीमि कुरु मे हितम् ॥१४॥ एवं मनसि स ध्यात्वा सत्यपाशेन मंत्रितः ॥ प्राह सत्यं वचो राजा राक्षसं चावमानयन् ॥१५॥ नृप उवाच ॥ भजामि शंकरं देवं स्वभक्तपरिपालकम् ॥ चराचराणां सर्वेषामीश्वरं निर्विकारकम् ॥१६॥ सूत उवाच इति तस्य वचः श्रुत्वा कामरूपेश्वरस्य सः ॥ क्रोधेन प्रचलद्गात्रो भीमो वचनमब्रवीत् ॥१७॥ ॥ भीम उवाच ॥ शंकरस्ते मया ज्ञातः किं करिष्यति वै मम ॥ यो मे पितृव्यकेनैव स्थापितः किंकरो यथा॥१८॥ तद्बलं हि समाश्रित्य विजेतुं त्वं समीहसे ॥ तर्हि त्वया जितं सर्वं नात्र कार्य्या विचारणा॥१९॥यावन्मया न दृष्टो हि शंकरस्त्वत्प्रपालकः ॥ तावत्त्वं स्वामिनं मत्वा सेवसे नान्यथा क्वचित् ॥ २० ॥ मया दृष्टे च तत्सर्वं स्फुटं स्यात्सर्वथा नृप ॥ तस्मात्त्वं वै शिवस्येदं रूपं दूरतरं कुरु ॥ २१ ॥

ऐसा उस कामरूपेश्वर राजाका वचन सुन वह भीम राक्षस क्रोधसे कम्पायमान शरीर हो यह वचन बोला ॥ १७ ॥ भीम बोला, तेरा शिव तेरा जाना हुआ है वह मेरा क्या करेगा ? जिसको मेरे पिताके भाई रावणने दासके समान रक्खा था ॥ १८ ॥ उसके बलको आश्रय करके तू जीतनेकी इच्छा करता है तब तो तू सबही जीत चुका इसमें सन्देह नहीं ॥१९ ॥ जब तक तेरे पालन करने वाले शिवको, मैं नहीं देखता तबतक तू उसको स्वामी मानकर सेवा करता है, मेरे देखनेपर तू पूजन नहीं कर सकता ॥ २० ॥ हे राजा ! मुझसे देखने

पर वह सब प्रगट होजायगा, इस कारण तू इस शिवजीके रूपको दूरकर ॥ २१ ॥ नहीं तो तुझे बडा दंड होगा इसमें कुछ संशय नहीं है, भयंकर विक्रम वाला मैं तुम्हारे स्वामीको तीव्र भेंट दूंगा ॥ २२ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उस राक्षसका वचन सुनके शिवजीमें दृढ विश्वास कर कामरूपेश्वर राजाने उससे यह वचन कहा ॥ २३ ॥ राजा बोला, मैं नीच तथा दुष्ट हूं परन्तु शिवके पूजनको नहीं छोडूंगा, मेरे स्वामी सबसे ऊंचे हैं वह भी मुझे कभी नहीं त्यागेंगे ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, तब इस प्रकार उस शैवराजाका वचन सुनके शीघ्र उस राजासे हँसकर वह भीम राक्षस यह वचन बोला ॥ २५ ॥ वह उन्मत्त हुआ नित्य भीख मांगता है इससे वह क्या अपनी आकृतिको जान सकता

अन्यथा हि भयं तेऽद्य भविष्यति न संशयः ॥ स्वामिनस्ते करं तीक्ष्णं दास्येऽहं भीमविक्रमः ॥२२॥ ॥ सूत उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा कामरूपेश्वरो नृपः ॥ दृढं शंकरविश्वासो द्रुतं वाक्यमुवाच तम् ॥२३॥राजोवाच॥ अहं च पामरो दुष्टो न मोक्ष्ये शंकरं पुनः ॥ सर्वोत्कृष्टश्च मे स्वामी न मां मुंचति कर्हिचित् ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ एवं वचस्तदा श्रुत्वा तस्य राज्ञश्शिवात्मनः ॥ तं प्रहस्य द्रुतं भीमो भूपतिं राक्षसोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥ ॥ भीम उवाच ॥ मत्तो भिक्षयते नित्यं स किं जानाति स्वाकृतिम् ॥ योगिनां का च निष्ठा वै भक्तानां प्रतिपालने ॥२६॥ इति कृत्वा मतिं त्वं च दूरतो भव सर्वथा॥ अहं च तव स स्वामी युद्धं वै करवा वहै ॥ २७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्स नृपश्रेष्ठश्शंभुभक्तो दृढव्रतः॥ प्रत्युवाचाभयो भीमं दुःखदं जगतां सदा ॥ २८ ॥ राजो वाच ॥ शृणु राक्षस दुष्टात्मन्मया कर्तुं न शक्यते ॥ त्वया विक्रियते तर्हि कुतस्त्वं शक्तिमानसि ॥ २९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्सैन्यमादाय राजानं परिभर्त्स्य तम् ॥ करालं करवालं च पार्थिवे प्राक्षिपत्तदा ॥ ३० ॥

है भक्तोंके पालन करनेमें योगियोंकी क्या सामर्थ है ॥ २६ ॥ यह बुद्धिमें विचार कर तू उससे सब प्रकार दूर हो मैं तेरे स्वामीके साथ युद्ध करूंगा ॥ २७ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहने पर वह शिवका भक्त दृढ व्रतवाला श्रेष्ठ राजा निर्भय हो संसारको सदा दुःख देनेवाला भीम राक्षससे बोला ॥ २८ ॥ राजा बोला, हे राक्षस ! हे दुष्टात्मन् ! मैं ऐसा नहीं कर सकता हूं तू ऐसा कर सकता है कारण कि, तू शक्तिमान् है ॥ २९ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहनेपर वह राक्षस सेनाको लेकर उस राजाको धिक्कार कर उस समय राजापर तीक्ष्ण तलवारको

प्रहार करने लगा ॥ ३० ॥ अब तू भक्तोंको सुख देनेवाले अपने स्वामीके बलको देख, इस प्रकार महाबली वह राक्षसोंके सहित हसँके बोला ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मणो ! जब तक तलवारने उस पार्थिव लिंगको स्पर्श नहीं किया तभी उस पार्थिवलिंगसे साक्षात् शिवजी स्वयं प्रगट हुये ॥ ३२ ॥ और बोले, कि देखो मैं भीमेश्वर इसकी रक्षाके निमित्त प्रगट हुआ मेरा यह पहला नियम है कि, सदा अपने भक्तकी रक्षा करता हूं ॥ ३३ ॥ इससे मेरे भक्तोंको सुख देनेवाले बलको शीघ्र देख ऐसा कहके पिनाक अस्त्रसे उस तलवारके दो खण्ड कर दिये ॥ ३४ ॥ फिर उस राक्षसने उनके ऊपर अपना त्रिशूल फेंका तो शिवजीने उस दुष्टके त्रिशूलके सौ खण्ड कर दिये ॥ ३५ ॥ हे

पश्य त्वं स्वामिनोऽद्यैव बलं भक्तसुखावहम् ॥ इत्युवाच विहस्यैव राक्षसैस्स महाबलः ॥ ३१ ॥ करवालः पार्थिवं च याव त्स्पृशतिनो द्विजाः ॥ यावच्च पार्थिवात्तस्मादाविरासीत्स्वयं हरः ॥ ३२ ॥ पश्य भीमेश्वरोहं च रक्षार्थं प्रकटोऽभवम् ॥ मम पूर्वव्रतं ह्येतद्रक्ष्यो भक्तो मया सदा ॥ ३३ ॥ एतस्मात्पश्य मे शीघ्रं बलं भक्तसुखावहम् ॥ इत्युक्त्वा स पिनाकेन करवालो द्विधा कृतः ॥ ३४ ॥ पुनश्चैव त्रिशूलं स्वं चिक्षिपे तेन रक्षसा ॥ तच्छूलं शतधा नीतमपि दुष्टस्य शंभुना ॥ ३५ ॥ पुनश्श क्तिश्च निःक्षिप्ता तेन शंभूपरि द्विजाः ॥ शंभुना सापि बाणैस्स्वैर्लक्षधा च कृता द्रुतम् ॥ ३६ ॥ पट्टिशश्च ततस्तेन निःक्षिप्तो हि शिवोपरि ॥ शिवेन स त्रिशूलेन तिलशश्च कृतं क्षणात्॥३७॥ ततश्शिवगणानां च राक्षसानां परस्परम् ॥युद्धमासीत्तदा घोरं पश्यतां दुःखकावहम् ॥ ३८ ॥ ततश्च पृथिवी सर्वा व्याकुला चाभवत्क्षणात् ॥ समुद्राश्च तदा सर्वे चुक्षुभुस्समहीधराः ॥ ३९ ॥ देवाश्च ऋषयस्सर्वे बभूवुर्विकला अति ॥ ऊचुः परस्परं चेति व्यर्थं वै प्रार्थितश्शिवः ॥ ४० ॥

ब्राह्मणो ! तब उस दैत्यने शंभुके ऊपर शक्तिका प्रहार किया उसको भी शिवने अपने बाणोंसे शीघ्र लाखों टुकडे कर दिये ॥ ३६ ॥ फिर उसने महादेवके ऊपर पट्टिश अस्त्रका प्रहार किया उसे क्षणमात्रमें उन्होंने अपने त्रिशूलसे तिलके समान खंड खंड किया ॥ ३७ ॥ तत्पश्चात् शिवजीके गणोंका तथा राक्षसोंका; देखनेवालोंको बडा भय देनेवाला बडा भयंकर युद्ध हुआ ॥ ३८ ॥ उस समय सम्पूर्ण पृथिवी व्याकुल हो गई और पर्वतों सहित सब समुद्र चलायमान हुये ॥ ३९ ॥ सम्पूर्ण देवता तथा ऋषि अति व्याकुल हुए और आपसमें कहने

लगे कि, व्यर्थही शिवकी प्रार्थना की ॥ ४० ॥ तब नारदजी वहां जाकर अंजलि बांध मस्तक झुकाय दुःख दूर करनेवाले शिवजीकी प्रार्थना की ॥ ४१ ॥ नारदजी बोले, हे नाथ ! हे विभ्रमकारक ! आप क्षमा करो एक तृणपर क्या कुठारका प्रयोग होता है आप उसे शीघ्र मारिये ॥ ४२ ॥ ऐसी प्रार्थना करनेपर उन प्रभु शिवने उन सम्पूर्ण राक्षसगणोंको हुंकाररूपी अस्त्रसे भस्म किया ॥ ४३ ॥ हे मुने ! शिवजीने क्षणमात्रमेंही उन राक्षसोंको भस्म किया, वहां सब देवताओंके देखते देखतेही वे तत्काल नष्ट हुये ॥ ४४ ॥ जिस प्रकार दावाग्नि सब वनको भस्म करती है उसी प्रकार क्रोधित हुए शिवजीने क्षणमात्रमें राक्षसोंका बल नष्ट कर दिया ॥ ४५ ॥ उस समय भीमनामक राक्ष

नारदश्च समागत्य शंकरं दुःखदाहकम् ॥ प्रार्थयामास तत्रैव सांजलिर्नतमस्तकः ॥४१॥ नारद उवाच ॥ क्षम्यतांक्षम्यतां नाथ त्वया विभ्रमकारक ॥ तृणे कश्च कुठारो वै हन्यतां शीघ्रमेव हि ॥ ४२ ॥ इतिसंप्रार्थितश्शंभुः सर्वान्रक्षोगणान्प्रभुः ॥ हुंकारेणैव चास्त्रेण भस्मसात्कृतवांस्तदा ॥४३॥ सर्वे ते राक्षसा दग्धाः शंकरेण क्षणं मुने ॥ बभूवुस्तत्र सर्वेषां देवानां पश्यतां द्रुतम्॥४४॥ दावानलगतो वह्निर्यथा च वनमादहेत् ॥ तथा शिवेन क्रुद्धेन राक्षसानां बलं क्षणात् ॥४५॥ भीमस्यैव च किं भस्म न ज्ञातं केन चित्तदा ॥ परिवारयुतो दग्धो नाम न श्रूयते क्वचित् ॥४६॥ ततश्शिवस्य कृपया शांतिं प्राप्ता मुनीश्वराः ॥ देवास्सर्वे च शक्राद्यास्स्वास्थ्यं प्रापाखिलं जगत् ॥ ४७ ॥ क्रोधज्वाला महेशस्य निस्ससार वनाद्वनम् ॥ राक्षसानां च तद्भस्म सर्वं व्याप्तं वनेऽखिलम्॥ ४८ ॥ ततश्चौषधयो जाता नानाकार्यकरास्तथा ॥ रूपान्तरं ततो नृणां भवेद्वेषांतरं तथा ॥ ४९ ॥

सकी कौन भस्म है यह किसीने नहीं जाना वह राक्षस अपने परिवार सहित भस्म हो गया नाम भी कहीं सुनाई न दिया ॥ ४६ ॥ तब शिवजीकी कृपासे सब मुनीश्वर शांतिको प्राप्त हुये, इन्द्र आदि सब देवताओं सहित संपूर्ण संसार स्वास्थ्यको प्राप्त हुआ ॥ ४७ ॥ महेश्वरकी क्रोधानल एकवनसे दूसरे वनमें निकली राक्षसोंके शरीरकी भस्म सम्पूर्ण वनमें व्याप्त हुई ॥ ४८ ॥ उस भस्मसे अनेक कार्य संपादन करनेवाली औषधियां उत्पन्न हुईं और उससे मनुष्योंके रूप तथा अनेक भेष जन्मान्तरमें बने ॥ ४९ ॥

हे द्विजो ! उसके लेपसे भूत, प्रेत, पिशाच आदि सब दूर होते हैं ऐसा कोई कार्य नहीं है जो उस भस्मसे न होता हो ॥ ५० ॥ उन देवताओंने तथा मुनियोंने शिवजीकी विशेष प्रार्थना की कि, हे स्वामी ! आपको संसारके सुख देनेके कारण यहां निवास करना उचित है ॥ ५१ ॥ यह युद्ध न करनेवालोंको दुःख देनेवाला कुत्सित देश है और आपका दर्शन करके लोगोंका कल्याण होगा ॥ ५२ ॥ सब कुछ सिद्ध करनेवाले सदा भीमशंकर नामसे प्रसिद्ध होंगे यह ज्योतिर्लिंग सब आपत्तियोंका निवारण करनेवाला तथा पूजनीय होगा ॥ ५३ ॥ सूतजी बोले, लोकोंके हित करनवाले स्वतंत्र भक्तोंपर दया करनेवाले शिवजीने ऐसी प्रार्थना सुनके प्रीतिसे वहां निवास किया ॥ ५४ ॥

भूतप्रेतपिशाचादि दूरतश्च ततो व्रजेत् ॥ तत्र कार्यं च यच्चैव ततो न भवति द्विजाः ॥५०॥ तैर्देवैः प्रार्थितश्शम्भुर्मुनिभिश्च विशेषतः ॥ स्थातव्यं स्वामिना ह्यत्र लोकानां सुखहेतवे ॥५१॥ अयं वै कुत्सितो देश अयोध्यालोकदुःखदः ॥ भवंतं च तदा दृष्ट्वा कल्याणं संभविष्यति ॥५२॥ भीमशंकरनामा त्वं भविता सर्वसाधकः ॥ एतल्लिंगं सदा पूज्यं सर्वापद्विनिवारकम् ॥५३॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं प्रार्थितश्शम्भुर्लोकानां हितकारकः ॥ तत्रैवास्थितवान्प्रीत्या स्वतन्त्रो भक्तवत्सलः ॥५४॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां भीमेश्वरज्योतिर्लिङ्गोत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि श्रूयतामृषिसत्तमाः ॥ विश्वेश्वरस्य माहात्म्यं महापातकनाशनम् ॥ १ ॥ यदिदं दृश्यते किंचिज्जगत्यां वस्तुमात्रकम् ॥ चिदानन्दस्वरूपं च निर्विकारं सनातनम् ॥ २ ॥ तस्यैव कैवल्यरतेर्द्वितीयेच्छा ततोभवत् ॥ स एव सगुणो जातश्शिव इत्यभिधीयते ॥ ३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० भीमेश्वरज्योतिर्लिंगोत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ सूतजी बोले, हे श्रेष्ठ ऋषियो ! इसके आगे बडे पापोंके नाश करनेवाले विश्वेश्वरके माहात्म्यको कहता हूं आप सुनें ॥ १ ॥ इस संसारमें जो कुछ यह वस्तुमात्र दीखती है वह सब निर्विकार सनातन चिदानंदस्वरूप है ॥ २ ॥ और जब उसही कैवल्यरति (ज्ञानस्वरूप) परमेश्वरकी दूसरे होनेकी इच्छा उत्पन्न हुई तब वही सगुणरूपसे शिव कहाए ॥ ३ ॥

वह शिवही पुरुष तथा स्त्रीके भेदसे दो प्रकारके रूपवाले हुये हैं, उनमें जो पुरुष हैं सो शिव हैं, तथा स्त्रीरूपा शक्तिके नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ४ ॥ हे मुनिसत्तमो तब उन दोनों अदृष्ट हुए चिद् आनन्द स्वरूपोंके स्वभावसे प्रकृति तथा पुरुष प्रगट हुए, हे द्विजो ! जब उन्होंने जगत्के माता पिताको न देखा ॥ ५ ॥ ६ ॥ तब वे प्रकृति और पुरुष बडे संशयको प्राप्त हुए उस समय निर्गुण परमात्मासे यह वाणी प्रगट हुई कि तप करना योग्य है, उस तपसेही उत्तम सृष्टि होगी ॥ ७ ॥ प्रकृति पुरुष बोले, हे स्वामी ! हे शिवजी ! तप करनेको कोई स्थल नहीं है, अब हम दोनों कहां स्थित होकर आपकी आज्ञासे तप करें ॥ ८ ॥ तब सम्पूर्ण तेजोंके साररूप पांच कोशपर्यंत सब साधनोंके सहित

स एव हि द्विधा जातः पुंस्त्रीरूपप्रभेदतः ॥ यः पुमान्स शिवः ख्यातः स्त्रीशक्तिस्सा हि कथ्यते ॥ ४ ॥ चिदानन्देस्वरूपाभ्यां पुरुषावपि निर्मितौ ॥५॥ अदृष्टाभ्यां तदा ताभ्यां स्वभावान्मुनिसत्तमाः ॥ तावदृष्ट्वा तदा तौ च स्वमातृपितरौ द्विजाः ॥६॥ महासंशयमापन्नौ प्रकृतिः पुरुषश्च तौ ॥ तदा वाणी समुत्पन्ना निर्गुणात्परमात्मनः॥तपश्चैव प्रकर्तव्यं ततस्सृष्टिरनुत्तमा ॥७॥ प्रकृतिपुरुषावूचतुः॥तपसस्तु स्थलं नास्ति कुत्रावाभ्यां प्रभोऽधुना॥स्थित्वा तपः प्रकर्तव्यं तव शासनतश्शिव ॥८॥ ततश्च तेज सस्सारं पंचक्रोशात्मकं शुभम्॥सर्वोपकरणैर्युक्तं सुंदरं नगरं तथा॥९॥निर्माय प्रेषितं तत्स्वं निर्गुणेन शिवेन च॥अंतरिक्षे स्थितं तच्च पुरुषस्य समीपतः॥१०॥तदधिष्ठाय हरिणा सृष्टिकामनया ततः॥बहुकालं तपस्तप्तं तद्ध्यानमवलंब्य च॥११॥श्रमेण जलधारश्च बिविधाश्चाभवंस्तदा ॥ताभिर्व्याप्तं च तच्छून्यं नान्यत्किंचिदृश्यत॥१२॥ततश्च विष्णुना दृष्टं किमेतद्दृश्यतेऽद्भुतम्॥इत्याश्चर्य तदा दृष्ट्वा शिरसः कम्पनं कृतम् ॥१३॥ ततश्च पतितः कर्णान्मणिश्च पुरतः प्रभो ॥तद्बभूव महत्तीर्थं नामतो मणिकर्णिका॥१४॥

शोभायमान सुन्दर नगर ॥ ९ ॥ निर्गुण शिवने निर्माण कर अपनी प्रेरणासे अन्तरिक्ष (आकाश) में पुरुषके समीप स्थित किया ॥ १० ॥ फिर वहां स्थित होकर विष्णुने सृष्टि रचनेकी कामनासे शिवजीका ध्यान करके बहुत समय तक तप किया ॥ ११ ॥ तब उनके परिश्रमसे अनेक जलकी धाराएं प्रगट हुई उनसे वह सून्य व्याप्त हुआ उस समय उसके सिवाय और कुछ नहीं दीखता था ॥ १२ ॥ तब विष्णुने देखा कि, यह क्या अद्भुतसा दीखता है, इस प्रकार आश्चर्यसे देखकर शिरको कंपाया ॥ १३ ॥ शिरके कंपानेसे

विष्णुके कानसे एक मणि गिर पडी, वह मणिकर्णिका नामसे बडा तीर्थ प्रसिद्ध होगया ॥ १४ ॥ वह मणिकर्णिका जलरूप बहती हुई जब पंचक्रोशी (पांच कोशतक) विस्तारवाली हुई, तब निर्गुण शिवने तत्काल उसको त्रिशूलपर धारण किया ॥ १५ ॥ विष्णुने वहांही अपनी स्त्रीके सहित शयन किया, शिवकी आज्ञासे उनकी नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥ उन ब्रह्माजीने शिवजीकी आज्ञा पाकर अद्भुत सृष्टि रचनी प्रारम्भ की और उस ब्रह्माण्डमें चौदह लोक रचे ॥ १७ ॥ मुनियोंने पचास करोड योजनके प्रमाणसे ब्रह्माण्डका विस्तार वर्णन किया है ॥ १८ ॥ ब्रह्माण्डमें अपने अपने कर्मोंसे बन्धे हुए प्राणी मुझे किस प्रकार प्राप्त होंगे ऐसा विचार कर यह पंचक्रोशी

जलौघे प्लाव्यमाना सा पंचक्रोशी यदाभवत् ॥ निर्गुणेन शिवेनाशु त्रिशूलेन धृता तदा॥ १५॥ विष्णुस्तत्रैव सुष्वाप प्रकृत्या स्वस्त्रिया सह ॥ तन्नाभिकमलाज्जातो ब्रह्मा शंकरशासनात् ॥१६॥ शिवाज्ञां स समासाद्य सृष्टिं चक्रेऽद्भुतां तदा॥ चतुर्दशमिता लोका ब्रह्मांडे यत्र निर्मिताः॥१७॥योजनानां च पंचाशत्कोटिसंख्याप्रमाणतः॥ब्रह्मांडस्यैव विस्तारो मुनिभिः परिकीर्तितः॥१८॥ ब्रह्मांडे कर्मणा बद्धाः प्राणिनो मां कथं पुनः ॥प्राप्स्यंतीति विचिन्त्यैतत्पंचक्रोशी विमोचिता ॥१९॥ इयं च शुभदा लोके कर्म नाशकरी मता॥मोक्षप्रकाशिका काशी ज्ञानदा मम सुप्रिया॥२०॥अविमुक्तं स्वयं लिंगं स्थापितं परमात्मना॥न कदाचि त्त्वया त्याज्यमिदं क्षेत्रं ममांशक ॥२१॥इत्युक्त्वा च त्रिशूलात्स्वादवतार्य्य हरस्स्वयम्॥मोचयामास भुवने मर्त्यलोके हि काशिकाम् ॥ २२ ॥ ब्रह्मणश्च दिने सा हि न विनश्यति निश्चितम् ॥ तदा शिवस्त्रिशूलेन दधाति मुनयश्च ताम् ॥ २३ ॥

उनसे पृथक् रक्खी है ॥ १९ ॥ यह पंचक्रोशी लोकमें कल्याण देनेवाली तथा कर्मोंकी नाश करनेवाली है; यही काशी मोक्षकी प्रकाश करनेवाली ज्ञानकी देनेवाली है मेरी प्रिय नगरी है ॥ २० ॥ परमात्मा शिवने मुक्ति देनेवाले ज्योतिर्लिङ्ग को स्वयं स्थापित किया और कहा, हे मेरे अंशवाले ज्योतिर्लिङ्ग ! यह क्षेत्र तुमको कदापि त्यागना न चाहिये ॥ २१ ॥ ऐस कहकर शिवने स्वयं अपने त्रिशूलसे उतारके उस काशीको मर्त्यलोकमें स्थापित किया ॥ २२ ॥ ब्रह्माका दिन पूरा होनेपर भी वह नाशको नहीं प्राप्त होती, हे मुनियो ! प्रलय कालमें भी

शिवजी उसे त्रिशूल पर धारण करते हैं ॥ २३ ॥ हे द्विजो ! फिर ब्रह्माजीसे सृष्टि रचनेपर काशीको स्थापित करते हैं, कर्म बन्धनोंके आकर्षण करनेसे 'काशी' कही जाती है ॥ २४ ॥ काशीमें अविमुक्तेश्वर लिंग सदा स्थित रहता है, वह महापाप करनेवाले मनुष्यको भी मुक्ति देनेवाले हैं ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वरो ! काशीमें अन्यत्र जीवोंको सारूप्यादि मुक्ति प्राप्त होती है, परन्तु यहां प्राणियोंको सायुज्य उत्तम मुक्ति प्राप्त होती हैं ॥ २६ ॥ जिन प्राणियोंकी कहीं गति न हो उनकी वाराणसी पुरीमें गति होती है, महापुण्य दायक पंचक्रोशी कोटि हत्याओंकी नाश करनेवाली है ॥ २७ ॥ यहां सब देवता भी मरणकी इच्छा करते हैं, औरोंकी तो बात ही क्या है यह सर्वदा शिवकी प्रिय तथा भुक्ति मुक्तिकी

पुनश्च ब्रह्मणा सृष्टौ कृतायां स्थाप्यते द्विजाः ॥ कर्मणा कर्षणाच्चैव काशीति परिपठ्यते ॥ २४ ॥ अविमुक्तेश्वरं लिंगं काश्यां तिष्ठति सर्वदा ॥ मुक्तिदातृ च लोकानां महापातकिनामपि ॥ २५ ॥ अन्यत्र प्राप्यते मुक्तिस्सारूप्यादिर्मुनीश्वराः ॥ अत्रैव प्रयाप्ते जीवैः सायुज्या मुक्तिरुत्तमा ॥ २६ ॥ येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी पुरी ॥ पंचक्रोशी महापुण्या हत्याकोटिविनाशनी ॥ २७ ॥ अमरा मरणं सर्वे वांछंतीह परे च के ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदा चैषा सर्वदा शंकरप्रिया ॥ २८ ॥ ब्रह्मा च श्लाघते चामूं विष्णुस्सिद्धाश्चयोगिनः ॥ मुनयश्च तथैवान्ये त्रिलोकस्था जनाः सदा ॥ २९ ॥ काश्याश्च महिमानं वै वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ शक्नोम्यहं न सर्वं हि यथाशक्ति ब्रुवे ततः ॥ ३० ॥ कैलासस्य पतिर्यो वै ह्यंतस्सत्त्वो बहिस्तमाः ॥ कालाग्निर्नामतः ख्यातो निर्गुणो गुणवान्भवः ॥ प्रणिपातैरनेकैश्च वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ ॥ रुद्र उवाच ॥ विश्वेश्वर महेशान त्वदीयोऽस्मि न संशयः ॥ कृपां कुरु महादेव मयि त्वं साम्ब आत्मजे ॥ ३२ ॥

देनेवाली है ॥ २८ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, सिद्ध, योगी तथा मुनि और त्रिलोकीके मनुष्य भी सदा काशीजीकी प्रशंसा करते हैं ॥ २९ ॥ मैं काशीजीकी महिमा सौ वर्षोंमें भी वर्णन करनेको समर्थ नहीं हो सकता, तौभी यथा शक्ति वर्णन करता हूँ ॥ ३० ॥ भीतर सत्त्वगुण और बाहर तमोगुणवाले निर्गुण और अनेक गुणवान् कैलासपति कालाग्नि नामसे प्रसिद्ध रुद्रने अनेक प्रकारकी प्रार्थनासे इस प्रकार शंकरसे कहा था ॥ ३१ ॥ रुद्र बोले, हे विश्वके स्वामी ! महादेव ! हे महेश्वर ! मैं आपका हूं, इसमें संशय नहीं आप माता पार्वती सहित मुझ पुत्रपर कृपा करें ॥ ३२ ॥

स्थातव्यं च सदात्रैव लोकानां हितकाम्यया ॥ तारयस्व जगन्नाथ प्रार्थयामि जगत्पते॥३३॥सूत उवाच॥अविमुक्तेऽपि दान्तात्मा तं संप्रार्थ्य पुनः पुनः ॥ नेत्राश्रूणिप्रमुच्यैव प्रीतः प्रोवाच शंकरम्॥३४॥अविमुक्त उवाच ॥ देवदेव महादेव कालामयसुभेषज॥त्वं त्रिलोकपतिस्सत्यं सेव्यो ब्रह्माच्युतादिभिः॥३५॥काश्यां पुर्य्यां त्वया देव राजधानी प्रगृह्यताम्॥ मया ध्यानतया स्थेयमचिंत्य सुखहेतवे॥३६॥मुक्तिदाता भवानेव कामदश्च नचापरः ॥ तस्मात्त्वमुपकाराय तिष्ठोमासहितस्सदा॥३७॥जीवान्भवाब्धेरखिलां स्तारय त्वं सदाशिव ॥ भक्तकार्य्यं कुरु हर प्रार्थयामि पुनःपुनः ॥३८॥ ॥ सूत उवाच ॥इत्येवं प्रार्थितस्तेन विश्वनाथेन शंकरः॥ लोकानामुपकारार्थं तस्थौ तत्रापि सर्वराट्॥३९॥ यद्दिनं हि समारभ्य हरः काश्यामुपागतः ॥ तदारभ्य च सा काशी सर्वश्रेष्ठतराभवत् ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां विश्वेश्वरमाहात्म्ये काश्यां रुद्रागमनवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ एवं वाराणसी पुण्या यदि सूत महापुरी ॥तत्प्रभावं वदास्माकमविमुक्तस्य च प्रभो ॥ १ ॥

हे जगत्के स्वामी ! हे जगत्पते ! आप सदा लोकोंके हितकी कामनासे यहांही निवास करें और सबको तारें ऐसी प्रार्थना करता हूं ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार बुद्धिसम्पन्न रुद्रजी अविमुक्त क्षेत्रमें उन शिवकी बारम्बार प्रार्थना करके नेत्रोंसे आसुओंको बहाते प्रसन्नतासे उनसे बोले ॥३४॥ अविमुक्त बोले, हे देवोंके देव ! हे कालरूपी रोगकी औषधी ! तीनों लोकोंके पति ! आप ब्रह्मा विष्णु आदि देवतोंसे निश्चय ही सेवन करने योग्य हैं ॥३५॥ हे देव ! आप काशी पुरीमें राजधानी (निवासस्थान) स्वीकार करें मैं अचिन्त्य सुखके कारण ध्यान करता हुआ यहां स्थित हूंगा॥३६॥आप ही मुक्तिके देनेवाले तथा कामनाओंके देनेवाले हैं और कोई नहीं इस कारण आप संसाके उपकारके निमित्त सदा पार्वतीके सहित निवास करें ॥ ३७॥ हे सदाशिव ! आप सम्पूर्ण जीवोंको भवसागरसे निरन्तर उद्धार करो तथा भक्तोंके कार्यको करो, हे शिवजी ! ऐसी हम वारंवार प्रार्थना करते हैं ॥३८॥सूतजी बोले, इस प्रकार उन विश्वनाथसे प्रार्थना किये हुए सबके राजा शिवजीने लोकोंके उपकारके अर्थ वहां निवास किया॥३९॥जिस दिनसे शिवजी काशीजीमें पधारे तभीसे वह काशीनगरी सबसे श्रेष्ठ होगई ॥४०॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० विश्वेश्वरमाहात्म्ये काश्यां रुद्रागमनवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ऋषि बोले, हे प्रभो सूतजी ! *यदि यह वाराणसी नगरी ऐसी पवित्र है*

तो इसके प्रभाव तथा अविमुक्त ज्योतिर्लिङ्गके माहात्म्यको हमसे कहो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, हे मुनीश्वरो ! मैं वाराणसीके माहात्म्य तथा विश्वेश्वर शिवकी सुन्दर महिमाको संक्षेपसे सम्यक्प्रकार वर्णन करता हूं आप सुनें ॥ २ ॥ एक समय देवी पार्वतीने बडे आनन्दसे संसारके हितके निमित्त काशी तथा अविमुक्तलिंगके माहात्म्यको शिवजीसे पूंछा ॥ ३ ॥ पार्वती बोली, हे शिवजी ! आप लोकोंके हितकी कामनासे मेरे ऊपर कृपा करके इस क्षेत्रके सम्पूर्ण माहात्म्यको वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ सूतजी बोले, ऐसा पार्वतीका वचन सुनके देवोंके देव संसारके स्वामी शिवजी जीवोंके उपकारके हेतु उन पार्वतीजीसे बोले ॥ ५ ॥ शिवजी बोले, हे भद्रे ! तुमने संसारको सुख देनेवाला मंगलकारी

सूत उवाच॥वक्ष्ये संक्षेपतस्सम्यग्वाराणस्यास्सुशोभनम् ॥विश्वेश्वरस्य माहात्म्यं श्रूयतां च मुनीश्वराः ॥२॥ कदाचित्पार्वती देवी शङ्करं परया मुदा ॥ लोककामनयापृच्छन्माहात्म्यमविमुक्तयोः ॥३॥ पार्वत्युवाच ॥ अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं वक्तुमर्हस्य शेषतः ॥ ममोपरि कृपां कृत्वा लोकानां हितकाम्यया ॥४॥ सूत उवाच ॥ देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो जगत्प्रभुः॥प्रत्युवाच भवानीं तां जीवानां प्रियहेतवे ॥५॥ परमेश्वर उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया भद्रे लोकानां सुखदं शुभम् ॥ कथयामि यथार्थं वै महात्म्यमविमुक्तयोः ॥६॥ इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम॥सर्वेषामेव जंतूनां हेतुर्मोक्षस्य सर्वथा ॥७॥ अस्मिन्सिद्धास्सदा क्षेत्रे मदीयं व्रतमाश्रिताः ॥ नानालिंगधरा नित्यं मम लोकाभिकांक्षिणः ॥८॥ अभ्यस्यंति महायोगं जितात्मानो जितेन्द्रियाः ॥ परं पाशुपतं श्रौतं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥९॥रोचते मे सदा वासो वाराणस्यां महेश्वरि॥हेतुना येन सर्वाणि विहाय शृणु तद्ध्रुवम्॥१०॥

सुन्दर प्रश्न किया सो मैं अविमुक्त शिवके माहात्म्यको यथार्थरूपसे कहता हूं ॥ ६ ॥ यह वाराणसीनामक मेरा क्षेत्र सदा गोपनीय है और सब प्रकार संपूर्ण प्राणियोंको मुक्तिदेनेवाला है ॥७॥ इस मेरे क्षेत्रमें सिद्धगण सदा मेरे व्रतका आश्रय करते हैं तथा अनेक लोकोंके उपकारकी इच्छा करनेवाले नानाप्रकारके चिह्न धारण करते हैं ॥ ८ ॥ कोई जितेन्द्रिय होकर आत्माको वशमें करके महायोगका अभ्यास करतेहैं, भुक्ति तथा मुक्ति फलको देनेवाले और (श्रुतियोंमें कहे) परमपाशुपत योगमें तत्पर होते हैं ॥ ९ ॥ हे महेश्वरि ! जिस कारणसे मुझे सदा वाराणसी

में निवास अच्छा लगता है, सब विघ्नोंको छोडकर उसे निश्चयकर सुन ॥ १० ॥ जो मेरे भक्त तथा विज्ञानी हों वे दोनोंही मुक्तिके भागी हैं, उन दोनोंमें तीर्थोंके जानेकी अपेक्षा नहीं है, तीर्थ करने वा न करने उन्हें दोनोंही समान हैं ॥११॥जीवन्मुक्त हैं जहां कहींभी वे मरते हैं तत्कालही मोक्षको प्राप्त होतेहैं, यह तुम मेरे इस वचनको निश्चयरूपसे जानो ॥ १२ ॥ हे देवि ! परमशक्ति ! इस परम उत्तम अविमुक्त नामक तीर्थमें विशेषता है सो चित्त देकर सुनो ॥ १३ ॥ सब वर्ण तथा आश्रमवाले बालक, युवा, वृद्ध, कोई भी इस काशीपुरीमें मृत्युको प्राप्त हो तो निःसन्देह मुक्त होजाते हैं ॥ १४ ॥ अपवित्र, अथवा पवित्र कन्या हो या विवाही, विधवा हो वा वन्ध्या, या रजके दोषवाली

यो मे भक्तश्च विज्ञानी तावुभौ मुक्तिभागिनौ॥ तीर्थापेक्षा च न तयोर्विहिताविहिते समौ ॥ ११ ॥ जीवन्मुक्तौ तु तौ ज्ञेयौ यत्र कुत्रापि वै मृतौ ॥ प्राप्नुतो मोक्षमाश्वेव मयोक्तं निश्चितं वचः ॥ १२ ॥ अत्र तीर्थे विशेषोस्त्यविमुक्ताख्ये परोत्तमे ॥ श्रूयतां तत्त्वया देवि परशक्ते सुचित्तया॥१३॥सर्वेवर्णा आश्रमाश्च बालयौवनवार्द्धकाः ॥अस्यां पुर्य्यां मृताश्चेत्स्युर्मुक्ता एव न संशयः ॥१४॥ अशुचिश्च शुचिर्वापि कन्या परिणता तथा॥ विधवा वाथ वा वंध्या रजोदोषयुतापि वा ॥१५॥ प्रसूता संस्कृता कापि यादृशी तादृशी द्विजाः ॥अत्र क्षेत्रे मृता चेत्स्यान्मोक्षभाङ्नात्र संशयः ॥१६॥ स्वेदजश्चांडजो वापि ह्युद्भिज्जोऽथ जरायुजः ॥ मृतो मोक्षमवाप्नोति यथात्र न तथा क्वचित् ॥ १७ ॥ ज्ञानापेक्षा न चात्रैव भक्त्यपेक्षा न वै पुनः ॥ कर्मापेक्षा न देव्यत्र दानापेक्षा न चैव हि ॥ १८ ॥ संस्कृत्यपेक्षा नैवात्र ध्यानापेक्षा न कर्हिचित् ॥ नामापेक्षार्चनापेक्षा सुजातीनां तथात्र न ॥ १९ ॥

हो ॥ १५ ॥ हे द्विजो ! प्रसूता हो या कोई विना संस्कारवाली हो, चाहे जैसी क्यों न हो यदि इस क्षेत्रमें मरती है तो मोक्षकी भागी होती है इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ १६ ॥ जिस प्रकार इस क्षेत्रमें स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, वा जारसे उत्पन्न हुआ जीव मरकर मोक्षको पाता है उस प्रकार और कहीं मुक्त नहीं होता ॥ १७ ॥ हे देवि ! इस क्षेत्रमें न ज्ञानकी अपेक्षा है न भक्तिकी अपेक्षा है न कर्म की अपेक्षा है, नदानकी अपेक्षा है ॥ १८ ॥ न यहां संस्कारकी अपेक्षा है न किसी ध्यानकी अपेक्षा

है, न नामकी अपेक्षा है, न श्रेष्ठ जातिकी अपेक्षा है ॥ १९ ॥ मोक्षके देनेवाले मेरे क्षेत्रमें जो कोईभी मरता है वह निश्चयही मोक्षको प्राप्त होता है ॥ २० हे प्रिये ! यह मेरा दिव्यपुर अतिगोपनीय है, हे पार्वति ! इसके माहात्म्यको ब्रह्मा आदि कभी नहीं जानते ॥ २१ ॥ कारण कि, यह क्षेत्र सबसे बडा है, इससे अविमुक्त नामसे प्रसिद्ध है मरनेके उपरान्त नैमिषारण्य आदि तीर्थोंसे अधिक मोक्षको देनेवाला है ॥२२॥ पण्डितोंने यह क्षेत्र धर्मका स्थान, मोक्षका स्थान, क्षेत्र तथा तीर्थोंका स्थान कहा है ॥ २३ ॥ मनुष्य चाहे भोजन करता हो, सोता हो, क्रीडा करता हो तथा अनेक क्रियाओंको करता हो अविमुक्त शिवके समीप प्राणोंको छोडतेही अवश्य मोक्षका भागी होता है ॥ २४ ॥

मम क्षेत्रे मोक्षदे हि यो वा वसति मानवः ॥ यथा तथा मृतः स्याच्चेन्मोक्षमाप्नोति निश्चितम् ॥ २० ॥ एतन्मम पुरं दिव्यं गुह्याद्गुह्यतरं प्रिये ॥ ब्रह्मादयोऽपि जानंति माहात्म्यं नास्य पार्वति ॥ २१ ॥ महत्क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिति स्मृतम् ॥ सर्वेभ्यो नैमिषादिभ्यः परं मोक्षप्रदं मृते ॥ २२ ॥ धर्मस्योपनिषत्सत्यं मोक्षस्योपनिषत्समम् ॥ क्षेत्रतीर्थोपनिषदमविमुक्तं विदुर्बुधाः ॥ २३ ॥ कामं भुंजन्स्वपन्क्रीडन्कुर्वन्हि विविधाः क्रियाः ॥ अविमुक्ते त्यजन्प्राणाञ्जंतुर्मोक्षाय कल्पते ॥ २४ ॥ कृत्वा पापसहस्राणि पिशाचत्वं वरं नृणाम् ॥ न च क्रतुसहस्रत्वं स्वर्गे काशीं पुरीं विना ॥ २५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सेव्यते काशिका पुरी ॥ अव्यक्तलिंगं मुनिभिर्ध्यायते च सदाशिवः ॥ २६ ॥ यद्यत्फलं समुद्दिश्य तपन्त्यत्र नरः प्रिये ॥ तेभ्यश्चाहं प्रयच्छामि सम्यक्तत्तत्फलं ध्रुवम् ॥२७॥ सायुज्यमात्मनः पश्चादीप्सितं स्थानमेव च ॥ न कुतश्चित्कर्मबंधस्त्यजतामत्र वै तनुम् ॥२८॥

सहस्रों पापोंको करके मनुष्योंका पिशाच होजाना श्रेष्ठ है परन्तु स्वर्गके हेतु काशीपुरीके विना अनेक यज्ञोंका करना श्रेष्ठ नहीं है ॥ २५ ॥ इस कारण मुनिजन सम्पूर्ण यत्नोंसे काशीको सेवन करते हैं तथा अव्यक्तलिंगरूपी सदाशिवका ध्यान करते हैं ॥ २६ ॥ हे प्रिये ! मनुष्य जिस २ फलके हेतु यहां पर तप करते हैं मैं उन्हें निश्चयही सम्यक् प्रकार उस उस फलको देता हूं ॥२७॥ तत्पश्चात् अपने सायुज्य (मुक्ति) को तथा अभिलषित स्थानको देता हूं, यहांपर शरीर छोडनेवालोंको कहीं भी कर्मबन्धन नहीं होता है ॥ २८ ॥

देवता तथा ऋषियोंके सहित ब्रह्माजी, विष्णु, सूर्य तथा और सम्पूर्ण महात्मा भी यहां मेरी उपासना करते हैं ॥ २९ ॥ विषयोंमें प्रवृत्त अधर्मरुचिवाला पुरुष भी यदि इस क्षेत्रमें मरता है तो फिर संसारमें प्रवेश नहीं करता ॥ ३० ॥ फिर अभिमान रहित इन धैर्यवाले ईर्षा रहित पुण्यात्मा पाप कर्म न करनेवाले पुरुषोंकी तो क्या कथा है, यह सब मुझमें लय होते हैं ॥ ३१ ॥ योगी पुरुष सहस्रों जन्मोंमें मोक्षको पाते हैं परन्तु यहां प्राण त्यागनेसे परममोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ हे पार्वति ! यहां काशी क्षेत्रमें भक्तोंने अनेक लिंगोंका स्थापन किया है और वे शिवलिंग सब कामनाओंको देनेवाले तथा मोक्षके देनेवाले हैं ॥ ३३ ॥ यह क्षेत्र चारों दिशाओंमें पांच कोशतक

ब्रह्मा देवर्षिभिस्सार्द्धं विष्णुर्वापि दिवाकरः ॥ उपासते महात्मानस्सर्वे मामिह चापरे ॥ २९ ॥ विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्त
धर्मरुचिर्नरः ॥ इह क्षेत्रे मृतो यो वै संसारं न पुनर्विशेत् ॥ ३० ॥ किं पुनर्निर्ममा धीरासत्त्वस्था दंभवर्जिताः ॥ कृतिनश्च
निरारंभास्सर्वे ते मयि भाविताः ॥ ३१ ॥ जन्मांतरसहस्रेषु जन्म योगी समाप्नुयात् ॥ तदिहैव परं मोक्षं मरणादधिग
च्छति ॥ ३२ ॥ अत्र लिंगान्यनेकानि भक्तैस्संस्थापितानि हि ॥ सर्वकामप्रदानीह मोक्षदानि च पार्वति ॥ ३३ ॥ पंचक्रोशं
चतुर्दिक्षु क्षेत्रमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ समंताच्च तथा जंतोर्मृतिकालेऽमृतप्रदम् ॥ ३४ ॥ अपापश्चमृतो यो वै सद्यो मोक्षं समश्नुते ॥
सपापश्च मृतो यस्स्यात्कायव्यूहान्समश्नुते ॥ ३५ ॥ यातनां सोनुभूयैव पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ पातकं योऽविमुक्ताख्ये
क्षेत्रेऽस्मिन्कुरुते ध्रुवम् ॥ ३६ ॥ भैरवीं यातनां प्राप्य वर्षाणामयुते पुनः ॥ ततो मोक्षमवाप्नोति भुक्त्वा पापं च
सुन्दरि ॥ ॥ ३७ ॥ इति ते च समाख्याता पापाचारे च या गतिः ॥ एवं ज्ञात्वा नरस्सम्यक्सेवयेदविमुक्तकम् ॥ ३८ ॥

विस्तृत है, इसमें कहीं भी कोई प्राणी मरे तो यह क्षेत्र उसको अमृतका देने वाला है ॥ ३४ ॥ पापरहित जो मनुष्य यहां मरता है वह शीघ्रही मोक्षको प्राप्त होता है- तथा जो पापी यहां मरे तो वह कायव्यूहको पाकर ॥ ३५ ॥ उससे यातनाको भोगकर शीघ्रही मोक्षको प्राप्त होता है, जो मनुष्य इस अविमुक्त नामक क्षेत्रमें निश्चयकर पाप करता है ॥ ३६ ॥ हे सुन्दरि ! वह भैरवी यातनाको प्राप्त हो पापको भोगकर दशसहस्र वर्षमें फिर मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार यहां पाप करनेसे जिस प्रकार गति होती है सो तुमसे

सब कही यह जानकर मनुष्य यहाँ अविमुक्तक्षेत्रका सेवन करते हैं ॥३८॥कोटिसौ कल्पोंमेंभी कर्म किया हुआ क्षयको प्राप्त नहींहोता शुभाशुभ कर्म अवश्यही भोगना पडता है ॥३९॥ केवल अशुभ (बुरा) कर्म नरक भोगनेको होता है और शुभ स्वर्गप्राप्तिके निमित्त होता है और शुभ अशुभ दोनों प्रकारके कर्मोंसे मनुष्यका जन्म होता है ॥४०॥ पुण्य पापके न्यूनाधिक होनेमें अच्छे अथवा बुरे स्थानमें जन्म होता है, हे, पार्वति! दोनोंके क्षय होनेपर निश्चयही मुक्ति होती है ॥४१॥ हे महेश्वरि ! कर्मकाण्डमें तीन प्रकारके बन्धनमें डालनेवाले कर्म कहे हैं वे सञ्चित क्रियमाण और प्रारब्ध नामवाले हैं ॥४२॥पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंको संचित कहते हैं और जो शरीरसे फलरूपमें भोगेजाते हैं वह प्रारब्ध कहाते हैं ॥४३॥ हे

कृतकर्मक्षयो नास्ति कल्पकोटिशतैरपि ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥३९॥ केवलं चाशुभं कर्म नरकाय भवेदिह ॥ शुभं स्वर्गाय जायेत द्वाभ्यां मानुष्यमीरितम्॥४०॥ जन्म सम्यगसम्यक् च न्यूनाधिक्ये भवेदिह ॥ उभयोश्च क्षयो मुक्तिर्भवेत्सत्यं हि पार्वति ॥४१॥ कर्म च त्रिविधं प्रोक्तं कर्मकाण्डे महेश्वरि ॥ संचितं क्रियमाणं च प्रारब्धं चेति बंधकृत् ॥४२॥ पूर्वजन्मसमुद्भूतं संचितं समुदाहृतम्॥ भुज्यते च शरीरेण प्रारब्धं परिकीर्तितम्॥४३॥ अनेन जन्मना यच्च क्रियते कर्म सांप्रतम् ॥ शुभाशुभं च देवेशि क्रियमाणं विदुर्बुधाः ॥४४॥ प्रारब्धकर्मणो भोगात्क्षयश्चैव न चान्यथा॥उपायेन द्वयोर्नाशः कर्मणोः पूजनादिना ॥ ४५ ॥ सर्वेषां कर्मणां नाशो नास्ति काशीं पुरीं विना ॥ सर्वं च सुलभं तीर्थं दुर्ल्लभा काशिका पुरी ॥ ४६ ॥ पूर्वजन्मकृतं चेद्वै काशीदर्शनमादरात् ॥ तदा काशीं च संप्राप्य लभेन्मृत्युं न चान्यथा ॥ ४७ ॥

देवेशि ! इस जन्ममें जो शुभ और अशुभ कर्म इस समय किये जाते हैं उनको पंडित क्रियमाण कहते हैं॥४४॥ उनमें प्रारब्ध कर्मका विनाश केवल भोगसेही होता है और किसी प्रकार नहीं होसकता संचित क्रियमाण इन दोनों कर्मोंका क्षय पूजन आदि उपायसे होता है ॥४५॥ काशीके विना सम्पूर्ण कर्मोंका नाश नहीं होसकता, सब तीर्थ सुलभ हैं परन्तु काशीपुरी दुर्लभ है ॥४६॥ यदि पूर्वजन्ममें आदरसे काशीजीका दर्शन कियाहो तो काशीजीमें आकर मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है और प्रकार काशीमें मरण नहीं होसकता ॥ ४७ ॥ जो पुरुष काशीमें जाकर गंगाजीमें स्नान

करता है तो क्रियमाण तथा संचित कर्मका विनाश हो जाता है ॥४८॥ प्रारब्धकर्म विनाभोग किये नाश नहीं होता ऐसा निश्चय है, यदि यहाँ मृत्यु होजाय तो उस कर्म का क्षय हो सकता है ॥ ४९ ॥ यदि पहले काशीका सेवन कियाहो पश्चात् पाप करे तो उस काशीसेवनके बीजसे बलात्कार फिर काशीजी प्राप्त होती है ॥५०॥ उस समय सम्पूर्ण पाप भस्म होजाते हैं इस कारण मनुष्य कर्मबन्धनकी काटनेवाली काशीजीको निश्चय ही सेवन करें ॥ ५१ ॥ हे प्रिये ! जिसने एकभी ब्राह्मणको काशीजीमें वास कराया वह काशीवासको पाय मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य काशीमें मृत्युको प्राप्त हुआ उसका जन्म नहीं होता, कामना और फलके उद्देश्यसे रहकर प्रयागमें मृत्युको प्राप्त हुए

काशीं प्राप्य नरो यस्तु गंगायां स्नानमाचरेत् ॥ तदा च क्रियमाणस्य संचितस्यापि संक्षयः॥४८॥प्रारब्धं न विना भोगो नश्य
तीति सुनिश्चितम् ॥ मृतिश्च तस्य संजाता तदा तस्य क्षयो भवेत् ॥४९॥ पूर्वं चैव कृता काशी पश्चात्पापं समाचरेत् ॥ तद्बीजेन
बलवता नीयते काशिका पुनः॥५०॥तदा सर्वाणि पापानि भस्मसाच्च भवंति हि॥ तस्मात्काशीं नरस्सेवेत्कर्मनिर्मूलनीं ध्रुवम् ॥
॥५१॥ एकोऽपि ब्राह्मणो येन काश्यां संवासितः प्रिये॥ काशीवासमवाप्यैव ततो मुक्तिं स विंदति॥५२॥काश्यां यो वै मृतश्चैव
तस्य जन्म पुनर्न हि ॥ समुद्दिश्य प्रयागे च मृतस्य कामनाफले ॥५३॥ संयोगश्च तयोश्चेत्स्यात्काशीजन्यं फलं वृथा॥यदि न
स्यात्तयोर्योगस्तीर्थराजफलं वृथा॥५४॥तस्मान्मच्छासनाद्विष्णुस्सृष्टिं साक्षाद्धि नूतनाम्॥विधाय मनसोद्दिष्टां तत्सिद्धिं यच्छति
ध्रुवम् ॥५५॥ सूत वाच ॥ इत्यादि बहुमाहात्म्यं काश्यां वै मुनिसत्तमाः ॥ तथा विश्वेश्वरस्यापि भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ॥५६॥

मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता ॥५३॥ और यदि काशीमें कामना और फलके उद्देश्यसे मृत्युको प्राप्त हुआ है तो उसे काशीका फल प्राप्त न होगा और यदि तीर्थराज प्रयागमें कामना और फलके उद्देश्यको छोडकर साधारण रीतिपर मृत्युको प्राप्त हुआ है तो उसे तीर्थराजका फल नहीं होता ॥ ५४ इस कारण मेरी आज्ञासे साक्षात् विष्णुभगवान् मनके उद्देश्यकी की हुई नवीन सृष्टिको रचकर निश्चयही सिद्धिको प्राप्त हुए ॥ ५५ ॥ सूतजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठो ! इस प्रकार काशीजीका बहुत माहात्म्य है तथा सत्पुरुषोंको भुक्ति मुक्तिके देनेवाले विश्वेश्वर महादेवका

भी बडा माहात्म्य है ॥ ५६ ॥ अब मैं इसके आगे त्र्यम्बक देवका माहात्म्य वर्णन करता हूं जिसको सुनकर मनुष्य क्षणमात्रमें सम्पूर्ण पापोंसे छूटता है ॥ ५७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० काशीविश्वेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ सूतजी बोले, हे श्रेष्ठ ऋषियो ! मैं पापोंके नाश करनेवाली कथाको कहता हूं सो आप सुनें जैसा कि, मैंने श्रेष्ठ गुरु व्यासजीसे सुना है सो आपसे वर्णन करता हूं ॥ १ ॥ पहले गौतम नामसे प्रसिद्ध श्रेष्ठ ऋषि रहते थे, उनकी बडी धार्मिक अहल्या नामवाली स्त्री थी ॥ २ ॥ दक्षिण दिशाकी ओर जो ब्रह्म नामक पर्वत है वहां उन ऋषिने दशसहस्र वर्ष तप किया ॥ ३ ॥ हे शोभनव्रत

अतः परं प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं त्र्यंबकस्य च ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवः क्षणात् ॥ ५७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां काशीविश्वेश्वरज्योतिर्लिङ्गमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ सूत उवाच ॥ शृयता मृषयः श्रेष्ठाः कथां पापप्रणाशिनीम्॥कथयामि यथा व्यासात्सद्गुरोश्च श्रुता मया॥१॥ पुरा ऋषिवरश्चासीद्गौतमो नाम विश्रुतः ॥ अहल्या नाम तस्यासीत्पत्नी परमधार्मिकी ॥ २ ॥ दक्षिणस्यां दिशि हि यो गिरिर्ब्रह्मेति संज्ञकः ॥ तत्र तेन तपस्तप्तं वर्षाणामयुतं तथा ॥ ३ ॥ कदाचिच्च ह्यनावृष्टिरभवत्तत्र सुव्रताः ॥ वर्षाणां च शतं रौद्री लोका दुःखमुपागताः ॥ ४ ॥ आर्द्रं च पल्लवं न स्म दृश्यते पृथिवीतले ॥ कुतो जलं विदृश्येत जीवानां प्राणधारकम् ॥ ५ ॥ तदा ते मुनयश्चैव मनुष्याः पशवस्तथा ॥ पक्षिणश्च मृगास्तत्र गताश्चैव दिशो दश ॥ ६ ॥ तां दृष्ट्वा चर्षयो विप्राः प्राणायामपरायणाः ॥ ध्यानेन च तदा केचित्कालं निन्युस्सुदारुणम् ॥ ७ ॥ गौतमोऽपि स्वयं तत्र वरुणार्थं तपश्शुभम् ॥ चकार चैव षण्मासं प्राणायामपरायणः ॥ ८ ॥

वाले ऋषियो ! एक समय वहां सौ वर्षतक भयानक अनावृष्टि हुई उससे सब लोग दुःखको प्राप्त हुये ॥ ४ ॥ पृथ्वीपर गीलापन तथा पत्ता भी नहीं दीखता था और जीवोंके प्राणोंका आश्रयरूप जल भी कहीं दिखाई नहीं देता था ॥ ५ ॥ उमस समय वहांके निवासी मुनि, मनुष्य, पशु, पक्षी और मृग आदि सब चारों ओरको चले गये ॥ ६ ॥ ऐसी भयंकर अनावृष्टिको देखकर ऋषि तथा ब्राह्मण प्राणायाममें तत्पर हुए, कोई २ ध्यानसे कठिन समयको बिताने लगे ॥७॥ गौतमजीने भी वहां प्राणायाममें तत्पर हो वरुणदेवताके प्रसन्न होनेको छैः

मास पर्यन्त शुभ तप किया ॥ ८ ॥ तब प्रसन्न हुए वरुणजी उनको वर देनेको आये मैं प्रसन्न हूं वर मांगो वरदान दूंगा ऐसा वचन बोले ॥ ९ ॥ हे द्विजो ! उस सयम गौतमजीने उनसे वर्षा होनेकी प्रार्थना की, तब वरुणजी उन मुनियोंसे यह बोले, ॥ १० ॥ वरुणजी बोले, मैं दैवकी आज्ञाको लांघकर वर्षा किस प्रकार करूं आप चतुर हैं और कुछ प्रार्थना कीजिये उसको मैं पूर्ण करूंगा ॥ ११ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उन महात्मा वरुणजीका वचन सुनके परोपकारी गौतम मुनि यह वचन बोले ॥ १२ ॥ गौतमजी बोले, हे देवताओंके स्वामी ! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो जो मैं प्रार्थना करता हूं उसको वैसाही पूर्ण करें ॥ १३ ॥

ततश्च वरुणस्तस्मै वरं दातुं समागताः ॥ प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि ददामि च वचोऽब्रवीत् ॥९॥ ततश्च गौतमस्तं वै वृष्टिं च प्रार्थ यत्तदा ॥ ततस्स वरुणस्तं वै प्रत्युवाच मुनिं द्विजाः ॥१०॥ वरुण उवाच ॥ देवाज्ञां च समुल्लंघ्य कथं कुर्यामहं च ताम् ॥ अन्य त्प्रार्थय सुज्ञोऽसि यदहं करवाणि ते ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येतद्वचनं तस्य वरुणस्य महात्मनः ॥ परोपकारी तच्छ्रुत्वा गौतमो वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥ गौतम उवाच ॥ यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरो मम ॥ यदहं प्रार्थयाम्यद्य कर्तव्यं हि त्वया तथा ॥ १३ ॥ यतस्त्वं जलराशीशस्तस्माद्देयं जलं मम ॥ अक्षयं सर्वदेवेश दिव्यं नित्यफलप्रदम् ॥ १४ ॥ सूत उवाच ॥ इति संप्रा र्थितस्तेन वरुणो गौतमेन वै ॥ उवाच वचनं तस्मै गर्तश्च क्रियतां त्वया ॥१५॥ इत्युक्ते च कृतस्तेन गर्त्तो हस्तप्रमाणतः ॥ जलेन पूरितस्तेन दिव्येन वरुणेन सः ॥ १६ ॥ अथोवाच मुनिं देवो वरुणो हि जलाधिपः ॥ गौतमं मुनिशार्दूलं परोपकृतिशालिनम् ॥ १७ ॥ वरुण उवाच ॥ अक्षय्यं च जलं तेऽस्तु तीर्थभूतं महामुने ॥ तव नाम्ना च विख्यातं क्षितावेतद्भविष्यति ॥ १८ ॥

हे सब देवताओंके स्वामी ! कारण कि, आप जलराशिके स्वामी हैं इससे मुझे जल देवें कारण कि जलदान करना नित्य अक्षय तथा दिव्य फलका देनेवाला है ॥ १४ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उन गौतमसे प्रार्थना किये हुये वरुणने उनसे यह वचन कहा कि, तुम एक गढा खोदो ॥१५॥ ऐसा कहनेपर गौतमने हाथभर गहरा गढा किया तब उन दिव्य वरुणजीने उसमें जलभर दिया ॥१६॥ तब जलके स्वामी वरुण देवताने परोपकार करनेवाले मुनिश्रेष्ठ गौतम मुनिसे यह कहा ॥ १७ ॥ वरुणजी बोले, हे महामुने ! तुम्हारा यह गर्त्त अक्षय्य

जलवाला तीर्थ होगा तथा पृथ्वीपर यह तीर्थ तुम्हारे नामसे विख्यात होगा॥१८॥यहांपर दान हवन तथा तप किया हुआ देवताओंका पूजन तथा पितरोंका श्राद्ध किया हुआ सबही फल देनेवाला होगा ॥ १९ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उन महार्षिसे स्तुति किये हुये वरुणजी ऐसा वर देकर अन्तर्धान होगये गौतम मुनिने भी औरोंका उपकार करके सुख पाया ॥ २० ॥ बडे पुरुषोंका आश्रय मनुष्योंको गौरव प्राप्तिका हेतु होता है इस कारण महात्मालोग बडोंके स्वरूपको देखते हैं और नीच पुरुष सज्जनोंकी संगति नहीं करते ॥ २१ ॥ यह प्राणी जैसे मनुष्य को सेवन करता है वैसेही फलको पाता है बडोंकी सेवासे बडापन तथा नीचोंकी सेवा करनेसे नीचता प्राप्त होती है ॥ २२ ॥ सिंहके मन्दिरकी

अत्र दत्तं हुतं तप्तं सुराणां यजनं कृतम् ॥ पितॄणां च कृतं श्राद्धं सर्वमेवाक्षयं भवेत्॥१९॥सूत उवाच॥इत्युक्तांतर्दधे देवस्स्तुतस्तेन महर्षिणा॥ गौतमोऽपि सुखं प्राप कृत्वान्योपकृतिं मुनिः ॥२०॥ महतो ह्याश्रयः पुंसां महत्त्वायोपजायते ॥ महांतस्तत्स्वरूपं च पश्यंति नेतरेऽशुभाः॥२१॥यादृङ्नरं च सेवेत तादृशं फलमश्नुते॥ महतस्सेवयोच्चत्वं क्षुद्रस्य क्षुद्रतां तथा॥२२॥ सिंहस्य मंदिरे सेवा मुक्ताफलकरी मता ॥ शृगालमंदिरे सेवा त्वस्थिलाभकरी स्मृता॥२३॥उत्तमानां स्वभावोयं परदुःखासहिष्णुता ॥ स्वयं दुखं च संप्राप्तं मन्यतेन्यस्य वार्यते॥२४॥ वृक्षाश्च हाटकं चैव चंदनं चेक्षुकस्तथा ॥ एते भुवि परार्थं च दक्षा एवं न केचन ॥२५॥ दया लुरमदस्पर्श उपकारी जितेन्द्रियः ॥ एतैश्च पुण्यस्तम्भैस्तु चतुर्भिर्धार्य्यते मही ॥२६॥ ततश्च गौतमस्तत्र जलं प्राप्य सुदुर्लभम् ॥ नित्यनैमित्तिकं कर्म चकार विधिवत्तदा॥२७॥ततो व्रीहीन्यवांश्चैव नीवारानप्यनेकधा॥वापयामासतत्रैवहवनार्थं मुनीश्वरः॥२८॥

सेवा करनी मोतियोंको देनेवाली होती है, गीदडके स्थानकी सेवा करनी अस्थियोंका लाभ करनेवाली कही है ॥ २३ ॥ उत्तम पुरुषोंका यह स्वभाव होता है, कि वे दूसरोंके दुःखको नहीं सह सकते अपने आप दुःख पाना अच्छा मानते हैं और दूसरोंका दुःख दूर करते हैं ॥ २४ ॥ वृक्ष, बाजार, चन्दन, गन्ना, तथा यह सब पृथिवीपर दूसरोंके निमित्तही बने हैं और कोई नहीं ॥२५॥ दया करनेवाले अभिमान न करने वाले, तथा उपकारी, जितेन्द्रिय, इन चारों पुण्यके स्तम्भोंसे भूमि धारण हो रही है ॥ २६ ॥ उस समय गौतमने वहां बडी कठिनतासे जलपाय विधिपूर्वक नित्यनैमित्तिक शौच स्नानादि कर्म किया ॥ २७ ॥ तत्पश्चात् मुनीश्वरने वहां व्रीहि (जौ) मुनि अन्न आदि अनेक प्रकारके

धान्योंको हवन करनेके निमित्त बुलाया ॥ २८ ॥ तब वहांपर अनेक प्रकारका अन्न, तथा नानाप्रकारके वृक्ष, भिन्न २ प्रकारके पुष्प, फल इत्यादि अनेक वस्तु होगई ॥ २९ ॥ यह सुनकर वहां और भी सहस्रों ऋषि आये तथा अनेक पशु पक्षी और जीवभी प्राप्त हुये ॥ ३० ॥ भूमंडलमें वह वन अतिसुन्दर हुआ क्षय न होनेवाले जलके संयोगसे उत्पन्न हुई धान्य फलादि सम्पत्तिसे वहांके निवासियोंको अनावृष्टि दुःख देनेवाली नहीं हुई ॥ ३१ ॥ उस वनमें श्रेष्ठ कर्मोंमें तत्पर हुए अनेकों ऋषि अपने शिष्य तथा भाई पुत्रोंसहित वहां निवास करने लगे ॥ ३२ ॥ अपने समय काटनेके निमित्त अन्नको बोने लगे गौतमजीके प्रभावसे उस वनमें बडा

धान्यानि विविधानीह वृक्षाश्च विविधास्तथा॥पुष्पाणि च फलान्येव ह्यासंस्तत्राप्यनेकशः॥२९॥तच्छ्रुत्वा ऋषयश्चान्ये तत्राया तास्सहस्रशः ॥ पशवः पक्षिणश्चान्येजीवाश्च बहवोऽगमन् ॥३०॥ तद्वनं सुन्दरं ह्यासीत्पृथिव्यां मंडलेपरम्॥तदक्षयकरायोगा दनावृष्टिर्न दुःखदा ॥३१॥ ऋषयोऽपि वने तत्र शुभकर्मपरायणाः॥वासं चक्रुरनेके च शिष्यभार्य्यासुतान्विताः॥३२॥ धान्या नि वापयामासुः कालक्रमणहेतवे॥आनंदस्तद्वने ह्यासीत्प्रभावाद्गौतमस्य च ॥३३॥ इति श्रीशिवमहापुराणेचतुर्थ्यां कोटिरुद्रसं हितायां त्र्यंबकेश्वरमाहात्म्ये गौतमप्रभाववर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ कदाचिद्गौतमेनैव जलार्थं प्रेषिता निजाः ॥ शिष्यास्तत्र गता भक्त्या कमंडलुकरा द्विजाः ॥१॥शिष्याञ्जलसमीपे तु गतान्दृष्ट्वा न्यषेधयन् ॥ जलार्थमा गतास्तत्र चर्षिपत्न्योप्यनेकशः ॥२॥ ऋषिपत्न्यो वयं पूर्वं ग्रहीष्यामो विदूरतः ॥पश्चाच्चैव जलं ग्राह्यमित्येवं पर्यभर्त्सयन् ॥३॥

आनंद होने लगा ॥ ३३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषा टीकायां च० को० रु० त्र्यम्बकेश्वरमाहात्म्ये गौतमप्रभाववर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! किसी समय गौतममुनिने अपने शिष्योंको जल लानेके निमित्त भेजा तब वे कमंडलु (पात्र) हाथमें लिये भक्तिसे गर्तपर गये ॥ १ ॥ उस समय वहां जल लेनेके निमित्त आई हुई अनेक ऋषियोंकी स्त्रियोंने जलके समीप गये हुये उन शिष्योंको देखकर जल लेनेका निषेध किया ॥ २ ॥ पहले हम ऋषि पत्नी जलको भरलें पीछे तुम दूरसे जल

लेना इस प्रकार उन्हें ललकारने लगीं ॥ ३ ॥ तब उन शिष्योंने वहांसे लौटकर सब वृत्तांन्त ऋषिकी स्त्रीसे निवेदन किया फिर वह गौतम की स्त्री उन सबोंको धैर्य देकर स्वयं उनके साथ जल लेनेको गई ॥ ४ ॥ उस तपस्विनीने जल लेकर उन गौतम मुनिको दिया इसी प्रकार वह श्रेष्ठ ऋषि नित्य उस जलसे निर्वाह करने लगे ॥ ५ ॥ उन पूर्वोक्त ऋषि पत्नियोंने क्रोध करके उस गौतमकी स्त्रीको ललकारा और वे सब दुष्ट आशयवाली स्त्रियें लौटकर अपनी अपनी पर्ण शालामें गईं ॥ ६ ॥ तब उन कुटिल चित्तवालीं स्त्रियोंने वह सब वृत्तान्त विरुद्ध (उलटा) अपने अपने स्वामियोंके आगे निवेदन किया ॥ ७ ॥ तब भावी कर्मके वशमें हो वे सब ऋषि अपनी अपनी स्त्रियोंके

परावृत्य तदा तैश्च ऋषिपत्न्यै निवेदितम् ॥ सा चापि तान्समादाय समाश्वास्य च तैः स्वयम् ॥४॥ जलं नीत्वा ददौ तस्मै गौतमायतपस्विनी ॥ नित्यं निर्वाहयामास जलेन ऋषिसत्तमः ॥५॥ ताश्चैवमृषिपत्न्यस्तु क्रुद्धास्तां पर्यभर्त्सयन् ॥ परावृत्य गतास्सर्वास्तूटजान्कुटिलाशयाः ॥ ६ ॥ स्वाम्यग्रे विपरीतं च तद्वृत्तं निखिलं ततः ॥ दुष्टाशयाभिःस्त्रीभिश्च ताभिर्वै विनिवेदितम् ॥७॥ अथ तासां वचः श्रुत्वा भाविकर्मवशात्तदा ॥ गौतमायच संक्रुद्धाश्चासंस्ते परमर्षयः ॥८॥ विघ्नार्थं गौतमस्यैव नानापूजोपहारकैः ॥ गणेशं पूजयामासुस्संक्रुद्धास्ते कुबुद्धयः ॥ ९ ॥ आविर्बभूव च तदा प्रसन्नो हि गणेश्वरः ॥ उवाच वचनं तत्र भक्ताधीनः फलप्रदः ॥ १० ॥ गणेश उवाच ॥ प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूत यूयं किं करवाण्यहम् ॥ तदीयं तद्वचः श्रुत्वा ऋषयस्तेऽब्रुवंस्तदा ॥ ११ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वया यदि वरो देयो गौतमस्स्वाश्रमाद्बहिः ॥ निष्कास्य नो ऋषिभिः परिभर्त्स्यं तथा कुरु ॥ १२ ॥

वचन सुनकर गौतमके ऊपर क्रोधित हुये ॥ ८ ॥ और क्रोधित हुये उन कुबुद्धिवाले ऋषियोंने गौतमके विघ्नके निमित्त अनेक पूजाके उपहारों सहित गणेशजीका पूजन किया ॥ ९ ॥ तब प्रसन्न होकर गणेशजी प्रगट हुए और भक्तोंके आधीन होकर फलके देनेवाले गणेशजी यह वचन बोले ॥१०॥गणेशजी बोले, मैं तुमसे प्रसन्न हूं तुम वर मांगो, तुम्हारा क्या कार्य सिद्ध करूंगा ? उनका ऐसा वचन सुन कर वे ऋषि बोले ॥ ११ ॥ ऋषि बोले, यदि आप वर देना चाहते हैं तो ऋषियोंसे धिक्कार दिलाकर गौतमको इस स्थानसे बाहर निकालो इसी

वरको आप पूर्ण करें ॥ १२ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार उन ऋषियोंसे प्रार्थना किये हुए वह गणेशजी हँसकर बोले, और सत्पुरुषोंके गति देनेवाले गजानन प्रीतिसे उनको समझाने लगे ॥ १३ ॥ गणेशजी बोले, हे सम्पूर्ण ऋषियो ! सुनो इस समय तुम उचित नहीं करते हो, अपराधके विना उनसे क्रोध करनेमें हानि है ॥ १४ ॥ जिन्होंने पहले (अनावृष्टि कालमें) बडा उपकार किया है उनको दुःख देना हित कारी नहीं है यदि उनको दुःख दिया जायगा तो यहाँ तुम्हारा नाश होगा ॥ १५ ॥ श्रेष्ठ इस प्रकारका श्रेष्ठ तप करके उत्तम फल प्राप्त करते हैं उससे विपरीत तुम स्वयं शुभ फल त्यागके अपना अहित साधते हो ॥ १६ ॥ सूतजी बोले, ऐसा गणेशजीका वचन सुनके वे मुनि

सूत उवाच ॥ स एवं प्रार्थितस्तैस्तु विहस्य वचनं पुनः ॥ प्रोवाचेभमुखः प्रीत्या बोधयंस्तान्सतां गतिः ॥ १३ ॥ गणेशउवाच ॥ श्रूयतामृषयस्सर्वे युक्तं न क्रियतेऽधुना ॥ अपराधं विना तस्मै क्रुध्यतां हानिरेव च ॥ १४ ॥ उपस्कृतं पुरा यैस्तु तेभ्यो दुःखं हितं न हि ॥ यदा च दीयते दुःखं तदा नाशो भवेदिह ॥ १५ ॥ ईदृशं च तपः कृत्वा साध्यते फलमुत्तमम् ॥ शुभं फलं स्वयं हित्वा साध्यते नाहितं पुनः ॥ १६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा तस्य ते मुनिसत्तमाः ॥ बुद्धिमोहं तदा प्राप्ता इदमेव वचोऽब्रुवन् ॥ १७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कर्तव्यं हि त्वया स्वामिन्निदमेव न चान्यथा ॥ इत्युक्तस्तु तदा देवो गणेशो वाक्य मब्रवीत् ॥ १८ ॥ गणेश उवाच ॥ असाधुस्साधुतां चैव साधुश्चासाधुतां तथा ॥ कदाचिदपि नाप्नोति ब्रह्मोक्तमिति निश्चितम् ॥ १९ ॥ यदा च भवतां दुःखं जातं चानशनात्पुरा ॥ तदा सुखं प्रदत्तं वै गौतमेन महर्षिणा ॥ २० ॥ इदानीं वै भवद्भिश्च तस्मै दुःखं प्रदीयते ॥ नैतद्युक्ततमं लोके सर्वथा सुविचार्यताम् ॥ २१ ॥

श्रेष्ठ उस समय बुद्धिके अज्ञानमें प्राप्त हुए फिर भी इस प्रकार बोले ॥ १७ ॥ ऋषि बोले, हे स्वामिन् ! आप इसी वचनको पूर्ण कीजिये हम और कुछ नहीं चाहते यह सुनकर गणेश देवता यह वचन बोले ॥ १८ ॥ गणेशजी बोले, दुर्जन पुरुष सज्जनताको तथा सज्जन पुरुष दुष्टताको कदापि नहीं प्राप्त होते ऐसा ब्रह्माजीने कहा है सो निश्चय जानो ॥ १९ ॥ प्रथम जिस समय तुम सबोंको बिना भोजनसे दुःख हुआ उस समय महर्षि गौतमजीने तुम्हें सुख दिया ॥ २० ॥ इस समय आप सब उनको दुःख

देते हैं संसारमें यह सब प्रकार योग्य नहीं है विचार देखो ॥ २१ ॥ तुम सब स्त्रीके बलसे मोहित हो इस कारण मेरे वचनको नहीं मानते, उन गौतमका यह भी हितही होगा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ २२ ॥ फिर भी वह श्रेष्ठ मुनि आपको निश्चय सुख देंगे अतः उनको दुःख देना उचित नहीं है और वरदान मांगो ॥ २३ ॥ सूतजी बोले, यद्यपि उन महात्मा गणेशजीने उन ऋषियोंसे यह वचन कहा तो भी उन्होंने न माना ॥ २४ ॥ उस समय भक्तिकी आधीनतासे वशीभूत हुए शिवजीके पुत्र गणेशजी उन दुष्टात्मा ऋषियोंसे उदासीन मनसे बोले ॥ २५ ॥ गणेशजी बोले, आप जो प्रार्थना करते हैं मैं निश्चयही उसी प्रकार करूंगा, पीछेसे जो होनहार है सो होगा यह कहकर फिर अन्तर्धान

स्त्रीबलान्मोहिता यूयं न मे वाक्यं करिष्यथ ॥ एतद्धिततमं तस्य भविष्यति न संशयः ॥२२॥ पुनश्चायमृषिश्रेष्ठो दास्यते वस्सुखं ध्रुवम् ॥ तारणं न च युक्तं स्याद्वरमन्यं वृणीत वै ॥ २३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं वचनं तेन गणेशेन महात्मना ॥ यद्यप्युक्तमृषिभ्यश्च तदप्येते न मेनिरे ॥२४॥ भक्ताधीनतया सोथ शिवपुत्रो ब्रवीत्तदा॥उदासीनेन मनसा तानृषीन्दुष्टशेमुषीन् ॥ २५ ॥ गणेश उवाच ॥ भवद्भिः प्रार्थ्यते यच्च करिष्येऽहं तथा खलु ॥ पश्चाद्भावि भवेदेव इत्युक्तांतर्दधे पुनः ॥ २६ ॥ गौतमस्स न जानाति मुनीनां वै दुराशयम् ॥ आनन्दमनसा नित्यं पत्न्या कर्म चकार तत् ॥ २७ ॥ तदन्तरे च यज्जातं चरितं वरयोगतः ॥ तद्दुष्टर्षिप्रभावात्तु श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ॥ २८ ॥ गौतमस्य च केदारे तत्रासन्व्रीहयो यवाः ॥ गणेशस्तत्र गौर्भूत्वा जगाम किल दुर्बला ॥२९॥ कंपमाना च सा गत्वा तत्र तद्वरयोगतः ॥ व्रीहीन्संभक्षयामास यवांश्च मुनिसत्तमाः ॥ ३० ॥

हो गये ॥ २६ ॥ वह गौतमजी उन मुनियोंके कपटभेदको नहीं जानते थे आनंदसे अपनी स्त्रीके साथ नित्य कर्म करते थे ॥ २७ ॥ हे मुनीश्वरो ! इसके पश्चात् उन दुष्ट ऋषियोंके प्रभावसे वरदानके कारण जो चरित्र हुआ सो सुनो ॥ २८ ॥ गौतमके केदारतीर्थके किनारे जो व्रीहि (जौ) जमे हुए थे वहांपर गणेशजी दुर्बल गौ बनके गये ॥ २९ ॥ हे मुनि सत्तम ! उस वरके योगसे कांपती हुई वह गाय वहां जाकर जौ तथा व्रीहि (धानोंको) भक्षण करने लगी ॥३० ॥

दैववश इसी अवसरमें वहां गौतमजी आगये और उन दयालु मुनिने उस समय गायको तृणके स्तम्बसे निवारण किया ॥३१॥ उस तृणके स्तम्बसे स्पर्श कीहुई वह गाय पृथिवीपर गिर गई और उस ऋषिके देखतेही देखते उसी समय मरगई॥३२॥ तब कपटसे गुप्त रूपवाले वे ऋषि तथा दुष्ट ऋषिपत्नी सब परस्पर मिलके कहने लगीं कि गौतमने यह क्या किया॥३३॥ हे ब्राह्मणों! गौतम जीभी अहल्याको बुलाकर विस्मितहो दुःखी चित्तसे यह बोले ॥३४॥ गौतमजी बोले, हे देवि ! क्या हुआ ! क्यों शिवजी कुपित होगये अब क्या करना चाहिये ? कहाँ जाँय यह गौकी हत्या लगी ॥३५॥

एतस्मिन्नन्तरे दैवाद्गौतमस्तत्र चागतः ॥ स दयालुस्तृणस्तम्बैर्वारयामास तां तदा ॥३१॥ तृणस्तंबेन सा स्पृष्टा पपात पृथिवी तले ॥ मृता च तत्क्षणादेव तद्दृषेः पश्यतस्तदा ॥३२॥ ऋषयश्छन्नरूपास्ते ऋषिपत्न्यस्तथाशुभाः ॥ ऊचुस्तत्र तदा सर्वे किं कृतं गौतमेन च ॥३३॥ गौतमोऽपि तथाहल्यामाहूयासीत्सुविस्मितः ॥ उवाच दुःखतो विप्रा दूयमानेन चेतसा ॥३४॥ गौतम उवाच ॥ किं जातं च कथं देवि कुपितः परमेश्वरः ॥ किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं हत्या च समु पस्थिता ॥ ३५ ॥ सूत उवाच ॥ एत स्मिन्नन्तरे विप्रो गौतमं पर्यभर्त्सयन् ॥ विप्रपत्न्यस्तथाऽहल्यां दुर्वचोभिर्व्यथां ददुः ॥ ३६ ॥ दुर्बुद्धयश्च तच्छिष्यास्सुता स्तेषां तथैव च ॥ गौतमं परिभर्त्स्यैव प्रत्यूचुर्धिग्वचो मुहुः ॥३७॥ ऋषय ऊचुः ॥ मुखं न दर्शनीयं ते गम्यतां गम्यतामिति ॥ दृष्ट्वा गोघ्नमुखं सद्यस्सचैलं स्नानमाचरेत् ॥ ३८ ॥ यावदाश्रममध्ये त्वं तावदेव हविर्भुजः ॥ पितरश्च न गृह्णंति ह्यस्मद्दत्तं हि किञ्चन ॥३९॥ तस्माद्गच्छान्यतस्त्वं च परिवारसमन्वितः ॥ विलम्बं कुरु नैव त्वं धेनुहन्पापकारक ॥ ४० ॥

सूतजी बोले, इसी अवसरमें उन ऋषियोंने गौतमको ललकारा तथा उनकी स्त्रियोंने अहल्याको खोटे वचनोंसे दुःख दिया ॥३६॥ दुष्टात्मा उनके शिष्य तथा ऋषियोंके पुत्रोंने गौतमको ललकारके तथा वारम्वार धिक्कारके यह वचन कहे ॥३७॥ऋषि बोले, तुम्हारा मुख देखना योग्य नहीं है यहांसे चले जाओ, गोहत्या करनेवाले मनुष्यके मुखको देखके तत्क्षण सचैल स्नान करे ॥३८॥ जबतक तुम आश्रमके मध्यमें रहोगे तबतक देवता तथा पितर हमारे दिये हुये बलि तर्पणआदि कुछ नहीं ग्रहण करेंगे॥३९॥हे गोहत्यारूप पापके करने वाले गौतम ! इस कारण तुम परिवारसहित

यहांसे दूसरी जगह चले जाओ देर मत करो ॥ ४० ॥ सूतजी बोले, यह कहके उन सबोंने उनको पाषाणोंसे ताडन किया तथा गौतम और अहल्याको कठोर वचनोंसे दुःख दिया ॥ ४१ ॥ तब उन दुष्टोंसे ताडन किये हुए गौतम मुनि यह बोले कि हे मुनियो ! मैं यहांसे जाता हूं और जगह निवास करूंगा ॥ ४२ ॥ उस समय यह कहके गौतमजी उस स्थानसे निकल गये और उनके कहनेसे जाकर एक कोस दूरपर आश्रय बनाया और वहां रहने लगे ॥ ४३ ॥ जबतक हमें शाप रहेगा तबतक कुछ नहीं करना योग्य है दैविक तथा पितरसम्बन्धी वैदिक कर्ममें कुछ अधिकार नहीं है ॥ ४४ ॥ अर्धमास वहां काटकर फिर उस दुःखसे व्याकुल हुए मुनिश्रेष्ठ गौतमजीने उन मुनियोंसे प्रार्थना की

सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा ते च तं सर्वे पाषाणैस्समताडयन्॥व्यथां ददुरतीवास्मै त्वहल्यां च दुरुक्तिभिः ॥४१॥ ताडितो भर्त्सितो दुष्टैर्गौतमो गिरमब्रवीत्॥इतो गच्छामि मुनयो ह्यन्यत्र निवसाम्यहम्॥४२॥इत्युक्त्वा गौतमस्तस्मात्स्थानाच्च निर्गतस्तदा॥ गत्वा क्रोशं तदा चक्रे ह्याश्रमं तदनुज्ञया॥४३॥यावच्चैवाभिशापो वै तावत्कार्य्यं न किंचन॥ न कर्मण्यधिकारोऽस्ति दैवे पित्र्येऽथ वैदिके ॥४४॥ मासार्द्धं च ततो नीत्वा मुनीन्संप्रार्थयत्तदा॥गौतमो मुनिवर्य्यस्स तेन दुःखेन दुखितः ॥४५॥ गौतम उवाच ॥ अनुकंप्यो भवद्भिश्च कथ्यतां क्रियते मया॥यथा मदीयं पापं च गच्छत्विति निवेद्यताम्॥४६॥ सूत उवाच॥इत्युक्तास्ते तदा विप्रा नोचुश्चैव परस्परम्॥ अत्यंतं सेवया पृष्टा मिलिता ह्येकतस्स्थिताः॥४७॥गौतमो दूरतः स्थित्वा नत्वा तानृषिसत्तमान्॥पप्रच्छ विनयाविष्टः किं कार्यं हि मयाधुना ॥४८॥ इत्युक्ते मुनिना तेन गौतमेन महात्मना ॥ मिलितास्सकलास्ते वै मुनयो वाक्यमब्रुवन् ॥४९॥

॥ ४५ ॥ गौतम बोले, आप मेरे ऊपर कृपा करें और ऐसा उपाय बतावें कि जिस प्रकार मेरा पाप दूर हो उसे मैं पूर्ण करूं ॥ ४६ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहनेपर वे ब्राह्मण आपसमें मिलके कुछ न बोले, फिर उन्होंने इकट्ठे होके मिले हुए उन ऋषियोंसे अत्यन्त सेवासे पूंछा ॥ ४७ ॥ गौतमने दूर स्थित होके उन ऋषियोंको नमस्कार करके विनयके साथ उनसे पूंछा कि अब मुझे क्या करना योग्य है ॥ ४८ ॥ उन महात्मा गौतम मुनिके ऐसा कहनेपर वे सब मुनि मिलकर यह वचन बोले ॥ ४९ ॥

ऋषि बोले, प्रायश्चित्तके बिना कदापि शुद्धि नहीं होती इस कारण तुम देह शुद्धिके अर्थ अवश्य प्रायश्चित्त करो ॥ ५० ॥ अपने पापको प्रकाश करके तीनवार सम्पूर्ण पृथिवीमें परिक्रमा करके फिर यहां आके महीने भरतक व्रत करो ॥ ५१ ॥ और इस ब्रह्माके पर्वतकी एक सौ एकवार परिक्रमा करके तुम्हारी शुद्धि होगी ॥ ५२ ॥ अथवा गंगाजीको तपसे लाकर गंगास्नान करो और कोटि संख्याके पार्थिव लिंगोंको बनाके शिवदेवका पूजन करो ॥ ५३ ॥ पहले एकसौ एक वार उक्त पर्वतकी परिक्रमा करो फिर गंगामें स्नान करके शुद्धि होगी ॥ ५४ ॥ तथा सौ घडोंसे पार्थिव लिंगको स्नान कराके तब निष्कृति (शुद्धि) होगी, इस प्रकार उन ऋषियोंके कहने पर बहुत अच्छा

ऋषय ऊचुः ॥ निष्कृतिं हि विना शुद्धिर्जायते न कदाचन॥तस्मात्त्वं देहशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचर ॥५०॥ त्रिवारं पृथिवीं सर्वां क्रम पापं प्रकाशयन् ॥ पुनरागत्य चात्रैव चर मासव्रतं तथा ॥५१॥ शतमेकोत्तरं चैव ब्रह्मणोऽस्य गिरेस्तथा ॥ प्रक्रमणं विधायैवं शुद्धिस्ते च भविष्यति ॥ ५२ ॥ अथवा त्वं समानीय गंगास्नानं समाचर ॥ पार्थिवानां तथा कोटिं कृत्वा देवं निषेवय ॥ ५३ ॥ गंगायां च ततः स्नात्वा पुनश्चैव भविष्यति ॥ पुरा दश तथा चैकं गिरेस्त्वं क्रमणं कुरु ॥ ५४ ॥ शत कुंभैस्तथा स्नात्वापार्थिवं निष्कृभिर्तवेत् ॥ इति तैर्ऋषिभिः प्रोक्तस्तथेत्योमिति तद्वचः ॥ ५५ ॥ पार्थिवानां तथा पूजां गिरेः प्रक्रमणं तथा ॥ करिष्यामि मुनिश्रेष्ठा आज्ञया श्रीमतामिह ॥ ५६ ॥ इत्युक्त्वा सर्षिवर्यश्च कृत्वा प्रक्रमणं गिरेः ॥ पूजयामास निर्माय पार्थिवान्मुनिसत्तमः ॥ ५७ ॥ अहल्या च ततस्साध्वी तच्च सर्वं चकार सा ॥ शिष्याश्च प्रतिशिष्याश्च चक्रुस्सेवां तयोस्तदा ॥ ५८ ॥ इति श्रीशिवमदापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां गौतमव्यवस्थावर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

यह गौतमने कहा ॥ ५५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! मैं तुम्हारी आज्ञासे पार्थिव पूजाको तथा पर्वतकी परिक्रमाको करूंगा ॥ ५६ ॥ यह कहके उन श्रेष्ठ गौतम ऋषिने पर्वतकी परिक्रमा करके पार्थिव लिंगोंका निर्माण करके पूजन किया ॥ ५७ ॥ फिर उस पतिव्रता अहल्याने वह सब पूजनादि किया, उस समय उनके शिष्य तथा शिष्योंके शिष्य, उन दोनोंकी सेवा करने लगे ॥ ५८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० गौतमव्यवस्थावर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

सूतजी बोले, हे द्विजो ! उस समय स्त्रीके सहित गौतमजीके ऐसा करनेपर प्रसन्न हुए शिवजी अपने गणोंके सहित प्रगट हुये ॥१॥ तब प्रसन्न हुए शिवजीने कहा हे मुने ! वर मांग मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूं इस प्रकार दयाके सागर महादेव बोले ॥ २ ॥ तब वह मुनि महात्मा शम्भुके उस सुन्दर स्वरूपको देखकर भक्तिसे उन्हें प्रणाम करके प्रसन्नहो स्तुति करने लगे॥३॥ स्तुति करके तथा शिवको प्रणाम करके हाथ जोडके स्थित हुये गौतमजी बोले, हे देव ! मुझे पापरहित करो इस प्रकार उन ऋषिने कहा ॥ ४ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार माहत्मा गौतम ऋषिका वचन सुनके बडी प्रसन्नतासे आतुर हुए शिवजी यह वचन बोले ॥५॥ शिवजी बोले; हे मुने ! तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो, तथा सब प्रकार पाप

सूत उवाच ॥ एवं कृतेतु ऋषिणा सस्त्रीकेन द्विजाश्शिवः ॥ आविर्बभूव सशिवः प्रसन्नस्सगणस्तदा ॥१॥ अथ प्रसन्नस्स शिवो वरं ब्रूहि महामुने ॥ प्रसन्नोऽहं सुभक्त्या त इत्युवाच कृपानिधिः ॥२॥ तदा तत्सुंदरं रूपं दृष्ट्वा शंभोर्महात्मनः ॥ प्रणम्य शंकरं भक्त्या स्तुतिं चक्रे मुदान्वितः ॥ ३ ॥ स्तुत्वा बहु प्रणम्येशं बद्धाञ्जलिपुटः स्थितः ॥ निष्पापंकुरु मां देवाब्रवीदिति स गौतमः ॥४॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य गौमतस्य महात्मनः ॥ सुप्रसन्नतरो भूत्वा शिवो वाक्यमुपाददे ॥५॥ शिव उवाच ॥ धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि निष्पापोऽसि सदा मुने ॥ एतैर्दुष्टैः किल त्वं च च्छलितोऽसि खिलात्मभिः ॥६॥ त्वदीयदर्शनाल्लोका निष्पापाश्च भवंति हि ॥ किं पुनस्त्वं सपापोऽसि मद्भक्तिनिरतस्सदा ॥७॥ उपद्रवस्त्वयि मुने यैःकृतस्तु दुरात्मभिः ॥ ते पापाश्च दुराचारा हत्यावंतस्त एव हि ॥८॥ एतेषां दर्शनादन्ये पापिष्ठाः संभवंतु च ॥ कृतघ्नाश्च तथा जाता नैतेषां निष्कृतिः क्वचित् ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ता शंकरस्तस्मै तेषां दुश्चरितं तदा ॥ बहूवाच प्रभुर्विप्राः सत्कदोऽसत्सु दंडदः ॥ १० ॥

रहित हो, इन दुष्टात्मा पापी ऋषियोंने तुम्हारे साथ कपट किया है ॥६॥ तुम्हारे दर्शनसे लोग निष्पाप होते हैं फिर सदा मेरी भक्तिमें तत्पर हुए तुम कैसे पापी हो सकते हो ? ॥७॥ हे मुने ! जिस दुष्टात्माओंने तुम्हारे साथ उपद्रव किया है वेही पापी हैं तथा दुराचारी हैं वेही हत्यावाले हैं ॥८॥ उनके देखनेसे और लोग पापी तथा कृतघ्न हुए हैं उनका कहीं प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, हे विप्रो ! उस समय प्रभु सत्पुरुषोंको तारनेवाले दुर्जनोंको दंड देनेवाले शिवजीने उन गौतमजीसे उन कपटमुनियोंके बहुत दुश्चरित्र कहे ॥ १० ॥ वह गौतममुनि शिवजीके वचनको

सुनके विस्मित हो हाथ जोडकर भक्तिसे शिवजीको प्रणाम करके फिर बोले ॥११॥ गौतमजी बोले हे महेश्वर ! उन ऋषियोंने मेरा बहुत उपकार किया, यदि ऐसा वे न करते तो अपका दर्शन कैसे होता ॥ १२ ॥ वे ऋषि जिन्होंने मेरा अतिकल्याण किया उन्हींके दुःस्वभाव (कर्म) से मेरा बडा स्वार्थ हुआ ॥ १३ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उनका वचन सुन शिवजी अतिप्रसन्न होके शीघ्र गौतमको कृपादृष्टिसे देखकर यह बोले ॥ १४ ॥ शिवजी बोले, हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ऋषे ! तुम धन्यहो तथा ऋषियोंमें श्रेष्ठहो मुझे प्रसन्न जानकर उत्तम वर मांगो ॥ १५ ॥ सूतजी

शर्वोक्तमिति स श्रुत्वा सुविस्मितमना ऋषिः ॥ सुप्रणम्य शिवं भक्त्या सांजलिः पुनरब्रवीत् ॥ ११ ॥ गौतम उवाच ॥ ऋषिभिस्तैर्महेशान ह्युपकारः कृतो महान् ॥ यद्येवं न कृतं तैस्तु दर्शनं ते कुतो भवेत् ॥ १२ ॥ धन्यास्ते ऋषयो यैस्तु मह्यं शुभतरं कृतम् ॥ तद्दुराचरणादेव मम स्वार्थो महानभूत् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं तद्वचश्श्रुत्वा सुप्रसन्नो महेश्वरः ॥ गौतमं प्रत्युवाचाशु कृपादृष्ट्या विलोक्य च ॥ १४ ॥ शिव उवाच ॥ ऋषिधन्योसि विप्रेंद्र ऋषे श्रेष्ठतरोऽसि वै ॥ ज्ञात्वा मां सुप्रसन्नं हि वृणु त्वं वरमुत्तमम् ॥ १५ ॥ सूत उवाच ॥ गौतमोऽपि विचार्य्यैवं लोके विश्रुतमित्युत ॥ अन्यथा न भवेदेव तस्मादुक्तं समाचरेत् ॥ १६ ॥ निश्चित्यैवं मुनिश्रेष्ठो गौतमश्शिवभक्तिमान् ॥ सांजलिर्नतशीर्षो हि शंकरं वाक्यम ब्रवीत् ॥ १७ ॥ गौतम उवाच ॥ सत्यं नाथ ब्रवीषि त्वं तथापि पंचभिः कृतम् ॥ नान्यथा भवतीत्यत्र यज्जातं जायतां तु तत् ॥ १८ ॥ यदि प्रसन्नो देवेश गंगा च दीयतां मम ॥ कुरु लोकोपकारं हि नमस्तेऽस्तु नमोऽस्तु ते ॥ १९ ॥

बोले, गौतम मुनिने अपने चित्तमें यह विचारा कि--संसारमें ऐसा मेरा पाप प्रसिद्ध होगया है वह दूर नहीं हो सकता है इस कारण जो मैंने सबोंके सामने कहा है उसे पूर्ण करना चाहिये ॥ १६ ॥ शिवकी भक्ति करनेवाले मुनिश्रेष्ठ गौतमजी ऐसा मनमें निश्चय करके हाथ जोड माथेको झुकायके शिवजीसे यह वचन बोले ॥ १७ ॥ गौतमजी बोले, हे स्वामी ! आप सत्य कहते हैं तो भी जो पंचोंने कर दिया वह वैसाही होता है अन्यथा नहीं होता, अब जो कुछ होगया है सो होजाने दो ॥ १८ ॥ हे देव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे गंगाजी दो और

संसारका उपकार करो आपको नमस्कार है, नमस्कार है ॥ १९ ॥ सूतजी बोले, ऐसा वचन कहके उनके चरण कमलोंको पकडके गौतम जीने संसारके उपकारकी इच्छासे देवोंके स्वामी शिवको प्रणाम किया ॥ २० ॥ तब उन शंकर देवने जो पृथिवी तथा स्वर्गलोकके सारको निकालके पहले रखा था ॥ २१ ॥ तथा विवाहमें जो ब्रह्माजीने दिया था वह जो कुछ शेष गंगाजल बचा था सो सब भक्तवत्सल शिवजीने उस मुनिको प्रदान किया ॥ २२ ॥ उस समय वहां गंगाजल परम सुन्दर स्त्रीके स्वरूपमें प्रगट हुआ तो श्रेष्ठ ऋषि गौतमने उनकी स्तुति करके प्रणाम किया ॥ २३ ॥ गौतम बोले, हे गंगे ! तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो, तुमने सब लोकोंको पवित्र किया है नरकमें

सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा वचनंतस्य धृत्वा वै पादपंकजम् ॥ नमश्चकार देवेशं गौतमो लोककाम्यया ॥ २० ॥ ततस्तु शंकरो देवः पृथिव्याश्च दिवश्च सः ॥ सारं चैव समुद्धृत्य रक्षितं पूर्वमेव तत् ॥ २१ ॥ विवाहे ब्रह्मणा दत्तमवशिष्टं च किंचन ॥ तत्तस्मै दत्तवाञ्च्छभुर्मुनये भक्तवत्सलः ॥ २२ ॥ गंगाजलं तदा तत्र स्त्रीरूपमभवत्परम् ॥ तस्याश्चैव ऋषिश्रेष्ठः स्तुतिं कृत्वा नतिं व्यधात् ॥ ॥ २३ ॥ गौतम उवाच ॥ धन्यासि कृतकृत्यासि पावितं भुवनं त्वया ॥ मां च पावय गंगे त्वं पततं निरये ध्रुवम् ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ शंभुश्चापि तदोवाच सर्वेषां हितकृच्छृणु ॥ गंगे गौतममेनं त्वं पावयस्व मदाज्ञया ॥ २५ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य शंभोश्च गौतमस्य च ॥ उवाचैव शिवं गंगा शिवभक्तिर्हि पावनी ॥२६॥ गंगोवाच ॥ ऋषिं तु पावयित्वाहं परिवारयुतं प्रभो ॥ गमिष्यामि निजस्थानं वचस्सत्यं ब्रवीमि ह ॥ २७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तोगंगया तत्र महेशो भक्तवत्सलः ॥ लोकोपकरणार्थाय पुनर्गंगां वचोऽब्रवीत् ॥ २८ ॥

गिरे हुये मुझे भी निश्चय पवित्र करो ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, उस समय सबोंके हितकारी शिवजी बोले, हे गंगे ! सुनो तुम मेरी आज्ञासे इन गौतम मुनिको पवित्र करो ॥ २५ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उन गौतम तथा शिवजीका वचन सुनके पवित्र करनेवाली शिव भक्तिसहित गंगाजी शिवजीसे यह वचन बोलीं ॥ २६ ॥ गंगाजी बोलीं, हे स्वामिन् ! मैं परिवार (कुटुम्ब) सहित गौतम मुनिको पवित्र करके अपने स्थानको चली जाऊंगी यह सत्य २ वचन कहती हूं ॥ २७ ॥ सूतजी बोले, ऐसा गंगाजीका वचन सुनके भक्तवत्सल शिवजी

लोकोंके उपकारके निमित्त फिर गंगाजीसे बोले ॥ २८ ॥ शिवजी बोले हे देवि ! जबतक कलियुग रहे और अट्ठाइसवां वैवस्वतनामक मनु हो तबतक तुम यहां निवास करो ॥ २९ ॥ सूतजी बोले, स्वामी शंकरका ऐसा वचन सुनके लोकोंके पवित्र करनेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजी फिर बोलीं, ॥ ३० ॥ गंगाजी बोलीं, हे स्वामिन् ! हे महेश्वर ! यदि मेरा माहात्म्य सबोंसे अधिक होगा, हे त्रिपुरान्तक ! तो मैं पृथिवीमें निवास करूंगी ॥ ३१ ॥ हे प्रभो ! हे स्वामिन् ! और भी सुनो मेरे समीपमें अपने गणोंके सहित तथा पार्वतीके समेत आप सुन्दर शरीरसे स्थित हों ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उनका वचन सुनकर भक्तवत्सल शिवजी संसारके उपकार करनेके निमित्त

शिव उवाच॥त्वया स्थातव्यमत्रैव व्रजेद्यावत्कलिर्युगः ॥ वैवस्वतो मनुर्देवि ह्यष्टाविंशत्तमो भवेत्॥२९॥सूत उवाच॥इति श्रुत्वा वचस्तस्य स्वामिनश्शंकरस्य तत् ॥ प्रत्युवाच पुनर्गंगा पावनी सा सरिद्वरा ॥३०॥ गंगोवाच ॥ माहात्म्यमधिकं चेत्स्यान्मम स्वामिन्महेश्वर ॥ सर्वेभ्यश्च तदा स्थास्ये धरायां त्रिपुरान्तकः ॥३१॥ किंचान्यच्च शृणुस्वामिन्वपुषा सुन्दरेण ह॥तिष्ठ त्वं मत्समीपे वै सगणसांबिकःप्रभो॥३२॥सूत उवाच ॥ एवं तस्या वचः श्रुत्वा शंकरो भक्तवत्सलः॥लोकोपकरणार्थाय पुनर्गंगां वचोब्रवीत् ॥३३॥ शिव उवाच ॥ धन्यासि श्रूयतां गंगे ह्यहं भिन्नस्त्वया न हि ॥तथापि स्थीयते ह्यत्र स्थीयतां च त्वयापि हि ॥३४॥ सूत उवाच॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा स्वामिनः परमेशितुः ॥ प्रसन्नमानसा भूत्वा गंगा च प्रत्यपूजयत्॥३५॥एतस्मिन्नंतरे देवा ऋषयश्च पुरातनाः ॥सुतार्थान्यप्यनेकानि क्षेत्राणि विविधानि च ॥३६॥ आगत्य गौतमं सर्वे गंगां च गिरिशं तथा ॥ जयजयेति भाषंतः पूजयामासुरादरात् ॥३७॥ ततस्ते निर्जरासर्वे तेषां चक्रुः स्तुतिं मुदा॥करान् बद्ध्वानतस्कंधा हरिब्रह्मादयस्तदा ॥३८॥

फिर गंगाजीसे बोले ॥ ३३ ॥ शिवजी बोले, हे गंगे ! तुम धन्य हो मैं तुमसे भिन्न नहीं हूं तथापि मैं यहां तुम्हारे साथ स्थिति करूंगा ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले, स्वामी शिवजीका ऐसा वचन सुनके प्रसन्न मनवाली गंगाजीने उनको पूजा ॥ ३५ ॥ इसी अन्तरमें देवता, पूर्वजऋषि, पुरानेतीर्थ, अनेकक्षेत्र आदि सब रूप धारकर वहां आये ॥३६॥ वहां आके सबोंने गौतम तथा गंगाजी तथा शिवजीकी जयहो जयहो इसप्रकार कहकहकर उन सबोंकी आदरसे पूजा की ॥ ३७ ॥ तब उन संपूर्ण देवताओंने प्रसन्नतासे उन तीनोंकी स्तुति की,

तब ब्रह्मा विष्णु आदि देवता हाथजोड अपने कंधेझुकाय पूजनेलगे ॥ ३८ ॥ उस समय उन देवताओंसे प्रसन्नहुई गंगाजी तथा शिवजी यह बोले, हे देवोंमें श्रेष्ठो ! तुम वर मांगो प्रियकामनासे हम सब कुछ देंगे ॥ ३९ ॥ देवता बोले, हे देवोंके स्वामी ! हे शिवजी ! हे गंगे यदि तुम दोनों प्रसन्नहो तो हमारे कल्याणके अर्थ तथा मनुष्योंके उपकारके निमित्त कृपा करके यहां निवास करो ॥ ४० ॥ गंगाजी बोलीं, तुम सब संसारके उपकारके निमित्त यहां क्यों नहीं निवास करते मैं गौतम मुनिको पवित्र करके अपने स्थानको चली जाऊंगी ॥ ४१ ॥ हे देवताओ ! जिस प्रकार तुम सबोंमें मेरा विशेष मान होवे, सब अधिक जानें, उस प्रकार यदि प्रमाण करो तो मैं निःसन्देह यहां निवास

गंगा प्रसन्ना तेभ्यश्च गिरिशश्चोचतुस्तदा ॥ वरं ब्रूत सुरश्रेष्ठा दद्वो वः प्रियकाम्यया॥३९॥देवा ऊचुः॥यदि प्रसन्नो देवेश प्रसन्ना त्वं सरिद्वरे ॥ स्थातव्यमत्र कृपया नः प्रियार्थं तथा नृणाम् ॥४०॥ ॥ गंगोवाच ॥ यूयं सर्वप्रियार्थं च तिष्ठथात्र न किं पुनः ॥ गौतमं क्षालयित्वाहं गमिष्यामि यथागतम्॥४१॥भवत्सु मे विशेषोत्र ज्ञेयश्चैव कथं सुराः॥तत्प्रमाणं कृतं चेत्स्यात्तदा तिष्ठाम्यसंशयम् ॥४२॥ ॥ सर्वे ऊचुः ॥ सिंहराशौ यदा स्याद्वै गुरुस्सर्वसुहृत्तमः॥ तदा वयं च सर्वे त्वागमिष्यामो न संशयः ॥ ४३ ॥ एकादश च वर्षाणि लोकानां पातकं त्विह॥क्षालितं यद्भवेदेवं मलिनास्स्मः सरिद्वरे ॥४४॥ तस्यैव क्षालनाय त्वायास्यामस्सर्वथा प्रिये॥त्वत्सकाशं महादेवि प्रोच्यते सत्यमादरात्॥४५॥अनुग्रहाय लोकानामस्माकं प्रियकाम्यया॥ स्थातव्यं शंकरेणापि त्वया चैव सरिद्वरे ॥ ४६ ॥ यावत्सिंहे गुरुश्चैव स्थास्यामस्तावदेव हि ॥ त्वयि स्नानं त्रिकालं च शंकरस्य च दर्शनम् ॥४७॥

करूंगी ॥ ४२ ॥ सब देवता बोले, जब जब सबोंकी सहायता करनेवाले बृहस्पति सिंहराशिमें स्थित होंगे तबतक (सिंहकी बृहस्पतिमें) हम सब यहां आवेंगे इसमें कुछ संशय नहीं ॥४३॥ हे गंगाजी ! जब ग्यारहवर्षतक संपूर्ण संसारका पाप धुलनेसे हम मलिन होंगे ॥ ४४ ॥ हे प्रिय गंगे ! हे महादेवि ! उस पापके सब प्रकार विनाश करनेके निमित्त आदरसे तुम्हारे समीप सब आवेंगे यह सत्य जानो ॥ ४५ ॥ हे गंगाजी ! संसारके ऊपर दया करनेके कारण तथा हमारी भलाई करनेके निमित्त तुमको तथा शिवजीको यहां निवास करना उचित है ॥४६॥ जबतक, बृहस्पति सिंहराशिपर रहेंगे तबतक हम यहां निवास करेंगे, तीनों [illegible]यमें स्नान करेंगे और शिवजीका दर्शन करेंगे ॥ ४७ ॥

हम सब स्नानादि करके निःसन्देह अपने संपूर्ण पापोंको छुड़ावेंगे फिर तुम्हारी आज्ञासे अपने २ स्थानोंको चले जांयगे ॥ ४८ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उन देवताओंसे तथा महर्षि गौतमसे प्रार्थना करनेपर यह शिवजी तथा गंगाजी वहां स्थित हुये ॥ ४९ ॥ वह गंगाजी गौतमी नामसे प्रसिद्ध हुई, और वह लिङ्ग त्र्यम्बक नामसे विख्यात हुआ उसके सेवन करनेसे महापाप नाश होजाते हैं ॥ ५० ॥ उस दिनसे लेकर सिंहकी बृहस्पतिमें संपूर्ण देवता तथा तीर्थ वहां आते हैं ॥ ५१ ॥ उन गौतमजीके तटपर पुष्कर आदि सरोवर तथा गंगा आदि नदियां वासुदेव आदि अनेक देवता निवास करते हैं ॥ ५२ ॥ जबतक पूर्वोक्त देवता आदि गौतम गंगाजीके समीप स्थित रहते हैं तबतक उनको

कृत्वा स्वपापं निखिलं विमोक्ष्यामो न संशयः ॥ स्वदेशांश्च गमिष्यामो भवच्छासनतो वयम् ॥४८॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं प्रार्थितस्तैस्तु गौतमेन महर्षिणा ॥ स्थितोऽसौ शंकरः प्रीत्या स्थिता सा च सरिद्वरा॥४९॥सा गंगा गौतमी नाम्ना लिंगं त्र्यंबकमीरितम् ॥ ख्याता ख्यातं बभूवाथ महापातकनाशनम्॥५०॥तद्दिनं हि समारभ्य सिंहस्थे च बृहस्पतौ॥आयांति सर्वतीर्थानि क्षेत्राणि दैवतानि च ॥ ५१ ॥ सरांसि पुष्करादीनि गंगाद्यास्सरितस्तथा ॥ वासुदेवादयो देवाः संति वै गोतमीतटे ॥ ५२ ॥ यावत्तत्र स्थितानीह तावत्तेषां फलं न हि॥स्वप्रदेशे समायातास्तद्भवंतेषां फलं भवेत्॥५३॥ज्योतिर्लिंगमिदं प्रोक्तं त्र्यंबकं नाम विश्रुतम्॥ स्थितं तटे हि गौतम्या महापातकनाशनम् ॥ ५४ ॥ यः पश्येद्भक्तितो ज्योतिर्लिंगं त्र्यंबकनामकम् ॥ पूजयेत्प्रणमेत्स्तुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५५ ॥ ज्योतिर्लिंगं त्र्यंबकं हि पूजितं गौतमेन ह ॥ सर्वकामप्रदं चात्र परत्र परमुक्तिदम् ॥ ५६ ॥

फल नहीं मिलता, जब अपने २ स्थलमें आते हैं तो फल मिलता है ॥५३॥ यह त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिंग विख्यात है, गौतमी गंगाजीके किनारेपर स्थित है और संपूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य त्र्यम्बक नामवाले ज्योतिर्लिंगका भक्तिसे दर्शन करता है, स्तुति करके प्रणाम करता है, उनकी पूजा करता है, वह संपूर्ण पापोंसे छूट जाता है ॥ ५५ ॥गौतम मुनिने इन ज्योतिर्लिङ्गकी पूजा की है यह इस लोकमें सब कामनाके सिद्ध करनेवाले हैं परलोकमें मुक्तिके देनेवाले हैं ॥ ५६ ॥

हे मुनीश्वरो ! जो तुमने पूंछा सो सब मैंने तुमसे कह सुनाया अब क्या और कुछ सुनना चाहते हो ? उसको हम कहेंगे इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ५७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० त्र्यम्बकेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ऋषि बोले, हे स्वामिन् ! गंगाजी कहांसे जलरूप होकर निकलीं, हे प्रभो ! उनका माहात्म्य कहांसे विशेष हुआ सो सब आप कहें ॥ १ ॥ हे व्यास गुरुवाले सूतजी ! जिन दुष्टात्माओंने गौतम मुनिको दुःख दिया उनको क्या फल मिला सो सब कहो ? ॥ २ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! उस समय गौतमजीसे इस प्रकार प्रार्थना की हुई गंगाजी स्वयं उस ब्रह्मगिरिसे शीघ्र निकलीं ॥ ३ ॥ गूलरकी शाखासे उनका

इति वश्च समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं मुनीश्वराः ॥ किमन्यदिच्छथ श्रोतुं तद् ब्रूयां वो न संशयः ॥५७॥ इति श्री शिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां त्र्यंबकेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥ ऋषय ऊचुः ॥ गंगा च जलरूपेण कुतो जाता वद प्रभो॥तन्माहात्म्यं विशेषेण कुतो जात वद प्रभो ॥१॥ यैर्विप्रैर्गौतमायेव दुःखं दत्तं दुरात्मभिः॥तेषां किं च ततो जात मुच्यतां व्याससद्गुरो ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ एवं संप्रार्थिता गंगा गौतमेन तदा स्वयम् ॥ ब्रह्मणश्च गिरेर्विप्रा द्रुतं तस्मादवात रत् ॥ ३ ॥ औदुंबरस्य शाखायास्तत्प्रवाहो विनिस्सृतः ॥ तत्र स्नानं मुदा चक्रे गौतमो विश्रुतो मुनिः ॥ ४ ॥ गौतमस्य च ये शिष्या अन्ये चैव महर्षयः ॥ समागताश्च ते तत्र स्नानं चक्रुर्मुदान्विताः ॥५॥ गंगाद्वारं च तन्नाम प्रसिद्धमभवत्तदा ॥ सर्वपापहरं रम्यं दर्शनान्मुनिसत्तमः ॥ ६ ॥ गौतमस्पर्द्धिनस्ते च ऋषयस्तत्र चागताः ॥ स्नानार्थं तांश्च सा दृष्ट्वा ह्यंतर्धानं गता द्रुतम् ॥ ७ ॥ मामेति गौतमस्तत्र व्याजहार वचो द्रुतम् ॥ मुहुर्मुहुः स्तुवन् गंगां सांजलिर्नतमस्तकः ॥ ८ ॥

प्रवाह निकला वहां प्रसिद्ध हुए गौतम मुनिने आनंदसे स्नान किया ॥ ४ ॥ गौतम ऋषिके शिष्योंने तथा और मुनियोंने वहां आकर प्रसन्नतासे स्नान किया ॥५॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! उस समय उसका नाम गंगाद्वार प्रसिद्ध हुआ वह रमणीय क्षेत्र दर्शन करनेसे सम्पूर्ण पापोंको हरण करता है ॥ ६ ॥ गौतमजीके साथ द्वेष करनेवाले वे ऋषि भी स्नान करनेको वहां आये उनको देखकर गंगाजी शीघ्र ही अन्तर्धान होगई ॥ ७ ॥ तब वहां गौतमने हाथ जोड माथा नम्र करके वारम्वार गंगाजीकी स्तुति कर ऐसा मत करो, मत करो, इस प्रकार

शीघ्रतासे कहा ॥ ८ ॥ गौतमजी बोले, यह मुनि अभिमान और मदमें अन्धे हुए साधु हैं अथवा असाधु हैं, परन्तु इस (मेरे) पुण्यके प्रभावसे तुम इनको दर्शन दो ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, हे ऋषिश्रेष्ठो ! उस समय आकाश मंडलसे गंगाजीकी यह वाणी हुई सो गंगाजीके उत्तम वचनको श्रवण करो ॥ १० ॥ यह ऋषि अति दुष्ट हैं, कृतघ्नी हैं, स्वामीके द्रोह करनेवाले हैं, धूर्त हैं, पाखंडी हैं, यह सदा दर्शनके भी अयोग्य हैं ॥ ११ ॥ गौतमजी बोले, हे माता ! सुनो यह तो बडोंकी वाणी है इस कारण तुमको भगवान् शिवजीका सत्य वचन पालन करना उचित है ॥ १२ ॥ जो मनुष्य अपकार करनेवालोंमें उपकार करता है मैं उससे पवित्र होता हूं ऐसा भगवान्का वचन है ॥ १३ ॥

गौतम उवाच॥इमे च श्रीमदांधाश्च साधवो वाप्यसाधवः॥ एतत्पुण्यप्रभावेण दर्शनं दीयतां त्वया॥९॥सूत उवाच॥ ततो वाणी समुत्पन्ना गंगाया व्योममंडलात्॥ तच्छृणुध्वमृषिश्रेष्ठा गंगावचनमुत्तमम्॥१०॥एते दुष्टतमाश्चैव कृतघ्नाः स्वामिद्रोहिणः॥जाल्माः पाखंडिनश्चैव द्रष्टुं वर्ज्याश्च सर्वदा॥११॥गौतम उवाच ॥ मातश्च श्रूयतामेतन्महतां गिर एव च॥तस्मात्त्वया च कर्त्तव्यं सत्यं च भगवद्वचः ॥१२॥ अपकारिषु योलोक उपकारं करोति वै॥तेन पूतो भवाम्यत्र भगवद्वचनं त्विदम्॥१३॥सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं गौतमस्य महात्मनः ॥पुनर्वाणी समुत्पन्ना गंगाया व्योममंडलात्॥१४॥कथ्यते हि त्वया सत्यं गौतमर्षे शिवं वचः ॥ तथापि संग्रहार्थं च प्रायश्चित्तं चरंतु वै॥१५॥शतमेकोत्तरं चात्र कार्य्यं प्रक्रमणं गिरेः ॥ भवच्छासनतस्त्वेतैस्त्वदधीनैर्विशेषतः ॥ १६ ॥ ततश्चैवाधिकारश्च जायते दुष्टकारिणाम्॥ मद्दर्शने विशेषेण सत्यमुक्तं मया मुने॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्याश्चक्रुर्वै ते तथाऽखिलाः ॥ संप्रार्थ्य गौतमं दीनाः क्षंतव्यो नोऽपराधकः ॥ १८ ॥

सूतजी बोले, महात्मा गौतमजीका ऐसा वचन सुनकर फिर भी आकाश मण्डलसे गंगाजीकी वाणी निकली ॥ १४ ॥ हे गौतम मुने ! तुम सत्य ही कल्याणकारी वचन कहते हो सो भी ये अपने पापोंको दूर करनेके निमित्त प्रायश्चित्त करें ॥ १५ ॥ तुम्हारी आज्ञासे तथाविशेषकर तुम्हारे आधीन होके इन सबोंको एक सौ एकबार पार्वतीकी परिक्रमा करनी चाहिये ॥ १६ ॥ हे मुने ! तब इन दुष्टात्माओंको मेरे दर्शन करनेका विशेष अधिकार होगा, यह मैंने सत्य सत्य कहा ॥१७॥ सूतजी बोले, ऐसा गंगाजीका वचन सुनके उन सब मुनियोंने दीन हो गौतमजीकी

प्रार्थना की और कहा कि हमारा अपराध क्षमा करो ॥ १८ ॥ उनकी आज्ञासे उन्होंने उसी प्रकार किया तब गौतम मुनिने गंगाद्वारसे नीचेके स्थानका कुशावर्त्तनाम प्रसिद्ध किया ॥ १९ ॥ फिर उन गौतमजीकी प्रसन्नताके कारण वह गंगाजी वहांसे प्रगट हुई तब वह श्रेष्ठ तीर्थ कुशावर्त्तनामसे विख्यात हुआ ॥ २० ॥ जो मनुष्य वहां स्नान करता है वह संपूर्ण पापोंको दूर करके दुर्लभ विज्ञानको प्राप्त हो मोक्षका अधिकारी होता है ॥ २१ ॥ जो पहले कृतघ्नी थे वे ऋषि जब गौतमजीसे आपसमें मिले तब बडे लज्जित हुए ॥ २२ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी हमने और प्रकार सुना है सो वर्णन करते हैं कि क्रोधित हुए गौतमजीने उन ऋषियोंको शाप दिया था ऐसा जानो ॥ २३ ॥ सूतजी

एवं कृते तदा तेन गौतमेन तदाज्ञया ॥ कुशावर्तं नाम चक्रे गङ्गाद्वारादधोगतम् ॥१९॥ ततः प्रादुरभूत्तत्र सा तस्य प्रीतये पुनः ॥ कुशावर्त्तं च विख्यातं तीर्थमासीत्तदुत्तमम् ॥२०॥ तत्र स्नातो नरो यस्तु मोक्षाय परिकल्पते ॥ त्यक्त्वा सर्वानघान्सद्यो विज्ञानं प्राप्य दुर्लभम् ॥ २१ ॥ गौतमो ऋषयश्चान्ये मिलिताश्च परस्परम् ॥ लज्जितास्ते तदा ये च कृतघ्ना ह्यभवन्पुरा ॥ २२ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अस्माभिरन्यथा सूत श्रुतं तद्वर्णयामहे॥गौतमस्तान्द्विजान् क्रुद्धश्शशापेति प्रबुध्यताम् ॥ २३ ॥ सूत उवाच ॥ द्विजास्तदपि सत्यं वै कल्पभेदसमाश्रयात् ॥ वर्णयामि विशेषेण तांकथामपि सुव्रता ॥ २४ ॥ गौतमोपि ऋषीन्दृष्ट्वा तदा दुर्भिक्षपीडितान् ॥ तपश्चकार सुमहद्वरुणस्य महात्मनः ॥ २५ ॥ अक्षय्यं कल्पयामास जलं वरुणमायया ॥ ततो व्रीहीन् यवांश्चैव वापयामास भूरिशः ॥ २६ ॥ एवं परोपकारी स गौतमो मुनिसत्तमाः ॥ आहारं कल्पयामास तेभ्यः स्वतपसो बलात् ॥ २७ ॥ कदाचित्तत्स्त्रियो दुष्टा जलार्थमपमानिताः ऊचुः पतिभ्यस्ताः क्रुद्धा गौतमेर्ष्याकरं वचः ॥ २८ ॥

बोले, हे ब्राह्मणो ! हे शोभनव्रतवाले ! वहभी कल्पभेदके आश्रयसे सत्य है मैं उस कथाको भी विशेषकरके वर्णन करता हूं ॥ २४ ॥ गौतमने उन ऋषियोंको अकालसे पीडित हुआ देखकर महात्मा वरुणका परमतप किया ॥ २५ ॥ तब उन्होंने वरुणकी दयासे अविनाशी जलको प्राप्त किया और वह, अधिक जो तथा धान्योंको बुवाया ॥ २६ ॥ हे श्रेष्ठ मुनियो ! इस प्रकार उन परोपकारी गौतमने अपने तपोबलसे उन बोये हुए धान्योंसे उन ऋषियोंके निमित्त भोजनकी कल्पना की॥२७॥किसी समय ऋषियोंकी स्त्रियां जल लेनेके निमित्त

गई वह वहांसे तिरस्कारको प्राप्त हुई तब वह दुष्ट स्त्रियां क्रोधितहोके अपने अपने पतियोंसे गौतमके ईर्ष्याकारी वचन बोलीं ॥ २८ ॥ तब कुटिल आशयवाले तथा विपरीत बुद्धिवाले ब्राह्मणोंने कृत्रिम गायको बनाकर उसे गौतमके धान्योंमें छोड दिया ॥ २९ ॥ तब गौतमजीने गायको अपने धान्योंके भक्षण करनेमें प्रवृत्त देखके शनैःशनैः उसको निवारण करते हुए तृणसे ताडन किया ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो! वह गौ तृणके स्पर्शमात्रसेही भूमिपर गिर गई और भावी कर्मके वशसे उसी समय मर गई ॥ ३१ ॥ तब उन कपटबुद्धि ऋषियोंने वहांके निवासी ऋषियोंके साथ इकट्ठे होकर यह प्रसिद्ध किया कि गौतमने गौ मारडाली ॥ ३२ ॥ तब गौतम भयभीत हुये शोक है गौ मरगई !

ततस्ते भिन्नमतयो गां कृत्वा कृत्रिमां द्विजाः ॥ तद्धान्यभक्षणासक्तां चक्रुस्तां कुटिलाशयाः ॥ २९ ॥ स्वधान्यभक्षणासक्तां गां दृष्ट्वा गौतमस्तदा ॥ तृणेन ताडयामास शनैस्तां संनिवारयन्॥३०॥तृणसंस्पर्शमात्रेण सा भूमौ पतिता च गौः ॥ मृता ह्यभूत्क्षणं विप्रा भाविकर्मवशात्तदा ॥ ३१ ॥ गौर्हता गौतमेनेति तदा ते कुटिलाशयाः ॥ एकत्रीभूय तत्रत्यैः सकला ऋषयोऽवदन् ॥३२॥ ततस्स गौतमो भीतो गौर्हतेति बभूव ह ॥ चकार विस्मयं नार्यहल्याशिष्यैश्शिवानुगः ॥ ३३ ॥ ततस्स गौतमो ज्ञात्वा तां गां क्रोधसमाकुलः ॥ शशाप तानृषीन सर्वान् गौतमो मुनिसत्तमः ॥ ३४ ॥ गौतम उवाच ॥ यूयं सर्वे दुरात्मानो दुःखदा मे विशेषतः ॥ शिवभक्त स्य सततं स्युर्वेदविमुखास्सदा ॥ ३५ ॥ अद्यप्रभृति वेदोक्ते सत्कर्मणि विशेषतः ॥ मा भूयाद्भवतां श्रद्धा शैवमार्गे विमुक्तिदे ॥३६॥ अद्यप्रभृति दुर्मार्गे तत्र श्रद्धा भवेत्तु वः॥मोक्षमार्गविहीने हि सदा श्रुतिबहिर्मुखे ॥ ३७ ॥

इस प्रकार विस्मय करने लगे और उन शैव गौतमने अपनी स्त्री अहल्या तथा शिष्योंके सहित अति आश्चर्य किया ॥ ३३ ॥ पीछे गौतमने उस कपटकी गायको जानकर क्रोध किया और उन मुनिश्रेष्ठने उन संपूर्ण ऋषियोंको शाप दिया ॥ ३४ ॥ गौतमजी बोले, तुम सब वेदसे विमुख हो दुष्टआत्मावाले हो जो तुमने निरंतर शिवके भक्त मुझे विशेषकर दुःख दिया ॥ ३५ ॥ आजसे लेके तुम्हारी वैदिककर्ममें तथा विशेषकर मुक्तिके देनेवाले शैव मार्गमें श्रद्धाभक्ति न होगी ॥ ३६ ॥ आजसे लेकर तुम्हारी खोटे मार्गमें श्रद्धा

होगी और मोक्ष मार्गसे रहित वेदोक्तधर्मसे विमुख पथमें रुचि होगी ॥ ३७ ॥ अबसे आगे तुम सबोंके मस्तक मृत्तिकासे लिप्त होंगे, हे ब्राह्मणो ! तुम माथेपर मृत्तिकाके लेपन करनेसे नरकमें पडोगे ॥ ३८ ॥ और तुम सब एक शिव देवताके उपासक न होगे, उन अद्वितीय शिवको औरोंके समान मानोगे ॥ ३९ ॥ तुम्हारी शिवकी पूजाआदि कर्ममें प्रीति न होगी तथा शिवकी निष्ठावाले भक्तोंमें शिवके पर्वोंमें भक्ति न रहेगी ॥ ४० ॥ आज मैंने जितने दुःखदायक शाप दिये हैं वे सर्वदा तुम्हारी संतानको प्राप्त होंगे ॥ ४१ ॥ हे ब्राह्मणो ! तुम्हारे पुत्र पौत्र आदि सब शिवकी भक्तिसे विमुख होंगे तुम सब अपने पुत्रोंके समेत निश्चयही नरकमें रहोगे ॥ ४२ ॥ तुम सदैवही चांडाल

अद्यप्रभृति भालानि मृच्छिन्नानि भवन्तु वः ॥ स्रंसध्वं नरके यूयं भालमृल्लेपनाद्विजाः ॥ ३८ ॥ भवंतो मा भविष्यंतु शिवैक परदैवताः ॥ अन्यदेवसमत्वेन जानंतु शिवमद्वयम् ॥ ३९ ॥ मा भूयाद्भवतां प्रीतिश्शिवपूजादिकर्मणि ॥ शिवनिष्ठेषु भक्तेषु शिवपर्वसु सर्वदा ॥ ४० ॥ अद्य दत्ता मया शापा यावंतो दुःखदायकाः ॥ तावंतस्संतु भवतां संततावपि सर्वदा ॥ ४१ ॥ अशैवास्संतु भवतां पुत्रपौत्रादयो द्विजाः ॥ पुत्रैस्सहैव तिष्ठंतु भवंतो नरके ध्रुवम् ॥ ४२ ॥ ततो भवंतु चण्डाला दुःखदारिद्र्यपीडिताः ॥ शठा निन्दाकरास्सर्वे तप्तमुद्रांकितास्सदा ॥ ४३ ॥ सूत उवाच ॥ इति शप्त्वा मुनीन् सर्वान् गौतमस्स्वाश्रमंययौ ॥ शिवभक्तिं चकारातिस बभूव सुपावनः ॥ ४४ ॥ ततस्तैः खिन्नहृदया ऋषयस्ते खिला द्विजाः ॥ कांच्यां चक्रुर्निवासं हि शैवधर्मबहिष्कृताः ॥ ४५ ॥ तत्पुत्राश्चाभवन्सर्वे शैवधर्मबहिष्कृताः ॥ अग्रे तद्वद्भविष्यंति कलौ बहुजनाः खलाः ॥ ४६ ॥ इति प्रोक्तमशेषेण तद्वृत्तं मुनिसत्तमाः ॥ पूर्ववृत्तमपि प्राज्ञाः श्रुतं सर्वैस्तु चादरात् ॥ ४७ ॥

दुःख दारिद्र्यसे पीडित मूर्ख निन्दाकरनेवाले तथा सम्पूर्ण तप्त मुद्रासे चिह्नित होगे ॥ ४३ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार संपूर्ण मुनियोंको शाप देकर गौतम मुनि अपने आश्रमको गये और अतिपवित्र होके शिवजीकी भक्ति करने लगे ॥ ४४ ॥ उसके पीछे वे शापदिये हुए संपूर्ण ऋषि दुःखीमनसे शिवसम्बधी धर्मसे निराश हो कांचीपुरीमें निवास करने लगे ॥ ४५ ॥ और उनके सब पुत्र भी शैव धर्मसे हीन हुये इसके आगे कलियुगमें उनके पौत्रादि बहुत मनुष्य इसी प्रकार दुष्ट होंगे ॥ ४६ ॥ हे मुनिसत्तमो ! हे बुद्धिमानो ! इस प्रकार मैंने उनका सब वृत्तान्त कह

सुनाया और सबोंने उनका पहला वृत्तान्त भी आदरसे सुना ॥ ४७ ॥ यह सब गौतमी गंगाकी उत्पत्ति तथा संपूर्ण पापोंको हरण करने वाला श्रेष्ठ माहात्म्य भी मैंने तुमसे वर्णन किया ॥ ४८ ॥ यह त्र्यम्बक ज्योतिर्लिंगका माहात्म्य कहा जिसको सुनकर मनुष्य संपूर्ण पापोंसे छूटता है इनमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४९ ॥ इसके आगे वैद्यनाथनामवाले शिवलिंगके पापनाशक माहात्म्यको सुनो मैं वर्णन करता हूं ॥५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० त्र्यम्बकेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ सूतजी बोले, राक्षसोंमें श्रेष्ठ, अभिमानी, सन्मान पानेवाले, रावणने कैलासपर्वतपर भक्तिसे शिवकी आराधना की ॥ १ ॥ जब कुछ कालतक आराधना करनेपर

इति वश्च समाख्यातो गौतम्याश्च समुद्भवः ॥ माहात्म्यमुत्तमं चैव सर्वपापहरं परम् ॥४८॥ त्र्यंबकस्य च माहात्म्यं ज्योतिर्लिंगस्य कीर्तितम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥४९॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि वैद्यनाथेश्वरस्य हि ॥ ज्योतिर्लिंगस्य माहात्म्यं श्रूयतां पापहारकम् ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां त्र्यंबकेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्य वर्णनं नाम सप्तविंशोध्यायः ॥२७॥ सूत उवाच ॥ रावणः राक्षसश्रेष्ठो मानी मानपरायणः ॥ आरराध हरं भक्त्या कैलासे पर्वतोत्तमे॥१॥आराधितः कियत्कालं न प्रसन्नो हरो यदा॥तदा चान्यत्तपश्चक्रे प्रासादार्थं शिवस्य सः॥२॥नतश्चायं हिमवत स्सिद्धिस्थानस्य वै गिरेः॥पौलस्त्यो रावणश्श्रीमान् दक्षिणे वृक्षखंडके॥३भूमौ गर्तं वर कृत्वा तत्राग्निं स्थाप्य स द्विजाः॥तत्सन्निधौ शिवं स्थाप्य हवनं स चकार ह॥४॥ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थंडिलेशयः॥शीते जलांतरस्थो हि त्रिधा चक्रे तपश्च सः॥५॥

शिवजी प्रसन्न न हुए तब उसने प्रसन्न होनेके निमित्त और तप किया ॥ २ ॥ जब श्रीमान् पौलस्त्य रावणने सिद्धिके स्थानवाले हिमालय पर्वतके दक्षिण वृक्षखंडोंमें तप किया ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! वहां उसने भूमिमें गढा खोद उसमें अग्नि स्थापन कर उसके समीपमें शिवजीको पधारके हवन किया ॥ ४ ॥ ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्निके मध्यमें स्थित हुआ, वर्षामें भूमिमें शयन करता हुआ शीतकालमें जलके मध्यममें स्थित रहा इस प्रकार उसने तीन प्रकारका तप किया ॥ ५ ॥

इस प्रकार उस रावणने बहुत तप किया तो परमात्मा शिवजी प्रसन्न हुए कारण कि वे दुष्टोंको दुष्प्राप्य हैं ॥ ६ ॥ तब उस दैत्योंके स्वामी महात्मा रावणने अपने शिरोंको काटके बलिदानपूर्वक शिवका पूजन करना प्रारम्भ किया ॥ ७ ॥ उसने विधिपूर्वक शिवके पूजनमें एक एक शिर काटा, इसी प्रकार रावणने क्रमानुसार अपने नौ शिर काटे ॥८॥ तब एक शिरके शेष रहने पर शिवजी प्रसन्न हो गये और भक्तवत्सल महादेव सन्तुष्ट हो वहां प्रगट हुए ॥९॥ प्रभु सदाशिवने उसके शिरोंको पहलेके समान पूर्ण कर उसको अतुलबल तथा मनोरथोंको प्रदान किया ॥१०॥ वह राक्षस रावण उन शिवकी प्रसन्नताको पाकर हाथ जोड कन्धे झुकाय नम्र हो कल्याणकारी शिवजीसे बोला ॥११॥ रावण

चकारैवं बहु तपो न प्रसन्नस्तदापि हि ॥ परमात्मा महेशानो दुराराध्यो दुरात्मभिः ॥ ६ ॥ ततश्शिरांसि छित्त्वा च पूजनं शंकरस्य वै ॥ प्रारब्धं दैत्यपतिना रावणेन महात्मना ॥ ७ ॥ एकैकं च शिरश्छिन्नं विधिना शिवपूजने ॥ एवं सत्क्रमतस्तेन च्छिन्नानि नव वै यदा ॥ ८ ॥ एकस्मिन्नवशिष्टे तु प्रसन्नश्शंकरस्तदा ॥ आविर्बभूव तत्रैव संतुष्टो भक्तवत्सलः ॥९॥ शिरांसि पूर्ववत्कृत्वा नीरुजानितथा प्रभुः ॥ मनोरथं ददौ तस्मादतुलं बलमुत्तमम् ॥१०॥ प्रसादं तस्य संप्राप्य रावणस्स च राक्षसः ॥ प्रत्युवाच शिवं शम्भुं नतस्कंधः कृतांजलिः ॥ ११ ॥ रावण उवाच ॥ प्रसन्नो भव देवेश लंकां च त्वां नयाम्यहम् ॥ सफलं कुरु मे कामं त्वा महं शरणं गतः ॥१२॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तश्च तदा तेन शंभुर्वै रावणेन सः ॥ प्रत्युवाच विचेतस्कः संकटं परमं गतः ॥ १३ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ श्रूयतां राक्षस श्रेष्ठ वचो मे सारवत्तया ॥ नीयतां स्वगृहे मे हि सद्भक्त्या लिंगमुत्तमम् ॥ १४ ॥ भूमौ लिंगं यदा त्वं च स्थापयिष्यसि तत्र वै ॥ स्थास्यत्यत्र न संदेहो यथेच्छसि तथा कुरु ॥ १५ ॥

बोला, हे देवोंके स्वामी ! आप प्रसन्नहो, मैं आपको लंकापुरीको लेजाऊंगा ऐसी मेरी इच्छाको पूर्ण करो, मैं आपकी शरणमें प्राप्त हूं ॥१२॥ सूतजी बोले, उस समय रावणके ऐसा कहनेपर शिवजी विमन हो परम संकटकमें प्राप्त होके यह बोले ॥१३॥ शिवजी बोले, हे राक्षसश्रेष्ठ ! तुम सारवाले मेरे वचनोंको सुनो श्रेष्ठ भक्तिसे मेरे उत्तम ज्योतिर्लिङ्गको अपने घर ले जाओ ॥ १४ ॥ यदि तुम कहीं बीचमें मेरे लिंगको भूमिपर स्थापन करोगे तो यह वहीं स्थित रहेगा, इसमें जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो ॥ १५ ॥

सूतजी बोले, इस प्रकार उन शिवजीसे कहा हुआ वह राक्षसेश्वर रावण उसी प्रकार उस ज्योतिर्लिङ्गको लेकर अपने घरको चला ॥ १६ ॥ मार्गमें शिवजीकी मायासे रावणको लघुशंकाकी इच्छा हुई और वह पौलस्त्य रावण उस मूत्रके वेगको रोकनेको समर्थ न हुआ ॥ १७ ॥ उसने वहां एक गोपको देख उसे प्रार्थना करके ज्योतिर्लिङ्ग देदिया और लघुशंका करने लगा तब एक मुहूर्त बीतने पर वह गोप शिवलिंगके भारसे व्याकुल हुआ ॥ १८ ॥ और उसने उसके भारसे पीडित हो उसे वहां भूमिमें स्थापन किया तब वज्रसारसे उत्पन्न हुआ वह ज्योतिर्लिङ्ग वहांही स्थित हो गया, यह दर्शन करनेसे सब पापोंका दूर करनेवाला तथा सम्पूर्ण कामनाको पूर्ण करनेवाला है ॥ १९ ॥ हे मुने ! वह

सूत उवाच ॥ इत्युक्तश्शंभुना तेन रावणो राक्षसेश्वरः॥ तथेति तत्समादाय जगाम भवनं निजम् ॥ १६ ॥ आसीन्मूत्रोत्सर्गकामो मार्गेहि शिवमायया ॥ तत्स्तंभितुं व शक्तोभूत्पौलस्त्यो रावणः प्रभुः ॥ १७ ॥ दृष्ट्वैकं तत्र वै गोपं प्रार्थ्य लिंगं ददौ च तत् ॥ मुहूर्तके ह्यतिक्रांते गोपोभूद्विकलस्तदा ॥१८॥ भूमौ संस्थापयामास तद्भारेणा तिपीडितः ॥ तत्रैव तत्स्थितं लिंगं वज्रसारसमुद्भवम् ॥ सर्वकामप्रदं चैव दर्शनात्पापहारकम् ॥ १९ ॥ वैद्यनाथेश्वरं नाम्ना तल्लिंगमभवन्मुने ॥ प्रसिद्धं त्रिषु लोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम्॥ २० ॥ ज्योतिर्लिंगमिदं श्रेष्ठं दर्शनात्पूजनादपि ॥ सर्वपापहरं दिव्यं भुक्तिवर्द्धनमुत्तमम् ॥ २१ ॥ तस्मिँल्लिंगे स्थिते तत्र सर्वलोकहिताय वै ॥ रावणः स्वगृहं गत्वा वरं प्राप्य महोत्तमम् ॥ प्रियायै सर्वमाचख्यौ सुखेनाति महासुरः ॥ २२ ॥ तच्छ्रुत्वा सकला देवाश्शक्राद्या मुनयस्तथा ॥ परस्परं समामन्त्र्य शिवासक्तधियोऽमलाः ॥ २३ ॥

लिंग वैद्यनाथेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ तीनों लोकोंमें विख्यात है, सत्पुरुषोंमें भुक्ति तथा मुक्तिका देनेवाला है ॥ २० ॥ भुक्तिको बढानेवाला उत्तम और दिव्य श्रेष्ठ इस ज्योतिर्लिङ्गके दर्शन और पूजनसे सब पाप दूर होते हैं ॥ २१ ॥ सब लोकोंको हितके अर्थ वैद्यनाथेश्वर लिंगके वहां स्थित हो जानेपर अतिश्रेष्ठ वर पाय रावणने अपने घर जाके सुखपूर्वक सब वृत्तान्त अपनी स्त्रीसे कहा ॥ २२ ॥ यह सुनके इन्द्र आदि समस्त देवता तथा निर्मल बुद्धिवाले शिवभक्तिमें स्थित हुए सम्पूर्ण मुनियोंने परस्परमें सम्मति की ॥ २३ ॥

हे मुने ! उस समय ब्रह्मा विष्णु आदि सब देवता वहां आये और उन्होंने विशेष प्रीतिसे पूजा की ॥ २४ ॥ शिवको प्रत्यक्ष हुआ देखके उन देवताओंने प्रतिष्ठाकर वैद्यनाथ ऐसे कहके नमस्कार स्तुति करके स्वर्गको गमन किया ॥ २५ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! वहां उस वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंगके स्थित होनेपर तथा रावणके घर चले जानेपर क्या चरित्र हुआ सो सब विस्तारपूर्वक कहो ? ॥ २६ ॥ सूतजी बोले, रावणने अपने घर जाकर श्रेष्ठ वर पानेका वृत्तान्त अपनी स्त्रीसे कहा और वह अति प्रसन्न हुआ ॥ २७ ॥ हे मुनियो ! यह सुनके इन्द्र आदि सब देवता तथा मुनि दुःखित होके परस्परमें कहने लगे ॥ २८ ॥ देवता आदि बोले, यह दुष्टात्मा देवताओंका द्वेषी, खल,

तस्मिन्काले सुरास्सर्वे हरिब्रह्मादयो मुने ॥ आजग्मुस्तत्र सुप्रीत्या पूजां चक्रुर्विशेषतः ॥ २४ ॥ प्रत्यक्षं तं तदा दृष्ट्वा प्रतिष्ठाप्य च ते सुराः ॥ वैद्यनाथेति संप्रोच्य नत्वा नुत्वा दिवं ययु ॥२५॥ ऋषय ऊचुः ॥ तस्मिँल्लिंगे स्थिते तत्र रावणे च गृहं गते ॥ किं चरित्रमभूत्तात ततस्तद्वद विस्तरात् ॥२६॥ सूत उवाच ॥ रावणोपि गृहं गत्वा वरं प्राप्य महोत्तमम् ॥ प्रियायै सर्वमाचख्यौ मुमोदाति महासुरः ॥ २७ ॥ तच्छ्रुत्वा सकलं देवाश्शक्राद्या मुनयस्तथा ॥ परस्परं समूचुस्ते समुद्विग्ना मुनीश्वराः ॥ २८ ॥ देवादय ऊचुः ॥ रावणोयं दुरात्मा हि देवद्रोही खलः कुधीः ॥ शिवाद्वरं च संप्राप्य दुःखं दास्यति नोऽपि सः ॥ २९ ॥ किं कुर्मः क्व च गच्छामः किं भविष्यति वा पुनः ॥ दुष्टश्च दक्षतां प्राप्तः किंकिंनो साधयिष्यति ॥३०॥ इति दुःखंसमापन्नाश्शक्राद्या मुनयस्सुराः॥ नारदं च समाहूय पप्रच्छुर्विकलास्तदा ॥३१॥ देवा ऊचुः ॥ सर्वं कार्य्यं समर्थोसि कर्तुं त्वं मुनिसत्तम ॥ उपायं कुरु देवर्षे देवानां दुःखनाशने ॥ ३२ ॥ रावणोयं महादुष्टः किंकिं नैव करिष्यति ॥ क्व यास्यामो वयं चात्र दुष्टेनापीडिता वयम् ॥ ३३ ॥

कुत्सितबुद्धिवाला रावण शिवसे वरदान पाकर हमको अति दुःख देगा ॥ २९ ॥ अब क्या करें कहां जायँ ? आगे कौन जाने क्या होगा ? यह दुष्ट रावण प्रवीणताको प्राप्त होकर हमारे निमित्त क्या क्या न साधेगा ? ॥ ३० ॥ इस प्रकार दुःखसे आतुर हुये इन्द्रादि देवता तथा मुनियोंने व्याकुल हो नारदजीको बुलाके यह पूंछा ॥ ३१ ॥ देवता बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! हे देवर्षे ! तुम सब काम करनेमें समर्थ हो, देवताओंके दुःख नाश करनेके अर्थ कोई उपाय करो ॥ ३२ ॥ यह महादुष्ट रावण आगेको क्या क्या न करेगा ? हम सब

दुःखसे पीडित हैं अब यहांसे कहां जायँ ॥ ३३ ॥ नारदजी बोले, हे देवताओ ! दुःखको त्यागो मैं जाता हूं शिवजीकी कृपासे युक्ति करके देवताओंके कार्यको करूंगा ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहके वह देवर्षि नारदजी रावणके स्थानको गये वहाँ संपूर्ण सत्कारको प्राप्त हो रावणसे प्रीतिपूर्वक बोले ॥ ३५ ॥ नारदजी बोले, हे राक्षसोत्तम ! हे रावण ! तुम धन्य हो, शैवोंमें श्रेष्ठ हो, तपस्वी हो, आज तुमको देखकर मेरा मन बडा प्रसन्न हुआ ॥ ३६ ॥ शिवजीकी आराधना सम्बन्धी अपना संपूर्ण वृत्तान्त कहो इस प्रकार नारदजीके पूंछनेपर वह रावण यह वचन बोला ॥ ३७ ॥ रावण बोला, हे महामुने ! मैंने तप करनेके लिये कैलासपर्वतपर जाकर बहु कालतक अतिकठिन

नारद उवाच॥ दुःखं त्यजत भो देवा युक्तिं कृत्वा च याम्यहम्॥ देवकार्यं करिष्यामि कृपया शंकरस्य वै ॥ ३४ ॥ सूत उवाच इत्युक्त्वा स तु देवर्षिरगमद्रावणालयम् ॥ सत्कारं समनुप्राप्य प्रीत्योवाचाखिलं च तत् ॥ ३५ ॥ नारद उवाच ॥ राक्षसोत्तम धन्यस्त्वं शैववर्य्यस्तपोमनाः ॥ त्वां दृष्ट्वा च मनो मेद्य प्रसन्नमति रावण ॥३६॥ स्ववृत्तं ब्रूह्यशेषेण शिवाराधनसंभवम् ॥ इति पृष्ट स्तदा तेन रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥३७॥ रावण उवाच ॥ गत्वा मया तु कैलासे तपोर्थं च महामुने॥ तत्रैव बहुकालं वै तपस्तप्तं सुदारुणम् ॥ ३८ ॥ यदा न शंकरस्तुष्टस्ततश्च परिवार्तितम् ॥ आगत्य वृक्षखंडे वै पुनस्तप्तं मया मुने॥ ३९ ॥ ग्रीष्मे पंचाग्नि मध्ये तु वर्षासु स्थंडिलेशयः ॥ शीते जलांतरस्थो हि कृतं चैव त्रिधा तपः ॥ ४० ॥ एवं मया कृतं तत्र तपोत्युग्रं मुनीश्वर ॥ तथापि शंकरो मह्यं न प्रसन्नोऽभवन्मनाक् ॥ ४१ ॥ तदा मया तु क्रुद्धेन भूमौ गर्तं विधाय च ॥ तत्राग्निं समाधाय पार्थिवं च प्रकल्प्य च ॥ ४२ ॥ गंधैश्च चंदनैश्चैव धूपैश्च विविधैस्तदा ॥ नैवेद्यैः पूजितश्शम्भुरारार्तिकविधानतः ॥ ४३ ॥

तप किया ॥ ३८ ॥ हे मुने ! तब भी शिवजी सन्तुष्ट नहीं हुये तो वहांसे लौटकर मैंने वृक्ष खण्डमें आके फिर तप किया ॥ ३९ ॥ ग्रीष्म ऋतुमें पंचाग्निमें तपा, वर्षामें भूमिमें सोया, शीतकालमें जलके मध्यमें स्थित रहा, इस प्रकार तीन प्रकारका तप किया ॥ ४० ॥ हे मुनीश्वर ! मैंने इस प्रकार वहां बडा कठिन तप किया तो भी शिवजी मुझसे कुछ प्रसन्न न हुये ॥ ४१ ॥ तब मैंने क्रोधित हो भूमिमें गढा खोद उसमें अग्निका आधान करके वहां पार्थिवलिंग स्थापन किया ॥४२॥ गन्ध चन्दनसे अनेक धूप दीप तथा नैवेद्य और आर्तिक्यके विधानसे शिवजीकी

पूजा की ॥ ४३ ॥ प्रणामसे पवित्र स्तुतियोंसे गति और नृत्यसे बाजोंसे तथा मुखमें अंगुली समर्पण करके शंकरको संतुष्ट किया ॥ ४४ ॥ हे मुने ! और भी अनेक उपायोंसे नानाप्रकारके शास्त्रोक्त विधानसे भगवान् शिवका पूजन किया ॥ ४५ ॥ तब भी सन्तुष्ट हुए भगवान् सदाशिव सन्मुख नहीं हुये, तब मैं तपके श्रेष्ठ फलको न पाकर अतिदुःखी हुआ ॥ ४६ ॥ मेरे शरीर बलको धिक्कार है तथा मेरे तप करनेको भी धिक्कार है यह कहके मैंने उस स्थापित की हुई अग्निमें बहुत हवन किया ॥ ४७ ॥ फिर मैंने यह विचारकी कि अग्निमें अपने शरीरको त्यागन करूंगा यह सोचकर उस पवित्र प्रज्वलित हुये अग्निमें अपने शिरोंको काटके चढाया ॥४८॥ सम्यक्प्रकार छेदन करके प्रत्येकको शुद्ध

प्रणिपातैः स्तवैः पुण्यैस्तोषितश्शंकरो मया॥ गीतैर्नृत्यैश्च वाद्यैश्च मुखांगुलिसमर्पणैः ॥ ४४ ॥ एतैश्च विविधैश्चान्यैरुपायैर्भूरिभिर्मुने ॥ शास्त्रोक्तेन विधानेन पूजितो भगवान् हरः ॥ ४५ ॥ न तुष्टः सम्मुखो जातो यदा च भगवान् हरः ॥ तदाहं दुःखितोभूवं तपसोऽप्राप्य सत्फलम् ॥४६॥ धिक् शरीरं बलं चैव धिक् तपः करणं मम ॥ इत्युक्त्वा तु मया तत्र स्थापितेग्नौ हुतं बहु ॥ ४७ ॥ पुनश्चेति विचार्य्यैव त्यक्षाम्यग्नौ निजां तनुम् ॥ संछिन्नानि शिरांस्येव तस्मिन् प्रज्ज्वलिते शुचौ ॥४८॥ सुच्छित्वैकैकशस्तानि कृत्वा शुद्धानि सर्वशः ॥ शंकरायार्पितान्येव नवसंख्यानि वै मया ॥ ४९ ॥ यावच्च दशमं छेत्तुं प्रारब्ध मृषिसत्तम ॥ तावदाविरभूत्तत्र ज्योतीरूपो हरस्स्वयम् ॥ ५० ॥ मामेति व्याहरत् प्रीत्या द्रुतं वै भक्तवत्सलः ॥ प्रसन्नश्च वरं ब्रूहि ददामि मनसेप्सितम् ॥ ५१ ॥ इत्युक्ते च तदा तेन मया दृष्टो महेश्वरः ॥ प्राणतस्संस्तुतश्चैव करौ बद्ध्वा सुभक्तितः ॥ ५२ ॥ तदा वृतं मयैतच्च देहि मे ह्यतुलं बलम् ॥ यदि प्रसन्नो देवेश दुर्ल्लभं किं भवेन्मम ॥ ५३ ॥

करके नौशिरोंको शिवजीके अर्पण किया ॥ ४९ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठ नारदजी ! जबहीं दशवें मस्तकको काटना प्रारम्भ किया तबहीं ज्योतिस्वरूप शिवजी अपने आप वहां प्रगट होगये ॥ ५० ॥ ऐसा मत करो ऐसा मत करो उस प्रकार प्रीतिसे शीघ्रही भक्तवत्सल शिवजी बोले, वर मांगो मैं प्रसन्न हूं तुमको मनोवांछित फल दूंगा ॥ ५१ ॥ उनके ऐसा कहने पर उस समय मैंने शिवजीका दर्शन किया और हाथ जोडके भक्तिसे प्राणोंसे स्तुति की ॥५२॥ तब मैंने यह वर मांगा कि देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे अतुल बल दो जिससे मुझे कुछभी दुर्लभ न हो ॥५३॥

सन्तुष्ट हुए कृपालु शिवने तथास्तु ऐसी वाणी कहके मुझे सब मनोवाञ्छित वर दिये॥५४॥तब परमात्मा शिवने वैद्यके समान अपनी अमोघदृष्टिसे देख मेरे शिरोंको जोडकर मिला दिया ॥५५॥ ऐसा करनेपर वह मेरा शरीर पहलेके समान होगया और उनकी प्रसन्नतासे मैंने सब फल प्राप्त कर लिया ॥ ५६ तब मेरी प्रार्थनासे वह शिवजी यहां पधारे और तीनों लोकोंमें वैद्यनाथके नामसे प्रसिद्ध हुए ॥५७॥ दर्शन करने तथा पूजनसे ज्योतिर्लिंग स्वरूप शिवजी संसारमें भुक्ति और मुक्तिके देनेवाले तथा सबोंके हितकरनेवाले हैं ॥ ५८ ॥ मैं उन ज्योतिर्लिंगको विशेष पूजके तथा

शिवेन परितुष्टेन सर्वं दत्तं कृपालुना ॥ मह्यं मनोभिलषितं गिरा प्रोच्य तथास्त्विति ॥ ५४ ॥ अमोघया सुदृष्ट्या वै वैद्य वद्योजितानि मे ॥ शिरांसि संधयित्वा तु दृष्टानि परमात्मना ॥ ५५ ॥ एवंकृते तदा तत्र शरीरं पूर्ववन्मम ॥ जातं तस्य प्रसा दाच्च सर्वं प्राप्तं फलं मया ॥ ५६ ॥ तदा च प्रार्थितो मे संस्थितोसौ वृषभध्वजः ॥ वैद्यनाथेश्वरो नाम्ना प्रसिद्धोभूज्जगत्त्रये ॥५७॥ दर्शनात्पूजनाज्ज्योतिर्लिंगरूपो महेश्वरः ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदो लोके सर्वेषां हितकारकः ॥ ५८ ॥ ज्योतिर्लिंगमहं तद्वै पूजयित्वा विशेषतः ॥ प्रणिपत्यागतश्चात्र विजेतुं भुवनत्रयम् ॥ ५९ ॥ सूत उवाच ॥ तदीयं तद्वचः श्रुत्वा देवर्षिर्जातसंभ्रमः ॥ विहस्य च मनस्येव रावणं नारदोऽब्रवीत् ॥ ६० ॥ नारद उवाच ॥ श्रूयतां राक्षसश्रेष्ठ कथयामि हितं तव ॥ त्वया तदेव कर्त्तव्यं मदुक्तं नान्यथा क्वचित् ॥ ६१ ॥ त्वयोक्तं यच्छिवेनैव हितं दत्तं ममाधुना ॥ तत्सर्वं च त्वया सत्यं न मन्तव्यं कदाचन ॥ ६२ ॥ अयं वै विकृतिं प्राप्तः किंकिं नैव ब्रवीति च ॥ सत्यं नैव भवेत्तद्वै कथं ज्ञेयं प्रियोस्ति मे ॥ ६३ ॥

प्रणाम करके तीनों लोकोंको जीतनेको यहां आया हूं ॥५९॥ सूतजी बोले, ऐसा रावणका वचन सुनके आश्चर्यमें प्राप्त हुए नारदजी मनमें हँसके रावणसे बोले ॥ ६० ॥ नारदजी बोले, हे राक्षसोंमें श्रेष्ठ रावण ! सुनो तुम्हारे हितके कारण कहता हूं जो मैं कहूं उसी प्रकार तुम करो और कहीं किसी प्रकार मत करना ॥६१॥ मैं तुमको हितकारी उपदेश देता हूं शिवजीने जो कुछ तुमसे कहा है उसे तुम किसी प्रकार सत्य मत मानना ॥६२॥ विकारको (उन्मादको) प्राप्त हुए शिव क्या क्या नहीं कहते परन्तु वह एकभी बात सत्य नहीं होती यह तुमने कैसे जाना कि

वह मेरे प्रिय हैं ॥ ६३ ॥ इस कारण तुम जाकर पहले उनका अहित करके फिर कार्य सिद्ध करो और तुम कैलास पर्वतके उखाडनेका यत्न करो ॥ ६४ ॥ यदि यह कैलास पर्वत उखाडेगा तबही सब सफल होगा इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ६५ ॥ तुम परम निश्चयको प्राप्त हो उसे उखाड और फिर पहलेके समान उसे स्थापित करके सुखसे यहां आओ आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो ॥ ६६ ॥ सूतजी बोले, ऐसा नारदजीसे कहा हुआ रावण विधिवश मोहित हुआ अपने हितको मान उसी समय नारद मुनिके वाक्यको सत्य मानकर कैलास पर्वतको गया ॥ ६७ ॥ वहां जाकर उस कैलास पर्वतको कम्पित करने लगा, वहां पर स्थित हुए सब पदार्थ परस्पर उलट पलट

इति गत्वा पुनः कार्य्यं कुरु त्वं ह्यहिताय वै ॥ कैलासोद्धरणे यत्नः कर्तव्यश्च त्वया पुनः॥६४॥यदि चैवोद्धृतश्चायं कैलासो हि भविष्यति ॥ तदैव सफलं सर्वं भविष्यति न संशयः॥६५॥पूर्ववत्स्थापयित्वा त्वं पुनरागच्छ वै सुखम्॥निश्चयं परमं गत्वा यथेच्छसि तथा कुरु ॥६६॥सूत उवाच॥इत्युक्तस्स हितं मेने रावणो विधिमोहितः॥ सत्यं मत्वा मुनेर्वाक्यं कैलासमगमत्तदा ॥६७॥ गत्वा तत्र समुद्धारं चक्रे तस्य गिरेस्स च॥तत्रस्थं चैव तत्सर्वं विपर्यस्तं परस्परम्॥६८॥गिरीशोपि तदा दृष्ट्वा किं जातमिति सो ब्रवीत्॥गिरिजा च तदा शंभुं प्रत्युवाच विहस्यतम्॥६९॥गिरिजोवाच॥ सच्छिश्यस्य फलं जातं सम्यग्जातं तु शिष्यतः॥शान्तात्मने सुवीराय दत्तं यदतुलं बलम्॥७०॥ सूत उवाच ॥ गिरिजायाश्च साकूतं वचः श्रुत्वा महेश्वरः॥कृतघ्नं रावणं मत्वा शशाप बलदर्पितम् ॥७१॥ महादेव उवाच ॥ रे रे रावण दुर्भक्त मा गर्वं वह दुर्मते ॥ शीघ्रं च तव हस्तानां दर्पघ्नश्च भवेदिह ॥ ७२ ॥

हो गये ॥ ६८ ॥ तब शिवजी कैलासको कम्पित देख यह क्या हुआ ? इस प्रकार बोले, पार्वतीजी हँसकर महादेवसे बोलीं ॥ ६९ ॥ पार्वतीजी बोली, सुन्दर शिष्यका यह फल मिला, शिष्य करनेसे अच्छा फल प्राप्त हुआ, तुमने शान्तात्मा बडे पराक्रमी रावणको जो अतुल बल दिया है उसका यह परिणाम है ॥ ७० ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार पार्वतीजीके अपेक्षाका वचन सुन शिवजीने बलसे अहंकारवाले उस रावणको कृतघ्न जानकर शाप दिया ॥ ७१ ॥ महादेव बोले, हे दुर्भक्त रावण ! हे दुष्ट बुद्धिवाले ! अभिमान मतकर

शीघ्र ही तेरी भुजाओंके अहंकारका नाश करनेवाला कोई उत्पन्न होगा ॥ ७२ ॥ सूतजी बोले, उस समय वहां जो हुआ सो नारदजीने सब सुना और रावण भी प्रसन्न हो वहांसे अपने स्थानको चला गया ॥ ७३ ॥ तब वह बली रावण परम निश्चय कर बलसे मोहित हो शत्रुओंका दर्प चूर्णकर जगत्को वशमें करने लगा ॥ ७४ ॥ शिवजीकी आज्ञासे प्राप्त हुए दिव्य बडे तेजस्वी अस्त्रसे रावणको कोई भी योद्धा जीतनेमें समर्थ नहीं हुआ ॥ ७५ ॥ इस प्रकार यह वैद्यनाथेश्वरका माहात्म्य वर्णन किया, इस माहात्म्यको सुननेवाले मनुष्योंका पाप भस्म हो जाता है ॥ ७६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० वैद्यनाथेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः

सूत उवाच॥इति तत्र च यज्जातं नारदः श्रुतवांस्तदा ॥ रावणोपि प्रसन्नात्माऽगात्स्वधाम यथागतम् ॥७३॥निश्चयं परमं कृत्वा बली बलविमोहितः ॥ जगद्वशं हि कृतवान्रावणः परदर्पहा ॥ ७४ ॥ शिवाज्ञया चप्राप्तेन दिव्यास्त्रेण महौजसा॥रावणस्य प्रति भटोनालं कश्चिदभूत्तदा ॥७५॥ इत्येतच्च समाख्यातं वैद्यनाथेश्वरस्य च ॥ माहात्म्यं शृण्वतां पापं नृणां भवति भस्मसात् ॥ ७६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां वैद्यनाथेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥ सूत उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि नागेशाख्यं परात्मनः ॥ ज्योतीरूपं यथा जातं परमं लिंगमुत्तमम् ॥ १ ॥ दारु का राक्षसी काचित्पार्वती वरदर्पिता ॥ दारुकश्च पतिस्तस्या बभूव बलवत्तरः ॥ २ ॥ बहुभी राक्षसैस्तत्र चकार कदनं सताम् ॥ यज्ञध्वंसं च लोकानां धर्मध्वंसं तदाकरोत् ॥३॥ पश्चिमे सागरे तस्य वनं सर्वसमृद्धिमत् ॥ योजनानां षोडश भिर्विस्तृतं सर्वतो दिशम् ॥४॥ दारुका स्वविलासार्थं यत्र गच्छति तद्वनम् ॥ भूम्या च तरुभिस्तत्र सर्वोपकरणैर्युतम् ॥५॥

॥ २८ ॥ सूतजी बोले, अब इसके उपरान्त परमात्मा शिवका नागेश नामक परम श्रेष्ठ ज्योतिर्लिंगका वर्णन करता हूं ॥ १ ॥ पार्वतीजीसे वर पाकर दारुका नाम राक्षसी बडी बलसे दर्पित हो गई और उसका दारुक नामक बडा बलवान् पति था ॥ २ ॥ उस समय वह अनेक राक्षसोंको साथ ले सत्पुरुषोंको दुःख देता लोकोंके यज्ञका विध्वंस तथा धर्मका नाश करने लगा ॥ ३ ॥ उसका वन पश्चिमके समुद्रके समीप चारों ओर सोलह योजन विस्तारवाला सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे शोभायमान था ॥ ४ ॥ दारुका राक्षसी अपने आनन्दके निमित्त

सुन्दर भूमिसे भूशोभित सबोंके उपकार योग्य उस वनमें भ्रमण करती थी ॥ ५ ॥ देवीने वह वन दारुकाको दिया था, वह राक्षसी अपनेपति के सहित स्वतन्त्रतासे उस वनमें फिरती थी ॥ ६ ॥ तब उस दारुका स्त्रीके सहित स्थित हुआ वह दारुक राक्षस सबोंको भय दिखाने लगा ॥ ७ ॥ तब पीडित हुए वे सब लोग और्वऋषिकी शरणमें गये और उनको विशेष प्रीतिसे नमस्कार करके अपने २ शिरोंको झुकाय उनसे बोले ॥ ८॥ मनुष्य बोले, हे महर्षे हम सब दुष्ट राक्षसोंसे सताये हुये हैं हमको शरण दीजिये आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं और अपने तेजसे प्रकाशमान हैं ॥ ९ ॥ आपके सिवाय पृथिवीपर हमको ऐसा कोई नहीं दीखता जिसकी शरणमें जांय तथा जिसके समीपमें स्थित

दारुकायै ददौ देवी तद्वनस्यावलोकनम्॥प्रयाति तद्वनं सा हि पत्या सह यदृच्छया॥६॥तत्र स्थित्वा तदा सोपि सर्वेषां च भयं ददौ ॥ दारुको राक्षसः पत्न्या तया दारुकया सह॥७॥ते सर्वे पीडिता लोका और्वस्य शरणं ययुः ॥ नत्वा प्रीत्या विशेषेण तमूचुर्नतमस्तकाः ॥८॥ लोका ऊचुः ॥ महर्षे शरणं देहि नो चेदुष्टैश्च मारिताः॥ सर्वं कर्तुं समर्थोसि तेजसा दीप्तिमानसि ॥ ९ ॥ पृथ्व्यां न वर्तते कश्चित्त्वां विना शरणं च नः॥यामो यस्य समीपे तु स्थित्वा सुखमवाप्नुमः ॥१०॥ त्वां दृष्ट्वा राक्षसास्सर्वे पलायंते विदूरतः ॥ त्वयि शैवं सदा तेजो विभाति ज्वलनो यथा ॥११॥ सूत उवाच॥इत्येवं प्रार्थितो लोकैरौर्वो हि मुनिसत्तमः॥ शोचमानः शरण्यश्च रक्षायै हि वचोऽब्रवीत् ॥१२॥ और्व उवाच॥पृथिव्यां यदि रक्षांसि हिंस्युर्वै प्राणिनस्तदा॥ स्वयं प्राणैर्वियुज्येयू राक्षसा बलवत्तराः ॥ १३ ॥ यदा यज्ञा न हन्येरंस्तदा प्राणैर्वियोजिताः॥भवंतु राक्षसास्सर्वे सत्यमेतन्मयोच्यते ॥१४॥

होके हम सुख पावें ॥१०॥ तुमको देखकर सब राक्षस दूरसेही भागते हैं तुमसे सदाही शिवजीका तेज अग्निके समान प्रकाशित होता है॥११॥ सूतजी बोले, उन सम्पूर्ण मनुष्योंने इस प्रकार और्व ऋषिकी प्रार्थना की तब शरणागतवत्सल वह मुनिश्रेष्ठ शोच करते हुए उनकी रक्षाके अर्थ यह वचन बोले ॥ १२ ॥ और्वमुनि बोले, यदि भूमिपर बलवान् राक्षस प्राणियोंको मारेंगे तो वे स्वयं ही मारे जांयगे ॥ १३ ॥ जब वे यज्ञोंका विध्वंस करेंगे तो वे सम्पूर्ण राक्षस अपने प्राणोंसे वियुक्त होंगे मैं यह सत्य कहता हूं ॥ १४ ॥

सूतजी बोले, संसारको सुख देनेवाले और्वमुनिने उन लोगोंसे यह कहके और प्रजाको धैर्य देकर तप किया ॥ १५ ॥ तब देवताओंने उसके शापका कारण जानके राक्षसोंके साथ युद्ध करनेका उद्योग किया ॥ १६ ॥ उस समय वहां युद्ध करनेके निमित्त इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता अनेक शस्त्रोंको धारण करके सब प्रयत्नोंके सहित रणभूमिमें उपस्थित हुए ॥ १७ ॥ वहां उन देवताओंको देखकर वे सम्पूर्ण दुष्ट राक्षस विचारने लगे और परस्पर एकत्रित होके यह सम्मति करने लगे ॥ १८ ॥ राक्षस बोला, अब हम क्या करें ? कहां जायँ ? बडे संकटमें पड गये यदि युद्ध करेंगे तो भी मरते हैं यदि युद्ध नहीं करें तो भी नाश होंगे ॥ १९ ॥ यदि वैसेही (विना उपद्रवके) रहें

सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा वचनं तेभ्यस्समाश्वास्य प्रजाः पुनः॥तपश्चकार विविधमौर्वो लोकसुखावहः॥१५॥देवास्तदा ते विज्ञाय शापस्य कारणं हि तत्॥युद्धाय च समुद्योगं चक्रुर्देवारिभिस्सह॥१६॥सर्वैश्चैव प्रयत्नैश्च नानायुधधरास्सुराः॥ सर्वे शक्रादयस्तत्र युद्धार्थं समुपागताः॥१७॥तान्दृष्ट्वा राक्षसास्तत्र विचारे तत्पराः पुनः॥ बभूवुस्तेऽखिला दुष्टा मिथो ये यत्र संस्थिताः ॥ १८ ॥ राक्षसा ऊचुः ॥किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं संकटं समुपागताः॥युद्ध्यते म्रियते चैव युद्ध्यते न विहन्यते ॥१९॥ तथैव स्थीयते चेद्वै भक्ष्यते किं परस्परम्॥दुःखं हि सर्वथा जातं क एनं विनिवारयेत्॥२०॥सूत उवाच॥ विचार्येति च ते तत्र दारुकाद्याश्च राक्षसाः ॥ उपायं न विजानन्तो दुःखं प्राप्तास्सदा हि वै ॥२१॥दारुका राक्षसी चापि ज्ञात्वा दुःखं समागतम् ॥ भवान्याश्च वरं तञ्च कथयामास सा तदा ॥ २२ ॥ दारुकोवाच ॥ मया ह्याराधिता पूर्वं भवपत्नी वरं ददौ ॥ वनं गच्छ निजैः सार्द्धं यत्र गंतुं त्वमिच्छसि ॥ २३ ॥ तद्वरश्च मया प्राप्तः कथं दुःखं विषह्यते ॥ जलं वनं च नीत्वा वै सुखं स्थेयं तु राक्षसैः ॥२४॥

तो परस्पर क्या भक्षण करेंगे, अब सब प्रकार दुःख प्राप्त हुआ कौन इस दुःखको दूर करेगा ॥ २० ॥ सूतजी बोले, ऐसा शोचकर वे दारुक आदि सम्पूर्ण राक्षस किसी उपायको न जानके दुःखको प्राप्त हुये ॥ २१ ॥ तब ऐसा दुःख प्राप्त हुआ देखकर उस राक्षसीने उन राक्षसोंसे पार्वतीजीका दिया हुआ वर प्रकाशित किया ॥ २२ ॥ दारुका बोली, मुझसे आराधना की हुई पार्वताने पहले वरदान दिया है कि तू अपने राक्षसोंको वनके सहित लेकर निःसन्देह भ्रमणकर जहां तेरी जानेकी इच्छा हो जा ॥ २३ ॥ मैंने ऐसा वर पाया है फिर क्यों

दुःख सहते हो तुम सब राक्षस जल और वनको लेकर सुखसे निवास करो ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, उस समय उस दारुका राक्षसीका वचन सुनके सब राक्षस हर्षको प्राप्त हुए, निर्भय हो परस्पर मिलकर यह बोले ॥ २५ ॥ यह दारुका राक्षसी धन्य है कृतकृत्य है, इस रानीने हमको स्वयं जिलाया वे सब उसे प्रणाम करके आदरसे कहने लगे ॥२६॥ हे देवि ! तुम्हारी वहां जानेकी शक्ति हो तो जाना उचित है विचार क्या करती हो वहां जाकर नित्यही जलके स्थानमें सुखपूर्वक निवास करेंगे ॥ २७ ॥ इसी अवसरमें वे सब मनुष्य देवताओंके साथ उन राक्षसोंके साथ युद्ध करनेको आये जिन राक्षसोंने पहले बडे दुःख और पीडा दी थी ॥ २८ ॥ तब उन पार्वतीजीके बलको आश्रित हुई वह राक्षसी

सूत उवाच ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा राक्षस्या हर्षमागताः॥ उचुस्सर्वे मिथस्ते हि राक्षसा निर्भयास्तदा ॥ २५ ॥ धन्येयं कृतकृत्येयं राज्ञ्या वै जीवितास्स्वयम्॥ नत्वा तस्यै च तत्सर्वं कथयामासुरादरात् ॥२६॥ यदि गंतुं भवेच्छक्तिर्गम्यतां किं विचार्यते॥ तत्र गत्वा जले देवि सुखं स्थास्याम नित्यशः ॥२७॥ एतस्मिन्नंतरे लोका देवैस्सार्द्धं समागताः॥ युद्धाय विविधैर्दुःखैः पीडिता राक्षसैः पुरा॥ २८ ॥ पीडिताश्च तदा तस्या भवान्या बलमाश्रिताः ॥ समग्रं नगरं नीत्वा जलस्थलसमन्वितम् ॥२९॥ जयजये तिदेव्यास्तु स्तुतिमुच्चार्य राक्षसी ॥ तत उड्डीयनं कृत्वा सपक्षो गीरिराडचथा ॥ ३० ॥ समुद्रस्य च मध्ये सा संस्थिता निर्भया तदा॥ सकलैः परिवारैश्च मुमुदेति शिवानुगा ॥ ३१ ॥ तत्र सिंधौ च ते स्थित्वा नगरे च विलासिनः ॥ राक्षसाश्च सुखं प्रापुर्निर्भयाश्च विजह्रिरे ॥ ३२ ॥ राक्षसाश्च पृथिव्यां वै नाजग्मुश्च कदाचन ॥ मुनेश्शापभयादेव बभ्रमुस्ते चले तदा ॥ ३३ ॥

जल तथा स्थल समेत संपूर्ण नगरको ले गई ॥ २९ ॥ और जय जय ऐसा कह स्तुति करके फिर पंखों सहित पर्वतोंके राजा हिमालय समान वह उडी ॥ ३० ॥ वह शिवभक्तिवाली दारुका समुद्रके मध्यमें निर्भय हो और सम्पूर्ण परिवारके सहित अतिप्रसन्नतासे स्थित हुई ॥ ३१ ॥ तब वे विलासी राक्षस उस सिन्धुनगरमें स्थित हो के सुख पाने लगे और निर्भय हो विहार करने लगे ॥३२॥ और्व मुनिके शापके भयसे वे राक्षस भूमीपर कदापि नहीं आते केवल जलमेंही भ्रमण करते थे ॥ ३३ ॥

तब वे राक्षस उस नगरमें नावपर स्थित हुए नागरिक मनुष्योंको पकडके अपने बंधन गृहमें बंद करते तथा किसीको मार भी डालते थे ॥ ३४ ॥ तब भवानीके वरदानसे निर्भय हुए वे राक्षस वहां स्थित होकर भी मनुष्योंको पीडा देते थे ॥ ३५ ॥ हे मुनीश्वरो ! जिस प्रकार वहां स्थलमें मनुष्योंको भय था उसी प्रकार उनको जलमें निकलके स्थित हुए राक्षसोंसे निरन्तर भय रहता था ॥ ३६ ॥ किसी समय वह राक्षसी जलसे स्थलमें जाके मनुष्योंको पीडा देनेके निमित्त मार्गको रोककर स्थित हुई ॥ ३७ ॥ इसी अन्तरमें वहां सब ओरसे मनुष्योंसे पूर्ण हुई अनेक शुभ नावैं उधर आईं ॥ ३८ ॥ उन भरी हुई नावोंको देखकर वे दुष्ट राक्षस बडे हर्षको प्राप्त हुए और अति शीघ्र जाकर उनमें स्थित हुए

नौषु स्थिताञ्जनान्नीत्वा नगरे तत्र तांस्तदा ॥ चिक्षिपुर्बन्धनागारे कांश्चिज्जघ्नुस्तदा हि ते ॥ ३४ ॥ यथायथा पुनः पीडां चक्रुस्ते राक्षसास्तदा॥तत्र स्थिता भवान्याश्च वरदानाच्च निर्भयाः ॥ ३५ ॥ यथा पूर्वं स्थले लोके भयं चासीन्निरन्तरम् ॥ तथा भयं जले तेषा मासीन्नित्यं मुनीश्वराः ॥ ३६ ॥ कदाचिद्राक्षसी सा च निस्सृता नगराज्जले ॥ रुद्धा मार्गं स्थिता लोकपीडार्थं धरणौ च हि ॥ ३७॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र नावो बहुतराः शुभाः॥आगता बहुधा तत्र सर्वतो लोकसंवृताः ॥ ३८ ॥ ता नावश्च तदा दृष्ट्वा हर्षं संप्राप्य राक्षसाः॥द्रुतं गत्वा हि तत्रस्थान्वेगात्संदध्रिरे खलाः ॥३९॥ आजग्मुर्नगरं ते च तानादाय महाबलाः ॥ चिक्षिपुर्बन्धनागारे बद्ध्वा हि निगडैर्दृढैः ॥४०॥ बद्धास्ते निगडैर्लोकास्संस्थिता बंधनालये ॥ अतीव दुःखमाजग्मुर्भर्त्सितास्ते मुहुर्मुहुः ॥ ४१ ॥ तेषां मध्ये च योऽधीशस्स वैश्यस्सुप्रियाभिधः ॥ शिवप्रियश्शुभाचारश्शैवश्चासीत्सदातनः ॥ ४२ ॥ विना च शिवपूजां वै न तिष्ठतिकदाचन ॥ सर्वथा शिवधर्मा हि भस्मरुद्राक्षभूषणः ॥ ४३ ॥

मनुष्योंको वेगसे पकडने लगे ॥ ३९ ॥ तब उन सब मनुष्योंको पकडकर महाबली उन राक्षसोंने अपने नगरमें लाके दृढ बंधनोंसे बांधकर कारागारमें बंद किया ॥४०॥ तब वैरियोंसे बंधे कारागारमें पड़े हुये बारंबार राक्षसोंसे डाटे हुए वे मनुष्य बडे दुःखको प्राप्त हुए ॥४१॥ उनके मध्यमें जो उनका स्वामी सुप्रियनामवाला वैश्य था वह शिवजीका बडा भक्त, श्रेष्ठ आचरणवाला सज्जन शैव था ॥४२॥ सब प्रकार शिव धर्मका पालनकर्ता भस्म रुद्राक्ष धारण करनेवाला वह सुप्रिय वैश्य किसी समयभी शिवजीके पूजनके विना नहीं रहता था ॥ ४३ ॥

जबतक शिवकी पूजा न हो तबतक वह भोजन नहीं करता था इस कारण वह वैश्य वहां (कारागारमें) भी शिवका पूजन करता था ॥ ४४ ॥ वह कारागारमें स्थित हो बहुतोंको शिक्षा देता था, हे श्रेष्ठ ऋषियो ! वह उन्हें शिवका मन्त्र तथा पार्थिव पूजा सिखलाता था ॥ ४५ ॥ तब वे सब बन्धनमें पडे हुये मनुष्य अपनी कामनाको पूर्ण करनेवाली शिवपूजाको विधिपूर्वक करते थे, जैसा कि उन्होंने देखा तथा सुनाथा ॥ ४६ ॥ उनमेंसे कोई वहां उत्तम आसन बांधके शिवके ध्यानमें स्थित होते, कोई प्रसन्नतासे मानसिक शिवपूजन करते थे ॥ ४७ ॥ हे मुनीश्वरो ! उनके स्वामी सुप्रियने वहां प्रत्यक्षही पार्थिवकी विधिसे शिवजीका पूजन किया ॥ ४८ ॥ और जो मनुष्य अधिक

यदि पूजा न जाता चेन्न भुनक्ति तदा तु सः ॥ अतस्तत्रापि वैश्योऽसौ चकार शिवपूजनम् ॥ ४४ ॥ कारागृहगतस्सोपि बहूंश्चा शिक्षयत्तदा ॥ शिवमंत्रं च पूजां च पार्थिवीमृषिसत्तमाः ॥ ४५ ॥ ते सर्वे च तदा तत्र शिवपूजां स्वकामदाम् ॥ चक्रिरे विधिव त्तत्र यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ४६ ॥ केचित्तत्र स्थिता ध्याने बद्ध्वासनमनुत्तमम् ॥ मानसीं शिवपूजां च केचिच्चक्रुर्मुदान्विताः ॥ ४७ ॥ तदधीशेन तत्रैव प्रत्यक्षं शिवपूजनम् ॥ कृतं च पार्थिवस्यैव विधानेन मुनीश्वराः ॥ ४८ ॥ अन्ये च ये न जानन्ति विधानं स्मरणं परम् ॥ नमश्शिवाय मंत्रेण ध्यायंतश्शंकरं स्थिताः ॥ ४९ ॥ सुप्रियो नाम यश्चासीद्वैश्यवर्य्यश्शिवप्रियः ॥ ध्यायंश्च मनसा तत्र चकार शिवपूजनम् ॥ ५० ॥ यथोक्तरूपी शंभुश्च प्रत्यक्षं सर्वमाददे ॥ सोपि स्वयं न जानाति गृह्यते न शिवेन वै ॥ ५१ ॥ एवं च क्रियमाणस्य वैश्यस्य शिवपूजनम् ॥ व्यतीयुस्तत्र षण्मासा निर्विघ्नेन मुनीश्वराः ॥ ५२ ॥

विधान तथा स्मरण कीर्त्तनादि नहीं जानते थे वे "नमः शिवाय" इस मन्त्रसे शिवजीके ध्यानमें स्थित हुये ॥ ४९ ॥ सुप्रियनामक जो वैश्यवर्य है वह मनसे शिवका ध्यान करता हुआ वहां शिवका पूजन करता था ॥ ५० ॥ शास्त्रोक्त रूपवाले शिवजी भी प्रत्यक्ष होके सब उपहारको ग्रहण करते थे, वह वैश्य भी स्वयं नहीं जानता कि शिवजी उपहारको ग्रहण करते हैं ॥ ५१ ॥ हे मुनीश्वरो ! इस प्रकार उस वैश्यको शिवपूजन करते करते विघ्नरहित छे महीने बीत गये ॥ ५२ ॥

हे मुनिश्रेष्ठो ! इसके आगे शिवजीका जो चरित्र हुआ सो सब सावधान चित्तसे सुनो ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च०
को० रु० नागेश्वरज्योतिर्लिङ्गमाहात्म्ये दारुकावनराक्षसोपद्रववर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ सूतजी बोले, किसी समय उस दुष्टात्मा
दारुक राक्षसके सेवकने उस वैश्यके आगे शिवजीका सुन्दर रूप देखा ॥ १ ॥ तब उनसे कौतुकसहित वह अद्भुत चरित्र यथार्थरूपसे राक्ष
सोंके राजा उस दारुकसे निवेदन किया ॥ २ ॥ उसी समय राक्षसोंका राजा वह बलवान् दारुक व्याकुल हो वहां आकर शीघ्रही उस
वैश्यसे पूंछने लगा ॥३॥ दारुक बोला, हे वैश्य ! तू क्या ध्यान करता है मेरे आगे सत्य सत्य कह सत्य सत्य बतानेसे तेरी मृत्यु नहीं होगी

अतः परं च यज्जातं चरितं शशिमौलिनः॥तच्छृणुध्वमृषिश्रेष्ठाः सावधानेन चेतसा॥५३॥इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्र
संहितायां नागेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्ये दारुकावनराक्षसोपद्रववर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥सूत उवाच ॥ कदाचित्सेवकस्त
स्य राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ तदग्रे सुंदरं रूपं शंकरस्य ददर्श ह ॥१॥ तस्मै निवेदितं राज्ञे राक्षसानां यथार्थकम् ॥ सर्वं तच्चरितं तेन
सकौतुकमथाद्भुतम् ॥२॥ राजापि तत्र चागत्य राक्षसानां स दारुकः॥ विह्वलस्सबलश्शीघ्रं पर्यपृच्छच्च तं शिवम् ॥ ३ ॥ दारुक
उवाच ॥ किं ध्यायसि हि वैश्य त्वं सत्यं वद ममाग्रतः ॥ एवं सति न मृत्युस्ते मम वाक्यं च नान्यथा ॥ ४ ॥ सूत उवाच
तेनोक्तं च न जानामि तच्छ्रुत्वा कुपितस्स वै ॥ राक्षसान्प्रेरयामास हन्यतां राक्षसा अयम् ॥५॥ तदुक्तास्ते तदा हंतुं नानायुधधरा
गताः ॥ द्रुतं तं वैश्यशार्दूलं शंकरासक्तचेतसम् ॥६॥ तानागतांस्तदा दृष्ट्वा भयविस्रस्तलोचनः ॥ शिवं सस्मार सुप्रीत्या तन्नामानि
जगौ मुहुः ॥ ७ ॥ वैश्यपतिरुवाच ॥ पाहि शंकर देवेश पाहि शंभो शिवेति च॥दुष्टादस्मात्त्रिलोकेश खलहन्भक्तवत्सल ॥८॥

नहीं तो मैं मार डालूंगा ? ॥ ४ ॥ सूतजी बोले, तब उस वैश्यने कहा मैं कुछ नहीं जानता, ऐसा सुनके वह क्रोधित हुआ और उसने
राक्षसोंको भेजा कि इस वैश्यको मारो ॥ ५ ॥ उसके कहनेपर वे राक्षस शीघ्रही अनेक शस्त्रोंको धारण कर शिवमें आसक्त चित्तवाले
उस वैश्य श्रेष्ठके मारनेको गये ॥ ६ ॥ तब उन राक्षसोंको आया हुआ देख भयसे नेत्र मूंदे हुये वह वैश्य प्रीतिसे शिवको स्मरण करने लगा
और बारम्बार उनके नामोंका कीर्त्तन करने लगा ॥ ७ ॥ वैश्यपति बोला, हे शंकर ! रक्षा करो, हे देवेश ! पालन करो, हे शम्भो !

हे शिव ! हे दुष्टोंके नाश करनेवाले ! हे भक्तवत्सल ! हे त्रिलोकेश ! इस दुष्ट राक्षससे रक्षा करो ॥ ८ ॥ हे देव ! इस समय तुमही मुझे सर्वस्व हो, हे प्रभो ! मैं तुम्हारे आधीन हूं तथा तुम्हारा हूं सर्वदा तुम्हारा प्राण हूं ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, ऐसी प्रार्थना करने पर वह शिवजी चारद्वारवाले उत्तम भवनके सहित उस विवरसे प्रगट हुए ॥ १० ॥ उसने सिंहासनके मध्यमें ज्योतिःस्वरूप शिवके रूपको परिवार सहित अद्भुत आकारसे देखकर पूजन किया ॥ ११ ॥ तब पूजित हुये सदाशिव स्वयं प्रसन्न हुये उसको अपना पाशुपतास्त्र देकर राक्षसाधिपोंको मारने लगे ॥ १२ ॥ उन सब राक्षसोंको कुटुम्ब और सेनासहित शीघ्रही मारडाला अपने भक्तकी रक्षा के कारण कि, वह सदाशिव

सर्वस्वं च भवानद्य मम देव त्वमेव हि ॥ त्वदधीनस्त्वदीयोऽहं त्वत्प्राणस्सर्वदा प्रभो ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ इति संप्रार्थित श्शंभु र्विवरान्निर्गतस्तदा ॥ भवनेनोत्तमेनाथ चतुर्द्वारयुतेन च ॥ १० ॥ मध्यज्योतिस्स्वरूपं च शिवरूपं तदद्भुतम् ॥ परिवारसमायुक्तं दृष्ट्वा चापूजयत्स वै ॥ ११ ॥ पूजितश्च तदा शंभुः प्रसन्नो ह्यभवत्स्वयम् ॥ अस्त्रं पाशुपतं नाम दत्त्वा राक्षसपुंगवान् ॥ १२ ॥ जघान सोपकरणांस्तान्सर्वान्स गणान्द्रुतम् ॥ अरक्षच्च स्वभक्तं वै दुष्टहा स हि शंकरः ॥ १३ ॥ सर्वांस्तांश्च तदा हत्वा वरं प्रादाद्व नस्य च ॥ अत्यद्भुतकरश्शंभुस्स्वलीलात्तसुविग्रहः ॥ १४ ॥ अस्मिन्वने सदा वर्णधर्मा वै संभवंतु च ॥ ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां हि तथैव च ॥ १५ ॥ भवंत्वत्र मुनिश्रेष्ठास्तामसा न कदाचन ॥ शिवधर्मप्रवक्तारश्शिवधर्मप्रवर्तकाः ॥ १६ ॥ सूत उवाच ॥ एतस्मिन्समये सा वै राक्षसी दारुकाह्वया ॥ देव्याः स्तुतिं चकारासौ पार्वत्या दीनमानसा ॥ १७ ॥ प्रसन्ना च तदा देवी किं करोमीत्युवाच हि ॥ साप्युवाच पुनस्तत्र वंशो मे रक्ष्यतां त्वया ॥ १८ ॥

दुष्टोंके मारनेवाले हैं ॥ १३ ॥ उस समय अति अद्भुत चरित्र करनेवाले अपनी इच्छासे शोभित शरीर धारण करनेवाले शिवजीने उस वनके उन संपूर्ण राक्षसोंको मारकर उस वनको वरदान दिया ॥ १४ ॥ कि इस वनमें सदा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह चारोंवर्ण अपने २ धर्मोंमें तत्पर होंगे ॥ १५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! यह निरन्तर शिवकी भक्तिमें तत्पर हुए शिवधर्मके उपदेश करनेवाले होंगे तथा तमोगुणी न होंगे ॥ १६ ॥ सूतजी बोले, इसी समयमें उस दीनमनवाली दारुकानामक राक्षसीने देवी पार्वतीकी स्तुति की ॥ १७ ॥ तब प्रसन्न हुई

पार्वतीजी उससे बोली कि मैं क्या कार्य करूं यह सुन वह राक्षसी बोली कि तुम मेरे वंशकी रक्षा करो ॥ १८ ॥ तेरे वंशकी रक्षा करूंगी यह मैं सत्य सत्य कहती हूं यह कहकर पार्वतीने शिवजीसे विग्रह किया ॥ १९ ॥ तब वरके वशीभूत हुये प्रभु सदाशिव क्रोधित हुए पार्वतीको देखकर बडी प्रीतिसे यह बोले जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो ॥ २० ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार अपने पति शिवजीका वचन सुनके प्रसन्न हुई पार्वतीजी हँसके यह वचन बोली ॥ २१ ॥ पार्वतीजी बोली, तुम्हारा वचन युगके अन्तमें सत्य होगा तबतक तामसी (तमोगुणवाली) सृष्टि उत्पन्न हो ऐसा मेरा मत है ॥ २२ ॥ हे शिवजी ! हे स्वामी ! यदि मेरे कहनेके अनुसार न होगा तो प्रलय होगी

रक्षयिष्यामि ते वंशं सत्यं च कथ्यते मया ॥ इत्युक्त्वा च शिवेनैव विग्रहं सा च कार ह ॥ १९ ॥ शिवोपि कुपितां देवीं दृष्ट्वा वरवशः प्रभुः ॥ प्रत्युवाचेति सुप्रीत्या यथेच्छसि तथा कुरु ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य स्वपतेश्शंकरस्य वै ॥ सुप्रसन्ना विहस्याशु पार्वती वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥ पार्वत्युवाच ॥ भवदीयं वचस्तथ्यं युगांते संभविष्यति ॥ तावच्च तामसी सृष्टिर्भवत्विति मतं मम ॥ २२ ॥ अन्यथा प्रलयस्स्याद्धि सत्यं मे व्याहृतं शिव ॥ प्रमाणीक्रियतां नाथ त्वदीयास्मि त्वदाश्रया ॥ २३ ॥ इयं च दारुका देवी राक्षसी शक्तिका मम ॥ बलिष्ठा राक्षसीनां च रक्षोराज्यं प्रशास्तु च ॥ २४ ॥ इमा राक्षसपत्न्यस्तु प्रसविष्यंति पुत्रकान् ॥ ते सर्वे मिलिताश्चैव वने वासाय मे मताः ॥ २५ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा पार्वत्यास्स्वस्त्रियाः प्रभुः ॥ प्रसन्नमानसो भूत्वा शंकरो वाक्यमब्रवीत् ॥ २६ ॥ शङ्कर उवाच ॥ इति ब्रवीषि त्वं वै चेच्छृणु मद्वचनं प्रिये ॥ स्थास्याम्यस्मिन्वने प्रीत्या भक्तानां पालनाय च ॥ २७ ॥

मैंने सत्य २ कहा है मेरा वचन प्रमाण करो मैं तुम्हारी ही हूं तथा तुम्हारे ही आश्रममें हूं ॥ २३ ॥ यह दारुकादेवी जो राक्षसी है वह मेरी ही शक्ति है राक्षसियोंमें बलिष्ठ हुई वह राक्षसोंमें राज्य करेगी ॥ २४ ॥ यह संपूर्ण राक्षसोंकी स्त्रियां अपने पुत्रोंको उत्पन्न करेंगी वे सब मिलके वनमें निवास करेंगे ऐसी मेरी सम्मति है ॥ २५ ॥ सूतजी बोले, प्रभु सदाशिव ऐसा अपनी स्त्री पार्वतीजीका वचन सुनके प्रसन्न चित्त हुए यह वचन बोले ॥ २६ ॥ शिवजी बोले, हे प्रिये ! यदि तुम ऐसा कहती हो तो मेरा वचन सुनो मैं

भी अपने भक्तोंके पालन करनेके निमित्त प्रीतिसे इस वनमें निवास करूंगा ॥ २७ ॥ यहांपर जो मनुष्य अपने २ वर्णोंके धर्ममें स्थित होके प्रीति सहित मेरा दर्शन करेगा वह चक्रवर्ती होगा ॥ २८ ॥ अन्यथा कलियुगकी समाप्तिमें सतयुगकी आदिमें वीरसेन नामसे प्रसिद्ध हुआ अधिक सेनायुक्त राजा होगा ॥ २९ ॥ वह मेरी भक्तिसे बढा हुआ वीरसेन मेरा दर्शन करके चक्रवर्ती राजा होगा ॥ ३० ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार वे दोनों शिव पार्वती परस्पर हास्य करके बडी लीला करनेवाले साक्षात् गिरिजा और शिवजी वहां स्थित हुए ॥३१॥ ज्योतिर्लिंग स्वरूप नागेश्वर नामसे तथा पार्वती देवी नागेश्वरी नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ३२ ॥ ऋषि बोले, हे बडी बुद्धिवाले सूतजी ! वह वीर

अत्र मे वर्णधर्मस्थो दर्शनं प्रीतिसंयुतम् ॥ करिष्यति च यो वै स चक्रवर्ती भविष्यति ॥२८॥ अन्यथा कलिपर्याये सत्यस्यादौ नृपेश्वरः ॥ महासेनयुतो यो वै वीरसेनेति विश्रुतः ॥ २९ ॥ स मे भक्त्यातिविक्रांतो दर्शनं मे करिष्यति ॥ दर्शनं मे स कृत्वैव चक्रवर्ती भविष्यति ॥३०॥ सूत उवाच ॥ ॥ इत्येवं दंपती तौ च कृत्वा हास्यं परस्परम् ॥ स्थितौ तत्र स्वयं साक्षान्महत्त्व कारकौ द्विजाः ॥ ३१ ॥ ज्योतिर्लिंगस्वरूपो हि नाम्ना नागेश्वरश्शिवः ॥ नागेश्वरी शिवा देवी बभूव च सतां प्रियौ ॥ ३२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ वीरसेनः कथं तत्र यास्यते दारुकावने ॥ कथमर्चिष्यति शिवं त्वं तद्वद महामते ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ निषधे सुंदरे देशे क्षत्रियाणां कुले च सः ॥ महासेनसुतो वीरसेनश्चैव शिवप्रियः ॥ ३४ ॥ पार्थिवेशार्चनं कृत्वा तपः परमदुष्करम् ॥ चकार वीरसेनो वै वर्षाणां द्वादशावधिः ॥३५॥ ततः प्रसन्नो देवेशः प्रत्यक्षं प्राह शंकरः ॥ काष्ठस्य मत्स्यिकां कृत्वा त्रपुधातु विलेपनाम् ॥ ३६ ॥ विधाय योगमायां च दास्यामि वीरसेनक ॥ तां गृहीत्वा प्रविश्यैतं नृभिस्सह व्रजाधुना ॥ ३७ ॥

सेन उस दारुकावनमें कैसे जायगा और किस प्रकार शिवजीको पूजेगा सो सब वर्णन करो ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले, वह शिवकी भक्ति करनेवाला महासेनका पुत्र वीरसेन राजा निषध नामवाले सुन्दर देशमें क्षत्रियोंके कुलमें उत्पन्न हुआ ॥ ३४ ॥ उस वीरसेनने पार्थिव शिव पूजा करके बारह वर्ष पर्यन्त बडा कठिन तप किया ॥ ३५ ॥ तब देवताओंके स्वामी प्रसन्न हुये सदाशिव प्रत्यक्ष होके बोले, हे वीरसेन ! रांगा धातुसे लेपन की हुई काष्ठकी मछली बनाके ॥ ३६ ॥ उसमें योगमाया करके वह तुझे दूंगा उसको ग्रहण करके मनुष्योंके साथ उस

विवरमें प्रवेश हो ॥ ३७ ॥ तब तू वहां जाके मुझसे किये हुए विवरमें प्रवेश होके नागेश्वरका पूजन करके ॥ ३८ ॥ और पाशुपत अस्त्रको पाय उन राक्षसियोंको विनाश करना उस समय मेरे दर्शन करनेपर तुम्हें किसी प्रकारकी न्यूनता न होगी ॥ ३९ ॥ तब पार्वतीका बल भी सम्पूर्ण होगा और जो उस वनमें म्लेच्छरूप राक्षस हैं वे सब सदाचारी हो जायँगे ॥ ४० ॥ सूतजी बोले, भक्तोंके दुःख दूर करने वाले प्रभु सदाशिव वीरसेन राजासे ऐसा कहके उसके ऊपर बडी कृपा करके वहां ही अन्तर्धान हुये॥४१॥ इस प्रकार परमात्मा शिवसे वर प्राप्त कर नेवाला वह वीरसेन सब कुछ करनेमें समर्थ हुआ इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार तीनों लोकोंकी कामना पूर्ण करने वाले ज्योति

ततस्त्वं तत्र गत्वा च विवरे च कृते मया ॥ प्रविश्य च तदा पूजां कृत्वा नागेश्वरस्य च ॥३८॥ ततः पाशुपतं प्राप्य हत्वा च राक्षसी मुखान् ॥ मयि दृष्टे तदा किंचिन्न्यूनं तेन भविष्यति ॥३९॥ पार्वत्याश्च बलं चैव संपूर्णं वै भविष्यति॥अन्ये च म्लेच्छरूपा ये भविष्यंति वने शुभाः ॥ ४० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र वीरसेनं हि दुःखहा॥ कृत्वा कृपां च महतीं तत्रैवांतर्दधे प्रभुः ॥४१॥ इति दत्तवरस्सोऽपि शिवेन परमात्मना॥ शक्तस्सर्वं तदा कर्तुं संबभूव न संशयः॥४२॥एवं नागेश्वरो देव उत्पन्नो ज्यो तिषां पतिः॥ लिंगरूपस्त्रिलोकस्य सर्वकामप्रदस्सदा ॥४३॥ एतद्यश्शृणुयान्नित्यं नागेशोद्भवमादरात्॥ सर्वान्कामानियाद्धीमान्म हापातकनाशनान्॥४४॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नागेश्वरज्योतिर्लिंगोद्भवमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशो ऽध्यायः ॥ ३० ॥ सूत उवाच ॥ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि लिंगं रामेश्वराभिधम् ॥ उत्पन्नं च यथा पूर्वमृषयश्शृणुतादरात् ॥ १ ॥

लिङ्गोंके स्वामी लिङ्गस्वरूप नागेश्वर देव उत्पन्न हुये ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य इस नागेशकी उत्पत्तिको नित्य श्रवण करता है वह बुद्धिमान् सब पापोंसे छूटके संपूर्ण मनोरथोंको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० नागेश्वरज्योतिर्लिङ्गोद्भव माहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ सूतजी बोले, अब इसके आगे रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिंगको वर्णन करता हूं कि वह जिस प्रकार पहले उत्पन्न हुए हे ऋषियो ! सो सब आदरसे सुनो ॥ १ ॥

पहले त्रेतायुगमें सत्पुरुषोंके रक्षक विष्णु भगवान्ने पृथिवीमें रामावतार लिया ॥ २ ॥ तब हे ब्राह्मणो ! बडी मायावाले रावणने उनकी स्त्री जानकी जीको हरण किया और उन सीताजीको अपने घर लंकापुरीमें ले गया ॥ ३ ॥ उस समय रामचन्द्रजी जानकीको ढूँढते हुये किष्किन्धापुरीको गये वहां सुग्रीवके हितकारी मित्र होके उन्होंने बालीको मारा ॥ ४ ॥ सीताजीके खोजनेमें लगे हुए रामचन्द्रजीने वहां कुछ दिनों निवास करके सुग्रीव हनुमान् आदि वानरोंके सहित तथा भाई लक्ष्मणके साथ विचार किया ॥ ५ ॥ तब उन राजपुत्र रामचन्द्रने जानकीजीको खोजनेके अर्थ हनुमान आदि वानरोंको चारों ओर भेजा ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् कपिश्रेष्ठ हनुमान्जीके मुंहसे जानकीको लंकामें प्राप्त हुई जानके

पुरा विष्णुः पृथिव्यां चावततारसतां प्रियः ॥२॥ तत्र सीता हृताविप्रा रावणेनोरुमायिना ॥ प्रापिता स्वगृहं सा हि लंकायां जनकात्मजा ॥ ३ ॥ अन्वेषणपरस्तस्याः किष्किन्धाख्यां पुरीमगात् ॥ सुग्रीवहितकृद्भूत्वा वालिनं संजघान ह ॥ ४ ॥ तत्र स्थित्वा कियत्कालं तदन्वेषणतत्परः ॥ सुग्रीवाद्यैर्लक्ष्मणेनविचारं कृतवान्स वै ॥५॥ कपीन्संप्रेषयामास चतुर्दिक्षु नृपात्मजः ॥ हनुमत्प्रमुखान्रामस्तदन्वेषणहेतवे॥ ६ ॥ अथ ज्ञात्वा गतां लंकां सीतांकपिवराननात् ॥ सीताचूडामणिं प्राप्य मुमुदे सोऽति राघवः ॥ ७ ॥ सकपीशस्तदा रामोलक्ष्मणेन युतो द्विजाः॥सुग्रीवप्रमुखैः पुण्यैर्वानरैर्बलवत्तरैः ॥८॥ पद्मैरष्टादशाख्यैश्च ययौ तीरंपयोनिधेः॥ दक्षिणे सागरे यो वै दृश्यते लवणाकरः॥९॥तत्रागत्यस्वयंरामो वेलायां संस्थितो हिसः ॥ वानरैस्सेव्यमानस्तु लक्ष्मणेन शिवप्रियः ॥१०॥ हा जानकि कुतो याता कदा चेयं मिलिष्यति॥ अगाधस्सागरश्चैवातार्यासेना च वानरी ॥ ११ ॥

सीताजीकी चूडामणि लेके वह रामचन्द्र अति प्रसन्न हुये ॥ ७ ॥ हे ब्राह्मणो ! तब वे रामचन्द्र हनुमान्जी तथा लक्ष्मण समेत, अति बलवान्, पवित्र, अठारह पद्मसंख्यक, सुग्रीव आदि वानरोंके सहित दक्षिणमें खारी समुद्रके तीरपर पहुंचे ॥ ८ ॥ ९ ॥ वहां प्राप्त होके शिवभक्तिवाले रामचन्द्रजी समुद्रके तटपर स्थित हो छोटे भाई लक्ष्मणजी तथा अनेक वानरोंसे सेवित हुये ॥ १० ॥ हा शोक ! जानकी कहां चली गई जाने कब मिलेंगी यह कैसा गहरा समुद्र है यह वानरोंकी सेना इसके तरनेमें असमर्थ है ॥ ११ ॥

वह महाबली तथा पराक्रमी पर्वत उखाडकर धारण करनेवाला रावण है इन्द्रको जीतनेवाला (मेघनाद) उस रावणका पुत्र है इस प्रकार लंकानामक बडा कठिन गढ है ॥ १२ ॥ ऐसा विचारके उन रामचन्द्रजीको लक्ष्मणके सहित समुद्रके तटपर स्थित होके वनमें निवास करनेवाले अङ्गद आदिकोंने धैर्य देकर आश्वासन दिया ॥ १३ ॥ इसी अवसरमें शैवोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रजी जल पीनेके अर्थ अपने भाई लक्ष्मणसे प्रीतिसे बोले, ॥ १४ ॥ रामचन्द्रजी बोले, हे वीरोंके स्वामी भाई लक्ष्मण ! मैं प्यासा हूं जलकी इच्छा है इससे शीघ्रही किसी वानरसे जल मंगाके पिलाओ ॥ १५ ॥ सूतजी बोले, यह सुनके वे वानर वहांसे जल लेनेको दसों दिशाओंमें गये और जल लाके वे

राक्षसो गिरिधर्त्ता च महाबलपराक्रमः॥ लंकाख्यो दुर्गमो दुर्ग इंद्रजित्तनयोस्य वै॥ १२॥ इत्येवं स विचार्यैव तटे स्थित्वा सलक्ष्मणः॥ आश्वासितो वनौकोभिरंगदादिपुरस्सरैः॥ १३॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र राघवश्शैवसत्तमः॥ उवाच भ्रातरं प्रीत्या जलार्थी लक्ष्मणाभिधम् ॥ १४ ॥ राम उवाच॥ भ्रातर्लक्ष्मण वीरेशाहं जलार्थी पिपासितः ॥ तदानय द्रुतं पाथो वानरैः कैश्चिदेव हि ॥ १५॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वानरास्तत्र ह्यधावंत दिशो दश॥ नीत्वा जलं च ते प्रोचुः प्रणिपत्य पुरः स्थिताः ॥ १६ ॥ वानरा ऊचुः ॥ जलं च गृह्यतां स्वामिन्नानीतं तत्त्वदाज्ञया ॥ महोत्तमं च सुस्वादु शीतलं प्राणतर्पणम्॥ १७ ॥ सूतउवाच॥ सुप्रसन्नतरो भूत्वा कृपादृष्ट्याविलोक्यतान् ॥ तच्छ्रुत्वा रामचन्द्रोऽसौ स्वयं जग्राह तज्जलम् ॥ १८ ॥ स शैवस्तज्जलं नीत्वा पातुमारब्धवान्यदा॥ तदा च स्मरणं जातमित्थमस्य शिवेच्छया ॥ १९॥ न कृतं दर्शनं शंभोर्गृह्यते च जलं कथम्॥ स्वस्वामिनः परेशस्य सर्वानंदप्रदस्य वै ॥ २० ॥

सब आगे स्थित हो प्रणाम करके यह बोले ॥ १६ ॥ वानर बोले, हे स्वामिन् ! जल ग्रहण करो हम आपकी आज्ञासे ले आये यह जल बडा श्रेष्ठ है अति स्वादिष्ट शीतल तथा प्राणोंको तृप्त करने वाला है ॥ १७ ॥ सूतजी बोले, यह सुनके रामचन्द्रजीने बडे प्रसन्न हो उन वानरोंको कृपा दृष्टिसे देखके स्वयं जल ग्रहण किया ॥ १८ ॥ जबहीं उन शैव रामचन्द्रजीने वह जल पीना प्रारम्भ किया तब उनको शिवकी इच्छासे यह स्मरण हुआ ॥ १९ ॥ कि अपने स्वामी, परेश, सम्पूर्ण आनन्दके देनेवाले, सदाशिवका दर्शन नहीं किया फिर

जल कैसे पीवूं ? ॥ २० ॥ ऐसा कहके उस समय रामचन्द्रजीने जल पिया पीछेसे रघुनाथजीने पार्थिव पूजन किया ॥ २१ ॥ विधि पूर्वक आवाहनादि सोलह उपचारोंकी कल्पना करके प्रीतिसे शंकरदेवकी पूजा की ॥ २२ ॥ प्रणामोंसे तथा दिव्य स्तोत्रोंसे यत्न पूर्वक शिवजीको सन्तुष्टकर बडी भक्तिसे आनन्द सहित शंकरकी प्रार्थना की ॥ २३ ॥ रामचन्द्रजी बोले, हे स्वामी ! हे शम्भो ! हे महादेव ! भक्तवत्सल ! दीन मनवाले शरणमें प्राप्त हुए मुझ अपने भक्तकी सदा रक्षा करो ॥ २४ ॥ हे भवसागरसे तारनेवाले ! यह समुद्रका जल बडा अगाध है और बडा बलवान् पराक्रमी रावण बडा प्रबल राक्षस है ॥ २५ ॥ और युद्धकी साधनरूप वानरोंकी सेना

इत्युक्त्वा च जलं पीतं तदा रघुवरेण च ॥ पश्चाच्च पार्थिवीं पूजां चकार रघुनंदनः ॥ २१ ॥ आवाहनादिकांश्चैव ह्युपचारान्प्र कल्प्य वै ॥ विधिवत्षोडश प्रीत्या देवमानर्च शङ्करम् ॥ २२ ॥ प्रणिपातैस्स्तवैर्दिव्यैश्शिवं संतोष्य यत्नतः ॥ प्रार्थयामास सद्भक्त्या स रामश्शंकरं मुदा ॥ २३ ॥ राम उवाच ॥ ॥ स्वामिञ्छंभो महादेव सर्वदा भक्तवत्सल ॥ पाहि मां शरणापन्नं त्वद्भक्तं दीनमानसम् ॥ २४ ॥ एतज्जलमगाधं च वारिधेर्भवतारण ॥ रावणाख्यो महावीरो राक्षसो बलवत्तरः ॥ २५ ॥ वानराणां बलं ह्येतच्चंचलं युद्धसाधनम् ॥ ममकार्यं कथं सिद्धं भविष्यति प्रियाप्तये ॥ २६ ॥ तस्मिन्देव त्वया कार्यं साहाय्यं मम सुव्रत ॥ साहाय्यं तेविना नाथ मम कार्य्यं हिदुर्लभम् ॥ २७ ॥ त्वदीयो रावणोऽपीह दुर्ज्जयस्सर्वथाखिलैः ॥ त्वद्दत्तवरदप्तश्च महावीरस्त्रिलोकजित् ॥ २८ ॥ अप्यहं तव दासोऽस्मि त्वदधीनश्च सर्वथा ॥ विचार्यैति त्वया कार्यः पक्षपातस्सदाशिव ॥२९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं स च संप्रार्थ्य नमस्कृत्य पुनःपुनः ॥ तदा जयजयेत्युच्चैरुद्घोषैश्शंकरेति च ॥ ३० ॥

चंचल है, मनोरथ प्राप्त होनेके निमित्त मेरा कार्य किस प्रकार सिद्ध होगा ॥ २६ ॥ हे सुव्रत ! हे देव ! इस युद्धमें आप मेरी सहायता करें, हे स्वामी ! तुम्हारी सहायताके विना मेरा कार्य दुर्लभ है ॥ २७ ॥ तुम्हारे दिये हुये वरसे अभिमानी बडा पराक्रमी तीनों लोकोंका जीतनेवाला तुम्हारा रावण सबको सब प्रकार दुर्जय है ॥२८॥ हे सदाशिव ! मैं तुम्हारा दास हूं तथा सब प्रकार तुम्हारे आधीन हूं ऐसा विचार मेरा पक्षपात करना योग्य है ॥ २९ ॥ सूतजी बोले, ऐसी प्रार्थना करके तथा बारंबार नमस्कार करके हे शंकर ! आपकी सदा जय हो

जय हो ऐसा बडे ऊंचे स्वरसे कहा ॥ ३० ॥ इस प्रकार मन्त्र तथा ध्यानमें तत्पर हुए रामचन्द्रजी वहां शिवकी स्तुति करके और फिर पूजा करके स्वामी शिवके आगे नृत्य करने लगे ॥ ३१ ॥ प्रेमसे आर्द्र हुए मनसे जब गल्लनाद (बडबड ऐसा मुंहका शब्द) किया तबहीं शंकर देव अति प्रसन्न हुए ॥ ३२ ॥ तबहीं अंगों तथा परिवार समेत ज्योतिःस्वरूप महेश्वर शास्त्रोक्त निर्मल स्वरूपको धारण करके शीघ्रही प्रगट हुए ॥ ३३ ॥ तब रामचन्द्रजीकी भक्तिसे सन्तुष्ट हुए शिवजी बोले, हे रामचन्द्र ! तुम्हारा कल्याण हो वर मांगो ऐसा कहने लगे ॥ ३४ ॥ उस समय उनका स्वरूप देखके संपूर्ण लोग स्वयं पवित्र हुए और शिवधर्ममें तत्पर हुए रामचन्द्रने उनकी पूजा

इति स्तुत्वा शिवं तत्र मंत्रध्यानपरायणः ॥ पुनः पूजां ततः कृत्वा स्वाम्यग्रे स ननर्त ह ॥ ३१ ॥ प्रेमविक्लिन्नहृदयो गल्लनादं यदा करोत् ॥ तदा च शंकरो देवस्सुप्रसन्नो बभूव ह ॥ ३२ ॥ सांगस्सपरिवारश्च ज्योतीरूपो महेश्वरः ॥ यथोक्तरूपममलं कृत्वाविरभवद्द्रुतम् ॥ ३३ ॥ ततस्संतुष्टहृदयो रामभक्त्या महेश्वरः ॥ शिवमस्तु वर ब्रूहि रामेति स तदाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ तद्रूपं च तदा दृष्ट्वा सर्वे पूतास्ततस्स्वयम् ॥ कृतवान्राघवः पूजां शिवधर्मपरायणः ॥ ३५ ॥ स्तुतिं च विविधां कृत्वा प्रणिपत्य शिवं मुदा ॥ जयं च प्रार्थयामास रावणाजौ तदात्मनः ॥ ३६ ॥ ततः प्रसन्नहृदयो रामभक्त्या महेश्वरः ॥ जयोस्तु ते महाराज प्रीत्या स पुनरब्रवीत् ॥ ३७ ॥ शिवदत्तं जयं प्राप्य ह्यनुज्ञां समवाप्य च ॥ पुनश्च प्रार्थयामास सांजलिर्नतमस्तकः ॥ ३८ ॥ ॥ राम उवाच ॥ त्वया स्थेयमिह स्वामिंल्लोकानां पावनाय च ॥ परेषामुपकारार्थं यदि तुष्टोऽसि शंकर ॥ ३९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तु शिवस्तत्र लिंगरूपोऽभवत्तदा ॥ रामेश्वरश्च नाम्ना वै प्रसिद्धो जगतीतले ॥ ४० ॥

की ॥ ३५ ॥ अनेकों स्तुति तथा प्रीतिसे शिवको प्रणाम करके रावणके संग्राममें अपनी विजयकी प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ उस समय रामचन्द्रजीकी भक्तिसे प्रसन्न हुए महेश्वर बोले, हे महाराज ! तुम्हारी जय हो ऐसा प्रीतिसे कहने लगे ॥ ३७ ॥ शिवजीके दिये विजय वर तथा आज्ञाको पाके फिर रामचन्द्रजीने माथा झुकाय हाथ जोड प्रार्थना की ॥३८॥ रामचन्द्रजी बोले, हे स्वामिन् ! हे शंकर ! यदि आप प्रसन्न हैं तो संसारके पवित्र करनेके लिये दूसरोंके उपकार करनेके अर्थ आप यहां निवास करें ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले, ऐसा सुनके शिवजी वहांपर

लिंगरूप हुए और रामेश्वर नामसे पृथिवीमें प्रसिद्ध हुये ॥ ४० ॥ रामचन्द्रजीने शिवजीके प्रताप और बलसे समुद्रको तरके शीघ्र रावण आदि राक्षसोंको मारके उन जानकीजीको प्राप्त किया ॥ ४१ ॥ भूमिमें रामेश्वरकी महिमा अति अद्भुत है वे सदा भुक्ति मुक्तिके देनेवाले तथा भक्तोंको कामना देनेवाले हैं ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य दिव्य गंगाजलसे रामेश्वर शिवको सुन्दर भक्तिसे स्नान कराता है वह जीवन्मुक्त होता है ॥ ४३ ॥ इस लोकमें देवताओंको भी दुर्लभ हुये सम्पूर्ण भोगोंको भोगके अन्तमें परम ज्ञानको पाके निश्चयही कैवल्य मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार शिवके रामेश्वर नामक दिव्य ज्योतिर्लिंगका तुमसे वर्णन किया जो इसका श्रवण करते हैं उनके पाप हरण

रामस्तु तत्प्रभावाद्वै सिन्धुमुत्तीर्य चांजसा ॥ रावणादीन्निहत्याशु राक्षसान्प्राप तां प्रियाम् ॥ ४१ ॥ रामेश्वरस्य महिमाद्भुतोऽभूद्भुवि चातुलः ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव सर्वदा भक्तकामदः ॥ ४२ ॥ दिव्यगंगाजलेनैव स्नापयिष्यति यश्शिवम् ॥ रामेश्वरं च सद्भक्त्या स जीवन्मुक्त एव हि ॥ ४३ ॥ इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्देवानां दुर्लभानपि ॥ अंते प्राप्य परं ज्ञानं कैवल्यं प्राप्नुयाद् ध्रुवम् ॥ ४४ ॥ इति वश्च समाख्यातं ज्योतिर्लिंगं शिवस्य तु ॥ रामेश्वराभिधं दिव्यं शृण्वतां पापहारकम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटि रुद्रसंहितायां रामेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ अतः परं च घुश्मेशं ज्योतिर्लिंगमुदाहृतम् ॥ तस्यैव च सुमाहात्म्यं शृणुतामृषिसत्तमः ॥ १ ॥ दक्षिणस्यां दिशि श्रेष्ठो गिरिर्देवेति संज्ञकः ॥ महाशोभान्वितो नित्यं राजतेऽद्भुत दर्शनः ॥ २ ॥ तस्यैव निकटे कश्चिद्भारद्वाजकुलोद्भवः ॥ सुधर्मा नाम विप्रश्च न्यवसद्ब्रह्मवित्तमः ॥ ३ ॥ तस्य प्रिया सुदेहा च शिवधर्मपरायणः ॥ पतिसेवापरा नित्यं गृहकर्मविचक्षणा ॥ ४ ॥

होते हैं ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को रु० रामेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठो ! पहले जो घुश्मेश नामक ज्योतिर्लिंग कहा है उसके ही माहात्म्यको अब इसके आगे वर्णन करूंगा तुम सुनो ॥ १ ॥ दक्षिण दिशाकी ओर देव नामवाला बडी शोभासे युक्त नित्य सुन्दर दर्शनवाला श्रेष्ठ पर्वत शोभित हो रहा है ॥ २ ॥ उसके निकटमें कोई भारद्वाज कुलमें उत्पन्न हुआ वेदका जाननेवाला सुधर्मा नामवाला ब्राह्मण रहता था ॥ ३ ॥ उसकी स्त्री शोभायमान शरीरवाली शिव

धर्ममें तत्पर हुई नित्य पतिकी सेवा करनेवाली घरके कार्योंमें प्रवीण थी ॥ ४ ॥ और वह सुधर्मा ब्राह्मण श्रेष्ठ देवता अतिथियोंको पूजने वाला, वेद मार्गमें तत्पर, नित्य अग्निहोत्र करनेमें तत्पर रहता था ॥ ५ ॥ तीनों कालकी संध्या करनेवाला, सूर्यके समान कांतिवाला, शिष्योंको पढानेवाला, वेद शास्त्रोंमें निपुण था ॥ ६ ॥ धनवान्, दूसरोंको दान देनेवाला, सज्जनोंके गुणोंका पात्र, शिव कर्मोंमें रुचिवाला तथा नित्य शैव पुरुषोंका सत्कार करनेवाला, शैव था ॥ ७ ॥ धर्म करते हुए उसकी बहुत आयु बीत गई उसके कोई पुत्र नहीं हुआ उसकी स्त्रीका ऋतुकाल निष्फल गया ॥ ८ ॥ इस कारण पदार्थ ज्ञानमें तत्पर हुये उस ब्राह्मणने दुःख नहीं माना कारण कि आत्माही

सुधर्मा च द्विजश्रेष्ठो देवतातिथिपूजकः ॥ वेदमार्गपरो नित्यमग्निसेवापरायणः ॥ ५ ॥ त्रिकालसंध्यया युक्तस्सूर्य्यरूपसम द्युतिः ॥ शिष्याणां पाठकश्चैव वेदशास्त्रविचक्षणः ॥ ६ ॥ धनवांश्च परो दाता सौजन्यगुणभाजनः ॥ शिवकर्मरतो नित्यं शैवश्शैवजनप्रियः ॥ ॥७॥ आयुर्बहु व्यतीयाय तस्य धर्मं प्रकुर्वतः ॥ पुत्रश्च नाभवत्तस्य ऋतुः स्यादफलःस्त्रियाः ॥ ८ ॥ तेन दुःखं कृतं नैव वस्तुज्ञानपरेण हि ॥ आत्मनस्तारकश्चात्माह्यात्मनः पावनश्च सः ॥ ९ ॥ इत्येवं मानसं धृत्वा दुखं न कृत वान्स्तदा ॥ सुदेहा च तदा दुःखं चकारपुत्रसम्भवम् ॥१०॥ नित्यं च स्वामिनं सा वै प्रार्थयद्यत्नसाधने ॥ पुत्रोत्पादनहेतोश्च सर्वविद्याविशारदम् ॥ ११ ॥ सोऽपिस्त्रियं तदाभर्त्स्य किं पुत्रश्च करिष्यति ॥ का माता कः पिता पुत्रः को बंधुश्च प्रियश्च कः ॥ १२ ॥ सर्वं स्वार्थपरं देवि त्रिलोक्यां नात्र संशयः ॥ जानीहि त्वं विशेषेण बुद्ध्या शोकं न वै कुरु ॥ १३ ॥

आत्माका तारनेवाला तथा पवित्र करनेवाला है ॥९॥ ऐसा मनमें विचार करके उस समय उसने दुःख नहीं किया परन्तु उसकी स्त्री सुदेहाने पुत्र न होनेका दुःख माना ॥ १० ॥ वह नित्यही सम्पूर्ण विद्याओंमें पंडिता अपने स्वामीसे पुत्र उत्पन्न करनेके हेतु प्रयत्न करनेकी प्रार्थना करती थी ॥ ११ ॥ वह अपनी स्त्रीको ललकारके यह कहता कि पुत्रको क्या करेगी, कौन माता है, कौन पिता है, तथा कौन पुत्र है, कौन भाई है, कौन प्रिय (मित्र) है ॥ १२ ॥ हे देवि ! तुम इस त्रिलोकीमें यह सब स्वार्थमें विशेषही तत्पर जानो इसमें कुछ संशय नहीं है इस

कारण अपनी बुद्धिसे चिन्ता मत करो ॥ १३ ॥ हे देवि ! हे शुभव्रते ! इस कारण निश्चयही तुम दुःखका त्याग करो और नित्य मुझसे पुत्रोत्पादनके उपायको कहना योग्य नहीं है ॥ १४ ॥ इस प्रकार इस स्त्रीको निवारण करके भगवान् शिवके धर्ममें तत्पर हुये तथा परम सन्तुष्ट हुये उस ब्राह्मणने दुःख द्वन्द्वको त्यागा ॥ १५ ॥ किसी समय उसकी स्त्री सुदेहा प्रिय सखियोंकी गोष्ठीमें पडोसियोंके घर गई वहां विवाद होने लगा ॥ १६ ॥ तब सुधर्माकी स्त्री सुदेहाको वहांकी स्त्रियोंने नारीस्वभावसे भर्त्सनाकी और उस सुदेहा ब्राह्मणकी स्त्रीसे दुर्वचन कहे ॥ १७ ॥ द्विज स्त्री बोली; हे अपुत्रिणि ! तू क्यों अभिमान करती है ? मैं पुत्रवाली हूं मेरे धनको मेरा पुत्र भोगेगा तेरे धनको कौन

तस्मादेवि त्वया दुखं त्यजनीयं सुनिश्चितम् ॥ नित्यं मह्यं त्वया नैव कथनीयं शुभव्रते ॥१४॥ एवं तां सन्निवार्य्यैव भगवद्धर्मत त्परः ॥ आसीत्परमसंतुष्टो द्वन्द्वदुःखं समत्यजत् ॥१५॥ कदाचिच्च सुदेहा वै गेहे च सह वासिनः ॥ जगाम प्रियगोष्ठ्यर्थं विवाद स्तत्र संगतः ॥१६॥ तत्पत्नी स्त्रीस्वभावाच्च भर्त्सिता सा तया तदा ॥ उक्ता चेति दुरुक्त्या वै सुदेहा विप्रकामिनी॥१७॥द्विज पत्न्यु वाच ॥ अपुत्रिणि कथं गर्वं कुरुषे पुत्रिणी ह्यहम् ॥ मद्धनं भोक्ष्यते पुत्रो धनं ते कश्च भोक्ष्यते ॥१८॥ नूनं हरिष्यते राजा त्वद्धनं नात्र संशयः ॥ धिग्धिक्तां ते धनं धिक्च धिक्ते मानं हि वन्ध्यके ॥ १९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ भर्त्सिता ताभिरिति सा गृहमागत्य दुःखिता ॥ स्वामिने कथयामास तदुक्तं सर्वमादरात् ॥२०॥ ब्राह्मणोऽपि तदा दुःखं न चकार सुबुद्धिमान् ॥ कथितं कथ्यतामेव यद्भावि तद्भवेत्प्रिये ॥ २१ ॥ इत्येवं च तदा तेन ह्याश्वस्तापि पुनः पुनः ॥ न तदा सात्यजद्दुःखं ह्याग्रहं कृतवत्यसौ ॥ २२ ॥

भोगेगा ॥ १८ ॥ निश्चयही तेरे धनको राजा हरण करेगा इसमें संशय नहीं हे बांझ ! तुझे धिक्कार है तथा तेरे धनको तेरे मानको भी धिक्कार है ॥ १९ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उन स्त्रियोंसे ललकारी हुई वह अपने घरमें आकर अति दुःखी हो उनसे कहे हुए सब वृत्तांतको आदरपूर्वक अपने स्वामीसे कहने लगी ॥ २० ॥ यह सुनके उस बुद्धिमान् ब्राह्मणने मनमें कुछ दुःख नहीं किया और कहा कि, हे प्रिये ! कहने दो जो होनी है वह होगी ॥ २१ ॥ इस प्रकार उस ब्राह्मणने उसे बारम्बार आश्वासन (धैर्य) दिया तो भी उसने दुःख नहीं त्यागा

और फिर भी आग्रह करने लगी ॥ २२ ॥ सुदेहा बोली, हे देहधारियोंमें श्रेष्ठपते ! जिस किसी उपायसे तुम पुत्र उत्पन्न करो, तुम मेरे प्रिय हो, नहीं तो मैं अपना शरीर त्याग करूंगी ॥ २३ ॥ सूतजी बोले उसका ऐसा वचन सुनके उसके आग्रहसे व्याकुल हुये उस सुधर्मा ब्राह्मणश्रेष्ठने मनसे शिवको स्मरण किया ॥ २४ ॥ तब आलस्यरहित उस ब्राह्मणने अग्निके आगे दो फूल फेंके और उस दक्षिणपुष्पको पुत्रकी कामना देनेवाला है ऐसा मनसे जाना ॥ २५ ॥ ऐसा प्रण करके वह ब्राह्मण अपनी स्त्रीसे बोला कि, तू पुत्रके फल पानेके निमित्त इन दोनों पुष्पोंमेंसे एक पुष्प ग्रहण कर ॥ २६ ॥ उसने ऐसा अपने मनमें विचारा कि मेरे पुत्र हो फिर यह सोचा जो पुष्प स्वामीने धारण किया है

सुदेहोवाच ॥ यथा तथा त्वया पुत्रस्समुत्पाद्यः प्रियोऽसि मे ॥ त्यक्षामि ह्यन्यथाहं च देहं देहभृतां वर ॥ २३ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्तं तया श्रुत्वा सुधर्मा ब्राह्मणोत्तमः ॥ शिवं सस्मार मनसा तदाग्रहनिपीडितः ॥२४॥ अग्नेरग्रेऽक्षिपत्पुष्पद्वयं विप्रोह्यतंद्रितः ॥ मनसा दक्षिणं पुष्पं तन्मेने पुत्रकामदम् ॥ २५ ॥ एवं कृत्वा पणं पत्नीमुवाच ब्राह्मणस्स च ॥ अनयोर्ग्राह्यमेकं ते पुष्पं पुत्र फलाप्तये ॥२६॥ तया च मनसा धृत्वा पुत्रश्चैव भवेन्मम ॥ तदा च स्वामिना यच्च धृतं पुष्पं समेतु माम् ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वा च तया तत्र नमस्कृत्य शिवं तदा ॥ नत्वा चाग्निं पुनः प्रार्थ्य गृहीतं पुष्पमेककम् ॥ २८ ॥ स्वामिना चिंतितं यच्च तद्गृहीतं तया न हि ॥ सुदेहया विमोहेन शिवेच्छासंभवेन वै॥२९॥ तद्दृष्ट्वा पुरुषश्चैव निःश्वासं पर्यमोचयत् ॥ स्मृत्वा शिवपदांभोजमुवाच निजकामिनीम् ॥३०॥ सुधर्मोवाच ॥ निर्मितं चेश्वरेणैव कथं चैवान्यथा भवेत् ॥ आशां त्यज प्रिये त्वं च परिचर्य्यां कुरु प्रभोः ॥३१॥

वह पुष्प मुझे प्राप्त हो ॥ २७ ॥ ऐसा कहके उस स्त्रीने शिवको तथा अग्निको प्रणाम और प्रार्थना करके एक पुष्प ग्रहण किया ॥ २८ ॥ उस सुदेहा स्त्रीने शिवकी इच्छासे उत्पन्न हुये मोहसे स्वामीने जो पुष्प लेना विचारा था सो नहीं लिया ॥ २९ ॥ यह देखके उस ब्राह्मणने दीर्घश्वांसली और शिवजीके चरणकमलोंको स्मरण करके अपनी स्त्रीसे बोला ॥ ३० ॥ सुधर्मा बोला, जो ईश्वरने रचा है वह अन्यथा नहीं हो सकता, हे प्रिये ! अब तू आशाको त्यागकर प्रभु शिवकी सेवा कर ॥ ३१ ॥

ऐसा कहके वह ब्राह्मण स्वयम् आशाको त्याग धर्म कार्योंमें तत्पर तथा शिवजीके ध्यानमें प्रवृत्त होगया ॥ ३२ ॥ परन्तु उस सुदेहाने पुत्रकी इच्छासे आग्रह नहीं छोडा और हाथ जोड माथा नवायके प्रेमसे अपने पतिसे कहा ॥ ३३ ॥ सुदेहा बोली, मुझमें पुत्र उत्पन्न नहीं होगा मेरी आज्ञासे तुम दूसरी स्त्री विवाहो उससे निश्चय पुत्र उत्पन्न होगा इसमें संशय नहीं ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले, उस समय अपनी स्त्रीके प्रार्थना करनेपर शैवोंमें श्रेष्ठ धर्ममें तत्पर हुये उस ब्राह्मणने उस अपनी स्त्रीसे कहा ॥ ३५ ॥ सुधर्मा बोला, हे प्रिये ! तेरा और मेरा संपूर्ण विघ्न दूर हुआ इस कारण निश्चय ही अब तू धर्ममें विघ्न मत डाल ॥ ३६ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार निवारण करनेपर वह उस समय

इत्युक्त्वा तु स्वयंविप्र आशां परिविहायच॥ धर्मकार्यरतस्सोऽभूच्छंकरध्यानतत्परः ॥३२॥ सा सुदेहाग्रहं नैव मुमोचात्मजकाम्यया ॥ प्रत्युवाच पतिं प्रेम्णा सांजलिर्नतमस्तका ॥३३॥ सुदेहोवाच ॥ मयि पुत्रो न चास्त्वन्या पत्नीं कुरु मदाज्ञया ॥ तस्यां नूनं सुतश्चैव भविष्यति न संशयः ॥३४॥ सूत उवाच ॥ तदैव प्रथितो वै स ब्रह्मणश्शैवसत्तमः ॥ उवाच स्वप्रियां तां च सुदेहां धर्मतत्परः ॥३५॥ सुधर्मोवाच ॥ त्वदीयं चमदीयं च सर्वं दुःखं गतं ध्रुवम् ॥ तस्मात्त्वं धर्मविघ्नं च प्रियो मा कुरु सांप्रतम् ॥३६॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं वारिता सा च स्वामातुः पुत्रिकां तदा ॥ गृहमानीय भर्तारं वृणु त्वेनामिदं जगौ ॥३७॥ सुधर्मोवाच ॥ इदानीं वदसि त्वं च मत्प्रियेयं ततःपुनः॥ पुत्रसूश्च यदा स्याद्वै तदा स्पर्द्धां करिष्यसि ॥३८॥ सूत उवाच॥ इत्युक्ता तेन पतिना सा सुदेहा च तत्प्रिया ॥ पुनः प्राह करौ बद्धा सुधर्माणं पतिं द्विजाः ॥३९॥ (नाहं स्पर्द्धां भगिन्या वै करिष्ये द्विजसत्तम ॥ उपयच्छस्व पुत्रार्थमिमामाज्ञापयामि च ॥) इत्येवं प्रार्थितस्सोऽपि सुधर्मा प्रिययातया ॥ घुश्मां तां समुपायंस्त विवाहविधिना द्विजः॥४०॥

अपनी बहिनको घर लाके अपने पतिसे बोली तुम इससे विवाह करो ॥ ३७ ॥ सुधर्मा बोला, हे प्रिये ! इसी समय तू ऐसा कह रही है, इसके पीछे जब यह मेरी स्त्री होगी और जब पुत्रवती होगी तब इर्षा करने लगेगी ॥ ३८ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! उस पतिके ऐसा कहनेपर उसकी स्त्री सुदेहा हाथ जोड कर फिर अपने पति सुधर्मासे बोली ॥ ३९ ॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! मैं इस बहिनसे किसी प्रकार ईर्षा नहीं करूंगी तुम अवश्य पुत्र उत्पन्न होनेके निमित्त इसे विवाह लो मैं आज्ञा देती हूं इस प्रकार उस स्त्रीके प्रार्थना करनेपर उस

सुधर्मा ब्राह्मणने विवाहकी विधिसे उस घुश्मा कन्याको विवाहा ॥ ४० ॥ और उसको व्याहके पूर्व स्त्रीसे बोला, हे प्रिये ! हे अनघे ! यह तेरी छोटी बहिन हैं इसका अवश्य पोषण पालन करना उचित है ॥ ४१ ॥ ऐसा कहके वह धर्मात्मा शैवोंमें श्रेष्ठ सुधर्मा शीघ्र यथा योग्य अपने धर्मका संग्रह करने लगा ॥ ४२ ॥ उस स्त्रीने भी अपनी छोटी बहिनके साथ दासीके समान वर्ताव किया और विरोध भावको छोडके रात दिन उसकी सेवा की ॥ ४३ ॥ जो कनिष्ठा स्त्री थी वह अपनी बहिनकी आज्ञा पाय शीघ्र ही नित्य एक सौ एक पार्थिव लिंग बनाने लगी ॥ ४४ ॥ और वह घुश्मा शास्त्रोक्त विधान सहित सोलह उपचारों समेत उनका पूजन करके समीपमें स्थित हुये सरोवरमें सिरा देती

ततस्तां परिणीयाथ प्रार्थयामास तां द्विजः ॥ त्वदीयेयं कनिष्ठा हि सदा पोष्यानघे प्रिये ॥४१॥ उक्त्वैव स च धर्मात्मा सुधर्मा शैवसत्तमः ॥ यथायोग्यं चकाराशु धर्मसंग्रहमात्मनः ॥४२॥ सा चापि मातृपुत्रीं तां दासीवत्पर्यवर्त्तत ॥ परित्यज्य विरोधं हि पुपोषाहर्निशं प्रिया ॥४३॥ कनिष्ठा चैव या पत्नी स्वस्रनुज्ञामवाप्य च ॥ पार्थिवान्सा चकाराशु नित्यमेकोत्तरं शतम् ॥४४॥ विधानपूर्वकं घुश्मा सोपचारसमन्वितम् ॥ कृत्वा तान्प्राक्षिपत्तत्र तडागे निकटस्थिते ॥ ४५ ॥ एवं नित्यं सा चकार शिव पूजां स्वकामदाम् ॥ विसृज्य पुनरावाह्य तत्सपर्य्याविधानतः ॥ ४६ ॥ कुर्वन्त्या नित्यमेवं हि तस्याश्शंकरपूजनम् ॥ लक्ष संख्याभवत्पूर्णा सर्वकामफलप्रदा ॥ ४७ ॥ कृपया शंकरस्यैव तस्याः पुत्रो व्यजायत ॥ सुन्दरस्सुभगश्चैव कल्याणगुण भाजनम् ॥ ४८ ॥ तं दृष्ट्वा परमप्रीतः स विप्रो धर्मवित्तमः ॥ अनासक्तस्सुखं भेजे ज्ञानधर्मपरायणः ॥ ४९ ॥

थी ॥ ४५ ॥ इस प्रकार वह नित्य विसर्जन करके फिर आवाहन करके उनकी पूजा विधिसे अपनी इच्छा पूर्ण करनेवाली शिवकी अर्चना करती थी ॥ ४६ ॥ इस प्रकार नित्य शंकरका पूजन करते हुए उसे बहुत समय बीत गया और संपूर्ण कामनाके फल देनेवाली लक्ष संख्या पूर्ण हुई ॥ ४७ ॥ तब शिवजीकी कृपासे उसके सर्वांग सुंदर भाग्यवान् कल्याण और गुणोंका पात्र श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ४८ ॥ उस पुत्रको देख बहुत प्रसन्न होकर भी वह धर्मात्मा सुखोंमें आसक्त न हुआ ज्ञान और धर्ममें परायण वह ब्राह्मण बडा

आनंदित हुआ ॥ ४९ ॥ तबसे वह सुदेहा उस घुश्मासे बडी ईर्षा करने लगी जो उसका हृदय पहले शीतल था वह फिर तलवारके समान होगया ॥ ५० ॥ हे मुनीश्वरो ! इसके आगे जो दुःखदाई कुत्सित कर्म हुआ उसे सावधान मनसे श्रवण करो ॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० घुश्मेश्वरमाहात्म्ये सुदेहासुधर्मचरितवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले, कनिष्ठा (छोटी बहिन) के पुत्रको देखके बडी बहिन बडी दुःखी हुई और उसके सुखको न सहन कर वह उसके साथ विरोध करने लगी ॥ १ ॥ निरन्तर सब मनुष्य पुत्रवती उस घुश्माकी प्रशंसा करते उस समय वह उसकी प्रशंसा तथा पुत्रके रूपादिको न सहती ॥ २ ॥ माता पिताके

सुदेहा तावदस्यास्तु स्पर्द्धामुग्रां चकार सा ॥ प्रथमं शीतलं तस्या हृदयं ह्यसिवत्पुनः ॥५०॥ ततः परं च यज्जातं कुत्सितं कर्म दुःखदम् ॥ सावधानेनमनसा श्रूयतां तन्मुनीश्वरा ॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायांघुश्मेश्वरमाहात्म्ये सुदेहासुधर्मचरितवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ सूत उवाच ॥ पुत्रं दृष्ट्वा कनिष्ठाया ज्येष्ठा दुःखमुपागता ॥ विरोधं सा चकाराशु न सहती च तत्सुखम् ॥ १ ॥ सर्वं पुत्रप्रसूतिं तां प्रशशंसुर्निरन्तरम् ॥ तया तत्सह्यते न स्म शिशो रूपादिकं तथा ॥२॥ सुप्रियं तनयं तं च पित्रोस्सद्गुणभाजनम् ॥ दृष्ट्वाऽभवत्तदा तस्या हृदयं तप्तमग्निवत् ॥ ३ ॥ एतस्मिन्नंतरे विप्राः कन्यां दातुं समागताः ॥ विवाहं तस्य तत्रैव चकार विधिवच्च सः ॥४॥ सुधर्मा घुश्मया सार्द्धमानन्दं परमं गतः ॥ सर्वे संबन्धिनस्तस्यांघुश्मायां मानमादधुः ॥ ५ ॥ तं दृष्ट्वा सा सुदेहा हि मनसि ज्वलिता तदा ॥ अत्यन्तं दुःखमापन्ना हा हता स्मीति वादिनी ॥ ६ ॥ सुधर्म्मा गृहमागत्य वधूं पुत्रं विवाहितम् ॥ उत्साहं दर्शयामास प्रियाभ्यां हर्षयन्निव ॥ ७ ॥

श्रेष्ठ गुणोंके पात्ररूप अति प्रिय उस पुत्रको देखके उसका हृदय प्रज्वलित हुई अग्निके समान हो गया ॥ ३ ॥ इसी अवसरमें उसके बडे होनेपर वहांके ब्राह्मण उसे अपनी कन्या देनेको आये तब सुधर्माने उसका विवाह विधिपूर्वक वहां ही किया ॥ ४ ॥ वह सुधर्मा उस घुश्मा स्त्रीके साथ बडे आनन्दको प्राप्त हुये सम्पूर्ण सम्बन्धी उस घुश्माका सन्मान करने लगे ॥ ५ ॥ तब उसे देख वह सुदेहा मनमें जलती हुई अति दुःखको प्राप्त हुई हा शोक ! मैं मरी ऐसा कहने लगी ॥ ६ ॥ सुधर्माने घर आके बहूको तथा विवाहित पुत्रको देख

अपनी स्त्रीसमेत हर्षकर उत्साहको दिखाया ॥ ७ ॥ उस समय घुश्मा अति प्रसन्न हुई और सुदेहा बडे दुःखको प्राप्त हुई उसके सुखको न सह दुःख करके वह वह भूमिपर गिरी ॥ ८ ॥ तब घुश्माने उससे कहा कि यह दोनों बहू बेटे तुम्हारेही हैं मेरे नहीं हैं और वह बहू तथा बेटा भी प्रीतिसे उसको सास, माता मानते हैं ॥ ९ ॥ स्वामी सुधर्मा भी उस ज्येष्ठाको प्यारी मानता था, कनिष्ठाको नहीं मानता, तो भी वह ज्येष्ठा अपने हृदयमें द्वेषसहित रहती ॥ १० ॥ एक दिन दुःखी हुई ज्येष्ठा सुदेहाने यह अपने मनमें विचाराकी, दुःखोंकी शान्ति किस प्रकार होगी ॥ ११ ॥ सुदेहा बोली, मेरे हृदयकी अग्नि दुःखसे उत्पन्न हुये घुश्माके आंसुओंसे निश्चयही शान्त होगी और कोई उपाय

अभवद्धर्षिता घुश्मा सुदेहा दुःखमागता॥ नसहंती सुखं तच्च दुःखं कृत्वापतद्भुवि॥८॥घुश्माऽवदद्धधूपुत्रौ त्वदीयौ न मदीयकौ ॥ वधूः पुत्रश्च तां प्रीत्या प्रसूं श्वश्रूममन्यत॥९॥ भर्त्ता प्रियां तांज्येष्ठां च मेने नैवकनिष्ठिकाम् ॥ तथापि सा तदा ज्येष्ठा स्वान्तर्मलवती ह्यभूत् ॥१०॥ एकस्मिन्दिवसे ज्येष्ठा सा सुदेहा चदुःखिनी॥हृदये संचिचिन्तेतिदुःखशांतिः कथं भवेत्॥११॥ सुदेहोवाच॥मदीयो हृदयाग्निश्चघुश्मानेत्रजलेन वै॥ भविष्यति ध्रुवं शांतोनान्यथा दुःखजेनहि॥१२॥ अतोऽहं मारयाम्यद्य तत्पुत्रं प्रियवादिनम् ॥ अग्रे भावि भवेदेवं निश्चयः परमो मम॥१३॥सूत उवाच ॥कदर्य्याणां विचारश्च कृत्याकृत्ये भवेन्नहि॥ कठोरः प्रायशो विप्राः सापत्नो भाव आत्महा ॥१४॥ एकस्मिन्दिवसे ज्येष्ठा सुतं पुत्रं वधूयुतम् ॥ चिच्छिदे निशि चांगेषु गृहीत्वा छुरिकां च सा ॥ १५ ॥ सर्वांगं खण्डयामास रात्रौ घुश्मासुतस्यसा ॥ नीत्वा सरसितत्रैवाक्षिपद्दृता महाबला ॥१६॥

नहीं ॥१२॥ इस कारण आज मैं मधुर भाषण करनेवाले उसके पुत्रको मारूंगी आगे जो होनी है सो होगी, ऐसा मेरा दृढ संकल्प है ॥१३॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! कपटी पुरुषोंका विचार कर्तव्य अकर्तव्यमें नहीं होता है कारण कि सापत्न (सौत) विशेषकर कठोर तथा आत्मघात करनेवाला होता है ॥ १४ ॥ एक दिन उस ज्येष्ठाने छुरी लेकर रात्रिमें बहूके साथ सोते हुये उस पुत्रके अङ्गोंको छेदन कर उसे मारा ॥ १५ ॥ और अहंकारिणी उस महा अबलाने रात्रिमें घुश्माके पुत्रके सम्पूर्ण अङ्गोंको खण्ड खण्ड किया और उसी

समय सरोवरपर लेजाके वहां फेंक दिया ॥ १६ ॥ जहां घुश्मा नित्य ज्योतिर्लिंगोंको सिराती थी वहां ही उसे फेंकके लौट आई और सुखसे सो गई ॥ १७ ॥ प्रातःकाल घुश्माने उठकर नित्य कर्म किये तथा श्रेष्ठ सुधर्माने भी स्वयं नित्य कर्म किये ॥ १८ ॥ इसी अवसरमें आनन्द सहित हृदयकी अग्नि शांत होने पर वह ज्येष्ठा घरके कार्यको करने लगी ॥ १९ ॥ प्रातःकाल उठके वह बहू रुधिरसे सनी तथा देहखंडोंसे युक्त हुई खाटको देखके बडे दुःखको प्राप्त हुई ॥ २० ॥ उसने अपनी साससे निवेदन किया कि तेरा पुत्र कहां गया शय्या रुधिरमें सनी है और वहां देहके खण्ड दीख पडते हैं ॥ २१ ॥ हे पवित्र व्रतवाली ! हाय ! हाय ! मैं मर गई यह ऐसा दुष्ट कार्य किसने

यत्र क्षिप्तानि लिंगानि घुश्मया नित्यमेव हि॥तत्र क्षिप्त्वा समायाता सुष्वाप सुखमागता ॥१७॥ प्रातश्चैव समुत्थाय घुश्मा नित्यं तथाकरोत् ॥ सुधर्मा च स्वयं श्रेष्ठो नित्यकर्म समाचरत् ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नंतरे सा च ज्येष्ठा कार्यं गृहस्य वै ॥ चकारानन्दसंयुक्ता सुशांतहृदयानला ॥१९॥ प्रातःकाले समुत्थाय वधूश्शय्यां विलोक्य सा ॥ रुधिरार्द्रां देहखंडैर्युक्तां दुःख मुपागता ॥ २० ॥ श्वश्रूंनिवेदयामास पुत्रस्ते च कुतो गतः ॥ शय्या च रुधिरार्द्रा वै दृश्यंते देहखंडकाः ॥ २१ ॥ हाहतास्मि कृतं केन दुष्टं कर्म शुचिव्रते ॥ इत्युच्चार्य रुरोदाति विविधं तत्प्रिया च सा ॥ २२ ॥ ज्येष्ठा दुःखं तदापन्ना हाहतास्मि किलेति च ॥ बहिर्दुःखं चकारासौ मनसा हर्षसंयुता ॥ २३ ॥ घुश्मा चापि तदा तस्या वध्वा दुखं निशम्य सा ॥ न चचाल व्रतात्तस्मान्नित्य पार्थिवपूजनात् ॥ २४ ॥ मनश्चैवोत्सुकं नैव जातं तस्या मनागपि ॥ भर्तापि च तथैवासीद्यावद्व्रतविधिर्भवेत् ॥ २५ ॥ मध्या ह्नेपूजनांते च दृष्ट्वा शय्यां भयावहाम् ॥ तथापि न तदाकिञ्चित्कृतं दुःखं हि घुश्मया ॥ २६ ॥

किया, ऐसा कहकर वह उसकी स्त्री अति विलाप करके रोने लगी ॥ २२ ॥ उस समय ज्येष्ठा भी दुःखी हुई बोली, हा शोक ! मैं नष्ट हुई इस प्रकार वह बाहरसे दुःख करती तथा मनमें प्रसन्नताको प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ तब उस बधूके दुःखको सुनके वह घुश्मा नित्यके पार्थिव पूजनरूप उस व्रतसे चलायमान न हुई ॥ २४ ॥ उसका मन थोडा भी पुत्रशोकमें उत्कंठित नहीं हुआ तथा उसका पति भी वैसाही स्थित रहा जबतक व्रतकी विधि समाप्त हुई ॥ २५ ॥ पूजन करनेके पश्चात् मध्याह्न कालमें उस भयानक शय्याको देखा तौभी उस घुश्माने

कुछ दुःख नहीं किया ॥ २६ ॥ यह विचारा कि जिसने उसे दिया है वहही उसकी रक्षा करेगा कारण कि वह भक्तोंके दया करनेवाले तथा कालके काल सत्पुरुषोंके गति हैं ऐसा विख्यात है ॥ २७ ॥ यदि हमारी रक्षा करनेवाले ईश्वर प्रभु एकमात्र वह शंभु हैं तो क्या चिन्ता है ? कारण कि वह सदाशिव मालीके समान जिसको लगाते हैं उसको अलग भी करते हैं ॥ २८ ॥ अब मेरी चिन्ता करनेसे क्या फल ? ऐसा तत्त्व विचारके उस समय शिवजीके विषेधैर्य करके कुछ दुःख नहीं किया ॥ २९ ॥ पहलेके समान स्वस्थ चित्त हो वह पार्थिव लिंगोंको लेके शिवके नामोंका उच्चारण करती सरोवरके तीरमें गई ॥ ३० ॥ वहां पर पार्थिव लिंगोंको चढाके जब वह लौटी तबहीं उसने

येनैव चार्पितश्चायं स वै रक्षां करिष्यति॥भक्तप्रियस्स विख्यातः कालकालस्सतां गतिः ॥२७॥ यदि नोरक्षिता शंभुरीश्वरः प्रभु रेकलः ॥ मालाकार इवासौ यान्युङ्क्ते तान्वियुनक्ति च ॥२८॥ अद्य मे चिंतया किंस्यादिति तत्त्वं विचार्य सा ॥ न चकार तदा दुःखं शिवे धैर्यं समागता ॥२९॥ पार्थिवांश्च गृहीत्वा सा पूर्ववत्स्वस्थमानसा ॥ शंभोर्नामान्युच्चरंती जगाम सरसस्तटे ॥३०॥ क्षिप्त्वा च पार्थिवांस्तत्र परावर्त्तत सा यदा॥तदा पुत्रस्तडागस्थो दृश्यते स्म तटे तया॥३१॥पुत्र उवाच॥मातरेहि मिलिष्यामि मृतोऽहं जीवितोऽधुना ॥ तव पुण्यप्रभावाद्धिकृपया शंकरस्य वै ॥३२॥ ॥ सूत उवाच॥ जीवितं तं सुतं दृष्ट्वा घुश्मा सा तत्प्रसू द्विजाः ॥ प्रहृष्ट्वा नाभवत्तत्र दुःखिता न यथा पुरा ॥३३॥ एतस्मिन्समये तत्र स्वाविरासीच्छिवो द्रुतम् ॥ ज्योतिरूपो महेशश्च संतुष्टः प्रत्युवाच ह ॥३४॥ शिव उवाच॥ प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि दुष्टयामारितोह्ययम् ॥ एनां च मारयिष्यामि त्रिशूलेन वरानने ॥ ३५ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ घुश्मा तदा वरं वव्रे सुप्रणम्य शिवं नता ॥ रक्षणीया त्वया नाथ सुदेहेयं स्वसा मम ॥ ३६ ॥

तालावके किनारे स्थित हुये पुत्रको देखा ॥ ३१ ॥ पुत्र बोला, हे माता ! आओ मैं मिलूंगा तुम्हारे पुण्यके प्रतापसे तथा सदाशिवकी कृपासे अब मैं जीगया ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! उस पुत्रको जीवित हुआ देख उसकी माता घुश्मा न प्रसन्न हुई न दुःखित हुई किन्तु जैसी पहले भी उसी प्रकार रही ॥ ३३ ॥ इसी समय वहां ज्योतिस्स्वरूप महेश्वर सन्तुष्ट हो शीघ्रही प्रगट हुए और बोले ॥ ३४ ॥ शिवजी बोले हे वरानने मैं प्रसन्न हूं वर मांग उस दुष्टा सुदेहाने इस पुत्रको मारा था उसे मैं त्रिशूलसे मारूंगा ॥ ३५ ॥ सूतजी बोले,

तब घुश्माने शिर नवाय शिवको प्रणाम करके वर मांगा कि, हे स्वामी ! उस मेरी बहिन सुदेहाकी रक्षा करो ॥ ३६ ॥ शिवजी बोले उसने तेरा अपकार किया फिर तू उसका उपकार क्यों करती है ? कारण कि वह दुष्टा सुदेहा मारने योग्य है ॥ ३७ ॥ घुश्मा बोली, हे सदाशिव ! तुम्हारे दर्शन मात्रसे पाप दूर होता है इस समय तुमको देखके उसका पाप भस्म हो जायगा ॥ ३८ ॥ जो पुरुष हानि करने वालोंके साथ भलाई करता है उसके दर्शन मात्रसे पाप नष्ट हो जाता है ॥ ३९ ॥ हे देव ! हे सदाशिव ! ऐसा मैंने भगवान्का सुन्दर वचन सुना है, इस कारण जिसने ऐसा किया है तो करने दो ॥ ४० ॥ सूतजी बोले, उस घुश्माके ऐसा कहने पर अति प्रसन्न हुए

शिव उवाच ॥ अपकारः कृतस्तस्यामुपकारः कथं त्वया ॥ क्रियते हननीया च सुदेहा दुष्टकारिणी ॥३७॥ घुश्मोवाच ॥ तव दर्श नमात्रेण पातकं नैव तिष्ठति ॥ इदानीं त्वां च वैदृङ्मा तत्पापं भस्मतां व्रजेत् ॥३८॥ अपकारेषु यश्चैव ह्युपकारं करोति च ॥ तस्य दर्शनमात्रेण पापं दूरतरं व्रजेत्॥३९॥इति श्रुतं मया देव भगवद्वाक्यमद्भुतम् ॥ तस्माच्चैवं कृतं येन क्रियतां च सदाशिव ॥४०॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तु तया तत्रप्रसन्नोऽत्यभवत्पुनः ॥ महेश्वरः कृपासिंधुः समूचे भक्तवत्सलः॥४१॥शिव उवाच ॥ अन्यद्वरं ब्रूहि घुश्मे ददामि च हितं तव ॥ त्वद्भक्त्या सुप्रसन्नोऽस्मि निर्विकारस्वभावतः ॥४२॥ सूत उवाच ॥ सोवाच तद्वच श्श्रुत्वा यदि देयो वरस्त्वया ॥ लोकानां चैव रक्षार्थमत्र स्थेयं मदाख्यया ॥४३॥ तदोवाच शिवस्तत्र सुप्रसन्नो महेश्वरः ॥ स्थास्येऽत्र तव नाम्नाहं घुश्मे शाख्यस्सुखप्रदः ॥ ४४ ॥ घुश्मेशाख्यं सुप्रसिद्धं लिंगं मे जायतां शुभम् ॥ इदं सरस्तु लिंगानामालयं जायतां सदा ॥ ४५ ॥

दयासागर भक्तवत्सल महेश्वर यह वचन बोले, ॥ ४१ ॥ शिवजी बोले, हे घुश्मे ! और कोई वर मांग तेरे मनोवांछित फलको दूंगा मैं तेरी भक्तिसे तथा विकारहीन स्वभावसे अति प्रसन्न हूं ॥ ४२ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार शिवजीकावचन सुनके वह बोली, हे नाथ ! यदि तुम मुझे वर देना चाहते हो तो आप संसारकी रक्षाके अर्थ मेरी प्रार्थनासे यहां ही निवास करें ॥ ४३ ॥ उस समय वहां अति प्रसन्न हुए शिवजी बोले कि, तुम्हारे नामसे (घुश्मेश नामसे) प्रसिद्ध हुआ मैं यहां निवास करूंगा ॥ ४४ ॥ यह मेरा घुश्मेश नामक शुभ ज्योति

लिंङ्ग प्रसिद्ध हो जाय तथा यह सरोवर सदा ज्योतिर्लिङ्गोंका स्थान होगा ॥ ४५ ॥ इस कारण यह सरोवर शिवालयनामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगा और दर्शन करनेसे संपूर्ण कामनाओंका देनेवाला होगा ॥ ४६ ॥ हे सुव्रते ! तुम्हारे वंशमें एकसौ एक पीढी तक ऐसेही श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होंगे इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ४७ ॥ तथा सुन्दर स्त्रीवाले अतिधनी बडी अवस्थावाले बडे प्रवीण विद्यावाले बडे उदार पुत्र भुक्ति मुक्ति फलके भागी होंगे ॥ ४८ ॥ एकसौ एक पीढी तक अधिक गुणी सन्तान होंगी, इसी प्रकार तेरे शोभायमान वंशका विस्तार होगा ॥ ४९ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहकर शिवजी वहां लिंगस्वरूप हुये और घुश्मेश नामसे विख्यात हुये तथा वह सरोवर शिवालय नामसे

तस्माच्छिवालयं नाम प्रसिद्धं भुवनत्रये॥ सर्वकामप्रदं ह्येतद्दर्शनात्स्यात्सदा सरः ॥४६॥तव वंशे शतं चैकं पुरुषावधि सुव्रते ॥ ईदृशाः पुत्रकाः श्रेष्ठा भविष्यंति न संशयः ॥४७॥ सुस्त्रीकास्सुधनाश्चैव स्वायुष्याश्च विचक्षणाः ॥ विद्यावंतो ह्युदाराश्च भुक्तिमु क्तिफलाप्तये ॥४८॥ शतमेकोत्तरं चैव भविष्यंति गुणाधिकाः॥ ईदृशो वंशविस्तारो भविष्यति सुशोभनः ॥४९॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा च शिवस्तत्र लिंगरूपोऽभवत्तदा ॥ घुश्मेशो नाम विख्यातः सरश्चैव शिवालयम् ॥ ५० ॥ सुधर्मा स चघुश्मा च सुदेहा च समागताः ॥ प्रदक्षिणं शिवस्याशु शतमेकोत्तरं दधुः ॥ ५१ ॥ पूजां कृत्वा महेशस्य मिलित्वा च परस्परम् ॥ हित्वा चांतर्मलं तत्र लेभिरे परमं सुखम् ॥ ५२ ॥ पुत्रं दृष्ट्वा सुदेहा सा जीवितं लज्जिताभवत् ॥ तौ क्षमाप्याचरद्विप्रा निजपा पापहं व्रतम् ॥ ५३ ॥ घुश्मेशाख्यमिदं लिंगमित्थं जातं मुनीश्वराः ॥ तद्दृष्ट्वा पूजयित्वा हि सुखं सवर्द्धते सदा ॥ ५४ ॥

विख्यात हुआ ॥ ५० ॥ उस समय सुधर्मा तथा घुश्मा सुदेहा यह सब वहां आये और एकसौ एक बार शिवजीकी परिक्रमाकी ॥ ५१ ॥ शिवजीका पूजन करके तथा परस्पर मिलके वहां मनकी मलिनताको त्यागन करके परम सुखको प्राप्त हुये ॥ ५२ ॥ उस समय वह सुदेहा पुत्रको जीवित हुआ देखके बडी लज्जित हुई हे विप्रो ! उसने उन दोनोंसे क्षमा मांगके अपने पापोंका दूर करनेवाला व्रत (प्रायश्चित्त) किया ॥ ५३ ॥ हे मुनीश्वरो ! इस प्रकार घुश्मेशनामक ज्योतिर्लिङ्ग उत्पन्न हुआ उनके दर्शन तथा पूजन करके सदा सुखकी वृद्धि होती

है ॥५४॥ हे ऋषियो ! इस प्रकार मैंने बारह संख्यावाली ज्योतिर्लिंगावली तुमसे कही यह सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाली तथा भोग और मुक्ति की देनेवाली है ॥ ५५ ॥ जो मनुष्य ज्योतिर्लिङ्ग सम्बन्धी कथाको पढता है अथवा सुनता है वह सब पापोंसे छूटकर भुक्ति तथा मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० घुश्मेशज्योतिर्लिंगोत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ इति द्वादश ज्योतिर्लिंगमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ व्यासजी बोले, ऐसा उन सूतजीका वचन सुनके मुनीश्वर लोकोंके हितकी कामनासे सूतजीकी प्रशंसा करके उनसे यह वचन बोले, ॥ १ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! हे प्रभो ! तुम सब कुछ जानते हो इस कारण हम पूंछते हैं

इति वश्च समाख्याता ज्योतिर्लिंगावली मया ॥ द्वादशप्रमिता सर्वकामदा भुक्ति मुक्तिदा ॥ ५५ ॥ एतज्ज्योतिर्लिंगकथां यः पठेच्छृणुयादपि ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां घुश्मेशज्योतिर्लिंगोत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ इति द्वादशज्योतिर्लिंगमाहात्म्यं समाप्तम्॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य सूतस्य चमुनीश्वराः ॥ समूचुस्तं सुप्रशस्य लोकानां हितकाम्यया॥ १ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत सर्वं विजानासि ततः पृच्छामहे वयम् ॥ हरीश्वरस्य लिंगस्य महिमानं वद प्रभो ॥ २ ॥ चक्रं सुदर्शनं प्राप्तं विष्णुनेति श्रुतं पुरा ॥ तदाराधनतस्तात तत्कथा च विशेषतः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ श्रूयतां च ऋषिश्रेष्ठा हरीश्वरकथा शुभा ॥ यतस्सुदर्शनं लब्धं विष्णुना शंकरात्पुरा ॥ ४ ॥ कस्मिंश्चित्समये दैत्याः संजाता बलवत्तराः ॥ लोकांस्ते पीडयामासुर्धर्मलोपं च चक्रिरे ॥ ॥ ५ ॥ ते देवाः पीडिता दैत्यैर्महाबलपराक्रमैः ॥ स्वं दुखंकथयामासुर्विष्णुं निर्जररक्षकम् ॥ ६ ॥

अब आप हरीश्वर नामवाले ज्योतिर्लिंगके माहात्म्यको कहिये ॥ २ ॥ हे तात ! शिवजीकी आराधनासे पहले विष्णुजीने सुदर्शनचक्र प्राप्त किया है उसकी विशेष कथा सुनाओ ॥ ३ ॥ सूतजी बोले, हे ऋषिश्रेष्ठो ! हरीश्वरकी शुभ कथा सुनो जिन शंकरसे विष्णुने पूर्वमें सुदर्शन चक्र प्राप्त किया था ॥ ४ ॥ एक समय दैत्य अति बलवान होगये और वे सब मनुष्योंको पीडा देने लगे तथा धर्मका लोप करने लगे ॥ ५ ॥ तब उन महाबली पराक्रमी दैत्योंसे पीडित हुये देवताओंने उनकी रक्षा करनेवाले विष्णुसे अपना दुःख कहा ॥ ६ ॥

देवता बोले, हे प्रभो ! आप दया करो हमें दैत्योंने अति पीडित किया है कहां जायँ ? क्या करें अपनी शरणमें प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ दुःखी हुये देवताओंका ऐसा वचन सुनके शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके विष्णुजी यह वचन बोले ॥ ८ ॥ विष्णुजी बोले, हे देवताओ ! मैं शिवजीकी आराधना करके तुम्हारा कार्य करूंगा यह बलवान् शत्रु उद्योगसे अवश्यही जीतने योग्य है ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, तब सामर्थ्यवान् विष्णु भगवान्के ऐसा कहनेपर वे सम्पूर्ण देवता दुष्ट दैत्योंको मरा हुआ जान अपने २ स्थानोंको चले गये ॥ १० ॥ विष्णुजी भी देवताओंके विजय लाभके अर्थ समस्त देवताओंके स्वामी सबके साक्षी अविनाशी शिवका भजन करने लगे ॥ ११ ॥

देवा ऊचुः ॥ कृपां कुरु प्रभो त्वं च दैत्यैस्संपीडिता भृशम् ॥ कुत्र यामश्च किं कुर्मश्शरण्यं त्वां समाश्रिताः ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा देवानां दुखितात्मनाम् ॥ स्मृत्वा शिवपदांभोजं विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥ विष्णुरुवाच ॥ करिष्यामि च वः कार्य्यमाराध्य गिरिशं सुराः ॥ बलिष्ठाश्शत्रवो ह्येते विजेतव्याः प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तास्ते सुरास्सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ मत्वा दैत्यान्हतान्दुष्टान्ययुर्धाम स्वकंस्वकम् ॥१०॥ विष्णुरप्यमराणां तु जयार्थमभजच्छिवम्॥सर्वामराणामधिपं सर्वसाक्षिणमव्ययम्॥११॥गत्वा कैलासनिकटे तपस्तेपे हरिस्स्वयम् ॥ कृत्वा कुंडं च संस्थाप्य जातवेदसमग्रतः॥१२॥पार्थिवेन विधानेन मंत्रैर्नानाविधैरपि॥स्तोत्रैश्चैवाप्यनेकैश्च गिरिशं चाभजन्मुदा॥१३॥कमलैस्सरसो जातैर्मानसाख्यान्मुनीश्वराः॥बद्ध्वा चैवासनं तत्र न चचाल हरिस्स्वयम् ॥१४॥ प्रसादावधि चैवात्र स्थेयं वै सर्वथा मया ॥ इत्येवं निश्चयं कृत्वा समानर्च शिवं हरिः॥१५॥यदा नैव हरस्तुष्टो बभूव हरयेद्विजाः ॥ तदा स भगवान्विष्णुर्विचारे तत्परोऽभवत्॥१६॥

विष्णुजी स्वयं कैलासपर्वतके समीप जाकर वहां कुंड खोद अग्निको स्थापन करके उसके आगे तप करने लगे ॥ १२ ॥ पार्थिव विधानके सहित तथा अनेकमन्त्रोंसे अनेकस्तोत्रोंसे प्रसन्नतापूर्वक शिवजीका भजन करने लगे ॥ १३ ॥ हे मुनीश्वरो ! वहां विष्णुजी मानसरोवरमें उत्पन्न हुए कमलोंसे शिवको पूजने लगे और आसन बाँधके स्वयं स्थित हुए ॥ १४ ॥ शिवजीके प्रसन्न होनेतक मैं सर्वथा यहां स्थित रहूंगा ऐसा निश्चयकर विष्णुजी सदाशिवकी पूजा करने लगे ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणो ! जब वह शिवजी विष्णुसे संतुष्ट

नहीं हुए तब भगवान् विष्णु विचारमें तत्पर हुए ॥ १६ ॥ और मनमें विचारकर अनेक प्रकार सेवा की तो भी लीला करनेवाले प्रभु शिवजी प्रसन्न न हुए ॥ १७ ॥ तब अधिक भक्तिमें तत्पर और अति विस्मित हुए विष्णुने प्रीतिसे शिवके सहस्रनामोंको पढके सदाशिवको सन्तुष्ट किया ॥ १८ ॥ एक २ नाम मंत्रका उच्चारणकर एक २ कमलको चढाकर शरणागत वत्सल शिवजीकी पूजा करने लगे ॥ १९ ॥ तब विष्णुजीके प्रेमकी परीक्षाके निमित्त सदाशिवने उन सहस्र कमलोंमेंसे एक कमल हरण करलिया ॥ २० ॥ उस समय विष्णुने यह मायारूपी अद्भुत चरित्र नहीं जाना एक कमलको न्यून जानकर वे उसे ढूँढने लगे ॥ २१ ॥ उन अचलव्रतधारी विष्णुने उस कमलके ढूँढनेको समस्त

विचार्यैवं स्वमनसि सेवनंबहुधा कृतम्॥तथापि न हरस्तुष्टो बभूवोतिकरः प्रभुः ॥१७॥ ततस्सुविस्मितो विष्णुर्भक्त्या परमयान्वितः ॥ १९ ॥ सहस्रैर्नामभिः प्रीत्या तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ १८ ॥ प्रत्येकं कमलं तस्मै नाममंत्रमुदीर्य च ॥ पूजयामास वै शंभुं शरणागतवत्सलम् ॥ १९ ॥ परीक्षार्थं विष्णुभक्तेस्तदा वै शंकरेण ह ॥ कमलानां सहस्राच्तु हृतमेकं च नीरजम् ॥ २० ॥ न ज्ञातं विष्णुना तच्च मायाकारणमद्भुतम् ॥ न्यूनं तच्चापि सञ्ज्ञाय तदन्वेषणतत्परः ॥ २१ ॥ बभ्राम सकलां पृथ्वीं तत्प्रीत्यै सुदृढव्रतः॥ तदप्राप्य विशुद्धात्मा नेत्रमेकमुदाहरत् ॥ २२ ॥ तं दृष्ट्वा स प्रसन्नोऽभूच्छंकरस्सर्वदुःखहा ॥ आविर्बभूव तत्रैव जगाद वचनं हरिम् ॥ २३ ॥ शिव उवाच ॥ प्रसन्नोऽस्मि हरे तुभ्यं वरं ब्रूहि यथेप्सितम् ॥ मनोऽभिलषितं दद्मि नादेयं विद्यते तव ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा शंभुवचनं केशवः प्रीतमानसः ॥ महाहर्षसमापन्नो ह्यब्रवीत्सांजलिश्शिवम् ॥ २५ ॥ विष्णुरुवाच ॥ वाच्यं किं मे त्वदग्रे वै ह्यन्तर्यामी त्वमास्थितः ॥ तथापि कथ्यते नाथ तव शासनगौरवात् ॥ २६ ॥

पृथ्वीपर भ्रमण किया और जब उसे न पाया तब शुद्धचित्त हो अपना नेत्र चढा दिया ॥ २२ ॥ यह देख सम्पूर्ण दुःखके दूर करनेवाले सदाशिव प्रसन्न होगये और वहां प्रगट हो विष्णुसे यह वचन बोले ॥ २३ ॥ शिवजी बोले, हे विष्णो ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं तुम मनोवाञ्छित वर--मांगों तुमको इच्छाके अनुसार वरदान दूंगा तुमको अदेय वस्तु कुछ नहीं है ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, ऐसा शिवका वचन सुनके विष्णु भगवान् बडे आनन्दको प्राप्त हुए और हाथ जोडकर शिवजीसे बोले ॥ २५ ॥ विष्णुजी बोले, हे नाथ ! आपके आगे

क्या कहने योग्य है, आप सबके अन्तर्यामी होके स्थित हैं तो भी आपकी आज्ञाके गौरवसे मैं कहता हूं ॥ २६ ॥ हे स्वामिन् ! हे सदाशिव ! दैत्योंने सम्पूर्ण संसारको पीडित किया है इससे मुझे सुख नहीं है दैत्योंके नाश करनेमें मेरा शस्त्र समर्थ नहीं है ॥ २७ ॥ हे परमेश्वर ! मैं क्या करूं कहां जाऊं मेरा और कोई रक्षा करनेवाला नहीं है इस कारण मैं आपकी शरणमें आया हूं ॥ २८ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहके परमात्मा शिवको नमस्कार करके दैत्योंसे पीडित हुए विष्णु स्वयं शिवजीके आगे स्थित हुए ॥ २९ ॥

दैत्यैश्च पीडितं विश्वं सुखं नो नस्सदाशिव ॥ दैत्यान्हंतुं मम स्वामिन्स्वायुधं न प्रवर्त्तते ॥ २७ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि नान्यो मे रक्षकः परः॥अतोऽहं परमेशान शरणं त्वां समागतः ॥ २८ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा च नमस्कृत्य शिवाय परमात्मने ॥ स्थितश्चैवाग्रतश्शंभोः स्वयं च पुरुपीडितः ॥ २९ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो विष्णोर्देवदेवो महेश्वरः ॥ ददौ तस्मै स्वकं चक्रं तेजोराशिं सुदर्शनम् ॥ ३० ॥ तत्प्राप्यभगवान्विष्णुर्दैत्यांस्तान्बलवत्तरान् ॥ जघान तेन चक्रेण द्रुतं सर्वान्विना श्रमम् ॥ ३१ ॥ जगत्स्वास्थ्यं परं लेभे बभूवुस्सुखिनस्सुराः ॥ सुप्रीतः स्वायुधं प्राप्य हरिरासीन्महासुखी ॥ ३२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ किं तन्नामसहस्रं वै कथय त्वं हि शांकरम् ॥ येन तुष्टोददौ चक्रं हरये स महेश्वरः ॥ ३३ ॥ तन्माहात्म्यम्मम ब्रूहि शिवसंवादपूर्वकम् ॥ कृपालुत्वं च शंभोर्हि विष्णूपरि यथातथम् ॥ ३४ ॥

सूतजी बोले ऐसा विष्णुका वचन सुनके देवोंके देव महेश्वरने विष्णुको तेजके समूहवाला अपना सुदर्शनचक्र दिया ॥ ३० ॥ उसको पाय भगवान् विष्णुने विना परिश्रमके ही सम्पूर्ण बलवान् उन दैत्योंको उस चक्रसे नष्ट किया ॥ ३१ ॥ सब संसार स्वास्थ्यको प्राप्त हुआ, देवता सुखी हुए, विष्णु भगवान् सुदर्शनचक्रको प्राप्त हो बडे सुखी हुए ॥ ३२ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! वह कौनसा शिवसहस्रनाम है उसे कहो जिससे सन्तुष्ट होकर शिवजीने विष्णुको वह सुदर्शनचक्र दिया ॥ ३३ ॥ उस माहात्म्यको शिवके संवाद पूर्वक कहो जो विष्णुके

ऊपर शिवकी दयाका भाव उत्पन्न करनेवाला है ॥ ३४ ॥ व्यासजी बोले, सावधान चित्तवाले उन मुनियोंका ऐसा वचन सुनके शिवजीके चरण कमलोंका स्मरण करके सूतजी यह वचन बोले ॥३५॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटी० च० को० रु० विष्णुसुदर्शनचक्रलाभवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥ इस शिव सहस्र नाममें सब शब्दोंकी व्याख्या प्राचीन टीकाकारोंके अनुसार की है, जहां दो शब्दोंकी किसी अंशमें समानता पाई जाती है, वहां प्राचीनोंके मतानुसार उन दोनोंकी एकता कर दी है, और कोई शब्द जो नामसे कोई अर्थसे एकसे प्रतीत होते हैं, इसमें पुनरुक्तिकी शंका करनी नहीं कारण कि प्रवृत्ति निमित्तकी एकतामें कहीं शब्द भेदसे और कहीं शब्दकी एकतामें उनकी प्रवृत्तिके निमित्त भेदसे पुनरुक्ति नहीं हो सकती, जहां पुँल्लिंग शब्दका प्रयोग है, वहां शिव देवता वाचक हैं जहां स्त्रीलिंगका प्रयोग है वहां शिवदेवता

व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचश्श्रुत्वा मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ स्मृत्वा शिवपदांभोजं सूतो वचनमब्रवीत् ॥३५॥ इति श्रीशिव महापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां विष्णुसुदर्शनचक्रलाभवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ सूत उवाच ॥ शृणुता मृषयः श्रेष्ठाः कथयामि यथा श्रुतम् ॥ विष्णुना प्रार्थितो येन संतुष्टः परमेश्वरः ॥ तदाहं कथयाम्यद्य पुण्यं नाम सहस्रकम् ॥ १ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ शिवो हरो मृडो रुद्रः पुष्करः पुष्पलोचनः ॥ अर्थिगम्यः सदाचारः शर्वः शंभुर्महेश्वरः ॥ २ ॥

वाचक है, कारण कि, देवता शब्द स्त्रीलिंग है, जहां नपुंसक लिंगका प्रयोग है वहां ब्रह्मका विशेषण जानना इन सबके मंगलके निमित्त प्रथम (शिव) इस मंगल युक्त नामका ही प्रारंभ करते हैं, --सूतजी बोले, हे ऋषिश्रेष्ठो ! सुनो जैसा सुना है वह आपके प्रति कहता हूं, जिस प्रकार विष्णुकी प्रार्थनासे शिवजी संतुष्ट हुए वह हम पवित्र सहस्र नाम श्रवण कराते हैं ॥ १ ॥ श्रीविष्णु भगवान् बोले, (शिवः) मंगलके करनेवाले अथवा त्रिगुण रहित होनेसे शिव हैं (हरः)सृष्टिके अन्तमें संहार करनेसे हर हैं (मृडः) सुखदायक हैं (रुद्रः) प्रजान्त समयमें उनको संहार करनेसे रुवाते हैं, अथवा दुःख दूर करनेसे रुद्र नाम है, अथवा दुष्टोंको दुःख देनेसे रुद्र नाम है, (पुष्करः) पुष्टि करते हैं (पुष्प लोचनः) पुष्पके समान नेत्रवाले (अर्थिगम्यः) स्वर्ग मोक्षादि कामनावालोंके उपासनीय (सदाचारः) सत्पुरुषोंके आचरण करनेवाले (शर्वः) सब प्रजाके अन्तकारक (शंभुः) भक्तोंके सुखदाता (१०) (महेश्वरः) परमेश्वर "यः परः स महेश्वर इति श्रुतेः" ॥ २ ॥

शि०पु०
॥८९॥

(चन्द्रपीडः) चन्द्रमा जिनके शिरका भूषण है (चन्द्रमौलिः) जिनके मस्तकपर चन्द्रमा है (विश्वम्) परब्रह्म स्वरूप (विश्वामरेश्वरः) संसार और सब देवताओंके स्वामी (वेदान्तसारसन्दोहः) वेदान्तसारके पूर्णज्ञाता (कपाली) कपालधारी (नीललोहितः) नील और लाल जटावाले ॥ ३ ॥ (ध्यानाधारः) योगियोंके ध्यानमें आनेवाले (अपरिच्छेद्यः) देश, काल, परिच्छेद शून्य (२०) (गौरीभर्ता) पार्वती पति (गणेश्वरः) प्रमथादि गणोंके नियन्ता (अष्टमूर्ति) आकाशादि अष्टमूर्तिमें स्थित (विश्वमूर्तिः) जिनकी जगत्मूर्ति है (त्रिवर्गस्वर्गसाधनः) धर्म, अर्थ, काम अचिन्त्य सुखसाधक ॥ ४ ॥ (ज्ञानगम्यः) वेदान्तके अर्थ ज्ञानमात्रसे जानने योग्य (दृढप्रज्ञः) नित्यज्ञान युक्त (देवदेवः) देवताओंके देवता वा सामर्थ्य देकर उनके प्रकाश और आनन्द देनेवाले (त्रिलोचनः) तीन नेत्रवाले अथवा तीन लोक तीन गुण तीन वेदमें जिसका ज्ञान है वा अकार उकार मकार तीन अक्षर जिसके नेत्र हैं, यद्वा, शास्त्र, आचार्य और ध्यान निदर्शन साधन ही जिसके तीन नेत्र

चंद्रापीडश्चंद्रमौलिर्विश्वं विश्वंभरेश्वरः ॥ वेदांतसारसंदोहः कपाली नीललोहितः ॥ ३ ॥ ध्यानाधारोऽपरिच्छेद्यो गौरीभर्त्ता गणेश्वरः ॥ अष्टमूर्तिर्विश्वमूर्तिस्त्रिवर्गस्वर्गसाधनः ॥ ४ ॥ ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञो देवदेवस्त्रिलोचनः ॥ वामदेवो महादेवः पटुः परिवृढो दृढः ॥ ५ ॥ विश्वरूपो विरूपाक्षो वागीशः शुचिसत्तमः ॥ सर्वप्रमाणसंवादी वृषाङ्को वृषवाहनः ॥ ६ ॥ ईशः पिनाकीखट्वांगी चित्र वेषश्चिरंतनः ॥ तमोहरो महायोगी गोप्ता ब्रह्मा च धूर्जटिः ॥ ७ ॥

को.रु.सं.४
अ०३५

हैं, यही अर्थ महाभारतके टीकाकार नीलकंठने लिखा है (वामदेवः)दुष्टोंके मद निकालनेवाले अथवा लोकके विपरीत और सुन्दर होनेसे वाम हैं अथवा कर्मफलोंके विभाग करनेसे वाम है(३०) (महादेव) पूजनीय वा ब्रह्मादिकोंके भी पूजनीय (पटुः) दुःखनाशकर्ता अथवा भक्तोंके कल्याण कर नेमें चतुर (परिवृढः) जगत्के स्वामी (दृढः) बलवान् ॥५॥(विश्वरूपः)सर्व जगत्स्वरूप (विरूपाक्षः) विषमनेत्र(वागीशः)वेदवाणीके पति (शुचिसत्तमः) त्रैगुण्यरहित होनेसे शुद्ध (सर्वप्रमाणसंवादी) सब वेदादिके प्रमाणके ज्ञाता (वृषांकः) वृषचिह्नधारी अथवा धर्म युक्त (४०) (वृषवाहनः) नन्दीवाहनवाले ॥ ६ ॥ (ईशः) सर्व जगत्का स्वामी (पिनाकी) पिनाक धनुषधारी (खट्वांगायुधयुक्त (चित्रवेषः) अनेक प्रकारके वेष कार्यानुसार धारण करनेवाले (चिरंतनः) त्रिकालाबाध्य (तमोहरः) अविद्याके नाशकर्ता (महायोगी) अष्टांग योगके तत्त्व जाननेवाले

(गोप्ता) रक्षा करनेवाले (ब्रह्मा) तब कुछ उत्पन्न करनेवाले, महान् गुणपूर्ण (५०) (धूर्जटिः) भारभूत जिनको जटा है अथवा गंगाजी जिनकी जटामें हैं ॥ ७ ॥ (कालकालः) मृत्यु और यमकी भी संख्या करनेवाले (कृत्तिवासाः) चर्मके वस्त्रवाले " पिनाकहस्तः कृत्तिवासा इति श्रुतेः" (सुभगः) सुन्दर ऐश्वर्यवाले (प्रणवात्मकः) ओंकारस्वरूप " ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मेति, श्रुतेः " (उन्नध्रः) पापियोंको पाशसे बांधनेवाले (पुरुषः) सबके शरीरमें व्याप्त होने वा शयन करनेसे उसे पुरुष कहते हैं वा परिपूर्ण होनेसे (जुष्यः) मन, वचन कर्मसे सेवनीय (दुर्वासाः) वल्कलादि वस्त्र धारण करनेवाले अथवा दुर्वासा नाम अत्रिके पुरुषरूपसे अवतार लेनेवाले (पुरशासनः) त्रिपुरासुरके मारनेवाले (६०) ॥८॥ (दिव्यायुधः) पिनाकादि आयुधधारी (स्कन्दगुरुः) षडाननके पिता (परमेष्ठी) अपनी महिमावाले आकाशमें स्थित होनेवाले (परात्परः) अव्यक्तसे भी परे (अनादिमध्यनिधनः) काल देशसे अपरिच्छिन्न (गिरीशः) मेरु आदिके भी ईश (गिरिजाधवः) उमाके स्वामी

कालकालः कृत्तिवासाः सुभगः प्रणवात्मकः ॥ उन्नध्रः पुरुषो जुष्यो दुर्वासाः पुरशासनः ॥८॥ दिव्यायुधः स्कंदगुरुः परमेष्ठीः परात्परः ॥ अनादिमध्यनिधनो गिरीशो गिरिजाधवः ॥ ९ ॥ कुबेरबंधुः श्रीकंठो लोकवर्णोत्तमोमृदुः ॥ समाधिवेद्यः कोदंडी नीलकंठः परस्वधीः ॥ १० ॥ विशालाक्षो मृगव्याधः सुरेशः सूर्यतापनः ॥ धर्मधाम क्षमाक्षेत्रं भगवान्भगनेत्रभित् ॥ ११ ॥

॥९॥ (कुबेरबंधुः) कुबेरके भाई (श्रीकण्ठः) शोभा अथवा वेद जिनके कण्ठमें हैं " ऋचःसामानि यजू ंषि सा हि श्रीरमृतासतामिति श्रुतेः " (लोकवर्णोत्तमः) लोक जिनके भास्वद्रूपको देखते हैं, अथवा लोकमें ब्राह्मणादिकोंसे श्रेष्ठ (७०) (मृदुः) भक्तोंमें सौम्यरूप (समाधिवेद्यः) अभ्यास किये योगसे जानने योग्य (कोदंडी) धनुर्युक्त (नीलकंठः) विषपानसे नीला है कंठ जिनका (परस्वधीः) भक्तोंको अपना धन देकर पुष्ट करनेवाले, अथवा भक्तोंमें अपनी बुद्धि करनेवाले ॥१०॥ (विशालाक्षः) बडे नेत्रोंवाले (मृगव्याधः) मृग पशुजीवके संहार करनेमें व्याध रूप, अथवा अर्जुनपर अनुग्रह करनेको व्याधरूप रखनेवाले (सुरेशः) देवताओंके ईश (सूर्यतापनः) दुर्जनोंको सूर्यके समान ताप देने वाले, अथवा सूर्यको भी भय देनेवाले " भीषोदेति सूर्य इति श्रुतेः " (धर्मधाम) वर्णाश्रमादिधर्मोंके स्थान (८०) (क्षमाक्षेत्रम्) क्षमाके

उत्पत्तिस्थान (भगवान्) छः गुणोंके ऐश्वर्ययुक्त (भगनेत्रभित्) दक्षके यज्ञमें भगदेवताके नेत्र उखाडनेवाले ॥ ११ ॥ (उग्रः) सर्वके संहार करनेसे उग्र (पशुपतिः) पशु जीवोंके पालक (तार्क्ष्यः) कश्यपरूप (प्रियभक्तः) भक्तोंके प्यार कहनेवाले (परन्तपः) शत्रुओंको ताप देनेवाले कहीं " प्रियंवदः " ऐसाभी पाठ है (दाता) भक्तोंको ऐश्वर्यके देनेवाले (दयाकरः) भक्तोंका उद्धार करनेमें कृपा करनेवाले (९०) (दक्षः) जगत्‌रूपसे वृद्धिको प्राप्त होकर सब कर्मोंको शीघ्र करनेवाले (कर्मदी) संन्यासी कर्मदीमुनिकृत भिक्षुसूत्रके ज्ञाता; अथवा कर्मदीरूपसे प्रगट, हो ज्ञानप्रकाश करनेवाले (कामशासनः) कामदेवके हन्ता ॥१२॥ (श्मशाननिलयः) श्मशानमें निवास करनेवाले (सूक्ष्मः) शब्दादि स्थूल कारणरहित होनेसे सूक्ष्म " सर्वगतं सुसूक्ष्ममितिश्रुतेः " (श्मशानस्थः) श्मशानमें रहनेवाले (महेश्वरः) महान् ईश्वर (लोककर्ता) जगत्‌के उत्पादक मृगपतिः) मृगजीव पशुओंके रक्षक (महाकर्ता) पंचमहाभूतोंके भी निर्माण करनेवाले " विश्वस्य कर्ता भुनवस्य गोप्तेत्यादय आगमाः "

उग्रः पशुपतिस्तार्क्ष्यः प्रियभक्तःपरंतपः ॥ दाता दयाकरो दक्षः कर्मदीः कामशासनः ॥१२॥ श्मशाननिलयः सूक्ष्मः श्मशानस्थो महेश्वरः ॥ लोककर्त्ता मृगपतिर्महाकर्त्ता महौषधिः ॥१३॥ उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः॥नीतिः सुनीतिः शुद्धात्मा सोमः सोमरतः सुखी ॥१४॥ सोमपोऽमृतपः सौम्यो महातेजा महाद्युतिः ॥ तेजोमयोऽमृतमयोऽन्नमयश्च सुधापतिः ॥ १५ ॥

(१००) यहां सहस्रनाममें प्रथम शतक पूरा हुआ ॥ (महौषधिः) व्रीहि यवादिरूप अथवा संसार रोगके छुडानेवाले ॥ १३ ॥ (उत्तरः) जन्मसंसारसागरसे उतारनेमें सर्वोत्कृष्ट । " विश्वस्मादिंद्र उत्तर इति श्रुतेः " (गोपतिः) स्वर्ग, पृथ्वी, पशु, वाणी, रश्मी और जलके स्वामी(गोप्ता) सब भूतोंके पालनेवाले (ज्ञानगम्यः) केवल कर्मसेही नहीं किन्तु कर्मसे चित्तशुद्धिकर ज्ञान वैराग्यसे प्राप्त होने योग्य (पुरातनः) कालसे अपरिच्छिन्न होने से पुरातन (नीतिः) दण्ड योग्योंमें दण्ड प्रणयनरूप (सुनीति) सुन्दर नीति अर्थात् मोक्षादिके प्राप्त करने वाले (शुद्धात्मा) निर्मल चित्त (सोमः) चन्द्ररूपसे औषधियोंको पुष्ट करनेवाले, अथवा उमाके सहित रहनेवाले (११०) (सोमरतः) चन्द्र अमृत वा सोम रसमें प्रीति करनेवाले (सुखी) आनन्द युक्त भक्तके सुख करनेवाले " एष ह्येवानंदयतीति श्रुतेः " ॥ १४ ॥ (सोमपः) यज्ञोंमें देवता रूपसे सोमपान करनेवाले; अथवा धर्ममर्यादा दिखाते हुए यजमान रूपसे सोमपान करनेवाले (अमृतपः) अपनी आत्माका अमृत पान करनेवाले

(सौम्यः) भक्तोंमें सौम्यरूप (महातेजाः) जिनके तेजसे सूर्य आदि तेजस्वी तपते हैं "येन सूर्यस्तपति तेजसेद्ध इति श्रुतेः" (महाद्युतिः) महान् द्युतिवाले "स्वयंज्योतिरिति श्रुतेः" "महानीतिर्महामतिः" ऐसाभी पाठ है (तेजोमयः) विश्वके प्रकाशनेवाले अथवा तेजयुक्त (अमृतमयः) मरण रहित अथवा जलमय "अमृतं वा आप इति श्रुतेः" अष्टमूर्तिके अन्तर्गत जलस्वरूप अथवा मोक्षानन्दमय(अन्नमयः)अन्नस्वरूप "अन्नमय आत्मा" "अन्नं ब्रह्मेति श्रुतेः" (१२०) (सुधापतिः) देवताओंके पिवानेको अमृतके रक्षक ॥ १५ ॥ (अजातशत्रुः) आपही सबके शासन करने वाले होनेसे शत्रुरहित (आलोकः) स्वप्रकाशरूप (संभाव्यः) सब देव असुरादिके माननीय (हव्यवाहनः) अग्निस्वरूपसे देवताओंकी हवि पहुँचानेवाले 'देवेभ्यो हव्यवाहनः" प्रजानन्निति श्रुतेः"(लोककरः)लोकोंके कर्ता(वेदकरः)ऋगादि वेदोंके प्रकाशक(सूत्रकारः)सूत्रकर्ता व्यासादि रूप होने वाले (सनातनः) सदा होनेवाले ॥ १६ ॥ (महर्षिकपिलाचार्यः) सम्पूर्ण वेदके देखने जाननेसे महर्षि और वेदका एकदेश जाननेवाले

अजातशत्रुरालोकः संभाव्यो हव्यवाहनः ॥ लोककरो वेदकरः सूत्रकारः सनातनः ॥ १६ ॥ महर्षिकपिलाचार्यो विश्वदीप्तिस्त्रिलोचनः ॥ पिनाकपाणिर्भूदेवः स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्सुधीः ॥ १७ ॥ धातृधामा धामकरः सर्वगः सर्वगोचरः ॥ ब्रह्मसृग्विश्वसृक्सर्गः कर्णिकारः प्रियः कविः ॥ १८ ॥

ऋषि कहाते हैं, सांख्यद्वारा शुद्ध आत्माके जाननेवाले कपिलाचार्यरूपसे होनेवाले "ऋषिं प्रसूतं कपिलं महान्तमिति श्रुतेः" (१३०) (विश्वदीप्तिः) जिनकी दीप्ति संसार है "यस्य भासा सर्वमिदमिति श्रुतेः" (त्रिलोचनः) तीन नेत्रोंवाले (पिनाकपाणिः) पिनाक धनुष वा शूल धारण करनेवाले (भूदेवः) पृथ्वीमें दुर्वासा आदि ब्राह्मणरूपसे उत्पन्न होनेवाले (स्वस्तिदः) भक्तोंको मंगल देनेवाले (स्वस्तिकृत्) पृथ्वीमें भक्तोंके मंगल करने वाले (सुधीः) श्रेष्ठज्ञानयुक्त ॥ १७ ॥ (धातृधामा) विश्वके धारण करनेमें समर्थ तेजवाले (धामकरः) सूर्यादि तेजके कर्ता वा सब प्राणियोंके देहके कर्ता (सर्वगः) सर्वव्यापी (१४०) (सर्वगोचरः) सब जगत्का प्रत्यक्ष करनेवाले (ब्रह्मसृक्) ब्रह्मा वा वेदके स्रष्टा (विश्वसृक्) संसारके बनानेवाले (सर्गः) सृष्टिरूप (कविः) सब कुछ जाननेवाले "कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूरिति

श्रुतेः'' ''नान्योऽतोस्ति द्रष्टेत्यादिश्रुतेः ॥ १८ ॥ (शाखः) इस नामके ऋषिरूप (विशाखः) विशाख ऋषि वा स्कन्दरूप (गोशाखः शिवः) वेदोंकी शाखा जिनमें रहती हैं; वा जिसमें जगत् सोता है अथवा त्रिगुणरहित होनेसे शिव ''स ब्रह्मा स शिव इति श्रुतेः'' यह दो शब्दोंका एकनाम है (१५०) (भिषक्) धन्वन्तरिरूपसे रोगके नाश करनेवाले वा संसाररोगके नाशकर्ता ''भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमीति श्रुतेः'' (अनुत्तमः) जिससे अधिक श्रेष्ठ कोई नहीं ''यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिदिति श्रुतेः''। (गंगापुवोदकः) भागीरथके प्रवाहके तुल्य (जनतारकः) जिसमें जल है (भव्यः) सर्वकल्याणयुक्त (पुष्कलः) सर्वव्यापी (स्थपतिःस्थिरः) अनन्त ब्रह्माण्डोंका स्रष्टा अथवा मायाकंचुकी। यह दो शब्द एकवाचक हैं॥१९॥(विजितात्मा) आत्माके जीतनेवाले(विषयात्मा)सर्व जगत् प्रपंच जिसकी आत्मा है, अथवा जिनकी आत्मा प्रत्यक्षादिके अगोचर है ''विधेयात्मा'' ऐसा भी कहीं पाठ है (भूतवाहनसारथिः) जीवोंके कर्मफल प्राप्त करानेवाले ब्रह्मा जिनके सारथि (सगणः) प्रमथादिगण

शाखो विशाखो गोशाखः शिवो भिषगनुत्तमः ॥ गंगापुवोदको भव्यः पुष्कलः स्थपतिः स्थिरः ॥१९॥ विजितात्मा विधेयात्मा
भूतवाहनसारथिः ॥ सगणो गणकायश्च सुकीर्तिश्छिन्नसंशयः॥२०॥कामदेवः कामपालो भस्मोद्धूलितविग्रहः॥भस्मप्रियो भस्म
शायी कामी कांतः कृतागमः ॥२१॥ समावर्तोऽनिवृत्तात्मा धर्मपुंजः सदाशिवः ॥ अकल्मषश्च पुण्यात्मा चतुर्बाहुर्दुरासदः॥२२॥

युक्त (१६०) (गणकायः) गणही जिनका शरीर है, अथवा जिनकी काया अपरिच्छेद्य है (सुकीर्तिः) जिनकी सुन्दर कीर्ति है (छिन्नसंशयः) सर्वज्ञ होनेसे संशयरहित ॥ २० ॥ (कामदेवः) धर्मादि पुरुषार्थोंकी इच्छा करनेवाले (कामपालः) कामियोंकी कामना पूरी करनेवाले (भस्मोद्धूलितविग्रहः) शरीरमें भस्म लगाये हुए (भस्मप्रियो भस्मशायी) भस्मप्रिय होनेसे शयन करने वाले। यह भी दो शब्द एकवाची हैं ॥ (कामी) पूर्ण कामवाले; ''सोऽकामयतेति श्रुतेः'' (कान्तः) मनोहर अथवा द्वितीय परार्द्धमें ब्रह्माके भी अन्त कर्ता (कृतागमः) श्रुति स्मृति आदि आगम रूप लक्षणके प्रगट करने वाले (१७०) ॥ २१ ॥ (समावर्तः) संसार चक्रके घुमाने वाले (अनिवृत्तात्मा) सब स्थानोंमें विद्यमान होनेसे अनिवृत्त आत्मावाले (धर्मपुञ्जः) धर्मके ढेर (सदाशिवः) सदाकल्याणस्वरूप

(अकल्मषः) नित्यशुद्ध (चतुर्बाहुः) विष्णुस्वरूप (दुरावासः) समाधिमेंभी कठिनतासे योगियोंके चित्तमें आनेवाले; " सर्वावासः " ऐसा भी पाठ है (दुरासदः) दुःखसे प्राप्त होने योग्य ॥ २२ ॥ (दुर्लभः) दुर्लभ भक्तिसे प्राप्त होनेवाले (दुर्गमः) कठिनतासे जानने योग्य (१८०) (दुर्गः) दुःखसे प्राप्त होने योग्य (सर्वायुधविशारदः) सम्पूर्ण अस्त्रविद्याओंमें विशारद (अध्यात्मयोगनिलयः) असंप्रज्ञात समाधि जिनका स्थान है (सुतंतुः) जिससे श्रेष्ठ प्रपंचका विस्तार हुआ है (तंतुवर्द्धनः) संसारको बढाने वा छेदन करनेवाले ॥ २३ ॥ (शुभांगः) श्रेष्ठ अंगवाले (लोकसारंगः) सारंगके समान लोकका सार ग्रहण करनेवाले वा लोकसार ओंकारसे जानने योग्य (जगदीशः) जगत्के नियन्ता (जनार्दनः) जगत्के संहारकर्ता (भस्मशुद्धिकरः) भस्मसे शुद्धिके उत्पन्न करनेवाले (१९०) (मेरुः) सुमेरुपर्वतस्वरूप (ओज

दुर्लभो दुर्गमो दुर्गः सर्वायुधविशारदः ॥ अध्यात्मयोगनिलयः सुतंतुस्तंतुवर्धनः ॥ २३ ॥ शुभांगो लोकसारंगो जगदीशो जनार्दनः ॥ भस्मशुद्धिकरो मेरुरोजस्वी शुद्धविग्रहः ॥ २४ ॥ असाध्यः साधुसाध्यश्च भृत्यमर्कटरूपधृक् ॥ हिरण्यरेताः पौराणो रिपुजीवहरो बलीः ॥ २५ ॥ महाह्रदो महागर्तस्सिद्धोवृंदारवंदितः ॥ व्याघ्रचर्माबरो व्यालीमहाभूतो महानिधिः ॥ २६ ॥

स्वी) आत्माके बलवाले (शुद्धिविग्रहः) चिदात्मक ॥ २४ ॥ (असाध्यः) दुश्चरित्रोंको प्राप्त न होनेवाले (साधुसाध्यः) साधुजनोंको प्राप्त होनेवाले (भृत्यमर्कटरूपधृक्) हनुमान् रूपधारी (हिरण्यरेताः) अग्निस्वरूप (पौराणः) सब पुराणोंमें ब्रह्मरूपसे प्रतिपाद्य (रिपुजीवहरः) शत्रुके प्राण हरनेवाले (बलः) सर्वशक्तिमान् (२००) यह दूसरा शतक हुआ ॥ २५ ॥ (महाह्रदः) जिसमें योगी विश्राम ले सदानंदमें रहते हैं (महागर्तः) दुरत्ययमायावाले अथवा महारथवाले (सिद्धवृंदारवंदितः) सिद्ध और देवताओंके समूहसे स्तुति किये हुए (व्याघ्रचर्माम्बरः) व्याघ्रचर्मके वस्त्रवाले (व्याली) वासुकि आदि सर्पके भूषणधारी (महाभूतः) कालत्रयमें अवच्छिन्न महत्तत्त्वरूप अथवा जिनसे महान् विराट् उत्पन्न हुआ है "यो ब्रह्मणं विदधाति पूर्वमिति श्रुतैः " (महानिधिः) जिसमें सब प्राणी समा जाते हैं ॥ २६ ॥

अमृताशोऽमृतवपुः पाञ्चजन्यः प्रभंजनः ॥ पंचविंशतितत्त्वस्थः पारिजातः परावरः ॥ २७ ॥ सुलभस्सुव्रतश्शूरो ब्रह्मवेद निधिर्निधिः ॥ वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजिच्छत्रुतापनः ॥ २८ ॥ आश्रमः क्षपणः क्षामो ज्ञानवानचलेश्वरः ॥ प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः सुपर्णो वायुवाहनः ॥ ॥२९॥ धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणराशिर्गुणाकरः ॥ सत्यस्सत्यपरोऽदीनो धर्मांगो धर्मसाधनः ॥३०॥

(अमृताशः) स्वात्मानन्द अमृत रसके पान करनेवाले (अमृतवपुः) मरणरहित शरीरवाले "अजरोमर इति श्रुतेः" (पांचजन्यः) पंचजनोंमें होनेवाले अग्निरूप अग्निर्ऋषिः पवमानः पांचजन्यः पुरोहितः इति श्रुतेः "कहीं "पञ्चयज्ञ" ऐसाभी पाठ है, वहां यह समझना कि जिससे यज्ञ उत्पन्न हुए हैं (२१०) (प्रभंजनः) भक्तोंके मायारूपी आवरणके नाश करनेवाले अथवा वायुरूप (पंचविंशतितत्त्वस्थः) प्रकृति आदि पच्चीस तत्त्वोंमें स्थित "तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशदिति श्रुतेः" (पारिजातः) कल्पवृक्षस्वरूप (परावरः) ब्रह्म और जगद्रूप ॥२७॥ (सुलभः) पुत्रपुष्पादि समर्पण करने सेहीभक्तोंको प्राप्त होनेवाले (सुव्रतःशूरः) शोभन व्रत अर्थात् भक्तोंकी रक्षाका व्रत करनेवाले वा नियताहार अथवा भोजन करनेवाले; शूर अथवा सूर्यरूप। यह दोनों एक हैं (ब्रह्मवेदनिधिः) वेदके प्रादुर्भावके स्थान " अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेयद्दग्वेद इत्यादिश्रुतेः " " वाङ्म यैकनिधिः "ऐसाभी पाठ है। योगियोंसे स्थापित (वर्णाश्रमगुरुः) ब्राह्मण आदि वर्ण और ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंके उपदेशक वा उत्पन्नकर्ता (वर्णी) ब्रह्मचारीस्वरूप (२२०) (शत्रुजिच्छत्रुतापनः) देवताओंके शत्रुओंको जीतनेवाले और उनको तापदेनेवाले यह भी दो शब्द एक हैं ॥२८॥) आश्रमः) आश्रमके समान संसारमें भ्रमण करनेवालोंको विश्राम देनेवाले (क्षपणः) भक्तोंके पापक्षय करनेवाले (क्षामः) प्रलयमें प्रजाके क्षीण करनेवाले (ज्ञानवान्) नित्यज्ञानयुक्त (अचलेश्वरः) पृथ्वीपर्वतादिकोंके स्वामी (प्रमाणभूतः) जिससे प्रत्यक्षादि प्रमाण उत्पन्न हुए हैं (दुर्ज्ञेय) अतिपरिश्रमसे जानने योग्य (सुपर्णः) धर्माधर्मरूप पक्षयुक्त वा गरुडरूप; अथवा सबके उत्पादक " सुपर्ण विप्राः कवयो वचोभिरेकं संतं बहुधा कल्पयन्तीत्यादिश्रुतेः " अथवा छन्दरूप पणवाले (वायुवाहनः) वायु जिसके रथकी सोपान है; अथवा जिसके भयसे वायु प्राणियोंको वहन करती है " भीषास्माद्वातः पवते इति श्रुतेः (२३०) ॥ २९ ॥ (धनुर्द्धरोधनुर्वेदः) पिनाकधारी जिनसे

धनुर्वेद प्रगट हुआ है । यह दो शब्द एक वाचक हैं (गुणराशिर्गुणाकरः) जिससे योगादि गुणोंका संघात होता है, योग, सांख्य, तप, विद्या विधि, क्रिया, ऋतु; सत्य, दया, अहिंसा, श्रेष्ठमति, क्षमा, ध्यान, ध्येय, दम, शांति, विद्या, मति, धृति, कांति, नीति, प्रथा, मेधा, लज्जा, दृष्टि, सरस्वती, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, प्रसाद; प्रतिष्ठितता आदि गुणोंकी खान। यह भी दो एक हैं (सत्यःसत्यपरः) साधुओंमें सत्यस्वरूप यथार्थ कथनमें निष्ठा वान् । यहभी दो एकहैं (दीनः) बाह्यदृष्टिवालोंको श्मशानादिमें वास करनेसे दारिद्ररूप दीखनेवाले; अथवा अदीन अर्थात् सदा संतुष्ट रहनेवाले (धर्मांगोधर्मसाधनः)यज्ञादिक जिसके अंग हैं; वाराह मूर्तिरूप जैसा कि हरिवंशमें लिखाहै-वेदरूप चरण, यज्ञस्तंभरूप डाढ यज्ञरूप हाथ, चितिरूप मुख, अग्निरूप जीभ, डाभरूप रोम, ब्रह्मरूप शिर, दिनरात्रिरूप नेत्र, दिव्य वेदान्त और श्रुतिरूप भूषण, धृतरूप नासिका, स्रुवारूप तुंड, सामवेदरूप शब्द, धर्म सत्यरूप शोभा, कर्म विकर्म सत्क्रिया युक्त प्रायश्चित्त रूप नख, घोर पशुरूपजानु और भुजा, उग्रतायुक्त होमरूप लिंग, फलबीज महौषधि वायुसे संयुक्त अन्तरात्मावाला वेदरूप फिचौंसे विकृत हुआ सोमरूप रुधिर, वेदीरूप स्कंध; हविरूप गंध, हव्यकव्य रूप वेगवान्, प्राग्वंशरूप शरीर, अनेक

अनंतदृष्टिरानंदो दंडो दमयिता दमः ॥ अभिवाद्यो महामायो विश्वकर्म विशारदः ॥ ३१ ॥ वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतभावनः ॥ उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नो जितकामोऽजितप्रियः ॥ ३२ ॥

प्रकारकी दीक्षाओंसे पूजित, दक्षिणारूप हृदय योगी और महायज्ञ युक्त उपकर्मरूप ओष्ठ, और प्रवर्गावर्तरूप भूषण तथा नाना प्रकारके वेदरूप गमन, गुप्त उपनिषद्रूप आसन, छाया पत्नी सहाययुक्त मेरुशृंगके सदृश ऊंचा वाराहरूप है हरिवंश प्रथम पर्व ४१ अध्यायमें ॥ धर्मके साधन करने वाले । यहभी दो एक हैं ॥ ३० ॥ (अनन्तदृष्टिः) असंख्यदृष्टिवाले (आनंद) अत्यन्तसुखस्वरूप " आनंदं ब्रह्मेति श्रुतेः " (दंडो दमयिता) दमन करनेवालोंकोभी दण्डरूप इन्द्रादि रूपसे प्रजादमन करने वाले । यह दो एक हैं (दमः) इन्द्रिय निग्रहस्वरूप (अभिवाद्यो महामायः) सुर असुरोंसे नमस्कार किये हुए मायावियोंकोभी मोहनेवाले । यह दो एक हैं (२४०) (विश्वकर्मा विशारदः) विश्वके करने और सब कलामें चतुर अर्थात् जिससे श्रेष्ठ सरस्वती प्रादुर्भूत हुई है । यह भी दो एक हैं ॥ ३१ ॥ (वीतरागः) जिससे भक्तोंके राग द्वेष दूर होजाते हैं (विनीतात्मा) जिसने भक्तोंका स्वभाव नम्र कर दिया है (तपस्वी) तप युक्त (भूतभावनः) प्राणियोंको बढानेवाले(उन्मत्तवेषः

प्रच्छन्नः) दिग्वासादियुक्त होनेसे गूढरूप यहभी दो एक (जितकामः) कामदेवके जीतनेवाले (अजितप्रियः) विष्णुके प्रीतिमान् " जित रोचिः प्रिया कविः" ऐसाभी पाठ है ॥ ३२ ॥ (कल्याण प्रकृतिः) श्रेष्ठ स्वभाववाले (कल्पः) सबके आदिकारण(२५५०) (सर्वलोकप्रजापतिः) सर्वलोक और प्रजाके पालक (तरस्वी) भक्तोंके रक्षामें वेगवान् (तारकः) भवसागरसे तरनेवाले (धीमान्) श्रेष्ठज्ञानयुक्त (प्रधानप्रभुः) प्रकृतिका स्वामी (अव्ययः) नाशरहित ॥ ३३ ॥ (लोकपालः लोकके पालक (अन्तरात्मा) मायासे अपना रूप छिपाये (कल्पादिः) शास्त्रके आदिकारण (कमलेक्षणः) कमलनेत्र अथवा जिनकी दृष्टिमें लक्ष्मी निवास करती है (२६०) वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः) वेदशास्त्रके अर्थ और तत्त्वके ज्ञाता, अथवा जिनसे मुनि वेदशास्त्रके अर्थ और तत्त्वको जानते हैं (अनियमः) सबके शिक्षक, स्वयंशिक्षारहित (नियताश्रमः) सब जगत्के आश्रयभूत ॥ ३४ ॥ (चन्द्रः) प्रसन्न करनेसे चन्द्ररूप (सूर्यः) कर्ममें लोकोंको प्रेरनेवाले आदित्यस्वरूप (शनिः) शनिरूप

कल्याणप्रकृतिः कल्पः सर्वलोकप्रजापतिः॥तरस्वी तारको धीमान्प्रधानः प्रभुरव्ययः ॥३३॥ लोकपालोऽतर्हितात्मा कल्पादिः कमलेक्षणः ॥ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञोऽनियमो नियताश्रयः ॥ ३४ ॥ चंद्रः सूर्यः शनिः केतुर्वरांगो विद्रुमच्छविः ॥ भक्तिवश्यः परंब्रह्म मृगबाणार्पणोऽनघः ॥ ३५ ॥ अद्रिरद्रचालयः कांतः परमात्मा जगद्गुरुः ॥ सर्वकर्मालयस्तुष्टो मंगल्यो मंगलावृतः ॥ ३६ ॥ महातपादीर्घतपाः स्थविष्ठ स्थविरो ध्रुवः ॥ अहः संवत्सरो व्याप्तिः प्रमाणं परमं तपः ॥ ३७ ॥

(केतुः) केतु वा धूमकेतु रूप (वरांगः) शोभन अंगवाले " विरामः " ऐसाभी पाठ है विद्रुमच्छविः) मूंगेके समान कांतिवाले मंगलरूप (भक्तिवश्यः) भक्तिसे वशमें होनेवाले (२७०) (परब्रह्म) परब्रह्मरूप (मृगबाणार्पणः) मृगके ढूंढनेमें जिससे भक्तोंको मनरूप बाणका अर्पण होता है (अनघः) पापरहित ॥ ३५ ॥ (अद्रिः) सुमेरुआदिरूप (अद्रचालयः)कैलासमें निवास करनेवाले (कांतः) मनोरम अथवा ब्रह्मा जिनका सारथि है, परमात्मा सर्वव्यापक होनेसे सर्वोत्कृष्ट आत्मावाले सर्वत्र विद्यमान (जगद्गुरुः) जगत्को हितका उपदेश देनेवाले (सर्वकर्मालयः) नित्यनैमित्तिक कर्मोंके अर्पणस्थान (तुष्टः) परमानन्दैकरूप होनेसे नित्य सन्तुष्ट (मंगल्यो मंगलावृतः) भक्तोंके मंगलमें हित मंगलोंसे युक्त । यह दो शब्द एक हैं (२८०) ॥ ३६ ॥ (महातपाः) संसार उत्पन्न करनेमें जिसका तप है; " यस्य ज्ञानमयं तप इति

श्रुतेः" (दीर्घतपाः) अजर अमर होनेसे दीर्घ तप करनेवाले (स्थविष्ठः) अतिस्थूल (स्थविरः) वृद्धरूप (ध्रुवः) निश्चल (अहः) प्रकाश स्वरूप (संवत्सरः) वर्षात्मक कालरूप (व्याप्तिः) सर्वत्र विद्यमानतास्वरूप (प्रमाणः) प्रमित स्वयं प्रमाणरूप "प्रज्ञानं ब्रह्मेति श्रुतेः" (परमम्) परमशोभायुक्त अथवा जिससे मुक्तिरूप लक्ष्मी होती है (२९०)(तपः) ऋत सत्य आदि रूप "ऋतं तप इत्यादिश्रुतेः" ॥३७॥ (संवत्सरकरः) कालचक्रका प्रवर्तक, अथवा प्रभवादि वत्सरोंका उत्पादक (मन्त्रप्रत्ययः) ऋग्यजुःसामलक्षणवाले मन्त्रोंसे प्रतीत होने योग्य; (सर्वदर्शनः) सब कुछ प्रत्यक्ष करनेवाले "विश्वतश्चक्षुर्विश्वाक्षमित्यादिश्रुतेः" (सर्वेश्वरः) ईश्वरोंके भी ईश्वर "एष सर्वेश्वर इति श्रुतेः" (सिद्धः) नित्यनिष्पन्नरूप (महारेताः) महावीर्यवान् "ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षमिति श्रुतेः" (महाबलः) महापराक्रमी ॥ ३८ ॥ (योगी योग्यः) नित्य योगयुक्त योगमें प्रवृत्त होनेवाले । यह दोनों एक हैं (३००) तीसरा शतक पूर्ण हुआ ॥ (महातेजाः) महाप्रभावयुक्त, अथवा दुष्टोंको न सहने

संवत्सरकरो मंत्रः प्रत्ययः सर्वतापनः॥ अजः सर्वेश्वरस्सिद्धो महातेजा महाबलः ॥३८॥ योगी योग्यो महारेताः सिद्धिः सर्वादि रग्रहः ॥ वसुर्वसुमनाः सत्यः सर्वपापहरो हरः ॥ ३९ ॥ सुकीर्तिः शोभन श्रीमानवामङ्नसगोचरः ॥ अमृतः शाश्वतः शांतो बाणहस्तः प्रतापवान्॥ ४० ॥ कमंडलुधरो धन्वी वेदांगो वेदविन्मुनिः ॥ आजिष्णुर्भोजनं भोक्ता लोकनाथो दुराधरः ॥४१॥

वाले (सिद्धिः) अनन्तकालरूप होनेसे सिद्धि (सर्वादिः) सबके आदिकरण (अग्रहः) अपुण्यकारियोंसे जाननेको अशक्य (वसुः) जिसमें सब प्राणी वसते हैं । (वसुमनाः) रागद्वेषादिसे अकलुषित चित्तवाले (सत्यः) अवितथरूप होनेसे सत्य "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्मेति श्रुतेः" (सर्वपापहरो हरः) कायिकादि सकल पातकोंके हर्ता । यहभी दो एक हैं ॥ ३९ ॥ (सुकीर्तिः) सुन्दरयशयुक्त (शोभनः) अनेक ऐश्वर्यों से शोभित (३१०) (श्रीमान्) ऐश्वर्यलक्षणसामग्रीयुक्त (अवाङ्मनसगोचरः) चक्षु आदि क्या वाणी मनसेभी परे, "यतोवाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सहेति श्रुतेः" (अमृतः शाश्वतः) अमर, "अजरोऽमृत इति श्रुतेः" नित्य। यहभी दो एक हैं (शान्तः) इच्छारहित होनेसे तरंगहीन सागररूप (बाणहस्तः प्रतापवान्) त्रिपुरादिके नाश करनेवाले बाण हाथमें रखनेवाले महाप्रतापी शूर यह भी दो एक हैं ॥४०॥ (कमण्डलुधरः)

अतींद्रियो महामायस्सर्ववासश्चतुष्पथः ॥ कालयोगी महानादो महोत्साहो महाबलः ॥ ४२ ॥ महाबुद्धिर्महावीर्यो भूतचारी पुरंदरः॥निशाचरः प्रेतचारी महाशक्तिर्महाद्युतिः ॥ ४३ ॥ अनिर्देश्यवपुः श्रीमान्सर्वाचार्यमनोगतिः ॥ बहुश्रुतिर्महामायो नियतात्मा ध्रुवोऽध्रुवः ॥ ४४ ॥ तेजस्तेजो द्युतिधरो जनकः सर्वशासकः॥नृत्यप्रियो नृत्यनित्यः प्रकाशात्माप्रकाशकः ॥ ४५ ॥

कमण्डलु धारण करनेवाले (धन्वी) धनुष धारण करनेवाले (वेदांगः) वेदबोधक अंगरूप (वेदविन्मुनिः) वेदके जानने वाले मुनि (भ्राजिष्णुः) एकरस प्रकाश स्वरूप (३२०) (भोजनम्) मायाही जिसका भोजन है (भोक्ता) पुरुषरूप भोगनेवाले (लोकनाथः) लोकके शासक (दुराधरः) दैत्यादिकोंसे आराधना करनेको अशक्य ॥ ४१ ॥ (अतीन्द्रियो महामायः) शब्दादिरहित होनेसे इंद्रियों के अविषय "अशब्दमस्पर्शमित्यादिश्रुतेः" मायावालोंपरभी माया करनेवाले । यह दोनों एक हैं (सर्ववासः) सबमें वास करनेवाले, (चतुष्पथः) जिसका मार्ग चार पदार्थोंका साधक है (कालयोगी) कर्मके पाक समयमें प्राणियोंको भोगमें प्रेरणा करनेवाले (महानादः) गंभीर ध्वनिवाले (महोत्साहः) जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलय करनेको उद्यत (३३०) (महाबलः) बलियोंकेभी बली ॥४२॥ (महाबुद्धिः) बुद्धिमानों में भी बुद्धिमान (महावीर्यः) महान्के उत्पत्ति कारणरूप जिसका वीर्य है (भूतचारी) पिशाचादिकोंके साथ चलनेवाले (पुरन्दरः) त्रिपुर को विदारण करनेवाले (निशाचरः) सायंकालमें संचार कहनेवाले (प्रेतचारी) प्रेतोंके साथ चलनेवाले (महाशक्तिर्महाद्युतिः) महासामर्थ्य और महाज्योति "ज्योतिषां ज्योतिरित्यादि श्रुतेः" यह दो एक हैं ॥ ४३ ॥ (अनिर्देश्यवपुः) जिनका शरीर इस प्रकारका है इसे कोई नहीं जानता (श्रीमान्) ऐश्वर्ययुक्त (३४०) (सर्वाचार्यमनोगतिः) सब आचार्योंके मनमें जिनके द्वारा ज्ञान होता है (बहुश्रुतः) जिनसे अनेक शास्त्र हुए हैं "महामायः" जिनसे बडी माया हुई हैं (नियतात्मा ध्रुवः) नित्य आत्मास्वरूप निश्चल (अध्रुवः) जिससे ध्रुव नहीं ॥४४॥ ओजस्तेजो द्युतिधरः) प्राण बल शौर्यादि गुण दीप्ति धारण करनेवाले (नर्तकः) तांडवनृत्य करनेवाले (सर्वशासकः) सबके नियन्ता "अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मेतिश्रुतेः" (नृत्यप्रियो नृत्यनित्यः) नाचके प्रिय होनेसे नित्य उनके निकट भक्तों द्वारा नृत्य होता है यह दो एक हैं (प्रकाशात्मा

प्रकाशकः) प्रकाशात्मा होनेसे सबके प्रकाशक यह दो शब्द एक हैं (३५०) ॥ ४५ ॥ (स्पष्टाक्षरः) ओंकार लक्षणवाले (बुधः) सर्वज्ञ (मन्त्रः) ऋक्यजुः सामलक्षणयुक्त (समानः) विषमतानिर्घृणतारहित (सारसंप्लवः) वेदान्तरूप संसार सागरको तारनेमें साधन (युगादिकृद्यु गावर्त्तः) युगादि भेद करनेवाले कालात्मा होनेसे युगादिके आवर्तन करनेवाले । यह भी दो एक हैं (गंभीरः) ज्ञानैश्वर्यबलादिकोंसे गंभीर (वृषवाहनः) जिनका नन्दी वाहन है ॥ ४६ ॥ (इष्टः) परमानन्दात्मक होनेसे प्रिय, अथवा यज्ञसे पूजित (विशिष्टः) सबसे उत्कृष्ट (३६०) शिष्टेष्टः) पंडितोंके प्रिय, अथवा शिष्टोंसे पूजित (शलभः) सर्वत्र गमनशील (शरभः) शरभावतारधारी (धनुः) पिनाक धनुषधारी (तीर्थरूपः) सर्व विद्यास्वरूप (तीर्थनामा) संसारके तारनेमें गंगादि तीर्थोंके लानेवाले (तीर्थादृश्यः) गंगादि तीर्थोंसे दुष्प्राप्य (स्तुतः) ब्रह्मा विष्णु आदिकोंसे नमस्कृत (अर्थदः) पुरुषार्थके देनेवाले ॥ ४७ ॥) अपांनिधिः) सागररूप (३७०) (अधिष्ठानम्)

स्पष्टाक्षरो बुधो मंत्रः समानः सारसंप्लवः॥ युगादिकृद्युगावर्तो गंभीरो वृषवाहनः ॥४६॥ इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः सुलभः सारशो धनः ॥ तीर्थरूपस्तीर्थनामा तीर्थादृश्यस्तुतीर्थदः ॥ ४७ ॥ अपांनिधिरधिष्ठानं विजयो जयकालवित् ॥ प्रतिष्ठितः प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरिः॥ ४८ ॥ विमोचनस्सुरगणो विद्येशो बिंदुसंश्रयः ॥ बालरूपोऽमलोन्मायी विकर्ता गहनो गुहः ॥ ४९ ॥

जिसमें उपादान कारणसे सब प्राणी रहते हैं (विजयः) ज्ञानवैराग्यादि ऐश्वर्य गुणोंसे संसारके जीतनेवाले (जयकालवित्) असुरादिकोंके नाश और देवताओंके जयके समयको जाननेवाले (प्रतिष्ठितः) अपनी महिमामें स्थित " स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नीति श्रुतेः" (प्रमाणज्ञः) प्रत्यक्षादि और सब प्राणियोंके प्रमाणके जाननेवाले (हिरण्यकवचः) सुवर्ण कवचधारी " नमो हिरण्य बाहवे, हिरण्य वर्णाय, रूपायेति श्रुतेः " (हरिः) सब पाप हरनेवाले ॥ ४८ ॥ (विमोचनः) तीनों दुःखोंके नाशक (सुरगणः) सर्व देवात्मक (विद्येशः) सब विद्याओंके प्रवर्तक (३८०) बिंदुसंश्रयः) प्रणवके आत्मा (बालरूपः) ब्रह्माके ललाटसे उत्पन्न (बलोन्मत्तः) बलसे सब शत्रुओंके मारनेवाले (विकर्ता) विचित्र भवनके कर्ता (गहनः) जिनकी सामर्थ्य और चेष्टा कोई जाननेको समर्थ नहीं (गुहः) मायासे स्वरूप छिपानेवाले ॥ ४९ ॥

करणं कारणं कर्ता सर्वबंधविमोचनः ॥ व्यवसायो व्यवस्थानः स्थानदो जगदादिजः ॥ ५० ॥ गुरुदो ललितोऽभेदो भावात्मात्मनि संस्थितः ॥ वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरासनविधिर्गुरुः ॥ ५१ ॥ वीरचूडामणिर्वेत्ता चिदानंदो नदीधरः ॥ आज्ञाधारस्त्रिशूली च शिपिविष्टः शिवालयः ॥ ५२ ॥ बालखिल्यो महावीरस्तिग्मांशुर्बधिरः खगः ॥ अभिरामः सुशरणः सुब्रह्मण्यः सुधापतिः ॥ ५३ ॥ मघवान्कौशिको गोमान्विरामः सर्वसाधनः ॥ ललाटाक्षो विश्वदेहः सारः संसारचक्रभृत् ॥ ५४ ॥

(करणम्) जगत्की उत्पत्तिमें साधक (कारणम्) उपादान और निमित्त कारणरूप (कर्ता) स्वतंत्र (सर्वबंधविमोचनः) ज्ञानदानसे सब प्रकार अविद्या बंधन छुटानेवाले (४९०) (व्यवसाय) सच्चिन्मात्रस्वरूप (व्यवस्थानः) वर्णाश्रमादि धर्मके विभाग करनेवाले (स्थानदः) सबके निमित्त कर्मानुसार स्थान देनेवाले (जगदादिजः) हिरण्यगर्भके रूपसे जगत्की आदिमें होनेवाले ॥ ५० ॥ (गुरुदः) शत्रुओंको अधिक खण्डन करनेवाले (ललितः) सर्व सुन्दर रूप (अभेद :) अद्वैत स्वरूप (भावात्मात्मनि संस्थितः) पांच भौतिक आदि देह और जीवात्मामें अन्तर्यामी रूपसे स्थित (वीरेश्वरः) शूरोंके पति (वीरभद्रः) वीरभद्र नामक गणस्वरूप (४००) चौथा शतक पूर्ण हुआ (वीरासनविधिः) वीरोंके आसनमें जिसका विधान है (विराट्) सर्व जगत् स्वरूप ॥ ५१ ॥ (वीरचूडामणिः) वीरोंके शिरोरत्न (वेत्ता) सर्वज्ञ (तीव्रानन्दः) अत्यन्त आनंद स्वरूप (नदीधरः) गंगाके धारण करनेवाले सागररूप (आज्ञाधारः) अविच्छिन्न संततिरूप जगत् नियम है जिसका (त्रिशूली) त्रिशूल आयुध धारण करनेवाले (शिपिविष्टः) यज्ञमें विष्णुरूपसे स्थित " यज्ञो वै विष्णुः पशवः शिपिर्यज्ञ एव पशुषु प्रविश्य तिष्ठतीति श्रुतेः " अथवा रश्मिमें रहनेवाले (शिवालयः) कल्याण युक्त स्थान वाले ॥ ४१० ॥ ॥५२॥ (वालखिल्यः) वालखिल्य ऋषिरूप (महाचाप :) बडा विदेह राजाका पूजनीय जिनका धनुष है (तिग्मांशुः) सूर्यरूप (बधिर) श्रोत्रइन्द्रियरहित (खगः) अंतरिक्षचारी (अभिरामः) जिससे सब प्रकार योगी रमण करते हैं (सुशरणः) दुःखी पुरुषोंको शरणरूप सुन्दर स्थानवाले (सुब्रह्मण्यः) सब वेद ज्ञाति ज्ञान वेत्ताके हित करनेवाले (सुधापतिः) अमृतके स्वामी ॥५३॥ (मघवान् कौशिकः) इन्द्रस्वरूप । यह दोनों एक हैं ॥ (४२०) (गोमान्) जिसके संसाररूप गौ हैं, लिंगपुराणमें इसकी कथा है (विरामः) जिसमें प्राणियोंका अवसान होता है (सर्वसाधनः) जिसके

सब पुरुषार्थके देनेवाले साधन हैं (ललाटाक्षः) मस्तकमें नेत्रवाले (विश्वदेहः) जगत् जिसका शरीर है (सारः) प्रलयमें भी स्थिर रहने वाले (संसारचक्रभृत्) सम्पूर्ण प्रपंचके धारण करनेवाले ॥ ५४ ॥ (अमोघदण्डः) सफल दण्डवाले (मध्यस्थः) न्यायमें स्थित पक्षपात रहित (हिरण्यः) सुवर्ण अथवा तेजरूप (४३०) (ब्रह्मवर्चस्वी) जिससे ब्रह्माका प्रकाश है; अथवा ब्रह्माकी दीप्तिवाले (परमार्थः) जिससे मोक्षरूप अर्थ सिद्ध होता है (परो मायी) उत्कृष्ट मायावाले । यह दोनों एक (शंबरः) जिससे उत्कृष्ट कल्याण होता है; अथवा जलस्वरूपः (व्याघ्रलोचनः) दूरनेत्रवाले ॥ ५५ ॥) रुचिः (दीप्तिरूप) विरंचिः (ब्रह्मास्वरूप) स्वर्बन्धुः) स्वर्गलोकमें बन्धुरूपसे फलदेनेवाले (वाचस्पतिः) विद्याओंके स्वामी " ईशानः सर्वविद्यानामिति श्रुतेः " (अहर्पतिः) सूर्यरूप (४४०) (रविः) रस ग्रहण करनेवाले (विरोचनः)

अमोघदंडो मध्यस्थो हिरण्यो ब्रह्मवर्चसः ॥ परमार्थः परोमायी शंबरो व्याघ्रलोचनः ॥ ५५ ॥ रुचिर्बहुरुचिर्वेद्यो वाचस्पतिरहस्पतिः ॥ रविर्विरोचनः स्कंदः शास्ता वैवस्वतो यमः ॥ ५६ ॥ युक्तिरुन्नतकीर्तिश्च सानुरागः पुरंजयः ॥ कैलासाधिपतिः कांतः सविता रविलोचनः ॥ ५७ ॥ विश्वोत्तमो वीतभयो विश्वभर्त्ताऽनिवारितः ॥ नित्यो नियतकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्त्तनः ॥ ५८ ॥ दूरश्रवो विश्वसहो ध्येयो दुःस्वप्ननाशनः ॥ उत्तारणो दुष्कृतिहा विज्ञेयो दुःसहोऽभवः ॥ ५९ ॥

अग्नि अथवा सूर्यरूप (स्कंद) अमृत रूपसे स्रव और वायुरूपसे शोषनेवाले (शास्ता वैवस्वतो यमः) शासना करनेको सूर्य पुत्र यमके समान यह तीन शब्द एकवाची हैं ॥ ५६ ॥ (युक्तिरुन्नतकीर्तिः) अष्टांगयोग युक्त, अथवा न्यायरूप महाकीर्तिवाले । यह दो एक हैं (सानुरागः) भक्तोंमें प्रीतिमान् (परंजयः) शत्रुओंके जीतनेवाले (कैलासाधिपतिः) कैलासके स्वामी (कान्तः) मनोहर (सविता) सब जगत्के उत्पन्न करनेवाले (४५० ॥) रविलोचनः (सूर्यरूपी नेत्रवाले " अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यावितिश्रुतेः " ॥ ५७ ॥ (विद्वत्तमः) अतिशय ज्ञानवाले (वीतभयः) संसारके भयसे रहित (विश्वभर्ता) संसारके पोषक (अनिवारितः) कर्मफल देनेमें किसीसे भी निवारण न होनेवाले (नित्यः) उत्पत्ति नाशरहित (नियतकल्याणः) अखंडित कल्याणवाले (पुण्यश्रवणकीर्तनः) जिनका पवित्र श्रवण और कीर्तन है ॥ ५८ ॥ (दूरश्रवाः) जिनसे दूर देशमेंभी श्रवण होता है (विश्वसहः) संसारके सहनेवाले (४६०) (ध्येयः) विचारनेके योग्य (दुःस्वप्ननाशनः)

होनेवाले दुःस्वप्नोंके नाश करनेवाले (उत्तारणः) संसारसे पार करनेवाले (दुष्कृतिहा) पापकारियोंको मारनेवाले (विज्ञेयः) विशेषतासे जानने योग्य (दुःसहः) दुःखसेभी असुरादि जिसको नहीं सह सकते (अभवः) जन्मरहित ॥ ५९ ॥ (अनादिः) सबके कारण होनेसे आदि रहित (भूर्भुवो लक्ष्मीः) भूर्भुव लोककी लक्ष्मी शोभा जिसकी आत्मविया है (किरीटी) किरीटधारी (५७०) (त्रिदशाधिपः) देवताओंके स्वामी (विश्वगोप्ता) जगत्के रक्षक (विश्वकर्ता) जगत्के उत्पन्न करनेवाले (सुवीरः) अनेक प्रकारकी गतिवाले (रुचिरांगदः) सुन्दर बाजूबंद भुजाओंमें धारण करनेवाले ॥ ६० ॥ (जननः) प्राणियोंके उत्पन्न करनेवाले (जनजन्मादिः) प्राणियोंके जन्मके आदि कारण (प्रीतिमान्) नित्यप्रीतियुक्त (नीतिमान् (नित्यनीतियुक्त) (धवः) सबके स्वामी ॥ ४८० ॥ (वसिष्ठः) प्रलयकालमें भी विद्यमान

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः किरीटी त्रिदशाधिपः ॥ विश्वगोप्ता विश्वकर्त्तासुवीरो रुचिरांगदः ॥६०॥ जननो जनजन्मादिः प्रीतिमान्नीतिमान्ध्रुवः ॥ वशिष्ठः कश्यपो भानुर्भीमो भीमपराक्रमः ॥६१॥ प्रणवः सत्पथाचारो महाकोशो महाधनः ॥ जन्माधिपो महादेवः सकलागमपारगः ॥ ६२ ॥ तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा विभुर्विष्णुविभूषणः ॥ ऋषिर्ब्राह्मण ऐश्वर्यजन्ममृत्युजरातिगः ॥ ६३ ॥

(कश्यपः) कश्यप ऋषिरूप (भानुः) प्रकाशमान् "तमेव भांतमनु भाति सर्वमिति श्रुतेः " (भीमः) दुष्टोंके कारण (भीमपराक्रमः) असुरादिकोंके भय देनेके भयके पराक्रमवाले ॥ ६१ ॥ (प्रणवः) ओंकाररूप (शिवअथर्वशीर्षमें लिखा है "अथकस्मादुच्यते प्रणवो यस्मा दुच्चार्यमाण एवर्चो यजूंषि सामान्यथर्वांगिरसश्च यज्ञे ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणमयति तस्मादुच्यते प्रवण इति " (सत्पथाचारः) सन्मार्गमें चलनेवाले (महाकोशः) अन्नमयादि महाकोशवाले (महाधनः) अपरिमित ऐश्वर्यवाले (जन्माधिपः) जन्मउत्पत्तिके स्वामी (४९०) (महादेव) सब भावोंको छोडे आत्मज्ञान ऐश्वर्यमें प्राप्त होनेसे महादेव (सकलागमपारगः) सब वेदोंके अन्त जाननेवाले ॥ ६२ ॥ (तत्त्वम्) ब्रह्मस्वरूप (तत्त्ववित्) स्वरूपको यथावत् जाननेवाले (एकात्मा) एक आत्मा " आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीदिति श्रुतेः " (विभुः) सर्वव्यापक (विश्वभूषणः) जगत् जिनका भूषण है वा जिनसे जगत् भूषित है (ऋषिः) परोक्ष अथवा इन्द्रिय अगोचरके दर्शक " *विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिरिति*

श्रुतेः" (ब्राह्मणः) उत्तमवर्णरूप (ऐश्वर्यजन्ममृत्युजरातिगः) ऐश्वर्यसे जन्मादि छैः विकारोंका अतिक्रमण करनेवाले (५००) पांचवां शतक पूर्ण हुआ ॥ ६३ ॥ पंचयज्ञसमुत्पत्तिः) देवादि पंचयज्ञोंकी जिससे उत्पत्ति है (विश्वेशः) सब जगत्के ईश्वर (विमलोदयः) जिससे मंगल का उदय होता है (आत्मयोनिः) सबके कारणरूप (अनाद्यन्तः) आदि अन्तरहित (वत्सलः) सबके प्यारे (भक्तलोकधृक्) भक्तजनोंके धारण करनेवाले ॥ ६४ ॥ (गायत्रीवल्लभः) शिवगायत्रीप्रियावाले (प्रांशुः) जिनको सुषुम्नादि किरणें प्रकृष्ट हैं (विश्वावासः) संसारमें व्याप्त (५१०) (प्रभाकरः) अत्यन्त दीप्ति करनेवाले (शिशुः) बालरूप । यह कथा लिंगपुराणमें पार्वतीस्वयंवरमें प्रसिद्ध है । (गिरिरतः) कैलासके प्रिय (सम्राट्) सबके अधिपति व नियंता (सुषेणः सुरशत्रुहा) जिनके सुन्दर गणरूप सेना है जो देवताओंके शत्रुके नाशकर्ता हैं । यह दो एक हैं ॥ ६५ ॥ (अमोघोऽरिष्टनेमिः) स्तुति करनेसे सब फल देनेवाले "सत्यसंकल्प इति श्रुतेः" । शुभाशुभफलदान रूपी

पंचयज्ञसमुत्पत्तिर्विश्वेशो विमलोदयः ॥ आत्मयोनिरनाद्यंतो वत्सलो भक्तलोकधृक् ॥ ६४ ॥ गायत्रीवल्लभः प्रांशुर्विश्वावासः प्रभाकरः ॥ शिशुर्गिरिरतः सम्राट् सुषेणः सुरशत्रुहा ॥ ६५ ॥ अनेमिरिष्टनेमिश्च मुकुन्दो विगतज्वरः ॥ स्वयंज्योतिर्महाज्योतिस्तनुज्योतिरचंचलः ॥ ६६ ॥ पिंगलः कपिलश्मश्रुर्भालनेत्रस्त्रयीतनुः ॥ ज्ञानस्कंदो महानीतिर्विश्वोत्पत्तिरुपप्लवः ॥ ६७ ॥

चक्रके मध्यमें स्थित यह भी दोनों एक हैं । (कुमुदः) भार दूर करके पृथ्वीको प्रसन्न करनेवाले " मुकुन्दो मुक्तिदः " ऐसा भी पाठ है (विगतज्वरः) जिससे सब ताप पृथक् हैं (स्वयंज्योतिस्तनुज्योतिः) स्वप्रकाशात्मक सूक्ष्म तेज स्वरूपवाले " नीवारशूकव त्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा ॥ तस्याः शिखाया मध्ये च परमात्मा व्यवस्थित इति श्रुतेः" । यह दो एक हैं । (आत्मज्योतिः) आत्मारूप ज्योतिवाले "येन सूर्यस्तपति तेजसेद्ध इत्यादि श्रुतेः " (५२०) (अचंचलः) स्थिर "वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठतीत्यादि श्रुतेः" ॥ ॥६६॥ (पिंगल) व्याघ्रचर्मादि धारण करनेसे पिंगलवर्ण (कपिलश्मश्रु) पिंगलवर्णश्मश्रु डाढी मूछ धारण करनेवाले (भालनेत्रः) मस्तकमें तीसरा नेत्र धारण करनेवाले (त्रयीतनुः) वेदमयशरीरवाले (ज्ञानस्कन्दो महानितिः) ज्ञान प्रदान करनेसे भक्तोंको देनेवाले संसारसागरके शोषक जगत्

यंत्रकी निर्वाह साधनी नीतिवाले (विश्वोत्पत्तिः) जिनसे जगत्की उत्पत्ति है (उपप्लवः) जिनसे दुष्ट पीडित होते हैं ॥ ६७ ॥ (भगो विवस्वानादित्यः) भगविवस्वानादित्य देवतारूप । यह तीनों एक हैं ॥ (योगपारः) योगकी सम्पूर्णता करनेवाले " योगाधारः " ऐसा भी पाठ है (५३०) (दिवस्पतिः) इन्द्रस्वरूप (कल्याणगुणनामा) जिनके शिव शंभु आदि मंगलयुक्त नाम हैं (पापहा) भक्तोंके पाप नाश करनेवाले (पुण्यदर्शनः) पवित्रपुण्यरूप दर्शनवाले ॥ ६८ ॥ (उदारकीर्त्तिः) पूजनीय कीर्त्तिवाले (उद्योगी) सृष्टि आदिके करनेमें उद्योगशील (सद्योगी) नित्ययोगयुक्त (सदसन्मयः) जगत् स्वरूप । (नक्षत्रमाली) आकाशरूपमें नक्षत्रही जिनके मालारूप हैं (नाकेशः) स्वर्गके पति " लोकेश " ऐसा भी पाठ है (५४०) (स्वाधिष्ठानपदाश्रयः) अपने स्वरूपमें लयस्थानवालोंके आधारभूत ॥६९॥ (पवित्रः पापहारी) पवित्र और भक्तोंके पाप दूर करनेवाले (मणिपूरः) रत्नादिकोंसे भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले (नभोगतिः)

भगो विवस्वानादित्यो योगपारो बृहस्पतिः ॥ कल्याणगुणनामा च पापहा पुण्यदर्शनः ॥ ६८ ॥ उदारकीर्तिरुद्योगी सद्योगी सदसन्मयः ॥ नक्षत्रमाली नाकेशः स्वाधिष्ठानपदाश्रयः ॥ ६९ ॥ पवित्रः पापहारी च मणिपूरो नभोगतिः ॥ हृत्पुंडरीकमासीनः शक्रः शांतो वृषाकपिः ॥ ७० ॥ उष्णो गृहपतिः कृष्णः समर्थोऽनर्थनाशनः ॥ अधर्मशत्रुरज्ञेयः पुरुहूतः पुरुश्रुतः ॥ ७१ ॥ ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः ॥ जगद्धितैषी सुगतः कुमारः कुशलागमः ॥ ७२ ॥

अन्तरिक्षमें विचरनेवाले (हृत्पुण्डरीकमासीनः) योगियोंके हृदयकमलमें रहनेवाले (शक्रः) इन्द्रस्वरूप (शांत) सदाशांतियुक्त (वृषाकपिः) धर्मकी स्थिरताके कारण ॥ ७० ॥ (उष्णः) हालाहल पान करनेसे उष्णतायुक्त (गृहपतिः) सब गृहोंके पालक (५५०) (कृष्णः) कृष्णकण्ठ अथवा कृष्ण गोचरस्वरूप (समर्थः) सब कार्योंमें समर्थ (अनर्थनाशनः) संसारके दुःख हरनेवाले (अधर्मशत्रुः) पापियोंके शासन करनेवाले (अज्ञेयः) योगियोंको अगम्य (पुरुहूतः पुरुश्रुतः) बहुतोंसे उपासित "पुरुहूतपुरुष्टुतः" ऐसा भी पाठ है बहुत गुरुओंसे श्रवण होनेवाले । यह दोनों एक ॥७१॥ (ब्रह्मगर्भः) जिनके गर्भमें वेद स्थित हैं (बृहद्गर्भः) जिनके महान् ब्रह्माण्ड गर्भ है (धर्मधेनुः) धर्मोत्पत्तिके स्थानभूत (धनागमः) जिनसे सब प्रकारके धनका आगम होता है (५६०)(जगद्धितैषी) लोकके कल्याय की इच्छावाले (सुगतः) मोहनेके निमित्त

बुद्धावतार लेनेवाले (कुमारः) बालस्वरूप अथवा जिनके सन्मुख कामदेव पराजित हुआ (कुशलागमः) कल्याण दाता ॥ ७२ ॥ (हिरण्य वर्णो ज्योतिष्मान्) हिरण्यवर्ण होनेसे कान्तिमान् " नमो हिरण्यवर्णायेतिश्रुतेः " यह दोनों एक (नानाभूतरतः) पिशाचादिकोंमें रमण करने वाले (ध्वनिः) नादात्मक (अरागः) रागशून्य (नयनाध्यक्षः) सब लोकोंके चक्षुमें वर्तमान होनेसे चक्षुके प्रवर्तन करनेवाले (विश्वामित्रः) विश्वामित्र ऋषि स्वरूप (५७०) (धनेश्वरः) कुबेररूप ॥ ७३ ॥ (ब्रह्मज्योतिः) सबके प्रकाशक ब्रह्मस्वरूप (वसुधामा) धनरूप तेज वाले (महाज्योतिस्तुत्तमः) महातेजस्वी होनेसे सबसे उत्कृष्ट यह दो एक हैं । (मातामहः) जगत्की माताके पिता (मातरिश्वानभस्वान्) वायुस्वरूप (नागहारधृक्) नागमय हारादि भूषणधारी ॥ ७४ ॥ (पुलस्त्यः) पुलस्त्य स्वरूप (पुलहः) पुलह ऋषि स्वरूप (अगस्त्यः)

हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्नानाभूतरतो ध्वनिः ॥ आरोग्योनमनाध्यक्षो विश्वामित्रो धनेश्वरः ॥ ७३ ॥ ब्रह्मज्योतिर्वसुधामा महाज्योतिरनुत्तमः ॥ मातामहो मातरिश्वा नभस्वान्नागहारधृक् ॥ ७४ ॥ पुलस्त्यः पुलहोऽगस्त्यो जातूकर्ण्यः पराशरः ॥ निरावरणनिर्वारो वैरंच्यो विष्टरश्रवाः ॥ ७५ ॥ आत्मभूरनिरुद्धोऽत्रिर्ज्ञानमूर्तिर्महायशाः ॥ लोकवीराग्रणीर्वीरश्चण्डः सत्यप राक्रमः ॥ ७६ ॥ व्यालकल्पो महाकल्पः कल्पवृक्षः कलाधरः॥अलंकरिष्णुरचलो रोचिष्णुर्विक्रमोन्नतः ॥ ७७ ॥

अगस्त्य नामक ऋषि स्वरूप (५८०) (जातूकर्ण्यः) जातूकर्ण्य ऋषि स्वरूप (पराशरः) पराशर ऋषि स्वरूप (निरावरणनिर्वारः) मायाबंध रहित होनेसे वारण करनेकी अशक्य । निवारण विज्ञानः " ऐसा भी पाठ है (वैरंच्यः) ब्रह्माके पुत्र स्वरूप (विष्टरश्रवाः) विष्णु स्वरूप ॥ ७५ ॥ (आत्मभूः) स्वयं प्रकाश (अनिरुद्धः) किसी भी प्रादुर्भावमें निरुद्ध न होनेवाले (अत्रिः) अत्रि ऋषि स्वरूप (ज्ञानमूर्तिः) ज्ञान स्वरूप " सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति श्रुतेः " (महायशाः) अपार कीर्त्तिमान् (५९०) (लोकवीराग्रणीः) लोकके वीर विष्णु आदिसे श्रेष्ठ (वीरः) महाशूरः (चण्डः) दुष्टोंपर महाक्रोध करनेवाले (सत्यपराक्रमः) सफल शक्ति ॥७६॥ (व्यालाकल्पः) सर्पोंका भूषण धारण करनेवाले (महाकल्पः) महासमर्थ(कल्पवृक्षः) भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले (कलाधरः) भक्तजनोंको प्रसन्न करनेसे चन्द्र स्वरूप (अलंकरि

ष्णुः) विशेष कान्तिमान् (अचलः) स्थिर (६००) छठा शतक पूर्ण हुआ (रोचिष्णुः) दीप्तिमान् (विक्रमोन्नतः) अनेक पराक्रम युक्त होनेसे सबसे बडे ॥ ७७ ॥ (आयुःशब्दपतिः) सब प्राणियोंकी आयु और वेदवाणीके नियन्ता (वेगीप्लवनः) शीघ्रतासे भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले यह दो एक । (शिखिसारथिः) अग्निसहायवान् (असंसृष्टः) मायाके संसर्गसे रहित (अतिथिः) भक्तोंकी अतिथि रूपसे पूजा ग्रहण करनेवाले (शक्रप्रमाथी)असुर सेनाके विलोडेमें समर्थ (पादपासनः) वृक्षके समीपमें आसन लगानेवाले ॥ ७८ ॥ (वसुश्रवाः) मधुर जिनका श्रवण है (६१०) (हव्यवाहः) देवताओंके हवि पहुँचानेवाले अग्नि स्वरूप (प्रतप्तः) कठिन तप तप करनेवाले (विश्वभोजनः) संसारके पालनेवाले (जप्यः) उपासना करने योग्य (जरादिशमनः) जरादि पीडाके शान्त करनेवाले (लोहितात्मा तनपात) रक्तवर्ण भक्तोंके शरीरको न गिरानेवाले अग्निस्वरूप यह दो एक हैं ॥ ७९ ॥ (बृहदश्वः) बडा अश्वसहित जिनका वाहन है (नभोयोनिः) सबके कारण

आयुःशब्दपतिर्वेगी प्लवनश्शिखिसारथिः ॥ असंसृष्टोऽतिथिश्शत्रुःप्रमाथी पादपासनः ॥ ७८ ॥ वसुश्रवा कव्यवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः ॥ जप्यो जरादिशमनो लोहितात्मा तनूनपात् ॥ ७९ ॥ बृहदश्वो नभोयोनिः सुप्रतीकस्तमिस्रहा ॥ निदाघस्तपनो मेघः स्वक्षः परपुरंजयः ॥ ८० ॥ सुखानिलस्सुनिष्पन्नस्सुरभिश्शिशिरात्मकः ॥ वसंतो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहनः ॥ ८१ ॥ अंगिरा गुरुरात्रेयो विमलो विश्वपावनः ॥ पावनः सुमतिर्विद्वांस्त्रैविद्यो वरवाहनः॥ ८२ ॥

आकाशके भी कारण (सुप्रतीकः) सुन्दर अवयववाले (तमिस्रहा) आज्ञानके दूर करनेवाले (६२०) (निदाघस्तपनः) ग्रीष्मरूप यह दो एक हैं । (मेघः) मेघस्वरूप (स्वक्षः) सुन्दर नेत्र युक्त (परपुरंजयः) शत्रुओंके पुरको जीतनेवाले ॥ ८० ॥ (सुखानिलः) जिनसे सुखदायक वायु होता है (सुनिष्पन्नः) जिनसे सुन्दर जगत् उत्पन्न हुआ (सुरभिः शिशिरात्मकः) अत्यन्त प्रसन्नता देनेवाले शिशिर ऋतुरूप यह दो एक । (वसन्तो माधवः) वसन्त ऋतुरूप मकरन्द युक्त (ग्रीष्मः) सब रस शोषनेसे ग्रीष्म ऋतुरूप (नभस्यः) श्रावणमें होनेवाले वर्षा ऋतु रूप (६३०) (बीजवाहनः) धान्यके प्राप्त करनेवाले शरद्धेमन्त ऋतुरूप ॥८१॥ (अंगिराः) ऋषिरूप (गुरुरात्रेयः) दत्तात्रेय स्वरूप यह दोनों एक (विमलः) शुद्ध (विश्ववाहनः) जगत्के निर्वाहक (पावनः) पापके नाश करनेवाले (सुमतिर्विद्वान्) श्रेष्ठ बुद्धि सब कुछ जाननेवाले । यह

दो एक (त्रैविद्यः) ऋग्यजुःसामके ज्ञाता (नरवाहनः) कुबेररूप ॥८२॥ (मनोबुद्धिः) मनसहित बुद्धिरूप (६४०) (अहंकारः) अहंकारतत्त्वस्व रूप (क्षेत्रज्ञः) लिंगशरीरके जाननेवाले (क्षेत्रपालकः) सिद्ध स्थानोंके रक्षक (जमदग्निः) जमदग्नि ऋषिस्वरूप (बलनिधिः) सब शक्तियोंके अधिष्ठानस्वरूप (विगालः) विशेष करके मोक्षरूपी अमृतके स्रवानेवाले (विश्वगालवः) संसारमें गालवऋषिरूपसे स्थित ॥८३॥ (अघोरः) घोर तारहित अभयंकर (अनुत्तरः) जिनसे अधिक कोई नहीं (यज्ञः) ज्योतिष्टोमादि यज्ञस्वरूप (६५०) (श्रेयः) कल्यास्वरूप (निःश्रेयसां पथः) कल्याणोंके मार्गरूप (शैलः) शिलामें होनेवाले नर्मदामें लिंगस्वरूप (गगनकुन्दाभः) जिनकी गगनकुन्दके फूलके समान कांति है (दानवारिः) दानवोंके नाशकर्ता (अरिन्दमः) भक्तोंके शत्रुओंके नाशक ॥८४॥ (रजनीजनकः) कालरात्रिशक्तिके उत्पन्नकर्ता (चारुविशल्यः) सूक्ष्म बुद्धि मान् जिससे दुःखरहित होते हैं (लोककल्पधृक्, लोकोंके उत्पत्ति आदि प्रकार धारण करनेवाले। " लोकशल्यहृत् " ऐसाभी पाठ है। (चतु

मनोबुद्धिरहंकारः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः ॥ जमदग्निर्बलनिधिर्विगालो विश्वगालवः ॥ ८३ ॥ अघोरोऽनुत्तरो यज्ञः श्रेयो निःश्रेयसां पथः ॥ शैलोगगनकुंदाभो दानवारिरिंदमः ॥ ८४ ॥ चामुण्डो जनकश्चारुविशल्यो लोकशल्यधृक् ॥ चतुर्वेदश्चतुर्भाव श्चतुरश्चतुरप्रियः ॥ ८५ ॥ आम्नायोऽथ समाम्नायस्तीर्थदेवशिवालयः ॥ बहुरूपो महारूपस्सर्वरूपश्चराचरः ॥ ८६ ॥ न्याय निर्नायको न्यायी न्यायगम्यो निरंतरः ॥ सहस्रमूर्द्धा देवेंद्रस्सर्वशस्त्रप्रभंजनः ॥ ८७ ॥

वेदः) जिससे चारों वेद हुए हैं (६६०) (चतुर्भावः) जिससे धर्मादि चारों भाव हुए हैं (चतुरश्चतुरप्रियः) कुशल होनेसे चतुरोंसे प्रेम करने वाले यह दो एक ॥८५॥ (आम्नायः) वेदस्वरूप (समाम्नायः) वेदकेभी प्रमाणभूत अथवा जिससे सबके प्रमाणरूप वेद हुआ है; वा जिसके तुल्य वेद है (तीर्थदेवशिवालयः) तीर्थोंके देवताओंके कल्याणके स्थान बहुरूपः) असंख्यरूपवाले (महारूपः) जिसके पूजनीय रूप हैं (सर्वरूपः) जिसका जगत् रूप है (चराचरः) अस्थिरालक्ष्मी जिसमें स्थित रहती है ॥ ८६ ॥ (न्यायनिर्नायको न्यायी) सत्पक्षके निर्वाह करनेवाले नीतिमान्। यह दो एक हैं (६७०) (न्यायगम्यः) नीतिसे जानने योग्य (निरन्तरः) भेदरहित (सहस्रमूर्धा) असंख्य शिरवाले (देवेन्द्रः) देवताओंके पति (सर्वशस्त्रप्रभंजनः) सब शस्त्रोंके तोडनेवाले ॥ ८७ ॥

मुंडो विरूपो विकृतो दंडी दांतो गुणोत्तमः ॥ पिंगलाक्षो जनाध्यक्षो नीलग्रीवो निरामयः ॥ ८८ ॥ सहस्रबाहुस्सर्वेशः शरण्यः सर्वलोकधृक् ॥ पद्मासनः परंज्योतिः परं पारः परं फलम् ॥ ८९ ॥ पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विचक्षणः ॥ चराचरज्ञो वरदो वरेशस्तु महालबः ॥ ९० ॥ देवासुरगुरुर्देवो देवासुरमहाश्रयः ॥ देवादिदेवो देवाग्निर्देवाग्निसुखदः प्रभुः ॥ ९१ ॥ देवासुरेश्वरो दिव्यो देवासुरमहेश्वरः ॥ देवदेवमयोऽचिंत्यो देवदेवात्मसंभवः ॥ ९२ ॥

(मुण्डः) लुंचितकेशरूप (विरूपः) सबसे श्रेष्ठरूपवान् (विक्रांतः) अतिशय विक्रमवान् (दंडी) कालदण्ड धारण करनेवाले (दांतः) जितेन्द्रिय (६८०) (गुणोत्तमः) जिसके श्रेष्ठ गुण हैं (पिंगलाक्षः) पिंगलवर्ण नेत्रोंवाले (जनाध्यक्षः) जनोंके अधिपति (नीलग्रीवः) नीले रंगकी गरदन वाले (निरामयः) सब रोगरहित ॥ ८८ ॥ (सहस्रबाहुः) असंख्य भुजाओंवाले (सर्वेशः) सब लोकोंके पति (शरण्यः) शरणदाता (सर्व लोकधृक्) भूरादि सब लोकोंके धारण करनेवाले (पद्मासनः) हृदय कमलमें आसनवाले (६९०) (परंज्योतिः) सबसे अधिक तेजमान (परंपारः) संसार दुःखसे अत्यन्त पार लगानेवाले (परंफलम्) परम पुरुषार्थ स्वरूप ॥ ८९ ॥ (पद्मगर्भः) जिनके गर्भमें संसार है अथवा हृदय कमलकी कर्णिकामें उपासना करनेवालोंके निमित्त स्थित (महागर्भः) जिनका विराट्रूप महापूजनीय है (विश्वगर्भः) जगत् जिनके गर्भमें स्थित है (विचक्षणः) विशेष करके वेदादिकोंको कहनेवाले (चराचरज्ञः) सर्वज्ञ (वरदः) भक्तोंको वर देनेवाले (वरेशः) वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ (७००) सातवां शतक पूरा हुआ ।) महाबलः) जिससे सब महाशक्तियें हुई हैं ॥ ९० ॥ (देवासुरगुरुर्देवः) देवासुरोंके उपदेश करनेवालोंके भी गुरु । यह दो एक हैं (देवासुरमहाश्रयः) देवता असुरोंके महाआधाररूप (देवादिदेवः) देवोंके आदि ब्रह्मादिक जिससे हुए हैं (देवाग्निः) जिससे प्रकाशमान् अग्नि हुए हैं (देवाग्निसुखदः प्रभुः) देवताओंको अग्निद्वारा सुख देनेवाले स्वतंत्र । यह दो एक हैं ॥ ९१ ॥ देवासुरेश्वरः) देवता असुरोंके स्वामी (दिव्यः) अलौकिक स्वरूप (देवासुरमहेश्वरः) देवता और असुरोंके पूजनीय (देवदेवमयः) देवताओंकेभी देवता ब्रह्मादिरूप (७१०) (अचिन्त्यः) चिन्ता करनेमें न आनेवाले (देवदेवात्मसंभवः) ब्रह्मादिकोंकेभी देव जिससे

जीवोंका प्रादुर्भाव हुआ है ॥ ९२ ॥ (सद्योनिः) वस्तुमात्रके कारण (असुरव्याघ्रः) असुरोंके ऊपर व्याघ्रके समान (देवसिंहः) देवताओंमें सिंह (दिवाकरः) दिनके करनेवाले (विबुधाग्रवरश्रेष्ठः) इन्द्रसे श्रेष्ठ ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ (सर्वदेवोत्तमोत्तमः) सर्वदेवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा उनसे भी श्रेष्ठ ॥ ॥९३॥ (शिव ज्ञानरतः) अपने स्वरूप के ज्ञानमें तत्पर (श्रीमान्) त्रिवर्णसम्पत्तियुक्त (७२०) (शिखिश्रीपर्वतप्रियः) चूडावान् कुमारके निमित्त श्रीपर्वतसे प्रेम करनेवाले यह कथा ज्योतिर्लिंगमाहात्म्यमें देखो (वज्रहस्तः) इन्द्रस्वरूप (सिद्धिखड्गी) सब सिद्धि युक्त खड्ग धारण करनेवाले (नरसिंह निपातनः) शरभरूपसे नृसिंहका गर्व दूर करनेवाले ॥९४॥ (ब्रह्मचारी) वेदमें शीलवान् (लोकचारी) भूरादिलोकोंमें फिरनेवाले (धर्मचारी) धर्म करनेवाले (धनाधिपः) सब धनोंके स्वामी (नन्दी) नन्दी नामक गणरूप (नन्दीश्वरः) नन्दियोंके ईश्वर (७३०) (अनंतः)

सद्यो महासुरव्याघो देवसिंहो दिवाकरः ॥ विबुधाग्रचरः श्रेष्ठः सर्वदेवोत्तमोत्तमः ॥ ९३ ॥ शिवज्ञानरतः श्रीमाञ्छिखीश्रीपर्वत प्रियः ॥ वज्रहस्त सिद्धखड्गी नरसिंहनिपातनः ॥ ९४ ॥ ब्रह्मचारी लोकचारी धर्मचारी धनाधिपः ॥ नन्दी नंदीश्वरोऽनंतो नग्नव्रतधरः शुचिः ॥ ९५ ॥ लिंगाध्यक्षः सुराध्यक्षो युगाध्यक्षो युगावहः ॥ स्वधर्मा स्वर्गतः स्वर्गस्वरः स्वरमयस्वनः ॥ ९६ ॥ बाणाध्यक्षो बीजकर्ता धर्मकृद्धर्मसंभवः ॥ दंभो लोभोर्थविच्छंभुः सर्वभूतमहेश्वरः ॥ ९७ ॥

देशकालादिपरिच्छेदरहित (नग्नव्रतधरः) दिगम्बर सब भूतवेषधारी (शुचिः) दोषोंसे रहित ॥ ९५ ॥ (लिंगाध्यक्षः) बाणादि लिंगरूपमें अध्यक्ष अथवा लिंगदेहमें अधिष्ठित (सुराध्यक्षः) देवताओंके स्वामी (योगाध्यक्षः) योगशास्त्रके प्रवर्तक (युगावहः) सतयुगादिकोंकी समय पर प्राप्ति करानेवाले (स्वधर्मा) जगत् उत्पन्न करनेका जिसका धर्म (स्वर्गतः) स्वर्गमें रहनेवाले (स्वर्गस्वरः) स्वर्गलोकमें जिसकी पवन है (७४०) (स्वरमयस्वनः) षड्जादि सात स्वर जिससे होते हैं ॥ ९६ ॥ (बाणा ध्यक्षः) बाणासुरके स्वामी (बीजकर्ता) शुक्रके उत्पन्न करनेवाले (धर्मकृद्धर्मसंभवः) पुण्यात्माओंका धर्म जिससे प्रादुर्भूत होता है (दंभः) भक्तोंकी परीक्षाके निमित मायासे रूप बनानेवाले (अलोभः) लोभरहित (अर्थविच्छंभुः) वेदादिके अर्थ जाननेवालोंकी सम्भावना करनेवाले (सर्वभूतमहेश्वरः) सब प्राणियोंके

श्मशाननिलयरुयक्षः सेतुरप्रतिमाकृतिः॥ लोकोत्तरस्फुटालोकरुयंबको नागभूषणः ॥ ९८ ॥ अंधकारिर्मखद्वेषी विष्णुकंधरपा
तनः॥ हीनदोषोऽक्षयगुणो दक्षारिः पूषदंतभित् ॥९९॥ धूर्जटिः खंडपरशुः सकलो निष्कलोऽनघः ॥ अकालः सकलाधारः
पांडु राभो मृडो नटः ॥ १०० ॥ पूर्णः पूरयिता पुण्यः सुकुमारः सुलोचनः ॥ सामगेयप्रियोऽक्रूरः पुण्यकीर्तिरनामयः
॥ १०१ ॥मनोज वस्तीर्थकरो जटिलो जीवितेश्वरः ॥ जीवितांतकरो नित्यो वसुरेता वसुप्रदः ॥ १०२ ॥

अधिपति ॥ ९७ ॥ (श्मशाननिलयः) सम्पूर्ण मृतकोंका महाअधिष्ठानभूत प्रलय उसकाभी जिससे नाश होजाता है वह है स्थान जिनका (त्र्यक्षः) त्रिनेत्र (७५०) (सेतुः) संसारसागरके तारनेको सेतुरूप (अप्रतिमाकृतिः) जिनकी उपमाशून्य आकृति है (लोकोत्तरस्फुटालोकः) नेत्रोंके ग्रहण करने योग्य वही आत्मस्वरूप जिसका (त्र्यम्बकः) जिनके तीन नेत्र हैं (नागभूषणः) जिनके शेषनागादि भूषण हैं ॥ ९८ ॥ (अंधकारिः) अंधक दैत्यके मारनेवाले (मखद्वेषी) दक्षके यज्ञके विध्वंस करनेवाले (विष्णुकंधरपातनः) दक्षके यज्ञमें विष्णुका कंधर गिरानेवाले (हीन दोषः) जिसमें वैषम्यादि दोष नहीं हैं (अक्षयगुणः) जिनके नाशशून्य गुण हैं (७६०) (दक्षारिः) दक्षप्रजापतिके शत्रु (पूषदन्तभित्) पूषाके दांत तोडनेवाले ॥ ९९ ॥ (धूर्जटिः) जिनके केश सबसे श्रेष्ठ हैं (खण्डपरशुः) जिनका परशु सबका छेदन करनेवाला है (सकलः) चंद्रमाकी कलाके सहित (निष्कलः) निर्गुण (अनघः) पापरहित (अकालः) मृत्युरहित (सकलाधारः) सम्पूर्ण जगत्के आधार (पांडुराभः) श्वेतकांतिवाले (७७०) (मृडः सबके सुख देनेवाले (नटः) चित्ररूप ॥ ॥ १०० ॥ (पूर्णः) सब कलाओंसे सम्पूर्ण (पूरयिता) सबको संपत्तिसे पूर्ण करनेवाले (पुण्यः) स्मरण करनेसेही पापके दूरकरनेवाले (सुकुमारः) जिनके स्कंदनामक सुन्दर पुत्र है (सुलोचनः) सुन्दर नेत्रवाले (सामगेयप्रियः) सामगाने वालोंके प्रिय (अक्रूरः) क्रूरतारहित (पुण्यकीर्तिः) जिसकी कीर्ति पाप नाशकरनेवाली है ॥ (७८०) (अनामयः) रोगरहित ॥ १०१ ॥ (मनोजवः) भक्तोंके दुःख दूर करनेमें मनके तुल्य वेगवाले (तीर्थकरः) शास्त्रोंके निर्माण करनेवाले (जटिलः) जटाजूटयुक्त (जीवितेश्वरः) सब प्राणियोंके प्राण

देनेवाले (जीवितन्तकरो नित्यः) सब प्राणियोंके संहार करनेवाले नित्य (वसुरेताः) सुवर्णवर्णके वीर्यवाले (वसुप्रदः) भक्तोंके निमित्त रत्नोंके देनेवाले ॥ १०२ ॥ (सद्गतिः) जिनके अव्यभिचारिणी गति प्राप्त होती है; अथवा ब्रह्मादि सन्तोंको प्राप्त करनेवाले "सन्तमेनं ततो विदुरिति श्रुतेः" (सत्कृतिः) जगद्रक्षणयुक्त आकृतिवाले (७९०) (सिद्धिः) सम्पूर्ण वस्तुओंमें सच्चिद्रूप अथवा अत्यन्त फलरूप (सज्जाति ः) जिससे साधुओंकी जातिका जन्म हुआ है (कालकंटक) कालके भी वेधन करनेवाले (कलाधरः) शिल्पादि चौसठ कलाओंके धारण करनेवाले (महाकालः) कालके भी काल (भूतसत्यपरायणः) प्राणियोंके परमाश्रय ॥१०३॥ (लोकलावण्यकर्ता) लोककी सुन्दरताके निर्माण करनेवाले (लोकोत्तरसुखालयः) सर्वोत्कृष्ट सुखको अधीन रखनेवाले (चन्द्रसंजीवन) चन्द्रमाकेसजीवन लोक पीडा नाशक (शास्ता) दुर्जनोंके शिक्षक(८००) आठवां शतक पूरा हुआ ॥ (लोकगूढः) जनोंके बुद्धिरूप गुहाश्रय होनेसे अप्रत्यक्ष (महाधिपः) महान् ईश्वर ॥ १०४ ॥ (लोकबन्धु)

सद्गतिः सत्कृतिः सिद्धिः सज्जातिः कालकंटकः ॥ कलाधरो महाकालो भूतसत्यपरायणः ॥१०३॥ लोकलावण्यकर्ता च लोकोत्तरसुखालयः ॥ चंद्रसंजीवनः शास्ता लोकगूढो महाधिपः ॥१०४॥ लोकबंधुर्लोकनाथः कृतज्ञःकृतिभूषितः ॥ अनपायोऽक्षरः कांतः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥१०५॥ तेजोमयो द्युतिधरो लोकानामग्रणीरणुः ॥ शुचिस्मितः प्रसन्नात्मादुर्जेयो दुरतिक्रमः ॥१०६॥

लोकके बन्धकृत्यको श्रुतिस्मृति लक्षण हिताहित उपदेशको करनेवाले (लोकनाथः) चौदह भुवनोंके ईश्वर (कृतज्ञः) प्राणियोंके किये पुण्यापुण्य कर्मको जाननेवाले (कीर्तिभूषणः) जिससे यशरूपी भूषण होता है (अनपायोक्षरः) नाशरहित होनेसे अक्षर नित्य स्वरूप । यह दोनों एक (कांतः) यमकेभी नाशक (सर्वशस्त्रभृतां वरः) सर्व शस्त्रधारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ ॥ १०५ ॥ (तेजोमयोद्युतिधरः) अत्यन्त तेजमय कांतिके धारण करनेवाले (८१०) (लोकानामग्रणीः) सर्व लोकोंमें श्रेष्ठ (अणुः) अत्यन्त सूक्ष्म "एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्य इति श्रुतेः" (शुचिस्मित) ईषद्हास्य युक्त (प्रसन्नात्मा) प्रसाद युक्त स्वभाववाले (दुर्जेयः) महाशत्रुओंके भी जीतनेमें न आनेवाले (दुरतिक्रमः) भयके कारण सूर्यादिभी जिनका भय करते हैं "भयादस्माद्वातः पवते भयात्तपति सूर्यः भयादिन्द्रश्चाग्निश्च मृत्युर्धावति पंचम इति श्रुतेः" ॥१०६॥

(ज्योतिर्मयः) तेजःपुंज (जगन्नाथः) अनन्त ब्रह्माण्डके स्वामी (निराकारः) निर्गुण (जलेश्वरः) भौतिक जल वा गंगाके पति (८२०) (तुम्बवीणः) तुम्बीफलकी वीणावाले (महाकोपः) संहार कालमें महाक्रोध करनेवाले (विशोकः) परमानन्दरूप होनेसे शोक रहित (शोकनाशनः) भक्तोंके शोक हर्ता ॥ १०७ ॥ (त्रिलोकपः) त्रिलोकीके पालक (त्रिलोकेशः) त्रिलोकी जिनकी आज्ञासे अपने कर्ममें वर्त्तती है (सर्वशुद्धिः) जिससे सब प्राणियोंकी शुद्धि होती है (अधोक्षजः) इन्द्रियजन्य ज्ञान जिससे नीचे पतित होता है (अव्यक्त लक्षणो देवः) जिनके अस्पष्ट लिंग हैं, ऐसे प्रकाश तेजःस्वरूप । यह दो एक (व्यक्ताव्यक्तः) गुण उपाधिसे व्यक्त होकर भी निर्गुणरूप होनेसे अव्यक्त (८३०) (विशांपतिः) सकल प्रजाके पालक ॥ १०८ ॥ (वरशीलः) जिसमें श्रेष्ठ शील है; अथवा जिससे श्रेष्ठ शील होता है; (वरगुणः) सबसे श्रेष्ठ गुणवाले (सारोमानधनः) अति बली दुष्टोंके नाश करनेके मानवाले । यह दो एक (मयः) सुखस्वरूप (ब्रह्मा)

ज्योतिर्मयो जगन्नाथो निराकारो जलेश्वरः॥तुम्बवीणो महाकोपो विशोकः शोकनाशनः॥१०७॥ त्रिलोकपस्त्रिलोकेशः सर्वशुद्धिरधोक्षजः॥अव्यक्तलक्षणो देवो व्यक्ताव्यक्तो विशांपतिः ॥ १०८ ॥ वरशीलोवरगुणः सारोमानधरोयमः ॥ ब्रह्मा विष्णुः प्रजापालो हंसो हंसगतिर्वयः ॥१०९॥ वेधा विधाता धाता च स्रष्टा हर्त्ता चतुर्मुखः ॥ कैलासशिखरावासी सर्वावासी सदागतिः ॥ ११० ॥ हिरण्यगर्भो द्रुहिणो भूतपालोऽथ भूपतिः ॥ सद्योगी योगविद्योगी वरदो ब्राह्मणप्रियः ॥ १११ ॥

अपनी विभूति चतुराननस्वरूप (विष्णः प्रजापालः) व्यापक होकर प्रजापालन करनेसे विष्णु । यह दो एक (हंस) अज्ञाननाशक परमात्मास्वरूप (हंसगतिः) योगियोंकी गति (वयः) पक्षिरूप "एकः सुपर्णः स समुद्रमाविवेश स इदं विश्वंभुवनं विचष्टे । द्वासुपर्णेत्यादिश्रुतेः" (८४०) ॥ १०९ ॥ (वेधा विधाता धाता) जगत्के उत्पन्न करनेसे वेधा कर्म और उनके फल दान करनेके विधाता अनेकरूपसे संसारके धारण करने वाले होनेसे धाता । यह तीनों एक (स्रष्टा) जगत्के उत्पन्न करनेवाले (हर्ता) संहार करनेवाले (चतुर्मुखः) हिरण्य गर्भ स्वरूप (कैलास शिखरवासी) कैलासशिखरपर रहनेवाले (सर्वावासी) सबमें निवास करनेवाले (सदागतिः) सब पुरुषोंके गतिदायक ॥ ११० ॥ (हिरण्यगर्भः) हिरण्यगर्भके उत्पादक अथवा हिरण्यमय अंडमें व्याप्त होनेसे हिरण्यगर्भ, अथवा ब्रह्मा जिनकी आत्मा है "हिरण्यगर्भःसमवर्त्तताग्र इति श्रुतेः"

(द्रुहिणः) ब्रह्मास्वरूप (भूतपालः) प्राणियोंके पालक (८५०) (भूपतिः) पृथ्वीके स्वामी (सयोगी) सत्कर्मकी योजना करनेवाले (योगविद्योगी) योग जाननेवालोंके भी योगके प्रवर्तक (वरदः) वर देनेवाले (ब्राह्मणप्रियः) जिन्हें ब्राह्मण प्यारे हैं अथवा ब्राह्मणोंको प्यारे ॥ १११ ॥ (देवप्रियः) देवताओंके प्यारे वा जिन्हें देवता प्यारे हैं (देवनाथः) देवताओंके स्वामी (देवज्ञः) जिनसे देवता ज्ञानी होते हैं (देवचिन्तकः) देवता भी जिनके चिन्तक हैं (विषमाक्षः) त्रिनेत्र (८६०) (विशालाक्षः) बडे नेत्रवाले (वृषदो वृषवर्द्धनः) उपदेशरूपसे धर्म बढानेवाले; जिनसे धर्मवृद्धिको प्राप्त होता है । यह दो एक ॥ ११२ ॥ (निर्ममः) ममतारहित (निरहंकारः) अहंकार रहित (निर्मोहः) मोहरहित (निरुपद्रवः) उपद्रवरहित (दर्पहादर्पदः) सबके अभिमान नष्ट करनेवाले शत्रुओंके अभिमाननाशक । यह दो

देवप्रियो देवनाथो देवज्ञो देवचिंतकः ॥ विषमाक्षो विरूपाक्षो वृषदो वृषवर्धनः ॥ ११२ ॥ निर्ममो निरहंकारो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥ दर्पहा दर्पदो दृप्तः सर्वार्थपरिवर्त्तकः ॥ ११३ ॥ सहस्रजित्सहस्रार्चिः स्निग्धाकृतिदक्षिणः ॥ भूतभव्यभवन्नाथो विभवो भूतिनाशनः ॥ ११४ ॥ अर्थोऽनर्थो महाकोशः परकार्यैकपंडितः ॥ निष्कंटकः कृतानंदो निर्व्याजो व्याजमर्दनः ॥ ११५ ॥ सत्त्ववान्सात्त्विकः सत्यकीर्तिः स्नेहकृतागमः ॥ अकंपितो गुणग्राही नैकात्मानैककर्मकृत् ॥ ११६ ॥

एक (दृप्तः) अपनी आत्माके अमृतास्वादसे नित्य प्रसन्न रहनेवाले (सर्वर्तुपरिवर्तकः) सब ऋतुओंके भ्रमण करनेवाले ॥ ११३ ॥ (सहस्रजित्) अनन्तोंके जीतनेवाले (८७०) सहस्रार्चिः (असंख्यात दीप्तिवाले (स्निग्धप्रकृतिदक्षिणः) स्वभावसेही सरल (भूतभव्यभवन्नाथः) भूत भविष्य वर्तमानके स्वामी (प्रभवः (जिससे प्रकृष्टतासे संसार होता है (भूतिनाशनः) शत्रुओंकी संपत्तियोंके नाशक ॥ ११४ ॥ (अर्थः) सबके प्रार्थनीय (अनर्थः) प्रयोजनरहित (महाकोशः) महाधनी (परकार्यैकपंडितः) मोक्षकार्यमें एक पंडित (निष्कंटकः) कामादिक्षुद्र शत्रुरहित (८८०) (कृतानन्दः) अच्छिन्न आनन्दयुक्त (निर्व्याजो व्याजमर्दनः) स्वयं कपटरहित होकर दूसरेका कपट नष्ट करनेवाले यह दो एक ॥ ११५ ॥ (सत्त्ववान्) शौर्यवीर्यादियुक्त (सात्त्विकः) सत्त्वगुण प्रधान (सत्यकीर्तिः) यथार्थ कीर्तिमान् (स्नेहकृतागमः)

भक्तोंके स्नेहसे शास्त्रोंका प्रकाश करनेवाले (अकंपितः) निश्चल (गुणग्राही) अपने भक्तोंके गुण ग्रहण करनेवाले (नैकात्मानैककर्मकृत्) अनेक स्वरूप और सब कर्मके करनेवाले ॥ ११६ ॥ (सुप्रीतः) श्रेष्ठ प्रसादयुक्त (८९०) (सुमुखः) संसार उत्पादक श्रेष्ठ मुखवाले (सूक्ष्मः) सबमें प्राप्त " सर्वगतं सुसूक्ष्ममिति श्रुतेः " (सुकरः) वरदेनेसे सुन्दर हाथवाले (दक्षिणानिलः) आनंद करनेसे मलयाचलवायुरूप (नन्दिस्कंधधरः) नंदिसे कंधेपर धारण हुए (धुर्यः) सम्पूर्ण प्राणियोंके जन्मादि लक्षणको धारण करनेवाले (प्रकटः) सूर्यादिरूपसे सबको प्रत्यक्ष होनेवाले " उतैनं गोपा अदृशन्नदृशन्नुदहार्य इति श्रुतेः " (प्रीतिवर्द्धनः) जिसमें भक्तोंका प्रेम बढता है; अथवा भक्तोंकी प्रीति बढाने वाले ॥ ११७ ॥ (अपराजितः) शत्रुओंसे न हारनेवाले (सर्वसत्त्वः) जिससे सब प्राणी होते हैं (९००) नवमा शतक पूरा हुआ ॥

सुप्रीतः सुखदः सूक्ष्मः सुकरो दक्षिणानिलः ॥ नंदिस्कंदोधरो धुर्यः प्रकटः प्रीतिवर्धनः ॥११७॥ अपराजितः सर्वसत्त्वो गोविंदः सत्त्ववाहनः ॥ अधृतः स्वधृतः सिद्धः पूतमूर्तिर्यशोधनः ॥११८॥ वाराहशृंगधृक्छृंगी बलवानेकनायकः ॥ श्रुतिप्रकाशः श्रुतिमानेकबंधुरनेकधकृत् ॥ ११९ ॥ श्रीवत्सलशिवारंभः शांतभद्रः समो यशः ॥ भूयशो भूषणो भूतिर्भूतकृद्भूतभावनः ॥ १२० ॥

(गोविंदः) स्वर्ग अथवा गौ भक्तोंको देनेवाले (सत्त्ववाहनः) जिनके द्वारा मोक्ष उपयोगी पराक्रम होता है (अधृतः) अनन्याधार(स्वधृतः) अपनी आत्मासेही धारण किये हुए (सिद्धः) सब सिद्धियुक्त (पूतमूर्तिः) शुद्धमूर्तिवाले (यशोधनः) यशरूपी धनवाले ॥११८॥ (वाराह शृंगधृक्छृंगी) वाराहका दन्तशिखर शृंग धारण करनेवाले शृंगी । यह दो एक (बलवान्) सर्वशक्ति युक्त (एकनायकः) अद्वितीय स्वामी (९१०) (श्रुतिप्रकाशः) वेदोंसे प्रकाशित होनेवाले " तन्त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामिति श्रुतेः " (श्रुतिमान्) नित्य वेदयुक्त (एकबन्धुः) अद्वितीय बंधु (अनेककृत्) अपनी आत्माको अनेक करनेवाले " बहुस्यां प्रजायेयेति तदात्मानं स्वयमकुरुतेत्यादिश्रुतेः " ॥११९॥ श्रीवत्सल शिवारंभः) विष्णुके मंगलके निमित्त आरंभ करनेवाले (शांतभद्रः) जिनसे सत्पुरुषोंका मंगल होता है (समोयशः) सब प्राणियोंमें तुल्य अथवा सर्वैश्वर्यलक्ष्मी सहित है यश जिनका । यह दो एक । " समंजसः " ऐसाभी पाठ है । भूमिमें शयन करनेवाले (भूषणः) जिससे

सब भूषित होते हैं (भूतिः) सर्वसंपत्स्वरूप (९२०) (भूतकृत्) सब प्राणियोंके उत्पन्न करनेवाले (भूतवाहनः) प्राणियोंके निर्वाह करने वाले ॥१२०॥ (अकंपः) स्थिर) भक्तिकायः) भक्तिही जिसका शरीर है (कालहा) कालकेभी नाशक (नीललोहितः) कंठमें नील होनेसे भी लोहितवर्ण (सत्यव्रतमहात्यागी) सत्यव्रतोंको सब पुरुषार्थके देनेवाले (नित्यशांतिपरायणः) त्रिकालाबाध्यशांतिके स्थान ॥ १२१ ॥ (परार्थवृत्तिर्वरदः) दूसरे प्राणियोंको कर्मफलके देनेहीको जिसका वर्त्तना है; और मायाके आवरण खंडन करनेवाले अथवा वरदाता । यह दो एक ॥ " तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदिति श्रुतेः) अथवा भक्तोंके हृदयमें प्रवेशकी इच्छा करनेवाले (९३०) (विशारदः) सम्पूर्ण विद्याकलाओंमें निपुण (शुभदः) भक्तोंको शुभ देनेवाले (शुभकर्ता) भक्तोंके कल्याण उत्पादक (शुभनामाशुभः) शुभनामवाले होनेसे स्वयमेव कल्याणयुक्त । यह दो एक ॥ १२२ ॥ (अनार्थितः) याचनारहित (अगुणः) निर्गुण (साक्षी ह्यकर्ता) सर्वजगत्के द्रष्टा होनेसे अकर्ता मायोपाधिक होनेसे

अकंपो भक्तिकायस्तु कालहा नीललोहितः ॥ सत्यव्रतमहात्यागी नित्यशांतिपरायणः ॥ १२१ ॥ परार्थवृत्तिर्वरदो विविक्षुस्तु विशारदः ॥ शुभदः शुभकर्ता च शुभनामा शुभः स्वयम् ॥ १२२ ॥ अनार्थितोऽगुणःसाक्षी ह्यकर्ता कनकप्रभः ॥ स्वभावभद्रो मध्यस्थः शीघ्रगः शीघ्रनाशनः ॥१२३॥ शिखंडी कवची शूली जटी मुंडी च कुंडली ॥ अमृत्युः सर्वदृक्सिंहस्तेजोराशिर्महामणिः ॥ १२४ ॥ असंख्येयोऽप्रमेयात्मा वीर्यवान्वीर्यकोविदः ॥ वेद्यश्चैव वियोगात्मा परावरमुनीश्वरः ॥ १२५ ॥

ईश्वरमें जगत्का कर्तापन माना है; वस्तुतः अकर्ता है । यह दो एक (कनकप्रभः) सुवर्णसदृशकांतिवाले (स्वभावभद्रः) अपने भक्तोंके भावके निमित्तही जिनसे मंगल होता है (मध्यस्थः) ब्रह्मा विष्णुके मध्यमें स्थित (९४०) (शीघ्रगः) भक्तोंके कार्यके निमित्त शीघ्र आने वाले (शीघ्रनाशनः) भक्तोंके दुःख शीघ्र नाश करनेवाले ॥ १२३ ॥ (शिखंडी कवची शूली) चूडा कवच और त्रिशूल धारण करनेवाले । यह तीनों एक (जटी मुंडी कुंडली) जटाजूट युक्त मुंडितशिर और सर्पोंके कुंडल धारण करनेवाले यह तीन एक ॥ (अमृत्युः) मृत्युरहित (सर्वदृक्सिंहः) सबके द्रष्टा और दुष्टोंके नाश करनेमें सिंहस्वरूप । यह दो एक (तेजोराशिर्महामणिः) तेजस्वरूप होनेसे महामणि कौस्तुभादिरूप । यह दो एक ॥ १२४ ॥ (असंख्येयो प्रमेयात्मा) अपार और अपरिच्छेद्यस्वरूपवाले (वीर्यवान्वीर्यकोविदः)

वीर्ययुक्त और सब पराक्रमोंमें चतुर (वेद्यः) मुमुक्षुओंके जाननेयोग्य (९५०) (वियोगात्मा) विशिष्ट योगयुक्त आत्मावाले (परावरमुनीश्वरः) पर अवर मुनियोंके भी ईश्वर ॥ १२५ ॥ (अनुत्तमोदुराधर्षः) जिनसे कोई श्रेष्ठ नहीं इसी कारणसे दुराधर्ष (मधुरप्रियदर्शनः) सौम्यरूप और सबको प्यारा जिनका दर्शन है (सुरेशः) देवताओंके अधिपति (शरणम्) सकलजगत्के रक्षक (सर्वः) विश्वरूप (शब्दब्रह्म सतांगतिः) वेदस्वरूप और साधुओंकी गति । यह दो एक ॥१२६ ॥ (कालपक्षः) कालही सृष्टिमें जिनका सहाय है (कालकारी) कालके उत्पादक (९६०) (कंकणीकृतवासुकिः) जिन्होंने वासुकीका कंकण धारण किया है (महेष्वासः) अक्षय धनुषवाले (महीभर्ता) जगत्के धारक (निष्कलंकः) अविद्यारहित (विशृंखलः) मायाबंधनसे रहित ॥ १२७ ॥ (द्युमणिस्तरणिः) सूर्यरूप होकर संसारसागरसे

अनुत्तमो दुराधर्षो मधुरप्रियदर्शनः ॥ सुरेशः शरणं सर्वः शब्दब्रह्म सतां गतिः ॥ १२६॥ कालपक्षः कालकारी कंकणीकृत वासुकिः ॥ महेष्वासो महीभर्ता निष्कलंको विशृंखलः॥ १२७ ॥ द्युमणिस्तरणिर्धन्यः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ॥ विश्वतः संवृतः स्तुत्यो व्यूढोरस्को महाभुजः ॥ १२८ ॥ सर्वयोनिर्निरातंको नरनारायणप्रियः ॥ निर्लेपो निष्प्रपंचात्मा व्यंगो व्यंग नाशनः ॥ १२९ ॥ स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोता व्यासमूर्तिर्निरंकुलः ॥ निरवद्यमयोपायो विद्याराशि रसप्रियः ॥ १३० ॥

तारनेवाले (धन्यः) कृतकृत्य (सिद्धिदः सिद्धिसाधनः) अणिमादि सिद्धि देनेवाले जिनके पुरुसार्थके साधन हैं । यह दो एक । (विश्वतः संवृतः) सब ओर मायासे आच्छादितरूप (स्तुत्यः) देवासुरोंकेभी स्तुति करने योग्य (९७०) (व्यूढोरस्कः) विस्तीर्ण छातीवाले (महाभुजः) दीर्घ भुजावाले ॥ १२८ ॥ (सर्वयोनिः) सब जगत्के कारण (निरातंकः) संसाररोग अथवा तापरहित (नरनारायणप्रियः) जिनको नरनारायण मुनि प्यारे हैं (निर्लेपो निष्प्रपंचात्मा) कर्मसंबंधसे रहित होनेसे पंचभूतादि समुदायरूप प्रपंचरहित देहवाले । यह दोनों एक (निर्व्यंगः) जिससे विशिष्ट अंग प्राणी उत्पन्न हुए हैं (व्यंगनाशनः) व्यंगकर्मोंके नाशकर्ता ॥ १२९ ॥ (स्तव्यः) स्तुति करनेके योग्य (स्तवप्रियः) स्तुतिप्रिय (९८०) (स्तोता) प्रेमसे भक्त जिनकी स्तुति करते हैं (व्यासमूर्तिः) व्यासमहर्षि जिनकी

मूर्ति हैं (निरंकुशः) मायारूप अंकुशसे रहित (निरवद्यमयोपायः) अनिन्द्य साधन रूप मोक्षवाले (विद्याराशिः) सर्व विद्याओंकी राशि (रस प्रियः) जिनको भक्ति रस प्यारे हैं ॥ १३० ॥ (प्रशान्तबुद्धिः) प्रशान्त बुद्धि (अक्षुण्णः) दूसरोंसे तिरस्कार न होनेवाले (संग्रही) भक्तजनोंके संग्रहमें युक्त (नित्यसुन्दरः) सब कालमें सुन्दर (९९०) (वैयाघ्रधुर्यः) व्याघ्रचर्मके धारण करनेवाले (धात्रीशः) पृथ्वीके स्वामी (शाकल्यः) शाकल्य ऋषिरूप (शर्वरीपतिः) रात्रियोंके स्वामी ॥ १३१ ॥ (परमार्थगुरुः) मोक्षके गुरु तारक मंत्र उपदेष्टा (दृष्टिः) चक्षु अभिमानी देवता स्वरूप (शरीराश्रितवत्सलः) शरीराश्रित जीवोंपर अत्यन्त दया करनेवाले (सोमः) उमासहित (रसज्ञो रसदः) हालाहल स्वादके जाननेवाले वा वीर्यके देनेवाले (सर्वसत्त्वावलंबनः) सब प्राणियोंके आश्रय भूत (१०००) सहस्र नाम पूरे हुए ॥ १३२ ॥

प्रशांतबुद्धिरक्षुण्णः संग्रही नित्यसुंदरः ॥ वैयाघ्रधुर्यो धात्रीशः संकल्पः शर्वरीपतिः ॥ १३१ ॥ परमार्थगुरुर्दृष्टिः शरीराश्रितवत्सलः ॥ सोमो रसज्ञो रसदः सर्वसत्त्वावलंबनः ॥१३२॥ एवं नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव वृषभध्वजम् ॥ प्रार्थयामास शम्भुं च पूजयामास पंकजः ॥ १३३ ॥ ततः स कौतुकी शम्भुश्चकार चरितं द्विजाः ॥ महाद्भुतं सुखकरं तदेव शृणुतादरात् ॥ १३४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां शिवसहस्रनामवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोध्यायः ॥ ३५ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा विष्णुकृतं दिव्यं परनामविभूषितम् ॥ सहस्रनामस्वस्तोत्रं प्रसन्नोभून्महेश्वरः ॥ १ ॥ परीक्षार्थं हरेरीशः कमलेषु महेश्वरः ॥ गोपयामास कमलं तदैकं भुवनेश्वरः ॥ २ ॥ पंकजेषु तदा तेषु सहस्रेषु बभूव च ॥ न्यूनमेकं तदा विष्णुर्विह्वलश्शिवपूजने॥३॥

इस प्रकार सहस्र नामसे भगवान् विष्णुजीने शिवजीकी स्तुति की और कमलोंसे पूजन कर उनकी प्रार्थना की ॥ १३३ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस समय उन लीला करनेवाले शिवजीने जो महाअद्भुत चरित्र किया उसे आदरसे सुनो ॥ १३४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषायां च० को० रु० शिवसहस्रनामवर्णनं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ सूतजी बोले, तब विष्णुसे निर्माण किये परम नामोंसे भूषित अपने सहस्र नामके स्तोत्रको सुनके शिवजी प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ लोकोंके स्वामी ईश्वर महेश्वरने विष्णुको परीक्षाके निमित्त उन सहस्र कमलोंमेंसे एक कमलको हरण कर लिया ॥ २ ॥ तब उन सहस्र कमलोंमें एक कमल न्यून हो गया तब विष्णु भगवान् शिवजीके पूजनमें व्याकुल हुए

तब विष्णुने अपने मनमें विचारा कि—कमल कहां गया यदि चला गया तो सुखसे जाने दो क्या मेरा नेत्र कमल नहीं है ॥३॥ ४ ॥ विष्णुने ऐसा जानकर नेत्र उखाड अनेक सत्त्वोके अवलम्बयुक्त शिवका स्वभावसे पूजन कर उनकी स्तुति की ॥ ५ ॥ तब उस प्रकार हरिको स्तुति करता हुआ देख जगत् गुरु महादेव शिवजी ऐसा मत करो मत करो ऐसा कहते हुए प्रगट हुए ॥ ६ ॥ विष्णुसे प्रतिष्ठित हुए अपने पार्थिव लिंगके मण्डलसे शिवजी शीघ्र ही प्रगट हुए ॥ ७ ॥ वह विष्णु शास्त्रोक्त स्वरूपको धारण किये तेजसे राशी भूत प्रगट हुए शम्भुको नमस्कार करके आगे स्थित हो विशेष रूपसे स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥ तब प्रसन्न हुए महादेवजी हाथ जोडे स्थित हुए विष्णुको देख हँसते

हृदा विचारितं तेन कुतो वै कमलं गतम् ॥ यातं यातु सुखेनैव मन्नेत्रं कमलं न किम् ॥ ४ ॥ ज्ञात्वेति नेत्रमुद्धृत्य सर्वसत्त्वाव लम्बनात् ॥ पूजयामास भावेन स्तवयामास तेन च ॥ ५ ॥ ततः स्तुतमथो दृष्ट्वा तथाभूतं हरो हरिम् ॥ मा मेति व्याह रन्नेव प्रादुरासीज्जगद्गुरुः ॥ ६ ॥ तस्मादवतताराशु मण्डलात्पार्थिवस्य च ॥ प्रतिष्ठितस्य हरिणा स्वलिंगस्य महेश्वरः ॥ ७ ॥ यथोक्तरूपिणं शम्भुं तेजोराशिसमुत्थितम् ॥ नमस्कृत्य पुरः स्थित्वा स तुष्टाव विशेषतः ॥ ८ ॥ तदा प्राह महा देवः प्रसन्नः प्रहसन्निव ॥ सम्प्रेक्ष्य कृपया विष्णुं कृतांजलिपुटं स्थितम् ॥ ९ ॥ शङ्कर उवाच ॥ ज्ञातं मयेदं सकलं तव चित्तेप्सितं हरे ॥ देवकार्य्यं विशेषेण देवकार्य्यरतात्मनः ॥ १० ॥ देवकार्य्यस्य सिद्ध्यर्थं दैत्यनाशाय चाश्रमम् ॥ सुदर्श नाख्यं चक्रं च ददामि तव शोभनम् ॥ ११ ॥ यद्रूपं भवता दृष्टं सर्वलोकसुखावहम् ॥ हिताय तव देवेश धृतं भावय तद्ध्रुवम् ॥ १२ ॥ रणाजिरे स्मृतं तद्वै देवानां दुःखनाशनम् ॥ इदं चक्रमिदं रूपमिदं नामसहस्रकम् ॥ १३ ॥

हुए बोले ॥ ९ ॥ शिवजी बोले, हे विष्णो ! जो तुम्हारे मनमें स्थित है वह सम्पूर्ण वृत मैंने जान लिया देवताओंके कार्यमें तत्पर हुए आत्मावाले तुमको देवताओंका कार्य करना है ॥ १० ॥ देवताओंके कार्य सिद्ध होनेके लिये तथा विना परिश्रम दैत्योंको नाश करनेके लिये तुमको सुदर्शन नामवाला शोभन चक्र देता हूं ॥ ११ ॥ हे देवेश ! हे विष्णो ! तुमने सम्पूर्ण लोकोंको सुख देनेवाला जो रूप देखा है उसे निश्चय ही ध्यान करो, तुम्हारा हित होगा ॥ १२ ॥ उस रूपका रणभूमिमें यदि स्मरण किया जाय तो देवताओंका दुःख

दूर होता है यह सुदर्शन चक्र यह रूप तथा यह सहस्रनाम स्तोत्र महाफल देनेवाला है ॥ १३ ॥ हे सुव्रत ! जो मनुष्य सदा उसे भक्तिसे सुनते हैं उनको मेरे प्रसादसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी अविनाशिनी सिद्धि होती है ॥ १४ ॥ सूतजी बोले, ऐसा सुनके सहस्रों सूर्योंके समान कान्तिवाले अपने चरणसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण शत्रुओंको नाश करनेवाले सुदर्शन चक्रको देवने दिया ॥ १५ ॥ उस समय विष्णुने उत्तरकी ओर मुख करके भली प्रकार संस्कारके सहित चक्रको ग्रहण किया और महादेवको नमस्कार करके विष्णुजी यह वचन बोले ॥ १६ ॥ विष्णुजी बोले, हे देव हे प्रभो ! हे लोकोंके कल्याण करनेवाले ! सुनो मेरे ध्यान करने योग्य क्या है ? तथा पढने योग्य क्या है ?

ये शृण्वन्ति सदा भक्त्या सिद्धि स्यादनपायिनी ॥ कामानां सकलानां च प्रसादान्मम सुव्रत ॥ १४ ॥ सूत उवाच ॥ एव मुक्ता ददौ चक्रं सूर्य्यायुतसमप्रभम् ॥ सुदर्शनं स्वपादोत्थं सर्वशत्रुविनाशनम् ॥ १५ ॥ विष्णुश्चापि सुसंस्कृत्य जग्राहोदङ्मु खस्तदा ॥ नमस्कृत्य महादेवं विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ शृणु देव मया ध्येयं पठनीयं च किं प्रभो ॥ दुःखानां नाश नार्थं हि वद त्वं लोकशंकर ॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा तेन सन्तुष्टस्तु शिवोऽब्रवीत् ॥ प्रसन्न मानसो भूत्वा विष्णुं देवसहायकम् ॥ १८ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ रूपं ध्येयं हरे मे हि सर्वानर्थप्रशान्तये ॥ अनेकदुःखनाशार्थं पठ नामसहस्रकम् ॥१९॥ धार्य्यं चक्रं सदा मे हि सर्वाभीष्टस्य सिद्धये ॥ त्वया विष्णो प्रयत्नेन सर्वचक्रवरं त्विदम् ॥ २० ॥ अन्ये च ये पठिष्यन्ति पाठयिष्यन्ति नित्यशः ॥ तेषां दुःखं न स्वप्नेऽपि जायते नात्र संशयः ॥ २१ ॥

सो सब तुम दुःखोंके नाश करनेके निमित्त मुझसे कहो ॥ १७ ॥ सूतजी बोले, उन विष्णुके ऐसा पूंछनेपर संतुष्ट हुए शिवजी मनमें प्रसन्न होके देवताओंकी सहायता करनेवाले विष्णुसे यह वचन बोले ॥ १८ ॥ शिवजी बोले हे विष्णो ! संपूर्ण उपद्रवोंके शान्त होनेके लिये मेरे रूपका ध्यान करो तथा अनेक दुःखोंके नाश होनेके निमित्त सहस्र नामको पढो ॥ १९ ॥ हे विष्णो ! सम्पूर्ण कामनाओंके सिद्धिके लिये सदा मेरे चक्रोंमें श्रेष्ठ सुदर्शन चक्रको प्रयत्नसे धारण करना चाहिये ॥२०॥ और जो मनुष्य इस शिव सहस्रनाम स्तोत्रको सदा

पढेंगे तथा पढावेंगे उनको स्वप्नमें भी दुःख नहीं होगा इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ २१ ॥ यदि राजाओंसे संकट प्राप्त हो तो जो मनुष्य विधिपूर्वक अंगन्यास सहित सहस्र नामकी सौ आवृत्ति पाठ करे तो कल्याणको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ यह स्तोत्र रोगोंका नाश करने वाला विद्या तथा धनका देनेवाला है सम्पूर्ण मनोरथोंका देनेवाला तथा निरन्तर पवित्र शिव भक्तिका देनेवाला है ॥ २३ ॥ मनुष्य जिस श्रेष्ठ फलके उद्देश्य करके इस लोकमें पढेंगे सत्यही वह श्रेष्ठ फलको प्राप्त होंगे इसमें संशय नहीं ॥ २४ ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठके मेरी पूजा करके नित्य मेरे सन्मुख शिव सहस्र नामका पाठ करता है उससे सिद्धि दूर नहीं है ॥ २५ ॥ जो शिव सहस्र नामका पाठ

राज्ञा च संकटे प्राप्ते शतावृत्तिं चरेद्यदा ॥ साङ्गं च विधिसंयुक्तं कल्याणं लभते नरः ॥ २२ ॥ रोगनाशकरं ह्येतद्विद्यावित्तद मुत्तमम् ॥ सर्वकामप्रदं पुण्यं शिवभक्तिप्रदं सदा ॥ २३ ॥ यदुद्दिश्य फलं श्रेष्ठं पठिष्यन्ति नरास्त्विह ॥ लप्स्यन्ते नात्र संदेहः फलं तत्सत्यमुत्तमम् ॥ २४ ॥ यश्च प्रातस्समुत्थाय पूजां कृत्वा मदीयिकाम् ॥ पठते मत्समक्षं वै नित्यं सिद्धिर्न दूरतः ॥ २५ ॥ ऐहिकीं सिद्धिमाप्नोति निखिलां सर्वकामिकाम् ॥ अन्ते सायुज्यमुक्तिं वै प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥ २६ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा तदा विष्णुं शंकरः प्रीतमानसः ॥ उपस्पृश्य कराभ्यां तमुवाच गिरिशः पुनः ॥ २७ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ वरदोऽस्मि सुरश्रेष्ठ वरान्वृणु यथेप्सितान् ॥ भक्त्या वशीकृतो नूनं स्तवेनानेन सुव्रत ॥ २८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तो देवदेवेन देवदेवं प्रणम्य तम् ॥ सुप्रसन्नतरो विष्णुस्सांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ २९ ॥

करता है वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाली सम्पत्तिको पाता है, अन्तमें सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ २६ ॥ सूतजी बोले, ऐसा विष्णुसे कहके प्रसन्न मनहो शंकर विष्णु भगवान्को दोनों हाथोंसे स्पर्श करके फिर बोले ॥ २७ ॥ शिवजी बोले, हे देवोंमें श्रेष्ठ विष्णो ! मैं वर देता हूं तुम मनोभिलषित वरोंको स्वीकार करो हे शोभन व्रतवाले ! भक्तिसे इस स्तोत्रके पढनेसे निश्चयही शिवजी वशीभूत होते हैं ॥ २८ ॥ सूतजी बोले इस, प्रकार देवोंके देव शिवजीके कहने पर उन देवदेव सदाशिवको नमस्कार

करके प्रसन्न हुए विष्णु हाथ जोडके यह वचन बोले ॥ २९ ॥ विष्णु बोले, हे नाथ ! हे प्रभो ! जेसी अब आपने कृपा की है इसी प्रकार दयालु होनेके कारण इसके आगे भी आपको वैसीही कृपा करनी उचित है ॥३०॥ हे महादेव ! आपमें सदा मेरी भक्ति रहे यही उत्तम वर चाहता हूं आप प्रसन्न हों और भक्तोंको दुःख न हो यही इच्छा करता हूं और कुछ इच्छा नहीं करता हूं ॥३१॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उन विष्णुका वचन सुन अत्यन्त दयावान् चन्द्रशेखर शिवजीने उनके अंगोंको स्पर्श किया तथा यह वचन कहा ॥३२॥ शिवजी बोले, हे विष्णो !

विष्णुरुवाच ॥ यथेदानीं कृपानाथ क्रियते चान्यतः परा ॥ कार्य्या चैव विशेषेण कृपालुत्वात्त्वया प्रभो ॥ ३० ॥ त्वयि भक्तिमहादेव प्रसीद वरमुत्तमम् ॥ नान्यमिच्छामि भक्तानामार्त्तयो नैव यत्प्रभो ॥ ३१ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दया वान्सुतरां भवः ॥ पस्पर्श च तदंगं वै प्राह शीतांशुशेखरः ॥ ३२ ॥ शिव उवाच ॥ मयि भक्तिस्सदा ते तु हरे स्यादनपायिनी ॥ सदा वन्द्यश्च पूज्यश्च लोके भव सुरैरपि ॥ ३३ ॥ विश्वम्भरेति ते नाम सर्वपापहरं परम् ॥ भविष्यति न संदेहो मत्प्रसादात्सुरो त्तम ॥ ३४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे रुद्रस्सर्वदेवेश्वरः प्रभुः ॥ पश्यतस्तस्य विष्णोस्तु तत्रैव च मुनीश्वराः ॥ ३५ ॥ जनार्दनोऽपि भगवान्वचनाच्छङ्करस्य च ॥ प्राप्य चक्रं शुभं तद्वै जहर्षाति स्वचेतसि ॥ ३६ ॥ कृत्वा ध्यानं च तच्छम्भोः स्तोत्रमेतन्निरन्तरम् ॥ पपाठाध्यापयामास भक्तेभ्यस्तदुपादिशत् ॥ ३७ ॥

तुम्हारी मुझमें अविनाशिनी भक्ति रहेगी और संसारमें तुम दवताओंसे वन्दना करने योग्य तथा पूजनीय होंगे ॥ ३३ ॥ हे देवताओंमें श्रेष्ठ विष्णो ! मेरे प्रसादसे सम्पूर्ण पापोंको नाश करनेवाला तुम्हारा विश्वंभर नाम प्रसिद्ध होगा ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले, हे मुनीश्वरो ! ऐसा कहके सब देवताओंके स्वामी प्रभु सदाशिव उन विष्णुके सन्मुख ही वहांसे अन्तर्धान हो गये ॥ ३५ ॥ शिवके वचनसे भगवान् विष्णुने भी शुभ चक्रको पाके अपने चित्तमें अति हर्ष किया ॥ ३६ ॥ और वह शिवका ध्यान करके शिवसहस्र नाम स्तोत्र निरन्तर

पढने और पढाने तथा भक्तोंको उसीका उपदेश देने लगे ॥ ३७ ॥ हे श्रेष्ठो ! जो तुमने पूंछा सो मैंने सब कहा, सुननेवालोंके पापोंका दूर करने वाला यह माहात्म्य है अब तुम इसके आगे क्या पूछना चाहते हो ? ॥ ३८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० शिवसहस्रनामस्तोत्रफलवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ऋषि बोले, हे महाभाग ! हे सुव्रत ! हे सूतजी ! तुम बडे ज्ञानी हो इससे तुम शिवजीके चरित्रको विस्तारसे कहो ॥१॥ पहले राजाओंने तथाऋषि देवताओंने उनही देवोंमें श्रेष्ठ शिवजीका आराधन किया है ॥२॥ सूतजी

इति पृष्टं मयाख्यातं शृण्वताम्पापहारकम् ॥ अतःपरं च किं श्रेष्ठाः प्रष्टुमिच्छथ वै पुनः ॥ ३८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां शिवसहस्रनामस्तोत्रफलवर्णनं नाम षट्त्रिंशोध्यायः ॥ ३६ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूतसूत महाभाग ज्ञानवानसि सुव्रत ॥ पुनरेव शिवस्यैव चरितंब्रूहि विस्तरात् ॥ १ ॥ पुरातनाश्च राजान ऋषयो देवतास्तथा ॥ आराधनञ्च तस्यैव चक्रुर्देववरस्य हि ॥ २ ॥ सूत उवाच॥ साधु पृष्टमृषिश्रेष्ठाः श्रूयतां कथयामि वः ॥ चरित्रं शांकरं रम्यं शृण्वतां भुक्ति मुक्तिदम् ॥ ३ ॥ एतदेव पुरा पृष्टो नारदेन पितामहः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा नारदं मुनिसत्तमम् ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु नारद सुप्रीत्या शांकरं चरितं वरम् ॥ प्रवक्ष्यामि भवत्स्नेहान्महापातकनाशनम् ॥ ५ ॥ रमया सहितो विष्णुश्शिवपूजां चकार ह ॥ कृपया परमेशस्य सर्वान्कामानवापहि ॥ ६ ॥ अहं पितामहश्चापि शिवपूजनकारकः ॥ तस्यैव कृपया तात विश्वसृष्टि करस्सदा ॥ ७ ॥ शिवपूजाकरा नित्यंमत्पुत्राः परमर्षयः ॥ अन्ये च ऋषयो ये ते शिवपूजनकारकाः ॥ ८ ॥

बोले, हे ऋषिश्रेष्ठ ! तुमने अतिश्रेष्ठ प्रश्न किया मैं तुमसे मनोहर तथा श्रवणकर्ताओंको भुक्ति मुक्ति देनेवाले शिवजीके चरित्रवर्णन करता हूं सुनो ॥३॥ यहही नारदजीने पहले ब्रह्माजीसे पूछा था प्रसन्न हुए ब्रह्माजीने मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे कहा॥४॥ ब्रह्माजी बोले, हे नारदजी ! प्रीतिसे सुनो आपके स्नेहसे महापातकोंका नाश करनेवाला शिवजीका श्रेष्ठ चरित्र कहता हूं ॥५॥ लक्ष्मीजीके समेत विष्णुने शिवजीका पूजन किया उस समय महादेवकी कृपासे वे सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त हुये॥६॥ हे तात ! शिवका पूजन करनेवाला मैं ब्रह्मा भी उन्हींकी कृपासे संसारकी सृष्टि करता हूं ॥७॥ हे श्रेष्ठ ऋषियो !

मेरे पुत्र नित्यही शिवजीका पूजन करनेवाले हैं और भी जो ऋषि हुए हैं वे भी शिवपूजन करनेवाले हुए हैं ॥ ८ ॥ हे नारदजी ! तुम भी विशेष करके शिवका पूजन करनेवाले हो, वसिष्ठादि जो सप्तऋषि हैं वे भी शिवका पूजन करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ बडी पतिव्रता अरुंधती तथा लोपामुद्रा गौतमजीकी स्त्री अहल्या भी शिवके पूजन करनेवाली है ॥ १० ॥ दुर्वासा, विश्वामित्र, शक्ति, दधीच, गौतम, कणाद, भार्गव, बृहस्पति, वैशंपायन ॥ ११ ॥ यह सम्पूर्ण मुनि शिवजीके पूजन करनेवाले हैं और पराशर, व्यासजी निरंतर शिवके पूजन करनेवाले हैं ॥ १२ ॥ उपमन्युभी परमात्मा शिवजीके महाभक्त हुये, याज्ञवल्क्य, जैमिनि तथा गर्गभी महाशैव थे ॥ १३ ॥ शुक्र तथा

नारद त्वं विशेषेण शिवपूजनकारकः॥सप्तर्षयो वसिष्ठाद्याः शिवपूजनकारकाः॥९॥अरुंधती मदासाध्वी लोपामुद्रा तथैव च॥ अहल्या गौतमस्त्री च शिवपूजनकारिकाः॥१०॥दुर्वासाः कौशिकश्शक्तिर्दधीचो गौतमस्तथा॥कणादो भार्गवो जीवो वैशंपायन एव च ॥११॥ एते च मुनयस्सर्वे शिवपूजाकरा मताः॥तथा पराशरो व्यासश्शिवपूजारतस्सदा ॥१२॥ उपमन्युर्महाभक्तश्शिवस्य परमात्मनः ॥ याज्ञवल्क्यो महाशैवो जैमिनिर्गर्ग एव च ॥१३॥ शुकश्च शौनकाद्याश्च शङ्करस्य प्रपूजकाः॥ अन्येऽपि बहवस्सन्ति मुनयो मुनिसत्तमाः ॥१४॥ अदितिर्देवमाता च नित्यं प्रीत्या चकार ह ॥ पार्थिवीं शैवपूजां वै सवधूः प्रेमतत्परा ॥१५॥ शक्रादयो लोकपाला वसवश्च सुरास्तथा॥महाराजिकदेवाश्च साध्याश्च शिवपूजकाः ॥१६॥ गन्धर्वा किन्नराद्याश्चोपसुराश्शिवपूजकाः ॥ तथाऽसुरा महात्मानश्शिवपूजाकरा मताः॥१७॥हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्सानुजस्ससुतो मुने॥शिवपूजाकरो नित्यं विरोचनबली तथा॥१८॥

शौनक आदि ऋषिभी शिवजीके पूजन करनेवाले हैं हे मुनिश्रेष्ठो ! औरभी बहुतसे ऋषि हैं वे शिवके उपासक हैं ॥ १४ ॥ देवताओंकी माता अदितिने अपनी बहूके समेत प्रेममें तत्पर होके प्रीतिसे पार्थिव शिवकी पूजा की ॥ १५ ॥ इन्द्र आदि लोकपालोंने तथा आठवसु और देवताओंने महाराजिकगण देवताओंने साध्योंने शिवका पूजन किया ॥ १६ ॥ गन्धर्व किन्नर आदिक तथा दैत्य महात्मा भी शिवके उपासक माने गये हैं ॥ १७ ॥ हे मुने ! हिरण्यकशिपु दैत्यभी अपने भाई तथा पुत्र सहित नित्य शिवका पूजन करनेवाला था

विरोचन भी शिवकी पूजा करता था ॥ १८ ॥ हे तात बाणासुर तथा हिरण्याक्षके पुत्र वृषपर्वा दनु दैत्य दनुके पुत्र यह सब शिवके पूजन करनेवाले हुए हैं ॥ १९ ॥ शेषजी वासुकि तथा तक्षक और भी सर्पजातिके बडे नाग गरुड आदि पक्षी भी शिवके भक्त हुए हैं ॥ २० ॥ हे मुनीश्वर ! सूर्य तथा चन्द्रमा यह दोनों देवता पृथिवीपर अपने अपने वंशके चलानेवाले हुए हैं वे अपने वंशके सहित शिवकी सेवा करनेवाले हैं ॥ २१ ॥ हे मुने ! स्वायंभुव आदि जो मनु हैं वे शिववेष धारके शिवका विशेष पूजन करते थे ॥ २२ ॥ राजा प्रियव्रत तथा उसके पुत्र उत्तानपादके पुत्र और उसके वंशमें जो राजा हुये हैं वे भी शिवका पूजन करनेवाले थे ॥ २३ ॥ ध्रुव, ऋषभ, भरत, नौ

महाशैव स्मृतो बाणो हिरण्याक्षसुतास्तथा॥ वृषपर्वा दनुस्तात दानवाः शिवपूजकाः ॥१९॥ शेषश्च वासुकिश्चैव तक्षकश्च तथा परे ॥ शिवभक्ता महानागा गरुडाद्याश्च पक्षिणः ॥२०॥ सूर्यचन्द्रावुभौ देवौ पृथ्व्यांवंशप्रवर्त्तकौ॥शिवसेवारतौ नित्यं सवंश्यौ तौ मुनीश्वर ॥२१॥ मनवश्च तथा चक्रुस्स्वायंभुवपुरस्सराः ॥ शिवपूजां विशेषेण शिववेषधरा मुने ॥२२॥ प्रियव्रतश्च तत्पुत्रास्तथा चोत्तानपात्सुतः ॥ तद्वंशाश्चैव राजानश्शिवपूजनकारकाः ॥२३॥ ध्रुवश्च ऋषभश्चैव भरतो नव योगिनः ॥ तद्भ्रातरः परे चापि शिवपूजनकारकाः॥२४॥वैवस्वतसुतास्तार्क्ष्य इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः॥शिवपूजारतात्मानःसर्वदासुखभोगिनः॥२५॥ककुत्स्थश्चापि मांधाता सगरश्शैवसत्तमः॥मुचुकुन्दो हरिश्चन्द्रः कल्माषांघ्रिस्तथैव च॥२६॥भगीरथादयो भूपा बहवो नृपसत्तमाः ॥ शिवपूजाकरा ज्ञेयाः शिववेषविधायिनः ॥२७॥ खट्वांगश्च महाराजो देवसाहाय्यकारकः॥विधितः पार्थिवीम्मूर्तिं शिवस्यापूजयत्सदा ॥२८॥

योगी तथा और जो उनके भाई हैं वे भी शिवके भक्त थे ॥ २४ ॥ वैवस्वत मनुके पुत्र तार्क्ष्य तथा इक्ष्वाकु आदि राजा भी शिवपूजनमें प्रेम करनेवाले तथा निरंतर सुखके भोगनेवाले हुए हैं ॥ २५ ॥ ककुत्स्थ, मांधाता, राजासगर, मुचुकुन्द, राजा हरिश्चन्द्र, कल्माषपाद भी महाशैवोंमें श्रेष्ठ हुए हैं ॥ २६ ॥ भगीरथ आदि अनेक राजा शिवके वेष धारण करनेवाले तथा शिवके पूजन करनेवाले हुये हैं ॥ २७ ॥ महाराजा खट्वांग जो देवताओंकी सहायता करनेवाले हैं उन्होंने विधिपूर्वक शिवकी पार्थिव मूर्ति बनाके सदा महादेवका पूजन किया

है ॥ २८ ॥ उनके पुत्र राजा दिलीप भी निरंतर शिवके पूजन करनेवाले हुए तथा उनके पुत्र रघु शैव होकर प्रीतिसे शिवका पूजन करते थे ॥ २९ ॥ रघुके पुत्र अज जो धर्मसे युद्ध करनेवाले थे वे भी शिवके परमभक्त थे, फिर उनके पुत्र महाराजा दशरथ विशेषकर शिवके उपासक थे ॥ ३० ॥ उन राजा दशरथने शिवकी पार्थिव मूर्तिको बनाकर पुत्र उत्पन्न होनेके निमित्त वसिष्ठ मुनिकी आज्ञासे विशेषकर महादेवका पूजन किया ॥ ३१ ॥ और भक्तिवाले उन राजा दशरथने ऋष्यशृंग मुनिकी आज्ञा प्राप्त करके पुत्रेष्टि यज्ञ किया ॥ ३२ ॥ उनकी स्त्री कौशल्या रानीने आनन्दसे शिवकी पार्थिवमूर्ति बनाके ऋष्यशृंग मुनिके वचनोंसे पुत्र प्राप्तिके हेतु महादेवका पूजन किया ॥३३॥

तत्पुत्रो हि दिलीपश्च शिवपूजनकृत्सदा ॥ रघुस्तत्तनयः शैवः सुप्रीत्याः शिवपूजकः ॥ २९ ॥ अजश्शिवार्चकस्तस्य तनयो धर्म युद्धकृत् ॥ जातो दशरथो भूयो महाराजो विशेषतः ॥ ३० ॥ पुत्रार्थं पार्थिवीं मूर्त्तिं शैवीं दशरथो हि सः ॥ समानर्च विशेषेण वसिष्ठस्याज्ञया मुनेः ॥ ३१ ॥ पुत्रेष्टिं च चकारासौ पार्थिवो भवभक्तिमान् ॥ ऋष्यशृङ्गमुनेराज्ञां संप्राप्य नृपसत्तमः ॥ ३२ ॥ कौसल्यातत्प्रिया मूर्त्तिं पार्थिवीं शांकरीं मुदा ॥ ऋष्यशृंगसमादिष्टा समानर्च सुताप्तये ॥ ३३ ॥ सुमित्रा च शिवं प्रीत्या कैकेयी नृपवल्लभा॥ पूजयामास सत्पुत्रप्राप्तये मुनिसत्तम ॥ ३४ ॥ शिवप्रसादतस्ता वै पुत्रान्प्रापुश्शुभंकरान् ॥ महाप्रतापिनो वीरान्सन्मार्गनिरतान्मुने ॥ ३५ ॥ ततः शिवाज्ञया तस्मात्तासु राज्ञस्स्वयं हरिः ॥ चतुर्भिश्चैव रूपैश्चाविर्बभूव नृपात्मजः ॥ ३६ ॥ कौसल्यायाः सुतो रामः सुमित्रायाश्च लक्ष्मणः ॥ शत्रुघ्नश्चैव कैकेय्या भरतश्चेति सुव्रताः ॥ ३७ ॥ रामस्ससहजो नित्यं पार्थिवं समपूजयत् ॥ भस्म रुद्राक्षधारी च विरजागममास्थितः ॥ ३८ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! सुमित्राने तथा राजाकी प्रिया कैकयीने भी श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्तिके अर्थ शिवका पूजन किया ॥ ३४ ॥ हे मुने ! उन सब स्त्रियोंने शिवके प्रसादसे महाप्रतापी वीर अच्छे मार्गमें तत्पर हुये कल्याणकारी अपने अपने पुत्रोंको प्राप्त किया ॥ ३५ ॥ तब शिवजीकी आज्ञासे विष्णु भगवान् उन दशरथ राजाके द्वारा चतुर्भुजी मूर्तिसे रामचन्द्रके रूपमें प्रगट हुये ॥ ३६ ॥ रानी कौशल्याके पुत्र रामचन्द्रजी, सुमित्राके पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न, कैकयीके भरतजी उत्पन्न हुए ॥ ३७ ॥ वह रामचन्द्रजी स्वभावसे नित्य पार्थिव शिवका

पूजन करते थे और भस्म रुद्राक्ष धारण करके विरक्त मार्गमें स्थित हुए ॥ ३८ ॥ हे मुने ! वंशमें जो अनुगामी सहित राजा उत्पन्न हुये हैं हे सब शिवके पार्थिव लिंगको पूजते थे ॥ ३९ ॥ हे मुने ! ऋषि पुत्र परम शैव महाराजा सुयुम्न शिवजीके शापसे अपनी स्त्री तथा सेवकों सहित स्त्री हुये ॥ ४० ॥ फिर पार्थिव शिवके पूजन करनेसे वे पुरुष हो गये एक मास पर्यन्त स्त्री तथा एक मासतक पुरुष रहते थे इस प्रकार वे स्त्रीत्वसे निवृत्त हो गये ॥ ४१ ॥ तत्पश्चात् अपने राज्यको छोड शिवके धर्ममें तत्पर हो शिववेष धारण कर भक्तिसे दुर्लभ मोक्षको प्राप्त हुये ॥ ४२ ॥ राजा पुरूरवा तथा उनका पुत्र भी शिवके पूजन करनेवाले हुये और शिवके पूजनके प्रभावसे सम्पूर्ण

तद्वंशे ये समुत्पन्ना राजानः सानुगा मुने ॥ ते सर्वे पार्थिवं लिंगं शिवस्य समपूजयन् ॥३९॥ सुद्युम्नश्च महाराजश्शैवो मुनि सुतो मुने ॥ शिवशापात्प्रियाहेतोरभून्नारी ससेवकः ॥ ४० ॥ पार्थिवेशसमर्चातः पुनःस्सोऽभूत्पुमान्वरः ॥ मासं स्त्री पुरुषो मासमेवं स्त्रीत्वंन्यवर्त्तत ॥ ४१ ॥ ततो राज्यं परित्यज्य शिवधर्मपरायणः ॥ शिववेषधरो भक्त्या दुर्लभं मोक्षमाप्तवान् ॥ ४२ ॥ पुरूरवाश्च तत्पुत्रो महाराजस्सुपूजकः ॥ शिवस्य देवदेवस्य तत्सुतः शिवपूजकः ॥ ४३ ॥ भरतस्तु महापूजां शिव स्यैव सदाकरोत् ॥ नहुषश्च महा शैवः शिवपूजारतो ह्यभूत् ॥ ४४ ॥ ययातिः शिवपूजातः सर्वान्कामानवाप्तवान् ॥ अजीजनत्सुतान्पंच शिवधर्मपरायणान् ॥ ४५ ॥ तत्सुता यदुमुख्याश्च पंचापि शिवपूजकाः ॥ शिवपूजाप्रभावेण सर्वान्का मांश्च लेभिरे ॥ ४६ ॥ अन्येऽपि ये महाभागाः समानर्चुश्शिवं हि ते ॥ तद्वंश्या अन्यवंश्याश्च भुक्तिमुक्तिप्रदं मुने॥ ४७ ॥

मनोरथोंको प्राप्त हुये ॥ ४३ ॥ राजा भरत सदाही शिवकी महापूजा करते थे तथा महाशैव राजा नहुष भी निरन्तर शिवके पूजनमें तत्पर रहते थे ॥ ४४ ॥ राजा ययाति भी शिवकी पूजाके प्रभावसे सब इच्छाओंको प्राप्त हुये तथा उन्होंने शिव धर्ममें तत्पर होनेवाले पांचों पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ४५ ॥ यदुवंशियोंमें मुख्य उनके पांचों पुत्र शिवके पूजन करनेवाले हुये और महादेवके पूजनके प्रभावसे समस्त कामनाओंको प्राप्त हुये ॥ ४६ ॥ हे मुने ! और भी जो महा भाग्यवान् राजा हुये उन्होंने भी शिवको पूजा, उनके वंशमें उत्पन्न होनेवाले

तथा और वंशमें उत्पन्न होनेवाले राजाओंने भुक्ति और मुक्तिके देनेवाले शिवको पूजा है ॥ ४७ ॥ महात्मा श्रीकृष्णजीने बदरीपर्वतपर सात महीनेतक स्वयं शिवका पूजन किया ॥ ४८ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णजीने प्रसन्न हुए शिवजीसे अनेकों दिव्य वरदानोंको पाया संपूर्ण जगत्को वशमें किया ॥ ४९ ॥ हे तात ! उनके पुत्र प्रद्युम्नजी सदा शिवकी पूजा करते थे और जो कृष्णके वंशमें उत्पन्न हुए साम्ब आदिक वे सब शिवके भक्त थे ॥ ५० ॥ महाशैव राजा जरासंध तथा उनके वंशके मनुष्य शैव राजा निमि जनक तथा उनके पुत्रभी शिवके उपासक थे ॥ ५१ ॥ वीरसेनके पुत्र राजा नलनेभी शिवकी पूजा की जो नल पहले जन्ममें वनके भील होकर मार्गकी रक्षा करनेवाले थे ॥ ५२ ॥ उसने

कृष्णेन च कृतं नित्यं बदरीपर्वतोत्तमे ॥ पूजनं तु शिवस्यैव सप्तमासावधि स्वयम् ॥ ४८ ॥ प्रसन्नाद्भगवांस्तस्माद्वरान्दिव्याननेकशः॥सम्प्राप्य च जगत्सर्वं वशेऽनयत शङ्करात् ॥ ४९ ॥ प्रद्युम्नः तत्सुतस्तात शिवपूजाकरस्सदा ॥ अन्ये च कार्ष्णिप्रवरास्साम्बाद्याश्शिवपूजकाः ॥ ५० जरासंधो महाशैवस्तद्वंश्याश्च नृपास्तथा ॥ निमिश्शैवश्च जनकस्तत्पुत्राश्शिवपूजकाः ॥ ५१ ॥ नलेनच कृता पूजा वीरसेनसुतेन वै ॥ पूर्वजन्मनि यो भिल्लो वने पान्थसुरक्षकः ॥ ५२ ॥ यतिश्च रक्षितस्तेन पुरा हरसमीपतः ॥ स्वयंव्याघ्रादिभी रात्रौ भक्षितश्च मृतो वृषात् ॥ ५३ ॥ तेन पुण्यप्रभावेण स भिल्लो हि नलोऽभवत् ॥ चक्रवर्ती महाराजो दमयन्ती प्रियोऽभवत् ॥ ५४ ॥ इति ते कथितं तात यत्पृष्टं भवतानघ ॥ शाङ्करं चरितं दिव्यं किमन्यत्प्रष्टुमिच्छसि ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां देवर्षिनृपशैवत्ववर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

पूर्वकालमें शिवके समीप स्थित हुये किसी संन्यासीकी रक्षा की और स्वयं दैववशात् रात्रिमें व्याघ्र आदिकोंके भक्षण करनेसे मर गया ॥ ५३ ॥ उसही पुण्यके प्रभावसे वह दूसरे जन्ममें राजा नल हुआ और वह चक्रवर्ती महाराजा दमयन्तीके प्रियपति हुये ॥ ५४ ॥ हे तात ! हे पापरहित आपने जो पूंछा सो शिवका दिव्य चरित्र तुमसे वर्णन किया अब तुम क्या और कुछ पूंछना चाहते हो ? ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० देवर्षिनृपशैवत्ववर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

ऋषय ऊचुः ॥ धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि जीवितं सफलं तव ॥ यच्छ्रावयसि नस्तात महेश्वरकथां शुभाम् ॥ १ ॥ बहुभिश्चर्षिभिः स्सूत श्रुतं यद्यपि वस्तु सत् ॥ सन्देहो न गतोऽस्माकं तदेतत्कथयामि ते ॥२॥ केनव्रतेन सन्तुष्टः शिवो यच्छति सत्सुखम् ॥ कुशलश्शिवकृत्ये त्वं तस्मात्पृच्छामहे वयम् ॥ ३ ॥ भुक्तिर्मुक्तिश्च लभ्येत भक्तैर्येनव्रतेन वै ॥ तद्वद त्वं विशेषेण व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ॥४॥ सूत उवाच ॥ सम्यक्पृष्टमृषिश्रेष्ठा भवद्भिः करुणात्मभिः ॥ स्मृत्वा शिवपदांभोजं कथयामि यथाश्रुतम् ॥ ५ ॥ यथा भवद्भिः पृच्छेत तथापृष्टं हि वेधसा ॥ हरिणा शिवया चैव तथा वै शंकरं प्रति ॥ ६ ॥ कस्मिंश्चित्समये तैस्तु पृष्टं च परमात्मने ॥ केन व्रतेन सन्तुष्टो भुक्तिं मुक्तिं च यच्छसि ॥ ७ ॥ इति पृष्टस्तदा तैस्तु हरिणा तेन वै तदा ॥ तदहं कथयाम्यद्य शृण्वतां पापहारकम् ॥ ८ ॥ शिव उवाच ॥ भूरि व्रतानि मे सन्ति भुक्तिमुक्तिप्रदानि च ॥ मुख्यानि तत्र ज्ञेयानि दशसंख्यानि तानि वै ॥ ९ ॥ दश शैवव्रतान्याहुर्जाबालश्रुतिपारगाः ॥ तानि व्रतानि यत्नेन कार्याण्येव द्विजैस्सदा ॥ १० ॥

ऋषि बोले, हे तात ! हे सूतजी ! आप धन्य हैं कृतकृत्य हैं आपका जीवन सफल है जिससे कि आप महेश्वरकी शुभ कथाको सुनाते हैं ॥१॥ हे सूतजी ! यद्यपि हमने बहुत ऋषियोंसे अतिश्रेष्ठ उपाख्यान सुने हैं तथापि हमारा संशय नहीं गया इस कारण आपसे कहते हैं ॥२॥ कौनसे व्रतसे संतुष्ट हुये शिवजी सच्चे सुखको देते हैं सो कहो कारण कि आप शिवकृत्यमें कुशल हैं इससे हम पूंछते हैं ॥ ३ ॥ हे व्यासजीके शिष्य सूतजी ! जिस व्रतके करनेसे मनुष्य भुक्ति तथा मुक्तिको प्राप्त करता है उसे आप विस्तारसे कहो आपको नमस्कार है ॥ ४ ॥ सूतजी बोले, हे ऋषिश्रेष्ठो ! दयालु आप सबोंने अच्छा प्रश्न किया जैसा मैंने सुना है सो सब शिवके चरणकमलोंको स्मरण करके कहता हूं ॥ ५ जिस प्रकार तुमने पूंछा है उसी प्रकार ब्रह्मा विष्णु और पार्वतीजीने भी शिवजीसे पूंछा था ॥ ६ ॥ किसी समय उन सबोंने परमात्मा शिवजीसे यह पूंछा कि हे शिव ! किस व्रतसे संतुष्ट हुये आप भुक्ति और मुक्तिको देते हैं ॥ ७ ॥ उस समय उन सबोंके तथा विष्णु भगवान्के पूंछनेपर जैसे शिवजीने कहा था उसी प्रकार श्रोताओंके पाप हरनेवाले उपायको वर्णन करता हूं ॥ ८ ॥ शिवजी बोले, भोग तथा मुक्तिके देनेवाले मेरे अनेकों व्रत हैं परन्तु उनमें दश मुख्य हैं ॥ ९ ॥ वेदोंमें पारगामी जाबाल आदि मुनियोंने

दशही व्रत कहे हैं वे दश व्रत द्विजातियोंको यत्नपूर्वक सदा करने चाहिये ॥ १० ॥ हे विष्णो ! प्रत्येक अष्टमीको यत्नसे रात्रिमें भोजन करना चाहिये विशेषकर कालाष्टमीके दिन रात भोजनका त्याग करना चाहिये ॥ ११ ॥ हे विष्णो ! शुक्लपक्षकी एकादशीके दिन भी भोजन त्यागना उचित है, हे हरे ! कृष्णपक्षकी एकादशीके दिन मेरा पूजन करके रात्रिमें भोजन करे ॥ १२ ॥ शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको रात्रिमें भोजन कर ले और यदि कृष्णपक्षकी त्रयोदशी हो तो शिवव्रत धारियोंको कदापि भोजन करना न चाहिये ॥ १३ ॥ हे विष्णो ! दोनों पक्षोंमें सोमवारके दिन शिवव्रत करनेवालोंको रात्रिमेंही यत्न से भोजन करना चाहिये ॥ १४ ॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! इन सम्पूर्ण व्रतोंमें शैवोंको

प्रत्यष्टम्यां प्रयत्नेन कर्तव्यं नक्तभोजनम्॥ कालाष्टम्यां विशेषेण हरे त्याज्यं हि भोजनम् ॥११॥ एकादश्यां सितायां तु त्याज्यं विष्णो हि भोजनम् ॥ असितायां तु भोक्तव्यं नक्तमभ्यर्च्य मां हरे ॥ १२ ॥ त्रयोदश्यां सितायां तु कर्तव्यं निशि भोजनम् ॥ असितायां तु भूतायां तन्न कार्यं शिवव्रतैः ॥१३॥ निशि यत्नेन कर्तव्यं भोजनं सोमवासरे ॥ उभयोः पक्षयोर्विष्णो सर्वस्मिञ्छिव तत्परैः ॥ १४ ॥ व्रतेष्वेतेषुसर्वेषु शैवा भोज्याः प्रयत्नतः ॥ यथाशक्ति द्विजश्रेष्ठा व्रतसंपूर्तिहेतवे ॥ १५ ॥ व्रतान्येतानि नियमात्कर्तव्यानि द्विजन्मभिः ॥ व्रतान्येतानि तु त्यक्त्वा जायन्ते तस्करा द्विजाः ॥ १६ ॥ मुक्तिमार्गप्रवीणैश्च कर्तव्यं नियमादिति ॥ मुक्तस्तु प्रापकं चैव चतुष्टयमुदाहृतम् ॥ १७ ॥ शिवार्चनं रुद्रजप उपवासश्शिवालये ॥ वाराणस्यां च मरणं मुक्तिरेषा सनातनी ॥ १८ ॥ अष्टमी सोमवारे च कृष्णपक्षे चतुर्दशी ॥ शिवतुष्टिकरं चैतन्नात्र कार्या विचारणा ॥ १९ ॥

यथा शक्ति व्रतके समाप्त होनेके करण भोजन कराना उचित है ॥ १५ ॥ हे द्विजो ! यह सम्पूर्ण व्रत द्विजातियोंको नियमसे करने उचित हैं जो इन व्रतोंका त्यागन करते हैं वे दूसरे जन्ममें चोर होते हैं ॥ १६ ॥ मुक्तिके मार्गको जाननेवालोंको यह व्रत नियमसे करने चाहिये कारण कि यह चारों बाते मुक्तिकी देनेवालीं कही हैं ॥ १७ ॥ शिवका पूजन रुद्रजप तथा शिवालयमें उपवास करना काशीमें मरण इनसे सनातनी मुक्ति होती है ॥ १८ ॥ कृष्णपक्षमें सोमवार अष्टमी तथा सोमवारकी चौदस हो तो यह दोनों शिवकी

प्रसन्न करनेवाली होती हैं इसमें कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिये ॥ १९ ॥ हे भगवन् ! पूर्वोक्त चारों बातोंसे भी शिवरात्रिका व्रत बलवान् कहा है इस कारण भुक्ति मुक्तिके फल पानेवालोंको यह अवश्य करना चाहिये ॥ २० ॥ इस व्रतसे अधिक और कोई व्रत मनुष्योंका हितकारक नहीं है यह व्रत सम्पूर्ण मनुष्योंके उत्तम धर्मका साधन है ॥ २१ ॥ हे विष्णो ! कामना रहित तथा कामना करनेवाले चारों वर्णों तथा चारों आश्रमोंके सब मनुष्यों तथा स्त्री बालकोंके धर्मका साधन यह व्रत कहा है ॥ २२ ॥ यह श्रेष्ठ व्रत सब दास दासियोंके सम्पूर्ण देवता आदि और सब देहधारी मनुष्योंका हित करने वाला है ॥ २३ ॥ माघके कृष्णपक्षमें त्रयोदशी किसी और तिथीसे मिली

चतुर्ष्वपि बलिष्ठं हि शिवरात्रिव्रतं हरे ॥ तस्मात्तदेव कर्तव्यं भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः ॥ २० ॥ एतस्माच्च व्रतादन्यन्नास्ति नृणां हितावहम् ॥ एतद्व्रतन्तु सर्वेषां धर्मसाधनमुत्तमम् ॥ २१ ॥ निष्कामानां सकामानां सर्वेषां च नृणान्तथा ॥ वर्णानामाश्रमाणां च स्त्रीबालानां तथा हरे ॥ २२ ॥ दासानां दासिकानां च देवादीनां तथैव च ॥ शरीरिणां च सर्वेषां हितमेतद्व्रतं वरम् ॥ २३ ॥ माघस्य ह्यसितेपक्षे विशिष्टा सातिकीर्तिता ॥ निशीथव्यापिनी ग्राह्या हत्याकोटिविनाशिनी ॥ २४ ॥ तद्दिने चैव यत्कार्यं प्रातरारभ्य केशव ॥ श्रूयतान्तन्मनो दत्त्वा सुप्रीत्या कथयामि ते ॥ २५ ॥ प्रातरुत्थाय मेधावी परमानन्दसंयुतः ॥ समाचरेन्नित्यकृत्यं स्नानादिकमतन्द्रितः ॥ २६ ॥ शिवालये ततो गत्वा पूजयित्वा यथाविधि ॥ नमस्कृत्य शिवं पश्चात्संकल्पं सम्यगाचरेत् ॥ २७ ॥ देवदेव महादेव नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ॥ कर्तुमिच्छाम्यहं देव शिवरात्रिव्रतं तव ॥ २८ ॥

हुई तथा रात्रिमें व्याप्त होनेवाली हो तो उसे ग्रहण करना उचित है वह अति श्रेष्ठ कही है कोटि हत्या नाश करने वाली है ॥ २४ ॥ हे केशव ! उस दिन प्रातःकालसे लेकर जो जो करना चाहिये उसे ध्यान देके प्रीतिसे सुनो मैं तुमसे कहता हूं ॥ २५ ॥ बुद्धिमान्को प्रातःकाल परम आनन्द सहित उठके आलस्य रहित हो स्नान आदि नित्यकर्म करना चाहिये ॥२६॥ फिर शिवालयमें जाके विधिपूर्वक पूजनकर शिवको नमस्कार करके पश्चात् भली प्रकार संकल्प करे ॥२७॥ हे देवोंके देव ! हे महादेव ! हे नीलकंठ ! हे देव !

तुमको नमस्कार है मैं तुम्हारे शिवरात्रिके व्रतको करनेकी इच्छा करता हूं ॥२८॥ हे देवेश ! तुम्हारे प्रभावसे यह व्रत निर्विघ्न समाप्त हो और काम क्रोध आदि शत्रु मुझे पीडा नहीं दें ॥ २९ ॥ इस प्रकार संकल्प करके पूजाकी वस्तुको लावें, फिर शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हुए ज्योतिर्लिङ्गको सुन्दर स्थानमें स्थापन करे ॥ ३० ॥ रात्रिमें वहां स्वयम् जाके श्रेष्ठ विधिको संपादन करके शिवजीके दाहिनी ओर वा पश्चिमभागवाले शुभ स्थलमें ॥३१॥ पूजाके निमित्त उन द्रव्योंको शिवके समीप रखके फिर वहां व्रती मनुष्य विधिपूर्वक स्नान करे ॥ ३२ ॥ भीतरके वस्त्र सहित शुभ वस्त्रको पहिनके तीन बार आचमन कर पूजाको प्रारंभ करे ॥३३॥ जिस मंत्रका जो द्रव्य हो उसी मंत्रसे पूजा करे विना मंत्रके शिवका

तव प्रभावादेवेश निर्विघ्नेन भवेदिति॥कामाद्याःशत्रवो मां वै पीडां कुर्वन्तु नैव हि॥२९॥एवं संकल्पमास्थाय पूजाद्रव्यं समाहरेत् सुस्थले चैव यल्लिंगं प्रसिद्धं चागमेषु वै॥३०॥रात्रौ तत्र स्वयं गत्वा संपाद्य विधिमुत्तमम्॥शिवस्य दक्षिणे भागे पश्चिमे वा स्थले शुभे ॥३१॥ निधाय चैव तद्द्रव्यं पूजार्थं शिवसन्निधौ ॥ पुनः स्नायात्तदा तत्र विधिपूर्वं नरोत्तमः ॥३२॥ परिधाय शुभं वस्त्रमन्तर्वास श्शुभन्तथा॥आचम्य च त्रिवारंहि पूजारंभं समाचरेत्॥३३॥यस्य मंत्रस्य यद्द्रव्यं तेन पूजां समाचरेत्॥अमंत्रकं न कर्तव्यं पूजनं तु हरस्य च ॥३४॥ गीतैर्वाद्यैस्तथानृत्यैर्भक्तिभावसमन्वितः ॥पूजनं प्रथमे यामे कृत्वा मंत्रं जपेद्बुधः॥३५॥पार्थिवं च तदा श्रेष्ठं विदध्यान्मंत्रवान्यदि ॥कृतनित्यक्रियःपश्चात्पार्थिवं च समर्चयेत्॥३६॥प्रथमं पार्थिवं कृत्वा पश्चात्स्थापनमाचरेत्॥ स्तोत्रैर्नानाविधैर्देवं तोषयेद्वृषभध्वजम् ॥३७॥ माहात्म्यं व्रतसंभूतं पठितव्यं सुधीमता॥श्रोतव्यं भक्तवर्येण व्रतसम्पूर्तिकाङ्क्षया ॥३८॥

पूजन करना नहीं चाहिये ॥ ३४ ॥ गीत बाजे तथा नृत्यके सहित भक्तिभावसे पंडित पहले पहरमें पूजन करके "ॐ शिवाय नमः" इस मंत्रको जपे ॥ ३५ ॥ तब मंत्रको जपता हुआ श्रेष्ठ पार्थिव लिंगको निर्माण करे पश्चात् नित्य क्रिया करके पार्थिवलिंगको पूजे ॥ ३६ ॥ पहले पार्थिवलिंगको बनाके फिर स्थापन करे और अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे शिवदेवको सन्तुष्ट करे ॥ ३७ ॥ फिर बुद्धिमान् भक्त व्रत सम्बन्धी माहात्म्यको पढे और व्रतकी समाप्तिकी इच्छासे माहात्म्यको सुने ॥ ३८ ॥

चारों पहरोंमें आवाहनके क्रमसे विसर्जन पर्यन्त शिवकी चारों मूर्तियोंका पूजन करे ॥ ३९ ॥ महा उत्सवपूर्वक प्रीतिसे जागरण करना उचित है प्रातःकाल फिर स्नानकरके शिवकी स्थापनाकर उनका पूजन करे ॥ ४० ॥ तत्पश्चात् कंधे झुकाय नम्रहो हाथ जोड सदाशिवकी प्रार्थना करे संपूर्ण व्रतको समाप्त करके फिर उनको बारम्बार नमस्कार करके कहे ॥ ४१ ॥ हे स्वामिन् ! हे महादेव ! तुम्हारी आज्ञासे मैंने जो नियम किया था वह श्रेष्ठ व्रत समाप्त हुआ अब मैं आपको विसर्जन करता हूं ॥ ४२ ॥ हे देवेश ! हे सर्वाद्य ! यथाशक्ति किये हुये इस व्रतसे सन्तुष्ट हो और मेरे ऊपर कृपा करो ॥ ४३ ॥ शिवजीको पुष्पोंकी अंजलि देके विधिपूर्वक दान देवे और शिवको नमस्कार करके उस

चतुर्ष्वपि च यामेषु मूर्तीनां च चतुष्टयम् ॥ कृत्वावाहनपूर्वं हि विसर्गावधि वै क्रमात् ॥३९॥ कार्यं जागरणं प्रीत्या महोत्सव समन्वितम् ॥ प्रातः स्नात्वा पुनस्तत्र स्थापयेत्पूजयेच्छिवम् ॥ ४० ॥ ततः संप्रार्थयेच्छंभुं नतस्कन्धः कृताञ्जलिः ॥ कृतसम्पूर्णव्रतको नत्वा तं च पुनः पुनः ॥ ४१ ॥ नियमो यो महादेव कृतश्चैव त्वदाज्ञया ॥ विसृज्यते मया स्वामिन्व्रतं जातमनुत्तमम् ॥ ४२ ॥ व्रतेनानेन देवेश यथाशक्तिकृतेन च ॥ सन्तुष्टो भव शर्वाद्य कृपां कुरु ममोपरि ॥ ४३ ॥ पुष्पाञ्जलिं शिवे दत्त्वा दद्याद्दानं यथाविधि ॥ नमस्कृत्य शिवायैव नियमं तं विसर्जयेत् ॥४४॥ यथाशक्ति द्विजाञ्छैवान्यतिनश्च विशेषतः ॥ भोजयित्वा सुसन्तोष्य स्वयं भोजनमाचरेत् ॥ ४५ ॥ यामेयामे यथा पूजा कार्या भक्तवरैर्हरे ॥ शिवरात्रौ विशेषेण तामहं कथयामि ते ॥४६॥ प्रथमे चैव यामे च स्थापितं पार्थिवं हरे ॥ पूजयेत्परया भक्त्या सूपचारैरनेकशः ॥ ४७ ॥ पंचद्रव्यैश्च प्रथमं पूजनीयो हरस्सदा ॥ तस्य तस्य च मन्त्रेण पृथग्द्रव्यं समर्पयेत् ॥ ४८ ॥

नियमको विसर्ज करे ॥ ४४ ॥ शैव ब्राह्मणोंको और विशेष करके संन्यासियोंको अपनी शक्तिके अनुसार भोजन कराके उन्हें सन्तुष्ट करके स्वयं भोजन करे ॥ ४५ ॥ हे विष्णो ! श्रेष्ठ भक्तोंको जिस प्रकार प्रत्येक पहरमें शिवरात्रिके दिन विशेष पूजन करना उचित है उस पूजनको तुमसे कहता हूं ॥ ४६ ॥ हे विष्णो ! पहले पहरमें स्थापन किये हुये पार्थिवलिंगको अनेक उपचारों सहित परम भक्तिसे पूजन करे ॥ ४७ ॥ पहले पांचद्रव्योंसे शिवको पूजे उस उस वस्तुके मंत्रोंसे पृथक् द्रव्योंको समर्पण करे ॥ ४८ ॥

और उस द्रव्यको समर्पण करके जलकी धारा चढावे पश्चात् विद्वान् व्रती जलधारासे द्रव्योंको उतारे ॥ ४९ ॥ वहां एक सौ आठबार (ओं नमः शिवाय) इस मन्त्रको पढकर जलधारासे निर्गुण तथा सगुण शिवको पूजे ॥ ५० ॥ गुरुके दिये हुए मन्त्रसे शिवका पूजन करे अथवा नाम मन्त्रसे सदाशिवको पूज ॥ ५१ ॥ सुन्दर चन्दन तथा अखंडित चावलों और काले तिलोंसे परमात्मा शिवकी पूजा करनी चाहिये ॥ ५२ ॥ कमलोंसे तथा सौंफ और कनेरके पुष्पोंसे शिवकी अर्चना करे और शिवके आठों नाम मन्त्रोंसे उन्हें पुष्प

तच्च द्रव्यं समप्यैंवजलधारां ददेत वै ॥ पश्चाच्च जलधाराभिर्द्रव्याण्युत्तारयेद्बुधः ॥ ४९ ॥ शतमष्टोत्तरं मन्त्रं पठित्वाजल धारया ॥ पूजयेच्च शिवं तत्र निर्गुणं गुणरूपिणम् ॥ ५० ॥ गुरुदत्तेन मंत्रेण पूजयेद्वृषभध्वजम् ॥ अन्यथा नाममंत्रेण पूजयेद्वै सदाशिवम् ॥५१॥ चन्दनेन विचित्रेण तण्डुलैश्चाप्यखण्डितैः ॥ कृष्णैश्चैव तिलैः पूजा कार्या शंभोः परात्मनः ॥ ५२ ॥ पुष्पैश्च शतपत्रैश्च करवीरैस्तथा पुनः ॥ अष्टभिर्नाममंत्रैश्चार्पयेत्पुष्पाणि शंकरे ॥ ५३ ॥ भवः शर्वस्तथा रुद्रः पुनः पशुप तिस्तथा ॥ उग्रो महांस्तथा भीम ईशान इति तानि वै ॥ ५४ ॥ श्रीपूर्वैश्च चतुर्थ्यंतैर्नामभिः पूजयेच्छिवम् ॥ पश्चाद्धूपं च दीपं च नैवेद्यं च ततः परम् ॥ ५५ ॥ आद्ययामेच नैवेद्यं पक्वान्नं कारयेद्बुधः ॥ अर्घं च श्रीफलं दत्त्वा ताम्बूलं च निवेद येत् ॥ ५६ ॥ नमस्कारं ततो ध्यानं जपः प्रोक्तो गुरोर्मनोः ॥ अन्यथा पंचवर्णेन तोषयेत्तेन शंकरम् ॥ ५७ ॥ धेनु मुद्रां प्रद र्श्याथ सुजलैस्तर्पणं चरेत् ॥ पंचब्राह्मणभोजं च कल्पयेद्वै यथाबलम् ॥ ५८ ॥

चढावे ॥ ५३ ॥ भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महान्, भीम ईशान, यह आठ नाम हैं ॥ ५४ ॥ श्रीपूर्वक चतुर्थ्यन्त नामोंसे (ॐभवाय नमः इत्यादि नामोंसे) शिवको पूजे उसके पीछे धूप नैवेद्य चढावे ॥ ५५ ॥ पहले पहरमें पंडित पक्वान्न सहित नैवेद्य अर्पण करे अर्घ श्रीफल बेल नारियल चढाके ताम्बूल अर्पण करे ॥ ५६ ॥ तत्पश्चात् नमस्कार ध्यान गुरुमन्त्र तथा मेरे मन्त्रका जप करे अथवा पंचा क्षरमन्त्रसे शिवको संतुष्ट करे ॥ ५७ ॥ धेनु मुद्राको दिखाके निर्मल जलसे शिवको तृप्त करे अपनी शक्तिके अनुसार पांच ब्राह्मणोंको भोजन

करावे ॥ ५८ ॥ और जबतक समय हो महोत्सव करे इसके अनन्तर सम्पूर्ण पूजाके फलोंको देके विसर्जन करे ॥ ५९ ॥ फिर दूसरे पह
रके प्रारम्भमें अच्छी प्रकार संकल्प करे अथवा एकही बार संकल्प करके पहलेके समान पूजन करे ॥ ६० ॥ उसी प्रकार पहले द्रव्योंसे
करके जलकी धारा समर्पण करे पहलेकी अपेक्षा दूने मन्त्रोंका उच्चारण करके शिवजीको पूजे ॥ ६१ ॥ पहले रक्खे हुए तिल जौ चावल कम
लोंसे शिवका पूजन करे और विशेषकर बेलपत्रोंसे सदाशिवको पूजे ॥ ६२ ॥ बीजापूर (बिजौरे नींबू) का अर्घ्य तथा
(खीर) की नैवेद्य अर्पण करे हे विष्णो ! पहलेसे दूना मन्त्रोंका पाठ करे ॥ ६३ ॥ इसके पीछे ब्राह्मणोंको भोजन करानेका संकल्प

महोत्सवश्च कर्तव्यो यावद्यामो भवेदिह ॥ततः पूजाफलं तस्मै निवेद्य च विसर्जयेत्॥५९॥पुनर्द्वितीये यामे च संकल्पं सुसमा
चरेत्॥अथवैकदैव संकल्प्य कुर्यात्पूजां तथाविधाम् ॥६०॥द्रव्यैः पूर्वैस्तथा पूजां कृत्वा धारां समर्पयेत् ॥ पूर्वतो द्विगुणं मंत्र
समुच्चार्यार्चयेच्छिवम् ॥६१॥ पूर्वैस्तिलयवैश्चाथ कमलैः पूजयेच्छिवम्॥बिल्वपत्रैर्विशेषेण पूजयेत्परमेश्वरम् ॥६२॥ अर्घ्यं च
बीजपूरेण नैवेद्यं पायसन्तथा॥मंत्रावृत्तिस्तु द्विगुणा पूर्वतोऽपि जनार्दन॥६३॥ ततश्च ब्राह्मणानां हि भोज्योसंकल्पमाचरेत् ॥
अन्यत्सर्वं तथा कुर्याद्यावच्च द्वितयावधि॥६४॥यामे प्राप्ते तृतीये च पूर्ववत्पूजनं चरेत्॥यवस्थाने च गोधूमाः पुष्पाण्यर्कभवानि
च ॥६५॥ धूपैश्च विविधैस्तत्र दीपैर्नानाविधैरपि ॥ नैवेद्यापूपकैर्विष्णो शाकैर्नानाविधैरपि ॥६६॥ कृत्वैवं चाथ कर्पूरैरारार्तिक
विधिं चरेत् ॥ अर्घ्यं सदाडिमं दद्याद्द्विगुणं जपमाचरेत् ॥६७॥ ततश्च ब्रह्मभोजस्य संकल्पं च सदक्षिणम्॥उत्सवं पूर्ववत्कुर्या
द्यावद्यामावधिर्भवेत्॥६८॥ यामे चतुर्थे संप्राप्ते कुर्यात्तस्य विसर्जनम् ॥ प्रयोगादि पुनः कृत्वा पूजां विधिवदाचरेत् ॥६९॥

करे और सब पूजन दूसरे पहरकी समाप्ति पर्यन्त पहलेके समान करे ॥ ६४ ॥ फिर तीसरे पहरमें पहलेके समान पूजन करे
यवोंके स्थानमें गेहूं तथा आकके फूल चढावे ॥ ६५ ॥ हे विष्णो ! वहां विविध प्रकारकी धूप अनेक प्रकारके दीपोंसे तथा पुयेके नैवेद्य
तथा अनेक प्रकारके शाकोंसे ॥ ६६ ॥ शिवका पूजन करके कपूरसे आरती करे अनारका अर्घ्य दे पूर्वकी अपेक्षा दूना जप करे ॥ ६७ ॥
फिर दक्षिणा सहित ब्राह्मणोंके भोजनका संकल्प करे और तृतीय पहरकी समाप्ति पर्यन्त पूर्वके समान उत्सव करे ॥ ६८ ॥ चौथे पहरके

प्रारंभ होते ही उनका विसर्जन करे फिर आवाहनादि करके विधि पूर्वक पूजन कर ॥६९॥ उडद, कंगनी, मूंगसे अथवा सात धान्योंसे शंखी पुष्प, बेलपत्रसे परमेश्वरका पूजन करे ॥ ७० ॥ फिर शिवजीपर अनेक प्रकारके मिष्टान्न नैवेद्योंको चढावे अथवा उडदके बने पक्वान्नसे सदा शिवको संतुष्ट करे ॥ ७१ ॥ हे हरे ! केलेकी फलीका अर्घ्य दे अथवा ऋतुके अनेक फलोंसे शिवको अर्घ्य दे ॥ ७२ ॥ फिर विद्वान् व्रती मनुष्य पहलेसे दूना मंत्रका जप करे फिर यथाशक्ति ब्राह्मणोंके भोजनका संकल्प करे ॥ ७३ ॥ भक्ति सहित गीतवाद्योंसे तथा नृत्योंसे भक्त जनोंसहित बडे उत्सवोंसे अरुणके उदय पर्यन्त इसी प्रकार समयको बितावे ॥ ७४ ॥ सूर्यके उदय होनेपर फिर स्नान करके शिवका अर्चन

माषैः प्रियंगुभिर्मुद्गैस्सप्तधान्यैस्तथाथवा ॥ शंखीपुष्पैर्बिल्वपत्रैःपूजयेत्परमेश्वरम् ॥७०॥ नैवेद्यं तत्र दद्याद्वै मधुरैर्विविधैरपि ॥ अथवा चैव माषान्नैस्तोषयेच्च सदाशिवम् ॥ ७१ ॥ अर्घं दद्यात्कदल्याश्च फलेनैवाथवा हरे ॥ विविधैश्च फलैश्चैव दद्यादर्घ्यं शिवाय च ॥ ७२ ॥ पूर्वतो द्विगुणं कुर्यान्मंत्रजापं नरोत्तमः ॥ संकल्पं ब्रह्मभोजस्य यथाशक्ति चरेद्बुधः ॥७३॥ गीतैर्वाद्यैस्तथा नृत्यैर्नयेत्कालं च भक्तितः ॥ महोत्सवैर्भक्तजनैर्यावत्स्यादरुणोदयः ॥ ७४ ॥ उदये च तथा जाते पुनस्स्नात्वार्चयेच्छिवम् ॥ नानापूजोपहारैश्च स्वाभिषेकमथाचरेत् ॥ ७५ ॥ नानाविधानि दानानि भोज्यं च विविधन्तथा ॥ ब्राह्मणानां यतीनां च कर्तव्यं यामसंख्यया ॥ ७६ ॥शंकराय नमस्कृत्य पुष्पाञ्जलिमथाचरेत् ॥ प्रार्थयेत्सुस्तुतिंकृत्वा मन्त्रैरेतैर्विचक्षणः ॥७७॥ तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड ॥ कृपानिधे इति ज्ञात्वा यथा योग्यं तथा कुरु ॥ ७८ ॥ अज्ञानाद्यदि वा ज्ञाना ज्जपपूजादिकं मया ॥ कृपा निधित्वाज्ज्ञात्वैव भूतनाथ प्रसीद मे ॥ ७९ ॥

करे फिर अनेक प्रकारकी पूजा योग्य भेंटोंसे अपना अभिषेक करे ॥७५॥ अनेक प्रकारके दान तथा विविध प्रकारका भोजन पहरोंकी संख्याके अनुसार ब्राह्मणोंको तथा संन्यासियोंको संकल्पानुसार करावे ॥७६॥ फिर शिवको नमस्कार करके पुष्पोंकी अंजलि ग्रहण करके बुद्धिमान् इन मन्त्रोंसे स्तुति करके प्रार्थना करे ॥७७॥ हे कृपानिधे ! हे शिवजी ! मैं तुम्हारा हूं तथा आपके प्राणवाला हूं सदा आपके चित्तवाला हूं ऐसा जानके जैसा योग्य हो सो करो ॥७८॥ हे भूतनाथ मैंने अज्ञानसे वा ज्ञानसे जो जप पूजन आदि किया है उससे दयालु होनेके कारण आप

मुझसे प्रसन्न होवें ॥७९॥ इस व्रतसे जो फल होता है उससे सब सुखदायक आप शंकर देव प्रसन्न हो ॥८०॥ हे महादेव ! मेरे कुलमें आपका नित्य भजन होता रहे उस कुलमें मेरा जन्म न होवे जहां शिव देवका कीर्तन न होता हो ॥८१॥ इस प्रकार पुष्पोंकी अंजलिको समर्पण करके ब्राह्मणोंसे आशीर्वादके तिलोंको ग्रहण करे तत्पश्चात् शिवको विसर्जन करे ॥८२॥ इस प्रकार जिसने व्रत किया उससे शिवजी दूर नहीं होते उसका फल मैं नहीं कह सकता ऐसे भक्तको मुझे कुछ अदेय नहीं है॥८३॥यदि विना परिश्रमसे भी यह श्रेष्ठ व्रत किया हो उसको भी मुक्ति बीज होता है इसमें कुछ संशय नहीं॥८४॥मनुष्योंको भक्तिसे प्रत्येक मासमें यह व्रत करना योग्य है पीछेसे उद्यापन करके पूर्णांग फलको प्राप्त

अनेनैवोपवासेन यज्जातं फलमेव च ॥ तेनैव प्रीयतां देवः शंकरः सुखदायकः ॥८०॥ कुले मम महादेव भजनं तेऽस्तु सर्वदा ॥ माभूत्तस्य कुले जन्म यत्रत्वं न हि देवता ॥८१॥ पुष्पांजलिं समर्प्यैवं तिलकाशिष एव च॥गृह्णीयाद्ब्राह्मणेभ्यश्च ततश्शंभुं विसर्जयेत् ॥८२॥ एवं व्रतं कृतं येन तस्माद्दूरो हरो न हि ॥ नशक्यते फलं वक्तुं नादेयं विद्यते मम ॥८३॥ अनायासतया चेद्वै कृतं व्रतमिदम्परम् ॥ तस्य वै मुक्तिबीजं च जातं नात्र विचारणा ॥८४॥ प्रतिमासं व्रतं चैव कर्तव्यं भक्तितो नरैः ॥ उद्यापनविधिं पश्चात्कृत्वा सांगफलं लभेत् ॥८५॥ व्रतस्य करणान्नूनं शिवोऽहं सर्वदुःखहा ॥ दद्मि भुक्तिं च मुक्तिं च सर्वं वै वाञ्छितं फलम् ॥८६॥ सूत उवाच ॥ इति शिववचनं निशम्य विष्णुर्हिततरमद्भुतमाजगाम धाम ॥ तदनु व्रतमुत्तमं जनेषु समचरदात्महितेषु चैत देव ॥ ८७॥ कदाचिन्नारदायाथ शिवरातिव्रतन्त्विदम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं कथयामास केशवः ॥ ८८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटि रुद्रसंहितायां व्याधेश्वरमाहात्म्ये शिवरात्रिव्रतमहिमनिरूपणंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

करे ॥ ८५ ॥ इस व्रतके करनेसे निश्चय ही मैं शिव समस्त दुःखोंको दूर करता हूं तथा उसे भुक्ति मुक्ति और संपूर्ण वाञ्छित फलोंको देता हूं ॥ ८६ ॥ सूतजी बोले, विष्णु भगवान् ऐसा शिवका हितकारी वचन सुनके अद्भुत तेजको प्राप्त हुये तत्पश्चात् उन्होंने अपने हितकारी मनुष्योंके समीप यह श्रेष्ठ व्रत किया ॥ ८७ ॥ किसी समय विष्णु भगवान्ने भुक्ति मुक्ति देनेवाले दिव्य इस शिवरात्रिके व्रतको नारदसे कहा था ॥८८॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० व्याधेश्वरमाहात्म्ये शिवरात्रि व्रतमहिमा निरूपणं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

ऋषि बोले, शिवरात्रि व्रतकी उद्यापन विधिको कहो जिसको करके साक्षात् शिव देवता निश्चयही प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥ सूतजी बोले, हे ऋषियो ! भक्तिसे आदर सहित शिवरात्रिके उद्यापनको सुनो जिसके कहनेसे वह व्रत निश्चयही पूर्ण होता है ॥ २ ॥ शुभ शिवरात्रिका व्रत चौदह वर्ष पर्यन्त करना चाहिये त्रयोदशीके दिन एक आवृत्ति भोजन करे और चौदसको उपोषण करे ॥ ३ ॥ शिवरात्रिके दिन नित्यकी विधिको समाप्त करके शिवके मंदिरमें जाके विधिपूर्वक पूजन करके ॥ ४ ॥ तत्पश्चात् वहां शिवजीके समीपमें यत्नपूर्वक दिव्य मंडलको करावे जो मंडल गौरी तिलक नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है ॥ ५ ॥ उसके मध्यमें सुन्दर लिंगतोभद्रमंडलको बनावे, अथवा मंडपके भीतर सर्वतोभ

ऋषय ऊचुः ॥ उद्यापनविधिं ब्रूहि शिवरात्रिव्रतस्य च ॥ यत्कृत्वा शंकरस्साक्षात्प्रसन्नो भवति ध्रुवम् ॥ १ ॥ सूत उवाच॥श्रूयतामृषयो भक्त्या तदुद्यापनमादरात् ॥ यस्यानुष्ठानतः पूर्णं व्रतं भवति तद्ध्रुवम् ॥ २ ॥ चतुर्दशाब्दं कर्तव्यं शिवरात्रिव्रतंशुभम् ॥ एकभक्तंत्रयोदश्यांचतुर्दश्यामुपोषणम् ॥ ३ ॥ शिवरात्रिदिने प्राप्ते नित्यं संपाद्य वै विधिम् ॥ शिवालयं ततो गत्वा पूजां कृत्वा यथाविधि ॥ ४ ॥ ततश्च कारयेद्दिव्यं मण्डलं तत्रयत्नतः ॥ गौरीतिलकनाम्ना वैप्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ ५ ॥ तन्मध्ये लेखयेद्दिव्यं लिंगतोभद्रमण्डलम्॥अथवा सर्वतोभद्रं मण्डपान्तः प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥ कुंभास्तत्र प्रकर्तव्याः प्राजापत्यविसंज्ञया ॥ सवस्त्रास्स फलास्तत्र दक्षिणासहिताः शुभाः ॥ ७ ॥ मण्डलस्य च पार्श्वे वै स्थापनीयाः प्रयत्नतः ॥ मध्ये चैकश्च संस्थाप्यः सौवर्णो वापरो घटः ॥ ८ ॥ तत्रोमासहितां शंभुमूर्तिन्निर्माय हाटकीम् ॥ पलेन वा तदर्द्धेन यथाशक्त्याथवा व्रती ॥ ९ ॥ निधाय वामभागे तु शिवामूर्त्तिमतन्द्रितः ॥ मदीयां दक्षिणे भागे कृत्वा रात्रौ प्रपूजयेत् ॥ १० ॥

द्रचक्रको निर्माण करे ॥ ६ ॥ वहांपर प्राजापत्य नामसे वस्त्रों, फलों, और दक्षिणा सहित शुभघडोंको स्थापन करे ॥ ७ ॥ मध्यमें सुवर्णका एक कलश अथवा दूसरा कलशभी स्थापन करे इस प्रकार उस मंडलके समीपमें कलश यत्नसे स्थापन करने चाहिये ॥ ८ ॥ तहां व्रती एक पलभर अथवा आधेपलकी वा जैसी सामर्थ्य हो पार्वती समेत शिवजीकी सुवर्णकी मूर्ति बनावे ॥ ९ ॥ आलस्य रहित हो बाईं ओर पार्वतीकी प्रतिमा स्थापन करके दाहिनी ओर शिवकी मूर्तिको स्थापन कर रात्रिमें पूजन करे ॥ १० ॥

वहां ऋत्विजोंके सहित पवित्र आचार्यको वरण करे उनकी आज्ञासे भक्तिपूर्वक शिवका पूजन करे ॥ ११ ॥ प्रत्येक पहरमें पूजाको करता हुआ रात्रिको जागरण करे इस प्रकार व्रती गीत नृत्य आदिसे संपूर्ण रात्रिको बितावे ॥१२॥ इस प्रकार विधिपूर्वक पूजन कर शिवको सन्तुष्ट करके प्रातःकाल फिर पूजन करके विधिपूर्वक होम करे ॥ १३ ॥ यथाशक्ति प्राजापत्य व्रत विधान करे फिर प्रीतिसे ब्राह्मणोंको भोजन कराय भक्तिसे दान दे ॥ १४ ॥ ऋत्विजों (यज्ञ करानेवालों) को स्त्री सहित वस्त्र आभूषणोंसे सजाके विधिपूर्वक पृथक् पृथक् उन्हें दान दे ॥ १५ ॥ गायको बछडे सहित तथा संपूर्ण वस्तुओंके समेत विधानसे शिवजी मुझसे प्रसन्न हों ऐसा कहके आचार्यको दे ॥ १६ ॥

आचार्यं वरयेत्तत्र चर्त्विग्भिस्सहितं शुचिम् ॥ अनुज्ञातश्च तैर्भक्त्या शिवपूजां समाचरेत् ॥ ११ ॥ रात्रौ जागरणं कुर्यात्पूजां यामोद्भवां चरन् ॥ रात्रिमाक्रमयेत्सर्वां गीतनृत्यादिना व्रती ॥ १२ ॥ एवं सम्पूज्य विधिवत्संतोष्य प्रातरेव च ॥ पुनः पूजां ततः कृत्वा होमं कुर्याद्यथाविधि ॥ १३ ॥ यथाशक्ति विधानं च प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्प्रीत्या दद्याद्दानानि भक्तितः ॥ १४ ॥ ऋत्विजश्च सपत्नीकान्वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥ अलङ्कृत्य विधानेन दद्याद्दानं पृथक्पृथक् ॥ १५ ॥ गां सवत्सां विधानेन यथोपस्करसंयुताम् ॥ उक्ताचार्याय वै दद्याच्छिवो मे प्रीयतामिति ॥१६॥ ततस्सकुम्भां तन्मूर्तिं सवस्त्रां वृषभे स्थिताम् ॥ सर्वालंकारसहितामाचार्याय निवेदयेत् ॥१७॥ ततः संप्रार्थयेद्देवं महेशानं महाप्रभुम् ॥ कृतांजलिर्नतस्कन्धस्सुप्रीत्या गद्गदाक्षरः ॥१८॥ देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ॥ व्रतेनानेन देवेश कृपां कुरु ममोपरि ॥ १९ ॥ मया भक्त्यनुसारेण व्रतमेतत्कृतं शिवा ॥ न्यूनं सम्पूर्णतां यातु प्रसादात्तव शङ्कर ॥२०॥ अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया ॥ कृतं तदस्तु कृपया सफलं तव शङ्कर ॥२१॥

उसके पीछे कलशों और वस्त्रों सहित वृषभपर स्थित हुई शिवकी मूर्तिको समस्त आभूषण तथा वस्त्रों सहित आचार्यको देवे ॥ १७ ॥ फिर महाप्रभु, सदाशिव; देवदेवकी प्रीतिसे हाथ जोड कंधे झुकाय गद्गद वाणीसे इस प्रकार प्रार्थना करे ॥ १८ ॥ हे देवोंके देव ! हे महादेव ! हे शरणागत वत्सल ! हे देवेश ! इस व्रतसे मेरे ऊपर कृपा करो ॥ १९ ॥ हे शिव ! मैंने भक्तिको अनुसरण करके यह आपका व्रत किया है सो हे शंकर ! न्यूनभी यह व्रत आपको प्रसन्नतासे संपूर्णताको प्राप्त होवे ॥२०॥ हे शंकर ! मैंने अज्ञानसे अथवा ज्ञानसे जो कुछ जप पूजन

आदि किया है सो सब आपकी कृपासे सफल होवे ॥ २१ ॥ इस प्रकार पुष्पांजलि देके फिर परमात्मा शिवको नमस्कार करे फिर प्रार्थना करे ॥ २२ ॥ इस प्रकार जिसने व्रत किया उसके व्रतमें न्यूनता नहीं होती और वह मनसे इच्छा की हुई सिद्धिको प्राप्त होता है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० शिवरात्रि-व्रतोद्यापनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! तुम्हारा वचन सुनके हम परम आनन्दको प्राप्त हुये उस ही श्रेष्ठ व्रतको प्रीतिसे विस्तार पूर्वक कहो ॥ १ ॥ हे सूतजी ! यहां पहले किसने यह श्रेष्ठ व्रत किया और अज्ञानसे भी व्रत करके क्या श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है ॥ २ ॥ सूतजी बोले हे सम्पूर्ण

एवं पुष्पांजलिं दत्त्वा शिवाय परमात्मने ॥ नमस्कारं ततः कुर्यात्प्रार्थनां पुनरेव च ॥ २२ ॥ एवं व्रतं कृतं येन न्यूनं तस्य न विद्यते ॥ मनोभीष्टां ततः सिद्धिं लभते नात्र संशयः ॥२३॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां शिवरात्रिव्रतोद्यापनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत ते वचनं श्रुत्वा परानन्दं वयं गताः ॥ विस्तरात्कथय प्रीत्या तदेव व्रतमुत्तमम् ॥ १ ॥ कृतं पुरातु केनेह सूतैतद्व्रतमुत्तमम् ॥ कृत्वाप्यज्ञानतश्चैव प्राप्तं किं फलमुत्तमम् ॥ २ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ शृणुतामृषयस्सर्वे कथयामि पुरातनम् ॥ इतिहासं निषादस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३ ॥ पुरा कश्चिद्वने भिल्लो नाम्ना ह्यासीद्गुरुद्रुहः ॥ कुटुम्बी बलवान्क्रूरः क्रूरकर्मपरायणः ॥ ४ ॥ निरन्तरं वने गत्वा मृगान्हन्ति स्म नित्यशः ॥ चौर्य्यं च विविधं तत्र करोति स्म वने वसन् ॥ ५ ॥ बाल्यादारभ्य तेनेह कृतं किंचिच्छुभं न हि ॥ महान्कालो व्यतीयाय वने तस्य दुरात्मनः ॥ ६ ॥ कदाचिच्छिवरात्रिश्च प्राप्तासीत्तत्र शोभना ॥ न दुरात्मा स्म जानाति महद्वननिवासकृत् ॥ ७ ॥

ऋषियो ! मैं प्राचीन सम्पूर्ण पापोंके नाश करनेवाले निषादके इतिहासको वर्णन करता हूं ॥ ३ ॥ पहले वनमें एक गुरुद्रुह नामसे प्रसिद्ध कुटुंबी बलवान् दुष्ट हत्या आदि बुरे कर्मोंमें तत्पर भील रहता था ॥ ४ ॥ वह नित्य वनमें जाकर मृगों (पशुओं) को मारता था और वहां वनमें रहके अनेक चोरी करता था ॥ ५ ॥ उसने बालकपनसे लेके कुछ भी शुभ कर्म नहीं किया इसी प्रकार वनमें निवास करते हुये उस दुष्टात्मा व्याधको बहुत समय बीत गया ॥ ६ ॥ वहां निवास करते हुए उसे शोभायमान शिवरात्रि प्राप्त हुई परन्तु उस दुष्टात्माने उस

बडे वनमें निवास करते हुये यह नहीं जाना ॥७॥ उसी समय उसकी माता पिता स्त्रीने उस भीलसे प्रार्थना की, हे वनेचर ! हम भूखसे व्याकुल हुये हैं हमको भोजन दो ॥८॥ ऐसी प्रार्थना सुनकर वह भील धनुष ले शीघ्र ही मृगके मारनेको गया और सम्पूर्ण वनमें फिरा ॥९॥ दैव योगसे उस समय उसने कुछ भी नहीं पाया उस समय सूर्य अस्त होगये इससे वह दुःखी हुआ ॥१०॥ क्या करूं ? कहां जाऊं ! आज मुझे कुछ भी भोजन नहीं मिला मेरे घरमें जो बालक हैं उनको तथा माता पिताको क्या भोजन कराऊंगा ॥११॥ मेरी जो स्त्री है उसके कुछ सन्तान होनेवाली है

एतस्मिन्समये भिल्लो मात्रा पित्रा स्त्रिया तथा ॥ पार्थितश्च क्षुधाविष्टैर्भक्ष्यं देहि वनेचर ॥ ८ ॥ इति संप्रार्थितः सोऽपि धनुरादाय सत्वरम् ॥ जगाम मृगहिंसार्थं बभ्राम सकलं वनम् ॥ ९ ॥ दैवयोगात्तदा तेन न प्राप्तं किंचिदेव हि ॥ अस्तं प्राप्तस्तदा सूर्यस्स वै दुःखमुपागतः ॥ १० ॥ किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं न प्राप्तं मेऽद्य किंचन॥ बालाश्च ये गृहे तेषां किं पित्रोश्च भविष्यति ॥ ११ ॥ मदीयं वै कलत्रं च तस्याः किंचिद्भविष्यति ॥ किंचिद्गृहीत्वा हि मया गंतव्यं नान्यथा भवेत् ॥ १२ ॥ इत्थं विचार्य स व्याधो जलाशय समीपगः ॥ जलावतरणं यत्रतत्र गत्वा स्वयं स्थितः ॥ १३ ॥ अवश्यमत्र कश्चिद्वै जीवश्चैवागमिष्यति॥तं हत्वा स्वगृहं प्रीत्यायास्यामि कृतकार्यकः ॥ १४ ॥ इति मत्वा स वै वृक्षमेकं बिल्वेतिसंज्ञकम् ॥ समारुह्य स्थितस्तत्र जलमादाय भिल्लकः ॥ १५ ॥ कदा यास्यति कश्चिद्वै कदा हन्यामहं पुनः ॥ इति बुद्धिं समास्थाय स्थितोऽसौ क्षुत्तृषान्वितः ॥ १६ ॥ तद्रात्रौ प्रथमे यामे मृगीत्वेका समागता ॥ तृषार्ता चकिता सा च प्रोत्फालं कुर्वती तदा ॥ १७ ॥

उसके निमित्त भी कुछ भोजन ले जाना उचित है विना भोजन लिये नहीं जाऊंगा ॥१२॥ ऐसा विचारके वह भील सरोवरके समीप जाय जहां जलका घाट था वहां जाके स्वयं स्थित हुआ ॥१३॥ अवश्य ही इधर कोई जीव आवेगा उसे मार कृतकार्य हो आनंदसे अपने घरको जाऊंगा ॥ १४ ॥ ऐसा जान वह भील जल लेके एक बेलके वृक्षपर चढके स्थित हुआ ॥ १५ ॥ कब कोई जीव आवे कब मैं उसे मारूं ऐसा मनमें विचार कर भूखा प्यासा वह व्याध स्थित रहा ॥ १६ ॥ तब रात्रिके पहले पहरमें एक हिरनी प्याससे व्याकुल हो चकित हुई हांफती

(किलोलकरती) वहां आई ॥ १७ ॥ हे विष्णो ! उस मृगीको देख उस भीलने उसके मारनेके लिये प्रसन्न हो शीघ्रही अपने धनुषपर बाण चढाया ॥ १८ ॥ इस प्रकार उसके करनेसे जल तथा बेलपत्र नीचे गिरा वहां शिवका ज्योतिर्लिंग था ॥१९॥ इस प्रकार पहले पहरकी महा देवकी पूजा हुई उसके प्रतापसे उसके समस्त पाप नष्ट होगये ॥ २० ॥ उसके धनुषके शब्दको सुन वह हिरनी भीलको देख भयसे व्याकुल हो यह वचन बोली ॥ २१ ॥ हिरनी बोली, हे व्याध ! क्या करनेकी इच्छा है ? तुम मेरे आगे सत्यसत्य कहो ऐसा मृगीका वचन सुनके वह भील कहने लगा ॥ २२ ॥ व्याध बोला, आज मेरा कुटुम्ब भूंखा है तुझे मारके मैं अपने कुटुम्बको तृप्त करूंगा ऐसा उसका वचन सुन उस

तां दृष्ट्वा च तदा तेनतद्वधार्थमथो शरः ॥ संहृष्टेन द्रुतं विष्णो धनुषिस्वे हि संदधे ॥ १८ ॥ इत्येवं कुर्वतस्तस्यजलं विल्वदलानि च ॥पतितानि ह्यधस्तत्र शिवलिंगमभूत्ततः ॥१९॥ यामस्य प्रथमस्यैव पूजा जाता शिवस्य च॥तन्महिम्ना हि तस्यैव पातकं गलितन्तदा ॥२०॥ तत्रत्यं चैव तच्छब्दं श्रुत्वा सा हरिणी भिया ॥ व्याधं दृष्ट्वा व्याकुला हि वचनं चेदमब्रवीत्॥२१॥ मृग्युवाच ॥ किं कर्तुमिच्छसि व्याध सत्यं वद ममाग्रतः॥तच्छ्रुत्वा हरिणीवाक्यं व्याधो वचनमब्रवीत् ॥२२॥ व्याध उवाच कुटुम्बं क्षुधितं मेऽद्य हत्वा त्वां तर्पयाम्यहम्॥दारुणंतद्वचश्श्रुत्वा दृष्ट्वा तं दुर्द्धरं खलम्॥२३॥किं करोमिक्व गच्छामि ह्युपायं रचयाम्यहम् ॥ इत्थं विचार्य्यसा तत्र वचनं चेदमब्रवीत् ॥२४॥ ॥ मृग्युवाच ॥ मन्मांसेन सुखं ते स्यादेहस्यानर्थकारिणः ॥ अधिकं किंमहत्पुण्यं धन्याहं नात्र संशयः ॥ २५ ॥ उपकारकरस्यैव यत्पुण्यं जायतेत्विह ॥ तत्पुण्यंशक्यते नैव वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ २६ ॥ परं तु शिशवो मेऽद्य वर्तते स्वाश्रमेऽखिलाः ॥ भगिन्यै तान्समर्प्यैव प्रायास्ये स्वामिनेऽथ वा ॥ २७ ॥

कठिन दुष्टको देख वह हिरनी सोचने लगी ॥ २३ ॥ मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? कोई उपाय रचती हूं ऐसा मनमें विचारके वह यह बोली ॥ २४ ॥ मृगी बोली, अनर्थ करनेवाले मेरे शरीरके मांससे यदि तुमको सुख होवे तो इससे अधिक और क्या पुण्य है ! मैं निस्सन्देह धन्य हूं ॥ २५ ॥ इस लोकमें उपकारी जीवको जो पुण्य होता है वह पुण्य सौ वर्षतक भी वर्णन नहीं हो सकता ॥ २६ ॥ परन्तु आज मेरे सब बालक अपने स्थानमें हैं उन्हें बहिनको अथवा स्वामीको सौंपके तुम्हारे पास आऊंगी ॥ २७ ॥

हे वनचर ! तुम मेरा वचन झूंठ मत मानो मैं अवश्यही तुम्हारे समीप आऊंगी, इनमें कुछ संदेह नहीं ॥ २८ ॥ सत्यसे भूमि स्थित है, सत्यसेही समुद्र तथा सत्यसेही जलकी धारा है, सत्यमें सब कुछ स्थित है ॥ २९ ॥ सूतजी बोले, उस मृगीके ऐसा कहनेपरभी उस व्याधने उसका वचन न माना तो विस्मित हो भयभीत हुई वह हिरनी फिर यह बोली ॥ ३० ॥ मृगीने कहा, हे व्याध ! मैं जो कुछ कहती हूं उसे सुन, मैं शपथ करती हूं यदि अपने घर जाके तुम्हारे समीपमें नहीं जाऊं तो ॥ ३१ ॥ वेदके बेचनेवाले तथा तीनों काल संध्या न करनेवाले ब्राह्मणको जो पाप होता है तथा कामोंमें आसक्त हुई स्त्रियोंको अपने पतिकी आज्ञा उल्लंघन करनेसे जो पाप होता है ॥ ३२ ॥

न मे मिथ्यावचस्त्वं हि विजानीहि वनेचर ॥ आयास्येहं पुनश्चेह समीपं तेन संशयः ॥२८॥ स्थिता सत्येन धरणी सत्येनैव च वारिधिः॥सत्येन जलधाराश्च सत्ये सर्वम्प्रतिष्ठितम् ॥२९॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तोऽपि तया व्याधो न मेने तद्वचो यदा॥ तदा सुविस्मिता भीता वचनं साब्रवीत्पुनः ॥ ३० ॥ मृग्युवाच ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि शपथं हि करोम्यहम् ॥ आगच्छेयं यथा ते न समीपं स्वगृहाद्गता॥३१॥ ब्राह्मणो वेदविक्रेता सन्ध्याहीनस्त्रिकालकम्॥ स्त्रियस्स्वस्वामिनो ह्याज्ञां समुल्लंघ्य क्रियान्विताः ॥ ३२ ॥ कृतघ्ने चैव यत्पापं तत्पापं विमुखे हरे ॥ द्रोहिणश्चैव यत्पापं तत्पापं धर्मलंघने ॥३३॥ विश्वासघातके तच्च तथा वै छलकर्तरि ॥ तेन पापेन लिम्पामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ३४ ॥ इत्याद्यनेकशपथान्मृगी कृत्वा स्थिता यदा ॥ तदा व्याधस्स विश्वस्य गच्छेति गृहमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ मृगी दृष्ट्वा जलं पीत्वा गता स्वाश्रममण्डलम् ॥ तावच्च प्रथमो यामस्तस्य निद्रां विना गतः ॥३६॥ तदीया भगिनी या वै मृगी च परिभाविता ॥ तस्या मार्गं विचिन्वन्ती ह्याजगाम जलार्थिनी ॥३७॥

तथा कृतघ्नीको जो पाप होता है और शिवसे विमुख हुए मनुष्यमें जो पाप लगता है, जो द्रोहीको पाप होता है, जो धर्मके तोडनेवालेको पाप होता है ॥ ३३ ॥ तथा जो विश्वासघात करनेवाले, छल करनेवालेको पाप होता है मैं उस पापकी भागी होऊं यदि मैं फिर यहां न आऊं ॥ ३४ ॥ इत्यादि अनेक शपथोंको करके वह हिरनी जब स्थित हुई तो वह भील विश्वास करके जा ऐसा वचन बोला ॥ ३५ ॥ जब तक वह हिरनी प्रसन्न हो जल पीके अपने स्थानको गई तबतक पहला पहर उस व्याधेको विना निद्राके बीतगया ॥३६॥ तब उस मृगीकी

बहिन दूसरी हिरनी उत्कंठितहो उसकी खोज करती २ जल पीनेको वहीं आई ॥ ३७ ॥ उस हिरनीको देखकर भीलने स्वयं धनुष खैंचा तब पहलेके समान फिर जल और बिल्व पत्र शिवके ऊपर गिरे ॥ ३८ ॥ उससे दूसरे पहरकाभी महात्मा शिवका पूजन व्याधको सुख देनेवाला हुआ ॥ ३९ ॥ तब वह हिरनी उस भीलको देखके बोली हे वनेचर ! क्या करते हो उसने पहलेके समान कहा, यह सुनके वह मृगी फिर बोली ॥ ४० ॥ हिरनी बोली; हे व्याध ! सुनो मैं धन्य हूं मेरा देह धारण करना सफल हुआ, कारण कि, इस अनित्य शरीरसे उपकार होगा ॥ ४१ ॥ परन्तु मेरे बालबच्चे घर हैं उन्हें अपने स्वामीको सौंपकर फिर यहां आऊंगी ॥ ४२ ॥ भील बोला, तेरा कहना मैं

तां दृष्ट्वा च स्वयंभिल्लोऽकार्षीद्बाणस्य कर्षणम्॥पूर्ववज्जलपत्राणि पतितानि शिवोपरि ॥३८॥ यामस्य च द्वितीयस्य तेन शंभोर्महात्मनः ॥ पूजा जाता प्रसंगेन व्याधस्य सुखदायिनी ॥ ३९ ॥ मृगी सा प्राह तं दृष्ट्वा किंकरोषि वनेचर ॥ पूर्ववत्कथितं तेन तच्छ्रुत्वाह मृगी पुनः ॥४०॥ मृग्युवाच ॥ धन्याहं श्रूयतां व्याध सफलं देहधारणम्॥अनित्येन शरीरेण ह्युपकारो भविष्यति ॥४१॥ परन्तु मम बालाश्च गृहे तिष्ठन्ति चार्भकाः ॥ भर्त्रे तांश्च समर्प्यैव ह्यागमिष्याम्यहं पुनः ॥४२॥ व्याध उवाच ॥ त्वया चोक्तं न मन्येहं हन्मि त्वांनात्र संशयः॥तच्छ्रुत्वा हरिणी प्राह शपथं कुर्वती हरे ॥ ४३ ॥ मृग्युवाच ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि नागच्छेयं पुनर्यदि ॥ वाचा विचलितो यस्तु सुकृतं तेन हारितम् ॥४४॥ परिणीतां स्त्रियं हित्वा गच्छत्यन्यां च यः पुमान् ॥ वेदधर्मं समुल्लंघ्य कल्पितेन च यो व्रजेत् ॥ ४५ ॥ विष्णुभक्तिसमायुक्तः शिवनिन्दां करोति यः ॥ पित्रोः क्षयाहमासाद्य शून्यं चैवाक्रमेदिह ॥ ४६ ॥ कृत्वा च परितापं हि करोति वचनं पुनः ॥ तेन पापेन लिंपामि नागच्छेयं पुनर्यदि ॥ ४७ ॥

नहीं मानूंगा, तुझे अवश्य मारूंगा इसमें संशय नहीं हे हरे ! यह सुन वह हिरनी सौंगंध करती हुई बोली ॥ ४३ ॥ मृगी बोली, हे भील ! सुनो यदि मैं फिर यहां न आऊं तो वाणीके विचलनेसे मेरा पुण्य दूर हो जाय ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य विवाहिता स्त्रीको छोडके और स्त्रीसे भोग करता है तथा जो वेदधर्मका उल्लंघन करके कल्पित हुए मार्गमें जाता है ॥ ४५ ॥ जो विष्णुकी भक्तिमें लगके शिवकी निन्दा करता है तथा जो माता पिताके क्षयाह (मरणके दिन) को ब्राह्मण भोजन विना खाली जाने देता है ॥ ४६ ॥ दूसरेको दुःख देके

फिर पीछेसे मीठे वचन बनाता है मैं उस पापसे लिप्त होऊ यदि लौटके मैं यहां न आऊँगी ॥ ४७ ॥ सूतजी बोले, वह भील इस प्रकार मृगीके कहनेपर तू जा ऐसा मृगीसे वचन बोला तब वह हिरनी प्रसन्न हुई जलको पी अपने घरको गई ॥ ४८ ॥ तबतक उस भीलको विना नींदके दूसरा पहर भी बीत गया, उस समय तीसरे पहरके आनेपर ॥ ४९ ॥ उनके आनेमें विलंब जानके वह व्याधा चकित हो उनकी खोजमें तत्पर हुआ तबही उसने उस पहरमें जलमार्गमें आता हुआ एक मृग देखा ॥ ५० ॥ उस हृष्टपुष्ट हिरनको देखके वह भील धनुषपर बाण चढाय उसे मारनेको उद्यत हुआ ॥ ५१ ॥ हे विष्णो ! उस समय उसके ऐसा करने पर कुछ एक बेलपत्र उसके प्रारब्धवश

सूत उवाच॥इत्युक्तश्च तया व्याधो गच्छेत्याह मृगीं च सः॥ सा मृगी च जलं पीत्वा हृष्टाऽगच्छत्स्वमाश्रमम् ॥४८॥ तावद्द्वितीयो यामो वै तस्य निद्रां विना गतः॥एतस्मिन्समये तत्र प्राप्ते यामे तृतीयके ॥४९॥ज्ञात्वा विलंबं चकितस्तदन्वेषणतत्परः ॥ तद्यामे मृगमद्राक्षीज्जलमार्गगतं ततः॥५०॥पुष्टं मृगं च तं दृष्ट्वा हृष्टो वनचरस्स वै ॥ शरं धनुषि संधाय हन्तुं तं हि प्रचक्रमे ॥५१॥ तदैवं कुर्वतस्तस्य बिल्वपत्राणि कानिचित्॥तत्प्रारब्धवशाद्विष्णो पतितानि शिवोपरि ॥५२॥ तेन तृतीययामस्य तद्रात्रौ तस्य भाग्यतः ॥ पूजा जाता शिवस्यैव कृपालुत्वं प्रदर्शितम् ॥ ५३ ॥ श्रुत्वा तत्र च तं शब्दं किं करोषीति प्राह सः ॥ कुटुम्बार्थमहं हन्मि त्वां व्याधश्चेति सोब्रवीत् ॥ ५४ ॥ तच्छ्रुत्वा व्याधवचनं हरिणो हृष्टमानसः ॥ द्रुतमेव च तं व्याधं वचनं चेदमब्रवीत ॥ ५५ ॥ हरिण उवाच ॥ धन्योहं पुष्टिमानद्य भवत्तृप्तिर्भविष्यति ॥ यस्यांगं नोपकारार्थं तस्य सर्वं वृथा गतम् ॥ ५६ ॥

शिवके ऊपर गिरे ॥ ५२ ॥ उनसे उस रात्रिमें उस भीलके भाग्यसे तीसरे पहरकी शिवकी पूजा होगई इस प्रकार शिवजीने उसके ऊपर कृपालुता दिखाई ॥ ५३ ॥ वहां उस शब्दको सुनके वह मृग बोला, हे भील ! तुम क्या करते हो तब वह व्याध बोला, कि मैं अपने कुटुम्बके अर्थ तुझे मारता हूं ॥५४॥ ऐसा भीलका वचन सुन वह हिरन प्रसन्न मन हो शीघ्रही उस व्याधेसे यह वचन बोला, ॥५५॥ मृग बोला, मैं आज धन्यहूं पुष्टिवान् हूं जिससे तुम्हारी तृप्ति होगी जिसका अंग दूसरेके उपकारके निमित्त नहीं होता उसका सब कुछ निष्फल गया ॥ ५६ ॥

जो प्राणी सामर्थ्य होके भी परोपकार नहीं करता उसकी सामर्थ्य व्यर्थ होती है वह परलोकमें नरकको जाता है ॥ ५७ ॥ परन्तु मैं अपने बाल बच्चोंको उनकी माताको सौंपके और उन सबको धैर्य देके फिर यहां आऊँगा ॥ ५८ ॥ ऐसा मृगके कहने पर वह व्याध अपने चित्तमें विस्मित हुआ थोडा मन शुद्ध होने और पापसमूह नष्ट होनेसे वह भील यह वचन बोला ॥ ५९ ॥ व्याध बोला, जो जो जीव यहां आये वे सब तेरे समान कहके चले गये वे ठग अभी तक भी नहीं लौटे ॥ ६० ॥ हे मृग ! तू भी संकटमें प्राप्त होके झूँठसे समयको बितावेगा मेरा जीवन आज किस प्रकार होगा ॥ ६१ ॥ मृग बोला, हे व्याध ! जो मैं कहता हूं सो सब सुनो मैं झूँठ नहीं कहता सत्यसे

यो वै सामर्थ्ययुक्तश्च नोपकारं करोति वै ॥ तत्सामर्थ्यं भवेद्व्यर्थं परत्र नरकं व्रजेत् ॥ ५७ ॥ परन्तु बालकान् स्वांश्च समर्प्य जननीं शिशून् ॥ आश्वास्याप्यथ तान् सर्वानागमिष्याम्यहं पुनः ॥५८॥ इत्युक्तस्तेन स व्याधो विस्मितोतीव चेतसि ॥ मनाक् शुद्धमनानष्टपापपुंजो वचोऽब्रवीत् ॥५९॥ व्याध उवाच ॥ येये समागताश्चात्र तेते सर्वे त्वया यथा ॥ कथयित्वा गता ह्यत्र नाया न्त्यद्यापि वंचकाः ॥ ६० ॥ त्वं चापि संकटे प्राप्तो व्यलीकं च गमिष्यसि ॥ मम सञ्जीवनं चाद्य भविष्यति कथं मृग ॥६१॥ मृग उवाच ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि नानृतं विद्यते मयि॥सत्येन सर्वं ब्रह्माण्डं तिष्ठत्येव चराचरम् ॥६२॥ यस्य वाणी व्यलीका हि तत्पुण्यं गलितं क्षणात् ॥ तथापि शृणु वै सत्यां प्रतिज्ञां मम भिल्लक ॥६३॥ सन्ध्यायां मैथुने घस्रे शिवरात्र्यां च भोजने ॥ कूटसाक्ष्ये न्यासहारे संध्याहीने द्विजे तथा ॥ ६४ ॥ शिवहीनं मुखं यस्य नोपकर्ता क्षमोऽपि सन् ॥ पर्वणि श्रीफलस्यैव त्रोट नेऽभक्ष्यभक्षणे ॥ ६५ ॥ असंपूज्य शिवं भस्मरहितश्चान्नभुक् च यः ॥ एतेषां पातकं मे स्यान्नागच्छेयं पुनर्यदि ॥ ६६ ॥

यह चर अचर ब्रह्मांड स्थित हो रहा है ॥ ६२ ॥ जिसकी वाणी असत्य होती हैं तत्क्षण उसका पुण्य नष्ट होता है तो भी हे भील ! मेरी सच्ची प्रतिज्ञाको सुनो ॥ ६३ ॥ संध्याके समय मैथुन करने तथा शिवरात्रिको दिनमें भोजन करनेसे झूँठी गवाही देने धरोहर मारनेमें तथा सन्ध्या न करनेवाले ब्राह्मणको जो पाप होता है ॥ ६४ ॥ जिसका मुख शिवभजन रहित है जो समर्थ होके भी उपकार करनेवाला नहीं है पर्वके दिन बेल तोडने अभक्ष्यके भक्षण करने ॥ ६५ ॥ शिवके विना पूजे भोजन करने तथा भस्म रहित अंग रहनेसे जो पाप होता है

इन सबोंका पाप मुझे लगे यदि मैं फिर लौटके यहां न आऊं ॥ ६६ ॥ शिवजी बोले, ऐसा उस मृगका वचन सुनके जाओ शीघ्र आना ऐसा व्याधने कहा तब वह हिरन जल पीके अपने घरको चला गया ॥ ६७ ॥ तब वे सब अपने आश्रममें मिले और एक दूसरेको प्रणाम करके परस्पर उस सब वृत्तान्तको भली प्रकार सुनके ॥ ६८ ॥ बोले, निश्चय ही वहां जाना उचित है इस प्रकार वे सत्यके पाशसे बन्धे हुये बालकोंको धीरज दे वहां जानेको तैयार हुये ॥ ६९ ॥ उनमेंसे जो बडी हिरनी थी वह अपने स्वामीसे यह बोली, हे मृग ! तुम्हारे विना यह बालक यहां कैसे रहेंगे ॥ ७० ॥ हे स्वामिन् ! पहले तो मैंने वहां प्रतिज्ञा की है इस कारण मुझे वहां जाना योग्य है तुम

शिव उवाच ॥ इतिश्रुत्वा वचस्तस्य गच्छ शीघ्रं समाव्रज॥स व्याधेनैवमुक्तस्तु जलं पीत्वा गतो मृगः ॥६७॥ ते सर्वे मिलिता स्तत्र स्वाश्रमे कृतसुप्रणाः॥वृत्तांतं चैव तं सर्वं श्रुत्वा सम्यक् परस्परम्॥६८॥गन्तव्यं निश्चयेनेति सत्यपाशेन यंत्रिताः॥ आश्वा स्य बालकांस्तत्र गन्तुमुत्कण्ठितास्तदा ॥६९॥ मृगी ज्येष्ठा च या तत्र स्वामिनं वाक्यमब्रवीत् ॥ त्वां विना बालका ह्यत्र कथं स्थास्यंति वै मृग ॥ ७० ॥ प्रथमं तु मया तत्र प्रतिज्ञा च कृता प्रभो ॥ तस्मान्मया च गन्तव्यं भवद्भ्यां स्थीयतामिह ॥७१॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा कनिष्ठा वाक्यमब्रवीत्॥ अहं त्वत्सेविका चाद्य गच्छामि स्थीयतां त्वया ॥७२॥ तच्छ्रुत्वा च मृगः प्राह गम्यते तत्र वै मया ॥ भवत्यौ तिष्ठतां चात्र मातृतः शिशुरक्षणम्॥७३॥तत्स्वामिवचनं श्रुत्वा मेनाते तन्न धर्मतः॥प्रोचुः प्रीत्या स्वभर्तारं वैधव्ये जीवितं च धिक् ॥७४॥ बालानाश्वास्य तांस्तत्र समर्प्य सहवासिनः ॥ गतास्ते सर्व एवाशु यत्रास्ते व्याधसत्तमः ॥७५॥

दोनों यहां ही रहो ॥ ७१ ॥ ऐसा उसका वचन सुनके कनिष्ठा (छोटी हिरनी) यह वचन बोली मैं तुम्हारी टहलनी अब जाती हूं तुम यहां स्थित रहो ॥ ७२ ॥ यह सुनके वह मृग बोला, मैं वहां जाता हूं तुम दोनों यहां स्थित रहो कारण कि, मातासे ही बालककी रक्षा होती है ॥ ७३ ॥ अपने स्वामीका वचन सुनके वे दोनों हिरनी अपने धर्मको देख उस बातको न मानती हुई अपने पतिसे प्रेम पूर्वक यह वचन बोलीं कि, वैधव्य (विधवापन) में जीना धिक्कार है ॥ ७४ ॥ तब वे सब बालकोंको धैर्य दे उन्हें पडोसियोंको सौंपके शीघ्र

वहां गये जहां वह श्रेष्ठ व्याध था ॥ ७५ ॥ वे सब बालक भी यह देखके उनके पीछे पीछे चल दिये इन माता पिताकी जो दशा होगी वह दशा हमारी भी होगी ॥ ७६ ॥ तब उन सबोंको देखके वह भील प्रसन्न हो धनुषपर बाण चढाने लगा तबभी फिर शिवके ऊपर जल तथा बेलपत्र गिरे ॥ ७७ ॥ इससे शिवजीका चौथे पहरका शुभ पूजन हो गया उस समय उसका सब पाप भस्म हो गया ॥ ७८ ॥ तब वे दोनों मृगी तथा मृग शीघ्र यह बोले, हे व्याध सत्तम ! तुम हमारे शरीरको सार्थक (सफल) करो और हमारे ऊपर कृपा करो ॥ ७९ ॥ शिवजी बोले, ऐसा उन सबोंका वचन सुनके वह भील विस्मयको प्राप्त हो शिव पूजनके प्रभावसे दुर्लभ ज्ञानको

ते बाला अपि सर्वे वै विलोक्यानुसमागताः ॥ एतेषां या गतिः स्याद्वै ह्यस्माकं सा भवत्विति ॥७६॥ तान् दृष्ट्वा हर्षितो व्याधो बाणं धनुषि संदधे ॥ पुनश्च जलपत्राणि पतितानि शिवोपरि ॥ ७७ ॥ तेन जाता चतुर्थस्य पूजा यामस्य वै शुभा ॥ तस्य पाप न्तदा सर्वं भस्मसाद्भवत् क्षणात् ॥ ७८ ॥ मृगी मृगी मृगश्चोचुश्शीघ्रं वै व्याधसत्तम ॥ अस्माकं सार्थकं देहं कुरु त्वं हि कृपां कुरु ॥ ७९ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ इति तेषां वचश्श्रुत्वा व्याधो विस्मयमागतः ॥ शिवपूजाप्रभावेण ज्ञानं दुर्लभमाप्तवान् ॥ ८० ॥ एते धन्या मृगाश्चैव ज्ञानहीनास्सुसंमताः ॥ स्वीयेनैव शरीरेण परोपकरणे रताः ॥८१॥ मानुष्यं जन्म संप्राप्य साधितं किं मयाधुना ॥ परकायं च संपीड्य शरीरं पोषितं मया ॥ ८२ ॥ कुटुम्बं पोषितं नित्यं कृत्वा पापान्यनेकशः ॥ एवं पापानि हा कृत्वा का गतिर्मे भविष्यति ॥ ८३ ॥ कां वा गतिं गमिष्यामि पातकं जन्मतः कृतम् ॥ इदानीं चिंतयाम्येवं धिग्धिक् च जीवनं मम ॥ ८४ ॥ इति ज्ञानं समापन्नो बाणं संवारयंस्तदा ॥ गम्यतां च मृगश्रेष्ठा धन्याः स्थ इति चाब्रवीत् ॥ ८५ ॥

प्राप्त हुआ ॥ ८० ॥ यह परस्पर मिले हुए ज्ञानरहित मृग धन्य हैं जो अपने शरीरसे परोपकार करनेमें तत्पर हैं ॥ ८१ ॥ अब मनुष्य जन्म पाके मैंने क्या फल पाया जो दूसरोंके शरीरको पीडा देके अपना शरीर पाला ॥ ८२ ॥ नित्यही अनेकों पाप करके अपना कुटुम्ब पाला, हाय ऐसे २ पाप करके मेरी क्या गति होगी ? ॥ ८३ ॥ मैं किस गतिको पाऊंगा जो मैंने जन्मसे पाप किये हैं इस समय ऐसी चिन्ता करता हूं मेरे जीवनको धिक्कार है धिक्कार है ॥ ८४ ॥ इस प्रकार ज्ञानमें भरा हुआ वह बाणको निवारण (निकाल) करके

यह बोला, हे मृगश्रेष्ठो ! तुम धन्य हो अपने स्थानको जाओ ॥ ८५ ॥ शिवजी बोले, तब उस भीलके ऐसा कहनेपर शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने पूजनीय शास्त्रसम्मत अपना स्वरूप दिखाया ॥ ८६ ॥ उस समय कृपासे उस भीलको स्पर्श करके प्रीतिसे यह बोले, हे भील ! मैं इस व्रत करनेसे प्रसन्न हूँ तू वर मांग ॥ ८७ ॥ वह व्याध भी शिवके स्वरूपको देखकर क्षणमात्रमें मुक्त हो मैंने सब कुछ प्राप्त कर लिया ऐसा कहता हुआ शिवजीके चरणोंमें गिरा ॥ ८८ ॥ अति प्रसन्न हुये शिवने भी उसे गुह ऐसा नाम देके तथा कृपा दृष्टिसे देख दिव्य वर दान दिये ॥ ८९ ॥ शिवजी बोले, हे व्याधर्षे ! सुन तू मनोवाञ्छित दिव्य भोगोंको प्राप्त हो तथा शृंगवेरपुरमें परम राजधानीको प्राप्त

शिव उवाच॥ इत्युक्ते च तदा तेन प्रसन्नश्शंकरस्तदा॥ पूजितं च स्वरूपं हि दर्शयामास संमतम् ॥८६॥ संस्पृश्य कृपया शंभुस्तं व्याधं प्रीतितोऽब्रवीत् ॥ वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मिन्नतेनानेन भिल्लक ॥८७॥ व्याधोऽपि शिवरूपं च दृष्ट्वा मुक्तोऽभवत्क्षणात्॥ पपात शिवपादाग्रे सर्वं प्राप्तमिति ब्रुवन् ॥८८॥ शिवोऽपि सुप्रसन्नात्मा नाम दत्वा गुहेति च ॥ विलोक्य तं कृपादृष्ट्या तस्मै दिव्यान्वरान दात् ॥८९॥ शिव उवाच॥ शृणु व्याधाद्य भोगांस्त्वं भुंक्ष्व दिव्यान्यथेप्सितान् ॥ राजधानीं समाश्रित्य शृंगवेरपुरे पराम् ॥९०॥ अनपाया वंशवृद्धिश्श्लाघनीयः सुरैरपि ॥ गृहे रामस्तव व्याध समायास्यति निश्चितम् ॥९१॥ करिष्यति त्वया मैत्रीं मद्भक्तस्नेहकारकः ॥ मत्सेवासक्तचेतास्त्वं मुक्तिं यास्यसि दुर्लभाम् ॥९२॥ एतस्मिन्नंतरे ते तु कृत्वा शंकरदर्शनम् ॥ सर्वे प्रणम्य सन्मुक्तिं मृगयोनेः प्रपेदिरे ॥ ९३ ॥ विमानं च समारुह्य दिव्यदेहा गतास्तदा ॥ शिवदर्शनमात्रेण शापान्मुक्ता दिवं गताः ॥ ९४ ॥

होके वहां निवासकर ॥ ९० ॥ हे व्याध ! तुम्हारे वंशकी वृद्धि अविनाशिनी होके देवताओंसे भी प्रशंसनीय होगी और तुम्हारे घर साक्षात् रामचन्द्रजी निश्चयही पधारेंगे ॥ ९१ ॥ और वे मेरे भक्तोंके ऊपर स्नेह करनेवाले रामचन्द्र तुम्हारे साथ मित्रता करेंगे और तुम मेरी सेवामें चित्त लगाके, दुर्लभ मोक्षको प्राप्त होगे ॥ ९२ ॥ इसी अवसरमें वे सब मृग शिवका दर्शन करके तथा शिवको प्रणाम करके मृगयोनिसे सुन्दर मुक्तिको प्राप्त हुए ॥ ९३ ॥ उस समय वे दिव्य शरीर धारण करके विमानपर चढके, शिवजीके दर्शन मात्रसे शापसे छूटके स्वर्गधामको

सिधारे ॥ ९४ ॥ तब अर्बुदाचल पर्वतपर वे व्याधेश्वर नामक शिव प्रसिद्ध हुए वे दर्शनसे तथा पूजनसे तत्क्षण भोग और मोक्षके देनेवाले हैं ॥ ९५ ॥ हे देवताओंमें श्रेष्ठ ! वह भील भी उस दिनसे लेके सम्पूर्ण भोगोंको अनुभव करके रामचन्द्रकी कृपाको प्राप्त हो शिवकी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हुआ ॥ ९६ ॥ वह भील अज्ञानसे शिवके व्रतको करके सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हुआ यदि भक्ति करनेवाले मनुष्य शुभ मुक्तिको पाते हैं तो क्या आश्चर्य है ॥ ९७ ॥ संपूर्ण शास्त्रोंको तथा अनेक धर्मोंको विचारके यह सबसे अधिक शिवरात्रिके व्रतको कहा ॥ ९८ ॥ इस संसारमें अनेक प्रकारके व्रत हैं, अनेक तीर्थ हैं, अनेक दान हैं, तथा विविध यज्ञ हैं ॥ ९९ ॥ तप भी बहुत हैं, तथा जप भी अनेकों

व्याधेश्वरः शिवो जातः पर्वते ह्यर्बुदाचले॥ दर्शनात्पूजनात्सद्यो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥९५॥ व्याधोपितद्दिनान्नूनं भोगान्स सुरसत्तम ॥ भुक्त्वा रामकृपां प्राप्य शिवसायुज्यमाप्तवान् ॥९६॥ अज्ञानात्स व्रतञ्चैतत्कृत्वा सायुज्यमाप्तवान् ॥ किं पुनर्भक्तिसंपन्ना यान्तितन्मयतां शुभाम्॥९७॥ विचार्य्य सर्वशास्त्राणि धर्माश्चैवाप्यनेकशः॥ शिवरात्रिव्रतमिदं सर्वोत्कृष्टंप्रकीर्तितम्॥९८॥ व्रतानि विविधान्यत्र तीर्थानि विविधानि च ॥ दानानि च विचित्राणि मखाश्च विविधास्तथा॥९९॥ तपांसि विविधान्येव जपाश्चैवाप्यनेकशः ॥ नैतेन समतां यान्ति शिवरात्रिव्रतेन च ॥१००॥ तस्माच्छुभतरं चैतत्कर्तव्यं हितमीप्सुभिः॥ शिवरात्रिव्रतन्दिव्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा ॥ १०१ ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं शिवरात्रिव्रतं शुभम् ॥ व्रतराजेति विख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१०२॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां व्याधेश्वरमाहात्म्ये शिवरात्रिव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ मुक्तिर्नाम त्वया प्रोक्ता तस्यां किं नु भवेदिह ॥ अवस्था कीदृशी तत्र भवेदिति वदस्व नः ॥ १ ॥

हैं परंतु इस शिवरात्रि व्रतकी तुल्यताको प्राप्त नहीं होते ॥ १०० ॥ इस कारण अपना हित चाहनेवालोंको यह अति श्रेष्ठ दिव्य सदा भुक्ति मुक्तिका देनेवाला शिवरात्रिका व्रत अवश्य करना चाहिये ॥ १०१ ॥ यह शुभ शिवरात्रि व्रत संपूर्ण कहा यह संपूर्ण व्रतोंमें श्रेष्ठ (व्रतराज) प्रसिद्ध है अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १०२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० व्याधेश्वर माहात्म्ये शिवरात्रि व्रत माहात्म्य वर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ऋषि बोले, तुमने जो मुक्ति कही उसमें क्या होता है

वहां कैसी अवस्था होती है यह सब हमसे कहो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, चार प्रकारकी मुक्ति होती है सुनो तुमसे कहता हूं वह संसारके क्लेशको हरण करनेवाली परम आनंदकी देनेवाली है ॥ २ ॥ सारूप्य, सालोक्य, सान्निध्य, और चौथी सायुज्य कही है जो शिवके व्रतसे प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! मुक्तिके देनेवाले केवल शिवजी ही कहे हैं वे ब्रह्मा विष्णु आदि मुक्तिके दाता नहीं हैं वे केवल धर्म अर्थ, काम इन त्रिवर्गके देनेवाले हैं ॥ ४ ॥ ब्रह्मादिक तीनों गुणोंके अधीश्वर हैं और शिवजी तीनों गुणोंसे परे हैं, निर्विकार परब्रह्म तुर्य (चौथे) प्रकृतिसे परे हैं ॥ ५ ॥ वे महादेव ज्ञान स्वरूप अविनाशी साक्षी ज्ञानगम्य स्वयं अद्वैत कैवल्य मुक्तिके देनेवाले तथा त्रिवर्ग

सूत उवाच ॥ मुक्तिश्चतुर्विधा प्रोक्ता श्रूयतां कथयामि वः ॥ संसारक्लेशसंहर्त्री परमानन्ददायिनी ॥ २ ॥ सारूप्या चैव सालोक्या सा न्निध्या च तथा परा ॥ सायुज्या च चतुर्थी सा व्रतेनानेन या भवेत् ॥३॥ मुक्तेर्दाता मुनिश्रेष्ठाः केवलं शिव उच्यते॥ब्रह्माद्या नहि ते ज्ञेया केवलं च त्रिवर्गदाः ॥४॥ ब्रह्माद्यास्त्रिगुणाधीशाश्शिवस्त्रिगुणतः परः ॥ निर्विकारी परब्रह्म तुर्यः प्रकृतितः परः ॥५॥ ज्ञानरूपोऽव्ययः साक्षी ज्ञानगम्योऽद्वयस्स्वयम् ॥ कैवल्यमुक्तिदस्सोऽत्र त्रिवर्गस्य प्रदोऽपि हि ॥६॥ कैवल्याख्या पंचमी च दुर्लभा सर्वथा नृणाम् ॥ तल्लक्षणं प्रवक्ष्यामि श्रूयतामृषिसत्तमाः ॥ ७ ॥ उत्पद्यते यतः सर्वं येनैतत्पाल्यते जगत् ॥ यस्मिंश्च लीयते तद्धि येन सर्वमिदं ततम् ॥ ८ ॥ तदेव शिवरूपं हि पठ्यते च मुनीश्वराः ॥ सकलं निष्कलं चेति द्विविधं वेदवर्णितम् ॥ ९ ॥ विष्णुना तच्च न ज्ञातं ब्रह्मणा न च तत्तथा ॥ कुमाराद्यैश्च न ज्ञातं न ज्ञातं नारदेन वै ॥ १० ॥

(धर्मादि) के देनेवाले हैं ॥ ६ ॥ हे ऋषि श्रेष्ठो ! पाचवीं कैवल्य नामक मुक्ति है वह सब प्रकारसे मनुष्योंका दुर्लभ है अब मैं उसका लक्षण कहता हूं श्रवण करो ॥ ७ ॥ जिससे सब जगत् उत्पन्न होता है तथा जिससे यह जगत् पालन होता है और जिसमें लय हो जाता है जिसने यह सब कुछ विस्तार किया है ॥ ८ ॥ हे मुनीश्वरो ! यह ही शिवरूप कहे जाते हैं वे कलासहित तथा कलारहित दो प्रकारसे वेदमें वर्णन किये गये हैं ॥९॥ उनको विष्णु ब्रह्माने नहीं जाना और न उन्हें कुमार आदिने जाना न नारदजीने

जाना है ॥ १० ॥ और न व्यासजीके पुत्र शुकदेवने न मुनीश्वरोंने न उनसे पहले संपूर्ण देवताओंने और न वेदशास्त्रोंने उनको जाना है ॥ ११ ॥ सत्य, ज्ञान, अनंत, सत्, चित्, आनन्दस्वरूप हैं, तथा निर्गुण, निरुपाधि, अव्यय, शुद्ध, निरंजन हैं ॥ १२ ॥ वह परमात्मा न रक्त हैं न पीत हैं न श्वेत न नील न ह्रस्व न दीर्घ न स्थूल न सूक्ष्म हैं ॥ १३ ॥ जहांसे वाणी मनके सहित प्राप्त न होके लौटती है वहही शिवसंज्ञक परब्रह्म कहा है ॥ १४ ॥ जिस प्रकार आकाश सर्वव्यापक है उसी प्रकार यह भी सर्व व्यापक हैं, मायासे परे हैं, पर आत्मा तथा द्वन्द्वरहित मत्सरहीन हैं ॥ १५ ॥ हे द्विजो ! इस लोकमें शिव ज्ञानके उदय होनेसे अथवा शिवके भजन करनेसे वा सज्ज

शुकेन व्यास पुत्रेण व्यासेन च मुनीश्वरैः॥ तत्पूर्वैश्चाखिलैर्देववैर्वेदैः शास्त्रैस्तथा न हि॥११॥सत्यं ज्ञानमनंतं च सच्चिदानन्दसंज्ञितम्॥निर्गुणो निरुपाधिश्चाव्ययःशुद्धो निरंजनः ॥ १२ ॥ न रक्तो नैव पीतश्च न श्वेतो नील एव च ॥ न ह्रस्वो न च दीर्घश्च न स्थूलस्सूक्ष्म एव च ॥१३॥ यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह ॥ तदेव परमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंज्ञकम् ॥ १४ ॥ आकाशं व्यापकं यद्वत्तथैव व्यापकन्त्विदम् ॥ मायातीतं परात्मानं द्वन्द्वातीतं विमत्सरम् ॥ १५ ॥ तत्प्राप्तिश्च भवेदत्र शिवज्ञानोदया द्ध्रुवम् ॥ भजनाद्वा शिवस्यैव सूक्ष्ममत्या सतां द्विजाः ॥ १६ ॥ ज्ञानं तु दुष्करं लोके भजनं सुकरं मतम् ॥ तस्माच्छिवं च भजत मुक्त्यर्थमपि सत्तमाः ॥ १७ ॥ शिवो हि भजनाधीनो ज्ञानात्मा मोक्षदः परः ॥ भक्त्यैव बहवः सिद्धा मुक्तिं प्रापुः परां मुदा ॥१८॥ ज्ञानमाता शंभुभक्तिर्मुक्तिभुक्तिप्रदा सदा ॥ सुलभा यत्प्रसादाद्धि सत्प्रेमांकुर लक्षणा ॥ १९ ॥ सा भक्तिर्विविधाज्ञेया सगुणा निर्गुणा द्विजाः ॥ वैधी स्वाभाविकी याया वरा सासा स्मृता परा ॥ २० ॥

नों की सूक्ष्म मतिसे उनकी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥ हे मुनिसत्तमो ! संसारमें ज्ञान कठिन है भजन सुगम माना गया है इस कारण मुक्तिके पानेके निमित्त शिवको भजो ॥ १७ ॥ शिवजी भजनके आधीन हैं ज्ञानकी आत्मा और मोक्षके देनेवाले तथा पर हैं बहुतसे सिद्ध भक्तिसे ही आनन्द सहित परप मुक्तिको प्राप्त हुए हैं ॥ १८ ॥ शिवकी भक्ति ज्ञानकी माता तथा नित्य भुक्ति मुक्ति देनेवाली है जिसके प्रसादसे सुलभ होती है उसमें सत्य प्रेमके अंकुरकी लक्षणा कही है ॥१९॥ हे द्विजो ! वह भक्ति सगुण और निर्गुणरूपसे अनेक प्रकारकी जाननी

जो जो वैधी और स्वाभाविकी है वही श्रेष्ठ और अधिक है ॥ २० ॥ और वह नैष्ठिकी अनैष्ठिकी इन भेदोंसे दो प्रकारकी कही है उसमें छः प्रकारकी नैष्ठिकी जाननी और अनैष्ठिकी एकही प्रकारकी कही है ॥ २१ ॥ फिर पंडित लोग विहिता अविहिता इन भेदोंसे अनेक प्रकारकी कहते हैं उन दोनोंमें भी अनेक प्रकार होनेसे विस्तार वर्णन नहीं किया जाता ॥ २२ ॥ वे दोनों श्रवणादिकके भेदसे नौ नौ अंगवाली हैं, यह शिवके प्रसादके विना अति कठिन है और उनकी प्रसन्नतासे सुगम है ॥ २३ ॥ हे द्विजो ! भक्ति और ज्ञान परस्पर भिन्न नहीं हैं ऐसा शिवजीने वर्णन किया है इस कारण भक्ति तथा ज्ञानके करने वालेको नित्य सुख होता है उन दोनोंमें भेद मानना उचित नहीं

नैष्ठिक्यनैष्ठिकीभेदाद्विविधैव हि कीर्तिता॥षड्विधा नैष्ठिकी भेदाद्वितीयैकविधा स्मृता॥२१॥विहिताविहिताभेदात्तामनेकां विदुर्बुधाः॥ तयोर्बहुविधत्वाच्च विस्तारो न हि वर्ण्यते॥२२॥ तेनवांगे उभे ज्ञेये श्रवणादिकभेदतः॥ सुदुष्करे तत्प्रसादं विना च सुकरे ततः ॥ २३ ॥ भक्तिज्ञाने न भिन्ने हि शंभुना वर्णिते द्विजाः ॥ तस्माद्भेदो न कर्तव्यस्तत्कर्तुस्सर्वदा सुखम् ॥ २४ ॥ विज्ञानं न भवत्येव द्विजा भक्तिविरोधिनः ॥ शंभुभक्तिकरस्यैव भवेज्ज्ञानोदयो द्रुतम् ॥२५॥ तस्माद्भक्तिर्महेशस्य साधनीया मुनीश्वराः ॥ तयैव निखिलं सिद्धं भविष्यति न संशयः ॥ २६ ॥ इति पृष्टं भवद्भिर्यत्तदेव कथितं मया ॥ तच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ २७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां मुक्तिनिरूपणं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

ऋषय ऊचु ॥ शिवः को वा हरिः को वा रुद्रः को वा विधिश्च कः ॥ एतेषु निर्गुणः को वा ह्येतं नश्छिन्धि संशयम् ॥ १ ॥

है ॥ २४ ॥ हे द्विजो ! भक्तिके विरोधीको विज्ञान नहीं होता शम्भुकी भक्ति करने वालेको शीघ्रही ज्ञानका उदय होता है ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वरो ! इस कारण महेश्वरकी भक्ति अवश्य ही करनी चाहिये उसीसे सब कुछ सिद्ध होगा इसमें संशय नहीं ॥ २६ ॥ जैसा तुमने मुझसे पूंछा उसी प्रकार मैंने सब कह दिया मनुष्य इसको सुनके सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है इसमें संशय नहीं ॥ २७ ॥ इतिश्रीशिव महापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० मुक्ति निरूपणं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ऋषि बोले, शिवजी कौन हैं और विष्णु कौन हैं, रुद्र

कौन हैं, तथा ब्रह्मा कौन हैं, इन सबोंमें निर्गुण कौन हैं हमारे इस सन्देहको दूर करो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, आदिसृष्टिमें जो निर्गुण परमात्मासे उत्पन्न हुये हैं वेद और वेदान्तके ज्ञाताओंने उनको ही शिव नामवाला कहा है ॥ २ ॥ हे ज्ञानी ! उन शिवसे प्रकृति पुरुषके सहित उत्पन्न हुई तहां उन दोनों प्रकृतिपुरुषोंने मूलमें स्थित हुए जलमें तप किया ॥ ३ ॥ वह पंचकोशीनामसे विख्यात हुई सबोंको जो काशी अत्यन्त प्रिय है उसका जल सम्पूर्ण संसारभरमें व्याप्त होगया ॥ ४ ॥ यह जान वह विष्णु मायाके सहित उस जलमें सोगये वह हरि नारायणनामसे विख्यात हुए और प्रकृति नारायणी नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ५ ॥ उनकी नाभिकमलमें जो उत्पन्न हुए वह ब्रह्माजी कहाये उन्होंने

सूत उवाच ॥ यच्चादौ हि समुत्पन्नं निर्गुणात्परमात्मनः ॥ तदेव शिवसंज्ञं हि वेदवेदांतिनो विदुः ॥ २ ॥ तस्मात्प्रकृतिरुत्पन्ना पुरुषेण समन्विता ॥ ताभ्यान्तपः कृतं तत्र मूलस्थे च जले सुधीः ॥ ३ ॥ पञ्चक्रोशीति विख्याता काशी सर्वातिवल्लभा ॥ व्याप्तं च सकलं ह्येतत्तज्जलं विश्वतो गतम् ॥ ४ ॥ संभाव्य मायया युक्तस्तत्र सुप्तो हरिस्स वै ॥ नारायणेति विख्यातः प्रकृति र्नारायणी मता ॥ ५ ॥ तन्नाभिकमले यो वै जातस्स च पितामहः ॥ तेनैव तपसा दृष्टस्स वैविष्णुरुदाहृतः ॥ ६ ॥ उभयोर्वा दशमने यद्रूपं स दर्शितं बुधाः ॥ महादेवेति विख्यातं निर्गुणेन शिवेन हि ॥ ७ ॥ तेन प्रोक्तमहं शम्भुर्भविष्यामि कभालतः ॥ रुद्रोनाम स विख्यातो लोकानुग्रहकारकः ॥ ८ ॥ ध्यानार्थं चैव सर्वेषामरूपो रूपवानभूत् ॥ स एव शिवस्साक्षाद्भक्तवा त्सल्यकारकः ॥ ९ ॥ शिवे त्रिगुणसम्भिन्ने रुद्रे तु गुणधामनि ॥ वस्तुतो नहि भेदोऽस्ति स्वर्णे तद्भूषणे यथा ॥ १० ॥

जिनको तपसे देखा वह विष्णु हैं ॥ ६ ॥ हे पंडितो ! निर्गुण शिवने उन दोनों ब्रह्मा विष्णुके विवादको शान्त करनेके निमित्त जो रूप दिखाया वह महादेवनामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ७ ॥ उन्होंने कहा म शम्भु ब्रह्माके मस्तकसे प्रगट हूंगा तब लोकोंके अनुग्रह करनेवाले वे शम्भु रुद्रनामसे विख्यात हुए ॥ ८ ॥ वह भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले साक्षात् शिव रूपरहित होकर भी सबोंके ध्यानके निमित्त रूपवान् हुए ॥ ९ ॥ तीनों गुणोंसे हीन शिवमें तथा सगुण रुद्रमें यथार्थमें कुछ भेद नहीं जैसे स्वर्णमें और उसके भूषणमें कुछ अन्तर नहीं होता ॥ १० ॥

वे दोनोंही समानरूप और कर्मवाले समानही भक्तोंको गति देनेवाले हैं सबोंको तुल्य ही सेवन करने योग्य हैं तथा अनेक लीलाके करने वाले ॥ ११ ॥ अति पराक्रमवाले रुद्र सब प्रकार शिव रूपही हैं वे ब्रह्मा विष्णुकी सहायता करनेवाले भक्तोंके कार्य करनेके हेतु उत्पन्न हुए ॥१२॥ और जो उत्पन्न हुये हैं वे क्रमानुसार सब लयको प्राप्त होते हैं उस प्रकार रुद्र नहीं लय होते वे केवल शिवमेंही लय होते हैं ॥ १३ ॥ वे सब सामान्य हुये रुद्रमें मिलके लय होजाते हैं परन्तु वह रुद्र उन विष्णु आदिमें मिलके लयको प्राप्त नहीं होते हैं यह शास्त्रकी आज्ञा है ॥ १४ ॥ वे सब रुद्रको भजते हैं परन्तु रुद्र किसीकोभी नहीं भजते परन्तु कभी कभी भक्तोंकी दयाके कारण अपने आप भजते हैं ॥१५॥ हे विद्वानों !

समानरूपकर्माणौ समभक्तगतिप्रदौ॥समानाखिलसंसेव्यौ नानालीलाविहारिणौ ॥११॥ सर्वथा शिवरूपो हि रुद्रोरौद्रपराक्रमः॥ उत्पन्नो भक्तकार्यार्थं हरिब्रह्मसहायकृत्॥१२॥ अन्ये च ये समुत्पन्नाः यथानुक्रमतो लयम् ॥ यांति नैव तथा रुद्रः शिवे रुद्रो विलीयते ॥ १३ ॥ ते वै रुद्रं मिलित्वा तु प्रयान्ति प्रकृता इमे ॥ इमान्रुद्रो मिलित्वा तु न याति श्रुतिशासनम् ॥१४॥ सर्वे रुद्रं भजन्त्येव रुद्रः कश्चिद्भजेन्न हि ॥ स्वात्मना भक्तवात्सल्याद्भजत्येव कदाचन ॥ १५ ॥ अन्यं भजन्ति ये नित्यं तस्मिंस्ते लीनतां गताः ॥ तेनैव रुद्रं ते प्राप्ताः कालेन महता बुधाः ॥ १६ ॥ रुद्रभक्तास्तु ये केचित्तत्क्षणं शिवतां गताः ॥ अन्यापेक्षा न वै तेषां श्रुतिरेषा सनातनी ॥ १७ ॥ अज्ञानं विविधं ह्येतद्विज्ञानं विविधं न हि ॥ तत्प्रकारमहं वक्ष्ये शृणुतादरतो द्विजाः ॥ १८ ॥ ब्रह्मादि तृणपर्यंतं यत्किंचिद्दृश्यते त्विह ॥ तत्सर्वं शिव एवास्ति मिथ्या नानात्वकल्पना ॥ १९ ॥

जो नित्य और देवताको भजते हैं वे उसीमें लय होके बहुत समयमें रुद्रको प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ परन्तु जो कोई रुद्रके भक्त हैं वे उसी समय शिवके भावको प्राप्त होते हैं, उन रुद्रको और किसी देवताकी अपेक्षा नहीं होती यह सनातनी श्रुति है ॥ १७ ॥ हे द्विजो ! अज्ञान तो अनेक प्रकारका है विज्ञान अनेक प्रकारका नहीं होता उसके भेदको मैं कहता हूं तुम आदरसे सुनो ॥ १८ ॥ इस लोकमें ब्रह्मासे लेके तृणपर्यन्त जो कुछ दीखता है वह सब शिवरूपही है अनेक प्रकारकी कल्पना मिथ्या है ॥ १९ ॥

सृष्टि होनेसे पहले शिवजी हैं तथा सृष्टिके मध्यमें भी शिवही कहे हैं और सृष्टिके अन्तमें भी शिवही होते हैं सर्वशून्य होनेपर भी सदाशिव जानो ॥ २० ॥ हे मुनीश्वरो ! इससे शिव चार गुणवाले हैं वह दो प्रकारके होनेपर भी सर्वशक्तिमत्तासे सगुणही हैं ऐसा जानो ॥ २१ ॥ जिसने विष्णुको सम्पूर्ण सनातन वेदोंका उपदेश अनेक वर्ण और मात्राओंसहित तथा अपना ध्यान और पूजन बताया है ॥ २२ ॥ इससे शंभु सम्पूर्ण विद्याओंके अधिपति वेदोंके निर्माण करनेवाले वेदोंके पति कहे हैं ॥ २३ ॥ वह साक्षात् शिवही सबके अनुग्रह करनेवाले उत्पन्न करनेवाले पालन करनेवाले विनाश करनेवाले साक्षी निर्गुण हैं ॥ २४ ॥ और सबोंके समयका प्रमाण है पर कालकी कलना नहीं वह स्वयं

सृष्टेः पूर्वं शिवः प्रोक्तः सृष्टेर्मध्ये शिवस्तथा ॥ सृष्टेरन्ते शिवः प्रोक्तस्सर्वशून्ये तदा शिवः ॥ २० ॥ तस्माच्चतुर्गुणः प्रोक्तः शिव एव मुनीश्वराः ॥ स एव सगुणो ज्ञेयः शक्तिमत्त्वाद्द्विधापि सः ॥ २१ ॥ येनैव विष्णवे दत्तास्सर्वे वेदास्सनातनाः ॥ वर्णा मात्रा ह्यनेकाश्च ध्यानं स्वस्य च पूजनम् ॥ २२ ॥ ईशानः सर्वविद्यानां श्रुतिरेषा सनातनी ॥ वेदकर्त्ता वेदपतिस्तस्माच्छंभु रुदाहृतः ॥ २३ ॥ स एव शंकरः साक्षात्सर्वानुग्रहकारकः ॥ कर्ताभर्ता च हर्ता च साक्षी निर्गुण एव सः ॥ २४ ॥ अन्येषां कालमानं च कालस्य कलनान हि ॥ महाकालस्स्वयं साक्षान्महाकालीसमाश्रितः ॥ २५ ॥ तथा च ब्राह्मणा रुद्रं तथा कालीं प्रचक्षते ॥ सर्वं ताभ्यान्ततः प्राप्त मिच्छया सत्यलीलया ॥ २६ ॥ न तस्योत्पादकः कश्चिद्धर्ता हर्ता न तस्य हि ॥ स्वयं सर्वस्य हेतुस्ते कार्यभूताच्युतादयः ॥ २७ ॥ स्वयं च कारणं कार्यं स्वस्य नैव कदाचन ॥ एकोप्यनेकतां यातोप्यनेकोप्येकतां व्रजेत् ॥२८॥ एकं बीजं बहिर्भूत्वा पुनर्बीजं च जायते ॥ बहुत्वे च स्वयं सर्वं शिवरूपी महेश्वरः ॥ २९ ॥

महाकाली सेवन किये हुये साक्षात् महाकाल हैं ॥ २५ ॥ ब्राह्मण लोग रुद्र तथा कालीकोही कहते हैं उन दोनोंने सत्य लीलासहित इच्छासे सब कुछ प्राप्त किया है ॥ २६ ॥ उनका उत्पन्न करनेवाला पालन करनेवाला विनाश करनेवाला कोई नहीं है किन्तु वे स्वयं सबके कारण हैं विष्णु आदि सम्पूर्ण देवता कार्यभूत हैं ॥ २७ ॥ वे शिवजी स्वयं कार्य और कारण रूप हैं उनका कारण और कोई नहीं है वे एक भी अनेकताको प्राप्त होते हैं तथा अनेक भी एकताको प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥ एक बीज बाहर होके फिर वह बीज

होता है बहुत होनेपर भी सब कुछ वस्तुरूपसे स्वयं शिवरूपी महेश्वर हैं ॥ २९ ॥ हे ऋषीश्वरो ! यह अतिश्रेष्ठ शिव ज्ञान यथार्थ रूपसे कह दिया इसको ज्ञानी ही पुरुष जानता है और कोई नहीं जान सकता ॥ ३० ॥ मुनि बोले, ज्ञानको लक्षण सहित वर्णन करो कि, जिसको जानके शिवरूपको प्राप्त होते हैं किस प्रकार वह शिवजी सब कुछ हैं और किस प्रकार सब वस्तु शिव स्वरूप हैं ॥ ३१ ॥ व्यासजी बोले, यह सुनके पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजी शिवजीके चरण कमलोंको स्मरण करके उन मुनियोंसे यह वचन बोले ॥ ३२ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० सगुण निर्गुण भेद वर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ सूतजी बोले, हे

एतत्परं शिवज्ञानं तत्त्वतस्तदुदाहृतम् ॥ जानाति ज्ञानवानेव नान्यः कश्चिदृषीश्वराः ॥३०॥ मुनय ऊचुः ॥ ज्ञानं सलक्षणंब्रूहि यज्ज्ञात्वा शिवताम्व्रजेत् ॥ कथं शिवश्च तत्सर्वं सर्वं वा शिव एव च ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ एतदाकर्ण्य वचनं सूतः पौराणिकोत्तमः ॥ स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं मुनींस्तानब्रवीद्वचः ॥३२॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां सगुणनिर्गुणभेदवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥ सूत उवाच ॥ शृणुतामृषयः सर्वे शिवज्ञानं यथा श्रुतम् ॥ कथयामि महागुह्यं परमुक्तिस्वरूपकम् ॥१॥ कनारदकुमाराणां व्यासस्य कपिलस्य च ॥ एतेषां च समाजे तैर्निश्चित्य समुदाहृतम्॥२॥इति ज्ञानं सदा ज्ञेयं सर्वं शिवमयं जगत्॥शिवः सर्वमयो ज्ञेयस्सर्वज्ञेन विपश्चिता ॥३॥ आब्रह्मतृणपर्यन्तं यत्किंचिद्दृश्यते जगत् ॥ तत्सर्वं शिव एवास्ति स देवः शिव उच्यते॥४॥यदेच्छा तस्य जायेत तदा च क्रियते त्विदम् ॥ सर्वं स एव जानाति तं न जानाति कश्चन ॥५॥

ऋषियो ! परम गोपनीय परम मुक्ति स्वरूप शिवका ज्ञान जैसा मैंने सुना है वैसा कहता हूं तुम सब श्रवण करो ॥ १ ॥ शौनक नारद स्वामी कार्तिकेय तथा व्यासजी कपिलदेवजी इन सबोंके समुदायमें उन्होंने सब शास्त्रोंसे निश्चय करके कहा है ॥ २ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् शिवमय है ऐसा ज्ञान निरन्तर जाने तथा सर्वज्ञ विद्वान्को शिवको सब जगत् मय जानना चाहिये ॥ ३ ॥ ब्रह्मसे लेके तृण पर्यन्त जो कुछ यह संसार दीखता है वह सम्पूर्ण शिव ही है ऐसा वह शिवदेव कहाता है ॥ ४ ॥ जिस समय उनकी इच्छा होती है तभी यह संसार

रच देते हैं वेही सबको जानते हैं परन्तु उनको कोई भी नहीं जानता ॥ ५ ॥ इस जगत्को रचके स्वयं उसमें प्रवेश होके भी दूर स्थित रहते हैं वे उसमें प्रवेश नहीं होते और विना लिप्त हुये केवल ज्ञान स्वरूपवाले हैं ॥ ६ ॥ जिस प्रकार जलमें अग्नि आदि तेजकी परछाई भान होती है, यथार्थमें उसका प्रवेश नहीं है उसी प्रकार साक्षात् शिव स्वयं भान होते हैं लिप्त नहीं हैं ॥ ७ ॥ यथार्थमें वह शुभ परब्रह्म स्वयं सबको आक्रमण करके भासते हैं बुद्धिका भ्रमही अज्ञान है उसमें और कुछ दूसरा नहीं है ॥ ८ ॥ सम्पूर्ण दर्शनोंमें मतिका भेद दीखता है परन्तु वेदान्ती नित्य परमेश्वरको अद्वैत ही कहते हैं ॥ ९ ॥ अपने भी अंशका यह जीवात्मा अविद्यासे मोहित हो विवश हुआ मैं और हूं ऐसा

रचयित्वा स्वयं तच्च प्रविश्य दूरतःस्थितः॥न तत्र च प्रविष्टोसौ निर्लिप्तश्चित्स्वरूपवान्॥६॥यथा च ज्योतिषश्चैव जलादौ प्रतिबिंबता ॥ वस्तुतो न प्रवेशो वै तथैव च शिवःस्वयम्॥७॥वस्तुतस्तु स्वयं सर्वंक्रमोहि भासते शुभः॥अज्ञानं च मतेर्भेदो नास्त्यन्यच्च द्वयम्पुनः॥८॥दर्शनेषु च सर्वेषु मतिभेदःप्रदर्श्यते॥परंवेदान्तिनो नित्यमद्वैतंप्रतिचक्षते९॥स्वस्याप्यंशस्यजीवोंशो ह्यविद्यामोहितो वशः॥अन्योऽहमिति जानाति तया मुक्तो भवेच्छिवः॥१०॥सर्वं व्याप्य शिवःसाक्षाद् व्यापकःसर्वजन्तुषु॥चेतनाचेतनेशोपि सर्वत्र शंकरस्स्वयम्॥११॥उपायं यःकरोत्यस्य दर्शनार्थं विचक्षणः॥वेदान्तमार्गमाश्रित्य तद्दर्शनफलं लभेत्॥१२॥यथाग्निर्व्यापकश्चैव काष्ठे काष्ठे च तिष्ठति॥योवैमंथति तत्काष्ठं स वै पश्यत्यसंशयम्॥१३॥भक्त्यादिसाधनानीह यःकरोति विचक्षणः॥सवैपश्यत्यवश्यं हि तं शिवं नात्र संशयः॥१४॥शिवःशिवःशिवश्चैव नान्यदस्तीति किंचन॥भ्रान्त्यानानास्वरूपो हि भासते शङ्करस्सदा॥१५॥

जानता है परन्तु शिवजी उस अविद्यासे रहित हैं ॥ १० ॥ साक्षात् सर्वव्यापी शिव सबको व्याप्त करके सब जीवोंमें स्थित हैं और वे चेतन अचेतनके स्वामी साक्षात् कल्याण करनेवाले हैं ॥ ११ ॥ जो पंडित मनुष्य उन शिवके दर्शनके अर्थ उपाय करता है वह वेदान्तमार्गको आश्रय करके उनके दर्शनके फलको पाता है ॥ १२ ॥ जिस प्रकार अग्नि प्रत्येक काष्ठमें व्याप्त होके स्थित हो रहा है जो उस काष्ठको घिसता है वह निस्सन्देह उस अग्निको देख लेता है ॥ १३ ॥ जो विद्वान् मनुष्य भक्ति आदि साधनोंको करता है वह अवश्यही उन शिवको देख लेता है इसमें कुछ संशय नहीं ॥१४॥ शिवही हैं शिवही हैं और सर्वत्र शिवही हैं और कुछ नहीं शंकर भ्रान्तिसे नानास्वरूपसे

निरंतर भासते हैं ॥ १५ ॥ जिस प्रकार समुद्र, मृत्तिका, सुवर्ण, उपाधिसे अनेक भावको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार शिवभी उपाधिसे अनेक हैं ॥ १६ ॥ वास्तवमें कार्य और कारणमें कुछ भेद नहीं है केवल बुद्धिकी भ्रान्ति (अज्ञान) से अन्तर दीखता है उसबुद्धिकी भ्रान्तिके नाश होने पर वह भेद दूर होता है ॥ १७ ॥ बीजसे वृक्ष अनेकताको प्रकाश करता है अन्तमें बीजही शेष रहता है उसका वृक्ष नष्ट हो जाता है ॥ १८ ॥ ज्ञानी जीव बीज हैं विकृति (प्रकृति) वृक्ष माना है फिर भी उसकी निवृत्तिमें ज्ञानी ही होता है इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥ सब जगत् शिव है तथा शिवहीमें सब जगत् है इन दोनोंमें कुछ भेद नहीं है किस प्रकार

यथा समुद्रो मृच्चैव सुवर्णमथवा पुनः ॥ उपाधितो हि नानात्वं लभते शंकरस्तथा ॥१६॥ कार्यकारणयोर्भेदो वस्तुतो न प्रवर्तते ॥ केवलं भ्रान्तिबुद्धयैव तदाभावे स नश्यति ॥ १७ ॥ तदा बीजात्प्ररोहश्च नानात्वं हि प्रकाशयेत् ॥ अन्ते च बीजमेव स्यात्तत्प्ररोहश्च नश्यति ॥ १८ ॥ ज्ञानी च बीजमेव स्यात्प्ररोहो विकृतीर्मता ॥ तन्निवृत्तौ पुनर्ज्ञानी नात्र कार्या विचारणा ॥ १९ ॥ सर्वं शिवः शिवं सर्वं नास्ति भेदश्च कश्चन ॥ कथं च विविधं पश्यत्येकत्वं च कथंपुनः ॥ २० ॥ यथैकं चैव सूर्याख्यं ज्योतिर्नानाविधं जनैः ॥ जलादौ च विशेषेण दृश्यते तत्तथैव सः ॥ २१ ॥ सर्वत्र व्यापकश्चैव स्पर्शत्वं न विबध्यते ॥ तथैव व्यापको देवो बध्यते न क्वचित्स वै ॥ २२ ॥ साहंकास्तथा जीवस्तन्मुक्तः शंकरः स्वयम् ॥ जीवस्तुच्छः कर्मभोगी निर्लिप्तः शंकरो महान् ॥ २३ ॥ यथैकं च सुवर्णादि मिलितं रजतादिना ॥ अल्पमूल्यं प्रजायेत तथा जीवोऽप्यहंयुतः ॥ २४ ॥

अनेक प्रकारका दीखता है और फिर किस प्रकार एकताही दीखती है ॥ २० ॥ जिस प्रकार मनुष्योंको एक सूर्यके जल आदिमें अनेक सूर्य दीखते हैं उसी प्रकार वह शिव एकदा भ्रान्तिसे अनेक भासते हैं ॥ २१ ॥ जैसे आकाश सब जगह व्यापक होकरभी स्पर्शतामें नहीं बद्ध होता उसी प्रकार सर्वव्यापक होके भी वह परमात्मा कहीं भी नहीं बद्ध होता ॥ २२ ॥ जीव अहंकार सहित है शिव स्वयं अहंकारसे मुक्त हैं जीव तुच्छ तथा कर्मका भोगनेवाला है शंकर महान् और निर्लिप्त हैं ॥ २३ ॥ जिस प्रकार एक सुवर्ण चांदी आदिसे मिलके स्वल्प

मूल्यवाला होजाता है उसी प्रकार शुद्धजीव अहंकर सहित होजाता है ॥ २४ ॥ जिस प्रकार सुवर्णादि खार (तेजाब, अग्नि) आदिसे शोधित किये शुद्ध हो पहलेके समान मूल्यको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार संस्कार करनेसे अहंकारी जीव भी शुद्ध होजाता है ॥ २५ ॥ पहले श्रेष्ठ गुरुको पाय भक्ति भावके सहित शिव बुद्धिसे पूजन तथा ऊँचे स्वरसे उनका स्मरण करे ॥ २६ ॥ ऐसी बुद्धि करनेसे देहसे सम्पूर्ण पाप आदि मल दूर होते हैं तो अज्ञान नष्ट हो जाता है जिस समय जीव ज्ञानवान् होता है ॥ २७ ॥ तब जीव अहंकारसे छूटके निर्मल बुद्धिमान होता है फिर शिवके प्रसादसे शिवभावको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ जिस प्रकार दर्पणमें अपना स्वरूप दीखता है उसी प्रकार

यथैव हि सुवर्णादि क्षारादेः शोधितं शुभम्॥पूर्ववन्मूल्यतां याति तथा जीवोऽपि संस्कृतेः॥२५॥प्रथमं सद्गुरुं प्राप्य भक्तिभाव समन्वितः॥शिवबुद्ध्या करोत्युच्चैः पूजनं स्मरणादिकम् ॥ २६ ॥ तद्बुध्या देहतो याति सर्वपापादिको मलः ॥ तदाऽज्ञानं च नश्येत ज्ञानवाञ्जायते यदा ॥२७॥ तदाहंकारनिर्मुक्तो जीवो निर्मलबुद्धिमान्॥शङ्करस्य प्रसादेन याति शङ्करताम्पुनः ॥२८॥ यथाऽऽदर्शस्वरूपे च स्वीयरूपं प्रदृश्यते॥ तथा सर्वत्रगं शम्भु पश्यतीति सुनिश्चितम्॥२९॥जीवन्मुक्तस्स एवासौ देहः शीर्णः शिवे मिलेत् ॥ प्रारब्धवशगो देहस्तद्भिन्नो ज्ञानवान् मतः ॥३०॥ शुभं लब्ध्वा न हृष्येत कुप्येल्लब्ध्वाऽशुभं न हि ॥ द्वंद्वेषु समता यस्य ज्ञानवानुच्यते हि सः ॥३१॥ आत्मयोगेन तत्त्वानामथवा च विवेकतः ॥ यथा शरीरतो यायाच्छरीरं मुक्तिमिच्छतः ॥ ३२ ॥ सदाशिवो विलीयेत मुक्तो विरहमेव च ॥ ज्ञानमूलन्तथाध्यात्म्यं तस्य भक्तिश्शिवस्य च ॥ ३३ ॥

शिवको सर्वत्र व्यापक जानते हैं यह निश्चय जानो ॥२९॥ वह जीव जीवन्मुक्त हो देहसे रहित हुआ शिवमें मिल जाता है देह प्रारब्धके वशसे प्राप्त होता है परन्तु ज्ञानी शरीरसे रहित माना गया है ॥ ३० ॥ प्रियवस्तुको पाय जो हर्ष नहीं करता और अप्रियको प्राप्त हो क्रोध नहीं करता है जिसकी सुख दुःखमें समानता होती है वह ज्ञानवान कहाता है ॥ ३१ ॥ मुक्तिको चाहनेवाला पुरुष आत्माके योगसे अथवा तत्त्वोंके विचारसे अपने शरीरसे शरीरको त्यागता है ॥ ३२ ॥ जो सदाशिवमें लीन होता है वह व्यथाओंसे मुक्त होके ज्ञानमूल अध्यात्मको

प्राप्त होता है और फिर उन शिवकी भक्ति मिलती है ॥ ३३ ॥ भक्तिसे प्रेम और प्रेमसे श्रवण होता है श्रवणसे सत्संग प्राप्त होता है सत्संगसे विद्वान् गुरु मिलता है ॥ ३४ ॥ गुरुसे ज्ञान प्राप्त होनेपर निश्चयही मुक्त होता है जो नित्य शिवको भजता है वह इसी प्रकार ज्ञानवान हो जाता है ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य अति भक्तिके सहित शिवका भजन करता है वह अन्तमें मुक्तिको प्राप्त होता है इसमें कुछ संशय मत जानो ॥ ३६ ॥ उन शंकर देवसे अधिक कोई देवता मुक्तिके प्राप्त होनेके निमित्त नहीं है जिनकी शरणमें आके संसारसे छूट जाते हैं ॥ ३७ ॥ हे ब्राह्मणो ! मैंने ऋषियोंके समागमसे निश्चयकर यह अनेक ज्ञानके वाक्य कहे वे सब तुमको यत्नसे बुद्धिमें धारण

भक्तेश्च प्रेम संप्रोक्तं प्रेम्णश्च श्रवणन्तथा ॥ श्रवणाच्चापि सत्संगस्सत्संगाच्च गुरुर्बुधः ॥ ३४ ॥ सम्पन्ने च तथा ज्ञाने मुक्तो भवति निश्चितम् ॥ इति चेज्ज्ञानवान्यो वै शंभुमेव सदा भजेत् ॥ ३५ ॥ अनन्यया च भक्त्या वैयुक्तः शम्भुं भजेत्पुनः ॥ अन्ते च मुक्तिमायाति नात्र कार्या विचारणा ॥ ३६ ॥ अतोऽधिको न देवोऽस्ति मुक्तिप्राप्त्यै च शंकरात् ॥ शरणं प्राप्य यञ्चैव संसाराद्विनिवर्तते ॥ ३७ ॥ इति मे विविधं वाक्यमृषीणां च समागतैः ॥ निश्चित्य कथितं विप्रा धिया धार्यं प्रयत्नतः ॥ ३८ ॥ प्रथमं विष्णवे दत्तं शंभुना लिंगसम्मुखे ॥ विष्णुना ब्रह्मणे दत्तं ब्रह्मणा सनकादिषु ॥ ३९ ॥ नारदाय ततः प्रोक्तं तज्ज्ञानं सनकादिभिः ॥ व्यासाय नारदेनोक्तं तेन मह्यं कृपालुना ॥ ४० ॥ मया चैव भवद्भ्यश्च भवद्भिर्लोकहेतवे ॥ स्थापनीयं प्रयत्नेन शिवप्राप्तिकरं च तत् ॥ ४१ ॥ इतिवश्च समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं मुनीश्वराः ॥ गोपनीयं प्रयत्नेन किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ ४२ ॥

करने चाहिये ॥ ३८ ॥ पहले शिवने अपने ज्योतिर्लिंगके सन्मुख विष्णुको यह ज्ञान दिया, फिर विष्णुने ब्रह्माको उपदेश किया, ब्रह्माने सनकादि ऋषियोंको दिया ॥ ३९ ॥ फिर वह ज्ञान सनकादिकोंने नारदसे कहा, नारदने व्यासजीको बताया, कृपालु व्यासजीने मुझे उपदेश दिया ॥ ४० ॥ मैंने तुम सबोंसे कहा तुम सबोंको संसारके कारण यत्नपूर्वक इसको रक्षित करना चाहिये यह ज्ञान शिवकी प्राप्ति करानेवाला है ॥ ४१ ॥ हे मुनीश्वरो ! जैसे तुमने पूंछा सो सब मैंने तुमसे कह दिया इसे यत्नसे छिपाना चाहिये अब क्या सुननेकी

इच्छा है ? ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले, यह सुनके वे संपूर्ण ऋषि परम हर्षको प्राप्त हुये और हर्षसे गद्गदवाणी सहित नमस्कार करके बारम्बार स्तुति करने लगे ॥ ४३ ॥ ऋषि बोले, हे व्यासजीके शिष्य ! हे सूतजी ! तुम शैवोंमें श्रेष्ठ धन्य हो आपने हम सबोंको परमतत्त्वरूपी शिवज्ञानको सुनाया ॥ ४४ ॥ आपकी कृपासे चित्तकी भ्रान्ति दूर होगई आपसे मुक्तिके देनेवाले शिवके ज्ञानको पाके सन्तुष्ट हो गये ॥ ॥ ४५ ॥ सूतजी बोले, हे द्विजो ! यह इतिहास नास्तिकसे तथा श्रद्धारहित शठ (दुष्ट) से तथा शिवकी भक्तिसे रहित तथा सुननेकी इच्छा न करनेवालेसे कदापि नहीं कहना योग्य है ॥ ४६ ॥ इतिहास तथा पुराणोंको वेद और शास्त्रोंको बारंबार विचारके उनका सारांश

व्यास उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा तु ऋषय आनन्दं परमं गताः ॥ हर्षगद्गदया वाचा नत्वा ते तुष्टुवुर्मुहुः॥४३॥ऋषय ऊचुः ॥ व्यास शिष्य नमस्तेऽस्तु धन्यस्त्वं शैवसत्तमः॥श्रावितं नः परं वस्तु शैवं ज्ञानमनुत्तमम्॥४४॥अस्माकं चेतसो भ्रान्तिर्गता हि कृपया तव ॥ सन्तुष्टाश्शिवसज्ज्ञानं प्राप्य त्वत्तो विमुक्तिदम्॥४५॥सूत उवाच ॥नास्तिकायनवक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च ॥ अभक्ताय महेशस्य नचाशु श्रुषवेद्विजाः॥४६॥इतिहासपुराणानि वेदाञ्छास्त्राणि चासकृत् ॥विचार्य्योद्धृत्य तत्सारं मह्यं व्यासेन भाषितम् ॥४७॥एतच्छ्रुत्वा ह्येकवारं भवेत्पापं हि भस्मसात् ॥ अभक्तो भक्तिमाप्नोति भक्तस्य भक्तिवर्द्धनम्॥४८॥पुनश्श्रुते च सद्भक्तिर्मुक्तिस्स्याच्च श्रुते पुनः॥तस्मात्पुनः पुनश्श्राव्यं भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः॥४९॥आवृत्तयः पंच कार्याः समुद्दिश्य फलं परम्॥तत्प्राप्नोति न सन्देहो व्यासस्य वचनं त्विदम्॥५०॥न दुर्लभं हि तस्यैव येनेदं श्रुतमुत्तमम्॥पंचकृत्वस्तदावृत्त्या लभ्यते शिवदर्शनम्॥५१॥

निकालके व्यासजीने मुझसे कहा है ॥ ४७ ॥ इसे एकबार सुनके संपूर्ण पाप भस्म होते हैं, यह जो भक्त नहीं है उसकी भक्ति तथा भक्तिकी भक्तिको बढ़ाता है ॥ ४८ ॥ दो बार सुननेसे श्रेष्ठ भक्ति मिलती है, फिर सुननेसे मुक्ति होजाती है इस कारण भोग तथा मुक्तिके चाहनेवाले मनुष्योंको बारम्बार सुनना चाहिये ॥ ४९ ॥ अधिक फलको उद्देश्य करके इसकी पांच आवृत्ति करनी चाहिये जो ऐसा करते हैं वे मुक्तिको पाते हैं इसमें संशय नहीं ऐसा व्यासजीने कहा है ॥ ५० ॥ जिसने यह उत्तम इतिहास सुना उसको कुछ दुर्लभ नहीं इसको

पांच आवृत्ति पाठ करनेसे शिवका दर्शन प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ पहले राजा तथा ब्राह्मण वैश्य इस बुद्धिसे पांच बार सुनके परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥ ५२ ॥ अब भी जो मनुष्य भक्तिमें तत्पर होके इसको सुनेगा वह शिव संज्ञक विज्ञानको भुक्ति और मुक्तिको प्राप्त होगा ॥ ॥ ५३ ॥ व्यासजी बोले, ऐसा उनका वचन सुनके वे ऋषि परम आनंदमें प्राप्त हो आदर सहित अनेक वस्तुओंसे सूतजीको पूजने लगे ॥ ॥ ५४ ॥ और सन्देह राहित हुये सन्तुष्ट होके स्वस्तिवाचनपूर्वक नमस्कारोंसे तथा आशीर्वादोंसे बढाने लगे ॥ ५५ ॥ वे बुद्धिमान् ऋषि तथा सूतजी आपसमें शिव देवताको अधिक मानके उन्हें नमस्कार करने तथा भजने लगे ॥ ५६ ॥ यह शिवका विज्ञान शिवको अति प्रसन्न कर

पुरातनाश्च राजानो विप्रा वैश्याश्च सत्तमाः ॥ इदं श्रुत्वा पंचकृत्वो धिया सिद्धिं परां गताः॥५२॥श्रोष्यत्यद्यापि यश्चेदं मानवो भक्तितत्परः ॥ विज्ञानं शिवसंज्ञं वै भुक्तिं मुक्तिं लभेच्च सः ॥५३॥ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा परमानन्दमागताः ॥ समानर्चुश्च ते सूतं नानावस्तुभिरादरात्॥५४॥नमस्कारैः स्तवैश्चैव स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ आशीर्भिर्वर्द्धयामासुः संतुष्टाश्छिन्नसंशयाः ॥५५॥ परस्परं च संतुष्टाः सूतस्ते च सुबुद्धयः ॥ शंभुं देवं परं मत्वा नमंति स्म भजंति च ॥ ५६ ॥ एतच्छिवसुविज्ञानं शिवस्यातिप्रियं महत् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं शिवभक्तिविवर्द्धनम्॥५७॥इयं हि संहिता पुण्या कोटिरुद्राह्वया परा ॥ चतुर्थी शिवपुराणस्य कथिता मे मुदावहा॥५८॥एतां यः शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः ॥ स भुक्त्वेहाखिलान्भोगानंते परगतिं लभेत् ॥ ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्विंशतिसाहस्र्यां वैयासिक्यां संहितायां तदन्तर्गतायां चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां ज्ञाननिरूपणं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ॥ समाप्तेयं शिवमहापुराणान्तर्गतकोटिरुद्रसंहिता चतुर्थी ॥ ॥ ॥ ॥

नेवाला भुक्ति मुक्तिका देनेवाला तथा दिव्यभक्तिका बढानेवाला है ॥ ५७ ॥ यह अति पवित्र कोटिरुद्रनामवाली शिवपुराणकी चौथी संहिता परम आनंद देनेवाली मैंने कही ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य सावधान होके भक्तिसे इसको सुनता है वह संपूर्ण भोगोंको भोगता है अंतसमय परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां चतुर्विंशतिसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां तदन्तर्गतायां चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां ज्ञाननिरूपणं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

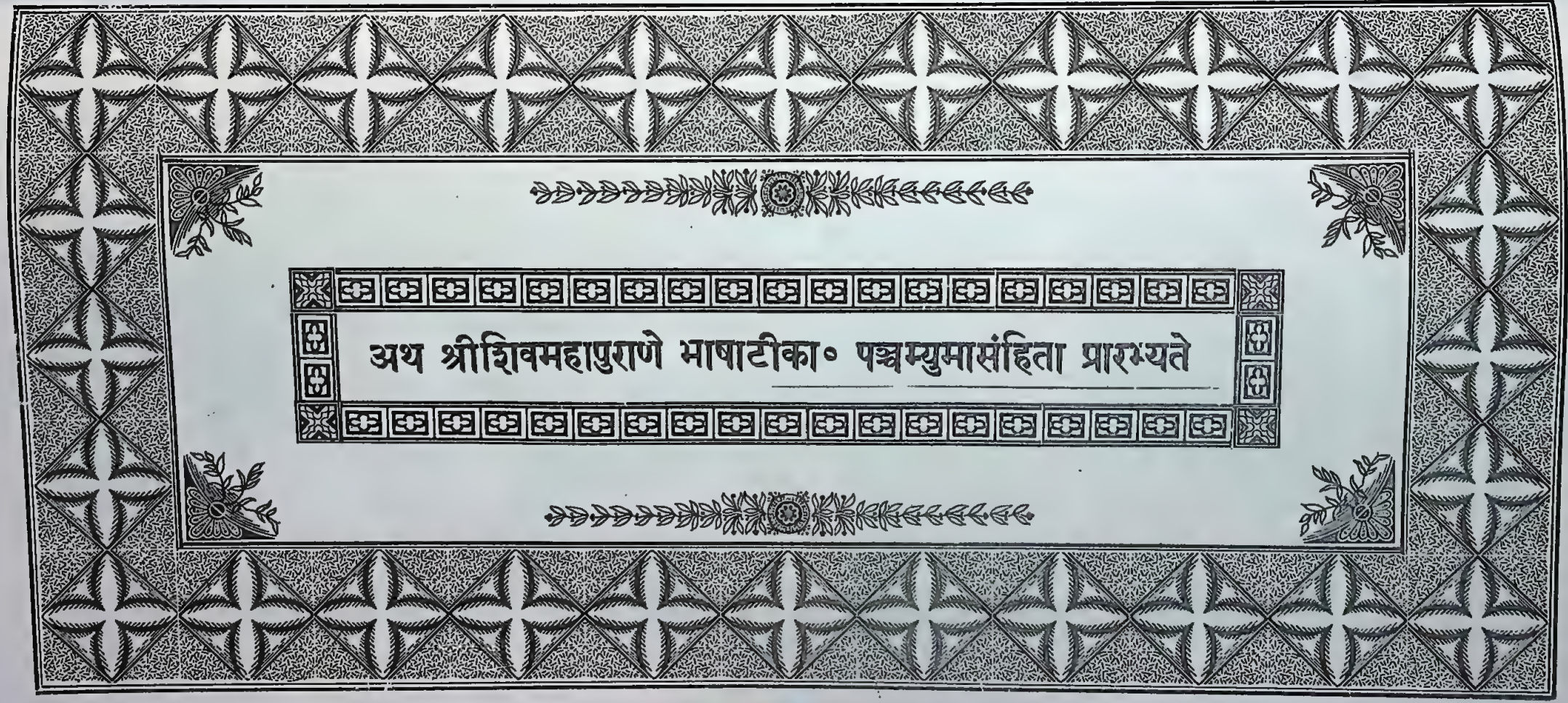
अथ श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीका० पञ्चम्युमासंहिता प्रारभ्यते

सनत्कुमार ऋषि
व्यास
नारद
पंचचूडा
देवी
देवगण
देवी
शुंभनिशुंभ

शिवा शम्भु गणपति सुमिरि, गुरुपद रज हियलाय । उमा संहिताकी कथा, भाषा करत सुहाय ॥ १ ॥

जो परमात्मा सत्त्वगुणके आश्रयसे सातोंलोकोंको धारण तथा पालन करते हैं रजोगुणसे जो उत्पन्न करते, तमोगुणसे संहार करते तथा जो गुणमयी मायासे भी परे स्थित हैं, उन सतचित् आनन्दरूप अनन्त बोधवाले निर्मल ब्रह्म विष्णु आदि नामोंको धारण करनेवाले नित्य सत्वकी प्राप्तिसेही प्राप्त होनेवाले परिपूर्ण शिवका ध्यान करते हैं ॥ १ ॥ ऋषि बोले, हे महाभाग सूतजी ! हे व्यासजीके शिष्य ! आपको नमस्कार है आपने चौथी कोटि रुद्रसंहिता हमको सुनाई ॥ २ ॥ अब अनेकों आख्यानोंसे युक्त पार्वतीसहित शिवजीके चरित्रोंसे परिपूर्ण पांचवीं उमासंहिता

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगौरीशंकराभ्यां नमः॥अथ पञ्चम्युमासंहिता प्रारभ्यते॥ यो धत्ते भुवनानि सप्त गुणवान्स्रष्टा रजस्संश्रय स्संहर्त्ता तमसान्वितो गुणवतीं मायामतीत्य स्थितः ॥ सत्यानन्दमनन्तबोधममलं ब्रह्मादिसंज्ञास्पदं नित्यं सत्त्वसमन्वया दधिगतं पूर्णं शिवं धीमहि ॥१॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूतसूत महाप्राज्ञ व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ॥ चतुर्थीं कोटिरुद्राख्या श्राविता संहिता त्वया ॥ २ ॥ अथोमासंहितान्तःस्थनानाख्यानसमन्वितम् ॥ ब्रूहि शंभोश्चरित्रं वै साम्बस्य परमात्मनः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ महर्षयश्शौनकाद्याः शृणुत प्रेमतः शुभम्॥शांकरं चरितं दिव्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं परम् ॥४॥ इतीदृशं पुण्यप्रश्नं पृष्टवान् मुनिसत्तमः॥व्यासस्सनत्कुमारं वै शैवं सच्चरितं जगौ ॥ ५ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ वासुदेवाय यत्प्रोक्तमुपमन्युमहर्षिणा ॥ तदुच्यते मया व्यास चरितं हि महेशितुः ॥ ६ ॥ पुरा पुत्रार्थमगमत्कैलासं शंकरालयम् ॥ वसुदेवसुतः कृष्णस्तपस्तप्तुं शिवस्य हि ॥ ७ ॥ अत्रोपमन्युं संदृष्ट्वा तपंतं शृंग उत्तमे ॥ प्रणम्य भक्त्या स मुनिं पर्यपृच्छत्कृताञ्जलिः ॥ ८ ॥

वर्णन करो ॥ ३ ॥ सूतजी बोले, हे शौनकादि महर्षियो ! तुम उस भुक्ति मुक्तिके देनेवाले शंकरके दिव्य चरित्रोंको सुनो ॥ ४ ॥ ऐसेही पहले मुनिश्रेष्ठ व्यासजीने इस पवित्र प्रश्नको सनत्कुमारजीसे किया था, तब उन्होंने उनसे शिवजीका परम चरित्र कहा था ॥ ५ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे व्यासजी ! महर्षि उपमन्युने जो श्रीकृष्णसे कहा था, वही मैं शंकरका चरित्र आपसे कहता हूं ॥६॥ पहले वसुदेवके पुत्र श्रीकृष्णजी पुत्रके निमित्त शिवजीका तप करनेको कैलासमें गये ॥ ७ ॥ वहां पर्वतके उत्तम शृंगपर उपमन्युमहर्षिको तप करता हुआ देखकर प्रणामकर

हाथजोड श्रीकृष्णजी पूंछने लगे ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णजी बोले, हे महाबुद्धिमान् शैवोंमें श्रेष्ठ सन्मति उपमन्युजी ! मैं पुत्रके निमित्त इस पर्वतमें शंकरका तप करने आया हूं ॥ ९ ॥ हे मुने ! आप आनन्दका करनेवाला शिवजीका माहात्म्य सुनाओ, जिसको सुनकर मैं भक्तिसे शंकरका उत्तम तप आरंभ करूं ॥१०॥ सनत्कुमार बोले, हे व्यासजी ! ऐसा उन बुद्धिमान् श्रीकृष्णजीका वचन सुन वह प्रसन्नचित्त उपमन्युऋषि शिवको स्मरणकर कहने लगे ॥११॥ उपमन्यु बोले, हे श्रीकृष्णजी ! हे महाशैव ! तुम शिवजीकी महिमाको सुनो भक्तिकी बढानेवाली जिन महिमाको

श्रीकृष्ण उवाच॥उपमन्यो महाप्राज्ञ शैवप्रवर सन्मते॥पुत्रार्थमगमं तप्तुं तपोऽत्र गिरिशस्य हि॥९॥ब्रुहि शंकरमाहात्म्यं सदा नन्दकरं मुने ॥ यच्छ्रुत्वा भक्तितः कुर्य्यां तप ऐश्वरमुत्तमम्॥१०॥॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य वासुदेवस्य धीमतः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा ह्युपमन्युस्स्मरञ्छिवम् ॥११॥ ॥ उपमन्युरुवाच॥ शृणु कृष्ण महाशैव महिमानं महेशितुः ॥ यमद्राक्षमहं शंभोर्भक्तिवर्द्धनमुत्तमम्॥१२॥तपःस्थोऽहं समद्राक्षं शंकरं च तदायुधान् ॥ परिवारं समस्तं च विष्ण्वादीनमरादिकान् ॥१३॥ त्रिभिरंशैश्शोभमानमजस्रसुखमव्ययम् ॥ एकपादंमहादंष्ट्रं सज्वालकवलैर्मुखैः ॥१४॥ द्विसहस्रमयूखानां ज्योतिषाऽतिविराजितम् ॥ सर्वास्त्रप्रवराबाधमनेकाक्षं सहस्रपात् ॥१५॥यश्च कल्पान्तसमये विश्वं संहरति ध्रुवम् ॥ नावध्यो यस्य च भवेत्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १६ ॥ महेश्वरभुजोत्सृष्टं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ निर्ददाह द्रुतं कृत्स्नं निमेषार्द्धान्न संशयः ॥ १७ ॥

मैंने देखा है सो कहता हूं ॥ १२ ॥ तप करते हुए मैंने शिवजीको तथा उनके शस्त्रों और परिवार और विष्णु आदि देवताओंका दर्शन किया ॥ १३ ॥ ब्रह्मादि तीनों अंशोंसे शोभायमान नित्य सुखदायक अविनाशी एक चरणधारी बडी दंष्ट्रावाले अग्निके लपटोंसे व्याप्त मुखोंसे शोभित हुये ॥ १४ ॥ सहस्र किरणोंकी कान्तिसे विराजमान सम्पूर्ण सुन्दर अस्त्रोंको धारण किये अनेक नेत्रवाले सहस्र चरणधारी ॥ १५ ॥ जो प्रलयके समयमें निश्चय संसारको विनाश करते हैं जिनको चर अचर सहित तीनों लोकोंमें कोई अवध्य नहीं है ॥ १६ ॥ जिन महेश्वरने

भुजाओंसे उत्पन्न हुए चर अचर सहित इस त्रिलोक जगत्को आधे पलमें निस्सन्देह शीघ्र भस्म किया था ॥ १७ इस प्रकार शिवके समीपमें स्थित हो तपमें मग्नहुए मैंने उन अविनाशी शंभुको तथा उनके गोपनीय दिव्य अस्त्रोंको देखा जिनके समान वा अधिक अस्त्र किसी जगह नहीं था ॥ १८ ॥ जो सब लोकोंमें त्रिशूल नामसे प्रसिद्ध है, अतिप्रचंड सम्पूर्ण शस्त्र अस्त्रोंका नाश करनेवाला विजयास्त्र है ॥ १९ ॥ जो समस्त भूमण्डलको विदीर्ण करता तथा जो समुद्रोंको सुखाता और संपूर्ण तारागणोंको गिराता है, इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २० ॥ जिस त्रिशूलास्त्रने प्रथम यौवनाश्व तथा अतिबली चक्रवर्ती महातेजस्वी तीनों लोकोंको जीतनेवाले मांधाता राजाको मारा ॥ २१ ॥ तथा जिस

तपःस्थो रुद्रपार्श्वस्थं दृष्टवानहमव्ययम्॥गुह्यमस्त्रं परं चास्य न तुल्यमधिकं क्वचित्॥१८॥यत्तच्छूलमिति ख्यातं सर्वलोकेषु शूलिनः॥विजयाभिधमत्युग्रं सर्वशस्त्रास्त्रनाशकम्॥१९॥दारयेद्यन्महीं कृत्स्नां शोषयेद्यन्महोदधिम्॥पातयेदखिलं ज्योतिश्चक्रं यन्नत्र संशयः॥२०॥यौवनाश्वो हतो येन मांधाता सबलः पुरा॥चक्रवर्ती महातेजास्त्रैलोक्यविजयो नृपः ॥२१॥ दर्पाविष्टो हैहयश्च निःक्षिप्तो लवणासुरः॥शत्रुघ्नं नृपतिं युद्धे समाहूय समंततः॥२२॥तस्मिन्दैत्ये विनष्टे तु रुद्रहस्ते गतं तु यत्॥तच्छूलमिति तीक्ष्णाग्रं संत्रासजननं महत्॥२३॥त्रिशिखां भृकुटीं कृत्वा तर्जयंतमिव स्थितम् ॥ विधूम्राऽनलसंकाशं बालसूर्यमिवोदितम् ॥२४॥ सूर्य्यहस्तमनिर्देश्यं पाशहस्तमिवांतकम्॥परशुं तीक्ष्णधारं च सर्पाद्यैश्च विभूषितम्॥२५॥कल्पान्तदहनाकारं तथा पुरुषविग्रहम्॥यत्तद्भार्गवरामस्य क्षत्रियान्तकरं रणे॥२६॥रामो यद्बलमाश्रित्य शिवदत्तञ्च वै पुरा ॥ त्रिःसप्तकृत्वो न क्षत्रं ददाह ह्यृषितो मुनिः॥२७॥

अस्त्रने युद्धमें चारोंओरसे शत्रुओंके मारनेवाले राजाओंको बुलाके अभिमानी हैहय तथा लवणासुरको गिराया ॥ २२ ॥ उस दैत्यके मारे जानेपर वह तीक्ष्ण अग्रभाग युक्त भयका देनेवाला प्रबल त्रिशूल शिवजीके हाथमें गया ॥ २३ ॥ तीन शिखावाली भृकुटीको धारके डाटते हुएके समान स्थित हुए धुँयेरहित अग्निके समान तथा चढते सूर्यके उदय होनेके समान ॥ २४ ॥ सूर्यको हाथमें लिये विष्णु भगवान्के समान पाश (फांसा) हाथमें लिये यमराजके समान तीन धारवाले तथा सर्प आदिकोंसे शोभायमान परशु अस्त्रके समान ॥ २५ ॥ तथा जो प्रलयकालमें दहनाकारवाला और जो परशुरामके संग्राममें क्षत्रियोंको मारनेवाला है ॥ २६ ॥ पहले शिवके दिये हुये जिसके

बलको आश्रय करके मुनि परशुरामने प्रसन्न हो इक्कीसबार क्षत्रियोंको भस्म किया ॥ २७ ॥ ऐसे सुदर्शन चक्रको तथा सहस्र मुख वाले सर्वव्यापक दो सहस्र भुजाओं सहित पुरुषके आकारवाले शिवदेवको देखा ॥ २८ ॥ जो दो सहस्र नेत्रवाले प्रकाशित एक सहस्र चरणोंसे युक्त तथा करोडों सूर्योंके समान प्रकाशवाले तीनों लोकोंके भस्म करनेमें समर्थ ॥ २९ ॥ बडे उज्ज्वल सौ पर्वतोंके समान तीक्ष्ण वज्रको तथा बडी कांतिवाले महा धनुषको तर्कसोंके सहित सुन्दर पिनाकको ॥ ३० ॥ शक्ति तथा खड्ग पाश बडी दीप्तिवाले अंकुशको और बडी शोभायमान गदाको तथा और अनेक अस्त्रोंको धारे देखा ॥ ३१ ॥ और लोकपालोंको जो अनेक अस्त्र थे उन सबोंको

सुदर्शनं तथा चक्रं सहस्रवदनं विभुम् ॥ द्विसहस्रभुजं देवमद्राक्षं पुरुषाकृतिम् ॥२८॥ द्विसहस्रेक्षणं दीप्तं सहस्रचरणाकुलम् ॥ कोटिसूर्य्यप्रतीकाशं त्रैलोक्यदहनक्षमम् ॥ २९ ॥ वज्रं महोज्ज्वलं तीक्ष्णं शतपर्वमनुत्तमम् ॥ महाधनुः पिनाकं च सतूणीरं महा द्युतिम् ॥ ३० ॥ शक्तिं खड्गं च पाशं च महादीप्तं समांकुशम् ॥ गदां च महतीं दिव्यामन्यान्यस्त्राणि दृष्टवान् ॥३१॥ तथा च लोकपालानामस्त्राण्येतानि यानि च ॥ अद्राक्षं तानि सर्वाणि भगवद्रुद्रपार्श्वतः ॥ ३२ ॥ सव्यदेशे तु देवस्य ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ विमानं दिव्यमास्थाय हंसयुक्तं मनोनुगम् ॥ ३३ ॥ वामपार्श्वे तु तस्यैव शंखचक्रगदाधरः ॥ वैनतेयं समास्थाय तथा नारायणः स्थितः ॥ ३४ ॥ स्वायंभुवाद्या मनवो भृग्वाद्या ऋषयस्तथा ॥ शक्राद्या देवताश्चैव सर्व एव समं ययुः ॥ ३५ ॥ स्कंद श्शक्तिं समादाय मयूरस्थस्सघंटकः ॥ देव्यास्समीपे संतस्थौ द्वितीय इव पावकः ॥ ३६ ॥ नंदी शूलं समादाय भवाग्रे समव स्थितः ॥ सर्वभूतगणाश्चैवं मातरो विविधाः स्थिताः ॥ ३७ ॥

भगवान् शिवके समीप देखा ॥ ३२ ॥ शिवजीके दाहिनी ओर साक्षात् लोकपितामह ब्रह्माजी अपने मनके अनुकूल हंसके सहित दिव्य विमानमें चढके आये ॥ ३३ ॥ और उनके बाईं ओर शंख चक्र गदाधारी साक्षात् नारायण गरुडपर चढके आये ॥ ३४ ॥ स्वायंभुव आदि मनु तथा भृगु आदि ऋषि और इन्द्र आदि सब देवता भी इनके साथ आये ॥ ३५ ॥ और स्वामिकार्त्तिक घंटासहित मोरपर चढे शक्तिको लेके आये दूसरे अग्निके समान देवी पार्वतीके समीपमें स्थित हुए ॥ ३६ ॥ नन्दी त्रिशूलको लेके शिवके आगे उपस्थित हुए तथा संपूर्ण भूतगण

और अनेक चण्डिका आदि मातायें स्थित हुई ॥ ३७ ॥ उस समय उन देवताओंने चारों ओरसे महादेवको घेरके उन्हें नमस्कार कर अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति की ॥ ३८ ॥ इस संसारमें जो कुछ दीखता है अथवा सुना जाता है वह सब मैं भगवान् शिवके समीप देखके अति विस्मित हुआ ॥ ३९ ॥ और बडे धैर्यको धारण कर अनेक स्तुतियोंके साथ हाथ जोड बडे आनन्दमें मग्न हुआ ॥ ४० ॥ अपने सन्मुख शिवजीको देखके मैंने भक्ति श्रद्धाके सहित आसुओंके कारण गद्गद (हीनस्वर) वाणीसे विधि पूर्वक पूजन किया ॥ ४१ ॥ तब परमेश्वर शंकर अति प्रसन्न हो प्रेम सहित मधुर वाणीसे हँसते हुयेके समान मुझसे बोले ॥ ४२ ॥ हे ब्राह्मण ! तुम मुझसे पृथक् होनेको समर्थ नहीं

तेऽभिवाद्य महेशानं परिवार्य्य समंततः ॥ अस्तुवन्विविधैः स्तोत्रैर्महादेवं तदा सुराः ॥ ३८॥ यत्किंचित्तु जगत्यस्मिन्दृश्यते श्रूयतेऽथवा ॥ तत्सर्वं भगवत्पार्श्वे निरीक्ष्याहं सुविस्मितः ॥ ३९ ॥ सुमहद्धैर्य्यमालंब्य प्रांजलिर्विविधैः स्तवैः ॥ परमानन्दसंमग्नोऽभूवं कृष्णाहमद्ध्वरे ॥ ४० ॥ सम्मुखे शंकरं दृष्ट्वा बाष्पगद्गदया गिरा ॥ अपूजयं सुविधिवदहं श्रद्धासमन्वितः ॥ ४१ ॥ भगवानथ सुप्रीतश्शंकरः परमेश्वरः ॥ वाण्या मधुरया प्रीत्या मामाह प्रहसन्निव ॥ ४२ ॥ न विचालयितुं शक्यो मया विप्र पुनः पुनः ॥ परीक्षितोसि भद्रं ते भवान्भक्त्यान्वितो दृढः ॥ ४३ ॥ तस्मात्ते परितुष्टोऽस्मि वरं वरय सुव्रत ॥ दुर्लभं सर्वदेवेषु नादेयं विद्यते तव ॥ ४४ ॥ स चाहं तद्वचः श्रुत्वा शंभोः सत्प्रेमसंयुतम्॥देवं तं प्रांजलिर्भूत्वाऽब्रुवं भक्तानुकंपिनम् ॥ ॥ ४५ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ भगवन्यदि तुष्टोऽसि यदि भक्तिः स्थिरा मयि ॥ तेन सत्येन मे ज्ञानं त्रिकालविषयं भवेत् ॥ ॥ ४६ ॥ प्रयच्छ भक्तिं विपुलां त्वयि चाव्यभिचारिणीम् ॥ सान्वयस्यापि नित्यं मे भूरि क्षीरौदनं भवेत् ॥ ४७ ॥

हो मैंने तुम्हारी बारम्बार परीक्षा कर ली, तुम्हारा कल्याण हो तुम अटल भक्तिसे युक्त हो ॥ ४३ ॥ हे सुव्रत ! इस कारण मैं तुमसे प्रसन्न हूं, सम्पूर्ण देवताओंमें दुर्लभ वरको मांगो तुम्हारे देनेके अयोग्य कोई वस्तु नहीं है ॥ ४४ ॥ तब मैं उन शिवजीके प्रेम युक्त वचनको सुन हाथ बांध भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले शिवजीसे बोला ॥ ४५ ॥ उपमन्यु बोला, हे भगवन् ! यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हैं तथा मुझमें आपकी भक्ति स्थिर है तो उस सत्यसे मेरा ज्ञान तीनों कालके विषयवाला हो ॥ ४६ ॥ और अपनेमें नाश न होनेवाली

अति गाढ भक्तिको प्रदान करो, तथा वंशके सहित मुझे नित्य दूध भात प्राप्त होवे ॥ ४७ ॥ तथा हे विभो ! मुझे तुम्हारे आश्रमकी समीपता तथा निरन्तर तुम्हारे भक्तोंमें मेरी परस्पर प्रीति होवे ॥ ४८ ॥ मेरे ऐसा कहनेपर परमेश्वर शिवजी हँसकर मुझे कृपा दृष्टिसे देखके मुझसे शीघ्र बोले ॥ ४९ ॥ शिवजी बोले, हे मुने ! हे उपमन्यो ! हे तात तुम जरा मरणके दोषोंसे पृथक् तथा स्वेच्छाचारी होओगे ॥ ५० ॥ मुनियोंमें पूजनीय तथा यश और धनसे पूर्ण शीलरूप गुण ऐश्वर्यवान् तथा क्षण क्षणमें प्रसन्नतायुक्त होगे ॥ ५१ ॥ हे मुने ! तुमको क्षीरसागरकी समीपता प्राप्त होगी जहां तुम जाना चाहोगे वहां वहां नित्य प्राप्त हो जाओगे ॥ ५२ ॥ जबतक वह अमृतमय क्षीर

ममास्तु तव सान्निध्यं नित्यं चैवाश्रमे विभो ॥ तव भक्तेषु सख्यं स्यादन्योन्येषु सदा भवेत् ॥ ४८ ॥ एवमुक्तो मया शंभुर्विहस्य परमेश्वरः ॥ कृपादृष्ट्या निरीक्ष्याशु मां स प्राह यदूद्वह ॥४९॥ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ उपमन्यो मुने तात वर्ज्जि तस्त्वं भविष्यसि ॥ जरामरणजैदोषैस्सर्वकामान्वितो भव ॥ ५० ॥ मुनीनां पूजनीयश्च यशोधनसमन्वितः ॥ शीलरूपगुणै श्वर्यं मत्प्रसादात्पदेपदे ॥ ५१ ॥ क्षीरोदसागरस्यैव सान्निध्यं पयसां निधेः ॥ तत्र ते भविता नित्यं यत्रयत्रेच्छसे मुने ॥५२॥ अमृतात्मकंतुतत्क्षीरं यावत्संयाम्यते ततः॥इमं वैवस्वतं कल्पं पश्यसे बन्धुभिस्सह॥५३॥त्वद्गोत्रं चाक्षयं चास्तु मत्प्रसादात्सदैव हि ॥ सान्निध्यमाश्रमे तेऽहं करिष्यामि महामुने ॥ ५४ ॥ मद्भक्तिस्सुस्थिरा चास्तु सदा दास्यामि दर्शनम् ॥ स्मृतश्च भवता वत्स प्रियस्त्वं सर्वथा मम ॥५५॥ यथाकामसुखं तिष्ठ नोत्कण्ठां कर्तुमर्हसि ॥ सर्वं प्रपूर्णतां यातु चिंतितं नात्र संशयः ॥५६॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ एवमुक्ता स भगवान्सूर्य्यकोटिसमप्रभः ॥ ममेशानो वरान्दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५७ ॥

सागर रहेगा तबतक इस वैवस्वत कल्पको अपने भाई बन्धु सहित देखोगे ॥ ५३ ॥ मेरे प्रसादसे तुम्हारा गोत्र अक्षय (अविनाशी) हो हे महामुने ! मैं तुम्हारे आश्रममें निकटताको प्राप्त हूँगा ॥ ५४ ॥ हे वत्स ! सदा मेरी भक्ति अति स्थिर होगी, नित्य मैं तुमको दर्शन दूंगा, तथा तुमसे स्मण किया हुआ प्रगट हूँगा और तू सब प्रकार मेरा प्रिय होगा ॥ ५५ ॥ तुम अपनी कामनाके अनुसार सुखसे रहो किसी प्रकारकी उत्कंठा नहीं करोगे तुम्हारा चाहा हुआ सब मनोरथ पूर्ण होगा इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ५६ ॥ उपमन्यु बोले, ऐसा कहके

कोटिसूर्यके समान कान्तिवाले वह भगवान् सदाशिव ईशान मुझे वरदान देके वहांही अन्तर्धान हो गये ॥ ५७ ॥ हे श्रीकृष्णजी ! इस प्रकार मैंने भुक्ति मुक्तिके देनेवाले परमेश्वर शंकरको परिवार सहित देखा ॥ ५८ ॥ और जो उन बुद्धिमान् देवदेव परमेश्वरने समाधि कहा सो सब मुझे प्राप्त हुआ ॥ ५९ ॥ प्रत्यक्ष उपस्थित हुए गन्धर्व अप्सरायें ऋषि तथा विद्याधरोंको सिद्धोंको देखो ॥ ६० ॥ चिकने पत्रोंसहित सुगंधिवाले, संपूर्ण ऋतुओंके पुष्पों सहित तथा निरन्तर पुष्प और फलोंसे परिपूर्ण हुए मनोहर वृक्षोंको देखो ॥ ६१ ॥ हे महाबाहो ! यह सम्पूर्ण भाव सहित संसारमात्र उन देवदेव महात्मा शिवजीके प्रसादसे उत्पन्न हुआ है ॥ ६२ ॥ और महादेवके प्रसादसे मुझे सम्पूर्ण

एवं दृष्टो मया कृष्ण परिवारसमन्वितः ॥ शंकरः परमेशानो भक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥ ५८ ॥ शंभुना परमेशेन यदुक्तं तेन धीमता॥तदवाप्तं च मे सर्वं देवदेवसमाधिना ॥ ५९ ॥ प्रत्यक्षं चैव ते जातान्गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ऋषीन्विद्याधरांश्चैव पश्य सिद्धान्व्यवस्थितान् ॥ ६० ॥ पश्य वृक्षान्मनोरम्यान्स्निग्धपत्रान्सुगंधिनः ॥ सर्वर्तुकुसुमैर्युक्तान्सदापुष्पफलान्वितान् ॥ ६१ ॥ सर्वमेतन्महाबाहो शंकरस्य महात्मनः ॥ प्रसादाद्देवदेवस्य विश्वं भावसमन्वितम् ॥ ६२ ॥ ममास्ति त्वखिलं ज्ञानं प्रसादाच्छूलपाणिनः ॥ भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं जानामि तत्त्वतः ॥ ६३ ॥ तमहं दृष्टवान्देवमपि देवाः सुरेश्वराः ॥ यं न पश्यंत्यनाराध्य कोऽन्यो धन्यतरो मया ॥ ६४ ॥ षड्विंशकमिति ख्यातं परं तत्त्वं सनातनम् ॥ एवं ध्यायंति विद्वांसो महत्परमक्षरम् ॥ ६५ ॥ सर्व तत्त्वविधानज्ञः सर्वतत्त्वार्थदर्शनः ॥ स एव भगवान्देवः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥६६॥ यो निजाद्दक्षिणात्पार्श्वाद्ब्रह्माणं लोककारणम्॥ वामादप्यसृजद्विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः ॥ ६७ ॥

ज्ञान है भूत वर्तमान भविष्यत् सबको ठीक ठीक जानता हूं ॥ ६३ ॥ इन्द्रादि देवता भी विना आराधना किये जिनको नहीं देख सकते हैं उन महेश्वर देवको भी मैंने देख लिया इस कारण मुझसे अधिक कौन धन्य है ॥ ६४ ॥ छब्बीस परम सनातन तत्त्व हैं ऐसा प्रसिद्ध है इस प्रकार विद्वान् परम अक्षर ब्रह्मको ध्यान करते हैं ॥ ६५ ॥ सम्पूर्ण तत्त्वोंके विधानको जाननेवाले तथा समस्त तत्त्वोंके अर्थको देखनेवाले वही भगवान् सदाशिव प्रधान पुरुषेश्वर हैं ॥६६॥ जिन्होंने अपने दाहिने भागसे लोकके कारण ब्रह्माजीको तथा बाये भागसे संसारकी

रक्षाके अर्थ विष्णुको रचा है ॥ ६७ ॥ प्रलयके प्राप्त होनेपर अपने हृदयसे शिवको उत्पन्न किया तत्पश्चात् उन्होंने सम्पूर्ण स्थावर जंगम सहित जगत्को विनाश किया ॥ ६८ ॥ वही महादेव प्रलय कालके समय प्रलयाग्निके समान सम्पूर्ण प्राणियोंको भक्षण करते हुए स्थित हैं ॥ ६९ ॥ सर्वज्ञ, सर्वभूतात्मा, सर्वभूतोद्भव, सर्वव्यापक, सब देवताओंसे देखने योग्य वह सदाशिव हैं ॥ ७० ॥ इस कारण तुम पुत्रकी प्राप्तिके निमित्त शिवका आराधन करो वह भक्तवत्सल शिव तुमसे शीघ्र प्रसन्न होंगे ॥ ७१ ॥ इति श्रीशिवमहापु० भा० टीका० पंचम्यामुमासंहितायां स्वगतिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, महात्मा उपमन्यु मुनिका ऐसा वचन सुनके महादेवमें

कल्पान्ते चैव संप्राप्तेऽसृजद्रुद्रं हृदः प्रभुः ॥ ततस्समहरत्कृत्स्नं जगत्स्थावरजंगमम्॥६८॥युगांते सर्वभूतानि संवर्तक इवानलः॥ कालो भूत्वा महादेवो ग्रसमानस्स तिष्ठति॥६९॥सर्वज्ञस्सर्वभूतात्मा सर्वभूतभवोद्भवः॥आस्ते सर्वगतो देवो दृश्यस्सर्वैश्च दैवतैः ॥ ७० ॥ अतस्त्वं पुत्रलाभाय समाराधय शंकरम् ॥ शीघ्रं प्रसन्नो भविता शिवस्ते भक्तवत्सलः ॥७१॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पंचम्यामुमासंहितायां कृष्णोपमन्युसंवादे स्वगतिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य मुनेर्वाक्य मुपमन्योर्महात्मनः ॥ जातभक्तिर्महादेवे कृष्णः प्रोवाच तं मुनिम् ॥१॥ ॥ श्रीकृष्ण उवाच॥उपमन्यो मुने तात कृपां कुरु ममोपरि ॥ येये शिवं समाराध्य कामानापुश्च तान्वद॥२॥सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्योपमन्युस्स मुनिश्शैववरो महान् ॥ कृष्ण वाक्यं सुप्रशस्य प्रत्युवाच कृपानिधिः॥३॥उपमन्युरुवाच ॥ यैर्यैर्भवाराधनतः प्राप्तो हृत्काम एव हि ॥ तांस्तान्भक्तान्प्रवक्ष्यामि शृणु त्वं वै यदूद्वह ॥ ४ ॥ शर्वात्सर्वामरैश्वर्य्यं हिरण्यकशिपुः पुरा ॥ वर्षाणां दशलक्षाणि सोऽलभच्चन्द्रशेखरात् ॥ ५ ॥

भक्ति उत्पन्न करके वह श्रीकृष्णजी उन उपमन्यु मुनिसे बोले ॥ १ ॥ श्रीकृष्णजी बोले हे मुने ! उपमन्यो ! हे तात ! मेरे ऊपर कृपाकरो जिन जिन भक्तोंने शिवकी आराधना करके अपनी कामना पाई उनको बताओ ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले, ऐसा सुन उन कृपानिधि शैवोंमें श्रेष्ठ महात्मा उपमन्यु मुनिने श्रीकृष्णजीकी प्रशंसा करके यह कहा ॥ ३ ॥ उपमन्यु बोले, हे श्रीकृष्णजी ! जिन जिन भक्तोंने शिवकी आराधनासे अपने हृदयकी कामना पूर्ण की उन उन भक्तोंके नाम बताता हूं तुम सुनो ॥४॥ पहले हिरण्यकशिपुने चन्द्रशेखर

महादेवकी आराधनासे दशलक्ष वर्षोंमें सब देवताओंके ऐश्वर्यको प्राप्त किया ॥ ५ ॥ उसका पुत्र नन्दन नामसे विख्यात हुआ उसने शिवके पूजनसे दश हजार वर्षमें इन्द्रको नीचे किया ॥ ६ ॥ हे श्रीकृष्णजी ! बडे युद्धमें विष्णुका घोर सुदर्शन चक्र तथा इन्द्रका वज्र भी उसके शरीरमें लगके टूट गया ॥ ७ ॥ संग्राममें अति बलवान् उस बुद्धिमान् दैत्यके अंगमें चक्र वज्रमुख आदि शस्त्र पीडा नहीं देते थे ॥ ८ ॥ उस बली दैत्यसे पंडित ब्राह्मण पीडित हुए तथा देवताओंके वर पाये हुए दैत्योंने सब देवताओंको मारा ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी शिवजीने शत सहस्र वर्षोंमें प्रसन्न बिजलीके समान कान्तिवाले उस दैत्यको तीनों लोकोंका आधिपत्य दिया ॥ १० ॥ शिवने

तस्याऽथ पुत्रप्रवरो नन्दनो नाम विश्रुतः॥स च शर्ववरादिन्द्रं वर्षायुतमधोनयत्॥६॥विष्णुचक्रं च तद्घोरं वज्रमाखण्डलस्य च॥ शीर्णं पुराऽभवत्कृष्ण तदंगेषु महाहवे॥७॥न शस्त्राणि वहंत्यंगे धर्मतस्तस्य धीमतः ॥ ग्रहस्यातिबलस्याजौ चक्रवज्रमुखान्यपि ॥८॥अर्द्यमानाश्च विबुधा ग्रहेण सुबलीयसा॥ देवदत्तवरा जघ्नुरसुरेन्द्रास्सुरान्भृशम्॥९॥तुष्टो विद्युत्प्रभस्यापि त्रैलोक्येश्वरता मदात् ॥ शतवर्षसहस्राणि सर्वलोकेश्वरो भवः॥१०॥तथा पुत्रसहस्राणामयुतं च ददौ शिवः॥ मम चानुचरो नित्यं भविष्यस्य ब्रवीदिति॥११॥कुशद्वीपे शुभं राज्यमददाद्भगवान्भवः॥स तस्मै शङ्करः प्रीत्या वासुदेव प्रहृष्टधीः ॥१२॥ धात्रा सृष्टश्शतमखो दैत्यो वर्षशतं पुरा ॥ तपः कृत्वा सहस्रं तु पुत्राणामलभद्भवात्॥१३॥याज्ञवल्क्य इति ख्यातो गीतो वेदेषु वै मुनिः॥आराध्य स महादेवं प्राप्तवाञ्ज्ञानमुत्तमम्॥१४॥वेदव्यासस्तु यो नाम्ना प्राप्तवानतुलं यशः॥सोऽपि शंकरमाराध्य त्रिकालज्ञानमाप्तवान्॥१५॥

दशसहस्र पुत्रोंको प्रदान किया और मेरा यह नित्य अनुचर रहेगा ऐसा कहा ॥ ११ ॥ और भगवान् शिवने उस कुश द्वीपमें शुभ राज्य दिया हे कृष्ण ! वह शंकर प्रीतिके सहित उसपर प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥ फिर ब्रह्माजीने सौ वर्ष पीछे उस दैत्यको शतमख नामसे उत्पन्न किया तब उसने तप करके शिवजीसे सौ पुत्र पाये ॥ १३ ॥ वेदोंमें प्रसिद्ध हुए याज्ञवल्क्य नामक मुनिने भी महादेववकी आराधना करके उत्तम ज्ञान पाया ॥ १४ ॥ और जो वेदव्यास नामसे विख्यात हैं उन्होंने बहुत यश पाया और उन्होंने शिवकी पूजा करके तीनों कालका ज्ञान

पाया ॥ १५ ॥ इन्द्रसे तिरस्कार किये हुये वालखिल्य ऋषियोंने शिवके प्रभावसे सबोंसे दुर्जय सोमरसके हरनेवाले गरुडको पाया ॥ १६ ॥ शिवके पूर्व क्रोधसे सम्पूर्ण जल नष्ट होगये तब देवताओंने समकपालसे यज्ञ करके जल प्रवृत्त किया ॥ १७ ॥ और अत्रिकी भार्या अनसूयाने तीन सौ वर्षतक निराहार मूसलों पर सोके उन शिवकी कृपासे अपने पुत्रोंको पाया ॥ १८ ॥ दत्तात्रेय मुनि चन्द्रमा तथा दुर्वासा ऋषिको प्राप्त किया, तथा चित्रकूट पर्वतपरसे गंगाको प्रगट किया ॥ १९ ॥ हे श्रीकृष्णजी ! विकर्ण भी भक्तोंके सुख देनेवाले महादेवको प्रसन्न करके बडी सिद्धि पाई ॥ २० ॥ तथा अटल भक्तिवाले राजाचित्रसेनने शंभुको प्रसन्न करके सम्पूर्ण राजाओंके भयसे

इन्द्रेण वालखिल्यास्ते परिभूतास्तु शङ्करात् ॥ लेभिरे सोमहर्तारं गरुडं सर्वदुर्जयम् ॥ १६ ॥ आपः प्रनष्टाः सर्वाश्च पूर्वरोषात्कपर्द्दिनः ॥ शर्वं समकपालेन देवैरिष्ट्वा प्रवर्तितम् ॥ १७ ॥ अत्रेर्भार्य्या चानसूया त्रीणि वर्षशतानि च ॥ मुशलेषु निराहारा सुत्वा शर्वात्ततस्सुतान् ॥ १८ ॥ दत्तात्रेयं मुनिं लेभे चन्द्रं दुर्वाससं तथा ॥ गंगां प्रवर्तयामास चित्रकूटेपतिव्रता ॥ १९ ॥ विकर्णश्च महादेवं तथाभक्तसुखावहम् ॥ प्रसाद्य महतीं सिद्धिमाप्तवान्मधुसूदन ॥ २० ॥ चित्रसेनो नृपश्शंभुं प्रसाद्य दृढभक्तिमान् ॥ समस्तनृपभीतिभ्योऽभयं प्रापातुलं च कम् ॥ २१ ॥ श्रीकरो गोपिकासूनुर्नृपपूजाविलोकनात् ॥ जातभक्तिर्महादेवे परमां सिद्धिमाप्तवान् ॥ २२ ॥ चित्राङ्गदो नृपसुतस्सीमन्तिन्याः पतिर्हरे ॥ शिवानुग्रहतो मग्नो यमुनायां मृतो न हि ॥ २३ ॥ स च तक्षालयं गत्वा तन्मैत्रीं प्राप्य सुव्रतः ॥ आयातः स्वगृहं प्रीतो नानाधनसमन्वितः ॥ २४ ॥ सीमंतिनी प्रिया तस्य सोमव्रतपरायणा ॥ शिवानुग्रहतः कृष्ण लेभे सौभाग्यमुत्तमम् ॥ २५ ॥ तत्प्रभावाद्धते तस्मिन्नेको द्विजसुतः पुरा ॥ कश्चित्स्त्रीत्वं गतो लोभात्कृतदाराकृतिश्छलात् ॥ २६ ॥

बचके बडे अभयको पाया ॥ २१ ॥ श्रीकर नामक गोपिकाके पुत्रने राजाकी पूजाके देखने मात्रसे महादेवमें भक्ति उत्पन्न कर परम सिद्धिको प्राप्त किया ॥ २२ ॥ हे कृष्ण ! सीमंतिनी रानीका पति राजा चित्रांगद यमुनाजीमें डूबने परभी शिवके अनुग्रहसेही नहीं मरा ॥ २३ ॥ और वह श्रेष्ठ व्रतवाले राजपुत्र सर्पोंके स्थानको जाके उनके साथ मित्रता करके प्रसन्न हो अनेकधन सम्पत्तिसे भरपूर हो अपने घरको आये ॥ २४ ॥ हे कृष्ण ! सोमव्रतमें तत्पर हुई उसकी भार्याने शिवकी दयासे बडा उत्तम सौभाग्य पाया ॥ २५ ॥ कभी उस सोमव्रतमें एक ब्राह्मणके

पुत्रने लोभके कारण कपटसे स्त्रीका आकार बनाया और उसके प्रभावसे वह स्त्रीपनको प्राप्त होगया ॥ २६ ॥ पहले कोई दुष्टा व्यभिचारिणी चंचुकाने गोकर्णमें ब्राह्मणसे धर्मकथाको सुनके शिवकी भक्तिसे बडी सुन्दर गति पाई ॥ २७ ॥ बिन्दुमें प्राप्त हुआ पापी चंचुकापति भी अपनी स्त्रीकी कृपासे शिवपुराणको सुनके शिवलोकको पहुंचा ॥ २८ ॥ पिंगलानाम वेश्या और मदरनामक नीच ब्राह्मण दोनों शिवको पूजके श्रेष्ठ गतिको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥ महानन्दा नामवाली कोई वेश्या शिवके चरणोंमें तत्पर हुई दृढभक्तिसे शिवको प्रसन्न करके शुभ गतिको प्राप्त हुई ॥ ३० ॥ कैकेयी नामवाली ब्राह्मणकी पुत्री तथा सादरा नामकी शिवव्रत करनेवाली विप्रकन्या महादेवके व्रत धारण करनेसे बडे

चंचुका पुंश्चली दुष्टा गोकर्णे द्विजतः पुरा ॥ श्रुत्वा धर्मकथां शंभोर्भक्त्या प्राप परां गतिम् ॥ २७ ॥ स्वस्त्र्यनुग्रहतः पापी बिंदुगो चंचुकापतिः ॥ श्रुत्वा शिवपुराणं स सद्गतिं प्राप शांकरीम् ॥ २८ ॥ पिंगला गणिका ख्याता मदराह्वो द्विजाधमः ॥ शैवमृषभमभ्यर्च्य लेभाते सद्गतिं च तौ ॥२९॥ महानन्दाभिधा कचिद्वेश्या शिवपदाहता ॥ दृढात्पणात्सुप्रसाद्य शिवं लेभे च सद्गतिम् ॥ ३० ॥ कैकेयी द्विजबालाः च सादराह्वा शिवव्रता ॥ परमं हि सुखं प्राप शिवेशव्रतधारणात् ॥ ३१ ॥ विमर्षणश्च नृपतिश्शिवभक्तिं विधाय वै ॥ गतिं लेभे परां कृष्ण शिवानुग्रहतः पुरा ॥ ३२ ॥ दुर्जनश्च नृपः पापी बहुस्त्रीलंपटः खलः ॥ शिवभक्त्या शिवं प्राप निर्लिप्तः सर्वकर्म्मसु ॥ ३३ ॥ सस्त्रीकश्शबरो नाम्ना शंकरश्च शिवव्रती ॥ चिताभस्मरतो भक्त्या लेभे तद्गतिमुत्तमाम् ॥ ३४ ॥ सौमिनी नाम चाण्डाली संपूज्याज्ञानतो हि सा ॥ लेभे शैवीं गतिं कृष्ण शंकरानुग्रहात्परात् ॥ ३५ ॥ महाकालाभिधो व्याधो किरातः परहिंसकः ॥ समभ्यर्च्य शिवं भक्त्या लेभे सद्गतिमुत्तमाम् ॥ ३६ ॥

सुखको प्राप्त हुई ॥ ३१ ॥ विमर्षणनामक राजानेभी पहले शिवभक्ति करके शिवकी कृपासे परम गति पाई ॥ ३२ ॥ दुर्जन पापी बहुत स्त्रियोंमें तत्पर दुष्ट राजा शिवकी आराधनासे सम्पूर्ण कर्मोंमें लिप्त न होके प्राप्त हुआ ॥ ३३ ॥ शिवव्रत करनेवाला शंकर तथा शबरनामक पुरुष अपनी स्त्रीके सहित भक्तिसे चिताभस्मका लेपन करके उत्तम गतिको प्राप्त हुआ ॥ ३४ ॥ हे कृष्ण ! सौमिनीनामकी चांडालीने अज्ञानसे शिवको पूजके महादेवकी अतिकृपासे शिवसम्बन्धी गति पाई ॥ ३५ ॥ महाकाल नामक दूसरोंको मारनेवाला व्याध

(भील) भक्तिसे शिवको पूज श्रेष्ठ गतिको प्राप्त हुआ ॥ ३६ ॥ पहले मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाने शिवके अनुग्रहसे संसारमें मुक्ति देनेवाली शिवकी भक्ति तथा अपने मतको फैलाया ॥ ३७ ॥ विश्वामित्रभी लोकोंके कल्याण करनेवाले शिवको पूजके मानों दूसरे ब्रह्माके समान क्षत्रिय ब्राह्मण हुए ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ! शैवोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीभी भक्तिसे शिवको पूजके सब लोकोंके पितामह तथा सृष्टि उत्पन्न कर्त्ता हुए ॥ ३९ ॥ हे कृष्ण ! मार्कंडेय मुनिभी शिवके अनुग्रहसे चिरंजीवी महाप्रभु तथा शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ शोभायमान हुए ॥ ४० ॥ हे श्रीकृष्णजी ! पहले सब देवताओंके स्वामी इन्द्रने शिवजीके अनुग्रहसे तीनों लोकोंको भोगा ॥ ४१ ॥ महाशैव बलिका पुत्र शिवके अनुग्रहसे जितेन्द्रिय हुआ तथा

दुर्वासा मुनिशार्दूलश्शिवानुग्रहतः पुरा॥तस्तार स्वमतं लोके शिवभक्तिं विमुक्तिदाम्॥३७॥कौशिकश्च समाराध्य शंकरं लोक शंकरम् ॥ ब्राह्मणोऽभूत्क्षत्रियश्च द्वितीय इव पद्मभूः॥३८॥शिवमभ्यर्च्य सद्भक्त्या विरंचिश्शैवसत्तमः ॥ अभूत्सर्गकरः कृष्ण सर्वलोकपितामहः॥३९॥ मार्कण्डेयो मुनिवरश्चिरंजीवी महाप्रभुः॥शिवभक्तवरःश्रीमाञ्शिवानुग्रहतो हरे॥४०॥देवेन्द्रो हि महा शैवस्त्रैलोक्यं बुभुजे पुरा॥शिवानुग्रहतःकृष्ण सर्वदेवाधिपःप्रभुः॥४१॥बलिपुत्रो महाशैवश्शिवानुग्रहतो वशी॥बाणो बभूव ब्रह्मा ण्डनायकस्सकलेश्वरः॥४२॥हरिश्शक्तिश्च सद्भक्त्या दधीचश्च महेश्वरः॥शिवानुग्रहतोऽभूवंस्तथा रामो हि शांकरः॥४३॥कणादो भार्गवश्चैव गुरुर्गौतम एव च ॥ शिवभक्त्या बभूवुस्ते महाप्रभव ईश्वरा॥४४॥ शाकल्यश्शंसितात्मा च नववर्षशतान्यपि ॥ भव माराधयामास मनोयज्ञेन माधव॥४५॥तुतोष भगवानाहग्रंथकर्ता भविष्यसि॥वत्साक्षय्या च ते कीर्तिस्त्रैलोक्ये प्रभविष्यति॥४६॥

सबोंका स्वामी बाणासुर ब्रह्माण्डका नायक हुआ ॥ ४२ ॥ विष्णु, शक्ति, दधीचि तथा रामचन्द्र (परशुराम) भी शिवके अनुग्रहसे महाशैव हुये ॥ ४३ ॥ काणाद, भार्गव, गुरु, गौतम वह सब राजा शिवकी भक्तिसे बडे तथा सबके स्वामी हुए ॥ ४४ ॥ हेश्रीकृष्णजी ! प्रशंसनीय आत्मावाले शाकल्य ऋषिने नौसौवर्ष मनोयज्ञसे शिवका आराधन कर ॥ ४५ ॥ उन्हें सन्तुष्ट किया तो भगवान् शिव बोले हे वत्स ! तू ग्रन्थोंका कर्ता होगा तथा तीनों लोकमें तेरी अटलकीर्ति होगी ॥ ४६ ॥

हे ऋषिश्रेष्ठ ! और तेरा कुल ऋषियोंसे शोभायमान तथा अक्षय होगा और तुम सूत्रकार होओगे ॥४७॥ हे यदुनन्दन इस प्रकार उस मुनिश्रेष्ठने शिवसे वरदान पाया और तीनों लोकोंमें विख्यात और पूजनीय हुआ ॥ ४८ ॥ सतयुगमें सावर्णिनामसे प्रसिद्ध ऋषिने इसी स्थानमें साठसौवर्ष तप किया ॥ ४९ ॥ तब भगवान् शिव उनसे बोले हे अनघ ! मैं तुमसे सन्तुष्ट हुआ तुम ग्रन्थकर्ता और लोकोंमें विख्यात अजर अमर होगे ॥ ५० ॥ इस प्रकार पहले पुण्यके बल पूजित हुए महादेवजी मनोवांछित शुभ कामनाओंको पूर्ण करते हैं ॥ ५१ ॥ भगवान् शिवके जो गुण हैं

अक्षयं च कुलं तेऽस्तु महर्षिभिरलंकृतम्॥भविष्यसि ऋषिश्रेष्ठ सूत्रकर्ता ततस्ततः॥४७॥इत्येवं शंकरात्प्राप वरं मुनिवरस्स वै॥ त्रैलोक्ये विततश्चासीत्पूज्यश्च यदुनन्दन ॥४८॥ सावर्णिरिति विख्यात ऋषिरासीत्कृते युगे॥इह तेन तपस्तप्तं षष्टिवर्षशतानि च ॥ ४९ ॥ तमाह भगवान्रुद्रस्साक्षात्तुष्टोस्मि तेऽनघ ॥ ग्रंथकृल्लोकविख्यातो भवितास्यजरामरः ॥५०॥ एवंविधो महादेवः पुण्यपूर्वतरैस्ततः ॥ समर्च्चितश्शुभान्कामान्प्रददाति यथेप्सितान् ॥५१॥ एकेनैव मुखेनाहं वक्तुं भगवतो गुणाः॥ये संति तान्न शक्नोमि ह्यपि वर्षशतैरपि ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पंचम्यामुमासंहितायां सनत्कुमारव्याससंवादे उपमन्यूपशोदे नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य सोब्रवीत्तं महामुनिम् ॥ विस्मयं परमं गत्वोपमन्युं शांतमानसम् ॥ १ ॥ वासुदेव उवाच ॥ धन्यस्त्वमसि विप्रेन्द्र कस्त्वां स्तोतुमलं कृती ॥ यस्य देवादिदेवस्ते सान्निध्यं कुरु तेश्रमे ॥ २ ॥ दर्शनं मुनिशार्दूल दद्यात्स भगवाञ्छिवः ॥ अपि तावन्ममाप्येवं प्रसादं वा करोत्वसौ ॥ ३ ॥

उनको एक मुखसे वर्णन करनेको मैं सौ वर्षमें भी समर्थ नहीं होसकता ॥५२॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं० उ० सं० उपमन्यूपदेशो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले ऐसा उन उपमन्युऋषिका वचन सुन श्रीकृष्णजी अतिविस्मयको प्राप्तहो शान्तचित्त महामुनिसे कहने लगे ॥ १ ॥ श्रीकृष्णजी बोले, हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! तुम धन्य हो कौन तुम्हारी स्तुति करनेको समर्थ है, जिन तुम्हारे आश्रमके समीप आदिदेव महादेव निवास करते हैं ॥ २ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! वे भगवान् शिव मुझेभी दर्शन देवें तथा मेरे ऊपरभी प्रसन्न हों ॥ ३ ॥

उपमन्यु बोले, हे पुरुषोत्तम ! थोडेही समयमें उनकी कृपासे तुम महादेवका दर्शन करलोगे इसमें सन्देह नहीं ॥४॥ हे हरे ! और सोलह महीनेमें तुम पार्वतीसमेत शिवजीसे श्रेष्ठ वरदान पाओगे, वह शिव तुम्हें वर क्यों न देंगे ॥ ५ ॥ हे अच्युत ! तुम सब देवताओंसे पूजनेयोग्य तथा गुणोंमें प्रशंसनीय हो, मैं श्रद्धायुक्त तुमसे जपनेयोग्य मन्त्र कहताहूं ॥६॥ उस जपके प्रभावसे सत्यही तुम शिवका दर्शन कर लोगे तथा शिवजीसे अपने बलके समान पुत्रको पाओगे ॥७॥ हे हरे "ॐ नमः शिवाय" यह जपनेयोग्य सम्पूर्ण कामनाओंका देनेवाला भुक्ति और मुक्तिका देने

उपमन्युरुवाच ॥ अचिरेणैव कालेन महादेवं न संशयः ॥ तस्यैव कृपया त्वं वैद्रक्ष्यसे पुरुषोत्तम॥४॥षोडशे मासि सुवरान् प्राप्स्यसि त्वं महेश्वरात् ॥ सपत्नीकात्कथं नो दास्यते देवो वरान्हरे॥५॥पूज्योसि दैवतैस्सर्वैः श्लाघनीयस्सदा गुणैः॥जाप्यं तेऽहं प्रवक्ष्यामि श्रद्दधानाय चाच्युत॥६॥तेन जपप्रभावेण सत्यं द्रक्ष्यसि शंकरम् ॥ आत्मतुल्यबलं पुत्रं लभिष्यसि महेश्वरात् ॥ ७ ॥ जपो नमश्शिवायेति मंत्रराजमिमं हरे ॥ सर्वकामप्रदं दिव्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥८॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवं कथयतस्तस्य महादेवाश्रिताः कथाः॥दिनान्यष्टौ प्रयातानि मुहूर्तमिव तापस॥९॥नवमे तु दिने प्राप्ते मुनिना स च दीक्षितः ॥ मंत्रमध्यापितं शार्वमाथर्वशिरसं महत्॥१०॥जटी मुण्डी च सद्योऽसौ बभूव सुसमाहितः ॥ पादांगुष्ठोद्धततनुस्तेपे चोद्ध्वभुजस्त था ॥ ११ ॥ संप्राप्ते षोडशे मासि संतुष्टः परमेश्वरः ॥ पार्वत्या सहितश्शंभुर्ददौ कृष्णाय दर्शनम् ॥ १२ ॥ पार्वत्या सहितं देवं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥ ब्रह्माद्यैस्स्तूयमानं तु पूजितं सिद्धकोटिभिः ॥ १३ ॥

वाला दिव्य मंत्रोंमें श्रेष्ठ मंत्र है ॥८॥ सनत्कुमारजी बोले, हे तापस ! इस प्रकार महादेव सम्बन्धी कथाको कहते कहते उनको आठ दिन एक मुहूर्तके समान बीत गये ॥ ९ ॥ नवेंदिन उन मुनिने उन्हें दीक्षा दी तथा अथर्वशीर्षस्थ शिवका महामंत्र बताया ॥ १० ॥ और वे जटाधारी मुंडी सावधान चित्त हो ऊपरको भुजा उठाय पैरके अंगूठेपर सब शरीरका भार रखके तप करने लगे ॥ ११ ॥ सोलहवें महीनेके प्राप्त होनेपर पार्वतीके समेत साक्षात् महादेवने श्रीकृष्णको दर्शन दिये ॥ १२ ॥ तीन नेत्रवाले चन्द्रशेखर ब्रह्मादि देवताओंसे स्तूयमान कोटिसिद्धोंसे

पूजित पार्वती सहित शिवदेवको ॥ १३ ॥ सुन्दर माला तथा वस्त्रधारी भक्तिसे नम्र हुए देव असुरोंसे विशेषतापूर्वक नमस्कार किये गये तथा अनेक आभूषणोंसे शोभायमान ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण आश्चर्यवाले कान्त महेश अज अविनाशी अनेकगणोंसे व्याप्त सन्तुष्ट दोनों पुत्रोंके सहित प्रभु ॥ १५ ॥ ऐसे शंकरको देखके विस्मयसे विकसित नेत्रवाले श्रीकृष्णजीने हाथ जोड प्रसन्न हो ॥ १६ ॥ कंधे झुकाय अनेक प्रकारकी स्तुतियोंसे वाङ्मय सहस्रनामसे देवताओंके स्वामी शिवको सन्तुष्ट किया ॥ १७ ॥ तत्पश्चात् गंधर्वोंसहित देवता तथा विद्याधर महोरग इन्होंने अपने मनके अनुकूल श्रेष्ठ स्तोत्रोंको तथा पुष्पवृष्टिको किया ॥ १८ ॥ पार्वतीके मुखको देखके भक्तवत्सल भगवान् रुद्र प्रसन्न हो श्रीकृष्णजीसे

दिव्यमाल्याम्बरधरं भक्तिनम्रैस्सुरासुरैः ॥ प्रणतंचविशेषेण नानाभूषणभूषितम् ॥१४॥ सर्वाश्चर्यमयं कांतं महेशमजमव्ययम्॥ नानागणान्वितं तुष्टं पुत्राभ्यां संयुतं प्रभुम् ॥१५॥ श्रीकृष्णः प्रांजलिर्दृष्ट्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ईदृशं शंकरं प्रीतः प्रणनाम महोत्सवः ॥१६॥ नानाविधैः स्तुतिपदैर्वाङ्मयेनार्चयत्तदा ॥ सहस्रनाम्ना देवेशं तुष्टाव नतकंधरः ॥ १७ ॥ ततो देवास्सगंधर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ मुमुचुः पुष्पवृष्टिं च साधुवादान्मनोनुगान् ॥१८॥ पार्वत्याश्च मुखं दृष्ट्वा भगवान्भक्तवत्सलः ॥ उवाच केशवं तुष्टो रुद्रश्चाथ बिडौजसा ॥ १९ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ कृष्णं जानामि भक्तं त्वां मयि नित्यं दृढव्रतम् ॥ वृणीष्व त्वं वरान्मत्तः पुण्यांस्त्रैलोक्यदुर्लभान् ॥ २० ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णः प्रांजलिरादरात् ॥ प्राह सर्वेश्वरं शम्भुं सुप्रणम्य पुनः पुनः ॥२१॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ देवदेव महादेव याचेऽहं ह्युत्तमान्वरान् ॥ त्वत्तोऽष्टप्रमितान्नाथ त्वयो दिष्टान्महेश्वर ॥२२॥ तव धर्म्मे मतिर्नित्यं यशश्चाप्रचलं महत् ॥ त्वत्सामीप्यं स्थिरा भक्तिस्त्वयि नित्यं ममास्त्विति ॥२३॥

बोले ॥१९॥ महादेव बोले, हे कृष्ण ! मैं तुमको अपना भक्त जानता हूं तुम मेरे दृढव्रतके धारण करनेवाले हो तीनों लोकोंमें दुर्लभ पवित्र वरोंको मुझसे ग्रहण करो ॥ २० ॥ सनत्कुमारजी बोले, ऐसा उनका वचन सुनके श्रीकृष्णजी आदरपूर्वक अञ्जलिबांध सबके स्वामी शिवको बारम्बार प्रणाम कर यह बोले ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णजी बोले, हे देवोंके देव ! हे महादेव ! नाथ ! हे महेश्वर ! मैं आपसे प्रतिज्ञा किये हुए आठ उत्तम वरोंको मांगता हूं ॥ २२ ॥ नित्य तुम्हारे धर्ममें मति तथा अटल यश आपकी समीपता आपमें सदा स्थिर भक्ति हो ॥ २३ ॥

दश पुत्र हों तथा संग्राममें बलसे अभिमानी हमारे शत्रुओंका नाश हो ॥२४॥ हे प्रभो ! शत्रुओंसे मेरा कहीं भी तिरस्कार न हो और मैं सब योगियोंमें अति प्रिय होऊँ ॥ २५ ॥ हे देवोंके स्वामी ! आठ वर मुझे प्रदान करो आपको नमस्कार है तुम सबके ईश्वर तथा विशेषकर मेरे प्रभु हो ॥२६॥ सनत्कुमारजी बोले, श्रीकृष्णजीका ऐसा वचन सुनके भगवान् शिव उनसे यह बोले कि सब वर पूर्ण होंगे ॥२७॥ तुम्हारा पुत्र साम्बनामवाला बली बडा पराक्रमी घोरप्रलयके सूर्यके समान प्रकाशित सम्वर्तकनामसूर्यही मुनियोंसे शाप दिया हुआ होगा ॥२८॥ तू मनुष्य होगा इस प्रकार

स्त्रीणां मम दशाद्यानां पुत्राश्शंभो भवंतु वै ॥ वध्याश्च रिपवस्सर्वे संग्रामे बलदर्पिताः ॥२४॥ अपमानो भवेन्नैव क्वचिन्मे शत्रुतः प्रभो ॥ योगिनामपि सर्वेषां भवेयमतिवल्लभः॥२५॥इत्यष्टौ सुवरान्देहि देवदेवनमोऽस्तु ते॥सर्वेश्वरस्त्वमेवासि मत्प्रभुश्च विशेषतः ॥२६॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तमाह भगवान्भवः ॥ सर्वं भविष्यतीत्येवं पुनस्स प्राह शूलधृक् ॥२७॥ साम्बो नाम महावीर्य्यः पुत्रस्ते भविता बली॥ घोरसंवर्तकादित्यश्शप्तो मुनिभिरेव च॥२८॥मानुषो भवितासीति स ते पुत्रो भविष्यति ॥ यद्यच्च प्रार्थितं किंचित्तत्सर्वं च लभस्व वै॥२९॥सनत्कुमार उवाच ॥ एवं लब्ध्वा वरान्सर्वाञ्छ्रीकृष्णः परमेश्वरात् ॥ नानाविधाभिर्बह्वीभिस्स्तुतिभिस्समतोषयत्॥३०॥तमाहाथ शिवा तुष्टा पार्वती भक्तवत्सला॥वासुदेवं महात्मानं शंभुभक्तं तपस्विनम् ॥३१॥ ॥ पार्वत्युवाच ॥ वासुदेव महाबुद्धे कृष्ण तुष्टास्मि तेऽनघ ॥ गृहाण मत्तश्च वरान्मनोज्ञान्भुवि दुर्लभान् ॥३२॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः पार्वत्यास्स यदूद्वहः ॥ उवाच सुप्रसन्नात्मा भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ ३३ ॥

मुनियोंके शापसे वह सूर्य तुम्हारा पुत्र होगा जो कुछ तुमने इच्छा की सो सब प्राप्त करोगे ॥२९॥ सनत्कुमारजी बोले, इस प्रकार महादेवसे सम्पूर्ण वरोंको पाय श्रीकृष्णने अनेक प्रकारकी बडी स्तुतियोंसे शिवको सन्तुष्ट किया ॥ ३० ॥ तब उन महात्मा शिवके भक्त तपस्वी श्रीकृष्णसे सन्तुष्ट हुई भक्तवत्सला पार्वतीजी बोलीं ॥ ३१ ॥ पार्वतीने कहा, हे महाबुद्धे ! हे वासुदेव ! हे कृष्ण ! हे अनघ ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं पृथ्वीमें दुर्लभ मुझसे दिये सुन्दर वरोंको ग्रहण करो ॥३२॥सनत्कुमारजी बोले, ऐसा उन पार्वतीजीका वचन सुन वह श्रीकृष्णजी प्रसन्न हो भक्ति सहित

चित्तसे यह बोले ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णजी बोले, हे देवि ! यदि तुम मुझसे प्रसन्न हो और इस मेरे सत्य तपसे मुझे वरदान देती हो तो मेरा ब्राह्मणोंमें कदापि द्वेष न हो ॥ ३४ ॥ और मैं सदा ब्राह्मणोंको पूजूं तथा सदा मुझसे माता पिता (शिवपार्वती) सन्तुष्ट रहें ॥ ३५ ॥ और तुम्हारे दर्शनसे मेरी जहां तहां जानेपर सब प्राणियोंमें अनुकूलता रहे तथा मेरी योग्यकुलमें उत्पत्ति हो ॥ ३६ ॥ और मैं सदासुरेन्द्र आदि देवताओंको तथा सहस्रों संन्यासी और अतिथियोंको सैकडों यज्ञोंसे तृप्त करूं ॥ ३७ ॥ सदा उन्हें श्रद्धासे पवित्र हुए भोजनको कराऊं और नित्य कुटुम्बियोंके साथ मेरी प्रीति हो ॥ ३८ ॥ हे देवि ! हे शांकरि ! तुम्हारे प्रसादसे मैं सहस्रों स्त्रियोंका प्राणप्रिय होऊँ तथा उनमें मेरी

श्रीकृष्ण उवाच ॥ देवि त्वं परितुष्टासि चेद्ददासि वरान्हि मे ॥ तपसाऽनेन सत्येन ब्राह्मणान्प्रति मास्मभूत् ॥ ३४ ॥ द्वेषः कदा चिद्भद्रं पूजयेयं द्विजान्सदा ॥ तुष्टौ च मातापितरौ भवेतां मम सर्वदा ॥३५॥ सर्वभूतेष्वानुकूल्यं भजेयं यत्र तत्रगः ॥ कुले प्रसूति रुचिता ममास्तु तव दर्शनात् ॥ ३६ ॥ तर्पयेयं सुरेन्द्रादीन्देवान् यज्ञशतेन तु ॥ यतीनामतिथीनां च सहस्राण्यथ सर्वदा ॥ ३७ ॥ भोजयेयं सदा गेहे श्रद्धापूतं तु भोजनम् ॥ बांधवैस्सह प्रीतिस्तु नित्यमस्तु सुनिर्वृतिः ॥ ३८ ॥ देवि भार्य्यास हस्राणां भवेयं प्राणवल्लभः ॥ अक्षीणा काम्यता तासु प्रसादात्तव शांकरि ॥३९॥ आसां च पितरो लोके भवेयुः सत्यावादिनः ॥ इत्याद्याः सुवरास्संतु प्रसादात्तव पार्वति ॥ ४० ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवी तं चाह विस्मिता ॥ एवमस्त्विति भद्रं ते शाश्वती सर्वकामदा ॥ ४१ ॥ तस्मिंस्तांश्च वरान्दत्त्वा पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ तत्रैवांतश्च दधतुः कृत्वा कृष्णस्य सत्कृपाम् ॥ ४२ ॥ कृष्णः कृतार्थमात्मानममन्यत मुनीश्वरः ॥ उपमन्योर्मुनेराशु प्रापाश्रममननुत्तमम् ४३ ॥

अटल प्रीति हो ॥ ३९ ॥ हे पार्वति ! इनके पिता लोकमें सत्यवादी होवें इत्यादि सब वर तुम्हारे प्रसादसे प्राप्त हों ॥ ४० ॥ सनत्कुमारजी बोले, श्रीकृष्णजीका ऐसा वचन सुनके विस्मित हुई सनातनी सम्पूर्ण कामनाकी देनेवाली देवी पार्वतीने ऐसाही हो यह उनसे कहा ॥ ४१ ॥ श्रीकृष्णजीके ऊपर कृपाकर उनको सम्पूर्ण वरदान दे वे पार्वती शिव वहां ही अन्तर्द्धान होगये ॥ ४२ ॥ हे मुनीश्वर उस समय श्रीकृष्णजीने अपने आपको कृतार्थ माना और वह शीघ्रही उपमन्यु मुनिके श्रेष्ठ आश्रमको गये ॥ ४३ ॥

जब वहां श्रीकृष्णजीने उन उपमन्यु मुनिको शिरसे प्रणाम करके उनसे सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ४४ ॥ वह मुनि उनसे बोले, हे जनार्दन ! उन शिव देवसे अधिक संसारमें महादानी तथा क्रोधमें अति दुस्सह और कौन है ॥ ४५ ॥ हे गोविन्द ! हे देव ! ज्ञानमें तपमें शूरतामें वा पदमें उनसे अधिक कोई नहीं अब तुम शिवके ऐश्वर्य तथा कीर्तिको श्रवण करो ॥ ४६ ॥ यह सुन वह श्रीकृष्ण श्रद्धासे युक्त शिवकी भक्तिमें तत्पर हो शिवके माहात्म्यको पूछने लगे तब वह मुनीश्वर बोले ॥ ४७ ॥ उपमन्यु बोले, पहले ब्रह्म लोकमें महात्मा ब्रह्मयोगी दण्डीने सहस्र नामसे भगवान् शिवकी स्तुति की ॥ ४८ ॥ सांख्यके जाननेवाले निघण्टके समान विस्तृत मनुष्योंके दुर्ज्ञान

प्रणम्य शिरसा तत्र तंमुनिं केशिहाततः॥ तथा वृत्तं च तस्मै तत्समाचष्टोपमन्यवे॥४४॥ स च तं प्राह कोऽन्यस्स्याच्छर्वादे वाज्जनार्दन ॥ महादानपतिर्लोके क्रोधे वाऽतीव दुस्सहः ॥ ४५ ॥ ज्ञाने तपसि वा शौर्य्यं स्थैर्य्ये वा पद एव च ॥ शृणु शंभोस्तु गोविन्द देवैश्वर्य्यं महायशाः ॥४६॥ तच्छ्रुत्वा श्रद्धया युक्तोऽभवच्छंभोस्तु भक्तिमान् ॥ पप्रच्छ शिवमाहात्म्यं स तं प्राह मुनीश्वरः ॥ ४७ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ भगवाञ्शंकरः पूर्वं ब्रह्मलोके महात्मना ॥ स्तुतो नामसहस्रेण दण्डिना ब्रह्मयोगिना ॥ ४८ ॥ सांख्याः पठंति तद्गीतं विस्तीर्णं च निघंटवत् ॥ दुर्ज्ञानं मानुषाणां तु स्तोत्रं तत्सर्वकामदम्॥४९॥स्मरन्नित्यं शंकरं त्वं गच्छ कृष्ण गृहं सुखी ॥ भविष्यसि सदा तात शिवभक्तगणाग्रणीः ॥५०॥ इत्युक्तस्तं नमस्कृत्य वासुदेवो मुनीश्वरम् ॥ मनसा सस्मरञ्शंभुं केशवो द्वारकां ययौ ॥ ५१ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवं कृष्णस्समाराध्य शंकरं लोकशंकरम् ॥ कृतार्थोऽभून्मुनिश्रेष्ठ सर्वाजे योऽभवत्तथा ॥ ५२ ॥ तथा दाशरथी रामश्शिवमाराध्य भक्तितः ॥ कृतार्थोऽभून्मुनिश्रेष्ठ विजयी सर्वतोऽभवत् ॥ ५३ ॥

वाले सांख्यके गीतको पढते हैं परन्तु शिवका स्तोत्र सब कामनाओंका देनेवाला है ॥ ४९ ॥ हे तात ! हे कृष्ण ! उसका नित्य स्मरण कर तुम शंकरके भावको प्राप्त होओगे और सदा घरमें सुखी तथा शिव भक्तोंके समुदायमें मुख्य होओगे ॥ ५० ॥ ऐसा कहनेपर वह श्रीकृष्णजी उन मुनिको नमस्कार करके मनसे शिवको स्मरण कर द्वारकापुरीको गये ॥ ५१ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार श्रीकृष्णजी संसारके कल्याण करनेवाले शिवकी आराधना कर सबोंसे अजेय तथा कृतकृत्य हुए ॥ ५२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ !

दशरथके पुत्र रामचन्द्रजी भी भक्तिसे शिवको पूजके कृतार्थ तथा सबोंको जीतनेवाले हुए ॥ ५३ ॥ हे मुने ! पहले रामचन्द्रने पर्वतपै अति कठिन तप करके शिवजीसे ज्ञान तथा धनुष बाण प्राप्त करके ॥ ५४ ॥ समुद्रका पुल बांध कुटुम्ब सहित रावणको मार जानकीको ले अपने घरको लौट सम्पूर्ण पृथ्वीको भोगा ॥ ५५ ॥ परशुरामने तपसे सर्वव्यापी शिवको पूजके क्षत्रियोंसे नष्ट किये हुए अपने पिताको देख अति दुःखित हो ॥ ५६ ॥ शिवजीसे तीक्ष्ण परशुको पाय शिवके प्रसादसे उस फरसेके द्वारा उन क्षत्रियोंको इक्कीस बार भस्म किया ॥ ५७ ॥ अबतक भी वह तपस्वी परशुराम अजेय अमर ज्योतिर्लिंगके पूजनमें तत्पर हो सिद्ध चारणोंके सहित ॥ ५८ ॥ महेन्द्र पर्वतपर

तपस्तप्त्वाऽतिविपुलं पुरा रामो गिरौ मुने ॥ शिवाद्धनुश्शरं चापं ज्ञानं वै परमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ रावणं सगणं हत्वा सेतुं बद्ध्वां भसांनिधौ ॥ सीतां प्राप्य गृहं यातो बुभुजे निखिलां महीम् ॥ ५५ ॥ तथा च भार्गवो रामो ह्याराध्य तपसा विभुम् ॥ निरीक्ष्य दुःखितश्शर्वात्पितरं क्षत्रियैर्हतम् ॥ ५६ ॥ तीक्ष्णं स परशुं लेभे निर्ददाह च तेन तान् ॥ त्रिस्सप्तकृत्वः क्षत्त्रांश्च प्रसन्नात्परमेश्वरात् ॥ ५७ ॥ अजेयश्चामरश्चैव सोऽद्यापि तपसां निधिः ॥ लिंगार्चनरतो नित्यं दृश्यतेसिद्धचारणैः ॥ ५८ ॥ महेन्द्रपर्वते रामः स्थितस्तपसितिष्ठति ॥ कल्पांते पुनरेवासावृषिस्थानमवाप्स्यति ॥ ५९ ॥ असितस्यानुजः पूर्वं पीडया कृतवांस्तपः ॥ मूलग्राहेण विश्वस्य देवेलो नाम तापसः ॥ ६० ॥ पुरन्दरेण शप्तस्तु तपस्वी यश्च सुस्थिरम् ॥ अधर्म्यं धर्ममलभल्लिंगमारध्य कामदम् ॥ ६१ ॥ चाक्षुषस्यमनोः पुत्रो मृगोऽभूत्तु मरुस्थले ॥ वसिष्ठशापाद्बुत्समदो दण्डकारण्य एकलः ॥ ६२ ॥ हृदये संस्मरन्भक्त्या प्रवणेन युतं शिवम् ॥ तस्मान्मृत्युमुखाकारो गणो मृगमुखोऽभवत् ॥ ६३ ॥

तप करनेमें स्थित हैं और प्रलय कालके पीछे फिर भी वह ऋषिके स्थानको पावेंगे ॥ ५९ ॥ पहले असितके भ्राताने अति पीडासे तप किया और मूलग्राहसे विश्वास करके देवल नामक तपस्वी ॥ ६० ॥ जो इन्द्रसे शाप दिया गया था उसने कामनाको पूर्ण करनेवाले ज्योतिर्लिंगको पूज अधर्म योग्य कार्य करके भी धर्म पाया ॥ ६१ ॥ चाक्षुष मनुका पुत्र मरुस्थल देशमें वसिष्ठजीके शापसे मृग होके दंडकारण्यमें अकेला विचरता ॥ ६२ ॥ अपने मनमें भक्तिसे ओंकार सहित शिवको स्मरण करने लगा, तब उससे मृगके मुखवाला तथा मृत्यु मुख

आकारवाला, गण उत्पन्न हुआ ॥ ६३ ॥ फिर शिवने उसके शापको दूरकर उसे अजर अमर बनाया और प्रीतिसे गणेशका अनुगामी किया ॥ ६४ ॥ और स्वेच्छाचारी महा सम्पत्तिवाले शिवजीने गार्ग्यको भूमिपर दुर्लभ महाक्षेत्र मोक्ष तथा कालज्ञान ॥ ६५ ॥ चतुष्पाद तथा निरंतर सरस्वतीके पारगामी होना और जिनके तुल्य और कोई नहीं था ऐसे सहस्र पुत्रोंको दिया ॥ ६६ ॥ प्रसन्न हुए शिवने पराशरको जरामृत्यु रहित योगीन्द्र वेदव्यास पुत्र दिया ॥ ६७ ॥ और शंकरने मांडव्यको जीव देके फिर विसर्जन किया, तथा दश लक्ष वर्षतक

अजरामरतां नीतस्तीर्त्वा शापं पुनश्च सः ॥ शंकरेण कृतः प्रीत्या नित्यंलम्बोदरानुगः ॥ ६४ ॥ गार्ग्याय प्रददौ शर्वो मोक्षं च भुविदुर्लभम् ॥ कामचारी महाक्षेत्रं कालज्ञानं महर्द्धिमत् ॥ ६५ ॥ चतुष्पादं सरस्वत्याः पारगत्वं च शाश्वतम् ॥ न तुल्यं च सहस्रं तु पुत्राणां प्रददौ शिवः ॥ ६६ ॥ वेदव्यासं तु योगीन्द्र पुत्रं तुष्टः पिनाक धृक् ॥ पराशराय च ददौ जरामृत्युविवर्जितम् ॥६७॥ मांडव्यश्शंकरेणैव जीवं दत्त्वा विसर्जितः॥वर्षाणां दश लक्षाणि शूलाग्रादवरोपितः ॥ ६८ ॥ दरिद्रो ब्राह्मणः कश्चिन्निक्षिप्यगुरुवेश्मनि ॥ पुत्रं तु गालवं यश्च पूर्वमासीद्गृहाश्रमी ॥ ६९ ॥ गुप्तो वामुनिशालायां भिक्षुरायाति तद्गृहम् ॥ भार्य्यामुवाच यः कश्चिदवश्यं निर्धनो यतः ॥ ७० ॥ स तु वाच्यो भवत्या च न दृश्यंत इतिप्रियः ॥ अतिथेरागतस्यापि किं दास्यामि गृहे वसन् ॥ ७१ ॥ कदाचिदतिथिः कश्चित्क्षुत्तृषाक्षामतर्षितः ॥ तामुवाच स भर्ता ते क्वगतश्चेति तं च सा ॥ ७२ ॥ प्राह भर्ता मदीयस्तुसांप्रतं न च दृश्यते ॥ स ऋषिस्तामुवाचेदं ज्ञात्वा दिव्येन चक्षुषा ॥ ७३ ॥

त्रिशूलके अग्रभाग पर रक्खा ॥ ६८ ॥ पहले कोई निर्धन गृहाश्रमी ब्राह्मण अपने पुत्र गालवको गुरुके घर फेंककै ॥ ६९ ॥ मुनिशालामें गुप्त हो गया कारण उसके घर कई भिक्षुक आया करते थे उस ब्राह्मणने अपनी स्त्रीसे कहा कि--जो कोई निर्धन भिक्षुक आवे ॥ ७० ॥ तो उससे तू यह कहना कि मेरा पति यहां नहीं दीखता है अतिथिके आनेपर मैं अपने घरमें रहके उसे क्या दूंगा ॥ ७१ ॥ किसी समय भूँख प्याससे व्याकुल कोई अतिथि आया और उस स्त्रीसे यह बोला कि, तेरा पति कहां गया ॥ ७२ ॥ तब वह स्त्री उससे बोली

कि, इस समय मेरा पति यहां नहीं दीखता यह सुन उस भिक्षुकऋषिने दिव्यनेत्रसे जान यह कहा ॥७३॥कि वहां घरमें छिपाहुआ तेरा पति मरा स्थित है, तब विश्वामित्रसे जताया हुआ उसका पुत्र गालव ॥ ७४ ॥ अपने घर आके मातासे अति कठिन शाप सुन शंकरदेवका आराधन कर तथा शिवकी पूजा कर ॥ ७५ ॥ वह अपने हृदयसे शंकरको स्मरण कर अपने घरसे निकल गया तब जाते हुए उस पुत्रको देखने उसके पिताने अञ्जलि बांधे हुए उससे कहा ॥ ७६ ॥ मैं महादेवके प्रसादसे कृतकृत्य हुआ तथा धनवान् और पुत्रवान् हुआ और मरके फिर जीवित हुआ ॥ ७७ ॥ उस प्रकार मैंने तुमसे संक्षेपसे शिवका चरित्र कहा मैं विस्तारसे कहनेमें समर्थ नहीं हूं, कारण कि विस्तारपूर्वक शिवके

गृहस्थितःप्रतिच्छन्नस्तत्रैवस मृतो द्विजः ॥ विश्वामित्राभ्यनुज्ञातस्तत्पुत्रो गालवस्तथा ॥ ७४ ॥ गृहमागत्य मातुस्स श्रुत्वा शापं सुदारुणम् ॥ आराध्य शंकरं देवं पूजां कृत्वा तु शांभवीम् ॥ ७५ ॥ गृहादसौ विनिष्क्रांतस्संस्मरञ्शंकरं हृदा ॥ अथ तं तनयं दृष्ट्वा पिता तं प्राह साञ्जलिम् ॥ ७६ ॥ महादेवप्रसादाच्च कृतकृत्योऽस्मि कृत्यतः ॥ धनवान्पुत्रवांश्चैव मृतोऽहंजीवितःपुनः ॥ ७७ ॥ इति वः कथितमशेषं नाहं शक्तः समासतो व्यासात् ॥ वक्तुं शंभोश्च गुणाञ्शेषस्यापि न मुखानि स्युः ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पंचम्यासुमासंहितायां कृष्णादिशिवभक्तोद्धारणशिवमाहात्म्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ मुनयऊचुः ॥ तातताते महाभाग धन्यस्त्वं हि महामते ॥ अद्भुतेयं कथा शंभोः श्राविता परभक्तिदा ॥१॥ पुनर्ब्रूहि कथां शंभोर्व्यास प्रश्नानुसारतः ॥ सर्वज्ञस्त्वं व्यासशिष्यः शिवतत्त्वविचक्षणः ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ एवमेव गुरुर्व्यासः पृष्टवान्मेऽजसंभवम् ॥ सनत्कुमारं सर्वज्ञं शिवभक्तं मुनीश्वरम् ॥ ३ ॥

गुण वर्णन करनेमें शेषजीके मुखभी समर्थ नहीं हैं ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं० उ० सं शिवमाहात्म्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ मुनि बोले, हे तात ! हे महाभाग हे महामते ! तुम धन्य हो तुमने परम भक्ति देनेवाली शिवजीकी अद्भुत कथा सुनाई ॥ १ ॥ व्यासजीके प्रश्नोंके अनुसार फिर शिवजीकी कथा कहो तुम सर्वज्ञ हो व्यासजीके शिष्य हो शिवतत्त्वमें प्रवीण हो ॥ २ ॥ सूतजी बोले, ऐसेही मेरे गुरु व्यासजीने ब्रह्मदेवके पुत्र सर्वज्ञ शिवभक्त मुनीश्वर सनत्कुमारसे पूंछा था ॥ ३ ॥

व्यासजी बोले, हे सर्वज्ञ ! सनत्कुमारजी ! तुमने अनेक लीला विहार करने वाले महेश शंकरकी यह शुभ कथा सुनाई ॥ ४ ॥ हे तात ! फिर विस्तारपूर्वक महादेवकी महिमाको वर्णन करो यह सुननेको मेरी बडी श्रद्धा उत्पन्न होती है ॥ ५ ॥ अनेक लीलासे विहार करने वाले महिमा तथा मायाने संसारमें जिन जिनको ज्ञानका हरण करके मोहित किया सो सब कहो ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे महाबुद्धिमान् व्यासजी ! शिवजीकी सुखदायक कथाको सुनो, जिसके सुनने मात्रमें शिवजीमें भक्ति उत्पन्न होती है ॥ ७ ॥ शिवजी सबके स्वामी देव आत्मा, सबोंको देखने वाले हैं उनकी महिमासे सम्पूर्ण संसार व्याप्त हो रहा है ॥ ८ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, ईश्वर सम्बन्धी तीनों लिंगोंके स्वरूप

व्यास उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ श्रावितेयं शुभा कथा ॥ शंकरस्य महेशस्य नानालीलाविहारिणः ॥ ४ ॥ पुनर्ब्रूहि महादेव महिमानं विशेषतः ॥ श्रद्धा च महती श्रोतुं मम तात प्रवर्द्धते ॥ ५ ॥ महिम्ना येन शंभोस्तु ययेलोके विमोहिताः ॥ मायया ज्ञान माहृत्य नानालीलाविहारिणः ॥ ६ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महाबुद्धे शांकरींसुखदां कथाम् ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण शिवे भक्तिः प्रजायते ॥७॥ शिवस्सर्वेश्वरो देवस्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ महिम्ना तस्यसर्वं हि व्याप्तं च सकलं जगत् ॥ ॥ ८ ॥ शिवस्यैव परा मूर्तिर्ब्रह्मविष्ण्वीश्वरात्मिका ॥ सर्वभूतात्मभूताख्या त्रिलिंगा लिंगरूपिणी॥९॥ देवानां योन यश्चाष्टौ मानुषी नवमी च या ॥ तिरश्चां योनयः पंच भवंत्येवं चतुर्दश ॥१०॥ भूता वा वर्तमाना वा भविष्याश्चैव सर्वश ॥ शिवात्सर्वं प्रवर्तते लीयंते वृद्धिमागताः ॥ ११ ॥ ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां देवदानवभोगिनाम्॥गंधर्वाणां मनुष्याणामन्येषां वापि सर्वशः ॥ १२ ॥ बंधुर्मित्रमथाचार्य्यो रक्षन्नेताऽर्थवान्गुरुः ॥ कल्पद्रुमोऽथ वा भ्राता पिता माता शिवो मतः ॥ १३ ॥

वाली सब प्राणियोंको आत्म भूत नामक वह शिवजीकी ही परामूर्ति है ॥ ९ ॥ देवताओंकी योनि आठ तथा नौवीं मानुषी योनि है और पक्षियोंकी पांच योनि हैं इस प्रकार पन्द्रह पन्द्रह योनि होती हैं ॥ १० ॥ वर्तमान भूत भविष्य आदि सब प्रपंच शिवसे ही प्रगट होते हैं और वृद्धिको प्राप्त होके शिवमें ही लय हो जाते हैं ॥ ११ ॥ ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु चन्द्रमा, देवता, दैत्य, सर्प, गन्धर्व, मनुष्योंके तथा और सबोंके भी ॥ १२ ॥ बन्धु, मित्र, आचार्य, रक्षक, नेता तथा अर्थ बताने वाला गुरु कल्पवृक्ष व भ्राता

माता, पिता, शिव ही हैं ॥ १३ ॥ शिव ही पुरुषोंमें सर्वान्तर्यामी स्वयंवेद्य परसे भी पर जो वाणीसे कहनेमें असमर्थ तथा पर अनुपर हैं ॥ १४ ॥ हे मुने ! उनकी परम दिव्य माया सर्वत्र व्याप्त हो रही है देवता दैत्य मनुष्यों सहित सम्पूर्ण जगत् उनकी मायाके आधीन है ॥ १५ ॥ उनके सहाय प्रबल मनसे होनेवाले कामदेवने वीर विष्णु आदि प्रबल देवताओंको भी वशीभूत किया ॥ १६ ॥ हे मुनीश्वर ! शिवजीकी मायाके प्रभावसे भगवान् विष्णुने काममें मोहित हो अनेकवार पर स्त्री प्रसंग किया ॥ १७ ॥ इन्द्र देवताओंका स्वामी होके गौतमकी स्त्रीपै मोहित हो पाप करने लगे तो उस दुष्टात्माने गौतम मुनिको शाप दिया ॥ १८ ॥ जगत्में श्रेष्ठ अग्नि भी शिवकी मायासे

शिवस्सर्वमयः पुंसां स्वयं वेद्यः परात्परः ॥ वक्तुं न शक्यते यश्च परं चानु परं च यत् ॥ १४ ॥ तन्माया परमा दिव्या सर्वत्र व्यापिनी मुने ॥ तदधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १५ ॥ कामेन स्वसहायेन प्रबलेन मनोभुवा ॥ सर्वः प्रधर्षितो वीरो विष्ण्वादिः प्रबलोऽपि हि ॥ १६ ॥ शिवमायाप्रभावेणाभूद्धरिः काममोहितः ॥ परस्त्रीधर्षणं चक्रे बहुवारं मुनीश्वर ॥ १७ ॥ इन्द्रस्त्रिदशपो भूत्वा गौतमस्त्रीविमोहितः ॥ पापं चकार दुष्टात्मा शापं प्राप मुनेस्तदा ॥ १८ ॥ पावकोऽपि जगच्छ्रेष्ठो मोहितश्शिवमायया ॥ कामाधीनः कृतो गर्वात्ततस्तेनैव चोद्धृतः ॥ १९ ॥ जगत्प्राणोऽपि गर्वेण मोहितश्शिवमायया ॥ कामेन निर्जितो व्यासश्चक्रेऽन्यस्त्रीरतिं पुरा ॥ २० ॥ चण्डरश्मिस्तु मार्तण्डो मोहितश्शिवमायया ॥ कामाकुलो बभूवाशु दृष्ट्वाश्वीं हयरूपधृक् ॥२१॥ चन्द्रश्च मोहित श्शम्भोर्मायया कामसंकुलः ॥ गुरुपत्नीं जहाराथ युतस्तेनैव चोद्धृतः ॥ २२ ॥ पूर्वं तु मित्रावरुणौ घोरे तपसि संस्थितौ ॥ मोहितौ तावपि मुनी शिवमायाविमोहितौ ॥ २३ ॥

मोहित हो गर्वसे कामके वशीभूत हुए और फिर शिवने ही उनका उद्धार किया ॥ १९ ॥ हे व्यासजी ! जगत्के प्राण विष्णु भी शिवकी मायासे मोहित होनेसे कामके वशीभूत होनेसे परस्त्रीमें प्रेम करने लगे ॥ २० ॥ तीव्र किरणोंवाले सूर्य भी शिवकी मायासे मोहित हो काममें व्याकुल होके घोडीको देख शीघ्र ही घोडेके रूप धारण करनेवाले हुए ॥ २१ ॥ शिवजीकी मायासे मोहित हुए कामसे व्याकुल चन्द्रमाने भी गुरुपत्नीको हरण किया और शिवने ही उनका उद्धार किया ॥ २२ ॥ पहले घोर तपमें प्रवृत्त हुए दोनों मित्रा वरुण नामक मुनि भी शिवकी

मायासे मोहित हो ॥ २३ ॥ तरुण (युवती) उर्वशी अप्सराको देख वे दोनों कामसे पीडित हुए तब मित्रने घडेमें अपना वीर्य छोडा और वरुणने जलमें छोडा ॥ २४ ॥ तब उस कुम्भसे मित्रके पुत्र वशिष्ठजी उत्पन्न हुए वरुणसे वडवानलके समान कान्तिवाले अगस्त्यजी उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥ शिवकी मायासे मोहित हुए ब्रह्माके पुत्र दक्ष भी अपने भाइयों सहित वाणीके साथ भोग करनेकी इच्छावाले हुए ॥ २६ ॥ और ब्रह्माजीने अनेक बार शिवकी मायासे मोहित हो आसक्त हुई अपनी पुत्रियोंसे भोग करनेकी इच्छा की ॥२७॥ शिवमायासे मोहित हुए महायोगी च्यवन ऋषिने भी काममें आसक्त हो अपनी कन्यामें आसक्ति की ॥ २८ ॥ शिव मायासे मुग्ध हो कश्यपने भी कामके वशमें हो

उर्वशीं तरुणीं दृष्ट्वा कामुकोसंबभूवतुः ॥ मित्रः कुम्भे जहौ रेतो वरुणोऽपि तथा जले ॥ २४ ॥ ततः कुम्भात्समुत्पन्नो वसिष्ठो मित्रसंभवः ॥ अगस्त्यो वरुणाज्जातो वडवाग्निसमद्युतिः ॥ २५ ॥ दक्षश्च मोहितश्शंभोर्मायया ब्रह्मणस्सुतः ॥ भ्रातृभिस्स भगिन्यांवै भोक्तुकामोऽभवत्पुरा ॥ २६ ॥ ब्रह्मा च बहुवारं हि मोहितश्शिवमायया ॥ अभवद्भोक्तुकामश्च स्व सुतायां परासु च ॥ २७ ॥ च्यवनोऽपि महायोगी मोहितश्शिवमायया ॥ सुकन्यया विजह्रे स कामासक्तो बभूव ह ॥२८॥ कश्यपः शिवमायातो मोहितः कामसंकुलः ॥ ययाचे कन्यकां मोहाद्धन्वनो नृपतेः पुरा ॥ २९ ॥ गरुडः शांडिलीं कन्यां नेतुकामस्सुमोहितः ॥ विज्ञातस्तु तया सद्यो दग्धपक्षो बभूव ह ॥ ३० ॥ विभांडको मुनिर्नारीं दृष्ट्वा कामवशं गतः ॥ ऋष्यश्रृङ्गसुतस्तस्य मृग्यां जातश्शिवाज्ञया ॥ ३१ ॥ गौतमश्च मुनिश्शंभोर्मायामोहितमानसः ॥ दृष्ट्वा शारद्वतीं नग्नां रराम क्षुभितस्तया ॥ ३२ ॥ रेतः स्कन्नं दधार स्वं द्रोण्यां चैव स तापसः ॥ तस्माच्च कलशाज्जातो द्रोणश्शस्त्रभृतां वरः ॥ ३३ ॥

अज्ञानसे धन्वा राजाकी कन्या मांगी ॥ २९ ॥ मुग्ध हुए गरुडने शांडिली कन्याके लेनेकी इच्छा की फिर उस कन्याके ज्ञात होनेपर उनके पक्ष भस्म होगये ॥ ३० ॥ विभांडक मुनि भी स्त्रीको देख कामके वशीभूत हुए ऋष्यशृंगका पुत्र शिवकी आज्ञासे हिरनीमें पैदा हुआ ॥३१॥ शंभुकी मायासे मुग्ध हुए गौतम मुनिने भी शारद्वतीको नग्न देख कामसे व्याकुल हो उसके साथ रमण किया ॥ ३२ ॥ फिर उस तपस्वीने निकले हुए अपने वीर्यको दोनेमें रक्खा तो उस कलशसे शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य उत्पन्न हुए ॥ ३३ ॥

शिवकी मायासे मोहित हुये महायोगी पराशरने दासकी कन्या कुमारी मत्स्योदरीसे विहार किया * ॥ ३४ ॥ विश्वामित्र मुनिने भी शिवकी मायासे मोहित हो कामके वशमें होनेसे वनमें मेनकाके साथ विहार किया ॥ ३५ ॥ चेतना रहित हो उन्होंने वसिष्ठसे विरोध किया फिर वह शिवके प्रसादसे ब्राह्मण हुए ॥ ३६ ॥ शिव मायाके वशमें रावण वैश्रवाने कामी हो कुबुद्धिसे सीताको हरण किया और वह मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ ३७ ॥ शंकरकी मायासे मोहित हुए मुनिश्रेष्ठ बृहस्पतिने कामवश हो भ्राताकी स्त्रीसे रमण किया उससे भरद्वाज उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ हे व्यासजी ! मैंने यह महात्मा शिवकी मायाका प्रभाव वर्णन किया अब और क्या सुननेकी इच्छा है

पराशरो महायोगी मोहितश्शिवमायया ॥ मत्स्योदर्यां च चिक्रीडे कुमार्य्यां दाशकन्यया ॥ ३४ ॥ विश्वमित्रो बभूवाथ मोहितश्शिवमायया ॥ रेमे मेनकया व्यास वने कामवशं गतः ॥३५॥ वसिष्ठेन विरोधं तु कृतवान्नष्टचेतनः ॥ पुनः शिवप्रासादाच्च ब्राह्मणोभूत्स एव वै ॥ ३६ ॥ रावणो वैश्रवाः कामी बभूव शिवमायया ॥ सीतां जह्रे कुबुद्धिस्तु मोहितो मृत्युमाप च ॥ ३७ ॥ बृहस्पतिर्मुनिवरो मोहितश्शिवमायया ॥ भ्रातृपत्न्या वशी रेमे भरद्वाजस्ततोऽभवत् ॥ ३८ ॥ इति मायाप्रभावो हि शंकरस्य महात्मनः ॥ वर्णितस्ते मया व्यास किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पंचम्यामुमासंहितायां शिवमाया प्रभावर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ ये पापनिरता जीवा महानरकहेतवः ॥ भगवंस्तान्समाचक्ष्व ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ये पापनिरता जीवा महानरकहेतवः ॥ ते समासेन कथ्यंते सावधानतया शृणु ॥ २ ॥ परस्त्रीद्रव्यसंकल्पश्चेतसाऽनिष्टचिंतनम् ॥ अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्द्धा कर्म मानसम् ॥ ३ ॥

॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं० उ० सं० शिवमायाप्रभाव वर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले, हे भगवन् ! हे ब्रह्मपुत्र ! जो पापी महानरकके कारण जीव हैं उनको वर्णन करो आपको नमस्कार है ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, जो जीव पापोंमें तत्पर तथा महा नरकके अधिकारी हैं उन्हें संक्षेपसे वर्णन करता हूं तुम सावधान होके सुनो ॥२॥ दूसरोंके धन तथा स्त्रीकी इच्छा तथा चित्तसे

* शिवकी श्रेष्ठता दिखानेको यह कथन है ।

बुरा विचारना बुरे कामका विचार तथा अभिनिवेश यह चार प्रकारका मानसिक कर्म है ॥ ३ ॥ विना संगत संभाषण करना असत्य अप्रिय बोलना पीछेमें पिशुनता [चुगल खोरी] यह चार प्रकारका वाचिक कर्म है ॥ ४ ॥ अभक्ष्यका भक्षण करना हिंसा झूंठे कार्यका करना दूसरोंके धनका हरण करना यह चार प्रकारका शारीरिक कर्म है ॥ ५ ॥ यह कायिक वाचिक मानसिक बारह प्रकारका कर्म कहा है, अब आगे उनके भेदोंको वर्णन करता हूं कि, जिसका अनन्त फल होता है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य संसाररूपी समुद्रसे तारनेवाले महादेवकी निन्दा करते हैं नरकके समुद्रमें जाने योग्य उनको महापाप होता है ॥ ७ ॥ जो उन्मत्त मनुष्य शिवगाथाके करनेवाले तपस्वी

अविबद्धप्रलापत्वमसत्यं चाप्रियं च यत् ॥ परोक्षतश्च पैशुन्यं चतुर्द्धाकर्म वाचिकम् ॥४॥ अभक्ष्यभक्षणं हिंसा मिथ्याकार्य्य निवेशनम् ॥ परस्वानामुपादानं चतुर्द्धा कर्म कायिकम् ॥ ५ ॥ इत्येतद्वादशविधं कर्म प्रोक्तं त्रिसाधनम् ॥ अस्य भेदान्पुनर्वक्ष्ये येषां फलमनंतकम् ॥ ६ ॥ ये द्विषंति महादेवं संसारार्णवतारकम् ॥ सुमहत्पातकं तेषां निरयार्णवगामिनाम् ॥ ७ ॥ ये शिव ज्ञानवक्तारं निन्दंति च तपस्विनम् ॥ गुरून्पितॄनथोन्मत्तास्ते यांति निरयार्णवम् ॥८॥ शिवनिन्दा गुरोर्निन्दा शिवज्ञानस्य दूषणम् ॥ देवद्रव्यापहरणं द्विजद्रव्यविनाशनम् ॥ ९ ॥ हरंति ये च संमूढाश्शिवज्ञानस्य पुस्तकम् ॥ महांति पातकान्याहुरन न्तफलदानि षट् ॥ १० ॥ नाभिनन्दंति ये दृष्ट्वा शिवपूजां प्रकल्पिताम् ॥ न नमंत्यर्चितं दृष्ट्वा शिवलिंगं स्तुवंति न ॥ ११ ॥ यथेष्टचेष्टा निश्शंकास्संतिष्ठंते रमंति च ॥ उपचारविनिर्मुक्ताश्शिवाग्रे गुरुसन्निधौ ॥ १२ ॥

तथा गुरु पितरोंकी निन्दा करते हैं वे नरकको जाते हैं ॥ ८ ॥ शिवनिन्दा तथा गुरुकी निन्दा शिव ज्ञानका दूषण द्विजोंके द्रव्यका नाश करना ॥ ९ ॥ तथा जो मूर्ख शिवज्ञानकी पुस्तकको हरण करते हैं यह छः अनन्त फलदायक पातक कहे हैं ॥ १० ॥ जो मनुष्य शिव पूजाको कल्पित हुआ देखके हर्षित नहीं होते हैं तथा शिवके पार्थिव लिंगको पूजित हुआ देख उनको नमस्कार नहीं करते स्तुति नहीं करते हैं ॥ ११ ॥ जो अपनी अभिलाषाके अनुकूल निस्सन्देह स्थित रहते तथा रमण करते हैं और शिवजीके आगे और गुरुके निकट उपचारसे

भ्रष्ट हो ॥ १२ ॥ जो पर्वोंमें स्थान और संस्कारकी पूजा नहीं करते हैं और कर्मयोगमें व्यवस्थित हो विधिपूर्वक गुरुओंकी पूजा नहीं करते ॥ १३ ॥ तथा जो शिवाचारवाले शिवजीके भक्तोंसे द्वेष करते हैं और शिवज्ञानको विना पूजे पढते वा लिखते हैं ॥ १४ ॥ अन्यायसे दान करते सुनते उच्चारण करते तथा लोभसे कुत्सित ज्ञानके नियमसे बुरी क्रीडा करते हैं ॥ १५ ॥ तथा अपनी इच्छाके अनुसार विना संस्कार किये स्थानोंमें सुनाते हैं, जो शिवकी ज्ञानकथामें आक्षेप करके और कुछ कहता है ॥ १६ ॥ तथा जो सत्य नहीं बोलता प्रदान नहीं करता और स्वयम् पवित्र हो वा अपवित्र स्थानमें कहता है वा सुनता है ॥ १७ ॥ और जो गुरुपूजाको विना किये

स्थानसंस्कारपूजां च ये न कुर्वंति पर्वसु ॥ विधिवद्वा गुरूणां च कर्म्मयोगव्यवस्थिताः ॥ १३ ॥ ये त्यजंति शिवाचारं शिवभक्तान्द्विषंति च ॥ असंपूज्य शिवज्ञानं येऽधीयते लिखंति च ॥ १४ ॥ अन्यायतः प्रयच्छंति शृण्वन्त्युच्चारयंति च ॥ विक्रीडंति च लोभेन कुज्ञाननियमेन च ॥ १५ ॥ असंस्कृतप्रदेशेषु यथेष्टं स्वापयंति च ॥ शिवज्ञानकथाऽऽक्षेपं यः कृत्वान्यत्प्रभाषते ॥ १६ ॥ न ब्रवीति च यः सत्यं न प्रदानं करोति च ॥ अशुचिर्वाऽशुचिस्थाने यः प्रवक्ति शृणोति च ॥ १७ ॥ गुरुपूजामकृत्वैव यश्शास्त्रं श्रोतुमिच्छति ॥ न करोति च शुश्रूषामाज्ञां च भक्तिभावतः ॥ १८ ॥ नाभिनन्दंति तद्वाक्यमुत्तरं च प्रयच्छति ॥ गुरुकर्मण्यसाध्यं यत्तदुपेक्षां करोति च ॥ १९ ॥ गुरुमार्त्तमशक्तं च विदेशं प्रस्थितं तथा ॥ वैरिभिः परिभूतं वा यस्संत्यजति पापकृत् ॥ २० ॥ तद्भार्य्यापुत्रमित्रेषु यश्चावज्ञां करोति च ॥ एवं सुवाचकस्यापि गुरोर्धर्मानुदर्शिनः ॥ २१ ॥ एतानि खलु सर्वाणि कर्माणि मुनिसत्तम ॥ सुमहत्पातकान्याहुश्शिवनिन्दासमानि च ॥ २२ ॥

ही शास्त्रोंको सुनना चाहता है तथा गुरुकी भक्ति प्रेमसे शुश्रूषा तथा आज्ञापालन नहीं करता है ॥ १८ ॥ और उनके वाक्यका आदर नहीं करता और उत्तर देता है और जो गुरुके कार्यमें असाध्य है ऐसा कह उसकी अपेक्षा करता है ॥ १९ ॥ जो पापी गुरु रोगी (दुःखी) असमर्थ तथा परदेशमें स्थित हुए वा वैरियोंसे तिरस्कार किये हुएको मनुष्य छोड देता है ॥ २० ॥ और जो उनकी स्त्री पुत्र मित्रोंका तिरस्कार करता है, तथा श्रेष्ठवक्ता धर्मके दिखाने वाले गुरुकी भार्या, पुत्र, मित्रोंमें अवज्ञा करता है ॥ २१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह

सम्पूर्ण कर्म शिवकी निन्दाके समान महापाप कहे हैं ॥ २२ ॥ ब्रह्महत्या करने वाला, मदिरा पीनेवाला, चोरी करनेवाला, गुरुपत्नीसे गमन करने वाला, तथा पांचवा इसके साथ मेल करनेवाला, यह महापापी हैं ॥२३॥ क्रोधसे, भयसे, द्वेषसे, जो ब्राह्मणके वधमें मर्मभेदी महादोषोंको कहें वह ब्रह्महत्यारा होता है ॥२४॥ जो ब्राह्मणको बुलाय दानदेके फिर लेलेता है तथा जो निर्दोषी को दोष लगावे वह भी ब्रह्महत्यारा कहाता है ॥ २५ ॥ जो मनुष्य अपनी विद्याके अभिमानसे उदासीन श्रेष्ठ ब्राह्मणको निस्तेज करता है वह भी ब्रह्महत्यारा होता है ॥ २६ ॥ जो झूंठे गुणोंसे बलात्कार अपने गुणोंको प्रगट करके आप उन्नतिके भावको प्राप्त होता है वह भी ब्रह्महत्यारा कहा है ॥ २७ ॥ बैल आदिसे तिर

ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥ महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पंचमः ॥ २३ ॥ क्रोधाल्लोभाद्भयाद्द्वेषाद्ब्राह्मणस्य वधे तु यः ॥ मर्मातिकं महादोषमुक्त्वा स ब्रह्महा भवेत् ॥२४॥ ब्राह्मणं यः समाहूय दत्त्वा यश्चाददाति च ॥ निर्दोषं दूषयेद्यस्तु स नरो ब्रह्महा भवेत् ॥ २५ ॥ यश्च विद्याभिमानेन निस्तेजयति सुद्विजम् ॥ उदासीनं सभामध्ये ब्रह्महा स प्रकीर्तितः ॥ २६ ॥ मिथ्यागुणैर्य आत्मानं नयत्युत्कर्षतां बलात् ॥ गुणानपि निरुद्धास्य स च वै ब्रह्महा भवेत् ॥ २७ ॥ गवां वृषाभिभूतानां द्विजानां गुरुपूर्वकम् ॥ यस्समाचरते विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ २८ ॥ देवद्विजगवां भूमिं प्रदत्तां हरते तु यः ॥ प्रनष्टा मपि कालेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ॥ २९ ॥ देवद्विजस्वहरणमन्यायेनार्जितं तु यत् ॥ ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयं पातकं नात्र संशयः ॥ ३० ॥ अधीत्य यो द्विजो वेदं ब्रह्मज्ञानं शिवात्मकम् ॥ यदि त्यजति यो मूढः सुरापानस्य तत्समम् ॥ ३१ ॥

स्कृत हुई गायोंका तथा गुरुसहित ब्राह्मणोंका विघ्न करता हैं उसको ब्रह्महत्यारा कहा है ॥ २८ ॥ जो मनुष्य देवता, ब्राह्मण, गायोंके निमित्त प्रदान की हुई भूमिको समय पाय नष्ट होनेपर भी हरण करता है उसको भी ब्रह्महत्यारा कहते हैं ॥ २९ ॥ देवता ब्राह्मणका धन हरण करना तथा जो धन अन्यायसे उत्पन्न किया है वह भी ब्रह्महत्याके समान पाप जानना इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ३० ॥ जो मूर्ख ब्राह्मण वेद पढके शिवके ब्रह्मज्ञानको त्यागन करता है वह मदिरापानके समान पाप कहा है ॥ ३१ ॥

जिस किसी व्रतको नियमको तथा यज्ञको ग्रहण करके पंचमहायज्ञका त्यागन करना मदिरापानके समान कहा है ॥ ३२ ॥ माता पिताका त्यागन, झूंठी गवाही, ब्राह्मणसे झूंठ बोलना, शिवभक्तोंको मांस सेवन करना, अभक्ष्यका भक्षण करना ॥ ३३ ॥ तथा वनमें विना अपराधवाले जन्तुओंका मारना और साधु ब्राह्मणके निमित्त और धर्मके लिये प्राण नहीं त्यागता है ॥ ३४ ॥ गायोंके मार्गमें वनमें गांवमें जो अग्नि लगाते हैं यह ब्रह्महत्याके समान घोर पाप कहे हैं ॥ ३५ ॥ दीनका सर्वस्व हरण करना तथा पुरुष स्त्री हाथी घोडोंका तथा गौ भूमि चांदी वस्त्र औषधि रसोंका ॥ ३६ ॥ चन्दन अगर कपूर कस्तूरी पट वस्त्रोंका विक्रय जो द्विजातियोंने ज्ञानसे किया ॥ ३७ ॥ हाथसे रक्खी हुई

यत्किंचिद्धि व्रतं गृह्य नियमं यजनं तथा ॥ संत्यागः पञ्चयज्ञानां सुरापानस्य तत्समम्॥३२॥पितृमातृपरित्यागः कूटसाक्ष्यं द्विजानृतम् ॥ आमिषं शिवभक्तानामभक्ष्यस्य च भक्षणम्॥३३॥वने निरपराधानां प्राणिनां चापघातनम् ॥ द्विजार्थं प्रक्षिपेत्साधुर्न धर्मार्थं नियोजयेत् ॥३४॥ गवां मार्गे वने ग्रामे यैश्चैवाग्निः प्रदीयते ॥ इति पापानि घोराणि ब्रह्महत्यासमानि च ॥३५॥ दीनसर्वस्वहरणं नरस्त्रीगजवाजिनाम् ॥ गोभूरजतवस्त्राणामौषधीनां रसस्य च॥३६॥चन्दनागरुकर्पूरकस्तूरीपट्टवाससाम्॥विक्रयस्त्वविपत्तौ यः कृतो ज्ञानाद् द्विजातिभिः ॥३७॥ हस्तन्यासापहरणं रुक्मस्तेयसमं स्मृतम्॥कन्यानां वरयोग्यानामदानं सदृशे वरे॥३८॥पुत्रमित्रकलत्रेषु गमनं भगिनीषु च ॥ कुमारीसाहसं घोरमद्यपस्त्रीनिषेवणम् ॥३९॥ सवर्णायाश्च गमनं गुरुभार्य्यासमं स्मृतम्॥महापापानि चोक्तानि शृणु त्वमुपपातकम्॥४०॥इति श्रीशिवमहापुराणे पंचम्यामुमासंहितायां महापातकवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः॥५॥सनत्कुमार उवाच॥द्विजद्रव्यापहरणमपि दायव्यतिक्रमः ॥ अतिमानोऽतिकोपश्च दांभिकत्वं कृतघ्नता॥१॥

धरोहरका मारलेना सुवर्णके चुरानेके समान कहा है तथा वरयोग्य कन्याओंका समान वरके विषयमें प्रदान न करना ॥ ३८ ॥ पुत्र तथा मित्रकी स्त्रियोंमें बहिनोंमें गमन करना कुमारीके साथ बलात्कारसे गमन करना घोर मद्य पीनेवाली स्त्रीसे प्रसंग करना ॥ ३९ ॥ सवर्णासे गमन करना गुरुपत्नीके प्रसंगके समान कहा है यह महापाप कहे हैं अब तुम उपपातकोंको सुनो ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं० उ० सं० महापातकवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सनत्कुमारजी बोले, ब्राह्मणके द्रव्यका हरण करना दूसरेके भागका न

देना अति अहंकार करना तथा अतिक्रोध करना पाखंड करना कृतघ्नता ॥ १ ॥ अत्यन्त विषयोंमें प्रवृत्ति कृपणता सज्जनोंसे इर्षा करना दूसरोंकी स्त्रीसे गमन करना तथा श्रेष्ठोंकी कन्याओंमें दोष लगाना ॥ २ ॥ परिवित्ति परिवेत्ता तथा जिसके द्वारा जाना जाता है उन दोनोंमें कन्याका दान करना तथा उन दोनोंको यज्ञ कराना ॥ ३ ॥ जो शिवके आश्रममें स्थित हुए वृक्षोंका तथा पुष्पोंके बागोंका नाश करना आश्रममें स्थित हुए मनुष्योंको थोडीभी पीडा देता है ॥ ४ ॥ भृत्य परिवार सहित पशु धान्य तथा धनका दाय धान्य पशुओंका चुराना और जलका अपवित्र करना ॥ ५ ॥ यज्ञ बाग सरोवरोंका तथा स्त्री और सन्तानका बेंचना तीर्थयात्रा तथा उपवासोंका व्रत उपनयन करने

अत्यंतविषयासक्तिः कार्पण्यं साधुमत्सरः॥परदाराभिगमनं साधुकन्यासु दूषणम् ॥२॥ परिवित्तिः परिवेत्ता च यया च परिविद्यते ॥ तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ॥ ३ ॥ शिवाश्रमतरूणां च पुष्पारामविनाशनम्॥यः पीडामाश्रमस्थानामाचरेदल्पिकामपि ॥४॥ सभृत्यपरिवारस्य पशुधान्यधनस्यच ॥ कुप्यधान्यपशुस्तेयमपां व्यापावनं तथा ॥५॥ यज्ञारामतडागानां दारापत्यस्य विक्रयम् ॥ तीर्थयात्रोपवासानां व्रतोपनयकर्म्मिणाम् ॥६॥ स्त्रीधनान्युपजीवंति स्त्रीभिरत्यन्तनिर्जिताः ॥ अरक्षणं च नारीणां मायया स्त्रीनिषेवणम् ॥७॥ कालागताप्रदानं च धान्यवृद्ध्युपसेवनम् ॥ निंदिताच्च धनादानं पण्यानां कूट जीवनम् ॥८॥ विषमारण्यपत्राणां सततं वृषवाहनम् ॥ उच्चाटनाभिचारं च धान्यादानं भिषक्क्रिया॥९॥जिह्वाकामोपभोगार्थं यस्यारंभः सुकर्मसु ॥ मूलेनाध्यापको नित्यं वेदज्ञानादिकं च यत् ॥१०॥

वालोंका बेंचना ॥ ६ ॥ तथा जो स्त्रीधनोंसे वृत्ति करते हैं तथा स्त्रियोंसे अत्यन्त जीते हुए हैं तथा स्त्रियोंकी रक्षा करना छलसे स्त्रीका सेवन करना ॥ ७ ॥ समयपर आये हुएको न देना धान्यवृद्धिका सेवन करना निंदितसे धनका लेना व्यापारोंमें कूट जीवन ॥ ८ ॥ विषम वनोंके पत्रोंको तोडना बैलोंका वाहन उच्चाटन मारणका प्रयोग करना धान्यका लेना वैधक करना ॥ ९ ॥ तथा जिह्वाकी कामनाके भोगके अर्थ जिसकी सुकर्म करनेमें प्रवृत्तिहो जो वेदज्ञान आदिको नित्य मूलमात्र पढानेवाला है ॥ १० ॥

ब्राह्मयआदि व्रतका त्यागन करना दूसरोंके आचारका सेवन करना बुरे शास्त्रोंका पढना शुष्क (निरर्थक) तर्कका अवलम्बन करना ॥ ११ ॥ देवता अग्नि गुरु साधुओं की ब्राह्मणकी चक्रवर्ती राजाओंकी प्रत्यक्षमें वा पीछे निन्दा ॥ १२ ॥ पितृयज्ञ देवयज्ञके त्यागने वाले तथा जो अपने कर्मके त्यागने वाले तथा दुराचारी नास्तिक पापी सदा झूंठ बोलनेवाले हैं ॥ १३ ॥ पर्वके समय दिनमें जलमें वियोनिमें तथा पशुकी योनिमें वा रजस्वलाकी योनिमें जो मैथुन करता है ॥ १४ ॥ जो स्त्री पुत्र मित्रोंके प्राप्त होनेपर आशाके तोडने वाले हैं मनुष्योंसे अप्रिय (कटु) भाषण करनेवाले क्रूर समयके न जाननेवाले हैं ॥ १५ ॥ तालाव कूपोंका संक्रयोंका तथा रसोंका जो

ब्राह्म्यादिव्रतसंत्यागश्चान्याचारनिषेवणम् ॥ असच्छास्त्राधिगमनं शुष्कतर्कावलम्बनम् ॥ ११ ॥ देवाग्निगुरुसाधूनां निन्दया ब्राह्मणस्य च ॥ प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा राज्ञां मण्डलिनामपि ॥ १२ ॥ उत्सन्नपितृदेवेज्या स्वकर्म्मत्यागिनश्च ये ॥ दुःशीला नास्तिकाः पापास्सदा वाऽसत्यवादिनः ॥ १३ ॥ पर्वकाले दिवा वाप्सु वियोनौ पशुयोनिषु ॥ रजस्वलाया योनौ च मैथुनं यःस माचरेत् ॥१४॥ स्त्रीपुत्रमित्रसंप्राप्तावाशाच्छेदकराश्च ये ॥ जनस्याप्रियवक्तारः क्रूराः समयवेदिनः ॥ १५ ॥ भेत्ता तडागकूपानां संक्रयाणां रसस्य च ॥ एकपंक्तिस्थितानां च पाकभेदं करोति यः ॥ १६ ॥ इत्येतैः स्त्रीनराः पापैरुपपातकिनः स्मृताः ॥ युक्ता एभिस्तथान्येऽपि शृणुतांस्तु ब्रवीमि ते ॥ १७ ॥ ये गोब्राह्मणकन्यानां स्वामिमित्रतपस्विनाम् ॥ विनाशयंति कार्य्याणि ते नरा नारकाः स्मृताः ॥ १८ ॥ परस्त्रियाभितप्यंते ये परद्रव्यसूचकाः ॥ परद्रव्यहरा नित्यं तौलमिथ्यानुसारकाः ॥ १९ ॥ द्विजदुःखकरा ये च प्रहारं चोद्धरंति ये ॥ सेवन्ते तु द्विजाश्शूद्रां सुरां बध्नंति कामतः ॥ २० ॥

भेदन करनेवाला है और जो एक पंक्तिमें स्थित होनेवालोंके भोजनमें भेद करता है ॥ १६ ॥ इन पूर्वोक्त पापोंसे स्त्री तथा पुरुष उपपातकी कहाते हैं जो इन पापोंसे युक्त हैं तथा और भी जो पापी हैं उनको तुमसे वर्णन करता हूँ सुनो ॥ १७ ॥ जो गौ ब्राह्मण कन्याओंके स्वामी मित्र तपस्वियोंके कार्योंको बिगाडते हैं वे नरकके अधिकारी कहे हैं ॥ १८ ॥ जो दूसरोंकी स्त्रियोंसे दुःखित होते हैं तथा जो पराये द्रव्यके सूचक हैं तथा नित्य दूसरेके द्रव्यको हरनेवाले मिथ्या तोल करनेवाले हैं ॥ १९ ॥ जो ब्राह्मणोंके दुःख देनेवाले

तथा जो प्रहार करनेवाले हैं जो द्विज शूद्र स्त्रीको सेवन करते हैं और कामसे मदिराको बाँधते हैं ॥ २० ॥ जो पाप कर्ममें तत्पर हैं क्रूर तथा जो मनुष्य हिंसा करनेवाले हैं और जो अपनी आजीविकाके लिये दान यज्ञ आदिक करते हैं ॥ २१ ॥ गौशाला (व्रज) अग्नि जल गलियोंमें वृक्षकी छाया तथा पर्वतोंपर और बाघ घरोंमें (शौचालयके अतिरिक्त) जो विष्ठा करते हैं वा फेंकते हैं ॥ २२ ॥ जो लज्जाके आश्रम तथा महलोंपर मद्यपान करनेवाले छिद्रके ढूंढनेमें तत्पर हुए क्रीडा करनेवाले सर्पोंके समान हैं ॥ २३ ॥ जो बांस ईंट पत्थर लकडियोंसे सींग और कीलोंसे रास्तेको रोक लेते हैं तथा दूसरेकी सीमा (हद) को हरण करते हैं ॥ २४ ॥ जो कपटसे शिक्षा

ये पापनिरताःक्रूराःयेऽपि हिंसाप्रिया नराः॥वृत्त्यर्थं येऽपिकुर्वंति दानयज्ञादिकाःक्रियाः ॥ २१ ॥ गोष्ठाग्निजलरथ्यासु तरुच्छाया नगेषुच ॥ त्यजंति ये पुरीषाद्यानारामायतनेषु च ॥ २२ ॥ लज्जाश्रमप्रासादेषु मद्यपानरताश्च ये ॥ कृतकेलिभुजंगाश्च रन्ध्रान्वेषणतत्पराः ॥ २३ ॥ वंशेष्टकाशिलाकाष्ठैः शृङ्गैश्शंकुभिरेव च॥येमार्गमनुरुंधंति परसीमां हरंतिये ॥ २४ ॥ कूटशासनकर्तारः कूटकर्म्मक्रियारताः॥कूटपाकान्नवस्त्राणां कूटसंव्यवहारिणः ॥ २५ ॥ धनुषः शस्त्रशल्यानां कर्ता यःक्रयविक्रयी ॥ निर्दयोऽतीव भृत्येषु पशूनां दमनश्च यः॥२६॥ मिथ्या प्रवदतो वाचआकर्णयति यश्शनैः ॥ स्वामिमित्रगुरुद्रोहीमायावी चपलश्शठः ॥ २७ ॥ ये भार्य्यापुत्रमित्राणि बालवृद्धकृशातुरान् ॥ भृत्यानतिथिबंधूंश्च त्यक्त्वाश्नंति बुभुक्षितान् ॥ २८ ॥ यः स्वयं मिष्टमश्नाति विप्रेभ्यो न प्रच्छयति ॥ वृथापाकस्स विज्ञेयो ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥ २९ ॥

करनेवाले छलके कर्म और व्यापारमें तत्पर हैं कपटके पाक अन्न तथा वस्त्रोंका छलसे व्यवहार करनेवाले हैं ॥ २५ ॥ जो धनुषका तथा शस्त्र शल्योंका बनानेवाला वा क्रय विक्रय करनेवाला है जो भृत्योंमें बडा निर्दयी है जो पशुओंका मारनेवाला है ॥ २६ ॥ जो झूंठी बातको धीरे धीरे सुनाता है स्वामी मित्र गुरु इनका जो द्रोही है कपटी चपल ठग है ॥ २७ ॥ जो अपने स्त्री पुत्र मित्रोंको बालक वृक्ष दुर्बल रोगियोंको भृत्य अतिथि बान्धवोंको भूंखा छोड स्वयम् भोजन करते हैं ॥ २८ ॥ जो अपने आप मिष्टान्न खाता और ब्राह्मणोंको नहीं देता

है उसे वृथा पाक और ब्रह्मवादियोंमें निन्दित जानना चाहिये ॥ २९ ॥ जो स्वयम् नियमोंको स्वीकार करके जितेन्द्रिय न हो उनको त्यागन करते हैं जो संन्यासी होके घरमें निवास करनेवाले हैं और शिवप्रतिमाके भेदन करनेवाले हैं ॥ ३० ॥ जो क्रूर पुरुष गायको ताडन करते हैं तथा बारम्बार दमन करते हैं जो दुर्बलोंको पोषण नहीं करते हैं तथा उन्हें निरंतर त्याग देते हैं ॥ ३१ ॥ तथा अतिभारसे पीडा देते हैं और सहन न करतेहुएको जोतते हैं तथा विना भोजन करनेवाले पशुओंको जोतके बँधेहुओंको नहीं खोलता है ॥ ३२ ॥ जो भारसे घायल तथा रोगी भूखे गाय बैलोंको यत्नपूर्वक नहीं पालते हैं वे गौहत्यारे पापी नरकके गामी होते हैं ॥ ३३ ॥ जो पापी बैलोंके

नियमान्स्वयमादाय ये त्यजंत्यजितेन्द्रियाः ॥ प्रव्रज्यावासिता ये च हरस्यास्यप्रभेदकाः ॥ ३० ॥ ये ताडयंति गां क्रूरा दमयंते मुहुर्मुहुः ॥ दुर्बलान्ये न पुष्णंति सततं ये त्यजंति च ॥ ३१ ॥ पीडयंत्यतिभारेणाऽसहंतं वाहयंति च ॥ योजयन्नकृताहाराञ्न विमुंचंति संयतान् ॥ ३२ ॥ ये भारक्षतरोगार्तान्गोवृषांश्च क्षुधातुरान् ॥ न पालयंति यत्नेन गोघ्नास्ते नारकास्स्मृताः ॥ ३३ ॥ वृषाणां वृषणान्ये च पापिष्ठा गालयंति च ॥ वाहयंति च गां वंध्यां महानारकिनो नराः ॥ ३४ ॥ आशया समनुप्राप्तान्क्षुत्तृष्णाश्रमकर्शितान् ॥ अतिथींश्च तथानाथान्स्वतन्त्रागृहमागतान् ॥ ३५ ॥ अन्नाभिलाषान्दीनान्वा बालवृद्धकृशातुरान् ॥ नानुकंपंति ये मूढास्ते यांति नरकार्णवम् ॥ ३६ ॥ गृहेष्वर्था निवर्तन्ते स्मशानादपि बांधवाः ॥ सुकृतं दुष्कृतं चैव गच्छंतमनुगच्छति ॥ ३७ ॥ अजाविको माहिषिकस्सामुद्रो वृषलीपतिः ॥ शूद्रवत्क्षत्रवृत्तिश्च नारकी स्याद् द्विजाधमः ॥ ३८ ॥

अंडकोशोंको कटवाते हैं तथा वंध्या गौको जोतते हैं वे पुरुष महानरकगामी होते हैं ॥ ३४ ॥ अपनी आशासे प्राप्तहुए भूख प्यास श्रमसे व्याकुल हुए अभ्यागत और अनाथोंको घरपर आये हुए स्वतन्त्रोंको ॥ ३५ ॥ अन्नकी इच्छा करनेवाले वा दीनोंको बालक वृद्ध दुर्बल रोगियोंपर जो मूर्ख दया नहीं करते हैं वे नरकसागरमें पडते हैं ॥ ३६ ॥ घरमें धन पडे रहजाते हैं भाई बन्धु भी स्मशानसे लौट आते हैं जीव पुण्य और पापका अनुगामी होके जाता है ॥ ३७ ॥ बकरी तथा भैंसका क्रयविक्रय करनेवाला समुद्रपर रहनेवाला शूद्राका पति शूद्रके समान

क्षत्रिय वृत्ति करनेवाला नीच ब्राह्मण नरकगामी होता है ॥३८॥ शिल्पी बढई वैद्य सुनार राजाकी पताका बनानेवाले कपटछलसे नौकरी करनेवाले यह सब नरकगामी कहे हैं ॥ ३९ ॥ जो (योग्य) शास्त्रको उल्लंघन करके अपनी इच्छासे कर (महसूल) हरण करलेता है तथा जो दंडकी रुचिवाला मनुष्य है यह नरकमें दुःख भोगते हैं ॥ ४० ॥ जिस राजाके राज्यमें प्रजा घूंस लेनेवाले अपनी इच्छानुसार क्रय करनेवाले तथा तस्करोंसे पीडित होती है वह राजा भी नरकमें पडता है ॥४१॥ जो ब्राह्मण अन्यायमें स्थित हुए राजा का दान ग्रहण करते हैं वे घोर नरकमें जाते हैं इसमें कुछ संशय नहीं ॥४२॥ जो राजा प्रजाओंसे अन्यायसे लेकर ब्राह्मणोंको देता है वह राजा भी नरकोंमें पडता है ॥४३॥ पराई

शिल्पिनः कारवो वैद्या हेमकारा नृपध्वजाः ॥ भृतकाः कूटसंयुक्ताः सर्वे ते नारकाः स्मृताः ॥ ३९ ॥ यश्चोचितमतिक्रम्य स्वेच्छयै वाहरेत्करम् ॥ नरके पच्यते सोऽपि योपि दण्डरुचिर्नरः ॥ ४० ॥ उत्कोचकै रुचिक्रीतैस्तस्करैश्च प्रपीडयते ॥ यस्य राज्ञः प्रजाराष्ट्रे पच्यते नरकेषु सः ॥ ४१ ॥ ये द्विजाः परिगृह्णंति नृपस्यान्यायवर्तिनः ॥ ते प्रयांति तु घोरेषु नरकेषु न संशयः ॥ ४२ ॥ अन्यायात्समुपादाय द्विजेभ्यो यः प्रयच्छति ॥ प्रजाभ्यः पच्यते सोऽपि नरकेषु नृपो यथा ॥ ४३ ॥ पारदारिकचौराणां चंडानां विद्यते त्वघम् ॥ परदाररतस्यापि राज्ञो भवति नित्यशः ॥ ४४ ॥ अचौरं चौरवत्पश्येच्चौरं वाचौ रूपिणम् ॥ अविचार्य्य नृपस्तस्माद्घातयन्नरकं व्रजेत् ॥ ४५ ॥ घृततैलान्नपानानि मधुमांससुरासवम् ॥ गुडेक्षुशाकदुग्धानि दधिमूलफलानि च ॥ ४६ ॥ तृणं काष्ठं पत्रपुष्पमौषधं चात्मभोजनम् ॥ उपानच्छत्रशकटमासनं च कमंडलुम् ॥ ४७ ॥

स्त्रियोंसे विषय तथा चोरी करनेवाले प्रचंडपुरुषोंको तथा नित्य पराई स्त्रीमें तत्पर हुए राजाको भी बडा पाप होता है ॥ ४४ ॥ जो राजा विना चोरको चोरके समान और चोरको विना चोरी करनेवाला देखता है, विना विचारके मारता है वह राजा नरकको जाता है ॥४५॥ घी, तेल, अन्न, पीनेकी वस्तु, मधु, मांस, शराव, अर्क, गुड़, ईख (गन्ना), शाक, दूध, दही, मूल, फल ॥ ४६ ॥ घास, काष्ठ, पत्र, फूल, औषधि, अपना भोजन, जूता, छाता, गाडी, आसन, कमंडल (लोटा) इनको ॥ ४७ ॥

ताम्बा, सीसा, रांगा, शस्त्र तथा शंख आदि जलसे उत्पन्न हुई वस्तुको वैद्य लकडी और जो घरकी वस्तु है ॥ ४८ ॥ ऊनी सूती रेशमी राम वास आदि व छालके बने मोटे बारीक वस्त्रोंको जो लोभसे चुरा लेते हैं ॥ ४९ ॥ इत्यादि और भी अनेक प्रकारके द्रव्य हैं उनको थोडा भी हरण करके निश्चय ही नरकमें जाते हैं ॥ ५० ॥ जो कुछ भी हो सर्सोंमात्र भी पराई वस्तुको चुराके मनुष्य नरकमें पडते हैं इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ५१ ॥ मनुष्य इन पापोंसे नरक भोगनेके पश्चात् शरीरके कष्ट उठानेके निमित्त सम्पूर्ण आकारको पाता है ॥ ५२ ॥ पूर्वोक्त पापी शरीरके द्वारा मेरी आज्ञासे बडे भयानक यमके दूतोंसे पकडके ले जाये हुए अति दुःखित हो यमराजके लोकको जाते हैं ॥ ५३ ॥

ताम्रसीसत्रपुः शस्त्रं शंखाद्यं च जलोद्भवम् ॥ वैद्यं च वैणवं चान्यद्गृहोपस्करणानि च ॥ ४८ ॥ और्ण्णकार्पासकौशेयपट्टसूत्रोद्भवानि च ॥ स्थूलसूक्ष्माणि वस्त्राणि ये लोभाद्धिहरंति च ॥४९॥ एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणि विविधानि च ॥ नरकेषु ध्रुवं यान्ति चापहृत्याल्पकानि च ॥५०॥ तद्वा यद्वा परद्रव्यमपि सर्षपमात्रकम् ॥ अपहृत्य नरा यांति नरकं नात्र संशयः ॥ ५१ ॥ एवमाद्यैर्नरः पापैरुत्क्रांतिसमनंतरम् ॥ शरीरयातनार्थाय सर्वाकारमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥ यमलोकं व्रजंत्येते शरीरेण यमाज्ञया ॥ यमदूतैर्महाघोरैर्नीयमानास्सुदुःखिताः ॥५३॥ देवतिर्यङ्मनुष्याणामधर्मनिरतात्मनाम् ॥ धर्मराजः स्मृतश्शास्ता सुघोरैर्विविधैर्वधैः ॥५४॥ नियमाचारयुक्तानां प्रमादात्स्खलितात्मनाम् ॥ प्रायश्चित्तैर्गुरुश्शास्ता न बुधैरिष्यते यमः ॥ ५५ ॥ पारदारिकचौराणामन्यायव्यवहारिणाम् ॥ नृपतिश्शासकः प्रोक्तः प्रच्छन्नानां स धर्म्मराट् ॥ ५६ ॥ तस्मात्कृतस्य पापस्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ नाभुक्तस्यान्यथानाशः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ५७ ॥

अधर्म करनेवाले देवता पक्षी मनुष्योंको अनेक भयानक वधोंसे धर्मराजको दण्ड देनेवाला कहा है ॥ ५४ ॥ नियम सदाचारमें तत्पर हुये अज्ञानसे गिरे जीवोंको अनेक प्रायश्चित्तोंसे गुरुही शिक्षा देनेवाला है ऐसे जीवोंकी शिक्षा देनेको पंडितोंने यमराजको नहीं कहा ॥ ५५ ॥ पराई स्त्रियोंसे प्रसंग करने वाले तथा चोर अन्यायसे व्यवहार करने वालोंको दण्ड देनेवाला राजा कहा है और गुप्त पाप करने वालोंका धर्मराजा है ॥ ५६ ॥ इस कारण किये हुए पापकी शुद्धिके अर्थ प्रायश्चित्त करना उचित है नहीं तो विना भोगे

कोटि कल्पोंमें भी पापोंका नाश नहीं हो सकता ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य स्वयम् कर्म करता है वा कराता है अथवा अनुमोदन करता है उसके शरीरसे मनसे वाणीसे पापोंका फल मिलता है ॥ ५८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० पापभेदवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले, सम्पूर्ण मनुष्य चार प्रकारके पापोंसे त्रासके उत्पन्न करनेवाले भयंकर यमराजके लोकको विवश होके जाते हैं ॥ १ ॥ गर्भमें स्थित हुए उत्पन्न होनेवाले, बालक युवा मध्यम स्त्री पुरुष नपुंसक आदि समस्त जीवोंको यह जानना चाहिये ॥ २ ॥ कि चित्रगुप्त आदि तथा वशिष्ठ आदि मुनियोंसे सम्पूर्ण जीवोंका शुभ वा अशुभ कर्म विचारा जाता है ॥ ३ ॥ ऐसे कोई

यः करोति स्वयं कर्म्म कारयेच्चानुमोदयेत् ॥ कायेन मनसा वाचा तस्य पापगतिः फलम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां पापभेदवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अथ पापैर्नरा यांति यमलोकं चतुर्विधैः ॥ संत्रासजननंघोरं विवशास्सर्वदेहिनः ॥१॥ गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणमध्यमैः ॥ स्त्रीपुन्नपुंसकैर्जीवैर्ज्ञातव्यं सर्वजंतुषु ॥ २ ॥ शुभाशुभफलं चात्र देहिनां संविचार्यते ॥ चित्रगुप्तादिभिस्सर्वैर्वसिष्ठप्रमुखैस्तथा ॥ ३ ॥ न केचित्प्राणिनस्संति ये न यांति यमक्षयम् ॥ अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यं तद्विचार्य्यताम् ॥४॥ तत्र ये शुभकर्माणस्सौम्यचित्ता दयान्विताः ॥ ते नरा यांति सौम्येन पूर्व यमनिकेतनम् ॥ ५ ॥ ये पुनः पापकर्म्माणः पापा दानविवर्जिताः ॥ ते घोरेण पथा यांति दक्षिणेन यमालयम् ॥ ६ ॥ षडशीतिसहस्राणि योजनानामतीत्य तत् ॥ वैवस्वतपुरं ज्ञेयं नानारूपमवस्थितम् ॥ ७ ॥ समीपस्थमिवाभाति नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥ पापिनामतिदूरस्थं पथा रौद्रेण गच्छताम् ॥ ८ ॥

प्राणी भी नहीं हैं जो यमके लोकको नहीं प्राप्त होते हैं अपना किया हुआ कर्म अवश्य ही भोगने योग्य होता है, ऐसा विचारना चाहिये ॥ ४ ॥ उनमेंसे जो शुभ कर्म करनेवाले सौम्यचित्त कृपालु मनुष्य हैं वे यमलोकमें सौम्य मार्गसे पूर्व द्वारको जाते हैं ॥ ५ ॥ और जो पाप कर्म करनेवाले पापी दान शून्य पुरुष हैं वे घोर दक्षिणके मार्गसे यमराजके लोकको जाते हैं ॥ ६ ॥ छियासी सहस्र योजन कोसोंको लांघके अनेक रूपमें स्थित हुआ वैवस्वत पुर जानना चाहिये ॥ ७ ॥ यह नगर पुण्यात्माओंको अति निकट हुएके समान

प्रतीत होता है और पापी मनुष्योंको अति दूरमें स्थित हुआ ज्ञान होता है और वे भयंकर मार्गसे जाते हैं ॥८॥ तीखे काँटोंसे व्याप्त तथा शर्करासे रचित हुए कहीं छुरेके धारके समान तीव्र पाषाणोंसे विरचित मार्गसे ॥९॥ कहीं बडी कीचडसे व्याप्त कहीं उरुतोक पापोंसे कहीं लोहेके सुईके तुल्य कुशाओंसे व्याप्त हुए मार्गसे ॥१०॥ तथा कहीं तटप्राय प्रदेशोंसे अति कठिन पर्वत और वृक्षों से व्याप्त हुए कहीं तपे हुए अंगार युक्त मार्गसे दुःखित हो यमलोकको जाते हैं ॥११॥ कहीं कठोर गढोंसे कहीं अति कठिन टेलोंसे खूब तपी हुई बालूसे तथा तीक्ष्ण कीलोंसे ॥१२॥ कहीं अनेक शाखाओंसे विस्तृत बांसके वनोंसे कहीं कष्ट दायक अंधकारसे तथा कहीं मार्गमें अनेक आधारोंसे ॥१३॥ कहीं लोहेके तेज सिंघाडोंसे

तीक्ष्णकंटकयुक्तेन शर्करावितेन च ॥ क्षुरधारानिभैस्तीक्ष्णैः पाषाणै रचितेन च ॥ ९ ॥ क्वचित्पंकेन महता उरुतोकैश्च पातकैः ॥ लोहसूचीनिभैर्दर्भैस्सम्पन्नेन पथा क्वचित् ॥ १० ॥ तटप्रायातिविषमैः पर्वतैर्वृक्षसंकुलैः ॥ प्रतप्तांगारयुक्तेन यांति मार्गेण दुःखिताः ॥ ११ ॥ क्वचिद्विषमगर्तैश्च क्वचिल्लोष्टैस्सुदुष्करैः ॥ सुतप्तवालुकाभिश्च तथा तीक्ष्णैश्च शंकुभिः ॥ १२ ॥ अनेक शाखाविततैर्व्याप्तं वंशवनैः क्वचित् ॥ कष्टेन तमसा मार्गे नानालम्बेन कुत्रचित् ॥ १३ ॥ अयश्शृंगाटकैस्तीक्ष्णैः क्वचिद्दावाग्निना पुनः ॥ क्वचित्तप्तशिलाभिश्च क्वचिद्धचाप्तं हिमेन च ॥ १४ ॥ क्वचिद्वालुकया व्याप्तमाकंठांतःप्रवेशया ॥ क्वचिद्दुष्टाम्बुना व्याप्तं क्वचिच्च करिषाग्निना ॥ १५ ॥ क्वचित्सिंहैर्वृकैर्व्याघ्रैर्मशकैश्च सुदारुणैः ॥ क्वचिन्महाजलौकाभिः क्वचिच्चाजगरैस्तथा ॥ १६ ॥ मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः क्वचित्सर्पैर्विषोल्बणैः ॥ मत्तमातंगयूथैश्च बलोन्मत्तैः प्रमाथिभिः ॥ १७ ॥ पंथानमुल्लिखद्भिश्च सूकरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रिभिः ॥ तीक्ष्णशृंगैश्च महिषैस्सर्वभूतैश्च श्वापदैः ॥ १८ ॥

तथा कहीं दावानलसे कहीं तप्त शिलाओंसे कहीं बर्फसे व्याप्त ॥ १४ ॥ कहीं कंठ पर्यन्त प्रवेश करने योग्य परितप्त बालूसे व्याप्त कहीं दूषित जलसे व्याप्त कहीं करीजकी अग्निसे व्याप्त ॥ १५ ॥ कहीं सिंह भेढिये व्याघ्र अति भयंकर मच्छडोंसे कहीं बडी जोकोंसे तथा कहीं अजगरोंसे व्याप्त ॥ १६ ॥ कहीं भयानक मक्खियोंसे कहीं विषैले सर्पोंसे कहीं मतवाले बलमें उन्मत्त हुए प्रमाथी हस्तियोंसे ॥ १७ ॥ मार्गको खोदते हुए तीक्ष्ण दाढोंवाले सूकरोंसे कहीं पैने सींगोंके भैंसोंसे कहीं सम्पूर्ण हिंसक जन्तुओंसे ॥ १८ ॥

कहीं विकट डाकिनियोंसे तथा विकराल राक्षसोंसे तथा अति घोर व्याधियोंसे पीडित होके जाते हैं ॥१९॥ बडी धूलीसे व्याप्त बडे प्रचंड पवनसे कहीं बृहत् पाषाणकी वर्षासे निराश्रय हो पीडित होके ॥२०॥ कहीं विजलीके प्रपातसे जलते हुए जाते हैं कहीं चारों औरसे बडा बाणोकी वर्षासे पीडित हुए ॥२१॥ गिरते हुए वज्रपातोंसे तथा अति दारुण उल्काग्नि पातसे और प्रदीप्त अंगारोंकी वर्षासे भस्म होते हुए ॥२२॥ बडी धूलिकी वर्षासे पूर्यमाण हो रोते हैं कहीं घोर मेघोंसे बारम्बार भयभीत होते हैं ॥२३॥ तथा सब ओरसे तीक्ष्ण शस्त्रोंकी वर्षासे भेदित हुए तथा कहीं महा

डाकिनीभिश्च रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः ॥ व्याधिभिश्च महाघोरैः पीड्यमाना व्रजंति हि ॥ १९ ॥ महाधूलिविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना ॥ महापाषाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रयाः ॥ २० ॥ क्वचिद्विद्युत्प्रपातेन दह्यमाना व्रजन्ति च ॥ महता बाणवर्षेण विध्यमानाश्च सर्वतः ॥ २१ ॥ पतद्भिर्वज्रपातैश्च उल्कापातैश्च दारुणैः ॥ प्रदीप्तांगारवर्षेण दह्यमानाश्च संति हि ॥ २२ ॥ महता पांसुवर्षेण पूर्य्यमाणा रुदंति च ॥ महामेघवरैर्घोरैस्त्रस्यंते च मुहुर्मुहुः ॥२३॥ निशितायुधवर्षेण भिद्यमानाश्च सर्वतः॥महाक्षाराम्बुधाराभिस्सिच्यमाना व्रजंति च ॥२४॥ महीशीतेन मरुता रूक्षेण परुषेण च ॥ समंताद्बाध्यमानाश्च शुष्यंते संकुचन्ति च ॥ २५ ॥ इत्थं मार्गेण रौद्रेण पाथेयरहितेन च ॥ निरालम्बेन दुर्गेण निर्जलेन समंततः ॥ २६ ॥ विषमेणैव महता निर्जनापाश्रयेण च ॥ तमोरूपेण कष्टेन सर्वदुष्टाश्रयेण च ॥ २७ ॥ नीयंते देहिनस्सर्वे ये मूढाः पापकर्मिणः ॥ यमदूतैर्महाघोरै स्तदाज्ञाकारिभिर्बलात् ॥२८॥ एकाकिनःपराधीना मित्रबन्धुविवर्जिताः ॥ शोचंतस्स्वानि कर्म्माणि रुदंतश्च मुहुर्मुहुः ॥२९॥

खारी समुद्रकी धारोंसे सिंचित हुए जाते हैं ॥२४॥ बडी ठंढी रूखी कठोर पवनसे चारों तरफसे बाधित होके सूखते और सिकुडते हैं ॥२५॥ इस प्रकार भयंकर चबेना रहित आधार हीन कठिन सब ओरसे जलशून्य मार्गसे ॥२६॥ बडे विषम निर्जन आश्रय हीन अन्धकार रूपी कष्टसे सम्पूर्ण दुष्टोंके आश्रयसे ॥२७॥ जो पापी मूर्ख प्राणी हैं वे यमराजके आज्ञाकारी महाघोर यमके दूतोंसे बलात्कार ले जाये जाते हैं ॥२८॥ अकेले परा

धीन हुए मित्र बन्धुओंसे रहित कर्मोंको सोचते हुए बारम्बार रोते हुए ॥ २९ ॥ प्रेत होके वस्त्ररहित कण्ठ ओष्ठ तालुसे शुष्क हुए विना सौम्य भयभीत हुए दह्यमान क्षुधासे व्याकुल हुए ॥ ३० ॥ कोई शृंखलासे बँधे हुए कोई पैरोंको ऊपर किये प्रबल यमके दूतोंसे खैंचके ले जाये जाते हैं ॥ ३१ ॥ तथा कोई हृदयसे नीचेको मुख किये घसीटे हुए अति दुःखित बालपाशोंसे बँधी हुई रस्सीसे खैंचे जाते हैं ॥ ३२ ॥ और कोई उत्तान जीव अंकुशसे माथेपर विदीर्ण हुए दुःखित होते हैं और काटोंके मार्गसे कहीं अंगारोंके मार्गसे जाते हैं ॥ ३३ ॥ पश्चात् भुजाओंसे बँधे हुए उदरसे पीडित हुए शृंखलाओंसे पूरित दोनों हाथोंमें कील ठुकी हुई ॥ ३४ ॥

प्रेता भूत्वा विवस्त्राश्च शुष्ककंठौष्ठतालुकाः ॥ असौम्या भयभीताश्च दह्यमानाः क्षुधान्विताः ॥ ३० ॥ बद्धाश्शृंखलया केचि दुत्ता नपादका नराः ॥ कृष्यंते कृष्यमाणाश्च यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥ ३१ ॥ उरसाधोमुखाश्चान्ये घृष्यमाणास्सुदुःखिताः केशपाशनि बंधेन संस्कृष्यंते च रज्जुना ॥ ३२ ॥ ललाटे चांकुशेनान्ये भिन्ना दुष्यंति देहिनः ॥ उत्तानाः कंटकपथा क्वचि दंगारवर्त्मना ॥ ३३ ॥ पश्चाद्बाहुनिबद्धाश्च जठरेण प्रपीडिताः ॥ पूरिताश्शृंखलाभिश्च हस्तयोश्च सुकीलिताः ॥ ४४ ॥ ग्रीवा पाशेन कृष्यंते प्रयांत्यन्ये सुदुःखिताः ॥ जिह्वांकुशप्रवेशेन रज्ज्वाकृष्यन्त एव ते ॥ ३५ ॥ नासाभेदेन रज्ज्वा च त्वाकृ श्यन्ते तथापरे ॥ भिन्नाः कपोलयो रज्ज्वाकृष्यंतेऽन्ये तथौष्ठयोः ॥ ३६ ॥ छिन्नाग्रपादहस्ताश्च च्छिन्नकर्णोष्ठनासिकाः ॥ संछिन्नशिश्नवृषणाः छिन्नभिन्नांगसंधयः ॥ ३७ ॥ आभिद्यमानाः कुंतैश्च भिद्यमानाश्च सायकैः ॥ इतश्चेतश्च धावंतः क्रंद माना निराश्रयाः ॥ ३८ ॥ मुद्गरैर्लोह दण्डैश्च हन्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ कंटकैर्विविधैर्घोरैर्ज्वलनार्कसमप्रभैः ॥ ३९ ॥

तथा कोई ग्रीवा पाश (गर्दनके फांसे) से खेंचे जाते हैं और दुःखित हो जाते हैं और जिह्वांकुश प्रवेशवाली रस्सीसे खींचे जाते हैं ॥ ३५ ॥ तथा नासिका भेदवाली रस्सीसे खींचे जाते हैं कोई कपोलोंमें तथा ओष्ठोंमें रस्सी भेदित होके खींचे जाते हैं ॥ ३६ ॥ आगेके पैर हाथोंसे छिन्न हुए कोई कान ओठ नासिकासे छेदित तथा लिंग अंडकोशोंसे छेदित तथा अंगोंके जोडोंसे छिन्न भिन्न हुये ॥ ३७ ॥ अल कोंसे भिद्यमान हुए तथा बाणोंसे विदीर्ण हुये इधर उधरको दौडते हुए तथा निराश्रय हो रोते हुये ॥ ३८ ॥ कोई बारम्बार मुद्गरोंसे लोहेके

दंडोंसे बारम्बार ताडन किये तथा घोर जालते जलते हुए सूर्यके समान कान्तिवाले अनेक कँाटोंसे पीडित हुए ॥ ३९ ॥ भिन्दिपालोंसे भेदित किये जाते हैं, रुधिर मवादसे टपकते हुए विष्ठाके कीडोंसे नीचे हुए मनुष्य विवश हो ले जाये जाते हैं ॥ ४० ॥ जल तथा अन्नको मांगते हुए भूंखे और छायाकी प्रार्थना करते शीतसे व्याकुल अग्निको चाहते हुए ॥ ४१ ॥ दानहीन मनुष्य इस प्रकार प्रार्थना करते दुःखसे यमराजके घरको जाते हैं जो दानरूपी चबेनेको ग्रहण करनेवाले हैं वे सुखसे यमलोकको जाते हैं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार न्यायसे कष्टपूर्वक जब प्रेतपुरको प्राप्त होते हैं तो दूतोंसे जताये हुए यमराजके सम्मुख खडे किये जाते हैं ॥ ४३ ॥ उनमें जो शुभकर्म करनेवाले

भिन्दिपालैर्विभिद्यंते स्रवंतः पूयशोणितम् ॥ शकृताकृमिदिग्धाश्च नीयंते विवशा नराः ॥ ४० ॥ याचमानाश्च सलिलमन्नं वापिबुभुक्षिताः ॥ छायां प्रार्थयमानाश्च शीतार्ताश्चानलं पुनः ॥ ४१ ॥ दानहीनाः प्रयांत्येवं प्रार्थयंतस्सुखं नराः ॥ गृहीतदान पाथेयास्सुखं यांति यमालयम् ॥ ४२ ॥ एवं न्यायेन कष्टेन प्राप्ताः प्रेतपुरं यदा ॥ प्रज्ञापितास्ततो दूतैर्निवेश्यंते यमाग्रतः ॥ ॥ ४३ ॥ तत्र ये शुभकर्म्माणस्तांस्तु सम्मानयेद्यमः ॥ स्वागतासनदानेन पाद्यार्घ्येण प्रियेण च ॥ ४४ ॥ धन्या यूयं महा त्मानो निगमोदितकारिणः ॥ यैश्च दिव्यसुखार्थाय भवद्भिस्सुकृतं कृतम् ॥ ४५ ॥ दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषि तम् ॥ स्वर्गंगच्छध्वममलं सर्वकामसमन्वितम् ॥ ४६ ॥ तत्र भुक्त्वा महाभोगानंते पुण्यस्य संक्षयात् ॥ यत्किंचिदल्पमशुभं पुनस्तदिह भोक्ष्यथ॥४७॥धर्म्मात्मानो नरा ये च मित्रभूत्वा इवात्मनः ॥ सौम्यं सुखं प्रपश्यंति धर्मराजानमेव च ॥ ४८ ॥ ये पुनः क्रूरकर्म्माणस्ते पश्यंति भयानकम् ॥ दंष्ट्राकरालवदनं भृकुटीकुटिलेक्षणम् ॥ ४९ ॥

प्राणी हैं, उनको यमराज स्वागत आसन देने पाद्य अर्घ्य प्रेम आदिसे सन्मान करते हैं ॥ ४४ ॥ शास्त्रके अनुकूल कर्म करनेवाले तुम महा त्मा धन्य हो जिन आप लोगोंने दिव्य सुखके लिये पुण्य किया ॥ ४५ ॥ दिव्य विमानपर चढके दिव्य स्त्रियोंके भोगसे भूषित सब काम नाके देनेवाले निर्मल स्वर्गको जाओ ॥ ४६ ॥ वहां महाभोगोंको अन्तमें पुण्यके नाश होनेपर जो कुछ थोडा पाप हो तो फिर यहां भोगोगे ॥ ४७ ॥ जो धर्मात्मा मित्रभूत ऐसी आत्मावाले पुरुष हैं वे धर्मराजके यहां सौम्य सुखको देखते हैं ॥ ४८ ॥ और जो क्रूर (बुरे)

कर्म करनेवाले हैं वे भयानक दंष्ट्रा और विकराल मुखवाले भृकुटीसे कुटिल दृष्टिवाले ॥४९॥ ऊपर केशयुक्त बडी दाढी मूछोंवाले ऊपरको कम्पायमान अधरवाले अठारह भुजावाले क्रुद्ध नीलअंजनके समुदायके समान ॥५०॥ सम्पूर्ण शस्त्रोंसे घिरे हुए हाथोंवाले सब प्रकारके दण्डसे डांटते हुए बडे भैंसेपर चढे हुए जलती हुई अग्निके समान नेत्रवाले ॥५१॥ रक्त माला और वस्त्रधारी सुमेरुपर्वतके समान ऊंचे प्रलयकालके मेघके समान शब्द करनेवाले समुद्रको पीते हुएके समान स्थित हुए ॥५२॥ हिमालयपर्वतको निगलते हुएके समान अग्निको उगलते हुएके समान स्थित यमराजको तथा कालानलके समान कान्तिवाले मृत्यु जिनके समीपमें स्थित है ॥५३॥ अंजनके समान काल भयानक यमराज मारी तथा उग्र महामारी

ऊर्ध्वकेशं महाश्मश्रुमूर्ध्वप्रस्फुरिताधरम् ॥ अष्टादशभुजं क्रुद्धं नीलांजनचयोपमम् ॥ ५० ॥ सर्वायुधोद्धतकरं सर्वदण्डेन तर्जयन् ॥ महामहिषमारूढं दीप्ताग्निसमलोचनम् ॥ ५१ ॥ रक्तमाल्यांबरधरं महामेरुमिवोच्छ्रितम् ॥ प्रलयाम्बुदनिर्घोषं पिबन्निव महोदधिम् ॥ ५२ ॥ ग्रसंतमिव शैलेन्द्रमुद्गिरंतमिवानलम् ॥ मृत्युश्चैव समीपस्थः कालानलसमप्रभः ॥ ५३ ॥ काल श्चांजनसंकाशः कृतांतश्च भयानकः ॥ मारीचोग्रमहामारी कालरात्रिश्च दारुणा ॥ ५४ ॥ विविधा व्याधयः कुष्ठा नानारूपा भयावहाः ॥ शक्तिशूलांकुशधराः पाशचक्रासिपाणयः ॥५५॥ वज्रतुंडधरा रुद्रा क्षुरतूणधनुर्द्धराः ॥ नानायुधधरास्सर्वे महावीरा भयंकराः ॥ ५६ ॥ असंख्याता महावीराः कालाञ्जनसमप्रभाः ॥ सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानकाः ॥ ५७ ॥ अनेन परि चारेण वृतं तं घोरदर्शनम् ॥ यमं पश्यंति पापिष्ठाश्चित्रगुप्तं च भीषणम् ॥ ५८ ॥

तथा दारुण कालरात्रि ॥ ५४ ॥ अनेक प्रकार व्याधि अनेक रूपसे भयानक कुष्ठादि शक्ति त्रिशूल अंकुशधारी पाश चक्र खड्ग हाथोंमें लिये ॥ ५५ ॥ वज्र तथा तुंडधारी रुद्र छुरे तर्कस धनुषके धारण करनेवाले अनेक शस्त्रोंको धारण करनेवाले सब महावीर भयंकर ॥ ५६ ॥ असंख्यात महावीर कालाञ्जनके समान कान्तिवाले समस्त शस्त्रोंसे व्याप्त हाथोंवाले भयानक यमराजके दूत ॥ ५७ ॥ इस परिचारसे घिरे हुए भयंकर दर्शनवाले उन यमराजको तथा भयानक चित्रगुप्तको पापी लोग देखते हैं ॥ ५८ ॥

और उन पापकर्म करनेवाले जीवोंको यमराज अत्यन्त ललकारता है और भगवान् चित्रगुप्त धर्मवाक्योंसे बोधन करते हैं ॥५९॥ इति श्रीशिवमहापुराणे

भाषाटीकायां पं० उ० सं० नरकलोकमार्गयमदूतस्वरूपवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ चित्रगुप्त बोले, अरे ! अरे ! पापकर्म करनेवाले दूसरेके द्रव्यके

हरनेवाले रूप और वीर्यसे गर्वित हुए दूसरोंकी स्त्रीसे प्रसंग करनेवाले ॥१॥ जो तुमने यह कर्म किया है वह अब भोगते हो सो तुमने अपनी पीडाके

अर्थ क्यों पाप किया ॥२॥ अब तुम अपने कर्मोंसे पीडित हुए क्या आलाप करते हो अपने कर्मोंके फलोंको भोगो इसमें किसीका दोष नहीं है ॥३॥

निर्भर्त्सयति चात्यंतं यमस्तान्पापकर्म्मणः ॥ चित्रगुप्तश्च भगवान्धर्म्मवाक्यैः प्रबोधयेत् ॥५९॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्च

म्यामुमासंहितायां नरकलोकमार्गयमदूतस्वरूपवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ चित्रगुप्त उवाच ॥ भो भो दुष्कृतकर्म्माणः पर

द्रव्यापहारकाः ॥ गर्विता रूपवीर्य्येण परदारावमर्दकाः ॥१॥ यस्त्वयं क्रियते कर्म तदिदं भुज्यते पुनः ॥ तत्किमात्मोपघातार्थं

भवद्भिर्दुष्कृतं कृतम् ॥२॥ इदानीं किं प्रलप्यध्वे पीड्यमानास्स्वकर्म्मभिः ॥ भुज्यंतां स्वानि कर्म्माणि नास्ति दोषो हि कस्यचित्

॥३॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवं ते पृथिवीपालास्संप्राप्तास्तत्समीपतः ॥ स्वकीयैः कर्म्मभिर्घोरैर्दुष्कर्म्मबलदर्पिणः ॥४॥ तानपि

क्रोधसंयुक्तश्चित्रगुप्तो महाप्रभुः ॥ संशिक्षयति धर्म्मज्ञो यमराजानुशिक्षया ॥५॥ चित्रगुप्त उवाच ॥ भो भो नृपा दुराचाराः प्रजा

विध्वंसकारिणः ॥ अल्पकालस्य राज्यस्य कृते किंदुष्कृतं कृतम् ॥६॥ राज्यभोगेन मोहेन बलादन्यायतःप्रजाः ॥ यद्दण्डिताः

फलं तस्य भुज्यतामधुना नृपाः ॥७॥ क्व तद्राज्यं कलत्रं च यदर्थमशुभं कृतम् ॥ तत्सर्वं संपरित्यज्य यूयमेकाकिनःस्थिताः ॥८॥

सनत्कुमारजी बोले, इसी प्रकार अपने घोर दुष्कर्मोंसे दुष्कर्म तथा बलमें अभिमानी वे राजा उनके समीप प्राप्त होते हैं ॥४॥ क्रोध सहित महाप्रभु

धर्मात्मा चित्रगुप्त यमराजकी आज्ञासे उन राजाओंको शिक्षा देता है ॥५॥ चित्रगुप्त बोलते हैं हे दुराचारी ! प्रजाके नाश करनेवाले राजाओ !

तुमने थोडे समयके राज्यके लिये क्यों पाप किया ॥६॥ हे राजाओ ! तुमने जो राज्य भोगनेके कारण मोहसे बलसे अन्यायसे प्रजाको दंड दिया है

अब उसका फल भोगो ॥ ७ ॥ वह राज्य और स्त्री कहाँ है जिसके लिये तुमने पाप किया उन सबको त्यागके तुम अकेले स्थित हो ॥ ८ ॥

अब मैं तुम्हारा वह बल नष्ट हुआ देखता हूँ कि जिससे प्रजाको विध्वंस किया यमके दूतोंसे बांधे गये हो अब कैसे हो ॥ ९ ॥ सनत्कुमार बोले, यमराजके इस प्रकार अनेक वचनोंसे प्राप्त हुए वे राजालोग मौन होके अपने कर्मोंको सोचते हैं ॥१०॥ धर्मराज यमराज राजाओंके उन कर्मोंको उद्देश करके उनके पापरूपी कीचडके शुद्ध होनेके निमित्त दूतोंसे यह कहते हैं ॥११॥ यमराज बोलते हैं, हे चंड ! महाचंड ! तुम बलात्कारसे इन राजाओंको पकडकर क्रमसे नरकाग्नियोंमें गिराके नियमसे शुद्ध करो ॥ १२ ॥ सनत्कुमारजी बोले, उनकी आज्ञासे शीघ्र उन राजाओंको

पश्यामि तद्बलं नष्टं येन विध्वंसिताः प्रजाः ॥ यमदूतैर्योज्यमाना अधुना कीदृशं भवेत् ॥९॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवं बहुविधैर्वाक्यैरुपलब्धा यमेन ते ॥ स्वानिकर्म्माणि शोचंति तूष्णीं तिष्ठति पार्थिवाः ॥ १० ॥ इति कर्म्म समुद्दिश्य नृपाणां धर्म्मराडयमः ॥ तत्पापपंकशुद्ध्यर्थमिदं दूतान्ब्रवीति च ॥ ११ ॥ यमराज उवाच ॥ भोभोश्चण्ड महाचंड गृहीत्वा नृपतीन्बलात् ॥ नियमेन विशुद्ध्यध्वं क्रमेण नरकाग्निषु ॥ १२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ततश्शीघ्रं समादाय नृपान्संगृह्य पादयोः ॥ भ्रामयित्वा तु वेगेन निक्षिप्योर्ध्वं प्रगृह्य च ॥ १३ ॥ सर्वप्रायेण महतातीव तप्ते शिलातले ॥ आस्फालयंति तरसा वज्रेणेव महाद्रुमान् ॥ १४ ॥ ततस्सरक्तं श्रोत्रेण स्रवते जर्जरीकृतः ॥ निस्संज्ञस्ससदा देही निश्चेष्टस्संप्रजायते ॥ १५ ॥ ततस्स वायुना स्पृष्टस्स तैरुज्जीवितः पुनः ॥ ततः पापविशुद्ध्यर्थं क्षिपंति नरकार्णवे ॥ १६ ॥ अष्टाविंशतिसंख्याभिः क्षित्यधस्सप्तकोटयः ॥ सप्तमस्य तलस्यांते घोरे तमसि संस्थितः ॥ १७ ॥

पकड दोनों पैरोंको जोरसे घुमाके ऊपरको लेके फिर नीचे फेंककके ॥ १३ ॥ सबोंसे बडे अत्यन्त तपे हुए शिलातलपर वज्रसे महावृक्षोंके समान बडे वेगसे ताडन करते हैं ॥ १४ ॥ तब कानोंसे रुधिर टपकता है उस समय प्राणी जर्जर हुआ चेतनारहित हो जाता है ॥ १५ ॥ तब वह वायुसे स्पर्श हुआ और उनसे जिलाया हुआ पापकी शुद्धिके अर्थ नरकोंमें फेंका जाता है ॥१६॥ सात करोड़ अहाईस योजन पृथ्वीके नीचे सातवें तलके अन्तमें घोर अन्धकारमें स्थित होता है ॥ १७ ॥

प्रथम कोटि घोरनामक है उसके नीचे सुघोर है अतिघोर महाघोर पांचवीं घोररूप है ॥ १८ ॥ छठी तलातल नामक सातवीं भयानक आठवीं कालरात्रिनौमी भयोत्कटा ॥ १९ ॥ उसके नीचे दशवीं चंड उससे नीचे महाचंड और चंडकोलाहल तथा प्रचंड चंडनामक ॥ २० ॥ पद्मा पद्मावती भीता भीमा भीषणनायिका कराला विकराला वीसवीं वज्रा कही हैं ॥ २१ ॥ त्रिकोणा पंचकोणा सुदीर्घा अखिलार्त्तिदा समा भीम बला आभोग्रा तथा आखिरकी दीप्तप्राया ॥ २२ ॥ इस प्रकार तुमसे घोर नरक कोटि नामसे कहीं यह अट्ठाईस पापोंकी यातना हैं ॥ २३ ॥

घोराख्या प्रथमा कोटिः सुघोरा तदधः स्थिता ॥ अतिघोरा महाघोरा घोररूपा च पंचमी ॥१८॥ षष्ठी तलातलाख्या च सप्तमी च भयानका॥अष्टमी कालरात्रिश्च नवमी च भयोत्कटा॥१९॥ दशमी तदधश्चण्डा महाचण्डा ततोऽप्यधः ॥ चण्डकोलाहलाचान्या प्रचण्डा चण्डनायिका ॥ २० ॥ पद्मा पद्मावती भीता भीमा भीषणनायिका ॥ कराला विकराला च वज्राविंशतिमा स्मृता ॥२१॥ त्रिकोणा पञ्चकोणा च सुदीर्घा चाखिलार्तिदा॥समा भीमबलाभोग्रा दीप्तप्रायेति चान्तिमी॥२२॥इति ते नामतः प्रोक्ता घोरा नरककोटयः॥अष्टाविंशतिरेवैताः पापानां यातनात्मिकाः॥२३॥तासां क्रमेण विज्ञेयाः पंच पञ्चैव नायकाः॥प्रत्येकं सर्वकोटीनां नामतस्सं निबोधत ॥२४॥ रौरवः प्रथमस्तेषां रुवंते यत्र देहिनः ॥ महारौरवपीडाभिर्महांतोऽपि रुदंति च ॥२५॥ ततश्शीतं तथा चोष्णं पंचाद्या नायकास्स्मृताः॥ सुघोरस्सुमहातीक्ष्णस्तथा संजीवनः स्मृतः॥२६॥ महातमो विलोमश्च विलोपश्चापि कंटक॥ तीव्रवेगः करालश्च विकरालः प्रकंपनः ॥२७॥महावक्त्रश्च कालश्च कालसूत्रः प्रगर्जनः ॥ सूचीमुखस्सुनेतिश्च खादकस्सुप्रपीडनः ॥ २८ ॥

उनमेंसे क्रमसे पांच पांच नायक यातना जाननीं इनमेंसे सब कोटियोंमें प्रत्येक नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ २४ ॥ उनमेंसे पहला रौरव है जहाँ प्राणी रोते हैं महारौरवकी पीडासे बडे पुरुष भी रुदन करते हैं ॥ २५ ॥ तब शीत और उष्ण पाँच आद्य नायक हैं सुघोर सुमहातीक्ष्ण तथा संजीवन कहा है ॥ २६ ॥ महातम, विलोम, विलोप, कंटक, तीव्रवेग, कराल, विकराल, प्रकंपन ॥ २७ ॥ महावज्र, काल, कालसूत्र, प्रगर्जन, सूची मुख, सुनेति, खादक, सुप्रपीडन ॥ २८ ॥

कुंभीपाक, सुपाक, क्रकच, अति दारुण, अंगार राशिभवन, मेरु, असृक्प्रहित ॥ २९ ॥ तीक्ष्णतुंड, शकुनि, महासंवर्तक, क्रतु, तप्तजंतु, पंकलेप, प्रतिमांस, त्रपूद्भव, ॥३०॥ उच्छ्वास, सुनिरुच्छ्वास, सुदीर्घ, कूटशाल्मलि, दुरिष्ट, सुमहावाद, प्रवाह, सुप्रतापन ॥ ३१ ॥ और मेघ, वृष, शाल्म, सिंह, व्याघ्र, हाथीके मुखवाले, श्वान, सूकर, बकरे, भैंसे, घूंस, कोयल, भेडियेके मुखवाले ॥ ३२ ॥ मगर, कुंभीन, नक्र नाम वाले, सर्प, कच्छप, काग नामक, गिद्ध, उल्लू, हलौक नामवाले, गीदड, ऊंट, कैकडे नामवाले ॥ ३३ ॥ मेंडक, पूतिवक्र, रक्ताक्ष, पूति

कुम्भीपाकसुपाकौ च क्रकचश्चातिदारुणः ॥ अंगारराशिभवनं मेरुरसृक्प्रहितस्ततः ॥२९॥ तीक्ष्णतुण्डश्च शकुनिर्महासंवर्तकः क्रतुः ॥ तप्तजंतुः पंकलेपः प्रतिमांसस्त्रपूद्भवः ॥३०॥ उच्छ्वासस्सुनिरुच्छ्वासो सुदीर्घः कूटशाल्मलिः ॥ दुरिष्टस्सुमहावादः प्रवादस्सुप्रतापनः ॥३१॥ ततोमेघोवृषःशाल्मस्सिंहव्याघ्रगजाननाः ॥ श्वसूकराजमहिषघूककोकवृकाननाः ॥ ३२ ॥ ग्राहकुंभी ननक्राख्यास्सर्पकूर्माख्यवायसाः ॥ गृध्रोलूकहलौकाख्याः शार्दूलक्रथकर्कटाः ॥३३॥ मंडूकाः पूतिवक्त्राश्च रक्ताक्षः पूतिमृत्तिकाः ॥ कणधूम्रस्तथाग्निश्च कृमिगन्धिवपुस्तथा ॥३४॥ अग्रीध्रश्चाप्रतिष्ठश्च रुधिराभश्श्वभोजनः ॥ लाला भेक्षांत्रभक्षौ च सर्व भक्षः सुदारुणः ॥३५॥ कंटकस्सु विशालश्च विकटः कटपू तनः॥अंबरीषः कटाहश्च कष्टा वैतरणी नदी ॥३६॥ सुतप्तलोहशयन एकपादः प्रपूरणः ॥ असितालवनं घोरमस्थिभंगःसुपूरणः ॥ ३७ ॥ विलातसोऽसुयंत्रोऽपि कूटपाशः प्रमर्दनः ॥ महाचूर्णोसु चूर्णोऽपि तप्तलोहमयं तथा ॥ ३८ ॥ पर्वतः क्षुरधारा च तथा यमलपर्वतः ॥ मूत्रविष्ठाश्रुकूपश्च क्षारकूपश्च शीतलः ॥३९॥ मुसलोलूखलं यन्त्रं शिलाशकटलांगलम् ॥ तालपत्रासिगहनं महाशकटमण्डपम् ॥ ४० ॥

मृत्तिका, कणधूम्र अग्नि, कृमि, गन्धि, वपु ॥ ३४ ॥ अग्रीध्र, अप्रतिष्ठ, रुधिराभ, श्वभोजन, लाला भक्ष, अंत्र भक्ष, सर्व भक्ष, सुदारुण ॥ ३५ ॥ ॥ कंटक, सुविशाल, विकट, कट पूतन, अंबरीष, कटाह, कष्ट दायक वैतरणी, नदी ॥ ३६ ॥ सुतप्तलोह शयन, एकवाद, प्रपूरण, असितालवन, घोर, अस्थि भंग, सुपूरण ॥ ३७ ॥ विलातस, असुयंत्र, कूट पाश, प्रमर्दन, महाचूर्ण, असुचूर्ण, तप्तलोह मय ॥ ३८ ॥ पर्वत, क्षुरधारा, यमलपर्वत, मूत्र, विष्ठा, आसुओंका कूप, क्षार कूप, शीतल ॥ ३९ ॥ मूसल ऊखल यंत्र, शिला शकट, लांगल.

तालपत्र, असिगहन, महाशकट मंडप ॥ ४० ॥ संमोह, अस्थिभंग, तप्त, चल मय, गुड, बहुदुःख, महाक्लेश, कश्मल, सम्ल, मलत ॥ ४१ ॥ हालाहल, विरूप, स्वरूप, यमानुग, एकपाद, त्रिपाद, तीव्र अचीवर, तम ॥ ४२ ॥ यह क्रमसे सात सौ नरक हैं और प्रति कोटिमेंसे पांच पांच नायक हैं ॥ ४३ ॥ रौरवके सौ नरक कहे हैं चालीस सौ महानरक मंडल कहा है ॥ ४४ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार मैंने तुमसे नरकोंकी स्थिति संख्या पूर्वक कही वैराग्य और उसकी पाप गतिको भी सुनो ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं० उ० सं० नरकलोकवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ सनत्कुमारजी बोले, इन नरकोंमें पापी लोग गिराये जाते हैं अनेक प्रकारकी यात

संमोहमस्थिभंगश्च तप्तश्चलमयो गुडम् ॥ बहुदुखं महाक्लेशः कश्मलं समलं मलात् ॥४१॥ हालाहलो विरूपश्च स्वरूपश्च यमानुगः ॥ एकपादस्त्रिपादश्च तीव्रश्चाचीवरं तमः ॥ ४२ ॥ अष्टाविंशतिरित्येते क्रमशः पंचपंचकम् ॥ कोटीनामानुपूर्व्येण पंच पंचैव नायकाः ॥ ४३ ॥ रौरवाय प्रबोध्यंते नरकाणां शतं स्मृतम् ॥ चत्वारिंशच्छतं प्रोक्तं महानरकमण्डलम् ॥ ४४ ॥ इति ते व्यास संप्रोक्ता नरकस्य स्थितिर्मया॥प्रसंख्यानाच्च वैराग्यं शृणु पापगतिं च ताम्॥४५॥इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां नरकलोकवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एषु पापाः प्रपच्यंते शोष्यंतेनरकाग्निषु ॥ यातनाभिर्विचित्राभि रास्वकर्म्मक्षया द्भृशम् ॥१॥ स्वमलप्रक्षयाद्यद्वदग्नौधास्यंति धातवः ॥ तत्र पापक्षयात्पापा नराः कर्मानुरूपतः ॥ २ ॥ सुगाढं हस्तयोर्बद्ध्वा ततश्शृंखलया नराः॥महावृक्षाग्रशाखासु लम्ब्यन्ते यमकिंकरैः॥३॥ततस्ते सर्वयत्नेन क्षिप्ता दोलंति किंकरैः॥ दोलंतश्चातिवेगेन विसंज्ञा यांति योजनम्॥४॥अंतरिक्षस्थितानां च लोहभारशतं पुनः॥पादयोर्बध्यते तेषां यमदूतैर्महाबलैः॥५॥

नाओंसे अपने कर्मोंके नाश होनेतक अत्यन्त नरकाग्नियोंमें सुखाये जाते हैं ॥ १ ॥ जिस प्रकार धातुओंको अपने मलको दूर करनेके अर्थ अग्निमें रखते हैं इसी प्रकार पापी मनुष्योंको पापोंके नाश होनेके निमित्त अपने कर्मानुसार नरकोंमें गिराते हैं ॥ २ ॥ यमके दूत पापियोंके हाथोंको शृंखलासे दृढ बांधके तत्पश्चात् महावृक्षकी शाखाओंमें लटकाते हैं ॥ ३ ॥ तब वे सब यत्नसे यमके किंकरोंसे फेंके हुए कांपते हैं अति वेगसे काँपते हुए चेतना रहित योजनोंतक जाते हैं ॥ ४ ॥ फिर महाबली यमके दूत आकाशमें स्थित हुए उनके पैरोंमें

सौभार लोहा बांधते हैं ॥ ५ ॥ उस बड़े भारसे अत्यन्त ताडन किये हुए मनुष्य अपने कर्मोंको स्मरण करते हैं और निश्चल मौन स्थित रहते हैं ॥ ६ ॥ फिर उन पापियोंको घोर किंकर चारोंतरफसे अंकुशोंसे अग्निके समान दारुण लोहेके दंडोंसे मारते हैं ॥ ७ ॥ तत्पश्चात् बारम्बार अतिदीप्त अग्निके तीव्र अंगारोंसे सब शरीरमें लिप्त किये जाते हैं ॥ ८ ॥ अत्यन्त लिप्त होनेसे अंगसे छेदित और जर्जरीकृत फिर क्रमसे शिर आदि अंगोंको विदीर्ण कर ॥ ९ ॥ पक्वान्नके समान तपे हुए लोहेके कडाहोंमें पकाये जाते हैं और विष्ठासे पूर्ण कूपमें तथा कीडोंके समूहमें ॥ १० ॥ फिर मेद (चर्बी) लोहू पीवसे पूर्ण हुई बाउडीमें उनको फेंकते हैं और वे तीक्ष्ण कीडों तथा लोहेकी

तेन भारेण महता प्रभृशं ताडिता नराः ॥ ध्यायंति स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति निश्चलाः ॥६॥ ततोऽकुशैराग्निवर्णैर्लोह दण्डैश्च दारुणैः ॥ हन्यंते किंकरैर्घोरैस्समन्तात्पापकर्म्मिणः॥७॥ततः क्षारेण दीप्तेन वह्नेरपि विशेषतः ॥ समंततः प्रलिप्यंते तीव्रेण तु पुनःपुनः ॥८॥ द्रुतेनात्यंतलिप्तेन कृत्तांगा जर्जरीकृताः ॥ पुनर्विदार्य्य चांगानि शिरसः प्रभृति क्रमात् ॥९॥ वृता कवत्प्रपच्यंतेतप्तलोहकटाहकैः॥विष्ठापूर्णे तथा कूपे कृमीणां निचये पुनः॥१०॥मेदोऽसृक्पूयपूर्णायां वाप्यां क्षिप्यंति ते पुनः ॥ भक्ष्यंते कृमिभिस्तीक्ष्णैर्लोहतुंडैश्चवायसैः॥११॥श्वभिर्दंशैर्वृकैर्व्याघ्रैरौद्रैश्चविकृताननैः॥पच्यंते मत्स्यवच्चापि प्रदीप्तांगारराशिषु ॥१२॥भिन्नाः शूलैस्सुतीक्ष्णैश्च नराः पापेन कर्म्मणा॥तैलयन्त्रेषु चाक्रम्य घोरैः कर्म्मभिरात्मनः॥१३॥तिला इव प्रपीड्यंते चक्राख्येजनपिंडकाः॥भ्रज्यंते चातपे तप्ते लोहभाण्डेष्वनेकधा ॥१४॥ तैलपूर्णकटाहेषु सुतप्तेषु पुनःपुनः॥बहुधा पच्यते जिह्वा प्रपीड्योरसि पादयोः ॥१५॥ यातनाश्च महत्योऽत्र शरीरस्याति सर्वतः ॥ निश्शेषनरकेष्वेवं क्रमंति क्रमशो नराः ॥ १६ ॥

चोंचनेवाले कागोंसे खाये जाते हैं ॥ ११ ॥ कुत्ते डांस भेडिये तथा भयानक विकृत मुखवाले व्याघ्रादि जीवोंसे काटे जाते और जलते अंगारोंके ढेरमें मछलीके समान पकाये जाते हैं ॥ १२ ॥ मनुष्य पापकर्मसे अति तीक्ष्ण त्रिशूलसे छेदन हुए अपने घोर कर्मोंसे कोल्हूमें डालके ॥ १३ ॥ जैसे चक्र (कोल्हू) में तिलोंको वैसे मनुष्योंके शरीर पीसे जाते हैं फिर तप्त घाममें तथा अनेक प्रकार लोहेके वर्तनोंमें भूजे जाते हैं ॥१४॥ तेलसे भरे हुए गरम कडाहोंमें बारम्बार हृदयमें पैरोंमें पीडा देके जिह्वाको पकाते हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकार शरीरकी बडी

यातना है और मनुष्य सम्पूर्ण नरकोंमें क्रमसे जाते हैं ॥ १६ ॥ हे व्यासजी ! सब नरकोंमें यमकी यातना विचित्र और अति कष्टकी देनेवाली है वहां यमके दूतोंसे सब अगोंमें कष्ट दिया जाता है ॥ १७ ॥ जलते हुए अंगारोंको लेके मुखमें भरके ताडन किया जाता है तत्पश्चात् दीप्त अंगारों (राख) से तथा ताम्बेसे जलाया जाता है ॥ १८ ॥ फिर अत्यन्त तपाये हुए घृतसे तथा तेलसे उसका मुख भरके इधर उधरसे पीडा देके मारा जाता है ॥ १९ ॥ कहीं कहीं विष्ठा और कृमि (कीडों) से पूर्यमाण हुए अति उग्र प्रदीप्त लोह शाल्मलीको लिप्टाते हैं ॥ २० ॥ फिर जलते हुए बडे घनोंसे पृष्ठदेशमें ताडन किये जाते हैं बडे दातोंवाले अति कंठवाले बलवान् आरोंसे ॥ २१ ॥

नरकेषु च सर्वेषु विचित्रा यमयातना॥याम्यैश्च दीयते व्यास सर्वांगेषु सुकष्टदा॥१७॥ज्वलदंगारमादाय मुखमापूर्य्य ताड्यते ॥ ततः क्षारेण दीप्तेन ताम्रेण च पुनःपुनः ॥१८॥ घृतेनात्यन्ततप्तेन तदा तैलेन तन्मुखम्॥इतस्ततः पीडयित्वा भृशमापूर्य्य हन्यते ॥१९॥विष्ठाभिः कृमिभिश्चापि पूर्य्यमाणाः क्वचित्क्वचित्॥परिष्वजंति चात्युग्रां प्रदीप्तां लोहशाल्मलीम्॥२०॥हन्यंते पृष्ठदेशे च पुनर्दीप्तैर्महाघनैः॥दन्तुरेणादिकंठेन क्रकचेन बलीयसा॥२१॥शिरःप्रभृति पीडयंतेघोरैः कर्म्मभिरात्मजैः॥खाद्यंते च स्वमांसानि पीयते शोणितं स्वकम्॥२२॥अन्नं पानं न दत्तं यैस्सर्वदा स्वात्मपोषकैः॥इक्षुवत्ते प्रपीड्यंते जर्जरीकृत्य मुद्गरैः॥२३॥असितालवने घोरे छिद्यन्ते खण्डशस्ततः॥सूचीभिर्भिन्नसर्वाङ्गास्तप्तशूलाग्ररोपिताः॥२४॥संचाल्यमाना बहुशः क्लिश्यंते न म्रियंन्ति च॥तथा च तच्छरीराणि सुखदुःखसहानि च॥२५॥देहादुत्पाट्य मांसानि भिद्यंते स्वैश्च मुद्गरैः॥दंतुराकृतिभिर्घोरैर्यमदूतैर्बलोत्कटैः॥२६॥

अपने घोर कर्मोंके कारण उनके मांस खाये जाते हैं और रुधिर पिया जाता है इस प्रकार पापी जन पीडित होते हैं ॥ २२ ॥ अपनी आत्माके ही पोषण करनेवाले जिन्होंने अन्न दान कभी नहीं दिया, वे मुद्गरोंसे कूटे हुए ईखके समान पेरे जाते हैं ॥ २३ ॥ फिर घोर असिताल वनमें खंड खंड होके छेदित होते हैं और सुइयोंसे सब अंग भिन्न होते हैं तथा तपाये हुए त्रिशूल पर रक्खे जाते हैं ॥ २४ ॥ वे बहुत चलाये हुए क्लेशित होते हैं परन्तु मरते नहीं और उनके शरीर सुख दुःखके सहने योग्य होते हैं॥२५॥बलवान् दंतुर आकारवाले घोर दूतोंने

मुद्गरोंसे देहसे मांस उखाडके भेदन किये जाते हैं ॥ २६ ॥ निरुच्छ्वास नामक नरकमें विना श्वांसके स्थित होते हैं और उच्छ्वासमें मनुष्य बालूके घरमें ताडन किये जाते हैं ॥ २७ ॥ और रौरव नरकमें रोते हुए मनुष्य अनेक बन्धोंसे पीडित होते हैं महारौरवकी पीडासे बडे पुरुष भी रुदन करते हैं ॥ २८ ॥ पैरोंमें मुखमें गुदामें शिरमें नेत्रोंमें मस्तकमें तीक्ष्ण घनोंसे तथा अति तप्त हुई लौहशंकु [लोहकी कीलों] से ताडन किये जाते हैं ॥ २९ ॥ और अति तप्त रेतमें बारम्बार गिराये जाते हैं अत्यन्त तपे हुए जन्तु पंकमें फेंके हुए मनुष्य स्वरहीन होके रोते हैं ॥ ३० ॥ हे मुने ! कुम्भीपाक नरकोंमें सब प्रकार असह्य तपाये हुये तेलमें क्रूरकर्म करनेवाले पापियोंको पकाते हैं ॥ ३१ ॥

निरुच्छ्वासे निरुच्छ्वासास्तिष्ठंति नरके चिरम्॥उत्ताडचंते तथोच्छ्वासे वालुकासदने नराः॥२७॥रौरवे रोदमानाश्च पीडचंते विविधैर्वधैः ॥ महारौरवपीडाभिर्मर्हातोऽपि रुदंति च ॥२८॥ पत्सु वक्त्रे गुदे मुंडे नेत्रयोश्चैव मस्तके ॥ निहन्यंते घनैस्तीक्ष्णैस्सुतप्तैर्लौह शंकुभिः ॥२९॥ सुतप्तावालुकायां तु प्रयोज्यंते मुहुर्मुहुः ॥ जंतुपंके भृशं तप्ते क्षिप्ताः क्रन्दंति विस्वरम् ॥३०॥ कुंभीपाकेषु च तथा तप्ततैलेषु वै मुने॥पापिनः क्रूरकर्म्माणोऽसह्येषु सर्वथा पुनः॥३१॥लालाभक्षेषु पापास्ते पात्यंते दुःखदेषु वै ॥ नानास्थानेषु पच्यंते नरकेषु पुनःपुनः ॥३२॥ सूचीमुखे महाक्लेशे नरके पात्यते नरः ॥ पापी पुण्यविहीनश्च ताड्यते यमकिंकरैः॥३३॥लौहकुम्भे विनिःक्षिप्ताः श्वसन्तश्च शनैःशनैः॥महाग्निना प्रपच्यंते स्वपापैरेव मानवाः॥३४॥दृढं रज्ज्वादिभिर्बद्ध्वा प्रपीडचंते शिलासु च ॥क्षिप्यंते चान्धकूपेषु दश्यंते भ्रमरैर्भृशम् ॥३५॥ कृमिभिर्भिन्नसर्वांगाश्शतशो जर्जरीकृताः ॥ सुतीक्ष्णक्षारकूपेषु क्षिप्यंते तदनंतरम् ॥३६॥

और उन पापियोंको अति दुःखदायक लालाभक्ष नरकोंमें तथा अनेक स्थानके नरकोंमें बारम्बार गिराते हैं ॥ ३२ ॥ पुण्यहीन पापी मनुष्य महाक्लेश दायक सूचीमुख नामक नरकमें यमके दासोंसे गिराया जाता है, और ताडन किया जाता है ॥ ३३ ॥ लोक कुम्भमें गिराये हुए शनैः शनैः सांस लेते हुए मनुष्य अपने पापोंसे महाग्नि द्वारा पकाये जाते हैं ॥ ३४ ॥ रस्सी आदिसे दृढ बांधके शिलाओंपर ताडन किये जाते हैं तथा अन्धकूपोंमें फेंके जाते हैं और भ्रमरोंसे अत्यन्त डँसे जाते हैं॥३५॥कीडोंसे सब अङ्गोंमें विदीर्ण हुए सैकडों जगहोंसे

घायल हो तत्पश्चात् अतितप्त राखके कूपोंमें फेंके जाते हैं ॥ ३६ ॥ और इस महाज्वाल नरकमें पापी दुःखी होके रोते हैं और उसकी लपटसे भस्म हुए इधर उधर दौडते हैं ॥ ३७ ॥ और मुखों द्वारा पीठपर लाके कन्धेपर रखके बाहु तथा पृष्ठसे वा उन दोनोंके मध्य भागसे अति वेगसे खींचके ॥ ३८ ॥ पापरज्जुसे अत्यन्त बांधे हुए सब पापी महाज्वालनरकमें बद्धपिंड हुए सब यातनाओंको देखते हैं ॥ ३९ ॥ रस्सियोंसे बांधे हुए और कीचडसे लिपटे हुए अन्ने उपलोंकी व भूसीकी अग्निमें पकाये जाते हैं और मरते नहीं ॥ ४० ॥

महाज्वालेऽत्र नरके पापाः क्रन्दंति दुःखिताः ॥ इतश्चेतश्च धावंति दह्यमानास्तदर्चिषा ॥ ३७ ॥ पृष्ठे चानीय तुण्डाभ्यां विन्यस्त स्कंधयोजिते ॥ तयोर्मध्येन वाकृष्य बाहुपृष्ठेन गाढतः ॥ ३८ ॥ बद्धाः परस्परं सर्वे सुभृशं पापरज्जुभिः ॥ बद्धपिंडास्तु दृश्यंते महा ज्वाले तु यातनाः ॥ ३९ ॥ रज्जुभिर्वेष्टिताश्चैव प्रलिप्ताः कर्दमेन च ॥ करीषतुषवह्नौ च पच्यंते न म्रियंति च ॥ ४० ॥ सुतीक्ष्णं चरितास्ते हि कर्कशासु शिलासु च ॥ आस्फाल्य शतशः पापाः पच्यंते तृणवत्ततः ॥ ४१ ॥ शरीराभ्यंतरगतैः प्रभूतैः कृमिभिर्नराः ॥ भक्ष्यंते तीक्ष्णवदनैरात्मदेहक्षयाद्भृशम् ॥ ४२ ॥ कृमीणां निचये क्षिप्ताः पूयमांसास्थिराशिषु ॥ तिष्ठंत्युद्विग्नहृदयाः पर्वताभ्यां निपीडिताः ॥ ४३ ॥ तप्तेन वज्रलेपेन शरीरमनुलिप्यते ॥ अधोमुखोर्ध्वपादाश्च तातप्यंते स्म वह्निना ॥ ४४ ॥ वदनांतः प्रविन्यस्तां सुप्रतप्तामयोगदाम् ॥ ते खादन्ति पराधीनास्तैस्ताडयंते समुद्गरैः ॥ ४५ ॥

और वे कठोर शिलाओं पर बडी जोरसे जाते हुए सैकडों स्थानोंमें ताडन करके तृणके समान भूंजे जाते हैं ॥ ४१ ॥ शरीरके भीतर गये हुए अनेक तीव्र मुखवाले कीडोंसे अपने देहके नाश होनेके कारण अत्यन्त भक्षण किये जाते हैं ॥ ४२ ॥ और कृमी (कीडों) के समूहमें फेंके हुए तथा पीव मांस अस्थिके ढेरमें डाले हुए दुःखी मनसे स्थित रहते हैं ॥ ४३ ॥ और तपे हुए वज्र लेपसे शरीर लिप्त होता है और नीचेको मुख तथा ऊपरको पैर करके अग्निसे तपाये जाते हैं ॥ ४४ ॥ वे मुखके भीतर डाली हुई अतितप्त

लोहेकी गदाको वेवस होके खाते हैं और यमदूतोंके मुद्गरोंसे ताडन किये जाते हैं ॥ ४५ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार बुरे कर्म करनेवाले नरकोंमें दुःख भोगते हैं अब मैं पापी पुरुषोंके तत्त्वको वर्णन करता हूं ॥ ४६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० सामान्यतोनरकगति वर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ सनत्कुमारजी बोले, झूंठे शास्त्रमें प्रवृत्त हुआ पुरुष द्विजिह्वाख्य नरकमें जाता है और जिह्वाके समान आधेको सतक फैले हुए हलोंसे पीडित होता है ॥ १ ॥ जो क्रूर मनुष्य अपने माता पिता गुरुको ललकारता है वह कीडोंसे मिले हुए विष्ठासे मुख भरके मारा जाता है ॥ २ ॥ और जो शिवके मंदिर बाग बाउडी कूप सरोवरोंको तथा जहां मनुष्य रमण करते हैं ऐसे ब्राह्मणके स्थानको तोडते हैं

इत्थं व्यास कुकर्म्माणो नरकेषु पचंति हि ॥ वर्णयामि विवर्णत्वं तेषां तत्त्वाय कर्म्मिणाम् ॥४६॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्या मुमासंहितायां सामान्यतो नरकगतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ सनत्कुमार उवाच ॥ मिथ्यागमं प्रवृत्तस्तु द्विजिह्वाख्ये च गच्छति ॥ जिह्वार्द्धकोशविस्तीर्णहलैस्तीक्ष्णः प्रपीडचते ॥१॥ निर्भर्त्सयति यः क्रूरो मातरं पितरं गुरुम् ॥ विष्ठाभिः कृमिमिश्राभिर्मुखमापूर्य्य हन्यते ॥२॥ ये शिवायतनारामवापीकूपतडागकान् ॥ विद्रवंति द्विजस्थानं नरास्तत्र रमंति च ॥३॥ कामायोद्वर्तनाभ्यंगं स्नानपानाम्बुभोजनम् ॥ क्रीडनं मैथुनं द्यूतमाचरन्ति मदोद्धताः ॥४॥ पेचिरे विविधैर्घोरैरिक्षुयंत्रादिपीडनैः ॥ निरयाग्निषु पच्यंते यावदाभूतसंप्लवम् ॥५॥ तेनतेनैव रूपेण ताडचंते पारदारिकाः ॥ गाढमालिंग्य ते नारीं सुतप्तां लोहनिर्मिताम् ॥ ६ ॥ पूर्वाकाराश्च पुरुषाः प्रज्वलन्ति समंततः ॥ दुश्चारिणीं स्त्रियं गाढमालिंगंति रुदंति च ॥ ७ ॥

॥३॥ जो मनुष्य कामके निमित्त मदमें डूबे हुए उद्वर्तन उखटन स्नान पान जल भोजन क्रीडा मैथुन द्यूतको करते हैं ॥ ४ ॥ वे अनेक प्रकारके घोर कोलू आदिके पीडनसे दुःखी किये जाते हैं और प्रलय कालपर्यन्त नरकाग्नियोंमें पडते हैं ॥ ५ ॥ और दूसरोंकी स्त्रियोंसे प्रसंग करनेवाले पुरुष उसी रूपसे ताडन किये जाते हैं और वे तपे हुए लोहेकी बनी स्त्रीको जोरसे आलिंगनकर पीडित होते हैं ॥ ६ ॥ पहलेके समान आकार वाले पुरुष सब ओरसे जलते हैं और व्यभिचारिणी स्त्रीको वेगसे आलिंगन करके रोते हैं ॥ ७ ॥

जो सत्पुरुषोंकी निन्दा करते हैं उनके अग्निके समान तप्त लोहेकी कीलोंसे तथा ताम्बेकी कीलोंसे कान भरे जाते हैं ॥ ८ ॥ और फिर रांग सीसा आरकूट (पीतल) गलाकर जलोंसे दूध वा तपे हुए तेजसे अथवा वज्र लेपसे ॥ ९ ॥ क्रमानुसार कानोंको भरके सम्पूर्ण नरकोंमें क्रमसे यह सम्पूर्ण यातना (वेदना) चारों ओरसे प्राप्त कराई जाती है ॥ १० ॥ और सब इन्द्रियोंके पापोंसे तथा प्रत्येक शरीरके किये हुए पापोंसे क्रमानुसार कडी यातना मिलती है ॥ ११ ॥ जो मूढ स्पर्श दोषसे पर स्त्रीको स्पर्श करते हैं उनका हाथ अग्निके समान लाल धूलिसे अत्यन्त पूर्ण किया जाता है ॥ १२ ॥ और उनका शरीर सम्पूर्ण तप्त राख आदिसे लेपन किया जाता है और सब

ये शृण्वंति सतां निंदां तेषां कर्णप्रपूरणम् ॥ अग्निवर्णैरयःकीलैस्तप्तैस्ताम्रादिनिर्मितैः ॥ ८ ॥ त्रपुसीसारकूटाद्भिः क्षीरेण च पुनः पुनः॥सुतप्ततीक्ष्णतैलेन वज्रलेपेन वा पुनः ॥ ९ ॥ क्रमादापूर्य्य कर्णांस्तु नरकेषु च यातनाः ॥ अनुक्रमेण सर्वेषु भवंत्येताः समं ततः ॥ १० ॥ सर्वेन्द्रियाणामप्येवं क्रमात्पापेन यातनाः ॥ भवंति घोराः प्रत्येकं शरीरेण कृतेन च ॥ ११ ॥ स्पर्शदोषेण ये मूढास्स्पृशंति च परस्त्रियम् ॥ तेषां करोऽग्निवर्णाभिः पांशुभिः पूर्य्यते भृशम् ॥ १२ ॥ तेषां क्षारादिभिस्सर्वैश्शरीरमनुलिप्यते ॥ यातनाश्च महाकष्टास्सर्वेषु नरकेषु च ॥१३॥ कुर्वन्ति पित्रोर्भृकुटिं करनेत्राणि ये नराः ॥ वक्त्राणि तेषां सांतानि कीर्य्यंते शंकुभिर्दृढम् ॥ १४ ॥ यैरिन्द्रियैर्नरा ये च कुर्वन्ति परस्त्रियम् ॥ इन्द्रियाणि च तेषां वै विकुर्वंति तथैव च ॥ १५ ॥ परदारांश्च पश्यन्ति लुब्धास्तब्धेनचक्षुषा॥सूचीभिश्चाग्निवर्णाभिस्तेषां नेत्रप्रपूरणम्॥१६॥क्षाराद्यैश्च क्रमात्सर्वा इहैव यमयातनाः॥भवंति मुनिशार्दूल सत्यंसत्यं न संशयः॥१७॥देवाग्निगुरुविप्रेभ्यश्चानिवेद्य प्रभुंजते॥लोहकीलशतैस्तप्तैस्तज्जिह्वास्यं च पूर्य्यते॥ १८॥

नरकोंमें बडी कष्ट दायक पीडा मिलती है ॥ १३ ॥ जो मनुष्य माता पिताको भ्रुकुटी हाथ आंख दिखाते हैं उनके मुख ऊपर तक कीलोंसे दृढ़ भरे जाते हैं ॥ १४ ॥ जिन इन्द्रियोंसे मनुष्य पराई स्त्रीको दूषित करते हैं उनकी वही इन्द्रिय विकारको प्राप्त होती है ॥ १५ ॥ जो लोभी चंचल नेत्रसे दूसरेकी स्त्रियोंको देखते हैं आगके समान लाल हुई सुइयोंसे तथा गरम राख आदिसे उनका नेत्र पूर्ण होता है ॥ १६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यहांपर क्रमसे यमराजकी यातना प्राप्त होती हैं यह सत्य है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ १७ ॥ जो पुरुष

देवता अग्नि गुरु ब्राह्मणोंको विना दिये खाते हैं उनकी जिह्वा तथा मुख लोहेकी सैकडों कीलोंसे पूर्ण किया जाता हैं ॥ १८ ॥ जो मनुष्य देवता और बागके फूलोंको हाथसे लेकर सूंघते हैं फिर शिरपर धारण करते हैं ॥ १९ ॥ उनका शिर तप्त लोहेके कीलोंसे ठोका जाता है और उनकी नासिका बहुत राख आदिसे अत्यन्त भरी जाती है ॥ २० ॥ जो मनुष्य महात्मा धर्मात्मा उपदेशकको तथा देवता अग्नि गुरु भक्तोंको तथा सनातन धर्मशास्त्रकी निन्दा करते हैं ॥ २१ ॥ उनके हृदय कण्ठ तथा जिह्वामें और दांतोंकी सन्धियोंमें तालुमें ओठोंमें नासिकामें मस्तक तथा सब अंगोंके जोडमें ॥ २२ ॥ आगके समान लाल तपी हुई तीन शिखावाली लोहेकी कीलें मुद्गरोंसे ठोंकी जाती हैं

ये देवारामपुष्पाणि लोभात्संगृह्य पाणिना ॥ जिघ्रंति च नरा भूयः शिरसा धारयंति च ॥ १९ ॥ आपूर्य्यते शिरस्तेषां तप्तैलौहस्य शंकुभिः ॥ नासिका वातिबहुलैस्ततः क्षारादिभिर्भृशम् ॥२०॥ ये निंदन्ति महात्मानं वाचकं धर्म्मदेशिकम् ॥ देवाग्निगुरुभक्तांश्च धर्म्मशास्त्रं च शाश्वतम् ॥ २१ ॥ तेषामुरसि कण्ठे च जिह्वायां दंतसन्धिषु ॥ तालुन्योष्ठे नासिकायां मूर्ध्नि सर्वाङ्गसन्धिषु ॥ २२ ॥ अग्निवर्णास्तु तप्ताश्च त्रिशाखा लोहशंकवः ॥ आखिद्यंते च बहुशः स्थानेष्वेतेषु मुद्गरैः ॥ २३ ॥ ततः क्षारेण दीप्तेन पूर्य्यते हि समं ततः ॥ यातनाश्च महत्यो वै शरीरस्याति सर्वतः ॥ २४ ॥ अशेषनरकेष्वेव क्रमंति क्रमशः पुनः ॥ ये गृह्णन्ति परद्रव्यं पद्भ्यां विप्रं स्पृशंति च ॥ २५ ॥ शिवोपकरणं गां च ज्ञानादिलिखितं च यत् ॥ हस्तपादादिभिस्तेषामापूर्य्यते समंततः ॥ २६ ॥ नरकेषु च सर्वेषु विचित्रा देहयातनाः ॥ भवंति बहुशः कष्टाः पाणिपादसमुद्भवाः ॥ २७ ॥ शिवायतनपर्य्यंते देवारामेषु कुत्रचित् ॥ समुत्सृजंति ये पापाः पुरीषं मूत्रमेव च ॥ २८ ॥

॥ २३ ॥ फिर पीछेसे जलती हुई राखसे सब अंगमें लेप किया जाता है और सब शरीरमें यातना प्राप्त होती हैं ॥ २४ ॥ पराये धनको लेते तथा पैरोंसे ब्राह्मणको छूते हैं, वे क्रमसे सम्पूर्ण नरकोंमें जाते हैं ॥ २५ ॥ और जो शिवके पूजा संबंधी वस्तुको तथा गाय और ज्ञानके लेख (पुस्तक) को पैरोंसे छूते हैं उनके हाथ पैर आदि कीलोंसे ठोके जाते हैं ॥ २६ ॥ और उनको संपूर्ण नरकोंमें बहुत कष्ट दायक हाथ पैरोंकी कडी पीडा प्राप्त होती है ॥ २७ ॥ जो पापी शिवके मंदिरकी सीमामें देवताओंके बागमें कहींपर विष्ठा या मूत्र करते हैं ॥ २८ ॥

उनकी उपस्थेन्द्रिय अंडकोष सहित लोहेकी मुद्गरोंसे पीसी जाती हैं, तथा अग्निके समान लाल सुइयोंसे पूर्ण की जाती हैं ॥ २९ ॥ तब उस पापीकी गुदामें और लिंगमें बडी गरम राख तथा खारी वस्तु भली भांतिसे पूर्ण की जाती है ॥ ३० ॥ और ऐसी वेदना प्राप्त होती है जिससे मन तथा सम्पूर्ण इन्द्रियोंको दुःख होता है जो मनुष्य धन होनेपर भी अति तृष्णासे दान नहीं करते ॥ ३१ ॥ समयपर घरमें आये हुए अतिथि (अभ्यागत) का तिरस्कार करते हैं, इस कारण वे पापको पाय अपवित्र नरकमें जाते हैं ॥ ३२ ॥ जो कुत्ते और कौवोंको बलि न देके भोजन करते हैं उनका कंठ और मुख दो कीलोंसे ताडित होता है ॥ ३३ ॥ और कीडोंसे तथा हिंसक जन्तुओंसे तथा लोहेकी

तेषां शिश्नं सवृषणं चूर्ण्यते लोहमुद्गरैः ॥ सूचीभिरग्निवर्णाभिस्कथा त्वापूर्य्यते पुनः ॥२९॥ ततः क्षारेण महता तीव्रेण च पुनः पुनः ॥ द्रुतेन पूर्य्यते गाढं गुदे शिश्ने च देहिनः ॥ ३० ॥ मनस्सर्वेन्द्रियाणां च यस्माद्दुःखं प्रजायते ॥ धने सत्यपि ये दानं न प्रयच्छंति तृष्णया ॥ ३१ ॥ अतिथिं चावमन्यंते काले प्राप्ते गृहाश्रमे ॥ तस्मात्ते दुष्कृतंप्राप्य गच्छंति निरयेऽशुचौ ॥ ३२ ॥ येऽन्नं दत्त्वा हि भुंजंति न श्वभ्यस्सह वायसैः ॥ तेषां च विवृतं वक्त्रं कीलकद्वयताडितम् ॥ ३३ ॥ कृमिभिः प्राणिभिश्चोग्रैर्लोहतुण्डैश्च वायसैः ॥ उपद्रवैर्बहुविधैरुग्रैरंतः प्रपीड्यते ॥ ३४ ॥ श्यामश्च शबलश्चैव यममार्गानुरोधकौ ॥ यौ स्तस्ताभ्यां प्रयच्छामि तौ गृह्णीतामिमं बलिम् ॥३५॥ ये वा वरुणवायव्या याम्या नैर्ऋत्यवायसाः ॥ वायसा पुण्यकर्माणस्ते प्रगृह्णंतु मे बलिम् ॥ ३६ ॥ शिवामभ्यर्च्य यत्नेन हुत्वाग्नौ विधिपूर्वकम् ॥ शैवैर्मन्त्रैर्बलिं ये च ददंते न च ते यमम् ॥ ३७ ॥

चोंचवाले काकोंसे तथा अनेक प्रकारके उग्र उपद्रवोंसे पीडित होता है ॥ ३४ ॥ श्याम और शबल नामवाले यमराजके मार्गको रोकनेवाले जो दो श्वान हैं मैं उन दोनोंको बलि देता हूं वे दोनों इस बलिको ग्रहण करें ॥ ३५ ॥ और जो पश्चिमके वायव्य दिशाके तथा उत्तर और नैर्ऋत्यके पुण्यात्मा काक हैं, वे मेरी बलिको ग्रहण करें ॥ ३६ ॥ जो यत्न पूर्वक शिवको पूजके विधि पूर्वक अग्निमें हवन करके शिवके मंत्रोंसे बलिदान करते हैं वे यमराजको नहीं देखते हैं ॥ ३७ ॥

और स्वर्ग लोकको जाते हैं इस कारण प्रतिदिन चार हाथका मंडल करके गन्ध अक्षतादिसे सुगंधित कर ॥ ३८ ॥ ईशान दिशामें धन्वतरि वैद्यको तथा पूर्वमें इन्द्रके निमित्त डाले उत्तरमें यमको पश्चिममें सुदक्षीमको तथा दक्षिणमें पितरोंको ॥ ३९ ॥ प्राच्य दिशामें अर्यमा (सूर्य) को भाग दे द्वार देशमें धाता और विधाताको भाग दे ॥ ४० ॥ श्वानोंके लिये तथा श्वपतियोंके अर्थ तथा पक्षियोंके अर्थ भूमिपर रख दे देवताओंसे पितर और मनुष्योंसे प्रेत और भूतोंसे गुह्यकोंसे ॥ ४१ ॥ पक्षी कृमि कीटोंसे गृहस्थी मनुष्य उपजीवित होता है स्वाहाकार स्वधाकार तीसरा वषट्कार ॥४२॥ तथा हंतकार यह चारों गऊके स्तनोंमें हैं स्वाहाकार स्तनमें है इस स्तनमें देवता स्वाहाकारको

पश्यंति त्रिदिवं यांति तस्माद्दद्यादिनेदिने॥मण्डलं चतुरस्रं तु कृत्वा गंधादिवासितम् ॥३८॥ धन्वन्तर्यर्थमीशान्यां प्राच्यामिन्द्राय निःक्षिपेत् ॥ याम्यां यमाय वारुण्यां सुदक्षोमाय दक्षिणे ॥ ३९ ॥ पितृभ्यस्तु विनिक्षिप्य प्राच्यामर्यमणे ततः ॥ धातु श्चैव विधातुश्च द्वारदेशे विनिःक्षिपेत् ॥ ४० ॥ श्वभ्यश्च श्वपतिभ्यश्च वयोभ्यो विक्षिपेद्भुवि ॥ देवैः पितृमनुष्यैश्च प्रेतैर्भूतैस्सगुह्यकै ॥ ४१ ॥ वयोभिः कृमिकीटैश्च गृहस्थश्चोपजीव्यते ॥ स्वाहाकारः स्वधाकारो वषट्कारस्तृतीयकः ॥ ४२ ॥ हंतकारस्तथैवान्यो धेन्वाः स्तनचतुष्टयम् ॥ स्वाहाकारं स्तनं देवास्स्वधां चपितरस्तथा ॥ ४३ ॥ वषट्कारं तथैवान्ये देवा भूतेश्वरास्तथा ॥ हंतकारं मनुष्याश्च पिबंति सततं स्तनम् ॥ ४४ ॥ यस्त्वेतां मानवो धेनुं श्रद्धया ह्यनुपूर्विकाम् ॥ करोति सततं काले साग्नित्वायोपकल्प्यते ॥ ४५ ॥ यस्तां जहाति वा स्वस्थस्तामिस्रे स तु मज्जति ॥ तस्माद्दत्त्वा बलिं तेभ्यो द्वारस्थश्चितयेत्क्षणम् ॥ ४६ ॥ क्षुधार्तमतिथिं सम्यगेकग्रामनिवासिनम् ॥ भोजयेत्तं शुभान्नेन यथाशक्त्यात्मभोजनात् ॥ ४७ ॥

पितर स्वधाको पान करते हैं ॥ ४३ ॥ वषट्कारको और देवता तथा भूतेश्वर और हंतकारको मनुष्य निरन्तर पान करते हैं ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य आनुपूर्विक इस गायके श्रद्धासे निरन्तर समयपर स्वभोजन देता है वह साग्नित्वके लिये कल्पना किया जाता है ॥ ४५ ॥ और जो उस गायको त्यागता है वह अस्वस्थ हो तामिस्र नरकमें डूबता है इस कारण उन सबोंको बलि देकर क्षणमात्र द्वारपर स्थित होके विचारे ॥ ४६ ॥ और यथाशक्ति अपने भोजनमेंसे भूखे अभ्यागतको वा एक ग्राममें निवासी मनुष्यको विधिपूर्वक श्रेष्ठ अन्नसे भोजन

करावे ॥ ४७ ॥ जिसके घरसे अभ्यागत आशाहीन होके लौट जाता है वह उसको पाप देके और पुण्यको लेके चला जाता है ॥ ४८ ॥ तत्पश्चात् वह मनुष्य स्वादिष्ट भोजनको करता हुआ बहुत समय तक शृंखला युक्त जिह्वाके वेगसे विंधा हुआ रहता है ॥ ४९ ॥ और जिह्वाके मांसको उचेलके तिलमात्र प्रमाणसे जन्तुओंके खानेको दिया जाता है और उनके रुधिरको भेदन करके ॥ ५० ॥ सम्पूर्ण शरीर क्रमानुसार कोडोंसे पीडित होता है, और वह प्राणी भूँख प्यासके अति कष्टसे चला जाता है ॥ ५१ ॥ इस प्रकार पापियोंकी

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ॥ स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥ ४८ ॥ ततोऽन्नं प्रियमेवाश्नन्नरः शृंखलवान्पुनः ॥ जिह्वावेगेन विद्धोत्र चिरं कालं स तिष्ठति ॥४९॥ यतस्तं मांसमुद्धृत्य तिलमात्रप्रमाणतः ॥ खादितुं दीयते तेषां भित्त्वा चैव तु शोणितम् ॥ ५० ॥ निश्शेषतः कशाभिस्तु पीड्यते क्रमशः पुनः ॥ बुभुक्षयातिकष्टं हि तथायाति पिपासया ॥ ५१ ॥ एवमाद्या महाघोरा यातनाः पापकर्म्मणाम् ॥ अंते यत्प्रतिपन्नं हि तत्संक्षेपेण संशृणु ॥ ५२ ॥ यः करोति महापापं धर्म्मं चरति वै लघु ॥ धर्म्मं गुरुतरं वापि तथावस्थे तयोः शृणु ॥५३॥ सुकृतस्य फलं नोक्तं गुरुपापप्रभावतः ॥ न मिनोति सुखं तत्र भोगैर्बहुभिरन्वितः ॥ ५४ ॥ तथोद्विग्नोतिसंतप्तो न भक्ष्यैर्मन्यते सुखम् ॥ अभावादग्रतोऽन्यस्य प्रतिकल्पं दिनेदिने ॥ ५५ ॥ पुमान्यो गुरुधर्म्माऽपि सोपवासो यथा गृही ॥ वित्तवान्न विजानाति पीडां नियमसंस्थितः ॥ ५६ ॥

अनेक यातना हैं और अन्तमें जो उनको प्राप्त होता है उसे संक्षेपसे सुनो ॥ ५२ ॥ जो पुरुष बडे पापको तथा थोडे धर्मको करता है अथवा बहुत धर्मको करता है उन दोनोंकी उस अवस्थाको सुनो ॥ ५३ ॥ बडे पापके प्रभावसे पुण्यका फल नहीं मिलता उस पापसे वह बहुत भोगोंमें फँसा हुआ भी उनमें सुख नहीं पाता है ॥ ५४ ॥ और दुःखित हुआ तथा जलता हुआ वह भोजन योग्य पदार्थोंसे सुख नहीं मानता है और अपनेको उनका अभाव मानकर दूसरोंके आगे देख दुःख पाता है ॥ ५५ ॥ जो बहुत धर्म करनेवाला है वह मनुष्य

उपवासी गृहस्थीके समान धनवान् होके नियममें स्थित होके अपनी पीडाको नहीं जानता है ॥ ५६ ॥ ऐसे अतिघोर पाप हैं जिनसे मनुष्य पृथ्वीपर वज्रसे ताडित हुए पर्वतके समान सैकडों प्रकारसे भेदको प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० नरकगतिभोगवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ व्यासजी बोले, हे प्रभो ! पापी मनुष्य बडे दुःखसे पीडित हो यमके मार्गमें जाते हैं और जिनसे सुखपूर्वक यममार्गसे जाते हैं उन धर्मोंको कहो ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, जो शुभ वा अशुभ कर्म किया है वह निश्चय ही भोगा जाता है अब मैं सुखके देनेवाले उन धर्मोंको कहता हूं ॥ २ ॥ इस संसारमें जो श्रेष्ठ कर्म करनेवाले सौम्यचित्त दया

तानि पापानि घोराणि संति यैश्च नरो भुवि ॥ शतधा भेदमाप्नोति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥ ५७ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यासुमासंहितायां नरकगतिभोगवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ ॥ कृतपापा नरा यांति दुःखेन महतान्विताः ॥ यममार्गं सुखं यैश्च तान्धर्म्मान्वद मे प्रभो ॥ १ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्य मिति चारतः ॥ शुभाशुभमथो वक्ष्ये तान्धर्म्मान्सुखदायकान् ॥ २ ॥ अत्र ये शुभकर्म्माणः सौम्यचित्ता दयान्विताः ॥ सुखेन ते नरा यांति यममार्गं भयावहम् ॥ ३ ॥ यः प्रदद्याद् द्विजेन्द्राणामुपानत्काष्ठपादुके ॥ स नरोऽश्वेन महता सुखं याति यमालयम् ॥ ४ ॥ छत्रदानेन गच्छंति यथा छत्रेण देहिनः ॥ शिबिकायाः प्रदानेन तद्रथेन सुखं व्रजेत्॥ ५ ॥ शय्यासनप्रदानेन सुखं याति सुविश्रमम् ॥ आरामच्छायाकर्तारो मार्गे वा वृक्षरोपकाः ॥ व्रजन्ति यमलोकं च आतपेऽति गतक्लमाः ॥ ६ ॥ यांति पुष्पगयानेन पुष्पारामकरा नराः ॥ देवायतनकर्तारः क्रीडंति च गृहोदरे ॥ ७ ॥

लुपुरुष हैं वे सुखसे भयंकर यममार्गको जाते हैं ॥ ३ ॥ जो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जूता खडाऊ देता है वह मनुष्य बडे घोडेपर चढके सुखसे यमलोकको जाता है ॥ ४ ॥ और छातेके दान करनेसे मनुष्य छातेसे यममार्गको जाते हैं और पालकीके प्रदान करनेसे रथसे सुख पूर्वक जाते हैं ॥ ५ ॥ और शय्या आसनके प्रदान करनेसे विश्राम करके सुखसे जाते हैं, बागकी छाया करनेवाले प्राणी मार्गमें वृक्षोंकी छायासे धूपमें विना कष्टके यमराजके लोकको जाते हैं ॥ ६ ॥ और पुष्पोंके बाग बनानेवाले मनुष्य पुष्पकविमानसे जाते हैं देवताओंके मंदिर

बनानेवाले घरके भीतर क्रीडा करते हैं ॥ ७ ॥ तथा जो संन्यासियोंके आश्रमको तथा अनाथोंके घर बनानेवाले हैं वे मंडपोंके भीतर खेलते हैं ॥ ८ ॥ देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मणोंके तथा माता पिताके पूजनेवाले मनुष्य पूज्यमान हुए सुखपूर्वक यथेच्छित मार्गसे यमलोकको प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥ और दीपके दान करनेवाले सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाश करते हुए जाते हैं, और काथके रसादिके दान करनेसे नीरोग हो सुखसे जाते हैं ॥ १० ॥ गुरुकी शुश्रूषा करनेवाले मनुष्य विश्राम करते हुए जाते हैं दुःखी अनाथ ब्राह्मणोंको देनेवाले सुखसे अपने घरके समान जाते हैं ॥ ११ ॥ और गौके देनेवाले सब कामनासे पूर्ण हुए मार्गसे जाते हैं वहांपर मनुष्य मार्गमें अपने दिय हुए अन्न

कर्तारश्च तथा ये च यतीनामाश्रमस्य च ॥ अनाथमण्डपानां तु क्रीडंति च गृहोदरे ॥ ८ ॥ देवाग्निगुरुविप्राणां मातापित्रोश्च पूजकाः ॥ पूज्यमाना नरा यांति कामुकेन यथासुखम् ॥ ९ ॥ द्योतयंतो दिशस्सर्वा यांति दीपप्रदायिनः ॥ प्रतिश्रयप्रदानेन सुखं यांति निरामयाः ॥ १० ॥ विश्राम्यमाणा गच्छंति गुरुशुश्रूषका नराः ॥ आतोद्यविप्रदातारस्सुखं यांति स्वके गृहे ॥ ११ ॥ सर्वकामसमृद्धेनयथा गच्छंति गोप्रदाः ॥ अन्न दत्तान्नपानानि तान्याप्नोति नरः पथि ॥ १२ ॥ पादशौचप्रदानेन सजलेन पथा व्रजेत् ॥ पादाभ्यंगं च यः कुर्यादश्वपृष्ठेन गच्छति ॥ १३ ॥ पादशौचं तथाभ्यंगं दीपमन्नं प्रतिश्रयम् ॥ यो ददाति सदा व्यास नोपसर्पति तं यमः ॥ १४ ॥ हेमरत्नप्रदानेन याति दुर्गाणि निस्तरन् ॥ रौप्यानड्वत्प्रदानेन यम लोकं सुखेन सः ॥ १५ ॥ इत्येवमादिभिर्दानैस्सुखं यांति यमालयम् ॥ स्वर्गे तु विविधान्भोगान्प्राप्नुवंति सदा नराः ॥ १६ ॥ सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् ॥ सद्यः प्रीति करं हृद्यं बलबुद्धिविवर्धनम् ॥ १७ ॥

पानोंको पाता है ॥ १२ ॥ पाथके प्रदान करनेसे प्राणी जलवाले मार्गसे जाते हैं जो पैरोंकी मालिश (उबटन) करता है वह घोडेकी पीठ पर जाता है ॥ १३ ॥ हे व्यासजी ! पाद्य अभ्यंग दीप अन्न समीप गमन इनको जो दान करता है उसको यमराजका कष्ट नहीं प्राप्त होता है ॥१४॥ सुवर्ण और रत्नके प्रदानसे दुर्गों (किलों) को तरता हुआ जाता है और चांदी आदिके प्रदान करनेसे सुखसे यमलोकको जाता है ॥१५॥इन दोनोंसे मनुष्य सुखपूर्वक यमलोकको जाते हैं और स्वर्गमें सदा अनेक प्रकारके भोगोंको प्राप्त होते हैं ॥१६॥ सब दानोंमें अन्नदान

बडा कहा हैं, निरन्तर प्रीति करनेवाला मनोहर बलबुद्धिका बढानेवाला है ॥ १७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! अन्न दानके समान और कोई दान नहीं है अन्नसे प्राणी उत्पन्न होते हैं और उसके अभावमें मर जाते हैं ॥१८॥ रक्त मांस चर्बी वीर्य यह क्रमसे अन्नसे बढते हैं और वीर्यसे सब प्राणी होते हैं इस कारण यह संसार अन्नमय है ॥ १९ ॥ सुवर्ण रत्न घोडा हाथी स्त्री माला चन्दन आदि समस्त पदार्थोंके प्राप्त होनेपरभी भूंखसे व्याकुल हुए रमण नहीं कर सकते ॥ २० ॥ गर्भाशयमें स्थित तथा उत्पन्न हुए बालक वृद्ध मध्यम देवता दानव राक्षसादि सब भोजनको चाहते हैं ॥ २१ ॥ क्षुधा सम्पूर्ण रोगोंमें प्रबल व्याधि कही है, वह निस्सन्देह अन्नरूपी औषधिके लेप करनेसे नष्ट होती है ॥ २२ ॥ क्षुधाके समान

नान्नदानसमं दानं विद्यते मुनिसत्तम ॥ अन्नाद्भवंति भूतानि तदभावे म्रियंति च ॥ १८ ॥ रक्तं मांसं वसा शुक्रं क्रमादन्नात्प्र वर्धते ॥ शुक्राद्भवंति भूतानि तस्मादन्नमयं जगत् ॥ १९ ॥ हेमरत्नाश्वनागेन्द्रैर्नारीस्रक्चंदनादिभिः ॥ समस्तैरपि संप्राप्तैर्न रमंति बुभुक्षिताः ॥२०॥ गर्भस्था जायमानाश्च बालवृद्धाश्च मध्यमाः ॥ आहारमभिकांक्षंति देवदानवराक्षसाः ॥२१॥ क्षुधा निश्शेषरोगाणां व्याधिः श्रेष्ठतमः स्मृतः ॥ स चान्नौषधिलेपेन नश्यतीह न संशयः ॥ २२ ॥ नास्ति क्षुधासमं दुःखं नास्ति रोगः क्षुधासमः ॥ नास्त्यरोगसमं सौख्यं नास्ति क्रोधसमो रिपुः ॥२३॥ अत एव महत्पुण्यमन्नदाने प्रकीर्तितम् ॥ तथा क्षुधा ग्निना तप्ता म्रियंते सर्वदेहिनः ॥२४॥ अन्नदः प्राणदः प्रोक्तः प्राणदश्चापि सर्वदः॥तस्मादन्नप्रदानेन सर्वदानफलं लभेत् ॥२५॥ यस्यान्नपानपुष्टाङ्गः कुरुते पुण्यसंचयम् ॥ अन्नप्रदातुस्तस्यार्द्धं कर्तुश्चार्द्धं न संशयः ॥ २६ ॥

कोई दुःख नहीं, क्षुधाके समान कोई रोग नहीं और नीरोगके समान सुख नहीं तथा क्रोधके समान कोई शत्रु नहीं है ॥ २३ ॥ उसी कारण अन्नदानमें बडा पुण्य कहा है, कारण कि क्षुधाग्निसे तप्त हुए सम्पूर्ण प्राणी मर जाते हैं ॥ २४॥ अन्नका देनेवाला शास्त्रोंमें प्राणदाता कहा है, और प्राणदाता सर्वस्व दान करनेवाला कहा है इस कारण अन्नके प्रदानसे सब दानोंका फल मिलता है ॥ २५॥ जिसके अन्नपानसे पुष्ट हुआ शरीर पुण्योंको करता वह आधा पुण्य अन्नके दाताका तथा आधा करनेवालेका होता है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ २६ ॥

तीनोंलोकमें भोग स्त्री वाहनादि जितने रत्न हैं उन सबोंको अन्नदाता इस लोकमें तथा परलोकमें पाता है ॥२७॥ यह शरीर धर्म अर्थ काम मोक्षोंका परम साधक है इस कारण अन्नपानसें सदा अपने शरीरको पोषण करे ॥२८॥ सब लोग सबमें प्रतिष्ठित हुए अन्नकी ही प्रशंसा करते हैं कि, अन्नके समान और कोई दान न हुआ न होगा ॥ २९ ॥ हे मुने ! अन्नसे यह सारा विश्व जगत् धारण किया जाता है और लोकमें अन्नही बलदायक है और अन्नमें ही प्राण प्रतिष्ठित हैं ॥३०॥ अपने ऐश्वर्यकी इच्छासे अपने कुटुम्बको पीडा देकर भी भिक्षुक तथा महात्मा ब्राह्मणको अन्न देना उचित है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य याचक ब्राह्मण तथा दुःखीके अर्थ अन्नदान करता है वह अपने परलोक सम्बन्धी श्रेष्ठ

त्रैलोक्ये यानि रत्नानि भोगस्त्रीवाहनानि च ॥ अन्नदानप्रदस्सर्वमिहामुत्र च तल्लभेत् ॥ २७ ॥ धर्म्मार्थकाममोक्षाणां देहः परमसाधनम् ॥ तस्मादन्नेन पानेन पालयेद्देहमात्मनः ॥ २८ ॥ अन्नमेव प्रशंसंतिसर्वमेव प्रतिष्ठितम् ॥ अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ २९ ॥ अन्नेन धार्य्यते सर्वं विश्वं जगादिदं मुने ॥ अन्नमूर्जस्करं लोके प्राणा ह्यन्ने प्रतिष्ठिताः ॥ ३० ॥ दातव्यं भिक्षवे चान्नं ब्राह्मणाय महात्मने ॥ कुटुंबं पीडयित्वापि ह्यात्मनो भूतिमिच्छता ॥३१॥ विददाति निधिश्रेष्ठं यो दद्या दन्नमर्थिने ॥ ब्राह्मणायार्तरूपाय पारलौकिकमात्मनः ॥ ३२ ॥ अचेयर्द्धूतिमन्विच्छन्काले द्विजमुपस्थितम् ॥ श्रांतमध्वनि वृत्त्यर्थं गृहस्थो गृहमागतम् ॥ ३३ ॥ अन्नदः पूजयेद्व्यासः सुशीलस्तु विमत्सरः ॥ क्रोधमुत्पतितंहित्वा दिवि चेह महत्सु खम् ॥ ३४ ॥ नाभिनिंदेदधिगतं न प्रणुद्यात्कथंचन ॥ अपिश्व पाके शुनि वा नान्नदानं प्रणश्यति ॥ ३५ ॥

निधिको देता है ॥ ३२ ॥ अपनी भूतिको चाहनेवाला गृहस्थ भोजनके समय प्राप्त हुए वृत्तिके अर्थ मार्गमें विश्राम करते हुए अपने घरपर आये हुए ब्राह्मणको पूजे ॥ ३३ ॥ हे व्यासजी ! जो सुशील ईर्षासे रहित भोजन देनेवाला उत्पन्न हुए क्रोधको त्यागके पूजता है वह यहां तथा स्वर्गमें बडे सुखको पाता है ॥ ३४ ॥ प्राप्त हुए जीवको किसी प्रकार निन्दा न करे और न ललकारे श्वपाकमें और कुत्तेमें भी किया हुआ अन्नदान नष्ट नहीं होता है ॥ ३५ ॥

जो मनुष्य विश्रान्त हुए पहले कभी न दीखे हुए तथा मार्गमें स्थित हुए को विना क्लेशके अन्न देता है वह समृद्धिको पाता है ॥ ३६ ॥ हे महामुने ! जो पितरोंको देवताओंको ब्राह्मणोंको अभ्यागतोंको भोजनसे सन्तुष्ट करता है उसको बडे पुण्यका फल मिलता है ॥ ३७ ॥ अन्न पान शूद्र तथा ब्राह्मणमें विशेष फलदायक होता है उस समय गोत्र चरण स्वाध्याय तथा देशको नहीं पूंछना चाहिये ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य ब्राह्मणके मांगनेपर भोजन देता है वह प्रलयकाल पर्यन्त परम स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ अन्नदान कर्ताको इस लोकमें वृक्ष सब कामनाके अनुसार फल देनेवाले होते हैं उसी प्रकार स्वर्गमें हर्षयुक्त ब्राह्मण सब काम फलके देनेवाले होते हैं ॥ ४० ॥ हे मुने ! हे महामुने ! अन्नदान करनेसे

श्रांतायादृष्टपूर्वाय ह्यन्नमध्वनि वर्तते ॥ यो दद्यादपरिक्लिष्टं स समृद्धिमवाप्नुयात् ॥३६॥ पितॄन्देवांस्तथा विप्रानतिथींश्च महामुने ॥ यो नरः प्रीणयत्यन्नैस्तस्य पुण्यफलं महत् ॥ ३७ ॥ अन्नं पानं च शूद्रेऽपि ब्राह्मणे च विशिष्यते ॥ न पृच्छेद्गोत्रचरणं स्वाध्यायं देशमेव च ॥ ३८ ॥ भिक्षितो ब्राह्मणेनेह दद्यादन्नं च यः पुमान् ॥ स याति परमं स्वर्गं यावदाभूतसंप्लवम् ॥३९॥ अन्नदस्य च वृक्षाश्च सर्वकामफलान्विताः ॥ भवंतीह यथा विप्रा हर्षयुक्तास्त्रिविष्टपे ॥ ४० ॥ अन्नदानेन ये लोकास्स्वर्गे विरचितामुने ॥ अन्नदातुर्महादिव्यास्ताञ्छृणुष्व महामुने॥ ४१ ॥ भवनानि प्रकाशंते दिवि तेषां महात्मनाम् ॥ नानासंस्थानरूपाणि नानाकामान्वितानि च ॥ ४२ ॥ सर्वकामफलाश्चापि वृक्षा भवनसंस्थिताः ॥ हेमवाप्यः शुभाः कूपा दीर्घिकाश्चैव सर्वशः॥४३॥घोषयंति च पानानि शुभान्यथ सहस्रशः ॥ भक्ष्यभोज्यमयाश्शैला वासांस्याभरणानि च ॥४४॥ क्षीरं स्रवंत्यस्सरितस्तथैवाज्यस्यपर्वताः ॥ प्रासादाः पाण्डुराभासाश्शय्याश्च कनकोज्ज्वलाः ॥ ४५ ॥

स्वर्गमें जो दिव्य लोक रचे हैं उनको सुनो ॥ ४१ ॥ उन महात्माओंके अनेक स्थानोंसे विचित्र तथा अनेक प्रकारकी कामनाओंसे युक्त गृह स्वर्गमें शोभित होते हैं ॥ ४२ ॥ तथा भवनमें स्थित हुए वृक्ष सब कामानुसार फल देनेवाले होते हैं सुवर्णके बाउडी तथा शुभकूप सब और दीर्घिका (झीलें) होती हैं ॥ ४३ ॥ और सहस्रों स्थानोंसे जल शब्द करते हैं तथा भक्ष्य भोज्यमय शैल वस्त्र आभूषण ॥४४॥ तथा दूधके प्रवाहवाली नदी घीके पर्वत श्वेतवर्णवाले महल सुवर्णके समान दीप्यमान शय्या होती हैं ॥ ४५ ॥

अन्नदान कर्ता ऐसे लोकोंको जाते हैं इस कारण जो इस लोकमें तथा पर लोकमें अपने ऐश्वर्यको चाहे वह अन्नदानी होवे ॥ ४६ ॥ अन्न देनेवाले पुण्यात्माओंको यह बडी कान्तिवाले लोक प्राप्त होते हैं इस कारण मनुष्योंको विशेषकर निश्चय अन्नदान करना चाहिये ॥ ४७ ॥ अन्न साक्षात् ब्रह्मा तथा अन्नही विष्णु अन्न स्वयम् शिवजी हैं इस कारण अन्नके समान कोई दान न हुआ न होगा ॥ ४८ ॥ जो मनुष्य बडे पापको करके पीछेसे अन्नदान करता है वह पापोंसे छूटके स्वर्ग लोकको जाता है ॥ ४९ ॥ अन्न, पान, अश्व, गौ, वस्त्र, शय्या, छत्र, आसन यह आठ दान प्रेतलोकमें अति प्रशंसनीय कहे हैं ॥ ५० ॥ मनुष्य इन दानोंके करनेसे विमानके द्वारा

तानन्नदाश्च गच्छंति तस्मादन्नप्रदो भवेत् ॥ यदीच्छेदात्मनो भव्यमिह लोके परत्र च ॥ ४६ ॥ एते लोकाः पुण्यकृतामन्न दानां महाप्रभाः ॥ तस्मादन्नं विशेषेण दातव्यं मानवैर्ध्रुवम् ॥ ४७ ॥ अन्नं प्रजापतिस्साक्षादन्नं विष्णुस्स्वयंहरः ॥ तस्मादन्न समं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ ४८ ॥ कृत्वापि सुमहत्पापं यः पश्चादन्नदो भवेत् ॥ विमुक्तस्सर्वपापेभ्यस्स्वर्गलोकं स गच्छति ॥ ४९ ॥ अन्नपानाश्वगोवस्त्रशय्याच्छत्रासनानि च ॥ प्रेतलोके प्रशस्तानि दानान्यष्टौ विशेषतः ॥ ५० ॥ एवं दान विशेषेण धर्म्मराजपुरं नरः ॥ यस्माद्याति विमानेन तस्माद्दानं समाचरेत् ॥ ५१ ॥ एतदाख्यानमनघमन्नदानप्रभावतः ॥ यः पठेत्पाठयेदन्यान्स समृद्धः प्रजायते ॥ ५२ ॥ शृणुयाच्छ्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान्यो महामुने ॥ अक्षय्यमन्नदानं च पितृणामु पतिष्ठति ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पंचम्यामुमासंहितायामन्नदानमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ सन त्कुमार उवाच ॥ पानीयदानं परमं दानानामुत्तमं सदा ॥ सर्वेषां जीवपुंजानां तर्पणं जीवनं स्मृतम् ॥ १ ॥

धर्मराजके नगरको प्राप्त होता है इस कारण अवश्य दान करना उचित है ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य अन्न दानके प्रभाववाले निष्पाप इस इतिहासको पढता है अथवा औरोंको पढाता है वह धनवान् होता है ॥५२॥ हे महामुने ! जो श्राद्धमें अक्षय्य अन्न दानकी महिमाको सुनता है अथवा ब्राह्मणोंको सुनाता है वह पितरोंके समीप प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० अन्नदानमाहात्म्य वर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ सनत्कुमारजी बोले, पानीका दान सब दानोंमें बडा तथा श्रेष्ठ है सर्वदा सम्पूर्ण जीवोंका तृप्त करनेवाला

जिलानेवाला कहा है ॥ १ ॥ इस कारण अति स्नेहसे पौका दान करना उचित है और जलाश्रयोंका बनाना बडे आनन्दका देनेवाला है ॥ २ ॥ इस लोकमें तथा परलोकमें आनन्द दायक होता है यह सत्य २ है इसमें कुछ सन्देह नहीं इस कारण मनुष्यको बाउडी तथा कुओंको बनवाना चाहिये ॥ ३ ॥ जलसे भरा हुआ कूप नित्य पाप कर्ममें प्रवृत्त हुए मनुष्यके आधे पापको हरण करता है ॥ ४ ॥ जिसकी झील (गुफा) अथवा सरोवरमें गाय ब्राह्मण साधु मनुष्य सदा जल पीते हैं उसका वंश तर जाता है ॥ ५ ॥ गरमीके समयमें जिसका विना वर्जित पानी स्थित रहता है वह बडे दुःख तथा घोर कठिनताको कभी भी नहीं प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ बनवाये हुए सरोवरोंके जो गुण कहे हैं

प्रपादानमतः कुर्यात्सुस्नेहादनिवारितम् ॥ जलाश्रयविनिर्माणं महानन्दकरं भवेत् ॥ २ ॥ इह लोके परे वापि सत्यं सत्यं न संशयः ॥ तस्माद्वापीश्च कूपांश्च तडागान्कारयेन्नरः ॥ ३ ॥ अर्द्धं पापस्य हरति पुरुषस्य विकर्मणः ॥ कूपः प्रवृत्तपानीयः सुप्रवृत्तस्य नित्यशः ॥ ४ ॥ सर्वं तारयते वंशं यस्य खाते जलाशये ॥ गावः पिबंति विप्राश्च साधवश्च नरास्सदा ॥ ५ ॥ निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठत्यवारितम् ॥ सुदुर्गं विषमं कृच्छ्रं न कदाचिदवाप्यते ॥ ६ ॥ तडागानां च वक्ष्यामि कृतानां ये गुणाः स्मृता ॥ त्रिषु लोकेषु सर्वत्र पूजितो यस्तडागवान् ॥ ७ ॥ अथवा मित्रसदने मैत्रं मित्रार्तिवर्जितम् ॥ कीर्तिसंजननं श्रेष्ठं तडागानां निवेशनम् ॥ ८ ॥ धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः ॥ तडागं सुकृते येन तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ९ ॥ चतुर्विधानां भूतानां तडागः परमाश्रयः ॥ तडागादीनि सर्वाणि दिशन्ति श्रियमुत्तमाम् ॥ १० ॥ देवा मनुष्या गन्धर्वाः पितरो नागराक्षसाः ॥ स्थावराणि च भूतानि संश्रयंति जलाशयम् ॥ ११ ॥

उनको मैं वर्णन करता हूं जो तालाब बनानेवाला मनुष्य है वह तीनों लोकोंमें सर्वत्र पूजित होता है ॥ ७ ॥ अथवा मित्रके घरमें मित्रके दुःख रहित मैत्री तथा कीर्त्तिका फैलानेवाला तालाबोंका बनाना अति श्रेष्ठ कहा है ॥ ८ ॥ जिसने अपने शुभ कार्यमें सरोवर बनवाया है उसका अनन्त पुण्य होता है बुद्धिमान् पुरुष धर्म अर्थ कामोंको इससे ही सफल कहते हैं ॥ ९ ॥ सरोवर चार प्रकारके भूतोंका परम आश्रय है तडाग आदि सब जलाशय उत्तम लक्ष्मीको प्रदान करते हैं ॥ १० ॥ देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, नाग, राक्षस, स्थावर, भूत (प्राणी)

आदि सब जलाशयको आश्रय करते हैं ॥ ११ ॥ जिसके सरोवरमें वर्षा कालमें जल रहता है उसको अग्निहोत्रके समान फल होता है ऐसा ब्रह्माजीने कहा है ॥ १२ ॥ जिसके सरोवरमें शरद ऋतुमें जल रहता है उसको सहस्र गौ देनेका फल मिलता है इसमें संशय नहीं ॥ १३ ॥ और जिसके सरोवरमें हेमन्त तथा शिशिर ऋतुमें जल ठहरता है वह बहुत सुवर्ण दानके यज्ञका फल पाता है ॥ १४ ॥ तथा वसन्त और ग्रीष्म ऋतुमें जिसके सरोवरमें पानी रहता है उसको बहुत रात्रियोंके अश्वमेधका फल बुद्धिमान कहते हैं ॥ १५ ॥ हे मुने ! व्यासजी ! मैंने जीवोंको सन्तुष्ट करनेवाले जलाशयका फल कह दिया अब वृक्षोंके लगानेके गुणोंको सुनो ॥ १६ ॥ जो वनमें वृक्षोंको लगाता है वह बीते

प्रावृड्ऋतौ तडागे तु सलिलंयस्य तिष्ठति ॥ अग्निहोत्रफलं तस्य भवतीत्याह चात्मभूः ॥ १२ ॥ शरत्काले तु सलिलं तडागे यस्य तिष्ठति ॥ गोसहस्रफलं तस्य भवेन्नैवात्र संशयः ॥ १३ ॥ हेमन्ते शिशिरे चैव सलिलं यस्य तिष्ठति ॥ स वै बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते फलम् ॥ १४ ॥ वसंते च तथा ग्रीष्मे सलिलं यस्य तिष्ठति ॥ अतिरात्राश्वमेधानां फलमाहुर्मनीषिणः ॥ १५ ॥ मुने व्यासाथ वृक्षाणां रोपणे च गुणाञ्छणु ॥ प्रोक्तं जलाशयफलं जीवप्रीणनमुत्तमम् ॥ १६ ॥ अतीतानागतान्सर्वान्पितृवंशांस्तु तारयेत् ॥ कांतारे वृक्षरोपी यस्तस्माद्वृक्षांस्तु रोपयेत् ॥ १७ ॥ तत्र पुत्रा भवंत्येतं पादपा नात्र संशयः ॥ परं लोकं गतस्सोऽपि लोकानाप्नोति चाक्षयान् ॥ १८ ॥ पुष्पैस्सुरगणान्सर्वान्फलैश्चापि तथा पितॄन् ॥ छायया चातिथीन्सर्वान्पूजयंति महीरुहाः ॥ १९ ॥ किन्नरोरगरक्षांसि देवगंधर्वमानवाः ॥ तथैवर्षिगणाश्चैव संश्रयंति महीरुहान् ॥ २० ॥

हुए तथा आनेवाले सम्पूर्ण पितृवंशोंको तारता है इस कारण अवश्य वृक्षोंको लगवाना चाहिये ॥ १७ ॥ यह लगाये हुए वृक्ष दूसरे जन्ममें उसके पुत्र होते हैं इसमें संशय नहीं और वह भी मृत्युको प्राप्त होके अक्षय लोकोंको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ पुष्पोंसे समस्त देवगणोंको तथा फलोंसे पितरोंको छायासे अतिथियोंको इस कारण वृक्ष सबोंको पूजते हैं ॥ १९ ॥ किन्नर, सर्प, राक्षस, देवता, गन्धर्व, मनुष्य तथा ऋषिगण यह सब वृक्षोंको आश्रय करते हैं ॥ २० ॥

लोकमें पुष्पित हुए तथा फले हुए वृक्ष मनुष्योंको तृप्त करते हैं इससे वे इस लोक तथा परलोकमें धर्मके पुत्र कहे हैं ॥ २१ ॥ सरोवर बनानेवाला बाग लगानेवाला पंच यज्ञ करनेवाला जो द्विज है तथा जो सत्यवादी पुरुष है वह स्वर्गसे कदापि नहीं गिरता ॥ २२ ॥ सत्यही परब्रह्म है सत्यही परम तप है सत्यही परम यज्ञ है और सत्यही परम शास्त्र है ॥ २३ ॥ सत्यही सोते हुओंमें जागता है सत्यही परमपद है सत्यनेही पृथ्वी धारण की है सत्यमेंही सब कुछ स्थित है ॥ २४ ॥ तप, यज्ञ, पुण्य, देव, ऋषि, पितरोंके पूजन जल विद्या आदि सब सत्यमेंही प्रतिष्ठित हैं ॥ २५ ॥ सत्यही यज्ञ तप दान ब्रह्मचर्य है और सत्यही ओंकार है और सत्यही मन्त्रवाली देवी सरस्वती है ॥ २६ ॥

पुष्पिताः फलवंतश्च तर्पयंतीह मानवान् ॥ इह लोके परे चैव पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः ॥२१॥ तडागकृद्वृक्षरोपी चेष्टयज्ञश्च यो द्विजः ॥ एते स्वर्गान्न हीयंते ये चान्ये सत्यवादिनः॥२२॥सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यमेव परंतपः॥ सत्यमेव परो यज्ञस्सत्यमेव परं श्रुतम् ॥२३॥ सत्यं सुप्तेषु जागर्ति सत्यं च परमं पदम् ॥सत्येनैव धृता पृथ्वी सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्॥२४॥ततो यज्ञश्च पुण्यं च देवर्षिपितृपूजने ॥ आपो विद्या च ते सर्वे सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥२५॥ सत्यं यज्ञस्तपो दानं मंत्रा देवी सरस्वती ॥ ब्रह्मचर्य्यं तथा सत्यमोंकारस्सत्यमेव च ॥२६॥ सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रविः ॥ सत्येनाग्निर्निर्दहति स्वर्गस्सत्येन तिष्ठति ॥२७॥ पालनं सर्ववेदानां सर्वतीर्थावगाहनम् ॥ सत्येन वहते लोके सर्वमाप्नोत्यसंशयम्॥२८॥ अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ॥ लक्षाणि क्रतवश्चैव सत्यमेव विशिष्यते ॥२९॥ सत्येन देवाः पितरो मानवोरगराक्षसाः ॥ प्रीयंते सत्यतस्सर्वे लोकाश्च सचराचराः ॥३०॥ सत्यमाहुः परं धर्मं सत्यमाहुः परं पदम्॥सत्यमाहुः परं ब्रह्म तस्मात्सत्यं सदा वदेत् ॥३१॥

सत्यसेही पवन चलता है सत्यसे सूर्य तपता है सत्यसे अग्नि जलता है सत्यसे स्वर्ग मिलता है ॥ २७ ॥ सब वेदोंका पालन तथा संपूर्ण तीर्थोंमें स्नान करना आदि सत्यसे सब मिलता है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २८ ॥ सहस्रों अश्वमेध तथा लक्षों और यज्ञोंको तराजूमें एक ओर रक्खो और एक ओर सत्यको रक्खो तो सत्यहीमें विशेष होगा ॥ २९ ॥ सत्य से देवता पितर मनुष्य सर्प राक्षस आदि चर अचर सहित सम्पूर्ण लोक सत्यसे ही प्रसन्न होते हैं ॥ ३० ॥ सत्यही परमधर्म कहा है सत्यही परमपद कहा है और सत्यही परब्रह्म कहा है इस

कारण सदा सत्यको बोले ॥ ३१ ॥ सत्यमें तत्पर हुए मुनि अतिकठिन तप करके तथा सत्यरूपी धर्ममें प्रवृत्त हुए सिद्ध यह सब स्वर्गको प्राप्त हुए हैं ॥ ३२ ॥ अप्सराओंसे प्रविष्ट हुए विमानोंसहित परिमाताओंको सदा सत्य कहना चाहिये कारण कि--सत्यसे अधिक कोई धर्म नहीं है ॥३३ ॥ अगाध बडे सिद्ध पवित्र ह्रद सत्यरूपी तीर्थमें मनके सहित स्नान करना चाहिये वह परमस्थान कहा है ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य अपने लिये वा पराये लिये वा पुत्रके लिये भी झूंठ नहीं बोलते हैं वे मनुष्य स्वर्गके गामी होते हैं ॥ ३५ ॥ वेद यज्ञ तथा मन्त्र यह असत्यवादी ब्राह्मणों में नहीं शोभा देते हैं इस कारण नित्य सत्य बोले ॥ ३६ ॥ व्यासजी बोले, हे तपोधन ! सब वर्णोंके तथा ब्राह्मणोंके

मुनयस्सत्यनिरतास्तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ॥ सत्यधर्मरतास्सिद्धास्ततस्स्वर्गं च ते गताः ॥३२॥ अप्सरोगणसंविष्टैर्विमानैः परिमातृभिः ॥ वक्तव्यं च सदा सत्यं न सत्याद्विद्यते परम् ॥३३॥ अगाधे विपुले सिद्धे सत्यतीर्थे शुचिह्रदे ॥ स्नातव्यं मनसा युक्तं स्थानं तत्परमं स्मृतम् ॥३४॥आत्मार्थे वा परार्थे वा पुत्रार्थे वापि मानवाः ॥ अनृतं ये न भाषंते ते नरास्स्वर्गगामिनः ॥३५॥ वेदा यज्ञास्तथा मंत्रास्संति विप्रेषु नित्यशः॥नोभांत्यपि ह्यसत्येषु तस्मात्सत्यं समाचरेत् ॥३६॥ ॥व्यास उवाच॥ तपसो मे फलं ब्रूहि पुनरेव विशेषतः ॥ सर्वेषां चैव वर्णानां ब्राह्मणानां तपोधन ॥ ३७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ प्रवक्ष्यामि तपोऽध्यायं सर्व कामार्थसाधकम् ॥सुदुश्चरं द्विजातीनां तन्मे निगदतः शृणु॥३८॥ तपो हि परमं प्रोक्तं तपसा विद्यते फलम् ॥ तपोरता हि ये नित्यं मोदंते सह दैवतैः ॥ ३९ ॥ तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः ॥तपसाप्राप्यते कामस्तपस्सर्वार्थसाधनम् ॥४०॥ तपसा मोक्षमाप्नोति तपसा विंदते महत् ॥ ज्ञानविज्ञानसंपत्तिः सौभाग्यं रूपमेव च ॥ ४१ ॥

तपके फलको मुझसे फिर कहो ॥ ३७ ॥ सनत्कुमारजी बोले, संपूर्ण काम अर्थका साधक द्विजातियोंको कठिनतासे करने योग्य तपके अध्यायको कहता हूं सो कहते हुए मुझसे सुनो ॥ ३८ ॥ तपही बडा कहा है तपसेही अतिफल मिलता है जो नित्य तपमें प्रवृत्त हैं वे देवताओंके सहित आनन्द करते हैं ॥ ३९ ॥ तपसे स्वर्ग मिलता है और तप हीसे यश मिलता है तपसे काम प्राप्त होता है तपही समस्त अर्थोंका साधन हैं ॥४०॥ तपसे मोक्ष प्राप्त होता है तपसे ज्ञान तथा विज्ञानकी सम्पत्ति मिलती है तपसे सौभाग्य और रूप मिलता है ॥४१॥

मनुष्य तपसे अनेक प्रकारकी वस्तुओंको पाता है बहुत क्या ? जो जो मनसे इच्छा करता है सो सब तपसे मिल जाता है ॥ ४२ ॥ विना तपसे कदापि ब्रह्म लोकको नहीं जा सकते विना तपसे परमेश्वर शिवजी भी नहीं प्राप्त हो सकते ॥ ४३ ॥ मनुष्य जिस कार्यको उद्देश्यकरके तप करता है वह सब इस लोकमें तथा परलोकमें प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ मदिराको पान करनेवाला पराई स्त्रीसे प्रसंग करनेवाला ब्रह्महत्या करनेवाला गुरु पत्नीसे गमन करनेवाला भी तपसे तर जाता है और सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ४५ ॥ सबोंके स्वामी शिव तथा सनातन विष्णु ब्रह्मा अग्नि इन्द्र और जो कोई तपसे युक्त हैं ॥ ४६ ॥ ऊर्ध्व रेतवाले अठासी सहस्र जो मुनि हैं वे सब तपसे देवताओंके सहित

नानाविधानि वस्तूनि तपसा लभते नरः॥तपसा लभते सर्वं मनसा यद्यदिच्छति ॥४२॥ नातप्ततपसो यांति ब्रह्मलोकं कदा चन ॥ नातप्ततपसां प्राप्यश्शंकरः परमेश्वरः॥४३॥यत्कार्यं किंचिदास्थाय पुरुषस्तपतेतपः ॥ तत्सर्वं समवाप्नोति परत्रेह च मानवः॥४४॥सुरापः पारदारी च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ तपसा तरते सर्वं सर्वतश्च विमुंचति ॥४५॥ अपि सर्वेश्वरःस्थाणुर्विष्णु श्चैव सनातनः॥ ब्रह्मा हुताशनः शक्रो ये चान्ये तपसान्विताः॥४६॥अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनामूर्द्ध्वरेतसाम्॥ तपसा दिवि मोदंते समेता दैवतैस्सह॥४७॥तपसा लभ्यते राज्यं स च शक्रस्सुरेश्वरः ॥तपसाऽपालयत्सर्वमहन्यहनि वृत्रहा ॥४८॥ सूर्य्या चन्द्रमसौ देवौ सर्वलोकहिते रतौ॥तपसैव प्रकाशंते नक्षत्राणि ग्रहास्तथा॥४९॥न चास्ति तत्सुखं लोके यद्विना तपसा किल॥ तपसैव सुखं सर्वमिति वेदविदो विदुः ॥५०॥ ज्ञानं विज्ञानमारोग्यं रूपवत्त्वं तथैव च ॥ सौभाग्यं चैव तपसा प्राप्यते सर्वदा सुखम् ॥५१॥ तपसा सृज्यते विश्वं ब्रह्मा विश्वं विनाश्रमम् ॥ पाति विष्णुर्हरोऽप्यत्ति धत्ते शेषोऽखिलां महीम् ॥ ५२ ॥

स्वर्ग लोकमें आनंद करते हैं ॥ ४७ ॥ तपसे राज्य मिलता है और तपसे सुरेश्वर इन्द्रने प्रति दिन सबको पालन किया है ॥ ४८ ॥ सब लोकोंके हित करनेवाले सूर्य और चन्द्र देव नक्षत्र और ग्रहादि तपसे ही प्रकाशित होते हैं ॥ ४९ ॥ संसारमें ऐसा कोई सुख नहीं है जो विना तपके प्राप्त होता है तपसे ही सब सुख मिलता है इस प्रकार वेदके जानने वाले कहते हैं ॥ ५० ॥ ज्ञान विज्ञान आरोग्य तथा रूपवत्ता सौभाग्य सुखादि तपसे निरंतर प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥ तपसे ब्रह्माजी विना परिश्रमके संसारको रचते हैं तथा विष्णु

रक्षा करते हैं और शिवजी संहार करते हैं शेषजी सम्पूर्ण पृथ्वीको धारण करते हैं ॥ ५२ ॥ हे महामुने ! तपसे ही गाधिके पुत्र विश्वामित्रजी क्षत्रिय ब्राह्मण हुए और तीनों लोकमें प्रसिद्ध होगये ॥ ५३ ॥ हे महाप्राज्ञ यह तपका उत्तम माहात्म्य तुमसे कहा अब तपसे भी अति श्रेष्ठ अध्ययनके माहात्म्यको श्रवण करो ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां पं० उ० सं० तपोमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुने ! जो वनमें कन्द मूल फल खाके वनमें तप करता है उसके समान एक ऋचाके पढनेसे वह फल प्राप्त होता है ॥ १ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मण वेदके पढनेसे जो पुण्य प्राप्त करता है उसके पढनेसे दूना फल प्राप्त करता है ॥ २ ॥ हे मुने !

विश्वामित्रो गाधिसुतस्तपसैव महामुने ॥क्षत्रियोऽथाभवद्विप्रः प्रसिद्धं त्रिभवेत्विदम् ॥५३॥ इत्युक्तं ते महाप्राज्ञ तपोमाहात्म्य मुत्तमम् ॥ शृण्वध्ययनमाहात्म्यं तपसोऽधिकमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पंचम्यामुमासंहितायां तपोमाहात्म्य वर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥तपस्तपति योऽरण्ये वन्यमूलफलाशनः ॥ योऽधीते ऋचमेकां हि फलं स्यात्तत्समं मुने ॥ १ ॥ श्रुतेरध्ययनात्पुण्यं यदाप्नोति द्विजोत्तमः ॥तदध्यापनतश्चापि द्विगुणं फलमश्नुते ॥ २ ॥ जगद्यथा निरालोकं जायतेऽशशिभास्करम्॥ विना तथा पुराणं ह्यध्येयमस्मान्मुने सदा॥३॥तप्यमानं सदाज्ञानान्निरये योऽपि शास्त्रतः ॥ सम्बोधयति लोकं तं तस्मात्पूज्यः पुराणगः ॥४॥ सर्वेषां चैव पात्राणां मध्ये श्रेष्ठः पुराणवित् ॥ पतनात्त्रायते यस्मात्तस्मात्पात्रमुदाहृतम् ॥ ५ ॥ मर्त्यबुद्धिर्न कर्तव्या पुराणज्ञे कदाचन ॥ पुराणज्ञस्सर्ववेत्ता ब्रह्मा विष्णुर्हरो गुरुः ॥६॥

जिस प्रकार विना सूर्य और चन्द्रमाके जगत् प्रकाश रहित हो जाता है उसी प्रकार विना पुराणके सब संसार प्रकाश हीन होता है इस कारण सदा पुराणका अध्ययन करना चाहिये ॥ ३ ॥ सदा अज्ञानसे तपे हुए लोकको शास्त्रसे समझता है और उनके अज्ञानको निरा करण करता है इस कारण पुराण वक्ता पूजनीय है ॥ ४ ॥ समस्त पात्रोंके मध्यमें पुराण वेत्ता अति श्रेष्ठ है पतनसे रक्षा करता है इस कारण इसे पात्र कहा है ॥ ५ ॥ पुराणके जाननेवालोंमें मनुष्य बुद्धि कदापि नहीं करनी चाहिये कारण कि पुराण वेत्ता सर्वज्ञ

ब्रह्मा विष्णु शिव गुरु होता है ॥ ६ ॥ परलोकमें तथा इस लोकमें कल्याणके अर्थ धन धान्य सुवर्ण अनेक वस्त्र आदि पुराणके जानने वालेको देना चाहिये ॥ ७ ॥ जो सज्जन पुराणके जाननेवाले सुपात्रको श्रेष्ठ पदार्थ बडे प्रेमसे अर्पण करता है वह परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ जो पुरुष सुपात्रके निमित्त भूमी गौ रथ हाथी शोभन घोडोंका देता है उसके पुण्यका फल सुनो ॥ ९ ॥ वह मनुष्य परलोक तथा इस जन्ममें अक्षय सब मनोरथोंको और अश्वमेध यज्ञके फलको पाता है ॥ १० ॥ जो जुती हुई तथा शुभ फल देनेवाली भूमिको देता है वह अपने दश पहले तथा दश अगले वंशोंको तारता है ॥ ११ ॥ और इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगके अन्तमें सुन्दर

धनं धान्यं हिरण्यं च वासांसि विविधानि च ॥ देयं पुराणविज्ञाय परत्रेह च शर्म्मणे ॥ ७ ॥ योददाति महाप्रीत्या पुराण ज्ञाय सज्जनः ॥ पात्राय शुभवस्तूनि स याति परमां गतिम् ॥ ८ ॥ महीं गां वा स्यंदनांश्च गजानश्वांश्च शोभनान् ॥ यः प्रय च्छति पात्राय तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ९ ॥ अक्षयान्सर्वकामांश्च परत्रेह च जन्मनि ॥ अश्वमेधमखस्यापि स फलं लभते पुमान् ॥१०॥ मही ददाति यस्तस्मै कृष्टां फलवतीं शुभाम् ॥ स तारयति वै वंश्यान्दश पूर्वान्दशापरान् ॥ ११ ॥ इह भुक्त्वा खिलान्कमानंते दिव्यशरीरवान् ॥ विमानेन च दिव्येन शिवलोकं स गच्छति ॥ १२ ॥ न यज्ञैस्तुष्टिमायांति देवाः प्रोक्ष णकैरपि ॥ बलिभिः पुष्पपूजाभिर्यथा पुस्तकवाचनैः ॥ १३ ॥ शंभोरायतने यस्तु कारयेद्धर्मपुस्तकम् ॥ विष्णोरर्कस्य कस्यापि शृणु तस्यापि तत्फलम् ॥ १४ ॥ राजसूयाश्वमेधानां फलमाप्नोति मानवः ॥ सूर्यलोकं च भित्त्वाशु ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ १५ ॥ स्थित्वा कल्पशतान्यत्र राजा भवति भूतले ॥ भुंक्ते निष्कंटकं भोगान्नात्र कार्या विचारणा ॥ १६ ॥

शरीर पाय दिव्य विमानसे वह शिव लोकको पाता है ॥ १२ ॥ सब देवता इस प्रकार प्रोक्षण युक्त यज्ञोंसे तथा भेंटोंसे पुष्प पूजासे संतुष्टिको नहीं प्राप्त होते हैं कि जिस प्रकार पुस्तक बांचनेसे प्रसन्न होते हैं ॥ १३ ॥ जो शिवके मंदिरमें अथवा विष्णुके मंदिरमें वा सूर्यके अथवा किसी देवताके मंदिरमें धर्म पुस्तक बँचवाता है उसका भी फल सुनो ॥ १४ ॥ वह मनुष्य राजसूय अश्वमेध यज्ञोंके फलको प्राप्त होता है और वह सूर्य लोकको भेदन करके ब्रह्म लोकको जाता है ॥ १५ ॥ वह तहां सैकडों कल्पोंतक रहके पृथ्वीपर राजा होता है

और निष्कंटक होके भोगोंको भोगता है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ १६ ॥ सैकडों अश्वमेधोंका जो फल कहा है उसके समान वह फलको पाता है जो देवता के आगे जप करता है ॥ १७ ॥ शिवजीके शुभ मंदिरमें इतिहास और पुराण गाथाके विना शिव तथा और देवताओंके प्रसन्न करनेका और कोई उपाय नहीं ॥ १८ ॥ इस कारण सब यत्नसे पुराणकी पुस्तकका पढना तथा प्रेमसे उसका श्रवण करना चाहिये वह सब कामनाओंके फलका देनेवाला है ॥ १९ ॥ शिवके पुराण सुननेसे मनुष्य निष्पाप होता है और अति भोगोंको भोगके शिव लोकको प्राप्त होता है ॥ २० ॥ राजसूय यज्ञसे तथा सौ अग्निष्टोम यज्ञ करनेसे जो पुण्य होता है वह पुण्य शिवकी कथा सुननेसे मिलता है

अश्वमेधसहस्रस्य यत्फलं समुदाहृतम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति देवाग्रे यो जपं चरेत् ॥ १७ ॥ इतिहासपुराणाभ्यां शम्भोराय तने शुभे ॥ नान्यत्प्रीतिकरं शंभोस्तथान्येषां दिवौकसाम् ॥ १८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यं पुस्तकवाचनम् तथास्य ॥ श्रवणं प्रेम्णा सर्वकामफलप्रदम् ॥ १९ ॥ पुराणश्रवणाच्छंभोर्निष्पापो जायते नरः ॥ भुक्त्वा भोगान्सुविपुलाञ्छिवलोकमवाप्नुयात् ॥ २० ॥ राजसूयेन यत्पुण्यमग्निष्टोमशतेन च ॥ तत्पुण्यं लभते शंभोः कथाश्रवणमात्रतः ॥ २१ ॥ सर्वतीर्थावगाहेन गवां कोटिप्रदानतः ॥ तत् फलं लभते शंभोः कथाश्रवणतो मुने ॥ २२ ॥ ये शृण्वंति कथा शंभोस्सदा भुवनपावनीम् ॥ ते मनुष्या न मंतव्या रुद्रा एव न संशयः ॥ २३ ॥ शृण्वतां शिवसत्कीर्तिं सतां कीर्तयतां च ताम् ॥ पदाम्बुजरजांस्येव तीर्थानि मुनयो विदुः ॥२४॥ गंतुं निः श्रेयसं स्थानं येऽभिवांछन्ति देहिनः ॥ कथां पौराणिकीं शैवी भक्त्या शृण्वंतु ते सदा ॥ २५ ॥ कथां पौराणिकीं श्रोतुं यद्यशक्तस्सदा भवेत् ॥ नियतात्मा प्रतिदिनं शृणुयाद्वा मुहूर्तकम् ॥ २६ ॥

॥ २१ ॥ हे मुने ! सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे तथा कोटिगायोंके दान करनेसे जो पुण्य होता है मनुष्य वह पुण्य शिवकी कथा सुननेसे पाता है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य लोकोंको पवित्र करनेवाली शिवजीकी कथाको सुनते हैं वे वास्तवमें मनुष्य नहीं मानने चाहिये किंतु रुद्रही हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ २३ ॥ शिवकी सुन्दर कीर्तिके सुननेवाले तथा कहनेवालोंके चरणकमलोंकी धूलिकोही मुनिगणोंने तीर्थ कहा है ॥ २४ ॥ जो मनुष्य कल्याण करनेवाले स्थानको जाना चाहते हैं वे सदा भक्तिसे शिवपुराणकी कथाको सुनें ॥ २५ ॥ यदि सदा पुराणकी

कथा सुननेमें असमर्थ हो तो प्रतिदिन जितेन्द्रिय होके मुहूर्त (क्षण) मात्र सुने ॥ २६ ॥ हे मुने ! यदि मनुष्य प्रतिदिनके सुननेमें असमर्थ हो तो पुण्यमास आदिमें शिवकी कथा सुने ॥ २७ ॥ हे मुनीश्वर! जो मनुष्य शिवकी कथाको सुनता है वह कर्मरूपी बडे वनको भस्म करके संसारसे तरजाता है ॥ २८ ॥ जो पुरुष मुहूर्तमात्र वा आधे मुहूर्त वा क्षणभर शिवजीकी कथाको भक्तिसे सुनते हैं उनकी कदापि दुर्गति नहीं होती है ॥ २९ ॥ हे मुने ! जो सम्पूर्ण दानोंमें वा सब यज्ञोंमें पुण्य होता है वह फल शंभुके पुराण सुननेसे निश्चय होता है ॥ ३० ॥ हे व्यासजी ! विशेषकर कलियुगमें पुराणके श्रवणके विना मनुष्योंको मुक्ति ध्यानमें तत्पर और कोई परमधर्म

यदि प्रतिदिनं श्रोतुमशक्तो मानवो भवेत् ॥ पुण्यमासादिषु मुने शृणुयाच्छांकरीं कथाम्॥२७॥ शैवीं कथां हि शृण्वानःपुरुषो हि मुनीश्वर ॥ स निस्तरति संसारं दग्ध्वा कर्ममहाटवीम् ॥२८॥ कथां शैवीं मुहूर्तं वा तदर्द्धं क्षणं च वा ॥ ये शृण्वंति नरा भक्त्यान तेषां दुर्गतिर्भवेत् ॥२९॥ यत्पुण्यं सर्वदानेषु सर्वयज्ञेषु वा मुने ॥ शंभोः पुराणश्रवणात्तत्फलं निश्चलं भवेत् ॥३०॥ विशेषतः कलौ व्यास पुराणश्रवणादृते ॥ परो धर्मो न पुंसां हि मुक्तिध्यानपरः स्मृतः ॥३१॥ पुराणश्रवणं शम्भोर्नामसंकीर्तनं तथा ॥ कल्प द्रुमफलं रम्यं मनुष्याणां न संशयः ॥ ३२ ॥ कलौ दुर्मेधसां पुंसां धर्माचारोज्झितात्मनाम् ॥ हिताय विदधे शम्भुः पुराणाख्यं सुधारसम् ॥ ३३ ॥ एकोऽजरामरस्याद्वै पिबन्नेवामृतं पुमान् ॥ शम्भोः कथामृतापानात्कुलमेवाजरामरम् ॥३४॥ या गतिः पुण्यशीलानां यज्वनां च तपस्विनाम् ॥ सा गतिस्सहसा तात पुराणश्रवणात्खलु ॥ ३५ ॥

नहीं कहा ॥ ३१ ॥ मनुष्योंको शिवके पुराणका सुनना तथा नामकीर्तन करना कल्पवृक्षके फलके समान मनोहर कहा है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ कलियुगमें धर्म आचारको त्यागनेवाले दुर्बुद्धिवाले मनुष्योंके हित करनेको शिवने पुराण नामक अमृत रस विधान किया है ॥ ३३ ॥ अमृतको पीकर एक ही मनुष्य अजर अमर होता है परन्तु शिवजीकी कथारूपी अमृतके पान करनेसे सब कुल ही अजर अमर हो जाता है ॥ ३४ ॥ हे तात ! पुण्यात्माओंकी तथा यज्ञ करनेवाले और तपस्वियोंकी जो गति होती है वह गति एक

साथ पुराण सुननेसे प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥ जब ज्ञानकी प्राप्ति न हो तो यत्नपूर्वक योग शास्त्रोंको पढना चाहिये और पुराणशास्त्र सुनना चाहिये ॥ ३६ ॥ पुराणके सुननेसे पाप दूर होता है नित्य धर्म बढता है इस कारण ज्ञानी फिर संसारको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ इसी कारण धर्म अर्थ कामके मिलने तथा मोक्षमार्गकी प्राप्तिके अर्थ यत्नसे पुराणोंको सुनना चाहिये ॥ ३८ ॥ यज्ञोंसे दानोंसे तपोंसे तथा तीर्थ सेवासे जो फल मिलता है वह फल पुराण श्रवणसे मनुष्य पाता है ॥ ३९ ॥ यदि धर्म मार्गके दिखानेवाले पुराण न होते तो यहां इह लौकिक तथा पार लौकिक कथाको सुनानेवाला व्रती रहता ॥ ४० ॥ जो छब्बीस पुराणोंमें एकको भी सुनता है अथवा भक्ति

ज्ञानवाप्तिर्यदा नस्याद्योगशास्त्राणि यत्नतः ॥ अध्येतव्यानि पौराणं शास्त्रं श्रोतव्यमेव च ॥३६॥ पापं संक्षीयते नित्यं धर्म्मश्चैव विवर्द्धते॥ पुराणश्रवणाज्ज्ञानी न संसारं प्रपद्यते ॥ ३७ ॥ अतएव पुराणानि श्रोतव्यानि प्रयत्नतः ॥ धर्मार्थकामलाभाय मोक्ष मार्गाप्तये तथा ॥ ३८ ॥ यज्ञैर्दानैस्तपोभिस्तु यत्फलं तीर्थसेवया ॥ तत्फलं समवाप्नोति पुराणश्रवणान्नरः ॥ ३९ ॥ न भवेयुः पुराणानि धर्ममार्गेक्षणानि तु ॥ यद्यत्र यद्व्रती स्थाता चात्र पारत्रकीं कथाम् ॥ ४० ॥ षड्विंशतिपुराणानां मध्येऽप्येकं शृणोति यः ॥ पठेद्वा भक्तियुक्तस्तु स मुक्तो नात्र संशयः ॥ ४१ ॥ अन्यो न दृष्टस्सुखदो हि मार्गः पुराणमार्गो हि सदा वरिष्ठः ॥ शास्त्रं विना सर्वमिदं न भाति सूर्य्येण हीना इव जीवलोकाः ॥ ४२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यासुमासंहितायां पुराणमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शस्तानि घोरदानानि महादानानि नित्यशः ॥ पात्रेभ्यस्तु प्रदेयानि आत्मानं तारयंति च ॥ १ ॥ हिरण्यदानं गोदानं भूमिदानं द्विजोत्तम ॥ गृह्णतो वै पवित्राणि तारयंति स्वमेव तम् ॥ २ ॥

सहित पढता है वह निस्सन्देह मुक्त होता है ॥ ४१ ॥ और कोई सुखदेनेवाला मार्ग नहीं देखा पुराणका मार्ग सदा श्रेष्ठ है विना शास्त्रके यह संसार इस प्रकार नहीं शोभित होता जिस प्रकार विना सूर्यके जीवलोक नहीं शोभा पाता ॥ ४२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेभाषाटीकायां पं० उ० सं० पुराण माहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, घोर बडे दान जो कहे हैं महादान नित्य श्रेष्ठ पात्रको देने चाहिये वे अपनेको तारते हैं ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! सुवर्णदान गोदान भूमिदान यह पवित्र दान करनेवाले तथा लेनेवाले

दोनोंकोही तारते हैं ॥ २ ॥ सुवर्ण दान गोदान पृथ्वीदान इन श्रेष्ठ दानोंको करके मनुष्य पापोंसे छूट जाता है ॥ ३ ॥ गोदान पृथ्वीदान सरस्वती (विद्या) दान तथा तुलादान यह प्रशंसनीय दान कहे हैं उनमें दो दान समान फल दायक हैं और सरस्वती अधिक कही है ॥ ४ ॥ नित्य दुहनेवाली गाय छत्र वस्त्र जूता अन्न पान आदि सब दान मांगने वालोंको देना चाहिये ॥ ५ ॥ जो संकल्प किया हुआ धन ब्राह्मणोंको विना पीडित हुए याचकोंको दिया जाता है मनुष्य उस दानसे बुद्धिमान् होता है ॥ ६ ॥ सुवर्ण तिल हाथी कन्या दासी गृह रथ मणि तथा कपिला गायें ये दश महादान हैं ॥ ७ ॥ ज्ञानी ब्राह्मण सदा इन सबोंको ग्रहण करके शीघ्र दाताओंको तथा अपने

सुवर्णदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च ॥ एतानि श्रेष्ठदानानि कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥३॥ तुलादानानि शस्तानि गावः पृथ्वी सरस्वती ॥ द्वे तु तुल्यबले शस्ते ह्यधिका च सरस्वती ॥४॥ नित्य ह्यनुदुहो गावश्छत्रं वस्त्रमुपानहौ ॥ देयानि याचमानेभ्यः पान मन्नं तथैव च ॥५॥ संकल्पविहितोयोऽर्थो ब्राह्मणेभ्यः प्रदीयते ॥ अर्थिभ्योऽपीडितेभ्यश्च मनस्वी तेन जायते ॥ ६ ॥ कनकं च तिला नागाः कन्या दासी गृहं रथः ॥ मणयः कपिला गावो महादानानि वै दश ॥७॥ गृहीत्वैतानि सर्वाणि ब्राह्मणो ज्ञानवित्सदा ॥ वदान्यांस्तारयेत्सद्यो ह्यात्मानं च न संशयः ॥८॥ सुवर्णं ये प्रयच्छंति नराश्शुद्धेन चेतसा ॥ देवतास्तं प्रयच्छंति समंतादिति मे श्रुतम् ॥ ९ ॥ अग्निर्हि देवतास्सर्वाः सुवर्णं च हुताशनः ॥ तस्मात्सुवर्णं दत्त्वा च दत्तास्स्युस्सर्वदेवताः ॥ १० ॥ पृथ्वीदानं महाश्रेष्ठं सर्वकामफलप्रदम् ॥ सौवर्णं च विशेषेण यत्कृतं पृथुना पुरा ॥ ११ ॥ दीयमानां प्रपश्यंति पृथ्वीं रुक्म समन्विताम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते यांति परमां गतिम् ॥ १२ ॥

आपको तारता है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ८ ॥ जो मनुष्य शुद्ध चित्तसे सुवर्णको दान करते हैं देवता उनको सब कुछ चारों ओरसे देते हैं ऐसा मैंने सुना है ॥ ९ ॥ अग्नि सब देवतामय कहा है और सुवर्ण अग्नि है इस कारण सुवर्णको देकर मानों सब देवता दिये ॥ १० ॥ पृथ्वीका दान महाश्रेष्ठ तथा सब कामनाओंके फलका देनेवाला है उसमें भी विशेषकर सुवर्णकी भूमिका दान अति श्रेष्ठ है जिसे पहले राजा रघुने किया था ॥ ११ ॥ जो मनुष्य दान की हुई सुवर्णवती पृथ्वीको देखते हैं वे सम्पूर्ण पापोंसे छूटके परमगतिको प्राप्त

होते हैं ॥ १२ ॥ हे मुने ! अब मैं सर्वोत्तम दानको कहता हूं कि जिससे यमराजके अति दुःखदायक वनको नहीं देखते हैं ॥ १३ ॥ न्यायसे पैदा किये हुए धनसे खरीद वित्त शाठ्यसे वर्जित हो शुद्ध मनसे विधिपूर्वक वनका दान करे ॥ १४ ॥ सब गुणों सहित रेरभर तिलोंकी गाय बनाके सुन्दर तथा सब लक्षणोंसे लक्षित गाय बछडा सुवर्णकी ॥ १५ ॥ आठ दलके कमलको बनाय उसमें कुंकुम आक शुभ अक्षतोंसे रुद्र आदि सब देवताओंको भक्तिसे पूजे ॥ १६ ॥ इस प्रकार रत्न सहित सुवर्ण सहित सब आभूषणोंसे भूषित उस धेनुको अपनी शक्तिसे पूजके ब्राह्मणको देवे ॥ १७ ॥ फिर पीछेसे रात्रिमें भोजन करे, और विस्तार पूर्वक दीपोंको देवे कार्तिककी पूर्णिमाको

अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि दानं सर्वोत्तमं मुने ॥ कांतारं यन्न पश्यंति यमस्य बहुदुःखदम् ॥ १३ ॥ कुर्यात्कांतारदानं हि विधिना शुद्धमानसः ॥ न्यायार्जितेन द्रव्येण वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥१४॥ तिलप्रस्थमयीं कृत्वा धेनुं सर्वगुणान्विताम् ॥ धेनुवत्सं सुवर्णं च सुदिव्यं सर्वलक्षणम् ॥१५॥ पद्ममष्टदलं कृत्वा कुंकुमाक्ताक्षतैश्शुभैः ॥ पूजयेत्तत्र रुद्रादीन्सर्वान्देवान्सुभक्तितः ॥१६॥ एवं संपूज्य तां दद्याद्ब्राह्मणाय स्वशक्तितः ॥ सरत्नां सहिरण्यां च सर्वाभरणभूषिताम् ॥१७॥ ततो नक्तं समश्नीयाद्दीपान्दद्याच्च विस्तरात् ॥ कार्तिक्यामिति कर्तव्यं पूर्णिमायां प्रयत्नतः ॥ १८ ॥ एवं यः कुरुते सम्यग्विधानेन स्वशक्तितः ॥ यममार्गभयं घोरं नरकं च न पश्यति ॥ १९ ॥ कृत्वा पापान्यशेषाणि सबंधुस्ससुहृज्जनः ॥ दिवि संक्रीडते व्यास यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ २० ॥ विधितो गोश्च दानं वै सर्वोत्तममिह स्मृतम् ॥ न तेन सदृशं व्यास परं दानं प्रकीर्तितम् ॥ २१ ॥ प्रयच्छते यः कपिलां सवत्सां स्वर्णशृंगिकाम् ॥ कांस्यपात्रां रौप्यखुरां सर्वलक्षणलक्षिताम् ॥ २२ ॥

विशेषकर यह दान करना चाहिये ॥ १८ ॥ जो मनुष्य इस प्रकार अपनी शक्तिके अनुसार सम्यक् विधिसे यह दान करता है वह यम मार्गके भय तथा घोर नरकको नहीं देखता है ॥ १९ ॥ हे व्यासजी ! और वह कुटुम्ब सहित तथा मित्रों सहित सम्पूर्ण पापोंको करके भी जब तक चौदह इन्द्र हैं तब तक स्वर्गमें क्रीडा करता है ॥ २० ॥ हे व्यासजी ! इस लोकमें विधिपूर्वक गौका दान करना सब दानोंमें श्रेष्ठ कहा है, उसके समान और कोई दान नहीं कहा ॥ २१ ॥ जो मनुष्य बछडे सहित सोनेके सींगोंसे युक्त कांस्य पात्रवाली तथा चांदीके

खुरवाली सब लक्षणोंसे अलंकृत कपिला गौको दान करता है ॥ २२ ॥ हे व्यासजी उन उन गुणोंसे वह गौ कामनाको पूर्ण करनेवाली होके परलोक तथा इस जन्ममें उस दाताको प्राप्त होती है ॥ २३ ॥ संसारमें जो जो इष्टतम पदार्थ हैं तथा जो घरमें प्रिय वस्तु है वह सब अक्षयलोककी अभिलाषासे गुणवान् ब्राह्मणको देना चाहिये ॥ २४ ॥ तुलापुरुषका दान सब दानोंमें उत्तम है अतः जो अपने कल्याणको चाहे तो तुला आरोहण अवश्य करे ॥ २५ ॥ जिस तुलादानको करके मनुष्य वध बन्धन सम्बन्धी पापोंसे छूट जाता है तुला दान बडे पुण्यका देनेवाला और सब पापोंको दूर करने वाला है ॥ २६ ॥ सम्पूर्ण पापोंको करके भी जो मनुष्य तुलादान करता है वह सब पापोंसे मुक्त हो

तैस्तैर्गुणैः कामदुघा भूत्वा सा गौरुपैति तम्॥प्रदातारं नरं व्यास परत्रेह च जन्मनि ॥ २३ ॥ यद्यदिष्टतमं लोके यदस्ति दयितं गृहे तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥ २४ ॥ तुलापुरुषदानं हि दानानां दानमुत्तमम् ॥ तुलासंरोहणं कार्यं यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥२५॥ यत्कृत्वा मुच्यतेपापैर्वधबंधकृतोद्भवैः॥ तुलादानं महत्पुण्यं सर्वपापक्षयंकरम् ॥२६॥ कृत्वा पापान्यशेषाणि तुलादानं करोति यः ॥ सर्वैस्तु पातकैर्मुक्तः स दिवं यात्यसंशयम् ॥ २७ ॥ पापं कृतं यद्दिवसे निशायां द्विसंध्योर्मध्यदिने निशांते ॥ कालत्रये कायमनोवचोभिस्तुलापुमान्वै तदपाकरोति ॥ २८ ॥ बालेन वृद्धेन मया हि यूना विजानता ज्ञानपरेण पापम् ॥ तत्सर्वमेवाशु कृतं मदीयं तुलापुमान्वै हरतु स्मरारिः ॥ २९ ॥ पात्रे प्रयुक्तं द्रविणं मयाऽद्य प्रमाणपूर्णं निहितं तुलायाम् ॥ तेनैव सार्धं तु ममावशेषं कृताकृतं यत्सुकृतं समेतु ॥ ३० ॥

निस्सन्देह स्वर्गको जाता है ॥ २७ ॥ दिनमें रातमें वा दोनों सन्ध्याओंमें वा दुपहरमें अथवा रात्रिके अंतमें तीनों कालमें शरीर, मन, वाणीसे जो पाप किया हो तुलापुरुष उस पापको दूर कर देता है ॥२८॥ बालक, वृद्ध, वा युवा मैंने जागते हुए वा ज्ञानमें तत्पर होके जो पाप किया हो मेरे उस पापको तुलापुरुष शिवजी हरण करें ॥ २९ ॥ मैंने आज प्रमाणपूर्वक तुलामें रक्खा हुआ जो धन सुपात्रमें अर्पण किया है उसके समेत मेरा सम्पूर्ण किया हुआ पाप अथवा विना किया हुआ पाप है वह भी चला जावे ॥ ३० ॥

सनत्कुमारजी बोले, ऐसा उच्चारण करके वह धन ब्राह्मणोंको देवे तो सर्वदा हित होता है इससे अनेकोंको देवे एकको ही नहीं देना चाहिये उससे विस्तार नहीं होता ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! जो मनुष्य इस प्रकार उत्तम तुला पुरुषको देता में वह पापको नष्टकर जबतक चौदह इन्द्र रहते हैं तब तक स्वर्ग लोकमें वास करता है ॥ ३२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० दानवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ व्यासजी बोले, जिस एक दानके करनेसे सबोंका फल मिलता है सब दानोंमें श्रेष्ठ ऐसे दानको मनुष्योंके हितके लिये मुझसे कहो ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, सुनो समय पर दिये हुए एक दानसे भी मनुष्य सब दानोंके फलको पा लेते हैं वह मैं तुमसे कहता हूँ ॥ २ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ एवमुच्चार्य्य तं दद्यात्द्विजेभ्यः सर्वदा हितः ॥ नैकस्यापि प्रदातव्यं न निस्तारस्ततो भवेत् ॥ ३१ ॥ ददात्येवं तु यो व्यास तुलापुरुषमुत्तमम् ॥ हत्वा पापं दिव्यं तिष्ठेद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥३२॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सामान्यदानवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ व्यास उवाच ॥ येनैकेन हि दत्तेन सर्वेषां प्राप्यते फलम् ॥ दानानां तन्ममाख्या हि मानुषाणां हितार्थतः॥ १॥सनत्कुमार उवाच॥ शृणु कालेः प्रदत्ताद्वै फलं विंदंति मानवाः॥एकस्मादपि सर्वेषां दानानां तद्वदामि ते ॥ २ ॥ दानानामुत्तमं दानं ब्रह्माण्डं खलु मानवैः ॥ दातव्यं मुक्तिकामैस्तु संसारोत्तारणाय वै ॥३॥ ब्रह्मांडे सकले दत्ते यत्फलं लभते नरः॥ तदेकभावादाप्नोति सप्तलोकाधिपो भवेत् ॥४॥ यावच्चन्द्रदिवाकरौ नभसि वै यावत्स्थिरा मेदिनी तावत्सोऽपि नरः स्वबांधवयुतस्स्वर्गौकसामोकसि॥सर्वेष्वेव मनोनुगेषु ककुभिर्ब्रह्माण्डदः क्रीडते पश्चाद्याति पदं सुदुर्लभतरं देवैर्मुदे माधवम् ॥५॥ व्यास उवाच ॥ भगवन्ब्रूहि ब्राह्माण्डं यत्प्रमाणं यदात्मकम् ॥ यदाधारं यथाभूतं येनमे प्रत्ययो भवेत् ॥ ६ ॥

मुक्तिकी कामना करनेवाले मनुष्योंको संसारसे तरनेके अर्थ दोनोंमें उत्तम ब्रह्मांडदान करना चाहिये ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके देनेपर मनुष्य जिस फलको पाता है उसी प्रकार सब ब्रह्माण्डके एक भाव से सातोंलोकोंका स्वामी होता है ॥ ४ ॥ जब तक आकाशमें चन्द्रमा सूर्य हैं तथा जब तक पृथ्वी स्थिर है तब तक यह ब्रह्माण्डदाता मनुष्य अपने कुटुम्ब समेत देवताओंके स्थानमें सब मनोरथों समेत हर्षसे क्रीडा करता है पश्चात् देवताओंसे भी दुर्लभ विष्णु भगवान्के पदको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले, हे भगवन् ! जितने

प्रमाणवाला ब्रह्मांड है तथा जितना और जिस आधारवाला और जिस प्रकारका है सो सब कहो जिससे मुझे विश्वास हो ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुने ! सुनो ब्रह्मांड जितने विस्तार और परिमाणवाला है सो सब मैं संक्षेपसे कहता हूं जिसको सुन मनुष्य पापसे छूटता है ॥ ७ ॥ जो उसका कारणरूप अव्यक्त, व्यक्त, अनामय, शिव है उनसे कालसे दो प्रकारके हो ब्रह्माजी उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥ हे तात ! जैसे ब्रह्माजी चौदह भुवनवाले ब्रह्मांडको रचते हैं मैं उसका क्रम संक्षेपसे कहता हूं यत्नसे सुनो ॥ ९ ॥ जलके मध्यमें स्थित हुए उसका उचाव दूना है सात पाताल हैं तथा उसके ऊपर सात भुवन हैं ॥ १० ॥ उस ब्रह्मांडके आधारमें शेषजी स्थित हैं वह विष्णु

सनत्कुमार उवाच॥मुने शृणु प्रवक्ष्यामि यदुत्सेधं तु विस्तरम् ॥ ब्रह्माण्डं तत्तु संक्षेपाच्छ्रुत्वा पापात्प्रमुच्यते ॥७॥ यत्तत्कारणमव्यक्तं व्यक्तं शिवमनामयम् ॥ तस्मात्संजायते ब्रह्मा द्विधाभूताद्धि कालतः ॥८॥ ब्राह्माण्डं सृजति ब्रह्मा चतुर्दशभवात्मकम् ॥ तद्वच्मि क्रमतस्तात समासाच्छ्रूणु यत्नतः ॥९॥ पातालानि तु सप्तैव भुवनानि तथोर्ध्वतः॥उच्छ्रायो द्विगुणस्तस्य जलमध्ये स्थितस्य च ॥ १० ॥ तस्याधारः स्थितो नागस्स च विष्णुः प्रकीर्तितः ॥ ब्रह्मणो वचसो हेतोर्बिभर्ति सकलं त्विदम् ॥११॥ शेषस्यास्य गुणान् वक्तुं न शक्ता देवदानवाः ॥ योनंतः पठ्यते सिद्धैर्देवर्षिगणपूजितः ॥ १२ ॥ शिरःसाहस्रयुक्तस्स सर्वा विद्योतयन्दिशः ॥ फणामणिसहस्रेण स्वस्तिकामलभूषणः ॥ १३ ॥ मदाघूर्णितनेत्रोऽसौ साग्निश्श्वेत इवाचलः ॥ स्रग्वी किरीटी ह्याभाति यस्सदैवैक कुंडलः ॥ १४ ॥ सायं गंगाप्रवाहेण श्वेतशैलोपशोभितः ॥ नीलवासा मदोद्रिक्तः कैलासाद्रिरिवापरः ॥ १५ ॥

कहे हैं वह ब्रह्माजीके वचनसे सब ब्रह्मांडको पालते हैं ॥ ११ ॥ उन शेषजीके गुणोंको वर्णन करनेमें देवता तथा दानव भी समर्थ नहीं हैं जो सिद्धोंसे देवता ऋषिगणोंसे पूजित हो अनन्त कहे जाते हैं ॥ १२ ॥ वह शेषजी सहस्र फणोंसे युक्त सब दिशाओंको प्रकाशित करते हुए कल्याणकारी निर्मल आभूषणोंसहित ॥ १३ ॥ मदसे घूमते हुए नेत्रवाले अग्निसहित पर्वतके समान शोभित मालाधारी मुकुटसहित सदैव एक कुंडलधारे विराजते हैं ॥ १४ ॥ जो सन्ध्याकालमें गंगाके प्रवाहसे श्वेतपर्वत पर शोभित नीलवस्त्रधारे मदसे व्याप्त मानों दूसरे कैलासके

समान स्थित ॥ १५ ॥ पूंछमें हस्ताग्रको लगाये उत्तम मूसलको धारण किये स्वर्णके समान कान्तिवाली नागकन्याओंसे आदरपूर्वक पूजे जाते हैं ॥ १६ ॥ संकर्षणात्मक रुद्र विषाग्निके समान उज्ज्वल हैं कल्पान्तरमें जिनके मुखोंसे बारम्बार अग्निकी लपटें निकलती हैं और तीनों लोकोंको भस्म करके शान्त होती हैं ऐसा सुनते हैं ॥ १७ ॥ पातालके मूलमें स्थित हुए भूतेश सब गुणोंसे पूजित जो शेषजी भूमंडलको अपने पीठपर धारण करनेवाले हैं ॥ १८ ॥ उनके वीर्यका प्रभाव वर्णन करनेको तथा अपना रूप बतानेको जाननेकी आकांक्षा सहित देवता भी समर्थ नहीं हैं ॥ १९ ॥ जिसकी फनोंपर मणिशिलाकी लालिमासे युक्त यह सम्पूर्ण पृथ्वी पुष्पोंकी मालाके समान स्थित

लांगलासक्तहस्ताग्रो बिभ्रन्मुसलमुत्तमम्॥योऽर्च्यते नागकन्याभिस्स्वर्णवर्णाभिरादरात् ॥ १६ ॥ संकर्षणात्मको रुद्रो विषानल शिखो ज्ज्वलः ॥ कल्पांते निष्क्रमन्ते यद्वक्त्रेभ्योऽग्निशिखा मुहुः ॥ दग्ध्वा जगत्त्रयं शान्ता भवंतीत्यनुशुश्रुम ॥ १७ ॥ आस्ते पातालमूल स्थस्स शेषः क्षितिमण्डलम् ॥ बिभ्रत्स्वपृष्ठे भूतेशश्शेषोऽशेषगुणार्चितः ॥ १८ ॥ तस्य वीर्यप्रभावश्च साकांक्षैस्त्रिदशैरपि ॥ न हि वर्णयितुं शक्यः स्वरूपं ज्ञातुमेव वा ॥ १९ ॥ आस्ते कुसुममालेव फणामणिशिलारुणा ॥ यस्यैषा सकला पृथ्वी कस्तद्वीर्यं वदिष्यति ॥ २० ॥ यदा विजृम्भतेऽनंतो मदाघूर्णितलोचनः ॥ तदा चलति भूरेषा. साद्रितोयाधिकानना ॥२१॥ दशसाहस्रमेकैकं पातालं मुनि सत्तम ॥ अतलं वितलं चैव सुतलं च रसातलम् ॥ २२ ॥ तलं तलातलं चाग्र्यं पातालं सप्तमं मतम् ॥ भूमेरधस्सप्त लोका इमे ज्ञेया विचक्षणैः ॥ २३ ॥ उच्छ्रायो द्विगुणश्चैषां सर्वेषां रत्नभूमयः ॥ रत्नवन्तोऽथ प्रासादा भूमयो हेमसंभवाः ॥२४॥ तेषु दानवदैतेया नागानां जातयस्तथा ॥ निवसंति महानागा राक्षसा दैत्यसंभवाः ॥ २५ ॥

है उनके पराक्रमको कौन कह सकता है ॥ २० ॥ जिस समय मदसे नेत्र घुमाते हुए शेषजी जम्भाई लेते हैं उस समय पर्वत समुद्रोंसहित यह पृथ्वी चलायमान होती है ॥ २१ ॥ हे मुनिसत्तम ! प्रत्येक पाताल दश सहस्र योजनवाले हैं अतल, वितल, सुतल, रसातल ॥ २२ ॥ तल, तलातल, तथा सातवां पाताल माना है भूमिके नीचे यह सातलोक पंडितोंको जानना चाहिये ॥ २३ ॥ इनकी उंचाई दूनी है सब लोकोंकी भूमि तथा प्रासाद रत्नमय हैं और आंगन सुवर्णमय है ॥ २४ ॥ उनमें दानव तथा दैत्योंकी जातिं और महानाग

राक्षस दैत्य आदि निवास करते हैं ॥ २५ ॥ स्वर्गके सभामंडपके मध्यमें स्वर्ग लोकसे भी अति मनोहर यह पाताल नारदजीने कहे हैं उनसे फिर स्वर्गमें आता है ॥ २६ ॥ जहाँ अनेक भूषणोंसे शोभायमान दीवारोंमें बडी कान्तिवाली मणि हैं निर्मल आह्लादक ऐसा पाताल है उसके समान और कौन हो सकता है ॥ २७ ॥ इधर उधरसे देव कन्याओंसे शोभित पातालमें किसकी रुचि नहीं होती है ॥ २८ ॥ जहांपर दिनमें सूर्यकी किरणें और रात्रिमें चन्द्रमाकी कान्ति नहीं होती और न शीत घाम होता है वहां केवल मणि तेज होता है ॥ २९ ॥ हे मुनिसत्तम ! वहां भक्ष्य भोज्य अन्नपान आनंदसे भोगे जाते हैं ऐसे आनंदमें समय बीतता हुआ भी नहीं जाना जाता है ॥ ३० ॥ जहां

प्राह स्वर्गसदोमध्ये पातालानीति नारदः ॥ स्वर्लोकादतिरम्याणि तेभ्योऽसावागतो दिवि ॥ २६ ॥ नानाभूषणभूषासु मणयो यत्रसुप्रभाः ॥ आह्लादकानि शुभ्राणि पातालं केन तत्समम् ॥ २७ ॥ पाताले कस्य न प्रीतिरितश्चेतश्च शोभितम् ॥ देवदानवकन्याभिर्विमुक्तस्याभिजायते ॥ २८ ॥ दिवार्करश्मयो यत्र न भवंति विधोर्निशि ॥ न शीतमातपो यत्र मणितेजोऽत्र केवलम् ॥ २९ ॥ भक्ष्यभोज्यान्नपानानि भुज्यंते मुदितैर्भृशम् ॥ यत्र न ज्ञायते कालो गतोऽपि मुनिसत्तम ॥ ३० ॥ पुंस्कोकिलरुतं यत्र पद्मानि कमलाकराः ॥ नद्यस्सरांसि रम्याणि ह्यन्योन्यविचराणि च ॥ ३१ ॥ भूषणान्यतिशुभ्राणि गंधाढ्यं चानुलेपनम् ॥ वीणावेणु मृदंगानां स्वना गेयानि च द्विज ॥ ३२ ॥ दैत्योरगैश्च भुज्यंते पाताले वै सुखानि च ॥ तपसा समवाप्नोति दानवैस्सिद्धमानवैः ॥ ३३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां ब्रह्माण्डकथने पाताललोकवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तेषां मूर्द्धोपरिष्टाद्वै नरकांस्ताञ्छृणुष्व च ॥ मत्तो मुनिवर श्रेष्ठ पच्यंते यत्र पापिनः ॥ १ ॥

भ्रमरोंसे गूंजते हुए कमल तथा कमलसे युक्त स्वच्छ नदियां तथा मनोहर सरोवर हैं ॥ ३१ ॥ हे द्विज ! अति निर्मल भूषण गंध सहित अनुलेपन वीणा वेणु मृदंगोंके गेयस्वर ॥ ३२ ॥ तपसे दैत्य सर्प दानव सिद्ध मनुष्योंके सहित पातालमें मनुष्य सुखोंको भोगता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं० उ० सं० ब्रह्माण्डकथने पाताललोकवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुनिवर श्रेष्ठ ! उन लोकोंके ऊपर जो नरक हैं उनको मुझसे सुनो जहांपर पापी जन दुःख भोगते हैं ॥ १ ॥

रौरव, शूकर, रोध, ताल तथा विवसन, महाज्वाल, तप्तकुंभ, लवण, विलोहित ॥ २ ॥ वैतरणी, पूयवहा, कृमी, कृमिभोजन, घोर असिपत्र वन, दारुण लालाभक्ष ॥ ३ ॥ तथा पूयवह, वहिर्ज्वाल, अधश्शिर सदंश, कालसूत्र, तमश्वावी, चिरोधन ॥ ४ ॥ श्वभोजन, रुष्ट महारौरव, शाल्मलि इत्यादि वहाँ अनेक दुःखदायक नरक हैं ॥ ५ ॥ हे व्यासजी ! उनमें जो पापी पुरुष डाले जाते हैं मैं उनको क्रमसे कहता हूँ तुम सावधान होके सुनो ॥ ६ ॥ जो मनुष्य विना ब्राह्मण तथा विना देवता और गौओंके कूटसाक्ष्य (झूंठी गवाही) अताहद झूठे बोलता है वह रौरव नरकमें जाता है ॥ ७ ॥ ब्रह्महत्या करनेवाला सुवर्ण चुरानेवाला गायको रोकनेवाला विश्व घातक मदिरा पीनेवाला

रौरवश्शूकरो रोधस्तालो विवसनस्तथा॥महाज्वालस्तप्तकुंभो लवणोपि विलोहितः॥२॥वैतरणी पूयवहा कृमिणः कृमिभोजनः ॥ असिपत्रवनं घोरं लालाभक्षश्च दारुणः ॥३॥ तथा पूयवहः प्रायो बहिर्ज्वालो ह्यधश्शिराः ॥ संदंशः कालसूत्रश्च तमश्चावीचिरोधनः ॥ ४ ॥ श्वभोजनोऽथ रुष्टश्च महारौरवशाल्मली ॥ इत्याद्या बहवस्तत्र नरका दुःखदायकाः ॥ ५ ॥ पच्यंते तेषु पुरुषाः पापकर्मरतास्तु ये ॥ क्रमाद्वक्ष्ये तु तान् व्यास सावधानतया शृणु ॥ ६ ॥ कूटसाक्ष्यं तु यो वक्ति विना विप्रान् सुरांश्च गाः ॥ सदाऽनृतं वदेद्यस्तु स नरो याति रौरवम् ॥७॥ भ्रूणहा स्वर्णहर्ता च गोरोधी विश्वघातकः ॥ सुरापो ब्रह्महंता च परद्रव्यापहारकः ॥ ८ ॥ यस्तत्संगी स वै याति मृतो व्यास गुरोर्वधात् ॥ ततः कुंभे स्वसुर्मातुर्गोश्चैव दुहितुस्तथा ॥ ९ ॥ साध्व्या विक्रयकृच्चाथ वार्द्धकी केशविक्रयी ॥ तप्तलोहेषु पच्यंते यश्च भक्तं परित्यजेत् ॥१०॥ अवमंता गुरूणां यः पश्चाद्भोक्ता नराधमः ॥ देवदूषयिता चैव देवविक्रयिकश्च यः ॥ ११ ॥ अगम्यगामी यश्चांते याति सप्तबलं द्विज ॥ चौरो गोघ्नो हि पतितो मर्यादादूषकस्तथा ॥१२॥

ब्रह्म हत्या करनेवाला दूसरेके द्रव्यका हरनेवाला ॥ ८ ॥ हे व्यासजी ! तथा जो इनका संग करनेवाला है ये सब तथा गुरुके वधसे और बहिन, माता, गौ पुत्रीके वधसे तप्तकुम्भ नामक नरकोंमें जाते हैं ॥ ९ ॥ साध्वी स्त्रीका बेचनेवाला वार्द्धकी (व्याज लेनेवाला) केशोंका बेचनेवाला तथा जो भक्तोंको त्यागता है यह सब तप्तलोह नामक नरकोंमें पड़ते हैं ॥ १० ॥ जो गुरुओंका तिरस्कार करनेवाला पीछे भोजन करनेवाला मनुष्योंमें नीच देवताओंको दूषित करनेवाला तथा जो देवताओंका विक्रय करनेवाला है ॥ ११ ॥ हे द्विज ! तथा

जो अगम्यके साथ गमन करनेवाला है अन्तमें सप्तबलमें जाताहै चौर गोहत्या करनेवाला पतित तथा जो मर्यादाके तोडनेवाला ॥ १२ ॥ देव ब्राह्मण पितरोंसे द्वेष करनेवाला तथा जो रत्नोंमें मेल करनेवाला है यह कृमिभक्ष नरकको जाते हैं और वहाँ कीडोंको खाते हैं ॥ १३ ॥ जो नीच मनुष्य पितर देवताओं अतिथियोंके विना खाता है तथा जो शस्त्रकूट है वह लालाभक्ष नाम वाले नरकको जाता है॥१४॥ जो ब्राह्मण अन्त्यजके साथ सेवन करनेवाला दुर्जनोंसे ग्रहण करनेवाला विना याज्योंको यज्ञ करानेवाला तथा अभक्ष्यका भक्षण करनेवाला ॥ १५ ॥ तथा जो सोमरसके बेचनेवाले हैं यह सब रुधिरौघ नरकमें जाते हैं मधुका हरण करनेवाला ग्रामकी हत्या करनेवाला क्रूर वैतरणी नदीको जाता

देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नदूषयिता च यः ॥ स याति कृमिभक्षं वै कृमीनत्ति दुरिष्टकृत् ॥ १३ ॥ पितृदेवसुरान् यस्तु पर्यश्नाति नराधमः॥ लालाभक्षं स यात्यज्ञो यश्शस्त्रकूटकृन्नरः ॥ १४ ॥ यश्चांत्यजेन संसेव्यो ह्यसद्ग्राही तु यो द्विजः ॥ अयाज्ययाजकश्चैव तथैवाभक्ष्य भक्षकः ॥ १५ ॥ रुधिरौघे पतंत्येते सोमविक्रयिणश्च ये॥मधुहा ग्रामहा याति क्रूरां वैतरणीं नदीम् ॥ १६ ॥ नवयौवनमत्ताश्च मर्यादाभेदिनश्च ये ॥ ते कृत्यं यांत्यशौचाश्च कुलकाजीविनश्च ये ॥१७॥ असिपत्रवनं याति वृक्षच्छेदी वृथैव यः॥ क्षुरभ्रका मृगव्याधा वह्निज्वाले पतंति ते ॥ १८ ॥ भ्रष्टाचारो हि यो विप्रः क्षत्रियो वैश्य एव च ॥ यात्यंते द्विज तत्रैव यः श्वपाकेषु वह्निदः ॥ १९ ॥ व्रतस्य लोपका ये च स्वाश्रमाद्विच्युताश्च ये॥संदंशयातनामध्ये पतंति भृशदारुणे ॥२०॥ वीर्यं स्वप्नेषु स्कंदेयुर्ये नरा ब्रह्मचारिणः ॥ पुत्रा नाध्यापिता यैश्च ते पतंति श्वभोजने ॥ २१ ॥

है ॥ १६ ॥ जो नवीन यौवनमें उन्मत्त तथा मर्यादाके तोडनेवाले अपवित्र हैं तथा जो स्त्रीसे आजीविका करनेवाले हैं वे कृत्यनामक नरकको जाते हैं ॥ १७ ॥ जो वृथा वृक्षोंको काटनेवाला है वह असिपत्रवनको जाता है जो क्षुरभ्रक और मृगोंके मारनेवाले व्याध हैं वे वह्निज्वाल नरकमें जाते हैं ॥ १८ ॥ हे द्विज ! जो ब्राह्मण वा क्षत्रिय अथवा वैश्य आचारसे भ्रष्ट है तथा श्वपाकमें जो आग देनेवाला है यह सब अन्तमें पूर्वोक्त नरकोंमें जाते हैं ॥ १९ ॥ जो व्रतके लोप करनेवाले तथा जो अपने आश्रमसे भ्रष्ट हुए हैं यह सब अतिकठोर संदंश यातनाके मध्यमें पडते हैं ॥ २० ॥ जो ब्रह्मचारी मनुष्य स्वप्नमें वीर्यको स्खलित करते हैं तथा जिन्होंने अपने पुत्रको नहीं पढाया वे

श्वभोजननामक नरकमें पडते हैं॥२१॥यह पूर्वोक्त तथा और सैकडों व सहस्रों नरक हैं कि जिनमें पापी मनुष्ययातनाओंमें प्राप्त होके पडते हैं॥२२॥ यह तथा औरभी सहस्रों पाप हैं जिनको नरकोंमें पडके मनुष्य भोगते हैं॥२३॥जो मनुष्य कर्मसे तथा मनसे और वाणीसे वर्ण तथा आश्रमके विरुद्ध कर्म करते हैं वे नरकमें पडते हैं॥२४॥और वे नरकवासी पुरुष देवताओंसे स्वर्गमें नीचे किये हुए शिरोंसे देखे जाते हैं और नरकवासी जन नीचेको मुख करनेवाले सब देवताओंको देखतेहैं ॥२५॥ जिस प्रकार स्थावर कृमिपाक पक्षी मृग हैं इसी प्रकार क्रमसे धार्मिक स्वर्गमोक्षवाले जीव हैं ॥ २६ ॥

एते चान्ये च नरकाः शतशोऽथ सहस्रशः॥ येषु दुष्कृतकर्माणः पच्यते यातनागताः ॥२२॥ तथैव पापान्येतानि तथान्यानि सहस्रशः ॥ भुज्यंते यानि पुरुषैर्नरकांतरगोचरैः ॥२३॥ वर्णाश्रमविरुद्धं च कर्म कुर्वंति ये नराः॥कर्मणा मनसा वाचा निरये तु पतंति ते॥२४॥अधश्शिरोभिर्दृश्यंते नारका दिवि दैवतैः ॥ देवानधोमुखान्सर्वानधः पश्यंति नारकाः ॥ २५ ॥ स्थावराः कृमि पाकाश्च पक्षिणः पशवो मृगाः ॥ धार्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम् ॥२६॥ यावंतो जंतवस्स्वर्गे तावंतो नरकौकसः॥ पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः॥२७॥गुरूणि गुरुभिश्चैव लघूनि लघुभिस्तथा॥प्रायश्चित्तानि कालेय मनुस्स्वायम्भुवोऽवीत्॥२८॥यानि तेषामशेषाणां कर्माण्युक्तानि तेषु वै॥ प्रायश्चित्तमशेषेण हरानुस्मरणं परम् ॥ २९ ॥ प्रायश्चित्तं तु यस्यैव पापं पुंसः प्रजायते ॥ कृते पापेऽनुतापोऽपि शिवसंस्मरणंपरम् ॥ ३० ॥ माहेश्वरमवाप्नोति मध्याह्नादिषु संस्मरन् ॥ प्रातर्निशि च संध्यायांक्षीणपापो भवेन्नरः ॥३१॥ मुक्तिं प्रयाति स्वर्गं वा समस्तक्लेशसंक्षयम्॥शिवस्यस्मरणादेव तस्य शंभोरुमापतेः ॥३२॥

जितने जन्तु स्वर्गमें हैं उतने ही नरकमें स्थित हैं प्रायश्चित्तसे विमुख पापीजन नरकको जाता है॥२७॥स्वायम्भुव मनुने बडे पापोंसे बडे प्रायश्चित्त तथा छोटे पापोंके छोटे प्रायश्चित्त कहे हैं॥२८॥उनमें जितने कर्म कहे हैं उन सबोंके समस्त प्रायश्चित्त हैं परन्तु शिवजीका स्मरण करना सब प्रायश्चित्तोंसे बडा है ॥ २९ ॥ इस प्रकार जिस पुरुषका प्रायश्चित्त होता है पाप करनेपर पश्चात्ताप कर शिवका स्मरण करना कहा है ॥ ३० ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल वा रात्रिमें अथवा सन्ध्यामें या मध्याह्न आदिकालमें शिवका स्मरण करता है वह पापोंसे छूट जाता है ॥३१॥ वह उन उमापति

शिवके स्मरण करनेसे सब दुःखोंसे दूर हो स्वर्गको तथा मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ हे विप्रेन्द्र ! हे मुनिश्रेष्ठ ! तीनों लोकमें कहीं पर पापोंका प्रायश्चित्त जप, होम, अर्चन, आदिक कुछ नहीं होते हों ॥ ३३ ॥ और जिसकी शिवजीमें मति लगी हो तो उसको जप, होम, अर्चन आदिमें जो पुण्य होता है सो सब तथा देवेन्द्रपदका फल मिलता है ॥ ३४ ॥ हे मुने ! जो मनुष्य रात दिन भक्तिसे शिवको स्मरण करता है वह नरकमें नहीं जाता और पापोंसे रहित होता है ॥ ३५ ॥ हे द्विजोत्तम ! यह पाप और पुण्य नरक और स्वर्गके नामके अर्थ हैं इन दोनोंमें पाप दुःखके लिये और पुण्य सुखके निमित्त होता है ॥ ३६ ॥ और वही पुण्य प्रीतिके अर्थ होके फिर दुःखके लिये होता है

पापान्तरायो विप्रेन्द्र जपहोमार्चनादि च ॥ भवत्येव न कुत्रापि त्रैलोक्ये मुनिसत्तम ॥ ३३ ॥ महेश्वरे मतिर्यस्य जमहोमार्चनादिषु ॥ यत्पुण्यं तत्कृतं तेन देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥३४॥ पुमान्न नरकं याति यः स्मरन्भक्तितो मुने ॥ अहर्निशं शिवं तस्मात्स क्षीणाशेषपातकः ॥ ३५ ॥ नरकस्वर्गसंज्ञायै पापपुण्ये द्विजोत्तम ॥ ययोस्त्वेकं तु दुखायान्यत्सुखायोद्भवाय च ॥३६॥ तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते ॥ तत्स्याद्दुःखात्मकं नास्ति न च किंचित्सुखात्मकम् ॥३७॥ मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखोपलक्षणः ॥ ज्ञान मेव परं ब्रह्म ज्ञानं तत्त्वाय कल्पते ॥ ३८ ॥ ज्ञानात्मकमिदं विश्वं सकलं सचराचरम् ॥ परविज्ञानतः किंचिद्विद्यते न परं मुने ॥ ३९ ॥ एवमेतन्मयाख्यातं सर्वं नरकमण्डलम् ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सांप्रतं मंडलं भुवः ॥४०॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां ब्रह्माण्डवर्णने नरकोद्धारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

इस कारण न कुछ दुःख देनेवाला है और न कुछ सुख देनेवाला है ॥ ३७ ॥ यह मनका परिणामही दुःख सुखका लक्षण है इससे ज्ञानही परब्रह्म है और ज्ञानही तत्त्वके अर्थ कल्पना किया जाता है ॥ ३८ ॥ हे मुने ! यह चर अचरसहित सम्पूर्ण संसार ज्ञानात्मक है पर विज्ञानसे अधिक और कुछ नहीं है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण नरकोंका समुदाय कह दिया अब आगेको भूमंडलका वर्णन करता हूं ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० ब्रह्माण्डवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सनत्कुमारजी बोले, हे व्यासजी ! सातद्वीत आदि सहित भूमिके मंडलको सम्यक् प्रकार मुझसे सुनो मैं संक्षेपसे कहता हूं ॥ १ ॥ जंबू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक सातवां पुष्कर यह सातों द्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हैं ॥ २ ॥ लवण, इक्षुरस, घी, दही, दूधके समुद्र हैं इन सबोंके मध्यमें जम्बूद्वीप है ॥ ३ ॥ हे व्यास ! उसके मध्यमें सुमेरु कनक पर्वत है वह सोलह योजन नीचे धँसा है और चौरासी योजन ऊंचा है ॥ ४ ॥ तथा बत्तीस योजन शिखरमें विस्तार है यह पर्वत भूमिके ऊपर स्थित है इस प्रकार उसका विस्तार चारों ओरसे है ॥ ५ ॥ मूलमें सोलह सहस्र योजन कलीके आकारसे स्थित है इसके दक्षिणमें हिमालय हेमकूट निषध नामक पर्वत हैं ॥ ६ ॥

सनत्कुमार उवाच॥ पाराशर्य्य सुसंक्षेपाच्छृणु त्वं वदतो मम॥ मण्डलं च भुवस्सम्यक् सप्तद्वीपादिसंयुतम् ॥१॥ जंबू प्लक्षश्शाल्मलिश्च कुशः क्रौञ्चश्च शाककः ॥ पुष्पकस्सप्तमस्सर्वे समुद्रैस्सप्तभिर्वृताः ॥ २ ॥ लवणेक्षुरसौ सर्पिर्दधिदुग्धजलाशयाः॥ जम्बूद्वीपस्समस्तानामेतेषां मध्यतः स्थितः ॥ ३ ॥ तस्यापि मेरुः कालेयमध्ये कनकपर्वतः ॥ प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्योजनैस्तस्य चोच्छ्रयः ॥४॥ चतुरशीतिमानैस्तैर्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः॥ भूमिपृष्ठस्थशैलोऽयं विस्तरस्तस्य सर्वतः ॥५॥ मूले षोडशसाहस्रः कर्णिकाकारसंस्थितः॥ हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे ॥६॥ नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ॥ दशसाहस्रिक ह्येते रत्नवंतोऽरुणप्रभाः ॥७॥ सहस्रयोजनोत्सेधास्तावद्विस्तारिणश्च ते॥ भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम्॥८॥ हरिवर्षं ततोऽन्यद्वै मेरोर्दक्षिणतो मुने ॥ रम्यकं चोत्तरे पार्श्वे तस्यांशे तु हिरण्मयम्॥९॥ उत्तरे कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा॥ नवसाहस्रमेकैकमे तेषां मुनिसत्तम ॥ १० ॥ इलावृतं तु तन्मध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रितः ॥ मेरोश्चतुर्दिशं तत्र नवसाहस्रमुच्छ्रितम् ॥ ११ ॥

तथा उत्तरमें नील श्वेत शृङ्गी नामवाले पर्वत हैं यह सब दश सहस्र योजन तथा रत्नोंसहित और अरुणके समान कांतिवाले हैं ॥ ७ ॥ एक सहस्र योजन चौडाई तथा सहस्र योजन विस्तृत हैं पहला भारतवर्ष है उसके पीछे किंपुरुष कहा है ॥ ८ ॥ हे मुने ! उसके आगे सुमेरु पर्वतके दक्षिण ओर हरिवर्ष है उसके उत्तरकी ओर रम्यक तथा उसके बराबर हिरण्मय है ॥ ९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! और उत्तरमें कुरुदेश है जिस प्रकार भारतवर्ष है उसी प्रकार इन सबोंका विस्तार भी नौ सहस्र योजन कहा है ॥ १० ॥ उसके मध्यमें इलावृत तथा इसके मध्यमें

मेरुपर्वत स्थित है सुमेरुपर्वतके चारों तरफ वहां नौ सहस्र विस्तारवाला इलावृत है ॥ ११ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठ ! वहां चार पर्वत सुमेरुपर्वतसे विष्कम्भ (बुर्जीरूप) हैं और उससे मिले हुए तथा सुमेरुपर्वतके समान ऊँचे हैं ॥ १२ ॥ पूर्वमें मन्दराचल तथा दक्षिणमें गन्धमादन और पश्चिमभागमें विपुल तथा उत्तरमें सुपार्श्वनामक पर्वत है ॥ १३ ॥ कदम्ब जामुन पीपल बड आदि पर्वतके ध्वजारूप ग्यारहसौ योजनमें विस्तृत हैं ॥ १४ ॥ हे महामुने ! जम्बुद्वीपनामके हेतुको सुनो वहां बडे वृक्ष शोभित होते हैं उनके स्वभावको तुमसे कहता हूं ॥ १५ ॥ उस जामुनके फल बडे हाथीके समान पर्वतके ऊपर गिरते हैं और पर्वतके चारों ओर फैले हैं ॥ १६ ॥ वहां उन फलोंके रससे जम्बुनदी

इलावृतमृषिश्रेष्ठ चत्वारश्चात्र पर्वताः ॥ विष्कंभा रचिता मेरोर्योजिताः पुनरुच्छ्रिताः ॥ १२ ॥ पूर्वे हि मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ॥ विपुलः पश्चिमे भागे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्थितः ॥ १३ ॥ कदंबो जंबुवृक्षश्च पिप्पलो वट एव च ॥ एकादशशतायामाः पादपागिरिकेतवः ॥ १४ ॥ जम्बूद्वीपस्य नाम्नो वै हेतुं शृणु महामुने ॥ विराजंते महावृक्षास्तत्स्वभावं वदामि ते ॥ १५ ॥ महागज प्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याः फलानि च ॥ पतंति भूभृतः पृष्ठे शीर्य्यमाणानि सर्वतः ॥ १६ ॥ रसेन तेषां विख्याता तत्र जम्बूनदीति वै ॥ परितो वर्तते तत्र पीयते तन्निवासिभिः ॥ १७ ॥ न स्वेदो न च दौर्गंध्यं न जरा चेन्द्रियग्रहः ॥ तस्यास्तटे स्थितानान्तु जनानां तन्न जायते ॥ १८ ॥ तीरमृत्स्नां च सम्प्राप्य मुखवायुविशोषिताम् ॥ जाम्बूनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम् ॥ १९ ॥ भद्राश्वं पूर्वतो मेरोः केतुमालं च पश्चिमे ॥ वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठ तयोर्मध्य इलावृतम् ॥ २० ॥ वनं चैत्ररथं पूर्वे दक्षिणे गन्धमादनः ॥ विभ्राजं पश्चिमे तद्वदुत्तरे नन्दनं स्मृतम् ॥ २१ ॥

विख्यात है और उस पर्वतके चारों तरफ बह रही है वहांके निवासियोंसे पान की जाती है ॥ १७ ॥ वहां उस नदीके समीपमें स्थित हुए जीवोंको पसीना दुर्गन्धि बुढापा तथा इंद्रिय पीडा नहीं होती है ॥ १८ ॥ मुखवायु (सांस) से सुखाई हुई तीरकी मृत्तिकाके स्वानको प्राप्त हो जाम्बुनदनामक सिद्धोंका भूषणरूप सुवर्ण होता है ॥ १९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सुमेरुके पूर्वमें भद्राश्व तथा पश्चिममें केतुमालनामक दोनों वर्ष हैं उन दोनोंके मध्यमें इलावृत वर्ष है ॥ २० ॥ पूर्वमें चैत्ररथ वन है तथा दक्षिणमें गन्धमादननामक वन है और पश्चिममें विभ्राज और

उसके उत्तरमें नन्दन वन है ॥ २१ ॥ अरुणोद, महाभद्र, शीतोद, मानस नामवाले यह चार सरोवर देवताओंके भोगने योग्य हैं ॥ २२ ॥ शीतांजन, कुरुंग, कुरर तथा माल्यवान् यह एक एक मेरुके पूर्वमें स्थित हैं ॥ २३ ॥ त्रिकूट, शिशिर, पतंग, रुचक, निषध, कपिल आदिक केसराचल यह दक्षिणमें हैं ॥ २४ ॥ सिनी, वास, कुसुम्भ, कपिल, तथा नारद, नागादि यह पर्वत पश्चिममें हैं ॥ २५ ॥ शंखचूड, ऋषभ, हंस, काल तथा जराय यह पर्वत उत्तरमें हैं ॥ २६ ॥ सुमेरुके ऊपरिमध्यमें शांतकौभनामक ब्रह्माजीका नगर है वह चौदह सहस्र

अरुणोदं महाभद्रं शीतोदं मानसं स्मृतम्॥सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि सर्वशः ॥२२॥ शीतांजनः कुरुंगश्च कुररो माल्यवांस्तथा॥चैकैकप्रमुखा मेरोः पूर्वतः केसराचलाः॥२३॥त्रिकूटश्शिशिरश्चैव पतंगो रुचकस्तथा॥निषधः कपिलाद्याश्च दक्षिणे केसराचलाः॥२४॥सिनी वासः कुसुंभश्च कपिलो नारदस्तथा॥नागादयश्च गिरयः पश्चिमे केसराचलाः॥२५॥शंखचूडोऽथ ऋषभो हंसो नाम महीधरः॥कालंजराद्याश्च तथा उत्तरे केसराचलाः॥२६॥मेरोरुपरि मध्ये हि शातकौंभं विधेः पुरम्॥चतुर्दशसहस्राणि योजनानि च संख्यया ॥२७॥ अष्टानां लोकपालानां परितस्तदनुक्रमात् ॥ यथादिशं यथारूपं पुरोऽष्टावुपकल्पिताः ॥२८॥ तस्यां च ब्रह्मणः पुर्य्यां पातयित्वेन्दुमण्डलम् ॥ विष्णुपादविनिष्क्रांता गंगा पतति वै नदी ॥२९॥ सीता चालकनंदा च चक्षुर्भद्रा च वै क्रमात् ॥ सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्द्धा प्रत्यपद्यत ॥ ३० ॥ सीता पूर्वेण शैलं हि नन्दा चैव तु दक्षिणे ॥ सा चक्षुः पश्चिमे चैव भद्रा चोत्तरतो व्रजेत् ॥३१॥ गिरीनतीत्य सकलांश्चतुर्दिक्षु महांबुधिम्॥सा ययौ प्रयता सूता गंगा त्रिपथगामिनी॥३२॥

योजन विस्तारवाला है ॥ २७ ॥ और उसके चारों ओर क्रमसे आठों लोकपालोंके प्रत्येक दिशाके अनुसार तथा रूपके अनुसार आठ नगर विद्यमान हैं ॥ २८ ॥ उस ब्रह्माकी पुरीमें चन्द्रमंडलको गिराके विष्णुके चरणसे निकली हुई गंगाजी गिरी हैं ॥ २९ ॥ तथा वहां सीता अलकनन्दा चक्षुभद्रा यह क्रमसे गिरी हैं और चारों दिशाओंमें व्याप्त हुई हैं ॥ ३० ॥ पूर्वकी ओर सीता तथा पर्वतके दक्षिणमेंअलकनन्दा पश्चिममें चक्षुर्नदी उत्तरकी ओर भद्रानदी बहती है ॥ ३१ ॥ तीन ओरको जानेवाली

वह गंगाजी सम्पूर्ण पर्वतोंको लांघकर तथा चारों दिशाओंमें समुद्रको मिलती हुई वहांसे गई है ॥ ३२ ॥ सुनील निषध नामक जो दो पर्वत और माल्यवान् गंधमादन हैं उनके मध्यमें प्राप्त हुआ सुमेरु पर्वत कलीके आकारसे शोभित हो रहा है ॥ ३३ ॥ भारत, केतुमाल, भद्राश्व तथा कुरु मर्यादा लोकपर्वत यह लोकरूपी कमलके पत्र हैं ॥ ३४ ॥ दक्षिण तथा उत्तरके आयाममें जठर देवकूट और पूर्व तथा पश्चिमकी ओर गन्धमादन तथा कैलास पर्वत हैं ॥ ३५ ॥ सुमेरुके पूर्व पश्चिमकी ओर निषध नील पर्वत दक्षिण और उत्तरकी ओर प्राप्त हुए हैं तथा कलीके भीतर स्थित हैं ॥ ३६ ॥ मेरुसे आगे जठर आदिक हैं जिनमें दो दो पर्वत व्यवस्थित हैं यह श्वेत आदिक मनोहर

सुनीलनिषधौ यौ तौ माल्यवद्गन्धमादनौ ॥ तेषां मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः ॥ ३३ ॥ भारतः केतुमालश्च भद्राश्वः कुरवस्तथा ॥ पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादालोकपर्वताः ॥३४॥ जठरं देवकूटश्च आयामे दक्षिणोत्तरे ॥ गन्धमादनकैलासौ पूर्व पश्चिमतो गतौ ॥ ३५ ॥ पूर्वपश्चिमतो मेरोर्निषधो नीलपर्वतः ॥ दक्षिणोत्तरमायातौ कर्णिकांतर्व्यवस्थितौ ॥ ३६ ॥ जठराद्याः स्थिता मेरोर्येषां द्वौ द्वौ व्यवस्थितौ॥केसराः पर्वता एते श्वेताद्याः सुमनोरमाः ॥३७॥ शैलानामुत्तरे द्रोण्यस्सिद्धचारणसेविताः सुरम्याणि तथा तासु काननानि पुराणि च ॥३८॥ सर्वेषां चैव देवानां यक्षगंधर्वरक्षसाम् ॥ क्रीडंति देवदैतेयाश्शैलप्रायेष्वहर्निशम् ॥ ३९ ॥ धार्मिणामालया ह्येते भौमास्स्वर्गाः प्रकीर्तिताः ॥ न तेषु पापकर्तारो यांति पश्यंति कुत्रचित् ॥ ४० ॥ यानि किंपुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने ॥ न तेषु शोको नापत्त्यो नोद्वेगः क्षुद्भयादिकम् ॥ ४१ ॥ स्वस्थाः प्रजा निरातंकास्सर्वदुःखविवर्जिताः ॥ दशद्वादशवर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः ॥ ४२ ॥

पर्वत हैं ॥ ३७ ॥ और पर्वतोंके उत्तरमें नदियोंमें सिद्ध गुह्यकोंसे सेवित द्रोणी (डोंगी) हैं और उनमें मनोहर नगर तथा वन हैं ॥ ३८ ॥ सम्पूर्ण देवताओंके तथा यक्ष गन्धर्व राक्षसोंके समूह तथा देवता और दैत्य इन पर्वतोंपर रातदिन क्रीडा करते हैं ॥ ३९ ॥ यह भूमि तथा स्वर्गमें स्थित धर्मात्माओंके स्थान कहे हैं इनमें पापीजन नहीं जाते न कहीं कुछ देख सकते हैं ॥ ४० ॥ हे महामुने ! जो कि पुरुष आदिक नगर हैं उनमें आठ वर्षतक न शोक न आपत्ति न उद्वेग न क्षुधाभय आदिक होता है ॥ ४१ ॥ स्वस्थ निर्द्वन्द्व सब दुःखोंसे रहित प्रजा

दश बारह सहस्र वर्षतक स्थिर आयुवाली होती है ॥ ४२ ॥ वहां सतयुग और त्रेता द्वापर ही वर्तते हैं और चारों तरफ भूमि सम्बन्धी जल बहते हैं उन स्थानोंमें मेघ नहीं वर्षता केवल कल्पना होती है ॥ ४३ ॥ इन सातों द्वीपोंमें सुन्दर (निर्मल जलवाली) स्वर्णकी वालुका समेत नदियां तथा सैकडों छोटी नदी होती हैं उनमें पुण्यात्मा मनुष्य क्रीडा करते हैं ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं० उ० सं० ब्रह्माण्डकथने जम्बुद्वीपवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ सनत्कुमारजी बोले, अब मैं हिमालय पर्वतके दक्षिणमें भारतवर्षको कहता हूं जहां समुद्रके उत्तरमें भारती सृष्टी है ॥ १ ॥ हे महामुने ! इसका विस्तार नौ सहस्र योजन है इसे पंडितोंने स्वर्ग और अपवर्गकी

कृतत्रेतादिकाश्चैव भौमान्यंभांसि सर्वतः ॥ न तेषु वर्षते देवस्तेषुस्थानेषु कल्पना ॥४३॥ सप्तस्वेतेषु नद्यश्च सुजातास्स्वर्णवालुकाः॥शतशस्संति क्षुद्राश्च तासु क्रीडारता जनाः ॥४४॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां ब्रह्माण्डकथने जम्बूद्वीपवर्षवर्णनं नाम सप्तदशोध्यायः ॥ १७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ वक्ष्येऽहं भारतं वर्षं हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे ॥ उत्तरे तु समुद्रस्य भारती यत्र संसृतिः ॥१॥ नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्य महामुने॥स्वर्गापवर्गयोः कर्मभूमिरेषा स्मृता बुधैः ॥२॥ यतस्संप्राप्यते पुंभिस्स्वर्गो नरक एव च ॥ भारतस्यापि वर्षस्य नव भेदान्ब्रवीमि ते ॥३॥ इंद्रद्युम्नः कसेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ॥ नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥ ४ ॥ अयं तु नवमस्तेषां द्वीपस्सागरसंभृतः ॥ योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ॥ ५ ॥ पूर्वे किराता यस्य स्युर्दक्षिणे यवनाः स्थिताः ॥ पश्चिमे च तथा ज्ञेया उत्तरे हि तपस्विनः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भूयशः ॥ इज्यायुद्धपणासेवावर्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥ ७ ॥

कर्मभूमि कहा है ॥ २ ॥ यहांसे मनुष्योंको स्वर्ग तथा नरक मिलता है भारत वर्षके नौ भेद मैं तुमसे कहता हूं ॥ ३ ॥ इन्द्रद्युम्न, कसेरु, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान् तथा नागदीप, सौम्य तथा गन्धर्व और वारुण ॥ ४ ॥ उनमेंसे यह सागरसे उत्पन्न हुआ नवमा द्वीप है यह सहस्रों योजन दक्षिणसे उत्तरको विस्तारवाला है ॥ ५ ॥ जिसके पूर्वमें किरात हैं तथा दक्षिणमें यवन स्थित हैं पश्चिममें और उत्तरमें तपस्वी लोग निवास करते हैं ॥ ६ ॥ और मध्यमें अनेक ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य, शूद्र, यज्ञ, युद्ध, वाणिज्य और सेवा आदि

अपने कर्मोंमें स्थित हो निवास करते हैं ॥ ७ ॥ तहां महेन्द्र, मलय, सह्य, सुदामा, ऋक्ष पर्वत विंध्य, पारियात्र यह सात कुल पर्वत हैं ॥ ८ ॥ हे मुने ! वेद, स्मृति, पुराण आदि पारियात्र स्थानसे उत्पन्न हुए हैं वे दर्शनसे तथा स्पर्शसे सब पापोंको हरनेवाले हैं ॥ ९ ॥ नर्मदा सुरसा आदिके सात तथा और भी सहस्रों विंध्याचलसे उत्पन्न हुई सम्पूर्ण पापोंको हरनेवालीं श्रेष्ठ महानदी हैं ॥ १० ॥ गोदावरी भीमरथी तापी आदि नदीं ऋक्ष पर्वतसे निकलीं हैं और पाप और भयको शीघ्र हरण करनेवाली हैं ॥ ११ ॥ कृष्णा वेणी आदिक नदीं सह्य पर्वतके चरणसे उत्पन्न हुई तथा कृतमाला ताम्रपर्णी आदिक नदी मलयाचलसे उत्पन्न हुई हैं ॥ १२ ॥ त्रियामा, ऋषि कुल्या आदि नदीं महेन्द्र पर्वत

महेंद्रो मलयस्सह्यः सुदामा चर्क्षपर्वतः॥विंध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः॥८॥ वेदस्मृतिपुराणाद्याःपारियात्रोद्भवामुने ॥ सर्वपापहरा ज्ञेया दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ ९ ॥ नर्मदासुरसाद्याश्च सप्तान्याश्च सहस्रशः॥विंध्योद्भवा महानद्यस्सर्वपापहराश्शुभाः ॥१०॥ गोदावरीभीमरथीतापीप्रमुखनिम्नगाः ॥ गिरेर्विनिर्गता ऋक्षात्सद्यः पापभयपहाः ॥११॥ सह्यपादोद्भवा नद्यः कृष्णावेण्यादिकास्तथा ॥ कृतमालाताम्रपर्णीप्रमुखा मलयोद्भवाः ॥१२॥ त्रियामा चर्षिकुल्याद्या महेन्द्रप्रभवा स्मृताः ॥ ऋषिकुल्याकुमार्य्याद्याः शुक्तिमत्पादसंभवाः ॥ १३ ॥ नानाजनपदास्तेषु मडलेषु वसन्तिं वै ॥ आसां पिबंति पानीयं सरस्सु विविधेषु च ॥ १४ ॥ चत्वारि भारते वर्षे युगान्यासन्महामुने ॥ कृतादीनि न चान्येषु दीपेषु प्रभवंति हि ॥१५॥ दानानि चात्र दीयंते सुकृतैश्चात्र याज्ञिकैः ॥ तपस्तपंति यतयः परलोकार्थमादरात् ॥ १६ ॥ यतो हि कर्मभूरेषा जम्बूद्वीपे महामुने ॥ अत्रापि भारतं श्रेष्ठमतोऽन्या भोगभूमयः ॥१७॥ कदाचिल्लभते मर्त्यस्सहस्रैर्मुनिसत्तम ॥ अत्र जन्मसहस्राणां मानुष्यं पुण्यसंचयैः ॥ १८ ॥

से निकलीं हैं और ऋषि कुल्या कुमारी आदिक शुक्तिमत् पर्वतके पादसे उत्पन्न हुई हैं ॥ १३ ॥ और इन मण्डलोंमें अनेक नगर वसते हैं इन नदियोंके तथा अनेक सरोवरोंके पानी पीते हैं ॥ १४ ॥ हे महामुने ! भारत वर्षमें सत युग आदि चारों युग रहते हैं इस प्रकार और द्वीपोंमें नहीं हो सकते ॥ १५ ॥ यहाँपर पुण्यात्मा याज्ञिक दान देते हैं और संन्यासी परलोकके निमित्त आदरसे तप करते हैं ॥ १६ ॥ हे महामुने ! जम्बुद्वीपमें यह भूमि कर्म भूमि है यहाँपर भी भारत वर्ष श्रेष्ठ है यहाँसे अतिरिक्त और सब भोगकी भूमि हैं ॥ १७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ !

यहाँपर मनुष्य सहस्रों जन्मोंके पुण्य संचयसे मनुष्य जन्मको पाता है ॥ १८ ॥ स्वर्ग अपवर्ग स्थानके मार्ग भूत भारत भूमि भागमें वे देवता गीतोंको गाते हैं और फिर वे देवता पुरुष होते हैं ॥ १९ ॥ और कभी मनुष्यके शरीरको पाय तथा कभी शिवके परमात्मरूपमें विहार करके समस्त कर्मके फलोंको प्राप्त होते हैं मैं उनके शरीरत्वको प्राप्त होऊं जिससे भजन कर मोक्षको प्राप्त होजाऊँ ॥ २० ॥ सुखोंसे युक्त शुभ कर्मोंमें प्रविष्ट हुए वे मनुष्य धन्य हैं कि जिनका जन्म भारत वर्षमें होता है कारण कि, वे स्वर्ग मोक्ष दोनोंके लाभको देनेवाले हैं॥२१॥ लक्ष योजन विस्तृत समस्त परिमंडल क्षीरसागरसे घिरा हुआ जम्बुद्वीप मैंने कह दिया ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन् ! क्षार (खारी) सागरको लपेटके शत

स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे॥गायंति देवाः किल गीतकानि भवंति भूयः पुरुषास्सुरास्ते॥१९॥अवाप्य मानुष्यमयं कदाचिद्विहत्य शंभोः परमात्मरूपे ॥ फलानि सर्वाणि तु कर्मजानि यास्याम्यहं तत्तनुतां हि तस्य॥२०॥आप्स्यंति धन्याः खलु ते मनुष्याः सुखैर्युताः कर्मणि सन्निविष्टाः॥जनुर्हि येषां खलु भारतेऽस्ति ते स्वर्गमोक्षोभयलाभवन्तः॥२१॥लक्षयो जनविस्तारस्समस्तपरिमण्डलः ॥ जम्बूद्वीपो मया ख्यातः क्षारोदधिसुसंवृतः ॥२२॥ संवेष्टच क्षारमुदधिं शतसाहस्रसम्मितम् ॥ ततो हि द्विगुणो ब्रह्मन्प्लक्षद्वीपः प्रकीर्तितः ॥२३॥ गोमंतश्चैव चन्द्रश्चनारदो दर्दुरस्तथा॥ सोमकस्सुमनाश्शैलो वैभ्राजश्चैव सत्त मः ॥२४॥ वर्षाचलेषु रम्येषु सहितास्सततं प्रजाः॥वसंति देवगंधर्वा वर्षेष्वेतेषु नित्यशः ॥२५॥ नाधयो व्याधयो वापि जनानां तत्र कुत्रचित् ॥ दश वर्षसहस्राणि तत्र जीवंति मानवाः ॥ २६ ॥ अनुतप्ता शिखी चैव पापघ्नी त्रिदिवा कृपा ॥ अमृता सुकृतां चैव सप्तैवात्र च निम्नगाः ॥२७॥ क्षुद्रनद्यस्तथा शैलास्तत्र संति सहस्रशः ॥ ताः पिबंति सुसंहृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते ॥ २८ ॥

सहस्र योजन परिमित जम्बूद्वीपसे दूना प्लक्ष द्वीप कहा है ॥ २३ ॥ गोमंत, चन्द्र, नारद, तथा दर्दुर, सोमक, सुमन, तथा वैभ्राज नामक श्रेष्ठ पर्वत हैं ॥ २४ ॥ इन मनोहर वर्षाचलोंमें निरंतर देवता गंधर्व सहित प्रजा निवास करती हैं ॥ २५ ॥ वहांपर मनुष्योंको आदि व्याधि कहीं भी नहीं है वहांपर मनुष्य दश सहस्र वर्षतक जीते हैं ॥ २६ ॥ और वहां अनुतप्ता शिखी पापघ्नी त्रिदिवा कृपा अमृता सुकृता यह सात नदी हैं ॥ २७ ॥ वह छोटी नदी तथा सहस्रों पर्वत हैं वे नगरवासी उन निर्मल जलवाली नदियोंके जल पीते हैं ॥ २८ ॥

हेमहामुने ! वहां भी सातों स्थानोंमें चारों युगोंकी अवस्था नहीं किन्तु निरंतर त्रेतायुगके समान काल रहता है ॥ २९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! वहां ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र रहते हैं उसके मध्यमें कल्पवृक्षके समान बडा वृक्ष है॥३०॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! वह वृक्ष पिलखनका है इस कारण प्लक्षद्वीप नामसे प्रसिद्ध हुआ है वहां पर लोकशंकर भगवान् शिवजीके लिये यज्ञ करते हैं ॥ ३१ ॥ और भगवान् विष्णु तथा ब्रह्मा वैदिक यंत्र मंत्रोंसे यज्ञ करते हैं अब तुम संक्षेपसे शाल्मलिद्वीपको सुनो ॥ ३२ ॥ वहां सात पर्वत हैं मुझसे उनका नाम सुनो श्वेत हरित जीमूत तथा रोहित ॥ ॥ ३३ ॥ हे मुने ! वैकल मानस और सातवाँ सुप्रसभ है यहाँ सेमलके वृक्षसे शाल्मलिनामक द्वीप प्रसिद्ध हुआ ॥ ३४ ॥ यह द्विगुण समुद्रसे

न तत्रापि युगावस्था यथा स्थानेषु सप्तसु॥त्रेतायुगसमः कालस्सर्वदैव महामुने ॥२९॥ विप्रक्षत्रियवैश्यास्ते शूद्राश्च मुनिसत्तम ॥ कल्पवृक्षसमानस्तु तन्मध्ये सुमहातरुः ॥ ३० ॥ प्लक्षस्तन्नामसंज्ञो वै प्लक्षद्वीपो द्विजोत्तम ॥ इज्यते तत्र भगवाञ्छंकरो लोकशंकरः ॥३१॥ हरिश्च भगवान्ब्रह्मा यन्त्रैर्मन्त्रैश्च वैदिकैः संक्षेपेण तथा भूयश्शाल्मलिं त्वं निशामय ॥३२॥ सप्तवर्षाणि तत्रैव तेषां नामानि मे शृणु ॥ श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ॥३३॥ वैकलो मानसश्चैव सुप्रभस्सप्तमो मुने ॥ शाल्मलेन तु वृक्षेण द्वीपः शाल्मलिसंज्ञकः ॥३४॥ द्विगुणेन समुद्रेण सततं संवृतः स्थितः ॥ वर्षाभिव्यंजका नद्यस्तासां नामानि मे शृणु ॥ ३५ ॥ शुक्ला रक्ता हिरण्या च चन्द्रा शुभ्रा विमोचना ॥ निवृत्तिः सप्तमी तासां पुण्यतोयाः सुशीतलाः ॥३६॥ सप्तैव तानि वर्षाणि चतुर्वर्णायुतानि च ॥ भगवन्तं सदा शंभुं यजंते विविधैर्मखैः ॥ ३७ ॥ देवानां तत्र सान्निध्यमतीव सुमनोरमे ॥ एष द्वीपस्समुद्रेण सुरोतेन समावृतः ॥ ३८ ॥ द्विगुणेन कुशद्वीपः समंताद्व्याप्ततः स्थितः ॥ वसंति तत्र दैतेया मनुजैस्सह दानवाः ॥ ३९ ॥

निरन्तर घिरा हुआ है और पर्वतोंसे उत्पन्न हुई नदी हैं उन नदियोंके नाम मुझसे सुनो ॥३५॥ शुक्ला, रक्ता, हिरण्या, चन्द्रा, शुभ्रा, विमोचना निवृत्ति, उनमें सातवीं पवित्र जलवाली सुशीतला नदी है ॥ ३६ ॥ और सात पर्वत तथा चारों वर्ण वहाँ निवास करते हैं सदा भगवान् शिवको अनेक यज्ञोंसे प्रसन्न करते हैं ॥ ३७ ॥ इस मनोहर द्वीपमें देवताओंकी अति समीपता है यह द्वीप सुरोदनामवाले समुद्रसे घिरा हुआ है ॥ ३८ ॥ इस द्वीपसे दूना कुशद्वीप है वहाँ मनुष्यों सहित दानव दैत्य निवास करते हैं ॥ ३९ ॥

तथा देवता गंधर्व यक्ष किंपुरुष आदि तथा चारों वर्ण अपने अपने कर्मानुष्ठानमें तत्पर हैं ॥ ४० ॥ और वहाँ कुशलद्वीपमें ब्रह्मा और विष्णुको तथा सब कामनाके पूर्ण करनेवाले शिवजीको यजन करते हैं ॥ ४१ ॥ कुशेशय, हरि, द्युतिमान्, तथा पुष्पवान्, मणिद्रुम, हेमशैल, सातवाँ मन्दराचल है ॥४२॥ और सात नदी हैं उनके नाम तत्त्वसे सुनो धूतपापा शिवा पवित्रा तथा संमिति ॥४३॥ विद्या दंभा मही आदि यह सब पापोंको हरनेवाली नदी हैं तथा और भी निर्मल जलवानी सुवर्णकी वालुसहित सहस्रों नदी हैं ॥४४॥ कुशद्वीपमें कुशोंका स्तम्भ है यह द्वीप

तथैव देवगन्धर्वा यक्षाः किंपुरुषादयः ॥ वर्णास्तत्रैव चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः ॥ ४० ॥ तत्रैव च कुशद्वीपे ब्रह्माणं च जना र्दनम् ॥ यजंति च तथेशानं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ४१ ॥ कुशेशयो हरिश्चैव द्युतिमान्पुष्पवांस्तथा ॥ मणिद्रुमो हेमशै लस्सप्तमो मन्दराचलः ॥ ४२ ॥ नद्यश्च सप्त तासां तु नामानि शृणु तत्त्वतः ॥ धूतपापा शिवा चैव पवित्रा संमितिस्तथा ॥ ४३ ॥ विद्या दंभा मही चान्या सर्वपापहरास्त्विमाः ॥ अन्यास्सहस्रशस्संति शुभापो हेमवालुकाः ॥ ४४ ॥ कुशद्वीपे कुशस्तम्बो घृतोदेन समावृतः ॥ क्रौञ्चद्वीपो महाभाग श्रूयतां चापरो महान् ॥ ४५ ॥ द्विगुणेनसमुद्रेण दधिमंडेन चावृतः ॥ वर्षाचला महाबुद्धे तेषां नामानि मे शृणु ॥ ४६ ॥ क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चांधकारकः ॥ दिवावृतिर्मनश्चैव पुण्डरीकश्च दुन्दुभिः ॥ ४७ ॥ निवसंति निरातंका वर्षशैलेषु तेषु वै ॥ सर्वसौवर्णरम्येषु सुहृद्देवगणैः प्रजाः ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ॥ संति तत्र महानद्यस्सप्तान्यास्तु सहस्रशः ॥ ४९ ॥

घृतोदनामक समुद्रसे घिरा है हे महाभाग ! अब दूसरा क्रौंचद्वीप सुनो ॥४५॥ यह दूने दधिमंडनामक समुद्रसे घिरा है हे महाबुद्धे ! जो इसके निकटवर्ती पर्वत हैं उनके नाम मुझसे सुनो ॥ ४६ ॥ क्रौंच, वामन, तीसरा अंधकार, दिवावृत्ति, मन, पुंडरीक, दुन्दुभि नामक हैं ॥ ४७ ॥ सब ओर सुवर्णसे मनोहर हुए उन वर्ष पर्वतोंमें मित्र देवगणों सहित प्रजा निर्भय हो रहती हैं ॥ ४८ ॥ वहांपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, परस्पर मिले स्वकर्मनिष्ठ हो निवास करते हैं सात महानदी और सहस्रों नदी हैं ॥ ४९ ॥

गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, शांति, पुंडरीका नामवाली जिनके निर्मल जलको सब मनुष्य पीते हैं ॥ ५० ॥ वहां पर योग रुद्र स्वरूपवाले भगवान् शिव पूजे जाते हैं और दधिमण्डोदक समुद्र उससे द्विगुण शाकद्वीपसे घिरा है ॥ ५१ ॥ वहां सात पर्वत हैं उनके नाम सुनो उसके पूर्वमें उदय गिरि है और उसके पश्चिममें जलधार पर्वत है ॥ ५२ ॥ पीछे अस्तगिरि अविकेश केशरी नामवाले हैं वहां शाकनामक महावृक्ष सिद्ध और गन्धर्वोंसे सेवित है ॥ ५३ ॥ वहांपर चारों वर्णोंसमेत पवित्र नगर हैं और बडी पवित्र संपूर्ण पाप भयोंको दूर करने वाली नदी हैं ॥ ५४ ॥ सुकुमारी कुमारी नलिनी तथा वेणुका इक्षुरेणुका सातवीं गभस्ति नामवाली है

गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा॥शांतिश्च पुंडरीका च याः पिबन्ति पयश्शुभम् ॥५०॥ भगवान्पूज्यते तत्र योगरुद्र स्वरूपवान्॥ दधिमण्डोदकश्चापि शाकद्वीपेन संवृतः॥५१॥द्विगुणेनाद्रयस्सप्त तेषां नामानि मे शृणु पूर्वे तत्रोदयगिरिर्जलधारः परे यतः ॥ ५२ ॥ पृष्ठतोऽस्तगिरिश्चैव ह्यविकेशश्च केसरी ॥ शाकस्तत्र महावृक्षस्सिद्धगंधर्वसेवितः ॥५३॥ तत्र पुण्या जनपदा श्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः॥नद्यश्चात्र महापुण्यास्सर्वपापभयापहाः ॥५४॥ सुकुमारी कुमारी च नलिनी वेणुका तथा ॥ इक्षुश्च रेणुका चैव गभस्तिस्सप्तमी तथा ॥५५॥ अन्यास्सहस्रशस्तत्र क्षुद्रनद्यो महामुने ॥ महीधरास्तथा संति शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५६ ॥ धर्महानिर्न तेष्वस्ति स्वर्गादागत्य मानवाः॥ वर्षेषु तेषु पृथिवीं विहरन्ति परस्परम् ॥५७॥ शाकद्वीपे तु वै सूर्य्यः प्रीत्या जन पदैस्सदा॥ यथोक्तैरिज्यते सम्यक्कर्मभिर्नियतात्मभिः ॥५८॥ क्षीरोदेनावृतस्सोऽपि द्विगुणेन समंततः ॥ क्षीराब्धिस्सर्वतो व्यास पुष्कराख्येन संवृतः ॥ ५९ ॥ द्विगुणेन महावर्षस्तत्र ख्यातोऽत्र मानसः॥ योजनानां सहस्राणि पंचैवोर्ध्वसमुच्छ्रितः ॥ ६० ॥

॥ ५५ ॥ हे महामुने ! और भी वहां हजारों क्षुद्र नदी हैं तथा सैकडों हजारों पर्वत हैं ॥ ५६ ॥ उनमें धर्मकी हानि नहीं होती है यहांपर मनुष्य स्वर्गसे आके इन इन पर्वतोंमें आपसमें विहार करते हैं ॥ ५७ ॥ शाकद्वीपमें सदा संयममें तत्पर हुए शास्त्रोक्त कर्म करने वाले नगरवासी प्रीतिसे सूर्य भगवान्का यजन करते हैं ॥ ५८ ॥ यह शाकद्वीप द्विगुणे क्षीरसागरसे घिरा हुआ है हे व्यासजी ! यह क्षीर सागर पुष्कर नामवाले द्वीपसे घिरा है ॥ ५९ ॥ और वहां दूना महावर्ष है और यहां मानसरोवर विख्यात है और इसका पांच सहस्र योजन

उंचाव है ॥ ६० ॥ और लक्ष योजन चारों तरफसे कंकडके आकारवाला है पुष्करद्वीपका घेरा मध्यसे विभाग करता है ॥ ६१ ॥ इससे ही द्वीपवर्षके समान वलयाकार है वहांपर मनुष्य दशसहस्र वर्षतक जीते हैं ॥ ६२ ॥ हे मुने ! वे व्याधिरहित शोकहीन तथा रागद्वेषसे वर्जित हैं उनमें अधर्म वध बन्धन आदि नहीं होता ॥ ६३ ॥ और न उनमें असत्य झूठ रहता है उस द्वीपकी वसति तुल्य वेषवाली रहती है और मनुष्य सुवर्णके समान कांतिवाले होते हैं ॥ ६४ ॥ हे कालेय ! यहां स्वर्गके समान भौम वर्ष है तथा इसमें सबको सुख देनेवाला जरारोग वर्जित समय होता है ॥ ६५ ॥ हे महामुने ! पुष्करमें धातकी खण्डमें महाबीतमें न्यग्रोध नामक ब्रह्माजीका उत्तम स्थान है

तानि चैव तु लक्षाणि सर्वतो वलयाकृति ॥ पुष्करद्वीपवलयो मध्येन विभजंति च॥६१॥तेनैव वलया कारा द्वीपवर्षसमाकृतिः॥ दशवर्षसहस्राणि तत्र जीवंति मानवाः ॥६२॥ निरामया वीतशोका रागद्वेषविवर्जिताः ॥ अधर्मो न मतस्तेषां न बंधवधको मुने ॥ ६३ ॥ सत्यानृते न तस्यास्तां सदैव वसतिस्सदा ॥ तुल्यवेषास्तु मनुजा हेमवर्णैकरूपिणः ॥६४॥ वर्षश्चायं तु कालेय भौम स्वर्गोपमो मतः॥सर्वस्य सुखदः काले जरारोगविवर्जितः ॥६५॥ पुष्करे धातकीखण्डे महावीते महामुने ॥न्यग्रोधं पुष्करद्वीपे ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ॥६६॥ तस्मिन्निवसते ब्रह्मा पूज्यमानस्सुरासुरैः॥ स्वादूदकेनांबुधिना पुष्करः परिवेष्टितः ॥६७॥ एवं द्वीपा स्समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः ॥ द्वीपाश्चैव समुद्राश्च समाना द्विगुणैः परैः ॥ ६८ ॥ उक्तातिरिक्तता तेषां समुद्रेषु समानि वै ॥ पयांसि सर्वदाऽल्पत्वं जायते न कदाचन॥ ६९ ॥ स्थालीस्थमग्निसंयोगादधः स्थं मुनि सत्तमः ॥ तथेन्दुवृद्धौ सलिलमूर्द्ध्वगं भवति ध्रुवम् ॥७०॥ उदयास्तमनेत्विदोर्वर्द्धत्यापो ह्रसन्ति च ॥ अतो न्यूनातिरिक्ताश्च पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ ७१ ॥

॥६६॥ उस स्थानमें देवता तथा दैत्योंसे पूज्यमान हुए ब्रह्माजी निवास करते हैं और पुष्कर द्वीप स्वादूदक नामक समुद्रसे घिरा हुआ है ॥ ६७ ॥ इस प्रकार सात द्वीप सातों समुद्रसे घिरे हुए हैं द्वीप और समुद्र भी समान कहे हैं ॥ ६८ ॥ और उन समुद्रोंमें यह अधिकता है कि उनका जल थोडा कदापि नहीं होता है ॥६९॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस प्रकार अग्निके संयोगसे जल ऊपर जाता है उसी प्रकार चन्द्रमाके बढनेपर समुद्रोंका जल निश्चय ऊपरको उफनता है॥७०॥चन्द्रमाके उदय और अस्त होनेपर समुद्रके जल बढते तथा घटते हैं इस कारण शुक्ल और

कृष्णपक्षमें वृद्धि और न्यूनता होती है ॥ ७१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सम्पूर्ण (एकसौ दश) समुद्रोंकी वृद्धि और क्षय तुम्हारे आगे कहे ॥७२॥ हे विप्र ! पुष्करद्वीपमें प्रजा अपने आप प्राप्त हुये भोजनको सदा करती हैं ॥ ७३ ॥ अपने अंगका देनेवाला तथा जिसके आगे लोककी स्थिति नहीं है वह स्थान सब जन्तुओंसे वर्जित है सुवर्णकी द्विगुणी भूमि है ॥ ७४ ॥ और वहां लोकालोक पर्वत सहस्र पर्वतोंके समान ऊंचा और दश सहस्र योजन विस्तृत है ॥७५॥ हे महामुने ! यह सब द्वीपोंसहित तथा पर्वतोंसहित पृथ्वी द्वीप और पर्वतोंसहित पचास कोटि योजन विस्तारवाली है ॥ ७६ ॥ और सबोंकी आधारभूत गुणोंसे अधिक सब लोकोंकी धारण करनेवाली इला है ॥ ७७ ॥ इति श्रीशिव

अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ शतशस्तु दशोत्तरम्॥समुद्राणां मुनिश्रेष्ठो सर्वेषां कथितं तव॥७२॥ भोजनं पुष्करद्वीपे प्रजास्सर्वाः सदैव हि॥ खंडस्य कुर्वते विप्र तत्र स्वयमुपस्थितम्॥७३॥ स्वांगदो यस्य पुरतो नास्ति लोकस्य संस्थितिः॥ द्विगुणा हिरण्मयी भूमिस्सर्वजंतुविवर्जिता॥७४॥लोकालोकस्ततश्शैलस्सहस्राण्यचलो हि सः॥उच्छ्रयेण हि तावंति योजनायुतविस्तृतः॥७५॥तमश्चांडकटाहेन सेयमुर्वी महामुने ॥ पंचाशत्कोटिविस्तारा सद्वीपा समहीधरा ॥७६॥ आधारभूता सर्वेषां सर्वभूतगुणाधिका॥सेयं धात्री च कालेय सर्वेषां जगतामिला॥७७॥इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां ब्रह्माण्डकथने सप्तदीपवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥ सनत्कुमार उवाच ॥ रविचन्द्रमसोर्यावन्मयूखा भासयंति हि॥तावत्प्रमाणा पृथिवी भूलोकस्स तु गीयते ॥१॥ भूमेर्योजनलक्षे तु संस्थितं रविमण्डलम् ॥ योजनानां सहस्राणि सदैव परिसंख्यया ॥२॥ शशिनस्तु प्रमाणाय जगतः परिचक्षते॥ रवेरूर्ध्वं शशी तस्थौ क्षलयोजनसंख्यया ॥ ३ ॥ ग्रहाणां मण्डलं कृत्स्नं शशेरुपरि संस्थितम् ॥ सनक्षत्रं सहस्राणि दशैव परितोपरि ॥४॥

महापुराणे भाषाटीकायां पं० उ० सं० ब्रह्मांडकथने सप्तद्वीपवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ सनत्कुमारजी बोले, जहांतक सूर्य और चन्द्रमाकी किरणें प्रकाशित होती हैं वहां तक पृथ्वी है और वह भूलोक कहा जाता है ॥ १ ॥ भूमीसे लक्ष योजनकी दूरीपर सूर्यमण्डल सहस्र योजनके अन्तरमें (घेरेमें) स्थित है ॥ २ ॥ चन्द्रमाके प्रणामको वर्णन करते हैं कि सूर्यके ऊपर लक्ष योजनकी दूरीपर चन्द्रमा है ॥ ३ ॥ और चन्द्रमाके ऊपर दश सहस्र योजनपर चारों ओर नक्षत्रों सहित सम्पूर्ण ग्रहोंका मंडल स्थित है ॥ ४ ॥

और उससे आगे बुध फिर उसके आगे शुक्र उससे ऊपर मंगलका मंडल है, उसके ऊपर बृहस्पति बृहस्पतिके ऊपर शनैश्चरकी स्थिति है ॥ ५ ॥ उसके ऊपर एक लाख योजनपर सप्तर्षियोंका मण्डल विराजमान है और सप्तर्षियोंसे शत सहस्र योजनपर ध्रुवका ग्रह ॥ ६ ॥ यह सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डलके मेढीभूत होके (वेण्याकारसे) स्थित हैं भूमिसे ऊपर और ध्रुवसे नीचे भूलोक भुवर्लोक स्वर्लोक यह तीन लोक जानने चाहिये ॥ ७ ॥ जहाँपर एक कोटि योजनपर वे कल्पवासी ऋषि निवास करते हैं और ध्रुवसे ऊपर महर्लोक है जहाँ यह वक्ष्यमाण ब्रह्माके सात पुत्र निवास करते हैं ॥ ८ ॥ सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु तथा पंचशिख ॥ ९ ॥ इनसे ऊपर दो लक्षके अन्तरपर

बुधस्तस्मादथो काव्यस्तस्माद्भौमस्य मण्डलम् ॥ बृहस्पतिस्तदूर्ध्वं तु तस्योपरि शनैश्चरः ॥५॥ सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षेणैकेन संस्थितम् ॥ ऋषिभ्यतुसहस्राणा शतादूर्ध्वं ध्रुवः स्थितः॥६॥ मेढीभूतस्स यस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः॥भूर्भुवःस्वरितिज्ञेयं भुव ऊर्ध्वं ध्रुवादवाक् ॥७॥ एकयोजनकोटिस्तु यत्र ते कल्पवासिनः ॥ ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोकस्सप्तैते ब्रह्मणस्सुताः ॥८॥ सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः॥कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पंचशिखस्तथा ॥९॥ उपरिष्टात्ततश्शुक्रो द्विलक्षाभ्यंतरे स्थितः॥द्विलक्ष योजनं तस्मादधः सोमसुतः स्मृतः ॥१०॥ द्विलक्षयोजनं तस्मादूर्ध्वं भौमस्स्थितो मुने॥ द्विलक्षयोजनं तस्मादूर्ध्वं जीवःस्थितो गुरु ॥११॥ द्विलक्षयोजनं जीवादूर्ध्वं सौरिर्व्यवस्थितः ॥ एते सप्तग्रहाः प्रोक्तास्स्वस्वराशिव्यवस्थिता ॥ १२ ॥ रुद्रलक्षे योजन तस्सप्तोर्ध्वमृषयः स्थिताः ॥ विश्वलक्षैर्योजनतोध्रुवस्थितिरुदाहृता ॥ १३ ॥ चतुर्गुणोत्तरे चार्द्धे जनलोकात्तपः स्मृतम् ॥ वैराजा यत्र देवा वै स्थिता दाहविवर्जिताः ॥ १४ ॥

शुक्र स्थित हैं और शुक्रसे दो लक्ष योजन नीचे बुध स्थित हैं ॥ १० ॥ हे मुने ! बुधसे दश लक्ष योजन ऊपरको मंगल स्थित हैं और मंगलसे दो लक्ष योजनपर बृहस्पति स्थित हैं ॥ ११ ॥ और बृहस्पतिसे दो लक्ष योजन ऊपर शनैश्चर स्थित हैं यह सातों ग्रह अपनी अपनी राशीपर स्थित हुए हैं ॥ १२ ॥ उनसे ग्यारह लाख योजन ऊपर सप्तऋषि स्थित हैं और तेरह लक्ष योजन ऊपरको ध्रुवकी स्थिति कही है ॥ १३ ॥ जनलोकसे आगे चतुर्गुणोत्तर अर्धमें (अर्धमार्गमें)

तपलोककी स्थिति कही है जहांपर वैराज तथा दाहरहित देवता स्थित हैं ॥ १४ ॥ तपोलोकसे छःगुना सत्यलोक वर्तमान है उसे ब्रह्मलोक जानना चाहिये जहांपर निर्मल चित्त ॥ १५ ॥ सत्य और धर्ममें तत्पर ज्ञानी ब्रह्मचारी भूलोकसे जानेवाले मनुष्य निवास करते हैं ॥ १६ ॥ और भुवर्लोकमें मुनि देवता सिद्ध रहते हैं स्वर्ग लोकमें देवता बारह आदित्य मरुत् आठ वसु अश्विनीकुमार निवास करते हैं ॥ १७ ॥ वहां पर विश्वेदेव रुद्र साध्य नाग पक्षी आदिक नवग्रह पापरहित ऋषिगण निवास करते हैं ॥ १८ ॥ हे व्यासजी ! यह सात महालोक तुमसे कहे सात पाताल हैं इस प्रकार ब्रह्मांडका विस्तार कहा ॥ १९ ॥ जिस प्रकार कैथाका फल ऊपर है और उसकी बाड नीचे है उसी

षड्गुणेन तपोलोकात्सत्यलोको व्यवस्थितः॥ब्रह्मलोकः स विज्ञेयो वसंत्यमलचेतसः॥१५॥सत्यधर्मरताश्चैव ज्ञानिनो ब्रह्मचारिणः॥यद्गामिनोऽथ भूलोकान्निवसंति हि मानवाः ॥१६॥ भुवर्लोकेतु संसिद्धा मुनयो देवरूपिणः ॥ स्वर्गलोके सुरादित्या मरुतो वसवोऽश्विनौ ॥१७॥ विश्वेदेवास्तथा रुद्रास्साध्या नागाः खगादयः ॥ नवग्रहास्ततस्तत्र ऋषयो वीतकल्मषाः ॥१८॥ एते सप्त महालोकाः कालेय कथितास्तव ॥ पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्य च विस्तरः ॥१९॥ दधिवृक्षफलं यद्वद्वृत्तिश्चोर्ध्वमधस्तथा ॥ एतदंडकटाहेन सर्वतो वै समावृतम् ॥२०॥ दशगुणेन पयसा सर्वतस्तत्समावृतम् ॥ वह्निना वायुना चापि नभसा तमसा तथा ॥२१॥भूतादिनापि महता दिग्गुणोत्तरवेष्टितः ॥ महांतं च समावृत्य प्रधानं पुरुषः स्थितः ॥२२॥ अनंतस्य न तस्यास्ति संख्यापि परमात्मनः ॥ तेनानंत इति ख्यातः प्रमाणं नास्ति वै यतः ॥२३॥ हेतुभूतस्समस्तस्य प्रकृतिस्सा परा मुने ॥ अंडानां तु सहस्राणां सहस्राण्ययुतानि च ॥२४॥ ईदृशानां प्रभूतानि तस्मादव्यक्तजन्मनः ॥ दारुण्यग्निस्तिले तैलं पयस्सु च यथा घृतम् ॥ २५ ॥

प्रकार अण्डकटाहसे सब ब्रह्मांण्ड चारों ओरसे घिर रहा है ॥ २० ॥ यह ब्रह्माण्ड दशगुणे जलसे तथा अग्नि वायु आकाश तथा अन्धकारसे सब ओरसे व्याप्त हो रहा है ॥ २१ ॥ और बडे महत्तत्त्व आदिसे दशगुण अधिक घिरा हुआ है प्रधान महत्तत्त्वको व्याप्त होके पुरुष स्थित हैं ॥ २२ ॥ और उन अनन्त परमात्मा पुरुषकी संख्या और नाप नहीं है इसी कारण वे अनंत नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ २३ ॥ हे मुने! वह सम तथा कारणभूत हैं और उनकी वह प्रकृति है सहस्रों अण्डोंके सैकडों सहस्र ॥ २४ ॥ अनेक समुदाय उस अव्यक्त

पुरुषसे उत्पन्न हुए हैं जिस प्रकार काष्ठमें अग्नि तिलोंमें तेल दूधमें घी स्थित है ॥ २५ ॥ उसी प्रकार यह अपने आपको जाननेवाले पर मात्मा सब ब्रह्माण्डको व्याप्त होके स्थित है और आदि बीजसे उत्पन्न होते हैं तब उनसे पीछे अण्डज होते हैं ॥ २६ ॥ अण्डजोंसे पुत्र फिर और सबोंके बीज इनसे महत् आदि विशेष फिर देवता आदि होते हैं ॥ २७ ॥ जिस प्रकार बीजसे वृक्ष है वृक्षसे बीज है यही वृक्षका प्रगट होना और अभाव कहा जाता है तथा सूर्यसे सूर्यकान्तमणि उससे अग्निकी उत्पत्ति होती है ॥ २८ ॥ उसी प्रकार ब्रह्मसत्तासे सृष्टि उत्पन्न होती है उस विषयमें शिवजी कामना नहीं करते हैं शिव और शक्तिके संयोगमें देवता आदि उत्पन्न होते हैं ॥ २९ ॥ उसी

तथासौ परमात्मा वै सर्वव्याप्यात्मवेदनः ॥ आदिबीजात्प्रसुवते ततस्तेभ्यः परेण्डजाः॥२६॥तेभ्यः पुत्रास्तथान्येषां बीजान्य न्यानि वै ततः ॥ महदादयो विशेषांतास्तद्भवंति सुरादयः॥२७॥बीजाद्वृक्षप्ररोहेण यथा नापचयस्तरोः ॥ सूर्य्यकांतमणेः सूर्य्या द्यद्वह्निः प्रजायते॥२८॥तद्वत्संजायते सृष्टिः शिवस्तत्रः न कामयेत् ॥ शिवशक्तिसमायोगे देवाद्याः प्रभवंति हि ॥२९॥ तथा स्वकर्मणैकेन प्ररोहमुपयांति वै ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्राश्च स शिवः परिगीयते ॥३०॥ तस्मादुद्भरते सर्वं यस्मिंश्च लयमेष्यति ॥ कर्ता क्रियाणां सर्वासां स शिवः परिगीयते॥३१॥व्यास उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ छिंधि मे संशयं महत् ॥ सन्ति लोका हि ब्रह्मांडादुपरिष्टान्न वा मुने ॥३२॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ब्रह्मांडादुपरिष्टाच्च संति लोका मुनीश्वर ॥ ताञ्छृणु त्वं विशेषेण वच्मि तेऽहं समागतः ॥ ३३ ॥ विधिलोकात्परो लोको वैकुंठ इति विश्रुतः ॥ विराजते महादीप्त्या यत्र विष्णुः प्रतिष्ठितः ॥३४॥

प्रकार वे अपने अपने एक कर्मसे प्रादुर्भावको प्राप्त होते हैं और वह शिवजी ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, नामोंसे प्रसिद्ध होते हैं ॥ ३० ॥ उनसे सब जगत् प्रगट होता है और उनमें ही लय हो जाता है वह शिव सम्पूर्ण क्रियाओंके कर्ता कहे जाते हैं ॥ ३१ ॥ व्यासजी बोले हे सर्वज्ञ ! हे मुने ! हे सनत्कुमारजी ! तुम मेरे सन्देहको निवृत्त करो इस ब्रह्माण्डके ऊपर और लोक हैं या नहीं ॥ ३२ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुनीश्वर ! ब्रह्माण्डके ऊपर जो लोक हैं तुम उनको विस्तारपूर्वक सुनो मैं तुमसे वर्णन करता हूं ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजीके लोकसे परे

वैकुंठलोक है जहाँ साक्षात् विष्णु बडी शोभाके साथ निवास करते हैं ॥३४॥ उसके ऊपर बडा अद्भुत कौमारलोक है जहाँपर सुन्दर कान्तिवाले शिवके पुत्र स्वामिकार्त्तिकजी निवास करते हैं ॥ ३५ ॥ उसके आगे (ऊपर) परमदिव्य उमालोक विराजमान है जहाँपर तीनों देवताओंकी उत्पन्न करनेवाली शिवाशक्ति शोभित होती हैं ॥ ३६ ॥ वह रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुणवाली प्रकृति, परसेभी पर, निर्गुण, स्वयं देवी, निर्विकार, शिवात्मिका है ॥ ३७ ॥ उस लोकके ऊपर सनातन शिवलोक है यह सदा अविनाशी परम रमणीक महाशोभासे युक्त रहता है ॥ ॥ ३८ ॥ जहाँपर तीनों देवताओंके उत्पन्न करनेवाले सबके स्वामी त्रिगुणसे परे परब्रह्म शंभु महेश्वर विराजमान हैं ॥ ३९ ॥ उसके ऊपर

तस्योपरिष्टात्कौमारो लोको हि परमाद्भुतः ॥ सेनानीः शंभुतनयो राजते यत्र सुप्रभः ॥ ३५ ॥ ततः परसुमालोको महादिव्यो विराजते ॥ यत्र शक्तिर्विभात्येका त्रिदेवजननी शिवा ॥३६॥ परात्परा हि प्रकृती रजस्सत्त्वतमोमयी ॥ निर्गुणा च स्वयं देवी निर्विकाराशिवात्मिका ॥३७॥ तस्योपरिष्टाद्विज्ञेयश्शिवलोकस्सनातनः ॥ अविनाशी महादिव्यो महाशोभान्वितस्सदा ॥३८॥ विराजते परंब्रह्म यत्र शंभुर्महेश्वरः ॥ त्रिदेवजनकस्वामी सर्वेषां त्रिगुणात्परः ॥ ३९ ॥ तत ऊर्ध्वं न लोकाश्च गोलोकस्तत्समीपतः ॥ गोमात रस्सुशीलाख्यास्तत्र संति शिवप्रियाः ॥ ४० ॥ तत्पालः कृष्णनामा हि राजते शंकराज्ञया ॥ प्रतिष्ठित श्शिवेनैव शक्त्या स्वच्छन्दचारिणा ॥ ४१ ॥ शिवलोकोऽद्भुतो व्यास निराधारो मनोहरः ॥ अतिनिर्वचनीयश्च नानावस्तु विराजितः ॥ ४२ ॥ शिवस्तु तदधिष्ठाता सर्वदेवशिरोमणिः ॥ विष्णुब्रह्महरैस्सेव्यः परमात्मा निरञ्जनः ॥ ४३ ॥

और कोई लोक नहीं है, शिवलोकके समीप गोलोक है वहाँ शिवप्रिय सुशीलाख्य गोमाता निवास करती हैं ॥ ४० ॥ वहाँ शिवकी आज्ञासे उनके पालन करनेवाले श्रीकृष्णजी विराजमान हैं, स्वतंत्र शिवने तथा शक्तिने वह लोक स्थापित किया है ॥४१॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार शिवलोक अद्भुत निराधार मनोहर अनिर्वचनीय और अनेक वस्तुओंसे शोभायमान है ॥ ४२ ॥ और उसके अधिष्ठाता सब देवताओंके शिरोमणि विष्णु, ब्रह्मा, शिवजीसे सेवन करने योग्य परमात्मा निरंजन शिव देव हैं ॥ ४३ ॥

हे तात ! इस प्रकार तुमसे संपूर्ण ब्रह्मांडकी स्थिति कही उससे ऊपर जो लोक स्थित हैं उनको क्या और सुननेकी इच्छा है ? ॥ ४४ ॥
इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां लोकवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ व्यासजी बोले, हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमारजी ! हे सत्तम ! तुम
उसकी प्राप्तिको वर्णन करो जहाँसे प्राप्त होके शिवकी भक्तिमें तत्पर हुए मनुष्य नहीं लौटते हैं ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे पराशरके पुत्र
व्यासजी ! शुभगतिको तथा शुद्ध भक्तोंके और तपस्वियोंके पवित्र व्रतको प्रेमसे सुनो ॥ २ ॥ जो शुद्ध कर्म करनेवाले शुद्ध तपमें युक्त हुए
मनुष्य शिवकी पूजते हैं वे सदा सब प्रकारसे वन्दना करने योग्य हैं ॥ ३ ॥ हे महामुने ! विना तप करनेवाले नीरोग शिवलोकको नहीं जाते हैं

इति ते कथिता तात सर्वब्रह्मांडसंस्थितिः ॥ तदूर्ध्वं लोकसंस्थानं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥४४॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्च
म्यामुमासंहितायां लोकवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ तत्प्राप्तिं वद सत्तम ॥
यद्गत्वा न निवर्तंते शिवभक्तियुता नराः ॥ १ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ पराशरसुत व्यास शृणु प्रीत्या शुभां गतिम् ॥ व्रतं हि
शुद्धभक्तानां तथा शुद्धं तपस्विनाम् ॥ २ ॥ ये शिवं शुद्धकर्माणस्सुशुद्धतपपसान्विताः ॥ समर्चयन्ति तं नित्यं वन्द्यास्ते
सर्वथान्वहम् ॥ ३ ॥ नातप्ततपसो यांति शिवलोकमनामयम् ॥ शिवानुग्रहसद्धेतुस्तप एवमहामुने ॥ ४ ॥ तपसा दिवि
मोदन्तेप्रत्यक्षं देवतागणाः ॥ ऋषयो मुनयश्चैव सत्यं जानीह मद्वचः ॥ ५ ॥ सुदुर्द्धरं दुरासाध्यं सुधुरं दुरतिक्रमम् ॥ तत्सर्वं
तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ ६ ॥ सुस्थितस्तपसि ब्रह्मा नित्यं विष्णुर्हरस्तथा ॥ देवा देव्योऽखिलाः प्राप्तास्तपसा
दुर्लभं फलम् ॥ ७ ॥ येन येन हि भावेन स्थित्वा यत्क्रियते तपः ॥ ततस्संप्राप्यतेऽसौ तैरिह लोके न संशयः ॥ ८ ॥

शिवके अनुग्रहका आदि कारण तपही कहा है ॥ ४ ॥ तपसे देवता गण प्रत्यक्ष होके स्वर्गमें आनन्द करते तथा ऋषि मुनि भी हर्ष
करते हैं यह मेरा वचन सत्य जानो ॥ ५ ॥ जो अतिकठिन दुराराध्य धुरधारी अतिकठिनतासे अतिक्रमण करने योग्य है सो सब तपसे
साधनीय होता है केवल तपही दुःसाध्य है ॥ ६ ॥ तपमें ब्रह्माजी स्थित हैं तथा तपमें विष्णु और शिवजी प्रवृत्त हैं तथा सम्पूर्ण देवता और
देवियोंने दुर्लभ फल तपसे पाया है ॥७॥ जिस जिस भावमें स्थित होके तप किया जाता है उन उनको यह फल उस लोकमें प्राप्त होता है इसमें कुछ

संशय नहीं ॥ ८ ॥ हे व्यासजी ! सात्त्विक, राजस, तामस, यह तीन प्रकारका तप जानना चाहिये तप ही सबका साधन कहा है ॥ ९ ॥ देवताओंका तथा संन्यासियोंका और ब्रह्मचारियोंका सत्त्व गुणी तप कहा है दैत्यों और मनुष्योंका रजो गुणी तप होता है राक्षसोंका तथा दुष्ट कर्म करनेवाले मनुष्योंका तमो गुणी तप कहा है ॥ १० ॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने तीन प्रकार का तप का फल कहा है जप, ध्यान, तथा भक्तिसे देवतोंका शुभ अर्चन करना ॥ ११ ॥ वह सात्त्विक तप सम्पूर्ण फलोंका साधक कहा है वह इस लोकमें तथा परलोकमें मनोवांछाको सिद्ध करनेवाला होता है ॥ १२ ॥ कामना फलको उद्देश करके देह शोषण तपोंसे अपने शरीरको पीडित करके जो किया जाता है वह

सात्त्विकं राजसं चैव तामसं त्रिविधं स्मृतम् ॥ विज्ञेयं हि तपो व्यास सर्वसाधनसाधनम् ॥९॥ सात्त्विकं दैवतानां हि यतीनां मूर्द्ध रेतसाम् ॥ राजसं दानवानां हि मनुष्याणां तथैव च ॥ तामसं राक्षसानां हि नराणां क्रूरकर्मणाम् ॥ १० ॥ त्रिविधं तत्फलं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ जपो ध्यानं तु देवानामर्चनं भक्तितश्शुभम् ॥११॥ सात्त्विकं तद्धि निर्दिष्टमशेषफलसाधकम् ॥ इह लोके परे चैव मनोभिप्रेतसाधनम् ॥ १२ ॥ कामनाफलमुद्दिश्य राजसं तप उच्यते ॥ निजदेहं सुसंपीडच्य देह शोषकदुस्सहैः ॥ १३ ॥ तपस्तामसमुद्दिष्टं मनोभिप्रेतसाधनम् ॥ १४ ॥ उत्तमं सात्त्विकं विद्याद्धर्मबुद्धिश्च निश्चला ॥ स्नानं पूजा जपो होमः शुद्धशौचमहिंसनम् ॥ १५ ॥ व्रतोपवासचर्या च मौनमिन्द्रियनिग्रहः ॥ धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दानं क्षांतिर्दमो दया ॥ १६ ॥ वापीकूपतडागादेः प्रसादस्य च कल्पना ॥ कृच्छ्रं चांद्रायणं यज्ञस्सुतीर्थान्याश्रमाः पुनः ॥ १७ ॥ धर्मस्थानानि चैतानि सुखदानि मनीषिणाम् ॥ सुधर्मः परमो व्यासः शिवभक्तेश्च कारणम् ॥ १८ ॥

राजस तप कहलाता है ॥ १३ ॥ जो मनोरथ सिद्ध होनेके निमित्त किया जाता है वह तामस तप कहा है ॥ १४ ॥ सात्त्विक तपको उत्तम जाने निश्चल हुई धर्मकी बुद्धि, स्नान, पूजा, जप, होम, शुद्ध, शौच, हिंसा न करना ॥ १५ ॥ व्रत, उपवास चर्या, मौन, इन्द्रियोंका निरोध, बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध, दान, क्षान्ति, दम, दया ॥ १६ ॥ बाउडी, कूप, सरोवर आदिका तथा महलका बनाना, कृच्छ्र चान्द्रायण यज्ञ श्रेष्ठ तीर्थ और आश्रम ॥ १७ ॥ हे व्यासजी ! यह (इतने) धर्मके स्थान हैं बुद्धिमानोंको सुख देनेवाले हैं यह

बडा श्रेष्ठ धर्म है और शिव भक्तिका कारण है ॥ १८ ॥ संक्रान्ति विषुवत् योग नाद मुक्तमें प्रयोग करना चाहिये तीनों कालमें ध्यान ज्योति उन्मनी भाव यह धारणा है ॥ १९ ॥ रेचक, पूरक, कुम्भक, यह तीन प्रकारका प्राणायाम कहा है नाडी संचारका जानना तथा प्रत्याहारका रोकना ॥ २० ॥ चौथा अणिमा आदि आठ सिद्धियों सहित अधोबुद्धि यह पूर्वोत्तम परम ज्ञानका साधन कहा है ॥ २१ ॥ काष्ठावस्था मृतावस्था हरितावस्था यह तीन अवस्था कही हैं यह नाना प्रकार की उपलब्धि और सम्पूर्ण पापोंकी नाश करनेवाली कही है ॥ २२ ॥ नारी शय्या तथा पान वस्त्र धूप लेपन ताम्बूल भक्षण यह पांच राजैश्वर्य विभूति हैं ॥ २३ ॥ हेम भार तथा ताम्र गृह रत्न

संक्रांतिविषुवद्योगो नादमुक्ते नियुज्यताम्॥ध्यानं त्रिकालिकं ज्योतिरुन्मनीभावधारणा॥१९॥रेचकः पूरकः कुम्भः प्रणायाम स्त्रिधा स्मृतः॥नाडीसंचारविज्ञानं प्रत्याहारनिरोधनम्॥२०॥तुरीयं तदधोबुद्धिरणिमाद्यष्टसंयुतम्॥पूर्वोत्तमं समुद्दिष्टं परज्ञानप्रसाधनम्॥२१॥काष्ठावस्था मृतावस्था हरिता वेति कीर्तिताः॥नानोपलब्धयो ह्येतास्सर्वपापप्रणाशनाः॥२२॥ नारी शय्या तथा पानं वस्त्रधूपविलेपनम्॥ताम्बूलभक्षणं पंच राजैश्वर्य्यविभूतयः ॥२३॥ हेमभारस्तथा ताम्रं गृहाश्च रत्नधेनवः ॥ पांडित्यं वेदशास्त्राणां गीतनृत्यविभूषणम् ॥२४॥शंखवीणामृदंगाश्च गजेन्द्रश्छत्रचामरे॥भोगरूपाणि चैतानि एभिश्शक्तोऽनुरज्यते॥२५॥आदर्शवन्मुने स्नेहैस्तिलवत्स निपीड्यते॥ अरं गच्छेति चाप्येनं कुरुते ज्ञानमोहितः ॥२६॥ जानन्नपीह संसारे भ्रमते घटियंत्रवत्॥ सर्वयोनिषु दुःखार्तस्स्थावरेषु चरेषु च॥२७॥एवं योनिषु सर्वासु प्रतिक्रम्य भ्रमेण तु ॥ कालांतरवशाद्याति मानुष्यमतिदुर्लभम् ॥ २८ ॥

धेनु वेद शास्त्रोंका पांडित्य गीत नृत्य आभूषण ॥ २४ ॥ शंख, वीणा, मृदंग, गजेन्द्र, छत्र, चामर, यह भोगरूप हैं इनमें आसक्त हुआ अनुरागको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ हे मुने ! जो संसारी है वह दर्पणके समान तथा तेलके अर्थ तिलोंके समान पेला जाता है भ्रमणको प्राप्त हो इस प्रकार इसको ज्ञानसे मोहित करता है ॥ २६ ॥ जानता हुआ भी इस संसारमें घडीके यन्त्रके समान भ्रमण करता है स्थावर चर आदि सब योनियोंमें दुःखी होके पर्यटन करता है ॥ २७ ॥ इस प्रकार सम्पूर्ण योनियोंमें भ्रमण करके काला

न्तरके वशसे अतिदुर्लभ मनुष्य जन्मको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ व्युत्क्रमसे भी पुण्यके गौरवसे मनुष्य जन्मको पाता है कर्मोंके बडे और छोटेपनसे अति अद्भुत गति कही है ॥ २९ ॥ जो पुरुष स्वर्ग मोक्षके साधक मनुष्य जन्मको पाकर अपने कल्याणको नहीं करता है वह मरके बहुत कालतक शोचता है ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण देवता और असुरोंमें मनुष्य जन्म अतिदुर्लभ है उस मनुष्य जन्मको पाके ऐसा करना चाहिये कि जिससे नरकमें न जावे ॥ ३१ ॥ यदि दुर्लभ मनुष्य जन्मको पाके स्वर्ग और अपवर्गके लाभके लिये उद्यम नहीं होता है तो वह मनुष्य जन्म वृथा कहा है ॥ ३२ ॥ हे व्यासजी ! सम्पूर्ण धर्म. अर्थ, काम मोक्षका आदि कारण मनुष्य जन्म कहा है इस कारण

व्युत्क्रमेणापि मानुष्यं प्राप्यते पुण्यगौरवात्॥विचित्रा गतयः प्रोक्ताः कर्मणां गुरुलाघवात्॥२९॥मानुष्यं च समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधनम् ॥ नाचरत्यात्मनः श्रेयस्स मृतश्शोचते चिरम् ॥३०॥ देवासुराणां सर्वेषां मानुष्यं चातिदुर्लभं ॥ तत्संप्राप्य तथा कुर्यान्न गच्छेन्नरकं यथा ॥३१॥ स्वर्गापवर्गलाभाय यदि नास्ति समुद्यमः ॥ दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं वृथा तज्जन्म कीर्तितम् ॥३२॥ सर्वस्य मूलं मानुष्यं चतुर्वर्गस्य कीर्तितम्॥ संप्राप्य धर्मतो व्यास तद्यत्तादनुपालयेत् ॥३३॥ धर्ममूलं हि मानुष्यं लब्ध्वा सर्वार्थसाधकम् ॥ यदि लाभाय यत्नः स्यान्मूलं रक्षेत्स्वयं ततः॥ ३४ ॥ मानुष्येऽपि च विप्रत्वं यः प्राप्य खलु दुर्लभम् ॥ नाचरत्यात्मनः श्रेयः कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥ ३५ ॥ द्वीपानामेव सर्वेषां कर्मभूरियमुच्यते ॥ इतस्स्वर्गश्च मोक्षश्च प्राप्यते सम्पार्जितः ॥ ३६ ॥ देशेऽस्मिन्भारते वर्षे प्राप्य मानुष्यमध्रुवम् ॥ न कुर्यादात्मनः श्रेयस्तेनात्मा खलु वंचितः ॥ ३७ ॥

उसे प्राप्त होके धर्मसे यत्नपूर्वक उसका पालन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ यदि सब पदार्थोंके साधन करनेवाले धर्मके मूल मनुष्य जन्मको पाके अपने लाभके अर्थ प्रयत्न होवे तो स्वयं मूलको रक्षा करे ॥ ३४ ॥ मनुष्य जन्ममें भी जो दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाके अपने कल्याणको नहीं करता है उससे अधिक जड कौन है ॥ ३५ ॥ सम्पूर्ण द्वीपोंमें यह कर्मभूमि कही जाती है यहांसे अर्जित हुआ स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ इस भारतवर्षमें अस्थिर मनुष्य जन्मको पाय यदि अपने कल्याणको नहीं किया तो उसने अपनी आत्माको वंचित

किया (ठगा) ॥ ३७ ॥ हे विप्र ! यह कर्मभूमि कही है और यह फलभूमि कही है यहांपर जो कर्म किया जाता है वहा स्वर्गमें भोगा जाता है ॥ ३८ ॥ जबतक शरीरकी स्वस्थता होवे तबतक धर्म करे क्योंकि विना स्वस्थ हुआ औरोंकी प्रेरणासे कुछ भी नहीं करनेका उत्साह करता है ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य विना निश्चल शरीरसे निश्चलधर्मको सिद्ध नहीं करता है उसका ध्रुव (उपस्थित) नष्ट हो गया और अध्रुव (अनुपस्थित) जो नष्ट ही है ॥ ४० ॥ आयुके खण्डखण्ड होके उसके आगे नष्ट होते चले जाते हैं फिर भी दिन और रात्रिके उपदेशसे क्यों नहीं जागते ॥ ४१ ॥ जब यह नहीं मालूम है कि कब किसकी मृत्यु होगी अकस्मात् मरण होने पर फिर कौन

कर्मभूमिरियं विप्र फलभूमिरसौ स्मृता ॥ इह यत्क्रियते कर्म स्वर्गे तदनुभुज्यते॥३८॥यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य तावद्धर्मं समाचरेत्॥ अस्वस्थश्चोदितोऽप्यन्यैर्न किंचित्कर्तुमुत्सहेत् ॥ ३९ ॥ अध्रुवेण शरीरेण ध्रुवं यो न प्रसाधयेत् ॥ ध्रुवं तस्य परिभ्रष्टम ध्रुवं नष्टमेव च ॥ ४० ॥ आयुषः खंडखंडानि निपतंति तदग्रतः ॥ अहोरात्रोपदेशेन किमर्थं नावबुध्यते ॥ ४१ ॥ यदा न ज्ञायते मृत्युः कदा कस्य भविष्यति॥ आकस्मिके हि मरणे धृतिं विंदति कस्तथा ॥४२॥ परित्यज्य यदा सर्वमेकाकी यास्यति ध्रुवम् ॥ न ददाति कदा कस्मात्पाथेयार्थमिदं धनम् ॥४३॥ गृहीतदानपाथेयः सुखं याति यमालयम् ॥ अन्यथा क्लिश्यते जंतुः पाथेयरहिते पथि ॥४४॥येषां कालेय पुण्यानि परिपूर्णानि सर्वतः ॥ गच्छतां स्वर्गदेशं हि तेषां लाभः पदेपदे ॥ ४५ ॥ इति ज्ञात्वा नरः पुण्यं कुर्यात्पापं विवर्जयेत् ॥ पुण्येन याति देवत्वमपुण्यो नरकं व्रजेत् ॥ ४६ ॥

ऐश्वर्यको ढूंढता है ॥ ४२ ॥ जब सब धनादिको त्यागन करके अकेला यह प्राणी निश्चय चला जायगा तो क्यों पाथेय (मार्ग भोजन) के अर्थ यह धनदान नहीं करता है ॥ ४३ ॥ जिसने दानरूपी चबेना बांधा है वह सुखसे यमलोकको जाता है नहीं तो प्राणी पाथेय (चबेना) रहित मार्गमें दुःखी होता है ॥ ४४ ॥ हे व्यासजी ! जिन पुरुषोंके पुण्य सब ओरसे परिपूर्ण हैं स्वर्ग लोकमें जानेवाले उन मनुष्योंको पदपदमें लाभ होता है ॥ ४५ ॥ यह जानके मनुष्य सदा पुण्य करे और पापको त्यागे पुण्यसे देवतापनको प्राप्त होता है पापसे नरकको जाता

जो मनुष्य कुछ भी शिवकी शरणमें प्राप्त होते हैं वे भी यमराजको तथा घोर नरकको नहीं देखते हैं ॥ ४७ ॥ पापोंसे और महामोहके कारण थोडे समयतक शिवकी आज्ञासे नरकमें निवास करते हैं तत्पश्चात् शिवलोकको प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥ और जो सम्पूर्णभावसे शिवको प्राप्त होते हैं वे जलसे कमलपत्रके समान पापसे लिप्त नहीं होते हैं ॥ ४९ ॥ जिन्होंने शिवका नाम हरहर ऐसा नाम कहा है हे मुनिसत्तम ! उनको नरकोंसे और यमराजसे कुछ भय नहीं रहता ॥ ५० ॥ परलोकका "चबेना" निरामय मोक्षका उपाय पुण्यसमूहका एकमात्र स्थान "शिव" यह दो अक्षर कहे हैं ॥ ५१ ॥ यह शिव नाम ही संसारके महारोगोंका एक मात्र शान्त करनेवाला है और कोई उपाय मैंने संसार

ये मनागपि देवेशं प्रपन्नाश्शरणं शिवम् ॥ तेऽपि घोरं न पश्यंति यमं न नरकं तथा॥४७॥किंतु पापैर्महामोहैः किंचित्काले शिवाज्ञया ॥ वसंति तत्र मानुष्यास्ततो यांति शिवास्पदम् ॥ ४८ ॥ ये पुनस्सर्वभावेन प्रतिपन्ना महेश्वरम् ॥ न ते लिम्पंति नपापे पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ ४९ ॥ उक्तं शिवेति यैर्नाम तथा हरहरेति च॥न तेषां नरकाद्भीतिर्यमाद्धि मुनिसत्तम ॥५०॥ परलोकस्य पाथेयं मोक्षोपायमनामयम् ॥ पुण्यसंघैकनिलयं शिव इत्यक्षरद्वयम् ॥ ५१ ॥ शिवनामैव संसारमहारोगैकशामकम् ॥ नान्यत्संसाररोगस्य शामकं दृश्यते मया ॥ ५२ ॥ ब्रह्महत्यासहस्राणि पुरा कृत्वा तु पुल्कसः ॥ शिवेति नाम विमलं श्रुत्वा मोक्षं गतः पुरा ॥ ५३ ॥ तस्माद्विवर्द्धयेद्भक्तिमीश्वरे सततं बुधः॥शिवभक्त्या महाप्राज्ञ भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ॥५४॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां मनुविशेषकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ ब्राह्मणत्वं हि दुष्प्राप्यं निसर्गाद्ब्राह्मणोभवेत् ॥ ईश्वरस्य मुखात्क्षत्रं बाहुभ्यामूरुतो विशः ॥ १ ॥

रोगका शान्त करनेवाला नहीं देखा ॥ ५२ ॥ पहले सहस्रों ब्रह्महत्या करके शिव शिव ऐसा निर्मल नाम सुनके मोक्षको प्राप्त हुए हैं ॥ ५३ ॥ इस कारण विद्वान् निरन्तर शिवजीके विषयमें भक्तिको बढावे हे महाप्राज्ञ ! मनुष्य शिवभक्तिसे भुक्ति और मुक्ति दोनोंको पाया है ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पंचम्यामुमासंहितायां मनुविशेषकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ व्यासजी बोले, ब्राह्मणका दुष्प्राप्य है ईश्वरके मुखसे ब्राह्मण होता है और भुजाओंसे क्षत्रिय तथा जंघाओंसे वैश्य ॥ १ ॥

और चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुये हैं इस प्रकार उसके मुखसे सुना गया है नीचेके स्थानसे क्यों स्थितिको प्राप्त होते हैं सो वर्णन करो ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे व्यासजी ! पापसे मनुष्य अपने स्थानसे गिर जाते हैं इस कारण प्रवीण मनुष्य श्रेष्ठ स्थानको प्राप्त होके उसकी रक्षा करता है ॥ ३ ॥ जो पुरुष ब्राह्मणत्वसे क्षत्रिय योनिमें उत्पन्न होता है वह ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट हो क्षत्रियत्वको सेवन करता है ॥ ४ ॥ उसी प्रकार मूर्ख मनुष्य अधर्मके सेवनसे सहस्रों जन्मोंमें घूमता है और अन्धकारमें प्रवेश करता है ॥ ५ ॥ इस कारण मनुष्य अधिक स्थानको प्रमाद (असावधानी) से नाश नहीं करे, दुःखोंको प्राप्त होके भी निरन्तर अपने स्थानकी रक्षा करे ॥ ६ ॥ जो मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मण जन्म

पद्भ्यां शूद्रस्समुत्पन्न इति तस्य मुखाच्छ्रुतिः ॥ किमु स्थितिमधःस्थानादाप्नुवन्ति ह्यतो वद ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ दुष्कृ
तेन तु कालेय स्थानाद्भ्रश्यन्ति मानवाः ॥ श्रेष्ठं स्थानं समासाद्य तस्माद्रक्षेत पण्डितः ॥३॥ यस्तु विप्रत्वमुत्सृज्य क्षत्रयोन्यां
प्रसूयते ॥ ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्रियत्वं निषेवते ॥४॥ अधर्मसेवनान्मूढस्तथैव परिवर्तते ॥ जन्मान्तरसहस्राणि तमस्याविशते
यतः ॥५॥ तस्मात्प्राप्य परं स्थानं प्रमाद्यन्न तु नाशयेत् ॥ स्वस्थानं सर्वदा रक्षेत्प्राप्यापि विपदो नरः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणत्वं शु
प्राप्य ब्राह्मण्यं योऽवमन्यते ॥ भोज्याभोज्यं न जानाति स पुमान्क्षत्रियो भवेत् ॥ ७ ॥ कर्मणा येन मेधावी शूद्रो वैश्यो
हि जायते ॥ तत्ते वक्ष्यामि निखिलं येन वर्णोत्तमो भवेत् ॥ ८ ॥ शूद्रकर्म यथोद्दिष्टं शूद्रो भूत्वा समाचरेत् ॥ यथावत्प
रिचर्य्यातु त्रिषु वर्णेषु नित्यदा ॥ ९ ॥ कुरुते कामयानस्तु शूद्रोऽपि वैश्यतां व्रजेत् ॥ यो योजयेद्धनैर्वैश्यो जुह्वानश्च
यथाविधि ॥ १० ॥ अग्निहोत्रमुपादाय शेषान्न कृतभोजनः ॥ स वैश्यः क्षत्रियकुले जायते नात्र संशयः ॥ ११ ॥

पाके ब्राह्मण्यको तिरस्कार करता है वा जो भोज्य और अभोज्यको नहीं जानता वह मनुष्य क्षत्रिय होता है ॥ ७ ॥ बुद्धिमान् शूद्र जिस कर्मसे वैश्य होता है यह सब तुमसे कहता हूं कि, जिससे उत्तम वर्ण होजाता है ॥ ८ ॥ जिस प्रकार शूद्रकर्म बताया है उसे शूद्र होके करना चाहिये तीनों वर्णोंमें नित्य विधिपूर्वक सेवाको ॥ ९ ॥ चाहनेवाला शूद्र भी वैश्यकी योनिको पाता है और जो वैश्य अपने धनसे विधिपूर्वक करके ॥ १० ॥ अग्निहोत्र कर्म कराय शेषान्नका भोजन करने वाला है वह वैश्य क्षत्रियकुलमें उत्पन्न होता है इसमें

कुछ सन्देह नहीं ॥ ११ ॥ जो क्षत्रिय संस्कार युक्त दक्षिणा सहित यज्ञोंको कर स्वर्गकी इच्छासे सदा त्रेताग्निकी शरणमें अध्ययन करता है ॥ १२ ॥ और गीले हाथ पैरोंवाला क्षत्रिय धर्मसे नित्य भूमीको पालता है और धर्ममें तत्पर हो ऋतुकालमें अपनी स्त्रीसे प्रसंग करता है ॥ १३ ॥ सब ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यादिक आतिथ्य करता है भूतोंको तथा गौ ब्राह्मण आत्माके अर्थ प्रदान करता है तथा संग्राममें नष्ट होता है ॥ १४ ॥ इस कर्मसे अग्नि मन्त्रसे पवित्रात्मा वह क्षत्रिय ब्राह्मण हो जाता है और विधिविधानसे ब्राह्मण होके याजक (यज्ञ कराने वाला) होता है ॥ १५ ॥ नित्य अपने कर्मोंमें आरूढ सत्यवादी जितेन्द्रिय होके देवतोंको भी दुष्प्राप्य ऐसे विपुल स्वर्गको पाता है ॥१६॥

क्षत्रियो जायते यज्ञैसंस्कृतैरात्तदक्षिणैः ॥ अधीते स्वर्गमन्विच्छंस्त्रेताग्निशरणं सदा ॥ १२ ॥ आर्द्रहस्तपदो नित्यं क्षितिं धर्मेण पालयेत्॥ऋतुकालाभिगामी च स्वभार्य्याधर्मतत्परः॥१३॥सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य भूतेभ्यो दीयतामिति॥गोब्राह्मणात्मनोऽर्थं हि संग्रामाभिहतो भवेत् ॥१४॥ तेनाग्निमन्त्रपूतात्मा क्षत्रियो ब्राह्मणो भवेत् ॥ विधितो ब्राह्मणो भूत्वा याजकस्तु प्रजायते ॥१५॥ स्वकर्मनिरतो नित्यं सत्यवादी जितेन्द्रियः॥प्राप्यते विपुलस्स्वर्गो देवानामपि वल्लभः॥१६॥ब्रह्मणत्वं हि दुष्प्राप्यं कृच्छ्रेण साध्यते नरैः ॥ ब्राह्मण्यात्सकलं प्राप्य मोक्षश्चापि मुनीश्वर ॥१७॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो धर्मतत्परः ॥ साधनं सर्ववर्गस्य रक्षे द्ब्राह्मण्यमुत्तमम् ॥ १८ ॥ व्यास उवाच ॥ संग्रामस्येह माहात्म्यं त्वयोक्तं मुनिसत्तम ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं ब्रूहि त्वं वदतांवर ॥ १९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः ॥ न तत्फलमवाप्नोति संग्रामे यदवाप्नुयात् ॥ २० ॥

हे मुनीश्वर ! ब्राह्मणत्व अति दुर्लभ है यह मनुष्योंको कठिनतासे मिलता है और ब्राह्मणत्वसे सब कुछ मोक्ष पर्यन्त भी प्राप्त होने योग्य है ॥ १७ ॥ इस कारण ब्राह्मण धर्ममें तत्पर होके सब यत्नोंसे सब वर्गोंके साधन श्रेष्ठ ब्राह्मत्वकी रक्षा करे ॥ १८ ॥ व्यासजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! यह माहात्म तुमने कहा अब मैं संग्रामके माहात्म्यको सुनना चाहता हूं हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! तुम विस्तारसे वर्णन करो ॥ १९ ॥ सनत्कुमारजी बोले, क्षत्रिय अत्यन्त दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञोंको करके भी उस फलको नहीं पाता जो फल

संग्राममें प्राप्त करता है ॥ २० ॥ तत्त्वके जाननेवाले यज्ञकर्म वेत्ताओंने ऐसा कहा है सो सब शस्त्रजीवियोंके फलको तुमसे वर्णन करता हूं ॥ २१ ॥ शूर सेनामें प्रवेश करके युद्ध करनेवाला क्षत्रिय है वह जो कुछ इच्छा करता है सो धर्म लाभ, अर्थ लाभ, यशोलाभ आदि सबको पाता है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य अपने सन्मुख दानादि देकर युद्धके वाहनपर चढता है उसके धर्म अर्थ काम तथा दक्षिणा सहित यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ जो युद्धमें पराजित नहीं होता है वह विष्णु लोकमें प्राप्त होता है और अश्वमेधोंके फलको पाता है ॥ २४ ॥ जो क्षत्रिय शस्त्रोंको विना छोडे सेनाके मुखमें सन्मुख होके मर जाता है वह शूर स्वर्गसे नहीं गिरता है ॥ २५ ॥ राजा हो वा

इति तत्त्वविदः प्राहुर्यज्ञकर्मविदस्सदा ॥ तस्मात्तत्ते प्रवक्ष्यामि यत्फलं शस्त्रजीविनाम् ॥ २१ ॥ धर्मलाभोऽर्थलाभश्च यशोलाभस्तथैव च ॥ यश्शूरो वांछते युद्धं विमृन्दन्परवाहिनीम् ॥ २२ ॥ तस्य धर्मार्थ कामाश्च यज्ञश्चैव सदक्षिणः ॥ परं ह्यभिमुखं दत्त्वा तद्यानं योऽधिरोहति ॥ २३ ॥ विष्णुलोके स जायेत यश्च युद्धेऽपराजितः ॥ अश्वमेधानवाप्नोति चतुरो न मृतस्स चेत् ॥ २४ ॥ यस्तु शस्त्रमनुत्सृज्य म्रियते वाहिनी मुखे ॥ सम्मुखो वर्तते शूरस्स स्वर्गान्न निवर्तते ॥ २५ ॥ राजा वा राज पुत्रो वा सेनापतिरथापि वा ॥ हतःक्षात्रेण यः शूरस्तस्य लोकोऽक्षयो भवेत् ॥ २६ ॥ यावंति तस्य रोमाणि भिद्यन्तेऽस्त्रैर्मर्म हाहवे ॥ तावतो लभते लोकान्सर्वकामदुघाऽक्षयान् ॥२७॥ वीरासनं वीरशय्या वीरस्थानस्थितिस्थिरा ॥ सर्वदा भवति व्यास इह लोके परत्र च ॥ २८ ॥ गवार्थे ब्राह्मणार्थे च स्थानस्वाम्यर्थमेव च ॥ ये मृतास्ते सुखं यांति यथा सुकृतिनस्तथा ॥ २९ ॥ यः कश्चिद्ब्राह्मणं हत्वा पश्चात्प्राणान्परित्यजेत् ॥ तत्रासौ स्वपतेर्युद्धे स स्वर्गान्न निवर्तते ॥ ३० ॥

राजपुत्र हो अथवा सेनापति हो जो शूर क्षत्रियसे मारा गया उसको अक्षय लोक प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ बडे युद्धमें अस्त्रोंसे उसके जितने रोम भेदित होते हैं सब कामनाके देनेवाले उतने अक्षय लोकोंको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ हे व्यासजी ! वीरासन वीरशय्या वीरस्थान स्थिति सर्वदा इस लोकमें तथा पर लोकमें स्थिर होती है ॥ २८ ॥ जो मनुष्य गौके अर्थ ब्राह्मणके अर्थ तथा स्थान और स्वामीके अर्थ मरते हैं वे इस प्रकार सुखको प्राप्त होते हैं जिस प्रकार पुण्यात्मा पाते हैं ॥ २९ ॥ जो कोई ब्राह्मणको भी युद्धमें मारके अपने पतिके

युद्धमें प्राणोंको छोडता है वह स्वर्गसे पतित नहीं होता है ॥ ३० ॥ युद्धमें राक्षस आदिसे तथा हाथियोंसे मारे हुएकी भी उत्तम गति होती है यदि द्विज गौ स्वामीके अर्थ प्राणत्याग किया जाय तो अक्षय गति होती है ॥ ३१ ॥ सामर्थ्यवान् मनुष्य इस संसारमें सैकडों यज्ञ करनेमें समर्थ हो सकता है परन्तु युद्धमें अपने शरीरका त्यागन करना बडा कठिन है ॥ ३२ ॥ सम्पूर्ण वर्णोंका और विशेषकर क्षत्रियका युद्ध पुण्यका देनेवाला स्वर्गका देनेवाला रूपज्ञ और सर्वतोमुख कहा है ॥ ३३ ॥ अब मैं सनातन युद्ध धर्मको विस्तारसे कहता हूं कि, जैसेको प्रहार करना चाहिये और जैसेको छोडना चाहिये ॥ ३४ ॥ युद्धके सन्मुख आते हुए मारनेकी इच्छा करनेवाले वेदान्ती आततायी ब्राह्मणको

क्रव्यादैर्दंतिभिश्चैव हतस्य गतिरुत्तमा॥द्विजगोस्वामिनामर्थे भवेद्विपुलदाक्षया॥३१॥शक्नोत्विह समर्थश्च यष्टुं क्रतुशतैरपि॥आत्म देहपरित्यागः कर्तुं युधि सुदुष्करः॥३२॥युद्धं पुण्यतमं स्वर्ग्यं रूपज्ञं सर्वतोमुखम्॥सर्वेषामेव वर्णानां क्षत्रियस्य विशेषतः॥३३॥ भृशं चैव प्रवक्ष्यामि युद्धधर्मं सनातनम्॥यादृशाय प्रहर्तव्यं यादृशं परिवर्जयेत्॥३४॥आततायिनमायांतमपि वेदांतगं द्विजम्॥जिघां संतं जिघांसेत्तु न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥३५॥ हंतव्योऽपि न हंतव्यः पानीयं यश्च याचते॥रणे हत्वातुरान्व्यास स नरो ब्रह्महा भवेत् ॥३६॥ व्याधितं दुर्बलं बालं स्त्रियनाथौ कृपणं ध्रुवम्॥धनुर्भग्नं छिन्नगुणं हत्वा वै ब्रह्महा भवेत्॥३७॥एवं विचार्य्य सद्धीमान्भवेत्प्री त्याः रणप्रियः॥स जन्मनः फलं प्राप्य परत्रेह प्रमोदते॥३८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां रणफलवर्णनं नामै कविंशोऽध्यायः॥२१॥व्यास उवाच ॥ विधिं तात वदेदानीं जीवजन्मविधानतः॥गर्भे स्थितिं च तस्यापि वैराग्यार्थं मुनीश्वर ॥१॥

भी मारडाले उसके मारनेसे ब्रह्महत्यारा नहीं होता ॥ ३५ ॥ हे व्यासजी ! जो पानीको मांगता हो ऐसे मारने योग्य मनुष्यको भी नहीं मारना चाहिये संग्राममें रोगियोंको मारनेवाला पुरुष ब्रह्महत्यारा होता है ॥ ३६ ॥ व्याधिग्रसित दुर्बल बालक स्त्री अनाथ कृपण निश्चल जिसका धनुष टूटा हो अथवा प्रत्यंचा टूटी हो ऐसे पुरुषको जो संग्राममें मारता है वह ब्रह्महत्यारा होता है ॥ ३७ ॥ ऐसा विचारके जो बुद्धिमान् पुरुष प्रीतिसे संग्राम प्रिय होता है वह अपने जन्मके फलको पाके इस लोकमें तथा परलोकमें आनन्द करता है ॥ ३८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रणफलवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले, हे मुनीश्वर ! हे तात ! इस समय जीवके जन्मको

तथा जीवकी गर्भमें स्थितिको वैराग्यके निमित्त विधिविधानसे वर्णन करो ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे व्यासजी ! सुनो संक्षेपसे सब शास्त्रोंके साररूप वैराग्यको वर्णन करता हूं जो मुमुक्षुके भवसागरके बंधनको काटने वाला है ॥ २ ॥ पाकपात्रके मध्यमें अन्न पृथक् है और जल पृथक् है अग्निके ऊपर जल और जलके ऊपर वह अन्न स्थापन करने योग्य है ॥ ३ ॥ जलके नीचे स्थित हुआ अग्नि शनैः शनैः जलको फूँकता है और वायुसे फूँका हुआ अग्नि जलको अत्यन्त गरम कर देता है ॥ ४ ॥ फिर वह भोजन गरमजलसे सब ओरसे पकता है तब वह पकके दो भागमें होता है मैल पृथक् और रस पृथक् होजाता है ॥ ५ ॥ वह किट्ट (फोकस) बारहो मलोंसे विभक्त

सनत्कुमार उवाच॥शृणु व्यास समासेन शास्त्रसारमशेषतः ॥ वदिष्यामि सुवैराग्यं मुमुक्षोर्भवबंधकृत्॥२॥पाकपात्रस्य मध्ये तु पृथगन्नं पृथग्जलम्॥अग्नेरूर्ध्वं जलं स्थाप्यं तदन्नं च जलोपरि ॥३॥ जलस्याधस्स चाग्निर्हि स्थितोऽग्निं धमते शनैः ॥ वायुनाध म्यमानोऽग्निरत्युष्णं कुरुते जलम् ॥४॥ तदन्नमुष्णतोयेन समन्तात्पच्यते पुनः॥द्विधा भवति तत्पक्वं पृथक्किट्टं पृथग्रसः ॥ ५ ॥ मलैर्द्वादशभिः किट्टं भिन्नं देहाद्बहिर्भवेत्॥रसस्तु देहे सरति स पुष्टस्तेन जायते ॥६॥ कर्णाक्षिनासिका जिह्वा दन्ताः शिश्नो गुदं नखाः ॥ मलाश्रयः कफः स्वेदो विण्मूत्रं द्वादश स्मृताः ॥ ७ ॥ हृत्पद्मे प्रतिबद्धाश्च सर्वनाड्यस्समंततः ॥ ज्ञेया रसप्रवाहिन्यस्तत्प्रकारं ब्रुवे मुने ॥ ८ ॥ तासां मुखेषु तं सूक्ष्मं प्राणस्स्थापयेत् रसम् ॥ रसेन तेन नाडीस्ताः प्राणं पूरयते पुनः ॥ ९ ॥ पुनः प्रयांतिसंपूर्णास्ताश्च देहं समंततः ॥ ततस्स नाडीमध्यस्थश्शरीरेणात्मना रसः ॥ १० ॥

हुआ शरीरसे बाहर हो जाता है और रस देहमें फैल जाता है उसीसे शरीर पुष्ट होता है ॥ ६ ॥ कान, नेत्र, नासिका, जिह्वा, दांत, लिंग, गुदा, नख, मलाश्रय, कफ, पसीना, विष्ठा, मूत्र यह बारह मल कहे हैं ॥ ७ ॥ हृदयकमलमें चारों तरफसे समस्त नाडी बँधी हुई हैं हे मुने ! वे नाडी रसकी वहन करने वाली हैं उसकी विधिको वर्णन करता हूं ॥ ८ ॥ प्राणवायु उन नाडियोंके मुखमें उस सूक्ष्म रसको स्थापन करता है फिर उस रससे वे नाडी प्राणवायुको पूरण करती हैं ॥ ९ ॥ फिर वे सब नाडी चारों ओर देहमें जाती हैं तत्पश्चात् वह रस

नाडीके मध्यमें स्थित हो शरीर और आत्मासे पकाया जाता है ॥ १० ॥ पकनेके पीछे फिर दो पाक बनते हैं पहले त्वचा जिससे सब शरीर लिपटता है और फिर रुधिर होता है ॥ ११ ॥ लोहू, रोम, मांस, मांससे बाल; स्नायु, स्नायुसे, अस्थियां, मज्जा, और अस्थिसे नख उत्पन्न होते हैं ॥ १२ ॥ मज्जा कारण वैकल्य होता है और शुक्र (वीर्य) प्रसवात्मक होता है इस प्रकार बारह प्रकारका भोजनका परि पाक कहा ॥ १३ ॥ अन्नसे वीर्य और वीर्यसे देह बनता है जब दोष रहित योनिमें पडा हुआ ऋतु कालमें ॥ १४ ॥ वायुसे स्पर्श किया हुआ वीर्य स्त्रीरक्तकी ऐक्यताको प्राप्त होता है वीर्यके त्यागन कालमें जीव कारणसे युक्त होके ॥ १५ ॥ अपने कर्मोंसे लगाया हुआ योनिमें

पच्यते पच्यमानाच्च भवेत्पाकद्वयं पुनः ॥ त्वक् तया वेष्टयते पूर्वं रुधिरं च प्रजायते॥ ११॥ रक्ताल्लोमानि मांसं च केशाःस्नायुश्च मांसतः॥ स्नायुतश्च तथास्थीनि नखा मज्जास्थिसंभवाः॥ १२॥ मज्जाकारणवैकल्यं शुक्रं हि प्रसवात्मकम्॥ इति द्वादशधान्नस्य परिणामः प्रकीर्तिताः॥ १३॥ शुक्रोऽन्नाज्जायते शुक्राद्दिव्यदेहस्य संभवः॥ ऋतुकाले यदा शुक्रं निर्दोषं योनिसंस्थितम्॥ १४॥ तद्वा तद्वायुसंस्पृष्टं स्त्रीरक्तेनैकतां व्रजेत् ॥ विसर्गकाले शुक्रस्य जीवः कारणसंयुतः ॥ १५॥ संवृतः प्रविशेद्योनिं कर्मभिस्स्वैर्नियोजितः॥ तच्छुक्रस्क्रमेकस्थमेकाहात्कलिलं भवेत् ॥ १६॥ पंचरात्रेण कलिलं बुद्बुदाकारतां व्रजेत्॥ बुद्बुदस्सप्तरात्रेण मांसपेशी भवेत्पुनः॥ १७॥ ग्रीवा शिरश्च स्कंधौ च पृष्ठवंशस्तथोदरम् ॥ पाणिपादन्तथापार्श्वं कटिर्गात्रं तथैव च॥ १८॥ द्विमासाभ्यन्तरेणैव क्रमशस्संभवेदिह॥ त्रिभिर्मासैः प्रजायंते सर्वे ह्यंकुरसंधयः॥ १९॥ मासैश्चतुर्भिरंगुल्यः प्रजायंते यथाक्रमम्॥ मुखं नासा च कर्णौ मासैः पंचभिरेव च ॥ २०॥

प्रवेश करता है तो वह शुक्र और रज एकमें स्थित होके एक दिनमें कलिल (वीर्य और रजका समुदायरूप) हो जाता है ॥ १६ ॥ फिर वह कलिल पांच रात्रिमें बुद्बुदके आकारको प्राप्त होता है फिर वह बुद्बुद सात रात्रिमें मांस पेशी होती है ॥ १७ ॥ गरदन शिर दोनों कन्धे पीठ वक्ष पेट तथा हाथ पैर दोनों पार्श्व कमर गात्र ॥ १८ ॥ यह सब दो महीनेके भीतर क्रमसे हो जाते हैं और तीन महीनेमें सब अंकुरकी सन्धि हो जाती हैं ॥ १९ ॥ चार महीनेमें यथाक्रम सब अंगुली होती हैं और पांच महीनेमें मुख नासिका कान

होजाते हैं ॥ २० ॥ और फिर दन्तोंकी पंक्ति तथा गुह्य नख प्रगट होते हैं और छे महीनेके भीतर कानोंमें छिद्र हो जाता है ॥ २१ ॥ सात महीनेमें गुदा मेढ उपस्थेन्द्रिय नाभि अंगोंमें सन्धि हो जाती हैं ॥ २२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार जीव अंग और प्रत्यंगसे पूर्ण हुआ परिपक्व होके माताके पेटमें जेरमें लिपटा हुआ स्थित रहता है ॥ २३ ॥ फिर वह माताके भोजनसे चुराने योग्य छे प्रकारके रससे नाभि नालमें बँधा हुआ प्रतिदिन बढता है ॥ २४ ॥ तत्पश्चात् वह जीव इस शरीरके सम्पूर्ण हो जानेपर स्मृतिको प्राप्त होता है सुख और दुःखको तथा निद्रा और स्वप्नको और पहले किये हुए कर्मको जानता है ॥ २५ ॥ मरके मैं फिर पैदा हुआ और पैदा होके फिर मरा

दन्तपंक्तिस्तथा गुह्यं जायंते च नखाः पुनः॥कर्णयोस्तु भवेच्छिद्रं षण्मासाभ्यंतरेण तु ॥२१॥ पायुर्मेढ्रमुपस्थं च नाभिश्चाभ्युपजायते ॥ संधयो ये च गात्रेषु मासैर्जायंति सप्तभिः ॥ २२ ॥ अंगप्रत्यंगसंपूर्णःपरिपक्वस्स तिष्ठति ॥ उदरे मातुराच्छन्नो जरायौ मुनि सत्तम ॥ २३ ॥ मातुराहारचौर्य्येण षड्विधेन रसेन तु ॥ नाभिनालनिबद्धेन वर्द्धते स दिनेदिने ॥ २४ ॥ तत स्मृतिं लभेज्जीवस्संपूर्णेऽस्मिञ्शरीरके ॥ सुखं दुःखं विजानाति निद्रास्वप्नं पुराकृतम् ॥ २५ ॥ मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः ॥ नानायोनिसहस्राणि मया दृष्टानि जायता ॥ २६ ॥ अधुना जातमात्रोऽहं प्राप्तसंस्कार एव च ॥ श्रेयोऽमुना करिष्यामि येन गर्भे न संभवः ॥ २७ ॥ गर्भस्थश्चिंतयत्येवमहं गर्भाद्विनिस्सृतः ॥ अन्वेष्यामि शिवज्ञानं संसारविनिवर्तकम् ॥ २८ ॥ एवं स गर्भदुःखेन महतापरिपीडितः ॥ जीवः कर्मवशादास्ते मोक्षोपायं विचिंतयन् ॥ २९ ॥ यथा गिरिवराक्रांतः कश्चिद्दुःखेन तिष्ठति ॥ तथा जरायुणा देही दुःखं तिष्ठति वेष्टितः ॥ ३० ॥

इस प्रकार मैंने अनेक योनिमें देखी हैं ॥ २६ ॥ अब मैं उत्पन्न होते ही संस्कारको प्राप्त होते मात्रही इस शरीरसे ऐसे कल्याणको करूँगा कि जिससे फिर गर्भमें न आना पडे ॥ २७ ॥ इस प्रकार गर्भमें स्थित होके विचारता है कि मैं गर्भसे निकलके संसारसे लौटनेवाले शिवके ज्ञानको अन्वेषण करूँगा ॥ २८ ॥ इस प्रकार कर्म वश बडे गर्भके दुःखसे पीडित हुआ वह जीवात्मा मोक्षके उपायको विचरता हुआ ॥ २९ ॥ जिस प्रकार पर्वतसे दबा हुआ कोई पुरुष दुःखसे स्थित होता है उसी प्रकार जेरसे लिपटा हुआ जीव दुःखसे

स्थित रहता है ॥ ३० ॥ जैसे समुद्रमें गिरके व्याकुल दुःखी होता है वैसे गर्भके जलसे सिक्तांग हो निरन्तर व्याकुल होता है ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार लोहेके कलशेमें रक्खा हुआ पदार्थ अग्निसे पकाया जाता है उसी प्रकार गर्भके कुम्भमें पडा हुआ जीवात्मा पेटकी अग्निसे पकाया जाता है ॥ ३२ ॥ अग्निसे तपी हुई सुइयोंसे नित्य छेदे हुएको जो दुःख होता है उसी प्रकार गर्भाशयमें स्थित हुए जीवको दुःख प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ मनुष्योंको गर्भवाससे अधिक कष्ट दुःख कहीं नहीं मिलता यह दुःख अति घोर तथा अति संकटका देनेवाला होता है ॥ ३४ ॥ यह पापियोंका बडा दुःख तुमसे कहा धर्मात्माओंका केवल सात मासमें जन्म होता है ॥ ३५॥ हे व्यासजी ! पापियोंको

पतितस्सागरे यद्वद्दुःखमास्ते समाकुलः ॥ गर्भोदकेन सिक्तांगस्सर्वदाकुलितस्तदा ॥ ३१ ॥ लोहकुंभे यथा न्यस्तः पच्यते कश्चिदग्निना ॥ गर्भकुंभे तथा क्षिप्तः पच्यते जठराग्निना ॥ ३२ ॥ सूचीभिरग्निवर्णाभिर्नित्यं भेद्यस्य निरंतरम् ॥ यद्दुःखं जायते तस्य तत्र संस्थस्य चाधिकम् ॥ ३३ ॥ गर्भावासात्परं दुःखं कष्टं नैवास्ति कुत्रचित् ॥ देहिनां दुःखबहुलं सुघोरमतिसंकटम् ॥ ३४ ॥ इत्येतत्सुमहद्दुःखं पापिनां परिकीर्तितम् ॥ केवलं धर्मबुद्धीनां सप्तमासैर्भवस्सदा ॥ ३५ ॥ गर्भात्सुदुर्लभं दुःखं योनियंत्रनिपीडनात् ॥ भवेत्पापात्मनां व्यास न हि धर्मयुतात्मनाम् ॥ ३६ ॥ इक्षुवत्पीड्यमानस्य यंत्रेणैव समंततः ॥ शिरसा ताड्यमानस्य पाप मुद्गरकेण च ॥३७॥ यंत्रेण पीडिता यद्वन्निस्सारास्स्युस्तिलाः क्षणात् ॥ तथा शरीरं निस्सारं योनियंत्र निपीडनात् ॥ ३८ ॥ अस्थिपादतुलास्तंभं स्नायुबन्धेन यंत्रितम्॥ रक्तमांसमृदालिप्तं विण्मूत्रद्रव्यभाजनम् ॥ ३९ ॥ केशरोमनखच्छन्नं रोगायतनमातुरम् ॥ वदनैकमहाद्वारं गवाक्षाष्टकभूषितम् ॥ ४० ॥

योनियन्त्रके पीडन करनेसे गर्भसे अति अति कठिन दुःख प्राप्त होता है परन्तु धर्मात्माओंको नहीं होता है ॥ ३६ ॥ कोनयन्त्रसे सब ओर ईखके समान पीडित किये हुएके समान पापमुद्गरसे शिरमें ताडन किये हुएके समान ॥ ३७ ॥ तथा जैसे कोहलूसे पेले हुए तिल निस्सार हो जाते हैं उसी प्रकार योनियन्त्रके पीडन करनेसे शरीर निस्सार हो जाता है ॥ ३८ ॥ अस्थि पाद तुला स्तम्भ स्नायु बन्धनसे बँधा हुआ रक्त मांस मृत्तिकासे लिप्त हुआ विष्ठा मूत्र द्रव्यका पात्र ॥३९॥ बाल रोम नखोंसे ढके हुए रोमके स्थान आतुर मुखही एक महाद्वारवाले गवाक्ष

अष्टकसे शोभायमान ॥ ४० ॥ दोनों ओंठरूपी कपाट वाले तथा जिह्वारूपी अर्गला [धन्ना] सहित भोग तृष्णारूपी रोगसे ग्रसित मूढ राग द्वेशके वशमें पडे हुए ॥ ४१ ॥ अंग और प्रत्यंगोंसे युक्त जेरसे लिपटे विना प्रगट हुए संकटसे योनिमार्गसे निकले हुए ॥ ४२ ॥ विष्ठा मूत्रसे सिक्तांग विकोशिकसे उत्पन्न हुए अस्थि पंजरसे विख्यात हुए शरीरको जानना चाहिये ॥ ४३ ॥ तीनसौ पैंसठ पेशी तथा चारों ओरसे साढेतीन करोड रोंगटोंसे व्याप्त हुआ ॥ ४४ ॥ शरीर स्थल और सूक्ष्म साढेतीन करोड नाडियोंसे दृश्य और अदृश्य कहा है ॥ ४५ ॥ विना स्वेद मधुवाली नाडियोंके मध्यमें स्थित होके जीव बाहर निकलता है इसके बत्तीस दांत और वीस नख कहे हैं ॥ ४६ ॥ इस शरीरमें

ओष्ठद्वयकपाटं च तथा जिह्वार्गलान्वितम्॥ भोगतृष्णातुरं मूढं रागद्वेषवशानुगम्॥४१॥संवर्तितांगप्रत्यंगं जरायुपरिवेष्टितम्॥ संकटे नाविविक्तेन योनिमार्गेण निर्गतम्।४२।विण्मूत्ररक्तसिक्तांगं विकोशिकसमुद्भवम्॥ अस्थिपञ्जरविख्यातमस्मिञ्ज्ञेयं कलेवरम्॥४३॥ शतत्रयं षष्ट्यधिकं पंचपेशीशतानि च॥सार्द्धाभिस्तिसृभिश्छन्नं समंताद्रोमकोटिभिः ॥४४॥ शरीरं स्थूलसूक्ष्माभिर्दृश्याऽदृश्या हि तास्स्मृताः॥एतावतीभिर्नाडीभिः कोटिभिस्तत्समंततः॥४५॥अस्वेदमधुभिर्याभिरंतस्थः स्रवते बहिः॥द्वात्रिंशद्दशनाः प्रोक्ता विंश तिश्च नखाः स्मृताः ॥४६॥ पित्तस्य कुडवं ज्ञेयं कफस्याथाढकं स्मृतम् ॥वसायाश्च पलं विंशत्तदर्धं कपिलस्य च॥४७॥ पंचार्द्धं तु तुला ज्ञेया पलानि दश मेदसः ॥ पलत्रयं महारक्तं मज्जायाश्च चतुर्गुणम् ॥४८॥ शुक्रोर्द्धं कुडवं ज्ञेयं तद्बीजं देहिनां बलम् ॥ मांसस्य चैकपिंडेन पलसाहस्रमुच्यते॥४९॥रक्तं पलशतं ज्ञेयं विण्मूत्रं यत्प्रमाणतः॥ अंजलयश्च चत्वारश्चत्वारोमुनिसत्तम॥५०॥

पित्त एक कुडव (पावभर) कफका सार एक आढक (चारसेर) चरबी वीस पल (१६० तोले) दशपल कपिलत्व होता है ॥ ४७ ॥ मेदनामक चरबीका भार साढे पांच तुला और दशपल (सौपलकी एक तुला होती है) तीन पल इस शरीरमें महारक्त मज्जा इससे चौगुनी अर्थात् बारह पल जाननी ॥ ४८ ॥ वीर्य इसमें आधा कुडव यही बीज और देह धारियोंका बल है इस देहमें सहस्र पल मांसका परिमाण कहा है यह पूरे शरीरका विवरण है ॥ ४९ ॥ सौ पल इमें रक्त होता है, हे मुनिश्रेष्ठ ! चार चार अंजलि इसमें विष्ठा मूत्र जानना ॥ ५० ॥

इस प्रकार नित्य विशुद्ध आत्माको यह अपवित्र अनित्य शरीररूपी गृह कर्म बन्धनसे बनाहै ॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां देहोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे महाबुद्धे ! मुने ! हे व्यासजी ! सुनो मैं देहकी अपवित्रताको और स्वभावके महत्त्वको संक्षेपसे वर्णन करता हूं ॥ १ ॥ कारणकि, यह शरीर वीर्य और रजके संयोगसे उत्पन्न होता है, और नित्य विष्ठा तथा मूत्रसे परिपूर्ण होता है इसीसे यह अपवित्र कहा है ॥ २ ॥ जिस प्रकार भीतर विष्ठासे पूर्ण हुआ घडा बाहरसे शुद्ध नहीं हो सकता उसी प्रकार यह शुद्ध किया हुआ शरीर भी अपवित्र कहा है ॥ ३ ॥ अति पवित्र पंचगव्य तथा हवि आदि भी जिसको प्राप्त होके क्षण

इति देहगृहं ह्येतन्नित्यस्यानित्यमात्मनः ॥ अविशुद्धं विशुद्धस्य कर्मबंधाद्विनिर्मितम् ॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमा संहितायां देहोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महाबुद्धे देहस्याशुचितां मुने ॥ महत्त्वं च स्वभावस्य समासात्कथयाम्यहम् ॥ १ ॥ शुक्रशोणितसंयोगाद्देहस्संजायते यतः ॥ नित्यं विण्मूत्रसंपूर्णस्तेनायमशुचिस्स्मृतः॥२॥ यथांतर्विष्ठया पूर्णश्शुचिमान्न बहिर्घटः ॥ शोध्यमानो हि देहोऽयं तेनायमशुचिस्ततः ॥ ३ ॥ संप्राप्यातिपवित्राणि पंचगव्यं हवींषि च॥ अशुचित्वं क्षणाद्यांति किमन्यदशुचिस्ततः ॥ ४ ॥ हृद्यान्यप्यन्नपानानि यं प्राप्य सुरभीणि च ॥ अशुचित्वं प्रयांत्याशु किमन्य दशुचिस्ततः ॥ ५ ॥ हे जनाः किन्न पश्यंति यन्निर्याति दिनेदिने ॥ स्वदेहात्कश्मलं पूतिस्तदाधारः कथं शुचिः ॥ ६ ॥ देहस्संशोध्य मानोऽपि पंचगव्यकुशांबुभिः ॥ घृष्यमाण इवांगारो निर्मलत्वं न गच्छति ॥ ७ ॥ स्रोतांसि यस्य सततं प्रभवंति गिरेरिव ॥ कफमूत्रपुरीषाद्यैस्स देहश्शुध्यते कथम् ॥ ८ ॥

मात्रमें अपवित्रताको प्राप्त हो जाते हैं उससे अधिक और क्या अपवित्र है ? ॥ ४ ॥ हृदयके योग्य मनोहर अन्नपान भी जिसको प्राप्त होके शीघ्रही अपवित्र हो जाते हैं, उससे अपवित्र और क्या है ? ॥ ५ ॥ हे मनुष्यो ! ! क्या ? तुम नहीं देखते हो कि, जो प्रति दिन अपने शरीरसे मल मूत्रादि निकलता है उसका आधार कैसे पवित्र हो सकता है ॥ ६ ॥ पंचगव्य तथा कुशाओंके जलोंसे शोधन किया हुआ भी शरीर घिसे हुए अङ्गारेके समान निर्मल नहीं हो सकता ॥ ७ ॥ पर्वतके समान जिस शरीरसे कफ मूत्र विष्ठा आदिके

सोत निरन्तर बहते हैं वह शरीर किस प्रकार शुद्ध हो सकताहै ॥ ८ ॥ सम्पूर्ण अपवित्रताके कोष शरीरका कोई स्थान भी विष्ठा और मूत्रके चर्मके समान पवित्र नहीं है ॥ ९ ॥ अपने देहके मलके सोतोंसे मलको निकालके हाथ मिट्टी तथा जलसे शुद्ध किया जाता है तो भी यह इस शरीरका अवयव रूप कर अपवित्रताके पात्र (शरीर) से अलग नहीं होता है ॥ १० ॥ यत्नपूर्वक श्रेष्ठ गन्ध धूप आदिसे भली भांति संस्कार किया हुआ भी यह देह नमाई हुई कुत्तेकी पूंछके समान अपने स्वभावको नहीं छोडता है ॥ ११ ॥ जिस प्रकार जातिसे काली वस्तु किसी उपायसे श्वेत नहीं हो सकती उसी प्रकार शुद्ध की हुई भी यह मूर्ति निर्मल नहीं हो सकती ॥ १२ ॥ यह संसार अपने

सर्वाशुचिनिधानस्य शरीरस्य न विद्यते ॥ शुचिरेकः प्रदेशोऽपि विण्मूत्रस्य दृतेरिव ॥ ९ ॥ सृष्ट्वात्मदेहस्रोतांसि मृत्तोयैः शो ध्यते करः ॥ तथाप्यशुचिभांडस्य न विभ्रश्यति किं करः ॥ १० ॥ कायस्सुगंधधूपाद्यैर्यत्नेनापि सुसंस्कृतः ॥ न जहाति स्व भावं स श्वपुच्छमिव नामितम् ॥ ११ ॥ यथा जात्यैव कृष्णोर्थः शुक्लस्स्यान्न ह्युपायतः ॥ संशोद्यमानापि तथा भवेन्मू र्तिर्न निर्मला ॥ १२ ॥ जिघ्रन्नपि स्वदुर्गंधं पश्यन्नपि स्वकं मलम् ॥ न विरज्येत लोकोऽयं पीडयन्नपि नासिकाम् ॥ १३ ॥ अहो मोहस्य माहात्म्यं येनेदंछादितं जगत् ॥ शीघ्रं पश्यन्स्वकं दोषं कायस्य न विरज्यते ॥ १४ ॥ स्वदेहस्य विगंधेन न विर ज्येत यो नरः ॥ विरागकारणं तस्य किमेतदुपदिश्यते ॥ १५ ॥ सर्वस्यैव जगन्मध्ये देह एवाशुचिर्भवेत् ॥ तन्मलावयवस्प शर्याच्छुचिरप्यशुचिर्भवेत्॥१६॥गंधलेपापनोदार्थं शौचं देहस्य कीर्तितम् ॥ द्वयस्यापगमाच्छुद्धिश्शुद्धस्पर्शाद्विशुध्यति ॥१७॥

दुर्गन्धिको सूँघकर और अपने मलको देखकर भी नासिकाको पीडा देके भी वैराग्यको नहीं प्राप्त होता ॥ १३ ॥ आश्चर्य है अज्ञानका यह माहात्म्य है कि, जिसने यह संसार आच्छादन कर लिया है कि, अपने शरीरके दोषको देखके भी वैराग्यको नहीं प्राप्त होता ॥ १४ ॥ जो मनुष्य अपने शरीरकी दुर्गंधिसे वैराग्यको नहीं प्राप्त होता उसके विरागका कारण और क्या उपदेश किया जाय ? ॥ १५ ॥ संसारमें सब मनुष्योंका शरीरही अपवित्र है उसके मलके अवयव स्पर्शसे पवित्र वस्तु भी अपवित्र हो जाती है ॥१६॥ गंध लेपके दूर करनेसे देहकी पवित्रता कही है

और दोनोंके नाश होजानेसे शुद्धि होती है शुद्ध वस्तुके स्पर्श होनेसे पवित्र होजाता है ॥ १७ ॥ गंगाजीके जलसे पर्वतके समान मृत्तिकाके भारसे भी मृत्युपर्यन्त चाहे शौच करे परन्तु स्वभावसे दूषित हुआ मनुष्य कदापि शुद्ध नहीं होता है ॥ १८ ॥ दुष्टात्मा तीर्थ स्नानोंसे अथवा तपोंसे कदापि शुद्ध नहीं होसकता, क्या तीर्थमें धोईहुई कुत्तेकी पूँछ शुद्धिको प्राप्त होसकती है ? ॥ १९ ॥ अन्तः स्वभावसे दुष्ट हुए पुरुषको अग्निमें प्रवेश होनेपर न तो स्वर्ग न अपवर्ग मिलता है, केवल देह भस्म होजाता है ॥ २० ॥ भावसे दुष्टहुआ मनुष्य सम्पूर्ण गंगाजलसे अथवा मृत्तिकाके पर्वतसे भलीभांति जन्मभर स्नान करे परन्तु वह कदापि शुद्ध नहीं होसकता ऐसा हम कहते हैं ॥ २१ ॥

गंगातोयेन सर्वेण मृद्भारैः पर्वतोपमैः ॥ आमृत्योराचरेच्छौचं भावदुष्टो न शुध्यति ॥१८॥ तीर्थस्नानैस्तपोभिर्वा दुष्टात्मा नैव शुध्यति ॥ श्वदतिः क्षालिता तीर्थैं किं शुद्धिमधिगच्छति ॥१९॥ अंतर्भावप्रदुष्टस्य विशतोऽपि हुताशनम् ॥न स्वर्गो नापवर्गश्च देहनिर्दहनं परम्॥२०॥सर्वेण गांगेन जलेन सम्यङ् मृत्पर्वतेनाप्यथ भावदुष्टः ॥आजन्मनः स्नानपरो मनुष्यो न शुध्यतीत्येव वयं वदामः ॥२१॥ प्रज्वाल्य वह्निं घृततैलसिक्तं प्रदक्षिणावर्तशिखं महांतम् ॥ प्रविश्य दग्धस्त्वपि भावदुष्टो न धर्ममाप्नोति फलं न चान्यत् ॥ २२ ॥ गंगादितीर्थेषु वसंति मत्स्या देवालये पक्षिगणाश्च नित्यम् ॥ भावोज्झितास्ते न फलं लभंते तीर्थावगाहाच्च तथैव दानात् ॥ २३ ॥ भावशुद्धिः परं शौचं प्रमाणे सर्वकर्मसु ॥ अन्यथाऽऽलिंग्यते कांता भावेन दुहिता न्यथा ॥ २४ ॥ मनसो भिद्यते वृत्तिरभिन्नेष्वपि वस्तुषु ॥ अन्यथैव सुतं नारी चिन्तयत्यन्यथा पतिम् ॥ २५ ॥

स्वभावसे दुष्ट हुआ मनुष्य अग्निको जलाके घी वा तेलसे सींचे और कईबार प्रदक्षिणा करके उसमें प्रवेशकर भस्म होजाय परन्तु धर्म या और किसी श्रेष्ठ फलको नहीं पाता ॥ २२ ॥ गंगा आदि तीर्थोंमें मत्स्य आदि रहते हैं देवालयमें नित्य पक्षीगण निवास करते हैं एसेही भावहीन पुरुष तीर्थस्नानसे तथा दानसे कुछ फल नहीं पाते हैं ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण कर्मोंमें भावकी शुद्धि परम शौच कही है जिस प्रकार भावसे स्त्रीको और प्रकार आलिंगन करते हैं और पुत्रीको और भावसे आलिंगन करते हैं ॥ २४ ॥ अभिन्न वस्तुओंमें भी चित्तकी

वृत्ति भेदको प्राप्त होती है जिस प्रकार स्त्री पुत्रको और प्रकार तथा पतिको और प्रकार विचारती है ॥ २५ ॥ इस भावकी महिमाको सब प्रकार देखो कि, चाहे स्त्रीसे चिपटा हुआ भी हो परन्तु स्त्रीभावसे रहित पुरुषको कामना नहीं होती ॥ २६ ॥ यदि काम क्रोध, लोभकी चिन्ता मनमें विद्यमान हो तो अनेक भोज्य तथा मनोहर भोजन भी नहीं खाये जाते ॥ २७ ॥ उस भावसेही मनुष्य कामादि तीनोंमें प्रवृत्त होता है और भावसेही छूट जाता है भावसे शुद्ध आत्मा स्वर्ग और मोक्षको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ केवल एक भावसे शुद्ध जीव जलाता हुआ होम करता हुआ स्तुति करता हुआ मरजावे तो ज्ञानकी प्राप्तिसे शीघ्र अति याज्ञिकोंके लोकोंको प्राप्त होके ॥ २९ ॥

पश्यध्वमस्य भावस्य महाभाग्यमशेषतः ॥ परिष्वक्तोपि यन्नार्य्या भावहीनं न कामयेत् ॥ २६ ॥नाद्याद्विविधमन्नाद्यं भक्ष्या णिसुरभीणि च ॥ यदि चिंतां समाधत्ते चित्ते कामादिषु त्रिषु ॥ २७ ॥ गृह्यते तेन भावेन नरो भावाद्विमुच्यते ॥ भावत श्शुचि शुद्धात्मा स्वर्गं मोक्षं च विंदति ॥२८॥ भावेनैकात्मशुद्धात्मा दहञ्जुह्वन्स्तुवन्मृतः ॥ ज्ञानावाप्तेरवाप्याशु लोकान्सु बहुयाजिनाम् ॥ २९ ॥ ज्ञानामलांभसा पुंसां सद्वैराग्यमृदा पुनः ॥ अविद्यारागविण्मूत्रलेपगंधविशोधनम् ॥ ३० ॥ एवमे तच्छरीरं हिसर्गादशुचि स्मृतम् ॥ त्वङ्मात्रसारं निःसारं कदलीसारसन्निभम् ॥ ३१ ॥ ज्ञात्वैवं दोषवद्देहं यः प्राज्ञश्शिथिलो भवेत् देह ॥ भोगोद्भवाद्भावाच्छमचित्तः प्रसन्नधीः ॥ ३२ ॥ सोऽतिक्रामति संसारं जीवन्मुक्तः प्रजायते ॥ संसारं कदली सारदृढग्राह्यवतिष्ठते ॥ ॥ ३३ ॥ एवमेतन्महाकष्टं जन्म दुःखं प्रकीर्तितम् ॥ पुंसामज्ञानदोषेण नानाकर्मवशेन च ॥ ३४ ॥

ज्ञानरूपी निर्मल जलसे तथा श्रेष्ठ वैराग्यरूपी मृत्तिकासे मनुष्योंकी अविद्या रागरूपी विष्ठा मूत्र लेप दुर्गंधिकी शुद्धि होती है ॥ ३० ॥ इस प्रकार यह शरीर स्वभावसेही अपवित्र कहा है केवल निस्सार केलेके समान चिकनी त्वचामात्र सार है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार दोषयुक्त देहको जानकर जो बुद्धिमान् शिथिल होता है और देहके भोगोंके उत्पन्न हुए भावसे शान्तचित्त और प्रसन्न होता है ॥ ३२ ॥ वह संसारको उल्लंघन करता है और जीवन्मुक्त होजाता है और संसाररूपी केलेके सारको ग्रहण करके स्थित होता है ॥ ३३ ॥ इस प्रकार मनुष्योंको

अज्ञानके दोषसे तथा अनेक कर्मके वशसे महाकष्टदायक जन्मका दुःख कहा है ॥ ३४ ॥ करोडों ग्रन्थोंमें जो कहा है सो आधे श्लोकमें कहता हूं " मेरा है " यह अत्यन्त दुःखका मूल है " मेरा नहीं " यह परम सुख है ॥३५॥ ममताहीन अनेकों सहस्रों बँधे हुए राजा इससे ही परमधामको प्राप्त होगये ॥ ३६ ॥ योनियन्त्रकी पीडासे मूर्च्छित हुए दुःखसे गर्भमें स्थित हुए जीवकी जो स्मृति थी सो नष्ट हो जाती है ॥ ३७ ॥ जन्मसे ही इस प्राणीको बाहरकी वायुके तथा मोह संगके स्पर्श मात्रसे घोर ज्वर उत्पन्न होता है ॥ ३८ ॥ फिर उस बडे ज्वरसे मोह उत्पन्न होता है उससे मूढके शीघ्रही स्मृतिका नाश होता है ॥ ३९ ॥ और स्मृतिके नाश होजानेसे उस जीवको अपने पूर्वकर्मोंकी

श्लोकार्द्धेन तु वक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ॥ ममेति परमं दुःखं न ममेति परं सुखम् ॥ ३५ ॥ बहवोपीह राजानः परं लोक मितो गताः ॥ निर्ममत्वसमेतास्तु बद्धाश्शतसहस्रशः ॥ ३६ ॥ गर्भस्थस्य स्मृतिर्यासीत्सा च तस्य प्रणश्यति ॥ संमूर्छितेन दुःखेन योनियन्त्रनिपीडनात् ॥ ३७ ॥ बाह्येन वायुना वास्य मोहसङ्गेन देहिनः ॥ स्पृष्टमात्रेण घोरेण ज्वरस्समुपजायते ॥ ३८ ॥ तेनज्वरेण महता सम्मोहश्च प्रजायते ॥ सम्मूढस्य स्मृतिभ्रंशश्शीघ्रं संजायते पुनः ॥ ३९ ॥ स्मृतिभ्रंशात्ततस्तस्य स्मृतिर्नोऽपूर्वकर्मणः ॥ रतिः संजायते तूर्णं जन्तोस्तत्रैव जन्मनि ॥ ४० ॥ रक्तो मूढश्च लोकोऽयं न कार्य्ये सम्प्रवर्तते ॥ न चा त्मानं विजानाति न परं न च दैवतम् ॥ ४१ ॥ न शृणोति परं श्रेयस्सति कर्णेऽपि सन्मुने ॥ न पश्यति परं श्रेयस्सति चक्षु षि तत्क्षमे ॥ ४२ ॥ समे पथि शनैर्गच्छन् स्खलतीव पदेपदे ॥ सत्यां बुद्धौ न जानाति बोध्यमानो बुधैरपि ॥ ४३ ॥ संसारे क्लिश्यते तेन गर्भलोभवशानुगः ॥ गर्भस्मृतेन पापेन समुज्झितमतिः पुमान् ॥ ४४ ॥

स्मृति नहीं रहती और शीघ्र उसी जन्ममें प्रीति होजाती है ॥ ४० ॥ अनुरक्त हुआ मूढ इस संसारके सुकार्य (कर्त्तव्यों) में प्रवृत्त नहीं होता है और न अपने आपको न परदैवतको जानता है ॥ ४१ ॥ हे सन्मुने ! कानोंके होनेपर भी अपने कल्याणको नहीं सुनता है और समर्थ नेत्रके होनेपर भी परम कल्याणको नहीं देखता है ॥ ४२ ॥ समान मार्गमें शनैः शनैः जाता हुआ भी पद पदमें स्खलित होता है पंडितोंसे जताया हुआ भी तथा बुद्धि होनेपर भी नहीं जानता है ॥ ४३ ॥ गर्भमें स्मरण हुए उस पापसे गर्भके लोभवश हो बुद्धिसे भ्रष्ट

हुआ पुरुष संसारमें क्लेशको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार शिवजीने तपके कथनके अर्थ बडा श्रेष्ठ शास्त्र कहा जो स्वर्ग और मोक्षका साधन है ॥ ४५ ॥ जो मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथोंके साधनेवाले इस शिवज्ञानके होनेपर अपने कल्याणको नहीं करते सो यह बडा आश्चर्य है ॥ ४६ ॥ बाल्यावस्थामें इन्द्रियवृत्तिके प्रगट न होनेसे बडा दुःख है कारण कि इच्छा करता हुआ भी कुछ कहने और दुःख निराकरणार्थ उपाय करनेमें नहीं समर्थ होता है ॥ ४७ ॥ दांतोंके निकलनेमें बडा कष्ट तथा थोडे रोगसे और बालग्रह तथा अनेक प्रकारके बालरोगोंसे अति पीडा होती है ॥ ४८ ॥ कहीं भूँख प्याससे व्याकुल शरीर हुआ कहीं रोरोकर स्थित हुआ वह बालक अज्ञानसे विष्ठा मूत्र आदि

इत्थं महत्परं दिव्यं शास्त्रमुक्तं शिवेन तु ॥ तपसः कथनार्थाय स्वर्गमोक्षप्रसाधनम् ॥ ४५ ॥ ये सत्यस्मिञ्छिवे ज्ञाने सर्वकामार्थ साधने ॥ न कुर्वन्त्यात्मनः श्रेयस्तदत्र महदद्भुतम् ॥४६॥ अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्बाल्ये दुःखं महत्पुनः ॥ इच्छन्नपि न शक्नोति वक्तुं कर्त्तुं प्रतिक्रियाम् ॥ ४७ ॥ दंतोत्थाने महद्दुःखमल्पेन व्याधिना तथा ॥ बालरोगैश्च विविधै पीडा बालग्रहैरपि ॥ ४८ ॥ क्वचित्क्षुत्तृट्परीतांगः क्वचित्तिष्ठति संरटन् ॥ विण्मूत्रभक्षणाद्यं च मोहाद्बालस्स माचरेत् ॥४९॥ कौमारे कर्णपीडा यां मातापित्रोश्च साधनैः ॥ अक्षराध्ययनाद्यैश्च नानादुःखं प्रवर्तते ॥५०॥ बाल्ये दुःखमतीत्यैव पश्यन्नपि विमूढधीः ॥ न कुर्वीतात्मनः श्रेयस्तदत्र महदद्भुतम् ॥ ५१ ॥ प्रवृत्तेन्द्रियवृत्तित्वात्कामरोगप्रपीडनात् ॥ तदप्राप्ते तु सततं कुतस्सौख्यं तु यौवने ॥ ५२ ॥ ईर्ष्यया च महद्दुःखं मोहाद्रक्तस्य तस्य च ॥ नेत्रस्य कुपितस्येव त्यागी दुःखाय केवलम् ॥ ५३ ॥

को भक्षण करता है ॥ ४९ ॥ कौमार अवस्थामें कानोंकी पीडामें माता पिताके साधनोंसे तथा अक्षराभ्यास करने आदिसे अनेक दुःख होते हैं ॥ ५० ॥ बाल्यावस्थामें दुःखको भोगके भी यह सब देखता हुआ मूर्खजन जो अपने कल्याणको नहीं करता है यह बडा आश्चर्य है ॥ ५१ ॥ इन्द्रियवृत्तिके प्रगट होनेसे काम रोगमें पीडन होनेके कारण उसके न प्राप्त होने पर भी दुःख होता है इससे यौवनमें भी कहां सुख है ? ॥ ५२ ॥ मोहसे अनुरक्त हुए युवा मनुष्यको ईर्षासे बडा दुःख होता है कुपित हुए नेत्रके

समान त्यागनेवाला केवल दुःखके लिये होता है ॥ ५३ ॥ रात्रिमें कामाग्निसे व्याकुल हुआ निद्राको नहीं पाता और दिनमें धनके संग्रह करनेकी चिन्तासे कहाँ सुख है ? ॥ ५४ ॥ स्त्रियोंमें मन लगाये हुए मनुष्यकी जो वीर्यकी बिन्दु हैं वे सुखके अर्थ नहीं मानी हैं वे स्वेदजके समान हैं ॥ ५५ ॥ जिस प्रकार कीडोंसे करोदे हुये कुष्ठी वानरकी खुजलीके संतापसे जो दशा होती है उसी प्रकार स्त्रियोंमें आसक्त होनेवालेकी दशा होती है ॥ ५६ ॥ कपोलमें दुर्गंधिके दूर होनेसे वा मुखशुद्धिमें जैसा सुख माना गया है वैसा सुख स्त्रियोंमें मानना चाहिये उनमें अधिक सुख नहीं है ॥ ५७ ॥ विष्ठा और मूत्रके त्यागन करनेसे जैसा सुख होता है वैसा सुख स्त्रीप्रसंगमें जानना चाहिये

न रात्रौ विंदते निद्रां कामाग्निपरिवेदितः ॥ दिवापि च कुतस्सौख्यमर्थोपार्जनचिंतया ॥ ५४ ॥ स्त्रीष्वध्यासितचित्तस्य ये पुंसः शुक्रबिन्दवः ॥ ते सुखाय न मन्यन्ते स्वेदजा इव ते तथा ॥ ५५ ॥ कृमिभिस्तुद्यमानस्य कुष्ठिनो वानरस्य च ॥ कंडूय नाभितापेन यद्भवेत्स्त्रिषु तद्विदः ॥ ५६ ॥ यादृशं मन्यते सौख्यं गंडे पूतिविनिर्गमात् ॥ तादृशं स्त्रीषु मन्तव्यं नाधिकं तासु विद्यते ॥ ५७ ॥ विण्मूत्रस्य समुत्सर्गात्सुखं भवति यादृशम्॥तादृशं स्त्रीषु विज्ञेयं मूढैः कल्पितमन्यथा ॥ ५८ ॥ नारीष्ववस्तुभूतासु सर्वदोषाश्रयासु च॥ नाणुमात्रं सुखं तासु कथितं पंचचूडया ॥ ५९ ॥ सम्माननावमानाभ्यां वियोगेनेष्टसंगमात् ॥ यौवनं जरया ग्रस्तं क्व सौख्यमनुपद्रवम् ॥६०॥ वलीपलितखालित्यैश्शिथिलीकृतविग्रहम्॥ सर्वक्रियास्वशक्तिं च जरया जर्जरीकृतम् ॥ ६१ ॥ स्त्रीपुंसयौवनं हृद्यमन्योऽन्यस्य प्रियं पुरा ॥ तदेव जरया ग्रस्तमनयोरपि न प्रियम् ॥ ६२ ॥ अपूर्ववत्स्वमात्मानं जरया परिवर्तितम् ॥ यःपश्यन्नपि रज्येत कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥ ६३ ॥

परन्तु मूर्खोंने और प्रकार कल्पना किया है ॥५८॥ कुवस्तुवाली समस्त दोषोंकी पात्र स्त्रियोंमें अणुमात्र भी सुख नहीं है ऐसा पंचचूडाने कहा है ॥ ५९ ॥ सन्मान तिरस्कारोंसे, वियोग प्रिय संगतिसे और यौवन बुढापेसे ग्रस्त है फिर निर्द्वन्द्व सुख कहां ? ॥ ६० ॥ बली श्वेतकेश सिर हिलने आदिसे शिथिल देहयुक्त हुए सम्पूर्ण कार्योंमें सामर्थ्य हीन मनुष्यको बुढापेने शिथिल किया ॥ ६१ ॥ जो स्त्री पुरुषोंका मनोहर यौवन पहले परस्पर प्रिय था वह ही बुढापेमें उन दोनोंको भी प्रिय नहीं होता ॥ ६२ ॥ जो मनुष्य बुढापेसे अपने आपको

अपूर्वकके समान परिवर्त्तित हुआ देखके भी अनुराग करता है उससे मूर्ख और कौन है ॥ ६३ ॥ बुढापेमें ग्रस्त हुआ मनुष्य पुत्र भाई बन्धु आदिमें आसक्त होनेसे कठोर भृत्योंसे भी तिरस्कार पाता है ॥ ६४ ॥ अति बुढापेमें ग्रस्त हुआ मनुष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदिके साधनेमें असमर्थ होता है इस कारण युवा अवस्थामेंही धर्म करना चाहिये ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० संसारचिकित्सायां देहाशुचित्वबाल्याद्यवस्थादुःखवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ व्यासजी बोले, हे मुने ! स्त्रियोंके जो दोष पंचचूडा अप्सराने कहे हैं वे सब मुझे संक्षेपसे कहो यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हैं ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे ब्राह्मण ! सुनो मैं स्त्रियोंके

जराभिभूतः पुरुषः पुत्रीपुत्रादिबांधवैः॥ आसक्तत्वाद्दुराधर्षैर्भृत्यैश्च परिभूयते॥६४॥धर्ममर्थं च कामं वा मोक्षं वातिजरातुरः ॥ अशक्तस्साधितुंतस्माद्युवा धर्मंसमाचरेत्॥६५॥ इतिश्रीशिवमहापुराणेपञ्चम्यामुमासंहितायांसंसारचिकित्सायां देहाशुचित्व बाल्याद्यवस्थादुःखवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥ व्यास उवाच॥कुत्सितं योषिदर्थं यत्संप्रोक्तं पंचचूडया ॥ तन्मे ब्रूहि समासेन यदि तुष्टोऽसि मे मुने ॥१॥ सनत्कुमार उवाच॥ स्त्रीणांस्वभावं वक्ष्यामि शृणु विप्र यथातथम्॥यस्य श्रवणमात्रेण भवेद्वैराग्यमुत्तमम् ॥ २ ॥स्त्रियो मूलं हि दोषाणां लघुचित्ताःसदा मुने ॥तदासक्तिर्न कर्तव्या मोक्षेप्सुभिरतन्द्रितैः ॥३॥ अत्रा प्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम्॥नारदस्य च संवादं पुंश्चल्या पंचचूडया ॥ ४ ॥ लोकान्परिचरन्धीमान्देवर्षिर्नारदःपुरा ॥ ददर्शाप्सरसंबालां पंचचूडामनुत्तमाम्॥५॥पप्रच्छाप्सरसं सुभ्रूं नारदोमुनिसत्तमः॥संशयो हृदि मे कश्चित्तन्मे ब्रूहि सुमध्यमे॥६॥

स्वभावको विधिपूर्वक वर्णन करता हूं जिससे श्रवणमात्रसे उत्तम वैराग्य उत्पन्न होजाता है ॥ २ ॥ हे मुने ! हलके चित्तवाली स्त्रियां दोषोंके मूल हैं इससे तन्द्रा रहित मोक्षके चाहनेवालोंको स्त्रियोंमें आसक्ति नहीं करनी चाहिये ॥ ३ ॥ इस विषयमें व्यभिचारिणी पंच चूडासे कहे हुए नारदजीके संवादरूप पुराने इतिहासको वर्णन करता हूँ ॥ ४ ॥ पहले सब लोकोंमें फिरते हुए बुद्धिमान् देवर्षि नारदजीने बाला सुन्दर पंचचूडा नामवाली अप्सराको देखा ॥ ५ ॥ तो मुनिश्रेष्ठ नारदजीने उस सुन्दर भौंवाली अप्सरासे यह पूंछा हे सुमध्यमे !

मेरे मनमें कुछ सन्देह है उसे निवृत्त करो ॥ ६ ॥ ऐसा कहने पर वह सुन्दर अप्सरा उस ब्राह्मणसे बोली यदि मुझे समर्थ जानते हो तो विषय हो जानेपर कहूंगी ॥७॥ नारदजी बोले हे भद्रे ! मैं तुझे किसी अविषयमें किसी प्रकार नहीं प्रवृत्त करूंगा हे सुमध्यमे ! तुमसे स्त्रियोंके स्वभाव को सुनना चाहता हूँ ॥ ८ ॥ सनत्कुमार जी बोले, इस प्रकार उन देवर्षि नारदजीका वचन सुनके वह सुन्दर अप्सरा उन मुनिश्रेष्ठ देवर्षि मुनीश नारदजीसे बोली ॥९॥ पंचचूडा बोली, हे मुने ! सुनो कोई स्त्री सती स्त्रीकी निन्दा करनेमें नहीं समर्थ है वे स्त्रियां जैसे स्वभाववाली

एवमुक्ता तु सा विप्रं प्रत्युवाच वराप्सरा॥विषये सति वक्ष्यामि समर्थां मन्यसेऽथ माम्॥७॥नारद उवाच ॥ न त्वामविषये भद्रे नियोक्ष्यामि कथंचन ॥ स्त्रीणां स्वभावमिच्छामि त्वत्तः श्रोतुं सुमध्यमे॥८॥सनत्कुमार उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य देवर्षेरप्सरोत्तमा ॥ प्रत्युवाच मुनीशं तं देवर्षिं मुनिसत्तमम् ॥ ९ ॥ पंचचूडोवाच ॥ मुने शृणु न शक्या स्त्री सती वै निंदितुं स्त्रिया ॥ विदितास्ते स्त्रियो याश्च यादृश्यश्च स्वभावतः॥१०॥न मामर्हसि देवर्षे नियोक्तुं प्रश्नमीदृशम्॥ इत्युक्ता साऽभ वत्तूष्णीं पंचचूडाप्सरोवरा ॥११॥ अथ देवर्षिवर्यो हि श्रुत्वा तद्वाक्यमुत्तमम् ॥ प्रत्युवाच पुनस्तां वै लोकानां हितकाम्यया ॥ १२ ॥ नारद उवाच ॥ मृषावादे भवेद्दोषस्सत्ये दोषो न विद्यते ॥ इति जानीहि सत्यं त्वं वदातस्तत्सुमध्यमे॥ १३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्ता सा कृतमती रभसा चारुहासिनी ॥ स्त्रीदोषाञ्शाश्वतान्सत्यान्भाषितुं संप्रचक्रमे ॥ १४ ॥

हैं सो सब विदित है ॥१०॥ हे देवर्षे ! मुझे ऐसे प्रश्नमें प्रवृत्त करनेको योग्य नहीं हो ऐसा कहनेपर वह सुन्दर अप्सरा मौन हो गई ॥११॥ तब देवर्षिश्रेष्ठ नारदजी उस उत्तम वचनको सुनके लोकोंके हितकी कामनासे फिर उससे बोले ॥१२॥ नारदजी बोले, हे सुमध्यमे ! झूंठ बोल नेमें दोष होता है सत्यमें दोष नहीं होता है ऐसा तू जान इस कारण सत्य सत्य कह ॥ १३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, ऐसा कहनेपर वह निश्चित बुद्धि सुन्दर हास्य करनेवाली अप्सरा वेगसे सनातन स्त्री दोषोंको सत्य सत्य कहने लगी ॥ १४ ॥

पंचचूडा बोली, हे नारदजी ! कुलीन, नाथवाली, रूपवाली, स्त्रियें भी मर्यादामें नहीं रहती हैं यह स्त्रियोंमें दोष है ॥ १५ ॥ स्त्रियोंसे अधिक पापी और कोई नहीं स्त्रियें पापोंका मूल हैं ऐसा तुम जानो ॥१६॥ स्त्रियां जाने हुए धनवाले प्रत्येक रूपवाले यथेप्सित यतियों (संन्यासियों) के समीप प्राप्त होके भी प्रतीक्षा करनेमें नहीं समर्थ होती ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! हम स्त्रियोंका यह बडा बुरा धर्म है कि पापी मनुष्योंको लज्जा त्यागन करके भजती हैं ॥ १८ ॥ जो मनुष्य स्त्रीको चाहता है तथा उनके समीप जाता है थोडी भी सेवा करता है स्त्रियां उसीको चाहती हैं ॥१९॥ मनुष्योंके विना अर्थी होनेसे तथा पतियोंके डरसे विना मर्यादावालीं स्त्रियां स्वामीकी मर्यादामें ठहरती हैं ॥२०॥ इन स्त्रियोंका कोई

पञ्चचूडोवाच ॥ कुलीना नाथवंत्यश्च रूपवंत्यश्च योषितः ॥ मर्यादासु न तिष्ठंति स दोषः स्त्रीषु नारद॥१५॥ न स्त्रीभ्यः किंचिदन्यद्वै पापीयस्तरमस्ति हि॥स्त्रियो मूलं हि पापानां तथा त्वमपि वेत्थ ह॥१६॥समाज्ञातानर्थवतः प्रतिरूपान् यथेप्सितान् ॥ यतीनन्तरमासाद्य नालं नार्य्यः प्रतीक्षितुम्॥१७॥असद्धर्मस्त्वयं स्त्रीणामस्माकं भवति प्रभो॥पापीयसो नरान् यद्वै लज्जां त्यक्त्वा भजामहे ॥ १८ ॥ स्त्रियं च यः प्रार्थयते सन्निकर्षं च गच्छति॥ईषच्च कुरुते सेवां तमेवेच्छंति योषितः ॥१९॥ अनार्थित्वान्मनुष्याणां भयात्पतिजनस्य च ॥ मर्यादायाममर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठंति भर्तृषु ॥ २० ॥ नासां कश्चिदमान्योऽस्ति नासां वयसि निश्चयः ॥ सुरूपं वा कुरूपं वा पुमांसमुपभुंजते ॥२१॥न भयादथ वाक्रोशान्नार्थहेतोः कथंचन ॥ नज्ञातिकुलसम्बन्धास्त्रियस्तिष्ठंति भर्तृषु ॥२२॥ यौवने वर्तमानानामिष्टाभरणवाससाम् ॥नारीणां स्वैरवृत्तीनां स्पृहयन्ति कुलस्त्रियः॥२३॥या हि शश्वद्बहुमता रक्ष्यन्ते दयिताः स्त्रियः ॥ अपि ताः सम्प्रसज्जन्ते कुब्जान्धजडवामने ॥ २४ ॥

अमान्य नहीं, और इनमें अवस्थाका निश्चय न है सुरूप वा कुरूप मनुष्यको भोगती हैं ॥ २१ ॥ न तो भयसे न चिल्लानेसे अथवा न अर्थके निमित्त तथा न ज्ञाति कुल सम्बन्धसे स्त्रियां पतिकी मर्यादामें स्थित रहती हैं ॥ २२ ॥ कुलीन स्त्रियां यौवनमें वर्तमान हुई यथेच्छित आभूषण वस्त्र पानेवालीं व्यभिचारिणी स्त्रियोंकी संगतिको अभिलाषा करती हैं ॥ २३ ॥ जो नित्य बहुत मानी हुई प्रिय स्त्रियां रक्षा की जाती हैं वे स्त्री भी कुब्जे अन्धे जड बौने लंगडे मनुष्योंमें आसक्त होती हैं ॥ २४ ॥

हे देवर्षे ! हे मुने ! और भी जो कुत्सित मनुष्य हैं उनमें आसक्त हो जाती हैं इससे संसारमें स्त्रियोंको कोई अगम्य नहीं है ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन् ! यदि किसी प्रकार मनुष्योंकी गति नहीं होवे तो स्त्रियां परस्पर आसक्त हो जाती हैं अपने पतियोंमें नहीं प्रवृत्त होती हैं ॥ २६ ॥ पुरुषोंके न मिलनेसे कुटुम्बके भयसे तथा वध और बन्धनके भयसे स्त्री हताश रहती हैं ॥ २७ ॥ चञ्चल स्वभाववाली दुश्चेष्टावाली स्त्री उस प्रकार भावसे दुर्ग्राह्य होती हैं जैसे बुद्धिमान् पुरुषके रतिके ग्रहण करनेसे वशमें होती हैं ॥ २८ ॥ काष्ठोंसे अग्नि नहीं तृप्त होती है नदियोंसे समुद्र नहीं तृप्त होता तथा काल सब प्राणियोंसे नहीं तृप्त होता और स्त्रियां पुरुषोंसे तृप्त नहीं होती हैं ॥ २९ ॥ हे देवर्षे ! सम्पूर्ण स्त्रियोंका

पंगुष्वपिच देवर्षे ये चान्ये कुत्सिता नराः ॥ स्त्रीणामगम्यो लोकेषु नास्ति कश्चिन्महामुने ॥ २५ ॥ यदि पुंसां गतिर्ब्रह्मन्कथं चिन्नोपपद्यते ॥ अप्यन्योन्यं प्रवर्तन्ते न च तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥ २६ ॥ अलाभात्पुरुषाणां च भयात्परिजनस्य च ॥वधबन्धभया च्चैव ताभग्राशा हि योषितः ॥२७॥ चलस्वभाव दुश्चेष्टा दुर्ग्राह्या भवतस्तथा ॥ प्राज्ञस्य पुरुषस्येह यथारतिपरिग्रहात् ॥२८॥ नाग्निस्तुष्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ॥ नान्तकस्सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः ॥ २९ ॥ इदमन्यच्च देवर्षे रहस्यं सर्वयोषिताम् ॥ दृष्ट्वैव पुरुषं सद्यो योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियाः ॥ ३० ॥ सुस्नातं पुरुषं दृष्ट्वा सुगन्धं मलवर्जितम् ॥ योनिः प्र क्लिद्यते स्त्रीणांदृतेः पात्रादिवोदकम् ॥३१॥ कायानामपि दातारं कर्त्तारं मान सांत्वयोः ॥ रक्षितारं न मृष्यंति भर्तारं परमं स्त्रियः ॥३२॥ न कामभोगात्परमान्नालंकारार्थसंचयात्॥ तथा हितं न मन्यन्ते यथा रतिपरिग्रहात् ॥ ३३ ॥ अन्तकश्शम नो मृत्युः पातालं वडवामुखम् ॥ क्षुरधारा विषं सर्पो वह्निरित्येकतः स्त्रियः ॥ ३४ ॥

यह और भी रहस्य है कि मनुष्यको देखकर शीघ्रही स्त्रीकी योनि गीली होजाती है ॥ ३० ॥ अच्छी प्रकार स्नान किये तथा सुगंधि युक्त निर्मल मनुष्यको देखके फूटे वर्तनसे जलके समान स्त्रियोंकी योनि बहने लगती है ॥ ३१ ॥ स्त्री शरीरके सुख देनेवाले मान और शान्तिके करनेवाले परम रक्षा करनेवाले स्वामीको भी सहन नहीं करती हैं ॥ ३२ ॥ न काम भोगसे तथा न अलंकार धनके संचय करनेसे उस प्रकारका हित मानती हैं जिस प्रकार रति परिग्रहसे हित मानती हैं ॥ ३३ ॥ काल, शान्त करनेवाला मृत्यु, पाताल, बडवानल, अग्नि, क्षुर

धारा, विष, सर्प, अग्नि यह एक ओर तथा एक तरफ स्त्री हैं ॥ ३४ ॥ हे नारदजी ! ब्रह्माजीने जहांसे पंचमहाभूत उत्पन्न किये तथा जहांसे लोक उत्पन्न किये, जहांसे पुरुष तथा स्त्री निर्माण की परन्तु वहां स्त्रियोंमें सदा दोषही विधान किया है ॥ ३५ ॥ सनत्कुमारजी बोले, ऐसा उसका वचन सुनके नारदजी सन्तुष्ट चित्त हो यह सब सत्यमानके स्त्रियोंमें विरक्त होगये ॥ ३६ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार पंचचूडासे कहा हुआ स्त्री स्वभाव तुमसे आदरसे कह दिया क्या ? और कुछ वैराग्यका कारण सुनना चाहते हो ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषा टीकायां पं० उ० सं० स्त्रीस्वभाववर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले, हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमारजी ! हे मुने ! तुम्हारे समीप

यतश्च भूतानि महांति पंच यतश्च लोको विहितो विधात्रा॥यतः पुमांसः प्रमदाश्च निर्मिताः सदैव दोषः प्रमदासु नारद ॥३५॥ सनत्कुमार उवाच॥इति श्रुत्वा वचस्तस्या नारदस्तुष्टमानसः॥तथ्यं मत्वाततस्तद्वै विरक्तोभूद्धि तासु च ॥३६॥इत्युक्तः स्त्री स्वभावस्ते पंचचूडोक्त आदरात्॥ वैराग्यकारणं व्यास किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ॥३७॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां स्त्रीस्वभाववर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥व्यास उवाच॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ त्वत्सकाशान्मया मुने॥स्त्रीस्वभावः श्रुतः प्रीत्या कालज्ञानं वदस्व मे ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इदमेव पुराऽपृच्छत्पार्वती परमेश्वरम्॥श्रुत्वा नानाकथां दिव्यां प्रसन्ना सुप्रणम्य तम् ॥२॥ पार्वत्युवाच ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन ज्ञातं मे सकलं मतम् ॥ यथार्चनं तु ते देव यैर्मंत्रैश्च यथाविधि ॥ ॥ ३ ॥ अद्यापि संशयस्त्वेकः कालचक्रं प्रति प्रभो ॥ मृत्युचिह्नं यथा देव किं प्रमाणं यथायुषः ॥ ४ ॥

मैंने प्रेमसे स्त्रियोंका स्वभाव सुना अब मुझसे काल ज्ञानको कहो ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, यही पहले पार्वतीने शिवको प्रणाम कर अनेक प्रकारकी दिव्य कथाको सुनकर शिवजीसे पूंछा था ॥ २ ॥ पार्वतीजी बोलीं हे भगवन् ! तुम्हारे प्रसादसे मैंने सब कुछ जान लिया हे देव ! जिस प्रकार यन्त्रों और मन्त्रोंसे विधिपूर्वक तुम्हारा पूजन होता है सो सब कहो ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! हे देव ! मुझे अब भी कालचक्रके विषयमें एक संशय है कि जैसे मृत्युका चिह्न तथा आयुका प्रमाण होता है सो कहो ॥ ४ ॥

हे स्वामी । यदि मैं तुम्हारी प्रिया हूं तो मुझसे कहो इस प्रकार उस देवीसे पूँछे हुए शिवजी कहने लगे ॥ ५ ॥ शिवजी बोले, हे प्रिये ! हे देविशि । मैं तुझसे उस शास्त्रका वर्णन करताहूँ कि जिससे मनुष्योंका काल जाना जाता है ॥ ६ ॥ दिन, पक्ष, महीना, ऋतु, अयन, वत्सर आदि बाहिरी तथा भीतरी स्थूल वा सूक्ष्म चिह्नोंसे जैसे मृत्युचिह्न जाना जाता है ॥ ७ ॥ हे सुन्दरि ! हे पार्वती ! ठीक ठीक सुनो मैं अब लोकोंके उपकारके अर्थ तथा वैराग्यकेअर्थ तुमसे कहता हूँ ॥ ८ ॥ हे प्रिये ! यदि अकस्मात् चारोंओरसे पीला शरीर ऊपरको लाल होजाय तो छेमासके भीतर मृत्यु जाने ॥ ९ ॥ हे प्रिये ! और जब मुख, कान, आँख, जिह्वा, स्तम्भन होवे तो भी छे मासके भीतर मृत्यु

तथा कथय मे नाथ यद्यहं तव वल्लभा ॥ इति पृष्टस्तया देव्या प्रत्युवाच महेश्वरः ॥५॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥सत्यं ते कथयिष्यामि शास्त्रं सर्वोत्तमं प्रिये ॥ येन शास्त्रेण देवेशि नरैः कालः प्रबुध्यते ॥६॥ अहः पक्षं तथा मासमृतुं चायनवत्सरौ॥स्थूलसूक्ष्मगतै श्चिह्नैर्बहिरंतर्गतैस्तथा ॥ ७ ॥ तत्तेहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वेन सुन्दरि ॥ लोकानामुपकारार्थं वैराग्यार्थमुमेऽधुना ॥ ८ ॥ अकस्मात्पांडुरं देहमूर्द्धरागं समंततः ॥ तदा मृत्युं विजानीयात्षण्मासाभ्यन्तरे प्रिये ॥९॥ मुखं कर्णौ तथा चक्षु र्जिह्वा स्तम्भो यदा भवेत् ॥ तदा मृत्युं विजानीयात्षण्मासाभ्यन्तरे प्रिये ॥१०॥ रौरवानुगतं भद्रे ध्वनिं नाकर्णयेद्द्रुतम् ॥ षण्मासाभ्यंतरे मृत्युर्ज्ञातव्यः कालवेदिभिः ॥११॥ रविसोमाग्निसंयोगाद्यदोद्योतं न पश्यति ॥ कृष्णं सर्वं समस्तं च षण्मासं जीवितं तथा ॥ १२ ॥ वामहस्तो यदा देवि सप्ताहं स्पंदते प्रिये ॥ जीवितं तु तदा तस्य मासमेकं न संशयः ॥ १३ ॥ उन्मीलयंति गात्राणि तालुकं शुष्यते यदा ॥ जीवितं तु तदा तस्य मासमेकं न संशयः ॥ १४ ॥

होती है ॥ १० ॥ हे भद्रे ! यदि जनसमूहसे कीहुई ध्वनिको शीघ्र न सुन सके तो कालवेत्ताओंको छे मासके भीतर मृत्यु जाननी चाहिये ॥ ११ ॥ और जो सूर्य चन्द्रमा अग्निके संयोगसे प्रकाशको नहीं देख सके और सब वस्तु काली काली दीख पड़ें तो छे महीने जीवन शेष जाने ॥ १२ ॥ हे प्रिये ! हे देवि ! जो बायाँ हाथ एक सप्ताहतक फड़कता रहे तो उसका जीवन एक महीनेतक शेष है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ जब सब गात्र टूटते हैं और तालु सूखता है तब उसका एक मासका जीवन शेष जाने इसमें संसय नहीं ॥ १४ ॥

त्रिदोषमें (वात; पित्त; कफके दोषमें) जिसकी नासिका बहती है तो एक पक्ष जीवन है यदि मुख कण्ठ सूखता है तो छे मासकी आयुशेष जाने ॥ १५ ॥ हे भामिनि !हे द्विजो ! जिस मनुष्की जिह्वा स्थूल होजाय और दांत एक साथ कोटको प्राप्त हो जाय तो इन लक्षणोंसे छे मासकी मृत्युको जाने ॥ १६ ॥ जल, तेल, घी, अथवा स्वच्छ दर्पणमें यदि अपने आपको न देख सके वा अपनी मूर्त्ति विकृत हुई दीखे ॥१७॥ तो कालचक्रके जाननेवालेको उसकी छै मासकी आयु जाननी चाहिये हे देवेशि ! और भी मृत्यु चिह्नोंको सुनो जिससे मृत्यु जानी जाती है ॥ १८ ॥ जो मनुष्य अपनी छायाको बिना शिरकी देखे अथवा अपनी परछाई न देख सके तो वह एक मास भी नहीं जी सकता ॥ १९ ॥

नासा तु स्रवते यस्य त्रिदोषे पक्षजीवितम् ॥ वक्त्रं कंठं च शुष्येत षण्मासांते गतायुषः ॥१५॥ स्थूलजिह्वा भवेद्यस्य द्विजाः क्लिद्यंतिभामिनि ॥ षण्मासाज्जायते मृत्युश्चिह्नैस्तैरुपलक्षयेत् ॥ १६ ॥ अंबुतैलघृतस्थं तु दर्पणे वरवर्णिनि ॥ न पश्यति यदात्मानं विकृतंपलमेव च ॥ १७ ॥ षण्मासायुस्स विज्ञेयः कालचक्रं विजानता ॥ अन्यच्च शृणु देवेशि येन मृत्युर्विबुद्धयते॥१८॥ शिरोहीनां यदा छायां स्वकीयामुपलक्षयेत् ॥ अथ वा छायया हीनं मासमेकं न जीवति ॥ १९ ॥ आंगि कानि मयोक्तानि मृत्यु चिह्नानि पार्वति॥बाह्यस्थानि ब्रुवे भद्रे चिह्नानि शृणु सांप्रतम् ॥२०॥ रश्मिहीनं यदा देविभवेत्सोमार्कमण्डलम् ॥ दृश्यते पाटलाकारं मासार्द्धेन विपद्यते ॥ २१ ॥ अरुंधती महायानमिंदुं लक्षणवर्जितम् ॥ अदृष्टतारको योऽसौ मासमेकं स जीवति ॥२२॥ दृष्टे ग्रहे च दिङ्मोहः षण्मासाज्जायते ध्रुवम् ॥ उतथ्यं न ध्रुवं पश्येद्यदि वा रविमण्डलम् ॥ २३ ॥

हे पार्वति ! हे भद्रे ! यह अंग सम्बन्धी मृत्युके चिह्न मैंने कहे अब बाहरी चिह्नोंको कहता हूं सुनो ॥ २० ॥ हे देवि ! जब चन्द्रमा और सूर्यका मंडल किरणोंसे हीन लाल आकारवाला दीखे तो वह आधे महीनेमें मरता है ॥ २१ ॥ जो अरुन्धती महायान नागवीथी चन्द्रमा तथा तारागणको न देख सके वह एक महीनेतक जीता है ॥ २२ ॥ ग्रहोंके दीखनेपर भी दिशाओंका मोह होजाय तो छः महीनेमें मृत्यु होती है यदि उतथ्य वा ध्रुव सूर्यमण्डलको न देख सके ॥ २३ ॥

और यदि रात्रिमें धनुष देखे वा मध्याह्न कालमें उल्कापात दीखे तथा गिद्ध और काकोंसे लिपटता दीखे तो वह निश्चय छे मासमें मर जाता है ॥ २४ ॥ यदि स्वर्ग मार्गवाले ऋषिगण आकाशमें न दीख पडें तो कालवेत्ता पुरुषोंको उसकी आयु छे मासकी जाननी चाहिये ॥ २५ ॥ जो एकाएकी राहुसे ग्रस्त हुए सूर्य अथवा चन्द्रमाको देखता है वह निश्चय छे मासमें अथवा दिशाओंके चक्रको भ्रान्ति सहित दीखता है वह निश्चय छे मासमें मर जाता है ॥ २६ ॥ जो मनुष्य नीलवर्णवाली मक्खियोंसे अकस्मात् व्याप्त होता है उसकी एक मास की आयु जाननी चाहिये ॥ २७ ॥ जब गिद्ध, काक, कबूतर, यह शिरको आक्रमण करके बैठते हैं तो निस्सन्देह वह प्राणी एक मासमें

रात्रौ धनुर्यदा पश्येन्मध्याह्ने चोल्कपातनम् ॥ वेष्टचते गृध्रकाकैश्च षण्मासायुर्न संशयः ॥ २४ ॥ ऋषयस्स्वर्गपंथाश्च दृश्यंतेनैव चाम्बरे ॥ षण्मासायुर्विजानीयात्पुरुषैःकालवेदिभिः ॥२५॥ अकस्माद्राहुणा ग्रस्तं सूर्य्यं वा सोममेव च ॥ दिक्चक्रं भ्रांतवत्प श्येत्षण्मासान्म्रियते स्फुटम् ॥ २६ ॥ नीलाभिर्मक्षिकाभिश्च ह्यकस्माद्वेष्टचते पुमान् ॥ मासमेकं हि तस्यायुर्ज्ञातव्यं परमार्थतः ॥ ॥२७॥ गृध्रः काकः कपोतश्च शिरश्चाक्रम्य तिष्ठति ॥ शीघ्रं तु म्रियते जंतु र्मासेकेन न संशयः ॥ २८ ॥ एवं चारिष्टभेदस्तु बाह्यस्थः समुदाहृतः ॥ मानुषाणां हितार्थाय संक्षेपेण वदाम्यहम् ॥ २९ ॥ हस्तयो रुभयोर्देवि यथा कालं विजानते ॥ वामदक्षिण योर्मध्ये प्रत्यक्षं चेत्युदाहृतम् ॥३०॥ एवं पक्षौ स्थितौ द्वौ तु समासात्सुरसुंदरि ॥ शुचिर्भूत्वा स्मरन्देवं सुस्नात स्संयतेन्द्रियः ॥ ॥ ३१ ॥ हस्तौ प्रक्षाल्य दुग्धेनालक्तकेन विमर्दयेत् ॥ गंधैः पुष्पैः करौ कृत्वा मृगयेच्च शुभाशुभम् ॥३२॥ कनिष्ठामादितः कृत्वा यावदंगुष्ठकं प्रिये ॥ पर्वत्रयक्रमेणैव हस्तयोरुभयोरपि ॥ ३३ ॥

शीघ्र मर जाता है ॥ २८ ॥ इस प्रकार मनुष्योंके हितके निमित्त बाहरी मृत्युका भेद तुमसे कहा अब मैं संक्षेपसे वर्णन करता हूं ॥ २९ ॥ हे देवि ! जिस प्रकार बायें वा दाहिने दोनों हाथोंके मध्यमें काल प्रत्यक्ष होता है सो कहा ॥ ३० ॥ हे सुन्दरि ! इस प्रकार वे दोनों पक्ष स्थित हैं उस समय पवित्र होके शिवदेवको स्मरण करता हुआ भली भांति स्नानकर तथा जितेन्द्रिय हो ॥ ३१ ॥ हाथ धोके दूध वा अलक्तसे केश मले गंध और पुष्पोंसे हाथ पूर्णकर शुभ तथा अशुभको चिन्तवन करे ॥ ३२ ॥ हे प्रिये ! कनिष्ठिकासे लेके अंगुष्ठपर्यन्त

दोनों हाथोंमें तीन पर्वके क्रमसे ॥ ३३ ॥ प्रतिपदादि तिथिको गिनके पूर्वकी ओर मुखकर संपुठ आकारवाले हाथोंसे ॥ ३४ ॥ एक सौ आठ बार नवात्मक (नौ अक्षरका) मंत्र जपे और प्रत्येक पर्वमें यत्नपूर्वक हाथोंको देखे ॥ ३५ ॥ जिस पर्व (पोरी) में भौंरेके समान वह रेखा दीख पडे हे प्रिये ! कृष्णपक्षमें अथवा शुक्लपक्षमें उसी तिथिमें मृत्यु जाननी चाहिये ॥ ३६ ॥ हे प्रिये ! अब नादसे प्रगट हुये काललक्षणको संक्षेपसे कहता हूं सुनो गमन आगमनको जानकर कर्म करना चाहिये ॥ ३७ ॥ हे सुश्रोणि ! आत्मविज्ञान चार प्रकार यत्नसे जाने अर्थात् क्षण, त्रुटि, लव, निमेष, काष्ठकालिक ॥३८॥ मुहूर्त, दिन रात्र, पक्ष, मास, ऋतु, वत्सर, अब्द, युग, कल्प, महाकल्प

प्रतिपदादिविन्यस्य तिथिं प्रतिपदादितः॥ ॥संपुटाकारहस्तौ तु पूर्वदिङ्मुखसंस्थितः ॥३४॥ स्मरेन्नवात्मकं मंत्रं यावदष्टोत्तरं शतम् ॥ निरीक्षयेत्ततो हस्तौ प्रतिपर्वणि यत्नतः ॥३५॥ तस्मिन्पर्वणि सा रेखा दृश्यते भृंगसन्निभा ॥ तत्तिथौ हि मृतिर्ज्ञेया कृष्णे शुक्ले तथा प्रिये ॥३६॥ अधुना नादजं वक्ष्ये संक्षेपात्काललक्षणम् ॥ गमागमं विदित्वा तु कर्म कुर्याच्छृणु प्रिये ॥३७॥ आत्मविज्ञानं सुश्रोणि चारं ज्ञात्वा तु यत्नतः॥ क्षणं त्रुटिर्लवं चैव निमेषं काष्ठकालिकम् ॥३८॥ मुहूर्तकं त्वहोरात्रं पक्षमासर्तु वत्सरम् ॥ अब्दं युगं तथा कल्पं महाकल्पं तथैव च ॥३९॥एवं स हरते कालः परिपाट्या सदाशिवः॥ वामदक्षिणमध्ये तु पथि त्रयमिदं स्मृतम् ॥४०॥ दिनानि पंच चारभ्य पंचविंशदिनावधि॥वामाचारगतौ नादः प्रमाणं कथितं तव॥४१॥भूतरंध्रदिशश्चैव ध्वजश्च वरवर्णिनि॥वामचारगतौ नादः प्रमाणं कालवेदिनः॥४२॥ऋतोर्विकारभूताश्च गुणास्तत्रैव भामिनि॥प्रमाणं दक्षिणं प्रोक्तं ज्ञातव्यं प्राणवेदिभिः ॥ ४३ ॥ भूतसंख्या यदा प्राणान्वहंते च इडादयः ॥वर्षस्याभ्यंतरे तस्य जीवितं हि न संशयः ॥ ४४ ॥

॥ ३९ ॥ आदि इस परिपाटीसे वह सदाशिव काल (समय) हरण करते हैं, वाम दक्षिणके मध्य यह तीन मार्ग कहे हैं ॥ ४० ॥ पांच दिनोंसे प्रारम्भ कराके पच्चीस दिनोंतक वामचारगतिमें नाद होता है यह नादप्रमाण तुमसे कहा ॥ ४१ ॥ हे सुन्दरवर्णवाली ! भूत, रंध्र, दिशा, ध्वजा, रूप. नाद, कालवेत्ताको वामचारगतिमें जानना चाहिये ॥ ४२ ॥ हे भामिनि ! यदि उसमें ऋतुके विकारभूत गुण प्रतीत हो तो प्राणवेदाओंने दक्षिण प्रमाणवाला नाद कहा है ॥ ४३ ॥ और जब भूत संख्यक इडा आदि नाडी प्राणोंको

वहन करती हैं तो वर्षके भीतर उसकी मृत्यु हो जाती है इसमें संशय नहीं ॥ ४४ ॥ दश दिनतक बराबर चलनेसे वह वर्षभर जीता है, और पन्द्रह दिनतक चलनेसे एक वर्षतक आयु शेष जाने ॥ ४५ ॥ और वीस दिनके प्रवाहसे छे मासकी आयु शेष जाने यदि पचीस दिनतक वाम नाडी वहन करती है ॥ ४६ ॥ तो उसका जीवन तीन महीने गतायु जाने और छब्बीस दिनके मानसे दो मास जीवन शेष कहा है ॥ ४७ ॥ और जो बाईं ओरमें सत्ताईस दिनतक अविश्रान्त नाड़ी चलती हो तब एक मासका जीवन कहा है ॥ ४८ ॥ इस प्रकार वाम वायुके प्रमाणसे नादका प्रमाण जानना चाहिये और दाहिनी ओर क्रमसे चार दिनतक जीवन जाने ॥ ४९ ॥

दशघस्रप्रवाहेण ह्यब्दमानं स जीवति॥ पंचदशप्रवाहेण ह्यब्दमेकं गतायुषम्॥४५॥विंशदिनप्रवाहेण ष^{0}मासं लक्षयेत्तदा॥पंचविंशद्दिनमितं वहते वामनाडिका॥४६॥जीवितं तु तदा तस्य त्रिमासं हि गतायुषः॥षड्विंशद्दिनमानेन मासद्वयमुदाहृतम्॥ ४७॥ सप्तविंशद्दिनमितं वहतेत्यतिविश्रमा॥मासमेकं समाख्यातं जीवितं वामगोचरे॥४८॥एतत्प्रमाणं विज्ञेयं वामवायुप्रमाणतः॥सव्येतरे दिनान्येव चत्वारश्चानुपूर्वशः॥४९॥चतुस्स्थाने स्थिता देवि षोडशैताःप्रकीर्तिताः॥तेषां प्रमाणं वक्ष्यामि साम्प्रतं हि यथार्थतः ॥५०॥ षड्दिनान्यादितःकृत्वा संख्यायाश्च यथाविधि॥एतदंतर्गते चैव वामरंध्रे प्रकाशितम्॥५१॥षड्दिनानि यदा रूढं द्विवर्षं च स जीवति ॥ मासानष्टौ विजानीयाद्दिनान्यष्ट च तानि तु॥५२॥प्राणः सप्तदशे चैव विद्धि वर्षं न संशयः ॥ सप्तमासान्विजानीयाद्दिनैः षड्भिर्न संशयः॥५३॥अष्टघस्रप्रभेदेनद्विवर्षं हि स जीवति॥चतुर्मासा हि विज्ञेयाश्चतुर्विंशद्दिनावधिः॥५४॥

हे देवि ! चार स्थानमें नाडी स्थित होती है, सो सब यह सोलह नाडी कही हैं अब मैं उनका ठीक ठीक प्रमाण कहता हूँ ॥ ५० ॥ छे दिवससे लेकर विधिपूर्वक संज्ञातक इसके अन्तर्गत दिनोंमें वामरन्ध्रमें प्राण प्रकाशित होता है ॥ ५१ ॥ जब छे दिनतक नाद प्राण चढा रहे तो वह मनुष्य दो वर्ष आठ महीने और आठ दिनतक जीता है ॥ ५२ ॥ और जो सत्रह दिनतक प्राण आरूढ रहे तो वह वर्ष भर सात महीने और छे दिनतक जीता रहता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५३ ॥ और आठ दिन बराबर चलनेसे वह दो वर्ष चार महीने और

चौवीस दिनोंतक जीता है ॥ ५४ ॥ और जब नौ दिन इधर ही प्राणवायु चले तो पांच महीने और बारह दिन इधरही बाण चले तो दो महीने तक जीवन होता है ॥ ५५ ॥ जो प्राण पहलेके समान कहे हैं उनका काल पहलेके समान कहा है और जो अन्तर्गत दिन कहे हैं उससे मास कहते हैं ॥ ५६ ॥ ग्यारह दिन इधर चलने पर वह एक वर्ष और नौ महीने तथा आठ दिन तक जीता है ॥ ५७ ॥ बारह दिन इधर चलने पर एक वर्ष और सात महीने छे दिन तक जीता है ॥ ५८ ॥ जब तेरह दिन तक इधर नाडी

यदा नवदिनं प्राणा वहंत्येव त्रिमासकम्॥मासद्वयं च द्वे मासे दिना द्वादश कीर्तिताः॥५५॥पूर्ववत्कथिता ये तु कालं तेषां तु पूर्वकम्॥ अवांतरदिना ये तु तेन मासेन कथ्यते ॥ ५६ ॥ एकादश प्रवाहेण वर्षमेकं स जीवति॥ मासा नव तथा प्रोक्ता दिनान्यष्ट मितान्यपि॥५७॥द्वादशेन प्रवाहेण वर्षमेकं स जीवति॥मासान् सप्त विजानीयात्षड्घस्रांश्चाप्युदाहरेत् ॥५८॥ नाडी यदा च वहति त्रयोदशदिनावधि ॥ सम्वत्सरं भवेत्तस्य चतुर्मासाःप्रकीर्तिताः॥५९॥चतुर्विंशद्दिनं शेषं जीवितं च न संशयः॥प्राण वाहा यदा वामे चतुर्दशदिनानि तु ॥६०॥ सम्वत्सरं भवेत्तस्य मासाः षट् च प्रकीर्तिताः॥ चतुर्विंशद्दिनान्येव जीवितं च न संशयः ॥६१॥ पंचदशप्रवाहेण नव मासान्स जीवति॥चतुर्विंशद्दिनान्येव कथितं कालवेदिभिः॥६२॥ षोडशाहप्रवाहेण दशमा सान्स जीवति ॥ चतुर्विंशद्दिनाधिक्यं कथितं कालवेदिभिः ॥६३॥ सप्तदशप्रवाहेण नवमासैर्गतायुषम्॥ अष्टादशदिनान्यत्र कथितं साधकेश्वरि ॥६४॥ वामचारं यदा देवि ह्यष्टादशदिनावधिः ॥ जीवितं चाष्टमासं तु घस्रा द्वादश कीर्तिताः ॥ ६५ ॥

चलती है तो उसकी आयु एक वर्ष चार महीने ॥ ५९ ॥ और चौबीस दिनकी शेष जानो, इसमें संशय नहीं जब वाममें चौदह दिन प्राण वहन करते हैं तो ॥६०॥ उसका एक वर्ष छे मास चौबीस दिनतक जीवन शेष होता है इसमें संशय नहीं ॥ ६१ ॥ और पन्द्रह दिनके प्रवाहसे वह नौ महीने और चौबीस दिन जीता है, ऐसा कालवेत्ताओंने कहा है ॥ ६२ ॥ और सोलह दिनके प्रवाहसे दश महीने चौबीस दिन जीवन शेष रहता है ॥ ६३ ॥ हे साधकेश्वरि ! सत्रह दिन प्रवाहसे नौ महीने और अठारह दिनतक जीवन शेष कहा है ॥ ६४ ॥ हे देवि !

जब अठारह दिनोंतक वामचार होता है तो आठ महिने बारह दिन जीवन शेष रहता है ॥ ६५ ॥ हे देवि ! जब तेईस दिनतक प्राण प्रवाह होता है तो चौबीस दिनोंतक जीवन शेष रहता है यह निश्चय जानो ॥ ६६ ॥ और चार महिने तथा छे दिन अधिक कहे हैं और चौबीस प्रवाहसे वह तीन महीने अठारह दिनतक जीता है॥६७॥इस प्रकार प्राणके संचारसे अवान्तर दिनमें जो काल होता है सो तुमसे कहा॥६८॥ वामसंचार तो कहा अब दक्षिणसंचारको सुनो, जो अट्ठाइस प्रवाहसे दक्षिण संचार हो तो पन्द्रह दिनोंतक जीता है ॥६९॥ दशदिनके प्रवाहसे दश दिनमें मरजाता है और तीस दिनके प्रवाहसे पांच दिनमें मरता है ॥७०॥ हे देवि ! जब इकतीस दिन नित्य प्राण चलते हैं तो निस्सन्देह

चतुर्विंशदिनान्यत्र निश्चयेनावधारय ॥ प्राणवाहो यदा देवि त्रयोविंशदिनावधिः ॥६६॥ चत्वारः कथिता मासाः षड्दिनानि तथोत्तरे ॥ चतुर्विंशप्रवाहेण त्रीन्मासांश्च स जीवति ॥ ६७ ॥ दिनान्यत्र दशाष्टौ च संहरंत्येव चारतः ॥ अवांतरदिने यस्तु संक्षेपात्ते प्रकीर्तितः ॥६८॥ वामचारः समाख्यातो दक्षिणं शृणु सांप्रतम् ॥अष्टाविंशप्रवाहेण तिथिमानेन जीवति ॥ ६९ ॥ प्रवाहेण दशाहेन तत्संस्थेन विपद्यते ॥ त्रिंशद्धस्रप्रवाहेन पञ्चाहेन विपद्यते॥ ७० ॥ एकत्रिंशद्यदा देवि वहते च निरंतरम् ॥ दिनत्रयं तदा तस्य जीवितं हि न संशयः॥७१॥ द्वात्रिंशत्प्राणसंख्या च यदा हि वहते रविः॥ तदा तु जीवितं तस्य द्विदिनं हि न संशयः॥७२॥दक्षिणः कथितः प्राणो मध्यस्थं कथयामि ते॥एकभागगतो वायुप्रवाहो मुखमण्डले॥७३॥धावमानप्रवाहेण दिनमेकं स जीवति ॥ चक्रमे तत्परासोर्हि पुराविद्भिरुदाहृतम् ॥७४॥एतत्ते कथितं देवि कालचक्रं गतायुषः ॥ लोकानां च हितार्थाय किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥७५॥इति श्रीशिवमहापुराणे पंचम्यामुमासंहितायां कालज्ञानवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः॥२५॥

तीन दिनतक उसका जीवन शेष जानो ॥७१॥ और जब सूर्य बत्तीस संख्याको वहन करता है तो उसका जीवन दो दिन शेष रहता है इसमें सन्देह नहीं॥७२॥दक्षिण प्राण तो तुमसे कहा अब मध्यस्थ प्राणका वर्णन करता हूँ जब वायुका प्रवाह एक भागसे मुख मण्डलमें ॥७३॥ दौडते हुए प्रवाहसे होता है तो वह एक दिन जीता है, पूर्ववेत्ताओंने यह कालचक्र कहा है॥७४॥हे देवि ! गतायु पुरुषोंका यह कालचक्र लोकोंके हितके निमित्त वर्णन किया क्या और कुछ सुनना चाहती हो?॥७५॥इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं०उ०सं०कालज्ञानवर्णनं नामपंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

पार्वतीजी बोलीं हे देव ! तुमने कालज्ञान तो यथार्थ वर्णन किया अब योगी कालका वचन विधिपूर्वक कहो ॥ १ ॥ जिस प्रकार काल सब प्राणियोंमें निकट हो जाता है और उस आये हुए कालको मृत्यु कैसे वंचित करती है ॥ २ ॥ हे देव ! यह सब मेरे ऊपर प्रेम करके कहो हे सबोंके सुख देनेवाले ! तुम योगियोंके हितके वर्णन करो ॥ ३ ॥ शिवजी बोले, देवि ! हे शिवे ! सुनो जो तुमने पूँछा सो सब मनुष्योंके हितार्थ मैं संक्षेपसे कहता हूं ॥ ४ ॥ पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन तत्त्वोंका संयोग ही पांच भौतिक शरीर कहा है ॥ ५ ॥ आकाश सर्वव्यापी तथा सबोंमें स्थित है आकाशमें ही सब लय हो जाते हैं और आकाशसेही प्रगट होते हैं ॥ ६ ॥ हे सुन्दरि !

देव्युवाच ॥ कथितं तु त्वया देव कालज्ञानं यथार्थतः ॥ कालस्य वचनं ब्रूहि यथा तत्त्वेन योगिनः ॥१॥ कालस्तु सन्निकृष्टो हि वर्तते सर्वजंतुषु ॥ यथा चास्य न मृत्युश्च वंचते कालमागतम् ॥२॥तथा कथय मे देव प्रीतिं कृत्वा ममोपरि ॥ योगिनां च हिताय त्वं ब्रूहि सर्वसुखप्रद ॥३॥॥ शंकर उवाच ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पृष्टोहं यत्त्वया शिवे ॥ समासेन च सर्वेषां मानुषाणां हितार्थतः॥४॥पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च एतेषां हि समायोगः शरीरं पांचभौतिकम् ॥ ५ ॥ आकाशस्तु ततो व्यापी सर्वेषां सर्वगः स्थितः॥आकाशे तु विलीयंते संभवंति पुनस्ततः॥६॥ वियोगे तुसदा कस्य स्वं धाम प्रतिपेदिरे ॥ तस्या स्थिरता चास्ति सन्निपातस्य सुंदरि॥७॥ ज्ञानिनोऽपि तथा तत्र तपोमंत्रबलादपि ॥ ते सर्वं सुविजानंति सर्वमेतन्न संशयः ॥८॥ देव्युवाच॥खं तेन यन्नश्यति घोररूपः कालः करालस्त्रिदिवैकनाथः॥दग्धस्त्वया त्वं पुनरेव तुष्टः स्तोत्रैस्तुतः स्वां प्रकृतिं स लेभे॥९॥त्वया स चोक्तः कथया जनानामदृष्टरूपः प्रचरिष्यसीति ॥दृष्टस्त्वया तत्र महाप्रभावःप्रभोर्वरात्ते पुनरुत्थितश्च॥१०॥

उस आकाशके वियोगसे सदा अपने धामको प्राप्त होते हैं और उस सन्निपातकी स्थिरता नहीं है ॥ ७ ॥ वे सम्पूर्ण ज्ञानी मनुष्य वहां तप और मंत्रके बलसे सब कुछ जान लेते हैं इसमें संशय नहीं ॥ ८ ॥ पार्वतीजी बोलीं, उन आपसे जो आकाश नष्ट होता है तथा आपने स्वर्गका एक स्वामी घोररूपी कराल काल भस्म किया और आपने स्तोत्रोंसे स्तुति करनेपर सन्तुष्ट हो फिर उसे अपनी प्रकृतिको प्राप्त कराया ॥ ९ ॥ और आपने उस कालसे अनेक कथा वर्णन की, और यह कहा कि, तुम अदृश्य (गुप्त) रूपहोके मनुष्योंका

प्रचार करोगे और उस कालमें तुमने बडा प्रभाव देखा वह काल तुम्हारे वरसे फिर उठ खडा हुआ ॥ १० ॥ हे काल ! यहां ऐसी कोई वस्तु है जिससे यह काल मारा जाता है अब यह सब मुझसे कहो हे महेश ! आप योगियोंमें श्रेष्ठ तथा प्रभु अपने अधीन परोपकारसे शरीरधारी हैं ॥ ११ ॥ शिवजी बोले, यह काल श्रेष्ठ देवताओंसे तथा दैत्य और यक्ष राक्षस सर्प मनुष्योंसे भी नहीं मारा जासकता जो ध्यान समाधिमें तत्पर हुए योगीजन देहधारी होते हैं, वे सुखसे कालको मार सकते हैं ॥ १२ ॥ सनत्कुमारजी बोले, तीनोंलोकोंके स्वामी शिवका यह वचन सुनके पार्वतीजी हँसके बोलीं, कि; हे नाथ ! सत्य २ कहो जिससे काल मारा जाता है तब शिवजी शीघ्र उनसे कहने

तदद्य भोः काल इहास्थि किंचिन्निहन्यते येन वदस्व तन्मे ॥ त्वं योगिवर्यः प्रभुरात्मतंत्रः परोपकारात्ततनुर्महेश॥११॥ शंकर उवाच ॥ न हन्यते देववरैस्तु दैत्यैस्सयक्षरक्षोरगमानुषैश्च ॥ये योगिनो ध्यानपरास्सदेहा भवंति ते घ्नंति सुखेन कालम्॥१२॥ सनत्कुमार उवाच॥एतच्छ्रुत्वा त्रिभुवनगुरोः प्राह गौरी विहस्य सत्यं त्वं मे वद कथमसौ हन्यते येन कालः॥शम्भुस्तामाह सद्यो हिमकरवदने योगिनो ये क्षिपंति कालव्यालं सकलमनघास्तच्छृणुष्वैकचित्ता ॥ १३ ॥ शङ्कर उवाच ॥ पंचभूतात्मको देहस्सदायुक्तस्तु तद्गुणैः ॥ उत्पाद्यते वरारोहे तद्विलीनो हि पार्थिवः ॥ १४ ॥ आकाशाज्जायते वायुर्वायोस्तेजश्च जायते ॥ तेजसोऽम्बु विनिर्दिष्टं तस्माद्धि पृथिवी भवेत् ॥ १५ ॥पृथिव्यादीनि भूतानि गच्छंति क्रमशः परम् ॥ धरा पंचगुणा प्रोक्ता ह्यापश्चैव चतुर्गुणाः ॥ १६ ॥ त्रिगुणं च तथा तेजो वायुर्द्विगुण एव च॥शब्दैकगुणमाकाशं पृथिव्यादिषु कीर्तितम्॥ १७ ॥

लगे हे चन्द्रमाकी किरणोंके समान मुखवाली ! जो योगी कालरूपी सर्पको नष्ट करते हैं हे अनघे ! यह सब एकचित्त होके सुनो ॥ १३ ॥ शिवजी बोले, हे वरारोहे ! पंचभूतात्मक शरीर सदा उनके गुणोंसे युक्त होके उत्पन्न होता है और फिर यह पार्थिव शरीर उन उनमें लय होता है ॥१४ ॥ आकाशसे वायु उत्पन्न होता है और वायुसे अग्नि और अग्निसे जल जलसे पृथिवी होती है ॥ १५ ॥ पृथिवी आदि पंचभूत क्रमसे आगेको प्राप्त होजाते हैं उनमें पृथिवी पांचगुनी और जल चार गुणा कहा है ॥ १६ ॥ तथा तेज तिगुना, वायु

दुगना, और आकाश केवल शब्दगुणवाला और पृथिवी आदिमे व्यापक कहा है ॥ १७ ॥ शब्द, स्पर्श रूप, रस, पांचवां गंध यह जबः अपने २ गुणको त्यागन करते हैं तब प्राणी मर जाता है ॥ १८ ॥ और जब अपने गुणोंको स्वीकार करते हैं यह प्रकट होना कहाता है हे देवेश ! इस प्रकार यह पंचभूतोंको जानो ॥ १९ ॥ हे देवि ! इस कारण कालके जीतनेकी इच्छा करने वाले योगीको यत्नपूर्वक अपने २ कालमें अंशोंसे उत्पन्न हुए गुण विचारने चाहिये ॥ २० ॥ देवी बोलीं, हे योगवेत्ता ! कौन ध्यानसे अथवा कौन मन्त्रसे काल जीता जाता है यह सब मुझसे कहो ॥ २१ ॥ शिवजी बोले, हे देवि ! सुनो योगियोंके हितार्थ मैं कहता हूँ यह ज्ञानका कथन जिस

शब्दस्स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पंचमः ॥ विजहाति गुणं स्वं स्वं तदा भूतं विपद्यते॥१८॥ तदा गुणं विगृह्णाति प्रादुर्भूतं तदुच्यते ॥ एवं जानीहि देवेशि पंचभूतानि तत्त्वतः ॥१९॥ तस्माद्धि योगिना नित्यं स्वस्वकालेऽशजा गुणाः ॥ चिंतनीयाः प्रयत्नेन देवि कालजिगीषुणा ॥२०॥देव्युवाच॥कथं जेजीय्यते कालो योगिभिर्योगवित्प्रभो ॥ ध्यानेन चाथ मन्त्रेण तत्सर्वं कथयस्व मे ॥२१॥शङ्कर उवाच॥शृणु देवि प्रवक्ष्यामि योगिनां हितकाम्यया॥परज्ञानप्रकथनं न देयं यस्य कस्यचित् ॥२२॥ श्रद्दधानाय दातव्यं भक्तियुक्ताय धीमते॥अनास्तिकाय शुद्धाय धर्मनित्याय भामिनि॥२३॥सुश्वासेन सुशय्यायां योगं युंजीत योगवित् ॥ दीपं विनांधकारे तु प्रजाः सुप्तेषु धारयेत्॥२४॥तर्जन्या पिहितौकर्णौ पीडयित्वा मुहूर्त्तकम्॥तस्मात्संश्रूयते शब्द स्तुदन्वह्निसमुद्भवः ॥ २५ ॥ सन्ध्यातो भुक्तमेवं हि चावसन्नं क्षणादपि ॥सर्वरोगान्निहंत्याशु ज्वरोपद्रवकान्बहून् ॥ २६ ॥

किसीको नहीं देना चाहिये ॥ २२ ॥ हे भामिनि ! श्रद्धावाले भक्ति करनेवाले बुद्धिमान् जो नास्तिक न हों ऐसे शुद्ध धर्मात्मा पुरुषको इसका उपदेश देना चाहिये ॥ २३ ॥ योगी श्रेष्ठ स्वास रोक सुन्दर आसन पर बैठ योगका प्रयोग करे और जब लोग सो जाँय दीपक बुझाकर अन्धकारमें योगको धारण करे ॥ २४ ॥ एक मुहूर्त्त भरतक कानोंको तर्जनी अंगुलीसे ढके रहे उससे अग्निसे प्रेरित हुआ शब्द सुनाई देता है ॥ २५ ॥ इस प्रकार उस शब्दके संयमसे भुक्त हुए क्षणमात्र नष्ट हुए शब्दको ध्यान करनेवाला शीघ्रही

ज्वर उपद्रव आदि सम्पूर्ण रोगोंको नाश करता है ॥ २६ ॥ जो मनुष्य नित्य इस प्रकार दो घडी तक आकारको देखता है शब्द सुनता है वह इच्छानुसार मृत्युको जीतकर यहां अपनी अभिलाषासे भ्रमण करता है ॥ २७ ॥ वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी होके सम्पूर्ण सिद्धिको प्राप्त होता है जिस प्रकार वर्षाकालके मेघ आकाशमें शब्दनाद करते हैं ऐसा वह शब्द है ॥ २८ ॥ उसको सुनके योगी शीघ्र संसारके बंधनसे छूट जाता है और वह नित्य योगोंसे सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म हो जाता है ॥२९॥ हे देवि ! यह शब्द ब्रह्मविधिका क्रम तुमसे कहा जैसे धान्यकी इच्छुक मनुष्य कूडे कर्कटको छोड देता है तैसे योगी सम्पूर्ण बंधनको त्याग देता है ॥ ३० ॥ जो कोई इस शब्द ब्रह्मको पाके भी अन्यका

यश्चोपलक्षयेन्नित्यैराकारं घटिकाद्वयम् ॥ जित्वा मृत्युं तथा कामं स्वेच्छयापर्य्यटेदिह ॥२७॥ सर्वज्ञस्सर्वदर्शी च सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ यथा नदति खेऽब्दो हि प्रावृडद्भिस्सुसंयतः २८॥ तं श्रुत्वा मुच्यते योगी सद्यः संसारबन्धनात् ॥ ततस्स योगिभिर्न्नित्यं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरो भवेत्॥२९॥ एषते कथितो देवि शब्दब्रह्मविधिक्रमः ॥ पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्बन्धमशेषतः॥३०॥ शब्दब्रह्मत्विदं प्राप्य ये केचिदन्यकांक्षिणः ॥ घ्नंतिते मुष्टिनाकाशं कामयन्ते क्षुधां तृषाम् ॥३१॥ क्षात्वा परमिदं ब्रह्म सुखदं मुक्तिकारणम् ॥ अबाह्यमक्षरं चैव सर्वोपाधिविवर्जितम् ॥३२॥ मोहिताः कालपाशेन मृत्युपाशवशंगताः ॥ शब्दब्रह्म न जानंति पापिनस्ते कुबुद्धयः ॥३३॥ तावद्भ्रमंति संसारे यावद्धाम न विंदते ॥ विदिते तु परे तत्त्वे मुच्यते जन्म बंधनात्॥३४॥ निद्रालस्यं महाविघ्नं जित्वा शत्रुं प्रयत्नतः ॥ सुखासने स्थितो नित्यं शब्दब्रह्माभ्यसन्निति ॥ ३५ ॥

इच्छा करते हैं वे मानो अपनी मुठीसे आकाशको भेदन करते हैं और क्षुधा तथा तृष्णाको चाहते हैं॥३१॥ परम सुखके देनेवाले मुक्तिके कारण आबाह्य अक्षर (अविनाशी) सम्पूर्ण उपाधिसे रहित इस शब्द ब्रह्मको जानके सुख पाते हैं ॥३२॥ कालके फांसेसे मोहित हुए तथा मृत्युके वशीभूत हुए जो मनुष्य शब्द ब्रह्मको नहीं जानते हैं वे पापी और जडबुद्धि हैं ॥३३॥ तभी तक संसारमें भ्रमते हैं जब तक परमधामको नहीं ढूँढते, परम तत्त्वके विदित होने पर जन्मरूपी बन्धनसे छूट जाते हैं ॥ ३४ ॥ निद्रा—आलस्य—रूपी महाविघ्नकारी शत्रुको यत्नसे जीतकर

सुखपूर्वक आसनपर बैठा हुआ योगी नित्य शब्द ब्रह्मका अभ्यास करे ॥ ३५ ॥ सौ वर्षकी आयुवाला मनुष्य अपनी आयुपर्यन्त अभ्यास करे तो वायुकी वृद्धि आरोग्यता मृत्युञ्जय शरीरकी स्तम्भताको प्राप्त होता है ॥३६॥ वृद्ध जनोंमें भी इस बातका विश्वास दीखता है, फिर युवा पुरुषकी तो बातही क्या है इसमें न ओंकार हैं न मन्त्र है न कोई बीज है और न अक्षर है ॥ ३७ ॥ हे प्रिये ! देवि ! यह अनाहत उच्चारणमें न आनेवाला परम कल्याणदायक शब्दब्रह्म है, योगीजन यत्नपूर्वक शुभबुद्धिसे इसे निरन्तर ध्यान करते हैं ॥३८॥ प्राणवेत्ताओंसे जाने हुए नौ शब्द उससे निकलते हैं उनको तथा नादसिद्धिको यत्नसे कहता हूं सुनो ॥३९॥ घोष, कांस्य (कासा) शब्द, शृंग, घण्टा, वीणा, वांसु-

शतवृद्धः पुमा ल्लँब्ध्वा यावदायुस्समभ्यसेत् ॥ मृत्युञ्जयवपुस्तम्भ आरोग्यं वायुवर्द्धनम् ॥ ३६ ॥ प्रत्ययो दृश्यते वृद्धे किं पुनस्तरुणे जने ॥ न चोंकारो न मन्त्रोपि नैव बीजं न चाक्षरम् ॥ ३७ ॥ अनाहतमनुच्चार्य्यं शब्दब्रह्म शिवं परम् ॥ ध्यायन्ते देवि सततं सुधिया यत्नतः प्रिये ॥ ३८ ॥ तस्माच्छब्दा नव प्रोक्ताः प्राण विद्भिस्तु लक्षिताः तान्प्रवक्ष्यामि यत्नेन नाद-सिद्धिमनुक्रमात् ॥३९॥ घोषं १ कांस्यं २ तथा शृंगं ३ घण्टां ४ वीणा ५ दिवंशजान् ६ ॥ दुन्दुभिं ७ शंखशब्दं ८ तु नवमं मेघगर्जितम् ९ ॥४०॥ नव शब्दान्परित्यज्य तुंकारं तु समभ्य सेत् ॥ ध्यायन्नेवं सदा योगी पुण्यैः पापैर्न लिप्यते ॥४१॥ न शृणोति यदा शृण्वन्योगाभ्यासेन देविके ॥ म्रियतेभ्यसमानस्तु योगी तिष्ठेद्दिवानिशम् ॥ ४२ ॥ तस्मादुत्पद्यते शब्दो मृत्युजित्सप्तभिर्दिनैः ॥ स वै नवविधोदेवि तं ब्रवीमि यथार्थतः ॥ ४३ ॥

रीसे उत्पन्न होनेवाले तथा दुन्दुभि, शंख और नौवा मेघका गर्जना यह शब्द हैं ॥४०॥ इन नौ शब्दोंको त्यागके तुंकारको अभ्यास करे, इस प्रकार सदा ध्यान करता हुआ योगी पुण्य और पापोंसे लिप्त नहीं होता ॥४१॥ हे देवि ! जब योगाभ्याससे सुनता हुआ भी नहीं सुनता है, मृत्युके समीप आनेपर अभ्यास करनेवाला योगी रात दिन इसी प्रकार स्थित हो॥४२॥तो उससे सात दिनोंमें मृत्युको जीतनेवाला शब्द उत्पन्न होता है और वह नौ प्रकारका कहा है उसको यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ ॥ ४३ ॥

पहला घोषनाद होता है वह परम आत्माका शुद्ध करनेवाला तथा सम्पूर्ण व्याधियोंका हरनेवाला वशी आकर्षण करनेवाला उत्तम नाद कहा है ॥४४॥ द्वितीस कांस्य नाद होता है वह प्राणियोंकी गतिको रोकता है विषको तथा सम्पूर्ण भूतग्रहोंको बाँधता है इसमें सन्देह नहीं ॥४५॥ तीसरा शृंगनाद करता है वह आभिचारिक है उसको शत्रुके उच्चाटनमें तथा शत्रुके मारणमें प्रयोग करे ॥ ४६ ॥ चौथा घण्टानाद है इसे शिव कहते हैं यह सम्पूर्ण देवताओंका आकर्षण करनेवाला तथा भूमिपर मनुष्योंको वशमें करनेवाला है ॥४७॥ और योगीको उससे आकृष्ट हुई यक्ष

प्रथमं नादते घोषमात्मशुद्धिकरं परम् ॥ सर्वव्याधिहरं नादं वश्याकर्षणमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ द्वितीयं नादते कांस्यस्तम्भयेत्प्राणिनां गतिम् ॥ विषं भूतग्रहान्सर्वान्बध्नीयान्नात्रसंशयः ॥४५॥ तृतीयं नादते शृंगमभिचारि नियोजयेत् ॥ विद्विद्रुच्चाटने शत्रोर्मारणे च प्रयोजयेत् ॥४६॥ घंटानादं चतुर्थं तु वदते परमेश्वरः ॥ आकर्षस्सर्वदेवानां किं पुनर्मानुषा भुवि ॥४७॥ यक्षगन्धर्वकन्याश्च तस्याकृष्टा ददंति हि ॥ यथेप्सितां महासिद्धिं योगिने कामतोऽपि वा ॥४८॥ वीणा तु पंचमो नादः श्रूयते योगिभिस्सदा ॥ तस्मादुत्पद्यते देवि दुरादर्शनमेव हि ॥४९॥ ध्यायतो वंशनादं तु सर्वतत्त्वं प्रजायते ॥ दुन्दुभिं ध्यायमानस्तु जरामृत्युविवर्जितः ॥ ५० ॥ शंखशब्देन देवेशि कामरूपं प्रपद्यते ॥ योगिनो मेघनादेन न विपत्संगमो भवेत् ॥ ५१ ॥ यश्चैकमनसा नित्यं तुंकारं ब्रह्मरूपिणम् ॥ किमसाध्यं न तस्यापि यथामति वरानने ॥५२॥ सर्वज्ञस्सर्वदर्शी च कामरूपी व्रजत्यसौ ॥ न विकारैः प्रयुज्येत शिव एव न संशयः ॥ ५३ ॥

और गन्धर्वोंकी कन्या यथेच्छित महासिद्धिको देती हैं ॥४८॥ पांचवां वीणानाद योगियोंसे सुना जाता है हे देवि ! उस नादसे दूरदर्शन उत्पन्न होता है ॥४९॥ वंशनादको ध्यान करनेसे सब तत्त्वोंको जान लेता है दुन्दुभिको ध्यानकरनेवाला जरा मृत्युसे रहित होता है ॥५०॥ हे देवेशि! शंख शब्दसे इच्छानुसार रूपको प्राप्त होता है और मेघनादसे योगीको विपत्तिका संगम नहीं होता है ॥५१॥ हे वरानने ! जो एक मनसे नित्य ब्राह्मरूपी तुंकारको ध्यान करता है उसे इच्छानुसार कुछ असाध्य नहीं रहता है ॥ ५२ ॥ वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी तथा कामरूपी होके भ्रमण

करता है और कभी विकारोंसे युक्त नहीं होता वह साक्षात् शिवही होता है इसमें सन्देह नहीं ॥५३॥ हे परमेशानि ! यह नौ प्रकारका शब्द ब्रह्म-स्वरूप तुमसे कहा अब क्या सुनना चाहती हो ॥५४॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं० उ० सं० कालवंचनवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥ पार्वतीजी बोलीं, हे प्रभो ! यदि तुम प्रसन्न हो तो योगाकाशसे प्राप्त हुए वायुके पदको जैसे योगी प्राप्त होता है सो सब मुझसे कहो ॥ १ ॥ शिवजी बोले, पहले मैंने योगियोंके हितकी कामनासे सब कहा अब जैसे योगी कालको जीतके वायुका लिंग होता हैं ॥ २ ॥ सो कहता हूं हे सुन्दरि ! उससे दिनको जानके जो योगी प्राणायाममें तत्पर होता है वह आधे महीनेमें ही आये हुए कालको जीतता है ॥ ३ ॥

एतत्ते परमेशानि शब्दब्रह्मस्वरूपकम् ॥ नवधा सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥५४॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्या-मुमासंहितायां कालवंचनवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥ देव्युवाच ॥ वायोस्तु पदमाप्नोति योगाकाशसमुद्भवम् ॥ तन्मे सर्वं समाचक्ष्व प्रसन्नस्त्वं यदि प्रभो ॥ १ ॥ शंकर उवाच ॥ पुरा मे सर्वमाख्यातं योगिनां हितकाम्यया ॥ कालं जिगाय यस्सम्यग्वापोलिंगं यथा भवेत् ॥२॥ तेन ज्ञात्वा दिनं योगी प्राणायामपरः स्थितः ॥ स जयत्यागतं कालं मासार्द्धेनैव सुंदरि ॥३॥ हृत्स्थो वायुस्सदा वह्नेर्दीपकस्सोऽनुपावकः ॥ स बाह्याभ्यंतरो व्यापी वायुस्सर्वगतो महान् ॥४॥ ज्ञानविज्ञानमुत्साहः सर्वं वायोः प्रवर्तते ॥ येनेह निर्जितो वायुस्तेन सर्वमिदं जगत् ॥ ५ ॥ धारणायां सदा तिष्ठेज्जरामृत्युजिघांसया ॥ योगी योगरतः सम्यग्धारणाध्यानतत्परः ॥ ६ ॥ लोहकारो यथा भस्त्रामापूर्य्य मुखतो मुने ॥ साधयेद्वायुना कर्मतद्वद्योगी समभ्यसेत् ॥ ७ ॥ देवस्सहस्रके नेत्रपादहस्तसहस्रकः ॥ ग्रंथीन्हि सर्वमावृत्य सोऽग्रे तिष्ठद्दशांगुलम् ॥ ८ ॥

हृदयमें स्थित हुआ वायु सदा अग्निका प्रदीप्त करनेवाला है वह अनुपावक सर्वव्यापी बडावायु बाहर भीतर व्याप्त हो रहा है ॥ ४ ॥ ज्ञान विज्ञान, उत्साह, यह सब वायुसे उत्पन्न होते हैं जिसने यहां वायुको जीता उसने सम्पूर्ण जगत्को जीत लिया ॥ ५ ॥ योगी जरा, मृत्युके विनाशकी इच्छासे सदा धारणमें स्थित होवे और भलीभांति योगमें तत्पर होके धारणा और ध्यानमें प्रवृत्त होवे ॥६॥ हे मुने ! जिस प्रकार लुहार अपने मुखसे धौंकनीको भरके वायुसे सब कर्मको साधता है उसी प्रकार योगी अभ्यास करे ॥ ७ ॥ तो सहस्र मस्तकवाला सहस्रों नेत्र

पैर हाथोंवाला वह योगी सब ग्रन्थियोंको मेटकर दश अंगुल आगे स्थित होता है ॥८॥ शिरके सहित व्याहृतिपूर्वक गायत्रीको जपे तीन बार प्राणोंका रोकना प्राणायाम कहा जाता है ॥९॥ चन्द्रमा और सूर्यादि ग्रह जाते आते लौटते हैं परन्तु योग और ध्यानमें तत्पर होनेवाले योगी आजतक भी नहीं लौटे ॥१०॥ हे देवि ! सौवर्ष तप करके जो द्विज कुशाके अग्रभागके समान जलको पीता है तो ब्राह्मणोंके एक प्राणायामके समान फलको पाता है ॥११॥ जो ब्राह्मण प्रातःकाल उठके एक प्राणायामको भी करता है वह जरा मृत्युको जीतकर वायुमें प्राप्त शीघ्रही ब्रह्म लोकको जाता है ॥ १२ ॥ जो सदा आलस्यरहित होके एकान्तमें प्राणायाम करता है वह जरा मृत्युको जीतकर वायुमें प्राप्त होनेवाला तथा आकाशचारी होता है ॥ १३ ॥ वह सिद्धके रूप तथा कान्ति बुद्धि पराक्रमको और शूरताको प्राप्त करता है वह वायुके समान गतिको पाता

गायत्रीं शिरसा सार्द्धं जपेद्व्याहृतिपूर्विकाम् ॥ त्रिवारमायतप्राणाः प्राणायामस्स उच्यते ॥९॥ गतागता निवर्तंते चन्द्रसूर्य्यादयो ग्रहाः ॥ अद्यापि न निवर्तंते योगध्यानपरायणाः ॥ १० ॥ शतमब्दं तपस्तप्त्वा कुशाग्रापः पिबेद्द्विजः ॥ तदाप्नोति फलं देवि विप्राणां धारणैकया ॥११॥ यो द्विजः कल्यमुत्थाय प्राणायामैकमाचरेत्॥ सर्वं पापं निहंत्याशु ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥१२॥ योऽतंद्रितस्स्सदैकांते प्रणायामपरो भवेत् ॥ जरां मृत्युं विनिर्जित्य वायुगः खेचरीति सः ॥१३॥ सिद्धस्य भजते रूपं कांतिं मेधां पराक्रमम् ॥ शौर्य्यं वायुसमो गत्या सौख्यं श्लाघ्यं परं सुखम् ॥१४॥ एतत्कथितमशेषंवायोस्सिद्धिं यदाप्नुते योगी ॥ यत्तेजसोऽपि लभते तत्ते वक्ष्यामि देवेशि ॥१५॥ स्थित्वा सुखासने स्वे शेते जनवचनहीनेतु ॥ शशिरवियुतया तेजः प्रकाश-यन्मध्यमे देशे ॥ १६ ॥ वह्निगतं भूमध्ये प्रकाशते यस्त्वतंद्रितो योगी ॥ दीपहीनध्वांते पश्येन्न्यूनमसंशयं लोके ॥ १७ ॥

है और सुख श्लाघा तथा परमसुखको पाता है ॥ १४ ॥ हे देवेशि ! जिस प्रकार योगी वायुसिद्धिको प्राप्त होता है सो सब तुमसे कह दिया और जैसे उसके तेजसे सिद्धि मिलती है यह सब तुमसे कहता हूं ॥१५॥ मनुष्योंकी बोलचालसे रहित अपने सुखके आसनपर सोते हुए और मध्यदेशमें जहां चन्द्रमा तथा सूर्यके मिले हुये तेजका प्रकाश होता हो ॥ १६ ॥ वहां आलस्यरहित योगी अग्निके तेजको भ्रूमध्यमें प्रकाशित कर देखे जैसे दीपकोंसे अन्धकार वर्जित होकर लोकमें निस्सन्देह प्रकाश होता है ॥ १७ ॥

और योगी नेत्रोंको अंगुलियोंसे कुछ एक मसलके तारोंको देख उनको एकभावसे आधे मुहूर्त तक ध्यान करे ॥ १८ ॥ उसके पीछे अन्धकारमें ईश्वरकी श्वेत रक्त पीत कृष्ण तथा इन्द्रके धनुषके समान कान्तिको देखता है ॥ १९ ॥ भौंके मध्यमें ललाटमें स्थित हुए बाल सूर्यके समान तेजको जानके कामांगी योगी कामरूपधारी होके क्रीडा करता है ॥ २० ॥ कारणके शान्त करने प्रवेशको तथा दूसरेके शरीरमें प्रवेशको अणिमा आदि गुणोंकी प्राप्ति तथा मनसे सब कुछ देख लेना ॥ २१ ॥ दूरसे सुननेके विज्ञानको तथा स्वयं अदृश्य हो जाना अनेकरूपधारी होना तथा निरन्तर अभ्यास योगसे आकाशमें विचरनेके भावको प्राप्त होता है ॥२२॥ शास्त्रोंके अध्ययन करनेवाले

नेत्रे करशाखाभिः किंचित्संपीडच यत्नतो योगी तारं पश्यन्ध्यायेन्मुहूर्तमर्द्धं तमेकभावोऽपि ॥ १८ ॥ ततस्तु तमसि ध्यायन्पश्यते ज्योतिरैश्वरम्॥श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णमिन्द्रधनुष्प्रभम् ॥१९॥ भ्रुवोर्मध्ये ललाटस्थं वालार्कसमतेजसम् ॥ तं विदित्वा तु कमांगी क्रीडते कामरूपधृक् ॥ २० ॥ कारणप्रशमावेशं परकायप्रवेशनम् अणिमादिगुणावाप्तिर्मनसा चावलोकनम् ॥ २१ ॥ दूरश्रवण विज्ञानमदृश्यं बहुरूपधृक् संतताभ्यासयोगेन खेचरत्वं प्रजायते ॥ २२ ॥ श्रुताध्यनसंपन्ना नानाशास्त्रविशारदाः ॥ ज्ञानिनोऽपि विमुह्यंते पूर्वकर्मवशानुगाः ॥ २३ ॥ पश्यंतोऽपि न पश्यंति शृण्वाना बधिरा यथा ॥ यथांधा मानुषा लोके मूढाः पापविमोहिताः ॥ २४ ॥ वेदाहमेतं पुरुषं महांतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥ तमेव विदित्वा तिमृत्युमेति नान्यः पथा-विद्यते प्रायणायः ॥ २५ ॥ एष ते कथितः सम्यक्तेजसो विधिरुत्तमः ॥ कालं जित्वा यथा योगी चामरत्वं प्रपद्यते ॥२६॥ पुनः पर तरं वक्ष्ये यथा मृत्युर्न जायते ॥ सावधानतया देवि शृणुष्वैकाग्रमानसा ॥ २७ ॥

अनेकशास्त्रोंमें निपुण ज्ञानी लोग भी पूर्व कर्मोंके वशसे मोहित होते हैं ॥ २३ ॥ पापसे मोहित हुए मूढ लोग लोकमें देखते हुए भी नहीं देखते सुनते हुए जैसे बहिरे और अन्धे होते हैं तैसे रहते हैं ॥ २४ ॥ उन बडे सूर्यके समान दीप्त अन्धकारसे परे परमात्मा पुरुषको मैं जानता हूँ इस प्रकार उनको जानके मृत्युसे छूट जाता है मोक्ष होनेके लिये इससे अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है ॥ २५ ॥ हे देवि ! यह तेजकी उत्तमविधि तुमसे कही कि जिस प्रकार योगी कालको जीतकर अमरपनको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ हे देवि ! और फिर

वर्णन करता हूँ जैसे मृत्यु नहीं होती है सावधान हो एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ २७ ॥ हे देवि ! भूतोंकी तथा योगियोंकी ध्यान करनेवा लोंकी तुरीया (चौथी) गति होती है । स्थिर चित्तवाला योगी सुखासनपर यथा स्थानमें स्थित हो ॥ २८ ॥ उन्नत शरीरवाला वह योगी करसंपुटको बांधके चोंचके समान आकारवाले मुखसे धीरे धीरे वायुको पान करे ॥ २९ ॥ क्षणमात्रमें जीवको देनेवाले तालुमें स्थित हुए जल टपकते हैं उस अमृतके समान शीतल जलको वायुसे लेकर सूँघे ॥ ३० ॥ इस प्रकार प्रतिदिन पान करता हुआ योगी मृत्युके वशमें नहीं होता सुन्दर शरीरवाला महातेजस्वी प्यास और भूखसे वर्जित होता है ॥ ३१ ॥ बलमें हाथीके समान वेगमें घोडेके समान

तुरीया देवि भूतानां योगिनां ध्यानिनां तथा ॥ सुखासने यथास्थानं योगी नियतमानसः॥२८॥ समुन्नतशरीरोऽपि स बद्ध्वा करसंपुटम् ॥ चञ्च्वाकारेण वक्त्रेण पिबन्वायुं शनैश्शनैः ॥ २९ ॥ प्रस्रवंति क्षणादापस्तालुस्था जीवदायिकाः ॥ ता जिघ्रेद्वायुनादायामृतं तच्छीतलं जलम् ॥ ३० ॥ पिबन्ननुदिनं योगी न मृत्युवशगो भवेत् ॥ दिव्यकायो महातेजाः पिपासाक्षुद्विवर्जितः ॥ ३१ ॥ बलेन नागस्तुरगो जवेन दृष्ट्या सुपर्णस्सुश्रुतिस्तु दूरात् ॥ आकुंचिताकुंडलिकृष्णकेशो गंधर्वविद्याधरतुल्यवर्णः ॥३२॥ जीवेन्नरो वर्षशतं सुराणां सुमेधसा वाक्पतिना समत्वम् ॥ एवं चरन् खेचरतां प्रयाति यथेष्टचारी सुखितस्सदैव ॥ ३३ ॥ पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि विधानं यत्सुरैरपि ॥ गोपितं तु प्रयत्नेन तच्छृणुष्व वरानने ॥ ३४ ॥ समाकुंच्याभ्यसेद्योगी रसनां तालुकं प्रति ॥ किंचित्कालांतरेणैव क्रमात्प्राप्नोति लंबिकाम् ॥ ३५ ॥

दृष्टिमें पक्षीके समान दूरसे श्रवण यह सब प्राप्त होता है तैसे कुंडलीसे लेके कृष्ण केशोंको सकोड़ता हुआ गन्धर्व विद्याधरके समान वर्ण वाला होकर ॥ ३२ ॥ बुद्धिमें बृहस्पतिके समताको पाय वह मनुष्य देवताओंके सौ वर्षतक जीता है इस प्रकार सुखसे सदा स्वेच्छाचारी होके आकाशचारी भावको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ हे वरानने ! अब और दूसरी विधिको वर्णन करता हूँ जो देवताओंसे भी छिपा हुआ है सो सब यत्नसे सुनो ॥ ३४ ॥ योगी अपनी जीभको तालुमें सकोडके लगानेका अभ्यास करे तो थोडे कालके पश्चात् वह क्रमसे लम्बायमान हो जाती है ॥ ३५ ॥

तव स्पर्श कीहुई वह जिह्वा शीतल अमृतको टपकाती है उस अमृको जो योगी नित्य पान करता है वह अमर हो जाता है ॥३६॥ रेफाग्र तथा लम्बकाग्र सहित जैसे हाथसे निचोडनेसे रस टपकता है ऐसे निर्मल कमलकी बिंदुसे खींचा हुआ वह देवताओंका आनंद करनेवाला अमृत परपदमें गिरता है संसारसे तारनेवाले पापोंके नाश करनेवाले कालसे तारनेवाले साररूपी अमृतसे जिसने यह शरीर पवित्र किया देवताओंको आनंद देनेवाला वह क्षुधा और प्याससे रहित और अमर होता है ॥ ३७ ॥ हे पार्वति ! उन चारों योगियोंसे युक्त हुई यह पृथ्वीही क्या ? किन्तु सम्पूर्ण संसारमात्र सुख पानेके लिये होता है योगसेही संसार धारण होता है प्राणी स्वप्नमें भी जो कुछ दुःख स्वर्गमें अथवा भूमिपर पाता है वह इन चारोंको मानकर

ततः प्रस्रवते सा तु संस्पृष्टा शीतलां सुधाम् ॥ पिबन्नेव सदा योगी सोऽमरत्वं हि गच्छति ॥ ३६ ॥ रेफाग्रं लंबकाग्रं करतल घटनं शुभ्रपद्मस्य बिन्दोस्तेनाकृष्टा सुधेयं पतति परपदे देवतानंदकारी ॥ सारं संसारतारं कृतकलुषतरं कालतारं सतारं येनेदं प्लावितांगं स भवति न मृतः क्षुत्पिपासाविहीनः ॥ ३७ ॥ एभिर्युक्ता चतुर्भिः क्षितिधरतनये योगिभिर्वै धरेषा धैर्य्यान्नित्यं कुतोऽन्तः सकलमपि जगद्यत्सुखप्रापणाय ॥ स्वप्ने देही विधत्ते सकलमपि सदा मानयन्यच्च दुःखं स्वर्गे ह्येवं धरित्र्याः प्रभवति च ततो वा स किञ्चिच्चतुर्णाम् ॥ ३८ ॥ तस्मान्मंत्रैस्तपोभिर्व्रतनियमयुतैरौषधैर्योगयुक्ता धात्री रक्ता मनुष्यैर्नयविनययुतैर्धर्मविद्भिः क्रमेणः ॥ भूतानामादि देवो न हि भवति चलः संयुतो वै चतुर्णां तस्मादेवं प्रवक्ष्ये विधिमनुगदितं छायिकं यच्छिवाख्यम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां कालवंचनशिवप्राप्तिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥देव्युवाच ॥ देवदेव महादेव कथितं कालवंचनम् ॥ शब्दब्रह्मस्वरूपं च योगलक्षणमुत्तमम् ॥ १ ॥

समर्थ होता है और दुःखसे निवृत्त होता है॥३८॥इस कारण मन्त्रोंसे तपसे व्रत और नियम सहित औषधियोंने नीति विनय युक्त धर्मात्मा मनुष्योंसे क्रमानुसार रक्त हुई और योगसे प्रयुक्त हुई यह धात्री श्रेष्ठ फल देती है और भूतोंके आदिदेव शिवजी चारोंसे युक्त होके चलायमान नहीं होते हैं इस कारण विधिसहित शिवनामक छायापुरुषको कहता हूँ जो साक्षात् शिवरूप है॥३९॥इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं०उ०सं० कालवंचनशिवप्राप्तिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥ पार्वतीजी बोलीं, हे देवोंके देव ! हे महादेव ! कालके दूर करनेवाले ब्रह्मस्वरूप उत्तम योग लक्षणको

संक्षेपसे वर्णन किया ॥ १ ॥ अब छाया पुरुषके श्रेष्ठ ज्ञानको योगियोंके हितकी कामनासे विस्तार पूर्वक वर्णन करो ॥ २ ॥ शिवजी बोले, हे देवि ! सुनो अब छाया पुरुषके लक्षणको कहता हूँ जिसको भलीभांति जानकर मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है ॥ ३ ॥ हे सुन्दर वर्ण वाली !सूर्य वा चन्द्रमाको पीछे करके श्वेत वस्त्र धार माला पहन गन्ध धूपादिसे सुगन्धित होके ॥ ४ ॥ सब मनोरथोंके सिद्ध करनेवाले मेरे नौ अक्षरवाले "ॐ नमो भगवते रुद्राय " महामन्त्रको स्मरण करे और अपनी छायाको देखे ॥ ५ ॥ श्वेतवर्ण स्वरूपी उस छायाको देखके फिर आकाशमें एक भाव होके आदि कारण शिवको देखे ॥ ६ ॥ तो उसको ब्रह्मकी प्राप्ति होती है और वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे छूट

कथितं ते समासेनच्छायिकं ज्ञानमुत्तमम्॥विस्तरेण समाख्याहि योगिनां हितकाम्यया ॥ २ ॥ ॥ शंकर उवाच ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामिच्छायापुरुषलक्षणम् ॥ यज्ज्ञात्वा पुरुषः सम्यक्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥ सूर्य्यं हि पृष्ठतः कृत्वा सोमं वा वरवर्णिनि ॥ शुक्लाम्बरधरस्स्रग्वी गंधधूपादिवासितः ॥ ४ ॥ संस्मरेन्मे महामंत्रं सर्वकामफलप्रदम्॥ नवात्मकं पिंडभूतं स्वां छायां संनिरीक्षयेत् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा तां पुनराकाशे श्वेतवर्णस्वरूपिणीम् ॥ स पश्यत्येकभावस्तु शिवं परमकारणम्॥६॥ ब्रह्मप्राप्तिर्भवेत्तस्य कालविद्भिरितीरितम् ॥ ब्रह्महत्यादिकैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥ शिरोहीनं यदा पश्येत्षड्भिर्मासैर्भवेत्क्षयः ॥ समस्तं वाङ्मयं तस्य योगिनस्तु यथा तथा ॥ ८ ॥ शुक्ले धर्मं विजानीयात्कृष्णे पापं विनिर्दिशेत् ॥ रक्ते बंधं विजानीयात्पीते विद्विषमादिशेत् ॥ ९ ॥ विवाहो बंधुनाशस्स्याद्वितुंडे चैव क्षुद्भयम् ॥ विकटौ नश्यते भार्य्या विजंघे धनमेव हि ॥ १० ॥

जाता है इसमें संशय नहीं ऐसा काल वेत्ताओंने कहा है ॥ ७ ॥ यदि उस छायाको शिरहीन देखे तो छे मासमें उसका नाश होता है सम्पूर्ण ही उस योगीका जैसा वाणीमय शास्त्र होता है वैसा फल होता है ॥ ८ ॥ उसके शुक्लवर्ण होनेपर धर्मकी वृद्धि जान कृष्णवर्णमें पाप कहा है और रक्तवर्णमें बंधन और पीतवर्ण दीखे तो शत्रुको प्राप्त जाने ॥ ९ ॥ विना नासिकाकी छाया होनेपर विवाह और बन्धुका नाश तथा क्षुधाका भय होता है कमर हीन होनेपर भार्या नष्ट होती है जंघा रहित होनेपर धन नष्ट होता है ॥ १० ॥

चरणोंके अभावमें विदेश होता है महेश्वरि ! यह सब छाया पुरुषका फल मैंने कहा यह मनुष्यको यत्नसे विचारना चाहिये ॥ ११ ॥ हे महेश्वरि ! उस छाया पुरुषको भली भांति देखके आत्मासे आत्मामें प्रवेश करके अपने हृदयमें मेरा नवात्मक मन्त्र जपे ॥ १२ ॥ एक वर्षके बीतनेपर मन्त्र जपनेवालेको ऐसी वस्तु कोई नहीं जिसे वह सिद्ध नहीं कर सकता और अणिमा आदि आठों सिद्धियोंको तथा खेचरत्वको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ अब और दुष्प्राप्य शक्ति ज्ञानको वर्णन करता हूँ जिससे ज्ञानियोंको लोकमें आगे स्थित हुआ सा प्रत्यक्ष दीखता है ॥ १४ ॥ सर्पाकारकी कुण्डली जो जाननेके योग्य नहीं है सो लिखते हैं वह मार्गमें स्थित हुई मात्रा दीखती है किन्तु पढी नहीं जाती

पादाभावे विदेशस्स्यादित्येतत्कथितं मया॥तद्विचार्य्यं प्रयत्नेन पुरुषेण महेश्वरि ॥११॥ सम्यक्तं पुरुषं दृष्ट्वा संनिवेश्यात्मनात्मनि ॥ जपेन्नवात्मकं मंत्रं हृदयं मे महेश्वरि ॥ १२ ॥ वत्सरे विगते मंत्री तन्नास्ति यन्न साधयेत्॥अणिमादिगुणानष्टौ खेचरत्वं प्रपद्यते ॥१३॥ पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि शक्तिं ज्ञातुं दुरासदाम्॥प्रत्यक्षं दृश्यते लोके ज्ञानिनामग्रतः स्थितम् ॥१४॥ अज्ञेया लिख्यते लोके या सर्पीकृतकुण्डली ॥ सा मात्रा यानसंस्थापि दृश्यते न च पठ्यते ॥ १५ ॥ ब्रह्माण्डमूर्ध्निगा या च स्तुता वेदैस्तु नित्य शः ॥ जननी सर्वविद्यानां गुप्तविद्येति गीयते ॥ १६ ॥ खेचरा सा विनिर्दिष्टा सर्वप्राणिषु संस्थिता ॥ दृश्यादृश्या चला नित्या व्यक्ताव्यक्ता सनातनी ॥ १७ ॥ अवर्णा वर्णसंयुक्ता प्रोच्यते बिंदुमालिनी ॥ तां पश्यन्सर्वदा योगी कृतकृत्यो ऽभिजायते ॥ १८ ॥ सर्वतीर्थकृतस्नानाद्भवेद्दानस्य यत्फलम्॥सर्वयज्ञफलं यच्च मालिन्या दर्शनात्तदा ॥ १९ ॥

॥ १५ ॥ ब्रह्माण्डके मस्तक (आकाश) में व्याप्त हुई नित्य वेदोंमें स्तुति की हुई सम्पूर्ण विद्याओंकी उत्पन्न करनेवाली गुप्त विद्या नामसे कही जाती है ॥ १६ ॥ वह आकाशमें स्थित हुए सब प्राणियोंमें स्थित होनेवाली दृश्य तथा अदृश्य हुई अचल नित्य व्यक्त और अव्यक्त सनातनी कही है ॥१७॥ विना वर्णवाली तथा वर्णसे संयुक्त बिन्दुमालिनी कही है योगी उसको भलीभांति निरन्तर देखके कृतकृत्य होता है ॥१८॥ सब तीर्थोंपर स्नान करनेसे तथा दानके देनेसे जो फल होता है तथा जो सब यज्ञोंका फल होता है सो फल मालिनी रेखाके देखनेसे प्राप्त होता

है ॥ १९ ॥ सब तीर्थोंमें स्नान करके सब दानोंको देकर जो फल मिलता है सो सब निस्सन्देह प्राप्त होता है यह मैंने सत्य सत्य कहा ॥ २० ॥ हे महेशानि ! हे देवि ! मनुष्य सब यज्ञोंके करनेसे जो फल पाता है सो इससे मिलता है बहुत कहनेसे क्या है ? इससे मनुष्य सब मनोरथोंको पाता है ॥ २१ ॥ इस कारण बुद्धिमान् योगके ज्ञानका नित्य अभ्यास करे अभ्याससे सिद्धि उत्पन्न होती है और अभ्याससे योग बढ़ता है ॥ २२ ॥ अभ्याससे ज्ञान मिलता है अभ्याससे मोक्ष प्राप्त होता है अतः बुद्धिमान्को मोक्षके निमित्त निरंतर योगाभ्यास करना चाहिये ॥ २३ ॥ हे देवि ! यह भुक्ति मुक्तिके फल देनेवाले योगाभ्यासको तुमने कहा अब क्या ? तत्व पूँछती हो सो सत्य सत्य कहूंगा ॥ २४ ॥

प्राप्नोत्यत्र न संदेहस्सत्यं वै कथितं मया ॥ सर्वतीर्थेषु यत्स्नात्वा दत्त्वा दानानि सर्वशः ॥२०॥ सर्वेषां देवि यज्ञानां यत्फलं तल्लभेत्पुमान्॥ किं बहूक्त्या महेशानि सर्वान्कामा न्समश्नुते॥२१॥तस्माज्ज्ञानं यथायोगमभ्यसेत्सततं बुधः॥अभ्यासाज्जायते सिद्धिर्योगोऽभ्यासात्प्रवर्धते ॥ २२ ॥ संविर्त्तिर्लभ्यतेऽभ्यासादभ्यासान्मोक्षमश्नुते॥ अभ्यासस्सततंकार्यो धीमता मोक्षकारणम् ॥२३॥ इत्येतत्कथितं देविभुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ किमन्यत्पृच्छ्यते तत्त्वं वद सत्यं ब्रवीमि ते॥२४॥सूत उवाच॥इति श्रुत्वा ब्रह्मपुत्रवचनं परमार्थदम्॥ प्रसन्नोऽभूदति व्यासः पाराशर्य्यो मुनीश्वराः ॥२५॥ सनत्कुमारं सर्वज्ञं ब्रह्मपुत्रं कृपानिधिम् ॥ व्यासः परमसंतुष्टःप्रणनाम मुहुर्मुहुः॥२६॥ततस्तुष्टाव तं व्यासः कालेयस्स मुनीश्वरः॥सनत्कुमारं मुनयःसुरविज्ञानसागरम्॥२७॥व्यास उवाच ॥ कृतार्थोऽहं मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मत्वं मे त्वया कृतम् ॥ नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽतु धन्यस्त्वं ब्रह्मवित्तमः ॥ २८ ॥ सूत उवाच ॥ इति स्तुत्वा स कालेयो ब्रह्मपुत्रं महामुनिम् ॥ तूष्णीं बभूव सुप्रीतः परमानंदनिर्भरः ॥ २९ ॥

सूतजी बोले, हे मुनीश्वरो ! परमार्थके देनेवाले ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारके ऐसे वचनको सुनके पराशरके पुत्र व्यासजी प्रसन्न होगये ॥ २५ ॥ व्यासजीने अतिसंतुष्ट होके सर्वज्ञ ब्रह्माजीके पुत्र कृपालु सनत्कुमारको बारम्बार प्रणाम किया ॥ २६ ॥ तब उन देव विज्ञानके सागर सनत्कुमारजीकी मुनियोंने तथा कालेय मुनि व्यासजीने स्तुति की ॥ २७ ॥ व्यासजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं कृतार्थ हुआ तुमने मुझे ब्रह्मत्वको प्राप्त कराया तुमको नमस्कार है ॥ २८ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार वह व्यासजी महामुनि ब्रह्मपुत्रकी स्तुति करके परमानंदमें अतिप्रसन्न होके मौन होगये॥२९॥

वह सनत्कुमारजी और उनको आमंत्रण करके उन व्यासजीसे पूजगये और अतिप्रसन्न हो वे सनत्कुमारजी व्यासजी अपने अपने लोकको चले गये ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! यह सुखदायक परमार्थयुक्त ज्ञानका बढाने वाला सनत्कुमार और व्यासजीका संवाद तुमसे कहा ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकां पं० उ० सं० छायापुरुषदर्शनवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८॥ शौनकजी बोले, परमार्थको देनेवाला सनत्कुमार और व्यासजीके संवादका बडा इतिहास जो तुमने कहा सो मैंने सुना ॥ १ ॥ अब मैं यह सुनाना चाहता हूँ कि जैसे ब्रह्माकी सृष्टि

ब्रह्मपुत्रस्तमामंत्र्य पूजितस्तेन शौनकः ॥ययौ स्वधाम सुप्रीतो व्यासोऽपि प्रीतमानसः ॥३०॥ इति मे वर्णितो विप्राःसुखदः परमार्थयुक् ॥ सनत्कुमारकालेयसंवादो ज्ञानवर्द्धनः॥३१॥इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां छायापुरुषदर्शनवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥ शौनक उवाच ॥श्रुतं मे महदाख्यानं यत्त्वया परिकीर्तितम्॥सनत्कुमारकालेयसंवादं परमार्थदम् ॥१॥ अतोऽहं श्रोतुमिच्छामि यथा सर्गस्तु ब्रह्मणः ॥समुत्पन्नं तु मे ब्रूहि यथा व्यासाच्च ते श्रुतम् ॥२॥ सूत उवाच॥मुने शृणु कथां दिव्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥कथ्यमानां मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतविस्तराम् ॥३॥यश्चैनां पाठयेत्तां च शृणुयाद्वाऽप्यभीक्ष्णशः ॥ स्ववंशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥ ४ ॥ प्रधानं पुरुषो यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ॥ प्रधानपुरुषो भूत्वा निर्ममे लोकभावनः ॥ ५ ॥ स्रष्टारं सर्वभूतानां नारायणपरायणम् ॥ तं वै विद्धि मुनिश्रेष्ठ ब्रह्माणममितौजसम् ॥ ६ ॥

उत्पन्न हुई है सो व्यासजीसे जो तुमने सुना है सो मुझसे कहो ॥२॥ सूतजी बोले, हे मुने ! मुझसे वक्ष्यमाण अति अद्भुत शास्त्रके विस्तारवाली बहुत अर्थवाली सब पापोंको दूरकरनेवाली सुन्दर कथाको सुनो ॥ ३ ॥ जो मनुष्य इसको पढ़ाता है अथवा आद्योपान्त सुनता है वह अपने वंशको धारण करके स्वर्गलोकमें जाता है ॥ ४ ॥ जो नित्य सत् असत् स्वरूप प्रधान पुरुष हैं वह लोकोके उत्पन्न करनेवाले प्रधान पुरुष होके सृष्टिको उत्पन्न करने लगे ॥ ५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सब प्राणियोंके उत्पन्न करनेवाले नारायणमें तत्पर अतुल तेजवाले उन ब्रह्माजीको

जानो ॥ ६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिनसे सम्पूर्ण प्रकाशित होते हैं उन स्वयंभु मुनिको नमस्कार है ॥ ७ ॥ उन ईश्वर हिरण्यगर्भ पुरुषको नमस्कार करके फ़िर श्रेष्ठ सृष्टिकी उत्पत्तिको कहता हूं ॥ ८ ॥ प्रत्येक समयके प्राप्त होनेपर ब्रह्माजी उत्पन्न करनेवाले विष्णु रक्षा करनेवाले शिवजी संहार करनेवाले हैं उस सृष्टिका और कोई उत्पन्न करनेवाला नहीं है ॥ ९ ॥ उन भगवान् स्वयंभुने अनेक प्रजाको सृजनेकी इच्छासे पहले कारण जलोंको उत्पन्न किया और जलोंमें वीर्यको डाला ॥ १० ॥ जलही नार नामसे कहे हैं जलही नरके पुत्र हैं जिसका उन जलोंमें स्थान है उसे नारायण कहते हैं ॥ ११ ॥ जलमें स्थित हुआ वह अण्डा सोनेके समान कांतिवाला होगया वहां ब्रह्माजीने स्वयम् यज्ञ किया

यस्मादकल्पयत्कल्पान्समग्राश्शुचयो यतः ॥ भवंति मुनिशार्दूल नमस्तस्मै स्वयम्भुवे ॥७॥ तस्मै हिरण्यगर्भाय पुरुषायेश्वराय च ॥ नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि भूयः सर्गमनुत्तमम् ॥८॥ ब्रह्मा स्रष्टा हरिः पाता संहर्ता च महेश्वरः ॥ तस्य सर्गस्य नान्योऽस्ति काले काले तथा गते ॥ ९ ॥ सोऽपि स्वयंभूर्भगवान्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥ अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥१०॥ आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥ अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ११ ॥ हिरण्यवर्णमभवत्तदंडमुदके शयम् ॥ तत्र जज्ञे स्वयंब्रह्मा स्वयंभूरिति विश्रुतः ॥ १२ ॥ हिरण्यगर्भो भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥ तदंडमकरोद्द्वैधं दिवं भूमिं च निर्ममे ॥ १३ ॥ अधोऽथोर्द्ध्वं प्रयुक्तानि भुवनानि चतुर्दश ॥ तयोश्शकलयोर्मध्य आकाशमसृजत्प्रभुः ॥१४॥ अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दिवि ॥ तत्र काले मनो वाच कामक्रोधावथो रतिम् ॥ १५ ॥ मरीचिमत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यं पुलहंक्रतुम् ॥ वसिष्ठं तु महातेजास्सोऽसृजत्सप्त मानसान् ॥ १६ ॥

तो वे स्वयंभु नामसे विख्यात हुए ॥ १२ ॥ वहां भगवान् हिरण्यगर्भ एक वर्ष निवास करके उस अण्डेको दो खण्डमें करके आकाश और भूमिको बनाया ॥ १३ ॥ और प्रभुने नीचेके आधे भागमें चौदह भुवन प्रयुक्त किये और उन दोनों खण्डोंके मध्यमें आकाशको रचा ॥ १४ ॥ जलोंके ऊपर स्थित हुई भूमिको तथा स्वर्गमें आकाशमें दश दिशा बनाईं और उसी समयमें मन वाणी काम क्रोध आदि तथा रतिको बनाया ॥ १५ ॥ मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा ऋषिको तथा पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ आदि महाते

जस्वी सप्त ऋषियोंको उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ पुराणमें यह सात ब्राह्मण नामसे निश्चय प्रसिद्ध हैं, तत्पश्चात् ब्रह्माजीने क्रोधसे ग्यारह रुद्रोंको उत्पन्न किया ॥ १७ ॥ सबके पूर्वज सनत्कुमार ऋषिको तथा सप्तऋषि और रुद्रोंको उत्पन्न किया ॥ १८ ॥ इस कारण सनत्कुमारजी संक्षिप्त तेजसे स्थित हुए, उन सात देवर्षियोंके पूजित महावंश विख्यात हुए ॥ १९ ॥ वे क्रिया करनेवाले तथा महर्षियोंसे शोभायमान हुए फिर विजली अशनि मेघोंको तथा रोहित इन्द्रके धनुषको ॥ २० ॥ तथा आदिमें जलोंको उत्पन्न किया फिर मेघको उत्पन्न किया तत्पश्चात् यज्ञकी सिद्धिके निमित्त ऋक् वेद यजुर्वेद तथा साम वेदको बनाया ॥ २१ ॥ उन वेदोंसे पूज्य देवताओंका यजन किया ऐसा

सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥ ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रान्क्रोधसमुद्भवान् ॥ १७ ॥सनत्कुमारं च ऋषिं सर्वेषामपि पूर्वजम् ॥ सप्त चैते प्रजायंते पश्चाद्रुद्राश्च सर्वतः ॥ १८ ॥ अतस्सनत्कुमारस्तु तेजस्संक्षिप्य तिष्ठति ॥तेषां सप्त महावंशा दिव्या देवर्षिपूजिताः ॥१९॥ प्रजायन्ते क्रियावन्तो महर्षिभिरलंकृताः ॥ विद्युतोऽशनि मेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च॥२०॥ पयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं च ससर्ज ह ॥ ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये ॥ २१ ॥पूज्यांस्तैरयजन्देवानित्येवमनुशुश्रुम ॥ मुखाद्देवानजनयत्पितॄंश्चैवाथ वक्षसः ॥ प्रजनाच्च मनुष्यान्वै जघनान्निर्ममेऽसुरान् ॥ २२ ॥ उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥ आपवस्य प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः ॥ २३ ॥ सृज्यमानाः प्रजाश्चैव नावर्द्धन्त यदा तदा ॥द्विधा कृत्वात्मनो देहं स्त्री चैव पुरुषोऽभवत् ॥ २४ ॥ ससृजेऽथ प्रजास्सर्वा महिम्ना व्याप्य विश्वतः ॥ विराजमसृजद्विष्णु स्स सृष्टः पुरुषो विराट् ॥ २५ ॥ द्वितीयंतं मनुं विद्धि मनोरन्तरमेव च ॥ स वैराजः प्रजास्सर्वास्ससर्ज पुरुषः प्रभुः ॥ २६ ॥

नित्य सुनते हैं मुखसे देवताओंको उत्पन्न किया और वक्षःस्थलसे पितरोंको जंघासे मनुष्योंको तथा जघन (जंघाके नीचेके भाग) से दैत्योंको उत्पन्न किया ॥ २२ ॥ उनके शरीरोंसे ऊँचे जीवोंको उत्पन्न किया जल सम्बन्धकी प्रजारचनाको करते हुए ब्रह्माजीसे ॥ २३ ॥ उत्पन्न की हुई प्रजा जब नहीं बढी तब अपने शरीरको स्त्री और पुरुष रूपसे दो भागमें किया ॥ २४ ॥ तब अपनी महिमासे संसारको व्याप्त करके सम्पूर्ण प्रजाको उत्पन्न किया विराटको उत्पन्न किया वह विष्णु विराट पुरुष हुए ॥ २५ ॥ और दूसरे उन

मनुको जानो मनुके पश्चात् उन प्रभु वैराजपुरुषने सब प्रजाको उत्पन्न किया ॥ २६ ॥ नारायणकी रची हुई अमैथुनी प्रजा आयुवाली कीर्तिवाली प्रशंसनीय हुई ॥ २७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार मैंने तुमसे आदि सृष्टिकी रचनाको कहा मनुष्य इस आदिसर्गको जानके मनोवांछित गतिको प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० आदि सृष्टिवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥ सूतजी बोले, प्रजाके रचनेपर आप प्रजापतिपुरुषने अयोनिज शतरूपा नामवाली भार्याको पाया ॥ १ ॥ आकाशको व्याप्त करके स्थित होनेवाले प्रजपतिकी महिमासे धर्ममें वह महात्मा तथा शतरूपा उत्पन्न हुई ॥ २ ॥ वह सौ वर्षतक अति कठिन तप करके दीप्त तपस्वी पति

नारायणविसर्गस्य प्रजास्तस्याप्ययोनिजः॥आयुष्मान्कीर्तिमान्धन्यः प्रजावांश्चाभवत्ततः ॥२७॥ इत्येवमादिसर्गस्ते वर्णितो मुनिसत्तम ॥ आदिसर्गं विदित्वैवं यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥२८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायामादिसर्गवर्णनं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥सूत उवाच ॥ संसृष्टासु प्रजास्वेव आपवोऽथ प्रजाप्रतिः ॥लेभे वै पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥१॥ आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः ॥ धर्मेणैव महात्मा स शतरूपाप्यजायत ॥२॥ सा तु वर्षशतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥ भर्तारं दीप्ततपसं पुरुषं प्रत्यपद्यत॥३॥स वै स्वायंभुवो जज्ञे पुरुषो मनुरुच्यते ॥ तस्यैकसप्ततियुगं मन्वंतरमिहोच्यते ॥४॥ वैराजात्पुरुषाद्वीरा शतरूपा व्यजायत॥प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरकायामजायताम्॥५॥ काम्या नाम महाभागा कर्दमस्य प्रजापतेः ॥काम्यापुत्रास्त्रयस्त्वासन्सम्राट्साक्षिरविट्प्रभुः॥६॥उत्तानपादोऽजनयत्पुत्रान्छक्रसमान्प्रभुः॥ध्रुवंच तनयं दिव्यमात्मानंदसुवर्चसम् ॥७॥धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सुनीतिर्नाम विश्रुता ॥ उत्पन्ना चापि धर्म्मेण ध्रुवस्य जननी तथा ॥८॥

को प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ वह पुरुष स्वायंभु मुनिसे उत्पन्न हुये और मनु कहलाये उनकी इकहत्तर युगवाली मन्वन्तर संज्ञा कही जाती है ॥ ४ ॥ उन विराटपुरुषसे वीरा शतरूपा उत्पन्न हुई और वीरकामें प्रियव्रत तथा उत्तानपाद उत्पन्न हुये ॥ ५ ॥ कर्दम प्रजापतिसे काम्यानाम महाभागा उत्पन्न हुई काम्याके सम्राट् साक्षि अविट् प्रभु नामवाले तीन पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ६ ॥ प्रभु उत्तानपादने इन्द्रके समान पुत्रोंको उत्पन्न किया और अतितेजस्वी अपने आनन्द देनेवाले सुन्दर ध्रुवनामक पुत्रको भी उत्पन्न किया ॥ ७ ॥ सुन्दर कमरवाली धर्मकी कन्या सुनीति

नामसे विख्यात हुई वह धर्मसे उत्पन्न हुई और ध्रुवकी माता हुई ॥८॥ उस ध्रुव बालकने दिव्य तीन सहस्र वर्षतक अविनाशी स्थानकी याचना से वनमें तप किया ॥९॥ तब प्रभु ब्रह्माजीने प्रसन्न होके उनको सप्तर्षियोंके आगे अपने समान अचल स्थान दिया ॥ १० ॥ फिर उन ध्रुव से पुष्टि तथा धान्य नामवाले दो पुत्र उत्पन्न हुये पुष्टिने समुत्था स्त्रीसे पापरहित ॥ ११ ॥ रिपु रिपुंजय विप्र वृकल वृषतेजस नामवाले पांच पुत्रोंको उत्पन्न किया रिपुकी स्त्रीने चाक्षुषनामवाले सब दिशाओंमें प्रसिद्ध पुत्रको उत्पन्न किया ॥ १२ ॥ चाक्षुष मनुने पुष्करिणी स्त्रीमें वरुणको उत्पन्न किया मनुसे नड्वला स्त्रीमें बडे तेजस्वी दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उस कन्यामें वैश्योत्पन्न प्रजापति

ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि कानने ॥ तपस्तेपे स बालस्तु प्रार्थयन्स्थानमव्ययम् ॥ ९ ॥ तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतस्स्थान मात्म समं प्रभुः ॥ अचलं चैव पुरतस्सप्तर्षीणां प्रजापतिः ॥ १० ॥ तस्मात्पुष्टिश्च धान्यश्च ध्रुवात्पुत्रौ व्यजायताम् ॥ पुष्टिरेवं समुत्थायाः पञ्चपुत्रानकल्मषान् ॥११॥ रिपुं रिपुंजयं विप्रं वृकलं वृषतेजसम् ॥ रिपोरेवं च महिषी चाक्षुषं सर्वतोदिशम् ॥१२॥ अजीजनत्पुष्करिण्यां वरुणं चाक्षुषो मनुः ॥ मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौजसः ॥१३॥ कन्यायां हि मुनिश्रेष्ठ वैश्यजन्म प्रजायतेः ॥ पुरुर्मासः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवित्कविः ॥ १४ ॥अग्निष्टोमोऽतिरात्रश्चातिमन्युस्सुयशा दश ॥ पूरोरजनयत्पुत्रा न्षडाग्नेयी महाप्रभान् ॥ १५ ॥ अङ्गं सुमनसं ख्यातिं सृतिमंगिरसं गयम् ॥ अङ्गात्सुनीथा भार्य्या वै वेनमेकमसूयत ॥१६॥ अपचारेण वेनस्य कोपस्तेषां महानभूत्॥ हुंकारेणैव तं जघ्नुर्मुनयो धर्मतत्पराः ॥ १७ ॥ अथ प्रजार्थमृषयः प्रार्थिताश्च सुनी थया ॥ सारस्वतास्तदातस्य ममंथुर्दक्षिणं करम् ॥ १८ ॥

से पुरु, मास शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवित्, कवि ॥ १४ ॥ अग्निष्टोम, अतिरात्र, अतिमन्यु, सुयश नामवाले दश पुत्र उत्पन्न हुए पुरुसे आग्नेयी कन्याने बडी कान्तिवाले छे पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ १५ ॥ अंग, सुमनस्, ख्याति, स्मृति, अंगिरस, गय नामवाले यह पुत्र हैं फिर अंगसे सुनीथा स्त्रीने एक वेननामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ वेनके दुराचारसे उन मुनियोंको बडा क्रोध उत्पन्न हुआ और उन धर्मात्मा ऋषियोंने वेनको हुंकारसे मार दिया ॥ १७ ॥ तब सुनीथाने सन्तान होनेके निमित्त उन ऋषियोंसे

प्रार्थना की तब ज्ञानी मुनियोंने उसके दाहिने हाथको मथा ॥ १८ ॥ वेनके हाथके मथनेपर उससे पृथु उत्पन्न हुए वह धनुषधारी कवच पहने तेजमें सूर्यके समान हुए ॥ १९ ॥ वह विष्णुका अवतार प्रजापालनके कारण तथा धर्मकी रक्षा करनेके अर्थ और दुष्टोंको दंड देनेके निमित्त हुआ ॥ २० ॥ वेनके पुत्र क्षत्रपूर्वज पृथुने पृथ्वीकी रक्षा की वह राजसूययज्ञ करनेवालोंमें पहला राजा हुआ ॥ २१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उससे ज्ञानी सूत मागध नामवाले दो पुत्र उत्पन्न हुए उस राजाने सबके हितके अर्थ इस पृथ्वीको दुहा ॥ २२ ॥ वह राजा देवता ऋषि दैत्य राक्षस मनुष्य आदि सबोंकी आजीविका देनेवाला तथा सौ यज्ञ करनेवाला हुआ ॥ २३ ॥ पृथुके विजिताश्व हर्यक्ष नामवाले धर्मात्मा पृथ्वीपर

वेनस्य पाणौ मथिते संबभूव ततः पृथुः ॥ स धन्वी कवची जातस्तेजसादित्यसन्निभः॥१९॥ अवतारस्स विष्णोर्हि प्रजापालनहेतवे ॥ धर्मसंरक्षणार्थाय दुष्टानां दंडहेतवे ॥२०॥ पृथुर्वैन्यस्तदा पृथ्वीमरक्षत्क्षत्रपूर्वजः॥ राजसूयाभिषिक्तानामाद्यस्स वसुधापतिः ॥२१॥ तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ॥ तेनेयं गौर्मुनिश्रेष्ठ दुग्धा सर्वहिताय वै॥२२॥ सर्वेषां वृत्तिदश्चाभूद्देवर्षिसुर रक्षसाम् ॥ मनुष्याणां विशेषेण शतयज्ञकरो नृपः ॥२३॥ पृथोः पुत्रौ तु जज्ञाते धर्मज्ञौ भुवि पार्थिवौ॥विजिताश्वश्च हर्यक्षो महावीरौ सुविश्रुतौ॥२४॥शिखंडिनी चाजनयत्पुत्रं प्राचीनबर्हिषम्॥प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिवीतलचारिणः॥२५॥समुद्र तनया तेन धर्मतस्सुविवाहिता॥रेजेऽधिकतरं राजा कृतदारो महाप्रभुः॥२६॥समुद्रतनयायास्तु दश प्राचीनबर्हिषः॥बभूवुस्तनया दिव्या बहुयज्ञकरस्य वै ॥२७॥ सर्वे प्राचेतसा नाम्ना धनुर्वेदस्य पारगाः ॥ अपृथग्धर्माचरणास्तेऽतप्यंत महत्तपः ॥ २८ ॥

विख्यात बडे पराक्रमी शास्त्रोंके जाननेवाले दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥ शिखंडिनीने प्राचीनबर्हिष पुत्रको उत्पन्न किया उसके पृथिवीतलमें भ्रमण करनेवाला प्राचीनाग्र कुशा नामवाले पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥ उसने समुद्रकी पुत्रीको धर्मसे विवाहा तब महाप्रभु राजा स्त्रीको प्राप्त होके अत्यन्त शोभित हुए ॥ २६ ॥ तब अनेकयज्ञ करनेवाले प्राचीनबर्हिष राजाके समुद्रकी कन्यासे दश दिव्य पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २७ ॥ वे सब प्राचेतस नामवाले धनुर्वेद पारगामी अपने अपने धर्माचरणमें तत्पर हुए और उन्होंने बडा तप किया ॥ २८ ॥

वे दश सहस्र वर्षतक समुद्रके जलमें शयन करके शिवके मन्त्रको जपते हुए शिवके ध्यानमें तत्पर हुए ॥२९॥ पृथिवीमें तप करने पर वहां वृक्ष उत्पन्न होगये तब विना रक्षा कीहुई पृथ्वीपर प्रजाका क्षय होने लगा ॥ ३० ॥ उन वृक्षोंको देखके वे सब श्रेष्ठ वरोंको प्राप्तहो तपकरने से निवृत्त होगये हे मुनिश्रेष्ठ ! तब तपके बलवाले उन वृक्षोंको जलानेकी इच्छा करनेवाले वे क्रोध करने लगे ॥ ३१ ॥ और उन प्राचेतसोंने अपने मुखोंसे अग्नि पवनको उत्पन्न किया तब वायुने उन वृक्षोंको उखाड डाला अग्निने उनको भस्म किया ॥ ३२ ॥ तत्पश्चात् वृक्षोंके विना शको देख कुछेक वृक्षोंके शेष रहनेपर प्रतापी सोमराजा उनके समीप जाके यह बोले ॥ ३३ ॥ सोम बोले, हे प्राचीन बर्हिषके पुत्रो ! कोपको

दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥ रुद्रगीतं जपंतश्च शिवध्यानपरायणाः ॥ २९ ॥ तपश्चरत्सु पृथिव्यामभवंश्च महीरुहाः ॥ अरक्ष्यमाणायां पृथ्व्यां बभूवाथ प्रजाक्षयः ॥ ३० ॥ तान्दृष्ट्वा तु निवृत्तास्ते तपसो लब्धसद्वराः ॥ चुक्रुधुर्मुनिशार्दूल दग्धुकामास्तपोबलाः ॥ ३१ ॥ प्राचेतसा मुखेभ्यस्ते प्रासृजन्नग्निमारुतौ ॥ वृक्षानुन्मूल्य वायुस्तानदहद्धव्यवाहनः ॥ ३२ ॥ वृक्षक्षयं ततो दृष्ट्वा किंचिच्छेषेषु शाखिषु ॥ उपगम्याब्रवीदेतान्राजा सोमः प्रतापवान् ॥३३॥ सोम उवाच ॥ कोपं यच्छत राजानस्सर्वे प्राचीनबर्हिषः ॥ अनुभूतानुकन्येय वृक्षाणां वरवर्णिनी ॥ ३४ ॥ भविष्यं जानता सा तु धृता गर्भेण वै मया ॥ भार्य्या वोऽस्तु महाभागास्सोमवं शविवर्द्धिनी ॥ ३५ ॥ अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान्दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ सृष्टिकर्ता महातेजा ब्रह्मपुत्रः पुरातनः॥ ॥ ३६ ॥ युष्माकं तेजसार्द्धेन मम चानेन तेजसा ॥ ब्रह्मतेजोमयो भूपः प्रजा संवर्द्धयिष्यति ॥ ३७ ॥ ततस्सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः ॥ भार्य्यां धर्मेण तां प्रीत्या वृक्षजां वरवर्णिनीम् ॥ ३८ ॥

दमन करो यह वरवर्णिनी नामवाली वृक्षोंकी कन्या अनुभव की हुई है ॥ ३४ ॥ भविष्यको जाननेवाले मैंने उसको गर्भमें पोषण किया सो हे महाभाग ! यह सोमवंशको बढानेवाली तुम्हारी भार्या होवे ॥ ३५ ॥ इसमें सृष्टिकर्त्ता महातेजस्वी पुरातन ब्रह्म पुत्र विद्वान् दक्ष प्रजापति उत्पन्न होगे ॥ ३६ ॥ तुम्हारे आधे तेजसे तथा मेरे इस तेजसे ब्रह्म तेजोमय राजा प्रजाको बढावेगा ॥ ३७ ॥ तब सोमके वचनसे उन प्रचेतसोंने वृक्षोंसे उत्पन्न हुई उस वरवर्णिनी भार्याको प्रीति पूर्वक धर्मसे ग्रहण किया ॥ ३८ ॥

उस कन्यासे उन प्रचेतोंके दक्षनाम प्रजापति उत्पन्न हुए हे मुने ! वह महातेजस्वी सोमके अंशसे उत्पन्न हुए ॥ ३९ ॥ तब दक्षने मनसे अचर तथा चर दो पैरवाले तथा चौपाये जीवोंको उत्पन्न करके मैथुनीसृष्टिकी रचना को प्रारम्भ किया ॥ ४० ॥ तब दक्षने वीरण प्रजापतिकी वीरणी नामवाली पतिव्रता कन्याको धर्मसे विधिपूर्वक विवाहा ॥ ४१ ॥ उस कन्यासे उन्होंने पुण्यात्मा दश सहस्र पुत्रोंको उत्पन्न किया वे सब नारदजीके उपदेशसे विरक्त हो गये ॥ ४२ ॥ यह सुनकर फिर उन्होंने उसी कन्यामें सुबलाश्व नामवाले सहस्र पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥४३॥ वे सब भी नारदमुनिके उपदेशसे अपने भाइयोंके मार्गमें गये अर्थात् विरक्त हो गये विरक्त भिक्षुक होके अपने पिताके समीपमें नहीं गये

तेभ्यस्तस्यास्तु संजज्ञे दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ सोऽपि जज्ञे महातेजास्सोमस्यांशेन वै मुने ॥ ३९ ॥ अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः ॥ संसृज्य मनसा दक्षो मैथुनीं सृष्टिमारभत् ॥ ४० ॥ वीरणस्य सुतां नाम्ना वीरणीं स प्रजापतेः ॥ उपयेमे सुविधिना सुधर्मेण पतिव्रताम् ॥ ४१ ॥ हर्य्यश्वानयुतं तस्यां सुतान्पुण्या नजीजनत् ॥ ते विरक्ता बभूवुश्च नारदस्योपदेशतः ॥ ४२ ॥ तच्छ्रुत्वा स पुनर्दक्षस्सुबलाश्वानजीजनत् ॥ नामतस्तनयांस्तस्यां सहस्रपरिसंख्यया ॥ ४३ ॥ तेऽपि भ्रातृपथा यातास्तन्मुनेरुपदेशतः ॥ नागमन्पितृसान्निध्यं विरक्ता भिक्षुमार्गिणः ॥४४॥ तच्छ्रुत्वा शापमाक्रुद्धो मुनये दुस्सहं ददौ ॥ कुत्र चिन्न लभस्वेति संस्थितिं कलहप्रिय ॥ ४५ ॥ सांत्वितोऽथ विधात्रा हि स पश्चादसृजत्स्त्रियः ॥ महाज्वालास्वरूपेण गुणैश्चापि मुनीश्वरः ॥ ४६ ॥ ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ द्वे चैवं ब्रह्मपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तदा ॥ ४७ ॥ द्वे कृशाश्वाय विदुषे मुनये मुनिसत्तम ॥ शिष्टास्सोमाय दक्षोऽपि नक्षत्राख्या ददौ प्रभुः ॥ ४८ ॥

॥ ४४ ॥ यह सुनके क्रोधित हो दक्षने मुनि नारदको यह शाप दिया हे कलहप्रिय ! तुम कहीं भी स्थितिको नहीं पाओगे ॥ ४५ ॥ हे मुनीश्वर ! तत्पश्चात् ब्रह्माजीसे शान्त किये हुए दक्षने अपने गुणोंसे महाज्वालास्वरूपीवाली स्त्रियोंको उत्पन्न किया ॥ ४६ ॥ और उन्होंने दश स्त्रियोंको धर्मको दिया और तेरह कश्यपको ऐसेही दो ब्रह्माके पुत्रको तथा दो अंगिराको ॥ ४७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! प्रभु दक्षने दो कन्या विद्वान् कृशाश्व मुनिको दीं और श्रेष्ठ चन्द्रमाको नक्षत्र नामवाली सत्ताईस कन्या प्रदान कीं ॥ ४८ ॥

तब उन दक्षकी कन्याओंसे प्रसिद्ध हुए देवता असुर आदि बहुत पुत्र उत्पन्न हुए उनसे यह संसार पूर्ण हो गया ॥ ४९ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तबसे लोकमें मैथुनीसृष्टि उत्पन्न हुई संकल्पसे दर्शनसे स्पर्शसे पहली सृष्टि कही है ॥ ५० ॥ शौनकजी बोले हे महातपस्वी ! पहले तुमने यह कहा कि ब्रह्माके अंगूठेसे दक्ष उत्पन्न हुए फिर उन्होंने प्राचेतसभावको कैसे प्राप्त किया ॥ ५१ ॥ हे सूतजी ! मेरे इस सन्देहको निवारण करनेके योग्य हो यह आश्चर्य है कि वह किस प्रकार सोमके श्वशुर हुए ॥ ५२ ॥ सूतजी बोले, हे मुने ! प्राणियोंकी उत्पत्ति और निषेध नित्य होता रहता है और प्रत्येक कल्पमें संपूर्ण दक्ष आदि यह मुनि होते हैं ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य दक्षप्रजापति की चर और अचरसहित इस

ताभ्यो दक्षस्य पुत्रीभ्यो जाता देवासुरादयः ॥ बहवस्तनयाः ख्यातास्तैस्सर्वैः पूरितं जगत्॥४९॥ततः प्रभृति विप्रेन्द्र प्रजा मैथुनसंभवाः ॥ संकल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषांसृष्टिरुच्यते॥५०॥ ॥ शौनकः उवाच॥अंगुष्ठाद्ब्रह्मणो जज्ञे दक्षश्चोक्तस्त्वया पुरा॥ कथं प्राचेतसत्वं हि पुनर्लेभे महातपाः॥५१॥ एतं मे संशयं सूत प्रत्याख्यातुं त्वमर्हसि ॥ चित्रमेतत्स सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः ॥ ५२ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यं भूतेषु वर्तते ॥कल्पेकल्पे भवंत्येते सर्वे दक्षादयो मुने ॥ ५३ ॥ इमां विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात्सचराचराम् ॥प्रजावानायुषा पूर्णस्स्वर्गलोके महीयते॥५४॥इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सर्गवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥ शौनक उवाच ॥ देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ सृष्टिं तु विस्तरेणेमां सूतपुत्र वदाशु मे ॥१॥सूत उवाच॥यदा न ववृधे सा तु वीरणस्य प्रजापतिः ॥ सुतां सुतपसा युक्तामाह्वयत्सर्गकारणात् ॥ २ ॥ स मैथुनेन धर्मेण ससर्ज विविधाः प्रजाः ॥ ताः शृणु त्वं महाप्राज्ञ कथयामि समासतः ॥ ३ ॥

सृष्टिको जानता है वह सन्तानयुक्त आयुसे पूर्ण होके स्वर्गलोकमें जाता है ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवपुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० सर्गवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ शौनकजी बोले, हे सूतपुत्र ! देवताओंकी तथा दैत्योंकी गन्धर्व सर्प राक्षसोंकी इस सृष्टिको शीघ्र मुझसे विस्तारपूर्वक कहो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, जब वीरण प्रजापतिकी प्रजा न बढी तो सृष्टिके कारण तपमें प्रवृत्त हुई कन्याका बुलाया ॥ २ ॥ हे महाप्राज्ञ ! तब उसने मैथुनके धर्मसे अनेक प्रजाको उत्पन्न किया सुनो मैं संक्षेपसे वर्णन करता हूँ ॥ ३ ॥

दक्षप्रजापतिने उस वीरिणीके आश्रयसे वीर्यवान् पांच सहस्र पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ इनको उत्पन्नहुए देखके नारदजी उनसे बोले, सब उत्पन्न हुई मनुष्योंकी सृष्टि ब्रह्माजीसे अथवा कश्यपसे दक्षकी कन्याओंमें उत्पन्न होगी ऐसा सुना है यह उन सबोंसे कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥ तुम सब बालक हो विनाजाने कैसे सृष्टिको करोगे किसी दिशाको नहीं जानते हो इस कारण उस पृथिवीभरको जानो ॥ ७ ॥ ऐसा कहनेपर वे सब बलसे संपूर्ण दिशाओंके जाननेको चले गये पृथिवीके अन्तको न पाया फिर वे अपने पिताके घरको नहीं लौटकर आये ॥ ८ ॥ ऐसा जानके फिर दक्षने पांचसौ पुत्रोंको उत्पन्न किया उनसे भी सब कुछ देखनेवाले नारदजी यह बोले ॥ ९ ॥ नारदजीने कहा तुम सब भूमिके

तस्यां पुत्रसहस्राणि वीरिण्यां पंच वीर्यवान् ॥ आश्रित्य जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः ॥ ४ ॥ एतान्सृष्टांस्तु तान्दृष्ट्वा नारदः प्राह वै मुनिः ॥ सर्वं स तु समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः ॥ ५ ॥ श्रुतवान्वा कश्यपाद्वै पुंसां सृष्टिर्भविष्यति ॥ दक्षस्येव दुहितृषु तस्मात्तान ब्रवीत्तु सः ॥ ६ ॥ अजानंतः कथं सृष्टिं बालिशा वै करिष्यथ ॥ दिशं कांचिदजानंतस्तस्माद्विज्ञाय तां भुवम् ॥ ७ ॥ इत्युक्ताः प्रययुस्सर्वे आशां विज्ञातुमोजसा ॥ तदंतं न हि संप्राप्य न निवृत्ताः पितुर्गृहम् ॥८॥ तज्ज्ञात्वा जनयामास पुनः पंचशतान्सुतान् ॥ तानुवाच पुनस्सोऽपि नारदस्सर्वदर्शनः ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ भुवो मानमजानंतः कथं सृष्टिं करिष्यथ ॥ सर्वे हि बालिशाः किं हि सृष्टिं कर्तुं समुद्यताः ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ तेऽपि तद्वचनं श्रुत्वा निर्यातास्सर्वतोदिशम् ॥ सुबलाश्वा दक्षसुता हर्यश्वा इव ते पुरा ॥ ११ ॥ अनंतं पुष्करं प्राप्य गतास्तेऽपि पराभवम् ॥ अद्यापि न निवर्ततेसमुद्रेभ्य इवापगाः ॥ १२ ॥ तदाप्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे रतः ॥ प्रायतो नश्यति मुने तन्न कार्य्यं विपश्चिता ॥ १३ ॥

मानको नहीं जानते हो तो सृष्टिको किस प्रकार करोगे तुम सब बालक किस प्रकार सृष्टि करनेमें उद्यत हो ॥ १० ॥ सूतजी बोले, वे सब भी उनके वचनको सुनके सब दिशाओंमें चले गये, जैसे सुबलाश्व और हर्यश्वनामवाले दक्षके पुत्र पहले निकल गये थे ॥ ११ ॥ अनंत पुष्करको प्राप्त होके वे भी तिरस्कारको प्राप्त हुए और समुद्रोंसे जैसे नदियाँ तैसे अबतक भी नहीं लौटे ॥ १२ ॥ हे मुने ! उस दिनसे लेके भाई अपने भाईके खोजनेमें प्रवृत्त होके चला जाय तो और नष्ट होजायगा सो सृष्टिका कार्य न हुआ ॥ १३ ॥

उन पुत्रोंको नष्ट हुआ जानके उन दक्षप्रजापतिने क्रोधसे महात्मा नारदजीको शाप दिया ॥ १४ ॥ हे कलहप्रिय ! तुम कहीं भी स्थितिको नहीं पाओगे और लोकमें तुम्हारी समीपतासे सदा कलह होगा ॥ १५ ॥ तब दक्ष प्रजापतिजी ब्रह्माजीसे शान्त किये गये फिर उन्होंने साठ कन्याओंको वीरणीमें उत्पन्न किया ऐसा हमने सुना है ॥ १६ ॥ तब उन्होंने दश कन्या धर्मको दीं तेरह कश्यपको तथा सत्ताईस सोमको और चार कन्या अरिष्ट नेमिको दीं ॥ १७ ॥ इसी प्रकार दो कन्या ब्रह्मपुत्रको तथा दो अंगिराको और दो विद्वान्

तांश्चापि नष्टान्विज्ञाय पुत्रान्दक्षः प्रजापतिः ॥ स च क्रोधाद्ददौ शापं नारदाय महात्मने ॥१४॥ कुत्रचिन्न लभस्वेति संस्थितिं कलहप्रिय ॥ तव सान्निध्यतो लोके भवेच्च कलहस्सदा ॥ १५ ॥ सांत्वितोऽथ विधात्रा हि स दक्षस्तु प्रजापतिः॥कन्याः षष्टिं च सृजत्पश्चाद्वीरिण्यामिति नः श्रुतम् ॥ १६ ॥ ददौ स दशधर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥ १७ ॥ द्वे चैवं ब्रह्मपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तदा ॥ द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ॥१८॥ अरुंधती व सुर्य्यामिर्लम्बा भानुर्मरुत्वती ॥ संकल्पा च मुहूर्ता च संध्या विश्वा च वै मुने ॥ १९ ॥ धर्मपत्न्यो मुने त्वेतास्तास्वपत्यानि मे शृणु ॥ विश्वेदेवास्तु विश्वायास्साध्यान्साध्या व्यजायत ॥ २० ॥ मरुत्वत्यां मरुत्वंतो वसोस्तुवसवस्तथा ॥ भानोस्तु भानवस्सर्वे मुहूर्तायां मुहूर्तजाः ॥२१॥ लम्बायाश्चैवघोषोऽथ नागवीथी च यामिजा ॥ पृथिवीविषमस्तस्या मरुन्धत्यामजायत ॥२२॥ संकल्पायास्तु सत्यात्मा जज्ञे संकल्प एव हि ॥ अयादयावसोः पुत्रा अष्टौ तान्छृणु शौनक ॥ २३ ॥

कृशाश्वको दीं उन सब कन्याओंके नाम मुझसे सुनो ॥ १८ ॥ हे मुने ! अरुंधती वसु यामि लम्बा भानु मरुत्वती संकल्पा मुहूर्ता संध्या विश्वा ॥ १९ ॥ हे मुने ! यह तो धर्मपत्नी हैं और इनकी सन्तानको सुनो, विश्वाके विश्वेदेव तथा साध्याके साध्यगण उत्पन्न हुए ॥ २० ॥ मरुत्वतीसे मरुत्वान् तथा वसुसे अष्ट वसु भानुसे द्वादश भानु और मुहूर्तासे मुहूर्तज उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ लम्बासे घोष यामिजासे नागवीथी और अरुन्धतीसे पृथिवी विषम उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ संकल्पासे सत्यवादी संकल्प हुए हे शौनकजी ! अयादि आठ वसुके

जो पुत्र हैं उनके नाम सुनो ॥ २३ ॥ अय, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्युष, प्रभास, नामवाले यह आठ वसु कहे हैं ॥ २४ ॥ अयके पुत्र वैतंड तथा श्रम और शान्त मुनि हुए, और ध्रुवका पुत्र संसारमें विख्यात सर्वोत्पादक भगवान् काल हुआ ॥ २५ ॥ सोमके पुत्र भगवान् वर्चा जिससे वर्चस्वी होता है धरके पुत्र द्रविण तथा हुतहव्य हुए ॥ २६ ॥ मनोहरासे शिशिर प्राण रमण पुत्र उत्पन्न हुए और अनिलकी शिवा नामवाली भार्या थी जिसका पुत्र पुरोजव नामसे विख्यात हुआ ॥ २७ ॥ तथा अनिलके और भी दो पुत्र अविज्ञात गतिसे श्रियावृत, सरकण्डोंके वनमें अग्निपुत्र कुमार नामवाले हुए ॥ २८ ॥ उनके शाख विशाख तथा पीछेसे नैगमेय पुत्र हुए तथाकृत्ति

अयो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः ॥ प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवाऽष्टा च नामतः ॥२४॥अयस्य पुत्रो वैतण्डः श्रमः शांतो मुनिस्तथा ॥ ध्रुवस्य पुत्रो भगवान्कालो लोकप्रभावनः॥२५॥सोमस्य भगवान्वर्चा वर्चस्वी येन जायते॥ धरस्य पुत्रो द्रविणोहुतहव्यवहस्तथा ॥२६॥ मनोहरायाश्शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा॥ अनिलस्य शिवा भार्य्या यस्याः पुत्राः पुरोजवः ॥२७॥ अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु॥अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे श्रियावृते॥२८॥तस्य शारवो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः॥ अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः॥२९॥प्रत्यूषस्य त्वभूत्पुत्र ऋषिर्नाम्ना तु देवलः॥द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि प्रजावन्तौ मनीषिणौ॥३०॥बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी ॥योगसिद्धा जगत्कृत्स्नं समंताद्व्यचरत्तदा॥३१॥प्रभासस्य तु सा भार्य्या वसूनामष्टमस्य च॥विश्वकर्मा महाभाग तस्यजज्ञे प्रजापतिः॥३२॥कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वार्द्धकिः॥भूषणानां च सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वरः ॥३३॥ यस्सर्वासां विमानानि देवतानां चकार ह ॥ मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः ॥३४॥

काकी सन्तान कार्त्तिकेय हुए ॥ २९ ॥ और प्रत्यूषके पुत्र देवल ऋषि नामसे हुए तथा देवलके भी बुद्धिमान प्रजावाले दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३० ॥ तब बृहस्पतिकी बहिन ब्रह्मचारिणी सुन्दर स्त्री योगसिका सम्पूर्ण संसारमें चारों ओर भ्रमण करने लगी ॥ ३१ ॥ हे महाभाग ! वसुओंमें आठवें प्रभासकी स्त्रीने विश्वकर्मा प्रजापति पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥ वह सहस्रों शिल्पोंका करनेवाला तथा देवताओंका कारीगर और सम्पूर्ण आभूषणोंका बनानेवाला शिल्पवानोंमें श्रेष्ठ हुआ ॥ ३३ ॥ जिसने सब देवताओंके विमानोंको बनाय

तथा जिन महात्माके शिल्पसे सम्पूर्ण मनुष्य जीते हैं ॥ ३४ ॥ दूसरा मत कहते हैं रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैक-पाद, अहिर्बुन्ध्य, बहुरूप, महान् ॥ ३५ ॥ हे मुने ! सरूपासे उत्पन्न हुए पुत्रकी स्त्रीने कोटि रुद्रको उत्पन्न किया परन्तु उनमें ग्यारह मुख्य हुए उनके नाम मुझसे सुनो ॥ ३६ ॥ अजैकपाद, अहिर्बुन्ध्य, त्वष्टा, रुद्र, वीर्यवान्, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित ॥ ३७ ॥ वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी रैवत, यह ग्यारह तीनों लोकोंके स्वामी रुद्र कहे हैं ॥ ३८ ॥ हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार अति तेजस्वी रुद्रोंकी सौ संख्या कही अब कश्यपकी पत्नियोंके नाम सुनो ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां पं० उ० सं० सर्गवर्णनं नाम

मतांतरमाह ॥ रैवतोऽजो भवो भीमो वाम उग्रो वृषाकपिः॥अजैकपादहिर्बुध्न्यो बहुरूपो महानिति ॥३५॥ सरूपायां प्रसूतस्य स्त्रियां रुद्रश्च कोटिशः॥तत्रैकादशमुख्यास्तु तन्नामानि मुने शृणु॥३६॥अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्यवान्॥हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ॥ ३७ ॥ वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दीरैवतस्तथा॥एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥३८॥ शतं त्वेवं समाख्यातं रुद्राणाममितौजसाम्॥शृणु कश्यपपत्नीनां नामानि मुनिसत्तम॥३९॥इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सर्गवर्णनं नामैकत्रिंशोध्यायः ॥३१॥ सूत उवाच॥ अदितिर्दितिश्च सुरसारिष्टेला दनुरेव च ॥ सुरभिर्विनता चेला ताम्रा क्रोधवशा तथा ॥१॥ कद्रूर्मुनिश्च विप्रेन्द्र तास्वपत्यानि मे शृणु ॥ पूर्वमन्वंतरे श्रेष्ठे द्वादशासन्सुरोत्तमाः ॥२॥ तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेंतरे ॥ उपस्थिते सुयशसश्चाक्षुषस्यांतरे मनोः ॥३॥ हिताय सर्वलोकानां समागम्य परस्परम्॥आगच्छतस्तु तानूचुरदितिं च प्रविश्य वै ॥४॥ मन्वंतरे प्रसूयामस्सतां श्रेयो भविष्यति ॥ एवमुक्तास्तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ॥ ५ ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले, अदिति, दिति, सुरसा, अरिष्टेला, दनु, सुरभि, विनता, इला, ताम्रा, क्रोधवशा ॥ १ ॥ कद्रू मुनि यह नाम कहे हे विप्रेन्द्र ! उनसे जो सन्तान हुई उनके नाम सुनो पहले श्रेष्ठ मन्वन्तरमें बारह संख्यक तुषित नामावली देवता हुई ॥ २ ॥ वे सब आपसमें बोले कि, वैवस्वत मन्वन्तरके उपस्थित होनेपर तथा यशस्वी चाक्षुष मनुके अन्तरमें ॥ ३ ॥ सब लोकोंके हितके अर्थ परस्पर मिलके आते हुए उनसे प्रवेश हो यह बोले ॥ ४ ॥ हम सब अदितिके गर्भमें प्रवेश होके मन्वन्तरमें उत्पन्न होंगे तो सत्पुरुषोंका

कल्याण होगा. ऐसा कहके वे सब चाक्षुष मनुके अन्तरमें ॥ ५ ॥ वे सब मरीचिके पुत्र कश्यपसे अदितिमें उत्पन्न हुए और फिर दश कन्यासे विष्णु, इन्द्र भी उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ अर्यमा, धाता, त्वष्टा तथा पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्रावरुण ॥ ७ ॥ अंश, भग तथा अति तेजस्वी बारह सूर्य हुए और चाक्षुष मन्वन्तरमें जो पहले तुषिता नामवाले देवता हुए थे ॥ ८ ॥ चाक्षुष मनुके अन्तरमें वही पहले बारह आदित्य कहे हैं हे शौनक ! यह क्रमसे अदितिकी सन्तानें कही हैं ॥ ९ ॥ जो श्रेष्ठ व्रतवाली सत्ताईस सोमपत्नी कही हैं उनकी अति तेजस्वी दीप्ति नामक सन्तान कही है ॥ १० ॥ और अरिष्टनेमिकी स्त्रियोंके सोलह पुत्र हुए विद्वान् बहुपुत्रकी जो चार कन्या कही हैं ॥ ११ ॥ हे

मारीचात्कश्यपाज्जातास्तेऽदित्यां दक्षकन्यया ॥ तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि ॥६॥अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च ॥ विवस्वान्सविता चैव मित्रावरुण एव च ॥७॥ अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ चाक्षुषस्यांतरे पूर्व मासन्ये तुषितास्सुराः ॥ ८ ॥ पुरैव तस्यांतरे तु आदित्या द्वादश स्मृताः॥ इति प्रोक्तानि क्रमशोऽदित्यपत्यानि शौनक ॥९॥ सप्तविंशति याः प्रोक्तास्सोमपत्न्योऽथ सुव्रताः ॥तासामपत्यान्यभवन्दीप्तयोऽमिततेजसः॥१०॥ अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ॥बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो यास्सुताःस्मृताः॥११॥कृशाश्वस्य तु देवर्षे देवप्रहरणाः स्मृताः ॥ भार्य्यायामर्चिषि मुने धूम्रकेशस्तथैव च ॥ १२ ॥ स्वधा सती च द्वे पत्न्यौ स्वधा ज्येष्ठा सती परा॥ स्वधासूत पितॄन्वेदमथर्वाङ्गिरसं सती ॥१३॥ एते युग सहस्रांते जायंते पुनरेव हि ॥ सर्वेदेवनिकायाश्च त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः ॥१४॥ यथा सूर्य्यस्य नित्यं हि उदयास्तमयाविह ॥ एवं देवानिकास्तेच संभवंति युगे युगे॥१५॥दित्यांबभूवतुःपुत्रौ कश्यपादिति नःश्रुतम्॥हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान्॥१६॥

देवर्षे ! हे मुने ! कृशाश्वके देव प्रहरण कहे हैं तथा अर्चिष भार्यामें धूम्रकेश हुए ॥ १२ ॥ उनकी स्वधा और सती दो स्त्री हुई उनमें स्वधा ज्येष्ठा और सती कनिष्ठ थी स्वधाने पितरोंको उत्पन्न किया और सतीने वेद और अंगिराको उत्पन्न किया ॥१३॥ यह सर्व देवताओंके निकाय तेंतीस कामनासे उत्पन्न होनेवाले सहस्र युगके अन्तमें नित्य उत्पन्न होते हैं ॥ १४॥ जैसे यहां सूर्यका उदय और अस्त सदा होता है वैसे वे देव निकाय भी प्रत्येक युगमें उत्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥ कश्यपसे दितिमें दो पुत्र उत्पन्न हुए जो हिरण्यकशिपु तथा

हिरण्याक्ष नामवाले महापराक्रमी थे ऐसा हमने सुना है ॥ १६ ॥ विप्रचित्तिसे सिंहिका कन्या उत्पन्न हुई हिरण्यकशिपुके चार पुत्र अति तेजस्वी हुए ॥ १७ ॥ अनुह्लाद. ह्लाद, संह्लाद और प्रह्लाद नामवाले हुए उनमें प्रह्लाद विष्णुका भक्त हुआ ॥ १८ ॥ सूर्यासे अनुह्लादके पुलोमा महिष हुए ह्लादके धमनि भार्यासे वातापि और इल्वल पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥ संह्लादकी कृति स्त्रीने पंचजन नामक पुत्रको उत्पन्न किया प्रह्लादके पुत्र विरोचन तथा उनके पुत्र बलि हुए ॥ २० ॥ हे मुनीश्वर ! बलिके अशनासे सौ पुत्र उत्पन्न हुए वह बली महाशैव तथा शिवजीकी भक्तिमें तत्पर ॥ २१ ॥ दान शील उदार पवित्र कीर्त्तिवाले तपस्वी हुए बालिका ज्येष्ठ पुत्र बाणासुर जो शैव और बुद्धिमान् था

सिंहिका ह्यभवत्कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः॥हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः।१७।अनुह्लादश्च ह्लादश्च संह्लादश्चैव वीर्यवान् प्रह्लादश्चानुजस्तत्र विष्णुभक्तिविचारधीः।१८।अनुह्लादस्यसूर्यायां पुलोमा महिषस्तथा॥ह्लादस्यधमनिर्भार्यासूतवातापिमिल्वलम् ॥१९॥संह्लादस्य कृतिर्भार्यासूतः पंचजनं ततः॥विरोचनस्तु प्राह्लादिर्देव्यास्तस्याभवद्बलिः॥२०॥बलेः पुत्रशतं त्वासीदशनायां मुनीश्वर॥बलिरासीन्महाशैवःशिवभक्तिपरायणः ॥२१॥दानशील उदारश्च पुण्यकीर्तितपाःस्मृतः॥तत्पुत्रो बाणनामा यस्सोऽपि शैववरस्सुधीः ॥ यस्संतोष्य शिवं सम्यग्गाणपत्यमवाप ह॥२२॥सा कथा श्रुतपूर्वा ते बाणस्य हि महात्मनः॥ कृष्णं यस्समरे वीरस्सुप्रसन्नं चकार ह॥२३॥हिरण्याक्षसुताःपंच पंडितास्सुमहाबलाः ॥कुकुरःशकुनिश्चैव भूतसंतापनस्तथा ॥२४॥ महानादश्च विक्रांतःकालनाभस्तथैव च॥इत्युक्ता दितिपुत्राश्च दनोःपुत्रान्मुने शृणु॥२५॥अभवन्दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः॥अयोमुखश्शंबरश्च कपोलो वामनस्तथा॥२६॥वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहाशिरौ ॥ स्वर्भानुर्वृषपर्वा च विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ॥२७॥

जिसने भली भाँति शिवको सन्तुष्ट करके गणपतिका पद प्राप्त किया ॥ २२ ॥ महात्मा बाणासुरकी वह कथा तुमने पहले ही सुनली है कि जिस वीरने युद्धमें श्रीकृष्णजीको प्रसन्न किया था ॥ २३ ॥ हिरण्याक्षके पाँच पुत्र पंडित महाबली कुकुर, शकुनि, भूतोंका सन्ताप देनेवाला ॥ २४ ॥ महानाद, विक्रांत, कालनाभ नामवाले हुए हे मुने ! अब दितिके पुत्रोंको तथा दनुके पुत्रोंको सुनो ॥ २५ ॥ दनुके सौ पुत्र तीव्र पराक्रमवाले हुए अयोमुख, शंबर, कपोल तथा वामन ॥ २६ ॥ वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण, महाशिर, स्वर्भानु,

वृषपर्वा, वीर्यवान् विप्रचित्ति ॥ २७ ॥ यह सब दनुके पुत्र कश्यपसे उत्पन्न हुए हे मुने ! निष्पाप ! सुनो मैं प्रसंगसे उन पुत्रोंको वर्णन करता हूँ ॥ २८ ॥ स्वर्भानुकी प्रभा नामवाली कन्या हुई तथा पुलोमाकी शची पुत्री उपदानवी हयशिरा शर्म्मिष्ठा यह वृषपर्वाकी कन्या हुई ॥ २९ ॥ पुलोमा और पुलोमिका यह दोनों वैश्वानरकी पुत्री हुईं और उन दोनोंके मारीचिसे बडी पराक्रमी अनेक सन्तानें हुईं ॥ ३० ॥ फिर उन दोनोंके साठ सहस्र पुत्र दानवोंको आनंद देनेवाले बडे तपसे मरीचिसे उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ दानवोंके महाबली पौलोम

एते सर्वे दनोः पुत्राः कश्यपादनुजज्ञिरे ॥ एषां पुत्राञ्च्छृणु मुने प्रसंगाद्वच्मि तेऽनघ ॥ २८ ॥ स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची सुता ॥ उपदानवी हयशिरा शर्म्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ २९ ॥ पुलोमा पुलोमिका चैव वैश्वानरसुते उभे ॥ बह्वपत्ये महावीर्य्ये मारीचेस्तु परिग्रहः ॥ ३० ॥ तयोः पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवनन्दनाः ॥ मरीचिर्जनयामास महता तपसान्वितः ॥ ३१ ॥ पौलोमाः कालखंजाश्च दानवानां महाबलाः ॥ अवध्या देवतानां च हिरण्यपुरवासिनः ॥३२॥ पितामहप्रसादेन ये हताः सव्यसाचिना ॥ सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेस्सुतास्तथा ॥३३॥ दैत्यदानवसंयोगाज्जातास्तीव्रपराक्रमाः॥ सैंहिकेया इति ख्यतास्त्रयोदश महाबलाः ॥ ३४ ॥ राहुः शल्यो सुबलिनो बलश्चैव महाबलः ॥ वातापिर्नमुचिश्चैवाथेल्वलः स्वसृपस्तथा॥ ३५ ॥ अजिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च ॥शरमाणश्शरकल्पश्च एते वंशविवर्द्धनाः ॥ ३६ ॥ एषां पुत्राश्च पौत्राश्च दनुवंशविवर्द्धनाः ॥ बहवश्च समुद्भूता विस्तरत्वान्न वर्णिताः ॥ ३७ ॥

कालखंज पुत्र हुए देवताओंके अवध्य हिरण्यपुरवासी पुत्र हुए ॥ ३२ ॥ जिनको पितामहके प्रसादसे अर्जुनने मारा था और विप्रचित्तिके सिंहिकासे अनेक पुत्र हुए ॥ ३३ ॥ वे दैत्य और दानवके संयोगसे अति पराक्रमी महाबली सैंहिकेय नामसे तेरह पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३४ ॥ सुबलि, राहु, शल्य, बल, महाबल, वातापि, नमुचि, इल्वल, तथा स्वसृप ॥ ३५ ॥ अजिक, नरक, कालनाभ, शरमाण, शरकल्प, यह वंशके बढानेवाले पुत्र हुए ॥ ३६ ॥ इनके पुत्र तथा पौत्र दनुवंशके बढानेवाले बहुत उत्पन्न हुए विस्तार होनेके कारण नहीं वर्णन किये॥३७॥

संह्रादके कुलमें दैतेय निवातकवच हुए और उसी कुलमें तपसे शुद्धात्मा मरुत हुए ॥३८॥ ताम्रासे महासत्ववाले षण्मुख आदि पुत्र कहे हैं तथा काकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, तथा शुकी॥३९॥ गृद्धकाश्वी, उलूकी, यह ताम्रा कन्यासे कहे हैं काकीने काकोंको उत्पन्न किया तथा उलूकीने प्रत्येक उलूकोंको उत्पन्न किया ॥ ४० ॥ तथा श्येनीने श्येनोंको और भासीने भासोंको गृद्धीने गृद्धोंको और शुकीने शुकोंको, सुग्रीवीने शुभ पक्षियोंको उत्पन्न किया ॥ ४१ ॥ कश्यपकी स्त्री ताम्राने घोडे ऊंट गधोंको उत्पन्न किया, इस प्रकार यह ताम्राका वंश वर्णन किया

संह्रादस्य तु दैतेया निवातकवचाः कुले ॥ उत्पन्ना मरुतस्तस्मिंस्तपसा भावितात्मनः ॥ ३८ ॥ षण्मुखाद्या महासत्त्वास्ताम्रा याः परिकीर्तिताः ॥ काकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी च शुकी तथा ॥३९॥ गृद्ध्रिकाश्वी ह्युलूकी च ताम्रा कन्याः प्रकीर्तिताः ॥ काकी काकानजनयदुलूकी प्रत्युलूककान् ॥४०॥ श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान्गृद्धी तु गृध्रकान् ॥ शुकी शुकानजनयत्सुग्रीवीशुभपक्षिणः ॥ ४१ ॥ अश्वानुष्ट्रान्गर्दभांश्च ताम्रा च कश्यपप्रिया ॥ जनयामास चेत्येवं ताम्रावंशाः प्रकीर्तिताः ॥ ४२ ॥ विनतायाश्च पुत्रौ द्वावरुणो गरुडस्तथा ॥ सुपर्णः पततां श्रेष्ठो नारुणस्स्वेन कर्मणा ॥ ४३ ॥ सुरसायास्सहस्रं तु सर्पाणाममितौजसाम् ॥ अनेकशिरसां तेषां खेचराणां महात्मनाम् ॥ ४४ ॥ येषां प्रधाना राजानः शेषवासुकितक्षकाः ॥ ऐरावतो महापद्मः कंबलाश्वतरावुभौ ॥ ४५ ॥ ऐलापुत्रस्तथा पद्मः कर्कोटकधनंजयौ॥ महानीलमहाकर्णौ धृतराष्ट्रो बलाहकः ॥ ४६ ॥ कुहरः पुष्पदन्तश्च दुर्मुखास्सुमुखस्तथा ॥ बहुशः खररोमा च पाणिरित्येवमादयः ॥ ४७ ॥

॥ ४२ ॥ विनताके अरुण गरुण दो पुत्र उत्पन्न हुए, सुपर्ण धर्मात्मा पक्षिओंमें श्रेष्ठ हुए परन्तु अरुण अपने क्रमसे उत्तम नहीं हुए ॥ ४३ ॥ सुरसाके अति तेजस्वी सहस्र सर्प हुए और वे अनेक फनवाले आकाशचारी महात्मा हुए ॥ ४४ ॥ जिनके शेष, वासुकि, तक्षक, ऐरावत, महापद्म तथा कम्बल और अश्वतर यह दोनों प्रधान राजा हुए ॥ ४५ ॥ ऐलाके पद्म, कर्कोटक, धनंजय, महानील, महाकर्ण धृतराष्ट्र, बलाहक ॥ ४६ ॥ कुहर, पुष्पदन्त; दुर्मुख, तथा सुमुख, बहुश, खररोमा, पाणि आदिक पुत्र हुए ॥ ४७ ॥

क्रोधवशाके अनेक गण सब दंष्ट्रावाले जीव तथा अण्डज, पक्षी, जल जन्तु हुए, वराहीके पशु हुए ॥४८॥ अनायुषाके महाबली पचास पुत्र हुए वह बल, वृक्ष, विक्षर तथा बृहत् हुए ॥४९॥ सुरभिने शशा तथा भैंसोंको उत्पन्न किया, इलाने वृक्षों बेलों तथा सम्पूर्ण तृणजातिको उत्पन्न किया॥५०॥ खशाने यक्ष राक्षसोंको तथा अप्सरस मुनिको उत्पन्न किया अरिष्टाने प्रभावसे मानवोत्तम सर्पोंको उत्पन्न किया॥५१॥हे मुनीश्वरो!! यह कश्यपके कुलवाले तुमसे वर्णन किये जिनके पुत्र पौत्र सैकडों सहस्रों हुए ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० कश्यपवंशवर्णनं

गणाः क्रोधवशायाश्च तस्यास्सर्वे च दंष्ट्रिणः ॥अंडजाः पक्षिणोऽब्जाश्च वराह्याः पशवो मताः ॥४८॥ अनायुषायाः पुत्राश्च पंचाशच्च महाबलाः ॥ अभवन्बलवृक्षौ च विक्षरोऽथ बृहंस्तथा ॥ ४९ ॥ शशांस्तु जनयामास सुरभिर्महिषांस्तथा ॥ इला वृक्षाँल्ल ता वल्लीस्तृणजातीस्तु सर्वशः ॥५०॥ खशा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा ॥ अरिष्टासूत सर्पांश्च प्रभावैर्मानवोत्तमान् ॥ ५१ ॥ एते कश्यपदायादाः कीर्तितास्ते मुनीश्वर ॥ येषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां कश्यपवंशवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ सूत उवाच ॥ एष मन्वन्तरे तात सर्ग स्स्वारोचिषे स्मृतः ॥ वैवस्वते तु महति वारुणे वितते क्रतौ ॥ १ ॥ जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते ॥ पूर्वं यानथ ब्रह्मर्षीनुत्पन्नान्सप्त मानसान् ॥ २ ॥ पुत्रान्वै कल्पयामास स्वयमेव पितामहः ॥ तेषां विरोधो देवानां दानवानां महानृषे ॥ ३ ॥ दितिर्विनष्टपुत्रा तु कश्यपं समुपस्थिता ॥ स कश्यपः प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया ॥ ४ ॥

नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले; हे तात ! स्वारोचिष मन्वन्तरमें जो सृष्टि हुई सो कही वैयस्वतमनुके बडे वारुणयज्ञके विस्तार होनेपर ॥ १ ॥ हवन करते हुए ब्रह्माजीकी रचना कहते हैं पहले उत्पन्न हुए सात मानस जिन ब्रह्मर्षियोंको ॥२॥ साक्षात् ब्रह्माने अपने पुत्र कल्पना किया और उन देवता तथा दैत्योंके विरोधमें ॥ ३ ॥ दिति अपने पुत्रोंके नाश होजानेपर कश्यपके समीप गई कश्यप प्रसन्न हो

१ यह उत्पत्ति कश्यपजीकी प्रजापतिके सामर्थ्यसे है कारण कि, ब्रह्माजीने इनको यह सामर्थ्य दी है "कश्यपः कस्मात् पश्यको भवतीति निरुक्तः" वह ज्ञानमार्गसे सब जीवोंके उत्पन्न होने के कारण को जानते थे, इससे जिस २ में उनकी सामर्थ्यपडी वही वही उनकी स्त्री कहाई, इसलिये इस कथामें शंकाका अवकाश न जानना

उससे आराधना किये गये ॥ ४ ॥ और उसे वरसे छला तब उस दितिने यह वर मांगा कि, इन्द्रके वध करनेके निमित्त सामर्थ्ययुक्त अतितेजस्वी पुत्र होवे ॥ ५ ॥ तब महातपस्वीने प्रार्थना करने पर उसे वर दिया और सौ वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य आदि नियमको कहा ॥ ६ ॥ तब पवित्र सुन्दर वर्णवाली उसने गर्भ धारण किया और ब्रह्मचर्यादि नियमका पालन किया ॥ ७ ॥ तत्पश्चात् वह प्रशंसनीय व्रतवाले कश्यपजी दितिमें गर्भ धारण करके प्रसन्न मन हो तप करनेको चल दिये ॥ ८ ॥ तब इन्द्र उसके अन्तरमें प्राप्त होनेकी इच्छा करने लगे फिर इन्द्रने निन्यानवें वर्षमें उसका अन्तर देखा ॥ ९ ॥ वह दिति पैरोंकी पवित्रता न करके नीचेको शिर किये, होनेवाले अर्थके

वरेणच्छंदयामास सा च वव्रे वरं तदा॥पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम्॥५॥स तस्यै च वरं प्रादात्प्रार्थितं सुमहातपाः॥ब्रह्मचर्य्यादिनियमं प्राह चैव शतं समाः॥६॥धारयामास गर्भं तु शुचिस्सा वरवर्णिनी॥ब्रह्मचर्य्यादिनियमं दितिर्देव्रतथैव वै ॥७॥ ततस्त्वाधाय सोऽदित्यां गर्भतं शंसितव्रतः॥जगाम कश्यपस्तप्तुं तपस्संहृष्टमानसः॥८तस्याश्चैवांतरं प्रेप्सुस्सोऽभवत्पाकशासनः॥ ऊनवर्षे शते चास्या ददर्शान्तरमेव सः॥९॥अकृत्वा पादयोः शौचं दितिर्वाक्शिरास्तदा॥ निद्रामाहारयामास भाविनोऽर्थस्य गौरवात् ॥ १० ॥ एतस्मिन्नन्तरे शक्रस्तस्याः कुक्षिं प्रविश्य सः ॥ वज्रपाणिस्तु तं गर्भं सप्तधा हि न्यकृन्तत॥११॥ स पाट्यमानो गर्भोऽथ वज्रेण प्ररुरोद ह ॥ रुदन्तं सप्तधैकैकं मारोदीरिति तान्पुनः॥ चकर्त वज्रपाणिस्तान्नैव मम्रुस्तथापि ते ॥१२॥ ते तमूचुः पाट्यमानास्सर्वे प्रांजलयो मुने ॥नो जिघांससि किं शक्र भ्रातरो मरुतस्तव ॥१३॥ इंद्रेण स्वीकृतास्ते हि भ्रातृत्वे सर्व एव च॥ तत्यजुर्दैत्यभावं ते विप्रर्षे शंकरेच्छया॥१४॥मरुतो नाम ते देवा बभूवुस्सुमहाबलाः॥खगा एकोनपंचाशत्सहाया वज्रपाणिनः॥१५॥

गौरवसे निन्द्राको प्राप्त हुई ॥ १० ॥ इसी अवसरमें इन्द्रने उसके गर्भमें प्रवेश करके उस गर्भके सात खण्ड किये ॥ ११ ॥ वज्रसे काटा हुआ वह गर्भ रोने लगा रोतेहुये उन सात खण्डोंको देख उनसे इन्द्र बोला कि, मत रोओ इंद्रके काटने पर भी वे न मरे ॥ १२ ॥ हे मुने ! तब गिराये हुए वे सब हाथ जोडके इन्द्रसे बोले, हे इन्द्र ! तुम हमें मारनेकी इच्छा न करो हम मरुत तुम्हारे भाई हैं ॥ १३ ॥ हे विप्रर्षे ! तब इन्द्रने उनको भ्रातृत्वसे स्वीकार किया और उन्होंने शिवकी इच्छासे दैत्यभावको त्यागन किया ॥ १४ ॥ वे महाबली

मरुत नामवाले आकाशगामी इन्द्रके सहायक उच्छास पवन देवता हुए ॥ १५ ॥ उन बढे हुओंको प्रजापतिने क्रमसे उतने राज्य पृथक् पृथक् दिये उसको सुनो ॥ १६ ॥ अरिष्ट, पुरुष, वीर, कृष्ण, जिष्णु, प्रजापति, पर्जन्य, धनाध्यक्ष, उनका यह सब जगत है ॥ १७ ॥ हे महा मुने ! यह भूतसर्ग तुमसे भलि भांति कहा अब क्रमसे राज्योंका विभाग सुनो मैं वर्णन करता हूँ ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीने पृथुवैन्यको अधिराज्यमें स्थापित कर क्रमसे राज्योंका देना प्रारम्भ किया ॥ १९ ॥ ब्राह्मणोंका वृक्षोंका तथा नक्षत्र और ग्रहोंका यज्ञोंका तथा तपोंका राजा सोमको किया ॥ २० ॥ जलोंके राज्यमें वरुणको अभिषिक्त किया राजाओंके आधिपत्यमें प्रभु वैश्रवणको स्थापित किया आदित्योंके

तेषामेव प्रवृद्धानां हरिः प्रादात्प्रजापतिः ॥ क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वं शृणुष्व तत्॥१६॥ अरिष्टपुरुषो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः ॥ पर्जन्यस्तु धनाध्यक्षस्तस्य सर्वमिदं जगत्॥१७॥भूतसर्गमिमं सम्यगवोचं ते महामुने॥विभागं शृणु राज्यानां क्रम शस्तं ब्रुवेऽधुना ॥ १८ ॥ अभिषिच्याधिराज्ये तु पृथुं वैन्यं पितामहः ॥ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥१९॥ द्विजानां वीरुधां चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा॥यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत्॥२०॥अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं प्रभुम्॥आदि त्यानां तथा विष्णुं वसूनामथ पावकम्॥२१॥प्रजापतीनां दक्षं तु मरुतामथ वासवम्॥ दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादमितौजसम् ॥२२॥ वैवस्वतं पितॄणां च यमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ मातॄणां च व्रतानां च मन्त्राणां च तथा गवाम्॥२३॥ यक्षाणां राक्षसानां च पार्थिवानां तथैव च ॥सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम्॥२४॥शैलानां हिमवन्तं च नदीनामथ सागरम्॥मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषं तु गवामपि ॥२५॥ वनस्पतीनां वृक्षाणां वटं राज्येऽभ्यषेचयत्॥इति दत्तं प्रजेशेन राज्यं सर्वत्र वै क्रमात् ॥२६॥

राज्यमें विष्णुको वसुओंके राज्यमें पावकको ॥ २१ ॥ प्रजापतियोंके राज्यमें दक्षको मरुतोंके राज्यमें इंद्रको दैत्योंके तथा दानवोंके राज्यमें अति तेजस्वी प्रह्लादको ॥ २२ ॥ पितरोंके राज्यमें वैवस्वतको तथा यमको नियुक्त किया माताओंके तथा व्रतोंके मंत्रोंके और गौओंके ॥ २३ ॥ यक्षोंके तथा राक्षसोंके पार्थिवोंके तथा सम्पूर्ण भूत पिशाचोंके राज्यमें शूलपाणि शिवजीको नियुक्त किया ॥ २४ ॥ शैलोंके राज्यमें हिमालयको नदियोंके राज्यमें समुद्रको मृगोंके राज्यमें सिंहको गाय बैलोंके राज्यमें गोवृषको ॥२५॥ वनस्पति और वृक्षोंके राज्यमें

वटको नियुक्त किया इस प्रकार क्रमसे ब्रह्माजीने सर्वत्र राज्य दिया ॥ २६ ॥ सर्व व्यापक सबके अन्तर्यामी विश्वपतिने पूर्व दिशामें वैराज्य प्रजापतिके पुत्रको स्थापित किया ॥ २७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! दक्षिण दिशामें कर्दम प्रजापतिके पुत्र सुधन्वाको स्थापित किया ॥ २८ ॥ और पश्चिम दिशामें रजसके पुत्र अच्युतको और महात्मा केतुमंतको ॥ २९ ॥ तथा पर्जन्य प्रजापतिके पुत्र हिरण्यरोमको भी राज्य दिया और उत्तर दिशामें राजा दुर्धर्षको अभिषिक्त किया ॥ ३० ॥ हे शौनक ! यह उन पृथुवैन्यका वर्णन किया यह स्थान बडा ऋद्धिवाला

पूर्वस्यां दिशि पुत्रं तु वैराजस्य प्रजापतेः॥स्थापयामास सर्वात्मा राज्ये विश्वपतिर्विभुः॥२७॥तथैव मुनिशार्दूल कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ दक्षिणस्यां तथा पुत्रं सुधन्वानमचीक्लृपत्॥२८॥पश्चिमायां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम्॥केतुमन्तं महात्मनं राजानं व्यादिशत्प्रभुः ॥ २९ ॥ तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापतेः॥उदीच्यां दिशि राजानं दुर्धर्षं सोऽभ्यषेचयत् ॥३०॥ तस्य विस्तरमाख्यातं पृथोर्वैन्यस्य शौनक॥महर्ध्येतदधिष्ठानं पुराणं परिकीर्तितम्॥३१॥इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सर्गवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोध्यायः॥३३॥ ॥शौनक उवाच॥मन्वंतराणि सर्वाणि विस्तरेणानुकीर्तय॥यावंतो मनवश्चैव श्रोतुमिच्छामि तानहम् ॥१॥सूत उवाच ॥ स्वायंभुवो मनुश्चैव ततस्स्वारोचिषस्तथा॥उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥२॥एते च मनवः षट् ते संप्रोक्ता मुनिपुंगव॥वैवस्वतो मुनिश्रेष्ठ सांप्रतं मनुरुच्यते॥३॥सावर्णिश्च मनुश्चैव ततो रौच्यस्तथा परः ॥ तथैव ब्रह्मसावर्णिश्चत्वारो मनवस्तथा ॥४॥ तथैव धर्मसावर्णी रुद्रसावर्णिरेवच ॥ देवसावर्णिराख्यात इंद्रसावर्णिरेव च ॥ ५ ॥

प्राचीन कहा है ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० सर्गवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ शौनकजी बोले, सम्पूर्ण मन्वन्तरोंको विस्तारसे वर्णन करो जितने मनु हैं उन सबोंको मैं सुनना चाहता हूं ॥ १ ॥ सूतजी बोले, स्वायम्भुव मनु तथा स्वारोचिष उत्तम तामस रैवत चाक्षुष ॥ २ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह छे मनु तुमसे कहे हे मुनिश्रेष्ठ ! अब वैवस्वत मनुको कहते हैं ॥ ३ ॥ सावर्णि मनु उसके पीछे रौच्य तथा ब्रह्मसावर्णि यह चार मनु हैं ॥ ४ ॥ और धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि कहे हैं ॥ ५ ॥

बीते हुए तथा वर्त्तमान और बिना आये हुए जो मनु मैंने सुने हैं वे सब तुमसे कहे ॥ ६ ॥ हे मुनि ! तीनों कालके यह चौदह मनु कहे जिन्होंका सहस्र युग पर्यन्त कल्प निर्माण किया जाता है ॥ ७ ॥ हे शौनक ! उनके ऋषि तथा पुत्र देवगणों आदि यशस्वियोंको क्रमसे वर्णन करता हूं प्रीतिसे सुनो ॥ ८ ॥ मरीचि, अत्रि, भगवान् अंगिरा पुलह, ऋतु, पुलस्त्य, वसिष्ठ, यह सात ब्रह्माके पुत्र हैं ॥ ९ ॥ हे मुने ! उत्तर दिशामें सप्तर्षि तथा स्वायम्भुव मन्वन्तरमें यामा नामवाले देवता भी निवास करते थे ॥ १० ॥ अग्नीध्र, तथा अग्निबाहु, मेधा, मेधा

अतीतावर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥ कीर्तिता मनवश्चापि मयैवैते यथा श्रुताः ॥६॥ मुने चतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते ॥ प्रोक्तानि निर्मितः कल्पो युगसाहस्रपर्य्ययः ॥ ७ ॥ ऋषींस्तेषां प्रवक्ष्यामिपुत्रान्देवगणांस्तथा ॥ शृणु शौनक सुप्रीत्या क्रमशस्तान्यशस्विनः ॥ ८ ॥ मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिराः पुलहः क्रतुः ॥ पुलस्त्यश्च वसिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणस्सुताः ॥ ९ ॥ उत्त रस्यां दिशि तथा मुने सप्तर्षयस्तथा ॥ यामा नाम तथा देवा आसन्स्वायंभुवेतरे ॥ १० ॥ आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मे धातिथिर्वसुः ॥ ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्यः सवनश्शुभ्र एव च ॥ ११ ॥ स्वायंभुवस्य पुत्रास्ते मनोर्दश महात्मनः ॥ कीर्तिता मुनिशार्दुल तत्रेन्द्रो यज्ञ उच्यते ॥ १२ ॥ प्रथमं कथितं तात दिव्यं मन्वंतरं तथा ॥ द्वितीयं ते प्रवक्ष्यामि तन्निबोध यथात थम् ॥ १३ ॥ ऊर्जस्तंभः परस्तंभ ऋषभो वसुमां स्तथा ॥ ज्योतिष्मान्द्युतिमांश्चैव रोचिष्मान्सप्तमस्तथा ॥ १४ ॥ ते महर्ष यो ज्ञेयास्तत्रेन्द्रो रोचनस्तथा ॥ देवाश्च तुषिता नाम स्मृताः स्वारोचिषेऽतरे ॥ १५ ॥

तिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, धृतिमान्, हव्य, सवन, शुभ्र ॥ ११ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह महात्मा स्वायम्भुव मनुके दश पुत्र कहे हैं उनमें इन्द्र यज्ञ नामवाला है ॥१२॥ हे तात ! पहला दिव्य मन्वन्तर कहा अब दूसरा मन्वन्तर वर्णन करता हूँ उसको ठीक ठीक सुनो ॥१३॥ ऊर्जस्वम्भ, परस्तम्भ, ऋषभ, तथा वसुमान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सातवां रोचिष्मान् ॥ १४ ॥ यह महर्षि जाननेके योग्य हैं उनमें रोचननामक इन्द्र है और स्वारोचिष मन्वन्तरमें तुषित नामवाले देवता कहे हैं ॥ १५ ॥

हरि, सुकृति, ज्योति, अयोमूर्त्ति, अयस्मय, प्रथित, मनस्यु, नभ, सूर्य ॥ १६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह महात्मा स्वारोचिष मनुके दश पुत्र बडे वीर्य और पराक्रमवाले कहे हैं ॥ १७ ॥ हे मुने ! यह दूसरा मन्वन्तर तुमसे कहा अब तीसरा मन्वन्तर तुमसे कहता हूँ उसको विधिपूर्वक सुनो ॥ १८ ॥ वासिष्ठ नामवाले सात वसिष्ठके पुत्र हैं, ऊर्ज नामवाले महातेजस्वी देव हिरण्यगर्भके पुत्र कहे हैं ॥ १९ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठ ! मैं यह ऋषि वर्णन करता हूं तुम सुनो उत्तम दश मनुके पुत्र कहे हैं ॥ २० ॥ वे इष, ऊर्जित, ऊर्ज, मधु, " माधव " शुचि, शुक्र, वह, नभस्

हरिश्चस्सुकृतिर्ज्योतिरयोमूर्तिरयस्मयः ॥ प्रथितश्च मनस्युश्च नभस्सूर्यस्तथैव च ॥ १६ ॥ स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोर्दश महात्मनः॥कीर्तिता मुनिशार्दूल महावीर्यपराक्रमाः ॥१७॥ द्वितीयमेतत्कथितं मुने मन्वन्तरं मया ॥ तृतीयं तव वक्ष्यामि तन्निबोध यथातथम् ॥ १८ ॥ वसिष्ठपुत्राःसप्तासन्वासिष्ठा इति विश्रुताः ॥ हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्जा नाम महौजसः ॥१९ ॥ ऋषयोऽत्र समाख्याताः कीर्त्यमानान्निबोध मे ॥ औत्तमेयाऋषिश्रेष्ठ दश पुत्रा मनोः स्मृताः ॥२०॥ इष ऊर्जित ऊर्जश्च मधुर्माधवएव च॥ शुचिश्शुक्रवहश्चैव नभसो नभ एव च ॥ २१ ॥ ऋषभस्तत्र देवाश्च सत्यवेद श्रुतादयः ॥ तत्रेन्द्रस्सत्यजिन्नाम त्रैलोक्याधिपतिर्मुने ॥२२॥ तृतीयमेतत्परमं मन्वंतरमुदाहृतम् ॥ मन्वंतरं चतुर्थं ते कथयामि मुने शृणु ॥२३॥ गार्ग्यः पृथुस्तथा वाग्मी जयो धाता कपीनकः ॥ कपीवान्सप्त ऋषयः सत्या देवगणास्तथा ॥२४॥ तत्रेंद्रस्त्रिशिखो ज्ञेयो मनुपुत्रान्मुने शृणु ॥ द्यूतिपोतस्सौतपस्यस्तमश्शूलश्च तापनः ॥२५॥ तपोरतिरकल्माषो धन्वी खड्गी महानृषिः ॥ तामसस्य स्मृता एते दश पुत्रा महाव्रताः ॥२६॥

नभ ॥ २१ ॥ ऋषभ आदि हैं उनमें सत्यवेद श्रुत आदि देवता हुए हे मुने ! उस समय सत्यजित् नामक तीनों लोकोंका स्वामी इन्द्र हुआ ॥ २२ ॥ यह तीसरा मन्वन्तर कहा हे मुने ! अब चौथा मन्वन्तर तुमसे कहता हूं सुनो ॥ २३ ॥ गार्ग्य, पृथु, वाग्मी, जन्य, धाता, कपीनक, कपीवान् इसमें यह सात ऋषि कहे हैं ॥ २४ ॥ हे मुने ! उनमें त्रिशिख नामवाले इन्द्र कहे हैं अब मनुके पुत्रोंको सुनो द्यूतिपोत, सातपस्य, तप, शूल तापन ॥ २५ ॥ तपोरति, अकल्माष, धन्वी खड्गी, महानृषि, यह महाव्रतवाले तामसके दश पुत्र कहे हैं ॥ २६ ॥

यह मैंने चौथे तामस मन्वन्तरका वर्णन किया हे तात ! अब पांचवाँ मन्वंतर सुनो ॥ २७ ॥ देवबाहु, जय, वेदशिर, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, ऊर्ध्वबाहु, सोमप ॥ २८ ॥ यह सत्यनेत्रवाले दूसरे सप्तर्षि कहे हैं और भूत, रज, तप, प्रकृति, यह देवता हैं ॥ २९ ॥ उस समय विभुकनामक तीनों लोकोंके स्वामी इंद्र कहे हैं और तामसके सहोदर भाई रैवत नामवाले मनु हैं ॥ ३० ॥ हे मुने ! अर्जुन, पंक्तिविंध्य यह दयाके पुत्र बडे तपसे युक्त हुए सुमेरुपर्वतके ऊपर निवास करते हैं ॥ ३१ ॥ छठा मन्वन्तर कहते हैं रुचि प्रजापतिके पुत्र रौच्यनाम मनु कहे गये हैं इसके भूति नामक स्त्रीमें भौत्यनाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३२ ॥ यह आपसे अनागत सात मनु इस कल्पमें वर्णन किये इसी प्रकार अनागत महर्षि भी

तामसस्यांतरं चैव मनो मे कथितं तव ॥ चतुर्थं पञ्चमं तात शृणु मन्वंतरं परम् ॥२७॥ देवबाहुर्जयश्चैव मुनिर्वेदशिरास्तथा ॥ हिरण्यरोमा पर्जन्य ऊर्ध्वबाहुश्च सोमपाः ॥२८॥ सत्यनेत्ररताश्चान्ये एते सप्तर्षयोऽपरे॥देवाश्च भूतरजसस्तपःप्रकृतयस्तथा ॥२९॥ तत्रेंद्रो विभुनामा च त्रैलोक्याधिपतिस्तथा ॥ रैवताख्यो मनुस्तत्र ज्ञेयस्तामससोदरः ॥३०॥ अर्जुनः पंक्तिविंध्यो वा दयायास्त नया मुने ॥ महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे वसंति हि ॥३१॥ रुचेः प्रजापतिः पुत्रो रौच्यो नाम मनुः स्मृतः ॥ भूत्या चोत्पादितो देव्यां भौत्यो नामाभवत्सुतः ॥ ३२ ॥ अनागताश्च सप्तैते कल्पेऽस्मिन्मनवस्स्मृताः ॥ अनागताश्च सप्तैव स्मृता दिवि महर्षयः ॥३३॥कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः॥जमदग्निर्भरद्वाजः सप्तैते ऋषयः स्मृताः॥३४॥रामो व्यासस्तथात्रेयो दिप्ति मान्सु बहुश्रुतः॥भरद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महाद्युतिः॥३५॥गौतमस्यात्मजश्चैव शरद्वान्गौतमः कृपः ॥ कौशिको गालव श्चैवरुरुः कश्यप एव च ॥३६॥ एते सप्त महात्मानो भविष्या मुनिसत्तमाः ॥ देवाश्चानागतास्तत्र त्रयः प्रोक्तास्स्वयंभुवा ॥३७॥

द्युलोकमें सात हैं ॥ ३३ ॥ सातवें मन्वंतरमें कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, भरद्वाज यह, सप्तर्षि हैं ॥ ३४ ॥ आगे होनेवाले जमदग्निके पुत्र परशुराम आत्रेय व्यास बहुश्रुत भरद्वाज वंशीदीप्तिमान् महातेजस्वी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ॥ ३५ ॥ गौतमसुत शर द्वान्, कृपाचार्य, कौशिकवंशी गालव, काश्यपवंशी रुरु ॥३६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आगे यह सात महात्मा ऋषि होनेवाले हैं इनमें स्वयम्भुने तीनही आनागत देवता माने हैं ॥ ३७ ॥

वे मरीचसुत महात्मा कश्यपजीके पुत्र होंगे विरोचन पुत्रबलि उनका इन्द्र होगा ॥ ३८ ॥ विषांग, अवनीवान्, सुमन्त, धृतिमान्, वसु, सूरि, सुरा, विष्णु राजा सुमति ॥ ३९ ॥ हे शौकन ! यह सावर्णि मनुके दश पुत्र होंगे यह आठवाँ मन्वंतर कहा अब नौमा सुनो ॥ ४० ॥ सुनो पहले दक्ष सावर्णि मनुको कहता हूँ पुलस्त्यवंशी मेधातिथि, कश्यपवंशी वसु ॥ ४१ ॥ भृगुवंशी ज्योतिष्मान् बुद्धिमान्, अंगिरा, वशिष्ठवंशी सवन, अत्रिवंशी हव्य ॥ ४२ ॥ और पुलह यह सप्तऋषि रोहित मन्वंतरके अन्तरमें होंगे हे महामुने ! इनमें देवताओंके

मरीचेश्चैव पुत्रास्ते कश्यपस्य महात्मनः ॥ तेषां विरोचनसुतो बलिरिंद्रो भविष्यति ॥३८॥ विषांङ्गश्चावनीवांश्च सुमंतो धृतिमान्वसुः ॥ सूरिः सुराख्यो विष्णुश्च राजा सुमतिरेव च ॥ ३९ ॥ सावर्णेश्च मनोः पुत्रा भविष्या दश शौनक॥ इहाष्टमं हि कथितं नवमं चान्तरं शृणु ॥ ४० ॥ प्रथमं दक्षसावर्णिं प्रवक्ष्यामि मनुं शृणु ॥ मेधातिथिश्च पौलस्त्यो वसुः कश्यप एव च ॥ ४१ ॥ ज्योतिष्मान्भार्गवश्चैव धृतिमानंगिरास्तथा ॥ सवनश्चैव वासिष्ठ आत्रेयो हव्य एव च ॥४२॥ पुलहस्सप्त इत्येते ऋषयो रौहितेंतरे ॥ देवतानां गणास्तत्र त्रय एव महामुने ॥४३॥दीक्षापुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः ॥ धृष्टकेतुर्दीप्त केतुः पंचहस्तो निराकृतिः ॥ ४४ ॥ पृथुश्रवा भूरिद्युम्नो ऋचीको बृहतो गयः ॥ प्रथमस्य तु सावर्णेर्नव पुत्रा महौजसः॥ ४५ ॥ दशमे त्वथ पर्याये द्वितीयस्यांतरे मनोः ॥ हविष्मान्पुलहश्चैव प्रकृतिश्चैवभार्गवः ॥.४६ ॥ आयो मुक्तिस्तथात्रेयो वसिष्ठश्चाव्ययस्स्मृतः ॥ पौलस्त्यः प्रयतिश्चैव भासारश्चैव कश्यपः ॥ ४७ ॥ अङ्गिरानेनसस्सत्यः सप्तैते परमर्षयः ॥ देवतानां गणाश्चापि द्विषिमंतश्च ते स्मृताः ॥ ॥ ४८ ॥ तेषामिन्द्रस्स्मृतः शम्भुस्त्वयमेव महेश्वरः ॥ अक्षत्वानुत्तमौजाश्च भूरिषेणश्च वीर्यवान् ॥ ४९ ॥

तीन गण हैं ॥ ४३ ॥ वे दीक्षापुत्र प्रजापति रोहितके पुत्र होंगे धृष्टकेतु, दीप्तिकेतु, पंचहस्त निराकृति ॥ ४४ ॥ पृथुश्रवा, भूरिद्युम्न, ऋचीक, बृहत, गये, यह प्रथम सावर्णिके नौ पुत्र महातेजस्वी होंगे ॥ ४५ ॥ जब दूसरे मनुके अन्तरमें दशवां मनु होगा उसमें पुलहवंशी हविष्मान्, भृगुवंशी प्रकृति ॥ ४६ ॥ अत्रिवंशी आयोमुक्ति, वशिष्ठवंशी अव्यय, पुलस्त्यवंशी प्रयति, कश्यपवंशी भासार, ॥ ४७ ॥ अंगिरावंशी अनेनस् यह सात परमर्षि होंगे इसमें द्विष्मन्त नामवाले देवताओंके गण होंगे ॥ ४८ ॥ उनके इन्द्र साक्षात् शम्भु होंगे अक्षत्वान्

उत्तमौजा, वीर्यवान्, भूरिषेण ॥ ४९ ॥ शतानीक, निरामित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न, सुवर्चा, अर्चि यह मनुके दश पुत्र होंगे ॥ ५० ॥ जब तीसरेके अन्तरमें ग्यारवां मनु होगा उसमेंके सात ऋषि तुमसे कहता हूं ॥ ५१ ॥ कश्यपवंशी हविष्मान्, वरुणवंशी वपुष्मान्, अत्रिवंशी वशिष्ठ, अंगिरावंशी अनय ॥ ५२ ॥ पुलस्त्यवंशी चारुधृश्य, निस्वर और तेजस अग्नि यह सात ऋषि और तीन देवताओंके गण होंगे ॥ ५३ ॥ यह ब्रह्माके पुत्र वैधृत कहावेंगे सर्वग, सुशर्मा, देवानीक क्षेमक, ॥ ५४ ॥ दृढेषु, खंडक, दर्श, कुहू, बाहू यह

शतानीको निरामित्रो वृषसेनो जयद्रथः ॥ भूरिद्युम्नः सुवर्चार्चिर्दश त्वेते मनोस्सुताः ॥५०॥ एकादशे तु पर्याये तृतीयस्यांतरे मनोः ॥ तस्यापि सप्त ऋषयः कीर्त्यमानान्निबोध मे ॥५१॥ हविष्मान्कश्यपश्चापि वपुष्मांश्चैव वारुणः ॥ अत्रेयोऽथ वसिष्ठश्च ह्यनयस्त्वंगिरास्तथा ॥५२॥ चारुधृष्यश्च पौलस्त्यो निःस्वरोऽग्निस्तु तैजसः ॥ सप्तैते ऋषयः प्रोक्तास्त्रयो देवगणास्स्मृताः ॥५३॥ ब्रह्मणस्तु सुतास्ते हि ते इमे वैधृताः स्मृताः ॥ सर्वगश्च सुशर्म्मा च देवानीकस्तु क्षेमकः ॥५४॥ दृढेषु खंडको दर्शः कुहुर्बाहुर्मनो स्मृताः ॥ सावर्णस्य तु पौत्रा वै तृतीयस्य नव स्मृताः ॥५५॥ चतुर्थस्यतु सावर्णेर्ऋषीन्सप्त निबोध मे ॥ द्युतिर्वसिष्ठपुत्रश्च आत्रेयस्सुतपास्तथा ॥५६॥ अंगिरास्तपसो मूर्तिस्तपस्वी कश्यपस्तथा ॥ तपोधनश्च पौलस्त्यः पुलहश्च तपोरतिः ॥ ५७ ॥ भार्गवस्सप्तमस्तेषां विज्ञेय तपसो निधिः ॥ पंच देवगणाः प्रोक्ता मानसा ब्रह्मणस्सुताः ॥५८॥ ऋतधामा तदिन्द्रो हि त्रिलोकी राज्यकृत्सुखी ॥ द्वादशे चैव पर्याये भाव्ये रौच्यांतरे मुने ॥५९॥ अंगिराश्चैव धृतिमान्पौलस्त्यो हव्यवांस्तु यः ॥ पौलहस्तत्त्व दर्शी च भार्गवश्च निरुत्सवः ॥ ६० ॥ निष्प्रपंचस्तथात्रेयो निर्देहः कश्यपस्तथा ॥ सुतपाश्चैव वासिष्ठस्सप्तैवैते महर्षयः ॥६१॥

मनुपुत्र होंगे यह तीसरे सावर्णि मनुके नौ पौत्र होंगे ॥ ५५ ॥ चतुर्थ सावर्णिके ऋषि सुनो वशिष्ठपुत्र द्युति, अत्रिगोत्री सुतपा ॥ ५६ ॥ तपोमूर्ति अंगिरा, तपस्वी, कश्यप, तपोधन पौलस्त्य, तपोरति पुलह ॥ ५७ ॥ और सातवें तपोनिधि भार्गव, ये सप्तर्षि जानने ब्रह्माजीके मानसी पुत्र पांच इसमें देवता जानने ॥५८॥ त्रिलोकीका राज्य करनेवाला ऋतधनामक इन्द्र होगा, फिर बारहवें रौच्यनाम मन्वन्तरमें ॥५९॥ धृतिमान् अंगिरा, हव्यवान्, पौलस्त्य, तत्त्वदर्शी पौलह, निरुत्सव, भार्गव, ॥ ६० ॥ प्रपंच रहित आत्रेय, निर्देह कश्यप, वशिष्ठवंशी सुतपा, यह सप्तर्षि

होंगे ॥६१॥ स्वयंभूने इसमें देवताओंके तीन गण कहे हैं इनके इन्द्रका नाम दिवस्पति होगा विचित्र, चित्र॥६२॥नय, धर्म, धृतोंध्र, सुनेत्र क्षत्र वृद्धक निर्भय सुतपा द्रोण यह रौच्य मनुके पुत्र होंगे ॥६३॥ ❀ चौदहवें सत्यमनुके पर्यायमें कश्यपवंशी आग्नीध्र, पुलस्त्यवंशी मागध,॥६४॥ भृगुवंशी अतिवाह्य, शुचिनामा आंगिरस, अत्रिगोत्री युक्त वशिष्ठके पोते ॥ ६५ ॥ अजित और पुलह यह अन्तके मन्वन्तरमें सात ऋषि होंगे पवित्रको आदि लेकर चाक्षुष देवता होंगे इस मन्वन्तरमें शुचिनामक इन्द्र होगा॥६६॥इन अतीत अनागत महर्षियोंको जो सदा प्रातःकाल उठकर

त्रय एव गणाः प्रोक्ता देवतानां स्वयंभुवा॥ दिवस्पतिस्तमिन्द्रो वै विचित्रश्चित्र एव च ॥ ६२ ॥ नयो धर्मो धृतोंध्रश्च सुनेत्रः क्षत्रवृद्धकः ॥ निर्भयस्सुतपा द्रोणो मनो रौच्यस्य ते सुताः ॥ ६३ ॥ चतुर्दशे तु पर्याये सत्यस्यैवांतरे मनोः ॥ आग्नीध्रः काश्यपश्चैव पौलस्त्यो मागधश्चयः ॥६४॥ भार्गवोऽप्यतिवाह्यश्च शुचिरांगिरसस्तथा ॥ युक्तश्चैव तथात्रेयः पौत्रो वाशिष्ठ एव च ॥ ६५ ॥ अजितः पुलहश्चैव ह्यंत्यास्सप्तर्षयश्च ते ॥ पवित्राश्चाक्षुषा देवाः शुचिरिन्द्रो भविष्यति ॥ ६६ ॥ एतेषां कल्य उत्थाय कीर्तनात्सुखमेधते ॥ अतीतानागतानां वै महर्षीणां नरैस्सदा ॥ ६७ ॥ देवतानां गणाः प्रोक्ताश्शृणु पंच महा मुने ॥ तुरंगभीरुर्बुध्नश्चतनुग्रोऽनूग्र एव च ॥ ६८ ॥ अतिमानी प्रवीणश्च विष्णुस्संक्रंदनस्तथा ॥ तेजस्वी सबलश्चैव सत्य स्त्वेते मनोस्सुताः ॥ ६९ ॥ भौमस्यैवाधिकारे वै पूर्वकल्पस्तु पूर्यते ॥ इत्येतेऽनागताऽतीता मनवः कीर्तिता मया ॥ ७० ॥

कीर्तन करते हैं वे सुख पाते हैं ॥ ६७ ॥ हे महामुने ! इस चौदहवें मनुमें देवताओंके पांच गण होंगे और तुरंगभीरु बुध्न तनुग्र, अनूग्र ॥ ६८ ॥ अति मानी प्रवीण विष्णु संक्रन्दन तेजस्वी सबल यह सत्य मनुके पुत्र होंगे ॥ ६९ ॥ भौम मनुके अधिकारमें पूर्वकल्प पूर्ण हो जाता है यह

* यहां एक मन्वन्तर किसी प्रकार छूट गया है सो हमने ग्रन्थांतरसे त्रुटि पूर्ण की है तेरहवां मनु आत्मज्ञानी सावर्णि होगा चित्रसेन विचित्र आदि उसके पुत्र होंगे ॥ १ ॥ सुकर्म सुत्राम नामवाले देवता और दिवस्पति नामवाला इन्द्र होगा निर्मोक तत्त्वदर्शी आदि सप्तऋषि होंगे ॥ २ ॥

* मनुस्त्रयोदशो भाव्यो देवसावर्णिरात्मवान्॥चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिदेहजाः ॥१॥ देवाः सुकर्मसुत्रामसंज्ञा इन्द्रो दिवस्पतिः ॥ निर्मोकतत्त्वदर्शाद्या भविष्यन्त्यृषयस्तदा ॥ २ ॥

मैंने तुमसे भूत और भविष्यके मनु कीर्तन किये ॥ ७० ॥ यह सनत्कुमारने व्यासजीके प्रति कीर्तन किये हैं, जो व्यासजी महातेजस्वी हैं यह मनु अपने धर्मसे सहस्रयुगतक पालना करते हैं ॥ ७१ ॥ पीछे तपसे युक्त प्रजाके सहित वे ब्रह्मलोकको जाते हैं, सत्तर चौसडी और एक चौकडी युगतक एक मन्वन्तरकी स्थिति रहती है ॥ ७२ ॥ यह आपसे कीर्त्तिके बढानेवाले चौदह मनु कहे हैं सब मनुओंके संहारके अन्त में फिर सृष्टि होती है ॥ ७३ ॥ सौ वर्षमें भी उनका अन्तर कोई नहीं कह सकता सौ हजार युगकी पूर्तिमें कल्प समाप्त होता है ॥ ७४ ॥ उस समय सूर्यकी किरणोंसे सब प्राणी दग्ध होने लगते हैं हे मुने ! तब सत् आदित्य आदि ब्रह्माजीको आगे करके ॥ ७५ सुरोंमें श्रेष्ठ

उक्तास्सनत्कुमारेण व्यासायामिततेजसा ॥ पूर्णे युगसहस्रांते परिपाल्यः स्वधर्मतः ॥ ७१ ॥ प्रजाभिस्तपसा युक्ता ब्रह्मलोकं व्रजंति ते ॥ युगानि सप्रतिस्त्वेकं साग्राण्यंतरमुच्यते ॥ ७२ ॥ चतुर्दशैते मनवः कीर्तिता कीर्तिवर्धनाः ॥ मन्वंतरेषु सर्वेषु संहारांते पुनर्भवः ॥ ७३ ॥ न शक्यमन्तरं तेषां वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ पूर्णे शतसहस्रे तु कल्पो निःशेष उच्यते ॥ ७४ ॥ ॥ ७५ ॥ तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यरश्मिभिः ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सदादित्यगणैर्मुने ॥७६॥ प्रविशंति सुरश्रेष्ठ हरिं नारायणं परम्॥स्रष्टारं सर्व भूतानां कल्पांतेषु पुनःपुनः ॥ ७७ ॥ भूयोपि भगवान् रुद्रस्संहर्ता काल एव हि ॥ कल्पांते तत्प्रवक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य वै ॥ ॥ इति ते कथितं सर्वं मन्वंतरसमुद्भवम् ॥ विसर्गं पुण्यमाख्यानं धन्यं कुलविवर्द्धनम् ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सर्वमन्वंतरानुकीर्तनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ विवस्वान्कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यां महाऋषेः ॥ तस्य भार्याऽभवत्संज्ञा त्वाष्ट्री देवी सुरेणुका ॥ १ ॥

हरि नारायणमें प्रवेश करजाते हैं यह कल्पान्तमें सब भूतोंको बारंबार उत्पन्न करते हैं ॥ ७६ ॥ फिर भी कालस्वरूप भगवान् शिवकी कल्पान्त में संहार करनेवाले हैं अब वैवस्वत मन्वन्तरको वर्णन करूंगा ॥ ७७ ॥ इस प्रकार यह मन्वन्तरोंकी उत्पत्ति सहित प्रशंसनीय कुलके बढाने वाला विसर्ग सम्बन्धी पवित्र इतिहास तुमसे कहा ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० सर्वमन्वन्तरानुकीर्तनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥सूतजी बोले, महर्षि कश्यपसे दाक्षायणीमें विवस्वान् (सूर्य) उत्पन्न हुए उनकी स्त्री त्वाष्ट्री सुरेणुका देवी हुई ॥ १ ॥

हे मुने ! वह रूप यौवनकी विस्तार करनेवाली अपने पतिके महादुस्सह तेजसे सन्तुष्ट नहीं हुई ॥ २ ॥ अतितेजस्वी सूर्यके तेजको न सहनेवाली सुन्दरवर्णयुक्त वह संज्ञा दह्यमान हो उद्वेग करने लगी ॥३॥ हे ऋषे ! उस समय सूर्यने इस संज्ञामें तीन सन्तान उत्पन्न किये पहले मनु श्राद्धदेव प्रजापति ॥४॥ तथा यम और यमुना यह दोनों एक साथ उत्पन्न हुए इस प्रकार उसमें सूर्यसे तीन सन्तान उत्पन्न हुई ॥ ५॥ संज्ञाने सूर्यके

मुनेऽसहिष्णुना तेन तेजसा दुस्सहेन च ॥ भर्तृरूपेण नातुष्यद्रूपयौनवशालिनी ॥ २ ॥ आदित्यस्य हि तद्रूपमसहिष्णुस्सुते जसः ॥ दह्यमाना तदोद्वेगमकरोद्वरवर्णिनी ॥ ३ ॥ ऋषेऽस्यां त्रीण्यपत्यानि जनयामास भास्करः ॥ संज्ञायां तु मनुःपूर्वं श्राद्ध देवः प्रजापतिः ॥ ४ ॥ यमश्च यमुना चैव यमलौ संबभूवतुः ॥ एवं हि त्रीण्यपत्यानि तस्यां जातानि सूर्य्यतः ॥५॥ संवर्तुलं तु तद्रूपं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः॥ असहंती ततश्छायामात्मनस्साऽसृजच्छुभाम् ॥६॥ मायामयी तु सा संज्ञामवोचद्भक्तितश्शुभे ॥ किं करोमीह कार्य्यं ते कथयस्व शुचिस्मिते ॥७॥ संज्ञोवाच ॥ अहं यास्यामि भद्रं ते ममैव भवनं पितुः ॥ त्वयैतद्भवने सत्यं वस्तव्यं निर्विकारतः ८ ॥ इमौ मे बालकौ साधू कन्या चेयं सुमध्यमा ॥ पालनीयाः सुखेनैव मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ ९ ॥ छायोवाच ॥ आकेशग्रहणाद्देवि सहिष्येऽहं सुदुष्कृतम् ॥ नाख्यास्यामि मतं तुभ्यं गच्छ देवि यथासुखम् ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ता साऽगमद्देवी व्रीडिता सन्निधौ पितुः ॥ पित्रा निर्भर्त्सिता तत्र नियुक्ता सा पुनः पुनः ॥ ११ ॥

उस गोलाकार स्वरूपको देख न सहके अपनी शुभ छायाको निर्माण किया ॥६॥ वह मायारूपी छाया भक्तिपूर्वक संज्ञासे यह बोली हे शुभे ! हे शुचिस्मिते ! तेरा क्या कार्य करूं ? सो सब कह ॥७॥ संज्ञा बोली, मैं अपने पिताके घर जाती हूं तेरा कल्याण हो तुम यहां बिना विकारसे निवास करो ॥ ८ ॥ यह मेरे दोनों श्रेष्ठ बालक तथा यह मध्यमा कन्या भी सुखसे पालनी चाहिये यदि तू मेरा हित चाहती है ॥९॥ छाया बोली, हे देवि ! केश ग्रहणपर्यन्त मैं कठिनाईको सहूँगी और तेरा रहस्यवृत्त सूर्यसे न कहूंगी हे देवि ! तू सुखसे जा ॥ १० ॥ सूतजी बोले,

ऐसा कहके वह संज्ञा देवी लज्जित हो पिताके समीप चली गई तब पितासे बारम्बार ललकारी हुई वहीं जानेको नियुक्त की गई ॥ ११ ॥ तब अपने स्वरूपको छिपाय घोडी बनके उत्तर कुरु देशोंमें प्राप्त होके मनुष्योंके मध्यमें विचरने लगी ॥ १२ ॥ सूर्यने संज्ञाको मान उस छायामें सावर्णिमनु नामवाले सुन्दर पुत्रको उत्पन्न किया ॥ १३ ॥ संज्ञासे प्रार्थना की हुई वह छाया अपने पुत्रमें नित्य अधिक स्नेह करती थी उतना स्नेह पहले पुत्रोंमें नहीं करती थी ॥ १४ ॥ छोटा भाई तो असमर्थ था अतः यम उसको नहीं सहता था बाल्यावस्थासे तथा अर्थके गौरव होनेसे क्रोधित होके ॥ १५ ॥ जब वैवस्वत यमने छायाको धिक्कारा तो क्रोधित हुई छायाने उसे शाप दिया ॥ १६ ॥ कि

अगच्छद्धडवा भूत्वाऽऽच्छाद्य रूपं ततस्स्वकम् ॥ कुरुंस्तदोत्तरान्प्राप्य नृणां मध्ये चचार ह ॥ १२ ॥ संज्ञां तां तु रविर्मत्वा छायायां सुसुतं तदा ॥ जनयामास सावर्णिं मनुं वै सविता किल ॥ १३ ॥ संज्ञाऽनुप्रार्थिता छाया सा स्वपुत्रेऽपि नित्यशः ॥ चकाराभ्यधिकं स्नेहं न तथा पूर्वजे सुते ॥ १४ ॥ अनुजश्चाक्षमस्तत्तु यमस्तं नैव चक्षमे ॥ स सरोषस्तु बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य गौरवात् ॥ १५ ॥ छायां संतर्जयामास यदा वैवस्वतो यमः ॥ तं शशाप ततः क्रोधाच्छाया तु कलुषीकृता ॥ १६ ॥ चरणः पततामेष तवेति भृशरोषितः ॥ यमस्ततः पितुस्सर्वं प्रांजलिः प्रत्यवेदयत् ॥ १७ ॥ भृशं शापभयोद्विग्नस्संज्ञावाक्यैर्विचेष्टितः ॥ मात्रा स्नेहेन सर्वेषु वर्तितव्यं सुतेषु वै ॥ १८ ॥ स्नेहमस्मास्वपाकृत्य कनीयांसं बिभर्ति सा ॥ तस्मान्मयोद्यतः पादस्तद्भवान् क्षंतुमर्हति ॥ १९ ॥ शप्तोहमस्मि देवेश जनन्या तपतांवर ॥ तव प्रसादाच्चरणो न पतेन्मम गोपते ॥ २० ॥ सवितोवाच ॥ असंशयं पुत्र महद्भविष्यत्यत्र कारणम् ॥ येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञ सत्यवादिनम् ॥ २१ ॥

अत्यन्त रोषित हुआ तेरा यह चरण गिर जाय उसके पीछे यमने हाथ जोडके अपने पितासे सब निवेदन किया ॥ १७ ॥ शापके भयसे अति दुःखी हुआ तथा संज्ञाके वाक्योंसे चेष्टित हो यमने कहा सम्पूर्ण पुत्रोंमें माताको समान स्नेहसे वर्तना चाहिये ॥ १८ ॥ वह माता हममें स्नेह हटाके छोटे भाईको पालती है इस कारण मैंने चरणका प्रहार किया उसे आप क्षमा करनेके योग्य हैं ॥ १९ ॥ हे देवेश ! हे तपस्वियोंमें श्रेष्ठ ! मुझे माताने शाप दिया हे गोपते ! तुम्हारे प्रसादसे मेरा चरण नहीं गिरेगा ॥२०॥ सूर्य बोले, हे पुत्र ! इसमें

निस्सन्देह बडा कारण होगा जिससे धर्मात्मा सत्यवादी तुमको क्रोध आगया ॥ २१ ॥ और तेरी माताका वचन मिथ्या करनेको नहीं शक्य है अवश्य ही कृमि कीडे चरणके मांसको लेके पृथ्वीपर जायँगे ॥ २२ ॥ हे तात ! हे प्रभो ! वह शाप सत्य होगा और तू रक्षित होगा अब निस्सन्देह अपने मनको सावधान करो ॥ २३ ॥ सूतजी बोले, हे मुनीश्वर ! इस प्रकार सूर्यने यम नामक अपने पुत्रसे कहके अपनी स्त्री छायासे क्रोधित हो यह कहा ॥ २४ ॥ सूर्य बोले, हे कुबुद्धि ! हे चंडि ! हे प्रिये ! यह तूने क्या किया ? क्यों तेरा इनमें अत्यन्त प्रेम है यह कहनेके योग्य है ॥ २५ ॥ सूतजी बोले, वह छाया सूर्यका यह वचन सुनके सब ठीक ठीक निवेदन करने लगी

न शक्यते तन्मिथ्या वै कर्त्तुं मातृवचस्तव ॥ कृमयो मांसमादाय गमिष्यंति महीतले ॥२२॥ तद्वाक्यं भविता सत्यं त्वं च त्रातो भविष्यसि ॥ कुरु तात न संदेहं मनश्चाश्वास्य स्वं प्रभो ॥ २३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ता तनयं सूर्यो यमसंज्ञं मुनीश्वर ॥ आदित्यश्चाब्रवीत्तान्तु छायां क्रोधसमन्वितः ॥२४॥ सूर्य उवाच ॥ हे प्रिये कुमते चंडि किं त्वयाऽऽचरितं किल॥किं तु मेऽभ्यधिकः स्नेह एतदाख्यातुमर्हसि ॥२५॥ सूत उवाच ॥ सा रवेर्वचनं श्रुत्वा यथा तथ्यं न्यवेदयत् ॥२६॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सूर्योऽगात्त्वष्टुरन्तिकम् ॥ पप्रच्छ तं क्व संज्ञेति त्वष्टा सूर्यमथाब्रवीत्॥२७॥त्वष्टोवाच॥तवातितेजसा दग्धाइदं रूपं न शोभते॥ असहंती च तत्संज्ञा वने वसति शाद्वले॥२८॥श्लाघ्या योगबलोपेता योगमासाद्य गोपते॥अनुकूलस्तु देवेश संदिश्यात्ममयं मतम् ॥२९॥ रूपं निवर्तयाम्यद्य तव कांतं यथा भवेत् ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वाऽपगतः क्रोधो मार्तण्डस्य विवस्वतः ॥३०॥

॥ २६ ॥ सूतजी बोले, उस छायाका यह वचन सुनके सूर्य त्वष्टाके समीप गये और उसको पूछने लगे कि संज्ञा कहां है तब त्वष्टा बोले ॥ २७ ॥ त्वष्टा कहने लगे कि तुम्हारे अति तेजसे जलती हुई उसे यह रूप शोभित नहीं हुआ अतः तुम्हें सहन न करती हुई वह संज्ञा तृणयुक्त वनमें निवास करती है ॥ २८ ॥ हे गोपते ! हे देवेश ! योगको प्राप्त होके योग बलसे प्राप्त हुई संज्ञा श्लाघा करने योग्य है अपने मतको कहके अनुकूल होओ ॥२९॥ उसपर कृपा करो आज्ञा दो अब तुम्हारे रूपको मैं ऐसा निर्वर्तन करूँगा कि जिससे आपका रूप मनोहर

होजायगा सूतजी बोले, यह सुनके सूर्य भगवान्का क्रोध दूर होगया ॥ ३० ॥ तब मुनिने भ्रमियंत्र (शान धरनेका गोल पहिया) आरोपण करके सूर्य देवका विकट तेज छीलदिया तब उस तेजके कम होजानेसे सूर्यदेवका रूप शोभा पाने लगा ॥ ३१ ॥ इस प्रकार परम मनोहर रूप होजानेसे सूर्यदेव बहुत शोभित होते भये और फिर योगमें स्थित होकर अपनी भार्याको देखा ॥ ३२ ॥ कि वह अपने नियम और तेजसे सब प्राणियोंसे अदृश्य होरही है, तब मैथुनकी इच्छासे सूर्य अश्वरूप धारणकर वहाँ गये ॥ ३३ ॥ तब उसने परपुरुषकी इच्छासे यह न होने दिया उस समय सूर्यका वीर्य उसकी नासिकापर दो खण्ड हो गिरा ॥ ३४ ॥ उससे देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमार युगल

भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातयामास वै मुनिः ॥ ततो विभ्राजितं रूपं तेजसा संवृतेन च ॥ ३१ ॥ कृतं कांततरं रूपं त्वष्ट्रा तच्छुशुभे तदा ॥ ततोभियोगमास्थाय स्वां भार्य्यां हि ददर्श ह ॥३२॥ अधृष्यां सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च ॥ सोऽश्वरूपं समास्थाय गत्वा तां मैथुनेच्छया॥३३॥मैथुनाय विचेष्टंतीं परपुंसोभिशंकया ॥ मुखतो नासिकायां तु शुक्रं तत् व्यदधान्मुने ॥३४॥ देवौ ततः प्रजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ ॥ नासत्यौ तौ च दस्रौ च स्मृतौ द्वावश्विनावपि ॥३५॥ तौ तु कांतेन रूपेण दर्शयामास भास्करः ॥ आत्मानं सा तु तं दृष्ट्वा प्रहृष्टा पतिमादरात् ॥ ३६ ॥ पत्या तेन गृहं प्रायात्स्वं सती मुदितानना ॥ मुमुदातेऽथ तौ प्रीत्या दंपती पूर्वतोधिकम् ॥ ३७ ॥ यमस्तु कर्मणा तेन भृशं पीडितमानसः ॥ धर्मेण रंजयामास धर्मराज इमा प्रजाः ॥ ३८ ॥ लेभे स कर्मणा तेन धर्मराजो महाद्युतिः ॥ पितृणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च ॥ ३९ ॥ मनुः प्रजापति स्त्वासीत्सावर्णिस्स तपोधनः ॥ भाव्यः स कर्मणा तेन मनोस्सावर्णिकेंतरे ॥ ४० ॥

जन्मे उनमें नासत्य और दस्र दोनोंके नाम हुए ॥ ३५ ॥ उन दोनोंको सूर्यने अपने परमसनोहर रूपसे दर्शन दिया, तब वह संज्ञा अपने पतिको देख परम प्रसन्न हुई ॥ ३६ ॥ और प्रसन्न हो वह सती पतिके सहित घर आई और दोनों स्त्री पुरुष पूर्वसे भी अधिक प्रसन्न हो वहाँ रहने लगे ॥ ३७ ॥ यमराज उस कर्मसे मनमें पीडित हो धर्मसे प्रजाको प्रसन्न करने लगे ॥ ३८ ॥ इस कर्मसे धर्मराजकी महाकान्ति प्राप्त हुई इनको पितरोंका आधिपत्य तथा लोकपालत्व प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ और तपोधन सावर्णिमनुको प्रजापतिका पद मिला

वह इस कर्मसे मनुसावर्णिके अंतरमें भाव्य मनु होंगे ॥ ४० ॥ वह इस समय सुमेरुपर्वतपर घोर तप कर रहे हैं इन सूर्यकी जो छोटी श्रेष्ठ कन्या यमी थी ॥ ४१ ॥ वह लोकोंकी पवित्र करनेवाली यमुना हुई लोकमें इनकोमनु वा सावर्णि मनु कहते हैं ॥ ४२ ॥ जो इन देवताओंके जन्मको सुनता वा धारण करता है उसकी आपत्ति दूर होकर उसको यश मिलता है ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ सूतजी बोले, वैवस्वतमनुके पश्चात् नौ पुत्र उनके समान महोन्नत, धीर क्षत्रिय धर्ममें तत्पर हुए ॥ १ ॥ उनके नाम इक्ष्वाकु, शिबि, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, करूष, प्रियव्रत ॥ २ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! पुत्रकी

मेरुपृष्ठे तपो घोरमद्यापि चरते प्रभुः ॥ यवीयसी तयोर्या तु यमी कन्या यशस्विनी ॥४१॥ अभवत्सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकपावनी ॥ मनुरित्युच्यते लोके सावर्णिरिति चोच्यते ॥४२॥ य इदं जन्म देवानां शृणुयाद्धारयेत्तु वा ॥ आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयात्सुमहद्यशः॥४३॥इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां मन्वन्तरकीर्तने वैवस्वतवर्णनं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥ सूत उवाच॥मनोर्वैवस्वतस्यासन्पुत्रा वै नव तत्समाः ॥ पश्चान्महोन्नता धीराः क्षत्रधर्मपरायणाः॥१॥इक्ष्वाकुः शिबिर्नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च॥नरिष्यन्तोऽथ नाभागः करूषश्च प्रियव्रतः॥२॥अकरोत्पुत्रकामस्तु मनुरिष्टिं प्रजापतिः॥अनुत्पन्नेषु पुत्रेषु तत्रेष्ट्यां मुनिपुंगव॥३॥सा हि दिव्यांबरधरा दिव्याभरणभूषिता॥दिव्यसंहनना चैव इला जज्ञे हि विश्रुता॥४॥तामिडेत्येव होवाच मनुर्दण्डधरस्तथा॥अनुगच्छत्व मामेति तमिडा प्रत्युवाच ह॥५॥इडोवाच ॥ धर्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् ॥ मित्रावरुणयोरंशैर्जातास्मि वदतां वर॥६॥ तयोस्सकाशं यास्यामि न मे धर्मे रुचिर्भवेत्॥एवमुक्ता सती सा तु मित्रावरुणयोस्ततः ॥ ७ ॥

कामनासे मनु प्रजापतिने यज्ञ किया, और पुत्रेष्टिमें पुत्रोंके न उत्पन्न होनेपर ॥ ३ ॥ उस यज्ञसे सुन्दर वस्त्र धारण किये तथा सुन्दर आभूषणोंसे सुशोभित दिव्य आसनपर विराजमान; इला उत्पन्न हुई ॥ ४ ॥ तब दंडधारी मनुने उस इडासे कहा कि, यहां मत आओ तब उनसे इडा बोली ॥ ५ ॥ इडाने कहा हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! यह वाक्य धर्मयुक्त है पुत्रकी कामना करनेवाले प्रजापतिके मित्रावरुणके अंशोंसे मैं उत्पन्न हुई हूँ ॥ ६ ॥ मैं उनके समीप जाती हूं मेरी इस धर्ममें रुचि न होगी ऐसा कहके वह सती मित्रावरुणके

समीप जाके अंजलि बांध यह वचन बोली हे महामुने ! मैं मनुके यज्ञमें तुम्हारे अंशोंसे उत्पन्न हुई हूं ॥ ७ ॥ ८ ॥तुम दोनोंके समीप आई हूं मुझे बताओ क्या करूं ? हे विभो ! और पुत्रोंको उत्पन्न करो उनसे तुम्हारा वंश चलेगा ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहती हुई साध्वी मनुके यज्ञमें उत्पन्न हुई उस इडासे वे दोनों मित्रावरुण नामवाले मुनि आदरसे कहने लगे ॥१०॥ मित्रावरुण बोले, हे धर्मज्ञे ! हे सुश्रोणि ! हे सुन्दर वर्णवाली ! तुम्हारी इस दीनतासे तथा दमसे सत्यसे हम दोनों प्रसन्न हुए ॥ ११ ॥ हे महाभागे ! तुम हम दोनोंकी प्रसिद्धिको

गत्वांतिकं वरारोहा प्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ अंशैस्तु युवयोर्जाता मनुयज्ञे महामुनी॥८॥आगता भवतोरंति ब्रूतं किं करवाणि वाम् ॥ अन्यान्पुत्रान्सृज विभो तैर्वंशस्ते भविष्यति॥९॥सूत उवाच॥तां तथावादिनीं साध्वीमिडां मन्वध्वरोद्भवाम्॥मित्रावरुणानामानौ मुनी ऊचतुरादरात् ॥१०॥ मित्रावरुणावूचतुः ॥ अनेन तव धर्मज्ञे प्रश्रयेण दमेन च ॥ सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ द्वौ वरवर्णिनि ॥११॥ आवयोस्त्वं महाभागे ख्यातिं चैव गमिष्यसि॥ मनोर्वंशकरः पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि ॥१२॥ सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥जगत्प्रियो धर्मशीलो मनुवंशविवर्द्धनः॥१३॥सूत उवाच ॥ निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छंती पितुरंतिके ॥ बुधेनांतरमासाद्य मैथुनायोपमंत्रिता ॥ १४ ॥ सोमपुत्रात्ततो जज्ञे तस्यां राजा पुरूरवाः ॥ पुत्रोऽतिसुन्दरः प्राज्ञ उर्वशी पतिरुत्तमः ॥ १५ ॥ जनयित्वा च सा तत्र पुरूरवसमादरात् ॥ पुत्रं शिवप्रसादात्तु पुनस्सुद्युम्नतां गतः ॥ १६ ॥

पाओगी और तुमहीं मनु वंश चलानेवाला पुत्र होगी ॥ १२ ॥ सुद्युम्न नामसे विख्यात तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध संसारके प्रिय धर्म शील मनुके वंशके बढानेवाले होओगे ॥ १३ ॥ सूतजी बोले, ऐसा सुनके लौटी हुई पिताके समीप जाती हुई वह बुधसे अन्तर पाय मैथुनके लिये प्रवृत्त हुई ॥ १४ ॥ तब उसमें सोमपुत्र (बुध) से पुरूरवा नामवाला अति सुन्दर बुद्धिमान् श्रेष्ठ उर्वसीका पति पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १५ ॥ वह वहां पुरूरवा पुत्रको उत्पन्न करके शिवके प्रसादसे फिर सुद्युम्न भावको प्राप्त हुई ॥ १६ ॥

सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रय परमधार्मिकाः ॥ उत्कलश्च गयश्चापि विनताश्वश्च वीर्यवान् ॥ १७ ॥ उत्कलस्योत्कला विप्रा विनताश्वस्य पश्चिमाः ॥ दिक्पूर्वा मुनिशार्दूल गयस्य तु गयाः स्मृताः ॥ १८ ॥ प्रविष्टे तु मनौ तात दिवाकरतनुं तदा ॥ दशधा तत्र तत्क्षेत्रमकरोत्पृथिवीं मनुः ॥१९॥ इक्ष्वाकुः श्रेष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान्॥वसिष्ठवचनादासीत्प्रतिष्ठानं महात्मनः ॥ २० ॥ प्रतिष्ठां धर्मराज्यस्य सुद्युम्नोथ ततो ददौ॥ तत्पुरूरवसे प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशाः ॥ २१ ॥ मानवो यो मुनिश्रेष्ठाः स्त्रीपुंसोर्लक्षणः प्रभुः ॥ नरिष्यंताच्छकाः पुत्रा नभगस्य सुतोऽभवत् ॥ २२ ॥ अंबरीषस्तु बाह्लेयो बाह्लकं क्षेत्रामाप्तवान् ॥ शर्यातिर्मिथुनं त्वासीदानर्तो नाम विश्रुतः ॥२३॥ पुत्रस्सुकन्या कन्या च या पत्नी च्यवनस्य हि ॥ आनर्तस्य हि दायादो रैभ्यो नाम स रैवतः ॥ २४ ॥ आनर्तविषये यस्य पुरी नाम कुशस्थली॥महादिव्य सप्तपुरीमध्ये या सप्तमी मता ॥ २५ ॥ तस्य पुत्रशतं त्वासीत्ककुद्मी ज्येष्ठ उत्तमः ॥ तेजस्वी सुबलः पारो धर्मिष्ठो ब्रह्मपालकः ॥ २६ ॥

सुद्युम्नने दायाद पुत्र तीन परम धार्मिक उत्कल, गय, और विनताश्व हुए ॥ १७ ॥ हे मुनि श्रेष्ठ ! उत्कलके उत्कल ब्राह्मण तथा विनताश्वके पश्चिमी ब्राह्मण गयके पूर्विये गये नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ १८ ॥ हे तात ! मनुके दिवा करके शरीरमें प्रवेश करनेपर मनुने पृथ्वीको दश क्षेत्र रूपमें विभक्त किया ॥ १९ ॥ इक्ष्वाकु नामक श्रेष्ठ दायदने मध्य देशको पाया और महात्मा वसिष्ठजीके वचनसे बडी प्रतिष्ठाको पाया ॥ २० ॥ फिर सुद्युम्नने उन पुरूरवाको धर्म राज्यकी पदवी दी और वहांका राज्य दिया ॥ २१ ॥ हे मुनि श्रेष्ठ ! और जो स्त्री पुरुषके

लक्षणवाले प्रभु नरिष्यन्त थे उससे शक, नभगके पुत्र हुए ॥ २२ ॥ अम्बरीष वाह्लेयने वाह्लक क्षेत्रको पाया शर्यातिने मिथुनको पाया और आनर्त्त नामसे विख्यात हुए ॥ २३ ॥ और सुकन्या पुत्री च्यवन ऋषिकी पत्नी हुई आनर्त्तके दायाद रैभ्य रैवत नामसे विख्यात हुए ॥ २४ ॥ जिनकी कुशस्थली नामवाली पुरी आनर्त्त विषयमें बसी जो बडी सुन्दर तथा सातों पुरियोंमें सातवीं मानीं गई है ॥ २५ ॥ उनके सौ पुत्र हुए उनमें ककुद्मी सबसे बडा और श्रेष्ठ तेजस्वी अतिबली पारगामी धर्मात्मा ब्राह्मणोंका पालन करने वाला हुआ ॥ २६ ॥

ककुद्मीके रेवती नामक कन्या हुई जो बडी रूपवती मानो दूसरी लक्ष्मी थी ॥ २७ ॥ सर्वाधीश ककुद्मी राजा अपनी कन्याके सहित वरके अन्वेषण करनेको ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके समीप गये ॥ २८ ॥ उस समय वहां गन्धर्वलोग गा रहे थे यह अवसर पाय क्षणमात्र स्थित हुए और ब्रह्माजीके समीपमें गाना नाच देखने सुनने लगे ॥ २९ ॥ उस समय क्षणमात्रके समान बहुत युग बीत गये कि, ककुद्मी राजाने कुछ नहीं जाना ॥ ३० ॥ तब उन्होंने ब्रह्माजीको नमस्कार करके हाथ जोड विनीत हो परमात्मा चतुराननसे अपना अभिप्राय निवेदन किया ॥ ३१ ॥ उनके अभिप्रायको सुनके ब्रह्माजी हँसके महाराज ककुद्मीसे यह बोले ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे राजन् !

ककुद्मिनस्तु संजाता रेवती नाम कन्यका॥महालावण्यसंयुक्ता दिव्यलक्ष्मीरिवापरा॥२७॥प्रष्टुं कन्यावरं राजा ककुद्मी कन्यया सह ॥ ब्रह्मलोके विधेस्सम्यक्सर्वाधीशो जगाम ह॥२८॥आवर्तमाने गांधर्वे स्थितो लब्धक्षणः क्षणम् ॥ शुश्राव तत्र गांधर्वं नर्तने ब्रह्मणोऽतिके ॥ २९ ॥ मुहूर्तभूतं तत्काले गतं बहुयुगं तदा ॥ न किंचिद्बुबुधे राजा ककुद्मी मुनयस्स तु ॥३०॥ तदासौ विधिमा नम्य स्वाभिप्रायं कृतांजलिः॥न्यवेदयद्विनीतात्मा ब्रह्मणे परमात्मने ॥३१॥ तदभिप्रायमाकर्ण्य स प्रहस्य प्रजापतिः ॥ ककुद्मिनं महाराजं समाभाष्य समब्रवीत् ॥३२॥ ब्रह्मोवाच॥शृणु राजन्नैभ्यसुत ककुद्मिन्पृथिवीपते॥ मद्वचः प्रीतितस्सत्यं प्रवक्ष्यामि विशेषतः ॥३३॥ कालेन संहृतास्ते वै वरा ये ते कृता हृदि॥ न तद्गोत्रं हि तत्रास्ति कालस्सर्वस्य भक्षकः ॥३४॥ त्वत्पुर्य्यपि हता पुण्यजनैस्सा राक्षसैर्नृप॥अष्टाविंशद्वापरेऽद्य कृष्णेन निर्मिता पुनः॥३५॥कृता द्वारावती नाम्ना बहुद्वारा मनोरमा ॥ भोजवृष्ण्यंधकैर्गुप्ता वासुदेवपुरोगमैः॥३६॥तद्गच्छ तत्र प्रीतात्मा वासुदेवाय कन्यकाम् ॥ बलदेवाय देहि त्वमिमां स्वतनयां नृप॥३७॥

हे रैभ्यके पुत्र पृथिवीपते ! हे ककुद्मिन् ! मेरा वचन प्रीतिसे सुनो मैं सत्य सत्य कहता हूं ॥ ३३ ॥ जो वर तुम चाहते हो वे कालने हरण कर लिये वहां उनका गोत्र भी नहीं रहा कारण कि, काल सबका भक्षक है ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! पुण्यजनों (राक्षसों) ने तुम्हारी पुरी भी नष्ट कर दी अठाईसवें द्वापरमें अब फिर कृष्णने पुरी निर्माण की है ॥ ३५ ॥ उस द्वारावती नामवाली अनेक द्वारवाली मनोहर गुप्तपुरीको वासुदेव आदि भोज वृष्णि अन्धक वंशियोंने बनाया है ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! वहां प्रसन्न मनसे जाओ और अपनी कन्या

बलदेवको प्रदान करो ॥ ३७ ॥ सूतजी बोले, ऐसी आज्ञा पाय वह राजा ब्रह्माको नमस्कार करके उस कन्याको लेके उस पुरीको गये बहुत युगोंको बीता जान कन्याके विषयमें विस्मित हुये ॥ ३८ ॥ तब उसने उस युवती रेवती नामवाली अपनी कन्याको विधि विधानसे श्रीकृष्ण जीके भाई बलरामको प्रदान किया ॥ ३९ ॥ तब महाप्रभु वह राजा सुमेरु पर्वतके सुन्दर शिखरपर गये और वहां तपमें स्थित हो शिवका आराधन करने लगे ॥ ४० ॥ ऋषि बोले, वहां ब्रह्मलोकमें बहुत युगोंतक स्थित हुए वह रेवती युवाही मर्त्यलोकको प्राप्त हुए यह मुझे बडा संशय है ॥ ४१ ॥ सूतजी बोले, हे मुनीश्वरो ! वहां ब्रह्माके समीप जरा, क्षुधा, प्यास वा विकार तथा किसीकी अकालमृत्यु

सूत उवाच ॥ इत्यादिष्टो नृपोऽयं तं नत्वा तां च पुरीं गतः ॥ गतान्बहून्युगाञ्ज्ञात्वा विस्मितः कन्यया युतः ॥३८॥ततस्तु युवतीं कन्यां तां च स्वां सुविधानतः ॥ कृष्णभ्रात्रे बलायाशु प्रादात्तत्र स रेवतीम् ॥३९॥ ततो जगाम शिखरं मेरोर्दिव्यं महाप्रभुः ॥ शिवमाराधयामास स नृपस्तपसि स्थितः ॥४०॥ ऋषय ऊचुः ॥ तत्र स्थितो बहुयुगं ब्रह्मलोके स रेवतः ॥ युवैवागान्मर्त्यलोक मेतन्नः संशयो महान्॥४१॥सूत उवाच ॥ न जरा क्षुत्पिपासा वा विकारास्तत्र संति वै ॥ अपमृत्युर्न केषांचिन्मुनयो ब्रह्मणोऽतिके ॥४२॥ अतो न राजा संप्राप जरां मृत्युं च सा सुता ॥ स युवैवागतस्तत्र संमंत्र्य तनयावरम् ॥४३॥ गत्वा द्वारावतीं दिव्यां पुरीं कृष्णविनिर्मिताम् ॥ विवाहं कारयामास कन्यायाः स बलेन हि ॥४४॥ तस्य पुत्रशतं त्वासीद्धार्मिकस्य महाप्रभो ॥ कृष्णस्यापि सुताजाता बहुस्त्रीभ्योऽमितास्ततः ॥४५॥ अन्ववायो महांस्तत्र द्वयोरपि महात्मनोः ॥ क्षत्रिया दिक्षु सर्वासु गता हृष्टास्सुधार्मिकाः ॥४६॥ इति प्रोक्तो हि शर्यातेर्वंशोऽन्येषां वदाम्यहम् ॥ मानवानां हि संक्षेपाच्छृणुतादरतो द्विजाः ॥ ४७ ॥

आदि कुछ नहीं होती ॥ ४२ ॥ इस कारण वह राजा तथा कन्या जरा और मृत्युको नहीं प्राप्त हुए और वह अपनी श्रेष्ठ कन्याको साथ लेके युवाही वहांसे आये ॥ ४३ ॥ और श्रीकृष्णजीसे रची हुई द्वारापुरी सुन्दर पुरीमें जाके बलरामके साथ अपनी कन्याका विवाह कराया ॥ ४४ ॥ तब उन महाप्रभु बलरामके सौ पुत्र उत्पन्न हुए और श्रीकृष्णजीके अनेक स्त्रियोंसे बहुत पुत्र हुए ॥ ४५ ॥ वहां उन दोनों महात्माओंका बडा वंश चला बडे धर्मात्मा क्षत्रिय हृष्ट होके सब दिशाओंमें चले गये ॥४६॥ हे द्विजो ! इस प्रकार शर्यातिका वंश कहा अब

और मनुष्योंके वंशको संक्षेपसे कहता हूँ तुम आदरसे सुनो ॥ ४७ ॥ नाभाग दिष्टके पुत्र हुए और ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए अपने क्षत्रिय वंशको स्थापन करके ब्राह्मणके कर्मोंमें प्रवृत्त हुए ॥ ४८ ॥ धृष्टसे धार्ष्ट हुए वे भूमि पर ब्रह्मत्वकी अधिकतासे क्षत्रियत्वहीन हुए करूषके युद्ध करनेवाले कारूष क्षत्रिय हुए ॥ ४९ ॥ मनुका पुत्र नृग हुआ वह महादानी अनेक धनोंको तथा गौओंको ब्राह्मणोंके निमित्त प्रीतिसे देनेवाला था ॥ ५० ॥ जो गोदानके व्यत्यय (बदल) से, अपनी कुबुद्धिसे तथा पापसे गिरगट हुआ और उसका श्रीकृष्णने उद्धार किया ॥ ५१ ॥ उसके प्रयातिनामक धर्मात्मा श्रेष्ठ एक पुत्र हुआ ऐसा मैंने जो व्यासजीसे सुना सो सब संक्षेपसे कहा ॥ ५२ ॥ वृषघ्ननामक मनुपुत्रको गुरुने

नाभागो दिष्टपुत्रोऽभूत्स तु ब्राह्मणतां गतः ॥ स्वक्षत्रवंशं स्थाप्य संब्रह्मकर्मभिरावृतः ॥४८॥ धृष्टाद्धार्ष्टमभूत्क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ ॥ करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥४९॥ नृगो यो मनुपुत्रस्तु महादाता विशेषतः ॥ नानावसूनां सुप्रीत्या वि प्रेभ्यश्च गवां तथा ॥५०॥ गोदातव्यत्ययाद्यस्तु स्वकुबुद्ध्या स्वपापतः ॥ कृकलासत्वमापन्नः श्रीकृष्णेन समुद्धृतः ॥५१॥ तस्यै कोभूत्सुतः श्रेष्ठः प्रयातिर्धर्मवित्तथा ॥ इति श्रुतं मया व्यासात्तत्प्रोक्तं हि समासतः ॥ ५२ ॥ वृषघ्नस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः ॥ पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥ ५३ ॥ स एकदाऽऽगतं गोष्ठे व्याघ्रं गा हिंसितुं बली ॥ श्रुत्वा गोक्रंदनं बुद्धो हंतुं तं खड्गधृग्ययौ ॥ ५४ ॥ अजानन्नहनद्ध्रोश्शिरश्शार्दूलशंकया ॥ निश्चक्राम सभीर्व्याघ्रो दृष्ट्वा तं खड्गिनं प्रभुम् ॥ ५५ ॥ मन्यमानो हतं व्याघ्रं स्वस्थानं स जगाम ह ॥ रात्र्यां तस्यां भ्रमापन्नो वर्षवातविनष्टधीः ॥ ५६ ॥

गोपाल बनाया और वह बीरासन बांधे रात्रिमें गायोंको पालन करने लगा ॥ ५३ ॥ वह बली किसी समय गायोंके मारनेके निमित्त गोशालामें आये हुए व्याघ्रको देख गायोंके रुदनको सुन जागके उसके मारनेको खड्ग धारण करके गया ॥ ५४ ॥ और सिंहके भ्रमसे विनाजाने बभ्रु (गायके बछडे) के शिरको काट दिया तब उन खड्गधारी प्रभुको देख वह व्याघ्र भयभीत हो बाहर निकल गया ॥ ५५ ॥ वह व्याघ्रको मरा हुआ जानके अपने स्थानको आये उस रात्रिमें वर्षा पवनसे बुद्धि नष्ट होगई तथा भ्रममें पड गये ॥ ५६ ॥

वह रात्रिके बीतनेपर उठके उस गोष्ठमें गया और उसने बभ्रुको मरा देख तथा व्याघ्रको न मरा हुआ देख अतिदुःख किया ॥ ५७ ॥ उस वृत्तान्तको सुनके गुरुने उस अपराधीको शाप दिया अकामसे विना विचारके काम करनेसे तू शूद्र होगा क्षत्रिय न रहेगा ॥ ५८ ॥ इस प्रकार कुलाचार्य गुरुने उसे क्रोधसे शाप दिया तब वह पृषध्र निकलके सघनवनमें चला गया ॥ ५९ ॥ और वह कष्टसे व्याकुलहो योग धारण करता हुआ विरक्त होगया और वनकी अग्निमें शरीरको भस्म कर परमगतिको प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥ और वह शिवकी दयासे मनुका पुत्र कवि बुद्धिमान् हुआ इस लोकमें दिव्य सुखको भोगके दुर्लभ मुक्तिको प्राप्त हुआ ॥ ६१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० मनु

व्युष्टायां निशि चोत्थाय प्रगे तत्र गतो हि सः ॥ अद्राक्षीत्स हतां बभ्रुं न व्याघ्रं दुःखितोऽभवत् ॥ ५७ ॥ श्रुत्वा तद्वृत्तमाज्ञा यं तं शशाप कृतागसम् ॥ अकामतोविचार्य्येति शूद्रो भव न क्षत्रियः ॥ ५८ ॥ एवं शप्तस्तु गुरुणा कुलाचार्य्येण कोपतः ॥ निस्सृतश्च पृषध्रस्तु जगाम विपिनं महत् ॥ ५९ ॥ निर्विण्णः स तु कष्टेन विरक्तोऽभूत्स योगवान् ॥ वनाग्नौ दग्धदेहश्च जगाम परमां गतिम् ॥ ६० ॥ कविः पुत्रो मनोः प्राज्ञश्शिवानुग्रहतोऽभवत् ॥ इह भुक्त्वा सुखं दिव्यं मुक्तिं प्राप सुदुर्लभाम् ॥ ६१ ॥

इतिश्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां मनुनवपुत्रवंशवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ पूर्वतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतस्सुतः ॥ तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम् ॥ १ ॥ तेषां पुरस्तादभवन्नार्य्यावर्ते नृपा द्विजाः ॥ तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु सोऽयोध्यायां नृपोऽभवत् ॥ २ ॥ तत्कर्म शृणु तत्प्रीत्या यज्जातंवंशतोविधेः।श्राद्धकर्म्मणि चोद्दिष्टो ह्यकृते श्राद्धकर्म्मणि ॥ ३ ॥ भक्षयित्वा शशं शीघ्रं शशादत्वमतो गतः॥ इक्ष्वाकुणा परित्यक्तश्शशादो वनमाविशत् ॥ ४ ॥

नवपुत्रवंशवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६ ॥ सूतजी बोले, मनुकी नासिकासे इक्ष्वाकुनामक पुत्र उत्पन्न हुआ और इक्ष्वाकुके अत्यन्त दक्षिणा देनेवाले सौ पुत्र हुए ॥ १ ॥ हे द्विजो ! उनके आगे आर्यावर्त्तमें अनेक राजा हुए उनमें सबसे बडा विकुक्षि अयोध्याका राजा हुआ ॥ २ ॥ उसके कर्मको प्रीतिसे सुनो जो ब्रह्माके वंशमें हुआ है श्राद्धकर्ममें प्रवृत्त होके श्राद्धकर्मके विना करनेपरही ॥ ३ ॥ यह शीघ्रही खरगोशको भक्षण करके शशादत्वको प्राप्त हुआ तब इक्ष्वाकुसे त्यागा हुआ शशाद वनमें प्रवेश करता हुआ ॥ ४ ॥

इक्ष्वाकुके स्थित होनेपर वसिष्ठके वचनसे वह राजा हुआ और उसके शकुनि आदि पन्द्रह पुत्र ॥ ५ ॥ उत्तरापथ देशके रक्षा करनेवाले राजा हुए और अयोधका पुत्र वीर्यवान् ककुत्स्थ नामवाला हुआ ॥ ६ ॥ ककुत्स्थका पुत्र अरिनाभ और पृथुका पुत्र विष्टराश्व हुआ उससे इन्द्र प्रजापति हुआ ॥ ७ ॥ इन्द्रके युवनाश्व उसके श्राव प्रजापति हुए बुद्धिमान् श्रावस्तक उत्पन्न हुए जिसने श्रावस्ती नगरी रची श्रावस्तके दायाद महायशस्वी बृहदश्व हुए ॥ ८ ॥ उनके पुत्र युवनाश्व उनके पुत्र कुवलाश्व जो धुंधुके वधसे धुंधुमारराजा नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ ९ ॥

इक्ष्वाकौ संस्थिते राजा वसिष्ठवचनादभूत्॥ शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चदशस्मृताः ॥५॥ उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महीक्षितः ॥ अयोधस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्य्यवान् ॥६॥ अरिनाभः ककुत्स्थस्य पृथुरेतस्य वै सुतः॥ विष्टराश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादिंद्रः प्रजापतिः ॥७॥ इंद्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्य प्रजापतिः॥ जज्ञे श्रावस्तकः प्राज्ञः श्रावस्ती येन निर्मिता॥ श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महायशाः ॥ ८ ॥ युवनाश्वस्सुतस्तस्य कुवलाश्वश्च तत्सुतः ॥ स हि धुंधुवधाद्भूतो धुंधुमारो नृपोत्तमः ॥ ९ ॥ कुवलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥ बभूवात्र पिता राज्ये कुवलाश्वं न्ययोजयत् ॥१०॥ पुत्रसंक्रामितश्रीकोवनं राजा समाविशत् ॥ तमुत्तंकोऽथ राजर्षिं प्रयांतं प्रत्यवारयत् ॥ ११ ॥ उत्तंक उवाच॥ भवता रक्षणं कार्यं पृथिव्या धर्मतः शृणु॥ त्वया हि पृथिवी राजन्रक्ष्यमाणा महात्मना ॥१२॥ भविष्यति निरुद्विग्ना नारण्यं गंतुमर्हसि ॥ ममाश्रम समीपे तु हिमेषु मरुधन्वसु ॥ १३ ॥ समुद्रवालुकापूर्णो दानवो बलदर्पितः॥ देवतानामवध्यो हि महाकायो महाबलः ॥१४॥

कुवलाश्वके धनुषधारी सौ पुत्र हुए तब पिताने राज्यमें कुवलाश्वको नियुक्त किया ॥ १० ॥ पुत्रको राज्य लक्ष्मीका भार सौंपके राजा वनको जाने लगा तब उस राजर्षिके उत्तंकने निवारण किया ॥ ११ ॥ उत्तंक बोले, हे राजन् ! तुमको धर्मसे पृथ्वीकी रक्षा करनी चाहिये तुम महात्मासे पालन की हुई पृथ्वी ॥ १२ ॥ निर्द्वन्द्व होगी इससे तुम वनमें जानेके योग्य नहीं हो मेरे आश्रमके समीप मरुधन्वनामक हिमोंपर ॥ १३ ॥ समुद्रकी बालुके पूर्ण होनेपर बलसे दर्पित देवतोंसे अवध्य बडे शरीरवाला महाबली दानव ॥ १४ ॥

भूमिके मध्यमें बालुके भीतर स्थित हुआ मधु राक्षसका पुत्र दारुण धुन्धुनामक ॥ १५ ॥ कठिन तप करके लोकोंके नाश करनेके अर्थ शयन करता है वह वर्षभरके पीछे जब अपनी श्वासको छोडता है ॥ १६ ॥ तो पर्वत वन काननसहित सम्पूर्ण पृथ्वी हिलती है स्फुलिंगसहित अंगारोंसहित धूमसहित आगके समान चिनगारी उडती है ॥ १७ ॥ हे महाबाहो ! हे राजन् ! इस कारण मैं उस आश्रममें रहनेको समर्थ नहीं हूँ इससे लोकोंके हितकी कामनासे उसे निवारण (दूर) करो ॥ १८ ॥ हे पृथ्वीपते ! अब उसके मारनेपर लोक स्वस्थ होंगे तुम हीं उस दैत्यके मारनेमें समर्थ हो ॥ १९ ॥ हे अनघ ! पहले युगमें विष्णुने तुमको बडा वरदान दिया है इससे विष्णु भगवान् अपने तेजसे तुम्हारे

अंतर्भूमिगतस्तत्र वालुकांतर्हितः स्थितः ॥ राक्षसस्य मधोः पुत्रो धुंधुनामा सुदारुणः ॥ १५ ॥ शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥ संवत्सरस्य पर्यन्ते स निश्वासं विमुंचति ॥१६॥ यदा तदाभूश्चलति सशैलवनकानना॥सविस्फुलिंगं सांगारं सधूममपि वारुणम्॥१७॥तेन राजन्न शक्नोमि तस्मिंस्स्थातुं स्व आश्रमे ॥ तं वारय महाबाहो लोकानां हितकाम्यया ॥ १८ ॥ लोकास्स्वस्था भवंत्वद्य तस्मिन्विनिहते त्वया ॥ त्वं हि तस्य वधायैव समर्थः पृथवीपते ॥ १९ ॥ विष्णुना च वरो दत्तो महान्पूर्व युगेऽनघ ॥ तेजसा स्वेन ते विष्णुस्तेज आप्याययिष्यति ॥२०॥ पालने हि महाधर्मः प्रजानामिह दृश्यते ॥ न तथा दृश्य तेऽरण्ये मा तेऽभूद्बुद्धिरीदृशी ॥ २१ ॥ ईदृशो न हि राजेन्द्र चिद्धर्मः प्रविद्यते ॥ प्रजानां पालने यादृक् पुरा राजर्षिभिःकृतः ॥ २२ ॥ स एव मुक्तो राजर्षिरुत्तंकेन महात्मना ॥ कुवलाश्वः सुतं प्रादात्तस्मै धुन्धुनिवारणे ॥ २३ ॥ भगवन्न्यस्तशस्त्रोहमयं तु तनयो मम ॥ भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः ॥ २४ ॥

तेजको परिपूर्ण करेंगे ॥ २० ॥ इस लोकमें ऐसा कोई धर्म नहीं दीखता है जैसा कि प्रजाके पालन करनेमें महाधर्म है वन जानेकी तुम्हारी बुद्धि मत हो ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र ! ऐसा कोई भी कहीं धर्म नहीं है जैसा प्रजाके पालन करनेमें पहले राजर्षियोंने किया है ॥ २२ ॥ इस प्रकार महात्मा उत्तंकके कहनेपर उस राजर्षिने धुन्धुदैत्यके निवारण करनेको उनको अपना पुत्र दिया ॥ २३ ॥ हे भगवन् ! हे द्विजश्रेष्ठ ! मैंने शस्त्र त्याग दिये हैं यह मेरा पुत्र निस्सन्देह धुन्धुदैत्यको मारनेवाला होगा ॥ २४ ॥

ऐसा कहके अपने पुत्रको दैत्यको मारनेकी आज्ञा दे वह राजा तप करनेको चला गया उत्तंक सहित कुवलाश्व भी धुन्धुदैत्यके मारनेको गया ॥ २५ ॥ उस समय प्रभु विष्णु भगवान्ने उत्तंकके नियोगसे लोकोंके हितकी इच्छासे अपने तेजसे उसमें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ उस दुर्धर्ष कुवलाश्वके जानेपर आकाशमें बडा शब्द हुआ कि, यह श्रीमान् राजपुत्र धुन्धुमार होगा ॥ २७ ॥ तब उसके ऊपर देवताओंने दिव्य मालाओंकी चारों ओरसे वर्षा की और जय जीव ऐसा कह कहके उसकी प्रशंसा की ॥ २८ ॥ जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ उस राजाने अपने पुत्रोंके सहित वालुकाके मध्यसे समुद्रको खोदा ॥ २९ ॥ ब्रह्मर्षि नारायणके तेजसे व्याप्त हुआ वह राजा महातेजस्वी बलसे युक्त हुआ ॥ ३० ॥ हे

इत्युक्त्वा पुत्रमादिश्य ययौ स तपसे नृपः॥कुवलाश्वश्च सोत्तङ्को ययौ धुन्धुविनिग्रहे॥२५॥तमाविशत्तदा विष्णुर्भगवांस्तेजसा प्रभुः ॥ उत्तंकस्य नियोगाद्वै लोकानां हितकाम्यया ॥२६॥तस्मिन्प्रयाते दुर्द्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत् ॥ एष श्रीमान्नृपसुतो धुन्धुमारो भविष्यति ॥२७॥ दिव्यैर्माल्यैश्च तं देवास्समंतात्समवारयन् ॥प्रशंसां चक्रिरे तस्य जय जीवेति वादिनः॥२८॥ स गत्वा जयतां श्रेष्ठस्तनयैस्सह पार्थिवः॥समुद्रं खनयामास वालुकार्णवमध्यतः ॥२९॥ नारायणस्य विप्रर्षेस्तेजसाप्यायितस्तु सः॥ बभूव सुमहातेजा भूयो बलसमन्वितः॥३०॥तस्य पुत्रैः खनद्भिस्तु वालुकांतर्गतस्तु सः॥धुन्धुरासादितो ब्रह्मन् दिशमाश्रित्य पश्चिमाम् ॥३१॥ मुखजेनाग्निना क्रोधाल्लोकान्संवर्तयन्निव ॥ वारि सुस्राव वेगेन विधोः कधिरिवोदये ॥३२॥ ततोऽनलैरभिहतं दग्धं पुत्रशतं हि तत् ॥ त्रय एवावशिष्टाश्च तेषु मध्ये मुनीश्वर ॥३३॥ ततस्स राजा विप्रेन्द्र राक्षसं तं महाबलम्॥आससाद महातेजा धुन्धुं विप्रविनाशनम्॥३४॥तस्य वारिमयं वेगमापीय स नराधिपः ॥ वह्निबाणेन वह्निं तु शमयामास वारिणा॥३५॥

ब्रह्मन् ! खोदते हुए उसके पुत्रोंने पश्चिम दिशाको आश्रय करके वालुके भीतर स्थित हुए उस धुन्धु दैत्यको प्राप्त किया ॥ ३१ ॥ क्रोधसे मुखकी अग्निसे लोकोंको व्याकुल करता हुआ चन्द्रमाके उदयमें समुद्रके समान वेगसे जलको टपकाने लगा ॥ ३२ ॥ उसकी अग्निसे वे सौ पुत्र नष्ट होगये हे मुनीश्वर ! उनके मध्यमें तीन पुत्र ही शेष रहे ॥ ३३ ॥ हे विप्रेन्द्र ! तब उस राजाने महाबली ब्राह्मणोंको नाश करनेवाले उस धुन्धु राक्षसको पाया॥३४॥उस महातेजस्वी राजाने उसके जलवाले वेगको अग्निबाणसे पान करके जलबाणसे अग्निको शान्त किया॥३५॥

अपने बलसे बडे शरीरवाले उस जलके राक्षसको मारके राजाने उत्तंकके विहित कर्मोंका निरीक्षण किया॥३६॥ हे महामुने उत्तंकने उस राजाको वर दिया तथा अक्षय धन हो शत्रुओंसे कभी पराजय न हो ॥३७॥ तथा धर्ममें निरन्तर मति हो तथा स्वर्गमें अक्षय वास हो जो पुत्र राक्षसोंसे मारे गये हैं उनको अक्षय स्वर्ग लोकका वास हो यह वर दिया ॥३८॥ उसके तीन पुत्र शेष रहे उनमें दृढाश्व बडा और हंसाश्व कपिलाश्व पुत्र छोटे थे ॥ ३९ ॥ धुंधुमारके पुत्र दृढाश्व हुए उनके पुत्र हर्यश्व हर्यश्वके पुत्र निकुंभ जो सदा धर्ममें तत्पर थे ॥४०॥ निकुंभके पुत्र युद्धमें निपुण

तं निहत्य महाकायं बलेनोदकराक्षसम्॥ उत्तंकस्येक्षयामास कृतं कर्म नराधिपः ॥ ३६ ॥ उत्तंकस्तु वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महा मुने ॥ अददच्चाक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजयम् ॥ ३७ ॥ धर्मे मतिं च सततं स्वर्गे वासं तथाक्षयम् ॥ पुत्राणां चाक्षयं लोकं रक्षसा ये तु संहताः ॥३८॥ तस्य पुत्रास्त्रयश्शिष्टाः दृढाश्वः श्रेष्ठ उच्यते ॥ हंसाश्वकपिलाश्वौ च कुमारौ तत्कनीयसौ॥३९॥ धौंधुमारिर्दृढाश्वो यो हर्य्यश्वस्तस्य चात्मजः ॥ हर्यश्वस्य निकुंभोभूत्पुत्रो धर्मरतस्सदा ॥ ४० ॥ संहताश्वो निकुंभस्य पुत्रो रण विशारदः ॥ अक्षाश्वश्च कृताश्वश्च संहताश्वसुतोऽभवत्॥४१॥ तस्य हैमवती कन्या सतां मान्या वृषद्वती ॥ विख्याता त्रिषु लोकेषुपुत्रस्तस्याः प्रसेनजित् ॥ ४२ ॥ लेभे प्रसेनजिद्भार्य्यां गौरीं नाम पतिव्रताम् ॥ अभिशप्ता तु सा भर्त्रा नदी सा बाहुदा कृता ॥ ४३ ॥ तस्य पुत्रो महानासीद्युवनाश्वो महीपतिः ॥ मांधाता युवनाश्वस्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥४४॥ तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिंदुसुताऽभवत् ॥ पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतं च सः ॥ ४५ ॥

संहताश्व हुए संहताश्वके पुत्र अक्षाश्व कृताश्व नामवाले हुए॥४१॥उसके सत्पुरुषोंसे माननीय वृषद्वती हैमवती कन्या तीनों लोकोंमें विख्यात हुई और उसका पुत्र प्रसेनजित हुआ ॥ ४२ ॥ प्रसेनजितने गौरी नाम पतिव्रता भार्याको पाया उसको भर्तीने शाप देके बाहुदा नामवाली नदी बनाया ॥ ४३ ॥ उसका पुत्र युवनाश्व बडा राजा हुआ युवनाश्वका पुत्र मांधाता तीनों लोकोंमें विख्यात हुआ ॥ ४४ ॥ उसकी चैत्ररथी स्त्री

शशबिन्दुकी पुत्री हुई वह पतिव्रता दश सहस्र भाइयोंमें सबसे बडी थी॥४५॥तब उससे मांधाताने धर्मात्मा पुरुकुत्स तथा मुचुकुन्द नामवाले दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४६ ॥ पुरुकुत्सका पुत्र विद्वान् कवि त्रय्यारुणि नामवाला हुआ उसका पुत्र महाबली सत्यव्रतनामक हुआ ॥ ४७ ॥ इसने महात्माओंके साथ पाणिग्रहणके मंत्रोंमें विघ्न किया है इसने दूसरेसे विवाही हुई एक स्त्रीको हरण किया ॥ ४८ ॥ बलसे कामसे मोह हर्ष तथा मदकी अधिकतासे तथा इच्छासे किसी नगरवासीकी कन्याको हर लिया ॥ ४९ ॥ त्रय्यारुणि राजा अधर्म करनेवाले उस पुत्रसे चलाजा ऐसा क्रोधसे बारम्बार कहता हुआ ॥ ५० ॥ तब उस मुक्तने अपने पितासे यह कहा कि, मैं कहां जाऊं तब राजाने उससे यह

तस्यासुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ तदा॥पुरुकुत्सं च धर्मज्ञं मुचुकुंदं च धार्मिकम् ॥४६॥ पुरुकुत्ससुतस्त्वासीद्विद्वांस्त्रय्यारुणिः कविः॥तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबली॥४७॥पाणिग्रहणमेत्राणां विघ्नं चक्रं महात्मभिः॥येन भार्य्या हृता पूर्वं कृतोद्वाहः परस्य वै ॥४८॥ बलात्कामाच्च मोहाच्च संहर्षाच्च यदोत्कटात्॥जहार कन्यां कामाच्च कस्य चित्पुरवासिनः॥४९॥ अधर्मसंगिनं तं तु राजा त्रय्यारुणिस्त्यजन्॥अपध्वंसेति बहुशोऽवदत्क्रोधसमन्वितः॥५०॥पितरं सोऽब्रवीन्मुक्तः क्व गच्छामीति वै तदा॥वस श्वपाकनिकटे राजा प्राहेति तं तदा॥५१॥स हि सत्यव्रतस्तेन श्वपाकवसथांतिके॥पित्रा त्यक्तोऽवसद्वीरो धर्मपालेन भूभुजा॥५२॥ततस्त्रय्यारुणी राजा विरक्तः पुत्रकर्म्मणा॥स शंकरतपः कर्त्तुं सर्वं त्यक्त्वा वनं ययौ॥५३॥ततस्तस्य स्वविषये नावर्षत्पाकशासनः॥समा द्वादश विप्रर्षे तेनाधर्मेण वै तदा॥५४॥दारांतस्य तु विषये विश्वामित्रो महातपाः ॥ संत्यज्य सागरानूपे चचार विपुलं तपः॥५५॥तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम्॥शेषस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद्वोशतेन च॥५६॥

कहा तू कुत्तोंके खानेवालोंके निकट वस ॥ ५१ ॥ धर्मसे पालन करनेवाले अपने पिता राजासे छोडा हुआ वह सत्यव्रत श्वपाक स्थानके निकट वसने लगा ॥ ५२ ॥ तब त्रय्यारुणी राजा अपने पुत्रके कर्मसे विरक्त हो सब कुछ छोडके शिवका तप करनेको वनमें चला गया ॥ ५३ ॥ हे विप्रर्षे ! उस समय उसके राज्यमें उस अधर्मसे बारह वर्षतक मेह नहीं वर्षा ॥ ५४ ॥ महातपस्वी विश्वामित्र अपनी स्त्रीको त्यागके सागरके समीपमें कठिन तप करने लगे ॥ ५५ ॥ उसकी पत्नीने मध्यम औरस पुत्रको गलेमें बांधके शेष पुत्रोंके

पोषण करनेके निमित्त उसे सौ गायोंको लेके बेंचा ॥ ५६ ॥ गलेमें बँधे हुए अपने पुत्रको बेंचती हुई उस स्त्रीको देख उस समय धर्मात्मा सत्यव्रतन उस महर्षिके पुत्रोंको छुडाया ॥ ५७ ॥ विश्वामित्रके सन्तुष्टिके अर्थ महाबाहु सत्यव्रतने उसका पालन किया ॥ ५८ ॥ उस दिनसे लेके वह विश्वामित्रका पुत्र गलबन्धनसे गालवनामवाला बडा तपस्वी हुआ ॥ २९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ सूतजी बोले, उस समय सत्यव्रत अपनी भक्ति कृपा और प्रतिज्ञासे विश्वामित्रकी स्त्रीको पोषण करने लगा ॥ १ ॥ हे मुने ! वह मृग वराह वनचर महिष आदि जीवोंको मारकर विश्वामित्रके आश्रमके समीप उनके मांसको रख आता ॥ २ ॥

तां तु दृष्ट्वा गले बद्धं विक्रीणंतीं स्वमात्मजम् ॥ महर्षिपुत्रं धर्म्मात्मा मोचयामास तं तदा॥५७॥सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत्॥विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुक्रोशार्थमेव च॥५८॥तदारभ्य स पुत्रस्तु विश्वामित्रस्य वै मुनेः ॥ अभवद्गालवो नाम गल बंधान्महातपाः ॥५९॥इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां मनुवंशवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥सूत उवाच ॥ सत्यव्रतस्तु तद्भक्त्या कृपया च प्रतिज्ञया॥विश्वामित्रकलत्रं च पोषयामास वै तदा॥१॥हत्वा मृगान्वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान् ॥ विश्वामित्राश्रमाभ्याशे तन्मांसं चाक्षिपन्मुने॥२॥ तीर्थं गां चैव रात्रं च तथैवांतःपुरं मुनिः ॥ याज्योपाध्यायसंयोगाद्वसिष्ठः पर्य्यरक्षत॥३॥सत्यव्रतस्य वाक्याद्वा भाविनोर्थस्य वै बलात्॥वसिष्ठोऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास नित्यशः॥४॥पित्रा तु तं तदा राष्ट्रात्परित्यक्तं स्वमात्मजम्॥न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन च॥५॥पाणिग्रहणमंत्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे॥न च सत्यव्रतस्थस्य तमुपांशुमबुद्धचत॥६॥तस्मिन्सपरितोषाय पितुरासीन्महात्मनः॥कुलस्य निष्कृतिं विप्र कृतवान्वै भवेदिति॥७॥

इधर मुनि वशिष्ठजी उनके पिताके तीर्थस्थान गौरात्र अन्तःपुर (रनिवास) की याजक और उपाध्यायोंके सहित रक्षा करने लगे ॥ ३ ॥ सत्यव्रतके वचनसे वा होनेवाले कार्यके बलसे वसिष्ठने उस क्रोधको अपने मनमेंही धारण किया ॥ ४ ॥ जिस समय पिताने पुत्रको अपने राज्यसे बाहर निकाला तब कारणवश वशिष्ठजीने उसको निवारण न किया ॥ ५ ॥ जो कि पाणिग्रहणके मंत्रोंकी सातवें पदमें निष्ठा होती है सत्यव्रतने उस बातका लेश भी न जाना ॥ ६ ॥ तब अपने पिताके परितोषके निमित्त वहाँ स्थित हुआ कि कुलकी निष्कृति

कैसे होगी ॥ ७ ॥ पिताके त्यागनेपर वशिष्ठजीने उसको निवारण नहीं किया मैं इसके पुत्रको अभिषेक करूँगा ऐसा कहने पर भी मुनि न बोले ॥ ८ ॥ उस बलीने बारह वर्षतक उस दीक्षाको धारण किया जब एक समय उसको कहीं मांस न मिला तो महात्मा वशिष्ठकी ॥ ९ ॥ सब कामनाकी देनेवाली गौको उस राजकुमारने देखा तब वशिष्ठपर क्रोध होने तथा लोभ मोह और क्षुधाके कारण ॥ १० ॥ चाण्डाल धर्मको प्राप्त होकर उसने उसको हत किया *उसके मांसको स्वयं भी तथा विश्वामित्रकी सन्तानको खवा दिया यह जानकर वशिष्ठजी महा क्रोधित हुए

न तं वसिष्ठो भगवान्पित्रा त्यक्तं न्यवारयत्॥अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्यां नैवाब्रवीन्मुनिः॥८॥स तु द्वादश वर्षाणि दीक्षां तामुद्वहद्बली ॥ अविद्यामाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ॥९॥सर्वकामदुहां दोग्ध्रीं ददर्श स नृपात्मजः ॥ तां वै क्रोधाच्च लोभाच्च श्रमाद्वै च क्षुधान्वितः ॥१०॥ दाशधर्मगतो राजा तां जघान स वै मुने॥स तं मांसं स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजम् ॥११॥ भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठो ह्यस्य चुक्रुधे ॥ उवाच च मुनिश्रेष्ठस्तं तदा क्रोधसंयुतः ॥१२॥ वसिष्ठ उवाच ॥ पातयेयमहं क्रूरं तव शंकुमयोमयम् ॥ यदि ते द्वाविमौ शंकू नश्येतां वै कृतौ पुरा ।।१३ ॥ पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च ॥ अप्रोक्षितोपयोगाच्चत्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥१४॥ त्रिशंकुरिति होवाच त्रिशंकुरिति स स्मृतः ॥ विश्वामित्रस्तु दाराणामागतोभरणे कृते ॥ १५ ॥ तेन तस्मै वरं प्रादान्मुनिः प्रीतस्त्रिशंकवे॥छन्द्यमानो वरेणाथ वरं वव्रे नृपात्मजः ॥ १६ ॥

और महा क्रोध कर वशिष्ठजीने उसके प्रति कहा ॥ ११ ॥ १२ ॥ वसिष्ठजी बोले, मैं तेरे ऊपर बडे कठिन लोहमय शंकु गिराऊंगा चाहे पहले यह दो शंकु गिर जायँ ॥ १३ ॥ पर पिताको दुःख देने और गोवध करने अप्रोक्षित मांस खानेसे तैंने तीन अपराध किये हैं ॥ १४ ॥ इससे तू त्रिशंकु होगा यह कहतेही वह त्रिशंकु होगया जो कि उसने विश्वामित्रकी दाराओंको पाला था जब वे आये ॥ १५ ॥ तब विश्वामित्रने त्रिशंकुको वर दिया और उसने उनके कहनेसे यह वर मांगा कि शरीरसहित स्वर्गको जाऊं ॥ १६ ॥

* वशिष्ठ और विश्वामित्रके वैरके कारण यह अधर्म कार्य अन समझोंने किये हैं यह गौ ऋषि वशिष्ठकी पुण्यरूपा थी न कि लौकिक गाय थी ।

बारह वर्षकी अनावृष्टि बीतनेपर विश्वामित्रने उस त्रिशंकुको राज्यपर बैठाय यज्ञ कराया ॥ १७ ॥ देवता तथा वशिष्ठजीके निवारण करनेपर भी महर्षि विश्वामित्रने उसे शरीरसहित स्वर्गको चढाया ॥ १८ ॥ उसकी सत्यरथा नामक केकयके वंशमें उत्पन्न होनेवाली स्त्रीने निष्पापी हरिश्चन्द्र नामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ वह राजा हरिश्चन्द्रजी त्रैशंकव कहलाये और राजसूययज्ञके करनेवाले चक्रवर्त्ती विख्यात हुए ॥ २० ॥ हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहिताश्व नामक हुए रोहितके पुत्र वृक और वृकसे बाहु उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ उस राजाको हैहय और ताल जंघने निकाल दिया वह धर्मात्मा विप्र केवल अपने लियेही धर्ममें तत्पर नहीं हुआ किंतु औरोंके लिये भी धर्ममें प्रवृत्त हुआ ॥२२॥ बाहुने गरेके सहित

अनावृष्टिभये चास्मिञ्जाते द्वादशवार्षिके ॥ अभिषिच्य पितृ राज्ये याजयामास तं मुनिः ॥१७॥ मिषतां देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः ॥ सशरीरं तदा तं तु दिवमारोह यत्प्रभुः ॥१८॥तस्य सत्यरथा नाम भार्या केकयवंशजा॥कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥ १९ ॥ स वै राजा हरिश्चन्द्रो त्रैशंकव इति स्मृतः ॥ आहर्ता राजसूयस्य सम्राडिति ह विश्रुतः ॥ २० ॥ हरिश्चन्द्रस्य हि सुतो रोहितो नाम विश्रुतः ॥ रोहितस्य वृकः पुत्रो वृकाद्बाहुस्तु जज्ञिवान्॥२१॥ हैहयास्तालजंघाश्च निरस्यंति स्म तं नृपम्॥नात्मार्थे धार्मिको विप्रः स हि धर्मपरोऽभवत ॥२२॥ सगरं ससुतं बाहुर्जज्ञे सह गरेण वै ॥ और्वस्याश्रममासाद्य भार्गवेणाभिरक्षितः ॥२३॥आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात्सगरो नृपः ॥ जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजंघान्सहैहयान॥२४॥शकान्बहूदकांश्चैव पारदांतगणान्खशान् ॥ सुधर्मं स्थापयामास शशास वृषतः क्षितिम् ॥२५॥ शौनक उवाच ॥ स वै गरेण सहितः कथं जातस्तु क्षत्रियात् ॥ जितवानेतदाचक्ष्व विस्तरेण हि सूतज ॥ २६ ॥

सगरनामक पुत्रको भृगुवंशी और्वके आश्रममें भार्गवसे रक्षित होकर उत्पन्न किया ॥ २३ ॥ उस सगर राजाने भार्गवसे आग्नेयास्त्र लेके हैहय सहित ताल जंघको मार पृथिवीको जीता ॥ २४ ॥ और शक नामवाले, बहूदक, पारदा, तगण; खश, आदि देशोंमें अपने धर्मको स्थापित किया और पृथिवीकी धर्मसे पालन करने लगा ॥ २५ ॥ शौनकजी बोले, हे सूतजी ! वह गरके सहित उस क्षत्रियसे कैसे उत्पन्न हुआ और सबोंको कैसे जीता यह सब विस्तारसे कहो ॥ २६ ॥

सूतजी बोले, हे मुने ! जिस प्रकार पारीक्षितके पूँछनेपर वैशंपायन मुनिने कहा था सो सब मैं कहता हूं तुम एक मनसे सुनो ॥ २७ ॥ पारीक्षितजी बोले, हे मुने ! वह राजा सगरके सहित किस प्रकार उत्पन्न हुए और उन्होंने कैसे बहुतोंको मारा यह आपके कहनेके योग्य हो ॥ २८ ॥ वैशंपायनजी बोले, हे तात ! हे विशांपते ! शकोंके सहित हैहय और तालजंघोंने व्यसनवाले राजा बाहुका सब राज्य हरण कर लिया ॥ २९ ॥ यवन पारद काम्बोज तथा पाह्लव बहूदक नागवाले राक्षसोंके पांच गण कहे हैं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! राक्षसोंके यह पांच गण हैं इन्होंने अति पराक्रम करके बाहुका राज्य हैहयोंको दे दिया ॥ ३१ ॥ राज्यके नष्ट हो जानेसे वह राजा बाहु पत्नीके सहित

सूत उवाच ॥ पारीक्षितेनसंपृष्टो वैशंपायन एव च ॥ यदाचष्ट स्मतद्वक्ष्ये शृणुष्वैकमना मुने ॥ २७ ॥ ॥ पारीक्षितो उवाच ॥ कथं स सगरो राजा गरेण सहितो मुने ॥ जातस्स जघ्निवान्भूयानेतदाख्यातुमर्हसि ॥ २८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ बाहोर्व्यस निनस्तात हृतं राज्यमभूत्किल ॥ हैहयैस्तालजंघैश्च शकैस्सार्द्धं विशांपते ॥ २९ ॥ यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पाह्लवास्त था ॥ बहूदकाश्च पंचैव गणाः प्रोक्ताश्च रक्षसाम् ॥३०॥ एते पंच गणा राजन् हैहयार्थेषु रक्षसाम् ॥ कृत्वा पराक्रमान् बाहो राज्यं तेभ्यो ददुर्बलात् ॥ ३१ ॥ हृतराज्यस्ततो विप्राः स वै बाहुर्वनं ययौ ॥ पत्न्या चानुगतो दुःखी स वै प्राणानवासृजत् ॥ ३२ ॥ पत्नी या यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतो गता ॥ सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्तः पूर्वं सुतेष्यया ॥३३॥ सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा ज्वलनं चावरोहत ॥ और्वस्तां भार्गवो राजन्कारुण्यात्समवारयत् ॥ ३४ ॥ तस्याश्रमे स्थिता राज्ञी गर्भरक्षणहेतवे ॥ सिषेवे मुनिवर्यं तं स्मरन्ती शंकरं हृदा ॥ ३५ ॥ एकदा खलु तद्भर्तो गरेणैव सह च्युतः ॥ सुमुहूर्त्ते सुलग्ने च पंचोच्चग्रहसंयुते ॥ ३६ ॥

दुःखी हो वनको चला गया और वहां उसने प्राणोंको त्याग दिया ॥ ३२ ॥ उसकी यादवी नामक गर्भिणी स्त्री उसके साथ चली वह उसकी सौतने ईर्षासे उसे गर (विष) दे दिया ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! वह भार्या पतिकी चिता बनाय सती होने लगी तब ही दयासे भार्गव और्वने उसे निवारण किया ॥ ३४ ॥ तब वह गर्भकी रक्षा करनेके निमित्त उन भार्गवके आश्रममें स्थित हुई और वह रानी हृदयसे शिवका ध्यान करके उन मुनिश्रेष्ठकी सेवा करने लगी ॥ ३५ ॥ एक समय श्रेष्ठ मुहूर्तमें शुभलग्नमें पांच उच्चके ग्रह स्थित

होनेपर गरके समेत उससे बालकका जन्म हुआ ॥ ३६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सब प्रकार प्रबल हुई उस लग्नमें महाबाहु सगर नामक राजा उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥ और्वने उन महात्माके जातकर्मादि संस्कार करके क्रमशः वेद शास्त्रोंको पढाय तत्पश्चात् अस्त्रोंको सिखाया ॥ ३८ ॥ तब वह महाभाग राजा सगर देवताओंसे दुर्लभ आग्नेयास्त्रको विधिसहित प्रीतिसे सीखने लगा ॥३९॥ उसने अस्त्रके बलसे तथा बलसे प्रौढ हो कोध करके शीघ्रही हैहय राजोंको नष्ट किया ॥४०॥ कीर्त्तिमानोंमें श्रेष्ठ सगरने लोकोंमें कीर्त्ति फैलाई और पृथ्वीपर धर्म स्थापन किया ॥ ४१ ॥

तस्मिँल्लग्ने च बलिनि सर्वथा मुनिसत्तम ॥ व्यजायत महाबाहुस्सगरो नाम पार्थिवः ॥३७॥ और्वस्तु जातकर्मादि तस्य कृत्वा महात्मनः ॥ अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ॥ ३८ ॥ आग्नेयं तं महाभागो ह्यमरैरपि दुस्सहम् ॥ जग्राह विधिना प्रीत्या सगरोसौ नृपोत्तमः ॥ ३९ ॥ स तेनास्त्रबलेनैव बलेन च समन्वितः ॥ हैहयान्विजघानाशु संक्रुद्धोऽस्त्रबलेन च ॥ ४० ॥ आजहार च लोकेषु कीर्तिं कीर्तिमतां वरः ॥ धर्मं संस्थापयामास सगरोऽसौ महीतले ॥४१ ॥ ततश्शकास्सयवनाः काम्बोजाः पाह्लवास्तथा ॥ हन्यमानास्तदा ते तु वसिष्ठं शरणं ययुः॥४२॥वसिष्ठो वंचनां कृत्वा समयेन महाद्युतिः ॥ सगरं वारयामास तेषां दत्वाभयं नृपम् ॥४३॥ सगरस्स्वां प्रतिज्ञां तु गुरोर्वाक्यं निशम्य च ॥ धर्मं जघान तेषां वै केशान्यत्वं चकार ह ॥ ४४ ॥ अर्द्धं शकानां शिरसो मुंडं कृत्वा व्यसर्जयत् ॥ यवनानां शिरस्सर्वं कांबोजानां तथैव च ॥ ४५ ॥ पारदा मुंडके शाश्च पाह्लवाश्श्मश्रुधारिणः ॥ निस्स्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥ ४६ ॥

तब ताडन किये हुए वे शक यवन काम्बोज पाह्लव वशिष्ठकी शरणमें गये ॥ ४२ ॥ समय पाय कांतिमान् वशिष्ठने वंचना करके उन राजाओंको अभय दे सगरको निवारण किया ॥ ४३ ॥ सगरने अपनी प्रतिज्ञा तथा गुरुके वचनको सुनके उन राजाओंका धर्म नष्ट किया तथा केशच्छेदन कराया ॥ ४४ ॥ शकोंके आधे शिरको तथा यवन और काम्बोजोंके सम्पूर्ण शिरको मुंडन कराके विसर्जन किया ॥ ४५ ॥ उस महात्माने पारदोंके केश मुण्डन करके और पाह्लवोंको डाढी मूछ धराके निकाल दिया ॥ ४६ ॥

हे तात ! उस राजाने सब पृथिवीको जीता तथा उन राजाओंके धर्मको जीता और वे सब क्षत्रिय धर्महीन कर दिये ॥ ४७ ॥ उस धर्मविजयी राजाने इस पृथ्वीको जीतके वाजिमेधयज्ञ करनेको घोडा छोडा ॥४८॥ हे मुने ! उस राजा सगरके साठ हजार पुत्रोंके सहित छोडा हुआ वह घोडा पूर्व दक्षिण समुद्रकी ओर गया ॥ ४९ ॥ तब स्वार्थसाधक देवराज इन्द्रने उस घोडेको समुद्रके किनारे हर लिया, और भूमिमें प्रवेशित किया ॥ ५० ॥ तब महाराजा सगरने उस घोडेके खोजनेके लिये चारों ओरसे उस स्थानको पुत्रोंसे खुदवाया ॥ ५१ ॥ तब वहां बडे समुद्रके

जिता च सकला पृथ्वी धर्मतस्तेन भूभुजा ॥ सर्वे ते क्षत्रियास्तात धर्महीनाः कृताः पुराः ॥ ४७ ॥ स धर्मविजयी राजा विजित्वेमां वसुंधराम् ॥ अश्वं संस्कारयामास वाजिमेधाय पार्थिवः ॥ ४८ ॥ तस्यचारयतस्सोऽश्वस्समुद्रे पूर्वदक्षिणे ॥ गतःषष्टिसहस्रैस्तु तत्पुत्रैरन्वितो मुने ॥ ४९ ॥ देवराजेन शक्रेण सोऽश्वो हि स्वार्थसाधिना ॥ वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः ॥ ५० ॥ महाराजोऽथ सगरस्तद्धयान्वेषणाय च ॥ स तं देशं तदा पुत्रैः खानयामास सर्वतः ॥ ५१ ॥ आसेदुस्ते ततस्तत्र खन्यमाने महार्णवे ॥ तमादिपुरुषं देवं कपिलं विश्वरूपिणम् ॥ ५२ ॥ तस्य चक्षुस्समुत्थेन वह्निना प्रतिबुध्यतः ॥ दग्धाःषष्टि सहस्राणि चत्वारस्त्ववशेषिताः ॥ ५३ ॥ हर्ष केतुस्सुकेतुश्च तथा धर्मरथोपरः ॥ शूरःपंचजनश्चैव तस्य वंशकरा नृपाः ॥५४॥ प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिःपंच वरान्स्वयम् ॥ वंशंमेधां च कीर्तिञ्च समुद्रं तनयं धनम् ॥ ५५ ॥ सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तस्य तेन वै ॥ तं चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान् ॥ ५६ ॥

खोदनेपर उन्होंने आदि पुरुष विश्वरूपी कपिलदेवको पाया ॥ ५२ ॥ उनके नेत्रोंकी अग्निसे वे साठ हजार पुत्र भस्म हुए केवल चार पुत्र शेष रहे ॥ ५३ ॥ हर्षकेतु सुकेतु तथा धर्मरथ और शूर पंचजन यह उसके वंश चलानेवाले राजा हुए ॥ ५४ ॥ तब भगवान् हरिने स्वयम् राजा सगरको पांच वर दिये वंशवृद्धि, मेधा, कीर्ति, समुद्रका पुत्र और धन ॥ ५५ ॥ वह उस कर्मसे समुद्रके भावको प्राप्त हुए और उस अश्वमेधके घोडेको समुद्रसे पाया ॥ ५६ ॥

वह महायशस्वी सौ अश्वमेधोंके फलको प्राप्त हुआ और वहां सुव्रतवाले देवताओंको तथा शिवकी विभूतियोंको यजन करने लगे ॥ ५७ ॥
इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० सत्यव्रतादिसगरपर्यन्तवंशवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ शौनकजी बोले, वीर महा
बली विक्रान्त सगरके साठ हजार पुत्र किस विधिसे उत्पन्न हुए सो सब कहो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, तपसे भस्म हुए हैं पाप जिनके ऐसी
सगरकी दो स्त्री थीं उन दोनोंको मुनिश्रेष्ठ और्वने सन्तुष्ट हो वरदान मांगनेको कहा ॥ २ ॥ एकने वेगवाले साठ हजार पुत्रोंका वर

आजहाराश्वमेधानां शतं स तु महायशाः ॥ ईजे शंभुविभूतीश्च देवतास्तत्र सुव्रताः॥ ५७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्या
मुमासंहितायां सत्यव्रतादिसगरपर्यंतवंशवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ शौनक उवाच ॥ सगरस्यात्मजा वीराः कथं
जाता महाबलाः ॥ विक्रांताः षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा वद ॥ १ ॥ सूत उवाच॥द्वे पत्न्यो सगरस्यास्तां तपसा दग्ध
किल्बिषे ॥ और्वस्तयोर्वरं प्रादात्तोषितो मुनिसत्तमः ॥ २ ॥ षष्टिपुत्रसहस्राणि एका वव्रे तरस्विनाम् ॥ एकं वंशकरं त्वेका य
थेष्टं वरशालिनी ॥ ३ ॥ तत्रैवागत्य तांल्लब्ध्वा पुत्राञ्शूरान्बहूंस्तदा ॥ सा चैव सुषुवे तुम्बं बीजपूर्णं पृथक्कृतम् ॥ ४ ॥ ते
सर्वे हि स्वधात्रीभिर्ववृधुश्च यथाक्रमम् ॥ घृतपूर्णेषु कुम्भेषु कुमाराः प्रीतिवर्द्धनाः ॥५॥ कपिलाग्निप्रदग्धानां तेषां तत्र महा
त्मनाम् ॥ एकः पंचजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह ॥ ६ ॥ ततः पंचजनस्यासीदंशुमान्नाम वीर्यवान् ॥ दिलीपस्तनयस्तस्य
पुत्रो यस्य भगीरथः ॥ ७ ॥ यस्तु गंगा सरिच्छ्रेष्ठामवातारयतः प्रभु ॥ समुद्रमानयच्चेमां दुहितृत्वमकल्पयत् ॥ ८ ॥

मांगा दूसरीने वंशकर्त्ता एक सुन्दर पुत्रको मांगा ॥ ३ ॥ तब उसने घर आके उन शूर अनेक पुत्रोंसे युक्त बीजोंमें पूर्ण हुए एक
तोम्बेको उत्पन्न किया और फिर पृथक् किया उसमें बीज रूपसे सब बालक थे ॥ ४ ॥ प्रीतिके बढानेवाले वे कुमार क्रमसे घृतसे पूर्ण
हुए घडोंमें रक्खे गये और अपनी धाइयोंसे बढने लगे ॥ ५ ॥ वहां कपिल देवकी अग्निसे भस्म हुए उन महात्माओंमें एक पंचजन नामक
पुत्र राजा हुआ ॥ ६ ॥ तब उनसे वीर्यवान् अंशुमान् हुए उनके पुत्र दिलीप हुए उसके वंशमें भागीरथ हुए ॥ ७ ॥ जिन प्रभुने

नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाको उतारा और समुद्रने मानकर इन गंगाजीको अपनी पुत्री किया ॥ ८ ॥ भगीरथके पुत्र राजा श्रुतसेन हुए उसके परम धर्मात्मा नाभागनामक पुत्र हुए ॥ ९ ॥ नाभागके पुत्र अंबरीष उनके पुत्र सिन्धुद्वीप हुये सिन्धुद्वीपके दायाद वीर्यवान् अयुताजित् हुए ॥ १० ॥ अयुताजित् के पुत्र महायशवी ऋतुपर्ण हुए वह दिव्याक्ष हृदयके जाननेवाले राजा नलके मित्र हुए ॥ ११ ॥ ऋतुपर्णके पुत्र कान्तिमान् अनुपर्ण हुए उनके पुत्र कल्माषपाद मित्रसह हुए ॥ १२ ॥ कल्माषपादके पुत्र सर्वकर्मा नामसे प्रसिद्ध हुए उनके पुत्र अनरण्य हुए

भगीरथसूतो राजा श्रुतसेन इतिः श्रुतः ॥ नाभागस्तु सुतस्तस्य पुत्रः परमधार्मिकः॥९॥अंबरीषस्तु नाभागिर्स्सिधुद्वीपस्ततोऽभवत् ॥ अयुताजित्तु दायादर्स्सिधुद्वीपस्य वीर्यवान् ॥ १० ॥ आयुताजित्सुतस्त्वासीद्दतुपर्णो महायशाः ॥ दिव्याक्षहृदयज्ञोऽसौ राजा नलसखोऽभवत् ॥ ११ ॥ ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदनुपर्णो महाद्युतिः ॥ तस्य कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहस्तथा ॥ १२ ॥ कल्माषपादस्य सुतस्सर्वकर्मेति विश्रुतः ॥ अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद्विश्रुतस्सर्वशर्मणः ॥ १३ ॥ अनरण्यसुतो राजा विद्वान्मुंडिद्रुहोऽभवत् ॥ निषधस्तस्य तनयो रतिः खट्वाङ्ग इत्यपि ॥ १४ ॥ येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम् ॥ त्रयोऽपि संचिता लोका बुद्धया सत्येन चानघ ॥ १५ ॥ दीर्घबाहुस्सुतस्तस्य रघुस्तस्याभवत्सुतः ॥ अजस्तस्य तु पुत्रोऽभूत्तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥ १६ ॥ रामो दशरथाज्जज्ञे धर्मात्मा यो महायशाः ॥ स विष्ण्वंशो महाशैवः पौलस्त्यो येन घातितः ॥ १७ ॥ तच्चरितं च बहुधा पुराणेषु प्रवर्णितम् ॥ रामायणे प्रसिद्धं हि नातः प्रोक्तं तु विस्तरात् ॥ १८ ॥

॥ १३ ॥ अनरण्यके पुत्र विद्वान् मुंडिद्रुह हुये उनके पुत्र निषध, रति, खट्वांग हुये ॥ १४ ॥ हे अनघ ! जिसने स्वर्गसे इस लोकमें आके जीवनको पाय बुद्धिसे तीनों लोक संचित किये ॥ १५ ॥ उनके पुत्र दीर्घबाहु इनके पुत्र रघु हुये रघुके पुत्र अज उनसे दशरथ हुये ॥१६॥ दशरथसे धर्मात्मा यशस्वी रामचन्द्र उत्पन्न हुये वह विष्णुके अंश महाशैव थे जिन्होंने रावणको मारा ॥ १७ ॥ उन रामचन्द्रका जीवन चरित्र अनेक पुराणोंमें तथा विशेकर रामायणमें प्रसिद्ध है इस कारण विस्तारसे नहीं कहा ॥ १८ ॥

रामचन्द्रके पुत्र कुश हुये कुशसे अतिथि उत्पन्न हुए उनके पुत्र निषध हुये ॥ १९ ॥ निषधके पुत्र नल हुये नलके पुत्र नभ हुये नभके पुत्र पुण्डरीक उनके पुत्र क्षेमधन्वा हुये ॥ २० ॥ क्षेमधन्वाके पुत्र प्रतापी देवानीक और उनसे अहीनगुनामक पुत्र हुये ॥२१॥ अहीनगुके दायाद सहस्वान् उनके पुत्र वीरसेन जो इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुये ॥ २२ ॥ वीरसेनके दायाद पारियात्र हुये उनके पुत्र बलाख्य उनके पुत्र स्थल हुये ॥ २३ ॥ उनके सूर्यके अंशसे उत्पन्न हुआ प्रतापी यक्षनामक पुत्र हुआ उनका पुत्र अगुण उनसे विधृति ॥ २४ ॥ उनका पुत्र हिरण्यनाभ

रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यपि विश्रुतः॥ अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः॥१९॥निषधस्य नलः पुत्रो नभाः पुत्रो नलस्य तु ॥ नभसः पुंडरीकश्च क्षेमधन्वा ततस्मृतः ॥२०॥ क्षेमधन्वसुतस्त्वासीद्देवानीकः प्रतापवान् ॥ असीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः॥२१॥अहीनगोस्तु दायादस्सहस्वान्नाम वीर्यवान् ॥ वीरसेनात्मजस्तस्य यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्भवः॥२२॥वीरसेनस्य दायादः पारियात्रो बभूव ह॥ ततो बलाख्यस्तनयस्स्थलस्तस्मादभूत्सुतः॥२३॥अर्कांशसंभवस्तस्मात्पुत्रो यक्षः प्रतापवान्॥तत्सुतस्त्वगुणस्त्वासीत्तस्माद्विधृतिरात्मजः ॥२४॥ हिरण्यनाभस्तत्पुत्रो योगाचार्य्यो बभूव ह ॥ स शिष्यो जैमिनिमुनेर्ह्यात्मविद्याविशारदः॥२५॥कौशिल्योयाज्ञवल्क्योथयोगमध्यात्म्यसंज्ञकम्॥यतोऽध्यगान्नृपवराद्धृदयग्रंथिभेदनम्॥२६॥तत्सुतोपुष्पनामा हि ध्रुवसंज्ञस्तदात्मजः॥अग्निवर्णस्सुतस्तस्य शीघ्रनामा सुतस्ततः॥२७॥मरुन्नामा सुतस्तस्य योगसिद्धो बभूव ह॥असावास्तेऽद्यापि प्रभुः कलापग्रामसंज्ञके ॥ २८ ॥ तद्वासिभिश्च मुनिभिः कलेरंते स एव हि ॥ पुनर्भावयिता नष्टं सूर्य्यवंशं विशेषतः ॥ २९ ॥

उनका पुत्र योगाचार्य वह जैमिनि मुनिका शिष्य और आत्मविद्यामें प्रवीण हुआ ॥ २५ ॥ जिन राजासे हृदयकी ग्रंथिके छेदन करनेवाले अध्यात्मयोगको कौशल्य याज्ञवल्क्यने प्राप्त किया ॥ २६ ॥ उनका पुत्र पुष्य नामक हुआ फिर उनका पुत्र ध्रुवसंज्ञक उनका पुत्र अग्निवर्ण उनका पुत्र शीघ्रनामक हुआ ॥ २७ ॥ उनका पुत्र मरुत हुआ उनका पुत्र योगसिद्ध हुआ वह स्वामी अब भी कलापग्राममें स्थित है ॥२८॥ कलियुगके अन्तमें वह कलापग्रामनिवासी मुनियोंके साथ नष्ट हुये सूर्यवंशको फिर उद्धार करेगा ॥ २९ ॥

उसका पुत्र पृथुश्रुत उसका पुत्र संधि तथा उनका पुत्र अमर्षण उनका पुत्र मरुत्वान् हुआ ॥ ३० ॥ उसका पुत्र विश्व उनका पुत्र प्रसेनजित् हुआ उनका पुत्र तक्षक उनका पुत्र बृहद्बल ॥ ३१ ॥ यह बीते हुए इक्ष्वाकुवंशीय कहे अब धर्मात्मा आगामी वंशियोंको सुनो ॥ ३२ ॥ बृहद्बलका पुत्र बृहद्रण होगा उसका पुत्र उरुक्रिय होगा ॥ ३३ ॥ उसका पुत्र वत्सवृद्ध उनका पुत्र प्रतिव्योम उसका भावी पुत्र भानु दिवाकर वाहिनीपति होगा ॥ ३४ ॥ उसका पुत्र सहदेव महावीर होगा उसका पुत्र बृहदश्व उसका पुत्र भानुमान् ॥ ३५ ॥ भानुमान्का भावी

पृथुश्रुतश्च तत्पुत्रस्संधिस्तस्य सुतः स्मृतः ॥ अमर्षणस्सुतस्तस्य मरुत्वांस्तत्सुतोऽभवत् ॥३०॥ विश्वसाह्वस्सुतस्तस्य तत्सुतोऽभूत्प्रसेनजित् ॥ तक्षकस्तस्य तनयस्तत्सुतो हि बृहद्बलः ॥३१॥ एत इक्ष्वाकुवंशीया अतीताः संप्रकीर्तिताः ॥ शृणु तानागतान्भूतांस्तद्वंश्यान्धर्मवित्तमान् ॥३२॥ बृहद्बलस्य तनयो भविता हि बृहद्रणः ॥ बृहद्रणसुतस्तस्योरुक्रियो हि भविष्यति ॥३३॥ वत्सवृद्धस्सुतस्तस्य प्रतिव्योमसुतस्ततः ॥ भानुस्तत्तनयो भावी दिवाको वाहिनीपतिः ॥३४॥ सहदेवस्सुतस्तस्य महावीरो भविष्यति ॥ तत्सुतो बृहदश्वो हि भानुमांस्तत्सुतो बली ॥३५॥ सुतो भानुमतो भावी प्रतीकाश्वश्च वीर्यवान् ॥ सुप्रतीकस्सुतस्तस्य भविष्यति नृपोत्तमः ॥ ३६ ॥ मरुदेवस्सुतस्तस्य सुनक्षत्रो भविष्यति ॥ तत्सुतः पुष्करस्तस्यांतरिक्षस्तत्सुतो द्विजाः ॥३७॥ सुतपास्तत्सुतो वीरो मित्रचित्तस्य चात्मजः ॥ बृहद्राजस्सुतस्तस्य बर्हिनामा तदात्मजः ॥३८॥ कृतंजयस्सुतस्तस्य तत्सुतो हि रणजयः ॥ संजयस्तु मयस्तस्य तस्य शाक्यो हि चात्मजः ॥३९॥ शुद्धोदस्तनयस्तस्य लांगलस्तु तदात्मजः ॥ तस्य प्रसेनजित्पुत्रस्तत्सुतः शूद्रकाह्वयः ॥४०॥ रुणको भविता तस्य सुरथस्तत्सुतः स्मृतः ॥ सुमित्रस्तत्सुतो भावी वंशनिष्ठांत एव हि ॥४१॥

पुत्र प्रतीकाश्व उसका पुत्र सुप्रतीके राजर्षि होगा ॥ ३६ ॥ उनका पुत्र मरुदेव उनका पुत्र सुनक्षत्र होगा उनका पुत्र पुष्कर उनका पुत्र अन्तरिक्ष ॥ ३७ ॥ उनका पुत्र सुतप उसका पुत्र वीर उसका पुत्र मित्रजित् उसका पुत्र बृहद्धोज उसका पुत्र बहिर्नामक ॥ ३८ ॥ उसका पुत्र कृतंजय उसका पुत्र रणंजय उसका मय उसका पुत्र शाक्य ॥३९॥ उसका पुत्र शुद्धोद उसका पुत्र लांगल उसका पुत्र प्रसेनजित् उसका पुत्र शूद्रक ॥ ४० ॥ उसका पुत्र रुणक होगा इसका पुत्र सुरथ उसका पुत्र सुमित्र होगा वह वंशनिष्ठाको समाप्त करनेवाला होगा ॥ ४१ ॥

सुमित्रांतोन्वयोऽयं वै इक्ष्वाकूणां भविष्यति॥ राज्ञां वैचित्रवीर्य्याणां धर्म्मिष्ठानां सुकर्म्मणाम्॥४२॥सुमित्रं प्राप्य राजानं स तद्वं शश्शुभः कलौ ॥ संस्थां प्राप्स्यति तद्ब्राह्मे वर्द्धिष्यति पुनः कृते ॥४३॥ एतद्वैवस्वते वंशे राजानो भूरिदक्षिणाः ॥ इक्ष्वाकुवंशप्र भवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ॥४४॥ पुण्येयं परमा सृष्टिरादित्यस्य विवस्वतः ॥ श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च ॥४५॥ पठञ्छृण्वन्निमां सृष्टिमादित्यस्य च मानवः ॥ प्रजावानेति सायुज्यमिह भुक्त्वा सुखं परम् ॥४६॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्च म्यामुमासंहितायां वैवस्वतवंशोद्भवराजवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥ व्यास उवाच॥ इत्याकर्ण्य श्राद्धदेवः सूर्यान्व यमनुत्तमम् ॥ पर्य्यपृच्छन्मुनिश्रेष्ठश्शौनकस्सूतमादरात् ॥ १ ॥ शौनक उवाच ॥ सूतसूत चिरंजीव व्यासशिष्य नमोस्तु ते ॥ श्रावितां परमादिव्यां कथां परमपावनीं ॥२॥ त्वया प्रोक्तः श्राद्धदेवस्सूर्य्यः सद्वंशवर्द्धनः ॥ संशयस्तत्र मे जातस्तं ब्रवीमि त्वद ग्रतः ॥ ३ ॥ कुतो वै श्राद्धदेवत्वमादित्यस्य विवस्वतः ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्प्रीत्या छिंधि मे संशयं त्विमम् ॥ ४ ॥

सुमित्रके पश्चात् इक्ष्वाकुवंशके विचित्र वीर्यवाले धर्मात्मा शुभकर्म करनेवाले राजाओंकी समाप्ति होगी ॥ ४२ ॥ उनका शुभ वंश सुमित्र राजाको प्राप्त हो कलियुगमें विश्रामको प्राप्त होगा फिर ब्राह्म सतयुगमें बढैगा ॥ ४३ ॥ यह वैवस्वत वंशमें अति दक्षिणावाले इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुए राजा विशेष करके वर्णन किये ॥ ४४ ॥ आदित्य विवस्वान्की तथा प्रजाको पुष्टि देनेवाले देव श्राद्धदेवकी पवित्र सृष्टि वर्णन की ॥ ४५ ॥ जो मनुष्य सूर्यकी इस सृष्टिको पढता है अथवा सुनता है वह सन्तानवाला होके सायुज्य परम सुखको भोगता है ॥ ४६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पंचम्यामुमासंहितायां वैवस्वतवंशोद्भवराजवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ व्यासजी बोले, इस प्रकार श्राद्धदेव उत्तम सूर्य वंशको सुनिके मुनि श्रेष्ठ शौनकजी आदरसे सूतजीसे पूँछने लगे ॥ १ ॥ शौनकजी बोले, हे चिरञ्जीव ! हे व्यासजीके शिष्य ! हे सूतजी ! तुमको नमस्कार है तुमने परम दिव्य अति पवित्र करनेवाली कथा सुनाई ॥ २ ॥ तुमने जो शुभ वंशका बढानेवाला श्राद्ध देव सूर्य कहा उसमें मुझे सन्देह हुआ सो तुम्हारे आगे मैं कहता हूँ ॥ ३ ॥ आदित्य विवस्वान्को श्राद्धदेवत्व कहांसे मिला यह मैं प्रीतिसे सुनना चाहता हूँ मेरे इस सन्देहको दूर करो ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! श्राद्धके माहात्म्यको और उसके फलको कहो जिससे प्रसन्न हुए पितर उसको कल्याणसे युक्त करते हैं ॥ ५ ॥ हे महामते ! यह पितरोंकी उत्पत्ति सुनना चाहता हूं तुम अति कृपा करके मुझसे कहो ॥ ६ ॥ सूतजी बोले, हे शौनक ! वह सम्पूर्ण पितरोंकी उत्पत्ति प्रीति सहित तुमसे कहता हूँ जो मार्कण्डेयने भीष्मसे कही है ॥ ७ ॥ और जो सनत्कुमारने बुद्धिमान् मार्कंडेयसे कही है वह सब कामनाके फलोंकी देनेवाली उत्पत्ति तुमसे वर्णन करता हूँ ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरसे पूँछे हुए धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ शरशय्यापर स्थित हुए भीष्मजीने जो कुछ कहा सो मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ९ ॥ युधिष्ठिर बोले, पुष्टि चाहनेवाले पुरुषोंको किस प्रकार पुष्टि प्राप्त होती है और क्या कर्म करके मनुष्य दुःखी नहीं

श्राद्धस्यापि च माहात्म्यं तत्फलं च वद प्रभो॥ प्रीताश्च पितरो येन श्रेयसा योजयंति तम् ॥५॥ एतच्च श्रोतुमिच्छामि पितॄणां सर्गमुत्तमम् ॥ कथय त्वं विशेषेण कृपां कुरु महामते॥६॥ सूत उवाच ॥ वच्मि तत्तेऽखिलं प्रीत्या पितृसर्गं तु शौनक ॥ मार्कण्डेये येन कथितं भीष्माय परिपृच्छते ॥ ७ ॥ गीतं सनत्कुमारेण मार्कण्डेय धीमते ॥ तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम् ॥८॥ युधिष्ठिरेण संपृष्टो भीष्मो धर्मभृतां वरः॥शरशय्यास्थितः प्रोचे तच्छृणुष्व वदामि ते॥९॥ युधिष्ठिर उवाच॥ पुष्टिकामेन पुंसां वै कथं पुष्टिरवाप्यते ॥ एतच्छ्रोतुं समिच्छामि किं कुर्वाणो न सीदति ॥१०॥॥ सूत उवाच ॥ युधिष्ठिरेण संपृष्टं प्रश्नं श्रुत्वा स धर्मवित् ॥ भीष्मः प्रोवाच सुप्रीत्या सर्वेषां शृण्वतां वचः ॥११॥ भीष्म उवाच ॥ ये कुर्वंति नराश्राद्धान्यपि प्रीत्या युधिष्ठिर ॥ श्राद्धैः प्रीणाति तत्सर्वं पितॄणां हि प्रसादतः ॥१२॥ श्राद्धानि चैव कुर्वन्ति फलकामास्सदा नरा ॥ अभिसंधाय पितरं पितुश्च पितरं तथा ॥१३॥ पितुः पितामहश्चैव त्रिषु पिंडेषु नित्यदा ॥ पितरो धर्मकामस्य प्रजाकामस्य च प्रजाम् ॥ १४ ॥

होता यह सब सुनना चाहता हूँ ॥ १० ॥ सूतजी बोले, युधिष्ठिरसे पूँछे हुए उस प्रश्नको सुनके धर्मात्मा वह भीष्म सब सुननेवालोंसे यह वचन बोले ॥ ११ ॥ भीष्मजी बोले, हे युधिष्ठिर ! जो मनुष्य प्रेमसे श्राद्धोंको करते हैं तो उन श्राद्धोंसे पितरोंके प्रसादसे सब प्रसन्न होते हैं ॥ १२ ॥ श्रेष्ठ फलके चाहनेवाले मनुष्य सदा पिता और पितामहको और प्रपितामहको तीनों पिंडोंमें श्राद्ध करते हैं ॥ १३ ॥ पितर धर्मकी कामना करनेवाले तथा सन्तानकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको प्रजा तथा धर्मको नित्य देते हैं ॥ १४ ॥

हे युधिष्ठिर ! पुष्टिकी इच्छा करनेवालेको पुष्टि देते हैं ॥ १५ ॥ युधिष्ठिर बोले, किसीके पितर स्वर्गमें तथा किसीके नरकमें होते हैं मनुष्योंको नित्यही कर्मानुसार फल मिलता है ॥ १६ ॥ उन पितरोंको दिये हुए पिण्डश्राद्ध आदि किस प्रकार पहुंचते हैं और वे नरकमें स्थित हुए पितर फल देनेमे कैसे समर्थ होते हैं ॥ १७ ॥ देवता भी स्वर्गमें पितरोंको पूजते हैं ऐसा मैंने सुना है यह मेरी सुननेकी इच्छा है मुझसे विस्तारसे कहो ॥ १८ ॥ भीष्मजी बोले, हे अरिन्दम ! इस विषयमें तुमसे कहूंगा जैसा मैंने सुना है और जिस प्रकार दूसरे लोकमें प्राप्त हुए मेरे पिताने कहा है ॥ १९ ॥ श्राद्धके समय मैंने अपने पिताको पिंडदान किया तो पिताने मेरे हाथसे पिंडभेदन करके हाथमें

पुष्टिकामस्य पुष्टिं च प्रयच्छन्ति युधिष्ठिर॥१५॥युधिष्ठिर उवाच॥वर्तंते पितरः स्वर्गे केषांचिन्नरके पुनः॥प्राणिनां नियतं चापि कर्मजं फलमुच्यते॥१६॥तानि श्राद्धानि दत्तानि कथं गच्छन्ति वै पितॄन्॥कथं शक्तास्तमाहर्त्तुं नरकस्थाः फलं पुनः ॥१७॥ देवा अपि पितॄन्स्वर्गे यजंत इति मे श्रुतम्॥एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण ब्रवीहि मे॥१८॥ भीष्म उवाच ॥ अत्र कीर्तयिष्यामि यथा श्रुतमरिन्दम ॥ पित्रा मम पुरा गीतं लोकान्तरगतेन वै॥१९॥ श्राद्ध काले मम पितुर्मया पिंडस्समुद्यतः॥ मत्पिता मम हस्तेन भित्त्वा भूमिमयाचत॥२०॥ नैष कल्पविधिर्दृष्ट इति निश्चित्य चाप्यहम्॥ कुशेष्वेव ततः पिंडं दत्तवानविचारयन्॥२१॥ ततः पिता मे संतुष्टो वाचा मधुरया तदा॥ उवाच भारतश्रेष्ठ प्रीयमाणो मयानघ॥२२॥ त्वया दायादवानस्मि धर्मज्ञेन विपश्चिता ॥ तारितोहं तु जिज्ञासा कृता मे पुरुषोत्तम॥२३॥ प्रमाणं यद्धि कुरुते धर्माचारेण पार्थिवः॥ प्रजास्तदनु वर्तंते प्रमाणाचरितं सदा ॥ २४ ॥ शृणु त्वं भारतश्रेष्ठ वेदधर्मांश्च शाश्वतान् ॥ प्रमाणं वेदधर्मस्य पुत्र निर्वर्त्तितं त्वया ॥ २५ ॥

पिंड मांगा ॥ २० ॥ ऐसी कल्पकी विधि नहीं देखी ऐसा निश्चय करके मैंने विना विचारे वह पिंड कुशाओं पर ही दिया ॥ २१ ॥ तब सन्तुष्ट हुए मेरे पिता मुझसे मधुरवाणीसे बोले, हे अनघ ! भारतश्रेष्ठ ! मैं सन्तुष्ट हुआ ॥ २२ ॥ हे पुरुषोत्तम ! तुम धर्मात्मा विद्वान्से मैं भाग लेनेवाला हूं और तारा गया हूं ऐसी मेरी जिज्ञासा की ॥ २३ ॥ राजा जिस प्रकार धर्माचरणसे प्रणाम करता है उस प्रकार प्रमाणके अनुसार आचरणसे प्रजा पीछे चलती है ॥ २४ ॥ हे भारतश्रेष्ठ ! हे पुत्र ! तुम सनातन वेद धर्मोंको सुनो तुमने वेदधर्मका

प्रमाण सम्पादन किया ॥२५॥ इस कारण मैं तुमसे प्रसन्न हुआ और प्रीतिसे उत्तम तीनों लोकोंमें दुर्लभ वरको देता हूं स्वीकार करो ॥२६॥ जबतक तुम जीनेकी इच्छा करोगे तबतक तुम्हारी मृत्यु न होगी और तुम्हारी आज्ञा पाकर मृत्यु होगी ॥२७॥ और जो तुम इच्छा करते हो सो उत्तम वर दूँगा हे भारतश्रेष्ठ ! जो तुम्हारे मनमें हो सो कहो ॥२८॥ ऐसा उनके कहनेपर अभिवादन करके हाथ जोड कृतकृत्य हुआ मैं यह बोला, हे मादन ! तुम्हारे प्रसन्न होनेपर मैं एक प्रश्नको पूंछता हूँ उसको तुम स्वयम् कहो ॥२९॥ तब वह मुझसे यह बोले जो तुम चाहते हो वह मैं दूंगा मेरे पूँछने पर वह राजा यह कहने लगे ॥३०॥ शंतनु बोले हे तात ! सुनो मैं तुम्हारे प्रश्नको ठीक ठीक कहता हूं सम्पूर्ण पितृ-

तस्मात्त्वाहं सुप्रीतः प्रीत्या वरमनुत्तमम् ॥ ददामि त्वं प्रतीक्षस्व त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्॥२६॥न ते प्रभविता मृत्युर्यावज्जीवितुमिच्छसि ॥ त्वत्तोभ्यनुज्ञां संप्राप्य मृत्युः प्रभविता पुनः ॥२७॥ किं वा ते प्रार्थितं भूयो ददामि वरमुत्तमम्॥तद् ब्रूहि भरतश्रेष्ठ यत्ते मनसि वर्तते ॥२८॥ इत्युक्तवति तस्मिंस्तु अभिवाद्य कृताञ्जलिः॥अवोचं कृतकृत्योऽहं प्रसन्ने त्वयि मानद॥प्रश्नं पृच्छामि वै कंचिद्वाच्यस्स भवता स्वयम् ॥२९॥ स मामुवाच तद् ब्रूहि यदीच्छसि ददामि ते ॥ इत्युक्तेथ मया तत्र पृष्टः प्रोवाच तन्नृपः॥३०॥ शंतनुरुवाच ॥ शृणु तात प्रवक्ष्यामि प्रश्नं तेऽहं यथार्थतः॥पितृकल्पं च निखिलं मार्कण्डेयेन मे श्रुतम् ॥३१॥ यत्त्वं पृच्छसि मां तात तदेवाहं महामुनिम् ॥ मार्कण्डेयमपृच्छं हि स मां प्रोवाच धर्मवित् ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृणु राजन्मया दृष्टं कदाचित्पश्यता दिवम्॥विमानं महदायांतमन्तरेण गिरेस्तदा॥३३॥ तस्मिन्विमाने पर्यङ्कं ज्वलितांगारवर्चसम्॥महातेजः प्रज्वलंतं निर्विशेषं मनोहरम् ॥ ३४ ॥ अपश्यं चैव तत्राहं शयानं दीप्ततेजसम् ॥ अंगुष्ठमात्रं पुरुषमग्नावग्निमिवाहितम् ॥ ३५ ॥

कल्प मैंने मार्कंडेयसे पहले सुना है ॥३१॥ हे तात ! जो तुम मुझसे पूंछते हो वहही पहले मैंने महामुनि मार्कंडेयसे पूंछा था तो वह धर्मात्मा मुझसे कहने लगे ॥३२॥ मार्कंडेय मुनि बोले, हे राजन् ! सुनो कभी आकाशको देखते हुए मैंने पर्वतके अन्तरसे आते हुए बडे विमानको देखा ॥ ३३ ॥ उस विमानमें प्रत्यक्ष जलते हुए अङ्गारके समान प्रज्वलित हुए अनुपम मनोहर महातेजस्वी ॥३४॥ शयन करते हुए प्रदीप्त तेजवाले अग्निमें रक्खी हुई अग्निके समान अंगुष्ठमात्र पुरुषको मैंने देखा ॥ ३५ ॥

तब मैंने उन प्रभुको शिरसे प्रणाम करके यह पूंछा हे प्रभो ! मैं तुमको कैसे जानूं ॥ ३६ ॥ तब वह धर्मात्मा मुझसे बोले, हे मुने ! ऐसा कोई तप नहीं है जिससे तुम ब्रह्माके पुत्र मुझको जानोगे ॥ ३७ ॥ मुझको सनत्कुमार नामवाला जानो मे तुम्हारा क्या कार्य करूं ? ब्रह्माके और जो पुत्र हैं वे मेरे छोटे भाई हैं ॥ ३८ ॥ हमारे सात दुर्धर्ष भाई हैं जिनके वंश प्रतिष्ठित हैं हम सब आत्मामें आत्माको स्थिर करके यतिधर्म करनेवाले हैं ॥ ३९ ॥ हे मुने ! जब मैं उत्पन्न हुआ तबसे कुमार नामसे प्रसिद्ध हुआ हूँ इस कारण मेरा सनत्कुमार नाम विख्यात हुआ ॥ ४० ॥ मेरे दर्शनकी इच्छासे तुमने जो तप किया इससे मैंने दर्शन दिये; तुम्हारा कल्याण हो अब तुम्हारा क्या

सोऽहं तस्मै नमः कृत्वा प्रणम्य शिरसा प्रभुम् ॥ अपृच्छं चैव तमहं विद्यामस्त्वां कथं विभो ॥ ३६ ॥ मामुवाच धर्मात्मा ते न तद्विद्यते तपः ॥ येन त्वं बुध्यसे मां हि मुने वै ब्रह्मणस्सुतम् ॥३७॥ सनत्कुमारमिति मां विद्धि किं करवाणि ते ॥ ये त्वन्ये ब्रह्मणः पुत्राः कनीयांसस्तु ते मम ॥३८॥ भ्रातरस्सप्त दुर्धर्षा येषां वंशाः प्रतिष्ठिताः॥वयं तु यतिधर्माणस्संयम्यात्मानमात्मनि॥ ॥ ३९ ॥ यथोत्पन्नस्तथैवाहं कुमार इति विश्रुतः ॥ तस्मात्सनत्कुमारं मे नामैतत्कथितं मुने ॥४०॥ यद्भक्त्या ते तपश्चीर्णं मम दर्शनकांक्षया ॥ एष दृष्टोऽस्मि भद्रं ते कं कामं करवाणि ते ॥४१॥ इत्युक्तवन्तं तं चाहं प्रावोचं त्वं शृणु प्रभो ॥ पितॄणामादि सर्गं च कथयस्व यथातथम् ॥४२॥ इत्युक्तस्स तु मां प्राह शृणु सर्वं यथातथम् ॥ वच्मि ते तत्त्वतस्तात पितृसर्गं शुभावहम् ॥ ४३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ देवान्पुरासृजद्ब्रह्मा मां यक्षध्वं स चाह तान् ॥ तमुत्सृज्य तमात्मानमयजंस्ते फलार्थिनः ॥ ४४ ॥ ते शप्ता ब्रह्मणा मूढा नष्टसंज्ञा भविष्यथ ॥ तस्मात्किंचिदजानंतो नष्टसंज्ञाः पितामहम् ॥ ४५ ॥

मनोरथ पूर्ण करूं ? ॥ ४१ ॥ ऐसा कहते हुए उनसे मैंने कहा हे प्रभो ! सुनो पितरोंके आदि सर्गको यर्थाथ कहो ॥ ४२ ॥ ऐसा कहनेपर वह मुझसे बोले, हे तात ! सुनो मैं तुमसे सम्पूर्ण सुखदायक पितृसर्गको ठीक ठीक कहता हूं ॥ ४३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, पहले ब्रह्माजीने देवताओंको उत्पन्न किया और उनसे यह बोले कि, तुम मुझे पूजो तब फलके चाहने वाले देवताओंने ब्रह्माजीको त्यागके आत्मा (अपने) का यजन किया ॥ ४४ ॥ तब उन्हें ब्रह्माजीने यह शाप दिया कि, तुम चेतनासे हीन होगे इससे नष्ट संज्ञ होवे

ब्रह्माको कुछ न जानते हुए ॥ ४५ ॥ और नम्र हुए सब उनसे बोले, हे ब्रह्माजी ! हमपर दया करो ऐसा सुन ब्रह्माजीने उनसे प्रायश्चित्तके लिये कहा ॥ ४६ ॥ तथा यह कहा कि, तुम सब अपने पुत्रोंसे पूँछो तो ज्ञानको पाओगे ऐसा सुन नष्ट संज्ञावाले वे सब अपने पुत्रोंसे पूँछने लगे ॥ ४७ ॥ हे अनघ ! तब उनके पुत्रोंने यह कहा हे पुत्रो ! चेतनासे युक्त होके तुम प्रायश्चित्तके निमित्त जाओ ॥ ४८ ॥ तब शाप दिये हुए उन देवताओंने पुत्रोंकी इच्छासे ब्रह्माजीसे पूँछा कि हमारे पुत्रोंने हमको पुत्रके ऐसा सम्बोधन क्यों किया ॥ ४९ ॥ तब सन्देह करनेवाले उन देवताओंसे ब्रह्माजीने कहा हे सब देवताओ ! सुनो तुम ब्रह्मवादी नहीं हो ॥ ५० ॥ इस कारण

प्रोचुस्तं प्रणतास्सर्वे कुरुष्वानुग्रहं हि नः ॥ इत्युक्तस्तानुवाचेदं प्रायश्चित्तार्थमेव हि॥४६॥पुत्रान्स्वान्परिपृच्छध्वं ततोज्ञानमवाप्स्यथ॥इत्युक्ता नष्टसंज्ञास्ते पुत्रान्पप्रच्छुरोजसा ॥ ४७ ॥ प्रायश्चित्तार्थमेवाधिलब्धसंज्ञा दिवौकसः॥गम्यतां पुत्रका एवं पुत्रैरुक्ताश्च तेऽनघ ॥४८॥ अभिशप्तास्तु ते देवाः पुत्रकामेन वेधसम् ॥ पप्रच्छुरुक्ताः पुत्रैस्ते गतास्ते पुत्रका इति ॥४९॥ ततस्तान ब्रवीद्देवो देवान्ब्रह्मा ससंशयान् ॥ शृणुध्वं निर्जरास्सर्वे यूयं न ब्रह्मवादिनः ॥ ५० ॥ तस्माद्यदुक्तं युष्माकं पुत्रैस्तैर्ज्ञानिसत्तमैः॥ मंतव्यं संशयं त्यक्त्वा तथा न च तदन्यथा ॥ ५१ ॥ देवाश्च पितरश्चैव यजध्वं त्रिदिवौकसः ॥ परस्परं महाप्रीत्या सर्वकामफलप्रदा ॥ ५२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ततस्ते छिन्नसंदेहाः प्रीतिमंतः परस्परम् ॥ बभूवुर्मुनिशार्दूल ब्रह्मवाक्यात्सुखप्रदाः ॥ ५३ ॥ ततो देवा हि प्रोचुस्तान्यदुक्ताः पुत्रका वयम् ॥ तस्माद्भवंतः पितरो भविष्यथ न संशयः ॥ ५४ ॥ पितृश्राद्धे क्रियां कश्चित्करिष्यति न संशयः ॥ श्राद्धैराप्यायितस्सोमो लोकानाप्याययिष्यति ॥ ५५ ॥

ज्ञानी तुम्हारे पुत्रोंने जो कुछ कहा उसे निस्सन्देह मानो अन्यथा न करो इनके ज्ञानमें तुम बालक हो ॥ ५१ ॥ तुम सब आपसमें अति प्रेमसे सम्पूर्ण कामनाके देनेवाले देवता और पितरोंका पूजन करो ॥ ५२ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! तब वे ब्रह्माजीके वचनसे सन्देह रहित हो परस्पर प्रीति करनेवाले सुखदायक हुए ॥ ५३ ॥ तब देवताओंने उनसे कहा जो कि, तुमने हमको पुत्रक ऐसा कहा है इससे तुमपितर होवोगे इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ५४ ॥ पितृश्राद्धमें कोई भी मनुष्य क्रियाको न छोडेगा श्राद्धोंसे तृप्त हुए सोम लोकोंको तृप्त

करेंगे ॥ ५५ ॥ समुद्र पर्वत वन स्थावर जंगमोंमें व्याप्त हो जो मनुष्य पुष्टिके कामनासे श्राद्ध करेंगे ॥ ५६ ॥ प्रसन्न किये हुए पितर उनको सदा पुष्टिको देंगे जो श्राद्धमें नाम गोत्रसे तीन पिण्डोंको दान करेंगे ॥ ५७ ॥ तो सब जगह वर्तमान हुये निरंतर श्राद्धदानसे तृप्त किये हुए सर्व व्यापक पितर प्रपितामह आदि श्राद्धकर्ताकी सब कामना पूर्ण करते है ॥ ५८ ॥ यह सुनकर उन्होंने कहा इनका वचन सत्य हो हम सब देवता परस्परमें पुत्र और पितर हुए ॥ ५९ ॥ इस प्रकार वे पितर देवता धर्मसे पुत्र भावको प्राप्त हुए और परस्पर संसारमें पितर नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ ६० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० श्राद्धकल्पे पितृभाववर्णनं नाम

समुद्रं पर्वतवनं जंगमाजंगमैर्वृतम्॥ श्राद्धानि पुष्टिकामैश्च ये करिष्यंति मानवाः॥५६॥तेभ्यः पुष्टिप्रदाश्चैव पितरः प्रीणितास्सदा॥ श्राद्धे ये च प्रदास्यंति त्रीन्पिंडान्नामगोत्रतः ॥५७॥ सर्वत्र वर्तमानास्ते पितरः प्रपितामहाः ॥ भावयिष्यंति सततं श्राद्धदानेन तर्पिताः ॥५८॥ इति तद्वचनं सत्यं भवत्वथ दिवौकसः ॥ पुत्राश्च पितरश्चैव वयं सर्वे परस्परम् ॥५९॥ एवं ते पितरो देवा धर्मतः पुत्रतां गताः॥ अन्योन्यं पितरो वै ते प्रथिताः क्षितिमण्डले॥६०॥इति श्रीशिवमहापुराणेपञ्चम्यासुमासंहितायां श्राद्धकल्पे पितृप्र भाववर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥ सनत्कुमार उवाच॥सप्त ते तपतां श्रेष्ठ स्वर्गे पितृगणास्स्मृताः॥ चत्वारो मूर्त्तिमंतो वै त्रयश्चैव ह्यमूर्तयः॥१॥ तान्यजंते देवगणा आद्या विप्रादयस्तथा॥ आप्याययंति ते पूर्वं सोमं योगबलेन वै॥२॥ तस्माच्छ्राद्धानि देयानि योगिनां तु विशेषतः॥सर्वेषां राजतं पात्रमथ वा रजतान्वितम्॥३॥दत्तंस्वधां पुरोधाय श्राद्धे प्रीणाति वै पितॄन्॥वह्नेराप्यायनं कृत्वा सोमस्य तु यमस्य वै॥४॥उदगायनमप्यग्नावभ्यभावेऽप्सु वा पुनः॥ पितॄन्प्रीणाति यो भक्त्या पितरः प्रीणयंति तम्॥५॥

चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे तपस्वियोंमें श्रेष्ठ ! स्वर्गमें वे सात पितृगण कहे हैं उनमें चार मूर्तिवाले तथा तीन बिन मूर्तिवाले हैं ॥ १ ॥ आद्यदेवगण तथा ब्राह्मण उनको पूजते हैं तब वे पितर पहले योग बलसे सोमको तृप्त करते हैं ॥ २ ॥ इस कारण चांदीके पात्र तथा चांदी सहित श्राद्धका दान विशेषकर योगियोंको देना उचित है ॥३॥ श्राद्धमें पुरोहितको प्रदान किया हुआ स्वधा पितरोंको तृप्त करता है अग्नि तथा सोम और यमका आह्वान(बुलाना)करके॥४॥अग्निमें वा अग्निके अभावमें जलमें उदगायन करके जो मनुष्य भक्तिसे पितरोंको

सन्तुष्ट करता है तो पितर उसको सन्तुष्ट करते हैं ॥ ५ ॥ प्रसन्न हुए पितर पुष्टि अधिक सन्तान स्वर्ग अरोग्य वृद्धि तथा और भी इच्छित पदार्थ देते हैं ॥ ६ ॥ हे मुने ! हे विप्रर्षे ! देवकार्यसे भी पितरोंका कार्य विशेष कहा है तुम पितरोंके भक्त हो इससे अजर अमर होओ ॥ ७ ॥ हे महामुने ! वह गति योगसे भी नहीं मिलती जो गति पितृभक्तकी होती है इससे विशेष कर पितृभक्ति करनी चाहिये ॥ ८ ॥ मार्कंडेयजी बोले, ऐसा कहके वह देवताओंके स्वामी देवताओंसे भी दुर्लभ विज्ञान सहित नेत्र देकर योगकी गतिको प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ हे

यच्छंति पितरः पुष्टिं प्रजाश्च विपुलास्तथा ॥ स्वर्गमारोग्यवृद्धिं च यदन्यदपि चेप्सितम् ॥६॥ देवकार्य्यादपि मुने पितृकार्य्यं विशिष्यते ॥ पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे तेन त्वमजरामरः ॥ ७ ॥ न योगेन गतिस्सा तु पितृभक्तस्य या मुने ॥ पितृभक्तिर्विशेषेण तस्मात्कार्या महामुने ॥८॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवमुक्काऽऽशु देवेशो देवानामपिदुर्लभम्॥चक्षुर्दत्त्वा सविज्ञानं जगाम यौगिकीं गतिम् ॥ ९ ॥ शृणु भीष्म पुरा भूयो भारद्वाजात्मजा द्विजाः ॥ योगधर्ममनुप्राप्य भ्रष्टा दुश्चरितेन वै ॥१०॥ वाग्दुष्टः क्रोधनो हिंस्रः पिशुनः कविरेव च ॥ स्वसृषः पितृवर्ती च नामभिः कर्मभिस्तथा ॥११॥ कौशिकस्य सुतास्तात शिष्या गर्गस्य चाभवन् ॥ पितर्य्युपरते सर्वे प्रवसंतस्तदाभवन् ॥१२॥ विनियोगाद्गुरोस्तस्य गां दोग्ध्रीं समकालयन्॥समानवत्सांकपिलां सर्वेऽन्यायागतास्तदा ॥ ॥ १३ ॥ तेषां पथि क्षुधार्तानां बाल्यान्मोहाच्च भारत॥ क्रूरा बुद्धिस्समुत्पन्ना तां गां वै हिंसितुं तदा ॥ १४ ॥

भीष्म ! सुनो पहले भारद्वाजके पुत्र ब्राह्मण योगधर्मको प्राप्त होके दुराचारसे फिर भ्रष्ट हो गये ॥ १० ॥ वे वाग्दुष्ट क्रोधन हिंस्र पिशुन कवि स्वसृष पितृवर्त्ती नामवाले थे तथा नामके अनुसार कर्म करनेवाले थे ॥ ११ ॥ हे तात ! विश्वामित्रके पुत्र और गर्गके शिष्य हुए पिताके मर जानेपर सब प्रवास करने वाले हुये ॥ १२ ॥ गुरुके विनियोगसे समान वत्सरवाली दोहनशील कपिला * गौको पालते हुए वे सब अन्यायको प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ हे भारत ! मार्गमें मूर्खता मोहसे वा उस समय भूँखसे व्याकुल हो उनकी उस गायके मारनेको

* यह गौ ऋषिके पुण्यकी निर्मित थी इन गौओंकी समान थी उस पुण्यको इन्होंने अन्यायसे मुक्त किया ।

दुष्टबुद्धि उत्पन्न हुई ॥ १४ ॥ कवि तथा स्वसृषने उस गौको उनसे मांगा, पर उन्होंने न दी और वे इनको निवारण करनेमें समर्थ न हुए ॥ १५ ॥ उनमेंसे जो नित्य श्राद्ध आह्निक करनेवाला था वह पितृवर्त्ती था, वह पितरोंकी भक्तिमें तत्पर हुआ सबोंसे क्रोधसे बोला ॥ १६ ॥ यदि और करनेको असमर्थ हो तो पितरोंको उद्देश करके यह कार्य साधन करो, तुम सब सावधान होके श्राद्ध करो ॥ १७ ॥ इस प्रकार यह गौ निसन्देह धर्मको प्राप्त होगी धर्मसे पितरोंको पूजके तुमको अधर्म नहीं होगा ॥ १८ ॥ हे भारत ! ऐसा कहनेपर उन सबोंने उस गायको स्नान कराकर पितरोंको समर्पण करके कार्य साधा ॥ १९ ॥ पश्चात् सबोंने उन गुरुसे निवेदन किया कि,

तां कविस्स्वसृषश्चैव याचेते नैति वै तदा ॥ न चाशक्यास्तु ताभ्यां वा तदा वारयितुं निजाः ॥१५॥ पितृवर्ती तु यस्तेषां नित्यं श्राद्धाह्निको द्विजः ॥ स सर्वानब्रवीत्कोपात्पितृभक्तिसमन्वितः॥१६॥यद्यशक्यं प्रकर्तव्यं पितॄनुद्दिश्य साध्यताम्॥प्रकुर्वतो हि श्राद्धं तु सर्व एव समाहिताः॥१७॥ एवमेषा च गौर्धर्मं प्राप्स्यते नात्र संशयः॥पितॄनभ्यर्च्य धर्मेण नाधर्मो नो भविष्यति॥१८॥ एवमुक्ताश्च ते सर्वे प्रोक्षयित्वा च गां तदा॥पितृभ्यःकल्पयित्वा तु ह्युपायुंजत भारत ॥१९॥ उपयुज्य च गां सर्वे गुरोस्तस्य न्यवेदयन्॥शार्दूलेन हता धेनुर्वत्सा वैगृह्यतामिति ॥२०॥ आर्तवत्स तु तं वत्सं प्रतिजग्राह वै द्विजः॥मिथ्योपचारतः पापमभूत्तेषां च गोघ्नताम्॥२१॥ततः कालेन कियता कालधर्ममुपागताः॥ते सप्तभ्रातरस्तात बभूवुस्स्वायुषःक्षये ॥२२॥ तेवै क्रूरतया हैंस्त्र्यात्स्वा नार्य्यत्वाद्धुरोस्तथा॥उग्रहिंसाविहाराश्च जातास्सप्त सहोदराः ॥२३॥ लुब्धकस्य सुतास्तावद्बलवंतो मनस्विनः ॥ जाता व्याधा दशार्णेषु सप्त धर्मविचक्षणाः ॥२४॥ स्वधर्मनिरतास्सर्वे मृगा मोहविवर्जिताः ॥ आसन्नुद्वेगसंविग्ना रम्ये कालंजरे गिरौ ॥२५॥

सिंहने वनमें गाय मार डाली आप इस बछियाको ग्रहण करो ॥ २० ॥ तब उस दुःखित वत्सको ब्राह्मणने ग्रहण किया मिथ्या उपचारसे उन सबको गौहत्या करनेका पाप लगा ॥ २१ ॥ हे तात ! तब कुछ समयके बीतने पर कालके धर्ममें प्राप्त हुए ये सातों भाई आयुके विनाशमें प्राप्त हुए ॥ २२ ॥ अपनी दुष्टतासे वे सब हत्या करनेसे तथा अपनी दुर्जनतासे बडी हिंसासे विहार करनेवाले सगे सात भाई हुए ॥ २३ ॥ दशार्ण देशोंमें वे सातों बली बुद्धिमान लुब्धकके पुत्र धर्ममें प्रवीण व्याधे हुए ॥ २४ ॥ अपने धर्ममें तत्पर मोहवर्जित

उद्वेगसे युक्त वे सातों मृगोंके समान कालंजरपर्वतपर विहार करने लगे ॥२५॥ तब उस मरणात्मक ज्ञानको स्मरण करके वे वनचर निर्द्वन्द्व हो
शान्त होगये ॥२६॥ वे सब व्याधे शुभकर्म करनेवाले अधर्माचरणसे हीन जातिस्मरणवाले होगये ॥ २७ ॥ पूर्वजन्ममें गुरुकुलोंमें जो धर्म सुना
था उसी प्रकार संसारसे निवृत्त होनेकी बुद्धिमें स्थित हुए ॥ २८ ॥ और उन्होंने तपस्वियोंसे पर्वतोंमें भोजन पाय वहाँही प्राणोंको त्यागा हे
भारत ! उन पतित व्याधोंके जो स्थान हैं ॥ २९ ॥ हे राजन् ! वह स्थान अब भी कालंजरपर्वतपर दीखते हैं वे उस कर्मसे शुभ और अशुभसे

तमेवार्थमनुध्याय ज्ञानं मरणसंभवम् ॥ आसन्वनचराः क्षांता निर्द्वंद्वा निष्परिग्रहाः ॥२६॥ ते सर्वे शुभकर्माणस्सद्धर्माणो वनेच
राः ॥ विधर्माचरणैर्हीना जातिस्मरणसिद्धयः ॥२७॥ पूर्वजातिषु यो धर्मः श्रुतोगुरुकुलेषु वै॥तथैव चास्थिता बुद्धौ संसारेऽप्य
निवर्तने ॥२८॥ गिरिमध्ये जहुः प्राणाँल्लब्धाहारास्तपस्विनः ॥ तेषां तु पतितानां च यानि स्थानानि भारत ॥२९॥ तथैवाद्यापि
दृश्यंते गिरौ कालञ्जरे नृप ॥ कर्मणा तेन ते जाताः शुभाशुभविवर्जकाः॥३०॥ शुभाऽशुभतरां योनिं चक्रवाकत्वमागताः॥ शुभे
देशे शरद्वीपे सप्तैवासञ्जलौकसः ॥ ३१ ॥ त्यक्त्वा सहचरीधर्मं मुनयो धर्मधारिणः ॥ निस्संगा निर्ममाश्शांता निर्द्वंद्वा निष्परि
ग्रहाः ॥ ३२ ॥ निवृत्तिनिर्वृताश्चैव शकुना नामतः स्मृताः ॥ ते ब्रह्मचारिणस्सर्वे शकुना धर्मधारिणः ॥३३॥ जातिस्मरास्सुसंवृद्धा
स्सप्तैव ब्रह्मचारिणः॥स्थिता एकत्र सद्धर्मा विकाररहितास्सदा॥३४॥विप्रयोनौ तु यन्मोहान्मिथ्यापचरितं गुरौ ॥ तिर्य्यग्योनौतथा
जन्म श्राद्धाज्ज्ञानं च लेभिरे॥३५॥ तथा तु पितृकार्य्यार्थं कृतं श्राद्धं व्यवस्थितैः॥तदा ज्ञानं च जातिं च क्रमात्प्राप्तं गुणोत्तरम् ॥३६॥

वर्जित हुए॥३०॥पीछे हिरन हुए फिर शुभ तथा अशुभके होनेसे चकवेकी योनिको प्राप्त हुए फिर शुभदेशमें शरद्वीपमें सातों जलजीव (चकवे)
॥३१॥ बने धर्माचरण करनेवाले निसंग ममतारहित शान्त निर्द्वन्द्व निष्परिग्रही वे मुनि सहचरी धर्मको छोड ॥ ३२ ॥ निवृत्तिसे निवृत्त हो
धर्माचारी वे शकुन नामवाले पक्षी ब्रह्मचारी हुए॥३३॥वे वृद्ध सात ब्रह्मचारी एक स्थानमें स्थित हो तथा सदा निर्विकारी हुए॥३४॥ ब्राह्मणकी
योनिमें गुरुके विषयमें जो मिथ्या अपचार किया इससे पक्षीकी योनिमें जन्म हुआ फिर श्राद्ध करनेसे उन्होंने ज्ञान पाया॥३५॥और उन्होंने

न्यवस्थितचित्त हो पितरोंके कार्यके अर्थ श्राद्ध किया तो क्रमसे ज्ञानको और जातिस्मरणके उत्तम गुणको प्राप्त किया ॥ ३६ ॥ पूर्वज आदि गुरुकुलोंमें जो ब्रह्मज्ञान सुना था उसी प्रकार ज्ञान उनमें स्थित रहा इस कारण ज्ञानका अभ्यास करना उचित है ॥ ३७ ॥ वे सुमना सुवाक् शुद्ध पंचम छिद्र दर्शक स्वतंत्र सुयज्ञ कुलीन नामवाले हुए ॥३८॥ हे महामुने ! वनमें फिरनेवाले धर्मात्मा उन पक्षियोंका जिस प्रकार उत्तम आचरण हुआ उसे सुनो ॥ ३९ ॥ नीप देशोंका स्वामी प्रभावशाली शोभायमान अन्तःपुरसे युक्त राजा उस वनमें एक समय आया

पूर्वजादिषु यद्ब्रह्म श्रुतं गुरुकुलेषु वै ॥ तथैव संस्थितज्ञानं तस्माज्ज्ञानं समभ्यसेत् ॥ ३७ ॥ सुमनाश्च सुवाक्छुद्धः पञ्चमश्छिद्रदर्शकः ॥ स्वतंत्रश्च सुयज्ञश्च कुलीना नामतः स्मृताः ॥ ३८ ॥ तेषां तत्र विहंगानां चरतां धर्मचारिणाम् ॥ सुवृत्तमभवत्तत्र तच्छृणुष्व महामुने ॥ ३९ ॥ नीपानामीश्वरो राजा प्रभावेण समन्वितः ॥ श्रीमानन्तःपुरवृतो वनं तत्राविवेश ह ॥ ४० ॥ स्वतंत्रश्चक्रवाकस्सस्पृहयामास तं नृपम् ॥ दृष्ट्वा यांतं सुखोपेतं राज्यशोभासमन्वितम् ॥ ४१ ॥ यद्यस्ति सुकृतं किंचित्तपो वा नियमोऽपि वा॥खिन्नोह मुपवासेन तपसा निश्चलेन च ॥ ४२ ॥ तस्य सर्वस्य पूर्णेन फलेनापि कृतेन हि ॥ सर्वसौभाग्यपात्रश्च भवेयमहमीदृशः ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततस्तु चक्रवाकौ द्वावासतुस्सहचारिणौ ॥ आवां वै सचिवौ स्याव तव प्रियहितैषिणौ ॥ ४४ ॥ तथेत्युक्ता तु तस्यासीत्तदा योगात्मनो गतिः ॥ एवं तौ चक्रवाकौ च स्ववाक्यं प्रत्यभाषताम् ॥ ४५ ॥ यस्मात्कर्मब्रुवाणस्वं योगधर्ममवाप्य तम्॥एवं वरं प्रार्थयसे तस्माद्वाक्यं निबोध मे ॥ ४६ ॥

॥ ४० ॥ सुखीराज्यसे युक्त शोभासे जाते हुए उस राजको देखकर स्वतन्त्र चकवेने यह इच्छा की ॥ ४१ ॥ यदि कोई पुण्य वा तप नियम है जो निश्चल तपसे उपवाससे व्याकुल हुआ मैं ॥ ४२ ॥ उस सबके पूर्ण फलसे ऐसा सौभाग्यका पात्र होजाऊँ ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले, तत्पश्चात् दोनों चकवे सहचारी हो बोले, कि हम दोनों तुम्हारे प्रिय हितैषी मन्त्री होवें ॥ ४४ ॥ ऐसा हो यह कहनेसे उसकी योगात्मासे वैसी गति होगई तब वे दोनों चकवे इस प्रकार अपने वचनोंको कहने लगे ॥ ४५ ॥ जो कुछ कर्म करके तुमने योगधर्मको

प्राप्त किया है फिर ऐसी बात कहते हो इससे मेरा वचन सुनो ॥ ४६ ॥ हे तात ! तुम उत्तम काम्पिल्य नगरके राजा होगे और योगके व्यभिचारके कारण यह दोनों चकवे तुम्हारे मंत्री होंगे ॥ ४७ ॥ तीनोंने राज्य विषयक मन लगानेके कारण जब कुछ न कहा तब उनका चतुर सहचारी फिर बोला, और उस सुमनाने उनपर प्रसन्नता प्रगटकी ॥ ४८ ॥ भो तुम्हारा शाप मिट जायगा तुम फिर योगको प्राप्त होगे सर्व सत्ववाला यह सुयज्ञ फिर योगको प्राप्त होगा ॥ ४९ ॥ पितरोंके प्रसादसे तुमको पुण्यकी प्राप्ति रहेगी, जो कि तुमने गौको प्रोक्षण कर धर्मसे पितरोंके अर्थ अर्पण किया था ॥ ५० ॥ हम सबको ज्ञानका संयोग योगका साधन प्राप्त हुआ इस कार्यके लिये उदाहरणमें एक

राजा त्वं भविता तात कांपिल्ये नगरोत्तमे॥एतौ ते सचिवौ स्यातां व्यभिचारप्रधर्षितौ ॥ ४७ ॥ न तानूचुस्त्रयो राज्यं चतुर स्सहचारिणः॥स प्रसादं पुनश्चक्रे तन्मध्ये सुमनाब्रवीत् ॥ ४८ ॥ अंतर्वो भविता शापः पुनर्योगमवाप्स्यथ॥सर्वसत्त्वः सुयज्ञश्च स्वतंत्रोऽयं भविष्यति ॥ ४९ ॥ पितृप्रसादाद्युष्माभिस्संप्राप्तं सुकृतं भवेत् ॥ गां प्रोक्षयित्वा धर्मेण पितृभ्यश्चोपकल्पिताः ॥ ॥ ५० ॥ अस्माकं ज्ञानसंयोगस्सर्वेषां योगसाधनम्॥इदं च कार्यं संरब्ध श्लोकमेकमुदाहृतम् ॥५१॥ पुरुषान्तरितं श्रुत्वा ततो योगमवाप्स्यथ॥इत्युक्त्वा स तु मौनोभूद्विहंगस्सुमना बुधः ॥५२॥ मार्कण्डेय उवाच॥लोकानां स्वस्तये तात शन्तनुप्रवरात्मज॥ इत्युक्तं तच्चरित्रं मे किं भूयश्श्रोतुमिच्छसि ॥५३॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यासुमासंहितायां पितृसर्गवर्णनं सप्तव्याधगति वर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥ ॥ भीष्म उवाच॥मार्कण्डेय महाप्राज्ञ पितृभक्तिभृतां वर॥किं जातं तु ततो ब्रूहि कृपया मुनिसत्तम ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ते धर्मयोगनिरतास्सप्त मानसचारिणः॥वाय्वंबुभक्षास्सततं शरीरमुपशोषयन् ॥ २ ॥

श्लोक होगा ॥ ५१ ॥ किसी पुरुषसे उस श्लोकको सुनकर तुम फिर पूर्व योगको प्राप्त होगे यह कहकर सुमन नामवाला पंडित विहंग मौन होगया ॥ ५२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले, हे तात ! हे शन्तनुके पुत्र ! लोकोंके कल्याणके निमित्त यह मैंने चरित्र कहा अब क्या सुनना चाहते हैं ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० व्याधगतिवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ भीष्मजी बोले, हे महाप्राज्ञ ! हे पितृभक्तोंमें श्रेष्ठ ! हे मुनि श्रेष्ठ मार्कंडेयजी! इसके पीछे क्या हुआ सो कृपा करके कहो ॥ १ ॥ मार्कंडेयजी बोले, वे

सातों धर्मयोगमें तत्पर हो मानस सरोवरमें विचरते हुए निरन्तर पवन जलको भक्षण करके अपना शरीर सुखाने लगे ॥ २ ॥ जिस प्रकार इन्द्र नन्दन वनमें विहार करते हैं इस प्रकार वह राजा वहाँ क्रीडा करके अपने अन्तःपुरकी स्त्रीजनोंके सहित अपने नगरको गया ॥ ३ ॥ उसका अनूह नामक परम धर्मात्मा पुत्र था उसको राज्य पर बैठाय वैभ्राज राजा वनको चला गया ॥ ४ ॥ और जहाँ वे सहचारी थे वहाँ तप करने लगा इस प्रकार वायु भक्षण कर महातप किया ॥ ५ ॥ उस राजाके तपसे प्रकाशित हुआ वह वन विभ्राजित नामसे प्रसिद्ध हुआ और योग सिद्धिका देनेवाला हुआ ॥ ६ ॥ वहीं योग धर्मवाले उन चारों पक्षियोंने तथा योगसे भ्रष्ट हुए उन तीनों पक्षियोंने अपनी देह

स राजांतःपुरवृतो नन्दने मघवा इव ॥ क्रीडित्वा सुचिरं तत्र सभार्य्यस्स्वपुरं ययौ ॥३॥ अनूहो नाम तस्यासीत्पुत्रः परमधार्मिकः॥तं वैभ्राजः सुतं राज्ये स्थापयित्वा वनं ययौ॥४॥तपः कर्तुं समारेभे यत्र ते सहचारिणः॥स वै तत्र निराहारो वायुभक्षो महातपाः ॥५॥ ततो विभ्राजितं तेन विभ्राजं नाम तद्वनम् ॥ बभूव सुप्रसिद्धं हि योगसिद्धिप्रदायकम्॥६॥तत्रैव ते हि शकुनाश्चत्वारो योगधर्मिणः ॥ योगभ्रष्टास्त्रयश्चैव देहत्यागकृतोऽभवन् ॥७॥कांपिल्ये नगरे ते तु ब्रह्मदत्तपुरोगमाः ॥ जातास्सप्त महात्मानस्सर्वे विगतकल्मषाः ॥८॥ स्मृतिमंतोऽत्र चत्वारस्त्रयस्तु परिमोहिताः॥स्वतन्त्रस्याह्वयो जातो ब्रह्मदत्तो महौजसः॥९॥छिद्रदर्शी सुनेत्रस्तु वेदवेदांगपारगौ॥जातौश्रोत्रियदायादौ पूर्वजातिसहाषितौ॥१०॥पंचालो बह्वृचस्त्वासीदाचार्यत्वं चकार ह ॥द्विवेदःपुंडरीकश्च छंदोगोऽध्वर्युरेव च ॥११॥ ततो राजा सुतं दृष्ट्वा ब्रह्मदत्तमकल्मषम् ॥ अभिषिच्य स्वराज्ये तु परां गतिमवाप्तवान्॥१२॥

त्यागन कर दी ॥ ७ ॥ ब्रह्मदत्तको आदि लेकर विगत होगया है पाप जिनका ऐसे वे सातों महात्मा कांपिल्य नगरमें उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ उनमें वे चार तो स्मृतिवाले हुए और तीन मोहित हुए महातेजस्वी ब्रह्मदत्त स्वतन्त्र रूपसे हुआ ॥ ९ ॥ छिद्रदर्शी और सुनेत्र वेद वेदांगके पारगामी हुए यह पूर्व जातिमें साथ रहनेके कारग श्रोत्रियके पुत्र हुए ॥ १० ॥ पंचाल बहुऋच् होकर आचार्यत्व करने लगा द्विवेद और पुंडरीक छन्दोगा और अध्वर्यु हुए ॥ ११ ॥ इस ओर राजाने अपने पुत्र ब्रह्मदत्तको पापरहित देखकर उसको राज्यमें अभिषेक कर

परमगति प्राप्त की ॥ १२ ॥ इधर पंचाल पुंडरीकने अपने दोनों पुत्रोंको मंदिरमें स्थापन कर वनमें जाय परमगति पाई ॥ १३ ॥ हे भारत ब्रह्मदत्तकी भार्याका नाम सन्नति था वह एक भावको प्राप्त हो भर्ताके साथ नित्य रमण करने लगी ॥ १४ ॥ हे राजन् ! शेष चक्रवाक उसी कांपिल्य नगरमें दरिद्री श्रोत्रिय कुलमें जन्मे ॥ १५ ॥ धृतिमान् महात्मा तत्त्वदर्शी निरुत्सुक यह चारों वेदाध्ययन सम्पन्न तथा छिद्रदर्शी हुए ॥ १६ ॥ वे चारों योग सिद्ध परस्पर शंकरको आमंत्रण कर और उनके चरण कमलोंको प्रणाम कर युक्तरूप हो चले गये अर्थात् पूर्व

पंचालः पुण्डरीकस्तु पुत्रौ संस्थाप्य मन्दिरे ॥ विविशतुर्वनं तत्र गतौ परमिकां गतिम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मदत्तस्य भार्य्या तु सन्नितिर्नाम भारत ॥ सा त्वेकभावसंयुक्ता रेमे भर्त्रा सहैव तु ॥ १४ ॥ शेषास्तु चक्रवाका वै कांपिल्ये सहचारिणः ॥ जाताः श्रोत्रियदायादा दरिद्रस्य कुले नृप ॥ १५ ॥ धृतिमान्सुमहात्मा च तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः ॥ वेदाध्ययन सम्पन्नाश्चत्वारश्छिद्र दर्शिनः ॥ १६ ॥ ते योग निरतास्सिद्धाः प्रस्थितास्सर्व एव हि ॥ आमंत्र्य च मिथः शंभोः पदाम्भोजं प्रणम्य तु ॥ १७ ॥ ते तमूचुर्द्विजाः सर्वे पितरं पुनरेव च ॥ करिष्यामो विधानं ते येन त्वं वर्तयिष्यति ॥१८॥ इमं श्लोकं महार्थं त्वं राजानं सह मंत्रिणम् ॥ श्रावयेथ समागम्य ब्रह्मदत्तमकल्मषम् ॥ १९ ॥ प्रीतात्मा दास्यति स ते ग्रामान् भोगांश्च पुष्कलान् ॥ एतावदुक्ता ते सर्वे पूजयित्वा च तं गुरुम् ॥ योगधर्ममनुप्राप्य परां निर्वृत्तिमाययुः ॥ २० ॥ चतुर्ण तु पिता योऽसौ ब्राह्मणानां महात्म नाम् ॥ श्लोकं सोऽधीत्यपुत्रेभ्यः कृतकृत्य इवाभवत् ॥ २१ ॥

जातिका स्मरण होनेसे वे चारों चले गये ॥ १७ ॥ चलते समय वे चारों अपने पितासे बोले, हम आपकी आजीविकाका विधान किये जाते हैं जिससे तुम्हारा निर्वाह होजाय ॥ १८ ॥ बडे अर्थवाला यह श्लोक मंत्रियोंके सहित राजाको सुनाना तो प्रसन्न हो पापरहित ब्रह्मदत्त तुमको ग्राम और बहुतसे भोग्य पदार्थ देगा यह कहकर वे सब अपने गुरुकी पूजाकर योग धर्मको प्राप्त होकर मोक्ष होगये ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ इन महात्मा चारों ब्राह्मणोंका पिता पुत्रोंसे वह श्लोक पढकर कृतकृत्य होगया ॥ २१ ॥

वह श्लोक जाकर उसने राजा और राजमंत्रियोंको सुनाया कि दशार्ण देशमें सात व्याधे हुए कालिंजर पर्वतमें सात हिरन हुए ॥ २२ ॥ शरद्वीपमें चक्रवाक मानस सरोवरमें सात हंस हुए वही कुरु क्षेत्रमें वेद पारगामी ब्राह्मण हुए ॥ २३ ॥ उनमें चार दीर्घ मार्ग मोक्षको चले गये तुम कैसे दुःख पाते हो यह सुनतेही राजा ब्रह्मदत्त मोहको प्राप्त होगया ॥ २४ ॥ पुंडरीक और पांचाल इसके मन्त्री भी मोहको प्राप्त हुए तब वह उस सरोवरको स्मरण कर योगको प्राप्त हो ॥ २५ ॥ ब्राह्मणोंको बहुतसा धन दानकर अपने विष्वक्सेन पुत्रको

श्रावयामास राजानं श्लोकं तं सचिवौ च तौ ॥ सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ ॥ २२ ॥ चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥ तेऽभिजातः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः॥२३॥ प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ ॥ तच्छ्रुत्वा मोहमगम द्ब्रह्मदत्तो नराधिपः॥२४॥सचिवश्चास्य पांचालः पुण्डरीकश्च भारत ॥ ततस्ते तत्सरस्स्मृत्वा योगं तमुपलभ्य च ॥२५॥ ब्राह्मणं विपुलै रर्थैर्भोगैश्च समयोजयन् ॥ अभिषिच्य स्वराज्ये तु विष्वक्सेनमरिन्दमम् ॥२६॥ जगाम ब्रह्मदत्तो हि सदारो वनमेव ह ॥ प्राप्य योगं बलादेव गतिं प्राप सुदुर्लभाम्॥२७॥पुण्डरीकोऽपि धर्मात्मा सांख्ययोगमनुत्तमम् ॥ प्राप्य योगगतिः सिद्धो विशुद्ध स्तेन कर्मणा ॥२८॥ क्रमं प्रणीय पांचाल्यः शिक्षां चोत्पाद्य केवलाम् ॥ योगाचार्यगतिं प्राप यशश्चाग्र्यं महातपाः ॥ २९ ॥ शूरा ये सम्प्रपद्यन्ते अपुनर्भवकांक्षिणः ॥ पापम्प्रणाशयन्त्वद्य तच्छम्भोः परमम्पदम् ॥ ३० ॥ शारीरे मानसे चैव पापे वाग्जे महामुने ॥ कृते सम्यगिदम्भक्त्या पठेच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ ३१ ॥

राज्यमें अभिषेक कर ॥ २६ ॥ ब्रह्मदत्त स्त्रीसहित वनको चला गया और योग बलसे वहां उत्तम गतिको प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ धर्मात्मा पुंडरीक भी उत्तम सांख्य योगको पाकर उस कर्मसे शुद्ध हो योग गतिको प्राप्त हुआ ॥२८॥ इसी क्रमसे पांचाल भी उत्तम शिक्षाको पाकर महातपसे यश और योगकी उत्तम गतिको प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ जो शूर मोक्ष होनेकी इच्छासे शिवको स्मरण करते हैं वे शिवजीके परमपदको प्राप्त होजाते हैं ॥ ३० ॥ हे मुने ! इस अध्यायके पाठ करनेसे वचन मन शरीरसे किया हुआ पाप नाश होजाता है जो श्रद्धासे

पढते हैं ॥ ३१ ॥ शिवनामके कीर्तन करनेसे ही सब पाप दूर हो जाते हैं इस कारण उन देवदेवका नाम सदा उच्चारण करे ॥ ३२ ॥ जैसे जलमें कच्चा वर्तन नष्ट हो जाता है ऐसे शिवनामसे सब पाप दूर हो जाते हैं इस कारण संचित और समान पापोंमें ॥ ३३ ॥ पापशांतिके लिये शिवनाम अवश्य जपना चाहिये हे मुने ! श्रद्धालु मनुष्योंको सब काम फलकी प्राप्तिके लिये यह नाम जपना चाहिये ॥ ३४ ॥ जो पुष्टिके लिये इस अध्यायको पढता और सुनता है वह सब पापोंसे रहित हो मोक्षको जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ शौनकजी बोले; हे सूतजी ! व्यासजीके शिष्य ! अब

मुच्यते सर्वपापेभ्यश्शिवनामानुकीर्तनात् ॥ उच्चार्य्यमाण एतस्मिन्देवदेवस्य तस्य वै ॥ ३२ ॥ विलयं पापमायातिह्यामभाण्डमिवाम्भसि ॥ तस्मात्तत्संचिते पापे समनंतरमेव च ॥ ३३ ॥ जप्तव्यमेतत्पापस्य प्रशमाय महामुने ॥ नरैः श्रद्धालुभिर्भूयस्सर्वकामफलाप्तये ॥ ३४ ॥ पुष्ट्यर्थमिममध्यायं पठेदेनं शृणोति वा ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो मोक्षं याति न संशयः ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां पितृकल्पे पितृभाववर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥ शौनक उवाच ॥ आचार्य्यपूजनं ब्रूहि सूत व्यासगुरोऽधुना ॥ ग्रन्थस्य श्रवणान्ते हि किं कर्तव्यं तदप्यहो ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ पूजयेद्विधिवद्भक्त्याचार्य्यं श्रुत्वा कथां पराम् ॥ ग्रन्थान्ते विधिवद्दद्यादाचार्य्याय प्रसन्नधीः ॥ २ ॥ ततो वक्तारमानम्य संपूज्य च यथाविधि॥भूषणैर्हस्तकर्णानां वस्त्रैस्सौम्यादिभिस्सुधीः ॥३॥ शिवपूजासमाप्तौ तु दद्याद्धेनुं सवत्सिकाम्॥कृत्वासनं सुवर्णस्य पलमानस्य साम्बरम् ॥ ४ ॥ तत्रास्थाप्य शुभं ग्रंथं लिखितं ललिताक्षरैः॥आचार्याय सुधीर्दद्यान्मुक्तः स्याद्भवबन्धनैः ॥५॥

आचार्यके पूजनको कहो तथा ग्रन्थके सुननेके पीछे क्या करना चाहिये ? यह भी कहो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, परम कथाको सुनके भक्तिसे विधिपूर्वक आचार्यको पूजे और प्रसन्न होके ग्रन्थके अन्तमें आचार्यको विधिपूर्वक दान दे ॥ २ ॥ तत्पश्चात् पुराण वक्ताको प्रणाम करके विधिपूर्वक हाथ कानोंके भूषणसे तथा रेशमीन सूती आदिके वस्त्रोंसे पूजके ॥ ३ ॥ शिवजीके पूजनकी समाप्तिमें ब्राह्मणको वत्ससहित गाय देवे और वस्त्रसहित पलभर सोनेके आसनको बनाय ॥ ४ ॥ उसपर मनोहर अक्षरोंसे लिखे हुए शुभ ग्रन्थको स्थापित

करे, और आचार्यको दे तो संसारके बन्धनोंसे मुक्त होता है ॥ ५ ॥ हे मुने ! ग्राम राज्य घोडा आदि तथा यथाशक्ति और पदार्थ भी महात्मा वाचकको देने चाहिये ॥ ६ ॥ हे शौनक मुने ! यह पुराण विधिपूर्वक सुननेसे सफल होता है सो सब मैंने सत्य सत्य कहा ॥ ७ ॥ हे मुने ! इससे भक्तिपूर्वक विधानसे सुनना चाहिये यह पुराण शास्त्रके अर्थोंसे युक्त पुण्यका देनेवाला तथा मनोहर कहा है ॥ ८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० व्यासपूजनप्रकारो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ मुनि बोले, हे महाबुद्धे ! हे प्रभो ! हे दयासागर ! हे सूतजी ! हे स्वामिन् ! व्यासजीकी उत्पत्ति वर्णन करो और हमको अपनी परम कृपासे कृतार्थ करो ॥ १ ॥

ग्रामो गजो हयश्चापियथाशक्त्यपराणि च ॥ मुने सर्वाणि देयानि वाचकाय महात्मने ॥६॥ विधानसहितं सम्यक्छतं हि सफलं स्मृतम् ॥ पुराणं शौनकमुने सत्यमेवोदितं मया ॥ ७ ॥ तस्माद्विधानदुक्तं तु शृणुयाद्भक्तितो मुने ॥ पुराणं निगमार्थाढ्यं पुण्यदं हृदयं श्रुतेः ॥८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां व्यासपूजनप्रकारोनाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥ मुनय ऊचुः व्यासोत्पत्तिं महाबुद्धे ब्रूहि सूत दयानिधे ॥ कृपया परया स्वामिन्कृतार्थान्निष्कुरु प्रभो ॥ १ ॥ व्यासस्य जननी प्रोक्ता नाम्ना सत्यवती शुभा ॥ विवाहिता तु सा देवी राज्ञा शन्तनुना किल ॥ २ ॥ तस्यां जातोमहायोगी कथं व्यासः पराशरात् ॥ सन्देहोऽत्र महाञ्जातस्तं भवाञ्छेत्तुमर्हति ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ एकदा तीर्थयात्रायां व्रजन्योगी पराशरः ॥ यदृच्छया गतो रम्यं यमुनायास्तटं शुभम् ॥ ४ ॥ निषादमाह धर्मात्मा कुर्वन्तं भोजनन्तदा ॥ नयस्व यमुनापारं जलयानेन मामरम् ॥ ५ ॥ इत्युक्तो मुनिना तेन निषादस्स्वसुतां जगौ ॥ मत्स्यगन्धामसुं बाले पारं नावा नय द्रुतम् ॥ ६ ॥

व्यासकी माता सत्यवती नामवाली कही है वह देवी राजा शन्तनुसे विवाही थी ॥ २ ॥ उसमें पराशरसे महायोगी व्यासजी कैसे उत्पन्न हुए इस विषयमें मुझे बडा सन्देह उत्पन्न हुआ उसे आप छेदन करने योग्य हैं ॥ ३ ॥ सूतजी बोले, एक समय तीर्थयात्राको जाते हुए योगी पराशरजी अपनी इच्छासे यमुनाके सुन्दर मनोहर तीरपर प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ तब वे महात्मा भोजन करते हुए निषादसे बोले, तुम मुझे शीघ्र नावसे यमुनाके पार ले चलो ॥ ५ ॥ इस प्रकार उन मुनिके कहनेपर वह निषाद (मल्लाह) *मत्स्यगंधानामक अपनी पुत्रीसे बोला,*

हे बाले ! उन मुनिको शीघ्र नावसे पार ले जा ॥ ६ ॥ हे महाभागे ! यह तपस्वी पराशर दृश्यन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुए धर्मके सागर चारों वेदोंके पारगामी पार होनेकी इच्छा करनेवाले हैं ॥ ७ ॥ इस प्रकार पितासे जताई हुई मत्स्यगन्धा नौकामें बैठे हुए सूर्यकी कांति वाले महामुनि पराशरजीको पार करने लगी ॥ ८ ॥ समय योगसे महायोगी उस कन्यामें कामातुर हो गये जो अप्सराओंके रूपको भी देखके कदापि नहीं मोहित हुए ॥ ९ ॥ ग्रहण करनेकी इच्छावाले उन मुनिने उस मनोहर कन्याके दक्षिण हाथको अपने दक्षिण हाथसे स्पर्श किया ॥ १० ॥ तब विशाल नेत्रवाली कन्याने कुछ हँसके यह वचन कहा कि, यह सत्पुरुषोंसे निन्दित कर्म क्यों करते

तापसोऽयं महाभागे दृश्यन्तीगर्भसंभवः ॥ तितीर्षुरस्ति मर्यांब्धिश्चतुराम्नायपारगः ॥ ७ ॥ इति विज्ञापिता पित्रा मत्स्यगन्धा महामुनिम् ॥ संवाहयति नौकायामासीनं सूर्य्यरोचिषम् ॥ ८ ॥ कालयोगान्महायोगी तस्यां कामातुरोऽभवत् ॥ दृष्ट्वा योऽप्सरसां रूपं न कदापि विमोहितः ॥ ९ ॥ ग्रहीतुकामः स मुनिर्दाशकन्यां मनोहराम् ॥ दक्षिणेन करेणैतामस्पृशद्दक्षिणे करे ॥ १० ॥ तमुवाच विशालाक्षी वचनं स्मितपूर्वकम् ॥ किमिदं क्रियये कर्म वाचंयम विगर्हितम् ॥ ११ ॥ वसिष्ठस्य कुले रम्ये त्वं जातोऽसि महामते ॥ निषादजा त्वहम्ब्रह्मन्कथं संगो घटेत नौ ॥ १२ ॥ दुर्लभं मानुषं जन्म ब्राह्मणत्वं विशेषतः ॥ तत्रापि तापसत्वं च दुर्लभं मुनिसत्तम ॥ १३ ॥ विद्यया वपुषा वाचा कुलशीलेन चान्वितः ॥ कामबाणवशं यातो महदाश्चर्यमत्र हि ॥ १४ ॥ प्रवृत्तमप्यसत्कर्म कर्तुमेनं न कोऽपि ह ॥ भुवि वारयितुं शक्तः शापभीत्यास्य योगिनः ॥ १५ ॥ इति संचिन्त्य हृदये निजगाद महामुनिम् ॥ तावद्धैर्यं कुरु स्वामिन्यावत्त्वां पारयामि न ॥ १६ ॥

हो ? ॥ ११ ॥ हे महापते ! तुम वशिष्ठजीके मनोहर कुलमें उत्पन्न हुए हो हे ब्रह्मन् ! मैं निषादसे उत्पन्न हुई हूं हम दोनोंका संग कैसे होगा ॥ १२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! प्रथम तो मनुष्यका जन्म दुर्लभ है उसमें विशेषकर ब्राह्मणत्व फिर उसमें तपस्वी होना अति दुर्लभ है ॥ १३ ॥ विद्यासे सुन्दर शरीरसे वाणीसे कुल तथा शीलसे युक्त होकर भी कामबाणोंके वशमें हुए बडा आश्चर्य है ॥ १४ ॥ दुष्कर्म करनेमें प्रवृत्त हुए भी योगी इन मुनिके शापके भयसे इनको निवारण करनेको कोई भी मनुष्य समर्थ नहीं है ॥ १५ ॥ ऐसा अपने मनमें विचारके

उन महामुनिसे बोली हे स्वामिन् ! जबतक मैं तुमको पार न करूं तबतक धैर्य धारण करो ॥ १६ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उस कन्याका वचन सुनके योगिराज पराशरने वेगसे हाथको छोडा और वे सिंधुके पार गये ॥ १७ ॥ फिर कामसे पीडित हुए मुनिने उस कन्याको ग्रहण किया, तब कांपती हुई वह कन्या उन करुणासागर पराशरसे बोली ॥ १८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं दुर्गंधियुक्त कालेवर्ण वाली निषाद (मल्लाह) से उत्पन्न हुई हूं और आप परमोदार विचारशील योगियोंमें श्रेष्ठ हो ॥ १९ ॥ कांच और सुवर्णके समान हम दोनोंका संग नही घटता है, समान जाति आकारवालोंकी संगति सुखकी देनेवाली होती है ॥ २० ॥ ऐसा उस कन्याके कहनेपर क्षणमात्रमें उन

सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्या योगिराजः पराशरः ॥ तत्याज पाणितरसा सिन्धोः पारं गतः पुनः ॥१७॥ पुनर्जग्राह तां बालां मुनिं कामप्रपीडितः ॥ कंपमाना तु सा बाला तमुवाच दयानिधिम् ॥१८॥ दुर्गन्धाहं मुनिश्रेष्ठ कृष्णवर्णा निषादजां ॥ भवांस्तु परमोदारविचारो योगिसत्तमः ॥१९॥ नावयोर्घटते सङ्गो काचकांचनयोरिव ॥ तुल्यजात्याकृतिकयोः संगः सौख्य प्रदो भवेत् ॥ २० ॥ इत्युक्तेन तया तेन क्षणमात्रेण कामिनी ॥ कृता योजनगधा तु रम्यरूपा मनोरमा ॥ २१ ॥ पुनर्जग्राह तां बालां स मुनिः कामपीडितः ॥ ग्रहीतुकामं तं दृष्ट्वा पुनः प्रोवाच वासवी ॥२२॥ रात्रौ व्यवायः कर्तव्यो न दिवेति श्रुतिर्जगौ दिवासंगे महान्दोषो निन्दा चापि दुरासदा ॥२३॥ तस्मात्तावत्प्रतीक्षस्व यावद्भवति यामिनी ॥ पश्यन्ति मानवाश्चात्र पिता मे च तटे स्थितः ॥ २४ ॥ तयोक्तमिदमाकर्ण्य वचनं मुनिपुंगवः ॥ नीहारं कल्पयामास सद्यः पुण्यबलेन वै ॥ २५ ॥

मुनिने उस कन्याको मनोहर सुन्दर रूपवाली तथा एक योजनका सुगंधियुक्त कामिनी बनाया ॥ २१ ॥ कामसे पीडित हुए मुनिने फिर उसे पकडा तब ग्रहण करनेकी इच्छावाले मुनिको देख वासवी यह बोली ॥ २२ ॥ रात्रिमें मैथुन करना चाहिये, दिनमें कदापि विषय न करना उचित है ऐसा वेदमें कहा है दिनके प्रसंगमें बडा दोष तथा बडी निंदा होती है ॥२३॥ इस कारण तबतक प्रतीक्षा करो जबतक रात्रि होवे, कारण कि यहां मनुष्य देखेंगे और मेरा पिता भी तटपर स्थित है ॥२४॥ उस कन्यासे कहे हुए वचनको सुन उन मुनिश्रेष्ठने अति शीघ्र

पुण्यके बलसे कोहरेकी कल्पना किया ॥ २५ ॥रात्रिके समान अन्धकारसे युक्त कोहरेके प्रगट होनेपर विषयसे चकित हुई वह कन्या फिर उन मुनिसे बोली ॥२६॥ हे योगिन् ! हे स्वामिन् ! यदि सफल वीर्यवाले तुम मुझे भोगके चले जाओगे तो गर्भ रहजानेपर मेरी क्या गति होगी ? ॥ २७ ॥ हे महाबुद्धे ! मेरा कन्याव्रत नष्ट होगा और लोक हँसेंगे तब मैं पितासे क्या कहूंगी ? ॥२८॥ पराशर बोले, हे बाले ! हे प्रिये ! कामसे उत्पन्न हुए रसोंके सहित मेरे साथ स्वतन्त्र होके रमण कर, और अपनी अभिलाषाको कह मैं अभी पूर्ण करूंगा ॥२९॥ मेरी आज्ञाके सत्य करनेसे तू सत्यवती नामवाली तथा सम्पूर्ण योगी और देवताओंसे वन्दनीय होगी ॥ ३० ॥ सत्यवती बोली, यदि मेरे माता पिता तथा

नीहारे च समुत्पन्ने तमसा रात्रिसंनिभे ॥ व्यवायचकिता बाला पुनः प्रोवाच तम्मुनिम् ॥ २६ ॥ योगिन्नमोघवीर्य्यस्त्वं भुक्ता गन्तासि मां यदि ॥ सगर्भा स्यां तदा स्वामिन्का गतिर्मे भवेदिति ॥ २७ ॥ कन्याव्रतं महाबुद्धे मम नष्टं भविष्यति॥ हसिष्यन्ति तदा लोकाः पितरं किं ब्रवीम्यहम् ॥ २८ ॥ ॥ पराशर उवाच ॥ रम बाले मया सार्द्धं स्वच्छन्दं कामजै रसैः॥ स्वीयाभिलाषमाख्याहि पूरयाम्यधुना प्रिये ॥ २९ ॥ मदाज्ञासत्यकरणान्नाम्ना सत्यवती भव ॥ वन्दनीया तथाशेषैर्योगि भिस्त्रिदशैरपि ॥ ३० ॥ सत्यवत्युवाच ॥ जानते न पिता माता न वान्ये भुवि मानवाः ॥ कन्याधर्मो न मे हन्याद्यदि स्वीकुरु मान्तदा ॥३१॥ पुत्रश्च त्वत्समो नाथ भवेदद्भुतशक्तिमान् ॥ सौगन्ध्यं सर्वदांगे मे तारुण्यं च नवंनवम् ॥ ३२ ॥ पराशर उवाच ॥ शृणु प्रिये तवाभीष्टं सर्वं पूर्णं भविष्यति ॥ विष्ण्वंशसंभवः पुत्रो भविता ते महायशाः ॥ ३३ ॥ किंचिद्धे कारणं विद्धि यतोऽहं कामपीडितः॥दृष्ट्वा चाप्सरसां रूपं नामुह्यन्मे मनः क्वचित् ॥ ३४ ॥

पृथिवीपर और मनुष्य न जानें तथा मेरा कन्याधर्म नष्ट न होवे तो मुझे स्वीकार करो ॥ ३१ ॥ हे नाथ ! मेरे अद्भुत शक्तिवाला तुम्हारे समान पुत्र होवे और मेरे अंगमें नित्य सुगन्ध तथा नित्य नवीन नवीन यौवन होवे ॥ ३२ ॥ पराशर बोले, हे प्रिये ! सुनो तुम्हारा सब मनोरथ पूर्ण होगा और तेरे विष्णुके अंशसे युक्त महायशस्वी पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ३३ ॥ इसमें कुछ कारण जान, जिससे मैं कामसे पीडित हुआ हूँ, अप्सराओंके रूपको देखके मेरा मन कभी भी नहीं मोहित हुआ ॥ ३४ ॥

मत्स्यगन्धा तुझको देखके मोह के वशमें प्राप्त हुआ हूं हे बाले ! मस्तकपर लिखा हुआ ब्रह्माका लेख मिथ्या नहीं होता है ॥ ३५ ॥ हे वरारोहे ! तेरे पुराणोंका कर्त्ता वेद शाखाके विभागका करनेवाला तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध कीर्त्तिवाला पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ३६ ॥ हे महामुने ! ऐसा कहके उस मनोहर अंगवालीको भोगके योगमें प्रवीण मुनि पराशरजी शीघ्र यमुनाके जलमें स्नान करके चले गये ॥ ३७ ॥ उसने भी शीघ्र बाहर आत्मा (सूर्य) के समान कान्तिवाले गर्भको धारण किया, और सूर्यजा द्वीपमें कामदेवके समान पुत्र उत्पन्न किया ॥३८॥ जो बायें हाथमें कमण्डलको धारे तथा दहिने हाथमें उत्तम दण्डको धारण किये पीतवर्णवाली जटाओंसे विराजमान साक्षात् तेजोंके समूह

मीनगन्धां समालक्ष्य त्वां मोहवशगोऽभवम् ॥ न बाले भालपट्टस्थो ब्रह्मलेखोऽन्यथा भवेत् ॥३५॥ पुराणकर्ता पुत्रस्ते वेदशाखा विभागकृत् ॥ भविष्यति वरारोहे ख्यातकीर्तिर्जगत्त्रये ॥३६॥ इत्युक्त्वा तां सुरम्याङ्गीं भुक्त्वा योगविशारदः ॥ वव्राज शीघ्रं यमुना जले स्नात्वा महामुने ॥ ३७ ॥ सापि गर्भं दधाराशु द्वादशात्मसमप्रभम् ॥ असूत सूर्य्यजाद्वीपे कामदेवमिवात्मजम् ॥ ३८ ॥ वामे कमण्डलुं बिभ्रद्दक्षिणे दण्डमुत्तमम् ॥ पिशंगीभिर्जटाभिश्च राजितो महसां चयः ॥३९॥ जातमात्रस्तु तेजस्वी मातरं प्रत्य भाषत ॥ गच्छ मातर्यथाकामं गच्छाम्यहमतः परम् ॥ ४० ॥ मातर्यदा भवेत्कार्यं तव किंचिद्धृदीप्सितम् ॥ संस्मृतश्चाग मिष्यामि त्वदिच्छापूर्तिहेतवे ॥ ४१ ॥ इत्युक्त्वा मातृचरणावभिवाद्य तपोनिधिः ॥ जगाम च तपः कर्तुं तीर्थंपापविशोधनम् ॥ ४२ ॥ सापि पित्रन्तिकं याता पुत्रस्नेहाकुला सती ॥ स्मरन्ती चरितं सूनोर्वर्णयन्ती स्वभाग्यकम् ॥ ४३ ॥

युक्त था ॥ ३९ ॥ वह तेजस्वी उत्पन्न होते ही अपनी मातासे बोला, हे माता तुम भी यथेच्छ जाओ इसके पीछे मैं भी यथा काम जाऊंगा ॥ ४० ॥ हे तात ! जब तेरा कोई मनो वांछित कार्य होगा तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण करनेके निमित्त स्मरण करते ही मैं आऊंगा ॥ ४१ ॥ ऐसा कहके वह तपोनिधि माताके चरणोंको प्रणाम करके तप करनेको पापोंके दूर करनेवाले तीर्थको चले गये ॥ ४२ ॥ और वह उनकी माता भी पुत्रके स्नेहमें व्याकुल हुई अपने पुत्रके चरित्रको स्मरण करती हुई तथा अपने भाग्यको वर्णन करती

अपने पिताके समीप चली गई ॥ ४३ ॥ कारण कि, वह बालक द्वीपमें उत्पन्न हुआ इससे द्वैपायन नाम हुआ, वेद शाखाके विभाग करनेसे वेदव्यास कहलाये ॥ ४४ ॥ पहले तो धर्म काम अर्थ मोक्ष देनेवाले तीर्थराज (प्रयाग) को नैमिषारण्यको, कुरुक्षेत्रको, गंगाद्वारको, तथा अवन्तिका पुरीको गये ॥ ४५ ॥ अयोध्या, मथुरा, द्वारिकापुरी, अमरावती, सरस्वती, सिन्धुगंग, गंगासागरके संगमको गये ॥ ४६ ॥ कांची त्र्यम्बक सप्तगोदावरीके तटको कालंजरको प्रभासको तथा बद्रिकाश्रमको ॥ ४७ ॥ महालय और ओंकारक्षेत्रको तथा पुरुषोत्तमको, गोकर्ण, भृगुकच्छ, भृगुतुंग, पुष्कर ॥ ४८ ॥ श्रीपर्वत आदि तीर्थोंको तथा धारातीर्थको जाके वहां परम तप करने लगे ॥ ४९ ॥ इसी प्रकार अनेक

द्वीपे जातो यतो बालस्तेन द्वैपायनोऽभवत् ॥ वेदशाखाविभजनाद्वेदव्यासः प्रकीर्तितः ॥४४॥ तीर्थराजं प्रथमतो धर्म्मकामार्थ मोक्षदम् ॥ नैमिषं च कुरुक्षेत्रं गङ्गाद्वारमवन्तिकाम् ॥४५॥ अयोध्यां मथुरां चैव द्वारकाममरावतीम् ॥ सरस्वतीं सिंधुसङ्गं गंगा सागरसंगमम् ॥४६॥ काञ्चीं च त्र्यम्बकं चापि सप्तगोदावरीतटम् ॥ कालञ्जरं प्रभासं च तथा बदरिकाश्रमम् ॥४७॥ महालयन्त थोंकारक्षेत्रं वै पुरुषोत्तमम् ॥ गोकर्णं भृगुकच्छं च भृगुतुंगं च पुष्करम् ॥४८॥ श्रीपर्वतादितीर्थानि धारातीर्थं तथैव च ॥ गत्वाव गाह्य विधिना चचारपरमन्तपः॥४९॥एवन्तीर्थान्यनेकानि नानादेशस्थितानिह॥पर्य्यटन्कालिकासूनुः प्रापद्वाराणसीम्पुरीम्।५०। यत्र विश्वेश्वरः साक्षाद्दन्नपूर्णा महेश्वरी ॥ भक्तानाममृतन्दातुं विराजेते कृपानिधी ॥५१॥ प्राप्य वाराणसीतीर्थं दृष्ट्वाथ मणिकार्णिकाम् ॥ कोटिजन्मार्जितं पापं तत्याज स मुनीश्वरः ॥५२॥ दृष्ट्वा लिंगानि सर्वाणि विश्वेशप्रमुखानि च ॥ स्नात्वा सर्वेषु कुण्डेषु वापीकूपसरस्सु च ॥५३॥ नत्वा विनायकान्सर्वान्गौरीः सर्वाः प्रणम्य च ॥ सम्पूज्य कालराजं च भैरवं पापभक्षणम् ॥५४॥

देशोंमें स्थित हुए अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए व्यासजी वाराणसीपुरीमें प्राप्त हुए ॥ ५० ॥ जहां साक्षात् विश्वेश्वरनाथ तथा महेश्वरी अन्नपूर्णा यह दोनों कृपाके सागर भक्तोंको अमृत देनेको विराजते हैं ॥ ५१ ॥ वाराणसी तीर्थको प्राप्त होके मणिकर्णिकाके दर्शन करके उन मुतीश्वरने कोटिजन्मोंके अर्जित हुए पापोंको त्यागा ॥ ५२ ॥ विश्वेश आदि संपूर्ण ज्योलिंगोंका दर्शन करके समस्त कुण्डोंमें तथा वापी कूप सरोवरोंमें स्नान करके ॥ ५३ ॥ सम्पूर्ण विनायकोंको प्रणाम कर तथा समस्त गौरियों (देवियों) को नमस्कार

कर कालराज पापभक्षण करनेवाले भैरवको पूजके ॥५४॥ दण्डनायकादि मुख्य गणोंकी यत्नसे अस्तुति करके आदिकेशव मुख्य केशवोंको सन्तुष्ट करके ॥ ५५ ॥ लोलार्क मुख्य सूर्योंको बारम्बार दण्डवत् करके तथा आलस्यहीन हो सम्पूर्ण तीर्थोंमें पिण्डदान करके ॥ ५६ ॥ उन पुण्यात्मा वेदव्यासने व्यासेश्वर नामक ज्योतिर्लिंगको स्थापन किया, हे विप्रो ! जिनके दर्शन करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण विद्याओंमें बृहस्पति के समान हो जाता है ॥ ५७ ॥ विश्वेश आदि ज्योतिर्लिंगोंको भक्तिसे पूजके वे बारम्बार विचारने लगे कि, कौनसा लिंग शीघ्र सिद्धिका देनेवाला है ॥ ५८ ॥ जिन महादेवका आराधन करके मैं सम्पूर्ण विद्याओंको प्राप्त करूं तथा जिनके अनुग्रहसे मेरे पुराण

दण्डनायकमुख्यांश्च गणान्स्तुत्वा प्रयत्नतः ॥ आदिकेशवमुख्यांश्च केशवान्परितोष्य च ॥५५॥ लोलार्कमुख्यसूर्यांश्च प्रणम्य च पुनःपुनः ॥ कृत्वा पिण्डप्रदानानि सर्वतीर्थेष्वतन्द्रितः ॥५६॥ स्थापयामास पुण्यात्मा लिंगं व्यासेश्वराभिधम् ॥ यद्दर्शनाद्भवेद्विप्रा नरो विद्यासु वाक्पतिः ॥५७॥ लिंगान्यभ्यर्च्य विश्वेशप्रमुखानि सुभक्तितः ॥ असकृच्चिन्तयामास किं लिंगं क्षिप्रसिद्धिदम् ॥५८॥ यमाराध्य महादेवं विद्याः सर्वा लभेमहि ॥ पुराणकर्तृताशक्तिर्ममास्तु यदनुग्रहात् ॥५९॥ श्रीदमोंकारनाथं वा कृत्तिवासेश्वरं किमु ॥ केदारेशन्तु कामेशं चन्द्रेशं वा त्रिलोचनम् ॥६०॥ कालेशं वृद्धकालेशं कालशेश्वरमेव वा॥ज्येष्ठेशं जम्बुकेशं वा जैगीषव्येश्वरन्तु वा ॥६१॥ दशाश्वमेधमीशानं द्रुमिचण्डेशमेव वा ॥ दक्षेशं गरुडेशं वा गोकर्णेशं गणेश्वरम् ॥६२॥ प्रसन्नवदनेशं वा धर्म्मेशं तारकेश्वरम् ॥ नन्दिकेशं निवासेशं पत्रीशं प्रीतिकेश्वरम् ॥६३॥ पर्वतेशं पशुपतिं हाटकेश्वरमेव वा ॥ बृहस्पतीश्वरं वाथ तिलभाण्डेशमेव वा॥६४॥ भारभूतेश्वरं किं वा महालक्ष्मीश्वरं तु वा॥ मरुतेशन्तु मोक्षेशं गंगेशं नर्मदेश्वरम् ॥६५॥

बनानेकी शक्ति उत्पन्न हो ॥ ५९ ॥ श्रीमान् ओंकारनाथको वा कृत्तिवासेश्वरको, केदारेशको, कामेश, वा चन्द्रेश, त्रिलोचनको ॥ ६० ॥ कालेशको, वृद्धकालेश, वा कलशेश्वरको, ज्येष्ठेश, जम्बुकेश, वा जैगीषव्येश्वरको ॥ ६१ ॥ दशाश्वमेध शिवको, द्रुमिचण्डेशको, दक्षेश, गरुणेश, गोकर्णेश, गणेश्वर, ॥ ६२ ॥ प्रसन्न वदनेश, वा धर्मेश, तारकेश्वरको, नन्दिकेश, निवासेश, पत्रीश, प्रीतिकेश्वर ॥ ६३ ॥ पर्वतेश, पशुपति, हाटकेश्वर, बृहस्पतीश्वर, वा तिलभाण्डेश ॥ ६४ ॥ भारभूतेश्वर, महालक्ष्मीश्वर, मरुतेश, मोक्षेश, गंगेश,

नर्मदेश्वर ॥ ६५ ॥ कृष्णेश शिवको, रत्नेश्वर, यामुनेश, लांगलीश श्रीमद्विश्वेश्वर प्रभुको ॥ ६६ ॥ अविमुक्तेश्वर, विशालाक्षीश, व्याघ्रेश्वर, वराहेश, विद्येश्वर ॥ ६७ ॥ वरुणेश, विधीश, हरिकेश्वर, भवानीश, कपर्द्दीश, कन्दुकेश, अजेश्वर ॥ ६८ ॥ विश्वकर्मेश्वर, वीरेश्वर, नादेश, कपिलेश, भुवनेश्वर ॥ ६९ ॥ वाष्कुलीश महादेवको वा सिद्धीश्वर, विश्वेदेवेश्वर, वीरभद्रेश, भैरवेश्वर ॥ ७० ॥ अमृतेश, सतीश, पार्वतीश्वर, सिद्धेश्वर, मतंगेश, भूतीश्वर ॥७१॥ आषाढीश, तथा कोटिरुद्रेश्वर, मदालसेश्वर, तिलपर्णेश्वर ॥७२॥ हिरण्यगर्भेश, वा श्रीमध्यमेश्वर, इत्यादि

कृष्णेशं परमेशानं रत्नेश्वरमथापि वा ॥ यामुनेशं लांगलीशं श्रीमद्विश्वेश्वरं विभुम् ॥६६॥ अविमुक्तेश्वरं वाथ विशालाक्षी शमेववा ॥ व्याघ्रेश्वरं वराहेशं विद्येश्वरमथापि वा ॥ ६७ ॥ वरुणेशं विधीशं वा हरिकेशेश्वरन्तु वा ॥ भवानीशं कपर्द्दीशं कन्दुकेश मजेश्वरम् ॥ ६८ ॥ विश्वकर्मेश्वरं वाथ वीरेश्वरमथापि वा ॥ नादेशं कपिलेशं च भुवनेश्वरमेव वा ॥६९॥ वाष्कुलीशं महादेवं सिद्धीश्वरमथापि वा ॥ विश्वेदेवेश्वरं वीरभद्रेशं भैरवेश्वरम् ॥ ७० ॥ अमृतेशं सतीशं वा पार्वतीश्वरमेव वा ॥ सिद्धेश्वरं मतंगेशंभूतीश्वरमथापि वा ॥ ७१ ॥ आषाढीशं प्रकामेशं कोटिरुद्रेश्वरन्तथा ॥ मदालसेश्वरं चैव तिलपर्णेश्वरं किमु ॥ ७२ ॥ किं वा हिरण्यगर्भेशं किं वा श्रीमध्यमेश्वरम् ॥ इत्यादिकोटिलिंगानां मध्येऽहं किमुपाश्रये ॥ ७३ ॥ इति चिन्तातुरो व्यासःशिवभक्तिरतात्मवान् ॥ क्षणं विचारयामास ध्यानसुस्थिरचेतसा ॥७४॥ आज्ञातं विस्मृतं तावन्निष्पन्नो मे मनोरथः ॥ सिद्धैः संपूजितं लिंगं धर्म्मकामार्थमोक्षदम् ॥ ७५ ॥ दर्शनात्स्पर्शनाद्यस्य चेतो निर्मलतामियात् ॥ उद्घाटितं सदैवास्ति द्वारं स्वर्गस्य यत्र हि ॥ ७६ ॥ अवि मुक्ते महाक्षेत्रे सिद्धक्षेत्रे हि तत्परम् ॥ यत्रास्ते परमं लिंगं मध्यमेश्वरसंज्ञकम् ॥ ७७ ॥

कोटिलिंगोंके मध्यमें किनकी उपासना करूं ॥ ७३ ॥ इस प्रकार चिन्तामें मग्न हुए व्यासजी शिव भक्तिमें प्रेम करते हुए क्षण मात्र ध्यानसे स्थित चित्त हो यह विचारने लगे ॥ ७४ ॥ अहो ! जान लिया मैं भूल गया था अब मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया सिद्धोंसे पूजित तथा धर्म, अर्थ काम, मोक्षका देनेवाला यह (मध्यमेश्वर) लिंग है ॥ ७५ ॥ जिसके दर्शन स्पर्शन करनेसे चित्त निर्मलताको प्राप्त होता है जहाँ स्वर्गका द्वार सदैव खुला है ॥ ७६ ॥ अविमुक्त नामक महाक्षेत्रमें जहाँ मध्यमेश्वर नामक परम लिंग है ॥ ७७ ॥

काशीमें मध्यमेश्वर लिंगसे अधिक और कोई लिंग नहीं है जिनके दर्शन करनेके निमित्त सम्पूर्ण देवता प्रत्येक पर्वमें आते हैं॥७८॥इस कारण मध्यमेश्वर नामक महादेव सदा ही सेवनीय हैं हे विप्रो ! उनके आराधन करनेसे अनेक मनुष्य सिद्धिको प्राप्त हुए ॥७९॥जो मध्यमेश्वर नामक शिव अपनी नगरीके सुखके अर्थ काशीके मध्यमें प्रधानतासे स्थित रहते हैं ॥ ८०॥ तुम्बरु नामक गंधर्व तथा देवर्षि नारदजी उन महादेवका आराधन करके गान विद्यामें प्रवीण होगये॥८१॥और इनहींका आराधन करके विष्णु भगवान् मोक्षके दाता होगये और इनहींकी कृपासे ब्रह्मा,

न मध्यमेश्वरादन्यल्लिंगं काश्यां हिविद्यते ॥ यद्दर्शनार्थमायान्ति देवाः पर्वणिपर्वणि ॥ ७८ ॥ अतः सेव्यो महादेवो मध्यमेश्वरसंज्ञकः ॥ अस्याराधनतो विप्रा बहवः सिद्धिमागताः ॥ ७९ ॥ यः प्रधानतया काश्या मध्ये तिष्ठति शङ्करः ॥ स्वपुरीजन सौख्यार्थमतोऽसौ मध्यमेश्वरः ॥ ८० ॥ तुम्बुरुर्नामगंधर्वो देवर्षिर्नारदस्तथा ॥ अमुमाराध्य संपन्नो गानविद्याविशारदौ ॥ ८१ ॥ अमुमेव समाराध्य विष्णुर्मोक्षप्रदोऽभवत् ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्रष्टृपालकहारकाः ॥ ८२ ॥ धनाधीशः कुबेरोऽपि वामदेवो हि शैवराट् ॥ खट्वांगो नाम भूपालोऽनपत्योऽपत्यवानभूत् ॥ ८३ ॥ अप्सराश्चन्द्रभामाख्या नृत्यन्ती निज भावतः ॥ सदेहा कोकिलालापा लिंगमध्येलयं गता ॥ ८४ ॥ श्रीकरो गोपिकासूनुः सेविता मध्यमेश्वरम् ॥ गाणपत्यं समालेभे शिवस्य करुणात्मनः ॥ ८५ ॥ भार्गवोगीष्पतिश्चोभौ देवौ दैत्यसुरार्चितौ ॥ विद्यापारंगमौ जातौ प्रसादान्मध्यमेशितुः ॥ ८६ ॥ अहमप्यत्र संपूज्य मध्यमेश्वरमीश्वरम् ॥ पुराणकर्तृताशक्तिं प्राप्स्यामि तरसा ध्रुवम् ॥ ८७ ॥

विष्णु, शिव सृष्टिके उत्पन्न कर्त्ता, पालन कर्त्ता, संहार कर्त्ता हुए॥८२॥धनाधीश कुबेर वामदेव शैवराट् तथा खट्वांग नामक राजा यह सन्तान हीन भी सन्तानवाले हुए ॥८३॥ अपने भावसे नाचती हुई चन्द्रभामा नामवाली कोयलके समान गानेवाली अप्सरा अपने देह सहित लिंगके मध्यमें लयको प्राप्त हुई ॥ ८४ ॥ श्रीकर नामक गोपिकाके पुत्रने मध्यमेश्वरको सेवन करके दयालु शिवके गाणपत्यको पाया ॥ ८५ ॥ भार्गव, और बृहस्पति, देवता तथा दैत्योंसे पूजित यह दोनों देवता महादेवकी कृपासे विद्यामें पारंगत हुए ॥ ८६ ॥ मैं भी यहाँ मध्यमेश्वर शिवको

पूजके निश्चय वेगसे पुराणोंके रचनेकी शक्तिको प्राप्त होऊंगा ॥ ८७ ॥ ऐसी बुद्धि ठान वह धीर सत्यवादीके पुत्र व्रती व्यासजी गंगाजीके जलमें स्नान करके नियमको ग्रहण किया ॥ ८८ ॥ कहीं तो पत्तोंको भक्षण कर तथा कहीं फल शाकका भोजन कर तथा कहीं पवनका भक्षण कर तथा कहीं जलका आहार करके तथा कहीं निराहार व्रती रहने लगे ॥ ८९ ॥ इत्यादि नियमोंसे वह धर्मात्मा योगी तीनों कालमें अनेक वृक्षोंके फलोंसे मध्यमेश्वर शिवको पूजने लगे ॥ ९० ॥ इस प्रकार बहुत दिन बीतनेपर व्यासजी गंगाजीके जलमें स्नान करके जबहीं मार्गमें आये ॥ ९१ ॥ तबहीं उन पुण्यात्माने भक्तोंके मनोवांछित वरके देनेवाले मध्यमेश्वर शिवको ज्योतिर्लिं

इति कृत्वा मतिं धीरो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ भागीरथ्यम्भसि स्नात्वा जग्राह नियमंव्रती ॥ ८८ ॥ क्वचित्पर्णाशनो भूत्वा फलशा काशनः क्वचित् ॥ वातभुग्जलभुक्क्वापि क्वचिन्निरशनव्रती ॥ ८९ ॥ इत्यादिनियमैर्योगी त्रिकालं मध्यमेश्वरम् ॥ पूजयामास धर्म्मा त्मा नानावृक्षोद्भवैः फलैः ॥ ९० ॥ इत्थं बहुतिथे काले व्यतीते कालिकासुतः ॥ स्नात्वा त्रिपथगातोये यावदायाति स प्रगे ॥ ९१ ॥ मध्यमेश्वरमीशानं भक्ताभीष्टवरप्रदम् ॥ तावददर्श पुण्यात्मा मध्येलिंगं महेश्वरम् ॥ ९२ ॥ उमाभूषितवामांगं व्याघ्रचर्म्मोत्तरी यकम् ॥ जटाजूटचलद्गंगातरंगैश्चारुविग्रहम् ॥ ९३ ॥ लसच्छारदबालेन्दुचन्द्रिकाचन्दि तालकम् ॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गंकर्पूरार्जुनविग्रहम् ॥ ९४ ॥ कर्णान्तायतनेत्रं च विद्रुमारुणदच्छदम् ॥ पंचवर्षाकृति बालं बालकोचितभूषणम् ॥ ९५ ॥ दधानं कोटिकन्दर्प्पदर्पहानि तनुद्युतिम् ॥ नग्नं प्रहसितास्याब्जं गायन्तं साम लीलया ॥ ९६ ॥ करुणापारपाथोधिं भक्तवत्सलनामकम् ॥ आशुतोषमुमाकान्तं प्रसादसुमुखं हरम् ॥ ९७ ॥

नके मध्यमें देखा ॥ ९२ ॥ पार्वतीसे भूषित वामांगवाले व्याघ्रचर्मके वस्त्रधारी जटाजूटमें चलायमान गंगाकी तरंगोंसे मनोहर शरीर युक्त ॥ ९३ ॥ शोभायमान शरदऋतुके बाल चन्द्रमाकी किरणोंसे विराजमान भस्मसे सर्वांग लिप्त होनेवाले कर्पूरके समान श्वेत शरीरवाले ॥९४॥ कानों पर्यंत विशाल नेत्रवाले, मूँगोंके समान लाल होंठोंवाले, पांच वर्षके आकारवाले, बालकोंके योग्य भूषण पहने हुए ॥ ९५ ॥ कोटि काम देवके दर्पको नाश करनेवाली शरीरकी छबिवाले नग्न खिले हुए कमलके समान मुखवाले लीलासे सामवेद गाते हुए ॥ ९६ ॥ करुणाके अपार

समुद्र भक्तवत्सल नामवाले शीघ्र सन्तुष्टि करनेवाले पार्वतीके पति प्रसादसे सुन्दर मुख वाले साक्षात् शिवजीको ॥ ९७ ॥ योंगियोंको भी अगम्य दीनबन्धु चिदात्मक उनका दर्शन करके प्रेमसे गद्गद हुई वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ ९८ ॥ वेदव्यासजी बोले, हे देवोंके देव ! हे महाभाग ! हे शरणागतवत्सल ! हे वाणी, मन, कर्मसे भी दुर्लभ ! हे योगियोंके भी अगोचर ! ॥ ९९ ॥ हे उमापते ! वेदभी तुम्हारी महिमाको नहीं जानते हैं तुम्ही संसारके उत्पादक पालक तथा विनाश करनेवाले हो ॥ १०० ॥ हे सदाशिव ! तुम सब दवताओंमें प्रथम हो. सच्चिदानन्द ईश्वर हो सर्वज्ञ हो और तुम्हारा नाम गोत्र कुछ नहीं है ॥ १०१॥ ॥ तुमहीं परब्रह्म मायाके फांसेसे निवृत्त

समालोक्य स्तुतिं चक्रे प्रेमगद्गया गिरा ॥ योगीनामप्यगम्यन्तं दीनबन्धुं चिदात्मकम् ॥ ९८ ॥ वेदव्यास उवाच ॥ देवदेव महाभाग शरणागतवत्सल॥वाङ्मनःकर्मदुष्पाप योगिनामप्यगोचर ॥ ९९ ॥ महिमानं न ते वेदा विदामासुरुमापते ॥ त्वमेव जगतः कर्ता धर्ता हर्ता तथैव च ॥१००॥ त्वमाद्यः सर्वदेवानां सच्चिदानंद ईश्वरः ॥ नामगोत्रे न वा ते स्तःसर्वज्ञोऽसि सदा शिव ॥१०१॥ त्वमेव परमं ब्रह्म मायापाशनिवर्तकः॥गुणत्रयैर्न लिप्तस्त्वं पद्मपत्रसिवांभसा ॥१०२॥ न ते जन्म नवा शीलं न देशो न कुलं च ते॥इत्थं भूतोपीश्वरत्वं त्रिलोक्याः काममावहे ॥ १०३ ॥ न च ब्रह्मा न लक्ष्मीशो न च सेन्द्रा दिवौकसः ॥ न योगीन्द्रा विदुस्तत्त्वं यस्य तं त्वामुपास्महे॥१०४॥त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं गौरीशस्त्वं पुरान्तकः ॥त्वंबालस्त्वं युवा वृद्धस्तं त्वां हृदि युनज्म्यहम् ॥ ॥१०५॥ नमस्तस्मै महेशाय भक्तध्येयाय शम्भवे ॥ पुराणपुरुषायाद्धा शंकराय परात्मने ॥१०६॥

करनेवाले हो जैसे जलसे कमलपत्र तैसे तुम तीनों गुणोंसे लिप्त नहीं हो ॥ १०२ ॥ न तुम्हारा जन्म है न शील और न देश न तुम्हारा कुल है इस प्रकारके ईश्वर होकर भी तुम त्रिलोकीके मनोरथ पूर्ण करते हो ॥१०३॥ तुम न ब्रह्माही न विष्णुही और न इन्द्र सहित देवता हो और न योगीन्द्र ही तुम्हारे तत्त्वको जानते हैं फिर किस प्रकार तुम्हारी उपासाना करें ॥१०४॥ तुमसे सब हैं तथा तुमहीं सम्पूर्ण तुमहीं पुरा न्तक शिवहो तुमहीं बालक तथा युवा तथा वृद्ध हो तुमको मैं अपने हृदयमें धारण करता हूँ ॥ १०५ ॥ उन महेश भक्तोंसे ध्यान करने योग्य

शम्भु पुराणपुरुष शंकर परमात्मा तुमको नमस्कार है ॥ १०६ ॥ ऐसी स्तुति करके वे व्यासजी दंडवत् करके भूमिपर गिर पडे तबही बालक प्रसन्न होके वेदव्याससे बोले ॥ १०७ ॥ हे योगिन् ! जो तुम्हारे मनमें हो सो वर अङ्गीकार करो मुझे कुछ अदेय नहीं है कारण कि मैं भक्तोंके आधीन हूं ॥ १०८ ॥ प्रसन्नात्मा महातपस्वी मुनि व्यासजी उठके यह बोले, हे प्रभो ! सर्वज्ञ आपको क्या अज्ञात है ? ॥१०९॥ तुम सर्वान्तरात्मा भगवान् शर्व सब कुछ देनेवाले हो आप दैन्यकारिणी याच्ञामें मुझे क्यों प्रयुक्त करते हो ॥ ११० ॥ इस प्रकार निर्मल चित्तवाले उन व्यासजीका वचन सुनके वह बालरूपधारी महादेव पवित्र हास्य करके यह बोले ॥ १११ ॥ बालक बोले, हे ब्रह्मवेत्ताओंमें

इति स्तुत्वा क्षितौ यावद्दण्डवन्निपपात सः॥तावत्स बालो हृष्टात्मा वेदव्यासमभाषत॥१०७॥वरं वृणीष्व भो योगिन्यस्ते मनसि वर्तते ॥ नादेयं विद्यते किंचिद्भक्ताधीनो यतोऽस्म्यहम्॥१०८॥तत उत्थाय हृष्टात्मा मुनिर्व्यासो महातपाः॥प्रत्यब्रवीत्किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तव प्रभो ॥ १०९ ॥ सर्वान्तरात्मा भगवाञ्छर्वः सर्वप्रदो भवान् ॥ याच्ञां प्रतिनियुङ्क्ते मां किमीशो दैन्यकारिणीम् ॥ ११० ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य व्यासस्यामलचेतसः ॥ शुचि स्मित्वा महादेवो बालरूपधरोऽब्रवीत् ॥१११॥ बाल उवाच ॥ त्वया ब्रह्मविदां श्रेष्ठ योऽभिलाषः कृतोहृदि ॥ अचिरेणैव कालेन स भविष्यत्यसंशयः ॥११२॥ कण्ठे स्थित्वा तव ब्रह्मन्नन्तर्याम्यहमीश्वरः ॥ सेतिहासपुराणानि सम्यङ्निर्यापयाम्यहम् ॥११३॥ अभिलाषाष्टकं पुण्यं स्तोत्रमेतत्त्वयेरितम्॥वर्ष त्रिकालं पठनात्कामदं शम्भुसद्मनि ॥ ११४ ॥ एतत्स्तोत्रस्य पठनं विद्याबुद्धिविवर्द्धनम् ॥ सर्वसंपत्करं प्रोक्तं धर्मदं मोक्षदं नृणाम् ॥ ११५ ॥ प्रातरुत्थायसुस्नातो लिंगमभ्यर्च्य शांकरम् ॥ वर्ष पठन्निदं स्तोत्रं मूर्खोऽपि स्यादबृहस्पतिः ॥ ११६ ॥

श्रेष्ठ ! तुमने जो अभिलाषा अपने मनमें की है वह अति शीघ्र पूर्ण होगी इसमें संशय नहीं है ॥ ११२ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं अन्तर्यामी ईश्वर तुम्हारे कण्ठमें स्थित होके इतिहास पुराणोंको निर्माण कराऊँगा ॥ ११३ ॥ यह पुण्य अभिलाषाष्टक स्तोत्र तुमने कहा यह शिवके स्थानमें एक वर्ष तीनों काल पढनेसे सब कामनाका देनेवाला होगा ॥ ११४ ॥ इस स्तोत्रका पाठ मनुष्योंकी विद्या तथा बुद्धिका बढानेवाला सम्पूर्ण सम्पत्ति करनेवाला धर्म और मोक्षका देनेवाला कहा है ॥ ११५ ॥ प्रातःकाल उठके भलीभांति स्नान कर शिवके ज्योति

लिंगको पूजके वर्षभर तक इस स्तोत्रको पढे तो मूर्ख भी बृहस्पति होजाता है ॥ ११६ ॥ स्त्री वा पुरुष नियमसे पार्थिव लिंगके समीप वर्षभर इस स्तोत्रको जपै तो इसकी विद्या बुद्धि बढती है ॥ ११७ ॥ ऐसा कहके वह बालक महादेवके पार्थिवलिंगमें लय हो गये, व्यासजीभी आसुओंको छोडते हुए शिवके प्रेममें तत्पर हुए ॥ ११८ ॥ इस प्रकार मध्यमेश्वर महादेव से वर पाय व्यासजी अपनी लीलासे अठारह पुराणोंको निर्माण करके ॥ ११९ ॥ ब्राह्म, पाद्म, वैष्णव, शैव तथा भागवत, भविष्य, नारदीय, मार्कंडेय ॥ १२० ॥ आग्नेय,

स्त्रिया वा पुरुषेणापि नियमाल्लिंगसन्निधौ ॥ वर्षं जप्तमिदं स्तोत्रं बुद्धिं विद्याञ्च वर्द्धयेत् ॥ ११७ ॥ इत्युक्त्वा स महादेवो बालो लिंगे न्यलीयत ॥ व्यासोऽपि मुंचन्नश्रूणि शिवप्रेमाकुलोऽभवत् ॥ ११८ ॥ एवं लब्धवरो व्यासो महेशान्मध्यमेश्वरात्॥अष्टादश पुराणानि प्रणिनाय स्वलीलया ॥ ११९ ॥ ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा ॥ भविष्यं नारदीयं च मार्कंडेयमतः परम् ॥ १२० ॥ आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं लिंग वाराहमेव च ॥ वामनाख्यं ततः कौर्मं मात्स्यं गारुडमेव च ॥ १२१ ॥ स्कान्दं तथैव ब्रह्माण्डाख्यं पुराणं च कीर्तितम् ॥ यशस्यं पुण्यदं नृणां श्रोतृणां शांकरं यशः ॥ १२२ ॥ सूत उवाच ॥ अष्टादशपुराणानाम्पूर्वं नामोदितन्त्वया ॥ कुरु निर्वचनं तेषामिदानीं वेदवित्तम ॥ १२३ ॥ व्यास उवाच ॥ अय मेव कृतः प्रश्नस्तण्डिना ब्रह्मयोनिना॥नन्दिकेश्वरमुद्दिश्य स यदाह ब्रवीमि तत् ॥ १२४ ॥ नन्दिकेश्वर उवाच ॥ यत्र वक्ता स्वयन्तण्डे ब्रह्मासाक्षाच्चतुर्मुखः॥तस्माद्ब्रह्मं समाख्यातं पुराणं प्रथमं मुने ॥ १२५ ॥

ब्रह्मवैवर्त, लैंग, वाराह, वामनाख्य, कौर्म मात्स्य, गारुड ॥ १२१ ॥ स्कान्द तथा ब्रह्माण्ड नामक पुराण कहे हैं यह शिवके यशको सुननेवाले मनुष्योंको कीर्त्ति तथा पुण्यके देनेवाले कहे हैं ॥ १२२ ॥ सूतजी बोले, हे वेदवित्तम ! तुमने पहले जो अठारह पुराणोंका नाम कहा अब उन सबोंका निर्वचन करो ॥ १२३ ॥ व्यासजी बोले, यही प्रश्न ब्रह्माके पुत्र तण्डीने नन्दिकेश्वरसे किया था उन्होंने जो कहा है सो मैं वर्णन करता हूं ॥ १२४ ॥ नंदिकेश्वर बोले, हे तांडि मुने ! जिसमें साक्षात् चतुर्मुख ब्रह्माजी वक्ता हैं इससे पहला

ब्राह्मपुराण कहा है ॥ १२५ ॥ जिसमें पद्मकल्पका माहात्म्य कहा है इससे दूसरा पाद्मपुराण कहा है ॥ १२६ ॥ पराशरने विष्णुको बोधन करानेवाला पुराण कहा है पुत्र और पिताके भेदसे व्यासजीका कहा जाता है इसीसे वह वैष्णवपुराण कहा जाता है ॥ १२७ ॥ जिसके पहले और उत्तरखंडमें शिवका बहुत चरित्र हैं इसको शैवपुराण पुराणज्ञ कहते हैं ॥१२८॥ जिसमें भगवती दुर्गाका चरित्र है वह देवी भागवत पुराण कहा है इसमें देवीपुराणकी गणना नहीं हैं ॥ १२९ ॥ नारदजीसे कहा हुआ नारदीयपुराण कहा जाता है जिस प्रकरणमें मार्कंडेय महा मुनि वक्ता हुए ॥ १३० ॥ वह सातवां मार्कंडेयपुराण कहलाया अग्नियोगसे आग्नेय भविष्य उक्ति होनेसे भविष्यपुराण कहा है ॥ १३१ ॥ ब्रह्माके

पद्मकल्पस्य माहात्म्यन्तत्र यस्यामुदाहृतम्॥ तस्मात्पाद्मं समाख्यातं पुराणं च द्वितीयकम् ॥१२६॥ पराशरकृतं यत्तु पुराणं विष्णुबोधकम् ॥ तदेव व्यासकथितं पुत्रपित्रोरभेदतः ॥१२७॥ यत्र पूर्वोत्तरे खण्डे शिवस्य चरितं बहु ॥ शैवमेतत्पुराणं हि पुराणज्ञा वदन्ति च ॥१२८॥ भगवत्याश्च दुर्गायाश्चरितं यत्र विद्यते ॥ तत्तु भागवतं प्रोक्तं ननु देवीपुराणकम् ॥१२९॥ नारदोक्तं पुराणन्तु नारदीयं प्रचक्षते ॥ यत्र वक्ताऽभवत्तण्डे मार्कण्डेयो महामुनिः ॥१३०॥ मार्कण्डेयपुराणं हि तदाख्यातं च सप्तमम् ॥ अग्नियोगात्तदाग्नेयं भविष्योक्तेर्भविष्यकम् ॥१३१॥ विवर्तनाद्ब्रह्मणस्तु ब्रह्मवैवर्तमुच्यते ॥ लिंगस्य चरितोक्तत्वात्पुराणं लिंगमुच्यते ॥ १३२ ॥ वराहस्य च वाराहं पुराणं द्वादशं मुने ॥ यत्र स्कन्दः स्वयं श्रोता वक्ता साक्षान्महेश्वरः ॥ १३३ ॥ तत्तु स्कान्दं समाख्यातं वामनस्य तु वामनम् ॥ कौर्मं कूर्म्मस्य चरितं मात्स्यं मत्स्येन कीर्तितम् ॥ १३४ ॥ गरुडस्तु स्वयं वक्ता यत्तद्गारुडसंज्ञकम् ॥ ब्रह्माण्डचरितोक्तत्वाद्ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम् ॥ १३५ ॥

विवर्तनसे ब्रह्मवैवर्त पुराण कहलाता है ज्योतिर्लिंगके चरित्र कहनेसे लिंपुराण कहा जाता है ॥ १३२ ॥ हे मुने ! वराहके चरित्र वर्णन होनेसे वाराह बारहवां पुराण कहा जाता है जिसमें स्कन्द श्रोता हैं और साक्षात् महेश्वर स्वयं वक्ता हैं ॥ १३३ ॥ वह स्कांदपुराण कहा है वामनके अवतार वर्णन होनेसे वामन तथा कूर्मके अवतार होनेसे कौर्म मत्स्यसे कीर्तन किया हुआ मात्स्यपुराण कहाजाता है ॥ १३४ ॥ जिसको स्वयं गरुड कहनेवाले हैं वह गरुडपुराण है ब्रह्माण्डके चरित्र कहनेसे ब्रह्मांडपुराण कहा है ॥ १३५ ॥

सूतजी बोले, यहही प्रश्न मैंने बुद्धिमान् व्यासजीसे किया तो मैंने सब पुराणोंका निर्वचन सुना था ॥१३६॥ इस प्रकार सत्यवतीमें पराशरसे व्यासजी उत्पन्न हुए और उन्होंने पुराणसंहिता तथा उत्तम महाभारत रचा ॥ १३७ ॥ हे ब्रह्मन् ! पराशरसे तथा फिर शन्तनुसे सत्यवतीका संयोग हुआ इसमें संशय करनेयोग्य नहीं हो ॥ १३८ ॥ यह आश्चर्य करानेवाली कारण सहित उत्पत्ति कही बडे पुरुषोंके चरित्रमें बुद्धिमानोंके गुणोंका ग्रहण करना चाहिये ॥ १३९ ॥ जो मनुष्य इस परम रहस्यको सुनता है तथा पढता है वह सब पापोंसे छूटकर ऋषिलोकमें जाता है ॥ १४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० व्यासोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽ

सूत उवाच॥अयमेव मयाऽकारि प्रश्नो व्यासाय धीमते॥ततः सर्वपुराणानां मया निर्वचनं श्रुतम्॥१३६॥एवं व्यासःसमुत्पन्नः सत्यवत्यां पराशरात् ॥पुराणसंहिताश्चक्रे महाभारतमुत्तमम् ॥१३७॥ पराशरेण संयोगः पुनःशन्तनुना यथा॥सत्यवत्या इव ब्रह्मन्नःसंशयितुमर्हसि ॥१३८॥सकारणेयमुत्पत्तिःकथिताश्चर्य्यकारिणी॥महतां चरिते चैव गुणा ग्राह्या विचक्षणैः॥१३९॥इदं रहस्यं परमं यः शृणोति पठत्यपि॥स सर्वपापनिर्मुक्त ऋषिलोके महीयते॥१४०॥इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यासुमासंहितायां व्यासोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४४॥मुनय ऊचुः॥श्रुत्वा शंभोःकथा रम्या नानाख्यानसमन्विता॥नानावतार संयुक्ता भुक्तिमुक्तिप्रदा नृणाम्॥१॥इदानीं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तो ब्रह्मविदां वर॥चरित्रं जगदंबाया भगवत्या मनोहरम्॥२॥परब्रह्म महेशस्य शक्तिराद्या सनातनी॥उमाया समभिख्याता त्रैलोक्यजननी परा॥३॥सती हैमवती तस्या अवतारद्वयं श्रुतम्॥अपरा नवतारांस्त्वं ब्रूहि सूत महामते॥४॥को विरज्येत मतिमान् गुणश्रवणकर्मणि॥श्रीमातुर्ज्ञानिनो यानि न त्यजन्ति कदाचन॥५॥

ध्यायः ॥ ४४ ॥ मुनि बोले, अनेक इतिहासोंसे पूर्ण अनेक अवतारोंसे संयुक्त मनुष्योंको भुक्ति मुक्तिकी देनेवाली शिवजीकी मनोहर कथा सुनी ॥ १ ॥ हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! इस समय भगवती जगदम्बाका मनोहर चरित्र तुमसे सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥ परब्रह्म महेश्वरकी आद्य (पहली) सनातनी शक्ति त्रिलोकीको उत्पन्न करनेवाली पार्वती कही हैं ॥ ३ ॥ दूसरी सती हैमवती हैं यह उन गौरीके दो अवतार सुने हैं हे महामते ! सूतजी ! अब तुम और अवतारोंको कहो ॥४॥ गुणश्रवण कर्ममें कौन बुद्धिमान् विरागको प्राप्त होता है

जितने ज्ञानी हैं वे कदापि श्रीमाताकी कथाको नहीं त्यागते हैं ॥५॥ सूतजी बोले, तुम महात्मा धन्य हो तथा नित्य कृतकृत्य हो जो पराम्बा पार्वतीके बडे चरित्रको पूँछते हो ॥६॥ मुनियोंने इस कथाके सुननेवाले तथा पूँछनेवाले तथा बांचनेवालोंके चरणकमलोंकी रजको ही तीर्थ कहा है ॥ ७ ॥वे धन्य हैं उनकी सन्तान तथा कुल धन्य है जिनका चित्त श्रीदेवीके संवादमें प्रवृत्त होता है ॥ ८ ॥ जो मनुष्य समस्त कारणोंकी कारण देवीकी स्तुति नहीं करते हैं वे मायाके गुणोंसे मोहित हतभाग्य होते हैं इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ९ ॥ जो करुणासागरमयी महादेवीको नहीं भजते हैं वे संसाररूपी अन्धकूपमें पडते हैं ॥ १० ॥ जैसे गंगाजीको छोडके तृप्तिके अर्थ मरुस्थलके जलमें जाता है वैसेही देवीको

सूत उवाच ॥ धन्या यूयं महात्मानः कृतकृत्याः स्थ सर्वदा ॥ यत्पृच्छथ पराम्बाया उमायाश्चरितं महत् ॥६॥ शृण्वतां पृच्छतां चैव तथा वाचयतां च तत् ॥ पादाम्बुजरजांस्येव तीर्थानि मुनयो विदुः ॥ ७ ॥ ते धन्या कृतकृत्याः स्युर्धन्या तेषां प्रसूः कुलम् ॥ येषां चित्तं भवेल्लीनं श्रीदेव्यां परसंविदि ॥ ८ ॥ ये न स्तुवन्ति देवेशीं सर्वकारणकारणाम् ॥ मायागुणैर्मोहितास्ते हतभाग्या न संशयः ॥ ९ ॥ न भजन्ति महादेवीं करुणारससागराम् ॥ अन्धकूपे पतन्त्येते घोरे संसाररूपिणि ॥१०॥ गंगां विहाय तृप्त्यर्थं मरुवारि यथा व्रजेत् ॥ विहाय देवीं तद्भिन्नं तथा देवान्तरं व्रजेत् ॥११॥ यस्याः स्मरणमात्रेण पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ अनायासेन लभते कस्त्यजेत्तां नरोत्तमः ॥ १२ ॥ एतत्पृष्टः पुरा मेधास्सुरथेन महात्मना ॥ यदुक्तं मेधसा पूर्वं तच्छृणुष्व वदामि ते ॥ १३ ॥ स्वारोचिषेन्तरे पूर्वं विरथो नाम पार्थिवः ॥ सुरथस्तस्य पुत्रोऽभून्महाबलपराक्रमः ॥ १४ ॥ दानशौण्डः सत्यवादी स्वधर्म्मे कुशलः कृती ॥ देवीभक्तो दयासिन्धुः प्रजानां परिपालकः ॥ १५ ॥

छोडके उससे भिन्न और देवताओंके निकट जाता है ॥ ११ ॥ जिसके स्मरणमात्रसे चारों पदार्थ विना परिश्रमके प्राप्त होते हैं कौन पुरुष ऐसी देवीको त्यागता है ॥ १२ ॥ पहले यह ही महात्मा सुरथने मेधासे पूंछा था तो मेधाने जैसे कहा सो सब तुमसे कहता हूं सुनो ॥१३॥ पहले स्वारोचिष मनुके अन्तरमें विरथनामक राजा हुआ उसका पुत्र सुरथ महाबल और पराक्रम युक्त हुआ ॥ १४ ॥ वह दानमें निपुण सत्यवादी अपने धर्ममें कुशल कृती देवीका भक्त दयासागर प्रजाका पालन करनेवाला हुआ ॥ १५ ॥

इन्द्रके समान तेजवाला उस राजाके पृथ्वीके शासन करनेपर नवीन राजा उसके राज्य लेनेमें तत्पर हुए ॥ १६ ॥ उन्होंने उस राजाकी कोला नामवाली राजधानीको घेर लिया तब उन राजाओंके साथ बडा भयंकर युद्ध होने लगा ॥ १७ ॥ उन प्रबल शत्रुओंने उस राजाको जीत लिया और उसका संपूर्ण राज्य हरके उसे कोलासे निकाल दिया ॥ १८ ॥ तब वह राजा अपने नगरको प्राप्त होके अपने मंत्रियोंके समेत राज्य करने लगा वहां भी महा पक्षवाले शत्रुओंने उसे पराजय किया ॥ १९ ॥ दैववशात् शत्रुभावको प्राप्त हुए मंत्री आदि गणोंने कोशमें स्थित हुआ सब धन अपने आधीन कर लिया ॥ २० ॥ तब वह असहाय राजा आखेटके बहाने घोडेपर चढके सघन

पृथिवा शासतस्तस्य पाकशासनतेजसः॥बभूवुर्नव ये भूपाः पृथ्वीग्रहणतत्पराः॥१६॥कोलानाम्नीं राजधानीं रुरुधुस्तस्य भूपतेः॥ तैस्समन्तुमुलं युद्धं समपद्यत दारुणम्॥१७॥युद्धे स निर्जितो भूपः प्रबलैस्तैर्द्विषद्गणैः॥ उज्झासितञ्च कोलाया हृत्वा राज्यमशेषतः॥१८॥स राजा स्वपुरीमेत्याकरोद्राज्यं स्वमंत्रिभिः॥तत्रापि च महापक्षैर्विपक्षैस्स पराजितः॥१९॥दैवाच्छत्रुत्वमापन्ने रमात्यप्रमुखैर्गणैः॥ कोशस्थितं च यद्वित्तं तत्सर्वं चात्मसात्कृतम्॥२०॥ ततस्स निर्गतो राजा नगरान्मृगयाछलात्॥असहायोऽश्वमारुह्य जगाम गहनं वनम्॥२१॥ इतस्ततस्तत्र गच्छन्राजा मुनिवराश्रमम्॥ ददर्श कुसुमारामभ्राजितं सर्वतोदिशम्॥२२॥ वेदध्वनिसमाकीर्णं शान्तजन्तुसमाश्रितम्॥ शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यै स्समन्तान्परिवेष्टितम्॥२३॥ व्याघ्रादयो महावीर्या अल्पवीर्यान्महामते॥ तदाश्रमे न बाधन्ते द्विजवर्य्यप्रभावतः॥२४॥ उवास तत्र नृपतिर्महाकारुणिको बुधः॥ सत्कृतो मुनिनाथेन सुवचो भोजनासनैः॥२५॥ एकदा स महाराजश्चिंतामाप दुरत्ययाम्॥अहो मे हीनभाग्यस्य दुर्बुद्धेर्हीनतेजसः॥२६॥

वनमें निकल गया ॥ २१ ॥ वहां इधर उधर जाते हुए राजाने चारों ओरसे पुष्पवाटिकासे शोभायमान मुनिका वह आश्रम था ॥२२॥ वेदध्वनिसे गुंजारित शांत प्राणियोंसे व्याप्त शिष्य प्रशिष्य तथा उनके शिष्योंसे सब ओर घिरा हुआ वह आश्रम देखा ॥ २३ ॥ हे महामते ! मुनिके प्रभावसे उस आश्रममें महावीर्यवान् व्याघ्र आदि थोडे बलवाले जीवोंको पीडा नहीं देते थे ॥ २४ ॥ वहां परमदयालु निपुण राजाने निवास किया तब सुन्दर भोजन पानसे मुनिनाथने उसका सत्कार किया ॥ २५ ॥ किसी समय वह महाराजा बडी कठिन चिंताको प्राप्त

हुआ कि, अहो भाग्यहीन दुर्बुद्धि तेजहीन मेरा ॥ ॥२६॥ संपूर्ण राज्य मदमें प्रगल्भ शत्रुओंने हरण किया मेरे पूर्वजोंसे रक्षित हुआ राज्य अब शत्रुओंसे भोगा जाता है ॥ २७ ॥ इस चैत्रवंशमें मुझ सरीका कोई राजा नहीं हुआ अब मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? किस प्रकार राज्यको पाऊं ? ॥ २८ ॥ और मेरे सनातन अमात्य और मंत्री हैं वे न जाने अब किस राजाको प्राप्त होके स्थित हैं ॥ २९ ॥ और राज्यको नष्ट करके अब न जाने कौन गतिको प्राप्त हैं संग्रामभूमिमें बडे उत्साहवाले शत्रुवर्गके छेदन करने वाले ॥ ३० ॥ मेरे जो महासूर भट हैं वे और राजाको भजते हैं पर्वतके समान ऊँचे हाथी तथा पवनके समान वेगवाले घोडे वे भी ॥ ३१ ॥ तथा पूर्व पूर्वजोंसे अर्जित हुआ कोश भी वे अब पालते हैं

हृतं राज्यमशेषेण शत्रुवर्गैर्मदोद्धतैः ॥ मत्पूर्वैः रक्षितं राज्यं शत्रुभिर्भुज्यतेऽधुना ॥ २७ ॥ मादृशश्चैत्रवंशेस्मिन्न कोप्यासीन्म हीपतिः ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं राज्यं लभेमहि. ॥ २८ ॥ अमात्या मंत्रिणश्चैव मामका ये सनातनाः ॥ न जाने कं च नृपतिं समासाद्याधुनासते ॥ २९ ॥ विनाश्य राज्यमधुना न जाने कां गतिं गताः ॥ रणभूमिमहोत्साहा अरिवर्गनिक र्तनाः ॥ ३० ॥ मामका ये महाशूरा नृपमन्यं भजन्ति ते ॥ पर्वताभा गजा अश्वा वातवद्वेगगामिनः ॥ ३१ ॥ पूर्वपूर्वार्जितः कोशः पाल्यते तैर्नवाधुना ॥ एवं मोहवशं यातो राजा परमधार्मिकः ॥ ३२ ॥ एतस्मि न्नन्तरे तत्र वैश्यः कश्चित्समागतः ॥ राजा पप्रच्छ कस्त्वं भोः किमर्थमिह चागतः ॥ ३३ ॥ दुर्मना लक्ष्यसे कस्मादेतन्मे ब्रूहि साम्प्रतम् ॥ इत्याकर्ण्य वचो रम्यं नर पालेन भाषितम् ॥ ३४ ॥ दृग्भ्यां विमुंचन्नश्रूणि समाधिर्वैश्यपुंगवः ॥ प्रत्युवाच महीपालं प्रणयावनतां गिरम् ॥ ३५ ॥ ॥ वैश्य उवाच ॥ समाधिर्नाम वैश्योहं धनिवंशसमुद्भवः ॥ पुत्रदारादिभिस्त्यक्तो धनलोभान्महीपते ॥ ३६ ॥

या नहीं इस प्रकार वह परमधर्मात्मा राजा मोहके वशमें प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ इसी अवसरमें वहां कोई वैश्य प्राप्त हुआ तब राजाने उससे पूँछा कि, तुम कौन हो किस लिये यहां आयेहो ॥ ३३ ॥ इस समय तुम क्यों दुःखितमन ज्ञात होते हो यह मुझसे कहो ऐसे मनोहर राजाके वचन सुनके ॥ ३४ ॥ तब समाधिनामक वैश्यश्रेष्ठ अपने नेत्रोंसे आंसुओंको गिराताहुआ प्रणयसे नम्र हुई वाणीसे बोला ॥ ३५ ॥ वैश्य बोला, राजन् ! मैं समाधिनामक वैश्य हूं और धनीके वंशमें उत्पन्न हुआ और धनके लोभसे पुत्र स्त्री आदिसे त्यागन हुआ ॥ ३६ ॥

हे राजन् ! अपने कर्मसे दुःखित हो वनमें आया हूं वह मैं पुत्र तथा पौत्रोंकी तथा स्त्रियोंकी ॥ ३७ ॥ हे करुणासागर प्रभो ! भाइयोंकी और भाईके पुत्रोंकी तथा और मित्रोंकी भलीभांति कुशल नहीं चाहता हूं ॥ ३८ ॥ राजा बोला, जिन दुराचारी धन लोभी पुत्र आदिने तुमको निकाल दिया उनमें तुम मूर्ख जन्तुके समान क्यों प्रीति करते हो ? ॥ ३९ ॥ वैश्य बोला, हे राजन् ! तुम भलीभांति सारगर्भित वचन कहा तथापि स्नेह पाससे मेरा मन अत्यन्तही मोहित होता है ॥ ४० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार मोहमें व्याकुल हुए वे दोनों वैश्य और राजा मुनिवर्य मेधसके निकट गये ॥ ४१ ॥ उस वैश्यराजसमेत प्रतापी धीर राजाने मस्तक झुकाय योगीराजको प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ तब

वनमभ्यागतो राजन्दुःखितः स्वेन कर्मणा ॥ सोहं पुत्रप्रपौत्राणां कलत्राणां तथैव च ॥३७॥ भ्रातॄणां भ्रातृपुत्राणां परेषां सुहृदां तथा ॥ न वेद्मि कुशलं सम्यक् करुणासागर प्रभो ॥ ३८ ॥ राजोवाच ॥ निष्कासितो यैः पुत्राद्यैर्दुर्वृत्तैर्धनगर्धिभिः ॥ तेषु किं भवता प्रीतिः क्रियते मूर्खजन्तुवत् ॥ ३९ ॥ वैश्य उवाच ॥ सम्यगुक्तं त्वया राजन्वचः सारार्थबृंहितम् ॥ तथापि स्नेहपाशेन मोह्यतेऽतीव मेमनः ॥ ४० ॥ एवं मोहाकुलौ वैश्यपार्थिवौ मुनिसत्तम ॥ जग्मतुर्मुनिवर्यस्य मेधसः सन्निधिन्तदा ॥४१॥ स वैश्यराजसहितो नरराजः प्रतापवान् ॥ प्रणनाम महाधीरः शिरसा योगिनां वरम् ॥४२॥ बद्ध्वाञ्जलिमिमां वाचमुवाच नृपतिर्मुनिम् ॥ भगवन्नावयोर्मोहं छे त्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥ ४३ ॥ अहं राजश्रिया त्यक्तो गहनं वनमाश्रितः ॥ तथापि हृतराज्यस्य तोषो नैवाभिजायते ॥४४॥ अयं च वैश्यस्स्वजनैर्दाराद्यैर्निष्कृतो गृहात् ॥ तथाप्येतस्य ममता न निवृत्तिं समश्नुते ॥ ४५ ॥ किमत्र कारणं ब्रूहि ज्ञानिनोरपि नो मनः ॥ मोहेन व्याकुलं जातं महत्येषां हि मूर्खता ॥ ४६ ॥

अंजलि बाँध वह राजा मुनिसे यह वचन बोला हे भगवन् ! इस समय तुम हम दोनोंके संशयको छेदन करनेके योग्य हो ॥ ४३ ॥ मैं राज्यलक्ष्मीसे छूटा हुआ सघन वनमें आया तो भी राज्यके हरण होनेपर भी मुझे संतोष नहीं होता है ॥ ४४ ॥ और यह वैश्य अपने कुटुम्बी द्वारा आदिसे घरसे निकाला गया है तो भी इसकी ममता दूर नहीं हुई ॥ ४५ ॥ इसमें क्या कारण है सो कहो ? कि, ज्ञानी भी हम दोनोंका मन मोहसे व्याकुल हुआ यह अतिमूर्खता है ॥ ४६ ॥

ऋषि बोले, महामाया जगत्की धारण करनेवाली सनातनी शक्तिरूपा देवी सबोंके मनोंको आकर्षण करके मोहित करती है ॥ ४७ ॥ हे प्रभो ! जिसकी मायासे मोहित हुए ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवता भी परम तत्त्वको नहीं जानते हैं फिर मनुष्योंकी क्या कथा है ॥ ४८ ॥ वह देवी सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करती तथा पालन करती और वह ही तीनों गुणधारी परमेश्वरी समय पाकर विनाश करती है ॥ ४९ ॥ हे नृप सत्तम ! वह वर देनेवाली कामरूपिणी देवी जिसके ऊपर प्रसन्न होती है वह ही मोहको दूर करता है और प्रकार मनुष्य मोहको नहीं दूर कर सकता ॥ ५० ॥ राजा बोला, हे मुने ! वह महामाया नामक कौन देवी है जो सबोंको मोहित करती है वह देवी किस प्रकार उत्पन्न हुई

ऋषि उवाच ॥ महामाया जगद्धात्री शक्तिरूपा सनातनी॥सा मोहयति सर्वेषां समाकृष्य मनांसि वै॥४७॥ब्रह्मादयस्सुरास्सर्वे यन्मायामोहिताः प्रभो ॥ न जानन्ति परन्तत्त्वं मनुष्याणां च का कथा॥४८॥ सा सृजत्यखिलं विश्वं सैव पालयतीति च॥सैव संहरते काले त्रिगुणा परमेश्वरी ॥४९॥ यस्योपरि प्रसन्ना सावरदा कामरूपिणी॥स एव मोहमत्येति नान्यथा नृपसत्तम ॥५०॥ राजोवाच ॥ का सा देवी महामाया या च मोहयतेऽखिलान्॥ कथं जाता चसा देवी कृपया वद मे मुने ॥५१॥ ऋषिरुवाच ॥ जगत्येकार्णवे जाते शेषमास्तीर्य योगराट् ॥ योगनिद्रामुपाश्रित्ययदा सुष्वाप केशवः ॥ ५२ ॥ तदा द्वावसुरौ जातौ विष्णोः कर्ण मलेन वै ॥ मधुकैटभनामानौ विख्यातौ पृथिवीतले ॥५३॥ प्रलयार्कप्रभौ घोरौ महाकायौ महाहनू ॥ दंष्ट्राकरालवदनौ भक्षयन्तौ जगन्ति वा ॥५४॥ तौ दृष्ट्वा भगवन्नाभिपङ्कजे कमलासनम् ॥ हननायोद्यतावास्तां कस्त्वं भोरिति वादिनौ ॥५५॥

यह सब कृपा करके मुझसे कहो ॥ ५१ ॥ ऋषि बोले, जगत्के एकार्णव (प्रलय) होनेपर जब योगिराट् भगवान् केशव योग निद्राको प्राप्त होके शेषको आस्तरण कर शयन करने लगे ॥ ५२ ॥ उस समय विष्णुके कर्णकमलसे पृथ्वीमें विख्यात मधुकैटभ नामवाले दो दैत्य उत्पन्न होगये ॥ ५३ ॥ प्रलय कालके सूर्यके समान घोर महाकाय बडी ठोंडीवाले दंष्ट्रासे भयंकर मुखवाले लोकोंको भक्षण करते हुए ॥ ५४ ॥ हे भगवन् ! नाभि कमलमें भगवान्को देख अरे तू कौन है ऐसा कहके नारायणको मारनेके अर्थ उद्यत हुए ॥ ५५ ॥

उन दैत्योंको देखके ब्रह्माजीने समुद्रमें शयन करते हुए नारायणको तथा परमेश्वरीको सन्तुष्ट किया ॥ ५६ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे महामाये ! शरणागत वत्सले ! हे जगदम्बिके ! इन भयंकर स्वरूप दैत्योंसे रक्षा करो ॥ ५७ ॥ महामाया, योग निद्रा, पार्वती, सती, कालरात्रि, महारात्रि, मोहरात्रि, परासेपरा, तुमको नमस्कार करता हूं ॥ ५८ ॥ तीनों देवताओंकी उत्पन्न करनेवाली नित्य भक्तोंको मनोवांछित फल देनेवाली सब देवताओंकी पालन करनेवाली करुणा वरुणालयाको नमस्कार करता हूं ॥ ५९ ॥ तुम्हारे प्रभावसे मैं ब्रह्मा तथा विष्णु शिव संसारको उत्पन्न करते रक्षा करते तथा प्रलयकालमें संहार करते हैं ॥ ६० ॥ हे माता ! तुम स्वाहा हो, तुम स्वधा, तुम लज्जा, तुमहीं निर्मूल बुद्धि

समालोक्यं तु तौ दैत्यौ सुरज्येष्ठो जनार्दनम् ॥ शयानं च पयोम्भोधौ तुष्टाव परमेश्वरीम् ॥५६॥ ब्रह्मोवाच ॥ रक्षरक्ष महामाये शरणागतवत्सले॥एताभ्यां घोररूपाभ्यां दैत्याभ्यां जगदम्बिके॥५७॥प्रणमामिमहामायां योगनिद्रामुमां सतीम् ॥ कालरात्रिं महारात्रिं मोहरात्रिं परात्पराम् ॥ ५८ ॥ त्रिदेवजननीं नित्यां भक्ताभीष्टफलप्रदाम् ॥ पालिनीं सर्वदेवानां करुणावरुणालयम् ॥ ५९ ॥ त्वत्प्रभा वादहं ब्रह्मा माधवो गिरिजापतिः ॥ सृजत्यवति संसारं काले संहरतीतिच ॥६०॥ त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्विमला मता ॥ तुष्टिः पुष्टिस्त्वमेवाम्ब शान्तिः क्षान्तिः क्षुधा दया ॥ ६१ ॥ विष्णुमाया त्वमेवाम्ब त्वमेव चेतना मता॥त्वं शक्तिः परमा प्रोक्ता लज्जा तृष्णा त्वमेव च ॥६२॥ भ्रान्तिस्त्व स्मृतिरूपा त्वं मातृरूपेण संस्थिता ॥ त्वं लक्ष्मीर्भवने पुंसां पुण्याचारप्रवर्तिनाम् ॥६३॥ त्वं जातिस्त्व मता वृत्तिर्व्याप्तिरूपा त्वमेव हि॥त्वमेव चित्तिरूपेण व्याप्य कृत्स्नं प्रतिष्ठिता ॥ ६४ ॥ सा त्वमेतौ दुराधर्षावसुरौ मोहयाम्बिके ॥ प्रबोधय जगद्योने नारायणमजं विभुम् ॥ ६५ ॥

हो, तुमहीं शान्ति, क्षान्ति, क्षुधा और तुमहीं दया हो ॥ ६१ ॥ हे माता ! तुमहीं विष्णुकी माया तुमहीं चेतना तुमहीं शक्ति तुमहीं परम लज्जा तुमहीं तृष्णा हो ॥ ६२ ॥ तुम भ्रांति हो तुम स्मृति तथा तुमहीं माताके रूपसे स्थित हुई हो तुमहीं पुण्याचारमें प्रवृत्त होनेवाले मनुष्योंके गृहमें लक्ष्मी हो ॥ ६३ ॥ तुम जाति हो तुम वृत्ति और व्याप्ति रूपा हो तुमहीं चितिरूपसे सब जगत्में व्याप्त होके स्थित हो ॥ ६४ ॥ हे अम्बिके ! हे जगत्योने ! वह तुम इन प्रगल्भ दैत्योंको मोहित करो तथा अज, विभु, नारायणको जगाओ ॥ ६५ ॥

ऋषि बोले, वह महाविद्या, जगद्धात्री, सर्वविद्याधिदेवता, देवी ब्रह्मासे प्रार्थित हुई मधु कैटभके नाश करनेमें प्रवृत हुई ॥ ६६ ॥ तब फाल्गुन मासकी शुक्ला द्वादशीको वह उत्पन्न हुई और महाकाली नामसे प्रसिद्ध त्रिलोकीके मोहनेवाली शक्ति विख्यात हुई ॥ ६७ ॥ उसके पीछे आकाशवाणी हुई कि हे ब्रह्मन् ! मत डरो अब मैं आज मधुकैटभ दैत्योंको मारके तुम्हारे दुःखको दूर करूंगी ॥ ६८ ऐसा कहके वह माया देवी विष्णुके नेत्र मुखसे निकलके अब्जजन्मा ब्रह्माजीके दर्शनको प्राप्त हुई ॥ ६९ ॥ और देवोंके देव जनार्दन भगवान् उठे और उन्होंने मधुकैटभनामक दैत्यों को आगे देखा ॥ ७० ॥ तब उन दैत्योंके साथ अतुल तेजवाले विष्णुका युद्ध हुआ पांच सहस्र वर्ष बाहु युद्ध

ऋषिरुवाच ॥ ॥ ब्रह्मणा प्रार्थिता सेयं मधुकैटभनाशने ॥महाविद्या जगद्धात्री सर्वविद्याधिदेवता॥६६॥द्वादश्यां फाल्गुनस्यैव शुक्लायां समसून्नृप॥ महाकालीति विख्याता शक्तिस्त्रैलोक्यमोहिनी॥६७॥ततोऽभवद्वियद्वाणी मा भैषीः कमलासन॥ कण्टकं नाशयाम्यद्य हत्वाजौ मधुकैटभौ॥६८॥इत्युक्ता सा महामाया नेत्रवक्त्रादितो हरेः॥निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥६९॥ उत्तस्थौ च हृषीकेशो देवदेवो जनार्दनः॥ स ददर्श पुरो दैत्यो मधुकैटभसंज्ञकौ ॥७०॥ ताभ्यां प्रववृत्ते युद्धं विष्णो रतुलतेजसः ॥ पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुयुद्धमभूत्तदा॥७१॥महामायाप्रभावेण मोहितौ दानवोत्तमौ ॥जजल्पतू रमाकान्तं गृहाण वरमीप्सितम् ॥७२॥ नारायण उवाच॥ मयि प्रसन्नौ यदि वां दीयतामेष मे वरः ॥ मम वध्यावुभौ नान्यं युवाभ्यां प्रार्थये वरम् ॥ ७३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एकार्णवां महीं दृष्ट्वा प्रोचतुः केशवं वचः ॥ आवां जहि न यत्रासौ धरणी पयसाऽप्लुता ॥ ७४ ॥ तथास्तु प्रोच्य भगवांश्चक्रमुत्थाप्य सूज्ज्वलम् ॥ चिच्छेद शिरसी कृत्वा स्वकीयजघने तयोः ॥ ७५ ॥

हुआ ॥ ७१ ॥ तब महामायाके प्रभावसे वे दानवोत्तम मोहित हुए और विष्णुसे यह बोले कि, मनोवांछित वरको ग्रहण करो ॥ ७२ ॥ नारायण बोले, यदि तुम दोनों मुझसे प्रसन्न हो तो मुझे यह वर दो कि, तुम दोनों मुझसे मारने योग्य होओ मैं तुमसे और वर नहीं मांगता हूं ॥ ७३ ॥ ऋषि बोले, एक समुद्रवाली पृथ्वीको देखके विष्णुसे यह वचन बोले जहां भूमि जलसे व्याप्त न हो वहां तुम हम दोनोंको मारो ॥ ७४ ॥ ऐसाही हो यह कहके भगवान्ने उज्ज्वल सुदर्शन चक्रको उठाके उन दैत्यों को अपनी जंघापर स्थापित करके इनके

शिरोंको काट डाला ॥ ७५ ॥ हे महामते ! हे राजन् ! इस प्रकार तुमसे कालिकाकी उत्पत्ति वर्णन की अब महालक्ष्मीकी उत्पत्ति सुनो ॥ ७६ ॥ निर्विकार, साकार, निराकार, देवी, पार्वती देवतोके दुःख नाश होनेके अर्थ प्रत्येक युगमें प्रकट होती है ॥ ७७ ॥ उन देवीका शरीर धारना सब इच्छाका वैभव है और वह लीलासे भक्तोंके गुण वर्णन करनेके हेतुसे होता है ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां पं० उ० सं० मधुकैटभवधे महाकालिकावतारवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ऋषि बोले, दैत्यवंशमें शिरोमणि

एवन्ते कथितो राजन्कालिकायास्समुद्भवः ॥ महालक्ष्म्यास्तथोत्पतिं निशामय महामते ॥ ७६ ॥निर्विकारादि साकारा निराकारापि देव्युमा ॥ देवानां तापनाशार्थं प्रादुरासीद्युगेयुगे ॥ ७७ ॥ यदिच्छावैभवं सर्वं तस्या देहग्रहः स्मृतः ॥ लीलया सापि भक्तानां गुणवर्णनहेतवे ॥७८॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां मधुकैटभवधे महाकालिकावतारवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ऋषिरुवाच ॥ आसीद्रंभासुरो नाम दैत्यवंशशिरोमणिः ॥ तस्माज्जातो महातेजा महिषो नाम दानवः ॥ १ ॥ स संग्रामे सुरान्सर्वान्निर्जित्य दनुजाधिपः ॥ चकार राज्यं स्वर्लोके महेन्द्रासनसंस्थितः ॥२॥ पराजिता स्ततो देवा ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ब्रह्मापि तान्समादाय ययौ यत्र वृषाकपी ॥ ३ ॥ तत्र गत्वा सुरास्सर्वे नत्वा शंकरकेशवौ ॥ स्ववृत्तं कथायामासुर्यथा वदनुपूर्वशः ॥ ४ ॥ भगवन्तौ वयं सर्वे महिषेण दुरात्मना ॥ उज्जासिताश्च स्वर्लोकान्निर्जित्य समरां गणे ॥ ५ ॥ भ्रमामो मर्त्यलोकेऽस्मिन्न लभेमहि शं क्वचित् ॥ कांकां न दुर्दशां नीता देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ ६ ॥

रंभासुरनामक दैत्य हुआ उससे महातेजस्वी महिषासुर नामक दैत्य उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥उस दैत्यराजने संग्राममें सम्पूर्ण देवताओंको जीतके स्वर्गलोकमें इन्द्रके आसनमें बैठ राज्य किया ॥ २ ॥ तब पराजित हुए देवता ब्रह्माकी शरणमें गये ब्रह्माजी भी उन दैत्योंको लेके वहां गये जहां विष्णु, शिव थे ॥ ३ ॥ वहां जाय सब देवताओंने शिवको प्रणामकर क्रमसे विधिपूर्वक अपना वृत्तान्त कहा ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! दुष्टात्मा महिषासुरने युद्धभूमिमें जीतके हम सबोंको स्वर्गलोकसे निकाल दिया ॥ ५ ॥ हम सब इस मर्त्यलोकमें

फिरते हैं परन्तु कहीं भी शान्ति नहीं पाते हैं हम इन्द्र आदि देवता कौन दुर्दशाको नहीं प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ सूर्य, चन्द्रमा, वरुण, कुबेर, यम, इन्द्र, अग्नि, पवन, गन्धर्व, विद्याधर चारण ॥ ७ ॥ इन देवताओंके तथा और भी देवतोंके कर्त्तव्य कर्मको वह दैत्यपक्षको अभय देनेवाला पापात्मा महिषासुर स्वयं करता है ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! इस कारण तुम शरणमें प्राप्त हुए हम देवतोंकी रक्षा करने योग्य हो और तुम दोनों उस दैत्यके मारनेके उपायको विचारो ॥ ९ ॥ ऐसा देवतोंका वचन सुनके क्रोधसे नेत्र घुमाते हुए विष्णु शिव अति क्रोध करने लगे ॥ १० ॥ तब अति क्रोधमें पूर्ण हुए विष्णु तथा शिवके मुखसे तथा और देवताओंके भी शरीरसे तेज निकला

सूर्य्याचन्द्रमसौ पाशी कुबेरो यम एव च॥इन्द्राग्निवातगन्धर्वा विद्याधरसुचारणाः॥७॥एतेषामपरेषां च विधेयं कर्म सोसुरः॥ स्वयं करोति पापात्मा दैत्यपक्ष भयंकर॥८॥तस्माच्छरणमापन्नान्देवान्नस्त्रातुमर्हथः॥वधोपायं च तस्याशु चिन्तयेथांयुवां प्रभू ॥९॥ इति देववचः श्रुत्वा दामोदरसतीश्वरौ॥चक्रतुः परमं कोपं रोषाघूर्णितलोचनौ॥१०॥ततोतिकोपपूर्णस्य विष्णोश्शंभोश्च वक्त्रतः॥तथान्येषां च देवानां शरीरान्निर्गतं महः ॥११॥अतीव महसः पुंजं ज्वलन्तं दशदिक्षु च ॥ अपश्यंस्त्रिदशास्सर्वे दुर्गा ध्यानपरायणाः॥१२॥सर्वदेवशरीरोत्थं तेजस्तदतिभीषणम् ॥ संघीभूयाभवन्नारी साक्षान्महिषमर्दिनी ॥१३॥ शंभुतेजस उत्पन्नं मुखमस्याः सुभास्वरम् ॥याम्येन बाला अभवन्वैष्णवेन च बाहवः ॥१४॥चन्द्रमस्तेजसा तस्याः स्तनयुग्मं व्यजायत॥मध्यमैन्द्रेण जंघोरू वारुणेन बभूवतुः॥१५॥ भूतेजसा नितंबोभूद्ब्राह्मेण चरणद्वयम्॥आर्केण चरणांगुल्यः करांगुल्यश्च वासवात्॥१६॥

॥ ११ ॥ दुर्गाके ध्यानमें तत्पर हुए सब देवतोंने दसों दिशाओंमें प्रज्वलित हुए अति तेजके समूहको देखा ॥१२॥ सब देवताओंके शरीरोंसे उत्पन्न हुआ वह अति भयंकर तेज एकत्रित होके महिषासुरके मारनेवाली साक्षात् स्त्रीरूपमें होगया ॥ १३ ॥ इन देवीका कान्तिमान् मुख शिवके तेजसे उत्पन्न हुआ, यमके तेजसे बाल, तथा विष्णुके तेजसे भुजा होगईं ॥ १४ ॥ और चन्द्रमाके तेजसे उसके दोनों स्तन हुए, इन्द्रके तेजसे मध्य भाग तथा वरुणके तेजसे दोनों जंघा हुईं ॥ १५ ॥ पृथ्वीके तेजसे नितंब तथा ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण हुए सूर्यके तेजसे चरणोंकी

अंगुली इंद्रके तेजसे हाथकी अंगुली हुई ॥ १६ ॥ कुबेरके तेजसे नासिका प्रजापतिके तेजसे दांत अग्निके तेजसे तीनों नेत्र संध्याके तेजसे दोनों भौंहैं ॥ १७ ॥ पवनके तेजसे दोनों कान तथा और देवताओंके तेजसे भी वह पद्मालया परमेश्वरी उत्पन्न हुई ॥ १८ ॥ तब सम्पूर्ण देवताओंके तेज पुंजसे उत्पन्न हुई उस देवीको देखके सब देवता हर्षको प्राप्त हुये ॥ १९ ॥ शस्त्रहीन उसे देखके ब्रह्मा आदि देवताओंने शस्त्रयुक्त करनेकी मनमें ठानी ॥ २० ॥ तब शिवजीने महेशानीको त्रिशूल समर्पण किया, भगवान् कृष्णने शंख सुदर्शन चक्र

कुबेरतेजसा नासा रदनाश्च प्रजापतेः॥पावकीयेन नयनत्रयं सान्ध्येन भ्रूद्वयम्॥ १७॥ आनिलेन श्रवोद्वन्द्वं तथान्येषां स्वरोकसाम्॥तेजसां संभवः पद्मालया सा परमेश्वरी ॥ १८॥ ततो निखिलदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्॥तामालोक्य सुरास्सर्वे परं हर्षं प्रपेदिरे ॥१९॥ निरायुधां च तां दृष्ट्वा ब्रह्माद्यास्त्रिदिवेश्वराः॥सायुधान्तां शिवां कर्तुं मनः सन्दधिरे सुराः ॥२०॥ ततः शूलं महेशानो महेशान्यै समर्पयत्॥चक्रं च कृष्णो भगवाञ्च्छंखं पाशं च पाशभृत ॥२१॥ शक्तिं हुताशनोऽयच्छन्मारुतश्चापमेव च ॥ बाणपूर्णेषुधी चैव वज्रघण्टे शचीपतिः ॥२२॥ यमो ददौ कालदण्डमक्षमालां प्रजापतिः॥ब्रह्मा कमण्डलुं प्रादाद्रोमरश्मीन्दिवाकरः ॥२३॥ कालः खड्गन्ददौ तस्यै फलकं च समुज्वलम्॥क्षीराब्धी रुचिरं हारमजरे च तथाम्बरे ॥२४॥ चूडामणिं कुण्डले च कटकानि तथैव च॥अर्द्धचन्द्रं च केयूरान्नूपुरौ च मनोहरौ॥२५॥ग्रैवेयकमंगुलीषु समस्तास्वंगुलीयकम्॥विश्वकर्मा च परशुं ददौ तस्यै मनोहरम् ॥२६॥ अस्त्राण्यनेकानि तथाभेद्यं चैव तनुच्छदम् ॥ सुरम्यसरसां मालां पङ्कजं चाम्बुधिर्ददौ ॥२७॥

और वरुणने पाश दिया ॥ २१ ॥ अग्निने शक्ति पवनने धनुष दिया इंद्रने बाणोंसे पूर्ण तर्कस तथा वज्रघण्ट भी दिये ॥ २२ ॥ यमने काल दण्ड तथा ब्रह्माजीने अक्षकी माला दी ब्रह्माने कमण्डलु दिया सूर्यने रोमरश्मियोंको दिया ॥ २३ ॥ कालने खड्ग तथा उज्ज्वल फलक दिया क्षीर सागरने सुन्दरहार अजर अम्बर ॥ २४ ॥ चूडामणि तथा कुण्डल कटक अर्ध चन्द्र केयूर मनोहर नूपुर दिये ॥ २५ ॥ ग्रीवाके आभूषण तथा सब अंगुलियोंके आभूषण दिये विश्वकर्माने उसको मनोहर परशु प्रदान किया ॥ २६ ॥ समुद्रने

अनेक अस्त्र तथा अमेय कवच सुरम्य सरसमाला और कमल दिये ॥ २७ ॥ हिमालयने सिंह तथा अनेकप्रकारके रत्न दिये और कुबेरने उसको मदिरासे पूर्ण हुए पात्रको सौंपा ॥ २८ ॥ सर्पोंके राजा शेषजीने सुन्दर रचनासे युक्त अनेक सुन्दर मणियोंसे गुम्फित नागहार दिया ॥ २९ ॥ इन पूर्वोक्त तथा और भी देवतोंसे प्रदान किये हुए आभूषणोंसे तथा शस्त्रोंसे सत्कृतहुई देवीने ऊंचेस्वरसे बारम्बार अट्टहास किया ॥ ३० ॥ उसके भयंकर शब्दसे पूर्ण हुई आकाशस्थली पूरित होगई और बडी प्रतिध्वनि हुई तब तीनों लोक व्याकुल हुए ॥ ३१ ॥ चारों समुद्र चलाय मान हुए तथा भूमिभी कांपनेलगी तब महिषासुरसे पीडित हुए देवतोंने जयजयकार किया ॥ ३२ ॥ फिर सब देवताओंने महाल

ददौ सिंहं च हिमवान्नत्नानि विविधानि च ॥ सुरया पूरितं पात्रं कुबेरोऽस्यै समर्पयत् ॥ २८ ॥ शेषश्च भोगिनां नेता विचित्ररचनाञ्चितम् ॥ ददौ तस्यै नागहारं नानासन्मणिगुंफितम् ॥ २९ ॥ एतैश्चान्यैस्सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥ सत्कृतोच्चैर्नादासौ साट्टहासं पुनःपुनः ॥ ३० ॥ तस्या भीषणनादेन पूरिता च नभःस्थली ॥ प्रतिशब्दो महानासीच्चुक्षुभे भुवनत्रयम् ॥ ३१ ॥ चेलुः समुद्राश्चत्वारो वसुधा च चचाल ह ॥ जयशब्दस्ततो देवैरकारि महिषार्दितैः ॥ ३२ ॥ ततोऽम्बिकां परां शक्तिं महालक्ष्मीस्वरूपिणीम् ॥ तुष्टुवुस्ते सुरास्सर्वे भक्तिगद्गदया गिरा ॥ ३३ ॥ लोकं संक्षुब्धमालोक्य देवतापरिपन्थिनः ॥ सन्नद्धसै निकास्ते च समुत्तस्थुरुदायुधाः ॥ ३४ ॥ महिषोऽपि च तं शब्दमभ्यधावद्रुषान्वितः ॥ स ददर्श ततो देवीं व्याप्त लोकत्रयां रुचा ॥ ३५ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र महिषासुरपालिताः ॥ समाजग्मुर्महावीराः कोटिशो धृतहेतयः ॥३६॥ चिक्षुरश्चामरोदग्रौ करालोद्धतवाष्कलाः ॥ ताम्रोग्रास्योग्रवीर्याश्च बिडालोऽन्धक एव च ॥ ३७ ॥

क्ष्मीस्वरूपिणी अंबिका पराशक्तिको गद्गदवाणीसे सन्तुष्ट किया ॥३३॥ लोकोंको व्याकुल हुआ देखके शस्त्रोंको ग्रहण करके देवताओंके विरोधी तैयार हुए सैनिक उठ खडे हुए॥ ३४ ॥ महिषासुर भी उस शब्दको सुनके क्रोध करता हुआ दौडा तब उसने देवीको अपनी कान्तिसे तीनों लोकोंको व्याप्त करती हुई देखा ॥ ३५ ॥ इसी अवसरमें वहां महिषासुरसे पालित महावीर शस्त्रधारी करोडों योधा आये ॥ ३६ ॥ चिक्षुर, चामर, उदग्र, कराल, उद्धत, बाष्कल, ताम्र, उग्रास्य, उग्रवीर्य, निडाल, अन्धक ॥ ३७ ॥

दुर्धर, दुर्मुख, त्रिनेत्र, बडी ठोंडीवाले यह तथा औरभी युद्धमें निपुण अनेक शूर आये ॥ ३८ ॥ और संग्राममें शस्त्र अस्त्रोंके सहित देवीके साथ युद्ध करने लगे इस प्रकार युद्ध करते हुए उनका समय बीता ॥ ३९ ॥ शत्रु वर्गके हाथसे फेंके हुए अनेक शस्त्र और अस्त्रोंके समूह महामायाके प्रभावसे क्षणमात्रमें निष्फल होगये ॥ ४० ॥ तब उस देवीने चिक्षुर, आदि शत्रुओंको उनके गणोंसहित गदा बाणोंसे तथा त्रिशूल शक्ति परशुओंसे मारा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार उस महिषासुरने अपनी सेनाके मरनेपर देवीके श्वाससे उत्पन्नहुए उन गणोंको ताडन किया ॥ ४२ ॥ किसीको खुरोंसे ताडन करने लगा किसीको दोनों सींगोंसे मारनेलगा तथा किसीको पूंछसे और किसीको बारम्बार नासिकासे भेदन करने लगा

दुर्धरो दुर्मुखश्चैव त्रिनेत्रश्च महाहनुः ॥ एते चान्ये च बहवः शूरा युद्धविशारदाः ॥ ३८ ॥ युयुधुः समरे देव्या सह शस्त्रास्त्रपारगाः ॥ इत्थं कालो व्यतीयाय युध्यतोर्भीषणस्तयोः ॥ ३९ ॥ अरिवर्गकरक्षिप्ता नानाशस्त्रास्त्रराशयः ॥ महामायाप्रभावेण विफला अभवन् क्षणात् ॥ ४० ॥ ततो जघान सा देवी चिक्षुरप्रमुखानरीन् ॥ सगणान्गदया बाणैः शूलशक्तिपरश्वधैः॥४१॥ एवं स्वीयेषु सैन्येषु हतेषु महिषासुरः ॥ देवीनिःश्वाससंभूतान्भावयामास तान्गणान् ॥ ४२ ॥ अताडयत्खुरैः कांश्चित्कांश्चिच्छृङ्गद्वयेन च ॥ लांगूलेन च तुण्डेन भिनत्ति स्म मुहुर्मुहुः ॥ ४३ ॥ इत्थं देवीगणान्हत्वाभ्यधावत्सोऽसुराधिपः ॥ सिंहं मारयितुन्देव्यास्ततोऽसौ कुपिताऽभवत् ॥ ४४ ॥ कोपात्सोपि महावीर्यः खुरकुट्टितभूतलः ॥ शृङ्गाभ्यां शैलमुत्पाट्य चिक्षेप प्रणनाद च ॥ ४५ ॥ वेगेन विष्वग् भ्रमता प्रक्षिप्ता गुरवोऽद्रयः ॥ आकाशतो महीमध्येनिपेतुर्नृपसत्तम ॥ ४६ ॥ शृंगभिन्नाः पयोवाहाः खण्डं खण्डमयासिषुः ॥ लांगूलेनाहतश्चाब्धिर्विष्वग्बुद्वेलमस्पदत् ॥ ४७ ॥

॥ ४३ ॥ इस प्रकार देवीके गणोंको मारकर वह दैत्यराज महिषासुर देवीके सिंहको मारने दौडा तब वह देवी कुपित हुई ॥ ४४ ॥ वहभी महापराक्रमी अपने खुरोंसे पृथ्वीको कूटकर तथा सींगोंसे पर्वतको उखाडकर फेंकने लगा और शब्द करने लगा ॥ ४५ ॥ हे नृपसत्तम ! उस दैत्यने बडे वेगसे चारों ओर भ्रमण करके बडे बडे पहाड आकाशसे पृथ्वी पर फेंके ॥ ४६ ॥ सींगोंसे विदीर्ण हुए समुद्र खंड होगये और पूंछसे ताडित हुआ समुद्र चारों तरफसे किनारोंसे टूटफूटकर बहने लगा ॥ ४७ ॥

इस प्रकार क्रोधित हुए उस महिषासुरको देखकर देवताओंको अभय देनेवाली अम्बिकाने उस दैत्यके मारनेके उपायको सोचा ॥ ४८ ॥ तब ईश्वरीपाशको उठाके उसके ऊपर फेंककर महिषासुरको बांधने लगी तब उसने अपने महिषासुरके रूपको त्याग किया ॥ ४९ ॥ तब वह छली शीघ्रही सिंह होगया अम्बिका जबही उसके शिरको काटने लगी तबहीं वह खड्ग हाथमें लेके खडा होगया ॥ ५० ॥ तब देवीने ढाल तलवार लिये उसको बाणोंसे ताडन किया तब वह हाथी बनके सूंडसे छेदन करने लगा ॥ ५१ ॥ तब देवीने अपनी महाखड्गसे इसके हाथको काटा तब फिर उस राक्षसने अपना रूप बदल लिया ॥ ५२ ॥ और चर अचर सहित तीनों लोकोंको क्षोभित किया तब मान

एवं क्रुद्धं समालोक्य महिषासुरमम्बिका ॥ विदधे तद्वधोपायं देवानामभयंकरी ॥ ४८ ॥ ततः पाशं समुत्थाप्य क्षिप्त्वा तस्यो परीश्वरी ॥ बबन्ध महिषं सोऽपि रूपन्तत्याज माहिषम् ॥ ४९ ॥ ततः सिंहोबभूवाशु मायावी तच्छिरोम्बिका ॥ यावद्धिनत्ति तावत्स खड्गपाणिर्बभूव ह ॥५०॥ सचर्म्मासिकरं तं च देवी बाणैरताडयत् ॥ ततो गजवपुर्भूत्वा सिंहं चिच्छेद शुण्डया ॥५१॥ ततोऽस्य च करं देवी चकर्त स्वमहासिना ॥ अधारि च पुना रूपं स्वकीयं तेन रक्षसा ॥ ५२ ॥ तदैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ततः क्रुद्धा महामाया चण्डिका मानविक्रमा ॥५३॥ पपौ पुनःपुनः पानं जहासोद्भ्रान्तलोचना ॥जगर्ज चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः ॥५४॥ तस्या उपरि चिक्षेप शैलानुत्पाट्य सोऽसुरः ॥ सा च बाणावलीघातैश्चूर्णयामास सत्वरम् ॥ ५५ ॥ वारुणीमदसंजातमुखरागाऽऽकुलेन्द्रिया ॥ प्रोवाच परमेशानी मेघगंभीरया गिरा ॥ ५६ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ रे मूढ रे हतप्रज्ञ व्यर्थं किं कुरुषे हठम् ॥ न मदग्रेऽसुराः केपि स्थास्नवो जगतीत्रये ॥ ५७ ॥

विक्रमा महामाया चंडिका क्रोधित हुई ॥ ५३ ॥ और घूर्णित नेत्रवाली देवी बारम्बार मधुपान करती हास्य करनेलगी और बलवीर्यमदसे प्रगल्भ वह दैत्य गर्जने लगा ॥ ५४ ॥ और पर्वतोंको उखाडकर उसके ऊपर फेंकनेलगा और वह देवी बाणोंकी पंक्तिके घातसे उन दैत्योंको शीघ्रतासे चूर्ण करनेलगी ॥ ५५ ॥ मधुके मदसे उत्पन्न हुए मुख रागवाली व्याकुल इन्द्रियवाली वह देवी मेघके समान गंभीर वाणीसे बोली ॥ ५६ ॥ देवी बोली, हे मूर्ख ! अरे नष्टबुद्धे ! तू मेरे आगे व्यर्थ क्यों हठ करता है मेरे आगे तीन लोकमें कोई देवता नहीं ठहर सकते ॥ ५७ ॥

ऋषि बोले, ऐसा कहके सर्व कलाओंसे पूर्ण देवीने कूदके दत्यैको पैरोंसे कुचलके उसके कंठको तीव्र त्रिशूलसे भेदन किया ॥ ५८ ॥ तब देवीके चरणोंसे आक्रमण हुआ अपने भैंसेरूप मुखसे आधा निकला हुआ वह देवीके वीर्यसे घिर गया ॥ ५९ ॥ आधे निकले हुए युद्ध करते हुए महानीच उस दैत्यको देख महाखड्गसे उसका शिर काट देवीने पृथ्वीपर गिराया ॥ ६० ॥ तब नीचेको मुख किये त्राहि त्राहि ऐसा कहते हुए संग्रामसे डरे हुए उस दैत्यके गण हाहाकार मचाके भाग निकले ॥ ६१ ॥ उस समय इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवतोंने देवीको सन्तुष्ट किया गन्धर्वोंने गीत गाये नर्तकोंने नृत्य किया ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार तुमसे महालक्ष्मीकी उत्पत्ति कही अब स्वस्थचित्तसे

ऋषि रुवाच ॥ एकमाभाष्य कूर्दित्वा देवी सर्वकलामयी ॥ पदाक्रम्यासुरं कण्ठे शूलेनोग्रेण साऽभिनत् ॥ ५८ ॥ ततस्तच्चरणाक्रान्तस्स्वकीयमुखात्ततः ॥ अर्द्धनिष्क्रान्त एवासीद्देव्या वीर्येण संवृतः ॥ ५९ ॥ अर्द्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महाधमः ॥ महासिना शिरो भित्त्वा न्यपाति धरणीतले ॥ ६० ॥ हाहाशब्दं समुच्चार्य्यावाङ्मुखास्तद्गणास्ततः ॥ पलायन्त रणाद्भीतास्त्राहित्राहीति वादिनः ॥ ६१ ॥ तुष्टुवुश्च तदा देवीमिन्द्राद्याः सकलाः सुराः ॥ गन्धर्वा गीतमुच्चैरुर्ननृतुर्नर्तकीजनाः ॥ ६२ ॥ एवन्ते कथितो राजन्महालक्ष्म्याः समुद्भवः ॥ सरस्वत्यास्तथोत्पत्तिं शृणु सुस्थेन चेतसा ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां महिषासुरवधोपाख्याने महालक्ष्म्यवतारवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ आसीच्छुम्भासुरो दैत्योनिशुंभश्च प्रतापवान् ॥ त्रैलोक्यमोजसा क्रान्तं भ्रातृभ्यां सचराचरम् ॥ १ ॥ ताभ्याम्प्रपीडिता देवा हिमवन्तं समाययुः ॥ जननीं सर्वभूतानां कामदात्रीं ववन्दिरे ॥ २ ॥

सरस्वतीकी उत्पत्ति सुनो ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां पं० उ० सं० महिषासुरवधोपाख्याने महालक्ष्म्यावतारवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ऋषि बोले, प्रतापी शुम्भासुर तथा निशुम्भ दैत्य हुए उन दोनोंके तेजसे चर अचर सहित तीनों लोक व्याकुल होगये ॥ १ ॥ तब उन दैत्योंसे पीडित हुए देवता हिमालयके समीप गये और सब प्राणियोंकी उत्पन्न करनेवाली कामनाको पूर्ण करनेवाली पार्वतीको नमस्कार किया ॥ २ ॥

देवता बोले, हे दुर्गे ! महेशानि ! हे आत्मीय जन प्रिये ! तुम्हारी जय हो, त्रिलोकीकी रक्षा करनेवाली तुम पार्वतीको नमस्कार है ॥ ३ ॥ मुक्तिकी देनेवाली पराम्बाको नमस्कार है, हे सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति स्थिति विनाश करनेवाली ! तुमको नमस्कार है ॥ ४ ॥ हे कालिका रूप सम्पन्ने ! हे तारा कृते ! तुमको नमस्कार है छिन्नमस्ता स्वरूपा तथा श्रीविद्याको प्रणाम है ॥ ५ ॥ हे भुवनेशि ! हे भैरवाकृते ! तुमको नमस्कार है, बगला मुखीको नमस्कार है, धूमावतीको नमस्कार है ॥ ६ ॥ त्रिपुर सुन्दरीको नमस्कार है, मातंगी तुमको नमस्कार है, तथा अजितारूप तुमको नमस्कार है, विजयाको नमस्कार है, ॥ ७ ॥ जया, मंगला, विलासिनी तुमको नमस्कार है, हे दोग्ध्रीरूपे ! तुमको

देवा ऊचुः ॥ जय दुर्गे महेशानि जयात्मीयजनप्रिये ॥ त्रैलोक्यत्राणकारिण्यै शिवायै ते नमोनमः ॥३॥ नमो मुक्तिप्रदायिन्यै पराम्बायै नमोनमः ॥ नमः समस्तसंसारोत्पत्तिस्थित्यन्तकारिके ॥ ४ ॥ कालिकारूपसंपन्नो नमस्काराकृते नमः ॥ छिन्नमस्तास्वरूपायै श्रीविद्यायै नमोस्तु ते ॥ ५ ॥ भुवनेशि नमस्तुभ्यं नमस्ते भैरवाकृते ॥ नमोस्तु बगलामुख्यै धूमावत्यै नमो नमः ॥ ६ ॥ नमस्त्रिपुरसुन्दर्य्यै मातङ्ग्यै ते नमोनमः ॥ अजितायै नमस्तुभ्यं विजयायै नमोनमः ॥ ७ ॥ जयायै मंगलायै ते विलासिन्यै नमोनमः ॥ दोग्ध्रीरूपे नमस्तुभ्यं नमो घोराकृतेऽस्तु ते ॥ ८ ॥ नमोऽपराजिताकारे नित्याकारे नमो नमः ॥ शरणागतपालिन्यैरुद्राण्यै ते नमोनमः ॥ ९ ॥ नमो वेदान्तवेद्यायै नमस्ते परमात्मने ॥ अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिकायै नमोनमः ॥ १० ॥ इति देवैः स्तुता गौरी प्रसन्ना वरदा शिवा ॥ प्रोवाच त्रिदशान्सर्वान्युष्माभिः स्तूयतेऽत्र का ॥ ११ ॥ ततो गौरीतनोरेका प्रादुरासीत्कुमारिका ॥ सोवाच मिषतां तेषां शिवशक्तिं परादरात् ॥ १२ ॥

नमस्कार है, हे घोराकृते ! तुमको नमस्कार है, ॥८॥ हे विना पराजित आकारवाली ! तुमको नमस्कार है, हे नित्याकारे ! तुमको नमस्कार है, शरणागतको पालन करनेवाली रुद्राणी तुमको नमस्कार है ॥ ९ ॥ वेदान्त वेद्याको नमस्कार है, तुम परम आत्माको नमस्कार है, अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंकी नायका तुमको नमस्कार है ॥ १० ॥ इस प्रकार देवताओंसे स्तुति की हुई शिवा पार्वती प्रसन्न और वर देनेवाली होके सब देवताओंसे बोलीं कि, तुम क्यों स्तुति करते हो ॥ ११ ॥ तब पार्वतीजीके शरीरसे एक कन्या प्रगट हुई और

उन देवताओंके सन्मुख शिवशक्तिसे बोली ॥ १२ ॥ हे माता ! प्रबल हुये निशुंभ तथा शुंभ दैत्यसे पीडित हुए सम्पूर्ण स्वर्गवासी देवता मेरी स्तुति करते हैं ॥ १३॥ उस देवीके शरीर कोश से जो निकली इस कारण वह शुंभ दैत्यको नाश करनेवाली देवी कौशिकी नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ १४ ॥ और वही उग्रतारिका कही है तथा वही महोग्रतारिका कही है कारण कि, वह प्रगट हुई इस कारण पृथ्वीपर मातंगी कहलाई ॥ १५ ॥ और वह सब देवताओंसे बोली कि, तुम सब निर्भय होके रहो मैं स्वतंत्र हो विना आश्रयके तुम्हारा कार्य पूर्ण करूंगी ॥ १६ ॥ ऐसा कहके वह देवी तत्क्षण अन्तर्धान होगई और उन दोनों दैत्योंके चण्ड मुण्ड नामवाले सेवकोंने उस देवीको देखा ॥ १७ ॥

स्तोत्रं मे क्रियते मातः समस्तैः स्वर्गवासिभिः ॥ निशुंभशुंभदैत्याभ्यां प्रबलाभ्यां प्रपीडितैः ॥ १३ ॥ शरीरकोशाद्यत्तस्या निर्गता तेन कौशिकी ॥ नाम्ना सा गीयते साक्षाच्छुंभासुरनिबर्हिणी ॥ १४ ॥ चैवोग्रतारिकाप्रोक्ता महोग्रतारिकापि च ॥ प्रादुर्भूता यतः सा वै मातंगीत्युच्यते भुवि ॥ १५ ॥ बभाषे निखिलान्देवान्यूयं तिष्ठत निर्भयाः ॥ कार्यं वःसाधयिष्यामि स्वतन्त्राहं विनाश्रयम् ॥१६॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी तरसान्तर्हिताऽभवत् ॥ चण्डमुण्डौ तु तान्देवीमद्राष्टां सेवकौतयोः ॥१७॥ दृष्ट्वा मनोहरं तस्या रूपं नेत्रसुखावहम् ॥ पेततुस्तौ धरामध्ये नष्टसंज्ञौ विमोहितौ॥१८॥ गत्वा व्याजह्रतुः सर्वं राज्ञे वृत्तान्तमादितः ॥ दृष्टा काचिन्मया पूर्वा नारी राजन्मनोरमा ॥ १९ ॥ हिमवच्छिखरे रम्ये संस्थिता सिंहवाहिनी ॥ समन्ताद्देवकन्याभिः सेविता बद्धपाणिभिः ॥२०॥ कुरुते पादसंवाहं काचित्संस्कुरुते कचान् ॥ पाणिसंवाहनं काचित्काचिन्नेत्राञ्जनं न्यधात् ॥२१॥ काचिद् गृहीत्वा हस्तेनादर्शं दर्शयते मुखम् ॥ नागवल्लीं ददात्येका लवंगैलादिसंयुताम् ॥ २२ ॥

नेत्रोंको सुख देनेवाले मनोहर देवीके रूपको देखके चेतना रहित मोहित हुए वे दोनों भूमिपर गिर पडे ॥ १८ ॥ और राजाके निकट जाके आद्योपान्त संपूर्ण वृत्तान्त कहा हे राजन् ! हमने एक मनोहर अपूर्व स्त्री देखी है ॥ १९ ॥ हिमालयके मनोहर शिखरपर स्थित हुई सिंहके वाहनवाली हाथ जोडे हुए देव कन्याओंसे सब ओरसे सेवित हुई है ॥ २० ॥ कोई देवकन्या पैर दबाती है और कोई बालोंको काढती मलती है कोई हाथ मलती है तथा कोई आंखोंमें सुरमा लगा रही है ॥ २१ ॥ कोई अपने हाथसे शीशेको ग्रहण

करके मुख दिखला रही है और एक स्त्री लोंग आदिसे युक्त पान दे रही है ॥ २२ ॥ कोई सखी पीकदानको हाथमें लेके आगे खडी है और कोई आभूषण वस्त्रोंसे सब अंगोंको भूषित कर रही है ॥ २३ ॥ केलेके स्तम्भके समान जंघावाली तोतेके समान नासिकावाली तथा सर्प के समान भुजावाली शब्दायमान मंजीरेके समान चरणोंवाली सुन्दर मेखला से युक्त ॥ २४ ॥ सुन्दर कस्तूरीके समान सुगन्धवाली मोतियोंके हारसे चलायमान स्तनोंवाली ग्रीवाके आभूषणोंसे शोभायमान गर्दनवाली विजलीके समान कान्तिसे दीप्यमान ॥ २५ ॥ आधे चन्द्रमाको धारण करनेवाली देवी मणिजटित कुण्डलोंको धारण करनेवाली सुन्दर वेणीवाली विशाल नेत्रोंवाली तीन नेत्रोंसे भूषित ॥ २६ ॥ साक्षरा

पतद्ग्रहं करे कृत्वा स्थिता काचित्सखी पुरः ॥ भूषयत्यखिलांगानि काचिद्भूषाम्बरादिभिः ॥ २३ ॥ कदलीस्तंभजंघोरुः कीरना साऽहिदोर्लता ॥ रणन्मञ्जीरचरणा रम्यमेखलया युता ॥२४॥ लसत्कस्तूरिकामोदमुक्ताहारचलस्तनी ॥ ग्रैवेयकलसद्ग्रीवा ललन्तीदाममण्डिता ॥२५॥ अर्द्धचन्द्रधरा देवी मणिकुण्डलधारिणी ॥ रम्यवेणिर्विशालाक्षी लोचनत्रयभूषिता ॥ २६ ॥ साक्षरा मालिकोपेतापणिराजितकंकणा ॥ स्वर्णोर्मिकांगुलिर्भ्राजत्पारिहार्य्यलसत्करा ॥ २७ ॥ शुभवस्त्रावृता गौरी पद्मासनविराजिता ॥ काश्मीरबिन्दु तिलका चन्द्रालंकृतमस्तका ॥२८॥ तडिद्द्युतिर्महामूल्याम्बर चोलोन्नमत्कुचा ॥ भुजैरष्टाभिरुत्तुंगैर्धारयन्ती वरायुधान् ॥ २९ ॥ तादृशी नासुरी नागी न गन्धर्वी न दानवी ॥ विद्यते त्रिषु लोकेषु यादृशी सा मनोरमा ॥ ३० ॥ तस्मात्संभोगयोग्यत्वं तस्यास्त्वय्येव शोभते ॥ नारीरत्नं यतः सा वै पुंरत्नं च भवान्प्रभो ॥ ३१ ॥

मालासे शोभायमान कंकणसे शोभायमान हाथोंवाली, स्वर्णकी कान्तिसे विराजमान अंगुलीवाली, पारिहार्यसे भूषित करोंवाली ॥ २७ ॥ सुन्दर वस्त्रोंसे आच्छन्न गौरीपद्मासनपर विराजमान केशरकी विन्दु सहित तिलकधारे चन्द्रमासे शोभायमान मस्तकवाली ॥ २८ ॥ विजलीके समान कान्तिवाली महामूल्यवाले वस्त्र तथा चोलीसे भूषित कुचोंवाली ऊंची आठ भुजाओंसे सुन्दर शस्त्रोंको धारण करती हुई है॥ २९ ॥ ऐसी न कोई आसुरी हैं न कोई नागकन्या है न कोई गन्धर्वी न दानवी तीनों लोकोंमें है जैसी वह मनोहर (सुन्दर) है ॥ ३० ॥ हे प्रभो ! इस कारण उस कन्याके भोगनेयोग्य तुमहीं हो कारण कि, वह स्त्रीरत्न है और तुम पुरुषरत्न हो ॥ ३१ ॥

ऐसा चंड मुंड दैत्योंके वचन सुनके उस दैत्यराजने उस देवीके पास सुग्रीवनामक दूतको भेजा और कहा ॥ ३२ ॥ हे दूत हिमालयपर्वतपर जाओ वहां कोई सुन्दरी है मेरा वचन मानके यत्नसे उसको ले आवो ॥ ३३ ॥ इस प्रकार जताया हुआ दैत्योंमें श्रेष्ठ सुग्रीव हिमालयपर्वतपर जाके महेश्वरी जगदम्बासे बोला ॥ ३४ ॥ दूत बोला, हे देवि ! शुम्भासुर दैत्य तथा उसका छोटा भाई निशुम्भ महाबल पराक्रमसे तीनों लोकोंमें विख्यात है ॥ ३५ ॥ हे देवेश्वरि ! उससे भेजा हुआ मैं तुम्हारे निकट आया हूं और उसने जो कुछ कहा है उसको अब सुनो ॥ ३६ ॥ मैंने संग्राममें इन्द्रादि देवताओंको जीतके उनके रत्नोंको हरण किया और यज्ञमें देवादिसे दिये हुए देवभागको मैं स्वयं भोगता हूँ ॥ ३७ ॥

इत्युक्तं चण्डमुण्डाभ्यां निशम्य स महासुरः ॥ दूतं सुग्रीवनामानं प्रेषयामास तां प्रति ॥३२॥ गच्छ दूत तुषाराद्रौ तत्रास्ते कापिसुन्दरी ॥ सा नेतव्या प्रयत्नेन कथयित्वा वचो मम ॥३३॥ इति विज्ञापितस्तेन सुग्रीवो दानवोत्तमः ॥ गत्वा हिमाचलं प्राह जगदम्बां महेश्वरीम् ॥ ३४ ॥ दूत उवाच ॥ देवि शुंभासुरो दैत्यो निशुंभस्तस्य चानुजः॥ विख्यातस्त्रिषु लोकेषु महा बलपराक्रमः ॥३५॥ चारोहं प्रेषितस्तेन सन्निधिन्ते समागमम् ॥स यज्ञगौ सुरेशानि तत्समाकर्णयाधुना॥३६॥इन्द्रादीन्समरे जित्वा तेषां रत्नान्यपाहरम्॥ देवभागं स्वयं भुञ्जे यागे दत्तं सुरादिभिः ॥३७॥ स्त्रीरत्नं त्वामहं मन्ये सर्वरत्नोपरि स्थितम् ॥ सा त्वं ममानुजं मां वा भजतात्कामजै रसैः ॥३८॥ इति दूतोक्तमाकर्ण्य वचनं शुंभभाषितम् ॥ जगाद सा महामाया भूतेश प्राणवल्लभा ॥ ३९ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ सत्यं वदसि भो दूत नानृतं किंचिदुच्यते ॥ परन्त्वेका कृता पूर्वं प्रतिज्ञा तान्निबोध मे ॥ ४० ॥ यो मे दर्पं विधुनुते यो मां जयति संगरे ॥ उत्सहे तमहं कर्तुं पतिं नान्यमिति ध्रुवम् ॥ ४१ ॥

मैं तुम स्त्रीरत्नोंको सब रत्नोंसे श्रेष्ठ जानता हूँ वह तुम मेरे छोटे भाईको अथवा मुझे कामसे उत्पन्न हुए रसोंमें भजो ॥ ३८ ॥ इस प्रकार शुम्भ के सन्देशवाले दूतके वचनको सुन शिवकी प्राणप्रिया महामाया वह देवी बोली ॥ ३९ ॥ देवी बोली, हे दूत ! तू सत्य कहता है इसमें कुछ असत्य नहीं है परन्तु मैंने जो प्रतिज्ञा की है उसको सुनो ॥ ४० ॥ जो मेरे अहंकारको दूर करेगा और जो मुझे युद्धमें जीतेगा मैं निश्चय उसे पति करना चाहती हूँ औरको नहीं ॥ ४१ ॥

सो तुम ऐसा मेरा वचन शुम्भ और निशुम्भ दैत्यसे कहो इसमें जैसा उचित हो वैसा वह करे ॥४२॥ ऐसा देवीका वचन सुनके सुग्रीव नामक दैत्यने वहां, जाके विस्तारसे राजासे कह दिया ॥४३॥ तब दूतका वचन सुनके भैरव शासना करनेवाला शुम्भ दैत्य क्रोधसहित बली सेनापति धूम्राक्षसे बोला ॥४४॥ हे धूम्राक्ष ! हिमालय पर्वतपर कोई सुन्दरी है वहां शीघ्र जाके जैसे वह आवे वैसे उस स्त्रीको लाओ ॥ ४५ ॥ हे दैत्योंमें श्रेष्ठ ! उसके लानेमें कुछ भय मत करना यदि वह युद्ध करनेकी इच्छा करे तो यत्नसे युद्ध करना चाहिये ॥४६॥ इस प्रकार जताया हुआ धूम्रलोचन संज्ञक दैत्य हिमालयपर जाके पार्वतीके अंशसे उत्पन्न हुई तीनों लोकोंकी स्वामिनी देवीसे यह बोला ॥४७॥ हे नितंबिनी ! मेरे स्वामीके समीप

स त्वं कथयशुंभाय निशुंभाय वचो मम ॥ यथा युक्तं भवेदेवं विदधातु तथाऽत्र सः ॥ ४२ ॥ इत्थं देवीवचः श्रुत्वा सुग्रीवो नाम दानवः॥राज्ञे विज्ञापयामास गत्वा तत्र सविस्तरम्॥४३॥अथ दूतोक्तमाकर्ण्य शुंभो भैरवशासनः॥धूम्राक्षं प्राह सक्रोधः सेनान्यं बलिनां वरम् ॥४४॥ हे धूम्राक्ष तुषाराद्रौ वर्तते कापि सुन्दरी ॥ तामानय द्रुतं गत्वा यथा यास्यति सात्र वै ॥४५॥ तस्या आनयने भीतिर्न कार्य्याऽसुरसत्तम ॥ युद्धं कार्यं प्रयत्नेन यदि सा योद्धुमिच्छति ॥४६॥ एवं विज्ञापितो दैत्यो धूम्रलोचनसंज्ञकः ॥ गत्वा हिमाचलं प्राह मुवनेशीमुमांशजाम्॥४७॥भर्तुर्ममान्तिकं गच्छ नोचेत्त्वां घातयाम्यहम्॥पुष्टचाऽसुराणां सहितः सहस्राणां नितंबिनि ॥४८॥ देव्युवाच ॥ दैत्यराट्प्रेषितो वीर हंसि चेत्किं करोमि ते॥ परन्त्वसाध्यं गमनं मन्ये संग्राममन्तरा॥४९॥ इत्युक्तस्तामन्वधावद्दानवो धूम्रलोचनः॥हुंकारोच्चारणेनैव तन्ददाह महेश्वरी॥५०॥ततःप्रभृति सा देवी धूमावत्युच्यते भुवि॥आराधिता स्वभक्तानां शत्रुवर्गनिकर्तिनी॥५१॥ धूम्राक्षे निहते देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥ चर्वितास्तद्गणास्सर्वेऽपलायन्तावशेषिताः ॥५२॥

चल नहीं तो मैं साठ सहस्र दैत्योंके समेत तुझे नष्ट करूंगा ॥४८॥ देवी बोली, हे दैत्यराजके भेजे वीर दूत ! यदि मुझे तू मार डालेगा तो मैं तेरा क्या करूंगी ? परन्तु संग्रामके विना वहां जाना असाध्य मानती हूं ॥ ४९॥ ऐसा सुनकर वह धूम्रलोचन उसके ऊपर दौडा तब महेश्वरी देवीने अपनी हुंकारसेही उसे भस्म कर दिया ॥५०॥उस दिनसे ले के वह देवीके संसारमें धूमावती नामसे विख्यात हुई और अपने भक्तोंसे आराधना की हुई शत्रु वर्गकी नाश करनेवाली है ॥५१॥ देवीसे धूम्राक्ष दैत्यके मारनेपर अति क्रोध करनेवाले उसके वाहन (सिंह) ने सब राक्षसोंको भक्षण किया

और शेष भाग गये ॥ ५२ ॥ इस प्रकार देवीसे मारे हुए दैत्योंको सुन प्रतापी शुम्भ दैत्य दोनों ओठोंको मिस मिसाता हुआ बडा क्रोध करने लगा ॥ ५३ ॥ और क्रमसे चण्ड मुण्ड रक्तबीज दैत्योंको भेजा वे आज्ञा दिये हुए दैत्य वहां गये जहां देवी स्थित थी ॥ ५४ ॥ सिंहपै चढी हुई अणिमा आदि सिद्धियोंसे आश्रित अपनी कान्तिसे सब दिशाओंको प्रकाशित करती हुई भगवतीको दखके वे दैत्य बोले ॥ ५५ ॥ हे देवि ! अति शीघ्र शुम्भ निशुम्भ दैत्योंके चरणोंमें जा नहीं तो गणों और वाहनसे युक्त तुझको मार डालेंगे ॥ ५६ ॥ हे वामे ! आठ लोकपाल आदिसे स्तुति किये हुए उस पतिको वरण कर देवताओंसे भी दुर्लभ हुए बडे आनन्दको प्राप्त होगी ॥ ५७ ॥ ऐसा वचन सुनके

इत्थं देव्या हतं दैत्यं श्रुत्वा शुंभः प्रतापवान् ॥ चकार बहुलं कोपं सन्दष्टोष्ठपुटद्वयः ॥ ५३ ॥ चण्डं मुंडं रक्तबीजं प्रैषयत्क्रम तोऽसुरान् ॥ तेपि चाज्ञापिता दैत्या ययुर्यत्राम्बिका स्थिता ॥ ५४ ॥ सिंहारूढां भगवतीमणिमादिभिराश्रिताम् ॥ भासयंतीं दिशो भासादृङ्नोचुर्दानवर्षभाः ॥ ५५ ॥ हे देवि तरसा मूलं याहि शुंभनिशुंभयोः ॥ अन्यथा घातयिष्यामः सगणांत्वां सवा हनाम् ॥५६॥ वृणीष्व तं पतिं वामे लोकपालादिभिः स्तुतम् ॥ प्रपत्स्यसे महानंदं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ५७ ॥ इत्युक्तमाक लय्याम्बा स्मयित्वा परमेश्वरी ॥ उदाजहार सा देवी सूनृतं रसवद्वचः ॥ ५८ ॥ देव्युवाच ॥ अद्वितीयो महेशानः परब्रह्म सदा शिवः ॥ यत्तत्त्वन्नविदुर्वेदा विष्ण्वादीनां च का कथा ॥ ५९ ॥ तस्याहं प्रकृतिः सूक्ष्मा कथमन्यं पतिम्वृणे ॥ सिंही कामातुरा नैव जम्बुकं वृणुते क्वचित् ॥ ॥ ६० ॥ करेणुर्गर्दभं नैव द्वीपिनी शशकं न वा॥मृषा वदत भो दैत्यो मृत्युव्यालनियंत्रिताः ॥६१॥

वह देवी परमेश्वरी कुछ हँसकर सत्य तथा मधुर वचन बोली ॥ ५८ ॥ देवी बोली, अद्वितीय महेशान परब्रह्म वह सदाशिव हैं जिनके भेदको वेद भी नहीं जानते हैं फिर विष्णु आदि देवताओंकी तो क्या ? कथा है ॥५९॥ मैं उन परमात्माकी परम सूक्ष्म प्रकृति हूं और पतिको किस प्रकार वरण करूं कामसे पीडित हुई सिंही गीदडको नहीं वरण कर सकती ॥ ६० ॥ हथनी गधेको और गैंडेकी स्त्री खरगोशको नहीं वरण करती हे मृत्युरूपी सर्पसे बँधे हुए दैत्यो ! तुम मिथ्या बोलते हो ॥ ६१ ॥

तुम पातालको जाओ और यदि शक्ति हो तो युद्ध करो ऐसा क्रोधयुक्त वचन सुनकर वे आपस में बोले, ॥ ६२ ॥ हम अपने मनमें तुझे अबला जानके नहीं मारते हैं अब जो तेरे मनमें इच्छा हो तो स्थिर होके मृत्युके मुखमें आ ॥ ६३ ॥ इस प्रकार उनके विवाद करते हुए कलह बढ गई और संग्राममें दोनों दलोंमें तीक्ष्णबाण वर्षने लगे ॥ ६४ ॥ इस प्रकार उन दैत्योंसे युद्ध करके परमेश्वरी देवीने लीलासे चंड--मुंड दैत्योंके साथ रक्तबीजनामक महादैत्यको मार दिया ॥ ६५ ॥ उस मगवतीमें द्वेषबुद्धिको करके भी यह देवताओंके लोकको प्राप्त

यूयं प्रयात पातालं युध्यध्वं शक्तिरस्ति चेत् ॥ इति क्रोधकरं वाक्यं श्रुत्वोचुस्ते परस्परम् ॥ ६२ ॥ अबलां मनसि ज्ञात्वा न हन्मोमवतीं वयम् ॥ अथो स्थिरैर्हि पश्चास्ये युद्धेच्छा मानसेऽस्ति चेत् ॥ ६३ ॥ तेषामेवं विवदतांकलहः समवर्द्धत॥ ववृषु समरे बाणा उभयोर्दलयोश्शिताः ॥६४॥ एवं तैः समरं कृत्वा लीलया परमेश्वरी ॥ जघान चण्डमुण्डाभ्यां रक्तबीजं महासुरम् ॥ ६५ ॥ द्वेषबुद्धिं विधायापि त्रिदशस्थित योऽप्यमी ॥ अन्तेऽप्रापन्परं लोकं यँल्लोकं यान्ति तज्जनाः ॥ ६६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां धूम्रलोचन चण्डमुण्डरक्तबीजवधो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ राजोवाच ॥ धूम्राक्षं चण्डमुण्डं च रक्तबीजासुरन्तथा ॥ भगवन्निहतन्देव्या श्रुत्वा शुम्भः सुरार्दनः ॥१॥ किमकार्षीत्ततो ब्रह्मन्नेतन्मे ब्रूहि साम्प्रतम् ॥ शुश्रूषवे जगद्योनेश्चरित्रं पापनाशनम् ॥ २ ॥ ऋषिरुवाच ॥ हतानेमान्दैत्यवरान्महासुरो निशम्य राजन्महनीयविक्रमः ॥ अजिज्ञपत्स्वीयगणान्दुरासदान्रणाभिधोच्चारणजातसंमदान् ॥ ३ ॥

हुए जिस लोकको उनके भक्त जाते हैं ॥ ६६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० धूम्रलोचनचंडमुंडरक्तबीजवधो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥ हे भगवन् देवताओंको पीडा देनेवाले शुम्भ दैत्यने धूम्राक्ष चंड मुंड तथा रक्तबीज दैत्यको देवीसे मारा हुआ सुनके ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! फिर उसने क्या किया यह जगतकी उत्पन्न करनेवाली देवीके पाप नाशक चरित्रको सुननेकी इच्छा करनेवाले मुझसे सब कहो ॥२॥ऋषि बोले, हे राजन् ! महापराक्रमी दैत्यराजने इन पूर्वोक्त दैत्योंको नष्ट हुआ सुनके दुर्धर्ष संग्रामके नाम लेतेही उत्पन्न हुए मदवाले

अपने गणोंको जताया ॥ ३ ॥ बलसे युक्त मेरी आज्ञासे परस्पर मिलेहुए विजय चहनेवाले कालकेय वंशमें उत्पन्नहुए असुर मौर्य दौहृद नामवाले तथा और भी दैत्य युद्ध करनेको जावें॥४॥उन दैत्योंको आज्ञा देकर निशुम्भ शुम्भ दैत्य रथपर चढके चले और वे दैत्य सबल उन दोनोंकी आज्ञासे विनाशवाले पतंगोंके समान उठ खडे हुए ॥५॥ उस समय मृदंग मर्दल भेरिका डिण्डिम झर्झर आनक आदि बाजे बजने लगे संग्रामप्रिय योद्धा युद्धस्थलमें हर्ष करने लगे और जिन्हें अपने प्राण प्रिय थे वे संगरसे लौटने लगे ॥६॥ कवचसे आच्छादित विना पापवाले शस्त्र

बलान्वितास्संमिलिता ममाज्ञया जयाशया कालकवंशसंभवाः ॥ सकालकेयासुरमौर्य्यदौर्हृदास्तथा परेप्याशु प्रयाणयन्तु ते ॥ ४ ॥ निशुंमशुंमौ दितिजान्निदेश्य तान्रथाधिरूढौ निरयांबभूवतुः ॥ बलान्यनूखुर्बलिनोस्तयोर्धराद्विनाशवन्तः शलभा इवोत्थिताः॥५॥प्रसादयामास मृदंगमर्दलं सभेरिकाडिण्डिमझर्झरानकम् ॥ रणस्थले संजहृषू रणप्रिया असुप्रियाः संगरतः परायययुः ॥ ६ ॥ भटाश्चते युद्धपटावृतास्तदा रणस्थलीं मापुरपापविग्रहाः ॥ गृहीतशस्त्रास्त्रचया जिगीषया परस्परं विग्रह यन्तउल्बणम् ॥ ७ ॥ गजाधिरूढा स्तुरगाधिरोहिणो रथाधिरूढाश्च तथापरेऽसुराः ॥ अलक्षयन्तः स्वपराञ्ननान्मुदाऽसुरेशसंगे समरेऽभिरेभिरे ॥८॥ ध्वनिः शतघ्नी जनितो मुहुर्मुहुर्बभूव तेन त्रिदशाः समेजिताः ॥ महान्धकारः समपद्यताम्बरे विलोक्यते नो रथमण्डलं रवेः ॥ ९ ॥ पदातयो निर्व वज्रुर्हि कोटिशः प्रभूतमाना विजयाभिलाषिणः ॥ रथाश्वगा वारणगा अथापरेऽ सुरा निरीयुः कति कोटिशो मुदा ॥ १० ॥

अस्त्रोंको ग्रहण किये हुए विजयकी इच्छासे परस्पर कवचोंको पहनाते हुए वे संपूर्ण योद्धा संग्राम भूमिको प्राप्त हुए ॥७॥ हाथियोंपर चढेहुए तथा घोडोंपर चढे हुए तथा कोई दैत्य रथोंपर चढे हुए अपने और दूसरे मनुष्योंको आनंदसे देखते हुए दैत्योंके युद्धमें चारों ओरसे फिरने लगे ॥ ८ ॥ उस समय बारम्बार बन्दुकोंके शब्द होने लगे उस नादसे सब देवता मिलकर तयार हुए तब आकाशमें बडा अन्धकार होगया और सूर्यका मंडल भी नहीं दीखता था ॥९॥ अतिमानी विजयकी इच्छा करनेवाले करोडों पैदल और अनेक कोटि रथी सवार तथा हाथीपर चढेहुए

आये ॥ १० ॥ काले पर्वतोंके समान मतवाले हाथी संग्राममें चिंघारने लगे छोटे पर्वतोंके समान ऊँट गलगल शब्दको करने (बलबलाने) लगे ॥ ११ ॥ श्रेष्ठ देशोंमें उत्पन्न हुए विशाल कंठके आभरणवाले गतिके जाननेवाले घोडे हिनहिनाने लगे हाथियोंके मस्तकपर पैरोंको रखते हुए आकाशमार्गमें पक्षियोंके समान शीघ्रतासे दौडने लगे ॥ १२ ॥ इस प्रकार शत्रुके बलको देखके उस समय देवीने आक्रमण किया और धनुषको प्रत्यंचा सहित किया तथा शत्रुको दुःख देनेवाली घंटाको बजाया और सिंह भी बडे केशोंको कँपाता हुआ गर्जने लगा ॥१३॥ उस

अशुक्ल शैला एव मत्तवारणा अतानिषुश्चीत्कृतिशब्दमाहवे ॥क्रमेलकाश्चापि गलद्गलध्वनिं वितन्वते क्षुद्रमहीधरोपमाः ॥ ११ ॥ हयाश्च ह्रेषन्त उदग्रभूमिजा विशालकण्ठाभरणा गतेर्विदः ॥ पदानि दन्तावलमूर्ध्नि बिभ्रतः सुडिडिचरे व्योमपथा यथाऽवयः ॥ १२ ॥ समीक्ष्य शत्रोर्बलमित्थमापतच्चकार सज्यं धनुरम्बिका तदा ॥ ननाद घण्टां रिपुसाददायिनीं जगर्ज सिंहोऽपि सटां विधूनयन् ॥ १३ ॥ ततो निशुंभस्तुहिनाचलस्थितां विलोक्य रम्याभरणायुधां शिवाम् ॥ गिरं बभाषे रसनिर्भरां परां विलासनीभावविचक्षणो यथा ॥ १४ ॥ भवादृशीनां रमणीयविग्रहे दुनोति कीर्णं खलुमालतीदलम् ॥ कथं करालाहवमातनोष्यसे महेशि तेनैव मनोज्ञवर्ष्मणा ॥ १५ ॥ इतीरयित्वा वचनं महासुरो बभूव मौनी तमुवाच चण्डिका ॥ वृथा किमात्थासुर मूढ संगरं कुरुष्व नागालयमन्यथा व्रज ॥ १६ ॥ ततोतिरुष्टः समरे महारथश्चकार बाणावलिवृष्टिमद्भुताम् ॥ घनाघनाः संववृषुर्यथोदकं रणस्थले प्रावृडिवागता तदा ॥ १७ ॥

समय निशुंभ हिमालय पर्वतपर स्थित हुई सुन्दर आभूषण तथा शस्त्रोंको धारण करनेवाली देवीको देखकर विलासिनी स्त्रीके भावमें प्रवीण पुरुषके समान अति मधुरवाणी बोला ॥१४॥ हे महेशि ! तुम सरीकोंके मनोहर शरीरमें लिप्त हुआ मालतीका दल (पत्ता) हमको दुःख देता है और तुम सुगंधसे लिप्त हुए मनोहर शरीरसे क्यों भयंकर युद्धको विस्तार करती हो ॥१५॥ ऐसा वचन कहकर वह दैत्यराज चुप रहा तब उससे देवी चंडिका बोली, हे मूर्ख दैत्य ! वृथा क्या कहता है ? युद्धकर अन्यथा नागलोकको जा ॥ १६ ॥ तब अतिरुष्ट हुआ महारथ दैत्य युद्धमें

अद्भुतबाणोंकी वर्षा करने लगा और संग्राम भूमिमें जैसे मेघ जलको वर्षाते हैं तैसे बाणोंको वर्षाया तब वर्षाके समान समय हो गया ॥ १७ ॥ तीव्र बाणोंसे त्रिशूल, परसे शस्त्रोंसे भिन्दिपाल, परिघ, धनुषोंसे तापे, प्रास क्षुरनामक बडी खड्गोंसे मदमें प्रगल्भ होके युद्ध करने लगा ॥ १८ ॥ उस युद्धमें गंडस्थलसे भिन्न हुए काले पर्वतोंके समान बडे हाथी भ्रमण करने लगे चलायमान पवनसे स्वच्छ तथा काली शुंभ और निशुंभकी पताका फहराने लगीं ॥१९॥ देहसे भिन्न हुए दैत्य मच्छलीके समान और कंधोंसे शून्य हुए भयंकर घोडोंके समूहको संग्राममें कालिकाने परास्त किया तथा अवशिष्ट हुए दैत्योंको सिंहने परास्त किया ॥ २० ॥ और उन मारे हुए दैत्योंके मध्यसे रक्त गिरने लगा और रक्तकी बहानेवाली

शरैश्शितैश्शूलपरश्वधायुधैः सभिन्दिपालैः परिघैश्शरासनैः ॥ क्षुरुण्डिकाप्रासक्षुरप्रसंज्ञकैर्महासिभिः संयुयुधे मदोद्धतैः ॥ १८ ॥ विबभ्रमुस्तत्समरे महागजा बिभिन्नकुंभा असिताद्रिसन्निभाः ॥ चलद्ध्वजा काधवजा विकेतवो विसेतवः शुंभनिशुंभकेतवः ॥ १९ ॥ विमि न्नदेहा दितिजा झषोपमा विकन्धरा वाजिगणा भयंकराः ॥ परासवः कालिकया कृता रणे मृगारिणा चाशिषतापरेऽसुरा ॥ २० ॥ विसुस्रुवूरक्तवहास्तदन्तरे सरिच्चयास्तत्र विपुप्लुवे हतैः ॥ कचा भटानां जलनीलिकोपमास्तदुत्तरीयं सितफेनसंनिभम् ॥ २१ ॥ तुरंगसादी तुरगाधिरोहिणं गजस्थितानभ्यपतन्गजारुहः ॥ रथी रथेशं खलु पत्तिरङ्घ्रिगान्समप्रतिद्वन्द्विकलिर्महानभूत् ॥ २२ ॥ ततो निशुंभो हृदये व्यचिन्तयत्करालकालोयमुपागतोऽधुना ॥ भवेद्दरिद्रोऽपि महाधनो महाधनो दरिद्रो विपरीतकालतः ॥ २३ ॥ जडो भवेत्स्फीतमतिर्महामतिर्जडो नृशंसो बहुमन्तुसंस्तुतः ॥ पराजयं यान्ति रणे महाबला जयंति संग्राममुखे च दुर्बलाः ॥ २४ ॥

नदियाँ बहने लगीं और योधाओंके केश जल नील (काई) के समान थे और उनके वस्त्र श्वेत फेनोंके समान थे ॥ २१ ॥ घोडोंके चढने वाले घोडोंपर चढनेवालोंसे और हाथीपर चढे हुए हाथी पै चढनेवालोंसे तथा रथी रथारोहियोंसे पैदल चलनेवाले प्यादोंसे इस प्रकार परस्पर घमासान लडाई होने लगी ॥ २२ ॥ उस समय निशुंभ दैत्य अपने हृदयमें विचारने लगा कि अब यह बडा भयंकर काल प्राप्त होगया इस विपरीत कालसे दरिद्री बडे धनी तथा महाधनी दरिद्री होगये ॥२३॥ जड मनुष्य तीव्र बुद्धिवाला होता है तथा बडी बुद्धिवाला मूर्ख तथा हत्यारा

अनेक मानियोंसे प्रशंसित होता है तथा संग्राममें महाबली पराजयको प्राप्त होते हैं और दुर्बल विजयको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥ मनुष्योंकी जीत तथा हार परमेश्वरकी इच्छासे विना परिश्रमके होती है, कमलसे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा विष्णु तथा शिव भी समयको लांघके नहीं जी सकते ॥ २५ ॥ युद्धके सन्मुख जाके वीर अपने हृदयमें भागना श्रेष्ठ नहीं मानते हैं परन्तु युद्धमें इस देवीसे मेरा विजय कैसे होगा कि, जिसने मेरी सब सेना नष्ट करदी ॥ २६ ॥ यह देवी निश्चयही देवताओंके कार्य सिद्ध करनेको और दैत्य बलके नाश करनेको आई हैं और यह पुराण मूर्त्ति परा प्रकृति शिवा हैं यह लौकिकी स्त्री नहीं हो सकतीं ॥ २७ ॥ युद्ध रसके पानेवालोंसे स्त्रीसे किया हुआ वध

जयोऽजयो वा परमेश्वरेच्छया भवत्यनायासत एव देहिनाम्॥नकालमुल्लंघ्य शशाक जीवितुं महेश्वरः पद्मजनी रमापतिः॥२५॥
उपेत्य संग्राममुखं पलायनं न साधु वीरा हृदयेऽनुमन्वते॥परंतु युद्धे कथमेतया जयो विनाशितं मे सकलं बलं यथा॥२६॥इयं हि
नूनं सुरकर्म साधितुं समागता दैत्यबलं च बाधितुम्॥पुराणमूर्तिः प्रकृतिः परा शिवा न लौकिकीयं वनिता कदापि वा ॥२७॥
वधोऽपि नारीविहितोऽयशस्करः प्रगीयते युद्धरसं लिलिक्षुभिः॥तथाप्यकृत्वा समरं कथं मुखं प्रदर्शयामोऽसुरराजसन्निधौ॥२८॥
विचारयित्वेति महारथो रथं महान्तमध्यास्य नियन्तृचोदितम्॥ययौ द्रुतं यत्र महेश्वरांगना सुरांगनाप्रार्थितयौवनोद्गमा।२९।अवो
चदेनां स महेशि किं भवेदेभिर्हतैर्वेतनजीविभिर्भटैः॥तवास्ति कांक्षा यदि योद्धुमावयोस्तदा रणः स्याद्भृतयुद्धसत्पटैः॥३०॥उवाच
कालीं प्रति कौशिकी तदा समीक्ष्यतामेष दुराग्रहोऽनयोः ॥ करोति कालो विपदागमे मतिं विभिन्नवृत्तिं सदसत्प्रवर्तकः॥३१॥

भी दुष्कीर्त्तिका करनेवाला कहा जाता है और युद्धको विना किये दैत्यराजके समीप मुख दिखावेंगे ॥ २८ ॥ वह महारथ ऐसा विचारकर सारथिसे प्रेरणा किये हुए बडे रथको ठहराके वहां शीघ्र गया जहां देवांगनाओंसे प्रार्थित यौवनमें प्राप्त हुई साक्षात् पार्वतीजी थीं ॥ २९ ॥ वहां जाके वह यह बोला, हे महेशि ! इन वेतनसे जीनेवाले योद्धाओंके मारनेसे क्या फल है ? यदि तेरी युद्ध करनेकी इच्छा है तो कवचोंको उतार कर हम दोनोंका युद्ध होना चाहिये ॥ ३० ॥ तब वह कौशिकी कालीसे बोली, देखो इन दोनोंका दुराग्रह अच्छे और

बुरे मार्गमें प्रवृत्त करानेवाला काल विपत्तिके आनेपर विपरीत मतिको करता है ॥ ३१ ॥ उस समय निशुम्भ चंडिकाको तथा कालिकाको सहस्रों बाणोंसे ताडन करने लगा तब पार्वतीने दैत्योंसे फेंके हुए बाणोंसे सहस्रों खण्ड किये ॥ ३२ ॥ उसके पीछे उस दैत्यने उज्ज्वल खड्गको तथा ढालको उठाय कण्ठीरवके मस्तकमें ताडन किया तब अम्बिकाने इस प्रकार महाखड्गसे उसको भेदन किया जैसे वृक्ष काटनेवाला कुल्हाडेसे वृक्षको काटता है ॥ ३३ ॥ खड्गके टूटजानेपर उसने बाणको फेंका वह बाण भी देवीके वक्षःस्थलमें लगा फिर उसने हृदयमें त्रिशूल मारा उसे भी देवीने मुष्टिको मारके तोड दिया ॥ ३४ ॥ फिर मरणमें तत्पर हुआ वह महारथ गदाको

ततो निशुंभोऽभिजघान चण्डिकां शरैस्सहस्रैश्च तथैव कालिकाम् ॥ विभेद बाणानसुरप्रचोदितान्सहस्रखण्डं स्वशरोत्करैः शिवा ॥ ॥ ३२ ॥ ततः समुत्थाय कृपाणमुज्ज्वलं स चर्म्म कण्ठीरवमूर्ध्न्यताडयत् ॥ बिभेद तं चापि महासिनाम्बिका यथा कुठारेण तरुं तरुश्छिदः ॥ ३३ ॥ स भिन्नखड्गो निचखान मार्गणं पराम्बिकावक्षसि सोऽपि चिच्छिदे ॥ पुनस्त्रिशूलं हृदये ऽक्षिपत्तदप्यचूर्णं यन्मुष्टिनिपातनेन सा ॥ ३४ ॥ गदां समादाय पुनर्महारथोऽभ्यधावदम्बां मरणोन्मुखोऽसुरः॥अचूर्णयत्ताम पिशूलधारया पुनस्त्रि शूलं विददार सोऽन्यया ॥ ३५ ॥ ततोम्बिका भीमभुजंगमोपमैस्सुरद्विषां शोणितचूषणोचितैः॥ निशुम्भमात्मीयशिलीमुखै श्शितैर्निहत्य भूमीमनयद्विषोक्षितैः ॥ ३६ ॥ निपातितेऽमानबलेऽसुरप्रभुः कनीयसि भ्रातरि रोषपूरितः ॥ रथस्थितो बाहुभिरष्ट भिर्वृतो जगाम यत्र प्रमदा महेशितुः ॥ ३७ ॥ अवादयच्छंखमरिन्दमं तदा धनुस्स्वनं चापि चकार दुःसहम् ॥ ननाद सिंहोऽपि सटां विधूनयन्बभूव नादत्रयनादितन्नभः ॥ ३८ ॥

लेके देवीके ऊपर दौडा तब देवीने उसे भी त्रिशूलकी धारासे चूर्ण किया फिर उसके त्रिशूलको दूसरी धारासे तोडा ॥ ३५ ॥ तब देवी भयंकर सर्पोंके समान तथा शत्रुओंके रुधिर चूसनेवाले अपने शिलीमुख ताम विषसे बुझे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे निशुम्भको मारकर भूमिपर लाई ॥ ३६ ॥ मानबलसे युक्त छोटे भाईके मरनेपर वह दैत्यराज क्रोधसे पूर्ण हो रथपर स्थित हुआ आठों भुजाओंसे संयुक्त शुंभ दैत्य वहां गया जहांपर शिवकी प्रिया थी ॥ ३७ ॥ और उस समय शत्रुओंके दमन करनेवाले शंखको बजाया और दुस्सह धनुषके शब्दको

किया उसी समय सिंह भी बडे केशोंको कँपाय शब्द करने लगा तब आकाश तीनोंके नादसे गूंज गया ॥ ३८ ॥ उसके पीछे जगदम्बिकाने अट्टहास किया उससे सम्पूर्ण दैत्य त्रास करने लगे उस समय देवताओंने जयजयकार किया तब अम्बिकाने कहा कि तू संग्राममें स्थिर हो ॥ ३९ ॥ तब उस दैत्यराजने प्रदीप्त अग्निवाली बडी शक्तिको छोडा उसे भी देवीने नष्ट किया शुंभसे फेंके हुए बाणोंको पार्वतीने भेदन किया और पार्वतीसे छोडे हुए सहस्रों बाणोंको उस दैत्यने काट डाला ॥ ४० ॥ तब चण्डिकाने त्रिशूलको उठाय उस महादैत्यको मारा तब वह मूर्छित हो ऐसे गिर पडा जैसे इन्द्रसे पक्ष छेदन किया हुआ पर्वत स्वर्ग लोक तथा समुद्रों सहित पृथ्वीको कँपाता हुआ गिरता है

ततोऽट्टहासं जगदंम्बिकाकरोद्वितत्रसुस्तेन सुरारयोऽखिला : ॥ जयेति शब्दं जगदुस्तदा सुरा यदाम्बिकोवाच रणे स्थिरो भव ॥ ३९ ॥ स दैत्यराजो महतीं ज्वलच्छिखां मुमोच शक्तिं निहता च सोल्कया ॥ बिभेद शुंभप्रहिताञ्छराच्छिवा शिवेरितान्सो पि सहस्रधा शरान् ॥४०॥ त्रिशूलमुत्क्षिप्य जघान चण्डिका महासुरं तं स पपात मूर्च्छितः ॥ विभिन्नपक्षो हरिणा यथा नगः प्रकंपयन् द्यां वसुधां स वारिधिम् ॥ ४१ ॥ ततो मृषित्वा त्रिशिखोद्भवां व्यथां विधाय बाहूनयुतं महाबलः ॥ स कालिकांसिंह युतां महेश्वरीं जघान चक्रैरमरक्षयंकरैः ॥४२॥ तदस्तचक्राणि विभिद्य लीलया त्रिशूलमुद्गूर्य्य जघान सासुरम् ॥ शिवा जग त्पावनपाणिपङ्कजादुपात्तमृत्यू परमं पदं गतौ ॥४३॥हते तस्मिन्महावीर्य्ये निशुंभे भीमविक्रमे ॥ शुंभे च सकला दैत्या विविशु र्बलिसद्मनि ॥ ४४ ॥ भक्षिता अपरे कालीसिंहाद्यैरमरद्विषः ॥ पलायितास्तथान्ये च दशदिक्षु भयाकुलाः ॥ ४५ ॥

॥ ४१ ॥ तब वह महाबली त्रिशूलके दुःखको सहके दश सहस्र भुजाकर देवताओंको नाश करनेवाले चक्रोंसे कालिकाको तथा सिंहसे युक्त महेश्वरीको ताडन करने लगा ॥ ४२ ॥ उसके चक्रोंको लीलासे भेदन करके और त्रिशूलको उठाय देवीने उस दैत्यको मार दिया तब पार्वतीके लोक पावन कर कमलोंसे मृत्यु पाय वे दोनों दैत्य परम धामको सिधारे ॥ ४३ ॥ उस महापराक्रमी निशुंभके तथा भयंकर विक्रम युक्त शुंभ दैत्यके भी मरनेपर सम्पूर्ण देवताओंने स्वर्ग लोकमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ और शेष दैत्योंको काली तथा सिंह आदिने भक्षण

किया और कुछ दैत्य भयभीत हो दशों दिशाओंमें भाग गये ॥ ४५ ॥ उस समय नदियां स्वच्छ जलवाली तथा ठीक स्थानमें बहनेवाली हुई सुखदायक पवन चलने लगी आकाश निर्मल हो गया ॥ ४६ ॥ देवताओं तथा ब्रह्मर्षियोंने फिर यज्ञ आरंभ किया और इन्द्रादि समस्त देवता सुखी हो गये ॥४७॥ हे प्रभो ! जो मनुष्य पार्वतीके परम पवित्र दैत्यराजके वधसहित पुण्य चरित्रको श्रद्धासे श्रवण पाठ करता है ॥४८॥ वह इस लोकमें देवताओंसे भी दुर्लभ सम्पूर्ण भोगोंको अनुभव कर पर लोकमें महामायाके प्रसादसे पार्वतीके स्थानको जाता है ॥४९॥ ऋषि बोले, हे राजन् ! इस प्रकार शुंभ निंशुमासुरको मारनेवाली साक्षात् पार्वतीके अंशसे उत्पन्न हुई देवी सरस्वती उत्पन्न हुई यह चरित्र आपसे सब कह दिया

बभूवुर्मार्गवाहिन्यस्सरितः स्वच्छपाथसः॥ववुर्वाताः सुखस्पर्शा निर्मलत्वं ययौ नभः॥४६॥पुनर्यागः समारेभेदेवैर्ब्रह्मर्षिभिस्तथा॥ सुखिनश्चाभवन्सर्वे महेन्द्राद्या दिवौकसः ॥४७॥ पवित्रं परमं पुण्यमुमायाश्चरितं प्रभो ॥ दैत्यराजवधोपेतं श्रद्धया यः समभ्य सेत् ॥ ४८ ॥ स भुक्त्वेहाखिलान्भोगांस्त्रिदशैरपि दुर्लभान् ॥परत्रोमालयं गच्छेन्महामायाप्रसादतः ॥ ४९ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवन्देवी समुत्पन्ना शुंभासुरनिबर्हिणी॥प्रोक्ता सरस्वती साक्षादुमांशाविर्भवा नृप॥५०॥इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां निशुंभशुंभवधोपाख्याने सरस्वतीप्रादुर्भाववर्णनं नामाष्टश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४८॥मुनय ऊचुः॥उमाया भुवनेशान्यास्सूत सर्वार्थवित्तम॥अवतारं समाचक्ष्व यतो जाता सरस्वती॥१॥या गीयते परब्रह्ममूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ निराकारापि साकारा नित्यानन्दमयी सती ॥२॥ सूत उवाच॥तापसाः शृणुत प्रेम्णा चरित्रं परमं महत् ॥ यस्य विज्ञानमात्रेणनरो याति परां गतिम् ॥३॥

॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० निशुम्भ शुम्भ वधोपाख्याने सरस्वती प्रादुर्भाव वर्णनं नाम अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ मुनि, बोले, सम्पूर्ण अर्थोंके जाननेवाले हे सूतजी ! भुवनेशानी पार्वतीके अवतारको कहो कि जिससे सरस्वती उत्पन्न हुई ॥ १ ॥ जो देवि ! परब्रह्म मूलप्रकृति ईश्वरी निराकार तथा साकार नित्य आनन्दमयी सती कहलाती है ॥२॥ सूतजी बोले, हे तपस्वियो ! ! देवीके परम चरित्रको प्रेमसे सुनो जिसके जानने मात्रसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

एक समय देवता और दैत्योंमें परस्पर बडा युद्ध हुआ उस समय महामायाके प्रभावसे देवताओंकी विजय हुई ॥ ४ ॥ तब गर्वित हुए देवता अपनी प्रशंसा करने लगे कि हम धन्य हैं हम धन्यवादके योग्य हैं दैत्य हम सबोंका क्या ? करेंगे ॥ ५ ॥ जो दैत्य हमारे दुस्सह प्रतापको देखके भागो भागो ऐसा कहके भयभीत होके नागलोकको चले गये ॥ ६ ॥ हम सब देवतोंका बल दैत्यवंशका नाश करनेवाला तेज धन्य है भाग्य धन्य है इस प्रकार सब आपसमें कहने लगे ॥ ७ ॥ उसके पीछे उस समय कूटरूप अपूर्वतेज प्रगट हुआ उसको देखके सब देवता विस्मित हुए ॥ ८ ॥ उस परमश्याम मानके तोडनेवाले तेजको न जानके यह क्या है ? यह क्या है ? ऐसा कंठसे रुकके कहने लगे ॥९॥ तब देवताओं

देवदानवयोर्युद्धमेकदासीत्परस्परम् ॥ महामायाप्रभावेणामराणां विजयोऽभवत्॥४॥ ततोऽवलिप्ता अमरास्स्वप्रशंसां वितेनिरे ॥ वयंधन्या वयं धन्याः किंकरिष्यंति नोऽसुराः॥५॥ये प्रभावं समालोक्यास्माकं परमदुःसहम्॥भीता नागालयं याता यातयातेति वादिनः ॥६॥ अहो बलमहो तेजो दैत्यवंशक्षयंकरम्॥अहो भाग्यं सुमनसामेवं सर्वेऽभ्यवर्णयन् ॥ ७ ॥ तत आविरभूत्तेजःकूटरू पन्तदैव हि ॥ अदृष्टपूर्वं तद्दृष्ट्वा विस्मिता अभवन्सुराः॥८॥किमिदं किमिदं चेति रुद्धकण्ठास्समब्रुवन्॥अजानन्तः परं श्यामानु भावं मानभञ्जनम् ॥९॥ तत आज्ञापयद्देवान्देवानामधिनायकः॥यात यूयं परीक्षध्वं याथातथ्येन किन्विति॥१०॥ सुरेन्द्रप्रेरितो वायुर्महसः सन्निधिं गतः ॥ कस्त्वं भोरिति सम्बोध्यावोचदेनं च तन्महः ॥ ११ ॥ इति पृष्टस्तदा वायुर्महसातिगरीयसा ॥ वायुरस्मि जगत्प्राणस्साभिमानोऽब्रवीदिदम् ॥१२॥ जंगमाजंगमं सर्वमोतप्रोतमिदं जगत् ॥ मय्येव निखिलाधारे चालयाम्य खिलं जगत् ॥ ॥ १३ ॥ तदोवाच महातेजः शक्तोऽसि यदि चालने ॥ धृतमेतत्तृणं वायो चालयस्व निजेच्छया ॥ १४ ॥

के स्वामी इन्द्रने देवताओंको आज्ञा दी कि तुम जाओ वह क्या है ? यथार्थ उसकी परीक्षा करो ॥ १० ॥ देवेन्द्रसे भेजे हुए पवन उस तेजके समीप गये तब वह तेज उनसे बोला कि तुम कौन हो ॥ ११ ॥ उस प्रति तेजके ऐसा पूंछनेपर वह वायु अभिमानके सहित यह बोला कि जगत्का प्राण मैं वायु हूँ ॥ १२ ॥ यह सब स्थावर जंगमरूप जगत् सर्वाधाररूप मुझमेंही ओतप्रोत हो रहा है और मैं ही सब जगत्को चलाता हूं ॥ १३ ॥ तब वह तेज बोला, हे वायो ! यदि तुम चलानेमें समर्थ हो तो इस धरे हुए तृणको अपनी इच्छासे चलाओ ॥ १४ ॥

यह सुन वायुने सब यत्नसे परिश्रम किया और जब वह तृण अपने स्थानसे न चला तब यह लज्जित हुए ॥१५॥ उस समय वायु मौन होके इन्द्रकी सभामें गये और अपने तिरस्कारके सब समाचारको कहा ॥ १६ ॥ कि, हम सब अपनी आत्मामें वृथाही सर्वेशत्वको मानते हैं परन्तु क्षुद्रवस्तुमें भी कुछ नहीं कर सकते ॥ १७ ॥ तब वायुने समस्त देवताओंको वहां भेजा जब वे सब देवता जाननेमें समर्थ नहीं हुए तब इन्द्र स्वयम् वहां गये ॥ १८ ॥ इन्द्रको आता हुआ देख वह अतिदुःसह तेज तत्क्षण अन्तर्धान होगया तब इन्द्र विस्मित हुए ॥ १९ ॥ जिसका ऐसा चरित्र है उसके ही शरण मैं जाता हूं इस प्रकार इन्द्र वारम्वार विचारने लगे ॥ २० ॥ उसी अन्तरमें वहां निर्व्याज करुणाके

ततः सर्वप्रयत्नेनाकरोद्यत्नं सदागतिः ॥ न चचाल यदा स्थानात्तदासौ लज्जितोऽभवत् ॥ १५ ॥ तूष्णीं भूत्वा ततो वायुर्ज गामेन्द्र सभां प्रति ॥ कथयामास तद् वृत्तं स्वकीयाभिभवान्वितम् ॥ १६ ॥ सर्वेशत्वं वयं सर्वे मृषैवात्मनि मन्महे ॥ न पार यामहे किंचिद्विधातुं क्षुद्रवस्त्वपि ॥ १७ ॥ ततश्च प्रेषयामास मरुत्वान्सकलान्सुरान् ॥ न शेकुस्ते यदा ज्ञातुं तदेन्द्रः स्वय मभ्यगात् ॥ १८ ॥ मघवन्तमथायान्तं दृष्ट्वा तेजोतिदुःसहम् ॥ बभूवान्तर्हितं सद्यो विस्मितोऽभूच्च वासवः ॥ १९ ॥ चरित्र मीदृशं यस्य तमेव शरणं श्रये ॥ इति संचिन्तयामास सहस्राक्षः पुनःपुनः ॥ २० ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र निर्व्याजकरुणातनुः ॥ तेषामनुग्रहं कर्तुं हर्तुं गर्वं शिवांगना ॥ २१ ॥ चैत्रशुक्लनवम्यां तु मध्याह्नस्थे दिवाकरे ॥ प्रादुरासीदुमा देवी सच्चिदानन्दरू पिणी ॥ २२ ॥ महोमध्ये विराजन्ती भासयन्ती दिशो रुचा ॥ बोधयन्ती सुरान्सर्वान्ब्रह्मैवाहमिति स्फुटम् ॥ २३ ॥ चतु र्भिर्दधती हस्तैर्वरपाशांकुशाभयान् ॥ श्रुतिभिस्सेविता रम्या नवयौवनगर्विता ॥ २४ ॥

शरीरवाली पार्वती उनके ऊपर दया करनेको तथा अभिमान दूर करनेको ॥ २१ ॥ चैत्रशुक्ला नवमीको मध्याह्नकालमें सच्चिदानन्दरूपिणी साक्षात् पार्वती देवी प्रगट हुई ॥ २२ ॥ तेजके मध्यमें शोभायमान अपनी कान्तिसे दशोंदिशाओंको प्रकाशित करती मैं ही ब्रह्म हूं इस प्रकार प्रत्यक्ष सब देवताओंको जताती हुई ॥ २३ ॥ चारों हाथोंमें सुन्दर पास अंकुशादिको धारण करती हुई वेदोंसे सेवित मनोहर नवीन यौवनसे गर्वित ॥ २४ ॥

लालवस्त्र धारण करनेवाली रक्त सुगंध लगाये कोटि कामदेवके समान कोटि चन्द्रमाके समान कांतिवाली ॥ २५ ॥ सर्वान्तर्यामिरूपिणी सब प्राणियोंकी साक्षिणी परब्रह्मस्वरूपिणी महामाया यह बोली ॥ २६ ॥ पार्वतीजी बोलीं, मेरे आगे अभिमान (गर्व) करनेको न ब्रह्मा न विष्णु न संहारक शिवही समर्थ हैं फिर और देवताओंकी क्या ? कथा है ॥ २७ ॥ मैं ही परब्रह्म परमज्योति प्रणवद्वन्द्वरूपिणी हूं मैं ही सब कुछ हूं मुझसे भिन्न और कोई नहीं है ॥२८॥ निराकारा भी साकार तथा सर्वतत्त्वस्वरूपिणी तर्कनाके अयोग्य गुणवाली नित्य कार्य और कारणके रूपवाली हूं ॥२९॥ कभी स्त्रीके आकारवाली होती हूं तथा कभी पुरुषके आकारमें होजाती हूं कभी दोनों आकार युक्त होती हूं इस प्रकार

रक्ताम्बरपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना ॥ कोटिकंदर्प्पसंकाशा चन्द्रकोटिसमप्रभा ॥ २५ ॥ व्याजहार महामाया सर्वान्तर्य्या मिरूपिणी ॥ साक्षिणी सर्वभूतानां परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ २६ ॥ उमोवाच ॥ न ब्रह्मा न सुरारातिर्न पुरारातिरीश्वरः ॥ मदग्रे गर्वितुं किंचित्का कथान्यसुपर्वणाम् ॥ २७ ॥ परं ब्रह्म परं ज्योतिः प्रणवद्वन्द्वरूपिणी ॥ अहमेवास्मि सकलं मदन्यो नास्ति कश्चन ॥ २८ ॥ निराकारापि साकारा सर्वतत्त्वस्वरूपिणी ॥ अप्रतर्क्यगुणा नित्या कार्यकारणरूपिणी ॥ २९ ॥ कदाचिद्द यिताकारा कदाचित्पुरुषाकृतिः ॥ कदाचिदुभयाकारा सर्वाकाराहमीश्वरी ॥३०॥ विरञ्चिः सृष्टिकर्ताहं जगत्पाताहमच्युतः॥ रुद्रः संहारकर्ताहं सर्वविश्वविमोहिनी ॥ ३१ ॥ कालिकाकमलावाणीमुखास्सर्वा हि शक्तयः ॥ मदंशादेव संजातास्तथेमास्स कलाः कलाः ॥ ३२ ॥ मत्प्रभावाज्जितास्सर्वे युष्माभिर्दितिनन्दनाः ॥ तामविज्ञाय मां यूयं वृथा सर्वेशमानिनः ॥ ३३ ॥ यथा दारुमयीं योषां नर्तयत्यैन्द्रजालिकः ॥ तथैव सर्वभूतानि नर्तयाम्यहमीश्वरी ॥ ३४ ॥

सब आकारवाली महेश्वरी हूं ॥ ३० ॥ सृष्टिके कर्त्ता ब्रह्मा मैं हूं, जगत्के रक्षक विष्णु मैं हूं, संहारकर्त्ता शिव भी मैं हूं सब जगत्की मोहने वाली मैंही हूं ॥ ३१ ॥ कालिका कमला वाणी आदि सम्पूर्ण शक्ति तथा यह सब कलायें मेरेही अंशसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ३२ ॥ और मेरेही प्रभावसे तुमने सब दैत्योंको जीता ऐसी मुझे न जानके तुम सब वृथा अभिमान करते हो ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार ऐन्द्रजालिक काठकी स्त्री (पुतली) को नाचता है उसी प्रकार मैं परमेश्वरी सम्पूर्ण प्राणियोंको नचाती हूं ॥ ३४ ॥

मेरे भयसे पवन चलता है, अग्नि जलता है, तथा लोकपाल निरन्तर अपने अपने कर्मोंको करते हैं ॥ ३५ ॥ मैं स्वतंत्र हो अपनी लीलासे देवताओंको जिता देती हूं कभी दैत्योंको जिता देती हूँ ॥ ३६ ॥ वेद शास्त्र मेरेही उस रूपको अविनाशी परंधाम मायातीत परसेपर वर्णन करते हैं ॥ ३७ ॥ मेरा सगुण और निर्गुण भेदसे दो प्रकारका रूप कहा है एक मायासे युक्त दूसरा मायासे रहित कहा है ॥ ३८ ॥ हे देवताओ ! ऐसी मुझे जानके अपने अपने गर्वको त्यागके नम्र हो मुझे सनातनी प्रकृतिको भजो ॥ ३९ ॥ ऐसा दयासे युक्त देवीका वचन सुन देवतागण भक्तिसे कन्धोंको नम्रकर परमेशानी देवीकी स्तुति करने लगे ॥ ४० ॥ हे जगदीशानि ! क्षमा करो हे परमेश्वरि ! हे माता !

मद्भयाद्वाति पवनः सर्वं दहति हव्यभुक्॥लोकपालाः प्रकुर्वंति स्वस्वकर्माण्यनारतम्॥३५॥कदाचिद्देववर्गाणां कदाचिद्दितिजन्मनाम् ॥ करोमि विजयं सम्यक्स्वतन्त्रा निजलीलया ॥३६॥ अविनाशि परं धाम मायातीतं परात्परम्॥श्रुतयो वर्णयन्ते यत्त द्रूपन्तु ममैव हि ॥३७॥ सगुणं निर्गुणं चेति मद्रूप द्विविधं मतम्॥मायाशबलितं चैकं द्वितीयन्तदनाश्रितम् ॥३८॥ एवं विज्ञाय मां देवास्त्वं स्वं गर्वं विहाय च॥भजत प्रणयोपेताः प्रकृतिं मां सनातनीम्॥३९॥इति देव्या वचः श्रुत्वा करुणागर्भितं सुराः ॥ तुष्टुवुः परमेशानीं भक्तिसंनतकन्धराः ॥४०॥ क्षमस्व जगदीशानि प्रसीद परमेश्वरि ॥मैवं भूयात्कदाचिन्नो गर्वो मातर्दयां कुरु ॥४१॥ततःप्रभृति ते देवा हित्वा गर्वसमाहिताः॥उमामाराधयामासुर्यथापूर्वं यथा विधि॥४२॥ इतिवः कथितो विप्रा उमाप्रादुर्भवो मया ॥यस्य श्रवणमात्रेण परमं पदमश्नुते॥४३॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायामुमाप्रादुर्भाववर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥ मुनय ऊचुः ॥ श्रोतुकामा वयं सर्वे दुर्गाचरितमन्वहम्॥ अपरं च महाप्राज्ञ तत्त्वं वर्णय नोऽद्भुतम् ॥१॥

प्रसन्न हो हमपर दया करो हमारा ऐसा गर्व कभी न होगा ॥ ४१ ॥ उस दिनसे लेके वे देवता सावधान हो गर्वको त्याग विधिपूर्वक पहलेके समान पार्वतीकी आराधना करने लगे ॥ ४२ ॥ हे ब्राह्मणो मैंने तुमसे यह पार्वतीकी उत्पत्ति कही जिसके सुनने मात्रसे परमपद प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषा टीकायां प० उ० सं० उमाप्रादुर्भाववर्णनं नामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ मुनि बोले, हे महाबुद्धिमान् ! हम सब क्रमशः दुर्गाके चरित्रको सुनना चाहते हैं, अब हमसे अद्भुत दूसरे तत्त्वको वर्णन करो ॥ १ ॥

हे समस्त अर्थोंके वेत्ता ! हे सूतजी ! तुम्हारे कमलमुखसे अमृतके समान अनेक कथाओंको सुननेसे हमारा मन तृप्त नहीं होता है ॥ २ ॥ सूतजी बोले, महाबली रुरुके दुर्गमनामक पुत्रने ब्रह्माजीके वरदानसे चारों वेदोंको पाया ॥ ३ ॥ तथा वह पृथ्वीपर देवताओंसे अजेय बलको पाय अनेक उपद्रवोंको करने लगा इससे स्वर्गमें देवता भी काँपने लगे ॥ ४ ॥ वेदोंके नष्ट होजानेपर सम्पूर्ण क्रिया नष्ट होने लगीं और देवताओं समेत ब्राह्मण दुराचारी होगये ॥ ५ ॥ उस समय न दान होता था न उग्रतप होता न याग होता तथा न हवन होता था और पृथिवीपर सौ

शृण्वतान्त्वन्मुखाम्भोजात्कथा नाना सुधोपमाः ॥ न तृप्यति मनोऽस्माकं सूत सर्वार्थवित्तम ॥ २ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ दुर्गमः प्रथितो नाम्ना रुरुपुत्रो महाबलः ॥ ब्रह्मणो वरदानेन चतस्रोऽलभत श्रुतीः ॥ ३ ॥ देवाजेयबलं चापि संप्राप्य जग तीतले ॥ करोतिस्म बहूत्पातान्दिवि देवाश्चकम्पिरे ॥४॥ सर्वा नष्टेषु वेदेषु क्रिया नष्टा बभूव ह ॥ ब्राह्मणाश्च दुराचारा बभूवुस्स सुरास्तदा ॥ ५ ॥ न दानं न तपोऽत्युग्रं न यागो हवनं न हि ॥ अनावृष्टिस्ततो जाता पृथिव्यां शतवार्षिकी ॥६॥ हाहाकारो महानासीत्त्रिषु लोकेषु दुःखिताः ॥ अभवंश्च जनास्सर्वे क्षुत्तृड्भ्यां पीडिता भृशम् ॥ ७ ॥ सरितः सागराश्चैव वापीकूपस रांसि च ॥ निर्जला अभवन्सर्वे संशुष्का वृक्षवीरुधः ॥ ८ ॥ ततो दृष्ट्वा मदादुःखं प्रजानां दीनचेतसाम् ॥ त्रिदशाश्शरणं याता योगमायां महेश्वरीम् ॥ ९ ॥ देवा ऊचुः ॥ रक्षरक्ष महामाये स्वकीयास्सकलाः प्रजाः ॥ कोपं संहर नूनन्त्वं लोका नंक्ष्यंति चान्यथा ॥ १० ॥ कथा शुंभोहतो दैत्यो निशुंभश्च महाबलः ॥ धूम्राक्षश्चण्डमुण्डौ च रक्तबीजो महाबलः ॥ ११ ॥

वर्षकी अनावृष्टि हुई ॥ ६ ॥ तीनोंलोकोंमें बडा हाहाकार मच गया; सब लोग दुःखित और भूँख प्याससे अत्यन्त पीडित होने लगे ॥ ७ ॥ नदी समुद्र तथा बावडी कूप सरोवर भी जलसे शून्य होगये और वृक्ष और लतायें सूख गईं ॥ ८ ॥ ऐसे दीन प्रजाके महादुःखको देखकर सब देवता योगमाया महेश्वरीकी शरणमें गये ॥९॥ देवता बोले, हे महामाये ! अपनी संपूर्ण प्रजाकी रक्षा करो और तुम निश्चय ही क्रोधको दूर करो नहीं तो लोक नष्ट होजायँगे ॥ १० ॥ जिस प्रकार शुंभदैत्य और महाबली निशुंभासुरको मारा तथा जैसे धूम्राक्ष, चण्ड, मुण्ड;

महाबली रक्तबीज ॥११॥ तथा मधुकैटभदैत्य महिषासुर आदि दैत्योंको मारा है वैसे हे कृपासिन्धो ! हे दीनबन्धो ! इस दैत्यको शीघ्र मारो ॥१२॥ बालकोंका अपराध पदपदमें होता है तो संसारमें केवल माताके विना कौन पुरुष सह सकता है ? ॥ १३ ॥ जिस जिस समय देवताओंको तथा ब्राह्मणोंको दुःख होता है उस उस समय तुम अवतार लेके मनुष्योंको सुखी करती हो॥१४॥ऐसा उन देवताओंका दीन वचन सुनके करुणामयी पार्वतीजीने अपना अनन्त अक्षमय रूप दिखाया ॥१५॥ चारों हाथोंमें धनुषबाण तथा पद्म और अनेकप्रकारके फल मूल धारण करती हुई प्रसन्न

स मधुः कैटभो दैत्यो महिषासुर एव च ॥ तथैवामुं कृपासिन्धो दीनबन्धो जहि द्रुतम् ॥ १२ ॥ अपराधो भवत्येव बालकानां पदे पदे ॥ सहते को जनो लोके केवलं मातरं विना ॥ १३ ॥ यदायदाभवद्दुःखं देवानां ब्रह्मणान्तथा ॥ तदातदावतीर्याशु कुरुषे सुखिनो जनान् ॥ १४ ॥ इति विक्लवितन्तेषां समाकर्ण्य कृपामयी ॥ अनन्ताक्षमयं रूपन्दर्शयामास साम्प्रतम् ॥ १५ ॥ धनुर्बाणौ तथा पद्म नानामूलफलानि च ॥ चतुर्भिर्दधती हस्तैः प्रसन्नमुखपङ्कजा ॥१६॥ ततो दृष्ट्वा प्रजास्तप्ताः करुणापूरितेक्षणा ॥ रुरोद नव घस्राणि नव रात्रीस्समाकुला ॥ १७ ॥ मोचयामास दृष्टिभ्यो वारिधाराः सहस्रशः ॥ ताभिः प्रतर्प्पिता लोका औषध्यः सकला अपि ॥ १८ ॥ अगाधतोयास्सरितो बभूवुः सागरा अपि ॥ रुरुहुर्धरणीपृष्ठे शाकमूल फलानि च ॥ १९ ॥ विततार करस्थानि सुमनोभ्यः फलानि च ॥ गोभ्यस्तृणानि रम्याणि तथान्येभ्यो यथार्हतः ॥ २० ॥ सन्तुष्टा अभवन्सर्वे सदेव द्विजमानुषाः ॥ ततो जगाद सा देवी किमन्यत्करवाणि वः ॥ २१ ॥

मुखकमलवाली ॥१६॥ दुःखित प्रजाको देखके दयासे पूरित नेत्रवाली वह पार्वती व्याकुल हो नौदिन तथा नौ रात रोई ॥ १७ ॥ और उसने नेत्रोंसे सहस्रों जलकी धारा छोडी उनसे लोकोंको तृप्त किया उससे सम्पूर्ण औषधियां ॥ १८ ॥ तथा अगाध जलवाली नदी समुद्र बहने लगे और भूमिपर शाक फल मूल उपजे ॥ १९ ॥ पुण्यात्माओंके अर्थ सुन्दर फल तथा पशुओंके निमित्त औरोंके अर्थ भी मनोहर तृण विस्तृत हुए ॥ २० ॥ तब समस्त देवता ब्राह्मणों समेत सन्तुष्ट हुए. उस समय देवीने कहा अब तुम्हारा और क्या कार्य करूँ ? ॥ २१ ॥

उस समय सब देवता एकत्रित होके बोले कि, हे देवि ! तुमने सम्पूर्ण मनुष्योंको सन्तुष्ट किया अब कृपाकर दुर्गमसे हरण किये हुए वेदोंको दिवाओ ॥ २२ ॥ ऐसा ही होगा यह कहके अपने स्थानको जाओ इस प्रकार बोली मैं तुम्हारे वेदोंको अति शीघ्रही दिलाऊँगी ॥ २३ ॥ तब प्रसन्न हुए देवता जगत्की उत्पन्न करनेवाली खिले हुए कमलके समान नेत्रवाली देवीको प्रणाम करके अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २४ ॥ उस समय स्वर्ग आकाश तथा भूमिपर बडा कोलाहल मच गया. उस शब्दको सुन उस दैत्यने चारों ओरसे नगरीको घेर लिया ॥ २५ ॥ तब शिवा देवी देवताओंकी रक्षा करनेके अर्थ तेजोमय चक्रको धारणकर स्वयम् नगरसे बाहर गई ॥ २६ ॥ उसी समय देवी

समेत्योचुस्तदा देवा भवत्या तोषिता जनाः ॥ वेदान्देहि कृपां कृत्वा दुर्गमेण समाहृतान् ॥ २२ ॥ तथास्त्विति प्रमाण्याह यातयात निजालयम् ॥ वितरिष्यामि वो वेदानचिरेणैव कालतः ॥२३॥ ततः प्रमुदिता देवास्स्वं स्वं धाम समाययुः ॥ सुप्रणम्य जगद्योनिं फुल्लेन्दीवरलोचनाम् ॥ २४ ॥ ततः कोलाहलो जातो दिवि भूम्यन्तरिक्षके ॥ तच्छ्रुत्वा रौरवः सद्यो न्यरुणत्सर्वतः पुरीम् ॥ २५ ॥ ततस्तेजोमयं चक्रं विधाय परितः शिवा ॥ रक्षणार्थं देवतानां स्वयं तस्माद्बहिर्गता ॥ २६ ॥ ततः समभवद्युद्धं देव्या दैत्यस्य चोभयोः ॥ ववृषुः समरे बाणान्निशितान्कंकटच्छिदः ॥ २७ ॥ एतस्मिन्नंतरे तस्याः शरीराद्रम्यमूर्त्तयः ॥ काली तारा च्छिन्नमस्ता श्रीविद्या भुवनेश्वरी ॥ २८ ॥ भैरवी बगला धूम्रा श्रीमत्त्रिपुरसुंदरी ॥ मातंगी च महाविद्या निर्गता दश सायुधाः ॥ २९ ॥ असंख्यातास्ततो जाता मातरो दिव्यमूर्त्तयः ॥ चन्द्रलेखाधरास्सर्वास्सर्वा विद्युत्समप्रभाः ॥ ३० ॥ ततो मातृगणैर्युद्धं प्रावर्तत भयंकरम् ॥ रौरवीयं हतन्ताभिर्दलमक्षौहिणीशतम् ॥ ३१ ॥

और दैत्य दोनोंमें युद्ध होने लगा. युद्धमें शरीरके छेदन करनेवाले तीव्र बणोंको वर्षाया ॥ २७ ॥ इसी अवसरमें उस देवीके शरीरसे सुन्दर मूर्तियां प्रगट हुई—काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी ॥ २८ ॥ भैरवी, बगला, धूम्रा, श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी, मातंगी, यह दशों महाविद्या देवी शस्त्र सहित निकलीं ॥ २९ ॥ उसके पीछे वे असंख्यात दिव्य मूर्तिवाली मातायें होगई यह सब चन्द्रमाकी लेखाको धारण कनेवाली बिजलीके समान कान्तिवाली थीं ॥ ३० ॥ सब मातृगणोंसे अति भयंकर युद्ध होने लगा. उन देवियोंने दैत्योंके सौ

अक्षौहिणी दलको नष्ट किया ॥ ३१ ॥ तब उसने दुर्गम दैत्यको त्रिशूल धारासे मारा वह दैत्य जड़ खुदे हुए वृक्षके समान भूमिपर गिर पडा ॥ ३२ ॥ इस प्रकार दुर्गमासुर नामक दैत्यको मारके उससे चारों वेद ले देवी उन देवताओंको प्रदान किये ॥ ३३ ॥ देवता बोले, हे अम्बिके ! हमारे लिये तुमने अनन्ताक्षिमयरूप धारण किया इस कारण मुनिगण तुमको शताक्षी कहेंगे ॥ ३४ ॥ अपनी देहसे उत्पन्न हुए शाकसे सब लोकोंका पालन किया इससे तुम्हारा शाकंभरी नाम प्रसिद्ध होगा ॥ ३५ ॥ हे शिवे ! जिस कारण कि, तुमने दुर्गम नाम वाले दैत्यको मारा अतः मनुष्य तुमको दुर्गा भगवती कहेंगे ॥ ३६ ॥ हे योगनिद्रे ! हे महाबले ! हे ज्ञानकी देनेवाली ! तुम्हारे लिये

जघान सा तदा दैत्यं दुर्गमं शूलधारया ॥ पपात धरणीपृष्ठे खातमूलद्रुमो यथा ॥ ३२ ॥ इत्थं हत्वा तदा दैत्यं दुर्गमासुरनामकम् ॥ आदाय चतुरो वेदान्ददौदेवेभ्य ईश्वरी ॥३३॥ देवा ऊचुः ॥ अस्मदर्थं त्वयारूपमनन्ताक्षिमयं धृतम् ॥ मुनयः कीर्तयिष्यन्ति शताक्षीन्त्वामतोऽम्बिके ॥ ३४ ॥ आत्मदेहसमुद्भूतैः शाकैर्लोका मृता यतः ॥ शाकंभरीति विख्यातन्तत्ते नाम भविष्यति ॥ ३५ ॥ दुर्गमाख्यो महादैत्यो हतो यस्मात्ततः शिवे ॥ दुर्गां भगवतीं भद्रां व्याहरिष्यंति मानवाः ॥ ३६ ॥ योगनिद्रे नमस्तुभ्यं नमस्तेऽस्तु महाबले ॥ नमो ज्ञानप्रदे तुभ्यं विश्वमात्रे नमो नमः ॥ ३७ ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यैर्या बोध्यते परमेश्वरी ॥ अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिकायै नमो नमः ॥ ३८ ॥ वाङ्मनःकायदुष्प्रापां सूर्यचन्द्राग्निलोचनाम् ॥ स्तोतुं न शक्नुमो मातस्त्वत्प्रभावाबुधा वयम् ॥ ३९ ॥ मादृशानमरान्दृष्ट्वा कः कुर्यादीदृशीन्दयाम् ॥ वर्जयित्वा सुरेशानीं शताक्षीं मातरं विना ॥ ४० ॥ त्रिलोकी नाभिभूयेत बाधाभिश्च निरन्तरम् ॥ एवं कार्यस्त्वया यत्नोऽस्माकं वैरिविनाशनम् ॥ ४१ ॥

नमस्कार है नमस्कार है लोकोंकी मातारूप तुमको नमस्कार है ॥ ३७ ॥ जो आदि वाक्योंसे बोधन की जाती है वह परमेश्वरी तुम हो, अनंतकोटि ब्रह्माण्डनायिका तुमको नमस्कार हैं ॥ ३८ ॥ हे माता ! तेरे प्रभावको न जाननेवाले हम वाणी मन देहसे दुष्प्राप्य सूर्य चन्द्रमा अग्निके समान नेत्रवाली तुमको स्तुति करनेको नहीं समर्थ हो सकते ॥ ३९ ॥ हम सरीखे देवताओंको देखके सुरेशानी शताक्षी माताको छोड और कौन ऐसी दयाको कर सकता है ? ॥४०॥ तीनों लोक कभी वैरियोंकी बाधासे तिरस्कारको न पावें इस प्रकार

हमारे शत्रुओंके नाश करनेमें तुमको यत्न करना चाहिये ॥ ४१ ॥ देवी बोली, जिस प्रकार बछडोंको देख गायें व्यग्र होके दौडती हैं उसी प्रकार तुमको देखके मैं व्याकुल हो दौडती हूं ॥ ४२ ॥ तुमको बालकोंके समान देखनेवाली तथा अपने प्राणोंको देनेवाली मुझे तुमको बिना देखे एक क्षण युगके समान बीतता है ॥ ४३ ॥ भक्तिके करनेवाले तुमको तुम्हारे दुःखोंको दूर करनेवाली मुझ देवीके स्थित होनेपर कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये ॥ ४४ ॥ जिस प्रकार पहले दैत्योंको मारा है उसी प्रकार अब दैत्योंको मारूंगी इसमें कुछ सन्देह नहीं करना चाहिये मैं सत्य सत्य कहती हूं ॥ ४५ ॥ जिस समय शुम्भ और निशुम्भ दैत्य होंगे उस समय मैं नन्दकी भार्या यशो

देव्युवाच ॥ ॥ वत्सान्दृष्ट्वा यथा गावो व्यग्रा धावन्ति सत्वरम्॥ तथैव भवतो दृष्ट्वा धावामि व्याकुला सती ॥४२॥ मम युष्मा नपश्यन्त्या पश्यन्त्या बालकानिव॥ अपि प्राणान्प्रयच्छन्त्याः क्षण एको युगायते ॥४३॥ कापि चिन्ता न कर्त्तव्या युष्मामिर्म क्तिशालिभिः॥ भवत्यां मयि तिष्ठन्त्यां संहरन्त्यां निजापदः ॥४४॥ यथा पूर्वं हता दैत्या हनिष्यामि तथाऽसुरान्॥ संशयो नात्र कर्त्तव्यस्सत्यंसत्यं ब्रवीम्यहम् ॥४५॥ यदा शुंभो निशुंभश्चापरौ दैत्यौ भविष्यतः ॥ तदाहं नन्दभार्यायां यशोदायां यशोमयी ॥ ४६ ॥ योनिजं रूपमास्थाय जनिष्ये गोपगोकुले ॥ हनिष्याम्यसुरौ तन्मां व्याहरिष्यन्ति नन्दजाम् ॥ ४७ ॥ भ्रामरं रूपमा स्थाय वधिष्याम्यरुणं यतः ॥ भ्रामरीति च मां लोके कीर्तयिष्यन्ति मानवाः ॥ ४८ ॥ कृत्वाभीमं पुना रूपं रक्षांस्यत्स्याम्यहं यदा ॥ भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ॥४९॥ यदायदाऽसुरोत्थैवं बाधा भुवि भविष्यति ॥ तदातदावतीर्याहं शं करिष्याम्यसंशयम् ॥ ५० ॥ या शताक्षी स्मृता देवी सैव शाकंभरी मता ॥ सैव प्रकीर्तिता दुर्गा व्यक्तिरेकैव त्रिष्वपि ॥ ५१ ॥

दाके रूपमें ॥४६॥ योनिजरूपको धार गोकुलमें गोपोंके यहां उत्पन्न होऊंगी और उन दोनों दैत्योंको मारूँगी इस कारण सब मुझे नन्दजा कहेंगे ॥ ४७ ॥ भ्रमर रूपको धार अरुणको मारूँगी इस कारण लोकमें मनुष्य मुझे भ्रामरी कहेंगे ॥ ४८ ॥ फिर मैं भीमरूपको धारण करके राक्षसोंको भक्षण करूंगी इस कारण मेरा नाम भीमादेवी विख्यात होगा ॥ ४९ ॥ जब जब पृथ्वीपर दैत्योंकी बाधा होवेगी तब तब मैं अवतार लेके निस्सन्देह कल्याण करूंगी ॥ ५० ॥ जो देवी शताक्षी है वही शाकंभरी देवी कही है वही दुर्गा तथा तीनों लोकोंमें

न शताक्षीसमा काचिद्दयालुर्भुवि देवता॥दृष्ट्वाऽरुदत्प्रजास्तप्ता या नवाहं महेश्वरी॥५२॥इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां शताक्ष्याद्यवतारवर्णनं नाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥ मुनय ऊचुः ॥ व्यासशिष्य महाभाग सूत पौराणिकोत्तम ॥ अपरं श्रोतुमिच्छामः किमप्याख्यानमीशितुः॥१॥उमाया जगदम्बायाः क्रियायोगमनुत्तमम्॥प्रोक्तं सनत्कुमारेण व्यासाय च महात्मने ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ धन्या यूयं महात्मानो देवीभक्तिदृढव्रताः॥पराशक्तेः परं गुप्तं रहस्यं शृणुतादरात् ॥३॥ व्यास उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र महामते ॥ उमायाश्श्रोतुमिच्छामि क्रियायोगं महाद्भुतम् ॥४॥ कीदृक्च लक्षणं तस्य किं कृते च फलं भवेत् ॥ प्रियं यच्चपराम्बायास्तदशेषं वदस्व मे ॥ ५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ द्वैपायन यदेतत्त्वं रहस्यं परिपृच्छसि ॥ तच्छृणुष्व महाबुद्धे सर्वं मे वर्णयिष्यतः ॥ ६ ॥ ज्ञानयोगः क्रियायोगो भक्तियोगस्तथैव च ॥ त्रयो मार्गास्समाख्याताः श्रीमातुर्भुक्तिमुक्तिदाः ॥ ७ ॥ ज्ञानयोगस्तु संयोगश्चित्तस्यैवात्मना तु यः ॥ यस्तु बाह्यार्थसंयोगः क्रियायोगः स उच्यते ॥ ८ ॥

एक व्यक्ति कही है ॥ ५१ ॥ शताक्षीके समान पृथ्वीपर और कोई देवता नहीं है जिसने दुःखित तथा रोती हुई प्रजाको देखके सम्पूर्ण दुःखोंको शान्त किया ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं० उ० सं० शताक्ष्यावतारवर्णनं नाम पंचाशत्तमोध्यायः ॥ ५० ॥ मुनि बोले, हे व्यासजीके शिष्य ! हे महाभाग ! हे पौराणिकोत्तम ! हे सूतजी हम शिवजीके और इतिहासको सुनना चाहते हैं ॥ १ ॥ सनत्कुमारजीने महात्मा व्यासजीसे जो जगदम्बा पार्वतीजीका श्रेष्ठ क्रिया योग कहा है उसको सुनना चाहते हैं ॥ २ ॥ सूतजी बोले, तुम महात्मा धन्य हो तथा देवीकी भक्तिमें दृढव्रत हो, अब पराशक्तिके परम गुप्त रहस्यको आदरसे सुनो ॥ ३ ॥ व्यासजी बोले, हे सनत्कुमार ! हे सर्वज्ञ ! हे ब्रह्मपुत्र ! हे महामते ! पार्वतीके अति सुन्दर क्रिया योगको सुनना चहता हूँ ॥ ४ ॥ उसका क्या लक्षण है ? तथा उसके करनेपर क्या फल होता है ? जो पराम्बाका अतिप्रिय है वह सब वर्णन करो ॥ ५ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे व्यासजी ! जो तुम रहस्यको पूंछते हो हे महाबुद्धे ! सो सब सुनो मैं वर्णन करता हूं ॥ ६ ॥ ज्ञानयोग क्रिया योग तथा भक्ति योग यह श्रीमाताके तीन मार्ग भुक्ति और मुक्तिके देनेवाले कहे हैं ॥ ७ ॥ चित्तका आत्मासे संयोग होता है वह ज्ञानयोग कहाता है और जो बाहरके

अर्थोंका संयोग है वह क्रियायोग कहलाता है ॥ ८ ॥ देवी तथा आत्माका जो एक हो जाना है वह भक्तियोग कहा गया है, वह तीनों योगोंको क्रिया योग कहलाता है ॥९॥ कर्मसे भक्ति उत्पन्न होती है और भक्तिसे ज्ञान होता है, ज्ञानसे मुक्ति होती है ऐसा शास्त्रोंमें निश्चय है ॥१०॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! योगही मुक्तिका प्रधान कारण है और क्रिया योग योगका परमध्येय साधन है॥११॥प्रकृतिको माया जाने, सनातन ब्रह्मको मायावी जाने, उन दोनोंके अभिन्न शरीरको जानके संसारबंधनसे मुक्त हो जाता है ॥ १२ ॥ हे व्यासजी ! जो मनुष्य पाषाण तथा काष्ठका अथवा मृत्तिकासे देवीके मंदिरको बनवाता है उसके पुण्यको फलको सुनो प्रतिदिन योगके यजन करनेसे जो महाफल प्राप्त होता

भक्तियोगो मतो देव्या आत्मनश्चैक्यभावनम् ॥ त्रयाणामपि योगानां क्रियायोगस्स उच्यते ॥ ९ ॥ कर्मणा जायते भक्तिर्भक्त्या ज्ञानं प्रजायते ॥ ज्ञानात्प्रजायते मुक्तिरिति शास्त्रेषु निश्चयः ॥ १० ॥ प्रधा नं कारणं योगो विमुक्तेर्मुनिसत्तम ॥ क्रिया योगस्तु योगस्य परमन्ध्येयसाधनम् ॥ ११ ॥ मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायावि ब्रह्म शाश्वतम् ॥ अभिन्नं तद्वपुर्ज्ञात्वा मुच्यते भवबन्धनात् ॥ १२ ॥ यस्तु देव्यालयं कुर्यात्पाषाणन्दारवन्तथा ॥ मृन्मयं वाथ कालेय तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ अहन्यहनि योगेन जयतो यन्महाफलम् ॥ ॥ १३ ॥ प्राप्नोति तत्फलन्देव्या यः कारयति मन्दिरम् ॥ सहस्रकुलमागामि व्यतीतं च सहस्रकम् ॥ सतारयति धर्मात्मा श्रीमातुर्धाम कारयन् ॥ १४ ॥ कोटिजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥ श्रीमातुर्मन्दिरारम्भक्षणादेव प्रणश्यति ॥ १५ ॥ नदीषु च यथा गंगा शोणः सर्वनदेषु च ॥ क्षमायां च यथा पृथ्वी गांभीर्ये च यथोदधिः ॥ १६ ॥ ग्रहाणां च समस्तानां यथा सूर्यो विशिष्यते ॥ तथा सर्वेषु देवेषु श्रीपराम्बा विशिष्यते ॥ १७ ॥

है ॥ १३ ॥ उस फलको वह प्राप्त करता है जो देवीके मंदिरको बनवाता है, श्रीमाताके धामको बनानेवाला धर्मात्मा अपने आगामी सहस्र कुलको तथा बीते हुए सहस्र कुलको तारता है ॥ १४ ॥ थोडे अथवा बहुत कोटि जन्मके किये हुए पाप श्रीमाताके मंदिर बनवानेके प्रारम्भ करनेसेही नष्ट हो जाते हैं ॥ १५ ॥ जैसे नदियोंमें गंगाजी और जैसे सब नदोंमें शोण तथा क्षमामें पृथ्वी और गंभीरतामें जैसे समुद्र है ॥ १६ ॥ जिस प्रकार संपूर्ण ग्रहोंमें सूर्य विशेष कहा है उसी प्रकार समस्त देवताओंमें पराम्बा अधिक कही है ॥ १७ ॥

जो सब देवताओंमें मुख्य है ऐसी देवीके मंदिरको जो बनवाता है वह जन्म जन्ममें प्रतिष्ठाको पाता है ॥ १८ ॥ वाराणसीमें कुरुक्षेत्रमें प्रयाग और पुष्करमें तथा गंगा समुद्रके तीरपर नैमिषारण्यमें अमरकण्टकमें ॥ १९ ॥ महापवित्र श्रीपर्वतमें गोकर्णमें तथा ज्ञानपर्वतमें मथुरामें अयोध्यामें द्वारवतीमें ॥ २० ॥ इत्यादि पवित्र स्थानोंमें अथवा जिस किसी स्थलमें भी हो माताका मंदिर बनानेवाला मनुष्य बंधनसे मुक्त हो जाता है ॥ २१ ॥ जितने वर्ष ईंटोंकी चुनाई रहती है उतने सहस्र वर्ष वह मणिद्वीपमें निवास करता है ॥२२॥ जो पुरुष सब लक्षणोंसे युक्त देवीजीकी प्रतिमाको बनवाता है वह निर्भय हो पार्वतीके परमलोकको प्राप्त होता है ॥२३॥ शुभ ऋतु और ग्रह तथा नक्षत्रमें देवीकी मूर्तिको प्रतिष्ठित

सर्वदेवेषु सा मुख्या यस्तस्याः कारयेद्गृहम् ॥ प्रतिष्ठां समवाप्नोति स च जन्म निजन्मनि ॥ १८ ॥ वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे प्रयागे पुष्करे तथा ॥ गंगासमुद्रतीरे च नैमिषेऽमरकण्टके ॥ १९ ॥ श्रीपर्वते महापुण्ये गोकर्णे ज्ञानपर्वते ॥ मथुरायामयोध्यायां द्वारावत्यां तथैव च ॥२०॥ इत्यादि पुण्यदेशेषु यत्र कुत्र स्थलेऽपि वा ॥ कारयन्मातुरावासं मुक्तो भवति बन्धनात् ॥२१॥ इष्टकानां तु विन्यासो यावद्वर्षाणि तिष्ठति ॥ तावद्वर्षसहस्राणि मणिद्वीपे महीयते ॥ २२ ॥ प्रतिमाः कारयेद्यस्तु सर्वलक्षणलक्षिताः ॥ स उमायाः परं लोकं निर्भयो व्रजति ध्रुवम् ॥ २३ ॥ देवीमूर्तिं प्रतिष्ठाप्य शुभर्तुग्रहतारके ॥ कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो योगमायाप्रसादतः ॥ २४ ॥ ये भविष्यन्ति येऽतीता आकल्पात्पुरुषाः कुले ॥ तांस्तांस्तारयते देव्या मूर्तिं संस्थाप्य शोभनाम् ॥ २५ ॥ त्रिलोकीस्थापनात्पुण्यं यद्भवेन्मुनिपुंगव ॥ तत्कोटिगुणितं पुण्यं श्रीदेवीस्थापनाद्भवेत् ॥ २६ ॥ मध्ये देवीं स्थापयित्वा पञ्चायतनदेवताः ॥ चतुर्दिक्षुस्थापयेद्यस्तस्य पुण्यं न गण्यते ॥ २७ ॥

करके मनुष्य योगमायाके प्रसादसे कृतकृत्य होता है ॥ २४ ॥ उस कुलमें जो होंगे तथा जो मनुष्य कल्पसे लेके हो चुके हैं देवीके शोभन मूर्त्तिको स्थापन करके मनुष्य उन सबोंको तार देता है ॥२५॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! त्रिलोकीके स्थापन करनेसे जो पुण्य होता है उससे करोडगुणा पुण्य श्रीदेवीके स्थापन करनेसे होता है ॥ २६ ॥ जो मनुष्य मध्यमें देवीको स्थापन करके चारों दिशाओंमें पञ्चायतन (गणेश गौरी आदि) देवताओंको स्थापन करता है उसका पुण्य नहीं गिना जासकता है ॥ २७ ॥

चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहणमें विष्णुके कोटि नाम जपनेसे जो फल मिलता है उससे सौ कोटि गुण अधिक फल है ॥२८॥ जो फल शिवनामके जपनेसे मिलता है उससे करोड गुना अधिक फल श्री देवीके नाम जपनेसे मिलता है ॥ २९ ॥ देवीके प्रसाद बनानेसे भी पुण्य मिलता है जिसने तीनों देवमयी जगन्माता देवीको स्थापित किया ॥ ३० ॥ श्रीमाताकी कृपासे उसे कुछ दुर्लभ नहीं होता उसके पुत्र पौत्र आदि बढते हैं और सम्पूर्ण पाप नष्ट होते हैं ॥ ३१ ॥ जो मनसे भी उत्पन्न मूर्ति स्थापन करनेकी इच्छा करते हैं वे भी मुनियोंसे दुर्लभ पार्वतीके लोकको जाते हैं ॥ ३२ ॥ जो पुरुष बने हुए मन्दिरको देखके अपने चित्तसे यह विचारता है कि, जब मेरे सम्पत्ति हो जायगी तो मैं भी

विष्णोर्नाम्नां कोटिजपाद्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ यत्फलं लभ्यते तस्माच्छतकोटिगुणोत्तरम् ॥ २८ ॥ शिवनाम्नो जपादेव तस्मात्कोटि गुणोत्तरम् ॥ श्रीदेवीनामजापात्तु ततः कोटिगुणोत्तरम् ॥ २९ ॥ देव्याः प्रासादकरणात्पुण्यन्तु समवाप्यते ॥ स्थापिता येन सा देवी जगन्माता त्रयीमयी ॥३०॥ न तस्य दुर्लभं किंचिच्छ्रीमातुः करुणावशात् ॥ वर्द्धते पुत्रपौत्राद्या नश्यत्यखिलकश्मलम् ॥ ३१ ॥ मनसा ये चिकीर्षंति मूर्तिस्थापनमुत्तमम् ॥ तेत्युमायाः परं लोकं प्रयान्ति मुनिदुर्लभम् ॥ ३२ ॥ क्रियमाणन्तु यः प्रेक्ष्य चेतसा ह्यनुचिन्तयेत् ॥ कारयिष्याम्यहं यर्हि संपन्मे संभविष्यति ॥ ३३ ॥ एवन्तस्य कुलं सद्यो याति स्वर्गं न संशयः ॥ महामायाप्रभावेण दुर्लभं किं जगत्त्रये ॥ ३४ ॥ श्रीपराम्बां जगद्योनिं केवलं ये समाश्रिताः ॥ ते मनुष्या न मन्तव्यास्साक्षाद्देवीगणाश्च ते ॥ ३५ ॥ ये व्रजन्तः स्वपन्तश्च तिष्ठन्तो वाप्यहर्निशम् ॥ उमेति द्व्यक्षरं नाम ब्रुवते ते शिवागणाः ॥३६॥ नित्ये नैमित्तिके देवीं ये यजन्ति परां शिवाम् ॥ पुष्पैर्धूपैस्तथा दीपैस्ते प्रयास्यन्त्युमालयम् ॥ ३७ ॥

देवीके मन्दिरको बनवाऊंगा ॥ ३३ ॥ इस प्रकार शीघ्रही उसका कुल स्वर्गलोकको जाता है इसमें संशय नहीं और महामायाके प्रभावसे उसे तीनोंलोकोंमें क्या ? दुर्लभ है ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य जगत्की उत्पन्न करनेवाली श्रीपराम्बाका केवल आश्रय करते हैं उनको मनुष्य नहीं मानना चाहिये किन्तु वे साक्षात् देवीके गण हैं ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य जागते हुए सोते हुए वा रात दिन स्थित होते हुए भी उमा यह दो अक्षरके नामको उच्चारण करते हैं वे शिवाके गण होते हैं ॥ ३६ ॥ जो नित्यके तथा नैमित्तक कर्ममें पूष्पोंसे तथा धूपसे और

दीपकसे परा शिवा देवीको पूजते हैं वे पार्वतीके स्थानको जाते हैं ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य नित्य देवीके मण्डपको गोबरसे अथवा मृत्तिकासे लीपते तथा मार्जन करते हैं वे उमाके लोकको प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥ जिन्होंने देवी माताका रमणीक सुन्दर मन्दिर बनवाया है ऐसे कुलीन मनुष्योंको माता अनेक आशिर्वाद देती है ॥ ३९ ॥ मुझसे प्रेम करनेवाले मनुष्य सौ वर्ष बिना आपत्तिके जीवें इस प्रकार श्रीमाता रातदिन आशीश देती हैं ॥ ४० ॥ जिसने महादेवी पार्वतीकी शुभमूर्त्ति बनवाई दश सहस्र वर्षपर्यन्त उसके कुलके मनुष्य मणिद्वीपमें निवास करते हैं ॥ ४१ ॥ महामायाकी मूर्त्तिको स्थापन करके भली भाँति पूजके साधक जिस जिस मनोरथको करता है उस उसको निश्चय

ये देवीमण्डपं नित्यं गोमयेन मृदाथ वा ॥ उपलिंपन्ति मार्जन्ति तै प्रयास्यन्त्युमालयम् ॥३८॥ यैर्देव्या मन्दिरं रम्यं निर्मापितमनुत्तमम् ॥ तत्कुलीनाञ्जनान्माता ह्याशिषः संप्रयच्छति ॥३९॥ मदीयाः शतवर्षाणि जीवन्तु प्रेमभाग्जनाः ॥ नापदामयना नीत्थं श्रीमाता वक्त्यहर्निशम् ॥ ४० ॥ येन मूर्तिर्म्महादेव्या उमायाः कारिता शुभा ॥ नरायुतन्तत्कुलजं मणिद्वीपे महीयते ॥ ४१ ॥ स्थापयित्वा महामायामूर्तिं सम्यक्प्रपूज्य च ॥ यंयं प्रार्थयते कामं तंतं प्राप्नोति साधकः ॥ ४२ ॥ यः स्नापयति श्रीमातुः स्थापितां मूर्तिमुत्तमाम् ॥ घृतेन मधुनाक्तेन तत्फलं गणयेत्तु कः ॥ ४३ ॥ चन्दनागुरुकर्पूरमांसीमुस्तादियुग्जलैः ॥ एकवर्णगवां क्षीरैः स्नापयेत्परमेश्वरीम् ॥ ४४ ॥ धूपेनाष्टादशांगेन दद्यादाहुतिमुत्तमाम् ॥ नीराजनं चरेद्देव्यास्साज्यकर्पूरवर्तिभिः ॥ ४५ ॥ कृष्णाष्टम्यां नवम्यां वामायां वा पंचदिक्तिथौ ॥ पूजयेज्जगतां धात्रीगंधपुष्पैर्विशेषतः ॥ ४६ ॥

पाता है ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य श्री माताकी उत्तम मूर्त्तिको स्थापन कर उसे घीसे अथवा शहद आदिसे स्नान कराता है उसके फलको कौन गिन सकता है ? ॥ ४३ ॥ चन्दन, अगर,कपूर, जटामांसी, नागरमोथा आदिसे युक्त जलसे अथवा एक वर्णवाली गायोंके दूधसे परमेश्वरी देवीको स्नान करावे ॥ ४४ ॥ फिर अठारह वस्तु मिश्रित धूपसे उत्तम आहुति देवे और घी तथा कपूरकी बत्तियोंसे देवीकी आर्ती करे ॥ ४५ ॥ कृष्णपक्षकी अष्टमीको तथा नवमीको वा अमावस्याको वा पंचदिक् (लोक) पालोंकी तिथिमें गंध पुष्पोंसे जगत्की

धारण करनेवाली देवीको विशेष पूजे ॥ ४६ ॥ देवीसूक्तको अथवा श्रीसूक्तको पढकर अथवा देवीसूक्तको पढके अथवा मूलमंत्रको (नवार्ण) को पढके ॥ ४७ ॥ विष्णुक्रान्ता तथा तुलसीके पुष्पोंको छोडके सम्पूर्ण पुष्प देवीकी प्रीतिके करनेवाले हैं विशेष कर कमलोंको चढावे ॥ ४८ ॥ जो देवीको स्वर्णपुष्प अर्पण करता है अथवा चाँदीके पुष्प समर्पण करता है वह कोटि सिद्धोंके सहित परमधामको जाता है ॥ ४९ ॥ पूजनकी समाप्तिमें दासोंको सदा पाप क्षमापन करना उचित है कि, हे परमेशानि ! हे जगदानन्ददायिनि ! प्रसन्न हो ॥ ५० ॥ मंत्र पढनेवाला इन वाक्योंसे स्तुति कर देवीकी भक्तिमें तत्पर हो मयूरपर आरूढ हुई वरदेनेवाली अभय करनेवाली देवीका ध्यान करें ॥ ५१ ॥ इस प्रकार

संपठञ्जननीसूक्तं श्रीसूक्तमथ वा पठन् ॥ देवीसूक्तमथो वापि मूकमन्त्रमथापि वा ॥ ४७ ॥ विष्णुक्रान्तां च तुलसीं वर्जयित्वाखिलं सुमम् ॥ देवीप्रीतिकरं ज्ञेयं कमलन्तु विशेषतः ॥ ४८ ॥ अर्पयेत्स्वर्णपुष्पं यो देव्यै राजतमेव वा ॥ स याति परमं धाम सिद्धकोटि भिरन्वितम् ॥ ४९ ॥ पूजनान्ते सदा कार्यं दासैरेनःक्षमापनम् ॥ प्रसीद परमेशानि जगदानन्ददायिनि ॥ ५० ॥ इति वाक्यैस्स्तुवन्मन्त्री देवीभक्तिपरायणः ॥ ध्यायेत्कण्ठीरवारूढां वरदाभयपाणिकाम् ॥ ५१ ॥ इत्थं ध्यात्वा महेशानीं भक्तार्मीष्टफलप्रदाम् ॥ नानाफलानि पक्वानि नैवेद्यत्वे प्रकल्पयेत् ॥ ५२ ॥ नैवेद्यं भक्षयेद्यस्तु शंभुशक्तेः परात्मनः ॥ स निर्धूयाखिलं पङ्कं निर्मलो मानवो भवेत् ॥ ५३ ॥ चैत्रशुक्लतृतीयायां यो भवानीव्रतं चरेत् ॥ भवबन्धननिर्मुक्तः प्राप्नुयात्परमं पदम् ॥ ५४ ॥ अस्यामेव तृतीयायां कुर्याद्दोलोत्सवं बुधः ॥ पूजयेज्जगतां धात्रीमुमां शंकरसंयुताम् ॥ ५५ ॥

भक्तोंके इच्छित फलोंको देनेवाली महेशानीको ध्यान करके अनेक प्रकारके पके हुए फलोंको तथा नैवेद्यको अर्पण करे ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य परमात्मा शम्भुशक्तिके नैवेद्यको भक्षण करता है वह सम्पूर्ण पापरूपी कीचडको धोके निर्मलचित्त होजाता है ॥ ५३ ॥ जो पुरुष चैत्रशुक्ला तृतीयाको भवानीके व्रतको करता है वह संसारके बंधनसे छूटके परमपदको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥ और पूर्वोक्त तृतीयाको निपुण दोलोत्सव करे और जगत्की धारण करनेवाली शिवसमेत पार्वतीको पूजे ॥ ५५ ॥

१ ओंइम् 'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' यह मंत्र है ।

पुष्पोंसे, कुंकुमसे, वस्त्रोंसे, तथा कर्पूर, अगर, चन्दनसे, धूप, दीप, नैवेद्यसे, तथा और भी सुन्दर गंधोंसे पूजन करे ॥ ५६ ॥ तत्पश्चात् महा माया महेश्वरी श्रीगौरी शिवजीसे युक्त सब कल्याणोंकी करनेवाली देवीको आन्दोलन करे ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य इस तिथिमें प्रतिवर्ष नियमसे व्रत तथा आन्दोलन करता है पार्वतीजी उसे सब अभीष्ट देती हैं ॥ ५८ ॥ वैशाखके शुक्लपक्षमें जो अक्षय तृतीय होती है उस दिन जो आलस्यरहित हो जगदम्बाके व्रतको करता है ॥ ५९ ॥ मल्लिका, मालती, चम्पा, जपा, बन्धूक, कमलोंसे तथा पुष्पोंसे शिवके समेत पार्वतीको पूजता है ॥ ६० ॥ वह करोडजन्मके किये हुए मन वाणी देहसे उत्पन्न हुए पापोंको दूर करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों अक्षय

कुसुमैः कुंकुमैर्वस्त्रैः कर्पूरागुरुचन्दनैः ॥ धूपैर्दीपैस्सनैवेद्यैः स्रग्गन्धैरपरैरपि ॥ ॥ ५६ ॥ आन्दोलयेत्ततो देवीं महामायां महेश्वरीम् ॥ श्रीगौरीं शिवसंयुक्तां सर्वकल्याणकारिणीम् ॥ ५७ ॥ प्रत्यब्दं कुरुते योस्यां व्रतमान्दोलनं तथा ॥ नियमेन शिवा तस्मै सर्वमिष्टं प्रयच्छति ॥ ५८ ॥ माधवस्य सिते पक्षे तृतीया याऽक्षयाभिधा ॥ तस्यां यो जगदम्बाया व्रतं कुर्या दतन्द्रितः॥५९॥मल्लिकामालतीचंपाजपाबन्धूकपंकजैः ॥ कुसुमैः पूजयेद्गौरीं शंकरेण समन्विताम् ॥ ॥ ६० ॥ कोटिजन्मकृतं पापं मनोवाक्कायसम्भवम् ॥ निर्धूय चतुरो वर्गानक्षयानिह सोऽश्नुते ॥ ६१ ॥ ज्येष्ठे शुक्लतृतीयायां व्रतं कृत्वा महेश्वरीम् ॥ योऽर्चयेत्परमप्रीत्या तस्यासाध्यं न किंचन ॥ ६२ ॥ आषाढशुक्लपक्षीयतृतीयायां रथोत्सवम् ॥ देव्याः प्रियतमं कुर्याद्यथा वित्तानुसारतः ॥ ६३ ॥ रथं पृथ्वीं विजानीयाद्रथांगे चन्द्रभास्करौ ॥ वेदानश्वान्विजानीयात्सारथिं पद्मसंभवम् ॥ ६४ ॥ नानामणिगणाकीर्णं पुष्पमालाविराजितम् ॥ एवं रथं कल्पयित्वा तस्मिन्तंस्थापयेच्छिवाम् ॥ ६५ ॥

वर्गोंको प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य ज्येष्ठ शुक्ला तृतीयाको महेश्वरीके व्रतको करके परमप्रीतिसे देवीको पूजता है उसको कुछ असाध्य नहीं रहता ॥ ६२ ॥ आषाढके शुक्लपक्षकी तृतीयाके दिन देवीके अतिप्रिय रथोत्सवको अपने वित्तके अनुसार करे ॥ ६३ ॥ पृथ्वीको रथ जाने और चन्द्रमा सूर्यको रथांग (पहिये) जाने वेदोंको घोडे तथा ब्रह्माजीको सारथी जाने ॥ ६४ ॥ अनेकमणिगणोंसे व्याप्त पुष्पमालासे विराजित हुए रथको इस प्रकार कल्पना करके इसमें पार्वतीजीको स्थापित करे ॥ ६५ ॥

लोकोंकी रक्षा करनेको तथा लोकोंके देखनेको पराम्बिका देवी रथके मध्यमें स्थित हुई है बुद्धिमान् पुरुष ऐसी भावना करे ॥ ६६ ॥ रथके धीरे धीरे चलनेपर जय ! जय ! ! शब्द उच्चारण करे हे देवि ! हे दीनवत्सले ! हम शरणागत जनोंकी रक्षा करो ॥ ६७ ॥ इस प्रकार वाक्योंसे तथा अनेकबाजोंके शब्दोंसे भगवतीको संतुष्ट करे और रथको सीमाके अन्ततक ले जाके वहां रथको पूजे ॥ ६८ ॥ फिर अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति करके उन देवीको अपने घरलावे और सैकडों प्रणाम करके जगदम्बिकाकी प्रार्थना करे ॥ ६९ ॥ जो विद्वान् इस प्रकार पूजन, व्रत, रथोत्सवको करता है वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगके अन्तमें देवीके पदको पाता है ॥ ७० ॥ और इसी प्रकार श्रावण और भाद्रपदकी

लोकसंरक्षणार्थाय लोकं द्रष्टुं पराम्बिका ॥ रथमध्ये संस्थितेति भावयेन्मतिमान्नरः ॥ ६६ ॥ रथे प्रचलिते मन्दं जयशब्दमुदीरयेत् ॥ पाहि देवि जनानस्मान्प्रपन्नान्दीनवत्सले ॥ ६७ ॥ इति वाक्यैस्तोषयेच्च नानावादित्रनिस्वनैः ॥ सीमान्ते तु रथं नीत्वा तत्र संपूजये द्रथे ॥६८॥ नानास्तोत्रैस्ततः स्तुत्वाप्यानयेत्तां स्ववेश्मनि ॥ प्रणिपातशतं कृत्वा प्रार्थयेज्जगदम्बिकाम् ॥ ६९ ॥ एवं यः कुरुते विद्वान्पूजाव्रतरथोत्सवम् ॥ इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्सोन्ते देवीपदं व्रजेत् ॥ ७० ॥ शुक्लायान्तु तृतीयायामेवं श्रावणभाद्रयोः ॥ योव्रतं कुरुतेऽम्बायाः पूजनं च यथाविधि ॥ ७१ ॥ मोदते पुत्रपौत्राद्यैर्धनाद्यैरिह सन्ततम् ॥ सोऽन्ते गच्छेदुमालोकं सर्वलोकोपरि स्थितम् ॥ ७२ ॥ आश्विने धवले पक्षे नवरात्रव्रतं चरेत् ॥ यत्कृते सकलाः कामास्सिद्धचन्त्येव न संशयः ॥ ७३ ॥ नवरात्रव्रतस्यास्य प्रभावं वक्तुमीश्वरः ॥ चतुरास्यो न पंचास्यो न षडास्यो न कोऽपरः ॥ ७४ ॥ नवरात्रव्रतं कृत्वा भूपालो विरथात्मजः ॥ हृतं राज्यं निजं लेभे सुरथो मुनिसत्तमाः ॥ ७५ ॥

शुक्ला तृतियाको जोमाताका व्रत और विधिपूर्वक पूजन करता है॥७१॥वह पुत्र पौत्र आदिसे तथा धन आदिसे सदा आनन्द करताहै और अन्तमें सब लोकोंके ऊपर स्थित हुए उमालोकको जाता है॥७२॥आश्विनमासके शुक्लपक्षमें नवरात्रिके व्रतको रहना चाहिये जिसके करनेसे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं इसमें कुछ संसय नहीं ॥ ७३ ॥ नवरात्रिव्रतके प्रभाव वर्णन करनेको न ब्रह्मा न पंचानन (शिव) तथा न स्वामिकार्त्तिक न और कोई देवता समर्थ हैं ॥ ७४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! नवरात्रिके व्रतको करके विरथके पुत्र राजा सुरथने अपने हरण किये हुये राज्यको

पाया ॥ ७५ ॥ और इसीके प्रभावसे बुद्धिमान् ध्रुवसन्धिके पुत्र अयोध्याके स्वामीराजा सुदर्शनने भी छीने हुए राज्यको पाया ॥ ७६ ॥ और इस श्रेष्ठ व्रतको करके महेश्वरीकी आराधना कर संसारबन्धनसे मुक्त हो वह समाधि वैश्य मुक्तिका भागी हुआ ॥ ७७ ॥ जो मनुष्य तृतीया तथा पंचमी में तथा सप्तमी वा अष्टमीको नवमी अथवा चतुर्दशीको देवीका पूजन करता है ॥ ७८ ॥ और आश्विनके शुक्लपक्षमें विधानसे व्रत करता है उसकी सब कामना देवी भगवती नित्य पूर्ण करती है ॥ ७९ ॥ जो कार्त्तिकके वा मार्गशीर्षके पौषके वैशाखके कृष्णपक्षकी तृतीयाको व्रत करता है ॥ ८० ॥ और लोहित करवीर आदिके पुष्पोंसे

ध्रुवसंधिसुतो धीमानयोध्याधिपतिर्नृपः ॥ सुदर्शनो हृतं राज्यं प्रापदस्य प्रभावतः ॥ ॥ ७६ ॥ व्रतराजमिमं कृत्वा समाराध्य महेश्वरीम् ॥ संसारबन्धनान्मुक्तः समाधिर्मुक्तिभागभूत् ॥ ७७ ॥ तृतीयायां च पञ्चम्यां सप्तम्यामष्टमीतिथौ ॥ नवम्यां वा चतुर्दश्यां यो देवीं पूजयेन्नरः ॥ ७८ ॥ आश्विनस्य सिते पक्षे व्रतं कृत्वा विधानतः ॥ तस्य सर्वं मनोभीष्टं पूरयत्यनिशं शिवा ॥ ७९ ॥ यः कार्त्तिकस्यमार्गस्य पौषस्य तपसस्तथा ॥ तपस्यस्य सिते पक्षे तृतीयायां व्रतं चरेत् ॥ ८० ॥ लोहितैः करवीराद्यैः पुष्पैर्धूपैस्सुगन्धितैः ॥ पूजयेन्मङ्गलान्देवीं स सर्वं मंगलं लभेत् ॥ ८१ ॥ सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्य्यमेतन्महाव्रतम् ॥ विद्याधनसुताप्त्यर्थं विधेयं पुरुषैरपि ॥ ८२ ॥ उमामहेश्वरादीनि व्रतान्यन्यानि यान्यपि ॥ देवीप्रियाणि कार्याणि स्वमक्त्यैवंमुमुक्षुभिः ॥ ८३ ॥ संहितेयं महापुण्या शिवभक्तिविवर्द्धिनी ॥ नानाख्यानसमायुक्ता सुक्तिमुक्तिप्रदा शिवा ॥ ८४ ॥ य एनां शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः ॥ पठेद्वा पाठयेद्वापि स याति परमां गतिम् ॥ ८५ ॥

मंगलादेवीको पूजता है वह संपूर्ण मंगलको पाता है ॥ ८१ ॥ यह महाव्रत सौभाग्यकी प्राप्तिके निमित्त सदा स्त्रियोंको करना चाहिये और विद्या, धन, पुत्रोंकी प्राप्तिके लिये मनुष्योंको भी करना चाहिये ॥ ८२ ॥ इसी प्रकार और भी उमा महेश्वर आदि व्रत भी जो देवीको प्रिय हैं वे भी मुक्ति चाहिनेवालोंको भक्तिसे करने चाहिये ॥ ८३ ॥ यह शिवभक्तिके बढानेवाली अनेक इतिहासोंसे पूर्ण भोग्य और मोक्षोंको देनेवाली महापुण्यदायक संहिता है ॥ ८४ ॥ जो मनुष्य इस संहिताको

भक्तिसे सुनता है अथवा सुनाता है, पढ़ता है वा पढाता है वह परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ जिसके घरमें यह सुन्दर अक्षरोंसे लिखी हुई संहिता स्थित हो और विधिपूर्वक पूजित होती है वह सम्पूर्ण कामनाओंको पाता है ॥ ८६ ॥ और उसे भूत, प्रेत, पिशाच, आदि दुष्टोंसे कुछ भी भय नहीं होता, पुत्र, पौत्र आदि संपत्ति विस्तृत होती है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ८७ ॥ इस कारण शिव भक्तिके चाहने वालोंको यह महापुण्य मनोहर "उमासंहिता" नित्य सुननी चाहिये और पढनी चाहिये ॥ ८८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पंचम्यामुमा

यस्य गेहे स्थिता चेयं लिखिता ललिताक्षरैः ॥ संपूजिता च विधिवत्सर्वान्कामान्स आप्नुयात् ॥ ८६ ॥ भूतप्रेतपिशाचादि दुष्टेभ्यो न भयं क्वचित् ॥ पुत्रपौत्रादिसम्पत्तिं लभत्येव न संशयः ॥ ॥८७॥ तस्मादियं महापुण्या रम्योमासंहिता सदा ॥ श्रोतव्या पठितव्या च शिवभक्तिममीप्सुभिः ॥ ८८ ॥ ॥ इति श्रीशिव महापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां क्रियायोगनि रूपणं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ॥ समाप्तेयं पञ्चम्युमासंहिता ॥

संहितायां क्रियायोगनिरूपणं नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

दोहा—श्रीशंकरके पदकमल, प्रेम सहित मनलाय ॥ उमासंहिताको तिलक, भाषा लिखों बनाय ॥ १ ॥
बसत रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद ॥ भजन करत हरिको तहां, बुध ज्वालापरसाद ॥ २ ॥

इति शिवमहापुराणे भाषाटीकायुते पञ्चम्युमासंहिता
समाप्ता

अथ श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीका० षष्ठी कैलाससंहिता प्रारभ्यते

नन्दी
शिव
पार्वती
गण

दोहा—शुद्ध सच्चिदानन्दमय, निर्गुण सगुण स्वरूप । सो ज्वालापरसादपर, कृपा करहु सुरभूप ॥ १ ॥
सुमिरि भवानी शंकरहि, गणपति शारद ध्याय । छठी संहिताकी सुभग, भाषा लिखत बनाय ॥ २ ॥

मंगलके देनेवाले विशुद्धस्वरूप आदिमाया शक्तिसहित पार्षद गजानन और स्कन्ध सहित प्रकृति पुरुषके ईश सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति और लयके कारण शिवको नमस्कार है ॥ १ ॥ ऋषि बोले, हमने परम मनोहर अनेक आख्यानोंसे युक्त 'उमासंहिता' सुनी अब आप शिवतत्त्वकी बढानेवाली "कैलाससंहिता" कहिये ॥ २ ॥ व्यासजी बोले, हे पुत्र ! प्रेमसे तुम कैलाससंहिताको सुनो तुम्हारे स्नेहसे मैं परमदिव्य

श्रीगणेशाय नमः ॐ नमः शिवाय ॥ अथ षष्ठी कैलाससंहिता प्रारभ्यते ॥ नमः शिवाय साम्बाय सगणाय ससूनवे ॥ प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थितत्यन्तहेतवे ॥ १ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ श्रुतोमासंहितारम्या नानाख्यानसमन्विता ॥ कैलाससंहिताम्ब्रूहि शिवतत्त्वविवर्द्धिनीम् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ ॥ शृणुत प्रीतितो वत्साः कैलासाख्यां हि संहिताम् ॥ शिवतत्त्वपरान्दिव्यां वक्ष्ये वःस्नेहतः पराम् ॥३॥ हिमवच्छिखरे पूर्व्वं तपस्यन्तो महौजसः ॥ वाराणसीङ्गन्तुकामा मुनयः कृतसम्विदः ॥ ४ ॥ निर्गत्य तस्मात्सम्प्राप्यगिरेः काशीं समाहिताः ॥ स्नातव्यमेवेति तदा ददृशुर्मणिकार्णिकाम् ॥ ५ ॥ तत्र स्नात्वा सुसन्तर्प्य देवादीनथ जाह्नवीम् ॥ दृष्ट्वा स्नात्वा मुनीशास्ते विश्वेशं त्रिदशेश्वरम् ॥ ६ ॥ नमस्कृत्याथ सम्पूज्य भक्त्या परमयान्विताः ॥ शतरुद्रादिभिः स्तुत्वा स्तुतिभिर्व्वेदपारगाः ॥ ७ ॥

शिवतत्त्वकी बढानेवाली कथा कहता हूं ॥ ३ ॥ एक समय हिमालय पर्वतपर स्थित हो तप करते हुए मुनियोंने काशीपुरीमें जानेकी इच्छा की ॥ ४ ॥ उस पर्वतसे चलकर वे मुनि काशीमें प्राप्त हुए और स्नान करनेकी इच्छासे मणिकर्णिकाको आकर देखा ॥ ५ ॥ वहां स्नानकर देवता और गंगाजीको तर्पण कर वे मुनि देवेश्वर विश्वेश्वरके दर्शनको गये ॥ ६ ॥ वहां पहुँच कर परमभक्तिसे उन्होंने शिवजीको नमस्कार किया और शतरुद्रिय मंत्रोंसे उन वेदपारगामी ऋषियोंने शिवजीकी स्तुति की ॥ ७ ॥

इस प्रकार उन्होंने अपनी आत्माको कृतार्थ माना, शिव भक्तिमें तत्पर हुए पूर्ण अर्थवाले शिवमें मन लगाय स्थित हुए ॥ ८ ॥ उसी समय पंचकोशीके देखनेकी इच्छासे सूतजीको आये हुए देखकर प्रसन्न हो ऋषियोंने उनको प्रणाम किया ॥ ९ ॥ वह सूतभी साक्षात् विश्वेश्वर देव २ उमापतिको नमस्कार कर उन ऋषियोंसहित मुक्ति मंडपमें आये ॥ १० ॥ जब वहां सूतजी बैठे तब उन महात्मा श्रेष्ठ पुराण जाननेवाले सूतजीका अर्घ्यादिसे सब मुनीश्वर पूजन करने लगे ॥ ११ ॥ तब सूतजीने प्रसन्नतासे उन मुनियोंकी ओर देखा जो सुन्दर व्रतसे युक्त थे उनसे कुशल पूँछी, तब उन्होंने अपनी कुशल उनसे सुनाई ॥ १२ ॥ वे सब मुनीश्वर सूतजीको देखकर

आत्मानं मेनिरे सर्वे कृतार्था वयमित्युत॥शिवप्रीत्यासुपूर्णार्थाश्शिवभक्तिरतास्सदा॥८॥तस्मिन्नवसरे सूतं पञ्चक्रोशदिदृक्षया ॥ गत्वा समागतं वीक्ष्य मुदा ते तंववन्दिरे॥९॥सोपि विश्वेश्वरं साक्षाद्देवदेवमुमापतिम् ॥ नमस्कृत्याथ तैस्साकम्मुक्तिमण्डपमाविशत् ॥१०॥ तत्रासीनम्महात्मानं सूतम्पौराणिकोत्तमम् ॥ अर्घ्यादिभिस्तदा सर्व्वै मुनयस्समुपाचरन्॥११॥ततः सूतःप्रसन्नात्मा मुनीनालोक्य सुव्रतान्॥पप्रच्छ कुशलान्तेपि प्रोचुःकुशलमात्मनः॥१२॥ते तु संदृष्टहृदयं ज्ञात्वा तं वै मुनीश्वराः ॥ प्रणवार्थाविगत्यर्थमूचुःप्रास्ताविकंवचः ॥१३॥ मनुय ऊचुः॥व्यासशिष्य महाभाग सूत पौराणिकोत्तम॥धन्यस्त्वं शिवभक्तोहि सर्वविज्ञान सागरः ॥१४॥ भवन्तमेव भगवान्व्यासस्सर्वजगद्गुरुः॥अभिषिच्य पुराणानां गुरुत्वेसमयोजयत् ॥१५॥तस्मात्पौराणिकी विद्या भवतो हृदि संस्थिता॥पुराणानि च सर्वाणि वेदार्थम्प्रवदन्ति हि॥१६॥वेदाःप्रणवसम्भूताःप्रणवार्थो महेश्वरः॥अतो महेश्वरस्थानं त्वयि धिष्ण्यम्प्रतिष्ठितम् ॥१७॥ त्वन्मुखाब्जपरिस्यन्दन्मकरंदमनोहरम् ॥ प्रणवार्थामृतं पीत्वा भविष्यामो गतज्वराः ॥१८॥

प्रसन्न हुए और प्रणवके अर्थ जाननेवाले प्रस्तावनाके वचन बोले ॥ १३ ॥ मुनि बोले, हे महाभाग ! व्यासशिष्य ! हे पुराण जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! तुम धन्य हो शिवके भक्त हो सब विज्ञानके समुद्र हो ॥ १४ ॥ तुमको सबके गुरु भगवान् व्यासजीने पुराणोंमें अभिषेककर पुराणज्ञाता गुरु कर दिया है ॥ १५ ॥ इस प्रकार पौराणिकी कथा तुम्हारे हृदयमें स्थित है और संपूर्ण पुराण वेदार्थकोही कथन करते हैं ॥१६॥ वेद ओंकारसे है और ओंकाररूप शिवसे है इस कारण महेश्वरका स्थान तुमसे प्रतिष्ठित है ॥१७॥ तुम्हारे मुखकमलसे निकला हुआ

कथारूपी मनोहर मकरन्द अपूर्व अमृत है उसे पानकर हम ज्वररहित हो जायंगे ॥ १८ ॥ विशेषकर तुम्हारे सिवाय हमारा कोई गुरु नहीं है आप कृपा कर महेश्वरका परमज्ञान कहो ॥ १९ ॥ यह उनके वचन सुन व्यासजीके प्रिय सूतजी गणेशजी, स्वामिकार्त्तिक, पार्वती, महेश ॥ २० ॥ शिलादतनय देव नन्दीश सुयशाके पति सनत्कुमार आदि व्यासजीको प्रणाम करके बोले ॥ २१ ॥ सूतजी बोले, हे पापरहित मुनियो तुम भाग्यशाली और धन्य हो जो तुम्हारी ऐसी दृढमति है यह दुष्कर्मचारियोंकी नहीं होती ॥ २२ ॥ हमारे गुरु व्यासजीने नैमिषारण्यवासी मुनियोंको जो उपदेश दिया है सो मैं तुमसे कहता हूं ॥ २३ ॥ आप जिसके सुननेसे मनुष्योंकी शिवमें भक्ति

विशेषतो गुरुस्त्वं हि नान्योऽस्माकं महामते ॥ परं भावं महेशस्य परया कृपया वद ॥ १९ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा सूतो व्यासप्रियस्सुधीः ॥ गणेशं षण्मुखं साक्षान्महेशानं महेश्वरीम् ॥ २० ॥ शिलादतनयं देवं नन्दीशं सुयशापतिम् ॥ सनत्कुमारं व्यासं च प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥२१॥ सूत उवाच ॥ साधुसाधु महाभागा मुनयःक्षीणकल्मषाः ॥ मतिर्दृढतरा जाता दुर्लभा सापि दुष्कृताम् ॥ २२ ॥ पाराशर्येणगुरुणा नैमिषारण्यवासिनाम् ॥ मुनीनामुपदिष्टं यद्वक्ष्ये तन्मुनिपुंगवाः ॥ २३ ॥ यस्य श्रवणमात्रेण शिवभक्तिर्भवेन्नृणाम् ॥ सावधाना भवन्तोद्य शृण्वन्तु परया मुदा ॥ २४ ॥ स्वारोचिषेन्तरे पूर्वं तपस्यंतो दृढव्रताः ॥ ऋषयो नैमिषारण्ये सर्वसिद्धनिषेविते ॥ २५ ॥ दीर्घसत्रं वितन्वन्तो रुद्रमध्वरनायकम् ॥ प्रीणयन्तः परं भावमैश्वर्य्यं ज्ञातुमिच्छवः ॥ २६ ॥ निवसन्ति स्म ते सर्वे व्यासदर्शनकांक्षिणः ॥ शिवभक्तिरता नित्यं भस्मरुद्राक्षधारिणः ॥ २७ ॥ तेषां भावं समालोक्य भगवान्बादरायणः ॥ प्रादुर्बभूव सर्वात्मा पराशरतपःफलम् ॥ २८ ॥

होती है सावधान हो प्रसन्नतासे सुनो ॥ २४ ॥ स्वारोचिष मन्वन्तरके अन्तमें दृढव्रत तपस्या करनेवाले ऋषि सर्व सिद्धिके दाता नैमिषारण्यमें ॥ २५ ॥ यज्ञपति रुद्रका सहस्र वार्षिक यज्ञ करने लगे और ऐश्वर्य जाननेकी इच्छासे परम भावसे प्रणाम करते हुए ॥ २६ ॥ व्यासजीके दर्शनकी इच्छासे वे सब उस स्थानमें रहने लगे और शिव भक्तिमें तत्पर हो भस्म रुद्राक्ष नित्य धारण किया ॥ २७ ॥ भगवान् व्यासजी उनकी प्रीतिभावको देख वह नारायणके अंशसे उत्पन्न हुए साक्षात् सब जगत्के गुरु पराशर ऋषिके तपके फल सर्वात्मा

प्रगट हुए ॥ २८ ॥ उनको देखकर सब मुनियोंके मन और नेत्र प्रसन्न होगये और अर्घोनी आदि करके सम्पूर्ण उपचारोंसे उनका पूजन किया ॥ २९ ॥ और व्यासजीके निमित्त सोनेका आसन दिया, जिस समय वह उस सोनेके विष्टरमें सुखपूर्वक बैठ गये तब महामुनि व्यासजीने गम्भीर वाणीसे उनसे कहा ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले, तुम्हारे इस यज्ञमें कुशल है ? क्या तुमने यज्ञपतिका सम्यक् प्रकारसे पूजन किया है ? ॥ ३१ ॥ तुमने इस यज्ञमें परमेश्वरको किस निमित्त भक्ति भावसे पूजा है जो पार्वती सहित संसार भयके छुटानेवाले हैं ॥ ३२ ॥ तुम्हारी प्रवृत्ति शुश्रूषा पूर्वहीसे मुझको विदित होती है जो मुक्तिके निमित्त परमभावसे शिवका आराधन किया है ॥ ३३ ॥ जिस

तं दृष्ट्वा मुनयस्सर्वे प्रहृष्टवदनेक्षणाः ॥ अभ्युत्थानादिभिस्सर्वैरुपचारैरुपाचरन् ॥ २९ ॥ सत्कृत्य प्रददुस्तस्मै सौवर्णं विष्टरं शुभम् ॥ सुखोपविष्टः स तदा तस्मिन्सौवर्णविष्टरे ॥ प्राह गंभीरया वाचा पाराशर्य्यो महामुनिः ॥३०॥व्यास उवाच ॥ कुशलं किं नु युष्माकम्प्रब्रूतास्मिन्महामखे॥अर्चितः किं नु युष्माभिस्सम्यगध्वरनायकः॥३१॥किमर्थमत्र युष्माभिरध्वरे परमेश्वरः ॥ स्वर्चितो भक्तिभावेन साम्बस्संसारमोचकः॥३२॥युष्मत्प्रवृत्तिर्मे भाति शुश्रूषापूर्वमेव हि॥परभावे महेशस्य मुक्तिहेतोश्शिवस्य च ॥ ३३ ॥ एवमुक्ता मुनीन्द्रेण व्यासेनामिततेजसा ॥ मुनयो नैमिषारण्यवासिनः परमौजसः ॥ ३४ ॥ प्रणिपत्यमहात्मानं पाराशर्य्यं महामुनिम्॥शिवानुरागसंहृष्टमानसं च तमब्रुवन्॥३५॥मुनय ऊचुः ॥ ॥ भगवन्मुनिशार्दूल साक्षान्नारायणांशज॥ कृपानिधे महाप्राज्ञ सर्वविद्याधिप प्रभो ॥३६॥ त्वं हि सर्वजगद्धर्तुर्महा देवस्य वेधसः ॥ साम्बस्य सगणस्यास्य प्रसादानां निधिस्स्वयम् ॥ ३७ ॥ त्वत्पादाब्जरसास्वादमधुपायितमानसाः ॥ कृतार्था वयमद्यैव भवत्पादाब्जदर्शनात् ॥ ३८ ॥

समय महातेजस्वी व्यासजीने ऐसा कहा तब नैमिषारण्यवासी महापराक्रमी ऋषि थे ॥३४॥ उन महातेजस्वी पराशरके पुत्र शिवके प्रेममें तत्पर व्यासजी महात्माको प्रणाम करके बोले ॥ ३५ ॥ ऋषि बोले, हे भगवन् ! हे मुनिशार्दूल ! हे नारायणके अंशसे उत्पन्न ! हे कृपा सागर ! हे महाप्राज्ञ ! सब विद्याके अधिपति ! हे प्रभो ! ॥ ३६ ॥ तुम सब जगत्के स्वामी महादेव सृष्टिकर्ताके माया शक्ति और गणोंके सहित प्रसादके सागर हो ॥ ३७ ॥ तुम्हारे चरणकमलके मकरन्दके स्वादमें भ्रमररूप मतवाले आपके चरणकमलके दर्शन करनेसे हम कृतकृत्य

होगये हैं ॥ ३८ ॥ तुम्हारे चरणकमलोंका दर्शन पापियोंको दुर्लभ है हम आज उसे प्राप्त होकर कृतकृत्य हुए हैं ॥ ३९ ॥ हे महाभाग इस नैमिषारण्य महाक्षेत्रमें ओंकारके अर्थ प्रकाश करनेवाले दीर्घयज्ञका अनुष्ठान करते हैं ॥ ४० ॥ परमेश्वरको सुनना जानना चाहिये ऐसा निश्चय करके परस्पर महेश्वरका परमभाव विचारते हैं ॥ ४१ ॥ हे प्रभो ! परन्तु हम उनको नहीं जानते, इस कारण आपकी शरण हुए हैं आप हम अल्पबुद्धिवाले सबके मनके सन्देह दूर करनेको योग्य हो ॥ ४२ ॥ तुम्हारे सिवाय त्रिलोकोंमें इस सन्देहका दूर करनेवाला कोई नहीं है आप इस कारण अपार भ्रमके सागरमें डूबते हुए हमको ॥ ४३ ॥ हे दयानिधे ! आप शिवज्ञानरूपी नौकासे तार दीजिये,

त्वदीयचरणाम्भोजदर्शनं खलु पापिनाम् ॥ दुर्लभं लब्धमस्माभिस्त्वस्मात्सुकृतिनो वयम्॥३९॥ अस्मिन्देशे महाभाग नैमिषारण्यसंज्ञके ॥ दीर्घसत्रान्वितास्सर्वे प्रणवार्थप्रकाशकाः ॥४०॥ श्रोतव्यः परमेशान इति कृत्वा विनिश्चिताः ॥ परस्परं चिन्तयन्तः परं भावं महेशितु ॥४१॥ अज्ञातवन्त एवैते वयं तस्माद्भवान्प्रभो ॥ छेत्तुमर्हति तान्सर्वान्संशयानल्पचेतसाम् ॥४२॥ त्वदन्यः संशयस्यास्यच्छेत्ता न हि जगत्त्रये ॥ तस्मादपारगंभीरव्यामोहाब्धौ निमज्जतः ॥४३॥तारयस्व शिवज्ञानपोतेनास्मान्दयानिधे ॥ शिवसद्भक्तितत्त्वार्थं ज्ञातुं श्रद्धालवो वयम् ॥ ४४ ॥ एवमभ्यर्थितस्तं वै मुनिभिर्वेदपारगैः ॥ सर्ववेदार्थवित्मुख्यः शुकतातोमहामुनिः ॥ वेदान्तसारसर्वस्वं प्रणवं परमेश्वरम् ॥ ४५ ॥ ध्यात्वा हृत्कर्णिकामध्ये साम्बं संसारमोचकम् ॥ प्रहृष्टमानसो भूत्वा व्याजहार महामुनि ॥ ४६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां व्यासशौनकादिसंवादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ साधु पृष्टमिदं विप्रा भवद्भिर्भाग्यवत्तमैः ॥ दुर्लभं हि शिवज्ञानं प्रणवार्थप्रकाशकम् ॥ १ ॥

शिवभक्तिके तत्त्व जाननेकी हमको श्रद्धा है ॥ ४४ ॥ जब उन वेदके जाननेवालोंने इस प्रकार व्यासजीकी प्रार्थना की तब सम्पूर्ण वेदार्थके जाननेवालोंमें मुख्य शुकदेवजीके तात महामुनि व्यासजी वेदान्तके सार सर्वस्व ओंकाररूप परमेश्वर ॥ ४५ ॥ संसारके छुड़ानेवालेको पार्वती सहित हृदयकमलमें ध्यान करके प्रसन्न मन हो वह तपोनिधि कहने लगे ॥ ४६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलास संहितायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ व्यासजी बोले, हे महाभाग्यवान् ब्राह्मणो ! आपने बहुत अच्छी वार्ता पूँछी, प्रणव अर्थका प्रकाश करनेवाला

शिवका ज्ञान बड़ा दुर्लभ है ॥ १ ॥ जिनके ऊपर त्रिशूलधारी भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं उन्हींको प्रणवके अर्थका प्रकाशक शिवज्ञान ॥ २ ॥ प्राप्त होता है, इसमें सन्देह कि शिवभक्ति हीनोंको नहीं प्राप्त होता ऐसी श्रुति है यह निश्चय है ॥ ३ ॥ तुमने दीर्घयोगसे भगवान् अम्बिकापतिकी उपासना की है यह मैंने निश्चय देख लिया ॥ ४ ॥ इस कारण मैं तुमसे पुरातन इतिहास कहता हूँ हे आस्तिको ! यह परमपवित्र उमामहेशका संवाद है ॥ ५ ॥ पूर्वकालमें जगन्माता सती दाक्षायणीने पिताके यज्ञमें अपने शरीरको शिवकी निन्दा सुनकर

येषां प्रसन्नो भगवान्साक्षाच्छूलवरायुधः ॥ तेषामेव शिवज्ञानं प्रणवार्थप्रकाशकम् ॥ २ ॥ जायते न हि सन्देहो नेतरेषामिति श्रुतिः ॥ शिवभक्तिविहीनानामिति तत्त्वार्थनिश्चयः ॥ ३ ॥ दीर्घसत्रेण युष्माभिर्भगवानम्बिकापतिः ॥ उपासित इतीदं मे दृष्टमद्य विनिश्चितम् ॥ ४ ॥ तस्माद्वक्ष्यामि युष्माकमितिहासम्पुरातनम् ॥ उमामहेशसंवादरूपमद्भुतमास्तिकाः ॥ ५ ॥ पुराखिलजगन्माता सती दाक्षायणी तनुम् ॥ शिवनिन्दाप्रसङ्गेन त्यक्ता च जनकाध्वरे ॥ ६ ॥ ततःप्रभावात्सा देवी सुताऽभूद्धिमवद्गिरेः ॥ शिवार्थमतपत्सा वै नारदस्योपदेशतः ॥ ७ ॥ तस्मिन्भूधरवर्य्ये तु स्वयंवरविधानतः ॥ देवेशे च कृतोद्वाहे पार्वती सुखमाप सा ॥ ८ ॥ तथैकस्मिन्महादेवी समये पतिना सह ॥ सूपविष्टा महाशैले गौरी देवमभाषत ॥ ९ ॥ महादेव्युवाच ॥ भगवन्परमेशान पञ्चकृत्यविधायक ॥ सर्वज्ञ भक्तिसुलभ परमामृतविग्रह ॥ १० ॥ दाक्षायणीन्ततनुं त्यक्ता तव निन्दाप्रसंगतः ॥ आसमद्य महेशान पुत्री हिमवतो गिरेः ॥ ११ ॥

त्याग किया ॥ ६ ॥ और हिमालयके यहां तपके प्रभावसे जन्म लिया और नारदके उपदेशसे शिवके निमित्त तप किया ॥ ७ ॥ उन हिमालयने स्वयम्बरके विधानसे शिवजीको व्याह दिया विवाहके उपरान्त देवी देवने महासुख पाया ॥ ८ ॥ एक समय महादेवी पतिके साथ बैठी थीं कि उस समय महाशैलपर बैठे हुए देवसे कहने लगीं ॥ ९ ॥ महादेवी बोलीं, हे देव ! हे परमेश ! हे पंचकृत्यविधायक ! हे सर्वज्ञ ! हे भक्तिसुलभ ! हे परमअमृतस्वरूप ! ॥ १० ॥ आपकी निन्दासे मैं दाक्षायणी शरीर त्याग करके हिमालयकी पुत्री

हुई हूँ ॥ ११ ॥ हे महेशान ! मन्त्रदीक्षाके विधानसे आप मुझको विशुद्धतत्त्वमें स्थित कीजिये ॥ १२ ॥ जब शशिभूषण शंकरसे इस प्रकार देवी पार्वतीने कहा तब शिवजीने बड़ी प्रसन्नतासे देवीसे कहा ॥ १३ ॥ शिवजी बोले, यदि तुम्हारी ऐसी मति है तो तुम धन्य हो, मैं कैलास शिखरमें जाकर तुमको विशुद्धतत्त्वमें स्थित करूंगा ॥ १४ ॥ तब हिमालयसे शिवजी कैलासपर्वतमें गये वहां दीक्षाविधानके क्रमसे प्रणवादिके महामंत्रोंको ॥ १५ ॥ देवीसे वर्णन कर और शुद्ध आत्मामें स्थित करके देवीके साथ महादेवजी देवोद्यानमें गये ॥ १६ ॥ तब सुमालिनी

कृपया परमेशान मंत्रदीक्षाविधानतः ॥ मां विशुद्धात्मतत्त्वस्थां कुरु नित्यं महेश्वर ॥१२॥ इति सम्प्रार्थितो देव्या देवःशीतांशु-भूषणः ॥ प्रत्युवाच ततो देवीं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥१३॥ महादेव उवाच ॥ धन्या त्वं देवदेवेशि यदि जातेदृशी मतिः ॥ कैलास शिखरं गत्वा करिष्ये त्वां च तादृशीम् ॥१४॥ ततो हिमवतो गत्वा कैलासम्भूधरेश्वरम् ॥ जगौ दीक्षाविधानेन प्रणवादीन्मनून् क्रमात् ॥ १५ ॥ उक्त्वा मंत्रांश्च तान्देवीं कृत्वा शुद्धात्मनि स्थिताम् ॥ सार्द्धं देव्या महादेवो देवोद्यानं गतोऽभवत् ॥ १६ ॥ ततःसुमालिनीमुख्यैर्देव्याः प्रियसखीजनैः ॥ समाहृतैः प्रफुल्लैस्तैः पुष्पैः कल्पतरूद्भवैः ॥१७॥ अलंकृत्य महादेवीं स्वांकमारोप्य शंकरः॥प्रहृष्टवदनस्तस्थौ विलोक्य च तदाननम्॥१८॥ततः प्रियकथा जाताः पार्वतीपरमेशयोः ॥ हिताय सर्वलोकानां साक्षा-च्छ्रुत्यर्थ सम्मिताः ॥ १९ ॥ तदा सर्वजगन्माता भर्तुरंकं समाश्रिता ॥ विलोक्य वदनं भर्तुरिदमाह तपोधनाः ॥ २० ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ उपदिष्टास्त्वया देव मंत्रास्सप्रणवा मताः ॥ तत्रादौ श्रोतुमिच्छामि प्रणवार्थं विनिश्चितम् ॥ २१ ॥

आदि देवीकी मुख्य सखियोंने कल्पवृक्षसे उत्पन्न हुए नवीन खिले हुए पुष्प लाकर ॥ १७ ॥ देवीको अलंकृत किया, तब शिवजी पार्वतीको अपनी गोदीमें लेकर उनका सुन्दर मुख देखकर महाप्रसन्न हुए ॥ १८ ॥ तब पार्वती परमेश्वरसे प्रिय कथा पूँछने लगी, जो कथा सब लोकोंकी हितकारिणी और श्रुतिके अर्थसे युक्त थी ॥ १९ ॥ तब सब जगत्की माता अपने स्वामीके अंकमें स्थित हो और मुख देखकर कहने लगीं ॥ २० ॥ पार्वती बोलीं हे देव ! आपने ओंकार सहित मन्त्र उपदेश किये, इस कारण प्रथम मैं प्रणवका अर्थ जाननेकी इच्छा करती हूं ॥ २१ ॥

प्रणव किस प्रकारसे उत्पन्न हुआ और वह किस प्रकार प्रणव कहा जाता है। उसकी कितनी मात्रा है और किस प्रकार वेदके आदिमें कहा जाता है ॥ २२ ॥ उसके कितने देवता हैं और किस प्रकार वेदादिकी भावना की जाती है, कितने प्रकारकी क्रिया हैं और व्याप्त व्यापकता किस प्रकार है ॥ २३ ॥ इन मन्त्रोंमें अनुक्रमसे पांच ब्रह्म किस प्रकार स्थित रहते हैं, कितनी कला हैं और प्रपंचात्मकता क्या है ॥ २४ ॥ वाच्य वाचकका सम्बन्ध और स्थान किस प्रकार है ? हे शिव ! इसका अधिकारी कौन है इसका विषय क्या है ॥ २५ ॥ क्या इसका

कथम्प्रणव उत्पन्नः कथं प्रणव उच्यते ॥ मात्राः कति समाख्याताः कथं वेदादिरुच्यते ॥ २२ ॥ देवताः कति च प्रोक्ताः कथं वेदादिभावना ॥ क्रियाः कतिविधाः प्रोक्ता व्याप्यव्यापकता कथम् ॥ २३ ॥ ब्रह्माणि पंच मंत्रेऽस्मिन्कथं तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥ कलाः कति समाख्याताः प्रपंचात्मकता कथम् ॥ २४ ॥ वाच्यवाचकसम्बन्धस्थानानि च कथं शिव ॥ कोऽत्राधिकारी विज्ञेयो विषयः क उदाहृतः ॥ २५ ॥ सम्बन्धः कोत्र विज्ञेयः किं प्रयोजनमुच्यते ॥ उपासकस्तु किंरूपः किं वा स्थानमुपासनम् ॥ २६ ॥ उपास्यं वस्तु किंरूपं किं वा फलमुपासितुः ॥ अनुष्ठानविधिः कोवा पूजास्थानं च किं प्रभो ॥२७॥ पूजायां मण्डलं किं वा किं वा ऋष्यादिकं हर ॥ न्यासजातविधिः को वा को वा पूजाविधिक्रमः ॥ २८ ॥ एतत्सर्वं महेशान समाचक्ष्व विशेषतः ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन यद्यस्ति मयि ते कृपा ॥ २९ ॥

सम्बन्ध और क्या इसका प्रयोजन है इसका उपासक कैसा है और उपासनाका स्थान क्या है ॥ २६ ॥ उपास्य वस्तु किस प्रकारकी है उपासनावालेको क्या फल मिलता है इसके अनुष्ठानकी विधि और पूजाका क्या स्थान है ॥ २७ ॥ पूजाके मण्डल और उनके ऋषि आदिक क्या हैं, उनके न्यासकी विधिका क्या क्रम है ॥ २८ ॥ हे शिव ! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो यह सब वर्णन कीजिये मैं तत्त्व सुननेकी इच्छा करती हूं ॥ २९ ॥

जब देवीने इस प्रकार पूँछा तब पार्वतीजी की प्रशंसा कर शिवजी कहने लगे ॥ ३० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलास संहितायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ शिवजी बोले, हे देवि ! जो कुछ तुमने मुझसे पूँछा है, वह मैं तुमसे कहता हूं जिसके श्रवणमात्रसे जीव साक्षात् शिव हो जाता है ॥ १ ॥ प्रणवात्मकके अर्थका जानना ही मेरा ज्ञान है वह प्रणवात्मक मन्त्र सब विद्याओंका बीज है ॥ २ ॥ वह वटवृक्ष और उसके बीजके समान महासूक्ष्म और बहुत स्थूल है, वही वेदका आदि वेदका सार मेरा रूप है ॥ ३ ॥ वही देव तीनों गुणोंसे परे सर्वज्ञ और सबका करनेवाला ॐ इस एकाक्षर मन्त्रमें सर्वगत शिवजी विद्यमान हैं ॥ ४ ॥ जो कुछ यह वस्तु है वह सब गुण और

इति देव्या समापृष्टो भगवानिन्दुभूषणः ॥ सम्प्रशस्य महेशानीं वक्तुं समुपचक्रमे ॥३०॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षठ्यां कैलास संहितायां देवीदेवसंवादे देवीकृतप्रश्नवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वम्परिपृच्छसि ॥ तस्य श्रवणमात्रेण जीवस्साक्षाच्छिवो भवेत् ॥१॥ प्रणवार्थपरिज्ञानमेव ज्ञानं मदात्मकम् ॥ बीजन्तत्सर्वविद्यानां मंत्रम्प्रणवनामकम् ॥२॥ अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेयं तद्वटबीजवत् ॥ वेदादि वेदसारं च मद्रूपं च विशेषतः ॥ ३ ॥ देवो गुणत्रयातीतः सर्वज्ञः सर्वकृत्प्रभुः ॥ ओमित्येकाक्षरे मंत्रे स्थितोहं सर्वगश्शिवः ॥४॥ यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुणप्राधान्ययोगतः ॥ समस्तं व्यस्त मपि च प्रणवार्थं प्रचक्षते॥५॥ सर्वार्थसाधकं तस्मादेकं ब्रह्मैतदक्षरम् ॥ तेनोमिति जगत्कृत्स्नं कुरुते प्रथमं शिवः ॥६॥ शिवो वा प्रणवो ह्येष प्रणवो वा शिवः स्मृतः ॥ वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यंतं विद्यते यतः ॥७॥ तस्मादेकाक्षरं देवं मां च ब्रह्मर्षयोविदुः ॥ वाच्यवाचकयोरैक्यं मन्यमाना विपश्चितः ॥८॥ अतस्तदेव जानीयात्प्रणवं सर्वकारणम् ॥ निर्विकारी मुमुक्षुर्मां निर्गुणं परमेश्वरम् ॥९॥

प्रधानके संयोगसे समस्त समष्टिरूप विराट्व्यस्त व्यष्टिरूप स्थावर जंगमात्मक प्रणवार्थ ही है ॥ ५ ॥ इस कारण वह एक अक्षर ब्रह्मही सम्पूर्ण अर्थका साधक है, इसी सर्वार्थ साधकतासे ॐ ऐसे आकारयुक्त प्रणवसे शिवजी प्रथम सब जगत् निर्माण करते हैं ॥ ६ ॥ शिव प्रणवरूप और प्रणव शिवरूप है वाच्य और वाचकमें कुछ भेद नहीं होता है ॥ ७ ॥ इस कारण मुझको ब्रह्मऋषि एकाक्षररूप कहते हैं; वाच्य वाचक की एकता माननेवाले विद्यावानोंको ही मैं प्राप्त होता हूं ॥ ८ ॥ हे परमेश्वरि ! इस कारण प्रणवको सबका कर्ता जानो मुमुक्षु मुक्त निर्गुण

परमेश्वरको निर्विकार जानते हैं ॥ ९ ॥ हे देवि ! सब मंत्रोंके शिरोमणि इस ओंकारको ही मैं प्राण त्याग करनेवाले जीवोंकी मुक्तिके निमित्त काशीमें देता हूँ ॥ १० ॥ हे अम्बिके ! आदिमें प्रणवोद्धार वर्णन करता हूं जिसके विज्ञानमात्रसे परमसिद्धि होती है ॥ ११ ॥ प्रथम अकारके आश्रित निवृत्ति कलाका उद्धार करे उकारमें ईंधन कलाका मकारमें काल कलाका नादमें दण्ड और बिन्दुमें ईश्वर कलाका उद्धार करे ॥ १२ ॥ इस प्रकार पांचवर्णरूप प्रणवका उद्धार होता है, यह तीनमात्रा और बिन्दु नादात्मा जपनेवालोंको महामुक्ति देनेवाला है ॥ १३ ॥ ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यंत सम्पूर्ण प्राणियोंका यह प्राण है इसीसे इसको प्रणव कहते हैं ॥ १४ ॥ अकार उकार मकार क्रमसे

एनमेव हि देवेशि सर्वमंत्रशिरोमणिम् ॥ काश्यामहं प्रदास्यामि जीवानां मुक्तिहेतवे ॥ १० ॥ तत्रादौ सम्प्रवक्ष्यामि प्रणवोद्धारमम्बिके ॥ यस्य विज्ञानमात्रेण सिद्धिश्च परमा भवेत् ॥ ११ ॥ निवृत्तिमुद्धरेत्पूर्वमिन्धनं च ततः परम् ॥ कालं समुद्धरेत्पश्चाद्दंडमीश्वरमेव च ॥ १२ ॥ वर्णपंचकरूपोयमेवं प्रणव उद्धृतः ॥ त्रिमात्रबिन्दुनादात्मा मुक्तिदो जपतां सदा ॥ १३ ॥ ब्रह्मादिस्थावरान्तानां सर्वेषां प्राणिनां खलु ॥ प्राणः प्रणव एवायं तस्मात्प्रणव ईरितः ॥ १४ ॥ आद्यंवर्णमकारं च उकार मुत्तरे ततः ॥ मकारं मध्यतश्चैव नादांतं तस्य चोमिति ॥ १५ ॥ जलवद्वर्णमाद्यन्तु दक्षिणे चोत्तरे तथा ॥ मध्ये मकारं शुचिवदोंकारे मुनिसत्तम ॥ ॥ १६ ॥ अकारश्चाप्युकारोयं मकाराश्च त्रयं क्रमात् ॥ तिस्रो मात्रास्समाख्याता अर्द्धमात्रा ततः परम् ॥ १७ ॥ अर्द्धमात्रा महेशानि बिन्दुनादस्वरूपिणी ॥ वर्णनीया न सा चाद्धा ज्ञेया ज्ञानिभिरेव सा ॥ १८ ॥ ईशानस्सर्वविद्यानामित्यद्याश्श्रुतयः प्रिये ॥ मत्त एव भवन्तीति वेदास्सत्यम्वदन्तिहि ॥ १९ ॥

यह तीन मात्रा और पीछे आधी मात्रा है इस प्रकार ओम् होता है ॥ १५ ॥ हे पार्वति ! यह जलके समान दक्षिण उत्तरमें स्थित है । हे मुनिश्रेष्ठ ! मध्यमें मकार है इस प्रकार ओंकारकी स्थिति है ॥ १६ ॥ अकार उकार मकार यह तीनमात्रा हैं इसके पीछे आधी मात्रा है ॥ १७ ॥ हे महेशानि ! वह आधी मात्राही नादबिन्दु स्वरूपवाली है, वह साक्षात् वर्णन नहीं हो सकती, केवल ज्ञानी उसको जान सकते हैं ॥ १८ ॥ हे पार्वति ! यह आधीमात्रा बिन्दु और नादके स्वरूपवाली है

"ईशानः सर्वविद्यानां ईश्वरः सर्वभूतानाम्" और "यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं" इत्यादि श्रुति हैं। यह सब मुझसे ही होता है वेदोंने यह वार्ता सत्य कही है ॥ १९ ॥ इस कारण वेदके आदिमें ओंकारात्मक भी मैं ही विद्यमान हूं, ओंकार मेरा वाचक होनेसे वेदकी आदिमें कहा जाता है ॥ २० ॥ अकार इसका महान् बीज है इसीके रजोगुणसे ब्रह्मा होते हैं, उकार उसकी प्रकृति योनि है, सत्त्वगुणके पालन करनेवाले हरि हैं ॥ २१ ॥ मकार पुरुष बीज है, इसके तमोगुण युक्त संहारकर्ता शिव हैं, बिन्दूरूप साक्षात् महेश्वर देव हैं, उससे तिरोभाव होता है ॥२२॥

तस्माद्वेदादिरेवाहं प्रणवो मम वाचकः ॥ वाचकत्वान्ममैषोऽपि वेदादिरिति कथ्यते ॥ २० ॥ अकारस्तु महद्बीजं रजस्स्रष्टा चतुर्मुखः ॥ उकारः प्रकृतिर्योनिस्सत्त्वं पालयिता हरिः ॥ २१ ॥ मकारः पुरुषो बीजी तमस्संहारको हरः ॥ बिन्दुर्महेश्वरो देव स्तिरो भाव उदाहृतः ॥ २२ ॥ नादस्सदाशिवः प्रोक्तस्सर्वानुग्रहकारकः ॥ नादमूर्द्धनि संचिन्त्यः परात्परतरः शिवः ॥ २३ ॥ स सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता सर्वेशो निर्मलोऽव्ययः ॥ अनिर्देश्यः परब्रह्म साक्षात्सदसतः परः ॥२४॥ अकारादिषु वर्णेषु व्यापकं चोत्तरोत्तरम् ॥ व्याप्यन्त्वधस्तनं वर्णमेवं सर्वत्र भावयेत् ॥ २५ ॥ सद्यादीशानपर्य्यंतान्यकारादिषु पंचसु ॥ स्थितानि पंच ब्रह्माणि तानि मन्मूर्त्तयः क्रमात् ॥ २६ ॥ अष्टौ कलास्समाख्याता अकारे सद्यजाश्शिवे ॥ उकारे वामरूपिण्यस्त्रयोदश समीरिताः ॥ २७ ॥

और नादरूप सबके अनुग्रह करनेवाले साक्षात् शिव हैं, नादको मस्तकमें विचारकेही शिव वहां ध्यान करनेके योग्य हैं, यह परेसे परे मंगल रूप ॥२३॥सर्वज्ञ सबके कर्ता सर्वेश निर्मल अविनाशी अद्वैत हैं, निर्देश करनेके अयोग्य सत् आसनसे परे साक्षात् परब्रह्म हैं ॥२४॥ अकारादि सब वर्णोंमें क्रमसे व्यापक हैं आकारकी अपेक्षासे ओंकार व्यापक है, उकारसे अकार वर्ण नीचे भागमें व्याप्त है, इसी प्रकार इन वर्णोंमें भी भावना करे ॥२५॥ अकारादि पांच वर्णोंमें जो पांच ब्रह्मस्वरूप सद्य, वामदेव, घोर, पुरुष ईशान हैं वह क्रमसे मेरी मूर्त्तिही हैं ॥२६॥ सद्यसे

होनेवाले अकाररूप शिवमें आठकला वर्णन की हैं, उकारमें वामदेवरूप तेरह कला हैं ॥ २७ ॥ मकारमें अघोररूपिणी आठ कला स्थित हैं, बिन्दुमें पुरुष गोचर चार कला हैं ॥ २८ ॥ नादमें ईशानरूप पांचकला स्थित हैं. आगे कहे छः पदार्थोंकी एकताके अनुसंधानसे प्रणवकी प्रपंचात्मकता होती है ॥ २९ ॥ मन्त्र यन्त्र देवता विश्वगुरु और शिष्य यह छः पदार्थ हैं. हे प्रिये ! इनका अर्थ सुनो ॥३०॥ पूर्वकथित प्रणव मन्त्र पांच वर्णकी समष्टि है, वही यन्त्रताको प्राप्त होता है उसके मण्डलका क्रम कहते हैं ॥ ३१ ॥ यन्त्र देवतारूप है, देवता विश्वरूप है और

अष्टावघोररूपिण्यो मकारे संस्थिताः कलाः ॥ बिन्दौ चतस्रस्संभूताः कलाः पुरुषगोचराः ॥ २८ ॥ नादे पंच समाख्याताः कला ईशानसंभवाः ॥ षड्विधैक्यानुसंधानात्प्रपंचात्मकतोच्यते ॥ २९ ॥ मन्त्रो यन्त्रं देवता च प्रपंचो गुरुरेव च ॥ शिष्यश्च षट्पदार्था नामेषामर्थं शृणु प्रिये ॥ ३० ॥ पंचवर्णसमष्टिः स्यान्मन्त्रः पूर्वमुदाहृतः ॥ स एव यंत्रतां प्राप्तो वक्ष्ये तन्मण्डलक्रमम् ॥ ३१ ॥ यन्त्रं तु देवतारूपं देवता विश्वरूपिणी ॥ विश्वरूपो गुरुः प्रोक्तश्शिष्यो गुरुवपुस्स्मृतः ॥ ३२ ॥ ओमितीदं सर्वमिति सर्वं ब्रह्मेति च श्रुतेः ॥ वाच्यवाचकसम्बन्धोप्ययमेवार्थ ईरितः ॥ ३३ ॥ आधारो मणिपूरश्च हृदयं तु ततः परम् ॥ विशुद्धिराज्ञा च ततः शक्तिः शान्तिरिति क्रमात् ॥ ३४ ॥ स्थानान्येतानि देवेशि शान्त्यतीतं परात्परम् ॥ अधिकारी भवेद्यस्य वैराग्यं जायते दृढम् ॥ ३५ ॥ विषयः स्यामहं देवि जीवब्रह्मैक्यभावनात् ॥ सम्बन्धं शृणु देवेशि विषयः सम्यगीरितः ॥ ३६ ॥ जीवात्मनोर्मया सार्द्धमैक्यस्य प्रणवस्य च ॥ वाच्यवाचकभावोत्र सम्बन्धस्समुदीरितः ॥ ३७ ॥

विश्वरूप गुरु है, और शिष्य गुरुकाही शरीर है ॥ ३२ ॥ "ओमितीदं सर्वम्" अर्थात् यह सब ओंकाररूपही है, ऐसी श्रुति कहती है. वाच्य वाचकके सम्बन्धका यही अर्थ है ॥३३॥ अवस्थान कहते हैं आधार, मणिपूर, हृदय, विशुद्धिचक्र, आज्ञाचक्र, शक्ति और शान्त कला क्रमसे ॥ ३४ ॥ यह स्थान कहे हैं. हे देवि ! शान्त्यातीतकोही परात्पर कहते हैं, जिसे दृढ वैराग्य हो वही इसमें अधिकारी है ॥३५॥ हे देवि ! मैं ही इसका विषय हूं; जीव ब्रह्मकी एक भावना करे. हे देवि ! विषय तो कहा, अब सम्बन्ध सुनो ॥ ३६ ॥ जीवात्माकी मेरे सहित प्रणवकी

एकता होती है, बोध्य बोधकभाव अर्थात् जीव ब्रह्मकी एकताका बोधक प्रणव है यहही संबन्ध है ॥ ३७ ॥ व्रतादिमें निरत शान्त तपस्वी जितेन्द्रिय पवित्र आचरणवाला ब्राह्मण और वेदमें निष्ठायुक्त ॥ ३८ ॥ विषयोंसे विरक्त इस लोक परलोककी इच्छासे दीन देवता ब्राह्मणोंमें भक्तिवाला शिवका व्रतधारी ॥ ३९ ॥ संपूर्ण शास्त्रके अर्थ और तत्त्वको जानने वाले वेदान्तज्ञानके पारगामी यति बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ आचार्यके पास जाकर ॥ ४० ॥ दीर्घदण्डके तुल्य प्रणामादिसे यत्नपूर्वक संतुष्ट करके शान्त्यादि गुणसे युक्त शीलवान् शक्ति आदि गुणसे युक्त शिष्य ॥ ४१ ॥ बुद्धिमान् ऐसा जाने कि, जो गुरु हैं सो शिव हैं और जो शिव हैं सो गुरु हैं ऐसा मनमें निश्चयकर उनसे अपना विचार निवेदन

व्रतादिनिरतः शान्तस्तपस्वी विजितेन्द्रियः ॥ शौचाचारसमायुक्तो भूदेवो वेदनिष्ठितः ॥३८॥ विषयेषु विरक्तः सन्नैहिकामुष्मिकेषु च ॥ देवानां ब्राह्मणोऽपीह लोकजेषु शिवव्रती ॥ ३९ ॥ सर्वशास्त्रार्थ तत्त्वज्ञं वेदान्तज्ञानपारगम् ॥ आचार्य्यमुपसंगम्य यतिं मतिमतां वरम् ॥ ४० ॥ दीर्घदण्डप्रणामाद्यैस्तोषयेद्यत्नतस्सुधीः ॥ शान्त्यादिगुणसंयुक्तः शिष्यस्सौशील्यवान्वरः ॥ ४१ ॥ यो गुरुः स शिवःप्रोक्तो यश्शिवस्स गुरुः स्मृतः ॥ इति निश्चित्य मनसा स्वविचारं निवेदयेत् ॥ ४२ ॥ लब्धानुज्ञस्तु गुरुणा द्वादशाहं पयोव्रती ॥ समुद्रतीरे नद्यां च पर्वते वा शिवालये ॥ ४३ ॥ शुक्लपक्षे तु पंचम्यामेकादश्यां तथापि वा ॥ प्रातः स्नात्वा तु शुद्धात्मा कृतनित्य क्रियस्सुधीः ॥ ४४ ॥ गुरुमाहूय विधिना नान्दीश्राद्धं विधाय च ॥ क्षौरं च कारयित्वाथ कक्षोपस्थविवर्जितम् ॥ ४५ ॥ केशश्मश्रुनखानां वै स्नात्वा नियतमानसः ॥ सक्तुं प्राश्याथ सायाह्ने स्नात्वा सन्ध्यामुपास्य च ४६ ॥ सायमौ पासनं कृत्वा ॥ गुरुणा सहितो द्विजः ॥ शास्त्रोक्तदक्षिणा दत्त्वा शिवाय गुरुरूपिणे ॥ ४७ ॥

करे ॥ ४२ ॥ गुरुकी आज्ञासे बारह दिनतक पयोव्रत (जलपानमात्र) करे समुद्रके किनारे अथवा पर्वत वा शिलामें ॥ ४३ ॥ शुक्लपक्षकी पंचमी अथवा एकादशीके दिन बुद्धिमान्को उचित है कि, पवित्रचित्तसे प्रातःकाल नित्यक्रियाके उपरान्त स्नान करे ॥ ४४ ॥ और गुरुको बुलाकर विधिपूर्वक नान्दीश्राद्ध करके बगल और उपस्थको छोडकर क्षौर कर्म कराय ॥४५॥ केश डाढी मूँछ नखोंको दूर कराय जितेन्द्रिय हो स्नानकर सायंसन्ध्या करके ॥ ४६ ॥ सक्तु (सत्तु) को भोजन कर फिर स्नानकर संध्या करे, इस प्रकार गुरुसहित ब्राह्मण सन्ध्याकालकी

उपासना करके शिवरूप गुरुके निमित्त वस्त्र और दक्षिणा दे ॥ ४७ ॥ अपने सूत्रकी विधिसे होमका द्रव्य लेकर विधिपूर्वक लौकिकादि भेदसे अग्न्याधान करे॥४८॥ जो अहिताग्नि प्रजापत्ययज्ञके अनुसार हवन कर चुकता है उसको उचित है कि वह सर्वस्व धनकी दक्षिणा देकर इस वेदोक्त वैश्वानर अग्निको ॥४९॥ आत्मामें धारणकर ब्राह्मण घरसे निकल कर संन्यासी होजाय. समिधा, अन्न, घृतयुक्त चरु लेकर ॥५०॥ पुरुषसूक्तके एक मन्त्रसे हवन करे, फिर अपने सूक्तके विधानसे स्विष्टकृत सम्बन्धिनी आहुतियोंसे हवन करे ॥५१॥ तन्त्रके आगे उत्तरकी ओर आसन पर

होमद्रव्याणि संपाद्य स्वसूत्रोक्तविधानतः ॥ अग्निमाधाय विधिवल्लौकिकादिविभेदतः ॥ ४८ ॥ आहिताग्निस्तु यः कुर्यात्प्राजापत्ये ष्टिनाहिते ॥ श्रौते वैश्वानरे सम्यक् सर्ववेदसदक्षिणम् ॥ ४९ ॥ अथाग्निमात्मन्यरोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ॥ श्रपयित्वा चरुं तस्मिन्समिदन्नाज्यभेदतः ॥ ५० ॥ पौरुषेणैव सूक्तेन हुत्वा प्रत्यृचमात्मवान् ॥ हुत्वा च सौविष्टकृतीं स्वसूत्रोक्तविधानतः ॥ ५१ ॥ हुत्वोपरिष्टात्तन्त्रं च तेनाग्नेरुत्तरे बुधः ॥ स्थित्वासने जपेन्मौनी चैलाजिनकुशोत्तरे ॥ यावद्ब्राह्ममुहूर्त्तं तु गायत्रीं दृढमानसः ॥ ५२ ॥ ततः स्नात्वा यथा पूर्वं श्रपयित्वा चरुं ततः ॥ पौरुषं सूक्तमारभ्य विरजान्तं हुनेद्बुधः ॥ ५३ ॥ वामदेवमतेनापि शौनकादिमतेन वा ॥ तत्र मुख्यं वामदेव्यं गर्भयुक्तो यतो मुनिः ॥ ५४ ॥ होमशेषं समाप्याथ प्रातरौपासनं हुनेत् ॥ ततोऽग्निमात्मन्यारोप्य प्रातस्सन्ध्य मुपास्य च ॥ ५५ ॥ सवितर्युदिते पश्चात्सावित्रीं प्राविशेत्क्रमात् ॥ एषणानां त्रयं त्यक्त्वा प्रेषमुच्चार्य च क्रमात् ॥ ५६ ॥

स्थित हो, अजिनवस्त्र धारण कर कुशपर बैठे जबतक ब्राह्ममुहूर्त रहे तबतक दृढमन करके गायत्रीका जप करे ॥ ५२ ॥ फिर स्नान करके चरु निर्माणकर पुरुषसूक्तसे लेकर विरजाहोमपर्यन्त आहुति दे॥५३॥ वामदेव अथवा शौनकमंत्रसे हवन करे, इनसे वामदेवका मत श्रेष्ठ है. कारण कि वह गर्भमें स्थित हो मुक्त होकर जीवन्मुक्त विचरे हैं ॥५४॥ शेष हवनको समाप्त करके फिर प्रातःकालकी उपासनाका हवन करे, फिर अग्निको आत्मामें आरोपण कर प्रातःकाल संध्या करके ॥ ५५ ॥ सूर्यके उदय होनेपर क्रमसे गायत्रीका जप करे, लोकेषणा, पुत्रेषणा, वित्तेषणा,

इन तीनोंको त्यागन कर क्रमसे प्रेषका उच्चारण करे ॥ ५६ ॥ शिखा और उपवीत त्यागन कर कटि सूत्रादि त्यागकर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर गमन करे ॥ ५७ ॥ लोक वृत्तिके निर्वाहके निमित्त दंड और कौपीन ग्रहण करे और जो विरक्त हो लोक वृत्ति कठिन हो ऐसा विचार कर यह भी ग्रहण न करे ॥ ५८ ॥ गुरुके समीप जाकर दण्डके समान तीन प्रणाम करे, फिर उठकर गुरुके चरणोंके निकट बैठे ॥ ५९ ॥ तब गुरु विरजा अग्निसे उत्पन्न हुई श्वेत भस्म उस शिष्यके विधिपूर्वक मलकर ॥ ६० ॥ " अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म " इत्यादि मन्त्रोंसे तिलक धारण करावे और हृदय कमलमें तुम्हारे सहित मेरा (शिव पार्वतीका) ध्यान करे ॥ ६१ ॥ प्रसन्नमनसे

शिखोपवीते संत्यज्य कटिसूत्रादिकं ततः ॥ विसृज्य प्राङ्मुखो गच्छेदुत्तराशामुखोपि वा ॥ ५७ ॥ गृह्णीयाद्दण्डकौपीनाद्युचितं लोकवर्तने ॥ विरक्तश्चेन गृह्णीयाल्लोकवृत्तिविचारणे ॥ ५८ ॥ गुरोः समीपं गत्वाथ दण्डवत्प्रणमेत्त्रयम् ॥ समुत्थाय ततस्तिष्ठे द्गुरुपादसमीपतः ॥ ५९ ॥ ततो गुरुः समादाय विरजानलजं शितम् ॥ भस्म तेनैव तं शिष्यं समुद्धूल्य यथा विधि ॥ ६० ॥ अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैस्त्रिपुण्ड्रं धारयेत्ततः ॥ हृत्पंकजे समासीनं मां त्वया सह चिन्तयेत् ॥ ६१ ॥ हस्तं निधाय शिरसिशिष्यस्य प्रीतमानसः ॥ ऋष्यादिसहितं तस्य दक्षकर्णे समुच्चरेत् ॥ ६२ ॥ प्रणवं त्रिःप्रकारं तु ततस्तस्यार्थमादिशेत् ॥ षड्विधार्थं परिज्ञानसहितं गुरुसत्तमः ॥ ६३ ॥ द्विषट्प्रकारं स गुरुं प्रणम्य भुवि दण्डवत् ॥ तदधीनो भवेन्नित्यं वेदान्तं सम्यगभ्यसेत् ॥ ६४ ॥ मामेव चिंतयेन्नित्यं परमात्मानमात्मनि ॥ विशुद्धे निर्विकारे वै ब्रह्मसाक्षिणमव्ययम् ॥ ६५ ॥ शमादिधर्मनिरतो वेदान्तज्ञानपारगः ॥ अत्राधिकारी स प्रोक्तो यतिर्विगतमत्सरः ॥ ६६ ॥

शिष्यके मस्तकपर हाथ धरकर ऋषि आदि स्मरण कर उसके दक्षिण कर्णमें मन्त्र उच्चारण करे ॥ ६२ ॥ सूक्ष्म आदि पूर्वोक्त तीन प्रकारके प्रणवको और उसके अर्थको उपदेश करे, फिर शिष्य छः प्रकारके प्रणवके अर्थ जाननेको दंडवत् करे ॥ ६३ ॥ बारह प्रकारसे गुरुको प्रणाम करे, और सदा गुरुके अधीन रहकर वेदान्तका नित्य अभ्यास करे ॥ ६४ ॥ और अपने आत्मामें नित्य ही मुझ परमात्माका ध्यान करे । जो विशुद्ध निर्विकार शुद्ध अविनाशी हैं ॥ ६५ ॥ शम दमादि धर्ममें निरत वेदान्तके ज्ञानके पारगामी अभिमान रहित यति है

वही पुरुष इसमें अधिकारी है ॥ ६६ ॥ हृदय पुण्डरीकमें विराजमान स्वच्छ शोकरहित उज्ज्वल अष्टपत्र कमलके समान मकरन्दयुक्त कर्णिकासे शोभायमान ॥ ६७ ॥ हृदय कमलके मध्यमें आधार शक्तिसे आरम्भ करके मणिपूरक हृदयके तत्वान्तमय आधारको विचारकर दहर प्रकाशकी भावना करे ॥ ६८ ॥ " ॐ " यह एकाक्षर उच्चार तुम्हारे सहित मेरा उत्कण्ठासे स्मरण करता हुआ उस दहराकाशके बीचमें नित्य मेरा स्मरण करे ॥ ६९ ॥ हे प्रिये ! इस प्रकार उपासना करनेवालेको मेरे लोककी गति होती

हृत्पुण्डरीकं विरजं विशोकं विशदम्परम् ॥ अष्टपत्रं केशराढ्यं कर्णिकोपरि शोभितम् ॥ ६७ ॥ आधारशक्तिमारभ्य त्रितत्त्वांतमयं पदम् ॥ विचिन्त्य मध्यतस्तस्य दहरं व्योम भावयेत् ॥ ६८ ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मां त्वया सह ॥ चिंतयेन्मध्यतस्तस्य नित्यमुद्युक्तमानसः ॥ ६९ ॥ एवंविधोपासकस्य मल्लोकगतिमेव च ॥ मत्तो विज्ञानमासाद्य मत्सायुज्यफलं प्रिये ॥ ७० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासपद्धतिवर्णनं नाम तृतीयोध्यायः ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि संन्यासाह्निककर्म च ॥ तव स्नेहान्महादेवि संप्रदायानुरोधतः ॥ १ ॥ ब्राह्मे मुहूर्त्त उत्थाय शिरसि श्वेतपंकजे ॥ सहस्रारे समासीनं गुरुं संचिंतयेद्यतिः ॥ २ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं द्विनेत्रं वरदाभये ॥ दधानंशिवसद्भावमेवात्मनि मनोहरम् ॥ ३ ॥ भावोपनीतैः संपूज्य गन्धादिभिरनुक्रमात् ॥ बद्धांजलिपुटो भूत्वा नमस्कुर्याद्गुरुं ततः ॥ ४ ॥

है, मुझसे ज्ञानको प्राप्त हो मेरे ही सायुज्यको प्राप्त हो जाता है ॥ ७० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ शिवजी बोले, अब मैं सन्यास और आह्निक कर्म कहता हूं हे महादेवी ! तुम्हारे आग्रहसे मैं सम्प्रदायके अनुसार कहता हूं ॥ १ ॥ हे प्रिये ! ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर यति अपने शिरमें सहस्र दलवाले श्वेतकमलमें बैठे हुए गुरुका ध्यान करे ॥ २ ॥ शुद्ध स्फटिकके समान दो नेत्रोंवाले वरदायक अभयपाता शिवके समान साधुभावको धारण करनेवाले अतिमनोहर भावनासे युक्त ॥३॥ अनेकभावोंसे

गन्धादि द्वारा उनका पूजन करे और हाथ जोडकर गुरुको नमस्कार करे ॥ ४ ॥ प्रातःसे संध्या तक और सन्ध्याकालसे प्रातःकालतक जो कुछ मैं करता हूँ हे जगन्नाथ ! वह तुम्हारा पूजन ही है ॥ ५ ॥ ऐसा गुरुसे कह उनकी आज्ञा लेकर प्राण रोककर जितेन्द्रिय हो आसनपर बैठे ॥ ६ ॥ मूलसे ब्रह्मरन्ध्रपर्यंत छः चक्रका ध्यान करे जो करोड बिजलीके समान सर्वतेजोमय है ॥ ७ ॥ उसके मध्यमें मुझ सच्चिदानन्द निर्गुण ब्रह्म सदाशिव अनामयका चिन्तन करे ॥ ८ ॥ फिर वह मतिमान् वह मैं हूं ऐसा विचाकर ध्यानकर फिर बाहर दूर जहांतक इच्छा हो चला जाय ॥ ९ ॥ फिर नासिकाको वस्त्रसे आच्छादन कर देहको विधिपूर्वक सोधनकर पृथ्वीमें तृण रखकर

प्रातःप्रभृति सायान्ते सायादिप्रातरंततः ॥ यत्करोमि महादेव तदस्तु तव पूजनम् ॥५॥ प्रतिविज्ञाप्य गुरवे लब्धानुज्ञस्ततो गुरोः ॥ निरुद्धप्राण आसीनो विजितात्मा जितेन्द्रियः॥६॥मूलादिब्रह्मरंध्रांतं षट्चक्रं परिचिंतयेत् ॥ विद्युत्कोटिसमप्रख्यं सर्वतेजोमयं परम् ॥७॥ तन्मध्ये चिंतयेन्मां च सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ निर्गुणं परमं ब्रह्म सदाशिवमनामयम् ॥८॥ सोहमस्मीति मतिमान्मदैक्यमनुभूय च॥बहिर्निर्गत्य च ततो दूरं गच्छेद्यथासुखम् ॥९॥ वस्त्रेणाच्छाद्य मतिमाञ्छिरो नासिकया सह ॥ विशोध्य देहं विधिवत्तृणमाधाय भूतले ॥१०॥ गृहीतशिश्न उत्थाय ततो गच्छेज्जलाशयम् ॥ उद्धृत्य वार्यथान्यायं शौचं कुर्यादतन्द्रितः ॥११॥ हस्तौ पादौ च संशोध्य द्विराचम्योमितिस्मरन्॥उत्तराभिमुखो मौनी दन्तधावनमाचरेत्॥१२॥तृणपर्णैः सदा कुर्यादमामेकादशीं विना ॥ अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखं संशोधयेत्ततः ॥१३॥ द्विराचम्य मृदा तोयैः कटिशौचं विधाय च ॥ अरुणोदयकाले तु स्नानं कुर्यान्मृदा सह ॥ १४ ॥ गुरुं संस्मृत्य मां चैव स्नानसंध्याद्यमाचरेत् ॥ विस्तारभयतो नोक्तमत्र द्रष्टव्यमन्यतः ॥ १५ ॥

॥ १० ॥ मल त्यागन करे. फिर पीछे शिश्नको ग्रहण करके उठे और सरोवरके निकट जाय जलसे विधिपूर्वक शुद्ध करे ॥ ११ ॥ विधिपूर्वक शौचकर हाथ पैर धोये दो बार आचमन करे और मौन धारण कर उत्तर दिशाकी ओर मुख कर दन्त धावन करे ॥ १२ ॥ एकादशी और अमावसको छोडकर तृण और पर्णोंमें सदा दन्तधावन करे, फिर बारह कुल्लोंसे मुख शुद्ध करे ॥ १३ ॥ फिर मिट्टीसे हाथ धो दो आचमन करे, कटि शौच करके अरुणोदयके समय मृत्तिका सहित स्नान करे ॥ १४ ॥ गुरुको और

मुझको स्मरण करके स्नान और सन्ध्यादि करे विस्तारके भयसे विशेष नहीं कहा, यत्नसे पद्धतियोंमें देखो ॥ १५ ॥ और शंखमुद्रा बांधकर ओंकारसे अभिषेक करे, शिरमें बारह छः तीन बार जल छिडके ॥ १६ ॥ फिर किनारेपर आकर कौपीन प्रक्षालन कर दो बार आचमन करे, और ओंकारसेही वस्त्र तथा अंगका मार्जन करे ॥ १७ ॥ अंगोछेसे पहले मुख पोंछकर पीछे शिर पोंछे फिर सब देहको गुरुके निकटही वस्त्रसे पोंछे ॥ १८ ॥ फिर मौनी होकर दूसरी कौपीनको बांधे, फिर भस्म धारण करे. हे प्रिये ! उसकी विधि कहते हैं ॥ १९ ॥ और दो आचमन कर सद्योजातादि मन्त्रसे भस्मको धारण करे । और ' अग्निरितिभस्म ' इस प्रकारके मन्त्रोंसे अभि

आबध्य शंखमुद्रां च प्रणवेनाभिषेचयेत् ॥ शिरसि द्वादशावृत्त्या तदर्धं वा तदर्धकम् ॥ १६ ॥ तीरमागत्य कौपीनं प्रक्षाल्या चम्य च द्विधा ॥ प्रोक्षयेत्प्रणवेनैव वस्त्रमंगोपमार्जनम् ॥ १७ ॥ मुखम्प्रथमतो मृज्य शिर आरभ्य सर्वतः ॥ तेनैव मार्जयेद्देहं स्थित्वा च गुरुसन्निधौ ॥ १८ ॥ आबध्याद्धामतः शुद्धं कौपीनं च सडोरकम् ॥ ततः संधारयेद्भस्म तद्विधिः प्रोच्यतेऽद्विजे ॥ १९ ॥ द्विराचम्य समादाय भस्म सद्यादिमंत्रतः ॥ अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैरभिमंत्र्य स्पृशेत्तनुम् ॥ २० ॥ आपोवेत्यभिमंत्र्याथ जलं तेनैव सेचयेत् ॥ ओमापोज्योतिरित्युक्त्वा मानस्तोकेति मंत्रतः ॥ २१ ॥ समद्य कमलद्वन्द्वं कुर्याकेकंतु पंचधा ॥ शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषु परमेश्वरि ॥२२॥ ईशानादिसमारभ्य सद्यान्तं पंचभिःक्रमात् ॥ उद्धूल्य कवलं पश्चात्प्रणवेनाभिषेचयेत् ॥ २३ ॥ सर्वांगं च ततो हस्तौ प्रक्षाल्यान्यत्समाहरेत् समर्च्य पूर्वत्तत्तु त्रिपुण्ड्रांस्तेन धारयेत् ॥ २४ ॥ त्रियायुषैरुयम्बकैश्च प्रणवेन शिवेन च ॥ शिरस्यथ ललाटे च वक्षसिस्कन्ध एव च ॥ २५ ॥

मन्त्रित कर शरीर स्पर्श करे ॥ २० ॥ " आपो वा इदं सर्वं " इस मन्त्रसे भस्ममें जल मिलावे ' ॐ आपो ज्योति० ' ऐसा कहकर, ' मानस्तोके ' इत्यादि मन्त्रोंसे ॥ २१ ॥ जल मिलाकर दो कमल मिलावे, उसके पांच भाग करके हे परमेश्वरि ! शिर; मुख, गुह्य, हृदय; चरण ॥२२॥ इन स्थानोंमें ईशानसे लेकर सद्योजात पांच मन्त्रोंतक उस कमलको शरीरमें लगाकर प्रणवसे अभिषेक करे ॥२३॥ फिर सम्पूर्ण अङ्ग और हाथोंको प्रक्षालन कर दूसरी भस्म ग्रहण करे उसे पूर्ववत् शरीरमें लगाय त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥ २४ ॥ " त्र्यायुषं जमदग्नेः "

इत्यादि, "त्र्यम्बकं यजामहे" इत्यादि, प्रणव अथवा शिवनामक मंत्रोंसे शिर, ललाट, वक्षस्थल, स्कन्ध, ॥२५॥ नाभि, दोनों भुजा संधि तथा पृष्ठ स्थानमें क्रमसे लगावे, फिर हाथ धोकर आचमन करे ॥२६॥ पंचाक्षर उच्चारण कर अपने गुरुकी भावना करे, आगे कहे हुए प्रकारसे छः प्राणायाम करे ॥२७॥ फिर आगे कही हुई विधिके अनुसार ऋषि आदिका स्मरण कर दहिने हाथमें जल लेकर बायें हाथसे नासिकादि द्वारको रोककर बारह बार प्रणवसे अभिमंत्रित करे॥२८॥ इस प्रकार जलको तीनबार अभिमंत्रित कर शिरपर छिडक फिर पान करे, और सावधान मन हो ओंकाररूपी ईश्वरका ध्यान करे ॥२९॥ सूर्यमण्डलमें स्थित संम्पूर्ण तेजोमय परम आठ भुजायुक्त चार मुख अर्द्धांगमें नारी अद्भुतरूप है ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण आश्चर्यके गुणोंसे

नामौ बाह्वोः संधिषु च पृष्ठे चैव यथाक्रमम्॥प्रक्षाल्य हस्तौ च ततो द्विराचम्य यथाविधि॥२६॥पंचीकरणमुच्चार्य मावयेत्स्वगुरुं बुधः॥वक्ष्यमाणप्रकारेण प्राणायामान्षडाचरेत् ॥२७॥ दक्षहस्तेन संगृह्य जलं वामेन पाणिना ॥ समाच्छाद्य द्विषड्वारं प्रणवेनाभिमंत्रयेत् ॥२८॥ एवं त्रिवारं संप्रोक्ष्य शिरसि त्रिः पिबेत्ततः ॥ समाहितेन मनसा ध्यायन्नोंकारमीश्वरम्॥२९॥सौरमण्डलमध्यस्थं सर्वतेजोमयं परम्॥अष्टबाहुं चतुर्वक्त्रमर्द्धनारीमकमद्भुतम्॥३०॥सर्वाश्चर्य्यगुणोपेतं सर्वालंकारशोभितम् ॥ एवं ध्यात्वाथ विधिवद्दद्यादर्घ्यत्रयं ततः ॥३१॥ अष्टोत्तरशतं जप्त्वा द्विषड्वारंतु तर्पयेत् ॥ पुनराचम्य विधिवत्प्राणायामत्रयं चरेत् ॥३२॥ पूजासदनमागच्छेन्मनसा संस्मरञ्छिवम्॥द्वारमासाद्य प्रक्षाल्य पादौ मौनी द्विराचमेत्॥३३॥प्रविशेद्विधिना तत्र दक्षपादपुरस्सरम्॥मण्डपान्तस्सुधीस्तत्र मण्डलं रचयेत्क्रमात्॥३४॥इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासाचारवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ ईश्वर उवाच ॥ परीक्ष्य विधिवद्भूमिं गंधवर्णरसादिभिः ॥ मनोभिलषिते तत्र वितानविततांबरे ॥ १ ॥

युक्त सम्पूर्ण अलंकारोंसे शोभित शिवका इस प्रकार विधिपूर्वक ध्यानकर तीन अर्घ्य दे ॥ ३१ ॥ एकसौ आठ मंत्र जपकर बारहबार तर्पण करे फिर आचमनकर तीन प्राणायाम करे ॥३२॥ और मौनहो विधिपूर्वक ऋषि आदिको स्मरण करे फिर पूजास्थानमें आकर मौन हो पांव धोय ॥ ३३ ॥ विधिपूर्वक दो आचमन करे, और पूजामण्डपमें जानेको प्रथम दक्षिण चरण उठावे पीछे मंडलकी रचना करे॥३४॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ शिवजी बोले, गन्धर्व रसादिसे पृथ्वीकी विधिपूर्वक परीक्षा करके मनोभिलषित मनोहर वितान (चंदोवा)

ताने ॥ १ ॥ और पृथ्वीको लीपकर दर्पणके समान चिकनी करदे, दो अरत्नी (हाथभर) के चार अस्र (चौकोन) स्थानके मण्डपकी कल्पना करके ॥ २ ॥ तालपत्र लेकर उसीके समान लम्बे और चौडे स्थानमें बराबर तेरह भाग करे ॥ ३ ॥ उस चतुरस्र मण्डलमें उस पत्रको रखकर पश्चिमकी ओर मुखकर बैठे उसके पूर्वभागमें कलावा लेकर ॥ ४ ॥ पूर्वसे दक्षिण उत्तरके क्रमसे चौदह डोरे रक्खे. हे देवेशि ! ऐसा करनेसे उस कोठेमें एकसौ उनहत्तर कोठे हो जायँगे ॥ ५ ॥ उन कोष्ठोंके बीचकी जो कर्णिका है उससे आठ कोष्ठकके बाहर उस मध्यकोष्ठका दलाष्टक होता है ॥ ६ ॥ श्वेतवर्णके दल श्यामाग्र कल्पना करे. पीली उसकी कर्णिका करके लाल और पीली भी रंगे ॥ ७ ॥ हे सुरेश्वरी !

सुप्रलिप्ते महीपृष्ठे दर्पणोदरसन्निभे ॥ अरत्नियुग्ममानेन चतुरस्रं प्रकल्पयेत्॥२॥तालपत्रं समादाय तत्समायामविस्तरम्॥तस्मिन्भागान्प्रकुर्वीत त्रयोदशसमां कलाम्॥३॥तत्पत्रं तत्र निःक्षिप्य पश्चिमाभिमुखः स्थितः॥तत्पूर्वभागे सुदृढं सूत्रमादाय रंजितम् ॥४॥ प्राक् प्रत्यग् दक्षिणोदक् च चतुर्दिशि निपातयेत् ॥ सूत्राणि देवदेवेशि नवषष्ट्युत्तरं शतम् ॥५॥ कोष्ठानि स्युस्ततस्तस्य मध्यकोष्ठं तु कर्णिका॥कोष्ठाष्टकं बहिस्तस्य दलाष्टकमिहोच्यते ॥६॥ दलानि श्वेतवर्णानि समग्राणि प्रकल्पयेत् ॥ पीतरूपां कर्णिकां च कृत्वा रक्तं च वृत्तकम्॥७॥वनभिद्दलदक्षं तु समारभ्य सुरेश्वरि॥रक्तकृष्णाः क्रमेणैव दलसन्धीन्विचित्रयेत् ॥८॥ कर्णिकायां लिखेद्यंत्रं प्रणवार्थप्रकाशकम्॥अधः पीठं समालिख्य श्रीकण्ठं च तदूर्ध्वतः ॥९॥ तदुपर्य्यमरेशं च महाकालं च मध्यतः ॥ तन्मस्तकस्थं दण्डं च तत ईश्वरमालिखेत् ॥१०॥ श्यामेन पीठं पीतेन श्रीकण्ठं च विचित्रयेत् ॥ अमरेशं महाकालं रक्तं कृष्णं च तौ क्रमात् ॥११॥ कुर्यात्सुधूम्रं दण्डं च धवलं चेश्वरं बुधः ॥ एवं यंत्रं समालिख्य रक्तं सद्येन वेष्टयेत् ॥१२॥

कमलके दलोंको लाल और पीला करके क्रमसे दंतसंधिको लाल और काली करे ॥ ८ ॥ कर्णिकामें प्रणवअर्थका प्रकाश यन्त्र लिखे, नीचे पीठ और ऊपर श्रीकण्ठ लिख ॥ ९ ॥ उसके ऊपर अमरेश मध्यमें महाकाल और महाकालके मस्तकके समीप दंड लिखकर फिर ईश्वरको लिखे ॥ १० ॥ श्यामरंगसे सिंहासन पीतरंगसे श्रीकंठको चित्रित करे, अमरेशको लाल और महाकालको कृष्णवर्ण ॥ ११ ॥ दंडको धूम्रवर्ण ईश्वरको धवल करे, इस प्रकार लालयंत्र लिखकर सद्योजात मंत्रसे आच्छादन करे ॥ १२ ॥

हे ईश्वरि ! उससे उठे हुए नादसे ईशानको भेद करे, आग्नेयादि क्रमसे उसकी बाह्यपंक्तिको ग्रहण करे॥१३॥ हे सुन्दरी ! उसके कोनको चार कोटोंका श्वेत और लाल धातुसे रंगकर ॥ १४ ॥ चार द्वार कल्पना करे, उसके इधर उधरके कोष्ठ पीतरंगसे परिपूर्ण करे ॥ १५ ॥ आग्नेय दिशाके कोष्ठके आगे चार अस्र (चौकोन) प्रमाणमें आठ दलका कमल लिखे इसकी लाल पखरीकर पीली कर्णिका बनावे ॥१६॥ मध्यमें बिन्दुयुक्त हकार लिखे फिर कमलके नैर्ऋतको ओरके कोष्ठमें चार अस्रके मध्यसे ॥ १७ ॥ आठ दलका कमल बनावे उसे लाल रंगे कर्णिका

तदुत्थेनैव नादेन विद्यादीशानमीश्वरि ॥ तद्बाह्यपंक्तीर्गृह्णीयादाग्नेयादिक्रमेण वै ॥ १३ ॥ कोष्ठानि कोणमागेषु चत्वार्येतानि सुन्दरि ॥ शुक्लेनापूर्य्य वर्णादि चतुष्कं रक्तधातुभिः ॥ १४ ॥ आपूर्य्य तानि चत्वारि द्वाराणि परिकल्पयेत् ॥ ततस्तत्पार्श्व योर्द्वद्वं पीतेनैव प्रपूरयेत् ॥ १५ ॥ आग्नेयकोष्ठमध्ये तु पीताभे चतुरस्रके ॥ अष्टपत्रं लिखेत्पद्मं रक्ताभं पीतकर्णिकम् ॥ १६ ॥ हकारं विलिखेन्मध्ये बिन्दुयुक्तं समाहितः ॥ पद्मस्य नैर्ऋते कोष्ठे चतुरस्रन्तदा लिखेत् ॥ १७ ॥ पद्ममष्टदलं रक्तं पीतकिंजल्ककर्णिकम् ॥ शवर्गस्य तृतीयन्तु षष्ठस्वरसमन्वितम् ॥ १८ ॥ चतुर्दशस्वरोपेतं बिन्दुनादविभूषितम् ॥ एतद्बीज वरं भद्रे पद्ममध्य समालिखेत् ॥ १९ ॥ पद्मस्येशानकोष्ठे तु तथा पद्मं समालिखेत् ॥ कवर्गस्य तृतीयं तु पंचमस्वरसंयुतम् ॥ २० ॥ विलिखेन्मध्यतस्तस्य बिन्दुकण्ठे स्वलंकृतम् ॥ तद्बाह्यपंक्तित्रितये पूर्वादिपरितः क्रमात् ॥ २१ ॥ कोष्ठानि पंच गृह्णीयाद्गिरिराजसुते शिवे ॥ मध्ये तु कर्णिकां कुर्यात्पीतां रक्तं च वृत्तकम् ॥ २२ ॥

पीली करे, शवर्गका तीसरा अक्षर (स) छठे स्वरसंयुक्त (सू) लिखे ॥१८॥ चौदहवां स्वर (औ) बिन्दुनादसे युक्त (औं) यह बीज है. हे भद्रे ! इसीको पद्ममध्यमें लिखे ॥१९॥ इसी प्रकार कमलके ईशान कोष्ठमें लिखे कवर्गका तीसरा अक्षर (ग) पंचमस्वर उकारसहित (गु) लिखे॥२०॥ उस ईशानदिशाके कमलके कण्ठभागमें बिन्दु लिखे, इसकी तीन जो बाहरपंक्ति हैं उनमें पूर्वदिशाके क्रमसे ॥ २१ ॥ हे पार्वति ! पांचकोष्ठ करके उनमें मध्यकोष्ठको पीला करे, और शेषवृत्तको रक्तवर्ण करे ॥ २२ ॥ विधिका जाननेवाला कमलदलोंको लाल बनावे, और दलके

बाहर छिद्रोंको कृष्णवर्णसे रँगे ॥ २३ ॥ और अग्निदिशाके चार कोष्ठ शुक्ल रंगसे पूर्ण करे पूर्वकी ओर छः बिन्दुके सहित षट्कोण कृष्ण वर्णसे लिखे ॥२४॥ दक्षिणकी ओरसे उत्तरतक तीनकोनोंमें लालरंग और श्वेतकान्ति युक्त अर्द्धचन्द्राकार पीतवर्ण पश्चिम कोनमें रंगे ॥२५॥ चारोंबीजोंको क्रमसे नौकोनके प्रमाणसे क्रमसे लिखे, पूर्वकी ओर शुभ्रबिन्दु लिख दक्षिणमें कृष्णवर्ण ॥ २६ ॥ उत्तरकी ओर रक्तवर्ण उकार मकार पश्चिमकी ओर लिखे अकारको पीतवर्ण करे इस प्रकार चारोंवर्ण करके ॥ २७ ॥ हे सुन्दरी ! नीचेकी पंक्तिसे प्रारम्भ करके सब

दलानि रक्तवर्णानि कल्पयेत्कल्पवित्तमः॥दलबाह्ये तु कृष्णेन रंध्राणि परिपूरयेत्॥२३॥आग्नेयादीनि चत्वारि शुक्लेनैव प्रपूरयेत्॥ पूर्वे षड्बिन्दुसहितं षट्कोणं कृष्णमालिखेत् ॥ २४ ॥ रक्तवर्णं दक्षिणतस्त्रिकोणं चोत्तरे ततः ॥ श्वेताभमर्द्धचन्द्रं च पीतवर्णं च पश्चिमे ॥२५॥ चतुरस्रं क्रमात्तेषु लिखेद्बीजचतुष्टयम् ॥ पूर्वे बिन्दुं समालिख्य शुभ्रं कृष्णं तु दक्षिणे ॥ २६ ॥ उकारमुत्तरे रक्तं मकारं पश्चिमे ततः ॥अकारं पीतमेवं तु कृत्वा वर्णचतुष्टयम् ॥२७॥ सर्वोर्द्ध्वपंक्त्यधः पंक्तौसमारभ्य चसुन्दरि ॥ पीतं श्वेतं च रक्तं च कृष्णं चेतिचतुष्टयम् ॥२८॥ तदधो धवलं श्यामं पीतं रक्तं चतुष्टयम् ॥ अधस्त्रिकोणके रक्तं शुक्लं पीतं वरानने ॥ २९ ॥ एवन्दक्षिणमारभ्य कुर्यात्सोमान्तमीश्वरि ॥ तद्बाह्यपंक्तौ पूर्वादिमध्यमान्तं विचित्रयेत् ॥३०॥ पीतं रक्तं च कृष्णं च श्यामं श्वेतं च पीतकम् ॥ आग्नेय्यादि समारभ्य रक्तं श्यामं सितं प्रिये॥३१॥ रक्तं कृष्णं च रक्तं च षट्कमेवं प्रकीर्तितम् ॥ दक्षिणाद्यं महेशानि पूर्वावधि समीरितम् ॥३२॥ नैर्ऋताद्यन्तु विज्ञेयमाग्नेयावधि चेश्वरि ॥ वारुणं तु समारभ्य दक्षिणावधि चेरितम् ॥३३॥

ऊपरकी पंक्ति चारों पीली, श्वेत, लाल और कृष्णवर्णकी करे ॥ २८ ॥ उसके नीचे श्वेत, श्याम, पीत, रक्त, रंगसे रंगे. नीचेके त्रिकोणमें लाल, शुक्ल और पीतरंग करे ॥ २९ ॥ हे ईश्वरी ! इस प्रकार दक्षिणसे प्रारम्भ करके सोमान्तनक करे, उसकी बाह्यपंक्तिमें पूर्वादि मध्यरात्रमें विचित्र करे ॥३०॥ पीला, लाल, कृष्ण, श्याम, श्वेत, पीत, रंग आग्नेयदिशासे प्रारम्भ करे. रक्त, श्याम, श्वेत ॥३१॥ और लाल कृष्ण लाल यह छः रंग भरे. हे महेशानि ! यह दक्षिणसे आदि लेकर पूर्वतक करना चाहिये ॥३२॥ हे ईश्वरी नैर्ऋत दिशासे लेकर आग्नेय दिशा पर्यन्त

और वरुणदिशासे दक्षिण दिशापर्यन्त ॥ ३३ ॥ हे महादेवि ! वायव्यसे लेकर नैर्ऋत दिशातक हे परमेश्वरी ! पूर्वादिसे पश्चिम ॥ ३४ ॥ और ईशानसे लेकर वायव्यतक यह करे हे पार्वति ! यह मैने तुमसे मण्डलकी विधि कही ॥ ३५ ॥ मण्डल लिखे पीछे ब्रह्ममें तत्पर हो सूर्यकी पूजा करे ॥ ३६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ शिवजी बोले, दक्षिणमण्डलमें सुन्दर व्याघ्रचर्म बिछाकर अस्त्र मंत्रसे शुद्ध जलसे प्रोक्षणकरे ॥ १ ॥ पहले प्रणव फिर आधारका उद्धार करे पीछे शक्ति कमलका उद्धार

वायव्याद्यं महादेवि नैर्ऋतावधि चेरितम्॥सोमाद्यं परमेशानि वारुणावधि चेरितम्॥३४॥ईशानाद्यं तु विज्ञेयं वायव्यावधि चाम्बिके ॥ इत्युक्तो मण्डलविधिर्मया तुभ्यं च पार्वति॥३५॥एवं मण्डलमालिख्य नियतात्मा यतिस्स्वतः॥सौरपूजां प्रकुर्वीत सहि तद्धस्तुतत्परः ॥३६॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासमण्डलविधिवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥ ईश्वर उवाच॥दक्षिणे मंडलस्याथ वैयाघ्रं चर्मशोभनम्॥आस्तीर्य्य शुद्धतोयेन प्रोक्षयेदस्त्रमंत्रतः॥१॥प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य पश्चादाधारमुद्धरेत् ॥ ततपश्चाच्छक्तिकमलं चतुर्थ्यंतं नमोन्तकम्॥२॥मनुमेवं समुच्चार्य स्थित्वा तस्मिन्नुदङ्मुखः॥प्राणानायम्य विधिवत्प्रणवोच्चारपूर्वकम् ॥३॥ अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैर्भस्म संधारयेत्ततः॥शिरसि श्रीगुरुं नत्वा मण्डलं रचयेत्पुनः॥४॥त्रिकोणवृत्तं बाह्ये तु चतुरस्रात्मकं क्रमात्॥अभ्यर्च्योमिति साधारं स्थाप्य शंखं समर्चयेत्॥५॥आपूर्य शुद्धतोयेन प्रणवेन सुगंधिना ॥ अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैः प्रणवेन च सप्तधा ॥६॥ अभिमंत्र्य ततस्तस्मिन्धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ शंखमुद्रां च तेनैव प्रोक्षयेदस्त्रमंत्रतः ॥७॥

करे यह सब चतुर्थी विभक्तिके रहित अन्तमें 'नमः' लगाकर उच्चारण करे ॥ २ ॥ 'शक्तिकमलाय नमः, इत्यादि इसको उच्चारण कर ॥ ३ ॥ 'अग्निरिति भस्म, इत्यादि मंत्रोंसे भस्मको धारण करे, गुरुको शिरसे नमस्कार कर मंडलकी रचना करे ॥ ४ ॥ बाहरकी ओर त्रिकोण वृत्त क्रमसे चार अस्त्र (चौकोन) प्रमाण करे (ओम् अर्चन) इस मंत्रसे पीठको धारण कर शंखकी पूजाकरे ॥ ५ ॥ प्रणवसे शुद्ध सुगन्धित जलको अभिमंत्रित कर सातवार गंध पुष्पादिसे ओंकारसे पूजन करे ॥ ६ ॥ इस प्रकार अभिमंत्रित कर धेनुमुद्रा दिखावे । इसी प्रकार

अस्त्रमंत्रसे शंखमुद्रा दिखावे ॥ ७ ॥ स्वयं आत्माको गन्ध पुष्प पूजाकी सामग्रीसे शुद्धकर तीन प्राणायाम कर ऋषि आदिका स्मरण करे ॥ ८ ॥ इस श्रीसौरमंत्रका देवभाग ऋषि गायत्री छंद सूर्य महेश्वर देवता हैं ॥ ९ ॥ 'ह्रां ह्रीं ह्रूं' इत्यादि बीज मंत्रोंसे छहों अंगोंमें न्यास कर फिर अस्त्रमंत्रसे अग्निकोणके कमलको प्रोक्षण करे ॥ १० ॥ उस आग्नेयदिशाके कमलको विद्वान् महाउज्ज्वलता पूर्वक सारवस्तुसे आराधना कर पूर्वादि दिशामें पूजन करे ॥ ११ ॥ कालाग्नि रुद्र आधार शक्ति अनन्त पृथ्वी रत्नद्वीप ॥ १२ ॥ संकल्प वृक्षका बगीचा मणिमय गृह और चरणोंमें मन लगाय रक्त पीठका पूजन करे ॥ १३ ॥ धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य इन चारोंको और अधर्म अज्ञानादिको

आत्मानं गंधपुष्पादिपूजोपकरणानि च॥प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिकमथाचरेत् ॥८॥ अस्य श्रीसौरमंत्रस्य देवभाग ऋषि स्ततः॥छन्दो गायत्रमित्युक्तं देवस्सूर्यो महेश्वरः ॥९॥ देवता स्यात्षडंगानि ह्रामित्यादीनि विन्यसेत्॥ततस्संप्रोक्षयेत्पद्ममस्त्रेणाग्नेरगोचरम् ॥१०॥ तस्मिन्समर्चयेद्विद्वान् प्रभूतां विमलामपि ॥ सारां [illegible]थ समाराध्य पूर्वादिपरतः क्रमात् ॥११॥ अथ कालाग्निरुद्रं च शक्तिमाधारसंज्ञिताम् ॥ अनन्तं पृथिवीं चैव रत्नद्वीपं तथैव च॥१२॥संकल्पवृक्षोद्यानं च गृहं मणिमयं ततः॥ रक्तपीठं च संपूज्य पादेषु प्रागुपक्रमात्॥१३॥धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च चतुष्टयम्॥अधर्माद्यग्निकोणादिकोणेषु च समर्चयेत् ॥१४॥ मायाधश्छदनं पश्चाद्विद्योर्ध्वच्छदनं ततः॥सत्त्वं रजस्तमश्चैव समभ्यर्च्य यथाक्रमम् ॥१५॥ पूर्वादिदिक्षु मध्ये च दीप्तां सूक्ष्मां जयामपि॥भद्रां विभूतिं विमलाममोघां वैद्युतामपि॥१६॥सर्वतोमुखसंज्ञां च कन्दनालं तथैव च ॥ सुषिरं च ततस्तंतु कंटकांस्तदनंतरम् ॥ १७ ॥ मूलच्छदनकिंजल्कप्रकाशसकलात्मनः ॥ पंचग्रंथिकर्णिकां च दलानि तदनंतरम् ॥ १८ ॥

अग्निकोणके कोनेमें पूजन करे ॥ १४ ॥ मायासे नीचेके भागका आच्छादन और विद्यासे ऊर्ध्वभागका आच्छादन कर और रज तम इनका विधिपूर्वक पूजन करे ॥ १५ ॥ पूर्वादि दिशाओंके मध्यमें दीप्तिमान सूक्ष्म जयदायक भद्रानाम उज्ज्वल सफल विद्युत संबन्धी प्रकाशयुक्त है उसको ॥ १६ ॥ तथा सब ओर मुखवाली संज्ञा कंदनाल सुषिर (छिद्र) तंतु कंटका ॥ १७ ॥ मूलसहित किंजल्क संपूर्ण आत्माका प्रकाश पंचग्रन्थीकी कर्णिका और इसके पीछे दल ॥ १८ ॥

केसरसे ब्रह्मा विष्णु रुद्र अपने आत्मा तथा अन्तरात्माको भी पूजनकर ज्ञानस्वरूप परमात्मामें आत्माद्वारा पूजन करे ॥१९॥ इस प्रकार पूजन करके सौरनामक योगपीठकी पूजा करे, सिंहासनके ऊपर मूलमंत्रसे मूर्ति स्थापन करे ॥२०॥ फिर मूलमंत्रसेही मूलाधारमें प्राणरोक आसनसे बैठ पिंगला नाडीके प्रभावसे आधारशक्तिको उठावे ॥ २१ ॥ मण्डलमें स्थित प्रकाशमान सिंदूरवत् अरुण देहधारी पार्वतीसहित भगवान्‌को पुष्पांजलि करे ॥२२॥ जो देव रुद्राक्षकी माला पहिरे पाश खट्वांग कपाल अंकुश कमल शंख धारे चार और बारह ॥२३॥ नेत्रोंसे शोभित हैं उनके हृदयकमलके मध्यमें प्रथम प्रणवका उद्धार कर पीछे ह्रां ह्रीं सः ॥२४॥ फिर प्रकाश शक्तिके सहित सूर्य्यको आवाहन करता हूँ यह

केशरान् ब्रह्मविष्णू च रुद्रमात्मानमेव च ॥ अन्तरात्मानमपि च ज्ञानात्मपरमात्मनि ॥१९॥ सम्पूज्य पश्चात्सौराख्यं योगपीठं समर्चयेत् ॥ पीठोपरि समाकल्प्य मूर्त्तिं मूलेन मूलवित् ॥२०॥ निरुद्धप्राण आसीनो मूलेनैव स्वमूलतः॥शक्तिमुत्थाप्य तत्तेजः प्रभावात्पिंगलाध्वना ॥ २१ ॥ पुष्पांजलौ निर्गमय्य मण्डलस्थस्य भास्वतः ॥ सिन्दूरारुणदेहस्य वामार्द्धदयितस्य च ॥२२॥ अक्षस्रक्पाशखट्वांगकपालांकुशपंकजम् ॥ शंखं चक्रं दधानस्य चतुर्वक्त्रस्य लोचनैः ॥२३॥ राजितस्य द्वादशभिस्तस्य हृत्पंकजोदरे ॥ प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य ह्रांह्रींसस्तदनन्तरम् ॥२४॥ प्रकाशशक्तिसहितं मार्तण्डं चततः परम्॥ आवाहयामि नम इत्यावाह्या वाहनाख्यया ॥२५॥ मुद्रया स्थापनाद्याश्च मुद्रास्संदर्शयेत्ततः॥विन्यस्यांगानि ह्रांह्रींह्रूंमंतेन मनुना ततः॥२६॥पंचोपचारान्संकल्प्य मूलेनाभ्यर्चयेत्त्रिधा ॥ केशरेषु च पद्मस्य षडंगानि महेश्वरि॥२७॥वह्नीशरक्षोवायूनां परितः क्रमतः सुधीः ॥ द्वितीयावरणे पूज्याश्चतस्रो मूर्तयः क्रमात् ॥ २८ ॥ पूर्वाद्युत्तरपर्यंतं दलमूलेषु पार्वति ॥ आदित्यो भास्करो भानू रविश्चेत्यनुपूर्वशः ॥२९॥

कह 'नमः' लगाकर आवाहन करे ॥२५॥ मुद्रा आदिक स्थापन करके फिर मुद्राको दिखावे और अंगोंमें 'ह्रां ह्रीं' ह्रूं इन बीजोंसे अन्तके मंन्त्रसे न्यास करे ॥ २६ ॥ पंच उपचारकर संकल्प करके मूलमंत्रसे तीन बार पूजन करे । हे महेश्वरी ! पद्मके केसरोंमें और छहों अंगोंमें ॥ २७ ॥ अग्नि ईश्वर राक्षस वायु आदि चारोंकी मूर्तिको दूसरे आवरणमें क्रमसे पूजन करे ॥ २८ ॥ हे पार्वति ! पूर्वसे आदि लेकर उत्तर तक कमलदलके मूलमें आदित्य भास्करभानु रविको क्रमानुसार ॥ २९ ॥

सूर्य ब्रह्मा रुद्र विष्णु और ईशानादिको तीसरे आवरणमें पूजे ॥३०॥ सोम मंगल बुध महाबुद्धिमान् बृहस्पति तेजस्वी शुक्र शनैश्चर भयंकर राहु केतु उनको पूर्वादिदलके मध्यसे चारों ओर पूजे ॥ ३१ ॥ अथवा दूसरे आवरणमें बारह आदित्योंका पूजन करे, तीसरे आवरणमें बारह राशियोंका पूजन करे ॥ ३२॥ सात समुद्र गंगाजीको इसके बाहर तथा देवता ऋषि गंधर्व पन्नग अप्सराओंके गण ॥ ३३ ॥ ग्रामणी यक्ष यातुधान (राक्षस) सप्त छन्दमें वालखिल्य ऋषिको लिखकर पूजन करे ॥३४॥ इस प्रकार तीन आवरणवाले दिवाकर देवको पूजन करके पीछे सावधानीसे चतुरस्र (चौकोन)

अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चेति पुनः प्रिये ॥ ईशानादिषु संपूज्यास्तृतीयावरणे पुनः ॥ ३० ॥ सोमं कुजं बुधं जीवं कविं मंदं तम स्तमः ॥ समंततो यजेदेतान्पूर्वादिदलमध्यतः ॥ ३१ ॥ अथवा द्वादशादित्यान्द्वितीयावरणे यजेत् ॥ तृतीयावरणे चैव राशीर्द्वादश पूजयेत् ॥ ३२ ॥ सप्तसागरगंगाश्च बहिरस्य समंततः ॥ ऋषीन्देवांश्च गंधर्वान्पन्नगानप्सरोगणान् ॥ ३३ ॥ ग्रामण्यश्च तथा यक्षान्या तुधानांस्तथा हयान् ॥ सप्तच्छन्दोमयांश्चैव बालखिल्यांश्च पूजयेत् ॥ ३४ ॥ एवं त्र्यावरणं देवं सम भ्यर्च्य दिवाकरम् ॥ विरच्य मंडलं पश्चाच्चतुरस्रं समाहितः ॥ ३५ ॥ स्थाप्य साधारकं ताम्रपात्रं प्रस्थोदविस्तृतम् ॥ पूरयित्वा जलैः शुद्धैर्वासितैः कुसुमादिभिः ॥ ३६ ॥ अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैर्जानुभ्यामवनीं गतः ॥ अर्घ्यपात्रं समादाय भूमध्यान्तं समु द्धरेत् ॥ ३७ ॥ ततो ब्रूयादिमं मंत्रं सावित्रं सर्वसिद्धिदम् ॥ शृणु तच्च महादेवि भक्तिमुक्तिप्रदं सदा ॥ ३८ ॥ सिन्दूरवर्णाय सुमण्डलाय नमोऽस्तु वज्राभरणाय तुभ्यम् ॥ पद्म भनेत्राय सुपंकजाय ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय ॥ ३९ ॥

मंडल लिखे ॥ ३५॥ जिसमें सेरभर जल आजाय इस प्रकारका एक ताम्रपात्र स्थापन करके कुंकुमादि वस्तुओंको सुगंधितकर उसमें जल भरे ॥ ३६ ॥ गन्ध पुष्पादिकोंसे पूजनकर जंघाओंके बल पृथ्वीमें बैठ अर्घ्यपात्र लेकर भौंहोंके मध्यतक लेजाकर ॥ ३७॥ पीछे सूर्यका यह मन्त्र जो भुक्ति मुक्ति सिद्धिका देनेवाला है पढकर अर्घ्य दे ॥ ३८ ॥ सिंदूरके समान वर्णवाले सुन्दर मंडलसे शोभित हीरे आदिके आभूषणवाले आपको नमस्कार

है. कमलके समान नेत्रवाले, पंकजभू (ब्रह्मा) इन्द्र और नारायणके भी कारण आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ लाल रंगके चूर्णके समान सुन्दर रंगकी जल माला कुंकुम कुश पुष्प यह सब सुवर्णके पात्रमें लेकर मैं अर्घ्य देता हूं हे भगवन् ! आप प्रसन्न हूजिये ॥ ४० ॥ ऐसा कहकर सूर्यमूर्त्ति भगवान्को अर्घ्य दे और इस अगले मन्त्रको पढकर सावधानीसे नमस्कार करे ॥ ४१ ॥ पार्वती गणोंके सहित संसारके आदि कारण शिवजीको नमस्कार है, रुद्र विष्णु ब्रह्मा सूर्य्य मूर्त्तिरूप आपको नमस्कार है ॥ ४२ ॥ ऐसा कह नमस्कार कर अपने आसन पर स्थित हो ऋषि आदिको स्मरण कर हाथोंको जलसें शुद्धकर ॥ ४३ ॥ पूर्वोक्त विधानसे फिर भस्मको धारण करे, शिव भक्तिके

सरक्तचूर्णं ससुवर्णतोयं स्रक्कुंकुमाढ्यं सकुशं सपुष्पम् ॥ प्रदत्तमादाय सहेमपात्रं प्रशस्तमर्घ्यं भगवन्प्रसीद ॥ ४० ॥ एव मुक्त्वा ततो दत्त्वा तदर्घ्यं सूर्यमूर्त्तये ॥ नमस्कुर्यादिमं मंत्रं पठित्वा सुसमाहितः ॥ ४१ ॥ नमश्शिवाय साम्बाय सगणायादिहेतवे ॥ रुद्रायविष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणे च त्रिमूर्तये ॥ ४२ ॥ एवमुक्त्वा नमस्कृत्य स्वासने समवस्थितः ॥ ऋष्यादिकं पुनः कृत्वा करं संशोध्य वारिणा ॥ ४३ ॥ पुनश्च भस्म संधार्य पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ॥ न्यासजातम्प्रकुर्वीत शिवभावविवृद्धये ॥ ४४ ॥ पंचोपचारैस्संपूज्यशिरसा श्रीगुरुम्बुधः ॥ प्रणवं श्रीचतुर्थ्यंतं नमोंतं प्रणमेत्ततः ॥ ४५ ॥ पंचात्मकं बिन्दुयुतं पंचमस्वरसंयुतम् ॥ तदेव बिन्दुसहितं पंचमस्वरवर्जितम् ॥ ४६ ॥ पंचमस्वरसंयुक्तं मंत्रीशं च सबिन्दुकम् ॥ उद्धृत्य बिन्दुसहितं संवर्तकमथोद्धरेत् ॥ ४७ ॥ एतैरेवं क्रमाद्बीजैरुद्धृतैः प्रणमेद्बुधः ॥ भुजयोरूरुयुग्मे च गुरुं गणपतिन्तथा ॥ ४८ ॥

निमित्त अंगन्यास करन्यासादि करे ॥ ४४ ॥ और बुद्धिमान्को उचित है कि, शिरसे नम्र हो गुरुको पंचोपचारसे पूजन करे ओं श्रीपूर्वक अन्तमें नमः उच्चारण कर चतुर्थी अन्तमें लगाय (ॐ श्रीगुरवे नमः) इस प्रकार उच्चारण करे ॥ ४५ ॥ पंचवर्णात्मक बिन्दुयुक्त पंचमस्वर उकारसहित और वहीं बिन्दु सहित पंचम स्वरसे रहित ॥ ४६ ॥ पंचम स्वरके सहित बिन्दु सहित मन्त्रीशको उद्धार करके बिन्दु सहित क्षकारका उच्चारण करे ॥ ४७ ॥ क्रमसे इन बीजोंको उद्धार कर क्रमसे भुजा और दोनों जंघाओंमें देवताओंको प्रणाम ध्यान करे

भुजामें गुरु और गणपतिको और दोनों उरूमें ॥४८॥ दुर्गा और क्षेत्रपालको प्रणाम करे, हाथ जोड ॐ अस्त्रायफट् यह उच्चारणकर षडंगन्यास करके हाथोंको छः बार शुद्ध करे ॥४९॥ (अपसर्पन्तु) यह मन्त्र उच्चारणकर फिर प्रणव उच्चारणकर अस्त्रायफट् कहकर पृथ्वीमें तीन पार्ष्णि घात (ताडन) करके ॥५०॥ भूमिके विघ्नोंको दूर करके और तीनताली बजाकर अन्तरिक्षमें प्राप्त हुए विघ्नोंको देखकर तथा स्वर्गके विघ्नोंको देखकर दूर करे ॥५१॥ प्राण रोककर स्थित हो हंसमंत्रका उच्चारण करता हुआ हृदयमें स्थित जीव चैतन्यको सुषुम्णानाडीद्वारा परमेश्वरसे मिलावे ॥ ५२ ॥ द्वादश कमल हृदयमें स्थित उज्ज्वल सहस्र दलवाले महापद्ममें चिदात्मक चन्द्रमण्डलमें स्थित चिद्रूप परमेश्वरका ध्यान करे ॥५३॥

दुर्गां च क्षेत्रपालं च बद्धांजलिपुटः स्थितः॥ओमस्त्राय फडित्युक्त्वा करौ संशोध्य षट् क्रमात् ॥ ४९ ॥ अपसर्प्पन्त्विति प्रोच्य प्रणवं तदनंतरम्॥अस्त्राय फडिति प्रोच्य पार्ष्णिघातत्रयेण तु ॥५०॥ उद्धृत्य विघ्नान्भूयिष्ठान्कर तालत्रयेण तु॥अन्तरिक्षगतान्दृष्ट्वा विलोक्य दिवि संस्थितान् ॥५१॥ निरुद्धप्राण आसीनो हंसमंत्रमनुस्मरन् ॥ हृदिस्थं जीवचैतन्यं ब्रह्मनाड्या समानयेत् ॥५२॥ द्वादशांतस्स्थविशदे सहस्रारमहाम्बुजे ॥ चिच्चन्द्रमण्डलान्तस्थं चिद्रूपं परमेश्वरम् ॥ ५३ ॥ शोषदाहप्लुवान्कुर्या द्रेचकादि क्रमेण तु ॥ सषोडशचतुष्पष्टिद्वात्रिंशद्गणनायुतैः ॥५४॥ वाय्वग्निसलिलाद्यैस्तैस्स्तवेदाद्यैरनुक्रमात् ॥ प्राणानायम्य मूलस्थां कुण्डलीं ब्रह्मरंध्रगाम् ॥५५॥ आनीय द्वादशांतस्थसहस्राराम्बुजोदरे ॥ चिच्चन्द्रमण्डलोद्भूतपरमामृतधारया ॥५६॥ संसिक्तायां तनौ भूय श्शुद्धदेहस्सुभावनः ॥ सोहमित्यवतीर्याथ स्वात्मानं हृदयाम्बुजे ॥ ५७ ॥

अब भूतिशुद्धि कहते हैं--रेचक आदिके क्रमसे शोष और दाह दूर करके सोलह चौसठ अथवा बत्तीस अकारादि वर्णोंसे ॥५४॥ वायु, अग्नि, जलके क्रमसे अकारादि वर्णवाले अपने वेदमंत्रोंसे सावधान हो विधिपूर्वक प्राणायाम करे, और ब्रह्मरंध्रतक जानेवाली कुण्डलीको जगावे ॥५५॥ बारह कमल और सहस्र कमलमें उसको लेजाय, जहां चन्द्रमण्डलसे अमृतकी धारा निकलती है ॥ ५६ ॥ उसमें शरीरको न्हवाकर देह शुद्धकर अपने हृदय कमलमें वह मैं हूं ऐसी भावना करे ॥ ५७ ॥

आत्मासे ही आत्माको अमृतीकरण करके संसृति धारसे विधिपूर्वक प्राणप्रतिष्ठा करे और सावधान रहे ॥५८॥ इस प्रकार योगी एकाग्र मनसे अन्तकी मात्राको प्रणवसे संपुटित करके उस पूर्वोक्त मात्राको बहिर्भागमें स्थित करे ॥५९॥ फिर प्राणदृष्ट्यादिकोंको रोककर चित्तमें शंकरको स्मरण करते भए मात्सर्यको छोडकर न्यास करे ॥ ६० ॥ फिर ऋषि आदिका स्मरण कर प्रणाम करे, प्रणवका ब्रह्मा ऋषि देवी गायत्री छंद सदाशिव परमात्मा देवता है ॥ ६१ ॥ अकार बीज, उकार शक्ति है, मकार कीलक है, मोक्षके अर्थ प्रयोग किया जाता है ॥ ६२ ॥ दोनों अँगूठे लेकर हथेली तक शुद्धकर हे देवेशि ! फिर ओम् ऐसा कहकर करन्यास करे ॥ ६३ ॥ दक्षिण हस्तके अँगूठेसे प्रारम्भ

आत्मन्यावेश्य चात्मानममृतंसृतिधारया॥ प्राणप्रतिष्ठां विधिवत्कुर्यादत्र समाहितः॥५८॥एकाग्रमानसो योगी विमृश्यात्तां च मातृकाम्॥ पुटितांप्रणवेनाथ न्यसेद्बाह्ये च मातृकाम् ॥५९॥ पुनश्च संयतप्राणः कुर्याद्दृष्ट्यादिकं बुधः ॥ शंकरं संस्मरंश्चित्ते संन्यसेच्च विमत्सरः॥६०॥प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा देवि गायत्रमीरितम् ॥ छन्दोत्र देवताहं वै परमात्मा सदाशिवः॥६१॥अकारो बीजमाख्यातमुकारः शक्तिरुच्यते ॥ मकारः कीलकं प्रोक्तं मोक्षार्थे विनियुज्यते ॥६२॥ अंगुष्ठद्वयमारभ्यतलांतं परिमार्जयेत् ॥ ओमित्युक्त्वाथ देवेशि करन्यासं समारभेत्॥६३॥दक्षहस्तस्थितांगुष्ठं समारभ्य यथाक्रमम्॥ वामहस्तकनिष्ठांतं विन्यसेत्पूर्ववत्क्रमात् ॥६४॥ अकारमप्युकारं च मकारं बिन्दुसंयुतम् ॥ नमोन्तं प्रोच्य सर्वत्र हृदयादौ न्यसेदथ ॥६५॥ अकारं पूर्वमुद्धृत्य ब्रह्मात्मानमथाचरेत्॥ङेंतं नमोंतं हृदये विनियुज्यात्तथा पुनः॥६६॥उकारं विष्णुसहितं शिरोदेशे प्रविन्यसेत्॥मकारं रुद्रसहितं शिखायान्तु प्रविन्यसेत् ॥ ६७ ॥ एवमुक्त्वा मुनिर्मंत्री कवचं नेत्रमस्तके ॥ विन्यसेद्देवदेवेशि सावधानेन चेतसा ॥ ६८ ॥

करे बायें हाथकी कनिष्ठिका तक दक्षिण हस्तकी तर्जनी आदि तो क्रमसे न्यास करे ॥ ६४ ॥ ओंकार उकार और बिन्दु सहित मकार सबमें नमः अन्तमें लगाकर हृदयमें न्यास करे ॥६५॥ पहले अकारका उद्धार कर ब्रह्म आत्मा उच्चारण करे " अं ब्रह्मात्मने नमः " इस प्रकार चतुर्थीके एक वचनसे अन्तमें नमः लगाकर हृदयमें स्पर्श करे ॥ ६६ ॥ और उकारका विष्णु सहित ध्यान करके शिरदेशमें विनययोग करे । रुद्र इन्द्रसहित मकारको शिखादेशमें ॥ ६७ ॥ इस प्रकार " अं ब्रह्मात्मने नमः " इत्यादि क्रमसे कहकर कवचादिका विधान

भुजामें गुरु और गणपतिको और दोनों उरूमें ॥४८॥ दुर्गा और क्षेत्रपालको प्रणाम करे, हाथ जोड ॐ अस्त्रायफट् यह उच्चारणकर षडंगन्यास करके हाथोंको छः बार शुद्ध करे ॥४९॥ (अपसर्पन्तु) यह मन्त्र उच्चारणकर फिर प्रणव उच्चारणकर अस्त्रायफट् कहकर पृथ्वीमें तीन पार्ष्णि घात (ताडन) करके ॥५०॥ भूमिके विघ्नोंको दूर करके और तीनताली बजाकर अन्तरिक्षमें प्राप्त हुए विघ्नोंको देखकर तथा स्वर्गके विघ्नोंको देखकर दूर करे ॥५१॥ प्राण रोककर स्थित हो हंसमंत्रका उच्चारण करता हुआ हृदयमें स्थित जीव चैतन्यको सुषुम्णानाडीद्वारा परमेश्वरसे मिलावे ॥ ५२ ॥ द्वादश कमल हृदयमें स्थित उज्ज्वल सहस्र दलवाले महापद्ममें चिदात्मक चन्द्रमण्डलमें स्थित चिद्रूप परमेश्वरका ध्यान करे ॥५३॥

दुर्गां च क्षेत्रपालं च बद्धांजलिपुटः स्थितः॥ओमस्त्राय फडित्युक्त्वा करौ संशोध्य षट् क्रमात् ॥ ४९ ॥ अपसर्प्पन्त्विति प्रोच्य प्रणवं तदनंतरम्॥अस्त्राय फडिति प्रोच्य पार्ष्णिघातत्रयेण तु ॥५०॥ उद्धृत्य विघ्नान्भूयिष्ठान्कर तालत्रयेण तु॥अन्तरिक्षगतान्दृष्ट्वा विलोक्य दिवि संस्थितान् ॥५१॥ निरुद्धप्राण आसीनो हंसमंत्रमनुस्मरन् ॥ हृदिस्थं जीवचैतन्यं ब्रह्मनाड्या समानयेत् ॥५२॥ द्वादशांतस्स्थविशदे सहस्रारमहाम्बुजे ॥ चिच्चन्द्रमण्डलान्तस्थं चिद्रूपं परमेश्वरम् ॥ ५३ ॥ शोषदाहप्लुवान्कुर्या द्रेचकादि क्रमेण तु ॥ सषोडशचतुष्पष्टिद्वात्रिंशद्गणनायुतैः ॥५४॥ वाय्वग्निसलिलाद्यैस्तैस्तवेदाद्यैरनुक्रमात् ॥ प्राणानायम्य मूलस्थां कुण्डलीं ब्रह्मरंध्रगाम् ॥५५॥ आनीय द्वादशांतस्थसहस्राराम्बुजोदरे ॥ चिच्चन्द्रमण्डलोद्भूतपरमामृतधारया ॥५६॥ संसिक्तायां तनौ भूय श्शुद्धदेहस्सुभावनः ॥ सोहमित्यवतीर्याथ स्वात्मानं हृदयाम्बुजे ॥ ५७ ॥

अब भूतिशुद्धि कहते हैं--रेचक आदिके क्रमसे शोष और दाह दूर करके सोलह चौसठ अथवा बत्तीस अकारादि वर्णोंसे ॥५४॥ वायु, अग्नि, जलके क्रमसे अकारादि वर्णवाले अपने वेदमंत्रोंसे सावधान हो विधिपूर्वक प्राणायाम करे, और ब्रह्मरंध्रतक जानेवाली कुण्डलीको जगावे ॥५५॥ बारह कमल और सहस्र कमलमें उसको लेजाय, जहां चन्द्रमण्डलसे अमृतकी धारा निकलती है ॥ ५६ ॥ उसमें शरीरको न्हवाकर देह शुद्धकर अपने हृदय कमलमें वह मैं हूं ऐसी भावना करे ॥ ५७ ॥

आत्मासे ही आत्माको अमृतीकरण करके संसृति धारसे विधिपूर्वक प्राणप्रतिष्ठा करे और सावधान रहे ॥५८॥ इस प्रकार योगी एकाग्र मनसे अन्तकी मात्राको प्रणवसे संपुटित करके उस पूर्वोक्त मात्राको बहिर्भागमें स्थित करे ॥५९॥ फिर प्राणदृष्ट्यादिकोंको रोककर चित्तमें शंकरको स्मरण करते भए मात्सर्यको छोडकर न्यास करे ॥ ६० ॥ फिर ऋषि आदिका स्मरण कर प्रणाम करे, प्रणवका ब्रह्मा ऋषि देवी गायत्री छंद सदाशिव परमात्मा देवता है ॥ ६१ ॥ अकार बीज, उकार शक्ति है, मकार कीलक है, मोक्षके अर्थ प्रयोग किया जाता है ॥ ६२ ॥ दोनों अँगूठे लेकर हथेली तक शुद्धकर हे देवेशि ! फिर ओम् ऐसा कहकर करन्यास करे ॥ ६३ ॥ दक्षिण हस्तके अँगूठेसे प्रारम्भ

आत्मन्यावेश्य चात्मानममृतंसृतिधारया॥ प्राणप्रतिष्ठां विधिवत्कुर्यादत्र समाहितः॥५८॥एकाग्रमानसो योगी विमृश्यात्तां च मातृकाम्॥ पुटितांप्रणवेनाथ न्यसेद्बाह्ये च मातृकाम् ॥५९॥ पुनश्च संयतप्राणः कुर्याद्दृष्ट्यादिकं बुधः ॥ शंकरं संस्मरंश्चित्ते संन्यसेच्च विमत्सरः॥६०॥प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा देवि गायत्रमीरितम् ॥ छन्दोत्र देवताहं वै परमात्मा सदाशिवः॥६१॥अकारो बीजमाख्यातमुकारः शक्तिरुच्यते ॥ मकारः कीलकं प्रोक्तं मोक्षार्थं विनियुज्यते ॥६२॥ अंगुष्ठद्वयमारभ्यतलांतं परिमार्जयेत् ॥ ओमित्युक्त्वाथ देवेशि करन्यासं समारभेत्॥६३॥दक्षहस्तस्थितांगुष्ठं समारभ्य यथाक्रमम्॥ वामहस्तकनिष्ठांतं विन्यसेत्पूर्ववत्क मात् ॥६४॥ अकारमप्युकारं च मकारं बिन्दुसंयुतम् ॥ नमोन्तं प्रोच्य सर्वत्र हृदयादौ न्यसेदथ ॥६५॥ अकारं पूर्वमुद्धृत्य ब्रह्मात्मानमथाचरेत्॥ङेंतं नमोंतं हृदये विनियुज्यात्तथा पुनः॥६६॥उकारं विष्णुसहितं शिरोदेशे प्रविन्यसेत्॥मकारं रुद्रसहितं शिखायान्तु प्रविन्यसेत् ॥ ६७ ॥ एवमुक्त्वा मुनिर्मंत्री कवचं नेत्रमस्तके ॥ विन्यसेद्देवदेवेशि सावधानेन चेतसा ॥ ६८ ॥

करे बायें हाथकी कनिष्ठिका तक दक्षिण हस्तकी तर्जनी आदि तो क्रमसे न्यास करे ॥ ६४ ॥ ओंकार उकार और बिन्दु सहित मकार सबमें नमः अन्तमें लगाकर हृदयमें न्यास करे ॥६५॥ पहले अकारका उद्धार कर ब्रह्म आत्मा उच्चारण करे " अं ब्रह्मात्मने नमः " इस प्रकार चतुर्थीके एक वचनसे अन्तमें नमः लगाकर हृदयमें स्पर्श करे ॥ ६६ ॥ और उकारका विष्णु सहित ध्यान करके शिरदेशमें विनययोग करे। रुद्र इन्द्रसहित मकारको शिखादेशमें ॥ ६७ ॥ इस प्रकार " अं ब्रह्मात्मने नमः " इत्यादि क्रमसे कहकर कवचादिका विधान

करे, नेत्रोंमें अस्त्र मंत्रसे ॥ ६८ ॥ हे देवि ! सावधान होकर चित्त लगाय अंग मुख कलाके भेदसे पांच ईशानादिका न्यास करे. उन पूर्वोक्त ईशानादिका शिर वदन हृदय गुह्य और चरणोंमें न्यास करे ॥ ६९ ॥ ईशानकी पांच कलाको क्रमसे शरीरके पांचों स्थानोंमें न्यास करे फिर पूर्वादि दिशाके योगसे चारों मुखोंमें पूर्वादि क्रमसे पुरुषकी ॥ ७० ॥ चारों कला स्थित करनी चाहिये. हृदय, कण्ठ, कंधा, नाभि, कोष, पीठ, छाती ॥ ७१ ॥ इन स्थानोंमें अघोरकी आठ कला स्थित करे पीछे पायुमें जानु (जंघा) ॥ ७२ ॥ स्फिक् (कूला) कमर पसवाडोंमें वामदेवकी तेरह कलाकी भावना करे सद्योजातकी आठ कला यथाक्रमसे नेत्रोंमें कल्पना करे ॥ ७३ ॥

अंगवक्त्रकलाभेदात्पंच ब्रह्माणि विन्यसेत्॥शिरोवदनहृदगुह्यपादेष्वेतानि विन्यसेत्॥६९॥ईशान्यस्य कलाः पंच पंचस्वेतेषु च क्रमात् ॥ ततश्चतुर्षु वक्त्रेषु पुरुषस्य कला अपि॥७०॥चतस्रः प्रणिधातव्याः पूर्वादिक्रमयोगतः॥हृत्कंठांसेषु नाभौ च कुक्षौ पृष्ठे च वक्षसि॥७१॥अघोरस्य कलाश्चाष्टौ पूजनीया यथाक्रमम्॥पश्चात्त्रयोदशकलाः पायुमेढ्रोरुजानुषु॥७२॥जंघास्फिक्कटिपार्श्वेषु वामदेवस्य भावयेत्॥सद्यस्यापि कलाचाष्टौ नेत्रेषु च यथाक्रमम्॥७३॥कीर्तितास्ताः कलाश्चैवं पादयोरपि हस्तयोः॥प्राणे शिरसि बाह्वोश्च कल्पयेत्कल्पवित्तमः॥७४॥अष्टत्रिंशत्कलान्यासमेवं कृत्वा तु सर्वशः॥पश्चात्प्रणवविद्धीमान्प्रणवन्यासमाचरेत्॥७५॥ बाहुद्वये कूर्परयोस्तथा च मणिबन्धयोः॥पार्श्वतोदरजंघेषु पादयोः पृष्ठतस्तथा॥७६॥इत्थं प्रणवविन्यासं कृत्वा न्यासविचक्षणः॥ हंसन्यासं प्रकुर्वीत परमात्मविबोधिनि॥७७॥इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासपद्धतौ न्यासवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ ईश्वर उवाच॥स्ववामे चतुरस्रं तु मण्डलं परिकल्पयेत्॥ओमित्यभ्यर्च्य तस्मिंस्तु शंखमस्त्रोपशोभितम्॥१॥

इन कलाओंकी हस्त, चरण, प्राण, शिर, बाहुमें कल्पना करे ॥ ७४ ॥ इस प्रकार २८ कलाओंका न्यास करके पीछे बुद्धिमान् प्रणवका ध्यान करे ॥ ७५ ॥ दोनों बाहुकूपर (कौनी) तथा मणिबन्धपार्श्व उदर जंघा पाद और पीठमें ॥ ७६ ॥ बुद्धिमान् इस प्रकार प्रणवको न्यास करके फिर परमात्माके बोध करानेवाला हंसन्यास करे॥ ७७॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ईश्वर बोले, अपने वाम ओर चतुरस्र (चौकोन) मंडलकी कल्पना करे और ओम् इस प्रकारसे अर्चनाकर शंखअस्त्रसे

अर्थात् अस्त्रमन्त्रसे शोधित करके ॥ १ ॥ उसको आधारपर रखकर प्रणवसे पूजन करे और चन्दनादि सुगन्धिवाले जलसे पूर्ण करके ॥ २ ॥ प्रणवसे सातबार गन्ध, धूप, पुष्पोंसे पूजन करे इस प्रकार अभिमन्त्रित कर उसमेंधेनु मुद्रा दिखावे ॥ ३ ॥ उसके आगे चौकोन शंखमुद्राकी कल्पना करे, उसके अन्तरमें अर्द्धचन्द्र और उसके अन्तरमें त्रिकोण॥ ४ ॥इस प्रकार षट्कोण मंडलकी कल्पना करे. उसके मध्यमें ओंकारसेही गन्ध पुष्पादि द्वारा पूजा करे ॥५॥ फिर उस आधारवाले अर्घ्यपात्रको स्थापनकर गन्धआदिसे पूजन करे और पवित्रजलसे पूर्णकर उस पात्रमें डाले ॥ ६ ॥ कुशाके अग्रभाग, अक्षत, यव, व्रीहि, तिल, घृत, श्वेतसरसोंके पुष्प और भस्म हे वरानने ! ॥ ७ ॥ सद्योजातादि मन्त्र षडंग

स्थाप्य साधारकं तं तु प्रणवेनार्चयेत्ततः ॥ आपूर्य्य शुद्धतोयेन चन्दनादिसुगंधिना ॥ २ ॥ अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणवेन च सप्तधा ॥ अभिमंत्र्य ततस्तस्मिन्धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥३॥ शंखमुद्रां च पुरतश्चतुरस्रं प्रकल्पयेत् ॥ तदन्तरेर्द्धचन्द्रं च त्रिकोणं च तदन्तरे ॥४॥ षट्कोणंवृत्तमेवेदं मण्डलं परिकल्पयेत् ॥ अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणवेनाथ मध्यतः ॥५॥ साधारमर्घ्यपात्रं च स्थाप्य गंधादिनार्चयेत् ॥ आपूर्य्य शुद्धतोयेन तस्मिन्पात्रे विनिःक्षिपेत् ॥ ६ ॥ कुशाग्राण्यक्षताश्चैव यवव्रीहितिलानपि ॥ आज्यसिद्धार्थ पुष्पाणि भसितं च वरानने ॥७॥ सद्योजातादिभिर्मंत्रैः षडंगैः प्रणवेन च ॥ अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैरभिमंत्र्य च वर्मणा ॥८॥ अवगूंठचास्त्रमंत्रेण संरक्षार्थं प्रदर्शयेत्॥ धेनुमुद्रां च तेनैव प्रोक्षयेदस्त्रमंत्रतः ॥९॥ स्वात्मानं गंधपुष्पादिपूजोपकरणान्यपि ॥ पद्मस्येशानदिक्पद्मं प्रणवोच्चारपूर्वकम् ॥ १० ॥ गुर्वासनाय नम इत्यासनं परिकल्पयेत् ॥ गुरोर्मूर्तिं च तत्रैव कल्पयेदुपदेशतः ॥ ११ ॥ प्रणवं गुं गुरुभ्योन्ते नमः प्रोच्यापि देशिकम् ॥ समावाह्य ततो ध्यायेद्दक्षिणाभिमुखं स्थितम् ॥ १२ ॥

और प्रणवसे गन्ध पुष्पादिसे अभिमन्त्रित करके कवचमंत्रसे अभिमंत्रित करे ॥ ८ ॥ अस्त्रमंत्रसे उसे संयुक्तकर रक्षाके निमित्त धेनुमुद्रा दिखावे और अस्त्रमंत्रसेही धेनुमुद्राको प्रोक्षण करे ॥९॥ अपने आत्मामें गंध पुष्पादि पूजाकी सामग्रीसे अस्त्रमंत्र द्वारा प्रोक्षण करे, और कमलके ईशान ओरकी दिशामें कमलमें ओंकार उच्चारणपूर्वक ॥ १० ॥ "गुरुआसनाय नमः" इस प्रकार कहकर आसनकी कल्पना करे और गुरूपदेशके अनुसार वहां गुरुमूर्तिकी कल्पना करे ॥ ११ ॥ 'प्रणवं गुं गुरुभ्यो नमः' इस प्रकार गुरुके प्रति कहकर दक्षिणदिशा के सन्मुख स्थित हो

आवाहन कर ध्यान करे ॥ १२ ॥ सुन्दर प्रसन्न मुख सौम्य शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल वरदायक अभय हाथवाले दो नेत्रयुक्त शिव शरीर ॥१३॥ गुरुको ध्यान कर क्रमसे गंध पुष्प आदि पूजन करे और उस पद्मके नैर्ऋतकी ओरके पद्मपर स्थित गणेशके आसनके ऊपर ॥ १४ ॥ (गणानांत्वा) इत्यादि मंत्रसे मूर्त्ति कल्पितकर देवताको आवाहन कर एकाग्रमनसे ध्यान करे ॥ १५ ॥ लालवर्ण महाशरीरवाले सब गहनोंसे संयुक्त पाश अंकुश इष्ट दर्शन करकमलमें धारे हुए हैं ॥ १६ ॥ इस प्रकार सब विघ्नोंके नाश करनेवाले अग्ररूप प्रभु गणेशजीको ध्यान कर

सुप्रसन्नमुखं सौम्यं शुद्धस्फटिकनिर्मलम् ॥ वरदाभयहस्तं च द्विनेत्रं शिवविग्रहम् ॥ १३ ॥ एवं ध्यात्वा यजेद्गन्धपुष्पादिभिरनुक्रमात् ॥ पद्मस्य नैर्ऋते पद्मे गणपत्यासनोपरि ॥ १४ ॥ मूर्तिम्प्रकल्प्य तत्रैव गणानांत्वेति मंत्रतः ॥ समावाह्य ततो देवं ध्यायेदेकाग्रमानसः ॥ १५ ॥ रक्तवर्णं महाकायं सर्वाभरणभूषितम् ॥ पाशांकुशेष्टदशनान्दधानङ्करपङ्कजैः ॥ १६ ॥ गजानन म्प्रभुं सर्वविघ्नौ घघ्नमुपासितुः ॥ एवन्ध्यात्वा यजेद्गन्धपुष्पाद्यैरुपचारकैः ॥ १७ ॥ कदलीनारिकेलाम्रफललड्डुकपूर्वकम् ॥ नैवेद्यं च समर्प्याथनमस्कुर्याद्गजाननम् ॥ १८ ॥ पद्मस्य वायुदिक्पद्मे संकल्प्य स्कान्दमासनम् ॥ स्कन्दमूर्तिम्प्रकल्प्याथ स्कन्दमावाहयेद्बुधः ॥ १९ ॥ उच्चार्य्य स्कन्दगायत्रीं ध्यायेदथ कुमारकम् ॥ उद्यदादित्यसंकाशं मयूरवरवाहनम् ॥ २० ॥ चतुर्भुजमुदाराङ्गं मुकुटादिविभूषितम् ॥ वरदाभयहस्तं च शक्तिकुक्कुटधारिणम् ॥ २१ ॥ एवन्ध्यात्वाऽथ गंधाद्यैरुपचारैरनुक्रमात् ॥ संपूज्य पूर्वद्वारस्य दक्षशाखामुपाश्रितम् ॥ २२ ॥

और षोडश उपचारसे पूजन कर ॥१७॥ केलेकी फली नईवस्तु नारियल आम लड्डू और नैवेद्य समर्पणकर गणेशजीको नमस्कार करे॥१८॥ कमलके वायुकोणके पद्ममें स्कन्दका आसन कल्पित करे, उसपर स्कन्दकी मूर्त्ति कल्पनाकर स्कंदका आवाहन करे॥१९॥स्कंद गायत्री उच्चारण कर कुमारका आवाहन कर उदय होते हुए सूर्यके समान कांतिमान मयूरके वाहनवाले ॥ २० ॥ चारभुजा उदार शरीर मुकुटादिसे विभूषित वर और अभयदाता शक्ति तथा मुकुटके धारण करनेवाले ॥ २१ ॥ स्कन्दजीको इस प्रकार ध्यानकर गंधादि पुष्पोंसे विधिपूर्वक पूजा करके

पूर्वद्वारकी शाखामें स्थित ॥ २२ ॥ और अन्तःपुरके अधिप साक्षात् नन्दीश्वरकी पूजा करके जो सुवर्णके समान सम्पूर्ण आभरणसे ॥ २३ ॥ भूषित हैं बालचन्द्रमाका मुकुट सौम्यमूर्ति तीननेत्र चारभुजा दीप्तिमान् शूल मृगी टंक और सुवर्णका वेत्र धारण किये सर्वज्ञ ॥ २४ ॥ चन्द्र मण्डलके समान मुख अथवा सिंहके समान मुखवाले नंदीको और उत्तरकी ओर मरुतोंकी कन्या उनकी भार्या ॥ २५ ॥ सुयशानामवाली शोभनव्रतवाली पार्वतीके चरणमंडलमें तत्पर हो चंदन पुष्पादि उपहारोंसे पूजन करे ॥ २६ ॥ पीछे उस कमलको अस्त्रमंत्रसहित शंखोदककी बिंदुओंसे प्रोक्षण करे, पीछे यथाविधि आधारादि आसन कल्पना करे ॥ २७ ॥ आधार शक्ति श्यामस्वरूप कल्याण रूपको नीचे पृथ्वीमें

अन्तःपुराधिपं साक्षान्नन्दिनं सम्यगर्चयेत् ॥ चामीकराचलप्रख्यं सर्वाभरणभूषितम् ॥२३॥ बालेन्दुमुकुटं सौम्यं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम् ॥ दीप्तशूलमृगीटंकहेमवेत्रधरं विभुम् ॥२४॥ चन्द्रबिम्बाभवदनं हरिवक्त्रमथापि वा ॥ उत्तरस्यान्तथा तस्य भार्यां च मरुतां सुताम् ॥२५॥ सुयशां सुव्रतामम्बापादमण्डनतत्पराम् ॥ संपूज्य विधिवद्गन्धपुष्पाद्यैरुपचारकैः॥२६॥ततस्संप्रोक्षयेत्पद्मं साम्त्रशंखोदबिन्दुभिः ॥ कल्पयेदासनं पश्चादाधारादि यथाक्रमात् ॥२७॥ आधारशक्तिं कल्याणीं श्यामां ध्यायेदधो भुवि ॥ तस्याः पुरस्तादुत्कंठमनन्तं कुंडलाकृतिम् ॥ २८ ॥ धवलं पंचफणिनं लेलिहानमिवाम्बरम् ॥ तस्योपर्यासनं भद्रं कंठीरवचतुष्पदम् ॥ २९ ॥ धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च पदानि वै ॥ आग्नेयादिश्वेतपीतरक्तश्यामानि वर्णतः ॥३०॥ अधर्मादीनि पूर्वादीन्युत्तरां तान्यनुक्रमात्॥ राजावर्तमणिप्रख्यान्यस्य गात्राणि भावयेत् ॥३१॥ अधोर्द्ध्वच्छदनं पश्चात्कंदं नालं च कण्ठकान् ॥ दलादिकं कर्णिकाञ्च विभाव्य क्रमशोऽर्चयेत् ॥ ३२ ॥

ध्यान करे उसके आगे ऊर्ध्वकंठमें कुंडलाकार अनंतको ध्यान करे ॥ २८ ॥ जो श्वेतशरीर पांच फणिमंडलसे युक्त आकाशको चाटते हुए उनके समीपमें सिंहकेसे आकारवाले चारपांव युक्त ॥ २९ ॥ धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्यके चरणोंको आसनपर कल्पित करे आग्नेयी आदि दिशा श्वेत पीत रक्त श्यामवर्ण ॥ ३० ॥ और अधर्मादिकोंको पूर्वादि दिशाके अनुक्रमसे पधरावे, राजावर्तमणि (उपरत्नका भेद) आदिकी इनके शरीरमें भावना करे ॥ ३१ ॥ पीछे नीचे और ऊंचेमें इस रत्नसे इन अनंतका आच्छादन कल्पना करे पीछे स्कन्धको नालकंटक

कमलके दल और कर्णिकाकी भावनाकर क्रमसे पूजन करे ॥ ३२ ॥ दलोंमें सिद्धिकी कल्पना करे और केसरोंमें शक्तिकी कल्पना करे, और रुद्र तथा वामादि आठ शक्तियोंकी पूर्वादि दिशामें कल्पना करे ॥३३॥ कर्णिकामें वैराग्य और बीजोंमें नवशक्तिकी कल्पना करे, वामादिक शक्तियोंको पूर्वादि दिशामें कल्पना कर पीछे मनोन्मनी शक्तिको ॥ ३४ ॥ कन्दमें, शिवात्मक धर्मनालमें, शिवाश्रयज्ञान कर्णिकाके ऊपर आग्नेय मंडल चन्द्र सूर्य समबन्धिका ध्यान करे ॥ ३५ ॥ आत्मविद्या ज्ञान शिवब्रह्मात्मक तीन तत्त्व इससे परे हैं, सम्पूर्ण आसनोंपर सुखपूर्वक विचित्र उज्ज्वल पुष्प स्थित करे ॥ ३६ ॥ और दहर विद्यासे महाउज्ज्वल आसन मूर्त्ति कल्पना कर पुष्प रक्खे ॥ ३७ ॥ आधारशक्तिसे

दलेषु सिद्धयश्चाष्टौ केसरेषु च शक्तिकाः ॥ रुद्रा वामादयस्त्वष्टौ पूर्वादिपरितःक्रमात् ॥ ३३ ॥ कर्णिकायां च वैराग्यं बीजेषु नव शक्तयः ॥ वामाद्या एव पूर्वादि तदन्तश्च मनोन्मनी ॥ ३४ ॥ कन्दे शिवात्मकोधर्मो नाले ज्ञानं शिवाश्रयम् ॥ कर्णिकोपरि वाह्नेयं मंडलं सौरमैन्दवम् ॥ ३५ ॥ आत्मविद्या शिवाख्यं च तत्त्वत्रयमतः परम् ॥ सर्वासनोपरि सुखं विचित्रकुसुमोज्ज्वलम् ॥ ३६ ॥ परव्योमावकाशाख्यविद्ययातीव भास्वरम् ॥ परिकल्प्यासनं मूर्त्तेः पुष्पविन्यासपूर्वकम् ॥ ३७ ॥ आधारशक्तिमारभ्य शुद्धविद्या सनावधि ॥ ॐकारादिचतुर्थ्यंतं नाममंन्त्रं नमोन्तकम् ॥ ३८ ॥ उच्चार्य पूजयेद्विद्वान्सर्वत्रैवं विधिक्रमः ॥ अङ्गवक्त्रकलाभेदात्पंचब्रह्माणि पूर्ववत् ॥ ३९ ॥ विन्यसेत्क्रमशो मूर्त्तौ तत्तन्मुद्राविचक्षणः ॥ आवाहयेत्ततोदेवं पुष्पाञ्जलिपुट स्थितः ॥ ४० ॥ सद्योजातम्प्रपद्यामीत्यारभ्योमन्तमुच्चरन् ॥ आधारोत्थितनादं तु द्वादशग्रन्थिभेदतः ॥ ४१ ॥

आरम्भकर शुद्धविद्यासे आसनपर्यन्त ॐकारसहित चतुर्थी विभक्तिसे अन्तमें नमः लगाकर ॥ ३८ ॥ विद्वान् सब स्थानोंमें विधिपूर्वक पूजन करे अंग मुख और कलाके भेदसे उन ईशानादि पांच ब्रह्मको पूर्ववत् ॥ ३९ ॥ उनकी मूर्त्तिमें स्थितकर मुद्रा दिखावे फिर पुष्पाञ्जलि ग्रहण कर देवताओंका आवाहन करे ॥ ४० ॥ (सद्योजातं प्रपद्यामि०) यहांसे आरम्भ कर (शिवोमे अस्तु सदाशिवोम्) यहांतक उच्चारण करे. मूलाधारसे उठेहुए नाद बारह चक्रकी ग्रन्थी तोडकर ॥ ४१ ॥

ब्रह्मरन्ध्रसे उच्चारणकर ओंकार गोचर परमेश्वरका ध्यान करे, शुद्ध स्फटिक मणिके समान कलारहित अक्षर ॥ ४२ ॥ दिव्य स्वरूप सब लोकोंके कारण सम्पूर्ण देवमय पर अन्तर बाहरं सर्वत्र व्याप्त अणु महान् ॥४३॥ भक्तोंको बिना प्रयत्नही दीखनेवाले ईश्वर अविनाशी ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, रुद्र आदि देवताओंको भी अगोचर ॥४४॥ वेदसार और विद्वानोंको प्राप्त होने योग्य आदि मध्य अन्तसे रहित भवरोगियोंको औषधि स्वरूप ॥ ४५ ॥ सावधान मनसे परमेश्वरको ध्यान करे आवाहन स्थापन सन्निरोध दर्शन ॥४६॥ और नमस्कार हाथ जोडकर करे

ब्रह्मरन्ध्रांतमुच्चार्य ध्यायेदोंकारगोचरम् ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं देवं निष्कलमक्षरम् ॥ ४२ ॥ कारणं सर्वलोकानां सर्वलोकमयं परम् ॥ अन्तर्बहिः स्थितं व्याप्य ह्यणोरल्पं महत्तमम् ॥४३॥ भक्तानामप्रयत्नेन दृश्यमीश्वरमव्ययम् ॥ ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्यैरपि देवैरगोचरम् ॥ ४४ ॥ वेदसारञ्च विद्वद्भिरगोचरमिति श्रुतम् ॥ आविर्मध्यान्तरहितं भेषजं भवरोगिणाम् ॥ ४५ ॥ समाहिते नमनसाध्यात्वैवं परमेश्वरम् ॥ आवाहनं स्थापनं च सन्निरोधं निरीक्षणम् ॥ ४६ ॥ नमस्कारं च कुर्वीत बध्वा मुद्राः पृथक्पृथक् ॥ ध्यायेत्सदाशिवं साक्षादेवं सकलनिष्कलम् ॥४७॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं प्रसन्नं शीतलद्युतिम् ॥ विद्युद्वलयसंकाशं जटा मुकुटभूषितम् ॥ ४८ ॥ शार्दूलचर्मवसनं किंचित्स्मितमुखाम्बुजम् ॥ रक्तपद्मदलप्रख्यपाणिपादतलाधरम् ॥ ४९ ॥ सर्वलक्षण सम्पन्नं सर्वाभरणभूषितम् ॥ दिव्यायुधकरैर्युक्तं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥५०॥ पञ्चवक्त्रन्दशभुजञ्चन्द्रखण्डशिखामणिम् ॥ अस्य पूर्वमुखं सौम्यं बालार्कसदृशप्रभम् ॥ ५१ ॥

और पृथक् २ मुद्रा बांधे साक्षात् निष्कल देव शिवका ध्यान करे ॥४७॥ शुद्धस्फटिक मणिके समान प्रसन्न शीतल कांतियुक्त बिजलीके बलयके समान जटाओंके मुकुटसे शोभित ॥४८॥ शार्दूल चर्मका वस्त्र ओढे मुख कमलमें हास्य करते हुये लाल कमलके समान हाथ चरण और अधरवाले ॥४९॥ सम्पूर्ण लक्षणोंसे सम्पन्न सम्पूर्ण गहने पहरे श्रेष्ठ दिव्य आयुधोंसे युक्त दिव्यगंधका लेप लगाये ॥ ५० ॥ पांचमुख दशभुजा शिखामणिमें चन्द्रखण्ड धारे पूर्वका मुख महासौम्य बाल सूर्यके समान कांतिमान् ॥ ५१ ॥

त्रिलोचन कमलके समान शोभायमान बालचन्द्रमा मस्तकपर शोभित दक्षिणका मुख नीलमेघके समान कांतिमान् ॥ ५२ ॥ टेढी भृकुटी घोर लाल नेत्र कराल डाढें दुष्प्रेक्ष्य होठ फडकते हुए ॥ ५३ ॥ उत्तरका मुख मूंगेके समान नील अलोकोंसे शोभित सुन्दर विलास युक्त तीन नेत्र अर्द्धचन्द्र मस्तकपर शोभित हैं ॥ ५४ ॥ पश्चिमका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान तीन उज्ज्वल नेत्रोंसे शोभित चन्द्ररेखा धारण करनेवाले सौम्य मन्दहास्यसे मनोहर है ॥ ५५ ॥ पांचवां मुख स्फटिकके समान चन्द्ररेखासे समुज्ज्वल अत्यन्त मनोहर खिले तीन नेत्रोंसे सुन्दर ॥ ५६ ॥ दक्षिण भागमें शूल, परशु, वज्र, खण्ड, अग्निके समान उज्ज्वल ॥ ५७ ॥ वाम ओर

त्रिलोचनारविन्दाढ्यं बालेन्दुकृतशेखरम्॥दक्षिणं नीलजीमूतसमानरुचिरप्रभम्॥५२॥भ्रुकुटीकुटिलं घोरं रक्तवृत्तत्रिलोचनम्॥दंष्ट्राकरालंदुष्प्रेक्ष्यं स्फुरिताधरपल्लवम्॥५३॥उत्तरं विद्रुमप्रख्यं नीलालकविभूषितम्॥सद्विलासन्त्रिनयनं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम्॥५४॥ पश्चिमम्पूर्णचन्द्राभं लोचनत्रितयोज्ज्वलम् ॥ चन्द्रलेखाधरं सौम्यं मन्दस्मितमनोहरम्॥५५॥ पञ्चमं स्फटिकप्रख्यमिन्दुरेखासमुज्ज्वलम्॥ अतीव सौम्यमुत्फुल्ललोचनत्रितयोज्ज्वलम्॥५६॥दक्षिणे शूलपरशुवज्रखड्गानलोज्ज्वलम्॥५७॥पूर्व्वं पिनाकनाराच घण्टापाशांकुशोज्ज्वलम् ॥ निवृत्त्याजानुपर्य्यंतमानाभि च प्रतिष्ठया॥५८॥आकण्ठं विद्यया तद्वदाललाटं तु शान्तया॥तदूर्ध्वं शान्त्यतीताख्यकलया परया तथा॥५९॥पञ्चाध्वव्यापिनं तस्मात्कलापञ्चकविग्रहम्॥ईशानमुकुटं देवम्पुरुषाख्यम्पुरातनम्॥६०॥ अघोरहृदयं तद्वद्वामगुह्यं महेश्वरम् ॥ सद्योजातं च तन्मूर्तिमष्टत्रिंशत्कलामयम् ॥६१॥ मातृकामयमीशानम्पञ्चब्रह्ममयन्तथा॥ ॐकाराख्यमयं चैव हंसन्यासमयन्तथा ॥६२॥ पञ्चाक्षरमयन्देवं षडक्षरमयन्तथा ॥ अङ्गषट्कमयञ्चैव जातिषट्कसमन्वितम् ॥६३॥

नाराच घण्टापाश और अंकुशसे उज्ज्वल जानु पर्यन्त निवृत्या नामकला, और नाभिमें प्रतिष्ठित नाम कलासे ॥ ५८ ॥ कण्ठपर्यन्त विद्या और ललाटपर्यन्त शान्तानाम कला और इससे ऊपर शान्त्यतीत परा कलासे युक्त ॥ ५९ ॥ पांच स्थानमें व्यापक होनेसे निवृत्यादि पंच कलामय शरीर है, ईशान देव मुकुट पुरुष पुरातन मुख है ॥६०॥ अघोर हृदय है वामदेव गुह्य है सद्योजात चरण है इस प्रकार अडतीस कलामय उसकी मूर्त्ति है ॥ ६१ ॥ ईशान मातृकामय है तथा पंच ब्रह्ममय है ओंकारमय तथा हंस न्यासमय है ॥ ६२ ॥ यह देव पंचाक्षरमय

तथा षडक्षर है छः अंगमय और जातिसे युक्त है ॥ ६३ ॥ इस प्रकारसे ध्यान करे फिर मेरे वाम भागमें तुम मनोन्मनीरूप गौरीको 'गौरीमि माय' मंत्र और ॐकार सहित ध्यान करे ॥ ६४ ॥ हे ईश्वरि ! आवाहन कर पूर्ववत् नमस्कार करे. फिर हे देवि ! सावधान मन मौन होकर तुम्हारा ध्यान करे ॥ ६५ ॥ फूले कमलके समान कान्तियुक्त विस्तीर्ण नेत्रवाली पूर्ण चन्द्रमाके समान मुख नील कुंचित केश ॥ ६६ ॥ नील कमलके दलके समान अर्द्धचन्द्र मस्तकपर धारे चौडे घने ऊंचे और स्निग्ध पयोधरसे शोभित ॥ ६७ ॥ सूक्ष्मकटि, पुष्ट श्रेणीभाग, पीत और बारीक वस्त्रधारे, सम्पूर्ण गहने पहरे, माथेपर उज्ज्वल तिलक धारे ॥ ६८ ॥ विचित्र पुष्पोंसे शोभित केशपाश, सब प्रकार गुणोंसे भरी कुछेक

एवन्ध्यात्वाथ मद्धामभागे त्वां च मनोन्मनीम्॥गौरीमिमायमन्त्रेण प्रणवाद्येन भक्तितः॥६४॥आवाह्य पूर्ववत्कुर्यान्नमस्कारांतमीश्वरि ॥ ध्यायेत्ततस्त्वान्देवेशि समाहितमना मुनिः ॥६५॥ प्रफुल्लोत्पलपत्राभां विस्तीर्णायतलोचनाम् ॥ पूर्णचन्द्राभवदनान्नील कुंचितमूर्द्धजाम् ॥६६॥ नीलोत्पलदलप्रख्याश्चन्द्रार्धकृतशेखराम् ॥ अतिवृत्तघनोत्तुंगस्निग्धपीनपयोधराम्॥६७॥तनुमध्याम्पृथुश्रोणीम्पीतसूक्ष्मतराम्बराम्॥ सर्वाभरणसम्पन्नां ललाटतिलकोज्ज्वलाम् ॥६८॥ विचित्रपुष्पसंकीर्णकेशपाशोपशोभिताम्॥सर्वतोऽनुगुणाकारां किंचिल्लज्जानताननाम्॥६९॥ हेमारविन्दं विलसद्दधानां दक्षिणे करे ॥ चण्डवच्चामरं हस्तं न्यस्यासीनां सुखासने ॥७०॥ एवम्मान्त्वां च देवेशि ध्यात्वा नियतमानसः ॥ स्नापयेच्छंखतोयेन प्रणवप्रोक्षणक्रमात् ॥७१॥ भवे भवे नातिभव इति पाद्यम्प्रकल्पयेत्॥वामाय नम इत्युक्त्वा दद्यादाचमनीयकम्॥७२॥ज्येष्ठाय नम इत्युक्त्वा शुभ्रवस्त्रम्प्रकल्पयेत्॥श्रेष्ठाय नम इत्युक्त्वा दद्याद्यज्ञोपवीतकम् ॥ ७३ ॥ रुद्राय नम इत्युक्त्वा पुनराचमनीयकम् ॥ कालाय नम इत्युक्त्वा गन्धन्दद्यात्सुसंस्कृतम् ॥ ७४ ॥

लज्जासे नीचामुख किये ॥ ६९ ॥ दक्षिण हाथमें क्रीडाके निमित्त सुवर्णका कमल लिये, दूसरा हाथ सिंहासनपर धारे ॥ ७० ॥ हे देवि ! जो इस प्रकार मन लगाय मेरा और तुम्हारा ध्यान करता है और शंखके जलसे स्नान कराकर ॐकारसे प्रोक्षण करता वह सिद्ध होता है ॥ ७१ ॥ (भवेभवेनातिभवे) इस मंत्रसे पाद्य और "वामदेवाय नमः', यह पढकर आचमन देवे ॥ ७२ ॥ (ज्येष्ठाय नमः) ऐसा कहकर शुभ्र वस्त्र दे (श्रेष्ठाय नमः) कहकर यज्ञोपवीत दे ॥७३॥ (रुद्राय नमः) ऐसा कहकर आचमन करावे (कालाय नमः) कहकर सुन्दर गंध दे ॥७४॥

(कलविकरणाय नमः) कहकर अक्षत, (बलविकरणाय नमः) कहकर पुष्प समर्पण करे ॥ ७५ ॥ (बलाय नमः) ऐसा कहकर धूप दे (बलप्रमथनाय नमः) कह कर दीप दे ॥ ७६ ॥ ब्रह्म षडंग और मात्रासहित प्रणव शिव और शक्तिसहित क्रमसे ॥ ७७ ॥ मुझे और तुम्हें मुद्रा दिखावे पहले मेरे निमित्त पूजन करे, फिर तुम्हारे निमित्त ॥ ७८ ॥ जब तुम्हारी पूजा करे तब स्त्रीलिंग लगा दे, इतना ही भेद है और नहीं ॥ ७९ ॥ इस प्रकार यथाविधि ध्यान और पूजन कर बुद्धिमान् मेरी आवरण पूजाका विधान करे ॥ ८० ॥ इति श्रीशिव

कलाविकरणाय नमोऽक्षतं च परिकल्पयेत्॥ बलविकरणाय नम इति पुष्पाणि दापयेत्॥७५॥बलाय नम इत्युक्त्वा धूपन्दद्यात्प्रयत्नतः ॥ बलप्रमथनायेति सुदीपंचैव दापयेत् ॥७६॥ ब्रह्मभिश्च षडंगैश्च ततो मातृकया सह ॥ प्रणवेन शिवेनैव शक्तियुक्तेन च क्रमात् ॥७७॥ मुद्राः प्रदर्शयेन्मह्यन्तुभ्यञ्च वरवर्णिनि ॥ मयि प्रकल्पयेत्पूर्वमुपचारांस्ततस्त्वयि ॥ ७८ ॥ यदा त्वयि प्रकुर्वीत स्त्रीलिंगं योजयेत्तदा॥इयानेव हि भेदोऽस्ति नान्यः पार्वति कश्चन ॥७९॥ एवन्ध्यानम्पूजनं च कृत्वा सम्यग्विधानतः ॥ ममावरणपूजां च प्रारभेत विचक्षणः॥८०॥इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठचां कैलाशसंहितायां शिवध्यानपूजनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ ईश्वर उवाच ॥ अत्रास्ति च महादेवि खल्वावरणपंचकम्॥ पंचावरणपूजान्तु प्रारभेत यथाक्रमम् ॥१॥ प्रथमम्पूजितौ यत्र तत्रैव क्रमशस्सुधीः ॥ गन्धाद्यैरर्चयेत्पूर्वं देवौ हेरंबषण्मुखौ ॥२॥ पंच ब्रह्माणि परितो वृत्ते सम्पूजयेत्क्रमात्॥ ईशानदेशे पूर्वे च दक्षिणे चोत्तरे तथा ॥ ३ ॥ पश्चिमे च ततस्तस्मिन्षडंगानि समर्चयेत ॥ आग्नेये च तथैशाने नैर्ऋते वायुदेशके ॥ ४ ॥

महापुराणभाषाटीकायां षठचां कैलाससंहितायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ शिवजी बोले, हे महादेवि ! यही पांच आवरण हैं सो यथाक्रमसे पांच आवरण पूजाका आरम्भ करे ॥ १ ॥ जहां प्रथम पूजा की है, वहीं क्रमसे बुद्धिमान् जंघादिकसे गणेश और कार्तिकेयका पूजन करे ॥ २ ॥ फिर पंच ब्रह्मके क्रमसे पूजा करे ईशान देश नैर्ऋत्य पूर्व दक्षिण और उत्तरमें सदा ॥ ३ ॥ पश्चिम और षडंगमें पूजा करे. आग्नेय ईशान नैर्ऋत्य वायव्य ॥ ४ ॥

मध्यमें नेत्र अस्त्र और इसी प्रकारसे पूर्वादि क्रमसे अस्त्रोंकी प्रतिष्ठा करे । यह प्रथम आवरण कहा और दूसरा आवरण सुनो ॥ ५ ॥ अनन्तको पूर्वदिशाके पत्रमें, सूक्ष्मको दक्षिण दिशाके शिवोत्तमको पश्चिमके और एक नेत्रको उत्तरके ॥ ६ ॥ एक रुद्रके ईशानके त्रिमूर्त्तिको आग्नेय दिशाके श्रीकंठको नैर्ऋत्य और शिखण्डीशको वायव्यमें पूजन करे ॥ ७ ॥ दूसरे आवरणमें उन चक्रवर्त्तियोंकी पूजा करनी चाहिये, पूर्वद्वारके मध्यमें वृष और ईशानका पूजन करे ॥ ८ ॥ दक्षिणकी ओर नन्दी और महाकालको उत्तरकी ओर पूजन करे, मृगीशको दक्षिण और पश्चिमद्वारमें पूजे ॥ ९ ॥ उसके पूर्वकोष्ठ गन्धादिसे गणेशजीका पूजन करे पश्चिमोत्तरके कोष्ठमें वृषभको और

मध्येनेत्रन्तद्वदस्त्रम्पूर्वादिपरितः क्रमात॥ प्रथमावरणम्प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥५॥अनन्तम्पूर्वदिक्पत्रे सूक्ष्मन्दक्षिणतस्तथा॥ शिवोत्तमं पश्चिमत एकनेत्रन्तथोत्तरे ॥ ६ ॥ एकरुद्रन्तथैशाने त्रिमूर्तिं वह्निदिग्दले ॥ श्रीकण्ठं नैर्ऋते वायौ शिखण्डीशं समर्चयेत ॥ ७ ॥ द्वितीयावरणे चैव पूज्यास्ते चक्रवर्तिनः ॥ पूर्वद्वारस्य मध्ये तु वृषेशानम्प्रपूजयेत् ॥८॥ तद्दक्षिणे नन्दिनञ्च महाकालन्तदुत्तरे॥ भृंगीशन्दक्षिणद्वारपश्चिमे सम्प्रपूजयेत् ॥९॥ तत्पूर्वकोष्ठे गन्धाद्यैस्सम्प्रपूज्य विनायकम् ॥ पश्चिमोत्तरकोष्ठे च वृषमन्दक्षिणे गुहम् ॥ १० ॥ उत्तरद्वारपूर्वे तु प्रदक्षिणविधानतः ॥ नामाष्टकविधानेन पूजयेदुच्यते हि तत् ॥११॥ भवं शर्वं तथेशानं रुद्रम्पशुपतिम्पुनः ॥ उग्रम्भीमम्महादेवन्तृतीयावरणन्त्विदम् ॥ १२ ॥. यो वेदादौ स्वर इति समावाह्य महेश्वरम् ॥ पूजयेत्पूर्वदिग्भागे कमले कर्णिकोपरि ॥ १३ ॥ ईश्वरम्पूर्वदिक्पत्रे विश्वेशन्दक्षिणे ततः ॥ सौम्ये तु परमेशानं सर्वेशम्पश्चिमेयजेत् ॥ १४ ॥ दक्षिणे तु यजेद्रुद्रमावोराजानमित्यृचा ॥ आवाह्य गन्धपुष्पाद्यैः कर्णिकायान्दलेषु च ॥ १५ ॥

दक्षिणमें गुह (स्कंद) को पूजे ॥ १० ॥ उत्तर और पूर्वद्वारमें प्रदक्षिणके विधानसे आठ नामसे पूजे सो कहते हैं ॥११॥ भव, शर्व, ईशान, रुद्र, पशुपति, उग्र भीम, महादेवको पूजे यह तीसरा आवरण है ॥ १२ ॥ जो वेदके आदिमें स्वर स्वरूप है उस महेश्वरको आवाहन कर पूर्वदिशाके भागमें कमलकी कर्णिकाके ऊपर पूजन करे ॥ १३ ॥ ईश्वरको पूर्वदिशाके पत्रपर, विश्वेशको दक्षिणके पत्रपर परमेशको सौम्य पूर्वके पत्रपर सर्वेशको पश्चिमके पत्रपर ॥ १४ ॥ और दक्षिणके पत्रपर " आवो राजानम् " इस ऋचासे रुद्रके पूजनको करे

कर्णिकाके दलोंमें आवाहन कर ॥ १५ ॥ गंध पुष्पादिसे शिवको पूर्व हरको दक्षिण और शिवको उत्तर भवको पश्चिम दिशाके पत्रमें यथाक्रमसे पूजन करे ॥ १६ ॥ उत्तरमें विष्णुको आवाहनकर गंध पुष्पादिसे पूजन करे ' प्रतद्विष्णुः ' ऐसा मंत्र उच्चारण कर कर्णिकाके दलोंमें ॥ १७ ॥ पूर्वभागमें वासुदेव दक्षिणमें अनिरुद्ध उत्तरमें संकर्षण पश्चिममें प्रद्युम्नको पूजन करे ॥ १८ ॥ पश्चिमकी ओरके पद्ममें ब्रह्माजीको आवाहन कर उनका पूजन करे " ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तता० " इस हिरण्यगर्भको पूर्वमें ॥ १९ ॥ विराज पुरुषको दक्षिणमें उत्तरमें पुरुषको और पश्चिममें कालको पूजन करे ॥ २० ॥ और पूर्वादि प्रदक्षिणके विधानसे ऊर्ध्वपंक्तिमें सबका यजन करे

शिवः पूर्वे दक्षिणतो हरउत्तरतो मृडः ॥ भवः पश्चिमदिक्पत्रे पूज्या एते यथाक्रमम् ॥१६॥ उत्तरे विष्णुमावाह्य गन्धपुष्पादि भिर्यजेत्॥ प्रतद्विष्णुरिति प्रोच्य कर्णिकायान्दलेषु च ॥१७॥ वासुदेवम्पूर्वभागे दक्षिणेचानिरुद्धकम् ॥ सौम्ये संकर्षणञ्चैव प्रद्यु म्नम्पश्चिमे यजेत् ॥१८॥ ब्रह्माणम्पश्चिमे पद्मे समावाह्य समर्चयेत् ॥ हिरण्यगर्भः समवर्तत इति मंत्रेण मंत्रवित् ॥ १९ ॥ हिर ण्यगर्भं पूर्वस्यां विराजन्दक्षिणे ततः ॥ उत्तरे पुष्करञ्चैव कालम्पश्चिमतो यजेत् ॥२०॥ सर्वोर्द्धपंक्तौ पूर्वादिप्रदक्षिणविधानतः॥ तत्तत्स्थानेषु संपूज्य लोकपालाननुक्रमात् ॥ २१ ॥ रान्तंपान्तं तथा ज्ञान्तं लान्तं लान्तमपूर्वकम् ॥ षान्तं सान्तञ्च वेदाद्यं श्रीबीजञ्च दशक्रमात् ॥ २२ ॥ बीजानि लोकपालानामेतैरेतान्समर्चयेत् ॥ नैर्ऋते चोत्तरे तद्वदीशानस्य च दक्षिणे ॥ २३ ॥ ब्रह्म विष्णू च विधिना पूजयेदुपचारकैः ॥ बाह्यरेखासु देवेशम्पञ्चमावरणे यजेत् ॥ २४ ॥

उन स्थानोंमें क्रमसे लोकपालोंका यजन करे ॥ २१ ॥ ओं रां, ओं यां, ओं ज्ञां, ओं लां और अवर्णपूर्वक अं ओं औं षां, ओं सां और वेदके आदिमें ओं श्रींबीज ॥ २२ ॥ इन दश बीजोंद्वार क्रमसे लोकपालोंका पूजन करे (शिवार्चनचंद्रिका और तंत्रसारसे ओं लां इंद्राय ओं रां अग्नये इस क्रमसे ओं मां, ओं क्षां, ओं वां, ओं यां, ओं सां, ओं हां यह आठ बीज आठ लोकपालोंकी पूजा कहे हैं) नैर्ऋत्य और उत्तरमें पूजन करे इसी प्रकार ईशानदेवका दक्षिणमें ॥ २३ ॥ और ब्रह्मा विष्णुका विधिपूर्वक षोडश उपचारसे पूजन करे

देवेशिको बाह्यरेखामें पांचवे आवरणमें यजन करे ॥ २४ ॥ श्रीमान् त्रिशूलकी ईशानमें, वज्रको पूर्व दिशामें, परेशको आग्नेयकोणमें, बाणको दक्षिणमें ॥ २५ ॥ खड्गको नैर्ऋत्यदिशामें, पाशको पश्चिमदिशामें, अंकुशको वायव्यमें, पिनाकको उत्तरमें ॥ २६ ॥ रौद्र और क्षेत्रपालको पश्चिमदिशामें यजन करे, शिवकी प्रीत्तिके निमित्त सब विधिसे करे ॥ २७ ॥ हाथ जोडकर ध्यान कर और सर्वदा देव देवीको आदरसहित देखता रहे ॥ २८ ॥ इस कारण विघ्नशान्तिके निमित्त आवरणकी अर्चा करे, फिर देवेशकी अर्चना करके ओंकारयुक्त शिवको स्मरण करे ॥ २९ ॥ इस प्रकार गन्धादि उपचारोंसे विधिपूर्वक शिवकी पूजा करके विधिपूर्वक नैवेद्य भेंट करे, ॥ ३० ॥ फिर आचमनीय और अर्घ्य

श्रीमत्त्रिशूलमीशाने वज्रं माहेन्द्रदिङ्मुखे॥परशुं वह्निदिग्भागे याम्ये सायकमर्चयेत्॥२५॥नैर्ऋते तु यजेत्खड्गम्पाशं वरुणगोचरे॥ अंकुशं मारुते भागे पिनाकं चोत्तरे यजेत्॥२६॥पश्चिमाभिमुखं रौद्रं क्षेत्रपालं समर्चयेत्॥यथाविधि विधानज्ञश्शिवप्रीत्यर्थमेव च॥२७॥कृताञ्जलिपुटास्सर्वे चिन्त्याः स्मितमुखाम्बुजाः ॥ सादरं प्रेक्षमाणाश्च देवं देवीञ्च सर्वदा ॥२८॥इत्थमावरणाभ्यर्चां कृत्वा विक्षेपशान्तये॥पुनरभ्यर्च्य देवेशम्प्रणवं च शिवं वदेत्॥२९॥एवमभ्यर्च्य विधिवद्गन्धाद्यैरुपचारकैः॥उपचर्य्य ततो दद्या न्नैवेद्यं विधिसाधितम् ॥३०॥ पुनराचमनीयं च दद्यादर्घ्यं यथा पुरा॥ततो निवेद्य पानीयन्ताम्बूलं चोपदेशतः॥३१॥ नीराजनादिकं कृत्वा पूजाशेषं समापयेत् ॥ध्यात्वा देवं च देवीञ्च मनुमष्टोत्तरं जपेत्॥३२॥ततउत्थाय रचितपुष्पाञ्जलिपुटः स्थितः॥ जपेद्धचात्वा महादेवं यो देवानामिति क्रमात् ॥३३॥ यो वेदादौ स्वरः प्रोक्त इत्यंतम्परमेश्वरि ॥पुष्पाञ्जलिन्ततो दत्त्वा त्रिः प्रदक्षिण माचरेत् ॥ ३४ ॥ साष्टांगम्प्रणमेत्तं च भक्त्या परमयान्वितः ॥ पुनः प्रदक्षिणां कृत्वा प्रणमेत्पुनरेकधा ॥ ३५ ॥

पूर्वकालके समान प्रदान करे, फिर पानीय भोजन की सामग्री और ताम्बूल निवेदन करे ॥ ३१ ॥ नीरांजनादिक करके शेष पूजाको समाप्त करे और देवीदेवका ध्यान कर एकसौ आठ मन्त्र जपे ॥३२॥ फिर उठकर पुष्पाञ्जलि ले (यो देवानामिति) नारायणीय उपनिषद्की छः ऋचोंका जप करे ॥ ३३ ॥ (यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तः) जहांतक जपे हे परमेश्वरि ! फिर पुष्पाञ्जलि देकर तीन प्रदिक्षणा करे ॥ ३४ ॥ फिर परमभक्तिसे साष्टांग प्रणाम करे, फिर प्रदक्षिणा करके अनेक प्रकार प्रणाम करे ॥ ३५ ॥

आसनपर स्थित हो पूजन करके शिव महेश्वरादि देवके आठ नाम उच्चारण करके कहे हे भगवन् ! जो कुछ मैंने अच्छे या बुरे कर्म किये हैं ॥ ३६ ॥ हे भगवन् शंभो ! वह सब आपहीका आराधन किया है, इस प्रकार शंखके जलको पुष्पोंपर दे ॥ ३७ ॥ इस प्रकार पूजा समाप्त कर अर्थ सहित आठ नाम जपे, हे देवेशि ! सुनो वह तुम्हारी भक्तिसे कहता हूँ ॥ ३८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां ष० कै० सं० अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ईश्वर बोले, शिव महेश्वर, रुद्र. विष्णु, पितामह, संसारवैद्य, सर्वज्ञपरमात्मा ॥ १ ॥ यह मुख्य आठ नाम परमात्मा शिवके प्रतिपादक हैं इसमें पितामहतक पहले पांच नामोंमें शांतातीतके क्रमसे ॥ २ ॥ पांच उपाधिके ग्रहण करनेसे

स्थित्वासने समभ्यर्च्च्य देवं नामाष्टकेन च॥साधु वासाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया॥३६॥तत्सर्वं मगवञ्छम्भो भवदाराधनम्प रम् ॥ इति शंखोदकेनैव सपुष्पेण समर्पयेत् ॥३७॥ पूज्यं पुनस्समभ्यर्च्य सार्थं नामाष्टकं जपेत्॥ तदेव शृणु देवेशि संब्रुवे तव भक्तितः ॥३८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठचां कैलाससंहितायामावरणपूजावर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥ईश्वर उवाच॥ शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः॥संसारवैद्यस्सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः ॥१॥ नामाष्टकमिदं नित्यं शिवस्य प्रतिपादकम् ॥ आद्यन्तपञ्चकन्तत्र शान्त्यतीताद्यनुक्रमात्॥२॥ संज्ञा सहाशिवादीनां पञ्चोपाधिपरिग्रहात्॥उपाधिविनिवृत्तौ तु यथास्वं विनि वर्तते ॥ ३ ॥ पदमेव हितं नित्यमनित्याः पदिनः स्मृताः॥पदानां परिवृत्तिः स्यान्मुच्यंते पदिनो यतः॥४॥ परिवृत्त्यन्तरे त्वेवं भूयस्तस्याप्युपाधिना॥आत्मान्तराभिधानं स्यात्पादाद्यं नामपंचकम्॥५॥अन्यत्तु त्रितयं नाम्नामुपादानादिभेदतः॥त्रिविधोपा धिरचनाच्छिव एव तु वर्तते ॥६॥ अनादिमलसंश्लेषप्रागभावात्स्वभावतः ॥ अत्यन्तपरिशुद्धात्मेत्यतोऽयं शिव उच्यते॥७॥

शिवादि संज्ञा ग्रहण की है उपाधिके निवृत्त होनेसे संज्ञाभी निवृत्त हो जाती है ॥ ३ ॥ पद नित्य है और सदाशिवादि मूर्त्ति अनित्य हैं पदोंकाही विनिमय होता है इससे मूर्त्ति आदि छूट जाती है ॥ ४ ॥ और पदान्तरकी प्राप्तिमें फिर उपाधिसे उस पदकी प्राप्ति होती है जो यह आदिका पंचक आत्मान्तरके जाननेवाला हो तो ॥ ५ ॥ दूसरे तीन नामोंका जगत्के उपादानकारण प्रकृति आदिके योगसे तीन प्रकारकी उपाधि कहनेके कारण यह तीन नाम भी शिवरूपही हैं ॥६॥ अनादि मलके संगके स्वभावसे अर्थात जिस प्रकार जल स्वच्छ होता

है, स्वादिष्ट होता है, परन्तु देशान्तरोंमें प्राप्त होनेसे खारी गदला हो जाता है परन्तु स्वभावसे निर्मल है, इसी प्रकार उपाधि रहित होनेसे वह एकही निर्मल शिव है उपाधियुक्त होनेसे अनेक नाम धारण करता है नामोंका अर्थ कहते हैं, अत्यन्त परिशुद्धआत्मा होनेसे महादेवको शिव कहते हैं ॥ ७ ॥ अथवा सम्पूर्ण कल्याण गुणोंके एकही आधार होनेसे उन ईश्वरको शिव तत्त्वके जाननेवाले महात्मा शिव कहते हैं ॥ ८ ॥ महेश्वरका अर्थ कहते हैं तेईस तत्त्वसे परे प्रकृति है प्रकृतिसे परे पच्चीसवां पुरुष है ॥ ९ ॥ जिसको वाच्य वाचकके भावसे वेदके आदिमें ॐकार कहते हैं वेदसेही जाननेके योग्य आत्मस्वरूप वेदान्तमें प्रतिष्ठित ॥१०॥ वही प्रकृतिमें उसके भोगके निमित्त लीन है उस प्रकृ

अथवाऽशेषकल्याणगुणैकघन ईश्वरः॥शिव इत्युच्यते सद्भिश्शिवतत्त्वार्थवेदिभिः॥८॥त्रयोविंशतितत्वेभ्यः परा प्रकृतिरुच्यते॥ प्रकृतेस्तु परम्प्राहुः पुरुषम्पञ्चविंशकम्॥९॥यद्वेदादौ स्वरम्प्राहुर्वाच्यवाचकभावतः॥वेदैकवेद्यं याथात्म्याद्वेदान्ते चप्रतिष्ठितम् ॥ ॥१०॥ स एव प्रकृतौ लीनो भोक्ता यः प्रकृतेर्यतः॥तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परस्समहेश्वरः ॥११॥ तदधीनप्रवृत्तित्त्वात्प्रकृतेः पुरुषस्य च॥अथ वा त्रिगुणन्तत्त्वं मायेयमिदमव्ययम् ॥१२॥ मायान्तु प्रकृतिम्विद्यान्मायिनन्तु महेश्वरम्॥ मायाविमोचकोऽ नन्तो महेश्वरसमन्वयात्॥१३॥रुद्रुःखं दुःखहेतुर्वा तद्द्रावयति यः प्रभुः॥रुद्र इत्युच्यते तस्माच्छिवः परमकारणम्॥१४॥शिवतत्त्वा दिभूम्यन्तंशरीरादि घटादि च॥व्याप्याधितिष्ठति शिवस्तमाद्विष्णुरुदाहृतः॥१५॥जगतः पितृभूतानां शिवो मूर्त्यात्मनामपि ॥ पितृभावेन सर्वेषां पितामह उदीरितः॥१६॥निदानज्ञो यथा वैद्यो रोगस्य विनिवर्तकः॥उपायै र्मेषजैस्तद्वल्लयमोगाधिकारकः॥१७॥

तिमें लीन हुए पुरुषसे जो परे हैं उसीको महेश्वर कहते हैं ॥ ११ ॥ पुरुष और प्रकृतिकी प्रवृत्ति उसके आधीन है अथवा त्रिगुणतत्त्वकी यह अविनाशी माया है ॥ १२ ॥ मायाको प्रकृति और मायीको महेश्वर जानना चाहिये, महेश्वरकी प्राप्तिसे ही नारायण मायासे मोक्ष करते हैं ॥ १३ ॥ रुत् (दुःख) को अथवा दुःखके कारणको दूर करनेसे उनका नाम रुद्र है, इसी कारण उनको रुद्र कहते हैं, वही परम कारण शिव हैं ॥१४॥ शिवके तत्त्वादि पर्यंत शरीरादि घटादि इन सबमें व्याप्त होकर स्थित होनेके कारण शिवको विष्णु कहते हैं ॥ १५ ॥ जगत्के पितृभूत ब्रह्मादिक और मूर्त्ति आत्मावाले होनेसे सबके पितामह वह कहलाते हैं ॥ १६ ॥ जिस प्रकार निदानका जानने वाला वैद्य रोग

दूर करनेमें समर्थ होता है और उपाय औषधी जान सकता है, इसी प्रकार भोग मोक्ष प्रदानके अधिकारसे ॥ १७ ॥ संसारके ईश्वर स्थूल कारण निवृत्त करनेवाले शिवतत्त्व ज्ञाताओंसे संसार वैद्य कहे जाते हैं ॥ १८ ॥ शब्दादि पंचक ज्ञानसिद्धिके निमित्त इन्द्रियोंके होनेपर भी जो त्रिकालमें होनेवाले सम्पूर्ण स्थूल सूक्ष्म ॥ १९ ॥ जिसके जीव जाननेमें समर्थ नहीं होते, कारण कि वे मायासे ढके हैं सम्पूर्णके होनेपर भी सम्पूर्ण इन्द्रियोंके सिद्धि पदार्थोंमें ॥ २० ॥ जो जैसी है उस वस्तुको उसी प्रकार वह शिव विना यत्नके जाननेसे सर्वज्ञ कहाते हैं ॥ २१ ॥ वह इन सर्वज्ञादि सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त हो सबके आत्मा परेसे परे अपनेसे और परमात्मासे भी परे होनेसे

संसारस्येश्वरो नित्यं स्थूलस्य विनिवर्त्तकः ॥ संसारवैद्य इत्युक्तस्सर्वतत्त्वार्थवेदिभिः ॥ १८ ॥ दशार्द्धज्ञानसिद्ध्यर्थमिन्द्रियेषु च सत्स्वऽपि ॥ त्रिकालभाविनो भावान्स्थूलान्सूक्ष्मानशेषतः ॥ १९ ॥ अणवोनैव जानन्ति मायाणवमलावृताः ॥ असत्स्वपि च सर्वेषु सिद्धसर्वार्थवेदिषु ॥ २० ॥ यद्यथावस्थितं वस्तु तत्तथैव सदाशिवः ॥ अयत्नेनैव जानाति तस्मात्सर्वज्ञ उच्यते ॥ २१ ॥ सर्वात्मा परमैरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात् ॥ स्वस्मात्परात्मविरहात्परमात्मा शिवस्स्वयम् ॥ २२ ॥ इति स्तुत्वा महादेवं प्रणवात्मानमव्ययम् ॥ दत्त्वा पराङ्मुखाद्यञ्च पश्चादीशानमस्तके ॥ २३ ॥ पुनरभ्यर्च्य देवेशम्प्रणवेन समाहितः ॥ हस्तेन बद्धाञ्जलिना पूजापुष्पम्प्रगृह्य च ॥ २४ ॥ उन्मनान्तं शिवं नीत्वा वामनासापुटाध्वना ॥ देवीमुद्वास्यच ततो दक्षनासापुटाध्वना ॥ २५ ॥ शिव एवाहमस्मीति तदैक्यमनुभूय च ॥ सर्वावरणदेवांश्च पुनरुद्वासयेद्धृदि ॥ २६ ॥ विद्यापूजां गुरोः पूजां कृत्वा पश्चाद्यथाक्रमम् ॥ शंखार्घपात्रमंत्रांश्च हृदये विन्यसेत्क्रमात् ॥ २७ ॥

स्वयं शिव परमात्मा कहाते हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार प्रणवात्म अविनाशी महादेवको प्रणाम करके अपने सन्मुख अर्घ्य देकर ईशानके मस्तकमें ॥ २३ ॥ प्रणवसे युक्त देवेशको फिर पूजन करे अंजलि बांधकर पूजाके फूलोंको ग्रहण कर ॥ २४ ॥ वामनासा पुटके मार्गमें उन्मनी नाडीके अन्ततक शिवको ले जाकर और दक्षिणनासापुटके मार्गसे देवीको ले जाकर ॥२५॥ मैं शिव हूँ ऐसा अनुभव कर फिर हृदयमें सम्पूर्ण आवरणके देवताओंको ध्यान करके ॥ २६ ॥ पीछे क्रमसे विद्या और गुरुकी पूजा करे, और शंख अर्घ्यपात्र तथा अन्य मंत्रोंको क्रमसे हृदयमें

धारण करे ॥ २७ ॥ फिर निर्माल्यको चण्डेशके आगे समर्पण कर फिर प्राणायाम कर ऋषि आदिका स्मरणकर ॥२८॥ कैलासका प्रस्तर नामक जो मण्डल कहा है इसको पक्षमें वा महीने२में पूजे ॥२९॥ वा छः महीनेमें अथवा एक वर्षमें वा पर्वमें पूजे जो पूजा करनेमें समर्थ न हो तो सदा मेरे लिंगकी पूजा करे ॥ ३० ॥ हे देवी ! इस क्रममें कुछ विशेष भी है, उपदेशके दिनमें गुरुके सहित पूजित लिंगको ग्रहण करके कहे ॥ ३१ ॥ कि मैं जबतक शरीरमें प्राण रहेंगे शिवपूजन करूंगा इस प्रकार गुरुके निकट तीनबार प्रतिज्ञा करके शपथ करे ॥ ३२ ॥ पूर्वोक्तविधिके अनुसार नित्य शिवजीका पूजन करे अर्घ्यजलके सहित लिंगके ऊपर जल चढावे ॥ ३३ ॥ ओंकारसे पूजनकर धूप दीप करे

निर्माल्यञ्च समर्प्याऽथ चण्डेशायेशगोचरे॥पुनश्च संयतप्राण ऋष्यादिकमथोच्चरेत् ॥२८॥ कैलासप्रस्तरो नाम मण्डलम्परिभाषितम्॥अर्चयेन्नित्यमेवैतत्पक्षे वा मासिमासि वा ॥२९॥ षण्मासे वत्सरेवापि चातुर्मास्यादिपर्वणि ॥ अवश्यञ्च समभ्यर्चेन्नित्यं मल्लिङ्गमास्तिकः ॥३०॥ तस्मिन्क्रमे महादेवि विशेषः कोऽपि कथ्यते॥उपदेशदिने लिंगम्पूजितं गुरुणा सह ॥३१॥ गृह्णीयादर्चयिष्यामि शिवमाप्राणसंरक्षयम्॥एवन्त्रिवारमुच्चार्य्य शपथंगुरुसन्निधौ॥३२॥ततस्समर्चयेन्नित्यम्पूर्वोक्तविधिना प्रिये॥ अर्घं समर्पयेल्लिंगमूर्द्धन्यर्घ्योदकेन च॥३३॥प्रणवेन समभ्यर्च्य धूपदीपौ समर्पयेत्॥ऐशान्यां चण्डमाराध्य निर्माल्यञ्च निवेदयेत् ॥३४॥ प्रक्षाल्य लिंगम्वेदीञ्च वस्त्रपूतैर्जलैस्ततः॥निःक्षिप्य पुष्पं शिरसि लिंगस्य प्रणवेन तु ॥३५॥ आधारशक्तिमारभ्य शुद्धविद्यासनावधि ॥ विभाव्य सर्वं मनसा स्थापयेत्परमेश्वरम् ॥ ३६ ॥ पञ्चगव्यादिभिर्द्रव्यैर्यथाविभवसम्भृतैः ॥ केवलैर्वा जलैश्शुद्धैस्सुरभिद्रव्यवासितैः ॥ ३७ ॥ पावमानेन रुद्रेण नीलेन त्वरितेन च ॥ ऋग्भिश्च सामभिर्वापि ब्रह्मभिश्चैव पञ्चभिः ॥ ३८ ॥

ईशान दिशामें चण्डका आराधन करे और निर्माल्य उनको निवेदन करे ॥ ३४ ॥ फिर वस्त्रसे पवित्र किये जलसे लिंग और वेदीको प्रक्षालन कर ओंकार उच्चारण कर लिंगके शिरपर फूल चढावे ॥३५॥ आधारशक्तिसे आरम्भ कर शुद्ध विद्यासन पर्यन्त सब कुछ मनकी कल्पना कर परमेश्वरको स्नान करावे ॥ ३६ ॥ पंचगव्यादिसे अपने ऐश्वर्यानुसार केवल शुद्ध जल अथवा सुगन्धित जलसे ॥ ३७ ॥ 'पवमानेन' इस अनुवाकसे अथवा (नमस्ते रुद्र) इस अनुवाकसे नीलसूक्त अथवा त्वरि लिंग सूक्तादि सूक्त अथवा अथर्व शिरमंत्र अथवा ऋक् सामके मंत्रोंसे

अथवा सद्योजातादि पांच मंत्रोंसे ॥ ३८ ॥ ओंकारसे देवदेव शिवको स्नान करावे विशेषकर अर्घ्यके जल और ओंकारसे स्नान करावे ॥ ३९ ॥ सुगंधित पुष्पोंको शोधन कर लिंगके ऊपर चढावे और सिंहासनपर लिंगको स्थापन कर सूर्यादिकी अर्चा करे ॥ ४० ॥ आधार शक्ति और अनन्त इन दोनोंको सिंहासनके नीचे पूजे पीछे सिंहासनको उससे ऊँचे पर यथाक्रमसे पूजन करके ॥ ४१ ॥ ऊपरकी ओरके ढकनेवाले सिंहासनके पादमें लिंगकी पूजा करें लिंगमें मूर्त्तिकी कल्पना कर तुम्हारे सहित मेरी पूजा करे ॥ ४२ ॥ यह सब कार्य यतिको मेरे ध्यानमें तत्पर हो सम्यक् भक्तिसे करना चाहिये हे प्रिये इस प्रकार यह मैंने तुमसे अतिगुह्य पूजाविधि वर्णनकी ॥ ४३ ॥ इसे यत्न

स्नापयेद्देवदेवेशं प्रणवेन शिवेन च ॥ विशेषाघ्र्योदकेनापि प्रणवेनाभिषेचयेत् ॥ ३९ ॥ विशोध्य वाससा पुष्पं लिंगमूर्द्धनि विन्यसेत् ॥ पीठे लिंगं समारोप्य सूर्याद्यर्चां समाचरेत् ॥ ४० ॥ आधारशक्त्यनन्तौ द्वौ पीठाधस्तात्समर्चयेत् ॥ सिंहासनन्तदूर्ध्वन्तु समभ्यर्च्य यथाक्रमम् ॥ ४१ अथोर्ध्वच्छदनम्पीठपादे स्कन्दं समर्चयेत् ॥ लिंगे मूर्तिं समाकल्प्य मान्त्वया सह पूजयेत् ॥ ४२ ॥ सम्यग् भक्त्या विधानेन यतिर्मद्ध्यानतत्परः ॥ एवम्मया ते कथितमतिगुह्यमिदम्प्रिये ॥ ४३ ॥ गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्य चित् ॥ मम भक्ताय दातव्यं यतये वीतरागिणे ॥ ४४ ॥ गुरुभक्ताय शान्ताय मदर्थे योगभागिने ॥ ममाज्ञामतिलंघ्यैतद्यो ददाति विमूढधीः ॥ ४५ ॥ स नारकी मम द्रोही भविष्यति न संशयः ॥ मद्भक्तदानाद्देवेशि मत्प्रियश्च भवेद्ध्रुवम् ॥ इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्मत्सान्निध्यमवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

पूर्वक छिपा रखना चाहिये, जिस तिसको नहीं देना चाहिये मेरे भक्त यतिराज द्वेषरहितको देना चाहिये ॥ ४४ ॥ जो गुरुभक्त शान्त और मेरे उद्योगमें तत्पर हो उसे दे, मेरी आज्ञाका उल्लंघन करके जो मूढ अभक्तोंको देता है ॥ ४५ ॥ वह मेरा द्रोही नरकमें जाता है इसमें सन्देह नहीं, हे देवेशि ! मेरे भक्तोंके निमित्त देनेसे वह पुरुष मेरा प्रिय होता है वह यहां सब भोगोंको भोगकर अन्तमें मेरे लोकको जाता है ॥ ४६ ॥

व्यासजी बोले, हे देवेशि ! इस प्रकार शिवजीके वचन सुन शिवजीकी वेदार्थ भरे हुए अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति कर ॥ ४७ ॥ परमेश्वरी श्रीमत् चरण कमलमें बारम्बार प्रणाम करने लगी, हे मुनियो ! प्रसन्न मन हो पार्वती महाहर्षित हुई ॥ ४८ ॥ हे ब्राह्मणो ! प्रणवके अर्थका प्रकाशक यह महागुप्त विधान है यह शिवका परमज्ञान दुःखका करनेवाला है ॥ ४९ ॥ सूतजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! महातपस्वी व्यासजी इस प्रकार वचन कहकर वेदवादी मुनियोंसे परमभक्तिसे पूजित होकर ॥ ५० ॥ कैलासपर्वतका स्मरणकर उस तपोवनसे चले गये, वे ऋषिभी प्रसन्न मन हो यज्ञके अन्तमें परमभक्तिसे परमेश्वर ॥५१॥ चन्द्रशेखर शंकरका पूजन कर यमादि योगमें मन लगाय शिवध्यानमें परायण हुए ॥५२॥

व्यास उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा महादेवी महादेवेन भाषितम् ॥ स्तुत्वा तु विविधैः स्तोत्रैर्देवम्वेदार्थगर्वितैः ॥ ४७ ॥ श्रीमत्पादाब्जयोः पत्युः प्रणवं परमेश्वरी ॥ अतिप्रहृष्टहृदया मुमोद मुनिसत्तमाः ॥ ४८ ॥ अतिगुह्यमिदम्विप्राः प्रणवार्थप्रकाशकम् ॥ शिवज्ञानपरं ह्येतद्भवतामार्तिनाशनम् ॥ ४९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलः पराशर्य्यो महातपाः ॥ पूजितः परया भक्त्या मुनिभिर्वेदवादिभिः ॥ ५० ॥ कैलासाद्रिमनुस्मृत्य ययौ तस्मात्तपोवनात् ॥ तेऽपि प्रहृष्टहृदयास्सत्रान्ते परमेश्वरम् ॥ ५१ ॥ सम्पूज्य परया भक्त्या सोमं सोमार्द्धशेखरम् ॥ यमादियोगनिरताश्शिवध्यानपराभवन् ॥ ५२ ॥ गुह्याय कथितं ह्येतद्देव्या तेनापि नन्दिने ॥ सनत्कुमारमुनये प्रोवाच भगवान् हि सः ॥ ५३ ॥ तस्माल्लब्धं मद्गुरुणा व्यासेनामिततेजसा ॥ तस्माल्लब्धमिदम्पुण्यम्मयापि मुनिपुंगवाः ॥ ५४ ॥ मया वश्श्रावितं ह्येतद्गुह्याद्गुह्यतरम्परम् ॥ ज्ञात्वा शिवप्रियान्भक्त्या भवतो गिरिशप्रियम् ॥५५॥ भवद्भिरपि दातव्यमेतद्गुह्यं शिवप्रियम् ॥ यतिभ्यश्शान्तचित्तेभ्यो भक्तेभ्यश्शिवपादयोः॥५६॥

देवीने यह कथा स्कन्दसे स्कन्दने नन्दीसे, नन्दीने भगवान् सनत्कुमारसे कही सनत्कुमारने भगवान् महातेजस्वी व्यासजीसे कही ॥५३॥ उन महातेजस्वी गुरु व्यासजीसे यह पवित्र प्रसंग मैंने प्राप्त किया, हे मुनिश्रेष्ठो ! ॥ ५४ ॥ हे मुनियो ! मैंने यह गुप्तसे गुप्त चरित्र तुमको सुनाया, और मैंने यह जान लिया कि तुम शिवके परमभक्त हो ॥ ५५ ॥ आपको भी यह प्रणवार्थ प्रकाशक ज्ञान शिवके प्रियको देना चाहिये शान्त चित्त यति शिवचरणोंके भक्तको देना चाहिये ॥ ५६ ॥

पुराण कहनेवालोंमें श्रेष्ठ सूतजी यह वचन कह कर तीर्थ यात्राके प्रसंगसे पृथ्वीमें विचरने लगे ॥ ५७ ॥ सूतजीसे वे मुनीश्वर इस गुप्त रहस्यको ग्रहण कर काशीमें वासकर मुक्त हो शिवके धामको चले गये ॥ ५८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां ष० कै० सं० नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ व्यासजी बोले; सूतजीके चले जानेपर वे सब मुनि महाविस्मयको प्राप्त हो परस्परमें कहने लगे यह तो हमने भुलाही दिया जो वामदेवका मत पूर्वकालमें सूतजीने वर्णन किया है वह बडा कठिन है ॥ १ ॥ न जाने कब हमको मुनिश्रेष्ठका दर्शन होगा जो कि संसार सागरका पार करनेवाला है और हमारी यह इच्छा है, कि महेश्वरके आराधनके पुण्यप्रतापसे हमको सूतजीका दर्शन हो ॥ २ ॥ इस

एतदुक्त्वा महाभागस्सूतः पौराणिकोत्तमः॥तीर्थयात्राप्रसंगेन चचार पृथिवीमिमाम् ॥५७॥ एतद्रहस्यम्परमं लब्ध्वा सूतान्मुनीश्वराः ॥ काश्यामेव समासीना मुक्ताश्शिवपदं ययुः॥५८॥इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां प्रणवार्थपद्धतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ ॥ व्यास उवाच ॥ गतेऽथ सूते मुनयस्सुविस्मिता विचिन्त्य चान्योन्यमिदन्तु विस्मृतम् ॥ यद्वामदेवस्य मतम्मुनीश्वरप्रत्यूचितन्तत्खलु नष्टमद्य नः ॥१॥ कदानुभूयान्मुनिवर्यदर्शनम्भावाब्धिदुःखौघहरम्परं हि तत्॥महेश्वराराधनपुण्यतोऽधुना मुनीश्वरस्सत्वरमाविरस्तु नः॥२॥इति चिन्तासमाविष्टा मुनयो मुनिपुंगवम्॥व्यास संपूज्य हृत्पद्मे तस्थुस्तद्दर्शनोत्सुकाः॥३॥सम्वत्सरान्ते स पुनः काशीम्प्राप महामुनिः॥शिवभक्तिरतो ज्ञानी पुराणार्थप्रकाशकः॥४॥तन्दृष्ट्वा सूतमायान्तम्मुनयो हृष्टचेतसः॥अभ्युत्थानासनार्घ्यादिपूजया समपूजयन्॥५॥सोपि तान्मुनिशार्दूलानभिनन्द्य स्मितोदरम् ॥ प्रीत्या स्नात्वा जाह्नवीये जले परमपावने ॥६॥ ऋषीन्संतर्प्य च सुरान्पितॄंश्च तिलतण्डुलैः ॥ तीरमागत्य सम्प्रोक्ष्य वाससी परिधाय च ॥७॥

प्रकार चिंता करके वे मुनि व्यासजीको हृदयकमलमें धारण कर दर्शनकी इच्छासे स्थित हुए ॥ ३ ॥ एक सम्वत्सरके उपरान्त सूतजी फिर काशीमें आये जो शिव भक्तिमें तत्पर ज्ञानी पुराणके अर्थ प्रकाश करनेवाले हैं ॥ ४ ॥ सूतजीको आता देख वे ऋषि बहुत प्रसन्न हुए अभ्युत्थान (आसन) और अर्घ्यसे उनकी पूजा करने लगे ॥ ५ ॥ और सूतजीने भी उन मुनि श्रेष्ठोंकी पूजासे प्रसन्न हुए उनका अभिनन्दन किया गंगाजीके परमपवित्र जलमें स्नान कर ॥६॥ ऋषि देवता और पितरोंको तिल जौसे तृप्त कर किनारेपर आय शरीर पोंछ कपडे

पहर ॥ ७ ॥ दो आचमन कर सद्योजातादि मंत्रोंसे भस्म लगाय फिर उद्धूलनादि क्रमका विधान कर ॥ ८ ॥ रुद्राक्षमाला धारण कर नित्य क्रियाकर बुद्धिमान् सूतजी विधिपूर्वक अंगोंमें त्रिपुण्ड्र लगाय ॥ ९ ॥ विश्वेश्वर उमापतिको पुत्र और गणोंसहित पूजन कर भक्तिसे बारम्बार नमस्कार करके ॥ १० ॥ कालभैरवनाथको विधिपूर्वक प्रणामकर तीन प्रकारसे प्रदक्षिणाकर पांच प्रकार नमस्कार कर ॥ ११ ॥ फिर प्रदक्षिणा कर पृथ्वीमें दण्डवत् प्रणामकर परमभक्तिसे भगवान्के चरणोंको प्रणाम कर स्तुति की ॥ १२ ॥ एकसहस्र एकसौ आठ

द्विराचम्य समादाय भस्म सद्यादिमंत्रतः ॥ उद्धूलनादिक्रमतो विधार्य्याऽथ मुनीश्वरः ॥ ८ ॥ रुद्राक्षमालाभरणः कृतनित्य क्रियस्तु धीः ॥ यथोक्तांगेषु विधिना त्रिपुण्ड्रं रचति स्म ह ॥ ९ ॥ विश्वेश्वरमुमाकान्तं ससुतं सगणाधिपम् ॥ पूजयामास सद्भक्त्या ह्यस्तौ नत्वा मुहुर्मुहुः ॥ १० ॥ कालभैरवनाथं च संपूज्याथ विधानतः ॥ प्रदक्षिणीकृत्य पुनस्त्रेधा नत्वा च पंचधा ॥ ११ ॥ पुनः प्रदक्षिणी कृत्य प्रणम्य भुवि दण्डवत् ॥ तुष्टाव परया स्तुत्या संस्मरंस्तत्पदाम्बुजम् ॥ १२ ॥ श्रीमत्पंचाक्षरी म्विद्यामष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ संजप्य पुरतः स्थित्वा क्षमापय्य महेश्वरम् ॥ १३ ॥ चण्डेशं सम्प्रपूज्याऽथ मुक्तिमण्डपमध्यतः ॥ निर्दिष्टमासनं भेजे मुनिभिर्वेदपारगैः ॥ १४ ॥ एवं स्थितेषु सर्वेषु नमस्कृत्य समंत्रकम् ॥ अथ प्राह मुनीन्द्राणां भाववृद्धिकर म्वचः ॥ १५ ॥ सूत उवाच ॥ धन्या यूयं महाप्राज्ञा मुनयश्शंसितव्रताः ॥ भवदर्थमिह प्राप्तोऽहन्तद्वृत्तमिदं शृणु ॥ १६ ॥ यदाहमुपदिश्याथ भवतः प्रणवार्थकम् ॥ गतस्तीर्थाटनार्थाय तद्वृत्तान्तम्ब्रवीमि वः ॥ १७ ॥

पंचाक्षर विद्याको जपकर महेश्वरके सन्मुख स्थित हो उनसे अपराध क्षमा कराय ॥ १३ ॥ मुक्तिमण्डपके मध्यमें चंडेश्वरका पूजनकर वेद पार गामी मुनियोंके दिये हुए आसनपर बैठे ॥ १४ ॥ इस प्रकार सबके बैठने पर समन्त्र नमस्कार करके सूतजी भाववृद्धिके करनेवाले वचन उनसे बोले ॥ १५ ॥ सूतजी बोले, हे श्रेष्ठव्रतवाले ऋषियो ! तुम धन्य हो मैं तुम्हारे निमित्त यहां जिस कारणसे आया हूं वह वृत्तान्त सुनो ॥ १६ ॥ जब मैं प्रणवके अर्थको तुमसे उपदेश कर तीर्थयात्रा करने गया उस वृत्तान्तको तुमसे कहता हूं ॥ १७ ॥

मैं यहांसे चलकर दक्षिणसागरके किनारे गया वहां स्नान कर विधिपूर्वक कन्याकुमारी शिवादेवीका पूजन किया, हे ब्राह्मणो ! फिर सुवर्ण मुखरीके किनारे गया ॥ १८ ॥ श्रीकालहस्तिशैलनामक परम अद्भुत नगरमें आकर सुवर्णमुखरीके जलमें स्नान कर देवता ऋषियोंको ॥१९॥ विधिपूर्वक तृप्त कर शिवको स्मरण कर चन्द्रमाकी कान्तिके समान प्रभावाले कालहस्तीशको तृप्तकर ॥ २० ॥ पश्चिमकी ओरको मुख पांच शिरवाले परमअद्भुत एकही बार दर्शनसे सब पापके क्षय करनेवाले ॥ २१ ॥ सब सिद्धिके देनेवाले भुक्ति मुक्तिके देनेवाले त्रिगुणेश्वरको पर मभक्तिसे पूजन कर दक्षिणभागमें स्थित पार्वतीको ॥ २२ ॥ ब्रह्मज्ञानरूपी फूलकी कली है उन्हें भक्तिसे पूजन करके पंचाक्षरी विद्याको एक

इतो निर्गत्य सम्प्राप्य तीरं दक्षपयोनिधेः ॥ स्नात्वा सम्पूज्य विधिवद्देवीं कन्यामयीं शिवाम् ॥ पुनरागत्य विप्रेन्द्रास्सुवर्ण मुखरीतटम् ॥ १८ ॥ श्रीकालहस्तिशैलाख्यनगरे परमाद्भुते ॥ सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा देवानृषीनपि ॥ १९ ॥ सन्तर्प्य विधिवद्भक्त्या समुदंगिरिशं स्मरन् ॥ समर्च्य कालहस्तीश चन्द्रकांतसमप्रभम् ॥ २० ॥ पश्चिमाभिमुखम्पंचशिरसम्परमा द्भुतम् ॥ सकृद्दर्शनमात्रेण सर्वाघक्षयकारणम् ॥ २१ ॥ सर्वसिद्धिप्रदम्भुक्तिमुक्तिदन्त्रिगुणेश्वरम् ॥ ततश्च परया भक्त्या तस्य दक्षिणगां शिवाम् ॥ २२ ॥ ज्ञानप्रसूनकलिकां समर्च्य हि जगत्प्रसूम् ॥ श्रीमत्पंचाक्षरीं विद्यामष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ २३ ॥ जप्त्वा प्रदक्षिणी कृत्य स्तुत्वा नत्वा मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य गिरिम्प्रत्यहमादरात् ॥ आमोदतीव मनसि प्रत्यहन्नियमास्थितः ॥ २५ ॥ अनयश्चतुरो मासाने वन्तत्र मुनीश्वराः ॥ ज्ञानप्रसूनकलिकामहादेव्याः प्रसादतः ॥ २६ ॥ एकदा तु समास्तीर्य चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ आसनम्परमन्तस्मिन्स्थित्वा रुद्धेन्द्रियो मुनिः ॥ २७ ॥

एकसौ आठ ॥ २३ ॥ जप करके थोडी देर प्रदक्षिणा कर बारम्बार नमस्कार करके ॥ २४ ॥ परम प्रसन्नतासे कालहस्तिशैलको प्रतिदिन प्रद क्षिणा करके इस प्रकारके नियममें स्थित हो उस क्षेत्रमें निवास करने लगा ॥२५॥ हे मुनीश्वरो ! इस प्रकार चार महीने उस स्थानमें बिताये ज्ञानरूपी मनुष्यकी कलिका महादेवीके प्रसादसे तृप्त हो ॥ २६ ॥ एक समय कंबलवस्त्र मृगचर्म कुशके ऊपर बिछाकर उस आसनके ऊपर इन्द्रिय रोककर स्थित हो मन साध ॥ २७ ॥

परमानन्द चिदानन्दघनका समाधिमें ध्यान करता हुआ शांत चित्त हो जानेसे परिपूर्ण शिवरूप होगया ॥ २८ ॥ इसी समय दयासागर मेरे गुरु (व्यासजी) नीले मेघके वर्ण बिजलीके समान पीली जटा धारण किये ॥ २९ ॥ ऊँचे (श्रेष्ठ) कमण्डलु और मृगचर्म धारण किये सब शरीरमें भस्म लगाये सम्पूर्ण लक्षणोंसे लक्षित ॥ ३० ॥ मस्तकमें त्रिपुण्ड्र लगाये रुद्राक्ष पहरे कमल दलके समान चौंडे दोनों नेत्र ॥ ३१ ॥ शोभा परिपूर्ण व्यासजी मेरे हृदय कमलमें प्रकट हुए हे आस्तिक मुनियो ! इस प्रकार भगवान् हृदयमें प्रादुर्भूत हुए तब मैं मोहित होगया ॥ ३२ ॥ पीछे नेत्र खोल मैं विलाप करने लगा, पर्वतके झरनेके समान अश्रुपात होने लगे ॥ ३३ ॥

समाधिमास्थाय सदा परमानंदचिद्घनः॥ परिपूर्णश्चिवोस्मीति निर्व्यग्रहृदयोऽभवम् ॥२८॥ एतस्मिन्नेव समये सद्गुरुः करुणानिधिः ॥ नीलजीमूतसङ्काशो विद्युत्पिङ्गजटाधरः ॥२९॥ प्रांशुः कमण्डलूद्दण्डकृष्णाजिनधरस्स्वयम् ॥ भस्मावदातसर्वाङ्गस्सर्वलक्षणलक्षितः॥३०॥त्रिपुण्ड्रविलसद्भालो रुद्राक्षालङ्कृताकृतिः॥पद्मपत्रारुणायामविस्तीर्णनयनद्वयः ॥३१॥ प्रादुर्भूय हृदम्भोजे तदानीमेव सत्वरम्॥विमोहितस्तदैवासमेतदद्भुतमास्तिकाः ॥३२॥ तत उन्मील्य नयने विलापं कृतवानहम्॥आसीन्मामश्रुपातश्च गिरिनिर्झरसन्निभः ॥३३॥ एतस्मिन्नेव समये श्रुता वागशरीरिणी ॥ व्योम्नो महाद्भुता विप्रास्तामेव शृणुतादरात् ॥३४॥ सूतपुत्र महाभाग गच्छ वाराणसीम्पुरीम् ॥ तत्रासन्मुनयः पूर्वमुपदिष्टास्त्वयाऽधुना ॥३५॥ त्वदुपागमकल्याणं कांक्षंते विवशा भृशम् ॥ तिष्ठन्ति ते निराहारा इत्युक्ता विरराम सा ॥३६॥ तत उत्थाय तरसा देवन्देवीञ्च भक्तितः ॥ प्रदक्षिणीकृत्य पुनः प्रणम्य भुवि दण्डवत् ॥३७॥ द्विषड्वारं गुरोराज्ञांविज्ञाय शिवयोरथ ॥ क्षेत्रान्निर्गत्य तरसा चत्वारिंशद्दिनान्तरे ॥ ३८ ॥

इसी समय आकाशमें महा अद्भुत अशरीरिणी वाणी सुनी हे ब्राह्मणो ! उसे आदरसे सुनो ॥ ३४ ॥ हे महाभाग ! सूतजीके पुत्र ! तुम काशीपुरीको जाओ वहां पहले तुमने जिन मुनियोंको उपदेश दिया था वे अब ॥ ३५ ॥ विवश होकर तुम्हारे शुभागमनकी अत्यन्त इच्छा करते हैं और निराहार हो व्रत करते हैं, ऐसा कह कर आकाशवाणी विरामको प्राप्त हुई ॥ ३६ ॥ तब शीघ्रही मैं उठकर देवको भक्तिपूर्वक प्रणामकर फिर शिवा शिवको बारह वार प्रदक्षिणा और दण्डवत् प्रणाम करके ॥ ३७ ॥ गुरुकी आज्ञा सुनाकर उस क्षेत्रसे

चलकर चालीस दिनमें ॥ ३८ ॥ यहां आया हूं हे मुनिश्रेष्ठ ! अब तुम मेरे ऊपर कृपा करो, मैं अब क्या कहूं सो आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ३९ ॥ सूतजीके यह वचन सुनकर श्रेष्ठऋषि प्रसन्न मन हो बारम्बार व्यासजीको नमस्कार कर मुनिश्रेष्ठ सूतजीसे बोले ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां ष० कै० सं० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ऋषि बोले, हे महाभाग सूतजी ! तुम हमारे गुरु हो इससे हमपर दया करते हो हम तुमसे पूंछते हैं ॥ १ ॥ शिष्योंके ऊपर गुरु तो सदाही कृपा दृष्टि करते हैं और इसीसे आपने हमको

आगतोऽस्मि मुनिश्रेष्ठा अनुगृह्णन्तु मामिह ॥ मया किमद्य वक्तव्यं भवन्तस्तद्ब्रुवन्तु मे ॥ ३९ ॥ इति सूतवचश्श्रुत्वा ऋषयो हृष्टमानसाः ॥ अवोचन्मुनिशार्दूलं व्यासन्नत्वा मुहुर्मुहुः ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां सूतोपदेशो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत सूत महाभागस्त्वमस्मद्गुरुरुत्तमः ॥ अतस्त्वां परिपृच्छामो भवतोऽनुग्रहो यदि ॥ १ ॥ श्रद्धालुषु च शिष्येषु त्वादृशा गुरवस्सदा ॥ स्निग्धभावा इतीदं नो दर्शितम्भवताधुना ॥ २ ॥ विरजाहोमसमये वामदेवम तम्पुरा ॥ सूचितम्भवतास्माभिर्न श्रुतं विस्तरान्मुने ॥ ३ ॥ तदिदानीं श्रोतुकामाः श्रद्धया परमादरात् ॥ वयं सर्व्वे कृपासिंधो प्रीत्या तद्वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा सूतो हृष्टतनूरुहः ॥ नमस्कृत्य महादेवं गुरोः परतरं गुरुम् ॥ ५ ॥ महादेवीं त्रिजननीं गुरुं व्यासञ्च भक्तितः ॥ प्राह गम्भीरया वाचा मुनीनाह्लादयन्निदम् ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ स्वस्त्यस्तु मुनयस्सर्वे सुखिनस्सन्तु सर्व्वदा ॥ शिवभक्ताः स्थिरात्मानश्शिवे भक्तिप्रवर्तकाः ॥ ७ ॥

अपना दर्शन दिया है ॥ २ ॥ इस कारण आपसे पूछते हैं कि पूर्वकालमें जो आपने विरजा होममें जो वामदेवका मत हमसे सूचित किया है हे मुने ! वह हमने विस्तारसे नहीं सुना है ॥ ३ ॥ वही परम श्रद्धा और आदरसे हमारे सुननेकी इच्छा है, हे कृपासागर ! सो प्रेमसे आप हमसे कहिये ॥ ४ ॥ उनके यह वचन सुन सूतजी प्रसन्न मन रोमांचित हो गुरुओंके परम गुरु महादेवजीको ॥ ५ ॥ और तीन लोककी जननीको भक्तिपूर्वक नमस्कार करके मुनियोंको प्रसन्न करते हुए गंभीर वाणीसे बोले ॥६॥ सूतजी बोले, हे मुनियो ! आपका मंगल

हो तुम सदा सुखी रहो तुम शिवके भक्त हो दृढमति सदाशिवकी भक्तिमें तत्पर हो भक्ति बढानेवाले हो ॥ ७ ॥ वह बडी विचित्र वार्ता मैंने अपने गुरु मुखसे सुनी, और इस गुप्त वार्ताके प्रगट होनेकी शंकासे मैंने आजतक किसीके सन्मुख यह नहीं कही ॥ ८ ॥ तुम दृढव्रत शिवके भक्त होनेसे महाभागी हो इसी कारण मैं तुमसे कहता हूं मन लगाकर सुनो ॥ ९ ॥ पहिले रथन्तरकल्पमें महामुनि वामदेवजी गर्भसे उत्पन्न होतेही स्वयं शिवज्ञान जाननेवालोंके गुरु हुए ॥ १० ॥ वे वेद, आगम, पुराण और सब शास्त्रके तत्वको जानते थे, देव असुर मनुष्यादि सब जीवोंके जन्मकर्मके जाननेवाले थे ॥ ११ ॥ सब शरीरमें भस्म लगाये, जटामंडलसे मंडित, निराश्रय, इच्छा रहित;

तदतीव विचित्रं हि श्रुतं गुरुमुखाम्बुजात्॥इतः पूर्वम्मया नोक्तं गुह्यप्राकट्यशंकया॥८॥यूयं खलु महाभागाश्शिवभक्ता दृढव्रताः॥ इति निश्चित्य युष्माकं वक्ष्यामि श्रूयताम्मुदा॥९॥पुरा रथन्तरे कल्पे वामदेवो महामुनिः ॥ गर्भमुक्तश्शिवज्ञानविदां गुरुतमस्स्वयम्॥१०॥वेदागमपुराणादिसर्व्वशास्त्रार्थवत्त्ववित्॥ देवासुरमनुष्यादिजीवानां जन्मकर्म्मवित्॥११॥ भस्मावदातसर्व्वांगो जटामण्डललमण्डितः॥ निराश्रयो निःस्पृहश्च निर्द्वन्द्वो निरहं कृतिः॥१२॥दिगंबरो महाज्ञानी महेश्वर इवापरः ॥ शिष्यभूतैर्मुनीन्द्रैश्च तादृशैः परिवारितः ॥१३॥ पर्य्यटन्पृथिवीमेतां स्वपादस्पर्शपुण्यतः॥ पवित्रयन्परे धाम्नि निमग्नहृदयोन्वहम्॥१४॥ कुमारशिखरम्मेरोर्दक्षिणं प्राविशन्मुदा॥ यत्रास्ते भगवानीशतनयश्शिखिवाहनः ॥१५॥ ज्ञानशक्तिधरो वीरस्सर्वासुरविमर्दनः॥ गजावल्ली समायुक्तस्सर्व्वैर्देवैर्नमस्कृतः ॥१६॥ तत्र स्कन्दसरो नाम सरस्सागरसन्निभम्॥ शिशिरस्वादुपानीयं स्वच्छागाधबहूदकम्॥१७॥

द्वन्द्व और अहंकारहीन ॥ १२ ॥ दिगंबर महाज्ञानी दूसरे शिवकेही समान शिष्य हुए बडे २ मुनियोंसे युक्त ॥ १३ ॥ अपने चरण स्पर्शसे पृथ्वीको पवित्र करते हुए विचरते थे और परधाम ब्रह्ममें प्रतिदिन मग्न रहते ॥ १४ ॥ उन्होंने प्रेमसे मेरुके दक्षिण कुमारशिखर नामक शृंगमें प्रवेश किया. जहां भगवान् शिवके पुत्र स्कन्दजी विराजते हैं ॥ १५ ॥ ज्ञानशक्ति धारण करनेवाले सम्पूर्ण असुरोंके नाशक वीर स्कन्द शक्तिसे युक्त सम्पूर्ण देवताओंसे नमस्कृत हो विराजते हैं ॥ १६ ॥ वहां स्कन्दनामक सागरके समान एक सरोवर है,

उसका ठंडा महास्वादिष्ट जल है, अगाध और बहुत जलवाला है ॥ १७ ॥ सम्पूर्ण आश्चर्यके गुणोंसे युक्त स्कन्दजीके समीपही वह सरोवर है वहां महामुनि वामदेव शिष्योंसहित स्नान करिके ॥ १८ ॥ शिखरके ऊपर बैठे मुनिवृन्दोंसे सेवित कुमार जो उदित सूर्यके समान मोर पर स्थित ॥ १९ ॥ चार भुजा, उदार अंग, मुकुट आदिसेविभूषित, रत्नभूत दो शक्तियोंसे उपास्य; शक्ति कूक्कुटधारी ॥ २० ॥ वर दायक अभय हाथवाले स्कन्दको देखकर वह मुनीश्वर परमभक्तिसे पूजनकर स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ वामदेव बोले, प्रणवके प्रतिपादक प्रणवके अर्थके विधायक प्रणव अक्षरहीके बीजवाले प्रणवरूप आपको नमस्कार है ॥ २२ ॥ वेदान्त अर्थके स्वरूप विज्ञान करनेवाले

सर्व्वाश्चर्य्यगुणोपेतं विद्यते स्वामिसन्निधौ॥तत्र स्नात्वा वामदेवस्सहशिष्यैर्महामुनिः॥१८॥कुमारं शिखरासीनं मुनिवृन्दनिषेवितम्॥उद्यदादित्यसंकाशं मयूरवरवाहनम्॥१९॥चतुर्भुजमुदारांगंमुकुटादिविभूषितम्॥शक्तिरत्नद्वयोपास्यंशक्तिकुक्कुटधारिणम्॥२०॥वरदाभयहस्तञ्च दृष्ट्वा स्कन्दं मुनीश्वरः॥सम्पूज्य परया भक्त्या स्तोतुं समुपचक्रमे॥२१॥॥ वामदेव उवाच॥ ॐ नमः प्रणवार्थाय प्रणवार्थविधायिने॥प्रणवाक्षरबीजाय प्रणवाय नमोनमः॥२२॥ वेदान्तार्थस्वरूपाय वेदान्तार्थविधायिने॥ वेदान्तार्थविदे नित्यं विदिताय नमोनमः॥२३॥ नमो गुहाय भूतानां गुहासु निहिताय च॥गुह्याय गुह्यरूपाय गुह्यागमविदे नमः॥ २४॥ अणोरणीयसे तुभ्यं महतोपि महीयसे॥ नमः परावरज्ञाय परमात्मस्वरूपिणे॥ २५॥ स्कन्दाय स्कन्दरूपाय मिहिरारुणतेजसे॥ नमो मन्दारमालोद्यन्मुकुटादिभृते सदा॥ २६॥

(वेदान्त अर्थके जननेवाले) आत्मज्ञानके स्वरूपके निमित्त नमस्कार है ॥ २३ ॥ सब प्राणियोंके अन्तरमें स्थित "यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्निति श्रुतेः" गुह्य अगुह्यरूप और गुह्य आगमके जाननेवाले आपको नमस्कार है ॥ २४ ॥सूक्ष्मसे सूक्ष्म और बडेसे बडे और पर अपरके जाननेवाले परमात्मास्वरूप आपको नमस्कार है "अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् इति श्रुतेः" ॥ २५ ॥ स्कंदको स्कंद स्वरूप असुर शक्तिके शोषनेवाले सिन्दूरके समान लाल तेजवान् मंदार मालाका उज्ज्वल मुकुट धारण करनेवाले आपके

अर्थ नमस्कार है ॥ २६ ॥ शिवके शिष्य पुत्र शिवकाही कल्याण देनेवाले शिवके प्रिय शिव पार्वतीके आनन्दसागरके निमित्त नमस्कार है ॥ २७ ॥ गंगाके पुत्र कालिकेय ब्राह्मी आदि माताओंके प्यारे उमापुत्र शरकंडेके वनमें शयन करनेवाले आपको प्रणाम है ॥२८॥ छः प्रकारके मंत्र तंत्रादिके शरीरवाले छः प्रकारके अर्थ विधान करनेवाले छहों मार्गसे परे षण्मुख आपके निमित्त नमस्कार है ॥ २९ ॥ द्वादशात्मा बारह नेत्र बारह हाथ और बारह आयुधधारी द्वादशरूप आपको नमस्कार है॥३०॥ चतुर्भुज शांत भक्ति कुक्कुट धारण करनेवाले वरदायक अभयहस्त असुरोंके मारनेवालेके निमित्त नमस्कार है ॥ ३१ ॥ गजावल्ली (स्कन्दशक्ति) के कुचोंमें लिप्त कुंकुमसे अंकित हृदयवाले गजाननके आनन्द

शिवशिष्याय पुत्राय शिवस्य शिवदायिने ॥ शिवप्रियाय शिवयोरानन्दनिधये नमः ॥२७॥ गांगेयाय नमस्तुभ्यं कार्तिकेयाय धीमते ॥ उमापुत्राय महते शरकाननशायिने ॥२८॥ षडक्षरशरीराय षड्विधार्थविधायिने ॥ षडध्वातीतरूपाय षण्मुखाय नमोनमः ॥ ॥२९॥ द्वादशायतनेत्राय द्वादशोद्यतबाहवे ॥ द्वादशायुधधाराय द्वादशात्मन्नमोस्तु ते ॥३०॥ चतुर्भुजाय शान्ताय शक्तिकुक्कुट धारिणे ॥ वरदाय विहस्ताय नमोऽसुरविदारिणे ॥ ३१ ॥ गजावल्लीकुचालिप्तकुंकुमांकितवक्षसे ॥ नमो गजाननानन्दमहे मानंदितात्मने ॥३२॥ ब्रह्मादिदेवमुनिकिन्नरगीयमानगाथाविशेषशुचिचिंतितकीर्त्तिधाम्ने ॥ वृन्दारकामलकिरीटविभूषणस्रक्पूज्याभिरामपदपंकज ते नमोस्तु ॥ ३३ ॥ इति स्कन्दस्तवन्दिव्यं वामदेवेन भाषितम् ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि स याति परमां गतिम् ॥ ३४ ॥ महाप्रज्ञाकरं ह्येतच्छिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥ आयुरारोग्यधनकृत्सर्व्वकामप्रदं सदा ॥ ३५ ॥

देनेवाले महाआनंदस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ ३२ ॥ ब्रह्मादि देवता ऋषि किन्नरोंसे जिनकी गाथा गाई जाती है, विशेष विचित्र कीर्तिके स्थान, देवताओंके निर्मल मस्तकके भूषण और फूलोंकी मालासे पूजित चरणकमलवाले आपको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ यह स्कन्दका दिव्य स्तोत्र वामदेवने कहा है जो इसे पढते सुनते हैं वह परमगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥ वह महाबुद्धिका बढानेवाला शिवकी भक्तिका बढ़ाने वाला आयु आरोग्य धन और सब कामनाओंका करने वाला है ॥ ३५ ॥

इस प्रकार देवताओंके सेनापति गुहकी स्तुति करके वामदेवने तीन प्रदक्षिणा कर पृथ्वीमें दण्डवत् की ॥ ३६ ॥ साष्टांग प्रणाम प्रदक्षिणा और दण्डवत् कर वह ब्राह्मण विनयसे उनके निकट स्थित हुआ ॥ ३७ ॥ परम अर्थका भरा हुआ वामदेवका स्तोत्र सुनकर महेश्वर पुत्र प्रभु स्कन्दजी प्रसन्न हुए ॥ ३८ ॥ स्कन्दजी बोले, कि मैं तुम्हारी पूजासे प्रसन्न हूँ तुमने अच्छी भक्तिसे स्तुति की अब मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ ॥ ३९ ॥ हे मुनि ! तुम योगियोंमें मुख्य परिपूर्ण और इच्छा रहित हो आप सरीखोंको इस लोकमें कुछ प्रार्थनीय नहीं है ॥ ४० ॥ तो भी आप सरीखे साधु लोक रक्षाके तथा धर्म रक्षाके निमित्त पृथ्वीमें विचरते हैं ॥ ४१ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो आपकी इच्छा

इति स्तुत्वा वामदेवो देवं सेनापतिं प्रभुम् ॥ प्रदक्षिणात्रयं कृत्वा प्रणम्य भुवि दण्डवत् ॥ ३६ ॥ साष्टागं च पुनः कृत्वा प्रदक्षिणनमस्कृतम् ॥ अभवत्पार्श्वतस्तस्य विनयावनतो द्विजाः ॥ ३७ ॥ वामदेवकृतं स्तोत्रम्परमार्थविजृम्भितम् ॥ श्रुत्वाभवत्प्रसन्नो हि महेश्वरसुतः प्रभुः ॥ ३८ ॥ तमुवाच महासेनः प्रीतोस्मि तव पूजया ॥ भक्त्या स्तुत्या च भद्रन्ते किमद्य करवाण्यहम् ॥ ३९ ॥ मुने त्वं योगिनाम्मुख्यः परिपूर्णश्च निस्स्पृहः ॥ भवादृशां हि लोकेस्मिन्प्रार्थनीयं न विद्यते ॥ ४० ॥ तथापि धर्म्मरक्षायै लोकानुग्रहकांक्षया ॥ त्वादृशाः साधवस्सन्तो विचरन्ति महीतले ॥ ४१ ॥ श्रोतव्यमस्ति चेद्ब्रह्मन् वक्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥ तदिदानीमहं वक्ष्ये लोकानुग्रहहेतवे ॥ ४२ ॥ इति स्कन्दवचः श्रुत्वा वामदेवो महामुनिः ॥ प्रश्रयावनतः प्राह मेघगम्भीरया गिरा ॥ ४३ ॥ वामदेव उवाच ॥ भगवन्परमेशस्त्वं परापरविभूतिदः ॥ सर्व्वज्ञसर्वकर्त्ता च सर्व्वशक्तिधरः प्रभुः ॥ ४४ ॥ जीवा वयं तु ते वक्तुं सन्निधौ परमेशितुः ॥ तथाप्यनुग्रहो यन्ते यत्त्वं वदसि मां प्रति ॥ ४५ ॥ कृतार्थोहं महाप्राज्ञ विज्ञानकणमात्रतः ॥ प्रेरितः परिपृच्छामि क्षन्तव्योतिक्रमो मम ॥ ४६ ॥

हो सो कहिये जो सुनना हो वह कहो मैं लोक रक्षाके निमित्त उसे कहूँगा ॥ ४२ ॥ यह स्कन्दके वचन सुन महामुनि वामदेवजी प्रेमसे गद्गद हो मेघ गम्भीर वाणीसे बोले ॥ ४३ ॥ वामदेव बोले, हे भगवन् ! आप पर अपरके स्वामी हो, परावरकी विभूति देने वाले हो, तुम सर्वज्ञ सबके कर्त्ता सब शक्तिके धारण करनेवाले हो ॥ ४४ ॥ हम जीव आपके गुण कहनेमें असमर्थ हैं, यह आपका अनुग्रह है जो आप हमसे ऐसे कहते हो ॥ ४५ ॥ हे महाभाग ! मैं कृतार्थ हूँ आपके लवमात्र विज्ञानसे प्रेरित हो आपसे पूँछता हूँ मेरे

अतिक्रमको आप क्षमा करो ॥४६॥ प्रणवही साक्षात् परमेश्वरका वाचक है, वही देव पशुपति वाच्य हैं, जो पशुओं(जीव)के पापमोच कहैं ॥४७॥ प्रणवद्वारा बुलाये हुए शिवजी क्षणमात्रमें पाप दूर करते हैं इस कारण शिवके प्रति प्रणवोपासन मात्रसेही जीवोंके पाशमोचन होकर प्रणवकी वाचकताकी सिद्धि होतीहै ॥४८॥ "ओमितीदंड सर्वम्" अर्थात् यह सब ओंकारही स्वरूप है, ऐसा सनातन श्रुति कहती है 'ओमिति ब्रह्म सर्व इस प्रकार सबको श्रुति ब्रह्मस्वरूप कहती है ॥४९॥ हे देवसेनापते ! देवताओंके पति आपको नमस्कार है, यतियोंके पति परिपूर्णके निमित्त नमस्कार है ॥ ५० ॥ इस प्रकार इस जगत्की स्थितिमें शिवके सिवाय कोई दूसरा नहीं है सब रूप धारण करनेवाले व्यापक स्वामी महेश्वर शिव हैं ॥ ५१ ॥ समष्टि व्यष्टिके

प्रणवो हि परः साक्षात्परमेश्वरवाचकः ॥ वाच्यः पशुपतिर्देवः पशूनांपाशमोचकः ॥४७॥ वाचकेन समाहूतः पशून्मोचयते क्षणात् ॥ तस्माद्वाचकतासिद्धिः प्रणवेन शिवम्प्रति ॥४८॥ ॐ मितीदं सर्व्वमिति श्रुतिराह सनातनी ॥ ओमिति ब्रह्म सर्व्वं हि ब्रह्मेति च समब्रवीत् ॥४९॥ देवसेनापते तुभ्यन्देवानाम्पतये नमः ॥ नमो यतीनाम्पतये परिपूर्णाय ते नमः ॥५०॥ एवं स्थिते जगत्यस्मिञ्छिवादन्यन्न विद्यते ॥ सर्व्वरूपधरः स्वामी शिवो व्यापी महेश्वरः ॥५१॥ समष्टिव्यष्टिभावेन प्रणवार्थः श्रुतो मया ॥ न जातुचिन्महासेन संप्राप्तस्त्वादृशो गुरुः ॥५२॥ अतः कृत्वानुकंपां वै तमर्थं वक्तुमर्हसि ॥ उपदेशविधानेन सदाचारक्रमेण च ॥५३॥ स्वाम्यकः सर्व्वजन्तूनां पाशच्छेदकरो गुरुः ॥ अतस्त्वत्कृपया सोऽर्थः श्रोतव्यो हि मया गुरो ॥५४॥ इति स मुनिना पृष्टः स्कन्दः प्रणम्य सदाशिवं प्रणववपुषं साष्टत्रिंशत्कलावरलक्षितम् ॥ सहितमुमया शश्वत्पार्श्वे मुनिप्रवरान्वितं गदितुमुपचक्राम श्रेयः श्रुतिष्व पिगोपितम् ॥५५॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां वामदेवब्रह्मवर्णनन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

भावसे यह सब प्रणवार्थ ही है, ऐसा मैंने सुना है, हे स्कन्दजी ! आपके समान कोई गुरु नहीं मिल सकता है ॥५२॥ मैंने प्रणवार्थ नहीं सुना इस कारण आप उपदेशके विधान और सदाचारके क्रमसे कृपाकर मुझे इसका अर्थ सुनाइये ॥५३॥ आपही सब जन्तुओंके पाश छेदन करनेसे गुरुहो इस कारण हे गुरो ! कृपाकर वह अर्थ मुझे सुनाइये ॥५४॥ जब मुनिने इस प्रकारसे पूंछा तो स्कंदने प्रणवशरीर अडतीस कलायुक्त पार्वतीसहित शिवको प्रणाम करके मुनिके निमित्त वेदगुह्य ज्ञान कहना प्रारम्भ किया ॥५५॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां ष० कै० स० एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

स्कंदजी बोले, हे महाभाग ! वामदेव मुनीश्वर ! आप धन्य हो तुम अत्यंत शिवके भक्त हो शिवज्ञान जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हो ॥ १ ॥ तुमको त्रिलोकीमें कुछ भी अविदित नहीं है तो भी लोकानुग्रह करनेके हेतु मैं तुमसे कहता हूं ॥ २ ॥ इस लोकमें जीव अनेक प्रकारके शास्त्रोंसे मोहित हो गये हैं, परमेशकी विचित्र मायासे वंचित हैं ॥ ३ ॥ साक्षात् प्रणव अर्थ महेश्वरको नहीं जानते, जो सगुण निर्गुण ब्रह्म तीन देवका प्रगट करनेवाला परमदेव है ॥ ४ ॥ मैं दक्षिण भुजा उठाकर सौगन्ध पूर्वक कहता हूँ यह सत्य है और सत्य है ॥ ५ ॥ प्रणवके अर्थ साक्षात् शिवहीने प्रधानतासे कहे हैं, श्रुति, स्मृति, शास्त्र, पुराण और आगमोंमें यह बात कही है

श्रीब्रह्मण्य उवाच ॥ साधुसाधु महाभाग वामदेव मुनीश्वर ॥ त्वमतीव शिवे भक्तश्शिवज्ञानवतां वरः ॥ १ ॥ त्वया त्वविदितं किंचिन्नास्ति लोकेषु कुत्रचित् ॥ तथापि तव वक्ष्यामि लोकानुग्रहकारिणः ॥ २ ॥ लोकेस्मिन्पशवस्सर्व्वे नानाशास्त्रविमोहिताः ॥ वञ्चिताः परमेशस्य मायया तिविचित्रया ॥ ३ ॥ न जानन्ति परं साक्षात्प्रणवार्थम्महेश्वरम् ॥ सगुणन्निर्गुणं ब्रह्म त्रिदेवजनकम्परम् ॥ ४ ॥ दक्षिणम्बाहुमुद्धृत्य शपथम्प्रब्रवीमि ते ॥ सत्यं सत्यं पुनस्सत्यं सत्यं सत्यं पुनः पुनः ॥ ५ ॥ प्रणवार्थश्शिवः साक्षात्प्राधान्येन प्रकीर्त्तितः ॥ श्रुतिषु स्मृतिशास्त्रेषु पुराणेष्वागमेषु च ॥ ६ ॥ यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥ आनन्दं यस्य वै विद्वान्न बिभेति कुतश्चन ॥ ७ ॥ यस्माज्जगदिदंसर्व्वं विधिविष्ण्वेन्द्रपूर्व्वकम् ॥ सहभूतेन्द्रियग्रामैः प्रथमं सम्प्रसूयते ॥ ८ ॥ न सम्प्रसूयते यो वै कुतश्चन कदाचन ॥ यस्मिन्न भासते विद्युन्न सूर्यो न चन्द्रमाः ॥ ९ ॥ यस्य भासो विभातीदञ्जगत्सर्व्वं समन्ततः ॥ सर्व्वैश्वर्य्येण सम्पन्नो नाम्ना सर्व्वेश्वरस्स्वयम् ॥ १० ॥ यो वै मुमुक्षुभिर्ध्येयः शम्भुराकाशमध्यगः ॥ सर्व्वव्यापी प्रकाशात्मा भासरूपो हि चिन्मयः ॥ ११ ॥

॥ ६ ॥ जहां जाकर मनके सहित वाणी निवृत्त हो जाती है, जिसके आनन्दको प्राप्त कर फिर विद्वान् कहींसे भयभीत नहीं होता ॥ ७ ॥ जिनसे ब्रह्मा रुद्र इन्द्रपूर्वक यह सम्पूर्ण जगत् होता है जो भूतेन्द्रिय सहित इस जगत्को उत्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥ वह कहींसे उत्पन्न नहीं होते हैं, जिसमें विद्युत् सूर्य और चन्द्रमा भी प्रकाश नहीं करते ॥ ९ ॥ जिसकी भाषासे यह सब जगत् प्रकाशमान होता है, वह सब ऐश्वर्यसे प्राप्त होनेसेही महेश्वर कहलाते हैं ॥ १० ॥ जो आकाशके मध्यमें रहनेपर शंभु मुमुक्षुओंसे ध्यान किये जाते हैं, जो सर्वव्यापी

प्रकाशात्मस्वरूप चिन्मय हैं ॥ ११ ॥ जिस पुरुषकी पराशक्ति भावसे जानी जाती है वह निर्गुण और सगुण और निष्कल तथा शिवा हैं ॥ १२ ॥ जिसके तीन प्रकारके रूप हैं, स्थूल और सूक्ष्म और उससे परे हे मुने ! मुमुक्षुओंको उसका ध्यान करना चाहिये ॥ १३ ॥ वह सम्पूर्ण देवोंके आदिदेव सनातन हैं, निष्कल हैं, जो ज्ञानक्रियाके स्वभाववाले हैं उनको परमात्मा कहते हैं ॥ १४ ॥ उस देवाधिदेवकी मूर्त्ति साक्षात् सदाशिव हैं, वह देव पंचमंत्रके शरीरवाले कलापंचकविग्रहवाले हैं ॥ १५ ॥ शुद्ध स्फटिकमणिके समान प्रसन्न और शीतल कान्तिवाले पांचमुख दशभुजा पंचदश नयन ॥ १६ ॥ ईशान देव मुकुट करके युक्त पुरातन पुरुष अघोर हृदय वामदेव गुह्यभूत मूर्तस्वरूप

यस्य पुंसः परा शक्तिर्भावगम्या मनोहरा ॥ निर्गुणा स्वगुणैरेव निगूढा निष्कला शिवा ॥१२॥ तदीयन्त्रिविधं रूपं स्थूलं सूक्ष्मं परन्ततः ॥ ध्येयं मुमुक्षुभिर्नित्यं क्रमतो योगिभिर्मुने ॥१३॥ निष्कलस्सर्व्वदेवानामादिदेवस्सनातनः ॥ ज्ञानक्रियास्वभावो यः परमात्मेति गीयते ॥ १४॥ तस्य देवाधिदेवस्य मूर्त्तिस्साक्षात्सदाशिवः ॥ पञ्चमंत्रतनुर्देवः कलापञ्चकविग्रहः ॥१५॥ शुद्धस्फटिकसंकाशः प्रसन्नः शीतलद्युतिः ॥ पंचवक्त्रो दशभुजस्त्रिपंचनयनः प्रभुः ॥१६॥ ईशानमुकुटोपेतः पुरुषास्यः पुरातनः ॥ अघोरहृदयो वामदेवगुह्यप्रदेशवान् ॥ १७॥ सद्यपादश्च तन्मूर्त्तिः साक्षात्सकलनिष्कलः ॥ सर्व्वज्ञत्वादिषट्शक्तिषडंगीकृतविग्रहः ॥१८॥ शब्दादिशक्तिस्फुरितहृत्पंकजविराजितः ॥ स्वशक्त्या वामभागे तु मनोन्मन्या विभूषितः ॥१९॥ मन्त्रादिषड्विधार्थानामर्थोपन्याससार्गतः ॥ समष्टिव्यष्टिभावार्थं वक्ष्यामि प्रणवात्मकम् ॥२०॥ उपदेशक्रमो ह्यादौ वक्तव्यश्श्रूयतामयम् ॥ चातुर्व्वर्ण्ये हि लोकेस्मिन्प्रसिद्धम्मानुषे मुने ॥ २१ ॥ त्रैवर्णिकानामेवात्र श्रुत्याचारसमन्वयः ॥ शुश्रूषामात्रसारा हि शूद्राः श्रुतिबहिष्कृताः ॥२२॥

॥ १७ ॥ सद्य पादतन्मूर्त्ति साक्षात् सम्पूर्ण निष्कलमूर्त्ति सर्वज्ञत्वादि छः शक्ति और छः प्रकारसे शरीरका अंगीकार करने वाले ॥ १८ ॥ शब्दादि शक्तियोंसे स्फुरायमान हृदयकमलमें विराजित और मनोन्मनी अपनी शक्तिसे वामभागमें विभूषित हैं ॥ १९ ॥ मंत्रादि छः प्रकारके अर्थ और उपन्यासके मार्ग समष्टि व्यष्टि भावके प्रणवात्मक अर्थको कहता हूं श्रवण करो ॥ २० ॥ प्रथम उपदेशका क्रम कहा जाता है, सो सुनिये हे मुनिराज ! इस लोकमें चारवर्ण विख्यात हैं ॥ २१ ॥ इनमें तीन वर्णोंको वेदका आचार कहा है, शूद्रको

वेदका अधिकार नहीं है, वह केवल सेवाही करे ॥ २२ ॥ और अपने आश्रममें रत सब तीनों वर्णोंको श्रुति स्मृतिका धर्महो अनुष्ठान करना चाहिये दूसरा नहीं ॥ २३ ॥ श्रुति स्मृतिकेही कहे हुए धर्मसे सिद्धिकी प्राप्ति होगी, वेदमार्गके दिखानेवाले परमेश्वरने ऐसा कहा है ॥ २४ ॥ वर्णाश्रमके आचाररूपी पुण्यसे परमेश्वरका पूजन करे ऐसा करनेसे बहुतसे मुनिश्रेष्ठ उनकी सायुज्यताको प्राप्त होगये हैं ॥ २५ ॥ ब्रह्मचर्यसे ऋषि, यज्ञक्रियाके मार्गसे देवता, और पितर स्वधासे तृप्त होगये हैं ऐसा श्रुति कहती है ॥ २६ ॥ इस प्रकार तीन ऋणसे मुक्त हो वानप्रस्थ आश्रमको प्राप्तहो शीत, उष्णता सुख, दुःख सहनेवाला जितेन्द्रिय ॥ २७ ॥ तपस्वी आहार जीतनेवाला यम

त्रैवर्णिकानां सर्व्वेषां स्वस्वाश्रमरतात्मनाम्॥ श्रुतिस्मृत्युदितो धर्मोऽनुष्ठेयो नापरः क्वचित् ॥२३॥ श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म्म कुर्व्वन्सिद्धिमवाप्स्यति ॥ इत्युक्तम्परमेशेन वेदमार्गप्रदर्शिना ॥२४॥ वर्णाश्रमाचारपुण्यैरभ्यर्च्य परमेश्वरम् ॥ तत्सायुज्यं गतास्सर्व्वे बहवो मुनिसत्तमाः ॥२५॥ ब्रह्मचर्य्येण मुनयो देवा यज्ञक्रियाध्वना ॥ पितरः प्रजया तृप्ता इति हि श्रुतिरब्रवीत् ॥२६॥ एवं ऋणत्रयान्मुक्तोवानप्रस्थाश्रमं गतः ॥ शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुर्विजितेन्द्रियः ॥२७॥ तपस्वी विजिताहारो यमाद्यं योगमभ्यसेत् ॥ यथा दृढतरा बुद्धिरविचाल्या भवेत्तथा ॥ २८ ॥ एवं क्रमेण शुद्धात्मा सर्व्वकर्म्माणि विन्यसेत् ॥ सन्यस्य सर्व्वकर्म्माणि ज्ञानपूजापरो भवेत् ॥२९॥ सा हि साक्षाच्छिवैक्येन जीवन्मुक्तिफलप्रदा ॥ सर्व्वोत्तमा हि विज्ञेया निर्विकारा यतात्मनाम् ॥ ३० ॥ तत्प्रकारमहं वक्ष्ये लोकानुग्रहकाम्यया ॥ तव स्नेहान्महाप्राज्ञ सावधानतया शृणु ॥३१॥ सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं वेदांतज्ञानपारगम् ॥ आचार्य्यमुपगच्छेत्स यतिर्म्मतिमतां वरम् ॥ ३२ ॥

नियमादि योगका अभ्यास करे, जिस प्रकारसे बुद्धि निश्चल और दृढ होजाय ॥ २८ ॥ इसी प्रकार शुद्धताके क्रमसे सब कर्म करे और सब काम्य कर्मोंका त्याग करके ज्ञानमयी पूजामें तत्पर होजाय ॥ २९ ॥ यह साक्षात् ज्ञानमयी पूजा शिवजीकी ऐक्यता और जीवन्मुक्तिकी देनेवाली है यह सर्वोत्तम विकार रहित यतियोंको जाननी चाहिये ॥ ३० ॥ हे महाप्राज्ञ ! आपके स्नेहसे मैं कहता हूं लोकके अनुग्रहसे उसका प्रकार कहता हूँ सो सावधान होकर सुनो ॥ ३१ ॥ सब शास्त्रके अर्थके तत्त्वको जाननेवाले वेदान्तके पारगामी बुद्धिमान्

आचार्यके पास बुद्धि सम्पन्न यति जाकर ॥ ३२ ॥ बुद्धिमान् अनेक दण्ड और प्रणाममे उन्हें संतुष्ट करे ॥ ३३ ॥ जो गुरू है वह शिव है जो शिव है सो गुरू है ऐसा मनमें विचार कर अपना विचार गुरूसे निवेदन करे ॥ ३४ ॥ फिर गुरूकी आज्ञा पाकर बारह दिन पयोव्रत करे शुक्लपक्षकी चौथ वा दशमीको विधिपूर्वक ॥ ३५ ॥ स्नान करके प्रातःकृत्य कर शुद्ध हो विधिपूर्वक गुरूको बुलाकर नान्दी श्राद्ध करे ॥ ३६ ॥ उसमें विश्वेदेवा सत्यवसु संज्ञावाले कहे हैं हे ऋषि ! श्राद्धमें ब्रह्मा विष्णु और महेश यह तीन कहे हैं ॥ ३७ ॥ ऋषि श्राद्धमें देव

तत्समीपमुपव्रज्य यथाविधि विचक्षणः॥ दीर्घदण्डप्रणामाद्यैस्तोषयेद्यत्नतस्सुधीः॥३३॥ योगुरुस्स शिवः प्रोक्तो यश्शिवस्स गुरुस्स्मृतः॥ इतिनिश्चित्य मनसा स्वविचारन्निवेदयेत्॥३४॥ लब्धानुज्ञस्तु गुरुणा द्वादशाहं पयोव्रती॥ शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां वा दशम्यांवा विधानतः ॥३५॥ प्रातः स्नात्वा विशुद्धात्मा कृतनित्यक्रियस्सुधीः॥ गुरुमाहूय विधिना नांदीश्राद्धं समारभेत् ॥३६॥ विश्वेदेवाः सत्यवसुसंज्ञावंतः प्रकीर्त्तिताः ॥ देवश्राद्धे ब्रह्मविष्णुमहेशाः कथितास्त्रयः॥३७॥ ऋषिश्राद्धे तु सम्प्रोक्ता देवक्षेत्रमनुष्यजाः ॥ देवश्राद्धे तु वसुरुद्रादित्यास्सम्प्रकीर्त्तिताः ॥ ३८ ॥ चत्वारो मानुषश्राद्धे सनकाद्या मुनीश्वराः॥ भूतश्राद्धे पच महाभूतानि च ततः परम्॥३९॥ चक्षुरादीन्द्रियग्रामो भूतग्रामश्चतुर्विधः॥ पितृश्राद्धे पिता तस्य पिता तस्य पिता त्रयः ॥४०॥ मातृश्राद्धे मातृपितामह्यौ च प्रपितामही ॥ आत्मश्राद्धे तु चत्वार आत्मा पितृपितामहौ ॥४१॥ प्रपितामहनामा च सपत्नीकाःप्रकीर्त्तिताः ॥ मातामहात्मकश्राद्धे त्रयो मातामहादयः ॥ ४२ ॥

क्षेत्र मनुष्य कहे हैं, द्रव्य श्राद्धमें वसु रुद्र आदित्य वर्णन किये हैं ॥ ३८ ॥ मनुष्य श्राद्धमें चार सनकादिक कहे हैं भूत श्राद्धमें पाच महाभूत कहे हैं ॥ ३९ ॥ चक्षुरादि इन्द्रिय समूह और जरायुज अण्डज स्वेदज उद्भिज्ज यह चार प्रकारका भूत समूह कहा है, पितृश्राद्धमें बाप दादे परदादे यह तीन कहे हैं ॥ ४० ॥ मातृश्राद्धमें माता दादी परदादी कही है, आत्मश्राद्धमें अपने पिता पितामह ॥ ४१ ॥ प्रपितामह सपत्नीक ग्रहण किये हैं मातामह (नाना) के श्राद्धमें नाना परनाना बुइढे परनानाका ग्रहण किया है ॥ ४२ ॥

प्रतिश्राद्धमें दो ब्राह्मण जिमावे, उनको बुलवाकर स्वयं आचमन कर पवित्र हो उनके चरण धोवे ॥ ४३ ॥ और इस प्रकार कहे सम्पूर्ण सम्पत्तिकी प्राप्तिके कारण, आपत्तियोंके दूर करनेको अग्नि, अपार संसार सागरके सेतु, ब्राह्मणोंके चरणोंकी रज मुझे पवित्र करे ॥ ४४ ॥ आपत्तिरूप अन्धकार दूर करनेको सूर्य्य, इच्छित पदार्थ देनेको कामधेनु, समस्त तीर्थोंके जलकी पवित्रमूर्त्ति, ब्राह्मणोंके चरणोंकी रज मेरी रक्षा करे ॥ ४५ ॥ यह जपकर फिर पृथ्वीमें साष्टांग दंडवत् करे, और शिवजीके सन्मुख पूर्वको मुखकर खडा हो उनके चरणोंका ध्यान करता हुआ ॥ ४६ ॥ पवित्र हाथकर शुद्ध हो यज्ञोपवीत नवीन धारण कर दृढ आसनपर बैठ तीन प्राणायाम कर तिथ्यादि सुनकर ॥ ४७ ॥ मेरे

प्रतिश्राद्धं ब्राह्मणानां युग्मं कृत्वोपकल्पितान् ॥ आहूय पादौ प्रक्षाल्य स्वयमाचम्य यत्नतः ॥४३॥ समस्तसंपत्समवाप्तिहेतवः समुत्थितापत्कुलधूमकेतवः ॥ अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादरेणवः ॥४४॥ आपद्घनध्वान्तसहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः ॥ समस्ततीर्थाम्बुपवित्रमूर्त्तयो रक्षंतु मां ब्राह्मणपादपांसवः ॥४५॥ इति जप्त्वा नमस्कृत्य साष्टांगं भुवि दण्डवत् ॥ स्थित्वा तु प्राङ्मुखः शम्भोः पादाब्जयुगलं स्मरन् ॥४६॥ सपवित्रकरश्शुद्ध उपवीती दृढासनः ॥ प्राणायामत्रयं कुर्य्याच्छ्रुत्वातिथ्यादिकं पुनः ॥४७॥ मत्संन्यासांगभूतं यद्विश्वेदेवादिकं तथा ॥ श्राद्धमष्टविधं मातामहान्तं पार्वणेन वै ॥४८॥ विधानेन करिष्यामि युष्मदाज्ञापुरस्सरम् ॥ एवं विधाय संकल्पं दर्भानुत्तरतस्त्यजेत् ॥४९॥ उपस्पृश्याप उत्थाय वरणक्रममारभेत् ॥ पवित्रपाणिः संस्पृश्य पाणी ब्राह्मणयोर्वदेत् ॥५०॥ विश्वेदेवार्थं इत्यादि भवद्भ्यां क्षण इत्यपि ॥ ५१ ॥ प्रसादनीय इत्यन्तं सर्व्वत्रैवं विधिक्रमः ॥ एवं समाप्य वरणं मण्डलानि प्रकल्पयेत् ॥ ५२ ॥

संन्यासका अंगभूत जो वैश्वदेवादि है सो क्रमसे करके पूर्वोक्त देवश्राद्ध आदि भेदसे मातामह पर्यन्त पार्वणश्राद्ध ॥ ४८ ॥ आपकी आज्ञासे विधि पूर्वक करूँगा ऐसा संकल्प कर कुशोंको उत्तरकी ओर त्यागन कर दे ॥ ४९ ॥ फिर ब्राह्मणोंका हाथ स्पर्श कर वरणका क्रम प्रारम्भ करे पवित्रीको हाथोंसे छूकर ब्राह्मणोंसे कहे ॥ ५० ॥ विश्वेदेवाके निमित्त आपका वरण किया है, क्षणमात्रको आप स्वीकार कीजिये ॥ ५१ ॥ इस प्रकार सबको प्रसन्न करे सर्वत्र यही क्रम है इस प्रकार वरण समाप्त कर मण्डलकी रचना रचे ॥ ५२ ॥

उत्तरसे लेकर दशों मंडलोंको अक्षतोंसे पूजन करे, उन मंडलोंपर ब्राह्मणोंको बैठाकर उनके चरणोंपर अक्षत डाले ॥ ५३ ॥ विश्वेदेवा स्वरूप ब्राह्मणोंको सम्बोधन कर उनसे कहे यह आपके निमित्त पाद्य है ऐसा कह कुश, पुष्प, अक्षत, जल, दे ॥ ५४ ॥ फिर पाद्य देकर मुख धुलाय उत्तरको मुखकर बैठाय आचमन कराय उनको श्रेष्ठ आसनोंपर बैठावे ॥ ५५ ॥ विश्वेदेवारूप ब्राह्मणोंके निमित्त यह आसन है, ऐसा कह कुशाका आसन दे, फिर स्वयं कुश हाथमें लेकर स्थित हो ॥ ५६ ॥ और इस नांदीमुख श्राद्धमें विश्वेदेवाके निमित्त आप क्षण मात्र स्थित हूजिये ऐसा कहे ॥ ५७ ॥ आप दोनों स्वीकार कीजिये, हम स्वीकार करते हैं ऐसा वे दोनों ब्राह्मण कहें ॥ ५८ ॥ कि

उदगारभ्य दशच कृत्वाभ्यर्चनमक्षतैः ॥ तेषु क्रमेण संस्थाप्य ब्राह्मणान्पादयोः पुनः ॥५३॥ विश्वेदेवादिनामानि ससंबोधनमुच्चरेत् ॥ इदं वः पाद्यमिति सकुशपुष्पाक्षतोदकैः ॥५४॥ पाद्यं दत्त्वा स्वयमपि क्षालितांघ्रिरुदङ्मुखः ॥ आचम्य युग्मकृतांस्तानासनेषूपवेश्य च ॥५५॥ विश्वेदेवस्वरूपस्य ब्राह्मणस्येदमासनम् ॥ इति दर्भासनं दत्त्वा दर्भपाणिस्स्वयं स्थितः ॥५६॥ अस्मिन्नान्दीमुखश्राद्धे विश्वेदेवार्थं इत्यपि ॥ भवद्भ्यां क्षण इत्युक्ता क्रियतामिति संवदेत् ॥५७॥ प्राप्नुतामिति सम्प्रोच्य भवन्ताविति संवदेत् वदेतां प्राप्नुयावेति तौ च ब्राह्मणपुंगवौ ॥५८॥ संपूर्णमस्तु संकल्पसिद्धिरस्त्विति तान्प्रति ॥ भवन्तोऽनुगृह्णंत्विति प्रार्थयेद्विजपुंगवान् ॥५९॥ ततश्शुद्धकदल्यादिपात्रेषु क्षालितेषु च ॥ अन्नादिभोज्यद्रव्याणि दत्त्वा दर्भैः पृथक्पृथक् ॥६०॥ परिस्तीर्य्यस्वयं तत्र परिषिच्योदकेन च ॥ हस्ताभ्यामवलंब्याथ पात्रं प्रत्येकमादरात् ॥६१॥ पृथिवी ते पात्रमित्यादि कृत्वा तत्र व्यवस्थितान् ॥ देवादींश्च चतुर्थ्यन्तान्ननूद्याक्षतसंयुतान् ॥६२॥ उदग्गृहीत्वा स्वाहेति देवार्थेऽन्नं यजेत्पुनः ॥ न ममेति वदेदन्ते सर्वत्रायं विधिक्रमः ॥६३॥

तुम्हारे संकल्पकी सिद्धि सम्पूर्णतासे हो तब ब्राह्मणोंसे प्रार्थना करे कि आप अनुग्रह कीजिये ॥ ५९ ॥ तब शुद्ध केलेके पत्तोंमें धोकर बनाये हुए अन्नादि भोजनके पदार्थ परोस कर और पृथक् कुश बिछा कर ॥६०॥ और जलसे छिडक कर पीछे प्रत्येक पात्रको हाथमें लेकर ॥ ६१ ॥ आदरसे वे पात्र पृथ्वीमें रखकर (पृथ्वीते पात्रम्) यह मंत्र पढे देवता आदिको चतुर्थी विभक्ति उच्चारण करके ॥ ६२ ॥ अक्षत सहित जलको ग्रहण कर " देवाय स्वाहा " यह कहकर उस अन्नको त्यागन करदे, और ' इदं न मम " अन्तमें

ऐसा कहे, इस प्रकार सर्वत्र करे ॥ ६३ ॥ जिनके चरण कमलके स्मरणसे जिनके श्रीनामके जपसे न्यून कर्म भी पूर्ण हो जाता है उन महेश्वरको अम्बा सहित नमस्कार करता हूं ॥ ६४ ॥ ऐसे कह कर उनसे कहे जो कुछ मैंने किया है इन नान्दीमुखश्राद्धको आप यथायोग्य कहिये ॥६५॥ ब्राह्मण कहें ऐसाही हो, तब वह उन ब्राह्मणश्रेष्ठोंको प्रसन्न कर और अपने हाथसे जल छोड पृथ्वीमें दण्डवत् कर ॥ ६६ ॥ उठकर फिर कहे कि यह ब्राह्मणोंको अमृत स्वरूप हो, और हाथ जोडकर उदारबुद्धिसे परमप्रीतिसे प्रार्थना करे ॥ ६७ ॥ 'नमस्ते रुद्र मन्यवे' 'अग्नाविष्ण सजोषसे' इत्यादिक ग्यारह अनुवाक (सहस्रशीर्षा) इत्यादि पुरुषसूक्तको वा ईशानादि पांच ब्रह्मके नामोंको चित्तमें सदाशिव

यत्पादपद्मस्मरणाद्यस्य नामजपादपि ॥ न्यूनं कर्म भवेत्पूर्णन्तं वन्दे साम्बमीश्वरम् ॥६४॥ इति जप्त्वा ततो ब्रूयान्मया कृत मिदं पुनः ॥ नान्दीमुखश्राद्धमिति यथोक्तं च वदेत्ततः ॥६५॥ अस्विति ब्रूतेति च तान्प्रसाद्य द्विजपुंगवान् ॥ विसृज्य स्वकर स्थोदं प्रणम्य भुवि दण्डवत् ॥ ६६ ॥ उत्थाय च ततो ब्रूयादमृतम्भवतु द्विजान् ॥ प्रार्थयेच्च परं प्रीत्या कृतांजलिरुदारधीः ॥६७॥ श्रीरुद्रं चमकं सूक्तं पौरुषं च यथाविधि॥ चित्ते सदाशिवन्ध्यात्वा जपेद्ब्रह्माणि पञ्च च ॥६८॥ भोजनान्ते रुद्रसूक्तं क्षमा पठ्य द्विजान्पुनः ॥ तन्मन्त्रेण ततो दद्यादुत्तरापोशणं पुरः ॥ ६९ ॥ प्रक्षालितांघ्रिराचम्य पिण्डस्थानं व्रजेत्ततः ॥ आसीनः प्राङ् मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् ॥७०॥ नान्दीमुखोक्तश्राद्धांगं करिष्ये पिण्डदानकम् ॥ इति संकल्प्य दक्षादिसमारभ्योदकान्ति कम् ॥ ७१ ॥ नव रेखाःसमालिख्य प्रागग्रान्द्वादश क्रमात् ॥ संस्तीर्य्य दर्भान्दक्षादिदेवादिस्थानपञ्चकम् ॥७२॥ तूष्णीं दद्या त्साक्षतोदं त्रिषु स्थानेषु च क्रमात् ॥ स्थानेष्वन्येषु मातृषु मार्ज्जयन्तास्ततः परम् ॥ ७३ ॥

का ध्यान कर जप करे ॥ ६८ भोजनके अन्तमें रुद्रसूक्तको समाप्त करके उन ब्राह्मणोंको 'अमृतापिधानमसीति' मंत्रसे जल देकर ॥ ६९ ॥ चरणधोय आचमन कर पिंडके स्थानमें स्वयं जाय और मौन हो पूर्वको बैठ तीन प्राणायाम करे ॥ ७० ॥ और कहे अब मैं नान्दीमुखश्राद्ध के अंगरूप पिण्डदानको करूंगा, ऐसा संकल्पकर दक्षिणादिसे आरम्भ कर उत्तरतक ॥ ७१ ॥ नौ रेखा लिखे उसके आगे क्रमसहित देवादिके पांच स्थानमें दो दो कुश बिछावे ॥ ७२ ॥ और अक्षत सहित जल मौन होकर तीन स्थानोंमें क्रमसे दे, दूसरे

स्थानमें माताओंको मार्जन करे इसके उपरान्त ॥ ७३ ॥ यहां पितर स्थित हों, ऐसा कहकर अक्षत जल समर्पण करे इसी क्रमसे देवताओंक पांचों स्थानोंमें समर्पण करे ॥ ७४ ॥ फिर चतुर्थ्यन्त उन उन देवताओंके नाम लेकर प्रत्येक उन पांचों स्थानोंमें पिण्डदान करे ॥ ७५ ॥ पित्रादि पंचकस्थानोंमें मौन हो जल, चावल चढावे, और अपने गृह्यसूत्रके अनुसार पिण्डदान दे फिर श्रेष्ठगुणके निमित्त जल और चावल ॥ ७६ ॥ और हृदयकमलके मध्यमें सदाशिवका ध्यान करे 'यत्पादपद्मस्मरणात्' इत्यादि इन श्लोकको फिर पढे ॥ ७७ ॥ फिर ब्राह्मणोंको नमस्कार कर अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा देकर क्षमा कराय उनको बिदा करे ॥ ७८ ॥ पिंडको छोडकर गौग्रास दे अथवा जलमें

अत्रेति पितरः पश्चात्साक्षतोदं समर्च्य च ॥ दद्यात्ततः क्रमेणैव देवादि स्थानपञ्चके ॥ ७४ ॥ तत्तद्देवादिनामानि चतुर्थ्यन्तान्युदीर्य्य च ॥ पिण्डत्रयं ततो दद्यात्प्रत्येकं स्थानपञ्चके ॥७५॥ स्वगृह्योक्तेन मार्गेण दद्यात्पिण्डान्पृथक्पृथक् ॥ दद्यादिदं साक्षतंच पितृसाङ्गुण्यहेतवे ॥ ७६ ॥ ध्यायेत्सदाशिवं देवं हृदयाम्भोजमध्यतः ॥ तत्पादपद्मस्मरणादिति श्लोकं पठन्पुनः ॥ ७७ ॥ नमस्कृत्य ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां च स्वशक्तितः ॥ दत्त्वा क्षमापय्य च तान्विसृज्य च ततः क्रमात् ॥ ७८ ॥ पिण्डानुत्सृज्य गोग्रासं दद्यान्नोचेज्जले क्षिपेत् ॥ पुण्याहवाचनं कृत्वा भुंजीत स्वजनैस्सह ॥७९॥ अन्येद्युः प्रातरुत्थाय कृतनित्यक्रियस्सुधीः ॥ उपोष्य क्षौरकर्मादि कक्षोपस्थविवर्जितम् ॥८०॥ केशश्मश्रुनखानेव कर्म्मावधि विसृज्य च ॥ समाप्तकेशान्विधिवत्कारयित्वा विधानतः ॥८१॥ स्नात्वा धौतपटश्शुद्धो द्विराचम्याथ वाग्यतः ॥ भस्म संधार्य्य विधिना कृत्वा पुण्याहवाचनम् ॥८२॥ तेन संप्रोक्ष्य संप्राप्य शुद्धदेहस्वभावतः ॥ होमद्रव्यार्थमाचार्य्यदक्षिणार्थं विहाय च ॥ ८३ ॥

छोड दे फिर पुण्याहवाचनकर इष्टजनोंके संग भोजन करे ॥ ७९ ॥ दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर और नित्यक्रिया व्रत करके बगल और उपस्थके बालोंको छोडकर क्षौरकर्म करावे ॥ ८० ॥ केश दाढी मूछ नखूनको कर्मकी विधिमें छोडकर अर्थात् गुह्यके बालोंको छोडकर विधिपूर्वक क्षौर कर्मके विधानसे करावे ॥ ८१ ॥ स्नानकर शुद्ध धोती पहर दो आचमन कर मौन हो विधिपूर्वक भस्म धारणकर पुण्याहवाचन करे ॥ ८२ ॥ प्रोक्षण कर शुद्ध देहके स्वभावसे होमद्रव्यके निमित्त और आचार्यकी प्रदक्षिणाके द्रव्य छोडकर ॥ ८३ ॥

और सम्पूर्ण द्रव्यजात शिव और ब्राह्मणोंकेनिमित्त और भक्तोंकेनिमित्त देकर गुरुरूप शिवके निमित्त॥८४॥वस्त्रादि दक्षिणादेकर प्रणामकर पृथ्वीमें दंडवत् करे डोरा कौपीन वस्त्र दंडादि धोया हुआ पवित्र लेकर॥८५॥होमके द्रव्य और समिधादि क्रमसे लेकर समुद्रके किनारे, नदी, पर्वत शिवालय ॥८६॥ वन, कोठ आदि उत्तम स्थानोंको विचारकर आचमन कर स्थित हो मानस जपरूप मंजरीको करके ॥८७॥ ब्रह्म मंत्र ओंकार सहित और नमो ब्रह्मणे ऐसा भी तीनबार जपकर "अग्निमीडे पुरोहितम्" उच्चारण करे ॥८८॥ फिर "महाव्रतमिति" और 'अग्निर्देवानामवमः' और इसका

द्रव्यजातं महेशाय द्विजेभ्यश्च विशेषतः ॥ भक्तेभ्यश्च प्रदायाथ शिवाय गुरुरूपिणे ॥ ८४ ॥ वस्त्रादिदक्षिणां दत्त्वा प्रणम्य भुवि दण्डवत् ॥ दोरकौपीनवसनं दण्डाद्यं क्षालितम्भुवि ॥ ८५ ॥ आदाय होमद्रव्याणि समिधादीनि च क्रमात् ॥ समुद्रतीरे नद्यां वा पर्व्वते वा शिवालये ॥ ८६ ॥ अरण्ये चापि गोष्ठे वा विचार्य्य स्थानमुत्तमम् ॥ स्थित्वाचम्य ततः पूर्व्वं कृत्वा मानसमञ्जरीम् ॥ ८७ ॥ ब्राह्ममोंकारसहितं नमो ब्रह्मण इत्यपि ॥ जपित्वा त्रिस्ततो ब्रूयादग्निमीळे पुरोहितम् ॥ ८८ ॥ अथ महाव्रतमिति अग्निर्वैदेवा नामतः ॥ तथैतस्य समाम्नायमिषेत्वोर्ज्जेत्वा वेति तत् ॥८९॥ अग्न आयाहि वीतये शन्नो देवीरभिष्टये ॥ पश्चात्प्रोच्य मयरसतजभनलगैः सह ॥९०॥ सम्मितं च ततः पञ्चसंवत्सरमयं ततः ॥ समाम्नायस्समाम्नातः अथ शिक्षां वदेत्पुनः ॥ प्रवक्ष्यामीत्युदीर्याथ वृद्धिरादैच्च सम्वदेत् ॥९१॥ अथातो धर्मजिज्ञासेत्युच्चार्य पुनरंजसा ॥ अथातो ब्रह्मजिज्ञासा वेदादीनपि संजपेत् ॥ ९२ ॥ ब्रह्माणमिन्द्रं सूर्य्यञ्च सोमं चैव प्रजापतिम् ॥ आत्मानमन्तरात्मानं ज्ञानात्मानमतः परम् ॥ ९३ ॥

समाम्नाय 'इषेत्वोर्जेत्वा'॥८९॥" अग्नआयाहिवीतये" "शन्नोदेवी रभिष्टय०" फिर म य र स त ज भ न ल ग को उच्चारण कर ॥९०॥पांच सम्वत्सर मय सहित इनका समाम्नाय कहा है फिर शिक्षाको मैं कहूंगा ऐसा कहकर 'वृद्धिरादैच्' सूत्र कहे ॥९१॥ फिर "अथातो धर्मजिज्ञासा" यह सूत्र उच्चारण कर "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इस ब्रह्मसूत्रको वा केवल वेदोंहीको उच्चारण कर जपकरे ॥९२॥ ब्रह्मा, इन्द्र, सोम, सूर्य, प्रजापति,

आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानात्मा, ॥ ९३ ॥ परमात्मा इन सबके प्रथम ओंकार पीछे नमः लगाय चतुर्थीविभक्तियुक्त उच्चारण करके एक मुठी सत्तू ले ॥ ९४ ॥ उन्हें भोजन कर ओंकारसहित दो बार आचमन कर वक्ष्यमाण मन्त्रोंसे नाभिको स्पर्श करे उन मंत्रोंमें प्रथम ओंकार अन्तमें नमः लगावे ॥ ९५ ॥ आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानात्माको अपने आत्माको और प्रजापतिको उच्चारण कर ॥ ९६ ॥ स्वाहा अन्तमें लगाकर जप करे पीछे दूध, दही, घृतको पृथक् २ तीन बार ओंकारसे चाटकर दो बार आचमन कर ॥ ९७ ॥ पूर्वको मुख करके दृढ चित्त हो स्थिर आसनपर बैठे और विधिपूर्वक तीन प्राणायाम करे ॥ ९८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां ष० कैलाससंहितायां द्वादशोऽध्यायः

परमात्मानमपि च प्रणवाद्यं नमोंतकम्॥ चतुर्थ्यन्तं जपित्वाऽथ सक्तुमुष्टिं प्रगृह्य च ॥९४॥ प्राश्याथ प्रणवेनैव द्विराचम्याथ संस्पृशेत् ॥ नाभिं मन्त्रान्वक्ष्यमाणन्प्रणवाद्यान्नमोन्तकान् ॥९५॥ आत्मानमन्तरात्मानं ज्ञानात्मानं परं पुनः ॥ आत्मानं च समुच्चार्य प्रजापतिमतः परम् ॥९६॥ स्वाहांतान्प्रजपेत्पश्चात्पयोदधिघृतं पृथक् ॥ त्रिवारं प्रणवेनैव प्राश्याचम्य द्विधा पुनः ॥ ॥ ९७ ॥ प्रागास्य उपविश्याथ दृढचित्तः स्थिरासनः ॥ यथोक्तविधिना सम्यक्प्राणायामत्रयञ्चरेत् ॥९८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासविधिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ ॥ सुब्रह्मण्य उवाच ॥ अथ मध्याह्नसमये स्नात्वा नियतमानसः ॥ गन्धपुष्पाक्षतादीनि पूजाद्रव्याण्युपाहरेत् ॥१॥ नैर्ऋत्ये पूजयेद्देवं विघ्नेशं देवपूजितम्॥ गणानां त्वेति मन्त्रेणावाहयेत्सुविधानतः ॥२॥ रक्तवर्णं महाकायं सर्व्वाभरणभूषितम्॥ पाशांकुशाक्षाभीष्टञ्च दधानं करपंकजैः ॥३॥ एवमावाह्य सन्ध्याय शंभुपुत्रं गजाननम् ॥ अभ्यर्च्य पायसापूपनालिकेरगुडादिभिः ॥ ४ ॥

॥ १२ ॥ स्कन्दजी बोले फिर मध्याह्न समयमें प्रसन्नमन हो स्नान करे, गंध, पुष्प, अक्षतादि पूजाके द्रव्योंको लावे ॥ १ ॥ नैर्ऋतकी ओर विधिसे देवपूजित विघ्नेश (गणेश) का पूजन करे, (गणानांत्वा) इस मन्त्रसे विधिपूर्वक आवाहन करे ॥ २ ॥ लालवर्ण महाकाय सम्पूर्ण आभूषणोंसे भूषित पाश अंकुश अक्ष श्रेष्ठ हाथमें धारण किये हुए ॥ ३ ॥ इस प्रकार शिवपुत्र प्रभु गणेशजीको ध्यान करके क्रमसे गंधादिसे अर्चन करके खीर, पुये, नारियल मिष्टान्न आदि ॥ ४ ॥

नैवेद्यसे सन्तुष्ट कर ताम्बूल दे विघ्नेशकी प्रार्थना करे और सन्तुष्ट कर नमस्कार करे ॥ ५ ॥ अपने गृह्यसूत्रकी विधिसे आज्यके श्रेष्ठभागको अग्निमें हवन करे; आज्यभागके हवनमें जो अग्निमुख तंत्र है ॥ ६ ॥ उसको करके (भूः स्वाहा) ऐसा कहकर श्रुवेसे पूर्णाहुति देकर हवन समाप्त करे, और अपराह्णकी समाप्ति पर्यन्त गायत्रीका जप करता रहे ॥ ७ ॥ फिर स्नानपूर्वक सन्ध्याकालकी संध्या समाप्त करके और संध्या समयका होम करके मौन हो गुरुकी आज्ञा ले ॥ ८ ॥ समिधा अन्न घृतके चरुको एक जगह मिलाकर रुद्रसूक्त अथवा सद्योजातादि

नैवेद्यमुत्तमं दद्यात्ताम्बूलादिमथापरम्॥ परितोष्य नमस्कृत्य निर्विघ्नम्प्रार्थयेत्ततः ॥५॥ औपासनाग्नौ कर्त्तव्यं स्वगृह्योक्तविधा
नतः ॥ आज्यभागान्तमाग्नेयं मखतन्त्रमतः परम् ॥ ६ ॥ भूः स्वाहेतिऋचा पूर्णाहुतिं हुत्वा समाप्य च॥ गायत्रीं प्रजपेद्यावद
पराह्णमतंद्रितः॥ ७ ॥ अथ सायन्तनीं सन्ध्यामुपास्य स्नानपूर्वकम्॥ सायमौपासनं हुत्वा मौनी विज्ञापयेद्गुरुम् ॥८॥ श्रप
यित्वा चरुन्तस्मिन्समिदन्नाज्यभेदतः ॥ जुहुयाद्रौद्रसूक्तेन सद्योजातादिपञ्चभिः ॥ ९ ॥ ब्रह्मभिश्च महादेवं सांबं वह्नौ विभा
वयेत् ॥ गौरीर्मिमायमन्त्रेण हुत्वा गौरीमनुस्मरन् ॥ १० ॥ ततोऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति जुहुयात्सकृत्॥ हुत्वोपरिष्टात्त
न्त्रन्तु ततोऽग्नेरुत्तरे बुधः ॥ ११ ॥ स्थित्वासने जपेन्मौनी चैलाजिनकुशोत्तरे ॥ आब्राह्मं च मुहूर्त्तं तु गायत्रीं दृढमानसः
॥ १२ ॥ ततः स्नात्वा त्वशक्तश्चेद्भस्मना वा विधानतः ॥ श्रपयित्वा चरुं तस्मिन्नग्नावे वाभिधारितम् ॥ १३ ॥ उदगुद्वास्य
बर्हिष्यासाद्याज्येन चरुं ततः ॥ अभिघार्य्य व्याहृतीश्च रौद्रसूक्तञ्च पञ्च च ॥ १४ ॥

पांच मन्त्रोंसे हवन करे ॥ ९ ॥ ईशानादि पंच ब्रह्ममन्त्रोंसे उमासहित महादेवका अग्निमें ध्यान करे (गौरीर्मिमाय) मन्त्रसे हवन करके गौरीको स्मरण करता हुआ ॥ १० ॥ फिर (अग्नयेस्विष्टकृतेस्वाहा) इस मन्त्रसे एक बार आहुतिदे इस प्रकार हवनकर तंत्रको समाप्त करके फिर अग्निके उत्तरकी ओर ॥ ११ ॥ मौन होकर कुशके आसन वा मृगचर्मपर स्थित हो जबतक ब्रह्ममुहूर्त हो तबतक दृढमनसे गायत्री जपता रहे ॥ १२ ॥ फिर स्नान करे और जो जल स्नानमें अशक्त हो तो भस्मस्नान करे फिर उस चरुको मिलाकर अग्निपर रखकर ॥ १३ ॥ उसका जल पृथक्

कर कुशपर बैठकर चरुको घृतसे मिश्रितकर व्याहृतीका उच्चारण कर रुद्रसूक्तका जप करे ॥१४॥ ईशानादि पञ्चब्रह्मको उच्चारण कर शिवके चरणकमलमें मन लगाकर प्रजापति, इन्द्र, विश्वेदेवा॥१५॥और ब्रह्मा इनके नामके अन्तमें नमः लगाकर आदिमें ओं लगा चतुर्थी विभक्तिसहित उच्चारण कर अर्थात् (ॐ प्रजापतये स्वाहा) इत्यादि इस प्रकार जप पुण्याहवाचन करके ॥ १६ ॥ तंत्रके सन्मुख (अग्नये स्वाहा) यह कहकर अग्निके मुखकी ओरसे निवृत्त हो पीछे 'प्राणाय स्वाहा, 'अपानाय स्वाहा' इत्यादि पंच आहुति देकर ॥ १७ ॥ और समिधा अन्न घृतके भेदसे शक्ति सहित हवन करे, पीछे चरु और घृतसे "अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा" यह मंत्र उच्चारण कर हवन करे, फिर रुद्रसूक्त और पंचब्रह्मके

जपेद्ब्रह्माणि सन्धार्य्य चित्तं शिवपदांबुजे ॥ प्रजापतिमथेन्द्रञ्च विश्वेदेवास्ततः परम् ॥ १५ ॥ ब्रह्माणं सचतुर्थ्यन्तं स्वाहांता न्प्रणवादिकान् ॥ संजप्य वाचयित्वाऽथ पुण्याहं च ततः परम् ॥ १६ ॥ परस्तात्तंत्रमग्नये स्वाहेत्यग्निमुखावधि ॥ निर्वर्त्य पश्चात्प्राणाय स्वाहेत्यारभ्य पञ्चभिः ॥ १७ ॥ साज्येन चरुणा पश्चादग्निं स्विष्टकृतं हुनेत ॥ पुनश्च प्रजपेत्सूक्तं रौद्रं ब्रह्माणि पञ्च च ॥ १८ ॥ महे शादि चतुर्व्यूहमन्त्रांश्च प्रजपेत्पुनः ॥ हुत्वोपरिष्टात्तन्त्रन्तु स्वशाखोक्तेन वर्त्मना ॥ १९ ॥ तत्तद्देवान्स मुद्दिश्य सांगं कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ एवमग्निमुखाद्यं यत्कर्म्मतन्त्रम्प्रवर्त्तितम् ॥ २० ॥ अतः परं प्रजुहुयाद्विरजाहोममात्मनः ॥ षड्विंशतत्त्वरूपेस्मिन्देहे लीनस्य शुद्धये ॥ २१ ॥ तत्त्वान्येतानि मद्देहे शुध्यन्तामित्यनुस्मरन् ॥ तत्रात्मतत्त्वशुद्ध्यर्थं मन्त्रै रारुणकेतुकैः ॥ २२ ॥ पठ्यमानैः पृथिव्यादिपुरु षांतं क्रमान्मुने ॥ साज्येन चरुणा मौनी शिवपादाम्बुजं स्मरन् ॥ २३ ॥

मंत्रोंको जप करे ॥ १८ ॥ फिर महेशादि चतुर्व्यूहके मंत्रोंको जप कर अपनी शाखाके मार्गसे महेशादि मंत्रोंसे हवन करे ॥ १९ ॥ तंत्रके ऊपर उन उन देवताओंके उद्देशसे हवि दे इस प्रकार अग्निमुखसे कर्मतंत्रको प्रवृत्त करे ॥ २० ॥ फिर अपनी शुद्धिके निमित्त विरजा हवन करे, प्रकृति आदि छब्बीस तत्त्व रूप इस देहमें लीन ॥ २१ ॥ आत्मशुद्धिके निमित्त विराज होम करके कहे कि यह मेरे देहके तत्त्व शुद्ध होजायँ, ऐसा स्मरण करके फिर आत्मशुद्धिके निमित्त तैत्तिरीय आरण्यकके भद्र प्रपाठकमें अरुणकेतुक मन्त्र ॥ २२ ॥ अष्टयोनिमष्टपुत्रा) यहांसे (सप्त पुरुषा) यहांतक पढे, फिर घृत ले मौन हो शिवके चरणकमल स्मरण कर ॥ २३ ॥

पृथ्वी आदि शब्दादि और वागादि पांच तथा श्रोत्रादि पांच इन्द्रिय, शिर, पाद, पीठ, उदर यह चार ॥२४॥ और जंघाको योजन कर फिर त्वक् आदि सात धातु फिर प्राणादि पांच अन्नादि पांच कोश ॥ २५ ॥ मन, बुद्धि, अहंकार, ख्याति, संकल्प, गुण, प्रकृतिपुरुष॥२६॥ पुरुषका भोक्तापन अर्थात् प्रतिपन्न मनुष्यके भोगके निमित्त पांच तत्त्वके भी जो अन्तरमें वर्तमान हैं ॥ २७ ॥ वह पांच तत्त्व कहते हैं नियति (स्थिति), काल सहित, राग, विद्या, कला पंचक हे मुनीश्वर ! यह मायासेही उत्पन्न हैं ॥२८॥ श्रुतिमें प्रकृतिको मायाही कहा है, उसीसे यह तत्त्व उत्पन्न हुए हैं यही

पृथिव्यादि च शब्दादि वागाद्यं पञ्चकं पुनः ॥ श्रोत्राद्यञ्च शिरः पार्श्वपृष्ठोदरचतुष्टयम् ॥ २४ ॥ जंघां च योजयेत्पश्चात्त्वगाद्यं धातुसप्तकम् ॥ प्राणाद्यं पञ्चकं पश्चादन्नाद्यं कोशपञ्चकम् ॥ २५ ॥ मनाश्चित्तं च बुद्धिश्चाहंकृतिः ख्यातिरेव च ॥ संकल्पन्तु गुणाः पश्चात्प्रकृतिः पुरुषस्ततः ॥२६॥ पुरुषस्य तु भोक्तृत्वं प्रतिपन्नस्य भोजने ॥ अन्तरंगतया तत्त्वपंचकं परिकीर्तितम् ॥ २७ ॥ नियतिः कालरागश्च विद्या च तदनन्तरम् ॥ कला च पंचकमिदं मयोत्पन्नम्मुनीश्वर ॥ २८ ॥ मायान्तु प्रकृतिं विद्यादिति माया श्रुतीरिता ॥ तज्जान्येतानि तत्त्वानि श्रुत्युक्तानि न संशयः ॥ २९ ॥ कालस्वभावो नियतिरिति च श्रुतिर ब्रवीत् ॥ एतत्पञ्चकमेवास्य पञ्चकञ्च मुच्यते ॥ ३० ॥ अजानन्पञ्चतत्त्वानि विद्वानपि च मूढधीः ॥ निपत्याधस्तात्प्रकृते रुपरिष्टात्पुमानयम् ॥ ३१ ॥ काकाक्षिन्यायमाश्रित्य वर्त्तते पार्श्वतोन्वहम् ॥ विद्यातत्त्वमिदं प्रोक्त शुद्धविद्यामहेश्वरौ ॥ ३२ ॥ सदाशिवश्च शक्तिश्च शिवश्चेदं तु पञ्चकम् ॥ शिव तत्त्वमिदम्ब्रह्मन्प्रज्ञानब्रह्मवाग्यतः ॥ ३३ ॥

श्रुतिमें लिखा है ॥ २९ ॥ काल स्वभावकाही नाम नियति है यह श्रुतिमें लिखा है इसी पंचकका नाम पंचकंचुक कहा है॥३०॥इन पांच तत्त्वोंके विना जाने विद्वान् भी मूढही होजाता है, प्रकृतिके नीचे नियति और ऊपर यह पुरुष है॥३१॥ *काकाक्षि न्यायके आश्रित होकर यह पुरुष नियत प्रकृतिमें वर्तता है इसीका नाम विद्यातत्त्व है शुद्ध विद्या महेश्वर ॥३२॥ सदाशिव शक्ति और शिव यही पंचक कहलाता है'प्रज्ञानंब्रह्म इस वाक्यसे

* जिस प्रकार काककी एकही चक्षु दोनों गोलकमें जाती है और दोनों नेत्रोंका कार्य करती है एकहीका दोनोंसे सम्बन्ध है यही काकाक्षि न्याय है ।

यह शिव तत्वही कहा है ॥ ३३ ॥ हे मुनीश्वर ! जो पृथ्वीसे आदि लेकर शिवतक तत्त्व हैं अपने कारण प्रकृतिमें लयके द्वारा इसकी शुद्धि करनी चाहिये ॥ ३४ ॥ ग्यारह मन्त्रोंको परस्मैपद पूर्वक शिव ज्योति यहांतक उच्चारण कर ॥ ३५ ॥ ' इदं न मम ' यह कहे इसीका नाम प्रकृति देवताके उद्देश्यसे त्याग है इसके उपरान्त (विविद्यै स्वाहा) (कपोतकाय स्वाहा) ॥ ३६ ॥ ' व्यापकाय परमात्मने इदं न मम ' कहे शिवा ज्योति यहां चतुर्थी लगाकर और (विश्वाभूता इदम्) तथा ॥ ३७ ॥ (घसनोत्सुकदायेदं इस प्रकार चतुर्थी विभक्तिसे उच्चारण करे, "त्रैलोक्य व्यापिने परमात्मने देवाय इदं न मम" ऐसा कहे ॥३८॥ 'उत्तिष्ठ' इस मंत्रसे 'ॐविश्वरूपाय पुरुषाय स्वाहा'

पृथिव्यादिशिवांतं यत्तत्त्वजातं मुनीश्वर ॥ स्वकारणलयद्वारा शुद्धिरस्य विधीयताम् ॥३४॥ एकादशानां मन्त्राणाम्परस्मैपद पूर्वकम् ॥ शिवज्योतिश्चतुर्थ्यन्तमिदम्पदमथोच्चरेत् ॥३५॥ न ममेति वदेत्पश्चादुद्देशत्याग ईरितः ॥ अतः परं विविद्यैति कपो तकायेति मन्त्रयोः ॥३६॥ व्यापकाय पदस्यान्ते परमात्मन इत्यपि॥ शिवज्योतिश्चतुर्थ्यन्तं विश्वभूतपदम्पुनः ॥३७॥ घसनो त्सुकशब्दञ्च चतुर्थ्यंतमथो वदेत्॥परस्मैपदमुच्चार्य्य देवाय पदमुच्चरेत्॥३८॥उत्तिष्ठस्वेति मन्त्रस्य विश्वरूपाय शब्दतः ॥ पुरुषाय पदम्ब्रूयादोंस्वाहेत्यस्य संवदेत्॥३९॥लोकत्रयपदस्यान्ते व्यापिने परमात्मने॥शिवायेदं न मम च पदम्ब्रूयादतःपरम् ॥४०॥स्व शाखोक्तप्रकारेण पुरस्तात्तन्त्रकर्म्म च ॥निर्वर्त्य सर्पिषा मिश्रं चरुम्प्राश्य पुरोधसे॥४१॥ प्रदद्याद्दक्षिणान्तस्मै हेमादिपरिबृंहि ताम् ॥ ब्रह्माणमुद्वास्य ततः प्रातरौपासनं हुनेत् ॥४२॥ संमांसिञ्चन्तु मरुत इति मन्त्रञ्जपेन्नरः॥याते अग्न इत्यनेन मन्त्रेणाग्नौ प्रताप्य च ॥ ४३ ॥ हस्तमग्नौ समारोप्य स्वात्मन्यद्वैतधामनि ॥ प्राभातिकीं ततः सन्ध्यामुपास्यादित्यमप्यथ ॥ ४४ ॥

यह कहे ॥ ३९ ॥ फिर (त्रैलोक्य व्यापिने परमात्मने शिवाय इदं न मम) इस प्रकार कहकर भाग दे ॥ ४० ॥ अपने शाखामें कहे विधानके अनुसार तन्त्र कर्मको करके गुरुके निमित्त घृत मिले हुए चरुको किंचित् खवाकर ॥ ४१ ॥ सुवर्णादिकी दक्षिणा उनके निमित्त दे, फिर ब्रह्माको विदाकर प्रातः उपासना करके हवन करे ॥ ४२ ॥ ' संमां सिंचन्तुमरुतः ' यह मन्त्र जपकर मौन हो ' याते अग्न ' इस मन्त्रसे अग्निको प्रज्वलित कर ॥ ४३ ॥ हाथसे अद्वैत तेजवाले अपने आत्मामें अग्निको आरोपण करके फिर प्रातःकालकी संध्योपासना

करके और सूर्यको नमस्कार कर ॥ ४४ ॥ नाभितक जलमें प्रवेश करे, पीछे प्रवेश करावे और प्रेमसे सावधान हो उन मन्त्राको जपता रहे ॥ ४५ ॥ और जो आहिताग्नि (अग्निहोत्री) प्रजापत्येष्टि करे वह सम्यक् प्रकारसे श्रौत वैश्वानरमें हवन करके सब वेद और दक्षिणा सहित सब देकर ॥ ४६ ॥ अग्निको आत्मामें अरोपण कर घरसे चला जाय, संन्यासी होजाय सावित्रीके पहले पादका उच्चारण करके ॥ ४७ ॥ (सावित्रीं प्रवेशयामि) ऐसा कहकर भूरोम् उच्चारण करे फिर गायत्रीके दूसरे पादका उच्चारणकर करके ॥ ४८ ॥ (सावित्रीं प्रवेशयामि) ऐसा कहकर भुवरोम् ऐसा कहे फिर तीसरे पादका उच्चारणकर (सावित्रीं प्रवेशयामि) ॥ ४९ ॥ ऐसा कहता

उपस्थाय प्रविश्याप्सु नाभिदघ्नं प्रवेशयन्॥तन्मन्त्रान्प्रजपेत्प्रीत्या निश्चलात्मा समुत्सुकः॥४५॥ आहिताग्निस्तु य कुर्य्यात्प्राजपत्येष्टिमाहिते॥श्रौते वैश्वानरे सम्यक्सर्ववेदसदक्षिणाम्॥४६॥ अथाग्निमात्मन्यारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात्॥सावित्रीप्रथमं पादं सावित्रीमित्युदीर्य च ॥४७॥ प्रवेशयामि शब्दान्ते भूरोमिति च संवदेत्॥द्वितीयम्पादमुच्चार्य्य सावित्रीमिति पूर्ववत् ॥४८॥ प्रवेशयामि शब्दान्ते भुवरोमिति संवदेत्॥तृतीयम्पादमुच्चार्य्य सावित्रीमित्यतः परम्॥४९॥प्रवेशयामि शब्दान्ते सुवरोमित्युदीरयेत्॥त्रिपादमुच्चरेत्पूर्व सावित्रीमित्यतः परम्॥५०॥ प्रवेशयामि शब्दान्ते भूर्भुवस्सुवरोमिति॥उदीरयेत्परम्प्रीत्या निश्चलात्मा मुनीश्वर ॥५१॥इयम्भगवती साक्षाच्छंकरार्द्धशरीरिणी॥पंचवक्त्रा दशभुजा त्रिपञ्चनयनोज्ज्वला ॥५२॥ नवरत्नकिरीटोद्यच्चन्द्र लेखावतंसिनी ॥शुद्धस्फटिकसंकाशा दशायुधधरा शुभा॥५३॥ हारकेयूरकटकांकिंकिणीनूपुरादिभिः॥भूषितावयवा दिव्यवसना रत्नभूषणा ॥ ५४ ॥ विष्णुना विधिना देवऋषिगंधर्व्वनायकैः ॥ मानवैश्च सदा सेव्यासर्व्वात्मव्यापिनी शिवा ॥ ५५ ॥

हुआ सुवरोम् कहे, फिर गायत्रीके तीन पाद उच्चारण कर ॥ ५० ॥ (सावित्रीं प्रवेशयामि) कहकर भूर्भुवः सुवरोम् ऐसा कहे ॥ ५१ ॥ यह भगवती साक्षात् शंकरके आधे शरीरवाली है पांचमुख दशभुजा पन्द्रह नेत्र उज्ज्वल शरीर ॥ ५२ ॥ नवरत्न किरीटसे प्रकाशित उदित चन्द्रमाके समान लेखावाली शुद्ध स्फटिक मणिके समान दश आयुध धारण किये ॥ ५३ ॥ हारकेयूर खँडुरा कौंधनी नूपुरादिसे भूषित शरीरवाली दिव्य वस्त्र रत्नोंके भूषण धारे ॥ ५४ ॥ विष्णु, ब्रह्मा, देव, ऋषि, गन्धर्व दानव और मनुष्योंसे सदा सेवनीय सबके आत्मामें

सदा व्यापकर रहनेवाले ॥ ५५ ॥ शिवा सदाशिव देवकी मनोहर धर्म पत्नी हैं जो जगन्माता तीन जगत्की उत्पन्न करनेवाली त्रिगुणात्मक निर्गुणा है ॥ ५६ ॥ ऐसा विचारकर बुद्धिमान् गायत्रीका जप करे, यह आदि देवी त्रिपदा ब्राह्मणत्व देनेवाली अजा है ॥ ५७ ॥ जो पापी शिवरूप गायत्रीको अन्यथा मानता है वह कल्पपर्यंत घोरनरकमें पडता है ॥ ५८ ॥ वह व्याहृतियोंसे उत्पन्न हुई उन्हींमें लय हो जाती है और वे व्याहृति प्रणवसे उत्पन्न होकर उसीमें लय होजाती हैं ॥ ५९ ॥ प्रणवही सब वेदकी आदि है प्रणवही शिवका वाचक है यह मंत्रोंका

सदाशिवस्य देवस्य धर्मपत्नी मनोहरा ॥ जगदम्बा त्रिजननी त्रिगुणा निर्गुणाप्यजा ॥ ५६ ॥ इत्येवं संविचार्य्याथ गायत्रीं प्रजपे त्सुधीः ॥ आदिदेवीं च त्रिपदां ब्राह्मणत्वादिदामजाम् ॥ ५७ ॥ यो ह्यन्यथा जपेत्पापो गायत्रीं शिवरूपिणीम् ॥ स पच्यते महा घोरे नरके कल्पसंख्यया ॥ ५८ ॥ सा व्याहृतिभ्यः संजाता तास्वेव विलयं गता ॥ ताश्च प्रणवसम्भूताः प्रणवे विलयं गता ॥ ५९ ॥ प्रणवस्सर्ववेदादिः प्रणवः शिववाचकः ॥ मन्त्राधिराजराजश्च महाबीजं मनुः परः ॥ ६० ॥ शिवो वा प्रणवो ह्येष प्रणवो वा शिवः स्मृतः ॥ वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः ॥ ६१ ॥ एनमेव महामन्त्रञ्जीवानाञ्च तनुत्यजाम् ॥ काश्यां संश्राव्य मरणे दत्ते मुक्तिं परां शिवः ॥ ६२ ॥ तस्मादेकाक्षरन्देवं शिवं परमकारणम् ॥ उपासते यतिश्रेष्ठा हृदयाम्भोजमध्यगम् ॥६३॥ मुमुक्षु वोऽपरे धीरा विरक्ता लौकिका नराः ॥ विषयान्मनसा ज्ञात्वोपासते परमं शिवम् ॥६४॥ एवं विलाप्य गायत्रीं प्रणवे शिववाचके ॥ अहं वृक्षस्य रेरिवेत्यनुवाक जपेत्पुनः ॥ ६५ ॥

राजा महाबीजरूप मंत्र है ॥ ६० ॥ वह प्रणव शिव और शिवही प्रणव हैं, वाच्य वाचकमें कुछ भी भेद नहीं है ॥ ६१ ॥ इसी महामंत्रको काशीमें शरीर त्यागन करनेवालोंको मरते समय उपदेश देकर शिवजी मुक्त करते हैं ॥ ६२ ॥ इस कारण परम कारण देव एकाक्षरश्रेष्ठको जो यतिश्रेष्ठ हृदयकमलमें पूजते हैं ॥६३॥ और जो दूसरे धीर, मुमुक्षु, विरक्त, तथा लौकिक पुरुष मनको विषयसे निवृत्तकर शंकरकी उपासना करते हैं॥ ६४ ॥ जो गायत्रीको शिववाचक ओंकारमें लय करके (अहं वृक्षस्यरेरिव) इस अनुवाकको जपकर ॥ ६५ ॥

(यश्छंदसामऋषभः) इस अनुवाकको क्रमसे जपकर (श्रुतं मे गोपाये) तैत्तिरीय शाखाके उपनिषद्के अनुवाकोंको जपे पीछे ' उत्थितोहम् ' कहे ॥ ६६ ॥ और तीनों इच्छाओंको त्यागे, पुत्रकी इच्छासे मैं पृथक् हुआ हूं इसी क्रमसे धनकी इच्छासे भी पृथक् हुआ हूं, ऐसा कह लोकेषणासे मैं पृथक् हुआ हूं ऐसा भी कहे, हे मुने ! क्रमसे पहले मंद फिर मध्यम और फिर अधिक शब्दसे जपे. पहले प्रणव का उद्धार करके सृष्टि स्थिति लयके क्रमसे करे ॥ ६७ ॥ उनका क्रम यह है (भूः संन्यस्तं भुवः संन्यस्तं सुवः संन्यस्तं) यह कहकर ॥ ६८ ॥ इन सब मंत्रोंके अंतमें मया लगा दे जैसे (भुवः संन्यस्तं मया) पहले प्रणवका उच्चारण कर (भूर्भुवः स्वः)

यश्छन्दसामृषभ इत्यनुवाकमुपक्रमात् ॥ गोपायांतं जपन्पश्चादुत्थितोहमितीरयेत् ॥ ६६ ॥ वदेज्जयेत्त्रिधा मन्दमध्योच्छ्रायक्रमान्मुने ॥ प्रणवम्पूर्व्वमुद्धृत्य सृष्टिस्थितिलयक्रमात् ॥ ६७ ॥ तेषामथ क्रमाद्भूयाद्भूस्संन्यस्त म्भुवस्तथा ॥ संन्यस्तं सुवरित्युक्त्वा संन्यस्तं पदमुच्चरम् ॥६८॥ सर्वमंत्राद्यः प्रदेशे मयेति च पद वदेत् ॥ प्रणवं पूर्व्वमुद्धृत्य समष्टि व्याहृतीर्वदेत् ॥ ६९ ॥ समस्तमित्यतो ब्रूयान्मयेति च समब्रवीत् ॥ सदाशिवं हृदि ध्यात्वा मंदादीति ततो मुने ॥ ७० ॥ प्रेषमंत्रांस्तु जप्त्वैवं सावधानेन चेतसा ॥ अभयं सर्वभूतेभ्योमत्तः स्वाहेति संजपन् ॥ ७१ ॥ प्राच्यां दिश्यप उद्धृत्य प्रक्षिपेदंजलिं ततः ॥ शिखां यज्ञोपवीतं चयत्रोत्पाद्य च पाणिना ॥ ७२ ॥ गृहीत्वा प्रणवं भूश्च समुद्रं गच्छ सम्वदेत् ॥ वह्निजायां समुच्चार्य्य सोदकाञ्जलिना ततः ॥ ७३ ॥ अप्सु हूयादथ प्रेषैरभिमंत्र्य त्रिधा त्वपः ॥ प्राश्य तीरे समागत्य भूमौ वस्त्रादिकं त्यजेत् ॥ ७४ ॥

यह समष्टि व्याहृति उच्चाण करे ॥ ६९ ॥ (संन्यस्तं मया) ऐसा कहकर सदाशिवको हृदयमें ध्यान करके मंद मध्यम और ऊंचेस्वरसे जपे ॥ ७० ॥ इस प्रकार सावधान हो प्रेषमन्त्रको जपकर मुझसे सब प्राणियोंको अभय हो (अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा) ऐसा जप करे ॥ ७१ ॥ पूर्वदिशामें अंजलीसे जल लेकर छोडदे, शिखा यज्ञोपवीतको गायत्रीद्वारा हाथसे उखाडकर ॥ ७२ ॥ ग्रहणकर ओंकार सहित (वह्निजाया स्वाहा) (ओं भूः समुद्रं गच्छ स्वाहा) यह कहकर जल हाथमें लेकर ॥ ७३ ॥ प्रेषमंत्र अर्थात्

१ यह संन्यासियोंका मंत्र है ।

(भूःसंन्यस्तं मया) उन मंत्रोंसे शिखा और यज्ञोपवीत जलमें डाल दे, फिर जलसे आचमनकर पृथ्वीमें वस्त्रादि भी त्यागन करे ॥ ७४ ॥ उत्तरको अथवा पूर्वको मुखकर सातपग चले, कुछ दूर चलनेपर (ठहरो ठहरो) ऐसा आचार्य कहे ॥ ७५ ॥ तब लोकके व्यवहारके निमित्त हे भगवन् ! दण्ड कौपीन स्वीकार कीजिये. ऐसा कहकर आचार्य अपने हाथसे दे ॥ ७६ ॥ आचार्यके वचन सुनकर डोरे सहित कौपीन काषायवस्त्रसे शरीरको ढककर दो बार आचमन करे फिर आचार्य उस शिष्यसे कहे ॥ ७७ ॥ (इन्द्रस्य वज्रोसि तत्) इस मंत्रको जपता हुआ दण्डकी प्रार्थना 'सखाय मां' ऐसा जपता हुआ दण्डग्रहण करे ॥ ७८ ॥ फिर शिवके चरणकमल जपता हुआ गुरुके निकट

उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा गच्छेस्सप्तपदाधिकम्॥किञ्चिद्दूरमथाचार्यस्तिष्ठ तिष्ठेति संवदेत् ॥७५॥ लोकस्य व्यवहारार्थं कौपीनं दण्डमेव च ॥ भगवन्स्वीकुरुष्वेति दद्यात्स्वेनैव पाणिना ॥७६॥ दत्त्वा सुदोरं कौपीनं काषायवसनं ततः ॥ आच्छाद्याचम्य च द्वेधा तं शिष्यमिति संवदेत् ॥ ७७ ॥ इन्द्रस्य वज्रोऽसि तत इति मन्त्रमुदाहरेत् ॥ सम्प्रार्थ्य दण्डं गृह्णीयात्सखाय इति संजपन् ॥ ७८ ॥ अथ गत्वा गुरोः पार्श्वं शिवपादांबुजं स्मरन् ॥ प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ त्रिवारं संयतात्मवान् ॥७९॥ पुनरुत्थाय च शनैः प्रेम्णा पश्यन्गुरुं निजम्॥कृताञ्जलिपुटस्तिष्ठेद्गुरुपाद समीपतः ॥८०॥ कर्म्मारम्भात्पूर्वमेव गृहीत्वा गोमयं शुभम् ॥ स्थूलामल कमात्रेण कृत्वा पिण्डान्विशोषयेत ॥ ८१ ॥ सौरैस्तु किरणैरेव होमारम्भाग्निमध्यगान् ॥ निक्षिप्य होमसम्पूर्त्तौ भस्म संगृह्य गोपयेत ॥ ८२ ॥ ततो गुरुस्समादाय विरजानलजं सितम् ॥ भस्म तेनैव तं शिष्यमग्निरित्यादिभिः क्रमात् ॥ ८३ ॥

जाकर तीनबार पृथ्वीमें लेटकर प्रणाम करे ॥ ७९ ॥ फिर उठकर प्रेमसे गुरुको देखता हुआ और गुरुके चरणके निकट हाथ जोडकर स्थित हो ॥ ८० ॥ कर्मारम्भसे पहले ही गोबरको ग्रहणकर बडे आमलोंकी बराबर उसके गोले बनावे और उन्हें सुखावे ॥ ८१ ॥ जब वे सूर्यकी किरणोंसे सूखजायँ तब उन्हें होमाग्निके मध्यमें रखदे, होमकी पूर्णतामें उस भागको लेकर रख छोडे ॥ ८२ ॥ तब गुरु विरजाअग्निके बने हुए श्वेतपिंडोंकी राखको ' अग्निरितिभस्म' इत्यादि मंत्रोंके क्रमसे ॥ ८३ ॥

सब अंगोंमें लगावे, शिरसे चरणोंतक और 'ईशानादि' पाँचमंत्रोंसे शिरसे आरम्भ कर ॥ ८४ ॥ सब प्रकार शरीरमें भस्म मलकर त्रिपुंड्र धारण करे । (त्रियायुषैः) और (त्र्यंबकं यजामहे) इन मंत्रोंसे शिरसे आरम्भ कर ॥ ८५ ॥ श्रेष्ठ भक्तिसे युक्त श्रेष्ठ शिष्य हृदयकमलमें उमा सहित शिवका ध्यान करे ॥ ८६ ॥ फिर गुरु प्रसन्न हो शिष्यके शिरपर हाथ रखकर ऋषि आदिका उच्चारणकर उसके दहने कानमें मन्त्र कहे, तीन प्रकारसे प्रणवका उच्चारण ॥ ८७ ॥ फिर कृपाकर उसके अर्थको कहे. गुरुको उचित है कि, अध्यायमें कहे हुए छः प्रकारके अर्थका ज्ञान करावे ॥ ८८ ॥ तब शिष्य बारह प्रकारसे पृथ्वीमें गुरुको प्रणामकर और सदा अधीन होकर रहे उनके आज्ञा विना अन्य

मन्त्रैरंगानि संस्पृश्य मूर्द्धादिचरणान्ततः ॥ ईशानाद्यैः पञ्चमंत्रै शिर आरभ्य सर्व्वतः ॥ ८४ ॥ समुद्धृत्य विधानेन त्रिपुण्ड्रं धारयेत्ततः॥त्रियायुषैरुयम्बकैश्च मूर्ध्न आरभ्य च क्रमात् ॥ ८५ ॥ ततस्सद्भक्तियुक्तेन चेतसा शिष्यसत्तमः॥हृत्पंकजे समासीनं ध्यायेच्छिवमुमासखम् ॥ ८६ ॥ हस्तं निधाय शिरसि शिष्यस्य स गुरुर्वदेत् ॥ त्रिवारं प्रणवं दक्षकर्णे ऋष्यादिसंयुतम् ॥ ८७ ॥ ततःकृत्वा च करुणां प्रणवस्यार्थमादिशेत् ॥ षड्विधार्थपरिज्ञानसहितं गुरुसत्तमः ॥ ८८ ॥ द्विषट्प्रकारं स गुरुं प्रणमेद्भुवि दण्डवत्॥तदधीनो भवेन्नित्यं नान्यत्कर्म्म समाचरेत् ॥ ८९ ॥ तदाज्ञया ततः शिष्यो वेदान्तार्थानुसारतः ॥ शिव ज्ञानपरो भूयात्सगुणागुणभेदतः ॥ ९० ॥ ततस्तेनैव शिष्येण श्रवणाद्यंगपूर्व्वकम् ॥ प्रभातिकाद्यनुष्ठानं जपान्ते कारयेद्गुरुः ॥ ९१ ॥ पूजां च मण्डले तस्मिन्कैलासप्रस्तराह्वये ॥ शिवोदितेन मार्गेण शिष्यस्तत्रैव पूजयेत् ॥ ९२ ॥ देवन्नित्यमशक्तश्चे त्पूजितुं गुरुणा शुभम् ॥ स्फाटिकं पीठिकोपेतं गृह्णीयाल्लिंगमैश्वरम् ॥ ९३ ॥

कार्योंको न आरम्भ करे ॥ ८९ ॥ और गुरुकी आज्ञासे शिष्य सदा वेदांतके ज्ञानमें तत्पर हो और अगुण अणुके भेदसे शिवज्ञानमें तत्पर हो ॥ ९० ॥ वेदांतमार्गके अनुसार नित्यप्रति गुरुकेही अधीन हो और कर्म न करे. श्रवणादिके अंगपूर्वक शिवज्ञानमें तत्पर हो प्रातःकालिक अनुष्ठान जपके अंततक गुरु करावे ॥ ९१ ॥ और कैलास प्रस्तरनामवाले उस मण्डलमें शिवके कहे मार्गानुसार शिष्य पूजन करे ॥ ९२ ॥ गुरु पूजित देवके नित्यप्रति पूजन करनेमें असमर्थ हो तो स्फटिकके सिंहासन सहित एक ईश्वरीय लिंग ग्रहण करो यदि प्रतिदिन देवको पूजन

करने और गुरुपूजनमें अशक्त हो तो स्फटिकमणिके शिवलिंगको पूजा करे ॥ ९३ ॥ चाहे प्राण त्यागन हो जाय शिर छेदन हो जाय, पर न्तु त्रिलोचन शिवजीकी पूजाके बिना भोजन न करे ॥ ९४ ॥ इस प्रकार तीन बार गुरुके निकट सौगन्ध करके शिष्य दृढमनसे शिवकी भक्ति करता हुआ ॥९५॥ उत्कण्ठित मनसे नित्य परम भक्तिसे उसी लिंगमें नित्य प्रसन्न हो शिवजीको पांच आवरणके मार्गसे पूजे ॥९६॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ वामदेव बोले, हे भगवन् ! हे छः मुखवाले ! हे विज्ञान अमृतके समुद्र ! संसारके सब देवताओंके ईश्वर ! शिवजीके पुत्र ! दीनोंके दुःख दूर करनेवाले ! ॥ १ ॥ छः प्रकारके अर्थका ज्ञान क्या है ?

वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि मे ॥ न त्वनभ्यर्च्य भुञ्जीयां भगवन्तं त्रिलोचनम् ॥९४॥ एवन्त्रिवारमुच्चार्य्य शपथं गुरुस न्निधौ॥कुर्य्याद्दृढमनाश्शिष्यश्शिवभक्तिं समुद्वहन्॥९५॥तत एव महादेवं नित्यमुद्युक्तमानसः॥पूजयेत्परया भक्त्या पञ्चावरणमा र्गतः ॥९६॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ वामदेव उवाच ॥ भगवन्त्षण्मुखाशेषवि ज्ञानामृतवारिधे॥विश्वामरेश्वरसुत प्रणतार्त्तिप्रभञ्जन ॥१॥ षड्विधात्थपरिज्ञानमिष्टदं किमुदाहृतम्॥ केतत्र षड्विधा अर्थाः परि ज्ञानञ्च किं प्रभो ॥२॥ प्रतिपाद्यश्च कस्तस्य परिज्ञाने च किं फलम् ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व यद्यत्पृष्टं मया गुह ॥३॥ एतमर्त्थमवि ज्ञाय पशुशास्त्रविमोहितः॥अद्याप्यहम्महासेन भ्रान्तश्च शिवमायया॥४॥ अहं शिवपदद्वंद्वज्ञानामृतरसायनम् ॥ पीत्त्वा विगतस म्मोहो भविष्यामि यथा तथा॥५॥कृपामृतार्द्रया दृष्ट्या विलोक्य सुचिरं मयि॥ कर्त्तव्योऽनुग्रहः श्रीमत्पादाब्जशरणागते ॥६॥

वह कैसे इष्टका देनेवाला है, छः प्रकारके अर्थ कौनसे हैं, और उनका ज्ञान क्या है ? ॥२॥ इसका प्रतिपाद्य कौन है और उसके ज्ञानका फल क्या है ? हे स्कन्दजी ! आप इस अर्थको हमसे कहिये ॥३॥ इस अर्थके बिना जाने जीव शास्त्रसे मोहित हुआ मैं शिवकी मायासे मोहित हो रहा हूं ॥४॥ मैं शिवपदके अद्वैत ज्ञानामृत रसायनको पानकर जिससे मैं मोहरहित हो जाऊं ॥५॥ इस प्रकार आप कृपारूपी अमृतकी दृष्टिसे मुझे देखकर मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये मैं आपकी शरणमें प्राप्त हुआ हूं ॥ ६ ॥

इस प्रकार मुनिके वचन सुन ज्ञानशक्ति धारण करनेवाले प्रभु शिवशास्त्रसे विपरीत माननेवालोंको महात्रासदायक वचन कहने लगे ॥ ७ ॥ स्कन्दजी बोले, हे मुनिशार्दूल ! जो कुछ तुमने पूँछा है, वह आदरपूर्वक समष्टि व्यष्टि भावसे महेश्वरका ॥ ८ ॥ प्रणवार्थ परिज्ञानरूप मैं विस्तारसे कहता हूं ! हे सुव्रत ! उस एकहीके परिज्ञानमें छः प्रकारका अर्थ कहता हूं ॥ ९ ॥ पहिला मन्त्ररूप, दूसरा यंत्ररूप, तीसरा देवार्थ, चौथा प्रपञ्चार्थ ॥ १० ॥ पांचवाँ गुरुरूपको दिखाया हुआ अर्थ और छठा शिष्यके आत्मानुरूप अर्थ यह छः प्रकारके अर्थ कहे हैं ॥ ११ ॥ हे मुनिसत्तम ! मन्त्ररूपको श्रवण कीजिये जिसके विज्ञान मात्रसे यह पुरुष ज्ञानी हो जाता

इति श्रुत्वा मुनीन्द्रोक्तं ज्ञानशक्तिधरो विभुः ॥ प्राहान्यदर्शनमहासंत्रासजनकं वचः ॥७॥ सुब्रह्मण्य उवाच ॥ श्रूयताम्मुनिशार्दूल त्वया यत्पृष्टमादरात्॥समष्टिव्यष्टिभावेन परिज्ञानम्महेशितुः॥८॥प्रणवार्त्थपरिज्ञानरूपं तद्विस्तरादहम्॥वदामि षड्विधार्थैक्यप रिज्ञानेन सुव्रत ॥९॥ प्रथमो मंत्ररूपः स्याद्वितीयो मंत्रभावितः ॥ देवतार्त्थस्तृतीयोऽर्थः प्रपञ्चार्थस्ततः परम्॥१०॥चतुर्त्थः पञ्चमार्स्थस्स्याद्गुरुरूपप्रदर्शकः॥षष्ठश्शिष्यात्मरूपोऽर्थः षड्विधार्थाः प्रकीर्त्तिताः॥११॥तत्र मन्त्रस्वरूपन्ते वदामि मुनिसत्तम॥ येन विज्ञातमात्रेण महाज्ञानी भवेन्नरः ॥१२॥ आद्यस्स्वरः पंचमश्च पञ्चमान्तस्ततः परः॥बिन्दुनादौ च पञ्चार्णाः प्रोक्ता वेदैर्न चा न्यथा ॥१३॥ एतत्समष्टिरूपो हि वेदादिस्समुदाहृतः ॥ नादस्सर्व्वसमष्टिः स्याद्बिन्द्वाद्यं यच्चतुष्टयम् ॥१४॥ व्यष्टिरूपेण संसिद्धं प्रणवे शिववाचके ॥ यंत्ररूपं शृणु प्राज्ञ शिवलिंगं तदेव हि ॥१५॥ सर्व्वाधस्ताल्लिखेत्पीठ तदूर्ध्वम्प्रथमं स्वरम् ॥ उवर्णं च तदूर्द्ध्वं स्थम्पवर्गान्तं तदूद्ध्वंगम् ॥१६॥ तन्मस्तकस्थं बिंदुं च तदूर्द्ध्वं नादमालिखेत्॥ यंत्रे संपूर्णतां याति सर्व्वकामः प्रसिध्यति ॥१७॥

है ॥ १२ ॥ पहला स्वर अकार पांचवां उकार और पवर्गके अन्तका मकार बिन्दु और नाद ये पांच वर्ण वेदमें ओंकारमें कहे हैं ॥ १३ ॥ यह समष्टि रूपही वेदमें ओंकार कहा जाता है, नाद सबकी समष्टि है, अकार उकार मकार ये बिन्दुकी आदिमें हैं ॥१४॥ व्यष्टि रूपमें सिद्ध हो ओंकार शिवकी वाचकतामें सिद्ध है । हे महामतिमान् ! अब यन्त्ररूप सुनिये वह शिवलिंगस्वरूप है ॥१५॥ सबसे नीचे पीठ लिखे, उसके ऊपर अकारको लिखे, फिर उवर्ण फिर मकार॥१६॥उसके मस्तकपर बिन्दु और अर्ध चन्द्राकार नाद लिखे, यंत्रमें पूर्ण होनेसे सब

काम सिद्ध होते हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार यन्त्र लिखकर ओंकारसे ही वेष्टित करे उससे उठे हुए नादसे नाद समाप्ति पर्यन्त भेद करे ॥ १८ ॥ हे वामदेव ! अब शिवजीका कहा हुआ परमगूढ देवतार्थ तुम्हारे स्नेहसे कहता हूं ॥ १९ ॥ (सद्योजातं प्रपद्यामि शिवोमे अस्तु सदा शिवोम्) साक्षात् श्रुतिने ब्रह्म पंचकका वाचक ओंकार कहा है ॥ २० ॥ प्रणव ब्रह्म रूपवाले सूक्ष्म पांच देवता हैं यह सब भी शिवकी मूर्ति ही हैं पृथक् नहीं जानने ॥ २१ ॥ शिवका पंचक मंत्र शिवकी मूर्तिका भी वाचक है मूर्ति और मूर्तिमान्में विशेष भेद नहीं है ॥ २२ ॥ "ईशानो मुकुटोपेतः" यहाँसे आरम्भ कर यह पाँचों शिवजीके शरीर कहे हैं. अब पाँचों मुखोंको सुनो ॥ २३ ॥ पंचमादिसे

एवं यंत्रं समालिख्य प्रणवेनव वेष्टयेत्॥तदुत्थेनैव नादेन विद्यन्नादावसानकम् ॥१८॥ देवतार्त्थम्प्रवक्ष्यामि गूढं सर्व्वत्र यन्मुने ॥ तव स्नेहाद्वामदेव यथा शंकरभाषितम् ॥१९॥ सद्योजातम्प्रपद्यामीत्युपक्रम्य सदाशिवोम् ॥ इति प्राह श्रुतिस्तारं ब्रह्मपंचकवाचकम् ॥ २० ॥ विज्ञेया ब्रह्मरूपिण्यस्सूक्ष्माः पंचैव देवताः ॥ एताएव शिवस्यापि मूर्त्तित्वे नोपबृंहिताः ॥२१॥ शिवस्य वाचको मन्त्रश्शिवमूर्त्तेश्च वाचकः ॥ मूर्त्तिमूर्तिमतोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः ॥२२॥ ईशानमुकुटोपेत इत्यारभ्य पुरोदितः ॥ शिवस्य विग्रहः पञ्चवक्त्राणि शृणु सांप्रतम् ॥२३॥ पंचमादि समारभ्य सद्योजाताद्यनुक्रमात् ॥ उद्ध्वांतमीशानांतं च मुखपंचकमीरितम् ॥ २४ ॥ ईशानस्यैव देवस्य चतुर्व्यूहपदे स्थितम् ॥ पुरुषाद्यं च सद्यांतं ब्रह्मरूपं चतुष्टयम् ॥२५॥ पंच ब्रह्मसमष्टिस्स्यादीशानं ब्रह्म विश्रुतम् ॥ पुरुषाद्यं तुतद्व्यष्टिस्सद्योजातान्तिकं मुने ॥२६॥ अनुग्रहमयं चक्रमिदं पंचार्त्थकारणम् ॥ परब्रह्मात्मकं सूक्ष्मं निर्विकारमनामयम् ॥ २७ ॥ अनुग्रहोऽपि द्विविधस्तिरोभावादिगोचरः ॥ प्रभुश्चान्यस्तु जीवानां परावरविमुक्तिदः ॥ २८ ॥

प्रारम्भ कर सद्योजातादिके अनुक्रमसे ऊर्ध्व और ईशानतक शिवके पाँच मुख कहे हैं ॥ २४ ॥ यही ईशान देवके चतुर्व्यूह पदमें स्थित हैं पुरुषसे प्रारम्भ कर सद्योजात तक चतुष्टय ब्रह्मरूप है ॥ २५ ॥ और ईशान नामक विख्यात ब्रह्म मिलकर पंच ब्रह्म समष्टि कहलाती है. हे मुने ! पुरुषके आदिकी व्यष्टि सद्योजातके अन्ततक ॥ २६ ॥ अनुग्रहमय चक्र कहलाता है यही पंच अर्थका कारण है, यही पर ब्रह्मात्मक सूक्ष्म निर्विकार अनामय है ॥ २७ ॥ अनुग्रह भी दो प्रकारका है. एक तिरोभाव, एक प्रगट भाव, पहला और दूसरा जीवोंको

पर अपर मुक्तिका देनेवाला है ॥ २८ ॥ यह सदाशिवके दो कृत्य हैं. अनुग्रह सृष्टि आदि विभुके कृत्योंका पंचक कहाता है ॥ २९ ॥ हे मुने ! वह सृष्टि आदि कृत पंचकके सद्य आदि देवता कहे हैं, वह परब्रह्म स्वरूप पांचों कल्याणके देनेवाले हैं ॥ ३० ॥ अनुग्रहमय चक्र शांतिसे परे कलामय है वही सदाशिवमें अधिष्ठित होनेसे परम पद कहाता है ॥ ३१ ॥ भावितात्मा यतियोंको यह पद प्राप्त होता है जो सदाशिवकी उपासना करते हैं जिनका चित्त ओंकारमें आसक्त है ॥ ३२ ॥ वे सदाशिवकी कृपासे इस पदको प्राप्त होकर हे मुनीश्वरो ! वो ब्रह्मरूप देवके साथ अनेक प्रकारके भोग भोगकर ॥ ३३ ॥ महाप्रलयमें शिवकी साम्यताको प्राप्त हो जाते और वे फिर संसारसागरमें

एतत्सदाशिवस्यैव कृत्यद्वयमुदाहृतम् ॥ अनुग्रहेऽपि सृष्ट्यादिकृत्यानां पंचकं विभोः॥२९॥मुने तत्रापि सद्याद्या देवताः परिकि
र्त्तिताः ॥ परब्रह्मस्वरूपास्ताः पंच कल्याणदास्सदा ॥ ३० ॥ अनुग्रहमयं चक्रं शांत्यतीतकलामयम् ॥ सदाशिवाधिष्ठितं च
परमं पदमुच्यते ॥३१॥ एतदेव पदं प्राप्यं यतीनां भवितात्मनाम् ॥ सदाशिवोपासकानां प्रणवासक्तचेतसाम् ॥३२॥ एतदेव पदं
प्राप्य तेन साकं मुनीश्वराः ॥ भुक्त्वा सुविपुलान्भोगान्देवेन ब्रह्मरूपिणा ॥३३॥ महाप्रलयसंभूतौ शिवसाम्यं भजंति हि ॥ न
पतंति पुनः क्वापि संसाराब्धौ जनाश्च ते ॥३४॥ ते ब्रह्मलोक इति च श्रुतिराह सनातनी ॥ ऐश्वर्य्यं तु शिवस्यापि समष्टिरिदमेव
हि ॥ ३५ ॥ सर्व्वैश्वर्येण सम्पन्न इत्याहाथर्व्वणी शिखा ॥ सर्वैश्वर्य्यप्रदातृत्वमस्यैव प्रवदन्ति हि ॥ ३६ ॥ चमकस्य पदान्नान्य
दधिकं विद्यते पदम् ॥ ब्रह्मपंचकविस्तारप्रपंचः खलु दृश्यते ॥३७॥ ब्रह्मभ्य एवं संजाता निवृत्त्याद्याः कला मताः ॥ सूक्ष्मभूतस्वरू
पिण्यः कारणत्वेन विश्रुताः ॥ ३८ ॥ स्थूलरूपस्वरूपस्य प्रपंचस्यास्य सुव्रत ॥ पंचधावस्थितं यत्तद्ब्रह्मपंचकमिष्यते ॥ ३९ ॥

नहीं गिरते ॥ ३४ ॥ (ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे) यह श्रुति इसी अर्थको कहती है, यह सदाशिवका ऐश्वर्य समष्टि रूपही है ॥ ३५ ॥ वही सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न है इस प्रकार अथर्वशीर्षकी श्रुति कहती है, वही सब ऐश्वर्य देता है ॥ ३६ ॥ चमकाध्यायमें उसके स्थानसे कोई श्रेष्ठ नहीं कहा है ब्रह्मपञ्चकके विस्तारका नामही प्रपंच कहलाता है ॥ ३७ ॥ ब्रह्मसेही निवृत्ति आदि कला हुई हैं, यही सूक्ष्मभूतस्वरूप होकर कारणमें रहती हैं ॥ ३८ ॥ हे सुव्रत ! इस स्थूलरूप स्वरूपवाले प्रपंचको पांच प्रकारसे स्थित होनेसे

ब्रह्म पंचक कहते हैं ॥ ३९ ॥ पुरुष श्रोत्र वाणी शब्द और आकाश हे मुनिश्रेष्ठ ! यह ईशानरूप ब्रह्मसे प्राप्त है ॥ ४० ॥ हे मुनि ! प्रकृति, त्वक्, हाथ, स्पर्श, वायु यह पांच पुरुषरूप ब्रह्मसे प्राप्त हैं ॥ ४१ ॥ अहंकार, चक्षु, चरण, रूप और पावक, यह पांचों अघोर ब्रह्मसे व्याप्त हैं ॥ ४२ बुद्धि, रसना पायु, रस, जल, यह ब्रह्म वामदेवसे नित्य व्याप्त हैं ॥ ४३ ॥ मन, नासिका, उपस्थ, गन्ध और भूमि, यह पांचों सद्य ब्रह्मसे व्याप्त हैं, इस प्रकार पंच ब्रह्ममय जगत् है ॥ ४४ ॥ जो शिववाचक ॐकार यन्त्ररूपसे कहा है, यह पांचों वर्णोंकी समष्टि

पुरुषः श्रोत्रवाण्यौ च शब्दकाशौ च पंचकम् ॥ व्याप्तमीशानरूपेण ब्रह्मणा मुनिसत्तम ॥४०॥ प्रकृतिस्त्वक्च पाणिश्च स्पर्शो वायुश्च पंचकम् ॥ व्याप्तं पुरुषरूपेण ब्रह्मणैव मुनीश्वर ॥४१॥ अहंकारस्तथा चक्षुः पादो रूपं च पावकः ॥ अघोरब्रह्मणा व्याप्तमेतत्पंचकमंचितम् ॥४२॥ बुद्धिश्चरसना पायू रस आपश्च पंचकम्॥ब्रह्मणा वामदेवेन व्याप्तं भवति नित्यशः ॥४३॥ मनो नासा तथोपस्थो गन्धो भूमिश्च पंचकम्॥सद्येन ब्रह्मणा व्याप्तं पंचब्रह्ममयं जगत्॥४४॥यंत्ररूपेणोपदिष्टः प्रणवश्शिववाचकः॥समष्टिः पंचवर्णानां बिंद्वाद्यं यच्चतुष्टयम्॥४५॥शिवोपदिष्टमार्गेण यंत्ररूपं विभावयेत्॥प्रणवम्परमं मन्त्राधिराजं शिवरूपिणम्॥४६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां शिवरूपप्रणववर्णनं नाम चतुर्दशोध्यायः ॥ १४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततः परं प्रवक्ष्यामि सृष्टिपद्धतिमुत्तमाम्॥सदाशिवान्महेशादिचतुष्कस्य वरानने॥१॥सदाशिवस्समष्टिस्स्यादाकाशधिपतिः प्रभुः ॥ अस्यैव व्यष्टितापन्नम्महेशादिचतुष्टयम्॥२॥सदाशिवसहस्रांशान्महेशस्य समुद्भवः॥पुरुषाननरूपत्वाद्वायोरधिपतिश्च सः॥३॥

और बिन्दु आदि चारकी समष्टि कला प्रणव शिववाचक है ॥ ४५ ॥ शिवके उपदेश किये मार्गसे उसका विचार यन्त्ररूपसे करना यही प्रणव–मन्त्रराज और शिवरूप है ॥ ४६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाशसंहितायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ईश्वर बोले, इसके उपरान्त अब सृष्टिकी उत्तम पद्धति कहता हूं जो महेशादि चतुष्टय और सदाशिवसे होती है ॥ १ ॥ आकाशके अधिपति प्रभु समष्टिरूप हैं, महेशादि चार रूप उसीकी व्यष्टि हैं (महेश्वर रुद्र विष्णु ब्रह्मा) ॥ २ ॥ सदाशिवके सहस्रवें अंशसे

महेश्वरकी उत्पत्ति कही है, पुरुष अनन्तरूप होनेसे वायुका अधिपति है ॥ ३ ॥ वाममें माया शक्तिसे युक्त सम्पूर्ण क्रियाओंका अधिपति है, इसीके ईश्वरादि चतुष्टय व्यष्टिरूप हैं ॥ ४ ॥ ईश विश्वेश्वर परमेश सर्वेश्वरही श्रेष्ठ तिरोभाव चक्र है ॥ ५ ॥ तिरोभाव भी दो प्रकारका है, एक रुद्रादि गोचर है, दूसरा जीव समूहके शरीर रूपसे स्थित है ॥ ६ ॥ वह जब तक पुण्य पाप शरीरमें स्थित है तब तक रहता है, कर्मकी साम्यतामें एकही होता है. कारण कि जो विभु अनुग्रह करनेमें समर्थ है वह तिरोभाव कर्मकी साम्यतामें एकही है ॥ ७ ॥ और ईश्वरादि चारों देवता कहे हैं वह साक्षात् परब्रह्मात्मक निर्विकल्प निरामय हैं ॥ ८ ॥ तिरोभावात्मक जो चक्र है सो शांति कलामय

मायाशक्तियुतो वामे सकलश्च क्रियाधिकः॥अस्यैव व्यष्टिरूपंस्यादीश्वरादिचतुष्टयम्॥४॥ईशो विश्वेश्वरः पश्चात्परमेशस्ततः परम् ॥ सर्व्वेश्वर इतीदन्तु तिरोधाचक्रमुत्तमम्॥५॥तिरोभावो द्विधाभिन्न एकोरुद्रादिगोचरः ॥ अन्यश्च देहभावेन पशुवर्गस्य सन्ततेः ॥६॥ भोगानुरंजनपरःकर्मसाम्यक्षणावधि ॥ कर्मसाम्ये स एकः स्यादनुग्रहमयो विभुः॥७॥तत्र सर्व्वेश्वरा यास्ते देवताः परिकीर्त्तिताः ॥ परब्रह्मात्मकाः साक्षान्निर्विकल्पा निरामयाः॥८॥तिरोभावात्मकंचक्रं भवेच्छान्तिकलामयम् ॥ महेश्वराधिष्ठितं च पदमेतदनुत्तमम् ॥९॥ एतदेव पदं प्राप्यं महेशपदसेविनाम् ॥ माहेश्वराणां सालोक्यक्रमादेव विमुक्तिदम्॥१०॥महेश्वरस हस्रां शाद्रुद्रमूर्तिरजायत ॥ अघोरवदनाकारस्तेजस्तत्त्वाधिपश्च सः ॥ ११ ॥ गौरीशक्तियुतोवामे सर्व्वसंहारकृत्प्रभुः ॥ अस्यैव व्यष्टिरूपं स्याच्छिवाद्यथ चतुष्टयम् ॥ १२ ॥ शिवो हरो मृडभवौ विदितं चक्रमद्भुतम् ॥ संहाराख्यं महादिव्यं परमं हि मुनीश्वर ॥ १३ ॥ स संहारस्त्रिधा प्रोक्तो बुधैनित्यादिभेदतः ॥ नित्यो जीवसुषुप्त्याख्यो विधेर्नैमित्तिकः स्मृतः ॥ १४ ॥

है यह उत्तममद महेश्वरसे अधिष्ठित है ॥ ९ ॥ महेश्वरके चरणोंकी सेवा करने वाले इसही पदको प्राप्त होकर महेश्वरके भक्त सालोक्यको प्राप्त हो क्रमसे मुक्त होजाते हैं ॥ १० ॥ महेश्वरके सहस्रवें अंशसे रुद्रकी मूर्ति उत्पन्न हुई है, अघोर वदनके आकार वाले तेज तत्त्वके स्वामी हैं ॥ ११ ॥ वे प्रभु वाम भागहैं गौरी शक्ति धारण किये संहार करनेवाले हैं, इसीके व्यष्टिरूप शिवादि चार हैं ॥१२॥ शिव, हर, मृड, भव, यह अद्भुत विदित चक्र है. हे मुनीश्वर ! यह संहार नामक महादिव्य चक्र है ॥ १३ ॥ संहार नामक संहारचक्र नित्य नैमित्त

महाप्रलयके भेदसे तीन प्रकारका है. नित्य जिसमें जीव सुषुप्तिमें रहता है, उसका परब्रह्ममें लय रहना नैमित्तिक है ॥१४॥ और उसका पर ब्रह्ममें लय यहां संहार कहा है, ऐसा वेद कहता है जन्मके दुःख आदिसे शान्त हुए अपने स्वरूपोंको न जाननेवाले ॥ १५ ॥ जीवोंके विश्राम और कर्मोंके पापके निमित्त महतेजस्वी रुद्रने तीन प्रकारसे संहारकी कल्पना की है ॥ १६ ॥ यह तीनों संहारकृत्य रुद्रकेही हैं. संहारकालमें भी विभुके सृष्टिकी स्थितिका लय तिरोभाव अनुग्रहरूप पंचक है ॥१७॥ उसमें भावादिक देवता कहे हैं यह परब्रह्म स्वरूप लोकोंपर अनुग्रह करने वाले हैं ॥१८॥ यह संहारचक्र विद्यारूप कलामय हैं, यह निरामयपद रुद्ररूपसे अधिष्ठित है ॥१९॥ रुद्रके आराधनकी इच्छा करनेवाले इस

विलयस्तस्य तु महानिति वेदनिदर्शितः ॥ जीवानां जन्मदुःखादिशांतानामुषितात्मनाम् ॥१५॥ विश्रांत्यर्थं मुनिश्रेष्ठ कर्मणां पाकहेतवे॥ संहारः कल्पितस्त्रेधा रुद्रेणामिततेजसा ॥१६॥ रुद्रस्यैव तु कृत्यानां त्रयमेतदुदाहृतम् ॥ संस्थितवापि सृष्ट्यादिकृत्याना पञ्चकं विभोः ॥१७॥ मुने तत्र भवाद्यास्ते देवताः परिकीर्त्तिताः॥परब्रह्मस्वरूपाश्च लोकानुग्रहकारकाः ॥१८॥ संहाराख्यमिदं चक्रं विद्यारूपकलामयम् ॥ अधिष्ठितं च रुद्रेण पदमेतन्निरामयम् ॥१९॥ एतदेव पदं प्राप्यं रुद्राराधनकांक्षिणाम्॥रुद्राणां ताद्धि सालोक्यक्रमात्सायुज्यदम्मुने ॥२०॥ रुद्रमूर्त्तेस्सहस्त्रांशाद्विष्णोश्चैवाभवज्जनिः॥ स वामदेवचक्रात्मा वारितत्त्वैकनायकः ॥२१॥ रमाशक्तियुतो वामे सर्व्वरक्षाकरोमहान्॥चतुर्भुजोऽरविंदाक्षः श्यामश्शंखादिचिह्नभृत्॥२२॥अस्यैव वासुदेवादिचतुष्कं व्यष्टितां गतम् ॥ उपासनरतानां वै वैष्णवानां विमुक्तिदम्॥२३॥वासुदेवोऽनिरुद्धश्च ततस्संकर्षणः परः ॥ प्रद्युम्नश्चेति विख्यातं स्थितिचक्र मनुत्तमम् ॥ २४ ॥ स्थितिस्सृष्टस्य जगतस्तत्कर्त्रा सह पालनम् ॥ आरब्धकर्म्मभोगान्तं जीवानां फलभोगिनाम् ॥ २५ ॥

पदको प्राप्त होकर रुद्रके सलोकपदको क्रमसे प्राप्त हो सायुज्यको प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ रुद्रमूर्तिके सहस्र अंशसे विष्णुका प्रादुर्भाव हुआ है वह वामदेव चक्रात्मा जलतत्त्वका नायक है ॥ २१ ॥ वामभागमें रमाशक्तिसे युक्त सबकी रक्षा करनेवाले यही चार भुजा कमललोचन श्यामवर्ण शंखचक्रादिधारी हैं ॥ २२ ॥ इन्हीं विष्णुके वासुदेव प्रद्युम्नादि चार व्यष्टिरूप हैं जो उपासक वैष्णवोंको मुक्ति देनेवाले हैं ॥ २३ ॥ वासुदेव अनिरुद्ध संकर्षण प्रद्युम्न नामसे विख्यात स्थितिचक्र कहा है ॥ २४ ॥ सृष्टिकी स्थिति जगत्के कर्ता ब्रह्मादिका पालन फल भोगी जीवोंके

प्रारब्ध कर्मके अन्ततकका भोग ॥२५॥ रक्षा करनेवाले विष्णुकाही यह कृत्य वर्णन कियाहै और सृष्टिकी आदि स्थिति यह विभु विष्णुके पांच कृत्य कहे हैं ॥ २६ ॥ उसमें प्रद्युम्नादि देवता वर्णन किये हैं, यह निर्विकल्प निरातंक मुक्तिके आनन्दका करनेवाला है ॥२७॥ हे ब्रह्मन् यह प्रतिष्ठारूप स्थिति चक्र हैं यही जनार्दनसे अधिष्ठित परमपद कहा जाता है॥२८॥ विष्णुके भक्त वैष्णव इसही पदको प्राप्त होते हैं, यह वैष्णवोंका चक्र सलोक्यादि पदका देनेवाला है॥२९॥ विष्णुके सहस्रवें भागसे पितामह उत्पन्न हुए हैं, जो सद्योजातके मुख आत्मा और पृथ्वीतत्त्वके नायक

विष्णोरेवेदमाख्यातं कृत्यं रक्षाविधायिनः॥स्थितावपि तु सृष्ट्यादिकृत्यानां पंचकं विभोः ॥ २६ ॥ तत्र प्रद्युम्नमुख्यास्ते देवताः परिकीर्तिताः ॥ निर्विकल्पा निरातंका मुक्तानंदकरास्सदा ॥ २७ ॥ स्थितिचक्रमिदं ब्रह्मन्प्रतिष्ठारूपमुत्तमम् ॥ जनार्दनाधिष्ठितं च परमं पद मुच्यते ॥ २८ ॥ एवदेव पदं प्राप्यं विष्णुपादाब्जसेविनाम् ॥ वैष्णवानां चक्रमिदं सालोक्यादिपदप्रदम् ॥ २९ ॥ विष्णोरेव सहस्रांशात्संबभूव पितामहः ॥ सद्योजातमुखात्मा यः पृथिवीतत्त्वनायकः ॥ ३० ॥ वाग्देवीसहितो वामे सृष्टिकर्त्ता जगत्प्रभुः ॥ चतुर्मुखो रक्तवर्णो रजोरूपस्वरूपवान् ॥ ३१ ॥ हिरण्यगर्भाद्यस्यैव व्यष्टिरूपं चतुष्टयम् ॥ हिरण्यगर्भोथ विराट् पुरुषः काल एव च ॥ ३२ ॥ सृष्टि चक्रमिदं ब्रह्मपुत्रादिऋषिसेवितम्॥ सर्व्वकामार्थदं ब्रह्मन्परिवारसुखप्रदम् ॥ ३३ ॥ सृष्टिस्तु संहृतस्यास्य जीवस्य प्रकृतौ बहिः ॥ आनीय कर्मभोगार्थं साधनांगफलैस्सह ॥ ३४ ॥ संयोजनमितीदं तु कृत्यं पैतामहं विदुः ॥ जगत्सृष्टिक्रियाविज्ञा यावद्भूहं सुखावहम् ॥ ३५ ॥

हैं॥३०॥उस सृष्टिकर्त्ता जगत्के प्रभुके वामओर सरस्वती देवी स्थित हैं चार मुख रक्तवर्ण जो गुणरूप है॥३१॥हिरण्यगर्भादि चाररूप इन्हींके व्यष्टि स्वरूप हैं, हिरण्यगर्भ, विराट्पुरुष, काल॥३२॥यह सृष्टिचक्र ब्रह्माके पुत्र भृगु आदि मुनियोंसे सेवित है. हे ब्रह्मन् ! यह सब कामनाका देनेवाला तथा परिवार सुखका देनेवाला है ॥ ३३ ॥ प्रकृतिमें लीन हुए जीवके कर्मभोगके निमित्त फिर बाहरसे लाकर भोगके साधन पुत्र कलत्रादि और उनके फल हिरण्यादि ॥ ३४ ॥ उनके फल सुख दुःखादिसे संयुक्त करनेका नाम सृष्टि है, यह पितामहका कृत्य है

जगत् सृष्टिकी क्रियाके ज्ञाताओंको यह व्यूह सुखका देनेवाला है ॥ ३५ ॥ हे मुनि ! जगत्की सृष्टिमें ईश्वरके यह कृत्यपंचक हैं, उसमें कालादि चार देवता वर्णन किये हैं ॥ ३६ ॥ पंडितजन इसको निवृत्तिरूप सृष्टिचक्र कहते हैं, यह सुन्दर पद पितामहसे अधिष्ठित है ॥ ३७ ॥ ब्रह्ममें मन लगानेवाले इसी पदको प्राप्त होते हैं यत पितामहके सालोक्यादि मुक्तिका देनेवाला है ॥ ३८ ॥ क्रमसे कहे हुए महेशादि चक्रोंके चतुष्कके इस चक्रमें गौणी वृत्तिसे प्रणवका बोध करनेवाला होता है ॥ ३९ ॥ जिसे वैभव श्रुति वर्णन करती है, ऐसे इस चक्रको पंचारचक्र कहते हैं " पंचारचक्रं परिवर्तते पृथु " ॥ ४० ॥ शिव शक्तिसे युक्त एकही जगत्चक्र है और सृष्टिके पांच

जगत्सृष्टावपि मुने कृत्यानां च पंचकं विभोः ॥ अस्ति कालोदयस्तत्र देवताः परिकीर्त्तिताः ॥ ३६ ॥ निवृत्तिरूपमाख्यातं सृष्टिचक्रमिदं बुधैः ॥ पितामहाधिष्ठितं च पदमेतद्धि शोभनम् ॥ ३७ ॥ एतदेव प्रदं प्राप्यं ब्रह्मार्पितधियां नृणाम् ॥ पैतामहानामेतद्धि सालोक्यादिविमुक्तिदम् ॥ ३८ ॥ अस्मिन्नपि चतुष्के तु चक्राणां प्रणवो भवेत् ॥ महेशादिक्रमादेव गौण्या वृत्त्या स वाचकः ॥ ३९ ॥ इदं खलु जगच्चक्रं श्रुतिर्विश्रुतवैभवम् ॥ पञ्चारं चक्रमिति हस्तौति श्रुतिरिदम्मुने ॥ ४० ॥ एकमेव जगच्चक्रं शम्भोश्शक्तिविजृंभितम् ॥ सृष्ट्यादिपंचावयवं पंचारमिति कथ्यते ॥ ४१ ॥ अलातचक्रभ्रमिवद्विच्छिन्नलयोदयम् ॥ परितो वर्तते यस्मात्तस्माच्चक्रमितीरितम् ॥ ४२ ॥ सृष्ट्यादिपृथुसृष्टित्वात्पृथुत्वेनोपदृश्यते ॥ हिरण्मयस्य देवस्य शम्भोरमिततेजसः ॥ ४३ ॥ शक्तिकार्यमिदं चक्रं हिरण्यज्योतिराश्रितम् ॥ सलिलेनावृतमिदं सलिलं वह्निनावृतम् ॥ ४४ ॥ आवृतो वायुना वह्निराकाशेनावृतं महत् ॥ भूतादिना तथाकाशो भूता दिर्महतावृतः ॥ ४५ ॥ अव्यक्तेनावृतस्तद्वन्महानित्येवमास्तिकैः ॥ ब्रह्माण्डमिति संप्रोक्तमाचार्य्यैर्मुनिसत्तम ॥ ४६ ॥

अवयवका नाम पंचार है ॥ ४१ ॥ अलातचक्ररूप अंगारेके समान लय और हृदयसे युक्त चारों ओरसे वर्तता है, इसी कारण इसको चक्र कहते हैं ॥ ४२ ॥ स्थूल सूक्ष्मादि पृथक् २ होनेसे स्थूल देखनेमें आता है महापराक्रमी शिवजीके हिरण्यमय रूपका ॥ ४३ ॥ शक्ति कार्यरूपी यह चक्र हिरण्यमय ज्योतिवाला है, यह जलसे व्याप्त है, और जलसे अग्निसे व्याप्त है ॥ ४४ ॥ वह्नि वायुसे और आकाशसे आच्छादित है, आकाश भूतादि तापसाहंकारसे आवृत है, तामसाहंकार महत्तत्त्वसे आच्छादित है ॥ ४५ ॥ और प्रकृतिसे महान्

आच्छादित है ऐसा आस्तिक कहते हैं, हे मुनिश्रेष्ठ ! इसीको आचार्य ब्रह्माण्ड कहते हैं ॥ ४६ ॥ इस संसारचक्रकी रक्षामें सात आवरण कहे हैं, चक्रसे दश गुणा जल ॥ ४७ ॥ ऊपर नीचेसे व्याप्त हो रहा है, हे मुनिश्रेष्ठ ! इसीको ब्रह्माण्ड जानना चाहिये ॥ ४८ ॥ इसही अर्थको हृदयमें करके चक्रके समीप वर्त्तनेसे हिरण्यमय स्वरूपको जलके मध्यमें वर्त्तनेसे श्रुतिने जल मध्यशायी कहा है ॥ ४९ ॥ अनुग्रह, तिरोभाव, संहार, स्थिति, सृष्टिसे निरन्तर एक शक्तियुक्त शिव लीला करते हैं ॥ ५० ॥ हे मुनि ! बहुत कहनेसे क्या है ? मैं सार कहता हूं । शिवही सम्पूर्ण शक्तिमान् हैं यह निश्चय है ॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलास

उक्तानि सप्तावरणान्यस्य विश्वस्य गुप्तये ॥ चक्राद्दशगुणाधिक्यं सलिलस्य विधीयते ॥४७॥ उपर्य्युपरि चान्योन्यमेवं दशगुणाधिकम् ॥ ब्रह्माण्डमिति विज्ञेयं तद्विज्ञैर्मुनिनायक॥४८॥इममर्थमुरीकृत्य चक्रसामीप्यवर्त्तनात्॥सलिलस्य च तन्मध्ये इति प्राह श्रुतिस्स्वयम्॥४९॥अनुग्रहतिरोभावसंहृतिस्थितिसृष्टिभिः॥करोत्यविरतं लीलामेकश्शक्तियुताश्शिवः॥५०॥बहुनेहकिमुक्तेनमुने सारं वदामि ते॥शिव एवेदमखिलं शक्तिमानिति निश्चितम्॥५१॥इतिश्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलास संहितायामुपासनामूर्त्तिवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः॥१५॥सूत उवाच ॥ श्रुत्वोपदिष्टं गुरुणा वेदार्थं मुनिपुंगवः॥परमात्मनि संदिग्धं परिपप्रच्छ सादरम्॥१॥ वामदेव उवाच ॥ ज्ञानशक्तिधर स्वामिन्परमानन्दविग्रह॥ प्रणवार्थामृतं पीतं श्रीमुखाब्जात्परिप्लुतम्॥२॥दृढप्रज्ञश्च जातोऽस्मि संदेहो विगतो मम ॥ किंचिदन्यन्महासेन पृच्छामि त्वां शृणु प्रभो॥३॥सदाशिवादिकीटांतरूपस्य जगतः स्थितिः॥स्त्रीपुंरूपेण सर्वत्र दृश्यतेन हि संशयः ॥४॥ एवं रूपस्य जगतः कारणं यत्सनातनम् ॥ स्त्रीरूपं तत्किमाहोस्वित्पुरुषो वा नपुंसकम् ॥ ५ ॥

संहितायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ १५ ॥ सूतजी बोले कि, गुरुके इस प्रकार उपदेशरूप वेदार्थको सुन परमात्मामें सन्देह कर मुनिश्रेष्ठ आदर पुर्वक कहने लगे ॥ १ ॥ वामदेव बोले, हे ज्ञानशक्ति धारण करनेवाले स्वामिन् हे ! परमानन्दस्वरूप ! आपके मुखकमलसे ॐकार रूप अमृतका पान किया ॥ २ ॥ अब मैं दृढज्ञानसे युक्त हो गया इस विषयमें मेरा सन्देह निवृत्त हो गया हे महासेन ! अब थोडा और पूँछता हूँ ॥ ३ ॥ सदाशिवसे लेकर कीटतक जगत्के रूपकी स्थिति जो है वह सर्वत्र स्त्री पुरुष रूपसे दीखती है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४ ॥ इस प्रकार

रूपवान् जगत्के वही सनातनदेव कारण हैं, सो वह स्त्री, पुरुष, वा नपुंसकरूप हैं ॥ ५ ॥ अथवा मिले हुए अथवा किसी और प्रकारके हैं, इसका निर्णय नहीं हुआ है, विद्वान् भी शास्त्रोंमें मोहित होकर अनेक प्रकारसे कहते हैं ॥ ६ ॥ और जगत्की सृष्टि कहनेवाली श्रुति जगत् के साथ जैसे एकभावको प्राप्त हो जिसको विष्णु ब्रह्मादिक देवता और सिद्ध नहीं जानते ॥ ७ ॥ यह सब जैसे एकमत हो वह आप कहिये जानता हूँ, करता हूँ, यह व्यवहार दीखता है ॥ ८ ॥ यह ज्ञान क्रियात्मक व्यवहार सर्वानुभव सिद्ध है, वह देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकारसे उत्पन्न है ॥ ९ ॥ अथवा महान् आत्माका रूप है, इसमें सन्देह नहीं है, इन्हीं दोनों बातोंसे सबमें अद्भुत विवाद होता है ॥१०॥

उत मिश्रं किमन्यद्वा न जातस्तत्र निर्णयः ॥ बहुधा विवदन्तीह विद्वांसश्शास्त्रमोहिताः ॥६॥ जगत्सृष्टिविधायिन्यः श्रुतयो जगता सह ॥ विष्णुब्रह्मादयो देवाः सिद्धाश्च न विदन्तिहि॥७॥यथैक्यभावं गच्छेयुरेतदन्यच्च वेदय ॥ जानामीति करोमीति व्यवहारः प्रदृश्यते ॥८॥ स हि सर्वात्मसंसिद्धो विवादो नात्र कस्यचित् ॥ सर्वदेहेन्द्रियमनोबुध्यहंकारसंभवः ॥९॥ आहोस्विदात्मनो रूपं महानत्रापि संशयः ॥ द्वयमेतद्धि सर्व्वेषां विवादास्पदमद्भुतम्॥१०॥ उत्पाद्याज्ञानसंभूतं संशयाख्यं विषद्रुमम्॥ शिवाद्वैतमहाकल्पवृक्षभूमिर्यथा भवेत् ॥११॥ चित्तं मम यथा देव बोध्योऽस्मि कृपया तव ॥ कृपातस्तव देवेश दृढज्ञानी भवाम्यहम् ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वैवं मुनिना पृष्टं वचो वेदान्तनिर्वृतम् ॥ रहस्यं प्रभुराहेदं किंचित्प्रहसिताननः ॥ १३ ॥ सुब्रह्मण्य उवाच ॥ एतदेव मुने गुह्यं शिवेन परिभाषितम् ॥ अम्बायाः शृण्वतो देव्या वामदेव ममापि हि ॥ १४ ॥ तस्याः स्तन्यं तदा पीत्वा संतृप्तोऽस्मि मुहुर्मुहुः॥श्रुतवान्निश्चलं तद्वै निश्चितं मे विचारितम् ॥ १५ ॥

सो आप अज्ञानसम्भूत संशयरूपी विषवृक्षको उखाड कर ऐसा कीजिये, जिससे हमारे चित्तकी भूमि शिवके अद्वैत कल्पवृक्षके जन्मयोग्य हो जाय ॥ ११ ॥ हे देव ! इस प्रकार हमको कृपाकर समुझाइये, हे देवेश ! आपकी कृपासे मैं दृढ ज्ञानी हो जाऊँगा ॥१२॥ सूतजी बोले, इस प्रकार मुनिसे पूँछे हुए उपनिषद्गर्भित रहस्यको प्रभु कुछेक हँसते हुए बोले ॥ १३ ॥ स्कंदजी बोले, हे मुने ! इस गुह्यको शिवजीने कहा है हे वामदेव ! जिस समय शिवजी अम्बासे कहते थे ॥ १४ ॥ उस समय मैं अंबाका दूध पीता हुआ स्वस्थचित्त था इससे वह मुझे विचारसे

सब स्मरण है ॥ १५ ॥ सो मैं तुमसे दयापूर्वक कहता हूं हे वामदेवजी ! हे पुत्र ! वह परंगुप्त रहस्य सुनो ॥ १६ ॥ हे मुने ! कर्म सत्ता रूप तत्वसे आरंभ करके जो सविस्तार शास्त्रवाद है वह विचारवान् पुरुषको विवेकपूर्वक श्रवण करना चाहिये कारण यह शास्त्रवाद उनका ज्ञान का देनेवाला है ॥ १७ ॥ बडे विस्तारयुक्त शास्त्रवाद तुमने शिष्योंको उपदेश किये हैं, उसमें तुम्हारे समान कौन है ? अभी तक वह नीच बुद्धिके प्राणी कपिलादिके शास्त्रोंको पढकर ईश्वर नहीं है, ऐसा कहते हैं, और उसका आशय नहीं जानते ॥ १८ ॥ जो वह शिवनिन्दा करनेवाले पूर्वमें छः मुनियोंके द्वारा शापित हुए हैं जिस कारणसे कि वे अन्यथावादी हैं, इस कारण उनकी वार्ता

तत्ते वदामि दयया वामदेव महामुने ॥ महद्गुह्यं च परमं सुत त्वं शृणु सांप्रतम् ॥ १६ ॥ कर्मास्तितत्त्वादारभ्य शास्त्रवादस्सुविस्तरः ॥ यथाविवेकं श्रोतव्यो ज्ञानिना ज्ञानदो मुने ॥ १७ ॥ त्वयोपदिष्टा ये शिष्यास्तत्र को वा भवत्समः ॥ कपिलादिषु शास्त्रेषु भ्रमंत्यद्यापितेऽधमाः ॥ १८ ॥ ते शप्ता मुनिभिः षड्भिश्शिवनिन्दापराःपुरा॥न श्रोतव्या हि तद्वार्त्ता तेऽन्यथावादिनो यतः ॥ १९ ॥ अनुमानप्रयोगस्याप्यवकाशो न विद्यते ॥ पंचावयवयुक्तस्य स तु धूमस्य दर्शनात् ॥ २० ॥ पर्व्वतस्याग्निमद्भावं वदंत्य त्रापि सुव्रत॥ प्रत्यक्षस्य प्रपंचस्य दर्शनालंबनं त्वतः ॥ २१ ॥ ज्ञातव्यः परमेशानः परमात्मा न संशयः ॥ स्त्रीपुंरूप मयं विश्वं प्रत्यक्षेणैव दृश्यते ॥ २२ ॥ षट्कोशरूपः पिण्डो हि तत्र चाद्यत्रयम्भवेत् ॥ मात्रंशजं पुनश्चान्यत्पित्रंशजमिति श्रुतिः ॥ २३ ॥ एवं सर्व्वशरीरेषु स्त्रीपुंभावविदो जनाः ॥ परमात्मन्यपि मुने स्त्रीपुंभावं विदुर्बुधा ॥ २४ ॥

सुननी नहीं चाहिये ॥ १९ ॥ प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण उपमेय निगमन इन पांच अवयवोंसे युक्त क्षिति अंकुरादि कर्तृजन्य देखनेसे अनुमान प्रयोगका भी परमेश्वर रूपसिद्धिमें अवसर दीखता है ॥ २० ॥ जिस प्रकार उपरोक्त पंचावयव धूमके देखनेसे पर्वत अग्निवाला है, ऐसा कहते हैं इसी प्रकार प्रत्यक्ष प्रपंचके दर्शनके अवलम्बनसे ॥ २१ ॥ परमेश परमात्माको भी जानना चाहिये इसमें सन्देह नहीं स्त्री पुरुषरूप यह विश्व प्रत्यक्षही दीखता है ॥ २२ ॥ छः कोशवाले इस शरीरमें तीन अस्थि, स्नायु, मज्जा, पितासे और त्वचा मांस, रुधिर, मातासे होती हैं ॥ २३ ॥ इस प्रकार सब शरीरोंमें स्त्री पुरुषभावके जानने वाले पण्डित परमात्मामें ही स्त्री

पुरुषभावको जानते हैं ॥ २४ ॥ " सत्यं विज्ञानमानंदं ब्रह्म " इत्यादि परमात्मको सच्चिदानन्दरूप श्रुति प्रतिपादन करती है प्रपंचकी निवृत्ति करनेवाला शब्द सदात्मा कहा जाता है ॥ २५ ॥ " सदैव सौम्येदमग्र आसीत् इति श्रुतेः " और चिच्छब्दसे जड पदार्थकी निवृत्ति प्रतीत होती है त्रिलिंगवर्ती भी सच्छब्दका इस ब्रह्ममें पुल्लिंग रूपसे व्यवहार होता है ॥ २६ ॥ क्योंकि प्रकाश पदार्थके पुल्लिंग होनेसे उसके वाची सच्छब्दके पुल्लिंग होनेपर ब्रह्ममें उसका व्यवहार करके पुल्लिंग कहा जाता है ज्ञान शब्दका पर्याय होनेसे चिच्छब्द स्त्रीरूप होगया ॥ २७ ॥ प्रकाश और चित् यही दोनों जगत्की कारणताको प्राप्त हुए हैं इसी प्रकार सच्चिदात्मामें जगत्की कारणताको प्राप्त होनेमें

सच्चिदानंदरूपत्वं वदति ब्रह्मणः श्रुतिः ॥ असन्निवर्त्तकः शब्दः सदात्मेति निगद्यते ॥ २५ ॥ निवर्त्तनं जगत्त्वस्य चिच्छब्देन विधीयते ॥ त्रिलिंगवर्त्ती सच्छब्दः पुरुषोत्र विधीयताम् ॥ २६ ॥ प्रकाशवाची स भवेत्सत्प्रकाश इति स्फुटम् ॥ ज्ञानशब्दस्य पर्य्यायश्चिच्छब्दः स्त्रीत्वमागतः ॥ २७ ॥ प्रकाशश्चिच्च मिथुनं जगत्कारणतां गतम् ॥ सच्चिदात्मन्यपि तथा जगत्कारणतां गते ॥ २८ ॥ एकत्रैव शिवश्शक्तिरिति भावो विधीयते ॥ तैलवर्त्त्यादिमालिन्यात्प्रकाशस्यापि वर्त्तते ॥ २९ ॥ मालिन्यमशिवत्वं च चिताग्न्यादिषु दृश्यते ॥ एवं विवर्त्तकत्वेन शिवत्वं श्रुतिचोदितम् ॥ ३० ॥ जीवाश्रितायाश्चिच्छक्तेर्दौर्बल्यं विद्यते सदा ॥ तन्निवृत्त्यर्थमेवात्र शक्तित्वं सार्वकालिकम् ॥ ३१ ॥ बलवाञ्छक्तिमांश्चेति व्यवहारः प्रदृश्यते ॥ लोके वेदे च ससतं वामदेव महामुने ॥३२॥ एवं शिवत्वं शक्तित्वं परमात्मनि दर्शितम् ॥ शिवशक्त्योस्तु संयोगादानंदस्सततोदितः ॥३३॥

॥ २८ ॥ एक शिवही शक्तिभावको प्राप्त हुए हैं, कहीं तेल और बत्तीके मलीन होनेसे प्रकाश भी मलीन होजाता है ॥ २९ ॥ मलीनता और अशिवता चिता अग्निमें दीखती है इसीके विवर्त्तवाद होनेसे शिवत्व होता है, ऐसा श्रुतिने कहा है ॥ ३० ॥ यही चित् शक्ति जब जीवके आश्रित होती है, तब दुर्बल हो जाती है उसके निवृत्त करनेके लिये सर्वकालिक चित् शक्तिपन कहा है ॥ ३१ ॥ शक्तिमान् बलवान् होता है, वह व्यवहार भी देखनेमें आता है हे वामदेव! यह बात लोक वेदमें प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार शिवत्व और शक्तित्व परमात्मामें

दिखाया गया है, शिव शक्तिकेही संयोगसे सब आनन्द प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ इसी उद्देश्य करके पापरहित मुनि शिवमें मन लगाकर शिवके अनामय लोकको प्राप्त हुए हैं ॥ ३४ ॥ उन शिव और शक्तिका सर्व आत्मतत्व " सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म " और ' तद्ब्रह्मेति ' उपनिषदमें प्राप्त हुए वाक्योंसे बृंहि धातुके अर्थवाले ब्रह्म शब्दसे कहा है ऐसाही शारीरक मीमांसाके भाष्यमें कहा है "अस्ति तावद्ब्रह्म नित्य शुद्धमुक्तस्वभावसर्वज्ञसर्वशक्तिरिति " ॥ ३५ ॥ बृंहणत्व अर्थात् पूर्वमें कहे नित्य शुद्धत्वादिक सर्वव्यापित्व पंचब्रह्ममय सत्नाम शिव विग्रह है उसीमें प्रपञ्चकी प्रतीति ब्रह्म शब्दसे व्यवहार की जाती है ॥ ३६ ॥ प्रतिलोम अर्थात् सोहं इस प्रकारके एकारवाले हंसमें प्रणवकी प्राप्ति

अतो मुने तमुद्दिश्य मुनयः क्षीणकल्मषाः ॥ शिवे मनस्समाधाय प्राप्ताश्शिवमनामयम् ॥३४॥ सर्वात्मत्वं तयोरेवं ब्रह्मेत्युपनिषत्सु च॥गीयते ब्रह्मशब्देन बृंहिधात्वर्थगोचरम् ॥३५॥ बृंहणत्वं बृहत्त्वं च सदा शंभ्वाख्यविग्रहे ॥ पंचब्रह्ममये विश्वप्रतीतिर्ब्रह्मशब्दिता ॥ ३६ ॥ प्रतिलोमात्मके हंसे वक्ष्यामि प्रणवोद्भवम् ॥ तव स्नेहाद्वामदेव सावधानतया शृणु॥३७॥व्यंजनस्य सकारस्य हकारस्य च वर्ज्जनात्॥ओमित्येव भवेत्स्थूलो वाचकः परमात्मनः ॥३८॥ महामन्त्रस्स विज्ञेयो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ तत्र सूक्ष्मो महामन्त्रस्तदुद्धारं वदामि ते ॥ ३९ ॥ आद्ये त्रिपंचरूपे च स्वरे षोडशके त्रिषु ॥ महामन्त्रो भवेदादौ स सकारो भवेद्यदा ॥४०॥ हंसस्य प्रतिलोमः स्यात्सकारार्थश्शिवः स्मृतः ॥ शक्त्यात्मको महामन्त्रवाच्यः स्यादिति निर्णयः ॥ ४१ ॥

कहूंगा, हे वामदेव ! सावधान होकर सुनो ॥ ३७ ॥ और व्यंजन सकारका हकारके वर्ज्जनसे ॐ इस प्रकारका स्थूल परमात्माका वाचकसूक्ष्म ॥३८॥ महामन्त्र होता है, ऐसा तत्वदर्शी मुनि कहते हैं उसका उद्धार मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ३९ ॥ अ अं अः इन तीनों स्वरोंमें आदिस्वर अकारके (अ) इस प्रकारकी पन्द्रहवीं स्वरूपताको प्राप्त होनेपर आदि हकार व्यंजनमें हंके स्थित होनेपर और उसी प्रकार सोलहवें ' अ ' रूप जिसकी आदि सकार हो तब वह (हंस) होता है और जब इसका उलटा अर्थात् आदिमें सकार हो तब महामन्त्र (सोहं) होता है यह उद्धार सूक्ष्म होनेसे महासूक्ष्म है ॥ ४० ॥ हंसही इसका उलटा हो जाता है और सकारका अर्थ शिवही है कारण कि, वह सर्वनाम

विशुद्धस्वभाव शिवकेही बुद्धिविषय है यह शक्त्यात्मक महायन्त्र शिवकाही वाचक है यह निर्णय है ॥ ४१ ॥ गुरुके उपदेशकालमें सोहं शक्त्यात्मक शिव है ' शिवोहमस्मीति' । यह महामन्त्र जब जीवपर होता है ॥ ४२ ॥ तब शक्त्यात्मक और शिवांग पशु शिवकी एकतासे साम्यभाग होता है, शक्त्यात्मक और शिवांश होनेसे शिवकी समानताका भागी होता है (प्रज्ञानं ब्रह्म) इस वाक्यमें प्रज्ञानका अर्थ दीखता है ॥ ४३ प्रज्ञानशब्द निस्सन्देह चेतनका पर्याय है, हे मुने ! आत्मा चेतन है, यह शिवसूत्रोंमें लिखा हुआ है ॥ ४४ ॥ जो चेतन है जिसमें विश्वका सब ज्ञान और क्रिया स्थित हैं, ऐसे स्वतन्त्र स्वभाववाला परमात्मा कहा है ॥ ४५ ॥ इत्यादि शिवसूत्र और वार्तिकोंमें

गुरूपदेशकाले तु सोहंशक्त्यात्मकश्शिवः ॥ इति जीवपरो भूयान्महामन्त्रस्तदा पशुः ॥ ४२ ॥ शक्त्यात्मकश्शिवांशश्च शिवैक्याच्छिवसाम्यभाक् ॥ प्रज्ञानं ब्रह्मवाक्ये तु प्रज्ञानार्थः प्रदृश्यते ॥ ४३ ॥ प्रज्ञानशब्दश्चैतन्यपर्य्यायस्स्यान्न संशयः ॥ चैतन्यमात्मेति मुने शिवसूत्रं प्रवर्त्तितम् ॥ ४४ ॥ चैतन्यमिति विश्वस्य सर्वज्ञानक्रियात्मकम् ॥ स्वातन्त्र्यं तत्स्वभावो यः स आत्मा परिकीर्त्तितः ॥ ४५ ॥ इत्यादिशिवसूत्राणां वार्तिकं कथितं मया ॥ ज्ञानं बंध इतीदं तु द्वितीयं सूत्रमीशितुः ॥ ४६ ॥ ज्ञानमित्यात्मनस्तस्य किंचिज्ज्ञानक्रियात्मकम् ॥ इत्याद्यपदेनेशः पशुवर्गस्य लक्षणम् ॥ ४७ ॥ एतद्द्वयं पराशक्तेः प्रथमं स्पंदतां गतम् ॥ एतामेवपरां शक्तिं श्वेताश्वतरशाखिनः ॥ ४८ ॥

लिखा है और जीवस्वरूपमें ज्ञान और बन्ध यह दो लक्षण रहते हैं ॥ ४६ ॥ आत्माकी उस विश्वके प्रपंचमें जो कुछ ज्ञानक्रियात्मक स्वतन्त्रता है वही आदि भेदसे जीवका लक्षण कहा है ॥ ४७ ॥ यही दोनों चैतन्य ज्ञानात्मक स्वतंत्रता मायाशक्ति प्रथम सृष्टि प्रयोजन चेष्टाके रूपताको प्राप्त हुई हैं इसीको श्वेताश्वतरोपनिषद्की शाखावाले पराशक्ति कहते हैं, यथाहि (न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च । ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् इति) " जानता हूँ करता हूं यह व्यवहार देह इन्द्रियादिका है अथवा आत्माका है ? अब इस प्रश्नका उत्तर

कहते हैं " ज्ञानक्रिया इच्छारूपही शंभुकी तीन दृष्टि हैं ॥ ४८ ॥४९॥ यह शम्भुकी तीन दृष्टिही कर्ताके मनके बीचमें इंद्रियद्वारा गोचर देहमें प्रवेश करके जीवरूप हो जानती और करती हैं ॥५०॥ इसी कारणसे यह निश्चय आत्माका रूप है, अब प्रपंचके साथ जो ओंकारकी एकता है तो कहता हूं ॥ ५१ ॥ (ओमितीदं सर्वम्) यह सनातनी तेत्तिरीयश्रुतिमें लिखा है (तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः) इत्यादि उसीसे जगत्की सृष्टि कही है ॥ ५२ ॥ सुनो मैं इस श्रुतिका तात्पर्य कहता हूं हे वामदेव ! आपके स्नेहसे वर्णन करता हूं जिससे ज्ञान हो ॥ ५३ ॥ शिवशक्तिका योगही परमात्मा कहा गया है, वह परमात्माही आकाशादि रूपसे परिणमित होता है जैसे उपादान

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चेत्यस्तुवन्मुदा॥ज्ञानक्रियेच्छारूपं हि शंभोर्दृष्टित्रयं विदुः ॥४९॥ एतन्मनोमध्यगं सदिन्द्रियज्ञानगोचरम् ॥ अनुप्रविश्य जानाति करोति च पशुः सदा॥५०॥ तस्मादात्मन एवेदं रूपमित्येव निश्चितम्॥प्रपंचार्थं प्रवक्ष्यामि प्रणवैक्यप्रदर्शनम् ॥५१॥ ॐमितीदं सर्वमिति श्रुतिराह सनातनी॥तस्माद्धेतीत्युपक्रम्य जगत्सृष्टिः प्रकीर्तिता॥५२॥तस्याःश्रुतेस्तु तात्पर्य्यं वक्ष्यामि श्रूयतामिदम्॥तव स्नेहाद्वामदेव विवेकार्थविजृंभितम्॥५३॥शिवशक्तिसमायोगःपरमात्मेति निश्चितम् ॥ पराशक्तेस्तु संजाता चिच्छक्तिस्तु तदुद्भवा ॥५४॥ आनन्दशक्तिस्तज्जास्यादिच्छाशक्तिस्तदुद्भवा ॥ ज्ञानशक्तिस्ततो जाता क्रियाशक्तिस्तु पंचमी ॥एताभ्य एव संजाता निवृत्त्याद्याःकला मुने॥५५॥चिदानन्दसमुत्पन्नौ नादबिन्दू प्रकीर्त्तितौ॥इच्छाशक्तेर्मकारस्तु ज्ञानशक्तेस्तु पंचमः ॥ ५६ ॥ स्वरः क्रियाशक्तिजातो ह्यकारस्तु मुनीश्वर ॥ इत्युक्ता प्रणवोत्पत्तिः पंचब्रह्मोद्भवं शृणु ॥५७॥

कारण मृत्तिकाका अपनेसे अभिन्न घट आरम्भ करता है, वह दूध स्वरूप उपादान दहीके आकारसे बदलता है रज्जुरूप उपादान अज्ञानसहित सर्पादि आकारसे परिणमित होते हैं, पराशक्तिसे चित्शक्ति ॥ ५४ ॥ उससे आनन्दशक्ति और उससे इच्छाशक्ति उत्पन्न हुई है उससे ज्ञानशक्ति और उससे पांचवी क्रियाशक्ति उत्पन्न हुई है हे मुने ! इन्हीं शक्तियोंसे निवृत्ति आदि कला हुई हैं ॥५५॥ चिदानन्द शक्तियोंसे नाद और बिन्दु उत्पन्न हुए हैं इच्छाशक्तिसे मकार और ज्ञानशक्तिसे पांचवां स्वर उकार ॥ ५६ ॥ हे मुनीश्वर! क्रियाशक्तिसे

अकार स्वर हुआ है यह प्रणवकी उत्पत्ति हुई अब पंचब्रह्मकी उत्पत्ति सुनो ॥ ५७ ॥ शिवसे ईशान, ईशानसे पुरुषकी उत्पत्ति हुई है, उससे अघोर उससे वाम सद्योजात हुए हैं ॥ ५८ ॥ और इन्हीं अकारादिकोंकी मात्रासे अडतीस कला हुई हैं ईशानसे शान्त्यतीत कला उत्पन्न हुई हैं पुरुषसे शान्तिकला और अघोरसे विद्या उत्पन्न हुई है ॥५९॥ प्रतिष्ठा और निवृत्ति वामदेव और सद्योजातसे उत्पन्न हुई हैं ईश और चित् शक्ति मुखसे शिवके मिथुनपंचक हुए हैं ॥ ६० ॥ अनुग्रह तिरोभाव संहार स्थिति सृष्टिरूपादि कृत्योंका हेतुपंचक होता है, यह उस बातको जाननेवाले पण्डित मुनियोंने कहा है ॥ ६१ ॥ वाच्य वाचकके सम्बन्धसे मिथुनपनेको प्राप्त होनेवाले कलावर्ण स्वरूप वाले इस पंचकमें भूत

शिवादीशान उत्पन्नस्ततस्तत्पुरुषोद्भवः ॥ ततोऽघोरस्ततो वामस्सद्योजातोद्भवस्ततः ॥ ५८ ॥ एतस्मान्मातृकादष्टत्रिंशन्मातृ समुद्भवः ॥ ईशानाच्छान्त्यतीताख्या कला जाताथ पूरुषात् ॥ उत्पद्यते शान्तिकला विद्याऽघोरसमुद्भवा ॥ ५९ ॥ प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च वाम सद्योद्भवे मते॥ईशाच्चिच्छक्तिमुखतो विभोर्मिथुनपञ्चकम्॥६०॥अनुग्रहादिकृत्यानां हेतुः पञ्चकमिष्यते ॥ तद्विद्भिर्मुनिभिः प्राज्ञैर्व रतत्त्वप्रदर्शिभिः ॥६१॥ वाच्यवाचकसम्बन्धान्मिथुनत्वमुपेयुषि ॥ कलावर्णस्वरूपेऽस्मिन्पञ्चके भूतपञ्चकम् ॥ ६२ ॥ वियदादि क्रमादासीदुत्पन्नम्मुनिपुङ्गव ॥ आद्यं मिथुनमारभ्य पञ्चमं यन्मयं विदुः ॥ ६३ ॥ शब्दैकगुण आकाशः शब्दस्पशर्गुणो मरुत् ॥ शब्दस्पर्शरूपगुणप्रधानो वह्निरुच्यते ॥ ६४ ॥ शब्दस्पर्शरूपरसगुणकं सलिलं स्मृतम् ॥ शब्दस्पर्श रूपरसगन्धाढ्या पृथिवी स्मृता ॥ ६५ ॥ व्यापकत्वञ्च भूतानामिदमेव प्रकीर्तितम् ॥ व्याप्यत्वं वैपरीत्येन गन्धादिक्रमतो भवेत् ॥६६॥ भूतपञ्चकरूपोऽयम्प्रपञ्चः परिकीर्त्यते॥विराट् सर्वसमष्ट्यात्मा ब्रह्माण्डमिति च स्फुटम् ॥ ६७॥

पंचक ॥६२॥ आकाशादि क्रमसे उत्पन्न हुआ है हे मुने ! आद्यमैथुनईश चित्शक्तिआत्मकसे आरंभकर भूतपंचकको चिच्छक्तयात्मक कहते हैं ॥ ६३ ॥ अकाशमें शब्द गुण और वायुका शब्द स्पर्श गुण होता है, शब्दस्पर्श रूप गुण प्रधानवाली अग्नि हैं ॥ ६४ ॥ शब्द स्पर्शरूप रस गुणवाला जल कहाता है, शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध पृथ्वीका गुण है ॥ ६५ ॥ यह सब गुण क्रम २ से अपने २ भूतीमें व्यापक हो रहे हैं और गन्धादिके क्रमसे विपरीततासे व्याप्त हो रहे हैं ॥ ६६ ॥ यही भूतपंचकका रूप प्रपंच कहलाता है और यही प्रपंच सम्पूर्ण समष्टि

आत्मा विराट्से ब्रह्माण्ड कहाता है ॥ ६७ ॥ पृथ्वीतत्त्वसे लेकर शिवतत्त्वतक तत्त्वोंका समुदाय शक्तिसहित परमेश्वरमें लयकर जीवरूप विराट्में लीन होजाता है ॥ ६८ ॥ और सृष्टिके प्रारम्भमें फिर शक्तिसे निर्गत होते हैं और स्थूल प्रपंचरूपसे प्रलयपर्यन्त स्थित रहते हैं ॥ ६९ ॥ अपनी इच्छासे जगत् उत्पन्न करनेके निमित्त महेश्वरका उद्यत होना है उस पहले कार्यकोही जो क्रियात्मक होता है उसे शिवतत्त्व कहते हैं ॥ ७० ॥ सब कृत्यके अनुवर्तन होनेसे यही इच्छा शक्तितत्त्व कहाता है ज्ञान और क्रिया शक्तिमें ज्ञान अधिक होनेसे सदाशिवत्व है, और ज्ञानकी अपेक्षा क्रियाके अधिक होनेमें ॥ ७१ ॥ महेश्वर तत्व अधिक जानना चाहिये, ज्ञान क्रिया शक्तिके समान होनेमें विशुद्ध ज्ञानस्वरूप

पृथिवीतत्त्वमारभ्य शिवतत्त्वावधि क्रमात् ॥ निलीय तत्त्वसंदोहे जीव एव विलीयते ॥६८॥ संशक्तिकः पुनस्सृष्टौ शक्तिद्वारा विनिर्गतः ॥ स्थूलप्रपञ्चरूपेण तिष्ठत्याप्रलयं सुखम् ॥ ६९ ॥ निजेच्छया जगत्सृष्टमुद्युक्तस्य महेशितुः ॥ प्रथमो यः परिस्पन्द श्शिव तत्त्वन्तदुच्यते ॥७०॥ एषैवेच्छा शक्तितत्वं सर्वकृत्यानुवर्तनात् ॥ ज्ञानक्रियाशक्तियुग्मे ज्ञानाधिक्ये सदाशिवः ॥७१॥ महेश्वरं क्रियोद्रेके तत्त्वं विद्धि मुनीश्वर ॥ ज्ञानक्रियाशक्तिसाम्यं शुद्धविद्यात्मकं मतम् ॥ ७२ ॥ स्वाङ्गरूपेषु भावेषु मायातत्त्व विभेदधीः ॥ शिवो यदा निजं रूपं परमैश्वर्य्यपूर्वकम् ॥ ७३ ॥ निगृह्य मायया शेषपदार्थग्राहको भवेत् ॥ तदा पुरुष इत्याख्या तत्सृष्ट्वेत्यभवच्छ्रुतिः ॥ ७४ ॥ अयमेव हि संसारी मायया मोहितः पशुः ॥ शिवज्ञानविहीनो हि नानाकर्मविमूढधीः ॥ ७५ ॥

शिवतत्व है ॥ ७२ ॥ और अपने अंगरूप अवयवोंमें भेदबुद्धिसे मायातत्व कहाता है, जिस समय शिव अपना परमैश्वर्यरूप अपनी मायासे ॥ ७३ ॥ छिपाकर सम्पूर्ण पदार्थ ग्रहण करते हैं, तब वह पुरुषनामके सृष्टि (पुरुष एवेद ५ सर्व ५ यत्किंचिच्च जगत्यां जगदित्यादि) और (तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्) यह श्रुति प्रादुर्भूत होती है ॥ ७४ ॥ यही ईश्वरकी मायासे मोहित होकर जीवरूप हुआ मूढतासे अनेक कर्म कर्ता अपनेको सबसे भिन्न मानता है ॥ ७५ ॥

और जगत्को शिवसे अभिन्न नहीं मानना, इस प्रकार मोहित हो जाता है जाने तो मोह न हो ॥७६॥ जिस प्रकार इंद्रजाल विद्याके जान नेवालेको भ्रम नहीं होता इसी प्रकार गुरुके ऐश्वर्यसे ज्ञानयुक्तहो शिष्य शिवरूप होजाता है ॥ ७७ ॥ सम्पूर्ण कर्तृत्वरूप सर्वज्ञरूप स्वरूपवाली पूर्णत्व होनेसे नित्यत्व और व्यापकत्व स्वरूपवाली ॥ ७८ ॥ शिवकी पांच शक्ति संकोचयुक्त सूर्यरूपवाली हैं संकोचरूपसे नित्य प्रकाश कर नेवाली हैं ॥ ७९ ॥ जीवकी कलानाम विद्या राग काल नियति पंचतत्त्वके रूपसे कलामें होती है ॥ ८० ॥ कुछ कर्तापनका कारण कुछ तत्वका एक साधन जिसमें हो उसका नाम विद्या और विषयोंमें प्रीति करानेका नाम राग है ॥ ८१ ॥ भाव और अभावोंके क्रमसे परिच्छे

शिवादभिन्नं न जगदात्मानं भिन्नमित्यपि॥जानतोऽस्य पशोरेव मोहो भवति न प्रभो॥७६॥यथैन्द्रजालिकस्यापि योगिनो न भवेद्भ्रमः ॥ गुरुणा ज्ञापितैश्वर्यश्शिवो भवति चिद्घनः॥७७॥सर्वकर्तृत्वरूपा च सर्वज्ञत्वस्वरूपिणी ॥ पूर्णत्वरूपानित्यत्वव्यापकत्व स्वरूपिणी ॥७८॥ शिवस्य शक्तयः पञ्च संकुचद्रूपभास्कराः॥७९॥अपि संकोचरूपेण विभांत्य इति नित्यशः॥पशोः कलाख्य विद्येति रागकालौ नियत्यपि॥ तत्त्वपञ्चकरूपेण भवत्यत्र कलेति सा॥८०॥किंचित्कर्तृत्वहेतुस्स्यात्किंचित्तत्त्वैकसाधनम् ॥ सा तु विद्या भवेद्रागो विषयेष्वनुरंजकः॥८१॥कालो हि भावभावानां भासानां भासनात्मकः॥क्रमावच्छेदको भूत्वा भूतादिरितिकथ्यते ॥८२॥इदन्तु मम कर्तव्यमिदन्नेति नियामिका॥नियतिस्स्याद्विभोश्शक्तिस्तदाक्षेपात्पतेत्पशुः॥८३॥एतत्पंचकमेवास्य स्वरूपावारकत्वतः॥पञ्चकञ्चुकमाख्यातमन्तरंगंच साधनम्॥८४॥इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां शिवतत्त्ववर्णनन्नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥ वामदेव उवाच॥नियत्यधस्तात्प्रकृतेरुपरिस्थः पुमानिति॥पूर्वत्र भवता प्रोक्तमिदानीं कथमन्यथा ॥१॥

दक होकर वह भूतोंका आदि कहा जाता है ॥ ८२ ॥ यह मुझे कर्तव्य है यह नहीं उसीका नाम निमायक है विभुकी शक्तिका नाम नियति है, उसके त्यागसे यह जीव पतित हो जाता है ॥ ८३ ॥ यह पांच इस जीवस्वरूपके आवरण हैं इसीको पंचकंचुक कहते हैं यह अन्तरंग साधनवाले हैं ॥ ८४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ वामदेव बोले, हे भगवन् ! आपने प्रकृतिके नीचे नियति और ऊपर पुरुष हैं ऐसा पहले कहा है अब अन्यथा कैसे कहते हो ॥ १ ॥

और हे प्रभु ! मायासे संकुचितरूप आपने उससे नीचे कहा है, हे नाथ ! मेरा यह सन्देह दूर करो ॥ २ ॥ स्कन्दजी बोले, यह अद्वैत शैववाद किसी प्रकार द्वैतको नहीं सहता द्वैत नश्वर और अद्वैत अविनाशी है ॥ ३ ॥ सर्वज्ञ और सबका कर्ता तीन उत्पादक एक शिवही सच्चिदानंद रूपवाला ब्रह्म है ॥ ४ ॥ वह शिवही अपनी मायासे इच्छासे संकुचित रूपके समान पुरुष होगया है ॥ ५ ॥ पांच कलादिके होनेसे यहां भोक्ता है यही पुरुष प्रकृतिमें प्रकृतिके गुणोंको भोगता है ॥ ६ ॥ इस प्रकार दोनों स्थानोंमें स्थित होकर भी पुरुष किसी प्रकारका विरोध करनेवाला नहीं है और अपने रूपज्ञानादि संकुचित करता हुआ समष्टिमान् हों ॥ ७ ॥ सत्वादिगुण साध्यबुद्धि आदि त्रयात्मक चित्त है

मायया संकुचद्रूपस्तदधस्तादिति प्रभो ॥ इति मे संशयं नाथ छेत्तुमर्हसि तत्त्वतः ॥२॥ श्रीसुब्रह्मण्य उवाच ॥ अद्वैतशैववादोऽयं द्वैतन्न सहते क्वचित् ॥ द्वैतं च नश्वरं ब्रह्माद्वैतम्परमनश्वरम् ॥३॥ सर्वज्ञस्सर्वकर्ता च शिवस्सर्वेश्वरोऽगुणः ॥ त्रिदेवजनको ब्रह्मा सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ ४ ॥ स एव शंकरो देवस्स्वेच्छया च स्वमायया॥संकुचद्रूप इव सन्पुरुषस्संबभूव ह ॥५॥ कलादि पञ्चकेनैव भोक्तृत्वेन प्रकल्पितः ॥ प्रकृतिस्थः पुमानेषभुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ॥६॥ इति स्थानद्वयान्तस्थः पुरुषो न विरोधकः ॥ संकुचन्निजरूपाणां ज्ञानादीनां समष्टिमान् ॥ ७ ॥ सत्त्वादिगुणसाध्यं च बुध्यादित्रितयात्मकम् ॥ चित्तम्प्रकृति तत्त्वं तदासीत्सत्त्वादिकारणात् ॥ ८ ॥ सात्त्विकादिविभेदेन गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ॥ गुणेभ्यो बुद्धिरुत्पन्ना वस्तुनिश्चयकारिणी ॥ ९ ॥ ततो महानहङ्कारस्ततो बुद्धीन्द्रियाणि च ॥ जातानि मनसो रूपं स्यात्संकल्पविकल्पकम् ॥ १० ॥ बुद्धीन्द्रियाणि श्रोत्रं त्वक् चक्षुर्जिह्वा च नासिका ॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च गोचरः ॥ ११ ॥

सत्वादिके कारणसे वही चित्तप्रकृति तत्व है ॥ ८ ॥ सात्विकादि भेदसे प्रकृतिके गुण उत्पन्न होते हैं गुणोंसेही वस्तुओंको निरूपण करनेवाली बुद्धि उत्पन्न हुई है ॥ ९ ॥ बुद्धिसे तीन प्रकारका अहंकार हुआ है उसका जीवन साधनात्मक वेगरूप अभिमान है इसका तीन प्रकारका शरीर है सत्वादि और तैजसादिके भेदसे भी तीन प्रकारका है अहंकारसे और तेजसे मन, बुद्धि इंद्रिय उत्पन्न हुई हैं मनका रूप संकल्प विकल्पात्मक है ॥ १० ॥ बुद्धि इंद्रिय श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा नासिका शब्दरूप स्पर्श रस गन्ध ॥ ११ ॥

प्रवृत्ति और बुद्धि इन्द्रियोंमें श्रोत्रके क्रमसे कही है, वैकारिक अहंकारसे कर्मेंद्रिय हुई हैं ॥ १२ ॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने वे सूक्ष्म कही हैं, और कर्मेंद्रिय अपने कार्यके सहित हैं ॥ १३ ॥ वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ और उनकी क्रिया बोलना ग्रहण करना जानना त्याग और आनन्द है ॥ १४ ॥ भूतादिकोंसे और अहंकारके क्रमसे तन्मात्रा हुई उन्हींसे शब्दादि रूप हुए हैं ऐसी स्थिति है ॥ १५ ॥ उन्हींसे क्रम पूर्वक आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी उत्पन्न हुई है हे मुनिश्रेष्ठ ! यही पंचभूत कहाते हैं ॥ १६ ॥ अवकाश देना, वहन करना पचाना

बुद्धीन्द्रियाणां कथितः श्रोत्रादिक्रमतस्ततः ॥ वैकारिकादहंकारात्तन्मात्राण्यभवन्क्रमात् ॥ १२ ॥ तानि प्रोक्तानि सूक्ष्माणि मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ कर्मेन्द्रियाणि ज्ञेयानि स्वकार्य्यसहितानि च ॥ १३ ॥ विप्रर्षे वाक्करौ पादौ पायूपस्थौ च तत्क्रियाः ॥ वचनादान गमनविसर्ग्गानन्दसंज्ञिताः ॥ १४ ॥ भूतादिकादहंकारात्तन्मात्राण्यभवन्क्रमात् ॥ तानि सूक्ष्माणि रूपाणि शब्दादीनामिति स्थितिः ॥ ॥ १५ ॥ तेभ्यश्चाकाशवाय्वग्निजलभूमिजनिः क्रमात् ॥ विज्ञेया मुनिशार्दूल पञ्चभूतमितीष्यते ॥१६॥ अवकाशप्रदानं च वाहक त्वञ्चपावनम् ॥ संरम्भो धारणन्तेषां व्यापाराः परिकीर्तिताः ॥ १७ ॥ वामदेव उवाच ॥ भूतसृष्टिः पुरा प्रोक्ता कलादिभ्यः कथम्पुनः ॥ अन्यथा प्रोच्यते स्कन्द संदेहोऽत्र महान्मम ॥ १८ ॥ आत्मतत्त्वमकारस्स्याद्विद्या स्यादुस्ततः परम् ॥ शिवतत्त्वम्मकारस्स्याद्वामदेवेति चिंत्यताम् ॥ १९ ॥ बिन्दुनादौ तु विज्ञेयौ सर्वतत्त्वार्थकावुभौ ॥ तत्रत्या॥देवता याश्च ता मुने शृणु साम्प्रतम् ॥२०॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च महेश्वरसदाशिवौ ॥ ते हि साक्षाच्छिवस्यैव मूर्तयः श्रुतिविश्रुताः ॥ २१ ॥ इत्युक्तम्भवता पूर्वमिदानीमुच्यतेऽन्यथा ॥ तन्मात्रेभ्यो भवन्तीति सन्देहोऽत्र महान्मम ॥ २२ ॥

वेग और धारण उनके व्यापार हैं ॥ १७ ॥ वामदेव बोले, आपने पहले भूतसृष्टि कही है फिर कलादि कैसे कहते हो ॥ १८ ॥ कि आत्मतत्व अकार होता है और विद्यातत्व उकार होता है यह बडा सन्देह है शिवतत्व मकार है हे वामदेव ! ऐसा विचारो ॥ १९ ॥ बिन्दु और नाद सब तत्वके अर्थ हैं हे मुने ! अब इनके देवता सुनिये ॥२०॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर, सदाशिव, ये साक्षात् श्रुति प्रसिद्ध शिव की मूर्ति हैं ॥ २१ ॥ यह आपने पहले कहा अब कहते हो यह तन्मात्रासे होती हैं इसमें मुझे महान् सन्देह है ॥ २२ ॥

हे स्कंदजी ! कृपा करके यह सन्देह दूर करो, यह मुनिके वचन सुन कुमार कहने लगे ॥ २३ ॥ स्कंदजी बोले, हे मुने ! तस्माद्वा यहांसे प्रारम्भकर भूतसृष्टिके क्रमसे जो मैं कहता हूं सो सब सावधानीसे सुनो ॥ २४ ॥ कलाओंमें पंचभूत उत्पन्न हुए हैं यह निश्चय है, स्थूल प्रपंचरूप पाँचभूत शिवजीके शरीर हैं ॥ २५ ॥ शिवतत्वसे लेकर पृथ्वीके तत्वतक तत्वोंके क्रमसे तन्मात्राओंसे उत्पन्न होते हैं सो क्रमसे कहते हैं ॥ २६ ॥ भूतोंके उत्पन्न करनेके धर्मसे तन्मात्रा और कला एकही भूतोंका कारण हैं इनका कोई विरोध जानना नहीं चाहिये हे

कृत्वा तत्करुणां स्कन्द संशयं छेत्तुमर्हसि ॥ इत्याकर्ण्य मुनेर्वाक्यं कुमारः प्रत्यभाषत ॥२३॥ श्रीसुब्रह्मण्य उवाच ॥ तस्माद्वे ति समारभ्य भूतसृष्टिक्रमे मुने ॥ ताञ्छृणुष्व महाप्राज्ञ सावधानतयादरात् ॥ २४ ॥ जातानि पञ्च भूतानि कलाभ्य इति निश्चितम् ॥ स्थूलप्रपञ्चरूपाणि तानि भूतपतेर्वपुः ॥ २५ ॥ शिवतत्त्वादिपृथ्व्यन्तं तत्त्वानामुदयक्रमे ॥ तन्मात्रेभ्यो भवन्तीति वक्तव्यानि क्रमान्मुने॥२६॥ तन्मात्राणां कलानामप्यैक्यंस्याद्भूतकारणम् ॥ अविरुद्धत्वमेवात्र विद्धि ब्रह्मविदां वर ॥ २७ ॥ स्थूलसूक्ष्मात्मके विश्वे चन्द्रसूर्य्यादयो ग्रहाः ॥ सनक्षत्राश्च संजातास्तथान्ये ज्योतिषां गणाः ॥ २८ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशादि देवता भूतजातयः ॥ इन्द्रादयोऽपि दिक्पाला देवाश्च पितरोऽसुराः ॥ २९ ॥ राक्षसा मानुषाश्चान्ये जंगमत्वविभागिनः ॥ पशवः पक्षिणः कीटाः पन्नगादि प्रभेदिनः ॥ ३० ॥ तरुगुल्मलतौषध्यः पर्वताश्चाष्ट विश्रुताः ॥ गंगाद्यास्सरितस्सप्त सागराश्च महर्द्धयः ॥ ३१ ॥ यत्किंचिद्वस्तुजातन्तत्सर्वमत्र प्रतिष्ठितम् ॥ विचारणीयं सद्बुध्या न बहिर्मुनिसत्तम ॥ ३२ ॥

बुद्धिमानोमें श्रेष्ठ ! ॥ २७ ॥ इस स्थूल सूक्ष्मात्मक संसारमें चन्द्र सूर्य आदि ग्रह नक्षत्रों सहित उत्पन्न हुए हैं इसी प्रकार और भी ॥ २८ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेशादि देवता भूतजाति इन्द्रादि दिकूपाल देवता पितर असुर ॥ २९ ॥ राक्षस मनुष्य और अनेक प्रकारके जंगम प्राणी पशु, पक्षी, कीट, पतंगके भेदवाले ॥ ३० ॥ वृक्ष गुल्म लता औषधी आठों पर्वत गंगादि नदी सप्तसागर महर्षि ॥ ३१ ॥ जो कुछ वस्तुजात है सो सब इसीमें प्रतिष्ठित है हे मुनिराज ! यह बुद्धिसे विचारो ॥ ३२ ॥

यह स्त्री पुरुषरूप संसार शिवशक्त्यात्मक है शिवज्ञानके जाननेवाले आप सरीखे पंडितोंके उपासना करने योग्य है ॥ ३३ ॥ सर्वं ब्रह्म सर्वो वै रुद्रः) अर्थात् यह सब कुछ शिवही हैं ऐसा जानकर उपासना करनी चाहिये हे मुने ! ऐसा श्रुतिने कहा है इससे सदाशिवही प्रपंचात्मा है ॥ ३४ ॥ अडतीस कालके त्यागमें सामर्थ्यवाले शिवकी अद्वैत भावनासे (सदाशिवोहं) ऐसी भावना करनेवाला गुरु शिवही है ॥ ३५ ॥ इस प्रकारका विचारवान् अच्छे शिष्यवाला गुरु शिवही है और प्रपंच देवता यन्त्र मंत्रात्मा गुरु शिवही है इसमें संदेह नहीं ॥ ३६ ॥ इस प्रकार आचार्यकी कृपासे सब बंधन रहित हो शिष्य शिवपदमें आसक्त होकर निश्चयही पूज्यात्मा होजाता है

स्त्रीपुंरूपमिदं विश्वं शिवशक्त्यात्मकं बुधैः ॥ भवादृशैरुपास्यं स्याच्छिवज्ञानविशारदैः ॥ ३३ ॥ सर्वं ब्रह्मेत्युपासीत सर्वं वै रुद्र इत्यपि॥श्रुतिराह मुने तस्मात्प्रपञ्चात्मा सदाशिवः ॥ ३४ ॥ अष्टत्रिंशत्कलान्याससामर्थ्याद्वैतभावना ॥ सदाशिवोऽहमेवेति भावितात्मा गुरुः शिवः ॥ ३५ ॥ एवं विचारी सच्छिष्यो गुरुस्स्यात्स शिवस्स्वयम्॥प्रपञ्चदेवतायंत्रमंत्रात्मा न हि संशयः ॥ ३६ ॥ आचार्य्य रूपया विप्र संछिन्नाखिलबन्धनः ॥ शिशुः शिवपदासक्तो गुर्वात्मा भवति ध्रुवम् ॥ ३७ ॥ यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुण प्राधान्ययोगतः ॥ समस्तं व्यस्तमपि च प्रणवार्थम्प्रचक्षते ॥ ३८ ॥ रागादिदोषरहितं वेदसारः शिवो दिशः॥तुभ्यम्मे कथितम्प्रीत्याऽद्वैतज्ञानं शिवप्रियम् ॥ ३९ ॥ यो ह्यन्यथैतन्मनुते मद्वचो मदगर्वितः ॥ देवो वा मानवास्सिद्धो गन्धर्वो मनुजोऽपि वा ॥ ४० ॥ दुरात्मनस्तस्य शिरश्छिद्यां समतयाद्ध्रुवम् ॥ सच्छक्त्या रिपुकालाग्निकल्पया न हि संशयः ॥ ४१ ॥ भवानेव मुने साक्षाच्छिवाद्वैतविदां वरः ॥ शिवज्ञानोपदेशे हि शिवाचारप्रदर्शकः ॥ ४२ ॥

॥ ३७ ॥ जो कुछ वस्तु है सब गुण प्रधान योगसे समस्त और पृथक् प्रणवके ही अर्थको कहती है ॥ ३८ ॥ रागादि दोषसे रहित वेदसार यही शिवजीका उपदेश है, यह अद्वैतज्ञान शिवका प्रिय है सो मैंने तुमसे कहा ॥ ३९ ॥ जो अन्यथा करे अथवा मदसे गर्वित हो इस मेरे उपदेशको जो अन्यथा माने, देवता मनुष्य सिद्ध गन्धर्व कोई हो ॥ ४० ॥ मैं उस दुरात्मा शत्रुका सिर निश्चयही कालाग्निकी समान अपनी शक्तिसे छेदन कर दूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ४१ ॥ हे मुने ! तुम तो साक्षात् शिवके अद्वैत ज्ञानके जाननेवाले हो

शिव ज्ञानके उपदेश और शिवाचारके दिखाने वाले हो ॥ ४२ ॥ जिसकी देहकी भस्मके स्पर्शमात्रसे महापापी पिशाचत्वको प्राप्त हुए भी पाप रहित हो जाते हैं तथा तुम्हारी कृपासे उनकी सद्गति होती है ॥ ४३ ॥ तीन लोकमें आप महाऐश्वर्यरूपसे शिव योगी कहाते हो तुम्हारे कटाक्षके सम्पर्कसे जीव शिवस्वरूप होजाता है इसमें संदेह नहीं ॥४४॥ आपने जो मुझसे पूछा यह लोक शिक्षाके निमित्त है साधु लोकोपकारकोही विच रते हैं ॥४५॥ यह परमरहस्य सदा तुममेंही प्रतिष्ठित है, तुम श्रद्धा भक्तिसे प्रणवमें आदरपूर्वक ॥४६॥ मनको परमेश्वरमें लगाकर विभूति रुद्राक्ष

यद्देहभस्मसम्पर्कात्संछिन्नाघव्रजोऽशुचिः॥महापिशाचः सम्प्राप्य त्वत्कृपातस्सतां गतिम् ॥४३॥ शिवयोगीतिसंख्यातत्रिलोक विभवो भवान् ॥ भवत्कटाक्षसम्पर्कात्पशु पशुपतिर्भवेत् ॥ ४४ ॥ तव तस्य मयि प्रेक्षा लोकाशिक्षार्थमादरात् ॥ लोकोपकार करणे विचरन्तीह साधवः ॥ ४५ ॥ इदं रहस्यम्परमं प्रतिष्ठितमतस्त्वयि ॥ त्वमपि श्रद्धया भक्त्या प्रणवेष्वेव सादरम् ॥ ४६ ॥ उपविश्य च तान्सर्वान्संयोज्य परमेश्वरे ॥ शिवाचारं ग्राहयस्व भूतिरुद्राक्षमिश्रितम् ॥ ४७ ॥ त्वं शिवो हि शिवाचारी सम्प्रा प्ताद्वैतभावतः ॥ विचरँल्लोकरक्षायै सुखमक्षयमाप्नुहि ॥ ४८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वेदमद्भुतमतं हि षडाननोक्तं वेदान्तनि ष्ठित मृषिस्तु विनम्रमूर्त्तिः ॥ भूत्वा प्रणम्य बहुशो भुवि दण्डवत्तत्पादारविन्दविहरन्मधुपत्वमाप ॥ ४९ ॥ इति श्रीशिवमहापु राणे षष्ठचां कैलाससंहितायां शिवाद्वैतज्ञानकथनादिसृष्टिकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

सहित शिवाचारको ग्रहण कराओ ॥४७॥ तुम शिवके आचरणको ग्रहण करते हुए अद्वैत भावमें हो लोक रक्षाके निमित्त विचरते हुए अक्षय सुखको प्राप्त हो ॥ ४८ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार स्कंदजीके कहे वेदांत युक्त वचनको सुन वामदेव ऋषि नम्र हो बारंबार पृथ्वीमें प्रणाम करने लगे, और उनके चरणारविंदमें विहार करते हुये उनके मकरन्दरूपी रसको प्राप्त हुए अर्थात् परम तत्त्वको जान गये ॥४९॥ इति श्रीशिवमहा पुराण भाषाटीकायां प० कैलाससंहितायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

शौनकजी बोले, इस प्रकार वेदांतके सार और परमरहस्यको सुनकर वामदेवने महेश्वरके पुत्रसे क्या कहा ॥ १ ॥ "वामदेव योगी सदाशिव ज्ञानमें रहनेवाले परमधन्य हैं जिनके सम्बन्धसे यह दिव्यज्ञान देनेवाली परमपवित्र कथा उत्पन्न हुई है ॥ २ ॥ इस प्रकार उन मुनियोंके प्रेम गर्भित वचनोंको सुनकर प्रसन्न हो महापंडित सूतजी उन शिवजीमें मन लगानेवालोंसे बोले ॥ ३ ॥ सूतजी बोले, तुम महादेवके भक्त धन्य हो लोकके उपकार करनेवाले हो हे मुनियो ! फिर भी उन दोनोंका संवाद सुनो ॥ ४ ॥ इस प्रकार स्कंदजीके द्वैतनाशक वचन सुनकर महामुनि

॥ शौनक उवाच ॥ श्रुत्वा वेदान्तसारं तद्रहस्यम्परमाद्भुतम्॥किम्पृष्टवान्वामदेवो महेश्वरसुतं तदा॥१॥धन्यो योगी वामदेवः शिवज्ञानरतस्सदा ॥ यत्स्सम्बन्धात्कथोत्पन्ना दिव्या परमपावनी॥२॥ इति श्रुत्वा मुनीनान्तद्वचनम्प्रेमगर्भितम् ॥ सूतः प्राह प्रसन्नस्ताञ्छिवासक्तमना बुधः ॥३॥ सूत उवाच ॥ धन्या यूयं महादेवभक्ता लोकोपकारकाः ॥ शृणुध्वम्मुनयस्सर्वे संवादं च तयोः पुनः ॥४॥ श्रुत्वा महेशतनयवचनं द्वैतनाशकम् ॥ अद्वैतज्ञानजनकं सन्तुष्टोऽभून्महान्मुनिः ॥५॥ नत्वा स्तुत्वा च विविधं कार्तिकेयं शिवात्मजम् ॥ पुनः पप्रच्छ तत्त्वं हि विनयेन महामुनिः ॥६॥ वामदेव उवाच ॥ भगवन्सर्वतत्त्वज्ञ षण्मुखामृतवारिधे ॥ गुरुत्वं कथमेतेषां यतीनाम्भावितात्मनाम् ॥ ७ ॥ जीवानां भोगमोक्षादिसिद्धिस्सिध्यति यद्वशात् ॥ पारम्पर्य्यं विनानैषा मुपदेशाधिकारिता ॥ ८ ॥ एवं च क्षौरकर्मांगं स्नानञ्च कथमीदृशम् ॥ इति विज्ञापय स्वामिन्संशयं छेत्तुमर्हसि ॥ ९ ॥ इति श्रुत्वा कार्तिकेयो वामदेववचः स्मरन् ॥ शिवं शिवां च मनसा व्याचष्टुमुपचक्रमे ॥ १० ॥

प्रसन्न हुए ॥५॥ कार्तिकेय शिवपुत्रको बारंबार स्तुति और प्रणाम करके महामुनि विनयसे फिर पूंछने लगे ॥ ६ ॥ वामदेव बोले, हे भगवन् ! हे सम्पूर्णतत्वके जाननेवाले ! हे षण्मुख ! हे अमृतस्वरूप ! इन पूर्वमें कहे हुये आत्मज्ञानियोंका गुरुत्व ॥७॥और जीवोंकी भोग मोक्षादि सिद्धि जिसके कारण से होती है परन्तु सम्प्रदायके ज्ञानके विना इनमें उपदेशकी अधिकारता नहीं है ॥ ८ ॥ इनके क्षौरकर्म और स्नान इस प्रकार क्यों हैं सो आप कहिये, मेरा यह संदेह दूर करो ॥९॥ स्कंदजी इस प्रकार सुनकर वामदेवके वचनको स्मरण कर शिवा शिवको मनमें प्रणाम कर

कहने लगे ॥ १० ॥ स्कंदजी बोले, अब योगपद कहता हूँ जिससे गुरुतत्त्वकी प्राप्ति होती है, हे वामदेवजी ! यह परमगुप्त है तुम्हारे प्रेमसे कहता हूं सुनो ॥११॥ वैशाख, श्रावण, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ मासके शुक्लपक्षके शुभ दिनमें ॥१२॥ पंचमी अथवा पूर्णमासीको प्रातःकालकी क्रिया कर गुरुकी आज्ञा पाय नियमित हो स्नान कर ॥१३॥पर्यंक शौंच (इसकी विधि संन्यासपद्धति आदि ग्रन्थोंमें लिखी है) कर वस्त्रोंसे अंगको पोंछ दूने डोरे बांध कपडे पहर ॥१४॥ चरण धोय दो बार आचमन कर सद्योजातादि मंत्रोंसे भस्म भालमें लगाय फिर

श्रीसुब्रह्मण्य उवाच ॥ योगपट्टम्प्रवक्ष्यामि गुरुत्वंयेन जायते ॥ तव स्नेहाद्वामदेव महद्गोप्यं विमुक्तिदम् ॥११॥ वैशाखे श्रावणे मासि तथाश्वयुजि कार्तिके ॥ मार्गशीर्षे च माघे वा शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥ १२ ॥ पंचम्यां पौर्णमास्यां वा कृतप्राभातिकक्रियः ॥ लब्धानुज्ञस्तु गुरुणा स्नात्वा नियतमानसः ॥ १३ ॥ पर्य्यंकशौचं कृत्वा तद्वाससांगं प्रमृज्य च ॥ द्विगुणं दोरमाबध्य वाससी परिधाय च ॥१४॥ क्षालितांघ्रिर्द्विराचम्य भस्म सद्यादिम न्त्रतः ॥ धारयेद्धि समादाय समुद्धूलनमार्गतः ॥१५॥ गृहीतहस्तो गुरुणासानुकूलेन वै मुने ॥ सच्छिष्यः साञ्जलिस्स्वाभ्यां हस्ताभ्याम्प्राङ्मुखो यथा ॥ १६ ॥ तथोपवेष्टितस्तिष्ठेन्मंडपे सम लंकृते॥गुर्वासनवरे शुद्धे चैलाजिनकुशोत्तरे ॥१७॥ अथ देशिक आदाय शंखं साधारमस्त्रतः ॥ विशोध्य तस्य पुरतः स्थापये त्सानुकूलतः ॥ १८ ॥ साधारं शङ्खमपि च सम्पूज्य कुसुमादिभिः ॥ निःक्षिपेदस्त्रवर्मभ्यां शोधितं तत्र सज्जलम् ॥ १९ ॥ आपूर्य पूर्ववत्पूज्य षडंगोक्तक्रमेण च ॥ प्रणवेन पुनस्तद्वै सप्तधैवाभिमन्त्रयेत् ॥ २० ॥

सब शरीरमें लगावे ॥ १५ ॥ हे मुने ! पूर्वको मुखकर अनुकूल गुरुके हाथमें हाथ दे फिर हाथ जोडकर शिष्य ॥ १६ ॥ सुन्दर अलंकृत मंदिरमें गुरुके दिये हुए मृगचर्मके आसनमें बैठ ॥ १७ ॥ पीछे आचार्य आधारसहित शंखको अस्त्रमंत्रसे लाकर उसे शोध आगे अस्थापन कर ॥ १८ ॥ फूलोंसे पूजन करे और कवच मन्त्रोंसे शोधित जल और आधारसहित शंखको ॥१९॥ भरकर षडंगके क्रमसे उसे पूजन करके फिर

सातबार उसे प्रणवसे अभिमंत्रित करे ॥ २० ॥ गंध पुष्पादिसे पूज धूप दीप दिखाय मुद्रा रक्षाकर कवचमंत्रसे ढके ॥२१॥ आचार्य धेनु और शंखमुद्रा दिखावे फिर अपने आगे शंखकी दक्षिण ओर पूजा और अर्घ्यके विधानसे उत्तम मण्डल करके उसको सुगंधित पुष्पोंसे पूजे ॥२२॥ ॥ २३ ॥ आधारको शोधकर उसपर शुद्ध घट रक्खे, उसपर सूत लपेट, उसे धूप देकर शुद्ध सुगंधित जलसे भरे ॥ २४ ॥ पीपल, पिलखन, जामन, आम, बड इन पांचोंकी छाल और इन्हीं पांचोंके पत्ते और हाथी, घोडे, रथ, बांवी और नदीके संगमस्थानकी मट्टी इनमें सुगंधि मिलाकर कलशमें लेपन करे ॥ २५ ॥ वस्त्र आमके पत्ते कुशका अग्र नारियल और फूल मिलावे इस प्रकार और वस्तुओंसे उस घटको

अभ्यर्च्य गन्धपुष्पार्घ्यधूपदीपौ प्रदर्श्य च॥ संरक्षास्त्रेण तं शंखं वर्मणाथावगुण्ठयेत्॥२१॥धेनुशंखाख्यमुद्रे च दर्शयेदथ देशिकः॥ पुनस्स्वपुरतश्शंखं दक्षिणे देश उत्तमे ॥२२॥ पूज्याघ्र्योक्तविधानेन सुन्दरम्मण्डलं शुभम्॥कुर्य्यात्सम्पूजयेत्तञ्च सुगन्धकुसुमादिभिः ॥२३॥ साधारं शोधितं शुद्धं घटन्तन्तुपरिष्कृतम्॥धूपितं स्थापितं शुद्धवासितोदप्रपूरितम् ॥२४॥ पञ्चत्वक्पञ्चपत्रैश्च मृत्तिकाभिश्च पञ्चभिः॥मिलितं च सुगन्धेन लेपयेत्तम्मुनीश्वर॥२५॥वस्त्राम्रदलदूर्वाग्रनारिकेलसुमैस्ततः॥तं घटं वस्तुभिश्चान्यैस्संकुर्यात्समलंकृतम् ॥२६॥ विन्यसेत्पञ्चरत्नानि घटे तत्र मुनीश्वर॥ हिरण्यञ्चापि तेषां वाभावे भक्त्या प्रविन्यसेत् ॥२७॥ नीलाख्यरत्नं च तथा रत्ने माणिक्यहेमनी॥प्रवालगोमेदके च पञ्चरत्नमिदं स्मृतम्॥२८॥नृम्लस्कमिति सम्प्रोच्य ग्लूमित्यन्तेऽथ देशिकः ॥ सम्यग्विधानतः प्रीत्या सानुकूलः समर्चयेत् ॥२९॥ आधारशक्तिमारभ्य यजनोक्तविधानतः ॥ पञ्चावरणमार्गेण देवमावाह्य पूजयेत् ॥ ३० ॥ निवेद्य पायसान्नञ्च तांबूलादि यथा पुरा॥नामाष्टकार्चनान्तं च कृत्वा तमभिमन्त्रयेत् ॥३१॥

अलंकृत करै ॥२६॥ हे मुनीश्वर ! उस घटमें पंचरत्न डालै यदि पंचरत्न न हो तो भक्तिसे सोनाही डाले ॥२७॥ नील, माणिक्य, सुवर्ण, मूंगा, गोमेद यह पांच रत्न हैं ॥२८॥ नृम्लस्क प्रथम उच्चारण कर अन्तमें ग्लूम् उच्चारण कर विधिपूर्वक प्रेमसे पूजा करे ॥ २९ ॥ आधार शक्तिसे आरंभ करके यज्ञमें कही विधिके अनुसार देवको आवाहन कर पंचावरणके विधानसे पूजे ॥ ३० ॥ प्रथम कहे प्रकारसे खीर और ताम्बूलादिको निवेदनकर आठ नामोंसे पूजा करने पर्यंत उसको अभिमंत्रित करे ॥ ३१ ॥

एक सौ आठ ओंकार और ईशानादि पंच ब्रह्म सद्योजातादिसे ईशान पर्यंत मन्त्रोंसे कलशको पूज ॥ ३२ ॥ अस्त्र और कवचके मन्त्रोंसे आच्छादन कर वस्त्र और धूप दीपको दिखाकर धेनु और योनिमुद्रा दिखावै ॥३३॥ कुशोंसे मस्तकको ढक उसके शिरोभागके ईशानकी ओर चौकोन मंडलकी कल्पना करे ॥ ३४ ॥ उसके ऊपर मनोहर आसन रख उसपर अनुकूल शिष्यको बैठाय ॥ ३५ ॥ स्वस्तिवाचन पूर्वक कुम्भको उठाकर गुरु दहिने हाथसे शिष्यके मस्तक पर अभिषेक करे ॥ ३६ ॥ पहले ओंकारका उच्चारण कर शंखके जलसे पंचब्रह्म और सप्तब्रह्मसे युक्त करे ॥ ३७ ॥ मनोहर दीपकको दिखाकर वस्त्रसे मार्जन कर नये डोरे, वस्त्र तथा कौपीन धारण करावे ॥३८॥ चरण धोय

प्रणवाष्टोत्तरशतं ब्रह्मभिः पञ्चभिः क्रमात् ॥ सद्यादीशान्तमप्यस्त्ररक्षितं वर्मणा पुनः ॥३२॥ अवगुंठ्य प्रदर्श्याथ धूपदीपौ च भक्तितः॥धेनुयोन्याख्यमुद्रे च सम्यक्तत्र प्रदर्शयेत् ॥३३॥ ततश्च देशिकस्तस्य दर्भैराच्छाद्य मस्तके ॥ मण्डलस्थेशदिग्भागे चतुरस्रं प्रकल्पयेत् ॥ ३४ ॥ तदुपर्य्यासनं रम्यं कल्पयित्वा विधानतः ॥ तत्र संस्थापयेच्छिष्यं शिशुं सानुकूलतः ॥३५॥ ततः कुम्भं समुत्थाप्य स्वस्तिवाचनपूर्वकम्॥अभिषिंचेद्गुरुः शिष्यं प्रादक्षिण्येन मस्तके ॥३६॥ प्रणवं पूर्वमुच्चार्य्य सप्तधा ब्रह्मभिस्ततः॥पञ्चभिश्चाभिषेकान्ते शंखोदेनाभिवेष्टयेत्॥३७॥चारुदीपं प्रदर्श्याथ वाससा परिमृज्य च ॥ नूतनं दोरकौपीनं वाससी परिधापयेत् ॥ ३८ ॥ क्षालितांघ्रिर्द्विराचम्य धृतभस्मगुरुश्शिशुम्॥हस्ताभ्यामवलंब्याथ हस्तौ मंडपमध्यतः ॥३९॥ तदंगेषु समालिप्य तद्भस्म विधिना गुरुः॥आसने संप्रवेश्याथ कल्पिते स्थापयेत्सुखम्॥४०॥पूर्वाभिमुखमात्मीयतत्त्वज्ञानाभिलाषिणम्॥ स्वसनस्थो गुरुर्ब्रूयादमलात्मा भवेति तम् ॥४१॥ गुरुश्च परिपूर्णोऽस्मि शिव इत्यचलस्थितिः ॥ समाधिमाचरेत्सम्यङ्मुहूर्त्तं गूढमानसः ॥ ४२ ॥ पश्चादुन्मील्य नयने सानुकूलेन चेतसा ॥ सांजलिं संस्थितं शुद्धं पश्येच्छिष्यमनाकुलः ॥ ४३ ॥

दो बार आचमन कर भस्म लगाय गुरु शिष्यका हाथ अपने हाथसे पकड कर मण्डपके मध्य ॥ ३९ ॥ आसन पर बैठाय जो आसन कि, उसीके निमित्त निर्माण किया है सुखसे बैठाय उसके अंगमें भस्म लगाय ॥ ४० ॥ पूर्वको मुख किये अपने बन्धुके समान तत्त्वज्ञानकी इच्छा करने वाले अपने शिष्यसे अपने आसन पर बैठा हुआ गुरु कहे (अमलात्मा भव) अर्थात् निर्मल आत्मा हो ॥ ४१ ॥ तब गुरु मैं परिपूर्ण शिव हूं ऐसी अचल स्थितिसे दो घडी पर्यंत मूढमनसे समाधिमें स्थित हो ॥४२॥ पीछे नेत्र उघाड सावधान चित्त हो हाथ

जोडकर बैठे हुए शिष्यको प्रेमसे देखे ॥४३॥ और भस्म लगे हुए अपने हाथको शिष्यके मस्तकपर रख दहने कानमें (हंसः सोहं) इस मंत्रका उपदेश दे ॥४४॥ उसमें आदि हंके अर्थशक्ति आत्मा स्वयं शिव हैं वही मैं शिव हूं ऐसा अपनेको विचारे ॥ ४५ ॥(यइति) अणुके अर्थतत्त्वको उपदेश करके कहे ब्रह्मके परोक्षज्ञानके कहनेवाले महावाक्योंके तात्पर्यके आदरसे कहे ॥ ४६ ॥ हे ब्रह्मन् ! उन वाक्योंको मैं कहता हूं तुम प्रेमसे सुनो, उनको

स्वहस्तम्भसितालिप्तं विन्यस्य शिशुमस्तके॥ दक्षश्रुतावुपदिशेद्धंसस्सोहमिति स्फुटम् ॥४४॥ तत्राद्याहंपदस्यार्थः शक्तयात्मा स शिवस्स्वयम्॥ स एवाहं शिवोस्मीति स्वात्मानं संविभावय॥४५॥ य इत्यणोरर्थतत्त्वमुपदिश्य ततो वदेत्॥ अवांतराणां वाक्याना मर्थतात्पर्यमादरात् ॥४६॥ वाक्यानि वच्मि ते ब्रह्मन्सावधानमतिश्शृणु॥ तानि धारय चित्ते हि स ब्रूयादिति संस्फुटम् ॥४७॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठचां कैलाससंहितायां संन्यासपद्धतौ शिष्यकरणविधिर्नामाष्टादशोऽध्यायः॥१८॥सुब्रह्मण्य उवाच ॥ "अथ महावाक्यानि" (१) प्रज्ञानं ब्रह्म (२) अहं ब्रह्मास्मि (३) तत्त्वमसि (४) अयात्मा ब्रह्म (५) ईशावास्यमिदं सर्वम् (६) प्राणोऽस्मि (७) प्रज्ञानात्मा (८) यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह (९) अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादपि (१०) एष न आत्मान्तर्याम्यमृतः (११) स यश्चायम्पुरुषो यश्चासावादित्येस एकः (१२) अहमस्मि परं ब्रह्म परं परपरात्परम् (१३) वेदशास्त्रगुरुत्वात्तु स्वयमानंदलक्षणम् (१४) सर्वभूतस्थितं ब्रह्म तदेवाहं न संशयः (१५) तत्त्वतस्य प्राणोहमस्मि पृथिव्याः प्राणो हमस्मि (१६) अपां च प्राणोहमस्मि तेजसश्च प्राणोहमस्मि (१७) वायोश्च प्राणोहमस्मि आकाशस्य प्राणोहमस्मि (१८) त्रिगुणस्य प्राणोहमस्मि (१९) सर्वोऽहं सर्वात्मकोऽहं संसारी यद्भूतं यच्च भव्यं यद्भर्तमानं सर्वात्मकत्वादद्वितीयोहम् (२०) सर्वं खल्विदं ब्रह्म (२१) सर्वोऽहं विमुक्तोऽहम् (२२) योऽसौ सोहं हंसस्सोहमस्मि ॥ "इत्येवं सर्वत्र सदा ध्यायेदिति" ॥ अथ महावाक्यानामर्थमाह" ॥ प्रज्ञानं ब्रह्मवाक्यार्थः पूर्वमेव प्रबोधितः ॥ अहंपदस्यार्थभूतः शक्त्यात्मा परमेश्वरः ॥ १ ॥

तू चित्तमें धारण कर ऐसा स्फुट कहे ॥ ४७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठचां कैलाससंहितायांअष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ स्कंदजी बोले, अब महावाक्य कहते हैं प्रज्ञानही ब्रह्म है (१) मैं ब्रह्म हूं (२) वह तू है (३) यह आत्मा ब्रह्म है (४) यह सब जगत् ईश्वरसे अधिष्ठित

है, (५) मैं ही प्राण हूं (६) आत्मा ज्ञान है (७) जो यहां सो वहां जो वहां सो यहां (८) वह विदित और अविदितसे परे है (९) वही तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है (१०) वह जो इस पुरुषमें और आदित्यमें है वह एक है (११) परब्रह्म मैं ही हूं (१२) परेसे परे वेदशास्त्रका गुरु सबका ज्ञाता स्वयं आनन्द लक्षण मैंही हूं (१३) सर्वभूत स्थित ब्रह्म मैंही हूं इसमें संदेह नहीं (१४) तत्त्वका प्राण मैंही हूं पृथ्वीका प्राण मैंही हूं (१५) जलोंका प्राण मैंही हूं तेजका प्राण मैंही हूं (१६) वायु आकाशका प्राण मैंही हूं (१७) त्रिगुण का प्राण मैंही हूं (१८) सब सर्वात्मक मैंही हूं, संसारी भूत भविष्य वर्तमान सर्वात्मक होनेसे मैंही एक अद्वितीय हूं (१९) यह सब ब्रह्मरूप है (२०) मैं सब रूप मुक्तस्वरूप हूं (२१) जो यह है सो मैं हूं हंस मैं हूं (२२) इस प्रकार सर्वत्र सदा ध्यान करे इनका अर्थ कहते हैं, प्रज्ञान ब्रह्म इसका अर्थ इसमें पूर्वही कथन कर दिया है ऐतरेय उपनिषदका यह वाक्य है प्रज्ञान शब्द भी चैतन्यका वाची है

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः ॥ हकारो व्योमरूपः स्याच्छक्त्यात्मा संप्रकीर्त्तितः ॥२॥ शिवशक्त्योस्तु संयोगादानन्दः सततोदितः ॥ ब्रह्मेति शिवशक्त्योस्तु सर्वात्मत्वमिति स्फुटम् ॥ ३ ॥ पूर्वमेवोपदिष्टं तत्सोहमस्मीति भावयेत् ॥ तत्त्व मित्यत्र तदिति सशब्दार्थः प्रबोधितः ॥ ४ ॥

(ब्रह्मैष इन्द्र) यहांसे लेकर (सर्वं तत्प्रज्ञानेत्र प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं, प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञाप्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म) ऐसा सुना जाता है अर्थात् यह प्रज्ञानरूप आत्मा ब्रह्म है यही इंद्र है सब ओरसे प्रज्ञानेत्रवाले और प्रज्ञानरूप ब्रह्ममें उत्पत्ति स्थिति और लयमें भी स्थित है प्रज्ञारूप नेत्रवाला लोक है इससे प्रज्ञा (ब्रह्म) सब जगत्का आश्रय है इससे प्रत्यगात्मा ब्रह्म है, अब अहं ब्रह्मास्मिका अर्थ कहते हैं अहं मदका अर्थ शक्त्यात्मा परमेश्वर है, ॥ १ ॥ अकार सब वर्णोंमें अग्र प्रकाशमान परमशिव स्वरूप है हकार व्योमरूप शक्त्यात्मक वर्णन किया है ॥ २ ॥ शिवशक्तिके संयोगसे निरंतर आनन्द होता है ब्रह्मेति इससे शिव और शक्तिका सर्वात्मकत्व प्रगट है ॥ ३ ॥ फिर पूर्वमें उपदेश किये (सोहमस्मि) अर्थात् वह मैं हूं इसकी भावना करे ' तत्त्वमसि ' इस वाक्यार्थमें तत्पदका अर्थ भी शक्त्यात्मक जानना चाहिये इसी प्रकार ब्रह्मास्मिका भी अर्थ ब्रह्मशब्दसे लेना ॥ ४ ॥

नहीं तो अहं ब्रह्मास्मीति इस मूलवाक्यमें शुद्ध ब्रह्मके अभेदकी भावना प्रतीत होती है उसके विवरणवाक्यमें शक्त्यात्मक अभेद भावनाका उपदेश है और जो कहो कि शुद्ध ब्रह्मकी अभेद भावनाके अभिप्रायसे (अहमस्मि) इस विवरणका तात्पर्य हो किन्तु शक्त्यात्मक अभेद नहीं है इसपर कहते हैं कि अहंपदके अर्थभूत शक्त्यात्मक परमेश्वर है ऐसा पूर्व कहनेसे अलिंग भेदके विरोध शब्दमत् होनेसे अहंपदार्थका अभेदान्वय नहीं हो सकता, अहं शब्द पुल्लिंग है और तत् नपुंसक है इस प्रकार एक दूसरेके विरुद्ध होनेसे दोनोंका अन्वय नहीं हो सकता ॥ ५ ॥ कारण कि नहीं तो स्त्री पुरुषरूप जगत्का कारण भी अन्यथा हो जायगा, इस कारण यहां तत्पदसे शक्त्यात्मकका ही ग्रहण करना चाहिये (तत्त्वमसि) इस वाक्यसे और (स आत्मा) इस वाक्यसे सकी अनुवृत्तिकर सशक्त्यात्मा वही ब्रह्म तू है इस प्रकार (तद्ब्रह्मरूपं त्वममसि श्वेतकेतो) इस श्रुतिका अर्थ है, छान्दोग्यके छठे अध्यायमें उद्दालक ऋषिने यह सब कुछ श्वेतकेतुके प्रति कहा है ॥६॥ (अयमात्माब्रह्म) इस महावाक्यमें तो

अन्यथा सोऽहमित्यत्र विपरीतार्थभावना ॥ अहंशब्दस्तु पुरुषस्तदिति स्यान्नपुंसकम्॥ एवमन्योन्यवैरुध्यादन्वयो नभवेत्तयोः ॥५॥ स्त्रीपुंरूपस्य जगतः कारणं चान्यथा भवेत्॥स तत्त्वमसि इत्येवमुपदेशार्थभावना ॥६॥ अयमात्मेति वाक्ये च पुंरूपं पदयुग्मकम् ॥ ईशेन रक्षणीयत्वादीशावस्यमिदं जगत् ॥७॥ प्रज्ञानात्मा यदेवेह तदमुत्रेति चिन्तयेत् ॥ यः स एवेति विद्वद्भिस्सिद्धान्तिभिरिहोच्यते ॥ ८ ॥ उपरिस्थितवाक्ये च योऽमुत्र स इह स्थितः ॥ इति पूर्ववदेवार्थः पुरुषो विदुषां मतः ॥ ९ ॥

दोनों पद पुल्लिंग हैं यह माण्डूक्योपनिषद्का पाठ है सो यह आत्मा ओंकारही है, शिवसे रक्षित होनेसे सम्पूर्ण जगत् ईशावास्यम् कहा जाता है ॥ ७ ॥ (प्राणोस्मि प्रज्ञानात्मा) इसका अर्थ यह है कि प्रज्ञानात्मकस्वरूप और प्राणपदार्थ भी मैं ही हूँ इसका कारण यह है कि, प्रतर्दनने दिवोदासके पुत्रके पास कहा था वह कौषीतकी ब्राह्मणके उपनिषद्का वाक्य है यहां प्राण शब्दसे सिद्धांतपक्षमें परब्रह्मकाही अर्थ है अन्यथा नहीं जो यहां कार्य कारण उपाधिसे युक्त चैतन्य संसारधर्मके समान भासमान है, अज्ञानियोंको वही अपने आत्मामें स्थित दूसरे लोकमें जगत्के कारणत्वमात्र प्राप्त है ऐसा विचार करे ॥८॥ जो कार्योपाधि जीव है वही कारणोपाधि ईश्वर है ऐसा सिद्धांत वेत्ता कहते हैं (यदमुत्र तदन्विह) इस वाक्यमें जो कारणोपाधि युक्त है वही कार्य उपाधिमें जीवरूपसे स्थित है वह अर्थ पंडितोंको पुरुषरूपसे सम्मत है, और जो शंका करे कि ब्रह्मासे लेकर

स्थावरतक जो है सो उपाधिमान होनेसे ब्रह्म नहीं संसारी उससे पृथक् हैं सो नहीं जो कार्य कारणोपाधियुक्त संसार धर्मके समान दीखता है ज्ञानियोंको वही अपनी आत्मामें इष्ट है और जो दूसरे लोकमें है वह नित्य विज्ञानघन स्वभाव सब संसारके धर्मसे रहित ब्रह्म है जो वहां इस आत्मामें स्थित वही नामरूप कार्य कारण युक्त जानना चाहिये और नहीं यही भाष्यकारोंका सम्मत है वह कार्य और कारणसे भी अन्य है ॥ ९ ॥ अन्यदेव इस वाक्यमें मुक्ति फलकी भी जिस प्रकार विपरीतभावना होती है सो सुनो मैं कहता हूँ ॥ १० ॥ (अन्यदेवेति) इस पूर्ववाक्यमें विदितसे इति शब्द (अयथाविदितादिति) अर्थमें अयथार्थतासे ॥ ११ ॥ (ज्ञातादिति) अर्थमें प्रवृत्ति होती है, इसी प्रकार वाक्यान्तरमें 'अविदितादिति शब्दः' अपूर्वविदितादिति अर्थमें पूर्वमविज्ञातादिति अर्थमें जैसे प्रवृत्ति होती है इसी प्रकार भेदबुद्धिके निवृत्त भावसे विपरीत फलकी भावना हो सकती है यह स्पष्ट है और जो उस विदित (जो जाननमें आवे) अविदित (जो जाननेमें न आवे) से परे शुद्ध कोई

अन्यदेव तद्विदितादथो ॥ अविदितादपि ॥ अस्मिन्वाक्ये फलस्यापि वैपरीत्यविभावना ॥ १० ॥ यथास्यात्तद्वदेवात्र वक्ष्यामि श्रूयतां मुने ॥ अयथाविदिताच्छब्दो पूर्ववद्विदितादिति ॥ ११ ॥ प्रवृत्तिस्स्यात्तद्विदितात्तथैवाविदितात्परम् ॥ अन्य देव हि संसिद्धचै न भवेदिति निश्चितम् ॥ १२ ॥

और सिद्ध हो तो उसकी सिद्धिमें सम्यक् फल सिद्धिकी प्राप्ति नहीं हो सकती यह निश्चय है, इस कारण वस्तुसे कार्य कारणात्मक सब ब्रह्म ही है उपाधिसे भेद व्यवहार है इससे भेद है बुद्धिके अभावसे फलहानि नहीं हो सकती यह निर्णय है यही वाक्य सामवेदके तवलकार उपनिषद्में कहा है कि वह सत्य ही प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे नहीं जाना जाता आगमसेही जाना जाता है (अन्यदेवैतद्विदितादथो अविदिता दपीति) जो ब्रह्मश्रोत्रका श्रोत्रादिरूप कहा है और तिनका अविषय है सो ब्रह्मविदित वस्तुसे और ही है, जो वस्तु ज्ञानरूप क्रियासे अतिशय व्याप्त होकर ज्ञानरूप क्रियाका विषय हो सो वस्तु कहीं कुछ किसी पुरुषको विदित होती है, इस प्रकारकी सब वस्तु विदितही है उससे ब्रह्म पृथक् है और विदितसे विपरीत अव्याकृत (स्पष्ट और व्याकृत) पूर्वोक्त कार्यके बीज (कारण) अविद्यारूप अविदित वस्तुसे भी ब्रह्म परे है विदित वस्तु परिछिन्न और दुःखरूप है इससे त्यागके योग्य है यहां विदितसे ब्रह्म पृथक् है इस कहे हुए ब्रह्मके ग्रहणकी अयोग्यता कही इसी प्रकार अविदितसे ब्रह्म

पृथक् है इस प्रकार कहे हुए ब्रह्मकी ग्रहणमें अयोग्यता कही इस प्रकार त्याग और ग्रहणकी अयोग्यताके निषेधसे अपनेसे भिन्न होनेसे शिष्यको ब्रह्मकी जिज्ञासा उत्पन्न की, और विचारवस्तुसे देखिये तो अपने आत्मासे अन्य वस्तुका विदित और अविदितसे अन्यपना सम्भव नहीं इससे आत्माही ब्रह्म है यह वाक्यका अर्थ है ॥ १२ ॥ (एष ते आत्मेति) इस बृहदारण्यकके वाक्यका अर्थ करते हैं यह तेरा अन्तर्यामी अन्तरमें स्थित शास्ता आत्मा नित्य और स्वयं शिवरूप है जो पृथ्वीमें स्थित होता हुआ पृथ्वीके अन्तरमें है जिसको पृथ्वी नहीं जानती और जिसका पृथ्वी शरीर है वही तेरा अन्तरात्मा अमृतस्वरूप है, अमृत और अन्तर्यामी शब्दसे परमात्माका ही ग्रहण है यह सिद्धान्त शारीरक भाष्यमें है (सय श्चायं पुरुष इति) इस तैत्तिरीय ब्रह्मवल्लीके अर्थको कहते हैं जो आनन्दमय शम्भु आदित्यके देहमें स्थित है ॥१३॥ जो प्रत्यक्ष होकर भी परोक्ष

एष त आत्मांतर्यामी योऽमृतश्च शिवस्स्वयम् ॥ यश्चायम्पुरुषे शंभुर्यश्चादित्ये व्यवस्थितः ॥१३॥ स चाऽसौ सेति पार्थक्यं नैकं सर्वं स ईरितः ॥ सोपाधिद्वयमस्यार्थ उपचारात्तथोच्यते ॥ १४ ॥ तं शम्भुनाथं श्रुतयो वदन्ति हि हिरण्मयम् ॥ हिरण्य बाहव इति सर्वांगस्योपलक्षलम् ॥ १५ ॥ अन्यथा तत्पतित्वं तु न भवेदिति यत्नतः ॥ य एषोन्तरिति शंभुश्छा न्दोग्ये श्रूयते शिवः ॥ १६ ॥ हिरण्यश्मश्रुवांस्तद्वद्धिरण्यमयकेशवान् ॥ नखमारभ्य केशाग्रा सर्वत्रापि हिरण्मयः ॥ १७ ॥

है वह प्रसिद्ध एकही है इसमें पृथक्ता नहीं है, यदि कहो कि सबके अधिष्ठान शम्भु परमात्मा पुरुषादि अधिष्ठान नहीं हो सकता उसपर कहते हैं पुरुषाविष्ठित और आदित्याधिष्ठित स्वरूप दो उपाधि सहित होनेसे इस वाक्यका अर्थ आरोपसे कहते हैं ॥ १४ ॥ कारण कि उस शिवको श्रुति (एषोन्तेरादित्ये हिरण्मय! पुरुषः नमो हिरण्यबाहवे, हिरण्यवर्णाय, हिरण्यपतये) इत्यादि हिरण्यमय कहती हैं वास्तव में निर्गुण शिवको हिरण्यत्व नहीं हो सकता, यदि कहो कि, हिरण्यबाहवे इसमें बाहुमात्रमें हिरण्यशब्द कहा है यह सर्वांगका उपलक्षण है ॥ १५ ॥ हिरण्यपति कैसे ? तो यह उत्तर है कि यदि सर्वांगका उपलक्षण न होता तो पतित्व हिरण्यपतित्व उपचारादिसे भी सम्भावित न हो सकता, इसमें हिरण्यवर्णाय हिरण्यरूपाय सिद्ध है, यही छान्दोग्यमें है ॥ १६ ॥ (य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रु

हिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व एक सुवर्ण इति) अर्थात जो यह आदित्यके अन्तर्गत सुवर्णके समान (नकि सुवर्ण) कारण कि देवमें सुवर्ण विकार नहीं हो सकता पापरहित सुवर्ण अचेतनमें पापकी प्राप्ति नहीं फिर निषेध कैसा ? चक्षुके ग्रहण न होनेसे ज्योतिर्मयकाही अर्थ होता है इसीप्रकार आगे भी लगा लेना सबके देहमें शयन करने अथवा अपनेसे जगत्को पूर्ण करनेसे उसे पुरुष कहते हैं वह सावधान चित्तवालोंको दीखता है ब्रह्मचर्यादि साधन करनेवालोंको केशादि कृष्ण रहते हैं, इसीसे कहा कि उस परमात्मा शिवके केशश्मश्रु प्रकाशमय हैं नखसे शिर तक सब ज्योतिरूप है ॥ १७ ॥ नखसे प्रारम्भकर केशके अग्रभाग तक ज्योतिरूप तुरीय ब्रह्म परात्पर मैं ही हूं इस वाक्यको तात्पर्य सुनिये मैं कहता हूँ ॥ १८ ॥ अहं पदका अर्थ शाक्त्यात्मा शिव है वह मैं हूँ इस योजनासे वाक्यार्थ होजाता है ॥ १९ ॥ सबसे उत्कृष्ट सबका आत्म

अहमस्मि परं ब्रह्म परापरपरात्परम् ॥ इति वाक्यस्य तात्पर्यं वदामि शृणुतामिदम् ॥ १८ ॥ अहंपदस्यार्थभूतः शक्त्यात्मा शिवईरितः ॥ स एवास्मीति वाक्यार्थयोजना भवति ध्रुवम् ॥१९॥ सर्वोत्कृष्टश्च सर्वात्मा परब्रह्म स ईरितः॥परश्चाथापरश्चेति परात्परमिति त्रिधा ॥२०॥ रुद्रो ब्रह्मा च विष्णुश्चप्रोक्ताः श्रुत्यैव नान्यथा ॥ तेभ्यश्च परमो देवः परशब्देन बोधितः ॥२१॥ वेदशास्त्र गुरूणां च वाक्याभ्यासवशाच्छिशोः॥पूर्णानन्दमयश्शंभुः प्रादुर्भूतो भवेद्धृदि ॥२२॥ सर्वभूतस्थितश्शम्भुस्स एवाहं न संशयः ॥ तत्त्वजातस्य सर्वस्य प्राणोस्म्यहमहं शिवः ॥२३॥ इत्युक्त्वा पुनरप्याह शिवस्तत्त्वत्रयस्य च ॥ प्राणो स्मीत्यत्र पृथ्व्यादिगुणान्तग्रहणान्मुने ॥२४॥आत्मतत्त्वानि सर्वाणि गृहीतानीति भावय॥पुनश्चसर्वग्रहणं विद्यातत्त्वशिवात्मनोः॥२५॥

परब्रह्म कहा जाता है पर अपर परात्पर इन तीन भेदोंवाला है ॥ २० ॥ वही श्रुतिने रुद्र ब्रह्मा और विष्णु कहे हैं इन रुद्रादि तुरीयवर शब्दसे परब्रह्मका ज्ञान होता है ॥२१॥ वेद शास्त्र गुरुके वाक्योंके अभ्यास और शिष्यके हृदयमें पूर्णानंदमय शिव प्रादुर्भाव होते हैं ॥ २२॥ वही सब प्राणियोंमें स्थित शंभु मैं हूं इसमें संदेह नहीं सम्पूर्ण तत्त्वसमूहका एक मैं ही शिव प्राण हूं ॥ २३ ॥ ऐसा कहकर आत्मविद्या शिवाख्य तीन तत्त्वोंका वर्णन करे, हे मुने ! प्राणोस्मि इस अर्थप्रतिपादक वाक्यमें ॥ २४ ॥ पृथ्वी आदि गुणोंके अन्तर्ग्रहणसे पृथ्वीके प्राण मैं हूं वहांसे आरम्भकर त्रिगुणका भी प्राण मैं ही हूं ऐसा कहनेसे सब आत्मतत्त्व गृहीत होते हैं ऐसी भावना करे, फिर आत्मविद्या

और शिव तत्त्वका सब प्रकार ग्रहण करके ॥ २५ ॥ मैं सब तत्त्वका प्राण हूं और सर्वात्मक होनेसे सब मैंही हूं संसारी जो कहा है उसका अर्थ कहते हैं जीव रूपसे अन्तर प्रविष्ट होनेके कारण अन्तर्यामी होनेसे मैं जीव और संरक्षणशील हूं ॥ २६ ॥ (यद्भूतका अर्थ कहते हैं) उस जीवात्माका जो अतीत वर्तमान और भविष्य है वह सब मैंही हूं (सर्वो वै रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमोस्तु) (पुरुषो वै रुद्रः सन्महो नमो नमः) (विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यतः सर्वो ह्यषः रुद्रः) ॥ २७ ॥ साक्षात् शिवके मुखसे निकली हुई श्रुति यह सब विश्वादि रुद्रही है ऐसा कहती है इससे मुझमय होनेसे सब मेरा ही स्वरूप है सर्वात्मक होनेसे अद्वितीय हूं इस अर्थको कहते हैं ॥ २८ ॥ सबसे उत्कृष्ट अन्तर्यामी आदिगुणोंसे नित्ययुक्त होनेसे सजाति विजाति भेद शून्य है इसी कारण अद्वितीय हूं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म ' इस

तत्त्वयोश्चास्म्यहं प्राणास्सर्वस्स्सर्वात्मको ह्यहम्॥जीवस्य चान्तर्यामित्वाज्जीवोऽहं तस्य सर्वदा ॥२६॥ यद्भूतं यच्च भव्यं यद्भविष्यत्सर्वमेव च॥मन्मयत्वादहं सर्वःसर्वो वै रुद्र इत्यपि ॥२७॥ श्रुतिराह मुने सा हि साक्षाच्छिवमुखोद्गता॥सर्वात्मा परमैरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात् ॥ २८ ॥ स्वस्मात्परात्मविरहादद्वितीयोऽहमेवहि ॥ सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति वाक्यार्थः पूर्व्वमीरितः ॥ २९ ॥ पूर्णोऽहं भावरूपत्वान्नित्यमुक्तोऽहमेव हि ॥ पशवो मत्प्रसादेन मुक्तामद्भावमाश्रिताः ॥३०॥ योऽसौ सर्वात्मकश्शम्भुस्सोऽहं स शिवोऽस्म्यहम्॥इति वै सर्ववाक्यार्थो वामदेव शिवोदितः ॥३१॥ इतीशश्रुतिवाक्याभ्यामुपदिष्टार्थमादरात्॥साक्षाच्छिवैक्यदं पुंसां शिशोगुरुरुपादिशेत् ॥३२॥ आदाय शंखं साधारमस्त्रमन्त्रेण भस्मना॥शोध्य तत्पुरतस्स्थाप्य चतुरस्रे समर्चिते ॥३३॥

वाक्यका अर्थ पूर्वही कह दिया है यह छन्दोग्यका वाक्य है जिस प्रकार उस ब्रह्मसे तेज जल आदि उत्पन्न हुए हैं इसीसे यह तज्ज कहाते हैं और प्रतिलोमसे लय हो जाते हैं इससे (तज्जलानि शांत उपासीतेति) कहा है ॥२९॥ इस प्रकार यह सब जगत् ब्रह्मरूप कहा है और सब पदार्थरूप होनेसे पूर्ण है पशुभी मेरे प्रसादसे मुक्त हो मेरे भावको प्राप्त हुए ॥ ३० ॥ जो यह है सो मैं हूं इसका अर्थ कहते हैं हे वामदेव ! जो शक्त्यात्मा शिव हैं वह भी मैं ही हूं हंस शिव मैं हूं (योसावसौ पुरुषः सोहमस्मीति) यह ईशावास्यकी श्रुति है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार गुरु आदरसे शिष्यके प्रति श्रुतिके अर्थोंका शिवपरत्व उपदेश करे ॥३२॥ आधारसहित शंखको ले और अस्त्र मन्त्रसे युक्त भस्मसे

शुद्धकर उसके आगे चौकोन मंडलमें स्थापन कर ॥३३॥ॐ उच्च रण कर गन्धादिसे पूज अस्त्र मंत्र और वस्त्रसे शुद्धकर सुगन्धित जलभर ॐ इस मन्त्रको पढे ॥ ३४ ॥ फिर ॐकारसे सातवार अभिमंत्रित कर जो किंचित् भी अन्तर करता है उसे भय होता है ॥३५॥ ऐसा श्रुतिका आशय है इससे भेद न करे, हे शिष्य ! इस कारण तू दृढात्मा और भयरहित हो इस प्रकार शिष्यसे कहे और देवका ध्यान करता हुआ शिष्यको देव रूपसे अर्चन करे ॥३६॥ षडध्व विधिके मार्गसे शिष्यके आसनको पूज शिवके आसन और शिव मूर्त्तिकी कल्पना करे ॥३७॥ शिर मुख हृदय गुह्य पादतक पंचब्रह्मको स्थित कर मुण्ड और मुख सम्बन्धि प्रणवकी ॥ ३८ ॥ अडतीस ब्रह्मरूप कला शिष्यके देहमें स्थित

ओमित्यभ्यर्च्च्य गन्धाद्यैरस्त्रं वस्त्रोपशोभितम् ॥ वासितं जलमापूर्य सम्पूज्योमिति मन्त्रतः ॥३४॥ सप्तधैवाभिमंत्र्याथ प्रणवेन पुनश्चतम्॥यस्त्वन्तरं किंचिदस्ति कुरुते त्यतिभीतिभाक् ॥३५॥ इत्याह श्रुतिसत्तत्त्वं दृढात्मा गतभीर्भव ॥ इत्याभाष्य स्वयं शिष्यं देवं ध्यायन्समर्चयेत् ॥३६॥ शिष्यासनं सम्प्रपूज्य षडुत्थापनमार्गतः ॥ शिवासनं च संकल्प्य शिवमूर्तिं प्रकल्पयेत् ॥ ३७ ॥ पञ्च ब्रह्माणि विन्यस्य शिरः पादावसानकम् ॥ मुण्डवत्क्रकलाभेदैः प्रणवस्य कला अपि ॥३८॥ अष्टत्रिंशन्मंत्ररूपा शिशष्यदेहेऽथ मस्तके ॥ समावाह्य शिवं मुद्राः स्थापनीयाः प्रदर्शयेत् ॥३९॥ ततश्चाङ्गानि विन्यस्य सर्वज्ञानीत्यनुक्रमात् ॥ कल्पयेदुपचारांश्च षोडशासनपूर्वकान् ॥ ४० ॥ पायसान्नञ्च नैवेद्यं समप्यों मग्निजायया ॥ गण्डूषाचमनार्घ्यादिधूपदीपा दिकं क्रमात् ॥ ४१ ॥ नामाष्टकेन सम्पूज्य ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ जपेद्ब्रह्मविदाप्नोति भृगुर्वैवारुणिस्ततः ॥ ४२ ॥

कर उसके मस्तकमें शिवका आह्वान कर वे कला स्थापन करे मुद्रा दिखाकर ॥ ३९ ॥ षडंगोंका न्यास (सर्वज्ञानीत्यादि मन्त्रोंसे आसन पूर्वक षोडश उपचारकी कल्पना करे ॥ ४० ॥ खीरको निवेदन करे (ओमग्निजायया --ओं स्वाहा) इस मन्त्रसे खीर निवेदन कर कुल्ला आचमन, धूप दीपादि क्रमसे दे ॥ ४१ ॥ आठनामोंसे पूजन कर वेपपाठी ब्राह्मणोंके सहित (ब्रह्मविदामाप्नोति परम्) इस अध्यायको और (भृगुर्वै वारुणिः) इस अध्यायको जपे ॥ ४२ ॥

(यो देवानां प्रथमं पुरस्तात्) यहांसे आरम्भ कर(प्रकृतिलीनो यः परः स महेश्वरः)यहांतक जपे, और श्वेतकमल आदिकी बनी हुई॥४३॥ मालाको ले शिवके बनाये हुए पंचमुख स्वरूप प्रतिपादक शास्त्रसे स्थित सिद्धाख्य स्कन्ध ॥ ४४ ॥ ख्याति पूर्णाहुतिके अन्ततक शनैः जपता हुआ मनोहर सुगन्धि आदिसे युक्त जंघापर्यन्त लम्बी उस मालाको कण्ठदेशमें पहरा दे ॥ ४५ ॥ तिलक और सर्वांमें चन्दनका लेपन विधि पूर्वक शिष्य करे जेसी संप्रदायकी विधिहो ॥ ४६ ॥ श्रीपादादिनाम अपनी सम्प्रदायके अनुसार गुरु करे छत्र और पादुका दे दूर्वार्चनका प्रकार ॥ ४७ ॥ अर्थात् उसका विशेष व्यवस्थापन व्याख्यातृत्व शिवमंत्रोंका कर्मके आरम्भमें गुरु आसनका परिग्रहण है गुरु उस

यो देवानामुपक्रम्य यः परःस महेश्वरः ॥ इत्यंतं तस्य पुरतः कल्पादिविनिर्मिताम् ॥ ४३ ॥ आदाय मालामुत्थाय श्रीविरूपाक्ष निर्मिते ॥ शास्त्रे पंचाशिके रूपे सिद्धिस्कन्धं जपेच्छनैः ॥ ४४ ॥ ख्यातिः पूर्णाहमित्यंतं सानुकूलेन चेतसा ॥ देशिकस्तस्य शिष्यस्य कण्ठदेशे समर्पयेत् ॥ ४५ ॥ तिलकं वन्दनेनाथ सर्वाङ्गालेपनं पुनः ॥ स्वसम्प्रदायानुगुणं कारयेच्च यथाविधि ॥ ४६ ॥ ततश्च देशिकः प्रीत्या नाम श्रीपादसंज्ञितम् ॥ छत्रञ्च पादुकां दद्याद्दूर्वाकल्पविकल्पनम् ॥ ४७ ॥ व्याख्यातृत्वञ्च कर्म्मादिगुर्वासनपरिग्रहम्॥अनुगृह्य गुरुस्तस्मै शिष्यायशिवरूपिणे ॥४८॥ शिवोहमस्मीति सदा समाधिस्थो भवेतितम् ॥ सम्प्रोच्याथ स्वयं तस्मै नमस्कारं समाचरेत् ॥ ४९ ॥ सम्प्रदायानुगुण्येन नमस्कुर्युस्तथापरे ॥ शिष्यस्तदा समुत्थाय नमस्कुर्याद्गुरुन्तथा॥गुरोरपि गुरुं तस्य शिष्यांश्च स्वगुरोरपि॥५०॥एवं कृतनमस्कारं शिष्यन्दद्याद्गुरुः स्वयम्॥सुशीलं यतवाचंतंविनयावनतं स्थितम् ॥ ५१ ॥ अद्य प्रभृति लोकानामनुग्रहपरो भव ॥ परीक्ष्य वत्सरं शिष्यमंगीकुरु विधानतः ॥ ५२ ॥

शिवरूप शिष्यपर अनुग्रह करके कहे ॥ ४८ ॥ (शिवोहमस्मि) यैं सदाशिव हूं इस प्रकार समाधिमें स्थित सदा ध्यान कर इस प्रकार कह कर उसे स्वयं नमस्कार करे ॥ ४९ ॥ अपने संप्रदायके अनुगुण नमस्कार करे शिष्यभी उठकर क्रमसे गुरुको नमस्कार करे ॥ ५० ॥ इस प्रकार नमस्कार करनेपर सुशील वाणी रोके हुए विनयसे नम्र हो स्थित हुए शिष्यको ॥ ५१ ॥ स्वयं गुरु जप कराकर कहे आजसे तुम प्राणियोंपर अनुग्रह करते रहना इस प्रकार एक वर्ष उसकी परीक्षा कर कहे मेरे वाक्य स्वीकार करते रहना ॥ ५२ ॥

रागादि दोषोंको छोड शिवध्यानमें तत्पर रहो सत्सम्प्रदायके लोगोंका संग करना दूसरोंका नहीं ॥ ५३ ॥ प्राणसंकट उदय होनेपर भी शिव पूजन विना किये भोजन मत करना गुरुभक्तिमें स्थित हो सुखी रहना ॥ ५४ ॥ इस प्रकारसे श्रेष्ठ ज्ञानसागर दयालु गुरु अनुकूल चित्तसे समान भावसे अपनेही तुल्य शिष्यको उपदेश दे ॥ ५५ ॥ हे मुनीश्वर ! हे वामदेवजी ! तुम्हारे स्नेहसे यह मैंने परम गुप्त योगपदका प्रकार कहा है ॥ ५६ ॥ ऐसा कहकर स्वयं स्कन्दने उनको क्षौर और स्नान विधिका क्रम यतियोंपर कृपाकर परम प्रीतिसे कहना प्रारम्भ किया

रागादिदोषान्संत्यज्यशिवध्यानपरो भव ॥ सत्सम्प्रदायसंसिद्धैस्संगं कुरु न चेतरैः ॥ ५३ ॥ अनभ्यर्च्य शिवं जातुमा भुंक्ष्वा प्राण संक्षयम् ॥ गुरुभक्तिं समास्थाय सुखी भव सुखी भव ॥ ५४ ॥ इति क्रमाद्गुरुवरो दयालुर्ज्ञानसागरः ॥ सानुकूलेन चित्तेन समं शिष्यं समाचरेत् ॥ ५५ ॥ तव स्नेहान्मयायं वै वामदेवमुनीश्वर॥योगपट्टप्रकारस्ते प्रोक्तो गुह्यतरोऽपिहि ॥५६॥ इत्युक्त्वा षण्मुखस्तस्मै क्षौरस्नानविधिक्रमम्॥वक्तुमारभत प्रीत्यायतीनां कृपया शुभम् ॥५७॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठचां कैलाससंहितायां योगपट्टविधिवर्णनै नामंकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ सुब्रह्मण्य उवाच ॥ क्षौरस्नानविधिं वक्ष्ये वामदेव महामुने ॥ यस्य सद्यो विधानेन शुद्धिस्स्याद्यतिनः परा ॥ १ ॥ योगपट्टप्रकारस्य विधिम्प्राप्य मुनीश्वर ॥ स शिष्यस्स्याद्व्रती पूर्णः क्षौरकर्म्मो द्यतो भवेत् ॥२॥ गुरुं नत्वा विशेषेण लब्धानुज्ञस्ततो गुरोः ॥ शिरस्संक्षाल्य चाचम्य सवासाः क्षौरमाचरेत्॥३॥क्षालयेद्वसनं पश्चान्मृदम्भोभिः क्षुरादिकम् ॥तद्धस्तौ च मृदालिप्य क्षालयेति मृदं ददेत् ॥ ४ ॥

॥५७॥इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठचांकैलाससंहितायां एकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥स्कन्दजी बोले, हे वामदेव ! हे मुने ! अब मैं स्नान और क्षौरकी विधि कहता हूं कि जिससे यतियोंकी परमशुद्धि होती है ॥ १ ॥ ! हे मुनीश्वर ! योगपदकी विधिको प्राप्त हो जब शिष्य पूर्ण व्रती हो क्षौर कर्ममें उद्यत हो ॥ २ ॥ गुरुको नमस्कार कर उनकी आज्ञा ले शिरधोय आचमनकर वस्त्र पहरे क्षौर करावे ॥ ३ ॥ उस कपडेको मट्टी और जलसे धुवावे जो नापितके पास होता है हाथोंको मट्टीसे धोनेके निमित्त कहकर उसे मट्टी दे ॥ ४ ॥

और शिव शिव उच्चारण करता हुआ दोनों हाथोंकी अनामिका और अँगूठेको अभिमंत्रित कर ॥ ५ ॥ नेत्र मूँद अस्त्रमन्त्र पढकर खोले और अस्तुरे कैंची आदिकी स्वच्छता देख अस्त्रमन्त्रसे बारह बार अभिमंत्रित कर प्रोक्षण करे ॥ ६ ॥ और प्रणवसे क्षुरेको ग्रहण कराय दाहिनी ओरसे क्षौर करावे, पहले कुछ आगेके बाल दूर कराय पीछे और सब दूर करावे ॥ ७ ॥ एक पत्ता ले उसमें बालोंको रखकर दूर डाल दे वैसेही पृथ्वीमें न डाल दे मूँछ मुडाय हाथपर हाथ रख नखोंको कतरवावे ॥ ८ ॥ फिर बेल, पीपल, तुलसी आदिके नीचेकी मट्टी ले बारह बार जलमें गोता लगाय किनारेपर जाय बैठ कर ॥९॥ तीन भाग कर उस मृत्तिकाको शुद्ध देशमें रक्ख फिर एकके तीन भागकर उसे प्रोक्षण

स्थापितम्प्रोक्षितन्तोयैश्शिवं शिवमितीरयन् ॥ स्वनेत्रे पिहिते चैवानामांगुष्ठाभिमंत्रिते ॥ ५ ॥ अस्त्रेणोन्मील्य संदृश्य क्षुरा दिक्षौ रसाधनम् ॥ अभिमन्त्र्य द्वादशाथ प्रोक्षयेदस्त्रमंत्रतः ॥६॥ क्षुरं गृहीत्वा तारेण दक्षभागे निकृन्तयेत् ॥ केशांश्च कांश्चि दग्रेषु वस्वा सर्वं च वापयेत् ॥ ७ ॥ पृथिव्यां पर्णमादाय विक्षिपेन्न भुवः स्थले ॥ श्मश्रूणिहस्तपादस्थनखानि च निकृंतयेत ॥ ८ ॥ बिल्वाश्वत्थतुलस्यादिस्थाने संगृह्य मृतिकाम् ॥ द्विषट्वारं निमज्याप्सु तीरं गत्वोपविश्य च ॥ ९ ॥ शुद्धे देशे तु संस्थाप्य मृदं त्रेधा विभज्य च ॥ एवम्पुनस्त्रिधा कृत्वा प्रोक्ष्यास्त्रेणाभिमन्त्रयेत् ॥१०॥ तत्रैकां मृदमादाय दापयित्वान्यपा णिना ॥ करौ द्वादशधा लिप्य प्रत्येकं केन क्षालयेत् ॥ ११ ॥ पुनरेकाम्पादयोश्च मुखे चान्यां करे क्रमात् ॥ संलिप्याक्षाल्य चाम्भोभिः पुनश्च जलमाविशेत् ॥ १२ ॥ अन्यां मृदम्भागयित्वा शिरसि द्वादश क्रमात् ॥ आलिप्य मृदमास्यान्तनिमज्य च पुनः पुनः ॥ १३ ॥ तीरं गत्वा तु गंडूषान्षोडशाचमनं द्विधा ॥ प्राणानायम्य च पुनः प्रणवं द्वचष्टसंख्यया ॥ १४ ॥

कर अस्त्रमन्त्रसे अभिमंत्रित करे ॥ १० ॥ फिर उसमेंसे एक भाग मृत्तिका ले हाथसे तोड उसे हाथोंमें बारहबार मल जलसे धोवे ॥ ११ ॥ फिर एकसे पैर एक डेलीसे मुख इस क्रमसे धोवे इस प्रकार मृत्तिका लेप जलसे धो फिर जलमें प्रवेश करे ॥ १२ ॥ फिर दूसरी मृत्तिकाका भाग करके बारहबार शिरसे मुख पर्यन्त लपेट बारम्बार गोता लगाकर ॥१३॥ किनारे पर जाय सोलह कुल्ले करे, और दो बार आचमनकर ॐकारपूर्वक सोलह प्राणायाम करे ॥ १४ ॥

फिर शेष मृत्तिकाको भी ले उसके तीन भाग कर उसमेंसे एक भाग ले कटिशौच और पादशौच करके दो आचमन कर ॥ १५ ॥ ॐकार सहित सोलह प्राणायाम मौन होकर करे फिर दूसरे भागको ले ॐकारपूर्वक जंघामें लगाय तीन बार प्रणवके प्रोक्षण कर ॥ १६ ॥ सात बार अभिमंत्रित करे और अभी रक्खी हुई पहली मृत्तिकासे अपना हाथ तीन बार मांजकर अपनी कक्षामें सूर्यकी पवित्र मूर्ति देख ॥१७॥ दहने हाथसे बाईं कक्षा और बायेंसे दहनी कक्षाको दृढमतिवाला शिष्य हाथमें मट्टी ले जैसे हो वैसे मांजे ॥ १८ ॥ फिर वह गुरुभक्तिवाला शिष्य दूसरी शुद्ध मृत्तिकाको ले उस तीसरे भागकी मृत्तिकासे सूर्यके सन्मुख शिरसे चरणोंतक मट्टी मलकर ॥ १९ ॥ तीसरे भागकी मट्टीको ले

मृदमन्यां पुनस्त्रेधा विभज्य च तदेकया॥ कटिशौचं पादशौचं विधायाचम्य च द्विधा॥१५॥प्रणवेनाथ षोडश प्राणानायम्य वाग्यतः ॥ पुनरन्यां स्वोरुदेशे त्रिधा विन्यस्य चोमिति ॥१६॥ प्रोक्ष्याभिमंत्रयेत्सप्त स्वपाण्योस्तलमेकधा ॥ त्रिधालिप्याथ सम्पश्येत्सूर्य्यमूर्तिं च पावनीम् ॥१७॥ स्वकक्षयोः समालिप्य व्यत्यस्ताभ्यामथान्यया॥पाणिभ्याञ्च मृदा शिष्यस्सुमतिर्दृढ मानसः ॥१८॥ गृहीत्वान्यां मृदं शुद्धां तथासौ गुरुभक्तिमान् ॥ शिर आरभ्य पादान्तं विलिप्यादित्यदृष्टया ॥१९॥ समुत्थाय ततोऽसौ वै दण्डमादाय भूतले ॥ स्वगुरुं मन्त्रदम्भक्त्या संस्मरेज्ज्ञाननिष्ठया ॥२०॥ ततस्साम्बं महेशानं शंकरं चन्द्रशेखरम्॥ संस्मरेद्भक्तितश्शिष्य सर्वैश्वर्यपतिं शिवम् ॥२१॥ त्रिवारम्प्रणमेत्प्रीत्या साष्टांगं च गुरु शिवम् ॥ पञ्चाङ्गेनैकवारञ्च समुत्थाय च वन्दयेत् ॥ २२ ॥ तीर्थं प्रविश्य तन्मध्ये निमज्योन्मज्य ताम्मृदम् ॥ स्कन्धे संस्थाप्य पूर्वोक्तप्रकारेण विलेपयेत् ॥ २३ ॥

भूतलमेंसे उठ दंड ले अपने मन्त्रके देनेवाले गुरुको ज्ञान निष्ठासे स्मरण कर ॥ २० ॥ पीछे चन्द्रशेखर महेशान सब ऐश्वर्यके पति महेशान शंकरको पार्वती सहित भक्तिमान् शिष्य स्मरण करे ॥ ॥ २१ ॥ फिर गुरु शिवका स्मरण कर साष्टांग तीन प्रणाम करे, शिर आदि पांच अङ्गोंसे वा एक अङ्गसे फिर उठकर प्रणाम करे ॥ २२ ॥ फिर तीर्थमें प्रवेश कर बारम्बार गोते लगाय उस मट्टीको कन्धे पर रखकर पूर्व कहे अनुसार फिर शरीरमें लपेटे ॥ २३ ॥

उसमेंकी शेष बची हुई मट्टीको ले जलमें प्रवेशकर उसे मिलाकर सर्वांगमें लगावे ॥ २४ ॥ फिर तीन बार ओम् कहकर शिवके चरणकमल स्मरण करता हुआ स्नान करे, कारण कि शिव संसारसागरसे तारनेवाले हैं ॥ २५ ॥ फिर आंखमुद्रासे अभिषेक कर बारह बार उच्चारण कर किनारेपर आय पहलेके विभाग किये तीसरे भागकी मट्टीसे हाथ पैर शुद्धकर फिर हाथ धो आचमन कर ओंस्मरण करता विरजा भस्म मिले हुए जलको ओंकारसे अभिषेक करे, फिर अंगोंका उपमार्जन कर भस्म स्नान करने उपरान्त ॥२६॥ हे मुने ! यथोक्तविधिके अनुसार सावधान होकर सर्वांगमें त्रिपुंड्र लगाय ॥ २७ ॥ फिर शुद्धमन हो मध्याह्न समयकी क्रिया करे महेश्वर गुरु और तीर्थादिको नमस्कार

तत्रावशिष्टं संगृह्य जलमध्ये प्रविश्य च ॥ विलोडच सम्यक् तां तत्र सर्वांगेषु विलिप्य च ॥ २४ ॥ त्रिवारमोमिति प्रोच्य शिवपादाम्बुजं स्मरन् ॥ संसाराम्बुधिसंतारं सदा यद्विधितो हि सः ॥ २५ ॥ अभिषिच्योमिति जलं विरजाभस्म लोलितम् ॥ अंगोपमार्ज्जनं कृत्वा सुस्नायाद्धस्मना ततः ॥ २६ ॥ त्रिपुंड्रं च विधायाथ यथोक्तविधिना शुभम् ॥ यथोक्तांगेषु सर्वेषु सावधान तया मुने ॥ २७ ॥ ततश्शुद्धमना भूत्वा कुर्य्यान्मध्यदिनक्रियाः ॥ महेश्वरं नमस्कृत्य गुरूस्तीर्थादिकानि च ॥ २८ ॥ सम्पूजयेन्म हेशानं भक्त्या परमया मुने ॥ साम्बिकं ज्ञानदातारं पातारं त्रिभवस्य वै ॥ २९ ॥ ततोसौ दृढचेतस्को यतिः स्ववृषसंस्थितः ॥ भिक्षार्थम्प्रव्रजेच्छुद्धो विप्रवर्गेषु साधुषु॥३०॥ततस्तत्र च शुद्धात्मा पञ्चधा परिकल्पितम् ॥ भैक्ष्यं यथोचित्तं कुर्य्याद्दूषितान्नं विवर्ज्जयेत् ॥ ३१ ॥ शौचं स्नानं तथा भिक्षां नित्यमेकान्तसेवनम् ॥ भिक्षौश्चत्वारि कर्म्माणि पञ्चमं नैव विद्यते ॥ ३२ ॥ अलाबुं वेणुपात्रं च दारवम्मृण्मयन्तथा ॥ भिक्षोश्चत्वारि पात्राणि पञ्चमन्नैव विद्यते ॥ ३३ ॥

करके ॥ २८ ॥ हे मुने ! परमभक्तिसे महेश्वरको पूज यह पार्वती सहित ज्ञानके देनेवाले और तीनलोकके रक्षक हैं ॥ २९ ॥ तब यह दृढ चित्त यती अपने धर्ममें स्थित हुआ ब्राह्मण साधु जनोंमें भिक्षाके लिये गमन करे ॥ ३० ॥ वहां यह शुद्धात्मा पांचरूपसे कल्पित भोजन करे, और पांच प्रकारसे कल्पित मंडलमें भोजन करे, दूषित अन्न न खाय ॥ ३१ ॥ करणत्रयसे पवित्रित स्नान तथा भिक्षा सदा एकान्तमें रहना ये चार कर्म भिक्षुका कहे पांचवां नहीं है ॥३२॥ अलाबु (तोंबी) बांसपात्र वा काठ वा मट्टीका पात्र यह चार प्रकारके पात्र हैं इसमें कोई

पात्र रक्खे, पांचवां पात्र नहीं है ॥ ३३ ॥ ताम्बूल खाना धातुका पात्र रखना वीर्यसेचन श्वेत वस्त्र धारण दिनमें सोना रातको भोजन यह छः कर्म यतियोंको वर्जित हैं ॥ ३४ ॥ साक्षर न होनेसे यति राक्षसही है इससे यति कभी विपरीत आचरण न करे ॥ ३५ ॥ यति शुद्धि के लिये क्षौर स्नान यत्नसे करे मनसे सदा शुद्ध सनातन शिवका स्मरण करे ॥ ३६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकारसे आपके स्नेहके कारण यह मैंने क्षौर और स्नानकी विधि कही अब क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलास

ताम्बूलं तैजसम्पात्रं रेतस्सेकं सितांबरम् ॥ दिवास्वापो हि नक्तान्नं यतीनां षड्विवर्जिताः ॥३४॥ साक्षरा विपरीताश्च राक्षसास्त इति स्मृताः॥तस्माद्वै विपरीतं च कर्म्म नैवाचरेद्यतिः ॥ ३५ ॥ यतिः प्रयत्नतः कुर्य्यात्क्षौरस्नानं च शुद्धये ॥ संस्मरन्मनसा शुद्धं परं ब्रह्म सदाशिवम् ॥ ३६ ॥ इत्येवमुनिशार्दूल तव स्नेहान्मयाखिलः ॥ क्षौरस्नानविधिः प्रोक्तः किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां क्षौरस्नानविधिवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ वामदेव उवाच ॥ ये मुक्ता यतयस्तेषां दाहकर्म्म न विद्यते ॥ मृते शरीरे खननं तद्देहस्य श्रुतं मया॥१॥तत्कर्माचक्ष्व सुप्रीत्या कार्तिकेय गुरो मम॥त्वत्तोन्यो न हि संवक्ता त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥२॥ पूर्णाहंभावमाश्रित्य ये मुक्ता देहपंजरात् ॥ ये तूपासनमार्गेण देहमुक्ताः परंगतः ॥ ३ ॥ तेषां गतिविशेषञ्च भगवञ्छंकरात्मज ॥ वक्तुमर्हसि सुप्रीत्या मां विचार्य्य स्वशिष्यतः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥मुनिविज्ञप्तिमाकर्ण्य शक्तिपुत्रस्सुरिहा ॥ प्राहात्यन्तरहस्यं तद्भगुणा श्रुतमीश्वरात् ॥ ५ ॥

संहितायां विंशोध्यायः ॥ २० ॥ श्रीवामदेवजी बोले जो यति मुक्त हैं उनका दाहकर्म नहीं है मैंने सुना है केवल उनको शुद्धभूमिमें स्थापन कर देते हैं ॥ १ ॥ हे गुरो ! इसका कारण क्या है सो आप प्रेमसे कहिये तीन लोकमें आपके समान वक्ता नहीं है ॥ २ ॥ जो सर्वज्ञतासे परमेश्वरको प्राप्त हो देहपंजरसे मुक्त हो गये हैं और जो उपासनाके मार्गसे मुक्त हो परमपदको गये हैं ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! विशेषकर आप प्रेम से मुझे अपना शिष्य जान वह सब कहिये ॥ ४ ॥ सूतजी बोले, असुरनिकन्दन स्कन्दजी यह उनके वचन सुन शिवजीसे सुने हुए उस

परमरहस्यको मुनिसे कहने लगे ॥ ५ ॥ स्कन्दजी बोले, हे मुने ! यह बडी गुह्य बात है ऋभुनाम शिव योगी मुनिके पूँछनेपर पिनाकवाणी सर्वज्ञ साक्षात् शिवजीने उनसे जो कथा वर्णन की है ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! वही हम तुमसे कहते हैं यह ज्ञान जिस किसीको देना नहीं चाहिये, हां शान्तचित्त शिवभक्तिसे युक्त शिष्यको देना चाहिये ॥ ७ ॥ जो कोई यती समाधिमें स्थित हो शिवभावसे देहको भोगता हुआ महाधैर्यवान् हो वही परिपूर्ण शिव होता है ॥ ८ ॥ जो अधीर चित्तहो समाधिको नहीं जानता है उसके लिये उपाय कहता हूं सावधान होकर सुनो ॥ ९ ॥ तीन पदार्थका ज्ञान अर्थात् ज्ञान ज्ञेय ज्ञातृ लक्षण त्रिपुटीके पदार्थका ज्ञान, वेदान्त शास्त्रोंके वाक्योंसे और गुरुके मुखसे

॥ सुब्रह्मण्य उवाच॥इदमेव मुने गुह्यं भृगवे शिवयोगिने ॥ उक्तं भगवता साक्षात्सर्वज्ञेन पिनाकिना॥६॥वक्ष्ये तदद्य ते ब्रह्मन्न देयं यस्य कस्यचित् ॥देयं शिष्याय शान्ताय शिवभक्तियुताय वै॥७॥समाधिस्थो यतिः कश्चिच्छिवभावेन देहभुक् ॥ अस्ति चेत्स महाधीरः परिपूर्णश्शिवो भवेत् ॥८॥ अधैर्य्यचित्तो यः कश्चित्समाधिं न च विंदति॥तदुपायम्प्रवक्ष्यामि सावधानतया शृणु ॥ ९ ॥ त्रिपदार्थपरिज्ञानं वेदान्तागमवाक्यजम्॥ श्रुत्वा गुरोर्मुखाद्योगमभ्यसेत्स यमादिकम्॥१०॥तत्कुर्वन्स यतिस्सम्यक्छिवध्यानपरो भवेत् ॥ नियमेन मुने नित्यं प्रणवासक्तमानसः ॥११॥ देहदौर्बल्यवशतो यद्यधैर्य्यधरो यतिः॥अकामश्च शिवं स्मृत्वा स जीर्णां स्वां तनुं त्यजेत्॥१२॥सदाशिवानुग्रहतो नंदिना प्रेरिता मुने॥आतिवाहिकरूपिण्यो देवताः पञ्च विश्रुताः॥१३॥ आत्महन्ताकृतिः काचिज्ज्योत्तिःपुंजवपुष्मती ॥ अह्नोऽभिमानिनी काचिच्छुक्लपक्षाभिमानिनी ॥ १४ ॥ उत्तरायणरूपा च पंचानुग्रहतत्परा ॥ धूम्रा तमस्विनी रात्रिः कृष्णपक्षाभिमानिनी ॥ १५ ॥

श्रवण कर यम नियमके अभ्यास करता हुआ ॥ १० ॥ यम नियम करते हुए शिव ध्यानमें पारायण हो हे मुने ! नित्य प्रणवमें मन लगावे ॥ ११ ॥ देहकी दुर्बलताके वशसे कदाचित् अधीर हो अकाम शिवको स्मरण करता हुआ यति यदि प्राण त्यागन करदे ॥ १२ ॥ वह सदाशिवके अनुग्रहसे नन्दिसे प्रेरित हो अतिवाहिक प्राण निकलने पर पुण्यात्मा जीवोंको अर्चिरादि मार्गसे परलोकमें लेजानेवाले पाँच देवता ॥ १३ ॥ अग्निके और तेजोमात्राके अभिमानी कोई दिनके अभिमानी कोई शुक्लपक्षके अभिमानी ॥ १४ ॥ उत्तरायणके भिमानी

यह पाँचों अनुग्रहमें तत्पर हो धूम्रा तपस्विनी रात्रि कृष्णपक्षके अभिमानी पाँच देवता हैं ॥ १५ ॥ दक्षिणायन रूप करके पांच देवता प्रसिद्ध हैं हे महामुने ! सावधान हो उनकी वृत्ति सुनो ॥ १६ ॥ वे पाँचों देवता दक्षिणायन रूप कर्मके अनुष्ठानमें तत्पर प्राणियोंको लेकर उसके पुण्यसे स्वर्गको जाते हैं ॥ १७ ॥ और पुण्यक्षय होनेपर फिर मनुष्यलोकको प्राप्त हो पूर्वजन्मके समान जन्म लेते हैं ॥ १८ ॥ वहीं पाँचों देवता भूतलसे आरम्भ कर पांच प्रकारसे मार्गको विभक्तकर अग्नि आदिके क्रमसे ग्रहण कर यतिको सदाशिवके स्थानको लेजाकर ॥ १९ ॥ शिवके चरणोंको प्रणाम कर उसी कर्ममें लगाये हुए वे यति अनुग्रह करनेवाले शिवमें स्थित होते हैं और वहां स्थित होते हैं ॥ २० ॥

दक्षिणायनरूपेति विश्रुताः पञ्चदेवताः ॥ तासां वृत्तिं शृणुष्वाद्य वामदेव महामुने ॥ १६ ॥ ताः पंचदेवता जीवान्कर्मानुष्ठान तत्परान्॥गृहीत्वा त्रिदिवं यांति तत्पुण्यवशतो मुने ॥१७॥ भुक्त्वा भोगान्यथोक्तांश्च ते तत्पुण्यक्षये पुनः॥मानुषं लोकमासाद्य भजते जन्मपूर्ववत् ॥ १८ ॥ ताः पुनः पंचधा मार्गं विभज्यारभ्य भूतलम् ॥ अग्न्यादिक्रमतां गृह्य सदाशिवपदं यतिः॥१९॥ निनीय वन्द्यचरणौ देवदेवस्य पृष्ठतः ॥ तिष्ठंत्यनुग्रहाकाराः कर्म्मण्येव प्रयोजिताः ॥ २० ॥ समागतमभिप्रेक्ष्य देवदेवस्सदा शिवः ॥ विरक्तश्चेन्महामंत्रतात्पर्यमुपदिश्य च ॥२१॥ स्वसाम्यं च वपुर्दत्त्वा गाणपत्येभिषिच्य च ॥ अनुगृह्णाति सर्वेशश्शंकरः सर्वनायकः ॥ २२ ॥ मृगटंकत्रिशूलाद्यवरदानविभूषितम् ॥ त्रिनेत्रं चन्द्रशकलं गंगोल्लासिजटाधरम् ॥ २३ ॥ अधिष्ठि तवि मानाढ्यं सर्वदं सर्वकामदम् ॥ इति शाखाविरक्तश्चेद्रुद्रकन्यासमावृतम् ॥ २४ ॥ नृत्यगीतमृदंगादिवाद्यघोषमनोहरम् ॥ दिव्या म्बरस्रगालेप भूषणैरपि भूषितम्॥२५॥दिव्यामृतघटैः पूर्णं दिव्यांभःपरिपूरितम्॥सूर्य्यकोटिप्रतीकाशं चंद्रकोटिसुशीतलम्॥२६॥

देवदेव सदाशिव उस यतिको आया हुआ देख जो विरक्त हुआ तो उसे महामन्त्रका उपदेश कर ॥ २१ ॥ उसको गणपतिके पदका अभिषेक कर अपनी साम्यता देते हैं और सबके अधिपति शंकर अनुग्रह करते हैं ॥ २२ ॥ मृगटंक श्रेष्ठ त्रिशूल वरदानसे विभूषित तीन नेत्र चन्द्रखण्डसे शोभित गंगासे युक्त जटाधारी ॥ २३ ॥ सब कामके देनेवाले श्रेष्ठ विमानको उनके निमित्त देते हैं और जो ऐसा नहीं है उसको रूद्रकन्यासे युक्त ॥ २४ ॥ नृत्य गीत मृदंग आदि बाजोंसे मनोहर दिव्य वस्त्र माला और आलेपन भूषणोंसे भूषित ॥ २५ ॥ दिव्य अमृतके

घडोंसे भरा सुन्दर पलंगसे शोभित करोड सूर्यके समान प्रकाश करोड चन्द्रमाके समान शीतल ॥ २६ ॥ मनके समान वेगवान् सब स्थानमें जानेवाला विमान देकर अनुग्रह करते हैं, उनके भी भोगोंके भोगनेपर भोग कौतूहलके क्षय हो जानेपर ॥ २७ ॥ यतियोंको दुर्गम अपनी महातीव्र प्रकृति आदि (मूलप्रकृति महदादितत्त्व) का निपातन करके महासंसारके नाश करनेकी इच्छावाले प्रलय अग्निके समान प्रभाववाले महेश्वर ॥ २८ ॥ अनुग्रह करके महा मन्त्रके तात्पर्यको जो कि, पूर्ण अहं भावनारूप शिव मैं हूं ऐसी निश्चल समाधिका ॥ २९ ॥ अनुग्रह करके जो अपनी अमृतरूप सूर्यादि जगत्प्रकाशनादि शक्तिरूप सिद्धि है ॥ ३० ॥ और ब्रह्मकी आयुके क्षय

मनोवेगं सर्वगं च विमानमनुगृह्य च ॥ भुक्तभोगस्य तस्यापि भोगकौतूहलक्षये ॥ २७ ॥ निपात्य शक्तिं तीव्रतरां प्रकृत्या ह्यति दुर्गमाम् ॥ कान्तारं दग्धुकामान्ताम्प्रलयानलसुप्रभाम् ॥ २८ ॥ अनुगृह्य महामंत्रतात्पर्यम्परमेश्वरः ॥ पूर्णोहं भावना रूपः शंभुरस्मीति निश्चलम् ॥ २९ ॥ अनुगृह्य समाधिञ्च स्वदास्यस्पन्दरूपिणीः ॥ रव्यादिकर्म्मसामर्थ्यरूपाः सिद्धीरन र्गलाः ॥३०॥ आयुः क्षये पद्मयोनेः पुनरावृत्तिवर्जिताम् ॥ मुक्तिं च परमां तस्मै प्रयच्छति जगद्गुरुः ॥ ३१ ॥ एतदेव पदं तस्मात्सर्वैश्वर्य्यं समष्टिमत्॥ मुक्तिघंटापथं चेति वेदांतानां विनिश्चयः ॥ ३२ ॥ मुमूर्षोस्तस्य मन्दस्य यतेस्सत्सम्प्रदायिनः ॥ यतयः सानुकूलत्वात्तिष्ठेयुः परित स्तदा ॥३३॥ ततस्सर्वे च ते तत्र प्रणवादीन्यनुक्रमात् ॥ उपदिश्य च वाक्यानि तात्पर्य्यं च समाहिताः ॥ ३४ ॥ वर्णयेयुः स्फुटं प्रीत्या शिवं संस्मारयन्सदा ॥ निर्गुणं परमज्योतिः प्रणम्य विलयावधि ॥ ३५ ॥ एतेषां सममेवात्र संस्कारक्रम उच्यते ॥ असंस्कृतशरीराणां दौर्गत्यं नैव जायते ॥ ३६ ॥

होनेपर भी पुनरावृत्तिसे रहित परममुक्ति उसको जगत्के गुरु प्रदान करते हैं ॥ ३१ ॥ यही पद है इसी कारणसे सम्पूर्ण समष्टि मान ऐश्वर्य मुक्तिका मार्ग है यही वेदान्तोंका निश्चय हैं ॥ ३२ ॥ जिस समय यतिके प्राण त्यागका समय हो और शिथिल हो उस समय श्रेष्ठ सम्प्र दायवाले यति उसके चारों ओर स्थित हो ॥ ३३ ॥ क्रमसे प्रणवादि महावाक्योंके तात्पर्यको सावधान हो उपदेश करे ॥ ३४ ॥ जबतक उसके प्राण विहीन हों तबतक महावाक्योंको ही वर्णन कराना चाहिये शिवका प्रेमसे स्मरण करना चाहिये ॥ ३५ ॥ इन सबका यहां संस्कार

वर्णन करते हैं उक्त लक्षणवाले यतियोंकी संस्कारके अभावमें भी दुर्गति नहीं होती है ॥ ३६ ॥ कारण कि वह सब कर्म छोडकर शिवपरा यण होते हैं उन असंस्कृत शरीरवाले यतियोंके देहको दूषण करनेवाले राजाओंका राज्य नष्ट हो जाता है ॥ ३७ ॥ और उस ग्रामके रहने वाले महाःदुखी होते हैं इन दोषोंके शान्त करनेका विधान कहते हैं ॥ ३८ ॥ (नम इरिण्याय च) यहांसे आरम्भकर (नम आमी वत्केभ्यः) यहां तक जपता हुआ ॥ ३९ ॥ जपके अन्तमेंॐकार उच्चारण देवतात्मक यतिके निमित्त किया हुआ गर्त मट्टीसे पूर्ण करे, हे मुनीश्वर ! तब उस दोषकी शांति होती है ॥ ४० ॥ उस यतिके शरीरकी सुगंधित द्रव्योंसे मलकर पुत्रादिक उसका विधिपूर्वक

संन्यस्य सर्वकर्म्माणि शिवाश्रयपरा यतः ॥ देहं दूषयतस्तेषां राज्ञो राष्ट्रं च नश्यति ॥ ३७ ॥ तद्ग्रामवासिनस्तेऽपि भवेयु र्भृशदुःखिनः ॥ तद्दोषपरिहारायविधानं चैवमुच्यते ॥ ३८ ॥ स तु नम इरिण्याय चेत्यारभ्य विनम्रधीः ॥ नम आमीवत्के भ्यान्तं तत्काले प्रजपेन्मनुम् ॥ ३९ ॥ ॐमित्यन्ते जपन्देवयजनम्पूरयेत्ततः ॥ ततश्शान्तिर्भवेत्तस्य दोषस्य हि मुनीश्वर ॥ ४० ॥ पुत्रादयो यथा न्यायं कुर्य्युस्संस्कारमुत्तमम् ॥ वच्मि तत्कृपया विप्र सावधानतया शृणु ॥४१॥ अभ्यर्च्य स्नाप्य शुद्धोदैरभ्यर्च्य कुसुमादिभिः ॥ श्रीरुद्रचमकाभ्यां च रुद्रसूक्तेन च क्रमात् ॥ ४२ ॥ शंखं च पुरतः स्थाप्य तज्जलेनाभिषिच्य च ॥ पुष्पं निधाय शिरसि प्रणवेन प्रमार्जयेत् ॥ ४३ ॥ कौपीनादीनि संत्यज्य पुनरन्यानि धारयेत् ॥ भस्मनोद्धूलयेत्तस्य सर्वांगं विधिना ततः ॥ ४४ ॥ त्रिपुण्ड्रं च विधानेन तिलकं चन्दनेन च ॥ विरच्य पुष्पैर्मालाभिरलंकुर्य्यात्कलेवरम् ॥ ४५ ॥ उरः कण्ठशिरोबाहुप्रकोष्ठश्रुतिषु क्रमात् ॥ रुद्राक्षमालाभरणैरलंकुर्य्याच्च मंत्रतः ॥ ४६ ॥

संस्कार करें उसकी विधि मैं कृपा कर कहता हूं मन लगाकर सुनो ॥ ४१ ॥ उसकी पूजा और स्नान कराय शुद्धजल और पुष्पोंसे उसको पूजित कर रुद्रचमकाध्याय और रुद्रसूक्तके क्रमसे ॥ ४२ ॥ शंखको आगे स्थापन कर उसीके जलसे अभिषेक कर शिरपर धर ओंकारसे मार्जन करे ॥ ४३ ॥ पुरानी कौपीन त्याग नई धारण कराकर कही विधिके अनुसार सर्वांगमें भस्म लगाय ॥ ४४ विधिपूर्वक त्रिपुण्ड्र और चंदनसे तिलक लगावे पुष्पोंकी माला बनाकर उसके शरीरको अलंकृत कर ॥ ४५ ॥ छाती कण्ठ शिर बाहु और प्रकोष्ठ तथा कानोंमें

क्रमसे रुद्राक्षकी मालाके आभूषण मंत्रपूर्वक पहराकर ॥ ४६ ॥ धूप दे उसको उठाय शिक्य (छींका वा डोली) के ऊपर रक्खे, ईशानादि पंच ब्रह्मात्मक रथमें स्थापन कर ॥ ४७ ॥ उस रथको पूज्य ओंमादि पंचब्रह्मके मन्त्रोंसे अभिमंत्रित कर सुगंधित पुष्प और मालासे इसको सब प्रकार अलंकृत कर ॥ ४८ ॥ नृत्य और बाजे तथा ब्राह्मणोंके वेदपाठसे युक्त ग्रामकी प्रदक्षिणा कर उसे लेकर चले ॥ ४९ ॥ ग्रामके पूर्व और उत्तरमें पवित्र वृक्षोंके निकट वे सब यति ॥ ५० ॥ उस देवयजन स्थानको दण्डमात्र प्रमाणसे खोदें, ओंकार और व्याहृतिसे उस स्थानको प्रोक्षण कर ॥ ५१ ॥ क्रमसे शमीके पत्ते उत्तरकी ओर अग्रभाग कर बिछावे. फिर कुशा बिछाय उसपर आसन मृगचर्मादि बिछा

सुधूपितं समुत्थाप्य शिक्योपरि निधाय च ॥ पंचब्रह्ममये रम्ये रथे संस्थापयेत्तनुम्॥४७॥ॐमाद्यैः पंचभिर्ब्रह्ममंत्रैस्सद्यादिभिः क्रमात् ॥ सुगंधकुसुमैर्माल्यैरलंकुर्य्याद्रथं च तम् ॥४८॥ नृत्यवाद्यैर्ब्राह्मणानां वेदघोषैश्च सर्वतः ॥ ग्रामम्प्रदक्षिणीकृत्य गच्छेत्प्रेतं तमुद्वहन् ॥४९॥ ततस्ते यतिनः सर्वे तथा प्राच्यामथापि वा ॥ उदीच्याम्पुण्यदेशे तु पुण्यवृक्षसमीपतः ॥५०॥ खनित्वा देवयजनं दण्डमात्रप्रमाणतः ॥ प्रणवव्याहृतिभ्यां च प्रोक्ष्य चास्तीर्य्य च क्रमात् ॥५१॥ शमीपत्रश्च कुसुमैरुत्ताराग्रं तदूर्द्ध्वतः॥ आस्तीर्य दर्भास्तत्पीठं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥५२॥ प्रणवेन ब्रह्मभिश्च पञ्चगव्येन तां तनुम् ॥ प्रोक्ष्याभिषिच्य रौद्रेण सूक्तेन प्रणवेन च ॥५३॥ शंखतोयेनाभिषिच्य मूर्ध्नि पुष्पं विनिःक्षिपेत् ॥ तद्गतस्यानुकूलोऽसौ शिवस्मरणतत्परः ॥५४॥ ॐमित्यथ समुद्धृत्य स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ गर्ते योगासने स्थाप्य प्राङ्मुखं स्याद्यथा तथा ॥५५॥ गंधपुष्पैरलंकृत्वा धूपगुग्गुलुना ततः॥ विष्णो हव्यमिति प्रोच्य रक्षस्वेति वदन्ददेत् ॥ ५६ ॥

कर फिर कुश बिछावे ॥ ५२ ॥ ओंकारयुक्त पंचब्रह्मके मंत्रोंसे पवित्र कर पंचगव्यसे उसके शरीरको प्रोक्षण कर रुद्रसूक्त और ॐकारसे अभिषेक कर ॥ ५३ ॥ पीछे शंखका जल छिडक शिरपर फूल रक्खे शिवका स्मरण करता हुआ अनुकूलतासे कार्य करे ॥ ५४ ॥ फिर ॐकार उच्चारणपूर्वक स्वस्तिवाचन कर उसे उठाय योगासनयुक्त स्थित उस यतिको जैसे बने वैसे पूर्वकी ओर मुखपर बैठाये ॥ ५५ ॥ गन्ध पुष्प धूप और गूगलसे अलंकृत करे (विष्णो हव्यं रक्षस्व) यह कह उसे गर्तमें स्थापन कर ॥ ५६ ॥

दण्डं दक्षिणहस्ते तु वामे दद्यात्कमण्डलुम्॥प्रजापतेनत्वदेतान्यन्योमंत्रेण सोदकम्॥५७॥ब्रह्मजज्ञानम्प्रथममितिमंत्रेण मस्तके ॥
स्पृशञ्जप्त्वा रुद्रसूक्तं भ्रुवोर्मध्ये स्पृशञ्जपेत् ॥५८॥ मानोमहान्तमित्यादिचतुर्भिर्मस्तकन्ततः॥ नालिकेरेण निर्भिद्यादवटं पूरयेत्ततः॥५९॥ पंचभिर्ब्रह्मभिस्स्पृष्ट्वा जपेत्स्थलमनन्यधीः॥ यो देवानामुपक्रम्य यः परः समहेश्वरः॥६०॥इतिजप्त्वा महादेवं सांबं संसारभेषजम्॥ सर्वज्ञमपराधीनं सर्वानुग्रहकारकम् ॥६१॥ एकारत्निसमुत्सेधमरत्निद्वयविस्तृतम्॥मृदा पीठं प्रकल्प्याथ गोपयेनोपलेपयेत् ॥६२॥ चतुरस्रं च तन्मध्ये गंधाक्षतसमन्वितैः ॥ सुगंधकुसुमैर्बिल्वैस्तुलस्या च समर्चयेत् ॥६३॥ प्रणवेन ततो दद्याद्धूपदीपौ पयो हविः॥दत्त्वा प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कुर्य्याच्च पंचधा॥६४॥प्रणवं द्वादशावृत्त्या संजप्य प्रणमेत्ततः॥ दिग्विदिक्क्रमतो दद्याद्ब्रह्मार्घम्प्रणवेनच ॥६५॥ एवं दशाहपर्य्यंतं विधिस्ते समुदाहृतः॥ यतीनां मुनिवर्य्यार्थैकादशाहविधिं शृणु॥ ॥६६॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यांकैलाससंहितायां यतीनान्मरणानन्तरदशाहपर्य्यंतकृत्यवर्णनन्नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

दक्षिण हाथमें दंड वाममें कमंडलु दे 'प्रजापतेनेति' इस मंत्रसे कमडलु ॥ ५७ ॥ जल सहित वाम हाथमें दे और (ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं) इस मंत्रसे मस्तकको छूकर रुद्रसूक्तका जप भौंके मध्यमें स्पर्श करता हुआ करे ॥ ५८ ॥ फिर (मानोमहान्त) इत्यादि चार मन्त्रोंसे मस्तकको नारियलसे भेदकर गर्तको पूर्ण करे ॥ ५९ ॥ और पाँच ब्रह्म मन्त्रोंसे स्थलको छूकर उन मंत्रोंका जप करे ' यादेवनां ' यहांसे प्रारम्भ कर (यः परः स महेश्वरः) ॥ ६० ॥ महादेव संसारके भेषज शिव सर्वज्ञ अपराधीन सबके अनुग्रह करनेवाले परमदेवको उमासहित जपकर॥६१॥ एक हाथ चौडे और दो हाथ लम्बे मट्टीके आसनको बनाकर गोवरसे लीपदे ॥ ६२ ॥ उसके मध्यमें चौकोन गंध अक्षतसे युक्त सुगन्धित पुष्प बेल और तुलसीके पत्तोंसे पूजन करे ॥ ६३ ॥ पीछे ॐ कारसे धूप दीप दूध हवि दे इस प्रकार हवि दे प्रदक्षिणा कर पांच विधिसे नमस्कार कर ॥ ६४ ॥ बारह बार ॐकारको जप प्रणाम करे, दिशा विदिशाओंमें क्रमसे प्रणव उच्चारण कर ब्रह्मार्घ दे ॥ ६५ ॥ इस प्रकार दश दिन करता रहे, अब मुनिश्रेष्ठ यतियोंकी एकादशाह विधिको सुनो ॥ ६६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

स्कन्दजी बोले, फिर ग्यारहवें दिनके प्राप्त होनेमें जो विधि कही है हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं आपके स्नेहसे कहता हूं सुनो ॥ १ ॥ वेदीका सम्मार्जन करके उस स्थानको लीप पुण्याहवाचन करे और इस स्थानको प्रोक्षण कर पश्चिमकी ओरसे आरम्भ कर पांच मण्डल पूर्वतक बनावे ॥ २ ॥ उत्तरकी ओर मुख करके मंडल बनावे, एक वितस्त लम्बे चौडे बनावे उनके मध्यका चौकोन हो ॥ ३ ॥ शेष मण्डल बिंदुके आकार त्रिकोण षट्कोण और गोल क्रमसे बनावे, और पूजाके मार्गसे शंख आगे स्थापन कर ॥ ४ ॥ प्राणायाम और संकल्प करके देवताओंके ईश्वर पूर्वोक्त पांच देवताओंका पूजन करे, वे अतिवाहिक नामवाले पांच देवता पूर्वमें कहे हैं ॥ ५ ॥ फिर उत्तरके

॥सुब्रह्मण्य उवाच॥ एकादशेह्नि सम्प्राप्ते यो विधिस्समुदाहृतः ॥ तं वक्ष्ये मुनिशार्दूल यतीनां स्नेहतस्तव॥१॥सम्मार्ज्य वेदीमा लिप्य कृत्वा पुण्याहवाचनम् ॥ प्रोक्ष्य पश्चिममारभ्य पूर्वान्तम्पञ्च च क्रमात् ॥ २ ॥ मण्डलान्युत्तराशास्यः कुर्यात्स्वयमव स्थितः ॥ प्रादेशमात्रं संकल्प्य चतुरस्रं च मध्यतः ॥ ३ ॥ बिन्दुत्रिकोणषट्कोणवृत्ताकाराणि च क्रमात् ॥ शंखं च पुरत स्थाप्य पूजोक्तक्रममार्गतः ॥ ४ ॥ प्राणानायम्य संकल्प्य पूजयित्वा सुरेश्वरीः ॥ देवताः पञ्च पूर्वोक्ता अतिवाहिकरूपिणीः ॥ ५ ॥ संत्यज्योत्तरतो दर्भान् यश्च संस्पृशते ततः ॥ पश्चिमादि समारभ्य षडुत्थासनमार्गतः ॥ ६ ॥ मण्डलानि च तेष्वन्तः पुष्पाण्याधाय पीठवत् ॥ ॐ ह्री मित्युक्ताग्निरूपान्तामतिवाहिकदेवताम् ॥ ७ ॥ आवाहयामि नम इत्यन्तं सर्वत्र भावयेत् ॥ दर्शयेत्स्थापनाद्यास्तु मुद्राः प्रत्येकमाद रात् ॥ ८ ॥ ह्रांह्रीमित्यादिना कुर्य्यादासामंगानि च क्रमात् ॥ पाशांकुशाभयाभीष्टपा णिचन्द्रोपलप्रभाः ॥ ९ ॥ रक्तांगुलीयक च्छायरञ्जिताखिलदिङ्मुखा ॥ रक्ताम्बरधराः कारपदपंकजशोभिताः ॥ १० ॥

दर्भोंको छोडकर जलस्पर्श करे, पश्चिमसे आरम्भ कर षट्उत्थानके विधानसे ॥ ६ ॥ उन मंडलोंके भीतर सिंघासनके समान फूल धारण कर ॐ ह्रीं ऐसा उच्चारण कर अग्निरूप अतिवाहक देवताको ॥ ७ ॥ (आवाहयामि नमः) यहां तक ध्यान करके स्थापनादि प्रत्येक मुद्रा क्रमसे दिखाकर ॥ ८ ॥ ह्रां ह्रीं आदि क्रमसे इनके अंग करे पाश अंकुश धारे अभीष्ट अभयदायक हाथ और चन्द्रकान्त मणिके समान कांतिवाले ॥ ९ ॥ लाल अगुंलीकी छायासे सम्पूर्ण दिशा मंडलके रंगनेवाले लाल वस्त्र धारे कमलवत

हस्त चरणोंसे शोभित ॥ १० ॥ तीन नेत्र सुन्दर प्रकाशित मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुकुटोंमें माणिक्य लगे उस पर चन्द्रमा रेखाकी शोभा ॥ ११ ॥ कुंडलोंसे शोभित कपोल पीन और ऊँचे पयोधर हार बाजूबन्द खडुए कौंधनीसे मनोहर ॥ १२ ॥ पतली कमर भारी नितम्ब लाल रंगके दिव्य वस्त्र पहरे माणिक्यमय मंजरीसे शब्दायमान चरणवाली चरणांगुलीकी श्रेणीसे अधिक मनोहर इनके रूपका ध्यान करे ॥ १३ ॥ यदि कहो साक्षात् शिवही क्यों नहीं अनुग्रह करते इनको क्यों बनाया इसपर कहते हैं कि, शक्त्यात्मक मूर्त्तिरहित अनुग्रहसे क्या हो सकता है इस कारण पूर्वोक्त महेशके ऐश्वर्यके समान शक्ति आत्मक मूर्त्तिसे सब सिद्ध हो सकता है ॥ १४ ॥ यह पांच

त्रिनेत्रोल्लासिवदनपूर्णचन्द्रमनोहराः ॥ माणिक्यमुकुटोद्भासिचन्द्रलेखावतंसिताः ॥ ११ ॥ कुण्डलामृष्टगण्डाश्च पीनोन्नतपयोधराः ॥ हारकेयूरकटककांचीदाममनोहराः ॥ १२ ॥ तनुमध्याः पृथुश्रोण्यो रक्तदिव्याम्बरावृताः ॥ माणिक्यमयमंजीरसिंजत्पदसरोरुहाः॥ पादांगुलीयकश्रोणीर्मंजुलातिमनोहराः ॥ १३ ॥ अनुग्रहेण मूर्तेन शिववर्त्तिं नु साध्यते ॥ तस्माच्छक्त्यात्ममूर्तेन सर्वं साध्यं महेशवत् ॥ १४ ॥ सर्वानुग्रहकर्त्रैव स्वीकृताः पंचमूर्तय ॥ सर्वकार्य्यकरा दिव्याः परानुग्रहतत्पराः ॥ १५ ॥ एवं ध्यात्वा तु ताः सर्वा अनुग्रहपराश्शिवाः ॥ पादयोः पाद्यमेतासां दद्याच्छंखोदबिन्दुभिः ॥ १६ ॥ हस्तेष्वाचमनीयं च मौलिष्वर्घ्यं प्रदापयेत् ॥ शंखोद विन्दुभिस्तासां स्नानकर्म्म च भावयेत् ॥ १७ ॥ रक्ताम्बराणि दिव्यानि सोत्तरीयाणि दापयेत् ॥ मुकुटादीन्यनर्घ्याणि दद्यादाभरणानि च॥ १८ ॥ सुवासितं च श्रीखण्डमक्षतांश्चातिशोभनान् ॥ सुरभीणि मनोज्ञानि कुसुमानि च दापयेत् ॥ १९ ॥ धूपं च परमा मोदं साज्यवर्तिं च दीपकम् ॥ सर्वं समर्पयामीति प्रणवं ह्रीमुपक्रमात् ॥ २० ॥

मूर्त्ति शिवके ऊपर अनुग्रह करनेवाले शिवने कल्पनाकी है यह सब कार्य करनेवाली दिव्य अनुग्रह करनेमें तत्पर हैं ॥ १५ ॥ उन सबका ध्यान करके इन पांचों देवताओंके चरणोंमें शंख जलके बिन्दुओंसे पाद्य दे ॥ १६ ॥ हाथमें आचमन और शिरपर अर्घ्य दे और शंखके जलके बिन्दुओंसे उसको स्नान करावे ॥ १७ ॥ दिव्य लाल वस्त्र दुपट्टा आदि उनको दे मुकुट और आभरण अर्पण करे ॥ १८ ॥ सुवासित चन्दन सुन्दर अक्षत और सुगंधिके मनोहर फल दे ॥ १९ ॥ परम सुगंधित धूप और घृतबत्ती दीपक (सर्वं समर्पयामि ॐ ह्रीं)

ऐसा कहकर अर्पण करे ॥ २० ॥ और अन्तमें नमः उच्चारण कर खीर और शहद दे घृत बराके पुए केला गुड़ ॥ २१ ॥ प्रत्येक सुगन्धित वस्तु केलेके पात्रमें रखकर (ॐ भूर्भुवःस्वः) इस मंत्रसे प्रोक्षणादि करे ॥ २२ ॥ (ॐ ह्रीं स्वाहा) इसको (वह्निजाया स्वाहाके) साथ उच्चारणकर खीर और नैवेद्य दे (पानीयं नमः) कह प्रेमसे अर्पण करे ॥ २३ ॥ नैवेद्यको पूर्वभागमें रखदे हे मुनिराज ! स्थलको शोधकर कुल्ले आचमन और अर्घ्य दे ॥ २४ ॥ ताम्बूल धूप दीप प्रदक्षिणा और नमस्कार करे यह सब विधान कर प्रेमसे शिरमें अंजली

नमोऽन्तं चततो दद्यात्पायसम्मधुनाप्लुतम्॥साज्यशर्करयापूपकदलीगुडपूरितम्॥२१॥ प्रत्येकं कदलीपत्रेभरितं च सुवासितम्॥ भूर्भुवस्स्वरिति प्रोच्य प्रोक्षणादीनि कारयेत् ॥२२॥ ॐ ह्रीमिति समुच्चार्य्य नैवेद्यं वह्निजायया॥ पानीयं नम इत्युक्त्वा परम्प्रेम्णा समर्पयेत् ॥२३॥ तत उद्वासयेत्प्रीत्या पूर्वतो मुनिसत्तम ॥स्थलं विशोध्य गंडूषाचमनार्घ्याणि दापयेत् ॥२४॥ तांबूलं धूप दीपौ च प्रदक्षिणनमस्कृती॥विधाय प्रार्थयेदेताश्शिरस्यंजलिमादधत्॥२५॥ श्रीमातरस्सुप्रसन्नायतिं शिवपदैषिणम्॥रक्षणीय म्प्रब्रुवन्तु परमेशपदाब्जयोः ॥२६॥ इति संप्रार्थ्य तास्सर्वा विसृज्य च यथागतम्॥तासाम्प्रसादमुद्धृत्य कन्यकाभ्यः प्रदापयेत ॥२७॥ गोभ्यो वा जलमध्ये वा निक्षिपेन्नान्यथा क्वचित् ॥ अत्रैव पार्वणं कुर्य्यान्नैकोद्दिष्टं यतेः क्वचित् ॥२८॥ अत्रायंपार्वणश्राद्धे नियमः प्रोच्यते मया॥ तं शृणुष्व मुनिश्रेष्ठ येन श्रेयो भवेत्ततः॥२९॥ कर्ता स्नात्वा धृतप्राण उपवीती समाहितः॥ सपवित्रकरस्त्व स्यां पुण्यतिथ्यामिति ब्रुवन्॥३०॥ करिष्ये पार्वणं श्राद्धमिति संकल्प्य चोत्तरे॥ दद्याद्दर्भानुत्तमांश्च ह्यासनार्थं जलं स्पृशेत् ॥३१॥

धरकर प्रणाम करे ॥ २५ ॥ और कहे हे माताओ ! तुम प्रसन्न होकर शिवपदके चाहनेवाले इस यतिको परमेशके चरणकमलमें रक्षित करो ॥ २६ ॥ इस प्रकार उन सबकी प्रार्थना कर बिदा कर दे उनका प्रसाद लेकर कन्याओंको दे दे ॥ २७ ॥ अथवा गौ अथवा जलमें डाल दे कहीं फेंके नहीं इस देवता पूजाके स्थानमें ही पार्वणश्राद्ध करे यतिका एकोद्दिष्ट श्राद्ध नहीं होता ॥ २८ ॥ पार्वणश्राद्धका नियम मैं कहता हूं, हे मुनिश्रेष्ठ ! सावधान हो सुनो जिससे कल्याण होगा ॥ २९ ॥ श्राद्ध करनेवाला स्नानकर प्राणायाम कर यज्ञोपवीत पहर सावधान हो पवित्र हाथकर अद्येत्यादि संकल्प कर उच्चारण कर पुण्यतिथिको नाम ले ॥ ३० ॥ कहे कि मैं पार्वणश्राद्ध करता हूं अपने उत्तर

भागमें ब्राह्मणोंके बैठनेको कुश दे जलका स्पर्शकर ॥ ३१ ॥ मलकर स्नान करे हुए चार ब्राह्मणोंको बुलाकर जो शिवभक्त और दृढव्रत हो ॥ ३२ ॥ उनसे कहे आप विश्वेदेवाके निमित्त हो प्रसन्नता कीजिये आत्मा अन्तरात्मा ॥ ३३ ॥ परमात्माके निमित्त आपको प्रसन्नता करनी चाहिये ऐसा कहकर उनके चरणोंमें आदरसे वरण करे ॥ ३४ ॥ उनके चरण धोकर पूर्वदिशाको मुखकर बैठावे गन्धादिसे अलंकार कर शिवके सन्मुख भोजन करावे ॥ ३५ ॥ गोबरसे लीपकर उसपर कुश रखकर उन्हें बिछाय मौन हो उनपर पिण्डदान करता हूं ॥ ३६ ॥

तत्रोपवेशयेद्भक्त्या साभ्यंगं कृतमज्जनान् ॥ आहूय चतुरो विप्राञ्छिवभक्तान्दृढव्रतान् ॥ ३२ ॥ विश्वेदेवार्थं भवता प्रसादः क्रियतामिति ॥ आत्मने भवता पश्चादन्तरात्मन इत्यपि ॥ ३३ ॥ परमात्मन इत्येवं प्रोच्य प्रार्थ्य च तान्यतिः ॥ श्रद्धया चरणन्तेषां कुर्य्याद्यथार्थ्यमादरात् ॥३४॥ पादौ प्रक्षाल्य तेषान्तु प्राङ्मुखानुपवेश्य च ॥ गन्धादिभिरलंकृत्य भोजयेच्च शिवाग्रतः ॥३५॥ गोमयेनोपलिप्यात्र दर्भान्प्रागग्रकल्पितान् ॥ आस्तीर्य्य संयतप्राणः पिण्डानां च प्रदानकम् ॥३६॥ करिष्य इति संकल्प्य मण्डलत्रयमर्च्य च ॥ आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मनमप्यतः ॥३७॥ चतुर्थ्यन्तं वदन्पश्चादिमं पिण्डमितीरयन् ॥ ददामीति च सम्प्रोच्य दद्यात्पिण्डान्स्वभक्तितः ॥३८॥ कुशोदकं ततो दद्याद्यथाविधिविधानतः ॥ तत उत्थाप्य वै कुर्य्यात्प्रदक्षिणनमस्कृती ॥३९॥ ततो दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां च यथाविधि ॥ नारायणबलिं कुर्य्यात्तस्मिन्नेव स्थले दिने ॥४०॥ रक्षार्थमेव सर्वत्र विष्णोः पूजाविधिः स्मृतः ॥ कुर्य्याद्विष्णोर्महापूजां पायसान्नं निवेदयेत् ॥ ४१ ॥

ऐसा संकल्प करे, पीछे तीनों मंडलकी पूजाकर अपने परमात्मा और अन्तरात्माके ॥ ३७ ॥ पिण्डोंको चतुर्थ्यंत पद उच्चारण करके देना चाहिये 'आत्मने इदं पिण्ड ददामि' ऐसा कहकर ॥ ३८ ॥ पिण्डोंपर विधिपूर्वक कुशोंका जल दे यह विधान कर उठे और प्रदक्षिणा नमस्कार करे ॥ ३९ ॥ और ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दक्षिणा दे उसी स्थलमें उसी दिन नारायणबलि करे ॥ ४० ॥ और सब ओरसे रक्षाके निमित्त नारायणकी पूजा करे, इस प्रकार विष्णुकी महापूजा कर पायस अन्न निवेदन करे ॥ ४१ ॥

वेदपाठी बारह ब्राह्मणोंको बुलावे, केशवादि बारह नामोंसे गन्ध अक्षतसे उनकी पूजा करे ॥ ४२ ॥ और उनको उपानद और छत्र दे और अनेक सत्कारसे भक्तिपूर्वक उनको संतुष्ट करे॥४३॥फिर पृथ्वीमें पूर्वकी ओर अग्रभागकर कुशा बिछाय ओं भूः स्वाहा,ओं भुवः स्वाहा,ओं स्वः स्वाहा कहकर पायस अन्नकी बलि दे ॥४४॥ हे मुनीश्वर ! यह मैंने एकादशाहकी विधि कही, अब द्वादशाहकी विधि कहता हूं आदरसे सुनो ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठचां कैलाससंहितायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ सुब्रह्मण्य बोले, फिर बारहवें दिन उठकर

द्वादशाथ समाहूय ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ केशवादिभिरभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ ४२ ॥ उपानच्छत्रवस्त्रादि दत्त्वा तेभ्यो यथाविधि ॥ सन्तोषयेन्महाभक्त्या विविधैर्वचनैश्शुभैः॥४३॥आस्तीर्य्य दर्भान्पूर्वाग्रान्भूस्स्वाहा च भुवस्सुवः ॥ प्रणवादि प्रोच्य भूमौ पायसान्नं बलिं हरेत् ॥४४॥ एकादशाहसुविधिर्मया प्रोक्तो मुनीश्वर ॥ द्वादशाहविधिं वक्ष्ये शृणुष्वादरतो द्विज ॥४५॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठचां कैलाससंहितायां यतीनामेकादशाहकृत्यवर्णनन्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥ सुब्रह्मण्य उवाच ॥ द्वादशाहे समुत्थाय प्रातः स्नात्वा कृताह्निकः ॥ शिवभक्तान्यतीन्वापि ब्राह्मणान्वा शिवप्रियान् ॥ १ ॥ विमन्त्र्य तान्समाहूय मध्याह्ने चाप्लुताञ्छुचीन्॥विधिवद्भोजयेद्भक्त्या स्वाद्वन्नैर्विविधैश्शुभैः॥२॥सन्निधौ परमेशस्य पंचावरणमार्गतः ॥ पूजयेत्तस्य संस्थाप्य प्राणानायम्य वाग्यतः ॥ ३ ॥ महासंकल्पमार्गेण संकल्प्यास्मद्गुरोरिह ॥ पूजां करिष्य इत्युक्त्वा ततो दर्भानुस्प पृशेत् ॥ ४ ॥ पादौ प्रक्षाल्य चाचम्य स्वयं कर्ता च वाग्यतः ॥ स्थापयेदासने तान्वै प्राङ्मुखान्भस्मभूषितान् ॥ ५ ॥

प्रातःकालीन कृत्य करके अग्निहोत्र संपादन कर शिवके भक्त यति ब्राह्मण अथवा शिवजीके प्यारोंको ॥ १ ॥ निमन्त्रण करे हुओंको बुलावे वे स्नानसे पवित्र हों उनको अनेक प्रकारके स्वादिष्ट अन्न भोजनको लावे ॥ २ ॥ और उस परमेशके निकट उनको बैठाकर पूर्वोक्त पंचावरणके पूजन प्रकारसे उनका पूजन करे तीन प्राणायाम करके उनका पूजन कर वहां बैठावे ॥ ३ ॥ फिर महासंकल्पके अनुसार संकल्पकर आप हमारे गुरु हैं तुम्हारी पूजा करता हूं ऐसा कह कुशोंको छूकर॥४॥उनके चरण धोकर आप मौन हो आचमन करे, पीछे भस्मसे शोभित पूर्वमुख

उन ब्राह्मणोंको आसन पर बैठावे॥५॥शिव महेश्वरादिके क्रमसे ध्यान करे,शेषाचारको परमगुरु परात्पर गुरु परमेष्ठी गुरुका ध्यान कर और अपने नाममें अम्बा सहित बुद्धि करके॥६॥ (सदाशिव इदमासनं) ऐसा कहकर उन्हें आसन दे (ॐ सदाशिवमावाहयामि नमः) इस प्रकार अपना २ नाम ले ॥७॥ उच्चारण करके अर्घ्यके जलसे पाद्य आचमन अर्घ्य वस्त्र गन्धाक्षत ॥ ८ ॥ देकर पुष्पोंसे अलंकार कर ॐकारपूर्वक नाममें चतुर्थी विभक्ति कर नमः लगावे और सुगन्धित पुष्पोंसे ॥ ९ ॥ धूप दीप देकर सम्पूर्ण आराधन करे " सम्पूर्णमस्तु " ऐसा कह खडा होकर नमस्कार करे

सदाशिवादिक्रमतो ध्यायेदष्टौ च तत्र तान् ॥ परया सम्भावनयेतरानपि मुने द्विजान् ॥ परमेष्ठिगुरुं ध्यायेत्सांबबुद्ध्या स्वनामतः ॥ गुरुञ्च परमन्तस्मात्परापरगुरुं ततः ॥६॥ इदमासनमित्युक्त्वा चासनानि प्रकल्पयेत् ॥ प्रणवादि द्वितीयांते स्वस्य नाम समुच्चरन् ॥ ॥ ७ ॥ आवाहयामि नम इत्यावाह्यार्घोदकेन तु ॥ पाद्यमाचमनं चार्घ्यं वस्त्रगन्धाक्षतानपि ॥ ८ ॥ दत्त्वा पुष्पैरलंकृत्य प्रणवाद्यष्टनामभिः ॥ सचतुर्थीनमोऽन्तैश्च सुगन्धकुसुमैस्ततः ॥ ९ ॥ धूपदीपौ हि दत्त्वा च सकलाराधनं कृतम् ॥ सम्पूर्णमस्त्विति प्रोच्य नमस्कुर्यात्समुत्थितः ॥ १० ॥ पात्राणि कदलीपत्राण्यास्तीर्याद्भिर्विशोध्य च ॥ शुद्धान्नपायसापूपसूपव्यञ्जनपूर्वकम् ॥ ११ ॥ दत्त्वा पदार्थान्कदलीनालिकेरगुडान्वितान् ॥ पात्रासनानि च पृथग्दद्यात्सम्प्रोच्य च क्रमात् ॥ १२ ॥ परिषिच्य च सम्प्रोक्ष्य विष्णोर्हव्यमिति ब्रुवन् ॥ रक्षस्वेति करस्पर्शं कारयित्वा समुत्थितः ॥ १३ ॥ आपोशनं समर्प्याथ प्रार्थयेत्तानिदम्प्रति ॥ सदाशिवादयः प्रीता वरदाश्च भवन्तु मे ॥ १४ ॥

॥ १० ॥ फिर पात्र और केलके पत्तोंको जलसे धोकर परोसे और उनपर शुद्ध अन्न खीर पुए सूप व्यञ्जन (अनेक प्रकारकी मिठाई शाक पूरी कचौरी आदि सब व्यंजन) परोसे ॥ ११ ॥ कदली नारियलका गोला मिष्टान्न पदार्थोंको देकर भोजनपात्रके नीचे कुछ बिछादे और फिर सब वस्तुओंको देखकर ॥१२॥ सबपर जल छिडक प्रोक्षण कर (विष्णो हव्यम्) यह कहता हुआ (रक्षस्व) उच्चारणकर हाथसे अन्न स्पर्श कराकर उठे ॥१३॥ और जल देकर उन ब्राह्मणोंकी प्रार्थना करे कि आप सदाशिवादिके रूप हो प्रसन्न होकर मुझे वर दो ॥ १४ ॥

(ये देवादिव्येकादशरथ) इस मन्त्रका उच्चारणकर चावल छोड दे फिर उठकर नमस्कार करे और (सर्वत्र अमृतमस्तु) अर्थात् सब ओर अमृत हो ऐसा कहे ॥१५॥ और ब्राह्मणोंको प्रसन्नकर 'गणानांत्वा' यहांसे आरम्भकर 'अग्निमीडे पुरोहितम्' वा (रुद्र चमकाध्याय) नमस्ते रुद्रमन्यवे अथवा (अग्नाविष्णूसजोषसे) यह ग्यारह अनुवाक अथवा (परिणोरुद्रस्य हेतिः) यह छः ऋचा सद्योजातादि पंचब्रह्मके मंत्र पढे ॥ १६ ॥ फिर ब्राह्मण भोजन करे भोजन करनेके उपरान्त शंकरके मंत्रोंसेही हाथ मुख धोनेको उन्हें जल दे ॥१७॥ आचमन कर चुकने पर उन्हें आसनपर बैठावे फिर शुद्ध जल देकर कर्पूरादिसे ॥ १८ ॥ मुख सुगंधित कर दक्षिणा छत्री और पादुका उनकी भेंट करे व्यजन (पंखा) छोटी

ये देवा इति च ततो जप्त्वेदं साक्षतं त्यजेत्॥ नमस्कृत्य समुत्थाय सर्वत्रामृतमस्त्विति॥१५॥उक्त्वा प्रसाद्य च जपन्गणानांत्वेत्युपक्रमात् ॥ वेदादीन् रुद्रचमकौ रुद्रसूक्तं च पंच च ॥१६॥ ब्रह्माणि भोजनान्ते तु यावन्मन्त्रांश्च साक्षतान् ॥ दत्त्वोत्तरापाशनं च हस्तांघ्रिमुखशोधनम्॥१७॥कृत्वा चान्तान्स्वासनेषु स्थापयित्वा यथासुखम् ॥ शुद्धोदकम्प्रदायाथ कर्प्पूरादि यथोदितम्॥१८॥ मुखवासं दक्षिणां च पादुकासनपत्रकम्॥ व्यजनं फलकान्दण्डं वैणवं च प्रदाय तान् ॥१९॥ प्रदक्षिणनमस्कारैस्संतोष्याशिषमावहेत् ॥ पुन प्रणम्य सम्प्रार्थ्य गुरुभक्तिमचंचलाम् ॥२०॥ सदाशिवादयः प्रीता गच्छन्तु च यथासुखम् ॥ इत्युद्वास्य द्वारदेशावधि सम्यगनुव्रजन्॥२१॥निरुद्धस्तः परावृत्य द्वास्थैर्विप्रैश्च बन्धुभिः ॥दीनानाथैश्च सहितो भुक्तातिष्ठेद्यथासुखम्॥२२॥विकृतं न भवेत्क्वापि सत्यं सत्यं पुनः पुनः॥प्रत्यब्दमेवं कुर्वाणो गुर्वाराधनमुत्तमम्॥इह भुक्त्वा महाभोगान्छिवलोकमवाप्नुयात्॥२३॥

चौकी मूढे वा कुरसी और बांसकी छडी उनको देकर ॥ १९ ॥ प्रदिक्षणा और नमस्कारसे उन्हें सन्तुष्ट कर उनके आशीर्वाद ले फिर प्रणाम करके गुरुभक्ति हो यह उनसे प्रार्थना करे ॥ २० ॥ और कहे आप सदाशिवादि प्रसन्न होकर यथेच्छगमन करो, ऐसा कह द्वारेतक उनके साथ जाय ॥ २१ ॥ जब वे ब्राह्मण कहें जाओ जाओ घरमें बैठो तब लौटकर द्वारेतक बैठे हुए अतिथि ब्राह्मण बन्धु दीन और अनाथोंके सहित भोजन कर सुखपूर्वक स्थित हो ॥ २२ ॥ इसमें कोई विपरीत न होय यह सत्य २ है इस प्रकार

प्रतिवर्ष गुरुका आराधन करता हुआ यहां अनेक प्रकारके भोग भोगकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ सूतजी बोले, देव स्कन्दजी अपने शिष्य वामदेवपर इस प्रकार अनुग्रहकर प्रसन्न बुद्धि ज्ञानमें श्रेष्ठ महात्मा दूसरोंपर अनुग्रह करनेवाले फिर बोले ॥ २४ ॥ जो कुछ नैमिषारण्यके वासी मुनीश्वरोंसे पहले व्यासजीने कहा है इससे यह व्यासजी आदिगुरु हैं और आप दूसरे गुरु जगत्प्रसिद्ध हैं ॥ २५ ॥ और तुम्हारे मुखसे इसे सनत्कुमार सुनकर शिवभक्तिमें पूर्ण रहेंगे और व्यासजीसे कहेंगे तथा शिव भक्तिमें तत्पर व्यासजी श्रीशुकदेवसे कहेंगे ॥ २६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! एक २ के चार चार शिष्य वेदके अध्ययनमें सम्पन्न और धर्म स्थापन करनेवाले हैं ॥ २७ ॥ वैशंपायन, पैल,

॥ सूत उवाच ॥ ॥ एवं कृतानुग्रहमात्मशिष्यं श्रीवामदेवं मुनिवर्य्यमुक्त्वा ॥ प्रसन्नधीर्ज्ञानिवरो महात्मा कृत्वा परानुग्रहमाशु देवः ॥२४॥ यन्नैमिषारण्यमुनीश्वराणां प्रोक्तं पुरा व्यासमुनीश्वरेण ॥ तस्मादसावादिगुरुर्भवांस्तु द्वितीय आर्य्यो भुवने प्रसिद्धः ॥२५॥ श्रुत्वा मुनीन्द्रो भवतो मुखाब्जात्सनत्कुमारः शिवभक्तिपूर्णः ॥ व्यासाय वक्ता स च शैववर्य्यश्शुकाय वक्ता भविता च पूर्णः ॥२६॥ प्रत्येकं मुनिशार्दूलं शिष्यवर्गचतुष्टयम् ॥ वेदाध्ययनसंवृत्तं धर्मस्थापनपूर्वकम् ॥२७॥ वैशम्पायन एव स्यात्पैलो जैमिनिरेव च ॥ सुमन्तुश्चेति चत्वारोव्यासशिष्या महौजसः ॥२८॥ अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्च पुलहः क्रतुरेव च ॥ तव शिष्या महात्मानो वामदेव महामुने ॥२९॥ सनकश्च सनन्दश्च सनातनमुनिस्ततः ॥ सनत्सुजात इत्येते योगिवर्याः शिवप्रियाः ॥३०॥ सनत्कुमारशिष्यास्ते सर्ववेदार्थवित्तमाः ॥ गुरुश्च परमश्चैव परात्परगुरुस्ततः ॥ परमेष्ठिगुरुश्चैते पूज्यास्स्युश्शुकयोगिनः ॥३१॥

जैमिनी और सुमन्तु यह चार तेजस्वी व्यासके शिष्य हैं, यजुर्वेदमें शिव मन्त्रोंकी अधिकता होनेसे शिवशास्त्रका यही प्रधान ग्रन्थ कहा है ॥ २८ ॥ वामदेवके शिष्य कहते हैं अगस्त्य, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, हे महामुने ! वामदेवजी यह आपके शिष्य हैं ॥ २९ ॥ और सनक सनन्दन, सनातन मुनि और सनत्कुमार यह योगियोंमें श्रेष्ठ और शिवके प्रिय हैं ॥३०॥ यही सनत्कुमारके चारों शिष्य सब वेदार्थके जाननेवाले हैं, गुरु परमगुरु परात्पर गुरु परमेष्ठी गुरु ये शुक योगीको भी पूज्य हैं औरोंकी तो बातही क्या है ॥ ३१ ॥

यह ओंकारका ज्ञान शिष्यवर्गोंके निमित्त है यह चारों फलोंका देनेवाला सब उत्कृष्टका देनेवाला काशीमें श्रेष्ठ मुक्तिका दाता है ॥३२॥ यह पूर्वोक्त मुनिमंडल अद्भुत पर शिवके अधिष्ठान रूप है और वेदान्तके अर्थ विचारनेमें बुद्धिमान् यतियोंसे पूजित और वेदादिके विभागसे कल्पित पंचम हाभूतोंसे आवृत अर्थात् प्रकृतिके विकारयुक्त होनेसे भी शिवकी कृपासे मायाके किये मोहके दूर करने और ज्ञान देनेसे संतोषदायक जगत्के कल्याणकारक और लक्ष्मीका देनेवाला है ॥३३॥ यह रहस्य पर शिवका कहा हुआ वेदान्तके सिद्धान्तका परं निश्चय है हे मुने ! मुझसे श्रवण करनेके कारण पंडित इसको वामदेवमत कहते हैं ॥ ३४ ॥ इस कारण इसी मार्गसे चलते और शिवका ध्यान करते हुए (शिवोहमस्मि) यह कहते

इदं प्रणवविज्ञानं स्थितं वर्गचतुष्टये ॥ सर्वोत्कृष्टनिदानं च काश्यां सन्मुक्तिकारणम् ॥३२॥ एतन्मण्डलमद्भुतं परशिवाधिष्ठान रूपं सदा वेदान्तार्थविचारपूर्णमतिभिः पूज्यं यतीन्द्रैः परम्॥वेदादिप्रविभागकल्पितमहाकाशादिनाप्यावृतन्त्वत्संतोषकरं तथास्तु जगतां श्रेयस्करं श्रीप्रदम्॥३३॥ इदं रहस्यम्परमं शिवोदितं वेदान्तसिद्धांतविनिश्चितम्परम् ॥ मत्तश्श्रुतं यद्भवता ततो मुने भव न्मतम्प्राज्ञतमा वदंति ॥ ३४ ॥ तस्मादनेनैव पथा गतश्शिवं शिवोहमस्मीति शिवो भवेद्यतिः ॥ पितामहादिप्रविभागमुक्तये नद्यो यथासिन्धुमिमाः प्रयान्ति ॥३५॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवम्मुनीश्वरायैतदुपदिश्य सुरेश्वरः ॥ संस्मृत्य चरणाम्भोजे पित्रो स्सर्व्वसुरार्चिते ॥३६॥ कैलासशिखरम्प्राप कुमारश्शिखरावृतम् ॥ राजितम्परमाश्चर्य्यदिव्यज्ञानप्रदो गुरुः ॥३७॥ वामदेवोऽपि सच्छिष्यैस्संवृतश्शिखिवाहनम्॥ सम्प्रणम्य जगामाशु कैलासम्परमाद्भुतम् ॥३८॥

हुए यति शिवस्वरूप ही हो जाता है और ब्रह्मा विष्णु रुद्र आदिके भजनसे उन २ की साम्यतामुक्ति पाता हुआ मुक्त होजाता है जैसे सब नदी सागरमें पहुंचती हैं ॥३५॥ सूतजी बोले, स्कन्दजी इस प्रकार वामदेवजीको उपदेशकर सब देवताओंसे पूजित अपने माता पिताके चरणकमल स्मरण कर ॥ ३६ ॥ कुमार स्कन्दजी शिखरोंसे युक्त कैलासके शिखरको गये (इसीसे इसका नाम कैलाससंहिता है) यह पर्वत परम आश्चर्ययुक्त है यहींको वह दिव्यज्ञानदाता गुरु गये॥३७॥और वामदेवभी स्कन्दका अनुसरण करते शिष्योंसहित प्रणाम कर परमअद्भुत कैलासके

शिखरपर जाकर ॥३८॥ वहां शिव पार्वतीके दर्शन करतेही कि जो चरण मायाके नाश करनेवाले और मोक्ष देनेवाले हैं ॥ ३९ ॥ भक्तिसे सब अंग पूर्ण हो अपने शरीरका भी स्मरण भूल गये और उनके चरणोंमें गिरपडे और बारंबार नमस्कार कर उठ॥४०॥ वेद शास्त्रके आशयसे पूर्ण अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुतिकर मुनिराज देव देवीको प्रसन्न करने लगे ॥ ४१ ॥ देव देवीके चरणकमल अपने शिरके ऊपर धारणकर उनकी पूर्ण अनुग्रहको प्राप्त हो वहीं सुखसे रहने लगे ॥ ४२ ॥ आप भी इस प्रकार प्रणवके अर्थरूप महेश्वरको जानकर यहीं सुखसे स्थित हो यह वेदमें गुप्त भक्तोंका सर्वस्व

गत्वा कैलासशिखरम्प्राप्येशनिकटम्मुनिः॥ ददर्श मोक्षदम्मायानाशञ्चरणमीशयोः॥३९॥भक्त्या चार्पितसर्वांगो विस्मृत्य स्व कलेवरम् ॥ पपात सन्निधौ भूयो भूयो नत्वा समुत्थितः ॥ ४० ॥ ततो बहुविधैः स्तोत्रैर्वेदागमरसोत्कटैः ॥ तुष्टाव परमेशानं सांबिकं ससुतं मुनिः ॥४१॥ निधाय चरणाम्भोजन्देवदेव्योस्स्वमूर्द्धनि ॥ पूर्णानुग्रहमासाद्य तत्रैव न्यवसत्सुखम् ॥४२॥ भवन्तोऽपि विदित्वैवम्प्रणवार्थम्महेश्वरम् ॥ वेदगुह्यं च सर्वस्वन्तारकम्ब्रह्म मुक्तिदम् ॥ ४३ ॥ अत्रैव सुखमासीनाःश्रीविश्वेश्वरपादयोः ॥ सायुज्यरूपामतुलाम्भजध्वम्मुक्तिमुत्तमाम् ॥ ४४ ॥ अहं गुरुपदाम्भोजसेवायै बादराश्रमम् ॥ गमिष्ये भवताम्भूयस्सत्सम्भाषणमस्तु मे ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायांद्वादशाहकृत्यवर्णनपूर्व्वकव्यासादिशिष्यवर्गकथन न्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ इति कैलाससंहिता षष्ठी समाप्तिमगमत् ॥ ॥ ॐ नमश्शिवाय ॥

तारक मन्त्र मुक्तिदाता है ॥ ४३ ॥ तुम यहीं सुखसे रहो श्रीविश्वेश्वरके चरणकमलकी सायुज्ययुक्त उत्तम मुक्तिको भजन करो ॥ ४४ ॥ और मैं गुरुके चरणकमलकी सेवाके निमित्त बद्रिकाश्रममें जाऊंगा आपसे मेरा फिर समागम हो हे मुनीश्वरो ! जो आपने पूंछा था सो सब तुमसे कह दिया ॥ ४५ ॥ सम्पूर्ण वेद वेदान्तका सार और परमतत्त्व शिवही हैं (ईशानो ज्योतिरव्ययः एकोहि रुद्रो न द्वितीयः यो देवानां प्रभवोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः)इत्यादि श्रुतिसे एक शिवही अद्वितीय हैं अथर्वशीर्षके प्रथमखण्डमें लिखा है देवतोंने रुद्रसे पूँछा आप कौन हैं तब उन्होंने

कहा मैं ही जगत्की उत्पत्ति पालन करता हूं मुझसे अधिक कोई नहीं इसीके दूसरे तीसरे खण्डमें सब देवता शिवजीकी विभूति वर्णन किये हैं (यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु यो रुद्रो विश्वाभुवनानि विवेश तस्मै रुद्राय नमोस्तु ॥ तैत्तिरीय शाखा) जो रुद्र अग्नि जल ओषधि और सब संसारमें व्याप्त है, उनको नमस्कार है इसी प्रकार रुद्राध्यायमें (नमः स्रुत्याय च) इस मंत्रमें सब वस्तुमें शिवका सद्भाव कहा है (य एषोन्तर्हृदय आकाश०) आदि बृहदारण्यक (अथ यदिदमस्मिन्निति) इसमें शिवको सर्वेश लिखा है (ब्रह्मविष्ण्वग्निशुक्रार्कजलभूमिपुरोगमाः सुरासुरासः प्रसूतास्ततः सर्वे महेश्वराः) यह ब्रह्माण्डपुराणमें है कि ब्रह्मा विष्णु अग्नि शुक्र सूर्य जल भूमि आदि सब उन्हीं शिवसे उत्पन्न हुए हैं, हरिवंशमें कैलासयात्रामें शिवजीने कहा है हे गोविन्द ! जो तुम्हारे नाम हैं सो मेरेही हैं (शिवं प्रस्तुत्य सर्वाणि हवा एतस्य नामधेयानि) आश्वलायनमें लिखा है शिवकी स्तुतिकर नामकरण करे स्कंदपुराणमें लिखा हैं कि कोई ब्रह्मा कोई विष्णु कोई सूर्यादिकी मूर्त्तिकी उपासना करते हैं परन्तु (प्रतिपाद्यो महादेवः स्थितः सर्वासु मूर्त्तिषु) सब मूर्त्तियोंमें महदेवको प्रतिपादन करना चाहिये वही स्थित हैं कूर्ममें लिखा है (गोप्ताचैव जगच्छास्ता शक्तः शर्वो महेश्वरः ॥ यज्ञायां फलदो देवो महादेवानियोगतः) शिवहीको सब यज्ञोंका फलदाता लिखा है, महाभारत वनपर्व तीर्थयात्रामें (ततो गच्छेत्सुवर्णाक्षं त्रिपुलोकेषुविश्रुतम् ॥ यत्र विष्णुः प्रसादार्थं रुद्रमाराधयत्पुरा ॥ वरांश्च सुबहून् लेभे देवतैरपि दुर्लभान्) अर्थात् फिर सुवर्णाक्षको जाय जहां विष्णुने शिवकी आराधना कर अनेक वर पाये हैं, द्रोणपर्वमें अश्वत्थामाका लिंगार्चन है शान्तिपर्वमें भीष्मने कहा है (यं विष्णुरिन्द्रः सूर्यश्च ब्रह्मा लोकपितामहः ॥स्तुवन्ति विविधैःस्तोत्रैर्देवदेवं महेश्वरम् ॥ तमर्चयन्ति ये शश्वद्दुर्गाण्यतितरन्ति ते) जिनकी ब्रह्मा विष्णु इन्द्र सूर्य स्तुति करते हैं, उन शिवजीका जो पूजन करता है उसके सब कष्ट दूर हो जाते हैं फिर अनुशासनमें शिवसे ब्रह्मा विष्णुकी उत्पत्ति लिखी है (सोसृजद्दक्षिणा दंगाद्ब्रह्माणं लोकभावनम् ॥ वामपार्श्वात्तथा विष्णुमादौ प्रभुरथासृजत् ॥ अप्रज्ञातं जगत्सर्वं तदाह्येको महेश्वरः) जब कुछ नहीं था तब एक शिव थे इत्यादि बहुत स्थलमें महाभारतमें शिवको सर्वेश्वर कहा है, हरिवंशमें श्रीकृष्णने शिवकी स्तुति कर वर पाया है, वाल्मीकिमें(रौद्राय वपुषे नमः) उत्तरमें (ते तु रामस्य तच्छ्रुत्वा नमस्कृत्य वृषध्वजम्) और अश्वमेधमें रामचन्द्रने शिवाराधन किया है, यथा (विशेषाद्ब्राह्मणान् सर्वान् पूजयामास चेश्वरम् ॥ यज्ञेन यज्ञ हंतारमश्वमेधेन शंकरम् ॥ और युद्धकाण्डमें (अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः) शिवके पूजनकी सर्वोत्कृष्टता कही है,

भागवतके चौथे स्कंदमें दक्षके यज्ञमें शिवके क्रोधशान्तिकी इच्छावाले देवताओंसे ब्रह्माने कहा है (नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम् ॥ विदुः प्रमाणं बल वीर्ययोर्वा तस्यात्मतंत्रस्य कथां विधित्से इति ॥) अर्थात् मैं विष्णु तुम और ऋषि आदि कोई भी उन शिवकी महिमाको नहीं जानते अष्टमस्कंधमें (न ते गिरित्राऽखिललोकपालविरंचिवैकुण्ठसुरेन्द्रगमनम् ॥ ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च सत्त्वं न यद्ब्रह्म निरस्त भेदमिति) इसमें विष्णु ब्रह्मादिसे शिवकी उत्कृष्टता संपादनकी है, स्कंदमें (एषां त्रयाणामधिकः शिवं परं कारणम्) इन तीनों देवताओंसे अधिक शिव हैं इसी प्रकार पद्मपुराणमें (यस्यान्तःस्थानि भूतानि यस्मात्सर्वं प्रवर्तते॥ यदाहुस्तत्परं तत्त्वं स देवः स्यान्महेश्वरः) इत्यादि चारों वेदोंने शिवकी स्तुति की है; विष्णुपुराणमें लिखा है (धिक् तेषां धिक् तेषां धिक् तेषां जन्म धिक् तेषाम् ॥ येषां न वसति हृदये कुमतिर्यथा विमोचको रुद्रः) जिनके हृदयमें शिवभक्ति नहीं उनको धिक्कार है ऋग्वेदमें (अन्तरिक्षंति तं जने रुद्रं परो मनीषया गृभ्णंति जिह्वया ससमिति) पुरुषसूक्तमें भी (उतामृतत्वस्येशान०) इससे ईशानपदसे शिवकाही बोध होता है, इसी प्रकार बौधायनसूत्र और कात्यायनसूत्रमें भी (रुद्रोह्येवैतत्सर्वं) और आश्वलायनमें (तस्मै शिवाय महते नमः सूक्ष्माक्षरात्मने) इससे शिवकी सर्वोत्कृष्टता संपादनकी है, पातंजलमें भी (पुरुष विशेष ईश्वरः) (तस्य वाचकः प्रणवः) यहां भी शिवकाही बोधक है यही वार्ता वायुसंहिताके सातवें अध्यायमें लिखी है, कौमुदीकारने इसी आशयसे सूत्रोंको शिवमूलक जानकर शिवका विषय स्पष्ट किया है, पद्मपुराणके गीतामाहात्म्यमें गीताके अठारह अध्यायोंको शिवकी मूर्त्ति नारायणने कहा है (ईश्वरः सर्वभूतानां) और 'तमेवं शरणं गच्छ' यह शिव परतत्त्व है रसेश्वर मुनिने भी कहा है (कल्पान्तरे कदाचित्तु दग्ध्वा लोकान् महेश्वरः । सहसैवा सृजद्विष्णुब्रह्माणं च निजेच्छया) शिवने सृष्टिकी आदिमें ब्रह्मा और विष्णुको उत्पन्न किया है, पराशर मुनिने कहा है जो और कहीं पुराणोंमें विष्णु आदि देवताकी उत्कृष्टता है वह शिवकी विभूतिकी उत्कृष्टतासे कही है, जगत्के निमित्त वे चाहैं किसी प्रकारसे प्रकट हों परन्तु कुछ भेद नहीं है सब पुराण शिवकाही वर्णन करते हैं (दश शैवपुराणानि सात्त्विकानि विदुर्बुधाः)जिनमें दशपुराण शिवकी अधिक महिमा कहनेसे सात्त्विक हैं वह ब्राह्मणोंको सुनने चाहिये चार वैष्णवपुराण क्षत्रियोंको सुनने चाहिये ब्रह्मपुराण वैश्योंको मंगल करनेवाला है (अथापि ब्रह्मविष्णुभ्यां न द्दष्टोयं महेश्वरः ॥ पशूनां पतिरीशोऽयं ब्रह्माद्याः पशवः स्मृताः) इससे भी शिवकी सर्वोत्कृष्टता कही है, परन्तु पाशुपतोंके दो भेद हैं एक दो

श्रुतिके अनुसार चलते हैं एकस्वच्छन्द वाममार्गमें चलते हैं, स्वच्छन्द चारियोंका वेदविरुद्ध होनेसे प्रमाण नहीं है जो प्राणी वेदबाह्य होकर नास्तिक हुए जाते थे उनके मोहनेके निमित्त वाम आदि आगम देवतोंने बनाये हैं इस प्रकार श्रुति स्मृति पुराण इतिहाससे शिवकोही सर्वेश्वर परंतत्त्व जानकर भजते और नमस्कार करते हैं इस प्रकारसे जो कोई इस संहिताको श्रवण करते हैं वह यहां सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त होकर अन्तमें परमभक्तिको पाकर अवश्य मुक्त होजाते हैं और जन्मजन्मान्तरमें उनकी शिवमें भक्ति होती है अर्थात् पूर्णशक्ति न होकर जिसका शरीरपात हो जाता है उसको दूसरे जन्ममें सिद्धि होती है जैसा गीतामें लिखा है और शिवगीतामें यही लिखा है (नमे भक्तो विनश्यति) इत्यादि ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दोहा—शिवशंकरको ध्यानधर, गिरिजहि शीश नवाय । कियो संहिताको तिलक, लखहिं सुजन चित लाय ।
शशिबाणांकभूम्यब्दे कार्तिके कृष्णपंचमी ॥ गुरुवारे शिवं ध्यात्वा व्याख्यापूर्तिः कृता मया ॥ १ ॥

शुभमस्तु

१हमारे किये शिवगीताके टीकामें इसका विवरण देख लेना, हमने जितने टीके निर्माण किये हैं किसी प्रकारका पक्षपात नहीं किया है, किन्तु तीनों देवताओंमें हमारी एकही दृष्टि है, हम न्यूनाधिक नहीं मानते हैं उपासना एकही देवताकी करनी उचित है, वह सब एकही रूप है, परन्तु उपासक रुचिके अनुसार भजन करते हैं, इसी कारण व्यासजीने सबही देवताओंकी सबसे उत्कृष्ट महिमा वर्णन की है, चाहे वह किसी प्रकारसे हो और कहीं २ स्पष्ट कह दिया है कि यह सब एक हैं सो बुद्धिमान् जानते हैं ।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीका० षष्ठी कैलाससंहिता समाप्ता

अथ श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायुते सप्तमीवायवीयसंहिता

पूर्वखण्डं प्रारभ्यते

ब्रह्मा.
मुनिगण.

देवी.
ब्रह्मा.

ऋषिगण.
वायुदेव.

शौनकादिऋषि.
वायुदेव.

शिपइंद्ररुपि.
उपमन्यु

नन्दी
शौनका-
दिऋषि.

दोहा–श्रीमच्छंकर गौरिपति, वेदगम्य भगवान ॥ जगवन्दित तारण तरण, जनरञ्जन सुखदान ॥ १ ॥
कृपासिन्धु अशरण शरण, हरण सकल भयशूल ॥ शिव ज्वालापरसादपर, सदा रहो अनुकूल ॥ २ ॥
विघ्नविदारण सुखकरन, गणपति सिद्धिदातार ॥ चरणकमल रजको सदा, वन्दौ बारम्बार ॥ ३ ॥
नन्दीश्वर गिरिजा गिरिश, गङ्गाधर सुर ईश ॥ वानी जगरानी गिरहि, पुनि २ नावहुँ शीश ॥ ४ ॥
वायुसंहिताको करत, भाषा तिलक विचार ॥ कृपाकरहिं जन जान मोहिं;अभिमत फलदातार ॥ ५ ॥

व्यासजी बोले, शिव गणपति कार्तिकेय, प्रधान पुरुषेश्वर, सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले शंकरको प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगौरीशंकराभ्यां नमः ॥ अथ सप्तमी वावीयसंहिता प्रारभ्यते ॥ व्यास उवाच ॥ नमश्शिवाय सोमाय सगणाय ससूनवे ॥ प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यंतहेतवे॥१॥ शक्तिरप्रतिमा यस्य ह्यैश्वर्य्यं चापि सर्वगम् ॥ स्वामित्वं च विभुत्वं च स्वभावं संप्रचक्षते ॥२॥ तमजं विश्वकर्माणं शाश्वतं शिवमव्ययम् ॥ महादेवं महात्मानं व्रजामि शरणं शिवम् ॥ ३ ॥ धर्मक्षेत्रे महातीर्थे गंगाकालिंदिसंगमे ॥ प्रयागे नैमिषारण्ये ब्रह्मलोकस्य वर्त्मनि ॥४॥ मुनयश्शंसितात्मानः सत्यव्रतपरायणाः ॥ महौजसो महाभागा महासत्रं वितेनिरे ॥ ५ ॥ तत्र सत्रं समाकर्ण्य तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ॥ साक्षात्सत्यवतीसूनोर्वेदव्यासस्य धीमतः ॥ ६ ॥ शिष्यो महात्मा मेधावी त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ पंचावयवयुक्तस्य वाक्यस्य गुणदोषवित् ॥ ७ ॥

जिनकी अद्वितीय शक्ति है, सर्वगामी जिनका ऐश्वर्य है स्वामी और व्यापकपन जिनका स्वभाव कहा जाता है ॥ २ ॥ उन अजन्मा, विश्वके कर्ता, निरन्तर स्थित, अविनाशी, शिव, महादेव, महात्मा शिवकी शरण होता हूं ॥ ३ ॥ धर्मके स्थान महातीर्थ गंगा यमुनाके संगमवाले तथा ब्रह्मलोकके मार्गवाले प्रयाग तथा नैमिषारण्यमें ॥ ४ ॥ सत्यव्रतमें परायण शुद्धात्मावाले महातेजस्वी महाभाग्यवान् मुनियोंने महायज्ञका आरम्भ किया ॥५॥ उन अक्लिष्टकर्मा ऋषियोंके उस यज्ञके वृत्तान्तको सुनकर साक्षात् सत्यवतीपुत्र वेद व्यासके ॥६॥ शिष्य महात्मा बुद्धिमान्

तीनों लोकोंमें विख्यात तथा न्यायशास्त्रमें कहे पांच अवयवयुक्त वाक्यके गुण दोष जाननेवाले ॥७॥ साक्षात् बृहस्पतिको भी वाक्यमें निरुत्तर करनेवाले, सुननेवालोंमें पदवर्णनमें मनोहर सम्पादन करनेवाले ॥ ८ ॥ कथा कहनेमें बडे निपुण वक्ता, काल और नीतिके जाननेवाले कवि पुराण जाननेवालोंमें श्रेष्ठ सूतजी उस स्थानमें आये ॥९॥ सूतजीको आया देखकर सब मुनि प्रसन्न हो गये, उनको प्रेमपूर्वक विधिसे ऋषियोंने पूजा ॥ १० ॥ मुनियोंकी की हुई उस पूजाको ग्रहण कर आत्मयुक्त सूतजी मुनियोंके दिये हुए आसनपर विराजे ॥११॥ तब उन भावितात्मा मुनियोंकी संगतिसे सूतजी प्रसन्न हुए और मुनियोंका चित्त पुराण सम्बन्धी कथा सुननेको उत्कंठित हुआ ॥१२॥ तब ऋषि अनुकूल वचनोंसे

उत्तरोत्तरवक्ता च ब्रुवतोऽपि बृहस्पतेः ॥ मधुरः श्रवणानां च मनोज्ञपदपर्वणाम् ॥ ८ ॥ कथानां निपुणो वक्ता कालविन्नयवित्कविः ॥ आजगाम स तं देशं सूतः पौराणिकोत्तमः ॥ ९ ॥ तं दृष्ट्वा सूतमायांतं मुनयो हृष्टमानसाः ॥ तस्मै साम च पूजां च यथावत्प्रत्य पादयन् ॥ १० ॥ प्रतिगृह्य सतां पूजां मुनिभिः प्रतिपादिताम् ॥ उद्दिष्टमासनं भेजे नियुक्तो युक्तमात्मनः ॥११॥ ततस्तत्संगमादेव मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ सोत्कंठमभवच्चितं श्रोतुं पौराणिकीं कथाम् ॥ १२ ॥ तदा तमनुकूलाभिर्वाग्भिः पूज्य महर्षयः ॥ अतीवाभिमुखं कृत्वा वचनं चेदमब्रुवन् ॥ १३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ रोमहर्षण सर्वज्ञ भवान्नो भाग्यगौरवात् ॥ संप्राप्तोद्य महाभाग शैवराज महामते ॥ १४ ॥ पुराणविद्यामखिलां व्यासात्प्रत्यक्षमीयिवान् ॥ तस्मादाश्चर्यभूतानां कथानां त्वं हि भाजनम् ॥१५॥ रत्नानामुरुसाराणां रत्नाकर इवार्णवः ॥ यच्च भूतं यच्च भव्यं यच्चान्यद्वस्तु वर्तते॥१६॥ न तवाविदितं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते॥ त्वमदृष्टवशादस्मद्दर्शनार्थमिहागतः ॥ अकुर्वन्किमपि श्रेयो न वृथा गन्तुमर्हसि ॥१७॥

सूतजीका सत्कार कर और उनको विशेषकर अपने सन्मुख कर यह वचन बोले ॥ १३ ॥ ऋषि बोले, हे सर्वज्ञ रोमहर्षण सूतजी आप हमारे भाग्यके कारणही यहां प्राप्त हुए हो, हे महाभाग ! हे शैवराज ! हे महाबुद्धिमान् ! ॥ १४ ॥ आपने समस्त पुराणोंकी कथा साक्षात् व्यासजीसे प्राप्त की है, इससे आश्चर्यकी भरी हुई समस्त कथाओंके आप पात्र हैं ॥१५॥ जिस प्रकार समुद्रमें बडे मोलके रत्न रहते हैं, इसी प्रकार भूत भविष्य वर्तमान जो कुछ वस्तु है ॥१६॥ तीनों लोकोंमें तुमको कुछ भी अविदित नहीं है, आप हमारे प्रारब्धसेही यहां आकर प्राप्त हुये

हो, अब आप हमारा कल्याण किये बिना यहांसे वृथा नहीं जा सकते ॥ १७ ॥ इससे जो अत्यन्तही सुनने योग्य हो पुण्यदायक सत्कथा ज्ञानकी संहितासे युक्त वेदान्त सारका सर्वस्व पुराण हमको सुनाइये ॥ १८ ॥ जब वेदवादी मुनियोंने सूतजीकी इस प्रकारसे प्रार्थना करी, तब सूतजी परम मनोहर न्याय युक्त सुन्दर वाणी बोले ॥ १९ ॥ सूतजी बोले, जब कि, आपने अनुग्रह करके इस प्रकार मेरा सत्कार किया है, तब मैं ऋषि पूजित पुराणको भली प्रकार कैसे नहीं कह सकता हूं ॥ २० ॥ महादेव, देवी, स्कन्दजी, गणेशजी, नन्दी, तथा साक्षात् सत्यवती पुत्र व्यासजीको प्रणाम करके ॥ २१ ॥ परम पुण्यका देनेवाला वेदसम्मत शिवजीको ज्ञानका समुद्र साक्षात् भक्ति मुक्तिके

तस्माच्छ्राव्यतरं पुण्यं सत्कथाज्ञानसंहितम् ॥ वेदांतसारसर्वस्वं पुराणं श्रावयाशु नः ॥१८॥ एवमभ्यर्थितस्सूतो मुनिभिर्वेदवादिभिः ॥ श्लक्ष्णां च न्यायसंयुक्तां प्रत्युवाच शुभां गिरम् ॥१९॥ सूत उवाच॥ पूजितोऽनुगृहीतश्च भवद्भिरिति चोदितः ॥ कस्मात्सम्यङ्न विब्रूयां पुराणमृषिपूजितम् ॥२०॥ अभिवंद्यमहादेवं देवीं स्कंदं विनायकम् ॥ नंदिनं च तथा व्यासं साक्षात्सत्यवतीसुतम् ॥२१॥ वक्ष्यामि परमं पुण्यं पुराणं वेदसंमितम् ॥ शिवज्ञानार्णवं साक्षाद्भक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥२२॥ शब्दार्थन्यायसंयुक्तं रागमार्थैर्विभूषितम् ॥ श्वेतकल्पप्रसंगेन वायुना कथितं पुरा ॥ २३ ॥ विद्यास्थानानि सर्वाणि पुराणानुक्रमं तथा॥ तत्पुराणस्य चोत्पत्तिं ब्रुवतो मे निबोधत ॥२४॥ अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ॥ पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्याश्चेताश्चतुर्दश ॥ ॥ २५ ॥ आयुर्वेदो धनुर्वेदो गांधर्वश्चेत्यनुक्रमात् ॥ अर्थशास्त्रं परं तस्माद्विद्या ह्यष्टादश स्मृताः ॥ २६ ॥ अष्टादशानां विद्यानामेतासां भिन्न वर्त्मनाम् ॥ आदिकर्त्ता कविस्साक्षाच्छूलपाणिरिति श्रुतिः ॥ २७ ॥

फलका देनेवाला पुराण कहता हूं ॥ २२ ॥ जो शब्दार्थ न्यायसे युक्त वेदार्थमें विभूषित है, तथा पहले वायुने श्वेतकल्पके प्रसंगमें वर्णन किया है ॥ २३ ॥ पुराणोंका अनुक्रम सब विद्याओंका स्थान है, उस कारण मेरे द्वारा आप पुराणकी उत्पत्ति सुनो ॥ २४ ॥ चार वेद उनको शिक्षा, कल्प, व्याकरणादि अंग, मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्म शास्त्र, यह चौदह विद्या हैं ॥ २५ ॥ आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अर्थ शास्त्र, यह चार और मिलानेसे अठारह विद्या होती हैं॥२६॥इन भिन्न भिन्न मार्गवाली अठारह विद्याओंके आदिकर्त्ता साक्षात्

शिव हैं, ऐसा श्रुति कहती है ॥ २७ ॥ उन सब जगत्के पतिने इस जगत्की उत्पत्ति करनेको पहले सनातन पुत्र ब्रह्माजीकी रचना की ॥ २८ ॥ उन विश्वयोनि प्रथम पुत्र ब्रह्माजीके निमित्त ईश्वरने सृष्टिके निमित्त पहले यह विद्या दी ॥ २९ ॥ पालन करनेकी शक्ति विष्णुजीको दी, यह मध्यम पुत्र विष्णुजी हैं और ब्रह्माजीके भी रक्षक हैं ॥ ३० ॥ ब्रह्माजीने विद्याको प्राप्त हो प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छासे सब शास्त्रोंके बीचमें प्रथम पुराणोंको प्रकाशित किया ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त उनके मुखोंसे वेद निर्गत हुए, मत्स्य पुराणमें लिखा है कि एक अरब श्लोकोंमें प्रथम कल्पमें एकही पुराण था; जिससे त्रिवर्ग साधन होता था यथाहि "पुराणमेकमेवासीत्तदाकल्पान्तरेऽनघ ॥ त्रिवर्गसाधनं पुण्यं कल्पकोटिप्रविस्तरम्" इसके उपरान्त ब्रह्माके मुखसे सब शास्त्रोंकी प्रवृत्ति हुई है ॥ ३२ ॥ जब पृथ्वीमें प्रजा इसके विस्तार कथन कर

स हि सर्वजगन्नाथः सिसृक्षुरखिलं जगत् ॥ ब्रह्माणं विदधे साक्षात्पुत्रमग्रे सनातनम्॥२८॥तस्मै प्रथमपुत्राय ब्रह्मणे विश्वयोनये॥ विद्याश्चेमा ददौ पूर्वं विश्वसृष्ट्यर्थमीश्वरः॥२९॥पालनाय हरिं देवं रक्षाशक्तिं ददौ ततः ॥ मध्यमं तनयं विष्णुं पातारं ब्रह्मणोऽपि हि॥३०॥लब्धविद्येन विधिना प्रजासृष्टिं वितन्वता॥ प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्॥३१॥अनंतरं तु वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥प्रवृत्तिस्सर्वशास्त्राणां तन्मुखादभवत्ततः॥३२॥यदास्य विस्तरं शक्ता नाधिगंतुं प्रजा भुवि॥तदा विद्यासमासार्थं विश्वेश्वरनियोगतः३३॥द्वापरांतेषु विश्वात्मा विष्णुर्विश्वंभरः प्रभुः॥व्यासनाम्ना चरत्यस्मिन्नवतीर्य महीतले।३४॥एवं व्यस्ताश्च वेदाश्च द्वापरेद्वापरे द्विजाः॥निर्मितानि पुराणानि अन्यानि च ततः परम्॥३५॥स पुनर्द्वापरे चास्मिन्कृष्णद्वैपायनाख्यया ॥ अरण्यामिव हव्याशी सत्यवत्यामजायत ॥३६॥ संक्षिप्य स पुनर्वेदांश्चतुर्द्धा कृतवान्मुनिः॥ व्यस्तवेदतया लोके वेदव्यास इति श्रुतः ॥३७॥

नेमें समर्थ न हुई, तब उन विस्तृत विद्याओंके संक्षेप करनेके निमित्त विश्वेश्वरके निमित्त विश्वेश्वरकी आज्ञासे ॥ ३३ ॥ द्वापरके अन्तमें विश्वात्मा सम्पूर्ण जगत्स्वरूप विष्णु भगवान् पृथ्वीमें अवतार ले व्यास नामसे विख्यात हुए ॥ ३४ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार प्रत्येक द्वापरमें वेदोंका विभाग होता है, और दूसरे पुराण निर्मित होते हैं ॥ ३५ ॥ फिर द्वापरके अन्तमें कृष्णद्वैपायन नामसे अरणीमें अग्निके समान यही सत्यवतीमें जन्मे ॥ ३६ ॥ फिर वेदोंका संक्षेपकर चार प्रकारसे विभक्त किया, वेदोंका अधिक विस्तार करनेसे लोकमें वेदव्यास नामसे

विख्यात हुए ॥ ३७ ॥ पीछे पुराणको संक्षिप्त कर चारलाख श्लोकोंमें किया, देवलोकमें अबभी उन पुराणोंका सौकरोड़ विस्तार है ॥ ३८ ॥ जो ब्राह्मण अंग उपनिषद्सहित चारों वेदोंको जानता है, और पुराणोंको न जाने तो वह चतुर नहीं होता ॥ ३९ ॥ इतिहास और पुराणोंसे वेदोंका विस्तार करे थोडे पढे हुएसे वेद डरता है कि मेरी प्रतारणा करेगा॥४०॥ उत्पत्ति, प्रलय, वंश, मन्वन्तर कथा, वंशानुचरित जिनमें हो उसे पुराण कहते हैं ॥४१॥ तथा अठारह पुराण प्रसिद्ध हैं बृहत् सूक्ष्मके भेदसे मुनियोंने कहे हैं ॥४२॥ ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण,

पुराणानाञ्च संक्षिप्तं चतुर्लक्षप्रमाणतः ॥ अद्यापि देवलोके तच्छतकोटिप्रविस्तरम् ॥३८॥ यो विद्याच्चतुरो वेदान् सांगोपनिषदान्द्विजः ॥ न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ॥३९॥ इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ॥ बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ॥४०॥ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च ॥ वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥४१॥ दशधा चाष्टधा चैतत्पुराणमुपदिश्यते ॥ बृहत्सूक्ष्मप्रभेदेन मुनिभिस्तत्त्ववित्तमैः ॥४२॥ ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ॥ भविष्यं नारदीयं च मार्कंडेयमतः परम् ॥४३॥ आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं लैंगं वाराहमेव च ॥ स्कान्दं च वामनं चैव कौर्म्मं मात्स्यं च गारुडम् ॥४४॥ ब्रह्मांडं चेति पुण्योऽयं पुराणानामनुक्रमः ॥ तत्र शैवं तुरीयं यच्छार्वं सर्वार्थसाधकम् ॥४५॥ ग्रंथो लक्षप्रमाणं तद्वच्चस्तं द्वादशसंहितम् ॥ निर्मितं तच्छिवेनैव तत्र धर्मः प्रतिष्ठितः ॥४६॥ तदुक्तेनैव धर्मेण शैवास्त्रैवर्णिका नराः ॥ तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छञ्छिवमेव समाश्रयेत् ॥ ४७ ॥ तमाश्रित्यैव देवानामपि मुक्तिर्न चान्यथा ॥ ४८ ॥

शिवपुराण, भागवत, भविष्य, नारदीय, मार्कण्डेय ॥ ४३ ॥ अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, बाराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड ॥ ४४ ॥ और ब्रह्माण्डपुराण यह पुराणोंके नाम हैं, इनमें चौथा शिवपुराण भक्तोंके सब मनोरथ सिद्ध करनेवाला है ॥ ४५ ॥ इसके लक्ष श्लोक और बारह संहिता हैं, यह साक्षात् शिवनिर्मित है और धर्म प्रतिष्ठित है ॥ ४६ ॥ इसमें कहे शिवभक्त तीन वर्णके मनुष्य शिवके प्रसादसे हुए ही जन्ममें मुक्त होजाते हैं ॥ ४७ ॥ इस कारण मुक्तिकी इच्छा करनेवाले शिवका ही आश्रय करनेसे देवताओंकी भी मुक्ति होजाती है, इसमें सन्देह

नहीं ॥ ४८ ॥ जो वेद सम्मत शिवपुराण है मैं संक्षेपसे इसके भेद वर्णन करता हूँ आप श्रवण कीजिये ॥ ४९ ॥ विश्वेश्वर, रुद्र, विनायक, उमा, मातृसंहिता, रुद्रैकादश ॥ ५० ॥ कैलास, शतरुद्र, कोटिरुद्र, सहस्र कोटिरुद्र, वायवीय संहिता ॥ ५१ ॥ धर्म संहिता यह बारह संहिता इस पुराणमें हैं इसमें विद्येश्वर संहिता दशसहस्र ॥ ५२ ॥ रुद्र विनायक उमा और मातृसंहिता प्रत्येक आठ २ सहस्र हैं, रुद्रैकादश ॥ ५३ ॥ तेरह सहस्र और कैलास संहिता छः सहस्र, शतरुद्र तीन सहस्र, सब अर्थ ज्ञानसे युक्त कोटि रुद्र ॥ ५४ ॥ नौ सहस्र श्लोक,

यदिदं शैवमाख्यातं पुराणं वेदसंमितम् ॥ तस्य भेदान्समासेन ब्रुवतो मे निबोधत ॥४९॥ विद्येश्वरं तथा रौद्रं वैनायकमनुत्तमम्॥औमं मातृपुराणं च रुद्रैकादशकं तथा॥५०॥कैलासं शतरुद्रं च शतरुद्राख्यमेव च॥सहस्रकोटिरुद्राख्यं वायवीयं ततःपरम् ॥५१॥ धर्मसंज्ञं पुराणं चेत्येवं द्वादश संहिताः ॥ विद्येशं दशसाहस्रमुदितं ग्रंथसंख्यया ॥५२॥ रौद्रं वैनायकं चौमं मातृकाख्यं ततः परम् ॥ प्रत्येकमष्टसाहस्रं त्रयोदशसहस्रकम् ॥५३॥ रुद्रैकादशकाख्यंयत्कैलासं षट्सहस्रकम् ॥ शतरुद्रं त्रिसाहस्रं कोटिरुद्रं ततः परम् ॥५४॥ सहस्रैर्नवभिर्युक्तं सर्वार्थज्ञानसंयुतम् ॥ सहस्रकोटिरुद्राख्यमेकादशसहस्रकम् ॥५५॥ चतुस्सहस्रसंख्येयं वायवीयमनुत्तमम् ॥ धर्मसंज्ञं पुराणं यत्तद्द्वादशसहस्रकम् ॥५६॥ तदेवं लक्षमुद्दिष्टं शैवं शाखाविभेदतः ॥ पुराणं वेदसारं तद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ५७ ॥ व्यासेन तत्तु संक्षिप्तं चतुर्विंशत्सहस्रकम् ॥ शैवन्तत्र पुराणं वै चतुर्थं सप्तसंहितम् ॥ ५८ ॥ विद्येश्वराख्या तत्राद्या द्वितीया रुद्रसंहिता ॥ तृतीया शतरुद्राख्या कोटिरुद्रा चतुर्थिका ॥ ५९ ॥

सहस्र कोटि रुद्र संहिता ग्यारह सहस्र ॥ ५५ ॥ वायु संहिता चार सहस्र, धर्म संहिता बारह सहस्र ॥ ५६ ॥ इस प्रकार शाखा भेदसे शिव पुराणके एक लक्ष श्लोक हैं, यह वेदोंका सार पुराण भुक्ति मुक्ति देनेवाला है ॥ ५७ ॥ व्यासजीने इसको चौबीस सहस्र श्लोकोंमें संक्षेप किया है, यह शिवपुराण चौथा सात संहिता भेदोंसे युक्त है ॥ ५८ ॥ इसमें पहली विद्येश्वर संहिता, दूसरी रुद्र संहिता, तीसरी शत रुद्र चौथी कोटि रुद्र ॥ ५९ ॥

पांचवीं उमा, छठी कैलाससंहिता और सातवीं वायुसंहिता है ॥ ६० ॥ इसमें विद्येश्वर दो २००० सहस्र, रुद्रसंहिता १०५०० दशहजार पांचसौ ॥ ६१ ॥ शतरुद्रसंहिता २१८० दो हजार एकसौ अस्सी, कोटिरुद्रसंहिता २२४० दोहजार दोसौ चालीस, उमा संहिता १८४०एक हजार आठसौ चालीस ॥ ६२ ॥ कैलाससंहिता १२४० एक हजार दोसौ चालीस, वायुसंहिता ४००० चारसहस्र ॥ ६३ ॥ इस प्रकार संख्या भेदसे यह शिवपुराण परम्परासे चौबीस सहस्र है पुण्यदायक है ॥ ६४ ॥ और वायुसंहितामें जो चारसहस्र श्लोक कहे हैं, उस वायुसंहिताके दो भाग हैं, सो मैं तुमसे वर्णन करूँगा ॥ ६५ ॥ यह श्रेष्ठ शास्त्र जो वेदका जाननेवाला न हो उसके प्रति न कहना चाहिये जो

पंचमी कथिता चोमा षष्ठी कैलाससंहिता ॥ सप्तमी वायवीयाख्या सप्तैवं संहिता इह ॥ ६० ॥ विद्येश्वरं द्विसाहस्रं रौद्रं पंचशतायुतम् ॥ त्रिंशत्तथा द्विसाहस्रं सार्द्धैकशतमीरितम् ॥६१॥ शतरुद्रन्तथा कोटिरुद्रं व्योमयुगाधिकम्॥ द्विसाहस्रं चद्विशतं तथौमं भूसहस्रकम् ॥ ६२ ॥ चत्वारिंशत्साष्टशतं कैलासं भूसहस्रकम् ॥ चत्वारिंशच्च द्विशतं वायवीयमतः परम् ॥६३॥ चतुस्साहस्र संख्याकमेवं संख्याविभेदतः ॥ श्रुतम्परमपुण्यन्तु पुराणं शिवसंज्ञकम् ॥६४॥ चतुःसहस्रकयत्तु वायवीयमुदीरितम् ॥ तदिदं वर्त्तयिष्यामि भागद्वयसमन्वितम् ॥६५॥ नावेदविदुषे वाच्यमिदं शास्त्रमनुत्तमम् ॥ न चैवाश्रद्धधानाय नापुराणविदे तथा ॥६६॥ परीक्षिताय शिष्याय धार्मिकायानसूयवे॥ प्रदेयं शिवभक्ताय शिवधर्मानुसारिणे॥६७॥ पुराणसंहिता यस्य प्रसादान्मयि वर्त्तते॥ नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे ॥ ६८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे विद्यावतारकथनं नामप्रथमोऽध्यायः ॥१॥ सूत उवाच ॥ पुरा कालेन महता कल्पेतीते पुनःपुनः॥ अस्मिन्नुपस्थिते कल्पे प्रवृत्ते सृष्टिकर्मणि॥१॥

श्रद्धा न रखता हो जो पुराण न जानता हो उसके सामने कहना उचित नहीं ॥ ६६ ॥ जो परीक्षा किया हुआ अपना शिष्य हो धर्मात्मा और निन्दारहित हो उस शिवधर्मानुरागी शिवके भक्तको यह पुराण देना चाहिये ॥ ६७ ॥ जिसके प्रसादसे यह पुराणसंहिता मेरे विषे वर्तमान है, उस महातेजस्वी व्यासजीको नमस्कार है ॥ ६८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहिताभाषाटीकायां पूर्वखण्डे विद्यावतारकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ सूतजी बोले, बहुत समय और अनेक कल्पोंके बीतने पर जब यह श्वेतवाराह कल्प

उपस्थित हुआ तब सृष्टि निर्माण कर्ममें ॥ १ ॥ यह जगत् निर्माणकी वार्ता प्रवृत्त होने और प्रजाके ज्ञानयुक्त होनेमें षट्कुलोंमें उत्पन्न हुए वे मुनि सब परस्पर कहने लगे ॥ २ ॥ यह परब्रह्म है यह नहीं इस प्रकारका महाविवाद होने लगा; परन्तु ब्रह्मको निरूपण करना कठिन है इसमें कोई निश्चय न हुआ ॥ ३ ॥ तब वे सब अविनाशी ब्रह्माजीके देखनेके निमित्त गये जहां सुर असुरोंसे स्तुतिको प्राप्त हुए ब्रह्माजी विद्यमान थे ॥ ४ ॥ मनोहर सुमेरुके शृंगमें जहां अनेक देव दानव स्थित हैं, सिद्ध चारणोंसे युक्त यक्ष गन्धर्वोंसे सेवित ॥ ५ ॥ अनेक पक्षियोंसे भरे मणिमूँगोंसे युक्त निकुंज कंदरा छोटी गुहा और झरनोंसे शोभित ॥ ६ ॥ वहां अनेक मृगोंसे भरापूरा ब्रह्मवन

प्रतिष्ठितायां वार्तायां प्रबुद्धासु प्रजासु च ॥ मुनीनां षट्कुलीयानां ब्रुवतामितरेतरम् ॥ २ ॥ इदं परमिदं नेति विवादस्सुमहान भूत् ॥ परस्य दुर्निरूपत्वान्न जातस्तत्र निश्चयः ॥ ३ ॥ तेऽभिजग्मुर्विधातारं द्रष्टुं ब्रह्माणमव्ययम् ॥ यत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा स्तूयमानस्सुरासुरैः ॥ ४ ॥ मेरुशृंगे शुभे रम्ये देवदानवसंकुले ॥ सिद्धचारणसंवादे यक्षगंधर्वसेविते ॥५॥ विहंगसंघसंघुष्टे मणिविद्रुम भूषिते ॥ निकुंजकंदरदरीगुहानिर्झरशोभिते ॥ ६ ॥ तत्र ब्रह्मवनं नाम नानामृगसमाकुलम् ॥ दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥ ७ ॥ सुरसामलपानीयपूर्णरम्यसरोवरम् ॥ मत्तभ्रमरसंछन्नरम्यपुष्पितपादपम् ॥८॥ तरुणादित्यसंकाशं तत्र चारु महत्पुरम् ॥ दुर्द्धर्षबलदृप्तानां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥ ९ ॥ तप्तजांबूनदमयं प्रांशुप्राकारतोरणम् ॥ निर्व्यूहवलभीकूटप्रतोलीशतमंडितम् ॥ १० ॥ महार्हमणिचित्राभिर्लेलिहानमिवांबरम् ॥ महाभवनकोटीभिरनेकाभिरलंकृतम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्निवसति ब्रह्मा सभ्यैः सार्द्धं प्रजा पतिः ॥ तत्र गत्वा महात्मानं साक्षाल्लोकपितामहम् ॥ १२ ॥

है जो दश योजनका विस्तारवाला और सौ योजनका लम्बा है ॥ ७ ॥ जिसमें सुन्दर रसयुक्त जलवाले सरोवर हैं, जहांके मनोहर फूले वृक्षोंपर मतवाले भौंरे गुंजार कर रहे हैं ॥ ८ ॥ लाल सूर्यके समान प्रकाशमान वहां एक महापुर है, जहां बडे दुर्धर्ष बलदृप्त दैत्य दानव राक्षसोंका ॥ ९ ॥ तपाये हुए सोनेके समान, ऊँचे प्राकार और तोरण ध्वजाओंसे शोभित खूँटी गोपानसी और सैकडों गलियोंसे शोभित ॥ १० ॥ महामोलकी चित्र विचित्र मणियोंसे आकाशको चाटते हुए, करोडों भुवन समूहोंसे अलंकृत ॥ ११ ॥ उस स्थानमें साध्य देवताओंके

सहित ब्रह्माजी निवास करते हैं वहां आकर लोकपितामह ब्रह्माको ॥ १२ ॥ देवता ऋषियोंसे सेवित उन मुनियोंने देखा, जो शुद्ध सुवर्णके आभूषण पहरे हुए थे ॥ १३ ॥ प्रसन्न मुख सौम्यमूर्त्ति कमल पत्रके समान नेत्र दिव्य कान्तिसे युक्त दिव्य गन्धका अनुलेपन किये ॥ १४ ॥ दिव्य श्वेतवस्त्र पहरे दिव्य मालाओंसे विभूषित सुर असुर योगेन्द्र जिनके चरणोंको नमस्कार करते हैं ॥ १५ ॥ सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त हाथमें चमर लिये सूर्यके प्रभाके समान सरस्वतीसे सेवित ॥ १६ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजीको देख सब मुनि प्रसन्न मुख हो शिरपर अंजलि धर ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥ ऋषि बोले, सृष्टिकी उत्पत्ति पालन संहार करनेवाले त्रिमूर्त्तिस्वरूप

ददृशुर्मुनयो देवा देवर्षिगणसेवितम् ॥ शुद्धचामीकरप्रख्यं सर्वाभरणभूषितम् ॥ १३ ॥ प्रसन्नवदनं सौम्यं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥ दिव्यकांतिसमायुक्तं दिव्यगंधानुलेपनम् ॥ १४ ॥ दिव्यशुक्लांबरधरं दिव्यमालाविभूषितम् ॥ सुरासुरेन्द्रयोगींद्रवंद्यमानपदांबुजम् ॥ १५ ॥ सर्वलक्षणयुक्तांग्या लब्धचामरहस्तया ॥ भ्राजमानं सरस्वत्याप्रभयेव दिवाकरम् ॥ १६ ॥ तं दृष्ट्वा मुनयस्सर्वे प्रसन्नवदनेक्षणाः ॥ शिरस्यंजलिमाधाय तुष्टुवुस्सुरपुंगवम् ॥ १७ ॥ मुनय ऊचुः नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं सर्गस्थित्यंतहेतवे ॥ पुरुषाय पुराणाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ १८ ॥ नमः प्रधानदेहाय प्रधानक्षोभकारिणे ॥ त्रयोविंशतिभेदेन विकृतायाविकारिणे ॥ १९ ॥ नमो ब्रह्माण्डदेहाय ब्रह्मांडोदरवर्तिने ॥ तत्र संसिद्धकार्याय संसिद्धकरणाय च ॥ २० ॥ नमोस्तु सर्वलोकाय सर्वलोकविधायिने ॥ सर्वात्मदेहसंयोग वियोगविधिहेतवे ॥ २१ ॥ त्वयैव निखिलं सृष्टं संहृतं पालितं जगत् ॥ तथापि मायया नाथ न विद्मस्त्वां पितामह ॥ २२ ॥

आपको नमस्कार है, पुराणपुरुष परमात्मा ब्रह्मके निमित्त नमस्कार है ॥ १८ ॥ प्रधान देह प्रधान अर्थात् प्रकृतिकी विषम अवस्थाके करनेवाले तेईस महत् विकार करके भी विकारहीन ॥ १९ ॥ ब्रह्माण्डके उत्पन्नकर्ता होकर भी ब्रह्माण्डके मध्यमें स्थित होनेवाले आपके निमित्त नमस्कार है, उस ब्रह्माण्डमें महाभूतात्मक सृष्टि आदिके कर्ता और अपंचीकृत महाभूतके कर्ताको नमस्कार है ॥ २० ॥ सब लोकस्वरूप सब लोकके देखनेवाले आपके निमित्त नमस्कार है, सम्पूर्ण आत्मा देहके संयोगविधिके कारण ॥ २१ ॥ तुम्हींने यह सम्पूर्ण जगत

उपस्थित हुआ तब सृष्टि निर्माण कर्ममें ॥ १ ॥ यह जगत् निर्माणकी वार्ता प्रवृत्त होने और प्रजाके ज्ञानयुक्त होनेमें षट्कुलोंमें उत्पन्न हुए वे मुनि सब परस्पर कहने लगे ॥ २ ॥ यह परब्रह्म है यह नहीं इस प्रकारका महाविवाद होने लगा; परन्तु ब्रह्मको निरूपण करना कठिन है इसमें कोई निश्चय न हुआ ॥ ३ ॥ तब वे सब अविनाशी ब्रह्माजीके देखनेके निमित्त गये जहां सुर असुरोंसे स्तुतिको प्राप्त हुए ब्रह्माजी विद्यमान थे ॥ ४ ॥ मनोहर सुमेरुके शृंगमें जहां अनेक देव दानव स्थित हैं, सिद्ध चारणोंसे युक्त यक्ष गन्धर्वोंसे सेवित ॥ ५ ॥ अनेक पक्षियोंसे भरे मणिमूँगोंसे युक्त निकुंज कंदरा छोटी गुहा और झरनोंसे शोभित ॥ ६ ॥ वहां अनेक मृगोंसे भरापूरा ब्रह्मवन

प्रतिष्ठितायां वार्तायां प्रबुद्धासु प्रजासु च ॥ मुनीनां षट्कुलीयानां ब्रुवतामितरेतरम् ॥ २ ॥ इदं परमिदं नेति विवादस्सुमहान भूत् ॥ परस्य दुर्निरूपत्वान्न जातस्तत्र निश्चयः ॥ ३ ॥ तेऽभिजग्मुर्विधातारं द्रष्टुं ब्रह्माणमव्ययम् ॥ यत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा स्तूयमानस्सुरासुरैः ॥ ४ ॥ मेरुशृंगे शुभे रम्ये देवदानवसंकुले ॥ सिद्धचारणसंवादे यक्षगंधर्वसेविते ॥५॥ विहंगसंघसंघुष्टे मणिविद्रुम भूषिते ॥ निकुंजकंदरदरीगुहानिर्झरशोभिते ॥ ६ ॥ तत्र ब्रह्मवनं नाम नानामृगसमाकुलम् ॥ दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥ ७ ॥ सुरसामलपानीयपूर्णरम्यसरोवरम् ॥ मत्तभ्रमरसंछन्नरम्यपुष्पितपादपम् ॥८॥ तरुणादित्यसंकाशं तत्र चारु महत्पुरम् ॥ दुर्द्धर्षबलदृप्तानां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥ ९ ॥ तप्तजांबूनदमयं प्रांशुप्राकारतोरणम् ॥ निर्व्यूहवलभीकूटप्रतोलीशतमंडितम् ॥ १० ॥ महार्हमणिचित्राभिर्लेलिहानमिवांबरम् ॥ महाभवनकोटीभिरनेकाभिरलंकृतम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्निवसति ब्रह्मा सभ्यैः सार्द्धं प्रजा पतिः ॥ तत्र गत्वा महात्मानं साक्षाल्लोकपितामहम् ॥ १२ ॥

है जो दश योजनका विस्तारवाला और सौ योजनका लम्बा है ॥ ७ ॥ जिसमें सुन्दर रसयुक्त जलवाले सरोवर हैं, जहांके मनोहर फूले वृक्षोंपर मतवाले भौंरे गुंजार कर रहे हैं ॥ ८ ॥ लाल सूर्यके समान प्रकाशमान वहां एक महापुर है, जहां बडे दुर्धर्ष बलदृप्त दैत्य दानव राक्षसोंका ॥ ९ ॥ तपाये हुए सोनेके समान, ऊँचे प्राकार और तोरण ध्वजाओंसे शोभित खूँटी गोपानसी और सैकडों गलियोंसे शोभित ॥ १० ॥ महामोलकी चित्र विचित्र मणियोंसे आकाशको चाटते हुए, करोडों भुवन समूहोंसे अलंकृत ॥ ११ ॥ उस स्थानमें साध्य देवताओंके

सहित ब्रह्माजी निवास करते हैं वहां आकर लोकपितामह ब्रह्माको ॥ १२ ॥ देवता ऋषियोंसे सेवित उन मुनियोंने देखा, जो शुद्ध सुवर्णके आभूषण पहरे हुए थे ॥ १३ ॥ प्रसन्न मुख सौम्यमूर्त्ति कमल पत्रके समान नेत्र दिव्य कान्तिसे युक्त दिव्य गन्धका अनुलेपन किये ॥ १४ ॥ दिव्य श्वेतवस्त्र पहरे दिव्य मालाओंसे विभूषित सुर असुर योगेन्द्र जिनके चरणोंको नमस्कार करते हैं ॥ १५ ॥ सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त हाथमें चमर लिये सूर्यके प्रभाके समान सरस्वतीसे सेवित ॥ १६ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजीको देख सब मुनि प्रसन्न मुख हो शिरपर अंजलि धर ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥ ऋषि बोले, सृष्टिकी उत्पत्ति पालन संहार करनेवाले त्रिमूर्त्तिस्वरूप

ददृशुर्मुनयो देवा देवर्षिगणसेवितम् ॥ शुद्धचामीकरप्रख्यं सर्वाभरणभूषितम् ॥ १३ ॥ प्रसन्नवदनं सौम्यं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥ दिव्यकांतिसमायुक्तं दिव्यगंधानुलेपनम् ॥ १४ ॥ दिव्यशुक्लांबरधरं दिव्यमालाविभूषितम् ॥ सुरासुरेन्द्रयोगींद्रवंद्यमानपदांबुजम् ॥ १५ ॥ सर्वलक्षणयुक्ताङ्ग्या लब्धचामरहस्तया ॥ भ्राजमानं सरस्वत्याप्रभयेव दिवाकरम् ॥ १६ ॥ तं दृष्ट्वा मुनयस्सर्वे प्रसन्नवदनेक्षणाः ॥ शिरस्यंजलिमाधाय तुष्टुवुस्सुरपुंगवम् ॥ १७ ॥ मुनय ऊचुः नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं सर्गस्थित्यंतहेतवे ॥ पुरुषाय पुराणाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ १८ ॥ नमः प्रधानदेहाय प्रधानक्षोभकारिणे ॥ त्रयोविंशतिभेदेन विकृतायाविकारिणे ॥ १९ ॥ नमो ब्रह्माण्डदेहाय ब्रह्मांडोदरवर्तिने ॥ तत्र संसिद्धकार्याय संसिद्धकरणाय च ॥ २० ॥ नमोस्तु सर्वलोकाय सर्वलोकविधायिने ॥ सर्वात्मदेहसंयोग वियोगविधिहेतवे ॥ २१ ॥ त्वयैव निखिलं सृष्टं संहृतं पालितं जगत् ॥ तथापि मायया नाथ न विद्मस्त्वां पितामह ॥ २२ ॥

आपको नमस्कार है, पुराणपुरुष परमात्मा ब्रह्मके निमित्त नमस्कार है ॥ १८ ॥ प्रधान देह प्रधान अर्थात् प्रकृतिकी विषम अवस्थाके करनेवाले तेईस महत् विकार करके भी विकारहीन ॥ १९ ॥ ब्रह्माण्डके उत्पन्नकर्ता होकर भी ब्रह्माण्डके मध्यमें स्थित होनेवाले आपके निमित्त नमस्कार है, उस ब्रह्माण्डमें महाभूतात्मक सृष्टि आदिके कर्ता और अपंचीकृत महाभूतके कर्ताको नमस्कार है ॥ २० ॥ सब लोकस्वरूप सब लोकके देखनेवाले आपके निमित्त नमस्कार है, सम्पूर्ण आत्मा देहके संयोगविधिके कारण ॥ २१ ॥ तुम्हींने यह सम्पूर्ण जगत

उत्पन्न करके पालन और संहार किया है हे नाथ ! हे पितामह ! मायाके वशीभूत होकर हम आपको नहीं जानते ॥ २२ ॥ सूतजी बोले, जब इस प्रकार महाभागी ऋषियोंने ब्रह्माजीकी प्रार्थना की तब मुनिको प्रसन्न करते हुए ब्रह्माजी गंभीर वाणीसे बोले ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे महापराक्रमी महातेजस्वी ऋषियो ! तुम सब मिलकर किस कारणसे यहां आये हो ॥ २४ ॥ जब देव ब्रह्माजीने उनके प्रति ऐसे वचन कहे तब वे ऋषि हाथ जोड विनय युक्त वाणीसे बोले ॥ २५ ॥ मुनि बोले, हे भगवन् ! हम सब बडे भारी अन्धकारसे आवृत हो रहे हैं हम विवाद करके खिन्न हो रहे हैं परन्तु हमने अबतक परमतत्त्वको न जाना ॥ २६ ॥ तुमही सब जगतके कर्त्ता सबके

॥ सूत उवाच ॥ ॥ एवं ब्रह्मा महाभागैर्महर्षिभिरभिष्टुतः ॥ प्राह गंभीरया वाचा मुनीन् प्रह्लादयन्निव ॥२३॥ ब्रह्मोवाच ॥ ऋषयो हे महाभागा महासत्त्वा महौजसः ॥ किमर्थं सहितास्सर्वे यूयमत्र समागताः ॥२४॥ तमेवंवादिनं देवं ब्रह्माणं ब्रह्मवित्तमाः ॥ वाग्भिर्विनयगर्भाभिस्सर्वे प्रांजलयोऽब्रुवन् ॥२५॥ ॥ मुनय ऊचुः ॥ भगवन्नंधकारेण महता वयमावृताः ॥ खिन्ना विवदमानाश्च न पश्यामोऽत्र यत्परम् ॥२६॥ त्वं हि सर्वजगद्धाता सर्वकारणकारणम् ॥ त्वया ह्यविदितं नाथ नेह किंचन विद्यते ॥२७॥ कः पुमान् सर्वसत्त्वेभ्यः पुराणः पुरुषः परः ॥ विशुद्धः परिपूर्णश्च शाश्वतः परमेश्वरः ॥२८॥ केनैव चित्रकृत्येन प्रथमं सृज्यते जगत् ॥ तत्त्वं वद महाप्राज्ञ स्वसंदेहापनुत्तये ॥२९॥ एवं पृष्टस्तदा ब्रह्मा विस्मयस्मेरवीक्षणः ॥ देवानां दानवानां च मुनीनामपि सन्निधौ ॥३०॥

कारणके कारण हो, हे नाथ ! आप इस जगत्में कुछ भी अविदित नहीं है ॥ २७ ॥ सब जीवोंसे पुराना आपके सिवाय और कौन पुरुष है, विशुद्ध परिपूर्ण शाश्वत नित्य परमेश्वर ॥ २८ ॥ किस विचित्र कृत्यसे प्रथम जगत्को निर्माण करता है, हे महाप्राज्ञ ! सन्देह दूर करनेको तत्त्वसे कहिये और अन्तकालमें यह सब लय हो जाता है, यह सब प्राणी किसके वशमें है, और इन सबका नियोजक कौन है, उस पुरुषको हम किस प्रकार देख सकते हैं ॥ २९ ॥ जब उन्होंने विस्मययुक्त हो इस प्रकार ब्रह्माजीसे पूछा तब देवता दानव और

मुनियोंके निकटमें ॥ ३० ॥ ब्रह्माजी उठकर बहुत काल ध्यान कर रुद्र इस प्रकार वाणी उच्चारण करते आनन्दसे पूरित शरीर हो हाथ जोड बोले ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले, जहाँ मनके सहित वाणी चलकर उसे प्राप्त न होकर लौट आती है, जिसके आनन्दको प्राप्त हो विद्वान् कहींसे भी भीत नहीं होता है ॥ १ ॥ जिससे यह सब ब्रह्मा विष्णु रुद्र इन्द्रादिक हुए हैं; और भूतेन्द्रियके सहित प्रथम उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥ जो सृष्टि आदि कारणोंका ध्याता नारायण है, जो उनका भी पर कारण है उसके सिवाय और कोई वस्तु कोई भी किसीसे उत्पन्न नहीं होती ॥ ३ ॥ वह सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न स्वयं सर्वेश्वर हैं;

उत्थाय सुचिरं ध्यात्वा रुद्र इत्युद्धरन् गिरिम् ॥ आनंदक्लिन्नसर्वांगः कृतांजलिरभाषत ॥३१॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे मुनिप्रस्तावर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ ब्रह्मोवाच ॥ यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह ॥ आनंदं यस्य वै विद्वान्न बिभेति कुतश्च न ॥१॥ यस्मात्सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम् ॥ सह भूतेन्द्रियः सर्वैः प्रथमं संप्रसूयते ॥२॥ कारणानां च यो धाता ध्याता परमकारणम् ॥ न संप्रसूयतेऽन्यस्मात्कुतश्चन कदाचन ॥३॥ सर्वैश्वर्येण संपन्नो नाम्ना सर्वेश्वरः स्वयम् ॥ सर्वैर्मुमुक्षुभिर्ध्येयश्शंभुराकाशमध्यगः ॥४॥ योऽग्रे मां विदधे पुत्रं ज्ञानं च प्रहिणोति मे ॥ तत्प्रसादान्मयालब्धं प्राजापत्यमिदं पदम् ॥५॥ ईशो वृक्ष इवस्तब्धोय एको दिवि तिष्ठति ॥ येनेदमखिलं पूर्णं पुरुषेण महात्मना ॥६॥ एको बहूनां जंतूनां निष्क्रियाणां च सक्रियः ॥ य एको बहुधा बीजं करोति स महेश्वरः ॥७॥ जीवैरभिरिमाँल्लोकान्सर्वानीशो य ईशते ॥ य एको भागवान्रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ॥ ८ ॥

सब मुमुक्षओंसे ध्यान करने योग्य हृदयाकाशके मध्यमें स्थित हैं ॥ ४ ॥ जो प्रथम मुझ पुत्रको उत्पन्न कर ज्ञान प्रदान करता है, जिनके प्रसादसे यह मैंने प्रजापति पद पाया है ॥ ५ ॥ जो एक ईश्वर वृक्षकी नाईं निश्चल आकाशमें स्थित है, जिस महात्मा पुरुषसे यह सब ब्रह्माण्ड पूर्ण है ॥ ६ ॥ जो एक ही क्रियाहीन अनेक जीवोंसे सत्क्रिया कराता है, अर्थात् प्रेरक है, और जो एक ही अनेक बीजरूप कर्मोंको कराता है, यही महेश्वर है ॥७॥ जो ईश्वर सब जीवोंसे लोकोंको भरकर आप उनका शासक है, वही एक भगवान् रुद्र है, दूसरा कोई नहीं हैं ॥८॥

जो सदा भक्तोंके हृदयमें स्थित होकर भी दूसरोंको न दीखता हुआ स्थित होता है जो काल अर्थात् प्रसिद्ध आत्मा और बुद्धिसे युक्त अनेक कारणोंको जो आकाशादिक हैं; उनमें वह एक ही अनन्त शक्ति भगवान् स्थित है ॥ १० ॥ सृष्टि उत्पन्न होनेके पूर्व जगत अन्धकारमें था; उस समय दिन रात सत् असत् कुछ नहीं था केवल एक शिव ही थे उसके समान वा अधिक नहीं है, उसकी पराशक्ति स्वाभाविकी है, और उसमें नित्य ज्ञान और क्रिया रहती है ॥ ११ ॥ जो कुछ यह सम्पूर्ण भूत है, वह अक्षर कूटस्थ परमात्मा है वह अव्यक्त है यद्यपि अक्षर अमृत स्वरूप है, वह अक्षर आत्मा यह दोनों एक ही महेश्वर देव एक हैं ॥ १२ ॥ जो मनुष्य सत्व भावसे

सदा जनानां हृदये संनिविष्टोऽपि यः परैः ॥ अलक्ष्यो लक्षयन्विश्वमधितिष्ठति सर्वदा ॥ ९ ॥ यस्तु कालात्प्रमुक्तानि कारणा न्यखिलान्यपि ॥ अनन्तशक्तिरेवैको भगवानधितिष्ठति ॥ १० ॥ न यस्य दिवसो रात्रिर्न समानो न चाधिकः ॥ स्वभाविकी पराशक्तिर्नित्या ज्ञानक्रिये अपि ॥११॥ यदिदं क्षरमव्यक्तं यदप्यमृतमक्षरम् ॥ तावुभावक्षरात्मानावेको देवः स्वयंः हरः ॥१२॥ ईशते तदभिध्यानाद्योजनासत्त्वभावनः ॥ भूयो ह्यस्य पशोरन्ते विश्वमाया निवर्त्तते ॥ १३ ॥ यस्मिन्न भासते विद्युन्न सूर्यो न च चन्द्रमाः ॥ यस्य भासा विभातीदमित्येषा शाश्वती श्रुतिः ॥१४॥ एको देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः ॥ न तस्य परमं किंचित्पदं समधिगम्यते ॥१५॥ अयमादिरनाद्यन्तस्स्वभावादेव निर्मलः ॥ स्वतन्त्रः परिपूर्णश्च स्वेच्छाधीनश्चराचरः ॥ १६ ॥ अप्राकृत वपुः श्रीमाँल्लक्ष्यलक्षणवर्जितः ॥ अयं मुक्तो मोचकश्च ह्यकालः कालचोदकः ॥ १७ ॥

उन शिवजीका ध्यान करता है, तब अन्त समय इस जीवकी निवृत्त हो जायगी, और मुक्त हो जायगा ॥ १३ ॥ जिसमें बिजली सूर्य चन्द्रमा कोई भी अपना प्रकाश नहीं करते जिसकी कांतिसे यह सब जगत् प्रकाश कर रहा है, श्रुति सनातन की है ॥ १४ ॥ एक ही महादेव देवता जाननेके योग्य है उसका परम तत्त्व कुछ भी किसीसे जाना नहीं जाता ॥ १५ ॥ यही आदि अन्तहीन स्वभावसे निर्मल है, यही स्वतन्त्र परिपूर्ण चर अचरको अपनी इच्छाके अधीन किये हुए हैं ॥ १६ ॥ इन लक्ष्मीवान्का प्रकृतिका शरीर नहीं है, यह लक्ष्य और लक्षणसे वर्जित है स्वयं मायामें सम्बद्ध होकर भी यह भक्तोंके मुक्ति देनेवाले काल स्वरूप न

होकर भी कालके प्रेरक हैं ॥ १७ ॥ उनका स्थान सबसे ऊपर है; वह सबमें विराजते हैं, और सबमें निवास करके भी सबके जाननेवाले हैं; आगे कहे हुए छः मार्ग और सम्पूर्ण जगत्के पति हैं ॥ १८ ॥ उत्तरोत्तर प्राणियोंमें भी वह सबसे उत्कृष्ट हैं उनसे श्रेष्ठ कोई नहीं वह अनन्त महिमाकी भूमि और अपरिच्छिन्न ऐश्वर्यवाले हैं, शब्दादि विषयोंमें जो अमोघ अर्थात् शुद्ध बुद्धि हैं उससे और भक्तोंके निर्मल हित कारी ज्ञानसे सबमें व्यापक हैं; और आत्मा शक्तिके आनन्दके अमृत और प्रमोदके रसिक युवा अवस्था युक्त हैं, अनन्त आनन्दके पात्र मकरन्दके पानमें मधुव्रत ॥ १९ ॥ बाल अखंड और जगत्के दण्डदानके पिंडीभाव करनेमें पंडित हैं उदारता वीरता गम्भीरता और मधुरताके

सर्वोपरिकृतावासस्सर्वावासश्च सर्ववित् ॥ षड्विधाध्वमयस्यास्य सर्वस्य जगतः पतिः ॥ १८ ॥ उत्तरोत्तरभूतानामुत्तरश्च निरुत्तरः ॥ अनन्तानन्तसन्दोहमकरंदमधुव्रतः ॥ १९ ॥ अखंडजगदंडानां पिंडीकरणपंडितः ॥ औदार्यवीर्यगांभीर्य्यमाधुर्य्यमकरालयः ॥२०॥ नैवास्य सदृशं वस्तु नाधिकं चापि किंचन ॥ अतुलः सर्वभूतानां राजराजश्च तिष्ठति ॥ २१ ॥ अनेन चित्रकृत्येन प्रथमं सृज्यते जगत् ॥ अंतकाले पुनश्चेदं तस्मिन्प्रलयमेष्यति ॥ २२ ॥ अस्य भूतानि वश्यानि अयं सर्वनियोजकः ॥ अयं तु परया भक्त्या दृश्यते नान्यथा क्वचित् ॥ २३ ॥ व्रतानि सर्वदानानि तपांसि नियमास्तथा ॥ कथितानि पुरा सद्भिर्भावार्थं नात्र संशयः ॥ २४ ॥ हरिश्चाहं च रुद्रश्च तथान्ये च सुरासुराः ॥ तपोभिरुग्रैरद्यापि तस्य दर्शनकांक्षिणः ॥ २५ ॥ अदृश्यः पतितैर्मूढैर्दुर्जनैरपि कुत्सितैः ॥ भक्तैरन्तर्बहिश्चापि पूज्यः संभाष्य एव च ॥ २६ ॥

मकरालय अर्थात् सागर हैं ॥२०॥इनकी बराबर न कोई वस्तु है न इनसे अधिक हैं, किसी वस्तुसे इनकी तुलना नहीं हो सकती, यह राजोंके राजा होकर स्थित हैं ॥ २१ ॥ इन्हींसे चित्र कृत्यके समान यह जगत् प्रथम बनाया जाता है, और अन्त समय यह जगत् फिर इन्हींमें लय हो जाता है ॥ २२ ॥ इन्हीं के सब वशमें हैं और यही सबके निर्मुक्त करनेवाले हैं, यह परम भक्तिसे दीखते हैं, दूसरी प्रकारसे नही ॥ २३ ॥ व्रत और सब दान तप और नियम यह प्राचीन महात्माओंने और रुद्र तथा ईश्वरके ध्यानके निमित्त कहे हैं ॥ २४ ॥ विष्णुमें दूसरे सुर असुर बडे उग्र तप करके अबतक उनके दर्शनकी इच्छा करते हैं ॥ २५ ॥ वह पतित मूढ और कुत्सित दुर्जनोंकी दृष्टिमें

नहीं आना, भक्त उसको भीतर बाहर पूजन कर उससे सम्भाषण करते हैं ॥ २६ ॥ जो यह स्थूल सूक्ष्म और सूक्ष्मसे भी परे रूप है, हम और देवता आदि स्थूलको देख सकते हैं योगीजन सूक्ष्म रूपका दर्शन करते हैं ॥ २७ ॥ इससे आगे जो नित्यज्ञान आनन्द और अवि नाशी लक्षण युक्त है उसको उसमें निष्ठा करनेवाले उसीमें तत्पर उसीका व्रत करनेवाले पाते हैं ॥ २८ ॥ बहुत कहने से क्या है जो गुप्तसे भी गुप्त पर है; वह शिवमें भक्ति करनी है; इसमें सन्देह नहीं कि; भक्ति करनेसे मुक्त होजाता है ॥ २९ ॥ ईश्वरके प्रसादसे उसमें भक्ति होती है; और भक्ति करनेसे ईश्वरसे प्रसन्नताकी प्राप्ति होती है, जैसे अंकुरसे बीज और बीजसे अंकुर होता है ॥३०॥इसी प्रकार प्राणियोंको

तदिदं त्रिविधं रूपं स्थूलं सूक्ष्मं ततः परम् ॥ अस्मदाद्यमरैर्दृश्यं स्थूलं सूक्ष्मं तु योगिभिः ॥ २७ ॥ ततः परं तु यन्नित्यं ज्ञान मानंदमव्ययम् ॥ तन्निष्ठैस्तत्परैर्भक्तैर्दृश्यं तद्व्रतमाश्रितैः ॥ २८ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन गुह्याद्गुह्यतरं परम् ॥ शिवे भक्तिर्न सन्देहस्तया युक्तो विमुच्यते ॥ २९ ॥ प्रसादादेव सा भक्तिः प्रसादो भक्तिसंभवः ॥ यथा चांकुरतो बीजं बीजतो वा यथांकुरः ॥ ३० ॥ प्रसादपूर्विका एव पशोस्सर्वत्र सिद्धयः ॥ स एव साधनैरन्ते सर्वैरपि च साध्यते ॥ ३१ ॥ प्रसादसाधनं धर्मस्स च वेदेन दर्शितः ॥ तदभ्यासवशात्साम्यं पूर्वयोः पुण्यपापयोः ॥ ३२ ॥ साम्यात्प्रसादसंपत्तौ धर्मस्यातिशयस्ततः ॥ धर्मातिशयमासाद्य पशोः पापपरिक्षयः ॥ ३३ ॥ एवं प्रक्षीणपापस्य बहुभिर्जन्मभिः क्रमात् ॥ सांबे सर्वेश्वरे भक्तिर्ज्ञानपूर्वा प्रजायते ॥ ३४ ॥ भावानुगुणमीशस्य प्रसादो व्यतिरिच्यते ॥ प्रसादात्कर्मसंत्यागः फलतो न स्वरूपतः ॥ ३५ ॥

ईश्वरसे भक्तिकी प्राप्ति होती है, यह सर्वत्र निश्चय है, यह शिव सब साधनोंसे अन्तमें साध लिये जाते हैं ॥ ३१ ॥ उनके प्रसन्न करने और साधनेका धर्म वेदने दिखा दिया है, वह वेदके अभ्यास वशसे पूर्व जन्मके पाप और पुण्य समान होनेसे ॥ ३२ ॥ साम्यता होनेसे प्रसादकी प्राप्ति और धर्मकी अधिकता होती है, धर्मकी अधिकतासे जीवके पापका नाश होता है ॥ ३३ ॥ इस प्रकार क्रमसे बहुत जन्मके किये हुए पापोंका नाश हो जानेसे साम्ब सर्वेश्वरमें ज्ञान पूर्वक भक्ति होती है ॥ ३४ ॥ उनके गुणोंका विचार करनेसे उनमें प्रसादकी प्राप्ति होती है,

प्रसादसे कर्मका त्याग होता है कर्मत्यागका आशय उसके फलसे है, स्वरूपसे नहीं ॥ ३५ ॥ इस कारण कर्म फलके त्याग करनेसे शिव धर्ममें तत्पर होता है वह धर्म गुरुकी अपेक्षा युक्त और गुरुकी अपेक्षारहित होनेसे दो प्रकारका है ॥ ३६ ॥ उसमें गुरुकी अपेक्षा न करने वालेसे गुरुकी अपेक्षा करनेवाला सौ गुणा अधिक है, जो कि, गुरुकी अपेक्षासे शिवधर्ममें तत्पर रहता है वह शिव ज्ञानसे युक्त हो जाता है ॥ ३७ ॥ ज्ञानकी प्राप्ति होनेसे पुरुष संसारमें दोष देखने लगता है विषयोंमें वैराग्य होनेसे उन शिवके प्रेमका साधन होता है ॥ ३८ ॥ भाव सिद्धि युक्त निष्ठा ध्यान कर्ममें ज्ञान होनेसे ज्ञान ध्यानसे युक्त पुरुषको योगकी प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥ योगसे पराभक्ति इसके उपरान्त

तस्मात्कर्मफलत्यागाच्छिवधर्मान्वयः शुभः ॥ स च गुर्वनपेक्षश्च तदपेक्ष इति द्विधा ॥३६॥ तत्रानपेक्षात्सापेक्षो मुख्यः शतगुणाधिकः ॥ शिवधर्मान्वयस्यास्य शिवज्ञानसमन्वयः॥३७॥ज्ञानान्वयवशात्पुंसः संसारे दोषदर्शनम् ॥ ततो विषयवैराग्यं वैराग्याद्भावसाधनम् ॥३८॥ भावसिद्ध्युपपन्नस्य ध्याने निष्ठा न कर्मणि ॥ ज्ञानध्यानाभियुक्तस्य पुंसो योगः प्रवर्तते ॥३९॥ योगेन तु परा भक्तिः प्रसादस्तदनंतरम् ॥ प्रसादान्मुच्यते जंतुर्मुक्तः शिवसमो भवेत् ॥४०॥ अनुग्रहप्रकारस्य क्रमोऽयमविवक्षितः ॥ यादृशी योग्यता पुंसस्तस्य तादृगनुग्रहः ॥४१॥ गर्भस्थो मुच्यते कश्चिज्जायमानस्तथापरः ॥ बालो वा तरुणोवाथ वृद्धो वा मुच्यते परः ॥ ४२ ॥ तिर्यग्योनिगतः कश्चिन्मुच्यते नारकोऽपरः ॥ अपरस्तु पदं प्राप्तो मुच्यते स्वपदक्षये ॥ ४३ ॥ कश्चित्क्षीण पदो भूत्वा पुनरावर्त्य मुच्यते ॥ कश्चिदध्वगतस्तस्मिन् स्थित्वास्थित्वा विमुच्यते ॥ ४४ ॥

प्रसन्नता होती है, और उनकी प्रसन्नतासेही यह पुरुष मुक्त होकर शिवके समान होजाता है ॥ ४० ॥ यह अनुग्रह होनेका क्रम कथन किया, जैसी पुरुषकी योग्यता होगी वैसेही उसको प्रसादकी प्राप्ति होगी ॥ ४१ ॥ कोई गर्भमें स्थितही और कोई जन्म लेकर मुक्त होजाता है कोई बालक कोई तरुण और कोई वृद्ध होकर मुक्त होजाता है ॥ ४२ ॥ कोई तिर्यक् योनिमें कोई नरकमें जाकर मुक्त होजाता है, कोई पाप पुण्यके क्षीण होनेसे अपने पदके क्षय होनेसे उस पदको प्राप्त हो मुक्त होता है ॥ ४३ ॥ कोई क्षीण पद हो फिर कर्म भूमिमें प्राप्त

होकर मुक्त हो जाता है, कोई स्वर्गमें जाय वहां कुछ दिन रहनेके उपरान्त मुक्त हो जाता है ॥ ४४ ॥ इस कारण मनुष्योंकी एक प्रकारसे मुक्ति नहीं है, ज्ञान तथा भावके अनुसार शिवके प्रसादसे ही अत्यन्त आनन्द होता है ॥ ४५ ॥ इस कारण शिवजीके प्रसन्न करनेके निमित्त वाणी मनके द्वेषसे हीन होकर सदा शिवका ध्यान करते हुए सदा प्रीति करते नीति और अग्निहोत्र करते हुए ॥ ४६ ॥ शिवमें ही निष्ठा, उन्हींमें तत्पर उसीमें युक्त और शिवका ही आश्रय करने वाले सब क्रियाओंको करने वाले मनसे शिवका ही ध्यान करने वाले ॥ ४७ ॥ तुम दिव्य सहस्र वर्षका दीर्घ यज्ञका अनुष्ठान करो, यज्ञके अन्तमें मंत्र पढनेसे वायु उस स्थानमें अवश्य आवेंगे, वही तुम्हारा

तस्मान्नैकप्रकारेण नराणां मुक्तिरिष्यते ॥ ज्ञानभावानुरूपेण प्रसादेनैव निर्वृतिः ॥ ४५ ॥ तस्मादस्य प्रसादार्थं वाङ्मनोदोष वर्जिताः ॥ ध्यायंतश्शिवमेवैकं सदारतनयाग्नयः ॥ ४६ ॥ तन्निष्ठास्तत्परास्सर्वे तद्युक्तास्तदुपाश्रयाः ॥ सर्वक्रियाः प्रकुर्वाणा स्तमेव मनसागताः ॥ ४७ ॥ दीर्घसूत्रसमारब्धं दिव्यवर्षसहस्रकम् ॥ सत्रांते मंत्रयोगेन वायुस्तत्र गमिष्यति ॥४८॥ स एव भवतः श्रेयः सोपायं कथयिस्यति ॥ ततो वाराणसीं पुण्यां पुरीं परमशोभना ॥ ४९ ॥ गंतव्या यत्र विश्वेशो देव्या सह पिनाकधृक् ॥ सदा विहरति श्रीमान् भक्तानुग्रहकारणात् ॥ ५० ॥ तत्राश्चर्यं महद्दृष्ट्वा मत्समीपं गमिष्यथ ॥ ततो वः कथ यिष्यामि मोक्षोपाय द्विजोत्तमाः ॥ ५१ ॥ येनैकजन्मना मुक्तिर्युष्मत्करतले स्थिता ॥ अनेकजन्मसंसारबंधनिर्मोक्षका रिणी ॥ ५२ ॥ एतन्मनोमयं चक्रं मया सृष्टंविसृज्यते ॥ यत्रास्य शीर्यते नेमिः स देशस्तपसश्शुभः ॥ ५३ ॥

मंगल और कल्याणका उपाय कहेंगे, फिर परम पवित्र पुण्यकी देनेवाली ॥ ४८ ॥ वाराणसी पुरीमें जाना जहां देवीके सहित पिनाकधारी शिवजी निकास करते हैं ॥ ४९ ॥ वह श्रीमान् भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाले वहाँ सदा विहार करते हैं ॥ ५० ॥ वहाँ एक बडा आश्चर्य देखकर तुम मेरे समीप आना हे ब्राह्मणो ! तब मुक्तिका उपाय उस समय तुमसे कहूंगा ॥ ५१ ॥ जिससे एकही जन्ममें तुम्हारी मुक्ति हो जायगी, जो अनेक जन्मोंमें भ्रमनेवालोंको मोक्ष कर देती है ॥ ५२ ॥ यह मैंने मनोमयचक्र बनाया है, इसको मैं त्यागन करता हूं; जहाँ

इसकी नेमि टूट जाय वही देश तप करनेके योग्य जानना ॥५३॥ ऐसा कहकर सूर्यके समान वह मनोमय चक्र देखकर महादेवजीको प्रणाम कर ब्रह्माजीने चक्र छोड दिया ॥ ५४ ॥ वे ब्राह्मण प्रसन्न हो ब्रह्माजीको प्रणाम कर उसके पीछे चले; उस चक्रकी नेमि जहाँ टूटी ॥५५॥ उस देशमें एक शिलाके ऊपर वह चक्र गिरा जिस वनमें उज्ज्वल जल था ऐसे वनमें वह पतित हुआ ॥ ५६ ॥ इसी कारणसे वह मुनिपूजित वन नैमिषारण्य नामसे विख्यात हुआ, अनेक यक्ष गन्धर्व विद्याधरोंसे युक्त हुआ ॥५७॥पुरूरवा राजा अठारह द्वीपका राज्य करता हुआ विलासके कारण देवसे प्रेरित हो उर्वशीके निकट आया ॥ ५८ ॥ उसने अज्ञानसे धर्मके अतिक्रमणसे मुनियोंकी यज्ञशालाको हरण किया, तब मुनिने क्रोधकर

इत्युक्त्वा सूर्यसंकाशं चक्रं दृष्ट्वा मनोमयम् ॥ प्रणिपत्य महादेवं विससर्ज पितामहः ॥ ५४ ॥ तेऽपि हृष्टतरा विप्राः प्रणम्य जगतां प्रभुम् ॥ प्रययुस्तस्य चक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत॥५५॥ चक्रं तदपि संक्षिप्तं श्लक्ष्णं चारुशिलातले ॥ विमलस्वादुपानीये निजपात वने क्वचित् ॥ ५६ ॥ तद्वनं तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम् ॥ अनेकयक्षगंधर्वविद्याधरसमाकुलम् ॥ ५७ ॥ अष्टादश समुद्रस्य द्वीपानश्नन्पुरूरवाः ॥ विलासवशमुर्वश्या यातोदैवेन चोदितः ॥५८॥ अक्रमेण हरन्मोहाद्यज्ञवाटं हिरण्मयम् ॥ मुनिभिर्यत्र संक्रुद्धैः कुशवज्रैर्निपातितः ॥५९॥ विश्वं सिसृक्षमाणावै यत्र विश्वसृजः पुरा ॥ सत्रमारेभिरे दिव्यं ब्रह्मज्ञा गार्हपत्यगाः ॥६०॥ ऋषिभिर्यत्र विद्वद्भिः शब्दार्थन्यायकोविदैः ॥ शक्तिप्रज्ञाक्रियायोगैर्विधिरासीदनुष्ठितः ॥ ॥ ६१ ॥ यत्र वेदविदो नित्यं वेदवादबहिष्कृतान् ॥ वादजल्पबलैर्घ्नंति वचोभिरतिवादिनः ॥६२॥

वहाँ वज्रके समान कुश निपातित किये थे ॥ ५९ ॥ और उसी स्थानपर पूर्वसमयमें ब्रह्माजीने सृष्टि उत्पन्न करनेकी इच्छासे दिव्य यज्ञका आरम्भ किया; ब्रह्माजी कि, ब्रह्मज्ञानी और गार्हपत्य अग्निवाले ॥६०॥ विद्वान ऋषि तथा शब्दार्थ और न्यायके पंडित तथा शक्ति ज्ञान और क्रियायोगकी विधि जाननेवालोंसे अनुष्ठीयमान ॥ ६१ ॥ जहाँ नित्य वेदके जाननेवाले वेदवादसे बाहर किये नास्तिक पुरुषोंको वेदवादके तथा जल्पके बलसे तथा तथा अनेक प्रमाणोंसे जीतते हैं ॥ ६२ ॥

जहाँ स्फटिक मणिके पर्वतोंसे निकली शिलाओंसे अमृतके समान निर्मल जल निकलता है, जहाँके वृक्षोंपर रसीले फल लगते तथा अनेक जन्तु निवास करते थे ऐसा वह नैमिषारण्य मुनियोंके तप करने योग्य हो गया ॥६३॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं पूर्वखण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूतजी बोले, उस देशमें वह महाभाग्य ऋषि महादेवकी पूजा कर यज्ञका आरंभ करने लगे ॥ १ ॥ वह यज्ञ मर्षियोंको आश्चर्य करनेवाला प्रारम्भ हुआ उसके सब कृत्य आश्चर्यके थे ॥ २ ॥ जब बहुत समय बीतनेपर वह बडी दक्षिणावाला यज्ञ समाप्त हुआ, तब ब्रह्माजीके नियोगसे उस स्थानमें स्वयं वायु देवता आये ॥ ३ ॥ जो साक्षात् स्वयंभूदेवके शिष्य सबके प्रत्यक्ष इन्द्रियजित जिनकी आज्ञामें

स्फटिकमयमहीभृत्पादजाभ्यश्शिलाभ्यः प्रसरदमृतकल्पस्स्वच्छपानीयरम्यम् ॥ अतिरसफलवृक्षप्रायमव्यालसत्त्वं तपस उचित मासीन्नैमिषं तन्मुनीनाम् ॥६३॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे नैमिषोपाख्यानं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥॥ सूत उवाच ॥ तस्मिन्देशे महाभागा मुनयश्शंसितव्रताः ॥ अर्चयंतो महादेवं सत्रमारेभिरे तदा ॥१॥ तच्च सत्रं प्रववृते सर्वाश्चर्यमहर्षिणाम् ॥ विश्वं सिसृक्षमाणानां पुरा विश्वसृजामिव ॥२॥ अथ काले गते सत्रे समाप्ते भूरिदक्षिणे ॥ पितामहनियोगेन वायुस्तत्रागमत्स्वयम् ॥ ३ ॥ शिष्यस्स्वयंभुवो देवस्सर्वप्रत्यक्षदृग्वशी ॥ आज्ञायां मरुतो यस्य संस्थितास्सप्तसप्तकाः ॥४॥ प्रेरयञ्छश्वदंगानि प्राणाद्याभिः स्ववृत्तिभिः ॥ सर्वभूतशरीराणां कुरुते यश्च धारणम् ॥५॥ अणिमादिभिरष्टाभिरैश्वर्यैश्च समन्वितः ॥ तिर्यक्कारादिभिर्मेध्यैर्भुवनानि बिभर्ति यः ॥६॥ आकाशयोनिर्द्विगुणः स्पर्शशब्दसमन्वयात् ॥ तेजसां प्रकृतिश्चेति यमाहुस्तत्त्वचिंतकाः ॥ ७ ॥ तमाश्रमगतं दृष्ट्वा मुनयो दीर्घसत्रिणः ॥ पितामहवचः स्मृत्वा प्रहर्षमतुलं ययुः ॥ ८ ॥

४९ उनचास पवन स्थिर रहते हैं ॥ ४ ॥ जो प्राणादि वृत्ति युक्त अपने अंगोंको प्रेरण करते हैं, जो प्राणियोंके शरीरोंको धारण करते हैं ॥ ५ ॥ अणिमादि आठ सिद्धियोंके ऐश्वर्यसे युक्त तिरछी पडनेवाली सूर्यकी किरणोंसे संसारको धारण करता हैं ॥ ६ ॥ आकाशसे उत्पन्न होनेवाला शब्द और स्पर्शके गुणसे युक्त जिसका तत्त्व जाननेवाले अग्न्यादिकोंका कारण कहते हैं ॥ ७ ॥ दीर्घ यज्ञ करनेवाले ऋषि वायुदेव ताको आश्रममें आया देखकर ब्रह्माके वचन स्मरण कर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥

सब कोई उठकर वायुको प्रणाम कर उनके निमित्त बैठनेको सुवर्णका आसन देते हुए ॥ ९ ॥ वह वायुदेवताने भी मुनियोंसे भलीप्रकार पूजित हो उन सबके वचनोंसे प्रसन्न हो उनसे सबकी कुशल पूँछी ॥ १० ॥ वायु बोले, हे ब्राह्मणो ! क्या इस तुम्हारे यज्ञ कार्यमें कुशल है ? हे ब्राह्मणो ! यज्ञ बिगाडनेवाले देवशत्रु दैत्य तुम्हारे यज्ञमें विघ्न तो नहीं करते ? ॥११॥ कोई प्रायश्चित्त अथवा अरिष्ट तो किसीको उपस्थित नहीं हुआ ? स्तोत्र और शस्त्रग्रहोंसे देवताओंको और पितृकर्मसे पितरोंको प्रीति होती है ॥१२॥ इस प्रकार तुमने अर्चन कर विधिका अनुष्ठान किया है; अब महासत्रके निवृत्त होनेमें तुम्हारी क्या इच्छा है ? ॥१३॥ जब शिवके भक्त वायुने सब मुनियोंसे इस प्रकार वचन कहे, तब वे

अभ्युत्थाय ततस्सर्वे प्रणम्यांबरसंभवम् ॥ चामीकरमयं तस्मै विष्टरं समकल्पयन् ॥९॥ सोपि तत्र समासीनो मुनिभिस्सम्यग र्चितः ॥ प्रतिनंद्य च तान् सर्वान् पप्रच्छ कुशलं ततः ॥ १० ॥ वायुरुवाच ॥ अत्र वः कुशलं विप्राः कच्चिद्वृत्ते महाक्रतौ ॥ कच्चि द्यज्ञहनो दैत्या न बाधेरन्सुरद्विषः ॥११॥ प्रायश्चित्तं दुरिष्टं वा नकच्चित्समजायत॥स्तोत्रशस्त्रगृहैर्देवान् पितॄन् पित्र्यैश्च कर्मभिः ॥ १२ ॥ कच्चिदभ्यर्च्य युष्माभिर्विधिरासीत्स्वनुष्ठितः ॥ निवृत्ते च महासत्रे पश्चात्किं वश्चिकीर्षितम् ॥ १३ ॥ इत्युक्ता मुनयः सर्वे वायुना शिवभाविना ॥ प्रहृष्टमनसः पूताः प्रत्यूचुर्विनयान्विताः ॥ १४ ॥ मुनय ऊचुः ॥ अद्य नः कुशलं सर्वमद्य साधु भवे त्तपः ॥ अस्मच्छ्रेयोभिवृद्ध्यर्थं भवानत्रागतो यतः ॥१५॥ शृणु चेदं पुरावृत्तं तमसाक्रांतमानसैः ॥ उपासितः पुरास्माभिर्विज्ञा नार्थं प्रजा पतिः ॥ १६ ॥ सोप्यस्माननुगृह्याह शरण्यश्शरणागतान् ॥ सर्वस्मादधिको रुद्रो विप्राः परमकारणम् ॥ १७ ॥

ब्राह्मण प्रसन्नमनसे विनयपूर्वक कहने लगे ॥ १४ ॥ मुनि बोले, आज हमारी कुशल हुई और आज हमारा तप सिद्ध हुआ, जो आप हमारे मंगलके निमित्त इस स्थानपर आये हो ॥१५॥ इस पुरानी कथाको सुनिये कि, आक्रांत मनवाले महात्माओंने और हमने भी ज्ञानके निमित्त प्रजापतिकी उपासना की थी ॥ १६ ॥ सो शरण देनेमें साधु हमें शरण आया हुआ देख कृपा करके कहने लगे हे ब्राह्मणो ! रुद्रदेवता हम सबसे अधिक हैं, कारण कि, वही परमकारण स्वरूप हैं ॥ १७ ॥

उस तर्करहितको यथार्थतासे भक्तिमानही देखते हैं; इनके प्रसादसे भक्ति होती है और इनकी प्रसन्नतासे परम सुख होता है ॥१८॥ इस कारण शिवकी प्रसन्नताके निमित्त नैमिषारण्यमें मन्त्रयोगसे तुम परम कारण रुद्रका दीर्घ मन्त्रसे यजन करो ॥ १९ ॥ इसके प्रभावसे यज्ञके अन्तमें वायु उस स्थानमें आवेगा उसके प्रसादसे ज्ञानकी प्राप्ति होगी इससे तुम्हारा मंगल होगा ॥ २० ॥ यह विचार कर हम सबको ब्रह्माजीने इस स्थानमें भेजा है; हे महाभाग ! हम तुम्हारे आनेकी वाट देख रहे हैं ॥२१॥ हमने दिव्य सहस्रवर्षतक यहां यज्ञ किया है इस कारण तुम्हारे आगमनके सिवाय हमको और कुछ प्रार्थनीय नहींहै ॥ २२ ॥ इस प्रकार दीर्घयज्ञ करनेवाले ऋषियोंसे वायु प्रसन्न होकर उन मुनियोंके बीचमें

तमप्रतर्क्यं याथात्म्यं भक्तिमानेव पश्यति ॥ भक्तिश्चास्य प्रसादेन प्रसादादेव निवृतिः ॥ १८ ॥ तस्मादस्य प्रसादार्थं नैमिषे सत्रयोगतः ॥ यजध्वं दीर्घसत्रेण रुद्रं परमकारणम् ॥ १९ ॥ तत्प्रसादेन सत्रांते वायुस्तत्रागमिष्यति ॥ तन्मुखाज्ज्ञानलाभो वस्तत्र श्रेयो भविष्यति ॥ २० ॥ इत्यादिश्य वयं सर्वे प्रेषिता परमेष्ठिना ॥ अस्मिन्देशे महाभाग तवागमनकांक्षिणः ॥ २१ ॥ दीर्घसत्रं समासीना दिव्यवर्षसहस्रकम्॥अतस्तवागमादन्यत्प्रार्थ्यं नो नास्ति किंचन॥२२॥इत्याकर्ण्य पुरावृत्तमृषीणां दीर्घसत्रिणाम्॥ वायुः प्रीतमना भूत्वा तत्रासीन्मुनिसंवृतः॥२३॥ततस्तैर्मुनिभिः पृष्टस्तेषां भावविवृद्धये ॥ सर्गादि शार्वमैश्वर्यं समासाद वदद्विभुः ॥ २० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे वायुसमागमो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ सूत उवाच ॥ तत्र पूर्वं महाभागा नैमिषारण्यवासिनः ॥ प्रणिपत्य यथान्यायं पप्रच्छुः पवनं प्रभुम् ॥ १ ॥ नैमिषीया ऊचुः ॥ भवान् कथमनुप्राप्तो ज्ञानमीश्वरगोचरम् ॥ कथं च शिवभावस्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ २ ॥ ॥

स्थित हुए ॥ २३ ॥ उनके भावकी वृद्धिके निमित्त उन मुनियोंसे पूछे जाकर वायुदेव सृष्टिकी उत्पत्ति शिवका ऐश्वर्य समास अर्थात् संक्षेपसे कहने लगे ॥२४॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूतजी बोले, वे महाभाग्यवान् नैमिषारण्यके रहनेवाले प्रणामपूर्वक न्यायसे पवन देवतासे पूछने लगे ॥ १ ॥ नैमिषारण्यवासी मुनि बोले, आपने ईश्वरगोचर ज्ञानको किस प्रकारसे प्राप्त किया है, तुम अव्यक्तजन्मा शिवके शिष्य किस प्रकारसे हो ? ॥ २ ॥

वायु बोले, श्वेतलोहित नामवाले इक्कीसवें कल्पमें ब्रह्माजीने सृष्टि रचना करनेकी इच्छासे तप किया ॥ ३ ॥ उस उग्र तपसे शिवजीको बडा संतुष्ट किया तब वह बोलनेवालोंमें रूपवालोंमें श्रेष्ठ दिव्य कौमार अवस्थामें स्थित हो ॥ ४ ॥ श्वेत नामक मुनि होकर दिव्य वाणीसे बोले, देवदेव महेश्वरने इस प्रकार उनको दर्शन दिया ॥ ५ ॥ ब्रह्माने उन वेदके पति शिवजीको प्रणाम करके गायत्रीके सहित उनसे ब्रह्मज्ञानको प्राप्त किया ॥ ६ ॥ तब यह विश्वकर्मा चतुर्मुख ज्ञानको प्राप्त होकर स्थावर जंगम सब प्राणियोंको निर्माण करने लगे ॥ ७ ॥ यह श्रवण

॥ वायुरुवाच ॥ एकोनविंशतिः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः ॥ तस्मिन्कल्पे चतुर्वक्त्रस्सृष्टुकामोऽतपत्तपः ॥ ३ ॥ तपसा तेन तीव्रेण तुष्टस्तस्य पिता स्वयम् ॥ दिव्यं कौमारमास्थाय रूपं रूपवतां वरः ॥४॥ श्वेतो नाममुनिर्भूत्वा दिव्यां वाचमुदीरयन् ॥ दर्शनं प्रददौ तस्मै देवदेवो महेश्वरः ॥५॥ तं दृष्ट्वा पितरं ब्रह्मा ब्रह्मणोऽधिपतिं पतिम् ॥ प्रणम्य परमज्ञानं गायत्र्या सह लब्धवान् ॥६॥ ततस्स लब्धविज्ञानो विश्वकर्मा चतुर्मुखः ॥ असृजत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥७॥ यतश्श्रुत्वामृतं लब्धं ब्रह्मणापरमेश्वरात् ॥ ततस्तद्वदनादेव मया लब्धं तपोबलात् ॥ ८ ॥ ॥ मुनय ऊचुः ॥ किं तज्ज्ञानं त्वया लब्धं तथ्यात्तथ्यंतरं शुभम् ॥ यत्र कृत्वा परां निष्ठां पुरुषस्सुखमृच्छति ॥९॥ ॥ वायुरुवाच ॥ पशुपाशपतिज्ञानं यल्लब्धं तु मया पुरा ॥ तत्र निष्ठा परा कार्या पुरुषेण सुखार्थिना ॥ १० ॥ आज्ञानप्रभवं दुःखं ज्ञानेनैव निवर्त्तते ॥ ज्ञानं वस्तुपरिच्छेदो वस्तु च द्विविधं स्मृतम् ॥ ११ ॥ अजडं च जडं चैव नियंतृ च तयोरपि ॥ पशुः पाशः पतिश्चेति कथ्यते तत्त्रयं क्रमात् ॥ १२ ॥

करके ब्रह्माके मुखसे तत्त्व ज्ञानकी प्राप्ति हुई उन्हींके मुखसे तपोबलसे मैंने ज्ञानकी प्राप्ति की ॥ ८ ॥ मुनि बोले, कि वह तुमने अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञान किस प्रकारसे प्राप्त किया जिसके करनेसे यह पुरुष परम सुखको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ वायु बोले, कुछ मैंने पूर्वकालसे शिव सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया है; सुखकी इच्छा करनेवाले पुरुषको उसमें अत्यन्त प्रेम करना चाहिये ॥ १० ॥ अज्ञानसे उत्पन्न हुआ दुःख ज्ञानसे निवृत्त ही हो जाता है ज्ञान वस्तु परिछेद युक्त है, और वह वस्तु तीन प्रकारकी है ॥ ११ ॥ अजड जीव जड प्रकृति इन दोनोंका

ही वह नियन्ता है, उसको पशु, पाश, पति क्रमसे तीन नामसे कहते हैं ॥ १२ ॥ अक्षर और क्षर तथा क्षर अक्षरसे परे इन्हीं तीनोंको तत्त्वके जाननेवाले कहते हैं ॥ १३ ॥ अक्षरका नाम पशु है अर्थात् जीव है और ब्रह्मज्ञानसे पाश प्रकृति क्षरण हो जाती है इससे पाशका नाम क्षर है जो क्षर अक्षरसे परे हैं उसको पति कहते हैं ॥ १४ ॥ मुनि बोले, क्षर किसको कहते हैं और अक्षर किसको कहते हैं और उनसे परे क्या है हे तपोधन ! सो आप वर्णन कीजिये ॥ १५ ॥ वायु बोले, प्रकृतिका नाम क्षर है और पुरुषको अक्षर कहते हैं और जो उन दोनोंकी प्रेरणा करता है वह परेसे परे परमेश्वर शिव है ॥ १६ ॥ मुनि बोले, वर प्रकृति क्या है वह पुरुष कौन है ? इनका क्या

अक्षरं च क्षरं चैव क्षराक्षरपरं तथा ॥ तदेतत्त्रितयं भूम्ना कथ्यते तत्त्ववेदिभिः ॥ १३ ॥ अक्षरं पशुरित्युक्तः क्षरं पाश उदाहृतः ॥ क्षराक्षरपरं यत्तत्पतिरित्यभिधीयते ॥१४॥ ॥ मुनय ऊचुः ॥ किं तदक्षरमित्युक्तं किं च क्षरमुदाहृतम् ॥ तयोश्च परमं किं वा तदेतद् ब्रूहि मारुत ॥ १५ ॥ वायुरुवाच ॥ प्रकृतिः क्षरमित्युक्तं पुरुषोऽक्षर उच्यते ॥ ताविभौ प्रेरयत्यन्यस्स परा परमेश्वरः ॥ १६ ॥ मुनय ऊचुः ॥ कैषा प्रकृतिरित्युक्ता क एष पुरुषो मतः ॥ अनयोः केन सम्बन्धः कोयं प्रेरक ईश्वरः ॥१७॥ वायुरुवाचमाया प्रकृतिरुद्दिष्टा पुरुषो मायया वृतः ॥ संबन्धो मूलकर्मभ्यां शिवः प्रेरक ईश्वरः ॥१८॥ मुनयऊचुः॥ केयं माया समाख्याता किंरूपो मायया वृतः॥मूलं कीदृक् कुतो वास्य किं शिवत्वं कुतश्शिवः ॥१९॥ वायुरुवाच ॥ माया माहेश्वरी शक्तिश्चिद्रूपो मायया वृतः ॥ मलश्चिच्छादको नैजो विशुद्धिश्शिवता स्वतः ॥ ॥ २० ॥

सम्बन्ध है और इनका प्रेरक कौन है ? ॥ १७ ॥ वायु बोले, मायाका नाम प्रकृति और पुरुष माया आवृत है, मल और कर्मके सम्बन्धसे रहित शिव सबके प्रेरक हैं और ईश्वर हैं ॥ १८ ॥ मुनि बोले, यह माया क्या वस्तु है, और मायासे ढककर क्या रूप हो जाता है ? मल कैसा और कहांसे आया शिवतत्त्व क्या है और शिव कौन हैं ॥ १९ ॥ वायु बोले, माया शिवकी शक्ति है, मायासे आच्छादित शिव स्वरूप है मल चित्स्वरूपको आच्छादक है, वह तम स्वयं कल्पना किया हुआ है; और तम रहित विशुद्ध शिव स्वरूप है ॥ २० ॥

मुनि बोले, यह माया किस कारणसे व्यापीको आवृत्त कर लेती है पुरुषको कैसे आवरण होता और किस प्रकारसे निवृत्त होजाता है ॥२१॥ वायु बोले, व्यापीको आवृत्ति होती है जिस कारणसे कलादिमें यह होता है और इसका कारण कर्म है जो भुगाता है, मलके क्षय होनेसे यह निवृत्त होजाता है ॥ २२ ॥ मुनि बोले, वह कलादि क्या है ? और कर्म क्या है ? आदि और अन्त क्या है ? उसका फल और आश्रय क्या है ? ॥ २३ ॥ भोग किसके निमित्त है और भोग क्या है, उस भोगका साधन क्या है, मलके क्षय होनेका क्या कारण है? क्षीणमल पुरुष कैसा होता है ॥२४॥ वायु बोले, रजोगुणसे उत्पन्न विषयोंके अभिलाष और विद्याका नाम राग है काल देव शक्ति है जो पुरुष भोक्ता

मुनय ऊचुः ॥ आवृणोति कथं माया व्यापिनं केन हेतुना ॥ किमर्थं चावृतिः पुंसः केन वा विनिवर्तते ॥२१॥ वायुरुवाच॥ आवृतिर्व्यापिनोऽपि स्याद्व्यापि यस्मात्कलाद्यपि ॥ हेतुः कर्मैव भोगार्थं निवर्तेत मलक्षयात् ॥२२॥ मुनय ऊचुः ॥कलादि कथ्यते किं तत्कर्म वा किमुदाहृतम् ॥ तत्किमादि किमन्तं वा किं फलं वा किमाश्रयम् ॥२३॥ कस्य भोगेन किं भोग्यं किं वा तद्भोगसाधनम् ॥ मलक्षयस्य को हेतुः कीदृक् क्षीणमलः पुमान् ॥२४॥ वायुरुवाच ॥ कला विद्या च रागश्च कालो नियतिरेव च ॥ कलादयस्समाख्यातायो भोक्ता पुरुषो भवेत् ॥२५॥ पुण्यपापात्मकं कर्म सुखदुःखफलं तु यत् ॥ अनादि मलभोगान्तमज्ञानात्मसमाश्रयम् ॥ २६ ॥ भोगः कर्मविनाशाय भोगमव्यक्तमुच्यते ॥ बाह्यांतःकरणद्वारं शरीरं भोगसाधनम् ॥२७॥ भावातिशयलब्धेन प्रसादेन मलक्षयः ॥ क्षीणे चात्ममले तस्मिन् पुमाञ्छिवसमो भवेत् ॥ २८ ॥

हो उसको कलादि कही गई है ॥ २५ ॥ कर्म पुण्य और पापात्मक है जिसका फल सुख दुःख होता है, अनादि मलसे जो अविद्याका किया हुआ है भोगके अन्ततक अज्ञानसे अपनी आत्मामें माना जाता है ॥ २६ ॥ भोगकर्मके नाश करनेके वास्ते भोग्य वस्तुको प्रकृति कहते हैं, चक्षुरादि इंद्रिय बाह्य अन्तःकरण मन इन्द्रियोंके द्वार और शरीर यह भोगके साधन हैं ॥ २७ ॥ और अत्यन्त प्रीतिसे शिवके प्रसादकी प्राप्ति होनेसे तमोगुणका क्षय होता है, जब मल क्षीण हुआ तो यह पुरुष शिवके समान होजाता है ॥ २८ ॥

मुनि बोले, कलादि पांच तत्त्वोंका जो पृथक् कर्म है वह क्या है ? क्या आत्मा भोक्ता नामसे प्रसिद्ध है ? जो पुरुष पृथक् है सो क्या आत्मा है ? जिसे भोक्ता कहते हैं ॥ २९ ॥ वह अव्यक्त क्या आत्मा है ? और किस आकारसे भोक्ता है ? मुक्तिमें उसकी शरण क्या है और शरीर क्या हैं ? ॥३०॥वायु बोले, पुरुषके ज्ञान उत्पन्न करनेकी शक्ति विद्या है, और क्रियाकी व्यंजक कला है, काल उसका अवच्छेदक है और देवशक्ति उसकी नियन्ता हैं ॥ ३१ ॥ अव्यक्तका कारण सत्त्व रज तम तीन रूपसे प्रादुर्भूत होता है, तत्त्व ज्ञाता इसीको प्रधान और प्रकृति कहते हैं ॥ ३२ ॥ वह कला क्रियात्मक प्रभु शक्तिकी कथन वा प्रगट करनेवाली है, सृष्टिके प्रथम वह अनभिव्यक्त स्वरूप भी सृष्टि

मुनय ऊचुः ॥ कलादिपंचतत्त्वानां किं कर्म पृथगुच्यते ॥ भोक्तेतिपुरुषश्चेति येनात्मा व्यपदिश्यते ॥२९॥ किमात्मकं तद व्यक्तं केनाकारेण भुज्यते ॥ किं तस्य शरणं मुक्तौ शरीरं च किमुच्यते ॥३०॥ वायुरुवाच॥ दिक्क्रियाव्यंजका विद्या कालो रागः प्रवर्तकः ॥ कालोऽवच्छेदकस्तत्र नियतिस्तु नियामिका ॥ ३१ ॥ अव्यक्तं कारणं यत्तत्त्रिगुणं प्रभवाप्ययम् ॥ प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिंतकाः ॥३२॥ कलातस्तदभिव्यक्तमनभिव्यक्तलक्षणम्॥ सुखदुःखविमोहात्मा भुज्यते गुणवांस्त्रिधा ॥ ३३ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ॥ प्रकृतौसूक्ष्मरूपेण तिले तैलमिव स्थिताः ॥३४॥ सुखं च सुखहेतुश्च समासात्सात्त्विकं स्मृतम् ॥ राजसं तद्विपर्यासात्स्तंभमोहौ तुतामसौ ॥ ३५ ॥ सात्त्विक्यूर्द्ध्वगतिः प्रोक्ता तामसी स्याद धोगतिः ॥ मध्यमा तु गतिर्या सा राजसी परिपठ्यते ॥ ३६ ॥

दशामें व्यक्त रूप होता है, विमोहित आत्मावाला पुरुष तीन प्रकारसे गुणोंको भोगता है सत्त्व, रज, तम, यह प्रकृतिके तीन गुण हैं वे सूक्ष्म रूपसे प्रकृतिमें हैं जैसे तिलोंमें तेल रहता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सुख और सुखका हेतु यह संक्षेपसे सात्विक कहा है, दुःख दुःखका हेतु राजस कहा है प्रवृत्ति निवृत्ति की शून्यता अर्थात् स्तंभ और मोह तामस कहे हैं ॥ ३५ ॥ रजोगुणको अधोगति कही है, और जो मध्यमा गति है उसको राजसी कहते हैं ॥ ३६ ॥

तन्मात्रा शब्द स्पर्शादि पांच और भूतपंचक पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय ॥३७॥ प्रधान बुद्धि अहंकार और मन यह चारों समाससे ही अव्यक्त और विकारी कहाते हैं ॥ ३८ ॥ उसके कारण दशामें प्राप्त होकर अव्यक्त होता है, कार्य दशामें प्राप्त होकर यह प्रगट होता है, यह शरीर घट आदिके समान प्रत्यक्ष होता है ॥ ३९ ॥ जैसे घटादिकार्य मृत्तिकासे भिन्न नहीं है उसी प्रकारसे यह व्यक्त शरीर आदि अव्यक्तसे भिन्न नहीं है ॥ ४० ॥ इस कारणसे अव्यक्तही कार्योंका कारण है शरीर उसका आधार और भोग्य है. इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ४१ ॥ ऋषि बोले, बुद्धि इन्द्रिय शरीरसे व्यतिरिक्त विदित होकर यथार्थमें किसी आत्मा शब्दका व्यवहार करते हैं, सो उसकी कहां

न्मात्रापञ्चकं चैव भूतपंचकमेव च॥ज्ञानेंद्रियाणि पंचैक्यं पंच कर्मेन्द्रियाणि च॥३७॥प्रधानबुद्ध्यहंकारमनांसि च चतुष्टयम् ॥ समासादेवमव्यक्तंसविकारमुदाहृतम्॥३८॥तत्कारणदशापन्नमव्यक्तमिति कथ्यते॥व्यक्तंकार्यदशापन्नं शरीरादिघटादिवत्॥३९॥ यथा घटादिकं कार्यं मृदादेर्नातिभिद्यते॥ शरीरादि तथा व्यक्तमव्यक्तान्नातिभिद्यते॥४०॥तस्मादव्यक्तमेवैक्यकारणं करणानि च ॥ शरीरं च तदाधारं तद्भोग्यं चापि नेतरत् ॥४१॥ मुनय ऊचुः ॥ बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यो व्यतिरेकस्य कस्यचित् ॥ आत्मशब्दाभिधेयस्य वस्तुतोऽपि कुतः स्थितिः॥४२॥ वायुरुवाच ॥ बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यो व्यतिरेको विभोर्ध्रुवम्॥ अस्त्येव कश्चिदात्मति हेतुस्तत्र सुदुर्गमः ॥ ४३ ॥ बुद्धीन्द्रियशरीराणां नात्मता सद्भिरिष्यते ॥ स्मृतेरनियतज्ञानादयावद्देहवेदनात् ॥ ४४ ॥

स्थिति है ॥ ४२ ॥ वायु बोले, बुद्धि इन्द्रिय और शरीरसे अवश्य ही वह अचल और सर्व व्यापक पृथक् है उसीको आत्मा कहते हैं उसका हेतु जानना बडा कठिन है, अनेक जन्मकी परम्परासे जाना जाता है ॥ ४३ ॥ सत्पुरुषोंने बुद्धि इन्द्रिय और शरीरोंमें आत्मा नहीं मानी है, स्मृतिके विचरनेसे बुद्धिमें स्मरणताका आश्रय होना सम्भव नहीं है; कारण कि स्मृतिही बुद्धिका परिणाम है, और आश्रय आश्रयिभावमें भेद है, इन्द्रिय भिन्न होनेमें सदा एक अज्ञान न रहनेका हेतु है, जैसे नेत्र रूपको ग्रहण करता है स्पर्शको नहीं; और आत्मा तो प्रत्यक्ष योग सबहीको ग्रहण करता है; अथवा इन्द्रिय सन्निकर्षसे ग्रहण करता है स्वतः नहीं और देह जबतक है तभीतक ज्ञान है, और आत्मा

तो शरीर नाश होनेपर भी अन्य शरीरमें जाता है नहीं तो कर्म भोग किस प्रकार भोग सकता है, इससे देहसे भिन्नही कोई आत्मा है ॥ ४४ ॥ इस कारण बुद्धि आदिसे भिन्न कर्मफलका भोक्ता कोई आत्मा है, जो प्राणियोंका स्मर्ता सम्पूर्णका जाननेवाला जो वेद और वेदान्तमें अन्तर्यामी नामसे गाया जाता है ॥ ४५ ॥ वह सबमें है और सबको व्याप्त कर स्थित हो रहा है; तथापि कोई पुरुष उसको प्रत्यक्ष नहीं देख सकता है ॥ ४६ ॥ नेत्र अथवा दूसरी इन्द्रियोंसे कोई इसे ग्रहण नहीं कर सका, केवल योगाभ्यास द्वारा मनको क्रोध करही महात्मा इसको जान सकते हैं ॥ ४७ ॥ यह स्त्री पुरुष अथवा नपुंसक नहीं है; ऊपर नीचे और तिरछेमें भी नहीं है ॥ ४८ ॥ शरीरोंमें

अतः स्मर्तानुभूतानामशेषज्ञेयगोचरः॥अन्तर्य्यामीतिवेदेषु वेदांतेषु च गीयते॥४५॥सर्वतत्रस सर्वत्र व्याप्य तिष्ठति शाश्वतः ॥ तथापि क्वापि केनापि व्यक्तमेष न दृश्यते॥४६॥नैवायं चक्षुषा ग्राह्यो नापरैरिन्द्रियैरपि॥मनसैव प्रदीप्तेन महानात्मावसीयते ॥४७॥ न च स्त्री न पुमानेष नैव चापि नपुंसकः ॥ नैवोर्द्ध्वं नापि तिर्यक् च नाधस्तान्न कुतश्चन॥४८॥अशरीरं शरीरेषु चलेषु स्थाणु मव्ययम् ॥ सदा पश्यति तं धीरो नरः प्रत्यवमर्शनात्॥४९॥किमत्र बहुनोक्तेन पुरुषो देहतः पृथक् ॥ अपृथग्ये तु पश्यंति ह्यस म्यक्तेषु दर्शनम् ॥५०॥ यच्छरीरमिदं प्रोक्तं पुरुषस्य ततः परम्॥अशुद्धमवशं दुःखमध्रुवं न च विद्यते ॥५१॥ विपदां वीजभू तेन पुरुषस्तेन संयुतः॥सुखी दुःखी च मूढश्च भवति स्वेन कर्मणा॥५२॥अद्भिराप्लावितंक्षेत्रं जनयत्यंकुरं यथा ॥ आज्ञानात्प्लु वितंकर्म देहं जनयते तथा ॥५३॥ अत्यंतमसुखावासास्स्मृताश्चैकांतमृत्यवः॥अनागता अतीताश्च तनवोऽस्य सहस्रशः ॥५४॥

होकर भी शरीररहित चलवस्तुमें होकर भी अचल और अविनाशी है, श्रवणआदिके अभ्याससे धीर पुरुष इसे देख सकते हैं ॥ ४९ ॥ बहुत कहनेसे क्या है वह पुरुष इस देहसे पृथक् है; और जो देहसे मिला जानते हैं, उनको यथार्थ ज्ञान नहीं ॥ ५० ॥ जो यह शरीर कहा जाता है यह पुरुषसे भिन्न है; वह अवश्य अशुद्ध दुःखरूप और चल है, यदि पुरुष युक्त होता तो इसमें यह दोष न होते ॥ ५१ ॥ विपत्तिके बीजरूप इस शरीरसे पुरुषका संयोग है इस कारण कर्मानुसार सुखी दुःखी और मूढ जानाजाता है ॥ ५२ ॥ जिस प्रकार पानी देनेसे खेतमेंसे अंकुर निकल आता है, इसी प्रकार अज्ञानरूपी जलसे भीजनेके कारण देहसे अंकुरके समान कर्म उत्पन्न होते हैं ॥ ५३ ॥ यह देह अत्यन्त असुखरूप रोगी

और अवश्य मृत्युमुखमें पतित होनेवाला है, इसके सहस्रों शरीर होगये और होंगे ॥ ५४ ॥ यह पुरुष एक शरीरके जीर्ण होनेसे दूसरेमें प्रवेश करते हैं, कोई भी एक शरीरमें निरन्तर नहीं रहने पाता है ॥५५॥ यह शरीरोंके साथ संयोगको प्राप्त होता है; और आकाशमें मेघाच्छादित चन्द्रमंडलके समान कभी प्रकाशित और कभी अप्रकाशित होता है ॥ ५६ ॥ अनेक देहभेदसे आत्माकी वृत्ति भिन्न २ दीखती है; शारिफल तथा सरपाशेके चिह्नके समान एक आकार होकर भी अनेक रूपका दीखता है, जैसे पाशेमें एक आकार होकर भी अनेक चिह्न दीखते हैं ॥ ५७ ॥ उस पुरुषका न कोई हुआ है न आगेको होगा, स्त्री और बन्धुओंका संगम मुसाफिरोंके समान है ॥५८॥ जैसे चलते हुए दो काष्ठ

आगत्यागत्य शीर्णेषु शरीरेषु शरीरिणः ॥ अत्यंतवसतिः क्वापि न केनापि च लभ्यते ॥५५॥ छादितश्च वियुक्तश्च शरीरैरेषु लक्ष्यते ॥ चंद्रबिंबवदाकाशे तरलैरभ्रसंचयैः ॥५६॥ अनेकदेहभेदेन भिन्ना वृत्तिरिहात्मनः ॥ अष्टापदपरिक्षेपे ह्यक्षमुद्रेव लक्ष्यते ॥५७॥ नैवास्य भविता कश्चिन्नासौ भवति कस्यचित् ॥ पथि संगम एवायं दारैः पुत्रैश्च बंधुभिः ॥५८॥ यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ ॥ समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूतसमागमः ॥५९॥ स पश्यति शरीरं तच्छरीरं तन्न पश्यति ॥ तौ पश्यति परः कश्चित्तावुभौ तं न पश्यतः ॥६०॥ ब्रह्माद्याः स्थावरांताश्च पशवः परिकीर्तिताः ॥ पशूनामेव सर्वेषां प्रोक्तमेतन्निदर्शनम् ॥६१॥ स एष बध्यते पाशैः सुखदुःखाशनः पशुः ॥ लीलासाधनभूतोऽय ईश्वरस्येति सूरयः ॥६२॥ अज्ञो जंतुरनीशोऽयमात्मनस्सुखदुःखयोः ॥ ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥६३॥ ॥

समुद्रोंकी लहरोंसे मिलते हैं, और मिलकर फिर अलग होजाते हैं इस प्रकार प्राणियोंका समागम है ॥ ५९ ॥ वह जीव शरीरको देखता है, शरीर आत्माको नहीं देख सकता है, और इस जीव और शरीरको कोई और देखता है परन्तु यह उसको नहीं देख सकते ॥ ६० ॥ ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सबकी पशुसंज्ञा है, सब पशुओंकेही निमित्त यह दृष्टान्त कहा है ॥ ६१ ॥ जो कि यह पाशोंसे बँधता और सुख दुःख भोगता है इसीसे यह पशु है, यह ईश्वरके विलासका साधन है ऐसा विद्वान् कहते हैं ॥ ६२ ॥ यह प्राणी अज्ञानी अनीश और सुख दुःखका

स्थान है ईश्वरकी प्रेरणासे स्वर्ग और नरकमें जाता है ॥ ६३ ॥ सूतजी बोले, वायुके यह वचन सुनि मुनि बडे प्रसन्न हुए शवशास्त्रमें चतुर वायुसे प्रणाम कर कहने लगे ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ मुनि बोले, जो यह पशुकथन किया है, और जो तुमने पाशकथन की है इनसे विलक्षण इनका पति कौन है ॥ १ ॥ वायु बोले, हाँ एक अनन्त रमणीय गुणोंका आश्रय विश्वका पति जगत्का निर्माण करनेवाला पशुकी पाश छुडाने वाला है ॥ २ ॥ उसके बिना यह जगत्की सृष्टि किस प्रकारसे हो सकती है; इन पशु और पाशके अचेतन और अज्ञान होनेसे ॥ ३ ॥ प्रधान परमाणु आदिक जो कुछ भी अचेतन है चेतनसम्बन्ध

॥ सूत उवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्यानिलवचो मुनयः प्रीतमानसाः ॥ प्रोचुः प्रणम्य तं वायुं शैवागमविचक्षणम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे शिवतत्त्वज्ञानवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ मुनय ऊचुः ॥ योऽयं पशुरिति प्रोक्तो यश्च पाश उदाहृतः ॥ आभ्यां विलक्षणःकश्चित्कोयमस्ति तयोः पतिः ॥ १ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ अस्ति कश्चिदपर्यंतरमणीयगुणाश्रयः ॥ पतिर्विश्वस्य निर्माता पशुपाशविमोचनः ॥ २ ॥ अभावे तस्य विश्वस्य सृष्टिरेषा कथं भवेत् ॥ अचेतनत्वादज्ञानादनयोः पशुपाशयोः ॥ ३ ॥ प्रधानपरमाण्वादि यावत्किंचिदचेतनम् ॥ तत्कर्तृकं स्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना ॥४॥ जगच्च कर्तृसापेक्षं कार्यं सावयवं यतः ॥ तस्मात्कार्यस्यकर्तृत्वं पत्युर्न पशुपाशयोः ॥५॥ पशोरपि च कर्तृत्वं पत्युः प्रेरणपूर्वकम् ॥ अयथाकरणज्ञानमंधस्य गमनं यथा ॥ ६ ॥

रूप बीजके विना उसका स्वयं कर्तृत्व किसीने देखा नहीं है ॥ ४ ॥ यह जगत् कर्तृसापेक्ष है, कर्ताके विना नहीं हो सकता और अवयवरूप हैं जैसे जगत्कर्तावाला है सावयवकार्यत्व होनेसे घटके समान है, इस कारण कार्यका कर्तृपन ईश्वरमें है पशु और पाश जीव और कर्ममें नहीं ॥ ५ ॥ स्वामी ईश्वरकी प्रेरणासे जीवमें भी कर्तापन देखा जाता है, परन्तु वह कर्त्तापन यथार्थ नहीं है जैसे अन्धा दूसरेके सहारेसे चलता है स्वयं नहीं, इसी प्रकार जीवका कर्तापन है ॥ ६ ॥

अपने आत्मा और प्रेरणा करनेवालेको पृथक् मानकर वह आत्मा उपासना द्वारा उस ईश्वरसे अनुग्रहीत हो अमृत हो जाता है ॥७॥ पशुपाश और पतिका जो तत्त्वसे अंतर है ब्रह्मज्ञानी उसको जानकर योनिसे मुक्त हो जाता है ॥ ८ ॥ यह क्षर और अक्षर दोनों मिलकर व्यक्त अव्यक्तको धारण करते हैं विश्वका बंधन छुडानेवाले ईश्वर हैं ॥९॥ भोगनेवाला भोग्य वस्तु और प्रेरणाकरनेवाला यह तीन हैं जाननेवालोंको इनसे परे औरके जाननेकी आवश्कता नहीं ॥ १० ॥ तिलोंमें जैसे तेल, दहीमें जैसे घृत, स्रोतमें जैसे जल, अरणिमें जैसा अग्नि है ॥११ ॥

आत्मानं च पृथङ्मत्वा प्रेरितारं ततः पृथक् ॥ असौ जुष्टस्ततस्तेन ह्यमृतत्वाय कल्पते॥७॥पशोः पाशस्य पत्युश्च तत्त्वतोऽस्ति पदं परम् ॥ ब्रह्मवित्तद्विदित्वैव योनिमुक्तो भविष्यति ॥८॥ संयुक्तमेतद्वितयं क्षरमक्षरमेव च ॥ व्यक्ताव्यक्तं बिभर्तीशो विश्वं विश्वविमोचकः ॥ ९ ॥ भोक्ता भोग्यं प्रेरयिता मंतव्यं त्रिविधं स्मृतम् ॥ ॥ नातः परं विजानद्भिर्वेदितव्यं हि किंचनः ॥ १० ॥ तिलेषु वा यथा तैलं दध्नि वा सर्पिरर्पितम् ॥ यथापः स्रोतसि व्याप्ता यथारण्यां हुताशनः ॥ ११ ॥ एवमेव महात्मानमात्मन्यात्मविलक्षणम् ॥ सत्येनतपसा चैव नित्ययुक्तोऽनुपश्यति ॥१२॥ य एको जालवानीश ईशानीभिस्स्वशक्तिभिः ॥ सर्वाल्लोकानिमान् कृत्वा एव एव स ईशते ॥ १३ ॥ एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ॥ संसृज्य विश्वभुवनं गोप्ता ते संचुकोच यः ॥ १४ ॥ विश्वतश्चक्षुरेवायमुतायं विश्वतोमुखः ॥ तथैव विश्वतोबाहुर्विश्वतः पादसंयुतः ॥ १५ ॥ द्यावाभूमी च जनयन् देव एको महेश्वरः ॥ स एव सर्वदेवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा ॥ १६ ॥

इसी प्रकार अपने आत्मामें आत्मा विलक्षण रूपमें स्थित है, सत्य और तपयुक्त होनेसे दीखता है ॥ १२ ॥ जो एकही इन्द्रजालके समान मायासे युक्त ईश्वर वशमें करनेवाली अपनी शक्तियोंसे इन सबको वश करके एकही स्थित है ॥ १३ ॥ वह एकही रुद्र है दूसरा नहीं है, वही सृष्टिको उत्पन्न करके रक्षा करते हैं, और संहार करते हैं ॥१४॥ सब संसार इसके नेत्र और सब संसार इसका मुख है; और संसारकी भुजा चरण इस विराट्पुरुषके भुजा चरण हैं ॥१५॥ द्यौ (स्वर्ग) और पृथ्वीको उत्पन्न करनेवाला वह एकही देवता है, वही सब देवतोंका उत्पन्न और

पालन करनेवाला है ॥१६॥ जो देवताओंमें प्रथम ब्रह्माको उत्पन्न करते हैं, यही विश्वके उत्पादक सबसे अधिक रुद्र हैं "यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्" इति और "यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः" इति श्रुतेः ॥१७॥ मैं इस महान्त अमृतस्वरूप अचल पुरुषको जिसका आदित्य समान वर्ण अन्धकारसे परे है जो प्रभु है, जानता हूं ॥१८॥ इस परमात्मासे परे और कुछ भी नहीं है इससे अधिक सूक्ष्म और स्थूल कोई नहीं है, इसने सब जगत्को पूर्ण कर लिया है ॥ १९ ॥ वह केवल एक वृक्षके समान स्तब्ध होकर स्वर्गमें स्थित है, उसके संकल्पसे यह चराचर जगत् होता है सबके मुख शिर गर्दन उसके हैं यह सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है वह सर्वव्यापी भगवान् है इसीसे इनको सर्वगत और शिव कहते हैं

हिरण्यगर्भं देवानां प्रथमं जनयेदयम् ॥ विश्वस्मादधिको रुद्रो महर्षिरिति हि श्रुतिः ॥१७॥ वेदाहमेतं पुरुषं महांतममृतं ध्रुवम् ॥ आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्संस्थितं प्रभुम् ॥ १८ ॥ अस्मान्नास्ति परं किंचिदपरं परमात्मनः ॥ नाणीयोऽस्ति न च ज्याय स्तेन पूर्णमिदं जगत् ॥ १९ ॥ सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ॥ सर्वव्यापी च भगवांस्तस्मात्सर्वगतश्शिवः॥२०॥ सर्वतः पाणि पादोऽयं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ॥ सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ २१ ॥ सर्वेन्द्रियगुणाभासस्सर्वेन्द्रियविव र्जितः ॥ सर्वस्य प्रभुरीशानः सर्वस्य शरणं सुहृत् ॥ २२ ॥ अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोति यः ॥ सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम् ॥ २३ ॥ अणोरणीयान्महतो महीयानयमव्ययः ॥ गुहायां निहितश्चापि जंतोरस्य महेश्वरः ॥ २४ ॥ तमक्रतुं क्रतुप्रायं महिमातिशयान्वितम् ॥ धातुः प्रसादादीशानं वीतशोकः प्रपश्यति ॥ २५ ॥

॥ २० ॥ सब ओर इन्हींके हस्त चरण नेत्र मुख शिर हैं, सब ओर इन्हींके कर्ण हैं और यह सबको आवरण कर स्थित हैं ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण इन्द्रिय गुणोंके अभ्यासरूप और सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे वर्जित हैं, सबके प्रभु ईशान सबके शरणदाता और मित्र हैं ॥ २२ ॥ जो बिना नेत्रके देखते बिना कानके सुनते हैं जो सबको जानते और जिनका जाननेवाला कोई नहीं है उसीको पुराणपुरुष कहते हैं ॥ २३ ॥ यह सूक्ष्मसे सूक्ष्म महान्से महान् और अविनाशी है वही महेश्वर इस प्राणीके हृदयाकाशमें स्थित है ॥ २४ ॥ उस ऋतुहीन तथा यज्ञस्वरूप अत्यन्त

महिमासे युक्त ईशान देवदेवको उसी परमात्माकी प्रसन्नतासे शोकरहित देखते हैं ॥ २५ ॥ वेद इस सर्वव्यापी परमात्माको जराहीन पुराणपुरुष सर्वगामी मानते हैं, ब्रह्मवादी कहते हैं, इसी परमात्मा शिवके ध्यानसे जन्म मरणका निरोध हो जाता है ॥२६॥ वह एकही अपनी शक्तिसे इस त्रिलोकीको विधान करके पीछे संहार करता है ॥ २७ ॥ वह प्रकृति विश्वकी उत्पन्न करनेवाली अजा अर्थात् अनादि सिद्ध है, वही शैवी प्रकृति कहलाती है, वह रजोगुणयुक्त होनेसे लालवर्णकी सत्वगुणयुक्त होनेसे श्वेत और तमोगुणयुक्त होनेसे कृष्णवर्ण है, "अजामेकां लोहितकृष्णशुक्लाम् " इति श्रुतेः ॥ २८ ॥ यह अनेक प्रकारकी प्रजाको उत्पन्न करती है; जीव इसको भोगता हुआ शयन करता है और वह

वेदाहमेनमजरं पुराणं सर्वगं विभुम् ॥ निरोधं जन्मनो यस्य वदंति ब्रह्मवादिनः ॥ २६ ॥ एकोऽपि त्रीनिमाँल्लोकान् बहुधा शक्ति योगतः ॥ विदधाति विचेत्यंते विश्वमादौ महेश्वरः ॥२७॥ विश्वधात्रीत्यजाख्या च शैवी चित्रा कृतिः परा॥ तामजां लोहितां शुक्लां कृष्णामेकां त्वजः प्रजाम् ॥२८॥ जनित्रीमनुशेतेऽन्योजुषमाणस्स्वरूपिणीम् ॥ तामेवाजामजोऽन्यस्तु भुक्तभोगा जहाति च ॥२९॥ द्वौ सुपर्णौ च सयुजौ समानं वृक्षमास्थितौ ॥ एकोऽत्ति पिप्पलं स्वादु परोऽनश्नन् प्रपश्यति ॥३०॥ वृक्षेस्मिन् पुरुषो मग्नो मुह्यमानश्च शोचति ॥ जुष्टमन्यं यदा पश्येदीशं परमकारणम् ॥ ३१ ॥ तदास्य महिमानं च वीतशोकस्सुखी भवेत् ॥ छंदांसि यज्ञाः क्रतवो यद्भूतं भव्यमेव च ॥ ३२ ॥ मायी विश्वं सृजत्यस्मिन्निविष्टो मायया परः ॥ मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ॥ ३३ ॥

अज इसको भोगकर त्यागन कर देता है ॥ २९ ॥ दो सुपर्ण अर्थात् परमात्मा और जीव समान अवस्थाके सखा हैं, देहरूपी वृक्षमें समानतासे स्थित हैं, एक जीव इसमें कर्मफलको भोगता है, अर्थात् इस वृक्षके फल खाता है; और दूसरा परमात्मा देखता है "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" इति श्रुतेः ॥ ३० ॥ इस संसार वृक्षपर यह पुरुष मग्न हो उसके भोगोंको भोगता हुआ मोहसे शोच करता है, जब निर्मल होकर ध्यान करता है; तो साक्षात् परमकारण ईश्वरके ज्ञानसे ॥ ३१ ॥ अपनी ईश्वरस्वरूपिणी मायाको देखकर शोकरहित हो जाता है तब आनन्द होता है, छन्द, यज्ञ, क्रतु, भूत भविष्य वर्तमान जो कुछ भी है ॥ ३२ ॥ इस मायाको प्राप्त होकर वह माया निर्माण करता है माया प्रकृति

और मायी साक्षात् महेश्वर हैं ॥३३॥ इन्हींके अवयवोंसे सब जगत् व्याप्त हो रहा है, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म ईशानदेवको गर्भके मध्यमें ॥ ३४ ॥ सब संसारका निर्माण करनेवाला और उसकी चेष्टा करनेवाला शिवही है यह जानकर मनुष्य शांतिको प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ वही परमेश्वर कालस्वरूप है इसको और ससारका रक्षक संसारका स्वामी जानकर मनुष्य कालपाशसे छूटजाता है ॥ ३६ ॥ घृतके परमाणुके समान शिवको परमसूक्ष्म जानकर कि. वह सब प्राणियोंके अन्तरमें वर्तमान है ऐसा जान मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ३७ ॥ यह परदेव विश्वकर्मा महेश्वर हैं हृदयमें इनको स्थित जानकर यह प्राणी अमृत हो जाता है ॥ ३८ ॥ जब सम्पूर्ण दिन रात सत् असत् कुछ

तस्यास्त्ववयवैरेव व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥ सूक्ष्मातिसूक्ष्ममीशानं कललस्यापि मध्यतः ॥३४॥ स्रष्टारमपि विश्वस्य वेष्टितारं च तस्य तु ॥ शिवमेवेश्वरं ज्ञात्वा शांतिमत्यंतमृच्छति ॥३५॥ स एव कालो गोप्ता च विश्वस्याधिपतिः प्रभुः ॥ तं विश्वाधिपतिं ज्ञात्वा मृत्युपाशात्प्रमुच्यते ॥३६॥ घृतात्परं मंडमिव सूक्ष्मं ज्ञात्वा स्थितं प्रभुम्॥सर्वभूतेषु गूढं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३७॥ एष एव परो देवो विश्वकर्मा महेश्वरः ॥ हृदये संनिविष्टं तं ज्ञात्वैवामृतमश्नुते ॥३८॥ यदा समस्तं नदिवा न रात्रिर्न सदप्यसत् ॥ केवलश्शिव एवैको यतः प्रज्ञा पुरातनी ॥३९॥ नैनमूर्ध्वं न तिर्यक्च न मध्यं पर्यजिग्रहत् ॥ न तस्य प्रतिमा चास्ति यस्य नाम महद्यशः ॥ ४० ॥ अजातमिममेवैके बुद्धा जन्मनि भीरवः ॥ रुद्रस्यास्य प्रपद्यंते रक्षार्थं दक्षिणं मुखम् ॥ ४१ ॥ द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनंते समुदाहृते ॥ विद्याविद्ये समाख्याते निहिते यत्र गूढवत् ॥ ४२ ॥ क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं विद्येति परिगीयते ॥ ते उभे ईशते यस्तु सोऽन्यः खलु महेश्वरः ॥ ४३ ॥

भी नहीं था तब केवल एक शिवही थे जिससे सनातनी प्रज्ञा होती है ॥ ३९ ॥ ऊँचे नीचे तिरछे कोई भी ग्रहण नहीं कर सकता, उनके सदृश कोई भी नहीं है जिनके नामका बडा २ यश है प्रतिमाके और उपमानके अर्थ सादृश्य हैं मूर्त्तिके यहांपर नहीं है; ॥ ४० ॥ अनेक जन्मसे डरनेवाले इस परमात्माको अजन्मा और एक जानकर रक्षाके निमित्त दक्षिणामुख रुद्रको प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥ रक्षाका उपाय कहते हैं कि, ब्रह्ममें तत्पर दोही अक्षर हैं जो अनन्त हैं वे विद्या और अविद्यामें स्थित हो गूढ हो रहे हैं ॥ ४२ ॥ अविद्यासे क्षर अर्थात

संसारमें पडता है और विद्यासे अमृतको प्राप्त होता है, इन दोनोंका अधिपति महेश्वर ॥ ४३ ॥ एक ब्रह्माण्डके समान वह एक ही परमात्मा अनेक प्रपंचको उत्पन्न करता है, वह प्रतापी सबको उत्पन्न करके सबका आधिपत्य करते हैं ॥ ४४ ॥ वह ऊपर नीचे दिशाओंमें सबका आधिपत्य करके विराजमान होते हैं, जगत्के कारण होनेके स्वभावसे वह एक ही श्रेष्ठ स्थित है ॥ ४५ ॥ स्वभावरूप शब्द और अर्थोंको परिणाम न करते हुए गुणोंके भोग्यत्व और भोक्तृत्वमें वह संसारमें अधिष्ठित है ॥ ४६ ॥ उस उपनिषद्में गूढ परात्पर ब्रह्म जगत् उत्पन्न करनेवालेको प्रथम देवता और ऋषियोंने जाना था ॥ ४७ ॥ वह प्रीतिसे जाना जाता है इस संसारका आश्रय है भाव अभाव अर्थात् संसा

एकैकं बहुधा जालं विकुर्वन्नेकवच्च यः ॥ सर्वाधिपत्यं कुरुते सृष्ट्वा सर्वान् प्रतापवान् ॥ ४४ ॥ दिशऊर्द्ध्वमधस्तिर्यक् भासयन् भ्राजते स्वयम् ॥ यो निःस्वभावादप्येको वरेण्यस्त्वधितिष्ठति ॥४५॥ स्वभाववाचकान् सर्वान् वाच्यांश्च परिणामयन् ॥ गुणांश्च भोग्य भोक्तृत्वे तद्विश्वमधितिष्ठति ॥४६॥ ते वेगुह्योपनिषदि गूढं ब्रह्म परात्परम् ॥ ब्रह्मयोनिं जगत्पूर्वं विदुर्देवा महर्षयः ॥४७॥ भाव ग्राह्यमनीहाख्यं भावाभावकरं शिवम् ॥ कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ॥ ४८ ॥ स्वभावमेके मन्यंते कालमेके विमोहिताः ॥ देवस्य महिमा ह्येष येनेदं भ्राम्यतेजगत् ॥४९॥ येनेदमावृतं नित्यं कालकालात्मना यतः ॥ तेनेरितमिदं कर्म भूतैः सह विवर्तते ॥५०॥ तत्कर्म भूयशःकृत्वा विनिवृत्य च भूयशः ॥ तत्त्वस्य सह तत्त्वेन योगं चापि समेत्य वै ॥५१॥ अष्टाभिश्च त्रिभिश्चैवं द्वाभ्यां चैकेन वापुनः ॥ कालेनात्मगुणैश्चापि कृत्स्नमेव जगत् स्वयम् ॥ ५२ ॥

रकी उत्पत्ति संहार करनेवाले कला और जगत्के उत्पन्न करने वाले परमात्माको जो जानते हैं वे शरीर बन्धनमें नहीं पडते ॥४८॥ कोई इसको स्वभाव और कोई काल कहते हैं परन्तु जानते नहीं मोहित हैं, यह उस देवीकी महिमा है जिसने इस जगत्को भ्रममें रक्खा है ॥४९॥ कालके भी कालरूप जिस परमात्माने नित्य जगत्को आवृत कर रक्खा है उनसे प्रेरित हुए यह कर्म भूतोंके साथ प्रकाश करते हैं ॥ ५० ॥ वह अनेक प्रकारके कर्म करके फिर लौट करके कलादि तत्त्व और सत्त्वगुणके आश्रित हो योगको प्राप्त होकर ॥ ५१ ॥ आठ आकाशादिमूर्त्ति तीन सत्वादि गुण दो विद्या और अविद्या अथवा एक कालसे ही अथवा अपने सत्वादि गुणोंसे इस सम्पूर्ण जगत्को ॥ ५२ ॥

गुणोंके अनुसार कर्मोंको आरम्भ कर स्वभावमें प्राणियोंको लगाकर कार्य कर्ता है उन कर्मोंके अभावमें किये हुए कर्मोंका भी नाश होता है ॥ ५३ ॥ कर्म क्षय होनेसे सत्वसे फिर जन्म नहीं होता यह भोक्ता और भोगका आदियोग तुमसे वर्णन किया ॥ ५४ ॥ वह परम पुरुष त्रिकालसे अकल अर्थात् निर्गुण है, सबका जाननेवाला तीनों गुणोंका अधीश्वर परेसे परे साक्षात् ब्रह्म है ॥५५॥ उस विश्वरूप जगत्के उत्पन्न कर्ता शिव प्रजापति देवदेव जगत्पूज्यको स्वस्थचित्त होकर उपासना करते हैं ॥ ५६ ॥ कालादिकसे भी परे जिस परमात्मासे यह सब प्रपंच आरम्भ होता है धर्मके करनेवाले पापहारी ऐश्वर्यके ईश विश्वमें व्यापक ॥ ५७ ॥ ईश्वरोंके ईश्वर परम महेश्वर देवताओंके भी परम

गुणैरारभ्य कर्माणि स्वभावादीनि योजयेत ॥ तेषामभावे नाशः स्यात्कृतस्यापि च कर्मणः॥ ५३ ॥ कर्मक्षये पुनश्चान्यत्ततो याति स तत्त्वतः ॥ स एवादिस्स्वयं योगनिमित्तं भोक्तृ भोगयोः॥५४॥ परस्त्रिकालादकलस्स एव परमेश्वरः ॥ सर्ववित् त्रिगुणाधीशो ब्रह्म साक्षात्परात्परः॥५५॥ तं विश्वरूपमभवं भवमीडचं प्रजापतिम्॥ देवदेवं जगत्पूज्यं स्वचित्तस्थमुपास्महे ॥ ५६ ॥ कालादिभिः परो यस्मात्प्रपंचः परिवर्तते॥ धर्मावहं पापनुदं भोगेशं विश्वधाम च॥५७॥ तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्॥ पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेश्वरेश्वरम्॥५८॥ न तस्यविद्यते कार्यं कारणं च न विद्यते ॥ तत्समोऽधिकश्चापि क्वचिज्जगति दृश्यते॥५९॥ परास्य विविधा शक्तिः श्रुतौ स्वाभाविकी श्रुता॥ ज्ञानं बलं क्रिया चैव याभ्यो विश्वमिदं कृतम् ॥६०॥ न तस्यास्ति पतिः कश्चिन्नैव लिंगं न चेशिता ॥ कारणं कारणानां च स तेषामधिपराधिपः ॥ ६१ ॥ न चास्य जनिता कश्चिन्न च जन्म कुतश्चन ॥ न जन्महेतवस्तद्वन्मलमायादिसंज्ञकाः ॥ ६२ ॥

देवता पतियोंके पति भुवनेश्वर देवको भजते हैं ॥ ५८ ॥ उनको काय और साधनकी आवश्यकता नहीं है जगत्में उससे अधिक अथवा उसके समान कोई नहीं ॥ ५९ ॥ इसकी पराशक्ति अनेक प्रकारसे सुनी जाती है, उसमें ज्ञान बल और क्रिया है, जिससे यह सारा संसार हुआ है ॥ ६० ॥ उसका कोई स्वामी अथवा साक्षात् कहनेवाला चिह्न नहीं है, न कोई अधिपति है कार्य और कारणोंका भी वह स्वामी है ॥ ६१ ॥ न कोई उसका उत्पन्न करनेवाला और न कभी इसका जन्म है ने मल और माया मिले हुए जन्म होनेके

इसमें कारण है ॥ ६२ ॥ यह एक ही सब प्राणियोंमें गूढतासे व्यापक होरहा है, यही सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा और धर्माध्यक्ष कहलाता है ॥ ६३ ॥ सब प्राणियोंमें रहनेवाला साक्षी चेतन और निर्गुण है यह एक ही बहुतसे योगियोंका वशी करनेवाला है ॥ ६४ ॥ वा विवश आत्मावाले निष्क्रिय पुरुषोंका वश करनेवाला है, यह एक समयके अनुसार जीवोंमें प्रजा उत्पन्न करनेवाले बीजको करता है, जो मुक्तिकी इच्छावाले आत्मामें इसको देखते हैं उन्हीं महात्माओंको सदा सुख मिलता है दूसरोंको नहीं यह नित्योंका नित्य और चेतनोंका चेतन करनेवाला है; यह एकही स्वयं कामनाहीन होकर दूसरोंको अनेक काम देता है ॥ ६५ ॥ सांख्य योगसे जानने योग्य कारण स्वरूप जगत्के पति शिवको

स एकस्सर्वभूतेषु गूढो व्याप्तश्च विश्वतः ॥ सर्वभूतांतरात्मा च धर्माध्यक्षस्स कथ्यते ॥ ६३ ॥ सर्वभूताधिवासश्च साक्षी चेता च निर्गुणः ॥ एको वशी निष्क्रियाणां बहूनां विवशात्मनाम् ॥ ६४ ॥ नित्यानामप्यसौ नित्यश्चेतनानां च चेतनः ॥ एको बहूनां चाकामः कामानीशः प्रयच्छति ॥६५॥ सांख्ययोगाधिगम्यं यत्कारणं जगतां पतिम् ॥ ज्ञात्वा देवं पशुः पाशैस्सर्वैरेव विमुच्यते ॥६६॥ विश्वकृद्विश्ववित्स्वात्मयोनिज्ञः कालकृद्गुणी ॥ प्रधानः क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः पाशमोचकः ॥ ६७ ॥ ब्रह्माणं विदधे पूर्वं वेदांश्चोपादिशत्स्वयम् ॥ यो देवस्तमहं बुद्ध्वा स्वात्मबुद्धिप्रसादतः ॥ ६८ ॥ मुमुक्षुरस्मात्संसारात्प्रपद्ये शरणं शिवम् ॥ निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनम् ॥ ६९ ॥ अमृतस्य परं सेतुं दग्धेंधनमिवानिलम् ॥ यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः ॥ ॥ ७० ॥ तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यांतो भविष्यति ॥ ७१ ॥

इस प्रकार जानकर यह जीव सब कर्म बन्धनसे छूट जाते हैं ॥ ६६ ॥ संसारके कर्ता संसारके ज्ञाता जीवोंके कर्म बीजके ज्ञाता कालके करनेवाले गुणी प्रधान और जीवोंके पति गुणेश कर्म छुटानेवाले ॥ ६७ ॥ शिवने प्रथम ब्रह्माको निर्माण कर उन्हें वेदोंका उपदेश दिया, उस देवको मैं अपनी आत्मा बुद्धि और उसके प्रसादसे जानकर ॥ ६८ ॥ मुक्तिकी इच्छा करनेवाला इस संसारसे छूटनेके निमित्त शिवकी शरण होता हूँ, जो कला रहित क्रियारहित निरंजन शान्त निन्दारहित है ॥ ६९ ॥ जो अमृतकी मर्यादा दुःखरूपी ईंधनको अग्नि है इनके विना दुःख दूर करानेका उपाय नहीं जब मनुष्य चर्मके समान आकाशको शरीरमें लपेट लेंगे ॥ ७० ॥ तब शिवके विना जाने

भी दुःखका अन्त हो जायगा अर्थात् शिवके ज्ञानके विना दुःखका अन्त नहीं होता ॥ ७१ ॥ तपके प्रभाव और देवके प्रसादसे महर्षि जन संन्यासाश्रमके पवित्र और पाप नाशन ज्ञानको ॥ ७२ ॥ जो वेदान्तमें परम गुप्त और पूर्वकालमें कहे हुए हैं जानते हैं सो यह मैंने अपने बडे भाग्यके कारण ब्राह्मके मुखसेही श्रवण किया है ॥ ७३ ॥ यह श्रेष्ठ ज्ञान अशान्त पुरुषको देना नहीं चाहिये अपुत्र असुवृत्त सदा चरणहीन अशिष्यको यह ज्ञान न देना चाहिये ॥ ७४ ॥ जिसकी देव और गुरुमें परम भक्ति है उसी महात्माके निमित्त यह अर्थ कथन किये हैं, उसी पुरुषको इनका अर्थ प्रकाशित होता है ॥ ७५ ॥ इस कारण संक्षेपसे इसका यह तात्पर्य सुनो, कि शिव प्रकृतिसे परे

तपःप्रभावाद्देवस्य प्रसादाच्च महर्षयः ॥ अत्याश्रमोचितज्ञानं पवित्रं पापनाशनम् ॥ ७२ ॥ वेदांते परमं गुह्यं पुराकल्पप्रचोदितम् ॥ ब्रह्मणो वदनाल्लब्धं मयेदं भाग्यगौरवात् ॥ ७३ ॥ नाप्रशांताय दातव्यमेतज्ज्ञानमनुत्तमम् ॥ न पुत्रायाशुवृत्ताय नाशिष्याय च सर्वथा ॥ ७४ ॥ यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ॥ तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥७५॥ अतश्च संक्षेपमिदं शृणुध्वं शिवःपरस्तात्प्रकृतेश्च पुंसः ॥ स सर्गकाले च करोति सर्वं संहारकाले पुनराददाति ॥ ७६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे शिवतत्वज्ञानवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ मुनय ऊचुः ॥ कालादुत्पद्यते सर्वं काले देव विपद्यते ॥ न कालनिरपेक्षं हि क्वचित्किंचन विद्यते ॥ १ ॥ यदास्यांतर्गतं विश्वं शश्वत्संसारमण्डलम् ॥ सर्गसंहृतिमुद्राभ्यां चक्रवत्परिवर्तते ॥ २ ॥ ब्रह्मा हरिश्च रुद्रश्च तथान्ये च सुरासुराः ॥ यत्कृतां नियतिं प्राप्य प्रभवो नातिवर्तितुम् ॥ ३ ॥ भूतभव्यभविष्याद्यैर्विभज्य जरयन् प्रजाः ॥ अतिप्रभुरिति स्वैरं वर्ततेऽतिभयंकरः ॥ ४ ॥

पुरुष है; वह सृष्टि समयमें सब कुछ प्रगट करता है; और संहार कालमें सब लय कर देता है ॥७६॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ मुनि बोले, कालसेही वस्तु उत्पन्न होती और कालसेही लय होजाती है काल कभी भी कहीं निरपेक्ष नहीं रहता है ॥१॥ जब यह सारा विश्वमण्डल अन्तर्गत होजाता है तब फिर उत्पन्न होता है; यह उत्पत्ति और प्रलय चक्रके समान होती रहती है॥२॥ब्रह्मा, हरि, रुद्र, तथा दूसरे देवता जिसके नियमको प्राप्त होकर उसे उल्लंघन नहीं कर सकते ॥३॥ जो भूत भविष्य वर्तमान

कालका विभाग करके प्रजाको जराग्रस्त करता हुआ यह काल स्वच्छन्द और भयंकररूपसे वर्तता है ॥ ४ ॥ सो यह काल क्या वस्तु है किसके वशवर्ती है और कौन इसके वशमें नहीं हो सकता है हे मुनिश्रेष्ठ ! सो आप कहिये ॥ ५ ॥ वायु बोले, कला काष्ठा निमेष कलाओंकी वृद्धि कालका शरीर है; यह कालात्माही महेश्वरका तेज कहलाता है ॥ ६ ॥ जिसको स्थावर जंगम कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता, यह ईश्वरका नियोगरूप रूपसंसारका रक्षक है ॥ ७ ॥ उसकी अंशमयी शक्ति कालात्मारूप महात्मासे निकलकर प्रवेश कर गई है जैसे लोहेमें अग्नि प्रविष्ट होजाती है ॥८॥ इस कारण कालके वशमें संसार है; काल किसीके वशमें नहीं परन्तु वह काल शिवके वशमें है शिव कालके वशमें नहीं

क एष भगवान् कालः कस्य वा वशवर्त्ययम् ॥ क एवास्य वशे न स्यात्कथयैतद्विचक्षण ॥५॥ ॥ वायुरुवाच ॥ कलाकाष्ठानिमेषादिकलाकलितविग्रहम् ॥ कालात्मेति समाख्यातं तेजो माहेश्वरं परम् ॥६॥ यदलंघ्यमशेषस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥ नियोगरूपमीशस्य बलं विश्वनियामकम् ॥७॥ तस्यांशांशमयी मुक्तिः कालात्मनि महात्मनि ॥ ततो निष्क्रम्य संक्रांता विसृष्टाग्नेरिवायसी ॥८॥ तस्मात्कालवशे विश्वं न स विश्ववशे स्थितः ॥ शिवस्य तु वशे कालो न कालस्य वशे शिवः ॥९॥ यतोऽप्रतिहतं शार्वं तेजः काले प्रतिष्ठितम् ॥ महती तेन कालस्य मर्यादा हि दुरत्यया ॥ १० ॥ कालं प्रज्ञाविशेषेण कोऽतिवर्तितुमर्हति ॥ कालेन तु कृतं कर्म न कश्चिदतिवर्तते ॥११॥ एकच्छत्रां महीं कृत्स्नां ये पराक्रम्य शासति ॥ तेऽपि नैवातिवर्तंते कालवेलामिवाब्धयः ॥ १२ ॥ ये निगृह्येंद्रियग्रामं जयंति सकलं जगत् ॥ न जयंत्यपि ते कालं कालो जयति तानपि ॥ १३ ॥

॥ ९ ॥ जिस कारण कि कालमें शिवका अप्रतिहत तेज प्रविष्ट है; इस कारण महत्तसे परे कालकी मर्यादा कोई नहीं मेट सकता ॥ १० ॥ अत्यन्त बुद्धिमानीसे भी कोई कालके मेटनेको समर्थ नहीं, कालके किये हुए कर्मको कोई नहीं मेट सकता ॥ ११ ॥ जो एकक्षत्र पृथ्वीको पराक्रमसे वश करके शासन करता है वह भी कालकी मर्यादाको नहीं मेंट सकता, जैसे सागर बेलाको ॥ १२ ॥ जो इन्द्रियसमूहको वशकर सब संसारको जीतते हैं वह कालको नहीं जीत सकते किन्तु काल उन्हें जीत लेता है ॥ १३ ॥

आयुर्वेद और रसायनके जाननेवाले वैद्य भी मृत्युको नहीं मेटसकते कारण कि, काल दुरतिक्रम है ॥ १४ ॥ लक्ष्मीरूपशील आदिसे प्राणी कुछ और ही विचारता है, और काल बलसे कुछ और ही कराता है ॥१५॥ अप्रिय प्रिय और भी अचिंतित वस्तुओंका आना जाना प्राणियोंका संयोग वियोग काल ही करता है ॥१६॥ जैसे ही कोई दुखी होता है, वैसेही दूसरा सुखी होता है, कालका स्वभाव और गति दुर्ज्ञेय है ॥१७॥ जो युवा है सो वृद्ध होता है, जो बली है, सो निर्बल हो जाता है, जो लक्ष्मीवान् है सो हीनलक्ष्मी हो जाता है, कालकी गति विचित्र है ॥१८॥

आयुर्वेदविदो वैद्यास्त्वनुष्ठितरसायनाः ॥ न मृत्युमतिवर्तते कालो हि दुरतिक्रमः ॥१४॥ श्रिया रूपेण शीलेन बलेन च कुलेन च ॥ अन्यच्चिंतयते जंतुः कालोऽन्यत्कुरुते बलात् ॥१५॥ अप्रियैश्च प्रियैश्चैव ह्यचिंतितगमागमैः ॥ संयोजयति भूतानि वियोजयति चेश्वरः ॥१६॥ यदैव दुःखितः कश्चित्तदैव सुखितः परः ॥ दुर्विज्ञेयस्वभावस्य कालस्याहो विचित्रता ॥१७॥ यो युवा स भवेद्वृद्धो यो बलीयान्स दुर्बलः ॥ यः श्रीमान्सोऽपि निःश्रीकः कालश्चित्रगतिर्द्विजाः ॥१८॥ नाभिजात्यं न वै शीलं न बलं न च नैपुणम् ॥ भवेत्कार्याय पर्याप्तं कालश्च ह्यनिरोधकः ॥१९॥ ये सनाथाश्च दातारो गीतवाद्यैरुपस्थिताः ॥ ये चानाथाः परान्नादाः कालस्तेषु समक्रियः ॥२०॥ फलंत्यकाले न रसायनानि सम्यक्प्रयुक्तान्यपि चौषधानि ॥ तान्येव कालेन समाहृतानि सिद्धिं प्रयांत्याशु सुखं दिशंति ॥ २१ ॥ नाकालतोऽयं म्रियते जायते वा नाकालतः पुष्टिमभ्युपैति ॥ नाकालतः सुखितं दुःखितं वा नाकालिकं वस्तु समस्ति किंचित् ॥ २२ ॥

जाति शील बल चतुरता यह कार्यके निमित्त पूर्ण नहीं होती, काल ही इसका रोधक है ॥ १९ जो प्राणी बडे मनोहर गीत बाजेके शब्दोंसे स्थित होते हैं, और जो अनाथ पराया अन्नखातें हैं, कालका उनमें बराबर व्यवहार है ॥ २० ॥ अकालमें औषधी रसायन अच्छी प्रयोग करी हुई औषधी फल नहीं देती है, और वही कालसे लाई हुई सिद्धिको प्राप्त हो शीघ्र सुखको देती है ॥ २१ ॥ न प्राणी कालके विना मरता न जन्म लेता न पुष्ट होता है, कालके विना सुख दुःख नहीं, अकालिक कोई वस्तु समान नहीं है ॥ २२ ॥

कालसे ही ठंढी हवा चलती है, कालसे ही मेघोंसे वर्षा होती है, कालसे ही गरमी शान्त होती और कालसे ही सब सफल होता है ॥ २३ ॥ काल ही सबकी उत्पत्तिका हेतु है, कालसे ही खेती होती और कालसे ही नष्ट होती कालसे ही सब लोक जीते हैं ॥ २४ ॥ इस प्रकारसे जो तत्त्वमें कालात्मा परमेश्वरका तत्त्व जानता है, वह कालात्माको अतिक्रमण कर निर्गुण परमात्माको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ न जिसको काल बंध मुक्ति है न जो पुरुष प्रकृति और विश्वस्वरूप है उस विचित्ररूप शिव परमात्मा पुरुषके निमित्त नमस्कार है ॥ २६ ॥

कालेनशीतः प्रतिवाति वातःकालेन वृष्टिर्जलदानुपैति॥कालेन चोष्मा प्रशमं प्रयाति कालेन सर्वं सफलत्वमेति॥२३॥कालश्च सर्वस्य भवस्य हेतुः कालेन सस्यानि भवंति नित्यम् ॥ कालेन सस्यानि लयं प्रयांति कालेन संजीवति जीवलोक ॥२४॥ इत्थं कालात्मनस्तत्त्वं यो विजानाति तत्त्वतः ॥ कालात्मानमतिक्रम्य कालातीतं स पश्यति ॥२५॥ न यस्य कालो न च बंधमुक्ती न यःपुमान्न प्रकृतिर्न विश्वम्॥विचित्ररूपाय शिवायतस्मै नमःपरस्मै परमेश्वराय॥२६॥इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसं हितायां पूर्वखण्डे कालमहिमवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥ऋषय ऊचुः॥केन मानेन कालेस्मिन्नायुस्संख्या प्रकल्प्यते॥ संख्यारूपस्य कालस्य कःपुनः परमोऽवधिः॥१॥वायुरुवाच॥आयुषोऽत्र निमेषाख्यमाद्यमानं प्रचक्षते॥संख्यारूपस्य कालस्य शांत्वतीतकलावधि ॥२॥ अक्षिपक्ष्मपरिक्षेपो निमेषः परिकल्पितः ॥ तादृशानां निमेषाणां काष्ठा दश च पंच च ॥३॥ काष्ठा त्रिंशत्कला नाम कलात्रिंशन्मुहूर्तकः॥मुहूर्त्तानामपि त्रिंश दहोरात्रं प्रचक्षते॥४॥त्रिंशत्संख्यैरहोरात्रैर्मासः पक्षद्वयात्मकः ॥५॥

इति श्रीशिवमहापुराण० स० वा० सं० पूर्वखण्डे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ऋषि बोले, इस कालमें किस प्रमाणसे आयुकी संख्याकी कल्पना की जाती है, संख्यारूप कालकी परमावधि क्या है ॥ १ ॥ वायु बोले, आयुका प्रथम मान यह निमेष है, संख्यावाले कालकी शान्त्यतीत सीमा है ॥ २ ॥ जितने समयमें पलक लगता है, उसको निमेष कहते हैं, पन्द्रह निमेषकी एक काष्ठा होती है ॥ ३ ॥ तीस काष्ठाकी एक कला तीस कलाका मुहूर्त तीस मुहूर्तका दिन रात होता है ॥ ४ ॥ तीस दिन रातके दो पक्षका महीना होता है ॥ ५ ॥

एक महीनेकी पितरोंकी दिन रात होती है, कृष्ण पक्ष रात्रि शुक्ल पक्ष दिन ॥ ६ ॥ छः महीनेका एक अयन दो अयनका एक वर्ष यही लौकिकमानसे मनुष्योंका एक वर्ष है ॥ ७ ॥ मनुष्योंके एक वर्षका देवताओंका एक दिनरात होता है यह शास्त्रका निश्चय है; दक्षिणायन रात्रि और उत्तरायण दिन है ॥ ८ ॥ देवताओंका एक महीना मनुष्योंके तीस वर्षका होता है ऐसे द्वादश महीनोंका देवताओंका एक वर्ष होता है ॥ ९ ॥ मनुष्योंके तीनसौसाठ वर्षका देवताओंका एक वर्ष होता है ॥१०॥ उसी दिव्यवर्षसे युगसंख्या होती है भारतवर्षमें विद्वानों ने चार युग माने हैं ॥ ११ ॥ सतयुग त्रेता द्वापर और कलियुग ॥ १२ ॥ इनमें चार हजार देवताओंके वर्षोंका सतयुग, इनमें चारसौ वर्ष

ज्ञेयं पित्र्यमहोरात्रं मासः कृष्णसितात्मकः ॥ ६ ॥ मासैस्तैरयनं षड्भिर्वर्षे द्वे चायनं मतम् ॥ लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः ॥ ७ ॥ एतद्दिव्यमहोरात्रमिति शास्त्रस्य निश्चयः ॥ दक्षिणं चायनं रात्रिस्तथोदगयनं दिनम् ॥८॥ मासस्त्रिंशद होरात्रैर्दिव्यो मानुषवत्स्मृतः ॥ संवत्सरोऽपि देवानां मासैर्द्वा दशभिस्तथा ॥ ९ ॥ त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षयुतान्यपि ॥ दिव्यस्संवत्सरो ज्ञेयो मानुषेण प्रकीर्तितः ॥१०॥ दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्या प्रवर्तते ॥ चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः ॥ ११ ॥ पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ॥ द्वापरं च कलिश्चैव युगान्येतानि कृत्स्नशः ॥१२॥ चत्वारि तु सहस्रा णि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ॥ तस्य तावच्छतीसंध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥१३॥ इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु ॥ एका पायेन वर्तते सहस्राणि शतानि च ॥१४॥ एतद्द्वादशसाहस्रं साधिकं च चतुर्युगम् चतुर्युगसहस्रं यत्संकल्प इति कथ्यते ॥१५॥ चतुर्युगैकसप्तत्या मनोरंतरमुच्यते ॥ कल्पे चतुर्दशैकस्मिन्मनूनां परिवृत्तयः ॥ १६ ॥

की संख्या और चारसौ वर्षका संध्यांश होता है युगके पूर्वमें संध्या और अन्तमें संध्यांश होता है ॥ १३ ॥ और दूसरे युगोंमें वर्ष और संध्या एक एक पाद कमती होती है; अर्थात् त्रेतायुग तीनहजार वर्ष, संध्या संध्यांश तीनसौ वर्ष, द्वापर दो हजार वर्ष, संध्या संध्यांश एक एकसौ वर्ष ॥ १४ ॥ इस प्रकार चारों युगसंध्या और सध्यांशके सहित बारह सहस्र वर्ष होते हैं, हजार चतुर्युगीका एक कल्प होता है ॥ १५ ॥ एकहत्तर चतुर्युगीका एक मन्वन्तर होता है, एक कल्पमें चौदह मनु होते हैं ॥ १६ ॥

इस योगसे कल्प और मन्वन्तर सहस्रों बीत गये हैं ॥ १७ ॥ उन्हें कोई नहीं जान सकता, न उनकी संख्या कर सकता है, और क्रमसे कोई इनका बिस्तार नहीं कह सकता ॥ १८ ॥ एक कल्पका अव्यक्तसे प्रगट होने वाले ब्रह्माजीका एक दिन होता है; सहस्र कल्पका ब्रह्माका एक वर्ष होता है ॥ १९ ॥ ऐसे आठ सहस्र वर्षका ब्रह्माका एक युग होता है, ब्रह्माके सहस्र युगका एक सवन होता है ॥ २० ॥ और सहस्र सवनको तीन गुण करनेसे अर्थात् तीन सहस्र सवनका परमेष्ठी ब्रह्माका समय है इतने दिनकी आयु है, ब्रह्माके एक दिनमें चौदह इन्द्र हो जाते हैं; एक महीनेमें चार सौ बीस हो जाते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ एक वर्षमें ५०४० पांच हजार चालीस इन्द्र होते हैं,

एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वंतराणि च ॥ सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १७ ॥ अज्ञेयत्वाच्च सर्वेषामसंख्येयतया पुनः ॥ शक्यो नैवानुपूर्व्याद्वै तेषां वक्तुं सुविस्तरः ॥ १८ ॥ कल्पो नाम दिवा प्रोक्तो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ कल्पानां वै सहस्रं च ब्राह्मं वर्ष मिहोच्यते ॥ १९ ॥ वर्षाणामष्टसाहस्रं यच्च तद्ब्रह्मणो युगम् ॥ सवनं युगसाहस्रं ब्रह्मणः पद्मजन्मनः ॥ २० ॥ सवनानां सहस्रं च त्रिगुणं त्रिवृतं तथा ॥ कल्प्यते सकलः कालो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ २१ ॥ तस्य वै दिवसे यांति चतुर्दश पुरंदराः ॥ शतानि मासे चत्वारि विंशत्या सहितानि च ॥ २२ ॥ अब्दे पंच सहस्राणि चत्वारिंशद्युतानि च ॥ चत्वारिंशत्सहस्राणि पंच लक्षाणि चायुषि ॥ ॥ २३ ॥ ब्रह्मा विष्णोर्दिने चैको विष्णू रुद्रदिने तथा ॥ ईश्वरस्य दिने रुद्रस्सदाख्यस्य तथेश्वरः ॥ २४ ॥ साक्षाच्छिवस्य तत्संख्यस्तथा सोऽपि सदाशिवः ॥ चत्वारिंशत्सहस्राणि पंचलक्षाणि चायुषि ॥ २५ ॥ तस्मिन्साक्षाच्छिवेनैष कालात्मा सम्प्रवर्तते ॥ यत्त त्सृष्टेस्समाख्यातं कालान्तरमिह द्विजाः ॥ एतत्कालान्तरं ज्ञेयमहर्वै पारमेश्वरम् ॥ रात्रिश्च तावती ज्ञेया परमेशस्य कृत्स्नशः ॥ २६ ॥

पांच लाख चालीस सहस्र इन्द्र ब्रह्माकी आयुमें हो जाते हैं ॥ २३ ॥ ब्रह्मा विष्णुके एक दिन पर्यन्त रहते हैं, और रुद्रके एक दिन पर्यन्त विष्णुकी स्थिति है; ईश्वरके एक दिन तक रुद्रकी स्थिति है जिसको सत् कहते हैं ॥ २४ ॥ यही साक्षात् शिवके किये कालकी संख्या है, वही सत् नामवाले शिव हैं, इनकी अवस्थामें पूर्वोक्त क्रमसे पांच लाख चालीस सहस्र रुद्रादिक होते हैं, सो अपनी २ अवस्थामें क्रमसे जानना ॥ २५ ॥ परन्तु उस साक्षात् शिवमें वह काल प्रवृत्त नहीं होता है, हे ब्रह्माणो ! जो यह सृष्टिका कालान्तर वर्णन किया है

इतना काल उस परमात्माका एक दिन है और उस परमेशकी इतनी ही रात्रि जाननी ॥ २६ ॥ दिनमें सृष्टि और रात्रिमें प्रलय होती है, परन्तु उसको दिन रात कुछ नहीं है ॥ २७ ॥ यह व्यवहार लोकोंके हितकी इच्छासे किया जाता है प्रजा प्रजापति मूर्ति सुर असुर ॥ २८ ॥ इन्द्रिय इन्द्रियोंके अर्थ पंच महाभूत तन्मात्रा बुद्धि आदि इन्द्रिय और उनके देवता ॥ २९ ॥ यह उस परमेश्वरके दिनमें स्थित रहते हैं और उनके दिनके अवसानमें लय हो जाते हैं ॥ ३० ॥ जो विश्वात्मा है काल कर्म स्वभावादि अर्थमें जिसकी शक्तिका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता जिसकी आज्ञाके आधीन यह सब संसार है उस महान् परमात्मा शंकरको नमस्कार है ॥ ३१ ॥ इति

अहस्तस्य तु या सृष्टी रात्रिश्च प्रलयः स्मृतः ॥अहर्न विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारयेत् ॥२७॥ एषोपचारः क्रियते लोकानां हितकाम्यया ॥ प्रजाः प्रजानां पतयोमूर्त्तयश्च सुरासुराः ॥२८॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पंच च ॥ तन्मात्राण्यथ भूतादिर्बुद्धिश्च सह दैवतः ॥२९॥ अहस्तिष्ठंति सर्वाणिपरमेशस्य धीमतः ॥अहरंते प्रलीयन्ते रात्र्यन्ते विश्वसंभवः ॥ ३० ॥ यो विश्वात्मा कर्मकालस्वभावाद्यर्यै शक्तिर्यस्य नोल्लंघनोया॥यस्यैवाज्ञाधीनमेतत्समस्तं नमस्तस्मै महते शंकराय ॥३१॥इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वभागे कालप्रभावे त्रिदेवायुर्वर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥ मुनय ऊचुः ॥ कथं जगदिदं कृत्स्नं विधाय चनिधायच ॥ आज्ञया परमां क्रीडां करोति परमेश्वरः ॥१॥ किं तत्प्रथमसंभूतं केनेदमखिलंततम्॥ केन वा पुनरेवेदं ग्रस्यते पृथुकुक्षिणा ॥२॥ ॥ वायुरुवाच ॥ शक्तिः प्रथमसम्भूता शांत्यतीतपदोत्तरा ॥ ततो माया ततोऽव्यक्तं शिवाच्छक्तिमतः प्रभोः ॥३॥ शान्त्यतीतपदं शक्तेस्ततः शान्तिपदक्रमात् ॥ ततो विद्यापदं तस्मात्प्रतिष्ठापदसम्भवः ॥४॥

श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे ब्रह्मादायुःकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ऋषि बोले, परमात्मा शिव किस प्रकारसे इस जगत्को निर्माण करे इसे प्रतिष्ठा करके अपनी शक्ति सहित किस प्रकारसे क्रीडा करते हैं ॥ १ ॥ यह जगत् किस प्रकारसे पहले उत्पन्न हुआ और किससे विस्मृत है और किसकी महाकोखमें अन्तमें प्रवेश कर जाता है ॥ २ ॥ वायु बोले, जिससे शान्त्यतीत पद है प्रथम ऐसी शक्ति उत्पन्न हुई फिर शक्तिमान शिवके समीपसे माया उससे अव्यक्त प्रकृति उत्पन्न हुई ॥३॥ प्रथम उत्पन्न की हुई शक्तिसे परे शान्त्यतीत

पद है उसके आगे शान्तिपद फिर विद्यापद इसके आगे प्रतिष्ठापद ॥ ४ ॥ और प्रतिष्ठा पदके आगे निवृत्ति पद है, यह संक्षेपसे ईश्वर प्रेरित सृष्टि वर्णन की ॥ ५ ॥ जिस क्रमसे यह उत्पन्न होते हैं उसके प्रतिलोभसे संहार होता है इन पांच पदोंका उपदेश सृष्टिके अन्तरकी इच्छा नहीं करता ॥ ६ ॥ जिस कारणसे कि यह जगत् पांच कलाओंसे व्याप्त है इससे जो अव्यक्त कारण है वह आत्मासे अधिष्ठित है महत्से लेकर विशेषतक उत्पत्ति होती है किन्तु उसमें अव्यक्त और जीवका कर्तृत्व नहीं है ॥ ७ ॥ ८ ॥ प्रकृतिके अचेतन होने और जीवा

निवृत्तिपदमुत्पन्नं प्रतिष्ठापदतः क्रमात् ॥ एवमुक्ता समासेन सृष्टिरीश्वरचोदिता॥५॥आनुलोम्यात्तथैतेषां प्रतिलोम्येन संहृतिः॥ अस्मात्पञ्चपदोद्दिष्टात्परस्त्रष्टा समिष्यते ॥६॥ कलाभिः पंचभिर्व्याप्तं तस्माद्विश्वमिदं जगत् ॥ अव्यक्तं कारणं यत्तदात्मना समनुष्ठितम् ॥ ७ ॥ महदादिविशेषांतं सृजतीत्यपि संमतम् ॥ किं तु तत्रापि कर्तृत्वं नाव्यक्तस्य न चात्मनः ॥८॥ अचेतनत्वात्प्रकृतेरज्ञत्वात्पुरुषस्य च ॥ प्रधानपरमाण्वादि यावत्किञ्चिदचेतनम्॥९॥तत्कर्तृकं स्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना॥ जगच्च कर्तृसापेक्षं कार्यं सावयवं यतः ॥ १० ॥ तस्माच्छक्तस्स्वतन्त्रो यः सर्वशक्तिश्च सर्ववित् ॥ अनादिनिधनश्चायं महदैश्वर्य संयुतः ॥ ११ ॥ स एव जगतः कर्ता महादेवो महेश्वराः ॥ पाता हर्ता च सर्वस्य ततः पृथगनन्वयः ॥१२॥ परिणामःप्रधानस्य प्रवृत्तिः पुरुषस्य च ॥ सर्वं सत्यव्रतस्यैव शासनेन प्रवर्तते ॥ १३ ॥ इतीयं शाश्वती निष्ठा सतां मनसि वर्तते ॥ न चैनं पक्षमाश्रित्य वर्तते स्वल्पचेतनः ॥ १४ ॥

त्माके अज्ञानी होनेसे प्रधान परमाणु आदि जो कुछ भी अचेतन है ॥ ९ ॥ बुद्धिमानोंने कारणके विना उसका स्वयं कर्तापन देखा है यह जगत् कर्तृसापेक्ष है, कारण कि कार्य सावयव है ॥ १० ॥ इस कारण जो समर्थ स्वतंत्र सर्व शक्तिमान् और सबका जाननेवाला है यह अनादि निधन सदा ऐश्वर्यसे संयुक्त है ॥ ११ ॥ वही जगतका कर्ता महादेव महेश्वर है, सबका पालक सबका हर्ता और सबसे पृथक् है ॥ १२ ॥ महदादिका परिणाम करनेवाला है, उस सर्व वृत्तके शासनसे ही यह सब प्रवृत्त होता है ॥ १३ ॥ यह सत्पुरुषोंके मनका दृढ निश्चय

है, अल्प बुद्धिवाला उस पक्षका ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ १४ ॥ जबतक कार्यका प्रारम्भ हो, और जबतक प्रलय होता है तबतक ब्रह्माके सौ वर्ष बीत जाते हैं ॥ १५ ॥ अव्यक्त जन्मा ब्रह्माकी आयुका क्रम है जो उसके आयुका पहला आधा है उसको परार्द्ध कहते हैं ॥ १६ ॥ जब दो परार्द्ध बीत जाते हैं तब ब्रह्माकी आयु समाप्त हो जाती है, अव्यक्त आत्मा कार्यको लेकर आत्मामें स्थित होता है ॥ १७ ॥ जब यह जगत् आत्मामें स्थित होकर विकार युक्त संहृत हो जाता है, तब यह प्रधान और पुरुष साधर्म्यसे स्थित होते हैं ॥१८॥ तम और सत्वगुण यह दोनों समानतासे स्थित होते हैं और सब ओर सबसे परस्पर पोहे हुएके समान वर्तते हैं ॥ १९ ॥ गुणोंकी समानता

यावदादिसमारंभो यावद्यः प्रलयो महान् ॥ तावदप्येति सकलं ब्रह्मणः शारदां शतम् ॥ १५ ॥ परमित्यायुषो नाम ब्रह्मणो ऽव्यक्तजन्मनः ॥ तत्पराख्यं तदर्द्धं च परार्द्धमभिधीयते ॥ १६ ॥ परार्द्धद्वयकालांते प्रलये समुपस्थिते ॥ अव्यक्तमात्मनः कार्यमादायात्मनि तिष्ठति ॥१७॥ आत्मन्यवस्थितेऽव्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते ॥ साधर्म्येणाधितिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ ॥१८॥ तमः सत्त्वगुणावेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ॥ अनुद्रिक्तावनन्तौ तावोतप्रोतौ परस्परम् ॥१९॥ गुणसाम्ये तदा तस्मिन्नविभागे तमोदये ॥ शांतवातैकनीरे च न प्राज्ञायत किंचन ॥ २० ॥ अप्रज्ञाते जगत्यस्मिन्नेक एव महेश्वरः ॥ उपास्य रजनीं कृत्स्नां परां माहेश्वरीं ततः ॥ २१ ॥ प्रभातायां तु शर्वर्यां प्रधानपुरुषावुभौ ॥ प्रविश्यक्षोभयामास मायायोगान्महेश्वरः ॥ २२ ॥ ततः पुनरशेषाणां भूतानां प्रभवाप्ययात् ॥ अव्यक्तादभवत्सृष्टिराज्ञया परमेष्ठिनः ॥ २३ ॥

होकर तमोमय होनेके कारण इनका विभाग नहीं हो सकता है तब यह पवनसे शान्त होकर निश्चल जलके समान जाने नहीं जाते ॥ २० ॥ उस जगत्की अप्रज्ञात दशामें वह एक ही महेश्वर उस माहेश्वरी रात्रिमें स्थिति कर ॥ २१ ॥ रात्रि व्यतीत होनेपर प्रधान और पुरुष इन दोनोंको मायायोगसे परमात्मा उसमें प्रविष्ट हो शोभित करते हैं ॥ २२ ॥ पीछे सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्तिके उद्देशसे परमेष्ठीकी आज्ञासे उस अव्यक्तसे सृष्टि होती है ॥ २३ ॥

जिस परमात्माके मायाके एकही खण्डसे यह सम्पूर्ण उत्तरोत्तर श्रेष्ठ सृष्टि विचित्र मनोरथोंसहित समाप्त हो जाती है उस परमात्माको उस मार्गके जाननेवाले अध्वपति कहते हैं, उन सब प्राणियोंमें विचक्षण परमात्माको नमस्कार है ॥ २४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा सं० पूर्वखण्डे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ वायु बोले, प्रथम ईश्वरकी आज्ञासे पुरुषसे अधिष्ठित अव्यक्त बुद्धिको लेकर विशेषपर्यन्त क्रमसे विकार उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ उन विकारोंसे रुद्र विष्णु पितामह जगत्के कारणरूप तीन देवता उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ विश्वमें कहीं भी न रुकनेवाली उनकी शक्ति हुई उनका अप्रतिहत ज्ञान अणिमादि सिद्धियोंके सहित हुआ ॥ ३ ॥ उत्पत्ति पालन लय क्रमसे तीनोंके यह

विश्वोत्तरोत्तरविचित्रमनोरथस्य यस्यैकशक्तिशकले सकलस्समाप्तः ॥ आत्मानमध्वपतिमध्वविदो वदंति तस्मै नमः सकल लोकविलक्षणाय ॥ २४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वभागे सृष्टिपालनप्रलयकर्तृत्ववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ वायुरुवाच ॥ पुरुषाधिष्ठितात्पूर्वमव्यक्तादीश्वराज्ञया ॥ बुद्ध्यादयो विशेषांता विकाराश्चाभवन् क्रमात ॥ १ ॥ ततस्तेभ्यो विकारेभ्यो रुद्रो विष्णुः पितामहः ॥ कारणत्वेन सर्वेषां त्रयो देवाः प्रजज्ञिरे ॥ २ ॥ सर्वतो भुवनव्याप्तिश क्तिमव्याहतांक्वचित् ॥ ज्ञानमप्रतिमं शश्वदैश्वर्यं चाणिमादिकम् ॥ ३ ॥ सृष्टिस्थितिलयाख्येषु कर्मसु त्रिषु हेतुताम् ॥ प्रभुत्वेन सहैतेषां प्रसीदति महेश्वरः ॥ ४ ॥ कल्पान्तरे पुनस्तेषामस्पर्द्धां बुद्धिमोहिनाम् ॥ सर्गरक्षालयाचारं प्रत्येकं प्रददौ च सः ॥ ५ ॥ एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम् ॥ परस्परेण वर्द्धंते परस्परमनुव्रताः ॥ ६ ॥ क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते ॥ नानेन तेषामाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते ॥ ७ ॥

कर्म हुए इन रुद्रादिके प्रभुत्वसे शिव महेश्वर प्रसन्न होते हैं ॥ ४ ॥ कल्पान्तरोंमें फिर भी बुद्धिकी और मोहकी अस्पर्धाको उत्पत्ति रक्षा और लयके निमित्त परमेश्वरने प्रदान किया ॥ ५ ॥ यह परस्पर उत्पन्न होकर परस्पर शक्तियोंको धारण करते हैं; और परस्पर स्थित हो परस्पर शक्तियोंको बढाते हैं ॥ ६ ॥ कहीं ब्रह्मा कहीं विष्णु कहीं रुद्रकी प्रशंसा होती है, इससे उनका ऐश्वर्य कुछ अधिक और न्यून नहीं होता है ॥ ७ ॥

और यह पर है यह श्रेष्ठ है यह न्यून है जो अल्पज्ञानी ऐसा कहते हैं वे निस्सन्देह राक्षस और पिशाच होते हैं ॥ ८ ॥ वह ब्रह्म काल विष्णु पुरुषरूप महेश्वर चतुर्व्यूहरूप तीनों गुणोंसे परे हैं वह सर्वात्मक सर्वाधारशक्तिकी उत्पत्तिके कारण हैं ॥ ९ ॥ सो इन ब्रह्मादिक तीनों देवता और प्रकृतिका वह आत्मा है; लीलासे ही जगत्की सृष्टिकर ईश्वरतामें स्थित हो रहा है ॥ १० ॥ जो परमेश्वर सबसे परे निष्कल है यही सबका आधार सर्वात्मा सबमें अधिष्ठित है ॥ ११ ॥ इस कारण महेश्वर प्रकृति पुरुष सदाशिव विष्णु ब्रह्मा यह सब

मूर्खा निंदंति तान्वाग्भिः संरंभाभिनिवेशिनः ॥ यातुधाना भवंत्येव पिशाचाश्च न संशयः ॥ ८ ॥ देवो गुणत्रयातीतश्चतुर्व्यूहो महेश्वरः ॥ सकलस्सकलाधारशक्तरुत्पत्तिकारणम् ॥ ९ ॥ सोयमात्मा त्रयस्यास्य प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ लीलाकृत जगत्सृष्टिरीश्वरत्वे व्यवस्थितः ॥ १० ॥ यस्सर्वस्मात्परो नित्यो निष्कलः परमेश्वरः ॥ स एव च तदाधारस्तदात्मा तदधिष्ठितः ॥ ११ ॥ तस्मान्महेश्वरश्चैव प्रकृतिः पुरुषस्तथा ॥ सदाशिवभवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्वं शिवात्मकम् ॥ १२ ॥ प्रधानात्प्रथमं जज्ञे बुद्धिः ख्यातिर्मतिर्महान् ॥ महत्तत्त्वस्य संक्षोभादहंकारस्त्रिधाऽभवत् ॥ १३ ॥ अहंकारश्च भूतानि तन्मात्राणींद्रियाणि च ॥ वैकारिकादहंकारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तु सात्त्विकः ॥ १४ ॥ वैकारिकः स सर्गस्तुयुगपत्संप्रवर्तते ॥ बुद्धीन्द्रियाणि पंचैव पंचकर्मेंद्रियाणि च ॥ १५ ॥ एकादशं मनस्तत्र स्वगुणेनोभयात्मकम् ॥ तमोयुक्तादहंकाराद्भूततन्मात्रसंभवः ॥ १६ ॥ भूतानामादिभूतत्वाद्भूतादिः कथ्यते तु सः ॥ भूतादेश्शब्दमात्रं स्यात्तत्र चाकाशसंभवः ॥ १७ ॥

शिवात्मक हैं ॥ १२ ॥ प्रधानसे पहले बुद्धि ख्याति और मति उत्पन्न हुई है, और महत्वके क्षोभसे तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ अहंकारसे पंचभूत और तन्मात्रा उत्पन्न हुई हैं, तथा इन्द्रिय उस अहंकारके विकारी होनेसे सत्त्वगुणसे सत्त्व हुआ ॥ १४ ॥ वह वैकारिक सर्ग एकसा यही प्रवृत्त होता है, बुद्धि आदि पांच ज्ञानेंद्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय ॥ १५ ॥ और ग्यारहवाँ मन सत्व रज युक्त होनेसे उभयात्मक है तमोयुक्त अहंकारसे भूतादि तन्मात्रा होती हैं ॥ १६ ॥ भूतोंका आदिभूत होनेसे वह भूतोंकी आदि कहाता है, भूतादि अहंकारसे शब्दमात्रा होती है और

उससे आकाश होता है ॥ १७ ॥ आकाशसे स्पर्श और स्पर्शसे वायु हुई, वायुसे रूप रूपसे तेज और तेजसे रस हुआ ॥ १८ ॥ रससे जल जलसे गन्ध गन्धसे पृथ्वी हुई, और इन पंचमहाभूतोंसे सब चराचर उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ पुरुषके अधिष्ठित होने और अव्यक्तके अनुग्रहसे महत्से लेकर विशेष पर्यन्त यह सब अंडको उत्पन्न करते हैं ॥ २० ॥ जब ब्रह्मका कार्य और कारण सिद्ध हुआ तब इस अण्डमें ब्रह्मसंज्ञावाला क्षेत्र वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ यही प्रथम शरीरी और उसीको पुरुष कहते हैं वही प्राणियोंके आदिकर्ता ब्रह्मा सबसे पहिले उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ उस सृष्टिकर्ताके अभिमानयुक्त ब्रह्माकी उपमा रहित ज्ञान वैराग्य लक्षणयुक्त धर्म और ऐश्वर्य करने वाली

आकाशात्स्पर्श उत्पन्नः स्पर्शाद्वायुसमुद्भवः ॥ वायो रूपं ततस्तेजस्तेजसो रससंभवः ॥१८॥ रसादापस्समुत्पन्नास्तेभ्यो गन्धसमुद्भवः ॥ गन्धाच्च पृथिवी जाता भूतेभ्योन्यच्चराचरम् ॥१९॥ पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ॥ महदादिविशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते ॥२०॥ तत्र कार्यं च करणं संसिद्धं ब्रह्मणो यदा ॥ तदंडे सुप्रवृद्धोऽभूत् क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥२१॥ स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते ॥ आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥ २२ ॥ तस्येश्वरस्य प्रतिमा ज्ञानवैराग्यलक्षणा ॥ धर्मैश्वर्यकरी बुद्धिर्ब्राह्मी यज्ञेऽभिमानिनः ॥२३॥ अव्यक्ताज्जायते तस्य मनसा यद्यदीप्सितम् ॥ वशी विकृत्वात्त्रैगुण्यात्सापेक्षत्वात्स्वभावतः ॥ २४ ॥ त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये संप्रवर्त्तते ॥ सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिस्स्वयम् ॥ २५ ॥ चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चांत कस्स्मृतः ॥ सहस्रमूर्द्धा पुरुषस्तिस्रोवस्थास्स्वयंभुवः ॥ २६ ॥ सत्त्वं रजश्च ब्रह्मा च कालत्वे च तमो रजः ॥ विष्णुत्वे केवलं सत्त्वं गुणवृद्धिस्त्रिधा विभौ ॥ २७ ॥

बुद्धि ब्रह्मसम्बन्धी उत्पन्न हुई ॥ २३ ॥ जो कुछ इसके मनमें इच्छा है वह सब कुछ अव्यक्तसे उत्पन्न होती है वह तीनों गुणोंको वशी किये हुए है जो गुण कि, उसकी अपेक्षा करते हैं यह स्वभावसे ही सापेक्ष है ॥ २४ ॥ अपने आत्माको तीन प्रकारसे विभक्त कर त्रिलोकीमें प्रवृत्त होता है; इन्हीं तीन गुणोंसे उत्पन्न लय और पालन करता है ॥ २५ ॥ सृष्टिकर्ममें चतुर्मुख, संहारमें रुद्र, और पालनमें वह पुरुष सहस्रशिर कहा जाता है; इस प्रकार तीनों अवस्थामें स्वयंभू रहते हैं ॥ २६ ॥ ब्रह्मत्व सत्वगुण और रजोगुण कालत्वमें तम और रज

है विष्णुत्वमें केवल सत्त्व रहता है इस प्रकार गुणबुद्धि तीन प्रकारकी हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मतत्वमें लोकोंकी रचना होती है कालत्वमें संहार होता है, पुरुषत्वमें व्यापारहित अर्थात् केवल दर्शनमात्रसे ही पालनकार्यकी सिद्धि होजाती है, इस प्रकार उस विभुके तीन प्रकारके कर्म हैं ॥ २८ ॥ इस प्रकार तीन प्रकार विभक्त होनेसे वह ब्रह्म त्रिगुण कहलाता है और चार प्रकारसे विभक्त होनेसे उसे चतुर्व्यूह कहते हैं ॥ २९ ॥ आदि होनेसे यह आदि देव है, और अजन्मा होनेसे अज कहलाता है और प्रजाकी रक्षा करनेसे यह प्रजापति कहलाता है ॥ ३० ॥ सुवर्णका जो मेरुपर्व है यही उस महात्माका गर्भाशय है,; गर्भका जल समुद्र और पर्वतजरायु है ॥ ३१ ॥ इस अंडमें यह सब लोक रहते हैं इसके

ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् कालत्वे संक्षिपत्यपि ॥ पुरुषत्वेऽत्युदासीनः कर्म च त्रिविधं विभोः ॥ २८ ॥ एवं त्रिधा विभिन्नत्वाद्ब्रह्म त्रिगुण उच्यते ॥ चतुर्द्धा प्रविभक्तत्वाच्चातुर्व्यूहः प्रकीर्तितः ॥२९॥ आदित्वादादिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः ॥ पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः ॥ ३० ॥ हिरण्मयस्तु यो मेरुस्तस्योल्बं सुमहात्मनः ॥ गर्भोदकं समुद्राश्च जरायुश्चाऽपि पर्वताः ॥ ॥ ३१ ॥ तस्मिन्नंडेत्विमे लोका अंतर्विश्वमिदं जगत् ॥ चंद्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना ॥ ३२ ॥ अद्भिर्दश गुणाभिस्तु बाह्यतोण्डं समावृतम् ॥ आपो दशगुणेनैव तेजसा बहिरावृताः ॥ ३३ ॥ तेजो दशगुणेनैव वायुना बहिरावृतम् ॥ आकाशेनावृतो वायुः खं च भूतादिनावृतम् ॥ ३४ ॥ भूतादिर्महता तद्वदव्यक्तेनावृतो महान् ॥ एतैरावरणैरण्डंसप्तभिर्बहिरावृतम् ॥ ३५ ॥ एतदावृत्त्य चान्योन्यमष्टौ प्रकृतयः स्थिताः ॥ सृष्टिपालनविध्वंसकर्मकर्त्र्यो द्विजोत्तमाः ॥ ३६ ॥

अन्तरमें विश्व स्थित है चन्द्रमा सूर्य नक्षत्र ग्रह वायुसहित स्थित है ॥३२॥ यह अण्ड बाहर दशगुणा जलसे अधिक व्याप्त है, जलसे दशगुणा तेज व्याप्त है ॥ ३३ ॥ तेजसे दशगुणा वायु है सो व्याप्त है, आकाशसे वायु ढका है, और आकाश पंचभूतसे वेष्टित है ॥ ३४ ॥ भूतादि महान्से और महान् प्रकृतिसे व्याप्त है, इस प्रकार यह ब्रह्माण्ड प्रकृतिके सात आवरणोंसे व्याप्त है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार यह आठ प्रकृति परस्पर सापेक्ष हैं, हे द्विजोत्तमो ! यही सृष्टिकी उत्पत्ति पालन और संहार करते हैं ॥ ३६ ॥

और परस्पर प्रादुर्भूत होकर परस्पर जगत्को धारण करते हैं, आधार और आधेयके भावसे विकार विकारियोंमें ॥ ३७ ॥ कछुयेके शरीरके समान फैलाते और सकोडते हैं यही व्यक्त (प्रगट सम्पूर्ण विकारोंको उत्पन्न करके फिर संहार करता है ॥ ३८ ॥ यह सब जगत् पूर्वोक्त क्रमसे उत्पन्न हो अव्यक्तसेही प्रगट होता है, और प्रलयकी प्राप्तिमें प्रतिलोम प्रकारसे लय हो जाता है ॥ ३९ ॥ कालके वशसे ही गुण विषम और सम उत्पन्न होते हैं गुणके साम्यमें लय और विषमतामें सृष्टि होती है ॥ ४० ॥ यही पितामहका कारण घना अण्ड है ब्रह्मका क्षेत्र होनेसे इसको ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ कहाता है ॥ ४१ ॥ इस प्रकारके करोडों सहस्रों अण्ड हैं, सर्व गत होनेसे तिर्यक् ऊर्ध्व और नीचे स्थित हैं

एवं परस्परोत्पन्ना धारयंति परस्परम्॥आधाराधेयभावेन विकारास्तु विकारिषु॥३७॥कूर्मोंगानि यथा पूर्वं प्रसार्य्य विनियच्छति॥ विकारांश्च तथाऽव्यक्तं सृष्ट्वा भूयो नियच्छति ॥३८॥ अव्यक्तप्रभवं सर्वमानुलोम्येन जायते॥प्राप्ते प्रलयकाले तु प्रतिलोम्येनुली यते ॥ ३९ ॥ गुणाः कालवशादेव भवंति विषमाः समाः ॥ गुणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिरुच्यते ॥४०॥ तदिदं ब्रह्मणो योनिरेतदंडं घनं महत्॥ब्रह्मणः क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥४१॥ इतीदृशानामण्डानां कोटयो ज्ञेयाः सहस्रशः ॥ सर्वगत्वा त्प्रधानस्य तिर्य्यगूर्ध्वमधः स्थिताः ॥४२॥ तत्र तत्र चतुर्वक्त्रा ब्रह्माणो हरयो भवाः॥सृष्टा प्रधानेन तथा लब्ध्वा शंभोस्तु सन्नि धिम् ॥ ४३ ॥ महेश्वरः परोव्यक्तादंडमव्यक्तसंभवम् ॥ अण्डाज्जज्ञे विभुर्ब्रह्मा लोकास्तेन कृतास्त्विमे ॥ ४४ ॥ अबुद्धिपूर्वः कथितो मयैष प्रधानसर्गः प्रथमः प्रवृतः ॥ आत्यंतिकश्च प्रलयोन्तकाले लीलाकृतः केवलमीश्वरस्य ॥ ४५ ॥ यत्तत्स्मृतं कारणमप्रमेयं ब्रह्मा प्रधानं प्रकृतेः प्रसूतिः ॥ अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यं शुक्लं सुरक्तं पुरुषेण युक्तम् ॥ ४६ ॥

॥ ४२ ॥ उन्हीं स्थानोंमें ब्रह्मा विष्णु और महादेव स्थित हैं, प्रधानसे रचे जाकर शंभुकी सन्निधिको प्राप्त होकर जगत् रचते हैं ॥ ४३ ॥ व्यक्तसे भी परमेश्वर परे हैं; उसी व्यक्तसे अव्यक्त संज्ञक अण्ड उत्पन्न हुआ है अण्डसे विभु ब्रह्माजी हुए हैं जिन्होंने यह सब लोक निर्माण किये हैं ॥ ४४ ॥ यह जीवोंके आवरण विक्षेप पूर्वक मैंने प्रथम सर्गका वर्णन किया और अन्त कालमें आत्यन्तिक प्रलय होजाती है यह सब चेष्टा ईश्वरकी लीला मात्रकी है ॥ ४५ ॥ जो कि अप्रमेय कारण भूत ब्रह्म है और प्रधान प्रकृतिसे

प्रादुर्भूत हुआ है वह आदिहीन मध्य और अन्त रहित अनन्त वीर्यवान् शुक्ल और लालवर्ण पुरुषसे युक्त है ॥ ४६ ॥ रजकी वृद्धि होनेसे लोककी सन्ततिकी वृद्धिके कारण है सृष्टिके आदि कालमें आठ विकारोंको उत्पन्न कर अन्तकालमें ग्रस लेते हैं ॥ ४७ ॥ प्रकृतिसे स्थापित किये कारणोंकी जहांतक स्थिति और जो फिर प्रवृति है वह शिव अप्राकृतके ऐश्वर्य जानने जो यह महेश्वरके संकल्प मात्रसे उत्पन्न होता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे लोकोत्पत्तिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ मुनि बोले, सब मन्वन्तर और कल्पोंके सब भेद उनका आन्तरिक सर्ग और प्रतिसर्ग वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ वायु बोले, पूर्व जो ब्रह्माकी आयुका

उत्पादकत्वाद्रजसोतिरेकाल्लोकस्य संतानविवृद्धिहेतून्॥अष्टौ विकारानपि चादिकालेसृष्ट्वा समश्नाति तथांतकाले॥४७॥प्रकृत्यवस्थापितकारणानां या च स्थितिर्या च पुनः प्रवृत्तिः ॥ तत्सर्वमप्राकृतवैभवस्य संकल्पमात्रेण महेश्वरस्य ॥ ४८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां ब्रह्मांडस्थितिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ मुनय ऊचुः ॥ मन्वंतराणि सर्वाणि कल्पभेदांश्च सर्वशः॥तेष्वेवांतरसर्गं च प्रतिसर्गं च नो वद॥१॥वायुरुवाच॥कालसंख्याविवृत्तस्य पराद्धौ ब्रह्मणस्स्मृतः॥तावांश्चैवास्य कालोन्यस्तस्यांते प्रतिसृज्यते॥२॥दिवसे दिवसे तस्य ब्रह्मणः पूर्वजन्मनः॥चतुर्दशमहाभागा मनूनां परिवृत्तयः॥॥३॥ अनादित्वादनंतत्वादज्ञेयत्वाच्च कृत्स्नशः॥मन्वंतराणि कल्पाश्च न शक्या वचनात्पृथक् ॥४॥ उक्तेष्वपि च सर्वेषु शृण्वतां वो वचो मम ॥ किमिहास्ति फलं तस्मान्न पृथक् वक्तुमुत्सहे ॥५॥ य एव खलु कल्पेषु कल्पः संप्रति वर्तते ॥ तत्र संक्षिप्य वर्तते सृष्टयः प्रतिसृष्टयः ॥ ६ ॥ यस्त्वयं वर्तते कल्पो वाराहो नाम नामतः ॥ अस्मिन्नपि द्विजश्रेष्ठा मनवस्तु चतुर्दश ॥ ७ ॥

काल वर्णन किया है उसका आधा परार्ध है उतनाही इनका दूसरा समय है उसके अन्तमें संहार होता है ॥ २ ॥ उस आदि जन्मा ब्रह्मा जीके दिन दिनमें चौदह मनु बीत जाते हैं ॥ ३ ॥ अनादि अनन्त और अज्ञेय होनेसे मन्वन्तर और कल्पोंका वर्णन करना अशक्य है ॥ ४ ॥ जो पूर्वमें कहे हैं उनमें एकका वर्णन करता हूँ सब पृथक् कहनेसे फल भी क्या है, इससे पृथक् नहीं कहते ॥ ५ ॥ जो अनेक कल्पोंमें इस समय कल्प वर्तता है उसीमें संक्षिप्त होकर सृष्टिके भीतर सृष्टि वर्तती है ॥ ६ ॥ और इस समयके वर्तमान कल्पका नाम

वाराह है हे श्रेष्ठद्विजो ! इसमें भी चौदह मनु हैं ॥ ७ ॥ सात स्वयंभू आदि और सात सावर्णि आदि इनमें अब सातवां वैवस्वत मनु वर्तता है ॥ ८ ॥ सब मन्वन्तरोंमें उत्पत्ति और संहार समान भागसे होते हैं यह जाननेवालोंका तर्क है ॥ ९ ॥ जब पहले कल्पमें प्रलय हुई तब महापवनसे सम्पूर्ण वृक्ष नष्ट हो गये ॥ १० ॥ और त्रिलोकीको तिनकेके समान अग्निके जलानेपर पीछे वर्षा होनेसे सागररूप सब जगत्के होनेपर ॥ ११ ॥ महाजलमें सब दिशाओंके मग्न होनेपर तरंगरूप भुजमंडलके तैरनेसे ॥ १२ ॥ प्रलय जलके तीक्ष्ण नृत्य करनेपर ब्रह्मा

स्वायंभुवादयस्सप्त सप्त सावर्णिकादयः ॥ तेषु वैवस्वतो नाम सप्तमो वर्तते मनुः॥८॥मन्वंतरेषु सर्वेषु सर्गसंहारवृत्तयः ॥ प्रायः समाभवंतीति तर्कः कार्योविजानता ॥ ९ ॥ पूर्वकल्पे परावृत्ते प्रवृत्ते कालमारुते ॥ समुन्मूलितमूलेषु वृक्षेषु च वनेषु च ॥१०॥ जगंति तृणवत्रीणि देवे दहति पावके ॥ वृष्ट्या भुवि निषिक्तायां विवेलेष्वर्णवेषु च ॥ ११ ॥ दिक्षु सर्वासु मग्नासु वारिपूरे मही यसि ॥ तदद्भिश्चटुलाक्षेपैस्तरंगभुजमण्डलैः ॥ १२ ॥ प्रारब्धचण्डनृत्येषु ततः प्रलयवारिषु ॥ ब्रह्मा नारायणो भूत्वा सुष्वाप सलिले सुखम् ॥१३॥ इमं चोदाहरन्मंत्रं श्लोकं नारायणं प्रति ॥तं शृणुध्वं मुनिश्रेष्ठास्तदर्थं चाक्षराश्रयम् ॥ १४ ॥ आपो नारा इति प्रोक्ता आपोवै नरसूनवः ॥ अयनं तस्य ता यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः ॥१५॥ शिवयोगमयीं निद्रां कुर्वन्तं त्रिदशेश्वरम् ॥ बद्धांजलि पुटास्सिद्धा जनलोकनिवासिनः ॥ १६ ॥ स्तोत्रैःप्रबोधयामासुः प्रभातसमये सुराः ॥ यथा सृष्ट्यादिसमये ईश्वरं श्रुतयः पुरा ॥ १७ ॥ ततः प्रबुद्ध उत्थाय शयनात्तोयमध्यगात् ॥ उदैक्षत दिशः सर्वा योगनिद्रालसेक्षणः ॥ १८ ॥

नारायणरूपमें मिलकर सुखसे जलमें शयन कर गये ॥ १३ ॥ और नारायणके प्रति श्लोकरूप इस मन्त्रको कहते हुए हे मुनिश्रेष्ठो ! उस अक्षरके आश्रयको सुनो ॥ १४ ॥ जलोंको नार कहते हैं, नरसूनु भी जलही जिस कारणसे कि वे जल उसके रहनेका स्थान है, इसीसे उसे नारायण कहते हैं ॥ १५ ॥ शिव योगयुक्त निद्रा करते हुए इस वैकुण्ठनाथको जनलोकनिवासी देवता हाथ जोडकर ॥ १६ ॥ प्रातः कालके समय स्तोत्रोंसे जगाते हैं, जैसे सृष्टिके आरम्भमें श्रुतियें ईश्वरको जगाती हैं ॥ १७ ॥ पीछे जलके शयनसे प्रातःकाल उठकर

योगनिद्रासे आलस भरे नेत्रोंसे वह सब दिशा देखते हैं ॥ १८ ॥ जब अपने आत्माके सिवाय कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता; तब विस्मयको प्राप्त होकर चिन्ता करते हैं ॥ १९ ॥ वह मनोहर बड़ी भूमि कहां चली गई; अनेक प्रकारके महाशैल नदी नगर वन कहां गये ॥ २० ॥ जब ब्रह्माने यह विचार कर पृथ्वीकी स्थितिको न जाना तब अपने पिता त्रिलोचन शिवजीका स्मरण किया ॥ २१ ॥ अमित तेजस्वी शिवके स्मरणमात्रसेही उन धरणीपतिने जान लिया कि, भगवती पृथ्वी जलमें मग्न होगई ॥ २२ ॥ तब प्रजापतिने पृथ्वीके उद्धारकी इच्छासे जल क्रीडाके उचित दिव्य वाराहरूपको धारण किया ॥ २३ ॥ जिनकी महापर्वतके समान देह महामेघके समान शब्द नीलमेघके समान भयानक

नापश्यत्स तदा किंचित्स्वात्मनो व्यतिरेकि यत् ॥ सविस्मय इवासीनः परां चिंतामुपागमत् ॥ १९ ॥ क्व सा भगवती या तु मनोज्ञा महती मही ॥ नानाविध महाशैलनदीनगरकानना ॥ २० ॥ एवं संचिंतयन्ब्रह्मा बुबुधे नैव भूस्थितिम् ॥ तदा सस्मार पितरं भगवंतं त्रिलोचनम् ॥ २१ ॥ स्मरणाद्देवदेवस्य भवस्यामिततेजसः ॥ ज्ञातवान्सलिले मग्नां धरणीं धरणीपतिः ॥ २२ ॥ ततो भूमेस्समुद्धारं कर्तुकामः प्रजापतिः ॥ जलक्रीडोचितं दिव्यं वाराहं रूपमस्मरत् ॥ २३ ॥ महापर्वतवर्ष्माणं महाजल दनिःस्वनम् ॥ नीलमेघप्रतीकाशं दीप्तशब्दं भयानकम्॥२४॥पीनवृतघनस्कंधपीनोन्नतकटीतटम् ॥ ह्रस्ववृत्तोरुजंघाग्रं सुतीक्ष्ण पुरमण्डलम् ॥ २५ ॥ पद्मरागमणिप्रख्यं वृत्तभीषणलोचनम् ॥ वृत्तदीर्घमहागात्रंस्तब्धकर्णस्थलोज्ज्वलम्॥२६॥उदीर्णोच्छ्वास निश्वासघूर्णितप्रलयार्णवम्॥विस्फुरत्सुसटाच्छन्नकपोलस्कंधबंधुरम्॥२७॥मणिभिर्भूषणैश्चित्रैर्महारत्नैःपरिष्कृतम् ॥ विराजमानं विद्युद्भिर्मेघसंघमिवोन्नतम्॥२८॥आस्थाय विपुलं रूपं वाराहममितं विधिः ॥ पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ॥ २९ ॥

दीप्तिमान् शब्द ॥ २४ ॥ दृढ और गोलाकार अंग घने कंधे पीन और ऊंचा कमरका भाग ह्रस्व (छोटा) और भीषण जंघाका अग्रभाग सुतीक्ष्ण खुरमण्डल ॥ २५ ॥ पद्मरागमणिके समान गोलाकार बडे शरीर स्तब्ध कान उज्ज्वल कर्णका स्थान ॥ २६ ॥ बढे हुए श्वांस निश्वाससे प्रलयकालके जलको क्षुभित करते हुए स्फुरायमान केशोंकी छटासे कपोल और स्कंधसे युक्त ॥ २७ ॥ मणियोंसे चित्र विचित्र जिनकी शोभा ऐसी थी मानो मेघमें बिजलीसे शोभित हैं ॥ २८ ॥ इस प्रकारसे ब्रह्माजी बडे वाराहरूपको प्राप्त हो पृथ्वीके उद्धारके निमित्त

पातालमें प्रविष्ट हुए ॥ २९ ॥ तब वह पर्वतके समान वाराहजी बडे शोभित हुए मानो लिंगाकार महेशके चरण मूलको प्राप्त हुए ३० ॥ तब वह पृथ्वी धारण करनेवाले जलमें मग्न हुई पृथ्वीको डाढके ऊपर धारण कर सागरसे ऊपर आये ॥ ३१ ॥ उनको देखकर जनलोक निवासी मुनि सिद्ध प्रसन्न हो नृत्य कर उनके मस्तकपर फूल बरसाने लगे ॥ ३२ ॥ वह फूलोंसे आवृत वाराहका रूप शोभित हुआ, जैसे पटवीजनोंसे अंजन (काला) पर्वत शोभित होता है ॥ ३३ ॥ तब वाराहजी उस बडी पृथ्वीको स्थापन कर अपने स्वरूपमें स्थित हो उसे स्थित करते हुए ॥ ३४ ॥ पृथ्वीको समान करके फिर पृथ्वीमें पर्वतोंको स्थापन कर पूर्वके समान सब भूरादि लोकोंकी कल्पना करते

स तदा शुशुभेऽतीव सूकरो गिरिसंनिभः ॥ लिंगाकृतेर्महेशस्य पादमूलं गतो यथा ॥३०॥ ततस्स सलिलेमग्नां पृथिवीं पृथिवीधरः ॥ उद्धृत्यालिंग्य दंष्ट्राभ्यामुन्ममज्ज रसातलात् ॥३१॥ तं दृष्ट्वा मुनयस्सिद्धा जनलोकनिवासिनः ॥ मुमुदुर्ननृतुर्मूर्ध्नि तस्य पुष्पैरवाकिरन् ॥३२॥ वपुर्महावराहस्य शुशुभे पुष्पसंवृतम् ॥ पतद्भिरिव खद्योतैः प्राशुरंजनपर्वतः ॥३३॥ ततः संस्थानमानीय वराहो महतीं महीम् ॥ स्वमेव रूपमास्थाय स्थापयामास वै विभुः ॥३४॥ पृथिवीं च समीकृत्य पृथिव्यां स्थापयन्गिरीन् ॥ भूराद्यांश्चतुरो लोकान् कल्पयामास पूर्ववत् ॥ ३५ ॥ इति सह महतीं महीं महीध्रैः प्रलयमहाजलधेरधस्थमध्यात् ॥ उपरि च विनिवेश्य विश्वकर्मा चरमचरं च जगत्ससर्ज भूयः ॥ ३६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वा० पू० सृष्ट्यादिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ वायुरुवाच ॥ सर्गे चिंतयतस्तस्य तदा वै बुद्धिपूर्वकम् ॥ प्रध्यानकाले मोहस्तु प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥ १ ॥ तमोमोहो महामोहस्तामिस्रश्चान्धसंज्ञितः ॥ अविद्या पञ्चमी चैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥ २ ॥

हुए ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे यह महापृथ्वी प्रलयकालके महासमुद्रमेंसे निकाल और इसके ऊपर स्थापित कर उस विश्वकर्माने फिर चराचर जगत्की रचना की ॥ ३६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे वाराहरूप वर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ वायु बोले, इसके उपरान्त आदिमें सृष्टि रचनाकी इच्छासे ध्यानके समय ब्रह्माको तमोमय मोहकी प्राप्ति हुई ॥ १ ॥ वह मोह महामोह तामिस्र अन्धतामिस्र और पांचवीं अविद्या यह वस्तु उस महात्मासे प्रादुर्भूत हुई ॥ २ ॥

उनके ध्यान करनेसे पांच प्रकारसे यह जगत् प्रादुर्भूत हुआ और सर्व इस प्रकार अन्धकारसे व्याप्त था जैसे बीजसे पूर्ण कुम्भबीज और अपने अवयवोंको आच्छादित करता है ॥ ३ ॥ बाहर और भीतर प्रकाश रहित निश्चल था, इसी कारण उन सृष्टिमें उत्पन्न होनेवालोंकी बुद्धि, इन्द्रिय, मुख आच्छादित हो रहे थे ॥ ४ ॥ इसी कारण वे आच्छादित आत्मावाले पर्वत और वृक्ष ही आरम्भमे हुए, कारण यह ब्रह्माकी प्रथम सृष्टि सृष्टिके उपयोगी नहीं हुई ॥ ५ ॥ तब ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर दूसरी सृष्टिकी रचना की, तब उसके ध्यान करनेसे तिरछे चलने वाले जीवोंकी सृष्टि प्रवाह आई ॥ ६ ॥ यह तिरछे चलनेवाले अन्तर ज्ञानवाले हैं बाहर अज्ञानसे आवृत हैं, इसी कारण सबको समान

पंचधाऽवस्थितः सर्गो ध्यायतस्त्वभिमानिनः॥ सर्व्वतस्तमसातीव बीजकुम्भवदावृतः ॥३॥ बहिरन्तश्चाप्रकाशः स्तब्धो निःसंज्ञ एव च ॥ तस्मात्तेषां वृता बुद्धिर्मुखानि करणानि च ॥ ४ ॥ तस्मात्ते संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिताः ॥ तं दृष्ट्वाऽसाधकं ब्रह्मा प्रथमं सर्गमीदृशम् ॥५॥ अप्रसन्नमना भूत्वा द्वितीयं सोऽभ्यमन्यत ॥ तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्य्यक्स्रोतोऽभ्यवर्त्तत॥६॥ अन्तःप्रकाशास्तिर्य्यंच आवृताश्च बहिः पुनः ॥ पश्वात्मानस्ततो जाता उत्पथग्राहिणश्च ते ॥ ७ ॥ तमप्यसाधकं ज्ञात्वा सर्गमन्यममन्यत ॥ तदोर्ध्वस्रोतसो वृत्तो देवसर्गस्तु सात्त्विकः ॥ ८ ॥ ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तश्च नावृताः ॥ प्रकाशा बहिरन्तश्चस्वभावादेव संज्ञिताः ॥९॥ ततोऽभिध्यायतोव्यक्तादर्व्वाक्स्रोतस्तु साधकः॥ मनुष्यनामा सञ्जातः सर्गो दुःखस मुत्कटः ॥ १० ॥ प्रकाशाबहिरन्तस्ते तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ॥ पंचमोनुग्रहः सर्गश्चतुर्धा संव्यवस्थितः ॥ ११ ॥

देखनेवाले पशु आत्मा हुए, इसी कारण उन्होंने असन्मार्ग ग्रहण किया ॥ ७ ॥ इनको भी सृष्टिके अनुपयोगी जानकर ब्रह्माने सृष्टि रचनाकी इच्छाकी, तब ऊर्ध्वगामी सत्त्व गुणसे देवसर्गकी प्रवृत्ति हुई ॥ ८ ॥ वे सुखी, प्रसन्न, बाहर भीतर स्वच्छ, तेजस्वी ज्ञानी हुए ॥ ९ ॥ फिर प्रधानके ध्यान करनेसे सात्त्विक संसारी प्रवाह उत्पन्न हुआ यह मनुष्योंकी सृष्टि उत्पन्न हुई, यह अनेक प्रकार दुःखसे व्याप्त है ॥ १० ॥ यह बाहर भीतरके प्रकाशवाले तमोगुण थोडा अधिक रजोगुणवाले हैं यह पांचवां ईश्वरका अनुग्रह रूप सर्ग चार प्रकारसे विभक्त हुआ है ॥ ११ ॥

विरोधभक्ति तपसामर्थ्य परमेश्वरके प्रसादकी प्राप्ति मंत्रादि साधनसे फलकी प्राप्ति होनी; इन चार प्रकारके मार्ग ग्रहण करनेवाले सब स्त्री धन आदिके अभिमानी हुए ॥ १२ ॥ वे खानेमें तत्पर अशील अर्थात् दुर्वृत्तभूत प्रेत पिशाचादि वर्णन किये हैं, परमेष्ठी ब्रह्माका यह पहला महान् सर्ग है ॥ १३ ॥ और दूसरा तन्मात्राका भूतसर्ग कहा है और तीसरा वैकारिक ज्ञान कर्मेन्द्रियरूप सर्ग है ॥ १४ ॥ यह प्रकृतिका सर्ग जड प्रकृतिका है चौथा सर्ग मुख्य है, जिसमें स्थावर मुख्य कहे गये हैं ॥ १५ ॥ जो तिर्यक् स्रोत है, यह पांचवीं तिर्यक् योनि है इसके उपरान्त

विपर्य्ययेण शक्त्या च तुष्ट्यासिद्ध्या तथैव च ॥ तेऽपरिग्राहिणः सर्व्वे संविभागरताः पुनः ॥१२॥ खादनाश्चाप्यशीलाश्च भूताद्याः परिकीर्त्तिताः ॥ प्रथमो महतः सर्गो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ १३ ॥ तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ॥ वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ॥ १४ ॥ इत्येष प्रकृतेः सर्गः सम्भूतोऽबुद्धिपूर्वकः ॥ मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥ १५ ॥ तिर्य्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योनिः स पञ्चमः ॥ तदूर्ध्वस्रोतसः षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥ १६ ॥ ततोऽर्वाक् स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥ अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः कौमारो नवमः स्मृतः ॥ १७ ॥ प्राकृताश्च त्रयः पूर्व्वे सर्गास्तेऽबुद्धिपूर्व्वकाः ॥ बुद्धिपूर्व्व प्रवर्त्तन्ते मुख्याद्याः पञ्च वैकृताः ॥१८॥ अग्रे ससर्ज्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ॥ सनन्दं सनकञ्चैव विद्वांसञ्च सनातनम् ॥ १९ ॥ ऋभुं सनत्कुमारञ्च पूर्व्वमेव प्रजापतिः ॥ सर्व्वे ते योगिनो ज्ञेया वीतरागा विमत्सराः ॥ २० ॥ ईश्वरासक्तमनसो न चक्रुः सृष्टये मतिम् ॥ तेषु सृष्ट्यनपेक्षेषु गतेषु सनकादिषु ॥ २१ ॥

छठा सर्ग ऊर्ध्वस्रोत है, जो देवसर्ग कहा है ॥ १६ ॥ पीछे नीचे चलानेवालोंके स्रोतकी प्राप्ति हुई यह सातवां मनुष्योंका स्रोत है, आठवां अनुग्रहसर्ग और नौवा कुमारसर्ग है ॥ १७ ॥ प्रकृतिके किये वे पहले तीन सर्ग अबुद्धिपूर्वक कहलाते हैं और पांच विकारी सर्ग बुद्धि पूर्वक प्रवृत्त होते हैं ॥ १८ ॥ सबसे पहले ब्रह्माने अपने सनक सनंदन और सनातनको उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ ऋभु और सनत्कुमार यह पांचोंयोगी राग और अभिमानसे रहित हैं ॥ २० ॥ यह ईश्वरमें मन लगानेके कारण सृष्टि उत्पन्न करनेमें मन न लगाते हुए, जब वे सृष्टिकर्ममें मन न

लगाकर चले गये ॥२१॥ तब ब्रह्माने सृष्टि रचनेकी इच्छासे फिर तप किया, उनके उस तप करनेसे कुछ भी फल न हुआ ॥२२॥ तब बहुत समय बीतनेके कारण दुःखसे क्रोध आगया क्रोधसे उनके नेत्रोंसे आंसू गिरे ॥२३॥ उन आंसूओंकी बूँदोंसे प्रेत उत्पन्न हुए, उन सबको आंसूओंसे उत्पन्न देखकर ब्रह्माजीने अपनी निन्दा की ॥ २४ ॥ तब क्रोध और मोहके कारण ब्रह्माको तीव्र मूर्च्छा होगई और महाक्रोधके कारण प्रजापतिने अपना शरीर त्याग दिया ॥ २५ ॥ तब प्राणेश्वर भगवान् नीललोहित महाप्रसन्नता करनेके निमित्त प्रजापतिके मुखसे प्रगट हुए ॥ २६ ॥ और

स्रष्टुकामः पुनर्ब्रह्मा तताप परमं तपः॥तस्यैवं तप्यमानस्य न किंचित्समवर्त्तत॥२२॥ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधो व्यजायत॥ क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः॥२३॥ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो भूताः प्रेतास्तदाभवन्॥सर्वांस्तानश्रुजान्दृष्ट्वा ब्रह्मात्मा नमनिंदत॥२४॥तस्य तीव्राऽभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा॥मूर्च्छितस्तु जहौ प्राणान्क्रोधाविष्टः प्रजापतिः॥२५॥ततः प्राणेश्वरो रुद्रो भगवान्नीललोहितः॥प्रसादमतुलं कर्त्तुं प्रादुरासीत्प्रभोर्मुखात्॥२६॥दशधा चैकधा चक्रे स्वात्मानं प्रभुरीश्वरः ॥ ते तेनोक्ता महात्मानो दशधा चैकधा कृताः॥२७॥यूयं सृष्टा मया वत्सा लोकानुग्रहकारणात्॥तस्मात्सर्व्वस्य लोकस्य स्थापनाय हिताय च ॥२८॥ प्रजासन्तानहेतोश्च प्रयतध्वमतन्द्रिताः ॥ एवमुक्ताश्च रुरुदुर्दुद्रुवुश्च समन्ततः ॥ २९ ॥ रोदनाद्द्रावणाच्चैव ते रुद्रा नामतः स्मृताः ॥ ये रुद्रास्ते खलु प्राणा ये प्राणास्ते महात्मकाः ॥३०॥ ततो मृतस्य देवस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥घृणी ददौ पुनः प्राणा न्ब्रह्मपुत्रो महेश्वरः ॥ ३१ ॥ प्रहृष्टवदनो रुद्रः प्राणप्रत्यागमाद्विभोः ॥ अभ्यभाषत विश्वेशो ब्रह्माणं परमं वचः ॥ ३२ ॥

आप अपने ग्यारह रूप किये और आप स्वयं उन ग्यारहके प्रति कहने लगे ॥२७॥ हे वत्स ! तुमको मैंने सृष्टिके कारण उत्पन्न किया है इस कारण सब लोकोंके स्थापन और हित करनेके लिये॥२८॥और प्रजाकी सृष्टिके निमित्त तुम निरंतर यत्न करो यह वचन श्रवण कर वे सब रोने और परस्पर भागने लगे ॥ २९ ॥ रोदन और द्रावण (पलायन करना) वे सब रुद्र कहलाये जो रुद्र हैं वही प्राण हैं, जो प्राण हैं वही महात्मा हैं ॥ ३० ॥ तब परमेष्ठी ब्रह्माके शरीर त्यागनेसे दया करके शिवने फिर उनके निमित्त प्राणोंको दिया ॥ ३१ ॥ फिर उनके प्राण शरीरमें

आजानेसे रुद्र प्रसन्न हुए तब विश्वेश ब्रह्माजीसे वचन बोले ॥ ३२ ॥ हे जगत्के गुरु महाभाग्यवान् ब्रह्माजी ! आप भय मत करो, मैंने तुमको प्राण दिये, आप सब सुखसे उठिये ॥ ३३ ॥ स्वप्नके समान इस मनोहर वाक्यको सुनकर फूले हुए नेत्रोंसे ब्रह्माजी शिवको शनैः शनैः देखने लगे ॥ ३४ ॥ जब इस प्रकारसे प्राण आगये तब मनोहर और गम्भीर वाणीसे हाथ जोडकर ब्रह्माजी बोले ॥ ३५ ॥ हे महाभाग ! कहिये आप मेरे मनको आनन्द देते हो आप कौन हो, क्या तुम विश्वमूर्त्ति एकादशात्मा स्थित हो ॥ ३६ ॥ उनके यह वचन सुनके ब्रह्माको सुखसे स्पर्श करते हुए सुरेश्वर बोले ॥ ३७ ॥ मैं परमात्मा हूँ तुम्हारे पुत्ररूप होकर प्रगट हुआ हूँ, और यह ग्यारह

मा भैर्मा भैर्महाभाग विरिंच जगतां गुरो ॥ मया ते प्राणिताः प्राणाः सुखमुत्तिष्ठ सुव्रत ॥ ३३ ॥ स्वप्नानुभूतमिव तच्छ्रुत्वा वाक्यं मनोहरम् ॥ हरं निरीक्ष्य शनकैर्नेत्रैः फुल्लाम्बुजप्रभैः ॥ ३४ ॥ तथा प्रत्यागतप्राणः स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥ उवाच वचनं ब्रह्मा तमुद्दिश्य कृताञ्जलिः ॥ ३५ ॥ त्वं हि दर्शनमात्रेण चानन्दयसि मे मनः ॥ को भवान् विश्वमूर्त्या वा स्थित एकादशात्मकः ॥ ३६ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा व्याजहार महेश्वरः ॥ स्पृशन् काराभ्यां ब्रह्माणं सुसुखाभ्यां सुरेश्वरः ॥ ३७ ॥ मां विद्धि परमात्मानं तव पुत्रत्वमागतम् ॥ एते चैकादश रुद्रास्त्वां सुरक्षितुमागताः ॥ ३८ ॥ तस्मात्तीव्रामिमां मूर्च्छां विधूय मदनुग्रहात् ॥ प्रबुद्धस्व यथापूर्वं प्रजा वै स्रष्टुमर्हसि ॥ ३९ ॥ एवं भगवता प्रोक्तो ब्रह्मा प्रीतमना ह्यभूत् ॥ नानाष्टकेन विश्वात्मा तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ ४० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्ते भगवन् रुद्रभास्करामिततेजसे ॥ नमो भवाय देवाय रसायाम्बुमयात्मने ॥ शर्वाय क्षितिरूपाय नन्दीसुरभये नमः ॥ ४१ ॥ ईशाय वसवे तुभ्यंनमस्स्पर्शमयात्मने ॥ पशूनां पतये चैव पावकायातितेजसे ॥ भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः ॥ ४२ ॥

रुद्र तुम्हारी रक्षा करनेको आये हैं ॥ ३८ ॥ इस कारण हमारे अनुग्रहसे इस महामूर्च्छाको त्यागन करके जागृत होकर तुम सृष्टिरचना करो ॥ ३९ ॥ जब शंकरने यह वर्ता कही तब ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए; और आठ नामसे परमेश्वरकी स्तुति करने लगे ॥ ४० ॥ ब्रह्मा बोले, भगवान् रुद्र सूर्यके समान महातेजवालेके निमित्त नमस्कार है, भवदेव रसगुणस्वरूप जलात्माके निमित्त नमस्कार है, शर्व पृथ्वीरूप सदा मनोहर नन्दीरूप ॥ ४१ ॥ ईश वायुरूप स्पर्शात्माके निमित्त नमस्कार है, पशु अर्थात् जीवोंके पति अग्निके समान तेजस्वी दैत्योंको भीमरूप

शब्दमात्रायुक्त आपको नमस्कार है ॥ ४२ ॥ उग्र स्वरूप यजमानात्माके निमित्त नमस्कार है, महादेव सोम और अमृतमूर्त्तिके निमित्त नमस्कार है ४३ ॥ लोकपितामह ब्रह्मा इस प्रकारसे महादेवको प्रणामकर अत्यन्त मनोहर वाणीसे विश्वपतिकी प्रार्थना करने लगे ॥ ४४ ॥ हे भगवन् ! हे भूत भविष्य वर्तमानके अधिपति मेरे पुत्रमहेश्वर ! हे कामनाशन ! तुम मेरे शरीरसे सृष्टिके निमित्त उत्पन्न हुए हो ॥ ४५ ॥ हे प्रभो ! इस कारण तुम मेरे कार्यमें जिसमें कि, मैं व्याकुल हूँ आप सहायता कीजिये और प्रजा रचिये ॥४६॥ जब उन्होंने इस प्रकार त्रिपुर मर्दनकी याचन करी तब बहुत अच्छा कहकर शिवने उनके वचन स्वीकार किये ॥ ४७ ॥ तब भगवान् ब्रह्मा प्रसन्न हो उन्हें नमस्कार कर

उग्रायोग्रस्वरूपाय यजमानात्मने नमः ॥ महादेवाय सोमाय नमोस्त्वमृतमूर्तये ॥ ४३ ॥ एवं स्तुत्वा महादेवं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ प्रार्थयामास विश्वेशं गिरा प्रणतिपूर्वया ॥ ४४ ॥ भगवन् भूतभव्येश मम पुत्र महेश्वर ॥ सृष्टिहेतोस्त्वमुत्पन्नो ममांगेऽनंगनाशनः ॥ ॥ ४५ ॥ तस्मान्महति कार्येस्मिन् व्यापृतस्य जगत्प्रभो ॥ सहायं कुरु सर्वत्र स्रष्टुमर्हसि स प्रजाः ॥४६॥ तेनैषां पावितो देवोरुद्रस्त्रिपुरमर्दनः ॥ बाढमित्येव तां वाणीं प्रतिजग्राह शंकरः ॥ ४७ ॥ ततस्स भगवान् ब्रह्मा हृष्टं तमभिनंद्य च ॥ स्रष्टुं तेनाभ्यनुज्ञातस्तथान्याश्चासृजत्प्रजाः ॥ ४८ ॥ मरीचिभृग्वंगिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥ दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजन्मनसैव च ॥ पुरस्तादसृजद्ब्रह्मा धर्मं संकल्पमेव च ॥ ४९ ॥ इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा द्वादशादौ प्रकीर्तिताः ॥ सह रुद्रेण संभूताः पुराणा गृहमेधिनः ॥ ५० ॥ तेषां द्वादश वंशाः स्युर्दिव्या देवगणान्विताः ॥ प्रजावन्तः क्रियावन्तो महर्षिभिरलंकृताः ॥५१॥ अथ देवासुरपितॄन् मनुष्यांश्च चतुष्टयम् ॥ सह रुद्रेण सिसृक्षुरंभस्येतानि वै विधिः ॥ ५२ ॥

उनकी आज्ञासे दूसरी प्रजाकी रचना करने लगे ॥ ४८ ॥ मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि, वशिष्ठ, इन ऋषियोंको मनसे उत्पन्न किया, सब सृष्टिके पहले ब्रह्माने धर्म और संकल्पकी रचना की ॥ ४९ ॥ यह बारह ब्रह्माके पुत्र कहे हैं, यह पुराणपुरुष गृहमेधी रुद्रके साथ उत्पन्न हुए हैं ॥ ५० ॥ उनके दिव्य देवताओंसे पूजित बारह वंश हैं, वे प्रजावाले क्रियावाले महर्षियोंसे अलंकृत हैं ॥५१॥ फिर देवता असुर पितर मनुष्य इन चारोंकी रुद्रके साथ ब्रह्माजीने रचनेकी इच्छासे ॥ ५२ ॥

सृष्टिके निमित्त समाधान करके अपनी आत्माको युक्त किया, मुखसे देवता और कक्षासे पितरोंको उत्पन्न किया ॥ ५३ ॥ जंघाओंसे सब असुरोंको, और शिश्न स्थानसे मनुष्योंको उत्पन्न किया, उनके गुदस्थानसे क्षुधाविष्ट राक्षस उत्पन्न किये ॥ ५४ ॥ वे पुत्र रज तमसे युक्त और बली निशाचर हैं, सर्प यक्ष और भूत गन्धर्व सब उन्हींसे उत्पन्न होगये ॥ ५५ ॥ शब्द करनेवाले पक्षी दोनों कक्षासे उत्पन्न हुए, और दूसरे पक्षी छातीसे उत्पन्न हुए, मुखसे बकरी तथा पार्श्वस्थानसे सर्पोंको उत्पन्न किया ॥ ५६ ॥ पैरोंसे घोडे हाथी शरभ और गवय मृगोंको उत्पन्न किया, ऊंट खिच्चर न्यंकू (बहु शृंगवाले मृग) तथा दूसरी जाति ॥ ५७ ॥ औषधी फल फूल यह सब वस्तु उनके

स सृष्ट्यर्थं समाधाय ब्रह्मात्मानमयूयुजत्॥मुखादजनयद्देवान् पितॄंश्चैवोपपक्षतः ॥५३॥ जघनादसुरान् सर्वान् प्रजनादपि मानुषान् ॥ अवस्करे क्षुधाविष्टा राक्षसास्तस्य जज्ञिरे ॥५४॥ पुत्रास्तमोरजःप्राया बलिनस्ते निशाचराः॥सर्पा यक्षास्तथा भूता गंधर्वाःसंप्रजज्ञिरे ॥५५॥ वयांसि पक्षतसृष्टाः पक्षिणो वक्षसोऽसृजत् ॥ मुखतोजांस्तथा पार्श्वादुरगांश्च विनिर्ममे॥५६॥ पद्भ्यां चाश्वान्स मातंगान् शरभान् गवयान् मृगान् ॥उष्ट्रानश्वतरांश्चैव न्यंकूनन्याश्च जातयः ॥५७॥ औषध्यः फलमूलानि रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥गायत्रीं च ऋचं चैव त्रिवृत्साम रथंतरम्॥५८॥अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात्॥ यजूंषि त्रैष्टुभं छंदःस्तोमं पंचदशं तथा॥५९॥बृहत्साम तथोक्थं च दक्षिणादसृजन्मुखात्॥सामानि जगतीछंदः स्तोमं सप्तदशं तथा॥६०॥वैरूप्यमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन् मुखात॥एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च॥६१॥अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात्॥उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥६२॥ यक्षाः पिशाचा गंधर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः ॥ नरकिन्नररक्षांसि वयःपशुमृगोरगाः॥ ६३ ॥

रोमकूपोंसे उत्पन्न हुई, गायत्री ऋग्वेद त्रिवृत्साम रथन्तर ॥ ५८ ॥ और अग्निष्टोम यज्ञोंको प्रथम मुखसे उत्पन्न किया, यजुर्वेद त्रिष्टुप् छन्द पंचदश स्तोम ॥ ५९ ॥ बृहत्सामके स्थान और उक्थ दक्षिण मुखसे उत्पन्न हुए, साम जगतीछन्द सत्रह स्तोम ॥ ६० ॥ वैरूप्य और अतिरात्र पश्चिम मुखसे प्रकट हुए, एकविंश २१ पृष्ठचनामक अथर्ववेद आप्तोर्याम क्रतु ॥ ६१ ॥ यज्ञविशेष और वैराज साम उत्तरके मुखसे प्रकट हुए, और भी ऊंचे नीचे प्राणी उनके शरीरसे प्रकट हुए ॥ ६२ ॥ यक्ष पिशाच गन्धर्व और अप्सराओंके गण नर

किन्नर राक्षस वय पशु मृग सर्प ॥६३॥ सर्वथा विनाशशून्य जो यह स्थावर जंगमादि जगत् है उनकी अवस्था और कर्म सृष्टिसे पहले उत्पन्न हुए ॥६४॥ वे बारंबार जन्म लेकर उन्हीं कर्मोंको प्राप्त होतेहैं, हिंसक जीव हिंसकमें मृदु क्रूर धर्म अधर्म सत्य झूंठमें ॥६५॥ वे अपने २ कर्मानुसार प्राप्त होते हैं, अर्थात् कर्मानुरूप जन्म पाते हैं, और उसमें प्रसन्न रहतेहैं, भूतोंमें अनेकपन इन्द्रियोंके अर्थ और मुक्ति ॥ ६६ ॥ इनमें स्वयं ब्रह्मा कर्मानुसार पुरुषोंको लगाते हैं, भूतोंके नामरूप प्राकृत अर्थात् प्रकृतिसे उत्पन्न हुओंका पूर्वके अनुसारही नाम और कर्म विधान किया ॥ ६७ ॥ ब्रह्मा यह बब वेदोंके वचनोंके अनुसारही बनते थे, गोत्र, नाम और वेदविहित वृत्तियां ॥ ६८ ॥ ब्रह्माकी रात्रिप्रलयके

अव्ययं चैव यदिदं स्थाणु स्थावरजंगमम् ॥ तेषां वै यानि कर्माणि प्राक्सृष्टानि प्रपेदिरे ॥ ६४ ॥ तान्येव ते प्रपद्यंते सृज्यमानाः पुनः पुनः॥हिंस्राहिंस्रे मृदु क्रूरे धर्माधर्मावृतानृते॥ ६५ ॥ तद्भाविताः प्रपद्यंते तस्मात्तत्तस्य रोचते॥ महाभूतेषु नानात्वमिंद्रियार्थेषु मुक्तिषु ॥६६॥ विनियोगं च भूतानां धातैव व्यदधत्स्वयम् ॥ नाम रूपं च भूतानां प्राकृतानां प्रपंचनम् ॥ ॥६७॥ वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममेऽसौ पितामहः ॥ आर्षाणि चैव नामानि याश्च वेदेषु वृत्तयः ॥ ६८ ॥ शर्वर्य्यंते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददावजः ॥ यथर्तावृतुलिंगानि नानारूपाणि पर्य्यये ॥ ६९ ॥ दृश्यंते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥ इत्येष करणोद्भूतो लोकसर्गस्स्वयंभुवः ॥ ७० ॥ महदाद्यो विशेषांतो विकारः प्रकृते, स्वयम् ॥ चंद्रसूर्यप्रभाजुष्टो ग्रहनक्षत्रमंडितः ॥ ७१ ॥ नदीभिश्च समुद्रैश्च पर्वतैश्च स मंडितः ॥ पुरैश्च विविधैरम्यैस्स्फीतैर्जनपदैस्तथा ॥ ७२ ॥ तस्मिन् ब्रह्मवनेऽव्यक्तो ब्रह्मा चरति सर्ववित् ॥ अव्यक्तबीजप्रभव ईश्वरानुग्रहे स्थितः ॥ ७३ ॥

अन्तमें उत्पन्न हुए प्राणियोंको देते हुए। जैसे ऋतु ऋतुके लिंग सृष्टिके अन्तरमें नानारूप होते हैं ॥६९॥ वे वैसेही युगादिकोंमें हुआ करते हैं, यह कारणसे उत्पन्न हुआ ब्रह्माका लोक सर्ग है, ॥ ७० ॥ महत्से लेकर विशेषतक प्रकृतिका किया कार्य है, चन्द्रमा सूर्यकी कान्ति मिला ग्रह नक्षत्रसे मण्डित ॥ ७१ ॥ नदी समुद्र पर्वतोंसे व्याप्त अनेक पुरोंसे मनोहर श्रेष्ठ जनपदोंसे व्याप्त ॥ ७२ ॥ ब्रह्मरूपी वनमें सर्ववित् ब्रह्म विचरता है, अव्यक्त बीजसे उत्पन्न हुआ ईश्वरके अनुग्रहसे स्थित है ॥ ७३ ॥

बुद्धिरूपी महास्कन्ध महाशाखा इन्द्रिय अन्तर की कोटरा महाभूत प्रमाण विशेषरूपी निर्मल पत्ते ॥ ७४ ॥ धर्माधर्मरूपी फूलोंसे भरा सुख दुःख रूपी फलोंका देनेवाला सर्व भूतोंका उपजीवी यह सनातन ब्रह्मरूपी वृक्ष है ॥ ७५ ॥ ब्राह्मण कहते हैं स्वर्ग उसका शिर आकाश नाभि चन्द्रमा सूर्य उसके नेत्र हैं, दिशा कान पृथ्वी चरण इस प्रकार वह अचिन्त्यात्मा सब प्राणियोंका निर्माण करने वाला है ॥ ७६ ॥ ब्राह्मण उसके मुखसे, क्षत्रिय भुजासे, वैश्य जंघाओंसे, और शूर चरणोंसे, ऐसे सब वर्ण शरीरसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ७७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषा टीकायां, स० वा० सं० पूर्वखण्डे सृष्टिनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ऋषि बोले, आपने परमात्मा शिवकी उत्पत्ति ब्रह्माके मुखसे कथन

बुद्धिस्कंधमहाशाख इन्द्रियांतरकोटरः ॥ महाभूतप्रमाणश्च विशेषामलपल्लवः ॥ ७४ ॥ धर्माधर्मसुपुष्पाढ्यः सुखदुःखफलोदयः ॥ आजीव्यः सर्वभूतानां ब्रह्मवृक्षः सनातनः ॥ ७५ ॥ द्यां मूर्द्धानं तस्य विप्रा वदंति खं वै नाभिं चंद्रसूर्यौ च नेत्रे ॥ दिशः श्रोत्रे चरणौ च क्षितिं च सोऽचिन्त्यात्मा सर्वभूतप्रणेता ॥ ७६ ॥ वक्त्रात्तस्य ब्राह्मणास्संप्रसूतास्तद्बक्षसः क्षत्रियाः पूर्वभागात् ॥ वैश्या उरुभ्यां तस्य पद्भ्यां च शूद्राः सर्वे वर्णा गात्रतः संप्रसूताः॥७७॥इतिश्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखंडे सृष्टिवर्णनंनाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥ऋषय ऊचुः॥भवता कथिता सृष्टिर्भवस्य परमात्मनः॥चतुर्मुखमुखात्तस्य संशयो नः प्रजायते ॥ १ ॥ देवश्रेष्ठो विरूपाक्षो दीप्तश्शूलधरो हरः ॥ कालात्मा भगवान् रुद्रः कपर्दी नीललोहितः ॥ २ ॥ सब्रह्मकमिमं लोकं सविष्णुमपि पावकम्॥यः संहरति संक्रुद्धो युगांते समुपस्थिते॥३॥यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च प्रणामं कुरुतो भयात् ॥ लोकसंकोचकस्यास्य यस्य तौ वशवर्तिनौ॥४॥योऽयं देवः स्वकादंगाद्ब्रह्मविष्णू पुरासृजत्॥स एव हि तयोर्नित्यं योगक्षेमकरः प्रभुः ॥५॥

की इनमें हमको महासंदेह है ॥ १ ॥ देवताओंमें श्रेष्ठ विरूपाक्ष शूल धारण करने वाले कालात्मक भगवान् रुद्र जटाधारी नीललोहित हैं ॥ २ ॥ जो शिव ब्रह्मा विष्णु और अग्नि सहित इस लोकको युगान्तरमें क्रोधकर संहार करते हैं ॥ ३ ॥ जिसको ब्रह्मा विष्णु सदा भयसे प्रणाम करते हैं; लोकके संकोच करनेवाले इनके वशमें ब्रह्मा और विष्णु भी रहते हैं ॥ ४ ॥ इसी देवने पूर्व कालमें अपने शरीरसे पहले ब्रह्मा और विष्णुको उत्पन्न किया, वही प्रभु इन दोनोंका विधान करते हैं ॥ ५ ॥

फिर वह आदि देव पुरातन रुद्र भगवान् अव्यक्त जन्मवाले ब्रह्माजीके पुत्र किस प्रकारसे हुए ॥ ६ ॥ प्रजापति और विष्णु यह दोनों रुद्रके अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं ऐसा पहले हमने सुना है ॥ ७ ॥ फिर किस प्रकारसे सम्पूर्ण गुण पदार्थोंको पंच महाभूतोंके प्रादुर्भूत परस्पर भावसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ८ ॥ ऐसी को वार्ता नहीं जो आपने न पूँछी हो ऐसी वह बात नहीं जो आपने न सुनी हो; भगवान्के शिष्य होकर आपने सब बात सुनी है ॥ ९ ॥ जिस प्रकार भगवान् ब्रह्माने तुम्हारे प्रति कहा है सो तुम हमसे सब कहो हे मारुत । यथा योग्य आप हमसे सब वृत्तान्त कहिये हम श्रद्धालु है और ईश्वरका यश सुनना चाहते हैं ॥ १० ॥ वायु बोले, हे ब्राह्मणो ! आप पंडित हो. तुमने भली बात पूंछी,

स कथं भगवान् रुद्र आदिदेवः पुरातनः॥पुत्रत्वमगमच्छंभुर्ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥६॥प्रजापतिश्च विष्णुश्च रुद्रस्यैतौ परस्परम् ॥ सृष्टौ परस्परस्यांगादिति प्रागपि शुश्रुम॥७॥कथं पुनरशेषाणां भूतानां हेतुभूतयोः॥गुणप्रधानभावेन प्रादुर्भावः परस्परात् ॥८॥ नापृष्टं भवता किंचिन्नाश्रुतं च कथंचन॥भगवच्छिष्यभूतेन भवता सकलं स्मृतम्॥९॥तत्त्वं वद यथा ब्रह्मा मुनीनामवदद्विभुः ॥ वयं श्रद्धालवस्तात श्रोतुमीश्वरसद्यशः॥१०॥ ॥ वायुरुवाच॥स्थाने पृष्टमिदं विप्रा भवद्भिः प्रश्नकोविदैः॥ इदमेव पुरा पृष्टो मम प्राह पितामहः ॥११॥ तदहं सम्प्रवक्ष्यामि यथा रुद्रसमुद्भवः॥ यथा च पुनरुत्पत्तिर्ब्रह्मविष्ण्वोः परस्परम्॥१२॥त्रयस्ते कारणा त्मानो जतास्साक्षान्महेश्वरात्॥ चराचरस्य विश्वस्य सर्गस्थित्यंतहेतवः॥१३॥ परमैश्वर्यसंयुक्ताः परमेश्वरभाविताः ॥ तच्छ क्त्या धिष्ठिता नित्यं तत्कार्यकरणक्षमाः ॥ १४ ॥ पित्रा नियमिताः पूर्वं त्रयोपि त्रिषु कर्मसु ॥ ब्रह्मा सर्गे हरिस्त्राणे रुद्रः संहरणे तथा ॥ ॥ १५ ॥ तथाप्यन्योन्यमात्सर्यादन्योन्यातिशयाशिनः ॥ तपसा तोषयित्वा स्वं पितरं परमेश्वरम् ॥ १६ ॥

यह वार्ता पहले मैंने पितामहसे पूंछी थी ॥ ११ ॥ सो मैं तुमसे रुद्रकी उत्पत्ति कहूंगा; और जिस प्रकार ब्रह्मा विष्णुकी परस्पर उत्पत्ति हुई है ॥ १२ ॥ यह तीनों कारणत्मा साक्षात् महेश्वरसे उत्पन्न हुए हैं यही चराचर विश्वकी उत्पत्ति पालन प्रलयके कारण हैं ॥ १३ ॥ परम ऐश्वर्यसे संयुक्त परमेश्वरसे भावित परमेश्वरकी शक्तिसे नित्य अधिष्ठित उस कार्य करनेमे समर्थ हैं ॥ १४ ॥ परमेश्वरने इन तीनोंको तीन कर्मोंमें नियुक्त किया हैं; उत्पत्ति करनेमें ब्रह्मा, रक्षा करनेमें भगवान् विष्णु, संहार करनेमें रुद्र हैं ॥ १५ ॥ तथापि अन्योन्य अतिशय

पराक्रमी होनेसे एक दूसरेका उत्कर्ष नहीं सहते हैं, तपसे अपने पिता परमेश्वरको संतुष्ट करके ॥ १६ ॥ उस परमेश्वरको प्रसन्नतासे सर्व ज्ञताको प्राप्त होकर ब्रह्मा और नारायणको पूर्व कल्पान्तरमें रुद्रने प्रगट किया ॥ १७ ॥ दूसरे कल्पमें ब्रह्माने रुद्र और विष्णुको उत्पन्न किया, एक कल्पमें विष्णुने रुद्र और ब्रह्माको उत्पन्न किया है ॥ १८ ॥ नारायणको ब्रह्मा ब्रह्माको शिव इस प्रकार कल्प कल्पमें ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ॥ १९ ॥ परस्पर हित करनेवालेकी इच्छासे उत्पन्न होते हैं, उन्हीं कल्पान्तरोंके वृत्तान्तको लेकर महर्षियोंने ॥ २० ॥ उसके परस्पर उत्पन्न होनेका प्रभाव वर्णन किया है, आप इस पापकी नाश करनेवाली कथाको श्रवण कीजिये ॥ २१ ॥ जो तत्पुरुष कल्पमें हुए ब्रह्माजी

लब्ध्वा सर्वात्मना तस्य प्रसादात्परमेष्ठिनः॥ब्रह्मनारायणौ पूर्वं रुद्रः कल्पान्तरेऽसृजत् ॥१७॥ कल्पान्तरे पुनर्ब्रह्मा रुद्रविष्णू जगन्मयः ॥ विष्णुश्च भगवान्रुद्रं ब्रह्माणमसृजत्पुनः ॥१८॥ नारायणं पुनर्ब्रह्मा ब्रह्माणमसृजत्पुनः॥एवं कल्पेषु कल्पेषु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥१९॥ परस्परेण जायंते परस्परहितैषिणः ॥ तत्तत्कल्पान्तवृत्तान्तमधिकृत्य महर्षिभिः ॥२०॥ प्रभावः कथ्यते तेषां परस्परसमुद्भवात् ॥ शृणु तेषांकथां चित्रां पुण्यांपापप्रमोचिनीम् ॥२१॥ कल्पे तत्पुरुषे वृत्तां ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ पुरा नारायणो नाम कल्पे वै मेघवाहने ॥२२॥ दिव्यं वर्षसहस्रं तु मेघो भूत्वावहद्धराम् ॥ तस्य भावं समालक्ष्य विष्णोर्विश्वज गद्गुरुः ॥ २३ ॥ सर्वस्सर्वात्मभावेन प्रददौ शक्तिमव्ययाम् ॥ शक्तिं लब्ध्वा तु सर्वात्मा शिवात्सर्वेश्वरात्तदा ॥ २४ ॥ ससर्ज भगवान् विष्णुर्विश्वं विश्वसृजा सह ॥ विष्णोस्तद्वैभवं दृष्ट्वा सृष्टस्तेन पितामहः ॥२५॥ ईर्ष्यया परया ग्रस्तः प्रहसन्नि दमब्रवीत् ॥ गच्छ विष्णो मया ज्ञातं तव सर्गस्य कारणम्॥आवयोरधिकश्चास्ति स रुद्रो नात्र संशयः ॥ २६ ॥

की नारायणसे वार्ता हुई है पहले मेघवाहन कल्पमें नारायण ॥ २२ ॥ दिव्य सहस्रवर्ष मेघरूप होकर शिवको धारण करते हुए; जगत्के गुरु ने उन विष्णु भगवान्की अत्यन्त भक्ति देखकर ॥२३॥ सब प्रकारसे उनको नाशरहित सामर्थ्य दी इस प्रकार यह सर्वेश्वर शिवसे वह शक्ति को प्राप्त होकर ॥ २४ ॥ ब्रह्माके सहित भगवान् विष्णु जगत्की रचना करने करने लगे; ब्रह्माने यह विष्णुका ऐश्वर्य देखकर ॥ २५ ॥ ईर्षा परवश हो विष्णु भगवान्से यह वचन कहे हे विष्णु ! जाओ हमने आपकी सृष्टिका कारण जान लिया, इसमें सन्देह नहीं भगवान् रुद्र तुमसे

अधिक बली हैं ॥ २६ ॥ उसी देवादिदेव परमात्माकी सामर्थ्यसे तुम जगत्के उत्पन्न और पालन करनेवाले परमार्थसे हो ॥ २७ ॥ मैं त्रिदश देवनायक रुद्रको तपसे आराधना कर तुम्हारे सहित जगत्की रचना करूँगा इसमें संदेह नहीं ॥ २८ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजी विष्णुके प्रति भर्त्सनाके वचन कह और समझाकर तपसे शिवजीके निकट प्राप्त हो बोले ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! देवताओंके ईश्वर ! विश्वेश्वर ! महेश्वर ! तुम्हारे बाँये अंगसे विष्णु और दक्षिणांगसे मैं उत्पन्न हुआ हूं ॥ ३० ॥ मेरे साथ भगवान् विष्णुने जगत् उत्पन्न किया है परन्तु तुम्हारे बलके आश्रय हो मेरा तिरस्कार करते हैं ॥ ३१ ॥ हे महेश्वर ! क्या उनकी भक्ति तुम्हारे ऊपर मुझसे अधिक है, हम दोनोंकी

तस्य देवाधिदेवस्य प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥ स्रष्टा त्वं भगवानाद्यः पालकः परमार्थतः ॥ २७ ॥ अहं च तपसाराध्य रुद्रं त्रिदशनायकम् ॥ त्वयासह जगत्सर्वं स्रक्ष्याम्यत्र न संशयः ॥ २८ ॥ एवं भविष्णुमुपालभ्य भगवानब्जसम्भवः ॥ एवं विज्ञापयामास तपसा प्राप्य शंकरम् ॥ २९ ॥ भगवन् देवदेवेश विश्वेश्वर महेश्वर ॥ तव वामांगजो विष्णुर्दक्षिणांगभवो ह्यहम् ॥ ३० ॥ मया सह जगत्सर्वं तथाप्यसृजदच्युतः ॥ स मत्सरादुपालब्धस्त्वदांश्रयबलान्मया ॥ ३१ ॥ मद्भावान्नाधिकस्तेति भावस्त्वयि महेश्वरे ॥ त्वत्त एव समुत्पत्तिरावयोस्सदृशी यतः ॥ ३२ ॥ तस्य भक्त्या यथापूर्वं प्रसादं कृतवानसि ॥ तथा ममापि तत्सर्वं दातुमर्हसि शंकर ॥ ३३ ॥ इति विज्ञापितस्तेन भगवान् भगनेत्रहा ॥ न्यायेनवै ददौ सर्वं तस्यापि स घृणानिधिः ॥ ३४ ॥ लब्ध्वैवमीश्वरादेव ब्रह्मा सर्वात्मतां क्षणात् ॥ त्वरमाणोथ संगम्य ददर्श पुरुषोत्तमम् ॥ ३५ ॥ क्षीरार्णवालये शुभ्रे विमाने सूर्यसंनिभे ॥ हेमरत्नान्विते दिव्ये मनसा तेन निर्मिते ॥ ३६ ॥

आपसे तुल्य उत्पत्ति है ॥ ३२ ॥ विष्णुकी भक्ति जैसे आपने पूर्वमें प्रसन्नता की है उसी प्रकार हे महेश्वर ! मुझे भी वह सब सामर्थ्य दीजिये ॥ ३३ ॥ जब इस प्रकार भगदेवताके नेत्र हारनेवाले भगवान्की प्रार्थना करी, तब कृपानिधि शिवने हँसकर ब्रह्माको भी यह सब सामर्थ्य दी ॥ ३४ ॥ तब ब्रह्माजी शिवसे क्षणमात्रमें सर्वात्माको प्राप्त होकर बहुत शीघ्रतासे विष्णुजीके समीप गये ॥ ३५ ॥ जहां सुन्दर क्षीरसागरमें सुन्दर सूर्यके समान विमान जिसमें सुवर्ण और रत्न जडे मनसे ही निर्मित ॥ ३६ ॥

विष्णुके ही बनाए हुएमें अनंत नागकी शय्यापर शयन करते हुए, कमललोचन, चार भुजा, उदार अंग, सम्पूर्ण आभरणोंसे विभूषित ॥ ३७ ॥ शंख चक्र गदा धारे, सौम्य चन्द्रमाके बिंबके समान मुखवाले, छाती श्रीवत्ससे शोभित, प्रसन्न मुख, मधुर हास्य ॥ ३८ ॥ स्त्रीरूप धारी पृथ्वीसे जिनके रक्त चरण कमल स्पर्शित हैं क्षीर सागरमें अमृतके समान योग निद्रासे शयन करते हुए ॥ ३९ ॥ तमोगुण होनेसे कालरुद्र, रजसे व्याप्त होनेसे सुवर्णके अंडसे सम्भूत हिरण्यगर्भ, सत्त्व गुण होनेसे सब स्थानोंमें व्यापक विष्णु, निर्गुण रूपसे महेश्वर ॥ ४० ॥ परम पुरुषको देखकर बडी चपलतासे ब्रह्माजी कहने लगे, हे विष्णो ! जिस प्रकार पूर्वमें तुमने मुझे ग्रस लिया था इसी प्रकार मैं तुमको

अनंतभोगशय्यायां शयानं पंकजेक्षणम्॥ चतुर्भुजमुदारांगं सर्वाभरणभूषितम्॥३७॥शंखचक्रधरं सौम्यं चन्द्रबिंबसमाननम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं देवं प्रसन्नमधुरस्मितम्॥३८॥धरामृदुकरांभोजस्पर्शरक्तपदांबुजम्॥क्षीरार्णवामृतमिव शयानं योगनिद्रया ॥३९॥ तमसा कालरुद्राख्यंरजसा कनकांडजम् ॥ सत्त्वेनसर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वे महेश्वरम् ॥४०॥ तं दृष्ट्वा पुरुषंब्रह्मा प्रगल्भमिदम ब्रवीत् ॥ ग्रसामि त्वामहं विष्णो त्वमात्मानं यथा पुरा॥४१॥तस्यतद्वचनं श्रुत्वा प्रतिबुद्ध्य पितामहम् ॥ उदैक्षत महाबाहु स्स्मितमीषच्चकार च॥४२॥तस्मिन्नवसरे विष्णुर्ग्रस्तस्तेन महात्मना ॥ सृष्टश्च ब्रह्मणा सद्यो भ्रुवोर्मध्यादयत्नतः ॥४३॥ तस्मिन्न वसरेसाक्षाद्भगवानिन्दुभूषणः॥शक्तितयोरपि द्रष्टुमरूपोरूपमास्थितः॥४४॥प्रसादमतुलं कर्तुं पुरा दत्तवरस्तयोः॥ आगच्छत्तत्र यत्रेमौ ब्रह्मनारायणौ स्थितौ ॥ ४५ ॥ अथ तुष्टुवतुर्देवं प्रीतौ भीतौ च कौतुकात्॥प्रणेमतुश्च बहुशो बहुमानेन दूरतः ॥ ४६ ॥

ग्रसता हूँ ॥ ४१ ॥ ब्रह्माके यह वचन सुन विष्णु भगवान् जागकर ब्रह्मको देखने लगे और वे महाबाहु कुछ हँसे भी ॥ ४२ ॥ उसी अवसरमें ब्रह्माजीने विष्णुको ग्रस लिया, तह वह तत्काल ब्रह्माके भौंके बीचसे विना ही यत्नके प्रकट होगये ॥ ४३ ॥ उसी अवसरमें चंद्रमौलि भगवान् उन दोनोंकी शक्ति देखनेको रूप हीन होकर भी रूपमें स्थित हुए ॥ ४४ ॥ और पूर्वकालमें वर पाये हुए उन दोनोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छा की जहां यह दोनों स्थित थे वहीं शिव गये ॥ ४५ ॥ तब इस कौतुकसे प्रसन्न और भयको प्राप्त ब्रह्मा और नारायण

शिवकी स्तुति करने लगे और दूरसे बडे मानसे उनको प्रणाम करने लगे ॥ ४६ ॥ और भगवान् पिनाक धारी शिवजी इन दोनोंपर अनुग्रह कर उनको आदरसे देखते हुए वहां ही अन्तर्द्धान होगये ॥ ४७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे शेषशायि नारायण वर्णन नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ वायु बोले, प्रत्येक कल्पमें रुद्रके आविर्भावका कारण कहता हूं जिससे सन्तान विच्छिन्न होनेसे भी ब्रह्माकी सृष्टि प्रवृत्त होती है ॥ १ ॥ ब्रह्माण्डसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजीने कल्प २ में प्रजाकी रचना करके जब देखा कि प्राणी नहीं बढते तब मोहित हो दुःखी हुए ॥ २ ॥ उसके दुःखकी शान्ति और प्रजावृद्धिके निमित्त उस २ कल्पमें कालात्मा रुद्रागणाधिप ॥ ३ ॥

भवोपि भगवानेतावनुगृह्य पिनाकधृक् ॥ सादरं पश्यतोरेव तयोरंतरधीयत ॥ ४७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीय संहितायां पूर्वखण्डे ब्रह्मविष्णुसृष्टिकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ वायुरुवाच ॥ प्रतिकल्पं प्रवक्ष्यामि रुद्राविर्भावकारणम् ॥ यतो विच्छिन्नसंताना ब्रह्मसृष्टिः प्रवर्तते ॥ १ ॥ कल्पेकल्पे प्रजाःसृष्ट्वा ब्रह्मा ब्रह्मांडसंभवः ॥ अवृद्धिहेतोर्भूतानां मुमोह भृशदुःखितः ॥ २ ॥ तस्य दुःखप्रशांत्यर्थं प्रजानां च विवृद्धये ॥ तत्तत्कल्पेषु कालात्मा रुद्रो रुद्रगणाधिपः ॥ ३ ॥ निर्दिष्टः परमेशेन महेशो नीललोहितः ॥ पुत्रो भूत्वानुगृह्णाति ब्रह्माणं ब्रह्मणोनुजः ॥ ४ ॥ स एव भगवानीशस्तेजोराशिरनामयः ॥ अनादिनिधनोधाता भूतसंकोचको विभुः ॥ ५ ॥ परमैश्वर्यसंयुक्तः परमेश्वरभावितः ॥ तच्छक्त्याधिष्ठितश्शश्वत्तच्चिह्नैरपि चिह्नितः ॥ ६ ॥ तन्नामनामा तद्रूपस्तत्कार्यकरणक्षमः ॥ तत्तुल्यव्यवहारश्च तदाज्ञापरिपालकः ॥ ७ ॥ सहस्रादित्यसंकाशश्चन्द्रावयवभूषणः ॥ भुजंगहार केयूरवलयो मुंजमेखलः ॥ ८ ॥

परमेश्वरसे प्रेरित हो भगवान् नील लोहित पुत्ररूप होकर ब्रह्मापर ब्रह्मानुज हो अनुग्रह करते हैं ॥ ४ ॥ वही भगवान् ईश्वर तेजकी राशि निरामय हैं, अनादि निधन सबके निर्माण करनेवाले जगत्के संकोच करनेवाले सर्व व्यापक ॥ ५ ॥ परम ऐश्वर्यसे संयुक्त परमेश्वरसे भावित अर्थात् प्रेरित होकर शिवभक्ती और उनके चिन्होंसे चिह्नित ॥ ६ ॥ उसीके नामपर नामवाले उसीके रूप उसीके कार्य करनेमें समर्थ उन्हींके तुल्य व्यवहार और उन्हींकी आज्ञाके पालन करनेवाले ॥ ७ ॥ सहस्र सूर्यके समान चन्द्रमाके खंडके भूषण धारण करनेवाले

सर्पोंके हार बाजूबन्द कंगन और मुंजमेखलायुक्त ॥ ८ ॥ जलन्धर नामक देवता विरंच इन्द्र इनके कपालके खण्डसे उज्ज्वल गंगाजी ऊंची तरंगोंसे गीले पिंगल मुख और केश ॥ ९ ॥ भग्न हुए डाढरूपी अंकुरोंसे प्रान्तभागको आक्रमण किये जिनका रमणीय कैलास पर्वत है; दक्षिण काननके पार्श्वान्तमें मण्डलाकार कुण्डल शोभित हैं ॥ १० ॥ महावृषभ जिनकी सवारी है, महामेघके समान गम्भीर शब्द महाअग्निके समान तेज महाबली और पराक्रमी ॥ ११ ॥ इस प्रकारसे घोरमहारूप धारण किये वह ब्रह्माके पुत्र महेश्वर ब्रह्माको ज्ञान देकर उनके साथ सृष्टि करते हैं ॥१२॥ इस कारण रुद्रकी प्रसन्नतासे प्रत्येक कल्पमें प्रजापतिके प्रवाहरूपसे नित्यप्रति सृष्टिकी प्रवृत्ति होती है ॥ १३ ॥ किसी

जलंधरविरिंचेन्द्रकपालशकलोज्ज्वलः ॥ गङ्गातुंगतरंगार्द्रपिंगलाननमूर्द्धजः॥९॥ भग्नदंष्ट्रांकुराक्रान्तप्रान्तकान्तधराधरः॥सव्य श्रवणपार्श्वांतमंडलीकृतकुण्डलः॥१०॥महावृषभनिर्याणो महाजलदनिः स्वनः॥ महानलसमप्रख्यो महाबलपराक्रमः॥११॥एवं घोरमहारूपो ब्रह्मपुत्रीं महेश्वरः ॥ विज्ञानं ब्रह्मणे दत्त्वा सर्गे सहकरोति च॥१२॥तस्माद्रुद्रप्रसादेन प्रतिकल्पं प्रजापतेः॥प्रवाहरू पतो नित्या प्रजासृष्टिः प्रवर्तते॥१३॥कदाचित्प्रार्थितः स्रष्टुं ब्रह्मणा नीललोहितः॥स्वात्मना सदृशान् सर्वान् ससर्ज मनसा विभुः ॥१४॥ कपर्दिनो निरातंकान्त्रीलग्रीवाँस्त्रिलोचनान् ॥ जरामरणनिर्मुक्तान् दीप्तशूलवरायुधान्॥१५॥तैस्तु संच्छादितं सर्वं चतुर्दश विधं जगत् ॥तान्दृष्टा विविधान्रुद्रान् रुद्रमाह पितामहः॥१६॥नमस्ते देवदेवेश मास्राक्षीरीदृशीः प्रजाः॥अन्याः सृज त्वं भद्रं ते प्रजा मृत्युसमन्विताः ॥ १७ ॥ इत्युक्तः प्रहसन्प्राह ब्रह्माणं परमेश्वरः ॥ नास्ति मे तादृशस्सर्गस्सृज त्वमशुभाः प्रजाः ॥१८॥

समय प्रजा रचनेके निमित्त ब्रह्माजीने शिवजीकी प्रार्थना की, तब प्रभुने अपनी आत्माके समान उन सबकी रचना की ॥१४॥ जटाजूटधारी निर्भय नीललोहित त्रिलोचन जरामरणरहित दीप्तिमान् त्रिशूल और श्रेष्ठ आयुध धारण किये रुद्र प्रगट किये ॥ १५ ॥ उन्होंने चौदह भुव नोंको आच्छादित कर दिया, इस प्रकारसे रुद्रोंको देख कर उनसे ब्रह्माजी बोले॥१६॥हे देवदेवेश ! आपको नमस्कार है, आप ऐसी प्रजाकी रचना मत कीजिये आपका मंगल हो, आप मरण धर्मयुक्त दूसरी प्रजा निर्माण कीजिये ॥ १७ ॥ यह सुनकर परमेश्वर हँसते हुए ब्रह्मासे

बोले, मेरी ऐसी प्रजा नहीं हो सकती, ऐसी प्रजाकी रचना तुम करो ॥ १८ ॥ जो महात्मा महाबली हमने मनसे रचे हैं यह सब सृष्टि मेरे साथ यज्ञमें विचरण करेगी ॥ १९ ॥ इस प्रकार संसारके भूतेश्वर शिवजी ब्रह्माजीके प्रति वचन कहकर रुद्रोंके साथ प्रजा रचनेकी इच्छासे निवृत्त हुए ॥ २० ॥ उस दिनसे देवादिदेवने जरा मरणहीन प्रजाकी आप रचना न की और जबतक प्रलय हो तबतक आप अचल ठूँठके समान ऊर्ध्ववीर्य होकर स्थित हुए ॥ २१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे रुद्रोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ वायु बोले, जब फिर भी प्रजा रचनेसे न बढी तब ब्रह्माने मैथुनीसृष्टि बनानेकी इच्छा की ॥ १ ॥ पूर्वकालमें ईश्वरसे स्त्रियोंका कुल

ये त्विमे मनसा सृष्टा महात्मानो महाबलाः ॥ चरिष्यंति मया सार्द्धं सर्व एव हि याज्ञिकाः ॥१९॥ इत्युक्त्वा विश्वकर्माणं विश्वभूतेश्वरो हरः ॥ सह रुद्रैः प्रजासर्गान्निवृत्तात्मा व्यतिष्ठत ॥ २० ॥ ततः प्रभृति देवोऽसौ न प्रसूते प्रजाः शुभाः ॥ उद्ध्वरेताः स्थितः स्थाणुर्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ २१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे रुद्राविर्भाववर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ वायुरुवाच॥ यदा पुनः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्द्धन्त वेधसः ॥ तदा मैथुनजां सृष्टिं ब्रह्मा कर्तुममन्यत ॥ १ ॥ न निर्गतं पुरा यस्मान्नारीणां कुलमीश्वरात् ॥ तेन मैथुनजां सृष्टिं न शशाक पितामहः ॥ २ ॥ ततस्स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम्॥प्रजानामेव वृद्ध्यर्थं प्रष्टव्यः परमेश्वर ॥३॥प्रसादेन विना तस्य न वर्द्धेरन्निमाः प्रजाः॥ एवं संचिन्त्य विश्वात्मा तपः कर्तुं प्रचक्रमे ॥ ४ ॥ तदाद्या परमा शक्तिरनंता लोकभाविनी ॥ आद्या सूक्ष्मतरा शुद्धा भावगम्या मनोहरा ॥ ५ ॥ निर्गुणा निष्प्रपंचा च निष्कला निरुपप्लवा ॥ निरंतरतरा नित्या नित्यमीश्वरपार्श्वगा ॥ ६ ॥

प्रगट नहीं हुआ था इस कारण ब्रह्माने भी मैथुनीसृष्टि न की थी ॥ २ ॥ जब ब्रह्माने स्त्री पुरुष संयोगरूप मैथुनीसृष्टि रचना की, और विचारा कि, प्रजावृद्धिके निमित्त परमेश्वरसे पूछना चाहिये ॥ ३ ॥ उनकी प्रसन्नताके विना यह प्रजा न बढेगी, यह विचार ब्रह्माने तप करनेकी इच्छाकी ॥ ४ ॥ तब आद्या परमशक्ति अनंत लोकोंकी करनेवाली सूक्ष्मतर शुद्ध भावगम्य मनोहर ॥ ५ ॥ निर्गुण प्रपंचरहित निष्कल उपद्रवरहित निरंतर दिव्य और सदा ईश्वरके समीप रहनेवाली जो शक्ति उसे युक्त है ॥ ६ ॥

उस परम शक्ति युक्त भगवान् त्रिलोचन देवको मनमें विचारकर ब्रह्माजी महातप करने लगे ॥ ७ ॥ जब ब्रह्माजीने महाकठिन तप किया तब थोडेही समयमें शिवजी संतुष्ट होगये ॥ ८ ॥ तब किसी एक अपने अंशसे कल्पित मूर्त्तिमें प्रवेश कर अर्ध नारी आधे पुरुष होकर ब्रह्माके निकट आये ॥ ९ ॥ उन परमदेव अंधकारसे परे अविनाशी अद्वितीय जो कहनेमें न आवे अनिर्देश्य और अज्ञानियोंके दर्शनमें न आनेवाले ॥ १० ॥ सब लोकके विधाता सब लोकके ईश्वर सब लोककी बनाने वाली परम शक्तिसे युक्त ॥ ११ ॥ तर्क और आभास ज्ञान रहित पराक्रमसे अतुलनीय अजर स्थाणु निर्गुण शान्त महामहिमाके स्थान ॥ १२ ॥ सब कुछ देनेवाले सबके जानेवाले व्याप्त सत् असत

तया परमया शक्त्या भगवंतं त्रियम्बकम्॥संचिन्त्य हृदये ब्रह्मा तताप परमं तपः॥७॥तीव्रेण तपसा तस्य युक्तस्य परमेष्ठिनः॥ अचिरेणैव कालेन पिता संप्रतुतोष ह॥ ८ ॥ ततः केनचिदंशेन मूर्तिमाविश्य कामपि ॥ अर्द्धनारीश्वरो भूत्वा ययौ देवस्स्वयं हरः ॥९॥ तं दृष्ट्वा परमं देवं तमसः परमव्ययम् ॥ अद्वितीयमनिर्देश्यमदृश्यमकृतात्मभिः॥१०॥सर्वलोकविधातारं सर्वलोकेश्वरेश्वरम् ॥ सर्वलोकविधायिन्या शक्त्या परमया युतम् ॥११॥ अप्रतर्क्यमनाभासममेयमजरं ध्रुवम् ॥ अचलं निर्गुणं शांतमनंत महि मास्पदम् ॥ १२ ॥ सर्वगं सर्वदं सर्वसदसद्व्यक्तिवर्जितम् ॥ सर्वोपमाननिर्मुक्तं शरण्यं शाश्वतं शिवम् ॥१३॥ प्रणम्य दंडवद्ब्रह्मासमुत्थाय कृतांजलिः ॥ श्रद्धाविनयसंपन्नैः श्राव्यैः संस्कारसंयुतैः ॥ १४ ॥ यथार्थयुक्तसर्वार्थैर्वेदार्थपरिबृंहितैः ॥ तुष्टाव देवं देवीं च सूक्तैः सूक्ष्मार्थगोचरैः ॥ १५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जय देव महादेव जयेश्वर महेश्वर ॥ जय सर्वगुण श्रेष्ठ जयसर्वसुराधिप ॥ १६ ॥ जय प्रकृति कल्याणि जय प्रकृतिनायिके ॥ जय प्रकृतिदूरे त्वं जय प्रकृतिसुन्दरि ॥ १७ ॥

व्यक्तिसे रहित सम्पूर्ण अपमानसे रहित शरणदाता निरन्तर कल्याणस्वरूपको ॥ १३ ॥ देखतेही ब्रह्माजी खडे हुये; और हाथ जोडकर श्रद्धा विनयसे सम्पन्न सुनने योग्य संस्कार युक्त ॥ १४ ॥ तथा यथार्थतासे जिसमें वेदार्थ भरा है इस प्रकार सूक्ष्मअर्थोंके भरे स्तोत्रोंसे शिव पार्वतीको संतुष्ट करने लगे ॥ १५ ॥ ब्रह्माजी बोले, देव महादेव जयेश्वर महेश्वर आपकी जय हो सब गुणोंमें श्रेष्ठ सब देवताओंके अधिपति आपकी जय हो ॥ १६ ॥ हे कल्याणी प्रकृति ! आपकी जय हो, हे प्रकृतिनायक ! आपकी जय हो, प्रकृतिसे दूर अंगवाली स्वभावसे

सुन्दरीकी जय हो ॥ १७ ॥ अमोघ महामाया अमोघ मनोरथ अमोघ महालीला अमोघ महाबलिष्ठकी जय हो ॥ १८ ॥ विश्व और जग न्माताकी जय हो, विश्व जगन्मयरूपके निमित्त नमस्कार, संसार और भुवनोंकी माता विश्व और जगत्की सखी ॥ १९ ॥ निरन्तर ऐश्वर्यसे पूर्ण निरन्तरका भी लय करने वाली शांताकार और सदा एकमात्र शाश्वतके अनुगमन करनेवाली ॥ २० ॥ तीन आत्मा ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनकी रचनेवाली ब्रह्मादि देवताओंको पालने वाली और उन्हीं तीनों आत्माओंकी संहार करनेवाली तीनों आत्माओंकी स्वामिनीकी जय हो ॥ २१ ॥ जिसके अवलोकन मात्रसेही जगत्के कारण अव्यक्त आदि प्रगट होगये; निग्रहसे युक्त कटाक्षसे उठी हुई अग्निसे जिसने

जयामोघमहामाय जयामोघमनोरथ ॥ जयामोघमहालील जयामोघमहाबल ॥ १८ ॥ जय विश्वजगन्मातर्जय विश्वजग न्मये ॥ जय विश्वजगद्धात्रि जय विश्वजगत्सखि ॥ १९ ॥ जय शाश्वतिकैश्वर्ये जय शाश्वतिकालय ॥ जय शाश्वतिका कार जय शाश्वतिकानुग ॥ २० ॥ जयात्मत्रयनिर्मात्रि जयात्मत्रयपालिनि ॥ जयात्मत्रयसंहर्त्रि जयात्मत्रयनायिके ॥२१॥ जयावलोकनायत्तजगत्कारणबृंहण ॥ जयोपेक्षाकटाक्षोत्थहुतभुग्भुक्तभौतिक ॥ २२ ॥ जय देवाद्यविज्ञेये स्वात्मसूक्ष्मदृशो ज्ज्वले ॥ जय स्थूलात्मशक्त्येशेजय व्याप्तचराचरे ॥ २३ ॥ जय नामैकविन्यस्तविश्वतत्त्वसमुच्चय ॥ जयासुरशिरोनिष्ठश्रेष्ठा नुगकदंबक ॥ २४ ॥ जयोपाश्रितसंरक्षासंविधानपटीयसि ॥ जयोन्मूलितसंसारविषवृक्षांकुरोद्गमे ॥ २५ ॥ जय प्रादेशिकैश्व र्यवीर्यशौर्यविजृंभण ॥ जय विश्वबहिर्भूत निरस्तपरवैभव ॥ २६ ॥

भौतिक तत्त्वको भस्म कर दिया उसकी जय हो ॥ २२ ॥ जिसको देवतादिक भी नहीं जानते, आत्माके दर्शनमें जिसके नेत्र उज्ज्वल हैं स्थूलात्मा शक्तिके अंशसे चराचर विश्वमें व्याप्त आपकी जय हो ॥ २३ ॥ अनेक प्रकार और एक प्रकारसे भी जिन्होंने संसारके तत्त्वको जयकर रक्खा है, उनकी जय हो; जिनके दोनों चरण राक्षसोंके शिरोंपर धरे गये हैं ॥ २४ ॥ उपासना करनेवालोंकी रक्षा करनेमें चतुरकी जय हो, आप संसाररूपी वृक्षको अंकुरित होते ही नाश करते हो आपकी जय हो ॥ २५ ॥ ऐश्वर्य और शूरतायुक्तोंके मदके नाश कर्ता

आपकी जय हो विश्वसे बहिर्भूत अर्थात् पृथक् और दूसरेके ऐश्वर्यसे हीन आपकी जय हो ॥ २६ ॥ उत्पन्न किये हुए पंचमहाभूतोंके प्रयोग अर्थात् स्थापनमें परब्रह्मस्वरूप और पंचमहाभूतके ज्ञानरूपी अमृतस्रोत बहानेवाली आपकी जय हो ॥ २७ ॥ अतिघोर संसाररूपी महाज्वररोगके औषधीस्वरूप वैद्यराज आपकी जय हो, अनादि कालके अज्ञान मल और अन्धकारके नाश करनेको चांदनीरूपी तुम्हरी जय हो ॥ २८ ॥ त्रिपुरको कालाग्निस्वरूपकी जय हो हे त्रिपुरभैरवी ! तुम्हारी जय हो तीनों गुणोंमेंसे पृथक् और तीनों गुणोंके दूर करनेवाली आपकी जय हो ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण शत्रुओंके नाशक सर्वज्ञ सबको बोधिकाकी जय हो दिव्यज्ञानसे युक्त आपकी जय हो; मनोवांछादि

जय प्रणीतपं चार्थप्रयोगपरमामृत ॥ जय पंचार्थविज्ञानसुधास्तोत्रस्वरूपिणि ॥ २७ ॥ जयति घोरसंसारमहारोगभिषग्वर ॥ जयानादि मलाज्ञानतमःपटलचंद्रिके ॥ २८ ॥ जय त्रिपुरकालाग्ने जय त्रिपुरभैरवि ॥ जय त्रिगुणनिर्मुक्ते जय त्रिगुणमर्दिनि ॥ २९ ॥ जय प्रथम सर्वज्ञ जय सर्वप्रबोधिक ॥ जय प्रचुरदिव्यांग जय प्रार्थितदायिनि ॥ ३० ॥ क्व देव ते परं धाम क्व च तुच्छं च नो वचः ॥ तथापि भगवन् भक्त्या प्रलपंतं क्षमस्व माम् ॥ ३१ ॥ विज्ञाप्यैवंविधैः सूक्तैर्विश्वकर्मा चतुर्मुखः ॥ नमश्चकार रुद्राय रुद्राण्यै च मुहुर्मुहुः ॥ ३२ ॥ इदं स्तोत्रवरं पुण्यं ब्रह्मणा समुदीरितम् ॥ अर्द्धनारीश्वरं नाम शिवयोर्हर्षवर्द्धनम् ॥ ३३ ॥ य इदं कीर्त्तयेद्भक्त्या यस्य कस्यापि शिक्षया ॥ स तत्फलमवाप्नोति शिवयोः प्रीतिकारणात् ॥ ३४ ॥

अर्थ देनेवाली भगवतीकी जय हो ॥ ३० ॥ हे देव ! कहां तो आपका परम धाम कहां हम और कहां हमारे वचन हैं; तो भी शक्तिसे वचन उच्चारण करनेवाले मुझे आप क्षमा कीजिये ॥ ३१ ॥ विश्वकर्मा चतुर्मुख इस प्रकार श्रेष्ठ सूक्तोंसे भगवान्की स्तुति कर रुद्र और रुद्राणीको बारंबार नमस्कार करने लगे ॥ ३२ ॥ यह सुन्दर स्तोत्र ब्रह्माजीका यहा हुआ है, यह अर्ध नारीश्वर स्तोत्र इसमें आधी रुद्राणीकी स्तुति है; आधी शिवकी है यह शिवका आनन्द बढानेवाला है ॥३३॥ जो किसी मनोरथकी इच्छासे इस स्तोत्रको कीर्तन करता है वह शिवा शिवकी

प्रसन्नतासे उस फलको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ सम्पूर्ण भुवन और प्राणियोंके उत्पन्न करनेवाले जन्म विनाशहीन शरीरवाले श्रेष्ठ नर और युवतीके शरीर धारण करनेवाले शिव पार्वतीको प्रणाम करता हूँ ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे रुद्रब्रह्म संवादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ वायु बोले, तब महादेव महामेघके शब्दके समान मधुर गम्भीर तथा मनोहर वाणीसे बोले ॥ १ ॥ जिस वाणीके यह अर्थ संपन्न थे, जो राजलक्षणसे युक्त थी, सम्पूर्ण विषयोंके आरम्भके रक्षा करने तथा निर्मल करनेमें चतुर थी ॥ २ ॥ उस अत्यन्त मनोहर उदार हास्यपूर्वक वाणीसे प्रसन्न हो वह ईश्वर ब्रह्माजीसे ॥ ३ ॥ बोले ईश्वर बोले, हे वत्स ! हे महाभाग !

सकलभुवनभूतभावनाभ्यां जननविनाशविहीनविग्रहाभ्याम् ॥ नरवरयुवतीवपुर्द्धराभ्यां सततमहं प्रणतोस्मि शंकराभ्याम् ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पू० शिव शिवास्तुतिवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ वायुरुवाच ॥ अथ देवो महादेवो महाजलदनादया ॥ वाचा मधुरगंभीरशिवदश्लक्ष्ण वर्णया॥ १ ॥ अर्थसंपन्नपदया राजलक्षण युक्तया॥ अशेषविषयारंभरक्षा विमलदक्षया ॥ २ ॥ मनोहरतरोदारमधुरस्मितपूर्वया॥ संबभाषे सुसंपीतो विश्वकर्माणमीश्वरः ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ वत्सवत्स महाभाग मम पुत्र पितामह॥ ज्ञातमेव मया सर्वं तव वाक्यस्य गौरवम् ॥ ४ ॥ प्रजानामेव वृद्ध्यर्थं तपस्तप्तं त्वयाधुना ॥ तपसाऽनेन तुष्टोस्मि ददामि च तवेप्सितम् ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वा परमोदारं स्वभावमधुरं वचः ॥ ससर्ज वपुषो भागादेवीं देववरो हरः ॥ ६ ॥ यामाहुर्ब्रह्मविद्वांसो देवीं दिव्यगुणान्विताम् ॥ परस्यपरमां शक्तिं भवस्य परमात्मनः ॥ ७ ॥ यस्यः न खलु विद्यंते जन्म मृत्युजरादयः ॥ या भवानी भवस्यांगात्समाविरभवत्किल ॥ ८ ॥

मेरे पुत्र ब्रह्माजी, तुम्हारे वाक्यका भेद मैंने सब जान लिया ॥ ४ ॥ प्रजाओंकी वृद्धिके निमित्त तुमने महातप किया है, इससे तपसे मैं प्रसन्न होकर तुमको यह वर देता हूं ॥ ५ ॥ इस प्रकारके वचन कह वह परमोदार स्वभावसेही वह मधुर वचन बोलने वाले अपने शरीरसे देवी देवकी रचना करने लगे ॥ ६ ॥ विद्वान् जिसको ब्रह्म कहते हैं वह देवी दिव्य गुणोंसे युक्त है, वह परमात्मा भव शिवकी परमशक्ति है ॥ ७ ॥ जिसको जन्म मृत्यु और जरादिक कुछ नहीं है जो भवानी शिवके अंगसे प्रकट हुई है ॥ ८ ॥

जिसके निकट जाकर इंद्रिय मन वाणी सहित निवृत्त होजाती है, वह अपने स्वामीके शरीरसे प्रगट हुई सी दीखती है ॥ ८ ॥ जो यह सब जगत्को अपनी महिमासे व्याप्त करके स्थित होती है शरीरियोंके समान वह देवी विचित्र रूपयुक्त है ॥१०॥ यह सम्पूर्ण जगत् अपनी मायासे मोहित करती है वह परमार्थसे उत्पन्न न होकर भी ईश्वरसे प्रगट हुई है॥११॥ जिसके परम भावको देवता भी नहीं जानते वह जगत्के स्वामी देवताके अंगसे विभक्त हुई है ॥ १२ ॥ इस परमेश्वरी सर्व लोकेश्वरी सर्वज्ञोंमें प्राप्त सूक्ष्म सत असत् व्यक्तिसे हीनको देखकर ॥१३॥ अपनी इस कांतिसे जगत्को प्रकाश करती हुई दीखी तब महादेवीको प्रणाम करके विराट्ने प्रार्थना की॥१४॥ब्रह्मा बोले, हे देवि ! मैं सृष्टिके प्रथम

यस्या वाचो निवर्तन्ते मनसा चेंद्रियैः सह ॥ सा भर्तुर्वपुषो भागाज्जातेव समदृश्यत ॥ ९ ॥ या सा जगदिदं कृत्स्नंमहिम्ना व्याप्य तिष्ठति ॥ शरीरिणीव सा देवी विचित्रं समलक्ष्यत ॥ १० ॥ सर्वं जगदिदं चैषा संमोहयति मायया ॥ ईश्वरात्सैव जा ताभूदजाता परमार्थतः ॥११॥ न यस्या परमो भावः सुराणामपि गोचरः ॥ विश्वामरेश्वरी चैव विभक्ता भर्तुरंगतः ॥१२॥ तां दृष्ट्वा परमेशानीं सर्वलोकमहेश्वरीम् ॥ सर्वज्ञां सर्वगां सूक्ष्मां सदसद्व्यक्तिवर्जिताम् ॥ १३ ॥ परमां निखिलं भासा भासयन्तीमिदं जगत् ॥ प्रणिपत्य महादेवीं प्रार्थयामास वै विराट् ॥ १४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवि देवेन सृष्टोऽहमादौ सर्वजगन्मयि ॥ प्रजासर्गे नियुक्तश्च सृजामि सकलं जगत् ॥ १५ ॥ मनसा निर्मिताः सर्वे देवि देवादयो मया ॥ न वृद्धिमुपगच्छन्ति सृज्यमानाः पुनःपुनः ॥ १६ ॥ मिथुन प्रभवामेव कृत्वा सृष्टिमतः परम् ॥ संवर्धयितुमिच्छामि सर्वा एव मम प्रजाः ॥१७॥ न निर्गतं पुरा त्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम् ॥ तेन नारीकुलं स्रष्टुं शक्तिर्मम न विद्यते ॥ १८ ॥

उस देवसे उत्पन्न किया गया हूं हे सर्व जगन्मयि ! मैं प्रजा सृष्टिमें नियुक्त होकर सब जगत्की रचना करता हूं ॥ १५ ॥ हे देवी ! यह सब देवता मैंने निर्माण किये हैं परन्तु बारंबार बन करके फिर वृद्धिको प्राप्त नहीं होते हैं ॥ १६ ॥ इस कारण अब मैथुनी सृष्टि करनेकी इच्छा करता हूं मुझे इस प्रकारसे अपनी प्रजाके बढानेकी इच्छा है ॥ १७ ॥ प्रथम तुमसे स्त्रियोंका कुल प्रगट नहीं हुआ है इस कारण नारी कुल उत्पन्न करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है ॥ १८ ॥

सब प्रकारकी शक्तियोंकी उत्पत्ति तुमसे ही है इस कारण सब जगह सबको सब शक्ति देनेवाली तुमही हो ॥ १९ ॥ हे वरदाता सुरेश्वरी ! मैं तुम्हीं वरदान देनेवालीकी प्रजावृद्धिके निमित्त प्रार्थना करता हूं कि अपने एक अंशसे चराचरकी वृद्धि करो ॥ २० ॥ हे संसारके भय दूर करनेवाली ! मेरे अपने अंशसे उत्पन्न किये पुत्र दक्षकी तुम कन्या हो, जब ब्रह्मयोनि ब्रह्माने उनसे यह प्रार्थना करी ॥२१॥ तब उसने अपनी भ्रूके मध्यसे एक शक्ति अपनी प्रतापशाली प्रगट की; उसको देखके देवताओंमें श्रेष्ठ शिवजी प्रसन्न हो बोले ॥ २२ ॥ तू अब तपस्या करके ब्रह्माकी आराधना कर और उनके मनोरथ पूर्ण कर इस प्रकार परमेश्वरकी आज्ञाको वह शक्ति शिरपर धारण कर तप करने लगी ॥ २३ ॥

सर्वासामेव शक्तीनां त्वत्तः खलु समुद्भवः ॥ तस्मात्सर्वत्र सर्वेषां सर्वशक्ति प्रदायिनीम् ॥ १९ ॥ त्वामेव वरदां मायां प्रार्थयामि सुरेश्वरीम् ॥ चराचरविवृद्ध्यर्थमंशेनैकेन सर्वगे ॥ २० ॥ दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवार्दिनि ॥ एवं सा याचिता देवी ब्रह्मणा ब्रह्मयोनिना ॥ २१ ॥ शक्तिमेकां भ्रुवोर्मध्यात्ससर्जात्मसमप्रभाम् ॥तामाह प्रहसन्प्रेक्ष्य देवदेववरो हरः ॥२२॥ ब्रह्माणं तपसाराध्यकुरु तस्य यथेप्सितम् ॥ तामाज्ञां परमेशस्य शिरसा प्रतिगृह्य सा ॥ २३ ॥ ब्रह्मणो वचनादेवी दक्षस्य दुहिताभवत् ॥ दत्त्वैवमतुलां शक्तिं ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणीम् ॥ २४ ॥ विवेश देहं देवस्य देवश्चां तरधीयत ॥ तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन् स्त्रियां भोगः प्रतिष्ठितः ॥ २५ ॥ प्रजासृष्टिश्च विप्रेंद्रा मैथुनेन प्रवर्तते ॥ ब्रह्मापि प्राप सानन्दं सन्तोषं मुनिपुंगवाः ॥ २६ ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं देव्याः शक्ति समुद्भवम् ॥ पुण्यवृद्धिकरं श्राव्यं भूतसर्गानुषंगतः ॥ २७ ॥

और ब्रह्माके वचनसे वह देवी दक्षकी कन्या हुई और वह ब्रह्मरूपिणी ब्रह्माके निमित्त महान् शक्ति देकर ॥ २४ ॥ देवके देहमें लय होगई; और देव शिव तत्काल अन्तर्द्धान हुए उस दिनसे इस लोकमें स्त्री संभोग प्रतिष्ठित हुआ है ॥ २५ ॥ हे देवेन्द्र ! मैथुन धर्मसे प्रजाकी सृष्टि यह प्रवृत्त हुई है, हे मुनिश्रेष्ठ ! इससे ब्रह्माजीने भी आनन्द और संतोष पाया ॥ २६ ॥ देवीसे शक्तिकी उत्पत्ति तुम्हारे प्रति सब वर्णन की यह पुण्यरूप वृद्धि करनेवाली उत्पत्तिकी कथा सुनने योग्य है ॥ २७ ॥

जो इस देवीरूप शक्तिकी कथाको नित्य कीर्त्तन करता है उसको सब प्रकारके पुण्य और श्रेष्ठ पुत्रोंकी प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे सृष्टिनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ वायु बोले, इस प्रकार ब्रह्माजी ईश्वरसे परे शक्तिको प्राप्त होकर मैथुनीप्रजा करनेकी इच्छा करने लगे ॥ १ ॥ अपने आधे शरीरसे नारी और आधे पुरुष हो गये जो नारीरूप था उससे शतरूपा प्रकट हुई ॥ २ ॥ और पुरुषके आधे शरीरसे विराट् हुआ उसको प्रथम पुरुष स्वायंभुवमनु कहते हैं ॥ ३ ॥ देवी शतरूपा

य इदं कीर्तयेन्नित्यं देव्याः शक्तिसमुद्भवम् ॥ पुण्यं सर्वमवाप्नोति पुत्रांश्च लभते शुभान् ॥ २८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे देवीशक्त्युद्भवो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ वायुरुवाच ॥ एवं लब्ध्वा परां शक्तिमीश्वरा देव शाश्वतीम् ॥ मैथुनप्रभवां सृष्टिं कर्तुकामः प्रजापतिः ॥ १ ॥ स्वयमप्यद्भुतो नारी चार्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥ यार्द्धेन नारी सा तस्माच्छतरूपा व्यजायत ॥ २ ॥ विराजमसृजद्ब्रह्मा सोऽद्धन पुरुषोऽभवत् ॥ स वै स्वायंभुवः पूर्वं पुरुषो मनुरुच्यते ॥ ३ ॥ सा देवी शतरूपा तु तपः कृत्वा सुदुश्चरम् ॥ भर्त्तारं दीप्तयशसं मनुमेवान्वपद्यत ॥ ४ ॥ तस्मात्तु शतरूपा सा पुत्रद्वयमसूयत ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ॥ ५ ॥ कन्ये द्वे च महाभागे याभ्यां जातास्त्विमाः प्रजाः ॥ आकूतिरेका विज्ञेया प्रसूति रपरा स्मृता ॥ ६ ॥ स्वायंभुवः प्रसूतिं च ददौ दक्षाय तां प्रभुः ॥ रुचेः प्रजापतिश्चैव चाकूतिं समपादयत् ॥ ७ ॥ आकूत्यां मिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम् ॥ यज्ञश्च दक्षिणा चैव याभ्यां संवर्तित जगत् ॥ ८ ॥

महातप करके दीप्तिमान् महायशस्वी अपने स्वामीको प्राप्त हुई ॥ ४ ॥ उस शतरूपासे प्रियव्रत और उत्तानपाद दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए ॥५॥ और दो महाभाग्यवान् कन्या हुईं जिनसे यह महाभाग्यवती प्रजा उत्पन्न हुई उनमें एक आकूति दूसरीका नाम प्रसूति था ॥ ६ ॥ स्वायंभुव मनुने प्रसूतिको दक्षके निमित्त दिया और रुचि प्रजापतिको अपनी आकूति कन्या दे दी ॥ ७ ॥ आकूतिमें रुचि प्रजापतिसे मानसी एक कन्या और एक पुरुष उत्पन्न हुआ उनका नाम यक्ष और दक्षिणा है. इन्हींसे यह जगत् वृद्धिको प्राप्त है ॥ ८ ॥

और स्वायंभुवकी प्रसूति कन्यामें लोकोंकी माताएँ चौबीस कन्याएँ प्रकट हुईं ॥ ९ ॥ श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि, कीर्त्ति, यह तेरह कन्या ॥ १० ॥ धर्मको व्याही गईं. और उनसे छोटी ग्यारह कन्या ॥ ११ ॥ ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा, स्वधा ॥ १२ ॥ यह क्रमसे भृगु, शिव, मरीचि, अंगिरा, पुलह, क्रतु; पुलस्त्य, अत्रि, वशिष्ठ, पावक, पितरोंको ॥ १३ ॥ व्याही गईं यह मुनि मुनियोंमें श्रेष्ठ थे, काम, दर्पनिलय, संतोष, लाभ, श्रुत, दंडसमय, बोध, अप्रमाद, विलय, व्यवसाय, क्षेम, सुख और यश यह तेरह पुत्र ॥ १४ ॥ धर्मके उत्पन्न हुए, और श्रद्धा आदिमें उत्पन्न हुए थे, और

स्वायंभुवसुतायां तुप्रसूत्यां लोकमातरः ॥चतस्रो विंशतिः कन्या दक्षस्त्वजनयत्प्रभुः ॥९॥श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिः पुष्टिस्तुष्टिर्मेधा क्रिया तथा॥बुद्धिर्लज्जा वपुः शांतिस्सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी॥१०॥ पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः॥ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलो चनाः ॥११॥ख्यातिः सत्यर्थसंभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा॥सन्नतिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा ॥१२॥ भृगुश्शर्वो मरीचिश्च अंगिराः पुलहः क्रतुः ॥ पुलस्त्योऽत्रिर्वशिष्ठश्च पावकः पितरस्तथा ॥ १३ ॥ ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो मुनिसत्तमाः ॥ कामाद्यास्तु यशोंता ये ते त्रयोदश सूनवः ॥ १४ ॥ धर्मस्य जज्ञिरे तास्तु श्रद्धाद्यास्सुसुखोत्तराः ॥ दुःखोत्तराश्च हिंसायामधर्मस्य च संततौ ॥ १५ ॥ निकृत्यादय उत्पन्नाःपुत्राश्च धर्मलक्षणाः ॥ नैषां भार्याश्च पुत्रा वा सर्वेत्वनियमाः स्मृताः ॥ १६ ॥ स एष तामसस्सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः ॥ या सा दक्षस्य दुहिता रुद्रस्य दयिता सती ॥ १७ ॥

सुखरूप थे और दुःख देनेवाली सन्तान अधर्मके हिंसामें उत्पन्न हुई ॥ १५ ॥ वे अधर्मके पुत्र निकृति आदि उत्पन्न हुए हैं विष्णुपुराणमें लिखा है कि अधर्मकी हिंसा भार्यामें अनृतकी उत्पत्ति हुई और निकृति कन्या हुई उससे भय नरक प्रकट हुए, इन्हींके माया और वेदनामक एक जोडा उत्पन्न हुआ है, मायासे प्राणहारी मृत्यु हुई वेदनासे दुःख उत्पन्न किया; मृत्युके व्याधि, जरा शोक, तृष्णा, क्रोध उत्पन्न हुए, यह सब दुःखरूप हैं, इनके भार्या पुत्र नहीं कारण कि यह सत्यधर्मसे रहित हैं ॥ १६ ॥ यह अधर्मरूप तामसी सृष्टि है;

और जो सती दक्षकी कन्या रुद्रको व्याही गई ॥ १७ ॥ वह अपने स्वामीकी निन्दा सुनकर अपनी देहको त्यागन करती हुई, भाई सहित कुटुम्ब सहित दक्ष और दक्षकी भार्याकी निन्दा करके शरीर त्याग कर ॥ १८ ॥ वह हिमालयके यहां मेनास्त्रीमें पुत्रीरूप हो प्रगट हुई, रुद्रने उस सतीको और अपने समान रुद्रोंको देख कर ॥ १९ ॥ जैसे अपने समान असंख्य जीव रचे सो तुमसे पूर्वमें कथन कर ही चुके हैं, भृगु ऋषिने ख्याति स्त्रीमें नारायणकी प्रिया लक्ष्मी उत्पन्न हुई ॥ २० ॥ धाता और विधाता नामक देवता मन्वन्तरमें विचरनेवाले हुए, उनके पुत्र और पौत्रादि अनेक हुए ॥ २१ ॥ स्वायंभुवमनुके अन्तर में वे सब भार्गव वंशी कहलाये. मरीचि ऋषिके सम्भूति स्त्रीमें पौर्णमास पुत्र उत्पन्न

भर्तृनिन्दाप्रसंगेन त्यक्त्वा दाक्षायिणीं तनुम् ॥ दक्षं च दक्षभार्य्यांच विनिंद्य सह बन्धुभिः ॥१८॥ सा मेनायामाविरभूत्पुत्री हिमवतो गिरेः ॥ रुद्रस्तु तां सतीं दृष्ट्वा रुद्रांस्त्वात्मसमप्रभान् ॥१९॥ यथासृजदसंख्यातांस्तथा कथितमेव च ॥ भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीर्नारायणप्रिया॥२०॥देवौ धातृविधातारौ मन्वंतरविधारिणौ॥ तयोर्वै पुत्रपौत्राद्याश्शतशोऽथ सहस्रशः॥२१॥ स्वायंभुवेऽतरे नीताः सर्वे ते भार्गवा मताः॥मरीचेरपि संभूतिः पौर्णमासमसूयत॥२२॥कन्याचतुष्टयं चैव महीयांसस्तदन्वयाः॥ येषां वंशे समुत्पन्नो बहुपुत्रस्य कश्यपः ॥ २३ ॥ स्मृतिश्चांगिरसः पत्नी जनयामास वै सुतौ ॥ आग्नीध्रं शरभञ्चैव तथा कन्याच तुष्टयम् ॥२४॥ तदीयाः पुत्रपौत्राश्च येतीतास्ते सहस्रशः ॥ प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दन्तोग्निरभवत्सुतः ॥ पूर्वजन्मनि योगस्त्य स्स्मृतः स्वायंभुवेऽत्तरे ॥ २५ ॥ तत्संततीया बहवः पौलस्त्या इति विश्रुताः ॥ क्षमा तु सुषुवे पुत्रान्पुलहस्य प्रजापतेः ॥२६॥ कर्दमश्च सुरिश्चैव सहिष्णुश्चेति ते त्रयः ॥ त्रेताग्निवर्चसस्सर्वे येषां वंशः प्रतिष्ठितः ॥ २७ ॥

हुआ ॥ २२ ॥ और चार कन्या उत्पन्न हुईं; उनका वंश बहुत बडा; जिनके वंशमें बहुत पुत्रवाला कश्यप उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ स्मृति नामक अंगिराकी स्त्रीमें दो पुत्र आग्नीध्र और शरभ उत्पन्न हुए और चार कन्या हुईं ॥ २४ ॥ उनके पुत्र पौत्र भी सहस्रों हुए, पुलस्त्यकी प्रीति नामक भार्यामें दन्त अग्नि पुत्र हुआ जो पूर्व जन्ममें स्वायंभुव अन्वंतरमें अगस्त्य हुए थे ॥ २५ ॥ उसकी बहुत सन्तान हुई वह सब पौलस्त्य कहलाती थी, पुलह प्रजापतिकी क्षमा स्त्रीमें ॥ २६ ॥ कर्दम, आसुरी और सहिष्णु हुए, यह सब त्रेताग्निके समान हुए, इनका वंश

बहुत चला ॥२७॥ क्रतुकी सन्ततिने क्रतुके समान बहुतसे पुत्र उत्पन्न किये, इनके भार्या पुत्र नहीं हुए, यह सब ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हुए ॥२८॥ यह साठ हजार वालखिल्य कहलाये, सूर्यको घेरकर यह सब अरुणके आगे चलते हैं॥२९॥ अत्रिकी भार्या अनुसूयाके पांच सन्तान हुई एक कन्या श्रुति नाम जो कि शंखपद नाम ऋषिकी माता हुई ॥३०॥ सत्यनेत्र, हव्य, आपोमूर्ति, शनैश्चर और सोम यह पांच सन्तान अत्रिसे उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ उनके पुत्र और पौत्र बहुत हुए वे सब आत्रेय कहाये; स्वायंभुव मन्वंतरमें यह सैकडों बीत गये ॥ ३२ ॥ उर्जामें वसिष्ठके सात पुत्र

क्रतोः क्रतुसमान्भार्या सन्नतिस्सुषुवे सुतान्॥ नैषां भार्याश्च पुत्राश्च सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः ॥ २८ ॥ षष्टिस्तानि सहस्राणि वाल खिल्या इति स्मृताः ॥ अनूरोरग्रतो यांति परिवार्य्य दिवाकरम् ॥ २९ ॥ अत्रेर्भार्यानसूया च पञ्चात्रेयानसूयत ॥ कन्यकां च श्रुतिं नाम माता शंखपदस्य च ॥ ३० ॥ सत्यनेत्रश्च हव्यश्च आपोमूर्तिश्शनैश्चरः ॥ सोमश्च पंचमस्त्वेते पंचात्रेयाः प्रकीर्तिताः ॥३१॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च ह्यात्रेयाणां महात्मनाम् ॥ स्वायंभुवेऽतरेऽतीताः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३२ ॥ ऊर्जायां तु वसिष्ठस्य पुत्रा वै सप्त जज्ञिरे ॥ ज्यायसी च स्वसा तेषां पुंडरीका सुमध्यमा ॥ ३३ ॥ रजो गात्रोद्ऊर्ध्वबाहू च सवनश्चानयश्च यः ॥ सुतपाश्शुक्र इत्येते सप्त सप्तर्षयः स्मृताः ॥३४॥ गोत्राणि नामभिस्तेषां वासिष्ठानां महात्मनाम् ॥ स्वायंभुवेऽतरेऽतीता न्यर्बुदानि शतानि च ॥३५॥ इत्येष ऋषिसर्गस्तु सानुबंधः प्रकीर्तितः॥ समासाद्विस्तराद्वक्तुमशक्योऽयमिति द्विजाः ॥ ३६ ॥ योऽसौ रुद्रात्मको वह्निब्रह्मणो मानसस्सुतः॥ स्वाहा तस्य प्रिया लेभे पुत्रांस्त्रीनमितौजसः ॥ ३७ ॥

उत्पन्न हुए और उनकी बडी बहन पुंडरीका हुई ॥३३॥ रज, गात्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनय, सुतप, शुक्र, यह सात सप्त ऋषि कहाये ॥ ३४ ॥ इन वसिष्ठवंशियोंके नामसेही उनके गोत्र कहलाये, स्वायंभुव मन्वंतरके बीतनेमें यह सैकडों अरब संख्यावाले हुए॥३५॥ यह तुमको क्रमसे ऋषिसर्ग श्रवण कराया, यह संक्षेपसे कहा है विस्तारसे तो कोई इसे कथन नहीं कर सकता ॥३६॥ जो यह रुद्रात्मक अग्नि ब्रह्माके मनसे उत्पन्न कहाजाता है, उसकी

स्वाहा स्त्रीमें महापराक्रमी तीन पुत्र उत्पन्न हुए हैं ॥ ३७ ॥ वे पावक, पवमान और शुचि कहलाते हैं, विना मथी हुई पवमान कहलाती है, बिजलीकी अग्नि पावक कहाती है ॥ ३८ ॥ और जो सूर्यमें तपती है उसका नाम शुचि और सौर कहा है, हव्यवाह, कव्यवाह, सहरक्षा यह तीन अग्नि हैं ॥ ३९ ॥ इनके पुत्र क्रमसे देवता पितर और असुर हुए, हैं इनके पुत्र और पौत्र उनचास हैं ॥ ४० ॥ काम्य कर्म नैमित्तिक कर्म और निरन्तर कर्ममें स्थित रहते हैं, यह सब तपस्वी और सब व्रतके धारण करनेवाले हैं ॥ ४१ ॥ यह सब रुद्रात्मक और रुद्रके भक्त हैं इस कारण अग्निके मुखमें कोई कुछ भी देते हैं ॥ ४२ ॥ वह सब रुद्रके उद्देश्यसे दिया हुआ कहलाता है इससे सन्देह

पावकः पवमानश्च शुचिरित्येष ते त्रयः॥निर्मथ्यः पवमानस्स्याद्वैद्युतः पावकस्स्मृतः ॥३८॥ सूर्ये तपति यश्चासौ शुचिः सौर उदाहृतः ॥ हव्यवाहः कव्यवाहःसहरक्षा इति त्रयः ॥३९॥ त्रयाणां क्रमशः पुत्रा देवपितृसुराश्च ते॥एतेषां पुत्रपौत्राश्च चत्वारिंशन्नवैव ते ॥४०॥ काम्यनैमित्तिकाजस्रकर्मसु त्रिषु संस्थिताः ॥ सर्वे तपस्विनो ज्ञेयाः सर्वे व्रतभृतस्तथा ॥४१॥ सर्वे रुद्रात्मकाश्चैव सर्वे रुद्रपरायणाः ॥ तस्मादग्निमुखे यत्तद्धुतं स्यादेव केनचित् ॥४२॥ तत्सर्वं रुद्रमु द्दिश्य दत्तं स्यान्नात्र संशयः ॥ इत्येवं निश्चयोग्नीनामनुक्रांतो यथातथम् ॥ ४३ ॥ नातिविस्तरतो विप्राः पितॄन्वक्ष्याम्यतः परम् ॥ यस्मात्षड् तवस्तेषां स्थानं स्थानाभिमानिनाम् ॥ ४४ ॥ ऋतवः पितरस्तस्मादित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥ यष्माद्दतुषु सर्वे हि जायंते स्था स्नुजंगमा ॥ ४५ ॥ तस्मादेते पितर आर्तवा इति च श्रुतम् ॥ एवं पितृणामेतेषामृतुकालाभिमानिनाम् ॥ ४६ ॥

नहीं यह अग्निका यथा क्रमसे वंश कहा है ॥ ४३ ॥ हे विप्रो ! सो संक्षेपसे कहा है अब पितरोंका वंश कहता हूं ब्रह्माके पितृवर्ष्म अर्थात् पितरोंके देहमें होनेसे वसन्त आदि षट्ऋतु अपने पितरोंको कहते हैं " पितर अथर्तवः पितरः प्रजापतिः पितरं पितृयज्ञेनायजंतेति श्रुते" जिस कारण कि उन स्थानके अभिमानियोंकी छः ऋतु स्थान हैं ॥ ४४ ॥ इस कारण पितरोंको ऋतु भी कहते हैं, यह वेदकी श्रुति है, ऋतवः खलु वै पितर इति श्रुतेः ' जिस कारण कि सब ऋतुओंमें स्थावरऔर जंगम उत्पन्न होते हैं ॥ ४५ ॥ इस कारण यह पितर भी ऋतु

कहलाते हैं क्योंकि पितरोंको यजन ऋतुओंकी आदिमें होता है इस कारण ऋतु कालके अभिमानी इन पितरोंका ॥ ४६ ॥ ऋतुपन आर्त्तवत्व और पितृत्व वर्णन किया है, सब मन्वंतरोंमें वे पितर ऐश्वर्यको प्राप्त हो आकाशके संगको प्राप्त होकर स्थित होते हैं, अग्निष्वात्त अग्निकर्ममें तत्पर, बर्हिषद, कुशोंपर बैठनेवाले दो प्रकारके पितर हैं ॥ ४७ ॥ यह अयज्वा यज्ञ न करने वाले और यज्वा यज्ञकर्त्ता गृह स्थियोंके पितर हैं, पितरोंकी स्वधाके दो पुत्री लोक विख्यात हुई ॥ ४८ ॥ मेना और धरणी जिन्होंने विश्व धारण कर रक्खा है यह पितरोंकी कन्या हैं अग्निष्वात्तोंकी कन्या मेना और बर्हिषद पितरोंकी धरणी कन्या है ॥ ४९ ॥ मेना हिमालयकी पत्नी हुई, जिसने मैनाक

आत्मैश्वर्या महात्मानस्तिष्ठंतीहाभ्रसंगमात् ॥ आग्निष्वात्ता बर्हिषदः पितरो द्विविधाः स्मृताः ॥४७॥ अयज्वानश्च यज्वानः क्रमात्ते गृहमेधिनः॥स्वधासूत पितृभ्यश्च द्वे कन्ये लोकविश्रुते ॥४८॥ मेनां च धरणीं चैव याभ्यां विश्वमिदं धृतम्॥अग्निष्वात्तसुता मेना धरणी बर्हिषत्सुता ॥ ४९ ॥ मेना हिमवतः पत्नी मैनाकं क्रौंचमेव च ॥ गौरीं गंगां च सुषुवे भवांगाश्लेषपावनीम् ॥५०॥ मेरोस्तु धरणी पत्नी दिव्यौषधिसमन्वितम् ॥ मंदरं सुषुवे पुत्रं चित्रसुन्दरकन्धरम् ॥ ५१ ॥ स एव मंदरः श्रीमान्मेरु पुत्रस्तपोबलात् ॥ साक्षाच्छ्रीकंठनाथस्य शिवस्यावसथं गतः ॥ ५२ ॥ सासूत धरणी भूयस्त्रिंशत्कन्याश्च विश्रुताः ॥ वेलां च नियतिं चैव तृतीयामपि चायतिम् ॥ ५३ ॥ आयतिर्नियतिश्चैव पत्न्यौ द्वे भृगुपुत्रयोः ॥ स्वायंभुवेऽतरे पूर्वं कथितस्ते तदन्वयः ॥५४॥ सुषुवे सागराद्वेला कन्यामेकामनिंदिताम् ॥ सवर्णा नाम सामुद्रीं पत्नीं प्राचीनबर्हिषः ॥ ५५ ॥

और क्रौंच दो पुत्र और पार्वती और शिवके अंगस्पर्शसे पवित्र गंगाको उत्पन्न किया ॥ ५० ॥ मेरुकी धरणी पत्नी हुई, जिसने दिव्य औषधीसे युक्त चित्र विचित्र कंदरावाले मंदरपर्वतको उत्पन्न किया ॥ ५१ ॥ वही मेरुका पुत्र कान्तिमान् मंदराचल तपके बलसे साक्षात् श्रीकंठनाथ शिवके आवासस्थानकी संगतिको प्राप्त हुआ ॥ ५२ ॥ धरणीके तीन कन्या उत्पन्न हुई वेला, नियति और आयति ॥ ५३ ॥ आयति नियति यह दोनों भृगुके दो पुत्रोंको व्याही गई स्वायंभुव मन्वन्तरके पूर्वमें भृगु पुत्रोंका वंश कहा है ॥ ५४ ॥ सागरसे वेलाके

एक श्रेष्ठ कन्या उत्पन्न हुई उसका नाम सुवर्णा था, वह प्राचीन बर्हिकी पत्नी हुई ॥ ५५ ॥ उस समुद्र कन्याके प्राचीनबर्हिसे दश पुत्र हुए, उन दशोंका नाम प्रचेता हुआ, वे धनुर्वेदके पारगामी हुए ॥ ५६ ॥ जिनका स्वायंभुवमनुके समय दक्ष पुत्र हुआ था वे शिवके शापसे चाक्षुषनामक मन्वंतरके समयमें हुए थे ॥ ५७ ॥ हे ब्राह्मण ! इस प्रकार यह ब्रह्मपुत्र महात्मा धर्मात्माओंका यह वृत्तान्त न तो मैंने बहुत संक्षेपसे न बहुत विस्तारसे कहा है ॥ ५८ ॥ यह दिव्य देवचरित्र है, क्रियावाले प्रजावाले महाऋषिसे अलंकृत ॥ ५९ ॥ यह प्रजाओंका

सामुद्री सुषुवे पुत्रान्दश प्राचीनबर्हिषः ॥ सर्वे प्राचेतसा नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥ ५६ ॥ येषां स्वायंभुवे दक्षः पुत्रत्वमगम त्पुरा ॥ त्रियम्बकस्य शापेन चाक्षुषस्यांतरे मनोः ॥ ५७ ॥ इत्येते ब्रह्मपुत्राणां धर्मादीनाम्महात्मनाम् ॥ नातिसंक्षेपतो विप्रा नातिविस्तरतः क्रमात् ॥ ५८ ॥ वर्णिता वै मया वंशा दिव्या देवगणान्विताः ॥ क्रियावंतः प्रजावंतो महर्द्धिभिरलंकृताः ॥ ५९ ॥ प्रजानांसंनिवेशोऽयं प्रजापतिसमुद्भवः ॥ न हि शक्यः प्रसंख्यातुं वर्षकोटिशतैरपि ॥ ६० ॥ राज्ञामपि च यो वंशो द्विधा सोऽपि प्रवर्तते ॥ सूर्यवंशस्सोमवंश इति पुण्यतमः क्षितौ ॥ ६१ ॥ इक्ष्वाकुरम्बरीषश्च ययातिर्नाहुषादयः ॥ पुण्यश्लोकाः श्रुता येऽत्र तेऽपि तद्वंशसंभवाः ॥ ६२ ॥ अन्ये च राजऋषयो नानावीर्यसमन्विता ॥ किं तैः फलमनुत्कांतैरुक्तपूर्वैः पुरातनैः ॥ ६३ ॥ किं चेश्वरकथा वृत्ता यत्र तत्रान्यकीर्तनम् ॥ न सद्भिः संमतं मत्वा नोत्सहे बहुभाषितुम् ॥ ६४ ॥

सन्निवेश ब्रह्मासे प्रगट हुआ है, विस्तारसे कोई सौ करोड वर्षमें भी नहीं कह सकता है ॥६०॥ राजाओंका भी वंश दो प्रकारसे है, वह पवित्र वंश पृथ्वीमें चन्द्र सूर्यनामसे विख्यात है ॥ ६१ ॥ इक्ष्वाकु, अम्बरीष, ययाति, नहुषादिक वे पवित्र चरित्रवाले राजा इन वंशोंमें प्रगट हुए हैं ॥ ६२ ॥ दूसरे राजर्षि अनेक प्रकारके बल वीर्यसे युक्त हुए हैं उनके क्रमसे वर्णन करनेका क्या प्रयोजन है, कारण कि पूर्वमें उनका वर्णन कर चुके हैं॥६३॥ और शिव कथाके प्रसंगमें जहां तहां उनका कीर्तन भी हुआ है, सत्पुरुषोंके मन न लगनेके कारण उन सबको वर्णन करनेकी

इच्छा नहीं है ॥ ६४ ॥ कारण कि प्रसंगसे ईश्वरके प्रभाव प्रगट करनेमें उनकी कथा आगई है और प्रसंगसे यह सृष्टि आदिका वर्णन किया, अब बहुत विस्तारसे क्या है ॥६५॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे स्वायंभुववंशकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

ऋषि बोले, दक्षकी कन्या देवी सती दक्षके यज्ञमें अपना शरीर त्यागन करके वह मेनामें जन्म ले किस प्रकार हिमालयकी पुत्री हुई ॥१॥ महात्मा दक्षने रुद्रकी क्यों निंदा की और उसमें क्या निमित्त था, जिसमें रुद्र निंदित हुए ॥२॥ और शिवके शापसे दक्ष फिर कैसे उत्पन्न होगये

प्रसंगादीश्वरस्यैव प्रभावद्योतनादपि ॥ सर्गादयोऽपि कथिता इत्यत्र तत्प्रविस्तरैः ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे सृष्टिकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ देवी दक्षस्य तनया त्यक्त्वा दाक्षायणी तनुम् ॥ कथं हिमवतः पुत्री मेनायामभवत्पुरा ॥ १ ॥ कथं च निन्दितो रुद्रो दक्षेण च महात्मना ॥ निमित्तमपि किं तत्र येन स्यान्निन्दितो भवः ॥ २ ॥ उत्पन्नश्च कथं दक्षो अभिशापाद्भवस्य तु ॥ चाक्षुषस्यांतरे पूर्वं मनोः ब्रूहि मारुत ॥ ३ ॥ वायुरुवाच ॥ शृण्वंतु कथयिष्यामि दक्षस्य लघुचेतसः ॥ वृत्तं पापात्प्रमादाच्च विश्वामरविदूषणम् ॥ ४ ॥ पुरा सुरासुराः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ कदाचिद्द्रष्टुमीशानं हिमवच्छिखरं ययुः ॥ ५ ॥ तदा देवश्च देवी च दिव्यासन गतावुभौ ॥ दर्शनं ददतुस्तेषां देवादीनां द्विजोत्तमाः ॥ ६ ॥ तदानीमेव दक्षोपि गतस्तत्र सहामरैः ॥ जामातरं हरं द्रष्टुं द्रष्टुं चात्मसुतां सतीम् ॥७॥ तदात्मगौरवाद्देवो देव्या दक्षे समागते ॥ देवादिभ्यो विशेषेण न कदाचिदभूत्स्मृतिः ॥ ८ ॥

हे मारुत ! चाक्षुषमन्वन्तरके पूर्वमें हुए उस वृत्तान्तको कथन करो ॥३॥ वायु बोले, तुम सुनो; मैं लघुचित्तवाले दक्षकी कथा कहता हूँ जो उसने पाप और प्रमादसे जगत्के देवताको दूषित करनेको चरित्र किया ॥४॥ प्रथम सब सुर असुर सिद्ध परमर्षि शिवके दर्शन करनेको हिमालयके शिखरपर गये ॥५॥ उस समय शिव पार्वती दिव्य आसन पर विराजमान थे; हे ब्राह्मणो ! उन दोनोंने देवता आदिको दर्शन दिया ॥६॥ उस समय दक्ष भी देवताओंके सहित वहां गये, उनके मनमें भी शिव और अपनी कन्याके दर्शनोंकी अभिलाषा थी ॥ ७ ॥ तब देवीके यहां दक्षके आनेके

निमित्त अपने गौरवके कारण विशेष करके किसी देवतासेभी उनका स्मरण न किया ॥ ८ ॥ तब उस दक्षने उसे पुत्रीका परमभाव न जानकर शिवके विरोधके कारण उस मूर्खने अपनी पुत्रीसे भी वैर माना ॥ ९ ॥ उसी वैरके कारण दुर्दैवसे प्रेरित होकर दक्षने यज्ञमें द्वेषके कारण अपनी पुत्रीको न बुलाया ॥ १० ॥ दूसरे सब जमाइयोंको क्रमसे बुलाया और सैकडों प्रकारसे पृथक पृथक् उनकी पूजा करी ॥११॥ उन सबके मेलको नारदजीसे सुनकर पार्वती शिवको पूँछ दक्षके घर विमानमें बैठ चली गई ॥ १२ ॥ तब चारों ओरसे निकटवर्ती विमानको देख जो कि लक्षणसे युक्त सुखसे आरोहण करनेके योग्य अत्यन्त मनोहर थे ॥ १३ ॥ तपाये हुए सुवर्णके समान विचित्र

तस्य तस्याः परं भावमज्ञातुश्चापि केवलम्॥पुत्रीत्येवं विमूढस्य तस्यां वैरमजायत॥९॥ततस्तेनैव वैरेण विधिना च प्रचोदितः॥ नाजुवाह भवं दक्षो दीक्षितस्तामपि द्विषन् ॥१०॥ अन्याञ्जामातरस्सर्वानाहूय स यथाक्रमम् ॥शतशः पुष्कलामर्चाञ्चकार च पृथक्पृथक् ॥ ११ ॥ तथा तान्संगताञ्छ्रुत्वा नारदस्य मुखात्तदा ॥ययौ रुद्राय रुद्राणी विज्ञाप्य भवनं पितुः ॥१२॥ अथ संनिहितं दिव्यं विमानं विश्वतोमुखम्॥लक्षणाढ्यं सुखारोहमतिमात्रमनोहरम्॥१३॥तप्तजांबूनदप्रख्यं चित्ररत्नपरिष्कृतम्॥मुक्तामयवितानाढ्यं स्रग्दामसमलंकृतम् ॥१४॥ तप्तकांचननिर्व्यूहं रत्नस्तंभशतावृतम्॥वज्रकल्पितसोपानं विद्रुमस्तंभतोरणम् ॥ १५ ॥ पुष्पपट्टपरिस्तीर्णं चित्ररत्नमहासनम्॥वज्रजालकिरच्छिद्रमच्छिद्रमणिकुट्टिमम् ॥१६॥ मणिदंडमनोज्ञेन महावृषभलक्ष्मणा ॥ अलंकृतपुरोभागमभ्रशुभ्रेण केतुना ॥१७॥ रत्नकंचुकगुप्तांगैश्चित्रवेत्रकपाणिभिः॥अधिष्ठितमहाद्वारमप्रधृष्यैर्गणेश्वरैः ॥१८॥

रत्नोंसे शोभित चंदोवोंमें मोती लटकते हुए मालाओंसे अलंकृत ॥१४॥ तप्त सुवर्णकी खुटियोंसे संकीर्ण सैकडों रत्नोंके स्तंभोंसे व्याप्त रत्नोंसे जडी सीढी मूंगोंसे स्तम्भ और तोरण जटित हैं ॥ १५ ॥ फूल बिछे हुए अनेक सिंहासनोंसे शोभित जिनमें महारत्न जडे हैं, जिसके झरोखोंमें हीरेकी किरण पडती है और मणिकी रचनासे छिद्ररहित हैं ॥ १६ ॥ मणिदण्डसे मनोहर महावृषभके चिह्नसे युक्त जिसके आगेका भाग मेघाकार ध्वजासे शोभित था ॥ १७ ॥ रत्नजटित चोल वस्त्रसे जिनके अंग रक्षित हैं, चित्र विचित्र वेत्र हाथमें लिये गणेश्वरोंसे भी धर्षणके

अयोग्य द्वारपालोंसे व्याप्त ॥ १८ ॥ मृदंग, ताल, गीत, वेणु, वीणाके बजानेमें चतुर मनोहर वेष और वचन बोलनेवाली स्त्रियोंसे व्याप्त ॥१९॥ इस विमानपर महादेवी अपनी सखियोंके साथ चढी, दंडीमें हीरे जडे हुए चमर व्यजन ॥ २० ॥ दो रुद्रकन्या ग्रहण कर उनके ऊपर व्यजन करनेलगीं तब उन चामरोंके बीचमें पार्वतीका मुख शोभित हुआ ॥ २१ ॥ जैसे युद्ध करते हुए दो हंसोंके बीचमें कमल शोभित होता है, चन्द्रमाके समान छत्र उनके मस्तकके ऊपर सुमालिनीने धारण किया ॥ २२ ॥ वह मोतियोंकी झालरसे युक्त उस छत्रको प्रेमसे धारण करने लगी, वह उज्ज्वल छत्र देवीके मस्तकके ऊपर शोभित हुआ ॥ २३ ॥ जिस प्रकार अमृतके पात्रके ऊपर चन्द्रमा शोभित होता है

मृदंगतालगीतादिवेणुवीणाविशारदैः ॥विदग्धवेषभाषैश्च बहुभिः स्त्रीजनैर्वृतम्॥१९॥आरुरोह महादेवी सह प्रियसखीजनैः ॥ चामरव्यजने तस्या वज्रदंडमनोहरे॥२०॥गृहीत्वा रुद्रकन्ये द्वे विवीजतुरुभे शुभे॥तदाचामरयोर्मध्ये देव्या वदनमाबभौ ॥२१॥ अन्योन्यं युध्यतोर्मध्ये हंसयोरिव पंकजम्॥छत्रं शशिनिभं तस्याश्चूडोपरि सुमालिनी॥२२॥धृतमुक्तापरिक्षिप्तं बभार प्रेमनिर्भरा॥ तच्छत्रमुज्ज्वलं देव्या रुरुचे वदनोपरि ॥२३॥उपर्यमृतभांडस्य मंडलं शशिनो यथा ॥अथ चाग्रे समासीना सुस्मितास्या शुभावती ॥२४॥ अक्षद्यूतविनोदेन रमयामास वै सतीम् ॥ सुयशाः पादुके देव्याश्शुभे रत्नपरिष्कृते॥२५॥स्तनयोरंतरे कृत्वा तदा देवीमसेवत ॥ अन्या कांचनचार्वंगी दीप्तं जग्राह दर्पणम्॥२६॥अपरा तालवृन्तं च परा तांबूलपेटिकाम्॥काचित्क्रीडाशुकं चारु करेऽकुरुत भामिनी॥२७॥काचित्तु सुमनोज्ञानि पुष्पाणि सुरभीणि च ॥ काचिदाभरणाधारं बभार कमलेक्षणा ॥२८॥

और मनोहर हास्ययुक्त शुभावती इसके आगे स्थित थी ॥ २४ ॥ यह अक्ष अर्थात् पाशेके विनोदसे पार्वतीको प्रसन्न करने लगी सुयशाने रत्न भूषित देवीकी पादुका ग्रहण की ॥ २५ ॥ दूसरी किसी मनोहर अंगवालीने दर्पण ग्रहण किया; इस प्रकार स्तनोंके अन्तरसे उनकी सेवा करनेलगी ॥ २६ ॥ किसीने तालका पंखा और किसीने पानदान ग्रहण किया किसीने क्रीडाशुकको हाथमें लिया ॥ २७ ॥ किसीने मनोहर २ फूल ग्रहण किये किसी कमलनेत्रीने आभूषणोंको धारण किया ॥ २८ ॥

किसीने आलेपन और फूलोंको धारण किया और दूसरीं भी अपने २ योग्य काम करती थीं ॥ २९ ॥ इस प्रकार अपने समयमें वे सब देवीकी सेवा करने लगीं; उनके बीचमें वह परमेश्वरी अत्यन्त शोभित होने लगी ॥ ३० ॥ जिस प्रकार तारोंके बीचमें शरद ऋतुका चन्द्रमा शोभा पाता है; इसके उपरान्त शंखनादके पीछे ॥ ३१ ॥ प्रस्थानका बडा भारी बाजा बजने लगा; फिर ताल स्वरसे और भी बाजे बजने लगे ॥ ३२ ॥ काहलनाम और भी सैकडों बाजे बजने लगे और शिवके समान तेजधारी आयुध लिये गणेशोंके समूह ॥ ३३ ॥ एक सहस्र आठ सौ आगे चले उनके बीचमें वृषभ पर आरूढ हुए हाथीपर चढे हुए गुहके समान ॥ ३४ ॥ गणपति सोम बन्दी देवताओंसे

काचिच्च पुनरालेपं सुप्रसूतं शुभांजनम् ॥ अन्याश्च सदृशास्तास्ता यथास्वमुचितक्रियाः ॥२९॥आवृत्त्य तां महादेवीमसेवंत समंततः ॥अतीव शुशुभे तासापंतरे परमेश्वरी॥३०॥तारापरिषदो मध्ये चंद्रलेखेव शारदी॥ततः शंखसमुत्थस्य नादस्य समनंतरम् ॥३१॥ प्रास्थानिको महानादः पटहः समताडयत॥ततो मधुरवाद्यानि सह तालोद्यतैस्स्वनैः ॥३२॥अनाहतानि सन्नेदुः काहलानां शतानि च॥ सायुधानां गणेशानां महेशसमतेजसाम् ॥३३॥सहस्राणि शतान्यष्टौ तदानीं पुरतो ययुः ॥ तेषां मध्ये वृषारूढो गजारूढो यथा गुरुः॥३४॥जगाम गणपः श्रीमान् सोमनंदीश्वरार्चितः॥देवदुंदुभयो नेदुर्दिवि दिव्यसुखा घनाः॥३५॥ ननृतुर्मुनयस्सर्वे मुमुदुः सिद्धयोगिनः॥ससृजुः पुष्पवृष्टिं च वितानोपरि वारिदाः॥३६॥तदा देवगणैश्चान्यैः पथि सर्वत्र संगता॥ क्षणादिव पितुर्गेहं प्रविवेश महेश्वरी॥३७॥तां दृष्ट्वा कुपितो दक्षश्चात्मनः क्षयकारणात॥ तस्या यवीयसीभ्योऽपि चक्रे पूजाम सत्कृताम् ॥ ३८ ॥ तदा शशिमुखी देवी पितरं सदसि स्थितम् ॥ अंबिका युक्तमव्यग्रमुवाचाकृपण वचः ॥ ३९ ॥

पूजित हो चले; और आकाशसे कर्ण सुखदायक देवताओंके नगाडे बजने लगे मेघ गर्जने लगे ॥ ३५ ॥ मुनि नृत्य करने लगे; सिद्ध योगी प्रसन्न होने लगे. मेघोंसे विमानके ऊपर पुष्पवर्षा होने लगी ॥ ३६ ॥ तब मार्गमें दूसरे अनेक देवताओंसे सम्मिलित हो क्षणमात्रमें महेश्वरी पिताके घर पहुँची ॥ ३७ ॥ उसको देखतेही दक्षने अपने नाशके निमित्त क्रोध किया, उस सतीकी दूसरी छोटी बहनोंने भी असत्कारकी पूजाका वर्ताव किया ॥ ३८ ॥ तब वह चंद्रमुखी देवी सभामें बैठे हुए अपने पितासे युक्ति युक्त और कृपणता रहित वचन

कहने लगी ॥ ३९ ॥ देवी बोली, ब्रह्मासे लेकर पिशाच तक जिसकी आज्ञाके वशवर्ती हैं, उस देवादि देवकी पूजा हमारे पिताने न की ॥ ४० ॥ सो हो परन्तु मुझ ज्येष्ठ पुत्रीका सत्कार क्या इस प्रकारका होना चाहिये, पिताने सत्कार करने योग्योंका निरादर कर बडा गर्हित कार्य किया है यह कहने पर दक्षजी क्रोध कर बोले ॥ ४१ ॥ तुझसे श्रेष्ठ और गौरव युक्त मेरी पुत्री हैं, उनका मैं सदा सत्कार कराता हूँ ॥ ४२ ॥ और जो उनके श्रेष्ठ भर्ता हैं वे भी मेरे सदा मान्य हैं, वे सब तेरे स्वामी शिवसे गुणोंमें अधिक हैं ॥ ४३ ॥ और शिव तो उद्योग हीन तमोगुण प्रधान हैं, तू उन्हींकी स्त्री है इसी कारण मैं तेरा भी तिरस्कार करता हूं, कारण कि शिव मेरे प्रतिकूल हैं ॥ ४४ ॥

देव्युवाच॥ब्रह्मादयः पिशाचांता यस्याज्ञावशवर्तिनः॥स देवस्सांप्रतं तात विधिना नार्चितः किल॥४०॥तदास्तां मम ज्यायस्याः पुत्र्याः पूजां किमीदृशीम् ॥ असत्कृतामवज्ञाय कृतवानसि गर्हितम् ॥ ४१ ॥ एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दक्षः क्रोधादमर्षितः ॥ त्वत्तः श्रेष्ठा विशिष्टाश्च पूज्या बालाः सुता मम ॥४२॥ तासां तु ये च भर्त्तारस्ते मे बहुमता मुदा ॥ गुणैश्चाप्यधिकास्सर्वैर्भर्तुस्ते त्र्यंबकादपि ॥ ॥४३॥ स्तब्धात्मा तामसश्शर्वस्त्वमिमं समुपाश्रिता ॥ तेन त्वामवमन्येऽहं प्रतिकूलो हि मे भवः ॥४४॥ तथोक्ता पितरं दक्षं क्रुद्धा देवी तमब्रवीत् ॥ शृण्वतामेव सर्वेषां ये यज्ञसदसि स्थिताः ॥ ४५ ॥ अकस्मान्मम भर्तारमजाताशेषदूषणम् ॥ वाचा दूषयसे दक्ष साक्षाल्लोकमहेश्वरम् ॥ ४६ ॥ विद्याचौरो गुरुद्रोही वेदेश्वरविदूषकः ॥ त एते बहुपाप्मानस्सद्य एव दंडचा इति श्रुतिः ॥ ४७ ॥ तस्मादत्युत्कटस्यास्य पापस्य सदृशो भृशम् ॥ सहसा दारुणो दंडस्तव दैवाद्भविष्यति ॥ ४८ ॥ त्वया न पूजितो यस्माद्देवदेवस्त्रियं बकः ॥ तस्मात्तव कुलं दुष्टं नष्टमित्यवधारय ॥ ४९ ॥

इस प्रकार कहने पर दक्षसे क्रोधित हो देवी बोलीं, उस समय सब सदासद उनके वचन सुनने लगे ॥ ४५ ॥ जो कि सब दोषोंसे रहित स्वामी साक्षात् लोक महेश्वरको तुम वाणीसे निन्दा करते हो ॥ ४६ ॥ विद्याचोर, गुरुका द्रोही, देवदेवेश्वरको निंदा करनेवाला इन पापियोंको शीघ्र दंड देना चाहिये यह श्रुति है ॥ ४७ ॥ इस कारण इस पापका महादण्ड अकस्मात ही दैवसे तुमको प्राप्त होगा ॥ ४८ ॥ जिस कारण कि तुमने देवदेव शिवजीका पूजन न किया; इस कारण तुम अपने दुष्ट कुलको नष्ट हुआ जानो ॥ ४९ ॥

यह कहकर अविनाशी सती अपने पिताको त्यागकर और उसके शरीरको भी त्याग करके हिमालय पर्वतको गई ॥ ५० ॥ उस श्रेष्ठ पर्वतने पुण्यके प्राप्त होने और श्रेष्ठ कन्या प्राप्त होनेके निमित्त महातप किया था ॥ ५१ ॥ इसी कारण ईश्वरीने उन पर्वतराज पर कृपा की और योगमायाके आश्रयहो अपनी इच्छासे उनको पिता किया ॥ ५२ ॥ जिस समय सती भय विह्वलहो दक्षकी निंदा कर चली उसी समय मंत्रोंकी शक्ति हानि होनेसे यज्ञ विध्वंश होगया ॥ ५३ ॥ शिवने देवीका वहांसे गमन सुनकर दक्ष और भृगु आदि ऋषियोंको क्रोधकर शाप दिया ॥ ५४ ॥ जिस कारण दक्षने मेरे कारण अपनी पुत्रीका निरादर कर दूसरी अपनी सब कन्याओंका सत्कार किया है; और

इत्युक्ता पितरं रुष्टा सती संत्यक्तसाध्वसा ॥ तदीयां च तनुं त्यक्ता हिमवंतं ययौ गिरिम् ॥५०॥ स पर्वतपरः श्रीमाँल्लब्धपुण्य फलोदयः ॥तदर्थमेव कृतवान् सुचिरं दुश्चरं तपः ॥ ५१ ॥ तस्मात्तमनुगृह्णाति भूधरेश्वरमीश्वरी॥स्वेच्छया पितरं चक्रे स्वात्मनो योगमायया॥५२॥यदा गता सती दक्षं विनिंद्य भयविह्वला॥तदा तिरोहिता मंत्रा विहतश्च ततोऽध्वरः ॥५३॥ तदुपश्रुत्य गमनं देव्यास्त्रिपुरमर्दनः ॥ दक्षाय च ऋषिभ्यश्च चुकोप च शशाप तान् ॥५४॥ यस्मादव मता दक्ष मत्कृतेऽनागसा सती ॥ पूजिताश्चे तराः सर्वाः स्वसुता भर्तृभिः सह॥५५॥वैवस्वतेऽतरे तस्मात्तव जामातरस्त्वमी॥उत्पत्स्यंते समं सर्वे ब्रह्मयज्ञेष्वयोनिजाः ॥५६॥ भविता मानुषो राजा चाक्षुषस्य त्वमन्वये॥ प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चापि प्रचेतसः ॥ ५७ ॥ अहं तत्रापि ते विघ्नमाचरिष्यामि दुर्मते ॥ धर्मार्थकामयुक्तेषु कर्मस्वपि पुनः पुनः ॥५८॥ तेनैवं व्याहृतो दक्षो रुद्रेणामिततेजसा ॥ स्वायं भुवीं तनुं त्यक्ता पपात भुवि दुखितः ॥ ५९ ॥ ततः प्राचेतसो दक्षो जज्ञे वै चाक्षुषेऽन्तरे ॥ प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चैव प्रचेतसाम् ॥ ६० ॥

उनके स्वामीजनोंकी पूजा की है ॥ ५५ ॥ इसी कारण वैवस्वतमन्वंतरमें यह तेरे जामाता योनिसे उत्पन्न न होनेवाले भी जन्म धारण करेंगे ॥ ५६ ॥ और चाक्षुष मन्वंतरमें दक्ष मनुष्योंका राजा होगा, प्राचीन बर्हिषका पोता और प्रचेताका पुत्र होगा ॥ ५७ ॥ हे दुर्मते ! उस स्थानमें तुझको विघ्न करूंगा, तेरे धर्म अर्थ काममें बारंबार विघ्न किया जायगा ॥ ५८ ॥ जब महातेजस्वी रुद्रने दक्षके प्रति ऐसा कहा तब वह ब्रह्माके सम्बन्धी शरीर त्याग दुःखी हो पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ५९ ॥ फिर चाक्षुष मन्वंतरमें दक्ष प्रचेताके उत्पन्न हुए प्राचीन बर्हिके पोते

प्रचेताके पुत्र कहाये ॥ ६० ॥ वे भृगु आदि भी वैवस्वतमन्वंतरमें ब्रह्म यज्ञमें वरुण सम्बन्धी शरीरको प्राप्त हो जन्में ॥ ६१ ॥ उस समय दुरात्मा दक्ष जब यज्ञके निमित्त प्रवृत्त हुआ उस समय वैवस्वत मन्वंतरमें शिवने विघ्न किया ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे दक्षशाप वर्णनं नामाष्टाऽदशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ऋषि बोले, जब दुरात्मा दक्ष यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए तब महेशने किस प्रकारसे विघ्न किया यह हमारे सुननेकी इच्छा है ॥ १ ॥ वायु बोले, संसार और जगत्की माता देवीके तपोबलसे घरमें आनेके

भृग्वादयोऽपि जाता वै मनोर्वैवस्वतस्य तु ॥ अंतरे ब्रह्मणो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम् ॥ ६१ ॥ तदा दक्षस्य धर्मार्थं यज्ञे तस्य दुरात्मनः ॥ महेशः कृतवान्विघ्नं मना वैवस्वते सति ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे सतीदेह त्यागो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथं दक्षस्य धर्मार्थं प्रवृत्तस्य दुरात्मनः ॥ महेशः कृतवान् विघ्न मेतदिच्छामवेदितुम् ॥ १ ॥ वायुरुवाच ॥ विश्वस्य जगतो मातुरपि देव्यास्तपोबलात् ॥ पितृभावमुपागम्य मुदिते हिमवद्गि रौ ॥२॥ देवेऽपि तत्कृतोद्वाहे हिमवच्छिखरालये ॥ संक्रीडति तया सार्द्धं काले बहुतरे गते ॥३॥ वैवस्वतेऽतरे प्राप्ते दक्षः प्रा चेतसः स्वयम् ॥अश्व मेधेन यज्ञेन यक्ष्यमाणोऽन्वपद्यत ॥४॥ ततो हिमवतः पृष्ठे दक्षो वै यज्ञमाहरत् ॥ गंगाद्वारे शुभे देशे ऋषि सिद्धनिषेविते ॥५॥ तस्य तस्मिन्मखेदेवाः सर्वे शक्र पुरोगमाः ॥ गमनाय समागम्य बुद्धिमापेदिरे तदा ॥ ६ ॥ आदित्या वसवो रुद्रास्साध्यास्सह मरुद्गणैः ॥ ऊष्मपाः सोमपाश्चैव आज्यपा धूमपास्तथा ॥ ७ ॥

कारण हिमालय बहुत प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ उनके साथ जब शिवका विवाह होगया तब हिमालयके शिखरको चले गये; वहां पार्वतीके साथ विहार करते हुए जब बहुत समय होगया ॥ ३ ॥ तब वैवस्वत मन्वंतरके प्राप्त होनेमें स्वयं प्रचेताके पुत्र दक्षने अश्वमेध यज्ञ करनेकी इच्छा की ॥ ४ ॥ जब हिमालयके पृष्ठदेशमें दक्ष यज्ञ करने लगे, जहां गंगा द्वार है और ऋषि मुनि सिद्ध वहां निवास करते हैं ॥ ५ ॥ तब उनके यज्ञमें ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवताओंने जानेकी इच्छा की ॥ ६ ॥ आदित्य वसु, रुद्र, साध्य, मरुत् देवता, सोमपान करने

वाले तथा घृतपान करनेवाले पितर धूमपान करनेवाले ॥ ७ ॥ अश्विनीकुमार दूसरे पितर महर्षि यह विष्णुसहित सब कोई यज्ञभाग लेनेको आये ॥ ८ ॥ जब शिवके बिना और सम्पूर्ण देवता आगये तब दधीचिने क्रोधकर दक्षसे कहा ॥ ९ ॥ दधीचि बोले, अपूज्योंके पूजनेसे और पूजनेयोग्योंके न पूजने से मनुष्यको बडा पाप लगता है इसमें संदेह नहीं ॥ १० ॥ जहां असत् पुरुषोंकी सम्मति और सत्पुरुषोंका निरादर है उसके ऊपर शीघ्रही दैवका किया हुआ दंड पतित होता है ॥ ११ ॥ विप्रर्षिने यह वचन कह कर फिर दक्षसे कहा, परमपूजनीय

अश्विनौ पितरश्चैव तथा चान्ये महर्षयः ॥ विष्णुना सहिताः सर्वे स्वागता यज्ञभागिनः ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा देवकुलं सर्वमीश्वरेण विनागतम् ॥ दधीचो मन्युनाविष्टो दक्षमेवमभाषत ॥९॥ ॥ दधीच उवाच ॥ अप्रपूज्ये चैव पूजा पूज्यानां चाप्य पूजने ॥ नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः ॥ १० ॥ असतां संमतिर्यत्र सतामवमतिस्तथा ॥ दंडो देवकृतस्तत्र सद्यः पतति दारुणः ॥ ११ ॥ एवमुक्ता तु विप्रर्षिः पुनर्दक्षमभाषत ॥ पूज्यं तु पशुभर्तारं कस्मान्नार्चयसे प्रभुम् ॥ १२ ॥ दक्ष उवाच ॥ संति मे बहवो रुद्राः शूलहस्ताः कपर्दिनः ॥ एकादशावस्थिता ये नान्यं वेद्मि महेश्वरम् ॥ १३ ॥ दधीच उवाच ॥ किमेभिरमरैरन्यैः पूजितैरध्वरे फलम् ॥ राजा चेदध्वरस्यास्य न रुद्रः पूज्यते त्वया ॥ १४ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्रष्टा यः प्रभुरव्ययः ॥ ब्रह्मादयः पिशाचांता यस्य कैंकर्यवादिनः ॥ १५ ॥ प्रकृतीनां परश्चैव पुरुषस्य च यः परः ॥ चिंत्यते योगविद्भिऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

पशुपतिका आपने पूनज किस कारणसे न किया ॥ १२ ॥ दक्ष बोले, हमारे यहां शूल हाथमें लिये जब ग्यारह रुद्र विद्यमान हैं जो जटाजूट धारण किये हैं फिर और महेश्वर कौनसे हैं हम उनको नहीं जानते ॥ १३ ॥ दधीचि बोले इन देवताओंके यज्ञमें पूजनेसे क्या फल है, जो यज्ञके राजा महेश्वरका पूजन न किया ॥ १४ ॥ जो प्रभु अविनाशी ब्रह्मा विष्णु और देवताओंके भी उत्पन्न करनेवाले हैं, ब्रह्मासे लेकर पिशाचतक जिसके दास हैं ॥ १५ ॥ जो प्रकृति और पुरुषसे परे हैं, जिसके योगी और तत्त्वदर्शी ऋषि विचार करते हैं ॥ १६ ॥

जो अक्षर परब्रह्म सत् असत् स्वरूप हैं; अनादि मध्य निधन तर्कनारहित सनातन हैं ॥ १७ ॥ और जो महेश्वर उत्पत्ति पालन नाश करते हैं, उन शंकरात्माके सिवाय यज्ञमें दूसरी वस्तु नहीं देखता हूं ॥ १८ ॥ दक्ष बोले, हे भगवन् यह सुवर्णपात्रमें विधिपूर्वक मंत्र पढी हुई हवि रक्खी है; यह यज्ञेश महापराक्रमी विष्णुका भाग है सो विभागकर आहुति दीजिये ॥ १९ ॥ दधीचि बोले, जिस कारण कि तुमने सब देवताओंके पूजनीय शंकरकी आराधना नहीं की है, इस कारणसे तुम्हारा यज्ञ न होगा ॥ २० ॥ यह कहकर दधीचि ऋषि महा क्रोधकर उस यज्ञ शालासे निकल अपने आश्रमको चले गये ॥ २१ ॥ मुनिके जानेपर भी देवताओंने दक्षको त्यागन न किया कारण कि

अक्षरं परमं ब्रह्म ह्यसच्च सदसच्च यत् ॥ अनादिमध्यनिधनमप्रतर्क्यं सनातनम् ॥ १७ ॥ यः स्रष्टा चैव संहर्ता भर्ता चैव महेश्वरः ॥ तस्मादन्यं न पश्यामि शंकरात्मानमध्वरे ॥ १८ ॥ दक्ष उवाच ॥ एतन्मखेशस्य सुवर्णपात्रे हविः समस्तंविधिमंत्रपूतम् ॥ विष्णोर्नयाम्यप्रतिमस्य भागं प्रभोर्विभज्यावहनीयमद्य ॥ १९ ॥ ॥ दधीच उवाच ॥ यस्मान्नाराधितो रुद्रस्सर्वदेवेश्वरेश्वरः ॥ तस्माद्दक्ष तवाशेषो यज्ञोऽयं न भविष्यति ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा वचनं क्रुद्धो दधीचो मुनिसत्तमः ॥ निर्गम्य च ततो देशाज्जगाम स्वकमाश्रमम् ॥ २१ ॥ निर्गतेऽपि मुनौ तस्मिन्देवा दक्षं न तत्यजुः ॥ अवश्यमनुभावित्वादनर्थस्य तु भाविनः ॥२२॥ एतस्मिन्नेव काले तु ज्ञात्वैतत्सर्वमीश्वरात् ॥ दग्धुं दक्षाध्वरं विप्रा देवी देवमचोदयत् ॥ २३ ॥ देव्या संचोदितो देवो दक्षाध्वरजिघांसया ॥ ससर्ज सहसा वीरं वीरभद्रं गणेश्वरम् ॥२४॥ सहस्रवदनं देवं सहस्रकमलेक्षणम् ॥ सहस्रमुद्गरधरं सहस्र शरपाणिकम् ॥ २५ ॥ शूलटंकगदाहस्तं दीप्तकार्मुकधारिणम् ॥ चक्रवज्रधरं घोरं चंद्रार्द्धकृतशेखरम् ॥ २६ ॥

उन्होंने अवश्य होनहार अनर्थको जान लिया था ॥२२॥ इसी अवसरमें यह सब वार्ता ईश्वरसे श्रवण कर दक्षका यज्ञ विध्वंस करनेके निमित्त पार्वतीने शिवजीसे प्रार्थना की हे ब्राह्मणो ! ॥ २३ ॥ जिस समय दक्षका यज्ञ नष्ट करनेको देवीने कहा तब शिवजीने वीरभद्र गणेश्वरको निर्माण किया ॥ २४ ॥ उनके सहस्र मुख सहस्र नेत्रकमल सहस्र मुद्गर धारण किये सहस्र बाण हाथोंमें लिये ॥ २५ ॥ शूल, टंक, गदा, तथा दीप्तिमान् धनुष धारण किये चक्र, वज्र धारे आधा चन्द्रमा शिरपर धारे ॥ २६ ॥

वज्रसे प्रकाशमान हाथ, बिजलीकी प्रभासे प्रकाशित शिर कराल डाँढ धारण किये महामुख और बडा पेट ॥ २७ ॥ बिजलीके समान जीभ लम्बे ओष्ठ मेघ और सागरके समान शब्द व्याघ्रचर्म ओढे जिसमेंसे रुधिर निकलता था ॥ २८ ॥ दोनों कपोलोंके निकट मंडलाकार कुण्डल धारण किये श्रेष्ठ देवताओंके समान मुण्डमालासे शोभायमान शिर ॥ २९ ॥ शब्दायमान नूपुर और बाजूबन्द धारे रत्नके संचयसे दीप्तिमान् बडे हारसे व्याप्त हृदय महाशरभ शार्दूल और सिंहके समान पराक्रमी ॥ ३० ॥ बडे श्रेष्ठ मतवाले हाथीके समान जिनका आलस भरा गमन है ॥ ३१ ॥ शंख चामर कुंदके फूल चन्द्रमा और मृणालके समान कान्तिवाले मानो साक्षात् हिमालय पर्वतही चलनेवाला होगया है ॥३२॥

कुलिशोद्यो तितकरं तडिज्ज्वलितमूर्द्धजम् ॥ दंष्ट्राकरालं बिभ्राणं महावक्त्रं महोदरम् ॥ २७ ॥ विद्युज्जिह्वं प्रलंबोष्ठं मेघसागर निःस्वनम् ॥ वसानं चर्म वैयाघ्रं महद्रुधिरनिस्रवम् ॥२८॥ गण्डद्वितयसंसृष्टमण्डलीकृतकुण्डलम् ॥वरामरशिरोमालावलीकलितशेखरम् ॥२९॥ रणन्नूपुरकेयूरमहाकनकभूषितम् ॥ रत्नसंचयसंदीप्तं तारहारावृतोरसम् ॥३०॥ महाशरभशार्दूलसिंहैः सदृश विक्रमम् ॥ प्रशस्तमत्त मातंगसमानगमनालसम् ॥ ३१ ॥ शंखचामरकुंदेन्दुमृणालसदृशप्रभम् ॥ सतुषारमिवाद्रीन्द्रं साक्षाज्जंगमतां गतम् ॥३२॥ ज्वाला मालापरिक्षिप्तं दीप्तमौक्तिकभूषणम् ॥ तेजसा चैव दीप्यंतं युगांतइव पावकम् ॥३३॥ स जानुभ्यां महीं गत्वा प्रणतः प्रांजलिस्ततः ॥ पार्श्वतो देवदेवस्य पर्य्यतिष्ठद्गणेश्वरः॥३४॥मन्युना चासृजद्रुद्रां भद्रकालीं महेश्वरीम्॥ आत्मनःकर्मसाक्षित्वे तेनगंतुं सहैव तु ॥ ३५ ॥ तं दृष्ट्वावस्थितं वीरभद्रं कालाग्निसन्निभम् ॥ भद्रया सहितं प्राह भद्रमस्त्विति शंकरः ॥ ३६ ॥ स च विज्ञापयामास सह देव्या महेश्वरम् ॥ आज्ञापय महादेव किं कार्यं करवाण्यहम् ॥ ३७ ॥

मोतीके भूषणोंकी दीप्तिकी ज्वालाका समूह फैल रहा है और तेजसे युगान्तकी अग्निके समान व्याप्त हैं ॥३३॥ सो वह वीरभद्र जानुओंसे पृथ्वीमें बैठ हाथजोड शिवको प्रणाम करने लगे; और यह गणेश्वर देवके समीपमें स्थित हुए ॥ ३४ ॥ उसी अवसरमें देवीने क्रोधसे अपने कर्मकी साक्षीके निमित्त भद्रकाली महेश्वरीको उसके साथ जानेको उत्पन्न किया ॥ ३५ ॥ इस प्रकार कालाग्निके समान भद्रको देखकर भद्रके सहित शिवजीने कहा कि तुम्हारा मंगल हो ॥ ३६॥ तब उसने देवीके सहित महेश्वरसे कहा हे महादेव ! कहिये मैं आपका कौन

प्रिय कार्य करूं ॥ ३७ ॥ तब त्रिपुरके मारनेवाले शिवने पार्वतीके प्रियकी इच्छासे महागम्भीर वाणीसे महाबाहु वीरभद्रसे कहा ॥ ३८ ॥ देवदेव बोले, तुम प्राचेतस दक्षका यज्ञ बहुत शीघ्र नाश कर दो, हे गणेश्वर ! भद्रकालीके साथ जाकर तुम यह कृत्य करो ॥ ३९ ॥ मैं भी देवीके साथ रैभ्य आश्रमके समीपसे हे गणेश ! तुम्हारा दुःसह पराक्रम देखता रहूंगा ॥ ४० ॥ जो कनखलके वृक्ष गंगाद्वार तक स्थित हैं वे सुवर्ण शृंग पर्वत और मेरुमदरके समान हैं ॥ ४१ ॥ उसी स्थानमें दक्षका यज्ञ होता है, उस यज्ञका नाश तुम बहुत शीघ्र करो ॥४२॥ जब इस प्रकार शंकरने कहा तब हिमालयपुत्री पार्वतीने भद्र और भद्राको अपने औरस पुत्रके समान देखकर कि जैसे गो बछडेको देखती है

ततस्त्रिपुरहा प्राह हैमवत्याः प्रियेच्छया ॥ वीरभद्रं महाबाहुं वाचा विपुलनादया ॥३८॥ देवदेव उवाच ॥ प्राचेतसस्य दक्षस्य यज्ञं सद्यो विनाशय ॥ भद्रकाल्या सहासि त्वमेतत्कृत्यं गणेश्वर ॥ ३९ ॥ अहमप्यनया सार्द्धं रैभ्याश्रमसमीपतः ॥ स्थित्वा वीक्षे गणेशान विक्रमं तव दुःसहम् ॥ ४० ॥ वृक्षाः कनखले ये तु गंगाद्वारसमीपगाः ॥ सुवर्णशृंगस्य गिरेर्मेरुमंदरसंनिभाः ॥ ४१ ॥ तस्मिन्प्रदेशे दक्षस्य यज्ञः संप्रति वर्तते ॥ सहसा तस्य यज्ञस्य विघातं कुरु मा चिरम् ॥ ४२ ॥ इत्युक्ते सति देवेन देवी हिमगिरीन्द्रजा ॥ भद्रं भद्रं च संप्रेक्ष्य वत्सं धेनुरिवौरसम् ॥ ४३ ॥ आलिंग्य च समाघ्राय मूर्ध्नि षड्वदनं यथा ॥ सस्मिता वचनं प्राह मधुरं मधुरं स्वयम् ॥ ४४ ॥ देव्युवाच ॥ वत्स भद्र महाभाग महाबलपराक्रम ॥ मत्प्रियार्थं त्वमुत्पन्नो मम मन्युं प्रमार्जक ॥ ४५ ॥ यज्ञेश्वरमनाहूय यज्ञकर्मरतोऽभवत् ॥ दक्षो वैरेण तं तस्माद्भिंधि यज्ञं गणेश्वर ॥ ४६ ॥ यज्ञलक्ष्मीमलक्ष्मीं त्वं भद्र कृत्वा ममाज्ञया ॥ यजमानं च तं हत्वा वत्स हिंसय भद्रया ॥ ४७ ॥

॥ ४३ ॥ आलिंगन कर कार्तिकेयके समान उसका शिर सूंघा और हँसकर मधुरस्वरसे कहने लगी ॥ ४४ ॥ देवी बोली, हे पुत्र ! भद्र महाभाग पराक्रमी तू प्रियके निमित्त उत्पन्न हुआ है; इस कारण क्रोध मत शान्तकर ॥ ४५ ॥ जो कि इनसे यज्ञेश्वरको विना बुलाये यज्ञ कर्म प्रारम्भ किया है और उससे वैर किया है इस कारण हे गणेश्वर ! उसका यज्ञ नष्ट कर दो ॥ ४६ ॥ हे भद्रे ? मेरी आज्ञा यज्ञलक्ष्मीको अलक्ष्मीस्वरूप करके भद्रके साथ जाकर उस यजमानको भी नष्ट कर दो ॥ ४७ ॥

चित्रकर्मा शिव पार्वतीकी सम्पूर्ण आज्ञाको मस्तकपर धारणकर नमस्कार करं भद्रने जानेकी तइयारी की ॥ ४८ ॥ तब स्मशानवासी भगवान् वीर भद्रने क्रोध करके देवीके क्रोधको दूर करनेकी इच्छा की ॥४९॥ तब वीर भद्रने अपने रोमसे सहस्रों गणोंको उत्पन्न किया और दक्षिणकी भुजासे सौ करोड गणेश्वरोंको उत्पन्न किया चरण, ऊरु, जंघा, पीठ, पार्श्व, मुखवाले गुह्य गुल्फ, शिर ॥ ५० मध्य कण्ठ मुख पेटसे ॥ ५१ ॥ वे गणेश्वर भद्रने उत्पन्न किये, जिनका पराक्रम भद्रके समान था उससे उस स्थानका आकाश सब आच्छादित हो गया ॥ ५२ ॥ उन सबके सहस्र २ हाथ उनमें सहस्र २ आयुध लिये, वे सब रुद्रके अनुचर रुद्रहीके समान बली थे ॥ ५३ ॥ शूल शक्ति

अशेषामिव तामाज्ञां शिवयोश्चित्रकृत्ययोः ॥ मूर्ध्नि कृत्वा नमस्कृत्य भद्रो गंतुं प्रचक्रमे ॥ ४८ ॥अथैष भगवान्क्रुद्धः प्रेतावा सकृतालयः ॥ वीरभद्रोमहादेवो देव्या मन्युप्रमार्जकः॥४९॥ससर्ज रोमकूपेभ्यो रोमजाख्यान्गणेश्वरान् ॥ दक्षिणाद्भुजदेशात्तु शत कोटिगविश्वरान् ॥५०॥ पादात्तथोरुदेशाच्च पृष्ठात्पार्श्वान्मुखाद्गलात् ॥ गुह्याद्गुल्फाच्छिरोमध्यात्कंठादास्यात्तथोदरात् ॥ ५१ ॥ तदा गणेश्वरैर्भद्रैर्भद्रतुल्यपराक्रमैः ॥ संछादितमभूत्सर्वं साकाशविवरं जगत् ॥ ५२ ॥ सर्वे सहस्रहस्तास्ते सहस्रायुध पाणयः ॥ रुद्रस्यानुचरास्सर्वे सर्वे रुद्रसमप्रभाः ॥५३॥ शूलशक्तिगदाहस्ताष्टंकोपलशिलाधराः ॥ कालाग्निरुद्रसदृशास्त्रिनेत्राश्च जटाधराः ॥ ५४ ॥ निपेतुर्भृश माकाशे शतशस्सिंहवाहनाः ॥ विनेदुश्च महानादान्नलदा इव भद्रजाः ॥५५॥ तैर्भद्रैर्भगवान्म द्रस्तथा परिवृतो बभौ ॥ कालानल शतैर्युक्तो यथांते कालभैरवः ॥ ५६ ॥ तेषां मध्ये समारुह्य वृषेंद्रं वृषभध्वजः॥ जगाम भग वान्भद्रश्शुभमभ्रं यथा भवः ॥ ५७ ॥ तस्मिन्वृषभमारूढे भद्रे तु भसितप्रभः ॥ बभार मौक्तिकं छत्रं गृहीतसितचामरः ॥५८॥

और गदा हाथमें लिये टंक उपल शिला धारे वे कालाग्निके समान तीन नेत्र और जटाधारी थे ॥ ५४ ॥ वीरभद्रसे उत्पन्न गण मेघके समान शब्द करने लगे और सिंहों पर चढकर आकाशमें विचरने लगे ॥ ५५ ॥ कल्याण युक्त भगवान् उन गणोंके साथ शोभित हुए, जैसे प्रलयमें सैकडों कालानलसे भैरव शोभित हैं ॥ ५६ ॥ शिवजी उनके बीचमें वृषके ऊपर चढकर चले और ऐसे शोभित हुए मानो श्वेतमेघपर जाते हैं ॥ ५७ ॥ इस प्रकार कान्तिमान् वीरभद्रके वृष पर चढनेसे भसितप्रभने मोतियोंका छत्र उनके ऊपर धारण किया और

श्वेतचामर भी ग्रहण किया ॥ ५८ ॥ इस प्रकार वीरभद्रके निकट भसितप्रभ महाशोभित हुआ; जिस प्रकार जगत् गुरुके पार्श्वमें पर्वतराज शोभित होता है ॥ ५९ ॥ श्वेतचामर धारण करनेवालेसे वीरभद्र इस प्रकार शोभित हुए जैसे सुन्दर वर्णवाले चन्द्रमासे शिवजी शोभित होते हैं, तब महातेजस्वी भानुकम्प गणेश्वरने वीरभद्रके आगे शंख बजाया, वह शंख सुवर्ण और रत्नोंसे अलंकृत था ॥६०॥ ॥६१॥ तब आकाश से देवताओंके नगाडे बजने लगे और मेघोंसे उन सबके शिरोंपर फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ६२ ॥ मधुवाले फूल फूलने लगे और उनकी सुगन्धि निकलने लगी शीतल मंद सुगन्ध पवन मार्गमें बहने लगी ॥ ६३ ॥ तब वे गणेश्वर सब युद्धके निमित्त मत्त हो गये तब वे प्रसन्न हो

स तदा शुशुभे पार्श्वे भद्रस्य भसितप्रभः ॥ भगवानिव शैलेन्द्रः पार्श्वे विश्वजगद्गुरोः॥५९॥ सोऽपि तेन बभौ भद्रः श्वेतचामर पाणिना॥ बालसोमेन सौम्येन यथा शूलवरायुधः ॥६०॥दध्मौ शंखं सितं भद्रं भद्रस्य पुरतः शुभम्॥भानुकंपो महातेजा हेमर त्नैरलंकृतः॥६१॥ देवदुंदुभयो नेदुर्दिव्यसंकुलनिस्वनाः ॥ ववृषुश्शतशो मूर्ध्नि पुष्पवर्षं बलाहकाः ॥६२॥ फुल्लानां मधुगर्भाणां पुष्पाणां गंधबंधवः ॥ मार्गानुकूलसंवाहा ववुश्च पथि मारुताः ॥ ६३ ॥ ततो गणेश्वराः सर्वे मत्ता युद्धबलोद्धताः ॥ ननृतुर्मुमुदु र्नेदुर्जहसुर्जगदुर्जगुः ॥ ६४ ॥ तदा भद्रगणांतःस्थो बभौ भद्रः सभद्रया ॥ यथा रुद्रगणांतः स्थस्त्र्यम्बकोंबिकया सह ॥६५॥ तत्क्षणादेवदक्षस्य यज्ञवाटं हिरण्मयम् ॥ प्रविवेश महाबाहुर्वीरभद्रो महानुगः ॥६६॥ ततस्तु दक्षप्रतिपादितस्य क्रतुप्रधानस्य गणप्रधानः ॥ प्रयोगभूमिं प्रविवेश भद्रो रुद्रो यथांते भुवनं दिधक्षुः ॥ ६७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसं हितायां पूर्वखण्डे वीरभद्रोत्पत्तिवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

नाचने शब्द करने हँसने और गाने लगे ॥ ६४ ॥ तब वीरभद्र गणेश्वरोंके बीचमें स्थित हो भद्रकालीसहित प्रसन्न हुए जैसे रुद्रगणोंके बीचमें त्र्यंबक पार्वतीसहित शोभित होते हैं ॥ ६५ ॥ उसी समय दक्षकी सुवर्णमय यज्ञ वेदीमें अनुचरोंसहित वीरभद्र प्रविष्ट हुए ॥६६॥ तब उस प्रधान गणने दक्षके किये हुए यज्ञकी प्रयोगभूमिमें प्रवेश किया जिस प्रकारसे रुद्र अन्तमें संसारके भस्म करनेको प्रवेश करते हैं ॥६७॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखंडे दक्षयज्ञ कथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

वायु बोले, तब विष्णु आदि महातेजस्वी देवताओंका वह चित्र विचित्र ध्वजाओंसे शोभित महायज्ञ देखा ॥ १ ॥ सीधे कुशोंसे आच्छादित प्रज्वलित अग्निसे युक्त सुवर्णके पात्रोंसे सब ओरसे शोभित ॥ २ ॥ यज्ञमें कर्म करनेवाले ऋषियोंसे व्याप्त वेदके कहे हुए विधानसे युक्त ॥३॥ सहस्रों देवांगनाओंसे युक्त अप्सराओंसे शोभित वेणु वीणाके शब्दसे युक्त वेदके शब्दोंसे वृद्धिको प्राप्त ॥ ४ ॥ दक्षका यज्ञ देखकर प्रतापवान् वीरभद्र गम्भीर शब्दसे सिंहनाद करने लगा जैसे मेघ शब्द करता है ॥ ५ ॥ तब आकाशको पूर्ण करता हुआ किलकिला शब्द गणेश्वरोंके

॥ वायुरुवाच ॥ ततो विष्णुप्रधानानां सुराणाममितौजसाम्॥ ददर्श च महत्सत्रं चित्रध्वजपरिच्छदम्॥१॥सुदर्भऋजुसंस्तीर्णं सुसमिद्धहुताशनम् ॥ कांचनैर्यज्ञभांडैश्च भ्राजिष्णुभिरलंकृतम् ॥२॥ ऋषिभिर्यज्ञपटुभिर्यथावत्कर्मकर्तृभिः ॥विधिना वेददृष्टेन स्वनुष्ठितबहुक्रमम्॥३॥देवांगनासहस्राढ्यमप्सरोगणसेवितम् ॥ वेणुवीणारवैर्जुष्टं वेदघोषैश्च बृंहितम्॥४॥ दृष्ट्वा दक्षाध्वरे वीरो वीरभद्रः प्रतापवान्॥सिंहनादं तदा चक्रे गंभीरो जलदो यथा॥५॥ततः किलकिलाशब्द आकाशं पूरयन्निव॥ गणेश्वरैः कृतो यज्ञे महान्यक्कृतसागरः॥६॥तेन शब्देन महताः ग्रस्ता सर्वेदिवौकसः॥दुद्रुवुः परितो भीताः स्रस्तवस्त्रविभूषणाः॥७॥किंस्विद्भग्नो महामेरुः किंस्वित्संदीर्यते मही॥किमिदं किमिदं वेति जजल्पुस्त्रिदशा भृशम्॥८॥मृगेन्द्राणां यथा नादं गजेंद्रा गहने वने॥श्रुत्वा तथाविधं केचित्तत्यजुर्जीवितं भयात्॥९॥पर्वताश्च व्वशीर्यंत चकम्पे च वसुंधरा॥ मरुतश्च व्यघूर्णंत चुक्षुभे मकरालयः॥१०॥

द्वारा उच्चारण होकर सागरका तिरस्कार करने लगा ॥ ६ ॥ उस शब्दसे सब देवता व्याकुल हो गये और व्याकुल होकर भागने लगे, उस समय उनके भूषण वस्त्र स्खलित होगये ॥ ७ ॥ क्या महामेरु भिन्न हो गया, या पृथ्वी विदीर्ण होती है, यह क्या है ? ॥ ८ ॥ जैसे सिंहोंके शब्दको हाथी गहन वनमें सुनकर व्याकुल होते हैं इस प्रकार शब्द सुनकर भयके मारे अनेक प्राणी अपना जीवन त्यागन करने लगे ॥ ९ ॥ पर्वत फटने लगे, पृथ्वी कांपने लगी, पवन चलायमान हुए थे, सागर क्षुभित होगया ॥ १० ॥

अग्नियोंकी दीप्ति जाती रही सूर्य प्रभाहीन होगये; ग्रह नक्षत्र तारोंका प्रकाश जाता रहा ॥ ११ ॥ इसी समय उस उज्ज्वल यज्ञस्थानमें वीरभद्र प्राप्त होकर दूसरे गण और कालीको साथ लिये आये ॥ १२ ॥ उनको देखकर दक्ष डरकर भी यथायोग्य स्थित रहा और क्रोध करके बोला तुम कौन हो और क्या करनेकी इच्छा है ॥ १३ ॥ तब उस दुरात्मा दक्षके वचन सुनकर महातेजस्वी वीरभद्र मेघके समान गम्भीर वाणीसे ॥ १४ ॥ हँसते हुए उस दक्ष और देवता ऋत्विजोंको देखकर अर्थ युक्त सम्भ्रांति हीन उचित वचन बोले ॥ १५ ॥ वीर भद्र बोले, हम सब अमितपराक्रमी शिवजीके अनुचर हैं; अपने भागकी इच्छासे आये हैं सो आप हमारा भाग दीजिये ॥ १६ ॥ और जो

अग्नयो नैव दीप्यंते न च दीप्यति भास्करः ॥ ग्रहाश्च न प्रकाशंतेनक्षत्राणि च तारकाः ॥११॥एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञवाटं तदुज्ज्वलम् ॥ संप्राप भगवान्भद्रो भद्रैश्च सह भद्रया ॥ १२ ॥ तं दृष्ट्वा भीतभीतोऽपि दक्षो दृढ इव स्थितः॥ क्रुद्धवद्वचनं प्राह को भवान् किमिहेच्छसि ॥ १३ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दक्षस्य च दुरात्मनः ॥ वीरभद्रो महातेजा मेघगंभीरनिस्स्वनः ॥ १४ ॥ स्मयन्निव तमालोक्य दक्षं देवाश्च ऋत्विजः ॥ अर्थगर्भमसंभ्रान्तमवोचदुचितं वचः ॥१५॥ वीरभद्र उवाच ॥ वयं ह्यनुचराः सर्वे शर्वस्यामिततेजसः ॥ भागाभिलिप्सया प्राप्ता भागो नस्संप्रदीयताम् ॥१६॥ अथ चेदध्वरेऽस्माकं न भागः परिकल्पितः॥ कथ्यतां कारणं तत्र युध्यतां वा मयामरैः ॥ १७ ॥ इत्युक्तास्ते गणेंद्रेण देवा दक्षपुरोगमाः ॥ ऊचुर्मन्त्राः प्रमाणं नो न वयं प्रभवस्त्विति ॥ १८ ॥ मन्त्रा ऊचुस्सुरा यूयं मोहोपहतचेतसः ॥ येन प्रथमभागार्हं न यजध्वं महेश्वरम् ॥ १९ ॥ मंत्रोक्ता अपि ते देवाः सर्वे संमूढचेतसः ॥ भद्राय न ददुर्भागं तत्प्रहाणमभीप्सवः ॥ २० ॥

हमारा भाग इसमें नहीं कल्पित किया है तो कारण क्या है ? यदि भाग न दो तो हमारे साथ युद्ध करो ॥ १७ ॥ जब वीरभद्रने ऐसा कहा तो वे दक्षको आदि लेकर सब देवता कहने लगे कि यज्ञ कर्मके साधन रूप वेद मन्त्र हमको प्रमाण हैं हम स्वयं यज्ञमें भाग विधान नहीं कर सकते ॥ १८ ॥ उस समय मंत्र कहने लगे हे देवताओ ! तुम अन्धकार युक्त चित्तवाले हो जिससे प्रथम भागके उचित महेश्वरका भाग प्रदान नहीं किया ॥ १९ ॥ जब उन मंत्रोंने ऐसा कहा तब अज्ञानको प्राप्त हुए वे देवता वीरभद्रके प्रहारकी

इच्छा करके भाग न देते हुए ॥ २० ॥ जब अत्यन्त श्रेष्ठ सत्यतायुक्त मंत्रोंका वाक्य भी वृथा हुआ तब वे मन्त्र सनातन ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २१ ॥ तब वीरभद्रने विष्णु आदि सब देवताओंसे कहा तुमने बलसे गर्वित होकर मन्त्रोंका प्रमाण न किया ॥२२॥ जिस कारणसे कि इस यज्ञमें तुमने हमारा तिरस्कार किया है, इस कारण जीवनके सहित मैं तुम्हारा गर्व नष्ट करूंगा ॥ २३ ॥ यह कह भगवान् क्रोधकर नेत्रकी अग्निसे जलाने लगे, वह यज्ञवाट और अन्नके ढेर त्रिपुरके समान भस्म होने लगे ॥ २४ ॥ तब वे सब गणेश्वर पर्वतके समान शरीर वाले उन स्तम्भोंको उखाड कर हवन करनेवालोंके कंठमें रस्सीसे बांधने लगे ॥ २५ ॥ जितने यज्ञपात्र चित्र विचित्र थे उन सबको तोड फाड

यदा तथ्यं च पथ्यं च स्ववाक्यं तद्वृथाऽभवत् ॥ तदा ततो ययुर्मंदा ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥२१॥ अथोवाच गणाध्यक्षो देवान्विष्णुपुरोगमान् ॥ मन्त्राः प्रमाणं न कृता युष्माभिर्बलगर्वितैः ॥२२॥ यस्मादस्मिन् मखे देवैरित्थं वयमसत्कृताः ॥ तस्माद्वोजीवितैस्सार्द्धमपनेष्यामि गर्वितम् ॥२३॥ इत्युक्त्वा भगवान् क्रुद्धो व्यदहन्नेत्रवह्निना ॥ यक्षवाटं महाकूटं यथात्रिपुरो हरः ॥२४॥ ततो गणेश्वरास्सर्वे पर्वतोदग्रविग्रहाः ॥ यूपानुत्पाट्य होतॄणां कंठेष्वाबध्य रज्जुभिः ॥ २५ ॥ यज्ञपात्राणि चित्राणि भित्त्वा संचूर्ण्य वारिणि ॥ गृहीत्वा चैव यज्ञांगं गंगास्रोतसि चिक्षिपुः ॥२६॥तत्र दिव्यान्नपानानां राशयः पर्वतोपमाः ॥ क्षीरनद्योऽमृतस्रावाः सुस्निग्धदधिकर्दमाः ॥ २७ ॥ उच्चावचानि मांसानि भक्ष्याणि सुरभीणि च॥ रसवन्ति च पानानि लेह्य चोष्याणि तानि वै ॥ २८ ॥ वीरास्तद्भुजते वक्रैर्विलुंपंति क्षिपंति च ॥ वज्रैश्चक्रैर्महाशूलैश्शक्तिभिः पाशपट्टिशैः ॥ २९ ॥ मुसलैरसिभिष्टंकैर्भिंदिपालैः परश्वधैः ॥ उद्धतांस्त्रिदशान्सर्वाँल्लोकपालपुरस्सरान् ॥ ३० ॥

कर जलमें डाल दिया, और यज्ञका अंग (वा अश्व) ग्रहण करके गंगाके स्रोतमें डाल दिया ॥२६॥ और जो दिव्य अन्न और पानके ढेर पडे थे दूधकी नदी अमृतरस भरी और दधिकी कुल्या ॥२७॥ अनेक प्रकारके मांस मनोहर सुगन्धिवाले भोज्यपदार्थ रसयुक्त पीनेके पदार्थ लेह्य और चोष्य पदार्थ ॥ २८ ॥ इन सबको बीरभद्रके अनुचर खाने और फेंकने लगे, वज्र चक्र महाशूल शक्ति प्राश पट्टिश ॥ २९ ॥ मूसल असि (तलवार) टंक भिन्दिपाल परशे उठाये हुए लोकपालादि सहित सब देवताओंको ॥ ३० ॥

वे वीरभद्रके अंगसे उत्पन्न हुए बली वीर चूर्ण करने लगे, छेदन करो, भेदन करो, नष्ट करो शीघ्र विदीर्ण करो ॥ ३१ ॥ हरण करो, प्रहार करो, पाट दो; नष्ट करो, इस प्रकार शूरोंके कानोंको भयदायक शब्द होने लगे ॥ ३२ ॥ जहां तहां समरमें गणोंके शब्द होने लगे, किसी के फैले हुए नेत्र दांत ओठ तालू टूटे हुए ॥ ३३ ॥ आश्रमोंसे खचकर तपस्वियोंको मारने लगे; स्रुवोंको लेकर अग्नि और जलमें डाल दिया ॥ ३४ कलशोंको भेदन छेदन कर मणिवेदी नष्ट करदी, गाते शब्द करते और बारंबार हँसते हैं, रुधिररूपी सुराको पान करते हुए वे श्रेष्ठ गण नृत्य करने लगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार इन्द्रके सहित सब देवताओंको वह वृषेन्द्र हाथी और सिंहके समान पराक्रम वाले पीडन करके

बिभिदुर्बलिनो वीरा वीरभद्रांगसंभवाः ॥ छिंधि भिंधि क्षिप क्षिप्रं मार्यतां दार्यतामिति ॥३१॥ हरस्व प्रहरस्वेति पाटयोत्पाटयेति च ॥ संरंभप्रभवाः क्रूराश्शब्दाः श्रवणशंकवः ॥३२॥ यत्रतत्र गणेशानां जज्ञिरे समरोचिताः ॥विवृत्तनयनाः केचिद्दष्टदंष्ट्रोष्ठतालवः ॥३३॥आश्रमस्थान्थान्समाकृष्य मारयन्ति तपोधनान् ॥ स्रुवानपहरन्तश्च क्षिपन्तोग्निं जलेषु च॥३४॥ कलशानपि भिन्दंत श्छिंदंतो मणिवेदिकाः ॥गायंतश्च नदन्तश्च हसन्तश्च मुहुर्मुहुः ॥ ३५ ॥ रक्तासवं पिबन्तश्च ननृतुर्गणपुंगवाः ॥ निर्मथ्य सेंद्रानमरान् गणेन्द्रान्वृषेन्द्रनागेन्द्रमृगेन्द्रसाराः॥३६॥चक्रुर्बहून्यप्रतिमभावाः सहर्षरोमाणि विचेष्टितानि ॥ नन्दंति केचित्प्रहरन्ति केचिद्धावन्ति केचित्प्रलपन्ति केचित्॥३७॥नृत्यन्ति केचिद्विहसन्ति केचिद्वल्गन्ति केचित्प्रमथा बलेन॥३८॥ केचिज्जिघृक्षंति घनान्स तोयान्केचिद्ग्रहीतुं रविमुत्पतंति॥केचित्प्रसर्तुं पवनेन सार्द्धमिच्छंति भीमाः प्रमथा वियत्स्थाः ॥३९॥

अनेक ऐसी चेष्टा करने लगे कि जिससे रुएं खडे हो जाते थे ॥ ३६ ॥ कोई शब्द करते, कोई प्रहार करते, कोई दौडते, कोई प्रलाप करते कोई नाचते, कोई हँसते, कोई गण अपशब्द करते ॥ ३७ ॥ कोई मदसे कोई जलवाले मेघोंको सूंघते. कोई सूर्यके पकडने को आकाशमें कूदते, कोई पवनके साथ चलनेकी इच्छा करते थे; कोई बडे भयंकर गण आकाशमें स्थित हुए ॥ ३८ ॥ कोई श्रेष्ठ आयुध धारण करके ऐसे चलते थे जैसे गरुड सर्पोंको लिये जाते हैं, कोई देवताओंको विद्रावित करते घूमने लगे, कोई आकाश

मंडलमें पर्वतके समान स्थित हुए ॥ ३९ ॥ कोई घर उखाड २ कर उनके झरोखे और वेदी नष्ट करने लगे, यह सब वस्तु जलोंमें डालकर वे प्रलयकालके मेघके समान गण शब्द करने लगे ॥४०॥ द्वारोंके किवाड चौखट उखाड कर दिवाल और शाला विध्वंस करने लगे तथा वलभी (जिससे ढक जाता है) गोपानसी छज्जा और झरोखे सब नष्ट कर दिये अहो ! यज्ञवाट नष्ट किया गया यह अनाप्तवाक्यके समान सब अर्थशून्य हुआ ॥ ४१ ॥ हा नाथ ! तात ! पिता ! पुत्र ! भ्राता ! माता ! मातुल ! सब ऐसा शब्द करने लगे, जब इस प्रकारसे घर तोडे गये तो स्त्री अनेक प्रकारसे अनाथवत् शब्द करने लगीं ॥४२॥इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे दक्षयज्ञमथनं नाम विंशोऽध्यायः॥२०॥

उत्पाट्य चोत्पात्यगृहाणि केचित्सजालवातायनवेदिकानि॥विक्षिप्यविक्षिप्यजलस्य मध्ये कालांबुदाभाः प्रमथा निनेदुः॥४०॥ उद्वर्तितद्वारकपाटकुड्यं विध्वस्तशालावलभीगवाक्षम् ॥ अहो बताभज्यत यज्ञवाटमनाथवद्वाक्यमिवायथार्थम् ॥ ४१ ॥ हा नाथ तातेति पितुः सुतेति भ्रातर्ममाम्बेतिच मातुलेति ॥ उत्पात्यमानेषु गृहेषु नार्यो ह्यानाथशब्दान्बहुशः प्रचक्रुः ॥४२॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे यज्ञविध्वंसनो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ वायुरुवाच ॥ ततस्त्रिद शमुख्यास्ते विष्णुशक्रपुरोगमाः ॥ सर्वे भयपरित्रस्तादुद्रुवुर्भयविह्वलाः ॥ १ ॥ निजैरदूषितैरंगैर्दृष्ट्वा देवानुपद्रुतान् ॥ दंड्यानदंडितान्मत्वा चुकोप गणपुंगवः ॥ २ ॥ ततस्त्रिशूलमादाय शर्वशक्तिनिवर्हणम् ॥ ऊर्ध्वदृष्टिर्महाबाहुर्मुखाज्ज्वालाः समुत्सृजन् ॥ ३ ॥ अमरानपि दुद्राव द्विरदानिव केसरी ॥ तानभिद्रवतस्तस्य गमनं सुमनोहरम् ॥ ४ ॥ वारणस्येव मत्तस्य जगाम प्रेक्षणीयताम् ॥ ततस्तत्क्षोभयामास महत्सुरबलं बली ॥ ५ ॥

वायु बोले, तब विष्णु इन्द्र आदिके सहित वे सम्पूर्ण देवता सब भयसे व्याकुल हो पलायन करने लगे ॥१॥ अनेक अदूषित अंगोंसे देवताओंको पलायन करता देख कर दण्ड देनेयोग्योंको दंडित न देख वीरभद्रने क्रोध किया॥२॥तब सब शक्ति दूर करनेवाले त्रिशूलको धारण कर ऊपरको दृष्टि किये महाभुजावाले मुखसे आग निकलते हुए ॥३॥ देवताओंपर ऐसे दौडे जिस प्रकार सिंह हाथियोंपर दौडता है जिस समय उनके ऊपर चले तो उनका मनोहर गमन ॥४॥ मतवाले हाथीके समान देखने योग्य हो गया, तब उस बलीने देवताओंका बल क्षुभित कर दिया ॥५॥

जिस प्रकार महाबली मत्त हाथी महासरोवरको मथन करके नील पाण्डुर और लोहित वर्ण कर देता है ॥ ६ ॥ इस प्रकार व्याघ्र चर्म ओढ़े सुवर्णके तार लगे हुए छेदन भेदन मारन दारन और नष्ट भ्रष्ट तथा मथन करते हुए ॥ ७ ॥ वीरभद्र कांसमें लगी हुई अग्निके समान देवताओंमें विचारने लगे, उस २ स्थानमें महावेगसे शूल धारण कर विचरते हुए ॥८॥ उस एक वीरभद्रको सब देवता सहस्रके समान मानने लगे; इधर भद्रकाली क्रोधकर युद्धमें मत्त होगई ॥ ९ ॥ अग्नि निकालते हुए शूलसे देवताओंको युद्धमें मारने लगी; उसके साथ शिवजीके क्रोधसे उत्पन्न हुए वीरभद्र क्रोधित हुए ॥ १० ॥ धूमसे धूम्र हुए युगान्त अग्निकी प्रभाके समान भद्रकाली युद्धमें देवताओंको विद्रावित करती शोभित

महासरोवरं यद्वन्मत्तो वारणयूथपः ॥ विकुर्वन्बहुधा वर्णान्नीलपांडुरलोहितान्॥६॥ विभ्रद्व्याघ्राजिनं वासो हेमप्रवरतारकम्॥छिन्द न्भिन्दन्नुद क्लिन्दन्दारयन्प्रमथन्नपि ॥७॥व्यचरद्देवसंघेषु भद्रोऽग्निरिवः कक्षगः ॥ तत्रतत्र महावेगाच्चरंतं शूलधारिणम्॥८॥ तमेकं त्रिदशाः सर्वे सहस्रमिव मेनिरे ॥ भद्रकाली च संक्रुद्धा युद्धवृद्धमदोद्धता ॥९॥ मुक्तज्वालेन शूलेन निर्बिभेद रणे सुरान् ॥ स तया रुरुचे भद्रो रुद्रकोपसमुद्भवः ॥ १० ॥ प्रभयेव युगांताग्निश्चलया धूमधूम्रया ॥ भद्रकाली तदायुद्धे विद्युतत्रिदशाबभौ ॥ ११ ॥ कल्पे शेषानलज्वालादग्धाविश्वजगद्यथा ॥ तदा सवाजिनं सूर्यं रुद्राद्रुद्रगणाग्रणीः ॥१२॥ भद्रो मूर्ध्नि जघानाशु वाम पादेन लीलया ॥असिभिः पावकं भद्रः पट्टिशैस्तु यमं यमी॥१३॥ रुद्रान्दृढेन शूलेन मुद्गरैर्वरुणं दृढैः॥ परिघैर्निर्ऋतिं वायुं टंकैष्टंक धरः स्वयम् ॥ ॥ १४ ॥ निर्बिभेद रणे वीरो लीलयैव गणेश्वरः ॥ सर्वान्देवगणान्सद्यो मुनीञ्छंभोर्विरोधिनः ॥ १५ ॥

हुई ॥ ११ ॥ जिस प्रकार कल्पाग्निसे जगत् नष्ट हो जाता है जिस प्रकार वह रुद्रके गणोंमें अग्रणीने घोडे सहित सूर्यपर ॥ १२ ॥ बायें चरणसे खेलसेही शिरमें प्रहार किया; तलवारसे पावक, और पट्टिशसे यमको ॥ १३ ॥ दृढ शूलसे रुद्रोंको, मुद्गरसे वरुणको, परिघसे निर्ऋतिको, टंकसे वायुको, उस टंकधरने प्रहार किया ॥ १४ ॥ इस प्रकार उस गणेश्वरने लीलासेही सबको विदीर्ण किया; जो शिवजीसे विरोध करने वाले थे उन सबको नष्ट किया ॥ १५ ॥

तब सरस्वतीके शोभायमान नासिकाके अग्रभागको और देवताओंकी माता अदितिके हाथके अग्रभाग छेदन करदिये ॥ १६ ॥ इस प्रकार अग्निकी भुजा कुठारसे काटडाली और अग्निकी दो अंगुल जिह्वाको छेदन कर हविमें डालदिया ॥१७॥ और वीरभद्रने इसी प्रकार स्वाहादेवीके दक्षिण नासापुटको काट लिया और वायें स्तनका चूचुक काट लिया ॥ १८ ॥ और देवताके भग कमलपत्रके समान बडे वेगसे वीरभद्रने नेत्र उखाड डाले ॥ १९ ॥ और पूषादेवताकी मुक्तावलीके समान दांतोंकी पंक्ति धनुषकी कोटिसे तोड डाली, इस कारण वह स्पष्ट वचन बोलनेमें असमर्थ होगये ॥ २० ॥ फिर चन्द्रमा देवताको चरणके अंगूठेसे ही लीलासे कीटके समान पृथ्वीमें घुमाने लगे ॥ २१ और फिर दक्षका

ततो देवः सरस्वत्या नासिकाग्रं सुशोभनम्॥चिच्छेद करजाग्रेण देवमातुस्तथैव च॥१६॥चिच्छेद च कुठारेण बाहुदंडं विभावसोः॥ अग्रतो ह्यंगुलां जिह्वां मातुर्देव्या लुलाव च ॥१७॥ स्वाहादेव्यास्तथा देवो दक्षिणं नासिकापुटम् ॥ चकर्त करजाग्रेण वामं च स्तनचूचुकम् ॥१८॥ भगस्य विपुले नेत्रे शतपत्रसमप्रभे ॥ प्रसह्योत्पाटयामास भद्रः परमवेगवान्॥१९॥पूष्णो दशनरेखां च दीप्तां मुक्तावलीमिव ॥ जघान धनुषः कोट्या स तेनास्पष्टवागभूत्॥२०॥ततश्चंद्रमसं देवः पादांगुष्ठेन लीलया ॥ क्षणं कृमिवदाक्रम्य घर्षयामास भूतले॥२१॥ शिरश्चिच्छेद दक्षस्य भद्रः परमकोपतः॥क्रोशंत्यामेव वैरिण्यां भद्रकाल्यै ददौ च तत् ॥२२॥ तत्प्रहृष्टा समादाय शिरस्तालफलोपमम्॥सा देवी कंदुककीडां चकार समरांगणे ॥२३॥ ततो दक्षस्य यज्ञस्त्री कुशीला भर्तृभिर्यथा ॥पादाभ्यां चैव हस्ताभ्यां हन्यते स्म गणेश्वरैः॥२४॥अरिष्टनेमिने सोम धर्म चैव प्रजापतिम् ॥ बहुपुत्रं चांगिरसं कृशाश्वं कश्यपं तथा ॥ २५ ॥ गले प्रगृह्य बलिनो गणपाः सिंहविक्रमाः ॥ भर्त्सयंतो भृशं वाग्भिर्निर्जघ्नुर्मूर्ध्नि मुष्टिभिः ॥ २६ ॥

शिर वीरभद्रने छेदन कर डाला, वैरिणी दक्षपत्नीके हाहाकार करनेपरभी उस शिरको भद्रकालीको दिया ॥ २२ ॥ उसने तालफलके समान वह शिर लेकर बडा आनन्द माना उस शिरसे देवी उस समरमें गेंदका खेल करने लगी ॥ २३ ॥ तब कुशीला स्त्रीके समान दक्षकी स्त्री हाथ और पैरोंसे गणेश्वरोंसे ताडित होने लगी ॥ २४ ॥ अरिष्टनेमि सोम धर्म और प्रजापतिको बहुत पुत्रवाले अंगिरस भृशाश्व कश्यप इन ऋषियोंका ॥ २५ ॥ सिंहके समान महाबली गण गला पकडकर वाणीसे भर्त्सना करते और शिरमें घूंसे मारने लगे ॥ २६ ॥

भूत वेतालोंसे धर्षित हुए स्त्री पुत्र और कुटुम्ब ऐसे व्याकुल हुए जैसे कलियुगमें जार बलसे कुलस्त्रियोंको नष्ट करते हैं ॥ २७ ॥ वह कलाओंके टूटने और स्तम्भोंके भग्न होनेसे आनन्दहीन स्थान होगया, महाशाला जलने लगी द्वारेकी तोरण तोड डाली गई ॥ २८ ॥ देवताओंकी सेना छिन्न भिन्न और तपस्वी ताडित हुए, वेदके शब्दसे शान्त मनुष्योंसे हीन ॥ २९ ॥ आतुर स्त्रियोंसे क्रन्दमान सम्पूर्ण यज्ञ सम्भारसे हीन वह नष्ट भ्रष्ट हुआ यज्ञस्थान शून्य वनके समान होगया ॥ ३० ॥ शूलके वेगसे नष्ट हो किसीकी बाहु किसीकी छाती नष्ट होगई कोई कोई शिर टूटनेसे पृथ्वीपर गिरपडे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार सहस्रों देवताओंके पतित होनेमें गणेश क्षणमात्रमें यज्ञस्थानमें आये जहाँ

धर्षिता भूतवेतालैर्दारास्सुतपरिग्रहाः॥यथा कलियुगे जारैर्बलेन कुलयोषितः ॥२७॥ तच्च विध्वस्तकलशं भग्नयूपं गतोत्सवम् ॥ प्रदीपितमहाशालं प्रभिन्नद्वारतोरणम् ॥२८॥ उत्पाटितसुरानीकं हन्यमानं तपोधनम् ॥ प्रशान्तब्रह्मनिर्घोषं प्रक्षीणजनसंचयम् ॥२९॥ क्रन्दमानातुरस्त्रीकं हताशेषपरिच्छदम्॥शून्यारण्यनिभं जज्ञे यज्ञवाटं तदार्दितम् ॥३०॥ शूलवेगप्ररुग्णाश्च भिन्नबाहूरु वक्षसः॥विनिकृत्तोत्तमांगाश्च पेतुरुर्व्यां सुरोत्तमाः॥३१॥हतेषु तेषु देवेषु पतितेषुः सहस्रशः ॥ प्रविवेश गणेशानः क्षणादाहवनी यकम् ॥३२॥ प्रविष्टमथ तं दृष्ट्वा भद्रं कालाग्निसंनिभम्॥दुद्राव मरणाद्भीतो यज्ञो मृगवपुर्धरः ॥३३॥ स विस्फार्य्य महच्चापं दृढज्याघोषणभीषणम्॥ भद्रस्तमभिदुद्राव विक्षिपन्नेव सायकान् ॥३४॥आकर्णपूर्णमाकृष्टं धनुरम्बुदसंनिभम् ॥ नादयामास च ज्यां द्यां खं च भूमिं च सर्वशः॥३५॥तमुपश्रुत्य सन्नादं हतोऽस्मीत्येव विह्वलम्॥शरणार्धेन वक्रेण स वीरोऽध्वरपूरुषम् ॥३६॥

अग्नि प्रज्वलित होगई थी ॥ ३२ ॥ उन कालाग्निके समान रुद्रको प्रवेश कराता हुआ देखकर यज्ञ मरणके भयसे मृगरूप धारण कर पलायन कर गया ॥३३॥ तब वह दृढ धनुषको धारण कर बाण छोडते हुए वीरभद्र उसके पीछे हुए ॥३४॥ जिस समय मेघके समान धनुष कर्णपर्यन्त खैंचा उस शब्दसे दिशा और भूमि शब्दायमान होगई ॥ ३५ ॥ उस शब्दको सुनकर मैं मरा यह कहकर यज्ञ विह्वल होगया, जब वीरभद्रने अर्द्धचन्द्र बाणसे मृगरूपसे धावमान होते हुए ॥ ३६ ॥

महाभयसे चरणस्खलित होते कम्पायमान होते कांतिहीन यज्ञपुरुषका शिर छेदन कर दिया ॥ ३७ ॥ इस प्रकार तब यज्ञपुरुषकी यह प्रथम अवज्ञा देख विष्णुजी महाक्रोधकर युद्ध करनेको उद्यत हुए ॥ ३८ ॥ तब उनको सब पक्षियोंका राजा सर्पभोजी गरुडजी बडे वेगसे शिर झुकाय वहन करने लगे ॥ ३९ ॥ और इन्द्र आदि देवता जो मरनेसे शेष रहे थे वे सब विष्णुकी प्राणपनसे सहाय करने लगे ॥ ४० ॥ वीरभद्रने विष्णुके साथ उन देवताओंको देख गीदडके समान लघु जान निर्भय हो स्वयं सिंहके समान उनका हास्य किया ॥ ४१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे देवदण्डवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ उसी समय आकाशमें एक रथ प्रगट हुआ,

महाभयस्खलत्पादं वेपन्तं विगतत्विषम् ॥मृगरूपेण धावन्तं विशिरस्कं तदाकरोत् ॥३७॥ तमीदृशमवज्ञातं दृष्ट्वा वै सूर्यसंभवम् ॥ विष्णुः परमसंक्रुद्धो युद्धायाभवदुद्यतः ॥३८॥ तमुवाह महावेगात्स्कन्धेन नतसंधिना॥सर्वेषां वयसां राजा गरुडः पन्नगाशनः॥३९॥देवाश्च हतशिष्टा ये देवराजपुरोगमाः ॥ प्रचक्रुस्तस्य साहाय्यं प्राणांस्त्यक्तुमिवोद्यताः ॥४०॥विष्णुना सहितान्देवान्मृगेन्द्रः क्रोष्टुकानिव॥ दृष्ट्वा जहास भूतेन्द्रो मृगेन्द्र इव विव्यथः॥४१॥इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे देवदंडवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥२१॥तस्मिन्नवसरे व्योम्नि समाविरभवद्रथः ॥ सहस्रसूर्यसंकाशश्चारुचीरवृषध्वजः ॥१॥ अश्वरत्नद्वयोदारो रथचक्रचतुष्टयः॥सञ्चितानेकदिव्यास्त्रशस्त्ररत्नपरिष्कृतः ॥२॥ तस्यापि रथवर्यस्य स्यात्स एव हि सारथिः ॥ यथा च त्रैपुरे युद्धे पूर्वं शार्वरथे स्थितः ॥ ३ ॥ स तं रथवरं ब्रह्मा शासनादेव शूलिनः ॥ हरेस्समीपमानीय कृताञ्जलिरभाषत ॥ ४ ॥ भगवन्भद्र भद्रांग भगवानिन्दुभूषणः ॥ आज्ञापयति वीरस्त्वां रथमारोढुमव्ययः ॥ ५ ॥

सहस्र सूर्यके समान उसका प्रकाश सुन्दर वीर वृषकी ध्वजासे युक्त ॥ १ ॥ दो श्रेष्ठ घोडे उसमें जुते हुए तीक्ष्ण चार पहिये अनेक दिव्य अस्त्रोंसे भरा और रत्नोंसे युक्त ॥ २ ॥ इस रथके ऊपर वही ब्रह्मा सारथि हुए थे ॥ ३ ॥ ब्रह्मा शिवजीकी आज्ञासे उस रथको लेकर विष्णुजीके निकट लाये हाथ जोडकर वीरभद्रसे बोले ॥ ४ ॥ हे भगवन् वीरभद्र ! कल्याणयुक्त इन्दुभूषण भगवान् अविनाशी शिवने आपको रथपर चढनेकी आज्ञा की है ॥ ५ ॥

और रैभ्यके आश्रयके समीप पार्वतीके सहित शिवजी हे महाबाहो ! आपका दुःसह पराक्रम देखते हैं ॥ ६ ॥ रणकुंजर वह वीर ब्रह्माके यह वचन सुनकर पितामहसे अनुगृहीत हो उस दिव्य रथपर चढे ॥ ७ ॥ जब उस श्रेष्ठ रथपर ब्रह्मा सारथि स्थित हुए तब वीरभद्रकी शोभा त्रिपुरारी के समान बढने लगी ॥ ८ ॥ तब चन्द्रमा और कुन्दके समान उज्ज्वल अपना दीप्तिमान् शंख महाबली भानुकम्पने मुखपर रख कर बजाया ॥ ९ ॥ उस शंखका सागरके समान महा शब्द सुनतेही देवताओंकी जठरानल भयसे बल उठी ॥ १० ॥ यक्ष, विद्याधर, सर्प, सिद्ध, वह युद्ध देखनेको क्षणमात्रमें स्थित हुए जिससे आकाश भर गया ॥ ११ ॥ तब नारायणने शार्ङ्गधनुष चढाकर बाणोंकी धारसे

रैभ्याश्रमसमीपस्थरुयंबकोऽबिकया सह॥सम्पश्यते महाबाहो दुस्सहं ते पराक्रमम् ॥६॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स वीरो गणकुञ्जरः ॥ आरुरोह रथं दिव्यमनुगृह्य पितामहम्॥७॥तथा रथवरे तस्मिन्स्थिते ब्रह्मणि सारथौ॥ भद्रस्य ववृधे लक्ष्मी रुद्रस्येव पुरद्विषः ॥८॥ ततः शंखवरं दीप्तं पूर्णचंद्रसमप्रभम् ॥ प्रदध्मौ वदने कृत्वा भानुकंपो महाबलः ॥९॥ तस्य शंखस्य तं नादं भिन्नसारससन्निभम्॥श्रुत्वा भयेन देवानां जज्वाल जठरानलः॥ १० ॥यक्षविद्याधराहीन्द्रैः सिद्धैर्युद्धदिदृक्षुभिः ॥क्षणेन निबडीभूताः साकाशविवरा दिशः ॥११॥ ततः शार्ङ्गेण चापाङ्कात्स नारायणनीरदः ॥ महता बाणवर्षेण तुतोद गणगोवृषम् ॥१२॥ तं दृष्ट्वा विष्णुमायांतं शतधा बाणवर्षिणम् ॥ स चाददे धनुर्जैत्रं भद्रो बाणसहस्रमुक् ॥ १३॥ समादाय च तद्दिव्यं धनुस्समरभैरवम् ॥ शनैर्विस्फारयामास मेरुं धनुरिवेश्वरः ॥१४॥ तस्य विस्फार्य्यमाणस्य धनुषोऽभून्महास्वनः ॥ तेन स्वनेन महता पृथिवीं समकंपयत् ॥ १५ ॥ ततः शरवरं घोरं दीप्तमाशीविषोपमम् ॥ जग्राह गणपः श्रीमान्स्वयमुग्रपराक्रमः ॥ १६ ॥

उस वीरभद्रको व्याकुल करना प्रारम्भ किया ॥ १२ ॥ सैकडों बाण छोडते हुए विष्णुको आता देख वीरभद्रने सहस्र बाण छोडने वाला जैत्र धनुष धारण किया ॥ १३ ॥ और उस दिव्य समरमें भयंकररूप धारण कर शनैः शनैः धनुषको विस्फारण करने लगा मानो ईश्वर धनुषके समान मेरु धारण करते हैं ॥ १४ ॥ उसके धनुष चढानेका महाशब्द हुआ, जिस शब्दसे पृथ्वी कांप गई ॥ १५ ॥ तब दीप्तिमान् सर्पके समान भयंकर बाण बडे पराक्रमी श्रीमान् गणराजने ग्रहण किया ॥ १६ ॥

बाण निकालनेमें उनकी भुजा और तरकसकी ओर वीरभद्रका मुख था, तब यह विदित होता था मानो बिलमेंसे महासर्प निकलनेकी इच्छा करते हैं ॥ १७ ॥ वह उस समय उनके हाथमें निकाला हुआ बाण महा शोभित हुआ, जैसे बालसर्प महासर्पसे पकडा हो ॥ १८ ॥ रुद्रके समान पराक्रमी वीरभद्रने महातीक्ष्णबाणसे क्रोधकर विष्णुके ललाटमें आघात किया ॥ १९ ॥ इस प्रकार ललाटमें ताडित हो पूर्वसे अवमानित हुए विष्णु वीरभद्र पर क्रोधित हुए, जैसे सिंहपर वृषभ क्रोधित हो ॥ २० ॥ तब विष्णुने वज्रके समान कठिन बाणसे इन गणराजकी भुजंग राजके समान महा भुजाओंमें आघात किया ॥ २१ ॥ तब वीरभद्रनेभी सूर्यके समान प्रकाशमान अपनी भुजासे शीघ्रगामी बाण छोडा ॥

बाणोद्धारे भुजो ह्यस्य तूणीवदनसंगतः ॥ प्रत्यदृश्यत वल्मीकं विवेक्षुरिव पन्नगः॥१७॥समुद्धृतः करे तस्य तत्क्षणं रुरुचे शरः॥ महाभुजंगसंदष्टो यथा बालभुजङ्गमः॥१८॥शरेण घनतीव्रेण भद्रो रुद्रपराक्रमः॥विव्याध कुपितो गाढं ललाटे विष्णुमव्ययम्॥ ॥१९॥ ललाटेऽभिहतो विष्णुः पूर्वमेवावमानितः॥ चुकोप गणपेंद्राय मृगेंद्रायेव गोवृषः ॥२०॥ ततस्त्वशनिकल्पेन क्रूरास्येन महेषुणा ॥ विव्याध गणराजस्य भुजे भुजगसन्निभे ॥२१॥ सोऽपि तस्य भुजे भूयः सूर्यायुतसमप्रभम् ॥ विससर्ज शरं वेगाद्वीरभद्रो महाबलः॥२२॥स च विष्णुः पुनर्भद्रं भद्रो विष्णुं तथा पुनः ॥ स च तं स च तं विप्राश्शरैस्तावनुजघ्नतुः ॥ २३ ॥ तयोः परस्परं वेगाच्छरानाशु विमुंचतोः ॥ द्वयोस्समभवद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥२४॥ तद्दृष्ट्वा तुमुलं युद्धं तयोरेव परस्परम् ॥ हाहाकारो महा नासीदाकाशे खेचरेरितः ॥२५॥ ततस्त्वनलतुंडेन शरेणादित्यवर्चसा ॥ विव्याध सुदृढं भद्रो विष्णोर्महति वक्षसि ॥ ॥२६॥ स तु तीव्रप्रपातेन शरेण दृढमाहतः ॥ महतीं रुजमासाद्य निपपात विमोहितः ॥ २७ ॥

॥ २२ ॥ इस प्रकार विष्णु वीरभद्रको वीरभद्र विष्णुको बाणोंसे परस्पर ताडित करने लगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार परस्पर महावेगसे बाण छोडते हुए उनका महा भयंकर रोमहर्षण युद्ध होने लगा ॥ २४ ॥ उन दोनों जयकी इच्छा करनेवालोंका भयंकर युद्ध देखकर आकाशगामी जीवोंका महा हाहाकार होने लगा ॥ २५ ॥ तब अग्नि और सूर्यके समान तेजवाले बाणसे वीरभद्रने विष्णुकी छातीमें आघात किया ॥ २६ ॥ तब विष्णुजी उस बाणके महातीक्ष्ण आघातसे दृढजीवित हो कर भी मोहित हो पृथ्वीमें गिरे ॥ २७ ॥

फिर एक क्षणमात्रमें संज्ञाको प्राप्त हो विष्णुजी उठे, वीरभद्रके ऊपर सब दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करने लगे ॥ २८ ॥ वीरभद्रने विष्णुके धनुषसे छूटे हुए उन सब अस्त्रोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे एक साथ निवारण कर दिया ॥ २९ ॥ तब विष्णुने अपने नामसे अंकित जो कहीं भी हत न हुआ ऐसा बाण क्रोधसे लाल नेत्रकर वीरभद्रके ऊपर छोडा वीरभद्रने उस बाणको अपने भद्रनाम बाणसे ॥ ३० ॥ विदीर्ण कर उसके सौ खण्ड कर दिये; और अपने निकट आने न देकर मार्गमें नष्ट कर दिया फिर एक बाणसे शार्ङ्गधनुष, दो बाणोंसे गरुडको ॥ ३१ ॥ एक निमेषान्तरमें छेदन कर दिया यह बात अद्भुत हुई, तब विष्णु भगवानने योगबलसे अपने शरीरसे बड़े दारुण ॥ ३२ ॥

पुनः क्षणादिवोत्थाय लब्धसंज्ञस्तदा हरिः ॥ सर्व्याण्यपि च दिव्यास्त्राण्यथैनं प्रत्यवासृजत् ॥२८॥ स च विष्णुर्धनुर्मुक्तान्सर्वाञ्छर्व चमूपतिः ॥ सहसा वारयामास घोरैः प्रतिशरैः शरान् ॥२९॥ ततो विष्णुस्स्वनामांकं बाणमव्याहतं क्वचित् ॥ ससर्ज क्रोधरक्ताक्षस्तमुद्दिश्य गणेश्वरम् ॥ तं बाणं बाणवर्येण भद्रो भद्राह्वयेण तु ॥३०॥ अप्राप्तमेव भगवाञ्चिच्छेद शतधा पथि ॥ अथैकेनेषुणा शार्ङ्गं द्वाभ्यां पक्षौ गरुत्मतः ॥३१॥ निमेषादेव चिच्छेद तदद्भुतमिवा भवत् ॥ ततो योगबलाद्विष्णुर्देहादेवान्सुदारुणान् ॥३२॥

शंखचक्रगदाहस्तान् विससर्ज सहस्रशः ॥ सर्वांस्तान्क्षणमात्रेण त्रैपुरानिव शंकरः ॥३३॥ निर्ददाह महाबाहुर्नेत्रसृष्टेन वह्निना ॥ ततः क्रुद्धतरो विष्णुश्चक्रमुद्यम्य सत्वरः ॥ ३४ ॥ तस्मिन्वीरो समुत्स्रष्टुं तदानीमुद्यतोऽभवत् ॥ तं दृष्ट्वा चक्रमुद्यम्य पुरतः समुपस्थितम् ॥३५॥ स्मयन्निव गणेशानो व्यष्टंभयदयत्नतः ॥ स्तंभितांगस्तु तच्चक्रं घोरमप्रतिमं क्वचित् ॥३६॥ इच्छन्नपि समुत्स्रष्टुं न विष्णुरभवत्क्षमः ॥ श्वसन्निवैकमुद्धृत्य बाहुं चक्रसमन्वितम् ॥ ३७ ॥

शंख चक्र गदा धारण किये सहस्रों देवता उत्पन्न किये जिस प्रकार शिवने त्रिपुरका दाह किया था इस प्रकार क्षणमें वीरभद्रने ॥ ३३ ॥ नेत्राग्निसे उनको भस्म कर दिया; तब क्रोध कर विष्णु भगवानने चक्र धारण किया ॥ ३४ ॥ और उस वीरके ऊपर छोडनेकी इच्छा की उस चक्रको अपने सामने स्थित देख ॥ ३५ ॥ वीरभद्र हँसते हुए यत्न विनाही स्थित रहे, वह महाघोर चक्र जिसकी समान कोई नहीं था; उसे धारण करतेही विष्णुका अंग स्तंभित होगया ॥ ३६ ॥ और इच्छा करके भी उस चक्रके छोडनेको समर्थ न हुए शब्द करते हुए एक

भुजासे उस चक्रको उठाये ॥ ३७ ॥ विष्णुजी आलसयुक्त हो पाषाणके समान निश्चल हुए, जैसे शरीररहित जीव शृंगरहित बैल ॥ ३८ ॥ डाढरहित जैसे सिंह इसी प्रकारसे विष्णुजी स्थित हुए, इन्द्रादि देवता विष्णुजीको ऐसी दशामें देख वीरभद्रसे ऐसे बद्ध होगये जैसे वृषभ सिंहसे बद्ध हो जाते हैं ॥ ३९ ॥ परन्तु क्रोधकर फिर आयुधले वीरभद्रके सन्मुख हुए; इन्हें सिंहके समान वीरभद्रने क्षुद्र मृगों के समान देखकर ॥ ४० ॥ साक्षात् शिवजीके शरीररूप वीरने अपने गणोंसे व्याप्त होकर घोर अट्टहाससे उनको स्तम्भित कर दिया ॥ ४१ ॥ उस समय वज्रसहित इन्द्रका दहिना हाथ वज्र छोडनेकी इच्छा करते ही चित्रके समान होगया ॥ ४२ ॥ और सबकी भी भुजा आयुध उठाये

अतिष्ठदलसो भूत्वा पाषाण इव निश्चलः ॥विशरीरो यथा जीवो विशृङ्गो वा यथा वृषः॥३८॥विदंष्ट्रश्च यथा सिंहस्तथा विष्णुरव स्थितः ॥ तं दृष्ट्वा दुर्दशापन्नं विष्णुमिंद्रादयः सुराः ॥समुन्नद्धा गणेन्द्रेण मृगेंद्रेणेव गोवृषाः॥३९॥प्रगृहीतायुधा योद्धुंकुद्धाःसमुपतस्थिरे ॥ तान्दृष्ट्वा समरे भद्रःक्षुद्रानिव हरिर्मृगान् ॥४०॥साक्षाद्रुद्रतनुर्वीरो वरवीरगणावृतः॥अट्टहासेन घोरेण व्याप्तंभयदनिदितः ॥ ४१ ॥ तथा शतमखस्यापि सवज्रो दक्षिणः करः ॥ सिसृक्षोरेव उद्वज्रश्चित्रीकृत इवाभवत्॥४२॥ अन्येषामपि सर्वेषां सरक्ता अपि बाहवः ॥ अलसानामिवारंभास्तादृशाः प्रतियांत्युत॥४३॥ एवं भगवता तेन व्याहताशेषवैभवात् ॥ अमराःसमरे तस्य पुरतः स्थातुमक्षमाः ॥४४॥स्तब्धैरवयवैरेव दुद्रुवुर्भयविह्वलाः॥स्थितिं च चक्रिरे युद्धे वीरतेजोभयाकुलाः॥४५॥ विद्रुतां स्त्रिदशान्वीरान्वीरभद्रो महाभुजः॥विव्याध निशितैर्बाणैर्मघो वर्षैरिवाचलान्॥४६॥बहवस्तस्य वीरस्य बाहवःपरिघोपमाः॥शस्त्रैश्चकाशिरेदीप्तैःसाग्निज्वालाइवोरगाः॥४७अस्त्रशस्त्राण्यनेकानिसवीरो विसृजन्बभौ॥विसृजन्सर्वभूतानि यथादौ विश्वसंभवः॥४८॥

हुए आलसी पुरुषोंके समान स्तम्भित होगई ॥ ४३ ॥ इस प्रकार भगवान् वीरभद्रने उनके ऐश्वर्य नष्ट कर दिये; तब युद्धमें देवता उनके सामने खडे न होसके ॥ ४४ ॥ और स्तब्ध अंग होजानेसे भयसे व्याकुल हो पलायमान करने लगे ॥ ४५ ॥ महाभुजावाले वीरभद्रने उनको पलायमान करता देख उनको तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया, जैसे मेघ वर्षासे पर्वतोंको ताडित करता है ॥ ४६ ॥ उस वीरकी परिघके समान अनेक भुजा दीप्त अस्त्रोंसे प्रकाश करने लगीं; जैसे अग्निकी ज्वालासहित सर्प हों ॥ ४७ ॥ वह वीर अनेक अस्त्र शस्त्र वर्षा

करते शोभित हुए; जिस प्रकार प्रथम सब प्राणियोंको उत्पन्न करते ब्रह्माजी शोभित होते हैं ॥ ४८ ॥ जैसे किरणोंसे सूर्य पृथ्वीको आच्छादन करता है, इसी प्रकार क्षणमात्रमें उस वीरने दिशाओंको आच्छादन कर दिया ॥ ४९ ॥ आकाशमें उन वीरभद्रके सुवर्णभूषित बाण ऊपरको जाते हुए बिजलीके समान शोभित हुए ॥ ५० ॥ वे बडे बाण उनको लग कर इस प्रकार रुधिर पानकर प्राणोंसे हीन करनेलगे जैसे मेंडकोंको सर्प भक्षण करते हैं ॥ ५१ ॥ किसीका मुख, किसीकी भुजा, किसीके पार्श्वभाग कटकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ५२ ॥ बाणोंसे मथित शरीर बाहु और शरीरकी संधि भिन्न होनेसे आंखें फैलाये हुए कोई पृथ्वीमें गिर पडे पृथ्वीमें प्रवेश करनेकी इच्छावाले आकाशमें जानेकी

यथा रश्मिभिरादित्यः प्रच्छादयति मेदिनीम् ॥ तथा वीरः क्षणादेव शरैः प्राच्छादयद्दिशः ॥४९॥ खमंडले गणेन्द्रस्य शराः कनकभूषिताः ॥ उत्पतंतस्तडिद्रूपैरुपमानपदं ययुः ॥५०॥ महांतस्ते सुरगणान् मंडूकानिवडुंडुभाः ॥ प्राणैर्वियोजयामासुः प पुश्च रुधिरासवम् ॥ ५१ ॥ निकृत्तबाहवः केचित्केचिल्लूनवराननाः ॥ पार्श्वे विदारिताः केचिन्निपेतुरमरा भुवि ॥ ५२ ॥ विशिखोन्मथितैर्गात्रैर्बहुभिश्छिन्नसन्धिभिः ॥ विवृत्तनयनाः केचिन्निपेतुर्भूतले मृताः ॥ गां प्रवेष्टुमिवेच्छंतः खं गंतुमिव लिप्सवः ॥ ५३ ॥ अलब्धात्मनिरोधानां व्यलीयंतः परस्परम् ॥ भूमौ केचित्प्रविविशुः पर्वतानां गुहाः परे ॥ ५४ ॥ अपरेज ग्मुराकाशं परे च विविशुर्जलम् ॥ तथा संछिन्नसर्वांगैस्स वीरस्त्रिदशैर्बभौ ॥ ५५ ॥ परिग्रस्तप्रजावर्गो भगवानिव भैरवः ॥ दग्धत्रिपुरसंव्यूहस्त्रि पुरारिर्यथाभवत् ॥ ५६ ॥ एवं देवबलं सर्वं दीनं बीभत्सदर्शनम् ॥ गणेश्वरसमुत्पन्नं कृपणं वपुराददे ॥ ५७ ॥ तदा त्रिदशवीराणामसृक्सलिलवाहिनी ॥ प्रावर्तत नदी घोरा प्राणिनां भयशंसिनी ॥ ५८ ॥

इच्छावाले ॥ ५३ ॥ कहीं अपनी रक्षा न पानेसे परस्पर अन्तर्धान हो गये कोई पृथ्वीमें प्रवेश कर गये, कोई पर्वतकी गुहामें ॥ ५४ ॥ कोई आकाशमें और कोई जलमें प्रवेश कर गये, इस प्रकार देवताओंके अंग छेदनकर वीरभद्र शोभित हुआ ॥ ५५ ॥ जिस प्रकार भगवान् भैरव प्रजा संहार कर शोभित होते हैं, अथवा जैसे त्रिपुरको भस्मकर भगवान् शंकर शोभित हुए थे ॥ ५६ ॥ इस प्रकारसे देवताओंकी सब सेना दीन और भयंकर दर्शनवाली होगई; और गणेश्वरके किये हुए दीन शरीरको धारण किया ॥ ५७ ॥ तब उन देवताओंके शरीरसे

प्राणियोंको भय देनेवाली घोर रुधिर नदी प्रवाहित हुई ॥ ५८ ॥ तब यज्ञभूमि रुधिरसे व्याप्त होगई, जैसे शुम्भको मारकर लाल वस्त्र धरे काली शोभित होती है ॥ ५९ ॥ उस बडे भयंकर संग्रामके होनेसे भयसे व्याकुल हो पृथ्वी चलायमान होगई ॥ ६० ॥ महालहरोंमें गम्भीर आवर्तसे समुद्र भी चलायमान हुआ; उस समय उल्कापात और वृक्षोंकी शाखा टूटने लगीं ॥ ६१ ॥ सब दिशा धूलिमयी और कर्कश पवन चलने लगी, अहो ! यह अश्वमेध विधिहीन हुआ ॥ ६२ ॥ जिसमें स्वयं ब्रह्माके पुत्र दक्ष प्रजापति यजमान और धर्मादिक सभासद और भगवान् गरुडध्वज रक्षा करनेवाले साक्षात् इन्द्रादिक देवता भागके ग्रहण करनेवाले हैं ॥ ६३ ॥ तथापि यजमानका

रुधिरेण परिक्लिन्ना यज्ञभूमिस्तदा बभौ ॥ रक्तार्द्रवसना श्यामा हतशुंभेव कौशिकी ॥ ५९ ॥ तस्मिन्महति संवृत्ते समरे भृशदारुणे ॥ भयेनेव परित्रस्ता प्रचचाल वसुन्धरा ॥ ६० ॥ महोर्मिकलि लावर्तश्चुक्षुभे च महोदधिः ॥ पेतुश्चोल्का महोत्पा ताः शाखाश्चमुमुचुर्द्रुमाः ॥६१॥ अप्रसन्ना दिशः सर्वाः पवनश्चाशिवो ववौ ॥ अहो विधिविपर्यासस्त्वश्वमेधोयमध्वरः ॥ यज मानस्स्वयं दक्षो ब्रह्मपुत्रप्रजापतिः ॥ ६२ ॥ धर्मादयस्सदस्याश्च रक्षिता गरुडध्वजः ॥ भागांश्च प्रतिगृह्णंति साक्षादिंद्रादयः सुराः ॥ ६३ ॥ तथापि यजमानस्य यज्ञस्य च सहार्त्विजः ॥ सद्य एव शिरश्छेदस्साधु संपद्यते फलम् ॥ ६४ ॥ तस्मान्नावे दनिर्दिष्टं न चेश्वरबहिष्कृतम् ॥ नासत्परिगृहीतं च कर्म कुर्यात्कदाचन ॥६५॥ कृत्वापि सुमहत्पुण्यमिङ्गा यज्ञ शतैरपि ॥ न तत्फलमवाप्नोति भक्तिहीनो महेश्वरे ॥ ६६ ॥ कृत्वापि सुमहत्पापं भक्त्या यजति यश्शिवम् ॥ मुच्यते पातकैः सर्वैर्नात्र कार्या विचारणा ॥ ६७ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन वृथा दानं वृथा तपः ॥ वृथा यज्ञो वृथा होमः शिवनिन्दारतस्य तु ॥ ६८ ॥

यज्ञ ऋत्विजों सहित विध्वंस होकर उसका शीघ्र शिर छेदन किया गया और अनिष्ट फल मिला ॥ ६४ ॥ इस कारण अवैदिक और ईश्वरसे बहिष्कृत कार्य न करना चाहिये, तथा असतोंसे युक्त कार्य कभी भी न करना चाहिये ॥ ६५ ॥ महापुण्य कर अनेक यज्ञोंको करके भी महेश्वरमें भक्ति न होनेके कारण उसका फल नहीं मिलता है ॥ ६६ ॥ जो पाप करने उपरान्त भी भक्तिसे शिवका यजन करता है वह सब पापोंसे छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६७ ॥ बहुत कहनेसे क्या है वह दान और तप वृथा है, और होम वृथा है जिसमें

शिवकी निन्दा होती है ॥ ६८ ॥ तब नारायण, रुद्र, लोकपाल आदि देवता उस समरमेंसे वीरभद्रके महावाणीसे व्यथित हो पलायन कर गये ॥ ६९ ॥ कोई चलायमान हुआ; किसीके बाल नुच गये, कोई बैठ गये, किसीके अवयव शिथिल होगये, कोई भिन्न मुख होकर गिर गये, कोई देववीर नष्ट होगये ॥ ७० ॥ कोई देवता ऐसे व्याकुल हुए कि उनके वस्त्र आभूषण अस्त्र शस्त्र सब गिर गये और दीन होकर गिर पडे तथा मद दर्प और बल सब नष्ट होगया ॥ ७१ ॥ इस प्रकार कुपथगामी अप्रवृष्य उस दक्षके यज्ञको नष्ट करके अक्षत शरीर वीरभद्र गणोंके बीचमें ऐसे शोभित हुए जैसे ऋषभोंके बीचमें सिंह शोभित होता है ॥ ७२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां म०

ततः सनारायणकास्सरुद्राः सलोकपालास्समरे सुरौघाः ॥ गणेंद्रचापच्युतबाणविद्धाः प्रदुद्रुवुर्गाढरुजाभिभूताः ॥६९॥ चेलुः क्वचित्केचन शीर्णकेशाः सेदुः क्वचित्केचन दीर्घगात्राः॥पेतुः क्वचित्केचन भिन्नवक्त्रा नेशुः क्वचित्केचन देववीराः॥७०॥केचिच्च तत्र त्रिदशा विपन्ना विस्रस्तवस्त्राभरणास्त्रशस्त्राः॥निपेतुरुद्रासितदीनमुद्रा मदं च दर्पं च बलं च हित्वा॥७१॥ समुत्पथप्रस्थितम प्रधृष्यो विक्षिप्य दक्षाध्वरमक्षतास्त्रैः॥बभौ गणेशस्स गणेश्वराणांमध्येस्थितः सिंह इवर्षभाणाम्॥७२॥ इतिश्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे दक्षयज्ञविध्वंसवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥ वायुरुवाच॥ इति सञ्छिन्नभिन्नांगा देवा विष्णुपुरोगमाः ॥ क्षणात्कष्टां दशामेत्य त्रेसुः स्तोकावशोषिता ॥१॥त्रस्तांस्तान्समरे वीरान् देवानन्यांश्च वै गणाः ॥ प्रमथाः परमक्रुद्धा वीरभद्रप्रणोदिताः ॥ २ ॥ प्रगृह्य च तथा दोषं निगडैरायसैर्दृढैः ॥ बबन्धुः पाणिपादेषु कंधरे षूदरेषु च ॥ ३ ॥ तस्मिन्नवसरे ब्रह्मा भद्रमद्रीन्द्रजानुतम् ॥ सारथ्याल्लब्धवात्सल्यः प्रार्थयन् प्रणतोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥

वा.सं.७ पूर्वखंड. अ०२२

वा० सं० पूर्वखण्डे दक्षशिवगणयुद्धवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ वायु बोले इस प्रकार छिन्न भिन्न अंग होकर विष्णु आदि देवता क्षणमात्रमें महाकष्टको प्राप्त होकर शेष बचे हुए शोच करने लगे ॥ १ ॥ इस प्रकारसे जब वे वीर व्याकुल हुए तब उन वीरोंको देख, वीरभद्रसे प्रेरित हुए प्रमथोंने बडा क्रोध किया ॥ २ ॥ गण निज २ अपराधोंके अनुसार देवताओंको पकड कर दृढ लोहेकी जंजीरोंसे बांधने लगे, जब हाथ पैर कन्धे उदर बांधे गये ॥ ३ ॥ तब उस समय ब्रह्माजीने पार्वतीके प्रियकारी वीरभद्रसे सारथी होकर प्रिय

होनेसे प्रार्थनापूर्वक यह वचन कहे ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! अब क्रोध मत करो, यह देवता नष्ट हो चुके हैं हे सुव्रत ! अपने रुओंसे उत्पन्न हुए गणोंके सहित प्रसन्न होकर क्षमा करो ॥ ५ ॥ जब परमेष्ठी ब्रह्माजीने यह वचन कहे तब वीरभद्र ब्रह्माजीके गौरवसे शान्त हुए ॥ ६ ॥ और देवता अवकाश पाकर उस देवदेव शिवके मंत्रीके निमित्त शिरपर अंजलि धारण कर अनेक स्तुतियोंसे प्रसन्न करने लगे ॥ ७ ॥ देवता बोले, शिव शान्तस्वरूप यज्ञनाशक त्रिशूलधारीके निमित्त नमस्कार है, रुद्र भद्र रुद्रोंके पति रुद्रमूर्ति ॥ ८ ॥ कालाग्नि रुद्ररूप काल और कामदेवका शरीर हरनेवाले देवता और दुरात्मा दक्षका शिर हरने वाले ॥ ९ ॥ और दुःसह कर्म करने वाले हे वीर ! पापी दक्षके संसर्गसे

अलं क्रोधेन भगवन्नष्टाश्चैते दिवौकसः॥प्रसीद् क्षम्यतां सर्वं रोमजैस्सह सुव्रत ॥५॥ एवं विज्ञापितस्तेन ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥ शमं जगाम संप्रीतो गणपस्तस्य गौरवात्॥६॥देवाश्च लब्धावसरा देवदेवस्य मंत्रिणः॥धारयन्तोऽञ्जलीन्मूर्ध्नि तुष्टुवुर्विविधैस्तवैः॥७॥देवा ऊचुः ॥ नमः शिवाय शान्ताय यज्ञहन्त्रे त्रिशूलिने ॥ रुद्रभद्राय रुद्राणां पतये रुद्रभूतये ॥८॥ कालाग्निरुद्ररूपाय कालकामांगहारिणे॥देवतानां शिरोहन्त्रे दक्षस्य च दुरात्मनः॥९॥संसर्गादस्य पापस्य दक्षस्याकिलष्ट कर्मणः ॥शासिताः समरे वीर त्वया वयमनिन्दिता॥१०॥दग्धाश्चामी वयं सर्वे त्वत्तो भीताश्च भो प्रभो॥ त्वमेव गतिरस्माकं त्राहि नश्शरणागतान् ॥११॥ वायुरुवाच ॥ तुष्टस्त्वेवं स्तुतो देवान् विसृज्य निगडात्प्रभुः॥आनयद्देवदेवस्य समीपममरानिह ॥१२॥ देवोपि तत्र भगवानन्तरिक्षे स्थितः प्रभुः ॥ सगणः सर्वगः शर्वस्सर्वलोकमहेश्वरः ॥१३॥तं दृष्ट्वा परमेशानं देवा विष्णुपुरोगमाः॥प्रीता अपि च भीताश्च नमश्चक्रुर्महेश्वरम्॥१४॥दृष्ट्वा तानमरान्भीतान्प्रणतार्तिहरो हरः॥इदमाह महादेवः प्रहसन् प्रेक्ष्य पार्वतीम्॥१५॥

निरपराध हमारी तुम्हारी द्वारा शासना हुई ॥ १० ॥ और अब हम दग्ध होकर आपसे बहुत डर गये हैं, तुमहीं गति हमारी हो, सो हम शरणमें आयोंकी रक्षा करो ॥ ११ ॥ वायु बोले, इन देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न हो प्रभुने उनकी जञ्जीर खोलदी और देवताओंको देवके समीप लाये ॥ १२ ॥ उस समय भगवान् देवभी अन्तरिक्षमें स्थित थे, सर्वगामी गणेश्वर सर्व लोकके पति गणोंसहित ॥ १३ ॥ विष्णु आदि देवता उन परम पुरुषको देखकर प्रसन्न और भयभीत हुए प्रीतिपूर्वक नमस्कार करने लगे ॥ १४ ॥ दीनोंके दुःख दूर

करने वाले उन देवताओंको भयभीत और प्रणत देखकर पार्वतीको देख महादेवजी हँसते हुए बोले ॥ १५ ॥ महादेव बोले, हे देवताओ ! मत डरो, हमारा अपमान अब जाता रहा तुम हमारी प्रजा हो कृपा करके तुमपर अनुग्रहके निमित्त दण्डविधान किया है ॥ १६ ॥ तुम देवताओंका अपराध हमने क्षमा किया और हमारे क्रोध करने पर तुम्हारी स्थिति और जीवन नहीं हो सकता ॥ १७ ॥ वायु बोले, जब महातेजस्वी शिवजीने ऐसा कहा तब वे सब देवता भय त्याग प्रसन्न हो नृत्य करने लगे ॥ १८ ॥ तब प्रसन्न मन और हर्षसे विह्वल होकर देवता शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ १९ ॥ देवता बोले, हे देव ! आपही सब लोकके करने वाले रक्षक और संहार करनेवाले परमेश्वर

॥ महादेव उवाच ॥ माभैष्ट त्रिदशास्सर्वे यूयं वै मामिकाः प्रजाः ॥ अनुग्रहार्थमेवेह धृतो दंडः कृपालुना ॥ १६ ॥ भवतां निर्ज्जराणां हि क्षान्तोऽस्माभिर्व्यतिक्रमः ॥ क्रुद्धेष्वस्मासु युष्माकं न स्थितिर्न च जीवितम् ॥१७॥ वायुरुवाच ॥ इत्युक्तास्त्रि दशास्सर्वे शर्वेणामिततेजसा ॥ सद्यो विगतसन्देहा ननृतुर्विबुधा मुदा ॥ १८ ॥ प्रसन्नमनसो भूत्वानन्दविह्वलमानसाः ॥ स्तुतिमारेभिरे कर्तुं शंकरस्य दिवौकसः ॥ १९ ॥ देवा ऊचुः ॥ त्वमेव देवाखिललोककर्ता पाता च हर्ता परमेश्वरोऽसि ॥ क विष्णुरुद्राख्यस्वरूप भेदै रजस्तमस्सत्त्वधृतात्ममूर्त्तै ॥ २० ॥ सर्वमूर्त्ते नमस्तेऽस्तु विश्वभावन पावन ॥ अमूर्त्ते भक्तहेतोर्हि गृहीताकृतिसौख्यद ॥ २१ ॥ चंद्रोऽगदो हि देवेश कृपातस्तव शंकर ॥ निमज्जनान्मृतः प्राप सुखं मिहिरजाजलिः ॥ २२ ॥ सीमन्तिनी हतधवा तव पूजनतः प्रभो ॥ सौभाग्यमतुलं प्राप सोमवारव्रतात्सुतान् ॥ २३ ॥

हो, सत् रज तम तीन गुणोंको आश्रय कर आप ब्रह्मा विष्णु और रुद्र यह तीन मूर्ति धारण करते हो. ॥ २० ॥ हे विश्वभावन ! हे परम पवित्र सर्वमूर्त्ति ! आपको प्रणाम है, आप मूर्त्तिरहित हो हे सुखदायक ! भक्तोंके निमित्तही आप आकृति ग्रहण करते हो ॥ २१ ॥ हे शंकर ! आपकी कृपासे ही चन्द्रमा रोगरहित हुआ है और निमज्जन करके मृत हुए जाजलिने आपकी कृपासे सुख पाया ॥ २२ ॥ हे प्रभो ! सीमन्तिनी गतधवा होगई थी पर आपके पूजनके प्रभावसे अतुल सौभाग्यको प्राप्त हुई और पुत्रोंकी प्राप्ति उमादेवीके प्रभावसे

उसने की ॥ २३ ॥ हे देव ! आपने श्रीकरको अपना उत्तम पद दिया और राजाओंके भयसे आपने सुदर्शनको छुडाया ॥ २४ ॥ कृपा निधि आपने श्रीसहित मेदुरको तारा, विधवा शारदाकी कृपासे आपने सधवा किया ॥ २५ ॥ आपने भद्रायुषकी विपत्ति दूर कर उसे सुख दिया आपकी सेवासे सौमिनी संसार सागरसे मुक्त हो गई ॥ २६ ॥ विष्णुजी बोले, हे शिवजी ! आपही रज, सत्व और तमोगुणसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, यह तीन मूर्ति धारण कर जनोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे जगतकी उत्पत्ति पालन और संहार करते हो ॥ २७ ॥ आप सबके गर्वके हरनेवाले सबके तेजोंके विलासी सब विद्यादिकमें गूढ सब पर अनुग्रह करनेवाले हो ॥ २८ ॥ हे गिरीश्वर !

श्रीकराय ददौ देवः स्वीयं पदमनुत्तमम् ॥ सुदर्शनमरक्षस्त्वं नृपमंडल भीतितः ॥ ॥ २४ ॥ मेदुरं तारयामास सदारं च घृणा निधिः ॥ शारदां विधवां चक्रे सधवां क्रियया भवान् ॥ २५ ॥ भद्रायुषो विपत्तिं च विच्छिद्य त्वमदाः सुखम् ॥ सौमिनी भवबन्धाद्वै मुक्ताऽभूत्तव सेवनात् ॥ २६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ त्वं शंभो कहरीशाश्च रजस्सत्त्वतमोगुणैः ॥ कर्ता पाता तथा हर्ता जनानुग्रहकांक्षया ॥२७॥ सर्वगर्वापहारी च सर्वतेजोविलासकः ॥ सर्वविद्यादिगूढश्च सर्वानुग्रहकारकः ॥२८॥ त्वत्तः सर्वं च त्वं सर्वं त्वयि सर्वं गिरीश्वर ॥ त्राहि त्राहि पुनस्त्राहि कृपां कुरु ममोपरि ॥ २९ ॥ अथास्मिन्नन्तरे ब्रह्मा प्रणिपत्य कृतांजलिः ॥ एवं त्ववसरं प्राप्य व्यज्ञापयत शूलिने ॥ ३० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जय देव महादेव प्रणतार्ति विभंजन ॥ ईदृशेष्वपराधेषु को ऽन्यस्त्वत्तः प्रसीदति ॥ ३१ ॥ लब्धमानो भविष्यंति ये पुरा निहता मृधे ॥ प्रत्यापत्तिर्न कस्य स्यात्प्रसन्ने परमेश्वरे ॥ ३२ ॥ यदिदं देवदेवानां कृतमन्तुषु दूषणम् ॥ तदिदं भूषणं मन्ये त अंगीकारगौरवात् ॥ ३३ ॥

आपहीसे सब कुछ है तुममें ही सब स्थित है रक्षा करो रक्षा करो, हमारी कृपाकर रक्षा करो ॥ २९ ॥ उसी समय ब्रह्माजी प्रणाम कर हाथ जोड अवसर पाकर शिवजीसे कहने लगे ॥ ३० ॥ ब्रह्म बोले, हे महादेव ! दासोंके दुःख दूर करनेवाले आपकी जय हो; ऐसे अपराध करनेपर आपके सिवाय दूसरा कौन है जो प्रसन्न हो सकता है ॥ ३१ ॥ जो देवता युद्धसें मृतक हुए हैं वे फिर जी उठें, परमेश्वरके प्रसन्न होनेमें फिर किसको आपत्ति हो सकती है ॥ ३२ ॥ और हे देव ! जो यह देवताओंके अंगोंमें दूषण हुए हैं, सो आपके अंगीकारके

गौरवसे मैं इनको भूषण मानता हूं ॥ ३३ ॥ जब परमेष्ठी ब्रह्माने ऐसा कहा तब पार्वतीके मुखको देख हँसते हुए शिवजीने ब्रह्माके पुत्ररूपसे प्रार्थना करनेसे नष्ट हुआ देवताओंका शरीर फिर पूर्ववत् कर दिया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उसी समय वे विष्णु इन्द्रादिक सब देवता अपने पूर्व शरीरको प्राप्त होकर परमेश्वरको प्रणाम करने लगे, और वागीशादि देवियें जो देवमाताएँ दण्डित हुई थीं उन सबके अंग शिवजीने पूर्वके समान कर दिये ॥ ३६ ॥ और दक्षका स्वयं भगवान् ब्रह्माजीने शिवजीकी आज्ञासे बूढे छागके समान मुख कर दिया ॥ ३७ ॥ वह भी चेतनाको प्राप्त हो उठकर हाथ जोड डरके कारण अनेक वचन कहते परमेश्वरकी स्तुति करने लगा ॥ ३८ ॥ दक्षने

इति विज्ञाप्यमानस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ विलोक्य वदनं देव्या देवदेवस्स्मयन्निव ॥३४॥ पुत्रभूतस्य वात्सल्याद्ब्रह्मणः पद्मजन्मनः ॥दवादीनां यथापूर्वमंगानि प्रददौ प्रभुः ॥ ३५ ॥ प्रथमाद्यैश्च या देव्यो दंडिता देवमातरः ॥ तासामपि यथापूर्वाण्यंगानि गिरिशो ददौ ॥ ३६ ॥ दक्षस्य भगवानेव स्वयं ब्रह्मा पितामहः ॥ तत्पापानुगुणं चक्रे जरच्छागमुखं मुखम् ॥ ३७ ॥ सोऽपि संज्ञां ततो लब्ध्वा स दृष्ट्वा जीवितः सुधी ॥ भीतः कृताञ्जलिः शंभुं तुष्टाव प्रलपन्बहु ॥ ३८ ॥ दक्ष उवाच ॥ जय देव जगन्नाथ लोकानुग्रहकारक ॥ कृपां कुरु महेशानापराधं मे क्षमस्वह ॥३९॥ कर्त्ता भर्त्ता च हर्ता च त्वमेव जगतां प्रभो ॥ मया ज्ञातं विशेषेण विष्ण्वादिसकलेश्वरः ॥ ४० ॥ त्वयैव विततं सर्वं व्याप्तं सृष्टं न नाशितम् ॥ न हि त्वदधिकाः केचिदीशास्तेऽच्युतकादयः ॥ ४१ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ तं तथा व्याकुलं भीतं प्रलपंतं कृतागसम्॥ स्मयन्निवावदत्प्रेक्ष्य मा भैरिति घृणानिधिः ॥ ४२ ॥ तथोक्ता ब्रह्मणस्तस्य पितुः प्रियचिकीर्षया ॥ गाणपत्यं ददौ तस्मै दक्षायाक्षयमीश्वरः ॥ ४३ ॥

कहा हे जगत्पति लोकानुग्रह करनेवाले ! आपको जय हो, हे महेशान ! कृपाकर मेरे अपराध क्षमा करो ॥ ३९ ॥ हे प्रभो ! आपही जगत्के कर्ता भर्ता और दुःख हरनेवाले हो मैंने विशेषकर जानलिया कि आप विष्णु आदि सबके ईश्वर हो ॥ ४० ॥ आपने ही सब जगत्का विस्तार किया है, आपही उत्पत्ति और नाश करते हो, वे विष्णु आदि आपसे कोई विशेष नहीं हैं ॥ ४१ ॥ वायु बोले, इस प्रकार अपराधसे व्याकुल और डरा हुआ दक्षको देखकर हँसते हुए करुणानिधि शिवजी बोले, भय मत करो ॥ ४२ ॥ जब इस प्रकार कहा तब दक्षके

पिता ब्रह्माके प्रियकी इच्छासे शिवजीने दक्षके निमित्त अक्षय गणपतित्व प्रदान किया ॥ ४३ ॥ तब ब्रह्माजी आदि देवता हाथ जोड महादेवको प्रणाम कर नम्रवाणीसे गिरिजापति महादेवकी स्तुति करने लगे ॥४४॥ हे शंकर ! हे दीनानाथ ! हे महाप्रभो ! हे महेशान कृपाकर हमारे अपराध क्षमा करो ॥ ४५ ॥ हे यज्ञपालक ! हे यज्ञके अधिपति ! हे यज्ञके विध्वंसकर्ता ! हे महेशान ! कृपाकर हमारे अपराध क्षमा करो ॥ ४६ ॥ हे देवदेव ! हे परमेशान ! हे भक्तोंके प्राणपोषण करने वाले ! हे दुष्टोंको दण्ड देनेवाले स्वामी ! कृपा करो आपको प्रणाम है ॥४७॥ हे प्रभो ! जो दुष्ट आपको नहीं जानते उनके गर्व आप दूर करते हो और अपने भक्त सत्पुरुषोंके विषेशकर आप रक्षक हैं ॥ ४८ ॥ आपकी

ततो ब्रह्मादयो देवा अभिवंद्य कृतांजलिः॥तुष्टुवुः प्रश्रया वाचा शंकरं गिरिजाधिपम्॥४४॥ ॥ब्रह्मादय ऊचुः॥जय शंकर देवेश दीनानाथ महाप्रभो ॥ कृपां कुरु महेशानापराधं नो क्षमस्व वै ॥४५॥ मखपाल मखाधीश मखविध्वंसकारक॥कृपां कुरु महेशानापराधं नः क्षमस्व वै॥४६॥देवदेव परेशान भक्तप्राणप्रपोषक ॥ दुष्टदण्डप्रद स्वामिन्कृपां कुरु नमोऽस्तु ते ॥४७॥ त्वं प्रभो गर्वहर्ता वै दुष्टानां त्वामजानताम्॥रक्षको हि विशेषेण सतां त्वत्सक्तचेतसाम्॥४८॥ अद्भुतं चरितं ते हि निश्चितं कृपया तव॥ सर्वापराधः क्षंतव्यो विभवो दीनवत्सलाः ॥४९॥ ॥वायुरुवाच॥इति स्तुतो महादेवो ब्रह्माद्यैरमरैः प्रभुः ॥ स भक्तवत्सलस्स्वामी तुतोष करुणोदधिः ॥५०॥चकारानुग्रहं तेषां ब्रह्मादीनां दिवौकसाम् ॥ददौ नरांश्च सुप्रीत्या शंकरो दीनवत्सलः॥५१॥स च तत स्त्रिदशाञ्छरणागतान् परमकारुणिकः परमेश्वरः॥अनुगतस्मितलक्षणया गिरा शमितसर्वभयः समभाषत॥५२॥ ॥शिव उवाच॥ यदिदमाग इहाचरितं सुरैर्विधिनियोगवशादिव यन्त्रितैः ॥ शरणमेव गतानवलोक्य वस्तदखिलं किल विस्मृतमेव नः ॥५३॥

कृपासे हमने निश्चय किया है कि आपके अद्भुत चरित्र हैं, हे दीनवत्सलविभु ! आप हमारे सब अपराध नाश करो ॥ ४९ ॥ वायु बोले, जब ब्रह्मादिक देवताओंने इस प्रकारसे प्रभुकी स्तुति की तब करुणासागर भक्तवत्सल स्वामी प्रसन्न हुए ॥ ५० ॥ और उन ब्रह्मादि देवताओंपर कृपा की और दीनवत्सल शंकरने प्रेमसे उनको आया हुआ देख मनोहर हास्यभरी वाणीसे उनके सब भय दूर करके वचन कहे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ शिवजी बोले, जो यह चरित्र हुआ है सो यह दैवाधीनतासे हुआ है, क्योंकि प्रारब्धसे यह प्राणी दैवके वशमें है, तुमको शरणमें आया देख

हमने तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर दिये ॥५३॥ परन्तु तुमने यह कर्म मनमें बिना विचारे लज्जारहित होकर किया विष्णु ब्रह्मा इन्द्र आदि देवता यह सब अपने २ स्थानोंको प्रस्थान करो ॥ ५४ ॥ इस प्रकार सुरेश्वर देवताओंके प्रति यह वचन कह कर दक्षयज्ञके सम्बन्धसे रहित हो गिरिजा तथा दूसरे गणों सहित आकाशमें स्थित हो अन्तर्धान हुए ॥ ५५ ॥ तब वे देवता भी व्यथा रहित हो तथा यज्ञ भी पूर्ण शरीर हो भद्र सुभद्रका पराक्रम कहते हुए शीघ्रही सुख पूर्वक आकाश मार्गमें प्रसन्नतासे गये तथा ब्रह्मा इन्द्रादि भी गये ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ऋषि बोले, जिस समय अनुचरोंसहित शिवजी अन्तर्धान

तदिह यूयमपि प्रकृतं मनस्यविगणय्य विमर्दमपत्रपाः ॥ हरिविरिंचिसुरेन्द्रमुखास्सुखं व्रजत देवपुरं प्रति संप्रति ॥५४॥ इति सुरान भिधाय सुरेश्वरो निकृतदक्षकृतक्रतुरक्रतुः ॥ सगिरिजानुचरस्सपरिच्छदः स्थित इवाम्बरतोन्तरधाद्धरः ॥ ५५ ॥ अथ सुरा अपि ते विगतव्यथाः कथितभद्रसुभद्रपराक्रमाः ॥ सपदि खेन सुखेन यथासुखं ययुरनेकसुखाः मघवन्मुखाः ॥५६॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे गिरिशानुनयो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ ऋषय ऊचुः ॥ अन्त र्धानगतो देव्या सह सानुचरो हरः ॥ क्व यातः कुत्र वासः किं कृत्वा विरराम ह ॥ ॥ १ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ महीधरवरःश्रीमा न् मंदरश्चित्रकंदरः ॥ दयितो देवदेवस्य निवासस्तपसोऽभवत् ॥२॥ तपो महत्कृतं तेन वोढुं स्वशिरसा शिवौ ॥ चिरेण लब्धं तत्पादपंकजस्पर्शजं सुखम्॥ ॥ ३ ॥ तस्य शैलस्य सौन्दर्य्यं सहस्रवदनैरपि ॥ न शक्यं विस्तराद्वक्तुं वषकोटिर्शतैरपि ॥ ४ ॥ शक्यमप्यस्य सौन्दर्य्यं न वर्णयितुमुत्सहे ॥ पर्वतान्तरसौन्दर्य्यं साधारणविधारणात् ॥ ५ ॥

हुए, तब कहां गये और क्या करने लगे ॥१॥ वायु बोले, श्रीमान् मन्दर चित्र विचित्र धातु और कन्दराओंसे शोभित है, वह शिवजी के तप करने योग्य उनका निवासस्थान था ॥ २ ॥ उस पर्वतने शिवजीके निवास करनेके निमित्त बडा तप किया, बहुत समयके उपरान्त उसने शिवजीके चरणकमलका स्पर्श पाया ॥ ३ ॥ उस पर्वतकी सुन्दरता सहस्रमुखसे भी विस्तारपूर्वक सौ करोड वर्षमें नहीं कह सकते ॥४॥ सुमेरु पर्वत भी इसके सामने सुन्दरतामें साधारण है ॥ ५ ॥

परन्तु हाँ इतना कह सकते हैं कि यह पर्वत श्रेष्ठ ऋद्धि और सुन्दरतासे परिपूर्ण शिवजीके निवासके कारण हुआ है ॥ ६ ॥ इसी कारण शिव जीने पार्वतीके प्रियकी इच्छासे अत्यन्त सुन्दर यह पर्वत अन्तःपुररूप किया हैं ॥ ७ ॥ उसकी मेखलारूप पृथ्वी श्रेष्ठ पत्थर और वृक्ष हैं, वहां शिव सदा निवास करते हैं, इससे वह सम्पूर्ण जगत्का तिरस्कार करते हैं ॥ ८ ॥ जगत्के माता पिताको स्थान आदिके उपभोग और उनके निवासके पुण्य संस्कार पानादि देनेसे वह चारों ओर फैल रहा है ॥ ९ ॥ लघु और शीतल स्पर्शवाले निर्मल निर्झरोंके जलसे मानो पर्वतोंके अधिराज्यमें अभिषेक किया जाता है ॥ १० ॥रात्रिके समय चारों ओर फैला हुआ यह मंदरपर्वत चन्द्रमासे शोभित होता है,

इदन्तु शक्यते वक्तुमस्मिन्पर्वतसुन्दरे ॥ ऋद्ध्या कयापि सौन्दर्यमीश्वरावासयोग्यता ॥६॥ अतएव हि देवेन देव्याः प्रिय चिकीर्षया ॥ अतीव रमणीयोयं गिरिरन्तःपुरीकृतः ॥ ७ ॥ मेखलाभूमयस्तस्य विमलोपलपादपाः ॥ शिवयोर्नित्यसान्नि ध्यान्न्यक्कुर्वत्यखिलंजगत् ॥ ८॥ पितृभ्यां जगतो नित्यं स्नानपानोपयोगतः ॥ अवाप्तपुण्यसंस्कारः प्रसरद्भिरितस्ततः ॥ ९ ॥ लघुशीतलसंस्पर्शैरच्छाच्छैर्निर्झराम्बुभिः ॥ अधि राज्येन चाद्रीणामद्रीरेषोऽभिषिच्यते ॥ १० ॥ निशासु शिखर प्रान्तवर्तिना स शिलोच्चयः ॥ चन्द्रेणाचल साम्राज्यच्छत्रेणेव विराजते ॥ ११ ॥ स शैलश्चंचलीभूतैर्बालैश्चामरयोषिताम् ॥ सर्वपर्वतसाम्राज्यचामरैरिव वीज्यते ॥ १२ ॥ प्रात रभ्युदिते भानौ भूधरो रत्नभूषितः ॥ दर्पणे देहसौभाग्यं द्रष्टुकाम इव स्थितः ॥ १३ ॥ कूजद्विहंगवाचालैर्वातोद्धूतलताभुजैः ॥ विमुक्तपुष्पैः सततं व्यालम्बिमृदुपल्लवैः ॥१४॥ लताप्रतानजटिलै स्तरुभिस्तपसैरिव ॥ जयाशिषा सहाभ्यर्च्य निषेव्यत इवाद्रिराट् ॥ १५ ॥

मानो साम्राज्यका छत्र धारण किये हैं ॥ ११ ॥ वह पर्वत चंचल हुए चौरी गौओंके चमरोंसे मानो सम्पूर्ण पर्वत चामरोंसे साम्राज्यके कारण वीज्यमान होता है ॥ १२ ॥ प्रातःकाल सूर्यके उदय होनेसे रत्नोंसे भूषित वह पर्वत दर्पणमें मानो अपने देहके सौभाग्यको अवलोकन कर रहा है ॥ १३ ॥ वाचाल विहंगोंसे कूजित लतारूपी भुजाओंसे चलायमान होकर सदा फूलोंसे विमुक्त कोमल पत्तोंसे युक्त ॥ १४ ॥ लताओंके समूहोंसे व्याप्त वृक्षोंसे तपस्वियोंके समान युक्त जयके आशीर्वादसे पूजित हो मानो यह पर्वतराज स्थित है ॥ १५ ॥

ऊपर नीचेको मुखकिये शृंगोंसे व्याप्त तथा तिरछे शृंगोंसे युक्त प्रतापित होकर मानो पृथ्वीको पृष्ठसे उठाया है ॥ १६ ॥ सब दिशाओंमें व्याप्त हो मानो आकाशमें घूम रहा है, इस प्रकार मानो सब जगत्को देखता हुआसा नृत्य कर रहा है ॥ १७ ॥ गुहारूपी मुखसे प्रतिदिन जागृत होकर मानो बडे उदरोंसे युक्त है, सदा नवीन सुन्दरतासे मानो जंभाई ले रहा है ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण जगत्को ग्रास करता हुआ सागरको पीता हुआसा अपने हृदयका अन्धकार मानो उगलता हुआ मेघोंसे आकाशको भक्षण करता हुआ ॥ १९ ॥ उसके निवासकी भूमि मानो दर्पणके समान उज्ज्वल है, वृक्षोंकी छाया मनोहर छायासे श्रमके दूर करनेवाले ॥ २० ॥ नदी, सरोवर तलाव आदिके सम्पर्कसे ठंडी

अधोमुखैरूर्द्धमुखैश्शृंगैस्तिर्यङ्मुखैस्तथा॥प्रपतन्निव पाताले भूपृष्ठादुत्पतन्निव॥१६॥परीतः सर्वतो दिक्षु भ्रमन्निव विहायसि ॥ पश्यन्निव जगत्सर्वं नृत्यन्निव निरन्तरम् ॥१७॥ गुहामुखैः प्रतिदिनं व्याक्तास्यो विपुलोदरैः ॥ अजीर्णलावण्यतया जृंभमाण इवाचलः ॥ १८ ॥ ग्रसन्निव जगत्सर्वं पिबन्निव पयोनिधिम् ॥ वमन्निव तमोन्तस्थं माद्यन्निव खमम्बुदैः ॥ १९ ॥ निवास भूमयस्तास्ता दर्पणप्रतिमोदराः॥तिरस्कृतातपास्निग्धाश्रमच्छायामहीरुहाः॥२०॥सरित्सरस्तडागादिसंपर्कशिशिरानिलाः ॥ तत्र तत्र निषण्णाभ्यां शिवाभ्यां सफलीकृताः॥२१॥तमिमं सर्वतः श्रेष्ठंस्मृत्वा साम्बस्त्रियम्बकः॥रैभ्याश्रमसमीपस्थश्चान्तर्धानं गतो ययौ ॥ २२॥ तत्रोद्यानमनुप्राप्य देव्या सह महेश्वरः ॥रराम रमणीयासु दिव्यान्तःपुरभूमिषु ॥ २३ ॥ तथा गतेषु कालेषु यद्धासु प्रजासु च ॥ दैत्यौ शुंभनिशुंभाख्यौ भ्रातरौ संबभूवतुः ॥२४॥ ताभ्यां तपोबलादत्तं ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ अवध्यत्वं जगत्यस्मिन्पुरुषैरखिलैरपि ॥२५॥ अयोनिजा तु या कन्या ह्यंबिकांशसमुद्भवा ॥अजातपुंस्पर्शरतिरविलंघ्यपराक्रमा ॥ २६ ॥

पवनवाले जिधर तिधर स्थित हुए, शिवसे सफल की हुई भूमिवाले ॥ २१ ॥ ऐसे इस पर्वत श्रेष्ठको पार्वती सहित शिवजी स्मरणकर अन्तर्धान हुए ही रैभ्य आश्रममें गये ॥ २२ ॥ देवीके सहित महेश्वर उस उद्यानमें प्राप्त होकर मनोहर दिव्य अन्तःपुरकी भूमिमें रमण करने लगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार समयके बीतनेसे और प्रजाके बढनेसे शुम्भ निशुम्भनामक दो भाई उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥ ब्रह्माजीने तपस्या से यह वरदान दिया कि तुम इस जगत्में सम्पूर्ण पुरुषोंसे अवध्य होगे ॥ २५ ॥ परन्तु जो अम्बिकाके अंगसे उत्पन्न हुई अयोनिजा

कन्या है; जिसने कभी पुरुषका स्पर्श नहीं किया उसका तुम कभी उल्लंघन नहीं करना ॥ २६ ॥ यदि उसकी कामना करोगे तो युद्धमें मृत्युको प्राप्त होगे, इस प्रकार ब्रह्माके कहनेसे उन्होंने स्वीकार किया ॥ २७ ॥ तबसे युद्धमें ब्रह्मादिक देवताओंको जीत कर जगत्को वेद और वषट्कारसे रहित कर दिया ॥ २८ ॥ तब उन दोनोंके मारनेके निमित्त ब्रह्माने देवेशसे प्रार्थना करी; कि एकांतमें अम्बाकी निन्दा करके जैसे हो वैसे क्रोध उत्पन्न कराओ ॥ २९ ॥ उसके वर्ण और कोशकी शक्तिसे एक कन्या उत्पन्न करके शुम्भनिशुम्भके मारनेको देवताओंके निमित्त दीजिये ॥ ३० ॥ जब भगवान् नीललोहितकी इस प्रकार प्रार्थना करी तब हँस कर शिवजीने अम्बाकी निन्दा करते

तया तु नौ वधः संख्ये तस्यां कामाभिभूतयोः ॥ इति चाभ्यर्थितो ब्रह्मा ताभ्याम्प्राह तथास्त्विति ॥२७॥ततःप्रभृति शक्रादी न्विजित्य समरे सुरान्॥निःस्वाध्यायवषट्कारं जगच्चक्रतुरक्रमात् ॥२८॥ तयोर्वधाय देवेशं ब्रह्माभ्यर्थितवान्पुनः ॥ विनिंद्यापि रहस्यं वां क्रोधयित्वा यथा तथा ॥ २९ ॥तद्वर्णकोशजां शक्तिमकामां कन्यकात्मिकाम् ॥ निशुम्भशुंभयोर्हेत्रीं सुरेभ्यो दातुम र्हसि ॥३०॥ एवमभ्यर्थितो धात्रा भगवान्नीललोहितः॥ कालीत्याह रहस्यं वां निन्दयन्निव सस्मितः॥३१॥ततः क्रुद्धा तदा देवी सुवर्णा वर्णकारणात् ॥स्मयन्ती चाह भर्तारमसमाधेयया गिरा ॥३२॥ देव्युवाच ॥ ईदृशे मम वर्णेस्मिन्न रतिर्भवतोऽस्ति चेत्॥ एवावन्तं चिरं कालं कथमेषा नियम्यते॥३३॥अरत्या वर्तमानोऽपि कथं च रमसे मया ॥ न ह्यशक्यं जगत्यस्मिन्नीश्वरस्य जग त्प्रभोः ॥ ३४ ॥ स्वात्मारामस्य भवतो रतिर्न सुखसाधनम्॥इति हेतोः स्मरो यस्मात्प्रसभं भस्मसात्कृतः ॥ ३५ ॥

हुए काली ऐसा शब्द रहस्य समयमें उच्चारण किया ॥ ३१ ॥ तब शिवजीसे अपने वर्णकी निन्दा सुनकर देवी बहुत क्रुद्ध हुई और हँसती हुई अपने स्वामीसे समाधेय वाणीसे बोलीं ॥ ३२ ॥ जो इस प्रकारके मेरे वर्णमें आपकी प्रीति नहीं है, तो इतने महा समयसे यह बात क्यों रोक रक्खी है ॥ ३३ ॥ जब मुझमें अरुचि है तो मेरे साथ क्यों रमते हो ? हे प्रभो ! तुमको इस जगत्में तो कुछ भी अशक्य नहीं है ॥ ३४ ॥ स्वात्मामें रमण करनेवाले आपको रति सुखका साधन नहीं है, यही कारण है कि आपने कामदेवको भस्म

कर दिया ॥ ३५ ॥ जो स्त्री सर्वांग सुन्दरी भी हो यदि स्वामी उससे प्रीति न करे तो उसके सब दूसरे गुणभी वृथा हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ स्त्रियोंको यही इस लोक और परलोकमें फलदायक है कि स्वामी प्रसन्न हो; इसके अन्यथा होनेसे नारीका जन्म वृथा है ॥ ३७ ॥ इस कारण जो कि एकान्तमें आपने मेरी निन्दा की इस कारण मैं इस शरीरके वर्णको त्यागन कर दूसरे वर्णको धारण करूंगी, अथवा स्वयं न रहूंगी ॥ ३८ ॥ यह कहकर देवी रोषसे व्याप्त हो अपने आसनसे उठकर तप करनेकी इच्छासे स्वामीसे आज्ञा मांगने लगी; कारण कि स्त्री धर्मशास्त्रकी आज्ञासे स्वतंत्र नहीं है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार प्रीति भंग होनेसे स्वयं शिवजी भीत हुए; और चरणोंकी ओर प्रणाम

या च नाभिमता भर्तुरपि सर्वांगसुन्दरी ॥ सा वृथैव हि जायेत सर्वैरपि गुणान्तरैः ॥ ३६ ॥ भर्तुर्भोगैकशेषो हि सर्ग एवैष योषिताम् ॥ तथासत्यन्यथा भूता नारी कुत्रोपयुज्यते ॥३७॥ तस्माद्वर्णमिमं त्यक्त्वात्वया रहसि निन्दितम् ॥ वर्णान्तरं भजिष्ये वा न भजिष्यामि वा स्वयम् ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वोत्थाय शयनादेवी साचष्ट गद्गदम् ॥ ययाचेऽनुमतिं भर्तुस्तपसे कृतनिश्चया ॥ ३९ ॥ तथा प्रणयभंगेन भीतो भूतपतिः स्वयम् ॥ पादयोः प्रणमन्नेव भवानीं प्रत्यभाषत ॥ ४० ॥ ईश्वर उवाच ॥ अजानती चक्रीडोक्तिं प्रिये किं कुपितासि मे॥रतिः कुतो वा जायेत त्वत्तश्चेदरतिर्मम ॥ ४१ ॥ माता त्वमस्य जगतः पिताहमधिपस्तथा॥ कथं तदुपपद्येतत्वत्तो नाभिरतिर्मम ॥ ४२ ॥ आवयोरभिकामोऽपिकिमसौ कामकारितः ॥ यतः कामसमुत्पत्तिः प्रागेव जगदुद्भवः ॥ ४३ ॥ पृथग्जनानां रतये कामात्मा कल्पितो मया ॥ ततः कथमुपालब्धः कामदाहादहं त्वया ॥ ४४ ॥ मां वै त्रिदशसामान्यं मन्यमानो मनोभवः ॥ मनाक्परिभवं कुर्वन्मया वै भस्मसात्कृतः ॥ ४५ ॥

करते हुए भवानीसे कहने लगे ॥ ४० ॥ हे प्रिये ! क्रीडा विलासकी वार्ता विना जाने तुम मेरे ऊपर क्यों क्रोध करती हो; जो तुममें मेरी प्रीति नहीं है तो किसमें है ॥ ४१ ॥ तुम इस जगत्की माता और मैं पिता हूं; फिर तुममें मेरी प्रीति क्यों न हो ॥ ४२ ॥ हमारी तुम्हारी प्रीति क्या कामके निमित्त है अर्थात् नहीं है; कारण कि कामकी उत्पत्तिसे पहले ही जगत्की उत्पत्ति हुई है ॥ ४३ ॥ कामको तो मैंने पृथक् जनोंके निमित्त उत्पन्न किया है सो कामके दाहका तुमने किस प्रकारसे मुझे ताना दिया ॥ ४४ ॥ कामदेवने मुझे सामान्य देवता

जानकर थोडा तिरस्कार ज्योंही किया मैंने उसे भस्म कर दिया ॥ ४५ ॥ हमारा तुम्हारा विहार तो इस जगत्की रक्षाके निमित्त है; इस कारण जगत्की रक्षाके निमित्त मैंने विलासोक्ति कथन की ॥ ४६ ॥ सो वह कार्य शीघ्रही प्रगट हो जायगा, हे भगवति ! क्रोध मतकरो, तुमसे मेरी महान् प्रीति है; इस बातको तुम क्यों नहीं जानती हो; इस प्रकार शिवने पार्वतीको प्रसन्न भी किया परन्तु वह कालीशब्दको अपने हृदयमें धारण करके क्रोधसे यह वचन बोली ॥ ४७ ॥ देवी बोली, हे भगवन् ! मैंने आपकी लगती हुई वार्ता प्रथमही सुनली है, जिससे आपने प्रथम मुझे वंचित किया है ॥ ४८ ॥ जो स्त्री भर्ताको अप्रिय होकर अपने प्राणोंको त्यागन नहीं करती वह कुलांगनाओंमें और सत्पुरु

विहारोप्यावयोरस्य जगत्त्राणकारणात्॥ततस्तदर्थत्वय्यद्य क्रीडोक्तिं कृतवाहनम्॥४६॥ सचायमचिरादर्थस्तवैवाविष्करिष्यते॥क्रोधस्य जनकं वाक्यं हृदि कृत्वेदमब्रवीत् ॥४७॥ ॥देव्युवाच॥श्रुतपूर्वं हि भगवंस्तव चाटु वचो मया॥येनैवमतिधीराहमपि प्रागभिवंचिता ॥४८॥प्राणानप्यप्रिया भर्तुर्नारी या न परित्यजेत्॥ कुलांगना शुभा सद्भिः कुत्सितैव हि गम्यते ॥४९॥ भूयसी च तवाप्रीतिरगौरमिति मे वपुः ॥ क्रीडोक्तिरपि कालीति घटते कथमन्यथा ॥५०॥सद्भिर्विगर्हितं तस्मात्तव काष्ण्यमसंमतम् ॥ अनुत्सृज्य तपोयोगात्स्थातुमेवेह नोत्सहे॥५१॥शिव उवाच॥स यद्येवंविधतापस्ते तपसा किं प्रयोजनम्॥ममेच्छया स्वेच्छया वा वर्णान्तरवती भव ॥ ॥५२॥ ॥ देव्युवाच ॥ ॥ नेच्छामि भवतो वर्णं स्वयं वा कर्तुमन्यथा ॥ ब्रह्माणं तपसाराध्य क्षिप्रं गौरी भवाम्यहम् ॥ ५३ ॥ ईश्वर उवाच॥मत्प्रसादात्पुरा ब्रह्मा ब्रह्मत्वं प्राप्तवान्पुरा॥तमाहूय महादेवि तपसा किं करिष्यसि॥५४॥

षोंमें निन्दाको पाती है ॥ ४९ ॥ मेरा शरीर गोरा नहीं है इस कारण आपकी मुझमें प्रीति नहीं है तो फिर विलासादिमें भी 'काली' यह शब्द कैसे संगत होसकता है ॥ ५० ॥ स्त्रियोंका असत्कार सर्वथा सत्पुरुषोंने निन्दित किया है; इससे तपके योगसे इसको विना त्यागे मैं यहाँ नहीं रह सकती ॥ ५१ ॥ शिवजी बोले, जो यही इच्छा है तो तप करनेका क्या प्रयोजन है; हमारी इच्छा वा अपनी इच्छासे तुम अपना दूसरा वर्ण करलो ॥ ५२ ॥ देवी बोली मैं आपसे स्वयं अन्यथा वर्ण करनेकी इच्छा नहीं करती हूं, ब्रह्माको तपसे आराधन कर गौरी बनूंगी ॥ ५३ ॥ ईश्वर बोले; हमारीही कृपासे तो ब्रह्मा ब्रह्मत्वको प्राप्त हुए हैं. हे महादेवी तपसे उन्हे बुला कर क्या करोगी ॥ ५४ ॥

देवी बोली सब ब्रह्मादि देवताओंने आपसे यद्यपि वर पाया है तो भी आपकी आज्ञाद्वारा तपसे ब्रह्माको आराधन करके ॥ ५५ ॥ पहले मैं सतीनामक दक्षकी दुहिता हुई थी, तब भी मैंने तपसे जगत्के पति आपकोही प्राप्त किया था ॥ ५६ ॥ इसी प्रकार अब मैं उन्हे तपसे सन्तुष्ट कर गौरी होनेकी इच्छा करती हूं कहो इसमें क्या दोष है ॥ ५७ ॥ जब महादेवीने ऐसा कहा तब महादेवने हँसते हुए देवताओंकी कार्यकी इच्छासे उनको निषेध न किया ॥ ५८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ तब पति

॥ देव्युवाच ॥ त्वत्तो लब्धपदा एव सर्वे ब्रह्मादयः सुराः ॥ तथाप्याराध्य तपसा ब्रह्माणं त्वन्नियोगतः ॥ ५५ ॥ पुरा किल सती नाम्ना दक्षस्य दुहिताऽभवम् ॥ जगतां पतिमेवं त्वां पतिं प्राप्तवती तथा ॥ ५६ ॥ एवमद्यापि तपसा तोषयित्वा द्विजं विधिम् ॥ गौरी भवितु मिच्छामि को दोषः कथ्यतामिह ॥ ५७ ॥ एवमुक्तो महादेव्या वामदेवः स्मयन्निव ॥ न तां निबंधयामास देवकार्यचिकीर्षया ॥ ५८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे शिवमन्दरगिरिनिवासक्रीडोक्तिवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य पतिमम्बा पतिव्रता ॥ नियम्य च वियोगार्तिं जगाम हिमवद्गिरिम् ॥ १ ॥ तपःकृतवती पूर्वं देशे यस्मिन्सखीजनैः ॥ तमेव देशमवृणोत्तपसे प्रणयात्पुनः ॥ २ ॥ ततः स्वपितरं दृष्ट्वा मातरं च तयोर्गृहे ॥ प्रणम्य वृत्तं विज्ञाप्य ताभ्यां चानुमता सती ॥ ३ ॥ पुनस्तपोवनं गत्वा भूषणानि विसृज्य च ॥ स्नात्वा तपस्विनो वेषं कृत्वा परमपावनम् ॥ ४ ॥ संकल्प्य च महातीव्रं तपः परमदुश्चरम् ॥ सदा मनसि सन्धायभर्तुश्चरणपंकजम् ॥ ५ ॥

व्रता अम्बाने शिवकी प्रदक्षिणा करके वियोगके दुःखको रोक हिमालयको गमन किया ॥ १ ॥ जहाँ पहले अपनी सखियोंके साथ तपस्या की थी उसी देशको तपके निमित्त पार्वतीने श्रेष्ठ माना ॥ २ ॥ तब वहाँ अपने माता और पिताको देखकर यह समाचार सुनाकर ॥ ३ ॥ फिर तपोवन जाकर सब भूषणोंको उतार स्नानकर परम पवित्र तपस्विनीवेष धारण किया ॥ ४ ॥ संकल्प करके महादुश्चर तपस्या करना प्रारम्भ किया और शिवजीके चरणोंमें मन लगाया ॥ ५ ॥

बाह्य विधानसे स्नानादि कर उसी क्षणिकेलिंगके तीनों कालमें पुष्प फलादिसे उनकी पूजा करने लगी ॥ ६ ॥ इस प्रकार तपके फलसे ब्रह्ममूर्त्तिमें शिवजी प्राप्त होकर ब्रह्माजीसे मुझको मन इच्छित फलको देंगे ॥ ७ ॥ जब इस प्रकार तप करते २ बहुत समय बीत गया तब कोई महाव्याघ्र दुष्ट भावसे उस स्थानमें आया ॥ ८ ॥ जब वह दुरात्मा उसके बहुत समीपमें गया, तब उसका शरीर चित्रके समान स्तब्ध हो गया ॥ ९ ॥ इस प्रकार दुष्ट भावसे आये हुए उस व्याघ्रको देखकर दूसरे मनुष्योंके समान देवी स्वभावसे व्यथित न हुई ॥ १० ॥

तमेव क्षणिके लिंगे ध्यात्वा बाह्यविधानतः ॥ त्रिसन्ध्यमभ्यर्चयन्ती वन्यैः पुष्पैः फलादिभिः ॥ ६ ॥ स एव ब्रह्मणो मूर्तिमास्थाय तपसः फलम् ॥ प्रदास्यति ममेत्येवं नित्यं कृत्वाऽकरोत्तपः ॥७॥ तथा तपश्चरन्तीं तां काले बहुतिथे गते ॥ दृष्टः कश्चिन्महा व्याघ्रो दुष्टभावादुपागमत् ॥ ८ ॥ तथैवोपगतस्यापि तस्यातीवदुरात्मनः ॥ गात्रं चित्रार्पितमिव स्तब्धं तस्यास्सकाशतः ॥ ९ ॥ तं दृष्ट्वापि तथा व्याघ्रं दुष्टभावादुपागतम्॥न पृथग्जनवद्देवी स्वभावेन विविच्यते ॥१०॥ स तु विष्टब्धसर्वांगो बुभुक्षापरिपीडितः॥ ममामिषं ततो नान्यदिति मत्वा निरन्तरम् ॥ ११ ॥ निरीक्ष्यमाणः सततं देवीमेव तदाऽनिशम् ॥ अतिष्ठदग्रतस्तस्या उपासन मिवाचरत् ॥१२॥ देव्याश्च हृदये नित्यं ममैवायमुपासकः ॥ त्राता च दुष्टसत्त्वेभ्य इति प्रववृते कृपा ॥ १३ ॥ तस्या एव कृपा योगात्सद्योनष्टमलत्रयः ॥ बभूव सहसा व्याघ्रो देवीं च बुबुधे तदा ॥१४॥ न्यवर्तत बुभुक्षा च तस्यांगस्तम्भनं तथा॥ दौरात्म्यं जन्मसिद्धं च तृप्तिश्च समजायत ॥ १५ ॥

और वह भूँखसे व्याकुल सर्वांगसे स्तब्ध होकर यही विचारने लगा कि इसके सिवाय दूसरा मेरा भोजन नहीं है ॥ ११ ॥ सो रात दिन देवीको ही देखता रहता था और आगे खडा हुआ उसकी उपासनासी करता रहता था ॥ १२ ॥ पार्वतीके मनमें सदा यह बात रहती की यह मेरा उपासक है और दुष्ट जीवोंसे रक्षा करता है यह जानकर कृपाकी ॥ १३ ॥ पार्वतीकी कृपादृष्टिसे उसके महापाप दूर हो गये तब उस महाव्याघ्रने देवीको जाना ॥ १४ ॥ भूँख और अंगका स्तम्भन हो गया; दुरात्मापन जानेसे जन्मकी सिद्धि और तृप्ति होगई ॥१५॥

१ क्षणिक लिंग मृत्तिकालिंग ।

तब परमभावसे अपनेको कृतार्थ जानकर वह सतीका उपासक होकर परमेश्वरीकी सेवा करने लगा ॥ १६ ॥ दुष्ट तथा दूसरे जीवोंका निवारण करनेवाला होकर मनमें विचारने लगा ॥ १७ ॥ उधर देवीका तप महावृद्धिको प्राप्त होने लगा; तब देवता और दैत्य तपसे व्याकुल हो ब्रह्माकी शरणमें गये ॥ १८ ॥ शत्रुसे पीडित होनेका अपना दुःख ब्रह्माजीसे देवताओंने निवेदन किया जैसासकि शुम्भ निशुम्भने वर दानसे दुःख दिया है ॥ १९ ॥ विधाता देवताओंके दुःख सुन कृपा करके दैत्य वधके हेतुवाली कथाका स्मरण कर ॥ २० ॥ देवताओंसे

तदा परमभावेन ज्ञात्वा कार्तार्थ्यमात्मनः ॥ सद्योपासक एवैष सिषेवे परमेश्वरीम् ॥ १६ ॥ दुष्टानामपि सत्त्वानां तथान्येषा न्दुरात्मनाम् ॥ स एव द्रावको भूत्वा विचचार तपोवने ॥ १७ ॥ तपश्च ववृधे देव्यास्तीव्रं तीव्रतरात्मकम् ॥ देवाश्च दैत्यनि र्बन्धाद्ब्रह्माणं शरणं गताः ॥१८॥ चक्रुर्निवेदनं देवाः स्वदुःखस्यारिपीडनात् ॥ यथा च ददतुः शुम्भनिशुम्भौ वरसम्मदात् ॥ १९ ॥ सोऽपि श्रुत्वा विधिर्दुःखं सुराणां कृपयान्वितः ॥ आसीद्दैत्यवधायैव स्मृत्वा हेत्वाश्रयां कथाम् ॥ २० ॥ सामरः प्रार्थितो ब्रह्मा ययौ देव्या स्तपोवनम् ॥ संस्मरन्मनसा देवदुःखमोक्षं स्वयत्नतः ॥ २१ ॥ ददर्श च सुरश्रेष्ठः श्रेष्ठे तपसि निष्ठिताम् ॥ प्रतिष्ठामिव विश्वस्य भवानीं परमेश्वरीम् ॥ २२ ॥ ननाम चास्य जगतो मातरं स्वस्य वै हरेः ॥ रुद्रस्य च पितुर्भार्यामार्यामद्रीश्वरात्मजाम् ॥२३॥ ब्रह्माणमागतं दृष्ट्वा देवी देवगणैः सहः ॥ अर्घ्यं तदर्हं दत्त्वा ऽस्मै स्वागताद्यैरुपाचरत् ॥ २४ ॥ तां च प्रत्युपचारोक्तिं पुरस्कृत्याभिनन्द्य च ॥ पप्रच्छ तपसो हेतुमजानन्निव पद्मजः ॥ २५ ॥

प्रार्थित देवीके तपोवनमें गये और दुःख दूर करनेवाले देवको अपने मनमें स्मरण करने लगे ॥ २१ ॥ ब्रह्माजीने तप करनेमें तत्पर पार्वतीको देखा, मानो भवानी परमेश्वरी सब जगत्की प्रतिष्ठा है ॥ २२ ॥ तब जगत्की और अपनी भी जननी पार्वतीकी ब्रह्माजीने वंदना की क्योंकि यह रुद्रकी प्रिय भार्या श्रेष्ठ पर्वतराजकी पुत्री है ॥ २३ ॥ जब देवीने देवताओंके सहित ब्रह्माको आता देखा तब उनके योग्य अर्घ्य और स्वागतसे पूजन किया ॥ २४ ॥ उस पूजासे प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी अजानके समान तपका कारण पूछने लगे ॥ २५ ॥

ब्रह्माजी बोले, हे देवी ! इस तीव्र तपसे तुम किस बातकी इच्छा करती हो; क्योंकि सब फलोंकी सिद्धि तो तुम्हारे अधीन है ॥ २६ ॥ जो परमेश्वर जगत्के स्वामी हैं सो तुम्हारे भर्ता हैं; ऐसे स्वामीको प्राप्त होकर सबही तपके फल प्राप्त हैं ॥२७॥ अथवा यह सब तुम्हारी क्रीडाका विलास है; परन्तु यह आश्चर्यकी बात है तुम अपने स्वामीका वियोग किस प्रकार सहन करती हो ॥ २८ ॥ देवी बोली जब कि सृष्टिके आदिमें आपकी देवदेवसे उत्पत्ति सुनी जाती है, इस कारण प्रजाओंमें तुम मेरे प्रथम पुत्र हो ॥ २९ ॥ जब फिर प्रजाकी वृद्धिकी इच्छा हुई तब आपके मस्तकसे शिव प्रादुर्भूत हुए हैं इस कारण श्वशुरभावसे तुम मेरे गुरु हो ॥ ३० ॥ जब कि यह हिमालय मेरे पिता तुम्हारे पुत्र

॥ ब्रह्मोवाच ॥तीव्रेण तपसानेन देव्या किमिह साध्यते॥तपःफलानां सर्वेषां त्वदधीना हि सिद्धयः ॥२६॥यश्चैव जगतां भर्ता तमेव परमेश्वरम्॥भर्तारमात्मना प्राप्य प्राप्तञ्च तपसः फलम्॥२७॥ अथवा सर्वमेवैतत्क्रीडाविलसितं तव ॥ इदन्तु चित्रं देवस्य विरहं सहसे कथम् ॥२८॥ ॥ देव्युवाच ॥ सर्गादौ भवतो देवादुत्पत्तिः श्रूयते यदा॥तदा प्रजानां प्रथमस्त्वं मे प्रथमजः सुतः ॥ ॥ २९ ॥ यदा पुनः प्रजावृद्ध्यै ललाटाद्भवतो भवः ॥उत्पन्नोऽभूत्तदा त्वं मे गुरुः श्वशुरभावतः॥३०॥यदा भवद्गिरीन्द्रस्ते पुत्रो मम पिता स्वयम्॥तदा पितामहस्त्वं मे जातो लोकपितामह॥३१॥तदीदृशस्य भवतो लोकयात्राविधायिनः॥वृत्तवन्तःपुरे भर्ता कथयिष्ये कथं पुनः ॥ ३२ ॥ किमत्र बहुना देहे यश्चायं मम कालिमा ॥ त्यक्त्वा सत्त्वविधानेन गौरी भवितुमुत्सहे ॥ ३३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतावता किमर्थेन तीव्रं देवि तपः कृतम् ॥ स्वेच्छैव किमपर्याप्ता क्रीडेयं हि तवेदृशी ॥ ३४ ॥

हैं तब हे लोक पितामह ! इस रिस्तेसे तुम मेरे पितामह हो ॥३१॥ सो इस प्रकार लोकयात्रा विधान करनेवाले आपसे जो वार्ता गुप्त स्वामीसे हुई है वह कैसे कह सकती हूं॥३२॥बहुत कहनेसे क्या है इस मेरे देहमें जो कालिमा है सो यह त्यागकर आपके वचनसे गौरी होनेकी इच्छा करती हूं ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे देवी ! केवल इतनीही बातके लिये तुमने क्यों तीव्र तपस्या की अपने आपही उस रूपको क्यों न धारण किया; अथवा तुम्हारी क्रीडाही इस प्रकारकी है ॥ ३४ ॥

हे जगन्मातः ! आपकी क्रीडा लोकके निमित्त होती है; सो इस क्रीडासे कोई हमारा हित करनेके लिये कार्य करो ॥ ३५ ॥ निशुम्भ शुम्भ नाम दो दैत्योंको मैंने वर दिया है; वह मत्त होकर देवताओंको बाधा देते हैं; तुमसेही उनका वध होगा ॥ ३६ ॥ इसमें देर करनेका काम नही क्षण मात्रको स्थिर हो वह तुम्हारे ही उस शरीरसे नष्ट होंगे तुम्हारी शक्तिसे उन दोनोंकी मृत्यु होगी ॥ ३७ ॥ इस प्रकारसे जब ब्रह्माजीने गिरिनन्दिनी देवीसे प्रार्थना की तब उस पूर्वतचाके आवरणको छोडकर वह तत्काल गौरी होगई ॥ ३८ ॥ वह त्वचाका कोश देवीने मनसेही त्याग दिया तब उससे कौशिका नामवाली काली काल मेघके समान प्रादुर्भूत हुई ॥ ३९ ॥ वही कन्या मायात्मिका

क्रीडाऽपि च जगन्मातस्तव लोकहिताय वै ॥ अतो ममेष्टमनया फलं किमपि साध्यताम् ॥३५॥ निशुंभशुंभनामानौ दैत्यौ दत्त वरौ मया ॥ हतौ देवान्प्रबाधेते त्वत्तो लब्धस्तयोर्वधः ॥३६॥ अलं विलंबनेनात्र त्वं क्षणेन स्थिरा भव ॥ शक्तिर्विसृज्य मानाऽद्य तयोर्मृत्युर्भविष्यति ॥३७॥ ब्राह्मणाभ्यर्थिता चैव देवी गिरिवरात्मजा ॥ त्वक्कोशं सहसोत्सृज्य गौरी सा समजायत ॥ ३८ ॥ सा त्वक्कोशात्मनोत्सृष्टा कौशिकी नाम नामतः ॥ काली कालाम्बुदप्रख्या कन्यका समपद्यत ॥ ३९ ॥ सा तु मा या त्मिका शक्तिर्योग निद्रा च वैष्णवी ॥ शंखचक्रत्रिशूलादिसायुधाष्टमहाभुजा ॥ ४० ॥ सौम्या घोरा च मिश्रा च त्रिनेत्रा चन्द्रशेखरा ॥ अजातपुंस्पर्श रतिरधृष्या चातिसुन्दरी ॥४१॥ दत्ता च ब्रह्मणे देव्या शक्तिरेषा सनातनी ॥ निशुंभस्य च शुंभ स्य निहंत्री दैत्यसिंहयोः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मणापि प्रहृष्टेन तस्यै परमशक्तये ॥ प्रबलः केसरी दत्तो वाहनत्वे समागतः ॥ ४३ ॥ विन्ध्ये च वसतिं तस्याः पूजामासवपूर्वकैः ॥ मांसैर्मत्स्यैरपूपैश्च निर्वर्त्यासौ समादिशत् ॥ ४४ ॥

शक्ति तथा वैष्णवी योग निद्रारूप शंख, चक्र, त्रिशूल, बाण, मुशल, घंटा, लांगल, कार्मुक, हाथमें लिये आठ भुजा युक्त हुई ॥ ४० ॥ सौम्यता और घोरतासे युक्त तीन नेत्र और चन्द्रमा शिरपर धारे पुरुष स्पर्शसे हीन धर्षण करनेके अयोग्य महासुन्दरी ॥ ४१ ॥ हुई तब ब्रह्माजीने उसे सनातन शक्ति प्रदान करी जो शुम्भ निशुम्भ महाबली दैत्योंके मारनेमें समर्थ थी ॥ ४२ ॥ और प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उस परम शक्तिके निमित्त प्रबल सिंह वाहन दिया ॥ ४३ ॥ विंध्याचलमें रहनेको स्थान, आसव मांस अनूप मत्स्य यह सब इनकी

पूजाके निमित्त ब्रह्माजीने कल्पित किया ॥ ४४ ॥ वह शक्ति विश्वकर्मा ब्रह्माजीके सम्मत होकर अपनी माता गौरी और ब्रह्माको प्रणाम कर ॥ ४५ ॥ तथा अपनेसे उत्पन्न हुई, अपने समान अनेक शक्तियोंके सहित उन राक्षसोंको मारनेके निमित्त विंध्याचलमें आई ॥ ४६ ॥ समर करके वहां दोनों दुष्ट दैत्योंका वध किया, उसके बाण और कामबाणसे उनके मन और अंग छिन्न भिन्न हो गये ॥ ४७ ॥ और पुराणोंमें वर्णन होनेके कारण विस्तारसे वह युद्ध यहां नहीं कहा यह दूसरी जगह देखना, मैं प्रसंगको वर्णन करता हूं ॥ ४८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ वायु बोले, तब गौरीने कौशिकी नाम अपनी शक्ति उत्पन्न करके

सा चैव संमता शक्तिर्ब्रह्मणो विश्वकर्मणः ॥ प्रणम्य मातरं गौरीं ब्रह्माणं चानुपूर्वशः ॥ ४५ ॥ शक्तिभिश्चापि तुल्याभिः स्वात्मजाभिरनेकशः ॥ परीता प्रययौ विन्ध्यं दैत्येन्द्रौ हन्तुमुद्यता ॥ ४६ ॥ निहतौ च तया तत्र समरे दैत्यपुंगवौ ॥ तद्बाणैः कामबाणैश्चच्छिन्नभिन्नांगमानसौ ॥ ४७ ॥ तद्युद्धविस्तरश्चात्र न कृतोऽन्यत्र वर्णनात् ॥ ऊहनीयं परस्माच्च प्रस्तुतं वर्णयामि वः ॥ ४८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे देवीगौरत्वभवन नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

॥वायुरुवाच॥ उत्पाद्य कौशिकीं गौरी ब्रह्मणे प्रतिपाद्य ताम् ॥ तस्य प्रत्युपकाराय पितामहमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ दृष्टः किमेष भवता शार्दूलो मदुपाश्रयः ॥ अनेन दुष्टसत्त्वेभ्यो रक्षितं मत्तपोवनम् ॥ २ ॥ मय्यर्पितमना एष भजते माम नन्यधीः ॥ अस्य संरक्षणादन्यत्प्रियं मम न विद्यते ॥ ३ ॥ भवितव्यमनेनातो ममान्तःपुरचारिणा ॥ गणेश्वरपदं चास्मै प्रीत्या दास्यति शंकरः ॥ ४ ॥ एनमग्रेसरं कृत्वा सखीभिर्गन्तुमुत्सहे ॥ प्रदीयतामनुज्ञा मे प्रजानां पतिना त्वया ॥ ५ ॥

ब्रह्माके निमित्त कार्यमें लगाकर उनके प्रत्युपकारके निमित्त ब्रह्माजीसे कहा ॥ १ ॥ देवी बोली, क्या आपने मेरी उपासना करनेवाले इस शार्दूलको देखा है ? इसने दुष्ट जीवोंसे मेरे तपोवनकी रक्षा कीहै ॥ २ ॥ यह मुझहीमें मन लगाये अनन्य बुद्धिसे मेरा भजन करता है, इसकी रक्षाके सिवाय दूसरा मेरा प्रियकार्य नहीं है ॥ ३ ॥ यह हमारे अन्तःपुरमें विचरने वाला होगा; शिवजी प्रसन्न हो इसके निमित्त गणेश्वर पद देंगे ॥ ४ ॥ सो मैं इसको आगे करके सखियोंके संग जानेकी इच्छा करती हूं, आप प्रजापति मुझको इसमें

अनुज्ञा दो ॥ ५ ॥ इस प्रकार वचन सुन हँसती हुई देवीको मुग्धा जानकर उस शार्दूलके दुष्ट चरित्रका वर्णन करते हुए ब्रह्माजी बोले ॥६॥ हे देवि ! कहां तो यह क्रूर मृग और कहां तुम्हारा अनुग्रह, साक्षात् सर्पके मुखमें तुम अमृत क्यों सींचती हो ॥ ७ ॥ यह व्याघ्रही नहीं है, किन्तु यह कोई दुष्ट निशाचर है, इसने गौ और तपस्वी ब्राह्मणोंको भक्षण कर लिया है यहां अनेक ॥ ८ ॥ कामरूप धारण किये तृप्त हो विचरता रहता है सो यह अपने पापोंका फल भोगेगा ॥ ९ ॥ सो ऐसे दुरात्माओंमें कृपा करनी नहीं चाहिये; इस पापी दुरात्माने तुम्हारे साथ ऐसा क्या किया है ॥ १० ॥ देवी बोले, हे ब्रह्मन् ! जो कुछ आपने कहा है वह सभी सत्य है तो भी यह मेरी शरण आया है

इत्युक्तः प्रहसन्ब्रह्मा देवीम्मुग्धामिव स्मयन्॥तस्य तीव्रैः पुरावृत्तैर्दौरात्म्यं समवर्णयत्॥६॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ पशौ देवि मृगाः क्रूराः क्व च तेऽनुग्रहः शुभः ॥ आशीविषमुखे साक्षादमृतं किं निषिच्यते॥७॥ व्याघ्रमात्रेण सन्नेष दुष्टः कोऽपि निशाचरः ॥ अनेन भक्षिता गावो ब्राह्मणाश्च तपोधनाः॥८॥तर्पयंस्तान्यथाकामं कामरूपी चरत्यसौ ॥अवश्यं खलु भोक्तव्यं फलं पापस्य कर्मणः ॥९॥ अतः किं कृपया कृत्यमीदृशेषु दुरात्मसु ॥ अनेन देव्याः किं कृत्यं प्रकृत्या कलुषात्मना ॥१०॥ देव्युवाच ॥ यदुक्तं भवता सर्वं तथ्यमस्त्वयमीदृशः ॥ तथापि मां प्रपन्नोऽभून्न त्याज्यो मामुपाश्रितः ॥११॥ ब्रह्मोवाच ॥ अस्य भक्तिम विज्ञाय प्राग्वृत्तं ते निवेदितम् ॥ भक्तिश्चेदस्य किं पापैर्न ते भक्तः प्रणश्यति॥१२॥पुण्यकर्मापि किं कुर्य्यात्त्वदीयाज्ञानपेक्षया ॥ अजा प्रज्ञा पुराणी च त्वमेव परमेश्वरी॥१३॥त्वदधीना हि सर्वेषां बंधमोक्षव्यवस्थितिः॥ त्वदृते परमा शक्तिः संसिद्धिः कस्य कर्मणा ॥ १४ ॥ त्वमेव विविधा शक्तिः भवानामथ वा स्वयम् ॥ अशक्तः कर्मकरणे कर्ता वा किं करिष्यति ॥ १५ ॥

उपासक है इससे मैं इसका त्याग नहीं कर सकती ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले, इसकी भक्तिको विना जाने हमने पूर्वचरित्र उसका वर्णन किया है जो इसमें भक्ति है तो फिर पापोंसे क्या है तुम्हारे भक्तोंका नाश नहीं होता ॥ १२ ॥ तुम्हारी आज्ञाकी अपेक्षा न करके पुण्यकर्मभी क्या कर सकता है ? हे परमेश्वरी ! तुम्हीं प्रज्ञा बुद्धि और पुराणी हो ॥ १३ ॥ तुम्हारे अधीनही सब जगत्की बंध मोक्ष और स्थिति है, तुम्हारे विना किसके कर्ममें परम सिद्धि प्राप्त हो सकती है ॥ १४ ॥ तुम्हीं अजन्मा अनेक प्रकारकी शक्ति और भावोंकी भावना करनेवाली

हो, तुम्हारे बिना कर्मके करनेमें आसक्त होकर कर्ता क्या कर सकता है ॥१५॥ विष्णुको मुझे तथा दूसरे देवता दानव राक्षसोंको तुम्हारीही आज्ञासे ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है ॥ १६ ॥ असंख्य ब्रह्मा हरि और शिव व्यतीत होगयेहैं, और तुम्हारी आज्ञासे आगेकोभी सैकडों होंगे ॥१७॥ हे देवेशि ! तुम्हारी आराधनाके विना पुरुषार्थचतुष्टय अर्थात् अर्थ धर्म काम मोक्ष कोई भी हम देवत ओंमें प्राप्त नहीं कर सकता ॥ १८ ॥ ब्रह्मत्व और स्थावरत्वका वह शीघ्र पतिहो जाताहै, जो तुम्हें पूजता है सुकृत और दुस्कृतिमें आपकीही व्यवस्था होती है ॥ १९ ॥ जगत्के स्वामी परमात्मा शिवकी तुमहीं अनादिमध्य निधन आदि सनातनी शक्ति हो ॥ २० ॥ सम्पूर्ण लोककी यात्राके निमित्त किसी मूर्त्तिमें प्रवेश

विष्णोश्च मम चान्येषां देवदानवरक्षसाम् ॥ तत्तदैश्वर्यसम्प्राप्त्यै तवैवाज्ञा हि कारणम्॥१६॥अतीताः खल्वसंख्याता ब्रह्माणो हरयो भवाः ॥ अनागतास्त्वसंख्यातास्त्वदाज्ञानुविधायिनः ॥१७॥ त्वामनाराध्य देवेशि पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ लब्धुं न शक्य स्समाभि रपि सर्वैः सुरोत्तमैः ॥१८॥ व्यत्यासोऽपि भवेत्सद्यो ब्रह्मत्वस्थावरत्वयोः ॥ सुकृतं दुष्कृतं चापि त्वयैव स्थापितं यतः ॥ १९ ॥ त्वं हि सर्वजगद्धर्तुश्शिवस्य परमात्मनः ॥ अनादिमध्यनिधना शक्तिराद्या सनातनी ॥ २० ॥ समस्तलोकया त्रार्थं मूर्तिमाविश्य कामपि ॥ क्रीडसे विविधैर्भावैः कस्त्वां जानाति तत्त्वतः ॥ २१ ॥ अतो दुष्कृतकर्मापि व्याघ्रोऽयं त्वद नुग्रहात् ॥ प्राप्नोतु परमां सिद्धिमत्र कः प्रतिबन्धकः ॥ २२ ॥ इत्यात्मनः परं भावं स्मारयित्वानुरूपतः ॥ ब्रह्मणाभ्यर्थिता गौरी तपसोऽपि न्यवर्तत ॥२३॥ ततो देवीमनुज्ञाप्य ब्रह्मण्यन्तर्हिते सति ॥ देवीं च मातरं दृष्ट्वा मेनां हिमवता सह॥२४॥ प्रणम्याश्वास्य बहुधा पितरौ विरहा सहौ ॥ तपः प्रणयिनो देवी तपोवनमहीरुहान् ॥ २५ ॥

करके अनेक प्रकारसे तुम क्रीडा करती हो, तुमको कौन जान सकता है ॥२१॥ इस कारण यह पापिष्ठ व्याघ्रभी तुम्हारे अनुग्रहसे परम सिद्धि को प्राप्त होगा; इसमें प्रतिबन्धक कौन हो सकता है ॥ २२ ॥ इस प्रकार योग्यतासे अपना परमरूप स्मरण कराकर ब्रह्मके कहनेसे गौरी तप करनेसे निवृत्त हुई ॥ २३ ॥ तब देवीसे पूंछ ब्रह्माजी अन्तर्धान हुए, तब देवीने हिमालयके सहित मेना माताको देखकर ॥ २४ ॥ विरह न सहनेवाले माता पिताको प्रणाम कर और तपोवनके वृक्षोंको बडे प्यारसे नम्रीभूत हुए देखकर ॥ २५ ॥

जो कि देवीके वियोगमें पुष्परूपी आंसू छोडते थे और उनकी शाखापर बैठे हुए जो पक्षी शब्द करते थे वही मानो ॥ २६ ॥ रुदन करते हैं, और बहुत दीनतासे व्याकुल होरहे हैं, उन्हें देखकर सखियोंसे कहती हुई और अपने स्वामीके शीघ्र दर्शन प्राप्त होनेके निमित्त ॥ २७ ॥ निजपुत्रके समान उस व्याघ्रको आगे किये अपनी देहकी कान्तिसे दशों दिशाओंको प्रकाशमान करती ॥ २८ ॥ गौरी मन्दरपर्वतको गई जहां सब जगत्के विधाता कर्ता रक्षक तथा संहार कर्ता स्वामी शंकर थे ॥ २९ ॥ इति श्रीशिवमापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे देवीब्रह्मसंवादे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ऋषि बोले, इस प्रकार गिरिजादेवी गौर शरीर करके मन्दरपर्वतमें स्थित स्वामीको

विप्रयोगशुचेवाग्रे पुष्पबाष्पं विमुंचतः ॥ तत्तुच्छाखासमारूढविहगो दीरितै रुतैः ॥ २६ ॥ व्याकुलं बहुधा दीनं विलापमिव कुर्वतः ॥ सखीभ्यः कथयंत्वेवं सत्त्वरा भर्तृदर्शने ॥२७॥ पुरस्कृत्य च तं व्याघ्रं स्नेहात्पुत्रमिवौरसम् ॥ देहस्य प्रभया चैव दीपयन्ती दिशो दश ॥ २८ ॥ प्रययौ मंदरं गौरी यत्र भर्ता महेश्वरः ॥ सर्वेषां जगतां धाता कर्ता पाता विनाशकृत्॥२९॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे व्याघ्रगतिवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥ ऋषय ऊचुः ॥ कृत्वा गौरं वपुर्दिव्यं देवी गिरिवरात्मजा ॥ कथं ददर्श भर्तारं प्रविष्टा मन्दिरं सती ॥१॥ प्रवेशसमये तस्या भवनद्वारगोचरैः ॥ गणेशैः किं कृतं देवस्तान्दृष्ट्वा किन्तदाऽकरोत् ॥ २ ॥ वायुरुवाच ॥ प्रवक्तुमंजसाऽशक्यः तादृशः परमो रसः ॥ येन प्रणयगर्भेण भावो भाववतां हृतः ॥ ३ ॥ द्वास्थैस्ससंभ्रमैरेव देवो देव्यागमोत्सुकः ॥ शंकमाना प्रविष्टान्तस्तञ्च सा समपश्यत ॥ ४ ॥ तैस्तैः प्रणयभावैश्च भवनान्तरवर्त्तिभिः ॥ गणेन्द्रैर्वन्दिता वाचा प्रणनाम त्रियम्बकम् ॥ ५ ॥

जिस प्रकार देखने लगी ॥ १ ॥ प्रवेश करनेके समय उनके भवनके द्वारे रहनेवाले गणेशजीने क्या किया सो कहो ॥ २ ॥ वायु बोले, सम्पूर्णतः वह चित्तके आनन्द करनेवाली वार्ता हम नहीं कह सकते; जिस प्रणय युक्तियोंसे शिवजीने उनमें मन लगाया ॥ ३ ॥ देवीके आगमनकी उत्कंठा करनेवाले देवने द्वारपालोंको नियुक्त कर दिया था, वह संभ्रमरहित द्वारपालोंसे शंकमान प्रवेश करती हुई उन शिव को देखने लगी ॥ ४ ॥ महलके भीतर उन अनेक प्रकारके प्रणय नम्रताभाव वर्तनेवाले गणेन्द्रोंसे नमस्कृत होकर उसने शिवको प्रणाम

किया ॥ ५ ॥ जबतक वह प्रणाम कर उठने न पाई तबतक शिवने उनको भुजाओंसे ग्रहण कर हृदयसे लगा लिया ॥ ६ ॥ यद्यपि वह अपनी गोदमें बैठाते थे परन्तु वह पलंगपर बैठ गई; परन्तु हँसती हुई देवीको पलंगपरसे बलपूर्वक शिवने गोदमें बैठाया ॥ ७ ॥ हँसते हुए खुले नेत्रोंसे मानो उनका मुख पान करने लगे उनसे बात करनेको शिवजीने पूर्व वचन कहे ॥ ८ ॥ शिवजी बोले, हे सर्वांग सुन्दरी ! क्या वह तुम्हारी पूर्वदशा व्यतीत होगई; कोपके कारण जिसके द्वारा कोई समझानेका उपाय न हुआ था ॥ ९ ॥ हे सुभ्रू ! अपनी इच्छासे भी 'काली' न कि दूसरे वर्णवाली यह शब्द तुम्हारे स्वभावसे हरण हुए मेरे चित्तकी चिन्ता उत्पन्न करता है ॥ १० ॥ अपनी इच्छाके बलसे

प्रणम्य नोत्थिता यावत्तावत्तां परमेश्वरः ॥ प्रगृह्य दोर्भ्यामाश्लिष्य परितः परया मुदा ॥ ६ ॥ स्वांके धर्तुं प्रवृत्तोऽपि सा पर्य्यंके न्य षीदत ॥ पर्य्यंकतो बलाद्देवीं सोङ्कमारोप्य सुस्मिताम् ॥७॥ सस्मितो विवृतैर्नेत्रैस्तद्वक्त्रं प्रपिबन्निव॥ तया संभाष णायेशः पूर्वभा षितमब्रवीत् ॥८॥ देवदेव उवाच ॥ सा दशा च व्यतीता किं तव सर्वांगसुन्दरि ॥ यस्यामनुनयोपायः कोऽपि कोपान्न लभ्यते ॥९॥ स्वेच्छयापि न कालीति नान्यवर्णवतीति च॥त्वत्स्वभावाद्धृतं चित्तंसुभ्रु चिंतावहं मम ॥१०॥ विस्मृतः परमो भावः कथं स्वेच्छांगयोगतः ॥ न सम्भवन्ति ये तत्र चित्तकालुष्यहेतवः ॥११॥ पृथग्जनवदन्योन्यं विप्रिय स्यापि कारणम् ॥ आवयोरपि यद्यस्ति नास्त्येवैतच्चराचरम् ॥१२॥ अहमग्निशिरोनिष्ठस्त्वं सोमशिरसि स्थिता ॥ अग्नीषोमा त्मकं विश्वमावाभ्यां समधिष्ठितम् ॥ १३ ॥ जगद्धिताय चरतोः स्वेच्छाधृतशरीरयोः ॥ आवयोर्विप्रयोगे हि स्यान्निरालम्ब नं जगत् ॥१४॥ अस्ति हेत्वन्तरं चात्र शास्त्रयुक्तिविनिश्चितम् ॥ वागर्थमिव मे वैतज्जगत्स्थावरजंगमम् ॥ १५ ॥

तुमने हमारा परम भाव भुला दिया; जिसके कारणसे चित्तमें कलुषताके कारण नहीं होते हैं ॥ ११ ॥ वे साधारण मनुष्योंके समान एक दूसरेके विप्रियके कारण होते हैं, परन्तु जो हमारा तुम्हारा प्रेम है वह चराचरमें नहीं है ॥ १२ ॥ मैं अग्निका धारण करनेवाला हूँ, तू सोमरूप शिरमें स्थित है, इस प्रकार अग्निषोमात्मक जगत् हमसे ही स्थिति है ॥१३॥ हम दोनों स्वेच्छासे शरीर धारण कर जगत्के हितके निमित्त विचरते हैं; हम दोनों वियोगमें जगत् निरालम्ब होजाता है ॥१४॥ इसमें शास्त्रयुक्तिसे निश्चय किया हुआ दूसरा हेतु है; यह स्थावर

जंगमात्मक जगत् वाणी और अर्थमय अर्थात् नाम रूपात्मक है ॥ १५ ॥ तुम साक्षात् अमृतमय वाणी हो और मैं अमृतरूप अर्थ हूं सो वियोग होनेसे यह अमृत किसी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ विद्याके ज्ञानसे तुम और तुम्हारे ज्ञानसे मैं जाना जाता हूं; विद्या और वेद्य आत्मावाले हम दोनोंका वियोग कैसे हो सकता है ॥ १७ ॥ मैं अपनेही व्यापारसे इस जगत्को उत्पन्न और संहार नहीं करता हूं; सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति प्रलय तुम्हारी आज्ञासे होती है सो वह आज्ञारूप तुम हो ॥ १८ ॥ आज्ञाका साररूप ऐश्वर्य है, उनका लक्षण स्वतंत्रता है; आज्ञासे वियुक्त होकर ऐश्वर्य क्यों कर प्राप्त हो सकता है ॥ १९ ॥ वियोग दशामें हम दोनों किसी प्रकार नहीं रह सकते हैं, तो भी वियोग हुआ यह कैसी अद्भुत बात है, दूसरों पर अनुग्रह करनेके सिवाय इसमें और प्रयोजन नहीं है; यह सृष्टिके प्रवृत करनेको

त्वं हि वागमृतं साक्षादहमर्थामृतं परम् ॥ द्वयमप्यमृतं कस्माद्वियुक्तमुपपद्यते ॥ १६ ॥ विद्याप्रत्यायिका त्वं मे वेद्योऽहं प्रत्ययात्तव ॥ विद्यावेद्यात्मनोरेव विश्लेषः कथमावयोः ॥ १७ ॥ न कर्मणा सृजामीदं जगत्प्रतिसृजामि च ॥ सर्वस्याज्ञैकलभ्यत्वादाज्ञात्वं हि गरीयसी ॥ १८ ॥ आज्ञैकसारमैश्वर्य्यं यस्मात्स्वातंत्र्यलक्षणम् ॥ आज्ञया विप्रयुक्तस्य चैश्वर्य्यं मम कीदृशम् ॥१९॥ न कदाचिदवस्थानमावयोर्विप्रयुक्तयोः ॥ देवानां कार्य्यमुद्दिश्य लीलोक्तिं कृतवानहम् ॥ २० ॥ त्वयाप्यविदितंनास्ति कथं कुपितवत्यसि ॥ तत्त्रिलोकरक्षार्थं कोपो मय्यपि ते कृतः ॥ २१ ॥ यदनर्थाय भूतानां न तदस्ति खलु त्वयि ॥ इति प्रियं वदे साक्षादीश्वरे परमेश्वरे ॥ २२ ॥ शृंगारभावसाराणां जन्मभूमिरकृत्रिमा ॥ स्वभर्त्रा ललितन्तथ्यमुक्तं मत्वा स्मितोत्तरम् ॥ २३ ॥ लज्जया न किमप्यूचे कौशिकी वर्णनात्परम् ॥ तदेव वर्णयाम्यद्य शृणु देव्याश्च वर्णनम् ॥ २४ ॥

हमारा विलास वृथा नहीं है, देवताओंके कार्यके कारण लीलासेही मैंने वह वचन कहा था ॥ २० ॥ और तुम्हें भी वह वार्ता विदित थी फिर किस कारण क्रोध किया क्या त्रिलोकी की रक्षाके निमित्तही मेरे ऊपर क्रोध किया था ॥ २१ ॥ कारण कि जिसमें प्राणियोंका अनर्थ हो वह वस्तु तुझमें नहीं है, इस प्रकार प्रिय बोलनेवाले ईश्वरसे ॥२२॥ शृंगारभावकी सारभूत स्वाभाविक सुन्दरी परमेश्वरी अपने स्वामीके कहे हुए सत्य वचनोंको सुनकर ॥ २३ ॥ लज्जासे कौशिकी चरित्र वर्णनके विना कुछ न बोली, वही मैं कहता हूं देवीका वर्णन सुनो ॥ २४ ॥

देवी बोली, जो मैंने कौशिकी बनाई है क्या वह तुमने नहीं देखी, वैसी कन्या संसारमें न हुई और न होगी ॥ २५ ॥ उसका पराक्रम बल विन्ध्याचल पर्वतमें विजय और युद्धमें शुम्भ निशुम्भका वध है ॥ २६ ॥ भजन करनेवाले लोकोंको प्रत्यक्ष फलका देना देवताओंकी रक्षामें ब्रह्माका नियुक्त करना ॥ २७ ॥ इस प्रकार कहते हुए देवीकी आज्ञासे सखीने वह व्याघ्र लाकर आगे खडा कर दिया ॥ २८ ॥ उसे देख कर देवी फिर बोलीं कि, हे देव ! यह मैं भेंट लाई हूं, इस व्याघ्रको देखो, इसके समान मेरा कोई उपासक नहीं है ॥ २९ ॥ इसने दुष्ट जीवोंसे मेरे तपोवनकी रक्षाकी थी यह मेरा अत्यन्त भक्त और रक्षा करनेसे निश्चित है ॥ ३० ॥ यह अपना देश त्यागनकर प्रसन्नताके

॥ देव्युवाच ॥ किं देवेन न सा दृष्टा या सृष्टा कौशिकी मया॥तादृशी कन्यका लोके न भूता न भविष्यति ॥२५॥ तस्या वीर्य्यं बलं विन्ध्यनिलयं विजयं तथा ॥ शुंभस्य च निशुंभस्य मारणे च रणे तयोः ॥२६॥ प्रत्यक्षफलदानं च लोकाय भजते सदा ॥ लोकानां रक्षणं शश्वद्ब्रह्मा विज्ञापयिष्यति ॥२७॥ इति संभाषमाणाया देव्या एवाज्ञया तदा॥ व्याघ्रः सख्या समानीय पुरोऽवस्थापितस्तदा ॥२८॥ तं प्रेक्ष्याह पुनर्देवी देवानीतमुपायनम् ॥ व्याघ्रं पश्य न चानेन सदृशो मदुपासकः ॥२९॥ अनेन दुष्टसंघेभ्यो रक्षितं मत्तपोवनम्॥ अतीव मम भक्तश्च विश्रब्धश्च स्वरक्षणात्॥३०॥स्वदेशं च परित्यज्य प्रसादार्थं समागतः॥ यदि प्रीतिरभून्मत्तः परां प्रीतिं करोषि मे ॥३१॥ नित्यमन्तःपुरद्वारि नियोगान्नन्दिनः स्वयम् ॥ रक्षिभिस्सह तच्चिह्नैर्वर्तता मयमीश्वर ॥ ३२ ॥ वायु रुवाच ॥ मधुरं प्रणयोदर्कं श्रुत्वा देव्याः शुभं वचः ॥ प्रीतोऽस्मीत्याह तं देवस्स चादृश्यत तत्क्षणात् ॥ ३३ ॥ बिभ्रद्वेत्रलतां हैमीं रत्न चित्रं च कंचुकम् ॥ छुरिकासुरगप्रख्यां गणेशो रक्षवेषधृक् ॥ ३४ ॥

निमित्त आया है जो मुझमें प्रीति है और मुझमें प्रेम करते हो तो ॥ ३१ ॥ हे ईश्वर ! अन्तःपुरके द्वारेपर नन्दीकी आज्ञासे रक्षा करनेवालोंके चिह्नोंके सहित यह स्थित हो ॥ ३२ ॥ वायु बोले, इस प्रकार मधुर और नम्रता भरे देवीके वचन सुनकर ' मैं प्रसन्न हूं ' शिवने यह वचन कहे, तब तत्काल उस व्याघ्रको दिखाया ॥ ३३ ॥ वह सुवर्णका डंडा लिये रत्नजटित विचित्र कंचुक पहरे सर्पके समान छुरी लिये गणेशकी रक्षा करने योग्य शरीर धारे स्थित हुआ ॥ ३४ ॥

जिस कारण कि इसने उमासहित महादेव और नन्दीको प्रसन्न किया इसी कारण इसका नाम सोमनन्दी हुआ ॥ ३५ ॥ शशिशेखर शिवजी इस प्रकार देवीका प्रिय करके गौरीको दिव्य भूषणोंसे भूषित करने लगे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार कैलासपति चन्द्रमौलि गिरिजा गौरीको गौरवयुक्त और सर्व मनोहारिणी करके अपने पर्यंकमें बैठाय अनेक प्रकारके भूषणोंसे भूषित करने लगे ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ऋषि बोले, देवीके समाधान करनेके समय शिवजीने यह वार्ता क्यों कही कि यह जगत् अग्निषोमात्मक और वागर्थात्मक है ॥ १ ॥ ऐश्वर्य एक आज्ञाकेही सारवाला है तुम आज्ञास्वरूप हो

यस्मात्सोमो महादेवो नन्दी चानेन नन्दितः॥सोमनन्दीति विख्यातस्तस्मादेष समाख्यया ॥३५॥ इत्थं देव्याः प्रियं कृत्वा देवश्चार्द्धेन्दुभूषणः ॥ भूषयामास तन्दिव्यैर्भूषणै रत्नभूषितैः ॥३६॥ततस्स गौरीं गिरिशो गिरीन्द्रजां सगौरवां सर्वमनोहरां हरः पर्य्यंकमारोप्य वरांगभूषणैर्विभूषयामास शशांकभूषणः॥३७॥इतिश्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ देवीं समादधानेन देवेनेदं किमीरितम्॥ अग्निषोमात्मकं विश्वं वागर्थात्मकमित्यपि ॥१॥ आज्ञैकसारमैश्वर्य्यमाज्ञा त्वमिति चोदितम् ॥ तदिदं श्रोतुमिच्छामो यथावदनुपूर्वशः ॥ २ ॥ वायुरुवाच ॥ अग्निरित्युच्यते रौद्री घोरा या तैजसी तनुः ॥ सोमः शाक्तोऽमृतमयः शक्तेः शान्तिकरी तनुः ॥ ३ ॥ अमृतं यत्प्रतिष्ठा सा तेजो विद्या कला स्वयम् ॥ भूतसूक्ष्मेषु सर्वेषु त एव रसतेजसी॥४॥द्विविधा तेजसो वृत्ति सूर्य्यात्मा चानलात्मिका ॥ तथैव रसवृत्तिश्च सोमात्मा च जलात्मिका ॥ ५ ॥ विद्युदादिमयन्तेजो मधुरादिमयो रसः॥ तेजोरसविभेदैस्तु धृतमेतच्चराचरम् ॥ ६ ॥

सो इस वार्ताको हमारी क्रमसे सुननेकी इच्छा है ॥ २ ॥ वायु बोले, जो रुद्रका घोर तेजस्वी शरीर है उसीको अग्नि कहते हैं, और सोम शक्तिका अमृतमय शरीर है, यही शक्तिका शान्तिमय शरीर है ॥ ३ ॥ उस अमृतमें जिसकी प्रतिष्ठा है वह स्वयं तेजकी विद्या कला है, वेही रस और तेज पृथ्वी आदि परमाणुओंमें स्थित रहते हैं ॥ ४ ॥ और दो प्रकारकी तैजसी वृत्ति सूर्यात्मारूप तथा अग्निकी आत्मा रूप है इसी प्रकार यह वृत्ति सोमात्मक है ॥ ५ ॥ तेज वैद्युतमय है और रस मधुरादिमय है तेज और रसके भेदसेही यह चराचर जगत्

धारण किया गया है ॥६॥ अग्निसेही अमृतकी उत्पत्ति होती है "अग्नेराप इति श्रुते" घृत वा अमृतसे ही अग्निकी वृद्धि होती है "अमृतं वा आज्यमिति श्रुते" इसी कारण अग्नि और सोम देवताकी दीहुई हवि जगत्के हितके निमित्त है ॥ ७ ॥ हविके अर्थ धान्यकी संपत्ति होती है, धान्यकी वृद्धिके निमित्त वृष्टि होती है, इसी कारण हवि श्रेष्ठ वर्षाके निमित्त है; इसीसे अग्नि सोम द्वारा जगत् धारण किया गया है ॥८॥ वह अग्नि ऊपरको प्रज्वलित होता है जहांतक शान्त अमृत है; जहांतक अग्निका स्थान है वहांसे सोमसे उत्पन्न हुआ अमृत नीचे गिरता है ॥ ९ ॥ इसी कारण कालाग्निके नीचे और शक्तिके ऊपरसे ऊर्ध्वशक्ति मात्रसे उतनाही ऊपरको दहन और नीचेको अमृतद्वारा प्लावन होता है

अग्नेरमृतनिष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते ॥ अत एव हि विक्रान्तमग्नीषोमं जगद्धितम् ॥ ७ ॥ हविषे सस्यसम्पत्तिर्वृष्टिः सस्याभिवृद्धये ॥ वृष्टेरेव हविस्तस्मादग्नीषोमधृतं जगत् ॥ ८ ॥अग्निरूद्ध्वं ज्वलत्येष यावत्सौम्यं परामृतम् ॥यावदग्न्यास्पदं सौम्यममृतं च स्रवत्यधः ॥९॥ अत एव हि कालाग्निरधस्ताच्छक्तिरूद्ध्वतः ॥ यावदादहनं चोद्ध्वमधश्चाप्लावनं भवेत् ॥१०॥ आधारशक्त्यैव धृतः कालाग्निरयमूद्ध्वगः ॥ तथैव निम्नगः सोमश्शिवशक्तिपदास्पदः ॥११॥ शिवश्चोद्ध्वमधश्शक्तिरूद्ध्वं शक्तिरधः शिवः ॥ तदित्थं शिवशक्तिभ्यान्नान्यात्तमिह किञ्चन ॥१२॥ असकृच्चाग्निना दग्धं जगद्यद्भस्मसात्कृतम् ॥ अग्नेर्वीर्यमिदं चाहुस्तद्वीर्यं भस्म यत्ततः ॥१३॥ यश्चेत्थं भस्मसद्भावं ज्ञात्वा स्नाति च भस्मना ॥ अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्बद्धः पाशात्प्रमुच्यते ॥ १४ ॥ अग्नेर्वीर्यं तु यद्भस्म सोमेनाप्लावितम्पुनः ॥ अयोगयुक्त्या प्रकृतेरधिकाराय कल्पते ॥ १५ ॥

॥ १० ॥ आधारशक्तिसे धारण किया हुआ यह कालाग्नि ऊर्ध्वगामी है; इसी प्रकार शिवशक्तिके स्थानवाला सोम नीचेको चलता है ॥११॥ ऊपर शिव नीचे शक्ति, ऊपर शक्ति, नीचे शिव है; इस प्रकार शिवशक्तिसेही सब जगत् व्याप्त है ॥ १२ ॥ एक बारही जो अग्निसे दग्ध होकर यह जगत् भस्म हुआ था इसीसे यह भस्म अग्निका वीर्य कहलाता है ॥ १३ ॥ जो इस प्रकार भस्मका भाव जानकर भस्मसे स्नान करता है और 'अग्निरिति भस्म' 'वायुरिति भस्म' यह मन्त्र उच्चारण करता है वह बंधनसे छूटजाता है ॥ १४ ॥ अग्निका वीर्य वह भस्म सोमसे प्लावित होकर योगसम्बन्धके विना प्रकृतिके अधिकारके निमित्त कल्पित होता है ॥ १५ ॥

योगयुक्तिसे वह भस्म सब प्रकार प्लावित होकर अमृत वर्षानेवाले शरीरके अधिकारसे निवृत्त होता है ॥१६॥ सो यह अमृतका संगम, मनुष्योंको मृत्युके जीतनेके निमित्त है, शिवशक्तिसे अमृतका संग प्राप्त होनेसे फिर मृत्यु कहां है ॥ १७ ॥ जो कोई इस गुप्त अग्निके प्लावनको जानता है जो कि शास्त्रोक्त है वह अग्निसोममय जगतको छोडकर फिर जन्म नहीं लेता ॥ १८ ॥ जो शिवाग्निमें शरीरको दग्ध करके शक्तिसोमके अमृतसे उसे योगमार्ग दैवशास्त्रके द्वारा प्लावित करे वह अमृत होजाता है ॥ १९ ॥ इस अर्थको हृदयमें धारण करके शिव जीने यह जगत् अग्नीषोमात्मक है ऐसा उच्चारण किया ॥ २० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डेऽष्टाविंशोऽध्यायः

योगयुक्त्या तु तद्भस्म प्लाव्यमानं समन्ततः ॥ शाक्तेना मृतवर्षेण चाधिकारान्निवर्तयेत् ॥१६॥ अतो मृत्युंजयायेत्थममृतप्लावनं सदा ॥ शिवशक्त्यमृतस्पर्शं लब्धं येन कुतो मृतिः ॥ १७ ॥ यो वेद दहनं गुह्यं प्लावनं च यथोदितम्॥ अग्नीषोमपदं हित्वा न स भूयोऽभिजायते ॥ १८ ॥ शिवाग्निना तनुं दग्ध्वा शक्तिसौम्या मृतेन यः ॥ प्लावयेद्योगमार्गेण सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१९॥ हृदि कृत्वेममर्थं वै देवेन समुदाहृतम् ॥ अग्नीषोमात्मकं विश्वं जगदित्यनुरूपतः ॥२०॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे भस्मतत्त्ववर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८ ॥ वायुरुवाच ॥ निवेदयामि जगतो वागर्थात्म्यं कृतं यथा॥षडध्ववेदनं सम्यक् समासान्न तु विस्तरात् ॥१॥ नास्ति कश्चिदशब्दार्थोनापि शब्दो निरर्थकः ॥ ततो हि समये शब्दस्सर्वस्सर्वार्थबोधकः ॥२॥ प्रकृतेः परिणामोऽयं द्विधा शब्दार्थभावना॥ तामाहुः प्राकृतीं मूर्तिं शिवयोः परमात्मनोः ॥ ३ ॥ शब्दात्मिका विभूतिर्या सा त्रिधा कथ्यते बुधैः॥स्थूला सूक्ष्मा परा चेति स्थूला या श्रुतिगोचरा ॥ ४ ॥

॥ २८ ॥ वायु बोले, अब मैं जगत्की वागर्थात्मकता कहता हूं जिससे छः मार्गोंका ज्ञान हो जाता है, सो विस्तारसे न कह कर संक्षेपसे वर्णन करता हूं ॥१॥ कोई भी शब्द अर्थरहित नहीं है, संकेतके जाननेसे सब शब्द सब अर्थके कहने वाले हैं; गवादिपद संकेतके विना गौ आदिका ज्ञान नहीं होता ॥ २ ॥ यह प्रकृतिका परिणाम शब्दार्थ रूपसे दो प्रकारका कहा है, इसीको परमात्मा शिवा शिवकी विभूति वा प्रकृति कहते हैं ॥ ३ ॥ जो शब्दात्मिका विभूति है उसको पंडितोंने तीन प्रकारकी कहा है स्थूल सूक्ष्म और अपरा जो स्थूल है सो श्रवणके प्रत्यक्ष

गोचर है ॥ ४ ॥ और सूक्ष्म चिन्तामयी अर्थात् मनमयी कहलाती है, चिन्तासे रहित परा है सो ही शिवतत्त्वका आश्रय लिये क्रिया शक्ति है ॥ ५ ॥ ज्ञानशक्तिके योगसे ईश्वरकी इच्छाके साथ सम्पूर्ण शक्तियोंका समष्टि आत्माशक्ति तत्त्वनामवाला है ॥ ६ ॥ वह सम्पूर्ण कार्य समूहकी मूलप्रकृति है, वही विशुद्धमार्गस्वरूपा कुण्डलिनी माया है ॥ ७ ॥ वह विभागस्वरूप है उसीसे षडध्वात्मा विस्तृत होता है, उसमें तीन मार्ग शब्दके और तीन अर्थोंके भी है ॥ ८ ॥ वे सम्पूर्ण पुरुषोंकी निजशुद्धिके अनुरूपसे लय भोगके विनियोगके निमित्त पूर्ण हैं लयभोगके अधिकार सब तत्त्वोंके विभागसे है ॥ ९ ॥ कलाओंसे वे तत्व यथायोग्य विभक्त हैं, प्रकृतिकी आदिमें परिणामसे वेही पांच प्रकारके हैं॥१०॥

सूक्ष्मा चिन्तामयीप्रोक्ता चिंतया रहिता परा ॥ या शक्तिः सा परा शक्तिश्शिवतत्त्वसमाश्रया ॥८॥ ज्ञानशक्तिसमायोगादिच्छोपोद्बलिका तथा ॥ सर्वशक्तिसमष्ट्यात्मा शक्तितत्त्वसमाख्यया ॥६॥ समस्तकार्यजातस्य मूलप्रकृतितां गता ॥ सैव कुण्डलिनी माया शुद्धाध्वपरमा सती ॥७॥सा विभागस्वरूपैव षडध्वात्मा विजृंभते॥ तत्र शब्दास्त्रयोऽध्वानस्त्रयश्चार्थाः समीरिताः ॥८॥ सर्वेषामपि वै पुंसां नैजशुद्ध्यनुरूपतः ॥ लयभोगाधिकारास्स्युस्सर्वतत्त्वविभागतः ॥९॥कलाभिस्तानि तत्त्वानि व्याप्तान्येव यथातथम् ॥ परस्याः प्रकृतेरादौ पंचधा परिणामतः॥१०॥कलाश्च ता निवृत्त्याद्याः पर्य्याप्ता इति निश्चयः॥मंत्राध्वा च पदाध्वा च वर्णाध्वा चेति शब्दतः ॥ ११ ॥ भुवनाध्वा च तत्त्वाध्वा कलाध्वा चार्थतः क्रमात् ॥ अत्रान्योन्यं च सर्वेषां व्याप्यव्यापकतोच्यते ॥ १२ ॥ मंत्राः सर्वैः पदैर्व्याप्ता वाक्यभावात्पदानि च ॥ वर्णैर्वर्णसमूहं हि पदमाहुर्विपश्चितः ॥१३॥

वह कलानिवृत्ति आदि इसमें पर्याप्त हैं, यह निश्चय है शब्दाध्वोंको कहते हैं मन्त्राध्व, पदाध्व और वर्णाध्व,(मन्त्राध्व अर्थात् अपने ज्ञानद्वारा मोक्ष प्राप्तिका मार्ग) ॥ ११ ॥ भुवनाध्व चतुर्दश भुवनरूप, तत्त्वाध्व महदादि तत्त्वस्वरूप, कालाध्व निवृत्त्यादि पंचकरूप इन सब शब्द और अर्थोंकी परस्पर व्याप्यव्यापकता कही जाती है ॥ १२ ॥ सब मन्त्र पदोंसे व्याप्त हैं और मन्त्रोंका वाक्य स्वरूप होनेसे और वाक्योंका पद समूह होनेसे वह पद वर्णोंसे व्याप्त हैं, वर्णोंके समूहका नाम पद विद्वानोंने कहा है ॥ १३ ॥

वर्णोंसे जगत् व्याप्त हो रहा है, कारण कि उन वर्णोंकी भुवनोंमें प्राप्ति है, भुवन भी तत्वोंके समूहसे क्रमसे ब्रह्माण्डके बाहर भीतर व्याप्त हैं ॥ १४ ॥ और वे अपने कारण तत्त्वोंसे अनेक प्रकार व्याप्त हैं; और जो इस ब्रह्माण्डके अन्तरमें ब्रह्माण्ड है ॥ १५ ॥ वह शैव शास्त्र पुराणोंमें प्रतिपादन किये हैं और जो तत्त्व सांख्य योगमें प्रसिद्ध हैं ॥ १६ ॥ तथा और जो अनेक शिव शास्त्रमें प्रसिद्ध हैं वे सब तत्त्व निवृत्ति आदि कलाओंसे यथावत् व्याप्त हैं ॥ १७ ॥ प्रथम पराकृतिके आदिमें पांच प्रकारके परिणामवाले हैं वे कला निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शांति, विशुद्धरूप हैं ॥ १८ ॥ इन कलाओंसे परे वह पराशक्ति षडध्वोंमें अविभक्त होकर व्याप्त होरही है पर प्रकृति भावका वह

वर्णास्तु भुवनैर्व्याप्तास्तेषां तेषूपलंभनात् ॥ भुवनान्यपि तत्त्वौघैरुत्पत्त्यांतर्बहि क्रमात॥१४॥ व्याप्तानि कारणैस्तत्त्वैरारब्धत्वा दनेकशः॥अंतरादुत्थितानीह भुवनानि तु कानि चित्॥१५॥पौराणिकानि चान्यानि विज्ञेयानि शिवागमे॥सांख्ययोगप्रसिद्धानि तत्त्वान्यपि च कानिचित् ॥१६॥ शिवशास्त्रप्रसिद्धानिततोन्यान्यपि कृत्स्नशः॥कलाभिस्तानि तत्त्वानि व्याप्तान्येव यथातथम् ॥१७॥ परस्याः प्रकृतेरादौ पंचधा परिणामतः॥कलाश्च ता निवृत्त्याद्या व्याप्ताः पंचयथोत्तरम्॥१८॥व्यापिकातःपरा शक्तिरवि भक्ता षडध्वनाम् ॥परप्रकृतिभावस्य तत्सत्त्वाच्छिवतत्त्वतः ॥१९॥ शक्त्यादि च पृथिव्यन्तं शिवतत्त्वसमुद्भवम्॥व्याप्तमेकेन तेनै वमृदा कुंभादिकं यथा ॥ २० ॥ शैवं तत्परमं धाम यत्प्राप्यं षड्भिरध्वभिः ॥ व्यापिकाऽव्यापिका शक्तिः पंचतत्त्वविशोधनात् ॥ २१ ॥ निवृत्त्या रुद्रपर्य्यन्तं स्थितिरण्डस्य शोध्यते ॥ प्रतिष्ठया तदूर्ध्वं तु यावदव्यक्तगोचरम् ॥ २२ ॥ तदूर्ध्वं विद्यया मध्ये यावद्विश्वेश्वरावधि ॥ शान्त्या तदूर्ध्वं मध्वान्ते विशुद्धिः शान्त्यतीतया ॥ २३ ॥

सत्त्वादि शिव तत्त्वरूपसे ॥ १९ ॥ इन षडध्वोंमें विद्यमान है शक्तिको आदि ले पृथ्वीतक शिव तत्त्वसे प्रगट है, यह सब उसी एकसे व्याप्त है, जैसे घटादिमें मृत्तिका ॥ २० ॥ जो षडध्वसे प्राप्त होता है वही शिवका परमधाम है शिवके स्थानमें प्राप्त करने वाली और व्यापिकी शक्ति पांच तत्त्वोंके शोधनेसे जानी जाती है ॥ २१ ॥ और निवृत्ति कलासे रुद्रपर्यन्त अंडकी स्थिति शोधी जाती है, प्रतिष्ठा कलासे उससे ऊपर जहांतक अव्यक्त है शोधा जाता है ॥ २२ ॥ विद्यासे उससे ऊपर विश्वेश्वर तक शुद्ध होता है, शान्तिसे उससे ऊर्ध्वअध्वपर्यन्त और

शान्तातीतसे विशुद्ध शुद्ध होती है ॥ २३ ॥ जिसको पर प्रकृतिके योगसे परमव्योम कहते हैं, इन्हीं पांच तत्त्वोंसे सब जगत् व्याप्त है ॥ २४ ॥ साधकोंको उसीमें सब देखना चाहिये अध्वव्याप्तिको विना जाने जो शुद्धि करनेकी इच्छा करता है ॥ २५ ॥ वह वञ्चित होता है, और उसे शुद्धिका फल नहीं मिलता, उसका श्रम वृथा है केवल अधोयोनिमें जानेके निमित्त है ॥ २६ ॥ शक्तिपातके योगसे तत्वके विना तत्वसे वह व्याप्ति और विशुद्धि कोई भी जाननेको समर्थ नहीं है ॥ २७ ॥ शक्तिही आज्ञा शिव सम्बन्धिनी चिद्रूपा परमेश्वरी है जिसके कारण (साधन) भूत होकर सबमें शिव अधिष्ठित हैं ॥ २८ ॥ न आत्मा न माया और न यह विकार है जो विचाकर देखाजाय तो न

यामाहुः परमं व्योम परप्रकृतियोगतः ॥ एतानि पंचतत्त्वानि यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥२४॥ तत्रैव सर्वमेवेदं द्रष्टव्यं खलु साधकैः ॥ अध्वव्याप्तिमविज्ञाय शुद्धिं यः कर्तुमिच्छति ॥२५॥ स विप्रलम्भकः शुद्धेर्नालम्प्रापयितुं फलम् ॥ वृथा परिश्रमस्तस्य निरयायैव केवलम् ॥ २६ ॥ शक्तिपातसमायोगादृते तत्त्वानि तत्त्वतः ॥ तद्व्याप्तिस्तद्विवृद्धिश्च ज्ञातुमेवं न शक्यते ॥२७॥ शक्तिराज्ञा परा शैवी चिद्रूपा परमेश्वरी ॥ शिवोऽधितिष्ठत्यखिलं यया कारणभूतया॥२८॥ नात्मनो नैव मायैषा न विकारो विचारतः ॥ न बंधो नापिमुक्तिश्च बंधमुक्तिविधायिनी ॥ २९ ॥ सर्वैश्वर्यपराकाष्ठा शिवस्य व्यभिचारिणी ॥ समानधर्मिणी तस्य तैस्तैर्भावैर्विशेषतः ॥३०॥स तयैव गृही सापि तेनैव गृहिणी सदा ॥ तयोरपत्यं यत्कार्यं परप्रकृतिजं जगत् ॥ ३१ ॥ स कर्ता कारणं सेति तयोर्भेदो व्यवस्थितः॥ एक एव शिवः साक्षाद्विधाऽसौ समवस्थितः ॥ ३२ ॥ स्त्रीपुंसभावेन तयोर्भेद इत्यपि केचन ॥ अपरे तु परा शक्तिः शिवस्य समवायिनी ॥ ३३ ॥

बन्ध है न मुक्ति है और बंध मुक्तिका विधान करनेवाली है ॥ २९ ॥ सब ऐश्वर्यकी पराकाष्ठा शिवकी अव्यभिचारिणी शक्ति है, विशेष कर शिवके उन २ भावोंके समान धर्मिणी है ॥ ३० ॥ वह शिव उससे गृही (गृहस्थी) और वह शक्ति उनसे सदागृहिणी है उनकी सन्तान जो कार्य है वही परम प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ जगत् है ॥ ३१ ॥ वही कर्ता शिव है, शक्ति कारणरूपसे कल्पित है, इसीसे वह जगत्के माता पिता कहे हैं, यही इतना इनका भेद है, एकही शिव दो प्रकारसे स्थित हैं ॥ ३२ ॥ स्त्री पुरुषरूपसे कोई उसमें भेद कहते हैं कोई परा

शक्ति शिवमें नित्य मिली कहते हैं ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार सूर्यकी प्रभा सूर्यसे भिन्न और अभिन्न है, इसी प्रकार वह शक्ति है, इस कारण शिवही परम कारण हैं उनकी आज्ञा वह परमेश्वरी है ॥ ३४ ॥ उसीसे वह शिवकी अविनाशिनी मूलप्रकृति प्रेरित होकर त्रिगुणात्मक होती है, महामायाके भेदसे वह प्रकृति त्रिगुणात्मक होकर ॥ ३५ ॥ कार्यके भेदसे तीन प्रकारकी होकर षडध्वोंको प्रगट करती है, वही वाणी और अर्थमय षडध्व है जिससे सब जगत् व्याप्त है ॥ ३६ ॥ शास्त्रोंमें इसीका महाविस्तार कहा है ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे षडध्वकथनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ऋषि बोले, शिवजीके चरित्र बडे विचित्र

प्रभेव भानोश्चिद्रूपा भिन्नैवेति व्यवस्थितिः ॥ तस्माच्छिवः परो हेतुस्तस्याज्ञा परमेश्वरी ॥ ३४ ॥ तयैव प्रेरिता शैवी मूल प्रकृतिरव्यया ॥ महामाया च माया च प्रकृतिस्त्रिगुणेति च ॥ ३५ ॥ त्रिविधा कार्यवेधेन सा प्रसूते षडध्वनः ॥ स वागर्थ मयश्चाध्वा षड् विधो निखिलं जगत् ॥ ३६ ॥ अस्यैव विस्तरं प्राहुः शास्त्र जातमशेषतः ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे वागर्थात्मकतत्त्ववर्णनं नाम नामैकोनत्रिंशो ऽध्यायः ॥ २९ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ चरितानि विचित्राणि गृह्याणि गहनानि च ॥ दुर्विज्ञेयानि देवैश्च मोहयंति मनांसि नः ॥१॥ शिवयोस्तत्त्वसम्बन्धे न दोष उपलभ्यते ॥ चरितैः प्राकृतो भावस्तयोरपि विभाव्यते ॥ २ ॥ ब्रह्मादयोऽपि लोकानां सृष्टि स्थित्यन्तहेतवः ॥ निग्रहानुग्रहौ प्राप्य शिवस्य वशवर्तिनः ॥ ३ ॥ शिवः पुनर्न कस्यापि निग्रहानुग्रहास्पदम् ॥ अतोऽननतिशतैश्वर्य तस्यैवेति विनिश्चितम् ॥ ४ ॥ यद्येवमीदृशैश्वर्य्य तत्तु स्वातन्त्र्यलक्षणम् ॥ स्वभावसिद्धं चैतस्य मूर्तिमत्तास्पदं भवेत् ॥ ५ ॥

और गहन हैं यह देवताओंको भी जाननेको अशक्य हैं, हमारे मन मोहित करते हैं ॥ १ ॥ शिवा शिवके तत्वज्ञानमें कोई दोष विदित नहीं होता, उन दोनोंके चरित्रमें विशेषकर प्रकृति संभव भाव रहता है ॥ २ ॥ यद्यपि ब्रह्मादिकभी लोकोंकी उत्पत्ति पालन और प्रलयके कारण हैं परन्तु वे निग्रह अनुग्रहको प्राप्त होकर शिवके वशवर्ती हैं ॥ ३ ॥ परन्तु शिव किसीके निग्रह अनुग्रहके स्थान नहीं हैं, इस कारण शिवका ऐश्वर्य किसीके आधीन नहीं यह निश्चय है ॥ ४ ॥ जो कि यह इस प्रकारका ऐश्वर्य है, यही स्वतन्त्रताका लक्षण है सो इनका स्थान

मूर्तिमान कैसे हो सकता है ॥ ५ ॥ जगत्के कारण होनेसे स्वतंत्रकी मूर्ति नहीं हो सकती, मूर्तिमें कार्यत्व होनेसे विना हेतु उसकी सिद्धि हो सकती है ॥ ६ ॥ सर्वत्र निर्गुण भाव कहा है दूसरा नहीं फिर निर्गुण और सगुण एकहीमें दो कैसे स्थित हो सकते हैं ॥ ७ ॥ परम परमात्माका निर्गुण स्वभाव है; फिर वह स्वभावके विपरीत सगुण कैसे हो सकता है ॥ ८ ॥ और स्वतंत्रकी इच्छासे यदि उसका स्वभाव विपरीत हो जाय तो वह ईशान अपने नित्य स्वरूपको अनित्य क्यों नहीं करता ॥ ९ ॥ मूर्ति आत्मावाला जो कोई सगुण है वह निर्गुण शिवसे अन्य है यह सब कुछ सर्वत्र शिवसे ही अधिष्ठित है ॥ १० ॥ जब कभी इन शिवकी मूर्तिमें वह मूर्तिमान् परतंत्र हो सकता है यह

न मूर्तिश्च स्वतंत्रस्य घटते मूलहेतुना॥मूर्तेरपि च कार्यत्वात्तत्सिद्धिःस्यादहैतुकी॥६॥ सर्वत्र परमो भावोऽपरमश्चान्य उच्यते॥ परमापरमौ भावौ कथमेकत्र संगतौ॥७॥निष्फलो हि स्वभावोऽस्य परमः परमात्मनः॥स एव सकलःकस्मात्स्वभावो ह्यविपर्ययः ॥ ८ ॥ स्वभावो विपरीतश्चेत्स्वतंत्रः स्वेच्छया यदि॥नकरोति किमीशानो नित्यानित्यविपर्ययम् ॥९॥ मूर्तात्मा सकलः कश्चित्स चान्यो निष्फलः शिवः॥शिवेनाधिष्ठितश्चेति सर्वत्र लघु कथ्यते॥१०॥मूर्त्यात्मैव तदा मूर्तिः शिवस्यास्य भवेदिति॥ तस्य मूर्तौ मूर्तिमतोःपारतंत्र्यं हि निश्चितम्॥११॥अन्यथा निरपेक्षेण मूर्तिःस्वीक्रियते कथम्॥मूर्तिस्वीकरणं तस्मान्मूर्तौ साध्य फलेप्सया॥१२॥न हि स्वेच्छाशरीरत्वं स्वातंत्र्यायोपपद्यते॥स्वेच्छैव तादृशी पुंसां यस्मात्कर्मानुसारिणी॥१३॥स्वीकर्तुं स्वेच्छया देहं हातुंच प्रभवन्त्युत॥ब्रह्मादयःपिशाचांताः किं ते कर्मातिवर्तिनः॥१४॥ इच्छया देहनिर्माणमिन्द्रजालोपमं विदुः॥अणिमादिगुणैश्वर्य्यवशीकारानतिक्रमात्॥१५॥विश्वरूपं दधद्विष्णुर्दधीचेन महर्षिणा॥युध्यता समुपालब्धस्तद्रूपं दधता स्वयम्॥१६॥

निश्चय है ॥ ११ ॥ नहीं तो निरपेक्षकी कल्पना मूर्ति किस प्रकार हो सकती है; इस कारण मूर्ति साध्य फलकी इच्छासे मूर्तिका स्वीकार होता है; स्वेच्छासे ही भगवान् मूर्ति धारण करें तो परतन्त्रता नहीं हो सकती; कारण कि अपनी इच्छा भी पुरुषोंको कर्मानुसारिणी होती है ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ अपनी इच्छासे देहको धारण करने और त्यागनेको समर्थ ब्रह्मासे लेकर पिशाच पर्यंत हैं क्या वे कर्मके वशवर्ती हैं ॥ १४ ॥ इच्छासे देहका निर्माण इन्द्रजालके समान है; अणिमादि गुण ऐश्वर्य वशी करनेसे ॥ १५ ॥ युद्ध करते हुए दधीचि ऋषिके साथ

विष्णुने विश्वरूप धारण किया ॥ १६ ॥ परन्तु परमात्मा शिवका सबसे अधिक ऐश्वर्य होनेसे यदि शरीर धारण करें तो हमको वे भी दूसरोंके समान विदित होंगे ॥ १७ ॥ परम कारण शिवको सबका अनुग्रह करनेवाला कहा है; वह देवतादिकोंके निग्रह करनेवाले सबके अनुग्राहक किस प्रकार हो सकते हैं ॥ १८ ॥ ब्रह्माका पाँचवाँ शिर देवने भेदन किया यहभी किसी कल्पकी कथा है; पुत्र होकर भी उन्होंने शिवकी निन्दा की यह कुमति और हठ की ॥ १९ ॥ और विष्णुके नृसिंहरूपको शरभरूपसे शान्त किया और चरणोंसे आक्रमण करके नखकी तीक्ष्णतासे उनके हृदयको विदारण किया ॥ २० ॥ देवताओंकी स्त्री और देवताओंमें दक्षके यज्ञके कारणसे वीरभद्र वीरने सबको दंडित किया

सर्वस्मादधिकस्यापि शिवस्य परमात्मनः ॥ शरीरवत्तयान्यात्मसाधर्म्यं प्रतिभाति नः ॥ १७ ॥ सर्वानुग्राहकं प्राहुश्शिवं प रम कारणम् ॥ स निर्गृह्णति देवानां सर्वानुग्राहकः कथम् ॥ १८ ॥ चिच्छेद बहुशो देवो ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः ॥ शिवनिन्दां प्रकुर्व्वतं पुत्रेति कुमतेर्हठात् ॥१९॥ विष्णोरपि नृसिंहस्य रभसा शरभाकृतिः ॥ बिभेद पद्भ्यामाक्रम्य हृदयं नखरैः खरैः ॥२०॥ देवस्त्रीषु च देवेषु दक्षस्याध्वरकारणात् ॥ वीरेण वीरभद्रेण न हि कश्चिददण्डितः ॥ २१ ॥ पुरत्रयं च सस्त्रीकं सदैत्यं सह बालकैः॥ क्षणेनैकेन देवेन नेत्राग्नेरिंधनीकृतम् ॥ २२ ॥ प्रजानां रतिहेतुश्च कामो रतिपतिस्स्वयम् ॥ क्रोशतामेव देवानां हुतो नेत्रहुताशने ॥ २३ ॥ गावश्च कश्चिद्दुग्धौघं स्रवन्त्यो मूर्ध्नि खेचराः ॥ सरुषा प्रेक्ष्य देवेन तत्क्षणे भस्मसात्कृतः ॥ २४ ॥ जलंधरासुरोदीर्णश्चक्रीकृत्य जलं पदा ॥ बद्ध्वानंतेन यो विष्णुं चिक्षेप शतयोजनम् ॥ २५ ॥

॥ २१ ॥ कोई न छोडा स्त्रीसहित त्रिपुर दैत्य और वहांके बालकोंको क्षणमात्रमें उन देवादिदेवने त्रेताग्निका ईंधन कर दिया अर्थात् भस्म कर दिया ॥ २२ ॥ और प्रजाओंकी प्रीतिके निमित्त स्वयं रतिपति कामदेवको देवताओंके निषेध करते २ नेत्रके हुताशनमें हवन कर दिया ॥ २३ ॥ और जो गौ उनके शिरपर दूध डालती थीं उनको भी क्रोधसे देवने भस्म कर दिया; अर्थात् अदृश्य कर दिया ॥ २४ ॥ जलंधर एक बडा असुर था. इसने जलको पैरोंसे चक्राकार करके अनंतसे बाँधकर विष्णुको सौ योजन फेंक दिया ॥ २५ ॥

उसी जलंधरको जिन शिवने त्रिशूलसे मार दिया, उसी चक्रको तपस्यासे लेकर भगवान् महापराक्रमी हुए ॥ २६ ॥ और दैत्योंके कुलको दयारहित हो नष्ट कर देते हैं, त्रिशूलसे अंधकासुरका हृदय अग्निके समान तप्त किया ॥ २७ ॥ और कंठसे कालरूप स्त्रीको उत्पन्नकर दारुक को मारा, गौरीकी त्वचासे कौशिकीको उत्पन्न कराकर ॥ २८ ॥ शुम्भ और निशुंभका रणमें मरण कराया; स्कन्दपुराणमें स्कन्दका महा आख्यान श्रवण किया है ॥ २९ ॥ जो कि उन्होंने महाबली तारकासुरका वध किया; ब्रह्माकी प्रार्थनासे देवादिदेव मन्दराचलसे अन्तःपुरमें गये ॥ ३० ॥ वहां बहुत दिनोंतक विहार कर प्रसंगसे अपने आघातसे पृथ्वीको रसातलमें प्राप्त हुईके समान कर दिया ॥ ३१ ॥ और

तमेव जलसंधायी शूलेनैव जघान सः ॥ तच्चक्रं तपसा लब्ध्वा लब्धवीर्य्यो हरिस्सदा ॥२६॥ जिघांसतां सुरारीणां कुलं निर्घृणचेतसाम् ॥ त्रिशूलेनान्धकस्योरः शिखिनैवोपता पितम् ॥ २७ ॥ कण्ठात्कालांगनां सृष्ट्वा दारकोपि निपातितः ॥ कौशिकीं जनयित्वा तु गौर्य्यास्त्वक्कोशगोचराम् ॥ २८ ॥ शुंभस्सह निशुंभेन प्रापितो मरणं रणे ॥ श्रुतं च महदाख्यानं स्कान्दे स्कन्दसमाश्रयम् ॥२९॥ वधार्थं तारकाख्यस्य दैत्येन्द्रस्येन्द्रविद्विषः ॥ ब्रह्मणाभ्यर्थितो देवो मन्दरान्तःपुरं गतः ॥३०॥ विहृत्य सुचिरं देव्या विहाराऽतिप्रसङ्गतः ॥ रसां रसातलंनीतामिव कृत्वाभिधां ततः ॥३१॥ देवीं च वंचयंस्तस्यां स्ववीर्यमतिदुर्वहम् ॥ अविसृज्य विसृज्याग्नौ हविः पूतमिवामृतम् ॥३२॥ गंगादिष्वपि निक्षिप्य वह्निद्वारा तदंशतः ॥ तत्समाहृत्य शनकैस्तोकंस्तोकमितस्ततः ॥३३॥ स्वाहया कृत्तिकारूपात्स्वभर्त्रा रममाणया ॥ सुवर्णीभूतया न्यस्तं मेरौ शरवणे क्वचित् ॥ ३४ ॥ संदीपयित्वा कालेन तस्य भासा दिशो दश ॥ रञ्जयित्वा गिरीन्सर्वान्कांचनीकृत्य मेरुणा ॥ ३५ ॥

अपने बडे पराक्रमसे देवीको वंचित करते हुए अपने अमोघवीर्यको उनमें न त्यागनकर अग्निमें हविसे पवित्र अमृतके समान त्यागन किया ॥ ३२ ॥ और फिर अग्निद्वारा उसके अंशसहित गंगामें प्राप्त कराया, सो शनैः शनैः हरणकर थोडा २ इधर उधरसे ले ॥ ३३ ॥ अग्नि की स्त्री स्वाहाद्वारा जो कृत्तिकाके रूपसे अपने भर्तासे रमणकी इच्छा करती थी, स्वीकार किया गया फिर जो मेरुपर्वतमें शरकंडोंके वनमें सुवर्णके समान रक्खा गया था ॥ ३४ ॥ कुछ दिनोंमें उससे दशोंदिशा प्रदीप्त हो गईं; सब पर्वतोंको रंजित कर सुमेरुको

सुवर्णमय कर दिया ॥ ३५ ॥ तब बहुत काल पीछे उस तेजसे कुमारोंके निदर्शनरूप सुकुमार शरीर कुमार अवस्थाको प्राप्त मनोहर शरीर एक बालक उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ उसका मनोहर शिवरूप देखकर देवासुरादि सब लोक विस्मित और मोहित होगये ॥ ३७ ॥ पुत्रदर्शनकी इच्छासे स्वयं शिवजी वहां आये देवीसहित हास्यमुखवाले उसको गोदीमें बैठाकर विवश हो ॥ ३८ ॥ अन्तरात्मासे पुत्रके मुखका पान करने लगे, उस समय वीतराग तपस्वियोंने देवका दर्शनकर ॥ ३९ ॥ अपने हृदय और अंगमें कुमारको नृत्य कराकर उसकी क्रीडाका अनुभव कर परस्पर वार्ता करके ॥ ४० ॥ दूध पीनेकी आज्ञा दी, तब देवीने अमृतके समान दूध पिलाकर तुम्हारा अवतार

ततश्चिरेण कालेन संजाते तत्र तेजसि ॥ कुमारे सुकुमारांगे कुमाराणां निदर्शने ॥३६॥तच्छैशवं स्वरूपं च तस्य दृष्ट्वा मनोहरम् ॥ सह देवासुरैर्लोकैर्विस्मिते च विमोहिते ॥३७॥ देवोऽपि स्वयमायातः पुत्रदर्शनलालसः ॥ सह देव्यांकमारोप्य ततोऽस्य स्मेरमाननम् ॥ ३८ ॥ पीतामृतमिव स्नेहविवशेनान्तरात्मना॥ देवेष्वपि च पश्यत्सु वीतरागैस्तपस्विभिः ॥ ३९ ॥ स्वस्य वक्षः स्थले स्वैरं नर्तयित्वा कुमारकम् ॥ अनुभूय च तत्क्रीडां संभाव्य च परस्परम् ॥ ४० ॥ स्तन्यमाज्ञापयन्देव्याः पाययित्वामृतोपमम् ॥ तवावतारो जगतां हितायेत्यनुशास्य च ॥ ४१ ॥ स्वयन्देवश्च देवी च न तृप्तिमुपजग्मतुः ॥ ततः शक्रेण संधाय बिभ्यता तारकासुरात् ॥ ४२ ॥ कारयित्वाभिषेकं च सेनापत्ये दिवौकसाम् ॥ पुत्रमन्तरतः कृत्वा देवेनत्रिपुरद्विषा ॥ ४३ ॥ स्वयमंतर्हितेनैव स्कन्दमिन्द्रादिरक्षितम् ॥ तच्छक्त्या क्रौञ्चभेदिन्या युधि कालाग्निकल्पया ॥४४॥ छेदितं तारकस्यापि शिरश्च क्रभिया सह ॥ स्तुतिं चक्रुर्विशेषेण हरिधातृमुखाः सुराः ॥ ४५ ॥

जगत्के हितके निमित्त है, ऐसा कहकर ॥ ४१ ॥ देवी और देव किसी प्रकारसे तृप्त न हुए तब इन्द्रसे सम्मति कर जो कि तारकासुरसे भयभीत हो रहे थे ॥ ४२ ॥ देवताओंके सेनापतिके पदमें उनका अभिषेक कराय त्रिपुरहन्ता शिवने पुत्रको अन्तरित करके ॥ ४३ ॥ अर्थात् युद्धमें कालाग्निके समान क्रौंचविदारिणी शक्ति देकर इन्द्रसे रक्षित कराय स्वयं शिव अन्तर्धान हुए ॥ ४४ ॥ युद्धमें कालाग्निके समान क्रौंचपर्वतको विदीर्ण करनेवाली उस शक्तिसे कुमारने इन्द्रके भयसहित तारकासुरका शिर छेदन कर डाला और

विधाता विष्णु आदि विशेषकर उनकी स्तुति करने लगे ॥४५॥ इसी प्रकार महाबली रावणने जब अपनी भुजाओंसे पर्वतश्रेष्ठ कैलास उठालिया ॥ ४६ ॥ तब शूलधारी शिवने उसका यह अपराध न सहकर चरणके अंगूठेसे रावणको पृथ्वीमें दाबदिया ॥ ४७ ॥ कोई ब्रह्मचारी वा मार्कण्डेय उनका भक्त जब आयुहीन हुआ तब शिवने तत्काल आकर बचाया; यमने उनके चरणोंको प्रणाम किया ॥ ४८ ॥ वृषेन्द्र अपने वाहनको न जानकर वडवानलकोही वृषभ जानकर प्रलयके समय गला पकड कर ले आये ॥ ४९ ॥ और वह वृत्त आनन्ददायक जो कि लोकमें विदित नहीं हैं, उनमें केवल अंगको चलानेसेही जगत्को चलायमान कर दिया, निर्गुणमें यह सब कैसे सम्भव हैं ॥ ५० ॥

तथा रक्षोधिपः साक्षाद्रावणो बलगर्वितः॥उद्धरन्स्वभुजैर्दीर्घैः कैलासं गिरिमात्मनः ॥ ४६ ॥ तदागोऽसहमानस्यदेवदेवस्य शूलिनः ॥ पदांगुष्ठपरिस्पन्दान्ममज्ज मृदितो भुवि ॥ ४७ ॥ बटोः केनचिदर्थेन स्वाश्रितस्य गतायुषः ॥ त्वरयागत्य देवेन पादां तं गमितोन्तकः॥४८॥स्ववाहनमविज्ञाय वृषेन्द्रं वडवानलः॥सगलग्रह मानीतस्ततोऽस्त्येकोदकं जगत् ॥ ४९ ॥ अलोकविदितै स्तैस्तैर्वृत्तैरानन्दसुन्दरैः ॥ अंगहारस्वसेनेदमसकृच्चालितं जगत् ॥ ५० ॥ शान्त एव सदा सर्वमनुगृह्णाति चेच्छिवः ॥ सर्वाणि पूरयेदेव कथं शक्तेन मोचयेत् ॥ ५१ ॥ अनादिकर्म वैचित्र्यमपि नात्र नियामकम् ॥ कारणं खलु कर्मापि भवेदीश्वरकारितम् ॥ ५२ ॥ किमत्र बहुनोक्तेन नास्तिक्यं हेतुकारकम् ॥ यथा ह्याशु निवर्तेत तथा कथय मारुत॥५३॥इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे शिवतत्त्वप्रश्नो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ स्थाने संशयितं विप्रा भवद्भिर्हेतुचोदितैः ॥ जिज्ञासा हि न नास्तिक्यं साधयेत्साधुबुद्धिषु ॥ १ ॥

जो शान्त होकर शिव सदा सबके ऊपर अनुग्रह करते हैं तो समर्थ होकर सबको एकबार मुक्त क्यों नहीं कर देते ॥ ५१ ॥ जो कहो प्रारब्ध कर्म रहनेसे सब किस प्रकार मुक्त हो सकते हैं; तो दुःख प्राप्तिमें कर्मोंका कारण भी तो ईश्वरका कराया होता है ॥ ५२ ॥ बहुतसी नास्तिकताके हेतुकी तर्कसे क्या है जिस प्रकार हमारा सन्देह दूर हो; हे पवनदेव ! सो तुम कहो ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ वायु बोले, हे ब्राह्मणो ! आपने हेतु देकर उचितही सन्देह

किया है; बुद्धि सावधान करनेके निमित्त जिज्ञासा है नास्तिकता नहीं है ॥ १ ॥ सत्पुरुषोंके मोहका दूर करनेवाला प्रमाण इसमें कहता हूं; शिवकी प्रसन्नताके विना असत् पुरुषोंको अन्यथा भाव होता है ॥ २ ॥ परिपूर्ण स्वभाव शिवका परानुग्रहके सिवाय और कुछ भी कर्तव्य नहीं है ॥ ३ ॥ पराये अनुग्रहके कर्ममें स्वभावही समर्थ है, निःस्वभावसे तो कुछभी नहीं हो सकता ॥ ४ ॥ यह पशुपाशात्मक जगत् सब उत्तमोंके अनुग्रह करनेके योग्य है; दूसरोंपर अनुग्रह करनेके निमित्तही शिवकी आज्ञा होती है ॥ ५ ॥ वही पति आज्ञा देनेवाला सदा सबपर अनुग्रह कर्ता है; उन्हींके निमित्त उक्त प्रयोजनके स्वीकारमें शिव अनुग्रह करनेसे किस प्रकार परतन्त्र हो सकते हैं ॥ ६ ॥

प्रमाणमत्र वक्ष्यामि सताम्मोहनिवर्तकम् ॥ असतां त्वन्यथाभावः प्रसादेन विना प्रभोः ॥ २ ॥ शिवस्य परिपूर्णस्य परानुग्रहमन्तरा ॥ न किंचिदपि कर्तव्यमिति साधु विनिश्चितम् ॥३॥ स्वभाव एव पर्य्याप्तः परानुग्रहकर्मणि ॥ अन्यथा निस्स्वभावेन न किमप्यनु गृह्यते ॥४॥ परं सर्वमनुग्राह्यं पशुपाशात्मकं जगत् ॥ परस्यानुग्रहार्थं तु पत्युराज्ञासमन्वयः ॥ ५ ॥ पतिराज्ञापकःसर्वमनुगृह्णातिसर्व्वदा ॥ तदर्थमथस्वीकारे परतंत्रः कथं शिवः ॥६॥ अनुग्राह्यनपेक्षोऽस्ति न हि कश्चिदनुग्रहः ॥ अतः स्वातन्त्र्य शब्दार्थाननपेक्षत्व लक्षणः ॥ ७ ॥ एतत्पुनरनुग्राह्यं परतंत्रं तदिष्यते ॥ अनुग्रहादृते तस्य भुक्तिमुक्त्योरनन्वयात् ॥ ८ ॥ मूर्तात्मनोऽप्यनुग्राह्या शिवा ज्ञाननिवर्तनात् ॥ अज्ञानाधिष्ठितं शम्भोर्न किंचिदिह विद्यते ॥९॥ येनोपलभ्यतेऽस्माभिस्सकलेनापि निष्कलः ॥स मूर्त्यात्मा शिवः शैवमूर्तिरित्युपचर्यते॥१०॥न ह्यसौ निष्कलः साक्षाच्छिवः परमकारणम् ॥ साकारेणानुभावेन केनाप्यनुपलक्षितः ॥ ११ ॥

जो अनुग्रहमें अनपेक्ष हो तो कैसे अनुग्रह हो सकता है, इस कारण स्वतंत्र शब्दका यह अर्थ नहीं कि उसे किसीकी अपेक्षा न हो ॥ ७ ॥ और जो अनुग्रह करनेवालेको परतन्त्र कहो तो अनुग्रहके विना भुक्ति मुक्तिका भी अन्वय न होगा ॥ ८ ॥ शिवकी आज्ञाके निवृत्त न होनेसे मूर्ति आत्मावालेभी अनुग्रह करनेके योग्य हैं, इस संसारमें ऐसा कोई भी नहीं जो शिवकी आज्ञामें अधिष्ठित न होगा ॥ ९ ॥ जिस सगुणके द्वारा निर्गुणकी हम प्राप्ति करते हैं वही मूर्ति आत्मावाले शिवकी मूर्ति कही है ॥ १० ॥ यह परम कारण शिव

निर्गुणही नहींहै; इसके सच्चिदानन्द स्वरूपको तो कोई नहीं जानसकता ॥ ११ ॥ उसके स्वरूपका साधक प्रमाणगम्य श्रवण मनन आदि लभ्य मात्र है इनमें प्रत्यक्ष दर्शनके अन्तरवाली अपेक्षा बुद्धि न करनी चाहिये॥१२॥कोई साक्षात् आत्माके उपलक्षणवाली मूर्तिहै तो मूर्तिआत्मावाले शिवका मूर्ति उपलक्षण है ॥ १३ ॥ जैसे काष्ठादिमें न आरूढहुई अग्नि नहीं दीखती, इसी प्रकार शिवभी मूर्तिमें अनारूढ हुए नहीं दीखते यह स्थिति है ॥ १४ ॥ जैसे 'अग्नि लाओ' कहनेपर इसपर जलता हुआ काष्ठखण्ड लायाजाता है; केवल अग्नि कोई नहीं लासकता इसी प्रकार मूर्तिवाले क्षिव पूज्यहैं ॥ १५॥ इसी प्रकार पूजाकी आदिमें मूर्तिआत्मावाले शिवका पूजन होता है; मूर्तिआत्मामें किये हुए साक्षात् शिवकाही

प्रमाणगम्यतामात्रं तत्स्वभावोपपादकम् ॥ नतावतात्रोपेक्षाधीरुपलक्षणमंतरा ॥ १२॥आत्मोपमोल्वणंसाक्षान्मूर्तिरेव हि काचन ॥ शिवस्य मूर्तिर्मूर्त्यात्मा परस्तस्योपलक्षणम् ॥१३॥यथा काष्ठेष्वनारूढो न वह्निरुपलभ्यते ॥एवं शिवोऽपि मूर्त्यात्मन्यनारूढ इति स्थितिः॥१४॥यथाग्निमानयेत्युक्ते ज्वलत्काष्ठादृते स्वयम् ॥ नाग्निरानीयते तद्वत्पूज्यो मूर्त्यात्मना शिवः॥१५॥अत एव हि पूजादौ मूर्त्यात्मपरिकल्पनम् ॥ मूर्त्यात्मनि कृतं साक्षाच्छिव एव कृतं यतः ॥१६॥ लिंगादावपि तत्कृत्यमर्चायां च विशेषतः ॥ तत्तन्मूर्त्यात्मभावेन शिवोऽस्माभिरुपास्यते ॥१७॥ यथानुगृह्यते सोऽपि मूर्त्यात्मा पारमेष्ठिना ॥तथा मूर्त्यात्मनिष्ठेन शिवेन पशवो वयम् ॥ १८॥ लोकानुग्रहणायैव शिवेन परमेष्ठिना ॥ सदाशिवादयस्सर्वे मूर्त्यात्मानोऽप्यधिष्ठिताः ॥१९॥

पूजन होताहै ॥ १६ ॥ लिंगादिकी प्रतिमा बनाकर उस २ मूर्तिके भावमें पूजा विशेषसे हम शिवकी उपासना करते हैं ॥ १७ ॥ जिस प्रकार वह मूर्ति आत्मा परमेश्वर निर्गुण हमपर अनुग्रह करतेहैं, इसी प्रकार मूर्ति आत्मामें निष्ठित परमेश्वरकी हम जीव उपासना करते हैं॥१८॥शिव परमात्माने लोकोंपर अनुग्रह करनेके निमित्तही सदाशिवादि मूर्ति आत्मासे स्थित हुए हैं,वह मूर्ति आत्माके भावसे स्वयं अनुग्रहको प्राप्त होकर शिवसे अधिष्ठित हो दूसरी आत्माओंपर अनुग्रह करतेहैं ॥ १९ ॥

आत्मा भोग और मोक्षके निमित्त विशेष करके हैं, तत्वरूप होनेसे उन मूर्तिआत्मक स्वरूपमें शिवकी प्राप्ति है ॥२०॥ भोग कर्मोंके विपाकसे होताहै, वह सुख दुख रूप है, जब शिवमें कर्म नहीं है तो भोग कैसे हो सकता है ॥ २१ ॥ शिव सबहीपर अनुग्रह करतेहैं, किसीका निग्रह नहीं करते, जो निग्रहके दोष हैं वे शिवमें नहीं हैं ॥ २२ ॥ और जो ब्रह्मादिकमें कहीं निग्रह देखा गयाहै वह भी शिवने लोकके हितके निमित्तही कियाहै॥२३॥शिवको इस जगत्का आधिपत्य है इसमें सन्देह नहीं श्रीकण्ठानामकी शिवकी मूर्ति क्रीडा करती हुई जगत्में स्थित है ॥ २४ ॥ दोषपूर्वक ही देवता ब्रह्मादिको यथायोग्य दंडित कियाथा, इससे वे पापरहित होगये और प्रजा दुःखरहित होगई ॥ २५ ॥ इस

आत्मनामेव भोगाय मोक्षाय च विशेषतः ॥ तत्त्वातत्त्वस्वरूपेषु मूर्त्यात्मसु शिवान्वयः ॥ २० ॥ भोगः कर्मविपाकात्मा सुख दुःखात्मको मतः ॥ न च कर्म शिवेऽस्तीति तस्य भोगः किमात्मकः ॥ २१ ॥ सर्वं शिवोऽनुगृह्णाति न निगृह्णाति किंचन ॥ निगृह्णतां तु ये दोषाश्शिवे तेषामसंभवात् ॥ २२ ॥ ये पुनर्निग्रहाः केचिद्ब्रह्मादिषु निदर्शिताः ॥ तेऽपि लोकहितायैव कृताः श्रीकण्ठमूर्तिना ॥२३॥ ब्रह्माण्डस्याधिपत्यं हि श्रीकण्ठस्य न संशयः ॥ श्रीकण्ठाख्यां शिवो मूर्तिं क्रीडतीमधितिष्ठति ॥२४॥ सदोषा एव देवाद्या निगृहीता यथोदितम् ॥ ततस्तेपि विपाप्मानः प्रजाश्चापि गतज्वराः ॥ २५ ॥ निग्रहोऽपि स्वरूपेण विदुषां न जुगुप्सितः ॥ अत एव हि दण्डयेषु दण्डो राज्ञां प्रशस्यते ॥ २६ ॥ यत्सिद्धिरीश्वरत्वेन कार्यवर्गस्य कृत्स्नशः ॥ न स चेदीशतां कुर्याज्जगतः कथमीश्वरः ॥ २७ ॥ ईशेच्छा च विधातृत्वं विधेराज्ञापनं परम् ॥ आज्ञावश्यमिदं कुर्यान्न कुर्यादिति शासनम् ॥२८॥ तच्छासनानुवर्तित्वं साधुभावस्य लक्षणम् ॥ विपरीतमसाधोः स्यान्न सर्वं तत्तु दृश्यते ॥ २९ ॥

प्रकारका निग्रह पंडितोंको निन्दित नहीं है, इसी प्रकार राजाओंकी दंडयोग्योंमें दंड करनेकी प्रशंसा कही है॥२६॥जो सिद्धि ईश्वरके कार्यसे नित्य होतीहै यदि वह अपनी ईश्वरता न करे तो जगत्के ईश्वर किस प्रकार कहेजाँय॥२७॥ईश्वरता विधातापन यह विधिकी आज्ञा कही हैं, यह इस प्रकार करो; इसका नाम आज्ञा है; यह मत करो इसका नाम अनुशासन है ॥ २८ ॥ उसके शासनके अनुसार वर्तना साधुभावका लक्षण है, विपरीत करनेका नाम असाधुपन है; यह बात सबमें नहीं दीखती ॥ २९ ॥

यदि साधुपनकी रक्षा करनेकी इच्छा हो तो विपरीतता छोडो, और सामादि उपायके विफल होनेसे अन्तमें दण्ड होताही है ॥ ३० ॥ दण्डके पीछे अनुशासन करना ही हितका लक्षण है, इससे विपरीत करनेका ही नाम अहित है ॥ ३१ ॥ सदा सबके हितमें रहना यही ईश्वरमें दृष्टान्त है, फिर असत्पुरुषोंके निग्रह करनेसे वह किस प्रकार दूषित हो सकता है ॥ ३२ ॥ अयुक्त करनेवाले अज्ञानी लोकमें निन्दित होते हैं, जो कर्म लोकको उत्तेजित करता है उसे अयुक्त कहते हैं ॥ ३३ ॥ लोकमें सबका निग्रह विद्वेषपूर्वक नहीं है, जो पिता पुत्रको निग्रहपूर्वक शिक्षा देता है वह द्वेषी नहीं कहाता है ॥ ३४ ॥ दूसरे पक्षकी सहायता छोडकर मध्यस्थ होकर निग्रह करना अथवा

साधु संरक्षणीयं चेद्विनिवर्त्यमसाधु यत् ॥ निवर्तते च सामादेरंते दण्डो हि साधनम् ॥ ३० ॥ हितार्थलक्षणं चेदं दण्डान्त मनुशासनम् ॥ अतो यद्विपरीतं तदहितं संप्रचक्षते ॥ ३१ ॥ हिते सदा निषण्णानामीश्वरस्य निदर्शनम् ॥ स कथं दुष्यते स द्भिरसतामेव निग्रहात् ॥ ३२ ॥ अयुक्तकारिणो लोके गर्हणीयावि वेकिता ॥ यदुद्वेजयते लोकन्तदयुक्तं प्रचक्षते॥३३॥सर्वोऽ पि निग्रहो लोके न च विद्वेषपूर्वकः ॥ न हि द्वेष्टि पिता पुत्रं यो निगृह्णाति शिक्षयेत्॥३४॥ माध्यस्थेनापि निग्राह्यान्यो निगृह्णा ति मार्गतः ॥ तस्याप्यवश्यं यत्किंचिन्नैर्घृण्यमनुवर्तते ॥ ३५ ॥अन्यथा न हिनस्त्येव सदोषानप्यसौ परान् ॥ हिनस्ति चाय मप्यज्ञान्परं माध्यस्थ्यमाचरन् ॥३६॥ तस्माद्दुःखात्मिकां हिंसां कुर्वाणो यः सनिर्घृणः ॥ इति निर्बंधयंत्येके नियमो नेति चापरे ॥ ३७ ॥ निदानज्ञस्यभिषजो रुग्णो हिंसां प्रयुंजतः ॥ न किंचिदपि नैर्घृण्यं घृणैवात्र प्रयोजिका ॥ ३८ ॥ घृणापि न गुणायैव हिंस्रेषु प्रतियोगिषु ॥ तादृशेषु घृणी भ्रान्त्या घृणान्तरितनिर्घृणः ॥ ३९ ॥

मार्गसे अर्थात् न्यायसे निग्रह करना उसमें भी अवश्य कुछ कठोरता रहती है ॥ ३५ ॥ जो निर्घृणता न हो तो वह दूसरे दोषियोंको भी न मारे वह अत्यन्त मध्यस्थता धारण किये अज्ञोंको दण्ड देते हैं ॥ ३६ ॥ इस कारण जो दुःखात्मक हिंसा करता है वह निर्घृण है, ऐसा कोई नियम कहते हैं, परन्तु दूसरे इस बातको नहीं मानते ॥ ३७ ॥ निदानका जाननेवाला वैद्य रोगका नाश करता हुआ कुछ भी निर्घृणी (कठोर) नहीं हो सकता, प्रत्युत दया ही करता है ॥३८॥ मारने योग्य प्रतियोगियोंपर दया करना गुण नहीं है शीघ्र ऐसे जीवोंमें दयावाला

भ्रान्तिसे दयारहित हो निर्घृणी होता है ॥ ३९ ॥ रक्षा करने योग्य विरोधियोंकी उपेक्षा करनी भी दोष है, शक्ति होनेपर उपेक्षा करनेसे रक्ष्य वस्तु शीघ्र नष्ट होजाती है ॥४०॥ सर्पके मुखमें जाती हुई रक्ष्य वस्तुको देखकर जो उपेक्षा करता है दोष देखकर उपेक्षा करनेवाला अवश्य निर्घृणी है ॥ ४१ ॥ इस कारण सर्वथा दया करना गुण है; यह वार्ता सत्य नहीं कार्य होनेपर दया सम्मत है, अन्यथा असम्मत है ॥ ४२ ॥ यह सत्य है कि मूर्ति आत्मावालेमें रागादि दोष होते हैं परन्तु यह दूसरोंमें होते हैं; शिवमें सर्वथा नहीं है अग्निमें कालिमासहित तांबा रक्खाजाय तो ॥ ४३ ॥ ताम्र संसर्गके कारणसे यह अग्नि दूषित नहीं होती, अशुचि सम्पर्कसे अग्नि अपवित्र नहीं होती ॥ ४४ ॥

उपेक्षापीह दोषाह रक्ष्येषु प्रतियोगिषु॥शक्तौ सत्यामुपेक्षातो रक्ष्यस्सद्यो विपद्यते॥४०॥सर्पस्याऽऽस्यगतम्पश्यन्यस्तु रक्ष्यमु पेक्षते ॥ दोषाभासान्समुत्प्रेक्ष्य फलतः सोऽपि निर्घृणः॥ ४१ ॥तस्माद् घृणा गुणायैव सर्वथेति न संमतम् ॥ संमतं प्राप्तकामित्वं सर्वं त्वन्यदसम्मतम् ॥४२॥ मूर्त्यात्मस्वपि रागाद्या दोषाः सन्त्येव वस्तुतः॥तथापि तेषामेवैते न शिवस्य तु सर्वथा॥ अग्नावपि समाविष्टं ताम्रं खलु सकालिकम् ॥४३॥ इति नाग्निरसौ दुष्येत्ताम्रसंसर्गकारणात् ॥ नाग्नेरशुचिसंसर्गादशुचित्वमपेक्षते ॥४४॥ अशुचेस्त्वग्निसंयोगाच्छुचित्वमपि जायते ॥ एवं शोध्यात्मसंसर्गान्न ह्यशुद्धः शिवो भवेत् ॥४५॥ शिवसंसर्गतस्त्वेष शोध्यात्मेव हि शुध्यति॥अयस्यग्नौ समाविष्टे दाहोऽग्नेरेव नायसः ॥४६॥ मूर्त्तात्मन्येवमैश्वर्य्यमीश्वरस्यैव नात्मनाम्॥ न हि काष्ठं ज्वलत्यूर्द्धमग्निरेव ज्वलत्यसौ ॥ ४७ ॥ काष्ठस्यांगारता नाग्नेरेवमत्रापि योज्यताम् ॥ अत एव जगत्यस्मिन्काष्ठपाषाण मृत्स्वपि ॥ ४८ ॥ शिवावेशवशादेव शिवत्वमुपचर्यते ॥ मैत्र्यादयो गुणा गौणास्तस्मात्ते भिन्नवृत्तयः ॥ ४९ ॥

परन्तु अपवित्र वस्तु अग्निके संयोगसे शुद्ध हो जाती है इस प्रकार आत्मसंसर्गसे शुद्ध करनेसे शिव किसी प्रकार अशुद्ध नहीं है ॥ ४५ ॥ शिवसंसर्गसे शोधनेसे आत्मा शुद्ध हो जाता है, अग्निमें लोहा रखनेसे अग्निका दाह होता है लोहेका नहीं ॥ ४६ ॥ इसी कारणसे मूर्ति आत्मामें शिवकाही ऐश्वर्य है अनात्माका नहीं, काष्ठ ऊपरको नहीं जलता है किन्तु अग्निही ऊपरको जलता है ॥ ४७ ॥ काष्ठमें अंगारता है, अग्निमें नहीं; इसी प्रकार ईश्वरमें लगा लेना चाहिये इस प्रकार इस जगत्में काष्ठ पाषाण मृत्तिकामें ॥ ४८ ॥ शिवके आवेशसे शिवत्व

कहा जाता है मैत्री क्षमा चतुरता यह गुण गौण हैं; कारण कि यह चित्तकी वृत्ति है ॥ ४९ ॥ उन गुणोंसे युक्त वे चित्तकी वृत्तियाँ जीवोंको गुण और दोषके निमित्त होती हैं जो गौण और अगौण है वह सब अनुग्रह करते हुए शिवकी गुण वृत्तिरूप माया विलासका रूप होनेसे गुण और दोषके निमित्त नहीं होती है ॥ ५० ॥ संसारमोचनरूप अनुग्रह शब्दार्थको विद्वान् गौण नहीं कह सकते किन्तु उसे शिवकी आज्ञामय जानते हैं ॥ ५१ ॥ उनकी आज्ञाका करना हित है और जो हित है सो अनुग्रह है, इन सबको नियुक्त करते हुए शिव सबके अनुग्रह करनेवाले हैं ॥ ५२ ॥ जो उपकारक शब्दका अर्थ है उसीको अनुग्रह कहते हैं, उसके हितरूप होनेसे शिव सबके अनुग्रह

तैर्गुणै रुपरक्तानां दोषाय च गुणाय च ॥ यत्तु गौणमगौणं च तत्सर्वमनुगृह्णतः ॥ न गुणाय न दोषाय शिवस्य गुणवृत्तयः ॥ ५० ॥ न चानुग्रहशब्दार्थं गौणमाहुर्विपश्चितः ॥ संसारमोचनं किं तु शैवमाज्ञामयं हितम् ॥५१॥हितं तदाज्ञाकरणं यद्धितं तदनुग्रहः ॥ सर्वं हिते नियुञ्जावः सर्वानुग्रहकारकः ॥५२॥ यस्तूपकारशब्दार्थस्तमप्याहुरनुग्रहम् ॥ तस्यापि हितरूपत्वाच्छिवः सर्वोपकारकः ॥ ॥ ५३ ॥ हिते सदा नियुक्तं तु सर्वं चिदचिदात्मकम् ॥ स्वभावप्रतिबन्धं तत्समं न लभते हितम् ॥५४॥ यथा विकासयत्येव रविः पद्मानि भानुभिः ॥ समं न विकसन्त्येव स्वस्वभावानुरोधतः॥५५॥स्वभावोऽपि हि भावानां भाविनोऽर्थस्य कारणम् ॥ न हि स्वभावो नश्यन्तमर्थं कर्तृषु साधयेत् ॥ ५६ ॥सुवर्णमेव नांगारं द्रावयत्यग्निसंगमः ॥ एवं पक्कमलानेव मोचयेन्न शिव परान् ॥५७॥ यद्यथा भवितुं योग्यं तत्तथा न भवेत्स्वयम्॥विना भावनया कर्ता स्वतन्त्रस्सन्ततो भवेत्॥५८॥

करनेवाले हैं ॥ ५३ ॥ वह चित् अचिदात्मक सदा सबके हितमें नियुक्त हैं वह स्वभावमें प्राप्त हुए प्राणी उस हितको समरूपसे प्राप्त नहीं होते ॥ ५४ ॥ जिस प्रकार सूर्यकी किरणसे कमल खिलता है, परन्तु वे कमल स्वभावके अनुसार बराबर नहीं खिलते ॥५५॥ पदार्थोंका स्वभावही भावी अर्थका कारण है, कोई भी स्वभावसे होनेवाले अर्थको विपरीत नहीं कर सकता ॥ ५६ ॥ जिस प्रकारसे अग्निका संगम सुवर्णकोही द्रुत करता है, अंगारको नहीं, इसी प्रकार पूर्ण दोषवालोंको शिव त्याग देते हैं अपक्व मलवालोंको नहीं ॥५७॥ जो जैसे होने को योग्य हैं वहवैसा

स्वयं नहीं होता विना चेतन क्रियाके वह कर्ता स्वतन्त्र कैसे हो सकता है ॥ ५८ ॥ जो निर्मल स्वभावके समान सबके ऊपर अनुग्रह करने वाला है; और जो स्वभावसे मलीन है उसी आत्माकी जीव संज्ञा है ॥ ५९ ॥ फिर अन्यथा यह अपने नियमसे नहीं चल सकते, ईश्वरके विपरीत नहीं कर सकते; इससे शिव स्वरूप कैसे हो सकते हैं कर्म और मायाके होनेसे इसको संसारनामसे विद्वानोंने कहा है ॥ ६० ॥ कर्म और मायाका अनुबन्ध कारण जीवकोही है; और जीवके स्वभावानुसार मलसे होता है उपाधिसे नहीं ॥ ६१ ॥ और उस अगान्तुक मलकी उपाधि भी किसी कारणसे अवश्य होता है जो इसमें कारण है सो अनेक स्वभावोंसे विचित्र होती है, कार्यके भेदसे कल्पना नहीं हो सकती; जो कर्म और मायाका अनुबन्ध है वह स्वभावसेही विचित्र है ॥ ६२ ॥ आत्माके समान होनेमें भी कोई बद्ध और मुक्त है, उनमें

स्वभावविमलो यद्वत्सर्वानुग्राहकश्शिवः॥स्वभावमलिनास्तद्वदात्मानो जीवसंज्ञिताः॥५९॥अन्यथा संसरन्त्येते नियमान्न शिवः कथम्॥कर्ममायानुबन्धोस्य संसारः कथ्यते बुधैः॥६०॥अनुबन्धोऽयमस्यैव न शिवस्येतिहेतुमान् ॥ स हेतुरात्मनामेव निजो नागन्तुको मलः ॥६१॥ आगन्तुकत्वे कस्यापि भाव्यं केनापि हेतुना॥ योऽग्यं हेतुरसावेकस्त्वविचित्रस्वभावतः ॥६२॥ आत्मतायाःसमत्वेऽपि बद्धा मुक्ताः परे यतः ॥ बद्धेष्वेव पुनः केचिल्लयभोगाधिकारतः ॥ ६३ ॥ ज्ञानैश्वर्यादिवैषम्यं भजन्ते सोत्तराधराः ॥ केचिन्मूर्त्यात्मतां यान्ति केचिदासन्नगोचराः ॥६४॥ मूर्त्यात्मसु शिवाः केचिदध्वनां मूर्द्धसु स्थिताः ॥ मध्ये महेश्वरा रुद्रास्त्वर्वाचीनपदे स्थिताः ॥ ६५ ॥ आसन्नेऽपि च मायायाः परस्मात्कारणात्त्रयम् ॥ तत्राप्यात्मा स्थितोऽधस्तादन्तरात्मा च मध्यतः ॥ ६६ ॥ परस्तात्परमात्मेति ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ वर्तन्ते वसवः केचित्परमात्मपदाश्रयाः ॥ ६७ ॥

कोई लयके अधिकारसे कोई भोगके अधिकारसे ॥ ६३ ॥ ऊँच नीच भावको आश्रित हो ज्ञान ऐश्वर्य आदि विषम तारतम्यको प्राप्त होते हैं कोई मूर्तिरूपताको और कोई समीपताको प्राप्त होते हैं ॥ ६४ ॥ कोई मूर्त्यात्मामें मंगलरूप हो षडध्वजसे ऊपर स्थित रहते हैं; मध्यमें महेश्वर और रुद्ररूप ही उससे नीचे पदमें स्थित होते हैं ॥ ६५ ॥ निकट होनेके समावेशमें तीन कारण हैं, उसमें भी आत्मा नीचे अन्तरात्मा मध्यमें ॥ ६६ ॥ और परमात्मा ऊर्ध्वमें स्थित है, ब्रह्मा विष्णु महेश्वर तथा परमात्माके आश्रित कोई दूसरे इस जीवपदको प्राप्त होते हैं ॥ ६७ ॥

कोई अन्तरात्मा पदमें कोई आत्मपदमें स्थित हैं, शान्त्यतीतपदमें शिवके भक्त और शान्तिमें माहेश्वर (महेश्वरके उपासक) स्थित होते हैं ॥ ६८ ॥ विद्यामें रौद्र प्रतिष्ठामें वैष्णव निवृत्तिमें आत्मा ब्रह्मा और ब्रह्मपुत्र स्थित हैं ॥ ६९ ॥ देवयोनि आठ उत्तम हैं, मनुष्य योनि मध्यम हैं पशु आदि पांच अधम योनि हैं (पशु, पक्षी, सर्प, कृमि, दंश,) इस प्रकार यह चौदह योनि हैं ॥ ७० ॥ ऊँचे नीचे योनियोंमें जाना यह जीवका निज मल सत्वादि गुण है, भोगमें पहले वह कर्म आम अर्थात् कच्चे कहे हैं, और पीछे भोगने पर पक्वता हो जाती है ॥ ७१ ॥ मल भी कच्चे और पक्के संसारके कारण होते हैं, कच्चे होनेसे नीचे और पक्के हो जानेपर क्रमसे ऊर्ध्वगति

अन्तरात्मपदे केचित्केचिदात्मपदे तथा॥शान्त्यतीतपदे शैवाःशान्ते माहेश्वरे ततः॥६८॥विद्यायान्तुयथा रौद्राःप्रतिष्ठायां तु वैष्णवाः ॥ निवृत्तौ च तथात्मानो ब्रह्मा ब्रह्मांगयोनयः॥६९॥देवयोन्यष्टकं मुख्यं मानुष्यमथ मध्यमम्॥पक्ष्यादयोऽधमाः पंच योनयस्ताश्चतुर्दश ॥७०॥ उत्तराधरभावोऽपि ज्ञेयस्संसारिणो मलः ॥ यथामभावो मुक्तस्य पूर्वं पश्चात्तु पक्वता ॥७१॥मलोऽप्यामश्च पक्वश्च भवेत्संसारकारणम् ॥आमे त्वधरता पुंसां पक्वे तूत्तरता क्रमात्॥७२॥पशवात्मानस्त्रिधाभिन्ना एकद्वित्रिमलाः क्रमात् ॥ अत्रोत्तरा एकमला द्विमला मध्यमा मताः ॥त्रिमलास्त्वधमा ज्ञेया यथोत्तरमधिष्ठिताः ॥७३॥ त्रिमलानधितिष्ठंति द्विमलैकमलाः क्रमात्॥ इत्थमौपाधिको भेदो विश्वस्य परिकल्पितः॥७४॥एकद्वित्रिमलान्सर्वांश्छिवएकोऽधितिष्ठति ॥ अशिवात्मकमप्येतच्छिवेनाधिष्ठितं यथा॥७५॥अरुद्रात्मकमित्येवं रुद्रैर्जगदधिष्ठितम्॥ अण्डान्ता हिमहाभूमिश्शतरुद्राद्यधिष्ठिता ७६॥

होती है, अर्थात् भोग चुकनेपर अधोयोनि नहीं मिलती ॥ ७२ ॥ पशु आत्मा भी एक मल अर्थात् सत्वप्रधान, द्विमल अर्थात् सत्व रज प्रधान त्रिमल अर्थात् सत्त्व रज तम प्रधानके भेदसे तीन प्रकारके हैं, उनमें एक मलवाले उत्तम दो मलवाले मध्यम और तीन मलवाले अधम जानने ॥ ७३ ॥ दो मल और एक मलवाले क्रमसे तीन मलवाले अधिष्ठित होते हैं, इस प्रकार जगत्में उपाधिभेद कल्पित है ॥ ७४ ॥ एक दो तीन अर्थात् सब गुणवालोंके शिव अधिपति हैं, अशिवात्मक भी यह जगत् शिवसे जैसे अधिष्ठित है ॥७५॥ इसी प्रकार अरुद्रात्मक

जगत् रुद्रसे अधिष्ठित है अण्डपर्यन्त यह महाभूमि रुद्रमें अधिष्ठित है ॥ ७६ ॥ मायापर्यन्त यह जगत् देवताओंसे अधिष्ठित है अंगुष्ठ मात्रा पुरुषोंसे चारों ओरसे व्याप्त है ॥ ७७ ॥ महामायाके अवसानवाला स्वर्गभवनके अधिपति वामादि देवताओंसे अधिष्ठित है सम्बन्धरहित होकर भी पूर्व कहे हुए अध्वाके अन्तरमें रहनेवालोंसे अधिष्ठित है ॥ ७८ ॥ वेही साक्षात् स्वर्ग और अन्तरिक्षमें रहनेवाले हैं और पृथ्वीमें रहनेवाले देवता देवताओंके व्रत करनेवालोंसे स्तुति किये गये हैं ॥ ७९ ॥ इस प्रकारसे कच्चे तीन मलोंके पृथक् २ पकनेसे कारणभूत संसारमें आवागमनका रोग पुरुषोंको प्रवृत्त होता है ॥ ८० ॥ इस रोगकी औषधी आज्ञासे प्राप्त हुआ ज्ञान है इसकी देनेवाले वैद्य शिव पर

मायान्तमन्तरिक्षं तु ह्यमरेशादिभिः क्रमात् ॥ अंगुष्ठमात्रपर्यन्तैस्समंतात्संततं ततम् ॥७७॥ महामायावसाना द्यौर्वाय्वाद्यैर्भुवनाधिपैः ॥ अनाश्रितान्तैरध्वान्तर्वर्त्तिभिस्समधिष्ठिताः ॥७८॥ते हि साक्षाद्दिविषदस्त्वन्तरिक्षसदस्तथा ॥ पृथिवीपद इत्येवं देवा देवव्रतैः स्तुताः ॥७९॥ एवन्त्रिभिर्मलैरामैः पक्वैरेव पृथक्पृथक् ॥ निदानभूतैस्संसाररोगः पुंसां प्रवर्तते ॥ ८० ॥ अस्य रोगस्य भैषज्यं ज्ञानमेव न चापरम्॥ भिषगाज्ञापकः शम्भुश्शिवः परमकारणम् ॥८१॥ अदुःखेनाऽपि शक्तोऽसौ पशून्मोचयितुं शिवः ॥ कथं दुःखं करोतीति नात्र कार्या विचारणा॥८२॥ दुःखमेव हि सर्वोऽपि संसार इति निश्चितम् ॥ कथं दुःखमदुःखं स्यात्स्वभावो ह्यविपर्ययः ॥ ८३ ॥ न हि रोगी ह्यरोगी स्याद्भिषग्भैषज्यकारणात् ॥ रोगार्तं तु भिषग्रोगाद्भैषजैस्सुखमुद्धरेत् ॥ ८४ ॥ एवं स्वभावमलिनान्स्वभावाद्दुःखिनः पशून् ॥ स्वाज्ञौषधविधानेन दुःखान्मोचयते शिवः ॥ ८५ ॥

मकारण हैं ॥ ८१ ॥ जो विना प्रयासके शिव जीवोंके दुःख दूर करनेमें समर्थ हैं, तो फिर दुःख क्यों करते हैं, इसमें विचारकी आवश्यकता नहीं ॥ ८२ ॥ संसारमें सबहीको दुःख है यह निश्चय है कारण कि संसार दुःखमय है फिर स्वभावके विपरीत दुःख अदुःख कैसे हो सकता है ॥ ८३ ॥ वैद्यकी औषधीसे रोग अरोग नहीं होता किन्तु जाता रहता है, परन्तु वैद्य रोगसे व्याकुल रोगीको सुख करके रोग दूर करता है ॥ ८४ ॥ इसी प्रकार स्वभावसे मलीन और स्वभावसे दुःखी जीवोंको अपनी आज्ञाकी औषधी विधानसे शिव दुःखसे मुक्त

कर देते हैं ॥ ८५ ॥ रोगमें वैद्य कारण नहीं, शिव संसारके कारण हैं, इस विषमतामें भी शिवका दोष नहीं है ॥ ८६ ॥ जिसमें स्वभावसे दुःख है फिर किस प्रकार इसके कारणरूपी शिव स्वाभाविक बलसंयुक्त पुरुषोंको इस संसारसे पृथक् करें ॥ ८७ ॥ जो संसारका कारण है वह मल माया और अचेतनता है, वह शिवके साक्षी होनेसे स्वयं प्रवृत्त होती है ॥ ८८ ॥ जैसे अयस्कान्त (चुम्बक) मणि निकट होनेसे लोहेको खैंचती है; और अतिनिकट होनेसे लोहा चलायमान होता है इसी प्रकार शिवके सान्निध्यसे जगत् चलता है ॥ ८९ ॥ इस सहकारी निकटताको निवृत्त करनेको कोई समर्थ नहीं है, अज्ञात हुए शिवकी इसमें सदा प्रतिष्ठा रहती है ॥ ९० ॥ शिवके विना इस

न भिषक्कारणं रोगे शिवः संसारकारणम् ॥ इत्येतदपि वैषम्यं न दोषायास्य कल्पते ॥८६॥ दुःखे स्वभावसंसिद्धे कथन्तत्कारणं शिवः ॥ स्वाभाविको मलः पुंसां स हि संसारयत्यमून्॥८७॥संसारकारणं यत्तु मलं मायाद्यचेतनम् ॥ तत्स्वयं न प्रवर्तेत शिव सान्निध्यमन्तरा ॥८८॥ यथा मणिरयस्कांतस्सान्निध्यादुपकारकः ॥ अयसश्चलतस्तद्वच्छिवोऽप्यस्येतिसूरयः ॥ ८९ ॥ न निवर्तयितुं शक्यं सान्निध्यं सदकारणम् ॥ अधिष्ठाता ततो नित्यमज्ञातो जगतश्शिवः ॥ ९० ॥ न शिवेन विना किंचित्प्रवृत्तमिह विद्यते ॥ तत्प्रेरितमिदं सर्वं तथापि न स मुह्यति ॥ ९१ ॥ शक्तिराज्ञात्मिका तस्य नियन्त्री विश्वतोमुखी ॥ तया ततमिदं शश्वत्तथापि स न दुष्यति ॥ ९२ ॥ अनिदं प्रथमं सर्वमीशितव्यं स ईश्वर ॥ ईशनाच्च तदीयाज्ञा तथापि स न दुष्यति ॥९३॥ योऽन्यथा मन्यते मोहात्स विनष्यति दुर्मतिः ॥ तच्छक्तिवैभवादेव तथापि स न दुष्यति ॥९४॥ एतस्मिन्नंतरे व्योम्नः श्रुताः वागश रीरिणी ॥ सत्यमोममृतं सौम्यमित्याविरभवत्स्फुटम् ॥ ९५ ॥

जगत्में कुछ भी प्रवृत्त नहीं होता. यद्यपि यह सब उसीकी प्रेरणा है, तथापि वह दुःखी नहीं होता ॥ ९१ ॥ उनकी आज्ञा आत्मिकाशक्ति सब ओरसे व्याप्त है, तो भी उसमें कोई दोष नहीं है ॥ ९२ ॥ जिसमें यह वस्तु प्रथम नहीं जो सबसे प्रथम सबका वश करनेवाला वही ईश्वर है, ईश होनेसे उसकी आज्ञा है; तथापि वह दूषित नहीं होता ॥ ९३ ॥ जो अज्ञानसे अन्यथा मानता है वह दुर्मति नष्ट होता है, यह सब उसीकी शक्तिका वैभव है तो भी वह दूषित नहीं है ॥ ९४ ॥ इसी समय आकाशसे वेदवाणी ऋषियोंके मध्यमें हुई;

"सत्यम् ओम् अमृतं सत्यम्" अर्थात् यह सत्य है इस प्रकार स्फुट सुनाई दी ॥ ९५ ॥ तब वे ऋषि परम प्रसन्न हुए इनके सब सन्देह मिटगये; और वे मुनि विस्मित हो पवनदेवको प्रणाम करने लगे ॥ ९६ ॥ इस प्रकार पवनदेव मुनियोंको सन्देहरहित करके अभी इनको पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ यह जानकर बोले ॥ ९७ ॥ वायु बोले, परोक्ष अपरोक्ष दो प्रकारका ज्ञान होता है, परोक्ष अस्थिर और अपरोक्ष निश्चल है ॥ ९८ ॥ हेतु और उपदेशयुक्त वाक्यको परोक्ष कहते हैं; अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान श्रेष्ठ अनुष्ठानसे होता है ॥ ९९ ॥ अपरोक्ष ज्ञानके विना मोक्ष नहीं होता ऐसा निश्चय करके तुम श्रेष्ठ अनुष्ठानकी सिद्धिके निमित्त यत्न करो ॥ १०० ॥ इति श्रीशिवमहापुराण

ततो हृष्टतराः सर्व्वे विनष्टाशेषसंशयाः ॥ मुनयो विस्मयाविष्टाः प्रणेमुः पवनं प्रभुम् ॥ ९६ ॥ तथा विगतसन्देहान्कृत्वापि पवनो मुनीन् ॥ नैते प्रतिष्ठितज्ञाना इति मत्वैवमब्रवीत् ॥ ९७ ॥ वायुरुवाच ॥ परोक्षमपरोक्षं च द्विविधं ज्ञानमिष्यते ॥ परोक्षमस्थिरं प्राहुरपरोक्षं तु सुस्थिरम् ॥ ९८ ॥ हेतूपदेशगम्यं यत्तत्परोक्षं प्रचक्षते ॥ अपरोक्षं पुनः श्रेष्ठादनुष्ठानाद्भविष्यति ॥९९॥ नापरोक्षादृते मोक्ष इति कृत्वा विनिश्चयम् ॥ श्रेष्ठानुष्ठानसिद्ध्यर्थं प्रयत ध्वमतन्द्रिताः॥१००॥इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे ज्ञानोपदेशो नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥ऋषय ऊचुः ॥ किं तच्छ्रेष्ठमनुष्ठानं मोक्षो येना परोक्षितः ॥ तत्तस्य साधनं वाद्य वक्तुमर्हसिमारुत ॥१॥ वायुरुवाच॥ शैवो हि परमो धर्मः श्रेष्ठानुष्ठानशब्दितः ॥ यत्रापरोक्षो लक्ष्येत साक्षान्मोक्षप्रदः शिवः ॥२॥ स तु पंचविधो ज्ञेयः पंचभिः पर्वभिः क्रमात् ॥ क्रियातपोजपध्यानज्ञानात्मभिरनुत्तरैः ॥ ॥ ३ ॥ तैरेव सोत्तरैस्सिद्धो धर्मस्तु परमो मतः ॥ परोक्षमपरोक्षं च ज्ञानं यत्र च मोक्षदम् ॥ ४ ॥

भाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे शिवतत्त्वकथनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ऋषि बोले, हे पवनदेव ! वह कौनसा श्रेष्ठ अनुष्ठान है जिससे अपरोक्षज्ञान होकर मुक्ति प्राप्त होती है; उसके साधन क्या हैं सो आप हमसे कहो ॥ १ ॥ वायु बोले, शिवकी उपासनाही परमधर्म है वही श्रेष्ठ अनुष्ठान कहा है, जिससे मोक्षके देनेवाले शिव अपरोक्ष होते हैं ॥ २ ॥ यह पांच खण्डमें होनेसे पांच प्रकारका है, क्रिया जप तप ध्यान और केवल ज्ञान आत्मासे विचार करना ॥३॥ उन उत्कृष्ट धर्मान्तरोंके सहित सिद्ध हुआ धर्म अपरम कहलाता है जिससे परोक्ष

और अपरोक्ष मोक्षका देनेवाला ज्ञान होता है ॥ ४ ॥ परम और अपरम यह दोनों धर्म वेदमें कहे हैं, धर्ममें वेदही हमको परम प्रणाम है ॥ ५ ॥ पाशुपत योग पर्यन्त परमधर्म उपनिषद् भागमें स्थित है और अपरम यागादि धर्म यह श्रुतिके मुख अर्थात् अन्तरमें स्थित है ॥ ६ ॥ जो परमधर्म है उसमें मायापाशरहित आत्माओंका अधिकार है और यागादि साधारण धर्म होनेसे इसमें सबका अधिकार है ॥ ७ ॥ यह अपर धर्म परम धर्मका साधन है; यह धर्मशास्त्रोंमें अंगोंसहित पुष्ट किया है ॥ ८ ॥ उसमें आद्य जो शिवधर्म है जो श्रेष्ठ अनुष्ठान कहा गया है इतिहास पुराणोंमें कुछ उसका कथन है ॥ ९ ॥ शैव शास्त्रोंमें इसका संगोपांग विस्तार है, शिवदीक्षा लेनेके संस्कार

परमोऽपरमश्चोभौ धर्मौ हि श्रुतिचोदितौ॥ धर्मशब्दाभिधेयेर्थैप्रमाणं श्रुतिरेव नः॥५॥परमो योगपर्यन्तो धर्मः श्रुतिशिरोगतः॥ धर्मस्त्वपरमस्तद्वदधः श्रुतिमुखोत्थितः॥६॥अपश्चात्माधिकारत्वाद्यो धर्मः परमो मतः ॥साधारणस्ततोऽन्यस्तु सर्वेषामधिकारतः ॥७॥ स चायं परमो धर्मः परधर्मस्य साधनम्॥ धर्मशास्त्रादिभिस्सम्यक् सांग एवोपबृंहितः ॥८॥ शैवो यः परमो धर्मः श्रेष्ठानुष्ठानशब्दितः ॥इतिहासपुराणाभ्यां कथंचिदुपबृंहितः॥९॥शैवागमैस्तु संपन्नः सहांगोपांगविस्तरः॥तत्संस्काराधिकारैश्च सम्यगेवोपबृंहितः ॥ १० ॥ शैवागमो हि द्विविधः श्रौतोऽश्रौतश्च संस्कृतः॥श्रुतिसारमयः श्रौतस्स्वतंत्र इतरो मतः॥ ११ ॥ स्वतंत्रो दशधा पूर्वं तथाष्टादशधा पुनः॥कामिकादिसमाख्याभिस्सिद्धः सिद्धान्तसंज्ञितः॥१२॥श्रुतिसारमयो यस्तु शतकोटिप्रविस्तरः ॥ परं पाशुपतं यत्र व्रतं ज्ञानं च कथ्यते ॥ १३ ॥ युगावर्तेषु शिष्येत योगाचार्य्यस्वरूपिणा ॥ तत्रतत्रावतीर्णेन शिवेनैव प्रवर्त्यते ॥ १४ ॥ संक्षिप्यास्य प्रवक्तारश्चत्वारः परमर्षयः ॥ रुरुर्दधीचोऽगस्त्यश्च उपमन्युर्महायशाः ॥ १५ ॥

भी सब वर्णन किये हैं ॥ १० ॥ श्रुति और स्मृतिके भेदसे शैवशास्त्र दो प्रकारका है. वेद शास्त्रमय श्रौत और दूसरा स्वतन्त्र है ॥ ११ ॥ स्वतन्त्र पहले दश और पीछे अठारह प्रकार हुआ, कामिकादि नामसे लेकर सिद्धान्त संज्ञावाला सिद्ध है ॥ १२ ॥ जो वेदसार मय है उसका सौ करोडका विस्तार है; जिसमें पाशुपत व्रत परमज्ञान कहाजाता है ॥ १३ ॥ जो युग युगमें योगाचार्यका अवतार लेकर शिवजी जहाँ तहाँ शिष्यवर्गोंको लेकर उपदेश करते हैं ॥ १४ ॥ उसीको संक्षेप करके रुरु दधीचि अगस्त्य और महायशस्वी उपमन्युने

कहा है ॥ १५ ॥ वह संहिताओंके प्रवृत्त करनेवाले पशुपति व्रतधारी कहे जाते हैं, उनके सन्तान गुरुजन सहस्रों हुए ॥ १६ ॥ उन्होंने चार प्रकारसे परमधर्म कहा है, उनमें पाशुपतयोग शिवके प्रत्यक्ष करनेमें दृढ है ॥ १७ ॥ इस कारण पाशुपत योगही श्रेष्ठ अनुष्ठान है, उसका उपाय जो ब्रह्माने कहा सो कहते हैं ॥ १८ ॥ यह अष्टांगयोग शिवहीने कल्पना किया है, उस योगसे एकसाथही शैवीबुद्धि प्रगट होती है ॥ १९ ॥ उस बुद्धिके होनेसे शीघ्रही परमज्ञान प्राप्त हो जाता है, जिसको यह ज्ञान होता है शिव उसके ऊपर शीघ्रही प्रसन्न हो जाते हैं ॥ २० ॥ उनके प्रसादसेही परमयोगकी प्राप्ति होती है; जो शिवको अपरोक्ष कर देता है; शिवके प्रत्यक्ष होनेसे संसार

ते च पाशुपता ज्ञेयास्संहितानां प्रवर्तकाः॥तत्संततीया गुरवः शतशोऽथ सहस्रशः॥१६॥तत्रोक्तः परमो धर्मश्चर्याद्यात्मा चतुर्विधः॥ तेषु पाशुपतो योगः शिवं प्रत्यक्षयेद्दृढम्॥१७॥तस्माच्छ्रेष्ठमनुष्ठानं योगः पाशुपतो मतः॥ तत्राप्युपायको युक्तो ब्रह्मणा स तु कथ्यते ॥१८॥नामाष्टकमयो योगश्शिवेन परिकल्पितः ॥ तेन योगेन सहसा शैवी प्रज्ञा प्रजायते ॥१९॥ प्रज्ञया परमं ज्ञानमचिराल्लभते स्थिरम् ॥ प्रसीदति शिवस्तस्य यस्य ज्ञानं प्रतिष्ठितम् ॥२०॥प्रसादात्परमो योगो यः शिवं चापरोक्षयेत् ॥ शिवापरोक्षात्संसारकारणेन वियुज्यते॥२१॥ततः स्यान्मुक्तसंसारो मुक्तः शिवसमो भवेत्॥ब्रह्मप्रोक्त इत्युपायः स एव पृथगुच्यते ॥२२॥ शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः॥संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः ॥२३॥ नामाष्टकमिदं मुख्यं शिवस्य प्रतिपादकम्॥ आद्यन्तु पञ्चकं ज्ञेयं शान्त्यतीताद्यनुक्रमात्॥२४॥ संज्ञा सदाशिवादीनां पंचोपाधिपरिग्रहात॥ उपाधिविनिवृत्तौ तु यथास्वं विनिवर्तते ॥२५॥ पदमेव हि तन्नित्यमनित्याः पदिनः स्मृताः ॥ पदानां प्रतिकृत्तौ तु मुच्यन्ते पदिनो यतः ॥२६॥

का कारण छूट जाता है ॥ २१ ॥ तब यह संसारसे मुक्त होकर शिवके समान हो जाता है ब्रह्माने जो उपाय कहा है वह पृथक् २ कहा गया है ॥ २२ ॥ शिव, महेश्वर, रुद्र, पितामह, ब्रह्मा, संसार वैद्य, सर्वज्ञ, परमात्मा यह मुख्य नाम हैं ॥ २३ ॥ यह आठ नाम नित्य शिवके प्रतिपादक हैं शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा यह पांच और (शान्त्यतीतपदे शैवाः) यहाँसे लेकर ॥ २४ ॥ तीन यह पांच उपाधिके ग्रहण करनेसे वह शिवादिकी संज्ञा धारण करते हैं, उपाधि दूर होनेसे सब भेद निवृत्त हो जाता है॥२५॥वह पद नित्य है और पदवाले अनित्य हैं,

पदोंकी परिवृत्तिमें पदवाले मुक्त हो जाते हैं ॥ २६ ॥ परिवृत्तिके अन्तरमें उपाधिसे फिर पदकी प्राप्ति होती हैं, आदिके पांच नाम आत्मा न्तरके नामवाले हैं ॥ २७ ॥ और संसारवैद्य सर्वज्ञ परमात्मा यह तीन नाम मायाके अवलम्बन वशसे होते हैं, तीन प्रकारके उपाधि वचनसे शिवकाही ग्रहण है ॥ २८ ॥ अनादि गुणका सम्बन्ध प्रागभावसे और स्वभावसे सम्बन्धवाले अत्यन्त परिशुद्ध आत्मा यह शिवही कहे जाते हैं ॥ २९ ॥ अथवा सम्पूर्ण कल्याण गुणका धन जो ईश्वर है वही शिवतत्त्वके जाननेवाले महात्माओंने शिव कहा है ॥ ३० ॥ तेईस तत्त्वोंसे प्रकृति परे है, और प्रकृतिसे भी परे वह पच्चीसवां पुरुष है ॥ ३१ ॥ जिसको वाच्य वाचकके भावसे वेदके प्रारंभमें ओंकार कहते

परिवृत्त्यन्तरे भूयस्तत्पदप्राप्तिरुच्यते ॥ आत्मान्तराभिधानं स्याद्यदाद्यं नामपञ्चकम् ॥ २७ ॥ अन्यत्तु त्रितयं नाम्नामुपादानादियोगतः ॥ त्रिविधोपाधिवचनाच्छिव एवानुवर्तते ॥ २८ ॥ अनादिमलसंश्लेषःप्रागभावात्स्वभावतः ॥ अत्यंतं परिशुद्धात्मेत्यतोऽयं शिव उच्यते ॥ २९ ॥ अथवाशेषकल्याणगुणैकधन ईश्वरः ॥ शिव इत्युच्यते सद्भिश्शिवतत्त्वार्थवादिभिः ॥ ३० ॥ त्रयोविंशतितत्त्वेभ्यः प्रकृतिर्हि परा मता ॥ कृतेस्तु परं प्राहुः पुरुषं पञ्चविंशकम् ॥ ३१ ॥ यं वेदादौ स्वरं प्राहुर्वाच्यवाचकभावतः ॥ वेदैकवेद्ययाथात्म्याद्वेदान्ते च प्रतिष्ठितः ॥ ॥ ३२ ॥ तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परस्स महेश्वरः ॥ तदधीनप्रवृत्तित्वात्प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ ३३ ॥ अथवा त्रिगुणं तत्त्वमुपेयमिदमव्ययम् ॥ मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ॥ ३४ ॥ माया विक्षोभकोऽनंतो महेश्वरसमन्वयात् ॥ कालात्मा परमात्मादिः स्थूलः सूक्ष्मः प्रकीर्तितः ॥ ३५ ॥ रुद्रुःखं दुःखहेतुर्वा तद्रा वयति नः प्रभुः ॥ रुद्र इत्युच्यते सद्भिः शिवः परमकारणम् ॥ ३६ ॥

हैं, 'ओमित्येकाक्षरंब्रह्म' जो वेद और उपनिषदोंमें प्रतिष्ठित है वही प्रकृतिमें लीन होकर भोगके निमित्त प्रतिष्ठित हुआ है ॥ ३२ ॥ प्रकृतिलीनसे जो परे है वही महेश्वर है, इसीके आधीन प्रवृत्ति है, प्रकृतिपुरुषकी वश्यता उसीके आधीन है ॥ ३३ ॥ अथवा त्रिगुणतत्व यह अविनाशीकी माया है माया प्रकृति और मायावाले महेश्वर कहे जाते हैं ॥ ३४ ॥ मायाके विक्षोभ करनेवाले नारायण पुरुष हैं वह महेश्वरके सम्बन्धसे युक्त हैं वह कालात्मा परमात्मा आदि स्थूल सूक्ष्म कहे जाते हैं ॥ ३५ ॥ रुत् दुःख वा दुःखके हेतुको नाश करनेसे वह रुद्र

कहाते हैं, वही परम कारण शिव हैं यह सत्पुरुषोंने कहा है ॥३६॥ शिवतत्वसे प्रारंभकर भूमि पर्यन्त शरीरादि और घटादि व्याप्त करके शिव अधिष्ठित हैं, इसीसे उनको रुद्र कहते हैं ॥ ३७ ॥ जो मूर्तिआत्मके हैं जगत्के पितृभूत हैं वही शिव सबके पितृभावमें होनेसे पितामह कहलाते हैं ॥ ३८ ॥ जिस प्रकार निदानका जाननेवाला वैद्य रोगका निवर्तक है अनेक प्रकार औषधीयुक्त उपाय करता है, ऐसेही प्रकृतिके कर्म ज्ञानरूप उपायोंसे मुमुक्षु और कामुकोंको क्रमसे लय और मोक्ष भोगके अधिकारानुसार प्रवृत्त करता है ॥ ३९ ॥ इससे ईश्वर नित्य संसारके मूलका निवृत्त करनेवाला है, जगत्पति है, इस कारण सब तत्वके ज्ञाता उसे संसारवैद्य कहते हैं ॥४०॥ शब्दादि विषयोंके दश ज्ञानसिद्धिके

तत्त्वादिभूतशपर्यन्तंरीरादिष्वतन्द्रितः ॥ व्याप्याधितिष्ठति शिवस्ततो रुद्र इतस्ततः ॥ ३७॥ जगतः पितृभूतानां शिवो मूर्त्यात्म नामपि ॥ पितृभावेन सर्वेषां पितामह उदीरितः ॥३८॥ निदानज्ञो यथा वैद्यो रोगस्य विनिवर्तकः ॥ उपायैर्भेषजैस्तद्वल्ल यभोगाधि कारतः ॥ ३९ ॥ संसारस्येश्वरो नित्यं समूलस्य निवर्तकः ॥ संसारवैद्य इत्युक्तः सर्वतत्त्वार्थवेदिभिः॥ ४० ॥ दशार्थज्ञानसिद्धचर्थमिन्द्रियेष्वेषु सत्स्वपि ॥ त्रिकालभाविनो भावान्स्थूलान्सूक्ष्मानशेषतः ॥४१॥अणवो नैव जानन्ति माययैव मलावृताः ॥ असत्स्वपि च सर्वेषु सर्वार्थज्ञानहेतुषु ॥ ४२ ॥ यद्यथावस्थितं वस्तु तत्तथैव सदाशिवः ॥ अयत्नेनैव जानाति तस्मात्सर्वज्ञ उच्यते ॥ ॥ ४३ ॥ सर्वात्मा परमैरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात् ॥ स्वस्मात्परात्मविरहात्परमात्मा शिवः स्वयम् ॥ ४४ ॥ नामाष्टकमिदं चैव लब्ध्वाचार्यप्रसादतः ॥ निवृत्त्यादिकलाग्रन्थि शिवाद्यैः पंचनामभिः ॥ ४५ ॥

अर्थ ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियके होनेसे भी त्रिकालमें होनेवाले स्थूल और सूक्ष्म भावोंको विशेष करके ॥ ४१ ॥ जीवगण जीवतत्वके मलके कारणको नहीं जान सकते हैं और सम्पूर्ण अर्थोंके ज्ञान न होनेके हेतु होनेपर भी ॥ ४२ ॥ जो वस्तु जिस प्रकार स्थित है वह उसी प्रकार सदाशिव विना यत्नके यथार्थ जानते हैं, इस कारण उनको सर्वज्ञ कहते हैं ॥ ४३ ॥ वह सर्वात्मा सदा इन परमगुणोंसे युक्त रहता है अपनेसे पर आत्माओंका विरह होनेसे वह शिव परमआत्मा है; अर्थात् अन्य जीवोंकी आत्मासे पृथक् है ॥ ४४ ॥ आचार्य गुरुकी कृपासे इन आठ नामोंको अर्थसहित प्राप्त करके, शिवादिक पाच नामोंसे निवृत्ति आदि कल्प ग्रन्थियोंको ॥ ४५ ॥

यथा क्रमसे छेदन करके और शोधकर अपने अधिष्ठा क्रमसे सब कुछ करके इन नामोंको आवर्तन करके उद्घात अर्थात् प्राण वायुस अपान वायुका अभिघात कर मूलाधारसे वायुको प्रेरणा कर वायुसे शिरको ताडन करता अथवा प्राणसे प्रेरित होकर यदि अपान पीडित होकर शिर तक जाकर निवृत होजाय उसीका नाम उद्घात है और उससे रहितका नाम निरुद्घात है ॥ ४६ ॥ इससे हृदय कण्ठ तालु भ्रूमध्य ब्रह्म रन्ध्रसे युक्त इन कला ग्रन्थिरूप भूत इन्द्रिय मनोबुद्धि वासना कर्मवायु और अविद्या इन पुरीके आकार आठोंको भेदन कर मध्यनाडी सुषुम्नासे ॥ ४७ ॥ द्वादशदल युक्त हृदय कमलमें स्थित चन्द्रके ऊपर शिवके प्रभावमें अपने आत्माको लेजाकर पीछे चाहैं उसे उतारे

यथास्वं क्रमशश्छित्त्वा शोधयित्वा यथागुणम् ॥ गुणितैरेवसोद्घातैर निरुद्धैरथापि वा ॥४६॥ हृत्कण्ठतालुभ्रूमध्यब्रह्मरन्ध्रस मन्विताम् ॥ छित्त्वा पुर्यष्टकाकारं स्वात्मानं च सुषुम्णया ॥ ४७ ॥ द्वादशांतःस्थितस्येन्दोर्नीत्वोपरि शिवौजसि ॥ संहृत्य वदनं पश्चाद्यथासंस्करणं लयात् ॥ ४८ ॥ शाक्तेनामृतवर्षेण संसिक्तायां तनौ पुनः ॥ अवतार्य स्वमात्मानममृतात्माकृतिं हृदि ॥ ४९ ॥ द्वादशां तःस्थितस्येन्दोः परस्ताच्छ्वेतपंकजे॥ समासीनं महादेवं शंकरम्भक्तवत्सलम् ॥५०॥ अर्द्धनारीश्वरं देवं निर्मलं मधुराकृतिम्॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं प्रसन्नं शीतलद्युतिम् ॥५१॥ध्यात्वा हि मानसे देवं स्वस्थचित्तोऽथ मानवः ॥ शिवनामाष्टकेनैव भावपुष्पै स्समर्चयेत् ॥ ५२ ॥ अभ्यर्च्चनान्ते तु पुनः प्राणानायम्य मानवः ॥ सम्यक्चित्तं समाधाय शार्वं नामाष्टकं जपेत् ॥ ५३ ॥

वा न उतारे, अपने कारणमें यथायोग्य लय हो जानेसे ॥ ४८ ॥ शक्तिकी अमृत वर्षासे सींचनेपर फिर अपने शरीरमें अमृतामृतक आत्माको हृदयमें उतारकर ॥ ४९ ॥ द्वादशदल हृदय कमलमें इन्दु (चन्द्र) से ऊपर श्वेतकमलमें भक्त वत्सल शंकरको स्थित हुए देखे ॥ ५० ॥ अर्धनारीश्वर देव जो निर्मल और मधुर मूर्त्ति युक्त हैं; शुद्ध स्फटिकमणिके समान प्रसन्न शीतल कांतिमान्को ॥ ५१ ॥ नामाष्टकसे हृदयमें ध्यान करके यह मनुष्य स्वस्थचित्त हो शिवके आठों नाम और भक्तिरूप फूलोंसे पूजा करे ॥ ५२ ॥ फिर यह मनुष्य प्राणोंको रोककर

१ इडा, पिंगलाके, बीचमें सुषुम्ना है यह मलरहित ब्रह्मस्वरूपिणी है इसके बाईओर इडा वहिनी और पिंगला नाडी है।

विशेषकर चित्तको सावधान कर नामाष्टकका जप करे ॥ ५३ ॥ नाभिमें आठ आहुतिका हवन कर नमस्काररूप पूर्ण आहुति देकर पीछे आठ पुष्पोंके प्रदानसे अन्तका पूजन कर ॥ ५४ ॥ हाथमें जल लेकर उसके देनेसे अपने आत्माको निवेदन करे इस प्रकार करनेसे पाशुपत ज्ञान शीघ्रही प्राप्त हो जाता है ॥ ५५ ॥ और इस व्रतकी उत्तम प्रतिष्ठा प्राप्त होती है पीछे परम योगको प्राप्त होकर मुक्त होजाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ऋषि बोले, हे भगवन् ! हम पाशुपत व्रतके सुननेकी इच्छा करते हैं जिसको ब्रह्मादिक भी करके पाशुपत होगये ॥ १ ॥ वायु बोले, सब पापका दूर

नाभौ चाष्टाहुतीर्हुत्वा पूर्णाहुत्या नमस्ततः॥अष्टपुष्पप्रदानेन कृत्वाभ्यर्च्चनमंतिमम् ॥५४॥ निवेद्येत्स्वमात्मानं चुलुकोदकव त्मना ॥ एवं कृत्वा चिरादेव ज्ञानं पाशुपतं शुभम्॥५५॥लभते तत्प्रतिष्ठां च वृत्तं चानुत्तमं तथा॥योगं च परमं लब्ध्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥५६॥इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखंडे श्रेष्ठानुष्ठानवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥ ऋषय ऊचुः ॥भगवञ्छ्रोतुमिच्छामो व्रतं पाशुपतं परम् ॥ ब्रह्मादयोऽपि यत्कृत्वा सर्वे पाशुपताः स्मृताः ॥१॥ ॥ वायुरुवाच ॥ रहस्यं वः प्रवक्ष्यामि सर्वपापनिकृन्तनम्॥व्रतं पाशुपतं श्रौतमथर्वशिरसि श्रुतम्॥२॥कालश्चैत्री पौर्णमासी देशः शिवपरिग्रहः॥ क्षेत्रारामाद्यरण्यं वा प्रशस्तश्शुभलक्षणः॥३॥तत्र पूर्वं त्रयोदश्यां सुस्नातः सुकृताह्निकः ॥अनुज्ञाप्य स्वमाचार्यं संपूज्य प्रणिपत्य च ॥ ४ ॥ पूजां वैशेषिकीं कृत्वा शुक्लांबरधरः स्वयम् ॥ शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः॥ ५ ॥ दर्भासने समासीनो दर्भमुष्टिं प्रगृह्य च ॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥ ध्यात्वा देवं च देवीं च तद्विज्ञापनवर्त्मना ॥ ६ ॥

करनेवाला रहस्य मैं तुमसे वर्णन करता हूं, यह पाशुपत व्रत अथर्वशिरस् उपनिषद्में प्रसिद्ध है ॥ २ ॥ काल इसका चैत्रकी पूर्णमासी शिव स्वीकृत देश क्षेत्र आराम (बगीचा) श्रेष्ठ लक्षण युक्त इसमें कहा है ॥ ३ ॥ उसमें पहले त्रयोदशीके दिन स्नानादि करके अग्नि होमके उपरान्त और अपने आचार्यकी पूजाके उपरान्त प्रणामकर उनसे आज्ञा ले ॥ ४ ॥ विशेष पूजा कर स्वयं शुक्लवस्त्र धारण करके शुक्ल यज्ञोपवीत श्वेत माला श्वेत चन्दन धारण कर ॥ ५ ॥ कुशासनपर बैठ मुट्ठीमें कुशोंको ले उत्तर वा पूर्वको मुखकर तीन प्राणायाम करके देवी और

देवको उनके विज्ञापन किये मार्गसे ध्यान करके ॥ ६ ॥ मैं दीक्षित होकर यह व्रत करता हूं यह संकल्प करे, जबतक शरीरपात हो अथवा बारह वर्षतक ॥ ७ ॥ छः वर्ष तीन वर्ष अथवा बारह मासतक छः तीन अथवा एकही महीने ॥ ८ ॥ बारह दिन, अथवा छः दिन, तीन दिन, वा एकही दिनके व्रतका संकल्प करके ॥ ९ ॥ विरजाहोमके निमित्त विधिपूर्वक अग्निको लेकर घी समिधा और चरुसे यथायोग्य हवन कर ॥ १० ॥ पूर्ण आहुतिके उपरान्त फिर तत्त्वोंकी शुद्धिके उद्देश्यसे उन समिधा आदिका मूलमन्त्र (पंचाक्षर) से हवन करे, ॥ ११ ॥ और यह तत्व मेरे देहके शुद्ध हों ऐसा स्मरण करता जाय, पंचभूत तन्मात्रा पंच कर्मेन्द्रिय ॥ १२ ॥ ज्ञान और कर्मके भेदसे इनके

व्रतमेतत्करोमीति भवेत्संकल्प्य दीक्षितः ॥ यावच्छरीरपातं वा द्वादशाब्दमथापि वा ॥७॥तदर्धं वा तदर्धं वा मासद्वादशकं तु वा ॥ तदर्धं वा तदर्धं वा मासमेकमथापि वा॥८॥ दिनद्वादशकं वाऽथ दिनषट्कमथापि वा ॥ तदर्धं दिनमेकं वा व्रतसंकल्पना वधि ॥९॥ अग्निमाधाय विधिवद्विरजाहोमकारणात्॥हुत्वाज्येन समिद्भिश्च चरुणा च यथाक्रमम्॥१०॥ पूर्णामापूर्य तां भूयस्त त्त्वानां शुद्धिमुद्दिशन्॥जुहुयान्मूलमन्त्रेण तैरेव समिदादिभिः ॥११॥तत्त्वान्येतानि मद्देहे शुद्धयंतामित्यनुस्मरन्॥पञ्चभूतानि तन्मात्राः पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च॥१२॥ज्ञानकर्मविभेदेन पञ्चकर्मविभागशः ॥ त्वगादिधातवस्सप्त पञ्च प्राणादिवायवः॥१३॥मनो बुद्धिरहं ख्यातिर्गुणाः प्रकृतिपूरुषौ॥रागो विद्याकले चैव नियतिः काल एव च॥१४॥ माया च शुद्धिविद्या च महेश्वरसदाशिवौ॥ शक्तिश्च शिवतत्त्वं च तत्त्वानि क्रमशो विदुः ॥१५॥मन्त्रैस्तु विरजैर्हुत्वा होतासौ विरजा भवेत् ॥ शिवानुग्रहमासाद्य ज्ञानवान्स हि जायते ॥ १६ ॥ अथ गोमयमादाय पिण्डीकृत्याभिमंत्र्य च ॥ विन्यस्याग्नौ च सम्प्रोक्ष्य दिने तस्मिन्हविष्यभुक् ॥ १७ ॥

पांच २ विभाग हैं, त्वचादि सात धातु प्राणादि वायु ॥ १३ ॥ मन बुद्धि अहंकार गुण प्रकृति पुरुष राग विद्या कला नियति काल ॥ १४ ॥ माया शुद्ध विद्या महेश्वर सदाशिव शक्ति और शिवतत्व यह क्रमसे तत्व कहे हैं ॥ १५ ॥ इन विरज (मलरहित) मन्त्रोंसे हवन करनेसे हवन करनेवाला पाप रहित हो जाता है शिवके अनुग्रहको प्राप्त होकर ज्ञानवान् हो जाता है ॥ १६ ॥ फिर गोबर लाय उसका पिंड कर मंत्र पढकर सूंघकर उसे अग्निमें रख उस दिन व्रती हविष्य अन्न खाय ॥ १७ ॥

फिर प्रातःकाल चतुर्दशीके दिन सब पहले दिनका कृत्य करके उसदिन निराहार रहकर शेष समय व्यतीत करे ॥ १८ ॥ फिर पर्वके दिन यह सब कृत्यकर होमके पीछे रुद्राग्निको शान्तकर यत्नपूर्वक भस्मको ग्रहण करे ॥ १९ ॥ फिर जटायुक्त वा मुंडित वा केवल शिखामात्र धारण किये हुए स्नान कर यदि लोकलज्जारहित हो तो दिगम्बर हो जाय ॥ २० ॥ अथवा काषाय वस्त्र वा चर्म चीरवस्त्र धारण करे, एक वस्त्र धारे वल्कल वा, मेखला दंड धारण किये रहे ॥ २१ ॥ फिर चरण धोय दो बार आचमन कर अपने शरीरको उस हवनकी भस्मसे

प्रभाते तु चतु र्दश्यां कृत्वा सर्वं पुरोदितम् ॥ दिने तस्मिन्निराहारः कालं शेषं समापयेत् ॥१८॥ प्रातः पर्वणि चाप्येवं कृत्वा होमा वसानतः ॥ उपसंहृत्य रुद्राग्निं गृह्णीयाद्भस्म यत्नतः ॥१९॥ ततश्च जटिलो मुण्डी शिखैकजट एव वा ॥भूत्वा स्नात्वा ततो वीतलज्जश्चेत्स्याद्दिगम्बरः ॥२०॥ अपि कषायवसनश्चर्मचीराम्बरोऽथ वा ॥एकाम्बरो वल्कली वा भवेद्दण्डी च मेखली ॥२१॥ प्रक्षाल्य चरणौ पश्चाद्विराचम्यात्मनस्तनुम् ॥ संकुलीकृत्य तद्भस्म विरजानलसंभवम् ॥ २२ ॥अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैः षड्भिरथर्वणैः क्रमात् ॥ विभृज्यांगानि मूर्द्धादिचरणांतानि तैस्स्पृशेत् ॥२३॥ ततस्तेन क्रमेणैव समुद्धृत्य च भस्मना॥सर्वांगोद्धूलनं कुर्यात्प्रणवेन शिवेन वा॥ २४ ॥तत स्त्रिपुण्ड्रं रचयेत्त्रियायुषसमाह्वयम् ॥ शिवभावं समागम्य शिवयोगमथाचरेत्॥ २५ ॥ कुर्यात्त्रिसन्ध्य मप्येवमेतत्पाशुपतं व्रतम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं चैतत्पशुत्वं विनिवर्तयेत् ॥ २६ ॥ तत्पशुत्वं परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं व्रतम् ॥ पूजनीयो महादेवो लिंगमूर्तिस्सनातनः ॥ २७ ॥

भूषित करे ॥ २२ ॥ ' अग्निरितिभस्म ' यह छः अथर्ववेदके मन्त्र हैं, इनसे शिरसे लेकर चरणतक स्पर्श करे ॥ २३ ॥ फिर इसी क्रमसे भस्मको सर्वांगमें लगावे ओंकारयुक्त शिवका उच्चारण करे ॥ २४ ॥ फिर ' त्र्यायुषं जमदग्नेः ' इस मन्त्रसे त्रिपुंड्र लगावे इस प्रकार शिवभावको प्राप्त हो शिवयोगका आचरण करे ॥ २५ ॥ तीनों संध्याओंमें इस पाशुपत व्रतको करे, यह भुक्ति मुक्तिका देनेवाला पशुत्व दूर करता है ॥ २६ ॥ इस पाशुपत व्रतसे पशुपन त्याग करे लिंगमूर्ति सनातन महादेवका पूजन करे ॥ २७ ॥

आठ दलका सुवर्णका कमल नौ रत्नोंसे अलंकृत कर कर्णिका और केशरके सहित पद्मासनकी कल्पना करे ॥ २८ ॥ यह ऐश्वर्य होनेपर करे, तथा इसके अभावमें लाल श्वेत कमल स्थित करे, यदि यह भी न हो सके तो केवल भावनाका कमल स्थित करे ॥ २९ ॥ उस कमलकी कर्णिकामें एक छोटी लिंगमूर्ति स्फटिककी करके क्रमसे पूजन करे ॥ ३० ॥ विधिपूर्वक उस लिंगको स्थापन करके और शुद्ध करके पंचमुखके प्रकारसे आसन मूर्तिको कल्पना करके ॥ ३१ ॥ पंचगव्यादि पवित्र विस्तारपूर्वक यथायोग्य सहस्र कलशोंसे स्नान करावे ॥ ३२ ॥ गन्धद्रव्य कपूर चन्दनादि कुंकुम यह सब वस्तु वेदी सहित लिंगको चढाकर भूषणसे भूषित करे ॥ ३३ ॥ बिल्वपत्र, श्वेतपद्म,

पद्ममष्टदलं हैमं नवरत्नैरलंकृतम् ॥कर्णिकाकेशरोपेतमासनं परिकल्पयेत् ॥२८॥विभवे तदभावे तु रक्तं सितमथापि वा॥पद्मं तस्याप्यभावे तु केवलं भावनामयम्॥२९॥तत्पद्मकर्णिकामध्ये कृत्वा लिंगं कनीयसम्॥स्फाटिकं पीठिकोपेतं पूजयेद्विधिवत्क्रमात् ॥ ३० ॥ प्रतिष्ठाप्य विधानेन तल्लिंगं कृतशोधनम् ॥ परिकल्प्यासनं मूर्तिं पंचवक्त्रप्रकारतः॥३१॥पंचगव्यादिभिः पूर्णैर्यथाविभवसंभृतैः॥स्नापयेत्कलशैः पूर्णैरष्टापदसमुद्भवैः॥३२॥गंधद्रव्यैस्सकर्पूरैश्चन्दनाद्यैस्सकुंकुमैः॥सवेदिकं समालिप्य लिंगं भूषणभूषितम् ॥ ३३ ॥ बिल्वपत्रैश्च पद्मैश्च रक्तैः श्वेतैस्तथोत्पलैः ॥ नीलोत्पलैस्तथान्यैश्च पुष्पैस्तैस्तैस्सुगंधिभिः ॥३४॥ पुण्यैः प्रशस्तैः पत्रैश्च चित्रैर्दूर्वाक्षतादिभिः ॥समभ्यर्च्य यथालाभं महापूजाविधानतः ॥३५॥धूपं दीपं तथा चापि नैवेद्यं च समादिशेत् ॥ निवेदयित्वा विभवे कल्याणं च समाचरेत् ॥३६॥इष्टानि च विशिष्टानि न्यायेनोपार्जितानि च॥सर्वद्रव्याणि देयानि व्रते तस्मिन्विशेषतः ॥ ३७ ॥ श्रीपत्रोत्पलपद्मानां संख्या साहस्रिकी मता ॥ प्रत्येकमपरा संख्या शतमष्टोत्तरं द्विजाः ॥ ३८ ॥

रक्तपद्म, नीलकमल, तथा दूसरे सुगन्धित पुष्प ॥ ३४ ॥ पवित्र श्रेष्ठ बिल्वपत्र चित्रदूर्वा अक्षत महापूजाके विधानसे यथा लाभ पूजित कर ॥ ३५ ॥ धूप दीप अर्घ्य नैवेद्य प्रदान करे; इस प्रकार शिवको निवेदन कर कल्याणकी प्रवृत्ति करे ॥ ३६ ॥ और जो न्यायपूर्वक उपार्जन की हुई अपनेको इष्ट वस्तु हों वह सब द्रव्य इस व्रतमें विशेष कर देने चाहिये ॥ ३७ ॥ श्रीपत्र, उत्पल और कमल यह सहस्र चढाने चाहिये अथवा कमती संख्या १०८ चढाने चाहिये ॥ ३८ ॥

उसमें भी विशेष कर बेल पत्रको न त्यागे; एकही सुवर्णका कमल सहस्र कमलोंसे विशेष है ॥ ३९ ॥ और नीलोत्पलादि कमल बेलपत्रके समान हैं, और दूसरे फूलोंमें नियम नहीं है; यथालाभ निवेदन करे ॥ ४० ॥ अष्टांग अर्घ्य श्रेष्ठ है विशेष कर धूप देनी; चन्दन लगाना, कृष्ण अगरु अघोरनामक मुखमें; सद्योजातमें मनशिला; वामदेव मुखमें चन्दन, पौरुषमें हरिताल ॥ ४१ ॥ ईशानमें भस्म, इस प्रकार कोई आचार्य आलेपन कहते हैं, कोई धूपान्तरके विधानसे धूप नहीं मानते हैं; कि अघोरके मुखमें श्वेत अगरु, पुरुषके मुखमें काला अगरु ॥ ४२ ॥ सद्योजातके मुखमें गुग्गुल, सौम्यके मुखसे सुगन्धिद्रव्य; ईशानमें उशीरादिकी धूप विशेष करके देनी चाहिये ॥ ४३ ॥ शर्करा, मधु, कपूर

तत्रापि च विशेषेण न त्यजेद्बिल्वपत्रकम्॥हैममेकं परं प्राहुः पद्मं पद्मसहस्रकात् ॥ ३९ ॥ नीलोत्पलादिष्वप्येतत्समानं बिल्वपत्रकैः ॥ पुष्पान्तरे न नियमो यथालाभं निवेदयेत्॥४०॥ अष्टाङ्गमर्घ्यमुत्कृष्टं धूपालेपौ विशेषतः ॥ चन्दनं वामदेवाख्ये हरितालं च पौरुषे ॥४१॥ ईशाने भसितं केचिदालेपनमितीदृशम् ॥न धूपमिति मन्यन्ते धूपान्तरविधानतः ॥ सितागुरुमघोराख्ये मुखे कृष्णागुरुं पुनः॥४२॥ पौरुषे गुग्गुलं सद्ये सौम्ये सौगंधिकं मुखे ॥ ईशानेऽपि ह्युशीरादि देयाद्धूपं विशेषतः॥ ॥ ४३ ॥ शर्करामधुकर्पूरकपिलाघृतसंयुतम् ॥ चंदनागुरुकाष्ठाद्यं सामान्यं संप्रचक्षते॥४४॥ कर्पूरवर्तिराज्याढ्या देया दीपावलिस्ततः ॥ अर्घ्यमाचमनं देयं प्रतिवक्त्रमतः परम्॥४५॥प्रथमावरणे पूज्यो क्रमाद्धेरम्बषण्मुखौ ॥ब्रह्मांगानि ततश्चैव प्रथमावरणेर्चिते ॥ ४६ ॥ द्वितीयावरणे पूज्या विघ्नेशाश्चक्रवर्तिनः ॥ तृतीयावरणे पूज्या भवाद्या अष्टमूर्तयः ॥ ४७ ॥

कपिलागौके घृतमें पिलाकर देनी चाहिये; चन्दन अगुरु काष्ठादि यह सामान्य कहा है ॥ ४४ ॥ कर्पूर वर्ति घीका दीपक देने चाहिये, इसके उपरान्त प्रत्येक मुखकी ओर अर्घ्य और आचमन देना चाहिये ॥ ४५ ॥ प्रथम आवरणसे क्रमसे गणेश और कार्तिकेयका पूजन करना चाहिये; फिर ब्रह्मा प्रभृति अंगादिका पूजा करे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार प्रथम आवरणकी पूजा करनेपर दूसरे आवरणमें चक्रवर्ती विघ्नेशकी पूजा करनी चाहिये; तीसरे आवरणमें भव आदि अष्ट मूर्तियोंका पूजन करना चाहिये ॥ ४७ ॥

१ 'कृष्णगुरुमघोराख्यो वक्त्रे सद्ये मनःशिलाम्' । इत्यधिक पाठः ।

चौथे आवरणमें महादेवादियोंकी तथा ग्यारह रुद्रोंकी सब गणेश्वरोंकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४८ ॥ पद्मके बारह पांच आवरणके क्रमसे अस्त्र और अनुचरोंके साथ दश दिक्पालोंकी पूजा करनी ॥४९॥ ब्रह्माके मानसिक पुत्र और सब ग्रह सब देव देवी और सर्व आकाशचारी ॥५०॥ सब पातालवासी और सब मुनीश्वर सब मुख्य योगीश्वर पांचवें आवरणमें मातृकाओंके साथ पूजे ॥ ५१ ॥ गणोंके सहित क्षेत्रपाल और यह सब चराचर जगत् शिवकी प्रीतिसे शिवकी विभूति जानकर पूजे ॥ ५२ ॥ आवरण पूजाके अन्तमें परमेश्वरको पूजन कर घृत व्यंजन युक्त हवि शाकादि मनोहर वस्तु निवेदन करे ॥ ५३ ॥ मुखसुगंधिके निमित्त ताम्बूल रोचक दिव्य सहित दे, फिर अनेक प्रकारके पुष्प और भूष

महादेवादयस्तत्र तथैकादशमूर्तयः ॥ चतुर्थावरणे पूज्याः सर्व एव गणेश्वराः॥४८॥बहिरेव तु पद्मस्य पंचमावरणे क्रमात्॥दश दिक्पतयः पूज्याः सास्त्राः सानुचरास्तथा॥४९॥ब्रह्मणो मानसाः पुत्राः सर्वेऽपि ज्योतिषां गणाः॥सर्वा देव्यश्च देवाश्च सर्वे सर्वे च खेचराः ॥५०॥ पातालवासिनश्चान्ये सर्वे मुनिगणा अपि॥योगिनो हि सखास्सर्वे पतंगा मातरस्तथा ॥५१॥ क्षेत्रपालाश्च सगणाः सर्वं चैतच्चराचरम्॥पूजनीयं शिवप्रीत्या मत्त्वा शंभुविभूतिमत्॥५२॥अथावरणपूजांते संपूज्य परमेश्वरम्॥साज्यं सव्यंजनं हृद्यं हविर्भक्त्या निवेदयेत्॥५३॥मुखवासादिकं दत्त्वा ताम्बूलं सोपदंशकम्॥अलंकृत्य च भूयोऽपि नानापुष्पविभूषणैः॥ ॥५४॥ नीराजनांते विस्तीर्य पूजाशेषं समापयेत् ॥ चषकं सोपकारं च शयनं च समर्पयेत्॥५५॥चन्द्रसंकाशहारं च शयनीयं समर्पयेत्॥आद्यं नृपोचितं हृद्यं तत्सर्वमनुरूपतः॥५६॥कृत्वा च कारयित्वा च हित्वा च प्रतिपूजनम् ॥ स्तोत्रं व्यपोहनं जप्त्वा विद्यां पंचाक्षरीं जपेत् ॥५७॥ प्रदक्षिणां प्रणामं च कृत्वात्मानं समर्पयेत् ॥ ततः पुरस्ताद्देवस्य गुरुविप्रौ च पूजयेत् ॥५८॥

णोंसे अलंकार करके ॥ ५४ ॥ नीराजनके अन्तमें पूजाका विस्तार समाप्त करे, फिर सामग्रीसहित पानपात्र दे, और शयन निवेदन करे ॥ ५५ ॥ चन्द्रमाके समान हार उज्ज्वल शयन स्थानमें रक्खे और भी योग्य सब पदार्थ राजोंके समान स्थित करे ॥ ५६ ॥ आप यह कार्य करे या ऋत्विजोंसे कराकर हवन और पूजनके पीछे प्रार्थना स्तोत्र जप कर पंचाक्षरी विद्याको जपे ॥ ५७ ॥ प्रदक्षिणा करे और परमात्माकी पूजा करे, फिर शिवके सन्मुखही गुरु ब्राह्मणोंका पूजन करे ॥ ५८ ॥

फिर अर्घ्य और आठ फूल देकर देवको लिंगसे विसर्जन कर अग्नि मन्त्रसे अग्निकी रक्षा कर उसे भी विदा करे ॥ ५९ ॥ इस प्रकारसे यह सब कृत्य प्रतिदिन करे, फिर सब सामग्रीसहित कमलयुक्त लिंग ॥ ६० ॥ अपने गुरुको दे दे अथवा शिवालयमें स्थापन करे, फिर वह व्रती दूसरे अपने गुरुजनोंका पूजन कर ॥ ६१ ॥ समर्थ हो तो भक्त ब्राह्मण और दीनोंको सन्तुष्ट करे आप यातो भोजन न करे, अथवा फल मूल भोजन करे ॥ ६२ ॥ दूध पीवे वा भिक्षा खाय, केवल एकबार भोजन करे, रात्रिमें सदा नियत भोजन करे और पवित्र हो पृथ्वीपर शयन करे ॥ ६३ ॥ भस्म वा तृणपर शयन करे अथवा चीर वा अजिन मृगचर्मपर शयन करे, ब्रह्मचर्य पूर्वक

दत्त्वार्घ्यमष्टौ पुष्पाणि देवमुद्वास्य लिंगतः॥अग्नेश्चाग्निं सुसंयम्य ह्युद्वास्य च तमप्युत ॥५९॥प्रत्यहं च जनस्त्वेवं कुर्यात्सेवां पुरोदिताम्॥ततस्तत्साम्बुजं लिंगं सर्वोपकरणान्वितम्॥६०॥ समर्पयेत्स्वगुरवे स्थापयेद्वा शिवालये॥संपूज्य च गुरून्विप्रान्व्रतिनश्च विशेषतः॥६१॥भक्तान्द्विजांश्च शक्तश्चेद्दीनानाथांश्च तोषयेत् ॥ स्वयं चानशने शक्तः फलमूलाशनोऽथ वा॥६२॥ पयोव्रतो वा भिक्षाशी भवेदेकाशनस्तथा॥नक्तं युक्ताशनो नित्यं भूशय्यानिरतः शुचिः॥६३॥भस्मशायी तृणेशायी चीराजिनधृतोऽथ वा॥ब्रह्मचर्यव्रतो नित्यं व्रतमेतत्समाचरेत्॥६४॥अर्कवारे तथार्द्रायां पंचदश्यां च पक्षयोः॥अष्टम्यां च चतुर्दश्यां शक्तस्तूपवसेदपि ॥६५॥ पाखण्डिपतितोदक्यास्सूतकान्त्यजपूर्वकान् ॥ वर्जयेत्सर्वयत्नेन मनसा कर्मणा गिरा॥६६॥क्षमादानदयासत्याहिंसाशीलः सदा भवेत्॥संतुष्टश्च प्रशान्तश्च जपध्यानरतस्तथा॥६७॥कुर्यात्त्रिषवणस्नानं भस्मस्नानमथापि वा॥पूजां वैशेषिकीं चैव मनसा वचसा गिरा ॥६८॥ बहुनात्र किमुक्तेन नाचरेदशिवं व्रती ॥ प्रमादात्तु तथाचारे निरूप्य गुरुलाघवे ॥ ६९ ॥

इस व्रतको समाप्त करे ॥ ६४ ॥ रविवार आर्द्रा नक्षत्रके दिन अमावस पूर्णमासी अष्टमी और चतुर्दशीको सामर्थ्य हो तो उपवास करे ॥ ६५ ॥ पाखण्ड, पतित, उदक्या, रजस्वला, सूतिका आदि अपवित्रोंको मनसे भी स्मरण न करे न वाणीसे उच्चारण करे ॥ ६६ ॥ क्षमा, दान, दया, सत्य, अहिंसा और शील युक्त सदा रहे, सन्तुष्ट शांत और तप तथा ध्यानमें सदा मन लगावे ॥ ६७ ॥ तीनों काल स्नान करे, अथवा भस्म स्नान करे, मन वचन क्रमसे विशेष पूजा करे ॥ ६८ ॥ बहुत कहनेसे क्या व्रती कुछ भी अमंगल बातको न करे.

प्रमाद होजानेसे आचारमें गुरु लघुका विचार कर ॥६९॥ पूजा होम यज्ञादिसे उसका उचित प्रायश्चित करे. जबतक व्रत समाप्त न हो कुछभी प्रमाद न करे ॥ ७० ॥ गोदान वृषोत्सर्ग पूजा धनके अनुसार सब कामनासे रहित हो भक्त शिवकी प्रीतिके निमित्त सब करे ॥ ७१ ॥ यह व्रतकी विधि संक्षेपसे सामान्य कही है; प्रतिमासमें जो विशेष है सो क्रमसे कहता हूं ॥ ७२ ॥ वैशाखमें हीरेका लिंग, आषाढमें मोतीका, श्रावणमें नीलमका ॥ ७३ ॥ भाद्रपदमें पद्मरागमणिका, आश्विनमें गोमेदका ॥ ७४ ॥ कार्तिकमें मूंगेका, अगहनमें वैडूर्यका पौषमें पुष्परागका, माघमें द्युमणि (सूर्यकान्त) का ॥ ७५ ॥ फाल्गुनमें चन्द्रकान्तमणिका, चैत्रमेंभी इसी मणिका, अथवा रत्न न मिले तो सब महीनेमें

उचितां निष्कृतिं कुर्यात्पूजाहोमजपादिभिः ॥ आसमाप्तेर्व्रतस्यैवमाचरेन्न प्रमादतः ॥७०॥गोदानं च वृषोत्सर्गं कुर्यात्पूजां च संपदा ॥ भक्तश्च शिवप्रीत्यर्थं सर्वकामविवर्जितः ॥७१॥ सामान्यमेतत्कथितं व्रतस्यास्य समासतः॥ प्रतिमासं विशेषं च प्रवदामि यथाश्रुतम् ॥ ७२ ॥ वैशाखे वज्रलिंगं तु ज्येष्ठे मारकतं शुभम् ॥आषाढे मौक्तिकं विद्याच्छ्रावणे नीलनिर्मितम् ॥७३॥ मासे भाद्रपदं चैव पद्मरागमयं परम् ॥ आश्विने मासि विद्याद्वै लिंगं गोमेदकं वरम्॥७४॥कार्तिक्यां वैद्रुमं लिंगं वैदूर्यं मार्गशीर्षके ॥ पुष्परागमयं पौषे माघे द्युमणिजन्तथा॥७५॥फाल्गुने चन्द्रकान्तोत्थं चैत्रे तद्वच्चत्ययोथ वा ॥ सर्वमासेषु रत्नानामलाभे हैममेव वा ॥७६॥ हैमाभावे राजतं वा ताम्रजं शैलजन्तथा॥ मृन्मयं वा यथालाभं जातुषं चान्यदेव वा॥७७॥सर्वगंधमयं वाथ लिंगं कुर्याद्यथारुचि॥व्रतावसानसमये समाचरितनित्यकः॥७८॥कृत्वा वैशेषिकीं पूजां हुत्वा चैव यथा पुरा॥संपूज्य च तथाचार्यं व्रतिनश्च विशेषतः॥७९॥देशिकेनाप्यनुज्ञातः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥ दर्भासनो दर्भपाणिः प्राणापानौ नियम्य च ॥ ८० ॥

सुवर्णलिंगकी पूजा करे ॥ ७६ ॥ उसके अभावमें चांदी तांबा अथवा शिलाके लिंगका पूजन करे, यह भी न हो तो मट्टीका वा और किसी वस्तुका पूजे ॥ ७७ ॥ सबही मूर्ति गन्धमय बनावे, अथवा जैसी रुचि होवे सो बनावे, व्रतके अन्तमें अपना नित्यकर्म समाप्त करके ॥ ७८ ॥ विशेष पूजा और हवन करके सदाचरणयुक्त व्रती पुरुष शिव और आचार्यका विशेष पूजन कर ॥ ७९ ॥ आचार्यकी आज्ञासे पूर्व वा उत्तरमुख होकर बैठे; कुशका आसन कुशाही हाथमें लिये प्राण अपान वायुको रोककर ॥ ८० ॥

शक्तिके अनुसार मूल मन्त्रको जपकर उमा सहित त्र्यंबकदेवका ध्यान कर आज्ञा लेकर हाथ जोडकर कहे ॥ ८१ ॥ हे भगवन् ! आपकी आज्ञासे अब इस व्रतका त्यागन करता हूं, यह कहकर लिंगमूलके कुशोंको उत्तरभागसे विसर्जन करे ॥ ८२ ॥ फिर दण्ड जटा चीर मेखलाको भी त्यागन करे फिर विधिपूर्वक आचमन कर पंचाक्षरमन्त्रका उच्चारण करे ॥ ८३ ॥ जो देहान्ततक इस दीक्षाको सावधानीसे करता है और इस व्रत को करता है वह नैष्ठिक व्रती कहाता है ॥ ८४ वही सब आश्रमोंमें श्रेष्ठ महापाशुपत व्रती कहाता है, वही तपस्वियोंमें श्रेष्ठ और महाव्रती है ॥ ८५ ॥ उसके समान मुमुक्षुओंमें कोई कृतकृत्य नहीं है जो यति नैष्ठिक हो, वह उत्तम नैष्ठिक है ॥ ८६ ॥ जो बारह

जपित्वा शक्तितो मूलं ध्यात्वा साम्बं त्रियम्बकम् ॥ अनुज्ञाप्य यथापूर्वं नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ॥ ८१ ॥ समुत्सृजामिभगव न्व्रतमे तत्त्वदाज्ञया ॥ इत्युक्त्वा लिंगमूलस्थान्दर्भानुत्तरतस्त्यजेत् ॥८२॥ ततो दण्डजटाचीरमेखला अपि चोत्सृजेत् ॥ पुनरा चम्य विधि वत्पंचाक्षरमुदीरयेत् ॥ ८३ ॥ यः कृत्वात्यंतिकीं दीक्षामादेहान्तमनाकुलः ॥ व्रतमेतत्प्रकुर्वीत स तु वै नैष्ठिकः स्मृतः ॥ ८४ ॥ सोऽत्याश्रमी च विज्ञेयो महापाशुपतस्तथा ॥ स एव तपतां श्रेष्ठ स एव च महाव्रती ॥ ८५ ॥ न तेन सदृ शः कश्चित्कृतकृत्यो मुमुक्षुषु ॥ यो यतिर्नैष्ठिको जातस्तमाहुर्नैष्ठिकोत्तमम् ॥ ८६ ॥ योऽन्वहं द्वादशाहं वा व्रतमेतत्समाच रेत् ॥ सोऽपि नैष्ठिकतुल्यः स्यात्तीव्रव्रतसमन्वयात् ॥८७॥ घृताक्तो यश्चरेदेतद्व्रतं व्रतपरायणः ॥ द्वित्रैकदिवसं वापि स च कश्चन नैष्ठिकः ॥ ८८ ॥ कृत्यमित्येव निष्कामो यश्चरेद्व्रतमुत्तमम् ॥ शिवार्पितात्मा सततं न तेन सदृशः क्वचित् ॥ ८९ ॥ भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वान्महापातकसंभवैः ॥ पापैस्सुदारुणैस्सद्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ९० ॥

दिनतक भोजन न करके इस व्रतको करे वह भी तीव्र व्रतके कारण नैष्ठिकके तुल्यहो जाता है ॥ ८७ ॥ जो घृत शरीरमें लगाकर इस व्रतको करता है दो तीन दिन भी करता है वह भी नैष्ठिक है ॥ ८८ ॥ जो कोई निष्काम हो इस व्रतको करता है, और जो निरन्तर अपनी आत्मा शिवको अर्पण किये है, उसके समान कोई दूसरा नहीं है ॥ ८९ ॥ विद्वान ब्राह्मण भस्म लगाकर महापापसे उत्पन्न हुए पापोंसे शीघ्र छूट जाता है, इसमें संदेह नहीं ॥ ९० ॥

रुद्र अग्निका जो परम वीर्य है, वही भस्म कहलाता है इस कारण सब कालमें भस्म युक्त वीर्यवान् होता है ॥ ९१ ॥ जो पुरुष भस्मनिष्ठ हैं उनके अग्निके संगमसे सब दोष दूर हो जाते हैं, भस्म स्नानसे पवित्र हुआ पुरुष भस्मनिष्ठ कहा जाता है ॥ ९२ ॥ जिसके शरीरमें भस्म लगा है और जिसका त्रिपुंड्र भस्मसे दीप्तिमान् है, भस्म स्नान करनेसे यह पुरुष भस्मनिष्ठ कहा जाता है ॥ ९३ ॥भूत प्रेत पिशाच और बडे २ भयंकर रोग भस्मनिष्ठके समीपसे दूर भाग जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ९४ ॥ कल्मष (पाप) दूर करनेसे और भासमान होने से यह भस्म कहलाता है, वह विभूति पुरुषोंको ऐश्वर्यकी देनेवाली तथा परम रक्षा करनेवाली है ॥ ९५ ॥ अधिक भस्मका माहात्म्य

रुद्राग्निर्यत्पर वीर्य्यन्तद्भस्म परिकीर्तितम् ॥ तस्मात्सर्वेषु कालेषु वीर्यवान्भस्मसंयुतः ॥ ९१ ॥ भस्मनिष्ठस्य नश्यन्ति दोषा भस्माग्निसंगमात् ॥ भस्मस्नानविशुद्धात्मा भस्मनिष्ठ इति स्मृतः ॥ ९२ ॥ भस्मना दिग्धसर्वांगो भस्मदीप्तत्रिपुंड्रकः ॥ भस्मस्नायी च पुरुषो भस्मनिष्ठ इति स्मृतः ॥९३॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च रोगाश्चातीव दुस्सहाः ॥ भस्मनिष्ठस्य सान्निध्याद्विद्रवंति न संशयः ॥ ९४ ॥ भासनाद्भसितं प्रोक्तं भस्म कल्मषभक्षणात् ॥ भूति भूतिकरी चैव रक्षा रक्षाकरी परम् ॥ ९५ ॥किमन्यदिह वक्तव्यं भस्ममाहात्म्यकारणम् ॥ व्रती च भस्मना स्नातस्स्वयं देवो महेश्वरः ॥ ९६ ॥ परमास्त्रं च शैवानां भस्मैतत्परमेश्वरम्॥धौम्याग्रजस्य तपसि व्यापदो यन्निवारिताः॥९७॥ तस्मात्सर्व प्रयत्नेन कृत्वा पाशुपतव्रतम् ॥धनवद्भस्मसंगृह्य भस्मस्नानरतो भवेत्॥९८॥इतिश्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डेपशुपतिव्रतविधानवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥ ऋषय ऊचुः॥धौम्याग्रजेन शिशुना क्षीरार्थं हि तपः कृतम्॥ तस्मात् क्षीरार्णवो दत्तस्तस्मै देवेन शूलिना॥१॥

क्या कहें व्रती भस्म स्नान कर स्वयं महेश्वर होजाता है ॥ ९६ ॥ यही भस्म परमेश्वरी और शैवोंका परम अस्त्र है, इसने उपमन्युकी तपमें आपदा निवारण की है ॥ ९७ ॥ इस कारण सब प्रकारके यत्नसे पाशुपत व्रत करना चाहिये, धनके समान भस्मका संग्रह करना चाहिये और भस्म स्नानमें प्रीति करनी चाहिये ॥ ९८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां स०वा० सं पूर्वखण्डे पूजाविधिनिरूपणं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ऋषि बोले, धौम्यके बड़े भ्राता उपमन्युने बालावस्थामें दूधके निमित्त तप किया था उसे शिवजीने प्रसन्न

हो क्षीरसागर दिया ॥ १ ॥ परन्तु उस बालकको शिव शास्त्रकी प्रवक्तृता किस प्रकार प्राप्त हुई और वह किस प्रकार शिवका सद्भाव जान कर तपमें निरत हुआ ॥ २ ॥ तप करनेके समय उनको किस प्रकार ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने रुद्राग्निके परम वीर्य भस्मसे कैसे रक्षा प्राप्त की सो कहो ॥ ३ ॥ वायु बोले, यह उपमन्यु कोई साधारण बालक नहीं था, जो ऐसा तप किया था, यह महात्मा व्याघ्रपाद मुनिके पुत्र थे ॥४॥ जन्मान्तरमें भी सिद्ध थे परन्तु किसी कारण से अपने प्रारब्धसे भ्रष्ट हो मुनि कुमारताको प्राप्त हुए ॥५॥ इसी कारण महादेवके प्रसाद और होनेवाले भाग्यके बलसे दुग्धकी इच्छाके व्याजसे तप कर महादेवकी कृपाके द्वारताको प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ इसी कारण

स कथं शिशुको लेभे शिवशास्त्रप्रवक्तृताम् ॥ कथं वा शिवसद्भावं ज्ञात्वा तपसि निष्ठितः ॥ २ ॥ कथं च लब्धविज्ञानस्तप श्चरणपर्वणि ॥ रुद्राग्नेर्यत्परं वीर्यं लभे भस्म स्वरक्षकम्॥ ३ ॥ ॥वायुरुवाच ॥ न ह्येष शिशुकः कश्चित्प्राकृतः कृतवांस्तपः ॥ मुनिवर्यस्य तनयो व्याघ्रपादस्य धीमतः ॥ ४ ॥ जन्मान्तरेण ससिद्धः केनापि खलु हेतुना ॥ स्वपदप्रच्युतो दिष्ट्या प्राप्तो मुनिकुमारताम् ॥ ५ ॥ महादेवप्रसादस्य भाग्यापन्नस्य भाविनः ॥ दुग्धाभिलाष प्रभवद्वारतामगमत्तपः ॥ ६ ॥ अतः सर्व गणेशत्वं कुमारत्वं च शाश्वतम् ॥ सह दुग्धाब्धिना तस्मै प्रददौ शंकरः स्वयम् ॥७॥ तस्य ज्ञानागमोप्यस्य प्रसादादेव शांकरात् ॥ कौमारं हि परं साक्षाज्ज्ञानं शक्तिमयं विदुः ॥८॥ शिवशास्त्रप्रवक्तृत्वमपि तस्य हि तत्कृतम् ॥ कुमारो मुनि तो लब्धज्ञानाब्धिरिव नन्दनः ॥ ९ ॥ दृष्टं तु कारणं तस्य शिवज्ञानसमन्वये ॥ स्वमातृवचनं साक्षाच्छोकजं क्षीरकारणात् ॥१०॥ कदाचित्क्षीरमत्यल्पं पीतवान्मातुलाश्रमे ॥ इर्ष्यया मातुलसुतं संतृप्तक्षीरमुत्तमम् ॥ ११ ॥

शिवजीने उनके निमित्त गणेशत्व कुमारत्वके सहित दुग्धका सागर प्रदान किया ॥ ७ ॥ इसीसे शिवके अनुग्रहके कारण इनको ज्ञान शास्त्र प्राप्त हुआ, और कुमार अवस्थामें ही उसके धारणकी शक्ति प्राप्त हुई ॥ ८ ॥ इसीसे उसको कुमार अवस्थामें शिव शास्त्रकी वक्तृता हुई जैसे ज्ञान सागर कुमारके मुखसे नन्दीने ज्ञान पाया था ॥ ९ ॥ इसी प्रकार शिव ज्ञानकी प्राप्तिमें इसका कारण देखा है; दुग्धके कारण साक्षात् अपनी माताके शोक भरे वचन सुने ॥ १० ॥ किसी समय उसने अपने माताके आश्रममें बहुत थोडा २ दूध पिया, मातुलके पुत्रसे

इसने ईर्षाकी जो कि क्षीरपानसे तृप्त था ॥ ११ ॥ दूध पीकर मामाके पुत्रको आनन्दसे बैठा देख व्याघ्रपादका पुत्र उपमन्यु प्रेमसे मातासे बोला ॥ १२ ॥ उपमन्यु बोला हे मातः ! हे महाभागे ! हे तपस्विनी ! मुझेभी स्वादिष्ठ गौका दूध दो मैं थोडासा नहीं पियूंगा गरम गरम ला ॥ १३ ॥ वायु बोले, पुत्रके वचन सुन उसकी तपस्विनी माता व्याघ्रपादकी स्त्री बडी दुःखी हुई ॥ १४ ॥ आदरसे पुत्रको आलिंगनकर लाडलडाय अपनेको निर्धन मान दुःखसे विलाप करने लगी ॥ १५ ॥ इधर महाकान्तिमान् उपमन्यु बालक बारंबार दूधकी याद करके बारं

पीत्वा स्थितं यथाकामं दृष्ट्वा वै मातुलात्मजम् ॥ उममन्युर्व्याघ्रपादिः प्रीत्या प्रोवाच मातरम्॥१२॥ उपमन्युरुवाच ॥ मात र्मातर्महाभागे मम देहि तपस्विनि ॥ गव्यं क्षीरमतिस्वादु नाल्पमुष्णं पिबाम्यहम् ॥१३॥ वायुरुवाच ॥ तच्छ्रुत्वा पुत्रवचनं तन्माता च तपस्विनी ॥ व्याघ्रपादस्य महिषी दुःखमापत्तदा च सा ॥ १४ ॥ उपलाल्याथ सुप्रीत्या पुत्रमालिंग्य सादरम् ॥ दुःखिता विललापाथ स्मृत्वा नैर्धन्यमात्मनः ॥१५॥ स्मृत्वास्मृत्वा पुनः क्षीरमुपमन्युस्स बालकः॥देहिदेहीति तामाह रुद न्भूयो महाद्युतिः ॥ १६ ॥ तद्धठं सा परिज्ञाय द्विजपत्नी तपस्विनी ॥शान्तये तद्धठस्याथ शुभोपायमरीरचत् ॥१७॥ उञ्छ वृत्त्यार्जितान्बीजान्स्वयं दृष्ट्वा च सा तदा॥बीजपिष्टमथालोडच तोयेन कलभाषिणी ॥१८॥ एह्येहि मम पुत्रेति सामपूर्वं तत स्सुतम् ॥ आलिंग्यादाय दुःखार्ता प्रददौ कृत्रिमं पयः ॥१९॥पीत्वा च कृत्रिमं क्षीरं मात्रां दत्तं स बालकः ॥ नैतत्क्षीरमिति प्राह मातरं चातिविह्वलः॥२०॥दुःखिता सा तदा प्राह संप्रेक्ष्याग्राय मूर्द्धनि॥संमार्ज्य नेत्र पुत्रस्य कराभ्यां कमलायते ॥२१॥

बार रोकर उससे दूध माँगने लगा ॥ १६ ॥ द्विजस्त्री तपस्विनी उसके उस हठको जानकर उसकी शांतिके लिये एक उपाय रचती भई ॥ १७ ॥ जो बीज उञ्छवृत्तिसे प्राप्त किये थे उनको देखकर और पीसकर उस मनस्विनीने उसमें जल मिलाया ॥ १८ ॥ बेटा आओ आओ ऐसा सामपूर्वक वचन कहकर उसे आलिंगनकर दुःखसे बनावटी दूध दिया ॥ १९ ॥ वह बालक माताके दिये बनावटी दूधको पीकर व्याकुल हो मातासे बोला यह दूध नहीं है ॥ २० ॥ तब वह देख पुत्रका शिर सूंघ दुःखी हो अपने हाथसे पुत्रके कमल समान नेत्रोंके आंस

पोंछ बोली ॥ २१ ॥ माता बोली, नदियाँ सब रत्नोंसे पूर्ण स्वर्ग पातालमें सबको प्राप्त हैं पर जो भाग्य हीन और शिव भक्ति रहित हैं वे उन्हें नहीं देखपाते ॥ २२ ॥ राज्य स्वर्ग मोक्ष दूधके भोजन वे प्राणी नहीं प्राप्त कर सकते जिनपर शिवजी प्रसन्न नहीं हैं ॥ २३ ॥ यह सब शंकरकी कृपासे मिलते हैं और देवतासे नहीं और देवताओंमें मन लगानेवाले दुःखसे व्याकुल हो भटकते हैं ॥ २४ ॥ हम वनवासियोंको दुग्ध कहां प्राप्त हो सकता है ? हे पुत्र ? कहां तो दूधके साधन और कहां हम वनवासी ॥ २५ ॥ सब प्रकारके अभाव होनेसे दरिद्रतासे मैं भाग्यहीन हूं जो कि मैंने जलमें पिट्ठी डालकर तुझको असत्य दूध बनाकर दिया था ॥ २६ ॥ तैंने मामाके घरमें औटा हुआ थोडा दुग्ध पान किया था इससे तुझे स्वाद विदित था उसको स्मरणकर ॥ २७ ॥ ' मुझे दूध नहीं दिया ' ऐसा कह रोता हुआ मुझे दुःखी करता है ! विना शिवकी कृपासे तुझको दूधकी प्राप्ति न होगी ॥ २८ ॥ उन्हीं शिवके चरणकमलकी पार्वती और गणोंके सहित आराधना करो; जो उनको भक्तिसे कुछभी समर्पण किया जाय वह सब सम्पत्तियोंका कारण है ॥ २९ ॥ हमने धन देनेवाले शिवको नहीं पूजा वह कामनावालोंको यथा योग्य फल देते हैं ॥ ३० ॥

॥ जनन्युवाच ॥ तटिनी रत्नपूर्णास्तास्स्वर्गपातालगोचराः ॥ भाग्यहीना न पश्यन्ति भक्तिहीनाश्च ये शिवे ॥२२॥राज्यं स्वर्गं च मोक्षं च भोजनं क्षीरसंभवम् ॥ न लभन्ते प्रियाण्येषां न तुष्यति यदा शिवः॥२३॥ भवप्रसादजं सर्वं नान्यद्देवप्रसादजम् अन्य देवेषु निरता दुःखार्ता विभ्रमन्ति च ॥२४॥ क्षीरं तत्र कुतोऽस्माकं वने निवसतां सदा ॥ क्व दुग्धसाधनं वत्स क्व वयं वनवासिनः ॥ २५ ॥ कृत्स्नाभावेन दारिद्र्यान्मया ते भाग्यहीनया॥मिथ्यादुग्धमिदं दत्तम्पिष्टमालोड्य वारिणा ॥२६॥ त्वं मातुलगृहे स्वल्पं पीत्वा स्वादु पयः शृतम्॥ज्ञात्वा स्वादु त्वया पीतं तज्जातीयमनुस्मरन्॥२७॥दत्तं न पय इत्युक्त्वा रुदन् दुःखीकरोषिमाम् ॥ प्रसादेन विना शंभो पयस्तव न विद्यते ॥२८॥ पादपंकजयोस्तस्य साम्बस्य सगणस्य च॥भक्त्या समर्पितं यत्तत्कारणं सर्वसम्पदाम्॥२९॥अधुना वसुदोस्माभिर्महादेवो न पूजितः ॥सकामानां यथाकामं यथोक्तफलदायकः ॥३०॥

धनके उद्देश्यसे हमने पहले शंकरको नहीं पूजा इससे हम दरिद्री हुए और तुमको दूध नहीं मिलसकता ॥ ३१ ॥ हे पुत्र ! पूर्व जन्ममें शिवके उद्देश्यसे वा प्रभु विष्णुके उद्देश्यसे जो दिया जाता है वही मिलता है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार शोकादिका सूचक माताका सत्य वचन सुनकर बालक होकर भी पश्चात्ताप करते हुए प्रगल्भतासे बोले ॥ ३३ ॥ उपमन्यु बोले, हे मातः ! शोक मत करो, यदि साम्बशिव हैं तो हे महाभागे ! शोक त्यागो सब भला होगा ॥ ३४ ॥ हे मातः ! मेरे वचन सुनो यदि कहीं महादेव हैं तो शीघ्र वा देरमें मैं उन्हें प्रसन्न कर दूधका सागर लेआऊंगा, जो कि कभी घटेगा नहीं ॥ ३५ ॥ वायु बोले, इस प्रकार उस महामति बालकके वचन सुन प्रसन्न हो उसकी

धनान्युद्दिश्य नास्माभिरितः प्रागर्चितं शिवः ॥ अतो दरिद्रास्संजाता वयं तस्मान्न ते पयः॥३१॥पूर्वजन्मनि यद्दत्तं शिवमुद्दिश्य वै सुत॥तदेव लभ्यते नान्यद्विष्णुमुद्दिश्य वा प्रभुम् ॥३२॥ वायुरुवाच ॥ इति मातृवचः श्रुत्वा तथ्यं शोकादिसूचकम्॥बालोऽप्यनुतपन्नतः प्रगल्भमिदमब्रवीत् ॥३३॥उपमन्युरुवाच॥शोकेनालमितो मातः सांबो यद्यस्ति शंकरः॥त्यज शोकं महाभागे सर्वं भद्रं भविष्यति॥३४॥शृणु मातर्वचो मेद्य महादेवोऽस्ति चेत्क्वचित्॥चिराद्वा ह्यचिराद्वापि क्षीरोदं साधयाम्यहम् ॥३५॥ वायुरुवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य बालकस्य महामतेः ॥ प्रत्युवाच तदा माता सुप्रसन्ना मनस्विनी ॥३६॥ मातोवाच ॥ शुभं विचारितं तात त्वया मत्प्रीतिवर्द्धनम्॥ विलंबं मा कृथास्त्वं हि भज सांबं सदाशिवम्॥३७॥सर्वस्मादधिकोऽस्त्येव शिवः परमकारणम् ॥ तत्कृतं हि जगत्सर्वं ब्रह्माद्यास्तस्य किंकराः॥३८॥तत्प्रसादकृतैश्वर्या दासास्तस्य वयं प्रभोः॥ तं विनान्यं न जानीमश्शंकरं लोकशंकरम्॥३९॥ अन्यान्देवान्परित्यज्य कर्मणा मनसा गिरा॥ तमेव सांबं सगणं भज भावपुरस्सरम्॥४०॥

बुद्धिमती माता बोली ॥ ३६ ॥ माता बोली, हे तात ! मेरी प्रीतिकी बढानेवाली शुभवार्ता तुमने विचारी तू देर मतकर साम्बशिवका भजन कर ॥ ३७ ॥ परम कारण शिवजी सबसे अधिक हैं सारा जगत् उन्हींका किया हुआ है ब्रह्मा आदिक उनके दास हैं ॥ ३८ ॥ उन्हींको प्रसन्नता से किये हुए ऐश्वर्य हम उस प्रभुके दास हैं, उस लोकके कल्याण करनेवाले शंकरके सिवाय अन्यको हम नहीं जानतीं ॥ ३९ ॥ और देवताओंको छोडकर मन वचन कर्मसे उसी शिवको पार्वतीसहित गणेशसहित परम प्रीतिसे भजन करना चाहिये ॥ ४० ॥

उस देवाधिदेव वरदायी मंगलदायी शिवका "नमः शिवाय" यही मन्त्र वाचक है ॥ ४१ ॥ ॐकार सहित जो सातकरोड मन्त्र हैं वह इसीमें लय होकर फिर इसीमेंसे निकलते हैं ॥ ४२ ॥ अपने अधिकारकी अपेक्षासे सुप्रसाद सहित वे मन्त्र हैं, अर्थात् अधिकारियोंके अनुसार पृथक् २ हैं परन्तु यह मन्त्र ईश्वरकी आज्ञासे सबके अधिकारका है ॥ ४३ ॥ जिस प्रकार शिव सम्पूर्ण उत्कृष्ट और निकृष्ट आत्माओंको रक्षा करनेमें समर्थ होते हैं, उसी प्रकार यह मन्त्र है ॥ ४४ ॥ यह मन्त्र सब दूसरे मंत्रोंसे प्रबल है, यह सबकी रक्षा करनेमें समर्थ है इससे परे फिर और इच्छा करनी नहीं ॥ ४५ ॥ इस कारण हे पुत्र ! और मन्त्रोंको छोडकर पंचाक्षर मन्त्र जपनेमें तत्पर हो; यह मन्त्र जिह्वाके

तस्य देवाधिदेवस्य शिवस्य वरदायिनः ॥ साक्षान्नमश्शिवायेति मंत्रोऽयं वाचकः स्मृतः ॥ ४१ ॥ सप्तकोटिमहामंत्राः सर्वे सप्रणवाः परे ॥ तस्मिन्नेव विलीयंते पुनस्तस्माद्विनिर्गताः ॥४२ ॥ सप्रसादाश्च ते मंत्राः स्वाधिकाराद्यपेक्षया ॥ सर्वाधिकारस्त्वेकोऽयं मंत्र एवेश्वराज्ञया ॥ ४३ ॥ यथा निकृष्टानुत्कृष्टान्सर्वानप्यात्मनः शिवः ॥ क्षमते रक्षितुं तद्वन्मंत्रोऽयमपि सर्वदा ॥ ४४ ॥ प्रबलश्च तथा ह्येष मंत्रो मन्त्रान्तरादपि ॥ सर्वरक्षाक्षमोऽप्येष नापरः कश्चिदिष्यते ॥ ४५ ॥ तस्मान्मन्त्रान्तरां स्त्यक्त्वा पंचाक्षरपरो भव ॥ तस्मिञ्जिह्वांतरगते न किंचिदिह दुर्लभम् ॥ ४६ ॥ अघोरास्त्रं च शैवानां रक्षाहेतुरनुत्तमम् ॥ तच्च तत्प्रभवं मत्वा तत्परो भव नान्यथा ॥ ४७ ॥ भस्मेदन्तु मया लब्धं पितुरेव तवोत्तमम् ॥ विरजानलसंसिद्धं महाव्यापन्निवारणम् ॥४८॥ मंत्रं च ते मया दत्तं गृहाण मदनुज्ञया ॥ अनेनैवाशु जप्तेन रक्षा तव भविष्यति ॥ ४९ ॥ वायुरुवाच ॥ एवं मात्रा समादिश्य शिवमस्त्वित्युदीर्य च ॥ विसृष्टस्तद्वचो मूर्ध्नि कुर्वन्नेव तदा मुनिः ॥ ५० ॥

अन्तर्गत होनेसे फिर कुछ दुर्लभ नहीं रहता ॥ ४६ ॥ यह शैवोंके रक्षाका हेतु परम दुर्लभ अघोरास्त्र है, वह इसीसे उत्पन्न हुआ है ऐसा जान कर उसमें तत्पर हो ॥ ४७ ॥ तुम्हारे पिताके समीपमें मैंने यह भस्म प्राप्त की है जो विरजा अग्निसे उत्पन्न होनेके कारण सिद्ध और महाआपत्तिको दूर करनेवाला है इसे लगाओ ॥ ४८ ॥ यह जो तुझे मैंने मन्त्र दिया है इसको मेरी आज्ञासे ग्रहण कर इसीके जप करनेसे तेरी रक्षा होगी ॥ ४९ ॥ इसी प्रकार माताने आज्ञा दे 'शिवस्तु' (तेरा कल्याण हो) ऐसा उच्चारण कर बिदा किया

और वह मुनि उसकी आज्ञाको शिरपर धारणकर ॥५०॥ और प्रणामकर तप करनेके निमित्त चलागया, तब माताने उसके प्रति वचन कहे कि देवता तेरा मंगल करें ॥ ५१ ॥ इस प्रकार माताकी आज्ञासे उसने दुश्चर तप करना प्रारम्भ किया. हिमालय पर्वतको प्राप्त हो वायुभक्षण करता हुआ ॥५२॥ आठ इष्टकाओं (ईटों) का स्थान बनाय मृत्तिकाका लिंग निर्माणकर वहां गण और पार्वतीके सहित महादेवका आवाहन कर ॥५३॥ भक्तिपूर्वक पंचाक्षर मंत्रसेही वनके उत्पन्न हुए पत्र और पुष्पोंसे बहुत कालतक पूजा करता हुआ परम तप प्रारम्भ किया ॥५४॥ इस प्रकार शिवमें मन लगाये उपमन्यु ब्राह्मण श्रेष्ठको इकले तप करते हुए कृशशरीर (देख उस तप करते हुए बालकके तपमें)॥५५॥मरीचिऋषिके शापसे पिशा

तां प्रणम्यैवमुक्ता च तपः कर्तुं प्रचक्रमे ॥ तमाह च तदा माता शुभं कुर्वंतु ते सुराः॥५१॥ अनुज्ञातस्तया तत्र तपस्तेपे स दुश्चरम्॥हिमवत्पर्वतं प्राप्य वायुभक्षः समाहितः॥५२॥अष्टेष्टकाभिः प्रसादं कृत्वा लिंगं च मृन्मयम् ॥ तत्रावाह्य महादेवं सांबं सगणमव्ययम् ॥५३॥ भक्त्या पञ्चाक्षरेणैव पत्रैः पुष्पैर्वनोद्भवैः॥समभ्यर्च्य चिरं कालं चचार परमं तपः॥५४॥ततस्तपश्चरन्तं तं बालमेकाकिनं कृशम् ॥ उपमन्युं द्विजवरं शिवसंसक्तमानसम्॥५५॥ पुरा मरीचिना शप्ताः केचिन्मुनिपिशाचकाः॥संपीड्य राक्षसैर्भावैस्तपसोविघ्नमाचरन्॥५६॥स च तैः पीड्यमानोऽपि तपः कुर्वन्कथञ्चन ॥ सदा नमः शिवायेति क्रोशति स्मार्तनादवत्॥५७॥तन्नाद श्रवणादेव तपसो विघ्नकारिणः ॥ ते तं बालं समुत्सृज्य मुनयस्समुपाचरन् ॥५८॥तपसा तस्य विप्रस्य चोपमन्योर्महात्मनः ॥ चराचरं च मुनयः प्रदीपितमभूज्जगत्॥५९॥इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे उपमन्युतपोवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥वायुरुवाच ॥ अथ सर्वे प्रदीप्तांगा वैकुण्ठं प्रययुर्द्रुतम् ॥ प्रणम्याहुश्च तत्सर्वं हरये देवसत्तमाः ॥ १ ॥

चपनको प्राप्त हुए कुछ मुनि राक्षसभावसे पीडित कर उसके तपमें विघ्न करने लगे ॥५६॥ वह उनसे पीडित होकर भी किसी प्रकारसे तप करता हुआ और सदा 'नमः शिवाय' इस प्रकार आर्तनादके समान शब्द करने लगा ॥ ५७॥ उस शब्दको श्रवण करके वह तपके विघ्न करने वाले मुनि पिशाचभावको त्याग करके उसीकी सेवा करनेलगे॥५८॥तब उस महात्मा ब्राह्मणकुमार उपमन्युके तपसे चराचर मुनि तथा जगत् प्रदीप्त होगया॥५९॥इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं पूर्वखण्डे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥वायु बोले, तब सब देवता प्रदीप्त अंग हो वैकुंठमें नारायणके पास झट गये

और प्रणामकर सब हाल कहने लगे ॥ १ ॥ उनके यह वचन सुन भगवान् पुरुषोत्तम यह क्या है इस वार्ताको विचारकर और उसका कारण जान कर ॥ २ ॥ शिवके देखनेकी इच्छासे मंदरपर्वतको गये, और देवको देख प्रणामकर हाथजोड बोले, विष्णु बोले ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! कोई उपमन्युनामक ब्राह्मण दुग्ध पानेके निमित्त जगत्को दग्ध करता है, तप करते हुए इसको आप निवारण करो ॥ ४ ॥ विष्णुजीके यह वचन सुनकर देव महेश्वर बोले तुम अपने स्थानको जाओ मैं बालकको निवारण करूंगा ॥ ५ ॥ शिवजीके वचन सुनकर देववल्लभ विष्णुजी उन सब देवताओंका समाधान कर अपने लोकको गये ॥ ६ ॥ इसी अवसरमें देवदेव शिवजी इन्द्रके रूपसे उस स्थानमें जानेकी इच्छा करने

श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं भगवान्पुरुषोत्तमः॥किमिदन्त्विति संचिन्त्य ज्ञात्वा तत्कारणं च सः ॥२॥जगाम मन्दरं तूर्णं महेश्वर दिदृक्षया॥दृष्ट्वा देवं प्रणम्यैवं प्रोवाच सुकृतांजलिः॥३॥विष्णुरुवाच॥ भगवन्ब्राह्मणः कश्चिदुपमन्युरिति श्रुतः॥क्षीरार्थमदहत्सर्वं तपसा तन्निवारय ॥४॥ वायुरुवाच॥ इति श्रुत्वा वचो विष्णोः प्राह देवो महेश्वरः॥ शिशुं निवारयिष्यामि तत्त्वं गच्छ स्वमाश्रमम् ॥५॥ तच्छ्रुत्वा शंभुवचनं स विष्णुर्देववल्लभः ॥ जगामाश्वास्य तान्सर्वान्स्वलोकममरादिकान् ॥६॥ एतस्मिन्नंतरे देवः पिनाकी परमेश्वरः ॥ शक्रस्य रूपमास्थाय गन्तुं चक्रे मतिं ततः ॥७॥ अथ जगाम मुनेस्तु तपोवनं गजवरेण सितेन सदा शिवः ॥ सह सुरासुरसिद्धमहोरगैरमरराजतनुं स्वयमास्थितः ॥८॥स वारणश्चारु तदा विभुं तं निवीज्य वालव्यजनेन दिव्यम्॥ दधार शच्या सहितं सुरेंद्रं करेण वामेन शितातपत्रम् ॥९॥ रराज भगवान्सोमः शक्ररूपी सदाशिवः ॥ तेनातपत्रेण यथा चन्द्रबिंबेन मन्दरः ॥ १० ॥ आस्थायैवं हि शक्रस्य स्वरूपं परमेश्वरः ॥ जगामानुग्रहं कर्तुमुपमन्योस्तदाश्रमम् ॥ ११ ॥

लगे ॥ ७ ॥ तब शिवजी श्वेत हाथीपर चढकर उस ब्राह्मणके आश्रममें गये, इन्द्रका वेष धारण किया सुर असुर सिद्ध महोरग उनके साथ हुए ॥ ८ ॥ तब उस विभुके निमित्त बाल व्यजनसे वीजित किया गया और वामहाथमें शचीसहित सुरेन्द्रके ऊपर श्वेत छत्र धारण किया गया ॥ ९ ॥ उमासहित इन्द्ररूपधारी शिव महा शोभित हुए और छत्रसे चन्द्रमण्डल से शोभित मंदरके समान शोभित हुए ॥ १० ॥ इस प्रकार वह परमेश्वर इन्द्रके स्वरूपको प्राप्त होकर अनुग्रह करनेको उपमन्युके आश्रममें प्राप्त हुए ॥ ११ ॥

उन परमईशान इन्द्ररूपधारी शिवको देखकर महामुनियोंमें श्रेष्ठ उपमन्यु प्रणाम करके स्वयं बोला ॥ १२ ॥ उपमन्यु बोले, हे देवेश्वर ! आपने स्वयं आकर मेरा आश्रम पवित्र किया जो आप जगतत्पति देवतोंमें श्रेष्ठ इन्द्र प्राप्त हुए हो ॥१३॥ इस प्रकार कह कर उपस्थित हुए उस ब्राह्मणको इन्द्ररूपधारी शिव मेघ गंभीरवाणीसे बोले ॥ १४ ॥ हे सुव्रत ! मैं तेरे इस तपसे बहुत प्रसन्न हुआ हूं तू वर मांग हे महामुने धौम्यके अग्रज ! मैं तेरे सब मनोरथ पूर्ण करूंगा ॥ १५ ॥ जब इस प्रकार इन्द्रने कहा तब वह मुनिश्रेष्ठ 'शिवमें भक्ति हो' यही हाथजोड

तं दृष्ट्वा परमेशानं शक्ररूपधरं शिवम् ॥ प्रणम्य शिरसा प्राह महामुनिवरः स्वयम् ॥१२॥ उपमन्युरुवाच ॥ पावितश्चाश्रम स्सोऽयं मम देवेश्वर स्वयम्॥प्राप्तो यत्त्वं जगन्नाथ भगवन्देवसत्तम ॥१३॥ ॥ वायुरुवाच ॥एवमुक्ता स्थितं प्रेक्ष्य कृतांजलिपुटं द्विजम् ॥ प्राह गंभीरया वाच शक्ररूपधरो हरः॥१४॥ शक्र उवाच ॥ तुष्टोस्मि ते वरं ब्रूहि तपसानेन सुव्रत॥ददामि चेप्सिता न्सर्वान्धौम्याग्रज महामुने ॥ १५ ॥ वायुरुवाच ॥एवमुक्तस्तदा तेन शक्रेण मुनिपुंगवः॥वारयामि शिवे भक्तिमित्युवाच कृता ञ्जलिः ॥१६॥तन्निशम्य हरिः प्राह मां न जानासि लेखपम् ॥त्रैलोक्याधिपतिं शक्रं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥१७॥ मद्भक्तो भव विप्र षैं मामेवार्चय सर्वदा ॥ददामि सर्वं भद्रं ते त्यज रुद्रं च निर्गुणम् ॥१८॥ रुद्रेण निर्गुणेनापि किं ते कार्यं भविष्यति॥ देवपङ्क्तिब हिर्भूतो यः पिशाचत्वमागतः ॥ १९ ॥वायुरुवाच ॥ तच्छ्रुत्वा प्राह स मुनिर्जपन्पंचाक्षरं मनुम् ॥मन्यमानो धर्मविघ्नं प्राह तं कर्तुमागतम्॥ २० ॥उपमन्युरुवाच ॥ त्वयैवं कथितं सर्वं भवनिंदारतेन वै ॥ प्रसंगादेव देवस्य निर्गुणत्वं महात्मनः ॥ २१ ॥

बोला ॥ १६ ॥ यह सुनकर इन्द्र बोले, तुम नहीं जानते कि मैं देवताओंका राजा हूं तीनलोकका अधिपति इन्द्र हूं सब देवता मुझको नमस्कार करते हैं ॥१७॥ हे विप्रऋषि ! तू मेरा भक्त हो सदा मेरी अर्चा कर तेरा कल्याण हो मैंही तुमको सब कुछ दूंगा तू निर्गुण रुद्रको त्यागदे ॥ १८ ॥ निर्गुण रुद्रसे तेरा क्या कार्य बनेगा जो देवताओंकी पंक्तिसे बाहर हो पिशाचपनेको प्राप्त हुए हैं ॥ १९ ॥ वायु बोले, यह सुनकर पंचाक्षर मन्त्रको जपते हुए वह मुनि धर्ममें विघ्न मानकर इन्द्रसे बोले ॥ २० ॥ उपमन्यु बोले, शिवनिन्दामें तत्पर आपने प्रसंगसे

महात्मा रुद्रका निर्गुणपन कथन किया ॥ २१ ॥ पर सब देवताओंके अधिपति रुद्रको तुम नहीं जानते हो, ब्रह्मा विष्णु महेशके भी उत्पादक प्रकृतिसे परे हैं ॥ २२ ॥ जिनको ब्रह्मवादी सत् असत् व्यक्त अव्यक्त रूपसे कथन करते हैं, तथा नित्य एक अनन्त कहते हैं उन्हींसे वर मांगूगा ॥ २३ ॥ हेतुवादसे रहित, सांख्य योगके अर्थ देनेवाले परमरूप हैं, ऐसा जानकर जिनकी उपासना की जाती है उन्ही से वर मांगूगा ॥ २४ ॥ सब कारणके कारण शिवसे परे कोई तत्त्व नहीं है, ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओंके निर्माता गुणसे वह विभु हैं ॥ २५ ॥ बहुत कहनेसे क्या है यह बात मैंने भली प्रकार जानली है कि,यदि शिवकी निन्दा सुनी जाय तो जानलो जन्मान्तरमें पाप किये हैं ॥२६॥

त्वं न जानासि वै रुद्रं सर्वदेवेश्वरेश्वरम्॥ब्रह्मविष्णुमहेशानां जनक प्रकृतेःपरम्॥२२॥सदसद्व्यक्तमव्यक्तं यमाहुर्ब्रह्मवादिनः॥नित्य मेकममेकं च वरं तस्माद्वृणोम्यहम् ॥२३॥ हेतुवादविनिर्मुक्तं सांख्ययोगार्थदम्परम्॥उपासते यं तत्त्वज्ञा वरं तस्माद्वृणोम्यहम् ॥२४॥ नास्ति शंभोः परं तत्त्वं सर्वकारणकारणात्॥ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानां स्रष्टुर्गुणपराद्विभोः ॥२५॥ बहुनात्र किमुक्तेन मया ह्यनुमितं महत् ॥ भवांतरे कृतं पापं श्रुता निन्दा भवस्य चेत् ॥२६॥ श्रुत्वा निंदां भवस्याथ तत्क्षणादेव सन्त्यजेत् ॥ स्वदेहं तन्निहत्याशु शिवलोक स गच्छति ॥ २७ ॥ आस्तां तावन्ममेच्छेयं क्षीरं प्रति सुराधम ॥ निहत्य त्वां शिवास्त्रेण त्यजाम्येतं कलेवरम् ॥२८॥ वायुरुवाच ॥ एवमुक्त्वोपमन्युस्तं मर्तुं व्यवसितस्स्वयम् ॥ क्षीरे वाञ्छामपि त्यक्त्वा निहन्तुं शक्रमुद्यतः ॥ २९ ॥ भस्मादाय तदा घोरमघोरास्त्राभिमंत्रितम् ॥ विसृज्य शक्रमुद्दिश्य ननाद स मुनिस्तदा ॥ ३० ॥

शिवकी निन्दा सुनतेही उसको तत्काल मारकर उसी समय अपना देह त्यागन करदे, तो वह शिवलोकको जाता है ॥ २७ ॥ हे सुराधम मेरी दूधकी इच्छा योंही रहे, मैं तुमको शिवास्त्रसे मारकर अपना देह त्याग करूंगा ॥ २८ ॥ वायु बोले, यह कहकर उपमन्युने स्वयं प्राण त्यागकी इच्छा की और दूधकी इच्छा त्यागकर इन्द्रके मारनेको उद्यत हुए ॥ २९ ॥ घोर भस्म ले उसको अघोर अस्त्रसे अभिमंत्रित कर इन्द्रके उद्देश्यसे मुनिने बडा शब्द कर त्यागा ॥ ३० ॥

और शिवके चरण कमलोंको स्मरण कर अपना देह त्याग करनेको उद्यत हुए और उपमन्यु आग्नेयी धारण करके स्थित हुए॥३१॥जब उपमन्यु इस प्रकार स्थित हुए तो भगदेवताके नेत्रहारी शिवजीने सौम्यतासे उस योगीकी धारण को निवारण किया ॥ ३२ ॥ और उस छोडे हुए अघोरास्त्रको शिवजीकी आज्ञासे शिवके प्रिय नन्दीने ग्रहण किया ॥ ३३ ॥ उसी समय परमेश्वर अपने स्वरूपमें स्थित होकर उस उपपन्युको अपना चन्द्रभाल रूप दिखाते हुए ॥ ३४ ॥ सहस्रों दूधके सागर अमृतके सागर दही घीके सागर ॥ ३५ ॥ फल भक्ष्य भोज्योंके सागर तथा पूओंके पर्वत प्रभुने उस बालकको दिखाये ॥ ३६ ॥ जब उसने शंकरको देवीके साथ वृषपर स्थित देखा कि जिनके चारोंओर गणेश्वर

स्मृत्वा शंभुपदद्वंद्वं स्वदेहं दुग्धुमुद्यतः॥आग्नेयीं धारणां बिभ्रदुपमन्युरवस्थितः॥३१॥एवं व्यवसिते विप्रे भगवान्भगनेत्रहा॥ वारयामास सौम्येन धारणां तस्य योगिनः॥३२॥ तद्विसृष्टमघोरास्त्रं नंदीश्वरनियोगतः ॥ जगृहे मध्यतः क्षिप्तं नन्दी शंकरवल्लभः ॥३३॥ स्वं रूपमेव भगवानास्थाय परमेश्वरः ॥ दर्शयामास विप्राय बालेन्दुकृतशेखरम् ॥३४॥ क्षीरार्णवसहस्रं च पीयूषार्णव मेव वा ॥ दध्यादेरर्णवांश्चैव घृतोदार्णवमेव च॥३५॥फलार्णवं च बालस्य भक्ष्य भोज्यार्णवं तथा॥ अपूपानां गिरिं चैव दर्शया मास सप्रभुः ॥ ३६ ॥ एवं स ददृशे देवो देव्या सार्द्धं वृषोपरि ॥ गणेश्वरैस्त्रिशूलाद्यैर्दिव्यास्त्रैरपि संवृतः ॥३७॥दिवि दुंदुभयो नेदुः पुष्प वृष्टिः पपात च ॥ विष्णुब्रह्मेन्द्रप्रमुखैर्देवैश्छन्ना दिशो दश॥३८॥अथोपमन्युरानन्दसमुद्रोर्मिभिरावृतः ॥ पपात दण्ड वद्भूमौ भक्ति नम्रेण चेतसा ॥३९॥ एतस्मिन्समये तत्र सस्मितो भगवान्भवः ॥ एह्येहीति तमाहूय मूर्ध्न्याघ्राय ददौ वरान् ॥४०॥ शिव उवाच॥ भक्ष्यभोज्यान्यथाकामं बान्धवैर्भुंक्ष्व सर्वदा॥ सुखी भव सदा दुःखान्निर्मुक्तो भक्तिमान्मम ॥ ४१ ॥

स्थित हैं और त्रिशूलादिसे युक्त हैं ॥ ३७ ॥ तब देवताओंकी दुंदुभी बजी; फूलोंकी वर्षा हुई; विष्णु ब्रह्मा इन्द्रादि देवताओंसे सब दिशा आच्छादित होगई ॥ ३८ ॥ इधर उपमन्युभी आनन्दके सागरमें मग्न हो भक्तिसे नम्र हो दण्डके समान पृथ्वीमें गिर पडा ॥३९॥ इसी अवसरमें भगवान् शंकरने 'यहां आओ यहां आओ' कहकर हँसते हुए उसे बुलाय शिर सूंघ अनेक वर दिये ॥ ४० ॥ शिवजी बोले; हे पुत्र ! तुम यथायोग्य भक्ष्य भोज्य अपने बांधवोंसहित सदा भोगो सदा सुखी रहो दुःखोंसे रहित होकर मेरी भक्तिमें तत्पर हो ॥ ४१ ॥

हे महाभाग उपमन्यु ! यह पार्वती तुम्हारी माता है; मैंने तुमको पुत्र बनाकर क्षीरसागर दिया है ॥ ४२ ॥ मधु दही अन्न घृत भात फल इनके सागर मैंने तुमको दिये ॥ ४३ ॥ मालपुओंके पर्वत भक्ष्य भोज्य सागर मैंने तुमको दिये, हे महामुने ! तुम इनको ग्रहण करो ॥४४॥ तुम्हारे पिता महादेव और माता जगदम्बा है, मैंने तुमको अमरपन और निरन्तरका गाणपत्य दिया ॥ ४५ ॥ अब तुम प्रसन्न होकर जो जो मनमें हो सो सो वर मांगो, मैं प्रसन्न होकर दूंगा, इसमें विचारकी आवश्यकता नहीं ॥ ४६ ॥ वायु बोले, महादेवजी ऐसा कह अपने हाथोंसे उपमन्युको आलिंगन कर शिर सूंघकर 'यह तुम्हारा पुत्र है' यों कह देवीको निवेदन किया ॥ ४७ ॥ देवीने भी अपने कमलसे

उपमन्यो महाभाग तवाम्बैषा हि पार्वती ॥ मया पुत्रीकृतो ह्यद्य दत्तः क्षीरोदकार्णवः ॥४२॥ मधुनश्चार्णवश्चैव दध्यन्नार्णव एव च ॥ आज्यौदनार्णवश्चैव फलाद्यर्णव एव च ॥४३॥ अपूपगिरयश्चैव भक्ष्यभोज्यार्णवस्तथा ॥ एते दत्ता मया ते हि त्वं गृह्णीष्व महामुने ॥४४॥ पिता तव महादेवो माता वै जगदम्बिका ॥ अमरत्वं मया दत्तं गाणपत्यं च शाश्वतम् ॥४५॥ वरान्वरय सुप्रीत्या मनोऽभिलषितान्परान् ॥ प्रसन्नोऽहं प्रदा स्यामि नात्र कार्या विचारणा ॥४६॥ वायुरुवाच ॥ एवमुक्त्वो महादेवः कराभ्यामुपगृह्यतम् ॥ मूर्ध्न्याघ्राय सुतस्तेऽयमिति देव्यै न्य वेदयत् ॥४७॥ देवी च गुहवत्प्रीत्या मूर्ध्नि तस्य कराम्बुजम् ॥ विन्यस्य प्रददौ तस्मैकुमारपदमव्ययम् ॥४८॥ क्षीराब्धिरपि साकारः क्षीरं स्वादु करे दधत् ॥ उपस्थाय ददौ पिण्डीभूतं क्षीरमनश्वरम् ॥४९॥ योगैश्वर्यं सदा तुष्टिं ब्रह्मविद्यामनश्वराम् ॥ समृद्धिं परमान्तस्मै ददौ संतुष्टमानसः ॥५०॥ अथ शंभुः प्रसन्नात्मा दृष्ट्वा तस्य तपोमहः ॥ पुनर्ददौ वरं दिव्यं मुनये ह्युपमन्यवे ॥५१॥

हाथोंसे प्रेमसे कुमारके समान उसका शिर सूंघ उसको अविनाशी कुमारत्व दिया ॥ ४८ ॥ क्षीराब्धिभी साकाररूपसे स्वादुक्षीर हाथमें धारण किए, वह अविनाशी दूध पिण्डाकार उसके हाथमें समर्पण किया (यह पिण्डाकार दूधके सागर सूक्ष्म सारका था) ॥ ४९ ॥ योग, ऐश्वर्य, सदातुष्टि, अविनाशिनी ब्रह्मविद्या, परमसमृद्धि, सन्तुष्ट मनसे उसको प्रदान की ॥ ५० ॥ फिर भी प्रसन्न हो शिवजी उसका तप तेज देख कर उपमन्यु मुनिको दिव्य वर देने लगे ॥ ५१ ॥

व्रत पाशुपत ज्ञान व्रतयोग तत्त्वसे देकर निरन्तर वक्तृत्व और चतुरता भी मुनिराजको दी ॥ ५२ ॥ वह भी दिव्य वर और निरन्तर रहने वाला कुमारत्व प्राप्त करके उन शिवा शिवसे वर पाय बडे प्रसन्न हुए ॥ ५३ ॥ तब प्रसन्नचित्त हो हाथ जोड प्रणाम कर महेश्वर देवदेवसे वर मांगने लगा ॥ ५४ ॥ उपमन्यु बोले, हे देवदेवेश ! हे परमेश्वर ! प्रसन्न हो अपनी अव्यभिचारिणी भक्ति मुझको दीजिये ॥ ५५ ॥ हे महा देव ! अपने सम्बन्धियोंमें मुझे सदा श्रद्धा दीजिये अपने दासोंमें परमस्नेह और सदा उनकी समीपता दीजिये ॥ ५६ ॥ यह कहने उपरान्त

व्रतं पाशुपतं ज्ञानं व्रतयोगं च तत्त्वतः॥ददौ तस्मै प्रवक्तृत्वपाटवं सुचिरं परम्॥५२॥सोऽपि लब्ध्वा वरान्दिव्यान्कुमारत्वं च सर्वदा ॥ तस्माच्छिवाच्च तस्याश्च शिवाया मुदितोऽभवत् ॥५३॥ततः प्रसन्नचेतस्कः सुप्रणम्य कृतांजलिः॥ययाचे स वरं विप्रो देवदेवान्महेश्वरात् ॥५४॥ उपमन्युरुवाच ॥ प्रसीद देवदेवेश प्रसीद परमेश्वर ॥ स्वभक्तिन्देहि परमान्दिव्यामव्यभिचारिणीम् ॥५५॥ श्रद्धान्देहि महादेव स्वसम्बन्धिषु मे सदा ॥ स्वदास्यं परमं स्नेहं सान्निध्यं चैव सर्वदा ॥५६॥ एवमुक्त्वा प्रसन्नात्माहर्षगद्गदया गिरा॥सतुष्टाव महादेवमुपमन्युर्द्विजोत्तमः ॥५७॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ॥ प्रसीद करुणासिंधो साम्ब शंकर सर्वदा ॥ ५८ ॥ वायुरुवाच ॥ एवमुक्तो महादेवः सर्वेषां च वरप्रदः ॥ ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मोपमन्युं मुनिसत्तमम् ॥५९॥ ॥ शिव उवाच ॥ वत्सोपमन्यो तुष्टोऽस्मि सर्वं दत्तं मया हि ते॥दृढभक्तोऽसि विप्रर्षे मया जिज्ञासितो ह्यसि ॥ ६० ॥ अजरश्चामरश्चैव भव त्वन्दुःखवर्जितः ॥ यशस्वी तेजसा युक्तो दिव्यज्ञानसमन्वितः ॥ ६१ ॥

प्रसन्न मन हो वह ब्राह्मण श्रेष्ठ उपमन्यु सहर्ष गद्गदवाणीसे महादेवको प्रसन्न करने लगा ॥ ५७ ॥ उपमन्यु बोला, हे देवदेव महादेव ! हे शरणागतवत्सल ! हे करुणासागर ! साम्ब शंकर ! प्रसन्न हो ॥ ५८ ॥ वायु बोले, सबके वरदेनेवाले महादेवजी ऐसा कहकर प्रसन्न मन हो मुनिश्रेष्ठ उपमन्युसे बोले ॥ ५९ ॥ शिवजी बोले, हे पुत्र उपमन्यु ! मैं तुझसे प्रसन्न हूं मैंने तुझे सब दिया तू मेरा दृढ भक्त है यह मैंने जान लिया ॥ ६० ॥ तुम दुःखसे रहित होकर अजर अमर हो, महायशस्वी तेजसे युक्त ज्ञानसे युक्त हो ॥ ६१ ॥

तुम्हारे बांधव और कुल तथा गोत्र सदा अक्षय रहेंगे हे द्विज श्रेष्ठ ! तुम्हारी मुझमें निरन्तर भक्ति होगी ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! मैं तुम्हारे आश्रममें नित्य समीपता करूंगा तुम मेरे समीप सदा आनन्दसे विहार करोगे ॥ ६३ ॥ कोटि सूर्यके समान कांतिवाले भगवान् शिवजी यह कहकर और उसको वर देकर अन्तर्धान हो गये ॥ ६४ ॥ उपमन्यु भी प्रसन्न हो उनसे वरदान पाकर महासुखी हो अपनी माताके समीप गये ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां पूर्वखण्डे उपमन्युचरित्रवर्णनं नाम पंच त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

अक्षया बान्धवाश्चैव कुलं गोत्रं च ते सदा॥ भविष्यति द्विजश्रेष्ठ मयि भक्तिश्च शाश्वती॥६२॥ सान्निध्यं चाश्रमे नित्यं करिष्यामिद्विजोत्तम ॥ उपकंठं मम त्वं वै सानन्दं विहरिष्यसि ॥६३॥ एमुक्त्वा स भगवान्सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ ईशानस्स वरान्दत्त्वातत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ ६४ ॥ उपमन्युः प्रसन्नात्मा प्राप्य तस्माद्वराद्वरान् ॥ जगाम जननीस्थानं सुखं प्रापाधिकं च सः ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे वैयासिक्यां चतुर्विंशतिसाहस्र्यां संहितायां तदन्तर्गतायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डेउपमन्युचरितवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ समाप्तोऽयं सप्तम्या वायवीयसंहितायाः पूर्वखण्डः ॥ श्रीः ॥

दो०—उन्निससे पैंसठ सुभग, सम्वत् भादों मास । शुक्लचतुर्थी वार शशि पूरण शंभुविलास ॥ १ ॥
पूर्वभाग यह संहिता, वायु ऋषिन संवाद । सो सब भाषामें कियो, द्विज ज्वालाप्रसाद ॥ २ ॥
साम्बशम्भु निजगणसहित, सदा रहें अनुकूल । प्रतिदिनकृपाकटाक्षते, वृद्धिसुमंगलमूल ॥ ३ ॥
मंगलश्रोताके भवन, मंगल वक्तागेह । जो बाँचे श्रवणन करें, कथा सुसहित सनेह ॥ ४ ॥
तिन्हें देहिं शिवकृपाकर, नित्यपदारथ चारि । तासे भजिये शंकरहिं, जगजंजाल विचारि ॥ ५ ॥

वायुसंहिताका पूर्वखण्ड पूर्ण हुआ

दोहा—जै गणपति मंगल करन, हरन सकल दुख शूल। द्विजज्वालाप्रसादपर, सदा रहो अनुकूल ॥ १ ॥

सम्पूर्ण संसाररूपी चक्रके भ्रमणके कारण भवानी पार्वतीके स्तनयुगलोंके कुम्कुमसे अंकित वक्षस्थलवाले शंकरको नमस्कार है ॥ १ ॥ सूतजी बोले, जब कि, वायुदेवताने शंकरसे इस प्रकार उपमन्युके प्रसादकी प्राप्ति वर्णन की और नियमसे मध्याह्नके समय वायुदेवता उठे ॥ २ ॥ तब नैमिषारण्यके रहनेवाले वे सब मुनि यह बात पूंछनी चाहिये ऐसा निश्चय करके ॥ ३ ॥ प्रतिदिनका पूर्वके समान नियम समाप्त करके फिर वायुको आया हुआ देखकर सब उसके समीप उपस्थित हुए ॥ ४ ॥ तब वायु देवता भी नियमके पीछे मुनियोंकी सभामें

श्रीगणेशाय नमः॥श्रीगौरीशंकराभ्यां नमः॥अथ सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डःप्रारभ्यते॥ॐनमस्सममस्तसंसारचक्रभ्रम णहेतवे ॥ गौरीकुचतटद्वन्द्वकुंकुमांकितवक्षसे॥१॥सूत उवाच॥ उक्त्वा भगवतो लब्धप्रसादादुपमन्युना ॥नियमादुत्थितो वायु र्मध्ये प्राप्ते दिवाकरे ॥२॥ ऋषयश्चापि ते सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ अथायमर्थः प्रष्टव्य इति कृत्वा विनिश्चयम् ॥ ३ ॥ कृत्वा यथा स्वकं कृत्यं प्रत्यहं ते यथा पुरा॥भगवंतमुपायांतं समीक्ष्य समुपाविशन्॥४॥अथासौ नियमस्यांते भगवानम्बरोद्भवः॥ मध्ये मुनिसभायास्तु भेजे कृतं वरासनम् ॥५॥सुखासनोपविष्टश्च वायुर्लोकनमस्कृतः॥ श्रीमद्विभूतिमीशस्य हृदि कृत्वेदमब्र वीत् ॥६॥ तं प्रपद्ये महादेवं सर्वज्ञमपराजितम्॥विभूतिस्सकलं यस्य चराचरमिदं जगत् ॥७॥इत्याकर्ण्य शुभां वाणीमृषयः क्षीणकल्मषाः॥विभूतिविस्तरं श्रोतुमूचुस्ते परमं वचः॥८॥ऋषय ऊचुः ॥उक्तं भगवता वृत्तमुपमन्योर्महात्मनः ॥ क्षीरार्थेनापि तपसा यत्प्राप्तं परमेश्वरात्॥९॥दृष्टोऽसौ वासुदेवेन कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ धौम्याग्रजस्ततस्तेन कृत्वा पाशुपतं व्रतम् ॥१०॥

श्रेष्ठ आसन पर बैठे ॥ ५ ॥ जब लोकनमस्कृत वायु अपने आसनपर उपस्थित हुए, तब भगवान्‌की विभूतिको हृदयमें धारण कर यह वचन बोले ॥ ६ ॥ मैं उन सर्वज्ञ, कहीं पराजय न होनेवाले महादेवकी शरण होता हूँ जिनकी यह सब चराचर जगत् विभूति है ॥ ७ ॥ पापरहित ऋषि इस प्रकार उनकी श्रेष्ठ वाणी सुनकर विभूतिका विस्तार सुननेकी इच्छासे यह परम वचन बोले ॥ ८ ॥ आपने महात्मा उपमन्युका वर्णन किया गौ दूधके निमित्त तप कर परमेश्वरसे उन्होंने वर पाये ॥ ९ ॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने धौम्यके

बडे भ्राता इन उपमन्युका दर्शन किया और उनकी आज्ञासे पाशुपत व्रत किया ॥ १० ॥ और परमज्ञान प्राप्त किया, यह हमने पहले सुना है, सो कृष्णजीको किस प्रकारसे पाशुपत ज्ञान प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ वायु बोले, यद्यपि सनातन वासुदेव अपनी इच्छासे प्रगट हुए थे परन्तु मनुष्य देहकी निन्दा जानकर उन्होंने लोकसंग्रहके निमित्त देहशुद्धि की ॥ १२ ॥ वह पुत्रप्राप्तिके निमित्त उन मुनिके आश्रममें तप करने गये थे उन्होंने उन मुनिका दर्शन किया ॥ १३ ॥ कि जिनके सम्पूर्ण अंगोंमें भस्म लगी हुई थी, मस्तकपर त्रिपुंड्र लगा हुआ था, रुद्राक्ष मालासे अलंकृत जटा मंडलसे मण्डित ॥ १४ ॥ और अपने मुनिरूप शिष्योंसे शास्त्रोंसे वेदके समान शोभायमान थे

प्राप्तं च परमं ज्ञानमिति प्रागेव शुश्रुम ॥कथं स लब्धवान् कृष्णो ज्ञानं पाशुपतं परम्॥११॥ वायुरुवाच ॥ स्वेच्छया ह्यवतीर्णोपि वासुदेवस्सनातनः ॥ निंदयन्निव मानुष्यं देहशुद्धिं चकार सः॥१२॥पुत्रार्थं हि तपस्तप्तुं गतस्तस्य महामुनेः॥ आश्रमं मुनिभिर्दृष्टं दृष्टवांस्तत्र वै मुनिम्॥१३॥भस्मावदातसर्वांगं त्रिपुंड्रांकितमस्तकम्॥ रुद्राक्षमालाभरणं जटामंडलमंडितम् ॥१४ ॥ तच्छिष्यभूतैर्मुनिभिश्शास्त्रैर्वेदमिवावृतम्॥शिवध्यानरतं शांतमुपमन्युं महाद्युतिम् ॥१५॥नमश्चकार तं दृष्ट्वा हृष्टसर्वतनूरुहः ॥ बहुमानेन कृष्णोऽसौ त्रिः कृत्वा तुप्रदक्षिणाम्॥स्तुतिं चकार सुप्रीत्या नतस्कंधः कृताञ्जलिः॥१६॥ तस्यावलोकनादेव मुनेः कृष्णस्य धीमतः ॥ नष्टमासीन्मलं सर्वं मायाजं कार्ममेव च॥१७॥ ततःक्षीणमलं कृष्णमुपमन्युर्यथाविधिः॥भस्मनोद्धूल्य तं मन्त्रैरग्निरित्यादिभिःक्रमात्॥१८॥अथ पाशुपतं साक्षाद्व्रतं द्वादशमासिकम्॥ कारयित्वा मुनिस्तस्मै प्रददौ ज्ञानमुत्तमम्॥१९॥

शिवके ध्यानमें तत्पर शान्त महाकान्तिमान् उपमन्युजीको देखा ॥ १५ ॥ उनको देखतेही श्रीकृष्णजीके रोम खडे हो गये और प्रणाम कर बडे आदरसे श्रीकृष्णजीने उनकी तीन प्रदक्षिणा की, और हाथ जोड शिर झुकाय बडे प्रेमसे उनकी स्तुति की ॥ १६ ॥ उन मुनिराजके दर्शनमात्रके माया और कर्म्म सम्बधी देहका मल महानुभाव श्रीकृष्णजीका दूर हो गया ॥ १७ ॥ तब उपमन्युने मायाविकारसे रहित श्रीकृष्णजीके शरीरको ' अग्निरिति भस्म ' इत्यादि मन्त्रोंसे भस्मसे लिप्त कर ॥ १८ ॥ बारह महीनेका साक्षात् पाशुपत

व्रत कराकर उनको श्रेष्ठज्ञान दिया ॥ १९ ॥ उसी दिनसे बडे २ व्रतस्नात मुनि दिव्य पाशुपत ज्ञानवाले उनके समीप नित्य निवास करने लगे ॥ २० ॥ तब परमशक्तिमान् श्रीकृष्णजी गुरुकी आज्ञासे साम्बपुत्रके निमित्त शंकरकी तपस्या करने लगे ॥ २१ ॥ उस तपस्यासे एक वर्षके उपरान्त बडी शोभासे युक्त शंकरने पार्वती और गणोंसहित दर्शन दिया ॥ २२ ॥ जब सुन्दर आकृति शंकर वर देनेको प्रकट हुए तब श्रीकृष्णने हाथ जोड उनकी स्तुति की ॥ २३ ॥ तब शिवजीने श्रीकृष्णके तपसे प्रसन्नचित्त हो उनको वर दिया, और उन्होंने अत्यग्र

तदाप्रभृति तं कृष्णं मुनयश्शंसितव्रताः ॥ दिव्याः पाशुपतासर्वे परिवृत्योपतस्थिरे ॥ २० ॥ ततो गुरुनियोगाद्वै कृष्णः परमशक्तिमान् ॥ तपश्चकार पुत्रार्थं सांबमुदिश्य शंकरम् ॥२१॥ तपसा तेन वर्षांते दृष्टोऽसौ परमेश्वरः ॥ श्रिया परमया युक्तस्सांबश्च सगणश्शिवः ॥ २२ ॥ वरार्थमाविर्भूतस्य हरस्य सुभगाकृतेः ॥ स्तुतिं चकार नत्वासौ कृष्णः सम्यक्कृतांजलिः ॥२३॥ सांबं समगण व्यग्रो लब्धवान्पुत्रमात्मनः ॥ तपसा तुष्टचित्तेन दत्तं विष्णोश्शिवेन वै ॥ २४ ॥ यस्मात्सांबो महादेवः प्रददौ पुत्रमात्मनः ॥ तस्माज्जांबवतीसूनुं सांबं चक्रे स नामतः ॥ २५ ॥ तदेतत्कथितं सर्वं कृष्णस्यामितकर्मणः ॥महर्षेर्ज्ञानलाभश्च पुत्रलाभश्च शंकरात ॥ २६ ॥ य इदं कीर्तयेन्नित्यं शृणुयाच्छ्रावयेत्तथा ॥ स विष्णोर्ज्ञानमासाद्य तेनैव सह मोदते ॥ २७ ॥इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे कृष्णपुत्रप्राप्तिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ किं तत्पाशुपतं ज्ञानं कथं पशुपतिश्शिवः ॥ कथं धौम्याग्रजः पृष्टः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ १ ॥

तासे अम्बा और गणोंके सहित उनको पुत्र दिया ॥२४॥ जिस कारण महादेवजीने अम्बासहित उनको पुत्र दिया इसीसे जाम्बवन्तीके पुत्रको उन्होंने जाम्ब नाम रक्खा ॥२५॥ यह हमने आपसे महापराक्रमी श्रीकृष्णको महर्षिसे ज्ञानलाभ और शंकरसे पुत्र लाभकी कथा कही ॥२६॥ जो इसे नित्य कीर्तन करते और सुनते और सुनाते हैं, वह विष्णुके ज्ञानको प्राप्त हो उनके साथ आनन्द करते हैं ॥२७॥ इति श्रीशिवमहापुराणे वायुसंहिताभाषाटीकायामुत्तरखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ ऋषि बोले, वह पाशुपत ज्ञान क्या है शिवजी पशुपति क्यों कहाते हैं महात्मा श्रीकृष्णजीने

उपमन्युसे कैसे प्रश्न किया ॥१॥ हे शंकरके शरीर वायु ! हमसे सब कहो, आपके समान त्रिलोकीमें इसका कोई समर्थ वक्ता नहीं है ॥ २ ॥ सूतजी बोले, वायु देवता इस प्रकार उन ऋषियोंके वचन सुन ईशान शिवको स्मरण कर इस प्रकार कहने लगे ॥३॥ वायु बोले, प्रथम श्रीमहेशने मन्दरपर्वतमें देवीके निमित्त पाशुपत ज्ञान वर्णन किया ॥४॥ वही वार्ता विश्वयोनि श्रीकृष्णने पूँछी थी; सुरादिको पशुत्व किस प्रकारसे है और शिवको उनका पतित्व किस प्रकार है ॥५॥ जैसे उपमन्यु मुनिने श्रीकृष्णको यथोक्त उपदेश दिया है वह मैं संक्षेपमें कहता हूँ तुम मन लगा कर

एतत्सर्वं ससाचक्ष्व वायो शंकरविग्रह ॥ तत्समो न हि वक्तास्ति त्रैलोक्येष्वपरः प्रभुः ॥२॥ सूत उवाच॥इत्याकर्ण्य वचस्तेषां महर्षीणां प्रभंजनः ॥ संस्मृत्य शिवमीशानं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥३॥ वायुरुवाच॥पुरा साक्षान्महेशेन श्रीकंठाख्येन मन्दरे ॥ देव्यै देवेन कथितं ज्ञानं पाशुपतं परम् ॥४॥ तदेव पृष्टं कृष्णेन विष्णुना विश्वयोनिना ॥ पशुत्वं च सुरादीनां पतित्वं च शिवस्य च ॥ ५ ॥ यथोपदिष्टं कृष्णाय मुनिना ह्युपमन्युना ॥ तथा समासतो वक्ष्ये तच्छृणुध्वमतंद्रिताः॥६॥पुरोपमन्युमासीनं विष्णुः कृष्णवपुर्धरः ॥ प्रणिपत्य यथान्यायमिदं वचनमब्रवीत्॥७॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि देव्यै देवेन भाषितम्॥ दिव्यं पाशुपतं ज्ञानं विभूतिं वास्य कृत्स्नशः ॥८॥ कथं पशुपतिर्देवः पशवः के प्रकीर्तिताः ॥ कैः पाशैस्ते निबध्यंते विमुच्यंते च ते कथम् ॥९॥ इति संचोदितः श्रीमानुपमन्युर्महात्मना ॥ प्रणम्य देवं देवीं च प्राह पृष्टो यथा तथा ॥ १० ॥ उपमन्युरुवाच ॥ ब्रह्माद्याः स्थावरांताश्च देवदेवस्य शूलिनः ॥ पशवः परिकीर्त्यंते संसारवशवर्तिनः ॥ ११ ॥

सुनो ॥ ६ ॥ एक समय उपमन्यु बैठे हुए थे कि कृष्णरूपधारी विष्णु प्रणामकर न्यायसे इस प्रकारके वचन कहने लगे ॥ ७ ॥ श्रीकृष्ण बोले, हे भगवन् जो शिवने पार्वतीके प्रति दिव्य पाशुपत ज्ञान और उसकी सब विभूति वर्णन किया है वह मैं सुननेकी इच्छा करता हूँ ॥ ८ ॥ वह देव पशुपति किस प्रकारसे हैं, और पशु कौन कहलाते हैं, किन पाशोंसे बाँधे जाते और किस प्रकारसे मुक्त होजाते हैं ॥ ९ ॥ जब महात्मा श्रीमान् उपमन्युजीसे इस प्रकार कहा गया तब देव देवीको प्रणाम कर वह प्रसन्न हो बोले ॥ १० ॥ उपमन्यु बोले, ब्रह्मासे आदि

लेकर देवदेव शूलधारी शंकरके संसारवशवता सब पशु कहलाते हैं ॥ ११ ॥ उनके पति होनेसे देवदेव पशुपति कहलाते हैं, वह पशुपति मल और मायादिकोंके पाशोंसे उनको बाँधता है ॥ १२ ॥ और वही उपासना कियेजानेपर भक्तोंके पाश मोचन करता है, यह मायाके कर्म और गुण चौबीस तत्त्वके हैं ॥ १३ ॥ यही विषयकहलाते हैं जिनसे यह जीव बँधा हुआ है, ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त पशुओंको बाँधकर शिवजी ॥ १४ ॥ इन पाशोंसे बाँधकर जगत्का कार्य कराते हैं; उन महेश्वरकी आज्ञासे वह प्रकृति पुरुषोंके उचित ॥ १५ ॥ बुद्धिको उत्पन्न करती है, उससे अहंकार दस इन्द्रिय मन सूक्ष्म कलात्मक शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पंचतन्मात्रा उत्पन्न होती हैं ॥ १६ ॥ कल्याणदायक शिव

तेषां पतित्वाद्देवेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः ॥ मलमायादिभिः पाशैः स बध्नाति पशून्पतिः ॥ १२ ॥ स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः ॥ चतुर्विंशतितत्त्वानि मायाकर्मगुणा अमी ॥१३॥ विषया इति कथ्यन्ते पाशा जीवनिबन्धनाः ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्यंतान् पशून्बद्ध्वा महेश्वरः ॥१४॥ पाशैरेतैः पतिर्देवः कार्यं कारयति स्वकम् ॥ तस्याज्ञया महेशस्य प्रकृतिः पुरुषोचिताम् ॥ १५ ॥ बुद्धिं प्रसूते सा बुद्धिरहंकारमहंकृतिः ॥ इन्द्रियाणि दशैकं च तन्मात्रापञ्चकं तथा ॥ १६ ॥ शासना देवदेवस्य शिवस्य शिवदायिनः ॥ तन्मात्राण्यपि तस्यैव शासनेन महीयसा ॥१७॥ महाभूतान्यशेषाणि भावयंत्यनुपूर्वशः॥ ब्रह्मादीनां तृणान्तानां देहिनां देहसंगतिम् ॥ १८ ॥ महाभूतान्यशेषाणि जनयंति शिवाज्ञया ॥ अध्यवस्यति वै बुद्धिरहंकारोभिमन्यते ॥१९॥ चित्तं चेतयते चापि मनः संकल्पयत्यपि ॥ श्रोत्रादीनि च गृह्णन्ति शब्दादीन्विषयान् पृथक् ॥ २० ॥ स्वानेव नान्यान्देवस्य दिव्येनाज्ञाबलेन वै ॥ वागादीन्यपि यान्यासंस्तानि कर्मेन्द्रियाणि च ॥ २१ ॥

की आज्ञासे तन्मात्रा भी उसीके महाशासनसे होती हैं ॥ १७ ॥ और यथाक्रमसे महाभूत उत्पन्न होते हैं, ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त देहधारियोंसे देहकी संगति है ॥ १८ ॥ यह शिवकी आज्ञासे महाभूत सबोंको उत्पन्न करते हैं उसीसेनिश्चयात्मक बुद्धि अहंकार कही जाती है ॥ १९ ॥ वह चित्तको चैतन्य और मनको संकल्पयुक्त करतीहै श्रोत शब्दादिको पृथक् ग्रहण करती है ॥ २० ॥ अपनेही बलसे न कि, दूसरेसे दिव्य देव शिवकी आज्ञाके बलसे जो वागादि इन्द्रिय हैं वे सब कर्मेंद्रियहैं ॥ २१ ॥

वे शिवकी आज्ञासे सब अपने २ कर्मको ग्रहण करतीहैं; शब्दादिक भी ग्रहण करते और वचनादि किये जाते हैं ॥ २२ ॥ शिव आज्ञा को कोई उल्लंघन नहीं कर सकता है, और वह सबसे प्रबल हैं वे ही सब प्राणियोंको अवकाश देते हैं ॥ २३ ॥ परमेश्वरकी आज्ञा से ही आकाश सर्वगामी है: प्राणादिसे तथा नामभेदसे अन्तर बाहर जगत्को ॥ २४ ॥ शिवकी आज्ञासे पवन धारण करता है; देवताओंके हव्य और पितरोंके कव्यको ले जानेवाला है ॥ २५ ॥ और पाकादि करनेवाला अग्नि परमेश्वरकी आज्ञासे वर्तता है; और उन्हींकी आज्ञासे जल सब जगत्का जीवन करते हैं ॥ २६ ॥ यह पृथ्वी उन्हींकी आज्ञासे नित्य जगतको धारण करती है देवताओंकी रक्षा

यथा स्वं कर्म कुर्वन्ति नान्यत्किंचिच्छिवाज्ञया॥शब्दा दयोपि गृह्यंते क्रियन्ते वचनादयः ॥२२॥अविलंघ्या हि सर्वेषामाज्ञा शंभोर्गरीयसी ॥ अवकाशमशेषाणां भूतानां संप्रयच्छति ॥२३॥ आकाशः परमेशस्य शासनादेव सर्वगः ॥ प्राणाद्यैश्च तथा नामभेदैरंतर्बहिर्जगत् ॥ २४ ॥ बिभर्ति सर्वं शर्वस्य शासनेन प्रभञ्जनः ॥ हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि ॥ २५ ॥ पाकाद्यं च करोत्यग्निः परमेश्वरशासनात् ॥ संजीवनाद्यं सर्वस्य कुर्वत्यापस्तदाज्ञया ॥२६॥ विश्वम्भरा जगन्नित्यं धत्ते विश्वेश्वराज्ञया ॥ देवान्पात्यसुरान् हंति त्रिलोकमभिरक्षति ॥ २७ ॥ आज्ञया तस्य देवेन्द्रः सर्वैर्देवैरलंघ्यया ॥ आधिपत्यमपां नित्यं कुरुते वरुणस्सदा॥२८॥पाशैर्बध्नाति च यथा दंड्यांस्तस्यैव शासनात् ॥ ददाति नित्यं यक्षेन्द्रो द्रविणं द्रविणेश्वरः ॥ २९ ॥ पुण्यानूरूपं भूतेभ्यः पुरुषस्यानुशासनात् ॥ करोति संपदः शश्वज्ज्ञानं चापि सुमेधसाम् ॥ ३० ॥

असुरोंका मारना त्रिलोकीकी रक्षा ॥ २७ ॥ उनकी सब देवताओंसे अलंघनीय आज्ञासे इन्द्र देवताओंका और वरुण जलोंका आधिपत्य करते हैं ॥ २८ ॥ जीवोंको व्याधियोंसे पीडा और मरेहुए जीवोंको यातना और धर्म त्यागनेवालोंको अनेक दुःख शिवकी आज्ञासे धर्मराज प्रदान करते हैं विधिहीन कर्म करनेवालोंके कर्म निर्ऋति हरण कर लेते हैं, वही शिवकी आज्ञासे निशाचरोंका आधिपत्य करतेहैं, और परमेश्वरकी आज्ञासे बांधनेयोग्य प्राणियोंको पाशोंसे बांधतेहैं और दंड देतेहैं; और यक्षपति कुबेर सबको धन देतेहैं ॥२९॥ और शिवकी आज्ञासे

जैसा जिसका पुण्य है वैसाही उसको द्रव्य देते हैं, और बुद्धिमानोंको सम्पत्ति और ज्ञान देते हैं ॥ ३० ॥ ईशानदेव शिवकी आज्ञासे असाधुओंका निग्रह करते हैं और शिवकी आज्ञासे शेषजी पृथ्वीको धारण करते हैं ॥ ३१ ॥ जिस शिवकी मूर्तिको अन्तकरी तामसीमूर्ति कहते हैं, जिसकी शासनासे ब्रह्माजी सारे जगत्को निर्माण करते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार तीन अपनी मूर्तियोंसे रक्षा (पालन) उत्पत्ति और संहार करते हैं, शिवकी आज्ञासे विष्णु पालते हैं ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा उत्पन्न करते और अपने शरीरसे उत्पन्न करके ग्रास करते हैं, उन्हींकी शासनासे सब जगत्को अन्तमें हरण करते हैं ॥ ३४ ॥ वह विश्वात्मा उत्पन्न करके तीन प्रकारसे होकर जगत्की रक्षा करता है यह

निग्रहं चाप्यसाधूनामीशानश्शिवशासनात् ॥ धत्ते तु धरणीं मूर्ध्ना शेषः शिवनियोगतः॥३१॥ यामाहुस्तामसीं रौद्रीं मूर्तिमंत करीं हरेः ॥ सृजत्यशेषमीशस्य शासनाच्चतुराननः ॥३२॥ अन्याभिर्मूर्तिभिः स्वाभिः पाति चांते निहन्ति च ॥ विष्णुः पालयते विश्वंकालकालस्य शासनात् ॥ ३३ ॥ सृजते त्रसते चापि स्वकाभिस्तनुभिस्त्रिभिः ॥ हरत्यंते जगत्सर्वं हरस्तस्यैव शासनात् ॥ ३४ ॥ सृजत्यपि च विश्वात्मा त्रिधा भिन्नस्तु रक्षति ॥ कालः करोति सकलं कालस्संहरति प्रजाः ॥ ३५ ॥ कालः पालयते विश्वं कालकालस्य शासनात् ॥ त्रिभिरंशैर्जगद्बिभ्रत्तेजोभिर्वृष्टिमादिशन् ॥३६॥ दिवि वर्षत्यसौ भानुर्देवदेवस्य शासनात् ॥ पुष्णात्योषधिजा तानि भूतान्याह्लादयत्यपि ॥ ३७ ॥ देवैश्च पीयते चंद्रश्चंद्रभूषणशासनात् ॥ आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ मरुतस्तथा ॥ ३८॥ खेचरा ऋषयस्सिद्धा भोगिनो मनुजा मृगाः ॥पशवः पक्षिणश्चैव कीटाद्याः स्थावराणि च ॥३९॥ नद्यस्समुद्रा गिरयः काननानि सरांसि च ॥ वेदाः सांगाश्च शास्त्राणि मंत्रस्तोममखादयः ॥ ४० ॥

सब कुछ कालही करके पीछे कालही संहार करता है ॥ ३५ ॥ काल कालकी शासनासे यह कालही जगत्को पालता है ग्रहण कर लेता है यह तीन अंशोंसे जगत्को धारण कर तेजसेही वृष्टि करते हुए ॥ ३६ ॥ यही सूर्यरूपसे हो अन्तरिक्षसे वर्षा करता है और शिवकी आज्ञा मानता है. वह सब औषधियोंको पुष्ट और प्राणियोंको प्रसन्न करता हुआ ॥ ३७ ॥ यह चन्द्रमा महादेवकी आज्ञासे देवतोंसे पियाजाता है. आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार मरुत ॥ ३८ ॥ खेचर, ऋषि, सिद्ध सर्प, मनुष्यादि, पशु, पक्षी, कीटादिस्थावरादि ॥ ३९ ॥ नदी समुद्र,

पर्वत वन, सरोवर, अंगसहित, वेद, शास्त्र, मंत्र स्तोमयज्ञ ॥ ४० ॥ काल अग्निसे आदि लेकर शिवतक अधिपतियोंके सहित भुवन असंख्य ब्रह्माण्ड और उनके आवरण ॥ ४१ ॥ भूत भविष्य वर्तमान सम्पूर्ण होते हैं, दिशा विदिशा कालके भेद कलादि ॥ ४२ ॥ जो कुछ इस जगत्में देखा वा सुना जाता है, वह सब शिवकी आज्ञा और बलसे स्थित है ॥ ४३ ॥ उन्हींकी आज्ञाके बलसे यह धरा स्थित है, यह पर्वत जलधर और समुद्र स्थित हैं, ज्योतिर्गण इन्द्रादिक देवता चराचर सब उन्हींकी आज्ञासे है ॥ ४४ ॥ उपमन्यु बोले, यह श्रीशिवजी महाराजके चरित्र महाआश्चर्य मय हैं, और उनके अमित अर्थात् अनन्त कार्य, जो कुछ वेदादि शास्त्रमें मैंने श्रवण किये हैं, उसे तुम सुनो

कालाग्न्यादिशिवांतानि भुवनानि सहाधिपैः॥ब्रह्मांडान्यप्यसंख्यानि तेषामावरणानि च॥४१॥वर्तमानान्यतीतानि भविष्यन्त्यपि कृत्स्नशः ॥ दिशश्च विदिशश्चैव कालभेदाः कलादयः ॥ ४२ ॥ यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥ तत्सर्वं शंकरस्याज्ञा बलेन समधिष्ठितम् ॥४३॥ आज्ञाबलात्तस्य धरा स्थितेह धराधरा वारिधराः समुद्राः ॥ ज्योतिर्गणाः शक्रमुखाश्च देवाः स्थिरं चिरं वा चिदचिद्यदस्ति ॥ ४४ ॥ उपमन्युरुवाच॥ अत्याश्चर्यमिदं कृष्ण शंभोरमितकर्मणः ॥ आज्ञाकृतं शृणुष्वैतच्छुतं श्रुतिमुखे मया ॥४५॥ पुरा किल सुराः सेंद्रा विवदंतः परस्परम् ॥ असुरान्समरे जित्वा जेताहमहमित्युत ॥ ४६ ॥ तदा महेश्वरस्तेषां मध्यतो वरवेषधृक् ॥ स्वलक्षणैर्विहीनांगः स्वयं यक्ष इवाभवत्॥ ४७ ॥ स तानाह सुरानेकं तृणमादाय भूतले ॥ य एतद्विकृतं कर्तुं क्षमते स तु दैत्यजित् ॥ ४८ ॥ यक्षस्य वचनं श्रुत्वा वज्रपाणिः शचीपतिः ॥ किंचित्क्रुद्धो विहस्यैनं तृणमादातुमुद्यतः ॥ ४९ ॥

॥ ४५ ॥ प्रथम देवताओंने इन्द्रके सहित दैत्योंको जीतकर परस्पर यह विवाद किया कि हमने जीता हमने जीता है ॥ ४६ ॥ तब उनके बीचमें अतिश्रेष्ठ वेषको धारण करनेवाले महेश्वरने कहा जो कि अपने लक्षणसे विहीन अंगवाले होकर भी यक्षराजके समान हुए थे ॥ ४७ ॥ तब वह एक तृण पृथ्वीमें रखकर देवताओंसे बोले जो इस तृणको चलायमान करदे वही दैत्योंका जीतनेवाला है ॥ ४८ ॥ यक्षके वचन सुनकर वज्रधारी इन्द्र कुछ हँसकर उस तृणके उठानेका उद्योग करने लगे ॥ ४९ ॥

परन्तु उस तृणके उठानेको मनसे भी ससर्थ न हुए, तब उसके छेदन करनेको वज्र छोडा ॥ ५० ॥ वह इन्द्रका वज्र उस तृणरूपी वज्रसे तिरस्कृतहो उसके तेजको न सहताहुआ पृथ्वीपर गिरा ॥ ५१ ॥ उसी प्रकार और भी महाबली लोकपाल उस तृणके ऊपर सहस्रों आयुध त्यागने लगे ॥ ५२ ॥ उस समय महाअग्नि प्रज्वलित हुई और प्रचंड पवन चलने लगा और प्रलयकालके उपस्थित होनेके समान समुद्र चलायमान हुआ ॥ ५३ ॥ इस प्रकार उस तृणके उद्देशसे हे कृष्ण ! वह देवताओंका सब पराक्रम व्यर्थ होगया ॥ ५४ ॥ तब देवेन्द्रने

न तत्तृणमुपादातुं मनसापि च शक्यते ॥ यथा तथापि तच्छेत्तुं वज्रं वज्रधरोऽसृजत् ॥ ५० ॥ तद्वज्रं निजवज्रेण संसृष्टमिव सर्वतः ॥ तृणेनाभिहतं तेन तिर्यगग्रं पपात ह ॥ ५१ ॥ ततश्चान्ये सुसंरब्धा लोकपाला महाबलाः ॥ ससृजुस्तृणमुद्दिश्य स्वायुधानि सहस्रशः ॥ ५२ ॥ प्रजज्ज्वाल महावह्निः प्रचंडः पवनो ववौ ॥ प्रवृद्धोऽपांपतिर्यद्वत्प्रलये समुपस्थिते ॥ ५३ ॥ देवैस्समारब्धं तृणमुद्दिश्ययत्नतः ॥ व्यर्थमासीदहो कृष्ण यक्षस्यात्मबलेन वै ॥ ५४ ॥ तदाह यक्षं देवेंद्रः को भवानित्यमर्षितः ॥ ततस्स पश्यतामेव तेषामंतरधादथ ॥ ५५ ॥ तदंतरे हैमवती देवी दिव्यविभूषणा ॥ आविरासीन्नभोरंगे शोभमाना शुचिस्मिता ॥ ५६ ॥ तां दृष्ट्वा विस्मयाविष्टा देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ प्रणम्य यक्षं पप्रच्छुः कोऽसौ यक्षो विलक्षणः ॥ ५७ ॥ साऽब्रवीत्सस्मितं देवी स युष्माकमगोचरः ॥ तेनेदं भ्रम्यते चक्रं संसाराख्यं चराचरम् ॥५८॥ तेनादौ क्रियते विश्वं तेन संह्रियते पुनः ॥ न तन्नियन्ता कश्चित्स्यात्तेन सर्वं नियम्यते ॥ ५९ ॥

असहनशील होकर यक्षसे पूँछा तुम कौनहो ? तब वह उन सबके देखतेही अन्तर्धान होगया ॥ ५५ ॥ उसी समय एक सुवर्णमयी देवी दिव्य भूषण पहरे शोभामान मन्दमुस्कानसे युक्त आकाशमें प्रादुर्भूत हुई ॥५६॥ उसको देखकर इन्द्र आदि सब देवता विस्मयको प्राप्त होगये; और उसे प्रणामकर पूँछने लगे; वह यक्ष कौन था ॥ ५७ ॥ तब वह देवी हास्यकर बोली कि, वह तुम्हारी इन्द्रियोंका गोचर नहीं है; वह यह संसार रूपी चराचरयुक्त चक्रभ्रमण करता है ॥ ५८ ॥ वही आदिमें संसारकी रचनाकर फिर उसे संहार करते हैं, उसका कुछ नियम नहीं है और

उससे सबका नियम होता है ॥ ५९ ॥ यह कहकर वह (जगज्जननी) महादेवी अन्तर्द्धान होगई; और सबदेता भी प्रणामकर स्वर्गको चले गये ॥ ६० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे स० वा० सं० भाषाटीकायामुत्तरखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ उपमन्यु बोले, हे कृष्ण ! सुनिये जिस प्रकारकी शिव परमात्माकी मूर्तिसे यह चराचर जगत् व्याप्त होरहा है ॥ १ ॥ वह यह शिवही अपनी मूर्तियोंसे अधिष्ठित हो वह अमित आत्मा जो कुछ भी है उसको जानरहा है ॥ २ ॥ ब्रह्मा विष्णुरुद्र महेशान सदाशिव यह उसीकी मूर्ति हैं, जिससे सारा जगत् विस्तारको प्राप्त हो रहा

इत्युक्त्वा सा महादेवी तत्रैवांतरधत्त वै ॥ देवाश्च विस्मिताः सर्वे तां प्रणम्य दिवं ययुः॥६०॥इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखंडे द्वितीयोऽध्यायः॥२॥उपमन्युरुवाच॥शृणु कृष्ण महेशस्य शिवस्य परमात्मनः॥मूर्त्यात्मभिस्ततं कृत्स्नं जगदेतच्चराचरम्॥१॥स शिवस्सर्वमेवेदं स्वकीयाभिश्च मूर्तिभिः ॥ अधितिष्ठत्यमेयात्मा ह्येतत्सर्वमनुस्मृतम् ॥२॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो महेशानस्सदाशिवः॥मूर्त्तयस्तस्य विज्ञेया याभिर्विश्वमिदं ततम् ॥३॥ अथान्याश्चापि तनवः पंच ब्रह्मसमाह्वयाः॥ तनूभिस्ताभिराव्याप्तमिह किंचिन्न विद्यते॥४॥ईशानः पुरुषोऽघोरो वामः सद्यस्तथैव च॥ब्रह्माण्येतानि देवस्य मूर्त्तयः पंच विश्रुताः ॥ ५ ॥ ईशानाख्या तु या तस्य मूर्त्तिराद्या गरीयसी ॥ भोक्तारं प्रकृतेः साक्षात्क्षत्रज्ञमधितिष्ठति ॥६॥स्थाणोस्तत्पुरुषाख्या या मूर्त्तिर्मूर्त्तिमतः प्रभोः ॥ गुणाश्रयात्मकं भोग्यमव्यक्तमधितिष्ठति॥७॥ धर्माद्यष्टांगसंयुक्तं बुद्धितत्त्वं पिनाकिनः॥अधितिष्ठत्यघोराख्या मूर्त्तिरत्यंतपूजिता ॥ ८ ॥ वामदेवाह्वयां मूर्त्तिं महादेवस्य वेधसः ॥ अहंकृतेरधिष्ठात्रीमाहुरागमवेदिनः ॥ ९ ॥

है ॥ ३ ॥ जैसे और शिवकी पंच ब्रह्ममूर्ति हैं, उनसे भी सब जगत् व्याप्त, है ऐसा कुछ नहीं जहां कुछ न हो ॥ ४ ॥ ईशान पुरुष घोर वाम देव सद्योजात यह ईशाननामकी पांच मूर्ति जगत्में विख्यात हैं ॥५॥ जो उनकी पहली ईशाननामकी श्रेष्ठ मूर्ति है वह प्रकृतिकी भोक्ता होकर क्षेत्रज्ञमें स्थित है ॥ ६ ॥ और जो मूर्तिमान् स्थाणुकी मूर्ति तत्पुरुष नामवाली है; वह गुणाश्रय होकर भोगती है और अव्यक्तमें स्थित है ॥ ७ ॥ धर्मादि अष्टांगसे संयुक्त शिवजीके बुद्धि तत्त्वमें अत्यन्त पूजित अघोरमूर्ति स्थित रहती है ॥८॥ और जो विधाता वा महादेवनामक

मूर्ति है उसको शास्त्रके जाननेवाले अहंकारमें स्थित रहनेवाली कहते हैं ॥ ९ ॥ अमित तेजस्वी शंकरकी जो सद्योजात मूर्ति है; बुद्धिमान् उसको मनमें स्थिति करनेवाली कहते हैं ॥ १० ॥ श्रोत्र वाणी शब्दकी विभु और आकाशकी जो सबकी ईश्वरी मूर्ति है उसको पंडित 'ईशा' कहते हैं ॥ ११ ॥ त्वचा, हाथ, स्पर्शवायुकी ईश्वरी जो ईश्वरीकी मूर्ति है उसको पुराणके जाननेवाले पुरुष कहते हैं ॥ १२ ॥ चक्षु चरण और अग्निके रूपमें शिवकी अघोर मूर्ति स्थिति है, यह बुद्धिमान् कहते हैं ॥ १३ ॥ रसना वायु रस और जलकी ईश्वरी वामदेव नामक मूर्ति उसके जाननेवालोंने कही है ॥ १४ ॥ घ्राण उपस्थ गन्ध पृथ्वीकी अधीश्वरी उनकी सद्योजात मूर्ति कही गई है ॥ १५ ॥ यह

सद्यो जाताह्वयां मूर्त्तिं शम्भोरमितवर्चसः॥मानसः समधिष्ठात्रीं मतिमंतः प्रचक्षते॥१०॥ श्रोत्रस्य वाचः शब्दस्य विभोर्व्योम्नस्तथैवच ॥ ईश्वरीमीश्वरस्येमामीशाख्यां हि विदुर्बुधाः ॥११॥ त्वक्पाणिस्पर्शवायूनामीश्वरीं मूर्तिमैश्वरीम् ॥पुरुषाख्यं विदुस्सर्वे पुराणार्थ विशारदाः॥१२॥चक्षुषश्चरणस्यापि रूपस्याग्नेस्तथैव च॥अघोराख्यामधिष्ठात्रीं मूर्तिमाहुर्मनीषिणः॥१३॥रसनायाश्च पायोश्च रसस्यापां तथैव च॥ईश्वरीं वामदेवाख्यां मूर्त्तिं तन्निरतां विदुः॥१४॥घ्राणस्य चैवोपस्थस्य गंधस्य च भुवस्तथा॥सद्यो जाताह्वयां मूर्तिमीश्वरीं संप्रचक्षते॥१५॥मूर्तयः पंच देवस्य वंदनीयाः प्रयत्नतः॥श्रेयोर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः॥१६॥तस्य देवादिदेवस्य मूर्त्यष्टकमयं जगत्॥तस्मिन्व्याप्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव॥१७॥शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशोः पतिः॥ ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्ट विश्रुताः ॥१८॥ भूम्यंभोग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः ॥अधिष्ठिता महेशस्य शर्वाद्यैरष्टमूर्त्तिभिः ॥१९॥ चराचरात्मकं विश्वं धत्ते विश्वंभरात्मिका ॥ शार्वी शिवाह्वया मूर्तिरिति शास्त्रस्य निश्चयः ॥ २० ॥

देवकी पांच मूर्ति यत्नसे कहनी चाहिये; जो मंगलकी इच्छा करनेवाले मनुष्य हैं उनको यह सदा मंगल देनेवाली है ॥ १६ ॥ उस देवाधिदेवकी यह अष्टमूर्तिमय है, और जैसे सूत्रोंमें मणि पोही हुई है इस प्रकार उनमें विश्व ओतप्रोत है ॥ १७ ॥ शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान, महादेव, यह उनकी आठमूर्तियाँ हैं ॥ १८ ॥ भूमि, जल, अग्नि, मरुत्, व्योम क्षेत्रज्ञ, अर्क, निशाकर, (चन्द्रमा) यह महेश्वरकी आठ मूर्तियें कल्पित हैं ॥ १९ ॥ यह पृथ्वी चराचरात्मक जगत्को धारण करती है; यह शिवकी शिवात्मक मूर्ति है; यह

शास्त्रका निश्चय है ॥ २० ॥ जलात्मक इस सारे जगत्का जीवन है, इस परमात्मा शिवकी मूर्ति भावी कहलाती है ॥ २१ ॥ बाहर भीतर जगत्को व्याप्त कर उसकी तेजोमयी शुभमूर्ति है, और घोररूप उनकी रौद्रामूर्ति है, ॥ २२ ॥ पवन सारे जगत्को स्पंदन करता हुआ इसको भरण पोषण करता है और उग्रमूर्ति उसकी उग्र कहलाती है ॥ २३ ॥ और सबके अवकाश देनेवाली उनकी आकाशात्मक मूर्ति है और सब प्राणियोंको भय देनेवाली उनकी भीममूर्ति है ॥ २४ ॥ सब क्षेत्र निवासियोंके अन्तःकरणमें सर्वात्मासे स्थित है वह जीवोंकी पाश काटने वाली शिवकी पशुपति मूर्ति है ॥ २५ ॥ सूर्यनामसे उनकी मूर्ति सारे जगत्को प्रकाश करती है, वह ईशान नामवाली शिवकी मूर्ति स्वर्गमें

संजीवनं समस्तस्य जगतस्सलिलात्मिका॥भावीति गीयते मूर्तिर्भवस्य परमात्मनः॥२१॥बहिरंतर्गता विश्वं व्याप्य तेजोमयी शुभा॥रौद्री रुद्राख्यया मूर्तिरास्थिता घोररूपिणी ॥२२॥स्पंदयत्यनिलात्मदं बिभर्ति स्पंदते स्वयम्॥औग्रीतिकथ्यते सद्भिर्मूर्तिरुग्रस्य वेधसः॥२३॥सर्वावकाशदा सर्वव्यापिका गगनात्मिका॥मूर्तिर्भीमस्य भीमाख्या भूतवृंदस्य भेदिका॥२४॥सर्वात्मनामधिष्ठात्री सर्वक्षेत्रनिवासिनी ॥ मूर्तिः पशुपतेर्ज्ञेया पशुपाशनिकृंतनी॥२५॥दीपयंती जगत्सर्वं दिवाकरसमाह्वया॥ईशानाख्य महेशस्य मूर्तिर्दिवि विसर्पति॥२६॥आप्याययति यो विश्वममृतांशुर्निशाकरः॥महादेवस्य सा मूर्तिर्महादेवसमाह्वया२७॥आत्मा तस्याष्टमी मूर्तिःशिवस्य परमात्मनः॥व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्व तस्माच्छिवात्मकम्।२८।वृक्षस्य मूलसेकेन शाखाःपुष्यंतिवे यथा॥ शिवस्य पूजया तद्वत्पुष्यत्यस्य वपुर्जगत्॥२९॥सवाभयप्रदानं च सर्वानुग्रहणं तथा॥सर्वोपकारकरणं शिवस्याराधनं विदुः॥३०॥

चलती है ॥ २६ ॥ जो चन्द्रमा किरणोंसे जगत्को तृप्त करता है वह चन्द्रमूर्ति है महादेवकी वह मूर्ति महादेवसंज्ञक है ॥ २७ ॥ इनमें आठवीं शिवकी व्यापकमूर्ति है, और इतर मूर्तियोंसे भी व्यापकमूर्ति होनेके कारण यह जगत् शिवात्मक है ॥ २८ ॥ जैसे वृक्षकी जडमें सींचनेसे शाखा फूलती फलती हैं, इसी प्रकार शिवकी पूजासे इनका शरीररूपी जगत् पुष्ट होता है ॥ २९ ॥ सबको अभय देना प्रधान है; और सबका अनुग्रह विधायक और सब उपकारका कारण शिवका आराधन कहा है ॥ ३० ॥

जिस प्रकार पुत्र और पौत्रादिकी प्रीतिसे पिता प्रसन्न होता है, इसी प्रकार सबकी प्रीतिसे शंकर प्रसन्न होतेहैं॥३१॥जब कि, कोई किसी देहधारीका निग्रह करतेहैं वे अष्टमूर्तिका निग्रह करतेहैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ अष्टमूर्तिरूपसे सब जगत्को व्याप्त करके स्थितहुए परम कारणरूप शिवका सर्वभावसे भजन करो ॥ ३३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सं० वायवीयसंहिताभाषाटीकायामुत्तरखण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ श्रीकृष्ण बोले, हे भगवन् ! परमेश अमिततेजस्वी शिवने जिस प्रकार अपनी मूर्तियोंसे यह विश्व व्याप्त करलिया है; वह मैंने सुना ॥ १ ॥ अब मेरे यह जाननेकी इच्छा है कि उन स्त्री पुरुषरूपसे यह जगत् किस प्रकारसे अधिष्ठित है ॥ २ ॥ उपमन्यु बोले, श्रीशिवकी विभूति यथायोग्य संक्षेपसे

यथेह पुत्रपौत्रादेःप्रीत्या प्रीतो भवेत्पिता॥तथा सर्वस्य संप्रीत्या प्रीतो भवति शंकरः॥३१॥ देहिनो यस्य कस्यापि क्रियते यदि निग्रहः ॥ अनिष्टमष्टमूर्तेस्तत्कृतमेव न संशयः॥३२॥अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठाय स्थितं शिवम्॥ भजस्व सर्वभावेन रुद्रः परमकारणम् ॥३३॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायांमुत्तरखण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ भगवन्परमेशस्य शर्वस्यामिततेजसः॥मूर्तिभिर्विश्वमेवेदं यथा व्याप्तं तथा श्रुतम्॥ १॥अथैतज्ज्ञातुमिच्छामि याथात्म्यं परमेशयोः स्त्रीपुंभावात्मकं चेदं ताभ्यांकथमधिष्ठितम्॥२॥उपमन्युरुवाच॥श्रीमद्विभूतिं शिवयोर्याथात्म्यं च समासतः॥वक्ष्येतद्विस्तराद्वक्तुं भवेनापि न शक्यते ॥३॥ शक्तिः साक्षान्महादेवी महादेवश्च शक्तिमान्॥तयोर्विभूतिलेशो वै सर्वमेतच्चराचरम् ॥४॥ वस्तु किंचिदचिद्रूपं किंचिद्वस्तु चिदात्मकम्॥द्वयं शुद्धमशुद्धं च परं चापरमेव च॥५॥ यत्संसरति चिच्चक्रमचिच्चक्रसमन्वितम्॥तदेवाशुद्धमपरमितरं तु परं शुभम् ॥६॥ अपरं च परं चैव द्वयं चिदचिदात्मकम् ॥ शिवस्य च शिवायाश्च स्वाम्यं चैतत्स्वभावतः ॥७॥

कहता हूँ; और विस्तारसे तो स्वयं शिव भी कहनेको समर्थ नहीं हैं ॥ ३ ॥ शक्तिका नाम महादेवी और महादेव शक्तिमान्हैं; उनकी विभूतिका लेशही यह चराचरात्मक विश्व है ॥ ४ ॥ जो कुछ चैतन्य और जो कुछ जडात्मक है; वे दोनों शुद्ध अशुद्ध पर वा अपर ॥ ५ ॥ जो कि यह अचिच्चक्रके सहित चिच्चक्र भ्रमण करती है; वह अपर अशुद्ध और परशुद्ध है ॥ ६ ॥ अपर और यह दोनों चित् और अचित्रूप हैं; यह शिव और शिवाके स्वाभाविक तादात्म्यसे है ॥ ७ ॥

शिवके वशमें संसार है और संसारके वशमें शिव नहीं हैं, एषणा करनेसे शिवाशिव इसके पति हैं और विश्वेश्वर कहाते हैं ॥ ८ ॥ जैसे शिव वैसी देवी और जैसी देवी तैसे शिव हैं; चन्द्रमा और चांदनीके समान येहैं इनका अन्तर जानना उचित नहीं है ॥ ९ ॥ चांदनीके बिना चन्द्रमा नहीं शोभित होता और चन्द्रके बिना चांदनी नहीं शोभित होती; ऐसेही विना शक्तिके शिव शोभित नहीं होते ॥ १० ॥ जैसे बिना 'प्रभा' के भानु नहीं विदित होता और 'प्रभा' सूर्यसे अत्यन्त शोभित होती है ॥ ११ ॥ इस प्रकार शक्ति और शक्तिमान्की परस्पर सापेक्ष स्थिति है, शिवके बिना शक्ति और शक्तिके बिना शिव नहीं ॥ १२ ॥ जिसके द्वारा शिव समर्थ हो देहधारियोंको भुक्ति मुक्ति देतेहैं वही

शिवयोर्वै वशे विश्वं न विश्वस्य वशे शिवौ ॥ ईशितव्यमिदं यस्मात्तस्माद्विश्वेश्वरौ शिवौ ॥८॥ यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः ॥ नानयोरंतरं विद्याच्चंद्रचन्द्रिकयोरिव ॥९॥ चंद्रो न खलु भात्येष यथा चंद्रिकया विना ॥न भाति विद्यमा नोऽपि तथा शक्त्या विना शिवः ॥ १० ॥ प्रभया हि विनायद्वद्भानुरेष न विद्यते ॥ प्रभा च भानुना तेन सुतरां तदुपाश्रया ॥ ११ ॥ एवं परस्परापेक्षा शक्तिशक्तिमतोः स्थिता ॥ न शिवेन विना शक्तिर्न शक्त्या च विना शिवः ॥ १२ ॥ शक्तोयया शिवो नित्यं भुक्तौ मुक्तौ च देहिनाम् ॥ आद्या सैका परा शक्तिश्चिन्मयी शिवसंश्रया ॥ १३ ॥ यामाहुरखिलेशस्य तैस्तैरनुगुणैर्गुणैः ॥ समान धर्मिणीमेव शिवस्य परमात्मनः ॥ ॥ १४ ॥ सैका परा च चिद्रूपा शक्तिः प्रसवधर्मिणी ॥ विभज्य बहुधा विश्वं विदधाति शिवेच्छया ॥ १५ ॥ सा मूलप्रकृतिर्माया त्रिगुणा च त्रिधा स्मृता ॥ शिवया च विपर्यस्तं यया ततमिदं जगत् ॥ १६ ॥ एकधा च द्विधा चैव तथा शतसहस्रधा ॥ शक्तयः खलु भिद्यंते बहुधा व्यवहारतः ॥ १७ ॥

आद्या चित्शक्ति परानामक शिवके आश्रय है ॥ १३ ॥ जिसको सब जगत्के पति परमात्मा शिवकी उन २ गुणोंसे युक्त समान धर्मिणी शक्ति कहतेहैं ॥ १४ ॥ वह एक पराचित्शक्ति प्रसवधर्म युक्त है, जो शिवकी इच्छासे संसारको बहुत प्रकारसे विभक्त करती है ॥ १५ ॥ वही मूलप्रकृति माया त्रिगुण और तीन प्रकारकी कही है; यह सब जगत् उन्हीं शिवासे विस्तृत होरहा है ॥ १६ ॥ एक प्रकार दो प्रकार सौ सहस्र प्रकार व्यवहारसे अनेक प्रकार शक्ति भेदको प्राप्त होतीहैं ॥ १७ ॥

शिवकी इच्छासे परा शक्ति शिवतत्त्वकी एकताको प्राप्त हुई, आदि सृष्टिमें इस प्रकार स्फुरायमान होती है, तब क्रिया नामवाली शक्ति शक्तिमान्से प्रादुर्भूत हुई उस शक्तिके क्षोभको प्राप्त होनेसे प्रथम नादकी उत्पत्ति हुई ॥ १८ ॥ १९ ॥ नादसे बिन्दु और बिन्दुसे देव सदाशिव हुए, उससे महेश्वर हुए और शुद्धविद्या महेश्वरसे ॥ २० ॥ वह वाणीकी ईश्वरी शक्ति जो शिवकी वागीशाशक्ति कहलाती है, वर्ण और स्वरूपसे मातृका कहलाती है ॥ २१ ॥ फिर अन्तके समावेशसे मायासे कालकी नियति, कला और विद्याकी उत्पत्ति हुई; और कलासे राग तथा

शिवेच्छया परा शक्तिः शिवतत्त्वैकतां गता॥ततः परिस्फुरत्यादौ सर्गे तैलं तिलादिव॥१८॥ततः क्रियाख्यया शक्त्या शक्तौ शक्तिमदुत्थया ॥ तस्यां विक्षोभ्यमाणायामादौ नादः समुद्बभौ ॥१९॥नादाद्विनिःसृतो बिंदुर्बिंदोदेवस्सदाशिवः॥ तस्मान्महेश्वरोजातः शुद्धविद्या महेश्वरात् ॥ २० ॥ सा वाचामीश्वरी शक्तिर्वागीशाख्या हि शूलिनः ॥ या सा वर्णस्वरूपेण मातृकेपि विजृंभिते ॥ २१ ॥ अथानंतसमावेशान्माया कालमवासृजत्॥नियतिञ्च कलां विद्यां कलातोरागपूरुषौ॥२२॥मायातः पुनरेवाभूदव्यक्तं त्रिगुणात्मकम् ॥ त्रिगुणाच्च ततो व्यक्ताद्विभक्ताः स्युस्त्रयो गुणाः ॥२३॥सत्त्वं रजस्तमश्चेति यैर्व्याप्तमखिलं जगत्॥ गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्यो गुणेशाख्यास्त्रिमूर्त्तयः ॥२४॥अभवन्महदादीनि तत्त्वानि च यथाक्रमम्॥ तेभ्यस्स्युरण्डपिण्डानि त्वसंख्यानि शिवाज्ञया॥अधिष्ठितान्यनन्ताद्यैर्विद्येशैश्चक्रवर्तिभिः॥२५शरीरांतरभेदेन शक्तेर्भेदाः प्रकीर्तिताः॥नानारूपास्तु विज्ञेयाः स्थूलसूक्ष्मविभेदतः॥२६॥रुद्रस्य रौद्री सा शक्तिर्विष्णोर्वै वैष्णवी मता ॥ ब्रह्माणी ब्रह्मणः प्रोक्ता चेन्द्रस्यैंद्रीति कथ्यते ॥२७॥

पुरुष हुए ॥ २२ ॥ और फिर मायासे त्रिगुणात्मक अव्यक्त उत्पन्न हुआ, त्रिगुणसे व्यक्त और उनसे त्रिगुण विभक्त हुए हैं ॥ २३ ॥ सत्व रज, तम, जिनसे कि, यह सब जगत व्याप्त है गुणोंके क्षुभित होनेसे गणेशकी मूर्ति हैं ॥ २४ ॥ फिर यथाक्रमसे महत् आदि तत्त्व हुए, उनसे शिवकी आज्ञासे असंख्य अण्डके पिंड हुए, वह चक्रवर्ती अनन्त और विद्येशोंसे अधिष्ठित हैं ॥ २५ ॥ शरीरान्तरके भेदसे शक्तिके भेद कहे गये हैं, स्थूल सूक्ष्मके भेदसे वे अनेक रूपवाले जानने ॥ २६ ॥ रुद्रकी रौद्री विष्णुकी वैष्णवी ब्रह्माकी ब्रह्माणी और इन्द्रकी

ऐन्द्री शक्ति कही जाती है ॥ २७ ॥ बहुत कहनेसे क्या है जो कुछ यह जगत् है यह शक्ति और आत्मासे व्याप्त है जैसे देह अन्तरात्मासे ॥ २८ ॥ इस कारण यह सब स्थावर जंगमात्मक जगत् शक्तिमय है, यह परमाशक्ति परमात्मा शिवकी कला है ॥ २९ ॥ इसी प्रकार यह पराशक्ति शिवकी आज्ञाके वशीभूत चराचर जगत्की रचना करती है, यह निश्चय है ॥ ३० ॥ ज्ञानक्रियाकी इच्छावाली अपनी तीन मूर्ति योंसे वा शक्तिसे वह शक्तिमान् ईश्वर सदा विश्वको व्याप्त कर, स्थित होता है ॥ ३१ ॥ यह इस प्रकार है, यह इस प्रकार नहीं है, ऐसी आत्मिकाशक्ति है वह महेशकी इच्छाशक्ति नित्य कार्यकी नियामिका है ॥ ३२ ॥ ज्ञानशक्ति उसका कार्यकारण करण और प्रयोजन तत्त्वरू

किमत्र बहुनोक्तेन यद्विश्वमिति कीर्तितम् ॥शक्त्यात्मनैव तद्व्याप्तं यथा देहोंऽतरात्मना॥२८॥तस्माच्छक्तिमयं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्॥कला या परमा शक्तिः कथिता परमात्मनः ॥२९॥ एवमेषा परा शक्तिरीश्वरेच्छानुयायिनी॥स्थिरं चरं च यद्विश्वं सृजतीति विनिश्चयः ॥३०॥ ज्ञानक्रिया चिकीर्षाभिस्तिसृभिस्स्वात्मशक्तिभिः ॥ शक्तिमानीश्वरः शश्वद्विश्वं व्याप्याधितिष्ठति ॥३१॥इदमित्थमिदं नेत्थं भवेदित्येवमात्मिका॥इच्छाशक्तिर्महेशस्य नित्या कार्य्यनियामिका ॥३२॥ ज्ञानशक्तिस्तु तत्कार्यं करणं कारणं तथा ॥ प्रयोजनं च तत्त्वेन बुद्धिरूपाध्यवस्यति ॥३३॥ यथेप्सितं क्रियाशक्तिर्यथाध्यवसितं जगत्॥कल्पयत्यखिलं कार्यं क्षणात्संकल्परूपिणी ॥ ३४ ॥ यथा शक्तित्रयोत्थानं शक्तिप्रसवधार्मणी ॥ शक्त्या परमया नुन्ना प्रसूते सकलं जगत् ॥ ३५ ॥ एवं शक्ति समायोगाच्छक्तिमानुच्यते शिवः ॥ शक्तिशक्तिमदुत्थं तु शाक्तं शैवमिदं जगत् ॥ ३६ ॥

पसे बुद्धिरूपमें स्थित होती है ॥ ३३ ॥ और क्रियाशक्ति जिसने जगत्को अपने वशमें कर रक्खा है इच्छित मनोरथोंको देती है, संकल्परूपिणी शक्ति क्षणमात्रमें सब कुछ संकल्पित कर लेती है ॥ ३४ ॥ शक्तिके अनुसार उत्पन्न धर्मवाली शक्ति तिनमें शक्तिका उत्थान करती है यहां परमशक्तिसे प्रेरित हो सब जगत्को उत्पन्न करती है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार शक्तिके योगसे शिव शक्तिमान् कहाते हैं, शक्तिसे शक्तिमान् शाक्तिक होता है; इसीसे यह शिवसम्बन्धी जगत् शाक्तिक कहलाता है ॥ ३६ ॥

जैसे कि, पिता माताके विना पुत्र नहीं होता इसी प्रकार शिवा शिवके बिना यह चराचर जगत् उत्पन्न नहीं होता, स्त्री पुरुषोंसे उत्पन्न हुआ यह जगत् स्त्री पुरुषात्मक है ॥ ३७ ॥ स्त्री और पुरुषकी विभूति स्त्री पुरुषोंसे अधिष्ठित है, परमात्मा शिव और वह शिवा कहलाती है॥३८॥ शिव सदाशिव कहलाते हैं, वह मनोन्मनी शिवा कहाती है, शिव महेश्वर और शिवा माया कहलाती है ॥३९॥ परमेशान पुरुष और परमेश्वरी प्रकृति कहाती है, महेश्वर साक्षात् रुद्र और रुद्रवल्लभा रुद्राणी कहाती है ॥ ४० ॥ विष्णु विश्वेश्वर देव शिव हैं, और लक्ष्मी विश्वेश्वरी देवी

यथा न जायते पुत्रः पितरं मातरं विना ॥ तथा भवं भवानीं च विना नैतच्चराचरम् ॥ स्त्रीपुंसप्रभवं विश्वं स्त्रीपुंसात्मकमेव च ॥ ३७ ॥ स्त्रीपुंसयोर्विभूतिश्च स्त्रीपुंसाभ्यामधिष्ठितम् ॥ परमात्मा शिवः प्रोक्तश्शिवा सा च प्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥'शिवस्सदा शिवः प्रोक्तः शिवा सा च मनोन्मनी ॥ शिवो महेश्वरो ज्ञेयः शिवा मायेति कथ्यते ॥ ३९ ॥ पुरुषः परमेशानः प्रकृतिः परमेश्वरी ॥ रुद्रो महेश्वरस्साक्षाद्रुद्राणी रुद्रवल्लभा ॥ ४० ॥ विष्णुर्विश्वेश्वरो देवो लक्ष्मीर्विश्वेश्वरप्रिया ॥ ब्रह्मा शिवो यदा स्रष्टा ब्रह्माणी ब्रह्मणः प्रिया ॥४१॥ भास्करो भगवाञ्छंभुः प्रभा भगवती शिवा ॥ महेंद्रो मन्मथारातिः शची शैलेन्द्रकन्यका ॥४२॥ जातवेदा महादेवः स्वाहा शर्वार्द्धदेहिनी ॥ यमस्त्रियंबको देवस्तत्प्रिया गिरिकन्यका ॥४३॥ निर्ऋतिर्भगवानीशो नैर्ऋती नगनंदिनी ॥ वरुणो भगवान्रुद्रो वारुणी भूधरात्मजा ॥ ४४ ॥ बालेंदुशेखरो वायुः शिवा शिवमनोहरा ॥ यक्षो यज्ञशिरो हर्ता ऋद्धिर्हिमगिरीन्द्रजा ॥ ४५ ॥ चंद्रार्धशेखरश्चंद्रो रोहिणी रुद्रवल्लभा ॥ ईशानः परमेशानस्तदार्या परमेश्वरी ॥ ४६ ॥

शिवा हैं, ब्रह्मा शिवसे प्रगट शिव हैं, और ब्रह्माणी ब्रह्माकी प्रिया शिवा है ॥ ४१ ॥ भास्कर भगवान् शिव हैं; उनकी प्रभा भगवती शिवा है महेन्द्र शिव और शची शिवा है ॥ ४२ ॥ अग्नि महादेव और स्वाहा शिवा है; यम शिव और उनकी प्रिया भवानीरूप है ॥ ४३ ॥ निर्ऋति शिव और उनकी प्रिया शिवा है वरुण रुद्र और उनकी प्रिया रुद्राणी है ॥ ४४ ॥ वायु शिव और उनकी प्रिया शिवा है, यक्ष शिव और ऋद्धि शिवा है ॥ ४५ ॥ चन्द्रमा शिव और रोहिणी शिवा है, ईशान शिव और उसकी प्रिया शिवा है ॥ ४६ ॥

अनन्त शिव और उनकी प्रिया शिवा है, कालाग्नि रुद्र शिव और काली शिवा हैं॥४७॥पुरुषानामक मनु शिव और शतरूपा शिवा है, दक्ष साक्षात् महादेव और प्रसूति महादेवी है॥४८॥रुचि शिव और आकूतिको पंडितोंने भवानी कहा है. भृगु शिव और ख्याति पार्वती है ॥४९॥ मरीचि शिव सम्भूति पार्वती अंगिरा शिव और स्मृति पार्वती है॥५०॥पुलस्त्य शिव और प्रीति शिवा है; पुलह शिव और उनकी प्रिया शिवा है॥५१॥ ऋतु शिव और सन्नति शिवा है अत्रि शिव और अनसूयाको विद्वानोंने पार्वती कहा है ॥ ५२ ॥ कश्यपरूप शिव; और महेश्वरी देवमाता

अनंतवलयोऽनंतो ह्यनंतानंतवल्लभा॥ कालाग्निरुद्रः कालारिः काली कालांतकप्रिया ॥४७॥ पुरुषाख्यो मनुश्शंभुः शतरूपा शिवप्रिया ॥ दक्षस्साक्षान्महादेवः प्रसूतिः परमेश्वरी ॥ ४८ ॥ रुचिर्भवो भवानी च बुधैराकूतिरुच्यते ॥ भृगुर्भगाक्षिहा देवः ख्यातिस्त्रिनयनप्रिया ॥ ४९ ॥ मरीचिभगवान्रुद्रः संभूतिश्शर्ववल्लभा ॥ गंगाधरोऽगिरा ज्ञेयः स्मृतिः साक्षादुमा स्मृता ॥५०॥ पुलस्त्यः शशभृन्मौलिः प्रीतिः कांता पिनाकिनः ॥ पुलहस्त्रिपुरध्वंसी तत्प्रिया तु शिवप्रिया ॥५१॥ क्रतुध्वंसी क्रतुः प्रोक्तः संनतिर्दयिता विभोः॥ त्रिनेत्रोऽत्रिरुमा साक्षादनसूया स्मृता बुधैः ॥ ५२ ॥ कश्यपः कालहा देवो देवमाता महेश्वरी ॥ वसिष्ठो मन्मथारातिर्देवी साक्षादरुंधती ॥ ५३ ॥ शंकरः पुरुषास्सर्वे स्त्रियस्सर्वा महेश्वरी ॥ सर्वे स्त्रीपुरुषास्तस्मात्तयोरेव विभूतयः ॥ ५४ ॥ विषयी भगवानीशो विषयः परमेश्वरी॥ श्राव्यं सर्वमुमारूपं श्रोता शूलवरायुधः ॥ ५५ ॥प्रष्टव्यं वस्तुजातं तु धत्ते शंकरवल्लभा ॥ प्रष्टा स एव विश्वात्मा बालचन्द्रावतंसकः ॥ ५६ ॥ द्रष्टव्यं वस्तुरूपं तु बिभर्त्ति वक्त्रवल्लभा ॥ द्रष्टा विश्वेश्वरो देवः शशिखंडशिखामणिः ॥ ५७ ॥

अदिति है, वसिष्ठ कामारि शिव, और अरुन्धती साक्षात् देवी भवानी है ॥५३॥ सब पुरुष शंकर हैं और सब स्त्रियें पार्वती हैं इस कारण सब स्त्री और पुरुष उनकी विभूति हैं ॥ ५४ ॥ विषयी भगवान् शिव हैं और विषय परमेश्वरी हैं, उमारूप सब श्राव्य हैं, और शिव श्रोतारूप हैं ॥ ५५ ॥ जितनी प्रष्टव्यरूप वस्तु हैं पार्वती वह सब धारण करती हैं, और प्रष्टा वह विश्वात्मा बालचन्द्रमाधारी शिव हैं ॥५६॥ द्रष्टयोग्य सब

वस्तु शिवकी वल्लभा धारण करती है, और चन्द्रमौलि शिव सबके द्रष्टा देखनेवाले हैं ॥ ५७ ॥ सम्पूर्ण रस समूह महादेवी हैं; और रसलेने वाले महाशिव हैं, सम्पूर्ण प्रिय समूह पार्वती और प्रीतिरूप शिव हैं ॥ ५८ ॥ मानने योग्य वस्तुको महादेवी धारण करती हैं, और महादेव विश्वात्मा महेश्वर मन्ता माननेवाले हैं ॥ ५९ ॥ धारणयोग्य सब वस्तुको पार्वती धारण करती हैं; और धारण करानेवाले चन्द्रशेखर भगवान् शिव हैं ॥ ६० ॥ शिव सब प्राणियोंके प्राणरूप रूप हैं, और जलरूपिणी पार्वती माता प्राणियोंकी स्थिति हैं ॥ ६१ ॥ त्रिपुरारीपियारी देवी क्षेत्रताको धारण करती हैं, और भगवान् अन्धरिपु क्षेत्रज्ञताको धारण करते हैं ॥ ६२ ॥ शूलधारी शिव दिन और रात्रि पार्वती हैं, आकाश

रसजातं महादेवी देवो रसयिता शिवः ॥प्रेयजातं च गिरिजा प्रेयांश्चैव गराशनः॥५८॥ मंतव्यवस्तुतां धत्ते सदा देवी महेश्वरी॥ मंता स एव विश्वात्मा महादेवो महेश्वरः॥५९॥बोद्धव्यवस्तुरूपं तु बिभर्त्ति भववल्लभा॥देवस्स एव भगवान्बोद्धा मुग्धेन्दुशेखरः॥ ॥ ६० ॥ प्राणः पिनाकी सर्वेषां प्राणिनां भगवान्प्रभुः॥ प्राणस्थितिस्तु सर्वेषामंबिका चांबुरूपिणी ॥६१॥ बिभर्ति क्षेत्रतां देवी त्रिपुरांतकवल्लभा ॥ क्षेत्रज्ञत्वं तदा धत्ते भगवानंतकांतकः॥६२॥अहः शूलायुधो देवः शूलपाणिप्रिया निशा॥आकाशः शंकरो देवः पृथिवी शंकरप्रिया ॥६३॥ समुद्रो भगवानीशो वेला शैलेंन्द्रकन्यका॥वृक्षो वृषध्वजो देवो लता विश्वेश्वरप्रिया ॥६४॥ पुल्लिंगमखिलं धत्ते भगवान्पुरशासनः ॥ स्त्रिलिंगं चाखिलं धत्ते देवी देवमनोरमा ॥ ६५ ॥ शब्दजालमशेषं तु धत्ते सर्वस्य वल्लभा ॥ अर्थस्वरूपमखिलं धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः ॥६६॥ यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता ॥ सा सा विश्वेश्वरी देवी स स सर्वो महेश्वरः ॥६७॥ यत्परं यत्पवित्रं च यत्पुण्यं यच्च मंगलम् ॥ तत्तदाह महाभागास्तयोस्तेजोविजृंभितम् ॥ ६८ ॥

शंकर और पृथ्वी उनकी प्रिया है ॥ ६३ ॥ शिव सागर और पार्वती वेला हैं, वृक्ष शिव और लता उनकी प्रिया पार्वती हैं ॥ ६४ ॥ पुरारि सब पुल्लिंगके धारण करनेवाले, और वह देवप्रिया शिवा सब स्त्रीलिंगको धारण करती हैं ॥६५॥ पार्वती सम्पूर्ण शब्दजाल धारण करती हैं और चन्द्रशेखर सब अर्थरूपको धारण करते हैं ॥ ६६ ॥ जिस जिस पदार्थकी जो जो शक्ति है वह वह विश्वेश्वरी और वह वह पदार्थ शिव हैं ॥ ६७ ॥ जो परम पवित्र पुण्य और मंगलरूप है वह सब शिवा शिवके ही तेजसे प्रादुर्भूत है ॥ ६८ ॥

यथा दीप्तिमान् दीपकी शिखासे घर दीप्तिमान् होता है; इसी प्रकार इन दोनोंके तेजसे व्याप्त हो जगत् दीप्तिमान् होता है ॥६९॥ तृणसे लेकर शिवमूर्तितक वही स्थित हैं; उन्हीं शिवा शिवके सन्निकर्षसे यह सब चलायमान होता है ऐसी श्रुति है॥७०॥यह दोनों सम्पूर्ण आकारयुक्त और सम्पूर्ण तेजके विधान करने वाले हैं, यह पूजनीय नमस्कार योग्य और सदा विचारके योग्य हैं॥७१॥हे कृष्ण! जिस प्रकार यह प्राज्ञ परमेश्वरीकी याथात्म्यता तुमसे वर्णन की है, यह इतना ही नहीं ॥७२॥ उन शिवा शिवका माहात्म्य हम नहीं कह सकते; वह तो ब्रह्मादिके मनसे भी परे हैं

तथा दीपस्य दीप्तस्य शिखा दीपयते गृहम् ॥ तथा तेजस्तयोरेतद्व्याप्य दीपयते जगत् ॥ ६९ ॥ तृणादिशिवमूर्त्यंतं विश्व ख्यातिशयक्रमः ॥ सन्निकर्षक्रमवशात्तयोरिति परा श्रुतिः ॥ ७० ॥ सर्वाकारात्मकावेतौ सर्वश्रेयोविधायिनौ ॥ पूजनीयौ नमस्कार्यौ चिंतनीयौ च सर्वदा ॥ ७१ ॥ यथाप्रज्ञमिदं कृष्ण याथात्म्यं परमेशयोः ॥ कथितं हि मया तेऽद्य न तु तावदियत्तया ॥ ७२ ॥ तत्कथं शक्यते वक्तुं याथात्म्यं परमेशयोः ॥ महतामपि सर्वेषां मनसोऽपि बहिर्गतम् ॥ ७३ ॥ अंतर्गत मनन्यानामीश्वरार्पितचेतसाम् ॥ अन्येषां बुद्धचनारूढमारुढं च यथैव तत् ॥ ७४ ॥ येयमुक्ता विभूतिर्वै प्राकृती सा परा मता ॥ अप्राकृतां परामन्यां गुह्यां गुह्यविदो विदुः ॥ ७५ ॥ यतो वाचो निवर्त्तंते मनसा चेन्द्रियैस्सह ॥ अप्राकृती परा चैषा विभूतिः पारमेश्वरी ॥ ७६ ॥ सैवेह परमं धाम सैवेह परमा गतिः ॥ सैवेह परमा काष्ठा विभूतिः परमेष्ठिनः ॥ ७७ ॥ तां प्राप्तुं प्रयतंतेऽत्र जितश्वासा जितेंद्रियाः ॥ गर्भकारा गृहद्वारं निश्छिद्रं घटितुं यथा ॥ ७८ ॥

॥ ७३ ॥ जो अनन्य मन है जिन्होंने ईश्वरमें मन लगादिया है उन्हींकी बुद्धिमें यह आरूढ होते हैं औरोंके नहीं॥७४॥जो कहीहुई मुक्तिकी विभूति है, वह प्रकृतिसे उत्पन्न और अपरा नामवाली है और गुप्त भेदसे जाननेवाले दूसरीको अप्राकृत और मुक्ति कहते हैं ॥७५॥ जहाँ मन इन्द्रियोंके संग पहुँचकर वाणी निवृत्त होजाती है वही परमेश्वरकी अप्राकृत विभूति है ॥ ७६ ॥ वही परमधाम और वही परागति है, वही पराकाष्ठा वही परमेष्ठीकी विभूति है ॥७७॥ उसके प्राप्त करनेको श्वास और इन्द्रिय जीतकर योगी यत्न करते हैं, और शरीरके सब छिद्रोंको रोक गर्भके

आकारके समान कर लेते हैं ॥ ७८ ॥ वह शिवा शिवकी विभूति संसाररूपी सर्पके काटे हुओंकी संजीवनी है उसको प्राप्तकर विद्वान् कहींसे भीत नहीं होता है ॥ ७९ ॥ जो तत्त्वसे पर और अपर विभूतिको जानता है वह अपराविभूतिको उल्लंघन कर पराविभूतिको प्राप्त होता है ॥ ८० ॥ हे कृष्ण ! यह तुमसे शिवा शिवका याथात्म्य वर्णन किया तुम शिवके भक्त होनेसे उनके रहस्य सुननेके योग्य हो ॥ ८१ ॥ जो शिष्य न हो, शठ हो, अभक्त हो उनके निमित्त ऐसे अर्थोंका उच्चारण न करे, यह वेदका अनुशासन है ॥ ८२ ॥ हे कल्याणस्वरूप ! इससे

संसाराशीविषालीढमृतसजीवनौषधम्॥विभूतिं शिवयोर्विद्वान्न बिभेति कुतश्चन॥७९॥ यःपरामपरां चैव विभूतिं वेत्ति तत्त्वतः ॥ सोऽपरो भूतिमुल्लंघ्य परां भूतिं समश्नुते ॥८०॥ एतत्ते कथितं कृष्ण याथात्म्यं परमात्मनोः ॥ रहस्यमपि योग्योऽसि भर्गभक्तोभवानिति ॥ ८१ ॥ नाशिष्येभ्योऽप्यशैवेभ्यो नाभक्तेभ्यः कदाचन ॥ व्याहरेदीशयोर्भूति मिति वेदानुशासनम् ॥ ८२ ॥ तस्मात्त्वमतिकल्याण परेभ्यः कथयेन्न हि ॥ त्वादृशेभ्योऽनुरूपेभ्यः कथयैतन्न चान्यथा ॥ ८३ ॥विभूतिमेतां शिवयोर्योग्येभ्यो यः प्रदापयेत् ॥ संसारसागरान्मुक्तः शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ८४ ॥ कीर्तनादस्य नश्यंति महान्त्यः पापकोटयः ॥ त्रिश्चतुर्धासमभ्यस्तैर्विनश्यंति ततोऽधिकाः ॥ ८५ ॥ नश्यंत्यनिष्टरिपवो वर्द्धन्ते सुहृदस्तथा ॥ विद्या च वर्द्धते शैवी मतिस्सत्ये प्रवर्तते ॥ ८६ ॥ भक्तिः पराः शिवे साम्बे सानुगे सपरिच्छदे ॥ यद्यदिष्टतमं चान्यत्तत्तदाप्नोत्यसंशयम् ॥ ८७ ॥

तुम यदि किसीसे कहो तो अपने समान वा अधिकारियोंसे कहना अन्यथा नहीं ॥ ८३ ॥ इस शिवकी विभूतिको जो योग्यके निमित्त देता है वह संसारसागरसे मुक्त हो शिवके सायुज्यको पाता है ॥ ८४ ॥ इसके कीर्तनसे बडे २ पाप नष्ट हो जाते हैं और तीन चार बार अभ्यास करनेसे उससे भी अधिक पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ८५ ॥ उसके अरिष्ट और शत्रु नाश होकर मित्रगण पढते हैं, शैवी विद्या पढकर सत्यमें उसकी मति प्रवृत्त होती है ॥ ८६ ॥ शिवा शिवमें पराभक्ति होती है और कुटुम्ब वर्गगणादिमें स्नेह होता है जिसका अभिलाष

करे सो पूर्ण होता है; इसमें सन्देह नही है ॥ ८७ ॥ इसको पवित्र हो शिवमें भक्ति कर यदि कीर्तन करे तो पूर्वजन्मके प्रबल कर्मोंके फल भी नष्ट हो जाते हैं; बारबार अभ्यास करनेवालोंको कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ॥ ८८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे शिवतत्त्वकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ उपमन्यु बोले, यह चराचर विश्व उस देवदेवका निग्रह है, जीव पाशबन्धनमें पडनेके कारण उसको नहीं जानते हैं ॥ १ ॥ हे यदुनन्दन ! उस एकहीको बहुत प्रकारसे कहते हैं ॥ २ ॥ अपर ब्रह्मरूपही परब्रह्मरूप है उसे कोई महादेव अनादि निधन कहते हैं ॥ ३ ॥ भूत इन्द्रिय अन्तःकरण प्रधान विषयात्मक अपर ब्रह्मरूपही ब्रह्मात्मक है, वही चिदात्मक ॥ ४ ॥

अन्तः शुचिः शिवे भक्तो विलब्धः कीर्तयेद्यदि॥प्रबलैः कर्मभिः पूर्वैः फलं चेत्प्रतिबध्यते॥ पुनः पुनः समभ्यस्येत्तस्य नास्तीह दुर्लभम्॥८८॥इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीसंहितायामुत्तरखण्डे गौरी शंकरविभूतियोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥ उपमन्युरुवाच॥विग्रहं देवदेवस्य विश्वमेतच्चराचरम्॥ तदेवं न विजानंति पशवः पाशगौरवात् ॥१॥ तमेकमेव बहुधा वदंति यदुनंदन॥ अजानन्तःपरं भावमविकल्पं महर्षयः ॥२॥ अपरं ब्रह्मरूपं च परंब्रह्मात्मकं तथा ॥ केचिदाहुर्महादेवमनादिनिधनं परम् ॥३॥ भूतेंद्रियांतःकरणप्रधानविषयात्मकम्॥अपरं ब्रह्म निर्दिष्टं परं ब्रह्म चिदात्मकम्॥४॥बृहत्त्वादबृहणत्वाद्वा ब्रह्म चेत्य भिधीयते॥उभे ते ब्रह्मणो रूपे ब्रह्मणोऽधिपतेः प्रभोः ॥ विद्याऽविद्यास्वरूपीति कैश्चिदीशो निगद्यते ॥५॥ विद्यां तु चेतनां प्राहु स्तथाविद्यामचेतनाम्॥विद्याऽविद्यात्मकं चैव विश्वं विश्वगुरोर्विभोः॥६॥रूपमेव न संदेहो विश्वं तस्य वशे यतः ॥ भ्रांतिर्विद्या परा चेति शार्वं रूपं परं विदुः ॥७॥ अयथाबुद्धिरर्थेषु बहुधा भ्रांतिरुच्यते ॥ यथार्थाकारसंवित्तिर्विद्येति परिकीर्त्यते ॥८॥

बृहत् और बृहण होनेसे वह परम कहलाता है, वे दोनों ब्रह्मके अधिपति ब्रह्मके रूप हैं, कोई विद्या अविद्यास्वरूपा ईश्वर कहते हैं ॥ ५ ॥ चेतना विद्या और अचेतना अविद्या कहाती है, यह विश्वके गुरुका विद्या और अविद्या और अविद्यात्मक रूप है ॥ ६ ॥ इसमें सन्देह नहीं; यह उसीका रूप है और विश्व उसके वशमें स्थित है, भ्रांति विद्यापर यह सब शिवकाही रूप है ॥ ७ ॥ अर्थोंमें यथार्थ बुद्धिके न होनेका नाम भ्रान्ति है जो अर्थाकार संवित्ति है उसको विद्या कहते हैं ॥ ८ ॥

विकल्परहित तत्त्वपद कहाता है इसके विपरीत तत्त्वको वेदवादी असत् कहते हैं ॥ ९॥ सत्पुरुषोंने सत्य और साधुमें सत् शब्दका प्रयोग किया है, इससे विपरीत वेदवादियोंने असत् शब्दको कहा है.यह सदसदात्मक जगत् उस परमेष्ठीका शरीर है; जो यह सत् और असत् कहा जाता है उनके पति होनेसे शिव सत् असत्के पति कहते हैं; उसको क्षर अक्षरात्मक कहा है, वह क्षर अक्षरसे परे भी कहाजाता है ॥१०॥ सब प्राणी क्षर अर्थात् नाशवान् हैं, कूटस्थका नाम अक्षर है (चिदात्मा) यह दोनों रूप उस परमेशके वशमें हैं ॥ ११ ॥ उससे परे शान्त शिव क्षर अक्षरसे परे कहेगये हैं; समष्टि व्यष्टिरूप (मिलाहुआ और अलग २) समष्टि व्यष्टिका कारण है ॥ १२ ॥ कोई मुनि

विकल्परहितं तत्वं परमित्यभिधीयते ॥ वैपरीत्यादसच्छब्दः कथ्यते वेदवादिभिः ॥ ९ ॥ तयोः पतित्वात्तु शिवः सदसत्पतिरुच्यते ॥ क्षराक्षरात्मकं प्राहुः क्षराक्षरपरं परे ॥ १० ॥ क्षरस्सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ उभे ते परमेशस्य रूपे तस्य वशे यतः ॥ ११ ॥ तयोः परः शिवः शांतः क्षराक्षरापरस्स्मृतः ॥ समष्टिव्यष्टिरूपं च समष्टिव्यष्टिकारणम् ॥ १२ ॥ वदंति मुनयः केचिच्छिवं परमकारणम् ॥ समष्टिमाहुरव्यक्तं व्यष्टिं व्यक्तं तथैव च ॥ १३ ॥ ते रूपे परमेशस्य तदिच्छायाः प्रवर्तनात् ॥ तयोः कारणभावेन शिवं परमकारणम् ॥ १४ ॥ कारणार्थविदः प्राहुः समष्टिव्यष्टि कारणम् ॥ जातिव्यक्तिस्वरूपीति कथ्यते कैश्चिदीश्वरः ॥ १५ ॥ या पिंडेष्वनुवर्तेत सा जातिरिति कथ्यते ॥ व्यक्तिर्व्यावृत्तिरूपं तं पिण्डजातेः समाश्रयम् ॥ १६ ॥ जातयोव्यक्तयश्चैव तदाज्ञापरिपालिताः ॥ यतस्ततो महादेवो जातिव्यक्तिवपुः स्मृतः ॥ १७ ॥

शिवको परमकारण कहते हैं, समष्टिको अव्यक्त और व्यष्टिको व्यक्त कहते हैं ॥ १३ ॥ परमेश्वरकी इच्छासे यह दोनों उसीके रूप हैं, उनके कारणके अभावसे शिव ही परम कारण हैं ॥ १४ ॥ कारण अर्थके जाननेवाले समष्टि व्यष्टि कारण कहते हैं कोई कहते हैं ईश्वरजाति और व्यक्तिस्वरूपी हैं ॥ १५ ॥ जो पिंडोंमें वर्तती है, वह जाति कहाती है, वह व्यक्ति आवृत्तिरूप सब पिंडजातिमें स्थित है ॥ १६ ॥ जाति और व्यक्ति उसीकी आज्ञासे परिपालित हैं, इस कारणसे महादेव जाति और व्यक्ति स्वरूपवाले कहेगयेहैं ॥ १७ ॥

प्रधानपुरुष व्यक्त कलात्मा शिव कहा जाता है, प्रधानप्रकृति और क्षेत्रज्ञ पुरुष है ॥ १८ ॥ बुद्धिमान् तेईस तत्त्वोंका नाम व्यक्त कहते हैं, कालकार्यके प्रपंचके परिणाम करनेहीका एक कारण है ॥ १९ ॥ यही ईश अधिपति विधाता प्रवर्तन और निवर्तन करनेवाला है, यही आविर्भाव (प्रगट) तिरोभाव (गुप्त) करनेका एक कारण है ॥ २० ॥ इस कारण प्रधानपुरुष प्रगटही कालके स्वरूपवाले हैं, उनका कारण और नेता एक विधाता महेश्वर है ॥ २१ ॥ कोई विराट् हिरण्यगर्भात्मा (ब्रह्मा) ईश है ऐसा कहते हैं, कि ब्रह्मलोकका

प्रधानपुरुषव्यक्तकालात्मा कथ्यते शिवः॥प्रधानं प्रकृतिं प्राहुःक्षेत्रज्ञं पुरुषं तथा॥१८॥ त्रयोविंशतितत्त्वानि व्यक्तमाहुर्मनीषिणः कालः कार्य्यप्रपंचस्य परिणामैककारणम् ॥१९॥ एषामीशोऽधिपो धाता प्रवर्तकनिवर्तकः॥ आविर्भावतिरोभावहेतुरेकः स्वराडजः ॥२०॥ तस्मात्प्रधानपुरुषव्यक्तकालस्वरूपवान्॥ हेतुर्नेताधिपस्तेषां धाता चोक्तो महेश्वरः ॥२१॥ विराड्हिरण्यगर्भात्मा कैश्चिदीशो निगद्यते ॥ हिरण्यगर्भो लोकानां हेतुर्विश्वात्मको विराट् ॥२२॥ अंतर्यामी परश्चेति कथ्यते कविभिश्शिवः ॥ प्राज्ञस्तैजस विश्वात्मेत्यपरे संप्रचक्षते ॥ २३ ॥ तुरीयमपरे प्राहुः सौम्यमेव परे विदुः॥माता मानं च मेयं च मतिं चाहुरथा परे ॥२४॥ कर्ता क्रिया च कार्य्यं च करणं कारणं परे ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यात्मेत्यपरे संप्रचक्षते ॥२५॥ तुरीयमपरे प्राहु स्तुर्यातीतमितीतरे ॥ तमाहुर्विगुणं केचिद्गुणवन्तं परे विदुः ॥ २६ ॥ केचित्संसारिणं प्राहुस्तमसंसारिणं परे ॥ स्वतंत्रमपरे प्राहुरस्वतंत्रं परे विदुः ॥ २७ ॥ घोरमित्यपरे प्राहुः सौम्यमेव परे विदुः ॥ रागवंतं परे प्राहुर्वीतरागं तथा परे ॥ २८ ॥

विश्वात्मा विराट् है ॥ २२ ॥ कविजन अन्तर्यामी और परको शिव कहते हैं, कोई प्राज्ञ तेजसे विश्वात्मा कहते हैं ॥ २३ ॥ कोई उसको तुरीय कोई उसको सौम्य कहतेहैं, कोई माता मान और मेय और मति कहते हैं ॥ २४ ॥ कर्ता क्रिया, कारण करण कार्य ऐसा कहते हैं, कोई उसको जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति आत्मक कहते हैं ॥ २५ ॥ कोई उसे तुरीय और कोई तुर्यातीत कहते हैं, कोई निर्गुण कोई सगुण कहते हैं ॥ २६ ॥ कोई संसारी कोई असंसारी कहते हैं, कोई स्वतन्त्र कोई अस्वतन्त्र जानतेहैं ॥ २७ ॥ कोई घोर कोई सौम्य

जानते हैं, कोई रागयुक्त और कोई रागहीन कहते हैं ॥२८॥ कोई निष्क्रिय और कोई क्रियारूप कहते हैं, कोई इन्द्रिय रहित कोई सेन्द्रिय कहते हैं ॥ २९ ॥ कोई अचल और कोई चल कहते हैं, कोई अरूप कोई कोई रूपवान कहते हैं ॥३०॥ कोई अदृश्य कोई दृश्य कहते हैं कोई वाच्य कोई अवाच्य कोई शब्दात्मक कोई शब्दातीत कहते हैं ॥ ३१ ॥ कोई चिन्तायुक्त कोई चिन्तारहित कोई ज्ञानात्मक कोई विज्ञानस्वरूप कहते हैं ॥ ३२ ॥ कोई ज्ञेय कोई अज्ञेय कोई एक और कोई अनेकरूप कहते हैं ॥ ३३ ॥ इस प्रकार उस परमेष्ठीको अनेक प्रकारसे कल्पना करते हुए; अनेक प्रकारसे विश्वासके कारण मुनिजन भी निश्चय नहीं करसकते हैं ॥ ३४ ॥ और जो सर्वभावसे परमेश्वरकी शरण हुए

निष्क्रियं च परे प्राहुः सक्रियं चेतरे जनाः॥निरिंद्रियं परे प्राहुः सेंद्रियं च तथापरे ॥२९॥ ध्रुवमित्यपरे प्राहुस्तमध्रुवमितीरते अरूपं केचिदाहुर्वै रूपवंतं परे विदुः ॥३०॥अदृश्यमपरे प्राहुर्दृश्यमित्यपरे विदुः ॥ वाच्यमित्यपरे प्राहुरवाच्यमिति चापरे ॥ शब्दात्मकं परे प्राहुश्शब्दातीतमथापरे॥३१॥केचिच्चिन्तामयं प्राहुश्चिन्तया रहितं परे॥ज्ञानात्मकं परे प्राहुर्विज्ञानमिति चापरे॥ ॥३२॥ केचिच्ज्ञेयमिति प्राहुरज्ञेयमिति केचन॥ परमेके तमेवाहुरपरं च तथा परे॥३३॥एवं विकल्प्यमानं तु याथात्म्यं परमेष्ठिनः ॥ नाध्यवस्यंति मुनयो नानाप्रत्ययकारणात्॥३४॥ येः पुनस्सर्वभावेन प्रपन्नाः परमेश्वरम्॥ते हि जानंत्ययत्नेन शिवं परमकारणम् ॥३५॥ यावत्पशुर्नैव पश्यत्यनीशं पुराणं भुवनस्येशितारम् ॥ तावद्दुःखे वर्तते बद्धपाशः संसारेऽस्मिञ्चक्रनेमिक्रमेण ॥३६॥ यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ॥ तदाविद्वान्पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमसुपैति साम्यम्॥३७॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे पशुपतित्वज्ञानयोगे नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

हैं; वह बिना यत्नकेही परमकारण शिवको जानते हैं ॥ ३५ ॥ जबतक यह जीव दूसरे ईशरहित कवि पुराणपुरुष संसारके वश करनेवाले परमात्माको नहीं देखता है तबतक पाशबद्ध होकर चक्रनेमिके समान संसारदुःखमें भ्रमण करता रहता है ॥ ३६ ॥ जिस समय सबके साक्षात् हिरण्यगर्भ जगत्के कर्ता ईश्वर पुरुष ब्रह्मस्वरूपको देखता है तब वह पुरुष पुण्य पापको दूर कर निरंजन कल्मषरहित शिवके तादात्म्यको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

उपमन्यु बोले, इन शिवको बन्धनका लेश नहीं है, प्रकृति माया बुद्धि तथा अहंकारका किया हुआ भी नहीं है ॥ १ ॥ न इसका मानसी बन्धन न चित्तका बन्धन न इन्द्रियात्मक न तन्मात्रा न आकाशात्मक बन्ध है ॥ २ ॥ काल न कला न अविद्या न नियति न राग न द्वेष यह अमिततेजस्वी शिवमें है ॥ ३ ॥ न कोई आग्रह न कुशल न अकुशल कर्म उनका विपाक सुख दुःख और उनके फल अति आयु भोग रूप ॥ ४ ॥ विपाकके समान वासनासे इनका कुछ सम्बन्ध नहीं है; भोग भोगोंके संस्कार तीन कालके गोचरता उसमें नहीं ॥ ५ ॥ उसका

॥ उपमन्युरुवाच ॥नशिवस्याणवो बंधः कार्यो मायेय एव वा ॥ प्राकृतो वाथ बोद्धा वा ह्यहंकारात्मकस्तथा ॥ १ ॥ नैवास्य मानसो बंधो न चैत्तो नेंद्रियात्मकः ॥ न च तन्मात्रबंधोऽपि भूतबंधो न कश्चन ॥२॥ न च कालः कला चैव न विद्या नियतिस्तथा ॥ न रागो न च विद्वेषः शंभोरमिततेजसः ॥ ३ ॥ न चास्त्यभिनिवेशोऽस्य कुशलाऽकुशलान्यपि ॥ कर्माणि तद्विपाकश्च सुखदुःखे च तत्फले ॥ ४ ॥ आशयैर्नापि संबन्धः संस्कारैः कर्मणामपि ॥ भोगैश्च भोगसंस्कारैः कालत्रितयगोचरैः ॥ ५ ॥ न तस्य कारणं कर्ता नादिरंतस्तथांतरम् ॥ न कर्म करणं वापि नाकार्यं कार्यमेव च ॥ ६ ॥ नास्य बंधुरबंधुर्वा नियंता प्रेरकोऽपि वा ॥ न पतिर्न गुरुर्भ्राता नाधिको न समस्तथा ॥ ७ ॥ न जन्ममरणे तस्य न कांक्षितमकांक्षितम् ॥ न विधिर्न निषेधश्च न मुक्तिर्न च बन्धनम् ॥ ८ ॥ नास्ति यद्यदकल्याणं तत्तदस्य कदाचन ॥ कल्याणं सकलं चास्ति परमात्मा शिवो यतः ॥ ९ ॥ स शिवस्सर्वमेवेदमधिष्ठाय स्वशक्तिभिः ॥ अप्रच्युतस्स्वतो भावः स्थितः स्थाणुरतः स्मृतः ॥ १० ॥

कारण कर्त्ता आदि अन्त मध्य कर्म करण अकार्य कार्य कुछ नहीं है ॥ ६ ॥ इनका बन्धु शत्रु नियंता प्रेरक अति गुरु भ्राता अधिक सम कोई नहीं है ॥ ७ ॥ इनके जन्म मरण कांक्षित अकांक्षित कुछ नहीं है; विधि निषेध मुक्ति बन्धन कुछ नहीं है ॥ ८ ॥ जो जो अकल्याणी वस्तु हैं वह उसमें कुछ नहीं हैं; और परमात्मा शिवमें सब कल्याण निवास करते हैं ॥ ९ ॥ वह यह सबकुछ शिवही अपनी शक्तिसे अधिष्ठित हैं कभी च्युत नहीं होनेवाला स्वयं भावसे स्थाणु हो स्थित है ॥ १० ॥

जिस कारणसे कि स्थावर जंगमात्मक जगत् शिवसे अधिष्ठित है; वह शिव सर्वरूपसे स्थित होता है उसको जानकर फिर शोच नहीं करना पडता है ॥ ११ ॥ सर्वरुद्र पुरुष परममहान्के निमित्त नमस्कार है; वह हिरण्यबाहु भगवान् हिरण्यपति ईश्वर हैं ॥ १२ ॥ वह अंबिकाके पति ईशान पिनाकी वृषवाहन हैं, एक रुद्र परब्रह्म पुरुष कृष्ण पिंगल हैं ॥ १३ ॥ वह बालाग्रमात्र हृदयके मध्य दहरस्थान में है उसको विचारना चाहिये, वह हिरण्यकेश पद्माक्ष अरुण ताम्ररूप हैं ॥ १४ ॥ जो यह देव नीललोहित विचरते हैं, सौम्य और घोररूप मित्र

शिवेनाधिष्ठितं यस्माज्जगत्स्थावरजंगमम् ॥ सर्वरूपः स्मृतश्शर्वस्तथा ज्ञात्वा न मुह्यति॥११॥ शर्वो रुद्रो नमस्तस्मै पुरुषःसत्प रोमहान् ॥ हिरण्यबाहुर्भगवान्हिरण्यपतिरीश्वरः॥ १२ ॥ अंबिकापतिरीशानः पिनाकी वृषवाहनः ॥ एको रुद्रः परं ब्रह्म पुरुषः कृष्णपिंगलः ॥१३॥ बालाग्रमात्रो हृन्मध्ये विचिंत्यो दहरांतरे ॥ हिरण्यकेशः पद्माक्षो ह्यरुणस्ताम्र एव च॥१४॥ योऽवसर्पत्य सौ देवो नीलग्रीवो हिरण्मयः॥ सौम्यो घोरस्तथामिश्रश्चाक्षरश्चामृतोऽव्ययः॥१५॥ स पुंविशेषः परमो भगवानन्तकांतकः॥चेत नचेतनोन्मुक्तः प्रपंचाच्च परात्परः ॥१६॥ शिवेनातिशयत्वेन ज्ञानैश्वर्यै विलोकिते ॥ लोकेशातिशयत्वेन स्थितं प्राहुर्मनीषिणः ॥१७॥प्रतिसर्गप्रसूतानां ब्रह्मणां शास्त्रविस्तरम् ॥ उपदेष्टा स एवादौ कालावच्छेदवर्तिनाम्॥१८॥ कालावच्छेदयुक्तानां गुरूणा मप्यसौगुरुः ॥ सर्वेषामेव सर्वेशः कालावच्छेदवर्जितः ॥१९॥ शुद्धा स्वाभाविकी तस्य शक्तिस्सर्वातिशायिनी ॥ ज्ञानमप्रतिमं नित्यं वपुरत्यन्तनिर्मितम्॥२०॥ऐश्वर्यमप्रतिद्वंद्वं सुखमात्यन्तिकं बलम् ॥ तेजःप्रभावो वीर्यं च क्षमा कारुण्यमेव च ॥२१॥

अक्षर अमृत अव्यय ॥ १५ ॥ वह विशेष परम भगवान् अन्तकके अन्तक अचेतनको चेतन करनेवाला मुक्त प्रपञ्चसे परे ॥ १६ ॥ लोकमें अतिशय ज्ञानैश्वर्य देखनेसे उसमें अतिशय शक्ति होनेसे स्थिति होती है, ऐसा विद्वान् कहते हैं ॥ १७ ॥ कल्पके आदि उत्पन्न हुए ब्रह्माको वही वेदका उपदेश करते हैं ॥ १८ ॥ कालके अवच्छेदसे युक्त होनेसे वह गुरुओंका भी गुरु है, कालके अवच्छेदसे रहित वह सबका ईश है ॥ १९ ॥ उसकी स्वाभाविकी सिद्ध अतिशय शक्ति है. और अत्यन्त निर्मल ज्ञान उनको सदा प्राप्त है ॥२०॥ सजातीय द्विती

यादि रहित उनका ऐश्वर्य है; अत्यन्त सुख और बल है, तेज प्रभाव वीर्य करुणा ॥ २१ ॥ यह सृष्टिकी आदिमें सब प्राप्त है; उसको कुछ प्रयोजन नहीं रहता; पर जीवोंके ऊपर अनुग्रह करनेकोही उनको कर्मोंका फल देता है ॥ २२ ॥ उस परमात्मा शिवका वाचक ॐकार है शिव रुद्रादि शब्दोंका प्रणव (ओंकार) ही पर है ॥ २३ ॥ प्रणव वाच्य शिवकी भावना और जप करनेसे जो सिद्धि है वही परा प्राप्त होती है; इसमें सन्देह नहीं ॥ २४ ॥ इस कारण शास्त्रज्ञाता उसे एकाक्षर कहते हैं, बुद्धिमान् वाच्य वाचककी एकता मानते हुए ध्यान करते

परिपूर्णस्य सर्गाद्यैर्नात्मनोऽस्ति प्रयोजनम् ॥ परानुग्रह एवास्यफल सर्वस्य कर्मणः॥२२॥ प्रणवो वाचकस्तस्य शिवस्य परमात्मनः ॥ शिवरुद्रादिशब्दानां प्रणवो हि परस्स्मृतः ॥ २३ ॥ शंभोप्रणववाच्यस्य भवनात्तज्जपादपि॥ या सिद्धिस्सा परा प्राप्या भवत्येव न संशयः॥२४॥ तस्मादेकाक्षरं देवमाहुरागमपारगाः॥ वाच्यवाचकयोरैक्यं मन्यमाना मनस्विनः॥२५॥ अस्य मात्राः समाख्याताश्चतस्रो वेदमूर्द्धनि॥अकारश्चाप्युकारश्च मकारो नाद इत्यपि॥२६॥ अकारं बह्वृचं प्राहुरुकारो यजुरुच्यते ॥ मकारः सामनादोस्य श्रुतिराथर्वणी स्मृताः ॥२७॥ अकारश्च महाबीज रजः स्रष्टा चतुर्मुखः ॥ उकारः प्रकृतिर्योनिः सत्त्वं पालयिता हरिः ॥२८॥ मकारः पुरुषो बीजं तमः संहारको हरः ॥ नादः परः पुमानीशो निर्गुणो निष्क्रियः शिवः ॥२९॥ सर्वं तिसृभिरेवेदं मात्राभिर्निखिलं त्रिधा ॥ अभिधाय शिवात्मानं बोधयत्यर्धमात्रया ॥ ३० ॥

हैं ॥ २५ ॥ इसकी वेदके शिरोरूप चार मात्रा कही हैं, अकार उकार मकार और नाद ॥ २६ ॥ अकार ऋग्वेद उकार यजुर्वेद मकार साम और नाद अथर्व वेद है ॥ २७ ॥ अकार महाबीज रजोगुणयुक्त ब्रह्मा चतुर्मुख जगत्के उत्पादक हैं, उकार प्रकृति योनि सत्त्वगुण है, उसका पालक विष्णु है ॥ २८ ॥ मकार पुरुष बीज तम है; उससे संहार कर्ता हर हैं, नाद परपुरुष ईश निर्गुण निष्क्रिय शिव हैं ॥ २९ ॥ इस प्रकार यह तीन प्रकार हो आधी मात्रासे अपने शिव आत्माको बोधक करता है ॥ ३० ॥

उससे परे कोई नहीं है, अपर कोई नहीं है उससे सूक्ष्म और बृहत् कोई नहीं है; वह वृक्षके समान स्तब्ध एकही स्वर्गमें स्थित है; उसी पुरुषने यह सब पूर्ण कर रक्खा है ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ उपमन्यु बोले, विद्या विश्व लक्षणवाली उस परमात्माकी स्वाभाविकी शक्ति है वह एकही अनेक स्वरूपसे प्रकाश होता है जैसे सूर्यकी कान्ति ॥ १ ॥ उसके इच्छा ज्ञान क्रियादिक अनन्त शक्ति हैं; और मायासे प्रादुर्भूत होते हैं, जैसे अग्निसे अग्निके फुलिंग प्रगट होते हैं ॥ २ ॥ सदाशिव ईश्वरादि और अनेक विश्वेश्वरादि और पुरुष उत्पन्न हुए हैं और परेसे परे प्रकृति ॥ ३ ॥ महत्से आदि लेकर विशेष पर्यन्त और

यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किंचित्॥ वृक्षइव स्तब्धो दिवितिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥३१॥ इतिश्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवतत्त्ववर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥ उपमन्युरुवाच ॥ शक्तिस्स्वाभाविकी तस्य विद्या विश्वविलक्षणा॥ एकानेकस्य रूपेणभाति भानोरिवप्रभा॥१॥ अनंताःशक्तयो यस्या इच्छाज्ञान क्रियादयः॥ मायाद्याश्चाभवन्वह्नोर्विस्फुलिंगा यथातथा॥२॥ सदाशिवेश्वराद्याहि विद्याऽविद्येश्वरादयः॥अभवन्पुरुषाश्चास्याः प्रकृतिश्च परात्परा॥ ३ ॥ महदादिविशेषांतास्त्वजाद्याश्चापि मूर्त्तयः॥ यच्चान्यदस्ति तत्सर्वं तस्याः कार्य्यं न संशयः ॥४॥ सा शक्तिस्सर्वगा सूक्ष्मा प्रबोधानंदरूपिणी ॥ शक्तिमानुच्यते देवश्शिवश्शीतांशुभूषणः ॥ ५ ॥ वेद्यश्शिवश्शिवा विद्या प्रज्ञा चैव श्रुतिः स्मृतिः ॥ धृतिरेषा स्थितिर्निष्ठा ज्ञानेच्छाकर्मशक्तयः ॥६॥ आज्ञा चैवपरं ब्रह्म द्वे विद्ये च परापरे॥ शुद्धविद्या शुद्धकला सर्वं शक्ति कृतं यतः ॥ ७ ॥ माया च प्रकृतिर्जीवो विकारो विकृतिस्तथा ॥ असच्च सच्च यत्किंचित्तया सर्वमिदं ततम् ॥८॥

ब्रह्मादिक मूर्ति और भी जो कुछ है वह सब उसीका रूप है, इसमें संदेह नहीं है ॥ ४ ॥ वही सर्वगामिनी सूक्ष्मा शक्ति है, प्रबोधानंदस्वरूपवाली है, वही देव शक्तिमान् शिव शीतांशु भूषणधारी है ॥ ५ ॥ जानने योग्य शिव और शिवा विद्या हैं वही प्रज्ञा श्रुति और स्मृति है, धृति यही हैं, स्थिति निष्ठा ज्ञान इच्छा कर्म शक्ति है ॥ ६ ॥ आज्ञा उसकी परब्रह्म है दो विद्या हैं पर और अपर शुद्ध विद्या शुद्ध कला सर्वशक्तिका किया हुआ है ॥ ७ ॥ माया प्रकृति जीव विकार विकृति असत् सत जो कुछ भी है

उससे भी यह सब जगत् विस्तृत हो रहा है ॥ ८ ॥ उसी देवने यह चराचर सब ब्रह्माण्ड मोहित कर रखा है; और विना प्रयत्नके लीलाही से मुक्त करती हैं ॥ ९ ॥ इसी सत्ताईस प्रकारवाली मायासे वह देवेश विश्वको व्याप्त कर स्थित हैं, उन्हींसे मुक्ति प्रवृत्त होती है ॥ १० ॥ पूर्वकालमें कोई ब्रह्मवादी मुनि संशययुक्त मनसे परस्पर विचार करने लगे ॥ ११ ॥ किस कारणसे हम कहाँसे उत्पन्न होकर किस प्रकारसे जीवित हैं, किस प्रकार हमारी प्रतिष्ठा और हम किससे अधिष्ठित हैं ॥ १२ ॥ और सब रात्रियोंमें हम किसके द्वारा सुखसे वर्त्तते हैं वह उल्लंघन करने अयोग्य संसारकी व्यवस्था किसने की है ॥ १३ ॥ काल स्वभाव नियति (देव) यदृच्छा इसमें युक्त नहीं की

सा देवी मायया सर्वं ब्रह्मांडं सचराचरम् ॥ मोहयत्यप्रयत्नेन मोचयत्यपि लीलया॥९॥ अनया सह सर्वेशः सप्तविंशप्रकारया॥
विश्वं व्याप्य स्थितस्तस्मान्मुक्तिरत्र प्रवर्तते॥१०॥मुमुक्षवः पुरा केचिन्मुनयोब्रह्मवादिनः॥ संशयाविष्टमनसो विस्मृशंतियथात
थम् ॥ ११ ॥ किं कारणं कुतो जाता जीवामः केन वा वयम् ॥ कुत्राऽऽमाकं संप्रतिष्ठा केन वाधिष्ठिता वयम्॥१२॥केनवर्तामहे
शश्वत्सुखेष्वन्येषुचानिशम् ॥ अविलंघ्याच विश्वस्य व्यवस्था केन वाकृता॥१३॥कालस्य भावोनियतिर्यदृच्छा नात्र युज्यते ॥
भूतानि योनिःपुरुषोयोगी चैषां परोऽथवा ॥१४॥ अचेतनत्वात्कालादेश्चेतनत्वेपिचात्मनः॥ सुखदुःखानि भूतत्वादनीशत्वाद्वि
चार्यते ॥१५॥ तद्ध्यानयोगानुगतांप्रपश्यञ्छक्तिमैश्वरीम् ॥ पाशविच्छेदिकां साक्षान्निगूढां स्वगुणैर्भृशम्॥१६॥तया विच्छिन्नपा
शास्ते सर्वकारणकारणम् ॥ शक्तिमंतंमहादेवमपश्यन्दिव्यचक्षुषा ॥१७॥ यःकारणान्यशेषाणि कालात्मसहितानिच ॥अप्रमेयोऽ
नया शक्त्यासकलं योऽधितिष्ठति॥१८॥ ततः प्रसादयोगेन योगेन परमेण च॥ दृष्टेन भक्तियोगेन दिव्यःगतिमवाप्नुयुः ॥१९॥

जाती है, प्राणियोंकी योनि पुरुष इनका योग और पर ॥ १४ ॥ अचेतन होनेसे कालादिका और चेतन होनेसे जीवका सुख दुःखसे आविर्भूत होनेसे अनीशत्त्व विचार कर ॥ १५ ॥ वे ध्यानयोगको प्राप्त हो उसकी ईश्वरीशक्ति देखने लगे, जो पाशके विच्छेद करनेवाली और अपने गुणोंसे गुप्त उससे विछिन्न पाशबंधन होवे सबके कारणके कारण शक्तिमान् महादेवको दिव्य चक्षुसे देखने लगे ॥ १६ ॥ १७ ॥ जो सम्पूर्णके कारण कालात्मा सहित हैं वह अप्रमेय हैं; वही एक इस शक्तिके सहित स्थित हैं ॥ १८ फिर प्रसादयोग परमयोग तथा

दृढभक्ति योगसे दृढगतिको प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ इस कारणसे भक्तिपूर्वक जो शिवको हृदयमें देखते हैं, उन्हींको निरन्तर शान्ति होती है, दूसरोंको नहीं यह श्रुति है ॥ २० ॥ शक्तिमान्का शक्तिसे कभी वियोग नहीं होता है, इस कारण शक्ति और शक्तिमान्के प्रसाद सेपरम सुखकी प्राप्ति होती है ॥ २१ ॥ मुक्तिकी प्राप्तिमें ज्ञान और कर्मका कोई विवक्षित नहीं है; उनके प्रसन्न होनेमें वह मुक्ति हाथमें स्थित है ॥ २२ ॥ देव दानव पशु विहंग कीट कृमि सब उनकी प्रसन्नतासे मुक्त हो जाते हैं ॥ २३ ॥ गर्भसे उत्पन्न हुआ बालक वा तरुण वृद्ध

तस्मात्सह तथा शक्त्या हृदि पश्यंति ये शिवम् ॥ तेषां शाश्वतिकी शांतिर्नैतरेषामितिश्रुतिः॥२०॥ न हि शक्तिमतश्शक्त्या विप्रयोगोऽस्ति जातुचित् ॥ तस्माच्छक्तेः शक्तिमतस्तादात्म्यान्निर्वृतिर्द्वयो॥२१॥ क्रमो विवक्षितो नूनं विमुक्तौ ज्ञानकर्मणोः प्रसादे सति सा मूर्तिर्यस्मात्करतले स्थिता ॥२२॥ देवो वा दानवोवापि पशुर्वाविहगोऽपि वा ॥ कीरो वाथ कृमिर्वापि मुच्यते तत्प्रसादतः ॥ २३ ॥ गर्भस्थो जायमानोवा बालो वा तरुणोऽपि वा ॥ वृद्धो वा म्रियमाणो वा स्वर्गस्थोवाथ नारकी॥२४॥ पतितो वापि धर्मात्मा पंडितो मूढ एव वा॥ प्रसादे तत्क्षणादेव मुच्यते नात्र संशयः ॥२५॥ अयोग्यानां च कारुण्याद्भक्तानां परमेश्वरः ॥ प्रसीदति न संदेहो विगृह्य विविधान्मलान् ॥ २६ ॥ प्रसादादेव सा भक्तिः प्रसादो भक्तिसंभवः ॥ अवस्थाभेद मुत्प्रेक्ष्य विद्वांस्तत्र न मुह्यति ॥ २७ ॥ प्रसादपूर्विका येयं भुक्तिमुक्तिविधायिनी ॥ नैव सा शक्यते प्राप्तुं नरैरेकेन जन्मना॥ २८ ॥ अनेकजन्म सिद्धानां श्रौतस्मार्तानुवर्तिनाम्॥ विरक्तानां प्रबुद्धानां प्रसीदति महेश्वरः ॥२९॥

मृतक होता हुआ स्वर्गमें स्थित वा नरकगामी ॥ २४ ॥ पतित धर्मात्मा पंडित, मूर्ख, देवके प्रसादसे तत्काल मुक्त हो जाताहै; इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ जो अयोग्य है उनके ऊपर करुणाकृपा करके वह परमेश्वर उनके पाप दूरकर उनपर प्रसन्न हो जाते हैं इनमें सन्देह नहीं ॥२६ ॥ प्रसादसेही वह भक्ति और भक्तिसे मुक्ति हो जाती है; अधिकार भेदको देखकर विद्वान् उसमें मोहित नहीं होते हैं ॥ २७ ॥ प्रसादपूर्वक वह भक्ति मुक्तिकी देनेवाली है, वह मुक्ति एक जन्ममें मनुष्योंको प्राप्त नहीं होती है ॥ २८ ॥ श्रुतिके अनुसार वर्तनेवाले

अनेक जन्ममें सिद्ध हुए; विरक्त और संसारसे जागनेवालोंके ऊपर परमेश्वर सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥ २९ ॥ देवेशके प्रसन्न होनेपर. यह जीव उस भक्तिमें प्रवृत्त होता है. मेरे स्वामी शिव हैं; पूर्वकालमें इस सूक्ष्म भक्तिहीके द्वारा ॥ ३० ॥ तपसे विवश होकर यह मनुष्य शैवधर्ममें तत्पर होता है; उसके प्रयोग और अभ्याससे भक्तिमें तत्परता होती है ॥ ३१ ॥ उस परम भक्तिसे प्रसादकी प्राप्ति होती है. प्रसादसेही सब पाशबन्धनसे मुक्ति मुक्तकी और निर्वृति हो जाती है ॥ ३२ ॥ जिस मनुष्यका शिवमें अल्पभाव हो वह भी तीन जन्ममें मुक्त होजाता है; फिर उसे योनि यन्त्रकी पीडा नहीं होती ॥ ३३ ॥ बाह्य और मनके उपचार सहित जो सेवा है, उसीका नाम भक्ति है; वह

प्रसन्ने सति देवेश पशौ तस्मिन्प्रवर्तते॥ अस्ति नाथो ममेत्यल्पा भक्तिर्बुद्धिपुरस्सरा॥३०॥ तपसा विविधैश्शैवैर्धर्मस्संयुज्यते नरः ॥ तत्रयोगे तदभ्यासस्ततो भक्तिः परा भवेत्॥३१॥ परया च तया भक्त्या प्रसादो लभ्यते परः॥ प्रसादात्सर्वपाशेभ्यो मुक्तिर्मुक्तस्य निर्वृतिः ॥३२॥ अल्पभावोऽपि यो मर्त्यस्सोऽपि जन्मत्रयात्परम्॥ नयोनियंत्रपीडायै भवेन्नैवात्र संशयः॥३३॥ सांगाऽनंगा च या सेवा सा भक्तिरिति कथ्यते ॥ सा पुनर्भिद्यते त्रेधा मनोवाक्कायसाधनैः ॥३४॥ शिवरूपादिचिंता या सा सेवा मानसी स्मृता ॥ जपादिर्वाचिकी सेवा कर्मपूजादि कायिकी ॥३५॥ सेयं त्रिसाधना सेवा शिवधर्मश्च कथ्यते ॥ स तु पंचविधः प्रोक्तः शिवेन परमात्मना॥३६॥ तपः कर्म जपो ध्यानं ज्ञानं चेति समासतः ॥ कर्मलिङ्गार्चनाद्यं च तपश्चान्द्रायणादिकम् ॥ ३७ ॥ जपस्त्रिधा शिवाभ्यासश्चिन्ता ध्यानं शिवस्य तु ॥ शिवागमोक्तं यज्ज्ञानं तदत्र ज्ञानमुच्यते ॥३८॥

मन वाणी कायाके साधनसे तीन प्रकारकी है ॥ ३४ ॥ शिवरूप चिन्तनका नाम मानसी सेवा है, जपादि वाचिकी सेवा है कर्म पूजा कायिकपूजा कहलाती है ॥ ३५ ॥ यही त्रिसाधना सेवा शिवधर्म कहलाता है; वह धर्म परमात्मा शिवने पांच प्रकारका कहा है ॥ ३६ ॥ तप कर्म जप ज्ञान और ध्यान रूपसे संक्षेपसे कहा है, कर्म पूजालिंगकी अर्चा आदि तप चान्द्रायणादि ॥ ३७ ॥ तीन प्रकारका जप यह है शिव शास्त्रमें अभ्यास शिवकी चिन्ता करना ध्यान है, शिव शास्त्रमें कहा जो ज्ञान है वही यहां ज्ञान

शब्दसे व्यवहार किया है जो श्रीकण्ठ शिवने पार्वतीके प्रति शास्त्र कहा है ॥ ३८ ॥ वह उनका दया पूर्वक कहा हुआ शिवभक्तोंको एक साधन है ॥ ३९ ॥ इस कारण परम कारुणिक शिवमें भक्ति बढानी चाहिये और कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्य विषयोंके संगको त्यागन करें ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीकृष्ण बोले, हे भगवन् ! शिवजीका कहा हुआ जो वेदसार ज्ञान है, जो उन्होंने अपने भक्तोंके मुक्तिके लिये कहा है, सो मैं सुननेकी इच्छा करता हूँ ॥ १ ॥ जो अभक्त अज्ञानी अयोगी हैं उनको वह ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता; पांच सर्गोंसे युक्त जिसकी मूढता देखकर वह मूर्ख निंदा करते हैं ॥ २ ॥ कहीं वर्णा

श्रीकंठेन शिवेनोक्तं शिवायै च शिवागमः॥ शिवाश्रितानां कारुण्याच्छ्रेयसामेकसाधनम्॥३९॥ तस्माद्विवर्द्धयेद्भक्तिं शिवे परम कारणे॥ त्यजेच्च विषयासंगं श्रेयोऽर्थीमतिमान्नरः॥४०॥इतिश्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवतत्त्व कथन्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ कृष्ण उवाच॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामिशिवेन परिभाषितम्॥ वेदसारे शिवज्ञानं स्वाश्रितानांविमुक्तये ॥ १ ॥ अभक्तानामबुद्धीनामयुक्तानामगोचरम् ॥ अर्थैर्दशार्द्धैः संयुक्तं गूढमप्राज्ञनिंदितम्॥२॥ वर्णाश्रमकृतैर्द्धर्मैर्विपरीतं क्वचित्समम्॥ वेदात्षडंगादुद्धृत्य सांख्याद्योगाच्च कृत्स्नशः॥३॥शतकोटिप्रमाणेनविस्तीर्णं ग्रंथसंख्यया॥कथितंपरमेशेनतत्र पूजा कथं प्रभोः॥४॥ कस्याधिकारःपूजादौ ज्ञानयोगादयः कथम्॥ तत्सर्वं विस्तरादेव वक्तुमर्हसि सुव्रत ॥५॥ उपमन्युरुवाच॥ शैवं संक्षिप्य वेदोक्तं शिवेन परिभाषितम् ॥ स्तुतिनिंदादिरहितं सद्यः प्रत्ययकारणम् ॥ ६ ॥

श्रमके धर्मोंसे विपरीत और कहीं समान, षडंग वेद और सांख्य योगसे जो सम्पूर्ण ग्रहण किया गया ॥ ३ ॥ जिस ग्रन्थकी संख्या प्रमाणसे सौकरोड है; उसको परमेश्वरने कहा है हे प्रभो ! उसमें पूजा किस प्रकार कथन की है ॥ ४ ॥ पूजादिमें किसका अधिकार है, और वह ज्ञान योगादि किस प्रकार है ? हे सुव्रत ! सो हमसे आप सब विस्तार पूर्वक कहिये ॥ ५ ॥ उपमन्यु बोले, जो शिवने शास्त्र कहा है, उसको संक्षेप करके जो कि निंदा स्तुतिसे रहित हैं, श्रवणसे शीघ्रही विश्वास होता है ॥ ६ ॥

जो गुरुके प्रसादसे प्राप्त होता और अनायाससेही जिससे मुक्ति होजाती है, उसको संक्षेपसे कहता हूँ विस्तारसे तो कोई नहीं कह सकता ॥ ७ ॥ जिस समय स्थाणु शिव सत्कार्य करणसे युक्त हो सृष्टि रचनेकी इच्छा करने लगे तब स्वयं ही प्रगट हुए ॥ ८ ॥ देवाधिदेव शंकरने देवताओंके देवता ब्रह्माजीको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ तब ब्रह्माजीने उत्पन्न होकर देवाधिदेव अपने पिताको देखा तब शिवने उन उत्पन्न हुए ब्रह्माजीको आज्ञा दी ॥ १० ॥ रुद्रदेवसे देखे हुए ब्रह्माजी संसारकी रचना करने लगे, और वर्णाश्रमकी व्यवस्था भी उन्होंने पृथक् २ की ॥ ११ ॥ यज्ञके निमित्त सोमकी रचना की. सोमसे स्वर्ग हुआ. पृथ्वी, वह्नि, सूर्य, यज्ञ, शचीपति इन्द्र ॥ १२ ॥ वह सब देवता प्रादुर्भूत

गुरुप्रसादजं दिव्यमनायासेन मुक्तिदम्॥ कथयिष्ये समासेन तस्य शक्यो न विस्तरः॥७॥ सिसृक्षया पुराव्यक्ताच्छिवःस्थाणुर्महेश्वरः॥ सत्कार्यकारणोपेतस्स्वयमाविरभूत्प्रभुः ॥८॥ जनयामास च तदा ऋषिर्विश्वाधिकः प्रभुः ॥ देवानां प्रथमं देवं ब्रह्माणं ब्रह्मणस्पतिम् ॥ ९ ॥ ब्रह्मापि पितरं देवं जायमानं न्यवैक्षत ॥ तं जायमानं जनको देवः प्रापश्यदाज्ञया ॥१०॥ दृष्टो रुद्रेण देवोऽसावसृजद्विश्वमीश्वरः ॥ वर्णाश्रमव्यवस्थां च चकार स पृथक्पृथक्॥११॥ सोमं ससर्ज यज्ञार्थं सोमाद्यौस्समजायत ॥ धरा च वह्निः सूर्यश्च यज्ञो विष्णुश्शचीपतिः ॥ १२ ॥ ते चान्ये च सुरा रुद्रं रुद्राध्यायेन तुष्टुवुः ॥ प्रसन्नवदनस्तस्थौ देवानामग्रतः प्रभुः ॥ १३ ॥ अपहृत्य स्वलीलार्थं तेषां ज्ञानं महेश्वरः ॥ तमपृच्छंस्ततो देवाः को भवानिति मोहिताः ॥ १४ ॥ सोऽब्रवीद्भगवान्रुद्रो ह्यहमेकः पुरातनः ॥ आसं प्रथममेवाहं वर्तामि च सुरोत्तमाः ॥ १५ ॥ भविष्यामि च मत्तोन्यो व्यतिरिक्तो न कश्चन ॥ अहमेव जगत्सर्वं तर्पयामि स्वतेजसा ॥ १६ ॥

रुद्राध्यायसे देवको सन्तुष्ट करने लगे, तब वह प्रभु देवताओंके सन्मुख प्रसन्न होकर स्थित हुए ॥ १३ ॥ तब महेश्वरने लीलाके निमित्त उनके ज्ञानको हरण कर लिया, तब देवता कहने लगे आप कौन हो, ऐसा कह मोहित होगये ॥ १४ ॥ तब भगवान् रुद्रने कहा मैंही एक पुरातन देव हूँ, हे देवताओ ! सबसे पहले मैं ही था और और मैंही सर्वत्र वर्तमान हूँ ॥ १५ ॥ और आगे भी मैंही हूंगा, मुझसे अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है, मैंही अपने तेजसे सब जगत्को तृप्त करता हूँ ॥ १६ ॥

मुझसे अधिक और समान कोई नहीं है जो ऐसा जानता है वह मुक्त होजाता है भगवान् रुद्र ऐसा कहकर वहीं अन्तर्धान होगये, जब विष्णु आदि देवताओंने उनको न देखा तब वह ऊपरको भुजा उठाय अथर्व शिवके मन्त्रोंसे तथा सामके मन्त्रोंसे ॥१७॥ उनको सन्तुष्ट करने लगे, अथर्व शिरमें कहेहुए पाशुपत व्रतको करके सब देवताओंने अपने शरीरमें भस्म लगाई ॥ १८ ॥ तब उनके प्रसन्न करनेके निमित्त पशुपति ईश्वर ॥ १९ ॥ गण और पार्वतीसहित उस स्थानमें आनकर प्राप्त हुए जिनको निद्रा और श्वासके जीतनेवाले पापरहित योगी ॥२०॥ हृदयमें देखते हैं, उन देवदेवका दर्शन देवताओंने किया, जिसको ईश्वरकी इच्छाके अनुवर्तनेवाली ईश्वरकी परम शक्ति कहते हैं ॥ २१ ॥ उस वामलो

मत्तोऽधिकः समो नास्ति मां यो वेद स मुच्यते॥इत्युक्त्वा भगवान्रुद्रस्तत्रैवांतरधत्त स॥अपश्यंतस्तमीशानं स्तुवंतश्चैव साम भिः ॥१७॥ व्रतं पाशुपतं कृत्वा त्वथर्वशिरसि स्थितम्॥भस्मसंछन्नसर्वांगा बभूवुरमरास्तदा॥१८॥ अथ तेषां प्रसादार्थं पशूनां पतिरीश्वरः ॥१९॥ सगणश्चोमया सार्द्धं सान्निध्यमकरोत्प्रभुः॥ यं विनिद्रा जितश्वासा योगिनो दग्धकिल्बिषाः ॥२०॥ हृदि पश्यंति तं देवं ददृशुर्देवपुंगवाः॥यामाहुः परमां शक्तिमीश्वरेच्छानुवर्तिनीम्॥२१॥तामपश्यन्महेशस्य वामतो वामलोचनाम् ॥ ये विनिर्धूतसंसाराः प्राप्ताः शैवं परं पदम्॥२२॥नित्यसिद्धाश्च ये वान्यं ते च दृष्टा गणेश्वराः॥अथ तं तुष्टुवुर्देवा देव्या सह महेश्वरम् ॥ २३ ॥ स्तोत्रैर्माहेश्वरैर्दिव्यैः श्रौतैः पौराणिकैरपि ॥ देवोऽपि देवानालोक्य घृणया वृषभध्वजः ॥ २४ ॥ तुष्टोऽस्मीत्याह सुप्रीतस्स्वभावमधुरां गिरम्॥अथ सुप्रीतमनसं प्रणिपत्य वृषध्वजम् ॥ अर्थमहत्तमं देवाः पप्रच्छुरिममादरात् ॥२५॥

चनाको शिवके वामांगमें उन्होंने दर्शन किया, जो संसारसे विरक्तहो शैवपदको प्राप्त हुए हैं ॥ २२ ॥ जो नित्य सिद्ध हैं. उन गणेश्वरोंका भी दर्शन किया तब देवता देवीके सहित महेश्वरकी प्रार्थना करने लगे ॥२३॥ और शिव सम्बंधी दिव्य तथा महेश्वर सम्बन्धी पुराणके श्लोकोंसे स्तुति करने लगे, वृषध्वज देवने भी कृपा करके देवताओंको देखकर ॥२४॥ कहा मैं प्रसन्न हूँ यह प्रसन्न हो स्वभावसे कोमलवाणीसे बोले तब प्रसन्न मनहो शिवको प्रणाम कर उन अधिक प्रार्थनीय देवको देवता आदरसे कहने लगे ॥ २५ ॥

देवता बोले, हे भगवन् ! किस मार्गसे आप पृथ्वीमें पूजे जाते हैं और पूजामें किसका अधिकार है सो आप तत्त्वसे कहिये ॥ २६ ॥ तब शिवजी हँसतेहुए देवीजीको देखकर अपना घोर सूर्यात्मक रूप दिखाने लगे ॥२७॥ जो सम्पूर्ण ऐश्वर्यके गुणोंसे युक्त सर्व तेजोमय अपने सब मूर्ति ग्रह और देवताओंसे युक्त॥२८॥आठ भुजा, चार मुख, अर्धनारीका अद्भुत स्वरूप शिवको देखकर विष्णु आदि सब देवता॥२९॥ शिवको सूर्य और देवीको चन्द्रमा जानकर, सम्पूर्ण चराचर पंचभूतरूप ॥ ३० ॥ उनको देख अर्घ्य देकर स्तुति करने लगे ॥३१॥सिंदूरवर्ण मण्डलाकार सुवर्ण

देवा ऊचुः ॥ भगवन्केन मार्गेण पूजनीयोऽसि भूतले ॥कस्याधिकारः पूजायां वक्तुमर्हसि तत्त्वतः॥२६॥ततः सस्मितमालोक्य देवीं देववरोहरः॥स्वरूपं दर्शयामास घोरं सूर्यात्मकं परम्॥२७॥सर्वैश्वर्यगुणोपेतं सर्वतेजोमयं परम् ॥ शक्तिभिर्मूर्तिभिश्चांगैर्ग्रहैर्देवैश्च संवृतम्॥२८॥अष्टबाहुं चतुर्वक्त्रमर्द्धनारीकमद्भुतम्॥दृष्ट्वैवमद्भुताकारं देवा विष्णुपुरोगमाः॥२९॥बुद्धा दिवाकरं देवं देवीं चैव निशाकरम्॥पञ्चभूतानि शेषाणि तन्मयं च चराचरम्॥३०॥एवमुक्त्वा नमश्चक्रुस्तस्मै चार्घ्यं प्रदाय वै ॥३१॥सिंदूरवर्णाय सुमण्डलाय सुवर्णवर्णाभरणाय तुभ्यम्॥ पद्माभनेत्राय सपंकजाय ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय॥३२॥सुरत्नपूर्णं ससुवर्णतोयं सकुंकुमाद्यं सकुशं सपुष्पम्॥प्रदत्तमादाय सहेमपात्रं प्रशस्तमर्घ्यं भगवन्प्रसीद ॥३३॥ नमश्शिवाय शांताय सगणायादिहेतवे ॥ रुद्राय विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणे सूर्यमूर्तये ॥३४॥ यश्शिवं मण्डले सौरे संपूज्यैव समाहितः ॥ प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने प्रदद्यादर्घ्य मुत्तमम् ॥ ॥ ३५ ॥ प्रणमेद्वा पठेदेताञ्छ्लोकाञ्छ्रुतिसुखानिमान् ॥ न तस्य दुर्लभं किंचिद्भक्तश्चेन्मुच्यते दृढम् ॥ ३६ ॥

और हीरे जडे आभरणोंसे युक्त कमलनेत्र कमलयोनि सहित ब्रह्मादि नारायणके कारणके निमित्त ॥ ३२ ॥ रत्न और सुवर्ण पूर्ण कुंकुम कुश पुष्पमिला जल सुवर्णपात्रमें लेकर भगवान्के निमित्त देकर बोले, भगवान् प्रसन्न हो ॥ ३३ ॥ शिवको साम्बगणोंके सहित नमस्कार है, रुद्र विष्णु ब्रह्म सूर्य मूर्तिके निमित्त नमस्कार है ॥३४॥ जो शिवको सूर्यमण्डलमें सावधान होकर पूजता है, प्रातःकाल मध्याह्न और सन्ध्याको अर्घ्य देता है ॥ ३५ ॥ जो प्रणाम करते वा इस स्तोत्रको पढते सौ बार कहते हैं इनको कुछ दुर्लभ नहीं रहता, और दृढभक्ति होनेसे मुक्त

हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ उस कारण भक्ति आदित्यरूप शिवका पूजन कर; धर्म काम मूक्तिके कारण मन, वचन, कर्मसे ऐसा करे ॥ ३७ ॥ तब मण्डलमें स्थित शिव देवताओंको देखकर सब शास्त्रोंमें श्रेष्ठ शास्त्र देकर अन्तर्धान हो गये ॥ ३८ ॥ उसमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंको पूजाका अधिकार जानकर वे देवता प्राणाम कर यथायोग्य स्थानमें गये ॥ ३९ ॥फिर जब बहुत काल बीतनेपर वह शास्त्र छिप गया,तब शिवके अंकमें बैठी हुई परमेश्वरीने फिर पूँछा ॥ ४० ॥ तब उनकी प्रेरणासे चन्द्रमौलि देवने उस शास्त्रका सार निकाल कर कहा ॥ ४१ ॥

तस्मादभ्यर्चयेनित्यं शिवमादित्यरूपिणम्॥धर्मकामार्थमुक्त्यर्थं मनसा कर्मणा गिरा॥३७॥अथ देवान्समालोक्य मण्डलस्थो महेश्वरः ॥ सर्वागमोत्तरं दत्त्वा शास्त्रमंतरधाद्धरः॥३८॥तत्र पूजाधिकारोऽयं ब्रह्मक्षत्रविशामिति ॥ ज्ञात्वा प्रणम्य देवेशं देवा जग्मुर्यथागतम् ॥३९॥अथ कालेन महता तस्मिञ्छास्त्रे तिरोहिते ॥ भर्तारं परिपप्रच्छ तदंकस्था महेश्वरी ॥ ४० ॥ तया स चोदितो देवो देव्या चन्द्रविभूषणः ॥अवदत्करमुद्धृत्य शास्त्रं सर्वागमोत्तरम् ॥४१॥प्रवर्तितं च तल्लोके नियोगात्परमेष्ठिनः ॥ मयागस्त्येन गुरुणा दधीचेन महर्षिणा ॥४२॥स्वयमप्यवतीर्योर्व्यां युगावर्तेषु शूलधृक्॥स्वाश्रितानां विमुक्त्यर्थं कुरुते ज्ञानसंततिम्॥४३॥ऋभुस्सत्यो भार्गवश्च ह्यंगिराः सविता द्विजाः॥मृत्युः शतक्रतुर्धीमान्वसिष्ठो मुनिपुंगवः॥४४॥सारस्वतस्त्रिधामा च त्रिवृतो मुनिपुंगवः॥शततेजास्स्वयं धर्मो नारायण इति श्रुतः॥४५॥स्वरक्षश्चारुणिर्धीमांस्तथा चैव कृतंजयः॥कृतंजयो भरद्वाजो गौतमः कविरुत्तमः॥४६॥वाचःश्रवा मुनिस्साक्षात्तथा सूक्ष्मायणिः शुचिः॥तृणबिंदुर्मुनिः कृष्णः शक्तिः शाक्तेय उत्तरः॥४७॥

परमेष्ठीके नियोगसे उसको लोकमें वर्णन किया; मैं गुरु अगस्त्य, और महर्षि दधीचिने इसे प्रवृत्त किया ॥ ४२ ॥ युगके आदिमें शिवजी अवतार धारण कर अपने भक्तोंको मुक्तिके निमित्त ज्ञान प्रदान करते हैं ॥ ४३ ॥ ऋभु सत्य भार्गव अंगिरा सविता मृत्यु इन्द्र धर्म मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ ॥ ४४ ॥ सारस्वत त्रिधाम त्रिवृत मुनिश्रेष्ठ शततेज स्वयं धर्मरूप नारायण ॥ ४५ ॥ अपने सुन्दर धर्मके रक्षक कृतंजय मामतेय भरद्वाज कविश्रेष्ठ गौतम ॥ ४६ ॥ वाचःश्रवा मुनि सूक्ष्मायणि शुचि तृणबिन्दु मुनि कृष्ण शक्ति शाक्तेय उत्तर ॥ ४७ ॥

जातूकर्ण्य हरि साक्षात् कृष्णद्वैपायन मुनि यह व्यास कल्प योगेश्वरोंको क्रमसे सुन ॥४८॥ लिंगपुराणके सातवें अध्यायसे द्वापरके अन्तमें व्यासके अवतार और योगाचार्यके अवतार तथा कलियुगमें शिवका अवतार होता है, वह सब लिखा है ॥ ४९ ॥ प्रत्येक अवतारमें विभुके चार २ शिष्य होते हैं; उनके शिष्य और प्रशिष्य सहस्रों हुए हैं ॥ ५० ॥ उनके सम्भाषणसे लोकमें और आज्ञा करणादिसे भाग्यवाले अत्यन्त भक्ति करके मुक्त हो जाते हैं ॥५१॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥ श्रीकृष्णजी बोले, सब युगोंके

जातूकर्ण्यो हरिस्साक्षात्कृष्णद्वैपायनो मुनिः॥ व्यासावताराञ्छृण्वंतु कल्पयोगेश्वरान्क्रमात्॥४८॥लैंगे व्यासावतारा हि द्वापरां तेषु सुव्रताः ॥ योगाचार्यावताराश्च तथा शिष्येषु शूलिनः॥४९॥तत्र तत्र विभोः शिष्याश्चत्वारः स्युर्महौजसः ॥ शिष्यास्तेषां प्रशिष्याश्च शतशोऽथ सहस्रशः॥५०॥तेषां संभावनाल्लोके शैवाज्ञाकरणादिभिः॥भाग्यवंतो विमुच्यंते भक्त्या चात्यंतभाविताः ॥५१॥इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवतत्त्वज्ञाने व्यासावतारवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ युगावर्तेषु सर्वेषु योगाचार्यच्छलेन तु ॥ अवतारान्हि शर्वस्य शिष्यांश्च भगवन्वद ॥१॥ उपमन्युरुवाच ॥ श्वेतः सुतारो मदनः सुहोत्रः कङ्क एव च॥ लौगाक्षिश्च महामायो जैगीषव्यस्तथैव च॥२॥दधिवाहश्च ऋषभो मुनिरुग्रोऽत्रिरेव च ॥ सुपालको गौतमश्च तथा वेदशिरा मुनिः ॥ ३ ॥ गोकर्णश्च गुहावासी शिखण्डी चापरः स्मृतः ॥ जटामाली चाट्टहासो दारुको लांगुली तथा ॥ ४ ॥ महाकालश्च शूली च दंडी मुण्डीश एव च ॥ सविष्णुस्सोमशर्मा च नकुलीश्वर एव च ॥५॥ एते वाराह कल्पेऽस्मिन्सप्तमस्यांतरे मनोः ॥ अष्टाविंशतिसंख्याता योगाचार्याःयुगक्रमात् ॥ ६ ॥

प्रारम्भमें योगाचार्यके छलसे शिवके अवतार और उनके शिष्योंका वर्णन कीजिये ॥१॥ उपमन्यु बोले—श्वेत, सुतार, मदन, सुहोत्र कंक लौगाक्षि महामाया जैगीषव्य॥२॥दधिवाह, ऋषभ, मुनि, उग्र, अत्रि, सुबालक, गौतम, वेदशिरा मुनि॥३॥गोकर्ण, गुहावासी, शिखंडी, जटामाली अट्टहास, दारुक, लांगली ॥४॥ महाकाल, शूली, दण्डी, सहिष्णु; सोमशर्मा, नकुलीश्वर ॥५॥ यह सातवें वैवस्वतमनुके अन्तर वाराहकल्पमें हुए; युगोंके

क्रमसे अट्ठाईसवों योगाचार्य हुए हैं ॥ ६ ॥ एक एकके शान्त चित्तवाले चार चार शिष्य हुए हैं, शान्तको आदि लेकर रुष्यतक शिष्योंको यथा क्रमसे कहता हूँ ॥ ७ ॥ श्वेतः, श्वेतशिख, श्वेताश्व, श्वेतलोहित,दुन्दुभि, शतरूपा, ऋचीक, केतुमान, ॥ ८ ॥ विकोश, विकेश, विपाश, पाशनाशन, सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम, दुरतिक्रम, ॥ ९ ॥ सनत्कुमार, सनक, सनन्दन; सनातन; सुधामा, विरज; शंखपाद, वैरज ॥ १० ॥ सारस्वत, मेघ, मेघवाह, कपिल, आसुरी, पंचशिखा, बाष्कल ॥ ११ ॥ पाराशर, गर्ग, भार्गव, अंगिरा, बलबन्धु, निरामित्र, केतु; शृंग, तपो

शिष्याः प्रत्येकमेतेषां चत्वारश्शांतचेतसः॥ श्वेतादयश्च रुष्यांतांस्तान्ब्रवीमि यथाक्रमम्॥७॥ श्वेतश्श्वेतशिखश्चैव श्वेताश्वः श्वेतलोहितः ॥ दुन्दुभिश्शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तथा ॥८॥विकोशश्च विकेशश्च विपाशः पाशनाशनः॥ सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्गमो दुरतिक्रमः॥९॥ सनत्कुमारस्सनकः सनंदश्च सनातनः ॥ सुधामा विरजाश्चैव शंखश्चांडज एव च ॥१०॥ सारस्वतश्च मेघश्च मेघवाहस्सुवाहकः ॥ कपिलश्चासुरिः पंचशिखो बाष्कल एव च ॥११॥ पराशराश्च गर्गश्च भार्गवश्चांगिरास्तथा ॥ बलबन्धुर्निरामित्राः केतुशृंगस्तपोधनः॥१२॥ लंबोदरश्च लंबश्च लम्बात्मा लंबकेशकः॥ सर्वज्ञस्समबुद्धिश्च साध्यसिद्धिस्तथैव च ॥१३॥ सुधामा काश्यपश्चैव वसिष्ठो विरजास्तथा ॥ अत्रिरुग्रो गुरुश्रेष्ठः श्रवणोथ श्रविष्टकः ॥१४॥ कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः ॥ काश्यपो ह्युशनाश्चैव च्यवनश्च बृहस्पतिः ॥ १५ ॥ उतथ्यो वामदेवश्च महाकालो महाऽनिलः ॥ वाचःश्रवाः सुवीरश्च श्यावकश्च यतीश्वरः ॥ १६ ॥ हिरण्यनाभः कौशल्यो लोकाक्षिः कुथुमिस्तथा ॥ सुमन्तुर्जैमिनिश्चैव कुबन्धः कुशकन्धरः ॥१७॥ प्लुक्षो दार्भायणिश्चैव केतुमान्गौतमस्तथा॥ भल्लवी मधुपिंगश्च श्वेतकेतुस्तथैव च ॥ १८ ॥

धन ॥ १२ ॥ लम्बोदर, लम्बाक्ष, लम्बकेश, सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्यबुद्धि, ॥ १३ ॥ सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ, विरज, अत्रि, उग्र, गुरु; श्रेष्ठ, श्रवण, अविष्टक ॥ १४ ॥ कुणी, कुणबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, कश्यप, उशना, च्यवन, बृहस्पति ॥ १५ ॥ उतथ्य, वामदेव, महाकाल, महानील, वाचश्रवा, सुवीर श्यामाश्व, यतीश्वर ॥ १६ ॥ हिरण्यनाभ, कौशल्य, लोकाशि, कुथुमि, सुमन्तु, जैमिनी, कबन्ध, कुश कन्धर ॥१७॥ प्लुख, दार्भायणि, केतुमान, गौतम वल्लभी, मधुपिंग, श्वेतकेतु ॥ १८ ॥

उशिज, बृहदस्व, देवल, कवि, शालहोत्र, सुवेश, शम्बूक, आश्वलायन, शरद्वसु, छगलकुण्ड, कर्णकुम्ब, प्रवाहुक, उलूक, विद्युत, शंबक, आश्वलायन ॥ १९ ॥ अक्षापद, कणाद, उलूकवत्स; कुशिक, गर्ग, मित्रक, रुष्य ॥ २० ॥ यह योगाचार्य महेशके शिष्य हैं, इन सबकी संख्या ११२ एकसौ बाह होती है ॥ २१ ॥ यह सब पाशुपतव्रतयुक्त भस्म अंगमें लगानेवाले सर्व शास्त्रार्थके तत्त्वके जाननेवाले वेदवेदांगके पारगामी ॥ २२ ॥ शिवके आश्रमसे प्रीति करनेवाले शिव ज्ञानपरायण सम्पूर्ण संगसे हीन एक शिवमेंही मन लगानेवाले ॥ २३ ॥ शीतोष्णादि द्वन्द्व

उशिजो बृहदश्वश्च देवलः कविरेव च ॥ शालिहोत्रः सुवेषश्च युवनाश्वः शरद्वसुः ॥१९॥ अक्षपादःकणादश्च उलूको वत्स एव च ॥ कुलिकश्चैव गर्गश्च मित्रको रुष्य एव च ॥२०॥ एते शिष्या महेशस्य योगाचार्यस्वरूपिणः ॥ संख्या च शतमेतेषां सह द्वादशसंख्यया ॥२१॥ सर्वे पाशुपताःसिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहाः ॥ सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा वेदवेदांगपारगाः ॥ २२ ॥ शिवाश्रमरतास्सर्वे शिवज्ञानपरायणाः ॥ सर्वे संगविनिर्मुक्ताः शिवैकासक्तचेतसः ॥ २३ ॥ सर्वद्वंद्वसहा धीराः सर्वभूतहिते रताः ॥ ऋजवो मृदवः स्वस्था जितक्रोधा जितेंद्रियाः ॥ २४ ॥ रुद्राक्षमालाभरणास्त्रिपुंड्रांकितमस्तकाः ॥ शिखाज टास्सर्वजटा अजटा मुंडशीर्षकाः ॥ २५ ॥ फलमूलाशनप्रायाः प्राणायामपरायणाः ॥ शिवाभिमानसंपन्नाः शिवध्यानैकतत्पराः ॥ २६ ॥समुन्मथितसंसारविषवृक्षांकुरोद्गमाः ॥ प्रयातुमेव सन्नद्धाः परं शिवपुरं प्रति ॥२७॥

सहनेवाले सर्वभूतके हितकारी सीधे मृदु स्वस्थ जितक्रोध जितेन्द्रिय ॥ २४ ॥ रुद्राक्षकी मालाके आभरण धारण करनेवाले मस्तकमें त्रिपुंड्र लगाये शिखामात्र जटाधारी जटा तथा जटारहित मुण्डशिर ॥ २५ ॥ फलमूलभोजी, प्राणायाममें परायण शैवमार्गके अभिमानमें तत्पर शिवके ही ध्यानमें तत्पर ॥ २६ ॥ संसाररूपी विषवृक्षके अंकुर नष्ट करनेवाले शिवके पुरमें जानेको कटिबद्ध हैं ॥ २७ ॥

---

१ छगलःकुण्डकर्णश्च कुम्भश्चैव प्रवाहुकः । उलूको विद्युतश्चैव शम्बुकश्चाश्वलायनः । इत्यधिकं पद्यं पुस्तके ।

इन श्वेतादिको अपना आचार्य मानकर नित्य शिवका अर्चन करे वह शिवके स्थानको चलाजाता है इसमें संदेह नहीं है ॥ २८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकयां स० वा० सं० उत्तरखण्डे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीकृष्ण बोले, हे भगवन् ! हे सर्वयोगीन्द्र ! हे गणेश्वर ! हे मुनीश्वर! कार्तिकेयके समान बुद्धिमान् सब ज्ञानके निधि हे गुरो ! ॥ १ ॥ प्रायः तुम पृथ्वीमें मनुष्योंके कर्मबन्धन नष्ट करनेको ही प्रगट हुए हो, तुम परमेश्वर ही महर्षिका शरीर धारणकर इस स्थानमें स्थित हुए हो ॥ २ ॥ नहीं तो इस जगत्में देवता तुम्हारे सिवाय चिदात्मक

सदेशिकानिमान्मत्वा नित्यं यश्शिवमर्चयेत् ॥ सयाति शिवसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ २८ ॥ इतिश्रीशिवमहापु० सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवस्य योगावतारवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ कृष्ण उवाच ॥ भगवन्सर्वयोगीन्द्र गणेश्वर मुनीश्वर ॥ षडाननसमप्रज्ञ सर्वज्ञाननिधे गुरो ॥१॥ प्रायस्त्वमवतीर्योर्व्यां पाशविच्छित्तये नृणाम् ॥ महर्षिवपुरास्थाय स्थितोऽसि परमेश्वर ॥ २ ॥ अन्यथा हि जगत्यस्मिन् देवो वा दानवोऽपि वा ॥ त्वत्तोन्यः परमं भावं को जानीयाच्छिवात्मकम् ॥ ३ ॥ तस्मात्तव मुखोद्गीर्णं साक्षादिव पिनाकिनः ॥ शिवज्ञानामृतं पीत्वा न मे तृप्तमभून्मनः ॥ ४ ॥ साक्षात्सर्वजगत्कर्तुर्भर्तुरंकं समाश्रिता ॥ भगवन्किन्नु पप्रच्छ भर्तारं परमेश्वरी ॥ ५ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ स्थाने पृष्टं त्वया कृष्ण तद्वक्ष्यामि यथातथम् ॥ भवभक्तस्य युक्तस्य तव कल्याणचेतसः ॥ ६ ॥ महीधरवरे दिव्ये मंदरे चारुकंदरे ॥ देव्या सह महादेवो दिव्यो ध्यानगतोऽभवत् ॥ ७ ॥

ईश्वरका परमभाव कौन जान सकता है ॥ ३ ॥ इस कारण शिवके समान साक्षात् तुम्हारे मुखसे निकले हुए शिवज्ञानामृतका पान करनेसे मेरा मन तृप्त नहीं होता है ॥४॥ साक्षात् जगत्पतिकी गोदीमें बैठी हुई परमेश्वरीने किस प्रकारसे प्रश्न किया ॥५॥ उपमन्यु बोले, हे कृष्ण ! तुमने अच्छी बात पूँछी, इनको मैं यथायोग्य वर्णन करता हूँ, शिवकी भक्तिसे युक्त होकर तुम कल्याणचित्तवाले हो ॥ ६ ॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ मंदरपर्वतमें जिसकी सुन्दर कंदरा है, देवीके सहित महादेव दिव्य वनमें गये ॥ ७ ॥

उस समय शोभन हास्यवाली देवीकी प्रिय सखी शुभावती फूले हुए मनोहर फूल तोडकर लाई ॥ ८ ॥ उस समय शिवने देवीको गोदमें बैठा कर उन पुष्पोंसे अलंकृत कर महाप्रसन्नता प्रगट की ॥ ९ ॥ तब अतःपुरमें विचरनेवाली दिव्य भूषणवाली देवी और अन्तरंग गणेन्द्र, सब लोकोंकी महेश्वरी भगवती ॥ १० ॥ और सब लोकोंके महेश्वर परिपूर्ण भर्ता देव शंकर और देवीको चमर हाथमें लेकर सेवा करने लगे ॥ ११ ॥ तब उन दोनोंके विनोदके निमित्त प्रिय कथा प्रारम्भ हुई. जो कि, लोककी रक्षाके निमित्त थी जो कि शिवके शरणमें आये थे ॥ १२ ॥ उस समय सर्वलोक महेश्वरी समयको देखकर सबलोकके महेश्वर अपने स्वामीसे पूँछने लगी ॥ १३ ॥ देवी बोली, हे महादेव !

तदा देव्याः प्रियसखी सुस्मितास्या शुभावती ॥ फुल्लान्यतिमनोज्ञानि पुष्पाणि समुदाहरत् ॥ ८ ॥ ततः स्वमंकमारोप्य देवीं देववरोरहः ॥ अलंकृत्य च तैः पुष्पैरास्ते हृष्टतरः स्वयम्॥ ९ ॥ अथांतःपुरचारिण्यो देव्यो दिव्यविभूषणाः॥अंतरंगा गणेन्द्राश्च सर्वलोकमहेश्वरीम् ॥ १० ॥ भर्तारं परिपूर्णं च सर्वलोकमहेश्वरम् ॥ चामरासक्तहस्ताश्च देवीं देवं सिषेविरे ॥ ११ ॥ ततः प्रियाः कथा वृत्ता विनोदाय महेशयोः ॥ त्राणाय च नृणां लोके ये शिवं शरणं गताः ॥१२॥ तदावसरमालोक्य सर्वलोक महेश्वरी ॥ भर्तारं परिपप्रच्छ सर्वलोकमहेश्वरम् ॥१३॥ देव्युवाच ॥ केन वश्यो महादेवो मर्त्यानां मंदचेतसाम् ॥ आत्म तत्त्वाद्यशक्तानामात्मनामकृतात्मनाम् ॥ १४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ न कर्मणा न तपसा न जपैर्नासनादिभिः ॥ न ज्ञानेन न चान्येन वश्योऽहं श्रद्धया विना ॥ १५ ॥ श्रद्धा मय्यस्ति चेत्पुंसां येन केनापि हेतुना ॥ वश्यः स्पृश्यश्च दृश्यश्च पूज्यस्संभाष्य एव च ॥ १६ ॥ साध्या तस्मान्मयि श्रद्धा मां वशीकर्तुमिच्छता ॥ श्रद्धा हेतुस्स्वधर्मस्य रक्षणं वर्णिनामिह ॥ १७ ॥

मंदचित्तवाले मनुष्योंके वशमें किस प्रकारसे हो सकते हो ? जो अल्पभक्ति अल्पशक्ति अल्पमानसिक बल अकृत बुद्धि हैं उनके कैसे वशीभूत हो ॥ १४ ॥ ईश्वर बोले, कर्म जप तप समाधि और ज्ञानसे भी बिना श्रद्धाके वशीभूत नहीं हो सकता हूँ ॥ १५ ॥ जो पुरुषोंकी मुझमें श्रद्धा है, तो जिस किसी उपायसे वशी करना देखना छूना सम्भाषण करना हो ॥ १६ ॥ तो मुझे वश करनेको श्रद्धा करनी चाहिये, श्रद्धा ही अपने धर्मका हेतु है, और अपने वर्णकी रक्षा है ॥ १७ ॥

जो मनुष्य अपने वर्णाश्रम धर्मके अनुसार वर्तता है, उसीकी श्रद्धा मुझमें होगी दूसरेकी नहीं ॥१८॥ आश्रमवालोंको सम्पूर्ण शास्त्रकी सिद्धि ब्रह्माने पूर्वकालमें मेरी ही आज्ञासे कल्पना की है ॥ १९ ॥ वह ब्रह्माका उपनयन यागादि गायत्रीरूप धर्म बहुत वित्त और क्रियारूप है उसमें फल तो अधिक नहीं है परन्तु क्लेश और परिश्रम बहुत है उस बडे भारी धर्मसे दुर्लभ श्रद्धाको प्राप्त होकर ॥ २० ॥ जो वर्णाश्रमी अनन्यमनसे मुझको प्राप्त होते हैं उनको सुखमार्गसे धर्म कामार्थकी तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥२१॥ वर्णाश्रमके आचारकी मैंने फिर कल्पना की है, उन वर्णाश्रमोंमें जो मेरी भक्ति करनेवाले हैं ॥ २२ ॥ उसमें सबका अधिकार नहीं है, यह मेरी नैष्ठिकी बुद्धि निश्चयवती है वर्णा

स्ववर्णाश्रमधर्मेथ वर्तते यस्तु मानवः॥तस्यैव भवति श्रद्धा मयि नान्यस्य कस्यचित्॥१८॥ आम्नायसिद्धमखिलं धर्ममाश्रमिणामिह॥ब्रह्मणा कथितं पूर्वं ममैवाज्ञापुरस्सरम्॥१९॥स तु पैतामहो धर्मो बहुवित्तक्रियान्वितः॥ नात्यन्तफलभूयिष्ठःक्लेशायाससमन्वितः॥तेन धर्मेण महतां श्रद्धां प्राप्य सुदुर्लभाम्॥२०॥वर्णिनो ये प्रपद्यंते मामनन्यसमाश्रयाः॥तेषां सुखेन मार्गेण धर्मकामार्थमुक्तयः॥२१॥वर्णाश्रमसमाचारो मया भूयः प्रकल्पितः॥ तस्मिन्भक्तिमतामेव मदीयानां तु वर्णिनाम्॥२२॥अधिकारो न चान्येषामित्याज्ञा नैष्ठिकी मम ॥तदाज्ञप्तेन मार्गेण वर्णिनो मदुपाश्रयाः॥२३॥ मलमायादिपाशेभ्यो विमुक्ता मत्प्रसादतः॥ पुरं मदीयमासाद्य पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥परमं मम साधर्म्यं प्राप्य निर्वृतिमाययुः॥२४॥तस्माल्लब्ध्वाप्यलब्ध्वा वा वर्णधर्मं मयेरितम् ॥आश्रित्य मम भक्तश्चेत्स्वात्मनात्मानमुद्धरेत्॥२५॥अलब्धलाभ एवैष कोटिकोटिगुणाधिकः॥तस्मान्मे मुखतो लब्धं वर्णधर्मं समाचरेत्॥२६॥ममावतारा हि शुभे योगाचार्यच्छलेन तु॥ सर्वांतरेषु सन्त्यार्ये संततिश्च सहस्रशः ॥ २७ ॥

श्रम धर्मवाले मेरे उपदेश किये मार्गसे ॥ २३ ॥ मेरे प्रसादसे मल मायादिके पाशसे मुक्त हो जाते हैं फिर आगमनसे रहित मेरे पुरको प्राप्त होकर मेरे परम साधर्म्यको प्राप्तहोते हैं ॥ २४ ॥ यह मेरा कहा हुआ धर्म लेकर मेरे भक्तोंका आश्रय कर वर्णधर्मको कर अपनी आत्माको उद्धार करे ॥ २५ ॥ अज्ञानधर्मसे करोड २ गुना अधिक धर्म जानकर करनेसे होता है, इस कारण मेरे मुखसे सुनकर धर्म करे ॥ २६ ॥ हे शुभे ! योगाचार्यके छलसे मेरे अवतार संपूर्ण मन्वन्तरोंमें सहस्रों होते हैं ॥ २७ ॥

हे सुरेश्वरि ! जो अबुद्ध हैं, अभक्त हैं, उनको यह ज्ञान दुर्लभ है इस कारण यत्नसे इस ज्ञानको आश्रय करना चाहिये ॥ २८ ॥ वही हानि वही महा छिद्र वही मोह वही अन्ध और मूर्खता है, जो मोक्षमार्गके सिवाय दुसरी जगह श्रम करे ॥ २९ ॥ हे सुरेश्वरी ! ज्ञान क्रिया पूजा और योग यह सनातन चतुष्पाद धर्म कहा है ॥ ३० ॥ जीवोंको कर्मानुसार फल देनेवाले शिवका ज्ञान पशुपति ज्ञान है, पूर्वोक्त छः मार्ग शुद्धिकी विधिसे उसकी क्रिया कही जाती है ॥ ३१ ॥ वर्णाश्रमसे प्रयुत हुए मुझसे ही विधान किये हुए मेरे अर्चनादि धर्मकी चर्या कहाती है ॥ ३२ ॥ मेरे ही कहे मार्गके अनुसार मुझमें ही चित्त लगानेसे अन्य स्थानोंमें वृत्तियोंको न जाने देनेका नाम योग है ॥ ३३ ॥

अयुक्तानामबुद्धीनामभक्तानां सुरेश्वरि॥ दुर्लभं संततिज्ञानं ततो यत्नात्समाश्रयेत् ॥ २८ ॥ सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोह स्सांधमूकता ॥ यदन्यत्र श्रमं कुर्य्यान्मोक्षमार्गबहिष्कृतः ॥२९॥ज्ञानं क्रिया च चर्या च योगश्चेति सुरेश्वरि ॥ चतुष्पादः समाख्यातो मम धर्मस्सनातनः ॥३०॥ पशुपाशपतिज्ञानं ज्ञानमित्यभिधीयते ॥ षडध्वशुद्धि र्विधिना गुर्वधीना क्रियोच्यते ॥३१॥ वर्णाश्रमप्रयुक्तस्य मयैव विहितस्य च ॥ ममार्च्चनादिधर्मस्य चर्य्या चर्य्येति कथ्यते ॥३२॥ मदुक्तेनैव मार्गेण मय्यव स्थितचेतसः ॥ वृत्त्यंतरनिरोधोयो योग इत्यभिधीयते ॥३३॥ अश्वमेधगणाच्छ्रेष्ठं देवि चित्तप्रसा धनम्॥ मुक्तिदं च तथा ह्येतदुष्प्राप्यं विषयैषिणाम् ॥ ३४ ॥ विजितेंद्रियवर्गस्य यमेन नियमेन च ॥ पूर्वपापहरो योगो विरक्त स्यैव कथ्यते ॥३५॥ वैराग्याज्जायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रवर्तते ॥ ॥ ३६ ॥ योगज्ञः पतितो वापि मुच्यते नात्र संशयः ॥ दया कार्याथ सततमहिंसा ज्ञानसंग्रहः ॥३७॥ सत्यमस्तेयमास्तिक्यं श्रद्धा चेंद्रियनिग्रहः ॥ अध्यापनं चाध्ययनं यजनं याजनं तथा ॥ ३८ ॥

हे देवी ! चित्तका निर्मल होना सौ अश्वमेध यज्ञसे भी श्रेष्ठ है, यही मुक्तिका देनेवाला विषयी पुरुषोंको असाध्य है ॥ ३४ ॥ जिसने यम नियम करके इन्द्रियें जीत ली हैं, वह सब पाप हरनेवाला योगविरक्तोंको कहते हैं ॥ ३५ ॥ वैराग्यसे ज्ञान और ज्ञानसे योग प्रवृत्त होता है, ॥३६॥ योगका जाननेवाला पतित भी मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं, सदा दया करनी, अहिंसा, ज्ञानका संग्रह करना ॥३७॥ सत्य बोलना, चोरी न करनी; आस्तिकपना, श्रद्धा, इन्द्रियनिग्रह, पढना, पढाना, यज्ञ करना, कराना ॥ ३८ ॥

ध्यान ईश्वरभाव सदा ज्ञानशीलता जो ब्राह्मण इस प्रकार ज्ञानयोगकी सिद्धिके निमित्त वर्तता है ॥ ३९ ॥ वह शीघ्रही ज्ञानको प्राप्तहो योगको जानता है, हे प्रिये ! क्षणमात्रमें योगी ज्ञानाग्निसे इस देहको भस्म करके ॥ ४० ॥ मेरे प्रसादसे कर्मयोगका जाननेवाला पाशबंधनको छोड देगा, पुण्य और अपुण्यात्मक कर्ममुक्तिका प्रतिबंधक रोकनेवाला है, इस कारण योगी पुण्य और अपुण्यसे अलग रहे ॥ ४१ ॥ फलकी कामनासे जो कर्म किया जावे वह बंधनको प्राप्त करता है, कर्ममात्रका न करना त्याग नहीं किन्तु कर्मफलके त्यागका नाम

ध्यानमीश्वरभावश्च सततं ज्ञानशीलता ॥ य एवं वर्त्तते विप्रो ज्ञानयोगस्य सिद्धये ॥ ३९ ॥ अचिरादेव विज्ञानं लब्ध्वा योगं च विंदति ॥ दग्ध्वा देहमिमं ज्ञानी क्षणाज्ज्ञानाग्निना प्रिये ॥ ४० ॥ प्रसादान्मम योगज्ञःकर्मबंधं प्रहास्यति ॥ पुण्यःपुण्यात्मकं कर्म मुक्तेस्तत्प्रतिबंधकम् ॥ तस्मान्नियोगतो योगी पुण्यापुण्यं विवर्जयेत् ॥४१॥ फलकामनया कर्मकरणात्प्रतिबध्यते ॥ न कर्ममात्रकरणात्तस्मात्कर्मफलं त्यजेत् ॥ ४२ ॥ प्रथमं कर्मयज्ञेन बहिः सम्पूज्य मां प्रिये॥ ज्ञानयोगरतो भूत्वा पश्चाद्योगं समभ्यसेत् ॥ ४३ ॥ विदिते मम याथात्म्ये कर्मयज्ञेन देहिनः ॥ न यजंति हि मां युक्ताः समलोष्टाश्मकांचनाः ॥ ४४ ॥ नित्ययुक्तो मुनिःश्रेष्ठो मद्भक्तश्च समाहितः ॥ ज्ञानयोगरतो योगी मम सायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४५ ॥ अथाविरक्तचित्ता ये वर्णिनो मदुपाश्रिताः ॥ ज्ञानचर्याक्रियास्वेव तेऽधिकुर्य्युस्तदर्हकाः ॥ ४६ ॥ द्विधा मत्पूजनं ज्ञेयं बाह्यमाभ्यंतरं तथा ॥ वाङ्मनःकायभेदाच्च त्रिधा मद्भजनं विदुः ॥ ४७ ॥

कर्मत्याग है ॥ ४२ ॥ हे प्रिये ! प्रथम कर्मयज्ञसे बाहर मेरी पूजा करे, फिर ज्ञानयज्ञमें प्रीति करताहुआ योग करे ॥ ४३ ॥ मुझे यथार्थ जानकर देहधारी कर्म यज्ञद्वारा फिर वे भक्त यजन नहीं करते, उनको मट्टी कांचन बराबर होता है ॥ ४४ ॥ नित्य युक्त होकर मेरे भक्त ज्ञानयोगमें रत होकर मेरे सायुज्यको प्राप्त होते हैं ॥ ४५ ॥ जो विरक्त चित्त, वर्णधर्मी मेरी उपासना करते हैं, ज्ञानचर्या क्रिया करते हैं वेभी उसके करनेके योग्य हैं; वे उसको करें ॥ ४६ ॥ बाहर, भीतर, भीतर बाहर, वाणी मन कायाके भेदसे

तीन प्रकारसे मेरा भजन होता है ॥ ४७ ॥ जप, कर्म, तप, ध्यान, ज्ञान, पांच प्रकारसे सत्पुरुषोंने कहा है वही भजन है ॥ ४८ ॥ दूसरेमें हमारी अर्चा (पूजा) जो दूसरोंसे ज्ञात होती है बाह्य पूजा कहाती है और जो अपने आप जानता है वह अभ्यन्तर पूजन कहता है ॥ ४९ ॥ मनोमयचित्त है उसको मनोमात्र कहते हैं; अर्थात् इतनेहीके योग्य मन है, मेरे नाममें जिसकी वाणी निरत है वही सार्थक है, और जो मेरे नामसे रहित है वह कुछ नहीं ॥ ५० ॥ वह मेरे शासनसे आदेशके लिये लिंग और त्रिपुंड्रादिसे अंकित हो मेरा भजन करता है वह कायासे पूजन है दूसरा नहीं ॥ ५१ ॥ मेरी अर्चा करनी यही बाह्य कर्म है, मेरी आज्ञासे रहित यज्ञादि कर्म नहीं

तपः कर्म जपो ध्यानं ज्ञानं वेत्यनुपूर्वशः ॥ पंचधा कथ्यते सद्भिस्तदेव भजनं पुनः ॥ ४८ ॥ अन्यात्मविदितं बाह्यमस्मद भ्यर्चं नादिकम् ॥ तदेव तु स्वसंवेद्यमाभ्यंतरमुदाहृतम् ॥ ४९ ॥ मनोमत्प्रवणं चित्तं न मनोमात्रमुच्यते ॥ मन्नामनिरता वाणी वाङ् मता खलु नेतरा ॥ ५० ॥ लिंगैर्मच्छासनादिष्टैस्त्रिपुंड्रादिभिरंकितः ॥ ममोपचारनिरतः कायः कायो न चेतरः ॥ ५१ ॥ मदर्चा कर्म विज्ञेयं बाह्यं यागादिनोच्यते ॥ मदर्थं देहसंशोषस्तपः कृच्छ्रादि नो मतम् ॥ ५२ ॥ जपः पंचाक्षराभ्या सः प्रणवाभ्यास एव च ॥ रुद्राध्यायादिकाभ्यासो न वेदाध्ययनादिकम् ॥५३॥ ध्यानम्मद्रूपचिंताद्यं नात्माद्यर्थसमाधयः ॥ ममागमार्थविज्ञानं ज्ञानं नान्यार्थवेदनम् ॥ ५४ ॥ बाह्ये वाभ्यंतरे वाथ यत्र स्यान्मनसो रतिः ॥ प्राग्वासनावशाद्देवि तत्त्व निष्ठां समाचरेत् ॥ ५५ ॥ बाह्यादाभ्यंतरं श्रेष्ठं भवेच्छतगुणाधिकम् ॥ असंकरत्वाद्दोषाणां दृष्टानामप्यसम्भवात् ॥ ५६ ॥

मेरे निमित्त देहको शोषण करनाही तप है, अन्य नहीं ॥ ५२ ॥ जप पञ्चाक्षरका अभ्यास प्राणायामका अभ्यास रुद्राध्यायका अभ्यास करनाही अभ्यास है; पंचाक्षरादिरहित वेदाभ्यास कुछ नहीं ॥ ५३ ॥ ध्यान मेरे रूपकी चिन्ताही समाधि है आत्माके निमित्त समाधि नहीं, है; मेरे शास्त्र अर्थका ज्ञानही ज्ञान है; दूसरे अर्थोंका जानना नहीं ॥ ५४ ॥ बाह्य अभ्यन्तर जहां प्रीति हो हे देवि ! पूर्व जन्मके वासनाअनुसार वही प्रीति करे ॥ ५५ ॥ बाह्यसे अभ्यन्तर पूजा सौ गुणी अधिक फल देती है; कारण कि उसमें दोषकी प्राप्ति

नहीं होसकती, वहां बाहरके दोष नहीं दीखते ॥ ५६ ॥ जिसके अन्तःकरणमें अशुद्धि है वह पवित्र भी अपवित्र है ॥ ५७ ॥ बाह्य और अभ्यन्तरमें जो भावपूर्वक भजन करना है वही भजन है, और भावरहित भजन नहीं है. हे देवि ! वह तो विप्रलम्भका कारण है ॥ ५८ ॥ कृतकृत्य और नित्य तृप्त मनुष्योंसे मेरा क्या हो सकता है ? जो बाहर भीतर एकसा हो उसके भावमें ग्रहण करता हूं ॥ ५९ ॥ हे देवि ! एकात्मासे भाव करनाही क्रिया है; यही मेरा सनातन धर्म है; मन वचन कर्मसे कहीं किसी फलकी अपेक्षा न करनी ॥ ६० ॥ हे देवि ! फलके उद्देशसे मेरा आश्रय लघु कहाता है, फलार्थी फलके अभावसे मुझे छोडनेको समर्थ होता है ॥ ६१ ॥ जिस फलकी इच्छा करनेवालेका

शौचमाभ्यंतरं विद्यान्न बाह्यं शौचमुच्यते॥अंतः शौचविमुक्तात्मा शुचिरप्यशुचिर्यतः॥५७ बाह्यमाभ्यंतरं चैव भजनं भावपूर्वकम्॥ न भावरहितं देवि विप्रलंभैककारणम्॥५८कृतकृत्यस्य पूतस्य मम किं क्रियते नरैः॥बहिर्बाभ्यंतरं वाथ मया भावो हि गृह्यते५९॥ भावैकात्मा क्रिया देवि मम धर्मस्सनातनः॥मनसा कर्मणा वाचा ह्यनपेक्ष्य फलं क्वचित्॥६०॥फलोद्देशेन देवेशि लघुर्मम समाश्रयः॥फलार्थीतदभावे मां परित्यक्तुंक्षमो यतः॥६१फलार्थिनोऽपि यस्यैव मयि चित्तं प्रतिष्ठितम्॥भावानुरूपफलदस्तस्याप्यहमनिन्दिते॥६२॥फलानपेक्षया येषां मनो मत्प्रवणं भवेत्॥प्रार्थयेयुः फलं पश्चाद्भक्तास्तेऽपि मम प्रियाः॥६३॥प्राक् संस्कारवशादेव येविचिंत्य फलाफले॥विवशा मां प्रपद्यंते मम प्रियतमा मताः६४॥मल्लाभान्न परो लाभस्तेषामस्ति यथातथम्॥ममापि लाभस्तल्लाभान्नापरः परमेश्वरि ॥६५॥ मदनुग्रहतस्तेषां भावो मयि समर्पितः ॥फलं परमनिर्वाणं प्रयच्छति बलादिव ॥६६॥

मुझमें चित्त स्थित है, हे निन्दारहित ! उसको मैं भावके अनुसार फल देता हूँ ॥ ६२ ॥ और जिनका मन फलकी अपेक्षा त्यागकर मुझमें लगा हुआ है, और पीछे फलकी इच्छा करते हैं वे भी भक्त मेरे प्रिय हैं ॥ ६३ ॥ जो पहले फलके संस्कारके वशसे फलाफलकी चिन्ता करके विवश हो मुझको प्राप्त होते हैं वे मेरे अत्यन्त प्यारे हैं ॥ ६४ ॥ मेरे लाभसे अधिक उनको और कुछ लाभ नहीं है. हे परमेश्वरि ! उनके लाभसे अधिक और मुझको कुछ लाभ नहीं है ॥ ६५ ॥ जिनका भाव मुझमें है उनपर मेरी कृपा होती है; और मैं अतिबलसे

उनको निर्वाणपद देता हूँ ॥ ६६ ॥ जिन महात्माओंने मुझमें चित्त लगा रक्खा है, जो मेरे अनन्य भक्त हैं उन मेरे धर्माधिकारियोंके आठ प्रकारके लक्षण हैं ॥ ६७ ॥ मेरे भक्त जनोंसे प्रीति पूजा अनुमोदन स्वयं अर्चा करनी, मेरे निमित्तही अंगोंकी चेष्टा करनी ॥६८॥ मेरे कथा श्रवणमें भक्ति स्वरनेत्र अंगकी विक्रिया मेरे निमित्त करनी, नित्य मेराही स्मरण और मेराही जो आश्रय करता है ॥६९॥ इस प्रकार का चिह्न जिस म्लेच्छमें वर्तता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण मुनि यति और पंडित है ॥७०॥ मुझे चतुर्वेदी प्रिय नहीं हैं; परन्तु जो मेरा भक्त चाण्डाल

महात्मनामनन्यानां मयि संन्यस्तचेतसाम् ॥ अष्टधा लक्षणं प्राहुर्मम धर्माधिकारिणाम् ॥ ६७ ॥ मद्भक्तजनवात्सल्यं पूजायां चानु मोदनम् ॥ स्वयमभ्यर्चनं चैव मदर्थे चांगचेष्टितम् ॥ ६८ ॥ मत्कथाश्रवणे भक्तिः स्वरनेत्रांगविक्रियाः ॥ममानुस्मरणं नित्यं यश्चमामुपजीवति ॥ ६९ ॥ एवमष्टविधं चिह्नं यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्तते ॥ स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान्स यतिस्स च पंडितः ॥ ७० ॥ न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तो श्वपचोऽपि यः ॥ तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम् ॥ ७१ ॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मेभक्त्या प्रयच्छति ॥ तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ७२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायमुत्तरखण्डे शिवभक्तिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ईश्वर उवाच ॥ अथ वक्ष्यामि देवेशि भक्तानामधिकारिणाम् ॥ विदुषां द्विजमुख्यानां वर्णधर्मसमासतः ॥१॥ त्रिः स्नानं चाग्निकार्यं च लिंगार्चनमनुक्रमम् ॥ दानमीश्वरभावश्च दया सर्वत्रा सर्वदा ॥ २ ॥ सत्यं संतोषमा स्तिक्यमहिंसा सर्वजंतुषु ॥ह्रीश्रद्धाध्ययनं योगस्सदाध्यापनमेव च ॥ ३ ॥

है वह श्रेष्ठ है.उसकी दीहुई पूजादिको मैं ग्रहण करता हूँ,उसका संस्कार मेरे समान है॥७१॥पत्र,पुष्प, फल जल जो कुछभी भक्तिसे मुझे देता है, उसको मैं नाश नहीं करता॥७२॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे दशमोऽध्यायः॥१०॥ महादेवजी बोले, हे देवेशि! अधिकारी भक्त पंडित ब्राह्मण श्रेष्ठोंके वर्ण धर्मको समाससे कहाता हूँ॥१॥ त्रिकाल स्नान, अग्निकार्य, लिंगार्चन, दान ईश्वरभाव सर्वत्र दया करनी॥२॥ सत्य, सन्तोष,

आस्तिक्य' सब प्राणियोंकी हिंसासे पृथकता, लज्जा, श्रद्धा, वेदपाठ, योग करना ॥ ३ ॥ व्याख्यान, ब्रह्मचर्य, तप, क्षमा, शौच, शिखा, जनेऊ, पगडी, दुपट्टा धारण करना ॥ ४ ॥ निषिद्ध वस्तुको सेवन न करना, भस्म रुद्राक्षका धारण करना, पर्वमें पूजा विशेषकर चतुर्दशीमें पूजन करना ॥ ५ ॥ ब्रह्मकूर्च विधिसे गव्यका पान विधिपूर्वक महीने २ में करना; और उसीसे मुझे स्नान कराय विशेष पूजा करनी ॥ ६ ॥ सर्व क्रिया अन्नका त्याग श्राद्धान्नका छोड देना; और विशेषकर यावक (कुलथी व्रीहिका भेद) का त्याग करे ॥ ७ ॥ मद्य, मद्यकी गन्ध, मेरे अर्पण कीहुई नैवेद्यका त्याग सर्व वर्णोंमें सामान्य और विशेष करके ब्राह्मणोंका धर्म है ॥ ८ ॥ क्षमा शान्ति संतोष सत्य

व्याख्यानं ब्रह्मचर्यं च श्रवणं च तपः क्षमा ॥ शौचं शिखोपवीतं च उष्णीषं चोत्तरीयकम् ॥ ४ ॥ निषिद्धासेवनं चैव भस्म रुद्राक्षधारणम् ॥ पर्वण्यभ्यर्चनं देवि चतुर्दश्यां विशेषतः ॥ ५ ॥ पानं च ब्रह्मकूर्चस्य मासि मासि यथाविधि ॥ अभ्यर्चनं विशेषेण तेनैव स्नाप्य मां प्रिये ॥ ६ ॥ सर्वक्रियान्न सन्त्यागः श्रद्धान्नस्य च वर्जनम् ॥ तथा पर्युषितान्नस्य यावकस्य विशेषतः ॥ ७ ॥ मद्यस्य मद्यगन्धस्य नैवेद्यस्य च वर्जनम् ॥ सामान्यं सर्ववर्णानां ब्राह्मणानां विशेषतः ॥ ८ ॥ क्षमा शांतिश्च सन्तोषस्सत्यमस्तेयमेव च ॥ ब्रह्मचर्यं मम ज्ञानं वैराग्यं भस्मसेवनम् ॥ ९ ॥ सर्वसंगनिवृत्तिश्च दशैतानि विशेषतः ॥ लिंगानि योगिनां भूयो दिवा भिक्षाशनं तथा ॥ १० ॥ वानप्रस्थाश्रमस्थानां समान मिदमिष्यते ॥ रात्रौ न भोजनं कार्यं सर्वेषां ब्रह्मचारिणाम् ॥ ११ ॥ अध्यापनं याजनं च क्षत्रियस्याप्रतिग्रहः ॥ वैश्यस्य च विशेषेण मयानात्र विधीयते ॥ १२ ॥रक्षणं सर्ववर्णानां युद्धे शत्रुवधस्तथा ॥ दुष्टपक्षिमृगाणां च दुष्टानां शातनं नृणाम् ॥१३॥

चोरी न करनी ब्रह्मचर्य मेरा ज्ञानवैराग्य भस्मका सेवन ॥ ९ ॥ सबके संगसे निवृत्ति विशेष करके यह बात करनी उचित हैं; योगियोंके लिंग यह हैं; दिनमें भिक्षा मांग लेनी ॥ १० ॥ यह वानप्रस्थ आश्रमोंका भी समानही धर्म है; योगी और यह एक धर्म करते हैं, सब ब्रह्मचारियोंको रात्रिमें भोजन न करना चाहिये ॥ ११ ॥ पढाना यज्ञ कराना प्रतिग्रह यह क्षत्रियको करना नहीं विशेषकर वैश्यके लिये मैंने अनुज्ञापन नहीं किया है ॥ १२ ॥ सब वर्णोंकी रक्षा करनी, युद्धमें शत्रुओंका वध, दुष्टपक्षी मृगोंका और दुष्ट

मनुष्योंका निग्रह करना ॥ १३ ॥ सब जगह अविश्वास, केवल मेरे योग में विश्वास करना, समयपर स्त्रीके संग (ऋतुकालमें गमन) सेनाका रक्षण ॥ १४ ॥ सदा दूत भेजकर लोकका वृत्तान्त जानना; अस्त्र वस्त्र कंचुक धारण, भस्म धारण करना ॥ १५ ॥ मेरे आश्रममें स्थित राजोंका यह धर्म है, गोरक्षा वाणिज्य कृषि यह कर्म वैश्योंका है ॥ १६ ॥ इन तीनों वर्णोंकी सेवा करनी शूद्रका धर्म है; बाग लगाना मेरे क्षेत्रका आश्रय ॥ १७ ॥ धर्मपत्नीमें गमन गृहस्थोंको उचित है; ब्रह्मचर्य करना वनमें

अविश्वासश्च सर्वत्र विश्वासो मम योगिषु ॥ स्त्रीसंसर्गश्च कालेषु चमूरक्षणमेव च ॥ १४ ॥ सदा संचारितैश्चारैर्लोकवृत्तांतवेद
नम् ॥ सदास्त्रधारणं चैव भस्मकंचुकधारणम्॥१५॥राज्ञां ममाश्रमस्थानामेष धर्मस्य संग्रहः॥ गोरक्षणं च वाणिज्यं कृषिर्वैश्यस्य
कथ्यते॥१६॥ शुश्रूषेतरवर्णानां धर्मः शूद्रस्य कथ्यते ॥ उद्यानकरणं चैव मम क्षेत्रसमाश्रयः ॥ १७ ॥ धर्मपत्न्यास्तु गमनंगृह
स्थस्य विधीयते ॥ ब्रह्मचर्यं वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥१८॥ स्त्रीणां तु भर्तृशुश्रूषा धर्मो नान्यस्सनातनः ॥ ममार्चनं
च कल्याणि नियोगो भर्तुरस्ति चेत् ॥१९॥ या नारी भर्तृशूश्रूषां विहाय व्रततत्परा ॥ सा नारी नरकं याति नात्र कार्या विचा
रणा ॥ २० ॥ अथ भर्तृविहिनाया वक्ष्ये धर्मं सनातनम् ॥ व्रतं दानं तपः शौचं भूशय्या नक्तभोजनम् ॥२१॥ ब्रह्मचर्यं सदा
स्नानं भस्मना सलिलेन वा ॥ शांतिर्मौनं क्षमा नित्यं संविभागो यथाविधि ॥ २२ ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां विशे
षतः ॥ एकादश्यां च विधिवदुपवासोममार्चनम् ॥ २३ ॥

स्थित यति और ब्रह्मचारी जनोंको उचित है ॥ १८ ॥ स्त्रीजनोंको भर्ताकी शुश्रूषाके सिवाय दूसरा धर्म नहीं है. हे कल्याणि स्वामीकी आज्ञा लेकर स्त्री मेरा पूजन करे ॥ १९ ॥ जो नारी भर्ताकी शुश्रूषा छोडकर व्रत करती है, स्त्री नरकको जाती है इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ स्वामीसे रहित स्त्रियोंका धर्म संक्षेपसे कहता हूं व्रत दान तप शौच पृथ्वीमें सोना रात्रिमें भोजन ॥ २१ ॥ ब्रह्मचर्य से रहना, भस्म वा जलसे स्नान करना शान्ति मौन क्षमा संविभाग दुष्टोंसे पृथक् रहना विधिपूर्वक ॥ २२ ॥ अष्टमी चौदश

और पौर्णमासीमें विशेष करके एकादशीमें विधिपूर्वक मेरा अर्चन करना उचित है ॥ २३ ॥ यह संक्षेपसे मैंने अपने आश्रमके स्थित होनेकी विधि कही. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यती, ब्रह्मचारी ॥ २४ ॥ उसी प्रकार वानप्रस्थ, गृहस्थ और शूद्र स्त्रियोंका यही सनातन धर्म है ॥ २५ ॥ हे देवि ! तुम्हें मेरा ध्यान औरसदा षडक्षरका जप करना चाहिये; यही वेदोक्त सब धर्मोंका सार है ॥ २६ ॥ और जो मनुष्य लोकमें अपनी इच्छासे व्रत धारण करनेवाले हैं अत्यन्त भाव और पूर्व संस्कारसे युक्त हैं ॥ २७ ॥ जो स्त्रियादि विषयोंमें विरक्त और अनुरक्त हैं, वे पापसे लिप्त नहीं होते जैसे पद्मपत्र जलसे लिप्त नहीं होता ॥ २८ ॥ उन विशुद्ध विवेकियोंको आत्मविज्ञान मेरे

इति संक्षेपतः प्रोक्तो मयाश्रमनिषेविणाम्॥ ब्रह्मक्षत्रविशां देवि यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥२४॥ तथैव वानप्रस्थानां गृहस्थानां च सुन्दरि ॥ शूद्राणामथ नारीणां धर्म एष सनातनः॥२५॥ ध्येयस्त्वयाहं देवेशि सदाजाप्यः षडक्षरः ॥ वेदोक्तमखिलं धर्ममिति धर्मार्थसंग्रहः ॥२६॥ अथ ये मानवा लोके स्वेच्छया धृतविग्रहाः॥ भावातिशयसंपन्नाः पूर्वसंस्कारसंयुताः॥२७॥ विरक्ता वानुरक्ता वा रुयादीनां विषयेष्वपि ॥ पापैर्न ते विलिंपंते पद्मपत्रमिवांभसा॥२८॥ तेषां ममात्मविज्ञानं विशुद्धानां विवेकिनाम् ॥ मत्प्रसादाद्विशुद्धानां दुःखमाश्रमरक्षणात्॥२९॥ नास्ति कृत्यमकृत्यं च समाधिर्वा परायणम् ॥ न विधिर्न निषेधश्च तेषां मम यथा तथा ॥३०॥ तथेह परिपूर्णस्य साध्यं मम न विद्यते ॥ तथैव कृतकृत्यानां तेषामपि न संशयः॥३१॥मद्भक्तानां हितार्थाय मानुषं भावमाश्रिताः ॥ रुद्रलोकात्परिभ्रष्टास्ते रुद्रा नात्र संशयः॥३२॥ ममानुशासनं यद्वद्ब्रह्मादीनां प्रवर्तकम् ॥ तथा नराणामन्येषां तन्नियोगः प्रवर्तकः ॥३३॥ ममाज्ञाधारभावेन सद्भावातिशयेन च ॥ तदालोकनमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ३४ ॥

प्रसादसे प्राप्त होता है. कारण कि, आश्रम धर्म रक्षण करना कठिन है ॥ २९ ॥ उनके निमित्त कृत्य अकृत्य समाधि परायण विधिनिषेध कुछ नहीं है ॥ ३० ॥ जिस प्रकार मुझे परिपूर्णको कुछ साध्य नहीं है; इसी कारण कृत कृत्य हुओंको कोई कार्य शेष नहीं रहता ॥३१॥ मेरे भक्तोंहीके हित करनेके निमित्त मनुष्य भावमें आश्रित हुए रुद्र लोकसे आये हुए मनुष्य रुद्ररूप ही हैं ॥ ३२ ॥ मेरी जो आज्ञा ब्रह्मादिको प्रवृत्त करनेवाली है; इसी प्रकार मेरी आज्ञा दूसरे मनुष्योंको भी प्रवृत्त करती है ॥ ३३ ॥ मेरी आज्ञाका धारण और मुझमें

अत्यन्त भाव लगाना जो करते हैं उनके दर्शन मात्रसे हो सब पाप क्षय होजाते हैं ॥ ३४ ॥ उन्हें अच्छे फल देनेवाले विश्वास प्रवृत्त होते हैं; मुझमें प्रेम करनेवले पुरुषोंके पहले ही अर्थ विदित होजाते हैं ॥ ३५ ॥ कंप स्वेद अश्रुपात कण्ठ और स्वर गद्गद आनन्द उप लब्धि अकस्मात् बारंबार होती है ॥ ३६ ॥ उन सब अव्यभिचारी लिंगों करके मंद मध्य उत्तम भावसे वे मनुष्य श्रेष्ठ जानने चाहिये ॥ ३७ ॥ जैसे अग्नि युक्त होनेसे वह लोहा केवल लोहाही नहीं रहता है, वैसे ही मेरे निकट होनेसे; फिर वे केवल मनुष्य ही नहीं किन्तु मेरा रूप होजाते हैं ॥ ३८ ॥ हाथ पैर आदिसे युक्त रूद्ररूप धारण करने वाले पुरुषोंको साधारण रूप जानकर निन्दा करनी

प्रत्ययाश्च प्रवर्तंते प्रशस्तफलसूचकाः॥मयि भाववतांपुंसां प्रागदृष्टार्थगोचराः॥३५॥कंपस्वेदोऽश्रुपातश्च कण्ठे च स्वरविक्रिया॥ आनंदाद्युपलब्धिश्च भवेदाकस्मिकी मुहुः ॥३६॥ स तैर्य्यस्तैस्समस्तैर्वा लिंगैरव्यभिचारिभिः ॥ मंदमध्योत्तमैर्भावैर्विज्ञेयास्ते नरोत्तमाः॥३७॥ यथायोग्निसमावेशान्नायो भवति केवलम्॥स तथैव मम सान्निध्यान्न ते केवलमानुषाः ॥ ३८ ॥ हस्तपादादि साधर्म्याद्रुद्रान्मर्त्यवपुर्धरान् ॥ प्राकृतानिव मन्वानो नावजानीत पंडितः ॥३९॥ अवज्ञानं कृतं तेषु नरैर्य्यामूढचेतनैः॥ आयुः श्रियं कुलं शीलं हित्वा निरयमावहेत्॥४०॥ ब्रह्मविष्णुसुरेशानामपि तूलायते पदम्॥ मत्तोन्यदनपेक्षाणामुद्धृतानां महात्मनाम् ॥४१॥ अशुद्धं बौद्धमैश्वर्यं प्राकृतं पौरुषं तथा ॥ गुणेशानामतस्त्याज्यं गुणातीतपदैषिणाम् ॥४२॥ अथ किं बहुनोक्तेन श्रेयः प्राप्त्यैकसाधनम् ॥ मयि चित्तसमासंगो येन केनापि हेतुना ॥४३॥ उपमन्युरुवाच ॥ इत्थं श्रीकण्ठनाथेन शिवेन परमात्मना ॥ हिताय जगतामुक्तो ज्ञानसारार्थसंग्रहः ॥४४॥

उचित नहीं है ॥ ३९ ॥ जो मूर्ख चित्तवाले मनुष्य उनका तिरस्कार कहते हैं, उनकी आयु शील कुल नष्ट होकर नरककी प्राप्ति होती है ॥ ४० ब्रह्मा विष्णु महेशोंका पद तोला जाय तो लघु होजाता है, मुझसे सिवाय अनपेक्ष उद्धृत महात्माओंका ॥ ४१ ॥ अशुद्ध बुद्धिका ऐश्वर्य प्राकृत पुरुषार्थ गुणोंकी ईशता गुणातीत पदकी इच्छा करनेवालोंको छोडनी चाहिये ॥ ४२ ॥ बहुत करनेसे क्या है मंगलकी प्राप्तिका एक ही साधन है कि किसी प्रकार से मुझमें चित्त लगाना ॥ ४३ ॥ उपमन्यु बोले, जब इस प्रकार श्रीकण्ठ परमात्मा शिवने ज्ञानार्थ

सारसंग्रह कहा ॥ ४४ ॥ विज्ञानसंग्रहमें इतिहास पुराण आदि विद्याओंका व्याख्यान कहा है ॥४५॥ ज्ञान ज्ञेय जानने योग्य अनुष्ठान करनेयोग्य साधन साध्य षडर्थोंका यह संग्रह वर्णन किया है ॥४६॥ गुरुसे प्राप्तहुआ शिवजीका ज्ञान जीवोंको जानना उचित है, लिंगार्चनादिका अनुष्ठान भक्तोंको करना उचित है ॥४७॥ शिव मंत्रादिका साधन शिवको समानता षडर्थ संग्रहके ज्ञानसे प्राणी सर्वज्ञ होजाता है ॥४८॥ पहले यज्ञादि कर्म भक्ति और धनके अनुसार कर पहले बाह्य और फिर शिवका अन्तर पूजन करना चाहिये ॥ ४९ ॥ जिसकी अन्तर पूजनमें प्रीति है और बाह्य कर्ममें गौरवसे नहीं है; उन महात्माको बाह्य कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ५० ॥ जो शिवके भक्त ज्ञानामृतसे तृप्त हैं हे कृष्ण ?

विज्ञानसंग्रहस्यास्य वेदशास्त्राणि कृत्स्नशः ॥ सेतिहासपुराणानि विद्या व्याख्यानविस्तरः॥४५॥ ज्ञानं ज्ञेयमनुष्ठेयमधिकारोऽथ साधनम् ॥ साध्यं चेति षडर्थानां संग्रहत्वेष संग्रहः॥४६॥गुरोरधिकृतं ज्ञानंज्ञेयं पाशः पशुः पतिः॥ लिंगार्चनाद्यनुष्ठेयंभक्तस्त्वधिकृतोऽपि यः॥ ४७ ॥ साधनं शिवमंत्राद्यं साध्यं शिवसमानता॥ षडर्थसंग्रहस्यास्य ज्ञानात्सर्वज्ञतोच्यते॥४८॥ प्रथमं कर्म यज्ञादेर्भक्त्या वित्तानुसारतः॥ बाह्येभ्यर्च्यशिवंपश्चादंतर्यागरतो भवेत्॥४९॥रतिरभ्यंतरे यस्य न बाह्ये पुण्यगौरवात्॥न कर्म कारणीयं हिबहिस्तस्य महात्मना॥५०॥ज्ञानामृतेन तृप्तस्य भक्त्या शैवशिवात्मनः॥नांतर्न च बहिःकृष्ण कृत्यमस्ति कदाचन ॥५१॥तस्मात्क्रमेण संत्यज्य बाह्यमाभ्यंतरं तथा ॥ ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्यज्ञानं चापि परित्यजेत्॥५२॥ नैकाग्रं चेच्छिवे चितं किं कृतेनापि कर्मणा॥एकाग्रमेवचेच्चित्तंकिं कृतेनापि कर्मणा॥५३॥ तस्मात्कर्माण्यकृत्वा वाकृत्वा वांतर्बहिःक्रमात्॥येन केन प्युपायेन शिवेचित्तं निवेशयेत्॥५४॥शिवे निविष्टचित्तानां प्रतिष्ठितधियां सताम्॥परत्रेह च सर्वत्रनिर्वृतिःपरमा भवेत्॥५५॥

इनको बाहर भीतर कुछ भी कृत्य नहीं है ॥ ५१ ॥ इस कारण क्रमसे बाह्य और आन्तरको छोडकर ज्ञानसे ज्ञेय पदार्थको जानकर ज्ञानको भी छोडदे ॥ ५२ ॥ जो शिवमें एकाग्र चित्त न हो तो कर्मसे भी क्या है, जो चित्त एकाग्र हो तो कर्म न करनेसे भी सब कुछ है ॥५३॥ इस कारण अन्तर बाहर कर्म करके अथवा न करके जिस किसी उपायसे शिवमें चित्त लगावे ॥ ५४ ॥ शिवमें चित्त लगानेवाले बुद्धिसे युक्तोंको यहाँ वहाँ सर्वत्र निवृत्ति अत्यन्त होती है ॥ ५५ ॥

' ॐ नमः शिवाय ' इस मंत्रमें; यह सब सिद्धि होती है, इस कारण परावरकी विभूतिके प्राप्त होनेको वह मन्त्र प्राप्त करना चाहिये ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीकृष्ण बोले, हे महर्षियोंमें श्रेष्ठ ! सर्वज्ञ ज्ञानके सागर मैं पंचाक्षर माहात्म्यको सुननेकी इच्छा करता हूँ ॥ १ ॥ उपमन्यु बोले, पंचाक्षर मंत्रका माहात्म्य तो सौ करोड वर्षमें भी विस्तारसे नहीं कह सकते, इससे संक्षेपसे सुनो ॥ २ ॥ वेद और शैव शास्त्रमें प्रणव सहित षडक्षर मंत्र सब लोकोंमें सबसे

इहोन्नमः शिवायेति मंत्रेणानेन सिद्धयः॥ स तस्मादधिगंतव्यः परावरविभूतये॥५६॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखंडे शिवज्ञानवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः॥११॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ महर्षिवर सर्वज्ञ सर्वज्ञानमहोदधे ॥ पंचाक्षरस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ १ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ पंचाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि ॥ अशक्यं विस्तराद्वक्तुं तस्मात्संक्षेपतः शृणु॥२॥ वेदे शिवागमे चायमुभयत्र षडक्षरैः ॥ सर्वेषां शिवभक्तानामशेषार्थप्रसाधकः ॥ ३ ॥ तदल्पाक्षरमर्थाढ्यं वेदसारं विमुक्तिदम् ॥ आज्ञासिद्धमसंदिग्धं वाक्यमेताच्छिवात्मकम् ॥४॥ नानासिद्धियुतं दिव्यं लोकचित्तानुरंजकम् ॥ सुनिश्चितार्थं गंभीरं वाक्यं तत्पारमेश्वरम् ॥ ५ ॥ मन्त्रं सुखमुखोच्चार्यमशेषार्थप्रसिद्धये ॥ प्राहोन्नमः शिवायेति सर्वज्ञ स्सर्वदेहिनाम् ॥ ६ ॥ तद्बीजं सर्वविद्यानां मंत्रमाद्यं षडक्षरम् ॥ अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेयं तद्वटबीजवत्॥ ७ ॥

श्रेष्ठ है; यह ॐकार युक्त षडक्षर सबसे सदा उत्तम है, सब शिवभक्तोंके सम्पूर्ण अर्थके प्रकाश करनेवाला है ॥ ३ ॥ इसमें थोडे अक्षर गंभीर अर्थ वेदका सार है, मुक्तिका देनेवाला है; आज्ञा सिद्ध सन्देह रहित यह शिवात्मक वाक्य है ॥ ४ ॥ अनेक सिद्धियोंसे युक्त दिव्य लोकके चित्तोंका प्रसन्न करनेवाला निश्चित अर्थ गंभीर परमेश्वरके वाक्य हैं ॥ ५ ॥ सम्पूर्ण अर्थकी सिद्धिके निमित्त मुखसे सुखपूर्वक वाक्य उच्चारण करना चाहिये; ' ॐ नमः शिवाय ' यह सब देहधारियोंको सर्वज्ञता दायक है ॥ ६ ॥ यह षडक्षर मंत्र

१ मंत्रःस्थितः सदामुख्योलोकेपंचाक्षरस्मृतः । सर्वमंत्राधिकश्चायमोंकाराद्यःषडक्षरः इत्यधिकः ।

सब विद्याओंका बीज है, अतिसूक्ष्म महान् अर्थवाला वटके वृक्षके समान जानना उचित है ॥ ७ ॥ वह तीनों गुणोंसे परे हैं, 'ओम्' इस एकाक्षर मन्त्रमें ही सर्वज्ञ शिव स्थित हैं॥ ८ ॥ईशानादि सूक्ष्म ब्रह्मके एकाक्षर नाम 'नमः शिवाय' इस मंत्रमें यथायोग्य स्थित है, इस षडाक्षर मंत्रमें पंचब्रह्मद्योतक शरीरयुक्त शिव ॥ ९ ॥ वाच्य वाचकके भावसे साक्षात् स्वभावसे स्थित हैं, प्रमेय होनेसे वाच्य शिव और मन्त्र उनका वाचक है ॥१०॥ यह वाच्य वाचकभाव अनादि कालका है जिस प्रकार यह घोर संसारसागर अनादि कालसे है ॥११॥ इसी प्रकार अनादि कालसे शिव संसारके मोचक हैं जिस प्रकार व्याधिको औषध सदासे चली आती है और रोगकी शत्रु है ॥१२॥ इसी प्रकार संसार

देवो गुणत्रयातीतःसर्वज्ञःसर्वकृत्प्रभुः॥ ओमित्येकाक्षरे मन्त्रे स्थितः सर्वगतः शिवः॥८॥इशानाद्यानि सूक्ष्माणि ब्रह्माण्येकाक्षराणि तु ॥ मंत्रे नमश्शिवायेति संस्थितानि यथाक्रमम् ॥ मंत्रेषडक्षरे सूक्ष्मे पंचब्रह्मतनुः शिवः ॥ ९ ॥ वाच्यवाचकभावेन स्थितः साक्षात्स्वभावतः॥वाच्यश्शिवोप्रमेयत्वान्मंत्रस्तद्वाचकस्स्मृतः॥१०॥वाच्यवाचकभावोऽयमनादिसंस्थितस्तयोः॥यथाऽनादिप्रवृत्तोयंघोरसंसारसागरः॥११॥ शिवोऽपि हि तथानादिसंसारान्मोचकः स्थितः॥ व्याधीनां भेषजं यद्वत्प्रतिपक्षः स्वभावतः ॥१२॥ तद्वत्संसारदोषाणां प्रतिपक्षः शिवस्स्मृतः॥ असत्यस्मिन् जगन्नाथे तमोभूतमिदं भवेत्॥१३॥अचेतनत्वात्प्रकृतेरज्ञत्वात्पुरषस्य च॥ प्रधानपरमाण्वादियावत्किंचिदचेतनम् ॥१४॥ न तत्कर्तृ स्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना ॥ धर्माधर्मोपदेशश्च बंधमोक्षौ विचारणात् ॥ १५ ॥ न सर्वज्ञं विना पुंसामादिसर्गः प्रसिद्धयति ॥ वैद्यं विना निरानंदाः क्लिश्यंते रोगिणो यथा ॥ १६ ॥ तस्मादनादिः सर्वज्ञः परिपूर्णस्सदाशिवः ॥ अस्ति नाथः परित्राता पुंसां संसारसागरात् ॥ १७ ॥

दोषके दुर करनेको शिवजी दृढ हैं, इन जगन्नाथके न होनेसे अन्धकारभूत संसार हो जाता है ॥ १३ ॥ जैसे शिवके न होनेसे जगत्की सृष्टि कैसे होती ? क्योंकि प्रकृति अचेतन और पुरुष अज्ञात है, प्रधान परमाणु आदि जो कुछ अचेतन है ॥ १४ ॥ बुद्धिमानोंने कारणके बिना उसका स्वयं कर्तृत्व नहीं देखा है. धर्माधर्मका उपदेश बन्धमोक्ष विचारणा ॥ १५ ॥ सृष्टिकी आदिमें सर्वज्ञके बिना नहीं हो सकती, जैसे वैद्यके बिना अरोगी आनन्द रहते हैं ॥ १६ ॥ इसी प्रकार शिवके बिना जीव जगत् आनन्द रहित होते हैं इस कारण शिव परिपूर्ण और

अनादि सर्वज्ञ हैं वही नाथ और संसारसागरसे रक्षा करनेवाले हैं ॥ १७ ॥ वह अनादि अन्त मध्यसे रहित स्वभावसे निर्मल प्रभु हैं, सर्वज्ञ परिपूर्ण शिवको शास्त्रोंमें लिखा है ॥ १८ ॥ उनके अभिधातकातका यह मंत्र है, और वह अभिधेय कहलाते हैं, अभिधान और अभिधेय होनेसे मन्त्र सिद्ध और पर शिव हैं, ॥१९॥ इतना ही शिवका ज्ञान और इतनाही परम पद है, जौ ' ओं नमः शिवाय ' षडक्षर मन्त्रका ध्यान करे ॥ २० ॥ वह शिवप्रोक्त विधिवाक्य हैं, अर्थवाद नहीं है, जो सर्वज्ञ और स्वभावसे निर्मल है ॥ २१ ॥ लोकको अनुग्रह करनेवाले मृषा कैसे हो सकते हैं, जो वस्तु गुणदोषोंसे जैसी स्थित है ॥ २२ ॥ जितना फल पूर्ण है सर्वज्ञ उसको वैसाही कहता है, जो राग अज्ञानादि

आदिमध्यांतनिर्मुक्तस्स्वभावविमलःप्रभुः॥ सर्वज्ञःपरिपूर्णश्च शिवो ज्ञेयश्शिवागमे॥१८॥ तस्याभिधानमन्त्रोऽयमभिधेयश्च स स्मृतः ॥ अभिधानाभिधेत्वान्मंत्रस्सिद्धः परश्शिवः॥१९॥ एतावत्तु शिवज्ञानमेतावत्परमंपदम् ॥ यदोंनमश्शिवायेति शिववाक्यं षडक्षरम्॥२०॥ विधिवाक्यमिदं शैवं नार्थवादं शिवात्मकम्॥ यस्सर्वज्ञस्सुसंपूर्णः स्वभावविमलः शिवः॥२१॥ लोकानुग्रहकर्त्ता च स मृषार्थं कथंवदेत्॥यद्यथावस्थितं वस्तु गुणदोषैः स्वभावतः॥२२॥यावत्फलं च तत्पूर्णं सर्वज्ञस्तु यथा वदेत् ॥ रागाज्ञानादिभिर्दोषैर्ग्रस्तत्वादनृतंवदेत्॥२३॥ ते चेश्वरे न विद्येते ब्रूयात्स कथमन्यथा ॥ अज्ञाताशेषदोषेण सर्वज्ञेयशिवेन यत्॥प्रणीतममलं वाक्यं तत्प्रमाणं न संशयः॥२४॥ तस्मादीश्वरवाक्यानिश्रद्धेयानिविपश्चिता ॥ यथार्थपुण्यपापेषु तदश्रद्धो व्रजत्यधः ॥ २५ ॥ स्वर्गापवर्गसिद्ध्यर्थं भाषितं यत्सुशोभनम् ॥ वाक्यं मुनिवरैः शांतैस्तद्विज्ञेयं सुभाषितम् ॥ २६ ॥

दोषोंसे ग्रस्त होकर असत्य कहता है ॥ २३ ॥ वे ईश्वरमें नहीं हैं फिर वह अन्यथा कैसे कह अकता है. जिस कारण कि, सर्वज्ञ शिवसे वह दोषोंके दोष नहींहुए हैं उनमें निर्माण किये निर्मल वाक्यही प्रमाण हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥२४॥ इस कारण बुद्धिमान्को ईश्वरके वाक्यमें सदा श्रद्धा करनी चाहिये, यथार्थ पुण्य और पापमें श्रद्धा न करनेवाला नरकको जाता है ॥ २५ ॥ और जो स्वर्ग और अपवर्गके निमित्त सुन्दर वचन मुनिजनोंने कहे हैं, उनको ही शोभित कहते हैं ॥ २६ ॥

और जो राग द्वेष अनृत क्रोध काम तृष्णाके अनुसारी वाक्य हैं जो नरकके हेतु वाक्य हैं; उनको दुर्भाषित कहते हैं ॥२७॥ जो सत्कारयुक्त मनोहरतायुक्त हैं तो भी उनसे क्या है, जो अविद्या रागके वाक्य हैं; वह संसारक्लेशके कारण हैं ॥ २८ ॥ जिनके सुननेसे मंगल होकर और रागादि संक्षय होता है, वह कठिनाक्षरयुक्त भी महाशोभित वाक्य हैं ॥ २९ ॥ जिस कारणसे कि, मन्त्रके बहुत्व होनेपर सर्वज्ञ शिवने निर्मल मन्त्र निर्माण किये जिसके समान कोई भी नहीं है ॥ ३० ॥ सांगवेदशास्त्र षडक्षर मन्त्रमें स्थित है, इसके बराबर कोई मन्त्र भी नहीं है ॥ ३१ ॥ सात करोड महामंत्र और भी अनेक प्रकारके मन्त्र षडक्षर भिन्न मन्त्रोंमें यह ऐसे ऐसे प्रोत हैं जैसे वृत्तिमें सूत्र ओतप्रोत

रागद्वेषानृतक्रोधकामतृष्णानुसारियत्॥ वाक्यं निरयहेतुत्वात्तद्दुर्भाषितमुच्यते॥२७॥संस्कृतेनापि किं तेनमृदुना ललितेन वा॥ अविद्यारागवाक्येन संसारक्लेशहेतुना॥२८॥यच्छ्रुत्वाजायते श्रेयोरागादीनां च संशयः॥विरूपमपि तद्वाक्यं विज्ञेयमितिशोभनम् ॥२९॥ बहुत्वेपि हि मंत्राणां सर्वज्ञेनशिवेन यः॥ प्रणीतो विमलो मन्त्रो न तेन सदृशः क्वचित्॥३०॥ सांगानि वेदशास्त्राणि संस्थितानि षडक्षरे॥ न तेनसदृशस्तस्मान्मन्त्रोऽप्यस्त्यपरः क्वचित्॥३१॥सप्तकोटिमहामन्त्रैरुपमन्त्रैरनेकधा॥मन्त्रःषडक्षरोभिन्नस्सूत्रं वृत्यात्मना यथा॥३२॥ शिवज्ञानानि यावंतिविद्यास्थानापि यानि च॥ षडक्षरस्य सूत्रस्य तानि भाष्यं समासतः ॥ ॥३३॥ किं तस्य बहुभिर्मंत्रैश्शास्त्रैर्वा बहुविस्तरैः ॥ यस्योन्नमः शिवायेति मन्त्रोऽयं हृदि संस्थितः ॥३४॥ तेनाधीतं श्रुतं तेन कृतं सर्वमनुष्ठितम्॥ येनोन्नमश्शिवायेति मंत्राभ्यासः स्थिरीकृतः॥३५॥ नमस्कारादिसंयुक्तं शिवायेत्यक्षरत्रयम् ॥ जिह्वाग्रेवर्तते यस्य सफलं तस्य जीवितम्॥३६॥ अंत्यजो वाधमो वापिमूर्खो वा पंडितोऽपि वा॥पचाक्षरजपे निष्ठोमुच्यते पापपंजरात्॥३७॥

रहता है ॥ ३२ ॥ जितने शिवज्ञानके विद्यास्थान हैं वह समाससे षडक्षर सूत्रके भाष्य हैं ॥ ३३ ॥ उसके अनेक मन्त्र और शास्त्रके बहुत विस्तार से क्या है जिसके 'ऊँ नमः शिवाय' यह मन्त्र हृदयमें स्थित है ॥ ३४ ॥ उसने सब शास्त्रादि और कृत्यकी पूर्ति करली 'ऊँ नमः शिवाय' इस मन्त्रका जिसने अभ्यास दृढ करालिया है ॥ ३५ 'नम': युक्त "शिवाय" यह तीन अक्षर जिसकी जिह्वाके आगे वर्तते हैं उसका जीना सफल है ॥ ३६ ॥ नीच, अधम, मूर्ख वा पंडित भी पंचाक्षर जपमें जो निष्ठावाला है वह पापके पंजरसे

छूट जाता है ॥ ३७ ॥ यह वचन देवीके पूँछनेपर शंकरने कहे थे सम्पूर्ण मनुष्योंके हितके निमित्त और कलियुगमें उत्पन्न होनेवालोंके हितके निमित्त विशेषकर शंकरने यह वचन कहे हैं द्विजोंके लिये यह विशेष जानने ॥ ३८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ देवी बोली, जो कि कलियुगके प्राप्त होनेपर अपुण्यरूपी अन्धकारसे आच्छन्न लोकके धर्मसे पराङ्मुख होने ॥ १ ॥ वर्णके आचारके क्षीण होने और वर्णसंकर धर्मके उपस्थित होनेपर सम्पूर्ण अधिकारके संदिग्ध होनेपर और निश्चयके विपरीत होनेपर ॥ २ ॥ और गुरु शिष्यके क्रम बिगडनेपर उपदेश विधान नष्ट होनेपर हे महेश्वर ! तुम्हारे भक्त किस प्रकार

इत्युक्तं परमेशेन देव्यापृष्टेन शूलिना॥ हिताय सर्वमर्त्यानां द्विजानां तु विशेषतः॥३८॥ इतिश्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवी यसंहितायामुत्तरखण्डे पंचाक्षरमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥ देव्युवाच ॥ कलौ कलुषिते काले दुर्जये दुरतिक्रमे॥ अपुण्यतमसाच्छन्ने लोके धर्मपराङ्मुखे ॥१॥ क्षीणे वर्णाश्रमाचारे संकटे समुपस्थिते ॥ सर्वाधिकारे संदिग्धे निश्चिते वापि पर्यये ॥ २ ॥ तदोपदेशे विहते गुरुशिष्यक्रमे गते ॥ केनोपायेन मुच्यंते भक्तास्तव महेश्वर ॥३॥ ईश्वर उवाच ॥ आश्रित्य परमां विद्यां हृद्यां पंचाक्षरीं मम ॥ भक्त्या च भावितात्मानो मुच्यंते कलिजा नराः॥४॥मनोवाक्कायजैर्दोषैर्वक्तुं स्मर्तुमगोचरैः॥ दूषितानां कृतघ्नानां निंदकानां छलात्मनाम् ॥ ५ ॥ लुब्धानां वक्रमनसामपि मत्प्रवणात्मनाम्॥ मम पंचाक्षरी विद्या संसार भयतारिणी ॥६॥ मयैवमसकृद्देवि प्रतिज्ञातं धरातले ॥ पतितोऽपि विमुच्येत मद्भक्तो विद्ययानया ॥७॥

मुक्त होते हैं ॥३॥ महेश्वर बोले, मेरी पंचाक्षरी विद्याको हृदयमें धारणकर भक्ति करके भावितात्मावाले पुरुष कलियुगमें मुक्त हो जाते हैं ॥ ४ ॥ मन वाणी कर्मसे उत्पन्न हुए दोष करके जो कहने और स्मरण करनेके आगोचर हैं, जो दूषित, कृतघ्न, निर्दयी, दुष्टात्मा हैं ॥ ५ ॥ तथा लोभी जो कुटिल नामवाले मुझमें मन लगाते भक्ति करते हैं उनको मेरी संसारभयतारिणी पंचाक्षरी विद्या है ॥ ६ ॥ हे देवि ! मैंने पृथ्वीतलमें एक बार प्रतिज्ञा की, है कि, कैसा भी पतित हो मेरा भक्त इस विद्यासे मुक्त होजाता है ॥ ७ ॥

देवी बोली; जो मनुष्य कर्मके योग्य और सर्वदा पतित हो तो वह कर्मयोग्य जो कुछ करता है वह नरकके निमित्त होते हैं तो पतित इस विद्यासे कैसे छूट सकता है ? ॥ ८ ॥ ईश्वर बोले, हे सुन्दरी ! तुमने पूँछा सो बहुत अच्छा पूँछा, यह रहस्यकी बात है, जो मैंने आजतक तुमसे नहीं कही थी ॥९॥ मन्त्रपूर्वक मुझको पतित और मोहितभी पूजन करे तो मेरे पंचाक्षर विना वह नरकको जायगा ॥१०॥ जल वायु भक्षण करनेवाले जो व्रतसे कर्षित हैं इन व्रतोंसे मेरे लोकका समागम नहीं है ॥११॥ भक्तिपूर्वक पंचाक्षर मन्त्रसे जो मेरी पूजा करे वह एकही

देव्युवाच॥ कर्मायोग्योभवेन्मर्त्यः पतितोयदिसर्वथा॥ कर्मायोगेन यत्कर्मकृतं च नरकाय हि ॥ ततःकथं विमुच्येतपतितोविद्य याऽनया॥८॥ ईश्वर उवाच॥ तथ्यमेतत्त्वयाप्रोक्तंतथा हि शृणुसुन्दरि॥ रहस्यमिति मत्वैतद्गोपितंयन्मयापुरा॥९॥ समंत्रकं मां पतितःपूजयेद्यदि मोहितेः ॥ नारकीस्यान्न सन्देहो मम पंचाक्षरं विना॥१०॥ अब्भक्षा वायुभक्षाश्च ये चान्ये व्रतकर्शिताः ॥ तेषामेतैर्व्रतैर्नास्ति मम लोकसमागमः ॥११॥ भक्त्या पंचाक्षरेणैव यो हि मां सकृदर्चयेत् ॥ सोऽपि गच्छेन्मम स्थानं मन्त्र स्यास्यैवगौरवात्॥१२॥तस्मात्तपांसि यज्ञाश्च व्रतानिनियमास्तथा॥पंचाक्षरार्चनस्यैतेकोटयंशेनापिनो समः॥१३॥बद्धो वाप्यथ मुक्तो वा पाशात्पंचाक्षरेण यः॥पूजयेन्मां स मुच्येत नात्र कार्या विचारणा॥१४॥अरुद्रो वा सरुद्रो वा सकृत्पंचाक्षरेण यः॥ पूजयेत्प तितो वापिमूढो वा मुच्यते नरः॥१५॥ षडक्षरेण वा देवितथा पंचाक्षरेण वा॥ स ब्रह्मांगेन मां भक्त्या पूजयेद्यदि मुच्यते ॥१६॥

बारकी पूजामें इस मंत्रके गौरवसे मेरे स्थानको प्राप्त हो जाता है ॥१२॥ इस कारण तप यज्ञ व्रत नियम पंचाक्षरसे अर्चन करनेके कोटि अंशके भी समान नहीं है ॥ १३ ॥ बँधाहुआ वा मुक्त हुआ कर्मसे मुक्त जो मनुष्य पंचाक्षरसे पूजा करता है वह मुक्त होजाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥१४॥ रुद्रभक्तरहित, अथवा रुद्रभक्तियुक्त जो एकबार पंचाक्षरसे मेरी पूजा करता है, वह मूर्ख मनुष्य भी मुक्त होजाता है ॥१५॥ हे देवि ! षडक्षर वा पंचाक्षरसे ब्रह्मरूप मंत्रसे जो मनुष्य मेरा पूजन करता है वह उस भक्तिपूजासे मुक्त होजाता है ॥ १६ ॥

जो पतित या अपतित इस मंत्रसे मेरा पूजन करे; मेरे क्रोध जीतेहुए गुरुमंत्र लियेहुए वा उससे रहित ॥१७॥ विना गुरुमंत्रके लियेसे गुरुमन्त्र लेकर जप करता है वह करोड गुना अधिक फल होता है; इस कारण हे देवि ! इसको लेकर गुरुमन्त्रसे मुझे पूजन करे ॥१८॥ जो गुरुमंत्र ले मैत्र्यादि गुणयुक्त हो मेरा पूजन करता है; ब्रह्मचर्ययुक्त हो भक्तिसे रत होता है; वह मेरे सदृश गुणोंको प्राप्त होता है ॥१९॥ बहुत कह नेसे क्या है सब भक्त और अधिकारी मेरे पंचाक्षर मन्त्रमें प्रीति करनेवाले जो हैं वे सब श्रेष्ठ हैं ॥ २० ॥ पंचाक्षर प्रभावसे लोक वेद महर्षि

पतितोऽपतितो वापि मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥ मम भक्तो जितक्रोधो सलब्धोऽलब्ध एव वा ॥ १७ ॥ अलब्धालब्ध एवेह कोटिकोटिगुणाधिकः ॥ तस्माल्लब्ध्वैवमां देविमन्त्रेणानेनपूजयेत् ॥ १८ ॥ लब्ध्वा संपूजयेद्यस्तु मैत्र्यादिगुणसंयुतः॥ ब्रह्मचर्यरतोभक्त्या मत्सादृश्यमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ किमत्र बहुनोक्तेन भक्तास्सर्वेधिकारिणः ॥ मम पंचाक्षरे मंत्रेतस्माच्छ्रेष्ठतरो हि सः ॥ २० ॥ पंचाक्षरप्रभावेण लोकवेदमहर्षयः॥तिष्ठंति शाश्वता धर्मा देवास्सर्वमिदं जगत् ॥ २१ ॥ प्रलये समनुप्राप्ते नष्टे स्थावरजंगमे॥सर्वं प्रकृतिमापन्नं तत्र संलयमेष्यति ॥ २२ ॥ एकोऽहं संस्थितो देवि न द्वितीयोऽस्ति कुत्रचित् ॥ तदा वेदाश्च शास्त्राणि सर्वे पंचाक्षरे स्थिताः ॥ २३ ॥ ते नाशं नैव संप्राप्ता मच्छक्त्या ह्यनुपालिताः ॥ ततस्सृष्टिरभून्मत्तः प्रकृत्यात्मप्रभेदतः ॥ २४ ॥ गुणमूर्त्यात्मनां चैव ततोवांतरसंहृतिः ॥ तदा नारायणश्शेते देवो मायामयीं तनुम् ॥ २५ ॥ आस्थाय भोगिपर्यंकशयने तोयमध्यगः ॥ तन्नाभिपंकजाज्जातः पंचवक्त्रः पितामहः ॥ २६ ॥

और शाश्वत धर्म तथा सब देवता और यह जगत् स्थित है ॥ २१ ॥ जब प्रलय होनेपर स्थावर जंगम जगत् नष्ट होजाता है, तब प्रकृतिको प्राप्त होकर लीन होजाते हैं॥२२॥ हे देवि! उस समय एक मैंही, स्थित रहता हूं, दूसरा कुछ नहीं रहता; उस समय वेद शास्त्र और सब वस्तुजात पंचाक्षरमें स्थित रहती हैं ॥२३॥ उसी अंशसे प्राप्त हो मेरी शक्तिसे अनुपालित हो गुणोंकी की हुई मूर्ति और अवान्तर प्रलय होनेसे ॥२४॥ प्रकृति और आत्माके भेदसे सृष्टि होती है उस समय मायामय शरीर धारण कर नारायण शयन करते हैं ॥ २५ ॥ वह शेषशय्यापर स्थितहो

जब शयन करते हैं; तब उनके नाभिकमलसे पंचमुख ब्रह्माजी जन्म लेते हैं ॥ २६ ॥ वह त्रिलोकी निर्माण करनेको असहाय होने के कारण असमर्थ होते हैं, तब उन्होंने प्रथम मानसी दश मुनियों को उत्पन्न किया ॥ २७ ॥ उनकी सिद्धि बढाने के लिये मुझसे ब्रह्माजी बोले, हे महा देव ! मेरे पुत्रको आप शक्ति दीजिये ॥ २८ ॥ जब ब्रह्माजीने इस प्रकार मेरी प्रार्थना की तब मैंने क्रमसे ब्रह्मा के प्रति पंचाक्षरका उपदेश किया ॥ २९ ॥ ब्रह्मा ने पांचों मुखोंसे उसको ग्रहण किया; और वाच्य वाचकके भेदसे मुझे महेश्वर जाना ॥ ३० ॥ उसका विविधप्रयोग जानकर सिद्ध मन्त्रयुक्त हो मैंने प्रजापति पुत्रोंके वास्ते मन्त्र और उनका अर्थ प्रदान किया ॥ ३१ ॥ साक्षात् लोक पितामहसे वे मन्त्रको

सिसृक्षमाणो लोकांस्त्रीन्न सक्तो ह्यसहायवान् ॥ मुनीन्दशससर्जादौ मानसानमितौजसः ॥ २७ ॥ तेषां सिद्धिविवृद्ध्यर्थं मां प्रोवाच पितामहः ॥ मत्पुत्राणां महादेव शक्तिं देहि महेश्वर ॥ २८ ॥ इत्येवं प्रार्थितस्तेन पञ्चवक्त्रधरो ह्यहम् ॥ पञ्चाक्षराणि क्रमशः प्रोक्तवान्पद्मयोनये ॥ २९ ॥ स पञ्चवदनैस्तानि गृहीँल्लोकपितामहः ॥ वाच्यवाचकभावेन ज्ञातवान्मां महेश्वरम् ॥ ३० ॥ ज्ञात्वा प्रयोगं विविधं सिद्धमंत्रः प्रजापतिः ॥ पुत्रेभ्यः प्रददौ मंत्रं मंत्रार्थं च यथातथम् ॥ ३१ ॥ ते च लब्ध्वा मंत्ररत्नं साक्षाल्लोकपितामहात् ॥ तदाज्ञप्तेनमार्गेण मदाराधनकांक्षिणः ॥ ३२ ॥ मेरोस्तु शिखरे रम्ये मुंजवान्नाम पर्वतः ॥ मत्प्रियः सततं श्रीमान्मद्भक्तैः रक्षितस्सदा ॥ ३३ ॥ तस्याभ्याशे तपस्तीव्रं लोकं स्रष्टुं समुत्सुकाः॥दिव्यं वर्षसहस्रं तु वायु भक्षास्समाचरन् ॥ ३४ ॥ तेषां भक्तिमहं दृष्ट्वा सद्यः प्रत्यक्षतामियाम् ॥ ऋषिं छंदश्च कीलं च बीजशक्तिं च दैवतम् ॥ ३५ ॥ न्यासं षडंगंदिग्बंधं विनियोगमशेषतः ॥ प्रोक्तवानहमार्याणां जगत्सृष्टिविवृद्धये ॥ ३६ ॥

प्राप्त हो उनकी आज्ञासे उसी मार्गसे शिवका आराधन करने लगे ॥ ३२ ॥ मेरुके मनोहर शिखरपर एक मुञ्जवान् नाम पर्वत है; वह मेरा प्रिय और मेरे भक्तोंसे आराधित है ॥ ३३ ॥ उसके निकट वे ऋषि सृष्टिकी इच्छाकार तपस्या करने लगे; दिव्य सहस्र वर्षतक वे वायु भक्षण कर तप करते रहे ॥ ३४ ॥ उनकी ऐसी भक्ति देखकर मैं शीघ्र प्रत्यक्ष हुआ ऋषिछन्द कीलक बीज शक्तिदेवता ॥ ३५ ॥ न्यास षडंग दिग्बन्ध सम्पूर्ण विनियोग मैंने जगत् सृष्टिकी वृद्धिके निमित्त उन आर्योंके प्रति वर्णन किया ॥ ३६ ॥

तबसे बढे हुए वे ऋषि मन्त्रके माहात्म्यसे देवता असुर मनुष्योंकी सृष्टि विस्तार करने लगे ॥ ३७ ॥ इस परमविद्याका स्वरूप इस समय कहा जाता है पहले " नमः " पीछे " शिवाय " कहना चाहिये ॥ ३८ ॥ यह पञ्चाक्षरी विद्या सब वेदशास्त्राके शिरोभूत है; और सम्पूर्ण शब्दजातका यह बीज है ॥ ३९ ॥ पहले मेरे मुखसे निकननेके कारण यह मेरी वाचक है; सुवर्णके रंगके समान पीत और ऊँचे पयोधर वाली ॥ ४० ॥ चार भुजा तीन नेत्र बालसूर्य समान प्रकाशमान पद्मदल हाथमें लिये मनोहर वरदायक अभय देनेवाली ॥ ४१ ॥ सब

ततस्ते मंत्रमाहात्म्याद्दषयस्तपसेधिताः॥सृष्टिं वितन्वते सम्यक्सदेवासुरमानुषीम्॥३७॥अस्याः परमविद्यायास्स्वरूपमधुनोच्यते॥आदौ नमः प्रयोक्तव्यं शिवाय तु ततः परम् ॥ ३८ ॥ सैषा पञ्चाक्षरी विद्या सर्वश्रुतिशिरोगता॥ सर्वजातस्य सर्वस्य बीजभूता सनातनी॥३९॥प्रथमं मन्मुखोद्गीर्णा सा ममैवास्ति वाचिका ॥तप्तचामीकरप्रख्या पीनोन्नतपयोधरा॥४०॥चतुर्भुजा त्रिनयना बालेंदुकृतशेखरा॥पद्मोत्पलकरा सौम्या वरदाभयपाणिका॥४१॥ सर्वलक्षणसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥ सितपद्मासनासीना नीलकुंचितमूर्द्धजा॥४२॥अस्याः पञ्चविधा वर्णाः प्रस्फुरद्रश्मिमंडलाः॥पीतः कृष्णस्तथा धूम्रः स्वर्णाभो रक्त एव च॥ ॥४३॥पृथक्प्रयोज्या यद्येते बिंदुनादविभूषिताः॥अर्द्धचन्द्रनिभो बिंदुर्नादो दीपशिखाकृतिः ॥४४॥ बीजं द्वितीयं बीजेषु मंत्रस्यास्य वरानने॥ दीर्घपूर्वं तुरीयस्य पञ्चमं शक्तिमादिशेत् ॥४५॥वामदेवो नाम ऋषिः पंक्तिश्छन्द उदाहृतम् ॥ देवता शिव एवाहं मन्त्रस्यास्य वरानने॥४६॥गौतमोऽत्रिर्वरारोहे विश्वामित्रस्तथांगिराः ॥ भरद्वाजश्च वर्णानां क्रमशश्चर्षयः स्मृताः ॥४७॥

लक्षणसे सम्पूर्ण गहने पहरे श्वेत पद्मधारे नीलकुंचित बालोंसे युक्त ॥ ४२ ॥ इसके सूर्यमण्डलके समान स्फुरायमान पांच वर्ण हैं, पीत कृष्ण धूम्र स्वर्णके समान रक्तवर्ण ॥ ४३ ॥ यह बिन्दुनादसे पृथक् प्रयुक्त करने चाहिये; अर्धचन्द्रके आकार बिंदु और नाददीप शिखाके समान हैं ॥ ४४ ॥ बीजोंमें जो मंत्रोंके हैं, इसका दूसरा बीज है, प्रथम दीर्घ और चौथा पांचवाँ शक्ति जाननी उचित है ॥ ४५ ॥ इसका वामदेवऋषि पंक्ति छंद और हे वरानने ! मैं शिव देवता हूँ ॥ ४६ ॥ हे वरानने ! गौतम, अत्रि, विश्वामित्र,

अंगिरा, और भारद्वाज क्रमसे इन वर्णोंके ऋषि हैं ॥ ४७ ॥ गायत्री अनुष्टुप् त्रिष्टुप् बृहती विराट् पांचोंके छन्द हैं, इन्द्र, रुद्र, हरि, ब्रह्मा, स्कन्द यह पांच देवता हैं ॥ ४८ ॥ हे वरानने ! मेरे पांच मुख उन पांचोंके स्थान हैं, पूर्वादिसे लेकर ऊपर तक यथा क्रमसे (दक्षिण, पश्चिम, उत्तर) ॥ ४९ ॥ पहला चौथा दूसरा वर्ण (न, वा, म) उदात्त हैं पांचवाँ (य) तीसरा (शि) यह अनुदात्त है. नकार वकार उदात्त मकार यकार स्वरित शिकार अनुदात्त रुद्राध्यायमें ऐसा पाठ होनेसे व्याकरण रीतिसे ऐसे ही सिद्ध है ॥ ५० ॥ मूल विद्या शिव और पंचाक्षर सूत्र है इसके नाम जानै शिव रूप (कल्याणदायक) मेरा हृदय है ॥ ५१ ॥ नकार शिव, मकार शिखा,

गायत्र्यनुष्टुप् त्रिष्टुप् च छंदांसि बृहती विराट् ॥ इन्द्रो रुद्रो हरिर्ब्रह्मा स्कंदस्तेषां च देवताः ॥ ४८ ॥ मम पंचमुखान्याहुः स्थाने तेषां वरानने ॥ पूर्वादेश्चोद्ध्वंपर्यंतं नकारादि यथाक्रमम् ॥ ४९ ॥ उदात्तः प्रथमो वर्णश्चतुर्थश्च द्वितीयकः ॥ पंचमः स्वरित श्चैव तृतीयो निहतः स्मृतः ॥ ५० ॥ मूलविद्या शिवं शैवं सूत्रं पंचाक्षरं तथा ॥ नामान्यस्य विजानीयाच्छैवं मे हृदयं महत् ॥ ५१ ॥ नकार श्शिर उच्येत मकारस्तु शिखोच्यते ॥ शिकारः कवचं तद्वद्वकारो नेत्रमुच्यते ॥ ५२ ॥ यकारोऽस्त्रं नमस्स्वाहा वषट् हुंवौषडित्यपि ॥ फडित्यपि च वर्णानामन्तेऽङ्गत्वं यदा तदा ॥ ५३ ॥ तत्रापि मूलमंत्रोऽयं किंचिद्भेदसमन्वयात् ॥ तत्रापि पंचमो वर्णोद्वाद शस्वरभूषितः ॥ ५४ ॥ तस्मादनेन मंत्रेण मनोवाक्कायभेदतः ॥ आवयोरर्चनं कुर्य्याज्जप होमादिकं तथा ॥ ५५ ॥ यथाप्रज्ञं यथाकालं यथाशास्त्रं यथामति ॥ यथाशक्ति यथासंपद्यथायोगं यथारति ॥ ५६ ॥ यदा कदापि वा भक्त्या यत्र कुत्रापि वा कृता ॥ येन केनापि वा देवि पूजा मुक्तिं नयिष्यते ॥ ५७ ॥

शिकार कवच, वकार नेत्र कहलाते हैं ॥ ५२ ॥ यकार अस्त्र, नमः स्वाहा, वषट् हुं वौषट् फट् यह वर्णोंके अंगमें स्थित हैं ॥ ५३ ॥ तुम्हारा भी मूलमन्त्र इसमें किंचित् भेदसे संयुक्त है, उसमें पांचवां वर्ण बारहवें स्वर (एकार) से भूषित है ॥ ५४ ॥ इस कारण इस मन्त्रसे मन वाणी कायाके भेदसे हमारा अर्चन जप होम आदि करना चाहिए ॥ ५५ ॥ जैसे बुद्धि श्रद्धा समय और चतुराई शक्ति सम्पत् योग और जैसी प्रीति हो ॥ ५६ ॥ जब कभी जहां कहीं भक्तिसे जिस किसीने पूजा की हो, हे देवी ! वह मुक्तिकी लेजाने

वाली है ॥ ५७ ॥ हे सुन्दरि ! मुझमें मन लगाकर जिसने जो कुछ किया है मेरा प्रिय शिव तत्व क्रम वा अक्रमसे किसीने जाना है ॥ ५८ ॥ तो भी मेरे भक्त जो अत्यन्त विवश नहीं हैं; उनके निमित्त मैंने शास्त्रमें यह नियम किया है ॥ ५९ ॥ सो पहलेमें मन्त्र ग्रहणकी सुन्दर विधि कहता हूँ, जिससे बिना जप निष्फल और जिसके करनेसे सफल होता है सो कहता हूँ ॥ ६० ॥ इति श्रीशिव महापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ईश्वर बोले, हे वरानने ! आज्ञा हीन (उपदेश हीन)

मय्यासक्तेन मनसा यत्कृतं मम सुन्दरि ॥ मत्प्रियं च शिवं चैव क्रमेणाप्यक्रमेणवा ॥ ५८ ॥ तथापि मम भक्ता ये नात्यं तविवशाः पुनः ॥ तेषां सर्वेषु शास्त्रेषु मयेव नियमः कृतः ॥५९॥ तत्रादौ संप्रवक्ष्यामि मन्त्रसंग्रहणं शुभम् ॥ यं विना नि ष्फलं जाप्यं येन वा सफलंभवेत् ॥ ६० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहिता यामुत्तरखण्डे पंचाक्षरमाहात्म्य वर्णनं नाम त्रयोदशोध्यायः ॥ १३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ आज्ञाहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनं वरानने ॥ आज्ञार्थं दक्षिणाहीनं सदा जप्तं च निष्फलम् ॥ १ ॥ आज्ञासिद्धं क्रियासिद्धं श्रद्धासिद्धं ममात्मकम् ॥ एवं चेद्दक्षिणायुक्तं मंत्रसिद्धिर्महत्फलम् ॥ २ ॥ उपगम्य गुरुं विप्रमाचार्यं तत्त्ववेदिनम् ॥ जापिनं सद्गुणोपेतं ध्यानयोगपरायणम् ॥ ३ ॥ तोषयेत्तं प्रयत्नेन भावशुद्धिसम न्वितः ॥ वाचा च मनसा चैव कायेनद्रविणेन च ॥ ४ ॥ आचार्यं पूजयेद्विप्रः सर्वदातिप्रयत्नतः ॥ हस्त्यश्वरथरत्नानि क्षेत्रा णि च गृहाणि च ॥ ५ ॥ भूषणानि च वासांसि धान्यानि च धनानि च ॥ एतानि गुरवे दद्याद्भक्त्या च विभवे सति ॥६॥

श्रद्धा हीन, क्रियाहीन, अज्ञाके निमित्त दक्षिणासे हीन जप किया हुआ सदा निष्फल है ॥ १ ॥ आज्ञा सिद्ध, श्रद्धासिद्ध जो मेरे आत्मक मन्त्र हैं, और दक्षिणा युक्त हैं वे मन्त्र सिद्ध महाफलके देनेवाले हैं ॥ २ ॥ यह ब्राह्मण तत्व वेदी गुरुके पास जाकर जो कि जप करनेमें तत्पर सद्गुण युक्त ध्यान योगमें परायण है ॥ ३ ॥ उसके भाव शुद्धिसे युक्त हो प्रयत्नसे संतुष्ट करे, वाणी मन काया तथा धनसे संतुष्ट करे ॥ ४ ॥ वह शिष्य सदा प्रयत्नसे आचार्यकी पूजा हाथी घोडे रथ रत्न अनेक प्रकारके क्षेत्र गृह ॥५॥ भूषण वस्त्र धान्य

धन ऐश्वर्य हानमें यह सब वस्तु गुरुको दान करे ॥६॥ जो अपनी सिद्धिकी इच्छा हो तो धनकी शटता न करे पीछे अपनेको औरअपने परिच्छदकोभी निवेदन कर दे ॥७॥ इस प्रकार विधिपूर्वक पूजनकर यथाशक्ति वंचना रहित होकर गुरुसे मन्त्र और ज्ञान ग्रहण करे ॥ ८ ॥ इस प्रकार गुरु सन्तुष्ट होकर अपने शिष्यको एक वर्षतक देखे, जब वर्षदिनतक अहंकाररहित शुश्रूषा करे; पवित्र और व्रती रहे ॥ ९ ॥ तब उसे शब्द होनेके निमित्त घृतसे पूर्ण घटसे स्नान करावे, मंत्र शुद्ध जलसे जो कि, पवित्र द्रवयुक्त हो ॥ १० ॥ अलंकार कर सुन्दर वेष गन्ध मालायुक्त पुण्याहवाचनकर ब्राह्मणोंकी पूजा कर ॥ ११ ॥ समुद्रके तट नदी गोष्ठ देवालय पवित्र देश या घरमें सिद्धि करनेवाले समय और

वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः ॥ पश्चान्निवेद्य स्वात्मानं गुरवे सपरिच्छदम् ॥७॥एवं संपूज्य विधिवद्यथाशक्ति त्ववंचयन् ॥ आददीत गुरोर्मंत्रं ज्ञानं चैव क्रमेण तु ॥८॥ एवं तुष्टो गुरुः शिष्यं पूजकं वत्सरोषितम् ॥ शुश्रूषुमनहंकारं स्नातं शुचिमुपोषितम् ॥९॥ स्नापयित्वो विशुद्ध्यर्थं पूर्णकुंभघृतेनवै॥जलेन मन्त्रशुद्धेन पुण्यद्रव्ययुतेन च ॥१०॥अलंकृत्य सुवेषं च गंधस्रग्वस्त्रभूषणैः ॥ पुण्याहं वाचयित्वा च ब्राह्मणानभिपूज्य च॥११॥समुद्रतीरे नद्यां च गोष्ठे देवालयेऽपि वा॥शुचौ देशे गृहे वापि काले सिद्धिकरे तिथौ ॥१२॥ नक्षत्रे शुभयोगे च सर्वदोषविवर्जिते ॥ अनुगृह्य ततो दद्याज्ज्ञानं मम यथाविधि ॥१३॥ स्वरेणोच्चारयेत्सम्यगेकांतेऽतिप्रसन्नधीः ॥ उच्चार्योच्चारयित्वा तमावयोर्मंत्रमुत्तमम्॥१४॥शिवं चास्तु शुभं चास्तु शोभनोऽस्तु प्रियोऽस्त्विति ॥ एवं दद्याद्गुरुर्मंत्रमाज्ञां चैव ततः परम् ॥१५॥ एवं लब्ध्वा गुरोर्मंत्रमाज्ञां चैव समाहितः॥ संकल्प्य च जपेन्नित्यं पुरश्चरणपूर्वकम् ॥१६॥ यावज्जीवं जपेन्नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ अनन्यस्तत्परो भूत्वा स याति परमां गतिम् ॥१७॥

पवित्र तिथिमें ॥१२॥ शुभयोग नक्षत्रमें सब दोष रहित अनुग्रह करके मेरा ज्ञान विधिपूर्वक दे ॥१३॥ एकान्तमें अति प्रसन्न मनसे इस प्रकार हमारा मंत्र बारंबार उच्चारण कर ॥१४॥ शिव हो, मंगल हो, शुभ हो, इस प्रकार गुरु उच्चारण करके आज्ञा दे ॥ १५ ॥ इस प्रकार गुरुसे सावधान मन्त्र हो ग्रहण कर पुरश्चरण पूर्वक संकल्प देकर जपे ॥ १६ ॥ जीवन पर्यंत एकसहस्र एक सौ आठ मन्त्र जप करता रहे और अनन्य मन होकर कार्य करनेसे परमगतिका अधिकारी होता है ॥ १७ ॥

मंत्रमें जितने अक्षर हैं, उतने ही लक्ष जप करे जो रात्रिमें भोजन करे संयम करे वह पुरश्चरणी कहाता है ॥ १८ ॥ जो पुरश्चरण करके नित्य जप करता है इसके समान लोकमें कोई नहीं वह सिद्ध सिद्धिका देनेवाला है ॥ १९ ॥ पवित्र देशमें स्नान कर सुन्दर आसन बांधकर तुमको और अपने गुरुको हृदयमें विचार कर ॥ २० ॥ उत्तर वा पूर्वको मुखकर मौन धारे एकाग्र मनसे दहन प्लवनादिसे पंच तत्त्वोंको विशुद्ध कर ॥ २१ ॥ मन्त्र न्यासादिसे सब कलायुक्त शरीरकर हमारे तुम्हारे शरीरका ध्यान करता हुआ प्राण अपानको रोककर ॥ २२ ॥ विद्या स्थान अपना रूप ऋषि छंद देवता बीज शक्ति वाचकको स्मरण कर पंचाक्षरी विद्याका जप करे ॥ २३ ॥

जपेदक्षरलक्षं वै चतुर्गुणितमादरात्॥नक्ताशी संयमी यस्स पौरश्चरणिकःस्मृतः॥१८॥यःपुरश्चरणं कृत्वा नित्यजापी भवेत्पुनः॥ तस्य नास्ति समो लोके स सिद्धःसिद्धिदो भवेत्॥१९॥ स्नानं कृत्वा शुचौदेशे बद्ध्वा रुचिरमानसम्॥त्वया मां हृदि संचिंत्य संचिंत्य स्वगुरुं ततः ॥२०॥ उदङ्मुखःप्राङ्मुखो वा मौनी चैकाग्रमानसः ॥विशोध्य पंचतत्त्वानि दहनप्लावनादिभिः ॥२१॥ मन्त्रन्यासादिकं कृत्वा सफलीकृतविग्रहः॥आवयोर्विग्रहौ ध्यायन्प्राणापानौ नियम्य च॥२२॥विद्यास्थानं स्वकं रूपमृषिच्छन्दोऽधिदैवतम् ॥ बीजं शक्तिं तथा वाक्यं स्मृत्वा पंचाक्षरीं जपेत् ॥२३॥ उत्तमं मानसं जाप्यमुपांशुं चैवमध्यमम् ॥अधमं वाचिकं प्राहुरागमार्थविशारदाः ॥२४॥ उत्तमं रुद्रदैवत्यं मध्यमं विष्णुदैवतम्॥अधमं ब्रह्मदैवत्यमित्याहुरनुपूर्वशः॥२५॥यदुच्चनीचस्वरितैःस्पष्टास्पष्टपदाक्षरैः॥मंत्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकोऽयं जपस्स्मृतः॥२६॥जिह्वामात्रपरिस्पंदादीषदुच्चारितोऽपि वा॥अपरैरश्रुतः किंचिच्छ्रुतो वोपांशुरुच्यते॥२७॥धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम् ॥ शब्दार्थचिंतनं भूयःकथ्यते मानसो जपः ॥२८॥

मानस जप उत्तम है; जिसमें होठ हलते हैं वह मध्यम और वाचकको जिसमें शब्द निकले उसके जाननेवाले अधम कहते हैं ॥ २४ ॥ रुद्र देवतावाले उत्तम; विष्णु देवताके मध्यम और ब्रह्मा देवताके मन्त्र अधम होते हैं ॥ २५ ॥ ऊंचे नीचे स्वरसे वा शीघ्रतासे स्पष्ट अक्षर पदसे मंत्रका उच्चारण करे यह जप वाचक कहाता है ॥२६॥ जिसमें जिह्वा हले और किंचित् उच्चारण किया जाय दूसरे जनोंको स्पष्ट सुनाई न दे उसको उपांशु जप कहते हैं ॥ २७ ॥ जो बुद्धिमें ही अक्षर और पदका ध्यान तथा पद अक्षर अर्थका चिंतवन किया जाय उसे मानसी

जप कहते हैं ॥२८॥ वाचिकसे एक, उपांशुसे सौ, मनसे सहस्र गुणा और आदि अन्तमें प्राणायामसे युक्त जप सगर्भ करनेसे उसने भी सौ गुणा फल होताहै ॥ २९ ॥ आदि अन्तमें प्राणायाम जप करनेसे सगर्भ जय कहाता है, अगर्भके भी आदि अन्तमें प्राणायाम करना अवश्य है ॥ ३० ॥ चालीस आवृत्ति करके प्राणायाम कर, मंत्र और मन्त्रार्थका जाननेवालाबुद्धिमान् शक्तिके अनुसार मंत्रका जप करे ॥३१॥ पांचतीन वा एक प्राणायाम करे, अगर्भ और सगर्भमें सगर्भ मंत्र श्रेष्ठ कहा है ॥ ३२ ॥ सगर्भसे भी सहस्रगुणा ध्यान जप कहाजाता है, इस पांच विधिमें शक्तिसे

वाचिकस्त्वेक एव स्यादुपांशुः शतमुच्यते ॥ साहस्रं मानसः प्रोक्तः सगर्भस्तु शताधिकः ॥२९॥ प्राणायामसमायुक्तस्सगर्भो जप उच्यते ॥ आद्यंतयोरगर्भोऽपि प्राणायामः प्रशस्यते ॥ ३० ॥ चत्वारिंशत्समावृत्तीः प्राणानायम्यसंस्मरेत् ॥ मंत्रं मंत्रार्थविद्धीमानशक्तः शक्तितो जपेत् ॥३१॥ पंचकं त्रिकमेकं वा प्राणायामं समाचरेत् ॥ अगर्भं वा सगर्भं वा सगर्भस्तत्र शस्यते ॥ ३२ ॥ सगर्भादपि साहस्रं सध्यानो जप उच्यते ॥ एषु पंचविधेष्वेकः कर्त्तव्यः शक्तितो जपः ॥ ३३ ॥ अङ्गुल्या जपसंख्यानमेकमेवमुदाहृतम् ॥ रेखयाष्टगुणं विद्यात्पुत्रजीवैर्दशाधिकम्॥ ३४ ॥ शतं स्याच्छंखमणिभिः प्रवालैस्तु सहस्रकम् ॥ स्फटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकै र्लक्षमुच्यते ॥ ३५ ॥ पद्माक्षैर्दशलक्षन्तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते ॥ कुशग्रंथ्या च रुद्राक्षैरनंतगुणितं भवेत् ॥ ३६ ॥ त्रिंशदक्षैः कृता माला धनदा जपकर्मणि ॥ सप्तविंशतिसंख्यातैरक्षैः पुष्टिप्रदा भवेत् ॥ ३७ ॥ पंचविंशतिसंख्यातैः कृता मुक्तिं प्रयच्छति ॥ अक्षैस्तु पंचदशभिरभिचारफलप्रदा ॥ ३८ ॥

कोई एक जप करना चाहिये ॥३३॥ उंगलीसे जप करनेसे एक गुणा; रेखासे आठ गुणा, जिये पोतेसे दश गुणा ॥३४॥ शंखमणिसे सौ गुणा मूँगोंसे हजार गुणा स्फटिकसे दश सहस्र गुणा; मोतियोंसे लाख गुणा ॥ ३५ ॥ कमलगट्टोंसे दश लाख गुणा, सुवर्णसे करोड गुणा; कुशग्रंथि और रुद्राक्षसे अनन्त फल होता है ॥३६ ॥ तीस दानोंकी माला जप करनेसे धन देनेवाली है; सत्ताईस दानोंकी पुष्टिदेनेवाली है ॥ ३७ ॥ पचीससे मुक्ति, पन्द्रहसे अभिचार फलसिद्धि होती है ३८ ॥

अंगूठेसे मोक्ष तर्जनीसे जप करनेसे शत्रुका नाश मध्यमासे धनकी प्राप्ति और अनामिका शान्ति करने वाली है ॥ ३९ ॥ इसमें एक सौ आठ दानोंकी माला उत्तम है सौकी उत्तम और पचास दानोंकी मध्यम माला होती है ॥ ४० ॥ चौअन रुद्राक्षकी माला हृदयको हितकारी है, इस प्रकार मालासे जपकर किसीको न दिखावे ॥ ४१ ॥ कनिष्ठिका दुःख नाश करनेवाली जप करनेमें श्रेष्ठ है अंगूठेके साथ और उँगलियोंके सहित जप करना चाहिये ॥४२॥ जो अंगूठेके विना जप है वह निष्फल है, घरमें जप समान है, गोठेमें सौ गुणा ॥ ४३ ॥ पुण्यवन अथवा

अंगुष्ठं मोक्षदं विद्यात्तर्ज्जनीं शत्रुनाशिनीम् ॥ मध्यमां धनदां शांतिं करोत्येषा ह्यनामिका ॥ ३९ ॥ अष्टोत्तरशतं माला तत्र स्यादुत्तमोत्तमा ॥ शतसंख्योत्तमा माला पंचाशद्भिस्तु मध्यमा ॥ ४० ॥ चतुः पंचाशदक्षैस्तु हृच्छ्रेष्ठा हि प्रकीर्तिता ॥ इत्येवं मालया कुर्याज्जपं कस्मै न दर्शयेत् ॥ ४१ ॥ कनिष्ठा क्षरणी प्रोक्ता जपकर्मणि शोभना ॥ अंगुष्ठेन जपेज्जप्यमन्यैरंगुलिभिस्सह ॥ ४२ ॥ अंगुष्ठेन विना जप्यं कृतं तदफलं यतः ॥ गृहे जपं समं विद्याद्गोष्ठे शतगुणं विदुः ॥ ४३ ॥ पुण्यारण्ये तथारामे सहस्रगुणमुच्यते ॥ अयुतं पर्वते पुण्ये नद्यां लक्षमुदाहृतम् ॥४४॥ कोटिं देवालये प्राहुरनन्तं मम सन्निधौ ॥ सूर्यस्याग्नेर्गुरोरिंदोर्दीपस्य च जलस्यच ॥ ४५ ॥ विप्राणां च गवां चैव सन्निधौ शस्यते जपः ॥ तत्पूर्वाभिमुखं वश्यं दक्षिणं चाभिचारिकम् ॥ ४६ ॥ पश्चिमं धनदं विद्यादौत्तरं शांतिदं भवेत् ॥ सूर्य्याग्निविप्रदेवानां गुरूणामपि सन्निधौ ॥ ४७ ॥ अन्येषां च प्रसक्तानां मन्त्रं न विमुखो जपेत् ॥ उष्णीषी कंचुकी नग्नो मुक्तकेशो गलावृतः ॥ ४८ ॥

बगीचेमें जप करनेसे सहस्र गुणा फल मिलता है ॥ ४४ ॥ देवालयमें करोड गुणा, मेरे निकट अनन्त फल कहा है; सूर्य अग्नि रुद्र चन्द्रमा दीपक जल ॥४५॥ ब्राह्मण और गौओंके निकट जप करना श्रेष्ठ है; पूर्व मुख होकर वशीकरण, दक्षिणकी ओर अभिचार ॥४६॥ पश्चिमकी ओर धनदायक; उत्तरकी ओर शान्तिदायक, सूर्य अग्नि ब्राह्मण देवता गुरु जनोंके निकट ॥ ४७ ॥ और भी प्रशस्त जनोंके निकट विमुख होकर मंत्र न जपे, पगडी कुरता नंगा, खुलेबाल, कंठ लपेटे हुये ॥ ४८ ॥

अपवित्र हाथ अशुद्ध रोना क्रोध मद छींक थूकना जँभाई लेना ॥ ४९ ॥ कुत्ते तथा नीच आदमियोंका दर्शन जपमें न करे, और जो दर्शन हो जाय तो आचमन करे, अथवा मेरा तुम्हारा स्मरण करे ॥ ५० ॥ तारोंको देखे वा प्राणायाम करे, बिना बैठे सोते चलते हुए ॥ ५१ ॥ गली अमंगल स्थान अन्धकारमें जप न करे, पावोंको फैल कर वा कुक्कुट आसनसे जप न करे ॥ ५२ ॥ सर्वांग अथवा खाटपर बैठकर चिंतासे व्याकुल समर्थ हो तो इनपर भी न जपे, अशक्त हो तो शक्तिके अनुसार जपे ॥ ५३ ॥ बहुत कहनेसे क्या है, संक्षेपमें मुझसे सुनिये; सदाचारयुक्त शुद्धतासे जपता हुआ ध्यान करनेसे मंगलको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥ आचार्य ही परम धर्म आचार्य

अपवित्रकरोऽशुद्धो विलपन्न जपेत्क्वचित्॥क्रोधं मदं क्षुतं त्रीणि निष्ठीवनविजृंभणे॥४९॥दर्शनंच श्वनीचानां वर्जयेज्जपकर्मणि॥ आचमेत्संभवे तेषां स्मरेद्वा मां त्वया सह॥५०॥ज्योतींषि च प्रपश्येद्वा कुर्याद्वा प्राणसंयमम्॥अनासनः शयाने वा गच्छन्नुत्थित एव वा॥५१॥रथ्यायामशिवे स्थाने न जपेत्तिमिरान्तरे॥प्रसार्य्य न जपेत्पादौ कुक्कुटासन एव वा ॥५२॥ यानशय्याधिरूढो वा चिंताव्याकुलितोऽथ वा॥शक्तश्चेत्सर्वमेवैतदशक्तः शक्तितो जपेत्॥५३॥किमत्र बहुनोक्तेन समासेन वचः शृणु ॥ सदाचारो जपञ्छुद्धं ध्यायन्भद्रं समश्नुते॥५४॥आचारः परमो धर्म आचारः परमं धनम्॥आचारः परमा विद्या आचारः परमा गतिः ॥५५॥आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निंदितः॥ परत्र च सुखी न स्यात्तस्मादाचारवान्भवेत्॥५६॥यस्य यद्विहितं कर्म वेदे शास्त्रे च वैदिकैः॥तस्य तेन समाचारःसदाचारो न चेतरः॥५७॥सद्भिराचरितत्वाच्च सदाचारः स उच्यते॥सदाचारस्य तस्याहुरास्तिक्यं मूलकारणम्॥५८॥आस्तिकश्चेत्प्रमादाद्यैः सदाचारादविच्युतः॥न दुष्यति नरो नित्यं तस्मादास्तिकतां व्रजेत्॥५९॥

ही परनधन, आचार्य ही परम विद्या, और आचार्य ही परम गति है ॥ ५५ ॥ आचार हीन पुरुष लोकमें निन्दित होता है, दूसरे लोकमें भी सुख नहीं मिलता, इससे पुरुषको आचार्यवान् होना युक्त है ॥ ५६ ॥ जिसको वेद शास्त्रमें कर्म विधान कर दिया है उसको वही कर्म करना चाहिये दूसरा नहीं ॥ ५७ ॥ सत्पुरुषोंसे आचरित होनेसे सदाचार कहाता है; सदाचार ही आस्तिक्यका मूल कारण है ॥ ५८ ॥ आस्तिक्य होकर प्रमादादिसे सदाचारसे भ्रष्ट हो जाय तो भी वह दूषित नहीं होता, इस कारण आस्तिकताको

प्राप्त होना चहिये ॥ ५९ ॥ जो सुकृति दुष्कृतिसे यहां सुख दुःख हो वैसा ही परलोकमें होगा इस मतिका नाम आस्तिक्यता है ॥ ६० ॥ हे प्रिये ! और भी गुप्त रहस्य कहता हूं, यह नास्तिक जीवोंको कहना न चाहिये ॥ ६१ ॥ सदाचार हीन पतित अन्त्यजके रक्षा करनेको कलियुगमें पंचाक्षरसे बढकर कोई मंत्र नहीं है ॥ ६२ ॥ चलते खडे होते अथवा स्वेच्छासे कर्म करते हुए; अशुचि वा शुचिमें भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता ॥ ६३ ॥ जो पुरुष आचार रहित है अविशुद्ध षडध्ववालोंका यदि गुरुने उपदेश न दिया

यथेहास्ति सुखं दुःखं सुकृतैर्दुष्कृतैरपि ॥ तथा परत्र चास्तीति मतिरास्तिक्यमुच्यते॥६०॥रहस्यमन्यद्वक्ष्यामि गोपनीयमिदं प्रिये ॥ न वाच्यं यस्य कस्यापि नास्तिकस्याथ वा पशोः ॥ ६१ ॥सदाचारविहीनस्य पतितस्यान्त्यजस्य च ॥ पंचाक्षरात्परं नास्ति परित्राणं कलौ युगे ॥ ६२ ॥ गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्वेच्छया कर्म कुर्वतः ॥ अशुचेर्वा शुचेर्वापि मन्त्रोऽयन्न चनिष्फलः ॥ ६३ ॥ अनाचारवतां पुंसामविशुद्धषडध्वनाम् ॥ अनादिष्टोऽपि गुरुणा मन्त्रोऽयं न च निष्फलः ॥६४॥ अन्त्यजस्यापि मूर्खस्य मूढस्य पतितस्यच ॥ निर्मर्यादस्य नीचस्य मंत्रोऽयं न च निष्फलः ॥ ६५ ॥ सर्वावस्थां गतस्यापि मयि भक्तिमतः परम् ॥ सिध्यत्येव न संदेहो नापरस्य तु कस्यचित् ॥ ६६ ॥ न लग्नतिथिनक्षत्रवारयोगादयः प्रिये ॥ अस्यात्यं तमवेक्ष्याः स्युर्नैष सुप्तस्सदोदितः ॥ ६७ ॥ न कदाचिन्न कस्यापि रिपुरेष महामनुः॥सुसिद्धो वापि सिद्धो वा साध्यो वापि भविष्यति॥६८॥सिद्धेन गुरुणादिष्टस्सुसिद्ध इति कथ्यते ॥ असिद्धेनापि वा दत्तस्सिद्धसाध्यस्तु केवलः ॥ ६९ ॥

हो तो भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता ॥ ६४ ॥ अन्त्यज, मूर्ख, मूढ, पतित, निर्मर्याद और नीच पुरुषोंको भी यह मंत्र निष्फल नहीं होता ॥ ६५ ॥ किसी अवस्थामें हो जो मेरी परम भक्ति करता है वह सिद्ध हो जायगा इसमें संदेह नहीं, दूसरे किसीको सिद्धि नहीं होगी ॥ ६६ ॥ हे प्रिये ! लग्न तिथि नक्षत्र वार योगादिसे सोते जागते कोई मेरे भक्तको अपेक्षा नहीं है ॥६७॥ इसका कोई शत्रु नहीं होता, इसे सुसिद्ध सिद्ध वा असाध्य कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ॥ ६८ ॥ सिद्ध गुरुके आदेशको प्राप्त हो सुसिद्ध कहाता है, और असिद्धसे

भी लियाहुआ स्वयंही पढाहुआ साध्यसे सिद्ध होजाता है ॥ ७९ ॥ असाधित वा साधित इसमें संदेह नहीं वह सिद्ध होजाता है, मुझमें मन्त्र तथा गुरुमें जो श्रद्धासे अतिवर्तता है ॥ ७० ॥ इस कारण मंत्रांतरोंको छोडकर वियोगके अनधिकारसे हृदयको मनोहर पंचाक्षरी विद्याका आश्रय करे ॥७१॥ मंत्रांतरोंके सिद्ध होनेमें यह मन्त्र सिद्ध नहीं होता है, और इस महामंत्रके सिद्ध होनेमें दूसरे सब मंत्र स्वयं सिद्ध होजाते हैं ॥ ७२ ॥ हे महेश्वरि ! जिस प्रकार देवतोंके प्राप्त होनेपर भी मैं प्राप्त नहीं हूँ परंतु मेरे प्राप्त होने में वे सब स्वयं प्राप्त होजाते हैं, यह मन्त्रो विषे समान विधि है ॥ ७३ ॥ जो और मन्त्रोंमें दोष हैं वे इसमें नहीं होते हैं, इस मन्त्रके प्रवर्तनसे जाति आदिकी अपेक्षा नहीं है ॥७४॥

असाधितस्साधितो वा सिध्यत्येव न संशयः॥श्रद्धातिशययुक्तस्य मयि मंत्रेतथा गुरौ॥७०॥तस्मान्मंत्रान्तरांस्त्यक्त्वा सापायान धिकारतः॥आश्रमेत्परमां विद्यां साक्षात्पंचाक्षरीं बुधः॥७१॥मंत्रान्तरेषु सिद्धेषु मंत्र एष न सिध्यति॥सिद्धे त्वस्मिन्महामंत्रे ते च सिद्धा भवंत्युत ॥७२॥ यथा देवेष्वलब्धोऽस्मि लब्धेष्वपि महेश्वरि ॥ मयि लब्धे तु ते लब्धा मंत्रेष्वेषु समो विधिः ॥७३॥ ये दोषास्सर्वमंत्राणां न तेऽस्मिन्संभवंत्यपि॥ अस्य मंत्रस्य जात्यादीननपेक्ष्य प्रवर्तनात् ॥७४॥तथापि नैव क्षुद्रेषु फलेषु प्रति योगिषु ॥ सहसा विनियुंजीत तस्मादेष महाबलः ॥७५॥ उपमन्युरुवाच ॥ एवं साक्षान्महादेव्यै महादेवेन शूलिना ॥ हिता य जगतामुक्तः पञ्चाक्षरविधिर्यथा ॥७६॥ य इदं कीर्त्तयेद्भक्त्या शृणुयाद्वा समाहितः॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम् ॥७७॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखंडे पंचाक्षरमहिमवर्णनं नाम चतुर्दशोध्यायः ॥१४॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ भगवान्मंत्रमाहात्म्यं भवता कथितं प्रभो ॥ तत्प्रयोगविधानं च साक्षाच्छ्रुतिसमं यथा ॥ १ ॥

तथापि क्षुद्रफल और शत्रुओंमें एक साथ इसको नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि इसका महाफल है ॥ ७५ ॥ इस प्रकार महादेव शूलधारीने महादेवीके प्रति जगत्के हितके पंचाक्षरकी विधि कही है ॥ ७६ ॥ जो इसे भक्ति से कीर्तन करता है और श्रवण करता है वह सब पापोंसे छूटकर परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीकृष्ण बोले, हे भगवन् ! अपने मंत्रका माहात्म्य कहा और साक्षात् श्रुतिसम्मत उसके प्रयोगका विधान सुनाया ॥ १ ॥

इस समय मंत्र ग्रहणमें शिव संस्कारके सुननेकी इच्छा करता हूँ जो किआपने सुक्ष्मतासे कही है सो विस्तारसे कहिये ॥ २॥ उपमन्यु बोलेमैंसब कर्म दूर करनेवाली विधि कहता हूं वह परम पवित्र संस्कार शिवने कहा है ॥ ३ ॥ क्योंकि पूजामें मनुष्योंको सब प्रकार से संस्कार करना उचित है; छः मार्गका शोधनही संस्कार कहलाता है ॥ ४ ॥ जिससे विज्ञान होता है और पाश बन्धन क्षय होता है इस कारण संस्कारको दीक्षा भी कहते हैं ॥ ५ ॥ शिव शास्त्रमें शाम्भवी शक्ति मांत्री (मंत्र सम्बन्धी) तीन प्रकारकी दीक्षा शिवने वर्णन की है ॥ ६ ॥ गुरुके दर्शन पात्रसे स्पर्श और सम्भाषण करनेसे तत्काल जन्तुकी पाश क्षय कारिणी संज्ञा होजाती है ॥ ७ ॥ वही शांभवी दीक्षा कहाती है, सो

इदानीं श्रोतुमिच्छामि शिवसंस्कारमुत्तमम्॥ मंत्रसंग्रहणे किंचित्सूचितन्नतु विस्मृतम् ॥२ ॥उपमन्युरुवाच॥हन्त ते कथयिष्यामि सर्वपापविशोधनम्॥ संस्कारं परमंपुण्यं शिवेन परिभाषितम् ॥३॥ सम्यक् कृताधिकारः स्यात्पूजादिषु नरो यतः ॥ संस्कार कथ्यते तेन षडध्वपरिशोधनम् ॥ ४ ॥ दीयते येनविज्ञानं क्षीयते पाशबंधनम् ॥ तस्मात्संस्कार एवायं दीक्षेत्यपि च कथ्यते ॥ ५ ॥ शांभवी चैव शाक्ती च मांत्री चैव शिवागमे ॥ दीक्षोपदिश्यते त्रेधा शिवेन परमात्मना ॥ ६ ॥ गुरोरालोकमात्रेण स्पर्शात्संभाषणादपि ॥ सद्यस्संज्ञा भवेज्जंतोः पाशोपक्षयकारिणी ॥७॥ सा दीक्षा शांभवी प्रोक्ता सा पुनर्भिद्यते द्विधा ॥ तीव्रा तीव्रतरा चेति पाशो पक्षयभेदतः ॥ ८ ॥ यया स्यान्निर्वृतिः सद्यस्सैव तीव्रतरा मता ॥ तीव्रा तु जीवतोत्यंतं पुंसः पापविशोधिका ॥ ९ ॥ शक्ती ज्ञानवती दीक्षा शिष्यदेहं प्रविश्य तु ॥ गुरुणा योगमार्गेण क्रियते ज्ञानचक्षुषा ॥१०॥ मांत्री क्रियावती दीक्षा कुंडमंडलपूर्विका ॥ मंदमंद तरोद्देशात्कर्तव्या गुरुणा बहिः ॥११॥

दो प्रकारकी है, सो पाश क्षयके भेदसे तीव्रा और तीव्रतरा नामवाली है ॥ ८ ॥ जिससे शीघ्र निवृत्ति हो वह तीव्रतरा है; और पुरुषोंकी पाप शोधनेवाली तीव्रा दीक्षा है ॥ ९ ॥ शक्ति ज्ञानवाली वह दीक्षा है कि शिष्यके देहमें प्रवेश करके योग मार्ग द्वारा जो गुरुसे की जाती है ज्ञान चक्षुसे होती है ॥ १० ॥ क्रियावती मांत्री दीक्षा कुण्ड मण्डलसे पूर्व मन्द और मन्दतरके उद्देशसे गुरुको बहिर्भागमें करनी चहिये ॥ ११ ॥

शक्ति सामर्थ्यके अनुसार शिष्य अनुग्रहके योग्य है; शैवधर्मके अनुसार उसका मूल होनेसे संक्षेपसे योग्य है ॥ १२ ॥ जहां शक्ति पतित नहीं होती है, वहां शक्ति नहीं होती; न विद्या न शिवाचार न मुक्ति और सिद्धि होती है ॥१३॥ इस कारण शक्तिपातके बडे चिह्नोंको देखकर ज्ञान अथवा क्रियासे गुरु शिष्यको शुद्ध करे ॥ १४ ॥ जो मोहसे नष्ट हो जाता है, इस प्रकार सब प्रकारसे गुरु शिष्यकी परीक्षा करे ॥ १५ ॥ अत्यन्त प्रबोध आनन्दकी प्राप्ति होनी शक्तिपातका लक्षण है; कारण कि वह पराशक्ति प्रबोधानदरूपवाली है ॥ १६ ॥ अन्तःकरणकी विक्रिया आनन्दबोधका लिंग है; जिससे कि कम्प रोमाञ्च स्वर नेत्रादिके विकार होते हैं ॥ १७ ॥ इन शिष्योंके लक्षणोंसे

शक्तिपातानुसारेण शिष्योऽनुग्रहमर्हति॥शैवधर्मानुसारस्य तन्मूलत्वात्समासतः॥१२॥यत्र शक्तिर्न पतिता तत्र शुद्धिर्न जायते॥ न विद्या न शिवाचारो न मुक्तिर्न च सिद्धयः॥१३॥तस्माल्लिंगानि संवीक्ष्य शक्तिपातस्य भूयसः॥ज्ञानेन क्रियया वाथ गुरुश्शिष्यं विशोधयेत् ॥१४॥ योऽन्यथा कुरुते मोहात्स विनश्यति दुर्मतिः॥तस्मात्सर्वप्रकारेण गुरुः शिष्यं परीक्षयेत्॥१५॥लक्षणं शक्तिपातस्य प्रबोधानंदसंभवः ॥ सा यस्मात्परमा शक्तिः प्रबोधानंदरूपिणी ॥१६॥ आनंदबोधयोर्लिंगमंतःकरणविक्रियाः ॥ यथा स्यात्कंपरोमांचस्वरनेत्रांगविक्रियाः॥१७॥ शिष्योपि लक्षणैरेभिः कुर्य्याद्गुरुपरीक्षणम्॥तत्संपर्कैः शिवार्चादौ संगतैर्वाथ तद्गतैः ॥१८॥ शिष्यस्तु शिक्षणीयत्वाद्गुरोर्गौरवकारणात्॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोर्गौरवमाचरेत् ॥१९॥ यो गुरुस्स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः ॥ गुरुर्वा शिव एवाथ विद्याकारेण संस्थितः॥२०॥यथा शिवस्तथा विद्या यथा विद्या तथा गुरुः॥शिवविद्या गुरूणां च पूजया सदृशं फलम्॥२१॥ सर्वदेवात्मकश्चासौ सर्वमंत्रमयो गुरुः॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्याज्ञां शिरसा वहेत्॥२२॥

उसकी परीक्षा करनी उचित है, उसको सम्पर्कसे शिवका अर्चादिकमें अपनी गति वा उसकी गतिसे परीक्षा करे ॥ १८ ॥ शिक्षणीय होनेसे शिष्य, गौरवके कारणसे गुरु कहाता है, इस कारण सब प्रयत्नसे गुरुका गौरव करना चाहिये ॥ १९ ॥ जो गुरु है सो शिव है, जो शिव है सो गुरु है गुरु वा शिव दोनों विद्या हैं, और जो विद्या है सोई गुरु हैं, शिव विद्या और गुरुके पूजनका बराबर फल है ॥ २० ॥ २१ ॥ यह गुरु सब देवात्मक और मन्त्रमय है, इस कारण सब प्रयत्नसे गुरुकी आज्ञा शिरपर धारण करे ॥ २२ ॥

कल्याणकी इच्छा करनेवाला जो गुरुकी आज्ञाको मनसे भी उल्लंघन नहीं करता और गुरुकी आज्ञाका पालन करता है, वह ज्ञान सम्पत्तिको पाता है ॥ २३ ॥ चलते स्थित होते सोते भोजन करते तथा दूसरे कर्माचरण करनेमें सब कार्य गुरुकी आज्ञासे करने चाहियें ॥ २४ ॥ गुरुके घर वा उनके सन्मुख यथेष्ट आसनपर न बैठे, गुरु साक्षात् देवता है उनका घर देवमंदिर है ॥ २५ ॥ जिस प्रकार पापियोंके संग वा पापसे पतित हो जाता है, इसी प्रकार आचार्यके संगसे सब पापका नाश होकर उसके धर्मफलका भागी होता है जिस प्रकार अग्निके

श्रेयोऽर्थी यदि गुर्वाज्ञां मनसापि न लंघयेत् ॥ गुर्वाज्ञापालको यस्माज्ज्ञानसंपत्तिमश्नुते ॥२३॥ गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्भुंजन्नान्यत्कर्म समाचरेत् ॥ समक्षं यदि कुर्वीत सर्वं चानुज्ञया गुरोः ॥२४॥ गुरोर्गृहे समक्षं वा न यथेष्टासनो भवेत् ॥ गुरुर्देवो यतः साक्षात्तद्गृहं देवमन्दिरम् ॥२५॥ पापिनां च यथा संगात्तत्पापात्पतितो भवेत् ॥ यथेह वह्निसंपर्कान्मलं त्यजति कांचनम् ॥२६॥ तथैव गुरुसंपर्कात्पापं त्यजति मानवः ॥ यथा वह्निसमीपस्थो घृतकुम्भो विलीयते ॥ २७ ॥ तथा पापं विलीयेत ह्याचार्यस्य समीपतः ॥ यथा प्रज्वलितो वह्निः शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत् ॥२८॥ तथायमपि संतुष्टो गुरुः पापं क्षणाद्दहेत् ॥ मनसा कर्मणा वाचा गुरोः क्रोधं न कारयेत् ॥२९॥ तस्य क्रोधेन दह्यंते ह्यायुःश्रीज्ञानसक्रियाः ॥ तत्क्रोधकारिणो ये स्युस्तेषां यज्ञाश्च निष्फलाः ॥३०॥ यमाश्च नियमाश्चैव नात्र कार्य्या विचारणा ॥ गुरोर्विरुद्धं यद्वाक्यं न वदेज्जातुचिन्नरः ॥ ३१ ॥

सम्पर्कसे सोनेका मैल त्यागा जाता है ॥ २६ ॥ इसी प्रकार गुरुके संगसे मनुष्यके पाप दूर होते हैं जैसे अग्निके संम्पर्कसे घृतकुम्भ लय होता है ॥ २७ ॥ इसी प्रकार आचार्यके सम्पर्कसे पाप लय हो जाते हैं, जैसे प्रज्वलित अग्नि सूखे काठको जलाती है ॥ २८ ॥ इसी प्रकार संतुष्ट हुए गुरु क्षणमात्रमे पाप नष्ट कर देते हैं, मन वचस कर्मसे गुरुको क्रोधित न करे ॥ २९ ॥ गुरुके क्रोधसे आयु श्री ज्ञान सत्क्रिया नष्ट हो जाती हैं जो गुरुको क्रोध करनेवाले हैं उनके यज्ञ निष्फल हो जाते हैं ॥ ३० ॥ इसमें सन्देह

१ तद्वदाचार्यसंगेन तद्धर्मफलभाग्भवेत् ।

नहीं उनके यम नियम नष्ट होजाते हैं, गुरुके विरुद्ध वचन मनुष्य कभी न कहे ॥ ३१ ॥ और जो मोहसे कहता है वह नरकको जाता है मन वचन कर्मसे गुरुकी सेवा बुद्धिमान करे ॥ ३२ ॥ और कल्याणकी इच्छावाला मिथ्याचार न करे, जो गुरुका एक दुर्गुण विख्यात करता है; उसमें सौ दुर्गुण होते हैं; और गुरुके गुण विख्यात करनेसे सब पुण्योंका फल होता है गुरुका हित और प्रिय करे, चाहे यह कहें; वा न कहें ॥ ३३ ॥ सामने वा पीछे उनके हितकारी कार्य करे इस प्रकार आचारवान् भक्त नित्य श्रेष्ठ मनसे ॥ ३४ ॥ गुरुका प्रिय करता हुआ शिष्य शिवधर्मोंको करे, तब शिष्य शैवधर्मके योग्य होता है गुरु आनंददायक विद्वान् हो ॥ ३५ ॥ तत्त्वज्ञानी

वदेद्यदि महामोहाद्रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ मनसा कर्मणा वाचा गुरुमुद्दिश्य यत्नतः ॥ ३२ ॥ श्रेयोर्थी चेन्नरो धीमान्न मिथ्याचार माचरेत् ॥ गुरोर्हितं प्रियं कुर्यादादिष्टो वा न वा सदा ॥ ३३ ॥ असमक्षं समक्षं वा तस्य कार्यं समाचरेत् ॥ इत्थमाचारवान्भक्तो नित्यमुद्युक्तमानसः ॥ ३४ ॥ गुरुप्रियकरः शिष्यः शैवधर्मांस्ततोऽर्हति ॥ गुरुश्चेद्गुणवान्प्राज्ञः परमानंदभासकः ॥ ३५ ॥ तत्त्वविच्छिवसंसक्तो मुक्तिदो न तु चापरः ॥ संवित्संजननं तत्त्वं परमानंदसंभवम् ॥ ३६ ॥ तत्तत्त्वं विदितं येन स एवानंददर्शकः ॥ न पुनर्नाममात्रेण संविदारहितस्तु यः ॥ ३७ ॥ अन्योन्यं तारयेन्नौका किं शिला तारयेच्छिलाम् ॥ एतस्या नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका ॥ ३८ ॥ यैः पुनर्विदितं तत्त्वं ते मुक्ता मोचयन्त्यपि ॥ तत्त्वहीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्मपरिग्रहः ॥ ३९ ॥

शिवभक्त हो तो मुक्ति दे सकता है दूसरा नहीं ब्रह्मज्ञानका उत्पन्न करनेवाला तत्त्वके परमानंदसे प्राप्त होताहै ॥ ३६ ॥ वह तत्त्व जिसने जाना है वही परमानन्दका दिखानेवाला है ज्ञानरहित नाममात्रका गुरु नहीं तार सकता ॥ ३७ ॥ ऐसे दोनों गुरु शिष्य परस्पर तारनेमें समर्थ होते हैं, शिला कहीं शिलाको तार सकती है ? इसी प्रकार मूर्ख गुरु शिष्यको तार नहीं सकता उन नाममात्रके ज्ञानियोंको नाममात्रही मुक्ति होती है ॥ ३८ ॥ और जिन्होंने तत्त्व जाना है वे स्वयं मुक्त हैं; और दूसरोंको भी मुक्त करसकते हैं तत्त्वके बिना ज्ञान कहां

१ नगुण्येष्यापितेतस्यनंगुण्यशतवान्भवेत् । गुणेपिष्यापितेतस्यसर्वपुण्यफलंलभेत् । देशिकाकृतिमास्थायपशोपाशानशेषतः । छित्वापरं पदं देवोनयत्येवमितिश्रुतिः ।

और ज्ञानके बिना आत्मज्ञान नहीं ॥ ३९ ॥ आत्मज्ञानके विनाही तो इसकी पशुसंज्ञा है, पशुओंसे प्रेरित पशुपना इस प्रकार पशुपना निवृत्त नहीं होसकता ॥ ४० ॥ इस कारण तत्त्वज्ञानीही संसारसे मुक्त कर सकताहै सब लक्षणसे सयुक्त सर्वशास्त्रका जानेवाला भी ॥ ४१ ॥ सब उपाय जानकर भी यदि तत्त्वज्ञानसे हीन हो तो निष्फल है जिस गुरुकी अनुभवपर्यन्त बुद्धि प्रवृत्त होती है ४२ ॥ उसके दर्शनसे परानन्द होता है, इससे जिसके संगसे प्रबोधानंदकी प्राप्ति हो ॥ ४३ ॥ बुद्धिमान् उसीको गुरु करे दूसरेको नहीं; अच्छे शिष्यको विनयाचार चतुरतासे युक्त हो गुरुको उचित प्रकारसे ॥ ४४ ॥ तबतक बराबर सेवा करनी चाहिये जबतक ज्ञानकी प्राप्ति हो

परिग्रहविनिर्मुक्तः पशुरित्यभिधीयते ॥ पशुभिःप्रेरितश्चापि पशुत्वं नातिवर्तते॥४०॥तस्मात्तत्त्वविदेवेह मुक्तो मोचक इष्यते॥ सर्वलक्षणसंयुक्तःसर्वशास्त्रविदप्ययम्॥४१॥ सर्वोपायविधिज्ञोऽपि तत्त्वहीनस्तु निष्फलः॥ यस्यानुभवपर्यंता बुद्धिस्तत्त्वे प्रवर्तते ॥४२॥ तस्यावलोकनाद्यैश्च परानन्दोऽभिजायते॥तस्माद्यस्यैव संपर्कात्प्रबोधानंदसंभवः ॥४३॥ गुरुं तमेव वृणुयान्नापरं मतिमान्नरः ॥ स शिष्यैर्विनयाचारचतुरैरुचितो गुरुः॥४४॥ यावद्विज्ञायते तावत्सेवनीयो मुमुक्षुभिः ॥ ज्ञाते तस्मिन्स्थिरा भक्तिर्यावत्तत्त्वं समाश्रयेत् ॥४५॥ न तु तत्त्वं त्यजेज्जातु नोपेक्षेत कथंचन ॥ यत्रानंदःप्रबोधो वा नाल्पमप्युपलभ्यते ॥४६॥ वत्सरादपि शिष्येण सोऽन्यं गुरुमुपाश्रयेत् ॥गुरुमन्यं प्रपन्नेऽपि नावमन्येत पौर्विकम् ॥ गुरोर्भ्रातॄंस्तथा पुत्रान्बोधकान्प्रेरकानपि॥४७॥ तत्रादावुपसंगम्य ब्राह्मणं वेदपारगम्॥गुरुमाराधयेत्प्राज्ञं शुभगं प्रियदर्शनम्॥४८॥सर्वाभयप्रदातारं करुणाक्रांतमानसम्॥तोषयेत्तं प्रयत्नेन मनसा कर्मणा गिरा॥४९॥तावदाराधयेच्छिष्यः प्रसन्नोसौ भवेद्यथा॥तस्मिन्प्रसन्ने शिष्यस्य सद्यः पापक्षयो भवेत्॥५०॥

उसके जाननेसे जो स्थिर भक्ति हो तो उसका आश्रय करे ॥ ४५ ॥ उस गुरुको न कभी छोडे न उपेक्षा करे, जहां थोडा भी आनन्द और प्रबोध न हो ॥ ४६ ॥ तो एक वर्षके उपरांत दूसरा गुरु करले दूसरे गुरुके पास जाकर भी पहले गुरुका तिरस्कार न करे; गुरुके भ्राता पुत्र बोधक प्रेरक ॥ ४७ ॥ उनके पास जाकर वेदपाठी ब्राह्मण पंडित गुरुका आराधन करे जो कि प्रियदर्शन हो ॥ ४८ ॥ सब अभय देनेवाले करुणायुक्त मन वचन कर्मसे ऐसे गुरुको प्रसन्न करे ॥ ४९ ॥ जब तक वह प्रसन्न हो तबतक शिष्य गुरुकी शुश्रूषा करता

रहे; उनके प्रसन्न होतेही शिष्यके सब पाप क्षय होजाते हैं ॥५०॥ इस कारण धन रत्न क्षेत्र गृह भूषण वस्त्र शय्या आसन ॥५१॥ परमगतिकी इच्छा हो तो ये वित्तके अनुसार गुरुको निवेदन करे, धनकी शठता न करे ॥५२॥ वही माता पिता भ्राता बन्धु धन सुख सखा मित्र है; उससे सब उन गुरुको निवेदन करे, ॥५३॥ फिर कुटुम्बादि सहित पीछे उसे अपनी आत्माको निवेदन करदे जलसे उसको सब समर्पण कर नित्य उनके वशमें रहे ॥ ५४ ॥ जिस समय उस शिव स्वरूप आचार्यके निमित्त अपनी आत्मा प्रदान करदी तब यह शरीरी शिवस्वरूप होता है, फिर इसका जन्म नहीं होता ॥५५॥ आचार्यस्वरूपको प्राप्त होकर यह पशु तब सब पापोंको छेदन कर परमपदको प्राप्त होता है यह श्रुति है

तस्माद्धनानि रत्नानि क्षेत्राणि च गृहाणि च ॥ भूषणानि च वासांसि यानशय्यासनानि च ॥५१॥ एतानि गुरवे दद्याद्भक्त्या वित्तानुसारतः ॥ वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥ ५२ ॥ स एव जनको माता भर्ता बन्धुर्धनं सुखम् ॥ सखा मित्रं च यत्तस्मात्सर्वं तस्मै निवेदयेत् ॥ ५३ ॥ निवेद्य पश्चात्स्वात्मानं सान्वयं सपरिग्रहम् ॥ समर्प्य सोदकं तस्मै नित्यं तद्वशगो भवेत् ॥ ॥ ५४ ॥ यदा शिवाय स्वात्मानं दत्तवान् देशिकात्मने ॥ तदा शैवो भवेद्देही न ततोऽस्ति पुनर्भवः ॥५५॥ गुरुश्च स्वाश्रितं शिष्यंवर्षमेकं परीक्षयेत् ॥ ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं द्विवर्षं च त्रिवर्षकम् ॥ ५६ ॥ प्राणद्रव्यप्रदानाद्यैरादेशैश्च समासमैः ॥ उत्तमांश्चाधमे कृत्वा नीचानुत्तमकर्मणि ॥ ५७ ॥ आकृष्टास्ताडिता वापि ये विषादं न यान्त्यपि ॥ ते योग्याः संयताः शुद्धाः शिवसंस्कारकर्मणि ॥५८॥ अहिंसका दयावंतो नित्यमुद्युक्तचेतसः ॥ अमानिनो बुद्धिमंतस्त्यक्तस्पर्द्धाः प्रियंवदाः ॥ ५९ ॥ ऋजवो मृदवः स्वच्छा विनीताः स्थिरचेतसः ॥ शौचाचारसमायुक्ताः शिवभक्ता द्विजातयः ॥ ६० ॥

गुरु अपने शिष्यकी एक वर्षतक परीक्षा करे, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यकी क्रमसे तीन वर्ष परीक्षा करे ॥५६॥ प्राण द्रव्यके प्रदान करनेसे समासम आदेशसे उत्तमोंको अधम अधमको नीच नीचोंको श्रेष्ठ यथायोग्य कर्ममें लगावे ॥ ५७ ॥ फटकारनेसे वा वा ताडन किये हुए विषादको प्राप्त नहीं होते हैं वेही शिवसंस्कारके कर्ममें योग्य संयत और शुद्ध हैं ॥ ५८ ॥ अहिंसा और दयायुक्त नित्य उद्युक्त चित्तवाले मानरहित बुद्धिसम्पन्न स्थिरबुद्धि हितप्रियवादी ॥ ५९ ॥ सीधे मृदु स्वच्छ विनीत स्थिरचित्त शौचाचारयुक्त शिवके भक्त ब्राह्मण हैं ॥ ६० ॥

इस प्रकार वाणी मन कर्मसे यथायोग्य न्याय पूर्वक शुद्धबोधयुक्त होने चाहिये, यह शास्त्रका निश्चय है उन्हींका संस्कार करे ॥ ६१ ॥ शिवके संस्कार कर्ममें स्त्रियोंको स्वतः अधिकार नहीं है; ईश्वरमें भक्ति स्वामीकी आज्ञासेही करनी चाहिये ॥ ६२ ॥ यदि स्वामीसे हीन हो तो पुत्रकी आज्ञासे कन्याका पिताकी आज्ञासे पूजामें अधिकार है; शूद्र अन्त्यज विशेषकर पतित ॥ ६३ ॥ संकरजातियोंकी अध्व (षडध्व) शुद्धि नहीं कही है जो वे परमभावसे परमकारण शिवमें मन लगावें ॥६४॥ पादोदक जल प्रदानसेही कर्म बन्धनसे छूट जाते हैं, मूर्धाविसिक्त ब्राह्मण वा वर्ण संकरजाति जो तीन वर्णोंमें हो ॥ ६५ ॥ उनकी माताके कुलके समान शुद्धि करनी चाहिये जो कन्या पितादिकने शिव धर्ममें

एवं वृत्तसमोपेता वांङ्मनःकायकर्मभिः ॥ शोध्या बोध्या यथान्यायमिति शास्त्रेषु निश्चयः ॥६१॥ नाधिकारः स्वतो नार्य्याः शिवसंस्कारकर्मणि॥ नियोगाद्भर्तुरस्त्येव भक्तियुक्ता यदीश्वरे ॥६२॥ तथैव भर्तृहीनाया पुत्रादेरभ्यनुज्ञया॥ अधिकारो भवत्येव कन्यायाः पितुराज्ञया॥ शूद्राणां मर्त्यजातीनां पतितानां विशेषतः ॥६३॥ तथा संकरजातीनां नाध्वशुद्धिर्विधीयते॥ तैष्यकृत्रिम भावाश्चेच्छिवे परमकारणे ॥६४॥ पादोदकप्रदानाद्यैः कुर्युः पापविशोधनम् ॥अत्रानुलोमजाता ये युक्ता एव द्विजातिषु ॥६५॥ तेषामध्वविशुद्ध्यादि कुर्यान्मातृकुलोचितम्॥ या तु कन्या स्वपित्राद्यैश्शिवधर्मे नियोजिता ॥६६॥ सा भक्ताय प्रदातव्या नाप राय विरोधिने ॥ दत्ता चेत्प्रतिकूलाय प्रमादाद्बोधयेत्पतिम् ॥६७॥ अशक्ता तं परित्यज्य मनसा धर्ममाचरेत् ॥ यथा मुनिवरं त्यक्ता पतिमत्रिं पतिव्रता ॥६८॥ कृतकृत्याऽभवत्पूर्वं तपसाराध्य शङ्करम्॥ यथा नारायणं देवं तपसाराध्य पांडवान् ॥६९॥

नियुक्त की है ॥ ६६ ॥ वह शिवभक्तके निमित्त देना चाहिये विरोधीके निमित्त नहीं; और जो प्रतिकूलको मूलसे देदी जाय, वह अपने पतिको समझावे ॥ ६७ ॥ और जो असमर्थ हो तो उसे त्याग मनसे धर्माचरण करती रहे, जिस प्रकारसे कि मुनिश्रेष्ठ अत्रि अपने पतिको छोडकर पतिव्रता ॥ ६८ ॥ अनुसूया शंकरको आराधनको कृतकार्य हुई (शिवपूजनमात्रमें त्यागना है सर्वथा नहीं) जिस प्रकार नारायण देवको तपसे आराधन कर ॥ ६९ ॥

गुरुजनोंसे नियुक्त होकर द्रौपदीने पांच पांडव पति पाये, जो अस्वतंत्रतासे दोष हो जाय वह परमार्थसे नहीं होता ॥ ७० ॥ शिवधर्ममें नियुक्त होकर शिवशासनके गौरवसे वह दोष नहीं लगता बहुत कहनेसे क्या है जो कोई भी शिवका आश्रय करे ॥७१॥ और उसका संस्कार गुरुके अधीन हो तो संस्कारमें भेद नहीं पडता है; गुरुके दर्शन स्पर्शन भाषणसे ॥ ७२ ॥ जिसको प्रज्ञा होती है उसका कहीं पराजय नहीं है जो योग मार्गसे मनसेही संस्कार करता है ॥७३॥ वह गुह्य नहीं कहा जा सकता कि, वह क्रियागुरु मुखमेंही क्रियावान् जो कुण्डमण्डप पूर्वक संस्कार करताहै वह संक्षेपसे कहते हैं उसका विस्तार नहीं कह सकते ॥७४॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तर

पतीछँब्धवती धर्मे गुरुभिर्न नियोजिता ॥ अस्वातन्त्र्यकृतो दोषो नेहास्ति परमार्थतः ॥७०॥ शिवधर्मे नियुक्तायाश्शिवशासनगौरवात् ॥ बहुनात्र किमुक्तेन योऽपि कोऽपि शिवाश्रयः ॥७१॥ संस्कार्यो गुर्वधीनश्चेत्संस्क्रिया न प्रभिद्यते ॥ गुरोरालोकनादेव स्पर्शात्संभाषणादपि ॥७२॥ यस्य संजायते प्रज्ञा तस्य नास्ति पराजयः ॥ मनसा यस्तु संस्कारः क्रियते योगवर्त्मना ॥७३॥ स नेह कथितो गुह्यो गुरुवक्त्रैकगोचरः ॥ क्रियावान्यस्तु संस्कारः कुंडमंडपपूर्वकः ॥ स वक्ष्यते समासेन तस्य शक्यो न विस्तरः ॥७४॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे दीक्षाविधाने गुरुमाहात्म्यं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥ उपमन्युरुवाच ॥ पुण्येऽहनि शुचौ देशे बहुदोषविवर्जिते ॥ देशिकः प्रथमं कुर्यात्संस्कारं समयाह्वयम् ॥१॥ परीक्ष्य भूमिं विधिवद्गंधवर्ण रसादिभिः ॥ शिल्पिशास्त्रोक्तमार्गेण मण्डपं तत्र कल्पयेत् ॥२॥ कृत्वा वेदिं च तन्मध्ये कुण्डानि परिकल्पयेत् ॥ अष्टदिक्षु तथा दिक्षु तत्रैशान्यां पुनः क्रमात् ॥३॥ प्रधानकुंडं कुर्वीत यद्वा पश्चिमभागतः ॥ प्रधानमेकमेवाथ कृत्वा शोभां प्रकल्पयेत् ॥४॥

खण्डे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥ उपमन्युः बोले, पुण्य दिनमें दोषरहित पवित्र देशमें जो देशिक (साधक) समयाह्वय संस्कार करे (अर्थात्उसे मन्त्रग्रहणादिसे अध्यायके अंतमें प्रगट करेंगे) ॥१ ॥ गन्ध वर्ण रसादिसे पहले भूमिकी परीक्षा कर शिवशास्त्रमें कहे विधानसे मण्डपकी कल्पना करे ॥२॥ वेदी बनाकर उसके मध्यमें कुण्डकी कल्पना करे, आठ दिशाओंमें ईशान दिशाके क्रमसे ॥ ३ ॥ प्रधानकुण्ड बनावे, या पश्चिम ओरसे बनावे, उसमें एक प्रधान करके शोभाकी कल्पना करे ॥ ४ ॥

उसमें शामियाना ध्वजा और मालाओंसे कल्पना करे, वेदीके मध्यमें एक शुभलक्षण मण्डप बनावे, ॥५॥ रक्त हेमादिके चूर्णसे ईश्वरका आवाहन करे, और निर्धन हो तो सिंदूर, शालि; नीवारके चूर्णसे आवाहन करे ॥६॥ एक हाथ या दो हाथका चौडा श्वेत वा लाल कमल बनावे उसमें आठ दल कल्पना करे ॥७॥ उसके आधे स्थानमें केशर और आधेमें दलकी कल्पना करे ॥ ८ ॥ अनेक प्रकारकी शोभाकी कल्पना ईशानकी ओर करे, एक हाथ वा आधे हाथका वेदीमें मण्डल कल्पना करे ॥ ९ ॥ व्रीहि, चावल, सरसों, तिल, पुष्प, कुशा बिछावे; वहां लक्षण संयुक्त शिवघट स्थापन करे ॥१०॥ वह घट सोनाका या चांदीका या तांबाका या मिट्टीका होना चाहिये उसको गन्ध पुष्प अक्षत कुश

वितानध्वजमालाभिर्विविधाभिरनेकशः॥वेदिमध्ये ततः कुर्यान्मंडलंशुभलक्षणम्॥५॥रक्तहेमादिभिश्चूर्णैरीश्वरावाहनोचितम्॥ सिंदूरशालिनीवारचूर्णैरेवाथ निर्द्धनः ॥६॥ एकहस्तं द्विहस्तं वा सितं वा रक्तमेव वा ॥ एकहस्तस्य पद्मस्य कर्णिकाष्टांगुलामता॥७॥ केसराणि तदर्द्धानि शेषं चाष्टदलादिकम्॥ द्विहस्तस्य तु पद्मस्य द्विगुणं कर्णिकादिकम्॥८॥कृत्वा शोभोपशोभाढ्यमैशान्यां तस्य कल्पयेत् ॥ एकहस्तंतदर्द्धं वा पुनर्वेद्यः तु मंडलम् ॥९॥ व्रीहितंडुलसिद्धार्थतिलपुष्पकुशास्तृते ॥ तत्र लक्षणसंयुक्तं शिवकुंभं प्रसाधयेत् ॥१०॥ सौवर्णं राजतं वापि ताम्रजं मृन्मयं तु वा ॥ गन्धपुष्पाक्षताकीर्णं कुशदूर्वांकुराचितम् ॥११॥ सितसूत्रावृतं कंठे नववस्त्रयुगावृतम् ॥ शुद्धाम्बुपूर्णमुत्कूर्चसद्रव्यं सपिधानकम्॥१२॥भृङ्गारं वर्धनीं चापि शंखं च चक्रमेव वा॥ विना सूत्रादिकं सर्वं पद्मपत्रमथापि वा ॥१३॥ तस्यासनारविंदस्य कल्पयेदुत्तरे दले ॥ अग्रतश्चंदनांभोभिरस्त्रराजस्य वर्धनीम् ॥ १४ ॥ मण्डलस्य ततः प्राच्यां मंत्रकुंभे च पूर्ववत् ॥ कृत्वा विधिवदीशस्य महापूजां समाचरेत् ॥ १५ ॥

दूर्वाके अंकुरोंसे अर्चना करे ॥ ११ ॥ श्वेतसूत्रको कण्ठमें बांधकर दो नये वस्त्रोंसे उसे ढाक दे; शुद्ध जलसे पूर्ण, कूर्च (दर्भमुष्टियुक्त) पिधान (छादन) द्रव्य ॥१२॥ झारी कटोरा शंख चक्र और सूत्रके विना सब वस्तु पद्मके ॥१३॥ उत्तर दलमें उस कमलको कल्पना करें, और शिव शास्त्रमें कहे हुए विधानसे चन्दनके जलसे अग्रभागकी ओरसे आचमन करे ॥ १४ ॥ फिर उस मण्डलके पूर्व और पूर्ववत् मन्त्र कुम्भकी पूजा इस करें, प्रकार विधिपूर्वक ईश्वरकी महापूजा करें ॥ १५ ॥

नदी, गोष्ठ, सागर अथवा पर्वतके किनारे देवागार घर वा मनोहर देशमें ॥ १६ ॥ मण्डपादिके बिना पूर्वोक्त सब विधान करके फिर अग्निका मण्डल तथा स्थंडिल करे ॥ १७ ॥ प्रसन्न मुख पूजाकरके घरमें प्रवेश करके सब मङ्गलसे संयुक्त हो यह नित्य विधि करे ॥ १८ ॥ मण्डलसे मध्यमें शिवकी पूजा करके शिवके कुम्भमें शिवका अवाहन कर पूजा करे ॥ १९ ॥ यज्ञ रक्षा करनेवाले ईश्वरके पश्चिम मुखसे ध्यान करके ईश्वरके दक्षिण ओर अस्त्र वर्धनी (सनाल पात्रका) पूजन करे ॥ २० ॥ मन्त्रके जाननेवाला मन्त्रका कुम्भमें स्थापन करे;

अथार्णवस्य तीरे वा नद्यां गोष्ठेऽपि वा गिरौ ॥ देवागारे गृहे वापि देशेऽन्यस्मिन्मनोहरे ॥१६॥ कृत्वा पूर्वोदितं सर्वं विना वा मंडपादिकम् ॥ मंडलं पूर्ववत्कृत्वा स्थंडिलं च विभावसोः ॥१७॥ प्रविश्य पूजाभवनं प्रहृष्टवदनो गुरुः ॥ सर्वमंगलसंयुक्तः समाचरि तनैत्यकः ॥१८॥ महापूजां महेशस्य कृत्वा मण्डलमध्यतः ॥ शिवकुंभे तथा भूयः शिवमावाह्य पूजयेत् ॥ १९ ॥ पश्चिमाभिमुखं ध्यात्वा यज्ञरक्षकमीश्वरम् ॥ अर्चयेदस्त्रवर्द्धन्यामस्त्रमीशस्य दक्षिणे ॥२०॥ मन्त्रकुम्भे च विन्यस्य मन्त्रं मन्त्रविशारदः ॥ कृत्वा मुद्रा दिकं सर्वं मन्त्रयागं समाचरेत् ॥२१॥ ततश्शिवानले होमं कुर्याद्देशिकसत्तमः ॥ प्रधानकुण्डे परितो जुहुयुश्चापरे द्विजाः ॥२२॥ आचार्यात्पादमर्द्धं वा होमस्तेषां विधीयते ॥ प्रधानकुण्ड एवाथ जुहुयाद्देशिकोत्तमः ॥२३॥ स्वाध्यायमपरे कुर्युः स्तोत्रं मंगलवाचनम् ॥ जपं च विधिवच्चान्ये शिवभक्तिपरायणाः ॥२४॥ नृत्यं गीतं च वाद्यं च मंगलान्यपराणि च ॥ पूजनं च सदस्यानां कृत्वा सम्यग्विधानतः ॥ २५॥ पुण्याहं कारयित्वाथ पुनः संपूज्य शंकरम् ॥ प्रार्थयेद्देशिको देवं शिष्यानुग्रहकाम्यया ॥ २६ ॥

सब मुद्रादिक करके मन्त्रयागको करे ॥ २१ ॥ फिर वह मुख्य आचार्य शिव अग्निमें हवन करके प्रधान कुण्डमें चारों ओर दूसरे ब्राह्मण हवन करें ॥ २२ ॥ आचार्यसे चतुर्थांश वा (चौथाई) होम करना चाहिये और फिर प्रधान आचार्य प्रधान कुण्डमें हवन करे ॥ २३ ॥ दूसरे वेदपाठ और मंगलवाचक स्तोत्र पाठ करें शिवभक्त जप विधिपूर्वक करें ॥ २४ ॥ नृत्य गीत बाजे मंगल और सभाओंमें बैठनेवालोंका विधानपूर्वक पूजन करे ॥ २५ ॥ पुण्याह वाचन करके फिर शंकरका पूजन कर शिष्यके अनुग्रहकी इच्छा

कर आचार्यकी प्रार्थना करे ॥२६॥ हे देवदेव ! प्रसन्न होकर मेरी देहमें प्रवेश करो, हे कृपानिधे ! हे ईश ! मुझे दुःखसे छुडाइये ॥ २७ ॥ तब मैं कहता हूँ इस अनुज्ञाको प्राप्त होकर आचार्य हविष्य भक्षण करनेवाले व्रती शिष्यको बुलाकर एकबार भोजन किये हुए या व्रती प्रातःकाल स्नान करके अपना कृत्य किए हुए ॥ २८ ॥ २९ ॥ पश्चिम द्वारके आगे दक्षिण मण्डलकी ओर कुशोंके आसनपर बैठे हुए उत्तरमुख शिष्यको करके ॥ ३० ॥ और स्वयं प्राक् (पूर्व दिशा) को मुख कर स्थित हो ऊँचा शरीर करे, हाथ जोडे शिष्यको मुद्रा अस्त्रसे शिरपर जलसे प्रोक्षण कर ॥ ३१ ॥ फूलोंके मारनेसे इनको ताडन कर तथा नेत्रोंको नये अभिमन्त्रित दुपट्टेसे बांध ॥ ३२ ॥

प्रसीद देवदेवेश देहमाविश्य मामकम् ॥ विमोचयैनं विश्वेश घृणया च घृणानिधे ॥२७॥ अथ चैवं करोमीति लब्धानुज्ञस्तु देशिकः ॥ आनीयोपोषितं शिष्यं हविष्याशिनमेव वा ॥२८॥ एकाशनं वा विरतं स्नातं प्रातःकृतक्रियम् ॥ जपंतं प्रणवं देवं ध्यायंतं कृतमंगलम् ॥ २९ ॥ द्वारस्य पश्चिमस्याग्रमण्डले दक्षिणस्य वा ॥ दर्भासने समासीनं विधायोदङ्मुखं शिशुम् ॥३०॥ स्वयं प्राग्वदनस्तिष्ठन्नूर्ध्वकायं कृतांजलिम् ॥ संप्रोक्ष्य प्रोक्षणीतोयैर्मूर्द्धन्यस्त्रेण मुद्रया॥३१॥ पुष्पक्षेपेण संताड्य बध्नीयाल्लोचनं गुरुः॥ दुकूलार्द्धेन वस्त्रेण मंत्रितेन नवेन च ॥३२॥ ततः प्रवेशयेच्छिष्यं गुरुद्वारिण मंडलम् ॥ सोऽपि तेनेरितः शंभोराचरेत्त्रिः प्रदक्षिणम् ॥३३॥ततस्सुवर्णसंमिश्रं दत्त्वा पुष्पांजलिं प्रभोः॥प्राङ्मुखश्चोदङ्मुखो वा प्रणमेद्दंडवत्क्षितौ॥३४॥ततस्संप्रोक्ष्य मूलेन शिरस्यस्त्रेण पूर्ववत्॥संताड्य देशिकस्तस्य मोचयेन्नेत्रबंधनम् ॥३५॥ स दृष्ट्वा मंडलं भूयः प्रणमेत्साञ्जलिः प्रभुम् ॥ अथासीनं शिवाचार्यो मंडलस्य तु दक्षिणे ॥ ३६ ॥ उपवेश्यात्मनस्सव्ये शिष्यं दर्भासने गुरुः ॥ आराध्य च महादेवं शिवहस्तं प्रविन्यसेत् ॥ ३७ ॥

शिष्यको द्वारेकी ओरसे गुरु प्रवेश करावे ; और वह शिष्य गुरुकी प्रेरणासे शिवकी तीन प्रदीक्षणा करे ॥ ३३ ॥ फिर सुवर्ण मिली हुई प्रभुको पुष्पांजलि देकर उत्तर पूर्वमुख होकर प्रणाम करे; दण्डवत् पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ३४ ॥ फिर मूलशस्त्र गुरुपूर्ववत् शिष्यके शिरको छिडक कर और पुष्प ताडन कर नेत्र बन्धन खोल दे ॥ ३५ ॥ वह उस मंगलको देख दण्डवत् शिवको प्रणाम करे फिर आचार्य शिष्यको दक्षिण मण्डलकी ओर बैठा देख ॥ ३६ ॥ और गुरु शिष्यको अपनी दाहिनी ओर कुशापर बैठे हुए महादेवकी

आराधना कराय शिव हाथसे उसे स्पर्श करे ॥ ३७ ॥ शिवके तेजयुक्त हाथको शिवमन्त्रका उच्चारण करता हुआ शिवके अभिमान संयुक्त हो शिष्यके मस्तकपर धरे ॥ ३८ ॥ उसी हाथसे आचार्य सम्पूर्ण अंगोंको आलम्बन करे, और शिष्य भी आचार्यको ईश्वर जान प्रणाम करे ॥ ३९ ॥ फिर शिवालयमें देवको विधिपूर्वक पूजन कर तीन आहुतिसे हवन कर शिष्यको आगे स्थित कर ॥ ४० ॥ उसको दर्भके अग्रभागसे स्पर्श करते हुए आत्माको विधानकर महादेवको प्रणाम कर नाडीसंधान करे ॥ ४१ ॥ शिवशास्त्रके कहे विधानसे प्राणायाम करके शिष्यके देहमें प्रवेशके निमित्त स्मरण करके मन्त्रोंको तृप्त करे ॥ ४२ ॥ मूलमन्त्रके तृप्त करनेको विनियोगकर दश आहुति देकर उसी मूल

शिवतेजोमयं पाणिं शिवमंत्रमुदीरयेत्॥ शिवाभिमानसंपन्नो न्यसेच्छिष्यस्य मस्तके॥३८॥ सर्वांगालंबनं चैव कुर्यात्तेनैव देशिकः॥ शिष्योऽपि प्रणमेद्भूमौ देशिकाकृतिमीश्वरम्॥३९॥ ततश्शिवानले देवं समभ्यर्च्य यथाविधि॥हुताहुतित्रयं शिष्यमुपवेश्य यथा पुरा ॥४०॥ दर्भाग्रैः संस्पृशंस्तं च विद्ययात्मानमाविशेत्॥ नमस्कृत्य महादेवं नाडीसंधानमाचरेत्॥४१॥ शिवशास्त्रोक्तमार्गेण कृत्वा प्राणस्य निर्गमम्॥शिष्यदेहप्रवेशं च स्मृत्वा मंत्रांस्तु तर्पयेत्॥४२॥संतर्पणाय मूलस्य तेनैवाहुतयो दश ॥ देयास्तिस्रस्तथांगानामंगैरेव यथाक्रमम् ॥४३॥ ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा प्रायश्चित्ताय देशिकः॥ पुनर्दशाहुतीन्कुर्यान्मूलमंत्रेण मंत्रवित् ॥४४॥ पुनः संपूज्य देवेशं सम्यगाचम्य देशिकः॥ हुत्वा चैव यथान्यायं स्वजात्या वैश्यमुद्धरेत्॥४५॥ तस्यैवं जनयेत्क्षात्रमुद्धारं च ततः पुनः ॥ कृत्वा तथैव विप्रत्वं जनयेदस्य देशिकः ॥४६॥ राजन्यं चैवमुद्धृत्य कृत्वा विप्रं पुनस्तयोः ॥ रुद्रत्वं जनयेद्विप्रे रुद्रनामैव साधयेत् ॥४७॥ प्रोक्षणं ताडनं कृत्वा शिशोस्स्वात्मानमात्मनि ॥ शिवात्मकमनुस्मृत्य स्फुरंतं विस्फुलिंगवत् ॥४८॥

मंत्रसे अंगके देवताओंके उन उन मूलमंत्रोंसे तृप्त करे ॥ ४३ ॥ फिर आचार्य प्रायश्चित्तकी पूर्णाहुति देकर फिर मूलमन्त्रसे दश आहुति प्रदान करे ॥ ४४ ॥ फिर आचार्य शिवको पूज प्रणामकर आचमन कर फिर यथायोग्य अपनी जाती वैश्यका उद्धार करे ॥ ४५ ॥ इसी प्रकार क्षत्रका उद्धार करे फिर इसको विप्रत्व उत्पन्न कराकर आचार्य ॥ ४६ ॥ इसके राजन्य और वैश्यताका उद्धार करके ब्राह्मण होनेपर; रुद्रत्व उत्पन्न करे और रुद्रकाही साधन करे ॥ ४७ ॥ अपने शिष्यको प्रोक्षण और ताडन करके अपनी आत्मासे आत्मामें

स्फूर्यमाण होते हुए विस्फुलिंगके समान शिवात्मकको स्मरण करके ॥ ४८ ॥ मंत्रसे गुरुनाडीद्वारा वायुको रेचन अर्थात् निकलता हुआ सुषुम्ना नाडीसे निकालकर कुम्भकसे प्रवेश कराय शिष्यके हृदयमें ॥ ४९ ॥ मंत्र प्रवेश कराय नीलबिन्दुका स्मरण करता हुआ अपने तेजसे मल दूर करे प्रकाशको चिन्तन करे ॥ ५० ॥ गुरु इस वायुको इसी नाडीके द्वारा लेकर संहारमुद्रासे पूरक से निविष्टकर आत्मासे आत्माका एकीभाव करे ॥ ५१ ॥ फिर कुम्भकनाडीसे जैसे रेचक किया था वैसे करके उस पवनको शोधकर शिष्यके हृदयमें स्थित करे ॥ ५२ ॥ फिर उस शिष्यको स्पर्श कर शिवसे ग्रहण किये यज्ञोपवीतको शिष्यको ग्रहण कराय तीन आहुतिसे हवन कर पीछे पूर्णाहुति

नाड्या यथोक्तया वायुं रेचयेन्मन्त्रतो गुरुः ॥ निर्गम्य प्रविशेन्नाड्या शिष्यस्य हृदयं तथा॥४९॥ प्रविश्य तस्य चैतन्यं नीलबिन्दु निभं स्मरन् ॥ स्वतेजसापास्तमलं ज्वलंतमनुचिंतयेत् ॥५०॥ तमादाय तया नाड्या मंत्री संहारमुद्रया ॥ न पूरकेण निवेश्यैनमेकी भावार्थमात्मनः ॥५१॥ कुंभकेन तथा नाड्या रेचकेन यथा पुरा ॥ तस्मादादाय शिष्यस्य हृदये तन्निवेशयेत् ॥ ५२ ॥ तमालभ्य शिवाल्लब्धं तस्मै दत्त्वोपवीतकम् ॥ हुत्वाऽऽहुतित्रयं पश्चाद्दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः ॥५३॥ देवस्य दक्षिणे शिष्यमुपवेश्यवरासने॥ कुशपुष्पपरिस्तीर्णे बद्धांजलिरुदङ्मुखम् ॥५४॥ स्वस्तिकासनमारूढं विधाय प्राङ्मुखः स्वयम् ॥ वरासनस्थितो मंत्रैर्महामंगलनिः स्वनैः ॥५५॥ समादाय घटं पूर्णं पूर्णमेव प्रसादितम् ॥ ध्यायमानः शिवं शिष्यमाभिषिंचेत देशिकः ॥५६॥ अथापनुद्य स्नानांबु परिधाय सितांबरम् ॥ आचान्तोलंकृतश्शिष्यः प्रांजलिर्मंडपं व्रजेत् ॥ ५७ ॥ उपवेश्य यथापूर्वं तं गुरुर्दर्भविष्टरे ॥ संपूज्य मंडले देवं करन्यासं समाचरेत् ॥ ५८ ॥

दे ॥ ५३ ॥ देवके दक्षिण ओर शिष्यको सुन्दर आसनपर बैठाय कुशाके फूलोंके बिछौनेपर उत्तरको मुखकर हाथ जोडे हुए शिष्यको ॥ ५४ ॥ स्वस्तिकासनसे बिठाकर प्राङ्मुख (पूर्वमुख) बैठकर अच्छे मंगलके मंत्र पढकर सुन्दर आसन पर बैठाय ॥ ५५ ॥ पहले सिद्ध किये पूर्ण घटको लाकर आचार्य शिवके ध्यान करते हुए शिष्यके ऊपर जल छिडके ॥ ५६ ॥ फिर स्नानके जलको पोंछकर श्वेत वस्त्र धारण कर सब शरीरसे अलंकृतहो शिष्य हाथ जोडकर मण्डपमें जाय ॥ ५७ ॥ फिर गुरु उसको यथायोग्य कुशासनपर बैठाकर मण्डलमें

देवको पूजन कराकर न्यास करे ॥ ५८ ॥ इसके उपरान्त भस्म हाथमें ले शिवका ध्यान करता हुआ आचार्य हाथसे शिष्यका ग्रहण कर उस बालक शिष्यको शिवका उच्चारण करावे ॥ ५९ ॥ फिर आचार्य शिवाचार्य इस शिष्यको संकलीकरण मातृका न्यासके मार्गसे कराकर ॥ ६० ॥ तब शिवनामक आसनका ध्यान करके शिष्यको वह आचार्य न्याय पूर्वक आवाहन कर मनसे शिवको अर्चन करे ॥ ६१ ॥ और हाथ जोडकर शिवकी प्रार्थना करे कि आप यहां नित्य स्थित रहिये, ऐसा शिवके प्रति कहकर उस महातेजस्वी रूपको स्मरण करे ॥ ६२ ॥ फिर शिवका पूजन कर शिवात्मक शैवी आज्ञाको प्राप्त होकर शिष्यके कानमें शनैः शनैः शिव मन्त्रका उच्चारण करे ॥ ६३ ॥

ततस्तु भस्मना देवं ध्यायन्मनसि देशिकः ॥ समालभेत पाणिभ्यां शिशुं शिवमुदीरयेत् ॥५९॥ अथ तस्य शिवाचार्यो दहनप्लावनादिकम् ॥ सकलीकरणं कृत्वा मातृकान्यासवर्त्मना ॥६०॥ ततः शिवासनं ध्यात्वा शिष्यमूर्द्धनि देशिकः ॥ तत्रावाह्य यथान्यायमर्चयेन्मनसा शिवम् ॥ ६१ ॥ प्रार्थयेत्प्रांजलिर्देवं नित्यमत्र स्थितो भव ॥ इति विज्ञाप्य तं शंभोस्तेजसा भासुरं स्मरेत् ॥ ६२ ॥ संपूज्याथ शिवं शैवीमाज्ञां प्राप्य शिवात्मिकाम् ॥ कर्णे शिष्यस्य शनकैश्शिवमन्त्रमुदीरयेत् ॥६३॥ स तु बद्धांजलिः श्रुत्वा मन्त्रं तद्गतमानसः ॥ शनैस्तं व्याहरेच्छिष्यशिवाचार्यस्य शासनात् ॥ ६४ ॥ ततः शाक्तं च संदिश्य मन्त्रं मन्त्रविचक्षणः ॥ उच्चारयित्वा च सुखं तस्मै मंगलमादिशेत् ॥६५॥ ततस्समासान्मन्त्रार्थं वाच्यवाचकयोगतः ॥ समादिश्येश्वरं रूपं योगमासनमादिशेत् ॥ ६६ ॥ अथ गुर्वाज्ञया शिष्यः शिवाग्निगुरुसन्निधौ ॥ भक्त्यैवमभिसंधाय दीक्षावाक्यमुदीरयेत ॥ ६७ ॥ वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा ॥ न त्वनभ्यर्च्य भुंजीय भगवन्तं त्रिलोचनम् ॥ ६८ ॥

वह शिष्य मन्त्रमें मन लगाये हुए शिव मन्त्रको श्रवण कर शिवाचार्यके शासनसे शनैः शनैः उस मन्त्रको उच्चारण करे ॥ ६४ ॥ फिर मन्त्र बोलनेमें चतुर शक्ति मन्त्रको उच्चारण कराकर सुख पूर्वक शिष्यके निमित्त मंगलाचार करावे ॥ ६५ ॥ फिर वाच्य वाचकके योगसे मन्त्रार्थको कई मासतक (आदेशकर) ईश्वरके रूपको वर्णन कर योगासनकी शिक्षा करे ॥ ६६ ॥ तब गुरुकी आज्ञासे शिष्य शिव अग्नि गुरुके निकट महाभक्ति पूर्वक दीक्षा वाक्यका उच्चारण करे ॥ ६७ ॥ चाहे प्राण जाते रहें, चाहे शिरका छेदन होजाय परन्तु

विना शिवार्चन किये भोजन करना उचित नहीं ॥ ६८ ॥ निरन्तर भोग लगानेवाला जबतक उसका मोह दूर हो तबतक उन्हीं की निष्ठा और परायण होकर देवका आरधन करता रहे ॥ ६९ ॥ तब वह समय नामवाला शिवके आश्रममें अधिकारी होगा, सदा गुरुकी आज्ञा पालन कर उनके वशमें रहे ॥ ७० ॥ इनके उपरान्त करन्यास कर अपने हाथसे भस्म लगाकर शिष्यके प्रति उस भस्मको और अभिमन्त्रित रुद्राक्षको गुरु दे ॥ ७१ ॥ अथवा देवकी प्रतिमा वा लिंगात्मक लेकर पूजा होम जप ध्यान और साधन

स एव दद्यान्नियतो यावन्मोहविपर्ययः ॥ तावदाराधयेद्देवं तन्निष्ठस्तत्परायणः ॥ ६९ ॥ ततः स समयो नाम भविष्यति शिवाश्रमे ॥ लब्धाधिकारो गुर्वाज्ञापालकस्तद्वशो भवेत् ॥ ७० ॥ अतः परं न्यस्तकरो भस्मादाय स्वहस्ततः ॥ दद्याच्छिष्याय मूलेन रुद्राक्षं चाभिमंत्रितम् ॥ ७१ ॥ प्रतिमा वापि देवस्य गूढदेहमथापि वा ॥ पूजाहोमजपध्यानसाधनानि च संभवे ॥ ७२ ॥ सोपि शिष्यः शिवाचार्याल्लब्धानि बहुमानतः ॥ आददीताज्ञया तस्य देशिकस्य न चान्यथा ॥ ७३ ॥ आचार्यादाप्तमखिलं शिरस्याधाय भक्तितः ॥ रक्षयेत्पूजयेच्छंभुं मठे वा गृह एववा ॥ ७४ ॥ अतः परं शिवाचारमादिशेदस्य देशिकः ॥ भक्तिश्रद्धानुसारेण प्रज्ञायाश्चानुसारतः ॥ ७५ ॥ यदुक्तं यत्समाज्ञातं यच्चैवान्यत्प्रकीर्तितम् ॥ शिवाचार्येण समये तत्सर्वं शिरसा वहेत् ॥७६॥ शिवागमस्य ग्रहणं वाचनं श्रवणं तथा ॥ देशिकदेशतः कुर्यान्न स्वेच्छातो न चान्यतः ॥ ७७ ॥

करे ॥ ७२ ॥ वह शिष्य भी आचार्यसे इन वस्तुओंको बहुत मानसे लेकर कभी आचार्यकी आज्ञाका उल्लंघन न करे ॥ ७३ ॥ और भक्ति पूर्वक शिर झुकाय आचार्यसे सम्पूर्ण प्राप्त कर शम्भुको रक्षा करता हुआ मठ अथवा घरमें पूजे ॥ ७४ ॥ तब आचार्य इसको शिवका आचार बतावे; भक्ति श्रद्धा और प्रजाके अनुसार सब करता रहे ॥ १५ ॥ जो कहा जो कुछ आज्ञा दी है वा जो कुछ और कहा है वह शिवाचार्यके वचनको समयपर शिरसे धारण करे ॥ ७६ ॥ शिव शास्त्रका ग्रहण वांचना, श्रवण करना, यह सब

१ महामंत्रोपमंत्राणां वर्ततेऽवयवात्मनः । प्रदानावयत्वे तु सोध्वा पंचपदात्मकः सप्तकोटिमहामंत्रा मंत्राध्वा समुदाहृतः ।

आचार्यकी आज्ञासे करे, अपनी वा दूसरेकी इच्छासे नहीं ॥ ७७ ॥ यह समयनामक संस्कार संक्षेपसे कहा है, यह परम साधन मनुष्योंको साक्षात् शिवपुरकी प्राप्ति करनेवाला है इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ उपमन्यु बोले, इसके उपरांत गुरु शिष्यकी योग्यताको देखकर सब बन्धनकी निवृत्तिके निमित्त षडध्व शुद्धि करे ॥ १ ॥ कला तत्त्व भुवन वर्ण पद मंत्र यह संक्षेपसे षडध्व वर्णन किया गया है ॥२॥ निवृत्ति प्रतिष्ठा विद्या शांति शान्त्यतीत यह पंडितोंद्वारा पञ्चकलामार्ग कहा जाता है; इन पांच कलाओंकरके पांच मार्ग व्याप्त हैं ॥३॥ शिवतत्त्वसे पृथ्वीतक तत्त्वमार्ग कहा है; यह शुद्ध अशुद्ध दो भेदोंसे छब्बीस संख्यायुक्त हैं ॥४॥

इति संक्षेपतः प्रोक्तः संस्कारः समयाह्वयः ॥ साक्षाच्छिवपुरप्राप्तौ नृणां परमसाधनम् ॥ ७८ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखंडे शिष्यसंस्कारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ अतः परं समावेक्ष्य गुरुः शिष्यस्य योग्यताम् ॥ षडध्वशुद्धिं कुर्वीत सर्वबंधविमुक्तये ॥ १ ॥ कलां तत्त्वं च भुवनं वर्णं पदमतः परम् ॥ मंत्रश्चेति समासेन षडध्वा परिपठ्यते ॥२॥ निवृत्त्याद्याः कलाः पंच कलाध्वा कथ्यते बुधैः ॥ व्याप्ताः कलाभिरितरे त्वध्वानः पंच पंचभिः ॥ ३ ॥ शिवतत्त्वादिभूम्यं तं तत्त्वाध्वा समुदाहृतः ॥ षड्विंशत्संख्ययोपेतः शुद्धाशुद्धोभयात्मकः ॥४॥ आधाराद्युन्मनांतश्च भुवनाध्वा प्रकीर्तितः ॥ विना भेदोपभेदाभ्यां षष्टिसंख्यासमन्वितः ॥ ५ ॥ पंचाशद्रुद्ररूपास्तु वर्णा वर्णाध्वसंज्ञिताः ॥ अनेकभेदसंपन्नः पदाध्वा समुदाहृतः ॥ ६ ॥ सर्वोपमंत्रैर्मंत्राध्वा व्याप्तः परमविद्यया ॥ यथा शिवो न तत्त्वेषु गण्यते तत्त्वनायकः ॥ ७ ॥

आधारादि उन्मन लोकतक भुवनाध्वा कहाता है, भेद उपभेदके विना यह ६० संख्यासे युक्त है ॥५॥ ककारादि १५ स्पर्श, यकरादि चार अन्त; स्थ शषसहादि ऊष्मादि, यह ५० रुद्ररूप वर्णाध्व कहाता है फिर पदाध्वतो अनेक भेदवाला है ॥६॥ जो महामन्त्र उपमंत्रोंके अवयवोंसे युक्त है, वह प्रधान अवयव होनेपर पंचपदात्मक (ईशानादि) (पंचमंत्ररूप) सात करोड महामंत्र मंत्राध्व कहाते हैं, परम विद्यासे मंत्रोंसे मंत्राध्व वर्तमान है जैसे तत्त्वपति शिवकी तत्त्वमें गणना नहीं होती ॥ ७ ॥

इसी प्रकार यह मंत्रपति मंत्राध्वमें नहीं गिने जाते , कलाध्वका व्यापकत्व और व्याप्यत्व तथा दूसरे मार्गोंका भी ॥ ८॥ जो तत्त्वसे नहीं जानता है, वह अध्वशोधनके योग्य नहीं है अध्वका रूप छैः प्रकारका जो नहीं जानता है ॥ ९ ॥ उससे व्याप्य व्यापकता नहीं जानी जाती, इस कारण अध्वस्वरूप व्याप्य व्यापकता ॥ १० ॥ यथायोग्य जानकर अध्वशुद्धि करे वह पूर्वक समान कुण्डमण्डल तक करके ॥ ११ ॥ दो हाथके प्रमाण बनाकर पूर्वकी ओर कलश मण्डल धरे तब शिवाचार्य स्नान कर शिष्यके सहित नित्य क्रिया कर ॥ १२ ॥ शिवके मण्डलमें प्रवेश कर पूर्ववत् पूजा करे, तब चार प्रस्थसे कुछ अधिक चावलसे खीर बनाकर ॥ १३ ॥

मंत्राध्वनि न गण्येत तथासौ मंत्रनायकः॥ कलाध्वनो व्यापकत्वं व्याप्यत्वं चेतराध्वनाम् ॥८॥ न वेत्ति तत्त्वतो यस्य नैवार्हत्य ध्वशोधनम् ॥ षड्विधस्याध्वनो रूपं न येन विदितं भवेत्॥९॥ व्याप्यव्यापकता तेन ज्ञातुमेव न शक्यते॥ तस्मादध्वस्वरूपं च व्याप्यव्यापकतां तथा॥१०॥ यथावदवगम्यैव कुर्य्यादध्वविशोधनम् ॥ कुंडमंडलपर्यंतं तत्र कृत्वा यथा पुरा॥११॥ द्विहस्तमानं कुर्वीत प्राच्यां कलशमंडलम् ॥ ततःस्नातश्शिवाचार्यः सशिष्य कृतनैत्यकः ॥१२॥ प्रविश्य मंडलं शंभोः पूजां पूर्ववदाचरेत् ॥ तत्राढकावरैस्सिद्धं तंदुलैः पायसं प्रभोः ॥१३॥ अर्द्धं निवेद्य होमार्थं शेषं सम्पुपकल्पयेत् ॥ पुरतः कल्पिते वाथ मंडलेवर्णिमंडिते ॥१४॥ स्थापयेत्पंचकलशान्दिक्षु मध्ये च देशिकः ॥ तेषु ब्रह्माणि मूलार्णैर्बिन्दुनादसमन्वितैः ॥१५॥ नमआद्यैर्यकारांतैः कल्पयेत्कल्पवित्तमः ॥ ईशानं मध्यमे कुंभे पुरुषं पुरतः स्थिते॥१६॥ अघोरं दक्षिणे वामे वामं सद्यं च पश्चिमे ॥ रक्षां विधाय मुद्रा च बद्धा कुंभाभिमंत्रणम् ॥ १७ ॥ कृत्वा शिवानलैर्होमं प्रारभेत् यथा पुरा॥ यदर्द्धं पायसं पूर्वं होमार्थं परिकल्पितम् ॥ १८ ॥

आधी होमके निमित्त रखकर शेषके भाग कल्पना करे अपने आगे वर्णोंसे मण्डित मण्डल कल्पित करे ॥ १४ ॥ पूर्वादि चारों दिशाओंमें और एक बीचमें ऐसे पांच कलश आचार्य कल्पित करे, उनमें पंचब्रह्मके मूलमंत्र बिन्दुनादके सहित ॥ १५ ॥ कल्प विधानका जानने वाला यकार पर्यंत नमस्कारादि करे, मध्यमके कुम्भमें ईशान आगेकेमें पुरुष ॥ १६ ॥ दक्षिणकी ओर अघोर वाम और वाम पार्श्वमें सद्यो जातकी कल्पनाकर रक्षाकर मुद्राविधान वर घडोंका अभिमंत्रण कर ॥ १७ ॥ और पहलेके समान शिवाग्निमें हवनकी कल्पना करे, जो पहले

आधी खीर होमके निमित्त रक्खी है ॥ १८ ॥ वह हवन कर शेष शिष्यके भोजनके निमित्त कल्पित करे, पूर्वके समान मन्त्रोंका तर्पण करके ॥ १९ ॥ पूर्णाहुति करके उनको प्रदीप्त करे ॐकारसे परे हुंकार अर्थात् " ॐ हुं नमः शिवाय फट् स्वाहा " ॥ २० ॥ यह प्रदीपन कर यथा क्रमसे अंग करे, दीपन कर्ममें उनको तीन आहुति दे ॥ २१ ॥ एक एक मंत्रमें उन प्रदीप्त मूर्त्तिका विचार करे, ब्राह्मणकी कन्याके काते हुए सूतको त्रिगुण करके ॥ २२ ॥ उस सूत्रको सूत्रसे अभिमंत्रित कर उस बालक शिष्यकी शिखाके अग्रभागमें बांधे, चरणके अंगुष्ठ पर्यन्त ऊर्ध्व शरीरकर बैठे हुए ॥ २३ ॥ उसके तालके मध्यमें प्राप्त हुई सुषुम्ना नाडीको इस लम्बे किये सूत्रसे योजित

हुत्वा शिष्यस्य तच्छेषं भोक्तुं समुपकल्पयेत् ॥ तर्पणांतं च मंत्राणां कृत्वा कर्म यथा पुरा ॥ १९ ॥ हुत्वा पूर्णाहुतिं तेषां ततः कुर्य्यात्प्रदीपनम् ॥ ॐकारादनु हुंकारं ततो मूलं फडंतकम् ॥ २० ॥ स्वाहांतं दीपने प्राहुरंगानि च यथाक्रमम् ॥ तेषांमाहुतयस्तिस्रो देया दीपनकर्मणि ॥ २१ ॥ मंत्रैरेकैकशस्तैस्तु विचिन्त्या दीप्तमूर्तयः ॥ त्रिगुणं त्रिगुणी कृत्य द्विजकन्याकृतं सितम् ॥ २२ ॥ सूत्रं सूत्रेण संमंत्र्य शिखाग्रे बंधयेच्छिशोः ॥ चरणांगुष्ठपर्य्यंतमूर्द्ध्वकायस्यतिष्ठतः ॥ २३ ॥ लंबयित्वा तु तत्सूत्रं सुषुम्णां तत्र योजयेत् ॥ शांतया मुद्रयादाय मूलमंत्रेण मंत्रवित् ॥ २४ ॥ हुत्वाहुतित्रयं तस्यास्सान्निध्यमुपकल्पयेत् ॥ हृदि संताड्य शिष्यस्य पुष्पक्षेपेण पूर्ववत् ॥ २५ ॥ चैतन्यं समुपादाय द्वादशांते निवेद्य च ॥ सूत्रं सूत्रेण संयोज्य संरक्ष्यास्त्रेण वर्मणा ॥ २६ ॥ अवगुंठ्याथ तत्सूत्रं शिष्यदेहं विचिंतयेत् ॥ मूलत्रयमयं पाशं भोगभोग्यत्वलक्षणम् ॥ २७ ॥

करे, अर्थात् चरणसे लेकर शिखापर्यन्त ले, फिर मंत्रका जाननेवाला मूलमंत्रसे शान्तमुद्रासे ग्रहण कर ॥ २४ ॥ उसके निकट तीन आहुतिसे हवन कर निकटताकी प्राप्ति करे, और पूर्वके समान पुष्प फेंकनेसे शिष्यके हृदयको ताडना कर ॥ २५ ॥ चैतन्यको ग्रहण कर शान्त्यतीत आदि बारह नाम अथवा ग्यारह तत्त्वोंके आधार ईश्वर जिसके अन्तमें हैं, (एकादश नव तीन आदि तत्त्व श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें स्कन्धमें लिखे हैं) " अथवा एकमात्रममात्रं हि द्वादशान्तं व्यवस्थितम्, शिवगीतायाम् " उसे धारण कर सूत्रको सूत्रसे संयुक्त कर अस्त्रवर्मसे उसकी रक्षा कर ॥ २६ ॥ उस शिष्यकी देहमें उस सूत्रको लपेट कर विचार करे, जाति आयु भोगरूप तीन मूलभाग और भोग

भोक्तृत्व लक्षणवाले ॥ २७ ॥ उस शिष्यके विषय इन्द्रिय भोगादिके उत्पन्नकी भावना करे, आकाशादि पंचमहाभूतोंके रूपवाली जो शान्त्य तीतादि कला हैं ॥२८॥ वह शान्त्यतीतनामसे उस सूत्रमें युक्त करके नमस्कार युक्त उनकी पूजा करे, अथवा पूर्वमें कहे क्रमसे आकाशादिके बीजन्त्रोंसे कृत्य करके ॥ २९ ॥ फिर मलादिके तत्वोंकी व्याप्तिको देख, काल व्याप्तिको मलादिमें हवन करके कला उद्दीप्त करे ॥ ३० ॥ शिष्यको शिर और देहमें सूत्रको यथाक्रम ताडना कर यथाक्रम सब कार्य करे, शांत्यतीत पदमें सूत्रका मन्त्र पढता हुआ चिह्नित करे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार क्रमसे शांत्यतीत करता हुआ तीन आहुतियोंसे हवन कर मंडलमें शिवका यजन करे ॥ ३२ ॥ देवके दक्षिण

विषयेन्द्रियदेहादिजनकं तस्य भावयेत्॥ व्योमादिभूतरूपिण्यः शांत्यतीतादयः कलाः ॥२८॥ सूत्रे स्वनामभिर्योज्यः पूज्यश्चैव नमोयुतैः ॥ अथवा बीजभूतैस्तत्कृत्वा पूर्वोदितं क्रमात्॥२९॥ततो मलादेस्तत्त्वादौ व्याप्तिं समलोकयेत् ॥ कलाव्याप्तिं मलादौ च हुत्वा संदीपयेत्कलाः ॥ ३० ॥ शिष्यं शिरसि संताडच सूत्रं देहे यथाक्रमम् ॥ शांत्यतीतपदे सूत्रं लाञ्छयेन्मंत्रमुच्चरन् ॥ ३१ ॥ एवं कृत्वा निवृत्त्यन्तं शांत्यतीतमनुक्रमात् ॥ हुत्वाहुतित्रयं पश्चान्मण्डले च शिवं यजेत् ॥ ३२ ॥ देवस्य दक्षिणे शिष्यमुपवेश्योत्तरामुखम् ॥ सदर्भे मण्डले दद्याद्धोमशिष्टं चरुं गुरुः ॥ ३३ ॥ शिष्यस्तद्गुरुणा दत्तं सत्कृत्य शिवपूर्वकम् ॥ भुक्त्वा पश्चाद्विराचम्य शिवमन्त्रमुदीरयेत् ॥३४॥ अपरे मण्डले दद्यात्पंचगव्यं तथा गुरुः ॥ सोऽपि तच्छक्तितः पीत्वा द्विराचम्य शिवं स्मरेत् ॥ ३५ ॥ तृतीये मण्डले शिष्यमुपवेश्य यथा पुरा ॥ प्रदद्यादंतपवनं यथाशास्त्रोक्तलक्षणम् ॥३६॥ अग्रेण तस्य मृदुना प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥ वाचं नियम्य चासीनश्शिष्यो दंतान्विशोधयेत् ॥ ३७ ॥

और उत्तरको मुखकर शिष्यको बैठावे, दर्भसहित मंडलमें होमसे बचे हुए चरुको गुरु उसे प्रदान करे ॥ ३३ ॥ और शिष्य गुरुके दिये हुए मंगलपूर्वक उस चरुको सत्कारसे लेकर भोजन करके दो बार आचमन कर शिवमंत्रका उच्चारण करे ॥ ३४ ॥ तब गुरु दूसरे मंडलमें पंच गव्य दे, वह शिष्य उसे भी भक्तिके अनुसार पानकर दो बार आचमनकर शिवका स्मरण करे ॥ ३५ ॥ फिर पूर्वके समान शिष्यको तीसरे कमंडलमें बैठाकर शास्त्रोक्त दतौन (दंतशोधन) करनेको दे ॥ ३६ ॥ और उसके आगे मृदुतापूर्वक उत्तर वा पूर्वको मुख कर वाणीको रोकर

बैठे हुए शिष्य दांतोंको शुद्ध करे ॥ ३७ ॥ फिर दांतोंको धोकर पवन त्यागकर आचमन कर दांतोंको शुद्ध करे; और शिवका स्मरण करे और हाथ जोडकर आचार्यकी आज्ञासे शिवके मण्डलमें प्रवेश करे ॥ ३८ ॥ जब कि, गुरुने दातोंकी पवन त्यागे उसको देखलिया हो तो पूर्व उत्तर पश्चिमके अग्रभागमें शिवके विना वा शिवसे इतर ॥ ३९ ॥ अप्रशस्त दक्षिणादि दिशाओंकी ओर बैठे तो गुरु उस दोषकी शान्तिके अर्थ मूलमन्त्रसे सौ वा पचास आहुति दे ॥ ४० ॥ फिर शिष्यको ग्रहण कर उसके कानमें मन्त्र जपकर देवके दक्षिणभागमें शिष्यको बैठावे ॥ ४१ ॥ जो कि श्रेष्ठ बिछौने बिछे कुशाके शयनसे पवित्र हो उसे मन्त्रित कर अन्तः कारणमें शिवका

प्रक्षाल्य दंतपवनं त्यक्त्वाचम्य शिवं स्मरेत् ॥ प्रविशेद्देशिकादिष्टः प्रांजलिः शिवमण्डलम्॥३८॥त्यक्तं तद्दन्तपवनं दृश्यते गुरुणा यदि॥ प्रागुदक्पश्चिमे वाग्रे शिवमन्यच्छिवेतरम् ॥३९॥ अप्रशस्ताशामुखे तस्मिन्गुरुस्तद्दोषशांतये॥ शतमर्द्धं तदर्द्धं वाजुहुयान्मूल मन्त्रतः ॥४०॥ ततः शिष्यं समालभ्य जपित्वा कर्णयोः शिवम्॥देवस्य दक्षिणे भागे तंशिष्यमधिवासयेत्॥४१॥अहतास्तरणास्तीर्णे सदर्भशयने शुचिः॥ मंत्रितेऽन्तः शिवं ध्यायञ्शयीत प्राक्छिरा निशि॥४२॥शिखायां बद्धसूत्रस्य शिखया तच्छिखां गुरुः ॥ आबंध्याहतवस्त्रेण तमाच्छाद्य च वर्मणा॥४३॥रेखात्रयं च परितो भस्मना तिलसर्षपैः ॥ कृत्वास्त्रजप्तैस्तद्बाह्ये दिगीशानां बलिं हरेत् ॥४४॥ शिष्योऽपि परतोऽनश्नन्कृत्वैवमधिवासनम् ॥ प्रबुध्योत्थाय गुरुवे स्वप्नं दृष्टं निवेदयेत् ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवदीक्षाविधानवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥ उपमन्युरुवाच ॥ ततः स्नानादिकं सर्वं समाप्याचार्यचोदितः ॥ गच्छेद्बद्धांजलिर्ध्यायञ्छिवमण्डलपार्श्वतः ॥ १ ॥

ध्यान करताहुआ पूर्वको शिरकर रात्रिमें शयन करे ॥ ४२ ॥ सूत्रसे बंधी हुई उसकी शिखाको शिखाके अग्रभागसे बांधकर उस प्रोक्षित वस्त्रसे उसे लपेट कर और वर्मसे आच्छादन कर ॥ ४३ ॥ और भस्म तिल सरसोंसे बाह्यकी ओर बलिको हरण करे ॥ ४४ ॥ शिष्य भी विना भोजन किये सोवे, फिर उठकर शिष्य को जो स्वप्न दीख सो गुरु निवेदन करे ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ फिर आचार्यकी प्रेरणासे सब स्नानादि कृत्य करके शिवमंडलके स्थानसे ध्यान

करता हुआ हाथ जोडकर चले ॥ १ ॥ फिर पूर्व दिनमें जो किया था वह सब पूजाके विना करके नेत्र बन्धनतक गुरु मंडलको दिखावे ॥ २ ॥ नेत्र बंधे हुए शिष्यपर फूलोंकी वर्षा करनेपर जहां उसके नामके पुष्प गिरे वहीं कह दे ॥ ३ ॥ फिर पूर्वके समान मंडलमें निर्माल्यको प्राप्त करके ईशानदेवको पूजन कर शिवकी अग्निमें हवन करे ॥ ४ ॥ और जो शिष्यने दुःस्वप्न देखा हो तो उस दोषकी शान्तिके लिये सौ वा पचास आहुतिसे मूलविद्यासे हवन करे ॥ ५ ॥ फिर शिखामें सूत्रको बांधकर जैसे पहले लम्बायमान किया था वैसे करे आधारपूजा इत्यादि निवृत्तिकलाके आश्रय हैं ॥ ६ ॥ उस वागीश्वरी पूजातक होम करे, फिर वागीश्वरीको प्रणाम करके जो सती

अथ पूजां विना सर्वंकृत्वा पूर्वदिने यथा ॥ नेत्रबंधनपर्य्यंतं दर्शयेन्मण्डलं गुरुः ॥२॥ बद्धनेत्रेण शिष्येण पुष्पावकिरणे कृते ॥ यत्रापतंति पुष्पाणि तस्य नामाऽस्य संदिशेत् ॥३॥ तं चोपनीय निर्माल्यमण्डलेऽस्मिन्यथा पुरा ॥ पूजयेद्देवमीशानं जुहुयाच्च शिवानले ॥४॥ शिष्येण यदि दुःस्वप्नो दृष्टस्तद्दोषशांतये ॥ शतमर्द्धं तदर्द्धं वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥५॥ ततः सूत्रं शिखाबद्धं लंबयित्वा यथा पुरा ॥ आधारपूजाप्रभृति यन्निवृत्तिकलाश्रयम् ॥६॥ वागीश्वरीपूजनांतं कुर्याद्धोमपुरस्सरम् ॥ अथ प्रणम्य वागीशं निवृत्तेर्व्यापिकां सतीम् ॥७॥ मण्डले देवमभ्यर्च्य हुत्वा चैवाहुतित्रयम् ॥ प्रापयेच्च शिशोः प्राप्तिं युगपत्सर्वयोनिषु ॥८॥ सूत्र देहेऽथ शिष्यस्य ताडनप्रोक्षणादिकम् ॥ कृत्वात्मानं समादाय द्वादशांते निवेद्य च ॥९॥ ततोऽप्यादाय मूलेन मुद्रया शास्त्रदृष्टया ॥ योजयेन्मनसाचार्यो युगपत्सर्वयोनिषु ॥१०॥ देवानां जातयश्चाष्टौ तिरश्चां पंच जातयः ॥ जात्यैकया च मानुष्या योन यश्च चतुर्दश ॥११॥ तासु सर्वासु युगपत्प्रवेशाय शिशोर्द्धिया ॥ वागीशान्यां यथान्यायं शिष्यात्मानं निवेशयेत् ॥१२॥

निवृत्तिमें व्याप्त हैं ॥ ७ ॥ मंडलमें देवको पूजनकर तीन आहुति देकर एक साथही सब योनियोंमें शिष्यकी प्राप्ति प्रार्थना करे ॥ ८ ॥ फिर शिष्यके सूत्र देहमें ताडन प्रोक्षण आदि करे और आत्माको सावधान करे द्वादशान्तमें निवेदनकर ॥ ९ ॥ तब शास्त्रमें कही मुद्रासे मूलमंत्रको ग्रहण कर आचार्य मनसे युक्तकर एक साथ योनियोंमें योजित करे ॥१०॥ देवताओंकी आठ जाति और तिरछे चलनेवाले जीवोंकी पांच जाति एक मानुषी योनि ॥११॥ इनमें शिष्यको एक साथही प्रवेश कर यथायोग्य शिष्यकी आत्मामें वागीश्वरीको निविष्ट

करे ॥ १२ ॥ गर्भप्राप्तिके निमित्त देवको प्रणाम कर पूजन करे, हवन कर न्यायपूर्वक उस गर्भको स्मरण करे ॥ १३ ॥ प्राप्तकी उत्पत्ति और कर्मकी अनुवृत्ति है सीधापन भोगकी प्राप्ति और परम प्रीति करे ॥ १४ ॥ जाति आयु और भोग संस्कारकी सिद्धि तथा निष्कृतिके निमित्त आचार्य तीन आहुतिका होम करके प्रार्थना करे ॥ १५ ॥ भोक्तृत्वविषयसंग मल उसके कार्यको शोधन यह सब विधि कर शिष्यके जाति आयु भोगरूप तीन पाशोंको छेदन करे ॥ १६ ॥ निकृतिके बद्ध और पाशके अत्यन्त भेदसे शिष्यको संस्कार करके उसको केवल स्वच्छ जाने, और चैतन्य करे ॥ १७ ॥ फिर अग्निमें पूर्णाहुति करके ब्राह्मणोंका पूजन करे, फिर तीन आहुति ब्रह्मको देकर शिवाज्ञाका स्मरण

गर्भनिष्पत्तये देवं संपूज्य प्रणिपत्य च ॥ हुत्वा चैव यथान्यायं निष्पन्नं तदनुस्मरेत् ॥ १३ ॥ निष्पन्नस्यैवमुत्पत्तिमनुवृत्तिं च कर्मणा ॥ आर्जवं भोगनिष्पत्तिः कुर्यात्प्रीतिं परां तथा ॥ १४ ॥ निष्कृत्यर्थं च जात्यायुर्भोगसंस्कारसिद्धये ॥ हुत्वाहुतित्रयं देवं प्रार्थयेद्देशिकोत्तमः ॥ १५ ॥ भोक्तृत्वविषयासंगमलं तत्कायशोधनम् ॥ कृत्वैवमेव शिष्यस्य छिद्यात्पाशत्रयं ततः ॥ १६ ॥ निकृत्या परि बद्धस्य पाशस्यात्यंतभेदतः ॥ कृत्वा शिष्यस्य चैतन्यं स्वच्छं मन्येत केवलम् ॥ १७ ॥ हुत्वा पूर्णाहुतिं वह्नौ ब्रह्माणं पूजयेत्ततः ॥ हुत्वाहुतित्रयं तस्मै शिवाज्ञामनुसंदिशेत् ॥ १८ ॥ पितामह त्वया नास्य यातुः शैवं परं पदम् ॥ प्रतिबन्धो विधातव्यः शैवाज्ञैषा गरीयसी ॥ १९ ॥ इत्यादिश्य तमभ्यर्च्य विसृज्य च विधानतः ॥ समभ्यर्च्य महादेवं जुहुयादाहुतित्रयम् ॥ २० ॥ निवृत्त्या शुद्धमुद्धृत्य शिष्यात्मानं यथा पुरा ॥ निवेश्यात्मनि सूत्रे च वागीशं पूजयेत्ततः ॥ २१ ॥ हुत्वाहुतित्रयं तस्मै प्रणम्य च विसृज्य ताम् ॥ कुर्यान्निवृत्तः संधानं प्रतिष्ठां कलया सह ॥ २२ ॥

करे ॥ १८ ॥ कि, हे पितामह ! तुम्हारी कृपाके द्वारा शिवके परमपदको जाय फिर इसका प्रतिबंधन करे; यह शिवकी आज्ञा बडी है ॥ १९ ॥ ऐसी आज्ञा दे उसे अर्चन कर और विधानपूर्वक विसर्जन कर महादेवका पूजन कर तीन आहुतिसे हवन करे ॥ २० ॥ और पूर्वके समान निवृत्तिसे अपने शिष्यको शुद्ध करके अपने आत्मामें स्थित कर सूत्रमें वागीश्वरीका पूजन करे ॥ २१ ॥ उसके उपरान्त तीन आहुति देकर प्रणाम कर उसे विसर्जन कर प्रतिष्ठारूप कलाके सहित निवृत्तिका संधान करके ॥ २२ ॥

संधानमें एकसाथ पूजा और तीन आहुतियोंका हवन करे; फिर पूर्वमें कही प्रतिष्ठाको आवाहन कर पूर्वोक्त कार्य करे, शिष्यकी आत्मामें प्रतिष्ठाके प्रवेशकी भावना करे ॥ २३ ॥ फिर पूर्वोक्त प्रतिष्ठाको [illegible] कार्य करे, उसमें ही अपने आत्माकी व्याप्ति और व्यापिकाकी और वागीश्वरीकी भावना करे ॥२४॥ जो पूर्णचन्द्रमाके समान है, शेषकार्य पूर्ववत् करे शिव परमात्माकी आज्ञाको विष्णुके प्रति कहे ॥२५॥ और महामंत्रसे विष्णुका विसर्जन आदि करे, और पूर्वके समान उसमें भी प्रतिष्ठाको करके ॥ २६ ॥ इस विष्णुकी व्याप्ति और वागीश्वरीको क्रमसे चिंतन करे, और पूर्वहीके समान दीप्ताग्निमें हवन करके ॥ २७ ॥ नीलरुद्रके निकट उपस्थित हो उनकी पूजादिक करे यह कृत्य करके

संधानेयुगपत्पूजां कृत्वा हुत्वाहुतित्रयम् ॥ शिष्यात्मनः प्रतिष्ठायां प्रवेशं त्वथ भावयेत्॥२३॥ततः प्रतिष्ठामावाह्य कृत्वाशेषं पुरोदितम्॥तद्व्याप्तिं व्यापिकां तस्य वागीशानीं च भावयेत् ॥२४॥ पूर्णेंदुमंडलप्रख्यां कृत्वा शेषं च पूर्ववत् ॥ विष्णवे भाविशेदाज्ञां शिवस्य परमात्मनः ॥२५॥ विष्णोर्विसर्जनाद्यं च कृत्वा शेषं च विद्यया ॥ प्रतिष्ठामनुसंधाय तस्यां चापि यथा पुरा ॥२६॥ कृत्वानुचिन्त्य तद्व्याप्तिं वागीशां च यथाक्रमम्॥ दीप्ताग्नौ पूर्णहोमान्तं कृत्वा शेषं च पूर्ववत्॥२७॥ नीलरुद्रमुपस्थाप्य तस्मै पूजादिकं तथा ॥ कृत्वा कर्म शिवाज्ञां च दद्यात्पूर्वोक्तवर्त्मना ॥२८॥ तपस्तमपि चोद्वास्य कृत्वा तस्य च शांतये ॥ विद्याकलां समाधाय तद्व्याप्तिं चावलोकयेत् ॥२९॥ स्वात्मनो व्यापिकां तद्वद्वागीशीं च यथा पुरा ॥ बालार्कसदृशाकारां भासयंतीं दिशो दश॥३०॥ततः शेषं यथापूर्वं कृत्वा देवं महेश्वरम्॥आवाह्याराध्य हुत्वास्मै शिवाज्ञां मनसा दिशेत् ॥ ३१॥

पूर्वोक्त मार्गसे शिवाज्ञाको दे ॥ २८ ॥ फिर नीलरुद्रकोभी उद्वासन (विसर्जन) कर उसकी शान्तिके निमित्त विद्याकलामें समावेश करके उसकी व्याप्तिको भी अवलोकन करे ॥ २९ ॥ अपनी आत्माकी व्यापिका और वागीश्वरीकी जैसे पूर्वभावना की थी कि, सूर्यके समान प्रकाशमान दशों दिशाओंको प्रकाश करती हुईका ॥ ३० ॥ ध्यान कर फिर योग्यतानुसार सब कृत्य कर महादेव महेश्वरको आवाहन कर पूजन करके शिवकी आज्ञाको मनसे आदेश करे ॥ ३१ ॥

फिर महेश्वरको विदाकर पहली कही पाँच कलाको शांत्यतीत कलाको लेकर उसकी व्याप्तिको देखे ॥ ३२ ॥ अपनी आत्माकी व्याप्तिका और वागीश्वरीका चिन्तन करे; और नभोमंडलके समान पूर्ण कलाको भी पूर्वके समान ॥ ३३ ॥ शेष कर विधानसे पूजा कर शिवका पूजन कर उस शिष्यके निमित्त अमितकर्मा महादेवकी आज्ञासे सुनावे ॥ ३४ ॥ उसमें भी पूर्वके समान शिवको शिरमें पूजन कर जो कि, वाणीके पति हैं प्रणाम कर विसर्जन करे ॥ ३५ ॥ तब शिवमंत्रसे पूर्वके समान शिष्यके शिरमें प्रोक्षण कर शांत्यतीत कलाका

महेश्वरं तथोत्सृज्य कृत्वान्यां च कलामिमाम् ॥ शांत्यतीतां कलां नीत्वा तद्व्याप्तिमवलोकयेत् ॥३२॥ स्वात्मनो व्यापिकां तद्वद्वागीशां च विचिंतयेत् ॥ नभोमंडलसंकाशां पूर्णांतं चापि पूर्ववत् ॥३३॥ कृत्वा शेषविधानेन समभ्यर्च्य सदाशिवम् ॥ तस्मै समादिशेदाज्ञां शंभोरमितकर्मणः ॥३४॥ तत्रापि च यथापूर्वं शिवं शिरसि पूर्ववत् ॥ समभ्यर्च्य च वागीशं प्रणम्य च विसर्जयेत् ॥ ३५ ॥ ततश्शिवेन सम्प्रोक्ष्य शिष्यं शिरसि पूर्ववत् ॥ विलयं शांत्यतीतायाः शक्तितत्त्वेऽथ चिंतयेत् ॥३६॥ षडध्वनः परे पारे सर्वाध्वव्यापिनी पराम् ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशां शैवीं शक्तिञ्च चिन्तयेत् ॥ ३७ ॥ तदग्रे शिष्यमानीय शुद्धस्फटिकनिर्मलम् ॥ प्रक्षाल्य कर्त्तरीं पश्चाच्छिवशास्त्रोक्तमार्गतः ॥ ३८ ॥ कुर्यात्तस्य शिखाच्छेदं सह सूत्रेण देशिकः ॥ ततस्तां गोमये न्यस्य शिवाग्नौ जुहुयाच्छिखाम् ॥ ॥३९॥ वौषडंतेन मूलेन पुनः प्रक्षाल्य कर्तरीम् ॥ हस्ते शिष्यस्य चैतन्यं तद्देहे विनिवर्तयेत् ॥४०॥ ततः स्नातं समाचांतं कृतस्वस्त्ययनं शिशुम् ॥ प्रवेश्य मंडलाभ्यासं प्रणिपत्य च दंडवत् ॥४१॥

लयशक्ति तत्त्वमें चिन्तन करे ॥ ३६ ॥ षडध्वसे परे सर्वमार्गमें व्याप्त परा स्वरूपमान करोड सूर्यके समान प्रकाश शैवी शक्तिका चिन्तन करे ॥ ३७ ॥ उसके आगे शिष्यको लाकर शुद्ध स्फटिकमणिके समान निर्मल कैंचीको शिवशास्त्रके अनुसार धोकर ॥ ३८ ॥ उस सूत्रके सहित आचार्य उसकी शिखाका छेदन करे फिर उस शिखाको गोबरमें रखकर शिवाग्निमें हवन कर दे ॥ ३९ ॥ वौषट् अन्तमें लगाय मूलमंत्रसे उस कैंचीको धोकर दोनों हाथ शिष्यके चैतन्य करनेको हृदयपर रक्खे ॥ ४० ॥ फिर स्नानादि कराकर उस

शिष्यके स्वस्तिवाचन कराय मंडलके समीप प्रवेश कर दंडके समान प्रणाम करके ॥ ४१ ॥ कर्म लोपादिकी शुद्धिके निमित्त यथायोग्य पूजा करके वाचकके मन्त्रसे तीन आहुति दे ॥ ४२ ॥ उपांशु उच्चारणके योग्य करके तीन आहुतियोंसे हवन करके फिर मन्त्रविकलताकी सिद्धिके निमित्त देवेशका पूजन करे ॥ ४३ ॥ फिर मनसे उच्चारणके योग्य तीन आहुति दे, अम्बाके सहित मंडलमें स्थित शिवका आराधन करके तीन आहुतियोंसे हवन कर हाथ जोड़ गुरु प्रार्थना करे ॥ ४४ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे प्रसादसे षडध्वमार्गकी शुद्धिहो इससे यह तुम्हारे अविनाशी परमधामको प्राप्त हो ॥ ४५ ॥ इस प्रकार देवके निमित्त कहकर नाडी संधानपूर्वक पूर्वके समान पूर्णान्त

पूजां कृत्वा यथान्यायं क्रियावैकल्यशुद्धये॥ वाचकेनैव मंत्रेण जुहुयादाहुतित्रयम् ॥४२॥ उपांशूच्चारयोगेन जुहुयादाहुतित्रयम्॥ पुनस्संपूज्य देवेशं मन्त्रवैकल्यशुद्धये ॥४३॥ मानसोच्चारयोगेन जुहुयादाहुतित्रयम् ॥ तत्र शंभुं समाराध्य मंडलस्थं सहांबया॥ हुत्वाहुतित्रयं पश्चात्प्रार्थयेत्प्रांजलिर्गुरुः ॥४४॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन शुद्धिरस्य षडध्वनः ॥ कृता तस्मात्परं धाम गमयैनं तवाव्ययम् ॥४५॥ इति विज्ञाप्य देवाय नाडीसंधानपूर्वकम् ॥ पूर्णांतं पूर्ववत्कृत्वा ततो भूतानि शोधयेत् ॥४६॥ स्थिरास्थिरे ततः शुद्धचै शीतोष्णे च ततः पदे ॥ ध्यायेद्व्याप्यैकताकारे भूतशोधनकर्मणि॥४७॥ भूतानां ग्रंथिविच्छेदं कृत्वा त्यक्ता सहाधिपैः॥ भूतानि स्थितियोगेन यो जपेत्परमे शिवे॥४८॥ विशोध्यास्य तनुं दग्ध्वा प्लावयित्वा सुधाकणैः॥ स्थाप्यात्मानं ततः कुर्याद्विशुद्धाध्व मयं वपुः॥४९॥ तत्रादौ शान्त्यतीतां तु व्यापिकां स्वाध्वनः कलाम्॥ शुद्धामेव शिशोर्मूर्ध्नि न्यसेच्छान्तिमुखे तथा॥५०॥

करके फिर पंचमहाभूतोंको शोधे ॥ ४६ ॥ स्थिरमें स्थिरा शुद्धिको फिर इसके उपरान्त शीतोष्ण शुद्धि व्याप्तिके एकताके आकारमें तथा पंचभूतके शोधन कर्ममें ध्यान करे ॥ ४७ ॥ भूतोंकी ग्रन्थि विच्छेद करके और उनके स्वामियोंसहित त्याग करके योग करके भूतोंके स्थिति परम शिवमें युक्त करे ॥ ४८ ॥ इस शिष्यका मुख शोधन कर मंत्रसे शरीर दग्ध कर फिर अमृतके करणसे सींचकर अपने आत्माको स्नान कराय विशुद्ध अध्वमय शरीर करके ॥ ४९ ॥ प्रथम शांत्यतीत व्यापिका अपनी अध्वकलाको जो कि शुद्ध हो चुकी है उस शुद्धको

शिष्यके शिरमें न्यास करे ॥ ५० ॥ तथा शांतिको मुखमें विद्यादिको गलेसे लेकर नाभि पर्यंत क्रमसे प्रतिष्ठा धारण करावे, उससे अधोभाग जानुमें न्यास करके निवृत्तिकी भी चिन्तना करे ॥ ५१ ॥ अपने बीज सूत्र मंत्रका न्यास कर उस शिवात्मक अंगको जानकर उस हृदय कमलमें देवका आवाहन कर पूजन करे ॥ ५२ ॥ और नित्य समीपमें स्थित हो गुरु शिष्यमें शिवकी आत्मा प्राप्तकर शिवके तेजोमय इसका शरीर कर उसके अणिमादि गुणोंको भी उसमें प्राप्त करे ॥ ५३ ॥ अणिमादि प्रसन्न हों ऐसा कहकर तीन आहुति दे, इसी प्रकार फिर भी इसमें गुण प्रतिपादन करे ॥ ५४ ॥ सर्वज्ञत्ता तृप्तिको और आद्यन्त वर्जित बोधको जिसकी शक्ति लुप्त नहीं हुई है,

विद्यां गलादिनाभ्यंतं प्रतिष्ठां तदधः क्रमात् ॥ जान्वंतं तदधो न्यस्येन्निवृत्तिं चानुचिंतयेत्॥५१॥स्वबीजैस्सूत्रमंत्रं च न्यस्यांगैस्तं शिवात्मकम् ॥ बुद्ध्वा तं हृदयांभोजे देवमावाह्य पूजयेत् ॥ ५२ ॥ आशास्य नित्यसानिध्यं शिवस्वात्म्यं शिशौ गुरुः ॥ शिव तेजो मयस्यास्य शिशोरापादयेद्गुणान् ॥५३॥ अणिमादीन्प्रसीदेति प्रदद्यादाहुतित्रयम् ॥ तथैव तु गुणानेव पुनरस्योपपादयेत् ॥ ५४ ॥ सर्वज्ञातां तथा तृप्तिं बोधं चाद्यन्तवर्जितम् ॥ अलुप्तशक्तिं स्वातन्त्र्यमनंतां शक्तिमेव च ॥ ५५ ॥ ततो देवमनुज्ञाप्य संद्यादिकलशैस्तुतम् ॥ अभिषिंचेत देवेशं ध्यायन्हृदि यथाक्रमम् ॥५६॥ अथोपवेश्य तं शिष्यं शिवमभ्यर्च्य पूर्ववत् ॥ लब्धानुज्ञः शिवाच्छैवीं विद्यामस्मै समादिशेत् ॥५७॥ ओंकारपूर्विकां तत्र संपुटान्तु नमोंऽतगाम् ॥ शिवशक्तियुताश्चैव शक्तिविद्यां च तादृशीम् ॥ ५८ ॥ ऋषिं छन्दश्च देवं च शिवतां शिवयोस्तथा ॥ पूजां सावरणां शम्भोरासनानि च सन्दिशेत् ॥ ५९ ॥ पुनः संपूज्य देवेशं यन्मया समनुष्ठितम् ॥ सुकृतं कुरु तत्सर्वमिति विज्ञापयेच्छिवम् ॥ ६० ॥

स्वतंत्र अनन्त शक्तिको स्थापन कर ॥ ५५ ॥ फिर देवकी प्रार्थना कर सद्यादि कलशोंसे उन देवेशको अभिषेक कर यथा क्रमसे ध्यान करता हुआ ॥ ५६ ॥ फिर उस शिष्यको बैठा और पूर्ववत् शिवकी पूजा कर शिवसे शैवी आज्ञाको प्राप्त कर इस शिष्यके निमित्त शैवी विद्या प्रदान करे ॥ ५७ ॥ उसमें पहले ओंकार और पीछे नमः लगाकर संपुट करे; शिवशक्तिके सहित उसी प्रकार विद्याशक्ति ऋषि च्छंद देवता कहकर शिवशक्तिके शिवा शिवकी शिवत्वको तथा शिवको पूजाका संग्रह और आसन आदि दे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ फिर देवेशका

पूजन कर कहे जो मैंने अनुष्ठान किया है उस सबको सुकृति करो, यह शिवसे प्रर्थना कर ॥ ६० ॥ शिष्यके सहित गुरु पृथ्वीमें देवको दंडवत् करे प्रणाम कर उस मण्डलसे और अग्निसे विसर्जन करे ॥ ६१ ॥ फिर सभाके बैठनेवाले यथायोग्य क्रमसे पूजने चाहिये ॥ ६२ ॥ और धनके अनुसार ऋत्विजोंके सहित सभावालोंका सत्कार करे; जो अपना मंगल चाहे तो धनकी शठता न करे ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ उपमन्यु बोले, इसके उपरांत नाम

सहशिष्यो गुरुर्देवं दण्डवत्क्षितिमंडले ॥ प्रणम्योद्वासयेत्तस्मान्मंडलात्पावकादपि ॥ ६१ ॥ ततः सदसिकाः सर्वे पूज्याः पूजार्हकाः क्रमात् ॥६२॥ सेव्या वित्तानुसारेण सदस्याश्च सहर्त्विजः ॥ वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेच्छिवमात्मनः ॥६३॥ इति श्रीशिव महापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे षडध्व शुद्ध्यादिकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि साधकं नाम नामतः ॥ संस्कारमन्त्र माहात्म्यं कथने सूचितं मया ॥१॥ संपूज्य मंडले देवं स्थाप्य कुम्भे च पूर्ववत् ॥ हुत्वा शिष्यमनुष्णीषं प्रापयेद्भुवि मंडले ॥ २ ॥ पूर्वोतं पूर्ववत्कृत्वा हुत्वाहुतिशतं तथा ॥ संतर्प्य मूलमन्त्रेण कलशैर्देशिकोत्तमः ॥ ३ ॥ सन्दीप्य च यथापूर्वं कृत्वा पूर्वोदितं क्रमात् ॥ अभिषिच्य यथापूर्वं प्रदद्यान्मन्त्रमुत्तमम् ॥ ४ ॥ तत्र विद्योपदेशांतं कृत्वा विस्तरशः क्रमात् ॥ पुष्पाम्बुना शिशोः पाणौ विद्यां शैवीं समर्पयेत् ॥ ५ ॥ तवैहिकामुष्मिकयोः सर्वसिद्धिफलप्रदः ॥ भवत्येव महामन्त्रः प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥ ६ ॥

मन्त्र शिवमन्त्रके साधनका विस्तार करता हूँ संस्कार मन्त्रका माहात्म्य कहनेमें जिसकी मैंने प्रथम सूचना दी थी ॥ १ ॥ मंडलमें देवको पूज और पूर्वके समान कुंभ स्थापन कर हवन कर पगड़ी टोपी रहित शिष्यको उस स्थानमें प्राप्त करे ॥ २ ॥ पूर्ववत् पूरा विधान करके सौ आहुति देकर श्रेष्ठ आचार्य दशांशसे मूल अंशोंको तृप्त कर ॥३॥ पूर्व कहे अनुसार दीप्ति करके तथा अभिषेक करके श्रेष्ठ मंत्र प्रदान करे; फिरसे सब विद्याके उपदेश पर्यंत करके पुष्पयुक्त जलसे बालकके हाथमें शैवीविद्याको समर्पण करे ॥ ४ ॥ ५ ॥ और कहे यह तुझे

यहाँ वहाँ सब सिद्धिकी देनेवाली हो; परमेष्ठीके प्रसादसे यह महामन्त्र सब फलप्रदान करे ॥ ६ ॥ यह कह देवकी पूजाकर आचार्य शिवसे आज्ञा पाय साधन और विनियोग सब साधकको बतावे ॥ ७ ॥ यह गुरुका सन्देशा सुन मंत्रका साधक क्रमसे आगे विनियोगका मंत्रसाधन करे ॥ ८ ॥ मूलमंत्रका साधन पुरश्चरण कहलाता है; क्योंकि विनियोगके कर्मसे यह पहले किया जाता है ॥ ९ ॥ मुमुक्षुको मंत्रसाधन अत्यन्त नहीं करना चाहिये; और करनेसे यहाँ वहाँ सब जगह उसको भी शुभ होता है ॥१०॥ शुभदिन शुभदेशमें शुभकालमें दोषसे रहित श्वेत दांत कर नख पवित्र कर, स्नान कर स्नानके उपरान्त पूर्वकालकी क्रिया करके ॥ ११ ॥ यथालब्ध गन्धमाला भूषणसे अलंकार कर

इत्युक्त्वा देवमभ्यर्च्य लब्धानुज्ञः शिवाद्गुरुः॥साधनं शिवयोगं च साधकाय समादिशेत्॥७॥तच्छ्रुत्वा गुरुसंदेशं क्रमशो मंत्रसाधकः॥पुरतो विनियोगस्य मन्त्रसाधनमाचरेत्॥८॥साधनं मूलमन्त्रस्य पुरश्चरणमुच्यते॥पुरतश्चरणीयत्वाद्विनियोगाख्यकर्मणः ॥९॥ नात्यन्तं करणीयन्तु मुमुक्षोर्मन्त्रसाधनम् ॥ कृतन्तु तदिहान्यत्र तस्यापि शुभदं भवेत् ॥१०॥ शुभेऽह्नि शुभे देशे काले वा दोषवर्जिते ॥ शुक्लदन्तनखः स्नातः कृतपूर्वाह्णिककक्रियः॥११॥ अलंकृत्य यथा लब्धैर्गंधमाल्यविभूषणैः॥सोष्णीषः सोत्तरासंगः सर्वशुक्लसमाहितः ॥१२॥ देवालये गृहेऽन्यस्मिन्देशे वा सुमनोहरे ॥ सुखेनाभ्यस्तपूर्वेण त्वासनेन कृतासनः ॥१३॥ तनुं कृत्वात्मनः शैवीं शिवशास्त्रोक्तवर्त्मना॥ संपूज्य देवदेवेशं नकुलीश्वरमीश्वरम्॥१४॥निवेद्य पायसं तस्मै समाप्याराधनं क्रमात्॥ प्रणिपत्य च तं देवं प्राप्तानुज्ञश्च तन्मुखात् ॥१५॥ कोटिवारं तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा जपेच्छिवम् ॥ लक्षविंशतिकं वापि दशलक्षमथापि वा ॥ १६ ॥ ततश्च पायसाक्षारलवणैकमिताशनः ॥ अहिंसकः क्षमी शांतो दांतश्चैव सदा भवेत् ॥ १७ ॥

उष्णीष उत्तरासंग दुपट्टे सहित सब शुक्ल वस्त्र लिये ॥ १२ ॥ देवालयमें घरमें वा और किसी रमणीय पवित्र देशमें पूर्वासनपर बैठ सुखसे पूजा कर ॥ १३ ॥ अपने शरीरको शिवशास्त्रके मार्गसे शैव करके नकुलीश्वर ईश्वर देवेशका पूजनकर ॥ १४ ॥ खीर उनको निवेदन करके पूजाका क्रम समाप्त कर देवको प्रणाम कर उनके मुखसे आज्ञा पाय ॥ १५ ॥ एक करोड़ आधा करोड़ पच्चीस लाख बीस या दस लाख शिवका जप करे ॥ १६ ॥ हिंसारहित क्षमायुक्त शान्त और दान्त सदा हो; फिर खीर अथवा खारी नोन रहित अल्पमात्रामें भोजन

करे ॥ १७ ॥ जो खीर न मिले तो फल मूलका ही भोजन करे, यह पदार्थ शिवने उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कहे हैं ॥ १८ ॥ चरु सत्तु कण यावकका भोजन करे; शाक दूध, दही घी मूल, फल और जलका भोजन करे ॥ १९ ॥ भक्ष्य भोज्यादिको मूलमन्त्रसे अभिमंत्रित कर इस साधनमें विशेष मौन होकर भोजन करे ॥ २० ॥ आठसौ मन्त्र पढ़कर पवित्र किये जलसे व्रती स्नान करे; जो नदका जलहो उसे अपनी शक्तिसे प्रोक्षण करे ॥ २१ ॥ नित्य तर्पण कर शिवाग्निमें हवन करे; सात पांच तीन आहुति द्वारा घृतसे ॥ २२ ॥ आहुति दे इस प्रकार भक्तिसे जो शैव शिवकी साधना करता है उसको यहाँ वहाँ प्राप्ति होनेमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ २३ ॥ अथवा एकाग्रमनसे

अलाभे पायसस्याश्नन्फलमूलादिकानि वा॥विहितानि शिवेनैव विशिष्टान्युत्तरोत्तरम्॥१८॥ चरुं भक्ष्यमथो सक्तुकणान्यावकमेव च॥शाकं पयो दधि घृतं मूल फलमथोदकम्॥१९॥अभिमंत्र्य च मन्त्रेण भक्ष्यभोज्यादिकानि च॥साधनेऽस्मिन्विशेषेण नित्यं भुञ्जीत वाग्यतः ॥२०॥ मन्त्राष्टशतपूतेन जलेन शुचिना व्रती॥ स्नायान्नदीनदोत्थेन प्रोक्षयेद्वाथ शक्तितः ॥२१॥ तर्पयेच्च तथा नित्यं जुहुयाच्च शिवानले ॥ सप्तभिः पञ्चभिर्द्रव्यैस्त्रिभिर्वाथ घृतेन वा ॥२२॥ इत्थं भक्त्या शिवं शैवो यः साधयति साधकः॥ तस्येहामुत्रदुष्प्रापं न किंचिदपि विद्यते॥२३॥अथवाऽहरहर्मंत्रं जपेदेकाग्रमानसः॥ अनश्नन्नेव साहस्रं विना मन्त्रस्य साधनम्॥२४॥न तस्य दुर्लभं किंचिन्न तस्यास्त्यशुभं क्वचित्॥इह विद्यां श्रियं सौख्यं लब्ध्वा मुक्तिं च विंदति॥२५॥साधने विनियोगे च नित्ये नैमित्तिके तथा॥जपेज्जलैर्भस्मना च स्नात्वा मन्त्रेण च क्रमात्॥२६॥शुचिर्बद्धशिखस्सूत्री सपवित्रकरस्तथा॥धृतत्रिपुंड्ररुद्राक्षो विद्यां पञ्चाक्षरीं जपेत्॥२७॥इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यांवायवीयसंहितायामुत्तरखंडे साधकसंस्कारमन्त्रमाहात्म्यं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

प्रतिदिन मन्त्र जपे; विना सहस्र मन्त्र पढ़े भोजन न करे तब उसको कुछ दुर्लभ नहीं रहता न उसको कहीं अशुभ होता है; यहाँ इस विद्याके आश्रयसे सुखको प्राप्तहो मुक्त हो जाता है ॥ २४ ॥ २५ ॥ साधनाविनियोग नित्य नैमित्तिकमें जल और भस्म स्नान कर मंत्र जपे ॥ २६ ॥ पवित्र हो शिखा बाँध, सूत्र (यज्ञोपवीत) पहन, हाथमें पवित्री धारण कर त्रिपुंड्र धारे, रुद्राक्ष पहनकर, पंचाक्षरी विद्याका जप करे ॥ २७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

उपमन्यु बोले, जब इस प्रकार शिष्य संस्कारको प्राप्त हो पाशुपतव्रत करे तब योग्य होनेपर आचार्य उसका अभिषेक करे अन्यथा नहीं, ॥ १ ॥ पूर्ववत् मंडल करके परमेश्वरका पूजन कर पूर्वादि दिशाओंमें चार-चार और एक मध्यमें कलश स्थापन करे ॥२॥ निवृत्ति कलाको आगे और प्रतिष्ठाको पीछे न्यास करके विद्या कलाको दक्षिण, शान्तिको उत्तर और पराको मध्यमें स्थापन करे ॥३॥ फिर सब रक्षादि करके धेनुमुद्राको बांधकर घंटोंको अभिमन्त्रित कर पूर्णाहुतितक हवन करे; जैसे पहले किया है ॥ ४ ॥ और पगड़ीरहित शिष्यको मण्डलमें प्रवेश कराकर आचार्य पूर्ण होनेतक मन्त्रोंका तर्पणादि सब करे ॥ ५ ॥ फिर देवेशको पूज पूर्वके समान अनुज्ञा ले उस शिष्यको अभिषिक्त

उपमन्युरुवाच॥ अथैवं संस्कृतं शिष्यं कृतपाशुपतव्रतम् ॥ आचार्यत्वेऽभिषिंचेत तद्योगत्वेन चान्यथा ॥१॥ मण्डलं पूर्ववत्कृत्वा संपूज्य परमेश्वरम् ॥ स्थापयेत्पंचकलशान्दिक्षु मध्ये च पूर्ववत् ॥२॥ निवृत्तिं पुरतो न्यस्त प्रतिष्ठां पश्चिमे घटे ॥ विद्यां दक्षिणतः शांतिमुत्तरे मध्यतः पराम् ॥३॥ कृत्वा रक्षादिकं तत्र बद्ध्वा मुद्रां च धैनवीम् ॥ अभिमंत्र्य घटान्हुत्वा पूर्णांतं च यथा पुरा ॥४॥ प्रवेश्य मंडले शिष्यमनुष्णीषं च देशिकः॥तर्पणाद्यं तु मंत्राणां कुर्यात्पूर्वावसानकम्॥५॥ ततः संपूज्य देवेशमनुज्ञाप्य च पूर्ववत्॥ अभिषेकाय तं शिष्यमासनं त्वधिरोहयेत्॥६॥सकलीकृत्य तं पश्चात्कलापंचकरूपिणम्॥न्यस्तमंत्रतनुं बद्ध्वा शिवं शिष्यं समर्पयेत्॥७॥ ततो निवृत्तिकुंभादिघटानुद्धृत्य वैकमात्॥मध्यमान्ताच्छिवेनैव शिष्यं तमभिषेचयत्॥८॥ शिवहस्तं समर्प्यार्थ शिशोः शिरसि देशिकः ॥ शिवभावसमापन्नः शिवाचार्यं तमादिशेत् ॥९॥ अथालंकृत्य तं देवमाराध्य शिवमण्डले॥ शतमष्टोत्तरं हुत्वा दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः ॥१०॥ पुनः सम्पूज्य देवेशं प्रणम्य भुवि दंडवत् ॥ शिरस्यंजलिमाधाय शिवं विज्ञापयेद्गुरुः ॥ ११ ॥

कर आसन पर बैठावे ॥ ६ ॥ उस पंचकलारूपको ठीककर मन्त्रयुक्त शरीरको करके शिष्यको शिवमें समर्पण करे ॥ ७ ॥ फिर निवृत्तिसे कुंभादिको उठाकर क्रमसे उन घडोंको उठाकर मध्यम घटपर्यन्त शिवमन्त्रसे उस शिष्यको अभिषिक्त करे ॥ ८ ॥ फिर आचार्य शिष्यको शिवके हाथमें समर्पणकर उसके शिरमें स्पर्श कर शिवभावको प्राप्त हो शिवाचार्य उसको आज्ञा दे ॥ ९ ॥ फिर उन देवका अलंकार कर शिवमंडलमें आराधना कर एकसौ आठ बार आहुति देकर फिर पूर्णाहुति दे ॥ १० ॥ फिर देवेशका पूजन कर पृथ्वीमें प्रणाम कर शिरसे

अञ्जलि बांध शिवको विज्ञापन करे ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे प्रसादसे यह मैंने देशिक किया। हे देव ! इसके ऊपर कृपाकर इसको दिव्य आज्ञा प्रदान करो ॥ १२ ॥ इस प्रकार कहकर शिष्यके सहित प्रणाम कर शिवको और दिव्य शिवशास्त्रको शिवके समान गुरुपूजन करे ॥ १३ ॥ फिर शिवको अनुज्ञप्ति कर शिवज्ञानकी पुस्तक वेदको दोनों हाथोंसे आचार्यके निमित्त दे ॥१४॥ वह उस विद्याको शिरके ऊपर धर कर विद्या आसनके ऊपर रखकर यथायोग्य प्रणामकर वंदन करे ॥ १५ ॥ फिर गुरु उस शिष्यको राज्यके उपयोगी आसन छत्रादि दे। कारण कि, यह आचार्य पदवीको प्राप्त होकर राज्य प्राप्तिके योग्य भी हो सकता है ॥ १६ ॥ फिर पूर्वजोंसे आचरित की

भगवंस्त्वत्प्रसादेन देशिकोऽयं मया कृतः॥अनुगृह्य त्वया देव दिव्याज्ञास्मै प्रदीयताम्॥१२॥एवं विज्ञाप्य शिष्येण सह भूयः प्रणम्य च॥शिवं शिवागमं दिव्यं पूजयेच्छिववद्गुरुः॥१३॥पुनः शिवमनुज्ञाप्य शिवज्ञानस्य पुस्तकम्॥उभाभ्यामथ पाणिभ्यां दद्याच्छिष्याय देशिकः॥१४॥ स ताम्मूर्ध्नि समाधाय विद्यां विद्यासनोपरि॥अधिरोप्य यथान्यायमभिवंद्य समर्चयेत्॥१५॥ अथ तस्मै गुरुर्दद्याद्राजोपकरणान्यपि॥आचार्यपदवीं प्राप्तो राज्यं चापि यतोऽर्हति॥१६॥ अथानुशासनं कुर्यात्पूर्वैराचरितं यथा॥ यथा च शिवशास्त्रोक्तं यथा लोकेषु पूज्यते॥ १७॥ शिष्यान्परीक्ष्य यत्नेन शिवशास्त्रोक्तलक्षणैः॥ संस्कृत्य च शिवज्ञानंतेभ्यो दद्याच्च देशिकः॥ १८॥ एवं सर्वमनायासं शौचं क्षांतिं दयां तथा॥ अस्पृहामप्यसूयां च यत्नेन च विभावयेत्॥ १९॥ इत्थमादिश्य तं शिष्यं शिवमुद्वास्य मंडलात्॥ शिवकुंभानलादींश्च सदस्यानपि पूजयेत्॥ २०॥

हुई आज्ञाको दे; जैसे शिवशास्त्रमें लिखा है, और जैसा लोकोंमें पूजा जाता है ॥ १७ ॥ शिष्यकी यत्नसे परीक्षा कर शिव शास्त्रके कहे लक्षणोंसे संस्कार करके शिवआज्ञा दे अन्यथा नहीं ॥ १८ ॥ शिवकी प्रतिष्ठा भी यथायोग्य करनी चाहिये। उपदेश ऐसा दे कि पवित्रता सहनशीलता दया नित्य करना, स्पृहता न करना, निन्दा न करना यह यत्नसे साधन करे ॥ १९ ॥ ऐसे उस शिष्यको समझाकर मंडलसे शिवको उठाकर शिव घट अग्नि आदि और सभासदोंका भी सत्कार करके ॥ २० ॥

एक साथ ही संस्कारोंको गुणी गुरु करे, वहां तीन वा दो प्रयोगोंका उपदेश किया है ॥ २१ ॥ उस प्रयोगके आदिमें मार्ग शुद्धिकी तरह कल्पना करे, अभिषेकके बिना सम्पूर्ण समयके संस्कार करके ॥ २२ ॥ शिवका अर्चन कर मार्ग शुद्ध करके उसकी समाप्तिमें फिर देवकी पूजा करे ॥ २३ ॥ हवन कर फिरसे तर्पण कर दीप्ति कर ईश्वरकी आज्ञा लेकर मंत्र शिष्यको समर्पण कर शिष्यके हाथसे सब कृत्य पूर्ण कराये ॥ २४ ॥ अथवा फिर सब मंत्र संस्कारोंको चिन्तन करके अभिषेकमें समाप्त होनेवाली मार्ग शुद्धिको गुरु करे ॥ २५ ॥ उसमें जो शांत्यतीता आदि कलाओंमें विधान कहा है; वह तीनों तत्त्वोंके शोधनेमें सब करनी चाहिये ॥ २६ ॥ शिव विद्याके तत्त्व कहनेवाले तीन

युगपद्वाथसंस्कारान्कुर्वीत सगणो गुरुः॥तत्र त्रयद्वयं वापि प्रयोगस्योपदिश्यते॥२१॥तदादावेव कलशान्कल्पयेदध्वशुद्धिवत् ॥ कृत्वासमयसंस्कारमभिषेकं विनाखिलम्।२२।समभ्यर्च्य शिवं भूयः कृत्वा चाध्वविशोधनम्॥तस्मिन्परिसमाप्ते तु पुनर्देवं प्रपूजयेत् ॥२३॥ हुत्वा मंत्रन्तु संतर्प्य संदीप्याशास्य चेश्वरम्॥ समर्प्य मंत्रं शिष्यस्य पाणौ शेषं समापयेत्॥२४॥ अथवा मंत्रसंस्कारमनुचिंत्याखिलं क्रमात्॥अध्वशुद्धिं गुरुः कुर्यादभिषेकावसानिकम्॥२५॥तत्र यः शान्त्यतीतादिकलासु विहितो विधिः॥स सर्वोऽपि विधातव्यस्तत्त्वत्रयविशोधने२६शिवविद्यात्मतत्त्वाख्यं तत्त्वत्रयमुदाहृतम्॥शक्तौशिवस्ततोविद्यात्तस्यास्त्वात्मा समुद्भवौ।२७। शिवेन शांत्यतीताध्वा व्याप्तस्तदपरः परः॥विद्यया परिशिष्टोऽध्वा ह्यात्मना निखिलः क्रमात्।२८।दुर्लभं शांभवं मत्वा मंत्रमूलं मनीषिणः॥शाक्तं शंसीत संस्कारं शिवशास्त्रार्थपारगाः॥२९॥इति ते सर्वमाख्यातं संस्काराख्यस्य कर्मणः ॥ चातुर्विध्यमिदं कृष्ण किं भूय श्रोतुमिच्छसि।३०।इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डेविशेषादिसंस्कृतिर्नाम विंशोऽध्यायः।२०।

तत्त्व कहाते हैं, शक्तिमें ही शिवको जानना चाहिये, उसीका आत्मा प्रगट हुआ है ॥२७॥ शिवसे ही शांत्यतीतादि मार्ग और उससे परे व्याप्त हैं, विद्यासे परिशेष मार्ग सब क्रमसे आत्मस्वरूप ॥ २८ ॥ शिवका मूलमंत्र दुर्लभ मानकर मूलमंत्रको विद्वान् महात्मा जो शिवशास्त्रके पारगामी हैं, शक्ति संस्कार कहते हैं ॥ २९ ॥ यह संस्कार कर्मका चार प्रकारसे सब विधान तुमसे कहा है हे कृष्ण ! अब तुम्हारे क्या सुननेकी इच्छा है सो तुम हमसे कहो ॥ ३० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां स० वा० सं उत्तरखण्डे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण बोले, हे भगवन् ! शिव शास्त्रके अनुसार वर्तनेवाले जो नित्य नैमित्तिक कर्म हैं उसके सुननेकी मैं इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ उपमन्यु बोले, प्रातःकाल ही शयनसे उठकर उमा सहित शिवका ध्यान करके विचार कर अरुणोदय होनेपर अपने कर्मके निमित्त घरसे निकले ॥ २ ॥ उपद्रव रहित देशमें आवश्यक शौचादि करके निवृत्त होकर दंत धावन करे ॥ ३ ॥ दंत धावनके न प्राप्त होनेपर (चतुर्दशी अष्टमी पौर्णमासी संक्रांति नंदातिथि नौमीको दंतधावन न करे) इन तिथियोंमें जलके बारह कुल्ले आत्माकी शुद्धिके निमित्त करने चाहिये ॥ ४ ॥ फिर विधिपूर्वक आचमन करके वारुण स्नान करे (अवगाहका नाम वरुण स्नान है) कि, मनसे विष्णु भगवान्का चिन्तन करे ।

कृष्ण उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि शिवाश्रमनिषेविणाम् ॥ शिवशास्त्रोदितं कर्म नित्यनैमित्तिकं तथा ॥ १ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ प्रातरुत्थाय शयनाद्धयात्वा देवं सहाम्बया ॥ विचार्य कार्यं निर्गच्छेद्गृहाद्भ्युदितेऽरुणे ॥२॥ अबाधे विजने देशे कुर्यादावश्यकं ततः ॥ कृत्वा शौचं विधानेन दंतधावनमाचरेत् ॥३॥ अलाभे दंतकाष्ठानामष्टम्यादिदिनेषु च ॥ अपां द्वादशगंडूषैः कुर्यादास्यविशोधनम् ॥४॥ आचम्य विधिवत्पश्चाद्वारुणं स्नानमाचरेत् ॥ नद्यां वा देवखाते वा ह्रदे वाथ गृहेऽपि वा ॥५॥ स्नानद्रव्याणि तत्तीरे स्थापयित्वा बहिर्मलम् ॥ व्यापोह्य मृदमालिप्य स्नात्वा गोमयमालिपेत् ॥ ६ ॥ स्नात्वा पुनः पुनर्वस्त्रं त्यक्त्वावाथ विशोध्य च ॥ सुस्नातो नृपवद्भूयः शुद्धं वासो वसीत च ॥ ७ ॥ मलस्नानं सुगंधाद्यैः स्नानं दन्तविशोधनम् ॥ न कुर्याद्ब्रह्मचारी च तपस्वी विधवा तथा ॥ ८ ॥ सोपवीतशिखां बद्ध्वा प्रविश्य च जलांतरम् ॥ अवगाह्य समाचांतो जलेन्यस्येत्त्रिमंडलम् ॥ ९ ॥ सौम्ये मग्नः पुनर्मंत्रं जपेच्छक्त्या शिवं स्मरेत् ॥ उत्थायाचम्य तेनैव स्वात्मानमभिषेचयेत् ॥ १० ॥

नदी देव खात (सरोवर) ह्रद वा घरमें स्नान करे ॥ ५ ॥ उसके तटपर स्नानके द्रव्य गोमयादि स्थापन करे, बाह्य मलको दूरकर मिट्टी और गोबरसे लीपे ॥ ६ ॥ बार-बार स्नान कर उस वस्त्रको त्याग कर वा धोकर सम्यक् स्नान कर राजाके समान शुद्ध वस्त्रको धारण करे ॥ ७ ॥ सुगंधि आदि स्नान, दांतोंकी शुद्धि यह ब्रह्मचारी तपस्वी और विधवाको नहीं करनी चाहिये ॥ ८ ॥ यज्ञोपवीत पहने शिखा बाँधे जलान्तरमें प्रवेश कर उसमें स्नान कर जलमें तीन मंडलके सदृश आकार करे ॥ ९ ॥ फिर जलमें मग्न हो शक्तिके अनुसार

शिवका स्मरण करता हुआ मंत्र जपे; फिर आचमन कर उसीसे अपने आत्माको अभिषिक्त करे ॥ १० ॥ गोशृंग कुश पलाशदल (ढाकके पत्ते) अथवा कमलसे वा हाथसे पांच वा तीन बार अभिषेक कर ॥ ११ ॥ बगीचे आदि घर, वर्धनी वा कलश करके स्नानके समय जलोंका मंत्रोंसे अभिषेक करे ॥ १२ ॥ और जो वारुण (जल) स्नान करनेमें असमर्थ हो तो शुद्ध भीजे हुए वस्त्रसे अपनी देहको शिरसे पैरोंतक शोध ले (यह कपिल स्नान है) ॥ १३ ॥ भस्म अथवा आपोहिष्ठेत्यादि मंत्रोंसे वा शिवमंत्रके प्रोक्षणसे स्नान करे, और शिवके चिन्तन युक्त आत्मीय स्नान कहाता है ॥ १४ ॥ अपने सूत्रमें कहे विधानसे मन्त्र तथा आचमनपूर्वक देवादिका तर्पण कर ब्रह्मयज्ञतक सब कृत्य करे

गोशृंगेणसदर्भेण पालाशेन दलेन वा ॥ पाद्मेन वाथ पाणिभ्यां पंचकृत्वस्त्रिरेव वा ॥११॥ उद्यानादौ गृहे चैव वर्द्धन्या कलशेन वा ॥ अवगाहनकालेऽद्भिर्मंत्रितैरभिषेचयेत् ॥१२॥ अथ चेद्वारुणं कर्तुमशक्तः शुद्धवाससा ॥ आर्द्रेण शोधयेद्देहमापादतलमस्तकम् ॥१३॥ आग्नेयं वाथ वा मांत्रं कुर्यात्स्नानं शिवेन वा ॥ शिवचिंतापरं स्नानं युक्तस्यात्मीयमुच्यते ॥ १४ ॥ स्वसूत्रोक्तविधानेन मंत्राचमनपूर्वकम् ॥ आचरेद्ब्रह्मयज्ञांतं कृत्वा देवादितर्पणम् ॥१५॥ मंडलस्थं महादेवं ध्यात्वाभ्यर्च्य यथाविधि ॥ दद्यादर्घ्यं ततस्तस्मै शिवायादित्यरूपिणे॥१६॥अथ वैतत्स्वसूत्रोक्तं कृत्वा हस्तौ विशोधयेत्॥करन्यासं ततः कृत्वा सकलीकृतविग्रहः॥१७॥ वामहस्तगतांभोभिर्गंधसिद्धार्थकान्वितैः ॥ कुशपुंजेन वाभ्युक्ष्य मूलमंत्रसमन्वितैः ॥१८॥ आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैः शेषमाघ्राय वै जलम् ॥ वामनासापुटेनैव देवं संभावयेत्सितम् ॥१९॥ अर्घमादाय देहस्थं सव्यनासापुटेन च ॥ कृष्णवर्णेन बाह्यस्थं भावयेच्च शिलागतम् ॥ २० ॥ तर्पयेदथ देवेभ्य ऋषिभ्यश्च विशेषतः ॥ भूतेभ्यश्च पितृभ्यश्च दद्यादर्घ्यं यथाविधि ॥ २१ ॥

॥ १५ ॥ मण्डलमें स्थित महादेवका पूजन कर यथाविधि ध्यान करके आदित्यरूपी शिवके निमित्त अर्घ्य दे ॥ १६ ॥ फिर अपने सूत्रोक्त विधान करके हस्त शुद्धि करे। और करन्यास कर सब शरीरको शोध ॥१७॥ वाम हाथमें प्राप्त हुए जलसे गंध और सरसो सहित कुश समूहसे मूलमन्त्रके सहित प्रोक्षण कर ॥१८॥ आपोहिष्ठादि मंत्रोंसे शेष जलको सूँघकर बाँये नासापुटसे श्वेत देव की और बाहर स्थित शिलामें कृष्णवर्ण का दक्षिण नासापुटसे ध्यान करे ॥१९॥२०॥ फिर विशेष कर देवता और ऋषियोंका तर्पण करे भूत और पितरोंके अर्थ यथायोग्य अर्घ्यको

दे ॥ २१ ॥ लाल चन्दनके जलसे हाथमात्र सुन्दर भूमिमें रत्न चूर्णादिसे अलंकृत मंडलकी कल्पना करे ॥ २२ ॥ वहाँ अपने आवरणोंके सहित सूर्यका पूजन करे 'स्वखोल्काय' इस मंत्रसे सब सुख सिद्धि के निमित्त पूजे ॥ २३ ॥ फिर मण्डल करके अंगोंकी पूजा करके वहाँ रक्खे और सुवर्णपात्रको मगधदेशके सेर (१२८ तोलेका) के परिमाण ॥ २४ ॥ गंध और लाल चन्दनके जलसे पूर्ण करे लाल फूल तिल, कुश अक्षतोंके सहित ॥ २५ ॥ दूर्वा चिरचिटा गव्य दूध वा जलसे पूर्ण कर जंघाके बल पृथ्वीमें बैठ मंडलमें देवको प्रणामकर ॥ २६ ॥ उस पात्रको शिरपर करके अर्घ्य दे, अथवा कुश सहित मूलविद्यासे उस जलको अंजलिमें लेकर ॥ २७ ॥ आकाशमें स्थित सूर्यमूर्ति शिवके

रक्तचंदनतोयेन हस्तमात्रेण मंडलम् ॥ सुवृत्तं कल्पयेद्भूमौ रक्तचूर्णाद्यलंकृतम् ॥२२॥ तत्र संपूजयेद्भानुं स्वकीयावरणैः सह ॥ स्वखोल्कायेति मंत्रेण सांगतस्सुखसिद्धये॥२३॥ पुनश्च मंडलं कृत्वा तदंगैः परिपूज्य च ॥ तत्र स्थाप्य हेमपात्रं मागधप्रस्थसंमितम् ॥ २४ ॥ पूरयेद्गंधतोयेन रक्तचंदनयोगिना ॥ रक्तपुष्पैस्तिलैश्चैव कुशाक्षतसमन्वितैः ॥ २५ ॥ दूर्वापामार्गगव्यैश्च केवलेन जलेन वा ॥ जानुभ्यां धरणीं गत्वा नत्वा देवं च मंडले ॥ २६ ॥ कृत्वा शिरसि तत्पात्रं दद्यादर्घ्यं शिवाय तत् ॥ अथवांजलिना तोयं सदर्भं मूलविद्यया ॥ २७ ॥ उत्क्षिपेदम्बरस्थाय शिवायादित्यमूर्तये ॥ कृत्वा पुनः करन्यासं करशोधनपूर्वकम् ॥२८॥ बुद्ध्वेशानादि सद्योंतं पंचब्रह्ममयं शिवम् ॥ गृहीत्वा भसितं मन्त्रैर्विमृज्याङ्गानि संस्पृशेत् ॥२९॥ याद्दिनांतैश्शिरोवक्त्रहृद्गुह्यचरणान्क्रमात् ॥ ततो मूलेन सर्वांगमालभ्य वसनान्तरम् ॥ ३० ॥ परिधाय द्विराचम्य प्रोक्ष्यैकादशमन्त्रितैः ॥ जलैराच्छाद्य वासोऽयद्द्विराचम्य शिवं स्मरेत् ॥ ३१ ॥

निमित्त अर्घ्य दे फिर हाथ धोकर करन्यास करके ॥ २८ ॥ ईशान आदिसे लेकर सद्योजात पर्यंत पंचब्रह्ममय शिवको जानकर मन्त्रोंसे भस्म ग्रहण कर अंगोंको स्पर्श करे ॥ २९ ॥ फिर विपरीत क्रमसे शिर मुख गुह्य और चरणोंमें लगावे, फिर मूलमंत्रसे सर्वांगमें लगाकर अन्य वस्त्र धारण करे ॥ ३० ॥ दो बार आचमन कर ग्यारह मन्त्रोंसे प्रोक्षण कर वस्त्र पहन दूसरे वस्त्रको जलसे आच्छादन कर दो आचमनकर शिवका स्मरण करे ॥ ३१ ॥

फिर मन्त्रानुष्ठानी करन्यास करके भस्मसे त्रिपुंड्रको लिखे, सुगंध जलसे माथमें त्रिपुण्ड्र लगाय ॥ ३२ ॥ दीर्घ वा चार अंगुलसे बिन्दु वा अर्ध चन्द्रके समान माथेपर यथा योग्य त्रिपुण्ड्रकोभस्मसे लगावे ॥ ३३ ॥ जैसे माथेपर लगावे वैसा ही भुजा शिर और छातीपर लगावे, सर्वांगमें भस्म लगावे, वह त्रिपुंड्रके समान न हो ॥ ३४ ॥ इस कारण एक त्रिपुण्ड्रको ही भस्म रहित मस्तकमें लिखे; रुद्राक्षोंको शिर कंठ हाथ कानोंमें धारण करे ॥ ३५ ॥ जो सुवर्ण वर्णके समान दूसरेका धारण किया न हो वह क्रमसे ब्राह्मणादिकको श्वेत पीला लाल और श्याम वस्त्र धारण करना चाहिये ॥ ३६ ॥ उसके न होनेपर जो मिलसके वही शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिये; उसमें भी नीच पुरुषोंको

पुनर्न्यस्तकरो मन्त्री त्रिपुंड्रं भस्मना लिखेत्॥अवक्रमाय तं व्यक्तं ललाटे गन्धवारिणा ॥३२॥ वृत्तं वा चतुरस्रं वा बिन्दुमर्द्धेन्दुमेव वा ॥ ललाटे यादृशं पुण्ड्रं लिखितं भस्मना पुनः ॥ ३३ ॥ तादृशं भुजयोर्मूर्ध्नि स्तनयोरंतरे लिखेत् ॥ सर्वांगोद्धूलनं चैव न समानं त्रिपुण्ड्रकैः ॥ ३४ ॥ तस्मात्त्रिपुण्ड्रमेवैकं लिखेदुद्धूलनं विना ॥ रुद्राक्षान्धारयेन्मूर्ध्नि कंठे श्रोते करे तथा ॥ ३५ ॥ सुवर्णवर्णमच्छिन्नं शुभं नान्यैर्धृतं शुभम् ॥ विप्रादीनां क्रमाच्छ्रेष्ठं पीतं रक्तमथासितम् ॥ ३६ ॥ तदलाभे यथालाभं धारणीयमदूषितम् ॥ तत्रापि नोत्तरं नीचैर्धार्यं नीचमथोत्तरैः ॥३७॥ नाशुचिर्द्धारयेदक्षं सदा कालेषु धारयेत् ॥ इत्थं त्रिसंध्यमथवा द्विसंध्यं सकृदेव वा ॥३८॥ कृत्वा स्नानादिकं शक्त्या पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ प्रजास्थानं समासाद्य बद्ध्वा रुचिरमासनम् ॥ ३९ ॥ ध्याये देवं च देवीं च प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥ श्वेतादीन्नकुलीशांतांस्तच्छिष्यान्प्रणमद्गुरुम् ॥ ४० ॥ पुनर्देवं शिवं नत्वा ततो नामाष्टकं जपेत् ॥ शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ॥ ४१ ॥

ऊंचे वर्णके वस्त्र धारण करने न चाहिये न ऊंचोंको नीचे वर्णके वस्त्र पहरने चाहिये ॥ ३७ ॥ अशुचि हो रुद्राक्ष धारण न करे, पूजादि समयमें सदा धारण करे. इस प्रकार तीनों संध्या, दोनों अथवा एक संध्यामें ॥ ३८ ॥ शक्तिसे रचनादि करके परमेश्वरकी पूजा करे पूजा स्थानमें आकर सुन्दर आसन बांधकर ॥ ३९ ॥ देव देवीको उत्तर वा पूर्व मुखकर ध्यान करे; पूर्वमें कहे श्वेत आदिसे नकुलीशतक शिष्यों सहित गुरुको प्रणाम करे ॥ ४० ॥ फिर अपने गुरुदेवको प्रणाम कर नामाष्टक जपे, शिव महेश्वर रुद्र विष्णु पितामह ॥ ४१ ॥

संसार वैद्य सर्वज्ञ यही आठ नाम हैं; अथवा ग्यारहसे अधिक बार एक शिवका ही नाम जपे ॥ ४२ ॥ जिह्वाके अग्रभागमें व्याधि शांतिके निमित्त उस तेजो राशिका ध्यान करके हाथ धोकर और चन्दन आदिसे चर्चित कर न्यास करे, हाथ शोधन पूर्वक करन्यास करे ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ उपमन्यु बोले--स्थिति, उत्पत्ति, लयके क्रमसे तीन प्रकारका न्यास कहा है. स्थिति न्यास गृहस्थियोंका, उत्पत्ति ब्रह्मचारियोंका ॥ १ ॥ यतियोंका संहृति न्यास और यही वनवासियोंका है

संसारवैद्यस्सर्वज्ञः परमात्मेति चाष्टकम् ॥ अथवा शिवमेवैकं जपित्वैकादशाधिकम् ॥ ४२ ॥ जिह्वाग्रे तेजसो राशिं ध्यात्वा व्याध्यादिशांतये ॥ प्रक्षाल्य चरणौ कृत्वा करौ चंदनचर्चितौ ॥ प्रकुर्वीत करन्यासं करशोधनपूर्वकम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे नित्यनैमित्तिकक र्मवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ न्यासस्तु त्रिविधः प्रोक्तः स्थित्युत्पत्ति लयक्रमात् ॥ स्थितिर्न्यासो गृहस्थानामुत्पत्तिर्ब्रह्मचारिणाम् ॥ १ ॥ यतीनां संहृति न्यासो वनस्थानां तथैव च ॥ स एव भर्तृहीनायाः कुटुंबिन्याः स्थितिर्भवेत् ॥२॥ कन्यायाः पुनरुत्पत्तिं वक्ष्ये न्यासस्य लक्षणम् ॥ अंगुष्ठादिकनिष्ठांतं स्थितिन्यास उदाहृतः ॥३॥ दक्षिणांगुष्ठमारभ्य वामां गुष्ठान्तमेव च ॥ उत्पत्तिन्यास आख्यातो विपरीतस्तु संहृतिः ॥ ४ ॥ सबिंदुकान्नकारादीन्वर्णान्न्यस्येदनुक्रमात् ॥ अंगुलीषु शिवं न्यस्येत्तलयोरप्यनामयोः ॥ ५ ॥ अस्त्रन्यासं ततः कृत्वा दशदिक्ष्वस्त्रमंत्रतः ॥ निवृत्त्यादि कलाः पंच पंचभूतस्वरूपिणीः ॥ ६ ॥

और यही संहृति न्यास स्वामिहीन कुटुम्बियोंको करना चाहिये ॥ २ ॥ फिर कन्याकी उत्पत्ति और न्यासका लक्षण कहेंगे, अंगुष्ठसे लेकर कनिष्ठातक स्थिति न्यास कहा जाता है ॥ ३ ॥ और दक्षिण अंगुष्ठसे लेकर वाम अंगुष्ठतक उत्पत्ति न्यास कहा है, इसके विपरीत संहृति है ॥ ४ ॥ वाम अंगुष्ठसे लेकर दक्षिण अंगुष्ठतक बिन्दुके सहित नकारादिकोंको रखकर क्रमसे अंगुलियोंमें शिवको न्यास करतल और अनामिकामें ॥ ५ ॥ अस्त्रन्यास करके दश दिशाओंमें अस्त्र मंत्रसे निवृत्ति आदि पाँचकला पंचभूत स्वरूपवाली ॥ ६ ॥

पंचभूत अधिपतियोंके साथ उनके चिह्नोंसे युक्त हृदय, कंठ,तालु,भ्रूमध्य,ब्रह्मरन्ध्रमें आश्रयवाले ॥ ७ ॥ उस उस बीज मंत्रसे भावना कर उनके शोधनेके निमित्त पंचाक्षरी विद्याका जप करे ॥ ८॥ वाणीको रोक प्राणवायुको शोध गुणसंख्याके अनुसार स्त्र और अस्त्रमुद्रासे भूतग्रंथिको छेदनकर ॥ ९ ॥ सुषुम्ना नाड़ीसे प्राणवायुद्वारा आत्माको प्रेरितकर जो कि ब्रह्मरन्ध्रके मार्गसे निकलती है; उसको शिवतेजसे युक्तकरे ॥१०॥ फिर वायुसे देहको सुखाय कालाग्निसे जलादे फिर ऊपरके भावसे कलाओंको संहारकर ॥११॥ अधिपतियों सहित विदग्ध कलाओंकास्पर्शकरअमृ

पंचभूताधिपैस्सार्द्धं तत्तच्चिह्नसमन्विताः ॥ हृत्कण्ठतालुभ्रूमध्यब्रह्मरन्ध्रसमाश्रयाः ॥ ७ ॥ तत्तद्बीजेन संग्रंथीस्तत्तद्बीजेषु भाव येत् ॥ तासां विशोधनार्थाय विद्यां पंचाक्षरीं जपेत् ॥ ८ ॥ निरुद्ध्वा प्राणवायुं च गुणसंख्यानुसारतः ॥ भूतग्रंथिं ततश्छि द्यादस्त्रेणैवास्त्रमुद्रया ॥ ९ ॥ नाड्या सुषुम्नयात्मानं प्रेरितं प्राणवायुना ॥ निर्गतं ब्रह्मरंध्रेण योजयेच्छिवतेजसा ॥ १० ॥ वि शोष्य वायुना पश्चादेहं कालाग्निना दहेत् ॥ ततश्चोपरिभावेन कलास्संहृत्य वायुना ॥ ११ ॥ देहं संहृत्य वै दग्धं कला स्स्पृष्ट्वा सहाब्धिना ॥ प्लावयित्वामृतै र्देहं यथास्थानं निवेशयेत् ॥ १२ ॥ अथ संहृत्य वै दग्धः कलासर्गं विनैव तु ॥ अमृ तप्लावनं कुर्याद्भस्मी भूतस्य वै ततः ॥ १३ ॥ ततो विद्यामये तस्मिन्देहे दीपशिखाकृतिम् ॥ शिवान्निर्गतमात्मानं ब्रह्मरंध्रेणयोजयेत् ॥ १४ ॥ देहस्यान्तः प्रविष्टं तं ध्यात्वा हृदयपंकजे ॥ पुनश्चामृतवर्षेण सिंचेद्विद्यामयं वपुः ॥ १५ ॥ ततः कुर्यात्करन्यासं करशोधनपूर्वकम् ॥ देहन्यासं ततः पश्चान्महत्या मुद्रया चरेत् ॥ १६ ॥

तसे देहको स्नान करायकर यथास्थानमें स्थित करे॥ १२ ॥ फिर कंलासर्गके विना चतुर उसको संहारकर भस्मीभूतहुए उसदेहको अमृतसे प्लावितकरे ॥१३ ॥ फिर उस विद्यामय शरीरमें दीपशिखाके आकारवाले शिवसे निर्गतहुए आत्माको ब्रह्मरन्ध्रसे संयुक्त केर ॥१४॥ देहके अंतरमें प्रविष्ट हुए शिवको हृदयकमलमें ध्यान करके फिर अमृतकी वर्षा विद्यामय शरीरको सींच॥१५॥ फिर करशोधनपूर्वक करन्यास करे, फिर देहन्यासकरके

महती मुद्रा करे ॥ १६ ॥ शिवमार्गसे अंगन्यास करके हाथ पैरकी सन्धियों वर्णन्यास करे ॥ १७ ॥ फिर छः जातियुक्त षडंगन्यास करके आग्नेयादि दिशाओंमें क्रमसे दिग्बंधन करे ॥ १८ ॥ अथवा शिरमें पंचाङ्गन्यास करे, अथवाभूत शक्तिके विना षडंगन्यास करके ॥ १९ ॥ संक्षेपसे आत्मशोधन करके शिव भावको प्राप्त हो परमेश्वरका पूजन करे ॥ २० ॥ जिसको अवकाश है, और मतिका भ्रम नहीं है वह विस्तीर्ण कलासे न्यास क्रमका आचरण करे ॥ २१ ॥ प्रथम मातृका न्यास फिर ब्रह्मन्यास तीसरा प्रणवन्यास चौथा

अंगन्यासं ततः कृत्वा शिवोक्तेन तु वर्त्मना ॥ वर्णन्यासं ततः कुर्य्याद्धस्तपादादिसंधिषु ॥ १७ ॥ षडंगानि ततो न्यस्य जातिपट्क युतानि च ॥ दिग्बंधमाचरेत्पश्चादाग्नेयादि यथाक्रमम् ॥ १८ ॥ यद्वा मूर्द्धादिपंचांगं न्यासमेव समाचरेत् ॥ तथा षडंगन्यासं च भूत शुद्ध्यादिकं विना ॥ १९ ॥ एवं समासरूपेण कृत्वा देहात्मशोधनम् ॥ शिवभावमुपागम्य पूजयेत्परमेश्वरम् ॥२०॥ अथ यस्यास्त्यवसरो नास्ति वा मतिविभ्रमः ॥ स विस्तीर्णेन कल्पेन न्यासकर्म समाचरेत् ॥२१॥ तत्राद्योमातृकान्यासोब्रह्मन्यासस्ततःपरः ॥ तृतीयःप्रणवन्यासोहंसन्यासस्तदुत्तरः ॥२२॥पचमःकथ्यतेसद्भिर्न्यासःपंचाक्षरात्मकः॥एतेष्वेकमनेकं वा कुर्यात्पूजादि कर्मसु॥२३॥अकारं मूर्ध्नि विन्यस्य आकारं च ललाटके॥ इं ईं च नेत्रयोस्तद्वत् उं ऊं श्रवणयोस्तथा॥ २४ ॥ ऋं ॠं कपोलयोश्चैव ऌं ॡं नासापुटद्वये ॥ एमेमोष्ठद्वयोरोमौं दंतपंक्तिद्वयोः क्रमात ॥ २५ ॥ अं जिह्वायामथो तालुन्यःप्रयोज्यो यथाक्रमम् ॥ कवर्गं दक्षिणे हस्ते न्यसेत्पंचसु संधिषु ॥२६॥ चवर्गं च तथा वामहस्तसंधिषु विन्यसत् ॥ टवर्गं च तवर्गं च पादयोरुभयोरपि ॥२७॥ पफौ तु पार्श्वयोः पृष्ठे नाभौ चापि बभौ ततः ॥ न्यसेन्मकारं हृदये त्वगादिषु यथाक्रमम् ॥२८॥

सोहंन्यास ॥ २२ ॥ पाचवां पंचाक्षरात्मक न्यास इसमें एक वा अनेक पूजा कर्ममें करे ॥ २३ ॥ अकार शिरमें रखकर आकार मस्तकमें इं ईं नेत्रमें उं ऊँ कानोंमें ॥ २४ ॥ और ऋं ॠं कपोलोंमें ऌ ॡं दोनों नासापुटमें एं ऐं दोनों ओष्ठोंमें; ओं औं दोनों दांतोंकी पंक्तिमें ॥ २५ ॥ अं जिह्वामें अःको तालुमें यथा क्रमसे प्रयुक्त कर कवर्गको दक्षिण हस्तमें पांचों संधियोंमें न्यास करे ॥ २६ ॥ चवर्गको वाम हाथकी संधिमें न्यास करे, टवर्गको और तवर्गको दोनों चरणोंमें ॥ २७ ॥ प फ को पृष्ठके पार्श्वभागमें नाभिमें ब भ को हृदयमें

मकारको और त्वचा आदिमें यथाक्रमसे ॥ २८ ॥ यकारको आदिले सकारतक सात सात धातुओंसे हकारको हृदयके अन्तमें क्षकारको दोनों भौंके बीचमें ॥ २९ ॥ इस प्रकार पचास वर्णोंको रुद्रमार्गसे प्रवेश कर अंग और मुखमें कलाके भेद पांच ब्रह्ममें न्यास करे ॥ ३० ॥ करन्यासादि भी क्रमसे करके वा न करके शिशुके मुख हृदय गुह्य चरणोंमें इनकी कल्पना करे ॥ ३१ ॥ फिर ऊर्ध्वमुख पश्चिम पर्यन्त करावे; ईशानकी पांच कला इन पाँचों मुखोंमें क्रमसे ॥ ३२ ॥ फिर मुखोंमें पुरुषोंकी कला भी चार पूर्वादि क्रमसे योगसे रखनी

यकरादिसकारांतान्न्यसेत्सप्तसु धातुषु ॥ हंकारं हृदयस्यांतः क्षकारं भ्रुयुगांतरे ॥ २९ ॥ एवं वर्णान्प्रविन्यस्य पञ्चाशद्रुद्रवर्त्मना ॥ अंगवक्त्रकलाभेदात्पंच ब्रह्माणि विन्यसेत् ॥३०॥ करन्यासाद्यमपि तैः कृत्वा वाथ न वा क्रमात् ॥ शिरोवदनहृद्गुह्य पादेष्वेतानि कल्पयेत् ॥ ३१ ॥ ततश्चोदूर्ध्वादिवक्त्राणि पश्चिमांतानि कल्पयेत् ॥ ईशानस्य कलाः पञ्च पञ्चस्वेतेषु च क्रमात् ॥ ३२ ॥ ततश्चतुर्षु वक्त्रेषु पुरुषस्य कला अपि ॥ चतस्रः प्रणिधातव्याः पूर्वादिक्रमयोगतः ॥ ३३ ॥ हृत्कंठांसेषु नाभौ च कुक्षौ पृष्ठे च वक्षसि ॥ अघोरस्य कलाश्चाष्टौ पादयोरपि हस्तयोः ॥ ३४ ॥ पश्चात्रयोदशकलाः पायुमेढ्रोरुजानुषु ॥ जंघास्फिक्कटिपार्श्वेषु वामदेवस्य भावयेत् ॥ ३५ ॥ घ्राणे शिरसि बाह्वोश्च कल्पयेत्कल्पवित्तमः ॥ अष्टत्रिंशत्कलान्यासमेवं कृत्वानुपूर्वशः ॥३६॥ पश्चात्प्रणवविद्धीमान्प्रणवन्यासमाचरेत् ॥ बाहुद्वये कूर्परयोस्तथा च मणिबन्धयोः ॥ ३७ ॥ पार्श्वोदरोरुजंघेषु पादयोः पृष्ठतस्तथा ॥ इत्थं प्रणवविन्यासं कृत्वा न्यासविचक्षणः ॥ ३८ ॥

चाहिये ॥ ३३ ॥ हृदय, कंठ, कंधे, नाभि, कोख, पीठ, छातीमें अघोरकी आठ कला क्रमसे रखनी चाहिये ॥ ३४ ॥ पीछे तेरह कला पायु मेढ्र (लिंग) जानुओंमें जंघा स्फिक् कटि और पार्श्वस्थानमें वामदेवकी भावना करे ॥ ३५ ॥ सद्योजातकी कला आठ पाँव और हाथकी नासिका शिर और बाहुमें कल्पका जाननेवाला कल्पना करे, इस प्रकार आनुपूर्वी अडतीस कलाओंका न्यास करके ॥ ३६ ॥ पीछे प्रणवज्ञाता बुद्धिमान् प्रणवन्यास करे, दोनों बाहु किहुनी मणिबंध (पहुँचा) ॥ ३७ ॥ पार्श्व, उदर, ऊरु, जंघा पादपृष्ठमें इस

१ "सद्यस्यापि कलाश्चाष्टौ पादयोरपि हस्तयोः" इत्यधिकोऽर्धः ॥

प्रकार न्यासमें चतुर प्रणवन्यास को ॥ ३८ ॥ करे फिर यथाशास्त्र हंसन्यास करे, जैसा शिवशास्त्रोंमें लिखा है, फिर हंसबीजका विभाग कर नेत्र घ्राणोंको भी ॥ ३९ ॥ विभाग कर ललाट और नासिकामें न्यास करे, कक्ष, स्कंध, पार्श्वभाग, स्तन, ॥ ४० ॥ कटि, पाणि, गुल्फ अथवा पंचांगमार्गसे हंसन्यास करके पंचाक्षरी विद्याका न्यास करे ॥ ४१ ॥ उस पूर्वोक्त मार्गसे शिवतत्वकी प्राप्ति होती है. अशिव होकर शिवका पूजन न करे, अशिव होकर शिवका अभ्यास न करे ॥ ४२ ॥ अशिव होकर शिवका ध्यान न करे, अशिव होकर शिवको प्राप्त नहीं हो सकता, इस कारण शैवतनु धारण कर पशु भावना त्याग कर ॥ ४३ ॥ मैं शिव हूं यह विचार कर शैवकर्म करे; कर्मयज्ञ,

हंसन्यासं प्रकुर्वीत शिवशास्त्रे यथोदितम् ॥ बीजं विभज्य हंसस्य नेत्रयोर्घ्राणयोरपि ॥३९॥ विभज्य बाहुनेत्रास्यललाटे घ्राण योरपि ॥ कक्षयोः स्कन्धयोश्चैव पार्श्वयोस्तनयोस्तथा॥४०॥ कट्योः पाण्योर्गुल्फयोश्च यद्वा पञ्चांगवर्त्मना ॥ हंसन्यासमिमं कृत्वा न्यसेत्पञ्चाक्षरीं ततः॥ ४१॥ यथा पूर्वोक्तमार्गेण शिवत्वं येन जायते ॥ नाशिवः शिवमभ्यस्येन्नाशिवः शिवमर्चयेत् ॥ ४२ ॥ नाशिवस्तुशिवं ध्यायेन्नाशिवम्प्राप्नुयाच्छिवम्॥तस्माच्छैवीं तनुं कृत्वा त्यक्त्वा च पशुभावनाम् ॥ ४३ ॥ शिवोऽहमिति संचिन्त्य शैवं कर्मसमाचरेत् ॥ कर्मयज्ञस्तपोयज्ञो जपयज्ञस्तदुत्तरः ॥ ध्यानयज्ञो ज्ञानयज्ञः पञ्च यज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥ ४४ ॥ कर्मयज्ञरताः केचित्तपोयज्ञरताः परे ॥ जपयज्ञरताश्चान्ये ध्यानयज्ञरतास्तथा ॥४५॥ ज्ञानयज्ञरताश्चान्ये विशिष्टाश्चोत्तरोत्तरम् ॥ क्रमयज्ञो द्विधा प्रोक्तः कामाकामविभेदतः ॥४६॥ कामान्कामी ततो भुक्त्वा कामासक्तः पुनर्भवेत्॥अकामे रुद्रभवने भोगान्भुक्त्वा ततश्च्युतः ॥४७॥ तपोयज्ञरतो भूत्वा जायते नात्र संशयः॥तपस्वी च पुनस्तस्मिन्भोगान् भुक्त्वा ततश्च्युतः ॥४८॥

तपोयज्ञ, जपयज्ञ, ध्यानयज्ञ, यह क्रमसे पांच यज्ञ हैं ॥ ४४ ॥ कोई यज्ञ कर्ममें प्रीति करनेवाले हैं कोई तपयज्ञसे प्रीति करनेवाले हैं कोई जपयज्ञमें प्रीति करते हैं कोई ध्यान यज्ञमें प्रीति करनेवाले ॥ ४५ ॥ कोई ज्ञान यज्ञमें प्रीति कर नेवाले हैं यह पहलेसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं; काम अकामक भेदसे कर्मयज्ञ दो प्रकारका है ॥ ४६ ॥ कामी कामोंको भोगकर फिर कामासक्त हो जाता है और कामना रहित रुद्र लोकोंमें अनेक भोगोंको भोगकर फिर उस रुद्र भवनसे आकर ॥ ४७ ॥ तपयज्ञमें प्रीति करनेवाला पृथ्वीमें होता है इसमें संदेह नहीं

और वह तपस्वी हो अनेक भोगोंको भोगकर वहांसे च्युत हो ॥ ४८ ॥ पृथ्वीमें जपध्यानमें प्रीति करनेवाला होता है, इसमें संदेह नहीं; जपध्यानमें प्रीति करनेवाला मनुष्य विशिष्टताके वशसे ॥ ४९ ॥ शीघ्र ज्ञानको प्राप्त होकर शिवके सायुज्यको प्राप्त होता है, शिवकी आज्ञासे कर्मयज्ञ भी देहधारियोंको मुक्तिमें प्राप्त करता है ॥५०॥अकामी होकर कामना करनेसे बंधन होता है, इस कारण पांचों यज्ञोंमेंसे ध्यानज्ञानमें तत्पर होना चाहिये ॥५१॥ जिसको ज्ञानध्यान हैं वह संसारसागरसे तरगया है, वह हिंसादि दोषोंसे छूटकर विशुद्ध चित्त हो जाता है॥५२॥ उससे परे ध्यानयज्ञ अपवर्गके फलका देनेवाला है और बाह्य कर्म बड़े फलके देनेवाले नहीं होते ॥ ५३ ॥ नरेन्द्रके भवनमें यहांके कर्म करने

जपध्यानरतो भूत्वा जायते भुवि मानवः ॥ जपध्यानरतो मर्त्यस्तद्वैशिष्ट्यवशादिह ॥ ४९ ॥ ज्ञानं लब्ध्वाचिरादेव शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ तस्मान्मुक्तो शिवाज्ञप्तः कर्मयज्ञोऽपि देहिनाम् ॥ ५० ॥ अकामः कामसंयुक्तो बन्धायैव भविष्यति ॥ तस्मात्पञ्चसु यज्ञेषु ध्यानज्ञानपरो भवेत् ॥ ५१ ॥ ध्यानं ज्ञानं च यस्यास्ति तीर्णस्तेन भवार्णवः ॥ हिंसादिदोषनिर्मुक्तो विशुद्धश्चित्तसाधनः ॥ ५२ ॥ ध्यानयज्ञः परस्तस्मादपवर्गफलप्रदः ॥बहिः कर्मकरा यद्वन्नातीव फलभागिनः ॥ ५३ ॥दृष्ट्वा नरेन्द्रभवने तद्वदत्रापि कर्मिणः॥ध्यानिनां हि वपुः सूक्ष्मं भवेत्प्रत्यक्षमैश्वरम्॥५४॥यथेह कर्मणां स्थूलं मृत्काष्ठाद्यैःप्रकल्पितम् ॥ ध्यानयज्ञरतास्तस्माद्देवान्पाषाणमृण्मयान्॥५५॥ नात्यंतं प्रतिपद्यंते शिवयाथात्म्यवेदनात्॥आत्मस्थं यः शिव त्यक्त्वा बहिरभ्यर्चयेन्नरः ॥ ५६ ॥ हस्तस्थं फलमुत्सृज्य लिहेत्कूर्परमात्मनः ॥ ज्ञानाद्ध्यानं भवेद्ध्यानाज्ज्ञानं भूयः प्रवर्तते ॥ ५७ ॥

वाले जैसा ऐश्वर्य देखते हैं, इसी प्रकार ध्यान करनेवालों का शरीर ऐश्वर्ययुक्त सूक्ष्म हो जाता है ॥५४जिस प्रकार यहाँ कर्मियोंने स्थूल मृत काष्ठादिसे ग्रहादि कल्पना किया है इसी प्रकारसे ध्यानयज्ञमें प्रीति करनेवाले पाषाणादि मृत्तिकाके देवताओंमें ॥ ५५ ॥ शिवकी यथार्थतासे देखने जाननेसे अत्यन्त प्रीति नहीं करते; अर्थात् वह अन्तर पूजन करते हैं. जो मनुष्य आत्मामें स्थित शिवको छोड बाह्य पूजा करता है ॥ ५६ ॥ वह हाथमें स्थित फलको छोडकर अपनी किहुनीको चाटता है. ज्ञानसे ध्यान और ध्यानसे ज्ञान प्रवृत्त होता है ॥ ५७ ॥

इन दोनोंसे मुक्ति होती है. इस कारण ध्यानमें मन लगावे द्वादशान्त शिर ललाट और दोनों भौंके बीचमें ॥ ५८ ॥ नासिकाके अग्रभागमें मुखमें वा कन्धेमें वा हृदयमें नाभि वा निश्चल स्थानमें श्रद्धायुक्त मनसे ॥ ५९ ॥ बहिर्योगके उपचारसे देव और देवीका पूजन करे अथवा नित्य लिंगमें वा कृतक शिवमें पूजन करे ॥ ६० ॥ अग्निमें स्थंडिलमें भक्तिपूर्वक वित्तके अनुसार अन्तर बाहरमें परमेश्वरीकी पूजा करे; जो अन्तरयाग करते हैं वे बाह्यपूजा करें, अथवा न करें उन्हें और आदेश नहीं है ॥ ६१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण

तदुभाभ्यां भवेन्मुक्तिस्तस्माद्ध्यानरतो भवेत्॥द्वादशान्ते तथा मूर्ध्नि ललाटे भ्रूयुगान्तरे ॥५८॥नासाग्रे वा तथास्ये वा कन्धरे हृदये तथा॥नाभौ वा शाश्वतस्थाने श्रद्धाविद्धेन चेतसा॥५९॥बहिर्यागोपचारेण देवं देवीं च पूजयेत् ॥अथवा पूजयेन्नित्यं लिंगे वा कृतकेपि वा ॥६०॥ वह्नौ वा स्थण्डिले वाथ भक्त्या वित्तानुसारतः॥अथवांतर्बहिश्चैव पूजयेत्परमेश्वरम्॥ अंतर्यागरतः पूजां बहिः कुर्वीत वा न वा॥६१इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवशास्त्रोक्तनित्यनैमित्तिककर्मवर्णनं नाम द्वाविंशोध्यायः ॥२२॥ उपमन्युरुवाच॥व्याख्यां पूजाविधानस्य प्रवदामि समासतः॥ शिवशास्त्रे शिवेनैव शिवायै कथितस्य तु ॥१॥ अंगमभ्यंतरं यागमग्निकार्यावसानकम् ॥ विधाय वा न वा पश्चाद्बहिर्यागं समाचरेत् ॥२॥ तत्र द्रव्याणि मनसा कल्पयित्वा विशोध्य च ॥ ध्यात्वा विनायकं देवं पूजयित्वा विधानतः ॥३॥दक्षिणे चोत्तरे चैव नंदीशं सुयशं तथा॥आराध्य मनसा सम्यगासनं कल्पयेद्बुधः॥४॥आराधनादिकैर्युक्तस्सिंहयोगासनादिकम्॥पद्मासनं वा विमलं तत्त्वत्रयसमन्वितम् ॥५॥

भाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखंडे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥ उपमन्यु बोले, पूजाविधानकी व्याख्या संक्षेपसे करता हूं जो शिवशास्त्रमें शिवने ही पार्वतीके प्रति वर्णन की है ॥१॥ हे अंग! अभ्यन्तरयाग अग्निकार्यके अन्ततक करे, यह करनेके अन्तर बहिर्याग करे वा न करे॥२॥ उसमें द्रव्योंको मनसे कल्पित कर और शुद्ध कर विनायक देव (गणेश) का ध्यानकर विधानकर विधानसे पूजन कर ॥३॥ दक्षिण और उत्तरमें नन्दीश और सुयशका आराधन कर मनसे आसन कल्पित करे॥४॥ आराधनादिसे युक्तहो सिंहयोग आसन आदिकमें निर्मल पद्मासन वा तीन तत्त्वोंसे युक्त॥५॥

उसके ऊपर शिवको उमासहित मनोहरता युक्त ध्यान करे जो सब लक्षणोंसे सम्पन्न सम्पूर्ण अयवोंसे शोभित हैं ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण अतिशयसे संयुक्त सम्पूर्ण गहनोंसे भूषित लाल मुख हाथ चरण कुन्दके समान मनोहर हास्य ॥ ७ ॥ शुद्ध स्फटिक मणिके समान निर्मल फूलेकमलके समान नेत्र चार भुजा उदार अंग उत्तम चन्द्रकला धारण किये ॥ ८ ॥ वरदायक अभय हाथ वाले मृगटंक घोर प्रलयमें संहार करनेवाले, सर्पोंके हारके खँडुएवाले, सुन्दर नीले गलेसे युक्त ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण उपमानसे रहित, सेवक कुटुम्ब वर्गसे युक्त उन शिवके वामभागसे परमेश्वरी भगवतीका चिन्तन करे ॥ १० ॥ फूले कमलपत्रके समान कान्तिवाले विस्तीर्ण नेत्र; पूर्ण चन्द्रमाकी कान्तिके समान मुख, नीले घूँघर

तस्योपरि शिवं ध्यायेत्सांबं सर्वमनोहरम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नं सर्वावयवशोभनम् ॥६॥ सर्वातिशयसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ॥ रक्तास्यपाणिचरणं कुंदचंद्रस्मिताननम् ॥७॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं फुल्लपद्मत्रिलोचनम् ॥ चतुर्भुजमुदाराङ्गं चारुचंद्रकलाधरम् ॥ ८ ॥ वरदाभयहस्तं च मृगटंकधरं हरम् ॥ भुजगहारवलयं चारुनीलगलांतरम् ॥९॥ सर्वोपमानरहितं सानुगं सपरिच्छदम् ॥ ततः संचिंतयेत्तस्य वामभागे महेश्वरीम् ॥ १० ॥ प्रफुल्लोत्पलपत्राभां विस्तीर्णायतलोचनाम् ॥ पूर्णचंद्राभवदनां नीलकुंचितमूर्धजाम् ॥ ११ ॥ नीलोत्पलदलप्रख्यां चन्द्रार्द्धकृतशेखराम् ॥ अतिवृत्तघनोत्तुंगस्निग्धपीनपयोधराम् ॥ १२ ॥ तनुमध्यां पृथुश्रोणीं पीतसूक्ष्मवराम्बराम् ॥ सर्वाभरणसंपन्नां ललाटतिलकोज्ज्वलाम् ॥१३॥विचित्रपुष्पसंकीर्णकेशपाशोपशोभिताम् ॥ सर्वतोऽनुगुणाकारां किंचिल्लज्जाननाम् ॥१४॥ हेमारविंदं विलसद्धानां दक्षिणे करे ॥ दंडवच्चापरं हस्ते न्यस्यासीनांमहासने ॥ १५ ॥ पाशविच्छेदिकां साक्षात्सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ एवं देवं च देवीं च ध्यात्वासनवरे शुभे ॥ १६ ॥

वाले केश ॥ ११ ॥ नीलकमलके दलके समान शिखरपर आधा चन्द्रमा धारण किये, चकोर घने ऊंचे स्निग्ध पुष्ट स्तनवाली ॥ १२ ॥ मध्यभागमें सूक्ष्म, पुष्ट नितम्ब सुन्दर सूक्ष्म वस्त्र धारे सम्पूर्ण गहनोंसे युक्त मस्तकके तिलकसे उज्ज्वल ॥ १३ ॥ विचित्र फूले गुथे बालोंके केशपाशसे शोभित सब ओरसे गुणोंसे युक्त कुछेक लज्जासे नम्रमुखवाली ॥ १४ ॥ दहिने हाथमें खिलेहुए कमलको धारण करे दंडके समान दूसरे हाथको रखकर महा आसनके ऊपर स्थित ॥ १५ ॥ साक्षात् जीवोंके कर्मबंधन छेदन करनेवाली सच्चिदानंदस्वरूपवाली देवीका और

देवका सुन्दर आसनमें ध्यान करे ॥ १६ ॥ सम्पूर्ण उपचारयुक्त भक्ति भावसे फूलोंसे पूजा करे, अथवा कोई उनकी श्रेष्ठ मूर्ति कल्पित कर ॥ १७ ॥ जो शिवनामवाली हो तथा माहेश्वरी मूर्तिको कल्पना कर जो षड्विंश वह श्रीकंठनामवाली हो उसे स्थापन कर ॥ १८ ॥ अपने शरीरमें मंत्रन्यासादि करके इस मूर्तिमें मूर्तिमान् शिवको जो कि सत् असत् से परे है ॥ १९ ॥ बाह्यक्रमसे ध्यान करके पूजाको निर्वर्तन करे पीछे नाभीमें समिधा घृत आदिके होम करनेकी भावना करे ॥ २० ॥ और भौंहके बीचमें शुद्ध दीप शिखाके आकारके समान शिवका ध्यान

सर्वोपचारवद्भक्त्या भावपुष्पैस्समर्चयेत् ॥ अथवा परिकल्प्यैवं मूर्तिमन्यतमां विभोः ॥ १७ ॥ शैवीं सदाशिवाख्यां वा तथामाहेश्वरीं पराम् ॥ षड्विंशकाभिधानां वा श्रीकंठाख्यामथापि वा ॥ १८ ॥ मन्त्रन्यासादिकां चापि कृत्वा स्वस्यां तनौ यथा ॥ अस्यां मूर्तौ मूर्तिमंतं शिवं सदसतः परम् ॥ १९ ॥ ध्यात्वा बाह्यक्रमेणैव पूजां निर्वर्त्तयेद्धिया ॥ समिदाज्यादिभिः पश्चान्नाभौ होमं च भावयेत् ॥ २० ॥ भ्रूमध्ये च शिवं ध्यायेच्छुद्धदीपशिखाकृतिम् ॥ इत्थमंगे स्वतंत्रे वा योगे ध्यानमये शुभे ॥ २१ ॥ अग्नि कार्य्यावसानं च सर्वत्रैव समो विधिः ॥ अथ चिंतामयं सर्वं समाप्याराधनक्रमम् ॥ २२ ॥ लिंगे च पूजयेद्देवं स्थंडिले वानलेऽपि वा ॥ २३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे पूजाविधानव्याख्या नवर्णनंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ प्रोक्षयेन्मूलमंत्रेण पूजास्थानं विशुद्धये ॥ गन्धचन्दनतोयेन पुष्पं तत्र विनिक्षिपेत् ॥ १ ॥

करे; इस प्रकार अपने शरीरमें स्वतंत्रतापूर्वक योग ध्यानादिकी प्राप्ति कर ॥ २१ ॥ अग्निकार्य समाप्त होनेतक सबविधि शरीरमें करता रहे यह चिन्तामय सब आराधनका क्रम समाप्त कर ॥ २२ ॥ लिंग स्थंडिल अथवा अग्निमें देवीकी पूजा करे ॥ २३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डेत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ उपमन्यु बोले, विशुद्धिके निमित्त पूजा स्थानको मूलमंत्रसे प्रोक्षण करे गंध चंदन जलके साथ पुष्प उसमें डाले ॥ १ ॥

अस्त्रसे विघ्नोंको दूर कर वर्मसे अवगुंठन कर अस्त्रको सब दिशाओंमें न्यासकर अर्चना (पूजा) स्थानको कल्पना करे ॥ २ ॥ उसपर कुशा बिछाय जलसे प्रक्षालन करे, सब पात्रोंको शुद्धकर द्रव्य शुद्धि करे ॥ ३ ॥ प्रोक्षणी पात्र अर्घ्यपात्र पाद्यपात्र आचमनीय पात्र यह चारों ॥ ४ ॥ धोकर प्रोक्षण करके उन्हें देखकर उसमें शुद्ध जल डाले; और यथा लाभ होसके वह पुण्यद्रव्य उसमें सब डाले ॥ ५ ॥ रत्न, चांदी, सुवर्ण, गंध, पुष्प, अक्षतादि; फल पत्ते दर्भ और अनेक प्रकारके पवित्र द्रव्य ॥ ६ ॥ स्नानके जलमें और पान करनेके जलमें विशेष

अस्त्रेणो त्सार्य वै विघ्नानवगुण्ठ्य च वर्मणा ॥ अस्त्रं दिक्षु प्रविन्यस्य कल्पयेदर्चनाभुवम् ॥ २ ॥ तत्र दर्भान्परिस्तीर्य क्षालयेत्प्रोक्षणादिभिः ॥ संशोध्य सर्वपात्राणि द्रव्यशुद्धिं समाचरेत् ॥ ३ ॥ प्रोक्षणीमर्घ्यपात्रं च पाद्यपात्रमतः परम् ॥ तथैवाचमनीयस्य पात्रं चेति चतुष्टयम् ॥४॥ प्रक्षाल्य प्रोक्ष्य वीक्ष्याथ क्षिपेत्तेषु जलं शिवम्॥पुण्यद्रव्याणि सर्वाणि यथालाभं विनिक्षिपेत् ॥५॥ रत्नानि रजतं हेम गन्धपुष्पाक्षतादयः ॥ फलपल्लवदर्भाश्च पुण्यद्रव्याण्यनेकधा ॥६॥ स्नानोदके सुगन्धादि पानीये च विशेषतः ॥ शीतलानि मनोज्ञानी कुसुमादीनि निक्षिपेत्॥७॥ उशीरं चन्दनं चैव पाद्ये तु परिकल्पयेत् ॥ जातिकंकोलकर्पूरबहुमूलतमालकान् ॥८॥ क्षिपेदाचमनीये च चूर्णयित्वा विशेषतः॥ एलां पात्रेषु सर्वेषु कर्पूरं चन्दनं तथा ॥९॥ कुशाग्राण्यक्षतांश्चैव यवव्रीहि तिलानपि ॥ आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि भसितञ्चार्घ्यपात्रके॥१०॥कुशपुष्पयवव्रीहिबहुमूलतमालकान्॥प्रक्षिपेत्प्रोक्षणीपात्रे भसितं च यथाक्रमम्॥११॥सर्वत्र मन्त्रं विन्यस्य वर्मणावेष्टच बाह्यतः॥पश्चादस्त्रेण संरक्ष्य धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥१२॥

कर सुगंधि डाले; उसमें शीतल और मनोहर फूल डाले ॥ ७ ॥ उशीर और चंदन यह पात्रमें कल्पना करे; जायफल कंकोल कपूर तथा बहुमूल तमाल ॥ ८ ॥ इनके चूर्ण करके आचमनके जलमें डाले, सब पात्रोंमें इलायची कपूर चंदन रक्खे ॥ ९ ॥ कुशाग्र अक्षत व्रीहि यव तिल घृत सरसौं भस्म यह अर्घ्य पात्रमें रक्खे ॥ १० ॥ कुश पुष्प जो व्रीहि धान्य बहुमूल (शतावरी) तमाल और भस्म यह क्रमसे प्रोक्षणी पात्रमें डाले ॥ ११ ॥ सब प्रकार मन्त्रन्यास कर बाहर भाग कर्म मन्त्रसे आवेष्टित कर फिर अस्त्रसें संरक्षित कर धेनुमुद्रा दिखावे ॥ १२ ॥

सब पूजाके द्रव्य प्रोक्षणी पात्रके जलसे प्रोक्षण कर मूल मंत्रसे तत्त्व पूर्वक शुद्ध करे ॥ १३ ॥ पात्रोंमें एक प्रोक्षणी न हो तो सब कर्मोंमें उत्तम साधक जलसे ही सामान्य अर्घ्य दे ॥ १४ ॥ फिर विनायक देवको क्रमसे भक्ष्य भोज्यादि द्वारा पूजाके विधानसे दक्षिणमें द्वारकी ओर पूजे ॥ १५ ॥ फिर अन्तःपुरके स्वामी साक्षात् नंदिकी पूजा करे; जो सुवर्ण पर्वतके समान सब गहनोंसे भूषित हैं ॥ १६ ॥ बाल चन्द्रमाका मुकुट धारे मनोहर मूर्ति तीन नेत्र चार भुजा दीप्तिमान् शूल लिये मृगीटंक और तीक्ष्ण नेत्र धारण किये सब कुछ जाननेवाले ॥ १७ ॥ चन्द्र मण्डलके समान कान्तिमान् शरीर हरि (मर्कट) वदन उत्तर द्वारके निकट मरुतकीकन्या ॥ १८ ॥ सुयशा नाम भार्याको

पूजाद्रव्याणि सर्वाणि प्रोक्षणीपात्रवारिणा ॥ सम्प्रोक्ष्य मूलमंत्रेण शोधयेद्विधिवत्ततः ॥ १३ ॥ पात्राणां प्रोक्षणीमेकामलाभे सर्वकर्मसु ॥ साधयेदर्घ्यमद्भिस्तत्सामान्यं साधकोत्तमः ॥ १४ ॥ ततो विनायकं देवं भक्ष्यभोज्यादिभिः क्रमात् ॥ पूजयित्वा विधानेन द्वारपार्श्वेऽथ दक्षिणे ॥ १५ ॥ अन्तःपुराधिपं साक्षान्नन्दिनं सम्यगर्चयेत् ॥ चामीकराचलप्रख्यं सर्वाभरणभूषितम् ॥ १६ ॥ बालेन्दुमुकुटं सौम्यं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम् ॥ दीप्तशूलमृगीटंकतिग्मनेत्रधरं प्रभुम् ॥ १७ ॥ चन्द्रबिम्बाभवदनं हरिवक्त्रमथापि वा ॥ उत्तरे द्वार पार्श्वस्य भार्य्यां च मरुतां सुताम् ॥ १८ ॥ सुयशां सुव्रतामम्बां पादमण्डनतत्पराम् ॥ पूजयित्वा प्रविश्यान्तर्भवनं परमेष्ठिनः ॥ १९ ॥ संपूज्य लिङ्गं तैर्द्रव्यैर्निर्माल्यमपनोदयेत् ॥ प्रक्षाल्य पुष्पं शिरसि न्यसेत्तस्य विशुद्धये ॥ २० ॥ पुष्पहस्तो जपेच्छक्त्या मन्त्रं मन्त्र विशुद्धये ॥ ऐशान्यां चण्डमाराध्य निर्माल्यं तस्य दापयेत् ॥ २१ ॥ कल्पये दासनं पश्चादाधारादि यथाक्रमम् ॥ आधारशक्तिं कल्याणीं श्यामां ध्यायेदधो भुवि ॥ २२ ॥

जो सुंदर व्रत धारे पार्वती चरण दाबनेमें तत्पर है पूजन करके परमेष्ठीके अन्तरमें प्रविष्ट करे ॥ १९ ॥ उन द्रव्योंसे लिंगको पूजन कर निर्माल्यको ऊपरसे अलग कर और फूलको धोकर शिरपर शुद्धिकर रक्खे ॥ २० ॥ फूल हाथमें लेकर शक्तिसे विशुद्धिके निमित्त मंत्र जपे; ईशान दिशामें चण्ड देवकी आराधन कर निर्माल्य उनपरसे उतार ले ॥ २१ ॥ पीछे आराधनादि यथा क्रमसे आसन कल्पित करे; कल्याण और आराधन शक्तिको पृथ्वीमें ध्यान करे ॥ २२ ॥

उसके आगे उत्कंठ और अनन्तको कुंडलाकार श्वेतरंग पांच कणसे युक्त आकाशको चाटते हुए ॥ २३ ॥ उसके ऊपर भद्रासन लिंगाकारचार पादोंसे संयुक्त धर्म ज्ञान वैराग्य यह ऐश्वर्यके पद हैं ॥२४॥ आग्नेयादि श्वेत रक्त पीत श्याम इन वर्णोंसे और अधर्मादि पूर्वसे लेकर उत्तरतक अनुक्रमसे ॥ २५ ॥ राजावर्त श्रेष्ठ जाति विशेषकी मणिके समान इनके शरीरमें भावना करे; इसके ऊर्ध्वभागमें कमलसे आच्छादित सुन्दर श्वेत पद्मासनको विचारे ॥२६॥ कि, उसके आठपत्र अणिमादि आठ गुणा युक्त हैं और वामादि शक्तिके शर हैं तथा रुद्र वामादि शक्तियों करके ॥२७॥ वेही बीज कहे गये हैं, अपर कर्णिका वैराग्य है शिवात्मकज्ञान उनका नाल है ॥ २८ ॥ शिव धर्मात्मारूपी उसका कंद है;

तस्याः पुरस्तादुत्कण्ठमनंतं कुण्डलाकृतिम् ॥ धवलं पंचफणिनं लेलिहानमि वाम्बरम् ॥ २३ ॥ तस्योपर्यासनं भद्रं कण्ठी रवचतुष्पदम् ॥ धम्मों ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यञ्च पदानि वै ॥ २४ ॥ आग्नेयादिश्वेतरक्तपीतश्यामानि वर्णतः ॥ अधर्मादीनि पूर्वादीन्युत्तरांतान्यनुक्रमात् ॥ २५ ॥ राजावर्तमणिप्रख्यान्यस्य गात्राणि भावयेत् ॥ अस्योर्ध्वच्छादनं पद्ममासनं विमलं सितम् ॥ २६ ॥ अष्टपत्राणि तस्याहुरणिमादिगुणाष्टकम् ॥ केसराणि च वामाद्या रुद्रा वामादिशक्तिभिः ॥ २७ ॥ बीजान्यपि च ता एव शक्तयोंतर्मनोन्मनीः ॥ कर्णिकापरवैराग्यं नालं ज्ञानं शिवात्मकम्॥ २८ ॥ कन्दश्च शिवधर्मात्मा कर्णिकान्ते त्रिमण्डले॥त्रिमण्डलोपर्यात्मादि तत्त्वत्रितयमासनम् ॥ २९ ॥ सर्वासनोपरि सुखं विचित्रास्तरणास्तृतम् ॥ आसनं कल्पयेद्दिव्यं शुद्धविद्यासमुज्ज्वलम् ॥ ३० ॥ आवाहनं स्थापनं च सन्निरोधं निरीक्षणम् ॥ नमस्कारं च कुर्वीत बध्वा मुद्राः पृथक्पृथक् ॥ ३१ ॥ पाद्यमाचमनं चार्घ्यं गंधं पुष्पंततः परम् ॥ धूपं दीपं च तांबूलं दत्त्वाथ स्वापयेच्छिवौ ॥ ३२ ॥

कार्णिकाके अन्तमें तीन मंडल और उनके ऊपर तीन तत्त्वादिक आसन है ॥ २९ ॥ सब आसनके ऊपर सुखपूर्वक विचित्र आसन बिछाहुआ है, शुद्ध विद्याका उज्ज्वल दिव्य आसन कल्पित करे ॥ ३० ॥ आवाहन स्थापन चित्तवृत्तिका निरोध निरीक्षण देखना और पृथक् २ मुद्रा बांधकर नमस्कार करना चाहिये ॥ ३१ ॥ पाद्य आचमन अर्घ्य और इसके उपरान्त गंध पुष्पका अर्चन धूप, दीप ताम्बूल देकर शिवको अर्चन करे ॥ ३२ ॥

अथवा आसन और मूर्तिकी कल्पना करके मूलमन्त्रसे और ब्रह्म मन्त्रसे वेदसे संकलित करके ॥ ३३ ॥ परम कारण शिवको देवीके सहित आवाहन करे; जो कि देव शुद्ध स्फटिकमणिके समान निश्चल अक्षर स्वरूप ॥ ३४ ॥ सब लोकके कारण हैं; सर्व लोकमय और सबसे परे हैं; जो अनन्तर बाहर सबमें व्याप्त सबसे अणु और महत् हैं ॥ ३५ ॥ वह अविनाशी भक्तोंको विना प्रयत्नके ही दीखे जाते हैं, ब्रह्मा,इन्द्र, विष्णु, रुद्र आदि देवताओंको भी अगोचर हैं ॥ ३६ ॥ वेदके सार हैं औरविद्वानोंको अगोचर हैं ऐसा हमने सुना है; आदि अन्त मध्य रहित संसार रोगियोंको औषधी स्वरूप ॥ ३७ ॥ यही शिव तत्त्व है; मंगलके निमित्त जगत्में स्थित है; पंचोपचारसे

अथवा परिकल्प्यैवमासनं मूर्तिमेव च ॥ सकलीकृत्य मूलेन ब्रह्माभिश्चापरैस्तथा ॥३३॥ आवाहयेत्ततो देव्या शिवं परमकारणम्॥शुद्धस्फटिकसंकाशं देवं निश्चलमक्षरम् ॥ ३४ ॥ कारणं सर्वलोकानां सर्वलोकमयं परम् ॥ अंतर्बहिःस्थितं व्याप्य ह्यणोरणुमहत्तरम् ॥ ३५ ॥ भक्तानामप्रयत्नेन दृश्यमीश्वरमव्ययम् ॥ ब्रह्मेंद्रविष्णुरुद्राद्यैरपि देवैरगोचरम् ॥३६॥ वेदसारं च विद्वद्भिरगोचरमितिश्रुतम् ॥ आदिमध्यान्तरहितं भेषजं भवरोगिणाम् ॥ ३७ ॥ शिवतत्त्वमिति ख्यातं शिवार्थं जगति स्थिरम् ॥ पचोपचारवद्भक्त्या पूजयेल्लिंगमुत्तमम् ॥ ३८ ॥ लिंगमूर्त्तिर्महेशस्य शिवस्य परमात्मनः ॥ स्नानकाले प्रकुर्वीत जयशब्दादिमंगलम् ॥३९॥ पञ्चगव्यघृतक्षीरदधिमध्वादिपूर्वकैः॥ मूलैः फलानां सारैश्च तिलसर्षपसक्तुभिः॥४०॥बीजैर्यवादिभिश्शस्तैश्चूर्णैर्माषादिसंभवैः॥संस्नाप्यालिप्य पिष्टाद्यैः स्नापयेदुष्णवारिभिः ॥४१॥ घर्षयेद्बिल्वपत्राद्यैर्लेपगंधापनुत्तये॥पुनः संस्नाप्य सलिलैश्चक्रवर्त्युपचारतः॥ ॥४२॥सुगंधामलकं दद्याद्धरिद्रां च यथाक्रमम्॥ ततः संशोध्य सलिलैर्लिंगं बेरमथापि वा ॥४३॥

भक्तिपूर्वक लिंगके मस्तकमें पूजा करे ॥ ३८ ॥ परमात्मा शिवकी लिंग मूर्तिके स्नानकालमें मंगलके जय आदि शब्द करे ॥ ३९ ॥ पंच गव्य घी दही दूध मधु आदि पूर्वक फल और फलोंके सार तिल सरसोंके सत्तुओं करके ॥ ४० ॥ यवादिके बीजों करके तथा उरद आदिके चरणों करके प्रथम उबटन कर और पिट्ठी आदिसे उबटन कर गरम जलसे स्नान करावे ॥४१॥ लेप गंधकी अनुपम पंक्तिके निमित्त बेलपत्रादिसे घर्षण करे, फिर चक्रवर्तिके उपचारसे जलोंसे स्नान कराया ॥ ४२ ॥ सुगंधियुक्त आंमले और हरिद्राको यथा क्रमसे दे तब

जलसे बेर लिंगकी मूर्तिको शुद्ध करके ॥ ४३ ॥ कुश और फूल जलके सहित हिरण्य और रत्नोंके जलसे ही मंत्र सिद्धि न्हवावे ॥ ४४ ॥ यदि यह द्रव्य न मिलसकें तो यथासंभव मंत्र पढ़कर जलोंसे श्रद्धासे शिवको स्नान करावे ॥ ४५ ॥ कलश शंख वा वर्धनी युक्त हाथमें कुश पुष्पके सहित मंत्रपूर्वक स्नान करावे ॥ ४६ ॥ पवमान रुद्र मंत्र नील रुद्राख्य मंत्र और त्वरित मंत्रोंसे लिंगसूक्त आदिसूक्त अथर्वशीर्ष ॥ ४७ ॥ ऋगू सामके मंत्र पंच ब्रह्म मंत्रसे ॐकारसे देवदेव शिवको प्राणम करे ॥ ४८ ॥ जैसे शिवको इसी प्रकार देवीको प्रणाम करावे,

स्नापयेद्गंधतोयेन कुशपुष्पोदकेन च॥हिरण्यरत्नतोयैश्च मंत्रसिद्धैर्यथाक्रमम् ॥४४॥ असंभवे तु द्रव्याणां यथासंभवसंभृतैः ॥केव लैर्मंत्रतोयैर्वा स्नापयेच्छ्रद्धया शिवम्॥४५॥ कलशेनाथ शंखेन वर्द्धन्या पाणिना तथा ॥ सकुशेन सपुष्पेण स्नापयेन्मंत्रपूर्वकम् ॥४६॥ पवमानेन रुद्रेण नीलेन त्वरितेन च ॥ लिंगसूक्तादिसूक्तैश्च शिरसाथर्वणेन च ॥४७॥ ऋग्भिश्च सामभिः शैवैर्ब्रह्मभिश्चा पिपंचभिः ॥ स्नापयेद्देवदेशं शिवेन प्रणवेन च ॥ ४८ ॥ यथा देवस्य देव्याश्च कुर्यात्स्नानादिकं तथा ॥ न तु कश्चिद्विशे षोऽस्तिततत्र तौ सदृशौ यतः ॥४९॥ प्रथमं देवमुद्दिश्य कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः ॥ देव्यै पश्चात्प्रकुर्वीत देवदेवस्य शासनात् ॥ ५० ॥ अर्द्धनारीश्वरे पूज्ये पौर्वापर्यं न विद्यते ॥ तत्र तत्रोपचाराणां लिंगे वान्यत्र वा क्वचित् ॥५१॥ कृत्वाऽभिषेकं लिंगस्य शुचिना च सुगंधिना ॥ संमृज्य वाससा दद्यादंबरं चोपवीतकम् ॥५२॥पाद्यमाचमनं चार्घ्यं गंधं पुष्पं च भूषणम्॥धूपं दीपं च नैवेद्यं पानीयं मुखशोधनम् ॥५३॥ पुनश्चाचमनीयं च मुखवासं ततः परम् ॥ मुकुटं च शुभं भद्रं सर्वरत्नैरलंकृतम् ॥ ५४ ॥

उसमें कुछ विशेष नहीं हैं; क्योंकि वे दोनों समान हैं ॥ ४९ ॥ प्रथम देवके उद्देशोंसे स्नानादि क्रिया करके देवदेवकी आज्ञासे पीछे देवीकी शुश्रूषा करे ॥ ५० ॥ अर्धनारीश्वरके पूजनमें पूर्वापरका विचार है उन २ पूजनोंका लिंग वा दूसरे स्थानमें प्रयोग है ॥ ५१ ॥ सुगंधित पवित्र जलसे लिंगका अभिषेक कर वस्त्रसे पोंछ यज्ञोपवीत और दूसरे वस्त्र दे ॥ ५२ ॥ पाद्य आचमन अर्घ्य गंध पुष्प भूषण धूप दीप नैवेद्य जल मुख शोधनके पदार्थ ॥ ५३ ॥ फिर आचमन मुखके सुगन्धित पदार्थ देकर मुकुट शुभ आसन सब रत्नोंसे अलंकृत कर ॥ ५४ ॥

विचित्र भूषण और अनेक प्रकारके रत्नोंकी माला अंजन चँवर छत्र तालकेपंखे दर्पण ॥ ५५ ॥ देकर नीराजन कर सब मंगलके बाजोंसे मंगलशब्दोंसे जयशब्दोंसे नीराजन कर ॥ ५६ ॥ सोना चाँदी तांबे वा मट्टीके पात्रमें कमलके सुन्दर पुष्प बीज दही अक्षत आदिसे ॥ ५७ ॥ त्रिशूल शंख दोनों कमल नदि आवर्त और करीष (सूखा गोबर) में उत्पन्न हुए श्रीवत्स स्वस्तिक आदर्श (दर्पण) हीरे अग्नि आदिसे चिह्नित ॥ ५८ ॥ आठ दीपक चारों ओर और एक मध्यमें रखकर उसमें वामादिक नौ शक्तियोंका ध्यान कर पूजन करे ॥ ५९ ॥ कवचसे

भूषणानि पवित्राणि माल्यानि विविधानि च ॥ व्यजने चामरे छत्रं तालवृंतं च दर्पणम् ॥५५॥ दत्त्वा नीराजनं कुर्यात्सर्वमंगल निस्वनैः ॥ गीतनृत्यादिभिश्चैव जयशब्दसमन्वितः ॥५६॥ हैमे च राजते ताम्रे पात्रे वा मृन्मये शुभे ॥ पद्मकैश्शोभितैः पुष्पैर्बीजैर्दध्यक्षतादिभिः ॥ ५७ ॥ त्रिशूलशंखयुग्माब्जनन्द्यावर्तैः करीषजैः ॥ श्रीवत्सस्वस्तिकादर्शवज्रैर्वह्न्यादिचिह्नितैः ॥५८॥ अष्टौ प्रदीपान्परितो विधायैकं तु मध्यमे ॥ तेषु वामादिकाश्चिन्त्याः पूज्याश्च नव शक्तयः ॥ ५९ ॥ कवचेन समाच्छाद्य संरक्ष्यास्त्रेण सर्वतः ॥ धेनुमुद्रां च संदर्श्य पाणिभ्यां पात्रमुद्धरेत् ॥ ६० ॥ अथवारोपयेत्पात्रे पंचदीपान्यथाक्रमम् ॥ विदिक्ष्वपि च मध्ये च दीपमेकमथापि वा ॥६१॥ ततस्तत्पात्रमुद्धृत्य लिंगादेरुपरि क्रमात् ॥ त्रिः प्रदक्षिणयोगेन भ्रामयेन्मूलविद्यया ॥६२॥ दद्यादर्घ्यं ततो मूर्ध्नि भसितं च सुगंधितम् ॥ कृत्वा पुष्पांजलिं पश्चादुपहारान्निवेदयेत् ॥६३॥ पानीयं च ततो दद्याद्दत्त्वा वाचमनं पुनः ॥ पंचसौगंधिकोपेतं ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥ ६४ ॥

आच्छादन कर अस्त्रसे सब ओर रक्षा कर धेनुमुद्राको दिखाकर हाथसे उस पात्रको उठावे ॥ ६० ॥ अथवा पात्रके ऊपर दीपकोंको यथाक्रमसे रखकर विदिशाओंमें और मध्यमें एक दीपक क्रमसे रक्खे ॥ ६१ ॥ फिर उस पात्रको उठाकर लिंगादिके ऊपर क्रमसे तीन प्रदक्षिणाके योगसे मूलविद्यासे घुमावे ॥ ६२ ॥ फिर शिरके ऊपर अर्घ्य दे भस्म लगावे; फिर पुष्पांजलि करके उपहार निवेदन करे ॥ ६३ ॥ फिर आचमन और पानी ले और पाँच सुगंधियुक्त ताम्बूल निवेदन करे ॥ ६४ ॥

प्रोक्षणी पदार्थोंको प्रोक्षण करके गाना और नाट्य आदि करे लिंगादिमें शिवका ध्यान कर शक्तिके अनुसार जप कर ॥ ६५ ॥ प्रदक्षिणा प्रणाम स्तुति आत्मसमर्पण कार्यकी विज्ञप्ति विनय पूर्वक करे ॥ ६६ ॥ अर्घ्य पुष्पांजलि देकर यथाविधि मुद्राको बाँध कर फिर क्षमा कराय देवको विदा दे आत्मामें चिंतन करे ॥ ६७ ॥ पाद्य आदि मुखसुगंधिके सब कृत्य करे, अर्घ्यादि सब करे, अथवा संकट हो तो प्रीतिसे पुष्प मात्र ही चढावे ॥६८॥ इतना ही परम धर्म है भावसे ही पुण्य होजाता है जबतक प्राण रहें शिवके पूजन किये विना भोजन न करे ॥६९॥

प्रोक्षयेत्प्रोक्षणीयानि गाननाट्यानि कारयेत् ॥ लिंगादौ शिवयोश्चिन्तां कृत्वा शक्त्या जपेच्छिवम् ॥ ६५ ॥ प्रदक्षिणं प्रणामं च स्तवं चात्मसमर्पणम् ॥ विज्ञापनं च कार्याणां कुर्याद्विनयपूर्वकम् ॥ ६६ ॥ अर्घ्यं पुष्पांजलिं दत्त्वा बद्ध्वा मुद्रां यथाविधि ॥ पश्चात्क्षमापयेद्देवमुद्वास्यात्मनि चिंतयत् ॥ ६७ ॥ पाद्यादिमुखवासांतमर्घ्याद्यं चातिसंकटे ॥ पुष्पविक्षेपमात्रं वा कुर्याद्भावपुरस्सरम्॥६८॥तावतैव परो धर्मो भावेन सुकृतो भवेत्॥असंपूज्य न भुञ्जीत शिवमाप्राणसंचरात् ॥ ६९ ॥ यदि पापस्तु भुंजीत स्वैरं तस्य न निष्कृतिः ॥ प्रमादेन तु भुंक्ते चेत्तदुद्गीर्य प्रयत्नतः ॥ ७० ॥ स्नात्वा द्विगुणमभ्यर्च्य देवं देवीमुपोष्य च ॥ शिवस्यायुतमभ्यस्येद्ब्रह्मचर्यपुरस्सरम् ॥ ७१ ॥ परेद्युश्शक्तितो दत्त्वा सुवर्णाद्यं शिवाय च ॥ शिवभक्ताय वा कृत्वा महापूजां शुचिर्भवेत् ॥ ७२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शास्त्रोक्तशिवपूजनवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

यदि स्वच्छन्द हो विना पूजन किये भोजन करले सो फिर उसका निस्तार नहीं होता और जो प्रमादसे खाले तो उसको वमन करदे ॥७०॥ स्नानादिसे दूनी पूजा देव देवीकी करके और स्वयं व्रती होकर ब्रह्मचर्यपूर्वक शिवके दश सहस्र मंत्र जपे ॥ ७१ ॥ दूसरे दिन शक्तिके अनुसार शिवको सुवर्णादि चढावे, व शिवभक्तकी महापूजा करने से पवित्र होता है ॥ ७२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

उपमन्यु बोले, और पूजाके क्रमलोपके भयसे जो पूर्वमें नहीं कहा है वह भी मैं विस्तारसे तो नहीं संक्षेपमें कहता हूँ ॥ १ ॥ हविष्क निवेदनसे पहले दीपदानके अनन्तर आवरण पूजा करे अथवा नीराजनके प्राप्त होनेपर करे ॥ २ ॥ फिर ईशान धेवसे सद्योजात नक हृदय आदि अस्त्र न्यास तक करके शिवा शिवकी प्रथम आवरणमें पूजा करे ॥ ३ ॥ ईशानमें पूर्व भाग दक्षिण और उत्तरमें पश्चिम आग्नेयी ईशान नैर्ऋत्यमें ॥ ४ ॥ वायव्यमें ईशानमें फिर चारों दिशाओंमें मन्त्रोंका संघात गर्भ आवरणके नामसे विख्यात है ॥ ५ ॥ हृदयादि अस्त्र पर्यन्त पूजा करे, उसके बाहर पूर्वमें इंद्र और यमको दक्षिणमें पूजे ॥ ६ ॥ वरुणको पश्चिम दिशामें, कुबेरको उत्तरमें,

उपमन्युरुवाच ॥ अनुक्तं चात्र पूजायाः क्रमलोपभयादिव ॥यत्तदन्यत्प्रवक्ष्यामि समासान्न तु विस्तरात् ॥१॥हविर्निवेदनात्पूर्वं दीपदानादनन्तरम् ॥ कुर्यादावरणाभ्यर्चां प्राप्ते नीराजनेऽथ वा॥२॥ तत्रेशानादिसद्यांतं रुद्राद्यस्त्रांतमेव च॥ शिवस्य वा शिवा याश्च प्रथमावरणे जपेत् ॥३॥ ऐशान्यां पूर्वभागे च दक्षिणे चोत्तरे तथा ॥ पश्चिमे च तथाग्नेय्यामैशान्यां नैर्ऋते तथा ॥ ४ ॥ वायव्यां पुनरैशान्यां चतुर्दिक्षु ततः परम्॥गर्भावरणमाख्यातं मन्त्रसंघातमेव वा॥५॥हृदयाद्यस्त्रपर्यंतमथवापि समर्चयेत् ॥ तद्बहिः पूर्वतः शक्रं यमं दक्षिणतो यजेत्॥६॥वरुणं वारुणे भागे धनदं चोत्तरे बुधः॥ईशमैशेऽनलं स्वीये नैर्ऋते निर्ऋतिं यजेत् ॥७॥ मारुते मारुतं विष्णुं नैर्ऋते विधिमैश्वरे॥बहिःपद्मस्य वज्राद्यान्यब्जांतान्यायुधान्यपि ॥ ८ ॥ प्रसिद्धरूपाण्याशासु लोकेशानां क्रमाद्यजेत् ॥ देवं देवीं च संप्रेक्ष्य सर्वावरणदेवताः॥९॥बद्धांजलिपुटा ध्येयाः समासीना यथासुखम् ॥सर्वावरणदेवानां स्वाभिधानैर्नमोयुतैः ॥ १० ॥ पुष्पैः संपूजनं कुर्यान्नत्वा सर्वान्यथाक्रमम् ॥ गर्भावरणमेवापि यजेत्स्वावरणेन वा ॥ ११ ॥

ईशको ईशान दिशामें, अग्निको आग्नेय दिशामें, नैर्ऋत्यको नैर्ऋत्य दिशामें पूजन करे ॥ ७ ॥ मारुत दिशा वायव्यमें पवनको, विष्णुको नैर्ऋत्यमें, ब्रह्माको ईशानमें पूजे, और कमलके बाहर वज्रादिक और कमलादिक पूजे ॥ ८ ॥ प्रसिद्ध रूपवाले देवताओंको क्रमसे सब दिशाओंमें पूजे; देवी और देवको देखकर सम्पूर्ण आवरणके देवताओंको ॥ ९ ॥ हाथ जोड कर ध्यान करे कि, सुख पूर्वक बैठे हुए हैं, सम्पूर्ण आवरणके देवताओंको अपने नाम और नमस्कारसे ॥ १० ॥ फूलोंसे पूजन करके नमस्कार कर यथाक्रमसे स्मरण करके

गर्भावरणको भी अपने आवरणके साथ यजन करे ॥ ११ ॥ योग, ध्यान, जप, होम, बाह्य, अभ्यन्तर, भेदसे छः प्रकारकी हवि और शुद्ध अन्न देना चाहिये ॥ १२ ॥ पायस दही मिले हुए गुड और मधुसे युक्त इसमें एक वा अनेक नाना व्यंजनसे संयुक्त ॥ १३ ॥ गुड खांडसे युक्त दही उत्तम देना चाहिये, भक्षण योग्य मुख्य अपूप स्वाद युक्त फल ॥ १४ ॥ लाल चंदन फूल शीतल पानी मनोहर तेलमें युक्त खांड पूगीफल ॥ १५ ॥ पानके पत्ते खैर (कत्थेसे) युक्त तथा गौरवर्ण सुवर्णके वर्णवाले पीले मनोहर शैल (शिलाजीत) का श्वेत चूर्ण न

योगे ध्याने जपे होमे वाह्ये वाभ्यंतरेऽपि वा॥ हविश्च षड्विधं देयं शुद्धं मुद्गान्नमेव च ॥१२॥ पायसं दधिसंमिश्रं गौडं च मधु नाप्लुतम् ॥ एतेष्वेकमनेकं वा नानाव्यंजनसंयुतम् ॥१३॥ गुडखंडान्वितं दद्यान्मथितं दधि चोत्तमम् ॥ भक्ष्याण्यपूपमुख्यानि स्वादुमंति फलानि च ॥ १४ ॥ रक्तचन्दनपुष्पाढ्यं पानीयं चातिशीतलम् ॥ मृदु एलारसाक्तं च खण्डं पूगफलस्य च ॥ १५ ॥ दलानि नागवल्ल्याश्च युक्तानि खदिरादिभिः ॥ गौराणि स्वर्णवर्णानि विहितानि शिवानि च ॥ शैलमेव सितं चूर्णं नातिरूक्षं न दूषितम् ॥१६॥ कर्पूरं चाथ कंकोलं जात्यादि च नवं शुभम् ॥ आलेपनं चन्दनं स्यान्मूलकाष्ठंरजोमयम्॥१७॥ कस्तूरिका कुंकुमं च रसो मृगमदात्मकः ॥पुष्पाणि सुरभीण्येव पवित्राणि शुभानि च ॥ १८ ॥ निर्गंधान्युग्रगंधानि दूषितान्युषितानि च ॥ स्वयमेवविशीर्णानि न देयानि शिवार्चने ॥ १९ ॥ वासांसि च मृदून्येव तपनीयमयानि च॥विद्युद्वलय कल्पानि भूषणानि विशेषतः ॥२०॥ सर्वाण्येतानि कर्पूरनिर्यासागुरुचन्दनैः ॥ आधूपितानि पुष्पौघैर्वासितानि समंततः ॥ २१ ॥

रूखा न दूषित ॥ १६ ॥ तथा कर्पूर कंकोल जाति (चमेली) नये चंदनका आलेपन मूलकाष्ठ और रज युक्त अर्थात् इनका चूर्ण कर मर्दन करे ॥ १७ ॥ कस्तूरी केशर युक्त मृगमद नामक रस और मनोहर पवित्र पुष्प ॥ १८ ॥ गंध रहित उग्र गन्धवाले दूषित और अदूषित अपने आप गिरे हुए फूलोंसे शिवार्चन न करे ॥ १९ ॥ मृदुल वस्त्र नये और सुंदर सुवर्णके तारसे युक्त तथा विजलीके समान चमकीले भूषण विशेष कर दे ॥ २० ॥ यह सब और कपूर गोंद अगर चंदनसे धूप दिये हुए और पुष्प समूहसे चारों ओर वासना दिये हुए ॥२१॥

चंदन अगर कपूर कूट गूगलका चूर्ण घी और मधुकी बनाई हुई सिद्ध धूप श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ अथवा कपिला गौके सुगंधित युक्त घृत करके कपूर युक्त दीपक जलानेसे नित्य शोभा होती है ॥ २३ ॥ पंचगव्य मीठा दूध दही घृत यह कपिलासे उत्पन्न हुई वस्तु शिवके स्नान और पानमें श्रेष्ठ है ॥२४॥ सुन्दर हाथी दांतके बने आसन सुवर्णके रत्न जड़े विचित्र बिछौनोंसे युक्त ॥२५॥ ऊंचे नीचे रमणीय शयनमें सुखके देने वाले श्रेष्ठ हैं॥२६॥समुद्र गामिनी नदी वा नदका लाया हुआ जल वस्त्रसे छाना हुआ शीतल स्नान और पानमें श्रेष्ठ है॥२७॥चन्द्रमाके समान

चन्दनागुरुकर्पूरकाष्ठगुग्गुलुचूर्णकैः ॥ घृतेन मधुना चैव सिद्धो धूपः प्रशस्यते ॥ २२ ॥ कपिलासम्भवेनैव घृतेनातिसुगन्धिना ॥ नित्यं प्रदीपिता दीपाः शस्ताः कर्पूरसंयुताः ॥ २३ ॥ पञ्चगव्यं च मधुरं पयो दधि घृतं तथा ॥ कपिलासम्भवं शम्भो रिष्टं स्नाने च पानके ॥ २४ ॥ आसनानि च भद्राणि गजदंतमयानि च ॥ सुवर्णरत्नयुक्तानि चित्राण्यास्तरणानि च ॥ २५ ॥ मृदूपधानयुक्तानि सूक्ष्मतूलमयानि च ॥ उच्चावचानि रम्याणि शयनानि सुखानि च ॥ २६ ॥ नद्यस्समुद्रगामिन्या नदाद्वाम्भः समाहृतम् ॥ शीतञ्च वस्त्रपूतं तद्विशिष्टं स्नानपानयोः ॥ २७ ॥ छत्रं शशिनिभं चारु मुक्तादामविराजितम् ॥ नवरत्नचितं दिव्यं हेमदण्डमनोहरम् ॥ ॥ २८ ॥ चामरे च सिते सूक्ष्मे चामीकरपरिष्कृते ॥ राजहंसद्वयाकारे रत्नदंडोपशोभिते ॥ २९ ॥ दर्पणं चापि सुस्निग्धं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥ समंताद्रत्नसञ्छन्न स्रग्वरैश्चापि भूषितम् ॥ ३० ॥ गम्भीरनिनदः शंखो हंसकुंदेन्दुसन्निभः ॥ आस्वपृष्ठादिदेशेषु रत्न चामीकराचितः ॥ ३१ ॥ काहलानि च रम्याणि नानानादकराणि च ॥ सुवर्णनिर्मितान्येव मौक्तिकालंकृतानि च ॥ ३२ ॥

छत्र मोती मालासे विराजमान नवरत्नोंसे जटित सोनेके दंडके मनोहर ॥२८॥ और सोनेकी दंडी लगे दिव्य चमर राजहंसके आकारके समान दंडोंसे शोभायमान ॥२९॥ सुंदर दर्पण अनुलेपनके द्रव्य चारों ओर रत्न और फूलोंकी मालासे शोभित॥३०॥हंस कुंद और चन्द्रमाके समान गंभीर नादवाला शंख मुख और पृष्ठादि स्थानोंमें रत्न और सोनेसे जटित ॥ ३१ ॥ गौके शृंगोंके आकारके समान दिव्य बाजे जिनमें अनेक

प्रकारके शब्द होते हैं, और सोनेसे निर्मित अनेक मोतियोंसे अलंकृत ॥ ३२ ॥ भेरी, मृदंग, मुरज तिमिच्छ, पटह समुद्रके समान शब्दवाले रखने चाहिये ॥ ३३ ॥ मनोहर भांड और सब पात्र और उनके आधार सोनेके बनावे ॥ ३४ ॥ महेश परमात्मा शिवका स्नान शिल्पशास्त्रसे बनाहुआ राजोंकी सामग्रीसे युक्त होना चाहिये ॥ ३५ ॥ ऊंचे प्रकारसे भिन्न पर्वतके समान ऊंचा गोपुर अनेक रत्नसे युक्त सुवर्णके बने द्वारोंके किवाड़ोंसे शोभित ॥ ३६ ॥ तप्त सुवर्णके बनेहुए रत्न जडे सौ स्तंभोंसे मनोहर मोती माला और वितानसे मनोहर विद्रुम (मूंगे) जडीद्वारको बंदनवारसे युक्त ॥३७॥ सुवर्णके बने दिव्य मुकुट कुंभ लक्षणोंसे युक्त, शिरोभागसे अलंकृत अस्त्रराजसे चिह्नित ॥ ३८ ॥ राजोंके योग्य

भेरीमृदंगमुरजतिमिच्छपटहादयः ॥ समुद्रकल्पसन्नादाः कल्पनीयाः प्रयत्नतः ॥३३॥ भांडान्यपि च रम्याणि पत्राण्यपि च कृत्स्नशः ॥तदाधाराणि सर्वाणि सौवर्णान्येव साधयेत्॥३४॥आलयं च महेशस्य शिवस्य परमात्मनः ॥ राजावसथवत्कल्प्यं शिल्पशास्त्रोक्तलक्षणम् ॥३५॥ उच्चप्राकारसंभिन्नं भूधराकारगोपुरम्॥ अनेकरत्नसंछन्नं हेमद्वारकपाटकम् ॥ ३६ ॥ तप्तजांबूनद मयं रत्नस्तम्भशतावृतम् ॥ मुक्तादामवितानाढ्यं विद्रुमद्वारतोरणम् ॥ ३७ ॥ चामीकरमयैर्दिव्यैर्मुकुटैः कुम्भलक्षणैः ॥ अलंकृतशिरोभागमस्त्रराजेनचिह्नितम् ॥३८॥ राजन्यार्हनिवासैश्च राजवीर्य्यादिशोभितैः॥ प्रोच्छ्रितप्रांशुशिखरैः प्रासादैश्च समंततः ॥ ३९ ॥ आस्थानस्थानवर्यैश्च स्थितैर्दिक्षु विदिक्षु च ॥ अत्यन्तालंकृतप्रांतमंतरावरणैरिव ॥ ४० ॥ उत्तमस्त्रीसहस्रैश्च नृत्य गेयवि शारदैः ॥ वेणुवीणाविदग्धैश्च पुरुषैर्बहुभिर्युतम् ॥ ४१ ॥ रक्षितं रक्षिभिर्वीरैर्गजवाजिरथान्वितैः ॥ अनेकपुष्पवाटी भिरनेकैश्च सरोवरैः ॥ ४२ ॥ दीर्घिकाभिरनेकाभिर्दिग्विदिक्षु विराजितम् ॥ वेदवेदांततत्त्वज्ञैश्शिवशास्त्रपरायणैः ॥ ४३ ॥

वस्त्र और राजवीर्य आदिसे शोभित श्रेष्ठ और ऊंचे शिखर प्रासाद महलसे व्याप्त ॥३९॥ मनोहर स्थानोंसे युक्त जो दिशा विदिशाओंमें व्याप्त हैं और अन्तरके आवरणोंसे और प्रान्त भागोंसे अत्यन्त अलंकृत ॥ ४० ॥ नृत्य गीतके ज्ञाता सहस्रों उत्तम स्त्री और वेणु वीणामें चतुर बहुतसे पुरुषोंसे व्याप्त ॥ ४१ ॥ रक्षा करनेवाले वीर तथा हाथी घोड़ोंसे संयुक्त अनेक फुलवाडी और सरोवरोंसे युक्त ॥ ४२ ॥ अनेक बावडियोंमें सम्पूर्ण दिशाओंमें विराजमान वेदवेदाङ्गके जाननेवाले शिव शास्त्रमें परायण ॥ ४३ ॥

शिव आश्रममें प्रीति करनेवाले भक्त जिनमें शिव शास्त्रके लक्षण विद्यमान हैं, शांत हास्य मुख मनोहर सदाचारमें परायण ॥ ४४ ॥ शिव महेश्वरके भक्त ब्राह्मणोंसे सेवित इस प्रकार मनमें या बाहर शिवकी यथा शक्ति कल्पना कर ॥ ४५ ॥ शिलामय स्थान काष्ठ गजदन्त वा ईंटोंका वा केवल मृत्तिकाका पुण्य वनमें वा पर्वतमें ॥ ४६ ॥ नदी देवालय अथवा दूसरे सुन्दर देश वा घरमें धनी वा दरिद्री अपनी शक्तिको वंचना न करता हुआ ॥ ४७ ॥ न्यायसे उत्पन्न हुए द्रव्योंसे भी जो भक्ति पूर्वक शिवका पूजन करे उसकोभी प्रत्ययवाय नहीं लगता है; कारण कि, प्रभु भावके वशमें हैं ॥ ४८ ॥ जो द्रव्य न्यायसे उत्पन्न किये हों. परन्तु उसके द्वारा अभक्तिसे पूजन करे तो उलको

शिवाश्रम रतैर्भक्तैः शिवशास्त्रोक्तलक्षणैः ॥ शांतैः स्मितमुखैः स्फीतैः सदाचारपरायणैः ॥ ४४ ॥ शैवैर्माहेश्वरैश्चैव श्रीमद्भि स्सेवित द्विजैः ॥ एवमंतर्बहिर्वाथयथाशक्तिविनिर्मितैः ॥४५॥ स्थाने शिलामये दांते दारवे चेष्टकामये ॥ केवलं मृन्मये वापि पुण्यारण्ये ऽथ वा गिरौ ॥ ४६ ॥ नद्यां देवालयेऽन्यत्र देशे वाथ गृहे शुभे ॥ आढ्यो वाथ दरिद्रो वा स्वकां शक्तिमवंचयन् ॥ द्रव्यैर्न्यायार्जितैरेव भक्त्या देवं समर्च्चयेत्॥४७॥अथान्यायार्जितैश्चापि भक्त्या चेच्छिवमर्च्चयेत् ॥ न तस्य प्रत्यवायोऽस्ति भा ववश्यो यतः प्रभुः॥४८॥ न्यायार्जितैरपि द्रव्यरभक्त्या पूजयेद्यदि ॥ न तत्फलमवाप्नोति भक्तिरेवात्र कारणम्॥४९॥भक्त्या वि त्तानुसारेण शिवमुद्दिश्य यत्कृतम् ॥अल्पे महति वा तुल्य फलमाढ्यदरिद्रयोः ॥५०॥ भक्त्या प्रचोदितः कुर्यादल्पवित्तोपि मानवः ॥ महाविभव सारोपि न कुर्याद्भक्तिवर्जितः ॥५१ ॥ सर्वस्वमपि यो दद्याच्छिवे भक्तिविवर्जितः ॥ न तेन फलभाक्स स्याद्भक्तिरेवात्र कारणम्॥ ॥५२॥न तत्तपोभिरत्युग्रैर्न च सर्वैर्महामखैः॥गच्छेच्छिवपुरं दिव्यं मुक्त्वा भक्तिं शिवात्मिकाम्॥५३॥

फल नहीं मिलता इसमें केवल भक्ति ही कारण है ॥ ४९ ॥ भक्ति और धनके अनुसार शिवके उद्देशसे जो कुछ किया है थोडा या बहुत उसका फल दरिद्री और धनीको बराबर मिलता है ॥ ५० ॥ भक्तिकी प्रेरणासे थोडे धनवाला मनुष्य भी जो करे वह बहुत है, भक्तिहीनका महा ऐश्वर्यसे किया भी कुछ नहीं होता ॥ ५१ ॥ जो भक्तिहीन होकर सर्वस्व भी देता है तो उसको फल नहीं मिलता है; इसमें भक्ति ही एक कारण है ॥ ५२ ॥ बेड २ तप और यज्ञों करकेभी शिवके पुरको नहीं जा सकता, जो

भक्तिसे हीन हो ॥ ५३ ॥ हे कृष्ण ! यह गुप्तसे भी गुप्त बात है कि सर्वत्र परमेश्वरमें भक्ति करे भक्तिसेही युक्त होकर मुक्त हो जाता है ॥ ५४ ॥ शिवमन्त्र जप ध्यान होम यज्ञ तप वेद श्रवण दान वेद पाठ यह सब भावके ही निमित्त हैं, इसमें संदेह नहीं ॥ ५५ ॥ मनुष्य भावहीन होकर सब कुछ करनेसे भी मुक्त नहीं होता है, और भावयुक्त पुरुष सब न करनेसे भी मुक्त हो जाता है ॥ ५६ ॥ सहस्र चांद्रायण सौ प्राजापत्य मासोंके व्रत तथा और दूसरे व्रत शिव भक्तको क्या फल दे सकते हैं ॥ ५७ ॥ अभक्त मनुष्य इस लोकमें पर्वतोंके गुहामें थोडेसे भोगके निमित्त तप करते हैं परन्तु भक्त तो भावसे ही मुक्त हो जाता है ॥ ५८ ॥ सात्त्विक कर्म

गुह्याद्गुह्यतरं कृष्ण सर्वत्र परमेश्वरे॥शिवे भक्तिर्न संदेहस्तया भक्तो विमुच्यते ॥५४॥शिव मंत्रजपो ध्यानं होमो यज्ञस्तपःश्रुतम् ॥ दानमध्ययनं सर्वं भावार्थं नात्र संशयः ॥ ५५ ॥ भावहीनो नरस्सर्वं कृत्वापि न विमुच्यते॥ भावयुक्तः पुनस्सर्वमकृत्वापि विमुच्यते ॥ ५६ ॥ चांद्रायणसहस्रैश्च प्राजापत्यशतैस्तथा ॥ मासोपवासैश्चान्यैश्च शिवभक्तस्य किं पुनः ॥५७॥ अभक्ता मानवाश्चास्मिल्लोके गिरिगुहासु च ॥ तपंतिचाल्पभोगार्थं भक्तो भावेन मुच्यते ॥ ५८ ॥ सात्त्विकं मुक्तिदं कर्म सत्त्वे वै योगिनः स्थिताः ॥ राजसं सिद्धिदं कुर्युः कर्मिणो रजसावृताः ॥५९॥ असुरा राक्षसाश्चैव तमोगुणसमन्विताः ॥ ऐहिकार्थं यजन्तीशं नराश्चान्येऽपि तादृशाः ॥६०॥ तामसं राजसं वापि सात्त्विकं भावमेव च ॥ आश्रित्य भक्त्या पूजाद्यं कुर्वन्भद्रं समश्नुते ॥६१॥यतः पापार्णवात्रातुं भक्तिर्नौरिव निर्मिता ॥ तस्माद्भक्युपपन्नस्य रजसा तमसा च किम् ॥ ६२ ॥ अन्त्यजो वाधमो वापि मूर्खो वा पतितोऽपिवा ॥ शिवं प्रपन्नश्चेत्कृष्ण पूज्यस्सर्वसुरासुरैः ॥ ६३ ॥

मुक्ति देनेवाले हैं, योगी सत्त्वमें ही स्थित है, रजोगुणसे आवृत्त लोग राजसी कर्म करते हैं ॥ ५९ ॥ असुर और राक्षस तमोगुणसे आवृत हैं और दूसरे मनुष्य जो यहांके कार्यके निमित्त शिवका भजन करते हैं वे भी वैसे ही हैं ॥ ६० ॥ तामस राजस सात्त्विक कोई भी भावहीके आश्रय हो पूजा करनेसे भक्त मंगलको प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥ पापरूपी सागरसे पार करनेकोभक्ति नौकाके समान है, इस कारण भक्ति हो जानेसे फिर सत्त्वगुण तमोगुणके भागसे क्या है ॥ ६२ ॥ अन्त्यज अधम मूर्ख वा पतित कोई हो हे कृष्ण ! शिवकी भक्ति करते ही

वह सुर असुरोंसे पूजित हो जाता है ॥ ६३ ॥ इस कारण सब यत्नसे भक्ति पूर्वक शिवका पूजन करे, कारण कि अभक्तोंको तो कहीं भी फल नहीं है ॥ ६४ ॥ हे कृष्ण ! महारहस्य कहता हूं हमारे वचन सुनो, वेदशास्त्रमें वेदवादियोंने विचार कर यह निश्चय किया है ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तर खण्डे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ उपमन्यु बोले, ब्रह्महत्यारा मद्य पीनेवाला, चोरी करनेवाला, गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाला, माता पिता वीर और गर्भका नष्ट करनेवाला ॥ १ ॥ चौरादिक कोई भी जो मंत्रके विना भक्तिसे परम कारणरूप शिवका भजन करनेवाला है वह क्रमसे बारह वर्षमें उन २ पापोंसे छूट जाता है ॥२॥ इस कारण सब प्रयत्नोंसे पतित पुरुषको

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भक्त्यैव शिवमर्चयेत् ॥ अभुक्तानां क्वचिदपि फलं नास्ति यतस्ततः ॥६४॥वक्ष्याम्यतिरहस्यं ते शृणु कृष्ण वचो मम ॥ वेदैश्शास्त्रैर्वेदविद्भिर्विचार्य सुविनिश्चितम् ॥६५॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवशास्त्रोक्तपूजनवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः॥२५॥उपमन्युरुवाच॥ब्रह्मघ्नो वा सुरापो वा स्तेयीवा गुरुतल्पगः॥मातृहा पितृहा वापि वीरहा भ्रूणहापि वा॥१॥संपूज्यामन्त्रकं भक्त्या शिवं परमकारणम् ॥ तैस्तैः पापैः प्रमुच्येत वर्षैर्द्वादशभिः क्रमात् ॥२॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पतितोऽपि यजेच्छिवम् ॥ भक्तश्चेन्नापरः कश्चिद्भिक्षाहारो जितेंद्रियः ॥ ३ ॥ कृत्वापि सुमहत्पापं भक्त्या पंचाक्षरेण तु ॥ पूजयेद्यदि देवेशं तस्मात्पापात्प्रमुच्यते॥४॥अब्भक्षा वायुभक्षाश्च ये चान्ये व्रतकर्शिताः ॥ तेषामेतैर्व्रतैर्नास्ति शिवलोक समागमः ॥ ५ ॥ भक्त्या पंचाक्षरेणैव यः शिवं सकृदर्चयेत्॥सोपि गच्छेच्छिवस्थानं शिवमन्त्रस्य गौरवात्॥६॥

भी शिवका यजन करना चाहिये जो भक्त होगा वही मुक्त हो जायगा दूसरा कोई नहीं भिक्षा भोजन करनेवाला जितेन्द्रिय ॥३॥ जो कोई बडा पाप भी करचुका हो; और भक्तिसे पंचाक्षरका जप करे तो और देवेशका पूजन करे तो सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ४ ॥ जल और वायुके भक्षण करनेवाले तथा दूसरे प्रकार व्रतसे कर्षित हुए इन व्रतोंसे भी उनको शिवलोककी प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ ५ ॥ भक्तिसे पंचाक्षर युक्त हो जो एक बार भी शिवका पूजन करता है, शिवमंत्रके गौरवसे वह भी शिवके स्थानको जाता है ॥ ६ ॥

इस कारण तप यज्ञ और सब और सर्वस्व दक्षिण यह शिवमूर्तिके अर्चनके करोड अंशके समान भी नहीं है ॥ ७ ॥ बद्ध वा मुक्त सबको पंचाक्षरका जप करना ही चाहिये बन्धनके पश्चात् भी जपसे पाशसे छूट जाता है, इससे पूजन करना चाहिये कुछ संदेह न करे ॥ ८ ॥ अरुद्र वा सरुद्र वा सूक्त वेदमंत्रसे जो शिवका पूजन करे वह मूढ वा पतित कैसाही हो एकबार ही मुक्त हो जाता है ॥ ९ ॥ नित्य षडक्षर वा पंचाक्षर करके सद्योजातादि मंत्रोंके सहित भक्तिसे नित्य वेदमंत्र पढ़कर शिवका भक्त क्रोधको जीते गुरुयुक्त वा गुरुहीन हो ॥ १० ॥ इनमें जो गुरुयुक्त है वही श्रेष्ठ है इसमें संदेह नहीं, वह ब्रह्मांग वा हंसके सहित मुक्त हो जाता है ॥ ११ ॥ इस कारण गुरुसे प्राप्त हुए

तस्मात्तपांसि यज्ञांश्च सर्वे सर्वस्वदक्षिणाः॥शिवमूर्त्यर्चनस्यैते कोटयंशेनापि नो समाः॥७॥बद्धो वाप्यथ मुक्तो वा पश्चात्पञ्चाक्षरेण चेत् ॥ पूजयन्मुच्यते भक्तो नात्र कार्या विचारणा ॥८॥अरुद्रो वा सरुद्रो वा सूक्तेन शिवमर्चयेत् ॥ यः सकृत्पतितो वापिमूढो वा मुच्यते नरः ॥९॥ षडक्षरेण वा देवं सूक्तमन्त्रेण पूजयेत् ॥ शिवभक्तो जितक्रोधो ह्यलब्धो लब्ध एव च ॥१०॥ अलब्धाल्लब्ध एवात्र विशिष्टो नात्र संशयः ॥ स ब्रह्मांगेन वा तेन सहंसेन विमुच्यते ॥११॥ तस्मान्नित्यं शिवं भक्त्या सूक्तमन्त्रेण पूजयेत् ॥ एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव वा ॥१२॥ येऽर्चयंति महादेवं विज्ञेयास्ते महेश्वराः॥ज्ञानेनात्मसहायेन नार्चितो भगवाञ्छिवः ॥ १३ ॥ स चिरं संसरत्यस्मिन्संसारे दुःखसागरे ॥ दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं मूढो नार्चयते शिवम् ॥ १४ ॥ निष्फलं तस्य तज्जन्म मोक्षाय न भवेद्यतः ॥ दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं येऽर्चयन्ति पिनाकिनम् ॥ १५ ॥

मंत्र और सूक्तसे शिवका पूजन करे; एक काल वा तीन काल ॥ १२ ॥ जो महादेवका पूजन करते हैं उनको महेश्वर जानते हैं, अपने सहायकारी ज्ञानसे जिन्होंने भगवान् शिवका पूजन नहीं किया ॥ १३ ॥ वे बहुत कालतक दुःखके सागर इस संसारमें भ्रमण करेंगे, जो मूर्ख दुर्लभ मनुष्य देह पाकर शिवका पूजन नहीं करते हैं ॥ १४ ॥ उन्हींका जन्म निष्फल है कारण कि वह मुक्तिके नहीं है; जो दुर्लभ मनुष्यजन्म पाकर शिवका पूजन करते हैं ॥ १५ ॥

उन्हींका जन्म सफल और वे मनुष्य कृतार्थ हैं, जो शिवभक्तिपरायण और शिवको प्रणाम करनेवाले हैं ॥ १६ ॥ शिवका स्मरण करनेवाले हैं, वे दुःखके भागी नहीं होते; उनके मनोहर भवन उत्तम गहने भूषणवाली स्त्रियें ॥ १७ ॥ और तृप्तिपर्यंत धन शिवके पूजन करनेसे प्राप्त होता है, जो महाभाग्ययुक्त स्वर्गमें राज्यकी इच्छा करते हैं ॥ १८ ॥ वे सम्पूर्ण समय शिवके चरणारविंदके भजनकी इच्छा करते हैं सौभाग्य मनोहररूप सत्त्व त्याग आर्द्रभाव ॥ १९ ॥ शूरता जगत्में विख्याति शिवके पूजन करनेसे होती है; इस कारण सब छोडकर एक

तेषां हि सफलं जन्म कृतार्थास्ते नरोत्तमाः ॥ भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः ॥ १६ ॥ भवसंस्मरणोद्युक्ता न ते दुःख
स्य भागिनः ॥ भवनानि मनोज्ञानि विभ्रमाभरणाः स्त्रियः ॥ १७ ॥ धनं चातृप्तिपर्य्यन्तं शिवपूजाविधेः फलम् ॥ ये वाञ्छ
न्ति महा भोगान्राज्यं च त्रिदशालये ॥१८॥ ते वाञ्छन्ति सदाकालं हरस्य चरणाम्बुजम् ॥ सौभाग्यं कान्तिमद्रूपं सत्त्वं त्या
गार्द्रभावता ॥ १९ ॥ शौर्यं वै जगति ख्यातिश्शिवमर्चयतो भवेत् ॥ तस्मात्सर्वं परित्यज्य शिवैकाहितमानसः ॥ २० ॥
शिवपूजाविधिं कुर्याद्यदीच्छेच्छिवमात्मनः ॥ त्वरितं जीवितं याति त्वरितं याति यौवनम् ॥ २१ ॥ त्वरितं व्याधिरभ्येति त
स्मात्पूज्यः पिनाकधृक्॥ यावन्नायाति मरणं यावन्नाक्रमते जरा ॥२२॥ यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावत्पूजय शंकरम् ॥ न शिवार्चन
तुल्योऽस्ति धर्मोऽन्यो भुवनत्रये ॥ २३ ॥ इति विज्ञाय यत्नेन पूजनीयस्सदाशिवः ॥ द्वारयागं जवनिकां परिवारबलिक्रि
याम् ॥ २४ ॥ नित्योत्सवं च कुर्वीत प्रसादे यदि पूजयेत् ॥ हविर्निवेदनादूर्ध्वं स्वयं चानुचरोऽपि वा ॥ २५ ॥

शिवमें ही मन लगावे ॥ २० ॥ जो अपना कल्याण चाहे तो शिवपूजा विधिको करे, जीवन और यौवन शीघ्रतासे जाता है ॥ २१ ॥ और व्याधि शीघ्रतासे आती है इस कारण शिवका पूजन करना चाहिये; जबतक मरण और बुढापा नहीं आता ॥ २२ ॥ जबतक इन्द्रियोंमें विकलता न हो तबतक शंकरका पूजन करो, तीन लोकमें शिवके पूजनके समान दूसरा धर्म नहीं है ॥ २३ ॥ ऐसा जानकर यत्नसे सदाशिवकी पूजा करे, द्वारयाग कोमल वृक्ष समूह लगाना परिवार बलि क्रिया ॥ २४ ॥ और नित्य उत्सव करने

चाहिये; यदि मंदिरमें पूजा करे तो हवि निवेदनके अनन्तर स्वयं वा सेवक करके ॥ २५ ॥ प्रसादसे परिवारके निमित्त यथाक्रमसे प्रसाद दे, बाजोंके सहित निकल कर उनके सामने स्थित हुआ ॥ २६ ॥ पुष्प धूप दीप अन्न जलके सहित देना चाहिये, फिर उत्तरको मुख कर महा पीठ आसनपर स्थित हो बलि पूजा दे ॥ २७ ॥ फिर वह जो अन्नादिक पहले देवके निमित्त प्रदान किया है, वह शेष रहाहुआ सब चंडके निमित्त देदे ॥ २८ ॥ फिर विधिपूर्वक हवन कर शेषपूजा समाप्त करे, विधिपूर्वक प्रयोग करके जहाँतक मंत्रका जप होसके तहाँतक करे २९॥ शिवशास्त्रमें कहेहुए नित्य उत्सवको करे, बडे चाँदी वा सोनेके पात्रमें जो रत्न और पद्मसे शोभित है ॥ ३० ॥ फिर दिव्य पाशुपत अस्त्रको

प्रसादपरिवारेभ्यो बलिं दद्याद्यथाक्रमम् ॥ निर्गम्य सह वादित्रैस्तदाशाभिमुखः स्थितः ॥२६॥ पुष्पं धूपं च दीपञ्च दद्यादन्नं जलैः सह॥ततो दद्यान्महापीठे तिष्ठन्बलिमुदङ्मुखः॥२७॥ततो निवेदितं देवे यत्तदन्नादिकं पुरा॥तत्सर्वं सावशेषं वा चण्डाय विनिवेदयेत्॥२८॥हुत्वा च विधिवत्पश्चात्पूजाशेषं समापयेत्॥कृत्वा प्रयोगं विधिवद्यावन्मन्त्रं जपं ततः॥२९॥नित्योत्सवं प्रकुर्वीत यथोक्तं शिवशासने॥विपुले तैजसे पात्रे रक्तपद्मोपशोभिते॥३०॥अस्त्रं पाशुपतं दिव्यं तत्रावाह्य समर्चयेत्॥शिवस्यारोप्यः तत्पात्रं द्विजस्यालंकृतस्य च ॥ ३१ ॥ न्यस्तास्त्रवपुषा तेन दीप्तयष्टिधरस्य च ॥ प्रासादपरिवारेभ्यो बहिर्मंगलनिस्वनै ॥ ३२ ॥ नृत्यगेयादिभिश्चैव सह दीपध्वजादिभिः ॥ प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा न द्रुतं चाविलम्बितम् ॥३३॥ महापीठं समावृत्य त्रिःप्रदक्षिणयोगतः ॥ पुनः प्रविष्टो द्वारस्थो यजमानः कृताञ्जलिः ॥ आदायाभ्यंतरं नीत्वा ह्यस्त्रमुद्वासयेत्ततः ॥ ३४ ॥

आवाहन कर पूजे, फिर पात्रको अलंकृत कर ब्राह्मणके शिरपर धारण कर ॥३१॥ दीप्तिमान् यष्टि धारण करनेवाले, अस्त्रसे न्यासयुक्त शरीर करके प्रसाद परिवारके निमित्त बाह्य मंगलके शब्दों करके ॥ ३२ ॥ तथा नृत्यगान कर दीप ध्वजादिके सहित न बहुत शीघ्रता न बहुत देरसे तीन प्रदक्षिणा करे ॥ ३३ ॥ महासिंहासनके चारोंओर तीन प्रदक्षिणा करे; फिर यजमान हाथ जोड़कर द्वारपर स्थित होवे पूर्वोक्त आठ फूल लेकर भीतर लेजाकर फिर फिर अस्त्रको उद्वासित (विसर्जन) करे ॥ ३४ ॥

और पूर्व कहीहुई क्रमसे प्रदक्षिणा आदि करके उन आठ फूलोंको लेकर पूजा समाप्त करे ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां उपमन्यु बोले, कुंड वा स्थंडिलमें जो किया जाता है उस अग्निकार्यको कहता हूँ, वेदीसे बाहर लोहमात्र अथवा मट्टीके नये पात्रमें ॥ १ ॥ विधिपूर्वक अग्निको धारण कर और संस्कारपूर्वक महादेवको आराधन करके होमकर्म प्रारम्भ करे ॥ २ ॥ दो हाथका अथवा एक हाथका कुंड करके गोल वा चौकोन वेदीका मंडल करे ॥ ३ ॥ कुंडके विस्तारके समान निम्न स्थानमें आठ दलका कमल उसमें लिखै; चार अंगुल अथवा दो अंगुल वेदीसे ऊंचा रहे ॥ ४ ॥ दो बिलस्तकी उसकी

प्रदक्षिणादिकं कृत्वा यथापूर्वोदितं क्रमात् ॥ आदाय चाष्टपुष्पाणि पूजामथ समापयेत् ॥३५॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे सांगोपांगपूजाविधानवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥ उपमन्युरुवाच ॥ अथाग्निकार्यं वक्ष्यामि कुण्डे वा स्थंडिलेऽपि वा ॥ वेद्यां वा ह्यायसे पात्रे मृन्मये वा नवे शुभे ॥ ॥ १ ॥ आधायाग्निं विधानेन संस्कृत्य च ततः परम् ॥ तत्राराध्य महादेवं होमकर्म समाचरेत् ॥ २ ॥ कुण्डं द्विहस्तमानं वा हस्तमात्रमथापि वा ॥ वृत्तं वा चतुरस्रं वा कुर्याद्वेदिं च मण्डलम् ॥ ३ ॥ कुण्डं विस्तारवन्निम्नं तन्मध्येऽष्टदलाम्बुजम् ॥ चतुरंगुलमुत्सेधं तस्य द्व्यंगुलमेव वा ॥४॥ वितस्तिद्विगुणोन्नत्या नाभि मन्तः प्रचक्षते ॥ मध्यं च मध्यमांगुल्य मध्यमोत्तमपर्वणोः ॥५॥ अंगुलैः कथ्यते सद्भिश्चतुर्विंशतिभिः करः ॥ मेखलानां त्रयं वापि द्वयमेकमथापि वा ॥६॥ यथाशोभं प्रकुर्वीत श्लक्ष्णमिष्टं मृदा स्थिरम् ॥ अश्वत्थपत्रवद्योनिं गजाधारवदेव वा ॥ ७ ॥ मेखला मध्यतः कुर्यात्पश्चिमेदक्षिणेऽपि वा ॥ शोभनामग्रितः किंचिन्निम्नामुन्मीलिकां शनैः ॥८ ॥

ऊंची नाभी करे, मध्यमा अंगुलीके मध्य और प्रथम पोरुएकी बराबर मध्य कहलाता है ॥ ५ ॥ इतने प्रमाणको चतुर पुरुषोंने अंगुल कहा है; चौबीस अंगुलका एक हाथ उसमें तीन मेखला दो अथवा एक करे ॥ ६ ॥ जैसी शोभा अधिक हो उसी प्रकार मनोहर इष्ट सुन्दर मृत्तिकाकी बनावे; अश्वत्थपत्र (पीपलके पत्ते) वा हाथीके ओष्ठके समान उसकी योनि कल्पना करे कूर्मपृष्ठके समान दोनों पार्श्वोंमें अंगुलमात्र ऊंची व हाथीके ओष्ठवत् छिद्रयुक्त योनि सब कुंडोंमें बनावे, यह शन्तिसारमे लिखा है ॥ ७ ॥ मेखलाके मध्यभागसे

पश्चिम और दक्षिणकी ओरको शोभायमान अग्रभागसे कुछेक नीची दो प्रांतोंसे संयुक्त करे ॥ ८ ॥ अग्रभागसे कुंडकी ओरको कुछ मेखला छोड़कर वेदीके नियमको उल्लंघन न करके उसे मृत्तिका वा रेतेकी करे ॥ ९ ॥ उसका मंडल गोबरसे करे; उसमें पात्रका मान नहीं कहा है, कुंड और मृत्तिकाकी वेदीको गोबरसे लीपे ॥ १० ॥ फिर धोकर पात्रको तपावे अथवा जलसे धो डाले, अपने सूत्रके कहे प्रकार से कुंडादिके लिखे ॥ ११ ॥ उसे प्रोक्षण कर दर्भ (कुश) और पुष्पोंसे अग्निका आसन कल्पित करे, अर्चन और होमके वास्ते सब द्रव्योंकी कल्पना करे ॥ १२ ॥ धोनेकी वस्तुओंको धोकर प्रोक्षण करनेकी वस्तुओंको प्रोक्षण कर मणिसे उत्पन्न वा काष्ठसे उत्पन्न

अग्रेण कुण्डाभिमुखीं किंचिदुत्सृज्य मेखलाम्॥नोत्सेधनियमो वेद्याः सा मार्द्री वाथ सैकती ॥९॥ मंडलं गोशकृत्तोयैर्मानं पात्रस्य नोदितम् ॥कुण्डं च मृन्मयं वेदिमालिपेद्गोम यांबुना ॥१०॥ प्रक्षाल्य तापयेत्पात्रं प्रोक्षयेदन्यदंभसा॥स्वसूत्रोक्तप्रकारेण कुण्डादौबिलिखेत्ततः ॥११॥ संप्रोक्ष्य कल्पयेद्दर्भैः पुष्पैर्वा वह्निविष्टरम् ॥ अर्चनार्थं च होमार्थं सर्वद्रव्याणि साधयेत् ॥१२॥ प्रक्षा ल्यक्षालनीयानि प्रोक्षण्या प्रोक्ष्य शोधयेत ॥ मणिजं काष्ठजं वाथ श्रोत्रियागारसम्भवम् ॥ १३ ॥ अन्यं वाभ्यर्हितं वह्निं ततः साधार मानयेत् ॥ त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य कुण्डादेरुपरि क्रमात् ॥ १४ ॥ वह्निबीजं समुच्चार्य त्वादधीताग्निमासने ॥ योनि मार्गेण वा तद्वदात्मनः संमुखेन वा ॥ १५ ॥ योनिप्रदेशगः सर्वं कुंडं कुर्याद्विचक्षणः ॥ स्वनाभ्यंतःस्थितं वह्निं तद्रंध्राद्विस्फुलिंगवत् ॥ १६ ॥ निर्गम्यपावके बाह्ये लीनं बिंबाकृति स्मरेत् ॥ आज्यसंस्कारपर्यंतमन्वाधानपुरस्सरम् ॥ १७ ॥ स्वसूत्रोक्त क्रमात्कुर्यान्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥ शिवमूर्तिं समभ्यर्च्य ततो दक्षिणपार्श्वतः ॥ १८ ॥

अथवा ऋत्विक्के अग्न्यागारसे आई हुई ॥ १३ ॥ अथवा दूसरे निंदा रहित अग्निको आधार पात्रमें लावे, क्रमसे कुंडादिके ऊपर तीन प्रदक्षिणा कराकर ॥ १४ ॥ अग्नि बीज (रम्) उच्चारण करके अग्निको आसनपर स्थापित करे; योनि मार्गसे अथवा अपने सुन्मुखसे स्थापन करे ॥ १५ ॥ योनिके समीपमें स्थित हुआ चतुर पुरुष सबको कुंडमें स्थित करे अपनी नाभिमें स्थित अग्निको नाभिरन्ध्रसे विस्फुलिंगके समान ॥ १६ ॥ अग्निके बाह्य निकलने पर बिंबाकार चिन्तन करे; संस्कार युक्त घृत आगे धारण कर ॥ १७ ॥ मंत्र जानने

वाले अपने सूक्त और मूल मंत्रसे सब कृत्य करे, शिव मूर्तिका पूजन कर फिर दक्षिण पार्श्वसे ॥१८॥ मंत्रसे न्यास करके घृतमें धेनुमुद्राको दिखावे, स्रुक् और स्रुवा यह धातुक भी बनाले, परन्तु काँसा लोहा और शीशेके ग्रहण न करे ॥ १९ ॥ देवदारुके अथवा स्मृति वा शिव शास्त्रमें जो विधान हो, ढाक आदिके पात्रमें अर्थात् दो पत्रोंके बीचमें जो तीसरा निकलाहो और छिद्र रहित हो ॥ २० ॥ उनको कुशोंसे मार्जन कर वह्निमें तपाकर फिर प्रोक्षणसे और शिव मंत्रसे अपने सूत्रसे कहे हुए मंत्रोंसे प्रोक्षण कर ॥ २१ ॥ अग्नि संस्कारकी सिद्धिके निमित्त आठ बीजाक्षर मंत्रोंसे हवन करे, वह बीच यह हैं (भ्रुं स्तुं ब्रुं श्रुं प्रुं ड्रुं ड्रुं) ॥ २२ ॥ यह सात बीज अग्निकी सात जीभके निमित्त एक एक हैं, त्रिशिखा तीन शिखावाली और मध्यमा जिह्वा बहुरूप नामवाली है उसकी एक शिखा दक्षिणको प्रज्वलित होती है

न्यस्य मन्त्रं घृते मुद्रां दर्शयेद्धेनुसंज्ञिताम् ॥ स्रुक्स्रुवौ तैजसौ ग्राह्यौ न कांस्यायस्सैसकौ॥१९॥यज्ञदारुमयौ वापि स्मार्तौ वा शिल्पसम्मतौ ॥ पर्णे वा ब्रह्मवृक्षादेरच्छिद्रे मध्य उत्थिते ॥२०॥ संमृज्य दर्भैस्तौ वह्नौ संताप्य प्रोक्षयेत्पुनः॥पारार्ष्यस्वसूत्रोक्तक्रमेण शिवपूर्वकैः ॥२१॥ जुहुयादष्टभिर्बीजैरग्निसंस्कारसिद्धये ॥ भ्रुंस्तुंब्रुंश्रुं क्रमेणैव पुंड्रुंद्रुमित्यतः परम् ॥२२॥ बीजानि सप्त सप्तानां जिह्वानामनुपूर्वशः॥त्रिशिखा मध्यमा जिह्वा बहुरूपसमाह्वया ॥२३॥ रक्ताग्नेयी नैर्ऋती च कृष्णान्या सुप्रभा मता॥ अतिरिक्ता मरुज्जिह्वा स्वनामानुगुणप्रभा॥२४॥स्वबीजानन्तरं वाच्या स्वाहांतश्च यथाक्रमम्॥जिह्वामंत्रैस्तु तैर्हुत्वाज्यं जिह्वास्त्वेकैकश क्रमात् ॥ २५ ॥ रं वह्नयेति स्वाहेति मध्ये हुत्वाहुतित्रयम् ॥ सर्पिषा वा समिद्भिर्वा परिषेचनमाचरेत् ॥ २६ ॥

एक वाम ओरको प्रज्वलित होती है, ईशानकी ओरकी ज्वालाका हिरण्य नाम, पूर्व ओरकी कनक जिह्वा कहलाती है ॥ २३ ॥ आग्नेयी दिशाकी रक्त नैर्ऋत्यकी कृष्ण दूसरी ओरको (दूसरी दिशामें जो ज्वाला स्थित है वह) सुप्रभा है, अतिरिक्त (वायव्यकी) मरुज्जिह्वा (अतिचंचल) अपने गुणानुरूप नामवाली है ॥ २४ ॥ बीचके अनन्तर स्वाहा शब्द लगाना चाहिये, एक जिह्वामें मन्त्रोंसे स्तुति कर क्रमसे हवन करे तथा भ्रुं ऊँ त्रिशिखायै स्वाहा इत्यादि ॥ २५ ॥ रं वह्नये स्वाहा, कहकर मध्यमें तीव आहुति दे, घी वा समिधा करके परिषेचन

१ तस्याः शिखेका दक्षिणातो ज्वलन्ती वामतः परा । हिरण्या प्रागुदग्जिह्वा कनका पूर्वतः स्थिता ।

करे ॥ २६ ॥ यह करनेसे वह शिवाग्नि हो जाती है, वहां शिवके आसनका स्मरण करे वहां आवाहन कर अर्धनारीश्वर शिवका यजन करे, दीपक पर्यंत सींचकर समिधा पूर्वक होम करे ॥ २७ ॥ वे समिधा पलास वा यज्ञिय वृक्षकी बारह अंगुलके प्रमाण होनी चाहिये टेढी न हों और स्वयं सूखी न हों अर्थात् गीली तोडी हुई त्वचासहित व्रणरहित समान हो ॥ २८ ॥ वा दश अंगुल बडी और कनुंगुलीके समान मोटी हों, यदि ऐसा भी न हो तो प्रादेशमात्र (एक बिलस्तभर) परिमाण वाली हों, उन सबका हवन करे ॥२९॥ जो दुर्वादलके समान आकारवाली चार अंगुल परिमाण युक्त हों उनसे हवन कर पीछे घृतकी आहुति देकर सोलह उर्द वा एक एक ग्रास प्रमाण अन्न ॥ ३० ॥

एवं कृते शिवाग्निः स्यात्स्मरेत्तत्र शिवासनम्॥तत्रावाह्य यजेद्देवमर्धनारीश्वरं शिवम्॥दीपान्तं परिषिच्याथ समिद्धोमं समाचरेत् ॥२७॥ ताः पालाश्यः परा वापि याज्ञिया द्वादशांगुलाः ॥ अवक्रा न स्वयं शुष्कास्सत्वचो निर्व्रणाः समा॥२८॥दशांगुला वा विहिताः कनिष्ठांगुलिसंमिताः॥प्रादेशमात्रा वालाभे होतव्याः सकला अपि॥२९॥दूर्वापत्रसमाकारां चतुरंगुलमायताम्॥दद्यादाज्याहुतिं पश्चादन्नमक्षप्रमाणतः॥३०॥लाजांस्तथा सर्षपांश्च यवांश्चैव तिलांस्तथा॥सर्पिषाक्तानि भक्ष्याणि लेह्यचोष्याणि सम्भवे॥ ॥ ३१ ॥ दशैवाहुतयस्तत्र पञ्च वा त्रितयं च वा॥होतव्याः शक्तितो दद्यादेकमेवाथ वाहुतिम्॥३२॥श्रुवेणाज्यं समित्याद्यास्रुचा शेषात्करेण वा॥तत्र दिव्येन होतव्यं तीर्थेनार्षेण वा तथा ॥३३॥ द्रव्येणैकेन वाऽलाभे जुहुयाच्छ्रद्धया पुनः॥प्रायश्चित्ताय जुहुयान्मंत्रयित्वाहुतित्रयम् ॥ ३४ ॥ ततो होमविशिष्टेन घृतेनापूर्य्य वै स्रुचम्॥निधाय पुष्पं तस्याग्रे श्रुवेणाधोमुखेन ताम् ॥ ३५ ॥

खीलैं, सरसौं जौ तिल घीसे युक्त भक्ष्य लेह्य चोष्य ॥ ३१ ॥ पदार्थसे दश पांच वा तीन आहुति दे अथवा शक्ति अनुसार आहुति दे अथवा एक आहुति दे ॥ ३२ ॥ स्रुवेसे घी समिधा हाथसे वा स्रुवासे शेष हाथ करके देवतीर्थसे वा ऋषितीर्थसे हवन करना चाहिये ॥३३॥ और सब द्रव्य न मिलसकें तो एक ही द्रव्य शक्तिके अनुसार हवन करे प्रायश्चित्तके निमित्त तीन आहुतिसे हवन करे ॥ ३४ ॥ फिर होमसे बचे हुए घृतसे स्रुवेको पूर्णकर उसके आगे फूल रखकर अधोमुख स्रुवेसे ॥ ३५ ॥

उसको दर्भोंसे आच्छादन कर मूलमन्त्रसे अंजलि बांध खडे हो यव तुल्य धारा मन्त्रके अन्तमें वौषट् लगाकर हवन करे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार पूर्णाहुति करके पूर्ववत् सिंचन करे फिर देवेशको विदाकर अग्निकी रक्षा करे ॥ ३७ ॥ अथवा अग्निको भी विसर्जन कर नाभीमें धारण कर नित्य यजन करे, शिव शास्त्रके कहे मार्गसे अग्निको लाकर ॥ ३८ ॥ वागीश्वरीके गर्भोत्पन्न अग्निको विधिपूर्वक संस्कार कर यजन करे, फिर पहले अग्निका आधान कर परिधियोंको धारण कर ॥ ३९ ॥ दो दो पात्रोंको रखकर शिवका

सदर्भेण समाच्छाद्य मूलेनांजलिनोत्थितः ॥ वौषडंतेन जुहुयाद्धारां तु यवसंमिताम् ॥३६॥ इत्थं पूर्णाहुतिं कृत्वा परिषिंचेच्च पूर्ववत् ॥ तत उद्धास्य देवेशं गोपयेत्तु हुताशनम् ॥ ३७ ॥ तमप्युद्धास्य वा नाभौ यजेत्संधाय नित्यशः ॥ अथवा वह्निमानीय शिवशास्त्रोक्तवर्त्मना ॥ ३८ ॥ वागीशीगर्भसंभूतं संस्कृत्य विधिवद्यजेत् ॥ अन्वाधानं पुनः कृत्वा परिधीन् परिधाय च ॥ ३९ ॥ पात्राणि द्वन्द्वरूपेण निक्षिप्येङ्गा शिवं ततः ॥ संशोध्य प्रोक्षणीपात्रं प्रोक्ष्यतानि तदंभसा ॥ ४० ॥ प्रणीतापात्रमैशान्यां विन्यस्या पूरितं जलैः ॥ आज्यसंस्कारपर्यंतं कृत्वा संशोध्य स्रुक्स्रुवौ ॥ ४१ ॥ गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं ततः ॥ कृत्वा पृथक्पृथग्घुत्वा जातमग्निं विचिन्तयेत् ॥ ४२ ॥ त्रिपादं सप्तहस्तं च चतुःशृंगं द्विशीर्षकम् ॥ मधुपिंगं त्रिनयनं सकपर्देन्दुशेखरम् ॥ ४३ ॥ रक्तंरक्ताम्बरालेपं माल्यभूषणभूषितम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नं सोपवीतं त्रिमेखलम् ॥ ४४ ॥ शक्तिमन्तं स्रुक्स्रुवौ च दधानं दक्षिणे करे ॥ तोमरं तालवृंतं च घृतपात्रं तथेतरैः ॥ ४५ ॥

यजन कर प्रोक्षणी पात्रको शुद्धकर तथा दूसरे जलसे धोने योग्योंको धोकर ॥ ४० ॥ जलसे भरा प्रणीता पात्र ईशान दिशामें धरे, घृत संस्कार तक स्रुवेको शोधन कर ॥ ४१ ॥ गर्भाधान पुंसवन सीमन्तोन्नयन पृथक् २ करके अग्नि उत्पन्न होनेकी चिन्ता करे ॥ ४२ ॥ जिसके तीन चरण सात हाथ, चार शृंग, दो शिर, मधुके समान पीछे तीन नेत्र, जटाजूट माथेपर चन्द्रमा ॥ ४३ ॥ रक्त और लाल वस्त्र आलेपन और मालासे विभूषित सम्पूर्ण लक्षणसे सम्पन्न यज्ञोपवीत और मेखलासे संयुक्त ॥ ४४ ॥ शक्तिमान् स्रुक् और स्रुवेको

दक्षिण हाथमे धारण किये तोमर पंखा घृतपात्र दूसरे हाथोंमें लिये ॥ ४५ ॥ तथा दूसरे पदार्थ हाथमें लिये हैं, इस प्रकार जातकर्ममें अग्निके आकारका ध्यान करे नालापनयन (नालका छेदन) करके और सूतकको संशोधन करके ॥४६॥ रुचि नामवाली शिवाग्निका आहुतिपूर्वक शोधन कर माता पिताको विदाकर तथा चौल और उपनयनादिकर्म करके ॥ ४७ ॥ आन्नोर्याम पर्यन्त इसके संस्कार करके आज्यधारादि होम स्विष्टकृत् मंत्रोंसे करके ॥ ४८ ॥ चार बीजसे संस्कार कर सिंचन करे, ब्रह्मा विष्णु शिवके ईश्वर तथा लोकेश ॥ ४९ ॥ और उनके अस्त्रों की पूजा यथाक्रमसे करे, धूप दीपादिकी सिद्धिके निमित्त कृत्यका जाननेवाला अग्निका उद्धार कर ॥ ५० ॥ आज्य

जातं ध्यात्वैवमाकारं जातकर्म समाचरेत् ॥ नालापनयनं कृत्वा ततः संशोध्य सूतकम् ॥४६॥ शिवाग्निरुचिनामास्य कृत्वा हुति पुरस्सरम् ॥ पित्रोर्विसर्जनं कृत्वा चौलोपनयनादिकम् ॥४७॥ अन्नोर्यामावसानान्तं कृत्वा संस्कारमस्य तु ॥ आज्यधारा दिहोमं च कृत्वा स्विष्टकृतं ततः ॥ ४८ ॥ रमित्यनेन बीजेन परिषिंचेत्ततः परम् ॥ ब्रह्मविष्णुशिवेशानां लोकेशानां तथैव च ॥ ४९ ॥ तदस्त्राणां च परितः कृत्वा पूजां यथाक्रमम् ॥ धूपदीपादिसिद्धयर्थं वह्निमुद्धृत्य कृत्यवित् ॥५०॥ साधयित्वाज्य पूर्वाणि द्रव्याणि पुनरेव च ॥ कल्पयित्वासनं वह्नौ तत्रावाह्य यथापुरा ॥ ५१ ॥ संपूज्य देवं देवीं च ततः पूर्णांत माचरेत् ॥ अथ वा स्वाश्रमोक्तं तु वह्निकर्म शिवार्पणम् ॥ ५२ ॥ बुद्धा शिवाश्रमी कुर्यान्न च तत्रापरो विधिः ॥ शिवाग्नेर्भस्म संग्राह्य मग्निहोत्रोद्भवं तु वा ॥ ५३ ॥ वैवाहोग्निभवं वापि पक्वं शुचि सुगंधि च ॥ कपिलायाः शकृच्छस्तं गृहीतं गगने पतत् ॥ ५४ ॥

घृतके सहित सब पत्रोंको सिद्धकर अग्निमें आसनकी कल्पना कर पूर्ववत् आवाहन कर ॥ ५१ ॥ देव देवीको पूजन कर पूर्णान्तकार्य करे; अथवा अपने आश्रममें कहे अग्निकर्मणको शिवार्पण करे ॥ ५२ ॥ यह सब जानकर शिवका भक्त करे, इसमें कोई दूसरी विधि नहीं कही है; जो शिवाग्नि अग्निहोत्रसे भस्म उत्पन्न हुई है वह ग्रहण करनी चाहिये ॥ ५३ ॥ और वैवाहिक अग्निकी भस्म भी पक्व और शुचि सुगंध युक्त है कपिला गौका गोबर करनेमें पृथ्वीपर न गिरते हाथमें लेलिया है वह अच्छा है ॥ ५४ ॥

बहुत पतला न हो; कठिन दुर्गंधयुक्त न हो न बहुत सूखा हो, वह अच्छा है और पृथ्वीमें पड़ा हो ऊपर नीचेकी ओरसे छोड़कर बीचमेंसे ग्रहण करे ॥ ५५ ॥ उसे पिंडीभूत कर मूलमंत्रसे शिवाग्निमें डाल दे न बहुत पके और न अपक्व रहे ऐसे करके श्वेत हो जानेपर ॥ ५६ ॥ पवित्र सुगंधि युक्त लेकर वस्त्रमें तोडकर भस्माधारमें रक्खे, अच्छी प्रकार किये हुए अत्यन्त दृढ क्षालित और प्रोक्षण करनेपर मंत्रसे उस भस्मको पात्रमें रक्खे, चांदी आदि धातु काष्ठ मृत्तिका पत्थर ॥ ५७ ॥ अथवा और किसी वस्तुके पात्रमें भस्मको रखकर समान और शुद्ध देशमें धनके समान भस्मको रक्खे ॥ ५८ ॥ और कहींको जाय तो स्वयं वा अनुचरके संग भस्म लेकर चले, अपवित्र और

न क्लिन्नं नातिकठिनं न दुर्गन्धं न शोषितम्॥ उपर्यधः परित्यज्य गृह्णीयात्पतितं यदि॥५५॥पिंडीकृत्य शिवाग्न्यादौ तत्क्षिपेन्मूलमंत्रतः ॥ अपक्वमतिपक्वं च संत्यज्य भसितं सितम् ॥५६॥ आदाय वा समालोड्य भस्माधारे विनिक्षिपेत्॥तैजसं दारवं वापि मृन्मयं शैलमेव च ॥ ५७ ॥ अन्यद्वा शोभनं शुद्धं भस्माधारं प्रकल्पयेत् ॥ समे देशे शुभे शुद्धे धनवद्भस्म निक्षिपेत् ॥ ५८ ॥ न चायुक्तकरे दद्यान्नैवाशुचितले क्षिपेत् ॥ न संस्पृशेच्च नीचांगैर्नोपेक्षेत न लंघयेत् ॥ ५९ ॥ तस्माद्भसितमादाय विनियुंजीत मन्त्रतः ॥ कालेषूक्तेषु नान्यत्र नायोग्येभ्यः प्रदापयेत् ॥ ६० ॥ भस्मसंग्रहणं कुर्याद्देवेऽनुद्वासिते सति ॥ उद्वासने कृते यस्माच्चण्डभस्म प्रजापते ॥ ६१ ॥ अग्निकार्ये कृते पश्चाच्छिवशास्त्रोक्तमार्गतः ॥ स्वसूत्रोक्तप्रकाराद्वा बलिकर्म समाचरेत् ॥६२॥ अथ विद्यासनं न्यस्य सुप्रलिप्ते तु मण्डले ॥ विद्याकोशं प्रतिष्ठाप्य यजेत्पुष्पादिभिः क्रमात् ॥ ६३ ॥

अयोग्य हाथमें भस्म न धरे, नीचांगके स्पर्शसे उपेक्षा और उल्लंघन न करे ॥ ५९ ॥ उस सेवकसे भस्म ले मंत्रसे युक्तकर आगे कहे समयके सिवाय कभी अयोग्यके निमित्त न दे ॥ ६० ॥ देवको बिदा करनेपर भस्मका संग्रह करे, जिस कारण कि उद्वासन (विसर्जन) करनेसे चंड भस्मके होती है ॥ ६१ ॥ शिवशास्त्रके मार्ग से अग्निकार्य किये पीछे अपनेसूत्रमें कहे प्रकारसे बलिकर्म करे ॥ ६२ ॥ तब विद्यासनसे न्यास करके मंडलको लोपकर विद्याकोशकी प्रतिष्ठा कर क्रमसे पुष्पादिसे यजन करे ॥ ६३ ॥

१ प्रस्थितो भस्म गृह्णीयात्स्वयं चानुचरोपिवा ।

गुरुको भी मंडल विद्याको आगे करके आसन आदि करके पुष्पोंसे पूजे, अनेक प्रकारसे गुरुकी पूजा करे ॥ ६४ ॥ फिर पूज्योंका पूजन और भूखोंको भोजन करावे, फिर सुखपूर्वक शुद्ध अन्नको स्वयं भोजन करे ॥ ६५ ॥ फिर आत्मा शुद्धिके निमित्त निवेदन श्रद्धापूर्वक करें लोभसे चण्डको भी समर्पण करनेसे बरज दे ॥ ६६ ॥ और गन्धमाला आदि समर्पण करें उसमें भी यह विधि कही है और चतुर पुरुष सब कार्योंमें अपनेको शिव जान ॥ ६७ ॥ भोजन कर आचमन करके शिवका ध्यान करे, हृदयमें मूलमन्त्रका उच्चारणकरें और योग्य शिव शास्त्रकी कथा आदिसे अपना समय व्यतीत करें ॥ ६८ ॥ रात्रिके बीतनेपर पूर्वांशमें मनोहर पूजा करके शिवा शिवका शयन अतिमनोहर कल्पित

विद्यायाःपुरतः कृत्वा गुरोरपि च मण्डलम् ॥ तत्रासनवरं कृत्वा पुष्पाद्यैगुरुमर्चयेत् ॥६४॥ ततोनुपूजयेत्पूज्यान् भोजयेच्च बुभुक्षितान् ॥ ततस्स्वयं च भुंजीत शुद्धमन्नं यथासुखम् ॥ ॥ ६५ ॥ निवेदितं च वा देवे तच्छेषं चात्मशुद्धये ॥ श्रद्दधानो न लोभेन न चण्डाय समर्पितम् ॥६६॥ गन्धमाल्यादि यच्चान्यत्तत्राप्येष समो विधिः ॥ न तु तत्र शिवोस्मीति बुद्धिं कुर्याद्विचक्षणः ॥ ६७ ॥ भुक्त्वाचम्य शिवं ध्यात्वा हृदये मूलमुच्चरेत् ॥ कालशेषं नयेद्योग्यैः शिवशास्त्रकथादिभिः ॥६८॥ रात्रौ व्यतीते पूर्वांशे कृत्वा पूजां मनोहराम् ॥ शिवयोः शयनं त्वेकं कल्पयेदति शोभनम् ॥ ६९ ॥ भक्ष्यभोज्यांबरालेपपुष्पमालादिकं तथा ॥ मनसा कर्मणा वापि कृत्वा सर्वं मनोहरम् ॥ ७० ॥ ततो देवस्य देव्याश्च पादमूले शुचिस्स्वपेत् ॥ गृहस्थो भार्यया सार्द्धं तदन्येऽपि तु केवलाः ॥ ७१ ॥ प्रत्यूषसमयं बुद्ध्वा मात्रामाद्यामुदीरयेत् ॥ प्रणम्य मनसां देवं सांबं सगणमव्ययम् ॥ ७२ ॥ देशकालोचितं कृत्वा शौचाद्यमपि शक्तितः ॥ शंखादिनिनदैर्दिव्यैर्देवं देवीं च बोधयेत् ॥ ७३ ॥

करे ॥ ६९ ॥ भक्ष्य भोज्य सुन्दर आलेपन पुष्पमालादिक यह सब मनोहर कर्म मनसे करे ॥ ७० ॥ फिर पवित्र होकर आप देव और देवीके चरणोंकी ओर सोवे और वह गृहस्थ अपनी भार्याको भी वहीं शयन करावे, अथवा केवल आपही शयन करे ॥ ७१ ॥ फिर प्रातः कालका समय जानकर आदिमन्त्रका उच्चारण करें, मनसे गण सहित अम्बाके सहित देवको प्रणाम करके ॥ ७२ ॥ देशकाल उचित कार्यको करके शक्तिसे शौचादि करके शंखादि शब्दसे देव देवीको जगावे ॥ ७३ ॥

फिर उसी समयके खिले हुए फूलोंसे जिसमें बहुत सुगन्धिहो शिवजीकी पूजा कर फिर पूर्वोक्त करे ॥ ७४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटी

कायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ उपमन्यु बोले, अब इसके उपरान्त शिव आश्रमके सेवन करनेवालोंको शिव

शास्त्रके अनुसार नैमित्तिक विधि क्रमसे कहता हूँ ॥१॥ सब महीने और पक्षोंमें अष्टमी चतुर्दशी तथा तथा पर्वमें क्रमसे ॥ २ ॥ और तुला मेष

की संक्रान्तिमें और विशेषकर ग्रहणमें महापूजा करनी चाहिये, अथवा अपनी शक्तिसे अधिक करें ॥ ३ ॥ महीने २ में बौधायनविधिसे कहे

संस्कार किये पंचगव्य (ब्रह्मकूर्च) सिद्ध करे; उससे शिवको स्नान कराय शेष व्रती स्वयं पान करे ॥ ४ ॥ ब्रह्महत्यादि महादोष हैं

ततस्तत्समयोन्निद्रैः पुष्पैरतिसुगंधिभिः ॥ निर्वर्त्य शिवयोः पूजां प्रारभेत पुरोदितम् ॥ ७४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां
वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे अग्निकार्यवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि शिवा
श्रमनिषेविणाम् ॥ शिवशास्त्रोक्तमार्गेण नैमित्तिकविधिक्रमम् ॥१॥ सर्वेष्वपि च मासेषु पक्षयोरुभयोरपि ॥ अष्टम्यां च चतुर्द
श्यांतथा पर्वणि च क्रमात् ॥ २ ॥ अयने विषुवे चैव ग्रहणेषु विशेषतः ॥ कर्तव्या महती पूजा ह्यधिका वापि शक्तितः ॥ ३ ॥
मासिमासि यथान्यायं ब्रह्मकूर्चं प्रसाध्य तु ॥ स्नापयित्वा शिवं तेन पिबेच्छेषमुपोषितः ॥४॥ ब्रह्महत्यादिदोषाणामतीव मह
तामपि ॥ निष्कृतिर्ब्रह्मकूर्चस्य पानान्नान्या विशिष्यते ॥ ५ ॥ पौषे तु पुष्यनक्षत्रे कुर्यान्नीराजनं विभोः ॥ माघे मघाख्ये नक्षत्रे
प्रदद्याद् घृतकंबलम् ॥ ॥ ६ ॥ फाल्गुने चोत्तरान्ते वै प्रारभेत महोत्सवम् ॥ चैत्रे चित्रापौर्णमास्यां दोलां कुर्याद्यथाविधि ॥७॥
वैशाख्यां तु विशाखायां कुर्यात्पुष्पमहालयम् ॥ ज्येष्ठे मूलाख्यनक्षत्रे शीतकुम्भं प्रदापयेत् ॥ ८ ॥

उनकी निष्कृति ब्रह्मकूर्चके पान करनेसे हो जाती है ॥ ५ ॥ पूसमें पुष्यनक्षत्रमें शिवका नीराजन करना चाहिने; और माघमें मघा नक्षत्रमें
घृत और कम्बल दे ॥ ६ ॥ उत्तराफल्गुनी नक्षत्रयुक्त पौर्णमासीवाले फाल्गुनमें महोत्सव करें; और चैत्रके महीनेमें चित्रायुक्तपौर्णमासी
को विधिपूर्वक दोला (झूला) यंत्र करे ॥ ७ ॥ वैशाखमें विशाखायुक्त पौर्णमासीको फूलोंका महामंदिर बनावे; ज्येष्ठमें मूलनक्षत्रमें शीत
कुम्भका दान करे ॥ ८ ॥

आषाढ मासके उत्तराषाढमें पवित्र अरोपण करे; श्रावणमें प्राकृत आदि मण्डलोंकी कल्पना करे ॥ ९ ॥ श्रवण नक्षत्रमें और भाद्रपद नक्षत्रमें प्रोक्षण कर पूर्वाषाढ नक्षत्रके दिनमें जलक्रीडा करे ॥ १० ॥ आश्विनमें पायस (खीर) और नये चावल दे; और शतभिषा नक्षत्रके दिन अग्नि कार्य करे ॥ ११ ॥ कार्तिकी पूर्णमासीको कृत्तिकानक्षत्रके योगमें सहस्र दीपक दे; मार्गशीर्षमें आर्द्रा नक्षत्रके दिन घृतसे शिवको स्नान करावे ॥ १२ ॥ और इन समयोंमें यह करनेको असमर्थ हो तो उत्सव ही करे; आस्थान महापूजा अथवा अधिक पूजा करे ॥ १३ ॥ प्रशंसनीय कर्मोंमें जब कि, कल्याणकी प्रवृत्ति हो दौर्मनस्य दुराचार वह दुःखस्वप्न दर्शनमें ॥ १४ ॥ प्रबल उत्पात वा प्रबल रोग वा कुछ और

आषाढे चोत्तराषाढे पवित्रारोपणं तथा॥श्रावणे प्राकृतान्यापि मण्डलानि प्रकल्पयेत् ॥९॥ श्रविष्ठाख्ये तु नक्षत्रे प्रौष्ठपद्यां ततः परम् ॥प्रोक्षयेच्च जलक्रीडां पूर्वाषाढाश्रये दिने॥१०॥आश्वयुज्यां ततो दद्यात्पायसं च नवोदनम्॥अग्निकार्यं च तेनैव कुर्याच्छतभिषग्दिने ॥११॥ कार्तिक्यां कृतिकायोगे दद्यादीपसहस्रकम्॥ मार्गशीर्षे तथार्द्रायां घृतेन स्नापयेच्छिवम् ॥१२॥ अशक्तस्तेषु कालेषु कुर्यादुत्सवमेव वा ॥ आस्थानं वा महापूजामधिकं वा समर्चनम् ॥१३॥ आवृत्तेऽपि च कल्याणे प्रशस्तेष्वपि कर्मसु ॥ दौर्मनस्ये दुराचारे दुःस्वप्ने दुष्टदर्शने ॥१४॥ उत्पाते वाशुभेन्यस्मिन्रोगे वा प्रबलेऽथ वा॥स्नानपूजाजपध्यानहोमदानादिकाः क्रियाः ॥१५॥ निमित्तानुगुणाः कार्य्याः पुरश्चरणपूर्विकाः ॥ शिवानले च विहते पुनस्सन्धानमाचरेत् ॥१६॥य एवं शर्वधर्मिष्ठो वर्तते नित्यमुद्यतः॥तस्यैकजन्मना मुक्तिं प्रयच्छति महेश्वरः॥१७॥एतद्यथोत्तरं कुर्यान्नित्यनैमित्तिकेषु यः॥दिव्यं श्रीकंठनाथस्य स्थानमाद्यं स गच्छति ॥१८॥ तत्र भुक्त्वा महाभोगान्कल्पकोटि शतन्नरः ॥कालांतरेच्युतस्तस्मादौमं कौमारमेव च ॥ १९ ॥

अशुभ हो तो स्नान पूजा जप होम दानादि क्रिया करे ॥ १५ ॥ पुरश्चरणपूर्वक निमित्तोंको गुणयुक्त करे. शिव अनलका जो विधान कहा है उसके समीप आकर कृत्य करे ॥ १६ ॥ जो इस प्रकार नित्ययुक्त शिवधर्मका अनुष्ठान करे; उसको एकही जन्ममें शिवजी मुक्ति देते हैं ॥ १७ ॥ जो नित्य नैमित्तिक कर्ममें यथोत्तर कर्म करते हैं वे नित्य श्रीकंठ आदि स्थानको जाते हैं ॥ १८ ॥ वहाँ सौ करोड कल्पतक महा भोगोंको भोगकर वह मनुष्य फिर कालान्तरमें वहाँसे आनकर औम कौमार ॥ १९ ॥

विष्णु रुद्र वा ब्रह्माके लोकको प्राप्त होता है, वहां बहुत कालतक रहकर यथेच्छ भोगोंको भोगकर ॥ २० ॥ फिर पांच स्थानको उल्लंघन कर उर्ध्वलोकमें जाकर श्रीकंठसे ज्ञानको प्राप्त हो फिर शिवपुरको जाता है ॥ २१ ॥ और यथोक्त आधे अनुष्ठान युक्त हो फिर दो बार करके ज्ञानको प्राप्त हो शिवके सायुज्यको प्राप्त हो जाता है ॥ २२ ॥ जिसने आधा अनुष्ठान किया हो वह देही देहके क्षयसे अंडपर्यन्त बुद्धिसे किये दोनों भुवनोंको अतिक्रमण कर ॥ २३ ॥ गिरिजापतिके पौरुष रुद्रस्थानको प्राप्त होकर अनेक सहस्रों युग अनेक भोगोंको भोग कर ॥ २४ ॥ फिर पुण्यक्षय होनेपर बड़े कुलमें जन्म पाता है; फिर पूर्वजन्मके संस्कारसे वह महाद्युतिमान् ॥ २५ ॥ पशुधर्मको

संप्राप्य वैष्णवं ब्राह्मं रुद्रलोकं विशेषतः॥तत्रोषित्वा चिरं कालं भुक्त्वा भोगान्यथोदितान्॥२०॥पुनश्चोर्ध्वं गतस्तस्मादतीत्य स्थानपञ्चकम्॥श्रीकण्ठाज्ज्ञानमासाद्य तस्माच्छैवपुरं व्रजेत्॥२१॥अर्द्धचर्य्यारतश्चापि द्विरावृत्त्यैवमेव तु॥पश्चाज्ज्ञानं समासाद्य शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥२२॥ अर्द्धार्द्धचरितो यस्तु देही देहक्षयात्परम्॥अंडांतं वोर्द्ध्वमव्यक्तमतीत्य भुवनद्वयम्॥२३॥संप्राप्य पौरुषं रौद्रस्थानमद्रीन्द्रजापतेः ॥ अनेकयुगसाहस्रं भुक्त्वा भोगाननेकधा ॥२४॥ पुण्यक्षये क्षितिं प्राप्य कुले महति जायते ॥ तत्रापि पूर्वसंस्कारवशेन स महाद्युतिः॥२५॥पशुधर्मान्परित्यज्य शिवधर्मरतो भवेत् ॥ तद्धर्मगौरवादेव ध्यात्वा शिवपुरं व्रजेत् ॥२६॥ भोगांश्च विविधान्भुक्त्वा विद्येश्वरपदं व्रजेत्॥तत्र विद्येश्वरैस्सार्द्धं भुक्त्वा भोगान्बहून्क्रमात् ॥२७॥ अण्डस्यांतर्बहिर्वाथ सकृदावर्तते पुनः ॥ ततो लब्ध्वा शिवज्ञानं परां भक्तिमवाप्य च॥२८॥ शिवसाधर्म्यमासाद्य नभूयो विनिवर्तते ॥ यश्चातीवशिवे भक्तो विषयासक्तचित्तवत् ॥२९॥ शिवधर्मानसो कुर्वन्नकुर्वन्वापिमुच्यते ॥ एकवृत्तो द्विरावृत्तस्त्रिरावृत्तोनिवर्तकः ॥ ३० ॥

छोड़कर शिवधर्ममें प्रीति करे; उसी धर्मके गौरवसे ध्यान करके शिवके लोकको जायगा ॥ २६ ॥ अनेक भोगोंको भोगकर विद्येश्वरके स्थानको जायगा; वहाँ विद्येश्वरके साथ क्रमसे बहुतसे भोगोंको भोगकर ॥ २७ ॥ ब्रह्माण्डके अंतर बाहरसे एकसाथही फिर लौटता है, फिर शिवज्ञानको प्राप्त हो परम भक्तिको प्राप्त कर ॥ २८ ॥ शिवके साथ धर्मको प्राप्त हो फिर संसारमें लौटता, जो विषयासक्तके चित्तके समान शिवमें अतीव आसक्त है ॥ २९ ॥ वह शिवके धामको करे, वा न करे किन्तु मुक्त हो जाता है. वह मुमुक्षु एक बार दो

बार अथवा तीन बार आकर ॥ ३० ॥ शिवधर्म करनेवाला मनुष्य फिर चक्रके समान संसारमें नहीं आता, इस कारण जैसे हो तैसे शिव के आश्रित हो रहे ॥ ३१ ॥ शिवधर्ममे बुद्धिकर यदि कल्याणके निमित्त मति करें जो हम किसी करके कुछ भी निर्बंध नहीं करते हैं ऐसा कहे इस स्थानमें निर्बंधन भी पापसे प्रकृतिके अर्थ नहीं रुचता है, अक्षवा दूसरोंको पुण्यसंस्कारके गौरवसे रुचता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ संसारका कारण इनको उस स्थानमें प्राप्त करनेको समर्थ नहीं होता है ॥ ३४ ॥ जो अपना कल्याण चाहे तो शिवधर्मोंको

न पुनश्चक्रवर्ती स्याच्छिवधर्माधिकारवान्॥तस्माच्छिवाश्रितो भूत्वा येन केनापि हेतुना॥३१॥शिवधर्मे मतिं कुर्याच्छ्रेयसे चेत्कृतोद्यमः ॥ नात्र निर्बंधयिष्यामो वयं केचन केनचित् ॥ ३२ ॥ निर्बन्धेभ्योऽतिवादेभ्यः प्रकृत्यैतन्न रोचते॥ रोचते वा परेभ्यस्तु पुण्यसंस्कारगौरवात् ॥३३॥ संसारकारणं येषां न प्ररोढुमलं भवेत्॥प्रकृत्यनुगुणं तस्माद्विमृश्यैतदशेषतः ॥३४॥शिवधर्मेऽधिकुर्वीतयदीच्छेच्छिवमात्मनः॥३५॥इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे नित्यनैमित्तिकविधिवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥ श्रीकृष्ण उवाच॥भगवंस्त्वन्मुखादेव श्रुतं श्रुतिसमंमया॥ स्वाश्रितानां शिवप्रोक्तं नित्यनैमित्तिकं तथा ॥१॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि शिवधर्माधिकारिणाम्॥काम्यमप्यस्ति चेत्कर्म वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्॥२॥उपमन्युरुवाच ॥ अस्त्यैहिकफलं किञ्चिदामुष्मिकफलं तथा ॥ ऐहिकामुष्मिकञ्चापि तच्च पञ्चविधं पुनः॥३॥ किंचित्क्रियामयं कर्म किंचित्कर्म तपोमयम् ॥ ४ ॥ जपध्यानमयं किंचित्किंचित्सर्वमयं तथा ॥ क्रियामयं तथा भिन्नं होमदानार्चनक्रमात् ॥ ५ ॥

करें ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ श्रीकृष्ण बोले, हे भगवन् ! तुम्हारे मुखसे मैंने श्रुतिके समान वचन सुने. जो अपने आश्रितोंको नित्य नैमित्तिक विधिसे कही है ॥ १ ॥ इस समय शिव धर्माधिकारियोंका जो काम्य कर्म है उसके सुननेकी मेरी इच्छा है सो कहिये ॥ २ ॥ उपमन्यु बोले, कुछ इस लोकका कुछ उस लोकका फल है, यहाँ और वहाँका कर्म पाँच प्रकारका है ॥ ३ ॥ कुछ क्रियामय कर्म कुछ तपोमय कर्म ॥ ४ ॥ कोई जप ध्यानमय और कोई कर्म

सर्वमय है क्रियामय कर्म भिन्न है; होमदान पूजाके क्रमसे ॥ ५ ॥ सम्पूर्ण शक्तिवालोंका वा दूसरोंका यह कार्य सफल होता है, परमात्मा शिव शक्ति और आज्ञा है ॥ ६ ॥ इस कारण आज्ञाधारीब्राह्मण काम्यकर्म सदा करता रहे, अब दोनों लोकमें फल देनेवाले काम्यकर्म को कहता हूँ ॥ ७ ॥ जो महेश्वरके भक्तोंको क्रमसे अन्तर बाह्य कर्म करने चाहिये शिव वा महेश्वर इसमें कुछ भेद नहीं है ॥ ८ ॥ इस कारण शिव वा महेश्वरके भक्त भेदको नहीं प्राप्त होते हैं, शिवके आश्रममें रहनेवाले वे ज्ञानयज्ञरत मनुष्य ॥ ९ ॥ कर्मयज्ञके करनेवाले पृथ्वीमें माहेश्वर (शिवभक्त कहलाते हैं, इस कारण शैव अभ्यन्तर और माहेश्वर बाह्य कर्म करते हैं ॥ १० ॥ आगे कहेहुए कर्मके

सर्वशक्तिमतामेव नान्येषां सफलं भवेत्॥शक्तिश्चाज्ञा महेशस्य शिवस्य परमात्मनः॥६॥तस्मात्काम्यानि कर्माणि कुर्यादाज्ञा धरोद्विजः॥अथ वक्ष्यामि काम्यं हि चेहामुत्र फलप्रदम्॥७॥शैवैर्माहेश्वरैश्चैव कार्यमंतर्बहिः क्रमात्॥शिवो महेश्वरश्चेति नात्यंत मिहभिद्यते॥८॥यथा तथा न भिद्यंते शैवा माहेश्वरा अपि ॥ शिवाश्रिता हि ते शैवा ज्ञानयज्ञरता नराः ॥९॥माहेश्वरास्समा ख्याता कर्मयज्ञरता भुवि ॥ तस्मादाभ्यन्तरे कुर्युः शैवा माहेश्वरा बहिः ॥१०॥न तु प्रयोगो भिद्येत वक्ष्यमाणस्य कर्मणः॥ परीक्ष्य भूमिं विधिवद्गंधवर्णरसादिभिः ॥ ११ ॥ मनोभिलषिते तत्र वितानविततांबरे॥सुप्रलिप्ते महीपृष्ठे दर्पणोदरसंनिभे ॥१२॥ प्राचीमुत्पादयेत्पूर्वं शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना ॥ एकहस्तं द्विहस्तं वा मण्डलं परिकल्पयेत् ॥१३॥आलिखेद्विमलं पद्ममष्टपत्रं सकर्णि कम् ॥ रत्नहेमादिभिश्चूर्णैर्यथासंभवसंभृतैः ॥१४॥ पञ्चावरणसंयुक्तं बहुशोभासमन्वितम् ॥ दलेषु सिद्धयः कल्प्याः केसरेषु सशक्तिकाः ॥ १५ ॥ रुद्रा वामादयस्त्वष्टौ पूर्वादिदलतः क्रमात् ॥ कार्णिकायां च वैराग्यं बीजेषु नवशक्तयः ॥ १६ ॥

प्रयोगमें भेद नहीं है. गंध वर्ण रसादिसे पृथ्वीको विधि पूर्वक परीक्षा करके ॥ ११ ॥ मनके अनुसार मनोहर वितान (चंदोवा) तानकर दर्पणके समान पृथ्वीको लीप ॥ १२ ॥ शास्त्रकी विधिसे पहले पूर्वको उत्पादन करें, एक हाथ अथवा दो हाथका मण्डलकल्पित करे ॥ १३ ॥ और आठ दलका कर्णिका युक्त कमल लिख यथायोग्य रत्न सुवर्णादिके चूर्णयुक्त ॥ १४ ॥ पंचावस्थाके सहित बहुत शोभासे संयुक्त दलोंमें सिद्धि और केशरोंमें शक्ति कल्पना करनी चाहिये ॥ १५ ॥ और आठ रुद्र वामदेवादि मूर्ति पूर्वादि दलके

क्रमसे स्थापन करे, कर्णिकामें वैराग्य और बीजोंमें नौ शक्ति कल्पित करे ॥ १६ ॥ स्कंदमें शिवात्मक धर्म और उसके नालमें शिवात्मक ज्ञान कल्पित करे, कर्णिकाके ऊपर आग्नेयमंडल सूर्य चन्द्रमा ॥ १७ ॥ और उसके उपरान्त शिवविद्यात्मक तीन तत्त्व तथा सब आसनके ऊपर सुखपूर्वक विचित्र पुष्पोंसे युक्त ॥ १८ ॥ पंचारणके सहित पार्वती सहित देवको पूजन करे, शुद्ध स्फटिक मणिके समान प्रसन्न शीतल कांति ॥ १९ ॥ बिजलीके समान जटामुकुटसे भूषित शार्दूलके चर्मका वस्त्र धारण किये कुछेक हँसता मुख ॥ २० ॥ लालपद्मके दलके समान हाथ पैरवाले सब लक्षणोंसे सम्पन्न सम्पूर्ण गहनोंसे युक्त ॥ २१ ॥ दिव्य श्रेष्ठ आयुधोंसे युक्त दिव्यगंधका अनुलेप लगाये,

स्कन्दे शिवात्मको धर्मो नाले ज्ञानं शिवाश्रयम् ॥ कर्णिकोपरि चाग्नेयं मंडलं सौरमैन्दवम् ॥ १७ ॥ शिवविद्यात्मतत्त्वाख्यं तत्त्वत्रयमतः परम् ॥ सर्वासनोपरि सुखं विचित्रकुसुमान्वितम् ॥१८॥ पंचावरणसंयुक्तं पूजयेदंबया सह॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं प्रसन्नं शीतलद्युतिम् ॥१९॥ विद्युद्बलयसंकाशजटामुकुटभूषितम् ॥शार्दूलचर्मवसनं किञ्चित्स्मितमुखांबुजम् ॥२०॥ रक्तपद्मदलप्रख्यपादपाणितलाधरम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नं सर्वाभरणभूषितम् ॥२१॥दिव्ययुधवरैर्युक्तं दिव्यागंधानुलेपनम् ॥ पंचवक्त्रं दशभुजं चन्द्रखण्डशिखामणिम् ॥२२॥ अस्य पूर्वमुखं सौम्यं बालार्कसदृशप्रभम्॥त्रिलोचनारविंदाढ्यं कृतबालेंदुशेखरम् ॥२३॥ दक्षिणं नीलजीमूतसमानरुचिरप्रभम्॥भ्रुकुटीकुटिलं घोरं रक्तवृत्तेक्षणत्रयम्॥२४॥दंष्ट्राकरालं दुर्द्धर्षं स्फुरिताधरपल्लवम्॥उत्तरं विद्रुमप्रख्यंनीलालकविभूषितम् ॥२५॥ सविलासं त्रिनयनं चन्द्राभरणशेखरम्॥पश्चिमं पूर्णचन्द्राभं लोचनत्रितयोज्ज्वलम् ॥२६॥

पाचमुख दश भुजा चन्द्रखण्डधारे शिखामें मणि बांधे ॥ २२ ॥ इनका पूर्व मुख सौम्य और बालसूर्यके समान कान्तिवाला है, तीन नेत्र कमलके मनोहर, शिरपर बाल चन्द्रमा ॥ २३ ॥ दक्षिणका मुख नीले मेघके समान कान्तिमान् जिसकी टेढी भ्रकुटी घोर तीन लालवर्ण दृष्टिसे युक्त हैं ॥ २४ ॥ दंष्ट्र तीक्ष्णसे दुर्धर्ष, स्फूर्यमाण अधरोष्ठ (होठ) उत्तरका विद्रुमके समान नीली अलकोंसे विभूषित ॥ २५ ॥ विलासपूर्वक तीन नेत्र शिरपर चन्द्रमाके आभरणसे संयुक्त पश्चिमका पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल तीन नेत्रोंसे शोभित ॥ २६ ॥

चन्द्ररेखा धारण किये सौम्यमूर्ति मंदहास्यसे मनोहर पांचवां स्फटिक मणिके समान चन्द्ररेखासे उज्ज्वल ॥ २७ ॥ अत्यन्त प्रिय दर्शनमूर्ति तीन नेत्रसे उज्ज्वल दक्षिणमें शूल परशु वज्र खड्ग अनलसे उज्ज्वल ॥ २८ ॥ सव्य हाथमें नाग नाराच घंटा पाश अंकुशसे युक्त है; निवृत्तिनामककला जाने और प्रतिष्ठाकलासे नाभिबद्ध है ॥ २९ ॥ कंठपर्यंत विद्या करके और ललाट पर्यंत शान्तिकलासे प्रतिष्ठित है; उसके ऊपर शान्त्यतीत कलासे पर कलासे युक्त हैं ॥ ३० ॥ उसके आगे पंचाध्वमें व्यापी कलापंचक शरीरवालेका ईशान मुकुट पुरातन पुरुष मुख है ॥ ३१ ॥ अघोमुख हृदय नामक गुह्य स्थान है; महेश्वर और सद्योजात उनके चरण इस प्रकार अड़तीस कलाकी उनकी मूर्ति

चन्द्ररेखाधरं सौम्यं मंदस्मितमनोहरम् ॥ पंचमं स्फटिकप्रख्यमिंदुरेखासमुज्ज्वलम् ॥ २७ ॥ अतीव सौम्यमुत्फुल्ललोचनत्रितयो ज्ज्वलम् ॥ दक्षिणेशूलपरशुवज्रखड्गानलोज्ज्वलम् ॥ २८ ॥ सव्ये च नागनाराचघण्टापाशांकुशोज्ज्वलम् ॥ निवृत्त्या जानुसंबद्धमानाभेश्च प्रतिष्ठया ॥ २९ ॥ आकंठं विद्यया तद्वदाललाटं तु शांतया ॥ तदूर्द्धं शांत्यतीताख्यकलया परया तथा ॥ ३० ॥ पंचाध्वव्यापिनं साक्षात्कलापंचकविग्रहम् ॥ ईशानमुकुटं देवं पुरुषाख्यं पुरातनम् ॥ ३१ ॥ अघोरहृदयंतद्वद्गुह्यं महेश्वरम् ॥ सद्यपादं च तन्मूर्तिमष्टत्रिंशत्कलामयम् ॥ ३२ ॥ मातृकामयमीशानं पंचब्रह्ममय तथा ॥ ॐकाराख्यमयं चैव हंसशक्त्या समन्वितम् ॥ ३३ ॥ तथेच्छात्मिकया शक्त्या समारूढांकमंडलम् ॥ ज्ञानाख्यया दक्षिणतो वाम तश्च क्रियाख्यया ॥३४॥ तत्त्वत्रय मयं साक्षाद्विद्यामूर्तिं सदाशिवम् ॥ मूर्तिमूलेन संकल्प्य सकलीकृत्य च क्रमात् ॥३५॥

है ॥ ३२ ॥ मातृकामय स्थान तथा पंचमय ब्रह्म, ॐकाररूपमय तथा हंसशक्तिसे युक्त॥ ३३ ॥ पंचाक्षरमय देवको छःअंग और छः जातिसे युक्त तथा इच्छा आत्मिक शक्तिसे जो कमंडलुमें आरूढ हैं, दक्षिणकी और ज्ञानाख्य शक्तिसे बाईं ओर क्रियाशक्तिसे युक्त ॥ ३४ ॥ तीन तत्त्वमय साक्षात् विद्यामूर्ति सदाशिवको मूर्तिमूलसे संकल्प करके कर्मसे संकलनकर ॥ ३५ ॥

---

१ पञ्चाक्षरमयं देवं षडक्षरमयन्तुवा । अङ्गषटकमयञ्चैव जातिषटकसमन्वितम ।

अर्घ पर्यन्त मूलमन्त्रसे यथायोग्य पूजन करके साक्षात् मूर्तिमान् शिवको परम शक्तिसे ॥३६॥ उसमें सत् असत् व्यक्तिसे महादेवको आवाहन करके पंच उपकरण करके परमेश्वरका पूजन करे ॥ ३७ ॥ वेदमें कहे षडंगोंके मंत्रसे तथा मातृकाभ्याससे' प्रणवपूर्वक शिव और शक्तिसे युक्त क्रमसे ॥ ३८ ॥ शान्त तथा दूसरे वेदमंत्रोंसे अच्छी प्रकार परमदेवका पूजन करे अथवा केवल शिवमंत्रोंसे पूजन करे ॥ ३९ ॥ पाद्यादि मुख सुगंधि पर्यन्त स्नानके बिना करे, फिर यथाक्रमसे पंचावरण पूजाका आरम्भ करे ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं०

संपूज्य च यथान्यायमर्घान्तं मूलविद्यया ॥ मूर्तिमन्तं शिवं साक्षाच्छक्त्या परमया सह ॥ ३६ ॥ तत्रावाह्य महादेवंसदसद्व्यक्तिवर्जितम् ॥ पंचोपकरणं कृत्वा पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ ३७ ॥ ब्रह्मभिश्च षडङ्गैश्च ततो मातृकया सह ॥ प्रणवेन शिवेनैव शक्तियुक्तेन च क्रमात् ॥३८॥ शांतेन वा तथान्यैश्च वेदमन्त्रैश्च कृत्स्नशः ॥ पूजयेत्परमं देवं केवलेन शिवेन वा ॥३९॥ पाद्यादिमुखवासांतं कृत्वा प्रस्थापनं विना ॥ पंचावरणपूजां तु ह्यारभेत यथाक्रमम् ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे काम्यकर्मवर्णनं नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥२९॥ तत्रादौ शिवयोः पार्श्वे दक्षिणे वामतः क्रमात्॥ गंधाद्यैरर्चयेत्पूर्वं देवौ हेरंबषण्मुखौ ॥ १ ॥ ततो ब्रह्माणि परित ईशानादि यथाक्रमम् ॥ सशक्तिकानि सद्यांतं प्रथमावरणे यजेत् ॥ २ ॥ षडंगान्यपि तत्रैव हृदयादीन्यनुक्रमात् ॥ शिवस्य च शिवायाश्च वाह्नेयादि समर्चयेत् ॥ ३ ॥ तत्र वामादिकान्नु द्रानष्टौ वामादिशक्तिभिः ॥ अर्चयेद्वा न वा पश्चात्पूर्वादिपरितः क्रमात् ॥ ४ ॥ प्रथमावरणं प्रोक्तं मया ते यदुनंदन ॥ द्वितीयावरणं प्रीत्या प्रोच्यते श्रद्धया शृणु ॥ ५ ॥

उत्तरखण्डे काम्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ उपमन्यु बोले उसके आदिमें शिवके पार्श्वमें वा दक्षिण वामके क्रमसे गंध आदिसे पहले गणेशको कार्तिकेयको देवके सम्मुख पूजन करे ॥ १ ॥ फिर पंचब्रह्म चारोंओरसे शक्तिपूर्वक सद्योजात पर्यन्त पहले आवरण पूजा करे ॥ २ ॥ फिर षडंगादि न्यास और हृदयादि न्यास क्रमसे करे शिव और शिवका न्यासकर अग्नि आदि दिशाओंमें पूजन करे ॥ ३ ॥ वहां वामादि आठ देवताओंको आठ शक्तियोंके सहित पूजन करे, अथवा पीछे पूजन करे, फिर पूर्वादि क्रमसे पूजन करे ॥ ४ ॥ हे यदुनंदन !

यह प्रथम आवरणका वर्णन किया। अब दूसरे आवरणको प्रेमसे कहता हूँ सुनो ॥ ५ ॥ पूर्व दिशाको पत्रमें अनन्तको उनकी शक्तिको वाम ओरसे सूक्ष्मको दक्षिणदिशाके पत्रमें शक्तिके सहित पूजन करे ॥ ६ ॥ और पश्चिम दिशाके पत्रमें शक्तिसहित शिवको पूजैं। इसी प्रकार उत्तर ओरके पत्रमें एक नेत्रका पूजन करे ॥ ७ ॥ एक रुद्र उनकी शक्तिको ईशान दिशाके दलमें पूजै, त्रिमूर्ति और उनकी शक्तिको अग्निकोणके दलमें पूजे ॥ ८ ॥ श्रीकंठको नैर्ऋत्य पत्रमें उनकी शक्तिको वामओरमें यजन करे इसी प्रकार वायव्यकी ओरसे पत्रमें शिखंडीशका पूजन करे ॥ ९ ॥ दूसरे आवरणमें सब चक्रवर्तियोंको पूजन करे, तीसरे आवरणमें शशिसहित आठ मूर्तियोंकी पूजा करे ॥ १० ॥ आठोंदिशामें क्रमसे

अनंतं पूर्वादिक्पत्रे तच्छक्तिं तस्य वामतः ॥ सूक्ष्मं दक्षिणदिक्पत्रे सह शक्त्या समर्चयेत्॥६॥ततः पश्चिमदिक्पत्रे सह शक्त्या शिवोत्तमम्॥तथैवोत्तरदिक्पत्रे चैकनेत्रं समर्चयेत्॥७॥एकरुद्रं च तच्छक्तिं पश्चादीशदलेर्चयेत्॥त्रिमूर्तिं तस्य शक्तिं च पूजयेदग्नि दिग्दले ॥८॥ श्रीकण्ठं नैर्ऋते पत्रे तच्छक्तिं तस्य वामतः ॥ तथैव मारुते पत्रे शिखंडीशं समर्चयेत्॥९॥ द्वितीयावरणे चेज्यास्स र्वतश्चक्रवर्त्तिनः ॥ तृतीयावरणे पूज्याः शक्तिभिश्चाष्टमूर्तयः ॥१०॥ अष्टसु क्रमशो दिक्षु पूर्वादिपरितः क्रमात्॥भवः शर्वस्तथेशा नो रुद्रः पशुपतिस्ततः ॥११॥ उग्रो भीमो महादेव इत्यष्टौ मूर्तयः क्रमात्॥अनंतरं ततश्चैव महादेवादयः क्रमात् ॥शक्तिभिस्सह संपूज्यास्तत्रैकादशमूर्तयः॥१२॥महादेवः शिवो रुद्रः शंकरो नीललोहितः॥ ईशानो विजयो भीमो देवदेवो भवोद्भवः॥१३॥ कप र्दीशश्च कथ्यंते तथैकादशशक्तयः॥तत्राष्टौ प्रथमं पूज्याः वाह्नेयादि यथाक्रमम्॥१४देवदेवः पूर्वपत्रे ईशानं चाग्निगोचरे॥भवोद्भवस्त योर्मध्ये कपालीशस्ततः परम् ॥१५॥ तस्मिन्नावरणे भूयो वृषेन्द्रं पुरतो यजेत् ॥ नंदिनं दक्षिणे तस्य महाकालं तथोत्तरे ॥१६॥

पूर्वादि दिशाओंमें पूजन करे भव शर्व ईशान रुद्र पशुपति ॥११॥ उग्र भीम महादेव यह आठ मूर्ति क्रमसे हैं, इसके अनन्तर महादेवादिकोंको क्रमसे एकादशमूर्ति शक्तिके सहित पूजन करना चाहिये ॥ १२ ॥ महादेव शिव रुद्र शंकर नीललोहित ईशान विजय भीम भवोद्भव ॥ १३ ॥ कपालीश यह ग्यारह शक्ति कही जाती हैं, उसमें आठ आग्नेयादि दिशाओंमें क्रमसे पूजनी चाहिये ॥ १४ ॥ देवदेवका पूर्व पत्रमें ईशान और आग्नेयादि दिशाके मध्यमें भवोद्भव और कपालीशका पूजन करे. इसके उपरान्त ॥ १५ ॥ उस आवरणके आगेकी ओर वृषेन्द्रका

पूजन करे, उसके दक्षिणमें नन्दिं और महाकालको यजन करे ॥ १६ ॥ शासन करनेवाले शिवको अग्निकोणके पत्रमें मातृकाओंको दक्षिण ओर से पत्रमें, गजमुखको नैर्ऋतकी ओरके पत्रमें, षण्मुख कुमारको पश्चिमके पत्रमें॥१७॥ज्येष्ठाके वायव्य दलमें, गौरीको उत्तर, चंडको ईशान शास्ता और नन्दीशके बीचमें मुनींद्र और वृषभका यजन करे॥१८॥ महाकालके उत्तरभागमें पिंगलका पूजन करे तथा शास्तृमातृसमूहके मध्यमें भृंगीश्वरका पूजन करे ॥१९॥ मातृका और विघ्नेशके बीचमें वीरभद्रका पूजन करे स्कंद और गणेशके बीचमें सरस्वती देवीका यजन करे ॥ २० ॥ ज्येष्ठा और कुमारके बीच में शिवपदकी अर्चना करनेवाली लक्ष्मीको पूजै, ज्येष्ठागण और अम्बाके बीचमें महामोटीका पूजन करे

शास्तारं वह्निदिक्पत्रे मातृर्दक्षिणदिग्दले ॥ गजास्यं नैर्ऋते पत्रे षण्मुखं वारुणे पुनः ॥१७॥ ज्येष्ठां वायुदले गौरीमुत्तरे चंडमैश्वरे ॥ शास्तृनन्दीशयोर्मध्ये मुनीन्द्रं वृषभं यजेत् ॥ १८ ॥ महाकालस्योत्तरतः पिंगलं तु समर्चयेत् ॥ शास्तृमातृसमूहस्य मध्ये भृंगीश्वरं ततः ॥ १९ ॥ मातृविघ्नेशमध्ये तु वीरभद्रं समर्चयेत् ॥ स्कन्दविघ्नेशयोर्मध्ये यजेद्देवीं सरस्वतीम् ॥ २० ॥ ज्येष्ठाकुमारयोर्मध्ये श्रियं शिवपदार्चिताम् ॥ ज्येष्ठागणाम्बयोर्मध्ये महामोटीं समर्चयेत् ॥ २१ ॥ गणाम्बाचण्डयोर्मध्ये देवीं दुर्गां प्रपूजयेत्॥ अत्रैवावरणे भूयः शिवानुचरसंहतिम् ॥ २२ ॥ रुद्रप्रथमभूताख्यां विविधां च सशक्तिकाम् ॥ शिवायाश्च सखीवर्गं जपेद्ध्यात्वा समाहितः ॥ २३ ॥ एवं तृतीयावरणे विततते पूजिते सति ॥ चतुर्थावरणं ध्यात्वा बहिस्तस्य समर्चयेत् ॥ २४ ॥ भानुः पूर्वदले पूज्यो दक्षिणे चतुराननः ॥ रुद्रो वरुणदिक्पत्रे विष्णुरुत्तरदिग्दले ॥२५॥ चतुर्णामपि देवानां पृथगावरणान्यथ ॥ तस्यांगानि षडेवादौ दीप्ताद्याभिश्च शक्तिभिः ॥ २६ ॥

२१ ॥ गण और चण्डके बीचमें दुर्गादेवीको पूजे, फिर इसी आवरणमें शिवके अनुचरोंके समूह ॥ २२ ॥ रुद्रके प्रथम भूतनामक अनेक शक्ति और शिवाकी सखी वर्गको पूजै, और सावधान हो सबका ध्यान करे ॥ २३ ॥ इस प्रकार विस्तारसे तीसरे आवरणके पूजनपर चौथे आवरणका ध्यान कर पहले उसकी बाह्य पूजा करे ॥ २४ ॥ पूर्वदलमें भानु (सूर्य) और दक्षिण दलमें ब्रह्माका पूजन करे, रुद्र पश्चिम अपत्रमें और विष्णुको उत्तरके पत्रमें पूजै ॥ २५ ॥ फिर चारों देवताओंके आवरण उनके छः आदिमें दीप्तादि शक्तियोंके साथ पूजे ॥ २६॥

दीप्ता, सूक्ष्मा जया, भद्रा, विभूति, विमल क्रमसे अमोघा, विद्युता, यह पूर्वादि क्रमसे स्थित हैं ॥ २७ ॥ दूसरे आवरणमें क्रमसे चार मूर्तिका पूजन करे, पूर्वसे लेकर उत्तर पर्यंत और उसके उपरान्त शक्ति यथाक्रमसे पूजै ॥ २८ ॥ आदित्य भास्कर भानु रवि अर्क ब्रह्मा रुद्र विष्णु विवस्वत ॥ २९ ॥ इनका विस्तार पूर्व दिशाके भागमें और दक्षिण दिशाके भागमें बोधिनी पश्चिम और आप्यायिनी उत्तरभागमें स्थित है ॥ ३० ॥ उषा, प्रभा, प्रज्ञा, संध्या, इनको ईशानादि कोणमें दूसरे आवरणमें यजन करे ॥ ३१ ॥ हे कृष्ण ! चन्द्रमा, मंगल,

दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला क्रमात् ॥ अमोघा विद्युता चैव पूर्वादि परितः स्थिताः ॥२७॥ द्वितीयावरणे पूज्याश्च तस्रो मूर्तयः क्रमात् ॥ पूर्वाद्युत्तरपर्यंताः शक्तयश्च ततः परम् ॥२८॥ आदित्यो भास्करोभानू रविश्चेत्यनुपूर्वशः॥ अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चैते विवस्वतः ॥ २९ ॥ विस्तारा पूर्वदिग्भागे सुतरां दक्षिणे स्थिताः ॥ बोधनी पश्चिमे भागे आप्यायिन्युत्तरे पुनः ॥ ३० ॥ उषां प्रभां तथा प्राज्ञां सन्ध्यामपि ततः परम् ॥ ऐशानादिषु विन्यस्य द्वितीयावरणे यजेत् ॥ ३१ ॥ सोममंगारकं चैव बुधं बुद्धिमतां वरम् ॥ बृहस्पतिं बृहद्बुद्धिं भार्गवं तेजसां निधिम् ॥ ३२ ॥ शनैश्चरं तथा राहुं केतुं धूम्रं भयंकरम् ॥ समंततो यजेदेतांस्तृतीयावरणे क्रमात् ॥ ३३ ॥ अथवा द्वादशादित्या द्वितीया वरणे यजेत् ॥ तृतीयावरणे चैव राशीन्द्वादश पूजयेत् ॥ ३४ ॥ सप्तसप्त गणांश्चैव बहिस्तस्य समंततः ॥ ऋषीन्देवांश्च गंधर्वान्पन्नगानप्सरोगणान् ॥ ३५ ॥ ग्रामण्यश्च तथा यक्षान्यातुधानांस्तथा हयान् ॥ सप्तच्छंदोमयांश्चैववालखिल्यांश्च पूजयेत् ॥ ३६ ॥

महाबुद्धिमान् बुध, बुद्धिमानोंमें सर्वोत्कृष्ट बृहस्पति तेजसागर शुक्र ॥३२॥ शनैश्चर, राहु, भयंकर धूम्रग्रह केतु, इनको चारोंओर तीसरे आवरणमें पूजे ॥ ३३ ॥ अथवा द्वादश आदित्योंको दूसरे आवरणमें यजन करे, तीसरे आवरणमें बाहर राशिका पूजन करे ॥ ३४ ॥ उसके बाहर चारों ओर सात २ गणोंको पूजे, ऋषि देवता गन्धर्व पन्नग अप्सराओंके गण ॥ ३५ ॥ ग्रामण्य, देवयोनि, यक्ष, यातुधान, हयमुख, सप्तछंदोमय वालखिल्योंका पूजन करे ॥ ३६ ॥

इस प्रकार तीसरे आवरणमें दिवाकरका पूजन कर तीन आवरणके सहित पीछे ब्रह्मा का पूजन करे ॥ ३७ ॥ पूर्वमें हिरण्यगर्भ दक्षिणमें विराज, पश्चिममें काल उत्तरमें पुरुषका यजन करे ॥ ३८ ॥ हिरण्यगर्भ प्रथम कमलके समान ब्रह्मा कालजाति स्वभावसे अंजन पर्वतके समान कृष्ण स्फटिकमणिके पुरुष ॥ ३९ ॥ राजस तामस सात्त्विक तीन गुण युक्त यह चार क्रमसे पहले आवरणमें स्थित हैं ॥ ४० ॥ दूसरे आवरणमें पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे सनत्कुमार, सनक, सनंदन, सनातनको पूजे ॥ ४१ ॥ तीसरे आवरणमें प्रजापतिको पूजे, उसमें पूर्वमें हुए आठ जो दक्षादिक हैं तिनको पूर्व आदि देशमें पश्चिमसे आरम्भ कर अनुक्रमसे ॥ ४२ ॥ दक्ष, रुचि, भृगु, मरीचि, अंगिरा

एवं तृतीयावरणे समभ्यर्च्य दिवाकरम्॥ ब्रह्माणमर्चयेत्पश्चात्त्रिभिरावरणैः सहः॥३७॥हिरण्यगर्भं पूर्वस्यां विराजं दक्षिणे ततः॥ कालं पश्चिमदिग्भागे पुरुषं चोत्तरे यजेत्॥३८॥हिरण्यगर्भः प्रथमो ब्रह्मा कमलसन्निभः॥कालो जात्यंजनप्रख्यः पुरुषः स्फटिकोपमः ॥३९॥ त्रिगुणो राजसश्चैव तामसः सात्त्विकस्तथा ॥ चत्वार एते क्रमशः प्रथमावरणे स्थिताः ॥४०॥ द्वितीयावरणे पूज्याः पूर्वादिपरितः क्रमात्॥ सनत्कुमारः सनकः सनंदश्च सनातनः॥४१॥तृतीयावरणे पश्चादर्चयेच्चप्रजापतीन् ॥अष्टौ पूर्वाश्च पूर्व्वादौ त्रीन्प्राक्पश्चादनुक्रमात्॥४२॥दक्षो रुचिर्भृगुश्चैव मरीचिश्च तथांगिराः॥पुलस्त्य पुलहश्चैव क्रतुरत्रिश्च कश्यपः ॥४३॥ वसिष्ठश्चेति विख्याताः प्रजानां पतयस्त्विमे॥तेषां भार्य्याश्च तैस्सार्द्धं पूजनीया यथाक्रमम् ॥४४॥ प्रसूतिश्च तथाऽऽकूतिः ख्यातिःसम्भूतिरेव च॥धृतिः स्मृतिः क्षमा चैव सन्नतिश्चानसूयका॥४५॥देवमातारुन्धती च सर्वाः खलु पतिव्रताः॥शिवार्चनरतो नित्यं श्रीमत्यः प्रियदर्शनाः ॥ ४६॥ प्रथमावरणे वेदांश्चतुरो वा प्रपूजयेत् ॥ इतिहासपुराणानि द्वितीयावरणे पुनः ॥ ४७ ॥

पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, अत्रि, कश्यप ॥४३ ॥ वसिष्ठ यह यह प्रजापति विख्यात हैं; उनकी भार्याओंके साथ उनकी यथाक्रमसे पूजा करनी चाहिये ॥ ४४ ॥ प्रसूति, ख्याति, धृति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति अनसूया ॥ ४५ ॥ देवमाता अदिति और अरुन्धती यह पतिव्रता हैं, शिवके पूजनमें नित्य श्रीमान् प्रिय दर्शन है ॥ ४६ ॥ पहले आवरणोंमें चार वेदोंका पूजन करे, इतिहास पुराणका दूसरे आवरणमें ॥ ४७ ॥

तीसरे आवरणके पीछे धर्म शास्त्रको आगे करके वैदिक सम्पूर्ण विद्या चारोंओर से पूजित करे ॥ ४८ ॥ पूर्वादिके अगाड़ी वेद तथा वेदाङ्ग और दूसरेभी यथारुचि आठ या चार प्रकारसे पूजा करे ॥४९॥ इस प्रकार तीन आवरणसे युक्त ब्रह्मको पूजन करके दक्षिण और पश्चिमके पीछेआवरणपूर्वक रुद्रको यजन करे ॥५०॥ उसको ब्रह्मषडंग प्रथमावरण कहते हैं द्वितीयावरण विद्येश्वरमय है ॥५१॥ तीसरे जो भेद हैं सो कहते हैं, और पूर्वादि क्रमसे उनकी चार मूर्तिका पूजन करे ॥५२॥ तीन गुण युक्त सम्पूर्ण देवता प्रथम शिवसंज्ञक हैं; रजोगुण युक्त ब्रह्मा दक्षिणमें पूजित

तृतीयावरणे पश्चाद्धर्मशास्त्रपुरस्सराः ॥ वैदिक्यो निखिला विद्याः पूज्या एव समंततः ॥ ४८ ॥ पूर्वादिपुरतो वेदास्तदन्ये तु यथारु चि ॥ अष्टधा वा चतुर्धा वा कृत्वा पूजां समं ततः ॥ ४९ ॥ एवं ब्रह्माणमभ्यर्च्य त्रिभिरावरणैर्युतम् ॥ दक्षिणे पश्चिमे पश्चाद्रुद्रं साव रणं यजेत् ॥ ५० ॥ तस्य ब्रह्मषडंगानि प्रथमावरणं स्मृतम् ॥ द्वितीयावरणे चैव विद्येश्वरमयं तथा ॥ ५१ ॥ तृतीयावरणे भेदो विद्यते स तु कथ्यते ॥ चतस्रो मूर्तयस्तस्य पूज्याः पूर्वादितः क्रमात् ॥ ५२ ॥ त्रिगुणा स्सकलो देवः पुर स्ताच्छिवसंज्ञकः ॥ राजसो दक्षिणे ब्रह्मा सृष्टिकृत्पूज्यते भवः ॥ ५३ ॥ तामसः पश्चिमे चाग्निः पूज्यस्संहारको हरः ॥ सात्त्विकस्सुखकृत्सौम्ये विष्णुर्विश्वपतिर्मृडः ॥ ॥५४॥ एवं पश्चिमदिग्भागे शम्भोः षड्विंशकं शिवम् ॥ समभ्यर्च्योत्तरे पार्श्वे ततो वैकुंठमर्चयेत् ॥ ५५ ॥ वासुदेवं पुरस्कृत्वा प्रथमा वरणे यजेत् ॥ अनिरुद्धं दक्षिणतः प्रद्युम्नं पश्चिमे ततः ॥ ५६ ॥ सौम्ये संकर्षणं पश्चाद्व्यत्यस्तौ वा यजेदिमौ ॥ प्रथमाव रणं प्रोक्तंद्वितीयावरणं शुभम् ॥ ५७ ॥

होते हैं ॥५३॥ तमोगुण युक्त पश्चिममें संहार करनेवाले शिव पूज्य हैं, सत्त्व गुणसे युक्त सुख करने वाले विष्णु पूर्व दिशामें तथा विश्वपति शिव हैं ॥ ५४ ॥ इस प्रकार पश्चिम दिशामें शिवकी छब्बीस शिवमूर्तिको उत्तर पार्श्वमें पूजन करके वैकुण्ठका अर्चन करे ॥ ५५ ॥ वासुदेवके आगे प्रथम आवरणमें यजन करे; दक्षिणकी ओर अनिरुद्ध और पश्चिममें प्रद्युम्न ॥ ५६ ॥ पूर्वमें संकर्षण देव और पश्चिममें

लौटाकर इनको पूजे यह पहला आवरण कहा । अब दूसरेको सुनो ॥ ५७ ॥ मत्स्य, कूर्म, वराह, नारसिंह, वामन राम, कृष्ण, अश्वमुख ॥ ५८ ॥ इनको तीसरे आवरणके चक्रके पूर्वभागमें अर्चन करे, अव्याहत (नहीं हटनेवाला) नारायणनामक अस्त्रको दक्षिणमें पूजे ॥ ५९ ॥ पश्चिममें पांचजन्य, उत्तरमें शार्ङ्गधनु, इस प्रकार तीसरे आवरणमें विष्णुनामक साक्षात् भगवानको ॥ ६० ॥ महाविष्णु और सदाविष्णुको रक्षण करके पूजन करे, इस प्रकार विष्णुके चतुर्व्यूहको क्रमसे चार मूर्ति करके उनकी चारों शक्तिको क्रमसे पूजे ॥ ६१ ॥ आग्नेय दिशामें प्रभाको, और नैर्ऋतमें सरस्वतीको पूजे, गण और अम्बिकाको वायव्यमें रौद्र (ईशान) में लक्ष्मीका पूजन करे ॥ ६२ ॥ इस प्रकारसे भानु

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोथ वामनः ॥ रामश्चान्यतमः कृष्णो भवानश्वमुखोपि च ॥ ५८ ॥ तृतीयावरणे चक्रुः पूर्वभागे समर्चयेत् ॥ नारायणाख्यं याम्येस्त्रं क्वचिदव्याहतं यजेत् ॥५९॥ पश्चिमे पांचजन्यं च शार्ङ्गं धनुरथोत्तरे ॥ एवं त्र्यावरणैः साक्षाद्विश्वाख्यं परमं हरिम् ॥६०॥ महाविष्णुं सदाविष्णुं मूर्त्तीकृत्य समर्चयेत् ॥ इत्थं विष्णोश्चतुर्व्यूहक्रमान्मूर्तिचतुष्टयम् ॥ पूजयित्वा च तच्छक्तीश्चतस्रः पूजयेत्क्रमात्॥६१॥ प्रभामाग्नेयदिग्भागे नैर्ऋते तु सरस्वतीम् ॥ गणांबिका च वायव्ये लक्ष्मीं रौद्रे समर्चयेत् ॥ ६२ ॥ एवं भान्वादिमूर्त्तीनां तच्छक्तीनामनंतरम् ॥ पूजां विधाय लोकेशांस्तत्रैवावरणे यजेत् ॥६३॥ इन्द्रमग्निं यमं चैव निर्ऋतिं वरुणं तथा ॥ वायुं सोमं कुबेरं च पश्चादीशानमर्चयेत् ॥६४॥ एवं चतुर्थावरणं पूजयित्वाविधानतः ॥ आयुधानि महेशस्य पश्चाद्बाह्यं समर्चयेत् ॥ ६५ ॥ श्रीमत्त्रिशूलमैशाने वज्रं माहेन्द्रदिङ्मुखे ॥ परशुं वह्निदिग्भागे याम्ये सायकमर्चयेत् ॥६६॥ नैर्ऋते तु यजेत्खड्गं पाशं वारुणगोचरे ॥ अंकुशं मारुते भागे पिनाकं चोत्तरे यजेत् ॥६७॥

आदि मूर्ति और उनकी शक्तिको पूजन करके उसी आवरणमें यजन करे ॥ ६३ ॥ इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु; सोम कुबेर पीछे ईशान देवका पूजन करे ॥ ६४ ॥ इस प्रकार विधिपूर्वक चौथे आवरणकी पूजा करके बाह्य स्थानमें महेश्वरके आयुधकी पूजा करे ॥ ६५ ॥ त्रिशूलको ईशानमें और वज्रको पूर्व दिशामें यजन करे, परशुको आग्नेयी दिशामें दक्षिण दिशामें बाणका अर्चन करे ॥ ६६ ॥ नैर्ऋत्यमें खड्ग और पश्चिममें पाशको यजन करे वायव्यमें अंकुशको उत्तरमें पिनाकको यजन करे ॥ ६७ ॥

पश्चिममें रौद्रस्वरूप क्षेत्रपालका पूजन करे पांचवें आवरणको बाहर भीतर पूज कर ॥ ६८ ॥ देवताओंको सम्पूर्ण आवरणके बाहर वा पांचवें माताओंके साथ महोक्षको आगे पूजे ॥ ६९ ॥ फिर उसके चारों ओर देवयोनिको पूजन करे, आकाशके फिरनेवाले ऋषि सिद्ध दैत्य राक्षस ॥ ७० ॥ अनन्तादि नागेन्द्र और उन उन कुलमें उत्पन्न हुए नाग डाकिनी भूत वेताल प्रेत भैरव नायक ॥ ७१ ॥ और अनेक योनियोंमें उत्पन्न हुए पाताल वासी नाग नदी समुद्र गिरि कानन सरोवर ॥ ७२ ॥ पशु पक्षी वृक्ष कीटादि क्षुद्र योनि

पश्चिमाभिमुखं रौद्रं क्षेत्रपालं समर्चयेत्॥पञ्चमावरणं चैव सम्पूज्यानन्तरं बहिः॥६८॥सर्वावरणदेवानां बहिर्वा पञ्चमेऽथवा॥ पञ्चमे मातृभिस्सार्द्धं महोक्ष पुरतो यजेत्॥६९॥ततः समंततः पूज्यास्सर्वा वै देवयोनयः ॥ खेचरा ऋषयस्सिद्धा दैत्या यक्षाश्च राक्षसाः ॥७०॥ अनंताद्याश्च नागेंद्रा नागैस्तत्तत्कुलोद्भवैः ॥ डाकिनीभूतवेतालप्रेतभैरवनायकाः ॥७१॥ पातालवासिनश्चान्ये नानायोनिसमुद्भवाः ॥ नद्यस्समुद्रा गिरयः कानननि सरांसि च ॥७२॥ पशवः पक्षिणो वृक्षाः कीटाद्याः क्षुद्रयोनयः॥ नराश्च विविधाकारा मृगाश्च क्षुद्रयोनयः ॥७३॥ भुवनान्यन्तरण्डस्य ततो ब्रह्माण्डकोटयः ॥ बहिरंडान्यसंख्यानि भुवनानि सहाधिपैः ॥७४॥ब्रह्मांडाधारका रुद्रा दशदिक्षु व्यवस्थिताः ॥यद्गौड यच्च मामेयं यद्वा शाक्तं ततः परम्॥ ॥७५॥यत्किञ्चिदस्ति शब्दस्य वाच्यं चिदचिदात्मकम्॥तत्सर्वं शिवयोः पार्श्वे बुद्ध्वा सामान्यतो यजेत्।७६।कृतांजलिपुटाः सर्वेऽचिंत्याः स्मितमुखास्तथा॥ प्रीत्या संप्रेक्षमाणाश्च देवं देवीं च सर्वदा॥७७॥इत्थमावरणाभ्यर्चां कृत्वाविक्षेपशांतये॥पुनरभ्यर्च्यदेवेशंपञ्चाक्षरमुदीरयेत् ॥७८॥

अनेक आकारके मनुष्य क्षुद्र योनिके मृग ॥ ७३ ॥ अन्तर भुवन तथा करोडों ब्रह्माण्ड और अण्डसे बाहर जो असंख्य अधिपति योंसहित भुवन हैं ॥ ७४ ॥ वह ब्रह्माण्डके धारण करनेवाले दशोंदिशाओंमें स्थित हैं, जो गौण जो माया और जो इस शक्तिसे परे हैं ॥ ७५ ॥ जो कुछ चित्--अचिदात्मक शब्दका वाच्य है, वह सब शिवके पार्श्वमें जानकर सामान्यतासे यजन करे ॥ ७६ ॥ हाथ जोडे इन सबका चिन्तन करना योग्य है, यह सब देव और देवीको प्रीतिसे देखते हुए हैं ॥ ७७ ॥ इस प्रकार विघ्नशान्तिके निमित्त आवरणकी पूजा

कर फिर देवेशकी अर्चा कर पंचाक्षर उच्चारण करे ॥ ७८ ॥ फिर शिवा शिवके निमित्त अमृतके समान सुन्दर व्यंजनसे युक्त शुद्ध चरु निवेदन करे ॥ ७९ ॥ बत्तीस आढक अर्थात् ३ तीन मन आठ सेर मुख्य चरु है, कमती आढकका अधम है यह सब अपने धनके अनुसार साधन कर श्रद्धासे निवेदन करे फिर ॥ ८० ॥ पानी और ताम्बूलके सहित सामग्री निवेदन करे फिर नीराजनादि करके पूजा शेष करे ॥ ८१ ॥ और उस यागके उपयोगी श्रेष्ठ द्रव्योंका साधन करे, ऐश्वर्य हो तो भक्तिमान प्राणीको धनका लोभ न करना चाहिये, जो शठ श्रद्धाभक्तिकी अपेक्षा नहीं करता और व्यंगसे अनुष्ठान करता है; उसके कोई काम्य कर्म नहीं फलते; यह सत्पुरुषोंके वचन हैं

निवेदयेत्ततः पश्चाच्छिवयोरमृतोपमम्॥सुव्यञ्जनसमायुक्तं शुद्धं चारु महाचरुम् ॥ ७९ ॥ द्वात्रिंशदाढकैर्मुख्यमधमं त्वाढकावरम्॥ साधयित्वा यथासंपच्छ्रद्धया विनिवेदयेत् ॥ ८० ॥ ततो निवेद्य पानीयं तांबूलं चोपदंशकैः ॥ नीराजनादिकं कृत्वा पूजाशेषंसमापयेत् ॥८१॥ भोगोपयोग्यद्रव्याणि विशिष्टान्येव साधयेत् ॥ वित्तशाठ्यं न कुर्वीत भक्तिमान्विभवे सति ॥८२॥ शठस्योपेक्षकस्यापि व्यंगं चैवानुतिष्ठतः ॥ न फलंत्येव कर्माणि काम्यानीति सतां कथा ॥ ८३ ॥ तस्मात्सम्यगुपेक्षां च त्यक्त्वा सर्वांगयो गतः ॥ कुर्यात्काम्यानि कर्माणि फलसिद्धिं यदीच्छति ॥ ८४ ॥ इत्थं पूजां समाप्याथ देवंदेवीं प्रणम्य च ॥ भक्त्या मनस्समाधाय पश्चात्स्तोत्रमुदीरयेत् ॥ ८५ ॥ ततः स्तोत्रमुपास्यान्ते त्वष्टोत्तरशतावराम् ॥ जपेत्पञ्चाक्षरीं विद्यां सहस्रोत्तरमुत्सुकः ॥ ८६ ॥ विद्यापूजां गुरोः पूजां कृत्वा पश्चाद्यथाक्रमम् ॥ यथोदयं यथाश्राद्धं सदस्यानपि पूजयेत् ॥ ८७ ॥ ततः उद्वास्य देवेशं सर्वैरावरणैः सह ॥ मण्डलं गुरवे दद्याद्यागोपकरणैस्सह ॥ ८८ ॥

॥ ८२ ॥ ८३ ॥ इस कारण शठता और उपेक्षाको छोड सर्वांग योगसे काम्यकर्म करे; यदि फल सिद्धिकी इच्छा होय तो ॥ ८४ ॥ इस प्रकार पूजाको समाप्त कर देव देवीको प्रणाम कर भक्तिसे मन समाधान कर पीछे स्तोत्र पढे ॥ ८५ ॥ फिर स्तोत्र जपके अन्तमें एकसौ आठ और एक सहस्र पंचाक्षर मन्त्रको मन लगाकर जपे ॥ ८६ ॥ फिर विद्यागुरुकी पूजा यथा क्रमसे कर श्रद्धापूर्वक सभामें बैठनेवालोंका भी संस्कार करें ॥ ८७ ॥ सब आवरणके सहित देवेशको विदाकरके उस यज्ञकी सामग्री यज्ञके उपकरणों सहित मंडल गुरुके

निमित्त दे ॥ ८८ ॥ अथवा यथायोग्य शिवके आश्रितोंको प्रदान करे अथवा शिवके निमित्त ही शिवक्षेत्रमें समर्पण करे ॥ ८९ ॥ वा शिवाग्निमें देवके निमित्त हवन कर यथायोग्य सम्पूर्ण आवरणोंके देवताओंकी पूजा करके ॥ ९० ॥ विसर्जन कर, यह याग योगेश्वरनामसे त्रिलोकीमें विख्यात है इससे अधिक योग पृथ्वीमें कोई नहीं है ॥ ९१ ॥ और जगत्में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो इससे असाध्य हो इस लोकका जो कुछ फल है ॥ ९२ ॥ यह इसका फल नहीं है यह नहीं कहा जाता सम्पूर्ण श्रेयरूपका यही साधन है ॥ ९३ ॥ पुरुषको जो

शिवाश्रितेभ्यो वा दद्यात्सर्वमेवानुपूर्वशः ॥ अथवा तश्छिवायैव शिवक्षेत्रे समर्पयेत्॥८९॥शिवाग्नौ वा यजेदेवं होमद्रव्यैश्च सप्त भिः ॥ समभ्यर्च्य यथान्यायं सर्वावरणदेवताः ॥९०॥ एष योगेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥न तस्मादधिकः कश्चिद्यागोऽस्ति भुवने क्वचित् ॥९१॥ न तदस्ति जगत्यस्मिन्नसाध्यं यदनेन तु ॥ ऐहिकं वा फलं किंचिदामुष्मिकफलं तु वा ॥ ९२ ॥ इदमस्य फलं नेदमिति नैव नियम्यते॥श्रेयोरूपस्य कृत्स्नस्य तदितं श्रेष्ठसाधनम् ॥९३॥ इदं न शक्यते वक्तुं पुरुषेण यदर्च्यते ॥ चिंतामणेरिवैतस्मात्तत्तेन प्राप्यते फलम् ॥९४॥ तथापि क्षुद्रमुद्दिश्य फलं नैतत्प्रयोजयेत् ॥ लघ्वर्थी महतो यस्मात्स्वयं लघुतरो भवेत् ॥९५॥ महद्वा फलमल्पं वा कृतं चेत्कर्म सिध्यति ॥ महादेवं समुद्दिश्य कृतं कर्म प्रयुज्यताम्॥९६॥तस्मादनन्यलभ्येषु शत्रुमृत्युंजयादिषु ॥ फलेषु दृष्टादृष्टेषु कुर्य्यादेतद्विचक्षणः ॥९७॥ महत्स्वपि च पातेषु महारोगभयादिषु ॥ दुर्भिक्षादिषु शांत्यर्थं शांतिं कुर्य्यादनेन तु ॥९८॥ बहुना किं प्रलापेन महाव्यापन्निवारकम्॥आत्मीयमस्त्रं शैवानामिदमाह महेश्वरः ॥९९॥

इच्छा हो सो इसीसे होनेयोग्य है; चिन्तामणिके समान वह फल. इसीसे प्राप्त होता है ॥ ९४ ॥ तोभी क्षुद्रफलके निमित्त इसका प्रयोग करना उचित नहीं, बडा कार्य छोटेमें प्रवृत्त होनेसे छोटा ही होजाता है ॥ ९५ ॥ बडेमें महत् या लघु कर्म कोई करो सिद्ध हो जाता है महादेवके उद्देशसे जो कर्म किया है ॥९६॥ वह दूसरेसे प्राप्त नहीं होता, शत्रु अथवा मृत्युके भय होनेमे दृष्ट अदृष्ट फलमें चतुर पुरुष इसको करे ॥९७॥ बडे पाप और महारोगभय आदिमें तथा दुर्भिक्षादिकी शान्तिमें इसे करे ॥ ९८ ॥ बहुत कहनेसे क्या है यह महाव्याधिका निवारण करने वाला है, महेश्वरने शैवोंको यह निज अस्त्र कहा है ॥ ९९ ॥

इससे अधिक कोई भी अपना रक्षा करनेवाला नहीं है, ऐसा जानकर इस कर्मके करनेसे शुभ फल पाता है ॥ १०० ॥ और जो पवित्र तथा सावधान हो स्तोत्रमात्रका पाठ करता है; वह अपने अभीष्ट अर्थके आठवें अंशके फलको प्राप्त होता है ॥ १०१ ॥ और जो सावधानहो उसके अर्थका विचार करता हुआ जप करता है तो आधे फलको प्राप्त होता है; इसमें संदेह नहीं; जो विचार कर व्रती हो पर्व (अष्टमी व चतुर्दशी आदि) में पाठ करता है वह भी आधे फलको प्राप्त होता है ॥ १०२ ॥ जो व्रती अर्थका अनुसंधान कर पर्वादिमें एक महीने स्तोत्रका पाठ करे

तस्मादितः परं नास्ति परित्राणमिहात्मनः॥इति मत्वा प्रयुंजानः कर्मेदं शुभमश्नुते॥१००॥स्तोत्रमात्रं शुचिर्भूत्वा यःपठेत्सुसमाहितः॥सोप्यभीष्टतमादर्थादष्टांशफलमाप्नुयात्॥१०१॥अर्थं तस्यानुसन्धाय पर्वण्यनशनःपठेत्॥अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां फलमर्द्धं समाप्नुयात् ॥ १०२ ॥ यस्त्वर्थमनुसंधाय पर्वादिषु तथा व्रती ॥ मासमेकं जपेत्स्तोत्रं स कृत्स्नं फलमाप्नुयात् ॥१०३॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शैवानां काम्यकवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥ उपमन्युरुवाच ॥ स्तोत्रं वक्ष्यामि ते कृष्ण पंचावरणमार्गतः॥योगेश्वरमिदं पुण्यं कर्म येन समाप्यते॥१॥जयजय जगदेकनाथ शंभो प्रकृतिमनोहर नित्यचित्स्वभाव ॥ अतिगतकलुषप्रपञ्चवाचामपि मनसां पदवीमतीततत्त्वम् ॥२॥ स्वभावनिर्मलाभोग जय सुन्दरचेष्टित ॥ स्वात्मतुल्यमहाशक्ते जय शुद्धगुणार्णव ॥३॥ अनन्तकांतिसंपन्न जयासदृशविग्रह ॥ अतर्क्यमहिमाधार जयानाकुलमंगल ॥४॥

वह सम्पूर्ण फलको प्राप्त होता है ॥ १०३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे त्रिंशोऽध्यायः॥ ३० ॥ उपमन्यु बोले, हे कृष्ण ! पाँच आवरणके मार्गसे मैं तुम्हारे प्रति स्तोत्रको कहता हूँ जिससे यह योगेश्वरका पवित्र कर्म समाप्त होजाता है ॥१॥ हे जगत्के एकनाथ शिव ! प्रकृतिसे मनोहर नित्य चित्स्वभाव कलुषके प्रपंचसे दूर मन और वचनकी गतिसे परे तत्त्वसे परे ॥ २ ॥ स्वभावसे निर्मल शरीर चेष्टावाले तुम्हारी जय हो, अपने तुल्य महाशक्तिमान् शुद्ध गुणके सागर आपकी जय हो ॥ ३ ॥ अनन्त कान्तिसे सम्पन्न असदृश शरीर अर्थात् जिनका शरीर किसीके समान नहीं; ऐसे आपकी जय हो. अतर्क्य महिमाओंके आधार स्थिर मंगल आपकी जय हो ॥ ४ ॥

निरंजन निराधार निष्कारण उदययुक्त आपकी जय हो; निरन्तर परानन्द निवृत्तिके कारण आपकी जय हो॥ ५ ॥ परम ऐश्वर्ययुक्त आपकी जय हो, अति करुणाके स्थानकी जय स्वतंत्र सर्वस्वकी जय असदृश ऐश्वर्यवान् आपकी जय हो ॥ ६ ॥ महाविश्वमें व्याप्तकी जय, किसीसे न ढकेहुए आपकी जय हो, समस्तसे परे आपकी जय हो, अत्यन्त श्रेष्ठकी जय हो ॥ ७ ॥ अद्भुतकी जय, अक्षुद्रकी जय, अक्षत रूपकी जय, अविनाशीकी जय, अमेयात्माकी जय, अभय और निर्मल स्वरूपकी जय हो ॥८॥ महाभुज महासागर महागुण महावक्ता, महाबली,

निरंजन निराधार जय निष्कारणोदय ॥ निरन्तरपरानन्द जय निर्वृतिकारण ॥५॥ जयातिपरमैश्वर्य जयातिकरुणास्पद॥जय स्वतंत्रसर्वस्व जयासदृशवैभव ॥६॥ जयावृतमहाविश्व जयानावृत केनचित् ॥ जयोत्तर समस्तस्य जयात्यन्तनिरुत्तर ॥७॥ जयाद्भुत जयाक्षुद्र जयाक्षत जयाव्यय ॥ जयामेय जयामाय जयाभाव जयामल॥८॥महाभुज महासार महागुण महाकथ ॥ महाबल महामाय महारस महारथ ॥९॥ नमः परमदेवाय नमः परमहेतवे ॥ नमश्शिवाय शांताय नमश्शिवतराय ते ॥१०॥ त्वदधीनमिदं कृत्स्नं जगद्धि ससुरासुरम् ॥ अतस्त्वद्विहिताज्ञां क्षमते कोऽतिवर्तितुम् ॥ ११ ॥ अयं पुनर्जनो नित्यं भवदेकसमाश्रयः ॥ भवानतोऽनुगृह्यास्मै प्रार्थितं संप्रयच्छतु॥१२॥जयांबिके जगन्मातर्जय सर्वजगन्मयि ॥ जयानवधिकैश्वर्ये जयानुपमविग्रहे ॥ १३ ॥ जय वाङ्मनसातीते जयाचिद्भ्रांतभंजिके ॥ जय जन्मजराहीने जय कालोत्तरोत्तरे ॥ १४ ॥

महामायी, महारस, महारथकी जय हो ॥९॥ परम देव परम हेतुके निमित्त नमस्कार, शिव शान्त अत्यन्त शिवरूपको नमस्कार है ॥ १० ॥ आपके ही अधीन यह असुर सहित सम्पूर्ण जगत् है, इस कारण तुम्हारी आज्ञाको कौन मेंट सकता है ॥ ११ ॥ यह आपका भक्त आप हीके आश्रित है, हमारी प्रार्थना स्वीकार कर आप हमपर अनुग्रह करो ॥ १२ ॥ हे अम्बिके ! जगन्माता सब जगत्में व्याप्त तुम्हारी जय हो; अप्रतिहतऐश्वर्य और अनुपमशरीर तुम्हारी जय हो ॥ १३ ॥ वाणी मनसे परे अविद्याको नाश करनेवाली जन्म और जरासे हीन कालसे भी अधिक तुम्हारी जय हो ॥ १४ ॥

अनेक प्रकारकी अवस्थासे युक्त अनेक सुखकी जय; अनेक महाबल और अनेक गुणसे बढी हुई तुम्हारी जय हो, ॥ १५ ॥ अनेक गुणोंमें स्थित लोक महेश्वरकी जय हो, विश्वसे अधिक आत्मामें स्थितकी जय, हो, विश्वेश्वरकी प्रियाकी जय हो; संसारके देवताओंसे पूजित विश्वकी विस्तार करनेवाली ॥ १६ ॥ मंगलसे दिव्य शरीर और मंगलसे दीप्तिमान् तुम्हारी जय हो, मंगलके चरित्रवाली और मंगलकी देनेवाली ॥ १७ ॥ परम कल्याणी गुणसमूहकी मूर्ति तुम्हारी जय हो शिवकी प्रिया विश्वात्मा पराशक्ति शिवशक्तिको नमस्कार है, तुमसे ही यह जगत् उत्पन्न होकर तुममें लय होजाता है ॥ १८ ॥ तुम्हारे विना फल देनेको ईश्वर भी समर्थ नहीं है, हे देवि ! जन्मसे लेकर यह सदा तुम्हारी उपासना

जयानेकविधानस्थे जयानेकसुखात्मिके ॥ जयानेकमहासत्त्वे जयानेकगुणोर्जिते ॥ १५ ॥ जयानेकगुणात्मस्थे जयलोकमहेश्वरि ॥ जय विश्वाधिकात्मस्थे जयविश्वेश्वरप्रिये ॥ जय विश्वसुराराध्ये जय विश्वविजृंभिणि ॥१६॥ जय मंगलदिव्यांगि जय मंगलदीपिके ॥ जय मंगलचारित्रे जय मंगलदायिनि ॥ १७ ॥ नमः परमकल्याणगुणसंचयमूर्तये ॥ नमः शिवायैविश्वस्मात्परस्यै शिवशक्तये ॥ त्वत्तः खलु समुत्पन्नं जगत्त्वय्येव लीयते ॥ १८ ॥ त्वद्विनातः फलं दातुमीश्वरोपि न शक्नुयात् ॥ जन्मप्रभृति देवेशि जनोयं त्वदुपाश्रितः ॥ १९ ॥ अतोऽस्य तव भक्तस्य निर्वर्तय मनोरथम् ॥ पंचवक्त्रो दशभुजः शुद्धस्फटिकसन्निभः ॥२०॥ वर्णब्रह्मकलादेहो देवस्सकलनिष्कलः ॥ शिवभक्तिसमारूढः शांत्यतीतस्सदाशिवः ॥ भक्त्या मयार्चितो मह्यं प्रार्थितं शं प्रयच्छतु ॥ २१ ॥ सदाशिवांकमारूढा शक्तिरिच्छा शिवाह्वया ॥ जननी सर्वलोकानां प्रयच्छतु मनोरथम् ॥ २२ ॥ शिवयोर्दयिता पुत्रौ देवौ हेरंबषण्मुखौ ॥ शिवानुभावौ सर्वज्ञौ शिवज्ञानामृताशिनौ ॥ २३ ॥

करता है ॥ १९ ॥ सो इस अपने भक्तके मनोरथ सफल करो, पाँच मुख दश भुजा शुद्ध स्फटिकमणिके समान ॥ २० ॥ प्रणवादिके अन्तर्गत आकाशादि वर्ण ईशानादिमें निवृत्ति आदि कलारूप देहयुक्त होकर भी वह निष्फल है; शिवमूर्तिमें आरूढ शान्त्यतीत सदाशिव हैं, भक्ति पूर्वक मुझसे आराधना कियीहुई मनोभिलषित पदार्थ दे ॥ २१ ॥ और सदाशिवके अंकमें स्थित शिवानामक शिवकी इच्छाशक्ति सब लोककी जननी मेरे मनोरथोंको पूर्ण करे ॥ २२ ॥ शिवके प्रिय पुत्र गणेश और कार्त्तिकेय शिवके अनुभावसे शिवरूप शिवके ज्ञानामृत पान

करनेवाले ॥ २३ ॥ शिवा शिवसे नित्य सत्कार पाये हुए तृप्त परस्परस्नेही ब्रह्मादि देवताओंसे सदा पूजित ॥२४॥ सब लोककी रक्षा करनेको सदा उद्यत अपने अंशभेदसे अनेक अवतार अपनी इच्छासे करनेवाले ॥२५॥ इन दोनोंका शिवा शिवके निकट मैंने सदा पूजन किया है, उनकी आज्ञासे वे मेरे मनोरथोंको प्रदान करें॥२६॥शुद्ध स्फटिक मणिके समान ईशाननामक सदाशिव परमात्मा शिवकी मूर्धाभिमानवाली मूर्ति है॥२७॥ शिवके अर्चनमें प्रीति करनेवाले शान्त शान्त्यतीत आकाशमें स्थित पंचाक्षरके अंतिम बीज पाँच कलाओंसे युक्त ॥ २८ ॥ पहले आवरणमें शक्तिके

तृप्तौ परस्परं स्निग्धौ शिवाभ्यां नित्यसत्कृतौ॥सत्कृतौ च सदा देवौ ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि॥२४॥ सर्वलोकपरित्राणं कर्तुमभ्युदितौ सदा॥स्वेच्छातारं कुर्वतौ स्वांशभेदैरनेकशः॥२५॥ताविमौ शिवयोःपार्श्वे नित्यमित्थं मयार्चितौ॥तयोराज्ञां पुरस्कृत्य प्रार्थितं मे प्रयच्छताम् ॥२६॥ शुद्धस्फटिकसंकाशमीशानाख्यं सदाशिवम्॥मूर्द्धाभिमानिनी मूर्तिः शिवस्य परमात्मनः॥२७॥शिवार्चनरतं शांतं शांत्यतीतं मखास्थितम्॥ पंचाक्षरांतिमं बीजं कलाभिः पंचभिर्युतम्॥२८॥ प्रथमावरणे पूर्वं शक्त्या सह समर्चितम्॥ पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥२९॥ बालसूर्यप्रतीकाशं पुरुषाख्यं पुरातनम्॥पूर्ववक्त्राभिमानं च शिवस्य परमेष्ठिनः॥ ॥३०॥ शांत्यात्मकं मरुत्संस्थं शम्भोः पादार्चने रतम्॥ प्रथमं शिवबीजेषु कलासु च चतुष्कलम्॥३१॥पूर्वभागे मया भक्त्या शक्त्या सह समर्चितम्॥पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥ ३२ ॥ अञ्जनादिप्रतीकाशमघोरं घोरविग्रहम्॥ देवस्य दक्षिणं वक्त्रं देवदेवपदार्चकम् ॥३३॥ विद्यापादं समारूढं वह्निमण्डलमध्यगम् ॥द्वितीयं शिवबीजेषु कलास्वष्टकलान्वितम् ॥ ३४ ॥

सहित प्रथम पूजित वह पवित्र परब्रह्म मेरी प्रार्थनाको पूर्ण करे ॥२९॥ बालसूर्यके समान कान्तिमान् पुरातन पुरुष परमात्मा शिवके पूर्वमुखके अभिमान् रूप हैं शान्ति आत्माके मरुतमें स्थित ॥३०॥ शिवके पादार्चनमें प्रीति करनेवाले शिवके बीजोंमें तुरीयरूप कलाओंमें चतुष्कलारूप ॥ ३१ ॥ पूर्वभागमें मैंने भक्ति और शक्ति सहित शिवका अर्चन किया है, वह पवित्र परब्रह्म मेरी प्रार्थनाको प्रदान करे ॥ ३२ ॥ अंजनके समान कान्तिमान् अघोर घोर शरीरसे देवका दक्षिणमुख देवदेवपद करके अर्चित ॥ ३३ ॥ विद्यापादपर आरूढ वह्निमंडलके बीचमें

प्राप्त दूसरे शिवके बीजोंमें कलाओंमें अष्ट कलासे संयुक्त ॥ ३४ ॥ शिव दक्षिण दिशाके भागमें शक्तिके साथ पूजित पवित्र परब्रह्म मेरे मनके अभिलाषको प्रदान करे ॥ ३५ ॥ कुंकुमके क्षोदके समान वामनामक सुन्दर वेष धारण किये उत्तर मुख इनका प्रतिष्ठामें प्रतिष्ठित हैं ॥ ३६ ॥ वारिमंडलमें स्थित महादेवके पूजनमें प्रीतिमान् शिव बीजमें दूसरे तेरह कलासे संयुक्त ॥ ३७ ॥ देवेशको उत्तर दिग्भागमें शक्तिके सहित पूजन किया है, पवित्र परब्रह्म मेरे मनोभिलाषको प्रदान करे ॥ ३८ ॥ शंख चन्द्र और कुंदके समान श्वेत संध्यनामक मुख सौम्य लक्षणसे युक्त शिवके पश्चिम मुखको शिवके चरणोंमें प्रीति करनेवाले ॥ ३९ ॥ निवृत्ति पदकी निष्ठावाले पृथ्वीमें स्थित तीसरे शिव

शंभोर्दक्षिणदिग्भागे शक्त्या सह समर्चितम्॥पवित्रं मध्यमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु॥३५॥कुंकुमक्षोदसंकाशं वामाख्यं वरवेष धृक् ॥ वक्त्रमुत्तरमीशस्य प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितम्॥३६॥वारिमंडलमध्यस्थं महादेवार्चने रतम्॥तुरीयं शिवबीजेषु त्रयोदशकला न्वितम् ॥३७॥ देवस्योत्तरदिग्भागे शक्त्या सह समर्चितम् ॥ पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥३८॥ शंखकुंदेंदुधवलं संध्याख्यं सौम्यलक्षणम्॥शिवस्य पश्चिमं वक्त्रं शिवपादार्चने रतम् ॥३९॥ निवृत्तिपदनिष्ठं च पृथिव्यां समवस्थितम्॥तृतीयं शिवबीजेषु कलाभिश्चाष्टभिर्युतम्॥४०॥देवस्य पश्चिमे भागे शक्त्या सह समर्चितम्॥पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु॥४१॥ शिवस्य तु शिवायाश्च हृन्मूर्तिशिवभविते॥तयोराज्ञां पुरस्कृत्य ते मे कामं प्रयच्छताम्॥४२॥शिवस्य च शिवायाश्च शिखामूर्तिशि वाश्रिते॥सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम्॥४३॥शिवस्य च शिवायाश्च वर्मणा शिवभाविते॥सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ॥ ४४ ॥ शिवस्य च शिवायाश्च नेत्रमूर्तिशिवाश्रिते ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ॥४५॥

बीजोंमें प्रथम आठ कलाओंसे युक्त ॥ ४० ॥ देवका पश्चिम दिशामें शक्तिके सहित पूजन किया है, वह पवित्र परब्रह्म मनोवांछित प्रदान करे ॥ ४१ ॥ शिव और शिवाकी मूर्ति हृदयमें भावित होनेपर उनकी आज्ञासे मेरे मनोभिलाष पूरे हों ॥ ४२ ॥ शिव और शिवाकी शिखामूर्ति शिवके आश्रय होनेपर शिवकी आज्ञाको आगे कर मेरे मनोरथ पूर्ण करे ॥ ४३ ॥ शिव और शिवाकी शिवके आश्रित वर्ममूर्ति शिवकी आज्ञाको आगे कर मेरी अभिलाषा पूरी करे ॥ ४४ ॥ शिव शिवाकी नेत्रमूर्ति शिवभावित हो, शिवकी आज्ञाको पुरस्कार

कर मेरे मनोरथ पूरे करे ॥ ४५ ॥ शिवा शिवकी अस्त्रमूर्तिके नित्य अर्चनमें तत्परहो शिवा शिवकी आज्ञाको पुरस्कार कर मेरी अभिलाषाको पूर्ण करे ॥ ४६ ॥ वाम ज्येष्ठ रुद्र कलविकरण बलविकरण बलप्रमथन पर ॥ ४७ ॥ सर्वभूतको दमन करनेवाली वैसे ही आठ शक्ति परमेशकी आज्ञासे मेरे मनोरथ पूरे करें ॥ ४८ ॥ फिर अनन्त सूक्ष्म शिव एकनेत्र एकरुद्र त्रिमूर्ति श्रीकंठ शिखण्ड ॥ ४९ ॥ और इसी प्रकार उनकी आठ शक्ति जो दूसरे आवरणमें पूजी हैं, वे शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मनोरथोंको पूर्ण करें ॥ ५० ॥ भवादिक आठ मूर्ति और उनकीशक्ति महादेवादिक तथा दूसरी रुद्रकी ग्यारह मूर्ति ॥ ५१ ॥ शक्ति सहित जो सब तीसरे आवरणमें स्थित हैं वह शिवकी आज्ञाको आगे कर मेरे

अस्त्रमूर्तीं च शिवयोर्नित्यमर्चनतत्परे ॥सत्कृत्य शिवयोराज्ञां तेमे कामं प्रयच्छताम् ॥४६॥वामौ ज्येष्ठस्तथा रुद्रः कालो विकरणस्तथा ॥ बलो विकरणश्चैव बलप्रमथनः परः ॥४७॥सर्वभूतस्य दमनस्तादृशाश्चाष्टशक्तयः॥प्रार्थितं मे प्रयच्छंतु शिवयोरेव शासनात् ॥४८॥ अथानंतश्च सूक्ष्मश्च शिवश्चाप्येकनेत्रकः ॥ एक रुद्राख्यमूर्तिश्च श्रीकण्ठश्च शिखंडकः ॥४९॥तथाष्टौ शक्तयस्तेषां द्वितीयावरणेऽर्चिताः ॥ते मे कामं प्रयच्छंतु शिवयोरेव शासनात्॥५०॥भवाद्या मूर्तयश्चाष्टौ तासामपि च शक्तयः॥महादेवादयश्चान्येतथैकादशमूर्तयः॥५१॥शक्तिभिस्सहितास्सर्वे तृतीयावरणे स्थिताः॥सत्कृत्य शिवयोराज्ञां दिशंतु फलमीप्सितम्॥ ॥५२॥ वृक्षराजो महातेजा महामेघसमस्वनः॥ मेरुमंदरकैलासहिमाद्रिशिखरोपमः ॥५३॥ सिताभ्रशिखराकार कुकुदा परिशोभितः ॥ महाभोगींद्रकल्पेन वालेन च विराजितः ॥५४॥ रक्तास्यशृंगचरणौ रक्तप्रायविलोचनः ॥पीवरोन्नतसर्वांगस्सुचारुगमनोज्ज्वलः ॥ ५५ ॥ प्रशस्तलक्षणः श्रीमान्प्रज्वलन्मणिभूषणः ॥ शिवप्रियः शिवासक्तः शिवयोर्ध्वजवाहनः ॥ ५६ ॥

मनोरथ पूरे करें ॥ ५२ ॥ वृषराज महातेजस्वी महामेघके समान शब्दवाले मेरुमंदर कैलास हिमाद्रिके शिखरके समान ॥ ५३ ॥ श्वेत मेघके शिखरके समान अपने कुमुदसे शोभित महाभोगीन्द्रके समान पूंछ करके विराजमान ॥ ५४ ॥ लाल मुख शृंग चरण और लाल नेत्रसे युक्त पुष्ट और ऊंचे सर्वांगवाले सुन्दर गमनसे उज्ज्वल ॥ ५५ ॥ प्रशंसायुक्त लक्षणवाले श्रीमान् प्रज्वलित मणि और भूषणसे युक्त शिवके प्रिय शिवमें आसक्त शिवा शिवके ध्वजा और वाहनसे युक्त ॥ ५६ ॥

तथा उनके चरणोंके न्यास जिनका अपर शरीर भावित है, गोराज पुरुष श्रीमान शूल और श्रेष्ठ आयुध धारण किये हुए उनकी आज्ञाको आगे कर यह मेरे मनोरथोंको पूरे करें ॥ ५७ ॥ महातेजस्वी नन्दीश्वर पार्वतीके पुत्र गणेश वा कुमार नारायण आदि देवताओंसे नित्य नमस्कार किये हुए मेरे मनोरथोंको पूरे करें ॥ ५८ शिवके अन्तःपुरके द्वारपर परिजनोंके साथ स्थित सर्वेश्वरके समान सब असुरोंको मारनेवाले ॥ ५९ ॥ सम्पूर्ण शिवधर्मोंकी अध्यक्षतामें अभिषेकित, शिवके प्रिय शिवमें आसक्त श्रीमान् शूल और श्रेष्ठ आयुध धारण किये ॥ ६० ॥ शिवके आश्रितोंमें संसक्त और उन्हींके अनुरक्त शिवा शिवकी आज्ञाका सत्कार करके मनोरथ पूरे करें ॥ ६१ ॥ महाकाल महाबाहु

तथा तच्चरणन्यासपावितापरविग्रहः॥गोराजपुरुषः श्रीमाञ्छ्रीमच्छूलवरायुधः॥तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु॥५७॥ नन्दीश्वरो महातेजा नगेन्द्रतनयात्मजः॥सनारायणकैर्देवैर्नित्यमभ्यर्च्य वंदितः॥५८॥शर्वस्यांतःपुरद्वारि सार्द्धं परिजनैः स्थितः सर्वेश्वरसमप्रख्यस्सर्वासुरविमर्दनः॥५९॥ सर्वेषां शिवधर्माणामध्यक्षत्वेऽभिषेचितः॥शिवप्रियश्शिवासक्तश्श्रीमच्छूलवरायुधः॥ ॥६०॥ शिवाश्रितेषु संसक्तस्त्वनुरक्तश्च तैरपि ॥सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे कामं प्रयच्छतु ॥६१॥ महाकालो महाबाहुर्महादेव इवापरः ॥ महादेवाश्रितानां तु नित्यमेवाभिरक्षतु॥६२॥शिवप्रियः शिवासक्तश्शिवयोरर्चकस्सदा॥सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु कांक्षितम्॥६३॥सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः शास्ता विष्णोः परा तनुः॥महामोहात्मतनयो मधुमांसासवप्रियः॥तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु ॥ ६४ ॥ ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा ॥ वाराही चैव माहेंद्री चामुंडा चंडविक्रमा ॥ ६५ ॥ एता वै मातरः सप्त सर्वलोकस्य मातरः ॥ प्रार्थितं मे प्रयच्छंतु परमेश्वरशासनात् ॥ ६६ ॥

महादेवके समान दूसरे महादेवके आश्रितोंसे नित्य रक्षित ॥ ६२ ॥ शिवके प्रिय शिवमें आसक्त सदा शिवा शिवके पूजनमें तत्पर शिवा शिवकी आज्ञाको पुरस्कार कर मेरे काम पूरे करें ॥ ६३ ॥ सब शास्त्रार्थ तत्त्व जाननेवाले सब लोकोंके शासन करनेवाले विष्णुकी मूर्तिरूप महाशरीर महामोहका तनय मधु मांस और आसवके प्रिय उनकी आज्ञाको मानकर मेरे अभिलाष पूरे करो ॥ ६४ ॥ ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री तथा चंडविक्रमा चामुण्डा ॥ ६५ ॥ यह सात सब लोकोंकी माता हैं, परमेश्वरकी आज्ञासे मेरा प्रिय करें ॥६६॥

मत्तमातंगवदनो गंगोमाशंकरात्मजः ॥ अकाशदेहो दिग्बाहुस्सोमसूर्याग्निलोचनः॥६७॥ ऐरावतादिभिर्दिव्यैर्दिग्गजैर्नित्यमर्चितः ॥ शिवज्ञानमदोद्भिन्नस्त्रिदशानामविघ्नकृत् ॥ ॥ ६८ ॥ विघ्नकृच्चासुरादीनां विघ्नेशः शिवभावितः ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु कांक्षितम् ॥६९॥ षण्मुखश्शिवसम्भूतः शक्तिवज्रधरः प्रभुः ॥ अग्नेश्च तनयो देवो ह्यपर्णातनयः पुनः ॥ ७० ॥ गंगायाश्च गणांबायाः कृत्तिकानां तथैव च॥ विशाखेन च शाखेन नैगमेयेन चावृतः ॥ ७१ ॥ इंद्रजिच्चंद्रसेनानीस्तारकासुरजित्तथा ॥ शैलानां मेरुमुख्यानां वेधकश्च स्वतेजसा ॥ ७२ ॥ तप्तचामीकरप्रख्यः शतपत्रदलेक्षणः ॥ कुमारस्सुकुमाराणां रूपोदाहरणं महत् ॥७३॥शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपदार्चकस्सदा ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु कांक्षितम् ॥७४॥ ज्येष्ठा वरिष्ठा वरदा शिवयोर्यजनेरता ॥ तयोराज्ञां पुरस्कृत्य सा मे दिशतु कांक्षितम् ॥ ७५ ॥ त्रैलोक्यवंदिता साक्षादुल्काकारा गणांबिका ॥ जगत्सृष्टिविवृद्ध्यर्थं ब्रह्मणाऽभ्यर्थिता शिवात् ॥ ७६ ॥

मत्तमातंगके समान गमन करनेवाले गंगा उमा और शंकरके पुत्र आकाशरूपी देह दिशारूपी बाहु सोम सूर्य और अग्निके समान नेत्रवाले ॥ ६७ ॥ नित्य ऐरावतादि दिग्गजोंसे पूजित शिवज्ञानके मदसे उद्भिन्न देवताओंको मंगल करनेवाले असुरोंको विघ्न करनेवाले विघ्नेश्वर ॥ ६८ ॥ शिवसे भावित शिवकी आज्ञाको आगेकर मेरे मनोरथको पूरे करें ॥ ६९ ॥ स्वामिकार्त्तिक शिवसे उत्पन्न शक्ति और वज्रके धारण करनेवाले प्रभु अग्निपुत्र देव अपर्णाके पुत्र ॥ ७० ॥ प्रभु गंगाके गणोंके अम्बा और कृत्तिकाके विशाखा शाखा और नैगमेयसे युक्त ॥७१॥ इन्द्रजित चन्द्रसेनानी तारकासुरके जीतनेवाले पर्वतोंमें मेरुमुख्यको अपने तेजसे वेध करनेवाले ॥ ७२ ॥ तप्त सुवर्णके समान शतपत्र दलके समान नेत्रवाले कुमार जो कुमारोंके रूप और उदाहरणरूप ॥ ७३ ॥ शिवके प्रिय शिवमें आसक्त सदाशिवके पूजन करनेवाले हैं वह शिवा शिवकी आज्ञाको मानकर मेरी अभिलाषाको पूर्ण करें ॥ ७४ ॥ ज्येष्ठ वरिष्ठ वरके देनेवाले शिवा शिवके पूजनमें प्रीति करनेवाले उनकी आज्ञाको पुरस्कृत कर मेरे मनोरथोंको प्रदान करें ॥ ७५ ॥ त्रिलोकीसे नमस्कृत साक्षात् उल्काकारा गणअम्बिका जगत्की सृष्टिके बढानेको ब्रह्माके शिवसे प्रार्थना करनेपर ॥ ७६ ॥

विभागको प्राप्त हुए शिवाके भौंहसे निकली हुई दाक्षायणी सती हैमवती उमा ॥ ७७ ॥ कौशिकीकी माता तथा भद्रकालीकी जननी अपर्णा और पाटलाकी जननी ॥ ७८ ॥ शिवार्चनमें नित्यप्रति प्रीति करनेवाली रुद्राणी रुद्रवल्लभा शिवा शिवकी आज्ञा मानकर मेरे मनोरथ पूरे करे ॥ ७९ ॥ सब गणोंका पति शिवके मुखसे उत्पन्न चन्द्र शिवा शिवकी आज्ञा मानकर मेरे निमित्त मंगल प्रदान करे ॥ ८० ॥ वृषभ नाम गणपति वृषवाह (शिव) के चरणोंका पूजन करनेवाले शिवा शिवकी आज्ञा मानकर मेरे मनोरथ पूरे करे ॥ ८१ ॥ श्रीमान् पिंगल नामक गणपति शिवमें आसक्त शिवका प्रिय शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मनोरथ पूरे करे ॥ ८२ ॥ शृंगीशनाम गणपति

शिवायाः प्रविभक्ताया भ्रुवोरन्तरनिस्सृताः॥दाक्षायणी सती मेना तथा हैमवती ह्युमा॥७७॥कौशिक्याश्चैव जननी भद्रकाल्या स्तथैव च॥अपर्णायाश्च जननी पाटलायास्तथैव च॥७८॥शिवार्चनरता नित्यं रुद्राणी रुद्रवल्लभा॥सत्कृत्य शिवयोराज्ञां सा मे दिशतु कांक्षितम् ॥७९॥ चंडः सर्वगणेशानः शंभोर्वदनसंभवः ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु कांक्षितम्॥ ८० ॥ पिंगलो गणपः श्रीमाञ्छिवासक्तः शिवप्रियः ॥आज्ञया शिवयोरेव स मे कामं प्रयच्छतु॥८१॥भृंगीशो नाम गणपः शिवराधनतत्परः ॥ प्रयच्छतु स मे कामं पत्युराज्ञापुरःसरम् ॥८२॥वीरभद्रो महातेजा हिमकुंदेंदुसन्निभः॥भद्रकालीप्रियो नित्यं मातृणां चाभिरक्षिता॥८३॥यज्ञस्य च शिरोहर्ता दक्षस्य च दुरात्मनः॥उपेंद्रेंद्रयमादीनां देवानामंगतक्षकः॥८४॥शिवस्यानुचरः श्रीमाञ्छिवशासनपालकः ॥ शिवयोः शासनादेव स मे दिशतु कांक्षितम् ॥८५॥ सरस्वती महेशस्य वाक्सरोजसमुद्भवा॥शिवयोः पूजने सक्ता स मे दिशतु कांक्षितम् ॥८६॥ विष्णोर्वक्षः स्थिता लक्ष्मीः शिवयोः पूजने रता ॥शिवयोः शासनादेव सा मे दिशतु कांक्षितम्॥८७॥

शिवके आराधनमें तत्पर अपने स्वामीकी आज्ञा मानकर मेरे मनोरथ पूरे करे ॥ ८३ ॥ महातेजस्वी वीरभद्र हिमचन्द्र और कुंदके समान कान्तिमान् भद्रकालीका नित्यप्रिय मातृकाओंसे रक्षित ॥ ८४ ॥ यज्ञ और दुरात्मा यज्ञका शिर हरनेवाला उपेन्द्र इन्द्र यम और देवताओंके अंगको तक्षक (काटनेवाले) श्रीमान् शिवके अनुचर शिवकी आज्ञाके पालनेवाले शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मनोरथ पूरे करे ॥ ८५ ॥ शिवके वाणीरूप कमलसे उत्पन्न हुई सरस्वती शिवा शिवके पूजनमें नित्य मेरे मंगलको प्रदान करे ॥ ८६ ॥ विष्णुके वक्षःस्थलमें स्थित लक्ष्मी शिवा

शिवके पूजनमें प्रीति करनेवाली शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मनोरथ पूरं करे ॥ ८७ ॥ महामोटी महादेवीके चरणकमल पूजने वाली उन्हीं पार्वतीकी आज्ञासे मेरे मनोरथ पूरे करे ॥ ८८ ॥ कौशिकी सिंहके ऊपर चढो हुई पार्वतीकी परमपुत्री विष्णुकी निद्रा महामाया महिषासुरकी मर्दन करनेवाली ॥ ८९ ॥ निशुंभ शुम्भकी मारनेवाली, मधु मांस आसवको प्यार करनेवाली माता देवी की आज्ञा मानकर मेरी मनोकामना पूरी करे ॥ ९० ॥ रुद्र तथा रुद्रके समान कांतिमान् महापराक्रमी प्रथम गण तथा भूत नामवाले महाबली गण महादेवके समान कान्तिमान् ॥ ९१ ॥ नित्य मुक्त उपमा रहित निर्द्वंद्व उपद्रवरहित शक्ति और अनुचरों सहित सब लोकसे नमस्कृत

महामोटी महादेव्याः पादपूजापरायणा ॥ तस्य एव नियोगेन सा मे दिशतु कांक्षितम् ॥ ८८ कौशिकी सिंहमारूढा पार्वत्याः परमा सुता ॥ विष्णोर्निद्रामहामाया महामहिषमर्दिनी॥८९॥निशुंभशुंभसंहत्री मधुमांसासवप्रिया॥ सत्कृत्य शासनं मातुस्सा मे दिशतु कांक्षितम् ॥९०॥ रुद्रा रुद्रसमप्रख्याः प्रथमाः प्रथितौजसः॥ भूताख्याश्च महावीर्य्या महादेवसमप्रभाः॥९१॥ नित्य मुक्ता निरुपमा निर्द्वन्द्वा निरुपप्लवाः ॥सशक्तयस्सानुचरास्सर्वलोकनमस्कृताः॥९२॥सर्वेषामेव लोकानां सृष्टिसंहरणक्षमाः ॥ परस्परानुरक्ताश्च परस्परमनुव्रताः॥९३॥परस्परमतिस्निग्धाः परस्परनमस्कृताः॥शिवप्रियतमा नित्यं शिवलक्षणलक्षिताः॥९४॥ सौम्याघारास्तथा मिश्राश्चांतरालद्वयात्मिकाः॥विरूपाश्च सुरूपाश्च नानारूपधरास्तथा॥९५॥सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं दिशंतु वै ॥ देव्या प्रियसखीवर्गो देवीलक्षणलक्षितः ॥९६॥ सहितो रुद्रकन्याभिः शक्तिभिश्चाप्यनेकशः ॥तृतीयावरणे शंभोर्भक्त्या नित्यं समर्चितः ॥९७॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मंगलम्॥दिवाकरो महेशस्य मूर्त्तिर्दीप्तसुमंडलः ॥ ९८ ॥

॥ ९२ ॥ सब लोकोंकी सृष्टि और संहार करनेमें समर्थ परस्पर अनुव्रत और परस्पर अनुव्रत ॥ ९३ ॥ परस्पर अतिस्निग्ध रूप परस्पर नमस्कार किये हुए नित्य शिवके प्यारे शिवके लक्षणसे लक्षित ॥ ९४॥ सौम्य और घोर दो प्रकारसे युक्त विरूप सुन्दररूप तथा अनेक प्रकारके रूप धारण किये ॥ ९५ ॥ शिवा शिवकी आज्ञा मानकर मेरा मंगल करे, देवीकी प्रिय सखीवर्ग सब देवीके लक्षणोंसे लक्षित ॥ ९६ ॥ रुद्रकन्या और अनेक शक्तियोंसे युक्त तीसरे आवरणमें शिवभक्तिसे नित्य पूजित ॥ ९७ ॥ शिवा शिवकी आज्ञाको मानकर

मुझको मंगल प्रदान करे यह सूर्य शिवकी मूर्तियुक्त दीप्त मंडलवाला है ॥९८॥ निर्गुण गुणोंसे युक्त गुणमात्र स्वरूप विकार रहित साधारणी जगत् प्रकाश रूपवाली जिसकी विक्रिया है ॥ ९९ ॥ असाधारण कर्मवाले सृष्टिस्थिति लयके क्रमसे तीन आवरण चार अथवा पाँचसे विभक्त ॥ १०० ॥ चौथे आवरणमें शम्भुको अनुचरों सहित पूजकर शिवप्रिय शिवमें आसक्त शिवके चरण अर्चनमें प्रीति करनेवाले ॥ १०१ ॥ शिवा शिवकी आज्ञाको मानकर मुझे मंगलदें, सूर्यके हृदयादि षडंग आदित्यादि मूर्तियें ॥१०२॥ आदित्य भास्कर भानु रवि यह क्रमसे हैं अर्क ब्रह्मा

निर्गुणो गुणसंकीर्णस्तथैव गुणकेवलः ॥ अविकारात्मकश्चाद्य एकस्सामान्यविक्रियः ॥९९॥ असाधारणकर्मा च सृष्टिस्थितिल यक्रमात् ॥ एवं त्रिधा चतुर्द्धा च विभक्ताः पंचधा पुनः ॥१००॥ चतुर्थावरणे शंभोः पूजितश्चानुगैः सहः ॥ शिवप्रियः शिवा सक्तःशिवपादार्चने रतः ॥१०१॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मंगलम् ॥ दिवाकरषडंगानि दीप्ताद्याश्चाष्टशक्तयः ॥१०२॥ आदित्यो भास्करो भानू रविश्चेत्यनुपूर्वशः॥अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चादित्यमूर्तयः ॥१०३॥ विस्तरासुतरा बोधिन्याप्यायिन्यपराः पुनः ॥ उषा प्रभा तथा प्राज्ञा संध्या चेत्यपि शक्तयः ॥ १०४ ॥ सोमादिकेतुपर्यंता ग्रहाश्च शिव भाविताः ॥ शिवयोराज्ञयानुन्ना मंगलं प्रदिशंतु मे ॥ १०५ ॥ अथवा द्वादशादित्यास्तथा द्वादश शक्तयः ॥ ऋषयो देव गंधर्वाः पन्नगाप्सरसां गणाः ॥ १०६ ॥ ग्रामण्यश्च तथा यक्षा राक्षसाश्चासुरास्तथा ॥ सप्तसप्तगणाश्चैते सप्तच्छंदोमया हयाः ॥ १०७ ॥ वालखिल्या दयश्चैव सर्वे शिवपदार्चकाः ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मंगलं प्रदिशंतु मे ॥ १०८ ॥

रुद्र विष्णु यह आदित्यकी मूर्ति हैं ॥ १०३ ॥ और विस्तरा, सुतरा, बोधिनी, आप्यायिनी, अपरा, उषा, प्रभा, प्राज्ञा, संध्या, यह शक्ति हैं ॥ १०४ ॥ और चन्द्रमासे आदि लेकर शिवके भावितग्रह शिवा शिवकी आज्ञासे मुझे मंगल प्रदान करें ॥१०५॥ अथवा बारह आदित्य बारह राशि ऋषि देव गन्धर्व सर्प अप्सराओंके गण ॥१०६॥ ग्रामणी योनि यक्ष राक्षस असुर सात सात गण छन्दोमय सूर्यके घोडे ॥१०७॥ वालखिल्य गण और सब शिवके चरणपूजक शिवकी आज्ञा मानकर मुझे मंगल प्रदान करें ॥ १०८ ॥

ब्रह्मा देवदेवकी मूर्ति भूमंडलके स्वामी चौंसठ गुणोंका ऐश्वर्य जो बुद्धितत्त्वमें स्थित है ॥ १०९ ॥ निर्गुण गुणसे संकीर्ण केवल गणमात्र मूर्ति अविकारात्मक देव उसके उपरान्त दूसरे साधारण ॥११०॥ और असाधारण कर्म सृष्टिकी लयस्थिति क्रमसे करनेवाले इस प्रकार चार और पाँच प्रकारसे विभक्त ॥ १११ ॥ चौथे आवरणमें शिव अनुचरोंके सहित पूजित हुए शिवके प्रिय शिवमें आसक्त शिवके चरण पूजनमें प्रेम करने वाले ॥ ११२ ॥ शिवा शिवकी आज्ञा मानकर मेरे मंगलको दें, ब्रह्मा लोकपति विराट् काल पुरुष ॥ ११३ ॥ सनत्कुमार सनन्दन

ब्रह्माथ देवदेवस्य मूर्तिर्भूमण्डलाधिपः ॥ चतुःषष्टि गुणैश्वर्यो बुद्धितत्त्वे प्रतिष्ठितः ॥ १०९ ॥ निर्गुणो गुणसंकीर्णस्तथैव गुण केवलः ॥ अविकारात्मको देवस्ततस्साधारणः पुरः ॥ ११० ॥ असाधारणकर्मा च सृष्टिस्थितिलयक्रमात् ॥ भुवं त्रिधा चतुर्द्धा च विभक्तः पंचधा पुनः ॥ १११ ॥ चतुर्थावरणे शंभो पूजितश्च सहानुगैः ॥ शिवप्रियः शिवासक्तश्शिवपादार्चने रतः ॥ ११२ ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मंगलम् ॥ हिरण्यगर्भो लोकेशो विराट् कालश्च पूरुषः ॥ ११३ ॥ सनत्कुमारः सनकः सनंदश्चसनातनः ॥ प्रजानां पतयश्चैव दक्षाद्या ब्रह्मसूनवः ॥ ११४ ॥ एकादश सपत्नीका धर्मस्संकल्प एव च ॥ शिवार्चनरताश्चैते शिवभक्तिपरायणाः ॥ ११५ ॥ शिवाज्ञावशगास्सर्वे दिशंतु मम मंगलम् ॥ चत्वारश्च तथा वेदास्सेतिहा सपुराणकाः ॥ ११६ ॥ धर्मशास्त्राणि विद्याभिर्वैदिकीभिस्समन्विताः ॥ परस्परविरुद्धार्थाः शिवप्रकृतिपादकाः ॥ ११७ ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मंगलं प्रदिशंतु मे ॥ अथ रुद्रो महादेवः शंभोर्मूर्तिर्गरीयसी ॥ ११८ ॥

सनातन प्रजापति दक्षादि ब्रह्मपुत्र ॥ ११४ ॥ ग्यारह सपत्नी सहित धर्म और संकल्प शिव पूजामें प्रीति करनेवाले शिव भक्तिमें परायण ॥ ११५ ॥ सब शिवकी आज्ञासे माननेवाले मुझे मंगल प्रदान करे, चार वेद इतिहास और पुराणके सहित ॥ ११६ ॥ धर्म शास्त्रादि वेदकी विद्याओंके सहित परस्पर अविरुद्ध अर्थवाले एक शिवकेही प्रतिपादन करनेवाले ॥ ११७ ॥ शिवा शिवकी आज्ञासे मुझे मंगल दें, रुद्र महादेव शिवकी बड़ी मूर्ति ॥ ११८ ॥

अग्निमंडलके अधीश्वर पुरुष ऐश्वर्यवान् प्रभु शिवके अभिमानसे सम्पन्न निर्गुण त्रिगुणात्मक ॥११९॥ केवल राजसिक सात्त्विक और तामसिक शिवके बीचमें विकार रहित हो प्रेम करनेवाले समान विकारवाले ॥१२०॥ असाधारण कर्मवाले सृष्टि आदि साधनसे पृथक् ब्रह्माके शिरछेदन करनेवाले उनके जनक और पुत्र ॥ १२१ ॥ तथा विष्णुके भी पिता पुत्र नियामक उनका नित्य बोध करनेवाले अनुग्रह करनेवाले प्रभु ॥ १२२ ॥ अण्डके भीतर बाहरवर्ती रुद्रलोक दोके स्वामी शिवके प्रिय शिवके चरणार्चनमें तत्पर ॥ ३२३ ॥ शिवकी आज्ञाको मानकर

वाह्नेयमण्डलाधीशः पौरुषैश्वर्यवान्प्रभुः॥शिवाभिमानसंपन्नो निर्गुणस्त्रिगुणात्मकः॥११९॥ केवलं सात्त्विकश्चापि राजसश्चैव तामसः॥अविकाररतः पूर्वं ततस्तु समविक्रियः॥१२०॥असाधारणकर्मा च सृष्ट्यादिकरणात्पृथक्॥ब्रह्मणोपि शिरश्छेत्ता जनकस्तस्य तत्सुतः ॥१२१॥ जनकस्तनयश्चापि विष्णोरपि नियामकः॥ बोधकश्च तयोर्नित्यमनुग्रहकरः प्रभुः ॥१२२॥ अंडस्यां तर्बहिर्वर्ती रुद्रो लोकद्वयाधिपः॥शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः॥१२३॥शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य स मे दिशतु मंगलम्॥ तस्य ब्रह्म षडंगानि विद्येशांतं तथाष्टकम् ॥१२४॥ चत्वारो मूर्तिभेदाश्च शिवपूर्वाः शिवार्चकाः॥शिवो भवो हरश्चैव मृडश्चैव तथापरः॥ शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य मंगलं प्रदिशंतु मे ॥ १२५ ॥ अथ विष्णुर्महेशस्य शिवस्यैव परा तनुः ॥ वारितत्त्वाधिपः साक्षादव्यक्तपदसंस्थितः ॥ १२६ ॥ निर्गुणस्सत्त्वबहुलस्तथैव गुणकेवलः ॥ अविकाराभिमानी च त्रिसाधारणविक्रियः ॥ १२७ ॥ असाधारणकर्मा च सृष्ट्यादिकरणात्पृथक् ॥ दक्षिणांगभवेनापि स्पर्द्धमानः स्वयंभुवा ॥ १२८ ॥

मेरा मंगल करें वेदोंके षडंग विद्येशोंको अष्टक ॥ १२४ ॥ चारमूर्तिके भेद शिव हैं, पूर्व जिसके ऐसे शिवके अर्चन करनेवाले शिव भव हर मृड तथा दूसरे शिवा शिवकी आज्ञा मानकर मुझे मंगल दे ॥१२५॥ और विष्णु शिव और महेशके दूसरे शरीर जलतत्त्वके अधिपति साक्षात् जगत्के कारणमें स्थित ॥ १२६ ॥ निर्गुण महासत्त्व युक्त केवल गुणमूर्ति अविकाराभिमानी तीन ब्रह्मा विष्णु रुद्रमें समान विकारवाले ॥ १२७ ॥ असाधारण कर्म करनेवाले सृष्टि आदिके करनेसे पृथक् दक्षिण अंगमें उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मासे स्पर्धमान ॥ १२८ ॥

साक्षात् आदि ब्रह्मा जो जगत्के स्रष्टा हैं और उनके स्रष्टा विष्णु दोनों लोकोंके स्वामी ॥ १२९ ॥ असुरोंको मारनेवाले [विष्णु] इन्द्रके अनुज भृगुके शापसे दश प्रकारसे प्रादुर्भूत ॥ १३० ॥ पृथ्वीका भार दूर करनेको पृथ्वीमें अवतार लेते हैं, अप्रमेय बलसे युक्त मायावाले मायासे जगत्को मोहित करते हुए ॥१३१॥ उन महाविष्णुकी मूर्ति करके अथवा महाविष्णुकी मूर्ति जो नित्य वैष्णवोंसे पूजित है वह तीनों मूर्तिसे युक्त आसनमें स्थित ॥ १३२ ॥ शिवके प्रिय शिवमें आसक्त शिवके पदार्चनमें प्रेम करनेवाले शिवकी आज्ञा माँगकर मुझे मंगल

आद्येन ब्रह्मणा साक्षात्सृष्टः स्रष्टा च तस्य तु ॥ अंड स्यांतर्बहिर्वर्ती विष्णुर्लोकद्वयाधिपः ॥ १२९ ॥ असुरांतकरश्चक्री शक्र स्यापि तथानुजः ॥ प्रादुर्भूतश्च दशधा भृगुशापच्छलादिह ॥ १३० ॥ भूभारनिग्रहार्थाय स्वेच्छयावातरक्षितौ ॥ अप्रमेयबलो मायी मायया मोहयञ्जगत् ॥१३१॥ मूर्तिं कृत्वा महाविष्णुं सदाविष्णुमथापि वा ॥ वैष्णवैः पूजितो नित्यं मूर्तित्रयमयास ने ॥१३२॥ शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः ॥ शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य स मे दिशतु मंगलम् ॥१३३॥ वासुदेवोऽनिरु द्धश्च प्रद्युम्नश्च ततः परः ॥ संकर्षणस्समाख्याताश्चतस्रो मूर्तयो हरेः ॥ १३४ ॥ मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः ॥ रामत्रयं तथा कृष्णो विष्णुस्तुरगवक्त्रकः ॥ १३५ ॥ चक्रं नारायणस्यास्त्रं पांचजन्यं च शार्ङ्गकम् ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मंगलं प्रदिशंतु मे ॥ १३६ ॥ प्रभा सरस्वती गौरी लक्ष्मीश्च शिवभाविता ॥ शिवयोः शासनादेता मंगलं प्रदिशंतु मे ॥ १३७ ॥ इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चैव निर्ऋतिर्वरुणस्तथा ॥ वायुः सोमः कुबेरश्च तथेशानस्त्रिशूलधृक् ॥ १३८ ॥

दें ॥ १३३ ॥ वासुदेव, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न और संकर्षण यह हरिकी मूर्ति हैं ॥ १३४ ॥ मत्स्य, कूर्म, वराह, नारसिंह, वामन, राम तीनों तथा कृष्ण, विष्णु, हयग्रीव ॥ १३५ ॥ चक्र, नारायणके अस्त्र, पांचजन्य, शार्ङ्ग शिवा शिवकी आज्ञाको मानकर मुझे मंगलप्रदान करें ॥१३६॥ प्रभा सरस्वती गौरी लक्ष्मी शिवकी भक्तिवाली शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मंगलको प्रदान करें ॥१३७॥ इन्द्र अग्नि यम निर्ऋति वरुण

वायु सौम्य कुबेर ईशान शूलधारी ॥१३८॥ सब शिवपूजनमें प्रेम करनेवाले शिवके सद्भावसे भावित शिवा शिवकी आज्ञाको मानकर मुझे मंगल प्रदान करे॥१३९॥ त्रिशूल वज्र परशे बाण; खड्ग पाश अंकुश श्रेष्ठपिनाक आयुध आयुध॥१४०॥ और भी देवके दिव्य आयुध और देवीके आयु नित्यही शिवा शिवकी आज्ञाको मानकर मेरा कल्याण करे ॥ १४१ ॥ वृषरूपधारी कामधेनुसे उत्पन्न महाबली धर्म बड़वाग्निको स्पर्धा करनेवाला पाँच गोमताओंसे आवृत ॥ १४२ ॥ तपसे परमेश्वरके वाहनत्वको प्राप्त हुआ, शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मनोरथोंको पूरा करे

सर्वे शिवार्चनरताः शिवसद्भावभाविताः ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मंगलं प्रदिशंतु मे ॥१३९॥ त्रिशूलमथ वज्रं च तथा परशु सायकौ ॥ खड्गपाशांकु शाश्चैव पिनाकश्चायुधोत्तमः ॥१४०॥ दिव्यायुधानि देवस्य देव्याश्चैतानि नित्यशः ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां रक्षां कुर्वंतु मे सदा॥१४१॥ वृषरूपधरो देवः सौरभेयो महाबलः ॥ वडवाख्यानलस्पर्द्धी पञ्चगोमातृभिवृतः ॥१४२॥ वाहनत्वमानुप्राप्तस्तपसापरमेशयोः ॥ तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु ॥ १४३ ॥ नंदा सुनंदा सुरभिः सुशीला सुमनास्तथा ॥ पंचगोमातरस्त्वेताश्शिवलोके व्यवस्थिताः ॥१४४॥ शिवभक्तिपरा नित्यं शिवार्चनपरायणाः ॥ शिवयोः शासनादेव दिशंतु मम वांछितम् ॥१४५॥ क्षेत्रपालो महातेजा नील जीमतसन्निभः ॥ दंष्ट्राकरालवदनः स्फुरद्रक्ताधरोज्ज्वलः ॥१४६॥ रक्तोर्द्ध्वमूर्द्धजः श्रीमान्भ्रुकुटीकुटिलेक्षणः ॥ रक्तवृत्तत्रिनयनः शशिपन्नगभूषणः ॥ १४७ ॥ नग्नस्त्रिशूलपाशासिकपालोद्यतपाणिकः ॥ भैरवो भैरवैः सिद्धैर्योगिनीभिश्च सवृंतः ॥१४८॥

॥१४३॥ नन्दा सुभद्रा सुरभि सुशीला यमुना यह पांचों गोमाता शिवलोकमें स्थित हैं ॥ १४४ ॥ नित्य शिवभक्तिमें तत्पर शिवके पूजनमें परायण शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मनोरथ पूरे करे ॥१४५॥ नीले बादलके समान महातेजस्वी क्षेत्रपाल डाढोंसे करालमुख स्फुरायमान लाल होठसे उज्ज्वल ॥ १४६ ॥ लाल वर्णके ऊपर उठे हुए बाल श्रीमान् टेढी भौंहसे कुटिल देखने वाले लाल और गोल नेत्रोंवाले चन्द्रमा और सर्पके भूषणोंवाले ॥ १४७ ॥ नग्न और त्रिशूल पाश तलवार कपाल हाथमें लिये भैरव भयदायक सिद्ध और योगियोंसे युक्त ॥ १४८ ॥

प्रत्येक क्षेत्रमें स्थित सत्पुरुषोंकी रक्षामें स्थित शिवकोही प्रणाम करनेवाले शिवके सद्भावसे भावित ॥ १४९ ॥ विशेषकर शिवके आश्रितोंको पुत्रके समान रक्षा करते हुए शिवा शिवकी आज्ञाको मानकर मेरा मंगल करे ॥ १५० ॥ तालजंघादिक अपने प्रथम आवरणमें अर्चित हैं; यह चारों शिवा शिवकी आज्ञा मानकर मेरा मंगल करे ॥१५१॥ जो दूसरे भैरवादिक उनके चारों आवरणसे वेष्टित हैं, वे भी शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे ऊपर कृपा करे ॥ १५२ ॥ नारदको आदि लेकर देव पूजित मुनि साध्य देवता और जनलोक निवासी ॥ १५३ ॥ विशेष

क्षेत्रेक्षेत्रे समासीनः स्थितो यो रक्षकस्सताम् ॥ शिवप्रणामपरमः शिवसद्भावभावितः ॥ १४९ ॥ शिवाश्रितान्विशेषेण रक्षन्पुत्रा निवौरसान् ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मङ्गलम् ॥ १५० ॥ तालजङ्घादयस्तस्य प्रथमा वरणेर्चिताः ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां चत्वारः समवन्तु माम् ॥ १५१ ॥ भैरवाद्याश्च ये चान्ये समंतात्तस्य वेष्टिताः ॥ तेऽपि मामनुगृह्णंतु शिवशासन गौरवात् ॥१५२॥ नारदाद्याश्च मुनयो दिव्या देवैश्च पूजिताः ॥ साध्या नागाश्च ये देवा जनलोकनिवासिनः ॥ १५३ ॥ विनिवृत्ताधिकाराश्च महर्लोकनिवासिनः ॥ सप्तर्षयस्तथान्ये वै वैमानिकगणैस्सह ॥ १५४ ॥ सर्वे शिवार्चनरताः शिवाज्ञा वशार्तिवनः ॥ शिवयोराज्ञया मह्यं दिशंतु मम कांक्षितम् ॥१५५॥ गंधर्वाद्याः पिशाचांताश्चतस्रो देवयोनयः ॥ सिद्धाविद्याधराद्याश्च येऽपि चान्ये नभश्चराः ॥ १५६ ॥ असुरा राक्षसाश्चैव पातालतलवासिनः ॥ अनंताद्याश्च नागेन्द्रा वैनतेयादयो द्विजाः ॥ १५७ ॥ कूष्मांडाः प्रेतवेताला ग्रहा भूतगणाः परे ॥ डाकिन्यश्चापि योगिन्य शाकिन्यश्चापि तादृशाः ॥१५८॥

अधिकार वाले महालोकके निवासी तथा दूसरे महर्षि देवताओंके सहित ॥ १५४ ॥ सम्पूर्ण शिवार्चनमें युक्त शिवकी आज्ञाके वशवर्ती शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मनोरथको पूरा करे ॥ १५५ ॥ गन्धर्वोंको आदि लेकर पिशाच पर्यन्त देवयोनि सिद्ध विद्याधर तथा जो दूसरे आकाशचारी हैं ॥ १५६ ॥ असुर राक्षस पातालवासी अनन्तादिक नागेन्द्र वैनतेयादि (गरुण) पक्षी ॥ १५७ ॥ कूष्माण्ड प्रेत वेताल ग्रह

भूतगण डाकिनी योगिनी शाकिनी आदि ॥ १५८ ॥ क्षेत्र आराम बगीचे तीर्थ स्थान द्वीप समुद्र नदी नद तथा दूसरे सरोवर ॥ १५९ ॥ पर्वत सुमेरु कानन आदि चारोंओर पशु पक्षी वृक्ष कृमि कीटादि मृग ॥१६०॥ सब भुवन और भुवनोंके अधीश्वर अंडादिके आवरणोंके साथ आशा दश दिग्गज ॥ १६१ ॥ वर्ण पद मंत्र तत्त्व उनके अधिपति ब्रह्माण्डके धारण करनेवाले रुद्र, दूसरी शक्तिसे रहित रुद्र ॥ १६२ ॥ जो कुछ इस जगत्में है देखा और अनुमान किया हुआ है, वह शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मंगलको प्रदान करे ॥ १६३ ॥ आगे शैवीविद्या जो

क्षेत्रारामगृहादीनि तीर्थान्यायतनानि च ॥ द्वीपाः समुद्रा नद्यश्च नदाश्चान्ये सरांसि च ॥१५९॥गिरयश्च सुमेर्वाद्याः कानानि समंततः ॥पशवः पक्षिणो वृक्षाः कृमिकीटादयो मृगाः ॥१६०॥ भुवनान्यपि सर्वाणि भुवनानामधीश्वरः ॥ अण्डान्यावरणैस्सार्द्धं मासाश्च दश दिग्गजाः ॥१६१॥वर्णाः पदानि मंत्राश्च तत्त्वान्यपि सहाधिपैः॥ ब्रह्मांडधारका रुद्रा रुद्राश्चान्ये सशक्तिकाः ॥१६२॥ यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन्दृष्टं चानुमितं श्रुतम् ॥ सर्वं कामं प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात् ॥१६३॥ अथ विद्या परा शैवी पशुपाशविमोचिनी॥पंचार्थसंज्ञिता दिव्या पशुविद्याबहिष्कृता ॥१६४॥शास्त्रं च शिवधर्माख्यं धर्माख्यं च तदुत्तरम् ॥ शैवाख्यं शिवधर्माख्यं पुराणं श्रुतिसंमितम्॥१६५॥ शैवागमाश्च ये चान्ये कामिकाद्याश्चतुर्विधाः ॥ शिवाभ्याम विशेषेण सत्कृत्येह समर्चिताः ॥ १६६ ॥ ताभ्यामेव समाज्ञाता ममाभिप्रेतसिद्धये ॥ कर्मेदमनुमन्यंतां सफलं साध्वनुष्ठितम् ॥ १६७ ॥ श्वेताद्या नकुलीशां ताः सशिष्याश्चापि देशिकाः ॥ तत्संततीया गुरवो विशेषाद्गुरवो मम ॥ १६८ ॥

पशुपाशकी मुक्त करनेवाली है, पंचब्रह्म रूप होनेसे दिव्य और पशुविद्यासे बहिस्कृत ॥१६४॥ शिवके धर्मानुसार शास्त्र और उसके उत्तर धर्मसे वह शिव धर्मनामक पुराण जो श्रुति सम्मत है ॥ १६५ ॥ जो दूसरे शैव शास्त्र और कामादि चार विद्या हैं; शिवा शिवके निमित्त जो सत्कारसे पूजित है ॥ १६६ ॥ वह उनकी आज्ञासे मेरी अभीष्ट सिद्धिको करें, और भलीप्रकार अनुष्ठान किये इस मेरे कर्मको वे मानें ॥ १६७ ॥ श्वेत आदिको लेकर नकुलीशतक शिष्य गुरु उनके सन्तानको गुरुरूपसे विशेषकर मानें ॥ १६८ ॥

शैव माहेश्वर ज्ञानकर्ममें परायण हमारे इस अच्छी प्रकार अनुष्ठान किये कर्मको मानें ॥ १६९ ॥ जो कि सब ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य क्रमसे वेदवेदांगके तत्त्व जाननेवाले सर्वशास्त्रमें पंडित ॥१७०॥ सांख्य, वैशेषिक, यौग, नैयायिक सौर (सूर्यके उपासक) ब्रह्माके उपासक, रुद्र विष्णुके उपासक दूसरे मनुष्य ॥१७१॥ यह सब श्रेष्ठ पुरुष शिवकी आज्ञा माननेवाले मेरे इस श्रेष्ठ कर्मको फलके निमित्त माने ॥१७२॥ शिवके भक्त सिद्धान्त मार्गमें स्थित शैव पाशुपत महाव्रतधारी शैव और कापालिक शिवके भक्त ॥१७३॥ शिवकी आज्ञाके माननेवाले पूजनीय मेरे ऊपर

शैवा माहेश्वराश्चैव ज्ञानकर्मपरायणाः ॥ कर्मेदमनुमन्यंतां सफलं साध्वनुष्ठितम् ॥ १६९ ॥ लौकिका ब्राह्मणास्सर्वे क्षत्रियाश्च विशः क्रमात् ॥ वेदवेदांगतत्त्वज्ञाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ १७० ॥ सांख्या वैशेषिकाश्चैव यौगा नैयायिका नराः ॥ सौरा ब्रह्मास्तथा रौद्रा वैष्णवाश्चापरे नराः ॥१७१॥ शिष्टाः सर्वे विशिष्टा च शिवशासनयंत्रिताः ॥ कर्मेदमनुमन्यंतां ममाभिप्रेत साधकम् ॥ १७२ ॥ शैवाः सिद्धांतमार्गस्थाः शैवाः पाशुपतास्तथा ॥ शैवा महाव्रतधराः शैवाः कापालिकाः परे ॥ १७३ ॥ शिवाज्ञापा लकाः पूज्या ममापि शिवशासनात् ॥ सर्वे ममानुगृह्णंतु शंसंतु सफलक्रियाम् ॥१७४॥ दक्षिणज्ञाननिष्ठाश्च द क्षिणोत्तरमार्गगाः अविरोधेन वर्ततां मंत्रश्रेयोऽर्थिनो मम ॥ १७५ ॥ नास्तिकाश्च शठाश्चैव कृतघ्नाश्चैव तामसाः ॥ पाषंडाश्चातिपापाश्च वर्ततां दूरतो मम ॥ १७६ ॥ बहुभिः किं स्तुतैरत्र येऽपि केऽपिचिदास्तिकाः ॥ सर्वे मामनुगृह्णंतु संतः शंसंतु मंगलम् ॥ १७७ ॥ नमश्शिवाय सांबाय ससुतायादिहेतवे ॥ पंचावरणरूपेण प्रपंचेनावृताय ते ॥ १७८ ॥

भी शिवकी आज्ञासे अनुग्रह करें; और फलकी सत्क्रियाको प्रदान करें ॥ १७४ ॥ दक्षिण ज्ञाननिष्ठ दक्षिण उदार ज्ञानयुक्तके मार्गमें गमन करनेवाले अस्सी हजार गृहस्थ; इस मेरे मंत्रके फल देनेमें एक सम्मतिसे वर्तें ॥ १७५ ॥ नास्तिक शठ कृतघ्न तामस पाखण्डी पापी यह मुझसे दूर रहें ॥ १७६ ॥ बहुतसी स्तुतिसे क्या है जो कोई भी आस्तिक हैं वे सब मेरे ऊपर अनुग्रह कर और मंगलप्रदान करें ॥ १७७ ॥ पुत्र और पार्वती सहित शिवको प्रणाम करता हूँ, जो पंचावरणरूप प्रपंचमें प्राप्त नहीं होता ॥ १७८ ॥

ऐसा कहकर पृथ्वीमें शिवा शिवके निमित्त प्रणाम कर एक सौ आठ बार पंचाक्षरी विद्याको जपे ॥ १७९ ॥ इसी प्रकार शक्ति विद्याको जपकर और समर्पण कर पीछे क्षमा कराय पूजा शेष समाप्त करे ॥ १८० ॥ यह पुण्यतम स्तोत्र शिवा शिवको अत्यन्त प्यारा है, सबके अभीष्टका देनेवाला भुक्ति मुक्तिका एक साधन है ॥ १८१ ॥ जो इसे नित्य कीर्तन करके सावधान होकर श्रवण करे वह पापोंको दूरकर शिवके सायुज्यको प्राप्त होता है ॥ १८२ ॥ गौका मारनेवाला कृतघ्न वीरघाती गर्भहत्या करनेवाला शरणागत घाती, मित्रका विश्वास घात करनेवाला ॥ १८३ ॥ दुष्ट पापी माता पिताका मारनेवाला इस स्तुतिके जपनेसे उस २ पापसे छूट जाता है ॥ १८४ ॥ दुःस्वप्नादि

इत्युक्त्वा दंडवद्भूमौ प्रणिपत्य शिवं शिवाम्॥ जपेत्पंचाक्षरीं विद्यामष्टोत्तरशतावराम्॥१७९॥ तथैव शक्तिविद्यां च जपित्वा तत्समर्पणम्॥कृत्वा तं क्षमयित्वेशं पूजाशेषं समापयेत् ॥१८०॥ एतत्पुण्यतमं स्तोत्रं शिवयोर्हृदयंगमम् ॥ सर्वाभीष्टप्रदं साक्षाद्भुक्तिमुक्त्यैकसाधनम् ॥१८१॥ य इदं कीर्तयेन्नित्यं शृणु याद्वा समाहितः ॥ स विधूयाशु पापानि शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥१८२॥ गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च वीरहा भ्रूणहापि वा॥शरणागतघाती च मित्रविश्रंभघातकः॥१८३॥ दुष्टपापसमाचारो मातृहा पितृहापि वा॥ स्तवेनानेन जप्तेन तत्तत्पापात्प्रमुच्यते॥१८४॥ दुःखस्वप्नादिमहानर्थसूचकेषु भयेषु च ॥ यदि संकीर्तयेदेतन्न ततो नार्थभाग्भवेत् ॥ १८५ ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं यच्चान्यदपि वाञ्छितम् ॥ स्तोत्रस्यास्य जपे तिष्ठंस्तत्सर्वं लभते नरः ॥ १८६ ॥ असंपूज्य शिवस्तोत्रं जपात्फलमुदाहृतम् ॥ संपूज्य च जपे तस्य फलं वक्तुं न शक्यते ॥१८७॥ आस्तामियं फलावाप्तिरस्मिन्संकीर्तिते सति ॥ सार्द्धं मंबिकया देवः श्रुत्वैवं दिवि तिष्ठति ॥ १८८ ॥

महा अनर्थ सूचन करनेवाले भयोंमें जो इसको कीर्तन करता है, वह अनर्थ भागी नहीं होता है ॥ १८५ ॥ आयु आरोग्य ऐश्वर्य और भी जो कुछ वांछित है, इस स्तोत्रके जप करनेसे मनुष्य सपूर्ण फलको प्राप्त होता है ॥ १८६ ॥ शिवके स्तोत्रको विना पूजे जपसे ही फलका होना इतना कहा है, परन्तु जो पूजन कर जप करता है उसका फल कोई भी कहनेको समर्थ नहीं है ॥ १८७ ॥ इस स्तोत्रके कीर्तन करतेही फलकी प्राति होती है; इसके पाठमात्रसे देवी देवके सहित स्वर्गलोकमें स्थित होता है ॥ १८८ ॥

इस कारण देवदेवको उमाके सहित आकाशमें पूजन कर हाथ जोड़कर खड़ा हो इस स्तोत्रका उच्चारण करे ॥ १८९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तमीवायवीसंहितायामुत्तरखण्डे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ उपमन्यु बोले, हे कृष्ण ! यह तुम्हारे प्रति दोनों लोकमें सिद्धिका देनेवाला स्तोत्र कहा, यह क्रिया तप जप ध्यानका महासमुच्चय है ॥ १ ॥ अब शैवोंको यही फलका देनेवाला पूजा होम जप दानमय महान् कर्म कहते हैं ॥ २ ॥ मंत्रार्थका जाननेवाला प्रथम मंत्रार्थकी साधना करे; जो देखकर सिद्ध किया मंत्र है वह अन्यथा फल नहीं देता ॥ ३ ॥ सिद्ध

तस्मान्नभसि संपूज्य देवंदेवं सहोमया॥कृतांजलिपुटस्तिष्ठंस्तोत्रमेतदुदीरयेत्॥१८९॥इतिश्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवमहास्तोत्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥ उपमन्युरुवाच॥ एतत्ते कथितं कृष्ण कर्मैहामुत्र सिद्धिदम्॥ क्रियातपोजपध्यानसमुच्चयमयं परम् ॥१॥ अथ वक्ष्यामि शैवानामिहैव फलदं नृणाम् ॥ पूजाहोमजपध्यानतपोदानमयंमहत्॥ ॥ २ ॥ तत्र संसाधयेत्पूर्वं मन्त्रं मंत्रार्थवित्तमः॥दृष्टसिद्धिकरं कर्मनान्यथाफलदंयतः॥३॥ सिद्धमन्त्रोऽप्यदृष्टेन प्रबलेनतु केनचित् ॥ प्रतिबन्धफलं कर्म न कुर्यात्सहसा बुधः॥४॥ तस्य तु प्रतिबन्धस्य कर्तु शक्येह निष्कृतिः ॥ परीक्ष्य शकुनाद्यैस्तदादौ निष्कृतिमाचरेत् ॥ ५ ॥ योऽन्यथा कुरुते मोहात्कर्मैहिकफलं नरः ॥ न तेन फलभाक्स स्यात्प्राप्नुयाच्चोपहास्यताम् ॥६॥ अविस्रब्धो न कुर्वीत कर्म दृष्टफलं क्वचित् ॥ स खल्वश्रद्धधानः स्यान्नाश्रद्धः फलमृच्छति ॥७॥ नापराधोस्ति देवस्य कर्मण्यपि तु निष्फले ॥ यथोक्तकारिणां पुंसामिहैव फलदर्शनात्॥ ८ ॥

हुआ मन्त्रभी किसी प्रबल अदृष्टसे हो जाय तो फिर सहसा न करे ॥ ४ ॥ उस प्रतिबन्धकी निष्कृति हो सकती है, परीक्षा कर शकुनादिसे उसकी निष्कृति करे ॥ ५ ॥ जो मनुष्य मोहसे यहांके फलदायक कर्मको अन्यथा करता है वह उसका फल न पाकर उस हास्यताका भागी होता है ॥ ६ ॥ फलांशमें विश्वासरहित इष्ट फल कर्मको कभी न करे वह अवश्य अश्रद्धावाला होकर अश्रद्धाके फलको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥निष्फल कर्ममें देवका अपराध नहीं है, यथोक्त कर्म करनेवाले पुरुषोंको यही फल मिलता है ॥ ८ ॥

साधक सिद्धमन्त्र जिसने सब प्रतिबन्ध दूर किये हैं, विश्वासी और श्रद्धावाला कर्म करके यथोक्त फलको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ अथवा उसकी फल प्राप्तिके निमित्त ब्रह्मचर्य से रत रहे रात्रिको हविष्य अन्न खीर वा फल खाय ॥ १० ॥ हिंसादिसे निषिद्ध अन्नको मनसे भी न स्वीकार करे; सदा भस्म शरीरमें लगाय सुन्दर वेषसे पवित्र रहे ॥ ११ ॥ इस प्रकार आचार युक्तहो अनुकूल शुभदिनमें पूर्वोक्त लक्षणवाले देशमें पुष्प मालाओंसे अलंकृत ॥१२॥ देशमें हाथके प्रमाण भूमिको गोबरसे लीपकर अपने तेजसे दीप्तिमान् श्रेष्ठ कमलको लिखे ॥ १३ ॥ तप्त सुवर्णके

साधकः सिद्धमंत्रश्च निरस्तप्रतिबंधकः ॥विश्वस्तः श्रद्धधानश्च कुर्वन्नाप्नोति तत्फलम् ॥ ९ ॥ अथवा तत्फलावाप्त्यै ब्रह्मचर्यरतो भवेत् ॥ रात्रौ हविष्यमश्नीयात्पायसं वा फलानि वा॥१०॥ हिंसादि यन्निषिद्धं स्यान्न कुर्यान्मनसापि तत्॥ सदा भस्मानुलिप्तांगस्सुवेषश्च शुचिर्भवेत्॥११॥ इत्थमाचारवान्भूत्वा स्वानुकूले शुभेऽहनि ॥ पूर्वोक्तलक्षणे देशे पुष्पदामाद्यलंकृते॥१२॥ आलिप्य शकृता भूमिं हस्तमानावरां यथा ॥ विलिखेत्कमले भद्रे दीप्यमानं स्वतेजसा॥१३॥ तप्तजांबूनदमयमष्टपत्रं सकेसरम् ॥ मध्ये कर्णिकया युक्तं सर्वरत्नैरलंकृतम्॥१४॥स्वाकारसदृशेनैव नालेन च समन्वितम् ॥ तादृशे स्वर्णनिर्माणे कंदे सम्यग्विधानतः ॥ ॥ १५ ॥ तत्राणिमादिकं सर्वं संकल्प्य मनसा पुनः ॥ रत्नजं वाथ सौवर्णं स्फटिकं वा सलक्षणम् ॥ लिङ्गं सवेदिकं चैव स्थापयित्वा विधानतः ॥ १६ ॥ तत्रावाह्य यजेद्देवं सांबं सगणमव्ययम् ॥ तत्र माहेश्वरीकल्प्या मूर्तिर्मूर्तिमतः प्रभोः ॥ १७ ॥ चतुर्भुजा चतुर्वक्त्रा सर्वाभरणभूषिता ॥ शार्दूलचर्मवसना किंचिद्विहसितानना ॥ १८ ॥

समान आठदल और पराग (केसर) से युक्त मध्यमें कार्णिका और सम्पूर्ण रत्नोंसे अलंकृत ॥ १४ ॥ अपने ही आकारके समान तालसे युक्त उस प्रकार स्वर्णके बने हुए कन्दमें भलीप्रकारसे स्थित ॥ १५ ॥ वहां उसमें अणिमादि सिद्धियोंको मनसे संकल्पित कर रत्न सुवर्ण वा अच्छे लक्षणवाले स्फटिकमणिके लिंगको वेदीके सहित यत्नसे स्थापन करके ॥१६॥ विधिपूर्वक अविनाशी देवको देवी गण आदिके सहित आवाहन कर उसमें प्रभुकी महेश्वरी मूर्तिकी कल्पना करके॥१७॥ चार भुजा चार मुख सम्पूर्ण आभरणोंसे भूषित शार्दूल चर्मके वस्त्र धारे कुछेक हसँते हुए

मुखसे युक्त ॥१८॥ वरदायक अभय हाथसे युक्त मृग टंक धारे अथवा आठभुजा मूर्तिका ध्यान करे जैसी रुचिहो वैसा करे ॥ १९ ॥ तब त्रिशूल परशु खड्ग वज्र दक्षिण हाथमें और बांए हाथमें पाश अंकुश खेट नागको धारण किये ॥ २० ॥ बाल सूर्यके समान प्रत्येक मुख तीन लोचन उनका पूर्वमुख सौम्य अपने आकारके समान प्रभावाला ॥ २१ ॥ और दक्षिणकी ओरका नीले मेघके समान घोरदर्शन, उत्तरका मूंगेके समान नीली अलकोंसे विभूषित ॥२२॥ पश्चिमका पूर्ण चन्द्रमाके समान सौम्य चन्द्रकलाको धारण करनेवाला उनके कमण्डलुमें आरूढ़

वरदाभयहस्ता च मृगटंकधरा तथा॥ अथ वाष्टभुजा चिंत्या चिंतकस्य यथारुचि॥१९॥तदात्रिशूलपरशुखड्गवज्राणिदक्षिणे ॥ वामे पाशांकुशौ तद्वत्खेटं नागं च बिभ्रती ॥ २० ॥ बालार्कसदृशप्रख्या प्रतिवक्त्रंत्रिलोचना ॥ तस्याः पूर्वमुखं सौम्यं स्वाकारस दृशप्रभम् ॥२१॥ दक्षिणं नीलजीमूतसदृशं घोरदर्शनम् ॥ उत्तरं विद्रुमप्रख्यं नीलालकविभूषितम् ॥ २२ ॥ पश्चिमं पूर्णचंद्राभं सौम्यमिंदुकलाधरम् ॥ तदंकमंडलारूढा शक्तिर्माहेश्वरी परा॥२३॥ महालक्ष्मीरिति ख्याता श्यामा सर्वमनोहरा ॥ मूर्तिं कृत्वे वमाकारां सकलीकृत्य च क्रमात् ॥ २४ ॥ मूर्तिमंतमथावाह्य यजेत्परमकारणम् ॥ स्नानार्थं कल्पयेत्तत्र पंचगव्यं तु कापिलम् ॥२५॥ पंचामृतं च पूर्णानि बीजानि च विशेषतः ॥ पुरस्तान्मण्डलं कृत्वा रत्नचूर्णाद्यलंकृतम् ॥२६॥ कर्णिकायां प्रविन्यस्येदी शानकलशं पुनः ॥ सद्यादिकलशान्पश्चात्परितस्तस्य कल्पयेत्॥२७॥ ततो विद्येशकलशानष्टौ पूर्वादिवत्क्रमात् ॥ तीर्थाम्बुपूरि तान्कृत्वा सूत्रेणावेष्टच पूर्ववत् ॥ २८ ॥

हुई महेश्वरकी अपरा शक्ति है॥२३॥वह महालक्ष्मी श्यामा नामसे प्रसिद्ध सबके मन हरनेवाली है, इसप्रकार मूर्ति बनाय संकल्पित कर ॥२४॥ मूर्तिमान् परम कारणको आवाहन कर उनका पूजन करे, स्नानके निमित्त कपिला गौके पंचगव्यकी कल्पना करे ॥ २५ ॥ पंचामृतसे पूर्ण बीज विशेष करके आगे रत्नादिके चूर्णसे युक्त मण्डलको करके ॥ २६ ॥ कर्णिकामें ईशान कलशको स्थापन कर पीछे सद्यादि मूर्तियोंके कलशोंको उसके चारों ओर कल्पित करे ॥२७॥ फिर विद्येशके आठों कलशोंको पूर्वदिशाके क्रमसे तीर्थोंके जलसे भर पूर्वके समान सूत्रसे

वेष्टितकर ॥ २८ ॥ उसमें मन्त्र और विधानके सहित पवित्र पुण्य वस्तुओंको डालकर चारों ओर उसे दुकूलादि वस्त्रसे आच्छादन कर ॥२९॥ और उन मन्त्रोंको पढकर सर्वत्र मंत्रन्यास करता हुआ जिस समय स्नानकालकी प्राप्ति हो तब सब मंगलके बाजोंके सहित ॥ ३० ॥ पंचगव्यादिसे परमेश्वरको स्नान करावे, फिर कुशाके जल और दूसरे सुवर्ण रत्नादि ॥ ३१ ॥ तथा जल गंध पुष्पादिसे सिद्ध किये हुए क्रमसे प्रतिमन्त्रसे उठाकर परमेश्वरको स्नान कराये ॥ ३२ ॥ गन्ध पुष्प दीपकसे पूजा कर्म पूर्ण करे, चार कर्षका एक पल होता है, ग्यारह पलसे

पुण्यद्रव्याणि निक्षिप्य समन्त्रं सविधानकम्॥ दुकूलाद्येन वस्त्रेण समाच्छाद्य समंततः॥२९॥ सर्वत्र मंत्रं विन्यस्य तत्तन्मंत्रपुरस्सरम् ॥ स्नानकाले तु संप्राप्ते सर्वमङ्गलनिस्वनैः ॥३०॥ पंचगव्यादिभिश्चैवस्नापयेत्परमेश्वरम् ॥ ततः कुशोदकाद्यानि स्वर्ण रत्नोदकान्यपि ॥३१॥ गंधपुष्पादिसिद्धानि मन्त्रसिद्धानि च क्रमात् ॥ उद्धृत्यो द्धृत्य मन्त्रेण तैस्तैस्स्नाप्य महेश्वरम्॥३२॥ गंध पुष्पादिदीपांश्च पूजाकर्म समाचरेत्॥ पलावरः स्यादालेप एकादशपलोत्तरः॥३३॥ सुवर्णरत्नपुष्पाणि शुभानि सुरभीणि च ॥ नीलोत्पलाद्युत्पलानि बिल्वपत्राण्यनेकशः ॥३४॥ कमलानि च रक्तानि श्वेतान्यपि च शंभवे ॥ कृष्णागुरूद्भवो धूपः सकर्पूराज्यगुग्गुलः ॥ ३५ ॥ कपिलाघृतसंसिद्धा दीपाः कर्पूरवर्तिजाः ॥ पंच ब्रह्मषडंगानि पूज्यान्यावरणानि च ॥ ३६ ॥ नैवेद्यः पयसा सिद्धः स गुडाज्यो महाचरुः ॥ पाटलोत्पलपद्माद्यैः पानीयं च सुगन्धितम् ॥३७॥ पंचसौगंधिकोपेतं तांबूलं च सुसंस्कृतम् ॥ सुवर्णरत्नसिद्धानि भूषणानि विशेषतः ॥ ३८ ॥

कमती उवटनको द्रव्य नहीं होना चाहिये ॥३३॥ सुवर्ण रत्न पुष्प सुन्दर सुगंधिसे युक्त नील उत्पल कमल तथा अनेक बेल पत्र ॥ ३४ ॥ लाल और श्वेत कमल जो मिल सकें काली अगरकी धूप कपूर घी गूगल ॥ ३५ ॥ कपिलाके घृतसे सिद्ध हुए दीपक कपूरकी बत्ती पंचब्रह्म षडंगादि पूजाके आवरण ॥ ३६ ॥ और दूधयुक्त गुड घृतका बनाया चरु निवेदन कर, लाल कमलके पत्रादिसे सुगंधित जल करके ॥३७॥ पांच सुगंधियोंसे युक्त ताम्बूल रत्नोंसे सिद्ध हुए अनेक भूषण ॥ ३८ ॥

विचित्र सूक्ष्म नये वस्त्र दर्शनके योग्य गान और वाद्यके सहित देने चाहिये ॥ ३९ ॥ और एक लाख संख्यायुक्त मूलमंत्रका जप करना चाहिये एक वारसे अधिक अर्थात् तीन वारसे न्यून पूजा न करे, इससे अधिक फल होता है ॥ ४० ॥ इससे दश संख्यायुक्त होम और प्रति द्रव्यमें सौसे अधिक वार घोर रूप शिवका स्मरण मारण उच्चाटनादिमें करना चाहिये ॥ ४१ ॥ शिवलिंग और शिवाग्निमें शांति और पुष्टिमें शांति युक्त प्रयोग करे ॥ ४२ ॥ मारणादि कर्म लोहेके स्रुवे बनाने चाहिये; और शिवाग्निमें तथा अन्य प्रतिमाओंमें सौम्य शरीर शंकरका स्मरण करे ॥ ४३ ॥ शांति आदिमें सुवर्णके बनावे दूर्वा घृत गौके दूधमें मिले हुए शहद करके घृत युक्त चरु

वासांसि च विचित्राणि सूक्ष्माणि च नवानि च॥दर्शनीयानि देयानि गानवाद्यादिभिस्सह॥३९॥जपश्चमूलमंत्रस्य लक्षःपरम संख्यया॥एकावरा त्र्युत्तरा च पूजा फलवशादिह॥४०॥ दशसंख्यावरोहोमः प्रतिद्रव्यं शतोत्तरः॥घोररूपश्शिवश्चित्योमारणोच्चाटनादिषु॥४१॥शिवलिंगे शिवाग्नौ च ह्यन्यासु प्रतिमासु च॥ चिंत्यस्सौम्यमनुश्शंभुःकार्यै शांतिकपौष्टिके॥४२॥ आयसौ स्रुक्स्रुवौ कार्यौ मारणादिषु कर्मसु ॥ तदन्यत्र तु सौवर्णौ शांतिकाद्येषु कृत्स्नशः॥४३॥दूर्वया घृतगोक्षीरमिश्रया मधुनातथा॥ चरुणा सघृतेनैव केवलं पयसापिवा॥४४॥ जुहुयान्मृत्युविजये तिलैरोगोपशांतये॥घृतेन पयसाचैव कमलैर्वाथ केवलैः॥४५॥ समृद्धिकामो जुहुयान्महादारिद्र्यशांतये॥ जातीपुष्पेण वश्यार्थीजुहुयात्सघृतेन तु॥४६॥घृतेन करवीरैश्च कुर्यादाकर्षणंद्विजः॥ तैलेनोच्चाटनं कुर्यात्स्तंभनं मधुना पुनः ॥४७॥ स्तंभनं सर्षपेणापि लशुनेन तु पातनम्॥ ताडनं रुधिरेण स्यात्खर स्योष्ट्रस्य चोभयोः ॥४८॥ मारणोच्चाटने कुर्याद्रोहिबीजैस्तिलान्वितैः ॥ विद्वेषणं च तैलेन कुर्याल्लांगलकस्य तु ॥ ४९ ॥

और केवल दूधसे ॥ ४४ ॥ मृत्युके जीतनेके निमित्त हवन करे; रोग शांतिके निमित्त तेलसे हवन करे, घृत जल अथवा केवल कमलोंसे ॥ ४५ ॥ धनकी इच्छा करनेवाला शांतिके निमित्त हवन करे, वशीकरणमें घृत और जाती (मालती) पत्तोंसे हवन करें ॥ ४६ ॥ आकर्षणमें घृत और करवीर (कनेर) फूलोंसे हवन करे; तेलसे उच्चाटन और मधुसे स्तम्भन करे ॥ ४७ ॥ सरसोंसे भी स्तम्भन करे लहसनसे पातन, खर और ऊंटके रुधिरसे ताडन करे ॥ ४८ ॥ तिलसे युक्त रोहि (रोहतकवृक्ष) के बीजमें मारण और उच्चाटन करे

लांगल (नारियल)के तेलसे विद्वेषण करे ॥ ४९ ॥रोहिवीजसे बंधन और सेनाका स्तंभन करे; तथा लाल सरसोंसे मिले हुए सम्पूर्ण द्रव्योंसे हवन करे ॥ ५० ॥ अभिचारमें हाथसे यत्नद्वारा उत्पन्न किये तेलसे हवन करे, कट्टूष नाम विशेष अनाजसे और कपासकी टेंटसे ॥५१॥सरसों और तेल मिलाकर अभिचारमें हवन करे; दूधसे हवन करनेसे ज्वरकी शान्ति और सौभाग्यफल मिलताहै ॥ ५२ ॥ मधु घृत दधिसे युक्त होम सब सिद्धिका करनेवाला है, दूध चावल अथवा केवल चरुसे ॥ ५३ ॥ शान्ति और पुष्टिके निमित्त सात समिधाओंसे हवन करे, विशेष द्रव्योंसे होम ॥ ५४ ॥ वशीकरण और आकर्षण श्रीलाभमें करे; बेलपत्रसे हवन करनेसे शत्रुसे जय प्राप्त होताहै ॥ ५५ ॥ शान्तिकार्यमें ढाक

बंधनं रोहिबीजेन सेनास्तंभनमेव च ॥ रक्तसर्षपसंमिश्रैर्होमद्रव्यैरशेषतः॥५०॥ हस्तयंत्रोद्भवैस्तैलैर्जुहुयादाभिचारिके ॥ कटुकी तुषसंयुक्तैः कार्पासास्थिभिरेव च ॥ ५१ ॥ सर्षपैस्तैलसंमिश्रैर्जुहुयादाभिचारिके ॥ ज्वरोपशांतिदं क्षीरं सौभाग्यफलदं तथा ॥ ५२ ॥ सर्वसिद्धिकरो होमः क्षौद्राज्यदधिभिर्युतैः ॥ क्षीरेण तंदुलैश्चैव चरुणा केवलेन वा ॥ ५३ ॥ शांतिकं पौष्टिकं वापि सप्तभिः समिदादिभिः ॥ द्रव्यैर्विशेषतो होमे वश्यमाकर्षणं तथा॥५४॥ वश्यमाकर्षणं चैव श्रीप्रदं च विशेषतः॥ बिल्वपत्रैस्तु हवनं शत्रोर्विजयदं तथा ॥५५ ॥ समिधः शांतिकार्येषु पालाशखदिरादिकाः ॥ करवीरार्कजाः क्रौर्ये कण्टकिन्यश्च विग्रहे ॥ ५६ ॥ प्रशांतः शांतिकं कुर्यात्पौष्टिकं च विशेषतः ॥ निर्घृणः क्रुद्धचित्तस्तु प्रकुर्यादाभिचारिकम् ॥ ५७ ॥ अतीवदुरवस्थायां प्रतीकारांतरं न चेत् ॥ आततायिनमुद्दिश्य प्रकुर्यादाभिचारिकम् ॥५८॥ स्वराष्ट्रपतिमुद्दिश्य न कुर्यादाभिचारिकम्॥ यद्यास्तिकस्सुधर्मिष्ठो मान्यो वा योऽपिकोपि वा॥५९॥

और खैरकी समिधा करे, निग्रहमें करवीर आक और कंटकारिकी समिधा करे ॥५६॥ शान्त होकर शान्ति और पुष्टि कर्म करे, अभिचार कर्म दयारहित और क्रुद्धचित्त होकर करना चाहिये ॥ ५७ ॥ जो बहुत दुरवस्थामें पड़ा हो और कोई प्रतिकार न हो सके तो आततायी (अग्नि देनेवाले, शस्त्रपाणि धनहारी क्षेत्र और स्त्रीके हारनेवाले) के मारने में दोष नहीं है इनके उद्देशसे अभिचार करे, उसमें दोष न मानें ॥ ५८ ॥ परन्तु अपने देशके स्वामीपर अभिचार न करे; जो आस्तिक धर्मिष्ठ अथवा माननीय कोई हो ॥ ५९ ॥

उसके ऊपर भी अभिचार न करे; और आततायी इन गुणोंसे युक्त हो तो उसपर भी न करे; मनसे वचनसे कर्मसे कोई शिवके भक्त हैं उनके आश्रित हैं ॥ ६० ॥ तथा अपने राज्यके स्वामीके उद्देशसे अभिचार कर मनुष्य शीघ्रही पतित हो जाता है॥ ६१ ॥ इस कारण अपने राज्यके पालन करनेवाले और किसी शिवभक्त के ऊपर हिंसादिका उपचार न करे, जो अपना सुख चाहै सो ॥ ६२ ॥ और भी किसी उद्देशसे मारणादिक करके पश्चात्तापसे संयुक्त हो प्रायश्चित्त करे ॥ ६३ ॥ निर्धन मनुष्य बाणलिंगकी मूर्तिको पूजे तो धनी होता है; अथवा स्वयं उत्पन्न हुए लिंग अथवा ऋषियोंके स्थापित किये श्रुति प्रसिद्ध लिंगमें ॥६४॥ सुवर्ण रत्नादिसे उनकी पूजा करनेकी शक्ति न हो

तमुद्दिश्यापि नो कुर्यादाततायिनमप्युत ॥ मनसाकर्म्मणावाचा योऽपि कोपि शिवाश्रितः ॥ ६० ॥ स्वराष्ट्रपतिमुद्दिश्य शिवाश्रितमथापि वा ॥ कृत्वाभिचारिकं कर्म सद्यो विनिपतेन्नरः ॥६१॥ स्वराष्ट्रपालकं तस्माच्छिवभक्तं च कञ्चन ॥ न हिंस्याद भिचाराद्यैर्यदीच्छेत्सुखमात्मनः ॥ ६२ ॥ अन्यं कमपि चोद्दिश्य कृत्वा वै मारणादिकम् ॥ पश्चात्तापेन संयुक्तः प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ ६३ ॥ बाणलिंगेऽपि वा कुर्यान्निर्धनो धनवानपि ॥ स्वयंभूतेऽथ वा लिंगेआर्षके वैदिकेऽपि वा ॥६४॥ अभावे हेमरत्नानामशक्तौ च तदर्जने ॥ मनसैवाचरेदेतद्द्रव्यैर्वा प्रतिरूपकैः ॥ ६५ ॥ क्वचिदंशे तु यःशक्तस्त्वशक्तः क्वचिदंशके ॥ सोऽपि शक्त्यनुसारेण कुर्वंश्चेत्फलमृच्छति ॥ ६६ ॥ कर्मण्यनुष्ठितेऽप्यस्मिन्फलं यत्र न दृश्यते ॥ द्विस्त्रिर्वावर्त्तयेत्तत्र सर्वथा दृश्यते फलम् ॥ ६७ ॥ पूजोपयुक्तं यद्द्रव्यं हेमरत्नाद्यनुत्तमम् ॥ तत्सर्वं गुरवे दद्याद्दक्षिणां च ततः पृथक् ॥ ६८ ॥ स चेन्नेच्छति तत्सर्वं शिवाय विनिवेदयेत् ॥ अथवा शिवभक्तेभ्यो नान्येभ्यस्तु प्रदीयते॥६९॥

तो मनसे ही उन द्रव्योंकी कल्पना करे ॥६५ ॥ जो किसी अंशमें असमर्थ और किसी अंशमें समर्थ हो तो वह अपनी शक्तिके अनुसार भी उस कार्यको करता हुआ उसके फलको प्राप्त होता है ॥ ६६ ॥ जिस कर्मके अनुष्ठान करनेसे फल न दीखे तो वह दो या तीन वार करे तो अवश्य फल होगा ॥ ६७ ॥ पूजामें उपयुक्त जो द्रव्य सुवर्ण रत्नादि है, वह सब गुरूको दे और पीछेसे दक्षिणा भी दे ॥ ६८ ॥ और यदि गुरू इसकी इच्छा न करे तो शिवके निमित्त निवेदन करदे अथवा शिवके भक्तोंको दे दूसरोंको न दे ॥ ६९ ॥

और जो गुरु आदिकी अपेक्षा न करके स्वयं कार्य साधन करे सो भी इसी प्रकार आचरण करे; स्वयं उसको ग्रहण न करे ॥७०॥ और जो लोभसे पूजा द्रव्यको स्वयं ग्रहण कर लेता है वह मूर्ख अपने मनोरथको नहीं प्राप्त होता इसमें संदेह नहीं ॥ ७१ ॥ और देव (अर्चित किये लिंग) को नित्य स्वयं ग्रहण करे अथवा न करे जो ग्रहण करे तो उस लिंगको नित्य स्वयं वा दूसरा पुरुष पूजा करता रहे; अर्थात् देवादिसे अर्चित ज्योतिर्लिंगके द्रव्य ग्रहण करनेमें अपनी इच्छा है ले अथवा न ले; पुरुषार्थ प्रबोधमें लिखा है कि ज्योतिर्लिंगके विना जो दूसरे लिंग पूजे जाते हैं उनके नैवेद्य और निर्माल्य भक्षणसे तप्तकृच्छ्र व्रत करना चाहिये, बेरलिंग स्वयं प्रादुर्भूत हुए लिंग अथवा चन्द्रकान्त हृदयके लिंगका

यः स्वयं साधयेच्छक्त्या गुर्वादिनिरपेक्षया ॥ सोऽप्येवमाचरेदत्र न गृह्णीयात्स्वयं पुनः॥७०॥ स्वयं गृह्णाति यो लोभात्पूजां गद्रव्यमुत्तमम्॥कांक्षितं न लभेन्मूढो नात्रकार्या विचारणा ॥७१॥ अर्चितं यत्तु तल्लिंगं गृह्णीयाद्वा नवा स्वयम्॥ गृह्णीयाद्यदि तन्नित्यं स्वयं वान्योऽपि वार्चयेत्॥ ७२ ॥ यथोक्तमेव कर्मैतदाचरद्योऽनपायतः ॥ फलं व्यभिचरेन्नैवामित्यतः किं प्ररोचकम् ॥७३॥ तथाप्युद्देशतो वक्ष्ये कर्मणः सिद्धिमुत्तमम्॥ अपि शत्रुभिराक्रांतो व्याधिभिर्वाप्यनेकशः॥७४॥ मृत्योरास्यगतश्चापि मुच्यते निरपायतः॥ पूजायतेऽतिकृपणो रिक्तो वैश्रवणायते ॥७५॥ कामायते विरूपोऽपि वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ शत्रुर्मित्रायते सद्यो विरोधी किंकरायते ॥ ७६ ॥

नैवेद्य भक्षण करनेसे चन्द्रायण व्रत करे; स्वयंभूलिंग बाणलिंग रत्ननिर्मित रसनिर्मित सिद्धोंके स्थापित किये लिंगमें चंडका अधिकार नही है, जहाँ चंडका अधिकार है वहाँ मनुष्योंको भोजन करना उचित नहीं ॥ ७२ ॥ जो क्लेशरहित इस कर्मको नित्य अनुष्ठान करता है वह फलहीनताको प्राप्त नहीं होता, इससे उत्तम और क्या वार्ता होगी ॥ ७३ ॥ तो भी उद्देशसे कर्मके द्वारा उत्तम सिद्धिको कहता हूं; शत्रुसे आक्रान्त वा अनेक प्रकारकी व्याधियुक्त होनेसे ॥ ७४ ॥ और मृत्युके मुखसे भी प्राप्त होनेसे क्लेश रहित हो छूट जाता है, कृपण राजा और दरिद्री कुबेरवत् हो जाता है ॥ ७५ ॥ विरूप कामसे प्राप्त होता है और वृद्ध तरुण हो जाता है, शत्रु मित्र होता और विरोधी

दास हो जाता है ॥ ७६ ॥ अमृत विष होता है और विष अमृत हो जाता है, समुद्र स्थल और स्थल समुद्र हो जाता है ॥ ७७ ॥ पर्वत गर्त और गर्त पर्वत हो जाता है, अग्नि सरोवर और सरोवर अग्नि हो जाता है ॥ ७८ ॥ उद्यान वन और वन उद्यान हो जाता है क्षुद्रमृग सिंह और सिंह क्रीडा मृग हो जाता है ॥ ७९ ॥ स्त्री स्वयं वश्या और लक्ष्मी सदास्थिर रहती है; स्वच्छन्द जानेवाली वाणी हो जाती है, और कीर्ति गणिकारूप हो जाती है अर्थात् सब जगह प्राप्त होती है ॥ ८० ॥ बुद्धि स्वच्छन्दचारिणी मन परम कठिन पदार्थको भी विषय करने

विषायते यदमृतं विषमप्यमृतायते॥ स्थलायते समुद्रोऽपि स्थलमप्यर्णवायते॥७७॥ महीधरायते श्वभ्रं स च श्वभ्रायते गिरिः॥ पद्माकरायते वह्निः सरो वैश्वानरायते॥७८॥ वनायते यदुद्यानं तदुद्यानायते वनम् ॥ सिंहायते मृगः क्षुद्रःसिंहः क्रीडामृगायते ॥ ७९ ॥ स्त्रियोऽभिसारिकायन्ते लक्ष्मीः सुचरितायते ॥ स्वैरप्रेष्यायते वाणी कीर्तिस्तु गणिकायते ॥८०॥ स्वैराचारायते मेधा वज्र सूचीयते मनः ॥ महावातायते शक्तिर्बलं मत्तगजायते ॥ ८१ ॥ स्तम्भायते समुद्योगैः शत्रुपक्षे स्थिता क्रिया ॥ शत्रुपक्षायतेऽरीणां सर्व एव सुहृज्जनः ॥ ८२ ॥ शत्रवः कुणपायन्ते जीवन्तोऽपि सबांधवाः ॥ आपन्नोऽपि गतारिष्टः स्वयं खल्व मृतायते ॥ ८३ ॥ रसाय नायते नित्यमपथ्यमपि सेवितम् ॥ अनिशं क्रियमाणापि रतिस्त्वभिनवायते ॥८४॥ अनागतादिकं सर्वं करस्थामलकायते ॥ यादृच्छिकफलायन्ते सिद्धयोऽप्यणिमादयः ॥ ८५ ॥

वाला वज्रसूचीसदृश हो जाता है शक्ति महावातके सदृश हो जाती है बल मत्तगजके सदृश हो जाता है ॥ ८१ ॥ उद्योगयुक्त शत्रुके पक्षवालोंकी क्रिया शान्त हो जाती है, शत्रुओंके मित्र उनके शत्रु हो जाते हैं ॥ ८२ ॥ शत्रु मृतकके समान आचरण करते हैं; और यही दशा जीते हुए उनके बन्धुओंकी हो जाती है, निकट आया हुआ अरिष्ट दूर हो जाता है ॥८३॥ सेवन किया अपथ्य भी रसरूप हो जाता है; रात दिन करनेसे भी रति नवीन हो जाती है ॥८४॥ अनागत वृत्तान्त भी हाथमें स्थितके समान हो जाता है, अणिमादिक सिद्धि इच्छा करतेही फलती हैं ॥८५॥

बहुत कहनेसे क्या है सब कामादिकी सिद्धिमें इस कार्यके करनेपर कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता है ॥ ८६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां सप्तमी वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे ऐहिककर्मसिद्धिवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ उपमन्यु बोले, इसके उपरान्त अब केवल परलोकमें फल देनेवाली विधिको कहता हूं, जिसके समान त्रिलोकीमें कोई दूसरा कर्म नहीं है ॥ १ ॥ अत्यन्त पुण्यसे सम्पूर्ण देवताओंसे अनुष्ठान किया विशेष ब्रह्मा विष्णु और रुद्रसे अनुष्ठित ॥ २ ॥ इन्द्रादि लोकपाल सूर्यादि नवग्रह विश्वामित्र वसिष्ठ ब्रह्मवित् महर्षि

बहुनात्र किमुक्तेन सर्वकामार्थसिद्धिषु ॥ अस्मिन्कर्मणि निर्वृत्ते त्वनवाप्यं न विद्यते ॥ ८६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे ऐहिकसिद्धिकर्मवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥ उपमन्युरुवाच ॥ अतःपरं प्रवक्ष्यामिकेवलामुष्मिकं विधिम् ॥ नैतेन सदृशं किंचित्कर्मास्ति भुवनत्रये॥१॥ पुण्यातिशयसंयुक्तः सर्वैर्देवैरनुष्ठितः ॥ ब्रह्मणा विष्णुना चैवरुद्रेण च विशेषतः ॥२ ॥ इंद्रादिलोकपालैश्च सूर्याद्यैर्नवभिर्ग्रहैः ॥ विश्वामित्रवसिष्ठाद्यैर्ब्रह्मविद्भिर्महर्षिभिः ॥३॥ श्वेतागस्त्यदधीचाद्यैरस्माभिश्च शिवाश्रितैः ॥ नंदीश्वरमहाकालभृंगीशाद्यैर्गणेश्वरैः॥४॥ पातालवासिभिर्दैत्यैः शेषाद्यैश्च महोरगैः॥ सिद्धैर्यक्षैश्च गंधर्वै रक्षोभूतपिशाचकैः॥५॥ स्वंस्वं पदमनुप्राप्तं सर्वैरयमनुष्ठितः॥ अनेन विधिना सर्वे देवा देवत्वमागताः ॥६॥ ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नो विष्णुर्विष्णुत्वमागतः॥ रुद्रो रुद्रत्वमापन्न इंद्रश्चेन्द्रत्वमागतः॥७॥गणेशश्च गणेशत्वमनेनविधिना गतः॥ सितचंदनतोयेन लिंगं स्नाप्य शिवं शिवाम् ॥ श्वेतैर्विकसितैः पद्मैः संपूज्य प्रणिपत्य च ॥८॥

॥ ३ ॥ श्वेत अगस्त्य दधीचि तथा हमसरीखे दूसरे शिवभक्त नन्दीश्वर महाकाल चण्डीशादि गणेश्वर ॥ ४ ॥ पातालवासी दैत्य शेषादि महासर्प सिद्ध यक्ष गंधर्व राक्षस भूत पिशाचोंने ॥ ५ ॥ अपने २ पद प्राप्त होनेको इसका अनुष्ठान किया है, इस विधिसे सब देवता देवत्वको प्राप्त हुए हैं ॥ ६ ॥ ब्रह्मा ब्रह्मत्व और विष्णु विष्णुत्वको प्राप्त हुए हैं, रुद्र रुद्रत्व और इन्द्र इन्द्रत्वको प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ गणेश गणेशत्वको इसी विधिसे प्राप्त हुए, श्वेत चन्दन जलसे शिवके लिंग और शिवाको स्नान कराय श्वेत खिले हुए कमलोंसे उनको पूज

प्रणाम कर ॥ ८ ॥ उसमें लक्षण युक्त मनोहर पद्मासन करके ऐश्वर्य होनेपर सुवर्णादि और रत्नादि वा अपनी शक्तिसे ॥ ९ ॥ केसर समूहके मध्यमें कनीयस लिंगको स्थापन कर अंगूठेके समान मनोहर सर्व गन्धमय मनोहर दक्षिणकी ओर स्थापन करके बेलपत्रोंसे पूजित करे, दक्षिणओर अगर और पश्चिममें मैनशिल ॥ १० ॥ ११ उत्तरमें चंदन और पूर्वकी ओरके मुखपर हरिताल चढावे, रम्य और विचित्र सुगंधित फूलोंसे पूजन करे ॥ १२ ॥ धूप काला अगर दे और गूगल और सूक्ष्म विस्तृत उज्ज्वल वस्त्र प्रदान करे॥१३॥पायस घी

तत्र पद्मासनं रम्यं कृत्वा लक्षणसंयुतम्॥ विभवे सति हेमाद्यैरत्नाद्यैर्वा स्वशक्तितः॥९॥ मध्ये केसरजालस्य स्थाप्य लिंगं कनीयसम् ॥ अंगुष्ठप्रतिमं रम्यं सर्वगन्धमयं शुभम्॥१०॥ दक्षिणेस्थापयित्वा तु बिल्वपत्रैः समर्चयेत्॥ अगुरुं दक्षिणे पार्श्वे पश्चिमे तु मनःशिलाम् ॥११॥ उत्तरे चंदनं दद्याद्धरितालं तु पूर्वतः॥ सुगन्धैः कुसुमै रम्यैर्विचित्रैश्चापि पूजयेत् ॥१२॥ धूपं कृष्णागुरुं दद्यात्सर्वतश्च सगुग्गुलम् ॥ वासांसि चातिसूक्ष्माणि विकाशानि निवेदयेत् ॥ १३ ॥ पायसं घृतसंमिश्रं घृतदीपांश्च दापयेत् ॥ सर्वं निवेद्य मन्त्रेण ततो गच्छेत्प्रदक्षिणाम् ॥ १४ ॥ प्रणम्य भक्त्या देवेशं स्तुत्वा चान्ते क्षमापयेत् ॥ सर्वोपहारसंमिश्रं ततो लिंगं निवेदयेत् ॥१५॥ शिवाय शिवमन्त्रेण दक्षिणामूर्तिमाश्रितः ॥ एवं योऽर्चयते नित्यं पञ्चगन्धमयं शुभम् ॥१६॥ सर्वपाप विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ एतद्व्रतोत्तमं गुह्यं शिवलिंगमहाव्रतम् ॥१७॥

मिले घीके दीपक प्रदान करे मंत्रसे सब निवेदन कर प्रदक्षिणा करे॥१४॥प्रणाम और स्तुति कर देवेशमें क्षमा करावे सब पूजाकी सामग्री लिंगको निवेदन करे ॥ १५ ॥ शिवाके निमित्त सब वस्तु शिवमंत्रसे प्रदान करे, दक्षिणामूर्तिका आश्रय करे इस प्रकार जो नित्य पंचगंधमय शिवको पूजन करता है ॥ १६ ॥ वह सब पापसे मुक्त हो शिवलोकमें जाता है, यह शिवलिंगका महाव्रत अति उत्तम और गुप्त है ॥ १७ ॥

तुम्हारी भक्तिसे तुमसे कहा है यह जिस तिसको देना नहीं चाहिये, शिवके भक्तोंको देना चाहिये ऐसा शिवने कहा है ॥ १९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां सप्तमीवायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ उपमन्यु बोले, नित्य नैमित्तिक और काम्यव्रतकी सिद्धि कीर्तनकी, वह सब शिवमूर्तिकी प्रतिष्ठासे प्राप्त हो जाती है ॥ १ ॥ सब लोक लिंगमय और लिंगमें ही सब प्रतिष्ठित है, इस कारण लिंगकी प्रतिष्ठासे सब प्रतिष्ठित है ॥ २ ॥ ब्रह्मा विष्णु वा रुद्र कोई हो किसको लिंगकी प्रतिष्ठा छोड़कर अपने पदमें स्थिति हुई है ॥ ३ ॥ प्रतिष्ठाके प्रति और क्या कारण कहें, क्योंकि शिवने स्वयं विश्वेश्वर लिंगकी प्रतिष्ठा की है ॥ ४ ॥ इस कारण सब प्रयत्नसे दोनों लोकोंके

भक्तस्य ते समाख्यातं न देयं यस्यकस्यचित्॥ देयं च शिवभक्तेभ्यः शिवेन कथितं पुरा॥१८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे आमुष्मिककर्मविधिवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥ उपमन्युरुवाच॥ नित्यनैमित्तिकात्काम्याद्या सिद्धिरिह कीर्तिता ॥ सा सर्वालभ्यते सद्यो लिंगबेरप्रतिष्ठया॥१॥ सर्वो लिंगमयो लोकस्सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम् ॥ तस्मात्प्रतिष्ठिते लिंगे भवेत्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥२॥ब्रह्मणा विष्णुना वापि रुद्रेणान्येन केन वा॥लिंगप्रतिष्ठामुत्सृज्यक्रियते स्वपदस्थितिः ॥३॥ किमन्यदिह वक्तव्यं प्रतिष्ठां प्रति कारणम् ॥ प्रतिष्ठितं शिवेनापि लिंगं वैश्वेश्वरं यतः ॥४॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परत्रेह च शर्मणे ॥ स्थापयेत्परमेशस्य लिंगंबेरमथापि वा ॥५॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ किमिदं लिंगमाख्यातं कथं लिंगी महेश्वरः॥ कथं च लिंगभावोऽस्य कस्मादस्मिञ्छिवोऽर्च्यते ॥ ६ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ अव्यक्तं लिंगमाख्यातं त्रिगुणप्रभवाप्ययम् ॥ अनाद्यनंतं विश्वस्य यदुपादानकारणम्॥७॥ तदेव मूलप्रकृतिर्माया च गगनात्मिका ॥ तत एव समुत्पन्नं जगदेतच्चराचरम् ॥८॥

मंगलके निमित्त परमेश्वरकी लिंगमूर्ति स्थापन करे ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण बोले, यह लिंग क्या वस्तु है और शिव किस प्रकार लिंगी (लिंगयुक्त) हैं; इसमें कीस प्रकार लिंगभाव है, और इसमें शिव किस प्रकारसे पूजे जाते हैं ॥ ६ ॥ उपमन्यु बोले, यह लिंगकारण रूप और तीनों गुणोंकी उत्पत्ति और लयका स्थान है; आदि और अन्त रहित संसारका उपादान कारण है ॥ ७ ॥ यही मायाकी आकाशात्मिका मूलप्रकृति है, इसीसे यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है ॥ ८ ॥

वह अशुद्ध तमोगुणी तिर्यक् पशु पक्षी आदि, शुद्ध सात्त्विक देवादि, शुद्ध अशुद्ध मिले हुए मनुष्यसे तीन प्रकारका है, और उसमें शिव महेश्वर रुद्र विष्णु ब्रह्मा ॥ ९ ॥ भूत और इन्द्रिय आदि उत्पन्न होकर शिवकी आज्ञासे लीन हो जाते हैं; इस कारणसे शिवलिंगी हैं और लिंगको आज्ञा देनेवाले हैं ॥ १० ॥ जिस कारणसे कि, उसकी आज्ञाके विना कोई कार्य करनेको समर्थ नहीं होता; और जिस कारणसे कि, उत्पन्न हुए जगत्में उसीमें लय हो जाता है ॥ ११ ॥ इसीसे उसकी लिंगता है; और किसी प्रकारसे नहीं लिंग शिवका देह है; शिवा शिवसे वह अधिष्ठित हैं ॥ १२ ॥ इसी कारण उसमें पार्वती सहित शिव पूजे जाते हैं; देवी महादेवी और साक्षात् महेश्वर

अशुद्धं चैव शुद्धं यच्छुद्धाशुद्धं च तत्त्रिधा॥ ततः शिवो महेशश्च रुद्रोविष्णुः पितामहः॥९॥ भूतानिचेन्द्रियैर्जाता लीयन्तेऽत्र शिवाज्ञया ॥ अतएव शिवो लिंगी लिंगमाज्ञापयेद्यतः ॥१०॥ यतो न तदनाज्ञातं कार्याय प्रभवेत्स्वतः॥ ततो जातस्यविश्वस्य तत्रैव विलयो यतः॥११॥ अनेन लिंगतां तस्य भवेन्नान्येन केनचित्॥ लिंगं च शिवयोर्देहस्ताभ्यां यस्मादधिष्ठितम्॥ १२ ॥ अतस्तत्र शिवः साम्बो नित्यमेव समर्चयेत्॥ लिंगवेदी महादेवी लिंगं साक्षान्महेश्वरः॥१३॥ तयोः संपूजनादेव स च सा च समर्चितौ ॥ न तयोर्लिंगदेहत्वं विद्यते परमार्थतः॥१४॥ यतस्त्वेतौ विशुद्धौ तौ देहस्तदुपचारतः॥ तदेव परमा शक्तिः शिवस्य परमात्मनः ॥१५॥ शक्तिराज्ञां यदादत्ते प्रसूते तच्चराचरम् ॥ न तस्य महिमा शक्यो वक्तुं वर्षशतैरपि ॥१६॥ येनादौ मोहितौ स्यातां ब्रह्मनारायणावपि ॥ पुरा त्रिभुवनस्यास्य प्रलये समुपस्थिते॥१७॥ वारिशय्यागतो विष्णुः सुष्वापानाकुलः सुखम् ॥ यदृच्छया गतस्तत्र ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ १८ ॥

लिंगरूप हैं ॥ १३ ॥ उनके पूजनसे उन दोनोंका पूजन हो जाता है; परमार्थसे तो उनके लिंगका देह नहीं है ॥ १४ ॥ जिस कारण कि, वे दोनों शुद्ध हैं फिर देहके उपचारसे क्या है वे केवल पूजनके निमित्त हैं; वह लिंगही परमात्मा शिवकी परम शक्ति है ॥ १५ ॥ और शक्ति आज्ञा है; जो चराचर जगतको उत्पन्न करती है उसकी महिमा कोई सौ वर्षमें भी नहीं कह सकता ॥१६॥ जिससे पहले ब्रह्मा और नारायण दोनों मोहित हो गये थे; पूर्वमें जब त्रिलोकीकी प्रलय हो चुकी थी ॥ १७ ॥ जब जब चलमें विष्णु भगवान् सुखसे शयन करते थे; तब

लोकपितामह ब्रह्मा वहां अपनी इच्छासे आकर प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ और प्रसन्नतासे सोते हुए विष्णुको देखा, तब ब्रह्माजी शिवकी मायासे मोहित हो विष्णुसे बोले ॥ १९ ॥ 'तुम. कौन हो' यह कह क्रोधसे (विष्णुपर प्रहार कर और उठाकर उन्होंने क्षणमात्रमें) तीक्ष्ण हाथके प्रहारसे ताडित किया ॥ २० ॥ तब विष्णुने शयनसे उठ कर ब्रह्माको देखा और मनमें क्रोधकर बाहर विना क्रोधके समान उनसे विष्णुने कहा ॥ २१ ॥ हे वत्स ! तुम कहांसे आये और क्यों व्याकुल हो ? यह विष्णुके प्रभुत्व गुणसूचक वचन सुन ॥ २२ ॥ रजोगुणसे वैर करते हुए ब्रह्मा फिर बोले, मुझे तुम गुरु बनाकर शिष्यके समान वत्स यह कैसे बोलते हो ॥ २३ ॥ मुझे क्या नहीं जानते यह सब सृष्टि मैंने

ददर्श पुण्डरीकाक्षं स्वपन्तं तमनाकुलम् ॥ मायया मोहितः शम्भोर्विष्णु माह पितामहः ॥१९॥ कस्त्वं वदेत्यमर्षेण प्रहृत्यो त्थाप्यमाधवम् ॥ स तु हस्तप्रहारेण तीव्रेणाभिहतः क्षणात् ॥ २० ॥ प्रबुद्धोत्थाय शयनाद्ददर्श परमेष्ठिनम् ॥ तमाह चांत स्संकुद्धः स्वयमक्रुद्धवद्धरिः॥२१॥ कुतस्त्वमागतो वत्स कस्मात्त्वं व्याकुलो वद॥ इति विष्णुवचः श्रुत्वा प्रभुत्वगुणसूचकम् ॥२२॥ रजसा बद्धवैरस्तं ब्रह्मा पुनरभाषत ॥ वत्सेति मां कुतो ब्रूषे गुरुः शिष्यमिवात्मनः॥२३॥ मां न जानासि किं नाथं प्रपंचो यस्य मे कृतिः ॥ त्रिधात्मानं विभज्येदं सृष्ट्वाथ परिपाल्यते॥२४॥ संहरामि नमे कश्चित्स्रष्टा जगति विद्यते॥ इत्युक्ते सति सोऽप्याह ब्रह्माणं विष्णुरव्ययः॥२५॥ अहमेवादिकर्तास्य हर्ता च परिपालकः॥ भवानपि ममैवांगादवतीर्णःपुराव्ययात् ॥२६॥ मन्नियोगात्त्वमात्मानं त्रिधा कृत्वा जगत्त्रयम्॥ सृजस्यवसि चांते तत्पुनः प्रतिसृजस्यपि ॥२७॥ विस्मृतोसि जगन्नाथं नारायणमनामयम् ॥ तवापि जनकं साक्षान्मामेवमवमन्यसे ॥ २८ ॥

की है; मैं प्रजापति हूं, अपने शरीरको तीन प्रकार करके मैं पालन करता हूं ॥ २४ ॥ और संहार करता हूँ, मेरा स्रष्टा जगत्में कोई नहीं; यह कहनेपर अविनाशी विष्णु ब्रह्मासे बोले ॥ २५ ॥ मैं ही आदिकर्ता हर्ता और पालन करनेवाला हूं, तुम भी मेरे अविनाशी शरीरसे प्रादु भूत हुए हो ॥ २६ ॥ मेरी आज्ञासे ही तुमने अपनी आत्माको तीन प्रकारसे विभक्त कर तीन प्रकारसे जगत् उत्पन्न किया; उत्पन्न कर रक्षा करते और फिर संहार करते हो ॥ २७ ॥ तुम नारायण जगन्नाथको भूल गये, तुम अपने उत्पन्न करनेवाले पिताका (मेरा) ऐसा अपमान

करते हो ॥ २८ ॥ इसमें तुम्हारा अपराध नहीं, तुम मेरी मायासे भ्रान्त हो गये; मेरे प्रसादसे यह तुम्हारी भ्रान्ति शीघ्र जाती रहेगी ॥२९॥ हे ब्रह्मा ! तुम सत्य वचन श्रवण करो; मैं सम्पूर्ण देवताओंका ईश्वर हूं, कर्ता भर्ता हर्ता मेरे समान कोई समर्थ नहीं है ॥ ३० ॥ इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णुका परस्पर विवाद होने लगा; और महाभयंकर रोमहर्षण युद्ध हुआ ॥ ३१ ॥ रजोगुणसे वैरकर परस्पर मुष्टि आदिसे, युद्ध करने लगे, उन दोनोंके अभिमान दूर करनेको ॥ ३२ ॥ मध्यमें ईश्वरका अद्भुत लिंग प्रादुर्भूत हुआ, जो सहस्रों अग्निकी ज्वालासे व्याप्त अप्रमेय उपमा रहित ॥ ३३ ॥ क्षय वृद्धिसे निर्मुक्त आदि मध्य अन्तसे वर्जित था उसकी सहस्रों ज्वालाओंसे विष्णु ब्रह्मा मोहित हो गये ॥

तवापराधो नास्त्यत्र भ्रांतोसि मम मायया॥ मत्प्रसादादियं भ्रांतिरपैष्यति तवाचिरात् ॥२९॥ शृणुसत्यं चतुर्वक्त्र सर्वदेवेश्वरो ह्यहम् ॥ कर्ता भर्ता च हर्ता च न मयास्ति समो विभुः॥३०॥ एवमेवविवादोभूद्ब्रह्मविष्ण्वोः परस्परम् ॥ अभवच्च महायुद्धं भैरवं रोमहर्षणम् ॥३१॥ मुष्टिभिर्निघ्नतोस्तीव्रं रजसा बद्धवैरयोः॥ तयोर्दर्पापहाराय प्रबोधाय च देवयोः॥३२॥ मध्ये समाविरभव ल्लिंगमैश्वरमद्भुतम्॥ज्वालामालासहस्राढचमप्रमेयमनौपमम्॥३३॥क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यांतवर्जितम्॥तस्य ज्वालासहस्रेण ब्रह्मविष्णू विमोहितौ ॥३४॥ विसृज्य युद्धं किं त्वेतदित्यचिंतयतां तदा ॥ न तयोस्तस्य याथात्म्यं प्रबुद्धमभवद्यदा॥३५॥तदा समुद्यतौ स्यातां तस्याद्यंतं परीक्षितुम्॥३६॥तत्र हंसाकृतिर्ब्रह्माविश्वतः पक्षसंयुतः॥ मनोनिलजवो भूत्वा गतस्तूद्ध्वं प्रयत्नतः॥ ॥ ३७ ॥ नारायणोपि विश्वात्मा लीलाञ्जनचयोपमम् ॥ वाराहमिंतं रूपमस्थाय गतवानधः॥३८॥ एवं वर्षसहस्रं तु त्वरन् विष्णुरधोगतः ॥ नापश्यदल्पमप्यस्य मूलं लिंगस्य सूकरः॥ ३९ ॥

॥३४॥ और युद्ध छोडकर कहने लगे कि यह क्या है ? तब वे दोनों यथार्थता जाननेको समर्थ न हुए ॥३५॥ तब दोनोंने उसके अन्तकी परीक्षा करनेकी इच्छा की ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजीने हंसका आकार जो सुन्दर पक्षयुक्त था धारण किया और मनके समान वेगगामी हो आकाश को चले ॥ ३७ ॥ विश्वात्मा नारायण भी नीलअंजन पर्वतके समान वाराहरूप धारण कर पातालको गये ॥ ३८ ॥ इस प्रकार सहस्र वर्षतक विष्णु नीचेको चले गये और उन्होंने उस लिंगका अन्त नहीं देख पाया ॥ ३९ ॥

और उतनेही समयतक ब्रह्मा ऊध्वे लोकतक चले गये और अन्त न पाया, तब शान्त होकर नीचे चले आये ॥ ४० ॥ उसी प्रकार विष्णु भगवान् शान्त और चेतनाहीन हो महाक्लेशसे फिर जलके ऊपर चले आये ॥ ४१ ॥ तब फिर आकर परस्पर एक दूसरेको देखने लगे, शिवकी मायासे मोहित होकर कृत्य अकृत्यका ज्ञान भूल गये ॥ ४२ ॥ कभी पीछे कभी आगे कभी पार्श्वमें स्थित हुए प्रणाम करके विचार करने लगे कि यह क्या है ? ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ उपमन्यु बोले,

तावत्कालं गतश्चोद्ध्वं तस्यांतं ज्ञातुमिच्छया ॥ श्रांतोत्यंतम दृङ्गांतं पपाताधः पितामहः॥४०॥तथैव भगवान् विष्णुः श्रांतः संविग्नलोचनः ॥ क्लेशेन महता तूर्णमधस्तादुत्थितोऽभवत्॥४१॥ समागतावथान्योन्यं विस्मयस्मेरवीक्षणौ॥ मायया मोहितौ शंभोः कृत्याकृत्यं न जग्मतुः॥४२॥पृष्ठतः पार्श्वतस्तस्य चाग्रतश्च स्थितावुभौ॥प्रणिपत्यकिमात्मेदमित्यचिंतयतां तदा॥४३॥ इतिश्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे हरिविधिमोहवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥उपमन्युरुवाच॥ अथाविरभवत्तत्र सनादं शब्दलक्षणम्॥ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ब्रह्मणः प्रतिपादकम्॥१॥ तदप्यविदितं तावद्ब्रह्मणा विष्णुना तथा॥ रजसा तमसा चित्तं तयोर्यस्मात्तिरस्कृतम् ॥२॥ तदा विभक्तमभव च्चतुर्द्धैकं तदक्षरम् ॥ अ उ मेति त्रिमात्राभिः परस्ताच्चार्द्ध मात्रया ॥ ३ ॥ तत्राकारः श्रितो भागेज्वलल्लिंगस्य दक्षिणे ॥ उकार श्चोत्तरे तद्वन्मकारस्तस्य मध्यतः ॥४॥ अर्द्धमात्रात्मको नादः श्रूयते लिंगमूर्द्धनि ॥ विभक्तेऽपि तदा तस्मिन्प्रणवे परमाक्षरे ॥५॥

तब उसमेंसे एक महाशब्द लक्षण नाद हुआ ओम् एकाक्षर ब्रह्मका प्रतिपादक है ॥ १ ॥ परन्तु वहभी ब्रह्मा और विष्णुने न समझा, रजोगुण तमोगुणसे उनका चित्त तिरस्कृत था ॥२॥ फिर वह एकही अक्षर चारप्रकारसे विभक्त हुआ अ उ म् यह तीन और आधीमात्रा देखी ॥ ३ ॥ इस लिंगके दक्षिणभागमें अकार स्थित था उत्तरमें उकार मध्यमें मकार ॥ ४ ॥ और अर्धमात्राका नाद लिंगके शिरोभागमें सुनाई दिया उस प्रकार उस प्रणवरूप परमाक्षरके विभक्त होनेपर ॥ ५ ॥

उन दोनों देवताओंने विभागका अर्थ कुछ भी न जाना वेदात्मासे व्यक्त होकर वह ओंकार विकारको प्राप्त हुआ ॥६॥ उसमें अकार ऋग्वेद, उकार यजुर्वेद, मकार सामवेद और नाद अथर्वकी श्रुति है ॥ ७ ॥ समाससे अपने आत्माका अर्थ ऋक्में प्राप्त है, रजोगुणकी मूर्तिमें ब्रह्माकी आदि क्रिया मूर्ति है ॥ ८ ॥ और उसकी आदि क्रियाओंमें लोकमें सृष्टि और उन तत्त्वोंमें अविनाशी आत्मा पंचब्रह्ममें सद्योजात कलादिकी और अध्वकी निवृत्ति ॥ ९ ॥ लिंगके दोनों भागोंमें विद्यमान तथा अधोभागमें बीजयोनि स्वरूप तीन कारणमें बीज स्वरूप है, चौंसठ गुणोंके ऐश्वर्य जो अणिमादिमें विद्यमान हैं ॥ १० ॥ इस प्रकार दश अर्थोंसे युक्त ऋचासे यह जगत् व्याप्त है इसी प्रकार

विभागार्थं च तौ देवौ न किंचिदवजग्मतुः॥ वेदात्मनातदाव्यक्तःप्रणवो विकृतिं गतः॥६॥तत्राकारो ऋगभवदुकारोयजुरव्ययः॥ मकारस्सास संजातो नादस्त्वाथर्वणी श्रुतिः॥७॥ ऋगयं स्थापयामास समासात्त्वर्थमात्मनः ॥ रजोगुणेषु ब्रह्माणं मूर्तिष्वाद्यं क्रियास्वपि ॥८॥ सृष्टिलोकेषु पृथिवीं तत्त्वेष्वात्मानमव्ययम्॥कलाध्वनि निवृत्तिं च सद्यंब्रह्मसु पंचसु॥९॥लिंगभागेष्वधोभागं बीजाख्यंकारणत्रये॥चतुः षष्टिगुणैश्वर्यबौद्धंयदणिमादिषु॥१०॥तदित्थमर्थैर्दशभिर्व्याप्तंविश्वमृचा जगत्॥अथोपस्थापयामास स्वार्थं दशविधं यजुः॥११॥ सत्त्वं गुणेषु विष्णुं च मूर्तिष्वाद्यं क्रियास्वपि॥ स्थितिं लोकेष्वंतरिक्षं विद्यां तत्त्वेषु च त्रिषु॥१२॥ कलाध्वसु प्रतिष्ठां च वामं ब्रह्मसु पंचसु॥ मध्यं तु लिंगभागेषु योनिं च त्रिषु हेतुषु ॥१३॥ प्राकृतं च यथैश्वर्यं तस्माद्विश्वं यजुर्मयम्॥ ततोपस्थापयामास सामार्थं दशधात्मनः॥१४॥ तमोगुणेष्वथो रुद्रंमूर्तिष्वाद्यं क्रियासु च ॥ संहृतिं त्रिषु लोकेषु तत्त्वेषु शिवमुत्तमम् ॥ १५ ॥ विद्याकलास्वघोरं च तथा ब्रह्मसु पंचसु ॥ लिंगभागेषु पीठोर्ध्वं बीजिनं कारणत्रये ॥१६॥

यजुने यह दश प्रकारसे अर्थको स्थापित किया है ॥ ११ ॥ गुणोंमें सत्त्वगुण मूर्ति विष्णु, क्रियाओंमें आदि क्रिया, लोकमें स्थिति; तीनों तत्त्वोंमें विद्या ॥ १२ ॥ अन्तरिक्ष कलाध्वमें प्रतिष्ठा और पंच ब्रह्ममें वामरूप लिंगके भागोंमें मध्यभाग तीनों हेतुओंमें योनिरूप ॥ १३ ॥ और प्राकृत ऐश्वर्य यह सब ऐश्वर्य यजुर्वेदमय हैं । इसी प्रकार सामने दश प्रकारसे अपना अर्थ स्थापित किया ॥ १४ ॥ गुणोंमें तम, मूर्तिमें रुद्र, क्रियाओंमें आदिक्रिया, तीनों लोकमें संहार तत्त्वोंमें शिवतत्त्व ॥१५॥ कलाओंमें विद्याकला, और अघोर तथा पंचब्रह्ममें

ब्रह्म स्वरूप है, लिंग भागोंमें पीठ और ऊर्ध्व तीन करणमें बीजरूप ॥ १६ ॥ पौरुष और ऐश्वर्य इस प्रकारसे सामसे जगत स्थित है. अथर्वने प्रथम आत्माका निर्गुण ऐश्वर्य कहा है ॥ १७ ॥ और महेश्वरी सदा शिवकी मूर्तियोंमें कही है, परमात्मा शिवकी क्रियामें निष्क्रिया ॥ १८ ॥ भूतोंके ऊपर कृपा दृष्टि है, जिससे सब प्राणी मुक्त हो जाते हैं लोकमें भी जहां मनके रहित वाणी निवृत्त हो जाती है ॥ १९ ॥ उसके ऊपर उन्मन लोकसे अलौकिक सोम लोक है, जहां सोम लोकमें उमाके सहित ईश्वर नित्य निवास करते हैं ॥ २० ॥ उसके ऊपर

पौरुषं च तथैश्वर्यमित्थंसाम्ना ततं जगत्॥अथाथर्वाह नैर्गुण्यमर्थं प्रथममात्मनः ॥१७॥ ततो महेश्वरं साक्षान्मूर्तिष्वपि सदा शिवम् ॥ क्रियासु निष्क्रियस्यापि शिवस्य परमात्मनः ॥ १८ ॥ भूतानुग्रहणं चैव मुच्यंते येन जंतवः ॥ लोकेष्वपि यतो वाचो निवृत्ता मनसा सह ॥ १९ ॥ तदूर्ध्वमुन्मना लोकात्सोमलोकमलौकिकम् ॥ सोमस्सहोमया यत्र नित्यं निवसतीश्वरः ॥ २० ॥ तदूर्ध्वमुन्मना लोकाद्यं प्राप्तो न निवर्तते ॥ शांतिं च शांत्यतीतां च व्यापिकां वै कलास्वपि ॥ २१ ॥ तत्पूरुषं तथेशानं ब्रह्म ब्रह्मसु पंचसु ॥ मूर्द्धानमपि लिंगस्य नादभागेष्वनुत्तमम् ॥ २२ ॥ यत्रावाह्य समाराध्यः केवलो निष्कलः शिवः ॥ तत्तेष्वपि तदा बिंदो र्नादाच्छक्तेस्ततः परात् ॥ २३ ॥ तत्त्वादपि परं तत्त्व मतत्त्वंपरमार्थतः ॥ कारणेषु त्रयातीतान्मायाविक्षोभकारणात् ॥ २४ ॥ अनंताच्छुद्धविद्यायाः परस्ताच्च महेश्वरात् ॥ सर्वविद्येश्वरा धीशान्न पराच्च सदाशिवात् ॥२५॥ सर्वमंत्रतनोर्देवाच्छक्तित्रयसमन्विता ॥ पंचवक्त्राद्दशभुजात्साक्षात्सकलनिष्कलात् ॥२६॥

उन्मन लोकसे जहांसे जाकर यह प्राणी निवृत्त नहीं होता है; शान्त्यतीतमें शान्तिकलाओंमें व्यापिका कला ॥ २१ ॥ और पंच ब्रह्ममें तत्पुरुष और ईशान लिंगके शिरोभागमें और भागोंमें नाद है ॥ २२ ॥ जहाँ आवाहन करके केवल निष्कल शिव आराधन किये जाते हैं, तत्त्वोंमें विन्दुके और नादसे पराशक्तिके तत्त्वसे भी परे ॥ २३ ॥ परम तत्त्व है; वास्तवमें परमार्थसे तत्त्व रहित है, मायाके कारणसे तीनों कारणसे परे है ॥ २४ ॥ अनन्तसे और शुद्ध विद्यासे और महेश्वरसे परे सब विद्याओंके अधीश्वर सदा शिवसे परे कुछ नहीं है ॥ २५॥ सब मन्त्रोंके शरीरवाले देव तीन शक्तिसे युक्त जो पांचमुख दशभुजा साक्षात् कलारहित हैं ॥ २६ ॥

उससे परे बिन्दु और उससे परे अर्धइन्दु, उससे परे निशाधीश (अर्धचन्द्र) उससे परे नाद ॥ २७ ॥ उससे परे सुषुम्नेश, उससे परे ब्रह्म रन्ध्रेश्वर, उससे परे शक्ति, उससे शिवतत्त्व ॥ २८ ॥ उससे परे परम कारण साक्षात् स्वयं निष्कारण परम शिव हैं; कारणोंके विधान करने वाले ध्येय अविनाशीके ध्यान करनेवाले ॥ २९ ॥ परम आकाशके मध्यमें, स्थित सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न सर्वेश्वर जिनका कोई ईश्वर नहीं ॥ ३० ॥ मायिक ऐश्वर्य और मानुषादि पर अपरसे, त्याज्यसे, अविशुद्ध मार्गके गोचर होनेसे परे ॥ ३१ ॥ शुद्ध विद्या उससे परे उन्मना, उन्मनादिमें परम ऐश्वर्य अनादि हैं ॥ ३२ ॥ अपार पराधीनता रहित, समानता रहित साम्यके अतिशयसे स्थित

तस्मादपि पराद्बिंदोरर्द्धेंदोश्च ततः परात्॥ ततः परान्निशाधीशान्नादाख्याच्च ततः परात्॥२७॥ ततः परात्सुषुम्नेशाद्ब्रह्मरंध्रेश्वरा
दपि ॥ ततः परस्माच्छक्तेश्च परस्ताच्छिवतत्त्वतः ॥२८॥ परमं कारणं साक्षात्स्वयं निष्कारणं शिवम्॥ कारणानां च धातारं
ध्यातारं ध्येयमव्ययम्॥२९॥ परमाकाशमध्यस्थं परमात्मोपरि स्थितम् ॥ सर्वैश्वर्येण संपन्नं सर्वेश्वरमनीश्वरम् ॥३०॥ ऐश्व
र्याच्चापिमायेयादशुद्धान्मानुषादिकात्॥अपराच्चपरात्त्याज्यादधिशुद्धाध्वगोचरात्॥३१॥तत्पराच्छुद्धविद्याद्यादुन्मनांतात्परात्प
रात् ॥ परमं परमैश्वर्यमुन्मनाद्यमनादि च॥३२॥अपारमपराधीनं निरस्तातिशयंस्थिरम्॥ इत्थमर्थैर्दशविधैरियमाथर्वणीश्रुतिः
॥ ३३ ॥ यस्याद्वरीयसी तस्माद्विश्वं व्याप्तमथर्वणात् ॥ ऋग्वेदः पुनराहेदं जाग्रद्रूपंमयोच्यते॥३४॥ येनाहमात्मतत्त्वस्य नित्य
मस्म्यभिधायकः॥ यजुर्वेदोऽवदत्तद्वत्स्वप्नावस्थामयोच्यते॥३५॥ भोग्यात्मना परिणता विद्यावेद्या यतो मयि॥ सामचाह सुषु
प्त्याख्यमेवं सर्वं मयोच्यते ॥३६॥ ममार्थेन शिवेनेदं तामसेनाभिधीयते ॥ अथर्वाह तुरीयाख्यं तुरीयातीतमेव च ॥३७॥

दश अर्थोंसे युक्त अथर्वकी श्रुति है ॥ ३३ ॥ जिससे कि, यह अधिक है इससे सब जगत् व्याप्त है सो जानो । ऋग्वेद कहता है, कि मैंने जाग्रद्रूपको कहा है ॥ ३४ ॥ जिस कारणसे कि, मैं आत्मतत्त्वका नित्य कहनेवाला हूं. यजुर्वेद कहता है कि, मैं स्वप्नावस्थाको कहता हूं ॥ ३५ ॥ जिससे कि, भोग आत्माकी परणति मुझमें सदा रहती है, साम कहता है मैं सुषुप्तिका कहने वाला हूं ॥ ३६ ॥ कारण कि, शिवद्वारा मेरे तामसी अर्थसे यह कही जाती हैं अथर्व कहता है कि, तुरीयातीत अवस्था मुझसे कही

जाती है ॥ ३७ ॥ इससे मैं अध्वतीत पदरूप हूं, अध्वात्मक जो त्रितयबिंब विद्यात्मक संज्ञावाला है ॥३८॥ वह त्रैगुण्यातीत वेदोंसे साध्य है, पदकी इच्छा करनेवालोंको शोधन करना चाहिये, अध्वोंसे परे तुरीयातीत निर्वाण परमपद है ॥ ३९ ॥ इससे परे निर्गुण होनेके इस मार्गका विशोधन हो जाता है, इन दोनोंका प्रमाणक नाद है और नादान्त मेरा रूपही है ॥ ४० ॥ इस कारण मेरे निमित्त स्वतन्त्रतासे प्रधान परमेश्वर जो कुछ वस्तु है वह सब गुण और प्रधानके योगसे ॥४१॥ सम्पूर्ण व्यस्त यह जगत् ॐकारकेही अर्थको कहता है, एक यही ब्रह्मका अक्षर सम्पूर्ण अर्थका वाचक है ॥४२॥ इसीसे सब जगत्का विस्तार करता हूं । इस प्रकार पहले शिव करते हैं, यह शिव प्रणवरूप और प्रणव

मयाभिधीयते तस्मादध्वातीतपदोस्म्यहम्॥ अध्वात्मकं तु त्रितयंशिवविद्यात्मसंज्ञितम्॥३८॥ तत्त्रैगुण्यंत्रयीसाध्यं संशोध्यं च पदैषिणा ॥ अध्वातीतं तुरीयाख्यं निर्वाणं परमं पदम्॥३९॥ तदतीतं च नैर्गुण्यादध्वनोस्य विशोधकम्॥ द्वयोः प्रमापको नादो नदांतश्च मदात्मकः ॥ ४० ॥ तस्मान्ममार्थस्वातंत्र्यात्प्रधानः परमेश्वरः ॥ यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुणप्रधान्ययोगतः ॥४१॥ समस्तं व्यस्तमपि च प्रणवार्थं प्रचक्षते॥सर्वार्थवाचकं तस्मादेकं ब्रह्मैतदक्षरम्॥४२॥ तेनोमिति जगत्कृत्स्नं कुरुते प्रथमं शिवः॥ शिवो हि प्रणवो ह्येष प्रणवो हि शिवःस्मृतः॥४३॥ वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यंतं विद्यते यतः॥ चिंतयारहितो रुद्रो वाचोयन्मनसा सह॥४४॥अप्राप्य तन्निवर्ततेवाच्यस्त्वेकाक्षरेण सः॥ एकाक्षरादकाराख्यादात्माब्रह्माभिधीयते॥४५॥ एकाक्षरादुकाराख्याद्विधा विष्णुरुदीर्यते॥ एकाक्षरान्मकाराख्याच्छिवो रुद्र उदाहृतः॥४६॥ दक्षिणांगान्महेशस्यजातो ब्रह्मात्मसंज्ञिकः॥ वामांगादभवद्विष्णुस्ततो विद्येत् संज्ञितः॥४७॥ हृदयान्नीलरुद्रो भूच्छिवस्य शिवसंज्ञिकः ॥ सृष्टेः प्रवर्तको ब्रह्मा स्थितेर्विष्णुर्विमोहकः॥४८॥

शिवरूप है ॥ ४३ ॥ वाच्य वाचकका अत्यन्त भेद नहीं है, रुद्रको अभक्तजन ध्यान नहीं कर सकते, यह मनके सहित वाणीके अवाच्य होते है ॥ ४४ ॥ उस वाच्यको प्राप्त न होकर इंद्रियें निवृत्त होती हैं. वह एकाक्षर अकार ब्रह्माकी आत्मा कहाता है ॥ ४५ ॥ और एकाक्षर उकारसे विष्णु कहाता है, एकाक्षर मकारसे वह शिव रुद्र कहाता है ॥ ४६ ॥ महेशके दक्षिण अंगसे ब्रह्मा आत्मसंज्ञक उत्पन्न हुआ है, वाम अंगसे विद्यासंज्ञक विष्णु हुए ॥४७॥ शिवके हृदयसे शिवसंज्ञक नीलरुद्र हुए हैं, सृष्टिके प्रवृत्त करनेवाले ब्रह्मा मोहित और पालन करनेवाले विष्णु॥४८॥

और संहार करने तथा उन दोनोंको नियममें रखनेवाले रुद्र हैं ॥ ४९ ॥ इस कारण यह तीनों जगत्के कारण हैं, इन तीनों कारणके शिव परमकारण हैं ॥५०॥ इस अर्थको बिना जाने रजोगुणके वशीभूत हो वैर करके लडते हुए तुम दोनोंको ज्ञान देनेको मध्यमें लिंग उपस्थित हुआ हैं ॥५१॥ इस प्रकार ओम् में जो अथर्वने कहा था सो तुमसे कहा । ऋक्, यजु, साम; तथा उनकी सहस्रों शाखा ॥५२॥ वेदोंमें अपने मुखसे स्वयं कही हैं, इस प्रकार प्रगट कहनेपर भी स्वप्नके समान वाणीसे उन वेदोंको कुछ निश्चय न हुआ ॥ ५३ ॥ तब उनके ज्ञान देने और

संहारस्य तथा रुद्रस्तयोर्नित्यं नियामकः ॥४९॥ तस्मात्त्रयस्ते कथ्यंते जगतः कारणानि च ॥ कारणत्रयहेतुश्च शिवः परमकारणम्॥५०॥अर्थमेतमविज्ञाय रजसाबद्धवैरयोः ॥ युवयोः प्रतिबोधाय मध्येलिंगमुपस्थितम्॥५१॥ एवमोमिति मां प्राहुर्यदिहोक्तमथर्वणा ॥ ऋचो यजूंषि सामानिशाखाश्चान्याः सहस्रशः॥५२॥ वेदेष्वेवं स्वयं वक्त्रैर्व्यक्तमित्यवदत्स्वपि॥ स्वप्नानुभूतमिव तत्ताभ्यां नाध्यवसीयते ॥५३॥ तयोस्तत्र प्रबोधाय तमोपनयनाय च ॥ लिंगेपि मुद्रितं सर्वं यथा वेदैरुदाहृतम्॥५४॥ तद्दृष्ट्वा मुद्रितं लिंगे प्रसादाल्लिंगिनस्तदा ॥ प्रशांतमनसौ देवौ प्रबुद्धौ संबभूवतुः॥५५॥ उत्पत्तिं विलयं चैव यथात्म्यं च षडध्वनाम्॥ ततः परतरं धाम धामवंतं च पूरुषम् ॥५६॥ निरुत्तरतरं ब्रह्म निष्कलं शिवमीश्वरम् ॥ पशुपाशमयस्यास्य प्रपंचस्य सदा पतिम् ॥ ५७ ॥ अकुतोभयमत्यंतमवृद्धिक्षयमव्ययम् ॥ वाह्यमाभ्यंतरं व्याप्तं वाह्याभ्यंतरवर्जितम् ॥ ५८ ॥

अन्धकारके दूर करनेके निमित्त लिंगमें यह बात सब मुद्रित (अंकित) होगई जैसा कुछ वेदोंने कहा है ॥ ५४ ॥ तब उसको लिंगमें मुद्रित देख, शिवकी कृपासे उन दोनों देवताओंका मन शांत हुआ और ज्ञान हुआ ॥ ५५ ॥ तब लिंगके लिंगत्व और लिंगीकी लिंगिता और लिंगमें सम्पूर्ण जगत् और अपनी भी उत्पत्ति प्रलय षडध्वकी यथार्थता उससे परे परमधाम और उस धामवाले पुरुषको ॥ ५६ ॥ जो सबसे उत्कृष्ट ब्रह्मा निष्कल ईश्वर पशुपाशमें इस प्रपंचके अधिपति ॥ ५७ ॥ सब ओरसे भयरहित वृद्धि क्षयसे हीन, अविनाशी बाहर भीतर व्याप्त

१ मुद्रणका व्यवहार आदि सृष्टिमें भी था, इससे यह सूचित होता है ।

अभ्यन्तर वर्जित ॥ ५८ ॥ सबसे निरस्त निरन्तर विश्वलोकसे विलक्षण निर्देशसे रहित वाणी और मनसे परे ॥ ५९ ॥ प्रकाश स्वरूप एक रस शान्त प्रसन्नरूप सदा उदित सब कल्याणके स्थान वैसेही शक्तिसे युक्त ॥ ६० ॥ विरूपाक्ष देवको जानकर ब्रह्मा और नारायण शिरपर हाथ धर अंजली बांध भयभीत हो वचन बोले ॥ ६१ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे देव ! मैं ज्ञानी अथवा अज्ञानी कैसाही हूं आपने ही पहले मुझे निर्मित किया है, इस प्रकार भ्रान्तिको प्राप्त होकर कौन अपराध करेगा ॥ ६२ ॥ हे प्रभो ! तुम्हारे निकट होनेपर मेरा अज्ञान स्थित रहे अपने और पराये कृत्यको निर्भय होकर कौन भाषण कर सकता है ॥ ६३ ॥ हे देवदेव ! हमारा विवाद भी शोभन है, जिससे

निरस्तातिशयं शश्वद्विश्वलोकविलक्षणम्॥ अलक्षणमनिर्देश्यमवाङ्मनसगोचरम्॥५९॥प्रकाशैकरसं शांतं प्रसन्नंसततोदितम्॥ सर्वकल्याणनिलयं शक्त्या तादृशयान्वितम्॥६०॥ ज्ञात्वा देवं विरूपाक्षंब्रह्मनारायणौ तदा॥रचयित्वांजलिमूर्ध्निभीतौ तौ वाच मूचतुः ॥६१॥ ब्रह्मोवाच॥ अज्ञोवाहमभिज्ञो वा त्वयादौ देव निर्मितः॥ ईदृशीं भ्रांतिमापन्न इतिकोऽत्रापराध्यति॥६२॥ आस्तां ममेदमज्ञानं त्वयि सन्निहते प्रभो॥ निर्भयः कोऽभिभाषेत कृत्यं स्वस्य परस्य वा ॥६३॥ आवयोर्देवदेवस्य विवादोऽपि हि शोभ नः॥पादप्रणामफलदो नाथस्य भवतो यतः ॥६४॥ विष्णुरुवाच ॥ स्तोतुं देव न वागस्ति महिम्नः सदृशी तव॥प्रभोरग्रे विधेया नां तूष्णींभावो व्यतिक्रमः ॥६५॥ किमत्र संघटेत्कृत्यमित्येवावसरोचितम्॥अजानन्नपि यत्किंचित्प्रलप्य त्वां नतोऽस्म्यहम् ॥६६॥कारणत्वं त्वया दत्तं विस्मृतं तव मायया ॥ मोहितोऽहंकृतश्चापि पुनरेवास्मि शासितः ॥ ६७ ॥ विज्ञापितैः किं बहु भिर्भीतोस्मि भृशमीश्वर॥ यतोऽहमपरिच्छेद्यं त्वां परिच्छेत्तुमुद्यतः ॥६८॥

फल देनेवाले आपके चरणोंको प्रणामके फलको प्राप्त हुए ॥ ६४ ॥ विष्णु बोले, भगवन् ! जैसी आपकी महिमा है उसकी स्तुति करनेको हमारी वाणी समर्थ नहीं है, इस कारण आपके आगे मौन भाव करना व्यतिक्रम है ॥ ६५ ॥ इस संकटमें अवसरके उचित क्या कृत्य करना है; सो कुछ भी न जानते हुए प्रलयमें भी आपको करते हैं ॥ ६६ ॥ जो आपने जगत्का कारणत्व दिया था वह मैं तुम्हारी मायासे भूल गया; मोहित होकर जब कार्य किया तब आपने मुझको फिर शासन किया ॥ ६७ ॥ हे ईश्वर ! बहुत कहनेसे क्या है मैं इस समय भीत

होरहा हूं; जो मैं अपरिच्छेयरूप तुमको परिच्छेद करनेको युक्त हुआ हूं ॥६८॥ हे महादेव ! आपको भीतोंका दुःख नाश करनेवाला कहा है. हे शंकर ! उस कारण आप मेरे अपराध दूर कीजिये ॥ ६९ ॥ जब उन दोनोंने शिवसे इस प्रकार कहा तब प्रसन्न हो अनुग्रह कर देव उनसे बोले॥७०॥शिव बोले, हे वत्स ! ब्रह्मा विष्णु तुम मेरी मायासे मोहित हो गये हो तुमने स्वामीपनमें अहंकार करके परस्पर वैरभाव किया॥७१॥ और तुमने युद्ध पर्यन्त विवाद किया कि, हमसे अधिक कोई नहीं; इस कारणसे जगत्के कारणभूत तुम्हारी प्रजा सृष्टि उच्छिन्न होगई ॥७२॥ तुम

त्वामुशंति महादेवं भीतानामार्तिनाशनम् ॥ अतोऽयतिक्रमं मेऽद्य क्षंतुमर्हसि शंकर॥६९॥ इति विज्ञापितस्ताभ्यामीश्वराभ्यां महेश्वरः॥प्रीतोऽनुगृह्य तौ देवौ स्मितपूर्वमभाषत॥७०॥ ॥ ईश्वर उवाच॥ वत्सवत्स विधे विष्णो मायया मम मोहितौ ॥ युवां प्रभुत्वेऽहंकृत्य बुद्धवैरौ परस्परम्॥७१॥विवादं युद्धपर्यंतं कृत्वानोपरतौ किल॥ ततश्छिन्ना प्रजासृष्टिर्जगत्कारणभूतयोः॥७२॥ अज्ञानमानप्रभवाद्वैमत्याद्युवयोरपि ॥ तन्निवर्तयितुं युष्मद्दर्पमोहौमयैव तु ॥ ७३ ॥ एवं निवारितावद्यलिंगाविर्भावलीलया ॥ तस्माद्भयो विवादं च व्रीडां चोत्सृज्य कृत्स्नशः ॥७४॥ यथास्वं कर्मकुर्यातां भवंतौ वीतमत्सरौ ॥ पुरा ममाज्ञया सार्द्धं समस्त ज्ञानसंहिताः ॥७५॥ युवाभ्यां हि मया दत्ता कारणत्वप्रसिद्धये ॥ मंत्ररत्नं च सूत्राख्यं पंचाक्षरमयं परम्॥ ७६ ॥ मयोपदिष्टं सर्वं तद्युवयोरद्य विस्मृतम् ॥ ददामि च पुनः सर्वं यथापूर्वं ममाज्ञया ॥ ७७ ॥

दोनोंके अज्ञानमान और विमतिसे यह हुआ अब तुम दोनों आपना मोह और दर्प दूर करो॥७३॥इस प्रकार लिंगके आविर्भावकी लीला करके तुम दोनोंको निवारण किया । तब भय विषाद लज्जाको सब प्रकार छोडकर ॥७४॥ तुम अभिमान रहित हो, यथायोग्य कर्म करो; पहले मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण ज्ञानसंहिता ॥ ७५ ॥ जो कारणत्व सिद्धिके निमित्त मैंने तुमको दी है, उसमें सूत्रनामक मंत्र रत्न जो पंचाक्षर मय है ॥ ७६॥ वह जो मैंने

तुमको प्रदान किया था क्या तुम उसको भूल गये परन्तु फिर भी मैं तुमको यथापूर्व सब प्रदान करता हूं, मेरी आज्ञासे कार्य करो ॥ ७७ ॥ जिससे कि तुम मेरी आज्ञाके विना सृष्टि रक्षणमें समर्थ नहीं इस प्रकार महादेवने उन ब्रह्मा नारायणके प्रति कहकर ॥ ७८ ॥ ज्ञानसंहिताके सहित उनको मन्त्रराज दिया, वह महान् और दिव्य महेश्वरी आज्ञाको प्राप्त हो ॥ ७९ ॥ महार्थयुक्त मंत्र रत्न और सम्पूर्ण कलाको प्राप्त हो महेश्वरके चरणारविंदमें दण्डवत् प्रणाम कर ॥ ८० ॥ आनन्दमें मग्न हो भयरहित स्थित हुए इसी समय चित्ररूप इन्द्रजालके समान ईश्वरका ॥ ८१ ॥ वह लिंग अन्तर्धान होगया और उन्होंने न जाना कि, कहां गया ? तब वह हाहाकार कर विलाप करके तत्काल प्रण

यतो विना युवांतेन न क्षमौ सृष्टिरक्षणे॥एवमुक्त्वा महादेवो नारायणपितामहौ॥७८॥मंत्रराजं ददौ ताभ्यां ज्ञानसंहितया सह॥ तौ लब्ध्वा महतीं दिव्यामाज्ञां माहेश्वरींपराम्॥७९॥ महार्थं मंत्ररत्नं च तथैव सकलाः कलाः॥दंडवत्प्रणतिं कृत्वा देवदेवस्य पादयोः॥८०॥अतिष्ठतां वीतभयावानंदास्तामितौ तदा ॥ एतस्मिन्नंतरे चित्रमिंद्रजालवदैश्वरम्॥८१॥ लिंगं क्वापि तिरोभूतं न ताभ्यामुपलभ्यते ॥ ततो विलप्यहाहेति सद्यःप्रणयभंगतः॥८२॥किमसत्यमिदंवृत्तमिति चोक्त्वा परस्परम्॥ अचिंत्यवैभवं शंभोर्विचिंत्य च गतव्यथौ ॥८३॥ अभ्युपेत्य परां मैत्रीमालिंग्य च परस्परम्॥ जगद्व्यापारमुद्दिश्य जग्मतुर्देवपुंगवौ ॥८४॥ ततः प्रभृति शक्राद्याः सर्व एव सुरासुराः॥ ऋषयश्च नरा नागा नार्यश्चापि विधानतः ॥ लिंगप्रतिष्ठा कुर्वंतिलिंगे तं पूजयंति च ॥ ८५ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे हरिविधिमोहनिवारणं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

यके भंगसे ॥८२॥ कहने लगे कि, यह क्या हुआ, क्या असत्य है वा सत्य है; तब शिवका अचिंत्य वैभव विचारकर व्यथारहित होगये ॥ ८३ ॥ और परम मित्रताको प्राप्त हो परस्पर आलिंगन कर जगत्के व्यापारके उद्देशसे वह दोनों भी चले गये ॥ ८४ ॥ उस दिनसे इंद्रादि सम्पूर्ण देवता और असुर ऋषि नर नाग नारी विधिपूर्वक लिंगकी प्रतिष्ठा औ पूजन करने लगे ॥८५॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखंडे लिंगाविर्भावकथनं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ छ ॥ छ॥ छ ॥

श्रीकृष्ण बोले, हे भगवन् ! मैं पूजाकी विधि श्रवण करनेकी इच्छा करता हूं जो बेर लिंगका विधान शिवजीने कहा है ॥ १ ॥ उपमन्यु बोले, अपने अनुकूल शुक्लपक्षका दिन प्राप्त होनेमें शिवशास्त्रके मार्गमें प्रमाणयुक्त लिंग बनावे ॥ २ ॥ स्थान स्वीकार कर पृथ्वीकी परीक्षाका विधान करे, लक्षण उद्धारपूर्वक दशोपचार करे ॥ ३ ॥ उन दशोपचारोंसे पहले विनायकको पूजकर स्थान शुद्धि आदि करके लिंगको स्थान आलयमें लावे ॥ ४ ॥ कुंमकुमादिसे रंगी कंचनकी शलकासे लक्षणयुक्त चिह्न करके शिवल्पशास्त्रके अनुसार लिखे ॥ ५ ॥ आठ स्थानकी मृत्तिका जलसे अथवा पंचामृतसे पिंडिकाके सहित पंचगव्यसे लिंगको शोध ॥ ६ ॥ दिव्य गंगाजलादिको पूजन कर, फिर पिंडिकाके

श्रीकृष्ण उवाच॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम्॥ लिंगस्यापि च बेरस्य शिवेनविहितं यथा॥१॥ उपमन्युरुवाच॥ अनात्मप्रतिकूले तु दिवसे शुक्लपक्षके॥ शिवशास्त्रोक्तमार्गेण कुर्याल्लिंगं प्रमाणवत्॥२॥ स्वीकृत्याथ शुभस्थानंभूपरीक्षां विधाय च॥दशोपचारान्कुर्वीत लक्षणोद्धारपूर्वकान्॥३॥तेषांदशोपचाराणांपूर्वं पूज्यंविनायकम्॥स्थानशुद्ध्यादिकं कृत्वालिंगंस्नानालयं नयेत् ॥ ४ ॥ शलाकया कांचनया कुंकुमादिरसाक्तया॥लक्षितं लक्षणं शिल्पशास्त्रेण विलिखेत्ततः ॥५॥ अष्टमृत्सलिलैर्वाथ पंच मृत्सलिलैस्तथा ॥ लिङ्गंपिंडिकयासार्द्धं पंचगव्यैश्च शोधयेत्॥६॥ सवेदिकं समभ्यर्च्यदिव्याद्यं तु जलाशयम्॥ नीत्वाधिवासये त्तत्रलिंगं पिंडिकया सह॥७॥ अधिवासालये शुद्धेसर्वशोभासमन्विते॥ सतोरणे सावरणे दर्भमालासमावृते॥८॥ दिग्गजाष्टकसं पन्ने दिक्पालाष्टघटान्विते॥ अष्टमंगलकैर्युक्ते कृतदिक्पालकार्चिते ॥९॥ तेजसं दारवं वापिकृत्वा पद्मासनांकितम् ॥ विन्यसेन्म ध्यतस्तत्र विपुलं पीठकालयम् ॥१०॥द्वारपालान्समभ्यर्च्य.भद्रादींश्चतुरःक्रमात् ॥ समुद्रश्च विभद्रश्चसुनंदश्च विनंदकः॥११॥

सहित लिंगको लेकर अधिवासित करे ॥ ७ ॥ जब स्थान जो सब शोभासे युक्त शुद्ध हो जाय तब बंदनवार और दर्भमालाओंसे शोभित करे ॥ ८ ॥ आठ दिग्गजसे सम्पूर्ण मंगलके द्रव्ययुक्त होने और मंगलद्रव्यसे दिक्पालोंके पूजित होनेपर ॥ ९ ॥ धातु अथवा काठका पद्मासनसे अंकित बडा पीठकालय मध्यमें स्थापन करे बनावे ॥ १० ॥ उसके चारों ओर भद्रादि द्वारपालोंका पूजन कर सुभद्र, दिभद्र, सुनंद, विनंद ॥ ११ ॥

को स्नान कराके वेदीके साथ लिंगकी पूजा करके चारोंओर वस्त्रके अँगोछेसे लपेटकर ॥ १२ ॥ सहजमें जलको पोंछकर पीठिकाके ऊपर शयन करावे; फिर पूर्वकी ओर सूत्र नीचेकी और पिंडिका पश्चिम ओर करके ॥ १३ ॥ वहां पर ससम्पूर्ण मंगलसंयुक्त लिंगको स्थापित करे पांच तीन अथवा एक रात ॥ १४ ॥ लिंगकी पूजाकर फिर विसर्जन करके पूर्ववत् उठाकर उत्सवसे पूजनकर फिर स्नानके स्थानमें लावे ॥ १५ ॥ वहांभी मंगलके मध्यसे शयनका स्थान करके शुद्ध जलसे स्नान कराय लिंगका पूजन करे ॥ १६ ॥ शुद्ध लिपी हुई पृथ्वीके ईशान

स्नापयित्वा समभ्यर्च्यलिंगं वेदिकया सह॥ सकूर्चाभ्यां तु वस्त्राभ्यां समावेष्टयं समंततः॥१२॥ प्रापय्य शनकैस्तोयं पीठिको परिशाययेत्॥ प्राक्शिरस्कमधःसूत्रं पिंडिकांचास्य पश्चिमे॥१३॥ सर्वमंगलसंयुक्तं लिंगं तत्राधिवासयेत ॥ पंचरात्रं त्रिरात्रं वा प्येकरात्रमथापि वा॥१४॥ विसृज्य पूजितं तत्र शोधयित्वा च पूर्ववत्॥ संपूज्योत्सवमार्गेण शयनालयमानयेत्॥१५॥तत्रापि शयनस्थानं कुर्यान्मंडलमध्यतः॥शुद्धैर्जलैःस्नापयित्वा लिंगमभ्यर्चयेत्क्रमात्॥१६॥ ऐशान्यांपद्ममालिख्य शुद्धलिप्तेमहीतले॥ शिवकुंभं शोधयित्वा तत्रावाह्य शिवं यजेत् ॥१७॥ वेदीमध्ये सितं पद्मं परिकल्प्य विधानतः ॥ तस्य पश्चिमतश्चापि चंडि कापद्ममालिखेत् ॥१८॥ क्षौमाद्यैर्वाहतैर्वस्त्रैः पुष्पैर्दर्भैरथापि वा॥ प्रकल्प्य शयनंतस्मिन्हेमपुष्पं विनिक्षिपेत् ॥१९॥ तत्र लिंगं समानीय सर्वमंगलनिःस्वनैः॥ रक्तेन वस्त्रयुग्मेन सकूर्चेन समंततः॥२०॥सहपिंडिकयावेष्टय शाययेच्चयथा पुरा॥ पुरस्तात्पद्ममा लिख्य तद्दलेषु यथाक्रमम् ॥२१॥ विद्येशकलशान्न्यस्येन्मध्ये शैवीं च वर्द्धनीम् ॥ परीत्य पद्मत्रितयं जुहुयुर्द्विजसत्तमाः॥२२॥

की ओर कमलको लिखकर शिवकुंभका साधन कर उसमें आवाहनकर शिवका पूजन करे ॥ १७ ॥ वेदीके मध्यमें विधानसे श्वेत कमलकी कल्पना करके पश्चिमकी ओर चण्डिका कमल लिखे ॥ १८ ॥ रेशमी आदि वस्त्र पुष्प वा दर्भसे शयन कल्पित कर सुवर्णके उसमें पुष्प डाले ॥ १९ ॥ उसमें सब मंगलके बाजोंसे युक्त लिंगको लाकर दो लाल वस्त्र और कूर्चके सहित ॥ २० ॥ चारों ओरसे पिंडिकासे लपेटकर शयन करावे; उसके दलोंमें यथाक्रमसे आगे कमल लिखे ॥ २१ ॥ उसके मध्यमें विद्येश्वरके कलशोंको रखकर मध्यमेंशैवी और

वर्द्धनीके चारोंओर तीन पद्मोंको प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणश्रेष्ठ हवन कर॥२२॥और वे आठ मूर्ति कल्पना करी हुई पूर्वादिके क्रमसे स्थित हैं उनके निकट चार अथवा सब दिशाओंमें जप करने और पाठ करनेवाले स्थित हों ॥ २३ ॥ वे जो ब्रह्मादिक चार मूर्ति कल्पित करी हैं वे हवन करें; और आचार्य उन सबसे प्रथम उनके आगे ईशान अथवा पश्चिममें ॥ २४ ॥ प्रधान होम सात द्रव्यसे यथायोग्य करे; आचार्यसे आधे अथवा चौथाई दूसरे ब्राह्मण होम करें ॥ २५ ॥ परन्तु प्रधान होम एक आचार्य अथवा गुरुही करे, पहले पूर्णाहुतिसे एकसौ आठ आहुति घृतकी दे ॥ २६ ॥ और मूल मंत्रसे शिवके मूर्धा स्थानमें शिव हाथको रखकर सौ पचास अथवा पचीस आहुतिसे सात द्रव्योंसे ॥ २७ ॥

ते चाष्टमूर्त्तयः कल्प्याः पूर्वादिपरितः स्थिताः ॥ चत्वारश्चाथ वा दिक्षु स्वध्येतारस्सजापकाः॥२३॥जुहुयुस्तेविरंच्याद्याश्चतस्रो मूर्तयःस्मृताः ॥ दैशिकः प्रथमं तेषामैशान्यांपश्चिमेऽथ वा ॥२४॥ प्रधानहोमं कुर्वीतसप्तद्रव्यैर्यथाक्रमम् ॥ आचार्य्यात्पादमर्द्धं वा जुहुयुश्चापरे द्विजाः॥२५॥प्रधानमेकमेवात्र जुहुयादथ वा गुरुः॥ पूर्वं पूर्णाहुतिं हुत्वा घृतेनाष्टोत्तरंशतम्॥२६॥ मूर्ध्नि मूलेन लिंगस्य शिवहस्तं प्रविन्यसेत्॥ शतमर्द्धं तदर्द्धं वा क्रमाद्द्रव्यैश्च सप्तभिः ॥२७॥ हुत्वाहुत्वा स्पृशेल्लिंगं वेदिकां च पुनःपुनः॥ पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा क्रमाद्दद्याच्च दक्षिणाम्॥२८॥ आचार्यात्पादमर्द्धं वा होतॄणां स्थपतेरपि॥ तदर्द्धं देयमन्येभ्यः सदस्येभ्यश्च शक्तितः ॥ २९ ॥ ततः श्वभ्रे वृषं हैमं कूर्चं वापि निवेश्य च ॥ मृदंभसा पंचगव्यैः पुनः शुद्धजलेन च ॥ ३० ॥

हवन करके लिंग और वेदिकाको बारंबार स्पर्श करके फिर पूर्णाहुतिसे हवन कर क्रमसे दक्षिणा दे ॥ २८ ॥ आचार्य आधी वा चौथाई दक्षिणा दूसरे होताओंको दे और चौथाई शिल्पीको दे वा आधी दे, और उससे आधी यथाशक्ति दूसरे सभामें बैठनेवालोंको अपनी शक्तिसे दे ॥ २९ ॥ फिर श्वभ्र (छिद्रस्थान) में सुवर्ण वृषको बैठाकर अथवा कूर्च (आसन वा कुशमुष्टि) में बैठाकर मृत्तिका जल पंचगव्य और पवित्र जलसे ॥ ३० ॥

१ वर्द्धनी—नालसहित पात्र ।

शुद्धकर चंदनसे लिप्त कर उस छिद्र स्थानमें ब्रह्म शिलाको रक्खे, फिर नौ शक्तिके नामसे करन्यास करके ॥ ३१ ॥ हरितालादि धातु; बीज गंध औषधी आदि करके शिव शास्त्रके विधान करके ब्रह्म शिलापर सब वस्तु डालै ॥ ३२॥ क्षीर वृक्षसे उत्पन्न हुए प्रति लिंगको स्थापनकरके उसे स्थापन कर उसे स्थित जानकर और ब्रह्म शिलाको भी ॥ ३३ ॥ पहले कुछ जल छिडक कर मूल मंत्रसे स्थापन करे और शक्तिका मूल मंत्र उच्चारण कर उसके साथ पिंडिकाको जड़कर ॥ ३४ ॥ सुधादिलेप द्रव्योंसे उसका बन्धन कर स्थानको शोधकर अर्घ और पुष्प देकर परदा डाल दे ॥ ३५॥ फिर लिंगके सम्मुख यथा योग्य निषेकादि कर उस शयन स्थानसे लाकर क्रमसे कलशोंपर रक्खै ॥ ३६ ॥

शोधितां चंदनालिप्तां श्वभ्रे ब्रह्मशिलां क्षिपेत् ॥ करन्यासं ततः कृत्वा नवभिः शक्तिनामभिः ॥ ३१ ॥ हरितालादिधातूंश्च बीजगंधौ षधैरपि ॥ शिवशास्त्रोक्तविधिना क्षिपेद्ब्रह्मशिलोपरि ॥ ३२ ॥ प्रतिलिंगं तु संस्थाप्य क्षीरं वृक्षसमुद्भवम् ॥ स्थितं बुद्ध्वा तदुत्सृज्य लिंगं ब्रह्मशिलोपरि ॥ ३३ ॥ प्रागुदक्प्रवरां किंचित्स्थापयेन्मूलविद्यया ॥ पिंडिकां चाथ संयोज्य शाक्तं मूलमनुस्मरन् ॥ ३४ ॥ बन्धनं बंधकद्रव्यैः कृत्वा स्थानं विशोध्य च ॥ दत्त्वा चार्घ्यं च पुष्पाणि कुर्युर्यवनिकां पुनः ॥ ३५ ॥ यथायोग्यं निषेकादि लिंगस्य पुरतस्तदा ॥ आनीय शयनस्थानात्कलशान्विन्यसेत्क्रमात् ॥ ३६ ॥ महापूजामथारभ्य संपूज्य कलशान्दश ॥ शिवमंत्रमनु स्मृत्य शिवकुंभजलांतरे ॥३७॥ अंगुष्ठानामिकायोगादादाय तमुदीरयेत् ॥ न्यसेदीशानभागस्य मध्ये लिंगस्य मंत्रवित ॥ ३८ ॥ शक्तिन्यसेत्तथा विद्यां विद्येशांश्च यथाक्रमम् ॥ लिङ्गमूले शिवजलैस्ततो लिंगं निषेचयेत् ॥ ३९ ॥ वर्द्धन्यां पिंडिकालिंगं विद्येशकलशैः पुनः ॥ अभिषिच्यासनं पश्चादाधाराद्यं प्रकल्पयेत् ॥ ४० ॥

फिर महापूजा आरम्भकर दश कलशोंको पूजन कर शिव मंत्रोंको स्मरण कर शिव कुंभको जिसमें जल भरा है ॥ ३७ ॥ अंगूठे और अनामिकाके योगसे लाकर मन्त्रको उच्चारण करे और लिंगके मध्य ईशान भागमें मन्त्रका जाननेवाला उसे स्थित करे ॥ ३८ ॥ उसमें विद्या शक्ति और विद्येशका क्रमसे न्यास करे, लिंगके मूलमें शिव जलसे लिंगको सींचे ॥ ३९ ॥ वर्द्धनीं पिंडिकासे लिंगको फिर विद्येशके कलशोंसे अभिषेक कर पीछे आधारादिकी कल्पन करे ॥ ४० ॥

पंचकल्पन्यास करके दीप्त लिंगको स्मरण करता हुआ हाथ जोड पूर्वको मुखकर शिवा शिवको खड़ा होकर आवाहन करे ॥ ४१ ॥ वृष राजके ऊपर चढ़कर विमानमें वा आकाश मार्गसे देवी और देवको शृंगार कर आता हुआ स्मरण करे, सम्पूर्ण आभरणोंकी शोभासे युक्त सम्पूर्ण मंगलके शब्दोंसे युक्त ॥ ४२ ॥ ब्रह्मा विष्णु, महेश, इन्द्रादि देवों करके युक्त जिनके कि सम्पूर्ण अंग आनन्दसे क्लिन्न हो रहे हैं और हाथ जोड़े शिर झुकाये हैं ॥ ४३ ॥ स्तुति नमस्कार करते नृत्य करते हैं इस प्रकार ध्यान कर पंचोपचारसे पूजा कर समाप्त करे ॥ ४४ ॥ इस पंचोपरचारसे अधिक कोई नहीं है सब प्रतिमाओंकी लिंगवत् पूजा करे ॥ ४५ ॥ लक्षण उद्धारके समय नेत्रोन्मीलन करना

कृत्वा पंचकलान्यासं दीप्तं लिंगमनुस्मरेत् ॥ आवाहयेच्छिवौ साक्षात्प्राञ्जलिः प्रागुदङ्मुखः ॥४१॥ वृषाधिराजमारुह्य विमानं वा नभस्तलात् ॥ अलंकृतं सहायांतं देव्या देवमनुस्मरन् ॥ सर्वाभरणशोभाढ्यं सर्वमंगलनिस्वनैः॥४२॥ब्रह्मविष्णुमहेशार्कशक्राद्यैर्देवदानवैः ॥ आनंदक्लिन्नसर्वांगैर्विन्यस्तांजलिमस्तकैः ॥ ४३ ॥ स्तुवद्भिरेव नृत्यद्भिर्नामद्भिरभितो वृतम् ॥ ततः पंचोपचारांश्च कृत्वा पूजां समापयेत् ॥४४॥ नातः परतरः कश्चिद्विधिः पञ्चोपचारकात् ॥ प्रतिष्ठां लिंगवत्कुर्यात्प्रतिमास्वपि सर्वतः ॥४५॥लक्षणोद्धारसमये कार्यं नयनमोचनम् ॥ जलाधिवासे शयने शाययेत्तान्त्वधोमुखीम् ॥४६॥ कुम्भोदशायितां मंत्रैर्हृदितां सन्नियोजयेत् ॥ कृतालयां परामाहुः प्रतिष्ठामकृतालयात् ॥ ४७ ॥ शक्तः कृतालयः पश्चात्प्रतिष्ठाविधिमाचरेत् ॥ अशक्तश्चेत्प्रतिष्ठाप्य लिंग बेरमथापि वा ॥४८॥ शक्तेरनुगुणं पश्चात्प्रकुर्वीत शिवालयम् ॥ गृहार्चां च पुनर्वक्ष्ये प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् ॥ ४९ ॥ कृत्वा कनीयसंबेरं लिंगं वा लक्षणान्वितम् ॥ अयने चोत्तरे प्राप्ते शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥ ५० ॥

चाहिये, जलमें और शयनमें प्रतिमाओंको अधोमुखी शयन करावे ॥ ४६ ॥ कुम्भके उदरमें प्राप्त हुए मन्त्रोंको उन प्रतिमाओंके हृदयमें नियोजित करे, स्थान न बनानेसे स्थान बनाना श्रेष्ठ कहा है उससे प्रतिष्ठा विधि अधिक कही है ॥ ४७ ॥ जब समर्थ हो तब बनवा कर पंतिष्ठा विधि करे; और जो असमर्थ हो तो लिंग मूर्तिको स्थापन करे वा बेर (मूर्ति) बनावे ॥ ४८ ॥ पीछे शक्तिके होनेपर शिवालय बनावे, ग्रहचर्यामें फिर प्रतिष्ठाकी उत्तम विधि कहेंगे ॥ ४९ ॥ छोटाबेर (मूर्ति) अथवा लिंगका लक्षणसे युक्त बनाकर उत्तरायणमें शुक्लपक्ष

शुभदिनमें ॥ ५० ॥ सुन्दर वेदी बनाकर उसमें पूर्वतक कमल लिखे, पुष्प पत्रादि वहां बखेरकर मध्यमें घडेको रखकर ॥ ५१ ॥ उसके चारोंओर चारों दिशाओंमें चार कलश स्थापन करे पांच ब्रह्मके नाम उनके बीज पांचपांच ॥ ५२ ॥ स्थापित कर और पूजन कर मुद्रा दिखाकर रक्षा करे, मट्टी जलादिसे पूर्ववत् बेरलिंगको शुद्धकर ॥५३॥ उत्तरमें स्थित सुन्दर आसनमें फूलोंसे आच्छादित कर स्थित करे, पुष्पको शिरपर रख प्रोक्षणीके जलसे प्रोक्षण करे ॥ ५४ ॥ फिर जय शब्दादि फूलोंसे पूजन कर ईशानसे विद्येश्वरतकके कुम्भोंसे मूलमन्त्र

देवीं कृत्वा शुभे देशे तत्राब्जं पूर्ववल्लिखेत् ॥ विकीर्य पत्रपुष्पाद्यैर्मध्ये कुंभं निधाय च ॥ ५१ ॥ परितस्तस्य चतुरः कलशान् दिक्षु विन्यसेत् ॥ पंच ब्रह्माणि तद्बीजैस्तेषु पंचसु पंचभिः ॥ ५२ ॥ न्यस्य संपूज्य मुद्रादि दर्शयित्वाभिरक्ष्य च ॥ विशोध्य लिंगं बेरं वा मृत्तोयाद्यैर्यथा पुरा ॥ ५३ ॥ स्थापयेत्पुष्पसंछन्नमुत्तरस्थे वरासने ॥ निधाय पुष्पं शिरसि प्रोक्षयेत्प्रोक्षणीजलैः ॥ ५४ ॥ समभ्यर्च्य पुनः पुष्पैर्जयशब्दादिपूर्वकम् ॥ कुम्भैरीशानविद्यांतैः स्नापयेन्मूलविद्यया ॥ ५५ ॥ ततः पंचकलान्यासं कृत्वा पूजां च पूर्ववत् ॥ नित्यमाराधयेत्तत्र देव्या देवं त्रिलोचनम्॥५६॥एकमेवाथ वा कुंभं मूर्तिमन्त्रसमन्वितम् ॥ न्यस्य पद्मांतरे सर्वं शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥ ॥ ५७ ॥ अत्यंतोपहतं लिंगं विशोध्य स्थापयेत्पुनः ॥ संप्रोक्षयेदुपहतमनाद्युपहतं यजेत् ॥ ५८ ॥ लिंगानि बाणसंज्ञानिस्थापनी यानि वा न वा ॥ तानि पूर्वं शिवेनैव संस्कृतानि यतस्ततः ॥ ५९ ॥ शेषाणि स्थापनीयानि यानि दृष्टानि बाणवत् ॥ स्वयमुद्भूतलिंगे च दिव्ये चार्षे तथैव च ॥ ६० ॥

पढकर स्नान करावे ॥ ५५ ॥ फिर पंचकलान्यास और पूर्ववत् पूजा करके वह देवीसहित त्रिलोचन शिवकी नित्य आराधना करे ॥ ५६ ॥ इसी प्रकार मूर्तिसे युक्त उस घटको दूसरे कमलमें रख फिर सब पूजादि करे ॥ ५७ ॥ और जो अत्यन्त दोषयुक्त लिंग हो उसे शोधकर फिर स्थापन करे, दोषयुक्तको प्रोक्षण करे, और थोडे दोषयुक्त होनेसे यजन करे ॥ ५८ ॥ जितने बाणसंज्ञक लिंग स्थापन करने योग्य हैं वे स्थापित हुए हों वा न हों वह पहलेही शिवसे संस्कृत होचुके हैं ॥ ५९ ॥ जो बाणवत् देखे जायँ वह भी स्थापनके योग्य हैं; जो

लिंग स्वयं प्रादुर्भूत देवता तथा ऋषिका स्थापित किया हो ॥६०॥ यदि पीठसे रहित हो तो प्रोक्षण कर पीठपर स्थित कर देना उचित है, उसपर स्थित कर यजन कराना प्रतिष्ठाका विधि करनी उचित नहीं॥६१॥ दग्ध विशीर्ण क्षत अंगवाले लिंगको जलाशयमें डाल देना चाहिये और जो सन्धान (जोड़ने) योग्य हो तो उसे जोड़कर प्रतिष्ठाविधि करे ॥ ६२ ॥ बेरसे वा विकल हुए लिंगसे देवपूजा करके उद्वासन (विसर्जन) कर हृदयमें संधान वा त्याग यथायोग्य करे ॥ ६३ ॥ एक दिन पूजाका व्यतिक्रम होजाय तो दूनी पूजा करे दो रात होनेपर महापूजा करे फिर प्रोक्षण करे ॥ ६४ ॥ माससे अधिक अनेक दिन जो पूजा न की जाय तो उसमें किसी ऋषिका मत है कि, प्रतिष्ठा करे,

अपीठे पीठमावेश्य कृत्वा संप्रोक्षणं विधिम् ॥ यजेत्तत्र शिवं तेषां प्रतिष्ठा न विधीयते ॥ ६१ ॥ दग्धं श्लथं क्षतांगं च क्षिप्तं लिंगं जलाशये ॥ संधान योग्यं संधाय प्रतिष्ठाविधिमाचरेत् ॥६२॥ बेराद्वा विकला लिंगाद्देवपूजापुरस्सरम् ॥ उद्वास्य तद्दि संधानं त्यागं वायुक्तमाचरेत् ॥ ६३ ॥ एकाहपूजाविहतौ कुर्याद्द्विगुणमर्चनम् ॥ द्विरात्रे च महापूजां संप्रोक्षणमतः परम् ॥६४॥ मासादूर्ध्वमनेकाहं पूजा यदि विहन्यते ॥ प्रतिष्ठा प्रोच्यते कैश्चित्कैश्चित्संप्रोक्षणक्रमः ॥६५॥ संप्रोक्षणे तु लिंगादेर्देवमुद्वास्य पूर्ववत् ॥ अष्टपञ्चक्रमेणैवस्नापयित्वा मृदंभसा ॥ ६६ ॥ गवां रसैश्च संस्नाप्य दर्भतोयैर्विशोध्य च ॥ प्रोक्षयेत्प्रोक्षणीतोयैर्मूलेनाष्टोत्तरं शतम् ॥ ६७ ॥ सपुष्पं सकुशं पाणिं न्यस्य लिंगस्य मस्तके ॥ पंचवारं जपेन्मूलमष्टोत्तरशतं ततः ॥ ६८ ॥ ततो मूलेन मूर्द्धादिपीठांतं संस्पृशेदपि ॥ पूजां च महतीं कुर्याद्देवमावाह्य पूर्ववत् ॥ ६९ ॥

कोई कहते हैं प्रोक्षण करे ॥ ६५ ॥ लिंगादि प्रोक्षणमें देवको पूर्ववत् उद्वासन कर अथवा पांच बार मृत्तिका वा जलसे स्नान कराय ॥६६॥ अथवा गायोंके दूधसे वा कुशोंके जलसे शोधकर प्रोक्षणीके जलद्वारा एकसौ आठ मूलमन्त्रसे शुद्ध कर ॥ ६७ ॥ पुष्प कुशायुक्त हाथ लिंगके मस्तकपर रखकर मूलमन्त्रको पांच बार और एकसौ आठ बार जपे ॥ ६८ ॥ फिर मूलमन्त्रसे मूर्धा आदि पीठपर्यन्त स्पर्श करे फिर पूर्ववत् देवका आवाहन कर महापूजा करे ॥ ६९ ॥

जब कि स्थापित लिंग न मिले तो शिवस्थानमें अथवा जलमें अग्नि सूर्य अथवा आकाशमें भगवान शिवका पूजन करे॥ ७० ॥ इति श्रीशिव महापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे लिंगबेरप्रतिष्ठासंप्रोक्षणादिविधिकथनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ श्री कृष्णजी बोले, ज्ञान क्रिया और पूजामें संग्रहग्रन्थोंसे सार लेकर जो आपने कहा वह वेदसम्मत मैंने श्रवण किया ॥ १ ॥ इस समय परम दुर्लभ योगके सुननेकी इच्छा करता हूं; उसका सांगोपांग अधिकार विधि प्रयोजन ॥ २ ॥ जो योगाभ्यासके त्यागसे विधिपूर्वकका किया मरण होता है; वह योगसे

अलब्धे स्थापिते लिंगे शिवस्थाने जलेऽथ वा ॥ वह्नौ रवौ तथा व्योम्नि भगवंतं शिवं यजेत् ॥७०॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे प्रतिष्ठाविधिवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ज्ञाने क्रियायां चर्यायां सारमुद्धृत्य संग्रहात्॥उक्तं भगवता सर्वं श्रुतं श्रुतिसमं मया॥१॥इदानीं श्रोतुमिच्छामि योगं परमदुर्लभम् ॥ साधिकारं च सांगं च सविधिं सप्रयोजनम् ॥२॥ यद्यस्ति मरणं पूर्वं योगाद्यनुपमर्दतः ॥सद्यः साधयितुं शक्यं येन स्यान्नात्महा नरः ॥ ३ ॥ तच्च तत्कारणं चैव तत्कालकरणानि च ॥ तद्भेदतारतम्यं च वक्तुमर्हसि तत्त्वतः ॥४॥उपमन्युरुवाच ॥ स्थाने पृष्टं त्वया कृष्ण सर्वप्रश्नार्थवेदिना॥ततः क्रमेण तत्सर्वं वक्ष्येशृणु समाहितः॥५॥निरुद्धवृत्त्यतरस्यं शिवे चित्तस्य निश्चला॥ या वृत्तिः स समासेन योगः स खलु पंचधा ॥६॥ मंत्रयोगःस्पर्शयोगो भावयोगस्तथापरः॥ अभावयोगस्सर्वेभ्यो महायोगः परो मतः ॥ ७ ॥ मंत्राभ्यासवशेनैव मंत्रवाच्यार्थगोचरः ॥ अव्याक्षेपा मनोवृत्तिर्मंत्रयोग उदाहृतः ॥ ८ ॥

साधन करनेको समर्थ होता है. जिससे मनुष्य आत्महा नहीं होता ॥ ३ ॥ उसके वह कारण और कालके कारण उसकै भेदका तारतम्य यथा योग्य कहिये ॥ ४ ॥ उपमन्यु बोले, हे कृष्ण ! सब प्रश्नके जाननेवाले आपने अच्छा प्रश्न किया सो मैं क्रमसे सब कहता हूं आप सावधान होकर सुनो ॥ ५ ॥ अन्तरकी वृत्तियोंको रोक कर शिवमें ही निश्चल चित्त लगानेकी जो वृत्ति है उसीका नाम योग है, वह योग पांच प्रकारका है ॥ ६ ॥ मन्त्रयोग, स्पर्शयोग भावयोग अभावयोग और महायोग सबसे परे है ॥ ७ ॥ मन्त्रके अभ्याससे मंत्रके वाच्यार्थ गोचर होकर जो

मनकी वृत्ति स्थिर होजाती है इसका नाम मन्त्रयोग है ॥८॥ प्राणायामयुक्त वही मनोवृत्ति स्पर्शयोग कहाता है मन्त्रार्थ विचार अभावमें ही मन्त्रके जपमात्र लक्षणवाले प्राणायामसे रहित भावयोग कहाता है ॥९॥ जिस योगसे सारा जगत् तिरोहितरूप होजाता है यह अभावयोग कहाता है, कारण कि इसमें विद्यमान वस्तुकाभी भान नहीं होता ॥१०॥ एक उपाधिरहित शिवके तत्त्वमात्रके चिन्तन करनेवाली मनोवृत्तिजिसमें प्रपञ्चकी उपाधि नहीं है इसका नाम महायोगहै॥११॥ योगाधिकार करते हैं देखने योग्य प्रजा पशु आदि सम्पत्तिकी प्राप्ति और वेदमें सुने ज्योति

प्राणायाम मुखा सैव स्पर्शे योगोभिधीयते ॥ स मंत्रस्पर्शनिर्मुक्तो भावयोगः प्रकीर्तितः ॥९॥विलीनावयवं विश्वं रूपं संभाव्यतेयतः ॥ अभावयोगः संप्रोक्तोऽनाभासाद्वस्तुनः सतः ॥१०॥ शिवस्वभाव एवैकश्चित्यते निरुपाधिकः ॥ यथा शैवमनोवृत्तिर्महायोग इहोच्यते ॥ ११ ॥ दृष्टे तथानुश्रविके विरक्तं विषये मनः ॥ यस्य तस्याधिकारोस्ति योगे नान्यस्य कस्यचित् ॥ १२ ॥ विषयद्वयदोषाणां गुणानामीश्वरस्य च ॥ दर्शनादेव सततं विरक्तं जायते मनः ॥ १३ ॥ अष्टांगो वा षडंगो वा सर्वयोगः समा सतः ॥ यमश्च नियमश्चैव स्वस्तिकाद्यं तथासनम् ॥ १४ ॥ प्राणायामः प्रत्याहारो धारणा ध्यानमेव च ॥ समाधिरिति योगांगान्यष्टावुक्तानि सूरिभिः ॥ १५ ॥ आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारोथ धारणा ॥ ध्यानं समाधियोंगस्य षडंगानि समासतः ॥ १६ ॥ पृथग्लक्षणमेतेषां शिवशास्त्रे समीरितम्॥शिवागमेषु चान्येषु विशेषात्कामिकादिषु ॥ १७ ॥

ष्टोमादि स्वर्गसाध्य विपर्ययोंमें जिसका मन विरक्त है; उसीका योगमें अधिकार है दूसरेका नहीं ॥१२॥ इस लोकके परलोकके दोनों विषयोंमें दोषको देख अर्थात् यहांके सुखभी शीघ्र नष्ट होजाते हैं और परलोकके सुखभी एकदिन नष्ट होजातेहैं,ऐसे ईश्वरके नियम विचार करनेसे मनशीघ्र विरक्त होजाता है॥१३॥अष्टांग वा षडंग संक्षेपसेयोगके अंग कहेहैं, यम, नियम और स्वस्तिक आदि आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि यह आठ अंग हैं॥१४॥१५॥ आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि यह संक्षेपसे योगके छः अंग हैं ॥१६॥ शिवशास्त्रोंमें इनके

पृथक् २ लक्षण कहे हैं, विशेष कर शिवशास्त्र में कामिकादि कर्ममें वर्णन किये हैं ॥ १७ ॥ योगशास्त्र तथा अन्य पुराणोंमें भी वर्णन किये हैं इसमें हम संक्षेपसे कहते हैं,योगियाज्ञवल्क्य गीतामें लिखा है; यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि यह योगके अंग हैं; यम नियम दश प्रकारके हैं, आसनोंमें आठ उत्तम हैं, उनमें तीन उत्तम हैं, प्राणायामके तीन भेद और प्रत्याहार पांच प्रकारका है, धारणा पांच प्रकार और इसी प्रकार ध्यान है, तीन उसमें श्रेष्ठ हैं, समाधि एकरूप है, ऐसा कोई मुनि कहते हैं, सो विस्तारसे सुनो, हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह (दान नहीं लेना) दया, ऋजुता, क्षमा, धारणा परिमित भोजन, शौच करना यह यम कहाते हैं,और मन वचन कर्मसे सदा सब प्राणियोंमें जो अहित करना है वही हिंसा है,जिसमें सब प्राणियोंको क्लेश होता है, और जो हिंसा वेदमें कही है यदि वह अभिचार कर्म है तो हिंसा है, प्राणियोंके हितकाही नाम सत्य है, सत्य भाषणहीका नाम सत्य नहीं; मन वचन कर्मसे सब प्राणियोंमें सब प्रकारसे मैथुनके त्यागका नाम ब्रह्मचर्य आश्रममें स्थित यती नैष्ठिक कहते हैं, ब्रह्मचर्यके होनेसे वह भी और वनवासी भी

योगशास्त्रेष्वपितथा पुराणेष्वपि केषु च ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहः॥यम इत्युच्यते सद्भिः पंचावयवयोगतः॥१८॥

एक है, ब्रह्मचर्यविधि गृहस्थोंको भी कही है, इस प्रकार करनेसे राजा और गृहस्थ भी ब्रह्मचारी कहा सकते हैं, कोई पंडित कहते हैं कि वैश्यवृत्ति करनेवालोंको नित्य गुरुकी शुश्रूषा करनाही ब्रह्मचर्य है,सब प्राणियोंपर अनुग्रह करनेका नाम दया है,तथा दूसरे विहित कार्योंमें मन वचन कर्मका प्रवृत्तिमें निवृत्ति एकरूप रहनेका नाम आर्जव है; जो प्रिय अप्रियमें समान रहते हैं, वही योगियोंने क्षमा कही है, अर्थ हानि, बन्धु वियोग सम्पदाकी प्राप्ति इनमें सर्वत्र चित्तके स्थापनका नाम धृति है । मुनियोंको आठ ग्रास और वनवासियोंको सोलह ग्रास गृहस्थोंको और ब्रह्मचारियोंको यथेष्ठ खाना चाहिये, बाह्य आभ्यन्तरके भेदसे शौच दो प्रकारका है, मृत्तिका जलसे बाह्य और भाव शुद्धिसे अन्तर पवित्रता होती है, धर्म और अध्यात्म विद्यासे मनकी शुद्धि होती है, तप सन्तोष आस्तिक्य दान ईश्वरका पूजन सिद्धान्त श्रवण लज्जा बुद्धि जप व्रत यह नियम हैं, इसको पृथक् २ सुनो, विधि अनुसार कृच्छचान्द्रायणादि करके शरीरके सुखानेका नाम तप है, यच्छा लाभसे ही मेरी पूर्ति

होगी ऐसी बुद्धिका नाम ऋषियोंने सन्तोष कहा है, जिसका धर्माधर्ममें विश्वास हो उसे आस्तिक कहते हैं, न्यायसे उत्पन्न किया जो दयासे किसीको दिया जाता है, और अर्थियोंको श्रद्धासे जो दिया जाता है उसका नाम दान है, जो स्वभावसे थोडा या बहुत शक्ति अनुसार भक्तिसे किया जाय वही ईश्वर पूजन है, जो राग और ममता दुष्टता आदि हिंसासे रहित कर्म किया जाता है वह तप ईश्वर पूजन है, सिद्धान्त श्रवण वेदान्त श्रवणका नाम है, क्षत्रियको भी ब्राह्मणके समान सिद्धान्त श्रवण करना उचित है; शील सत्पुरुषोंके आचरणवाले वैश्योंको भी यही उचित है, स्त्री और शुद्रोंको अपने धर्ममें स्थित तपस्वियोंके सिद्धान्त सुनना और पुराण सुनना कहा है, वैदिक लौकिक मार्गमें जो कल्पित कर्म हैं उसमें जो लज्जा है कि मैंने कुछ नहीं किया यही है, विहित मार्गोंमें श्रद्धासे जो मति होती है वही मति है जिसमें गुरुका उपदेश भी वेदबाह्य स्वीकार नहीं किया है.विधिमार्गसे मन्त्राभ्यासका नाम जप है, वेद वेदांग पुराण इतिहास पढनेपर जो अध्ययन है वह मन्त्रका

शौचं तुष्टिस्तपश्चैव जपः प्रणिधिरेव च ॥ इति पंच प्रभेदस्स्यान्नियमः स्वांशभेदतः ॥ १९ ॥ स्वस्तिकं पद्ममध्येंदु वीरं योगं प्रसाधितम् ॥ पर्यंकं च यथेष्टं च प्रोक्तमासनमष्टधा ॥ २० ॥

अभ्यास जप कहाता है, जो प्रसन्न हो गुरुने उपदेश किया है उनकी अनुज्ञासे धर्म पूर्वक अपनी सिद्धिका निमित्त उपायके ग्रहण करनेका नाम व्रत है, इस प्रकार औरोंके लक्षण भी शिवसंहिता आदि योग ग्रन्थोंमें देख लेना, हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करनी, देह यात्राके बिना भोग साधनका स्वीकार न करना,इस पंचावयव नव योगको बुद्धिमानोंने यम कहा है ॥१८॥शौच तुष्टि जप तप ईश्वर अर्पणके निमित्त कर्मका करना । इस प्रकार अपने अंशके भेदसे नियम पांच प्रकारका है ॥१९॥ स्वस्तिक पद्म अर्द्धेन्दु वीरासन योगप्रसाधित(अत्यन्त अभ्यास किया हुआ) यथेच्छा अपनी इच्छासे, कोई एक आसनका अभ्यास करे.इस प्रकार आसन आठ प्रकारका कहा है। जानु ऊरुके मध्यमें दोनों चरणोंके तलुओंको करके सीधा देह कर बैठ जाय यह स्वस्तिक आसन है । दहने चरणोंमें बाईं ऊरुको स्थित करके फिर बायें पैरकी ऊरु पृथ्वीमें धरके स्थित होनेका नाम वीरासन है । अर्द्धेन्दु अर्द्धचन्द्राकृति होता है । वाम ऊरुके ऊपर दक्षिण चरण स्थापन करके

बायाँ चरण दक्षिण ऊरुके ऊपर स्थापन कर दक्षिण हाथ पीठकी ओर कर वाम ऊरुके ऊपर स्थित चरणके अंगुष्ठको ग्रहण कर तथा वामहाथको पृष्ठभागमें कर दक्षिण ऊरुके ऊपर स्थित बायें चरणके अँगूठेको ग्रहण कर हृदयसमीप ठोडी धरके नासिकाके अग्रभागको देखे, यह पद्मासन है इसी प्रकार मयूरासन सिद्धासन सिंहासन भद्रासनके भेद योगके ग्रन्थोंमें लिखे हैं ॥ २० ॥ अपने देहसे उत्पन्न हुई जो वायु श्वास प्रश्वास रूप है, उसकी गति रोकनेका नाम प्राणायाम है, वह रेचक कुम्भक और पूरक भेदसे तीन प्रकारका है ॥ २१ ॥ नासिकाके एक पुटको (इडा) अंगुलीसे बन्द करके दूसरे स्वर पिंगलामेंसे उदरकी वायु निकालनेका नाम रेचक है ॥ २२ ॥ और बाह्य पवनसे वायुको जो हृदयमें दूसरे नासापुटसे पूरण करना है वह पूरक प्राणायाम है ॥ २३ ॥ अन्तर और बाहर स्थित वायुको जब न ग्रहण किया जाता है न त्याग किया

प्राणः स्वदेहजो वायुस्तस्यायामो निरोधनम्॥तद्रेचकं पूरकं च कुंभकं च त्रिधोच्यते॥२१॥नासिकापुटमंगुल्या पीडयैकमपरेण तु ॥ औदरं रेचयेद्वायुं तथायं रेचकः स्मृतः ॥ २२ ॥ बाह्येन मरुता देहं दृतिवत्परिपूरयेत् ॥ नासापुटेनापरेण पूरणात्पूरकं मतम् ॥ २३ ॥ न मुंचति न गृह्णाति वायुमंतर्बहिः स्थितम्॥ संपूर्ण कुंभवत्तिष्ठेदचलः स तु कुंभकः॥२४॥ रेचकाद्यं त्रयमिदं न द्रुतं न विलंबितम् ॥ तद्यतः क्रमयोगेन त्वभ्यसेद्योगसाधकः ॥२५॥ रेचकादिषु योभ्यासो नाडीशोधनपूर्वकः ॥ स्वेच्छोत्क्रमणपर्यंतः प्रोक्तो योगानुशासने ॥ २६ ॥ कन्यकादिक्रमवशात्प्राणायामनिरोधनम्॥ तच्चतुर्द्धोपदिष्टं स्यान्मात्रागुणविभागतः ॥ २७ ॥ कन्यकस्तु चतुर्द्धा स्यात्स च द्वादशमात्रकः ॥ मध्यमस्तु द्विरुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रकः ॥ २८ ॥

जाता है, घटके समान अचल होता है उसीका नाम कुम्भक है ॥ २४ ॥ यह रेचकादि करनेमें न बहुत विलम्ब करना चाहिये न शीघ्रता करे, क्रमयोगसे उद्यत होकर साधक इसका अभ्यास करे ॥ २५ ॥ नाडीशोधनपूर्वक रेचकादिके अभ्यास करनेमें अपनी इच्छा जहांतक हो तहांतक यह उपक्रम करता रहे, न शीघ्रता करे न विलम्बता करे ऐसा योगशास्त्रमें कहा है ॥ २६ ॥पहले छोटा फिर बडा इस क्रमसे प्राणायाम करे वह मात्रा गुणके विभागसे चार प्रकारका है ॥ २७ ॥ सुकृत उद्घात है, (अर्थात् प्राणवायुसे अपानके ताडित होनेपर नाभिमूलसे प्रेरित वा शिरपर्यन्त ताडित होना इसका नाम उद्घात है,) यह बारह मात्रावाला है और कनीय प्राणायाम है इसके

विरुद्ध चौबीस मात्राका मध्यम प्राणायाम होताहै ॥२८॥तीन उद्घातयुक्त छब्बीस मात्राका प्राणायाम उत्तम कहाता है; स्वेद कम्पादिककाउत्पन्न करनेवाला चौथा प्राणायाम है यही बात पातञ्जलके २ पादके ४९ सूत्रमें कहीं है, जिसमें श्वास प्रश्वास वायुके गमनका अभाव हो वह प्राणायाम बाह्य है, जहां वायुके अन्तर्गमनका अभाव हो सो आभ्यन्तर जहां दोनोंका स्तम्भ हो उसे स्तम्भवृत्ति कहते हैं, जैसे अग्निमें पडे उपलेपर जल डालनेसे वह संकुचित होता है; तैसेही इसमें दोनोंका स्तम्भ होजाता है, सो अभ्यासकिये पुरुषसे होसकतेहैं; यही उसका विषय है; इसे देशपरिदृष्ट कहते हैं; यही इसका लक्षण है; इसे कालपरिदृष्ट कहते हैं, जितने श्वास प्रश्वासोंका प्रथम उद्घात है; उतनेही ग्रहण कियेका दूसरा और उतनेही ग्रहण कियेका तीसरा है, ऐसेही मृदु मध्य और तीव्र है; जहां ऐसा विचार हो उसे संख्या परिदृष्ट कहते हैं (बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः) जो दीर्घ

उत्तमस्तु त्रिरुद्घातः षड्विंशन्मात्रकः परः ॥ स्वेदकंपादिजनकः प्राणायामस्तदुत्तरः ॥ २९ ॥ आनंदोद्भवरोमांचनेत्राश्रूणां विमोचनम् ॥ जल्पभ्रमण मूर्छाद्यं जायते योगिनः परम् ॥ ३० ॥ जानुं प्रदक्षिणीकृत्य न द्रुतं न विलंबितम् ॥ अंगुलीस्फोटनं कुर्यात्सा मात्रेति प्रकीर्तिता ॥ ३१ ॥ मात्राक्रमेण विज्ञेयाश्चोद्घातक्रमयोगतः ॥ नाडीविशुद्धिपूर्वं तु प्राणायामं समाचरेत् ॥ ३२ ॥ अगर्भश्च सगर्भश्च प्राणायामो द्विधा स्मृतः ॥ जपं ध्यानं विनागर्भः सगर्भस्तत्समन्वयात् ॥ ३३ ॥ अगर्भाद्गर्भसंयुक्तः प्राणायामःशताधिकः॥तस्मात्सगर्भं कुर्वन्ति योगिनः प्राण संयमम् ॥ ३४ ॥

सूक्ष्मसे भिन्न हो और जिसमें श्वास प्रश्वासकी गतिका रोध होजाय, वह चौथा है ॥२९॥ इसमें आनन्दकी प्राप्ति रोमांच नेत्रोंसे आंसू निकलना जल्प भ्रमण मूर्च्छा आदि योगीको होते हैं ॥३०॥ न शीघ्रतासे न देरसे जानुके चारों ओर हाथ घुमाकर जितनी देरमें चुटकी बजाई जाय उसका नाम मात्रा है ॥ ३१ ॥ मात्राक्रमसे उद्घातक्रम जानने चाहिये, और प्रथम नाडी शोधकर फिर प्राणायाम करे ॥ ३२ ॥ अगर्भ और सगर्भ भेदसे प्राणायाम दो प्रकारका है, जप ध्यानके विना अगर्भ और जप ध्यान से संयुक्त सगर्भ है ॥ ३३ ॥ अगर्भसे गर्भसंयुक्त प्राणायाम सौगुणा अधिक है इस कारण योगी सगर्भ प्राणायाम कहते हैं ॥ ३४ ॥

प्राणके विजयसे दश वायु जीते जाते हैं; प्राण अपान समान उदान व्यान ॥ ३५ ॥ नाग कूर्म कृकल देवदत्त धनञ्जय यह दश वायु हैं; प्रयाण करता है, इससे इसको प्राण कहते हैं ॥ ३६ ॥ जो कुछ भोजन किया जाता है उसको नीचे ले जाता है इससे उसको अपान कहते हैं, शरीरके अंगको व्याप्त करता है इससे उसे व्यान कहते हैं और शेषको बढाता हुआ ॥ ३७ ॥ मर्मस्थानोंको उद्वेजित करता है, इससे उदान कहाता है, सब अंगको समान करनेसे समान कहाता है ॥ ३८ ॥ मुखसे किसी वस्तुको उद्गार करनेवाला नाग, उन्मीलनमें कूर्म खांसी (छींक) में कृकल, और जंभाई देवदत्तसे होती है ॥ ३९ ॥ धनञ्जय पोषक पवन सर्व व्यापी है, वह मृतकको भी त्याग

प्राणस्य विजयादेव जीयंते देहवायवः ॥ प्राणोऽपानः समानश्च ह्युदानो व्यान एव च ॥ ३५ ॥ नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनंजयः ॥ प्रयाणं कुरुते यस्मात्तस्मात्प्राणोऽभिधीयते ॥ ३६ ॥ अवाङ्नयत्यपानाख्यो यदाहारादि भुज्यते ॥ व्यानो व्यान शयत्यंगान्यशेषाणि विवर्धयन् ॥३७॥ उद्वेजयति मर्माणीत्युदानो वायुरीरितः समं नयति सर्वांगं समानस्तेन गीयते ॥३८॥ उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्थितः॥कृकलः क्षवथौ ज्ञेयो देवदत्तो विजृंभणे ॥३९॥न जहाति मृतं चापि सर्वव्यापी धनंजयः ॥ क्रमेणाभ्यस्यमानोयं प्राणायामप्रमाणवान् ॥४०॥निर्दहत्यखिलं दोषं कर्तुर्देहं च रक्षति ॥ प्राणे तु विजिते सम्यक् तच्चिह्नान्युपलक्षयेत्॥४१॥विण्मूत्रश्लेष्मणां तावदल्पभावः प्रजायते॥बहुभोजनसामर्थ्यं चिराद्दुच्छ्वासनं तथा॥४२॥लघुत्वं शीघ्रगामित्वमुत्साहः स्वरसौष्ठवम् ॥ सर्वरोगक्षयश्चैव बलं तेजः सुरूपता॥४३॥धृतिर्मेधा युवत्वं च स्थिरता च प्रसन्नता॥तपांसि पापक्षयता यज्ञदानव्रतादयः॥४४॥ प्राणायामस्य तस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥इन्द्रियाणि प्रसक्तानि यथास्वं विषयेष्विह॥४५॥

नहीं करता, क्रमसे अभ्यास किया हुआ प्रमाण युक्त प्राणायाम ॥ ४० ॥ सम्पूर्ण दोष भस्म कर कर्ताके देहकी रक्षा करता है, सम्यक् प्रकारसे प्राण जय होनेपर उनके चिह्नोंसे देखले ॥ ४१ ॥ विष्ठा और मूत्र श्लेष्माकी अल्पता होती है, बहुत भोजनकी सामर्थ्य और विलम्बसे श्वास आता है ॥ ४२ ॥ लघुता, शीघ्र गामीपन, उत्साह, स्वरकी मधुरता, सम्पूर्ण रोगोंका क्षय, बल तेजस्वरूप ॥ ४३ ॥ धृति, बुद्धि, तरणाई, स्थिरता होती है; प्रसन्नता तप पापका क्षय यज्ञ दान व्रतादिक ॥ ४४ ॥ यह प्राणायामकी सोलहवीं कला भी

तो नहीं है; जिस समय इन्द्रिय प्रसन्न हो अपने २ विषयोंमें लगें ॥ ४५ ॥ उनको उन विषयोंसे हटाकर ग्रहण करनेका नाम प्रत्याहार है, मनको आदि लेकर इन्द्रिय ॥ ४६ ॥ ग्रहण की हुई स्वर्ग और नरकके निमित्त होती हैं, इस कारण सुखकी इच्छा करनेवाला बुद्धिमान् ज्ञान वैराग्यमें स्थित हो ॥४७॥ इन्द्रियरूपी घोड़ोंको रोककर आत्मासे आत्माका उद्धार करे; चित्तके स्थिर करनेका नाम धारणा है योग सूत्रमें (देशबन्धश्चित्तस्य धारणेति) ऐसा लिखा है ॥ ४८ ॥ स्थान एक शिव ही है दूसरा नहीं कारण कि और में दोष हैं, समयकी अवधि करके स्थानमें मनको स्थितकर ॥ ४९ ॥ शिवरूपी लक्ष्यसे पृथक् न होने दे जो लक्ष्यसे भ्रष्ट नहीं होती, वही धारणा है अन्यथा नहीं धारणासे प्रथम मनकी स्थिरता होती है ॥ ५० ॥ इस कारण बुद्धिमान धारणा अभ्यासके योगसे मनको रोके ध्यै–चिन्तायाम् धातुसे

आहृत्य यन्निगृह्णाति स प्रत्याहार उच्यते॥नमःपूर्वाणींद्रियाणि स्वर्ग नरकमेव च ॥ ४६ ॥ निगृहीतनिसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च ॥ तस्मात्सुखार्थी मतिमाञ्ज्ञानवैराग्यमास्थितः ॥ ४७ ॥ इंद्रियाश्वान्निगृह्याशु स्वात्मनात्मानमुद्धरेत् ॥ धारणा नाम चित्तस्य स्थानबन्धस्समासतः ॥ ४८ ॥ स्थानं च शिव एवैको नान्यद्दोषत्रयं यतः ॥ कालं कंचावधीकृत्य स्थानेऽवस्थापितं मनः ॥ ४९ ॥ न तु प्रच्यवते लक्ष्याद्धारणास्यान्न चान्यथा ॥ मनसः प्रथमं स्थैर्यं धारणातः प्रजायते ॥ ५० ॥ तस्माद्धीरं मनः कुर्याद्धारणाभ्यासयो गतः ॥ ध्यै चिंतायां स्मृतो धातुः शिवचिंता मुहुर्मुहुः॥५१॥अव्याक्षिप्तेन मनसा ध्यानं नाम तदुच्यते ॥ ध्येयावस्थितचित्तस्य सदृशः प्रत्ययश्च यः ॥ ५२ ॥

ल्युट् प्रत्यय करनेसे व्याकरण शास्त्रमें ध्यान बनता है इससे बारंबार शिवका ध्यान करे ॥ ५१ ॥ एकाकार वृत्ति करके शिवमें स्थित चित्तका प्रत्ययान्तर रहित प्रवाहका नाम ध्यान है योग सूत्रमें (तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानमिति) नाभि आदि स्थानोंमें देहके अवलम्बन ज्ञानकी जो स्थिरता और दूसरे ज्ञानका प्रभाव होता ध्यान है, याज्ञवल्क्यने कहा है, जगत्के कारण अव्यक्त प्रकाशमान महापराक्रमी उनको मनसे देख कर सोहं वृत्ति करना उत्तम ध्यान है, अथवा पर्यंक आसन कर शरीरको शिथिल कर, स्वयं शिवनासाके अग्रभागमें दृष्टि लगाकर निराकार परम शान्त परमात्मा ईश्वर नीरूप अमृतको भौंके बीचमें ध्यान करे, और सबको छोडकर एक कल्याणदायक शिवका

ही ध्यान करे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ परः 'शिवः ध्येयः' । परम शिवही ध्यानके योग्य हैं इस अर्थमें अथर्व श्रुति समाप्त हुई है, वह शिवा शिव सबके स्वामी सबमें प्राप्त सबमें उदय रूप ॥ ५४ ॥ सर्वज्ञ निरन्तर ध्यान योग्य अनेक रूपके भेदसे अनेक होकर भी एक हैं ॥ ५५ ॥ विमुक्ति प्रत्ययवाले और अणिमादि प्रत्ययवाले यह दो प्रकारके प्रत्ययके ध्यानके प्रयोजन कहे हैं ॥ ५६ ॥ ध्याता (ध्यान करनेवाला) ध्यान, ध्येय (जिसका ध्यान किया जाय) और जो ध्यानका प्रयोजन है यह चारों वार्ता जान कर योग जाननेवाले योग करें ॥ ५७ ॥ ज्ञान वैराग्यसे सम्पन्न श्रद्धा क्षमासे युक्त, ममता रहित सदा उत्साहवान् ध्यान करनेवाला पुरुष होता है ॥ ५८ ॥ यह ध्यान करनेवालेके

प्रत्ययान्तरनिर्मुक्तः प्रवाहो ध्यानमुच्यते ॥ सर्वमन्यत्परित्यज्य शिव एव शिवंकरः ॥५३॥ परो ध्येयोऽधिदेवेशः समाप्ता थर्वणी श्रुतिः ॥ तथा शिवा परा ध्येया सर्वभूतगतौ शिवौ ॥ ५४ ॥ तौ श्रुतौ स्मृतिशास्त्रेभ्यःसर्वगौ सर्वदोदितौ ॥ सर्वज्ञौ सततं ध्येयौ नानारूपविभेदतः ॥ ५५ ॥ विमुक्तिः प्रत्ययः ॥ पूर्वः प्रत्ययश्चाणिमादिकम् ॥ इत्येतद्द्विविधं ज्ञेयं ध्यानस्यास्य प्रयोजनम् ॥५६॥ ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं यच्च ध्यानप्रयोजनम् ॥ एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा योगंयुञ्जीत योगवित् ॥५७॥ ज्ञानवैराग्यसंपन्नः श्रद्दधानः क्षमान्वितः ॥ निर्ममश्च सदोत्साही ध्यातेत्थंपुरुषः स्मृतः ॥ ५८ ॥ जपाच्छ्रांतः पुनर्ध्यायेद्ध यानाच्छ्रांतः पुनर्जपेत् ॥ जपध्यानाभियुक्तस्य क्षिप्रं योगः प्रसिद्धयति ॥५९॥ धारणा द्वादशायामा ध्यानंद्वादशधारणम् ॥ ध्यानद्वादशकं यावत्समाधिरभिधीयते ॥६०॥ समाधिर्नाम योगांगमन्तिमं परिकीर्तितम् ॥ समाधिना च सर्वत्र प्रज्ञालोकः प्रवर्तते ॥६१॥ यदर्थमात्रनिर्भासं स्तिमितो दधिवत्स्थितम् ॥ स्वरूपशून्यवद्ध्यानं समाधिरभिधीयते ॥ ६२ ॥

लक्षण कहे, जपसे थक जाय तो ध्यान करे, ध्यानसे थक जाय तो फिर जप करे, जप ध्यानसे युक्त पुरुषको शीघ्र योग सिद्ध हो जाता है ॥ ५९ ॥ बारह प्राणायामकी धारणा और बारह धारणाका ध्यान होता है, और बारह ध्यानकी समाधि होती है ॥ ६० ॥ समाधि योगका अन्तिम अंग है, समाधिसे ही सर्वत्र प्रज्ञानका प्रकाश होता है (समाधिका लक्षण कहते हैं) ॥ ६१ ॥ ध्यातामें ध्येयके स्वभावका आवेश हो जाता है उसे समाधि कहते हैं, अर्थात् अर्थमात्र स्वभावसे निर्भास नाम होता है, और वात रहित सागरके समान स्थित

हो जाता है ध्यान और समाधिमें यह भेद है कि ध्यानमें ध्यातृ देह ध्यानकी त्रिपुटीका ज्ञान बना रहता है किन्तु समाधिमें नहीं रहता प्रश्न;--तो संप्रज्ञात योग और समाधिम क्या भेद है, उत्तर;--समाधि रूपका अंगांगि योग सम्बन्ध है, और संप्रज्ञात योगसे साक्षात् कारके उदय होनेसे समाधिके अगम्य विषय भी प्रतीत होते हैं; योग सूत्र में(तदेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः) जिसमें ध्यानका संस्कार मात्र रह जाय और स्वरूपशून्यसा प्रतीत हो उसे समाधि कहते हैं; स्वरूपशून्यके समान भाव होना, जैसे स्वच्छ स्फटिकमणि कुसुम आदिके योगसे उसी रूपकी प्रकाशित होती है; तद्वत् ध्येयमात्रकी स्फूर्ति रहती है, और यही दीर्घकालतक रहनेसे संप्रज्ञात योग कहाता है; देहस्फूर्ति शून्यका नाम असंप्रज्ञात है, याज्ञवल्क्यने कहा है जीवात्मा परमात्माकी एक अवस्थाका नाम समाधि है ॥ ६२ ॥ ध्येयमें मन लगाकर स्थित

ध्येये मनः समावेश्य पश्येदपि च सुस्थिरम् ॥ निर्वाणानलवद्योगी समाधिस्थः प्रगीयते॥६३॥न शृणोति न चाघ्राति न जल्पति न पश्यति ॥ न च स्पर्शं विजानाति न संकल्पयते मनः ॥ ६४ ॥ नवाभिमन्यते किंचिद्वध्यते न च काष्ठवत् ॥ एवं शिवे विलीनात्मा समाधिस्थ इहोच्यते ॥६५॥ यथा दीपो निवातस्थः स्पन्दते न कदाचन ॥ तथा समाधिनिष्ठोऽपि तस्मान्न विचलेत्सुधीः ॥ ६६ ॥ एवमभ्यसतश्चारं योगिनो योगमुत्तमम् ॥ तदन्तराया नश्यंति विघ्नाः सर्वे शनैःशनै ॥६७॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां वायुनैमिषेयर्षिसंवादे उत्तरखण्डे योगगतिवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ उपमन्युरुवाच आलस्यं व्याधयस्तीव्राः प्रमादः स्थानसंशयः ॥ अनवस्थितचित्तत्वमश्रद्धा भ्रांतिदर्शनम् ॥ १ ॥

हो समाधिमें स्थित हुआ योगी निर्वाण अग्निमें स्थितके समान होजाता है ॥ ६३ ॥ उस समय न वह सुनता है न सूंघता है न रस लेता है न देखता है न स्पर्शको जानता है, न मनमें संकल्प करता है ॥ ६४ ॥ न कुछ मानता है काष्ठवत् स्थित होता है इस प्रकार शिवमें आत्मा लीन होजानेसे समाधिमें लीन होजानेसे समाधि स्थित कहा जाता है ॥६५॥ जिस प्रकार पवनरहित स्थानमें धरा हुआ दीपक कभी भी कम्पित नहीं होता है, इसी प्रकार समाधिमें स्थित हुआ कभी अपने स्थान से चलायमान नहीं होसकता ॥६६॥ इस प्रकार योगी उत्तम योगका अभ्यास करते हैं तब उसमें अन्तर करनेवाले उनके सब विघ्न शनैः २ नष्ट हो जाते हैं ॥ ६७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा सं० उत्तरखंडे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ उपमन्यु बोले, आलस्य तीक्ष्ण व्याधि प्रमाद स्थानसंशय अनवस्थित चित्त होना

अश्रद्धा भ्रांति दर्शन ॥ १ ॥ दुःख दुर्मनस्कता विषयोंमें चञ्चलता योग करने वालोंके यह दश विघ्न उपस्थित होतेहैं ॥ २ ॥ आलस्य और शिथिलता मल बल योगियोंके देह और चित्तका है, धातुकी विषमतासे उत्पन्न हुए दोष और कर्मके दोषसे व्याधि होती है ॥ ३ ॥ योग साधनाके अभावका नाम प्रमाद है, वह ध्येय है, अथवा यह इस प्रकार आकारके विरुद्ध दो कोटिके ज्ञानका नाम संशय है ॥ ४ ॥ मन अप्रतिष्ठाहीका नाम अनवस्थिति है, अश्रद्धा भावसे रची हुई वृत्ति योगमार्गमें ॥ ५ ॥ विपरीत मतिकही नाम भ्रांति है पुरुषोंको अज्ञानसे उत्पन्न हुआ दुःख है और चित्तसे उत्पन्न हुआ दुःख आध्यात्मिक कहाता है ॥ ६ ॥ आधिभौतिक दुःख पूर्वकर्मके अनुसार शरीरसे उत्पन्न

दुःखानि दौर्मनस्यं च विषयेषु च लोलता ॥ दशैते युञ्जतां पुंसामन्तरायाः प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥ आलस्यमलसत्त्वं तुयोगिनां देहचेतनोः ॥ धातुवैषम्यजा दोषा व्याधयः कर्मदोषजाः ॥३॥ प्रमादो नाम योगस्य साधना नाम भावना ॥ इदं वेत्युभयाक्रान्तं विज्ञानं स्थानसंशयः ॥ ४ ॥ अप्रतिष्ठा हि मनस स्त्वनवस्थितिरुच्यते ॥ अश्रद्धा भावरहिता वृत्तिर्वै योगवर्त्मनि ॥ ५ ॥ विपर्यस्ता मतिर्या सा भ्रांतिरित्यभिधीयते ॥ दुःखमज्ञानजं पुंसां चित्तस्याध्यात्मिकं विदुः ॥ ६ ॥ आधिभौतिकमंगोत्थं यच्च दुःखं पुरा कृतैः ॥ आधिदैविकमाख्यातमशन्यस्त्रविषादिकम् ॥ ७ ॥ इच्छाविघातजं मोक्षं दौर्मनस्यं प्रचक्षते ॥ विषयेषु विचित्रेषु विभ्रमस्तत्र लोलता ॥ ८ ॥ शान्तेष्वेतेषु विघ्नेषु योगासक्तस्य योगिनः ॥ उपसर्गाः प्रवर्तंते दिव्यास्ते सिद्धिसूचकाः ॥ ९ ॥ प्रतिभा श्रवणं वार्ता दर्शनास्वादवेदनाः ॥ उपसर्गाः षडित्येते व्यये योगस्य सिद्धयः ॥ १० ॥ सूक्ष्मे व्यवहितेऽतीते विप्रकृष्टे त्वनागते ॥ प्रतिभा कथ्यते योऽर्थे प्रतिभासो यथातथम् ॥ ११ ॥

होता है शस्त्रविषादिसे उत्पन्न हुआ दुःख आधि कहाते हैं ॥ ७ ॥ इच्छाके विघातसे उत्पन्न क्षोभ दुर्मनता कहाती है विचित्र विषयोंमें चञ्चलताका नाम विभ्रम है ॥ ८ ॥ योगासक्त योगीके इन विघ्नोंके शांत होनेपर सिद्धिके सूचक दिव्य प्रतिभादि उपसर्ग होते हैं ॥ ९ ॥ प्रतिभा (अर्थात् सूक्ष्मादि अर्थोंमें यथायोग्य स्वरूपका भान) श्रवण वार्ता सब वस्तुका दर्शन, आस्वाद, वेदना यह छः उपसर्ग योगके व्यय होनेसे शक्तिके ह्रास करनेवाले हैं ॥ १० ॥ सूक्ष्मको व्यतीत होनेमें जब विप्रकृष्टताकी प्राप्ति होती है उसको प्रतिभा कहते हैं जिसमें अर्थका यथा

योग्य प्रकाश होता है ॥११॥ सब शब्दोंका श्रवण श्रवणत्वके प्रयत्नसे होता है, सब देहधारियोंकी बातोंके ज्ञान होनेका नाम वार्ता है ॥१२॥ और बिना प्रयत्न दिव्य पदार्थोंके दर्शनका नाम दर्शन है सम्पूर्ण दिव्य रसोंके आस्वादको स्वाद कहते हैं ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण स्पर्शोंके जाननेका नाम वेदना है, इसी प्रकार संम्पूर्ण दिव्यगधोंके ज्ञानका नाम वेदना है; उस पुरुषको ब्रह्मलोकादिकके अधिपति ॥ १४ ॥ प्राप्त होकर अनेक रत्नोंको देते हैं, उसके मुखसे अनेक प्रकारकी स्वच्छन्द और मधुर वाणी प्रवृत्त होती है ॥ १५ ॥ सब रसायन और दिव्य औषधी उसको सिद्ध होती हैं तथा प्रणामकर देवांगना रसायनादि देती हैं ॥ १६ ॥ योग सिद्धिके एक देश ही देखने पर जिसकी मति मोक्षमें हो

श्रवणं सर्वशब्दानां श्रवणे चाप्रयत्नतः ॥ वार्त्ता वार्त्तासु विज्ञानं सर्वेषामेव देहिनाम् ॥१२॥ दर्शनं नाम दिव्यानां दर्शनं चा प्रयत्नतः ॥ तथास्वादश्च दिव्येषु रसेष्वास्वाद उच्यते ॥१३॥ स्पर्शनाधिगमस्तद्वद्वेदना नाम विश्रुता॥गन्धादीनां च दिव्या नामा ब्रह्मभुवनाधिपाः ॥ १४ ॥ संतिष्ठन्ते च रत्नानि प्रयच्छंति बहूनि च ॥ स्वच्छन्दमधुरा वाणी विविधास्यात्प्रवर्तते ॥ १५ ॥ रसायनानि सर्वाणि दिव्याश्चौषधयस्तथा ॥ सिध्यंति प्रणिपत्यैनं दिशंति सुरयोषितः॥१६॥योगसिद्धयैकदेशेऽपि दृष्टे मोक्षे भवेन्मतिः ॥ दृष्टमेतन्मया यद्वत्तद्वन्मोक्षो भवेदिति ॥ १७ ॥ कृशता स्थूलता बाल्यं वार्द्धक्यं चैव यौवनम् ॥ नानाचातिस्वरूपं च चतुर्णां देह धारणम् ॥ १८॥ पार्थिवांशं विना नित्यं सुरभिर्गन्धसंग्रहः ॥ एवमष्टगुणं प्राहुः पैशाचं पार्थिवं पदम् ॥ १९ ॥ जले निवसनं चैव भूम्यामेवं विनिर्गमः ॥ इच्छेच्छक्तः स्वयं पातुं समुद्रमपि नातुरः ॥ २० ॥

जाती है यह जिस प्रकार मैंने देखा है, उसी प्रकार मुक्ति होजाती है ॥ १७ ॥कृशता स्थूलता बालकपन वृद्धि यौवन नानाजातिका स्वरूप चार विधिसे देह धारण करना ॥ १८ ॥ और पार्थिव अंशके बिना नित्य मनोहर गंधका संग्रह करना, इस प्रकार पिशाच (पिशाचोंके अधिपतिसे भुज्यमान) पार्थिवपदके आठ गुण कथन किये हैं ॥ १९ ॥ जलमें निवास, भूमिसे निकलना और इच्छा करनेसे समुद्रके पान करनेमें भी सामर्थ्य होनी ॥ २० ॥

जहां इस जगत्में जलकी इच्छा करे वहीं जलका दर्शन होना विना घडेके हाथमें जलका आजाना ॥ २१ ॥ और जो विरस वस्तुके भी खानेकी इच्छा करे तो तत्काल उसमें विलक्षण रस हो जाता है, जल तेज और वायुका देह धारण कर सकता है ॥ २२ ॥ अथवा पार्थिव शरीर छिद्ररहित धारण कर सकता है, यह सोलह अद्भुत गुण जलके ऐश्वर्यके हैं ॥ २३ ॥ शरीरसे अग्नि निकालनी और अग्निके तापका भय न होना जो चाहे तो प्रयत्नके विनाही जगत्को भस्म कर दे ॥ २४ ॥ अग्निका स्थापन वा अपने हाथमें अग्निका धारण जगत्को जलाकर फिर ज्योंका त्यों करदेना, मुखमेंही अन्नपानादिका पचा जाना, तेज और वायुसे शरीर निर्माण करनेकी सामर्थ्य होनी और

यत्रेच्छति जगत्यस्मिंस्तत्रैव जलदर्शनम्॥विना कुम्भादिकं पाणौ जलसञ्चयधारणम्॥२१॥यद्वस्तु विरसञ्चापि भोक्तुमिच्छति तत्क्षणात्॥रसादिकं भवेच्चान्यत्त्रयाणां देहधारणम्॥२२॥निर्व्रणत्वं शरीरस्य पार्थिवैश्च समन्वितम् ॥ तदिदं षोडशगुणमाप्यमै श्वर्यमद्भुतम् ॥ २३ ॥ शरीरादग्निनिर्माणं तत्तापभयवर्ज्जनम् ॥ शक्तिर्जगदिदं दग्धुं यदीच्छेदप्रयत्नतः ॥ २४ ॥ स्थापनं वानल स्याऽप्सु पाणौ पावकधारणम्॥ दग्धेसर्गे यथापूर्व्वं मुखे चान्नादिपाचनम् ॥ द्वाभ्यां देहविनिर्माणमाप्यैश्वर्यसमन्वितम्॥२५॥ एतच्चतुर्विंशतिधा तैजसं परिचक्षते ॥ मनोजवत्वं भूतानां क्षणादन्तःप्रवेशनम् ॥ २६ ॥ पर्व्वतादिमहाभारधारणञ्चाप्रयत्नतः ॥ गुरुत्वञ्चलघुत्वञ्च पाणावनिलधारणम् ॥ २७ ॥ अंगुल्यग्रनिपाताद्यैर्भूमेरपि च कम्पनम्॥एकेन देहनिष्पत्तिर्युक्तं भोगैश्च तैजसैः ॥ २८ ॥ द्वात्रिंशद्गुणमैश्वर्य्यं मारुतं कवयो विदुः ॥ छायाहीनविनिष्पत्तिरिन्द्रियाणामदर्शनम् ॥ २९ ॥

ऐश्वर्ययुक्त होना ॥ २५ ॥ यह चौबीस प्रकारका तेज कहाता है, सो उसे होता है, मनके समान वेग होना क्षणमात्रमें प्राणियोंके अन्तःकरण में प्रविष्ट होजाना ॥ २६ ॥ विना प्रयत्नके पर्वतका महाभार धारण करलेना, गुरुत्व लघुत्व होजाना, हाथमें पवनको धारण करलेना ॥२७॥ अंगुलीके अग्रभाग रखते ही पृथ्वीको कंपित करदेना, एक वायुसे ही शरीर धारण करना, भोग और तेजसे युक्त होना ॥ २८ ॥ यह बत्तीस गुण ऐश्वर्य पवनके बुद्धिमानोंने कहे हैं। आकाशके ऐश्वर्य कहते हैं—छायाकी हीनता होनी विनिष्पत्ति(असनाप्ति)इन्द्रियोंका दर्शन न होना॥२९॥

यथेच्छा आकाशमें चला जाना इन्द्रियका अर्थमें समन्वय करना आकाश लंघन वा अपने देशमें उसका निवेश करना ॥ ३० ॥ आकाशको पिंडीभूत कर लेना अशरीरपना पवनके ऐश्वर्यसे युक्त महान् चालीस गुण युक्त ॥ ३१ ॥ इन्द्रका ऐश्वर्य आकाशका ऐश्वर्य कहाता है। चन्द्र ऐश्वर्य—यथा काम प्राप्ति और यथा काम सिद्धि ॥ ३२ ॥ सम्पूर्ण गुह्य अर्थोंका दर्शन होना सबका अभिभव होना कर्मके अनुसार किसीका निर्माण वशिता प्रियदर्शनता ॥ ३३ ॥ संसारका दर्शन इन्द्रभोगोंके सहित प्राप्ति यह चन्द्रमाका ऐश्वर्य मनोमय गुणसे अधिक

खेचरत्वं यथाकाममिन्द्रियार्थसमन्वयः ॥ आकाशलंघनं चैव स्वदेहे तन्निवेशनम् ॥३०॥ आकाशपिण्डीकरणमशरीरत्वमेव च ॥ अनिलैश्वर्यसंयुक्तं चत्वारिंशद्गुणं महत् ॥ ३१ ॥ ऐन्द्रमैश्वर्यमाख्यातमाम्बरं तत्प्रचक्षते ॥ यथाकामोपलब्धिश्च यथा कामविनिर्गमः ॥ ३२ ॥ सर्वस्याभिभवश्चैव सर्वगुह्यार्थदर्शनम् ॥ कर्मानुरूपनिर्माणं वशित्वं प्रियदर्शनम् ॥ ३३ ॥ संसारदर्शनं चैव भोगै रैन्द्रैस्समन्वितम् ॥ एतच्चांद्रमसैश्वर्यं मानसं गुणतोऽधिकम् ॥ ३४ ॥ छेदनं ताडनं चैव बंधनं मोचनं तथा ॥ ग्रहणं सर्वभूतानां संसारवशवर्तिनाम् ॥ ३५ ॥ प्रसादश्चापि सर्वेषां मृत्युकालजयस्तथा ॥ आभिमानिकमैश्वर्यं प्राजापत्यं प्रचक्षते ॥ ३६ ॥ एत च्चान्द्रमसैर्भोगैः षट्पञ्चाशद्गुणं महत् ॥ सर्गः संकल्पमात्रेण त्राणं संहरणं तथा ॥ ३७ ॥ स्वाधिकारश्च सर्वेषां भूतचित्तप्रवर्तनम् ॥ असादृश्यं च सर्वस्य निर्माणं जगतः पृथक् ॥ ३८ ॥

४८ गुण हैं ॥ ३४ ॥ प्रजापतिऐश्वर्य—छेदन ताडन बन्ध मोक्ष संसार वशवर्ती सब प्राणियोंका ग्रहण ॥ ३५ ॥ सबके ऊपर प्रसन्नता मृत्यु और कालका जय करना; अभिमान युक्त प्रजापतिका कहा है ॥ ३६ ॥ यह चन्द्रमाके भोगोंसे छप्पन गुण अधिक हैं, संकल्पमात्रासे ही सृष्टिकी उत्पत्ति पालन और लय कर सकता है ॥ ३७ ॥ सब प्राणियोंके चित्तमें अपना अधिकार प्रवृत्त कर सकता है; और सबसे पृथक् ही जगत्की उत्पत्ति कर सकता है ॥ ३८ ॥

शुभ अशुभके करनेमें समर्थ, प्राजापत्यके ऐश्वर्यसे संयुक्त है ६४ गुणयुक्त ब्रह्माका ऐश्वर्य कहाता है ॥ ३९ ॥ इस बुद्धिसे किये ऐश्वर्यको प्राकृत ऐश्वर्य कहते हैं; उसीसे परे गुणमय वैष्णवतत्त्व कहा है; उसीका यह तत्त्व भुवनमय स्थित है, यह सम्पूर्ण ब्रह्माके गुण जाननेको दूसरा समर्थ नहीं है ॥ ४० ॥ उनका पुरुषार्थ गुणयुक्त है, उससे परे गणेश पद है उसे किञ्चित् विष्णु जानते हैं दूसरा कोई नहीं जानता ॥४१॥ सम्पूर्ण ज्ञानसिद्धि उपसर्ग युक्त हैं, उनको प्रयत्न और परम वैराग्यसे रोकनी चाहिये ॥ ४२ ॥ और जिसका चित्त प्रतिभा आदि अशुद्ध गुणोंमें लगा है उसको अव्यय सार्वकामिक ऐश्वर्य सिद्ध नहीं होते, और निरन्तर भय रहता है ॥४३॥ इस कारण गुण और भोग देवता असुर

शुभाशुभस्य करणं प्राजापत्यैश्च संयुतम्॥चतुष्षष्ठिगुणं ब्राह्ममैश्वर्यं च प्रचक्षते॥३९॥बौद्धादस्मात्परं गौणमैश्वर्यं प्राकृतं विदुः॥ वैष्णवं तत्समाख्यातं तस्यैव भुवनस्थितिः॥ब्रह्मणा तत्पदं सर्वं वक्तुमन्यैर्न शक्यते॥४०॥तत्पौरुषं च गौणं च गाणेशं पदमैश्वरम्॥विष्णुना तत्पदं किंचिज्ज्ञातुमन्यैर्न शक्यते॥४१॥विज्ञानसिद्धयश्चैव सर्वा एवौपसर्गिकाः॥ निरोद्धव्या प्रयत्नेन वैराग्येण परेण तु ॥४२॥ प्रतिभासेष्वशुद्धेषु गुणेष्वासक्तचेतसः॥न सिध्येत्परमैश्वर्यमभयं सार्वकामिकम् ॥४३॥ तस्माद्गुणांश्च भोगांश्च देवासुरमहीभृताम् ॥ तृणवद्यस्त्यजेत्तस्य योगसिद्धिः परा भवेत् ॥ ४४ ॥ अथवानुग्रहेच्छायां जगतो विचरेन्मुनिः॥यथाकामं गुणान्भोगान्भुक्त्वा मुक्तिं प्रयास्यति ॥ ४५ ॥ अथ प्रयोगं योगस्य वक्ष्ये शृणु समाहितः ॥ शुभे काले शुभे देशे शिवक्षेत्रादिके पुनः ॥ विजने जंतुरहिते निःशब्दे बाधवर्जिते ॥ ४६ ॥ सुप्रलिप्ते स्थले सौम्ये गन्धधूपादिवासिते ॥ मुक्तपुष्पसमाकीर्णे वितानादिविचित्रिते ॥ ४७ ॥ कुशपुष्पसमित्तोयफलमूलसमन्विते ॥ नाग्न्यभ्याशे जलाभ्याशे शुष्कपर्णचयेऽपि वा ॥ ४८ ॥

राजाओंके तृणके समान त्याग देनेसे यशयोग सिद्धिकी प्राप्ति होती है ॥४४॥अथवा जगत्के अनुग्रहकी इच्छा हो तो मुनि होकर विचरे यथाकाम भोगोंको भोगकर मुक्तिको प्राप्त होगा॥४५॥अब योगका प्रयोग मैं कहता हूं, सावधान होकर श्रवण करो, शुभकालमें सुन्दर शिवक्षेत्रादिदेशमें मनुष्य रहित स्थानमें जन्तुओंके शब्द और बाधासे रहित॥४६॥अच्छी तरह लिप्त हुए स्थलमें गंध और धूपसे सुवासित रक्खे हुए फूलोंसे युक्त वितानादिसे विचित्र ॥ ४७ ॥ कुश पुष्प जल फल फूल मूल करके युक्त अग्नि जल और शुष्क पत्तोंकी निकटतासे रहित ॥ ४८ ॥

दंश मशक सर्प श्वापदकी संकुलतासे हीन दुष्ट मृगोंसे आकीर्ण दुर्जनोंके भयसे युक्त जो न हो ॥ ४९ ॥ श्मशान चौराहा बमई जीर्ण स्थान चैत्य नदी नद समुद्रोंके किनारे अथवा गलीके निकट स्थिति न करे ॥५०॥ जीर्ण उद्यान, गोष्ठ; अनिष्ट, निन्दित, अजीर्ण अम्लरसके उद्गार विष्ठासे मूत्रसे दूषित ॥५१॥ छर्दि अतिसार अतिभोजन श्रमसे युक्त अति चिन्तासे व्याकुल अति क्षुधा प्याससे युक्त तथा अपने गुरुके कार्य व्यग्र हुआ योगाभ्यास न करे ॥ ५२ ॥ युक्त आहार विहार और युक्त कर्ममें चेष्टा करनी, युक्त समय सोना और जागना सम्पूर्ण परिश्रमसे रहित

न दंशमशकाकीर्णे सर्पश्वापदसंकुले ॥ न च दुष्टमृगाकीर्णे न भये दुर्जनावृते ॥ ४९ ॥ श्मशाने चैत्यवल्मीके जीर्णागारे चतुष्पथे॥ नदीनदसमुद्राणां तीरे रथ्यांतरेऽपि वा ॥ ५० ॥ न जीर्णोद्यानगोष्ठादौ नानिष्टे न च निंदिते॥ नाजीर्णाम्लरसोद्गारे न च विण्मूत्रदूषिते ॥५१॥ नच्छर्द्यामातिसारे वा नातिभुक्तौ श्रमान्विते ॥ न चातिचिंताकुलितो न चातिक्षुत्पिपासितः ॥ ५२ ॥ नापि स्वगुरुकर्मादौ प्रसक्तो योगमाचरेत् ॥ युक्ताहारविहारश्च युक्तचेष्टश्च कर्मसु ॥ ५३ ॥ युक्तनिद्राप्रबोधश्च सर्वायासविवर्जितः ॥ आसनं मृदुलं रम्यं विपुलं सुसमं शुचि ॥ ५४ ॥ पद्मकस्वस्तिकादीनामभ्यसेदासनेषु च ॥ अभिवंद्य स्वगुर्वं तानभिवाद्याननुक्रमात् ॥ ५५ ॥ ऋजुग्रीवशिरोवक्षा नातिष्ठेच्छिष्टलोचनः ॥ किंचिदुन्नामितशिरा दंतैर्दंतान्न संस्पृशेत् ॥ ५६ ॥ दंताग्रसंस्थिता जिह्वामचलां सन्निवेश्य च ॥ पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्षंस्तथा प्रजननं पुनः ॥ ५७ ॥

॥ ५३ ॥ मृदु मनोहर आसन और समान पवित्रदेश, मृदुचर्म वस्त्र पहरे, मधु आदिसे युक्त शुभदायक[1] आसन कल्पनाकर उसके ऊपर सुखसे बैठे पद्म स्वस्तिक आसनोंका अभ्यास करे ॥५४॥ अपने गुरु तथा दूसरोंको क्रमसे अभिवादन कर सीधी गर्दन सीधा शिर छाती ओष्ठ और नेत्र अधिक श्लिष्टतासे रहित ॥५५॥ कुछेक शिर झुकाये, दांतोंसे दांतोंको न छुवे ॥४६॥ दांतके अग्रभागमें स्थितकरी जिह्वाको अचल करके

१ मृदुचर्मपरीधानं मध्वाद्युक्तं शुभं सुखम् । कल्पयित्वा समारुह्य समं स्थिरसुखं यथा ।

पार्ष्णिसे वृषणकी रक्षा करता हुआ तथा मेढ्रकी रक्षा करता हुआ॥५७॥ जंघाके ऊपर यत्नसे तिरछी भुजा रखकर दक्षिण हाथका पृष्ठभाग वाम तलके ऊपर रखकर ॥ ५८ ॥ सहज २ पीठको उठाकर और आगेकी ओरसे हृदयको उठाकर अपनी नासिकाके अग्रभागको देखता हुआ दिशोंको न देखे ॥ ५९ ॥ प्राणका संचार रोक पाषाणके समान निश्चल हो अपनी देहके अन्तर पार्वती सहित शिवको ध्यान कर ॥ ६० ॥ हृदयकमल की पीठिकामें ध्यान यज्ञसे शिवको पूजे; मूलमन्त्रसे नासिकाके अग्रभागसे नाभि कण्ठ वा तालुके रन्ध्रोंमें ॥ ६१ ॥ भौंके बीच

ऊर्वोरुपरि संस्थाप्य बाहू तिर्यगयत्नतः ॥ दक्षिणं करपृष्ठं तु न्यस्य वामतलोपरि ॥ ५८ ॥ उन्नाम्य शनकैः पृष्ठमुरो विष्टभ्य चाग्रतः ॥ संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ ५९ ॥ संभृतप्राणसंचारः पाषाण इव निश्चलः ॥ स्वदेहायतनस्यांत र्विचिंत्य शिवमंबया ॥६०॥ हृत्पद्मपीठिकामध्ये ध्यानयज्ञेन पूजयेत् ॥ मूले नासाग्रतो नाभौ कंठे वा तालुरंध्रयोः ॥ ६१ ॥ भ्रूमध्ये द्वारदेशे वा ललाटे मूर्ध्नि वा स्मरेत् ॥ परिकल्प्य यथान्यायं शिवयोः परमासनम् ॥ ६२ ॥ तत्र सावरणं वापि निरावरणमेव वा ॥ द्विदलेषोडशारे वा द्वादशारे यथाविधि ॥ ६३ ॥ दशारे वा षडस्रे वा चतुरस्रे शिवं स्मरेत् ॥ भ्रुवोरंत रतः पद्मं द्विदलं तडिदुज्ज्वलम् ॥ ६४ ॥ भ्रूमध्यस्थारविन्दस्य क्रमाद्वै दक्षिणोत्तरे ॥ विद्युत्समानवर्णे च पर्णे वर्णावसानके ॥ ६५ ॥ षोडशारस्य पत्राणि स्वराः षोडश तानि वै ॥ पूर्वादीनि क्रमादेतत्पद्मं कन्दस्य मूलतः ॥ ६६ ॥

मूलाधार ललाटमें या शिरमें उनका ध्यान करे! यथायोग्य शिवा शिवका परमासन कल्पित करके ॥ ६२ ॥ उसमें सावरण अथवा निरावरण दो दल सोलह दल अथवा बारह दलकी विधिपूर्वक कल्पना कर॥६३॥ उस बारह छः अथवा चार दलमें शिवका स्मरण करे, भौंके अन्तरमें पद्म दो दल युक्त अथवा बिजलीके समान उज्ज्वल ॥ ६४ ॥ भौंके बीचमें कमलके दक्षिण उत्तर ओर बिजलीके समान वर्णवाले वर्णयुक्त पर्णके समान वर्णयुक्त वर्णावसानमें ॥६५॥ पत्तोंके जो सोलह अरे हैं उन्हींमें सोलह स्वर स्थापित करे और कमलकी कन्दके मूलसे

पूर्वादिके क्रमसे ॥ ६६ ॥ ककारको आदि लेकर टकारपर्यन्त वर्णोंके पर्णोंके अनुक्रमसे कल्पना करे, और भानुवर्णयुक्त पद्मके चारोंओर युक्त उन अक्षरोंको हृदयान्तरमें ध्यान करे ॥ ६७ वे अक्षर कमलके पर्ण जानने चाहिये और नाभिके ऊपरकी ओरसे गौके दूधके समान डकारसे लेकर फकार पर्यन्त यथा क्रमसे रक्खे नीचेकी ओर कमलदलवाले कमलके छैः पत्ते हैं ॥ ६८ ॥ उसमें अंगारयुक्त वाले अक्षर वकारसे लकार पर्यन्त हैं मूलाधार कमल सुवर्णके समान कान्तिमान है उसमें वकारसे लेकर सकार पर्यन्त पर्णमय वर्ण हैं ॥६९॥ उन कमलोंमें जहां मन रमण करे वहींधीरबुद्धिसे देव और देवीका चिन्तन करे ॥ ७० ॥ अंगुष्ठमात्र दीप्तिमान् निर्मल चारों ओर दीप्ति

ककारादिटकारांता वर्णाः पर्णान्यनुक्रमात् ॥ भानुवर्णस्य पद्मस्य ध्येयं तद्धृदयान्तरे ॥ ६७ ॥ गोक्षीरधवलस्योक्ता डादिफान्ता यथाक्रमम् ॥ अधो दलस्याम्बुजस्य एतस्य च दलानि षट् ॥ ६८ ॥ विधूमांगारवर्णस्य वर्णा वाद्याश्च लान्तिमाः ॥ मूला धारारविंदस्य हेमाभस्य यथाक्रमम् ॥ वकारादिसकारान्ता वर्णाः पर्णमयाः स्थिताः ॥६९॥ एतेष्वथारविंदेषु यत्रैवाभिरतं मनः ॥ तत्रैव देवं देवीं च चिंतयेद्धीरया धिया ॥ ७० ॥ अंगुष्ठमात्रममलं दीप्यमानं समंततः ॥ शुद्धदीपशिखाकारं स्वशक्त्या पूर्णमण्डितम् ॥ ७१ ॥ इन्दुरेखासमाकारं तारारूपमथापि वा॥नीवारशूकसदृशं बिससूत्राभमेव वा ॥ ७२ ॥ कदम्बगोलकाकारं तुषारकणिकोपमम् ॥ क्षित्यादितत्त्वविजयं ध्याता यद्यपि वाञ्छति ॥ ७३ ॥ तत्तत्तत्त्वाधिपामेव मूर्तिं स्थूलां विचिंतयेत् ॥ सदाशिवांता ब्रह्माद्या भवाद्याश्चाष्टमूर्तयः ॥ ७४ ॥

मान्शुद्ध दीप शिखाके समान आकार युक्त अपनी शक्तिसे पूर्ण मण्डित ॥७१ ॥ चन्द्ररेखाके समान आकार युक्त तथा तारारूप नीवार शूकके समान तथा कमल नालके जन्तुके समान ॥ ७२ ॥ कदम्ब गोलके समान आकार तुषार कर्णिकाके समान उत्तम क्षिति आदि तत्त्वके विजयरूप ध्यान करनेवाला जो इच्छा करे ॥७३ ॥ उसी उसी तत्त्वकी अधिपति मूर्तिका चिन्तन करे सदाशिवको लेकर ब्रह्मादि जो शिवकी आठ मूर्ति हैं ॥ ७४ ॥

वर्णाः पर्णानिपद्मास्य नाभेरुपरिपृष्ठतः ।

वह शिवकी स्थूल मूर्ति हैं; ऐसा शिव शास्त्रमें निश्चय है; वह मूर्ति घोर मिश्र और प्रशान्त है उनको मुनीश्वरोंने ॥ ७५ ॥ फलकी अभिलाषाके सहित विचार किया है (कहीं 'फलाभिलाषरहितैः' पाठ है वहां वैसा ही अर्थ करना) घोर मूर्तिकी चिंतासे पापरोगका क्षय होता है ॥ ७६ ॥ सब सिद्धिको देनेवाली मिश्र और प्रशान्त मूर्ति शांति दायक है; घोर शरीरमें चिंता करनेसे शीघ्र सब सिद्धि सिद्ध हो जाती हैं मिश्रमें दीर्घ कालमें सिद्धि सौम्य मूर्तिमें न शीघ्रतासे न विलम्बसे विशेषकर सौम्यमें मुक्ति होती है और शान्तिमें प्रज्ञा सिद्ध होती है ॥ ७७ ॥ क्रमसे इससे सिद्धि सिद्ध हो जाती हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स०

शिवस्य मूर्तयः स्थूलाः शिवशास्त्रे विनिश्चिताः ॥ घोरा मिश्रा प्रशान्ताश्च मूर्तयस्ता मुनीश्वरैः ॥ ७५ ॥ फलाभिलाषरहितै श्चिन्त्या श्चिन्ताविशारदैः ॥ घोराश्चेच्चिंतिताःकुर्यु पापरोगपरिक्षयम् ॥ ७६ ॥ चिरेण मिश्रे सौम्ये तु न सद्यो न चिरादपि ॥ सौम्ये मुक्तिर्विशेषेण शांतिः प्रज्ञा प्रसिध्यति ॥ ७७ ॥ सिध्यंति सिद्धयश्चात्र क्रमशो नात्र संशयः ॥७८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे योगगतौ विघ्नोत्पत्तिवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥ उपमन्युरुवाच॥श्रीकंठनाथं स्मरतां सद्यः सर्वार्थसिद्धयः ॥ प्रसिध्यंतीति मत्वैके तं वै ध्यायंति योगिनः ॥ १ ॥ स्थित्यर्थं मनसः केचित्स्थूलध्यानं प्रकुर्वते ॥ स्थूलं तु निश्चलं चेतो भवेत्सूक्ष्मे तु तत्स्थिरम् ॥२॥ शिवे तु चिंतिते साक्षात्सर्वाः सिध्यन्ति सिद्धयः ॥ मूर्त्यंतरेषु ध्यातेषु शिवरूपं विचिंतयेत् ॥३॥ लक्षयेन्मनसःस्थैर्यं तत्तद्ध्यायेत्पुनः पुनः ॥ ध्यानमादौ सविषयं ततो निर्विषयं जगुः ॥४॥

प्रा० सं० उत्तरखण्डे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ उपमन्यु बोले, श्री कण्ठनाथको स्मरण करते ही शीघ्र सम्पूर्ण अर्थ सिद्धि हो जाती हैं, सब सिद्धि प्रसिद्ध होती हैं ऐसा कोई कहते हैं उनको योगी ध्यान करते हैं ॥ १ ॥ कोई मनकी स्थितिके निमित्त स्थूल ध्यान करना कहते हैं जब स्थूलमें चित्त निश्चल हो जाय तब सूक्ष्ममें प्राप्त हो स्थिर होता है ॥२॥ शिवके चिंतित करते ही सब सिद्धि उपस्थित होती हैं और अन्य मूर्तियोंमें ध्यान करनेसे शैवी सिद्धि नहीं होती है, इसलिये अन्य मूर्तियोंके ध्यानमें शिवरूपका ध्यान करे ॥३॥ जो रुचि और आभा,

१ सर्वसिद्धिप्रदा मिश्राः प्रशान्ता शान्तिदायकाः । सिद्धयन्ति सिद्धयः शीघ्रं घोरि वपुषि चिन्तिते ॥ २ रुच्यभ्यासादिना यद्यच्छिवरूपं विचिन्तयेत् ।

सादिसे शिवका रूप चिंतन करता है, मनकी स्थिरताको देखता हुआ उसको बारम्बार ध्यान करे, प्रथम सविषय फिर निर्विषय ध्यान करे ॥ ४ ॥ सत्पुरुषोंका यह भी सम्मत है कि निर्विषय ध्यान ही नहीं है बुद्धिकी ही किसी सन्ततिका नाम ध्यान है ॥ ५ ॥ इससे निर्विषयवाली बुद्धि केवल निर्विषयमें ही प्रवृत्त होती है इस कारण सविषय ध्यानवान् सूर्यकी किरणोंके समान आश्रयवाला है ॥ ६ ॥ सूक्ष्म आश्रयका ही नाम निर्विषय है; इससे अधिक परमार्थसे ही दूसरा नहीं है अथवा सविषय ध्यान साकारके आश्रयवाला है ॥ ७ ॥ निराकार आत्माके जाननेहीका नाम निर्विषय है, निर्बीज अथवा सबीज जो हो सो ध्यान कहा है ॥ ८ ॥ निराकारके

तत्र निर्विषयं ध्यानं नास्तीत्येव सतां मतम् ॥ बुद्धेर्हि सन्ततिः काचिद्ध्यानमित्यभिधीयते ॥ ५ ॥ तेन निर्विषया बुद्धिः केवलेह प्रवर्तते ॥ तस्मात्सविषयं ध्यानं बालार्ककिरणाश्रयम् ॥ ६ ॥ सूक्ष्माश्रयं निर्विषयं नापरं परमार्थतः ॥ यद्वा सविषयं ध्यानं तत्साकारसमाश्रयम् ॥ ७ ॥ निराकारात्मसंवित्तिर्ध्यानं निर्विषयं मतम् ॥ निर्बीजं च सबीजं च तदेव ध्यानमुच्यते ॥ ८ ॥ निराकारश्रयत्वेन साकाराश्रयतस्तथा॥तस्मात्सविषयं ध्यानमादौ कृत्वा सबीजकम् ॥९॥ अंते निर्विषयं कुर्यान्निर्बीजं सर्वसिद्धये ॥ प्राणायामेन सिध्यंति देव्याः शांत्यादयः क्रमात् ॥ १० ॥ शांतिः प्रशांतिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च ततः परम्॥ शमः सर्वापदां चैव शांतिरित्यभिधीयते ॥११॥ तमसोऽन्तर्बहिर्नाशः प्रशान्तिः परिगीयते ॥ बहिरन्तःप्रकाशो यो दीप्तिरित्यभिधीयते ॥१२॥ स्वस्थता या तु सा बुद्धः प्रसादःपरिकीर्तितः ॥ कारणानि च सर्वाणि सबाह्याभ्यंतराणि च ॥१३॥ बुद्धेः प्रसादतः क्षिप्रं प्रसन्नानि भवन्त्युत ॥ ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं यद्वा ध्यानप्रयोजनम् ॥ एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा ध्याता ध्यानं समाचरेत् ॥ १४ ॥

आश्रयसे साकार आश्रय युक्त होता है इस कारण प्रथम बीज सहित साकार ध्यान करे ॥ ९ ॥ अन्तमें सब सिद्धिके निमित्त बीजहीन; निर्विषय ध्यान करे, प्राणायामद्वारा क्रमसे दिव्य शान्ति आदि सिद्ध होती हैं ॥ १० ॥ शांति प्रशान्ति दीप्ति और प्रसाद सब आपत्तियोंकी शान्तिका नाम शम है ॥ ११ ॥ और अन्तर बाहर अन्धकारके नाशका नाम प्रशान्ति है, बाहर अन्तरके प्रकाशका नाम दीप्ति है ॥ १२ ॥ और बुद्धिकी स्वस्थताका नाम प्रसाद कहा है बाह्य अभ्यन्तर सब कारण ॥ १३ ॥ बुद्धिकी प्रसादसे ही शीघ्र सिद्ध हो जाते हैं

ध्याता ध्यान ध्येय और ध्यानका प्रयोजन यह चारों जानकर ध्याता ध्यान करे ॥ १४ ॥ ज्ञान वैराग्यसे सम्पन्न नित्य उद्यत मनवाला श्रद्धायुक्त प्रसन्न आत्मा ध्याता सत्पुरुषोंने कहा है ॥ १५ ॥ 'ध्यै–चिन्तायां' धातुसे ध्यान सिद्ध होता है कि शिवकी चिन्ता बारंबार करनी चाहिये ॥ १६ ॥ जैसा थोडा योगाभ्यास भी पापको विनाश करता है ऐसाही श्रद्धासे परमेश्वरका ध्यान करे तो क्षणमें पाप नाश होता है ॥ १७ ॥ मनमें किसी प्रकारका विक्षेप न हो यही ध्यान है ॥ १८ ॥ इस प्रवाहरूप ध्यानका बुद्धि अवलम्बन है, जो ध्येय वस्तु है सो बुद्धिमानोंने अम्बासहित शिवका ध्यान कहा है ॥ १९ ॥ कि मुक्ति प्रत्ययके पूर्व अणिमादि ऐश्वर्य हैं, यही शिव ध्यानका साक्षात

ज्ञानवैराग्यसंपन्नो नित्यमव्यग्रमानसः ॥ श्रद्दधानः प्रसन्नात्मा ध्याता सद्भिरुदाहृतः ॥ १५ ॥ ध्यै चिंतायां स्मृतो धातुः शिव चिंता मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ योगाभ्यासस्तथाल्पोऽपि यथा पापं विनाशयेत् ॥ ध्यायतः क्षणमात्रं वा श्रद्धया परमेश्वरम् ॥१७॥ अव्याक्षिप्तेन मनसा ध्यानमित्यभिधीयते ॥ १८ ॥ बुद्धिप्रवाहरूपस्य ध्यानस्यास्यावलंबनम् ॥ ध्येयमित्युच्यते सद्भिस्तच्च सांबः स्वयं शिवः ॥ ॥ १९ ॥ विमुक्तिप्रत्ययं पूर्णमैश्वर्यं चाणिमादिकम् ॥ शिवध्यानस्य पूर्णस्य साक्षादुक्तं प्रयोजनम् ॥ २० ॥ यस्मात्सौख्यं च मोक्षं च ध्यानादभयमाप्नुयात् ॥ तस्मात्सर्वं परित्यज्य ध्यानयुक्तो भवेन्नरः ॥२१॥ नास्ति ध्यानं विना ज्ञानं नास्ति ध्यानमयोगिनः ॥ ध्यानं ज्ञानं च यस्यास्ति तीर्णस्तेन भवार्णवः ॥ २२ ॥ ज्ञानं प्रसन्नमेकाग्रमशेषोपाधिवर्जितम् ॥ योगाभ्यासेन युक्तस्य योगिनस्त्वेव सिध्यति ॥२३॥ प्रक्षीणाशेषपापानां ज्ञाने ध्याने भवेन्मतिः ॥ पापोपहतबुद्धीनां तद्वार्तापि सुदुर्लभा ॥२४॥ यथावह्निर्महादीप्तः शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत् ॥ तथा शुभाशुभं कर्म ध्यानाग्निर्दहते क्षणात् ॥ २५ ॥

प्रयोजन कहा है ॥ २० ॥ जिस कारण कि ध्यानसे सुख और मुक्ति दोनों प्राप्त होती हैं, इस कारण सब कुछ छोडकर मनुष्य ध्यान युक्त हो ॥ २१ ॥ विना ज्ञानके ध्यान और अयोगिको ध्यान नहीं होता जिसको ध्यान और ज्ञान है वह भवसागरके पार हो चुका ॥ २२ ॥ प्रसन्न एकाग्रचित्त सम्पूर्ण उपाधिसे रहितका नाम ज्ञान है वह योगाभ्यास युक्त योगीको ही सिद्ध होता है ॥ २३ ॥ जब सब पाप क्षय होते हैं तब ज्ञान ध्यानमें मति होती है; और पाप युक्त बुद्धिवालोंको उसकी वार्ता भी दुर्लभ है ॥ २४ ॥ जैसे महादीप्तिमान

अग्नि सूखे गीले काठको जला देती है, इसी प्रकार शुभाशुभ कर्मको ज्ञान नष्ट कर देता है ॥ २५ ॥ जैसे थोडा दीपक भी महाअन्धकार को दूर करता है, इसी प्रकार थोडा योगाभ्यास भी महापापको नष्ट करता है ॥ २६ ॥ जो क्षण मात्रसे भी श्रद्धापूर्वक परमेश्वरका ध्यान करता है उससे भी जितना कल्याण होता है उसका अन्त नहीं है ॥ २७ ॥ ध्यानके समान तीर्थ तप यज्ञ नहीं हैं इससे ही करे ॥ २८ ॥ जल पूर्ण तीर्थ और मृत पाषाणकी मूर्तिमें योगीजन इस कारण नहीं स्नान पूजन करते हैं कि उनको आत्म ज्ञानकी प्राप्ति है ॥ २९ ॥ योगियोंका शरीर सूक्ष्म होकर ईश्वर प्रत्यय होजाता है; जो योगी नहीं हैं उनके निमित्त मृत पाषाणादिको मूर्ति कल्पित की जाती है

अत्यल्पोऽपि यथा दीपः सुमहन्नाशयेत्तमः ॥ योगाभ्यासस्तथाल्पोऽपि महापापं विनाशयेत् ॥ २६ ॥ ध्यायतः क्षणमात्रं वा श्रद्धया परमेश्वरम्॥यद्भवेत्सुमहच्छ्रेयस्तस्यांतो नैव विद्यते॥२७॥नास्ति ध्यानसमं तीर्थं नास्ति ध्यानसमं तपः॥नास्ति ध्यान समो यज्ञस्तस्माद्ध्यानं समाचरेत् ॥२८॥ तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान्पाषाणमृन्मयान् ॥ योगिनो न प्रपद्यंते स्वात्मप्रत्ययकारणात् ॥२९॥ योगिनां च वपुः सूक्ष्मं भवेत्प्रत्यक्षमैश्वरम्॥यथा स्थूलमयुक्तानां मृत्काष्ठाद्यैः प्रकल्पितम् ॥३०॥ यथेहांतश्चरा राज्ञः प्रियाः स्युर्न बहिश्चराः ॥ तथांतर्ध्याननिरताः प्रियाश्शंभोर्न कर्मिणः ॥ ३१ ॥ बहिस्करा यथा लोके नातीव फलभोगिनः॥दृष्ट्वा नरेन्द्रभवने तद्वदत्रापि कर्मिणः ॥ ३२ ॥ यद्यंतरा विपद्यंते ज्ञानयोगार्थमुद्यतः ॥ योगस्योद्योगमात्रेण रुद्रलोकं गमिष्यति ॥ ३३ ॥ अनुभूय सुखं तत्र स जातो योगिनां कुले ॥ ज्ञानयोगं पुनर्लब्ध्वा संसारमतिवर्त्तते ॥ ३४ ॥

॥ ३० ॥ जिस प्रकार राजाको अन्तरचारी प्रिय बोले हैं, उस प्रकार बाहिरके दूत प्रिय नहीं हैं, इसी प्रकार महाकर्मा शिवको अन्त र्ध्यान करनेवाले विशेष प्रिय हैं ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार याचनाके निमित्त हाथ फैलानेवाले बहुत फलके भागी नहीं होते और नरेन्द्रके घरके पूर्ण फलके भागी होते हैं, इसी प्रकार यहांके भी समझने ॥ ३२ ॥ जो अन्तरसे ज्ञान योगके निमित्त प्रवृत होते हैं वे योगके उद्योग मात्रसे रुद्रलोकको प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ वहां अनेक सुख अनुभव कर योगियोंके कुलमें जन्म पाता है, फिर ज्ञान योगको प्राप्त हो

संसारसे पार होजाता है ॥३४॥ जिज्ञासु भी योगकी जिस गतिको प्राप्त होता है वह गति सम्पूर्ण महायज्ञोंसे भी नहीं प्राप्त होती ॥ ३५ ॥ वेदपाठी ब्राह्मणोंके कोटि पूजनका जो फल है वह फल शिव योगीको भिक्षामात्र प्रदान करनेसे प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ जो यज्ञ अग्निहोत्र दानमें तीर्थ होममें जो फल है, वह समस्त फल योगियोंको अन्नदान से मिलता है ॥ ३७ ॥ जो मूढ शिवयोगीकी निन्दा करते हैं, वह सुननेवालोंके साथ लयपर्यंत नरकमें पडते हैं ॥ ३८ ॥ श्रोता होकर वक्तासे योगीकी निन्दा सुने उससे वह श्रोता अधिक पापी है और उसका महान् दण्ड है, जो शिवयोगीका सदा भक्तिसे भजन करते हैं ॥ ३९ ॥ वे महाभोगोंको प्राप्त हो अन्तमें शिवयोगको प्राप्त

जिज्ञासुरपि योगस्य यां गतिं लभते नरः ॥ न तां गतिमवाप्नोति सर्वैरपि महामखैः ॥३५॥ द्विजानां वेदविदुषां कोटिं संपूज्य यत्फलम् ॥ भिक्षामात्रप्रदानेन तत्फलं शिवयोगिने॥३६॥यज्ञाग्निहोत्रदानेन तीर्थहोमेषु यत्फलम्॥योगिनामन्नदानेन तत्समस्तं फलंलभेत् ॥३७॥ ये चापवादं कुर्वंति विमूढाश्शिवयोगिनाम् ॥ श्रोतृभिस्ते प्रपद्यन्ते नरकेष्वामहीक्षयात् ॥३८॥ सति श्रोतरि वक्तास्यादपवादस्य योगिनाम् ॥ तस्माच्छ्रोता च पापीयान्दण्डयस्सुमहतां मतः ॥ ये पुनः सततं भक्त्या भजंति शिवयोगिनः ॥३९॥ ते विदंति महाभोगानंते योगं च शांकरम्॥भोगार्थिभिर्नरैस्तस्मात्संपूज्याः शिवयोगिनः ॥४०॥ प्रतिश्रयान्नपानाद्यैः शय्याप्रावरणादिभिः॥योगधर्मः ससारत्वादभेद्यः पापमुद्गरैः॥४१॥वज्रतंदुलवज्ज्ञेयं तथा पापेन योगिनः॥न लिप्यंते च तापौघैः पद्मपत्रं यथांभसा ॥४२॥ यस्मिन्देशे वसेन्नित्यं शिवयोगरतो मुनिः ॥ सोऽपि देशो भवेत्पूतः सपूत इति किं पुनः ॥ ४३ ॥

होते हैं, इस कारण भोग और भोगार्थियोंको भी शिवयोगीका सत्कार करना चाहिये ॥ ४० ॥ उनके रहनेको घर आदि देना अन्न पान शय्या वस्त्रादिसे सत्कार करना साररूपी योगधर्म है इस कारण यह पापरूपी मुद्गरसे छेदन नहीं होता ॥ ४१ ॥ जैसे चावलसे वज्र नहीं टूटता इस प्रकार पापसे योगी भेदित नहीं हो सकते जैसे कमल पत्रजलसे लिप्त नहीं होता इस प्रकार योगी तापसे लिप्त नहीं होते ॥ ४२ ॥ जिस देशमें नित्य शिवयोगमें प्रीति करनेवाले मुनि निवास करते हैं; वह भी देश पवित्र हो जाता है, फिर वह पवित्र

हो तो क्या कहना ॥ ४३ ॥ इस कारण चतुर पुरुष और सब कृत्योंको छोड कर सब दुःखके दूर करनेको शिवयोग करे ॥ ४४ ॥ योगफल सिद्ध हो जानेसे योगी लोकोंके हितकी कामनासे यथायोग्य भोगोंको भोगकर चाहे विहार करे वा साधारण वरते ॥ ४५ ॥ अथवा विषय सुखोंको क्षुद्र मानकर इन्हें छोड वैराग्ययोगसे अपनी इच्छासे कर्मको छोड दे ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य योगी अरिष्ट देखकर समीप आई मृत्युको जाने वह योगारम्भमें निरत हो शिव क्षेत्रका आश्रय ले ॥ ४७ ॥ वह उस क्षेत्रमें धीरतासे आतुरतासे निवास करता हुआ बिना रोगादिके ही प्राणोंको त्यागन करदे ॥ ४८ ॥ विधिपूर्वक अनशन व्रतकर शिवाग्निमें हवन कर वा अवगाहनसे शिव

तस्मात्सर्वं परित्यज्य कृत्यमन्यद्विचक्षणः॥सर्वदुःखप्रहाणाय शिवयोगं समभ्यसेत्॥४४॥सिद्धयोगफलो योगी लोकानां हित काम्यया ॥ भोगान्भुक्त्वा यथाकामं विहरेद्वात्र वर्तताम् ॥४५॥ अथवा क्षुद्रमित्येव मत्वा वैषयिकं सुखम् ॥ त्यक्त्वा विरागयोगेन स्वेच्छया कर्म मुच्यताम् ॥४६॥ यस्त्वासन्नां मृतिं मर्त्यो दृष्ट्वारिष्टं च भूयसा॥स योगारम्भनिरतः शिवक्षेत्रं समाश्रयेत्॥४७॥ स तत्र निवसन्नेव यदि धीरमना नरः॥प्राणान्विनापि रोगाद्यैः स्वयमेव परित्यजेत्॥४८॥कृत्वाप्यनशनं चैव हुत्वा चांगं शिवानले ॥ क्षिप्त्वा वा शिवतीर्थेषु स्वदेहमवगाहनात् ॥४९॥ शिवशास्त्रोक्तविधिवत्प्राणान्यस्तु परित्यजेत्॥सद्य एव विसच्येत नात्र कार्या विचारणा ॥ ५० ॥ रोगाद्यैर्वाथ विवशः शिवक्षेत्रं समाश्रितः ॥ म्रियते यदि सोप्येवं मुच्यते नात्र संशयः ॥ ५१ ॥

तीर्थोंमें अपनी देहको निक्षेप करे ॥४९॥ जो शिवशास्त्रके विधानसे अपने प्राणोंको त्यागन करता है; वह शीघ्र मुक्त हो जाता है, आत्मघाती नहीं होता ॥ ५० ॥ अथवा शिवक्षेत्रमें आकर रोगादिसे विवश होकर मृत्युको प्राप्त होता है; वह भी मुक्त होजाता है, सन्देह नहीं; इसमें उत्तर मरण श्रेष्ठ है, निवृत्ति आदि मरण श्रेष्ठ है, निवृत्ति आदि कलाकी प्रतिष्ठाके वशसे देह भूतोंमें लीन हो जाता है, विशेषकर शिवक्षेत्रमें अपनी इच्छासे मरण विशेष कहा है, यही सब मरणोंमें उत्तम मरण है, और उन्मनाके पदका देनेवाला है ॥५१॥ जिस प्रकार अनशन व्रतसे मरना श्रेष्ठ कहा

१ तथाविशिष्टंतत्रापि मरणंतूत्तरोरम् । निवृत्त्यादिवशाद्देवो भूतेषुच विलीयते ॥ १ ॥ स्वेच्छयोत्क्रम्यमरणं शिवक्षेत्रे विशेषतः । उत्तमंसर्वमरणादुन्मनापदयोगदम् ॥ २ ॥ इत्येकस्मिन्पुस्तकेऽधिकौ।

है उसी प्रकार शास्त्रके अनुसार धीरतासे करे वा मनसे ध्यान करे ॥ ५२ ॥ शिवनिन्दा करेनेवालोंको हत करके वा उनसे स्वयं पीडित होके जो अपने दुस्त्यज प्राणोंका त्यागन करता है; उसका फिर जन्म नहीं होता ॥ ५३ ॥ और जो शिवनिन्दा करनेवालोंके मारनेमें असमर्थ हो जो स्वयं मृतक होजाय वह इक्कीस कुलोंके साथ तत्काल ही मुक्त हो जाता है ॥ ५४ ॥ जो शिव वा शिवके भक्तोंके निमित्त प्रणोंको त्यागन करता है वाशिवके आचार वा विद्याके निमित्त मृतक होता है उसके समान कोई प्राणी मुक्तिमार्गमें स्थित नहीं है ॥ ५५ ॥ इस कारण

यथा हि मरणं श्रेष्ठमुशंत्यनशनादिभिः ॥ शास्त्रविश्रंभधीरेण मनसा क्रियते यतः ॥ ५२ ॥ शिवनिन्दारतं हत्वा पीडितः स्वयमेव वा ॥ यस्त्यजेदुस्त्यजान्प्राणान्न स भूयः प्रजायते ॥ ५३ ॥ शिवनिन्दारतं हंतुमशक्तो यः स्वयं मृतः ॥ सद्य एव प्रमुच्येत त्रिः सप्तकुलसंयुतः ॥ ५४ ॥ शिवार्थे यस्त्यजेत्प्राणाञ्छिवभक्तार्थमेव वा ॥ न तेन सदृशः कश्चिन्मुक्तिमार्गस्थितो नरः ॥ ५५ ॥ तस्माच्छीघ्रतरा मुक्तिस्तस्य संसारमंडलात् ॥ एतेष्वन्यतमोपायं कथमप्यवलम्ब्य वा ॥ ५६ ॥ षडध्वशुद्धिं विधिवत्प्राप्तो वा म्रियते यदि ॥ पशूनामिव तस्येह न कुर्यादौर्ध्वदैहिकम् ॥ ५७ ॥ नैवाशौचे प्रपद्यंत तत्पुत्रादिर्विशेषतः ॥ शिवचारार्थमथवा शिव विद्यार्थमेव वा ॥ खनेद्वा भुवि तद्देहं दहेद्वा शुचिनाग्निना ॥ ५८ ॥ क्षिपेद्वाप्सु शिवास्त्वेव त्यजेद्वा काष्ठलोष्टवत् ॥ अथैनमपि चोद्दिश्य कर्म चेत्कर्तुमीप्सितम् ॥ ५९ ॥

उसकी संसारमण्डलसे शीघ्र मुक्ति हो जाती है, इसमेंसे किसी एक उपाय को अवलम्बन कर ॥५६॥ षडध्व शुद्धिको विधिपूर्वक प्राप्त होकर यदि मृतक होजाय उसका पश्वादि जीवोंके समान और्ध्वदैहिक कर्म न करे ॥ ५७ ॥ और उसके पुत्रादिकोंको उसका शौच नही लगता है चाहे उसके शरीरको गाडदें, चाहे पवित्र अग्निमें जला दें ॥ ५८ ॥ वा पवित्र जलमें डाल दें, वा काष्ठ वा ढेलेके समान फेंक दें और जो उसके उद्देशसे कोई कर्म करनेकी इच्छा हो तो ॥ ५९ ॥

मंगल करे और शिव भक्तोंको तृप्त करे, जो शैवी सन्तान हो तो उसके धनकी भागी हो सकती है, यदि ऐसी न हो तो शिवके निमित्त देदे पशु सन्तानको धन न दे ॥ ६० ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां स० वा सं० उत्तरखण्डे योगनिरूपणं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले; इस प्रकार वायुने श्रीकृष्णके प्रति क्रोध रहित उपमन्यु के वर्णन किये ज्ञान योगको मुनियोंके प्रति वर्णन किया; तब प्रणामको प्राप्त हुए उन मुनियोंसे प्रकाशित परमात्मा स्वरूपवाले आकाशमें वह वायु सन्ध्याकोअन्तर्धान हो गये ॥ १ ॥ तब

कल्याणमेव कुर्वीत शक्त्या भक्तांश्च तर्पयेत्॥धनं तस्य भजेच्छैवः शैवी चेतस्य सन्ततिः ॥ नास्ति चेत्तच्छिवे दद्यान्नदद्यात्पशु सन्ततिः ॥ ६० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शैवयोगवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥ श्रीसूत उवाच ॥ इति स विजितमन्योर्यादवेनोपमन्योरधिगतमभिधाय ज्ञानयोगं मुनिभ्यः ॥ प्रणतिमुपगतेभ्यस्तेभ्य उद्भावितात्मा सपदि वियति वायुः सायमन्तर्हितोऽभूत् ॥ १ ॥ ततः प्रभातसमये नैमषीयास्तपोधनाः ॥ सत्रान्तेऽवभृथं कर्तुं सर्व एव समुद्ययुः ॥ २ ॥ तदा ब्रह्मसमादेशाद्देवी साक्षात्सरस्वती ॥ प्रसन्ना स्वादुसलिला प्रावर्तत नदी शुभा ॥ ३ ॥ सरस्वतीं नदीं दृष्ट्वा मुनयो हृष्टमानसाः ॥ समाप्य सत्रं प्रारब्धंचक्रुस्तत्रावगाहनम् ॥ ४ ॥ अथ संतर्प्य देवादींस्तदीयैः सलिलैः शिवैः ॥ स्मरन्तः पूर्व वृत्तान्तं ययुर्वाराणसीं प्रति ॥ ५ ॥ तदा ते हिमवत्पादात्पंततीं दक्षिणामुखीम् ॥ दृष्ट्वा भगीरथी तत्र स्नात्वा तत्तीरतो ययुः ॥६॥ ततो वाराणसीं प्राप्य मुदितास्सर्व एव ते ॥ तदोत्तरप्रवाहायां गंगायामवगाह्य च ॥ ७ ॥

प्रातःकालमें नैमिषारण्यावासी तपोधन यज्ञके अन्तमें अवभृथ स्नान करनेको आये ॥ २ ॥ तब ब्रह्माकी साक्षात् सरस्वती देवी प्रसन्न जलको बहानेवाली प्रगट हुई ॥ ३ ॥ सरस्वती नदीको देखकर प्रसन्न चित्तवाले मुनि यज्ञ समाप्तकर उसमें अवगाहन करने लगे ॥ ४ ॥ उसके सुन्दर जलोंसे देवादि शिवको तृप्तकर पूर्व वृत्तान्त स्मरण करते काशीमें आये ॥५॥ तब वे हिमालयगिरिसे दक्षिणकी ओर बहनेवाली उस भागीरथीको देखकर वहां स्नान कर उसके तीरसे चले गये ॥६॥ तब काशीमें प्राप्त होकर वे सब प्रसन्न हुए; वहां उत्तर बहनेवाली गंगामें

स्नान कर ॥ ७ ॥ अविमुक्तेश्वर लिंगको देखकर विधिसे पूजन कर चले तो आकाशमें एक उज्ज्वल तेज देखा ॥८॥ जो कोटिसूर्यके समान प्रकाशमान दिव्य महाअद्भुत तेज जिसने अपने प्रकाशसे सम्पूर्ण अकाशको आच्छादित कर लिया था ॥९॥ तब सिद्ध पाशुपत व्रतवाले शरीरमें भस्म लगाये सैंकडों मुनि उसमें प्राप्त होकर लीन हो गये ॥१०॥ इस प्रकार महात्मा तपस्वियोंके लीन होनेपर वह तेज शीघ्रही लीन होगया यह बडी अद्भुत बात हुई ॥ ११॥ नैमिषारण्यवासी उस महा आश्चर्यको देखकर यह क्या है इस बातको न जानकर पूर्वोक्त ब्रह्मवनको गये ॥ १२॥ इनके जानेसे ही पहले लोकपावन पवनदेव नैमिषारण्यवासियोंके दर्शन और उनके सम्वादको ॥१३॥ तथा उनकी शुद्ध बुद्धि साम्ब

अविमुक्तेश्वरं लिंगं दृष्ट्वाभ्यर्च्य विधानतः॥प्रयातुमुद्यतास्तत्र ददृशुर्दिवि भास्वरम्॥८॥सूर्यकोटिप्रतीकाशं तेजोदिव्यं महाद्भुतम्॥ आत्मप्रभावितानेन व्याप्तसंर्वदिगन्तरम्॥९॥अथ पाशुपताः सिद्धाः भस्मसञ्छन्नविग्रहाः॥मुनयोऽभ्येत्य शतशो लीनाः स्युस्तत्र तेजसि ॥१०॥ तथा विलीयमानेषु तपस्विषु महात्मसु ॥ सद्यस्तिरोदधे तेजस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥११॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं नैमिषीया महर्षयः ॥ किमेतदित्यजानन्तो ययुर्ब्रह्मवनं प्रति ॥१२॥ प्रागेवैषां तु गमनात्पवनो लोकपावनः॥दर्शनं नैमिषीयाणां संवादस्तैर्महात्मनः ॥१३॥ शुद्धां बुद्धिं ततस्तेषां सांबे सानुचरे शिवे॥समाप्तिं चापि सत्रस्य दीर्घपूर्वस्य सत्रिणाम् ॥१४॥ विज्ञाप्य जगतां धात्रे ब्रह्मणे ब्रह्मयोनये ॥ स्वकार्यं तदनुज्ञातो जगाम स्वपुरं प्रति ॥ १५ ॥ अथ स्थानगतो ब्रह्मा तुम्बुरोर्नारदस्य च ॥ स्परस्पर स्पर्द्धितयोर्गाने विवदमानयोः ॥ १६ ॥ तदुद्भावितगानोत्थरसैर्माध्यस्थमाचरन् ॥ गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सुखमतेनिषेवितः ॥ ॥ १७ ॥ तदानवसरादेव द्वाःस्थैर्द्वारि निवारिताः ॥ मुनयो ब्रह्मभवनाद्बहिः पार्श्वमुपाविशन् ॥ १८ ॥

शिवमें देखकर यज्ञकी समाप्ति जो दीर्घकालसे थी ॥ १४ ॥ यह सब जगत्के पति ब्रह्माजीसे कथनकर अपने कार्यको कहकर अपने पुरको गये ॥ १५ ॥ तब ब्रह्माजीके स्थानमें तुम्बुरु और नारद प्राप्त हुए, जो कि, वे दोनों परस्पर गानेमें स्पर्धा करते थे ॥ १६ ॥ उनके गानेकी स्पर्धामें उनके निर्णय करनेको ब्रह्माजी मध्यस्थ हुए, गन्धर्वों और अप्सराओंसे सेवित हो वहां स्थित थे ॥ १७ ॥ सो अनवसरमें प्राप्त होनेसे द्वारपालोंने मुनियोंको निवारण किया, तब वे मुनि ब्रह्मवनसे बाहरके पार्श्वभागमें प्राप्त हुए ॥ १८ ॥

तब गाने में नारदजीने तुम्बुरुकी समताको प्राप्त होकर सेवकोंसहित परमेष्ठी ब्रह्मासे आज्ञा लेकर ॥१९॥ परस्पर स्पर्धा छोड मित्रताको प्राप्त हो अप्सरा और गन्धर्वोंके साथ ॥२०॥ नकुलीश्वरदेवको वीणाद्वारा उपासना करनेको भवनसे ऐसे निकले जैसे मेघोंसे सूर्य निकलता है ॥२१॥ मुनियोंमें श्रेष्ठ नारदजीको वह त्रिवेणीके षट्कुलोंमें उत्पन्न हुए ब्राह्मण प्रणाम करके कल्याण विधायि ब्राह्मण परम आदरसे जानेको अवसर पूँछने लगे ॥ २२ ॥ नारदजी बोले, यही अवसर है जाओ; यह कह कार्यान्तरमें चित्त लगे होनेके कारण नारदजी बहुत शीघ्रतासे चले गये ॥२३॥ तब द्वारपालने ब्रह्माके द्वारे स्थित मुनियोंका निवेदन किया, तब वे सब एकत्र मिलकर ब्रह्माके भवनमें प्रविष्ट हुए ॥२४॥ प्रवेश

अथ तुम्बुरुणा गाने समतां प्राप्य नारदः॥साहचर्येष्वनुज्ञातो ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥१९॥त्यक्त्वा परस्परस्पर्द्धां मैत्रीं च परमां गतः॥
सह तेनाप्सरोभिश्च गन्धर्वैश्च समावृतः ॥२०॥ उपवीणयितुं देवं नकुलीश्वरमीश्वरम्॥ भवनान्निर्ययौ धातुर्जलदादंशुमानिव ॥
॥ २१ ॥ तं दृष्ट्वा षट्कुलीयास्ते नारदं मुनिगोवृषम् ॥ प्रणम्यावसरं शंभोः पप्रच्छुः परमादरात् ॥२२॥ स चावसर एवायमितो
तर्गम्यतामिति ॥ वदन्ययावन्यपरस्त्वरया परया युतः॥२३॥ततो द्वारि स्थिता ये वै ब्रह्मणे तान्न्यवेदयन्॥तेन ते विविशुर्वेश्म
पिंडीभूयांडजन्मनः ॥२४॥ प्रविश्य दूरतो देवं प्रणम्य भुवि दंडवत्॥समीपे तदनुज्ञाताः परिवृत्योपतस्थिरे ॥२५॥ तांस्तत्राव
स्थितान् पृष्ट्वा कुशलं कमलासनः ॥ वृत्तांतं वो मया ज्ञातं वायुरेवाह नो यतः॥२६॥भवद्भिः किं कृतं पश्चान्मारुतेंतर्हिते सति ॥
इत्युक्तवति देवेशे मुनयोऽवभृथात्परम् ॥ २७ ॥ गंगातीर्थस्य गमनं यात्रां वाराणसीं प्रति ॥ दर्शनं तत्र लिंगानां स्थापि
तानां सुरेश्वरैः ॥ २८ ॥ अविमुक्तेश्वरस्यापि लिंगस्याभ्यर्चनं सकृत् ॥ आकाशे महतस्तस्य तेजोराशेश्च दर्शनम् ॥ २९ ॥

कर दूरसे देवको देख पृथ्वीमें दण्डप्रणाम कर उनकी आज्ञासे समीपमेंही स्थित हुए ॥२५॥ उनको बैठा देख ब्रह्मा उनकी कुशल पूँछ कर कहने लगे कि, तुम्हारा वृत्तान्त मैंने वायुसे सुन लिया है ॥२६॥ पवनके अन्तर्धान होनेके पीछे फिर तुमने क्या किया यह देवेशके कहनेपर मुनियोंने अवभृथ यज्ञके स्नानके पीछे ॥२७॥ गंगातीर्थ जाना, वाराणसीकी यात्रा करना; वहां सुरासुरके स्थापित लिंगोंको देखना ॥२८॥ तथा अविमुक्तेश्वर लिंगका पूजन करना, आकाशमें महातेजराशिका देखना ॥ २९ ॥

मुनियोंका उसमें प्रवेश होना और तेजका अन्तर्धान होना उसका यथार्थ जानकर विचार करना ॥ ३० ॥ यह सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक ब्रह्माजी को बारंबार प्रणाम कर निवेदन कर दिया, विश्वकर्मा चतुर्मुख ब्रह्माजी मुनियोंके वचन सुनकर ॥ ३१ ॥ कुछेक शिर कँपाकर गंभीर वाणीसे बोले, तुमको परलोककी सिद्धि निकट वर्तती है ॥ ३२ ॥ तुमने दीर्घसत्रसे बहुत कालतक प्रभुका आराधन किया है अब वह प्रसन्न हुए हैं; ऐसा उस तेजने तुमको सूचित किया है ॥ ३३ ॥ जो वाराणसीमें तुमने स्वर्गमें दीप्तिमान् देखा है वह साक्षात् लिंग संज्ञावाला माहेश्वर परमतेज है ॥ ३४ ॥ उसमें श्रौत और पाशुपत व्रतवाले मुनि लीन होगये और नैष्ठिक दग्धपापवाले मुक्त होगये ॥ ३५ ॥ इसी

मुनीनां विलयं तत्र निरोधं तेजसस्ततः॥याथात्म्यवेदनं तस्य चिंतितस्यापि चात्मभिः ॥३०॥ सर्वं सविस्तरं तस्मै प्रणम्याहुर्मुहुर्मुहुः ॥ मुनिभिः कथितं श्रुत्वा विश्वकर्मा चतुर्मुखः॥३१॥कंपयित्वा शिरः किंचित्प्राह गंभीरया गिरा॥प्रत्यासीदति युष्माकं सिद्धिरामुष्मिकी परा ॥३२॥ भवद्भिर्दीर्घसत्रेण चिरमाराधितःप्रभुः॥प्रसादभिमुखो भूत इति भूतार्थसूचितम् ॥३३॥ वाराणस्यां तु युष्माभिर्यद्दृष्टं दिवि दीप्तिमत्॥तल्लिंगसंज्ञितं साक्षात्तेजो माहेश्वरं परम्॥३४॥तत्र लीनाश्च मुनयः श्रौतपाशुपतव्रताः॥मुक्ता बभूवुः स्वस्थाश्च नैष्ठिका दग्धकिल्बिषाः ॥३५॥ प्राप्यानेन यथा मुक्तिरचिराद्भवतामपि॥स चायमर्थः सूच्येत युष्मद्दृष्टेन तेजसा ॥ ३६ ॥ तत्र वः काल एवैष दैवादुपनतः स्वयम्॥प्रयात दक्षिणं मेरोः शिखरं देवसेवितम् ॥३७॥ सनत्कुमारो यत्रास्ते मम पुत्रः परो मुनिः ॥ प्रतीक्ष्यागमनं साक्षाद्भूतनाथस्य नंदिनः ॥३८॥ पुरा सनत्कुमारोपि दृष्ट्वापि परमेश्वरम्॥अज्ञानात्सर्वयोगीन्द्रमानी विनयदूषितः ॥३९॥ अभ्युत्थानादिकं युक्तमकुर्वन्नतिनिर्भयः ॥ ततोऽपराधात्क्रुद्धेन महोष्ट्रो नंदिना कृतः ॥ ४० ॥

मार्गके प्राप्त होनेसे शीघ्र तुम्हारी मुक्ति होजायगी. वही वार्ता तुमको उस तेजने सूचित की ॥ ३६ ॥ सो वह तुम्हारा समय दैवयोगसे स्वयं प्राप्त होगया है, तुम देवताओंसे सेवित मेरुके दक्षिण शिखरमें जाओ ॥३७॥ जहां हमारा पुत्र परम मुनि सनत्कुमार है, वहां साक्षात् भूतनाथ नन्दिके आगमनकी प्रतीक्षा करते हैं ॥ ३८ ॥ पहले सनत्कुमार भी परमेश्वरको आज्ञानसे सब योगीन्द्रोंमें अपनी आत्माको देखनेवाले होनेके कारण दुर्विनीत हो ॥३९॥उनके आनेपर अभ्युत्थानादि कर्मको न करके निर्भय स्थित रहे, तब इससे शुद्ध हुए नन्दिने उसको महाउष्ट्र कर दिया॥४०॥

तब उनके निमित्त बहुत समयतक शोच करते हुए मैंने देवकी उपासना कर और नंदिको प्रसन्न कर ॥ ४१ ॥ किसी प्रकार बडे यत्नसे सनत्कुमारकी आज्ञा उष्ट्रता दूरकी; तब सनत्कुमारने पूर्ववत् शरीर प्राप्त किया॥४२॥तब महादेव हँसते हुए गणाधिपतिसे बोले कि;हे नंदि! हमारी अवज्ञासे तुमने नन्दिको ऐसा किया है ॥ ४३॥ हे पापरहित ! इससे तुम हमारी याथात्म्यको इसके निमित्त कथन करो कारण कि ब्रह्माका पूर्वजपुत्र यह मूढ नर है ॥ ४४ ॥ मैंने इस सनत्कुमारको शिष्यत्वमें दिया; इस कारण इसके प्रति मेरा ज्ञान प्रकाश करो यह तुमको धर्माध्यक्षका अभिषेक करेंगे ॥ ४५ ॥ जिस समय सब भूतगणोंके अग्रणी नन्दिसे यह वचन कहे तब उन्होंने प्रसन्न ही पतिकी आज्ञाशिरसे ग्रहण

अथ कालेन महता तदर्थं शोचता मया ॥ उपास्य देवं देवीञ्च नंदिनं चानुनीय वै ॥ ४१ ॥ कथंचिदुष्ट्रता तस्य प्रयत्नेन निवारिता॥प्रापितो हि यथापूर्वं सनत्पूर्वां कुमारताम् ॥४२॥ तदाह च महादेवः स्मयन्निव गणाधिपम् ॥ अवज्ञाय हि मामेव तथा हंकृतवान्मुनिः ॥ ४३ ॥ अतस्त्वमेव याथात्म्यं ममास्मै कथयानघ ॥ ब्रह्मणः पूर्वजः पुत्रो मां मूढ इव संस्मरन् ॥ ४४ ॥ मयैव शिष्यते दत्तो मम ज्ञानप्रवर्तकः ॥ धर्माध्यक्षाभिषेकं च तव निर्वर्त्तयिष्यति ॥ ४५ ॥ स एवं व्याहृतो भूयस्सर्वभूतगणाग्रणीः ॥ यत्पुराज्ञापनं मूर्ध्ना प्रातः प्रतिगृहीतवान् ॥ ४६ ॥ तथा सनत्कुमारोऽपि मेरौ मदनुशासनात् ॥ प्रसादार्थं गणस्यास्य तपश्चरति दुश्चरम् ॥४७॥ द्रष्टव्यश्चेति युष्माभिः प्राग्गणेशसमागमात् ॥ तत्प्रसादार्थमचिरान्नंदी तत्रागमिष्यति ॥ ४८ ॥ इति सत्वरमादिश्य प्रेषिता विश्वयोनिना॥कुमारशिखरं मेरोर्दक्षिणं मुनयो ययुः ॥४९॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीय संहितायामुत्तर खण्डे नमिषर्षियात्रा वर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

की ॥ ४६ ॥ और सनत्कुमार भी मेरुपर्वतमें मेरी आज्ञासे दुष्कर तपस्या गणेशजीके प्रसन्न होनेके निमित्त करते हैं ॥ ४७ ॥ सो गणेश नन्दिके समागमसे पहलेही तुम सनत्कुमारका दर्शन करो. कारण कि, उनके प्रसन्न करनेको नन्दि बहुत शीघ्र जायँगे ॥ ४८ ॥ इस प्रकार विश्वयोनि ब्रह्माजीने आज्ञा दे उनको वहां शीघ्र भेजा तब वे मुनि मेरुके दक्षिण शिखरमें कुमारको देखनेको गये ॥ ४९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतनैमिषर्षियात्रावर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

सूतजी बोले, वहां सागरके समान मनोहर एक स्कन्द सरोवर है, अमृतके समान स्वादु और ठंढा अगाध हलका उसका जल है ॥ १ ॥ चारों ओर स्फटिकमणिके पर्वतोंसे युक्त है और सब दिशाओंमें फूले हुए फूलोंसे व्याप्त है ॥ २ ॥ सिवार उत्पन्न कमल तारकाओंके समान कुमुद और मेघके समान तरंगोंसे मानो आकाशको आच्छादित किये हुए कि पृथ्वी परही आकाश आ गया है ॥ ३ ॥ सुन्दर नीचे ऊपर जानेके मार्ग स्थूल नील शिलाके बने हुए सीढियोंसे रुचिर आठों दिशाओंको सुन्दर करते हुए हैं ॥ ४ ॥ जहां तहां नीचे ऊपर उतरनेके अनेक स्थान हैं और स्नानकर शुक्ल यज्ञोपवीत पहरे कौपीन वल्कल धारण किये ॥ ५ ॥ जटाओंकी शिखासे युक्त कोई

सूत उवाच॥ तत्र स्कंदसरो नाम सरस्सागरसन्निभम्॥ अमृतस्वादुशिशिरस्वच्छागाधलघूदकम्॥ १॥ समंततः संघटितं स्फटिकोपलसंचयैः॥ सर्वर्तुकुसुमैः फुल्लैश्छादिताखिलदिङ्मुखम्॥ २॥ शैवलरुत्पलैः पद्मैः कुमुदैस्तारकोपमैः॥ तरंगैरभ्रसंकाशैराकाशमिव भूमिगम्॥ ३॥ सुखावतरणारोहैः स्थलैर्नीलशिलामयैः॥ सोपान मार्गै रुचिरैश्शोभमानाष्टदिङ्मुखम्॥ ४॥ तत्रावतीर्णैश्च यथा तत्रोत्तीर्णैश्च भूयसा॥ स्नातैः सितोपवीतैश्च शुक्लाकौपीनवल्कलैः॥ ५॥ जटाशिखायनैर्मुंडैस्त्रिपुंड्रकृतमंडनैः॥ विरागविवशस्मेरमुखैर्मुनिकुमारकैः॥ ६॥ घटैः कमलिनीपत्रपुटैश्च कलशैः शिवैः॥ कमण्डलुभिरन्यैश्च तादृशैः करकादिभिः॥ ७॥ आत्मार्थं च परार्थं च देवतार्थं विशेषतः॥ आनीयमानसलिलमात्तपुष्पं च नित्यशः॥ ८॥ अंतर्जलशिलारूढैर्नीचानां स्पर्शशंकया॥ आचारवद्भिर्मुनिभिः कृतभस्मांगधूसरैः॥ ९॥ इतस्ततोऽप्सु मज्जद्भिरिष्टशिष्टैः शिलागतैः॥ तिलश्चै साक्षतैः पुष्पैस्त्यक्तदर्भपवित्रकैः॥ १०॥ देवाद्यमृषिमध्यं च निर्वर्त्य पितृतर्पणम्॥ निवेदयेदभिज्ञेभ्यो नित्यस्नानगतान् द्विजान्॥ ११॥

मुण्डित, कोई त्रिपुण्ड्रसे शोभायमान वैराग्यसे उज्ज्वल मुखवाले मुनिकुमारोंसे युक्त ॥ ६ ॥ कमलिनी पत्रके दोनोंसे युक्त, घट तथा श्रेष्ठ कलश तथा दूसरे कमंडलु और करकादिसे युक्त ॥ ७ ॥ अपने पराये और विशेषकर देवताके निमित्त जल लाकर और पुष्प लाकर ॥८॥ अन्तर्जलको नीचोंके स्पर्शकी शंकासे शिलामें रक्खे आचारवाले मुनियोंसे युक्त, भस्म अंग धारणादिसे युक्त ॥९॥ इधर उधर जलमें मज्जन करते हुए, यजन करनेसे बचे हुए शिलामें प्राप्त तिल अक्षत पुष्प और त्यागे हुए दर्भ और पवित्रीसे उपलक्षित ॥ १० ॥ कहीं देवता

और ऋषि तर्पणको कर चुकनेके उपरांत नित्य स्नान करे हुए ब्राह्मणोंको निवेदन करके॥११॥स्थानस्थानमें अनेक बलिपूजा करनेपर पहले सूर्यको अर्घ्य देकर फिर स्थंडिलमें पूजा आदि करके सम्पन्न ॥ १२॥ कहीं निमज्जन करते कहीं स्नान करके निकलते हुए हाथियोंसे व्याप्त, कहीं तृष्णासे जाते हुए मृगी और मृगोंसे सम्पन्न॥१३॥ कहीं जल पीकर आते हुए मोर और हाथी, कहीं परस्पर वृषभोंके तटाघातसे युक्त ॥ १४॥ कहीं कारंडव पक्षियोंके शब्द कहीं सारसके शब्दोंसे युक्त; कहीं कोयल और पपीहा और भ्रमरोंकी झनकारसे सम्पन्न ॥ १५॥ स्नान पानादिके करनेसे अपनी सम्पत्से जीनेवाले तथा प्रेमसे परस्पर सब प्राणियोंके वचनोंसे युक्त॥१६॥किनारेके वृक्ष आदिपर कोकिला बैठे हुए मानो गरमीसे व्याकुल हुए सब जीवोंको

स्थानेस्थाने कृतानेकबलिपुष्पसमीरणैः ॥ सौरार्घ्यपूर्वं कुर्वद्भिःस्थंडलेभ्यर्चनादिकम्॥१२॥क्वचिन्निमज्जदुन्मज्जत्प्रस्रस्तगजयूथ
पम्॥क्वचिच्च तृषयायातमृगीमृगतुरंगमम् ॥१३॥ क्वचित्पीतजनोत्तीर्णमयूरवरवारणम् ॥ क्वचित्कृततटाघातवृषप्रतिवृषोज्ज्वलम्
॥ १४ ॥ क्वचित्कारंडवरवैः क्वचित्सारसकूजितैः ॥ क्वचिच्च कोकनिनदैः क्वचिद्भ्रमरगीतिभिः ॥ १५ ॥ स्नानपानादिकरणैः स्वसं
पद्वृद्धमजीविभिः ॥ प्रणयात्प्राणिभिस्तैस्तैर्भाषमाणमिवासकृत् ॥१६॥ कूलशाखिशिखालीनकोकिलाकुलकूजितैः ॥ आतपोप
हतान्सर्वान्नामंत्रयदिवानिशम् ॥१७॥ उत्तरे तस्य सरसस्तीरे कल्पतरोरधः ॥ वेद्यां वज्रशिलामय्यां मृदुले मृगचर्मणि ॥१८॥
सनत्कुमारमासीनं शश्वद्बालवपुर्द्धरम् ॥ तत्कालमात्रोपरतं समाधेरचलात्मनः ॥ १९ ॥ उपास्यमानं मुनिभिर्योगींद्रैरपि पूजि
तम् ॥ ददृशुर्नैमिषेयास्ते प्रणताश्चोपतस्थिरे ॥ २० ॥ यावत्पृष्टवते तस्मै प्रोचुः स्वागतकारणम् ॥ तुमुलः शुश्रुवे तावद्दिवि
दुंदुभिनिस्वनः ॥ २१ ॥ ददृशे तत्क्षणे तस्मिन्विमानं भानुसन्निभम् ॥ गणेश्वरैरसंख्येयैः संवृतं च समंततः ॥ २२ ॥

अपनी ओर बुलाते हैं ॥१७॥ उस सरोवरके उत्तरकी ओर कल्पतरुके नीचे वज्रशिलाहीकी बनी वेदी और कोमल मृगचर्म उसपर बिछा हुआ॥१८॥ उसके ऊपर सदा बालकशरीरधारी सनत्कुमार बैठे हुए; वह अचलात्मा समाधिसे उसी समय उपरामको प्राप्त हुए॥१९॥ मुनि और योगीन्द्र उनकी उपासना और पूजा करते थे; इस प्रकार नैमिषारण्यवासी मुनियोंने उनको देखा तो प्रणामकर उनके निकट उपस्थित हुए ॥२०॥ तब पूँछनेपर उन्होंने अपने आनेका कारण कहा, तब तक बडा भारी दुन्दुभि शब्द आकाशमें होता भया॥२१॥उस समय सूर्यके समान विमान दिखाई दिया जो चारो ओर

असख्यं गणेश्वरोंसे व्याप्त था ॥ २२ ॥ अप्सराओंके समूहसेसंकीर्ण, रुद्रकन्याओंसे व्याप्त, मृदंग, वेणु वीणा के शब्दोंसे सम्पन्न ॥२३॥ चित्र रत्न और वितान आदिसे युक्त,मुक्तादामसे विराजित, सिद्धगन्धर्व यक्ष चारण किन्नर आदिसे सम्पन्न॥ २४॥नाचते गाते और चारोंओरसे बजाते हुए वीरगो वृषके चिह्न और दिव्य विक्रमसे युक्त लकडी लिये हुए ॥ २५ ॥ विमानके ऊपर ध्वजा पताका फहराय रहीं, उस विमानके मध्यमें दो चामर स्थित थे ॥२६ ॥ एक पवित्र छत्र जिसकी मणि जटित डंडी लगी थी दिव्य सिंहासनपर देवी सुयशाके सहित ॥ २७ ॥ शरीर की कान्तिसे तथा तीनों नेत्रोंसे सम्पन्न तथा अनेक प्रकार शिवाके कृत्योंका जाननेवाला ॥२८ ॥ मानों जगत्के कर्ताकी लंघनके अयोग्य

अप्सरोगणसंकीर्णं रुद्रकन्याभिरावृतम्॥मृदंगमुरजोद्घुष्टं वेणुवीणारवान्वितम्॥२३॥ चित्ररत्नवितानाढ्यं मुक्तादामविराजितम् ॥ मुनिभिस्सिद्धगंधर्वैर्यक्षचारणकिन्नरैः ॥२४॥ नृत्यद्भिश्चैव गायद्भिर्वादयद्भिश्च संवृतम्॥ वीरगोवृषचिह्नेन विद्रमद्रुमयष्टिना ॥२५॥ कृतगोपुरसत्कारं केतुना मान्यहेतुना॥तस्य मध्ये विमानस्य चामरद्वितयांतरे॥२६॥ छत्रस्य मणिदंडस्य चंद्रस्येव शुचेरधः॥दिव्य सिंहासनारूढं देव्या सुयशया सह॥२७॥श्रिया च वपुषा चैव त्रिभिश्चापि विलोचनैः ॥ प्राकारैरभिकृत्यानां प्रत्यभिज्ञापकं प्रभोः ॥ ॥ २८ ॥ अविलंघ्य जगत्कर्तुराज्ञापनमिवागतम् ॥ सर्वानुग्रहणं शंभोः साक्षादिव पुरःस्थितम् ॥ २९ ॥ शिलादतनयं साक्षाच्छ्रीमच्छूलवरायुधम् ॥ विश्वेश्वरगणाध्यक्षं विश्वेश्वरमिवापरम् ॥ ३० ॥ विश्वस्यापि विधातॄणां निग्रहानुग्रहक्षमम् ॥ चतुर्बाहुमुदारांगं चन्द्ररेखाविभूषितम् ॥३१॥ कंठे नागेन मौलौ च शशांकेनाप्यलंकृतम् ॥ सविग्रहमिवैश्वर्यं सामर्थ्यमिव सक्रियम् ॥ ३२ ॥ समाप्त मिव निर्वाणं सर्वज्ञमिव संगतम् ॥ दृष्ट्वा प्रहृष्टवदनो ब्रह्मपुत्रः सहर्षिभिः ॥ ३३ ॥

आज्ञाके कहनेको आये हुए अथवा साक्षात् सबके ऊपर अनुग्रह करनेवाले शिवके साक्षात् आगे स्थित हुए ॥२९॥ शिलापुत्र श्रीमान् साक्षात् नंदी शूल हाथमें लिये विश्वेश्वरके गणोंके अध्यक्ष दूसरे विश्वेश्वरहीके समान स्थित ॥ ३० ॥ संसार और विधाताओके निग्रह अनुग्रह करनेमें समर्थ, चारभुजा, उदार शरीर, चन्द्ररेखासे विभूषित ॥ ३१ ॥ कंठके बीचमें नाग, माथेपर शोभित चन्द्रमासे अलंकृत मानों ऐश्वर्यका शरीर धारे सत्क्रियाकी मानो सामर्थ्य ॥ ३२ ॥ मुक्तिके समाप्तिरूप अर्थात् प्राप्त हुए सर्वज्ञताको प्राप्त हुए उनको सनत्कुमार महर्षियोंके सहित प्रसन्न

मुख होकर ॥ ३३ ॥ हाथजोडे उठकर खडे होगये, और उनके निमित्त अपनी आत्माको अर्पण करते हुए. जब वह विमान बहुत निकट पृथ्वीपर आगया ॥ ३४ ॥ तब दण्डवत् प्रणाम कर देवकी स्तुतिकर मुनियोंकी विज्ञप्तिकी कि, यह षट्कुलवाले मुनि नैमिषारण्यक्षेत्रमें दीर्घसत्र कर चुके हैं; अब सब ब्रह्माकी आज्ञासेआपकी सेवा करने आयेहैं. ॥ ३५ ॥ नन्दी यह ब्रह्मपुत्रके वचन सुन दृष्टिमात्रसेही उन सबके बन्धन छेदनकर शिवधर्म ईश्वर सम्बन्धी ज्ञानयोग देकर शिवके समीप चले गये ॥ ३६ ॥ सनत्कुमारने वह सब ज्ञान हमारे गुरु व्यासदेवसे

तस्थौ प्राञ्जलिरुत्थाय तस्यात्मानमिवार्पयन् ॥ अथ तत्रांतरे तस्मिन्विमाने चावनिंगते॥३४॥प्रणम्य दण्डवद्देवं स्तुत्वा व्यज्ञाप यन्मुनीन्॥षट्कुलीया इमे दीर्घनैमिषे सत्रमास्थिताः॥आगता ब्रह्मणादिष्टाः पूर्वमेवाभिकांक्षया ॥३५॥ श्रुत्वा वाक्यं ब्रह्मपुत्रस्य नंदी छित्त्वा पाशान्दृष्टिपातेन सद्यः॥शैवं धर्मं चैश्वरं ज्ञानयोगं दत्त्वा भूयो देवपार्श्वं जगाम ॥ ३६ ॥ सनत्कुमारेण च तत्समस्तं व्यासाय साक्षाद्भरवे ममोक्तम्॥ व्यासेन चोक्तं महितेन मह्यं मया च तद्वः कथितं समासात् ॥३७॥ नावेदविद्भ्यः कथनीयमेत त्पुराणरत्नं पुरशासनस्य॥ नाभक्तशिष्याय च नास्तिकेभ्यो दत्तं हि मोहान्निरयं ददाति ॥ ३८ ॥ मार्गेण सेवानुगतेन यैस्तद्दत्तं गृहीतं पठितं श्रुतं वा ॥ तेभ्यः सुखं धर्ममुखं त्रिवर्गं निर्वाणमंते नियतंददाति॥ ३९ ॥ परस्परस्योपकृतं भवद्भिर्मया च पौराणिकमार्ग्गयोगात् ॥ अतो गमिष्येऽहमवाप्तकामः समस्तमेवास्तु शिवं सदा नः ॥ ४० ॥

वर्णन किया है; व्यासजीने मुझसे और मैंने संक्षेपसे तुमको सुनाया है ॥ ३७ ॥ वह वेदके न जाननेवालेको यह शिवज्ञान पुराणरत्न कहना उचित नहीं है, जो अभक्त हो शिष्य न हो नास्तिक हो उसे न देना चाहिये; यदि किसीको लोभसे दिये तो नरकमें जाता है ॥ ३८ ॥ जिसने सेवानुगत मार्गसे इसको दिया, ग्रहण किया, अथवा पढा सुना है उन्हींके मुखसे सुना हुआ धर्मादिक तीन (धर्म अर्थ काम) स्वर्गको देकर अन्तमें मोक्ष देता है ॥ ३९ ॥ मैंने पौराणिकमार्गके योगसे आपका परस्पर उपकार किया है; इससे पूर्ण कामना होकर मैं जाताहूं तुम

सबका मंगल हो ॥ ४० ॥ जब ऐसा आशीर्वाद देकर सूतजी चले गये, तब वे सब मुनि पूजनीय प्रयागमें अपना यज्ञ पूर्णकर कलियुगके विषयोंसे और स्थानोंको कलुषित देख काशीमें निवास करने लगे ॥ ४१ ॥ तब वे सब पशु पाशसे छूटनेकी इच्छाकर स्वयं अपने किये पाशुपत व्रतके प्रभावसे सम्पूर्ण ज्ञानकी समाधिको प्राप्त हो निन्दा रहित परम मुक्तिको प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले, इस शिवपुराणको आदरसे पढना चाहिये, और इसी यत्नसे सुनना चाहिये ॥ ४३ ॥ इसको नास्तिक, श्रद्धाहीन, शठ, शिवका अभक्त धर्मध्वजी

सूते कृताशिषि गते मुनयः सुवृत्ता यागे च पर्यवसिते महति प्रयागे ॥ काले कलौ च विषयैः कलुषायमाणे वाराणसीपरिसरे व सतिं वितेनुः ॥ ४१ ॥ अथ च ते पशुपाशमुमुक्षयाखिलतया कृतपाशुपतव्रताः ॥ अधिकृताखिलबोधसमाधयः परमनिर्वृतिमापुरनिंदिताः ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ एतच्छिवपुराणं हि समाप्त हितमादरात् ॥ पठितव्यं प्रयत्नेन श्रोतव्यं च तथैव हि ॥ ४३ ॥ नास्तिकाय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च ॥ अभक्ताय महेशस्य तथा धर्मध्वजाय च ॥४४॥ एतच्छ्रुत्या ह्येकवारं भवेत्पापं हि भस्मसात् ॥ अभक्तो भक्तिमाप्नोति भक्तो भक्तिसमृद्धिभाक् ॥ ४५ ॥ पुनः श्रुते च सद्भक्तिर्मुक्तिस्स्याच्च श्रुते पुनः ॥ तस्मात्पुनःपुनश्चैव श्रोतव्यं हि मुमुक्षुभिः ॥ ४६ ॥ पञ्चावृत्तिः प्रकर्तव्या पुराणस्यास्य सद्धिया ॥ परं फलं समुद्दिश्य तत्प्राप्नोति न संशयः ॥ ४७ ॥ पुरातनाश्च राजानो विप्रा वैश्याश्चःसत्तमाः ॥ सप्तकृत्वस्तदावृत्त्यालभन्त शिवदर्शनम् ॥ ४८ ॥ श्रोष्यत्यथापि यश्चेदं मानवो भक्तितत्परः ॥ इह भुक्त्वाखिलान्भोगानंते मुक्तिं लभेच्च सः ॥ ४९ ॥

पाखण्डीको न देना चाहिये ॥ ४४ ॥ इसके एक बार सुननेसे ही पाप नष्ट होजाते हैं, अभक्त भक्त होता और भक्तकी समृद्धि बढती है ॥ ॥ ४५ ॥ फिर सुननेसे सद्भक्ति और फिर सुननेसे मुक्ति होती है, इस कारण मुमुक्षुओंको यह बारंबार सुनना चाहिए ॥ ४६ ॥ श्रेष्ठ बुद्धिसे इस पुराणकी पांच आवृत्ति करे तब उसको परम फल प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४७ ॥ पुरातन राजा ब्राह्मण तथा वैश्य इसकी सात आवृत्ति करके शिवका दर्शन पाचुके हैं ॥ ४८ ॥ जो मनुष्य भक्तिमें तत्पर होकर इसको सुनता है, वह यहां अनेक

भोगोंको भोगकर अन्तमें मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ यह शिवपुराण शिवको अत्यन्त प्यारा है, भुक्ति मुक्तिका देनेवाला, ब्रह्म संमित तथा भक्तिका बढानेवाला है ॥५०॥ इस शिवपुराणके वक्ता श्रोताका सदा गणपति कार्त्तिकेय तथा पार्वतीसहित शिवजी मंगल करें ॥५१॥

एतच्छिवपुराणं हि शिवस्यातिप्रियं परम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं ब्रह्मसंमितं भक्ति वर्द्धनम् ॥ ५० ॥ एतच्छिवपुराणस्य वक्तुः श्रोतु श्च सर्वदा ॥ सगणस्ससुतस्सांबश्शं करोतु स शंकरः ॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहा पुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे व्यासोपदेश श्रीशिवमहापुराणमाहात्म्यवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

समाप्तमिदं श्रीशिवमहापुराणं भाषाटीकायुतम् शुभमस्तु

इति श्रीशिवमहापुराणसप्तम्यांवायवीयसंहितायां मुरादाबादनिवासी पंडितसुखानन्दमिश्रसूनुपंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषांटीकायामुत्तरखण्डे यासोपदेशश्रीशिवपुराणमाहात्म्यवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

दोहा—श्रीशंकर पदकमल युग, उमा सहित हिय लाय । वायुसंहिताको तिलक, कीन्हों पूर्ण बनाय ॥ १ ॥
पढै सुनै कर प्रेम जो, लहै पदारथ चार । तातें शिव सुमिरण करहु, जगजंजाल बिसार ॥ २ ॥
श्रोता वक्ताके भवन, मंगल होहिं अनेक । दृढभक्ती कर राखिये, शम्भुनाम की टेक ॥ ३ ॥
उन्निस सौ पैंसठ सुभग, संवत् आश्विन मास । शरदपूर्णिमा शुक्ल दिन, पूर्ण कियो सुखरास ॥ ४ ॥
बसत रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद । भजन करत नित शम्भुको, द्विज ज्वालापरसाद ॥ ५ ॥

विदुषामभ्यर्थना।

अत्रास्मकं मुद्रणालये ऋगादयो वेदा उपनिषदो वेदान्तग्रन्था महाभारतादीतिहासाः श्रीमद्भागवतादिमहापुराणोप-पुराणानि धर्मशास्त्र-कर्मकाण्ड-व्याकरण-न्याय-योग-सांख्य-मीमांसादिशास्त्रीयग्रन्थाः काव्य-नाटक-चम्पू-प्रभृतयो ग्रन्थाः सहस्रनामाद्यनेकस्तोत्रग्रन्था विविधभाषाग्रन्थाश्च सीसकोत्तममहल्लघ्वक्षरैर्मनो-हरं मुद्रिता योग्यमूल्येन क्रय्या सन्ति, तांश्च ग्राहका यथापुस्तकसूचीपत्रं मूल्यप्रेषणेन प्राप्नुयुः।

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासः "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणालयाध्यक्षः, मुंबईस्थः।

मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,-बम्बई.

पुनर्मुद्रणादि सर्वाधिकार "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्षके अधीन है।

इति श्रीशिवमहापुराणं भाषाटीकासहितं समाप्तम्

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन – बम्बई ४.